लघुसिद्धान्तकौमुदी
'श्रीधरमुखोल्लासिनी' हिन्दीव्याख्यासमन्विता
व्याख्याकारः
गोविन्द प्रसाद शर्मा
सम्पादकः
आचार्य रघुनाथ शास्त्री

लघुसिद्धान्तकौमुदी – गोविन्द प्रसाद शर्मा

ISBN : 978-93-81484-45-5

प्रकाशक :
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी 221001
दूरभाष : +91 542 2335263, 2335264
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in
website : www.chaukhamba.co.in
: @chaukhambabooks
: @chaukhamba

संस्करण : 2021
₹ 425

वितरक :
चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए
अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली 110002
दूरभाष : +91 11 23286537, 41530947 (मो.) +91 9811104365
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
4360/4, अंसारी रोड दरियागंज
नई दिल्ली 110002

*

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069
वाराणसी 221001

मुद्रक : ए.के. लिथोग्राफर, दिल्ली,

The
CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA
420
—*—

THE LAGHUSIDDHĀNTAKAUMUDĪ
of
SRĪ VARADARĀJĀCĀRYA

Hindi Commentary by

GOVIND PRASAD SHARMA
(Govindacharya)

Edited by

ACHARYA RAGHUNATH SHASTRI

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
VARANASI

Publishers :

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN

K-37/117, Gopal Mandir Lane,

Post Box No. 1129, Varanasi-221001

Tel. : (0542)2335263

Also can be had from :

CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE

4697/2, Ground Floor

Gali No. 21-A, Ansari Road

Daryaganj, New Delhi 110002

Tel. : (011)32996391 Fax: (011)23286537

e-mail : chaukhamba_neeraj@yahoo.com

CHOWKHAMBA SANSKRIT PRATISTHAN

38 U.A. Bungalow Road, Jawahar Nagar

Post Box No. 2113

Delhi 110007

Tel. : (011)23856391

CHAUKHAMBA VIDYABHAWAN

Chowk (Behind to Bank of Baroda Building)

Post Box No. 1069

Varanasi 221001

Tel. : (0542)2420404

Printed by

A.K. Lithographers, Delhi

समर्पणम्

आत्रेयान्वयदुग्धवारिधिविधुं श्रीमुक्तिनारायणं
शालग्रामनिदर्शनाच्छुकगुरोः श्रीपादपद्माश्रितम्।
गोपालार्यगुरोरवाप्तनिगमञ्चाणङ्गूरार्यात् सदा
वन्दे श्रीशठकोपयोगिकृपया तूर्याश्रमाप्तं गुरुम्॥१॥

जातो यदीयकृपया मम बोधलेशः
तद्द्वारतस्तदनुशास्त्रपथे प्रवेशः।
षट्शास्त्रकोविदवरान् निजमातुलान् तान्
श्रीश्रीधरान् गुरुवरान् प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥२॥

स्वाचार्यं श्रीधरं शान्तं षडाचार्यं यतिं गुरुम्।
श्रीनिवासं मुक्तिनारायणं रामानुजं भजे॥३॥

भीमप्रसादसत्पुत्रः गोविन्दो वैष्णवो गृही।
पाणिनीयप्रवेशाय ऋजुमार्गावलम्बिनाम्॥४॥
लघुसिद्धान्तकौमुद्या व्याख्यां कृत्वा यथामति।
श्रीधराचार्यमोदाय समर्पयति सादरम्॥५॥

श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्योभयवेदान्तप्रवर्तकाचार्याणाम् अस्मदाचार्याणां षडाचार्यवर्याणामनन्तश्रीविभूषितानां **श्रीनिवास-मुक्तिनारायण-रामानुज-जीयर (श्रीधराचार्य)** स्वामिवर्याणाञ्चरणयोः समर्पणम्।

संस्कृत जगत् के प्रकाण्ड विद्वान् व्याकरणादि शास्त्रों के मर्मज्ञ,
अधिगतयाथातथ्य, अनेक दुरूह ग्रन्थों के प्रणेता एवं व्याख्याता,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
के भूतपूर्व व्याकरणविभागाध्यक्ष एवं
महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, जबलपुर के पूर्व कुलपति
आचार्य श्री प्रो. आद्या प्रसाद मिश्र जी
के द्वारा प्राप्त

शुभाशंसा

प्रबुद्ध चिन्तक, मनीषी **पं. गोविन्द प्रसाद शास्त्री** द्वारा **लघुसिद्धान्तकौमुदी** पर **श्रीधरमुखोल्लासिनी** नाम से लिखित हिन्दी व्याख्या का आद्यन्त अवलोकन किया। व्याख्या अतीव सटीक, सरल और बोधगम्य है। शास्त्रसम्मत सभी विचार इतने विस्तार से समझाये गये हैं कि इसे पढ़ लेने पर किसी प्रकार के अतिरिक्त शंका समाधान की कोई बात अवशिष्ट नहीं रह जाती है।

यद्यपि **लघुसिद्धान्तकौमुदी** की इससे पूर्व भी हिन्दी भाषा में अनेक व्याख्यायें एवं टीकायें लिखी जा चुकी हैं और कुछ तो बहुत ही अच्छी हैं। यदि लघुसिद्धान्तकौमुदी की उत्तम-व्याख्याओं की कोई सूची बनाई जाती है तो इस श्रेणी में इसे भी स्थापित किया जा सकेगा। उनमें भी विषय को सहजता एवं सरलता से समझाना इसकी पृथक् विशेषता होगी।

श्री गोविन्द प्रसाद शास्त्री जी अत्यन्त मेधावी, अध्यवसायी और प्रतिभाशाली विद्वान् हैं। उनका यह कार्य बहुत ही सराहनीय है। इससे न केवल छात्रों का उपकार होगा अपितु जिज्ञासु अध्यापकों की शंकाओं के समाधान में भी बड़ा सहयोग मिलेगा।

परमेश्वर से मेरी प्रार्थना है कि **गोविन्द प्रसाद शास्त्री** जी निरन्तर इस अध्यवसाय में लगे रहें और अपनी कृतियों से व्याकरण जगत् का उपकार करते रहें।

दिनांक:- 16-5-2006, वाराणसी

प्रो. आद्या प्रसाद मिश्र

सम्पादकीय

वाक्यकारं वररुचिं भाष्यकारं पतञ्जलिम्।
पाणिनिं सूत्रकारं च प्रणतोऽस्मि मुनित्रयम्॥

न केवल मानवजाति अपितु सम्पूर्ण प्राणिमात्र का सर्वतोभावेन ऐहिक और पारलौकिक कल्याण भारतीय संस्कृति से ही सम्भव है, इस बात को आज का वैज्ञानिक समाज भी अनुभव करने लगा है। इस आर्षसंस्कृति का आधार है- **संस्कृतवाङ्मय** और इसका भी मूल आधार है **पाणिनीय व्याकरण।**

महाकवि कालिदास की **नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण** इस सूक्ति के अनुसार संसार की अन्य वस्तुओं के समान हमारी संस्कृति और संस्कृत भाषा भी कभी सुविकसित अवस्था तो कभी सामान्य अवस्था को प्राप्त करती है। इसीलिए कुछ समय से विलुप्त-सी हमारी संस्कृत-संस्कृति का आज पुनः व्यापक प्रचार-प्रसार हो रहा है।

संस्कृतवाङ्मय में अन्य आचार्यों के भी व्याकरण-सूत्र थे परन्तु महर्षि पाणिनि जी के सूत्रों के आगे सभी फीके पड़ गए। उसमें कारण था पाणिनि-रचित सूत्रों की अपनी वैज्ञानिक विशेषता और परवर्ती आचार्य कात्यायन एवं पतञ्जलि के द्वारा वार्तिक एवं महाभाष्य की रचना।

महर्षि पाणिनि रचित इन सूत्रों के ऊपर **सूत्रानुसारी** एवं **प्रक्रियानुसारी** दो प्रकार की व्याख्याएँ लिखी गईं। सूत्रानुसारी व्याख्याओं में प्रसिद्ध हैं- **काशिका** आदि एवं **प्रक्रियानुसारी** में प्रमुख हैं- **प्रक्रियाकौमुदी** आदि।

उपर्युक्त दो धाराओं के कारण ही पाणिनीय व्याकरण नव्य एवं प्राचीन के भेद से विभक्त हुआ है। ज्ञान की दृष्टि से दोनों प्रक्रिया एक दूसरे के पूरक हैं फिर भी सुविस्तृत संस्कृत-साहित्य में प्रवेश पाने के लिए आज प्रायः लघुकौमुदी आदि नव्य ग्रन्थों का ही सहारा लिया जाता है। आचार्य वरदराज ने पाणिनीय अष्टाध्यायी के लगभग ४००० सूत्रों में से अति-उपयुक्त १२७६ सूत्रों को लेकर यह ग्रन्थ बनाया। इस ग्रन्थ के अध्ययन से छात्रों को संस्कृत-व्याकरण का परिचय अच्छी तरह प्राप्त हो जाता है क्योंकि इसमें व्याकरण के सन्धि, समास, कारक आदि अत्यावश्यक सभी विषयों का समावेश है। यही कारण है कि आज संस्कृतज्ञान के लिए लघुकौमुदी का ही पठन-पाठन सर्वत्र विशेषतः उत्तर भारत में होता है।

सभी शास्त्रों में व्युत्पन्न होने के लिए प्रारम्भावस्था में ही व्याकरण के साथ कोष और काव्य का पढ़ना भी आवश्यक होता है। लोक में एक कहावत प्रसिद्ध है कि **तीन पन्द्रहे पण्डित** अर्थात् रघुवंश के १५ सौ, अमरकोष के १५ सौ और लघुकौमुदी के भी १५ सौ श्लोक (३२-३२ अक्षर पर एक-एक श्लोक करने पर) के अध्ययन से व्यक्ति विद्वान् माना जाता है।

यद्यपि इन तीनों में अन्यतम इस लघुसिद्धान्तकौमुदी की संस्कृत, हिन्दी और अन्य भाषाओं में भी कई व्याख्यायें हो चुकी हैं फिर भी हिन्दीभाषियों के लिए एक नातिविस्तृत और नातिलघु उत्कृष्ट व्याख्याग्रन्थ की अपेक्षा थी, क्योंकि इससे पहले के व्याख्याग्रन्थ या तो अतिविस्तृत थे या तो अतिलघु। अतिविस्तृत ग्रन्थ केवल अध्यापकों के लिए होते हैं तो अतिलघु ग्रन्थ सामान्य रूप से केवल शब्दार्थ-बोधन के लिए। जिससे प्रारम्भिक छात्रों को अध्ययन करने में अति कठिनाई महसूस हो रही थी। अतः सभी बातों को ध्यान में रखते हुए पूज्य गुरुदेव **श्री गोविन्दाचार्य जी** ने इस **श्रीधरमुखोल्लासिनी** नामक व्याख्याग्रन्थ की रचना की है।

इस व्याख्याग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेपता यह है कि २५-२६ वर्षों से छात्रों को अध्यापन कराते समय ग्रन्थस्थ कठिन विषयों को सरलता से समझाने की आवश्यकता महसूस कर पूज्य श्री गुरुदेव जी ने जो प्रयोगात्मक शैली अपनायी एवं जिससे उन्हें भारी सफलता भी मिली। उसी शैली को श्री गुरुदेव जी ने यहाँ लिखित रूप में परिणत किया है। तात्पर्य यह है कि आज के इस वैज्ञानिक युग में प्रत्येक विषयों को वैज्ञानिक ढंग से समझाने से ही कठिन से कठिन विषय भी छात्र शीघ्र ग्रहण कर सकता है। अत: परम्परा से कठिन रूप में ग्रहण किए जाने वाले इस संस्कृत-व्याकरण को इन्होंने युगसापेक्ष अत्यन्त सरल एवं सुबोध बनाया है।

मुझे नहीं लगता कि विद्यार्थियों के समझने के लिए इससे भी सरल, सुबोध और सारगर्भित किसी अन्य व्याख्या की आवश्यकता पड़ेगी क्योंकि इस व्याख्या में गुरुदेव ने विशेषकर प्रारम्भिक छात्र एवं अध्यापकों का ध्यान रखते हुए कभी भी कहीं भी पाण्डित्य-प्रदर्शन नहीं किया है। इसीलिए कहीं-कहीं कठिन विपयों को बार-बार या अतिविस्तृत रूप से समझाया है तो कहीं-कहीं सरल विषयों को अतिसंक्षेप में बताया गया है। उन छात्रों के लिए तो यह ग्रन्थ वरदान सिद्ध हो सकता है, जो गुरुकुलीय शिक्षा ग्रहण न करके विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में जाकर अध्यापकों से केवल एक बार श्रवण कर पाते हैं।

इसी प्रकार श्री गुरु जी के केवल यही नहीं अन्य भी अनेक व्याख्याग्रन्थ और मौलिकग्रन्थ अध्येताओं को ध्यान में रखकर ही बने हुए हैं, जिसमें उल्लेखनीय है उनकी मौलिक कृति **ऋजुसिद्धान्तकौमुदी**। इस ग्रन्थ की रचना के पीछे भी कारण यही दीखता है कि जो लघुकौमुदी आदि ग्रन्थों को भी कठिन मानकर संस्कृत का अध्ययन नहीं कर पाते हैं किन्तु अध्ययन करना चाहते हैं, उन छात्रों के लिए अत्यन्त सरल एवं सुबोध भाषा में व्याख्यासहित अष्टाध्यायी के मात्र ६०० सूत्रों का संग्रह करके इसकी रचना की गई। जिसके अध्ययन से छात्र सामान्यत: व्याकरणसम्बन्धी अत्यावश्यक सभी विपयों का ज्ञान कर सकता है।

इस प्रकार पूज्य श्री गुरुदेव के सर्वजनहिताय किए हुए सत्कार्य एवं स्वयं उनके विषय में जितना भी कहें, कम ही है फिर भी कुछ अपने से जुड़ी घटनाओं का अवश्य उल्लेख करना चाहूँगा। जब श्री पूज्य गुरुदेव अयोध्या जी में व्याकरण-विभागाध्यक्ष के पद पर रहकर अध्यापन कर रहे थे तब अयोध्या में एक ही स्वर गूँजता था कि यदि व्याकरण पढ़ना है तो **श्री गोविन्दाचार्य जी** के पास में जायें। इसीलिए उनके वहाँ रहते न केवल अपने विद्यालय के छात्र अपितु अन्य विद्यालय के छात्रों की भी अध्ययन के लिए भीड़ लगी रहती थी। उस समय में ही उनकी दिग्दिगन्त तक अध्यापनकलारूपी कीर्ति फैल चुकी थी इसीलिए न केवल अयोध्या के आस-पास के लोग अपितु नेपाल, भूटान, आसाम आदि जैसे दूर-दराज के स्थानों से भी छात्र पढ़ने के लिए अयोध्या आया करते थे। ऐसे छात्रों में से मैं भी एक हूँ, जो उस समय अयोध्या से दूर किसी गुरुकुल में प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण कर रहा था। मुझे भी वहाँ के सभी लोगों ने यही बताया कि यदि तुम संस्कृतव्याकरण का उत्कृष्ट अध्ययन करना चाहते हो तो अयोध्या जाकर आपसे अध्ययन करो। मेरे लिए अत्यन्त खेद का विषय है कि मैं अयोध्या आकर भी वहाँ अल्प समय तक ही रहा और जब तक रहा तब तक भी आपके सान्निध्य में न रह सका। जिससे आपसे अधिक पढ़ने या ग्रहण करने का अवसर प्राप्त न हुआ। फिर भी समय-समय पर आपसे प्रेरणा जरूर मिलती रही।

मुझे बाल्यावस्था का वह दिन याद है, जब आपसे मेरी पहली मुलाकात हुई थी। उस दिन आप हम सभी छात्रों के उत्साहवर्धन के लिए अपनी जेब से पैसे निकालकर श्लोकान्त्याक्षरी, सूत्रान्त्याक्षरी आदि के प्रतियोगियों को पुरस्कृत कर रहे थे। मेरे लिए यही था आपकी उदारता एवं विद्यार्थियों के प्रति प्रेम को जानने का एक सुनहरा अवसर। उसके बाद जब मैं वृन्दावन और बनारस आदि क्षेत्रों में अध्ययनार्थ रहा, तब ये शब्द वहाँ सुनाई देने लगे कि पूज्य **श्री गोविन्दाचार्य जी** बहुजनहिताय अपने सीमित विद्यालयीय कार्यक्षेत्र को त्यागकर असीमित सामाजिक कार्यक्षेत्र को स्वीकार कर अनेक छात्रों को शिक्षा प्रदान कर रहे हैं।

आपने दिल्ली में आकर सर्वप्रथम अपने आचार्य **श्री मुक्तिनारायण रामानुज जीयर स्वामी जी** के आशीर्वाद एवं उनके सुशिष्य **श्री मुक्तिनाथपीठाधीश्वर स्वामी श्रीकमलनयनाचार्यजी (अखण्ड ज्योतिबाबा)** की कृपा और उनके शिष्यों के सहयोग से **श्रीमुक्तिनाथ पीठ वेद विद्याश्रम** की स्थापना की एवं छात्रों को नि:शुल्क भोजन आवास सहित अध्ययन कराना आरम्भ किया। इसके बाद तो ऐसे ही गुरुकुल चण्डीगढ, पञ्चकूला, भिवानी, पनवेल आदि स्थानों पर स्थापित हुए, जिसमें सैकड़ों छात्र वेद, वेदाङ्गादि शास्त्रों का नि:शुल्क अध्ययन कर रहे हैं।

इस बीच जब मैं मैसूर से किसी कारणवश दिल्ली आया था तभी आपने न्याय-वेदान्त आदि दर्शन की उच्चशिक्षा के लिए मैसूर में भी एक विशिष्ट गुरुकुल की स्थापना का सद्य: संकल्प किया। पहले तो हम केवल आपके विषय में दूर से ही सुना करते थे पर अब तो साक्षात् अनुभव करने का एवं आपको नजदीक से पहचानने का भी मौका मिला। आपके सुसंकल्प का ही परिणाम यह निकला कि आज हमारे साथ-साथ अनेकों छात्रों को प्रसिद्ध दार्शनिक, राष्ट्रपति-पुरस्कृत, विविध ग्रन्थों के प्रणेता, मनीषी, विद्वान् पूज्य आचार्य **श्री के. एस. वरदाचार्य जी** एवं सर्वगुणसम्पन्न, सर्वशास्त्रसारज्ञ, वीतराग पूज्य आचार्य **श्री जगन्नाथाचार्य जी** के सान्निध्य में न्याय-वेदान्त आदि अनेक उच्च ग्रन्थों के अध्ययन का मौका मिल रहा है।

जब आप अपने तपोमय जीवन में **लघुसिद्धान्तकौमुदी** की व्याख्या लिख रहे थे तब मैं पुन: मैसूर से दिल्ली पहुँचा। व्याख्या के कुछ टंकित पत्र जब मुझे पढ़ने को मिले तो ऐसी इच्छा जागृत हुई कि इस पूरे ग्रन्थ का अवलोकन कर अध्ययन काल से ही हो रहे अनेक सन्देहास्पद विषयों का निर्णय करूँ और नवीन शैली से अध्यापनकला-कौशल भी सीखूँ। पूज्य गुरुदेव ने तत्काल मेरी प्रार्थना सुनी और सहर्ष ग्रन्थावलोकन का मौका दिया। मैंने भी एक बार से तृप्त न होकर तीन-तीन बार ग्रन्थ का आद्योपान्त पारायण किया, जिससे मेरे सारे संशयरूप ग्रन्थ की ग्रन्थियों के उच्छेदन के साथ-साथ अनेक विषयों को समझने का भी लाभ मिला। पूज्य गुरुदेव ने मेरे उपर्युक्त कार्य को ही ग्रन्थसम्पादन का नाम दिया।

वस्तुत: लेखन और सम्पादन दोनों कार्य गुरुदेव ने ही किए हैं। इस कार्य में अगर अन्य किसी का सबसे बड़ा योगदान है तो वह है गुरुदेव की ही सुपुत्री **लक्ष्मी शर्मा** का। जिन्होंने गुरुदेव के लेखन आदि कार्य के साथ-साथ संशोधन आदि सभी कार्यों में पूर्णरूप से सहयोग किया साथ ही गुरुपुत्रद्वय **जीवन शर्मा** एवं **कृष्ण शर्मा** और पूज्या माता **श्रीमती इन्दिरा देवी** जी का भी सर्वतोभावेन सहयोग रहा। इस सुकार्य को पूर्ण करने के लिए अन्य जनों का भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूप से सहयोग रहा।

अन्त में मैं उन महापुरुषों का स्मरण करते हुए अपनी लेखनी को विश्राम देना चाहता हूँ, जिनके तप एवं आशीर्वाद से हमारी आर्षसंस्कृति और सुरभारती की स्वच्छ-धारा निरन्तर प्रवाहित हो रही है, जिससे हमारे जैस अनेकों पिपासुओं की अपनी-अपनी ग्रहणयोग्यता के अनुसार पिपासा शान्त हो रही है। ऐसे महापुरुषों में प्रमुख हैं- सर्वगुणसम्पन्न, सर्वशास्त्रपारज्ञ, ब्रह्मनिष्ठ, वीतराग सन्त, परमपूज्य **श्री जगन्नाथाचार्य जी**। जिन्होंने पहले वृन्दावनस्थ श्रीरङ्गनाथ भगवान् के और बाद में मैसूरस्थ श्रीसत्यनारायण भगवान् के सान्निध्य में मुझे ज्ञानराशि प्रदान की। जो मेरे जीवन के सबसे बड़े परिवर्तक एवं आधार हैं। वस्तुत: उनके विषय में कहने के लिए मेरे पास कोई शब्द ही नहीं हैं। ऐसे सदा मेरे अन्त:करण में वास करने वाले परमपूज्य श्री गुरुदेव जी के श्रीचरणारविन्दों में मैं सतत नमन करता हूँ साथ ही उन्हीं की कृपा से प्राप्त, काशीवासी, शब्दशास्त्रपारङ्गत, तपोनिष्ठ, नि:स्पृह, परमपूज्य गुरुदेव **श्री पुरुषोत्तम त्रिपाठी** जी के श्रीचरणकमल में भी मैं सादर अभिनन्दन करता हूँ, जो ८० वर्ष की अवस्था में भी नित्य गङ्गास्नान एवं भगवान् श्री विश्वनाथ का दर्शन करते हुए नि:शुल्क रूप से ज्ञानगङ्गा को हमारे जैसे सैकड़ों लोगों के लिए प्रवाहित कर रहे हैं।

पुन: मैं उन महान् दार्शनिक एवं श्रीवशिष्ठतुल्य महायोगी श्रीमद्वेदमार्ग-प्रतिष्ठापनाचार्योभयवेदान्तप्रवर्तकाचार्य अनन्त श्रीविभूषित **के. एस. वरदाचार्य जी** के श्रीचरणकमल में भी प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने सत्यान्वेषण से सम्पूर्ण विषयों को इदमित्थम् करके निश्चय कर लिया है। जो अध्यात्मक्षेत्र में बहुत ऊपर पहुँचे हुए हैं एवं जो आज ८५ वर्ष की अवस्था में भी न्याय-वेदान्त आदि दर्शन शास्त्रों के यथार्थ को नि:स्वार्थभाव से अध्यापन एवं विविध ग्रन्थों के प्रणयन आदि कार्यों से प्रकाशित करते आ रहे हैं। मुझे भी पूज्य आचार्य **श्री जगन्नाथाचार्य जी** की कृपा से आपके सान्निध्य में रहने का अल्पकालीन सुअवसर प्राप्त हुआ।

मेरे लिए एक और महापुरुप अविस्मरणीय है, जिनसे मुझे अपने लक्ष्य में अग्रसर होने के लिए सतत प्रेरणा मिलती रही है और जो शास्त्र और समाज में सामंजस्य एवं समरसता के लिए सुप्रसिद्ध हैं। ऐसे पितृकल्प विद्वत्प्रवर पूज्य **आचार्य श्री जगन्नाथ कण्डेल** (सं.सं.वि.वि., वाराणसी) गुरु जी के श्रीचरणों में भी मैं अभिवादनरूपी पुष्पगुच्छों को समर्पित करना चाहता हूँ। अन्तत: अपने पूज्य माता जी, पिता जी, दीक्षाचार्य, अन्य गुरुजन एवं भगवान् श्रीमन्नारायण के चरणकमलों में सभक्ति वन्दन करता हूँ।

इस ग्रन्थ को सर्वजनहिताय बनाने के लिए उपर्युक्त सभी महानुभावों के आशीर्वाद एवं सहयोग के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए एवं अपना ही बालक समझकर अत्यन्त स्नेह करके मेरे भविष्य को उज्जवल बनाने के लिए मुझे ग्रन्थ-सम्पादन, पठन-पाठन आदि कार्यों में प्रवृत्त कराने वाले परमपूज्य गुरुदेव **श्री गोविन्दाचार्य जी** के श्रीचरणकमलों में हार्दिक भावरूपी पुष्पाञ्जली समर्पित करते हुए मैं अपनी लेखनी को विश्राम देता हूँ।

सदाचार्य-कृपाकांक्षी

आचार्य रघुनाथ शास्त्री

न्याय-व्याकरणाचार्य

दिनांक- 14 जून 2006, दिल्ली

आत्म-निवेदन

संस्कृत विश्व की समस्त भाषाओं में सर्वप्राचीन भाषा है, इसमें सभी विद्वान् एकमत हैं। विश्व में मानवीय सभ्यता का यत्किमपि सर्जित मूलभूत ज्ञान है, वह सब संस्कृत वाङ्मय में धागे में मणियों तरह सुप्रतिष्ठित है। इसी लिए **यन्नेहास्ति न कुत्रचित्** अर्थात् जो यहाँ नहीं है वह कहीं भी नहीं है, यह व्यासोक्ति सार्थक है। प्राचीन काल में संस्कृत का विकास चरम सीमा में था। ह्रास और विकार का होना तो प्रकृति का नियम ही है। अत: उत्तरोत्तर ह्रास भी होता रहा। अत एव प्राचीन काल में सर्जित संस्कृत वाङ्मय के ग्रन्थों का चतुर्थांश भाग भी आज उपलब्ध नहीं है तथापि सम्प्रति अनेक पुस्तकालयों में विद्यमान अनेक मूलग्रन्थ, व्याख्याग्रन्थ, शोधग्रन्थ और अनेकानेक पाण्डुलिपियों का दर्शन करके हमार मन सगौरव प्रफुल्लित होता है। इस समग्र ज्ञान की कुंजी व्याकरण है। जब तक हमें व्याकरण का ज्ञान नहीं होगा तब तक भाषीय ज्ञान असम्भव ही है। जब भाषात्मक ज्ञान नहीं है, तब उसमें निहित ज्ञानराशि के स्फुरण का कोई प्रश्न ही नहीं आता। इसलिए समग्र शास्त्रों में प्रवेश के लिए व्याकरण के माध्यम से भाषा का ज्ञान होना परम आवश्यक है।

संस्कृत-जगत् में व्याकरण का चरम चिन्तन एवं प्राशस्त्य होते हुए भी आज का विश्व समुदाय संस्कृत व्याकरण से नितान्त अपरिचित है। इसके कारण अनेक होते हुए भी मूल कारण विषय के गाम्भीर्य से दुरूह बनना ही है। संस्कृत जगत् महर्षि पाणिनि से कदापि उऋण नहीं हो सकता क्योंकि उन्होंने संस्कृतव्याकरण की अष्टाध्यायी नामक विज्ञानपूर्ण ग्रन्थ की रचना करके भाषा को सुव्यवस्थित किया है। महामना कात्यायन और मनस्वी महाभाष्यकार पतञ्जलि ने इसमें चार चाँद लगा दिये। प्राचीन प्रणाली को सरलता से बोध के लिए भट्टोजिदीक्षित आदि महर्षियों ने वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी नामक ग्रन्थ की रचना की। आपके ही शिष्य वरदराजाचार्य ने सुकुमारमति वाले एवं व्याकरणशास्त्र प्रविविक्षु छात्रों के लघुसिद्धान्तकौमुदी की रचना की। इसकी संस्कृत और हिन्दी आदि भाषाओं में अनेक व्याख्यायें उपलब्ध हैं। अपने पठन-पाठन के अनुभव के आधार पर हिन्दी भाषा निबद्ध करके अपनी पाठनशैली में लिपिबद्ध करने लालसा भगवत्कृपा से आज पूर्ण हुई है।

दस वर्ष की अवस्था में मेरे घर से उठाकर अपनी ही गोद में रखकर पालन-पोषण करते हुए व्याकरण के सूत्रों को रटाया एवं जिनके कृपालेश एवं अत्यन्त स्नेह से व्याकरण की षष्ठी-प्रथमा का यत्किंचित ज्ञानलेश प्राप्त कर सका, अपने घर पर अपने ही पुत्र की तरह रखकर शिक्षा एवं दीक्षा प्रदान करने वाले ऐसे अनन्त श्री विभूषित वैकुण्ठवासी मेरे पूज्य गुरुवर **स्वामी श्री श्रीनिवास मुक्तिनारायण रामानुज जीयर श्रीधराचार्य स्वामी जी महाराज** (व्याकरण-साहित्य-शांकरवेदान्त-रामानुजवेदान्त-धर्मशास्त्र-इतिहास इन छ: विषयों के आचार्य) जी से मैं कभी उऋण नहीं हो सकूँगा। आपके इस धराधाम पर रहते हुए आपके मुखोल्लासार्थ कोई ऐसा कार्य नहीं कर सका। यदि इस ग्रन्थ से आपका थोड़ा सा भी मुखोल्लास हुआ तो मैं अपने को धन्य समझूँगा। वर्तमान में आपके ही स्थानापन्न विभिन्न क्षेत्रों में ख्यातिप्राप्त मेरे सहृदयी गुरुभ्राता **मुक्तिनाथ पीठाधीश्वर स्वामी श्री कमलनयनाचार्य जी महाराज** का मंगलाशासन सतत मेरे ऊपर रहा है और निरन्तर इसी तरह की अपेक्षा रखता हूँ।

अध्ययन काल से ही मेरे प्रेरणास्रोत रहे संस्कृत जगत् के प्रकाण्ड विद्वान् व्याकरणादि शास्त्रों के मर्मज्ञ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के भूतपूर्व व्याकरणविभागाध्यक्ष एवं महर्षि महेश योगी विश्वविद्यालय जबलपुर के पूर्व कुलपति परम पूजनीय आचार्य श्री **डॉ. आद्या प्रसाद मिश्र** जी का सुस्नेह एवं आशीर्वाद बाल्यकाल से ही रहा है और अध्यापन काल में हर प्रकार से आपने मुझे जागृत एवं उत्साहित किया। प्रस्तुत व्याख्या पूज्यवर श्री गुरु जी को दिखाने का साहस किया तो आपने इसका अवलोकन करके आवश्यक सुझाव एवं सरणी दी और अपनी कृपामयी सम्मतिरूप आशीर्वादों से अभिसिञ्चित किया। मैं अपने आचार्य के श्रीचरणों में सभक्ति अभिवाद करता हूँ। आपके प्रति किन शब्दों से आभार व्यक्त करूँ, मुझे शब्द नहीं मिल रहे हैं। हाँ, इतना कार्तज्ञ्य रखता हूँ कि आपके ही आशीर्वादों से यह कार्य सम्पन्न हो सका है।

मैं कोई पाण्डित्यपूर्ण विद्वान् नहीं हूँ। अतः विभिन्न त्रुटियाँ स्वाभाविक रूप से हुई हैं। संस्कृतव्याकरण के जिज्ञासुओं के लिए इसको समझने में कुछ सरलता हो, इन विचारों ने भी मुझे इस व्याख्या के लिखने में प्रवृत्त कराया।

श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या के लेखन में **श्री भीमसेन शास्त्री जी** की **भैमी टीका** एवं **श्रीधरानन्द जी** की **टीका** और तथा **गोपालदत्तपाण्डेय जी** की **सिद्धान्तकौमुदी** हिन्दी टीका एवं **ब्रह्मदत्तजिज्ञासु जी** की **अष्टाध्यायी भाष्यप्रथमावृत्ति** एवं **अर्कनाथ चौधरी** जी की चन्द्रकला व्याख्या से मुझे बहुत सहयोग मिला। इन प्रथित व्याख्याकारों का भी अत्यन्त आभारी एवं चिरऋणी हूँ।

अत्यन्त अल्पज्ञ होते हुए भी व्याकरण के ग्रन्थों में व्याख्या लिखने का प्रयास मेरी धृष्टता ही है। मैंने इसमें केवल पहाड़ से पत्थर तोड़ने का प्रयास किया है किन्तु उसे तरास करके सुन्दर मूर्ति बनाने कार्य किया है मेरे मित्र, लघु अवस्था में सारस्वत साधना से परिपूर्ण व्याकरण, न्याय एवं वेदान्त के प्रकाण्ड विद्वान्, सरल हृदय, पठन-पाठन के लिए समर्पित **आचार्य श्री रघुनाथ शास्त्री जी** ने किया है। अपना अमूल्य समय प्रस्तुत व्याख्या के सम्पादन एवं सरल, सुबोध एवं सरस बनाने तथा ग्रन्थ को सही दिशा प्रदान करने में आपने बहुत बढ़ा श्रम किया है। आपने इस व्याख्या के सम्पादन के साथ-साथ प्रक्रिया का यथार्थ भावस्फोरण, कठिन एवं सन्देहास्पद स्थलों का सरलीकरण किया जै जिससे मुझे बहुत लाभ मिला। जिन विषयों को मैं नहीं समझ पाता था, आपके सम्पादन से अनेक विषय मुझे ज्ञात हो सके। अवश्य ही आपके इस कार्य से जिज्ञासुओं को भी बहुत लाभ प्राप्त होगा। यद्यपि आपकी ज्ञानगम्भीरता की सीमा नहीं है फिर भी अवस्था में मुझ से छोटे होने के कारण मंगलाशासनों से अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना मेरा कर्तव्य बनता है। इसी तरह न्यायाचार्य होते हुए भी व्याकरणशास्त्र में प्रगाढ़ ज्ञान रखने वाले वाल्मीकि विद्यापीठ काठमाण्डू के आचार्य **श्री केशवशरण अर्याल जी** के सुझावों एवं सहयोगों से इसकी महत्ता और बढ़ गई है। अतः मैं कैसे आप के प्रति आभार व्यक्त करूँ? बस, मैं अपने को आपसे बहुत ही उपकृत मानता हूँ। अतः कार्तज्ञ्यरूपी सुरभित-पुष्प आप सभी विद्वानों के चरणों में अर्पण करके स्वयं अपने को धन्य समझ रहा हूँ साथ ही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अन्य किन्हीं विद्वानों एवं उनके ग्रन्थों का जो सहयोग प्राप्त हुआ, उनके प्रति नतमस्तक हूँ।

यह व्याख्या आश्रमसंचालन का प्रपंच करते हुए एवं दैनिक अध्यापन करते हुए छात्रों लिखी गई है। छात्रों की जिज्ञासाओं को ध्यान में रखकर उनका समाधान करते हुए

तत्तत् विषयों का व्याख्या में समावेश किया गया है। अत: मेरे सभी छात्रों का भी यथासम्भव सहयोग प्रत्यय एवं अप्रत्यक्ष रूप में रहा है। आश्रमीय व्यवस्था-कार्यों में बहुत ही योगदान देकर मुझे इस ग्रन्थ के लेखन में पर्याप्त अवसर प्रदान किया, ऐसे महानुभावों में मेरी धर्मपत्नी सौभाग्यवती **श्रीमती इन्दिरा शर्मा**, अनुजद्वय **आचार्य विष्णु प्रसाद शर्मा** एवं **श्याम प्रसाद शर्मा**, अत्यन्तस्नेही **हिमालय बाबा जी** एवं **आचार्य स्वामी प्रसाद मिश्र**, **पद्मराम रेग्मी जी** का नाम उल्लेखनीय है। प्रूफ संशोधन में अपना अमूल्य सहयोग प्रदान करने वाले **आचार्य श्री सुदर्शन नेपाल जी** एवं मेरे शिष्य एवं सहयोगी **जनार्दन शर्मा**, **वामन शर्मा**, **लक्ष्मण आचार्य**, **पुरुषोत्तम आचार्य**, **बाबूराम आचार्य**, **बद्रीनारायण गौतम** आदि प्रमुख हैं। मेरी स्नेहमयी पुत्री **लक्ष्मी शर्मा** जिसने व्याकरण का अध्ययन मुझ से ही प्रारम्भ करके पन्द्रह वर्ष की अवस्था से ही **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** के अध्यापन का साहस रखती है ने **श्रीधरमुखोल्लासिनी** व्याख्या के लेखन में विशेष योगदान दिया है तथा प्रकाशन के सम्बन्ध में समस्त व्यावहारिक सहयोग प्रदान करने वाले पुत्रद्वय **जीवन शर्मा** एवं **कृष्ण शर्मा** की आज्ञाकारिता भी अतिप्रशंसनीय है। अत: इन सबों को आशीर्वाद प्रदान करते हुए वाग्देवता से इनके ऊपर कृपादृष्टि के लिए उनके युगल चरणों में प्रार्थना करता हूँ।

प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से अन्य किन्हीं विद्वानों एवं उनके ग्रन्थों का जो सहयोग प्राप्त हुआ, उनके प्रति यह दास नतमस्तक है।

विद्वानों की प्रवृत्ति तो प्राय: महाभाष्य एवं शेखर, मनोरमा, प्रदीप, उद्योत, भूति आदि टीकाओं की व्याख्या एवं परिष्कार की तरफ होती है, अत: **श्रीधरमुखोल्लासिनी** जैसी सामान्य भाषाशैली युक्त व्याख्यान से शायद ही उन्हें प्रसन्नता हो फिर भी सरलीकरण करके आम छात्रों को व्याकरण में रुचि जगाने का एक प्रयत्न समझ कर विद्वज्जन मुझे मेरी धृष्टता पर क्षमादान देंगे, ऐसी आशा करता हूँ साथ ही इससे भी और सरलीकरण एवं बोधगम्यता के लिए और क्या करना उचित होगा? यह भी यदि विद्वज्जनों से अंगुल्या निर्देश हो जाय यह दास कृतार्थ हो जायेगा और आगे तदनुरूप कदम बढ़ायेगा।

इसको प्रकाशन करने दायित्त्व वहन किया है और आज संस्कृत साहित्यों के प्रकाशन से संस्कृत जगत् बहुत बड़ा उपकार किया है, ऐसे **चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी** के स्वामी **श्री नवनीत दास जी** अवश्य ही साधुवाद के पात्र हैं।

अन्तत: इसमें जो कुछ भी अच्छाई है, वह विद्वानों का आशीर्वाद है और जो कुछ अग्राह्य है वह मेरी मन्दमतिजन्य कचड़ा है। फिर भी सारस्वत साधना होने के कारण विद्वज्जन अवश्य स्वीकार करेंगे।

विद्वज्जनचञ्चरीक

गोविन्द प्रसाद शर्मा (गोविन्दाचार्य)

प्राक्कथन

विश्व की प्राचीन भाषाओं में संस्कृतभाषा प्राचीनतम है। यद्यपि भाषा विचार-विनिमय के मूलभूत साधन के रूप में परिभाषित है तथापि संस्कृतभाषा मात्र यहीं तक सीमित नहीं है। हम हर एक भाषा का सम्बन्ध तत्तद् राष्ट्र से केवल सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से नहीं अपितु शाब्दिक रूप से भी पाते हैं। जैसे- जर्मनी की भाषा को जर्मन, चीन की भाषा को चीनिया आदि। परन्तु संस्कृतभाषा का नामकरण **संस्कृत** किसी सामाजिक या सांस्कृतिक कारण को धारण करते हुए नहीं अपितु स्वयं में परिष्कृतता एवं परिमार्जितता की वैज्ञानिक प्रधानता से है। बताया जा चुका है कि यह केवल विचार विनिमय का साधन नहीं अपितु सुसंस्कारों की संवाहिका एवं प्रदायिका है।

आज जो प्रवृत्ति संसार में पनप रही है, उसका मूल कारण संस्कार का ही अभाव है अथवा यह कहा जा सकता है कि आज संसार में अच्छे संस्कारों का अभाव सा होता जा रहा है।

सुसंस्कृत समाज एवं सुविचार को स्थापित करने के अलावा हमारा कोई राष्ट्रिय अथवा जातीय पूर्वाग्रह नहीं है संस्कृत के प्रति। शिक्षा संस्कारों से सम्बन्धित है तो संस्कार शिक्षा के विना कल्पनातीत है। शिक्षा का भाषा के विना हस्तान्तरित एवं विकसित होना असम्भव है। शैक्षिक खजाने का अथाह भण्डार चाहे लौकिक हो या चाहे अलौकिक, वह यदि किसी भी भाषा में सुरक्षित हो। अगर हम उस भाषा को अपनायें, उसमें गोता लगायें तो अवश्य ही हमारा जीवन विना आर्द्रीभूत के नहीं रह सकता। इसी तरह की भाषा है **संस्कृत**। इसमें निहित ज्ञान की अनन्तता, भाषा का सौष्ठव एवं माधुर्य के सर्वविदित होने की बात पर वेदादि शास्त्र ही हैं प्रमाण के रूप में।

भारतभूमि को ऋषियों की तपस्थली के रूप में जानती है सारी दुनियाँ। ऋषियों का कोई भी तप स्वार्थप्रेरित नहीं था। इसका सम्बन्ध सामाजिक संरचना एवं पद्धति के साथ था। सर्वाङ्गीण रूप से प्राणीय कल्याण ही लक्ष्य था ऋषियों का। इसी लक्ष्य से प्रेरित चिन्तन एवं तपस्या का निष्कर्ष समेटा संस्कृतभाषा में उन्होंने। फलतः आज भी हमारे सामने मौजूद हैं वेद, वेदाङ्ग, उपाङ्गादि। वेद के षडङ्गों का चक्षुरूप अङ्ग है व्याकरण। पाश्चात्त्य परिभाषा की तरह भाषा-विज्ञान का एक अङ्ग न होकर पूर्वीय चिन्तनधारा में भाषा का अङ्गी है व्याकरण। अतः कहा जाता है कि-

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥॥

अर्थात् व्याकरण वेदरूपी शरीर का मुख है। शरीर में मुख ही प्रधान है। यदि मुख नहीं है तो शरीर का पोषण कैसे हो सकेगा? अत एव महाभाष्यकार ने उद्‌धृत किया है- **ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च, प्रधानं च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम्,**

प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति अर्थात् किसी कारण से नहीं अपितु कर्तव्यबुद्धि से व्याकरण आदि अंगों सहित वेद के अध्ययन को अनिवार्य बताते हुए षडंगों में व्याकरण की प्रधानता स्पष्ट है। व्याकरण की अनिवार्यता के सन्दर्भ में एक और सूक्ति प्रचलित है-

यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो माभूत् सकलं शकलं सकृच्छकृत्।।

अर्थात् और ज्यादा नहीं पढ़ सकते तो कम से कम व्याकरण तो पढ़ो ही। अन्यथा कहीं **स्वजनः**(अपने जन) की जगह कहीं **श्वजनः**(कुत्ता जन) न बन जाय। इसी तरह **सकलम्**(सम्पूर्ण) की जगह **शकलम्**(टुकड़ा) न हो जाय और **सकृत्**(एक बार) के स्थान पर **शकृत्** (विष्टा) न हो जाय। तात्पर्य यह हैं कि व्याकरण के विना भाषाई शुद्धता नहीं आ सकती। उसमें भी संस्कृत के विषय में तो व्याकरण अत्यन्त ही अनिवार्य रूप से रहा है। तभी तो पूर्वीय व्याकरण के अनेक कर्ताओं में इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, पाणिनि आदि का नाम विशेषरूप से ऐतिहासिक हुआ।

व्याकरण के आचार्य

ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पतिरिन्द्राय, इन्द्रो भरद्वाजाय, भरद्वाज ऋषिभ्य ऋषयो ब्राह्मणेभ्यः। यद्यपि महाभाष्य में उद्धृत इन कथनों से यह पता चलता है कि शब्दशास्त्र के आदि प्रवक्त **ब्रह्मा** हैं तथापि आज उनका एतद्विषयक शास्त्र उपलब्ध नहीं है। इतिहासविद् प्रायः नौ व्याकरणों का नाम लेते हैं। जैसा कि-

ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम्।
सारस्वतं चापिशलं शाकलं पाणिनीयकम्।

उनमें भी समग्र वैज्ञानिकता को अपनाते हुए रचित होने के कारण से व्याकरण-श्रृंखला में पूर्वीय एवं पाश्चात्त्य चिन्तकों एवं भाषावैज्ञानिकों ने मणि के रूप में ग्रहण किया पाणिनीय व्याकरण को। इसको अधिक स्पष्ट एवं भाषा सापेक्ष बनाने का अविस्मरणीय कार्य किया क्रमशः कात्यायन एवं पतञ्जलि ने। विभिन्न विद्वानों एवं मनीषियों के चिन्तन तथा तपस्या द्वारा इस भारतभूमि में पुष्पित और पल्लवित होने के क्रम में आगे जाकर पाणिनीय व्याकरण क्रमशः प्राचीन एवं नव्य के रूप से दो धाराओं में विभक्त हुआ। प्राचीन धारा में सूत्रानुसारी व्याख्यात्मक ग्रन्थ जयादित्य-वामनकृत **काशिका** आदि लिए जाते हैं तो नव्यधारा में प्रक्रियाग्रन्थ **भट्टोजिदीक्षितकृत वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** एवं इसी के व्याख्यात्मकग्रन्थ प्रौढमनोरमा एवं नागेशकृत लघुशब्देन्दुशेखर आदि आते हैं।

पाणिनि एवं अष्टाध्यायी

खेदपूर्वक कहना पड़ता है कि उन मनीषियों के ऐतिहासिक तथ्य आज यथार्थ रूप में उपलब्ध नहीं है किन्तु अगत्या केवल आनुमानिक चिन्तन से उनके देश-कालादि का निर्णय किया जाता है क्योंकि प्राच्य चिन्तक एवं मनीपियों ने इस भारतभूमि में कठोर तपस्या एवं चिन्तन निःस्वार्थ सामाजिक सुसंस्कार तथा सुशिक्षा हेतु किया था, न कि स्वप्रतिष्ठा एवं सम्मानार्थ। उन तपस्वियों ने एक पक्ष में न केवल भारतभूमि के पुत्रों को अपितु सारी दुनिया को स्वचिन्तन एवं तप का निष्कर्ष नवनीतरूप लौकिक एवं पारलौकिक अथाह ज्ञानराशि को देकर धन्यातिधन्य बनाया तो दूसरे पक्ष में ठोस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से वञ्चित होने के लिए बाध्य करा दिया केवल अपने सामान्य परिचयाभाव का स्थान छोड़कर स्वग्रन्थों में। यही समस्या हमें **पाणिनि जी** के सम्बन्ध में भी झेलना पड़ता है। इनके जीवनवृत्त के विषय में

निश्चित इतिहास का अभाव होते हुए भी पतञ्जलि के महाभाष्य (१-२-२०) से पता लगता है कि उनकी माता का नाम दाक्षी था। पाणिनि जी के समय के सम्बन्ध में भी विद्वानों का मतवैभिन्न्य है। **युधिष्ठिर मीमांसक** उनका काल लगभग २१०० वि. पू. मानते हैं तो **डा. वासुदेवशरण अग्रवाल** ने उनको नन्दराजा महानन्द के समकालीन बताते हुए ई. पू. ५०० निश्चित किया है। कोई पाणिनि को वाहीकदेशीय कहते हैं तो भी शलातुर-नामक ग्राम उनका जन्मस्थान होने का तथ्य गणतन्त्र महोदधि के आधार पर सिद्ध होता है।

पाणिनीय व्याकरण केवल सूत्रों से ही नहीं अपि तु गणपाठ, धातुपाठ, लिङ्गानुशासन और उणादि को भी लेकर पञ्चाङ्ग होकर ही पूर्णता को प्राप्त करता है। पाणिनि जी स्वव्याकरणनिर्माण में शब्दप्रयोग के सम्बन्ध में अत्यन्त लाघव के पक्षधर हैं। अत: पाणिनीय व्याकरण में प्राय: कोई भी ऐसा शब्द नहीं है जो दो बार या व्यर्थ प्रयुक्त हो। इसके कारणों को पतञ्जलि जी स्पष्ट करते हैं- **प्रमाणभूत आचार्यो दर्भपवित्रपाणिः शुचावकाशे प्राङ्मुख उपविश्य महता प्रयत्नेन सूत्राणि प्रणयति स्म। तत्राशक्यं वर्णेनाप्यनर्थकेन भवितुम्, किं पुनरियता सूत्रेण**(महाभाष्यम्. १-१-१)।

न केवल शब्दज्ञान के लिए अपि तु प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक तथ्य एवं तत्त्वों का ज्ञान करने के लिए भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है पाणिनीय शब्दानुशासन का। इस व्याकरणाध्ययन से तात्कालिक इतिहास एवं भूगोल के हर एक जिज्ञासुओं को अप्राप्य जानकारियाँ भी हस्तगत होती हैं। अत: नि:संकोच कह सकते हैं कि पाणिनीय व्याकरण का स्थान उच्चतम एवं महनीय है।

पाणिनि जी के द्वारा विरचित सूत्रों की संख्या लगभग ४००० हैं। **वृद्धिरादैच्** प्रथम और **अ अ** अन्तिम सूत्र है। ज्यादा से ज्यादा विषय को संक्षेप में कहने के लिए ही सूत्र होते हैं। जैसा कि-

अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम्।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः।।

अल्प अक्षरों से अधिक अर्थ बताने की क्षमता, सन्देह रहित विषय की प्रस्तुति, सारतम प्रक्रिया सरणी, आवश्यक सभी जगहों पर प्रवृत्त होने की क्षमता, दोषों का अभाव होना और अनिन्दनीय रहना ये सूत्रों के छ लक्षण हैं। ऐसे सूत्रों को पाणिनि जी ने छ: कोटियों में रखा है-

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम्।।

संज्ञासूत्र, परिभाषासूत्र, विधिसूत्र, नियमसूत्र, अतिदेशसूत्र और अधिकार सूत्र। सबसे अधिक विधिसूत्र, उनसे कम संज्ञासूत्र हैं। इसी प्रकार अधिकारसूत्र, परिभाषासूत्र, निमयसूत्र और अतिदेशसूत्र उत्तरोत्तर न्यून हैं।

कात्यायन एवं वार्तिक

पाणिनीय व्याकरण को और भी परिष्कृत एवं सुबोध बनाने वालों पाणिनि के बाद में महत्त्वपूर्ण नाम आता है **कात्यायन** का। वास्तव में यह शब्द गोत्रप्रत्ययान्त है। **श्री युधिष्ठिर मीमांसक** के मत में कात्यायन का तात्पर्य शुक्लयजुर्वेदीय, आङ्गिरस शाखा के प्रवर्तक कात्यायनपुत्र एवं याज्ञवल्क्य के पौत्र वररुचि ही कात्यायन हैं, जो वि. पू. २७०० शती के थे। परन्तु अन्य विद्वान् इनको ४००-३०० ई. पू. के बीच के मानते हैं। इनके दाक्षिणात्य होने

की बात महाभाष्य में स्थित 'प्रियतद्धिता दाक्षिणात्याः' (१-१-१) वाक्य से सिद्ध होती है। इन्होंने वार्तिकपाठ नामक पाणिनीय व्याकरण के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अङ्ग की रचना की। यद्यपि स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में यह वर्तमान में उपलब्ध नहीं है तथापि पतञ्जलि के महाभाष्य में वार्तिक उल्लिखित हैं परन्तु संख्या की जानकारी तो वहाँ से भी नहीं हो सकती। किन्हीं विद्वानों के मत में कात्यायन ने करीब १५०० सूत्र के ऊपर वार्तिक लिखा है।

उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते।
तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुः वार्तिकज्ञाः विचक्षणाः॥

सूत्रों में उक्त, अनुक्त, दुरुक्त के कारण जहाँ पर विषय का पूर्ण स्पष्टीकरण नहीं होता या अन्यार्थ होता है, ऐसी स्थिति के समाधान के लिए जो पूरक वाक्य बनाये गये उन्हें विचक्षणगण वार्तिक कहते हैं। जैसे कि **ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्** आदि।

पतञ्जलि एवं महाभाष्य

कात्यायन के अनन्तर पाणिनीय व्याकरण की यथार्थता को सरलतम भाषा में स्फोरण एवं स्पष्ट करके उन्नत तथा सार्थक बनाने वालों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण नाम जुड़ जाता है **पतञ्जलि** का। पाणिनीय व्याकरण के सन्दर्भ में उनकी महत्त्वपूर्ण रचना है **व्याकरण-महाभाष्य**। भाष्य नाम उन्हें दिया जाता है जो सूत्रों के अर्थों का वर्णन करे और अपने द्वारा उनकी व्याख्या करे। जैसे-

सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र पदं सूत्रानुसारिभिः।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः॥

परन्तु अपने भिन्न वैशिष्ट्य को वहन करने के कारण से इसे महाभाष्य कहा जाता है। यह पाणिनीय अष्टक का सूत्रानुसारी व्याख्यात्मक एवं अत्यन्त उन्नत ग्रन्थ है। **अन्यानि भाष्याणि एतत् महाभाष्यम् महत्त्वं च इष्टादिभ्यो द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः' इत्यादिव्यवस्थाकरणात्।**

महाभाष्य में ही स्थित **अरुणद्, यवनः, साकेतम्, अरुणे, यवने, माध्यमिकाम् (३-२-१११), इह पुष्यमित्रं याजयामः (३-२-१२३)** इन कथनों को देखकर कुछ विद्वानों ने उनका काल २०० ई. पू. को निश्चित किया परन्तु **युधिष्ठिर मीमांसक** के मत में वि. पू. १२०० मानना ही उचित प्रतीत होता है। पतञ्जलि के जन्मस्थान के सम्बन्ध में भी एक मत नहीं हैं विद्वद्गण। महाभाष्य में प्राप्त **अभिजानासि देवदत्त कश्मीरान् गमिष्यामः, तत्र सक्तून् पास्यामः (म. ३-२-११४)** को प्रमाण मानते हुए कश्मीर ही उनकी जन्मभूमि है, ऐसा बताते हैं विद्वज्जन, परन्तु अन्यों के मत में **गोनर्द** के थे पतञ्जलि, किन्तु महाभाष्य से पाटलिपुत्र के होने की बात प्रतीत होती है।

पतंजलि न केवल शब्दशास्त्र के विद्वान् थे अपितु योगदर्शन एवं चिकत्साशास्त्र के भी रचयिता थे। यह प्रसिद्धि है कि महाभाष्यकार पतंजलि ही योगदर्शनसूत्र एवं चरकसंहिता के रचयिता है। कहा भी गया है-

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

अर्थात् **योगसूत्रों** से चित्त के मल का, व्याकरण के सूत्रों से वाणी की अशुद्धि का और **चरकसंहिता** से शरीर के रोगों का निराकरण पतंजलि ने किया है।

पतंजलि के महाभाष्य के अनेक व्याख्याता हुए जिनमें भर्तृहरि, कैयट आदि प्रमुख हैं।

जयादित्य-वामन और काशिकावृत्ति

पाणिनीय व्याकरण के राजपथ में अगला अविस्मरणीय नाम आता है **जयादित्य** एवं **वामन** का। इन्होंने पाणिनीय व्याकरण के ऊपर सूत्रक्रमानुसारी अत्यन्त प्रथनीय **काशिका** नामक ग्रन्थ की रचना की। आज प्राचीन व्याकरणधारा में इसे मूलग्रन्थ के रूप में ग्रहण किया जाता है। **श्री अनन्तशास्त्री फड़के** के अनुसार **जयादित्य** का समय ३६१ ई. है तो वामन का ६७० ई. है। इन दोनों के प्रयास से ही **काशिका** ने पूर्णता पाई। कहा जाता है कि **काशिका** के पूर्व के **५** अध्याय जयादित्य द्वारा एवं अन्तिम **३** अध्याय वामन द्वारा लिखे गए हैं। उदाहरण एवं प्रत्युदाहरण को दिखाने में इस ग्रन्थ के लेखकों ने प्राय: प्राचीन वृत्तियों की शैली अपनाई है। इसी कारण से ये लेखक **काशिकावृत्तिकार** के नाम से भी प्रथित हैं।

भट्टोजिदीक्षित एवं वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी

व्याकरण गंगा की एक ओर **काशिका** आदि की धारा बहती रही तो दूसरे पक्ष में प्रचलित धारा में कुछ कठिनता की अनुभूति होने के कारण **रामचन्द्राचार्यादि** आचार्यों ने प्रक्रिया शैली का प्रारम्भ किया **प्रक्रियाकौमुदी** आदि की रचना करके। इस धारा को वैज्ञानिक एवं सुस्पष्ट बनाने का महत्तम कार्य किया **भट्टोजिदीक्षित** ने। इन्होंने पाणिनि जी के सभी सूत्रों एवं **कात्यायन** जी के वार्तिकों को लेकर **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** की रचना की। ये १६वीं शताब्दी उत्तरार्ध एवं १७वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के माने जाते हैं। महाराष्ट्रीय ब्राह्मण दीक्षित के पिता जी का नाम **लक्ष्मीधर** एवं गुरु जी का नाम **शेषकृष्ण** होने की बात विभिन्न ग्रन्थों में विद्वज्जनों के कथनों से सिद्ध होती है। इन्होंने **शब्दकौस्तुभ** नामक वृहत्तम ग्रन्थ एवं **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** के टीकात्मक ग्रन्थ **प्रौढमनोरमा** आदि की भी रचना की है।

कौमुदी के सम्बन्ध में कहा गया है कि यदि कौमुदी ठीक से आती है तो भी भाष्य में परिश्रम नहीं करना पड़ेगा और कौमुदी यदि नहीं आती है तो भी भाष्य में परिश्रम नहीं करना पड़ेगा अर्थात् परिश्रम करना व्यर्थ होगा। तात्पर्य यह है कि कौमुदी की पूर्ण तैयारी से महाभाष्य आसान हो जाता है और कौमुदी की तैयारी नहीं है तो महाभाष्य बिल्कुल ही समझ में न आता।

कौमुदी यदि आयाति वृथा भाष्ये परिश्रमः।
कोमुदी यदि नायाति वृथा भाष्ये परिश्रमः।।

नागेश भट्ट एवं व्याख्या ग्रन्थ

पाणिनीय व्याकरण की प्रक्रियाधारा में प्रौढता लाने का अत्यन्त सुपरिचित नाम है **नागेश भट्ट** का। इनका समय १६७३-१७५३ ई. के मध्य में माना जाता है। महाराष्ट्रीय ब्राह्मण **नागेश जी** शिवभट्ट एवं सती देवी के पुत्र थे। व्याकरण शास्त्र पर इन्होंने लगभग एक दर्जन ग्रन्थों का लेखन किया है, उनमें से लघुशब्देन्दुशेखर, वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा, वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा, वैयाकरणसिद्धान्तपरमलघुमञ्जूषा, परिभाषेन्दुशेखरादि प्रसिद्ध हैं। अभी भी काशी में इन ग्रन्थों का पठन-पाठन सुचारु रूप से होता आ रहा है।

वरदराजाचार्य एवं उनकी प्रक्रिया

पाणिनीय व्याकरण की प्रक्रिया शैली को सरल एवं सुबोध बनाने वालों में अन्य उल्लेख्य नाम जुड़ता है **वरदराजाचार्य** का। ये भट्टोजिदीक्षित के शिष्य थे। इनके पिता का नाम दुर्गातनय था। इनकी रचनाओं में **मध्यसिद्धान्तकौमुदी, लघुसिद्धान्तकौमुदी** एवं **सारसिद्धान्तकौमुदी** आदि ग्रन्थ आते हैं, जो दीक्षित जी की सिद्धान्तकौमुदी के संक्षेपीकरण के रूप में जाने जाते हैं। इन तीनों में आज तक **लघुसिद्धान्तकौमुदी** सर्वोत्तम एवं अत्यन्त प्रसिद्ध है, जो प्रायः सर्वत्र व्याकरण-प्रवेशार्थी के लिए पठन-पाठन का मुख्य ग्रन्थ बना है।

लघुसिद्धान्तकौमुदी

अपने गुरु **भट्टोजिदीक्षित** के द्वारा ग्रथित **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** को **वरदराजाचार्य** के समय में बहुत ख्याति मिल चुकी थी। **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** प्रौढ़ एवं प्रत्युत्पन्न मति वाले जिज्ञासु छात्र ही अध्ययन कर सकते हैं क्योंकि **भट्टोजिदीक्षित** जी ने पाणिनीयाष्टाध्यायी के सभी सूत्रों के लेकर इस कौमुदी का निर्माण किया है जो वेद, धर्मशास्त्र, पुराण आदि ग्रन्थों के प्रायः सभी शब्दों की सिद्धि सम्भव है। ग्रन्थ के अन्त में स्वर और वैदिक प्रक्रिया को जोड़कर अत्यन्त विशालतम कलेवर से परिपूर्ण इस ग्रन्थ के द्वारा लौकिक एवं वैदिक दोनों शब्दों का साधुत्वज्ञान किया जा सकता है। प्रारम्भिकछात्रों के लिए **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में प्रवेश कर पाना बहुत ही कठिन है। इसी विषय को हृदयंगम करके **वरदराजाचार्य** से **लघुसिद्धान्तकौमुदी** की रचना की। इसमें केवल १२७५ सूत्रों को ही लेकर सरल से सरल बनाने का प्रयत्न किया। प्रकरणों का भी व्यत्यास किया। **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** का प्रकरणक्रम है- संज्ञाप्रकरण, पञ्चसन्धि, षड्लिङ्ग, अव्यय, स्त्रीप्रत्यय, कारक, समास, तद्धित, तिङन्त, कृदन्त और अन्त में वैदिकी प्रक्रिया और स्वरप्रक्रिया। **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में कुछ परिवर्तन के साथ संज्ञाप्रकरण, पञ्चसन्धि, षड्लिङ्ग, अव्यय, तिङन्त, कृदन्त, कारक, समास, तद्धित और अन्त में स्त्रीप्रत्यय प्रकरण है। पहले संज्ञाओं का ज्ञान, तत्पश्चात् सन्धिज्ञान, फिर सुबन्तप्रक्रिया के पश्चात् धातुप्रकरण होना ही युक्तिसंगत लगता है क्योंकि कृत्प्रत्यय धातुओं से ही होते हैं और कृदन्त शब्दों में प्रातिपदिकत्व के आ जाने के बाद ही तद्धित प्रत्यय हो सकते हैं। कृत् और तद्धित प्रत्ययों के आधार पर प्रायः **स्त्रीप्रत्यय** होते हैं। कारकप्रकरण में भी **अकथितं च** और **कर्तृकरणयोस्तृतीया, उक्तानुक्तव्यवस्था** आदि भी धातु, तिङ् और कृत् के बाद होने का समर्थन करते हैं। अतः बीच में धातुप्रकरण, तदनन्तर कृत्प्रकरण, तदनु कारक-समास- तद्धित प्रकरण और सर्वान्त में स्त्रीप्रत्ययों का प्रकरण सहेतुक है। यही क्रम **वरदराजाचार्य** जी ने **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में अपनाया है।

आचार्य ने पहले **लघुसिद्धान्तकौमुदी** बना कर अपने गुरु **भट्टोजिदीक्षित** को दिखाया तो वे बहुत प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् उन्होंने 2315 सूत्रों को लेकर **मध्यसिद्धान्तकौमुदी** बनाई तो इससे **भट्टोजिदीक्षित** को प्रसन्नता नहीं हुई, क्योंकि यह कौमुदी वैदिकी प्रक्रिया को छोड़कर शेष प्रकरणों से **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** की प्रतिस्पर्धिनी लग रही थी। आज **मध्यसिद्धान्तकौमुदी** का पठन-पाठन **लघुसिद्धान्तकौमुदी** और **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** की अपेक्षा कम होती है। व्याकरण का सम्पूर्णज्ञान **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** के बाद ही सम्भव है। उसमें प्रवेश के लिए **लघुसिद्धान्तकौमुदी** का अध्ययन होना आवश्यक है। **वरदराजाचार्य** ने **लघुसिद्धान्तकौमुदी** को प्रवेशिका ही माना है। जैसा कि उनके मंगलाचरण से ही स्पष्ट होता है।

नत्त्वा सरस्वतीं देवीं शुद्धां गुण्यां करोम्यहम्।
पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीम्।

पाणिनीयशब्दशास्त्र में प्रवेश होने की योग्यता प्राप्त करना ही इस ग्रन्थ का उद्देश्य है।

लघुसिद्धान्तकौमुदी में **वरदराजाचार्य** ने **गागर में सागर** को भरा है। इसके समुचित अध्ययन से सुकुमारमति और अल्पग्राहिणी बुद्धि वाले छात्र आसानी से व्याकरण का सामान्य ज्ञान कर सकेंगे और उन्हें प्रत्येक प्रकरणों का ज्ञान हो जायेगा। प्रतिभाशाली छात्र इसके बाद सीधे **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में प्रवेश कर सकेंगे। व्याकरण में चाहने वाले वाले छात्रों के लिए प्रवेशिका की दृष्टि से यह अत्यन्त सहायिका है, इसमें सन्देह नहीं है।

सुद्ध्युपास्यः, मद्ध्वरिः, धात्त्रंशः, लाकृतिः आदि उदाहरणों का तात्पर्यः-

अध्येतागण इस बात को भी जान लें कि व्याकरण का उद्देश्य केवल शब्दज्ञान, सन्धिज्ञान मात्र नहीं है अपितु उसके साथ ही अध्येताओं को अध्यात्म की ओर प्रेरित करना भी है। इस बात पर **श्री भट्टोजिदीक्षित जी** एवं उनके ग्रन्थों के व्याख्याताओं ने विशेष ध्यान दिया है। जैसे- **सुद्ध्युपास्यः, मद्ध्वरिः, धात्त्रंशः, लाकृतिः** इन उदाहरणों की जगह **मद्ध्वानय, दध्यानय, वद्ध्वानय, पित्रंशः** आदि भी दे सकते थे। उपर्युक्त उदाहरण देने का रहस्य यह है कि अध्येता शब्दज्ञान के साथ उपास्य का ज्ञान भी कर लें, इतिहास आदि से भी परिचित हो लें और तत्तत् पौराणिक और उपनिषत् की घटनाओं को समझने, जानने के लिए उत्प्रेरित हो जायें। जैसे- **सुधीभिः उपास्यः** (विद्वानों के द्वारा उपासना करने योग्य)। यहाँ पर **सुधी**(विद्वान्) को किसी **इष्टदेव** की उपासना अवश्य करनी चाहिए, यह एक प्रेरणा है तो दूसरा विद्वानों के द्वारा उपास्य कौन है? इसकी जिज्ञासा भी। इस जिज्ञासा की पूर्ति करता है **मद्ध्वरिः**। मधु नामक दैत्य के शत्रु भगवान् विष्णु अर्थात् **विद्वानों के द्वारा भगवान् विष्णु उपास्य** हैं। अब वे कैसे हैं? इस जिज्ञासा में उत्तर आया- **धात्त्रंशः**। वह **धातुः अंशः**, ब्रह्मा का अंश बन कर अर्थात् ब्रह्मा के शरीर से वराह आदि बनकर अथवा धाता की सृष्टि में **राम, कृष्ण** आदि बनकर अवतार लेता है। इस लिए वह **धात्त्रंश** है। उसे प्राप्त करना क्या सरल है? नहीं। वह तो **लाकृति** है अर्थात् लृ की तरह टेढ़ी आकृति वाला है। अतः कठिन तपस्या एवं साधना से ही प्राप्त हो सकता है।

श्रीधरमुखोल्लासिनी व्याख्या के सम्बन्ध में

अध्ययन-अध्यापन करते-कराते गुरुमुख के अतिरिक्त छात्रों को पूर्णतया समझने के लिए टीकाग्रन्थ की आवश्यकता महसूस हुई तो पुनः लोकभाषा हिन्दी में इसे लिखने का प्रयास हुआ। मैं छात्रों को जिस शैली में पढ़ाता हूँ, उसी शैली एवं शब्दावली को हिन्दी में उतारने का एक लघु प्रयत्न किया है और मैंने जिनसे **नत्त्वा सरस्वतीं देवीं** से प्रारम्भ करके षष्ठी-प्रथमा को समझने का यत्किंचत् कृपाप्रसाद प्राप्त हुआ, ऐसे मेरे स्वाचार्य षडाचार्य **अनन्त श्रीविभूषित स्वामी श्री श्रीधराचार्य** (संन्यास लेने से पूर्व का नाम) जी के नाम से आपके मुखोल्लासार्थ भी **श्रीधरमुखोल्लासिनी** टीका लिखी गई।

कुछ अपनी बातें

होना तो यह चाहिए कि हम जिस भाषा को सीख रहे हैं या व्याकरणप्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त रहे हैं, उसी भाषा में अध्ययन-अध्यापन हो किन्तु आज संस्कृत भाषा में ऐसा नहीं हो रहा है। **कौमुदी** में प्रवेश करने के पहले शब्दरूपावली एवं धातुरूपावली रटा करके पुनः सन्धि, समास आदि का सामान्यतया ज्ञान कराकर के ही कौमुदी में प्रवेश कराया जाय तो व्याकरण को समझने में अत्यन्त सरलता होगी। इस तरह से आज पारम्परिक प्रणाली के अनुसार **काशिका** और **कौमुदी** का पठन-पाठन कम होता जा रहा है। इसका कारण यह भी है कि देश में आज नवीन शिक्षा प्रणाली लागू है और पुरानी प्रणाली का सरलीकरण नहीं हो पाया है। इसलिए छात्रगण सूत्र, वृत्ति एवं साधनी को रटने में कठिनता का अनुभव करने लगे हैं। फलतः छात्र इन ग्रन्थों के अध्ययन से दूर भागते गये। अब तो केवल परीक्षा में पूछे गये लघु उत्तरीय प्रश्नों का उत्तर कैसे दिया जाय? इतना मात्र अध्ययन शेष रह गया है, ऐसा प्रतीत हो रहा है।

आज चारों ओर संस्कृत पढ़ने वालों की कमी दीख रही है तो व्याकरण जैसे कठिनतम प्राचीन ग्रन्थों को पढ़ने वाले शायद भविष्य में दुर्लभ हो जायेंगे। पुनरुक्ति की जरूरत नहीं है कि विश्व की सभी भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत भाषा सबसे पुरानी और समृद्ध भाषा है। यह केवल मानवीय भाषा ही नहीं अपितु देवभाषा भी है। हमारे सभी धर्मशास्त्र और संस्कारबोधक कर्मशास्त्र भी संस्कृतभाषा में निबद्ध हैं। **ज्ञान का भण्डार** कहलाने वाले वेद भी संस्कृतभाषा में ही लिखे गए हैं। हमारे सारे मन्त्र भी संस्कृत भाषा में ही हैं। जो मन्त्र संस्कृत में हैं, उन्हें हम हिन्दी आदि भाषाओं में अनुवाद करके जप कर सकते हैं क्या? कदापि नहीं। गायत्री मन्त्र को ही ले लें- गायत्री का हिन्दी में अनुवाद करके जप करें तो कैसा लगेगा? हिन्दी काव्य, कविता आदि को संस्कृत में अनुवाद करके वह स्वारस्य नहीं पा सकते। कहने का तात्पर्य यह है कि सभी भाषाओं की अपनी-अपनी विशेषता होती है।

संस्कृत भाषा की एक विशेषता यह भी है कि आज से हजारों वर्ष पहले जैसी भाषा थी, आज भी उसी प्रकार से बोली जाती है किन्तु हिन्दी आदि लोकभाषा में देखें तो आज से सौ, दो सौ वर्ष पहले की हिन्दी और सूर-कबीर-तुलसीदास की हिन्दी से आज की हिन्दी कितनी भिन्न है! अन्य भाषाओं में शब्द बाहर से लाये जाते हैं जो कुछ तत्सम और कुछ तद्भव के रूप में माने जाते हैं। जैसे आज के आधुनिक उपकरण **सेल फोन** को हिन्दी में **मोबाइल फोन** ही बोलते हैं। यदि इसको शुद्ध हिन्दी में बोलने के लिए कहा जाय तो आप क्या कहेंगे? ऐसे सैकडों, हजारों नहीं असंख्य शब्द मिलते हैं, जिनका शुद्ध हिन्दी में कोई शब्द नहीं हैं किन्तु संस्कृत भाषा में यह परेशानी नहीं हैं क्योंकि संस्कृत भाषा में इतना सुदृढ़ व्याकरण है कि वह अपने शब्दों को विकृत होने नहीं देता और नये शब्दों का शास्त्रीय ढंग से निर्माण करता है। किसी भी संस्कृतज्ञ से आप पूछें कि मोबाइल फोन का संस्कृत क्या है? तो वे तत्काल उत्तर दे देंगे- **सचलदूरवाणी या सचलदूरभाषः**। इन्हीं शब्दों को आप हिन्दी में भी प्रयोग करेंगे तो कोई नहीं कहेगा कि हिन्दी का अपना शब्द नहीं है किन्तु अंग्रेजी आदि के मिलने से हिन्दी खिचड़ी भाषा ही सिद्ध हो सकती है। यह तो एक उदाहरण मात्र है। कहने का तात्पर्य यह है कि इतनी समृद्धतम देवभाषा की आज बहुत ही उपेक्षा हो रही है। इस उपेक्षा के लिए कहीं न कहीं हम भी एक कारण हैं क्योंकि संस्कृत के पठन-पाठन में युगानुकूल जो सरलता लानी चाहिए थी, वह नहीं लाई जा सकी ।

आज के समय के अनुकूल सरणी अपनाकर पठन-पाठन का क्रम बनाया जाय, ऐसा चिन्तन बहुत वर्षों से चल रहा था। अपनी दस वर्ष की अवस्था से व्याकरण का अध्ययन प्रारम्भ करके बीस वर्ष की अवस्था तक आते-आते अध्यापन कार्य भी प्रारम्भ हुआ। तब से लेकर आज तक लगभग बाईस वर्ष तक प्रक्रिया-ग्रन्थ, व्याख्या-ग्रन्थ एवं दार्शनिक-ग्रन्थों का अनवरत अध्यापन चल रहा है। मैनें विशेष कर के **लघुसिद्धान्तकौमुदी** और **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** को पढ़ाया। मैं जब **सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी से सम्बद्ध श्रीनिवासबोधायनरामानुजसंस्कृतमहाविद्यालय,** अयोध्या में **व्याकरणविभागाध्यक्ष** पद पर नियुक्त हुआ, तब से शास्त्री एवं आचार्य कक्षा के ग्रन्थों को पढ़ाने की बाध्यता के कारण प्रक्रियाग्रन्थ के अध्यापन में कमी आने लगी तो मैंने महाविद्यालय के समय के अतिरिक्त प्रातः १० बजे तक और शाम ४ बजे के बाद इन प्रक्रिया ग्रन्थों को पढाया।

इस प्रकार से पठन-पाठन तो चलता रहा किन्तु वहाँ पर एक कठिनाई यह आई कि महाविद्यालय में पढ़ने के लिये आने वाले छात्र ज्यादा तर आठवीं पास होते थे और उन्हें पूर्वमध्यमा की परीक्षा देने की जल्दी होती थी। पूर्वमध्यमा प्रथमवर्ष के व्याकरण-विषय में वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी निर्धारित है। अतः **लघुसिद्धान्तकौमुदी** की पढ़ाई उनकी नहीं हो पाती थी। जो छात्र मेरी सलाह मानते थे, उन्हें तो हम **लघुसिद्धान्तकौमुदी** ही पढ़ाकर बाद में **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** के कुछ विशेष प्रयोगों की तैयारी करा देते थे और शास्त्री पास करते-करते छात्र प्रक्रियाग्रन्थ को किसी तरह समझ पाते। इस तरह परीक्षा में निर्धारित पाठ्यक्रम और परम्परागत पाठ्यक्रम का सामंजस्य बैठाकर किसी तरह काम चलाया गया।

मेरी यह इच्छा होती थी कि पूर्वमध्यमा की परीक्षा देने के पहले छात्र **लघुसिद्धान्तकौमुदी** को पूर्णरूपेण कण्ठस्थ कर लें जिससे आगे परीक्षा में निर्धारित पाठ्यक्रम भी ठीक तरह से चलता रहे, किन्तु परीक्षा में बैठने की शीघ्रता के कारण यह मरी इच्छा को बहुत ही कम छात्र पूर्ण कर पाते।

जब से सरकारी नौकरी छोड़कर दिल्ली में वि0 सं २०५६ में **श्रीमुक्तिनाथ पीठ वेद विद्याश्रम** की स्थापना के बाद गुरुकुलीय परम्परा के अनुसार पठन-पाठन शुरु किया और चण्डीगढ, पञ्चकुला-हरियाणा, जयपुर, भिवानी-हरियाणा, पनवेल आदि अनेक स्थानों पर गुरुकुल स्थापित किये गये तथा उन स्थानों पर यह निर्णय लिया गया कि जो साक्षर हैं, ऐसे ८ से १२ वर्ष के छात्र गुरुकुल में लिये जायें। तब से छोटे बालकों को भी पढ़ाने का सिलसिला प्रारम्भ हुआ किन्तु यहाँ भी एक नया अनुभव यह हुआ कि छोटे-छोटे बालक **लघुसिद्धान्तकौमुदी** के कठिन प्रयोगों को पकड़ने में कठिनाई का अनुभव कर रहे हैं। इससे मेरे मन में यह इच्छा हुई कि इससे भी छोटे किन्तु सारगर्भित एक प्रक्रियाग्रन्थ की रचना हो, जिसमें बहुप्रचलित सन्धि, धातु, शब्द, कृदन्त एवं तद्धितान्त प्रयोगों का समावेश किया जाय जिससे सुकुमार एवं किशोर अवस्था के बालक आसानी से पकड़ सकें। इसी चिन्तन में ठीक छ सौ सूत्रों से मूल **ऋजुसिद्धान्तकौमुदी** की रचना की और इसको कम्प्यूटर में टाईप कराकर के फोटोप्रति से छात्रों को पढाना शुरु किया। इससे लघु छात्रों और अत्यन्त सुकुमारमति वाले छात्रों को पढ़ने में सरलता हुई, छात्रों की रुचि बढ़ी। कालान्तर में केवल मूलमात्र **ऋजुसिद्धान्तकौमुदी** प्रकाशित भी हुई किन्तु अध्यापन कराते हुए उसमें जो न्यूनताएँ लगीं, उनका संशोधन किया। उसमें से कुछ सूत्रों को हटाया तो कुछ और नये सूत्र जोड़े।

सूत्रों के उदाहरण एवं प्रत्युदाहरणों के विषय में पहले तो यह विचार बना कि कौमुदियों के **सुद्ध्युपास्यः** आदि प्रचलित प्रयोगों को छोड़कर अन्य आधुनिक प्रयोगों को दिखाया जाय किन्तु गम्भीरता से विचार करने पर उन प्रयोगों की सार्थकता समझ में आ गई, अतः लगभग वे ही प्रयोग उदाहरण के रूप में दिखाये गये हैं जो कौमुदियों में मिलते हैं।

ऋजुसिद्धान्तकौमुदी में कठिन और अल्पप्रचलित रूपों को छोड़ दिया गया है। जैसे अच्सन्धि में यण्, अयादि, गुण, वृद्धि, पररूप, पूर्वरूप, सवर्णदीर्घ आदि सन्धियों का प्रयोग ज्यादा होता है, अतः इन सन्धियों को यहाँ पर लिया गया है और **एत्येधत्यूठ्सु** एवं इससे सम्बद्ध वार्तिक, टिसंज्ञाप्रयुक्त-सन्धि, प्रकृतिभाव-सन्धि, अवङ् आदि सन्धियों का सम्भाषण एवं सरल भाषा में उपयोग कम ही होता है। अतः इनको छोड़ दिया गया है। हल्सन्धि में श्चुत्व, ष्टुत्व, जश्त्व, अनुस्वार, परसवर्ण, तुगागाम ही लिया गया है। जहाँ पर एक सूत्र के कारण अनेकों प्रयोगों की सिद्धि हो रही है, वह सूत्र लिया गया है और एक या दो प्रयोगों के लिए अलग से सूत्र नहीं लिये गये हैं। जिन प्रयोगों में बहुत सूत्रों का उपयोग होता है, ऐसे प्रयोगों को नहीं दिखाया गया है। पाणिनीय सूत्र, सूत्रार्थ की शैली अपनी, उदाहरण और प्रत्युदाहरण भाष्य, काशिका और कौमुदी के अतिरिक्त अद्यतन प्रचलित शब्द लिये गये हैं। पूरी कौमुदी में इस बात पर ध्यान दिया गया है कि छात्रों को कठिनाई न लगे और प्रकरणगत प्रक्रिया का सारल्येन ज्ञान हो सके।

मेरा अनुभव और विश्वास भी है कि इससे संस्कृतभाषा को व्याकरण के माध्यम से समझने को इच्छुक छात्रों के लिए इससे सरलतम कौमुदी प्रक्रिया अन्य अभी तक नहीं होगी, क्योंकि अभी तक **लघुसिद्धान्तकौमुदी** आज की सबसे सरलतम प्रक्रियाग्रन्थ के रूप में पाठ्यक्रमों में निर्धारित है। उसमें **१२७५** सूत्र हैं किन्तु **ऋजुसिद्धान्तकौमुदी** में उसके आधे से भी कम केवल ६०० सूत्र हैं।

आगे एक बात और कहना चाहता हूँ कि मेरे अभी तक के जीवन में बहुत से ऐसे लोग मिले जो किसी कारणवश संस्कृतभाषा का अध्ययन नहीं कर पाये थे किन्तु अब भी कोई अच्छा मार्गदर्शन मिले तो सामान्यतया व्याकरणज्ञान के साथ भाषा का अध्ययन करना चाहते हैं, इसलिए ऐसा कोई सरल उपाय बनाया जाय, ऐसा चिन्तन चल रहा था। इन महानुभावों को ध्यान में रखकर भी **ऋजुसिद्धान्तकौमुदी** एवं उसकी टीका लिखने में मेरी प्रवृत्ति हुई।

ऋजुसिद्धान्तकौमुदी किसी अन्य ग्रन्थ की तुलना में नहीं लिखी गई है अपितु **लघुसिद्धान्तकौमुदी** एवं **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** को लगाने में सहायता हो, उनमें बालकों एवं जिज्ञासुओं की सहज प्रवृत्ति हो, इसलिए प्रवेशिका ग्रन्थ के रूप में इसे लेना चाहिए। पूर्ण शब्दज्ञान तो **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** से ही सम्भव है। अतः **पूर्ण वैयाकरण** बनने के लिए इच्छुक को चाहिए कि पहले **सारसिद्धान्तकौमुदी** या **ऋजुसिद्धान्तकौमुदी** का अध्ययन करे, उसके बाद **लघुसिद्धान्तकौमुदी** का और उसके बाद **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** का अध्ययन करे। **ऋजुकौमुदी** से **लघुकौमुदी** पूर्ण होते-होते **अष्टाध्यायी** के सूत्र एवं उनमें अनुवृत्ति क्रम का भी अभ्यास करे तो सोने पे सोहागा हो जायेगा।

यद्यपि लघुछात्रों के लिए पढ़ाने वाले आचार्य ही पूर्णतया समझायेंगे और उन्हें ज्यादा टीकाग्रन्थ में रुचि नहीं होनी चाहिए फिर भी छात्र ज्यादा जिज्ञासु हों और विशेष रूप से समझना चाहें तो इसे पढ़ सकते हैं।

लघुसिद्धान्तकौमुदी की श्रीधरमुखोल्लासिनी व्याख्या

ऋजुसिद्धान्तकौमुदी की **श्रीधरमुखोल्लासिनी** व्याख्या के प्रकाशन में आने के बाद मेरे अनेक पूज्य विद्वानों ने बार-बार **वरदराजाचार्य** के तीनों प्रक्रियाग्रन्थ **सारसिद्धान्तकौमुदी, लघुसिद्धान्तकौमुदी** और **मध्यसिद्धान्तकौमुदी** में **ऋजुसिद्धान्तकौमुदी** की **श्रीधरमुखोल्लासिनी** की तरह सरल व्याख्या लिखने का आदेश दिया और कई जिज्ञासुओं ने इसकी भूख का अनुभव कराया तो सर्वप्रथम लघुग्रन्थ **सारसिद्धान्तकौमुदी** की हिन्दी व्याख्या लिखने में मेरी प्रवृत्ति हुई। भगवत्कृपा, गुरुजनों के आशीर्वाद एवं मित्रों के सहयोग से **सारसिद्धान्तकौमुदी** प्रकाशित हुई और इसके अध्येताओं को अच्छा लाभ हुआ। उसके बाद **लघुसिद्धान्तकौमुदी** की **श्रीधरमुखोल्लासिनी** व्याख्या आज आपके हाथों में है। अब आज की तिथि में **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** की व्याख्या लिखी जा रही है जो शीघ्र प्रकाशित होने वाली है।

केवल **संस्कृतभाषा** सीखने के लिए व्याकरण की बहुत आवश्यकता तो नहीं है, क्योंकि भाषा का ज्ञान तो बोलचाल से भी हो सकता है किन्तु संस्कृत भाषा में विद्वत्ता हासिल करने एवं उन सारे प्राचीन ग्रन्थों की भाषा को समझने के लिए अनिवार्य रूप से व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है। **संस्कृत को कठिन समझ कर या व्याकरण को दुरुह समझकर भागने वाले छात्रों के लिए सरल हिन्दी भाषा में समझाना एक वरदान सिद्ध हो सकता है।** इसी विचार से प्रेरित होकर **लघुसिद्धान्तकौमुदी** की इस हिन्दी व्याख्या को सरल से सरलतम बनाने का यथामति भरपूर प्रयास किया गया है।

श्रीधरमुखोल्लासिनी की विशेषताएँ

१. सरल हिन्दी भाषा में प्रक्रिया को अतिशय सरल तरीके से समझाने का प्रयत्न किया गया है।
२. बीच-बीच में अभ्यास एवं परीक्षार्थ प्रश्नावली से छात्रों का मूल्यांकन करने का मार्ग प्रदर्शित है।
३. सूत्रों की व्याख्या करते समय सब से पहले समास, उसके बाद विभक्ति, तदनन्तर अनुवृत्ति और अधिकार, उसके बाद काले अक्षरों में सूत्रार्थ दिये गये हैं। आवश्यक स्थलों पर सूत्रों का विशेष विवरण दिया गया है।
४. मूल में सूत्रों से पहले उनका विधेय और संज्ञादि सूत्रों का स्पष्ट निर्देश किया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कौन सूत्र क्या कार्य करता है।
५. षड्लिङ्ग में सभी शब्दों के रूप और तिङन्त में अधिक प्रचलित धातुओं के पूर्ण दिये गये हैं। प्रकरण के आदि में प्राय: सभी रूपों की सिद्धि दिखाई गई है।
६. तिङन्तप्रकरण के प्रारम्भ में क्रिया के सम्बन्ध में अवश्यज्ञातव्य विषयों का विस्तारपूर्वक निरूपण किया गया है। जैसे कि सकर्मक और अकर्मक व्यवस्था, फल और व्यापार का स्पष्टीकरण, कर्ता, कर्म, काल, परस्मैपद और आत्मनेपद आदि।
७. अधिक से अधिक प्रयोगसिद्धि दिखाई गई है।
८. सेट्, अनिट् और वेट् धातुओं के विषय में स्पष्टीकरण करते हुए क्र्यादिनियम एवं भारद्वाजनियमों का जगह-जगह उल्लेख किया गया है।
८. विभक्त्यर्थप्रकरण में जो सूत्र बहुत उपयोगी हैं किन्तु लघुसिद्धान्तकौमुदी में पढ़े नहीं गये हैं, उनकी भी चर्चा की गई है।

९. परिशिष्ट के रूप में लिङ्गानुशासन, गणपाठ, अकारादि क्रम से सूत्रसूची, वार्तिकसूची एवं धातुसूची भी दी गई है।

१०. टीकाकार या व्याख्याकार बनकर के नहीं अपितु छात्रों का सुहृत् बनकर अध्यापन शैली में टीका लिखी गई है।

११. व्याख्या में भी पाण्डित्यप्रदर्शन न करके यथासम्भव सरल शब्दों का ही प्रयोग किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि आज के परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर ही यह टीका लिखी गई है।

१२. इस ग्रन्थ के अध्ययन के बीच-बीच में छात्रों को यह प्रेरणा दी गई है कि अष्टाध्यायी सूत्रपाठ की प्रतिदिन आवृत्ति करें। यदि ऐसा करते हैं तो निश्चित ही महावैयाकरण बनेंगे।

अन्त में इस सरलीकरण के लक्ष्य में मैं कितना सफल हूँ, यह विद्वान् लोग ही मूल्यांकन करेंगे। यदि इसमें कुछ ग्राह्य हो तो आशीर्वादों से सिंचित करेंगे और त्रुटियों में हमें सूचित कर एक बार भूलसुधार का अवसर अवश्य प्रदान करेंगे, ऐसा विश्वास है। जहाँ तक पुस्तक शुद्ध बनाने के लिए बहुत प्रयत्न हुआ है, फिर मानवसुलभ दोषों के कारण क्वचित् अशुद्धियाँ रही जाती हैं। अतः यह यथार्थ ही कहा है कि-

अत्युर्जितं वस्तु चलं च चित्तमतः प्रमादः सुलभः प्रणेतुः।
प्रमादिनौ लेखकमुद्रकौ च क्वात्यन्तिकी पुस्तक ते विशुद्धिः॥

विदुषां वशंवदः
गोविन्द प्रसाद शर्मा (गोविन्दाचार्य)

विषयाणामनुक्रमः

श्रीलक्ष्मीहयवदनपरब्रह्मणे नमः।

श्रीमद्विद्वद्वर-वरदराजाचार्यविरचिता

लघुसिद्धान्तकौमुदी

नत्त्वा सरस्वतीं देवीं शुद्धां गुण्यां करोम्यहम्।
पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीम्।।

श्रीधरमुखोल्लासिनी

श्रीश्रीनिवासमुक्तिनारायणरामानुजयतिभ्यो नमः।।

स्वाचार्यं श्रीधरं शान्तं षडाचार्यं यतिं गुरुम्।
श्रीनिवासं मुक्तिनारायणं रामानुजं भजे।।
मुनित्रयं नमस्कृत्य तदुक्तीः परिशील्य च।
लघुसिद्धान्तकौमुद्याष्टीकां कुर्वे मनोहराम्।।

लघुसिद्धान्तकौमुदी के प्रारम्भ में कौमुदीकर्ता वरदराजाचार्य ने नत्त्वा सरस्वतीं देवीम् इस श्लोक से मङ्गलाचरण किया है। मंगलाचरण के तीन प्रयोजन हैं- १. प्रारम्भ किये जाने वाले कार्य में विघ्न न आयें अर्थात् विघ्नों का नाश हो, २. ग्रन्थ पूर्ण हो जाय और ३. रचित ग्रन्थ का प्रचार-प्रसार हो।

यह प्रश्न उदित होता है कि मङ्गलाचरण तो ईश्वर की स्तुति-रूप है, उसको ग्रन्थारम्भ के समय विशेष तरीके से ध्यानावस्थित होकर या वैदिक मन्त्रों का उच्चारण आदि करके ग्रन्थ के बाहर कर सकते हैं, तो ग्रन्थ के आदि में ही क्यों लिखें? उत्तर यह है कि मङ्गल तो विघ्नविनाश आदि के लिए ही किया जाता है और वह ग्रन्थ के बाहर भी भगवान् की स्तुति आदि करने से हो सकता है, तथापि ग्रन्थलेखन, अध्ययन, शुभकार्य आदि के प्रारम्भ में **मङ्गलाचरण अवश्य करना चाहिए,** इस बात की भी शिक्षा देना चाहते हैं ग्रन्थकार। इसलिए अपने ग्रन्थ में ही मङ्गलाचरण को भी जोड़ देते हैं।

मङ्गलाचरण तीन प्रकार के होते हैं-

१- नमस्कारात्मक मंगल, जिसमें अपने-अपने आराध्यदेव की स्तुति, प्रार्थना, वन्दना आदि की जाती है।

अथ संज्ञाप्रकरणम्

माहेश्वरसूत्राणि

१.अइउण्। २.ऋऌक्। ३.एओङ्। ४.ऐऔच्। ५.हयवरट्। ६.लण्। ७.ञमङणनम्। ८.झभञ्। ९.घढधष्। १०.जबगडदश्। ११.खफछठथचटतव्। १२.कपय्। १३.शषसर्। १४.हल्।

इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थानि। एषामन्त्या इतः। हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः। लण्मध्ये त्वित्संज्ञकः।

....

२- **आशीर्वादात्मक मंगल,** जिसमें किसी प्रिय व्यक्ति या ग्रन्थ के अध्येताओं की मंगलकामना की गई होती है।

३- **वस्तुनिर्देशात्मक मंगल,** जिसमें ग्रन्थ के मूल विषय एवं उसके लक्ष्य का निर्देश होता है।

कहीं केवल **नमस्कारात्मक मंगल** होता है तो कहीं **आशीर्वादात्मक** या **वस्तुनिर्देशात्मक मंगल**। कहीं-कहीं दोनों, तीनों मंगलों का भी समावेश मिलता है। यहाँ पर **नत्त्वा सरस्वतीं देवीम्** इस वाक्य से **नमस्कारात्मक मंगल** एवं **पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीम्** से **वस्तुनिर्देशात्मक मंगल** हुआ है।

पदच्छेदः- नत्त्वा अव्ययपदं, सरस्वतीं द्वितीयान्तं, देवीं द्वितीयान्तं, शुद्धां, द्वितीयान्तं, गुण्यां द्वितीयान्तं, करोमि क्रियापदम्, अहं प्रथमान्तं, पाणिनीयप्रवेशाय चतुर्थ्यन्तं, लघुसिद्धान्तकौमुदीं द्वितीयान्तम्।

समासः- पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयं व्याकरणशास्त्रम्। पाणिनीये प्रवेशः पाणिनीयप्रवेशः। तस्मै पाणिनीयप्रवेशाय। सप्तमीतत्पुरुषः। (वैयाकरणानां) सिद्धान्तानां कौमुदी सिद्धान्तकौमुदी, लघ्वी चासौ सिद्धान्तकौमुदी, लघुसिद्धान्तकौमुदी। षष्ठीतत्पुरुषगर्भकर्मधारयः।

अन्वयः- अहं शुद्धां गुण्यां सरस्वतीं देवीं नत्त्वा पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीं करोमि।

मङ्गलपद्यार्थः- **मैं (वरदराजाचार्य) शुद्ध स्वरूप वाली, प्रशस्त गुणों से युक्त सरस्वती देवी को नमस्कार करके पाणिनि जी के व्याकरणशास्त्र में सरलता से प्रवेश के लिए लघुसिद्धान्तकौमुदी की रचना करता हूँ।**

इति माहेश्वराणि[1] सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थानि। महेश्वर की कृपा से प्राप्त ये चौदह सूत्र अण् आदि प्रत्याहारों की सिद्धि के लिए हैं।

टिप्पणी(१) सृष्टिकाल से आज तक उपलब्ध व्याकरणों में **पाणिनीयव्याकरण** ही सर्वोत्कृष्ट है। इसके विकल्प तो अन्य व्याकरण हो सकते हैं किन्तु इसकी तुलना अन्य किसी से नहीं की जा सकती। तुलना दो तरह से हो सकती है- प्रथम तो बराबरी दिखाने के लिए और द्वितीय दोनों में अन्तर दिखाने

अइउण् आदि ये चौदह सूत्र महेश्वर की कृपा से पाणिनि जी को प्राप्त हुए हैं, इनसे अण् आदि प्रत्याहारों की सिद्धि की जाती है।

एषामन्त्या इतः। इनके अन्त्य वर्ण इत्संज्ञक हैं।

हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः। हकार आदि में पठित अकार उच्चारण के लिए है।

लण्मध्ये त्वित्संज्ञकः। लण् इस छठे सूत्र में पठित अकार इत्संज्ञक है, उच्चारणार्थ नहीं।

विवरणः- अइउण् आदि ये चौदह सूत्र हैं इसलिए इन्हें **चतुर्दशसूत्र** कहते हैं। इनसे प्रत्याहार बनाये जाते हैं, अतः इन्हें **प्रत्याहारसूत्र** भी कहते हैं। भगवान शंकर के डमरु से निकल कर पाणिनि जी को प्राप्त हुये हैं, अतः इन्हें **शिवसूत्र** कहते हैं और व्याकरणशास्त्र में प्रारम्भिक **ककहरा** हैं अर्थात् बालक को सबसे पहले **ककहरा** अर्थात् वर्णमाला की शिक्षा दी जाती है। ये संस्कृतभाषा में **ककहरा** अर्थात् वर्णमाला हैं। ये वेदतुल्य हैं, इसलिए **वर्णसमाम्नाय** भी कहते हैं। छात्र इनको अच्छी तरह से रट लें। इसके बाद प्रत्येक सूत्र के अन्तिम अक्षरों को छोड़कर उच्चारण करने का भी अभ्यास कर लें। जैसे- **अ, इ, उ। ऋ, लृ। ए, ओ। ऐ, औ। ह्, य्, व्, र्। ल। ञ्, म्, ङ्, ण्, न्। झ्, भ्। घ्, ढ्, ध्। ज्, ब्, ग्, ड्, द्। ख्, फ्, छ्, ठ्, थ्, च्, ट्, त्। क्, प्। श्, ष्, स्। ह्।**

ऐसी प्रसिद्धि है कि **पाणिनि जी** ने व्याकरण की रचना करने की शक्ति प्राप्त

के लिए। **पाणिनीयव्याकरण** से बराबरी दिखाने के लिए कोई व्याकरण नहीं है। अतः इस तरह की तुलना ही व्यर्थ है किन्तु अन्य व्याकरणों से इस व्याकरण में कितना अन्तर है? इस बात को जानने के लिए अवश्य तुलना कर सकते हैं।

इस व्याकरण के रचयिता **महर्षि पाणिनि** हैं। कठोर साधना के बाद ईश्वरीय कृपा से उन्होंने व्याकरण के लिए सूत्र बनाये। पाणिनि के द्वारा रचित सूत्रों की संख्या लगभग ४००० हैं। सूत्रों की संख्या में मतभेद है, क्योंकि कहीं-कहीं योगविभाग करके एक ही सूत्र को दो सूत्र भी माना गया है। अतः कई विद्वानों में मत में सूत्रों की संख्या केवल **३९६५** ही है तो कुछ लोग इससे ज्यादा मानते हैं। हाँ ४००० से ऊपर नहीं है और **३९६५** से नीचे नहीं है। इस लिए **लगभग ४०००** हैं, ऐसा कहना ही ठीक है। इन सूत्रों के साथ **धातुपाठ** में लगभग २००० धातुएँ हैं। **पाणिनि** जी ने **सूत्रपाठ, धातुपाठ, गणपाठ, लिङ्गानुशासन** और **पाणिनीय शिक्षा** ये पाँच विषयों से पूर्ण व्याकरण बनाया था।

पाणिनि जी के द्वारा सूत्रों में उस समय जो न्यूनताएँ दृष्टिगोचर हुईं, उनकी पूर्ति के लिए **कात्यायन** जी ने **वार्तिक** बनाये। **सूत्र** और **वार्तिकों** की व्याख्या के रूप **महर्षि पतञ्जलि** ने विशालतम **महाभाष्य** लिखा। **अष्टाध्यायी** के क्रम से **काशिका** आदि अनेक ग्रन्थ लिखे गये। बाद में अष्टाध्यायी के क्रम से भिन्न किन्तु अष्टाध्यायी के सूत्रों को लेकर रूपावतार, प्रक्रियाकौमुदी आदि ग्रन्थों की रचना हुई। प्रक्रियाग्रन्थों में आज **भट्टोजिदीक्षित जी** की रचना **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** अतिप्रसिद्ध है जिसमें **पाणिनि** जी के समस्त सूत्रों का समावेश है, जिसके समग्र अध्ययन के पश्चात् शब्दप्रक्रिया का सम्पूर्ण ज्ञान हो सकता है। इसके बाद इनके ही शिष्य **वरदराजाचार्य जी** ने **सारसिद्धान्तकौमुदी, लघुसिद्धान्तकौमुदी** और **मध्यसिद्धान्तकौमुदी** की रचना की। **लघुसिद्धान्तकौमुदी** का आज व्यापक प्रचार है, जिसमें **पाणिनि जी** के १२७६ सूत्रों का उपयोग किया गया है। इसके बाद मैं ने भी धृष्टता करके **ऋजुसिद्धान्तकौमुदी** बनाई है जिसमें **पाणिनि जी** के केवल ६०० सूत्रों का उपयोग किया गया है। यह अत्यन्त प्रारम्भिक छात्रों के लिए ही उपयुक्त है।

करने के लिये हिमालय पर जाकर तपस्या की थी। उनकी कठोर तपस्या से **भगवान शंकर** प्रसन्न हुये और उनकी तपस्या को पूर्ण करने के लिये उनके सामने प्रकट होकर नृत्य किया। नृत्य करते समय **भगवान शंकर** के **डमरु** से ये चौदह सूत्र निकले। **पाणिनि** जी ने इनको ग्रहण किया और **भगवान शंकर** का **वरदान** समझकर यहाँ से प्रारम्भ करके लगभग ४००० सूत्रों वाली **पाणिनीयाष्टाध्यायी** की रचना की। कहते हैं कि **भगवान शंकर** से जब इन्होंने ये चौदह सूत्र प्राप्त किया तो इन सूत्रों के अन्त्य में जो **ण्, क्, ङ्, च्** आदि **हल्** वर्ण लगे हुये हैं, ये नहीं थे। इन हल् वर्णों को **पाणिनि** जी ने प्रत्याहारों की सिद्धि के लिए अपनी ओर से लगाया है।

इन चौदह सूत्रों का प्रयोजन बता रहे हैं- **इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थानि।** (सूत्राणि+अणादि=सूत्राण्यणादि) संसार में मूर्ख से भी मूर्ख व्यक्ति किसी काम में लग जाता है तो उसका कुछ न कुछ प्रयोजन होता है। प्रयोजन के विना कोई भी व्यक्ति किसी भी काम में नहीं लगता। **पाणिनि** जी परम ज्ञानी थे और **शंकर भगवान** भी **योगेश्वर** माने जाते हैं। **पाणिनि जी** की तपस्या और **शंकर भगवान** का वरदान ये दोनों व्यर्थ नहीं थे। इनका कोई न कोई प्रयोजन तो था ही। **पाणिनि जी** का प्रयोजन **व्याकरण-शास्त्र** की रचना थी और उन्हें ये चौदह सूत्र प्राप्त हुये हैं। इनका क्या प्रयोजन है? मूल में कहा गया है- इन चौदह सूत्रों का प्रयोजन **अण्, अच्** आदि प्रत्याहारों की सिद्धि है। इनसे अण् आदि प्रत्याहार बनाये जाते हैं। प्रत्याहार बनाने की प्रक्रिया आगे बताएंगे। प्रत्याहारों से अनेक सूत्रों द्वारा प्रयोगों की सिद्धि की जायेगी।

इन चौदह सूत्रों के अन्त्य में लगे हुए हल् अक्षर किन्हीं विशेष प्रयोजन के लिए हैं। एतदर्थ उनकी विशेष संज्ञा की जायेगी- **एषामन्त्या इतः।** इन चौदह सूत्रों के अन्त्य में लगे हुये **ण्, क्, ङ्, च्, ट्, ण्, म्, ञ्, ष्, श्, व्, य्, र्, ल्** इन वर्णों की **इत्संज्ञा** की जाती है। जो **अन्त** में रहे उसे **अन्त्य** कहते हैं। संज्ञा **नाम** को कहते हैं। **इत्** नामक **संज्ञा** इनकी होगी अर्थात् ये **इत्** नाम वाले कहलाते हैं। व्याकरण में संज्ञा, संज्ञक और संज्ञी का व्यवहार जगह-जगह पर किया जाता है। **नाम** को **संज्ञा** और **नाम वाले** को **संज्ञक** या **संज्ञी** कहते हैं। जैसे आप में से किसी का नाम **पुरुषोत्तम** हो तो यह शब्द **संज्ञा** है और पुरुषोत्तम नाम वाला शरीरधारी **संज्ञक** या **संज्ञी** है। अर्थात् आप **पुरुषोत्तम-संज्ञक** या **पुरुषोत्तम-संज्ञी** है। इसी प्रकार अन्त्य वर्ण **इत्संज्ञक** अर्थात् **इत्संज्ञी** है और **इत्** संज्ञा है। इन चौदह सूत्रों के अन्त्य वर्णों की **इत्संज्ञा** करने का फल भी **प्रत्याहार** बनाना ही है जिसकी प्रक्रिया आगे दिखाएंगे।

हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः। संस्कृत-भाषा के वर्णमाला में जितने अक्षर हैं उनको दो भागों में बाँटा गया है- **स्वर** एवं **व्यञ्जन। स्वर** को **अच्** और **व्यञ्जन** को **हल्** कहते हैं। **अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ** ये **स्वर** हैं तथा **क्, ख्** से लेकर **ज्ञ्** तक के वर्ण **व्यञ्जन** हैं। ये **व्यञ्जन** अर्थात् हल् अक्षर **क, ख, ग, घ, ङ** ऐसे न होकर **क्, ख्, ग्, घ्, ङ्** ऐसे हैं। इनका ठीक तरह से उच्चारण हो, इसलिए इन वर्णों के बाद **स्वर** वर्ण लगाये जाते हैं। जैसे- क्+अ=**क**, क्+आ=**का**, क्+इ=**कि**, क्+ई=**की**, क्+उ=**कु**, क्+ऊ=**कू**, क्+ऋ=**कृ**, क्+ऌ=**क्लृ**, क्+ए=**के**, क्+ऐ=**कै**, क्+ओ=**को**, क्+औ=**कौ**, क्+अं=**कं**, क्+अः=**कः**। इसी प्रकार ख्+अ=**ख** आदि आगे भी जानें।

इत्संज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१. हलन्त्यम् १।३।३।।

उपदेशेऽन्त्यं हलित्स्यात्।

उपदेश आद्योच्चारणम्। सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र।

....

इस तरह से यह स्पष्ट हो गया कि **हयवरल** आदि में **ह्, य्, व्, र्, ल्** के साथ **अकार** जोड़कर उच्चारण किया गया है। इनमें उच्चारित अवर्ण केवल उच्चारण के लिये है। जहाँ **ह्** आदि वर्णों का प्रत्याहार आदि के माध्यम से प्रयोग होगा तो वहाँ **अकार** का ग्रहण नहीं किया जाता किन्तु केवल हल् वर्ण मात्र गृहीत होता है।

१- हलन्त्यम्। हल् प्रथमान्तम्, अन्त्यं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से **उपदेश** और **इत्** इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है।

उपदेश अवस्था में अन्त्य हल् इत्संज्ञक होता है।

इस सूत्र का कार्य है **हल्** अक्षरों की **इत्संज्ञा करना।** उपदेश अवस्था में विद्यमान हल् प्रत्याहार अर्थात् हल् वर्णों की इत्संज्ञा इस सूत्र के द्वारा होती है। हम पहले भी बता चुके हैं कि **इत्** एक नाम है। इसके द्वारा उन हल् अक्षरों को **इत्** नाम से जाना जायेगा।

वाक्य के अर्थ को जानने के लिये वाक्य के प्रत्येक पदों का, प्रत्येक शब्दों का भी अर्थ जानना जरूरी है। इस सूत्र के अर्थ में **उपदेशे, अन्त्यं, हल्, इत्, स्यात्** ये पाँच पद हैं। अतः प्रत्येक का अर्थज्ञान जरूरी है।

उपदेश आद्योच्चारणम्। पाणिनि कात्यायन और पतञ्जलि के प्रथम उच्चारण को उपदेश कहते हैं अर्थात् पाणिनि, कात्यायन, एवं पतञ्जलि ने जिसका प्रथम उच्चारण या प्रथम पाठ किया उसे उपदेश नाम से जाना जाता है। यहाँ **अइउण्** आदि चौदह सूत्रों को **आचार्य पाणिनि जी** ने अपने व्याकरण के अंग के रूप में प्रथम बार उच्चारण किया। अतः ये चौदह सूत्र भी उपदेश कहलाये। **उपदेश** के सम्बन्ध में एक पद्य अति प्रचलित है।

धातुसूत्रगणोणादिवाक्यलिङ्गानुशासनम्।
आगमप्रत्ययादेशा उपदेशाः प्रकीर्तिताः।।

भू आदि धातु, अइउण् आदि सूत्र, उणादिसूत्र, वार्तिक, लिङ्गानुशासन, आगम, प्रत्यय और आदेश ये **उपदेश** माने जाते हैं।

अन्त में उच्चारित वर्ण **अन्त्य** कहलाते हैं। अतः **अइउण्** में **ण्** वर्ण अन्त्य है, **ऋलृक्** में **क्** वर्ण अन्त्य है, **एओङ्** में **ङ्** वर्ण अन्त्य है। ये वर्ण **हल्** प्रत्याहार में आते हैं, इसलिये इन्हें **हल्** या हल् वर्ण कहा जाता है।

पाणिनीय सूत्रों की विशेषता को बता रहे हैं- **सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र।** सूत्रों में अर्थ को पूरा करने के लिए जो पद कम हो, उसे आवश्यकतानुसार अन्य सूत्रों से ले लेना चाहिए। जैसे **हलन्त्यम्** इस सूत्र में **उपदेशे** और **इत्** ये दो पद **पाणिनीयाष्टाध्यायी** के क्रमानुसार इससे पहले के सूत्र **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से लाये गये हैं। इसी तरह सभी सूत्रों में समझना चाहिए। इस तरह सभी पद सभी सूत्रों में पढ़ने की जरूरत नहीं पड़ेगी किन्तु पूर्वसूत्र से आवश्यकता अनुसार ले लिया जाता है।

हलन्त्यम् इस सूत्र की वृत्ति पठित शब्दों का अर्थ देखें- **इत्** एक **संज्ञा** है। **स्यात्**

लोपसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

२. अदर्शनं लोपः १।१।६०॥

प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात्।

....

यह एक **क्रियापद** है जिसका अर्थ है होवे। इस प्रकार से प्रत्येक पदों का अर्थ जान लेने के वाद **उपदेशे, अन्त्यं, हल्, इत्, स्यात्** इस वाक्य का अर्थ भी लग जायेगा- **उपदेश अवस्था में अन्त्य हल् की इत्संज्ञा होती है।**

यहाँ पर एक बात और भी जान लेना आवश्यक है कि **पाणिनि** ने जिन सूत्रों की रचना की, उन सूत्रों को आठ अध्यायों में रखा है। प्रत्येक अध्यायों में चार-चार चरण अर्थात् पाद बनाये। सूत्रों के बाद जो अंक लिखे गये हैं, उनमें **प्रथम अंक** से **अध्याय,** दूसरे अंक से उस **अध्याय के पाद** एवं तीसरे अंक से उस **पाद में सूत्रों की क्रमसंख्या** समझनी चाहिये। जैसे **हलन्त्यम् १।३।३॥** इस सूत्र में पहली संख्या **१** से **पहला अध्याय,** दूसरी संख्या **३** से पहले अध्याय का **तीसरा चरण** और तीसरी संख्या **३** से पहले अध्याय के तीसरे पाद का **तीसरा सूत्र।** इस प्रकार **हलन्त्यम्** यह सूत्र **प्रथम अध्याय के तीसरे पाद का तीसरा सूत्र** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार सभी सूत्रों में समझना चाहिए। सूत्रों में पूर्व, पर, सपादसप्ताध्यायी, त्रिपादी, सिद्ध, असिद्ध इत्यादि के लिए सूत्रों में लिखित अध्याय, पाद आदि की संख्या अत्यन्त उपयोगी है। इस तरह से याद रखने के लिए अष्टाध्यायी के क्रम से सुविधा होती है, क्योंकि वहाँ पर प्रकरण के अनुसार उन सूत्रों को तत्तत् अध्यायों में रखा गया है।

यह जिज्ञासा हो सकती है कि **हलन्त्यम् इस** सूत्र से **अन्त्य हल्** वर्णों की **इत्संज्ञा** की गयी इनका क्या प्रयोजन है? हाँ तो **भविष्यति किञ्चित् प्रयोजनमनेन** अर्थात् इतने बड़े विद्वान् के द्वारा की गई संज्ञा का जरूर कोई न कोई महान् प्रयोजन अवश्य होगा जिसे आप पढ़ते-पढ़ते समझ जायेंगे। आप जिज्ञासु बने रहें, आपकी शंकाओं का समाधान अवश्य हो जायेगा। इन चौदह सूत्रों के अन्त्य हल् वर्णों की इस सूत्र से की गई इत्संज्ञा का प्रथम फल है **प्रत्याहार बनाना** जिसे हम आगे के सूत्रों में क्रमशः बतायेंगे।

अइउण्, ऋलृक् इत्यादि सूत्रों में **ण्, क्** इत्यादि हल्वर्णों की, **डुपचष् पाके** इत्यादि धातुओं में अन्त्य हल् वर्ण **ष्** आदि की, **नदट्, देवट्** इत्यादि गणपाठों में पठित शब्द के अन्त्य हल्वर्ण **ट्** आदि की, **तृन्, तृच्** इत्यादि प्रत्ययों के अन्त्य हल् वर्ण **न्, च्** आदि की इत्संज्ञा **हलन्त्यम्** से की जायेगी। इसके अतिरिक्त अनेक वर्णों की इत्संज्ञा की जाती है और इत्संज्ञा का करके प्रत्याहारसिद्धि, उदात्तादि स्वर का विधान आदि अनेक कार्य करने के बाद उसका **तस्य लोपः** इस सूत्र से लोप किया जाता है।

२- अदर्शनं लोपः। न दर्शनम्- अदर्शनम्, अदर्शनं प्रथमान्तं, लोपः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्।

(पहले) विद्यमान का (बाद में) अदर्शन होना, न सुना जाना लोपसंज्ञक (लोपसंज्ञा वाला) होता है।

लोक में **लोप** का एक अर्थ **नाश** भी होता है किन्तु **पाणिनीय-व्याकरण-शास्त्र** में लोप का अर्थ **अदर्शन** माना गया है। **अदर्शन** अर्थात् जो न दीखे, जो न सुनाई पड़े।

लोपविधायकं विधिसूत्रम्

३. तस्य लोपः १।३।९॥

तस्येतो लोपः स्यात्। णादयोऽणाद्यर्थाः।

प्रत्याहारसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

४. आदिरन्त्येन सहेता १।१।७१॥

अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात्। यथाऽणिति अइउवर्णानां संज्ञा। एवमच्हल्अलित्यादयः।

....

वस्तुतः शब्द कभी दीखता नहीं है, अतः **अदर्शन** का अर्थ **अश्रवण** करना चाहिए। इसीलिए जो पहले सुनाई देता था और अब वह न सुनाई दे तो उसे **लोप** कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जो पहले से था किन्तु बाद में किसी सूत्र आदि के द्वारा लुप्त हो जाय तो वह न तो कहीं दिखाई पड़ेगा और न ही वह सुनाई पड़ेगा। जो पहले से था उसी का ही लोप होता है, जो पहले से नहीं था, उसका क्या लोप करें! इस प्रकार से यह सिद्ध हुआ कि **पाणिनीय-व्याकरण** में किसी भी अक्षर या शब्द का **विनाश** नहीं होता। जहाँ-जहाँ भी **लोप** का विधान किया गया वहाँ-वहाँ **अदर्शन** मात्र समझना चाहिए। यह सूत्र केवल **लोप क्या है?** इतना ही बताता है किन्तु लोप नहीं करता। **लोप**विधायक विधिसूत्र आगे कहा जा रहा है।

३- **तस्य लोपः**। तस्य षष्ठ्यन्तं, लोपः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

उस इत्संज्ञक वर्ण का लोप होता है।

इत्संज्ञा के लिए प्रकरण के अनुसार अनेक सूत्र विद्यमान हैं। जिन वर्णों की हलन्त्यम् आदि सूत्रों के द्वारा **इत्संज्ञा** की जाती है, उनका यह सूत्र लोप करता है अर्थात् **अदर्शन** कर देता है। पूरे व्याकरण में इत्संज्ञा के बाद लोप करने के लिए केवल एक यही सूत्र है। **तस्य इतः**=उस इत्संज्ञक वर्ण का **लोपः स्यात्**=लोप होवे। इस प्रकार से **अइउण्** में **ण्** की, **ऋलृक्** में **क्** आदि की **हलन्त्यम्** सूत्र के द्वारा इत्संज्ञा की गई थी, उनका इस सूत्र से **लोप** हो जाता है। इस प्रकार चौदह सूत्रों में अन्त्य वर्ण की इत्संज्ञा और उसके बाद लोप करके **अइउ, ऋलृ, एओ, ऐऔ, हयवर, ल, ञमङणन, झभ, घढध, जबगडद, खफछठथचटत, कप, शषस, ह** मात्र शेष बचते हैं। प्रत्याहारों में इन्हीं वर्णों का ग्रहण होगा, इत्संज्ञक वर्णों का नहीं।

णकारादि अन्त्य वर्णों का प्रयोजन- **णादयोऽणाद्यर्थाः। णादयः**=अइउण्, ऋलृक् आदि में जो णकार, ककार आदि पढ़े गये हैं, वे **अणाद्यर्थाः**= अण् आदि प्रत्याहारों की सिद्धि के लिए हैं। अर्थात् प्रत्याहारों की सिद्धि करते समय इनका उपयोग किया जाता है। तात्पर्य यह है कि **अइउण्** आदि चौदह सूत्रों के अन्त्य में जो हल् वर्ण लगे हुए हैं, उनका प्रयोजन प्रत्याहार की सिद्धि है।

४- **आदिरन्त्येन सहेता**। अन्ते भवः अन्त्यः। आदिः प्रथमान्तम्, अन्त्येन तृतीयान्तं, सह अव्ययपदम्, इता तृतीयान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में किसी पद की अनुवृत्ति आती नहीं है।

अन्त्य इत्संज्ञक वर्ण के साथ उच्चारित आदि वर्ण मध्य के वर्णों का और अपना भी संज्ञा=बोधक होता है।

आदिरन्त्येन सहेता यह सूत्र **प्रत्याहार संज्ञा** करता है। जैसे अण् प्रत्याहार, अक् प्रत्याहार, अच् प्रत्याहार, अल् प्रत्याहार, हल् प्रत्याहार आदि। एक उदाहरण देखते हैं- जैसे आंग्लभाषा में **Doctor** का अर्थ होता है रोगों का चिकित्सक। ये अपने नाम के आगे **Dr.** लिखते हैं। जैसे- **Dr. Jeevan Sharma.** में लिखते तो हैं **Dr.** किन्तु हम समझते हैं **Doctor.** अर्थात् लिखते दो अक्षर हैं और समझते हैं छ अक्षरों का अर्थ। इसी प्रकार **Pandit** को **Pt.** लिखते हैं। ठीक इसी तरह पाणिनीय-व्याकरण में भी बहुत को संक्षिप्त में लिखने का नियम है। इसी को **प्रत्याहार** कहा जाता है।

सूत्रार्थ विचार- अन्त्येन इता सहित आदिः= अन्त्य इत्संज्ञक वर्ण के साथ उच्चारित आदि वर्ण, जैसे **अइउण्** इस सूत्र में **ण्** की **हलन्त्यम्** इस सूत्र से इत्संज्ञा की गई थी। उसके साथ पढ़े गये वर्ण हैं **अ, इ, उ,** किन्तु इनमें आदि वर्ण है **अ**, वह आदि वर्ण, **मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात्**= मध्य के **इ, उ** वर्णों का बोध कराता हुआ= जानकारी देता हुआ अर्थात् ग्रहण कराता हुआ स्वयं अपना अर्थात् **अ** का भी बोधक होता है। इस तरह **अण्** कहने से **अ, इ, उ** इन तीन वर्णों का बोध हुआ। अब जहाँ भी **अण्** कहा जायेगा उससे **अ, इ, उ** इन तीन वर्णों का ग्रहण हुआ करेगा। यहाँ एक प्रश्न यह होता है कि **अइउण्** में **ण्** भी है तो प्रत्याहार में उसका बोध या ग्रहण क्यों नहीं होता? आपको याद दिला दूँ कि **ण्** इस अन्त्य हल् वर्ण की **हलन्त्यम्** इस सूत्र से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** इस सूत्र से लोप हो गया है, अर्थात् **अदर्शन** हो गया है। तात्पर्य यह है कि न सुनाई पड़े और उसका ग्रहण न हो सके, ऐसा हो गया है। इसीलिए **अण्** के ग्रहण में **ण्** का ग्रहण नहीं होता।

अण् आदि प्रत्याहारों को साधने की प्रक्रियाः- अण् प्रत्याहार साधना है, इसकी स्थिति है **अइउण्**। इस स्थिति में सूत्र लगा- **हलन्त्यम्**। उपदेश अवस्था में अन्त्य हल् वर्ण की इत्संज्ञा होती है। उपदेश अवस्था है- **अइउण्** और अन्त्य हल्वर्ण है- **अइउण्** का **ण्**। उसकी इत्संज्ञा हो गई अर्थात् उसका नाम **इत्** पड़ गया। इत्संज्ञा का फल है लोप। इत्संज्ञा के बाद लोप करने के लिये सूत्र आया **तस्य लोपः**। उस इत्संज्ञक वर्ण का **लोप** होता है। इत्संज्ञक वर्ण है **अइउण्** वाला **ण्**। उसका **लोप** अर्थात् अदर्शन हो जाय। इस तरह इस **इत्संज्ञक** वर्ण का **अदर्शन** अर्थात् **लोप** प्राप्त हुआ, परन्तु पहले लोप नहीं होता क्योंकि उच्चारण करके लोप ही करना था तो पहले उच्चारण ही क्यों किया गया? अतः उच्चारणसामर्थ्यात् अन्य कोई प्रयोजन भी इसका होना चाहिए और वह है प्रत्याहारसिद्धि। अतः प्रत्याहार सिद्ध करने के लिए सूत्र लगा- **आदिरन्त्येन सहेता**। अन्त्य इत्संज्ञक वर्ण है- **अइउण्** वाला **ण्,** उसके सहित उच्चारित आदि वर्ण है **अ**। वह अर्थात् अन्त्य सहित आदि **अण्** यह समुदाय, मध्यवर्ती **इ, उ** वर्ण और आदि वर्ण **अ** का भी बोधक(संज्ञा) होता है। इस तरह से यह सूत्र **अण्** इस शब्द से आदि वर्ण **अ** और मध्यवर्ती वर्ण **इ, उ** का बोध करायेगा। इस प्रकार से **अण्** से **अइउ**, इन तीन वर्णों का ही बोध या ग्रहण अथवा श्रवण हो जाता है। प्रत्याहारसिद्धि के बाद **ण्** आदि इत्संज्ञक वर्णों का **तस्य लोपः** से लोप हो जाता है। इसी लिए उस अन्त्य इत्संज्ञक वर्ण का प्रत्याहारों में ग्रहण नहीं होता। इस प्रकार **अण्** प्रत्याहार की साधना हो गई और **अण्** से या अण् प्रत्याहार से **अ-इ-उ** इन तीन वर्णों का बोध हुआ। इसी तरह से अन्य प्रत्याहारों की सिद्धि करनी चाहिए।

यथाऽणिति अइउवर्णानां संज्ञा। एवमच्हल्अलित्यादयः। जिस प्रकार से **अण्** से **अ, इ, उ** इन वर्णों का बोध हुआ, उसी प्रकार से **अच्, हल्, अल्** आदि प्रत्याहारों के द्वारा मध्यवर्ती वर्ण तथा आदि वर्ण का बोध होता है, ऐसा समझना चाहिए।

अच् प्रत्याहार की सिद्धिः- अच् प्रत्याहार की साधना करनी है तो इसकी स्थिति है- **अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्।** ऐसी स्थिति में सूत्र लगा- **हलन्त्यम्।** उपदेश अवस्था में अन्त्य हल् वर्ण की इत्संज्ञा होती है। उपदेश अवस्था है- **अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्।** अन्त्य हल् वर्ण हैं- **अइउण्** का **ण्, ऋलृक्** का **क्, एओङ्** का **ङ्**, और **ऐऔच्** का **च्।** इन चारों हल् वर्णों की इत्संज्ञा इस सूत्र से हो गई अर्थात् उनका नाम **इत्** पड़ गया। **इत्संज्ञा** का फल प्रत्याहारसिद्धि है। अतः **तस्य लोपः** से पहले ही लोप हो जाय तो प्रत्याहार सिद्ध नहीं होंगे। इसलिए इसको बाधकर सूत्र लगा- **आदिरन्त्येन सहेता।** इस सूत्र के बल से आदि वर्ण सहित बीच के **अइउ, ऋलृ, एओ, ऐऔ** इन नौ वर्णों का ही बोध या ग्रहण या श्रवण हो जाता है। इस प्रकार **अच्** प्रत्याहार की साधनी हो गई और **अच्** से या **अच् प्रत्याहार** से **अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ** इन नौ वर्णों का बोध हुआ। इसी प्रकार ४३ प्रत्याहारों की सिद्धि करना जानें। चौदह सूत्रों से प्रत्याहार तो सैकड़ों बन सकते हैं किन्तु पाणिनीय व्याकरण में केवल **४३** प्रत्याहारों का व्यवहार हुआ है, इसलिये ४३ प्रत्याहारों की ही सिद्धि करनी है। कुछ वैयाकरणों का मत है कि प्रत्याहार केवल **४२** ही होते हैं।

प्रत्याहारसूत्रों के विषय में स्मरणीय कुछ बातें-

अच् प्रत्याहार में समस्त **स्वर** वर्ण आते हैं। ये **चार सूत्रों** से कहे गये हैं।
हल् प्रत्याहार में समस्त **व्यञ्जन** वर्ण आते हैं। ये **दस सूत्रों** से कहे गये हैं।
वर्गों के सभी पाँचवें वर्ण ञमङणनम् एक ही सूत्र और ञम् प्रत्याहार में आते हैं।
वर्गों के चौथे वर्ण दो सूत्रों **झभञ्, घढधष्** में तथा **झष्** प्रत्याहार में आते हैं।
वर्गों के तीसरे वर्ण **जबगडदश्** इस एक ही सूत्र में और **जश्** प्रत्याहार में आते हैं।
वर्गों के दूसरे एवं पहले वर्ण **खफछठथचटतव्, कपय्** इन दो सूत्रों में तथा **खय्** प्रत्याहार में आते हैं।

प्रत्याहार का प्रारम्भिक वर्ण **अ** जैसा आदि वर्ण तो होता ही है साथ में **इ** से भी इक्, इण् प्रत्याहार, उ से उक् आदि प्रत्याहार भी बनते हैं, अर्थात् इ से, उ से, लृ से, य् से, व् से, र् आदि मध्यवर्ती वर्णों से भी शुरुवात करके प्रत्याहार बनाये जाते हैं, क्योंकि यहाँ पर विवक्षित समुदाय का आदि और अन्त्य लिया जाता है।

पाणिनीय व्याकरण में प्रयुक्त ४३ प्रत्याहारों में गृहीत वर्णों का क्रमः-

क्र.सं	प्रत्याहार	घटक वर्ण
१	अण्	अ, इ, उ।
२.	अक्	अ, इ, उ, ऋ, लृ।
३.	इक्	इ, उ, ऋ, लृ।
४.	उक्	उ, ऋ, लृ।
५.	एङ्	ए, ओ।
६.	अच्	अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ।
७.	इच्	इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ।

८.	एच्	ए, ओ, ऐ, औ।
९.	ऐच्	ऐ, औ।
१०.	अट्	अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह्, य्, व्, र्।
११.	अण्	अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह्, य्, व्, र्, ल्।
१२.	इण्	इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह्, य्, व्, र्, ल्।
१३.	यण्	य्, व्, र्, ल्।
१४.	अम्	अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह्, य्, व्, र्, ल्, ञ्, म्, ङ्, ण्, न्।
१५.	यम्	य्, व्, र्, ल्, ञ्, म्, ङ्, ण्, न्।
१६.	ञम्	ञ्, म्, ङ्, ण्, न्।
१७.	ङम्	ङ्, ण्, न्।
१८.	यञ्	य्, व्, र्, ल्, ञ्, म्, ङ्, ण्, न्, झ्, भ्।
१९.	झष्	झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्।
२०.	भष्	भ्, घ्, ढ्, ध्।
२१.	अश्	अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह्, य्, व्, र्, ल्, ञ्, म्, ङ्, ण्, न्, झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्, ज्, ब्, ग्, ड्, द्।
२२.	हश्	ह्, य्, व्, र्, ल्, ञ्, म्, ङ्, ण्, न्, झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्, ज्, ब्, ग्, ड्, द्।
२३.	वश्	व्, र्, ल्, ञ्, म्, ङ्, ण्, न्, झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्, ज्, ब्, ग्, ड्, द्।
२४.	जश्	ज्, ब्, ग्, ड्, द्।
२५.	झश्	झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्, ज्, ब्, ग्, ड्, द्।
२६.	बश्	ब्, ग्, ड्, द्।
२७.	छव्	छ्, ठ्, थ्, च्, ट्, त्।
२८.	यय्	य्, व्, र्, ल्, ञ्, भ्, ङ्, ण्, न्, झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्, ज्, ब्, ग्, ड्, द्, ख्, फ्, छ्, ठ्, थ्, च्, ट्, त्, क्, प्।
२९.	मय्	म्, ङ्, ण्, न्, झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्, ज्, ब्, ग्, ड्, द्, ख्, फ्, छ्, ठ्, थ्, च्, ट्, त्, क्, प्।
३०.	झय्	झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्, ज्, ब्, ग्, ड्, द्, ख्, फ्, छ्, ठ्, थ्, च्, ट्, त्, क्, प्।
३१.	खय्	ख्, फ्, छ्, ठ्, थ्, च्, ट्, त्, क्, प्।
३२.	चय्	च्, ट्, त्, क्, प्।
३३.	यर्	य्, व्, र्, ल्, ञ्, म्, ङ्, ण्, न्, झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्, ज्, ब्, ग्, ड्, द्, ख्, फ्, छ्, ठ्, थ्, च्, ट्, त्, क्, प्, श्, ष्, स्।
३४.	झर्	झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्, ज्, ब्, ग्, ड्, द्, ख्, फ्, छ्, ठ्, थ्, च्, ट्, त्, क्, प्, श्, ष्, स्।
३५.	खर्	ख्, फ्, छ्, ठ्, थ्, च्, ट्, त्, क्, प्, श्, ष्, स्।
३६.	चर्	च्, ट्, त्, क्, प्, श्, ष्, स्।
३७.	शर्	श्, ष्, स्।

हृस्व-दीर्घ-प्लुत-संज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

५. ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः १।२।२७॥

उश्च ऊश्च उ३श्च वः, वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद् हृस्व-दीर्घ-प्लुतसंज्ञः स्यात्। स प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन त्रिधा।

....

३८.	अल्	अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह्, य्, व्, र्, ल्, ञ्, म्, ङ्, ण्, न्, झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्, ज्, ब्, ग्, ड्, द्, ख्, फ्, छ्, ठ्, थ्, च्, ट्, त्, क्, प्, श्, ष्, स्, ह्।
३९.	हल्	ह्, य्, व्, र्, ल्, ञ्, म्, ङ्, ण्, न्, झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्, ज्, ब्, ग्, ड्, द्, ख्, फ्, छ्, ठ्, थ्, च्, ट्, त्, क्, प्, श्, ष्, स्, ह्।
४०.	वल्	व्, र्, ल्, ञ्, म्, ङ्, ण्, न्, झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्, ज्, ब्, ग्, ड्, द्, ख्, फ्, छ्, ठ्, थ्, च्, ट्, त्, क्, प्, श्, ष्, स्, ह्।
४१.	रल्	र्, ल्, ञ्, म्, ङ्, ण्, न्, झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्, ज्, ब्, ग्, ड्, द्, ख्, फ्, छ्, ठ्, थ्, च्, ट्, त्, क्, प्, श्, ष्, स्, ह्।
४२.	झल्	झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्, ज्, ब्, ग्, ड्, द्, ख्, फ्, छ्, ठ्, थ्, च्, ट्, त्, क्, प्, श्, ष्, स्, ह्।
४३.	शल्	श्, ष्, स्, ह्।

वर्ग विभाजन

कवर्गः- क्, ख्, ग्, घ्, ङ्।

चवर्गः- च्, छ्, ज्, झ्, ञ्।

टवर्गः- ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्।

तवर्गः- त्, थ्, द्, ध्, न्।

पवर्गः- प्, फ्, ब्, भ्, म्।

वर्गों के प्रथम अक्षर- क्, च्, ट्, त्, प्।

वर्गों के द्वितीय अक्षर- ख्, छ्, ठ्, थ्, फ्।

वर्गों के तृतीय अक्षर- ग्, ज्, ड्, द्, ब्।

वर्गों के चतुर्थ अक्षर- घ्, झ्, ढ्, ध्, भ्।

वर्गों के पंचम अक्षर- ङ्, ञ्, ण्, न्, म्।

५- ऊकालोऽज्झस्वदीर्घप्लुतः। उश्च ऊश्च, ऊ३श्च वः(इतरेतरयोगद्वन्द्वः), वां काल ऊकालः, ऊकाल इव कालो यस्येति ऊकालः (बहुव्रीहिः) हृस्वश्च, दीर्घश्च, प्लुतश्च, तेषां समाहारद्वन्द्वः, हृस्वदीर्घप्लुतः। सौत्रं पुंस्त्वम्। समाहार द्वन्द्व होने के बाद नपुंसकलिङ्ग ही होना चाहिए, किन्तु सूत्र में पाणिनि ने कहीं-कहीं ऐसा नहीं किया है, अतः सूत्रत्वात् पुँल्लिङ्ग मान लिया जाता है। सूत्रों से अन्यत्र ऐसी जगहों पर पुँल्लिङ्ग नहीं हो सकता, नपुंसकलिङ्ग ही होता है। ऊकालः प्रथमान्तम्, अच् प्रथमान्तं, हृस्वदीर्घप्लुतः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

एक मात्रिक उकार, द्विमात्रिक ऊकार और त्रिमात्रिक उ३कार के उच्चारण काल के समान उच्चारण काल वाले अचों की क्रमशः हृस्वसंज्ञा, दीर्घसंज्ञा और प्लुतसंज्ञा होती है।

उश्च ऊश्च उ३श्च वः। एकमात्रिक उ और द्विमात्रिक ऊ एवं तीनमात्रिक उ३ का **चार्थे द्वन्द्वः** से इतरेतरयोगद्वन्द्व समास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्तिलोप, परस्पर में सवर्णदीर्घ करने पर ऊ रूप बनता है। उससे **जस्** प्रत्यय लाकर ऊ को यण् करके **वः** यह रूप सिद्ध होता है। **वः** का ही षष्ठ्यन्त रूप **वाम्** है। **ऊकालः** यह पद **अच्** का विशेषण है। उसीको बताने के लिए मूल में **वां काल इव कालो यस्य** ऐसा कहा गया। पर वह भी **ऊकालः** इस समस्त(समास किये हुए) पद का विग्रह नहीं है, अपितु फलितार्थकथन मात्र है। अतः **वां काल ऊकालः, ऊकाल इव कालो यस्य** ऐसा विग्रह करना चाहिए। यहाँ पर **काल** शब्द लक्षणावृत्ति से **मात्रावाची** है। अतः **ऊकालः**=तीनों उकारों का जो उच्चारण काल वाली मात्राएँ (**ऊकाल इव कालो यस्य**) ऐसी ही मात्राएँ हैं जिस अच् की, वह अच् क्रमशः **ह्रस्व, दीर्घ** और **प्लुत** संज्ञा वाला होता है।

प्रकृत सूत्र अच् अर्थात् स्वर वर्णों को मात्रा के आधार पर ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत संज्ञा करता है। अचों(स्वरों) में एक, दो, एवं तीन मात्राएँ होती हैं। अ, इ, उ, ऋ, लृ की मात्राएँ जिन्हें हिन्दी में छोटी मात्राएँ कहते हैं उनकी **ह्रस्वसंज्ञा** और आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ की मात्राएँ जिन्हें हिन्दी में बड़ी मात्रा कहते हैं, इनकी **दीर्घसंज्ञा** होती है। **तीन** मात्रा की **प्लुतसंज्ञा** होती है। लोक में एकमात्रिक एवं द्विमात्रिक का ही प्रयोग होता है, तीन मात्रा वाला वर्ण हिन्दी में कम प्रयुक्त होता है। केवल संस्कृत में सम्बोधन, प्रकृतिभाव आदि में तीनमात्रिक वर्ण का उच्चारण होता है तथा तीनमात्रिक को दिखाने के लिये वर्ण के बाद ३ का अंक लिखा जाता है। जैसे **इ३**। इस तीन मात्रा वाले वर्ण की **प्लुतसंज्ञा** होती है।

एकमात्रिक, द्विमात्रिक और त्रिमात्रिक वर्णों का उच्चारण काल- प्रश्न यह आता है कि एक मात्रा, दो मात्राएँ और तीन मात्राएँ, इनका उच्चारण के समय एवं अनुपात क्या होना चाहिए? इतना तो स्पष्ट है ही कि एकमात्रिक के उच्चारण में जितना समय लगता है, उसका दुगुना समय द्विमात्रिक के उच्चारण में लगेगा और तिगुना समय तीन मात्रा वाले अच् में लगेगा। फिर भी एक प्रश्न उपस्थित होता है कि एक मात्रा वाले अच् में कितना समय लगाया जाय? इस पर प्राचीन विद्वानों के कई मत हैं। जैसे **पलकें झपकना, बिजली चमकना, नीलकण्ठ पक्षी की बोली आदि** को एकमात्रा उच्चारण काल माना है किन्तु मेरा मत यह है कि वर्णों के उच्चारण तीन प्रकार से होते हैं- **द्रुत, मध्यम और विलम्बित।** द्रुत अर्थात् अत्यन्त शीघ्रता के साथ उच्चारण, मध्यम उच्चारण एवं विलम्वित उच्चारण। आप किस प्रकार से उच्चारण कर रहे हैं? अत्यन्त शीघ्रता के साथ उच्चारण, मध्यम उच्चारण या विलम्बित उच्चारण! उसके अनुसार एकमात्रा के उच्चारण में जितना समय लगता है, उसका दुगुना समय दो-मात्रा के उच्चारण में लगायें और तिगुना समय तीन मात्रा वाले अच् में लगायें। अथवा यूँ कहा जाय कि ह्रस्व के उच्चारण में एक सेकेण्ड का समय तो दीर्घ के उच्चारण में दो सेकेण्ड का समय और प्लुत के उच्चारण में तीन सेकेण्ड का समय लगाया जाय। उच्चारण के इस अनुपात का बहुत ध्यान रखना चाहिए।

इस सूत्र के द्वारा प्रत्येक अच् की ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत संज्ञा करके अचों (स्वरों) के तीन तीन भेद किए गए। इस प्रकार से अच् प्रत्याहार के प्रत्येक वर्ण तीन-तीन प्रकार के हुए- ह्रस्व अच्, दीर्घ अच्, एवं प्लुत अच्।

उदात्तसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

६. उच्चैरुदात्तः १।२।२९॥

अनुदात्तसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

७. नीचैरनुदात्तः १।२।३०॥

स्वरितसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

८. समाहारः स्वरितः १।२।३१॥

स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकत्वाननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा।

....

६- उच्चैरुदात्तः। उच्चैः अव्ययपदम्, उदात्तः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः से अच् की अनुवृत्ति आती है।

कण्ठ, तालु आदि स्थानों के ऊपरी भाग से उच्चारित अच् की उदात्तसंज्ञा होती है।

७- नीचैरनुदात्तः। नीचैः अव्ययपदम्, अनुदात्तः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः से अच् की अनुवृत्ति आती है।

कण्ठ, तालु आदि स्थानों के निम्न भाग से उच्चारित अच् की अनुदात्तसंज्ञा होती है।

८- समाहारः स्वरितः। समाहारः प्रथमान्तं, स्वरितः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः से अच् की अनुवृत्ति आती है।

जहाँ उदात्त और अनुदात्त दोनों एकत्र बराबर हों, ऐसे अच् की स्वरितसंज्ञा होती है।

उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों की सूक्ष्मता एवं उनका ज्ञान- जिस अच् के उच्चारण में स्थानों के ऊर्ध्वभाग का प्रयोग हो उस अच् की **उदात्तसंज्ञा**, जिस अच् के उच्चारण में स्थानों के निम्न भाग का प्रयोग हो उस अच् की **अनुदात्तसंज्ञा** और जिस अच् के उच्चारण में उदात्त और अनुदात्त का समान उपयोग किया गया हो तो उस अच् की **स्वरितसंज्ञा** का विधान इन तीन सूत्रों से हुआ। यद्यपि लौकिक हिन्दी आदि भाषाओं में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित की सूक्ष्मता पकड़ में नहीं आती किन्तु संस्कृत-भाषा में इनका महत्त्व अधिक है और खास करके वैदिक शब्दों के उच्चारण में। जिस प्रकार से ह्रस्व, दीर्घ के विपरीत होने पर बहुधा अर्थ भी भिन्न हो जाता है, उसी प्रकार उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के विपरीत उच्चारण होने पर अर्थ का अनर्थ भी हो जायेगा। इस लिए वैदिक शब्दों के उच्चारण में इन स्वरों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। स्वरों के द्वारा समास आदि का भी निर्णय होता है। स्वरप्रकरण में प्रकृति, प्रत्यय, धातु, आदेश, आगम आदि में होने वाले स्वरों के विषय में विस्तृत चर्चा है। ये उदात्तादि स्वर अत्यन्त सूक्ष्म हैं। जो बहुत ही अनुभवी विद्वान् हैं, वे इनके भेद को आसानी से पकड़ लेते हैं किन्तु सामान्यज्ञानी लोगों को इन स्वरों का पता कठिनता से ही लग पाता है।

उच्चैरुदात्तः और **नीचैरनुदात्तः** इन सूत्रों में **उच्चैः** का अर्थ ऊँचे स्वर में और **नीचैः**

अनुनासिकसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

९. मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः १।१।८॥

मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात्।
तदित्थम्- अ-इ-उ-ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश भेदाः।
ऌवर्णस्य द्वादश, तस्य दीर्घाभावात्।
एचामपि द्वादश, तेषां ह्रस्वाभावात्।

....

का अर्थ नीचे स्वर में बोलना ऐसा नहीं है, अन्यथा सूक्ष्म उच्चारण में उदात्त स्वर नहीं बन पायेगा।

जैसे ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत को समझने के लिये मात्राएँ लगी हुई होती हैं, उसी प्रकार उदात्त, अनुदात्त और स्वरित को समझने के लिये वैदिक-ग्रन्थों में विशेष चिह्नों का प्रयोग किया गया है। अनुदात्त अक्षर के नीचे तिरछी लाईन, स्वरित के ऊपर खड़ी लाईन होती है और उदात्त के लिये कोई चिह्न नहीं होता है।

स नवविधोऽपि- **वह नौ प्रकार का अच् अनुनासिक और अननुनासिक के भेद से दो-दो प्रकार का होता है।**

जैसे एक इ यह वर्ण ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत के भेद से तीन-तीन प्रकार हुआ है। पुनः ह्रस्व भी उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के भेद से तीन प्रकार का, इसी प्रकार से दीर्घ भी तीन प्रकार का और प्लुत भी तीन प्रकार का, इस तरह कुल मिलाकर नौ प्रकार का हुआ। वह नौ प्रकार का अच् पुनः अनुनासिक और अननुनासिक के भेद से दो दो प्रकार का हो जाता है। नौ अनुनासिक और नौ अननुनासिक करके कुल अठारह प्रकार का हो जाता है। यही प्रक्रिया सभी अचों के सम्बन्ध में समझना चाहिए।

स नवविधोऽपि का अर्थ यह समझना चाहिए- **वह नौ या छः प्रकार का अच्।** ऐसा मानने का प्रयोजन आगे स्पष्ट होगा।

९- मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः। उच्यते इति वचनः। मुखसहिता नासिका मुखनासिका (मध्यमपदलोपिसमासः), तया वचनः(उच्चारितो वर्णः) स मुखनासिकावचनः (तृतीयातत्पुरुषः)। मुखनासिकावचनः प्रथमान्तम्, अनुनासिकः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

मुख और नासिका से एक साथ उच्चारित होने वाले वर्ण अनुनासिकसंज्ञक होते हैं।

वास्तव में वर्णों का उच्चारण तो मुख से ही होता है किन्तु **ङ्, ञ्, ण्, न्, म्,** आदि वर्ण और अनुनासिक (अँ, इँ, उँ आदि) तथा अनुस्वार (अं, इं, उं आदि) के उच्चारण में **नासिका**(नाक) की भी सहायता चाहिए। **नाक** की सहायता से मुख से उच्चारित होने वाले ऐसे वर्ण **अनुनासिक** कहलाते हैं। जो **अनुनासिक** नहीं हैं, वे **अननुनासिक** या **निरनुनासिक** कहलाते हैं। हम बतला चुके हैं कि **ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, अनुनासिक** ये **अचों** में रहने वाले धर्म हैं। अपवाद के रूप में **ङ्, ञ्, ण्, न्, म्** ये व्यंजन होते हुए भी इन्हें **अनुनासिक** कहा जाता है। इसी प्रकार **यँ, वँ, लँ** भी

अनुनासिक माने जाते हैं और **य्, व्, ल्** के रूप में **निरनुनासिक** भी हैं। जहाँ पर अनुनासिक का व्यवहार होगा वहाँ पर अनुनासिक अच् और **ङ्, ञ्, ण्, न्, म्** ये समझे जाते हैं। इस सम्बन्ध में आगे **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** आदि सूत्रों का प्रसंग देखना चाहिए।

तदित्थम्- अ-इ-उ-ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश भेदाः। इस प्रकार से अ, इ, उ और ऋ इन चार वर्णों के अठारह-अठारह भेद हुए।

लृवर्णस्य द्वादश, तस्य दीर्घाभावात्। लृ के दीर्घ न होने से बारह भेद होते हैं।

एचामपि द्वादश, तेषां ह्रस्वाभावात्। एचों का ह्रस्व नहीं होता है, इसलिए बारह ही भेद होते हैं।

पहले **अच्** अर्थात् **अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ** ये वर्ण **ह्रस्व, दीर्घ** और **प्लुत** के कारण प्रत्येक तीन-तीन भेद वाले हो गये किन्तु **लृ** की दीर्घ मात्रा नहीं है, इसलिए **लृ** के **ह्रस्व** और **प्लुत** दो ही भेद हुए। इसी प्रकार **एच्** अर्थात **ए, ओ, ऐ, औ** का ह्रस्व नहीं होता, अतः **एच्** के **दीर्घ** और **प्लुत** ही दो-दो भेद हो गये। शेष **अ, इ, उ, ऋ** ये चारों वर्ण ह्रस्व भी हैं, दीर्घ भी होते हैं और प्लुत भी होते हैं, इसलिए ये तीन-तीन भेद वाले माने जाते हैं।

इस प्रकार से दो एवं तीन भेद वाले प्रत्येक अच् वर्ण **उदात्त, अनुदात्त** और **स्वरित** के भेद से पुनः तीन-तीन प्रकार के हो जाते हैं। जैसे प्रत्येक **ह्रस्व अच्** वर्ण **उदात्त, अनुदात्त** और **स्वरित** के भेद से तीन प्रकार का, **दीर्घ अच्** वर्ण भी **उदात्त, अनुदात्त** और **स्वरित** के भेद से तीन प्रकार का और **प्लुत अच्** वर्ण भी **उदात्त, अनुदात्त** और **स्वरित** के भेद से तीन प्रकार के हो जाने से कुछ **अच्** वर्ण **छः प्रकार** के और कुछ **नौ प्रकार** के हो गये। **छः प्रकार** के इसलिये कि जिन वर्णों के **ह्रस्व** या **दीर्घ** नहीं थे वे दो-दो प्रकार के थे, सो अब उदात्तादि स्वरों के कारण छः छः प्रकार के हो गए। जिन अच् वर्णों के **ह्रस्व, दीर्घ** और **प्लुत** तीनों हैं वे **उदात्तादि** स्वरों के कारण **नौ नौ** प्रकार के हो गए। इस प्रकार से अभी तक अचों के **छः** या **नौ** प्रकार के भेद सिद्ध हुए।

ये ही वर्ण पुनः **अनुनासिक** और **अननुनासिक** के भेद से दो-दो प्रकार के हो जाते हैं, जिसके फलस्वरूप ये **बारह** और **अठारह** प्रकार के भेद वाले हो जाते हैं। इसके पहले जो छः प्रकार के थे, वे **बारह** प्रकार के एवं जो **नौ** प्रकार के थे, वे **अठारह** प्रकार के हो जाते हैं।

अनुनासिक पक्ष के **छः** और **नौ** भेद तथा **अननुनासिक** पक्ष के भी **छः** और **नौ** भेद होते हैं। इस प्रकार से **अ, इ, उ, ऋ** के **अठारह-अठारह** भेद तथा **लृ, ए, ऐ, ओ, औ** के **बारह-बारह** भेद सिद्ध हुए। **य्-व्-ल्** ये वर्ण **अनुनासिक** और **अननुनासिक** के भेद से दो-दो प्रकार के हैं।

इस विषय को तालिका के माध्यम से समझते हैं-

अ,इ,उ,ऋ,लृ	आ,ई,ऊ,ॠ,ए,ओ,ऐ,औ	प्लुत- अ,इ,उ,ॠ,ए,ओ,ऐ,औ
१.ह्रस्व उदात्त अनुनासिक	७. दीर्घ उदात्त अनुनासिक	१३.प्लुत उदात्त अनुनासिक
२.ह्रस्व उदात्त अननुनासिक	८. दीर्घ उदात्त अननुनासिक	१४.प्लुत उदात्त अननुनासिक
३.ह्रस्व अनुदात्त अनुनासिक	९. दीर्घ अनुदात्त अनुनासिक	१५.प्लुत अनुदात्त अनुनासिक
४.ह्रस्व अनुदात्त अननुनासिक	१०.दीर्घअनुदात्त अननुनासिक	१६.प्लुत अनुदात्त अननुनासिक
५.ह्रस्व स्वरित अनुनासिक	११.दीर्घ स्वरित अनुनासिक	१७.प्लुत स्वरित अनुनासिक
६.ह्रस्व स्वरित अननुनासिक	१२.दीर्घ स्वरित अननुनासिक	१८.प्लुत स्वरित अननुनासिक

सवर्णसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१०. तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् १।१।९॥

ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथ: सवर्णसंज्ञं स्यात्।

(वार्तिकम्) **ऋलृवर्णयोर्मिथ: सावर्ण्यं वाच्यम्।**

....

अब अगले सूत्र से वर्णों की आपस में सवर्णसंज्ञा की जायेगी। सवर्णसंज्ञा के लिए स्थान और प्रयत्नों का जानना आवश्यक है। मुख के जिस भाग-विशेष के विशेष जुड़ाव या प्रक्रिया से वर्णों का उच्चारण होता है, उस वर्ण का वही **स्थान** होता है। जैसे **प्** का उच्चारण दोनों होंठो के आपस में जुड़ने पर होता है। अत: **प्** का स्थान ओष्ठ है। **अ** का उच्चारण सीधे कण्ठ से होता है। अत: **अ** का स्थान कण्ठ है।

वर्णों के उच्चारण में शरीर के नाभि भाग से प्रारम्भ होकर हृदय और शीर्ष भाग होते हुए मुख से बाहर तक एक प्रकार का **यत्न** होता है, और जो वर्ण उच्चारण होते समय जिस स्थान या क्रिया विशेष को प्रभावित करता है, वही उसका **प्रयत्न** होता है।

व्याकरण में **कवर्ग** आदि का प्रयोग बहुत जगहों पर होगा। कु से **कवर्ग**, चु से **चवर्ग**, टु से **टवर्ग**, तु से **तवर्ग** और पु से **पवर्ग** समझना चाहिये। वर्गों में भी **कवर्ग** का तात्पर्य **क, ख, ग, घ, ङ** एवं **चवर्ग** का तात्पर्य **च, छ, ज, झ, ञ** और आगे भी इसी प्रकार **वर्ग** समझना चाहिए।

विसर्ग के तीन भेद हैं। जो सर्वत्र प्रचलित दो विन्दु वाला है उसे **विसर्जनीय** अथवा सामान्य **विसर्ग** कहते हैं, किन्तु क और ख के पहले आने वाला विसर्ग कभी **जिह्वामूलीय** तो कभी **विसर्जनीय** अर्थात् **सामान्य विसर्ग** होता है। इसी प्रकार प और फ के पहले आने वाला विसर्ग कभी **उपध्मानीय** तो कभी **विसर्जनीय** अर्थात् **सामान्य विसर्ग** रहता है।

१०- तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्। तुल्यं च तुल्यश्च तुल्यौ, आस्यञ्च प्रयत्नश्च आस्यप्रयत्नौ, तुल्यौ आस्यप्रयत्नौ ययो: तत्तुल्यास्यप्रयत्नं (द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहि:)। तुल्यास्यप्रयत्नं प्रथमान्तं, सवर्णं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

तालु आदि स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न ये दो जिस वर्ण का जिस वर्ण के साथ तुल्य हों, वे वर्ण आपस में सवर्णसंज्ञक होते हैं।

यह सूत्र दो या दो से अधिक वर्णों की आपस में सवर्णसंज्ञा करता है। सवर्ण का अर्थ है- **समान वर्ण, समान जाति, समान स्थान वाले वर्ण, समान प्रयत्न वाले वर्ण, वर्णों की आपस में स्थान और प्रयत्न से तुल्यता।** सवर्णसंज्ञा वाले वर्णों को **सवर्णी** कहते हैं और **सवर्णसंज्ञा** को **सावर्ण्य** भी कहते हैं। सवर्णसंज्ञा के लिये स्थान और प्रयत्न की समानता चाहिये। सवर्णसंज्ञा में **आभ्यन्तर-प्रयत्न** ही लिया जाता है। **बाह्य-प्रयत्न** का उपयोग किसी वर्ण के स्थान पर कोई आदेश करने में किया जायेगा। जिन दो वर्णों का आपस में स्थान भी एक हो और प्रयत्न भी एक हो तो वे वर्ण आपस में **सवर्णी** हैं अर्थात् सवर्णसंज्ञा वाले हैं। सवर्णसंज्ञा वाले वर्णों का एक से दूसरे, तीसरे सवर्णसंज्ञा वाले वर्ण का ग्रहण करते हैं। जैसे- **अ** और **आ** में **अकार** का स्थान भी **कण्ठ** है और **आकार** का स्थान

(अथ स्थानानि)

अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः इचुयशानां तालु।
ऋटुरषाणां मूर्धा। लृतुलसानां दन्ताः।
उपूपध्मानीयानामोष्ठौ। ञमङणनानां नासिका च।
एदैतोः कण्ठतालु। ओदौतोः कण्ठोष्ठम्।
वकारस्य दन्तोष्ठम्। जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्।
नासिकाऽनुस्वारस्य।

....

भी **कण्ठ** है तथा दोनों का **विवृत प्रयत्न** है। **अ** और **आ** का स्थान और प्रयत्न एक होने के कारण इनकी आपस में **सवर्णसंज्ञा** हो जाती है। ये आपस में **सवर्णी** कहलाए। अब जहाँ **अ** का ग्रहण होगा वहाँ **आ** का भी ग्रहण हो जायेगा। इसी प्रकार **क्** और **घ्** में दोनों का **कण्ठ-स्थान** है और दोनों का **स्पृष्ट-प्रयत्न** है, इसलिए **क्** और घ् की आपस में **सवर्णसंज्ञा** हुई। केवल **क्** और **घ्** की ही नहीं अपितु **क्, ख्, ग्, घ्, ङ्** ये सभी वर्ण समान स्थान और समान प्रयत्न वाले हैं, इसलिए इनकी आपस में **सवर्णसंज्ञा** हो जाती है। इस संज्ञा के बाद **अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः** के बल से **अण्** और **कु, चु, टु, तु, पु** के ग्रहण से दूसरे का भी ग्रहण हो जायेगा किन्तु वहाँ पर ही ग्रहण होगा जहाँ पर, जिस सूत्र और वार्तिक में **कु, चु, टु, तु, पु** ऐसा उच्चारण किया गया हो, अन्यत्र **क्** से **ख्**, **ग्** आदि का ग्रहण नहीं होगा।

क् और **च्** की आपस में सवर्ण संज्ञा नहीं होगी क्योंकि **क्** और **च्** का एक ही **स्पृष्ट प्रयत्न** होते हुए भी दोनों का **स्थान** भिन्न है। **ह्** और **न्** की **सवर्णसंज्ञा** नहीं होगी क्योंकि इन दोनों का आपस में स्थान भी भिन्न है और प्रयत्न भी भिन्न है। इस प्रकार से सवर्णसंज्ञा को समझना चाहिए और अच्छी तरह से याद भी होना चाहिए। याद रहे कि **सवर्णसंज्ञा** को जानने के लिये वर्णों का स्थान और प्रयत्न का जानना आवश्यक है। **स्थान** और **प्रयत्न** आगे बताये जा रहे हैं।

ऋलुवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्। यह वार्तिक है। **ऋ और लृ वर्ण की आपस में सवर्णसंज्ञा होती है, ऐसा कहना चाहिए।**

ऋ और **लृ** इन दो वर्णों में स्थान का भेद है, अतः सूत्र से **सवर्णसंज्ञा** की प्राप्ति नहीं थी जिसके लिए **कात्यायन जी** ने वार्तिक बनाकर सवर्णसंज्ञा कर दी है। इससे **तवल्कारः** आदि की सिद्धि होगी, जिसका विषय आगे स्पष्ट होगा। इन दो वर्णों की आपस में सवर्णसंज्ञा होने से अठारह प्रकार का **ऋ** और बारह प्रकार का लृ ये मिलकर तीस प्रकार के हो जाते हैं। एवं एक के ग्रहण से दूसरे का ग्रहण हो जाता है। **सवर्णसंज्ञा** का मुख्य प्रयोजन **अणुदित् सवर्णस्य चाप्रत्ययः** के द्वारा **एक से दूसरे वर्ण का ग्रहण करना।**

अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः। अठारह प्रकार के सभी अकार, कवर्ग, हकार और विसर्ग का कण्ठ स्थान है। जिस वर्ण की मुख के जिस भाग से उत्पत्ति होती है, वह स्थान वर्णों का **स्थान** है। **अकार, कवर्ग अर्थात् क्, ख्, ग्, घ्, ङ्** और **विसर्जनीय विसर्ग** इनका उच्चारण सीधे **कण्ठ** से ही होता है, इसलिये इन वर्णों का **कण्ठस्थान** है।

इचुयशानां तालु। अठारह प्रकार के सभी इकार, चवर्ग, यकार और शकार

का तालु स्थान है। अब **इकार, चवर्ग अर्थात च्, छ्, ज्, झ्, ञ्,** यकार और **शकार** इनके उच्चारण में **तालु** का विशेष प्रयोग होता है। अतः इनका **तालुस्थान** है। ऊपर वाले दातों के पीछे ऊपरी जो **मांसल** भाग है, जो कुछ **खुरदरा** सा लगता है, उसे **तालु** कहते हैं।

ऋटुरषाणां मूर्धा। अठारह प्रकार के सभी ऋकार, टवर्ग, रकार और षकार का मूर्धा स्थान है। ऋकार, टवर्ग अर्थात् ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, रकार और षकार का उच्चारण **मूर्धा**- जीभ को पीछे ले जाकर शिर के मध्यभाग के ठीक नीचे मुखभाग में जो कोमल भाग है, उससे होता है, अतः इनका **मूर्धास्थान** है। संस्कृत में **शिर** को **मूर्धा** भी कहते हैं।

लृतुलसानां दन्ताः। बारह प्रकार के सभी लृकार, तवर्ग, लकार और सकार का दन्त स्थान है। लृकार, तवर्ग अर्थात् त्, थ्, द्, ध्, न्, लकार और सकार का उच्चारण जीभ के ऊपरी दातों से टकराने से होता है, अतः इनका **दन्तस्थान** है।

उपूपध्मानीयानामोष्ठौ। अठारह प्रकार के उकार, पवर्ग, उपध्मानीय-विसर्ग का ओष्ठ स्थान है। उकार, पवर्ग अर्थात् प्, फ्, ब्, भ्, म् और उपध्मानीय विसर्ग का उच्चारण दोनों होठों के टकराने से होता है, अतः इनका **ओष्ठस्थान** है:

ञमङणनानां नासिका च। ञ्, म्, ङ्, ण्, न् का नासिकास्थान भी होता है। तात्पर्य यह है कि इसके पहले **ञ्** का तालुस्थान, **म्** का ओष्ठस्थान, **ङ्** का कण्ठस्थान, **ण्** का मूर्धास्थान और **न्** का दन्तस्थान है, यह बताया जा चुका है। अब इनका **नासिकास्थान** भी होता है, ऐसा कहा जा रहा है। जैसे **ञ्** का **तालुस्थान** और **नासिकास्थान** है। इनका उच्चारण नाक की सहायता से होता है इसलिए **नासिकास्थान** भी बताया गया।

एदैतोः कण्ठतालु। ए और ऐ का उच्चारण कण्ठ और तालु से होता है, अतः इनका **कण्ठतालु** स्थान है।

ओदौतोः कण्ठोष्ठम्। ओ, औ का उच्चारण **कण्ठ** और **ओष्ठ** से होता है। अतः इनका **कण्ठ-ओष्ठस्थान** है।

वकारस्य दन्तोष्ठम्। वकार का दन्त-ओष्ठ स्थान है। वकार का उच्चारण दाँत और होठों से होता है। अतः वकार का **दन्त+ओष्ठ=दन्तोष्ठस्थान** है।

जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्। जिह्वामूलीय विसर्ग का **जिह्वामूलस्थान** है, क्योंकि इसका उच्चारण सीधे जीभ के मूलभाग से होता है।

नासिकाऽनुस्वारस्य। अनुस्वार का उच्चारण **नासिका** के सहयोग से होता है, अतः अनुस्वार का **नासिकास्थान** है।

स्थान और **प्रयत्न** को कौमुदी में या अष्टाध्यायी में सूत्रों के द्वारा नहीं बताया गया किन्तु **पाणिनीयशिक्षा** आदि ग्रन्थों से लेकर यहाँ प्रयोग किया गया है।

जैसे **वर्णसमाम्नाय** अर्थात् चतुर्दश-सूत्रों में **अ** पढ़ा गया किन्तु **आ** नहीं पढ़ा गया, **इ** का उच्चारण है किन्तु **ई** का उच्चारण नहीं है फिर भी **सवर्णसंज्ञा** के बाद **अणुदित् सवर्णस्य चाप्रत्ययः** के बल से **अ** से **आ** का ग्रहण, **इ** से **ई का** ग्रहण, **उ** से **ऊ** का ग्रहण जैसे होता है, उसी प्रकार से **सवर्ण-संज्ञा** के बाद **अणुदित् सवर्णस्य चाप्रत्ययः** के बल से **ए** से **ऐ** का ग्रहण और **ओ** से **औ** का ग्रहण होना चाहिए तो **ऐऔच्** सूत्र बनाने की क्या जरूरत थी? इस विषय पर बताते हैं कि ये सूत्र बनाये नहीं गये हैं अपितु शंकर जी के डमरु से निकले हैं, यह सूत्र ज्यादा निकल कर के इस बात को प्रमाणित करता है कि **ए** और **ऐ** की तथा **ओ** और **औ** की आपस में **सवर्ण संज्ञा** नहीं होती है।

(अथ प्रयत्नाः)

यत्नो द्विधा- आभ्यन्तरो बाह्यश्च।
आद्यः पञ्चधा- स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतविवृतसंवृतभेदात्।
तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम्। ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम्।
ईषद्विवृतमूष्मणाम्। विवृतं स्वराणाम्।
ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम्। प्रक्रियादशायां तु विवृतमेव।
बाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा- विवारः संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति।
खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च।
हशः संवारा नादा घोषाश्च।
वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः।

....

सवर्णसंज्ञा के लिए **स्थान** और **प्रयत्न** का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। इस तरह से याद हो कि पूछते ही तत्काल बता सकें। जैसे किसी ने पूछा कि **भ** का क्या स्थान है? तो एक क्षण भी लगाए बिना तत्काल उत्तर दे सकें कि **भ** का **ओष्ठस्थान** होता है। प्रमाण भी बता सकें कि **उपूपध्मानीयानामोष्ठौ**। वर्णों के **स्थान** के सम्बन्ध में बारम्बार अभ्यास करें। अपने साथियों के साथ बैठ कर के एक दूसरे से पूछें और उत्तर दें। इसी तरह का अभ्यास **प्रयत्न** के सम्बन्ध में भी करें।

स्थान जानने के बाद **प्रयत्न** की जिज्ञासा होती है, क्योंकि **सवर्ण-संज्ञा** में **प्रयत्न** की भी आवश्यकता होती है। अतः आगे **प्रयत्न** बताये जा रहे हैं।

यत्नो द्विधा- आभ्यन्तरो बाह्यश्च। प्रयत्न दो प्रकार के हैं- एक **आभ्यन्तर-प्रयत्न** और दूसरा **बाह्य-प्रयत्न**।

आद्यः पञ्चधा- स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतविवृतसंवृतभेदात्। पहला आभ्यन्तर प्रयत्न स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत और संवृत के भेद से पाँच प्रकार का है।

तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम्। उनमें स्पर्शसंज्ञक वर्णों का **स्पृष्ट-प्रयत्न** है। (**क** से **म** तक के वर्ण **स्पृष्टसंज्ञक** हैं।)

ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम्। अन्तःस्थसंज्ञक वर्णों का **ईषत्स्पृष्ट-प्रयत्न** है। (यण् प्रत्याहारस्थ य्,, व्, र्, ल् ये वर्ण **अन्तःस्थसंज्ञक** होते हैं।)

ईषद्विवृतमूष्मणाम्। ऊष्मसंज्ञक वर्णों का **ईषद्विवृत-प्रयत्न** है। (शल् अर्थात् श्, ष्, स्, ह् ये **ऊष्मसंज्ञक** हैं।)

विवृतं स्वराणाम्। स्वरसंज्ञक वर्णों का **विवृत-प्रयत्न** है। (अच् ही **स्वरसंज्ञक** हैं।)

ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम्, प्रक्रियादशायां तु विवृतमेव। ह्रस्व अवर्ण का प्रयोग अवस्था अर्थात् उच्चारणावस्था में **संवृत-प्रयत्न** और साधनिका अवस्था अर्थात् **प्रयोगसिद्धि** की अवस्था में **विवृत-प्रयत्न** ही रहता है।

बाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा- विवारः संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति। विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष,

वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः।
कादयो मावसानाः स्पर्शाः। यणोऽन्तःस्थाः।
शल ऊष्माणः। अचः स्वराः।
≍ क ≍ ख इति कखाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृशो जिह्वामूलीयः।
≍ प ≍ फ इति पफाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृश उपध्मानीयः।
अं अः इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ।

....

अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के भेद **बाह्यप्रयत्न** ग्यारह प्रकार का होता है।

अच् प्रत्याहारस्थ वर्णों का **उदात्त, अनुदात्त** और **स्वरित** प्रयत्न होते हैं, क्योंकि पहले ही इनकी ये संज्ञाएँ की जा चुकी है।

खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च। खर् प्रत्याहारस्थ वर्णों का विवार, श्वास और अघोष प्रयत्न है। खर् प्रत्याहार अर्थात् **ख्, फ्, छ्, ठ्, थ्, च्, ट्, त्, क्, प्, श्, ष्, स्** इन सबका **विवार, श्वास, अघोष** ये तीनों प्रयत्न हैं।

हशः संवारा नादा घोषाश्च। हश् प्रत्याहार के वर्णों का संवार, नाद और घोष प्रयत्न है। हश् प्रत्याहार में **ह्, य्, व्, र्, ल्, ञ्, म्, ङ्, ण्, न्, झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्, ज्, ब्, ग्, ड्, द्** ये वर्ण आते हैं, इन सबों का **संवार, नाद, घोष** ये तीनों प्रयत्न हैं।

वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः। वर्गों के प्रथम, तृतीय, पंचम अक्षर और यण् का अल्पप्राण प्रयत्न होता है। वर्ग के प्रथम अक्षर हैं- **क्, च्, ट्, त्, प,** तृतीय हैं- **ग्, ज्, ड्, द्, ब्,** पंचम अक्षर हैं- **ङ्, ञ्, ण्, न्, म्** और यण् हैं- **य्, व्, र्** और **ल्**। इनका अल्पप्राण प्रयत्न है।

वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः। वर्गों के द्वितीय, चतुर्थ अक्षर और शल् का महाप्राण प्रयत्न होता है। वर्ग के द्वितीय अक्षर हैं- **ख्, फ्, छ्, ठ्, थ्** और चतुर्थ हैं- **घ्, झ्, ढ्, ध्, भ्** तथा शल् हैं- **श्, ष्, स्, ह्**। इनका महाप्राण प्रयत्न है।

अल्पप्राण और **महाप्राण** प्रयत्न, ये दोनों पृथक् प्रयत्न होते हुए भी किसी भी वर्ण का केवल अल्पप्राण अथवा केवल महाप्राण प्रयत्न नहीं होता अपितु संवार, नाद, घोष, अल्पप्राण या संवार, नाद, घोष, महाप्राण तथा विवार, श्वास, अघोष, अल्पप्राण या विवार, श्वास, अघोष, महाप्राण प्रयत्न, इस प्रकार से प्रत्येक वर्ण के चार-चार प्रयत्न होते हैं।

हम पहले ही बता चुके हैं कि विसर्ग के तीन भेद हैं- **विसर्जनीय** अर्थात् **सामान्य विसर्ग, जिह्वामूलीय** और **उपध्मानीय**। विसर्ग को **विसर्जनीय** के रूप में व्यवहार होता है।

≍ क ≍ ख इति कखाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृशो जिह्वामूलीयः। ≍ क ≍ ख ऐसे में **क** ओर **ख** से पहले आने वाला आधा विसर्ग जैसा जो होता है, वह **जिह्वामूलीय विसर्ग** माना जाता है।

≍ प ≍ फ इति पफाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृश उपध्मानीयः। ≍ प ≍ फ ऐसे में **प** और **फ** से पहले आने वाला आधा विसर्ग जैसा जो होता है, वह उपध्मानीय विसर्ग माना जाता है।

'अ'आदिसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

११. अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः १।१।६९॥

प्रतीयते विधीयत इति प्रत्ययः।

अविधीयमानोऽणुदिच्च सवर्णस्य संज्ञा स्यात्।

अत्रैवाण् परेण णकारेण।

कु-चु-टु-तु-पु एते उदितः।

तदेवम्- अ इत्यष्टादशानां संज्ञा। तथेकारोकारौ।

ऋकारस्त्रिंशतः। एवं ऌकारोऽपि। एचो द्वादशानाम्।

अनुनासिकाननुनासिकभेदेन यवला द्विधा; तेनाननुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोः संज्ञाः।

....

अं अः इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ। **अं** में जैसे अकार के ऊपर का एक बिन्दु **अनुस्वार** है, वैसे ही सभी अच् वर्णों के ऊपर का एक बिन्दु **अनुस्वार** कहलाता है और **अः** में जैसे अकार के बाद का दो बिन्दु **विसर्ग** है, वैसे ही सभी अच्(स्वर) वर्णों के बाद का दो बिन्दु **विसर्ग** कहलाता है।

मकार और **नकार** के स्थान पर आदेश होकर **अनुस्वार** बनता है और **रेफ** के स्थान पर आदेश होकर **विसर्ग** बनता है, इस विषय को हम आगे स्पष्ट करेंगे।

हम छात्रों को बारम्बार यह समझा रहे हैं कि जब तक **संज्ञाप्रकरण** पूर्णतया कण्ठस्थ नहीं होगा और जब तक एक एक अक्षर को नहीं समझेंगे तथा जब तक **प्रत्याहार, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, अनुनासिक, अननुनासिक, स्थान, प्रयत्न, सवर्णसंज्ञा, सवर्णग्रहण, संहितासंज्ञा, पदसंज्ञा, इत्संज्ञा** आदि नहीं समझेंगे तब तक आगे पढ़ना व्यर्थ है, क्योंकि इनके बिना आगे कुछ समझ में ही नहीं आयेगा।

११- **अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः।** अण् प्रथमान्तम्, उदित् प्रथमान्तं, सवर्णस्य षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदम्, अप्रत्ययः प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **प्रत्यय** शब्द यौगिक अर्थ में लिया जाता है, न कि व्याकरणशास्त्र में संज्ञा से बोध्य सुप्-तिङ् आदि प्रत्यय। इसीलिए जिसका विधान किया जाता है, उसे प्रत्यय कहते हैं, अर्थात् जो **विधेय** हो उसे **प्रत्यय** कहते है और जो विधेय नहीं है, वह **अप्रत्यय** है।

अप्रत्यय अण् और उदित् ये सवर्ण के बोधक अर्थात् ग्राहक होते हैं।

कु, चु, टु, तु, पु ये ही उदित् हैं, क्योंकि इन पाँचों की ही प्राचीन आचार्यों ने उदित् संज्ञा की है।

जिस सूत्र में अण् विधीयमान अर्थात् विधेय नहीं है, वहाँ एक अण् प्रत्याहार के वर्ण से उसके अन्य **सवर्णी** वर्णों का ग्रहण किया जाता है। जैसे **इको यणचि** में में **इक्** प्रत्याहार से केवल **इ, उ, ऋ** और **ऌ** ही नहीं लिए जाते अपितु **ई, ऊ, ॠ** आदि **दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, अनुनासिक, अननुनासिक** आदि सभी अठारह भेदों का ग्रहण किया जाता है। तात्पर्य यह है कि जिन-जिन वर्णों की आपस में **तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्** से **सवर्णसंज्ञा** हुई है। वे यदि **अण्** प्रत्याहार में आते हैं तो वे अपने सवर्णियों के **ग्राहक** अर्थात् **बोधक** होते हैं। एक के ग्रहण से दूसरे का ग्रहण हो जाता है। यह नियम अण्

संहितासंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१२. परः सन्निकर्षः संहिता १।४।१०९॥

वर्णानामतिशयितः सन्निधिः संहितासंज्ञः स्यात्।

....

के लिए है। शेष वर्णों में उदित होना जरूरी है, तभी सवर्ण का ग्रहण किया जायेगा। जैसे- **कुहोश्चुः**, **चोः कु** आदि सूत्रों में उकारयुक्त **कु**, **चु** आदि पढ़े गये हैं। ऐसे स्थलों पर सवर्ण का ग्रहण होगा, अन्यत्र **क्**, **च्** से अपने सवर्णियों का बोध नहीं होगा।

अत्रैवाण् परेण णकारेण। इस सूत्र में अण् प्रत्याहार को पर णकार अर्थात् **लण्** के **णकार** को लेकर माना गया है, अन्यत्र सर्वत्र **अइउण्** वाले **णकार** को लेकर ही **अण्** प्रत्याहार माना जाता है। तात्पर्य यह है कि इस सूत्र में कथित **अण्** से **अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह्, य्, व्, र्, ल्** का बोध होता है और अन्यत्र **अण्** से **अ, इ,** उ का मात्र बोध होता है।

तदेवम्- अ इत्यष्टादशानां संज्ञा। तथेकारोकारौ। इस प्रकार से **अ** से **अठारह** प्रकार के **अकार** का बोध अथवा ग्रहण किया जाता है। इसी प्रकार **इकार** और **उकार** से भी अठारह-अठारह प्रकार के **इकार** और **उकार** का ही बोध अर्थात् ग्रहण किया जाता है।

ऋकारस्त्रिंशतः। एवं लृकारोऽपि। ऋकार से तीस प्रकार के **ऋकार** (अठारह प्रकार के ऋकार तथा बारह प्रकार के लृकार) का बोध अर्थात् ग्रहण किया जाता है। इसी तरह **लृकार** से भी तीस ही प्रकार का बोध होता है, क्योंकि **ऋकार** और **लृकार** की **सवर्णसंज्ञा** होती है। अतः ये दोनों वर्ण आपस में सवर्णी हैं। जहाँ ये विधीयमान नहीं हैं, वहाँ पर ऋकार से ऋकार के अठारह भेद और लृकार के बारह भेद इसी प्रकार लृकार से भी ऋकार और लृकार के सभी भेद वाले ग्रहण किये जाते हैं। इसका फल आगे स्पष्ट किया जायेगा।

एचो द्वादशानाम्। एच् के प्रत्येक **ए, ओ, ऐ, औ** वर्णों से बारह-बारह प्रकार के भेदों सहित **एचों** का ग्रहण किया जाता है।

अनुनासिकाननुनासिकभेदेन यवला द्विधा; तेनानुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोः संज्ञा। य्, व्, ल् ये वर्ण यँ, वँ, लँ के रूप में अनुनासिक और य्, व्, ल् के रूप में अननुनासिक(निरनुनासिक) हैं। अतः **य्, व् ल्** से **अनुनासिक** और **अननुनासिक** दोनों प्रकार के **यकार, वकार, लकार** का बोध होता है।

इस तरह से पहले **अइउण्** आदि सूत्रों का पठन, उसके बाद अन्त्य वर्ण की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप करके **आदिरन्त्येन सहेता** से प्रत्याहार बनाने के बाद उन **अचों** की **ह्रस्व, दीर्घ, प्लुतसंज्ञा**, उसके बाद **उदात्त-अनुदात्त-स्वरितसंज्ञा**, उसके बाद **अनुनासिक** और **अननुनासिकसंज्ञा** करके वर्णों के **स्थान** एवं **प्रयत्न** को जानने के बाद जिनका आपस में **स्थान** और **प्रयत्न** मिलते हैं, उनकी **सवर्णसंज्ञा** करके उन **सवर्णियों** का **अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः** से ग्रहण किये जाने के **वर्णाश्रित-प्रक्रिया** को आप अच्छी तरह से समझ गये होंगे। अब इन्हीं **प्रत्याहार, स्थान, प्रयत्न, सवर्णसंज्ञा** और **सवर्णियों** का ग्रहण आदि करके सूत्रों से अनेक कार्य किये जाते हैं। अच्सन्धि से लेकर स्त्रीप्रत्यय तक **प्रत्याहार, स्थान, प्रयत्न** एवं **सवर्णसंज्ञा** की नितान्त आवश्यकता होती है।

संयोगसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१३. हलोऽनन्तराः संयोगः १।१।७।।

अज्भिरव्यवहिता हलः संयोगसंज्ञाः स्युः।

....

१२- परः सन्निकर्षः संहिता। परः प्रथमान्तं, सन्निकर्षः प्रथमान्तं, संहिता प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

वर्णों की अत्यन्त सन्निधि संहितासंज्ञक होती है अर्थात् वर्णों की अत्यन्त समीपता को संहिता कहते हैं।

आगे जाकर के हमें दो शब्दों के बीच **सन्धि** करनी है और सन्धि करने वाले सारे सूत्र **संहिता के विषय में** ही कार्य करते हैं। **संहिता** भी एक **संज्ञा** ही है। जिनकी आपस में **संहितासंज्ञा** नहीं हुई, उनकी **सन्धि** नहीं हो सकती। इस लिए यहाँ **सन्धिप्रकरण** में प्रवेश करने के पहले इस सूत्र के द्वारा **संहितासंज्ञा** की जाती है।

संहितासंज्ञा वहीं होगी जहाँ सन्धि किये जाने वाले वर्ण आपस में अत्यन्त नजदीक में बैठे हों। जैसे **राम+अवतार** में **राम** के **म्** के बाद जो **अ** है वह **अवतार** के आदि **अ** के अत्यन्त समीप में है। अतः दोनों **अकारों** की आपस में **संहितासंज्ञा** हो गई और **सन्धिप्रकरण** के सूत्र **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घसन्धि होकर **रामावतार** बन जाता है। यदि **राम** के बाद बीच में कुछ और वर्ण आ जायें और उसके बाद **अवतार** बोला जाय तो **राम+..........अवतार** में सन्धि नहीं हो सकती, क्योंकि **राम** और **अवतार** के बीच (अन्य वर्ण) अधिक काल(समय आदि) का व्यवधान है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जिन दो वर्णों की **सन्धि** होनी है, उनके बीच में किसी वर्ण को नहीं होना चाहिये और समय भी तत्काल ही होना चाहिये। किसी ने **राम** ऐसा अभी बोला और एक घण्टे के बाद **अवतार** बोला तो भी सन्धि नहीं होगी क्योंकि वहाँ भी वर्णों की अत्यन्त सन्निधि अर्थात् समीपता नहीं है। तात्पर्य यह है कि लिखने, पढ़ने, बोलने, सुनने में वर्णों की अत्यन्त समीपता चाहिए सन्धि के लिए।

१३- हलोऽनन्तराः संयोगः। हलः प्रथमान्तम्, अनन्तराः प्रथमान्तं, संयोगः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

अचों से अव्यवहित हल् संयोगसंज्ञक होते हैं।

संयोग माने **साथ होना**। संसार में विजातीयों के साथ होने को भी **संयोग** कहा जाता है किन्तु व्याकरण में सजातीय **हल्-हल्** के साथ होने पर ही संयोग माना गया है। हल्त्वेन सजातीय ही ग्राह्य है। **हलः** यह बहुवचन सामान्यतया गृहीत है अर्थात् द्विवचन को सामान्यतया बहुवचन से ही ग्रहण किया गया है जिससे दो और दो से अधिक वर्णों के बीच में कोई भी अच् न हो तो उन सभी हलों के समुदाय अर्थात् समूह की **संयोगसंज्ञा** होती है। जैसे **देवदत्त, शर्मा, सिद्ध, पत्नी** आदि। यहाँ पर **दत्त** में दो **तकार** हैं और दोनों के बीच में कोई भी अच् अर्थात् स्वर वर्ण नहीं है। इसीलिये **त्-त्** इस हल् समुदाय की **संयोगसंज्ञा** हो जाती है। इसी प्रकार **पत्नी** में **त्** और **न्** के बीच में कोई भी **अच्** नहीं है, अतः **त्-न्** इस हल्समुदाय की **संयोगसंज्ञा** हो जाती है।

पदसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१४. सुप्तिङन्तं पदम् १।४।१४॥

सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात्।

इति सञ्ज्ञाप्रकरणम्॥१॥

....

१४- सुप्तिङन्तं पदम्। सुप् च तिङ् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः सुप्तिङौ, तौ अन्तौ यस्य (शब्द स्वरूपस्य) तत् सुप्तिङन्तम्(बहुव्रीहिः)। सुप्तिङन्तं प्रथमान्तं, पदं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

सुबन्त और तिङन्त पदसंज्ञक होते हैं।

सुप् प्रत्यय आगे **अजन्तपुँल्लिङ्गप्रकरण** में तथा **तिङ्** प्रत्यय भ्वादिप्रकरण में बताये जायेंगे। **सु, औ, जस्** आदि **सु** से **सुप्** तक के प्रत्यय जिन शब्दों में लगे हुये हैं, उन शब्दों को **सुबन्त** और **तिप्, तस्, झि** आदि से **वहि, महिङ्** तक के प्रत्यय जिन शब्दों के अन्त में लगे हों उन्हें **तिङन्त** कहते हैं। ऐसे **सुबन्त** और **तिङन्त** शब्दों की **पदसंज्ञा** इस सूत्र से की जाती है। **पदसंज्ञा** करने के बाद ही वह **पद** कहलाता है। **पद** होने के बाद ही उसका व्यवहार लोक में होता है। **अपदं न प्रयुञ्जीत** अर्थात् जो पद नहीं है, वह लोक में व्यवहार के योग्य नहीं होता।

एक बात और जानना जरूरी है कि **क्ष्, त्र्, ज्ञ्** ये अक्षर स्वतन्त्र नहीं हैं अपितु दो-दो अक्षरों के संयोग से बने हैं। जैसे- **क्+ष्=क्ष्, त्+र्=त्र्, ज्+ञ्=ज्ञ्।** इस प्रकार से **क्ष्** का कण्ठ और मूर्धास्थान, **त्र्** का दन्त और मूर्धा स्थान तथा **ज्ञ्** का तालु और नासिका स्थान है।

इस तरह **लघुसिद्धान्तकौमुदी** के **सञ्ज्ञाप्रकरण** में चौदह ही सूत्र बताये गये हैं। **अष्टाध्यायी** के प्रथम अध्याय में संज्ञाविधायक अनेक सूत्र हैं। उनमें केवल तेरह संज्ञासूत्र और एक **तस्य लोपः** विधिसूत्र को मिलाकर के इन चौदह सूत्रों को लेकर बनाये गये प्रकरण को **संज्ञाप्रकरण** कहना कितना उचित है? क्या इसके बाद संज्ञाविधायक सूत्र नहीं आते? इस पर यह कहा जाता है कि **सन्धि** आदि के लिए सामान्यतः उपयोगी सूत्रों को ही इस प्रकरण में लिया गया है। तत्तत् कार्यविशेष के लिए यथास्थान उन-उन संज्ञाओं का कथन वहीं पर किया जाता है। जैसे अच्सन्धि में **टिसंज्ञा**, हल्सन्धि में **आम्रेडितसंज्ञा**, षड्लिङ्गों में **प्रातिपदिकसंज्ञा** आदि आदि। यह सन्ध्युपयोगी संज्ञाओं का प्रकरण है।

व्याकरण के सूत्रों की ६ श्रेणियाँ है अर्थात् ६ प्रकार के सूत्र होते हैं।

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम्॥

१- संज्ञासूत्र, २- परिभाषासूत्र, ३- विधिसूत्र, ४- नियमसूत्र, ५- अतिदेशसूत्र और ६- अधिकारसूत्र।

१- संज्ञासूत्र। जो सूत्र संज्ञाओं का विधान करते हैं, ऐसे सूत्र **संज्ञासूत्र** या **संज्ञाविधायक** सूत्र कहलाते हैं। जैसे- **हलन्त्यम्, अदर्शनं लोपः, तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्** आदि।

२- परिभाषासूत्र। जो अनियम होने पर नियम करते हैं, ऐसे सूत्र **परिभाषासूत्र** कहलाते हैं। जैसे- **स्थानेऽन्तरतमः, यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्, अनेकाल्शित् सर्वस्य** आदि।

३- विधिसूत्र। जो सूत्र यण्, गुण, वृद्धि, दीर्घ, प्रत्यय, आदेश आदि का विधान करते हैं, ऐसे

सूत्र **विधिसूत्र** कहलाते हैं। जैसे- **इको यणचि, एचोऽयवायावः, आद्गुणः, वृद्धिरेचि, अकः सवर्णे दीर्घः** आदि।

४- **नियमसूत्र**। किसी सूत्र के द्वारा कार्य सिद्ध होते हुए उसी कार्य के लिए यदि किसी अन्य सूत्र को पढ़ा गया हो तो वह सूत्र **नियमसूत्र** कहलाता है। **सिद्धे सत्यारम्भमाणो विधिर्नियमाय भवति** अर्थात् सिद्ध होने पर भी पुनः विधान करने से एक विशेष नियम का संकेत उससे प्राप्त होता है। जैसे- **रात्सस्य, पतिः समास एव, एच इग्घ्रस्वादेशे।**

५- **अतिदेशसूत्र**। जो वैसा नहीं है, उसे वैसा मानना अतिदेश है। जैसे कि शिष्य जो गुरु नहीं है, अब उसे गुरु के तुल्य माना जाय। सूत्र भी बहुत स्थानों पर ऐसा कार्य करते हैं। ऐसे सूत्रों को **अतिदेशसूत्र** कहा गया है। जैसे- **अन्तादिवच्च, स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ, तृज्वत्क्रोष्टुः** इत्यादि।

६- **अधिकारसूत्र**। कुछ सूत्र ऐसे होते हैं जो अपने क्षेत्र में कोई कार्य नहीं करते किन्तु अन्य सूत्रों के क्षेत्र में अपना अधिकार रखते हैं, उसके सहायक बनते हैं। ऐसे सूत्र **अधिकारसूत्र** हैं। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, धातोः** आदि।

सूत्रों में अनुवृत्ति की भी प्रक्रिया है जो **हलन्त्यम्** सूत्र की व्याख्या में बता चुके हैं। अनुवृत्ति और अधिकार में कुछ साम्य है, अन्तर यह है कि **अधिकारसूत्र** अपने क्षेत्र में कोई काम नहीं करता किन्तु उत्तरसूत्र में उसकी सहायता के लिए उपस्थित होता है और **अनुवृत्ति** में वह शब्द अपने क्षेत्र में काम करते हुए उत्तरसूत्र के सहायतार्थ उपस्थित होता है।

अभ्यासः-

अब आपका **संज्ञाप्रकरण** पूर्ण हुआ। संज्ञाप्रकरण पूर्ण रूपेण **शब्दतः** और **अर्थतः** कण्ठस्थ हो जाय तभी आगे के प्रकरण पढ़ने के अधिकारी हो सकते हैं। अन्यथा आगे पढ़ना कठिन हो जायेगा। जैसे मकान बनाने वाले से कह दिया जाय कि जमीन से ऊपर एक हाथ छोड़कर तब ईंट लगाओ तो खाली जगह छोड़कर एक हाथ ऊपर कैसे ईंटें लग सकती हैं? ठीक इसी प्रकार व्याकरण रूपी मकान खड़ा करने के लिये सारे सूत्र, अर्थ, साधनी, स्थान, प्रयत्न, प्रत्याहार, संज्ञा, आदेश, आगम रूपी ईंटें तैयार हों और उन्हें क्रमशः बुद्धि एवं मस्तिष्क रूपी भूखण्ड के ऊपर बैठाते जाना होगा।

एक बात और भी ध्यान में रखें कि **पाणिनि जी** के लगभग ४००० सूत्रों एवं **कात्यायन जी** के वार्तिकों से ही कौमुदी आदि ग्रन्थ बनाये गये हैं। यदि आप **अष्टाध्यायी** के सभी सूत्रों को कण्ठस्थ कर लेते हैं तो व्याकरण का सम्पूर्ण ज्ञान करने में बड़ी सुविधा होगी। उन्हें कण्ठस्थ करने का सरल उपाय है प्रतिदिन **अष्टाध्यायी** का पारायण अर्थात् पाठ करना। जिस तरह से हम प्रतिदिन अपने नित्यकर्म में अपने आराध्यदेव की स्तुति का नित्य पाठ करते हैं उसी तरह जब तक कण्ठस्थ न हो जाय तब तक **अष्टाध्यायी** के एक अध्याय के हिसाब से प्रतिदिन पारायण करें। पहले माह में प्रथम अध्याय, दूसरे माह में दूसरा अध्याय, इसी क्रम से आठ माहों में आठों अध्यायों का पारायण हो जायेगा। मेधावी छात्र को इस तरह से आठ माह में पूरी अष्टाध्यायी कण्ठस्थ हो जायेगी और जिनको देर से कण्ठस्थ होता है, उन्हें अगली आवृत्ति अर्थात् सोलह माहों में कण्ठस्थ हो जायेगी। अतः अब अष्टाध्यायी का पारायण इस परीक्षा के बाद अनिवार्यतया प्रारम्भ कर दें।

निम्नलिखित प्रश्नावली छात्र अपनी लेखनपुस्तिका में उतारें, अच्छी तरह से मिला लें और दो दिन के लिये पुस्तक को कपड़े बाँधकर रखें और उनकी पूजा करें। इन प्रश्नों का उत्तर लिखने का समय पाँच घण्टे से ज्यादा नहीं होना चाहिये। दो सत्र में पूरा करें और एक ही दिन में ही करें। दूसरे दिन सभी छात्र बैठ कर ३-३ घण्टे आपस में संवाद करें। जो आपको आता है, वो तो ठीक है, और जो आपको नहीं आता, उसे गुरु जी से पूछने में संकोच न करें। कमजोर साथी को सीखाकर अपने साथ चलने में सहयोग दें। ध्यान रहे कि दूसरों को देने पर ही विद्या बढ़ती है। एक तो आपका ज्ञान बढ़ता है और दूसरा दूसरों का उपकार होता है। कभी अपने ज्ञान पर घमण्ड न करें। पढ़े हुये विषय को विस्मृत होने (भूलने) से बचने के लिये प्रतिदिन एक घण्टा आवृत्ति अवश्य करें (दुहरायें)। अपने गुरु जी का सम्मान करें, उन्हें प्रणाम करें। ध्यान रखें कि प्रणाम का फल आशीर्वाद ही है और गुरु के विना पूर्ण ज्ञान नहीं होता। पुस्तक तो सहयोगी मात्र है।

अब आपके अभ्यास के लिये पचास प्रश्न रखे गये हैं। प्रत्येक प्रश्न के सही उत्तर के लिये एक अंक मिलेंगे। आपको तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण होने के लिये ३५ से ४० अंक, द्वितीय श्रेणी के लिये ४० से ४५ अंक और प्रथम श्रेणी के लिये ४५ से ५० अंक प्राप्त करने होंगे।

परीक्षार्थ प्रश्नावली

१. माहेश्वरसूत्रों की संख्या कितनी हैं?

२. **माहेश्वरसूत्रों** में अचों को कितने सूत्रों से और हलों को कितने सूत्रों से दर्शाया गया है?

३. **हयवर** आदि का अकार हल् प्रत्याहार में क्यों नहीं आता?

४. चतुर्दशसूत्रों का क्या प्रयोजन है?

५. इत्संज्ञा का क्या फल है?

६. **हलन्त्यम्** सूत्र क्या काम करता है?

७. **अदर्शन** का क्या अर्थ है?

८. **अण्, अच्, हल्** आदि प्रत्याहार संज्ञा करने वाला सूत्र कौन है?

९. व्याकरण में कितने प्रत्याहारों का व्यवहार किया गया है?

१०. किन्हीं दश प्रत्याहारों के वर्णों को प्रत्याहार के क्रम से लिखिये?

११. **दीर्घसंज्ञा** का विधान करने वाला सूत्र बताइये?

१२. हल् वर्णों की ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत संज्ञायें क्यों नहीं होती है?

१३. समाहार किसे कहते हैं?

१४. किन-किन अचों के बारह भेद और किन-किन अचों के अठारह भेद होते हैं?

१५. एचों के बारह भेद ही क्यों हैं?

१६. किस अच् का दीर्घ नहीं होता और किस अच् का ह्रस्व नहीं होता?

१७. अननुनासिक किसे कहते हैं?

१८. स्थान और प्रयत्न क्या हैं?

१९. ब्, ह्, य्, ठ्, घ्, अ, ऋ, श्, भ्, ञ्, ग्, औ, ऐ इनका स्थान बताइये?

२०. ब् और ग् की सवर्णसंज्ञा क्यों नहीं होती?

२१. सवर्णसंज्ञा करने वाला सूत्र वताइये?

२२. **ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्** वार्तिक की क्यों आवश्यकता पड़ी?
२३. यदि **आदिरन्त्येन सहेता** यह सूत्र न हो तो क्या हानि है?
२४. पाणिनि जी ने कौन सा ग्रन्थ बनाया?
२५. **व्याकरण-महाभाष्य** नामक ग्रन्थ किसने बनाया है?
२६. **उपदेश** किसे कहते हैं?
२७. **आभ्यन्तर** और **बाह्य** प्रयत्नों के भेद बताइये?
२८. संज्ञाप्रकरण के सूत्र अष्टाध्यायी के किस अध्याय के हैं?
२९. वर्ग के सभी पाँचवें अक्षर लिखिए।
३०. सूत्र कितने प्रकार के होते हैं, उदाहरण सहित बताइये।
३१. लघुसिद्धान्तकौमुदी, मध्यसिद्धान्तकौमुदी और वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी के रचयिता कौन हैं?
३२. व्याकरण के त्रिमुनि कौन-कौन हैं?
३३. स्पर्शसंज्ञक वर्णों को क्रमशः लिखिये।
३४. **पाणिनीयाष्टाध्यायी** में लगभग कितने सूत्र हैं?
३५. संयोगसंज्ञा क्या है, सूत्र सहित लिखिये।
३६. सुबन्त और तिङन्त किसे कहते हैं?
३७. सन्धि करने के पहले कौन सी संज्ञा होती है?
३८. व् किस वर्ग में आता है?
३९. ऊष्मसंज्ञा किन वर्णों की होती है?
४० **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** यह सूत्र किन किन वर्णों की इत्संज्ञा करता है?
४१. शिवसूत्रों में कौन कौन से वर्ण दो दो बार आये हैं?
४२. लघुसिद्धान्तकौमुदी के संज्ञाप्रकरण में कितने सूत्र और वार्तिक हैं?
४३. **अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः** इस सूत्र की आवश्यकता संक्षेप में समझाइये।
४४. विसर्ग कितने होते हैं? विवरण सहित बताइये।
४५. मंगलपद्य का समास-विग्रह बताइये।
४६. गु इस वर्णसमुदाय में हल् क्या है और अच् क्या?
४७. सूत्र के साथ लिखे गये तीन प्रकार के अंक क्या बताते हैं?
४८. **य्, व्, ल्** इनके कितने कितने भेद हैं?
४९. **संयोगसंज्ञा** के लिये हलों में किन अक्षरों का व्यवधान नहीं होना चाहिये?
५०. **तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्** इस सूत्र का हिन्दी में अर्थ बताइये।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का संज्ञाप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथाच्सन्धिः

यण्सन्धिविधायकं विधिसूत्रम्

१५. इको यणचि ६।१।७७

इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये।

सुधी+उपास्य इति स्थिते।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **अच्सन्धिप्रकरण** प्रारम्भ होता है। **अच्** एक प्रत्याहार है, जिसके अन्तर्गत **अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ** ये वर्ण आते हैं जो ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, अनुनासिक, अननुनासिक इन सभी भेदों के साथ यहाँ पर ग्रहण किये जाते हैं। ऐसे **अच्** अर्थात् **स्वरों की सन्धि**। सन्धि का अर्थ है- जोड़। **दो अचों का जोड़**। पूर्व शब्द के **अन्त में अच्** और पर शब्द के **आदि में अच्** हो और उनकी जो **सन्धि** हो, उसे **अच्सन्धि** कहते हैं। पूर्व और पर का व्यवहार वहीं होता है, जहाँ दो हों। शब्द के सम्बन्ध में पहला शब्द **पूर्व** कहलायेगा और दूसरा शब्द **पर** कहलायेगा। यदि केवल दो ही स्वर हों, दो ही **अच्** हों तो पूर्व और पर के अक्षर ही लिए जाते हैं। अच्सन्धि में पूर्व और पर में केवल अचों की ही सन्धि होगी किन्तु हल्सन्धि में पूर्व में हल् ही हो किन्तु पर में प्रायः हल् हो और कहीं-कहीं पर में अच् हो तो भी सन्धि हो जाती है। विसर्ग को लेकर होने वाली सन्धि को **विसर्गसन्धि** कहते हैं। इसी प्रकार हलों को लेकर होने वाली सन्धि को **हल्सन्धि** कहते हैं और **अचों की सन्धि** को **अच्सन्धि** कहते हैं। सन्धि हो जाने के बाद दो शब्दों को प्रायः एक ही स्थान पर लिखा जाता है।

आपके हाथों में दो रस्सियाँ हैं और आप उन्हें गाँठ लगाकर जोड़ना चाहते हैं तो आप दोनों रस्सियों को दो हाथों में लेंगे। बायें हाथ की रस्सी के अन्तिम भाग और दायें हाथ की रस्सी के शुरुवाती भाग को लेकर गाँठ लगाते हैं। अर्थात् जब दो भागों को जोड़ना हो तो पूर्व का अन्त भाग और पर का आदि भाग ही काम में लिया जाता है।

सन्धि हो जाय, ऐसा विधान **सूत्र** करते हैं। सूत्र और वार्तिक ही व्याकरण में शास्त्र हैं और जो भी काम यहाँ होगा, वह सूत्रों के आदेश से ही होगा। अब आइये, सब से पहले अचों की सन्धि को समझते हैं। **लघुसिद्धान्तकौमुदी** के अच्सन्धिप्रकरण में यण्सन्धि, अयादिसन्धि, गुणसन्धि, वृद्धिसन्धि, पररूपसन्धि, सवर्णदीर्घसन्धि, पूर्वरूपसन्धि और प्रकृतिभाव ये सन्धियाँ बताई गई हैं।

नियमकारकं परिभाषासूत्रम्

१६. तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य १।१।६६॥

सप्तमीनिर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम्।

....

प्राय: पूरे **सन्धिप्रकरण** में **संहितायाम्** का अधिकार रहता है। **संहिता** एक संज्ञा है जो **पर: सन्निकर्षः** संहिता से होती है। संहिता मे ही सन्धि के विधान होने के कारण **वर्णों की अत्यन्त समीपता रहने पर ही सन्धिकार्य होता है।**

१५- **इको यणचि।** इक: षष्ठ्यन्तं, यण् प्रथमान्तम्, अचि सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

इक् के स्थान पर यण् होता है, अच् परे होने पर, संहिता के विषय में।

यह सूत्र यण्सन्धि अर्थात् यण् आदेश का विधान करता है। अत: यह यण् आदेश-विधायक विधिसूत्र है। सारे सूत्र सभी जगहों पर नहीं लगते। उनकी कुछ शर्तें होती हैं। जो उनकी शर्तों को पूरा करता है, वहीं पर सूत्र प्रवृत्त होते हैं अर्थात् सूत्र लगते हैं। जैसे यण् आदेश करने के लिए **इको यणचि** इस सूत्र ने शर्त रखी कि जहाँ **पूर्व में इक्** प्रत्याहार का वर्ण हो और पर में **अच्** प्रत्याहार का वर्ण हो, वहाँ **इक्** प्रत्याहार वाले वर्णों के स्थान पर मैं **यण्** आदेश करूँगा। **इक्** प्रत्याहार में **इ, उ, ऋ, लृ** ये वर्ण आते हैं और **अच्** प्रत्याहार में **अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ** ये वर्ण आते हैं। जिस जगह पूर्व में **इक्** प्रत्याहार के इ, उ, ऋ, लृ में से कोई भी एक वर्ण हो और पर में **अच्** प्रत्याहार के अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ में से कोई भी एक वर्ण हो तो **इक्** के स्थान पर **यण्** अर्थात् **य्, व्, र्, ल्** ये वर्ण आदेश के रूप में प्राप्त हो जाते हैं। जैसे- **सुधी+उपास्यः** में धी का ईकार इक् है और **उपास्यः** वाला **उकार** अच् है और वह पर में विद्यमान है। अत: **धी** के ईकार के स्थान पर **य्, व्, र्, ल्** ये चारों यण् आदेश के रूप में प्राप्त हुए।

जो भी **आदेश** होता है, वह **किसी वर्ण के स्थान पर** ही होता है अर्थात् उसे हटाकर ही होता है। यहाँ **ई** के स्थान पर **यण्** आदेश के रूप में **ई** को हटाकर बैठना चाहते हैं। यहाँ पर **संहिता का विषय** भी है, क्योंकि **सुधी+उपास्यः** में **पर: सन्निकर्षः संहिता** से **संहितासंज्ञा** हो चुकी है। **धी** के **ई** और **उपास्यः** के **उ** की अत्यन्त समीपता अर्थात् अत्यन्त सन्निधि है। अत: यह **संहिता** है।

१६- **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य।** तस्मिन् सप्तम्यन्तानुकरणम्, इति अव्ययपदं, निर्दिष्टे सप्तम्यन्तं, पूर्वस्य षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

सूत्र में सप्तमी-विभक्ति के द्वारा निर्दिष्ट कार्य व्यवधान रहित पूर्व वर्ण के स्थान पर होता है।

किसी सूत्र के द्वारा किसी वर्णविशेष के परे होने पर किसी वर्णविशेष के स्थान पर किसी कार्य का विधान किया जाता है तो वह कार्य पर से अव्यवहित पूर्व अर्थात् पूर्व और पर के बीच में किसी वर्ण आदि का व्यवधान न हो, ऐसी स्थिति में पूर्व के स्थान पर कार्य होवे। दो के बीच में किसी अन्य का होना व्यवधान है और दो के बीच में किसी का न होना अव्यवधान है। यह सूत्र **व्यवधान न हो** ऐसा कहता है अर्थात् **पर से पूर्व में अव्यवधान होने पर ही कार्य हो,** ऐसा नियम करता है। जैसे- **सुधी+उपास्यः**(स्+उ=सु, ध्+ई=धी, उ+प्+आ) यहाँ पर **सु** का **उकार** इक् है और उससे **धी** का ईकार अच् परे है,

नियमकारकं परिभाषासूत्रम्

१७. स्थानेऽन्तरतमः १।१।५०॥

प्रसङ्गे सति सदृशतम आदेशः स्यात्।

सुध्य् उपास्य इति जाते।

....

इसी तरह **धी** का **ईकार** इक् है और उससे परे अच् है **उपास्यः** उकार और **उपास्यः** के उकार को इक् मानकर **पा** का आकार अच् परे है। ऐसी स्थिति में **सु** के **उकार** के स्थान पर, **धी** के **ईकार** के स्थान पर और **उपास्यः** के **उकार** के स्थान पर यण् प्राप्त हो सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में एक प्रकार का अनियम हुआ, वह यह कि **धी** के **ईकार** को अच् परे मानकर **सु** के **उकार** के स्थान पर यण् किया जाय अथवा उपास्यः के उकार को अच् परे मानकर धी के ईकार के स्थान पर यण् किया जाय अथवा **पा** के **आकार** को अच् परे मानकर **उपास्यः** के उकार के स्थान पर यण् किया जाय? अनियम होने पर नियम करने वाले सूत्र को **परिभाषासूत्र** कहते हैं। **अनियमे नियमकारिणी परिभाषा।** नियम करने के लिए परिभाषासूत्र की उपस्थिति होती है। सभी **परिभाषा सूत्र** अपनी-अपनी प्रवृत्ति के योग्य स्थलों को देखकर उन उन विधि सूत्रों में उपस्थित होते हैं।

इस सूत्र ने यह विधान किया कि सप्तमी विभक्ति के द्वारा निर्दिष्ट जो वर्ण या शब्द, उससे व्यवधान रहित पूर्व वर्ण के स्थान पर आदेश आदि कार्य करना चाहिए अर्थात् **पूर्व और पर के बीच में किसी अन्य वर्ण का व्यवधान नहीं होना चाहिए।** यण्विधायक सूत्र है- **इको यणचि।** उसमें सप्तम्यन्त पद है- **अचि।** अच् के परे होने पर अच् से व्यवधान रहित पूर्व में विद्यमान इक् के स्थान पर यण् होवे। प्रकृत प्रसंग **सुधी+उपास्यः** में **सु** के **उकार** से **धी** के **ईकार** को **अच् परे** मानने पर बीच में **ध्** का व्यवधान है एवं **उपास्यः** वाले **उकार** से **पा** के **आकार** को **अच् परे** मानने पर बीच में **प्** का व्यवधान है किन्तु **धी** के **ईकार** से **उपास्यः** के **उकार** को **अच् परे** मानने पर किसी भी वर्ण का व्यवधान नहीं है। अतः **उपास्यः** के **उकार** को अच् परे मान कर के **धी** के **ईकार** के स्थान पर ही **यण्** की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार से सर्वत्र समझना चाहिए। तात्पर्य यह है कि **पर को मानकर जो कार्य हो वहाँ पर से पूर्व के बीच में किसी अन्य का व्यवधान न हो।** इसी प्रकार आगे **एचोऽयवायावः, वान्तो यि प्रत्यये, एङि पररूपम्, झलां जश् झशि** आदि सूत्रों में **सप्तम्यन्त पदों** के निर्देश से किये जाने वाले कार्यों में यह सूत्र उपस्थित होता है और **सप्तम्यन्त पद से निर्दिष्ट से अव्यवहित पूर्व को ही कार्य हो,** ऐसा अर्थ उपस्थापित करता है।

१७- स्थानेऽन्तरतमः। स्थाने सप्तम्यन्तम्, अन्तरतमः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

प्रसङ्ग रहने पर (स्थान, अर्थ, गुण और प्रमाण से) तुल्यतम (अत्यन्त तुल्य) आदेश होवे।

सुधी+उपास्यः इस प्रयोग में **धी** के **ईकार** के स्थान पर जब **यण्** प्राप्त हुआ तो **यण्** संख्या में **चार** हैं और **इक्** अर्थात् **धी** का ईकार **एक** ही है। **जिसके स्थान पर आदेश होगा वह स्थानी माना जाता है।** स्थानी तो **ईकार** के रूप में **एक** ही है और आदेश **य्, व्, र्, ल्** ये **चार-चार** प्राप्त हुए। **एक** के स्थान पर **चारों** की प्राप्ति हुई।

द्वित्वविधायकं विधिसूत्रम्

१८. अनचि च ८।४।४७॥

अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि।

इति धकारस्य द्वित्वेन सुध्ध्य् उपास्य इति जाते।

....

किस वर्ण को लिया जाय और किसे छोड़ा जाय? य् को लिया जाय अथवा **व्, र्, ल्** में से किसी को लिया जाय? अनियम हुआ अर्थात् किसी एक वर्ण के ग्रहण करने में कोई नियम नहीं बन पाया। अनियम होने पर नियम करने वाले सूत्र को परिभाषासूत्र कहते हैं। **अनियमे नियमकारिणी परिभाषा।** नियम करने वाला **स्थानेऽन्तरतमः** यह परिभाषा सूत्र है। यह सूत्र **प्रसंग रहने पर स्थान, अर्थ, गुण, प्रमाण से तुल्यतम आदेश हो,** ऐसा विधान करता है। प्रसंग का अर्थ है **''प्राप्त होने पर''**। तुल्यता, समानता, सादृश्य से आदेश का विधान हो। किस की तुल्यता ग्रहण करें? **स्थान, अर्थ, गुण और प्रमाण की तुल्यता** ग्रहण करें। **स्थानी** का **आदेश** के साथ **स्थान, अर्थ, गुण** और **प्रमाण** में से किसी एक की **तुल्यता** होनी चाहिये.

स्थान सबसे पहले है। अतः **स्थान** से तुल्यता देखेंगे। स्थान से तुल्यता न होने पर **अर्थ** से तुल्यतां, अर्थ से तुल्यता न होने पर **गुण** से तुल्यता और गुण से भी तुल्यता न होने पर **प्रमाण** से तुल्यता देखेंगे। जहाँ पर एक से अधिक तुल्यता की विद्यमानता हो वहाँ **स्थान** की तुल्यता ग्रहण करनी चाहिए- **यत्रानेकविधमान्तर्यं तत्र स्थानत आन्तर्यं बलीयः।**

यहाँ पर सुधी का जो ईकार है उसका स्थान तालु है- **इचुयशानां तालु।** अब चारों **यणों** में **तालु स्थान** वाला केवल **य्** है। अतः **स्थानी** रूपी **ईकार** के साथ **आदेश** रूपी य् का स्थान से **साम्य** हुआ अर्थात् **ईकार** और **यकार** में स्थान तुल्यता है। अतः ईकार के स्थान पर आदेश के रूप में बैठने का अधिकार **य्** को प्राप्त हुआ। इस परिभाषा सूत्र के फलस्वरूप य् को छोड़कर **व्, र्, ल्** ये वर्ण अपने-आप हट गये **क्योंकि ईकार** का **य्** के साथ स्थान को लेकर तुल्यता है और **व्, र्, ल्** के साथ तुल्यता नहीं है। फलतः सुधी के ईकार के स्थान आदेश के रूप में बैठने के लिए **य्** को अधिकार मिला। अतः धी के ईकार को हटाकर **य्** आकर बैठ गया तो **सुध्य्+उपास्य** बना।

१८- अनचि च। न अच्- अनच्, तस्मिन् अनचि(नञ् तत्पुरुषः) अनचि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** से **यरः** और **वा** तथा **अचो रहाभ्यां द्वे** से **द्वे** की अनुवृत्ति आती है।

अच् से परे यर् का विकल्प से द्वित्व होता है किन्तु अच् परे हो तो नहीं होता।

यह **द्वित्व** करता है। एक वर्ण को दो कर देता है। **अच्** वर्ण के बाद उच्चारित **यर्** प्रत्याहार वाले वर्ण का **द्वित्व** करता है किन्तु उस **यर्** के बाद कोई **अच्** वर्ण परे नहीं होना चाहिए। **हल्** परे हो या नहीं कोई फर्क नहीं पड़ता। एक पक्ष में होना और एक पक्ष में न होना, इसी को **विकल्प** कहते हैं।

तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य और **स्थानेऽन्तरतमः** इन दो सूत्रों की सहायता से

जश्त्वविधायकं विधिसूत्रम्

१९. झलां जश् झशि ८।४।५३॥

स्पष्टम्। इति पूर्वधकारस्य दकारः।

....

सुधी+उपास्यः में **धी** के **ईकार** के स्थान पर **यण्** होकर **सुध्य्+उपास्यः** बन जाने के बाद **अनचि च** यह सूत्र लगता है। **अच्** है **सु** में **उकार**, उससे परे यर् है ध्, उससे परे **अच्** कोई नहीं है, **हल्** परे है **य्**, उससे कोई बाधा नहीं है। अतः यर् ध् का इस सूत्र से द्वित्व कर दिया गया। अब **सुध्ध्य्+उपास्यः** बन गया। ध्यान रहे कि यह द्वित्व विकल्प से होता है। एक पक्ष में द्वित्व रहेगा और एक पक्ष में नहीं रहेगा। द्वित्व पक्ष का एक रूप और द्वित्व न होने के पक्ष में एक रूप, इस प्रकार से दो-दो रूप बनेंगे। अब इसके बाद और भी प्रक्रिया होनी है।

१९- **झलां जश् झशि**। झलां षष्ठ्यन्तं, जश् प्रथमान्तं, झशि सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

झल् के स्थान पर जश् आदेश होते हैं, झश् के परे होने पर।

यह सूत्र पूर्व में **झल्** प्रत्याहार का वर्ण हो और पर में **झश्** प्रत्याहार का वर्ण हो तो पूर्व के **झल्** के स्थान पर **जश्** अर्थात् **ज्, ब्, ग्, ड्, द्** ये आदेश करता है अर्थात् **झश्** के परे होने पर **झल्** के स्थान पर **जश्** आदेश हो जाता है। इस सूत्र के कार्य को **जश्त्व** कहते हैं। झल् में वर्ग के **पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे** वर्ण तथा **श्, ष्, स्, ह्** ये वर्ण आते हैं। **जश्** में वर्ग के **तीसरे** अक्षर आते हैं। **झश्** में वर्ग के **तीसरे** और **चौथे** वर्ण आते हैं। **स्थानेऽन्तरतमः** की सहायता से स्थान की साम्यता को लेकर **ज्, ब्, ग्, ड्, द्** ये आदेश होते हैं। **क्, ख्, ग्, घ्, ह्** के स्थान पर **कण्ठस्थान** की साम्यता को लेकर **ग्** आदेश, **च्, छ्, ज्, झ्, श्** के स्थान पर **तालुस्थान** की साम्यता को लेकर **ज्** आदेश, **ट्, ठ्, ड्, ढ्, ष्** के स्थान पर **मूर्धास्थान** की साम्यता को लेकर **ड्** आदेश, **त्, थ्, द्, ध्, स्** के स्थान पर **दन्तस्थान** की साम्यता को लेकर **द्** आदेश और **प्, फ्, ब्, भ्** के स्थान पर **ओष्ठस्थान** की साम्यता से **ब्** आदेश हो जाते हैं।

अनचि च से **धकार** को **द्वित्व** होकर **सुध्ध्य्+उपास्यः** बन जाने के बाद इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है। यहाँ दो **ध्** बन गये हैं, एक प्रथम धकार और दूसरा द्वितीय धकार। **प्रथम धकार** को **झल्** मानकर **दूसरे धकार** को **झश्** परे मानें। अतः **प्रथम धकार** झल् के स्थान पर **जश्** अर्थात् **ज्, ब्, ग्, ड्, द्** ये पाँचों प्राप्त हुए। स्थानी एक ही **ध्** है और आदेश **ज्, ब्, ग्, ड्, द्** ये पाँच हैं। एक के स्थान पर पाँच प्राप्त हुए तो अनियम हुआ। अतः नियम करने के लिये परिभाषा सूत्र **स्थानेऽन्तरतमः** लगा। उसका अर्थ है- **प्रसंग रहने पर स्थान, अर्थ, गुण, प्रमाण से तुल्यतम आदेश हों।** स्थान से तुल्यता मिलाने पर स्थानी रूपी ध् का **दन्तस्थान** है- **लृतुलसानां दन्ताः**। दन्त्य स्थान वाला ही **जश्** चाहिये। पाँचों आदेशों में दन्त्य स्थान वाला **द्** मिलता है अर्थात् **दकार** का भी **दन्तस्थान** है। अतः **सुध्ध्य्** में प्रथम **धकार** के स्थान पर **द्** आदेश हुआ तो **सुद्ध्य्+उपास्यः** बन गया। अब इसके बाद **द्ध्य्** ये तीनों हल् वर्ण हैं। इन तीनों के बीच में कहीं भी **अच्** नहीं है। अतः **द्ध्य्** की **हलोऽन्तराः संयोगः** इस सूत्र से **संयोगसंज्ञा** हो जाती है। यहाँ पर **संयोगसंज्ञा** का फल लोप करना है। लोप करने के लिए आगे **संयोगान्तस्य लोपः** की प्रवृत्ति होती है।

लोपविधायकं विधिसूत्रम्

२०. संयोगान्तस्य लोपः ८।२।२३॥

संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात्।

नियमकारकं परिभाषासूत्रम्

२१. अलोऽन्त्यस्य १।१।५२॥

षष्ठीनिर्दिष्टोऽन्त्यस्याल आदेशः स्यात्। इति यलोपे प्राप्ते-

वार्तिकम्- **यणः प्रतिषेधो वाच्यः।**

सुद्ध्युपास्यः। मद्ध्वरिः। धात्त्रंशः। लाकृतिः।

....

२०- **संयोगान्तस्य लोपः**। संयोगान्तस्य षष्ठ्यन्तं, लोपः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। संयोगः अन्ते अस्ति यस्य तत् संयोगान्तम्, (बहुव्रीहिः) तस्य संयोगान्तस्य। इस सूत्र में **पदस्य** का अधिकार आता है।

संयोगान्त जो पद, उसके अन्त्य का लोप होता है।

जिन अच् रहित हल्वर्णों की **हलोऽनन्तराः संयोगः** से संयोग संज्ञा होती है, यदि वह संयोग अन्त में रहे, ऐसा जो पद (पदसंज्ञक शब्द) उसका लोप हो। इस सूत्र के द्वारा अच् से रहित **द्ध्य्** इस संयोगसंज्ञक वर्णों के साथ संयोगान्तपद **सुद्ध्य्** इस पूरे पद का लोप प्राप्त हुआ। पूरे पद का लोप होना भी ठीक नहीं है। इस प्रकार से सम्पूर्ण पद लुप्त हो जायेंगे तो फिर शब्द ही कहाँ बचेंगे? इस अनियम को रोकने के लिये परिभाषा सूत्र उपस्थित होता है- **अलोऽन्त्यस्य।**

एक पद्धति यह भी है कि **अलोऽन्त्यस्य** यह परिभाषासूत्र स्वयं **संयोगान्तस्य लोपः** के पास जाकर एकवाक्यता करके **संयोगान्त पद के अन्त्य का लोप हो** यह अर्थ बना देता है। ऐसा करने पर **अलोऽन्त्यस्य** को अलग से लगाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। यह पद्धति आगे स्पष्ट हो जायेगी।

२१- **अलोऽन्त्यस्य**। अलः षष्ठ्यन्तम्, अन्त्यस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

षष्ठीविभक्ति द्वारा निर्दिष्ट जिस पद के स्थान पर आदेश प्राप्त हो, वह आदेश अन्त्य अल् वर्ण के स्थान पर होता है।

सुद्ध्य् इस पद में लोप आदेश **संयोगान्तस्य लोपः** से प्राप्त है। इस सूत्र में षष्ठ्यन्त पद है **संयोगान्तस्य**। उसके द्वारा निर्दिष्ट पद है **सुद्ध्य्**। उसके स्थान पर प्राप्त आदेश है **लोप**। वह **अलोऽन्त्यस्य** इस सूत्र के नियम से **अन्त्य अल्** वर्ण **सुद्ध्य्** में **य्** के स्थान पर लोप प्राप्त हुआ अर्थात् **सुद्ध्य्** में अन्त्य अल् **य्** का लोप प्राप्त हुआ। इस लोप को भी रोकने के लिये **कात्यायन जी** का वार्तिक आया **यणः प्रतिषेधो वाच्यः।**

यणः प्रतिषेधो वाच्यः। यह वार्तिक है। **यण् के लोप का निषेध कहना चाहिए।** यह सब जगह यण् के लोप का निषेध नहीं करता किन्तु **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से **संयोगान्तस्य लोपः** के द्वारा प्राप्त **यण् के लोप** का निषेध करता है। तात्पर्य यह है कि **संयोगान्तस्य लोपः** यह सूत्र संयोग के अन्त में विद्यमान वर्णों का लोप करता है किन्तु वह लोप **यण्** के सम्बन्ध में नहीं होता। इस वार्तिक के बल पर

सुद्ध्य् में जो **संयोगान्तस्य लोपः** से **यकार** का लोप प्राप्त था, वह रूक गया उसका लोप नहीं हुआ।

सुद्ध्य् उपास्यः ऐसी स्थिति बनी हुई है। अब इसके बाद संस्कृत भाषा में एक ऐसा नियम है कि अचों से रहित वर्णों को आगे के वर्णो से जोड़ना चाहिये- **अज्झीनं परेण संयोज्यम्।** यहाँ पर अचों से रहित वर्ण हैं **द्ध्य्।** ये क्रमशः आगे मिलते जायेंगे। इस क्रिया को **वर्णसम्मेलन** भी कहते हैं। जैसे **य्** जाकर के **उपास्यः** के उकार में मिल गया- **युपास्यः** बना। **ध्** जा कर के **युपास्यः** में मिल गया तो **ध्युपास्यः** बना गया और **द्** जा कर के **ध्युपास्यः** में मिल गया तो **द्ध्युपास्यः** यह सिद्ध हुआ। **सु** यह अच् युक्त वर्ण है, यह मिलने नहीं जायेगा किन्तु बगल में जा बैठेगा। इस तरह **सुद्ध्युपास्यः** सिद्ध हुआ।

अनचि च यह सूत्र विकल्प से द्वित्व करता है। एक पक्ष में द्वित्व नहीं हुआ तो **सुध्य् उपास्यः** ही रहा। झल् परे न होने के कारण **झलां जश् झशि** से जश्त्व भी नहीं हुआ। बाकी सारी प्रक्रिया उसी प्रकार की है। **सुद्ध्य्+उपास्यः** में भी **वर्णसम्मेलन** होता है अर्थात् **य्** उकार से मिल कर **युपास्यः** बनता है, **ध्** युपास्यः से मिलकर **ध्युपास्यः** बनता और **सुध्युपास्यः** हो जाता है। इस तरह द्वित्वाभाव में **सुध्युपास्यः** यह रूप सिद्ध हुआ। इस प्रकार से इतने सूत्रों की प्रक्रिया के बाद **सुधी+उपास्यः** यह स्थिति सन्धि हो कर **सुद्ध्युपास्यः** एवं **सुध्युपास्यः** इस रूप में बदल गई अर्थात् ये दो रूप सिद्ध हुए। **अर्थः**- **सुधीभिः उपास्यः** विद्वानों के द्वारा उपासना किये जाने वाले **भगवान् विष्णु।**

अब आप इस प्रक्रिया को अच्छी तरह से समझ लें। यदि **सुद्ध्युपास्यः** साधने आ जाय तो आगे के प्रयोगों, साधनियों को भी अच्छी तरह से साध लेंगे, समझ लेंगे, सिद्ध कर लेंगे, अन्यथा बड़ी परेशानी होगी।

सुद्ध्युपास्यः को संक्षिप्त रूप में भी साधते हैं- **सुधी+उपास्यः** इस स्थिति में **परः सन्निकर्षः संहिता** से **संहितासंज्ञा** हो गई और सूत्र लगा **इको यणचि। इक् के स्थान पर यण् हो अच् परे रहने पर संहिता के विषय में। तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** इस परिभाषा के नियमानुसार व्यवधान रहित **इक्** है **सुधी** में धकारोत्तरवर्ती **ईकार** और **अच्** परे है **उपास्यः** का **उकार**। अतः इस सूत्र से **धी** के **ईकार** के स्थान पर **यण्** अर्थात् **य्, व्, र्, ल्** ये चारों प्राप्त हुये। एक के स्थान पर चार वर्णों की प्राप्ति होना अनियम हुआ। नियम करने के लिये परिभाषा सूत्र आया **स्थानेऽन्तरतमः। प्रसंग रहने पर स्थान, अर्थ, गुण, प्रमाण से तुल्यतम आदेश होते हैं।** प्रसंग है एक के स्थान पर अनेक की प्राप्ति। अब स्थान से मिलाने पर स्थानी **ईकार** का तालु स्थान है और चारों यण्रूप आदेशों में तालु स्थान वाला केवल **य्** है। अतः **ईकार** के स्थान पर **य्** आदेश हुआ। **सुध्य्+उपास्यः** बना। अब सूत्र लगा- **अनचि च।** अच् से परे यर् का द्वित्व विकल्प से हो, अच् परे न होने पर। अब **सुद्ध्य्+उपास्यः** में अच् है **सु** का **उकार**, उससे परे **यर्** है **ध्,** उससे अच् परे नहीं है। अतः इस सूत्र से एक पक्ष में **धकार** का **द्वित्व** हुआ, **सुध्ध्य् उपास्यः** बना।

इसके बाद सूत्र लगता है- **झलां जश् झशि।** झल् के स्थान पर जश् आदेश हो, झश् परे रहने पर। **सुध्ध्य् उपास्यः** में **झल्** है पहला **धकार** और **झश्** परे है दूसरा **धकार** तो पहले **धकार** के स्थान पर **जश्** अर्थात् **ज्, ब्, ग्, ड्, द्** ये पाँचों आदेश प्राप्त हुये। एक के स्थान पर पाँच वर्णों की प्राप्ति हुई, यह भी अनियम हुआ। अतः नियमार्थ परिभाषा सूत्र लगा **स्थानेऽन्तरतमः**। स्थान से तुल्यता करने पर स्थानी **ध्** का **दन्तस्थान** और **ज्,**

ब्, ग्, ड्, द् में **दन्तस्थान** वाला केवल **द्** मिलता है। अतः **ध्** को हटाकर **द्** आदेश हुआ- **सुद्ध्य् उपास्यः** बना। अब **द्ध्य्** की **हलोऽनन्तराः संयोगः** से **संयोगसंज्ञा** हुई और **सुद्ध्य्** का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप प्राप्त हुआ तो **अलोऽन्त्यस्य** के द्वारा केवल **य्** के लोप का निर्देश प्राप्त हुआ। फिर वार्तिक लगा- **यणः प्रतिषेधो वाच्यः** यण् का लोप निषेध होता है। **यण्** है **य्**, उसका लोप नहीं हुआ।

अच्झीनं परेण संयोज्यम् अच् से हीन वर्ण पर वर्ण से जुड़ता है। **द्ध्य्** इनमें से क्रमशः पहले **य्**, उसके बाद **ध्** और उसके बाद **द्** ये अच् रहित वर्ण पर वर्ण से जुड़ते गये तो बना **सुद्ध्युपास्यः**। द्वित्व न होने के पक्ष में **सुध्युपास्यः**।

अब संस्कृत भाषा में भी सिद्ध करते हैं- **सुधी+उपास्यः** इतिस्थितौ **परः सन्निकर्षः संहिता** इत्यनेन सूत्रेण संहितासंज्ञायाम् **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य, स्थानेऽन्तरतमः** इतिसूत्रद्वयसहकारेण **इको यणचि** इतिसूत्रेण यणि **सुध्य् उपास्यः** इति जाते, **अनचि च** इतिसूत्रेण धकारस्य द्वित्वे, **सुध्ध्य् उपास्यः** इति जाते, **झलां जश् झशि** इतिसूत्रेण धकारस्य जश्त्वे **सुद्ध्य् उपास्यः** इति जाते, द्ध्य्वर्णानां संयोगसंज्ञायाम् **अलोऽन्त्यस्य** इतिसूत्रसहकारेण **संयोगान्तस्य लोपः** इतिसूत्रेण यकारस्य लोपे प्राप्ते **यणः प्रतिषेधो वाच्यः** इतिवार्तिकेन तन्निषेधे वर्णसम्मेलने **सुद्ध्युपास्यः** इति रूपं सिद्धम्। द्वित्वाभावे **सुध्युपास्यः** इति रूपं भवति।

इक् प्रत्याहार के इ, उ, ऋ, लृ में से केवल इकार का उदाहरण **सुद्ध्युपास्यः** है। आगे उकार का उदाहरण **मद्ध्वरिः**, ऋकार का उदाहरण **धात्रंशः** और लृकार का उदाहरण **लाकृतिः** बता रहे हैं।

मद्ध्वरिः=मधु नामक दैत्य के शत्रु भगवान विष्णु। **मधु+अरिः**, इस स्थिति में **परः सन्निकर्षः संहिता** से संहितासंज्ञा होने के बाद **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** इस सूत्र की सहायता से सप्तमीनिर्दिष्ट **अच्** से अव्यवहित पूर्व **मधु** के **उकार** के स्थान पर **इको यणचि** से यण् प्राप्त। **इक्** है **मधु** का **उकार** और **अच्** परे है **अरिः** का **अकार**। अतः **मधु** के **उकार** के स्थान पर **य्, व्, र्, ल्** इन चारों की प्राप्ति हुई, अनियम हुआ। नियमार्थ सूत्र आया **स्थानेऽन्तरतमः**। स्थान की तुल्यता मिलाने पर **मधु** के **उकार** का ओष्ठ स्थान है। आदेशों में **व्** का **दन्त-ओष्ठ** स्थान। इसमें केवल **ओष्ठ स्थान** की तुल्यता ले कर के **मधु** के **उकार** के स्थान पर **व्** आदेश हुआ, **मध्व् अरिः** बना। **अनचि च** से धकार को द्वित्व और **झलां जश् झशि** से जश्त्व हो कर के **मद्ध्व् अरिः** बना। **द्ध्व्** की **संयोगसंज्ञा** के बाद **अलोऽन्त्यस्य** के सहयोग से **संयोगान्तस्य लोपः** से **व्** का लोप प्राप्त। **यणः प्रतिषेधो वाच्यः** इसके द्वारा लोप का निषेध हुआ। वर्णसम्मेलन होकर **मद्ध्वरिः** सिद्ध हुआ। द्वित्व न होने के पक्ष में **मध्वरिः** बनता है।

धात्रंश=ब्रह्मा का भाग। **धातृ+अंशः** की **परः सन्निकर्षः संहिता** से संहितासंज्ञा हुई और **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** इस सूत्र की सहायता से सप्तमीनिर्दिष्ट **अच्** से अव्यवहित पूर्व **धातृ** के **ऋकार** के स्थान पर **इको यणचि** से यण् प्राप्त होता है। यहाँ पर इक् है **धातृ** का **ऋकार** और अच् परे है **अंशः** का **अकार**। अतः उक्त सूत्र से धातृ के **ऋकार** के स्थान पर **य्, व्, र्, ल्** चारों की प्राप्ति हुई। एक के स्थान पर चार वर्णों की प्राप्ति होता अनियम हुआ। अतः नियमार्थ सूत्र आया- **स्थानेऽन्तरतमः**। स्थान की तुल्यता मिलाने पर **धातृ** में **ऋकार** का **मूर्धास्थान** और आदेशों में र् का **मूर्धास्थान** है, अतः मूर्धास्थान से साम्यता हुई और **धातृ** के **ऋकार** के स्थान पर र् आदेश हुआ, **धात्र्+अंशः**

बना। **अनचि च** से तकार का द्वित्व हुआ, **धात्त्र्+अंशः** बना। यहाँ पर **झलां जश् झशि** नहीं लगेगा। क्योंकि **झश्** परे नहीं है।। **त्त्र्** की संयोग संज्ञा, **अलोऽन्त्यस्य** के सहयोग से **संयोगान्तस्य लोपः** से र् का लोप प्राप्त। **यणः प्रतिषेधो वाच्यः** इस वार्तिक के द्वारा लोप का निषेध हुआ। **धात्त्र् अंश** बना हुआ है। इसमें वर्णसम्मेलन होकर **धात्त्रंशः** सिद्ध हुआ। द्वित्व न होने के पक्ष में **धात्रंशः** बनता है।

लाकृतिः=लृ के समान टेढ़ी आकृति है जिसकी ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण। लृ+आकृतिः इस स्थिति में **संहितासंज्ञा** करने के बाद **अच्** से अव्यवहित इक् लृ के स्थान पर **इको यणचि** से यण् प्राप्त होता है। यहाँ पर **इक्** है **लृ** और **अच्** परे है **आकृतिः** का **आकार**। अतः **लृ** के स्थान पर य्, व्, र्, ल् चारों की प्राप्ति, अनियम हुआ। नियमार्थ सूत्र आया **स्थानेऽन्तरतमः**। स्थान की तुल्यता मिलाने पर **लृ** का **दन्त-स्थान**, आदेशों में भी **ल्** का दन्त-स्थान है। दन्त-स्थान की तुल्यता से **लृ** के स्थान पर **ल्** आदेश हुआ, **ल्** आकृतिः बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **लाकृतिः**। यहाँ पर **यर्** से पहले **अच्** न होने के कारण **अनचि च** नहीं लगा। **झल्** परे न होने के कारण **झलां जश् झशि** से जश्त्व नहीं हुआ। एक ही हल् होने के कारण **संयोगसंज्ञा** नहीं हुई। **संयोगसंज्ञा** के अभाव में **अलोऽन्त्यस्य** और **संयोगान्तस्य लोपः** नहीं लगे। जब लोप ही नहीं प्राप्त हुआ तो लोप निषेध के लिये वार्तिक की भी आवश्यकता नहीं हुई। इस तरह से **लृ+आकृतिः** में केवल **यण्** होकर वर्णसम्मेलन करने पर **लाकृतिः** सिद्ध हुआ। यहाँ **लृ** यह केवल अच् वर्ण है न कि **ल्** के साथ लगा हुआ **ऋ**।

यहाँ पर यण्विधायक सूत्र **इको यणचि** के **सुद्ध्युपास्यः**, **मद्ध्वरिः**, **धात्त्रंशः** और **लाकृतिः** ये चार ही उदाहरण दिये गये हैं। इसी प्रकार के अर्थात् **पूर्व में इक्** और **पर में अच् होने पर** असंख्य जगहों पर **यण्सन्धि** होती है। जैसे- **दधि+ओदनः=दध्योदनः**, **वधू+आनयनम्=वध्वानयनम्**, **पितृ+आह्वानम्=पित्राह्वानम्** आदि। अब आप अपने आप ऐसे प्रयोगों को ढूँढ कर सन्धिविच्छेद करके पुनः सन्धि करने का प्रयत्न करें।

व्याकरण के द्वारा सिद्ध प्रयोगों के उपयोग के लिए क्षेत्र संस्कृतवाङ्मय के सभी ग्रन्थ हैं, फिर भी व्याकरण का अध्ययन कर रहे छात्रों के लिए सबसे पहले तो व्यवहार में आने वाले छोटे छोटे सन्धियोग्य वाक्यों का अभ्यास करना चाहिए। छात्र को चाहिए कि प्रत्येक सन्धि के योग्य प्रयोग ढूँढे और उनमें सूत्र लगाकर अभ्यास करे। इसके साथ ही **महाकवि कालिदास** के द्वारा रचित **रघुवंशमहाकाव्यम्** नामक ग्रन्थ भाषाज्ञान की दृष्टि बहुत उपयोगी है। अतः उन श्लोकों में पद पद अलग करके इसमें अमुक सन्धि के योग्य कौन सा शब्द है, यह अन्वेषण करे। जैसे कि सर्वप्रथम **रघुवंशमहाकाव्य** के प्रथमसर्ग को ही लें। उसमें यण्सन्धि वाले कौन कौन से शब्द हैं! इस तरह खोजें। इसी तरह अयादि आदेशसन्धि, गुणसन्धि, वृद्धिसन्धि, पूर्वरूपसन्धि, पररूपसन्धि, सवर्णदीर्घसन्धि के पद कौन हैं? इस तरह खोजी प्रवृत्ति बनाये तो व्याकरण का भी शीघ्र ज्ञान होगा और शब्दभण्डार भी बढ़ेगा। व्याकरण के द्वारा बनाये गये शब्दों का प्रयोग भी हो सकेगा।

अच्सन्धिप्रकरण में यण् करने वाला यह एक ही सूत्र है किन्तु इसके बाधक सूत्र अनेक हैं। **बाधक** उसे कहते हैं जो किसी सूत्र को प्रवृत्त होने से रोकता है और स्वयं प्रविष्ट होता है, स्वयं कार्य करता है। जो सूत्र बाधता है उसे **बाधक** और जो बाधित हो जाता है उसे **बाध्य** सूत्र कहते हैं। इस प्रकार से सूत्रों के आपस में **बाध्य-बाधक** प्रक्रिया भी होती है। **बाध्य** सूत्र सामान्य होता है और **बाधक** सूत्र **विशेष** होता है। **बाध्य** और

बाधक का प्रसंग तभी आता है, जब दोनों सूत्रों के लगने में आवश्यक कारण अर्थात् स्वर, व्यंजन, प्रकृति, प्रत्यय आदि का एक ही क्षेत्र हो। जो सूत्र अधिक जगह पर लगे उसे **सामान्य** या **उत्सर्ग** सूत्र कहते हैं और जो कम जगहों पर ही लगता हो उसे **विशेष** सूत्र कहते हैं। **सामान्य शास्त्र** एवं **विशेष शास्त्र** अर्थात **सामान्य सूत्र** एवं **विशेष सूत्र** एक जगह पर एक साथ लगने के लिये आ जायें तो वहाँ पर **सामान्य सूत्र** को **विशेष सूत्र** बाधता है और **विशेष सूत्र** स्वयं लग जाता है। इसका उदाहरण हम आगे स्पष्ट करते रहेंगे।

सुद्ध्युपास्यः, मद्ध्वरिः, धात्त्रंशः, लाकृतिः। इन उदाहरणों का तात्पर्यः- अध्येतागण इस बात को भी जान लें कि व्याकरण का उद्देश्य केवल शब्दज्ञान, सन्धिज्ञान मात्र नहीं है अपितु उसके साथ ही अध्येताओं को अध्यात्म की ओर प्रेरित करना भी है। इस बात पर **श्री भट्टोजिदीक्षित जी** एवं उनके ग्रन्थों के व्याख्याताओं ने विशेष ध्यान दिया है। जैसे- **सुद्ध्युपास्यः, मद्ध्वरिः, धात्त्रंशः, लाकृतिः** इन उदाहरणों की जगह **मद्ध्वानय, दध्यानय, वद्ध्वानय, पित्रंशः** आदि लौकिक प्रयोग भी दे सकते थे। ऐसा न करके उपर्युक्त उदाहरण देने का रहस्य यह है कि अध्येतागण शब्दज्ञान के साथ **उपास्य** का ज्ञान भी कर लें, **इतिहास** आदि से भी परिचित हो लें और **तत्तत् पौराणिक** और **उपनिषत्** की घटनाओं को समझने, जानने के लिए उत्प्रेरित हो जायें। जैसे- **सुधीभिः उपास्यः** (विद्वानों के द्वारा उपासना करने योग्य)। यहाँ पर एक तो **सुधी** को किसी **ब्रह्म** की उपासना अवश्य करनी चाहिए, यह एक प्रेरणा है तो दूसरा विद्वानों के द्वारा **उपास्य** कौन है? इसकी **जिज्ञासा** भी। इस जिज्ञासा की पूर्ति करता है **मद्ध्वरिः**। मधु नामक दैत्य के शत्रु **भगवान विष्णु** अर्थात् विद्वानों के द्वारा **भगवान् विष्णु उपास्य** हैं। अब वे कैसे हैं? इस जिज्ञासा में उत्तर आया- **धात्त्रंशः**। वह **धातुः अंशः**, ब्रह्मा का अंश बन कर अर्थात् ब्रह्मा के शरीर से **वराह** आदि बनकर अथवा **धाता** की सृष्टि में **राम, कृष्ण** आदि बनकर **अवतार** लेता है। इस लिए वह **धात्त्रंश** है। उसे प्राप्त करना क्या सरल है? नहीं। वह तो लृ की तरह टेढ़ी आकृति वाला अर्थात् कठिन तपस्या एवं साधना से ही प्राप्त हो सकता है।

अभ्यासः

(क) निम्नलिखित शब्दों का सन्धिविच्छेद करके सूत्र लगाकर प्रयोगों की सिद्धि करें।

१. नद्यत्र। २. यद्यपि। ३. प्रत्येकम्। ४. करोम्यहम्। ५. कौमुद्यायाति।
६. अस्त्यात्मा। ७. वद्ध्वागमनम्। ८. इत्याचरति। ९. गुर्वाज्ञा। १०. दद्ध्यत्र।
११. वंश्यायाति। १२. ह्ययम्। १३. अस्त्यनुरागः। १४. पित्राज्ञा। १५. खल्वत्र।
१६. अत्युत्तमः। १७. लाकारः। १८. इत्यपि। १९. पित्रधीनम्। २०. पत्यादेशः।

(ख) निम्नलिखित शब्दों की सूत्र लगा कर सन्धि करें।

१. जननी+आह। २. धातृ+आदेशः। ३. मधु+आनय। ४. शिशु+अङ्गः।
५. भर्तृ+आदेशः। ६. तनु+अङ्गः। ७. मनु+आदिः। ८. वधू+अलङ्कारः।
९. अभि+उदयः। १० कामिनी+उदयः। ११. पितृ+आज्ञा। १२. जननी+आगच्छति।
१३. हरी+आगच्छतः। १४. नदी+आवहति। १५. कान्ति+आभा।
१६. भानु+आभा। १७. गुरु+आस्था। १८. भ्रातृ+आशा। १९. दुहितृ+ईशः।
२०. गृहेषु+आसक्तः। २१. लृ+आकारः।

अयाद्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२२. एचोऽयवायावः ६।१।७८॥

एचः क्रमादय् अव् आय् आव् एते स्युरचि।

....

(ग) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिये।

१. किन्हीं दो विधिसूत्रों को अध्याय-पाद-संख्या सहित लिखिये।

२. राम+ईश्वरः, सर्व+मानवः, हरे+अत्र इन प्रयोगों में **इको यणचि** यह सूत्र क्यों नहीं लगता? बताइये।

३. परिभाषा सूत्र कौने कौन हैं और क्यों परिभाषा माने जाते हैं?

४. **स्थानेऽन्तरतमः** यह सूत्र न होता तो क्या हानि होती?

५. **धातृत्र् अंशः** में **झलां जश् झशि** यह सूत्र क्यों नहीं लगता।

६. जहाँ पर **इको यणचि** लगता हो ऐसे पाँच शब्द बताइये।

२२- **एचोऽयवायावः**। अय् च, अव् च, आय् च, आव् च, तेषाम् इतरेतरयोगद्वन्द्वः, अयवायावः। एचः षष्ठ्यन्तम्, अयवायावः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इको यणचि** से **अचि** इस पद की अनुवृत्ति आती है और **संहितायाम्** का अधिकार है।

एच् के स्थान पर अय्, अव्, आय्, आव् ये आदेश होते हैं अच् के परे होने पर।

यह अयादि आदेश विधान करने वाला विधिसूत्र है। **अच्** के परे रहने पर **एच्** के स्थान पर अर्थात् पूर्व में **एच्** अर्थात् **ए, ओ, ऐ, औ** में से कोई एक वर्ण हो और पर में **अच्** अर्थात् **अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ** में से कोई एक वर्ण हो तो यह सूत्र लगता है। इसकी शर्त है- **पूर्व में एच् और पर में अच् प्रत्याहार के वर्ण हों**। इसका कार्य है **अय्, अव्, आय्, आव्** ये आदेश करना। किसके स्थान पर? **एच्** के स्थान पर, **एच्** क्या है? प्रत्याहार और किसके परे होने पर? **अच्** के परे होने पर। अच् क्या है? यह भी प्रत्याहार ही है।

एचोऽयवायावः में भी **संहितायाम्** का अधिकार रहता है अर्थात् पूरे **सन्धिप्रकरण** में इसका अधिकार रहता ही है। अतः यह सूत्र भी सन्धि किये जाने वाले वर्णों की अत्यन्त समीपता में ही लगता है।

इको यणचि से आये हुए **अचि** इस पद को देखकर **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** की प्रवृत्ति **एचोऽयवायावः** में भी होती है। अतः सप्तम्यन्त पद **अचि** से अव्यवहित पूर्व के स्थान पर ही **अय्** आदि आदेश होते हैं।

लघुसिद्धान्तकौमुदी में **एचोऽयवायावः** के चार उदाहरण बताये गये हैं- **हरये, विष्णवे, नायकः, पावकः**। हरे+ ए। विष्णो+ ए। नै+ अकः। पौ+अकः। इस स्थिति में पहले **संहितासंज्ञा** की जाती है और उसके बाद सूत्र लगता है- **एचोऽयवायावः**। हरे+ए में **इको यणचि** यह सूत्र नहीं लग सकता क्योंकि उसके अर्थ के अनुसार पूर्व में इक् और पर में अच् होना चाहिये। यहाँ पर **'हरे+ए'** में पर में अच् तो है किन्तु पूर्व में इक् नहीं है। अतः **इको यणचि** नहीं लग सकता। अब **एचोऽयवायावः को** घटाते हैं। सूत्र का अर्थ हैः- **एच् के स्थान पर अय्, अव्, आय्, आव् ये आदेश**

नियमविधायकं परिभाषासूत्रम्

२३. यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम् १।३।१०॥

समसम्बन्धी विधिर्यथासङ्ख्यं स्यात्।

हरये। विष्णवे। नायकः। पावकः।

....

हों, अच् परे रहने पर। यहाँ **हरे+ए** इस स्थिति में **एच्** है **हरे** का **रे** वाला **ए** और **अच् परे** है केवल **ए**। ऐसी स्थिति में इस सूत्र से **हरे** के **एकार** के स्थान पर **अय्, अव्, आय्, आव्** ये चारों आदेश प्राप्त हो गये। स्थान एक है और आदेश चार प्राप्त हो गये। एक के स्थान पर चार-चार आदेशों की प्राप्ति होना एक अनियम हुआ तो नियमार्थ सूत्र की आवश्यकता पड़ी। अनियम होने पर नियम करने वाले सूत्र को परिभाषा सूत्र कहते हैं। जिस प्रकार से **इको यणचि** के प्रसंग में **स्थानेऽन्तरतमः** यह परिभाषा सूत्र लगता है, उसी प्रकार **एचोऽयवायावः** के प्रसंग में परिभाषा सूत्र लगता है- **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्**। उक्त स्थलों पर **स्थान, अर्थ, गुण, प्रमाण** का विषय न होने के कारण **स्थानेऽन्तरतमः** की प्रवृत्ति नहीं होती है।

२३- **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्**। सङ्ख्याम् अनतिक्रम्य यथासंख्यं, यथासङ्ख्यं प्रथमान्तम्, अनुदेशः प्रथमान्तं, समानां षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

बराबर संख्या वाली विधि क्रम से होती है।

यह परिभाषासूत्र है। अनियम होने पर नियम करने वाले सूत्रों को परिभाषा सूत्र कहते हैं। **स्थानी** और **आदेश** या **स्थानी** और **निमित्त** अथवा **आदेश** और **निमित्त** ये भी बराबर संख्या में हो तो वहाँ पर इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है। तात्पर्य है कि **स्थानी** और **आदेश** आदि की संख्या **समान** हों तो **स्थानियों** को एक जगह क्रम से रखा जाय और उन्हें क्रमशः **प्रथम, द्वितीय, तृतीय** और **चतुर्थ** के रूप में माना जाय तथा आदेश आदि को भी एक जगह क्रमशः रखकर उन्हें भी क्रमशः **प्रथम, द्वितीय, तृतीय** और **चतुर्थ** के रूप में माना जाय। अब **स्थानियों** में जो **प्रथम** हो उसके स्थान पर **आदेशों** में जो प्रथम हो वह आदेश हो जाय। इसी प्रकार **स्थानियों** में **द्वितीय** के स्थान पर **द्वितीय आदेश** हो जाय, **तृतीय स्थानी** के स्थान पर **तृतीय आदेश** और **चतुर्थ स्थानी** के स्थान पर **चतुर्थ आदेश** हो जाय। **ए, ओ, ऐ, औ** इन स्थानियों में से **ए** यह **प्रथम स्थानी** है, **ओ** यह **द्वितीय** है, **ऐ** यह **तृतीय** है और **औ** यह **चतुर्थ** है। इसी प्रकार आदेशों में **अय्** यह **प्रथम** है, **अव्** यह **द्वितीय** एवं **आय्** यह **तृतीय** है और **आय्** यह **चतुर्थ** आदेश है। इस प्रकार से स्थानी **ए** के स्थान पर आदेश **अय्**, स्थानी **ओ** के स्थान पर आदेश **अव्**, स्थानी **ऐ** के स्थान पर आदेश **आय्** और स्थानी **औ** के आदेश **आव्** आदेश होंगे।

इस प्रकार से **हरे+ए** में स्थानी **ए** है और वह **पहला** है, अतः **आदेश** में पहला **अय्** आदेश हो जायेगा। **एकार** को हटाकर **अय्** आदेश बैठेगा तो **हर् अय् ए** हो जायेगा। अच् से हीन वर्ण अकेले नहीं बैठते, उन्हें सहारे की जरूरत पड़ती है। वे अपने से पर वर्ण से मिलकर बैठते हैं। **हर्** वाला **र्** अगले वर्ण **अय्** वाले **अकार** से मिला तो **र्+अ=र** बना और **अय्** वाला **य्** अगले वर्ण **ए** से मिलेगा तो **य्+ए=ये** बना। इस प्रकार से सारे मिलकर बना- **हरये**।

साधने की संक्षिप्त विधिः-

हरये। हरि के लिए। **हरे+ए** इस स्थिति में पहले संहितासंज्ञा हो गई और सूत्र लगा **एचोऽयवायावः**। सूत्र का अर्थ है- **एच् के स्थान पर अय्, अव्, आय्, आव् ये आदेश हों अच् परे रहने पर।** **एच्** है **हरे** का **एकार** और अच् परे है **ए,** तो **हरे** के **एकार** के स्थान पर **अय्, अव्, आय्, आव्** ये चारों आदेश प्राप्त हो गये। एक के स्थान पर चार-चार प्राप्त हुए तो अनियम हुआ और नियमार्थ परिभाषासूत्र लगा- **''यथासंख्यमनुदेशः समानाम्''** सम संख्या की विधि क्रम से होती है। यहाँ पर समसंख्या है स्थानियों में **ए, ओ, ऐ, औ** ये चार और आदेशों में **अय्, अव्, आय्, आव्** ये चार हैं। जब क्रम से होंगे तो स्थानियों में **पहले** के स्थान पर **पहला** आदेश, **दूसरे** के स्थान पर **दूसरा** आदेश, **तृतीय** के स्थान पर **तृतीय** आदेश और **चतुर्थ** के स्थान पर **चतुर्थ** आदेश होंगे। यहाँ पर स्थानी में प्रथम **हरे** के **एकार** के स्थान पर आदेश में प्रथम **अय्** आदेश हुआ। इस प्रकार **हर्+अय्+ए** बना और वर्णसम्मेलन हुआ तो **हरये** सिद्ध हुआ।

विष्णवे। विष्णु के लिए। **विष्णो+ए** में पहले संहितासंज्ञा हो गई और सूत्र लगा **एचोऽयवायावः**। सूत्र का अर्थ है- **एच् के स्थान पर अय्, अव्, आय्, आव् ये आदेश हों अच् परे रहने पर।** **एच्** है **विष्णो** का **ओकार** और अच् परे है **ओ,** तो **विष्णो** के **ओकार** के स्थान पर **अय्, अव्, आय्, आव्** ये चारों आदेश प्राप्त हो गये। एक के स्थान पर चार-चार प्राप्त हुए तो अनियम हुआ और नियमार्थ परिभाषासूत्र लगा- **''यथासंख्यमनुदेशः समानाम्''** सम संख्या की विधि क्रम से होती है। यहाँ पर समसंख्या है स्थानियों में **ए, ओ, ऐ, औ** ये चार और आदेशों में **अय्, अव्, आय्, आव्** ये चार हैं। जब क्रम से होंगे तो स्थानियों में **पहले** के स्थान पर **पहला** आदेश, **दूसरे** के स्थान पर **दूसरा** आदेश, **तृतीय** के स्थान पर **तृतीय** आदेश और **चतुर्थ** के स्थान पर **चतुर्थ** आदेश होंगे। यहाँ पर स्थानी में द्वितीय **विष्णो** के **ओकार** के स्थान पर आदेश में द्वितीय **अव्** आदेश हुआ। इस प्रकार **विष्ण्+अव्+ओ** बना और वर्णसम्मेलन हुआ तो **विष्णवे** सिद्ध हुआ।

नायकः। नायक, नेता। **नै+अकः** इस स्थिति में पूर्व में **एच्** है **नै** का **ऐकार** और पर में अच् है **अकः** का **अकार**। अतः **एचोऽयवायावः** से **अय्, अव्, आय्, आव्,** ये चारों आदेश प्राप्त हुए तो **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** के नियम से स्थानी में तीसरे **नै** के **ऐकार** के स्थान पर आदेश में तीसरा **आय्** आदेश हुआ- **न्+आय्+अकः** बना। वर्णसम्मेलन होकर **नायकः** सिद्ध हुआ।

पावकः। पवित्र करने वाला, अग्नि। **पौ+अकः** इस स्थिति में पूर्व में **एच्** है **पौ** का **औकार** और पर में अच् है **अकः** का **अकार**। अतः **एचोऽयवायावः** से **अय्, अव्, आय्, आव्,** ये चारों आदेश प्राप्त हुए तो **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** के नियम से स्थानी में चौथे **पौ** के **औकार** के स्थान पर आदेश में चौथा **आय्** आदेश हुआ- **प्+आव्+अकः** बना। वर्णसम्मेलन होकर **पावकः** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार आप **सिद्धे+ए=सिद्धये, गुरो+अः=गुरवः, विद्यायै+आगमनम्=विद्यायागमनम्** और **रामौ+आगच्छतः=रामावागच्छतः** जैसे रूप भी आप बनाने का प्रयत्न करें।

हरये। विष्णवे। नायकः। पावकः। हरि और विष्णु शब्दों की चतुर्थी में **हरये** और **विष्णवे** ये रूप बनते हैं। **नमः** आदि पदों के योग में चतुर्थी की सम्भावना होती है। **हरये नमः, विष्णवे नमः।** हरि और विष्णु को प्रणाम है। हमारे द्वारा प्रणम्य हरि का क्या

अवावादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२४. वान्तो यि प्रत्यये ६।१।७९।।

यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव्आव् एतौ स्तः। गव्यम्। नाव्यम्।
वार्तिकम्- **अध्वपरिमाणे च।** गव्यूतिः।

....

स्वरूप है? **नायकः**। वह सब को अपनी ओर ले जाता है, मुक्ति देता है और स्वयं में **पावकः** अर्थात् पवित्र है और अग्नि की तरह सवको पवित्र करने की क्षमता रखता है। उसमें समाहित हो जाने पर या उसकी शरणागति कर लेने पर मनुष्यों के जन्म-जन्मान्तरों के कर्म स्वाहा हो जाते हैं।

अभ्यासः

(क) निम्नलिखित शब्दों में सन्धि कीजिए-

करौ+एतौ। नरौ+उदारौ। गै+अति। मनो+ए। रै+अकः। वागर्थौ+इव। नौ+इकः। भो+अति। शे+अयनम्। पो+अनः। कवे+ए। गोपालौ+आयातः। प्रजापतये+इदम्। बालौ+अत्र। चोरे+अति। इन्दौ+उदिते। तौ+एकदा।

(ख) निम्नलिखित शब्दों की सन्धिविच्छेद कर पुनः सूत्र लगाकर सन्धि कीजिए-

गुरवे। विष्णवे। चायकः। अग्वाविह। चयः। जयः। नाविकः। प्रस्तावकः। कवये। पूजार्हावरिसूदनः। बालावोजस्विनौ। तस्मायेतत्।

२४- **वान्तो यि प्रत्यये**। व् अन्ते अस्ति यस्य स वान्तः, वान्तः प्रथमान्तं, यि सप्तम्यन्तं, प्रत्यये सप्तम्यन्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्।

यकार आदि में हो ऐसे प्रत्यय के परे होने पर ओ और औ के स्थान पर अव् और आव् आदेश हों।

यह सूत्र **एचोऽयवायावः** का समानान्तर सूत्र है। यह केवल **अव्** और **आव्** आदेश करता है और वह **अय्, अव्, आय्, आव्** आदेश करता है। वह **अच्** के परे रहने पर ही कार्य करता है तो यह **य्** आदि में हो ऐसे **प्रत्यय** के परे रहने पर ही लगता है। वह अच् प्रत्याहार के परे रहने की अपेक्षा रखता है और यह प्रत्यय की अपेक्षा रखता है। **एचोऽयवायावः** ये परस्पर बाध्य-बाध्यक सूत्र नहीं हैं अर्थात् **एचोऽयवायावः** सूत्र का बाधक यह सूत्र नहीं होता क्योंकि बाध्यबाधकभाव वहाँ होता है जहाँ दोनों सूत्रों की प्रवृत्ति में निमित्त एक जैसे हों। ये दोनों भिन्न-भिन्न निमित्त को मानकर के कार्य करते हैं। अतः ये दोनों समानान्तर सूत्र हैं। अष्टाध्यायी के क्रम में **एचोऽयवायावः** के बाद **वान्तो यि प्रत्यये** यह सूत्र आता है। अतः इस सूत्र में **'वान्त'** शब्द से **एचोऽयवायावः** में पठित द्वितीय एवं चतुर्थ वकारान्त **अव्** एवं **आव्** आदेश ही लिए गये।

इस सूत्र में भी **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** की आवश्यकता पड़ती है। इससे स्थानी में प्रथम **ओ** के स्थान पर आदेश में प्रथम **अव्** और स्थानी में द्वितीय **औ** के स्थान पर आदेश में द्वितीय **आव्** आदेश हो जाता है।

इस सूत्र के उदाहरण हैं- **गव्यम्, नाव्यम्**। इनकी स्थिति है- **गो+यम् गव्यम्। नौ+यम् नाव्यम्।** यहाँ पर **गो** और **नौ** ये दोनों क्रमशः **ओकारान्त** और **औकारान्त** शब्द हैं। **यम्** यह तद्धित-प्रकरण का प्रत्यय है। **यम्** में **य्+अ+म्=यम्** ये

गुणसंज्ञाविधायकं सञ्ज्ञासूत्रम्

२५. अदेङ् गुणः।१।१।२।।

अत् एङ् च गुणसञ्ज्ञः स्यात्।

नियमसूत्रम्

२६. तपरस्तत्कालस्य १।१।७०।।

तः परो यस्मात् स च तात्परश्चोच्चार्यमाणसमकालस्यैव सञ्ज्ञा स्यात्।

....

तीन अक्षर हैं और आदि अर्थात् पहला अक्षर **य्** अर्थात् **यकार** है। अतः **यम्** यकारादि प्रत्यय हुआ। इस सूत्र में स्थानी भी दो हैं और आदेश भी दो हैं। स्थानी हैं- **ओ** और **औ** तथा आदेश हैं- **अव्** और **आव्**। यहाँ पर भी समसम्बन्धी विधि है, क्योंकि स्थानी भी दो हैं और आदेश भी दो हैं। जब जब भी स्थानी, आदेश आदि समान संख्या में हों- वहाँ पर **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** सूत्र के बल पर क्रमशः विधान होता है अर्थात् जिस क्रम से स्थानी उच्चारित हों उसी क्रम से आदेश भी होंगे।

अब यहाँ **ओ** और **औ** इन दोनों स्थानियों में **ओ पहला** है और **औ दूसरा** है। इसी प्रकार **अव्** एवं **आव्** आदेशों में **अव् पहला** है और **आव् दूसरा** है। पूर्वोक्त नियम के अनुसार स्थानी में पहले **ओ** के स्थान पर आदेश में पहला **अव्** आदेश और स्थानी में दूसरे **औ** के स्थान पर आदेश में दूसरा **आव्** आदेश होंगे।

गव्यम्। गाय का विकार दूध, दही, घी, गोमूत्र, गोबर। **गो+यम्** यह स्थिति है। **गो के ओकार** के स्थान पर **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** की सहायता से **वान्तो यि प्रत्यये** से **अव्** आदेश होने पर **ग्+अव्+यम्** हुआ। वर्णसम्मेलन होकर **गव्यम्** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार **नौ+यम्** में **आव्** आदेश होकर **न्+आव्+यम्** और वर्णसम्मेलन- होकर **नाव्यम्** सिद्ध हुआ।

गव्यम्। नाव्यम्। गो शब्द से विकार अर्थ में यत् प्रत्यय होकर **गव्यम्** और नौ शब्द से तारने योग्य अर्थ में यत् प्रत्यय होकर **नाव्यम्** बना है। गौ का विकार दूध, दही, घी, गोमूत्र, गोबर आदि गव्य कहलाता है और वह गौ का विकार होते हुए भी **पावकः** है अर्थात् अतिपवित्र है। उसे बेकार फेंकना नहीं चाहिए अपितु नदी आदि में नौका आदि के द्वारा गोबर आदि तार्य अर्थात् खेत आदि में पहुँचाना चाहिए। दूर-दूर तक इस **गव्य** का वितरण होना चाहिए जिससे प्राणियों का भी पोषण होगा और खेत में उर्वरकता भी बढ़ेगी।

२५- अदेङ् गुणः। अत् च एङ् च अदेङ्, अदेङ् प्रथमान्तं, गुणः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

ह्रस्व अकार और एङ् ये गुणसंज्ञक होते हैं।

अर्थात् **अ, ए, ओ** इन वर्णों की गुणसंज्ञा होती है।

२६- तपरस्तत्कालस्य। तात्परः तपरः, तः परो यस्माद् वा तपरः, पञ्चमीतत्पुरुष और बहुव्रीहिः। इस तरह दोनों समास यहाँ पर माने गये हैं। तस्य कालस्तत्कालः(तस्य काल इव कालो यस्य स तत्कालः) षष्ठीतत्पुरुषगर्भो बहुव्रीहिः। तस्य तत्कालस्य। तपरः प्रथमान्तं, तत्कालस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

तकार पर है जिससे वह और तकार से परे जो है वह भी (अण्) समकाल का ही बोधक होता है।

अर्थात् एक मात्रिक के साथ तपर है तो एक मात्रा का ही बोध और द्विमात्रिक के साथ तपर किया गया है तो द्विमात्रिक का ही बोध होना चाहिए। यह सूत्र **अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः** का बाधक है।

सूत्र में पठित **तपरः** शब्द का अर्थ समझना जरूरी है। **तः** और **परः** में समास होकर **तपरः** बना है। इसमें तत्पुरुष और बहुव्रीहि समास के बल पर दो अर्थ हो सकते हैं- पहला- **तकार से परे** और दूसरा **तकार जिससे परे है, वह वर्ण**। जैसा कि इसी सूत्र में ही देखा जाय- **अत् एङ्**। यहाँ पर **अत्** का **तकार** है। पहले अर्थ के अनुसार **तकार से परे एङ्** है और दूसरे अर्थ के अनुसार **तकार जिससे परे है वह वर्ण है अकार**। अब **तपरः** अर्थ समझने के बाद इस सूत्र के कार्य को समझें। जिस अच् वर्ण के साथ "**त्**" लगाकर उच्चारण किया जाता है उस वर्ण से सवर्ण का ग्रहण नहीं होता है। जैसे सवर्णसंज्ञा के हो जाने से **अणुदित् सवर्णस्य चाप्रत्ययः** के द्वारा '**अ**' से उसके सभी भेद **ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, अनुनासिक, अननुनासिक** आदि अठारह ही प्रकार का **अकार** लिया जाता है, वैसे **तपरग्रहण** के बाद नहीं लिया जायेगा क्योंकि ह्रस्व अवर्ण के साथ **तपर** उच्चारण है। जैसे '**अत्**' इससे ह्रस्व अवर्ण ही गृहीत होगा, दीर्घ **आवर्ण** नहीं। '**आत्**' इस तपर **आवर्ण** से **आकार** का ही बोध होता है, **अवर्ण** का नहीं क्योंकि **आ** यह अण् नहीं है, अतः **अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः** के अनुसार **आ** यह वर्ण **अ** का ग्रहण नहीं कर रहा क्योंकि अण् या उदित् ही अपने सवर्णियों के ग्राहक होते हैं। **तपरकरण** अर्थात् '**त्**' को पर रख कर उच्चारण किये जाने वाले वर्ण से सवर्ण का ग्रहण नहीं होता है। अतः **अदेङ्** में **अत्** से **ह्रस्व अकार** का ही ग्रहण होगा और तकार से परे **एङ्** से **दीर्घ एकार, ओकार** का ही ग्रहण होता है। यह तपर-ग्रहण केवल **ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत** मात्राओं के लिए नियम करता है। **उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, अनुनासिक, अननुनासिक** के सम्बन्ध में यह नियम नहीं लगता, क्योंकि तपर-ग्रहण का नियम बनाने वाला **तपरस्तत्कालस्य** यह सूत्र "**तत्काल**" अर्थात् केवल काल के विषय को लेकर ही कथन करता है। काल तो एकमात्रिक उच्चारण काल, द्विमात्रिक उच्चारण काल एवं त्रिमात्रिक उच्चारण काल, अर्थात् ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, से सम्बन्धित है, उदात्त, अनुदात्त आदि से नहीं, क्योंकि उदात्त आदि के भेद होने पर उच्चारण के समय में भिन्नता नहीं होती है।

अब यह स्पष्ट हो गया है कि सर्वत्र वर्ण अपने सवर्णो के ग्राहक होते हैं किन्तु **तपर** ग्रहण होने पर सवर्ण का ग्रहण नहीं किया जाएगा। **अदेङ् गुणः** इस सूत्र में "**अत्**" पढ़ा गया है, इससे केवल "**अ**" का ही ग्रहण होगा। अतः ह्रस्व **अ, एङ्**, प्रत्याहार अर्थात् **ए, ओ** की गुणसंज्ञा इस सूत्र से की जाती है। **गुण** एक संज्ञा है, **संज्ञा से संज्ञी** का बोध होता है। संज्ञी हुए **अ, ए, ओ**। अब व्याकरण में जहाँ भी "**गुण**" शब्द का उच्चारण होगा, उससे '**अ, ए, ओ**' का ही बोध किया जायेगा अर्थात् **गुण** के विधान से **अ, ए, ओ** का विधान समझा जायेगा।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

२७. आद्गुणः ६।१।८७॥

अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेशः स्यात्।
उपेन्द्रः। गङ्गोदकम्।

....

२७- आद्गुणः। आत् पञ्चम्यन्तं, गुणः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **इको यणचि** से **अचि** की अनुवृत्ति आती है और तथा **एकः पूर्वपरयोः** का अधिकार है।

अवर्ण से अच् परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर गुणसंज्ञक एक आदेश होता है।

अवर्ण से **अच्** प्रत्याहार के वर्ण परे हों तो पूर्व और पर के दोनों वर्ण (पूर्व का अन्त वर्ण और पर का आदि वर्ण) के स्थान पर गुण अर्थात् **'अ, ए, ओ'** इन तीन वर्णों में से एक वर्ण आदेश के रूप में हो जाय। इस सूत्र में **आत् (आद्)** यह तपरग्रहण नहीं है किन्तु **आत्** यह रूप **अ** शब्द के पञ्चमी का एकवचन है। जैसे- रामात् रामाद्। अतः **''आत्''** से केवल **'आ'** का ही बोध नहीं होगा, अपितु **अ** के सारे अठारहों भेद के साथ अवर्ण उपस्थित होगा। पूर्व में **अ, आ** और पर में अच्प्रत्याहार एवं उसके सारे भेद वाले वर्ण हों तो इन दोनों वर्णो के स्थान पर (इनको हटाकर) **'अ, ए, ओ'** में से एक वर्ण आदेश के रूप में प्राप्त होगा।

इस सूत्र का कार्य है गुण-आदेश करना तथा इसका कार्यक्षेत्र है- पूर्व में अ, आ, और पर में **अच्** प्रत्याहार अर्थात् **अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ**। यह सूत्र किसी का **समानान्तर** नहीं है। जहाँ यह सूत्र लगता है वहाँ **इको यणचि, एचो यवायावः** और **वान्तो यि प्रत्यये** इन सूत्रों की प्रवृत्ति ही नहीं है। इसलिए इन सूत्रों का **आद्गुणः** यह सूत्र बाधक भी नहीं है। अवर्ण से अवर्ण ही परे हो तो **''अकः सवर्णे दीर्घः''** यह सूत्र इस सूत्र का बाधक हो जाता है और **अवर्ण** से **'ए, ओ, ऐ, औ'** के परे रहने पर **''वृद्धिरेचि''** से यह सूत्र बाधित हो जाता है। फलतः **अवर्ण** से **इकार, उकार, ऋकार** तथा **ऌकार** के परे रहने पर ही गुण हो पाता है।

इस सूत्र के लगने के बाद एक अनियम की स्थिति यह बनती है कि पूर्व और पर में दो ही वर्ण होते हैं और दोनों वर्णों के स्थान पर एक वर्ण आदेश के रूप में होना चाहिए किन्तु **'अ, ए, ओ'** इन तीनों वर्णो की प्राप्ति हो रही है। इस अनियम को दूर करने के लिए **''स्थानेऽन्तरतमः''** इस परिभाषासूत्र की आवश्यकता होती है। इसके द्वारा स्थान साम्यता अर्थात् स्थानी और आदेश में स्थान को लेकर तुल्यता देखी जाती है। स्थान से तुल्यता होने पर वही वर्ण आदेश के रूप में हो जाता है जो दोनों का एक ही स्थान हो। जैसे- **उपेन्द्रः। 'उप+इन्द्रः'** में **''आद्गुणः''** लगा। **अवर्ण** है **उप** में **प्** के बाद वाला **अ** और अच् परे है **इन्द्रः** में आदि **इवर्ण**। पूर्व में **अ** है और पर में **इ** है। इन दोनों के स्थान पर गुण शब्द के द्वारा गृहीत होने वाले **अ, ए, ओ** ये तीनों वर्ण उपस्थित हो गये। **अ** और **इ** इन दोनों के स्थान पर सूत्र के अनुसार एक ही आदेश **अ, ए, ओ** में से किसी एक ही वर्ण हो जाना चाहिए, किन्तु तीनों में से कौन सा वर्ण आदेश के रूप में हो? यह निश्चित नहीं हो पाया। दो के स्थान पर तीन-तीन वर्णों की प्राप्ति होना अनियम हुआ तो नियम करने के लिए सूत्र लगा **स्थानेऽन्तरतमः**। प्रसङ्ग रहने पर स्थान, अर्थ, गुण, प्रमाण से तुल्यतम

आदेश होता है। प्रसंग है दो वर्णों के स्थान पर तीन वर्णों की प्राप्ति और तीन में से ए
आदेश होना है। स्थान से तुल्यता मिलाने पर **अ** का **कण्ठस्थान** और **इ** का **तालुस्था**
दोनों का मिलाकर **कण्ठतालु** स्थान हुआ अर्थात् स्थानी **कण्ठतालु** स्थान वाले हैं। अ
खोजा जाय कि **'अ, ए, ओ'** इन आदेशों में कण्ठतालु स्थान वाला वर्ण कौन है? **''एदैत्**
कण्ठतालु'' ए, और ऐ का कण्ठतालु स्थान है। अतः **'अ, ए, ओ'** में **'ए'** वर्ण कण्ठत
स्थान वाला है और आदेश में **कण्ठतालु** स्थान वाला **'ए'** है। फलतः **कण्ठतालु** स्थ
वाले स्थानी **अ** एवं **इ** इनके स्थान पर **कण्ठतालु** स्थान वाला ही **ए** आदेश हो ग
उप+इन्द्रः था। **उप** के **अकार** एवं **इन्द्रः** के **इकार** के स्थान पर **ए** हो गया। इस त
उप्+ए+न्द्रः बना। वर्ण सम्मेलन होने पर **प्** जाकर **ए** से मिला- **उपेन्द्रः** सिद्ध हुआ। उपे
का अर्थ= **वामन** आदि रूप धारण करने वाले **भगवान् विष्णु।**

गङ्गोदकम्। गंगा का जल। **गङ्गा+उदकम्** यह स्थिति है। **गङ्गा** में **अवर्ण** है
और **अच्** परे है **उदकम्** का **उकार**। यहाँ पर **पूर्व** में है **आ** और **पर** में है **उ**। इस त
आ एवं **उ** इन दोनों वर्णों के स्थान पर गुणसंज्ञक **अ, ए, ओ** ये तीनों प्राप्त हुए
स्थानेऽन्तरतमः इस सूत्र के सहयोग से **ओकार** एक आदेश हुआ क्योंकि स्थान से **तुल्**
मिलाने पर **आकार** का **कण्ठस्थान** और **उकार** का **ओष्ठस्थान** है अर्थात् **स्थानी**
स्थान है- **कण्ठ-ओष्ठ**। आदेश में **कण्ठ-ओष्ठ** स्थान वाला गुणसंज्ञकवर्ण है **ओ**। अ
कण्ठ-ओष्ठ स्थान वाले **अकार** एवं **उकार** के स्थान पर **कण्ठ-ओष्ठ** स्थान वाला **गुणसं**
वर्ण **ओकार** ही एक आदेश के रूप में हो गया- **गङ्ग्+ओ+दकम्** बना। वर्णसम्मेलन होने
क्रमशः ङ्ग् जाकर **ओकार** में मिले तो **गङ्गोदकम्** बना। इसी तरह **देव+इन्द्रः=देवे**
महा+ईशः=महेशः, यमुना+उदकम्=यमुनोदकम् आदि बनाने का प्रयत्न करें।

उपेन्द्रः। **गङ्गोदकम्** इन प्रयोगों की संगति **वान्तो यि प्रत्यये** के उदाहरण **नाव**
(नौका के द्वारा तारने योग्य) से इस तरह जुड़ सकता है कि हम सब उस **उपेन्द्र** अ
भगवान विष्णु के द्वारा इस भवसागर से पार ले जाने योग्य हैं, अर्थात् भवसागर से पार
के लिए विष्णु की उपासना करनी चाहिए। वह इतना सरल है कि इन्द्र का छोटा अ
होकर भी जन्म ग्रहण करता है और गङ्गा का जल भी उसी के चरणों से प्रवाहित हो
आता है, जो सबको पवित्र करता है।

अभ्यासः

(क) निम्नलिखित प्रयोगों की सिद्धि करें-
महा+उत्सवः। हित+उपदेशः। सूर्य+उदयः। गण+उत्तमः। तथा+इति। यथा+इच
यज्ञ+उपवीतम्। दया+उदयः। उमा+ईशः। गज+इन्द्रः। महा+ऊर्मिः।

(ख) निम्नलिखित प्रयोगों में सन्धिविच्छेद पूर्वक सूत्र लगाकर सन्धि करें:-
भारतेतिहासः। स्वच्छोदकम्। उमेशः। तवोत्साहः। निम्नोर्ध्वम्। नोपलब्धिः। महे
उष्णोदकम्। तवेह। गणेशः। परमेश्वरः। गुणोपेतम्। रामेति। चेति। परमोत्कृ

(ग) **आद्गुणः** की वृत्ति में **अचि** यह पद किस सूत्र से अनुवृत्त हुआ?

(घ) **आद्गुणः** में कितने पद हैं और कौन-कौन सी उसमें विभक्तियाँ लगी है

(ङ) तपरकरण करने से क्या होता है?

(च) किस अवस्था में यह सूत्र **अकः सवर्णे दीर्घः** को बाधता है?

(छ) इस सूत्र के द्वारा किये गये कार्य को क्या कहते हैं?

इत्संज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

२८. उपदेशेऽजनुनासिक इत् १।३।२॥

उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्संज्ञः स्यात्। प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः। लण्सूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा।

....

२८- उपदेशेऽजनुनासिक इत्। उपदेशे सप्तम्यन्तम्, अच् प्रथमान्तम्, अनुनासिकः प्रथमान्तम्, इत् प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

उपदेश अवस्था में अनुनासिक अच् इत्संज्ञक होता है।

हलन्त्यम् सूत्र **अन्त्य में स्थित हल्** की **इत्संज्ञा** करता है और यह सूत्र **अच्** की इत्संज्ञा करता है, वह **अच्** चाहे **आदि में हो** या **अन्त में**। इस तरह **हलन्त्यम्** औ।र **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** इन सूत्रों की तुलना की जाती है।

प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः। यह वाक्य कौमुदीकार का है अर्थात् सूत्र या वार्तिक नहीं है। वे कहते हैं कि **पाणिनि के अनुनासिक वर्ण उनके व्यवहार से पहचाने जाते हैं।**

उपदेशेऽजनुनासिक इत् यह सूत्र **अनुनासिक अच्** की अपेक्षा करता है। **अनुनासिक** कहीं तो स्पष्ट परिलक्षित होते हैं और कहीं उनको अनुनासिक मान लिया जाता है। हलों में **ङ्, ञ्, ण्, न्, म्** ये सदा **अनुनासिक** हैं और **य्, व्, ल्** ये एक पक्ष में **अनुनासिक** और एक पक्ष में **अननुनासिक** हैं। शेष हल् वर्ण अनुनासिक होते ही नहीं किन्तु **अच्** सारे के सारे **अनुनासिक** भी हैं और **अननुनासिक** भी, जैसा कि **सञ्ज्ञाप्रकरण** में स्पष्ट किया गया। अचों में अनुनासिक के लिए कोई चिह्न भी नहीं होता तथा अनुनासिक की तरह अर्थात् **मुख सहित नासिका** से उच्चारण भी नहीं होता है। ऐसे में प्रारम्भिक छात्र या अध्येता को अनुनासिक के रूप में निर्णय करने में जरूर परेशानी होती है किन्तु बाद में यह बात समझ में आ जाती है कि इस **अच्** को पाणिनि जी ने **अनुनासिक** माना है या नहीं। जैसे **भू सत्तायाम्** धातु में **भू** में **ऊ** की इत्संज्ञा इसलिए नहीं हुई कि यहाँ **पाणिनि** जी ने इसमें अनुनासिक व्यवहार नहीं किया है और **एध वृद्धौ** इस धातु में **अनुनासिक** का स्पष्ट निर्देश न होते हुए भी **पाणिनि जी** के व्यवहार से **अनुनासिक** मानकर धकारोत्तरवर्ती **अकार** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा हो जाती है। अतः मूल में कहा गया- **प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः**। अर्थात् पाणिनीय व्याकरण में अनुनासिक को पाणिनि के व्यवहार को देखते हुए जाना जाता है। इसका निर्णय पढ़ते-पढ़ते छात्र अनुभव के आधार पर कर लेता है।

लण्सूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा। आपको याद होगा कि संज्ञाप्रकरण के प्रारम्भ में **लणमध्ये त्वित्संज्ञकः** कहा गया था। उसका तात्पर्य यह है कि **लण् में लकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा करके र प्रत्याहार बनाया जाता है।** इसी बात को यहाँ पर स्पष्ट किया है कि **लण् सूत्र में पठित अकार के साथ उच्चारित रेफ जो है वह र् और ल् इन दोनों वर्णों का बोध कराता है।**

ऋ एवं **ऌ** वर्णों के स्थान पर यदि कोई **अण्** अर्थात् **अ इ उ** इन वर्णों में से कोई वर्ण आदेश के रूप में उपस्थित होता है तो वह आदेश **र्** और **ल्** वर्ण को साथ में

रपरविधायकं विधिसूत्रम्

२९.　उरण् रपरः १।१।५१॥

ऋ इति त्रिंशतः संज्ञेत्युक्तम्।

तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्तते। कृष्णर्द्धिः। तवल्कारः।

....

लेकर उपस्थित हो, यह विधान करता है। ''र'' एक प्रत्याहार है, जिसकी सिद्धि प्रदर्शित है।

रप्रत्याहार की सिद्धिः- र-प्रत्याहार की सिद्धि में स्थिति है **हयवरट्** के **र्** से **लण्** का मध्यवर्ती **अ** अर्थात् र्-अ, ऐसी स्थिति में लकारोत्तरवर्ती **अकार** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा हो जाती है और उसका **तस्य लोपः** से लोप प्राप्त होता है किन्तु उससे पहल सूत्र लगा- **आदिरन्त्येन सहेता।** अन्त्य इत्संज्ञक वर्ण के साथ पठित आदि वर्ण है **र्**, क्योंकि अन्त्य इत्संज्ञक वर्ण है **अ**। उसके साथ में पठित आदि वर्ण हुआ- **र्**, वह मध्यवर्ती वर्णों का बोध कराता हुआ अपना भी बोधक होता है। **र्** और **अ** के बीच में मध्यवर्ती वर्ण है **ल्**। इस तरह र्+अ=र कहने से मध्यवर्ती वर्ण **ल्** सहित आदि वर्ण **र्** अर्थात् **र्** और **ल्** का बोध हुआ। उसके बाद इत्संज्ञक अकार का **तस्य लोपः** से लोप हुआ। इस तरह से **र** प्रत्याहार की सिद्धि हुई अर्थात् **र** को प्रत्याहार के रूप में मानने पर **र्, ल्** इन दोनों वर्णों को लिया जायेगा। **र** को **पर** में लेना अर्थात् **र्, ल्** के अपने साथ पर में ग्रहण करना। आगे जहाँ भी **रपर** होगा, उससे यही समझा जायेगा कि **रेफ** और **लकार** को **पर** में लेना है। वैसे **रपर** का विधान करने वाला एक ही सूत्र **उरण् रपरः** ही है।

२९- उरण् रपरः। रः परो यस्य स रपरः। उः षष्ठ्यन्तम् , अण् प्रथमान्तं, रपरः प्रथमांन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। ऋकार से तीस प्रकार ऋ का बोध होता है, ऐसा संज्ञाप्रकरण में कहा जा चुका है।

उस तीस प्रकार के ऋकार के स्थान पर प्राप्त अण् रपर होकर अर्थात् र् और ल् को पर में लेकर ही प्रवृत्त होता है।

ऋ और ऌ वर्णों के स्थान पर यदि **अण्** प्रत्यहार वाला वर्ण आदेश के रूप में प्राप्त हो जाय तो वह **अण् रूप आदेश** साथ में **र्** या **ल्** को साथ में (पर में) लेकर ही कहीं प्रवृत्त होगा। **अ** प्राप्त हुआ तो **अर्, अल्** तथा **इ** प्राप्त हुआ तो **इर्, इल्**, इसी तरह **उ** प्राप्त हुआ तो **उर्, उल्** बनेंगे। इसी तरह सर्वत्र समझना चाहिए। गुणविधि में यदि स्थानी **ऋ** है तो आदेश **अर्** होगा, क्योंकि **ऋकार** का **रेफ** के साथ **स्थान से साम्यता** है। इसी तरह **ऌकार** के स्थान पर अकार के प्राप्त होने पर **अल्** होगा, क्योंकि वहाँ पर भी **ऌ** का **अल्** के साथ स्थान साम्यता है। जैसे- **कृष्ण+ऋद्धिः=कृष्णर्द्धिः। तव+ऌकारः=तवल्कारः।**

कृष्णर्द्धिः। कृष्ण की समृद्धि। **कृष्ण+ऋद्धिः** ऐसी स्थिति में **परः सन्निकर्षः संहिता** से **संहितासंज्ञा** होने के बाद सूत्र लगा- **आद्गुणः।** अवर्ण से अच् परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर गुणसंज्ञक एक आदेश होता है। **अवर्ण** है **कृष्ण** में **ण्** के बाद वाला अकार और **अच् परे** है- **ऋद्धिः** में आदि वर्ण **ऋकार।** यहाँ पर **पूर्व** में है **अ** और **पर** में है **ऋ।** अब इन दोनों के स्थान पर **गुण** अर्थात् **अ, ए, ओ** ये तीनों आदेश प्राप्त हुए। **स्थानेऽन्तरतमः** की सहायता से स्थानी और आदेश में **स्थान** को माध्यम बना कर तुल्यता

की जाती है। **अकार** का **कण्ठस्थान** व **ऋकार** का **मूर्धास्थान** है। **कण्ठमूर्धास्थान** वाला वर्ण गुणसंज्ञक **अ, ए, ओ** में नहीं है किन्तु केवल **कण्ठस्थान** वाला वर्ण **अ** मिलता है तो यत्किञ्चित् तुल्यता लेकर आदेश के रूप में **अ** इस गुणसंज्ञक वर्ण की प्राप्ति हुई। उस अवस्था में **उरण् रपरः** पहुँच कर रपर होने का नियम बना दिया, क्योंकि **अवर्ण** रूप गुण **ऋ** वर्ण के स्थान पर प्राप्त हो रहा था सो **अवर्ण** जो है वह **रपर** होकर प्रवृत्त होगा। र-प्रत्याहार अर्थात् र् और ल् वर्णों को साथ में लेकर अवर्ण **अर्** एवं **अल्** के रूप में प्रवृत्त होगा। **अर्-अल्** में **कण्ठ-मूर्धा स्थान** वाले वर्ण हैं **अर्**। अतः **कृष्ण** में **अकार** और **ऋद्धिः** में **ऋकार** के स्थान पर **अर्** आदेश हो जाता है। इस तरह **कृष्ण्+अर्+द्धिः** बन गया। वर्णसम्मेलन होने पर **ष्ण्** जाकर **अर्** में मिलता है- **कृष्णर्द्धिः** बन गया। रेफ का स्वभाव ऊपर बैठने का होता है, सो द्धिः के ऊपर बैठ गया- **कृष्णर्द्धिः** सिद्ध हुआ।

रेफ अर्थात् **र्** इस वर्ण के सम्बन्ध में-

अचं दृष्ट्वा अधो याति हशश्चोपरि गच्छति।

अवसाने विसर्गः स्याद् रेफस्य त्रिविधा गतिः॥ अर्थात् **र्**=रेफ आगे **अच्** को देखकर सामान्यतया उससे मिलकर के बैठता है, जैसे कि **मणिर्+इति=मणिरिति**। आगे **हश्** प्रत्याहार के वर्ण हैं तो वह उसके ऊपर जाकर बैठता है, जैसे कि **हरिर्+हरति=हरिर्हरति।** यदि आगे कोई भी वर्ण नहीं है अर्थात् अवसान है तो वह रेफ विसर्ग बन जाता है, जैसे कि **रामर्= रामः**। उक्त कथनानुसार **हश्** के परे रहते रेफ उसके ऊपर जाकर के बैठता है। इसके सम्बन्ध में एक न्याय प्रसिद्ध है- **जलतुम्बिकान्यायेन रेफस्योर्ध्वगमनम्** अर्थात् जिस तरह से **तुम्बी** (सूखी लौकी) जल में डालने पर ऊपर उठती है, उसी तरह रेफ भी हश् के परे रहने पर ऊपर उठकर बैठता है।

तवल्कारः। तुम्हारा लृकार। **तव+लृकारः** इस स्थिति में पूर्व में विद्यमान अवर्ण और पर में विद्यमान अच् **लृकारः** के लृ के स्थान पर **स्थानेऽन्तरतमः** और **उरण् रपरः** की सहायता से **आद्गुणः** से रपर सहित गुण होकर **अल्**' रूप आदेश होकर **तव्+अल्+कारः** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **तवल्कारः** सिद्ध हो जाता है। जहाँ-जहाँ भी **ऋ** और **ऌ** के स्थान पर अणादेश प्राप्त होगा, वहाँ-वहाँ **'उरण् रपरः''** इस सूत्र की अवश्य प्रवृत्ति होगी, यह बात न भूलें।

यहाँ पर **कृष्णर्द्धिः** और **तवल्कारः** इन प्रयोगों की **संगति** देखें-

वे अखिलकोटि ब्रह्माण्ड के नायक भगवान् श्री विष्णु उपेन्द्र अर्थात् वामन बने थे तो एक बार कृष्ण बनकर के भी आए और स्वयं भी समृद्ध होकर सम्पूर्ण व्रज सहित अपने आश्रितों को भी समृद्ध बनाया। वे कृष्ण स्वयं के ऐश्वर्य से समृद्धि को प्राप्त होते ही हैं साथ ही अपने अनुयायियों को समृद्ध भी बनाते हैं किन्तु उसके प्रति पूर्ण समर्पण चाहिए कि मैं तुम्हारा ही हूँ और तुम्हारी आकृति ही मेरी आकृति है अर्थात् तुम्हीं मेरे लिए शरण हो।

अभ्यासः

(क) निम्नलिखित प्रयोगों की सिद्धि करें-

राजा+ऋषिः। वसन्त+ऋतुः। देव+ऋषिः। ब्रह्म+ऋषिः। मम+ऌकारः।

(ख) निम्नलिखित प्रयोगों का सन्धिविच्छेद कर सूत्रनिर्देशनपूर्वक सन्धि करें।

पुण्यर्द्धिः। ममल्वर्णः। तवल्दन्तः। ग्रीष्मर्तुः। सप्तर्षिः।

लोपविधायकं विधिसूत्रम्

३०. लोपः शाकल्यस्य ८।३।१९॥

अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाऽशि परे।

अधिकारसूत्रम्

३१. पूर्वत्रासिद्धम् ८।२।१॥

सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा, त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम्।

हर इह, हरयिह। विष्ण इह, विष्णविह।

....

(ग) **उप+इन्द्रः** में **उरण् रपरः** यह सूत्र क्यों नहीं लगता?

(घ) **उरण् रपरः** यह सूत्र न होता तो क्या हानि होती?

(ङ) **उरण् रपरः** यह विधिसूत्र है, संज्ञासूत्र है, या परिभाषा सूत्र?

(च) र-प्रत्याहार से किन-किन वर्णों का बोध होता है?

३०- लोपः शाकल्यस्य। लोपः प्रथमान्तं, शाकल्यस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **व्योलघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य** से **व्योः** की तथा **भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि** से **अपूर्वस्य** एवं **अशि** की अनुवृत्ति आती है। **पदस्य** सूत्र का अधिकार आ रहा है, उसका यहाँ पर द्विवचन में विपरिणाम होता है। विकल्प अर्थ इसी सूत्र के "**शाकल्यस्य**" पद से ही निकलता है। शाकल्य ऋषि के मत में लोप होगा, अन्यों के मत में लोप नहीं होगा, ऐसा फलितार्थ निकलता है।

अवर्णपूर्वक पदान्त यकार और वकार का विकल्प से लोप होता है अश् प्रत्याहार के परे होने पर।

जिन **यकार** और **वकार** का लोप करना है, वे **पद के अन्त में** विद्यमान हों और उनसे पूर्व में **अवर्ण** ही हो तथा पर में **अश्** प्रत्याहार वाले वर्ण हों तो **य्-व्** इन वर्णों का लोप हो जाता है। यह वैकल्पिक लोप है। एक बार लोप होता है और एक बार नहीं। यहाँ पर सूत्र में **शाकल्यस्य** कहा गया है। शाकल्य नामक ऋषि के मत में लोप होगा अन्य के मत में नहीं। इसी तरह प्रायः जहाँ-जहाँ पर भी किसी ऋषि का नाम सूत्र और वार्तिक में लिया गया है, उससे विकल्प ही सिद्ध होता है किन्तु कहीं-कहीं पाणिनि जी ने ऋषियों का नाम उनके सम्मान के लिए भी लिया है, जिसके कारण विकल्प नहीं माना जायेगा। **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में ऐसी जगहों पर **आपिशलिग्रहणं पूजार्थम्** आदि निर्देश दिया है। धन्य हैं वे ऋषि, जिनका नाम आचार्य पाणिनि अपने सूत्रों में केवल सम्मान के लिए ही उच्चारण करते हैं। **लोपः शाकल्यस्य** में शाकल्य का नाम पूजा, सम्मान के लिए न होकर विकल्प के लिए ही है।

३१- पूर्वत्रासिद्धम्। पूर्वस्मिन् इति पूर्वत्र। न सिद्धम्, असिद्धम्। पूर्वत्र अव्ययम्, असिद्धं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

सपादसप्ताध्यायी की दृष्टि में त्रिपादी असिद्धा होती है और त्रिपादी में भी पूर्वत्रिपादी के प्रति परत्रिपादी असिद्धा होती है।

यह सूत्र समस्त सूत्रों को दो भागों में विभाजित करता है- एक **सपादसप्ताध्यायी**

और दूसरा **त्रिपादी**। पाणिनि जी के द्वारा रचित **अष्टाध्यायी** के सारे सूत्र **आठ अध्यायों** में विभक्त हैं और प्रत्येक अध्याय में **चार-चार पाद** हैं। **सात अध्याय पूरा** और **आठवें अध्याय के प्रथम पाद**, अर्थात् **सवा सात अध्याय** को **सपादसप्ताध्यायी** के रूप में व्यवहार करते हैं और शेष **आठवें अध्याय के दूसरे, तीसरे और चतुर्थ चरण** ये कुल **तीन पाद** हैं। अतः ये **त्रिपादी** कहलाते हैं। **त्रिपादी** और **सपादसप्ताध्यायी** के बीच यह सूत्र यह निर्णय कर देता है कि समस्त **सपादसप्ताध्यायी** के प्रति समस्त **त्रिपादी** सूत्र **असिद्ध** होते हैं अर्थात् जब समान जगहों पर **सपादसप्ताध्यायी** के सूत्र एवं **त्रिपादी** के सूत्र एकं साथ प्रवृत्त होते हैं तो वहाँ पर **त्रिपादी** सूत्र असिद्ध होकर हट जाते हैं और **सपादसप्ताध्यायी** के सूत्र प्रवृत्त होते हैं। एक और भी बात है कि त्रिपादी के द्वारा किये जा चुके कार्य भी सपादसप्ताध्यायी के सूत्रों की दृष्टि में असिद्ध ही होते हैं।

यह **अधिकार सूत्र** है। अधिकार सूत्र स्वयं में कुछ नहीं करता किन्तु अन्य सूत्रों में एक नियम बना देता है या अनुवृत्ति के रूप में जाकर के उसका कार्य सिद्ध कर देता है। यहाँ पर इस सूत्र ने दो व्यवस्था बना दी- पहली तो **सपादसप्ताध्यायी** और **त्रिपादी** सूत्रों की एक साथ उपस्थिति में **त्रिपादी** के सूत्रों को असिद्ध करना और दूसरी व्यवस्था **त्रिपादी** के द्वारा किये जा चुके कार्यों को **सपादसप्ताध्यायी** की दृष्टि में असिद्ध करना। यहाँ पर दूसरी व्यवस्था का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

कई आचार्यों ने इसे विधिसूत्र भी माना है।

हर इह। हे हरे यहाँ पर (आओ) **हरे+इह** में **एचोऽयवायावः** इस सूत्र से **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** सूत्र की सहायता से स्थानी में **प्रथम** हरे के **एकार** के स्थान पर आदेश में **प्रथम- अय्** आदेश हुआ तो **हर्+अय्+इह** बना। **र्** और **अ** का वर्णसम्मेलन हुआ तो **हर+य्+इह** बना। ऐसी स्थिति में सूत्र लगा **लोपः शाकल्यस्य**। यहाँ पर **अश्** परे है **इह** वाला **इकार** और **अवर्ण पूर्वक पदान्त यकार** है **हर** के बाद वाला **य्**, वह **अवर्ण** से परे भी है और पद के अन्त में भी है, क्योंकि **हरे** एक पद है तथा उसके अन्त वर्ण 'ए' के स्थान पर हुए आदेश में भी **पदान्तत्व** आ जाता है। इसलिए **य्** पद के अन्त में विद्यमान वर्ण है। एक पक्षमें इस सूत्र के द्वारा उसका लोप हुआ। **हर इह** बना। अब **हर+इह** में **आद्गुणः** की प्रवृत्ति होने वाली थी क्योंकि **आद्गुणः** यह सूत्र अवर्ण से अच् परे रहने पर लगता है। यहाँ पर **अवर्ण** है **हर** में अन्तिम वर्ण अ, और **अच्** परे है **इह** का **इकार**। ऐसी स्थिति में **पूर्वत्रासिद्धम्** यह सूत्र पहुँचकर यह निर्णय देता है कि **सपादसप्ताध्यायी की दृष्टि में त्रिपादी असिद्धा होती है। लोपः शाकल्यस्य** ८।३।१९।। यह सूत्र त्रिपादी है और **आद्गुणः** ६।१।८७।। यह सूत्र सपादसप्ताध्यायी है। **लोपः शाकल्यस्य** से किये गये **यकार** के **लोप** को ही यह सूत्र असिद्ध करता है। फलतः **आद्गुणः** की दृष्टि में य् का लोप असिद्ध हो जाता है। वह **हर+इह** के बीच में **य्** को देखता है। अवर्ण औ अच् के बीच में **य्** के दिखाई देने के कारण अवर्ण से अच् परे होने में वह व्यवधान बना। इसलिये **गुण** की प्राप्ति नहीं हो पाई। यदि ऐसा न होता तो गुण हो जाने पर "**हरेह**" ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध हो जाता। यहाँ पर जब **पूर्वत्रासिद्धम्** इस सूत्र के बल पर **य्** का लोप असिद्ध रहा तो गुण भी नहीं हुआ। इस प्रकार से **हर इह** ऐसा ही रूप रह गया। **लोपः शाकल्यस्य** का कार्य विकल्प से होता है अर्थात् एक पक्ष में होता है और एक पक्ष में नहीं होता। जब **लोपः शाकल्यस्य** से **य्** का लोप नहीं हुआ, तब बीच में **यकार** से युक्त **हर य् इह** है,

वृद्धिसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

३२. वृद्धिरादैच् १।१।१।

आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात्।

....

इस में वर्णसम्मेलन होने पर य् जाकर इ से मिल गया तो **हरयिह** यह दूसरा रूप भी बन गया।

यहाँ पर **पूर्वत्रासिद्धम्** से यकार का लोप असिद्ध होने का तात्पर्य यह है कि इस य-वर्ण का लोप होने पर भी लोप न हुआ हो, ऐसा प्रतीत होना, न कि फिर से इस वर्ण का आना। इसलिए **हर+इह** में यकार नहीं दिखाई देता अर्थात् केवल गुण आदि कार्यों को रोकने के लिए ही असिद्ध माना गया न कि इसको वापस **य्** करने के लिए। अतः यकार के लोपपक्ष में **हर इह** ऐसा एक रूप सिद्ध होता है।

विष्ण इह। हे विष्णुभगवान्! यहाँ (आओ) **विष्णो+इह** में भी **एचोऽयवायावः** इस सूत्र से **अव्** आदेश होने पर **विष्ण्+अव्+इह** बना। **लोपः शाकल्यस्य** से **व्** का लोप होकर **विष्ण इह** बनने के बाद **पूर्वत्रासिद्धम्** सूत्र से **व्** का लोप असिद्ध होगा अर्थात् **विष्ण+इह** की बीच में **व्** दीखेगा। अवर्ण से अच् परे न मिलने के कारण अर्थात् **वकार** के व्यवधान के कारण **आद्गुणः** से गुण नहीं होगा। **विष्ण इह** ऐसा ही रूप रह जायेगा। लोप न होने के पक्ष में वकार और इकार में वर्णसम्मेलन होकर **विष्णविह** बनता है।

हर इह। विष्ण इह। हे हरे! इह (आगच्छ) हे विष्णो! इह (आगच्छ)। हरे और विष्णो ये सम्बोधन के रूप हैं। इन प्रयोगों से भगवान् से प्रार्थना करने की प्रेरणा मिलती है कि प्रभो! कभी तो इधर भी देखो! इस अकिंचन के रक्षार्थ भी अवतार लिया करो। द्रौपदी, गजेन्द्र आदि ने पुकारा तो आप आ गये थे। ये दो प्रयोग पौराणिक प्रसंगों का स्मरण कराते हैं।

अभ्यासः

(क) निम्नलिखित प्रयोगों में सन्धिविच्छेद कर पुनः सूत्र लगाकर सन्धि करें-
वाला आगच्छतः। श्रिया उत्कण्ठितः। आसन आस्ते। करा एतौ। नरा उदारौ। गृह आसीत्। गुरा आयाते।

(ख) निम्नलिखित प्रयोगों की सन्धि करें-
भानो+इह। विश्वे+उपासिते। स्थले+असि। कस्मै+अयच्छत्। छात्रौ+आयातौ।

(ग) **पूर्वत्रासिद्धम्** यह सूत्र स्वयं में सपादसप्ताध्यायी है या त्रिपादी?

(घ) **लोपः शाकल्यस्य** इस सूत्र में **विकल्प से** यह अर्थ कैसे बना?

(ङ) **हरये, विष्णवे** आदि प्रयोगों में **लोपः शाकल्यस्य** से यकार-वकार का लोप क्यों नहीं होता?

३२- **वृद्धिरादैच्**। वृद्धिः प्रथमान्तम्, आदैच् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

आ और ऐच् (ऐ, औ) ये वृद्धिसंज्ञक होते हैं।

आत्- दीर्घ आकार और **ऐच्**- ऐच् प्रत्याहार अर्थात् **ऐ, औ** इस तरह **आ, ऐ, औ** ये तीन वर्ण वृद्धि कहलाते हैं। जहाँ पर अन्य सूत्र **वृद्धि** का विधान करते है, वहाँ **आ, ऐ, औ** ये तीन आदेश के रूप में उपस्थित हो जाते हैं अर्थात् जहाँ भी **वृद्धि** शब्द का उच्चारण होगा,

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

३३. वृद्धिरेचि ६। १। ८८॥

आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। गुणापवादः।

कृष्णैकत्वम्। गङ्गौघः। देवैश्वर्यम्। कृष्णौत्कण्ठ्यम्॥

....

उससे **आ, ऐ, औ** ही समझे जायेंगे। **पाणिनीय-अष्टाध्यायी** का यह प्रथमसूत्र है। सूत्रों में सर्वप्रथम उच्चारित शब्द **'वृद्धि'** होने के कारण यह मंगलार्थक भी माना जाता है।

३३- वृद्धिरेचि। वृद्धिः प्रथमान्तम्, एचि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **आद्गुणः** से **आत्** की अनुवृत्ति आती है और **एकः पूर्वपरयोः** का अधिकार है।

अवर्ण से एच् परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक एक आदेश होता है।

एकः पूर्वपरयोः का अधिकार होने के कारण **पूर्व** और **पर** के दो वर्णों के स्थान पर **एक** ही आदेश होने का विधान होता है। पूर्व में **अवर्ण** हो और पर में **एच्**-प्रत्याहार अर्थात् **'ए, ओ, ऐ, औ'** में से कोई एक वर्ण हो तो **पूर्ववर्ण** तथा **परवर्ण** दोनों के स्थान पर वृद्धि अर्थात् **'आ, ऐ, औ'** ये तीन वर्ण आदेश के रूप में प्राप्त होते हैं। यह सूत्र **आद्गुणः** का बाधक है। **आद्गुणः** अवर्ण से अच् परे रहने पर लगता है और **वृद्धिरेचि** यह सूत्र **अवर्ण से एच् परे रहने** पर। एच् भी **अच्** के अन्तर्गत आते हैं। अतः **एच्** परे रहने पर **वृद्धिरेचि** यह सूत्र **आद्गुणः** को बाधकर स्वयं कार्य करता है (वृद्धि करता है) और शेष **अ, इ, उ ,ऋ, ऌ** के पर होने पर **आद्गुणः** से गुण ही होता है। उसमें भी **अवर्ण** से **अवर्ण** के ही परे रहने पर **आद्गुणः** को बाधकर **अकः सवर्णे दीर्घः** यह सूत्र दीर्घ करता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि **अवर्ण** से **इ, उ, ऋ, ऌ** के परे रहने पर गुण होगा तथा **अवर्ण** से **ए, ओ, ऐ, औ** के परे रहने पर वृद्धि होगी।

आद्गुणः एवं **वृद्धिरेचि** इन सूत्रों में **बाध्य-बाधकभाव** है। दोनों सूत्रों में से अधिक जगहों पर लगने वाला सूत्र **बाध्य** और कम जगहों पर लगने वाला सूत्र **बाधक** होता है अर्थात् जिसका क्षेत्र बड़ा है, वह **बाध्य** तथा जिसका क्षेत्र कम है, वह **बाधक** है। **बाध्य** सूत्र **सामान्य** और **बाधक** सूत्र **विशेष** होता है। सर्वत्र **सामान्य** से **विशेष** बलवान् होता है, इसीलिए वह **बाध्य** को बाधता है। **बाधक** को **अपवाद** भी कहा गया है। हमने हिन्दी **बाधित करता है** इसके लिए प्रायः **बाधता है** ऐसा प्रयोग किया है, इन बातों का ध्यान रखें। अब इन दोनों सूत्रों में **आद्गुणः** अच् मात्र का विषय वाला होने से **अधिक क्षेत्रवाला** और **वृद्धिरेचि** 'एच्' मात्र का विषय वाला होने से **कम क्षेत्रवाला** है। अतः **एच्** परे रहने पर **आद्गुणः** इस सामान्य सूत्र को बाधकर **वृद्धिरेचि** लगता है। **सामान्यसूत्र** को **उत्सर्ग** और **विशेष** को **अपवादसूत्र** भी कहते हैं।

कृष्णैकत्वम् (कृष्ण का ऐक्य)। **कृष्ण+एकत्वम्** में **संहितासंज्ञा** हो जाने के बाद अवर्ण से अच् परे होने के कारण **आद्गुणः** से गुण की प्राप्ति हुई तो उसे बाधकर **वृद्धिरेचि** यह सूत्र लगा क्योंकि यहाँ **एच्** परे भी है। **अवर्ण से एच् परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक एक आदेश होता है,** यह सूत्रार्थ है। **अवर्ण** है **कृष्ण** में **ण्** के बाद वाला **अ** तथा **एच्** परे है **एकत्वम्** का आदिवर्ण **एकार**। पूर्व में है **अ** और

पर में है **ए**। इन दोनों वर्णों के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक आदेश वाले वर्ण **आ, ऐ, औ** ये तीनों प्राप्त हुए। दो वर्णों के स्थान पर एक आदेश होना है और प्राप्ति हुई तीनों वर्णों की। अतः अनियम हुआ। इसलिए नियमार्थ सूत्र लगा **स्थानेऽन्तरतमः**। **स्थान** मिलाने पर कृष्ण के अकार का कण्ठस्थान और एकत्वम् के एकार का कण्ठतालु स्थान है। दोनों का स्थान मिलाकर कण्ठ-कण्ठतालु स्थान, अर्थात् **कण्ठतालु स्थान** है। स्थानियों का स्थान **कण्ठतालु** है तो अब आदेश में भी **कण्ठतालु** स्थान वाला कौन सा वर्ण है? खोजा तो **ऐ** का कण्ठतालु स्थान है। अतः **ऐ** आदेश हुआ। **कृष्ण** के **अकार** और **एकत्वम्** के एकार को हटाया। ध्यान रहे कि **आदेश स्थानी को हटाकर के ही बैठता है**। यहाँ पर दोनों वर्णों के स्थान पर **ऐ** आदेश बैठ गया- **कृष्ण्+ऐ+कत्वम्** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **ष्ण्** जाकर **ऐ** से मिला तो **कृष्णैकत्वम्** सिद्ध हुआ। यह तो एच् में से केवल **'ए'** परे रहने का उदाहरण है। **'ओ'** परे रहने का उदाहरण है- **गङ्गौघः**।

गङ्गौघः। गंगा का प्रवाह। **गङ्गा+ओघः** यह स्थिति है। पूर्व में **आकार** और पर में **ओकार** है। दोनों का स्थान हुआ **कण्ठ-ओष्ठ**। यहाँ पर भी गुण की प्राप्ति थी, उसे बाधकर **वृद्धिरेचि** लगाकर **स्थानेऽन्तरतमः** की सहायता से **आ** और **ओ** के स्थान पर **कण्ठ-ओष्ठ** स्थानवाला **औ** यह वर्ण आदेश हुआ तो **गङ्ग्+औ+घः** बना। वर्ण सम्मेलन हुआ **गङ्गौघः**। **ऐ** के परे रहने का उदाहरण आगे देखें।

देवैश्वर्यम्। देवों का ऐश्वर्य। **देव+ऐश्वर्यम्** में पूर्व में **अकार** और पर में **ऐकार** है। दोनों का स्थान हुआ **कण्ठ-तालु**। यहाँ पर भी गुण की प्राप्ति थी, उसे बाधकर **वृद्धिरेचि** लगाकर **स्थानेऽन्तरतमः** की सहायता से **अ** और **ऐ** के स्थान पर **कण्ठ-तालु** स्थानवाला **ऐ** यह वर्ण आदेश हुआ तो **देव्+ऐ+श्वर्यम्** बना। वर्ण सम्मेलन हुआ **देवैश्वर्यम्** सिद्ध हुआ। **औ** के परे रहने का उदाहरण आगे देखें।

कृष्णौत्कण्ठ्यम्। कृष्ण के विषय में उत्कण्ठा। **कृष्ण+औत्कण्ठ्यम्** में पूर्व में **अकार** और पर में **औकार** है। दोनों का स्थान हुआ **कण्ठ-ओष्ठ**। यहाँ पर भी गुण की प्राप्ति थी, उसे बाधकर **वृद्धिरेचि** लगाकर **स्थानेऽन्तरतमः** की सहायता से **अ** और **औ** के स्थान पर **कण्ठ-ओष्ठ** स्थानवाला **औ** यह वर्ण आदेश हुआ तो **कृष्ण्+औ+त्कण्ठ्यम्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **कृष्णौत्कण्ठ्यम्** सिद्ध हुआ।

कृष्णैकत्वम्। गङ्गौघः। देवैश्वर्यम्। कृष्णौत्कण्ठ्यम्। हमारा शरण्य वह कृष्ण मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, बलराम, श्रीकृष्ण, कल्कि आदि अवतार लेकर भिन्न-भिन्न रूपों को प्रदर्शित करता है किन्तु इनमें **ऐक्य** है अर्थात् एक ही स्वरूप है। जिसकी भी उपासना करें, प्राप्ति उसी कृष्ण की ही होती है। उस परब्रह्म **देव का ऐश्वर्य** तो देखो जो अपनी इच्छाशक्ति मात्र से सारे संसार की रचना, पालन और संहार करता है। उसका कार्य **गङ्गा के प्रवाह** की तरह अबाध गति से चलता रहता है। उसके कार्य गङ्गा की तरह पवित्र होते हैं। ऐसा सर्वसमर्थ, ऐश्वर्य परिपूर्ण परमात्मा भगवान् कृष्ण अपने योगियों के लिए उत्कण्ठा का विषय है। योगिजन उसको जानने के लिए वेद एवं वेदों के पद, क्रम आदि पारायणों से निरन्तर अनुष्ठानशील रहते हैं। स्वयं वेद भी जिनको समझने लिए निरन्तर गान करते रहते हैं फिर भी पार नहीं पाते और निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं। ऐसा कृष्ण सबके लिए ज्ञेय और ध्येय है।

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

३४. एत्येधत्यूठ्सु ६।१।८९॥

अवर्णादेजाद्योरेत्येधत्योरूठि च परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्।

उपैति। उपैधते। प्रष्ठौहः। एजाद्योः किम्? उपेतः। मा भवान् प्रेदिधत्।

वार्तिकम्- **अक्षादूहिन्यामुपसङ्ख्यानम्।** अक्षौहिणी सेना।

वार्तिकम्- **प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु।** प्रौहः। प्रौढः। प्रौढिः। प्रैषः। प्रैष्यः।

वार्तिकम्- **ऋते च तृतीयासमासे।** सुखेन ऋतः, सुखार्तः। तृतीयेति किम्? परमर्तः।

वार्तिकम्- **प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे।** प्रार्णम्, वत्सतरार्णम् इत्यादि।

....

अभ्यासः

(क) निम्नलिखित प्रयोगों में सन्धि करें-
एक+एकम्। तथा+एव। तदा+एव। तव+एव। तव+ओकः। तण्डुल+ओदनः।
शर्करा+ओदनः। प्राचीन+ऐतिह्यम्। नृप+ऐश्वर्यम्। सर्व+ऐश्वर्यम्। तथा+एव।

(ख) निम्नलिखित प्रयोगों की सन्धिविच्छेद कर पुनः सूत्र लगाकर सन्धि करें-
पञ्चैते। महौषधिः। बालैषा। जनैकता। महौदार्यम्। रामैश्वर्यम्।
तदैव। एकैकम्। सर्वदैक्यम्। तवौदार्यम्। दिव्यौषधम्। द्वितीयैकवचनम्।

(ग) **आद्गुणः** और **वृद्धिरेचि** ये आपस में बाध्य-बाधक कैसे बने? व्याख्या करें।

(घ) **उप+इन्द्रः** इस प्रयोग में **वृद्धिरेचि** क्यों नहीं लगता?

(ङ) **वृद्धिरेचि** सूत्र के लिए आप स्वयं कितने उदाहरण ढूँढ़ सकते हैं?

(च) यदि **वृद्धिरेचि** सूत्र न होता तो इसके जो चार उदाहरण कौमुदी में दिखाए गए हैं- उनके कैसे अनिष्ट रूप बनते?

३४- एत्येधत्यूठ्सु। एतिश्च, एधतिश्च, ऊठ् च तेषाम् इतरेतरयोगद्वन्द्वः, एत्येधत्यूठः, तेषु एत्येधत्यूठ्सु। एत्येधत्यूठ्सु सप्तम्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **आद्गुणः से आद्** तथा **वृद्धिरेचि** से **वृद्धि** और **एचि** की अनुवृत्ति आती है। **एकः पूर्वपरयोः** का अधिकार है।

अवर्ण से एच् आदि में हो ऐसे इण् धातु या एध् धातु अथवा ऊठ् के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक एक आदेश होता है।

वृद्धिरेचि से प्राप्त **एचि** यह पद **एति, एधते** का विशेषण बनता है, **ऊठ्** का नहीं क्योंकि ऊठ् का ऊकार एच् प्रत्याहार में नहीं आता। अतः **ऊठ्** एच् नहीं हो सकता। **एति** से **इण्** धातु और **एधते** से **एध्** धातु समझना चाहिए। कैसा **एति** और **एधते**? **एच्** आदि में हो ऐसे **इण्** धातु और **एध्** धातु। अर्थात् **इण्** धातु में गुण आदि होकर **एच्** बन गया हो और **एध्** धातु ह्रस्व आदि होकर **एजादित्व** को न छोड़ा हो। **एचि** यह पद **यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे** इस परिभाषा के बल से तदादिविधि होकर **एच्** आदि में हो ऐसा **इण्** और एच् आदि में हो ऐसा **एध्** धातु, ऐसा अर्थ बनाता है।

यह सूत्र **आद्गुणः** और **एङि पररूपम्** आदि का **अपवाद** अर्थात् **बाधक** है। **अवर्णान्त उप** आदि से **एति** और **एधते** के परे रहने पर तो **वृद्धिरेचि** से वृद्धि प्राप्त थी

किन्तु उसे बाधकर **एङि पररूपम्** से पररूप प्राप्त हो रहा था, उसे भी बाधकर वृद्धि करने के लिए तथा **प्रष्ठ+ऊहः** में गुण प्राप्त था, उसे बाधने के लिए यह सूत्र बनाया गया। यदि यह सूत्र न होता तो **उप+एति** और **उप+एधते** में पररूप होकर **उपेति** और **उपेधते** तथा **प्रष्ठ+ऊहः** में गुण होकर **प्रष्ठोहः** ऐसे अनिष्ठ रूप बन जाते।

उपैति। पास जाता है। उप+एति में **आद्गुणः** से गुण प्राप्त हुआ, उसे बाधकर **वृद्धिरेचि** से वृद्धि प्राप्त हुई, उसे भी बाधकर **एङि पररूपम्** से पररूप प्राप्त हुआ, उसे भी बाधकर सूत्र लगा- **एत्येधत्यूठसु**। अवर्ण है **उप** में पकारोत्तरवर्ती **अकार**, उससे **एजादि इण्** धातु पर में है **एति**। पूर्व में हैं **उप** का **अकार** और पर में है **एति** का **एकार**। इस तरह **अकार** और **एकार** के स्थान पर **वृद्धिसंज्ञक एक आदेश** होना है। वृद्धिसंज्ञक वर्ण **आ, ऐ, औ** ये तीन हैं और स्थानी **अ** और **ए** दो ही हैं। दो के स्थान पर एक आदेश होना है किन्तु तीन आदेशों की प्राप्ति हो रही है। अतः अनियम हुआ। **स्थानेऽन्तरतमः** के बल पर स्थान मिलाने पर **कण्ठतालु** स्थान वाले **अ** और **ए** के स्थान पर कण्ठतालुस्थान वाला ही **ऐ** यह आदेश हुआ। आदेश हमेशा स्थानी को हटाकर के बैठता है। अतः **उप** के **अकार** और **एति** के **एकार** को हटाकर के बैठा तो **उप्+ऐ+ति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **उपैति** सिद्ध हुआ।

कृष्ण के प्रति उत्कण्ठा होने पर उनकी कृपा से वह कृष्ण के नजदीक होता है, उसके पास जाता है।

उपैधते। (पास बढ़ता है)। उप+एधते में **आद्गुणः** से गुण प्राप्त हुआ, उसे बाधकर **वृद्धिरेचि** से वृद्धि प्राप्त हुई, उसे भी बाधकर **एङि पररूपम्** से पररूप प्राप्त हुआ, उसे भी बाधकर सूत्र लगा- **एत्येधत्यूठसु**। अवर्ण है **उप** में पकारोत्तरवर्ती **अकार**, उससे **एजादि एध्** धातु पर में है **एधते**। पूर्व में है **उप** का **अकार** और पर में है **एधते** का **एकार**। अकार और एकार के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक एक आदेश होना है। वृद्धिसंज्ञक वर्ण **आ, ऐ, औ** ये तीन हैं और स्थानी **अ** और **ए** ये दो हैं। अतः अनियम हुआ। **अ** और **ए** का कण्ठतालु स्थान है। **स्थानेऽन्तरतमः** के बल पर स्थान मिलाने पर आदेश में कण्ठतालुस्थान वाला **ऐ** मिला। अतः **अकार** और **एकार** को हटाकर **ऐकार** आदेश हुआ- **उप्+ऐ+धते** बना। वर्णसम्मेलन होकर **उपैधते** सिद्ध हुआ।

जो उस कृष्ण के पास जाता है वह बढ़ता ही जाता है।

प्रष्ठौहः। प्रष्ठ+ऊहः। यहाँ पर **प्रष्ठवाह्** शब्द से द्वितीया का बहुवचन **शस्** के आने पर **प्रष्ठवाह्+अस्** था। **वाह ऊठ्** सूत्र से सम्प्रसारणसंज्ञक ऊठ् आदेश होकर सकार के रुत्वविसर्ग हो जाने पर ऊहः बना है। यहाँ पर **आद्गुणः** से गुण प्राप्त था, उसे बाधकर के सूत्र लगा- **एत्येधत्यूठ्सु**। यहाँ पर सूत्र का अर्थ किया जायेगा- **अवर्ण से ऊठ् के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक एक आदेश हो**। ऐसा अर्थ करना इसलिए चाहिए कि **ऊहः** इण् और एध् धातु नहीं है, अतः एजादि भी नहीं है। अब पूर्व में है **अ** और पर में **ऊ**, दोनों के स्थान पर वृद्धि प्राप्त होने पर **स्थानेऽन्तरतमः** की सहायता से स्थान मिलाने पर **औ** आदेश हुआ- **प्रष्ठ्+औ+हः** बना। वर्णसम्मेलन होकर **प्रष्ठौहः** सिद्ध हुआ।

कृष्ण की कृपा को प्राप्त भक्त के सारे कार्यों का भार कृष्ण स्वयं उठाते हैं।

एजाद्योः किम्? उपेतः। उप+इतः यह स्थिति है। **इण्** धातु से **क्त** प्रत्यय होकर

इतः बना है। यद्यपि यह भी **इण्** धातु ही है किन्तु गुण न होने के कारण **एजादि** नहीं बन पाया है। यहाँ पर प्रश्न करते हैं कि **एत्येधत्यूठ्सु** इस सूत्र में **एचि** की अनुवृत्ति लाकर **एजाद्योः** यह अर्थ बनाने की क्या जरूरत है? उत्तर दिया **उपेतः**। यदि **एजाद्योः** नहीं कहेंगे तो सूत्रार्थ कैसा होगा? **अवर्ण से इण् और एध् धातु तथा ऊठ् के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक एक आदेश हो।** ऐसा अर्थ करने पर **उप+इतः** में भी सूत्र की प्रवृत्ति होगी, क्योंकि **इतः** यह इण् धातु का ही रूप है। अतः **एजाद्योः** कहना जरूरी है। **एजाद्योः** कहने पर **एच्** आदि में होने पर ही लगेगा। अतः **उप+इतः** में वृद्धि नहीं होगी। **एजाद्योः** को हटाने पर तो **उप+इतः** में भी वृद्धि होकर उपैतः ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध होने लगेगा। उक्त अनिष्ट रूप के निवारण के लिए इस सूत्र में **एजाद्योः** यह पद पढ़ना पढ़ा। इसी तरह **मा भवान् प्र+इदिधत्** में **एध्** धातु से **इदिधत्** बना है। पहले एजादि **एध्** धातु था किन्तु **एकार** को **ह्रस्व** होकर **इकार** बना है। यदि **एजाद्योः** नहीं कहेंगे तो **एध्** धातु मानकर **प्र+इदिधत्** में वृद्धि होकर के **प्रेदिधत्** ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध हो जाता। उक्त अनिष्ट रूप के निवारण के लिए भी **एत्येधत्यूठ्सु** में **एजाद्योः** पढ़ना जरूरी है। **मा भवान् प्रैदिधत्।**

अक्षादूहिन्यामुपसङ्ख्यानम्। यह वार्तिक है। **अक्ष शब्द से ऊहिनी शब्द के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक एक आदेश हो, ऐसा कहना चाहिए।** (**उपसंख्यानम्** इस शब्द का अर्थ है- **इतना अधिक कहना अर्थात् पढ़ना चाहिए,** अर्थात् इस सूत्र में इतने की कमी थी, सो ऐसा पढ़ना उचित होगा।)

अक्षौहिणी सेना। अक्ष+ऊहिनी में **वृद्धिरेचि** और **एत्येधत्यूठ्सु** से वृद्धि प्राप्त नहीं हो रही थी किन्तु गुण मात्र प्राप्त था और गुण हो जाता तो **अक्षोहिणी** ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध हो जाता। उक्त अनिष्ट निवारण के लिए कात्यायन जी को यह वार्तिक बनाना पड़ा। यह वार्तिक केवल **अक्षौहिणी** इस प्रयोग को ही सिद्ध करता है। यहाँ पर **अक्ष** शब्द से **ऊहिनी** शब्द परे है। पूर्व है **अक्ष** का **अकार** और **पर** में है **ऊहिनी** का **ऊकार**। दोनों के स्थान पर **वृद्धि** अर्थात् **आ, ऐ, औ** ये तीनों प्राप्त हो गये और **स्थानेऽन्तरतमः** के सहयोग से स्थान से मिलाने पर **कण्ठ-ओष्ठस्थान** वाले **अकार** और **ऊकार** के स्थान पर **कण्ठओष्ठस्थान** वाला **औ** मिलता है। अतः **अकार** और **ऊकार** को हटाकर **औकार** आदेश हुआ। **अक्ष्+औ+हिनी** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अक्षौहिनी** बना। **पूर्वपदात्संज्ञायामगः** सूत्र से **नकार** के स्थान पर **णकार** आदेश होकर **अक्षौहिणी** सिद्ध हो जाता है।

अक्षौहिणी सेना होती है। यह शब्द महाभारत की घटनाओं को याद दिलाता है। महाभारत के युद्ध में पाण्डवों की सात अक्षौहिणी और कौरवों की ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ थीं। **२१८७० रथ, २१८७० हाथी ६५६५० घोड़े और १०९३५० पैदल सेना, इतना मिलाकर एक अक्षौहिणी सेना बनती है।**

प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु। यह भी वार्तिक है। **प्र-शब्द के अकार से ऊहः, ऊढः, ऊढिः, एषः और एष्यः से सम्बन्धित अच् के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक एक आदेश होता है।**

प्रौहः(प्र+ऊहः, उत्तम तर्क करने वाला), **प्रौढः**(प्र+ऊढः, बढ़ा हुआ, परिपक्व), **प्रौढिः**(प्र+ऊढिः, परिपक्वता, प्रौढता) इन प्रयोगों में वृद्धि प्राप्त नहीं थी अपितु गुण प्राप्त

था और **प्रैष:** (प्र+एष:, प्रेरणा), **प्रैष्य:**(प्र+एष्य:, प्रेरणीय, सेवक आदि) इन प्रयोगों में वृद्धि तो प्राप्त थी किन्तु उसे बाधकर **एङि पररूपम्** से पररूप भी प्राप्त था। ऐसा हो जाता तो उक्त रूपों की जगह **प्रोह:, प्रोढ:, प्रोढि:, प्रेष:, प्रेष्य:** ऐसे अनिष्ट रूप बन जाते। उक्त अनिष्ट निवारण के लिए कात्यायन जी ने इस वार्तिक को बनाया। **प्रौह:**(प्र+ऊह:), **प्रौढ:**(प्र+ऊढ:), **प्रौढि:**(प्र+ऊढि:) इन प्रयोगों में पूर्व में **अवर्ण** और पर में **ऊवर्ण** के स्थान पर आदेश के साथ स्थान से साम्यता मिलाने पर औ-वृद्धि और **प्रैष:** (प्र+एष:), **प्रैष्य:**(प्र+एष्य:) इन प्रयोगों में पूर्व में अवर्ण और पर में **एवर्ण** के स्थान पर आदेश के साथ स्थान से साम्यता मिलाने पर ऐ-वृद्धि होकर उक्त रूप सिद्ध हो जाते हैं। **प्रौह:, प्रौढ:, प्रौढि:, प्रैष:, प्रैष्य:।**

ऋते च तृतीयासमासे। यह भी वार्तिक है। **अवर्ण से ऋत-शब्द के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक एक आदेश होता है तृतीयासमास में।** यदि पूर्व में **अवर्ण** हो और पर में **ऋत** शब्द हो और दोनों शब्दों में तृतीयातत्पुरुष समास हो गया हो तो ही यह वार्तिक लगता है।

सुखार्त:। (सुख से युक्त) **सुखेन ऋत:** इस विग्रह में तृतीयातत्पुरुषसमास होकर **सुख+ऋत:** बना है। यहाँ पर **आद्‌गुण:** से गुण प्राप्त था, उसे बाधकर **ऋते च तृतीयासमासे** से **सुख** में **अकार** और **ऋत:** के **ऋकार** के स्थान पर **उरण् रपर:** की सहायता से **रपर** सहित **आर्**-वृद्धि हुई- **सुख्+आर्+र्त:** बना। वर्णसम्मेलन और **रेफ** का **ऊर्ध्वगमन** हुआ- **सुखार्त:** सिद्ध हुआ। इति तरह **धनेन ऋत:- धनार्त:** आदि भी बना सकते हैं।

तृतीयेति किम्? परमर्त:। यहाँ यह प्रश्न करते हैं कि **ऋते च तृतीयासमासे** इस वार्तिक में **तृतीयासमासे** यह इतना पद क्यों पढ़ा गया? न पढ़ते तो वार्तिक का अर्थ होता- **अवर्ण से ऋत-शब्द के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक एक आदेश हो।** ऐसा अर्थ होने पर **परमश्चासौ ऋत:, परम+ऋत:** इस **कर्मधारयसमास** वाले स्थलों पर भी वृद्धि होने लगेगी, जोकि नहीं होनी चाहिए। यदि यहाँ भी वृद्धि हो जाय तो **परमार्त:** ऐसा अनिष्ट रूप बनेगा। उक्त अनिष्ट रूप के निवारण के लिए वार्तिक में **तृतीयासमासे** जोड़ा गया। इससे जहाँ तृतीयासमास मिलेगा, वहीं पर ही वृद्धि होगी, अन्यत्र नहीं। अत: **कर्मधारयसमास** वाले **परम+ऋत:** में इस वार्तिक से वृद्धि नहीं हुई और **उरण् रपर:** की सहायता से **आद्‌गुण:** से **अर्**-गुण होकर **परम्+अर्+त:=परमर्त:** सिद्ध हुआ।

प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे। यह वार्तिक है। प्र च, वत्सतरश्च, कम्बलश्च, वसनं च, ऋणं च, दश च प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानि, तेषां प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व:) **प्र, वत्सतर, कम्बल, वसन, ऋण और दश शब्दों से ऋण शब्द के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक एक आदेश हो।**

प्रार्णम्। (अधिक अथवा श्रेष्ठ ऋण)। **प्र+ऋणम्** इस स्थिति में **आद्‌गुण:** से गुण प्राप्त था, उसे बाधकर वार्तिक लगा- **प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे।** प्र से ऋण शब्द परे है। पूर्व में है **प्र** का **अकार** और पर में है **ऋणम्** का **ऋकार।** दोनों के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक वर्ण **आ, ऐ, औ** ये तीनों प्राप्त हुए। **ऋकार** के स्थान पर प्राप्त हुए हैं तो **उरण् रपर:** से रपर होकर **स्थानेऽन्तरतम:** की सहायता से **आर्** आदेश हुआ, **प्र्+आर्+णम्** बना, वर्णसम्मेलन और रेफ का ऊर्ध्वगमन हुआ- **प्रार्णम्।**

उपसर्गसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

३५. उपसर्गाः क्रियायोगे १।४।५९।।

प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः।

प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप, एते प्रादयः।

....

इसी तरह **वत्सतरार्णम्**। (बछड़े के लिए ऋण)। **वत्सतर+ऋणम्** इस स्थिति में **आद्गुणः** से गुण प्राप्त था, उसे बाधकर वार्तिक लगा- **प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे**। **वत्सतर** से **ऋण** शब्द परे है। पूर्व में है **वत्सतर** का **अकार** और पर में है **ऋणम्** का **ऋकार**। दोनों के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक वर्ण **आ, ऐ, औ** ये तीनों प्राप्त हुए। **ऋकार** के स्थान पर प्राप्त हुए हैं तो **उरण् रपरः** से रपर होकर **स्थानेऽन्तरतमः** की सहायता से **आर्** आदेश हुआ, **वत्सतर्+आर्+णम्** बना, वर्णसम्मेलन और रेफ का ऊर्ध्वगमन हुआ- **वत्सतरार्णम्**।

अब इसी तरह अन्य प्रयोग भी बनाइये-

कम्बलार्णम्। कम्बल के लिए ऋण। **कम्बल+ऋणम्**।

वसनार्णम्। वस्त्र के लिए ऋण। **वसन+ऋणम्**।

ऋणार्णम्। ऋण के लिए ऋण। **ऋण+ऋणम्**।

दशार्णम्। दश प्रकार के जल वाला प्रदेश **दश+ऋणम्**।

अभ्यासः

१. **निम्नलिखित रूपों में सन्धिप्रक्रिया दिखायें।**
अवैति। समैति। अवैधते। समैधते। विश्वौहः। प्रौहः। प्रैषः। वत्सतरार्णम्। प्रमोदार्तः। अक्षौहिणी सेना।

२. **वृद्धिरेचि** और **एत्येधत्यूठ्सु** इन दो सूत्रों की तुलना करें।

३. **एत्येधत्यूठ्सु** इस सूत्र के साथ पढ़े गये सभी वार्तिकों की क्यों आवश्यकता है? स्पष्ट करें।

३५- उपसर्गाः क्रियायोगे। क्रियया योगः, क्रियायोगः(तृतीया तत्पुरुषः) तस्मिन् क्रियायोगे। उपसर्गाः प्रथमान्तं, क्रियायोगे सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

क्रिया के योग में प्र आदि उपसर्गसंज्ञक होते हैं।

प्रादि संख्या में बाईस हैं। इनका क्रिया अर्थात् धातु के साथ योग होता है तो इनकी **उपसर्गसंज्ञा** होती है अर्थात् ये **उपसर्ग** कहलाते हैं।

यद्यपि उपसर्ग का कोई भी अर्थ नहीं होता फिर भी धातु के साथ मिलकर भिन्न-भिन्न अर्थों को निकालते हैं। अतः अर्थ के वाचक न होते हुए भी तत्तद् अर्थों के **द्योतक** हैं। स्वतन्त्र रूप में इनकी **निपात-संज्ञा** होती है और क्रिया के योग में **उपसर्गसंज्ञा**। इसके साथ **गतिश्च** यह सूत्र भी है जो क्रिया के योग में ही **गतिसंज्ञा** भी करता है। इसलिए ये **उपसर्ग** और गति के रूप में प्रसिद्ध हैं। ये हैं- **प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप**। ये लौकिकी संस्कृत भाषा में हमेशा धातु से ठीक पहले प्रयोग किये जाते हैं किन्तु

धातुसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

३६. भूवादयो धातवः १। ३। १॥

क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः।

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

३७. उपसर्गादृति धातौ ६। १। ९१॥

अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशःस्यात्। प्रार्च्छति।

....

वेदों में बाद में भी अथवा व्यवधान होने पर भी प्रयुक्त होते हैं। प्रायः धातु के पहले एक ही उपसर्ग होता है, किन्तु कहीं-कहीं दो या दो से अधिक भी उपसर्ग देखे गये हैं।

३६- **भूवादयो धातवः**। भूश्च वाश्च भूवौ, आदिश्च आदिश्च इति आदी। भूवौ आदी येषां ते भूवादयः, (द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः)। भूवादयः प्रथमान्तं, धातवः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

क्रियावाचक भू आदि धातुसंज्ञक होते हैं।

यह सूत्र भू आदि की **धातुसंज्ञा** करता है। धातु किसे कहते हैं? जो भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि गणों में अर्थ-निर्देशन पूर्वक पढ़े गये हों और उनका अर्थ क्रिया अर्थात् व्यापार हो। धातु कहलाने के लिए **भ्वादिगणपठित** भी होना चाहिए और **क्रियावाचक** भी। जैसे **पठति** में **पठ्**। यह भ्वादिगण में पठित भी है और 'पढ़ना' यह क्रियावाचकता रूप अर्थ भी है। अतः **पठ्** यह धातु है और **पठति** इत्यादि **धातु** के रूप।

३७- **उपसर्गादृति धातौ**। उपसर्गात् पञ्चम्यन्तं, ऋति सप्तम्यन्तं, धातौ सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **आद्गुणः** से **आत्** की अनुवृत्ति आती है। **एकः पूर्वपरयोः** का अधिकार भी चल ही रहा है।

अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातु के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक एक आदेश होता है।

ऋति और धातौ ये दो पद आपस में क्रमशः **विशेषण** और **विशेष्य** हैं। **यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे** इस परिभाषा के बल पर तदादि विधि होकर **ह्रस्व ऋकार** आदि में हो ऐसा जो धातु ऐसा अर्थ बना लिया जाता है।

यह सूत्र पूर्व में **अवर्णान्त उपसर्ग** और पर में **ऋकारादि धातु** होने पर लगता है। उपसर्ग के अन्त में **'अ'** ही हो और धातु के आदि में **ऋकार** ही हो तो **पूर्व** और **पर** के स्थान पर **वृद्धिसंज्ञक एक आदेश** करता है। यह सूत्र **आद्गुणः** का बाधक है। सामान्य अवर्ण एवं सामान्य ऋकार में **आद्गुणः** द्वारा गुण तथा **उपसर्गान्त अवर्ण** एवं **धातु** के **ऋकार** की स्थिति में **उपसर्गादृति धातौ** द्वारा **उरण् रपरः** से रपर होकर **आर्** के रूप में वृद्धि होती है।

प्रार्च्छति। अच्छी तरह से जाता है। प्र+ऋच्छति में **आद्गुणः** से गुण की प्राप्ति हुई तो उसे बाधकर सूत्र लगा- **उपसर्गादृति धातौ**। अवर्णान्त उपसर्ग है **प्र** तथा ऋकारादि धातु परे है **ऋच्छति**, पूर्व में है अ और पर में है ऋ। दोनों के स्थान पर वृद्धि अर्थात् **आ, ऐ, औ** की प्राप्ति हुई। दो के स्थान पर एक आदेश होना था किन्तु तीन-तीन आदेशों की

पररूपविधायकं विधिसूत्रम्

३८. एङि पररूपम् ६।१।९४॥

आदुपसर्गादेङादौ धातौ पररूपमेकादेशः स्यात्। प्रेजते। उपोषति।

....

प्राप्ति हुई अर्थात् अनियम हुआ। **स्थानेऽन्तरतमः** इस सूत्र के नियमानुसार स्थान से मिलाने पर **प्र** के **अकार** का कण्ठस्थान और **ऋच्छति** के **ऋकार** का **मूर्धा** स्थान है। आदेशों में **कण्ठमूर्धा** स्थान वाला कोई भी नहीं है किन्तु केवल कण्ठस्थान वाला **आ** है तो यत्किञ्चित् तुल्यता (कण्ठस्थान मात्र की तुल्यता) को लेकर **आ** की प्राप्ति हुई तो **उरण् रपरः** से रपर करके **आर्** एवं **आल्** हुए। कण्ठमूर्धास्थान वाले स्थानी **अ** और **ऋ** के स्थान पर कण्ठमूर्धास्थान वाला ही **आर्** आदेश हुआ तो बना- **प्र्+आर्+च्छति**। प्र्+आर्=प्रार्, प्रार्+च्छति। हल् वर्ण के परे रहने पर **रेफ** का स्वभाव ही **ऊपर रहने** का है। अतः रेफ का ऊर्ध्वगमन हुआ, **प्राच्छर्ति** सिद्ध हुआ।

संस्कृत में प्रयोगसिद्धिः- प्र+इच्छति इत्यवस्थायाम् **आद्गुणः** इतिसूत्रेण गुणे प्राप्ते तं प्रबाध्य **स्थानेऽन्तरतरः, उरण् रपरः** इतिसूत्रद्वयसहकारेण **उपसर्गादृति धातौ** इत्यनेन सूत्रेण वृद्धौ, **प्र्+आर्+च्छति** इति जाते वर्णसम्मेलने रेफस्योर्ध्वगमने च **प्राच्छर्ति** इति रूपं सिद्धम्।

कृष्ण की कृपा के बाद वह श्रुति और स्मृतियों को भगवान् की आज्ञा मानकर उनका पालन करता हुआ वह भक्त अन्ततः **कृष्ण** के धाम को चला जाता है।

अभ्यासः-

(क)　निम्नलिखित प्रयोगों में सूत्र लगाकर सन्धि करें-
　　अप+ऋच्छति। अव+ऋञ्जते। उप+ऋच्छति।

(ख)　कितने और कौन-कौन से उपसर्ग (प्रादि) अजन्त और कौन-कौन से हलन्त हैं?

(ग)　क्या **उपसर्गादृति धातौ** यह सूत्र **वृद्धिरेचि** का बाधक हो सकता है? यदि हो सकता है तो क्यों? और यदि नहीं हो सकता तो क्यों नहीं?

(घ)　धातु से आप क्या समझते हैं?

(ङ)　प्रादि **उपसर्ग** कब बनते हैं?

(च)　**उपसर्ग-संज्ञा** के अतिरिक्त **प्रादि** की क्या संज्ञा होती है?

(छ)　प्रादि अर्थ के वाचक हैं या द्योतक?

३८- एङि पररूपम्। एङि सप्तम्यन्तं, पररूपं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में भी **एकः पूर्वपरयोः** इसका अधिकार आता है। **आद्गुणः** से **आत्** और **उपसर्गादृतिं धातौ** से **उपसर्गाद्** की अनुवृत्ति आती है। आत्-उपसर्गात् में **'आत्'** विशेषण पद है और **उपसर्गात्** विशेष्य पद है।

अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि धातु के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर पररूप एकादेश होता है।

कैसा उपसर्ग? **अवर्ण** अन्त में हो ऐसा उपसर्ग। **एङादौ** विशेषण है और **धातौ** विशेष्य है। कैसा धातु? एङ् प्रत्याहार आदि में हो ऐसा धातु। उसके परे रहने पर **पूर्व** और **पर** के स्थान पर, पर का जैसा रूप हो अर्थात् पर में जैसा वर्ण होता है उसी तरह का एक

टिसंज्ञाविधायकं विधिसूत्रम्

३९. अचोऽन्त्यादि टि १।१।६४॥

अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात्।

वार्तिकम्- **शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्।** तच्च टेः।

शकन्धुः। कर्कन्धुः। मनीषा। आकृतिगणोऽयम्। मार्तण्डः।

....

ही वर्ण आदेश हो। **पूर्व** और **पर** वर्ण मिलकर पर जैसा वर्ण हो जाय, यही **पररूप** है अतः **अ** और **ए** (अ+ए) में पूर्ववर्ण 'अ' तथा परवर्ण 'ए' ये दोनों मिलकर परवर्ण 'ए' ही बन जाते हैं। **अ** एवं **ए** ये दोनों अपना अस्तित्व मिटाकर दोनों के स्थान में पर में विद्यमान वर्ण के जैसे बन जाते हैं। ध्यान रहे कि **पररूप हमेशा दो वर्णों के स्थान पर एक आदेश के रूप में ही होता है।**

यह सूत्र **वृद्धिरेचि** का बाधक है।

प्रेजते। अत्यन्त चमकता है। **प्र+एजते** में **आद्गुणः** से गुण की प्राप्ति होती है, उसे बाधकर **वृद्धिरेचि** से वृद्धि प्राप्त हुई। उसे भी बाधकर सूत्र लगा- **एङि पररूपम्। अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि धातु के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर पररूप एकादेश होता है।** यहाँ पर **अवर्णान्त उपसर्ग** है **प्र** और **एङादि धातु** परे हैं **एजते। पूर्व** में है **प्र** का **अ** और परे है **एजते** का **ए**। दोनों के स्थान पर परवर्ण ए ही हुआ, **प्र्+ए+जते** बना। वर्णसम्मेलन हुआ (प्र्+ए= प्रे) **प्रेजते** यह रूप सिद्ध हुआ। यहाँ कोई अनियम नहीं हुआ, क्योंकि अनियम तब होता है जब एक या दो के स्थान पर अनेक आदेशों की प्राप्ति होती है। यहाँ पर आदेश कहीं बाहर से नहीं आया। स्थानी में से ही आदेश हुआ और सूत्र ने यह भी निश्चित कर दिया कि पररूप ही यहाँ पर आदेश हो। अतः अनियम न होने के कारण **स्थानेऽन्तरतमः** आदि की आवश्यकता नहीं पड़ी।

जो कृष्णधाम को प्राप्त होता है, वह सदा चमकता ही रहता है।

उपोषति। जलता है। **उप+ओषति** में **आद्गुणः** से गुण प्राप्त हुआ। उसे बाधकर के **वृद्धिरेचि** से वृद्धि प्राप्त हुई। उसे भी बाधकर **एङि पररूपम्** से पररूप हुआ, **उप्+ओ+षति** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **(उप्+ओ=) उपोषति** सिद्ध हुआ। यहाँ पर अवर्णान्त उपसर्ग उप है और एङादि धातु परे है **ओषति।** पूर्व है पकारोत्तरवर्ती **अकार** और पर है **ओषति** का **ओकार।** पररूप होने पर पर दोनों के स्थान पर पूर्ववर्ण सदृश **ओ** ही बन गया- **उप्+ओ+षति।** वर्णसम्मेलन होकर **उपोषति** सिद्ध हुआ।

कृष्णकृपा को प्राप्त व्यक्ति के पाप जल जाते हैं और वह सोने की तरह निर्मल होता है।

अभ्यासः

(क) **प्रेजते, उपोषति** इन प्रयोगों को संस्कृत भाषा में साधकर दिखाइये।

(ख) प्रयोग सिद्ध करें-
प्र+एषयति। उप+एहि। अव+एजते। प्र+ओषति।

(ग) **न+एजते=नैजते। तव+ओषति=तवौषति। यमुना+ओघः=यमुनौघः** इन प्रयोगों में **पररूप** क्यों नहीं होता?

(घ) **वृद्धिरेचि** और **एङि पररूपम्** की तुलना कीजिये।

३९- अचोऽन्त्यादि टि। अन्ते भवः- अन्त्यः, अन्त्य आदिर्यस्य स अन्त्यादि (बहुव्रीहिः)। अचः षष्ठ्यन्तम्, अन्त्यादि प्रथमान्तं, टि प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

अचों के मध्य में जो अन्त्य अच्, वह जिसके आदि में हो, वह समुदाय टिसंज्ञक होता है।

जहाँ **अनेक अच्** हो वहाँ **अन्त्य अच्** की और जहाँ **एक ही अच्** हो तो उसी **अच्** की, यदि वह किसी **हल् के आदि** में हो तो **हल् के साथ** ही उस **अन्त्य अच्** की **टिसंज्ञा** होती है। जैसे- **ज्ञान** में नकारोत्तरवर्ती **अकार** की और **मनस्** में **सकार** सहित **न** के उत्तरवर्ती **अकार** और **सकार** अर्थात् **अस्** की टिसंज्ञा हो जाती है। जहाँ एक ही अच् हो तो वह अन्त्य भी माना जाता है और आदि भी। एक ही को अन्त्य, आद्य और मध्यम मानने को **व्यपदेशिवद्भाव** कहा जाता है। जैसे **देवदत्तस्य एक एव पुत्रः, स एव ज्येष्ठः, स एव मध्यमः, स एव कनिष्ठः** अर्थात् देवदत्त का एक मात्र पुत्र है, चाहे उसे बड़ा समझो या मझला समझो अथवा छोटा समझो।

शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्। यह वार्तिक है। **शकन्धु आदि गण में टिसंज्ञक पूर्व और पर के स्थान पर पररूप होता है।**

तच्च टेः= वह पररूप टि के स्थान पर होता है।

यह वार्तिक **पररूप** के प्रकरण में पढ़ा गया है। पररूप के प्रकरण में **एकः पूर्वपरयोः** का अधिकार है। अतः इस वार्तिक में भी उसका अधिकार रहेगा। अतः यह वार्तिक भी **पूर्व और पर के स्थान पर पररूप एक आदेश करता है।**

आकृतिगणोऽयम्। यह वाक्य न तो सूत्र है और न ही वार्तिक। यह तो वरदराजाचार्य जी हमें समझा रहे हैं कि यह जो शकन्धु आदि गण है, इसमें इतने ही शब्द आते हैं, ऐसा कोई निश्चित नहीं है। अतः जहाँ-जहाँ भी पररूपविधायक सूत्रों की प्राप्ति नहीं हो किन्तु पररूप हो गया हो तो उसे शकन्धु आदि गण का मान लेना अर्थात् आकृति को देखकर इस गण का समझ लेना चाहिए। जहाँ शब्दों की संख्या रख पाना कठिन है, वहाँ पर आचार्य आकृतिगण का व्यवहार करते हैं। तात्पर्य यह हुआ कि **कार्यों को देखकर उस गण का समझना ही आकृतिगण है।**

शकन्धुः। शक नामक देश का कूप। **शक+अन्धुः** में पहले **अचोऽन्त्यादि टि** से टिसंज्ञा करते हैं। जैसे- **शक** में अच् हैं- **श** का **अकार** और **क** का **अकार**, अन्त्य अच् है **क** का **अकार**, वह अन्य किसी के आदि में नहीं है, अपितु अपने ही आदि में है। अतः **क** के **अकार** की टिसंज्ञा हो गई। इसके बाद **आद्गुणः** से गुण प्राप्त था, उसे बाधकर **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ प्राप्त था। उसे भी बाधकर **शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्** से पररूप होता है। पररूप **टि** को लेकर के होता है, अतः टिसंज्ञा की आवश्यकता है। **शकन्धुः** शब्द **शकन्धु** आदि गण में आता ही है। **टि** है **क** में **अकार**, वह पूर्व में है और पर में **अन्धुः** का **अकार** है। इन दोनों के स्थान पर **पररूप** होगा। **पररूप** का तात्पर्य **पूर्व और पर के स्थान पर, पर का जैसा वर्ण हो जाना।** यहाँ पर पूर्व में भी **अकार** है और पर में भी **अकार** है। अतः दोनों **अकारों** के स्थान पर एक ही **अकार** हुआ- **शक्+अ+न्धुः** बना। वर्णसम्मेलन होकर **शकन्धुः** सिद्ध हुआ।

जो कृष्ण की उपासना नहीं करता और उनको जानने की चेष्टा नहीं करता, वह कूप अर्थात् एक अन्धकार में नीचे पतन को प्राप्त होता है।

परस्रूपविधायकं विधिसूत्रम्

४०. ओमाङोश्च ६।१।९५॥

ओमि आङि चात्परे पररूपमेकादेशः स्यात्।

शिवायों नमः। शिव एहि।

....

कर्कन्धुः। कर्क नामक कोई राजा, उसका कूप। **कर्क+अन्धुः** में पहले **अचोऽन्त्यादि टि** से टिसंज्ञा करते हैं। जैसे- **कर्क** में अच् हैं- **क** का **अकार** और **क** का अकार, अन्त्य अच् है द्वितीय **क** का अकार, वह अन्य किसी के आदि में नहीं है अपितु अपने ही आदि में है। अतः द्वितीय **क** के **अकार** की टिसंज्ञा हो गई। इसके वाद **आद्गुणः** से गुण प्राप्त था, उसे बाधकर **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ प्राप्त था। उसे भी बाधकर **शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्** से पररूप होता है। पररूप **टि** को लेकर के होता है, अतः टिसंज्ञा की आवश्यकता है। **कर्कन्धुः** यह शब्द **शकन्धु आदि गण** में आता है और **टि** है **क** में अकार, वह पूर्व में है और पर में **अन्धुः** का **अकार** है। इन दोनों के स्थान पर पररूप होगा। पररूप का तात्पर्य पूर्व और पर के स्थान मिलकर पर का जैसा वर्ण हो जाना। यहाँ पर पूर्व में भी अकार है और पर में भी अकार है। अतः दोनों के स्थान पर एक **अकार** हुआ- **कर्क्+अ+न्धुः** बना। वर्णसम्मेलन होकर **कर्कन्धुः** सिद्ध हुआ।

राजाओं की तरह धन, मान मिलने पर कूप के प्रतीक अज्ञानान्धकार में नहीं रहना चाहिए, अपितु ईश्वर की उपासना, ज्ञान आदि के द्वारा आत्मकल्याण करना चाहिए।

मनीषा। बुद्धि। **मनस्+ईषा** है। **अचोऽन्त्यादि टि** से **मनस्** में **अस्** की टिसंज्ञा हो गई, वह ऐसे कि **अच्** है **म** का **अकार** और **न** का **अकार**। इसमें **अन्त्य अच्** है **न** का अकार, वह अस् इस समुदाय के **आदि** में है। अतः **सकार** सहित **अकार** अर्थात् **अस्** की **टिसंज्ञा** हो गई। यहाँ पर टिसंज्ञा का फल **शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्** से पररूप करना है। अतः **टि** को लेकर **पूर्व** और **पर** के स्थान पर **पररूप एकादेश** होगा। पूर्व में टिसंज्ञक है **अस्** और पर में **ईषा** का ईकार है। इन दोनों के स्थान पर अर्थात् **अस्** और ई के स्थान पर, परवर्ण का जैसा ई ही हो गया, **मन्+ई+षा** बना। वर्णसम्मेलन होकर **मनीषा** सिद्ध हुआ।

मनीषा यह भगवान् के द्वारा प्रदत्त बुद्धि है। इसका सदुपयोग करके कूपमण्डुक मत बनना अपितु उस सर्वशक्तिमान् को समझने की चेष्टा करना।

मार्तण्डः। सूर्य। मार्त+अण्डः में शकन्धु की तरह टिसंज्ञा और पररूप करके **मार्तण्डः** सिद्ध करें।

यदि बुद्धि को सही मार्ग में लगायेंगे तो अन्दर ही अन्दर सूर्य की तरह ज्ञान रूपी प्रकाश फैलने लगेगा।

४०- **ओमाङोश्च**। ओम् च आङ् च ओमाङौ, तयोः=ओमाङोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। ओमाङोः सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **आद्गुणः** से **आत्** और **एङि पररूपम्** से **पररूपम्** की अनुवृत्ति आ रही है। **एकः पूर्वपरयोः** का अधिकार भी है।

अवर्ण से ओम् और आङ् के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर पररूप एकादेश होता है।

अतिदेशसूत्रम्

४१. अन्तादिवच्च ६।१।८५॥

योऽयमेकादेशः स पूर्वस्यान्तवत् परस्यादिवत्। शिवेहि।

....

ओम् यह अव्यय है और **आङ्** प्रादि(उपसर्ग) है। यह सूत्र, **वृद्धिरेचि** और **अकः सवर्णे दीर्घः** का बाधक है।

शिवायों नमः। ओं नमः शिवाय, शिव को नमस्कार है। **शिवाय+ओं नमः** में **आद्गुणः** से गुण प्राप्त था, उसे बाधकर **वृद्धिरेचि** से वृद्धि प्राप्त हुई, उसे भी बाधकर सूत्र लगा- **ओमाङोश्च**। अवर्ण है **शिवाय** में यकारोत्तरवर्ती **अकार** और ओम् परे है **ओम्**। पूर्व में है **शिवाय** का **अकार** और पर में है **ओं नमः** का **ओकार**। दोनों के स्थान पर पररूप हुआ तो पर में **ओ** है, अतः **अकार** और **ओकार** के स्थान पर **ओ** ही बन गया, **शिवाय्+ओं नमः** बना। वर्णसम्मेलन होकर **शिवायों नमः** सिद्ध हुआ।

ईश्वर के प्रणाम से **शिव** अर्थात् कल्याण होता है।

४१- अन्तादिवच्च। अन्तश्च आदिश्च- अन्तादी (द्वन्द्वः), अन्तादिभ्यां तुल्यम्=अन्तादिवत्। अन्तादिवत् अव्ययपदं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

पूर्व और पर के स्थान पर जो एकादेश होता है, वह पूर्ववर्ती वर्णसमुदाय के लिए उसके अन्त्य के समान होता है और परवर्ती वर्णसमुदाय के लिए उसी के आदि के समान होता है।

जैसे एकादेश पूर्व और पर के स्थान पर होता है, उस एकादेश को अन्त या आदि मानना पड़े तो कैसे माना जाय, क्योंकि एकादेश होकर न तो पूर्व का रह गया है और न ही पर का अर्थात् अखण्ड है। एकादेश हो जाने के बाद यदि पुनः सन्धि आदि करनी हो तो उस एकादेश को पूर्व में स्थित माना जाय अथवा पर में स्थित? दूसरी बात एकादेश होने से पूर्व की स्थिति के किसी वर्ण विशेष को मानकर कार्य करना हो उस एकादेश को पूर्व का माना जाय या पर का। इस सन्देह को दूर करता है यह सूत्र। इसका कहना है कि जो एकादेश हुआ है वह यद्यपि अखण्ड है तथापि पूर्व घटित कार्य के लिए उसे अन्त के समान माना जाय और पर घटित कार्य के लिए आदि के समान माना जाय अर्थात् एकादेश होने पर उसे आदि भी माना जाता है और अन्त भी।

इस सूत्र को अतिदेश सूत्र कहते हैं क्योंकि जो वैसा नहीं है उसको वैसा मान लेना ही अतिदेश है।

परनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः। यह परिभाषा है। सूत्रों में **पूर्वसूत्र** की अपेक्षा **परसूत्र** बलवान् होता है। **पूर्वसूत्र** और **परसूत्र** की अपेक्षा **नित्यसूत्र** बलवान् होता है, **पूर्व, पर, नित्यसूत्रों** की अपेक्षा **अन्तरङ्गसूत्र** बलवान् होता है और **पूर्व, पर, नित्य, अन्तरङ्गसूत्रों** की अपेक्षा **अपवादसूत्र** बलवान् होता है। अर्थात् **पूर्व, पर, नित्य, अन्तरङ्ग और अपवाद** इन सूत्रों में पूर्व पूर्व की अपेक्षा उत्तर-उत्तर के बलवान होते हैं। जो सूत्र अपेक्षाकृत बलवान् होता है, वह पहले प्रवृत्त होता है। **पूर्व** और **पर** का व्यवहार इस तरह से समझें- **अष्टाध्यायी** के क्रम से जो पहले पठित है वह पूर्वसूत्र और तदपेक्षया जो बाद में पठित है वह उत्तरसूत्र है।

सवर्णदीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

४२. अकः सवर्णे दीर्घः ६।१।१०१॥

अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोर्दीर्घ एकादेशः स्यात्।

दैत्यारिः। श्रीशः। विष्णूदयः। होतृकारः।

....

कृताकृतप्रसङ्गी नित्यः। किसी सूत्र के लगने के पूर्व भी वह सूत्र लग सकता है और उस सूत्र के लगने के बाद भी लग सकता है अर्थात् पूर्वस्थिति में भी लगने की क्षमता रखता है और परस्थिति में भी लगने की क्षमता रखता है। अतः उसे **नित्य** कहते हैं।

अन्तरङ्ग को जानने के लिए अनेक नियम हैं। जैसे कि **धातूपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गम्, अन्यत्कार्यं बहिरङ्गम्। अल्पापेक्षमन्तरङ्गम्। पूर्वोपस्थितिनिमित्तकमन्तरङ्गम्** आदि आदि। अर्थात् **धातु** और **उपसर्ग** के बीच में होने वाला कार्य अन्तरंग होता है। कम अपेक्षा करने वाला कार्य अन्तरंग होता है। आगे की अपेक्षा पहले के वर्णों के विषय में होने वाला कार्य अन्तरंग होता है, आदि आदि।

अपवाद। निरवकाशो विधिरपवादः। ज्यादा जगहों पर लगने वाले सूत्रों की अपेक्षा कम जगह पर लगने वाला निरवकाश सूत्र **अपवाद** सूत्र कहलाता है। जैसे कि **आद्गुणः** और **वृद्धिरेचि** में **आद्गुणः** अधिक जगहों पर लगता है और **वृद्धिरेचि** कम जगहों पर लगता है। अतः **वृद्धिरेचि** यह सूत्र **आद्गुणः** की अपेक्षा **निरवकाश** है, अतः यह **अपवादसूत्र** है।

असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे। यह परिभाषा है। यदि **बहिरङ्ग** और **अन्तरङ्ग कार्य** एक साथ प्रवृत्त हो रहे हों तो वहाँ पर **बहिरङ्गकार्य** असिद्ध होकर हट जाता है और **अन्तरङ्गकार्य** होने लगता है।

शिवेहि। हे शिव यहाँ आइये। **शिव+आ+इहि** ऐसी स्थिति है। **शिव+आ** में **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ प्राप्त है और **आ+इहि** में **आद्गुणः** से गुण प्राप्त है। **धातु और उपसर्ग का कार्य अन्तरङ्ग होने के कारण बलवान् है**, अतः उपसर्ग **आ** और धातु **इहि** में पहले गुण होकर आ+इहि=**एहि** बना। इस तरह **शिव+एहि** बन गया है। **एहि** का **ए** यह **आ** और **इ** के स्थान पर **एकादेश** होकर बना हुआ है। उस **एकार** को **अन्तादिवच्च** से **पूर्वान्तवद्भाव** हो जाता है अर्थात् एकादेश होने से पहले पूर्व का अन्त **आ** और पर का आदि **इ** था। अब हमें **ए** को **आ** मानकर **ओमाङोश्च** से पररूप करना है तो **ए** को **आ** भी माना जा सकता है और **इ** भी। अतः पूवाश्रित कार्य करने में अन्त के समान हो गया। **आ+इ** में अन्त में **आ** था। **आ** यह आङ् है, उसे मानकर होने वाला पररूप हो गया। पररूप पूर्व और पर के स्थान पर होता है। **शिव+एहि** में पूर्व में है **शिव** का **अकार** और पर में है **एहि** का **एकार**। दोनों के स्थान पर पररूप एकादेश **ए** हो गया। **शिव्+ए+हि** बना। वर्णसम्मेलन होकर **शिवेहि** सिद्ध हुआ। यदि **अन्तादिवच्च** यह सूत्र न होता तो **शिव+एहि** में **वृद्धिरेचि** से वृद्धि होकर **शिवैहि** ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध हो जाता। इस सूत्र के कारण **वृद्धिरेचि** को **ओमाङोश्च** बाध देता है।

४२- अकः सवर्णे दीर्घः। अकः प्रथमान्तं, सवर्णे सप्तम्यन्तं, दीर्घः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **इको यणचि** से **अचि** की अनुवृत्ति और **एकः पूर्वपरयोः** का अधिकार है।

अक् से सवर्ण अच् के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर दीर्घसंज्ञक एकादेश होता है।

अक् प्रत्याहार से सवर्ण **अच्** अर्थात् समानजातीय **अच्** परे होना चाहिए। **एक: पूर्वपरयो:** का अधिकार होने से **पूर्व और पर के स्थान पर** यह अर्थ बना। स्थानी दो होंगे और आदेश दीर्घसंज्ञक एक ही होगा। **अकार** के सवर्णी अठारह भेद वाले **अकार** ही हैं। इसी प्रकार इकार के सवर्णी भी अठारह प्रकार के **इकार** ही लिये जाते हैं और **उकार** के सवर्णी **उकार** एवं **ऋकार** के सवर्णी भी अठारह प्रकार के **ऋकार** और बारह प्रकार के **ऌकार** को लेकर **तीस** प्रकार के हैं। अत: **अकार** से **अकार** के परे रहने पर, **इकार** से **इकार** के परे रहने पर, **उकार** से **उकार** के परे रहने पर, **ऋकार** से **ऋकार** और **ऌकार** के परे रहने यह सूत्र **पूर्व** और **पर** के स्थान पर दीर्घ एकादेश करता है। जैसे- अ+अ=**आ**, इ+इ=**ई**, उ+उ=ऊ, ऋ+ऋ=ॠ आदि।

यह सूत्र **अ+अ** की स्थिति में **आद्गुण:** का बाधक है। **इ+इ, उ+उ, ऋ+ऋ,** की स्थिति में **इको यणचि** का बाधक है। ध्यान रहे कि यह सूत्र पूर्व में **अक्** प्रत्याहार के वर्ण और पर में उनके ही सवर्ण हों, तभी लगता है। अक् प्रत्याहार में **अ, इ, उ, ऋ, ऌ,** ये पाँच वर्ण आते हैं और **ऌ** का दीर्घाक्षर न होने के कारण जब **ऌ** के लिए दीर्घादेश का विधान होता है तब **ऌ** का सवर्णी **ॠ** ही दीर्घाक्षर हो जाता है।

जब इस सूत्र से दीर्घसंज्ञक एकादेश की प्राप्ति होती है तो सभी दीर्घ **आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ** ये सभी प्राप्त होते हैं और **स्थानेऽन्तरतम:** की सहायता से स्थान से साम्य सवर्णदीर्घ ही हो, ऐसा नियम प्राप्त होता है।

दैत्यारि:। दैत्यों के शत्रु- भगवान् विष्णु। **दैत्य+अरि:** इस स्थिति में **आद्गुण:** से गुण की प्राप्ति थी, उसे बाधकर सूत्र लगा- **अक: सवर्णे दीर्घ:**। **अक्** है 'दैत्य' में यकारोत्तरवर्ती **अकार** और सवर्ण अच् परे है- **अरि:** का **अकार**। पूर्व और पर दोनों अकार के स्थान पर अकार का ही दीर्घ वर्ण आकार आदेश के रूप में हुआ- **दैत्य्+आ+रि:** बना, वर्ण सम्मेलन हुआ **दैत्यारि:** रूप सिद्ध हुआ।

संस्कृत में- **दैत्य+अरि:** इत्यत्र **संहितासंज्ञायाम्, आद्गुण:** इत्यनेन गुणे प्राप्ते तं प्रबाध्य **स्थानेऽन्तरतम:** इतिपरिभाषासूत्रसहकारेण **अक: सवर्णे दीर्घ:** इत्यनेन पूर्वपरयो: स्थाने सवर्णदीर्घैकादेशे **दैत्य्+आ+रि:** इति जाते वर्णसम्मेलने **दैत्यारि:** इति रूपं सिद्धम्।

श्रीश:। लक्ष्मी के पति। **श्री+ईश:** में **इको यणचि** से यण् प्राप्त था, उसे बाधकर के **स्थानेऽन्तरतम:** की सहायता से **अक: सवर्णे दीर्घ:** से सवर्णदीर्घ एकादेश होकर **श्र्+ई+श:** बना। वर्णसम्मेलन होकर **श्रीश:** सिद्ध हुआ।

विष्णूदय:। विष्णु का उदय:। **विष्णु+उदय:** में अक् है **'विष्णु'** का **उकार** और सवर्ण अच् परे है **'उदय:'** का **उकार**। दोनों के स्थान पर दीर्घ एक ही आदेश **ऊकार** हुआ। **विष्ण्+ऊ+दय:** बना। वर्णसम्मेलन में **(ष्ण्+ऊ=ष्णू) विष्णूदय:** सिद्ध हुआ।

होतॄकार:। होता का ऋकार। **होतृ+ऋकार:** में अक् है **होतृ** में **ऋकार** और सवर्ण अच् परे है- **ऋकार:** का **ऋ**। दोनों ऋकारों के स्थान पर दीर्घ रूप ॠकार एकादेश हुआ। **होत्+ॠ+कार:** बना, वर्णसम्मेलन होने पर **होतॄकार:** सिद्ध हुआ।

ऌकार के विषय में पहले भी बताया जा चुका है कि इसका दीर्घ वर्ण नहीं

पूर्वरूपविधायकं विधिसूत्रम्

४३. एङः पदान्तादति ६।१।१०९॥

पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्।

हरेऽव। विष्णोऽव।

....

होता। इसलिए दीर्घ का विधान होने पर उसका सवर्णी ॠ ही हो जाता है। वैसे ऌकार का उदाहरण अत्यन्त अप्रसिद्ध है। **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में इसका उदाहरण मिलता है, यहाँ नहीं दिया गया है।

वह **कृष्ण** भक्तों का दुःखनिवारण करता है। अतः **दैत्यों** का विनाश करता है। वह लक्ष्मीपति है, अतः प्रभूत धन देता है। वह सर्वत्र उदित रहता है, सूर्य की तरह प्रकाश बिखेरता है अर्थात् ज्ञान के द्वारा अज्ञानान्धकार को हटाता है और उसे प्राप्त करने के यज्ञानुष्ठान अनेक उपाय हैं।

अभ्यासः

(क) **श्रीशः, विष्णूदयः** और **होतॄकारः** इन प्रयोगों को संस्कृत भाषा में भी सिद्ध करें।

(ख) निम्नलिखित रूपों की सिद्धि करें-
देव+आलयः। विद्या+अर्थी। गिरि+ईशः। भानु+उदयः। परम+अर्थः। विद्या+आनन्दः। कर+अग्रम्। वेद+अभ्यासः। राम+आदिः। तरु+उपेतः। तुल्य+आस्यम्। पितृ+ऋणम्।

(ग) निम्नलिखित प्रयोगों की सन्धिविच्छेद पूर्वक सिद्धि करें-
भूमीशः। हरीशः। यदासीत्। प्रतीक्षते। फलानीमानी। कमलाकरः। महीन्द्रः। अल्पापराधः। कवीश्वरः। रोगातुरः। मुनीन्द्रः। अस्तीदम्। रसास्वादः। गुरूत्तमः।

(घ) **अकः सवर्णे दीर्घः** यह सूत्र कैसी स्थिति में किस-किस सूत्र का अपवाद है?

(ङ) **अकः सवर्णे दीर्घः** इस सूत्र में **पूर्व और पर के स्थान पर एकादेश** इतना अर्थ कहाँ से आता है?

(च) अक् प्रत्याहार के प्रत्येक वर्णों के सवर्णी कौन-कौन से वर्ण हैं?

४३- एङः पदान्तादति। एङः पञ्चम्यन्तं, पदान्तात् पञ्चम्यन्तम्, अति सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अमि पूर्वः** से **पूर्वः** की अनुवृत्ति आती है। **एकः पूर्वपरयोः** का अधिकार है।

पदान्त एङ् से ह्रस्व अकार के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर पूर्वरूप एक आदेश होता है।

जैसे **एङि पररूपम्** यह सूत्र **पररूप** करता है उसी प्रकार **एङः पदान्तादति** यह सूत्र **पूर्वरूप** करता है। **पररूप** में **पूर्व** और **पर** के स्थान पर **परवर्णसदृश** वर्ण हो जाता है और इसके विपरीत **पूर्वरूप** में **पूर्व** और **परवर्ण** के स्थान पर **पूर्ववर्णसदृश** वर्ण होता है। दोनों में पूर्व और पर के स्थान पर एकादेश ही होता है।

यह सूत्र **पदान्त एङ** से केवल **ह्रस्व अकार** के परे रहने पर **पूर्व** और **पर** के स्थान पर **पूर्वरूप एकादेश** करता है। जैसे- **ए+अ** में पूर्व में **ए** है और पर में **अ**। जव पूर्वरूप हो जायेगा तो **ए** और **अ** दोनों के स्थान पर पूर्व का जैसा वर्ण केवल **ए** ही होता है। सूत्र के अनुसार पूर्व में **पद** के अन्त में विद्यमान **एङ्** हो और **पर** में केवल **ह्रस्व** अकार

हो तो वहाँ पूर्वरूप का विधान होना चाहिए। इसके द्वारा पूर्वरूप होने पर अकार के स्थान पर 'ऽ' इस चिह्न को लगाने की परम्परा रही है जिसे **अवग्रह** या **खण्डाकार** कहते हैं। यद्यपि अवग्रह चिह्न (खण्डाकार) का विधान कोई सूत्र नहीं करता फिर भी वह **पूर्व अकार** का संकेत देता हुआ यह चिह्न संस्कृत भाषा में बहुत प्रचलित है। इस चिह्न का प्रयोग करें या न करें, इसमें आप स्वतन्त्र हैं अर्थात् कोई अनिवार्यता नहीं है।

पूर्वरूप यह अर्थ इस सूत्र में **अमि पूर्वः** इस सूत्र से **पूर्वः** की अनुवृत्ति से प्राप्त हुआ है। यह सूत्र **एचोऽयवायावः** का बाधक है।

हरेऽव। हे हरे! रक्षा करें। **हरे+अव** इस स्थिति में संहितासंज्ञा के बाद **एचोऽयवायावः** सूत्र से **अय्** आदेश की प्राप्ति हुई और उसे बाधकर सूत्र लगा- **एङः पदान्तादति**। पदान्त एङ् से ह्रस्व अकार के परे रहने पर पूर्व-पर के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश होता है। पदान्त **एङ्** है **हरे** का **एकार** और **ह्रस्व** अकार परे है **अव** का अकार। पूर्व में है **हरे** का **एकार** और पर में है **अव** का **अकार**। एकार और अकार के स्थान पर जब पूर्वरूप एकादेश हुआ तो **एकार** ही हुआ- **हरेव** बना। परम्परा के अनुसार अकार की जगह 'ऽ' यह चिह्न लगाया गया- हरेऽव।

विष्णोऽव। हे विष्णो! रक्षा करें। **विष्णो+अव** इस स्थिति में संहितासंज्ञा के बाद **एचोऽयवायावः** इस सूत्र से **अव्** आदेश की प्राप्ति हुई और उसे बाधकर सूत्र लगा- **एङः पदान्तादति**। पदान्त एङ् से ह्रस्व अकार के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश होता है। पदान्त **एङ्** है **विष्णो** का **ओकार** और **ह्रस्व** अकार परे है **अव** का अकार। पूर्व में है **विष्णो** का **ओकार** और पर में है **अव** का **अकार**। इस तरह **ओकार** और **अकार** के स्थान पर जब पूर्वरूप एकादेश हुआ तो **ओकार** ही हुआ- **विष्णोव** बना। परम्परा के अनुसार अकार की जगह 'ऽ' यह चिह्न लगाया गया- **विष्णोऽव**।

हरे! विष्णो! ये सम्बोधन है और अव यह क्रियापद है। सुबन्त होने के कारण हरे और विष्णो पद हैं, और एकार और ओकार पद के अन्त में हैं।

सर्वरक्षक **विष्णु** ही हो सकता है, क्योंकि वह सृष्टि, पालन और संहार करने वाला होते हुए भक्तवश्य भी है। अतः अपनी रक्षा के लिए जब भी भक्तजन पुकारते हैं, वह दयालु वहाँ पहुँच जाता है।

अभ्यासः

(क) हरेऽव, विष्णोऽव को संस्कृत में सिद्ध करें।

(ख) यदि **एङः पदान्तादति** सूत्र न होता तो **हरे+अव**, **विष्णो+अव** में कैसे रूप बनते?

(ग) निम्नलिखित प्रयोगों में सन्धिविच्छेद करके सिद्धि करें-
सुन्दरेऽम्बरे। तेऽत्र। संसारेऽधुना। आधारोऽधिकरणम्। नमोऽस्तु। कोऽसि। दासोऽहम्। स्थानेऽन्तरतमः। वनेऽस्मिन्। विशेषेऽनुरक्तः।

(घ) निम्नलिखित प्रयोगों की सिद्धि करें-
नमो+अस्तु। एचो+अयवायावः। को+अपि। संसारे+अत्र। गुरवे+अदाम्। वायो+अत्र। ब्रह्मणे+अस्मै। ततो+अन्यत्र। वने+अस्मिन्। अग्ने+अत्र। मार्गेऽन्यः। कोऽपि।

(घ) यह सूत्र किस सूत्र का बाधक है?

प्रकृतिभावविधायकं विधिसूत्रम्

४४. सर्वत्र विभाषा गोः ६।१।१२२॥

लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः पदान्ते।

गोअग्रम्। गोऽग्रम्। एङन्तस्य किम्? चित्रग्वग्रम्। पदान्ते किम्? गोः।

....

४४- **सर्वत्र विभाषा गोः**। सर्वत्र त्रल्प्रत्ययान्तम् अव्ययं, विभाषा प्रथमान्तं, गोः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **एङः पदान्तादति** से **पदान्तात्** को सप्तमी विभक्ति में विपरिणाम करके **पदान्ते** तथा **एङः** एवं **अति** की और **प्रकृत्यान्तःपादमव्यपरे** से **प्रकृत्या** की अनुवृत्ति आती है।

लौकिक एवं वैदिक प्रयोगों में एङन्त गो शब्द को विकल्प से प्रकृतिभाव होता है पदान्त में।

विकल्प यह अर्थ **विभाषा** इस शब्द से निकलता है क्योंकि **न वेति विभाषा** इस सूत्र से **निषेध** और **विकल्प** की विभाषासंज्ञा होती है। **प्रकृत्या** का अर्थ प्रकृतिभाव है अर्थात् प्रकृति जैसी थी उसी रूप में रहना, सन्धि होकर कोई विकृति या परिवर्तन न होना, सन्धिविच्छेद के समय जो स्थिति थी, उसी स्थिति में रहना, मूल अवस्था में रहना। अन्य सन्धियों को रोककर प्रकृति में रहना। इस सूत्र में पहले से **यजुषि**(यजुर्वेद में) की अनुवृत्ति आ रही थी, उसे रोकने के लिए **सर्वत्र** (सभी जगह अर्थात् लौकिक और वैदिक प्रयोगों में) कहना पड़ा।

गोअग्रम्। गोऽग्रम्। गाय का अग्रभाग। **गो+अग्रम्** इस स्थिति में **एचोऽयवायावः** से **अव्** आदेश प्राप्त था। उसे बाधकर **एङः पदान्तादति** से **पूर्वरूप** प्राप्त था, उसे भी बाधकर सूत्र लगा- **सर्वत्र विभाषा गोः। गो** यह पद है और पदान्त ओकार है **गो** का **ओकार**। इस तरह **पदान्त** में **एङन्त गो** का ओकार है और उससे **ह्रस्व** अकार परे है **अग्रम्** का **अकार**। अतः **प्रकृतिभाव** हुआ। प्रकृतिभाव माने जैसी स्थिति थी, उसी रूप में रहना। **गो+अग्रम्** ऐसा ही था **गोअग्रम्** ऐसा ही रह गया। यह कार्य विकल्प से होता है। प्रकृतिभाव न होने के पक्ष में **एङः पदान्तादति** से पूर्वरूप होकर खण्डकार(ऽ) हो गया- **गोऽग्रम्**। प्रकृतिभाव न होने के पक्ष में **अवङ् स्फोटायनस्य** से अवङ् आदेश होकर **गवाग्रम्** भी बनता है, सो आगे बतायेंगे। यहाँ पर **गवाम् अग्रम्** लौकिक विग्रह और **गो+आम् अग्र+सु** अलौकिक विग्रह में समास करके विभक्ति का लुक् हुआ है। उस लुप्त विभक्ति को मानकर **गो** में पदत्व विद्यमान है।

एङन्तस्य किम्? चित्रग्वग्रम्। यहाँ यह प्रश्न करते हैं कि **सर्वत्र विभाषा गोः** इस सूत्र में **एङन्तस्य** की अनुवृत्ति क्यों लायी गई अर्थात् **एङन्तस्य** यह पद क्यों पढ़ा गया? न पढ़ते तो सूत्र का अर्थ होता- **लोक और वेद में गो-शब्द को विकल्प से प्रकृतिभाव हो पदान्त में।** ऐसा अर्थ होने पर **चित्रगु+अग्रम्** इस जगह पर भी प्रकृतिभाव होने लगेगा क्योंकि **चित्रा गावो यस्य, चित्रा जस् गो जस्** में समास होकर **चित्रा** को पुंवद्भाव और **गो** को ह्रस्व करके **चित्रगु** बना है। अतः **गो शब्द** है ही। सूत्र में **एङन्तस्य** न पढ़ने पर यहाँ भी सूत्र लग जायेगा और प्रकृतिभाव होने से **चित्रगुअग्रम्** ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध होगा। उक्त अनिष्ट रूप के निवारण के लिए सूत्र में **एङन्तस्य** जोड़ा गया। इससे जहाँ

सर्वादेशविधानार्थं परिभाषासूत्रम्

४५. अनेकाल् शित्सर्वस्य १।१।५५।।

इति प्राप्ते।

अन्त्यादेशविधानार्थं परिभाषासूत्रम्

४६. ङिच्च १।१।५३।।

ङिदनेकालप्यन्त्यस्यैव स्यात्।

....

एङन्त मिलेगा, वहीं पर ही प्रकृतिभाव होगा, अन्यत्र नहीं। अतः **चित्रगु+अग्रम्** में एङन्त न होने से प्रकृतिभाव नहीं हुआ, **इको यणचि** से **यण्** होकर **चित्रग्वग्रम्** सिद्ध हुआ।

पदान्ते किम्? गोः। यहाँ यह प्रश्न करते हैं कि **सर्वत्र विभाषा गोः** इस सूत्र में **पदान्ते** की अनुवृत्ति क्यों लायी गई अर्थात् **पदान्ते** यह पद क्यों पढ़ा? न पढ़ते तो सूत्र का अर्थ होता- **लोक और वेद में एङन्त गो-शब्द को विकल्प से प्रकृतिभाव हो।** ऐसा अर्थ होने पर **गो+अस्(** षष्ठी विभक्ति के ङस् वाला अस्) इस जगह पर भी प्रकृतिभाव होने लगता क्योंकि **पदान्ते** इस पद के अभाव में सूत्र पदान्त, अपदान्त दोनों जगह कार्य करना। **पदान्ते** कहने से **गो+अस्** में केवल **गो** में पदत्व न होने के कारण **गो** का ओकर पदान्त नहीं है। **सुप्तिङन्तं पदम्** इस सूत्र से **गो+अस्** इस समुदाय की पदसंज्ञा होती है, केवल **गो** की नहीं। अतः प्रकृतिभाव नहीं हुआ। **पदान्ते** इस पद के अभाव में तो प्रकृतिभाव होकर **गोअस्** ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध होता। उक्त अनिष्ट रूप के निवारण के लिए सूत्र में **पदान्ते** यह पद पढ़ा गया। जिससे **गो+अस्** में प्रकृतिभाव न हुआ अपितु पूर्वरूप होकर सकार का रुत्वविसर्ग होने से **गोः** ऐसा रूप सिद्ध हुआ।

४५- अनेकाल्शित्सर्वस्य। न एकः अनेकः(नञ्तत्पुरुषसमास)। अनेकः अल् यस्य स अनेकाल्(बहुव्रीहिसमासः) अनेकाल् प्रथमान्तं, शित् प्रथमान्तं, सर्वस्य षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

अनेक अल् वाला आदेश और शित् आदेश सम्पूर्ण के स्थान पर होते हैं।

अनेक+अल्=अनेकाल्। जिस आदेश में अनेक अर्थात् एक से अधिक अल् हों उसे **अनेकाल्** कहा जायेगा। जिस आदेश में **शकार** की इत्संज्ञा होगी उसे **शित्** कहा जायेगा। जब किसी अङ्ग आदि के स्थान पर किसी सूत्र से आदेश का विधान किया जाता है और उसमें स्पष्टतया यह निर्देश नहीं किया गया है कि आदेश सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर हो या स्थानी के अन्तिम-वर्ण या आदि-वर्ण के स्थान पर हो। ऐसा अनियम होने पर यह सूत्र परिभाषा बनकर वहाँ पर नियम करता है कि **यदि आदेश अनेक अल् वाला या शित् हो तो वह आदेश सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर ही होता है।**

यह सूत्र **अलोऽन्त्यस्य** सूत्र का अपवाद है जो केवल **अन्त्य** के स्थान पर आदेश होने का विधान करता है।

४६ -ङिच्च। ङित् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अलोऽन्त्यस्य** से **अन्त्यस्य** की अनुवृत्ति आती है।

ङित् आदेश अनेकाल् होने पर भी अन्त्य के ही स्थान पर होता है।

अवङ्-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

४७. अवङ् स्फोटायनस्य ६।१।१२३।।

पदान्ते एङन्तस्य गोरवङ् वाऽचि।

गवाग्रम्, गोऽग्रम्। पदान्ते किम्? गवि।

....

यह सूत्र **अनेकाल् शित्सर्वस्य** का बाधक है। आदेश यदि **अनेकाल्** भी हो और **ङित्** भी हो तो अर्थात् आदेश में **ङकार** की इत्संज्ञा हो रही हो तो भी वह आदेश सभी के स्थान पर न होकर केवल **अन्त्य अल् वर्ण के स्थान** पर ही होता है अर्थात् स्थानी में जो अन्त्य-वर्ण, उसीके स्थान पर होता है। इस तरह यह सिद्ध हुआ कि आदेश अनेकाल् हो या न हो, यदि ङित् है तो अन्त्य के स्थान पर होगा एवं अङित् अनेकाल् और शित् आदेश **अनेकाल् शित् सर्वस्य** के अनुसार सभी के स्थान पर होगा।

४७- **अवङ् स्फोटायनस्य**। अवङ् प्रथमान्तं, स्फोटायनस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **एङः पदान्तादति** से एङः और विभक्ति-विपरिमाण करके **पदान्तस्य** की, **इको यणचि** से **अचि** की और **सर्वत्र विभाषा गोः** से **गोः** की अनुवृत्ति आती है।

पदान्त में जो एङ्, तदन्त जो गो-शब्द, इसको अच् के परे होने पर विकल्प से अवङ् आदेश होता है।

स्फोटायन नामक प्राचीन आचार्य के मत में **अवङ्** का होना और अन्य आचार्यों के मत में न होना, यही विकल्प होना चाहिए था किन्तु **सर्वत्र विभाषा गोः** से **विभाषा** के आने के कारण स्वतः विकल्प सिद्ध है। अतः यहाँ पर **स्फोटायन** का पठन विकल्प के लिए नहीं है अपितु नाम लेकर **पाणिनि जी** ने **स्फोटायन** नामक आचार्य का आदर किया है।

अवङ् में **ङकार** की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है और उसका **तस्य लोपः** से लोप होकर केवल **अव** ही बचता है। ङकार की इत्संज्ञा होने के कारण यह आदेश ङित् है। अतः अन्त्य वर्ण **गो** के **ओकार** के स्थान पर आदेश होकर अर्थात् **ओकार** को हटाकर बैठता है।

गवाग्रम्। गोऽग्रम्। गाय का अग्रभाग। **गवाम् अग्रम्(** गो+आम्+अग्रम्) में समास होकर विभक्ति का लोप होकर के **गो+अग्रम्** ऐसी स्थिति है। **एङः पदान्तादति** से **पूर्वरूप** प्राप्त था, उसे बाधकर के **सर्वत्र विभाषा गोः** से प्रकृतिभाव प्राप्त था, उसे भी बाधकर सूत्र लगा- **अवङ् स्फोटायनस्य**। आम् विभक्ति का लुक् होने पर भी भूतपूर्व विभक्ति के आश्रयण से **गो** यह पद है और **पदान्त** है **गो** का ओकार। इस तरह पदान्त में **एङन्त** गो शब्द का **ओ** है और उससे **अच्** परे है है **अग्रम्** का **अकार**। **ङकार** की इत्संज्ञा होने के कारण **अवङ्** आदेश **ङित्** है। अतः **ङिच्च** के नियम से अन्त्य वर्ण **ओकार** के स्थान पर आदेश हुआ। **ग्+अव+अग्रम्** बना। **ग्+अव** में वर्णसम्मेलन होकर **गव** बना। **गव+अग्रम्** में **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ होकर **गवाग्रम्** सिद्ध हुआ। यह सूत्र विकल्प से अवङ् आदेश करता है। **अवङ्** न होने के पक्ष में **सर्वत्र विभाषा गोः** से विकल्प से प्रकृतिभाव हुआ- **गो अग्रम्** ही रह गया। उक्त प्रकृतिभाव विकल्प से हुआ है। न होने के पक्ष में **एङः पदान्तादति** से पूर्वरूप हो खण्डकार(ऽ) होकर **गोऽग्रम्**। इस तरह तीन रूप सिद्ध हुए। **गवाग्रम्, गोअग्रम्, गोऽग्रम्।**

अवङ्-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

४८. इन्द्रे च ६।१।१२४॥

गोरवङ् स्यादिन्द्रे। गवेन्द्रः।

प्लुतादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४९. दूराद्धूते च ८।२।८४॥

दूरात्सम्बोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा।

....

पदान्ते किम्? गवि। अब प्रश्न करते हैं कि **अवङ् स्फोटायनस्य** में **पदान्ते** की अनुवृत्ति न लाते तो क्या होता? उत्तर देते हैं कि यदि **पदान्ते** न होता तो यह सूत्र पदान्त, अपदान्त दोनों जगहों पर अवङ् आदेश करता। पदान्त में करना तो अभीष्ट है किन्तु अपदान्त में करना अभीष्ट नहीं है। **गवि** यह पूरा पद है किन्तु **गो+इ** में केवल **गो** यह पद नहीं है क्योंकि **गवि** में **गो** शब्द से सप्तमी के एकवचन में **ङि** विभक्ति लगी है। **पदसंज्ञा** केवल शब्द की नहीं होती, अपितु विभक्ति से युक्त की होती है। अतः केवल **गो** यह पद नहीं है। अतः **गो+इ** में केवल **गो** यह **पदान्त गोशब्द** भी नहीं है। ऐसी जगह पर भी यदि **अवङ्** आदेश हो जायेगा तो **ग्+अव+इ=गवे** ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध होने लगेगा। ऐसी अनिष्टसिद्धि के निवारण के लिए आचार्य ने इस सूत्र में **पदान्ते** की अनुवृत्ति की। अतः सूत्र **पदान्त गो** शब्द में ही प्रवृत्त होगा, अपदान्त में नहीं। **गो+इ** में **गो** अपदान्त है, अतः **अवङ्** आदेश नहीं हुआ। **गो+इ** में **एचोऽयवायावः** से **अव्** आदेश होकर **गवि** सिद्ध हुआ।

४८- **इन्द्रे च।** इन्द्रे सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सर्वत्र विभाषा गोः** से **गोः** की तथा **अवङ् स्फोटायनस्य** से **अवङ्** की अनुवृत्ति आती है।

इन्द्र शब्द के परे होने पर गो-शब्द को अवङ् आदेश होता है।

अवङ् में ङकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है और उसका **तस्य लोपः** से लोप हो जाता है। **ङित्** होने के कारण **ङिच्च** की सहायता से अन्त्य वर्ण **गो** के **ओकार** के स्थान पर होगा।

गवेन्द्रः। श्रेष्ठ बैल, साँड़। **गो+इन्द्रः** में **अवङ् स्फोटायनस्य** से वैकल्पिक **अवङ्** आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर **इन्द्रे च** से नित्य से **अवङ्** आदेश हुआ। **ङकार** की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होकर **अव** बचा। **ङिच्च** की सहायता से अन्त्य वर्ण **गो** के **ओकार** के स्थान पर यह आदेश हुआ है। इस तरह **ग्+अव+इन्द्रः** बना। **ग्+अव=गव** बना है। **गव+इन्द्रः** में **आद्गुणः** से गुण होकर **गवेन्द्रः** सिद्ध हुआ।

४९- **दूराद्धूते च।** दूराद् पञ्चम्यन्तं, हूते सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः** का अधिकार है।

दूर से सम्बोधन करने में प्रयुक्त जो वाक्य, उसके टि को विकल्प से प्लुत होता है।

सभी प्लुतों को वैकल्पिक माना गया है। इस सूत्र से एकमात्रिक ह्रस्व और

प्रकृतिभावविधायकं विधिसूत्रम्

५०. प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ६।१।१२५॥

एतेऽचि प्रकृत्या स्युः। आगच्छ कृष्ण३ अत्र गौश्चरति।

प्रगृह्यसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

५१. ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् १।१।११॥

ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यं स्यात्।

हरी एतौ। विष्णू इमौ। गङ्गे अमू॥

....

द्विमात्रिक दीर्घ के स्थान पर त्रिमात्रिक प्लुत आदेश हो जाता है। वैसे लोक में जब किसी का नाम लेकर पुकारते हैं तो स्वाभाविक रूप से प्लुत का ही उच्चारण करते हैं। जैसे **अरे देवदत्त!** प्लुत का एक प्रयोजन प्रकृतिभाव करना भी होता है। जहाँ पर प्रकृतिभाव प्राप्त नहीं है, वहाँ केवल उच्चारण काल में भेद होगा। प्लुत हो जाने के बाद उसको समझने के लिए प्रायः ३ का अङ्क लिखने का प्रचलन है।

५०- प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्। प्लुताश्च प्रगृह्याश्च प्लुतप्रगृह्याः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। प्लुतप्रगृह्याः प्रथमान्तम्, अचि सप्तम्यन्तं, नित्यं प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **प्रकृत्यान्तःपादमव्यपरे** से **प्रकृत्या** की अनुवृत्ति आती है।

अच् के परे होने पर प्लुत और प्रगृह्य को प्रकृतिभाव होता है।

आगच्छ कृष्ण३ अत्र गौश्चरति। हे कृष्ण! आओ, गौ यहाँ पर चर रही है। **आगच्छ कृष्ण+अत्र गौश्चरति** में दूर से सम्बोधन किया जा रहा है, अतः **कृष्ण** में णकारोत्तरवर्ती अकार जो **टिसंज्ञक** भी है, उसकी **दूराद्धूते च** से **प्लुतसंज्ञा** हो गई। उसके बाद सूत्र लगा- **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्।** प्लुत है **कृष्ण** का अन्तिम वर्ण **अकार**, उससे **अच्** परे है **अत्र** का **अकार**। अतः **प्रकृतिभाव** हो गया। प्रकृतिभाव का तात्पर्य है यथास्थिति से रहना। **आगच्छ कृष्ण३ अत्र गौश्चरति** था, ऐसे ही रह गया। प्लुतसंज्ञा वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **कृष्ण+अत्र** में **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ होकर **आगच्छ कृष्णात्र गौश्चरति** ऐसा रूप सिद्ध हो जाता है।

इस तरह से सम्बोधन के वाक्य में अच् के परे होने पर दो रूप हुआ करते हैं। जहाँ अच् परे नहीं है, वहाँ केवल प्लुत ही बना रहेगा अर्थात् **प्रकृतिभाव** नहीं होगा।

५१- ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्। ईच्च, ऊच्च, एच्च ईदूदेत्, समाहारद्वन्द्वः। ईदूदेत् प्रथमान्तं, द्विवचनं प्रथमान्तं, प्रगृह्यं प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **ईदूदेद्** यह पद **द्विवचनं** का विशेषण है। **येन विधिस्तदन्तस्य** इस परिभाषा से तदन्तविधि करके **ईदन्त द्विवचन, ऊदन्त द्विवचन और एदन्त द्विवचन** ऐसा अर्थ किया जाता है।

ईकारान्त द्विवचन, ऊकारान्त द्विवचन और एकारान्त द्विवचन प्रगृह्यसंज्ञक होता है।

इकारान्त पुँल्लिङ्ग **हरि** शब्द तथा उकारान्त पुँल्लिङ्ग **भानु** शब्दों की प्रथमा के द्विवचन में क्रमशः **हरी** एवं **भानू** ये दीर्घान्त रूप बनते हैं और आबन्त शब्द के स्त्रीलिङ्ग में प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में **एकारान्त** रूप बनता है। इनकी **प्रगृह्यसंज्ञा** होने के बाद यदि आगे अच् हो तो **प्रकृतिभाव** हो जायेगा। स्मरण रहे कि **प्लुतसंज्ञा** वैकल्पिक है,

प्रगृह्यसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

५२. अदसो मात् १।१।१२॥

अस्मात् परावीदूतौ प्रगृह्यौ स्तः।

अमी ईशाः। रामकृष्णावमू आसाते। मात् किम्? अमुकेऽत्र।

....

अतः एक पक्ष में **दीर्घ** आदि कार्य भी होते हैं किन्तु **प्रगृह्यसंज्ञा** नित्य से होती है, अतः प्रकृतिभाव वाला एक ही रूप होगा।

हरी एतौ। ये दो हरि हैं। **हरी+एतौ** में ईकारान्त द्विवचन हरी की **ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्** से **प्रगृह्यसंज्ञा** हो गई और **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** से **प्रकृतिभाव** हो गया। प्रकृतिभाव का तात्पर्य है यथास्थिति से रहना। **हरी एतौ** ऐसा ही था और ऐसा ही रह गया। यदि प्रगृह्यसंज्ञा और प्रकृतिभाव न होते तो **हरी+एतौ** में **इको यणचि** से यण् होकर **हर्येतौ** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

विष्णू इमौ। ये दो विष्णु हैं। **विष्णू+इमौ** में ऊकारान्त द्विवचन **विष्णू** की **ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्** से **प्रगृह्यसंज्ञा** हो गई और **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** से **प्रकृतिभाव** हो गया। प्रकृतिभाव का तात्पर्य है यथास्थिति से रहना। **विष्णू इमौ** ऐसा ही था और ऐसा ही रह गया। यदि प्रगृह्यसंज्ञा और प्रकृतिभाव न होते तो **विष्णू+इमौ** में **इको यणचि** से यण् होकर **विष्ण्वमौ** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

गङ्गे अमू। ये दो गङ्गाएँ हैं। **गङ्गे+अमू** में एकारान्त द्विवचन **गङ्गे** की **ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्** से **प्रगृह्यसंज्ञा** हो गई और **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** से **प्रकृतिभाव** हो गया। प्रकृतिभाव का तात्पर्य है यथास्थिति से रहना। **गङ्गे अमू** ऐसा ही था और ऐसा ही रह गया। यदि प्रगृह्यसंज्ञा और प्रकृतिभाव न होते तो **गङ्गे+अमू** में **एङः पदान्तादति** से पूर्वरूप होकर **गङ्गेऽमू** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

५२- अदसो मात्। अदसः षष्ठ्यन्तं, मात् पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्** से ईदूद् और **प्रगृह्यम्** की अनुवृत्ति आती है।

अदस् शब्द के मकार से परे ईकार और ऊकार प्रगृह्यसंज्ञक होते हैं।

अदस् के तीनो लिङ्गों की प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन तथा बहुवचन में **अदसोऽसेर्दादु दो मः** से **मत्व** होकर **मकार** मिलता है। यदि उस **मकार** से परे **ईकार** और **ऊकार** मिलेगा तो उसकी इस सूत्र से **प्रगृह्यसंज्ञा** हो जायेगी। इस तरह **अमू, अमी** ये दो रूप मिलते हैं। **अदस्** शब्द में **मकार** से परे एकार नहीं मिलता है। अतः **ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्** से **एत्** की अनुवृत्ति नहीं आती है।

अमी ईशाः। ये स्वामी जन हैं। **अमी** यह रूप **अदस्** के प्रथमा बहुवचन का है। **अमी+ईशाः** में **अमी** के **ईकार** की **अदसो मात्** से प्रगृह्यसंज्ञा हो गई क्योंकि यहाँ पर **अदस्**-शब्द के **मकार** से परे **ईकार** है। इसके बाद **प्लुतप्रगृह्यसंज्ञा अचि नित्यम्** से प्रकृतिभाव हो गया। **अमी ईशाः** ऐसा था, ऐसा ही रह गया। प्रकृतिभाव होने से **अमी+ईशा** में **अकः सवर्णे दीर्घः** से **सवर्णदीर्घ** न हो सका, क्योंकि सवर्णदीर्घ को बाधकर के प्रकृतिभाव होता है। अन्यथा सवर्णदीर्घ होकर **अमीशाः** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

रामकृष्णावमू आसाते। ये दोनों राम और कृष्ण हैं। **रामकृष्णौ+अमू** में पहले

निपातसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

५३. चादयोऽसत्त्वे १।४।५७॥

अद्रव्यार्थाश्चादयो निपाताः स्युः।

....

एचोऽयवायावः से आव् आदेश होकर **रामकृष्णावमू** बन गया है। **रामकृष्णावमू+आसाते** में **अदसो मात्** से ऊकार की प्रगृह्यसंज्ञा हो गई क्योंकि **अदस्**-शब्द के **मकार** से परे ऊकार है। इसके बाद **प्लुतप्रगृह्यसंज्ञा अचि नित्यम्** से **प्रकृतिभाव** हो गया। **रामकृष्णावमू आसाते** ऐसा था, ऐसा ही रह गया। प्रकृतिभाव होने से **रामकृष्णावमू+आसाते** में **इको यणचि** से **यण्** न हो सका, क्योंकि यण् को बाधकर के प्रकृतिभाव होता है। अन्यथा यण् होकर **रामकृष्णावम्वासाते** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

मात् किम्? अमुकेऽत्र। अब यहाँ पर प्रश्न होता है कि सूत्र में **मात्** यह पद क्यों पढ़ा गया? क्योंकि **अदस्** शब्द में **मकार** के अतिरिक्त अन्य किसी वर्ण से परे ईत्, ऊत् ये, तीनों लिङ्गों के रूपों में कहीं नहीं पाए जाते। अतः **मात्** ग्रहण न करने से भी **अमू, अमी** की **प्रगृह्यसंज्ञा** हो जायेगी। उत्तर यह देते हैं कि यदि सूत्र में **मात्** नहीं पढ़ेंगे तो **अमुकेऽत्र** में दोष आयेगा। **अमुके** यह **अदस्** शब्द से **अकच्** प्रत्यय होकर प्रथमा के बहुवचन में सिद्ध होता है। **मात्** के न पढ़ने पर **ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्** से जब **ईत्, ऊत्** की अनुवृत्ति आती है तो **एत्** की भी अनुवृत्ति आयेगी और सूत्र का अर्थ होगा- **अदस् शब्द के ईकार, ऊकार और एकार की प्रगृह्यसंज्ञा हो।** ऐसा अर्थ होने पर तो **अमुके+अत्र** में भी अदस् शब्द का एकार मिलता है। अतः प्रकृतिभाव होकर **अमुके अत्र** ऐसा अनिष्ट रूप बन जायेगा। ऐसे अनिष्ट रूप के निवारण के लिए इस सूत्र में **मात्** पढ़ा गया। **मात्** का अर्थ है मकार से परे। **मात्** पढ़ने से पूर्वसूत्र से **एत्** की अनुवृत्ति नहीं आयेगी, क्योंकि अदस् शब्द के किसी भी रूप में मकार से परे एकार होता ही नहीं है। जब मकार से परे एकार होता ही नहीं है तो एत् की अनुवृत्ति आना भी व्यर्थ ही है। इस तरह से **मात्** पढ़ने के कारण **अमुके+अत्र** में प्रगृह्यसंज्ञा भी नहीं हुई और प्रकृतिभाव भी नहीं हुआ। एङः पदान्तादति से पूर्वरूप होकर **अमुकेऽत्र** सिद्ध हुआ।

ईत्, ऊत् की अनुवृत्ति आने पर तो **एत्** की अनुवृत्ति क्यों आयेगी? इस सम्बन्ध में एक परिभाषा है। **सन्नियोगशिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः** अर्थात् एक साथ पढ़े गये वर्ण जब कहीं प्रवृत्त होते हैं तो एक साथ प्रवृत्त होते हैं और निवृत्त होते हैं तो साथ-साथ ही निवृत्त होते हैं। यहाँ पर **ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्** में **ईत्, ऊत्, एत्** ये साथ में पढ़े गये हैं। जब **ईत्, ऊत्** ये कहीं जायेंगे तो **एत्** भी जाना चाहेगा। **एत्** न आये, इसलिए **मात्** पढ़ना जरूरी है।

अभ्यासः

१. **प्रकृतिभाव** का तात्पर्य बतायें।

२. कहाँ-कहाँ **प्रगृह्यसंज्ञा** और कहाँ-कहाँ **प्लुतसंज्ञा** होती है, स्पष्ट करें।

३. **अन्त्यादेश** और **सर्वादेश** के विषय में आप क्या जानते हैं?

४. निम्नलिखित प्रयोगों की सिद्धि करें-

बालिके अधियाते। कवी अत्र। वायू आवातः। रमे अत्र। वर्धेते अस्मिन्। उभे अभ्यस्तम्। धने इमे। माले अत्र। पाणी आस्ताम्।

निपातसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

५४. प्रादयः १।४।५८॥

एतेऽपि तथा।

प्रगृह्यसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

५५. निपात एकाजनाङ् १।१।१४॥

एकोऽज् निपात आङ्वर्जः प्रगृह्यः स्यात्।

इ इन्द्रः। उ उमेशः। **वाक्यस्मरणयोरङित्।** आ एवं नु मन्यसे। आ एवं किल तत्। अन्यत्र ङित्, आ ईषदुष्णम् ओष्णम्।

....

५३- **चादयोऽसत्त्वे।** चः आदिर्येषां ते चादयः, बहुव्रीहिः। न सत्त्वम्- असत्त्वम्, तस्मिन् असत्त्वे। चादयः प्रथमान्तम्, असत्त्वे सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्राग्रीश्वरान्निपाताः** से **निपाताः** का अधिकार चल रहा है।

द्रव्य अर्थ न होने पर च आदि निपातसंज्ञक होते हैं।

लिङ्गसङ्ख्यान्वयित्वं द्रव्यत्वम्। जिस शब्द में लिङ्ग और सङ्ख्या का अन्वय अर्थात् सम्बन्ध हो अथवा जिस शब्द में लिङ्ग और सङ्ख्या हो, उसे द्रव्य कहते हैं। उससे भिन्न अद्रव्य हैं। जैसे **च, वा, हि, आ,** ये अद्रव्य हैं और **पशु, मनुष्य, पुस्तक, घर** आदि द्रव्य हैं। यह सूत्र चादिगण पठित शब्दों की निपातसंज्ञा करता है, यदि उनमें द्रव्यवाचकता न हो तो। निपातसंज्ञा के अनेक फल हैं, उनमें से एक फल प्रगृह्यसंज्ञा भी है।

५४- **प्रादयः।** प्रः आदिर्येषां ते प्रादयः, बहुव्रीहिः। **चादयोऽसत्त्वे** से **असत्त्वे** की अनुवृत्ति एवं **प्राग्रीश्वरान्निपाताः** से **निपाताः** का अधिकार चल रहा है।

द्रव्य अर्थ न होने पर प्र आदि भी निपातसंज्ञक होते हैं।

प्रादि उपसर्गाः क्रियायोगे सूत्र में बताये जा चुके हैं। **प्रादि** की निपातसंज्ञा होने से **अव्ययसंज्ञा** भी हो जायेगी और **अव्यय** के वाद सुप् का लुक् हो सकेगा।

५५- **निपात एकाजनाङ्।** एकश्चासौ अच्- एकाच्, कर्मधारयः। न आङ्- अनाङ्, नञ्तत्पुरुषः। **ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्** से **प्रगृह्यम्** की अनुवृत्ति आती है।

आङ् को छोड़कर मात्र एक अच् वाला निपात प्रगृह्यसंज्ञक होता है।

जिसकी पहले **निपातसंज्ञा** हो चुकी हो, उसमें केवल **एक ही अच्** हो और एक अच् भी **आङ् वाला न हो** तो उस एकाच् की **प्रगृह्यसंज्ञा** इस सूत्र से की जाती है। **अनाङ्** अर्थात् **आङ्वर्जः** आङ् को छोड़कर। ऐसा इसलिए कहना पड़ा कि **आङ्** में **ङ्कार** की इत्संज्ञा और उसका लोप करने पर **आ** बचता है, उसकी **निपात**संज्ञा न हो सके। तात्पर्य यह हुआ कि **आङ्** को छोड़कर सभी एकाच् निपात प्रगृह्यसंज्ञक होते हैं।

इ इन्द्रः। ओह! ये इन्द्र हैं! यहाँ पर अद्रव्यार्थक चादि है इ, उसकी **चादयोऽसत्त्वे** से **निपातसंज्ञा** हो गई और **निपात एकाजनाङ्** से **प्रगृह्यसंज्ञा** हो गई। प्रगृह्यसंज्ञा का फल प्रकृतिभाव होना है तो **इ+इन्द्रः** में प्रकृतिभाव हो गया। अतः **इ इन्द्रः** ऐसा ही रहा। यहाँ पर **सवर्णदीर्घ** को बाधकर प्रकृतिभाव होता है। यदि **सवर्णदीर्घ** हो जाता तो **ईन्द्रः** ऐसा **अनिष्ट** रूप बन जाता।

प्रगृह्यसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

५६. ओत् १।१।१५॥

ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः स्यात्। अहो ईशाः।

....

उ उमेशः। ओ! ये उमेश हैं! यहाँ पर अद्रव्यार्थक चादि है उ, उसकी **चादयोऽसत्त्वे** से **निपातसंज्ञा** हो गई और **निपात एकाजनाङ्** से **प्रगृह्यसंज्ञा** हो गई। प्रगृह्यसंज्ञा का फल प्रकृतिभाव होना है तो **उ+उमेशः** में प्रकृतिभाव हो गया। अतः **उ उमेशः** ही रहा। यहाँ पर भी **सवर्णदीर्घ** को बाधकर प्रकृतिभाव होता है। सवर्णदीर्घ हो जाता तो **ऊमेशः** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

वाक्यस्मरणयोरङित्। अन्यत्र ङित्। वाक्य और स्मरण अर्थ मं आ अङित् होता है, अन्यत्र ङित् ही होता है।

चादिगण में **आ** तथा प्रादिगण **में आङ्** पढ़े गये हैं। इन दोनों की क्रमशः **चादयोऽसत्त्वे** तथा **प्रादयः** से **निपातसंज्ञा** होती है। इस प्रकार से दो निपात माने गये हैं। इनमे प्रथम **आ** की **निपात एकाजनाङ्** की प्रगृह्यसंज्ञा होती है किन्तु सूत्र में **अनाङ्** कहने के कारण द्वितीय आङ् की **प्रगृह्यसंज्ञा** नहीं होती है। अब यहाँ पर समस्या यह होती है कि आङ् के ङकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा करके **तस्य लोपः** से लोप हो जाने के बाद **आ** ही बचता है। ऐसी स्थिति में यह सन्देह हो जाता है कि यह **आ** चादि वाला आ है या **प्रादि** वाला **आङ्**? चादि वाला **अङित्** है तो प्रादि वाला **ङित्**। किस जगह पर **ङित् आ** को मानें और किस जगह **अङित् आ** को? इसके लिए मूलकार ने लिखा- **वाक्यस्मरणयोरङित्, अन्यत्र ङित्**। वाक्य और स्मरण अर्थ में **आ** को **अङित्** माना जाय और अन्यत्र ङित् माना जाय। अन्यत्र का अर्थ निम्नलिखित पद्य से स्पष्ट करते हैं-

ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधौ च यः।
एतमातं ङितं विद्याद् वाक्यस्मरणयोरङित्॥

अर्थात् **ईषत्** अल्प अर्थ में, **क्रियायोगे** क्रिया के साथ योग होने पर, **मर्यादाभिविधौ च** मर्यादा और अभिविधि अर्थ में **आकार** को **ङित्** मानना चाहिए किन्तु वाक्य और स्मरण अर्थ में **अङित्** मानना चाहिए। **अङित् आकार** की **प्रगृह्यसंज्ञा** होती है और **ङित्** की नहीं होती है।

आ एवं नु मन्यसे अब तुम ऐसा मानते हो(वाक्य) तथा **आ एवं किल तत्** हाँ, ऐसा ही है (स्मरण) अर्थ में **आ अङित्** माना गया है। इसलिए **आ** की **निपात एकाजनाङ्** से प्रगृह्यसंज्ञा हुई और प्रकृतिभाव हो गया। **आ+एवं** यहाँ पर वृद्धि प्राप्त थी, उसे बाधकर प्रकृतिभाव हो गया।

इन दो अर्थों से भिन्न अर्थ अर्थात् ईषद् आदि अर्थों में ङित् होने के कारण प्रगृह्यसंज्ञा नहीं हुई तो प्रकृतिभाव भी नहीं हुआ। अतः **ईषद्** (अल्प) अर्थ में विद्यमान **आ** का **उष्णम्** के उकार के साथ गुण होकर **ओष्णम्** बन गया।

५६- ओत्। ओत् प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **निपात एकाजनाङ्** से **निपातः** तथा **ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्** से **प्रगृह्यम्** की अनुवृत्ति आती है। यह पद **निपातः** का विशेषण है। अतः **येन विधिस्तदन्तस्य** से तदन्तविधि होकर **ओदन्त** ऐसा अर्थ बनता है।

वैकल्पिकप्रगृह्यसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

५७. सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे १।१।१६॥

सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्योऽवैदिक इतौ परे।

विष्णो इति, विष्ण इति, विष्णविति।

वकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५८. मय उञो वो वा ८।३।३३॥

मयः परस्य उञो वो वाऽचि। किम्वुक्तम्, किमु उक्तम्।

....

ओकारान्त निपात की प्रगृह्यसंज्ञा होती है।

अहो ईशाः। अहो! ये स्वामी हैं। **अहो+ईशाः** में **अहो** की **चादयोऽसत्त्वे** से निपातसंज्ञा हुई है। उसके बाद सूत्र लगा- **ओत्।** ओकारान्त निपात है **अहो**, इसकी इस सूत्र से **प्रगृह्यसंज्ञा** हो गई और **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** से **अव्** आदेश को बाधकर प्रकृतिभाव हो गया। **अहो ईशाः** ऐसा ही रह गया। **अहो** यह अनेकाच् निपात होने के कारण **निपात एकाजनाङ्** से प्रगृह्यसंज्ञा प्राप्त नहीं हो रही थी, इसलिए यह सूत्र बनाया गया।

५७- सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे। ऋषिर्वेदः, तत्र भवः आर्षः, न आर्षः- अनार्षः। सम्बुद्धौ सप्तम्यन्तं, शाकल्यस्य षष्ठ्यन्तम्, इतौ सप्तम्यन्तम्, अनार्षे सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्** से **प्रगृह्यम्** की अनुवृत्ति आती है।

अवैदिक इति शब्द के परे होने पर सम्बुद्धि निमित्तक ओकार विकल्प से प्रगृह्यसंज्ञक होता है।

आर्षः का अर्थ है **वैदिक** और **अनार्ष** का अर्थ **अवैदिक**। उक्त सूत्र को लगाने के लिए वेद का **इति** शब्द न होकर लोक में प्रयुक्त होने वाला **इति** शब्द परे होना चाहिए। जिस ओकार की प्रगृह्यसंज्ञा कर रहे हैं वह ओकार सम्बुद्धि को निमित्त मानकर बन गया हो तो इस सूत्र से उसकी पाक्षिक **प्रगृह्यसंज्ञा** होती है। **शाकल्य ऋषि** के मत में उक्त संज्ञा होगी, अन्यों के मत में नहीं। अतः विकल्प से होना सिद्ध हुआ।

विष्णो इति, विष्ण इति, विष्णविति। विष्णो! यह शब्द। **विष्णो+इति** में **सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे** से अवैदिक इति शब्द के परे सम्बुद्धि को निमित्त मानकर बने **ओकार** की विकल्प से **प्रगृह्यसंज्ञा** हो गई। **विष्णु** शब्द के सम्बोधन में **ह्रस्वस्य गुणः** से गुण होकर **विष्णो** बना है। प्रगृह्यसंज्ञा होने के कारण **विष्णो+इति** में **एचोऽयवायावः** से प्राप्त **अव्** आदेश को बाधकर **प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** से **प्रकृतिभाव** हो गया। **प्रकृतिभाव** का तात्पर्य है **यथास्थिति** में रहना। **विष्णो इति** था, **विष्णो इति** ही रह गया। यह सूत्र विकल्प से **प्रगृह्यसंज्ञा** करता है। प्रगृह्यसंज्ञा न होने के पक्ष में **विष्णो+इति** में **एचोऽयवायावः** से **अव्** आदेश हो गया, **विष्णव्+इति** बना। **वकार** का **लोपः शाकल्यस्य** से वैकल्पिक लोप हुआ, **विष्ण इति** बना। **पूर्वत्रासिद्धम्** से वकार के लोप को असिद्ध कर दिये जाने के कारण **आद्गुणः** से गुण नहीं हुआ। **वकार** के लोप न होने के पक्ष में **व्** जाकर इति से मिला **विष्णविति** सिद्ध हुआ। इस प्रकार से तीन रूप सिद्ध हुए- प्रगृह्यसंज्ञा होकर प्रकृतिभाव होने के पक्ष में **विष्णो इति**, अव् आदेश होकर वकार के लोप होने के पक्ष में **विष्ण इति** और लोप न होने के पक्ष में **विष्णविति।**

ह्रस्वसमुच्चितप्रकृतिभावविधायकं विधिसूत्रम्

५९. इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च ६।१।१२७॥

पदान्ता इको ह्रस्वा वा स्युरसवर्णेऽचि। ह्रस्वविधानसामर्थ्यान्न स्वरसन्धिः। चक्रि अत्र, चक्र्यत्र। पदान्ता इति किम्? गौर्यौ।

....

५८- मय उञो वो वा। मयः पञ्चम्यन्तम्, उञः षष्ठ्यन्तं, वः प्रथमान्तं, वा अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्** से **अचि** की अनुवृत्ति आती है।

मय् से परे उञ् (उकार)के स्थान पर वकार आदेश होता है अच् परे होने पर।

यह सूत्र प्रकृतिभाव को बाधकर के वैकल्पिक **वकार** आदेश करने के लिए प्रवृत्त होता है। आदेश न होने के पक्ष में प्रकृतिभाव ही होगा। **उञ्** का **ञकार** इत्संज्ञक है, अतः उ ही दीखता है।

किम्वुक्तम्, किमु उक्तम्। क्या कहा? **किम्+उ=किमु। किमु+उक्तम्** में उकार की **निपात एकाजनाङ्** से **प्रगृह्यसंज्ञा** हो गई और उसे प्रकृतिभाव प्राप्त था। उसे बाधकर के **मय उञो वो वा** से उकार के स्थान पर विकल्प से **व्** आदेश हुआ, **किम्+व्+उक्तम्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **किम्वुक्तम्** सिद्ध हुआ। **वकार** आदेश न होने के पक्ष में **किमु+उक्तम्** को प्रकृतिभाव होकर **किमु उक्तम्** ऐसा ही रह गया।

अभ्यासः

१. **चादयोऽसत्त्वे** और **प्रादयः** की तुलना करिये।

२. **निपात एकाजनाङ्, ओत्** और **सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे** की व्याख्या कीजिए।

३. निम्नलिखित प्रयोगों की सिद्धि दिखाइये-
शम्भो इति। अहो अद्य। वायो इति। किमु इच्छसि। इ इन्द्राणी।

५९- इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च। न सवर्णः- असवर्णः, तस्मिन् असवर्णे, नञ्तत्पुरुषः। **एङः पदान्तादति** से विभक्ति और वचन का विपरिणाम करके **पदान्ताः** और **इको यणचि** से **अचि** की अनुवृत्ति आती है।

असवर्ण अच् के परे होने पर पदान्त में विद्यमान इक् को ह्रस्व होता है।

यह ह्रस्व अन्य सन्धियों को रोक कर **प्रकृतिभाव** करने के लिए है। **पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिः** अर्थात् मेघ जब बरसते हैं तो जल में भी बरसते हैं और स्थल में भी। उसी प्रकार से सूत्र भी यदि प्राप्ति है तो उसके फल होने पर भी कार्य करते हैं और न होने पर भी। इसी तरह जब **इक्** को **ह्रस्व** होता है तो **ह्रस्व इक्** हो या **दीर्घ इक्,** दोनों को ह्रस्व होता है क्योंकि यहाँ पर ह्रस्व का फल सन्धि को रोकना है। ह्रस्व करने मात्र से यण् आदि सन्धि नहीं होगी, क्योंकि ह्रस्व करने के बाद भी यदि सन्धि करनी है तो ह्रस्व करना ही व्यर्थ है। अतः प्रकृतिभाव ही होगा। अत एव मूल में लिखा गया- **ह्रस्वविधान-सामर्थ्यान्न स्वरसन्धिः।** शाकल्य के मत में ह्रस्व होगा, अन्यों के मत में नहीं, फलतः विकल्प से होना सिद्ध हुआ।

वैकल्पिकद्वित्वविधायकं विधिसूत्रम्

६०. अचो रहाभ्यां द्वे ८।४।४६॥

अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः। गौर्य्यौ।

वार्तिकम्- **न समासे।** वाप्यश्वः।

....

इस सूत्र के कार्य को **ह्रस्वसमुच्चित-प्रकृतिभाव** कहते हैं। ह्रस्व भी और प्रकृतिभाव भी **ह्रस्वसमुच्चित प्रकृतिभाव** हुआ।

चक्रि अत्र, चक्र्यत्र। विष्णु यहाँ हैं। **चक्री+अत्र** में **इको यणचि** से यण् प्राप्त था, उसे बाधकर सूत्र लगा- **इको सवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च।** पदान्त इक् है- **चक्री** का ईकार और असवर्ण अच् परे है- **अत्र** का अकार। अतः **चक्री** के **ईकार** को ह्रस्व करके **इकार** बन गया। अब भी **इको यणचि** से यण् हो सकता था किन्तु यण् नहीं होगा क्योंकि यदि ह्रस्व करने के बाद भी यण् ही करना है तो फिर **ह्रस्व** क्यों किया जाय? अतः **ह्रस्वविधानसामर्थ्यात्** अब यण् नहीं होगा। प्रकृतिभाव की अवस्था में रहेगा- **चक्रि अत्र।** यह ह्रस्व वैकल्पिक है, एक पक्ष में ह्रस्व नहीं होगा तो **चक्री+अत्र** में यण् होकर **चक्र्+य्+अत्र** बना। वर्णसम्मेलन होकर **चक्र्यत्र** सिद्ध हुआ।

अब इसी तरह अन्य जगहों पर भी उदाहरण देख सकते हैं। जैसे- **योगी+आगच्छति** में **योगि आगच्छति, योग्यागच्छति। वारि अत्र, वार्यत्र। भवति एव, भवत्येव।**

पदान्ताः इति किम्? गौर्यौ। यहाँ पर प्रश्न करते हैं कि **इको सवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च** में **पदान्ताः** की अनुवृत्ति न लाते तो क्या हानि होती? उत्तर दिया- **गौर्यौ।** यदि **पदान्ताः** न होता तो पदान्त और अपदान्त दोनों इक् को ह्रस्व होता। फलतः **गौरी+औ** में अपदान्त ईकार को ह्रस्व हो जाता। ह्रस्व का फल सन्धि को रोकना है, अतः **गौरी+औ** में सन्धि न होकर प्रकृतिभाव होने की आपत्ति आती। फलतः **गौरिऔ** ऐसा अनिष्ट रूप बनता। उसके निवारणार्थ **पदान्ताः** की अनुवृत्ति की गई है जिससे **गौरी+औ** में **प्रकृतिभाव** न होकर **इको यणचि** से यण् होकर **गौर्यौ** सिद्ध हुआ।

६०- अचो रहाभ्यां द्वे। रश्च हश्च रहौ, ताभ्यां- रहाभ्याम्, द्वन्द्वः। अचः पञ्चम्यन्तं, रहाभ्यां पञ्चम्यन्तं, द्वे प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** से **वा** की अनुवृत्ति आती है।

अच् से परे जो रेफ और हकार, उससे परे यर् का विकल्प से द्वित्व होता है।

गौर्यौ। पूर्वसूत्र में जो **गौर्यौ** दिखाया गया, उसमें और आगे की विधि को बता रहे हैं कि **गौरी+औ** में यण् होने के बाद् **गौर्+य्+औ** बना। उसके बाद सूत्र लगा- **अचो रहाभ्यां द्वे।** अच् है **गौ** का **औकार**, उसके परे रेफ है **गौर्** का **रेफ**, उससे परे यर् है **य्**, उसका वैकल्पिक द्वित्व हुआ- **गौर्+य्य्+औ** बना। वर्णसम्मेलन और रेफ का ऊर्ध्वगमन हुआ- **गौर्य्यौ।** द्वित्व न होने के पक्ष में एक यकार वाला **गौर्यौ** रहता है।

इसी तरह **कर्म्म, कर्म। शर्म्मा, शर्मा, दुर्ग्गः, दुर्गः, कार्य्यम्, कार्यम्, आर्य्यः, आर्यः** आदि प्रयोगों में भी वैकल्पिक द्वित्व होता है। यद्यपि व्यवहार में प्रायः द्वित्व का रूप लिखा नहीं जाता तथापि उच्चारण जो है, द्वित्व वाला ही किया जाता है।

ह्रस्वसमुच्चितप्रकृतिभावविधायकं विधिसूत्रम्

६१. ऋत्यकः ६।१।१२८॥

ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद्वा। ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः।

पदान्ताः किम्? आर्च्छत्।

इत्यच्सन्धिः॥२॥

....

न समासे। यह वार्तिक **इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च** से सम्बन्धित है। उक्त सूत्र से जो ह्रस्वसमुच्चित प्रकृतिभाव होता है, वह **समास होने पर नहीं होता** अर्थात् समास हो जाने पर सन्धि ही हो जाती है।

वाप्यश्वः। तालाब में (स्थित) घोड़ा। **वाप्याम् अश्वः** लौकिक विग्रह करके **वापी ङि+अश्व सु** अलौकिक विग्रह में सप्तमीतत्पुरुष होकर विभक्ति का लुक् करके **वापी+अश्वः** बना है। यहाँ पर **इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च** से ह्रस्व प्राप्त हुआ तो **न समासे** इस वार्तिक ने निषेध कर दिया। अतः **इको यणचि** से यण् हो गया- **वाप्+य्+अश्वः** बना। वर्णसम्मेलन होकर **वाप्यश्वः** सिद्ध हुआ। यदि यह वार्तिक न होता तो एक पक्ष में **वापि अश्वः** ऐसा अनिष्ट रूप भी बन जाता।

६१- **ऋत्यकः**। ऋति सप्तम्यन्तम्, अकः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **एङः पदान्तादति** से विभक्ति और वचन का विपरिणाम करके **पदान्ताः** की, **इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च** से **ह्रस्वः** और **शाकल्यस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्राग्वद्**= पहले की तरह हो।

ह्रस्व ऋकार के परे होने पर पदान्त अक् को ह्रस्व होता है।

इस सूत्र से भी ह्रस्व ही किया जाता है जिससे सन्धि न हो और प्रकृतिभाव ही हो जाय। तात्पर्य यह हुआ कि **ह्रस्वसमुच्चित प्रकृतिभाव** हो जाय। ह्रस्व करके प्रकृतिभाव हो। यदि सन्धि ही करनी होती तो ह्रस्व करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः। **ब्रह्मा+ऋषिः** में **आद्गुणः** से गुण प्राप्त था, उसे बाधकर सूत्र लगा- **ऋत्यकः**। ह्रस्व ऋकार परे है **ऋषिः** का ऋकार और पदान्त अक् है- **ब्रह्मा** का आकार। आकार को वैकल्पिक ह्रस्व होकर **ब्रह्म+ऋषिः** बना। अब ह्रस्व करने के कारण पुनः **आद्गुणः** की प्रवृत्ति नहीं हुई, **ब्रह्म ऋषिः** रह गया। ह्रस्व न होने के पक्ष में **ब्रह्मा+ऋषिः** में **आद्गुणः** से रपर-सहित **अर्-गुण** हुआ- **ब्रह्म्+अर्+षिः** बना। वर्णसम्मेलन और रेफ का ऊर्ध्वगमन होकर **ब्रह्मर्षिः** सिद्ध हुआ। इस तरह दो रूप बन गये।

पदान्ता किम्? आर्च्छत्। यहाँ पर प्रश्न करते हैं कि **ऋत्यकः** में **पदान्ताः** की अनुवृत्ति न लाते तो क्या होता? उत्तर दिया- **आर्च्छत्**। यदि **पदान्ताः** न होता तो पदान्त और अपदान्त दोनों **अक्** को **ह्रस्व** होता। फलतः **आ+ऋच्छत्** में **आट्** आगम वाले अपदान्त **आकार** को भी **ह्रस्व** हो जाता। **ह्रस्व** का फल सन्धि को रोकना है, अतः **अ+ऋच्छत्** में सन्धि न होकर प्रकृतिभाव होने की आपत्ति आती जिससे **अऋच्छत्** ऐसा अनिष्ट रूप बनता। उसके निवारणार्थ **पदान्ताः** की अनुवृत्ति की गई है। अतः ह्रस्व न होकर के **आ+ऋच्छत्** में **आटश्च** से वृद्धि होकर **आर्च्छत्** सिद्ध हुआ।

छात्रों को मेरा निर्देशः-

छात्रों को मेरा निर्देश है कि आपने अभी तक **पाणिनीय-अष्टाध्यायी** के सूत्रों का पारायण शुरू नहीं किया हो तो अवश्य कर दें। यदि आप रट सकते हैं तो अच्छी बात है, नहीं तो प्रतिदिन दो अध्याय के नियम से सूत्रपाठ का पारायण करें। पहले महीने में प्रथम व द्वितीय अध्याय, दूसरे महीने में तीसरा और चौथा अध्याय, तीसरे महीने में पाँचवाँ और छठा अध्याय तथा चौथे महीने में सातवाँ और आठवाँ अध्यायों का पारायण करने से लगभग चार महीने में सम्पूर्ण अष्टाध्यायी कण्ठस्थ हो जाती है क्योंकि बच्चे एक महीने तक प्रतिदिन जिस विषय का पारायण करेंगे, वह विषय उनको याद हो जाता है। यदि एक आवृत्ति में उनको याद नहीं भी हुआ तो दूसरी आवृत्ति में अर्थात् अगले चार महीनों में अवश्य याद हो जायेगा। यदि आठ महीने में पाणिनि जी के समस्त सूत्र याद हो जायें तो बहुत बड़ी बात है। यदि प्रतिदिन दो अध्याय का नियम नहीं कर सकते तो एक अध्याय ही पारायण करने का नियम बना लें। अपनी सुविधा के अनुसार अध्यायसंख्या निर्धारित करें किन्तु पारायण अवश्य करें।

लघुसिद्धान्तकौमुदी में भी आप सूत्र-वृत्ति को तो अच्छी तरह कण्ठस्थ कर ही लें और अर्थ तथा उसकी व्याख्या को भी अच्छी तरह समझ लें। यदि आप कहीं पर नहीं समझ रहे हैं तो अपने आचार्य को पूछना न भूलें। प्रत्येक सूत्र या प्रकरण के अन्त में दिये गये अभ्यासों(परीक्षा) को ठीक तरह से कर लें। एक प्रकरण को अच्छी तरह से जान लेने के बाद दूसरा प्रकरण या दूसरा सूत्र शुरू करें। यह ध्यान रहे कि जैसे मकान बनाने के लिये एक ईंट के बाद दूसरी, तीसरी ईंटें क्रमशः लगाई जाती हैं और बीच में खाली जगह छोड़कर या एक हाथ ऊपर से विना आधार के ईंटें नहीं लग सकतीं उसी प्रकार पहले के प्रकरण के विना आगे का प्रकरण भी नहीं लग सकता। अतः जितना आप पढ़ रहे हैं, उतना अपने अधिकार में सुरक्षित रखें।

संस्कृत में सन्धि का विशेष महत्त्व है। अभी तक आप अचों की सन्धि जान चुके हैं। अब हलों की सन्धि जानने के लिये तैयार रहें किन्तु उससे पहले सम्पूर्ण अच्सन्धि को एक बार अवश्य दुहराये और निम्नलिखित अभ्यास भी ठीक तरह कर लें। इसके पहले आप दो दिन के लिए **लघुसिद्धान्तकौमुदी** को कपड़े से बाँधकर रखें और उसकी पूजा करें। निम्नलिखित प्रश्नावली में प्रत्येक प्रश्न ५-५ अंक के हैं। आपको उत्तीर्ण होने के लिए कम से कम ४० अंक प्राप्त करने होंगे। यदि आप उत्तीर्ण हो गये तो फिर आगे का प्रकरण पढ़ें, अन्यथा इसी प्रकरण को पुनः तैयार करके दूसरी बार परीक्षा प्रश्नावली का उत्तर दें। इसके उत्तर में पाँच घण्टे से ज्यादा समय नहीं लगना चाहिये। बाकी समय में आप अपने गुरु जी एवं सहपाठियों से विचार-विमर्श करें।

परीक्षा

१. यण्सन्धि के किन्हीं पाँच प्रयोगों को संस्कृत में सिद्ध करें।
२. अयादिसन्धि के किन्हीं पाँच प्रयोगों को संस्कृत में सिद्ध करें।
३. गुणसन्धि के किन्हीं पाँच प्रयोगों को संस्कृत में सिद्ध करें।

४. वृद्धिसन्धि के किन्हीं पाँच प्रयोगों को संस्कृत में सिद्ध करें।

५. पररूप, पूर्वरूप एवं आर्वृद्धि के किन्हीं पाँच प्रयोगों को संस्कृत में सिद्ध करें।

६. सवर्णदीर्घसन्धि के किन्हीं पाँच प्रयोगों को संस्कृत में सिद्ध करें।

७. प्रकृतिभाव के किन्हीं पाँच प्रयोगों की सिद्धि दिखायें।

८. **परिभाषा** किसे कहते हैं और आपने **अच्सन्धि** में कितने **परिभाषा सूत्रों** को पढ़ा? उनसे सम्बन्धित किन्हीं पाँच प्रयोगों को संस्कृत में सिद्ध करें एवं हिन्दी में उनके एक-एक उदाहरण देकर समझायें।

९. **पूर्वरूप** और **पररूप** में क्या अन्तर है? पाँच उदाहरण देकर समझाइये।

१०. अच्सन्धि में जितने भी एकादेश करने वाले सूत्र हैं उनके एक-एक उदाहरण देकर समझायें।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का अच्सन्धिप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ हल्सन्धिः

श्चुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

६२. स्तोः श्चुना श्चुः ८।४।४०॥

सकारतवर्गयोः शकारचवर्गाभ्यां योगे शकारचवर्गौ स्तः।

रामश्शेते। रामश्चिनोति। सच्चित्। शार्ङ्गिञ्जय॥

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अव **हल्सन्धि** प्रारम्भ होती है। **हलों की सन्धि** अर्थात् **व्यञ्जनों** में होने वाली **सन्धि**। कहीं हल् से हल् परे और कहीं पूर्व में **हल्** किन्तु पर में **अच्** हो तो भी होने वाली सन्धि हल्सन्धि कहलाती है। **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में हल्सन्धि के अन्तर्गत श्चुत्व, ष्टुत्व, जश्त्व, अनुनासिक, पूर्वसवर्ण, चर्त्व, छत्व, अनुस्वार, परसवर्ण, कुक्-टुक्, धुट्, तुक्, ङमुट् आगम, अनुनासिक और अनुस्वार आगम, विसर्ग आदेश, रु आदेश एवं तुगागम बताये गये हैं।

६२- स्तोः श्चुना श्चुः। स् च तुश्च स्तुः तस्य स्तोः, समाहारद्वन्द्वः, सौत्रं पुँस्त्वम्। श् च चुश्च श्चुः, तेन श्चुना समाहारद्वन्द्वः, सौत्रं पुँस्त्वम्। श् च चुश्च श्चुः, समाहारद्वन्द्वः, सौत्रं पुँस्त्वम्। यद्यपि इन तीनों शब्दों में समाहारद्वन्द्व होने के कारण नपुंसकलिङ्ग होना चाहिए तथापि सूत्र में कहीं-कहीं आर्ष प्रयोग होने से पुँल्लिङ्ग भी हो सकता है। स्तोः षष्ठ्यन्तं, श्चुना तृतीयान्तं, श्चुः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

सकार और तवर्ग के स्थान पर शकार और चवर्ग का योग होने पर शकार और चवर्ग आदेश होते हैं।

यह सूत्र **श्चुत्व** करता है। **सकार** और **तवर्ग** ये **स्थानी** एवं **शकार** और **चवर्ग** ये **आदेश** हैं। **शकार** या **चवर्ग** का योग हो अर्थात् जिस वर्ण के स्थान पर श्चुत्व करना है उसके पूर्व या पर में या तो **तालव्य शकार** हो या तो **चवर्ग** (च्, छ्, ज्, झ्, ञ् में से कोई एक वर्ण) हो तो उस **दन्त्य सकार** के स्थान पर **तालव्य शकार** और **तवर्ग** (त्, थ्, द्, ध् और न्) के स्थान पर **चवर्ग** आदेश होता है। **दन्त्य सकार** के स्थान पर **तालव्य शकार** और **तवर्ग** के स्थान पर **चवर्ग** होगा। **दन्त्य सकार** स्थानी के रूप में अकेला ही है और आदेश भी **तालव्य शकार** अकेला ही है। एक स्थानी के स्थान पर एक ही आदेश प्राप्त होने पर कोई अनियम नहीं होता किन्तु तवर्ग का कोई एक अक्षर **स्थानी** होगा और आदेश में चवर्ग के सभी वर्ण प्राप्त होंगे। अतः एक के स्थान पर पाँच वर्णों की प्राप्ति होना अनियम है। अतः **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** इस परिभाषा सूत्र के नियमानुसार स्थानी

चुत्वनिषेधकं विधिसूत्रम्

६३. शात् ८।४।४४॥

शात्परस्य तवर्गस्य चुत्वं न स्यात्। विश्नः। प्रश्नः॥

....

तवर्ग में प्रथम **तकार** के स्थान पर चवर्ग में प्रथम **चकार** आदेश, तवर्ग में द्वितीय **थकार** के स्थान पर चवर्ग में द्वितीय **छकार** आदेश, तवर्ग में तृतीय **दकार** के स्थान पर चवर्ग में तृतीय **जकार** आदेश, तवर्ग में चतुर्थ **धकार** के स्थान पर आदेश में चतुर्थ **झकार** आदेश, और तवर्ग में पञ्चम **नकार** के स्थान पर आदेश में पञ्चम **ञकार** आदेश होंगे। **शकार** और **चवर्ग** का योग पूर्व में हो और **सकार** एवं **तवर्ग** पर में हो तो भी श्चुत्व होगा और **सकार** और **तवर्ग** पूर्व में हो और **शकार** और **चवर्ग** का योग पर में हो तो भी **श्चुत्व** होगा। इस सूत्र से किये गये कार्य को **श्चुत्व** कहते हैं।

रामश्शेते। राम सोता है। **रामस्+शेते** ऐसी स्थिति में **तालव्य शकार** का योग है- **शेते** के **शकार** और पूर्व में है **रामस्** का दन्त्य **सकार**। अतः **रामस्** के दन्त्य **सकार** के स्थान पर **तालव्य शकार** हो गया **रामश्+शेते** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **रामश्शेते**।

रामश्चिनोति। राम चुनता है। **रामस्+चिनोति** में भी **स्तोः श्चुना श्चुः** से श्चुत्व हुआ। यहाँ पर **चिनोति** के **चकार** का योग है। इसलिए **रामस्** के **दन्त्य सकार** के स्थान पर **तालव्य शकार** आदेश हो गया- **रामश्चिनोति**।

सच्चित्। सत् और चित्। **सत्+चित्** ऐसी स्थिति में **स्तोः श्चुना श्चुः** से **श्चुत्व** हुआ। यहाँ पर **चित्** के **चकार** का योग है और स्थानी **तवर्ग** के **प्रथम** अक्षर **सत्** के **तकार** के स्थान पर **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** के नियम से आदेश में प्रथम **चकार** आदेश हुआ- **सच्+चित्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ। (च्+चि=च्चि) **सच्चित्**।

शार्ङ्गिञ्जय। हे शार्ङ्गधारी विष्णु! तुम जीतो। **शार्ङ्गिन्+जय** में **स्तोः श्चुना श्चुः** से **श्चुत्व** हुआ। यहाँ पर **शार्ङ्गिन्** के **नकार** के स्थान पर चवर्ग में पञ्चम **ञकार** आदेश हुआ। यहाँ पर **जय** का **जकार** चवर्ग है। इस तरह **शार्ङ्गिञ्+जय** बना वर्णसम्मेलन हुआ (ञ्+ज=ञ्ज) **शार्ङ्गिञ्जय** सिद्ध हुआ।

६३- शात्। शात् पञ्चम्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **तोः षि** सूत्र से **तोः** तथा **न पदान्ताट्टोरनाम्** सूत्र से **न** की अनुवृत्ति आती है।

तालव्य शकार से परे तवर्ग को चुत्व नहीं होता है।

यह सूत्र **स्तोः श्चुना श्चुः** इस सूत्र का निषेधक सूत्र है, जो **तालव्य शकार** से परे तवर्ग के चुत्व का निषेध करता है। इस तरह शकार से परे तवर्ग का श्चुत्व नहीं होता है किन्तु चवर्ग से परे तवर्ग का चुत्व हो जाता है।

विश्नः। गमन। **विश्+नः** इस स्थिति में **शकार** से परे **नकार** के स्थान पर **स्तोः श्चुना श्चुः** से श्चुत्व प्राप्त था तो **शात्** ने शकार से परे होने के कारण निषेध कर दिया, **विश्नः** ही रह गया। यदि चुत्व हो जाता तो **विश्ञः** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

प्रश्नः। सवाल। **प्रश्+नः** इस स्थिति में **शकार** से परे **नकार** के स्थान पर **स्तोः श्चुना श्चुः** से श्चुत्व प्राप्त था तो **शात्** ने शकार से परे होने के कारण निषेध कर दिया, **प्रश्नः** ही रह गया। यदि चुत्व हो जाता तो **प्रश्ञः** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

ष्टुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

६४. ष्टुना ष्टुः।८।४।४१।।

स्तोः ष्टुना योगे ष्टुः स्यात्।

रामष्षष्ठः। रामष्टीकते। पेष्टा। तट्टीका। चक्रिण्ढौकसे।।

....

६४- ष्टुना ष्टुः। ष् च टुश्च ष्टुः, तेन ष्टुना, समाहारद्वन्द्वः, सौत्रं पुँस्त्वम्। ष् च टुश्च ष्टुः, समाहारद्वन्द्वः, अत्रापि सौत्रं पुँस्त्वम्। ष्टुना तृतीयान्तं, ष्टुः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **स्तोः श्चुना श्चुः** से **स्तोः** की अनुवृत्ति आती है।

दन्त्य सकार और तवर्ग के स्थान पर मूर्धन्य षकार और टवर्ग का योग होने पर मूर्धन्य षकार और टवर्ग आदेश होते हैं।

यह सूत्र भी **स्तोः श्चुना श्चुः** के जैसा है। वह श्चुत्व करता है और यह ष्टुत्व। इस सूत्र के द्वारा किये गये कार्य को **ष्टुत्व** कहते हैं। **स्तोः** का अर्थ है- सकारतवर्गयोः (सकार और तवर्ग के स्थान पर)। **ष्टुना** का अर्थ है **मूर्धन्य षकार** और **टवर्ग** का योग होने पर। **मूर्धन्य षकार** और **टवर्ग** का योग होने पर **दन्त्य सकार** के स्थान पर **मूर्धन्य षकार** और **तवर्ग** के स्थान पर **टवर्ग** आदेश होगा। स्थानी **दन्त्य सकार** एक ही है और आदेश **मूर्धन्य षकार** भी एक ही है। इसलिये कोई अनियम नहीं हुआ। अतः किसी परिभाषा सूत्र की आवश्यकता नहीं पड़ी किन्तु प्रयोग में स्थानी में **तवर्ग** में कोई एक ही मिलेगा और आदेश **टवर्ग** के **पाँचों** प्राप्त हो जायेंगे, अतः अनियम हो जायेगा। इसलिये **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** के सहयोग से क्रमशः होने का विधान किया जायेगा। फलतः स्थानी में प्रथम **तकार** के स्थान पर आदेश में प्रथम **टकार** होगा और स्थानी में पञ्चम **नकार** के स्थान पर आदेश में पञ्चम **णकार** होगा।

रामष्षष्ठः। राम छठा है। **रामस्+षष्ठः** में सूत्र लगा- **ष्टुना ष्टुः।** सूत्रार्थ घटाने पर **दन्त्य सकार** है **रामस्** वाला **सकार** और **मूर्धन्य षकार** का योग है **षष्ठ** वाले **षकार** का। अतः **रामस्** के **सकार** के स्थान पर **मूर्धन्य षकार** आदेश हुआ- **रामष् षष्ठः** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **रामष्षष्ठः** सिद्ध हुआ।

रामष्टीकते। राम जाता है। **रामस्+टीकते** में **ष्टुना ष्टुः** से **टीकते** के टवर्ग वाले **टकार** के योग में **रामस्** के **सकार** के स्थान पर **मूर्धन्य षकार** आदेश हुआ- **रामष् टीकते** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **रामष्टीकते** सिद्ध हुआ।

पेष्टा। पीसने वाला। पेष्+ता में **ष्टुना ष्टुः** से ष्टुत्व हो कर **ता** के **तकार** के स्थान पर टवर्ग वाला **टकार** आदेश हुआ- **पेष्+टा** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **पेष्टा** सिद्ध हुआ।

तट्टीका। वह टीका। **तत्+टीका** में भी **ष्टुना ष्टुः** से ष्टुत्व होकर **तकार** के स्थान पर **टकार** आदेश तथा वर्णसम्मेलन होकर **तट्टीका** सिद्ध हुआ।

चक्रिण्ढौकसे। हे चक्रधारी! तुम जाते हो। **चक्रिन्+ढौकसे** में टवर्ग **ढकार** के योग में स्थानी में पञ्चम **चक्रिन्** के **नकार** के स्थान पर आदेश में पञ्चम **णकार** हुआ- **चक्रिण् ढौकसे** बना। वर्णसम्मेलन होकर- **चक्रिण्ढौकसे** सिद्ध हुआ।

ष्टुत्वनिषेधकं विधिसूत्रम्

६५. न पदान्ताट्टोरनाम् ८।४।४२॥

पदान्ताट्टवर्गात् परस्यानामः स्तोः ष्टुर्न स्यात्।

षट् सन्तः। षट् ते। पदान्तात् किम्? ईट्टे। टोः किम्? सर्पिष्टमम्।

वार्तिकम्- **अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्।** षण्णाम्। षण्णवतिः। षण्णगर्यः।

....

अभ्यासः

(क) **स्तोः श्चुना श्चुः** और **ष्टुना ष्टुः** की तुलना करें।

(ख) ये दोनों सूत्र सपादसप्ताध्यायी हैं या त्रिपादी?

(ग) निम्नलिखित प्रयोगों की सिद्धि करें-

हरिष्षडाचार्यः। दृष्+तः। इण्न। पेष्टुम्। सर्पिष्+तमम्। ग्रामात्+चलितः।

उद्+ज्वलम्। तज्जलम्। सत्+छात्रः। उत्+छेदः। बालकस्+चपलः।

६५- न पदान्ताट्टोरनाम्। न अव्ययपदं, पदान्तात् पञ्चम्यन्तं, टोः पञ्चम्यन्तम्, अनाम् लुप्तषष्ठीकं पदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **स्तोः श्चुना श्चुः** से **स्तोः** और **ष्टुना ष्टुः** से **ष्टुः** की अनुवृत्ति आती है।

पदान्त टवर्ग से परे नाम् के नकार को छोड़कर अन्य तवर्ग एवं सकार को ष्टुत्व नहीं होता है।

षट् सन्तः। छ सज्जन। **षट्+सन्तः** में **ष्टुना ष्टुः** से **षट्** के **टकार** से परे **सन्त** के **सकार** को **ष्टुत्व** अर्थात् **षकारादेश** प्राप्त था, उसका **न पदान्ताट्टोरनाम्** से पदान्त टवर्ग से परे होने के कारण निषेध हो गया क्योंकि **षष्** शब्द से प्रथमा के बहुवचन में **षट्** बनता है। उसकी **सुप्तिङन्तं पदम्** से पदसंज्ञा होती है। अतः **षट् सन्त** ही रह गया।

षट् ते। छ जने वे। **षट्+ते** में **ष्टुना ष्टुः** से **षट्** के **टकार** से परे **ते** के **तकार** को **टुत्व** अर्थात् **टकारादेश** प्राप्त था, उसका **न पदान्ताट्टोरनाम्** से पदान्त टवर्ग से परे होने के कारण निषेध हो गया। **षट् ते** ही रह गया।

पदान्तात् किम्? ईट्टे। अब प्रश्न करते हैं कि **न पदान्ताट्टोरनाम्** में **पदान्तात्** न पढ़ते तो क्या होता? उत्तर देते हैं- **ईट्टे** में दोष आता। क्योंकि जब **पदान्तात्** नहीं पढ़ेंगे तो पदान्त से परे हो या अपदान्त से, यह सूत्र सकार और तवर्ग के ष्टुत्व का निषेध करता। ऐसे में **ईट्+ते** में अपदान्त टकार से परे **ते** के **तकार** का टुत्व निषेध हो जाता और **इट्ते** ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता। उक्त दोष के निवारणार्थ इस सूत्र में **पदान्तात्** पढ़ा गया जिससे पदान्त से परे सकार और तवर्ग को ही ष्टुत्व-निषेध करेगा, अपदान्त से परे नहीं। यहाँ **इट्** का टकार अपदान्त है, क्योंकि **ईट्टे** यह रूप तिङ्प्रत्ययान्त है। अतः **ईट्टे** पूरे की पदसंज्ञा होती है, न कि केवल **ईट्** मात्र की। इस तरह उक्त टकार से पर **तकार** को टुत्व-निषेध नहीं हुआ अपितु **ष्टुना ष्टुः** से टुत्व हो गया- **ईट्टे** सिद्ध हुआ।

टोः किम्? सर्पिष्टमम्। अब प्रश्न करते हैं कि **न पदान्ताट्टोरनाम्** में **टोः** न पढ़ते तो क्या होता? उत्तर देते हैं- **सर्पिष्टमम्** में दोष आता। क्योंकि **टोः** का अर्थ टवर्ग से परे। जब **टोः** नहीं पढ़ेंगे तो किसी से भी परे सकार और तवर्ग के ष्टुत्व का निषेध करता। ऐसे में **सर्पिष्+तमम्** में **षकार** से परे **तमम्** के **तकार** का भी टुत्व निषेध हो जाता और

ष्टुत्वनिषेधकं विध्यन्तर्गतं निषेधसूत्रम्

६६. तो: षि ८।४।४३।।

न ष्टुत्वम्। सन्षष्ठः।

....

सर्पिष्तमम् ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता। उक्त दोष के निवारणार्थ इस सूत्र में **टो:** पढ़ा गया जिससे टवर्ग से परे सकार और तवर्ग को ही ष्टुत्व-निषेध होगा, षकार से परे नहीं। यहाँ **सर्पिष्** में **षकार** है, उससे परे **तकार** है, उसका **टुत्व-निषेध** नहीं हुआ अपितु **ष्टुना ष्टु:** से **टुत्व** हो गया- **सर्पिष्टमम्** सिद्ध हुआ।

अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्। यह वार्तिक है। **पदान्त टवर्ग से परे नाम्, नवति और नगरी शब्दों के नकार को छोड़कर अन्य सकार और तवर्ग को ष्टुत्व न हो, ऐसा कहना चाहिए।**

वार्तिककार कह रहे हैं कि **न पदान्ताट्टोरनाम्** में **अनाम्** की जगह **अनाम्नवतिनगरीणाम्** ऐसा कहना चाहिए। सूत्र से जो निषेध किया गया है उसमें नाम्-शब्द को छोड़कर है। वार्तिककार का कहना है कि **केवल नाम् शब्द को छोड़कर** ऐसा कहना पर्याप्त नहीं है। उसके स्थान पर **नाम्, नवति और नगरी शब्दों को छोड़कर** ऐसा कहना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि सूत्र से टुत्व निषेध करते समय केवल **नाम्** के **नकार** को टुत्व निषेध न हो ऐसा कहा गया था, वह **नवति** और **नगरी** शब्दों के भी नकार को टुत्व निषेध न हो, अर्थात् इन शब्दों के नकारों को टुत्व हो जाय।

षण्णाम्। छः का। **षड्+नाम्** में उक्त **अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्** से **न पदान्ताट्टोरनाम्** से प्राप्त टुत्व-निषेध से मुक्त कर देने पर **नाम्** के **नकार** को **टुत्व** हो गया। **नकार** को **टुत्व** होने पर **णकार** होता है, अत: **षड्+णाम्** बन गया। यहाँ पर आगे आने वाले सूत्र **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** से विकल्प से अनुनासिक आदेश प्राप्त होता है, उसे वाधकर **प्रत्यये भाषायां नित्यम्** इस वार्तिक से **षड्** के डकार को नित्य से अनुनासिक होकर णकार बन गया- **षण्+णाम्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **षण्णाम्** सिद्ध हुआ।

षण्णवति:। छियान्नवे। **षड्+नवति** में उक्त **अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्** से **न पदान्ताट्टोरनाम्** से प्राप्त टुत्व-निषेध को रोक देने पर **नवति** के **नकार** को **टुत्व** हो गया। **नकार** को टुत्व **णकार** होता है, अत: **षड्+णवति:** बन गया। **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** से **षड्** के डकार को वैकल्पिक अनुनासिक आदेश होकर णकार बन गया- **षण्+णवति:** बना। वर्णसम्मेलन होकर **षण्णवति:** सिद्ध हुआ। अनुनासिक न होने के पक्ष में **षड्णवति:** भी बनता है।

षण्णगर्य:। छः नगरियाँ हैं। **षड्+नगर्य:** में उक्त **अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्** से **न पदान्ताट्टोरनाम्** से प्राप्त टुत्व-निषेध को रोक देने पर **नगर्य:** के नकार को टुत्व हो गया। **नकार** का टुत्व **णकार** होता है, अत: **षड्+णगर्य:** बन गया। **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** से **षड्** के **डकार** को विकल्प से अनुनासिक आदेश होकर **णकार** बन गया- **षण्+णगर्य:** बना। वर्णसम्मेलन होकर **षण्णगर्य:** सिद्ध हुआ। अनुनासिक न होने के पक्ष में **षड्णगर्य:** भी बनता है।

जशत्वविधायकं विधिसूत्रम्

६७. झलां जशोऽन्ते ८।२।३९॥

पदान्ते झलां जशः स्युः। वागीशः।

....

६६- **तोः षि**। तोः षष्ठ्यन्तं, षि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **न पदान्ताट्टोरनाम्** से **न** तथा **ष्टुना ष्टुः** से **ष्टुः** की अनुवृत्ति आती है।

षकार के परे होने पर तवर्ग को ष्टुत्व न हो।

यह **ष्टुना ष्टुः** का निषेधक सूत्र है। अन्यत्र **टुत्व** हो जाय किन्तु **षकार** के परे होने पर **तवर्ग** को **टुत्व** न हो। **स्तोः श्चुना श्चुः** के निषेध के लिए **शात्** तथा **ष्टुना ष्टुः** के निषेध के लिए **न पदान्ताट्टोरनाम्** और **तोः षि** ये दो सूत्र हैं।

सन्षष्ठः। छठा श्रेष्ठ। **सन्+षष्ठः** में षष्ठः के षकार के योग में सन् के नकार के स्थान पर **ष्टुना ष्टुः** से टुत्व प्राप्त था तो **तोः षि** ने निषेध कर दिया, **सन्षष्ठः** ही रह गया।

अभ्यासः

१. निम्नलिखित प्रयोगों की सिद्धि करें-
तत्+ठकारः। हरिस्+षष्ठः। इष्+तः। परिव्राट्+नगरी। पदान्तात्+टोरनाम्। भवान्षष्ठः।

२. **हल्सन्धि** में अभी तक के सूत्रों की समीक्षा करके **श्चुत्व, श्चुत्व निषेध** और **ष्टुत्व** तथा **ष्टुत्व निषेध** के दो-दो उदाहरण बतायें।

३. उक्त पाँच सूत्रों में पूर्व-पर तथा सपादसप्ताध्यायी या त्रिपादी का निर्णय करें।

६७- **झलां जशोऽन्ते**। झलां षष्ठ्यन्तं, जशः प्रथमान्ताम्, अन्ते सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **पदस्य** सूत्र का अधिकार आ रहा है। अतः **पद के अन्त में** यह अर्थ हुआ।

पद के अन्त में विद्यमान झल् के स्थान पर जश् आदेश होता है।

झल् के बाद कोई भी वर्ण हो या न हो। **अच्** हो तो भी जशत्व करेगा और हल् हो तो भी करेगा। हाँ, इसको बाधकर अन्य कोई सूत्र लगे तो अलग बात है। झल् प्रत्याहार में वर्ग के **पंचम** अक्षरों को छोड़कर **प्रथम, द्वितीय, तृतीय चतुर्थ** अक्षर तथा **श्, ष्, स्, ह्** ये वर्ण आते हैं। **जश्** प्रत्याहार में केवल वर्ग के तीसरे अक्षर **ज्, ब्, ग्, ड्, द्** ये ही आते हैं। **स्थानेऽन्तरतमः** की सहायता से स्थानी और आदेश में स्थान से तुल्यता होने पर आदेश होगा। **क्, ख्, ग्, घ् , ह्** के स्थान पर कण्ठस्थान की तुल्यता से **'ग्'** आदेश होगा। **च्, छ्, ज्, झ्, श्** के स्थान पर **तालुस्थान** की तुल्यता से **'ज्'** आदेश होगा। **ट्, ठ्, ड्, ढ्, ष्** के स्थान पर **मूर्धास्थान** की तुल्यता से **'ड्'** आदेश होगा। **त्, थ्, द्, ध्, स्** के स्थान पर **दन्तस्थान** की तुल्यता से **'द्'** आदेश होगा। इसी तरह **प्, फ्, ब्, भ्** के स्थान पर **ओष्ठस्थान** की तुल्यता से **'ब्'** आदेश होगा।

वागीशः। वाणी के स्वामी। **वाक्+ईशः** में **वाक्** शब्द का **ईशः** शब्द के साथ समास हुआ है। **वाक्** एक पद है। पद के अन्त में **क्** है। इसलिये **पदान्त झल्** है **वाक्** का **ककार**। इसके स्थान पर जश् अर्थात् **ज्, ब्, ग्, ड्, द्** ये पाँचों प्राप्त हुए। यहाँ भी

अनुनासिकादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६८.　यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८।४।४५।।

यरः पदान्तस्यानुनासिके परेऽनुनासिको वा स्यात्।

एतन्मुरारिः, एतद् मुरारिः।

वार्तिकम्- **प्रत्यये भाषायां नित्यम्।** तन्मात्रम्। चिन्मयम्।

....

एक के स्थान पर पाँच वर्णों की प्राप्ति हुई, इसलिये अनियम हुआ तो **स्थानेऽन्तरतमः** के नियम से **कण्ठस्थान** वाले स्थानी **ककार** के स्थान पर **कण्ठस्थान** वाला ही **ग्** आदेश हुआ। **वाग्+ईशः** बना। वर्णसम्मेलन होकर **वागीशः** सिद्ध हुआ।

अभ्यासः

(क) **झलां जशोऽन्ते** इस सूत्र में **पदान्त** ऐसा अर्थ कैसे बनता है?

(ख) **झलां जशोऽन्ते** यह सूत्र त्रिपादी है या सपादसप्ताध्यायी?

(ग) निम्नलिखित प्रयोगों की सिद्धि करें-

अजन्तः। वागत्र। जगदीशः। षष्+अत्र। अप्+जम्। तिबन्तः। सुबन्तः। कृदन्तः। समिध्+आदानम्। रामाद्+गृह्णाति।

६८- **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा।** यरः षष्ठ्यन्तम्, अनुनासिके सप्तम्यन्तम्, अनुनासिकः प्रथमान्तं, वा अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **पदस्य** सूत्र का अधिकार आ रहा है।

अनुनासिक के पर में रहते पदान्त यर् के स्थान पर विकल्प से अनुनासिक आदेश होता है।

यदि पर में कोई **अनुनासिक** वर्ण हो और पूर्व में पद के अन्त में विद्यमान **यर्** प्रत्याहार के वर्ण हों तो **यर्** के स्थान पर **अनुनासिक** आदेश होगा विकल्प से। अनुनासिक भी दो प्रकार के होते हैं- अच् अनुनासिक और हल् अनुनासिक। जिनका उच्चारण नाक और मुख से हो वे अच्वर्ण और हल्वर्ण **अनुनासिक** कहलाते हैं- **मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः।** **ङ्, ञ् ण्, न्, म्** ये नाक और मुख से उच्चारण होने वाले हल्वर्ण **अनुनासिक** हैं। यहाँ पर **अनुनासिक** से **ङ्, ञ्, ण्, न्, म्** ही ग्रहण किये गये हैं। इस सूत्र के लगने के बाद भी **स्थानेऽन्तरतमः** की आवश्यकता होगी क्योंकि स्थानी कोई एक वर्ण होगा और आदेश में उक्त पाँचों प्राप्त होंगे।

एतन्मुरारिः। एतत्+मुरारिः इस स्थिति में **झलां जशोऽन्ते** सूत्र से **तकार** के स्थान पर **जश्त्व** होकर **एतद् मुरारि** बना है। अब **यरोऽनुनासिकेऽनासिको वा** की उपस्थिति हुई। अनुनासिक परे है **मुरारिः** का **मकार** और पदान्त यर् है- एतद् का **दकार।** अब **एतद्** के **दकार** के स्थान पर अनुनासिक अर्थात् **ङ्, ञ्, ण्, न्, म्** ये सभी प्राप्त हुए। एक के स्थान पर पाँच अनुनासिकों की प्राप्ति होना भी अनियम हुआ तो **स्थानेऽन्तरतमः** के नियम से स्थान मिलाने से **दन्तस्थान** वाले दकार के स्थान पर दन्तस्थान वाला ही नकार आदेश हुआ। अतः **द्** को हटाकर **न्** आदेश हुआ- **एतन्+मुरारिः** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **न्+मु=न्मु, एतन्मुरारिः** बना। अनुनासिक न होने के पक्ष में **एतद् मुरारिः** ही रह गया।

प्रत्यये भाषायां नित्यम्। यह वार्तिक है। **अनुनासिक वर्ण आदि में हो ऐसे**

परसवर्णविधायकं विधिसूत्रम्

६९. तोर्लि ८।४।६०॥

तवर्गस्य लकारे परे परसवर्णः।

तल्लयः। विद्वाल्ँलिखति। नस्यानुनासिको लः।

....

प्रत्यय के परे होने पर लौकिक प्रयोगों में पदान्त यर् के स्थान पर नित्य से अनुनासिक होता है।

यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा से वैकल्पिक प्राप्त अनुनासिक आदेश को अनुनासिकादि के परे होने पर **नित्य** से करने के लिए वार्तिक का अवतरण हुआ।

तन्मात्रम्। उतना ही। **तत्+मात्रम्** में तत् के तकार को **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर **दकार** आदेश हुआ, **तद्** बना। **मात्रच्** प्रत्यय है, उसके परे होने पर **तद्** के **दकार** के स्थान पर **प्रत्यये भाषायां नित्यम्** से **स्थानेऽन्तरतमः** की सहायता से नित्य से अनुनासिक **नकार** आदेश हुआ, **तन्+मात्रम्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **तन्मात्रम्** सिद्ध हुआ।

चिन्मयम्। चेतन-स्वरूप। **चित्+मयम्** में चित् के तकार को **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर दकार आदेश हुआ, **चिद्** बना। **मयट्** प्रत्यय है, उसके परे होने पर चिद् के दकार के स्थान पर **प्रत्यये भाषायां नित्यम्** से **स्थानेऽन्तरतमः** की सहायता से नित्य से अनुनासिक **नकार** आदेश हुआ, **चिन्+मयम्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **चिन्मयम्** सिद्ध हुआ।

अभ्यासः

(क) **अनुनासिक** किसे कहते हैं?

(ख) विकल्प से होने का क्या अर्थ है?

(ग) क्या **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** यह सूत्र **स्तोः श्चुना श्चुः** का अपवाद हो सकता है? यदि है तो क्यों? औरयदि नहीं तो क्यों नही?

(घ) निम्नलिखित प्रयोगों की सिद्धि करें-

जगन्नाथः। मन्माता। षण्मासाः। वाङ्मयम्। किञ्चिन्मात्रम्। वाक्+मलम्। सत्+मार्गः। त्वत्+मनः। इट्+निषेधः। तत्+न। चिन्मात्रम्। तन्मयम्।

६९- तोर्लि। तोः षष्ठ्यन्तं, लि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से **परसवर्णः** की अनुवृत्ति आती है।

लकार के परे होने पर तवर्ग के स्थान पर परसवर्ण आदेश होता है।

पर में जो वर्ण, उसके जो सवर्णी, वे सब पूर्व में विद्यमान तवर्ग के स्थान पर आदेश के रूप में होते हैं। **लकार** के परे होने पर पूर्व के तवर्ग के स्थान **लकार** के ही **सवर्णी** आदेश रूप में हो जाते हैं। पर में विद्यमान लकार के सवर्णी **अनुनासिक** और **अननुनासिक लँ्** और **ल्** ही हैं। यदि पूर्व का तवर्ग **अननुनासिक** अर्थात् **त्, थ्, द्, ध्** हो तो उनके स्थान पर **ल्** और यदि पूर्व का वर्ण अनुनासिक **न्** है तो उसके स्थान पर **लँ्** आदेश हो जाता है। वैसे पूर्व में केवल दकार और नकार ही मिलते है क्योंकि इसके पहले **त्, थ्, ध्** के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर **द्** बन चुका होता है, तब यह

पूर्वसवर्णविधायकं विधिसूत्रम्

७०. उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ८।४।६१॥

उदः परयोः स्थास्तम्भोः पूर्वसवर्णः।

नियमकारकं परिभाषासूत्रम्

७१. तस्मादित्युत्तरस्य १।१।६७॥

पञ्चमीनिर्देशेन क्रियमाणं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य परस्य ज्ञेयम्।

....

सूत्र लगता है। अतः **दकार** के स्थान पर ल्, और **नकार** के स्थान पर लँ् ही आदेश होंगे। **नकार** के स्थान पर **लँ्** का अनुनासिकत्व से साम्य के कारण होता है।

तल्लयः। उसमें नाश या उसका नाश, उसमें मिलना या उसका मिलना। **तत्+लयः** में **तत्** के **तकार** के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से **जश्** प्राप्त हुए और **स्थानेऽन्तरतमः** की सहायता से स्थान की साम्यता के कारण **दकार** आदेश हुआ- **तद्+लयः** बना। **लयः** के **लकार** के परे होने पर तवर्ग **दकार** के स्थान पर **परसवर्ण** प्राप्त हुआ। पर में **लकार** है और उसके सवर्णी **ल्** और **लँ्** ये दोनों प्राप्त हुए। **स्थानेऽन्तरतमः** की सहायता से **दन्तस्थान** और **अननुनासिकत्व** की तुल्यता से **द्** के स्थान पर **ल्** आदेश हुआ- **तल्+लयः** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **तल्लयः** सिद्ध हुआ।

विद्वाल्ँलिखति। विद्वान् लिखते हैं। **विद्वान्+लिखति** में **लकार** के परे होने पर तवर्ग **नकार** के स्थान पर परसवर्ण प्राप्त हुआ। पर में लकार है और उसके सवर्णी **ल्** और **लँ्** ये दोनों प्राप्त हुए। **स्थानेऽन्तरतमः** की सहायता से दन्तस्थान और अनुनासिक की नासिकास्थान की तुल्यता से **न्** के स्थान पर **लँ्** आदेश हुआ- **विद्वालँ्+लिखति** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **विद्वाल्ँलिखति** सिद्ध हुआ।

७०- उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य। स्था च स्तम्भ् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः स्थास्तम्भौ, तयोः स्थास्तम्भोः। इस सूत्र में **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से **सवर्णः** की अनुवृत्ति आती है।

उत् उपसर्ग से परे स्था और स्तम्भ् को पूर्वसवर्ण होता है।

इस सूत्र में **परे** यह अर्थ **तस्मादित्युत्तरस्य** इस परिभाषा सूत्र के बल पर निकलता है। पहले इस सूत्र में **पूर्व और पर** की व्यवस्था नहीं थी। सूत्र के अनुसार तो **उत्** से किसी भी ओर (पूर्व या पर) विद्यमान स्था और स्तम्भ् को पूर्वसवर्ण का विधान था। ये दो धातु **उत्** से पूर्व में हों या पर में? यह अनियम हुआ तो नियमार्थ परिभाषा सूत्र आता है- **तस्मादित्युत्तरस्य।**

७१- तस्मादित्युत्तरस्य। तस्माद् इति पञ्चम्यन्तानुकरणम् (इति अव्ययपदं), उत्तरस्य षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

पञ्चम्यन्त पद के निर्देश से किया जाने वाला कार्य अन्य वर्णों के व्यवधान से रहित पर के स्थान पर जानना चाहिए।

यह सूत्र **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** का प्रतिरूपक है। वह **पर से अव्यवहित पूर्व के स्थान पर** होने का विधान करता है तो यह **पूर्व से अव्यवहित पर के स्थान पर** होने का विधान करता है। **उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य** आदि सूत्रों में **उदः** ऐसा पञ्चम्यन्त पद, उससे निर्दिष्ट कार्य किसी वर्ण के व्यवधान के विना **उत्** आदि से पर में विद्यमान के स्थान पर होना चाहिए।

नियमकारकं परिभाषासूत्रम्

७२. आदेः परस्य १।१।५४॥

परस्य यद्विहितं तत्तस्यादेर्बोध्यम्। इति सस्य थः।

वैकल्पिकलोपविधायकं विधिसूत्रम्

७३. झरो झरि सवर्णे ८।४।६५॥

हलः परस्य झरो वा लोपः सवर्णे झरि।

चरादेशविधायकं विधिसूत्रम्

७४. खरि च ८।४।५५॥

खरि झलां चरः स्युः। इत्युदो दस्य तः। उत्थानम्। उत्तम्भनम्।

....

यह परिभाषा सूत्र है। परिभाषाएँ स्वतन्त्रतया कुछ कार्य नहीं करतीं किन्तु विधिसूत्रों में जाकर एक व्यवस्था अथवा नियम बना देती हैं। उनके साथ मिलकर एक मिश्रित अर्थ को निकालती हैं। जैसे- **संयोगान्तस्य लोपः** में **अलोऽन्त्यस्य** से **अन्त्यस्य** जाकर सूत्रार्थ बनाया- **संयोगान्त पद के अन्त्य वर्ण का लोप हो।** इसी तरह **उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य** में **तस्मादित्युत्तरस्य** जाकर **अव्यवहित पर** यह अर्थ किया।

७२- आदेः परस्य। आदेः षष्ठ्यन्तं, परस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अलोऽन्त्यस्य** से **अलः** की अनुवृत्ति आती है। **पर के स्थान पर जो कार्य विधान किया जाता है, वह कार्य उसके आदि अल् के स्थान पर होता है।**

षष्ठ्यन्त पद के निर्देश से किया जाने वाला आदेश अन्त्य वर्ण के स्थान पर होता है, ऐसा **अलोऽन्त्यस्य** सूत्र ने बताया था। इसके क्षेत्र को सीमित करते हुए यह सूत्र कहता है कि किसी से पर में विद्यमान को यदि कोई कार्य हो रहा हो तो उस पर के अन्त्य को कार्य न होकर आदि को हो। जैसे- प्रकृत में उद् से पर में विद्यमान **स्था** और **स्तम्भ** को पूर्वसवर्ण आदेश हो रहा है किन्तु वह आदेश षष्ठ्यन्त **स्थास्तम्भोः** से निर्दिष्ट होने के कारण अन्त्य **आ** और **भ्** को प्राप्त था। इस सूत्र के होने पर आदि सकार के स्थान पर ही कार्य होता है।

७३- झरो झरि सवर्णे। झरः षष्ठ्यन्तं, झरि सप्तम्यन्तं, सवर्णे सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **हलो यमां यमि लोपः** से **हलः** और **लोपः** तथा **झयो होऽन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है। **अन्यतरस्याम्** का अर्थ **विकल्प से** है।

हल् से परे झर् का विकल्प से लोप होता है सवर्ण झर् के परे होने पर।

यहाँ पर **झरः झरि** इन पदों को देखकर **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** की प्रवृत्ति मानकर यथासङ्ख्य नहीं मानना चाहिए। यदि यथासङ्ख्य होता तो **झरो झरि** ही पढ़ा जाता, **सवर्णे** की आवश्यकता नहीं थी। **सवर्णे** यह पद यथासङ्ख्य का निराकरण करता है। अतः **झर्** प्रत्याहार के किसी वर्ण के परे होने पर यदि वह वर्ण पूर्व **झर्** का **सवर्णी** हो तो पूर्व के **झर्** का वैकल्पिक लोप होता है। **झर्** प्रत्याहार में वर्ग के **प्रथम, द्वितीय, तृतीय** और **चतुर्थ** अक्षर तथा **श्, ष्, स्** ये वर्ण आते हैं।

७४- खरि च। खरि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **झलां जश् झशि** से **झलां** तथा **अभ्यासे चर्च** से **चर्** की अनुवृत्ति आती है।

खर् के परे रहने पर **झल्** के स्थान पर **चर्** आदेश होता है।

झल् में **झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्, ज्, ब्, ग्, ड्, द्, ख्, फ्, छ्, ठ्, थ्, च्, ट्, त्, क्, प्, श्, ष्, स्, ह्** इतने वर्ण और **चर्** में **च्, ट्, त्, क्, प्, श्, ष्, स्** वर्ण आते हैं। **श्, ष्, स्** के स्थान पर **चर्** आदेश होने पर क्रमशः **श्, ष्, स्** ही होंगे। यद्यपि **श्** के स्थान पर **च्** की, **ष्** के स्थान पर **ट्** की और **स्** के स्थान पर **त्** की प्राप्ति भी हो सकती थी किन्तु स्थानी **शकार** के स्थान पर आदेश **चकार** का केवल स्थान मात्र मिलत है किन्तु स्थानी **शकार** के स्थान पर आदेश **शकार** के साथ स्थान, आभ्यन्तर प्रयत्न और बाह्यप्रयत्न ये तीनों मिलते हैं। अतः अधिक तुल्यता होने के कारण **श्** के स्थान पर **श्** एवं **ष्** के स्थान पर **ष्** और **स्** के स्थान पर **स्** ही होता है। अतः **चर्** आदेश का तात्पर्य केवल **च्, ट्, त्, क्, प्** से ही रहेगा। **श्, ष्, स्, ह्** को छोड़कर शेष **झल्** में वर्ग के **प्रथम, द्वितीय, तृतीय** और **चतुर्थ** अक्षर आते हैं।

स्थानेऽन्तरतमः के नियम से स्थान की तुल्यता से **क्, ख्, ग्, घ्** के स्थान पर **क्** आदेश, **च्, छ्, ज्, झ्** के स्थान पर **च्** आदेश, **ट्, ठ्, ड्, ढ्** के स्थान पर **ट्** आदेश, **त्, थ्, द्, ध्** के स्थान पर **त्** आदेश और **प्, फ्, ब्, भ्** के स्थान पर **प्** आदेश होंगे।

उत्थानम्। **उत्+स्थानम्** में **झलां जशोऽन्ते** से **तकार** के स्थान पर **जश्त्व** होकर **दकार** हो गया, **उद्+स्थानम्** बना। अब सूत्र लगा- **उदः स्थास्तम्भो पूर्वस्य। तस्मादित्युत्तरस्य** की सहायता से उद् उपसर्ग से परे **स्था** को पूर्वसवर्ण प्राप्त हुआ। **स्थास्तम्भोः** षष्ठ्यन्त होने के कारण **अलोऽन्त्यस्य** के नियम में षष्ठीनिर्दिष्ट आदेश अन्त्य के स्थान पर होता है तो **स्था** के **अन्त्य** वर्ण के स्थान पर पूर्वसवर्ण प्राप्त हो रहा था, उसे बाधकर परिभाषा सूत्र लगा- **आदेः परस्य।** पर के स्थान पर जो विधान किया जाता है वह पर के आदि अल् के स्थान पर होता है। पर है **स्था** और उसका आदि **अल्** है **स्**, सो उसके स्थान पर **पूर्वसवर्ण** प्राप्त हुआ। यहाँ पर पूर्व के सवर्णी कौन हैं? **स्था** से पूर्व में **द्** है, उसके **सवर्णी** हैं- **त्, थ्, द्, ध्** और **न्**। सकार के स्थान पर ये पाँचों प्राप्त हुए। एक के स्थान पर पाँच-पाँच वर्ण प्राप्त हुए, अनियम हुआ। नियमार्थ परिभाषा सूत्र लगा- **स्थानेऽन्तरतमः**। स्थान से मिलाने पर भी अनियम हुआ, क्योंकि स्थानी **सकार** का **दन्तस्थान** और आदेशों के वर्ण भी सब के सब **दन्तस्थान** वाले हैं, अतः पुनः अनियम हुआ। अर्थ से मिलाने पर एक सकार का अर्थ नहीं है। **गुण** अर्थात् **आभ्यन्तर** और **बाह्य प्रयत्न। आभ्यन्तर प्रयत्न** से मिलाने पर भी अनियम ही हो रहा है, क्योंकि **सकार** का **ईषद्विवृत प्रयत्न** है और आदेशों में **ईषद्विवृत प्रयत्न** वाला कोई वर्ण नहीं है। अतः **बाह्यप्रयत्न** से मिलाया गया। बाह्यप्रयत्न में स्थानी **सकार** का **विवार, श्वास, अघोष, महाप्राण प्रयत्न** है। इसी तरह आदेश **त्, थ्, द्, ध्, न्** में **विवार, श्वास, अघोष, महाप्राण प्रयत्न** वाला केवल **थ्** मिलता है, अतः **सकार** को हटाकर **थकार** बैठ गया- **उद्+थ्+थानम्** बना। इसके बाद द्वितीय **थकार** को **झर्** परे मानकर प्रथम **थकार** का **झरो झरि सवर्णे** से वैकल्पिक लोप हुआ- **उद्+थानम्** बना। **दकार** के स्थान पर **खरि च** से चर्त्व होकर **तकार** बन गया। **उत्+थानम्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **उत्थानम्** सिद्ध हुआ। **झरो झरि सवर्णे** से **थकार** के लोप न होने के पक्ष में दो थकार वाला **उत्थ्थानम्** रूप बन जाता है।

उत्तम्भनम्। उत्+स्तम्भनम् में **झलां जशोऽन्ते** से **तकार** के स्थान पर जश्त्व होकर **दकार** हो गया, **उद्+स्तम्भनम्** बना। अब सूत्र लगा- **उदः स्थास्तम्भो पूर्वस्य।**

वैकल्पिकपूर्वसवर्णविधायकं विधिसूत्रम्

७५. झयो होऽन्यतरस्याम् ८।४।६२॥

झयः परस्य हस्य वा पूर्वसवर्णः।

नादस्य घोषस्य संवारस्य महाप्राणस्य तादृशो वर्गचतुर्थः।

वाग्घरिः, वाग्हरिः।

....

तस्मादित्युत्तरस्य की सहायता से **उद्** उपसर्ग से परे **स्तम्भ्** को पूर्वसवर्ण प्राप्त हुआ। **स्थास्तम्भोः** षष्ठ्यन्त होने के कारण **अलोऽन्त्यस्य** के नियम में षष्ठीनिर्दिष्ट आदेश अन्त्य के स्थान पर होता है तो **स्तम्भ** के अन्त्य वर्ण के स्थान पर पूर्वसवर्ण प्राप्त हो रहा था, उसे बाधकर परिभाषा सूत्र लगा- **आदेः परस्य**। पर के स्थान पर जो विधान किया जाता है वह कार्य पर के आदि अल् के स्थान पर होता है। पर है **स्तम्भ्** और उसका आदि **अल्** है **स्**, उसके स्थान पर **पूर्वसवर्ण** प्राप्त हुआ। **स्था** से पूर्व में **द्** है, उसके **सवर्णी** हैं- **त्, थ्, द्, ध्** और **न्**। अतः **सकार** के स्थान पर ये पाँचों प्राप्त हुए। एक के स्थान पर पाँच-पाँच वर्ण प्राप्त हुए, अनियम हुआ। नियमार्थ परिभाषा सूत्र लगा- **स्थानेऽन्तरतमः**। स्थान से मिलाने पर भी अनियम हुआ, क्योंकि स्थानी **सकार** का **दन्तस्थान** और आदेशों के वर्ण भी सब के सब **दन्तस्थान** वाले हैं, अतः पुनः अनियम हुआ। अर्थ से मिलाने पर एक सकार का अर्थ नहीं है। **गुण** अर्थात् **आभ्यन्तर** और **बाह्य प्रयत्न**। **आभ्यन्तर प्रयत्न** से मिलाने पर भी अनियम ही हो रहा है, क्योंकि **सकार** का **ईषद्विवृत प्रयत्न** है और **आदेशों** में **ईषद्विवृत प्रयत्न** वाला कोई वर्ण नहीं है। अतः **बाह्यप्रयत्न** से मिलाया गया। **बाह्यप्रयत्न** में स्थानी सकार का **विवार, श्वास, अघोष, महाप्राण प्रयत्न** है, इसी तरह आदेश **त्, थ्, द्, ध्, न्** में **विवार, श्वास, अघोष, महाप्राण प्रयत्न** वाला केवल **थ्** मिलता है। अतः **सकार** को हटाकर **थ्** बैठ गया- **उद्+थ्+तम्भनम्** बना। इसके बाद **तकार** को **झर्** परे मानकर **थकार** का **झरो झरि सवर्णे** से वैकल्पिक लोप हुआ- **उद्+तम्भनम्** बना। **दकार** के स्थान पर **खरि च** से चर्त्व होकर **तकार** बन गया। **उत्+तम्भनम्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **उत्तम्भनम्** सिद्ध हुआ। **झरो झरि सवर्णे** से **थकार** के लोप न होने के पक्ष में दो **थकार** वाला **उत्थ्तम्भनम्** रूप बन जाता है।

अभ्यासः

१. निम्नलिखित रूप सिद्ध करें-

उत्+स्थाय। भेद्+तुम्। छेद्+तव्यम्। उत्थातव्यम्। हनुमान्+लङ्का। युयुध्+सुः।

२. **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** और **तस्मादित्युत्तरस्य** की तुलना करें।

३. **अलोऽन्त्यस्य** और **आदेः परस्य** में बाध्यबाधकभाव प्रदर्शित करें।

४. **खरि च** इस सूत्र से चर्त्व होने पर **श्, ष्, स्** के स्थान पर क्या आदेश होंगे?

५. निम्नलिखित प्रयोगों की सिद्धि करें-

तद्+त्वम्। प्रमद्+तः। लिभ्+सा। युयुध्+सवः। त्वद्+तः। तत्तरति। यत्तनोति।

७५- झयो होऽन्यतरस्याम्। झयः पञ्चम्यन्तं, हः षष्ठ्यन्तम्, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य** से **पूर्वस्य** और **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से **सवर्णः** की अनुवृत्ति आती है।

झय् से परे हकार के स्थान पर विकल्प से पूर्वसवर्ण होता है।

पूर्व में **झय्** हो। **झय्** में वर्ग के **प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ** अक्षर आते हैं। उनमें से **प्रथम, द्वितीय** और **तृतीय** अक्षरों के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर वर्ग की तीसरा वर्ण आदेश हो चुका होता है। अतः वर्ग का तीसरा वर्ण ही **झय्** के रूप में मिलेगा। यदि हकार से पूर्व में **ग्** होगा तो उसके सवर्णी **क्, ख्, ग्, घ्, ङ्** प्राप्त होंगे। यदि **ज्** होगा तो उसके सवर्णी **च्, छ्, ज्, झ्, ञ्,** यदि **ड्** होगा तो **ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्,** यदि **द्** होगा तो उसके सवर्णी **त्, थ्, द्, ध्, न्** और यदि **ब्** होगा तो उसके सवर्णी **प्, फ्, ब्, भ्, म्** ये आदेश के रूप में प्राप्त होंगे। एक के स्थान पर पाँच-पाँच प्राप्त होने पर अनियम होगा। **स्थानेऽन्तरतमः** के नियमानुसार **स्थान, अर्थ, गुण और प्रमाणों** से तुल्यतम आदेश होगा। यहाँ पर स्थान से बात बनेगी नहीं, अर्थ से भी नहीं बनने वाली है। गुण का अर्थ **प्रयत्न** है। **आभ्यन्तर प्रयत्न** से नियम नहीं बन पा रहा है क्योंकि स्थानी **हकार** का ही प्रयत्न आदेश में भी होना चाहिए। अन्ततः बाह्यप्रयत्न से मिलाने पर **हकार** का **संवार, नाद, घोष, महाप्राण प्रयत्न** है। आदेशों में भी इन्हीं प्रयत्न वाले वर्ण केवल वर्ग के **चतुर्थ** अक्षर **घ्, झ्, ढ्, ध्, भ्** मिलते हैं। अतः इनमें से ही आदेश होगा। इस तरह से पूर्व में **ग्** होने पर **हकार** के स्थान पर **घ्** होगा। इसी तरह पूर्व में **ज्** होने पर **झ्** एवं **ड्** के होने पर **ढ्**, होगा। इसी तरह **द्** होने पर **ध्**, और **ब्** होने पर **भ्** आदेश हो जायेंगे। अतः मूल में लिखा गया- **नादस्य घोषस्य संवारस्य महाप्राणस्य हस्य तादृशो वर्गचतुर्थः**। इस तरह **वाग्+हरिः** में **संवार नाद घोष महाप्राण** प्रयत्न वाले **हकार** के स्थान पर वैसा ही वर्ग का चतुर्थ अक्षर **घकार** आदेश होता है।

वाग्घरिः, वाग्हरिः। वाणी में श्रेष्ठ, बोलने में चतुर। **वाक्+हरिः** में **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर **ककार** के स्थान पर **गकार** हो गया, **वाग्+हरिः** बना। उसके बाद सूत्र लगा- **झयो होऽन्यतरस्याम्**। झय् है **वाग्** का **गकार**, उससे परे **हकार** है **हरिः** का **हकार**। हकार से पूर्व में **गकार** है, उसके **सवर्णी** हैं- **क्, ख्, ग्, घ्, ङ्**। अतः **हरिः** के **हकार** के स्थान पर **क्, ख्, ग्, घ्, ङ्** ये सभी **पूर्वसवर्णी** प्राप्त हुए। एक के स्थान पर पाँच वर्णों की प्राप्ति होना अनियम हुआ। अतः नियमार्थ सूत्र आया- **स्थानेऽन्तरतमः**। स्थान से मिलाने पर हकार का कण्ठस्थान है और पाँचों आदेशों का भी **कण्ठस्थान** ही है। अतः नियम नहीं बना। अर्थ की साम्यता मिलाने पर एक **हकार** का क्या अर्थ हो सकता है? और आदेशों का भी कोई निश्चित अर्थ नहीं है। अतः फिर भी नियम नहीं बना। गुण की तुल्यता मिलाने पर **आभ्यन्तर प्रयत्न** से भी अनियम ही बना, क्योंकि **हकार** का **आभ्यन्तर प्रयत्न में ऊष्मसंज्ञक** होने के कारण **ईषद्विवृत** प्रयत्न है। आदेश **क्, ख्, ग्, घ्, ङ्** में से किसी का भी **ईषद्विवृत** प्रयत्न नहीं है। अतः **बाह्यप्रयत्न** से मिलाया गया। **बाह्यप्रयत्न** में हकार का **संवार नाद घोष महाप्राण प्रयत्न** है। आदेशों में यही प्रयत्न वाला केवल **घ्** ही है, क्योंकि **क्, ग्,** और **ङ्** ये वर्ण **अल्पप्राण प्रयत्न** वाले हैं, इसलिए नहीं मिलते। **ख्** का **विवार, श्वास, अघोष प्रयत्न** होने के कारण नहीं मिलता। केवल **घ्** ही तादृश संवार नाद घोष महाप्राण प्रयत्न वाला है। अतः **हरिः** के हकार को मिटाकर **घ्** बैठ गया। **वाग्घरिः** बना। यह आदेश वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **हकार** ही रह गया- **वाग्हरिः**।

वैकल्पिकछत्वविधायकं विधिसूत्रम्

७६. शश्छोऽटि ८।४।६३॥

झयः परस्य शस्य छो वाऽटि। **तद्+शिव** इत्यत्र दस्य श्चुत्वेन जकारे कृते **खरि चेति** जकारस्य चकारः। तच्छिवः, तच्शिवः।

वार्तिकम्- **छत्वममीति वाच्यम्।** तच्छ्लोकेन।

....

अब इसी तरह निम्नलिखित प्रयोगों की भी सिद्धि करें-

समुद्+हर्ता=**समुद्धर्ता**। यहाँ पर पूर्ववर्ण का सवर्णी चतुर्थ अक्षर ध् आदेश हुआ।

अच्+हीनम्=**अज्झीनम्**। यहाँ पर पूर्ववर्ण का सवर्णी चतुर्थ अक्षर झ् आदेश हुआ।

मधुलिड्+हसति=**मधुलिड्ढसति**। यहाँ पर पूर्ववर्ण का सवर्णी चतुर्थ अक्षर ढ् आदेश हुआ।

दूराद्+हूते च= **दूराद्धूते च**। यहाँ पर पूर्ववर्ण का सवर्णी चतुर्थ अक्षर ध् आदेश हुआ।

७६- शश्छोऽटि। शः षष्ठ्यन्तं, छः प्रथमान्तम्, अटि सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **झयो होऽन्यतरस्याम्** से **झयः** और **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है।

झय् से परे शकार के स्थान पर छकार आदेश विकल्प से होता है, अट् के परे होने पर।

पूर्व में **झय्**-प्रत्याहार का वर्ण हो और **पर** में **अट्**-प्रत्याहार का वर्ण तथा मध्य में **शकार** हो तो उस **शकार** के स्थान पर एक पक्ष में **छकार** आदेश और एक पक्ष में **शकार** ही रहेगा। त्रिपादी, उसमें भी चतुर्थ पाद के लगभग अन्तिम का सूत्र होने के कारण यह सूत्र प्रायः पूर्व के सभी सूत्रों की दृष्टि में **पूर्वत्रासिद्धम्** के नियम से असिद्ध रहता है। अतः श्चुत्व, जश्त्व, चर्त्व आदि कार्य इसके पहले ही होंगे।

तच्छिवः, तच्शिवः। वह कल्याणकारी है। **तत्+शिवः** में **तत्** के **तकार** के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से **जश्त्व** होकर **तद्+शिवः** बना। **शिवः** के **शकार** के योग में **तद्** के **दकार** के स्थान पर **स्तोः श्चुना श्चुः** से चुत्व होकर **तज्+शिवः** बना। **जकार** के स्थान पर **खरि च** से चर्त्व होकर **तच्+शिवः** बना। अब सूत्र लगा- **शश्छोऽटि**। झय् है **तच्** का **चकार**, उससे परे **शकार** है **शिवः** का **शकार** और उस **शकार** से **अट्** परे है **शि** में शकारोत्तरवर्ती इकार। अतः **शकार** के स्थान पर विकल्प से **छकार** आदेश हुआ- **तच्+छिवः** बना। वर्णसम्मेलन होकर **तच्छिवः** सिद्ध हुआ। वैकल्पिक होने के कारण एक पक्ष में नहीं हुआ तो **तच्शिवः** ही रह गया।

इसी तरह जगत्+शान्ति=जगच्छान्तिः, यावत्+शक्यम्=यावच्छक्यम्, प्राक्+शेते=प्राक्छेते, जगत्+शिष्यः=जगच्छिष्यः, मत्+शिरः=मच्छिरः आदि बनाये जाते हैं।

छत्वममीति वाच्यम्। यह वार्तिक है। **शश्छोऽटि** में **अटि** के स्थान पर **अमि** कहना चाहिए अर्थात् **झय् से परे शकार के स्थान पर छकार आदेश विकल्प से हो अम् के परे रहने पर** ऐसा अर्थ होना चाहिए।

तच्छ्लोकेन। अटि के स्थान पर **अमि** पढ़ने पर **तत्+श्लोकेन** में भी **शकार** के स्थान पर **छकार** आदेश हो सकेगा। **अट्** प्रत्याहार में **लकार** नहीं आता है, अतः **छत्व** प्राप्त नहीं था। सूत्र में **अमि** कहने पर **अम्** प्रत्याहार में **लकार** के आने कारण **छत्व** होने में कोई समस्या नहीं रहेगी। फलतः **छत्व** होकर **तच्छ्लोकेन** यह रूप सिद्ध होगा।

अनुस्वारविधायकं विधिसूत्रम्

७७. मोऽनुस्वारः ८।३।२३॥

मान्तस्य पदस्यानुस्वारो हलि। हरिं वन्दे।

अनुस्वारविधायकं विधिसूत्रम्

७८. नश्चापदान्तस्य झलि ८।३।२४॥

नस्य मस्य चापदान्तस्य झल्यनुस्वारः।

यशांसि। आक्रंस्यते। झलि किम्? मन्यते।

७७- मोऽनुस्वारः। मः षष्ठ्यन्तम्, अनुस्वारः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **हलि सर्वेषाम्** से **हलि** की अनुवृत्ति आती है। **पदस्य** का अधिकार आ रहा है।

मकारान्त पद के अन्त्य को अनुस्वार होता है हल् के परे होने पर।

येन विधिस्तदन्तस्य इस परिभाषासूत्र से तदन्तविधि होकर **मकारान्त पद** ऐसा अर्थ बना। **अलोऽन्त्यस्य** से **अन्त्यस्य** आता है अथवा इस सूत्र से **मकारान्त पद** को **अनुस्वार** आदेश होने पर **अलोऽन्त्यस्य** यह परिभाषा सूत्र **अन्त्य के स्थान पर होने** का नियम करता है। पद के अन्त में यदि **मकार** है और आगे **हल् परे** है तो **मकार** के स्थान पर **अनुस्वार** आदेश हो जाता है। हल् परे होना इसलिए जरूरी है कि **अच्** परे रहने पर अनुस्वार न हो। यहाँ पर कोई अनियम नहीं बनता। क्योंकि संसार में **मकार** भी एक ही होगा और अनुस्वार नाम वाला भी एक ही है। एक स्थानी के स्थान पर एक ही आदेश प्राप्त हो तो कोई अनियम नहीं है।

हरिं वन्दे। हरि को प्रणाम करता हूँ। **हरिम्+वन्दे** में **हरिम्** द्वितीया विभक्ति के एकवचन का रूप है। सुबन्त होने के कारण पदसंज्ञा हुई है और पद के अन्त में विद्यमान है **हरिम्** का **मकार**। हल् परे है- **वन्दे** का **वकार**। अतः **मकार** के स्थान पर **अनुस्वार** (ऊपर बिन्दी) होकर **हरिं वन्दे** सिद्ध हुआ।

अभ्यासः

(क) निम्नलिखित प्रयोगों की सिद्धि करें-

शत्रुम्+जयति। पुस्तकम् पठति। भारतम्+वन्दे। गुरुम् नमति। शिवम्+वन्दे। ओदनं खादामि। पत्रम्+लिखामि। त्वम्+गच्छसि। मातरम् पृच्छसि। पुस्तकम्+क्रीणाति।

(ख) क्या **मोऽनुस्वारः** यह सूत्र **खरि च** का बाधक सूत्र है?

७८- नश्चापदान्तस्य झलि। पदस्य अन्तः पदान्तः, न पदान्तः अपदान्तः, तस्य अपदान्तस्य। नः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदम्, अपदान्तस्य षष्ठ्यन्तं, झलि सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **मः** इस पद की अनुवृत्ति **मोऽनुस्वारः** से आती है।

अपदान्त नकार और मकार के स्थान पर अनुस्वार आदेश होता है झल् के परे होने पर।

मोऽनुस्वारः यह सूत्र **पद के अन्त में विद्यमान मकार के स्थान पर अनुस्वार करता है** और **नश्चापदान्तस्य झलि** यह सूत्र **अपदान्त में विद्यमान मकार और नकार दोनों के स्थान पर अनुस्वार करता है।** यहाँ पर **स्थानेऽन्तरतमः** जैसे परिभाषा सूत्र की

परसवर्णविधायकं विधिसूत्रम्

७९. अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ८।४।५८।।

स्पष्टम्। शान्तः।

....

भी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि आदेश केवल एक ही अनुस्वार है। अनियम वहाँ पर होता है जहाँ अनेक आदेशों की प्राप्ति होती है।

यशांसि। वहुत यश। **यशान्+सि** ऐसी स्थिति है। **यशांसि** यह पूरा पद है, केवल **यशान्** पद नहीं है। अपदान्त नकार है **यशान्** का **नकार** और झल् परे है **सि** का **सकार**। अतः **नश्चापदान्तस्य झलि** सूत्र से **यशान्** के **नकार** के स्थान पर अनुस्वार हो गया- **यशांसि**।

आक्रंस्यते। आक्रमण करेगा, ऊपर चढ़ेगा। **आक्रम्+स्यते** ऐसी स्थिति है। अपदान्त **मकार** है **आक्रम्** का **मकार** और झल् परे है **स्यते** का **सकार**। अतः **आक्रम्** के **मकार** के स्थान पर **अनुस्वार** हो गया- **आक्रंस्यते**।

झलि किम्? मन्यते। यहाँ पर यह प्रश्न करते हैं कि **नश्चापदान्तस्य झलि** में **झलि** यह पद क्यों पढ़ा गया? उत्तर देते हैं कि **मन्यते** आदि जगहों पर दोष न आये, इसलिए। यदि **झलि** नहीं पढ़ते तो झल् हो या न हो, सर्वत्र यह सूत्र लगता। फलतः **मन्+यते** में झल् परे न होने पर भी **मन्** के नकार के स्थान पर अनुस्वार हो जाता और **मंयते** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता। उक्त दोष के निवारणार्थ यहाँ पर **झलि** पढ़ा गया।

अभ्यासः

(क) **मोऽनुस्वारः** और **नश्चापदान्तस्य झलि** इन दोनों सूत्रों की तुलना करिये।

(ख) निम्नलिखित प्रयोगों की सिद्धि करें-

नम्+स्यति। मनान्+सि। पयान्+सि। श्रेयांसि। हंसि।

७९- **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः**। परस्य सवर्णः- परसवर्णः, षष्ठी तत्पुरुषः। अनुस्वारस्य षष्ठ्यन्तं, ययि सप्तम्यन्तं, परसवर्णः प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्।

यय् प्रत्याहार के परे होने पर अनुस्वार के स्थान पर परसवर्ण होता है।

परसवर्ण का अर्थ है- पर में जो वर्ण है उसके सवर्णियों में से आदेश होना। **यय्** प्रत्याहार में समस्त हलों में से केवल **ह्, श्, ष्, स्** को छोड़कर बाकी सारे हल्वर्ण आते हैं। पर के सवर्णी अनेक हो सकते हैं। अतः **स्थानेऽन्तरतमः** इस परिभाषा सूत्र की आवश्यकता पड़ेगी। यह सूत्र अनुस्वार हो जाने के बाद ही लगता है। अतः इस सूत्र के पूर्वप्रवृत्त सूत्र हैं- **मोऽनुस्वारः** और **नश्चापदान्तस्य झलि**।

शान्तः। **शाम्+तः** में पहले **नश्चापदान्तस्य झलि** से **शाम्** के **मकार** के स्थान पर **अनुस्वार** हुआ- **शां+तः** वना। उसके बाद सूत्र लगा- **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः**। यय् प्रत्याहार है **तः** का **तकार** और **शां** में **अनुस्वार** है ही। उसके स्थान पर परवर्ण के सवर्णी प्राप्त हुए। अनुस्वार से परे है **तः** का **तकार** और **तकार** के सवर्णी हैं- **त्, थ्, द्, ध्, न्**। **अनुस्वार** के स्थान पर ये पाँचों प्राप्त हुए। अतः अनियम हुआ और नियमार्थ **स्थानेऽन्तरतमः** की प्रवृत्ति हुई और स्थान से मिलाने पर स्थानी **अनुस्वार** का **नासिका स्थान** है और आदेश **त्, थ्, द्, ध्, न्** में से **नासिकास्थान** वाला वर्ण केवल **न्** है। अतः अनुस्वार के स्थान पर **नकार** आदेश हो गया। **शान्+तः** बना, वर्णसम्मेलन होकर **शान्तः** सिद्ध हुआ।

वैकल्पिकपरसवर्णविधायकं विधिसूत्रम्

८०. वा पदान्तस्य ८।४।५९॥

त्वङ्करोषि, त्वं करोषि।

मकारादेशविधायकं नियमसूत्रम्

८१. मो राजि समः क्वौ ८।३।२५॥

क्विबन्ते राजतौ परे समो मस्य म एव स्यात्। सम्राट्।

....

८०- **वा पदान्तस्य।** वा अव्ययपदं, पदान्तस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** यह समग्र सूत्र इस सूत्र में अनुवृत्त होता है।

पदान्त अनुस्वार के स्थान पर यय् के परे रहते परसवर्ण होता है।

यह सूत्र **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** का बाधक सूत्र है क्योंकि वह **पदान्त** एवं **अपदान्त** दोनों में **परसवर्ण नित्य से करता है** और यह सूत्र केवल **पदान्त में ही परसवर्ण करता है** विकल्प से। **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से अवश्य प्राप्त होने पर **वा पदान्तस्य** का आरम्भ हुआ है। **यस्य नाप्राप्ते(न+अप्राप्ते, अवश्यप्राप्ते) यो विधिरारम्भ्यते स तस्य बाधको भवति।**

त्वङ्करोषि, त्वं करोषि। तुम करते हो। **त्वम्+करोषि** में पहले **मोऽनुस्वारः** से मकार के स्थान पर **अनुस्वार** होगा। उसके बाद **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से नित्य से **परसवर्ण** प्राप्त था, उसे बाधकर सूत्र लगा- **वा पदान्तस्य।** पदान्त अनुस्वार है **त्वं** का **अनुस्वार** और **यय्** प्रत्याहार परे है **करोषि** का **ककार।** अतः **अनुस्वार** के स्थान पर परवर्ण **ककार** के सवर्णी **क्, ख्, ग्, घ्, ङ्** ये सभी प्राप्त हुए। **स्थानेऽन्तरतमः** के नियम से स्थान की तुल्यता मिलाने पर **नासिका स्थानिक अनुस्वार** के स्थान पर **नासिकास्थान** वाला ही **ङकार** आदेश हुआ- **त्वङ्+करोषि** बना। वर्णसम्मेलन हुआ **त्वङ्करोषि।** जब विकल्प से होने के कारण **परसवर्ण** नहीं हुआ तो **अनुस्वार** वाला ही रूप रह गया- **त्वं करोषि।**

अभ्यासः

(क) **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** और **वा पदान्तस्य** में क्या अन्तर है?

(ख) **अनुस्वार** के स्थान पर **परसवर्ण** करने में अन्य किन सूत्रों की आवश्यकता होती है और क्यों?

(ग) **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** और **वा पदान्तस्य** इन दो सूत्रों में बलवान् सूत्र कौन है?

(घ) निम्नलिखित प्रयोगों की सिद्धि करें-
अन्+कितः। अन्+चितः। कुन्+ठितः। गुम्फितः। दान्तः। गन्ता। त्वम्+भवसि। अहम्+पठामि। वयम्+गच्छामः।

८१- **मो राजि समः क्वौ।** मः प्रथमान्तं, राजि सप्तम्यन्तं, समः षष्ठ्यन्तं, क्वौ सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **मोऽनुस्वारः** से षष्ठ्यन्त **मः** की अनुवृत्ति आती है।

क्विप्-प्रत्ययान्त राज् धातु के परे होने पर सम् के मकार के स्थान पर मकार ही होता है।

वैकल्पिकमकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८२. हे मपरे वा ८।३।२६॥

मपरे हकारे परे मस्य मो वा। किम् ह्मलयति, किं ह्मलयति।

वार्तिकम्- **यवलपरे यवला वा।** कियँ ह्यः, किं ह्यः। किवँ ह्वलयति, किं ह्वलयति। किलँ ह्लादयति, किं ह्लादयति।

....

राज् धातु से **क्विप्** प्रत्यय होकर उस प्रत्यय के सभी वर्णों का लोप हो जाता है। केवल **राज्** धातु ही बचता है फिर भी वह क्विप् **प्रत्ययान्त** कहलाता है। इसका प्रसंग हलन्तपुँल्लिङ्ग में देखेंगे। क्विबन्त **राज्** धातु के परे होने पर भी **किम्** के **मकार** के स्थान पर **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार प्राप्त था, उसका यह निरोधक सूत्र है। अतः **सम्** के **मकार** के स्थान पर अनुस्वार न होकर **मकार** ही रह जाता है।

सम्राट्। चक्रवर्ती राजा। **सम्+राट्** में **राज्** धातु से **क्विप्**, उसका लोप्, प्रथमा के एकवचन में सु, उसका भी **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ है। **राज्** के **जकार** को जश्त्व और चर्त्व होकर **राट्** बना है। ऐसी स्थिति में **सम्** के **मकार** के स्थान पर **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार आदेश प्राप्त था, उसे रोकने के लिए सूत्र लगा- **मो राजि समः क्वौ।** इस सूत्र के नियमानुसार **मकार** के स्थान पर **मकार** ही रहता है तो **सम्+राट्** ऐसा रह गया, वर्णसम्मेलन हुआ- **सम्राट्।**

८२- **हे मपरे वा।** मः परो यस्मात् स मपरः, तस्मिन् मपरे, बहुव्रीहिः। हे सप्तम्यन्तं, मपरे सप्तम्यन्तं, वा अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **मोऽनुस्वारः** से षष्ठ्यन्त **मः** और **मो राजि समः क्वौ** से भी प्रथमान्त **मः** की अनुवृत्ति आती है।

म-परक हकार के परे होने पर मकार के स्थान पर मकार आदेश विकल्प से होता है।

मकार परे हो ऐसे **हकार** के परे होने पर यदि **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार प्राप्त होता है तो उसे बाधकर एक पक्ष में यह सूत्र **मकार** ही आदेश करता है और **मकार** न होने के पक्ष में **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार हो जायेगा, जिससे दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

किम् ह्मलयति, किं ह्मलयति। क्या चलाता या हिलाता है? **किम्+ह्मलयति** में **किम्** के **मकार** के स्थान पर **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार प्राप्त था। उसे बाधकर सूत्र लगा- **हे मपरे वा।** मकार परे हो ऐसा **हकार** है ह्+म=**ह्म** का **हकार**, अतः **किम्** के **मकार** के स्थान पर एक पक्ष में **मकार** ही रहेगा। अतः **किम् ह्मलयति** ही रह गया। यह कार्य वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **मोऽनुस्वारः** से **मकार** के स्थान पर **अनुस्वार** हो गया- **किं ह्मलयति।**

यवलपरे यवला वा। यह वार्तिक है। **हे मपरे वा** से पूर्ण कार्य सिद्ध नहीं हो रहे हैं। केवल **मकार** परक **हकार** परे रहने पर **मकार** आदेश करने से काम नहीं चलेगा अपितु **यकार, वकार और लकार परक हकार के परे रहने पर मकार के स्थान पर यँकार, वँकार और लँकार आदेश विकल्प से होते हैं।** हकार के बाद **यकार** हो या **वकार** हो अथवा **लकार** हो तो पूर्व में विद्यमान **मकार** के स्थान पर एक पक्ष में क्रमशः **यकार, वकार** और **लकार** ही आदेश होते हैं और एक पक्ष में **अनुस्वार** भी हो जायेगा।

वैकल्पिकनकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८३. नपरे नः ८।३।२७॥

नपरे हकारे मस्य नो वा। किन् ह्नुते, किं ह्नुते।

आद्यन्तावयवविधायकं परिभाषासूत्रम्

८४. आद्यन्तौ टकितौ १।१।४६॥

टित्कितौ यस्योक्तौ तस्य क्रमादाद्यन्तावयवौ स्तः।

....

मकार का **नासिकास्थान** भी है, अतः अनुनासिक **यँ, वँ, लँ** होंगे। **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** से यथासङ्ख्य होकर **यकार** परक **हकार** होगा तो **यँ** और **वकार** परक **हकार** होगा तो **वँ** एवं **लकार** परक **हकार** होगा तो **लँ** आदेश हो जायेंगे।

कियँ ह्यः, किं ह्यः। कल क्या ? **किम्+ह्यः** में **मकार** के स्थान पर **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार प्राप्त था, उसे बाधकर वार्तिक लगा- **यवलपरे यवला वा**। यहाँ पर **यकार परक हकार** परे है, अतः **किम्** के **मकार** के स्थान पर अनुनासिक **यँ** आदेश हुआ- **कियँ ह्यः** बना। यह आदेश वैकल्पिक है, एक पक्ष में नहीं हुआ तो **मोऽनुस्वारः**से **मकार** के स्थान पर **अनुस्वार** हुआ- **किं ह्यः**।

किवँ ह्वलयति, किं ह्वलयति। क्या हिलाता है? **किम्+ह्वलयति** में मकार के स्थान पर **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार प्राप्त था, उसे बाधकर वार्तिक लगा- **यवलपरे यवला वा**। यहाँ पर **वकार परक हकार** परे है, अतः **किम्** के **मकार** के स्थान पर अनुनासिक **वँ** आदेश हुआ- **किवँ ह्वलयति** बना। यह आदेश वैकल्पिक है, एक पक्ष में नहीं हुआ तो **मोऽनुस्वारः**से **मकार** के स्थान पर **अनुस्वार** हुआ- **किं ह्वलयति**।

किलँ ह्लादयति, किं ह्लादयति। कौन वस्तु प्रसन्न करती है? **किम्+ह्लादयति** में **मकार** के स्थान पर **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार प्राप्त था, उसे बाधकर वार्तिक लगा- **यवलपरे यवला वा**। यहाँ पर **लकार परक हकार** परे है, अतः **किम्** के **मकार** के स्थान पर अनुनासिक **वँ** आदेश हुआ- **किलँ ह्लादयति** बना। यह आदेश वैकल्पिक है, एक पक्ष में नहीं हुआ तो **मोऽनुस्वारः**से **मकार** के स्थान पर **अनुस्वार** हुआ- **किं ह्लादयति**।

८३- नपरे नः। नः परो यस्मात्, स नपरः, तस्मिन् नपरे, बहुव्रीहिः। नपरे सप्तम्यन्तं, नः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **हे मपरे वा** से हे तथा **मोऽनुस्वारः** से **मः** की अनुवृत्ति आती है।

नकार परक हकार के परे होने पर मकार के स्थान पर नकार आदेश विकल्प से होता है।

नकार पर हो ऐसे **हकार** के परे होने पर यह लगता है। **नकार** न होने के पक्ष में **मोऽनुस्वारः** से **अनुस्वार** ही होता है।

किन् ह्नुते, किं ह्नुते। क्या छिपाता है? **किम्+ह्नुते** में **किम्** के **मकार** के स्थान पर **मोऽनुस्वारः** से **अनुस्वार** प्राप्त था, **नकार परक हकार** परे होने के कारण उसे बाधकर **नपरे नः** से **नकार** आदेश हुआ, **किन् ह्नुते** बना। यह आदेश वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **मकार** के स्थान पर **मोऽनुस्वारः** से **अनुस्वार** हो गया- **किं ह्नुते**।

कुक्-टुक्-आगमविधायकं विधिसूत्रम्

८५. ङ्णोः कुक्टुक् शरि ८।३।२८॥

वा स्तः।

वार्तिकम्- **चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्।**

प्राङ्ख् षष्ठः, प्राङ्क्षष्ठः, प्राङ् षष्ठः।

सुगण्ठ् षष्ठः, सुगण्ट् षष्ठः, सुगण् षष्ठः।

....

८४- आद्यन्तौ टकितौ। आदिश्च अन्तश्च आद्यन्तौ, टश्च कश्च टकौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः, टकौ इतौ ययोस्तौ टकितौ, बहुव्रीहिः। आद्यन्तौ प्रथमान्तं, टकितौ प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

टित् और कित् जिसको कहे गये हैं वे क्रमशः उनके आदि और अन्त के अवयव होते हैं।

आगम जिसको होता है, उसके **आदि** में या **अन्त** में जाकर के बैठें यह निर्णय करता है यह सूत्र। जिस **आगम** या **आदेश** में **टकार** की इत्संज्ञा होती है (टस्य इत्=टित्) वह **टित** कहलाता है और जिस में **ककार** की इत्संज्ञा होती है उसे (कस्य इत्=कित्) **कित्** कहते हैं। यदि आगम **टित्** होगा तो जिसको आगम हुआ है उसीके **आदि** में अर्थात् पहले और यदि आगम **कित्** होगा तो जिसको आगम हुआ है उसके **अन्त** में अर्थात् बाद में होगा। **टित्** है तो **आदि** में और **कित्** है तो **अन्त** में होना निश्चित है। जैसे **छे च** सूत्र से ह्रस्व को **तुक्** का आगम हुआ है। **तुक्** में अन्त्य **ककार** की **हलन्त्यम्** सूत्र से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप हो गया और **तु** में **उकार** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा तथा **तस्य लोपः** से लोप हो गया, बचा- **त्।** अब यह **तकार** कहाँ बैठे? क्योंकि **छे च** इस सूत्र से जो **तुक्** का आगम हुआ था वह **छकार** के परे रहने पर **ह्रस्व** को हुआ था सो ह्रस्व के आगे या पीछे बैठना चाहिए तो इस सूत्र से निर्णय कर दिया गया कि यदि **टित्** है तो उसके **आदि** में बैठे और **कित्** हो तो **अन्त** में बैठे। **तुक्** में **ककार** की इत्संज्ञा हुई है। अतः यह **कित्** है। **कित्** होने के कारण यह **त्** ह्रस्व वर्ण के **अन्त** में ही बैठेगा। इसी तरह **ङ्णोः कुक् टुक् शरि** से ङकार और **णकार** को **कुक्** और **टुक्** आगम होने पर **कित्** होने के कारण **क्** और **ट्** ये ङ् और **ण्** के अन्त में बैठेंगे किन्तु **ङः सि धुट्** से **धुट्** का आगम होने पर **टकार** की इत्संज्ञा होती है, अतः **टित्** होने के कारण **सकार** के **आदि** में बैठेगा।

किसी भी प्रत्यय, आगम और आदेश में जिस वर्ण की भी इत्संज्ञा की जाने वाली है, वह **अनुबन्ध** कहलाता है- **इत्संज्ञायोग्यत्वम् अनुबन्धत्वम्।** आगम आदि में लगे हुए वर्णों का **हलन्त्यम्** आदि सूत्रों से जो इत्संज्ञा करके **तस्य लोपः** से लोप किया जाता है उसे **अनुबन्धलोप** कहते हैं। इसलिये आगे जहाँ भी **अनुबन्धलोप** की बात आ जाये तो यही समझना चाहिए कि प्रत्यय, आगम आदि को टित्-कित् आदि बनाने के लिये जो अतिरिक्त वर्ण हैं, वे **अनुबन्ध** हैं और उनका लोप होना ही **अनुबन्धलोप** है।

आगम और **आदेश** का अन्तर- **शत्रुवदादेशा भवन्ति। मित्रवदागमा भवन्ति। आदेश** शत्रु की तरह होते हैं, जो किसी वर्ण को हटाकर के बैठते हैं और **आगम** मित्र की तरह होते हैं, जो किसी वर्ण के पास में आकर बैठते हैं।

८५- ङ्णोः कुक्टुक् शरि। ङ् च ण् च ङ्णौ, तयोः=ङ्णोः। कुक् च टुक् च तयोः

समाहारद्वन्द्वः। ङ्णोः षष्ठ्यन्तं, कुक्टुक् प्रथमान्तं, शरि सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **हे मपरे वा से वा** की अनुवृत्ति आती है।

शर् के परे होने पर ङकार और णकार को क्रमशः कुक् और टुक् आगम होता है।

कुक् और **टुक्** में **ककार** की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और उकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा तथा दोनों का **तस्य लोपः** से लोप होकर क्रमशः **क्** और **ट्** मात्र शेष बचते हैं। **ककार** की इत्संज्ञा होने के कारण ये दोनों **कित्** हैं। ये **आगम** हैं, अतः किसी को हटाकर के नहीं अपितु उसके बगल में जा बैठते हैं। **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** के नियम से यदि **ङकार** है तो उसको **कुक्** का आगम और **णकार** है तो टुक् आगम होगा। ये दोनों कुक् और टुक् कित् हैं, अतः **आद्यन्तौ टकितौ** के नियमानुसार ङकार और णकार के अन्त में बैठेंगे।

चयो द्वितीया शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्। यह वार्तिक है। **शर् के परे होने पर चय् प्रत्याहार के वर्ण के स्थान पर उसी वर्ग का दूसरा वर्ण आदेश होता है, पुष्करसादि आचार्यों के मत में।**

वास्तव में यह वार्तिक **अनचि च** सूत्र पर पढ़ा गया है। वह द्वित्व करता है और वार्तिक वर्ग के दूसरे वर्ण रूपी आदेश करता है। पुष्करसादि आचार्यों के मत में च्, ट्, त्, क्, प् के स्थान पर उसी वर्ग का दूसरा अक्षर आदेश होता है और अन्य आचार्यों के मत में प्रथम अक्षर ही रहता है। फलतः दो मत होने के कारण विकल्प हुआ। **चय्** प्रत्याहार में वर्ग के प्रथम अक्षर **क्, च्, ट्, त्, प्** आते हैं और इनके द्वितीय अक्षर हुए **ख्, छ्, ठ्, थ्, फ्**। इस कार्य के लिए **शर्** अर्थात् **श्, ष्, स्** का परे होना भी आवश्यक है।

प्राङ्ख् षष्ठः, प्राङ्क्षष्ठः, प्राङ् षष्ठः। छठे प्राचीन। **प्राङ्+षष्ठः** में **ङ्णोः कुक्टुक् शरि** से **षष्ठः** के **षकार** के परे होने पर **प्राङ्** के **ङकार** को **कुक्** आगम हुआ। **ककार** की **हलन्त्यम्** से **इत्संज्ञा** होती है और उसका **तस्य लोपः** से लोप होता है तथा **उकार** उच्चारणार्थ है। अतः हट गया, केवल **क्** बचा। **ककार** की इत्संज्ञा होने के कारण यह **कित्** है। यह **ककार** ङकार के पहले बैठे या बाद में? यह अनियम हुआ तो **आद्यन्तौ टकितौ** ने व्यवस्था दी कि **कित्** हो तो **अन्त** में हो। **कुक्** वाला **ककार** कित् है, अतः **ङकार** के **अन्त** में बैठा। **प्राङ्+क्+षष्ठः** बना। **शर्** परे है **षष्ठः** का **षकार**, अतः **चयो द्वितीया शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्** से चय् प्रत्याहारान्तर्गत **ककार** को द्वितीय वर्ण **खकार** आदेश हुआ- **प्राङ्ख् षष्ठः** यह रूप सिद्ध हुआ। वार्तिक वैकल्पिक है, द्वितीय वर्ण न होने के पक्ष में प्रथम ही वर्ण रहा- **प्राङ्क्+षष्ठः** है। **क्** और **ष्** का संयोग होने पर **क्ष्** बनता है। **प्राङ्क्** का **ककार** और **षष्ठः** का **षकार** दोनों को मिलाकर **क्ष्** बन गया तो **प्राङ् क्षष्ठः** सिद्ध हुआ। **ङ्णोः कुक्टुक् शरि** भी वैकल्पिक है, उससे आगम न होने के पक्ष में **प्राङ् षष्ठः** ही रहा। इस प्रकार से तीन रूप सिद्ध हुए।

सुगण्ठ् षष्ठः, सुगण्ट् षष्ठः, सुगण् षष्ठः। छठे गणक(विद्वान्)। **सुगण्+षष्ठः** में **ङ्णोः कुक्टुक् शरि** से **षष्ठः** के **षकार** के परे होने पर **सुगण्** के **णकार** को **टुक्** आगम हुआ। ककार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और उकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा हुई और दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हुआ। **ट्** बचा। **ककार** की इत्संज्ञा होने के कारण यह **कित्** है। यह टकार **णकार** के पहले बैठे या बाद में? यह अनियम हुआ तो

वैकल्पिक-धुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

८६. डः सि धुट् ८।३।२९॥

डात्परस्य सस्य धुड् वा। षट्त्सन्तः, षट् सन्तः।

....

आद्यन्तौ टकितौ ने व्यवस्था दी कि **कित्** हो तो **अन्त** में हो। **टुक्** वाला **टकार** कित् है, अतः **णकार** के **अन्त** में जा बैठा। **सुगण्+ट्+षष्ठः** बना। शर् परे है **षष्ठः** का **षकार**, अतः **चयो द्वितीया शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्** से चय् प्रत्याहारान्तर्गत **टकार** का द्वितीय वर्ण **ठकार** आदेश हुआ- **सुगणठ् षष्ठः** यह रूप सिद्ध हुआ। वार्तिक वैकल्पिक है, द्वितीय वर्ण न होने के पक्ष में **प्रथम** ही वर्ण रहा- **सुगण्ट्+षष्ठः** बना। **ङ्णोः कुक्टुक् शरि** भी वैकल्पिक है, उससे आगम न होने के पक्ष में **सुगण् षष्ठः** ही रहा। इस प्रकार से तीन रूप सिद्ध हुए।

८६- **डः सि धुट्**। डः पञ्चम्यन्तं, सि सप्तम्यन्तं, धुट् प्रथमान्तम्। **हे मपरे वा** से **वा** की अनुवृत्ति आती है।

डकार से परे सकार को विकल्प से धुट् आगम होता है।

धुट् में **टकार** की **हलन्त्यम्** से और **उकार** की **उपदेशेऽजनुनासिक** से इत् इत्संज्ञा होती है और दोनों का **तस्य लोपः** से **लोप** हो जाता है। कई आचार्य उकार को उच्चारणार्थक मानते हैं। वह भी ठीक ही है। अतः केवल **ध्** शेष रह जाता है। इसको प्रकारान्तर से भी कह सकते हैं- **अनुबन्धलोप हुआ**। पहले भी बताया जा चुका है कि **जो इत्संज्ञायोग्य** है उसे **अनुबन्ध** कहते हैं, उसका लोप होना ही **अनुबन्धलोप** है। **टकार** की इत्संज्ञा होने के कारण यह **टित्** है। **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से यह जिसको भी आगम होगा, उसके आदि में बैठेगा। इस सूत्र में एक समस्या यह है कि **डः** इस पञ्चम्यन्त पद के कारण **तस्मादित्युत्तरस्य** की उपस्थिति होती है जिससे **डकार** से **अव्यवहित** पर **सकार** को धुट् आगम प्राप्त होगा और **सि** इस सप्तम्यन्त के कारण **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** की उपस्थिति होती है जिससे **सकार** से **अव्यवहित** पूर्व **डकार** को **धुट्** आगम की प्राप्ति होती है। यदि **डकार** को धुट् होगा तो **टित्** होने के कारण **डकार** से पहले बैठेगा और यदि **सकार** को होगा तो सकार के पहले। ऐसा अनियम हुआ। इसके समाधान के लिए व्याकरण जगत् में एक परिभाषा है- **उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयान्**। जहाँ **पञ्चमी** और **सप्तमी** दोनों निर्देश प्राप्त हों वहाँ पर **पञ्चमीनिर्देश** को **बलवान** मानना चाहिए अर्थात् **पञ्चमीनिर्देश** के अनुसार कार्य करना चाहिए। इस नियम के अनुसार प्रकृत सूत्र पर भी **पञ्चमीनिर्देश** को लेकर के कार्य किया जायेगा अर्थात् **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** को बाधकर **तस्मादित्युत्तरस्य** से कार्य किया जायेगा। अतः **डकार** से अव्यवहित पर **सकार** को ही **धुट्** आगम होगा। **टित्** होने के कारण **सकार** के पहले **धकार** बैठेगा।

षट्त्सन्तः, षट् सन्तः। छ सज्जन। **षट्+सन्तः** में **टकार** के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से **जश्त्व** होकर **षड्+सन्त** हुआ। अब सूत्र लगा- **डः सि धुट्**। इससे **डकार** से परे **सकार** को धुट् का आगम हुआ, अनुबन्धलोप होने पर **ध्** बचा। **टित्** होने के कारण **सकार** के आगे बैठा- **षड्+ध्+सन्तः** बना। **सन्तः** के **सकार** को **खर्** मानकर के **खरि च** से **धकार** के स्थान पर **चर्त्व** हुआ। **धकार** को चर्त्व होने पर **स्थान** एवं **प्रयत्न** से साम्य होने के कारण **तकार** ही हो सकता है, अतः **धकार** के स्थान पर **तकार** आदेश हुआ।

वैकल्पिक-धुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

८७. नश्च ८।३।३०॥

नान्तात्परस्य सस्य धुड् वा। सन्त्सः, सन्सः।

वैकल्पिक-तुगागमविधायकं विधिसूत्रम्

८८. शि तुक् ८।३।३१॥

पदान्तस्य नस्य शे परे तुग्वा।

सञ्छम्भुः, सञ्च्छम्भुः, सञ्च्शम्भुः, सञ्शम्भुः।

....

षड्त्+सन्तः बना। **षड्+त्** में भी **तकार** को **खर्** परे मानकर पुनः उसी सूत्र से **डकार** के स्थान पर **चर्त्व** हुआ। **स्थान** और **प्रयत्न** से साम्य होने पर **डकार** को **टकार** ही हो सकता है। अतः **डकार** के स्थान पर **टकार** आदेश हुआ, **षट्त् सन्तः** बन गया। वर्णसम्मेलन होने पर **षट्त्सन्तः** सिद्ध हुआ। यह **धुट्** आगम वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **षट् सन्तः** ऐसा भी रहेगा।

८७- नश्च। न पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **डः सि धुट्** से **सि** और **धुट्** तथा **हे मपरे वा** से **वा** की अनुवृत्ति आती है। **पदस्य** का अधिकार है।

पदान्त नकार से परे सकार को विकल्प से धुट् आगम होता है।

डः सि धुट् डकार से परे **सकार** को **धुट्** आगम करता है और यह सूत्र **नकार** से परे **सकार** को। इतना ही अन्तर है, शेष सभी विषय **डः सि धुट्** की तरह ही हैं।

सन्त्सः, सन्सः। वह सज्जन है। **सन्+सः** में नकार के झल् में न आने के कारण **झलां जशोऽन्ते** की प्रवृत्ति नहीं होती है। **सन्** के **नकार** से परे **सः** के **सकार** को **नश्च** से **धुट्** आगम हुआ और अनुबन्धलोप होने पर **ध्** मात्र बचा। **टित्** होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से **सकार** के **आदि** में जा बैठा। **सन्+ध्+सः** बना। **धकार** को **खरि च** से **चर्त्व** होकर **तकार** बन गया, **सन्त् सः** बना। वर्णसम्मेलन होकर **सन्त्सः** सिद्ध हुआ। यह **धुट्** वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **सन्सः** ही रह गया।

८८- शि तुक्। शि सप्तम्यन्तं, तुक् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **नश्च** से **नः** और **हे मपरे वा** से **वा** की अनुवृत्ति आती है। **पदस्य** का अधिकार है।

शकार के परे होने पर पदान्त नकार को विकल्प से तुक् आगम होता है।

डः सि धुट् डकार से परे **सकार** को **धुट्** आगम करता है और यह सूत्र **नकार** से परे **शकार** को **तुक्** का आगम। इतना ही अन्तर है, शेष सभी विषय **डः सि धुट्** की तरह ही हैं। **तुक्** में **ककार** की **हलन्त्यम्** से **इत्संज्ञा** और उकार उच्चारणार्थक है। केवल **त्** मात्र शेष रहता है। **तुक्** में **ककार** की इत्संज्ञा हुई है, अतः **कित्** है। कित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से जिसको हुआ है उसके अन्त में बैठेगा। यहाँ पर **शकार** के परे रहते **नकार** को तुक् हो रहा है, फलतः **नकार** के **अन्त** में ही बैठना चाहिए।

सञ्छम्भुः, सञ्च्छम्भुः, सञ्च्शम्भुः, सञ्शम्भुः। शम्भु सत्स्वरूप हैं। **सन्+शम्भुः** में **शि तुक्** से **सन्** के **नकार** को वैकल्पिक **तुक्** आगम हुआ। अनुबन्धलोप होने के बाद **त्** बचा। **कित्** होने कारण **नकार** के **अन्त** में जा बैठा- **सन् त् शम्भुः** बना। **स्तोः श्चुना श्चुः** से **शकार** के योग में पहले **तकार** को **चुत्व** होकर **च्** हुआ और बाद में **चकार** के योग होने पर **नकार** को भी **चुत्व** होकर **ञ्** हुआ, **सञ्च् शम्भुः** बना। **शश्छोऽटि** से **शम्भुः**

ङमुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

८९. ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम् ८।३।३२॥

ह्रस्वात्परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मात्परस्याचो ङमुट्।

प्रत्यङ्ङात्मा। सुगण्णीशः। सन्नच्युतः।

....

के **शकार** के स्थान पर वैकल्पिक **छकार** आदेश हुआ, **सञ्च् छम्भुः** बना। **ञकार** को **हल्**, **चकार** को **झर्** और **छम्भुः** के **छकार** को **सवर्ण झर्** परे मानकर **झरो झरि सवर्णे** से **चकार** का वैकल्पिक लोप हुआ तो **सञ्छम्भुः** यह प्रथम रूप सिद्ध हुआ। **झरो झरि सवर्णे** से **चकार** के लोप न होने के पक्ष में चकार सहित **सञ्च्छम्भुः** यह दूसरा रूप बना। **छत्व** भी **विकल्प** से हुआ है, न होने के पक्ष में **शकार** ही रह गया- **सञ्च्शम्भुः** यह तीसरा रूप बना। **तुक्** आगम भी वैकल्पिक है, **तुक्** न होने पर **सञ्शम्भुः** ऐसा चौथा रूप बना। इस तरह से चार रूप सिद्ध हुए। इस विषय में **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में निम्नलिखित पद्य लिखा गया है-

ञछौ ञचछा ञचशा ञशाविति चतुष्टयम्।
रूपाणामिह तुक्-छत्व-चलोपानां विकल्पनात्॥

अर्थात् **तुक् आगम**, **छत्व** और **चकार** का लोप विकल्प से होने के कारण **सन्+शम्भुः** में **ञकार** और **छकार** वाला एक रूप, **ञकार**, **चकार** और **छकार** वाला एक रूप, **ञकार**, **चकार** और **शकार** वाला एक रूप तथा **ञकार** और **शकार** वाला एक रूप, इस तरह चार रूप सिद्ध होते हैं।

८९- **ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्।** ङमः पञ्चम्यन्तं, ह्रस्वात् पञ्चम्यन्तम्, अचि सप्तम्यन्तं, ङमुट् प्रथमान्तं, नित्यं क्रियाविशेषणं द्वितीयान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

ह्रस्व से परे जो ङम्, वह अन्त में है जिस के ऐसा जो पद, उससे परे अच् को नित्य से ङमुट् आगम होता है।

ङम् प्रत्याहार है, जिसमें **ङ्**, **ण्**, **न्**, ये तीन वर्ण आते हैं। **ङम्** को **उट्** जोड़कर पढ़ा गया है। ङमुट् ऐसा आगम नहीं है अपितु **ङम्** प्रत्याहार में जो वर्ण आते हैं, उन वर्णों में से उट् जोड़कर आगम माना गया है। इस तरह **ङुट्**, **णुट्**, **नुट्** आगम होंगे। **टकार** और **उकार** की इत्संज्ञा और लोप होकर **ङ्**, **ण्**, **न्** ही शेष रहते हैं। **ङमः** पञ्चमी और **अचि** सप्तमी इन दोनों पदों को देखकर **तस्मादित्युत्तरस्य** और **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** इन दोनों परिभाषाओं की उपस्थिति थी। **उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयान्** के नियम पर पञ्चमी निर्देश के कारण **ङम्** से अव्यवहित परे **अच्** को ये आगम होंगे। **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** के नियमानुसार **ङम्** में **ङ्** से परे हो तो **ङुट्** आगम, **ण्** से परे हो तो **णुट्** आगम और **न्** से परे हो तो **नुट्** आगम होंगे।

हे मपरे वा से विकल्पार्थक **वा** की अनुवृत्ति के निराकरण के लिए इस सूत्र में **नित्यम्** पढ़ा गया है।

प्रत्यङ्ङात्मा। जीवात्मा। **प्रत्यङ्+आत्मा** में **ङकार** से **अच्** परे है। अतः **ङुट्** आगम अनुबन्धलोप होकर **ङ्** बचा। **प्रत्यङ्+ङ् आत्मा** बना। वर्णसम्मेलन होकर **प्रत्यङ्ङात्मा** सिद्ध हुआ।

रुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

९०. समः सुटि ८।३।५॥

समो रुः सुटि।

अनुनासिकादेशविधायकं विधिसूत्रम्

९१. अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा ८।३।२॥

अत्र रुप्रकरणे रोः पूर्वस्यानुनासिको वा।

अनुस्वारागमविधायकं विधिसूत्रम्

९२. अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः ८।३।४॥

अनुनासिकं विहाय रोः पूर्वस्मात् परोऽनुस्वारागमः।

....

सुगण्णीशः। गणकों का स्वामी। **सुगण्+ईश** में **णकार** से **अच्** परे है। अतः **णुट्** आगम, अनुबन्धलोप होकर **ण्** बचा। **सुगण्+ण् ईशः** बना। वर्णसम्मेलन होकर **सुगण्णीशः** सिद्ध हुआ।

सन्नच्युतः। भगवान् अच्युत सत्स्वरूप हैं। **सन्+अच्युतः** में **नकार** से **अच्** परे है। अतः **नुट्** आगम, अनुबन्धलोप होकर **न्** बचा। **सन्+न् अच्युतः** बना। वर्णसम्मेलन होकर **सन्नच्युतः** सिद्ध हुआ।

अभ्यासः

१. **निम्नलिखित प्रयोगों की सिद्धि करें-**

पठन्+अगच्छत्। जानन्नपि। हसन् आगच्छति। तस्मिन्निति। भगवन्नद्य। सुगण्णास्ते।

२. **आद्यन्तौ टकितौ** के विषय में आप जितना जानते हैं, लिखें।

३. **ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्** की व्याख्या करें।

९०- समः सुटि। समः षष्ठ्यन्तं, सुटि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि** से **रुः** की अनुवृत्ति आती है।

सुट् के परे होने पर सम् के मकार के स्थान पर रु आदेश होता है।

यह आदेश है अतः **सम्** के **मकार** को हटाकर बैठता है, यदि आगे **सुट्** आगमका सकार परे हो तो।

९१- अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा। अत्र अव्ययपदम्, अनुनासिकः प्रथमान्तं, पूर्वस्य षष्ठ्यन्तं, तु अव्ययपदं, वा अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

इस रु के प्रकरण में रु से पूर्व वर्ण को विकल्प से अनुनासिक आदेश होता है।

इस सूत्र में **अत्र** यह शब्द **मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि** आदि सूत्रों से किये गये **रु** को बताता है। अतः **ससजुषो रुः** से किये गये **रु** को नहीं लिया जाता है। पूर्वोक्त सूत्रों से **रु** करने पर उस **रु** से पहले जो भी **अच्** वर्ण हो, उसे यह अनुनासिक **अच्** आदेश करता है।

९२- अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः। अनुनासिकात् पञ्चम्यन्तं, परः प्रथमान्तम्, अनुस्वारः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि** से **रु** को पञ्चमी विभक्ति में विपरिणाम

विसर्गविधायकं विधिसूत्रम्

९३. खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५॥

खरि अवसाने च पदान्तस्य रेफस्य विसर्गः।

वार्तिकम्- **संपुंकानां सो वक्तव्यः**। सँस्स्कर्ता, संस्स्कर्ता।

....

करके रोः की तथा अत्रानुनासिकः **पूर्वस्य तु वा** से **पूर्वस्य** को पञ्चमी विभक्ति में विपरिणाम करके **पूर्वात्** की अनुवृत्ति आती है।

जहाँ अनुनासिक होता है, उस पक्ष को छोड़कर अन्य पक्ष में रु से पूर्व जो वर्ण, उससे परे अनुस्वार आगम होता है।

अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा से किये गये **अनुनासिक** के पक्ष में यह सूत्र नहीं लगता किन्तु उससे अनुनासिक न होने के पक्ष में यह **अनुस्वार आगम** करता है।

९३- **खरवसानयोर्विसर्जनीयः**। खर् च अवसानं च (तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः) खरवसाने, तयोः खरवसानयोः। खरवसानयोः सप्तम्यन्तं, विसर्जनीयः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **रो रि** से रोः की अनुवृत्ति आती है।

खर् परे रहते अथवा अवसान में स्थित रेफ हो तो उस रेफ के स्थान में विसर्ग आदेश होता है।

संज्ञाप्रकरण में बताया जा चुका है कि **विसर्जनीय**, **जिह्वामूलीय** और **उपध्मानीय** ये तीन प्रकार के विसर्ग होते हैं। उनमें से **विसर्जनीय** अर्थात् **सामान्य विसर्ग** का विधान यह सूत्र करता है। **पदान्त रेफ** के स्थान पर विसर्ग का विधान करता है। यदि उस रेफ से पर में **खर्** प्रत्याहार के वर्ण हों या वह स्वयं **अवसान** में विद्यमान रेफ हो तो। **र्** को ही रेफ कहा जाता है। यह कभी विसर्ग बन जाता है, कभी पर में विद्यमान अच् वर्ण से मिल जाने पर र् ही रह जाता है और कभी पर में विद्यमान हल्वर्ण के ऊपर जा कर बैठता है।

रु में उकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होने के बाद **तस्य लोपः** से लोप होकर केवल **र्** बचता है।

संपुंकानां सो वक्तव्यः। यह वार्तिक है। **सम्, पुम् और कान् से सम्बन्धित विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश होता है।**

सँस्स्कर्ता, संस्स्कर्ता। संस्कार करने वाला। **सम्** यह उपसर्ग है और **कृ** धातु से **तृच्** प्रत्यय होकर **कर्ता** बना है। **सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे** से **सुट्** का आगम होकर **सम्+स्कर्ता** बना है। ऐसी स्थिति में **समः सुटि** से **स्कर्ता** के **सकार** को **सुट्** परे मान कर के **सम्** के **मकार** के स्थान पर ही **रु** आदेश हो गया। **रु** के **उकार** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से **इत्संज्ञा** हुई और **तस्य लोपः** से लोप हो गया। **सर्+स्कर्ता** बना। **अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा** से **रु** के **रेफ** से पहले विद्यमान सकारोत्तवरवर्ती **अकार** के स्थान पर अनुनासिक **अँ** आदेश हो गया। **सँर्+स्कर्ता** बन गया। यह अनुनासिक आदेश वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः** से रेफ के पहले **अनुस्वार** आगम हुआ तो **संर्+स्कर्ता** बना। इस तरह **सँर्+स्कर्ता** और **संर्+स्कर्ता** दो रूप बने। **स्कर्ता** का **सकार** **खर्** में आता है और **सम्** एक पद था अतः उसके स्थान पर आया हुआ **रेफ** भी **पद** के अन्तर्गत ही हुआ। साथ ही वह **अन्त** में भी है, अतः **पदान्त रेफ** हुआ। उसके स्थान पर

रुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

९४. पुमः खय्यम्परे ८।३।६॥

अम्परे खयि पुमो रुः। पुँस्कोकिलः, पुंस्कोकिलः।

रुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

९५. नश्छव्यप्रशान् ८।३।७॥

अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रुः, न तु प्रशान्-शब्दस्य।

....

खरवसानयोर्विसर्जनीयः से विसर्ग आदेश हुआ- **सँःस्कर्ता, संःस्कर्ता** बना। अब विसर्ग के स्थान पर **विसर्जनीयस्य सः** से नित्य से सकार आदेश और **वा शरि** से विकल्प से विसर्ग आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर **संपुंकानां सो वक्तव्यः** इस वार्तिक से दोनों जगह **विसर्ग** के स्थान पर **सकार** आदेश हुआ- **सँस्स्कर्ता** और **संस्स्कर्ता** ये दो रूप सिद्ध हुए। **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** से **सँस्स्कर्ता** के **एक सकार, द्विसकार, त्रिसकार, एक ककार, द्विककार, अनुनासिक** और **अननुनासिक** आदि करके १०८ रूपों की सिद्धि दिखाई गई है।

९४- **पुमः खय्यम्परे।** अम् परो यस्मात् सः अम्परः, तस्मिन् अम्परे। (बहुव्रीहिः)। पुमः षष्ठ्यन्तं, खयि सप्तम्यन्तम्, अम्परे सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि** से **रुः** की अनुवृत्ति आती है।

अम् परक खय् के परे होने पर पुम्-शब्द के मकार को रु आदेश होता है।

अम् प्रत्याहार है और **खय्** भी प्रत्याहार ही है। **अम्** प्रत्याहार में सभी **अच्** और **ह्, य्, व्, र्, ल्, ञ्, म्, ङ्, ण्, न्** आते हैं। खय् में वर्ग के **द्वितीय** और **प्रथम** अक्षर आते हैं। **खय्** से **अम्** परे हों अर्थात् **अम्** परे हो ऐसे **खय्** के परे होने पर **पुम्** के **मकार** के स्थान पर **रु** आदेश का विधान इस सूत्र से होता है।

पुँस्कोकिलः, पुंस्कोकिलः। नर कोयल। **पुम्+कोकिलः** ऐसी स्थिति में **पुमः खय्यम्परे** से **कोकिलः** के ककारोत्तरवर्ती **ओकार** को **अम्** और **ककार** को **खय्** मान कर **पुम्** के **मकार** के स्थान पर **रु** आदेश हो गया। **रु** के **उकार** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से **इत्संज्ञा** हुई और **तस्य लोपः** से **लोप** हो गया। **पुर्+कोकिलः** बना। **अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा** से **रु** के रेफ से पहले विद्यमान मकारोत्तवरवर्ती **उकार** के स्थान पर अनुनासिक **उँ** आदेश हो गया। **पुँर्+कोकिलः** बन गया। यह अनुनासिक आदेश वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः** से **रेफ** के पहले **अनुस्वार** आगम हुआ तो **पुंर्+कोकिलः** बना। इस तरह **पुँर्+कोकिलः** और **पुंर्+कोकिलः** दो रूप बने। **कोकिलः** का **ककार** **खर्** में आता है और **पुम्** एक पद है तथा उससे सम्बन्धित रेफ भी पद के अन्तर्गत ही आया, साथ ही वह **अन्त** में भी है, अतः **पदान्त रेफ** हुआ। उसके स्थान पर **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से **विसर्ग** आदेश हुआ- **पुँःकोकिलः, पुंःकोकिलः** बना। **संपुंकानां सो वक्तव्यः** इस वार्तिक से दोनों जगह **विसर्ग** के स्थान पर **सकार** आदेश हुआ- **पुँस्कोकिलः** और **पुंस्कोकिलः** ये दो रूप सिद्ध हुए।

९५- **नश्छव्यप्रशान्।** नः षष्ठ्यन्तं, छवि सप्तम्यन्तम्, अप्रशान् षष्ठ्यर्थकं प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि** से **रुः** की और **पुमः खय्यम्परे** से **अम्परे** की अनुवृत्ति आती है। **पदस्य** का अधिकार है।

सकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

९६. विसर्जनीयस्य सः ८।३।३४॥

खरि। चक्रिँस्त्रायस्व, चक्रिंस्त्रायस्व।

अप्रशान् किम्? प्रशान् तनोति। पदस्येति किम्? हन्ति।

....

अम् परक छव् के परे होने पर नकारान्त पद को रु आदेश होता है किन्तु प्रशान्-शब्द के नकार को नहीं।

छव् एक प्रत्याहार है जिसमें **छ्, ठ्, थ्, च्, ट्, त्** ये वर्ण आते हैं। पूरे **नकारान्त** शब्द को **रु** प्राप्त होने की स्थिति में **अलोऽन्त्यस्य** की उपस्थिति से **अन्त्य नकार** के स्थान पर ही **रु** हो जाता है।

९६- विसर्जनीयस्य सः। विसर्जनीयस्य षष्ठ्यन्तं, सः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से एकदेश **खरि** की अनुवृत्ति आती है।

खर् के परे होने पर विसर्जनीय विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश होता है।

चक्रिँस्त्रायस्व, चक्रिंस्त्रायस्व। हे चक्रिन् विष्णो! रक्षा करें। **चक्रिन्+त्रायस्व** ऐसी स्थिति में **नश्छव्यप्रशान्** से **त्रायस्व** के **त्र्** में तकारोत्तरवर्ती **रकार** को **अम् परक** और **तकार** को **छव्** मान कर **चक्रिन्** के **नकार** के स्थान पर **रु** आदेश हो गया। **रु** के **उकार** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से **इत्संज्ञा** हुई और **तस्य लोपः** से लोप होकर **चक्रिर्+त्रायस्व** बना। **अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा** से **रु** के रेफ से पहले विद्यमान रकारोत्तवरवर्ती **इकार** के स्थान पर अनुनासिक **इँ** आदेश हो गया। **चक्रिँर्+त्रायस्व** बन गया। यह अनुनासिक आदेश वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः** से **रेफ** के पहले अनुस्वार आगम हुआ तो **चक्रिंर्+त्रायस्व** बना। इस तरह **चक्रिँर्+त्रायस्व** और **चक्रिंर्+त्रायस्व** दो रूप बने। **त्रायस्व** का **तकार खर्** में आता है और **चक्रिन्** एक पद है तथा उससे सम्बन्धित **रेफ** भी पद के अन्तर्गत ही आया, साथ ही वह **अन्त** में भी है। अतः **पदान्त** रेफ हुआ। उसके स्थान पर **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से **विसर्ग** आदेश हुआ- **चक्रिँःत्रायस्व, चक्रिंःत्रायस्व** बना। **विसर्जनीयस्य सः** से दोनों जगह विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश हुआ- **चक्रिँस्त्रायस्व** और **चक्रिंस्त्रायस्व** ये दो रूप सिद्ध हुए।

अप्रशान् किम्? प्रशान् तनोति। अब प्रश्न करते हैं कि **नश्छव्यप्रशान्** सूत्र में **अप्रशान्** क्यों कहा? उत्तर देते हैं कि **प्रशान् तनोति** में दोष न आवे, इसलिए। क्योंकि **अप्रशान्** कहकर **प्रशान्** शब्द को निषेध नहीं करेंगे तो **प्रशान्+तनोति** में भी **नकार** को रुत्व होकर **प्रशाँस्तनोति** ऐसा अनिष्ट रूप बनेगा। इस अनिष्ट रूप के निवारणार्थ सूत्र में **प्रशान् शब्द** को रुत्व निषेध किया गया।

पदस्येति किम्? हन्ति। अब प्रश्न करते हैं कि **नश्छव्यप्रशान्** सूत्र में **पदस्य** की अनुवृत्ति क्यों की? उत्तर देते हैं कि **हन्ति** में दोष न आवे, इसलिए। क्योंकि **पदस्य** कहने से पदान्त **नकार** को ही **रुत्व** करता है, **अपदान्त** को नहीं। यदि **पदस्य** की अनुवृत्ति नहीं करेंगे तो यह सूत्र **पदान्त** या **अपदान्त** दोनों **नकारों** को **रुत्व** करने लगेगा, जिससे **हन्+ति** यहाँ पर **अपदान्त नकार** को भी **रुत्व** होकर **हँस्ति** ऐसा अनिष्ट रूप बनेगा। इस अनिष्ट रूप के निवारणार्थ सूत्र में **पदस्य** की अनुवृत्ति की गई।

वैकल्पिकरुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

९७. नॄन् पे ८।३।१०॥

नॄनित्यस्य रुर्वा पे।

जिह्वामूलीयोपध्मानीयविधायकं विधिसूत्रम्

९८. कुप्वोः ≍क ≍पौ च ८।३।३७॥

कवर्गे पवर्गे च विसर्गस्य ≍क ≍पौ स्तः, चाद्विसर्गः।

नॄँ ≍ पाहि, नॄँः पाहि, नॄं ≍ पाहि, नॄंः पाहि, नॄन् पाहि।

....

९७- **नॄन् पे**। नॄन् लुप्तषष्ठीकं द्वितीयान्तानुकरणं, पे सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि** से **रुः** की अनुवृत्ति आती है।

पकार के परे होने पर नॄन् के नकार के स्थान पर रु आदेश विकल्प से होता है।

९८- **कुप्वोः ≍क ≍पौ च**। कुश्च पुश्च कुपू, तयोः कुप्वोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। कश्च पश्च कपौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः।

कवर्ग और पवर्ग के परे होने पर विसर्जनीय-विसर्ग के स्थान पर जिह्वामूलीय और उपध्मानीय विसर्ग आदेश होते हैं तथा पक्ष में विसर्ग भी होता है।

इस सूत्र में **क पौ** इन दो वर्णों से पहले **जिह्वामूलीय** और **उपध्मानीय** विसर्ग के च्रिह्न के रूप में नीचे और ऊपर दो घुमावदार तिरछी लकीर ≍ लगाने का प्रचलन संस्कृतभाषा में है।

कवर्ग के परे होने पर **जिह्वामूलीय** और **पवर्ग** के परे होने परे **उपध्मानीय** विसर्ग होते हैं। ये विसर्ग **क, ख** और **प, फ** के परे ही हो पाते हैं, क्योंकि विसर्जनीय अर्थात् सामान्य विसर्ग के स्थान पर ही ये आदेश होते हैं तो **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** यह सूत्र **खर्** के परे होने पर या **अवसान** में ही **विसर्ग** करता है। **खर्** में वर्ग के **प्रथम** और **द्वितीय** अक्षर ही आते हैं। अतः **क, ख** और **प, फ** के परे होने पर ही ये दो **विसर्ग** हो सकते हैं। सूत्र में **च** पढ़ा गया है, इससे एक पक्ष में **विसर्जनीय भी होता है,** यह अर्थ निकलता है। **अनुनासिक, अनुस्वार** तथा **जिह्वामूलीय** और **उपध्मानीय** के विकल्प से होने के कारण पाँच रूप बन जाते हैं।

नॄँ ≍ पाहि, नॄँः पाहि, नॄं ≍ पाहि, नॄंः पाहि, नॄन् पाहि। मनुष्यों की रक्षा करें। **नॄन्+पाहि** में **नकार** के स्थान पर **नॄन् पे** से **रु** आदेश, अनुबन्धलोप, **नॄर् पाहि** बना। **अनुनासिक** और **अनुस्वार** दोनों हुए तो **नॄँर् पाहि, नॄंर् पाहि** बने। **पकार** को **खर्** परे मानकर रेफ के स्थान पर **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से **विसर्ग** हो गया **नॄँः पाहि, नॄंः पाहि** बना। **कुप्वोः ≍क ≍पौ च** से **प** से पहले होने के कारण **उपध्मानीय** विसर्ग हुआ। **नॄँ ≍ पाहि, नॄं ≍ पाहि** बना। **अनुनासिक** और **अनुस्वार** दोनों पक्ष में उपध्मानीय विसर्ग के दो रूप और विसर्जनीय के दो रूप तथा **नॄन् पे** से **रुत्व** न होने के पक्ष में **नॄन् पाहि** ही रहेगा।

आम्रेडितसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

९९. तस्य परमाम्रेडितम् ८।१।२॥

द्विरुक्तस्य परमाम्रेडितं स्यात्

रुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

१००. कानाम्रेडिते ८।३।१२॥

कान्नकारस्य रुः स्यादाम्रेडिते। काँस्कान्, कांस्कान्।

....

९९- **तस्य परमाम्रेडितम्।** तस्य षष्ठ्यन्तं, परम् प्रथमान्तम्, आम्रेडितं प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **सर्वस्य द्वे** से **द्वे** का अधिकार आ रहा है। उसीको यहाँ पर **तस्य** से दर्शाया जा रहा है।

शब्द के दो बार उच्चारण होने पर दूसरे रूप की आम्रेडितसंज्ञा होती है।

वैसे उच्चारण से हो या द्वित्व करके हो, एक ही शब्द का यदि दो बार उच्चारण अथवा लेखन किया जाय तो दूसरा जो शब्द है, उसकी यह **आम्रेडितसंज्ञा** करता है। संज्ञा का फल आगे स्पष्ट हो जायेगा।

१००- **कानाम्रेडिते।** कान् द्वितीयान्तानुकरणात्मकं लुप्तषष्ठीकं पदम्, आम्रेडिते सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि** से **रुः** की अनुवृत्ति आती है।

आम्रेडित के परे होने पर कान्-शब्द के नकार को रु आदेश होता है।

अलोऽन्त्यस्य से **अन्त्यस्य** आकर **कान्** के **अन्त्य नकार** को **रु** आदेश हो जाता है। **रु** होने के बाद अनुबन्धलोप करके अनुनासिक तथा अनुस्वार ये दोनों कार्य हो जाते हैं।

काँस्कान्, कांस्कान्। किस् किस को। **कान्+कान्** यह किम् शब्द के पुँल्लिङ्ग में द्वितीया बहुवचन का रूप है। **नित्यवीप्सयोः** से **कान्** को द्वित्व हुआ है। द्वितीय **कान्** की **तस्य परमाम्रेडितम्** से **आम्रेडितसंज्ञा** हो गई और आम्रेडित के परे प्रथम **कान्** के **नकार** के स्थान पर **कानाम्रेडिते** से **रु** आदेश हुआ। अनुबन्धलोप होकर **कार्+कान्** बना। **अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा** और **अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः** से **अनुनासिक** और **अनुस्वार** हुए। **काँर्+कान्, कांर्+कान्** बना। रेफ के स्थान पर **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से विसर्ग हुआ। **काँःकान्, कांःकान्** बना। **संपुंकानां सो वक्तव्यः** इस वार्तिक से **विसर्ग** के स्थान पर **सकार** आदेश हुआ। इस तरह **काँस्कान्, कांस्कान्** ये रूप सिद्ध हुए।

अब इसी तरह **तान्+तान्** से भी **ताँस्तान्, तांस्तान्** रूप बनते हैं किन्तु यहाँ पर आम्रेडितसंज्ञा होने पर भी कोई फल नहीं है क्योंकि आम्रेडितसंज्ञा को निमित्त मानकर केवल **कान्**-शब्द को ही रुत्व हो रहा है, अन्य शब्दों में नहीं। अतः यहाँ पर **नश्छव्यप्रशान्** से रुत्व होकर **अनुनासिक** और **अनुस्वार** करके **ताँस्तान्, तांस्तान्** बन जाते हैं।

अभ्यासः

१. **रुत्वप्रकरण** के अन्तर्गत आने वाले सूत्रों पर एक विवरण लिखें।

२. क्या **रुत्वप्रकरण** के सभी सूत्र एक दूसरे में बाध्य-बाधक हैं? स्पष्ट करें।

३. **काँस्कान्** में **ताँस्तान्** की तरह **नश्छव्यप्रशान्** से काम क्यों नहीं चलता?

४. निम्नलिखित शब्दों की सिद्धि करें-
पुम्+चली। सँस्कार। पुम्+चरित्रम्। भवान्+छिनत्ति। कस्मिँचित्। महान्+तारकः। रामः पालयति। कः खादति?

तुगागमविधायकं विधिसूत्रम्

१०१. छे च ६।१।७३॥

ह्रस्वस्य छे तुक्। शिवच्छाया।

वैकल्पिकतुगागमविधायकं विधिसूत्रम्

१०२. पदान्ताद्वा ६।१।७६॥

दीर्घात्पदान्ताच्छे तुग् वा। लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया।

इति हल्सन्धिः॥३॥

....

१०१- छे च। छे सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्** से **ह्रस्वस्य** और **तुक्** दो पदों की अनुवृत्ति हुई है।

छकार के परे होने परे ह्रस्व को तुक् का आगम होता है।

यह सूत्र **तुक्** आगम करता है। शब्दों एवं अक्षरों से प्रत्यय, आगम और आदेश होते हैं जो आगे बताये जायेंगे। पहले भी बताया जा चुका है कि आदेश किसी वर्ण के स्थान पर उसे हटाकर होते हैं और आगम किसी के स्थान पर नहीं होता और किसी वर्ण को भी नहीं हटाता अपितु जिस वर्ण को आगम का विधान किया जाता है उसके बगल में आकर के बैठ जाता है। **शत्रुवदादेशा भवन्ति, मित्रवदागमा भवन्ति** अर्थात् आदेश शत्रु जैसे होते हैं जो स्थानी हटाकर बैठते हैं और आगम मित्र के समान होते हैं जो उसे किसी प्रकार की हानि किये विना उसके हितकारी होते हुए उसके बगल में बैठ जाते हैं। इस सूत्र से भी आगम किया गया है। वह **तुक्** आगम ह्रस्व को हुआ है। अतः ह्रस्व के बगल में बैठेगा। यहाँ पर यह स्पष्ट नहीं हुआ कि आगम जिस को हुआ वह उसके पहले बैठे या उसके बाद में बैठे? इसी का निर्णय करता है सूत्र **आद्यन्तौ टकितौ**। तुक् में **ककार** की इत्संज्ञा होने के कारण **कित्** है, अतः **ह्रस्व** के अन्त में बैठेगा।

शिवच्छाया (शिव की छाया)। **शिव+छाया** ऐसी स्थिति में **छे च** सूत्र ने **तुक्** का आगम किया। **छकार** परे है **छाया** का **छकार** और ह्रस्ववर्ण है **शिव** में वकारोत्तरवर्ती **अकार**। ऐसी स्थिति में **अकार** को तुक् का आगम हुआ। अनुबन्धलोप होकर **त्** बचा। **तुक्** में **ककार** की इत्संज्ञा हुई थी सो **कित्** होने की बजह से **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से ह्रस्व के अन्त में बैठा। **शिव+त्+छाया** बना है। चवर्ग **छकार** के योग में तवर्ग **तकार** को **स्तोः श्चुना श्चुः** से **चुत्व** होकर **चकार** बन गया- **शिव+च्+छाया** बना, वर्णसम्मेलन होकर- **शिवच्छाया** यह रूप सिद्ध हुआ।

१०२- पदान्ताद्वा। पदान्तात् पञ्चम्यन्तं, वा अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **दीर्घात्** से **दीर्घात्** और **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्** से **ह्रस्वस्य** की अनुवृत्ति आती है।

पदान्त दीर्घ से छकार परे होने पर दीर्घ को तुक् आगम विकल्प से होता है।

इस तरह उपर्युक्त दो सूत्रों से **ह्रस्व** से **छकार** के परे होने पर **नित्य से** और **दीर्घ पदान्त** से **छकार** के परे होने पर **विकल्प** से **तुक्** आगम हो जाता है।

लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया। लक्ष्मी की छाया। **लक्ष्मी+छाया** ऐसी स्थिति में **पदान्ताद्वा** सूत्र ने वैकल्पिक **तुक्** का आगम किया। **छकार** परे है **छाया** का **छकार** और पदान्त दीर्घ है **लक्ष्मी** में मकारोत्तरवर्ती **ईकार**। ऐसी स्थिति में **ईकार** को **तुक्** का आगम

हुआ। अनुबन्धलोप हुआ, **त्** बचा। **तुक्** में **ककार** की इत्संज्ञा हुई थी सो **कित्** होने की वजह से **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से **दीर्घ** के **अन्त** में जा बैठा। **लक्ष्मी+त्+छाया** बना। चवर्ग **छकार** के योग में तवर्ग **तकार** को **स्तोः श्चुना श्चुः** से **चुत्व** होकर **चकार** बन गया- **लक्ष्मी+च्+छाया** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **लक्ष्मीच्छाया** यह रूप सिद्ध हुआ। **तुक्** का आगम वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **लक्ष्मीछाया** ही रह गया।

अभ्यासः

(क) **आद्यन्तौ टकितौ** यह सूत्र न होता तो क्या हानि होती?

(ख) **छे च** सूत्र से किस वर्ण को तुगागम होता है।

(ग) **छे च** और **पदान्ताद्वा** का क्षेत्र स्पष्ट करें।

(ग) शिव+शर्मा में तुक् का आगम क्यों नहीं होता?

(घ) निम्नलिखित प्रयोगों की सिद्धि करें-

ग+छति। इ+छा। य+छति। ममच्छात्रः। मधुच्छादनम्। सन्तिच्छिद्राणि। तीक्ष्णाच्छुरिका। मधुच्छन्दसः।

परीक्षा

अब आपका **विसर्गसन्धि** में प्रवेश होने वाला है। **हल्सन्धि** पूर्ण हो गई है। **हल्सन्धि** के मुख्य सूत्र एवं लोक में अधिक प्रचलित हल्सन्धि वाले प्रयोगों का प्रदर्शन इस प्रकरण में किया गया है। अब आपके सामने परीक्षा की घड़ी आ गई है। परीक्षा में सफल होने वाला व्यक्ति ही जीवन में सफल माना जाता है। हमारे जीवन में हर पल परीक्षा ही परीक्षा है। परीक्षाओं से घबराने वाला व्यक्ति कायर माना जाता है। वह कोई प्रगति नहीं कर सकता है। अतः हमेशा परीक्षा के लिए तैयार रहना चाहिये। परीक्षा-रूपी अग्नि में तपकर मानव भी कुन्दन जैसा खरा बन जाता है। आपने हल्सन्धि की कितनी तैयारी की है? इसका प्रमाण परीक्षा में मिलेगा।

आप प्रतिदिन एक घण्टा स्वाध्याय में अपने को अवश्य लगाये रखना। स्वाध्याय का तात्पर्य होता है कि पढ़े हुए विषयों को दुहराना, चिन्तन करना, उन विषयों को पुष्ट करने के लिए नया अध्ययन एवं शोध करना। यदि स्वाध्याय नहीं किया तो आगे पढ़ते रहने पर भी पीछे भूलते जायेंगे। इस प्रकार प्रत्येक जिज्ञासु व्यक्ति को प्रतिदिन एक घण्टा अवश्य स्वाध्याय करना चाहिये। अब आप निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखित रूप में दें। इसके पहले **लघुसिद्धान्तकौमुदी** को कपड़े से बाँधकर दो दिन के लिए रख दें और पूजा करें। इस बीच में इन अभ्यासों को दुहरायें। निम्नलिखित प्रश्नों के ५-५ अंक हैं। आपको उत्तीर्ण होने के लिए कम से कम ४० अंक प्राप्त करने होंगे।

प्रश्न

१- **श्चुत्व** और **ष्टुत्व** के किन्हीं पाँच प्रयोगों को संस्कृत में सिद्ध करें।

२- **जश्त्व, अनुनासिकत्व** और **चर्त्व** के किन्हीं पाँच प्रयोगों को संस्कृत में सिद्ध करें।

३- **अनुस्वार** एवं **परसवर्णसन्धि** के किन्हीं पाँच प्रयोगों को संस्कृत में सिद्ध करें।

४- **'छे च'** और **आद्यन्तौ टकितौ** इन दो सूत्रों की कम से कम एक पृष्ठ में व्याख्या करें।

५- **अच्सन्धि** और **हल्सन्धि** के अन्तर को बतायें।

६- इस प्रकरण में कौन-कौन सूत्र किन-किन सूत्रों के बाधक हैं? समझाइये।

७- **परसवर्णविधायक** सूत्र की व्याख्या करें।
८- **आगम** और **आदेश** में क्या अन्तर है? अच्छी तरह समझाइये।
९- **हल्सन्धि** के सारे सूत्र एवं उनकी वृत्ति को विना पुस्तक देखे पूरा ही उतारें।
१०- इस प्रकरण में कौन-कौन से सूत्र किस अध्याय एवं पाद के हैं?

छात्रों को मेरा निर्देश

छात्रों को मेरा निर्देश है कि यदि आपने अभी तक अष्टाध्यायी का पारायण शुरू नहीं किया है तो अब आप **पाणिनीय-अष्टाध्यायी** के सूत्रों का पारायण अवश्य शुरू कर दें। यदि आप रट सकते हैं तो अच्छी बात है, नहीं तो प्रतिदिन दो अध्याय के नियम से सूत्रपाठ का पारायण करें। पहले महीने में प्रथम व द्वितीय अध्याय, दूसरे महीने में तीसरे और चौथे अध्याय, तीसरे महीने में पाँचवें और छठवें अध्याय तथा चौथे महीने में सातवें और आठवें अध्याय का पारायण करने से लगभग चार महीने में सम्पूर्ण अष्टाध्यायी कण्ठस्थ हो जाती है क्योंकि बच्चे एक महीने तक प्रतिदिन जिस विषय का पारायण करेंगे, वह विषय उनको याद हो जाता है। यदि एक आवृत्ति में उनको याद नहीं भी हुआ तो दूसरी आवृत्ति में अर्थात् अगले चार महीनों में अवश्य याद हो जायेगा। यदि आठ महीने पाणिनि जी के समस्त सूत्र याद हो जायें तो भी बहुत बड़ी बात है। यदि कथंचित् दो अध्याय का नियम नहीं बन पाता है तो एक अध्याय का नियम अवश्य रखें।

यह बात भी ध्यान रहे कि **लघुसिद्धान्तकौमुदी** व्याकरणशास्त्र में प्रवेशिका मात्र है। आगे जाकर आपको **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** का अध्ययन करना है। लघुसिद्धान्तकौमुदी में पाणिनीय-अष्टाध्यायी के एक तिहाई सूत्र और वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में पूरे के पूरे लगभग ४००० सूत्र हैं। उन चार-हजार सूत्रों का ज्ञान एवं उनके उदाहरण जाने विना व्याकरण का ज्ञान पूर्ण नहीं होगा। आप यह न समझना कि जब **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** पढ़ेंगे तब सभी सूत्र याद कर लेंगे, क्योंकि तब याद नहीं हो पायेगा। **सूत्रपाठ** याद करना अलग बात है और **विषयवस्तु को समझना** अलग बात है। उस समय समझने का विषय रहेगा तो सूत्रपाठ भी उस समय के लिए रखना ठीक नहीं है। जो आज का विषय है, उसे आज ही याद कर लें तो अच्छा रहेगा। मेरा अनुभव है कि उस समय केवल समझने की ही प्रधानता रहती है और सूत्र याद करना अप्रधान (गौण) हो जाता है। फलतः सूत्रों के विषय में जीवन भर सन्देह की स्थिति बनी रहती है।

आपको पुनः स्मरण कराता हूँ कि पाणिनि जी के द्वारा रचित अष्टाध्यायी के सारे सूत्रों के विना व्याकरण अधूरा ही है।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का हल्सन्धिप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ विसर्गसन्धिः

सकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०३. विसर्जनीयस्य सः ८।३।३४।।

खरि। विष्णुस्त्राता।

वैकल्पिकविसर्गादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०४. वा शरि ८।३।३६।।

शरि विसर्गस्य विसर्गो वा। हरिः शेते, हरिश्शेते।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

आपने अभी तक **संज्ञाप्रकरण**, **अच्सन्धि**, **हल्सन्धिप्रकरणों** को जान लिया है। अब आइये **विसर्ग** से सम्बन्धित **सन्धि** का ज्ञान करते हैं। सामान्यतया **विसर्ग** वह है जो अक्षरों के बाद दो बिन्दु के रूप में (:) लगता है। **विसर्ग** की उत्पत्ति **रेफ** से होती है। विसर्ग बनने वाला रेफ प्रायः स् से बनता है। इस प्रकार से **स्** जो है वह **र्** बनता है और र् विसर्ग (:) बनता है। अब हमें यह अध्ययन करना है कि कैसी स्थिति में **स्** से **र्** और **र्** से **विसर्ग** बनता है?

१०३- **विसर्जनीयस्य सः**। विसर्जनीयस्य षष्ठ्यन्तं, सः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से एकदेश **खरि** की अनुवृत्ति आती है।

खर् के परे होने पर विसर्जनीय विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश होता है।

यह सूत्र हल्सन्धि में भी पढ़ा गया और यहाँ भी पढ़ा गया है। यद्यपि यह सूत्र विसर्ग को सकार करता है, अतः यहीं पढ़ना ठीक था, फिर भी प्रसंगवश वहाँ भी पढ़ा गया।

खर् प्रत्याहार में वर्ग के **प्रथम** और **द्वितीय** अक्षर तथा **श्**, **ष्**, **स्**, ये वर्ण आते हैं। इनके परे होने पर **विसर्ग** के स्थान पर **सकार** आदेश हो जाता है। इनमें भी **क** और **ख** के परे होने पर वैकल्पिक **जिह्वामूलीय** तथा **प** और **फ** के परे होने पर वैकल्पिक **उपध्मानीय** होता है। **च** और **छ** के परे होने पर इसके द्वारा किये गये **सकार** को **स्तोः श्चुना श्चुः** से **शकार** आदेश हो जाता है तथा **ट** और **ठ** के परे होने पर **ष्टुना ष्टुः** से **षकार** होता है। **त** और **थ** के परे होने पर **सकार** ही रहता है।

विष्णुस्त्राता। विष्णु रक्षक हैं। **विष्णुः+त्राता** में **त्राता** के **तकार** को **खर्** परे मानकर **विसर्ग** के स्थान पर **सकार** आदेश हो गया- **विष्णुस्त्राता** बना।

रुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

१०५. स-सजुषो रुः ८।२।६६॥

पदान्तस्य सस्य सजुषश्च रुः स्यात्।

उत्वविधायकं विधिसूत्रम्

१०६. अतो रोरप्लुतादप्लुते ६।१।११३॥

अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्यादप्लुतेऽति। शिवोऽर्च्यः।

....

१०४- **वा शरि**। वा अव्ययपदं, शरि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **शर्परे विसर्जनीयः** से **विसर्जनीयः** की तथा **विसर्जनीयस्य सः** से **विसर्जनीयस्य** की अनुवृत्ति आती है।

शर् परे होने पर विसर्ग के स्थान पर विकल्प से विसर्ग आदेश होता है।

शर् प्रत्याहार **खर्** प्रत्याहार के अन्तर्गत आता है। **शर्** के परे होने पर **विसर्जनीयस्य सः** से नित्य से **सकार** आदेश प्राप्त था। एक पक्ष में **विसर्ग** और एक पक्ष **सकार** करने के लिए **अपवाद** के रूप में इस वैकल्पिक सूत्र का आरम्भ है। तात्पर्य यह हुआ कि **खर्** में से **श्, ष्, स्** के परे होने पर एक पक्ष में **विसर्ग** और एक पक्ष में **सकार** तथा शेष **खर्** के परे होने पर नित्य से **विसर्ग** के स्थान पर **सकार** ही रहता है।

हरिः शेते, हरिश्शेते। हरि शयन करते हैं। **हरिः+शेते** में **विसर्ग** के स्थान पर **विसर्जनीयस्य सः** से नित्य से **सकार** आदेश प्राप्त था। **शेते** का **शकार** शर् है, उसके परे होने पर उक्त सूत्र को बाधकर के **वा शरि** से एक पक्ष में **विसर्ग** ही आदेश हुआ, **हरिः शेते** ही रहा। यह वैकल्पिक है, अतः न होने के पक्ष में **विसर्जनीयस्य सः** से **सकार** आदेश हुआ- **हरिस्+शेते** बना। **शकार** के योग में **सकार** के स्थान पर **स्तोः श्चुना श्चुः** से **शकार** आदेश होकर वर्णसम्मेलन होने पर **हरिश्शेते** सिद्ध हुआ। इस तरह दो रूप बने।

१०५- **ससजुषो रुः**। सश्च सजूश्च ससजुषौ, तयोः ससजुषोः, इतरेतरद्वन्द्वः। ससजुषोः षष्ठ्यन्तं, रुः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **पदस्य** का अधिकार है।

पदान्त सकार तथा सजुष् शब्द के षकार के स्थान पर रु आदेश होता है।

अलोऽन्त्यस्य के बल पर पद के अन्त्य में विद्यमान दन्त्य **सकार** के स्थान पर और **सजुष्** शब्द में जो **मूर्धन्य षकार** है उसके स्थान पर **रु** आदेश का विधान करता है। **सजुष्** शब्द में **दन्त्य सकार** न होने से **रुत्व** प्राप्त नहीं हो रहा था, इसलिये इस सूत्र में **सजुष्**शब्द का अलग से कथन करना पड़ा। इस सूत्र के द्वारा किये गये कार्य को **रुत्व** कहा जाता है। **रु** (र्+उ=रु) में **उकार** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होकर केवल **र्** ही बचता है।

विसर्ग से सम्बन्धित चार सूत्रों का बड़ा महत्त्व है। जैसे- **ससजुषो रुः** से **सकार** के स्थान पर **रुत्व** कर दिए जाने के बाद **विरामोऽवसानम्** से **अवसानसंज्ञा** होकर **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से **विसर्ग** हो जाता है। उसके बाद **विसर्जनीयस्य सः** से **विसर्ग** के स्थान पर **सकारादेश** होता है। **सकारादेश** होने के पहले **विसर्ग** होना जरूरी है और **विसर्ग** होने के पहले **सकार** के स्थान पर **रुत्व** होना जरूरी है।

१०६- **अतो रोरप्लुतादप्लुते**। न प्लुतः अप्लुतः, तस्मात् अप्लुतात्, तस्मिन् अप्लुते। अतः

उत्वविधायकं विधिसूत्रम्

१०७. हशि च ६।१।११४॥

तथा। शिवो वन्द्यः।

....

पञ्चम्यन्तं, रोः षष्ठ्यन्तम्, अप्लुतात् पञ्चम्यन्तम्, अप्लुते सप्तम्यन्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **एङः पदान्तादति** से **अति** की अनुवृत्ति आती है।

प्लुत-भिन्न ह्रस्व अकार से परे रु सम्बन्धी रेफ को उकार आदेश होता है प्लुत-भिन्न ह्रस्व अकार के परे रहते।

सूत्र का कार्य **रु** में से शेष बचे **रेफ** के स्थान पर **उ** आदेश करना है किन्तु उस रेफ से पूर्व भी **अप्लुत ह्रस्व अकार** हो और परे भी **अप्लुत ह्रस्व अकार** हो तो। दोनों तरफ **अप्लुत ह्रस्व अकार** और बीच् में **रु** का **रेफ** हो तो उस के स्थान पर **उकारादेश** हो जायेगा।

यहाँ पर सपादसप्ताध्यायी **अतो रोरप्लुतादप्लुते** की दृष्टि में त्रिपादी **ससजुषो रुः** यह **पूर्वत्रासिद्धम्** के नियम से असिद्ध नहीं होता क्योंकि यदि रुत्व असिद्ध हो तो उत्व का विधान ही व्यर्थ हो जायेगा। कारण यह है कि जब भी उत्व होगा तो **रु** के स्थान पर ही होगा। यदि रु ही असिद्ध हो जाय तो यह किसको उत्व करेगा?

शिवोऽर्च्यः। शिव पूज्य हैं। **शिवस्+अर्च्यः** इस स्थिति में अन्त्य दन्त्य **सकार** के स्थान पर **ससजुषो रुः** से **रु** आदेश होने पर **शिवरु अर्च्यः** बना। **रु** के **उकार** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से **इत्संज्ञा** और **तस्य लोपः** से **लोप** हुआ- **शिव र् अर्च्यः** बना। अब **अतो रोरप्लुतादप्लुते** इस सूत्र से उस **रेफ** के स्थान **उकार** आदेश हुआ क्योंकि **ह्रस्व अकार** है **शिव** में वकारोत्तरवर्ती **अकार** और उससे परे **रेफ** है **रु** से बचा **र्** तथा रेफ से भी **ह्रस्व अकार** परे है **अर्च्यः** वाला **अकार**। इस तरह इस सूत्र से **उत्व** होने पर- **शिव+उ+अर्च्यः** बना। **शिव+उ** में **आद्गुणः** से गुण होकर **शिवो+अर्च्यः** बना। **शिवो+अर्च्यः** में **एचोऽयवायावः** से **अव्** आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर **एङः पदान्तादति** से **पूर्वरूप** हुआ तो **ओकार** और **अकार** मिलकर पूर्वरूप **ओ** ही बन गये। **शिवो+र्च्यः** बना। **अकार** के स्थान पर संकेताक्षर ऽ (खण्डकार) यह चिह्न आकर के बैठ जाने पर **शिवोऽर्च्यः** रूप बन गया।

१०७- हशि च। हशि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अतो रोरप्लुतादप्लुते** से **अतो रोरप्लुतात्** की अनुवृत्ति आती है।

अप्लुत ह्रस्व अकार से परे रु वाले र् के स्थान पर उकारादेश होता है हश् प्रत्याहार परे हो तो।

इस सूत्र का काम भी **उत्व** करना ही है किन्तु **अतो रोरप्लुतादप्लुते** सूत्र **ह्रस्व अकार के परे** रहने पर लगता है और **हशि च** यह सूत्र **हश् प्रत्याहार के परे** रहने पर लगता है। इन दोनों सूत्रों में इतना ही अन्तर है, बाँकी सब में समानता है। अतः ये दोनों सूत्र समानान्तर सूत्र हैं।

शिवो वन्द्यः। शिव वन्दनीय हैं। **शिवस्+वन्द्यः** में **सकार** के स्थान पर **रुत्व** हो जाने पर **शिवर्+वन्द्यः** बना। **वन्द्यः** में जो **वकार** है, वह हल्वर्ण है। अतः ह्रस्व अकार परे

यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०८. भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि ८।३।१७॥

एतत्पूर्वस्य रोर्यादेशोऽशि। देवा इह, देवायिह।

भोस् भगोस् अघोस् इति सान्ता निपाता:। तेषां रोर्यत्वे कृते-

....

न होने के कारण **अतो रोरप्लुतादप्लुते** से उत्व नहीं हो सका तो **हशि च** की जरूरत पड़ी। इस सूत्र ने **वकार** रूपी **हश्** के परे रहने पर **रेफ** के स्थान पर **उकार** आदेश कर दिए जाने के कारण **शिव+उ+वन्द्यः** बना। **शिव+उ** में **आद्गुणः** से **गुण** होने पर रूप सिद्ध हुआ- **शिवो वन्द्यः**।

१०८- भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि। भोश्च भगोश्च अघोश्च अश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः, भोभगोअघोआ:। भोभगोअघोआ: पूर्वे यस्मात् स भोभगोअघोअपूर्व:, तस्य भोभगोअघोअपूर्वस्य। **रोः सुपि** से **रोः** की अनुवृत्ति आती है।

अश् के परे होने पर भो, भगो, अघो तथा अवर्ण पूर्व वाले रु के स्थान पर यकार आदेश होता है।

भोस्, भगोस् और **अघोस्** ये सकारान्त निपात हैं। चादिगण में पाठ होने के कारण इनकी **चादयोऽसत्त्वे** से **निपातसंज्ञा** और **स्वरादिनिपातमव्ययम्** से **अव्ययसंज्ञा** भी हो जाती है। इनमें **भोस्** का प्रयोग सामान्य सम्बोधन में, **भगोस्** का प्रयोग भगवान् के सम्बोधन में और **अघोस्** का प्रयोग पापी के सम्बोधन में देखा गया है। इनके अन्त्य में विद्यमान **सकार** के स्थान पर **ससजुषो रुः** से **रु** आदेश होने पर यह सूत्र लगता है। **अश्** परे होने **रु** के रेफ के स्थान पर ही यकार आदेश होता है।

देवा इह, देवायिह। हे देवों! यहाँ(आइये)। **देवाःस्+इह** में **ससजुषो रुः** से **सकार** के स्थान पर **रु** आदेश, अनुबन्धलोप करके **देवार्+इह** बना। **भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि** से अवर्णपूर्वक रेफ के स्थान पर **यकार** आदेश हुआ- **देवाय्+इह** बना। **इह** के **इकार** को **अश्** परे मानकर **लोपः शाकल्यस्य** से **यकार** का वैकल्पिक लोप हुआ- **देवा इह** बना। **लोपः शाकल्यस्य** यह सूत्र **त्रिपादी** है, अत: **पूर्वत्रासिद्धम्** से किया गया **आकार** का लोप **आद्गुणः** की दृष्टि में **असिद्ध** हुआ। फलत: **गुण** नहीं हुआ। इस तरह **देवा इह** एक रूप सिद्ध हुआ। **लोपः शाकल्यस्य** से यकार का लोप न होने के पक्ष में **य्** जाकर **इह** के इकार से मिला तो **देवायिह** बन गया। यह **अवर्णपूर्व** का उदाहरण है, शेष उदाहरण आगे बताये जा रहे हैं।

भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि इस सूत्र में **भोस्+भगोस्, भगोस्+अघोस्, अघोस्+अपूर्वस्य** इन जगहों पर सकार को रुत्व होकर इसी सूत्र से यकारादेश होने पर उसका **हलि सर्वेषाम्** से लोप होकर **भो+भगो, भगो+अघो, अघो+अपूर्वस्य** बना। उसमें प्रथम रूप को छोड़कर शेष दो प्रयोगों में **एचोऽयवायावः** से **अव्** आदेश प्राप्त होता है किन्तु **पूर्वत्रासिद्धम्** से त्रिपादी **हलि सर्वेषाम्** को असिद्ध कर दिये जाने के कारण **यकार** का लोप **एचोऽयवायावः** की दृष्टि में **असिद्ध** हुआ अर्थात् उसने बीच में **यकार** ही देखा। फलत: **अव्** आदेश नहीं हुआ। **भोभगोअघोअपूर्वस्य** ही रह गया।

यलोपविधायकं विधिसूत्रम्

१०९. हलि सर्वेषाम् ८।३।२२॥

भोभगोअघोअपूर्वस्य यस्य लोपः स्याद्धलि।

भो देवाः। भगो नमस्ते। अघो याहि।

रेफादेशविधायकं विधिसूत्रम्

११०. रोऽसुपि ८।२।६९॥

अह्नो रेफादेशो न तु सुपि। अहरहः। अहर्गणः।

....

१०९- हलि सर्वेषाम्। हलि सप्तम्यन्तं, सर्वेषाम् षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि** से **भोभगोअघोअपूर्वस्य** तथा **व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य** से **व्योः** में से केवल यकार का वचनविपरिणाम करके **यस्य** एवं **लोपः शाकल्यस्य** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है।

हल् परे होने पर भो, भगो, अघो तथा अवर्ण पूर्व वाले यकार का लोप हो जाता है।

यह सूत्र त्रिपादी है, अतः इसके द्वारा **यकार** का लोप होने पर **आद्गुणः** आदि सपादसप्ताध्यायी सूत्रों की दृष्टि में असिद्ध ही रहता है।

भो देवाः। हे देवताओं! **भोस्+देवाः** में **भोस्** के सकार को **ससजुषो रुः** से रुत्व, अनुबन्धलोप, **भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि** से **रेफ** के स्थान पर **यकार** आदेश करके **भोय्+देवाः** बना। **यकार** का **हलि सर्वेषाम्** से **लोप** होकर **भो देवाः** बन गया।

भगो नमस्ते। हे भगवन्! आपको नमस्कार है। **भगोस्+नमस्ते** में **भगोस्** के सकार को **ससजुषो रुः** से **रुत्व**, अनुबन्धलोप, **भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि** से **रेफ** के स्थान पर **यकार** आदेश करके **भगोय्+नमस्ते** बना। यकार का **हलि सर्वेषाम्** से लोप होकर **भगो नमस्ते** बन गया।

अघो याहि। हे पापी! चले जाओ। **अघोस्+याहि** में **अघोस्** के **सकार** को **ससजुषो रुः** से रुत्व, अनुबन्धलोप, **भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि** से **रेफ** के स्थान पर **यकार** आदेश करके **अघोय्+याहि** बना। **यकार** का **हलि सर्वेषाम्** से लोप हो गया, **अघो याहि** बन गया।

अभ्यासः

१. **रु** आदेश, **उत्व**, **यत्व** एवं **यलोप** करने वालों सूत्रों पर दो पृष्ठ की टिप्पणी लिखें

२. निम्नलिखित प्रयोगों की सिद्धि करें-
हरिस्तिष्ठति। कृष्णस्तत्र। अतोऽत्र। भो देवदत्त। पण्डिता भाग्यवन्तः। अश्वा धावन्ति। नरो हन्ति। बाला आगच्छन्ति। कृतोऽत्र। पुनर्हसति।

३. रुत्व और उत्व में कौन किस के प्रति क्यों असिद्ध है? स्पष्ट करें।

११०- रोऽसुपि। रः प्रथमान्तम्, असुपि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अहन्** से **अहन्** की षष्ठीविभक्ति में विपरिणाम करके अनुवृत्ति आती है।

रेफलोपविधायकं विधिसूत्रम्

१११. रो रि ८।३।१४।।

रेफस्य रेफे परे लोपः।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

११२. ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ६।३।१११।।

ढरेफयोर्लोपनिमित्तयोः पूर्वस्याणो दीर्घः।

पुना रमते। हरी रम्यः। शम्भू राजते। अणः किम्? तृढः। वृढः।

मनस् रथ इत्यत्र रुत्वे कृते **हशि च**ेत्युत्वे **रो री**ति लोपे च प्राप्ते-

....

अहन् शब्द के अन्त्य नकार के स्थान पर रेफ आदेश होता है, किन्तु सुप् परे होने पर नहीं।

अलोऽन्त्यस्य-परिभाषा के बल पर **अहन्** के अन्त्य वर्ण के स्थान पर रेफ आदेश होगा किन्तु उस रेफ से परे सुप् विभक्ति नहीं होनी चाहिए। यह सूत्र **अहन्** के **नकार** के स्थान पर **रु** आदेश करने वाले **अहन्** इस सूत्र का बाधक है।

अहरहः। प्रतिदिन। **अहन्+अहन्** में **नित्यवीप्सयोः** से **अहन्** को द्वित्व हुआ है और सु विभक्ति का **स्वमोर्नपुंसकात्** से लुक् हुआ है। **रोऽसुपि** से दोनों **नकारों** के स्थान पर **रेफ** आदेश हुआ तो **अहर्+अहर्** बना। प्रथम का **रेफ** द्वितीय **अहन्** के साथ मिला, **अहरहर्** बना। द्वितीय रेफ का अवसान परे होने के कारण **खरवसानयोविसर्जनीयः** से **विसर्ग** आदेश होकर **अहरहः** सिद्ध हुआ।

अहर्गणः। दिनों का समूहः। **अहन्+गणः** में **रोऽसुपि** से **अहन्** के **नकार** के स्थान पर **रेफ** आदेश हुआ। **अहर्+गणः** बना। **रेफ** का ऊर्ध्वगमन हुआ, **अहर्गणः** सिद्ध हुआ। यहाँ पर **अवसान** भी नहीं है और **खर्** परे भी नहीं है। अतः **रेफ** का **विसर्ग** नहीं हुआ।

१११- रो रि। रः षष्ठ्यन्तं, रि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ढो ढे लोपः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है।

रेफ के परे होने पर पूर्व रेफ का लोप होता है।

फलतः **दो रेफ** एक साथ कहीं भी नहीं मिलेंगे क्योंकि **दूसरे रेफ** के परे होने पर **प्रथम रेफ** का इस सूत्र से **लोप** हो जाता है।

११२- ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः। ढ् च, र् च ढ्रौ, इतरेतरद्वन्द्वः। ढ्रौ लोपयतीति ढ्रलोपः, तस्मिन् ढ्रलोपे। ढ्रलोपे सप्तम्यन्तं, पूर्वस्य षष्ठ्यन्तं, दीर्घः प्रथमान्तम्, अणः षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

ढकार और रेफ के लोप होने में निमित्त भूत वर्ण रेफ और ढकार के परे होने पर पूर्व के अण् को दीर्घ होता है।

व्याकरणशास्त्र में दूसरे **ढकार** के परे होने पर पूर्व **ढकार** का लोप **ढो ढे लोपः** करता है और दूसरे **रेफ** के परे होने पर पहले **रेफ** का लोप तो **रो रि** करता ही है। इस तरह **ढकार** और रेफ के लोप होने में निमित्त बने **रेफ** और **ढकार** ही हैं।

परिभाषासूत्रम्

११३. विप्रतिषेधे परं कार्यम् १।४।२॥

तुल्यबलविरोधे परं कार्यं स्यात्।

इति लोपे प्राप्ते **पूर्वत्रासिद्धमिति रोरीत्यस्यासिद्धत्वादुत्वमेव।** मनोरथः।

....

उनके परे होने पर पूर्व में विद्यमान अण् प्रत्याहार अर्थात् **अ, इ, उ** को दीर्घ कर देना इस सूत्र का कार्य है।

पुना रमते। पुनः रमण करता है। **पुनर्+रमते** में पूर्व **रेफ** का **रमते** के रेफ के परे **रो रि** से **लोप** हुआ। यहाँ पर **एक रेफ** के लोप में दूसरा **रेफ** निमित्त बना। यदि दूसरा रेफ न होता तो **प्रथम रेफ** के लोप की प्राप्ति ही नहीं होती। अतः **दूसरा रेफ** लोप का निमित्तक है। लोप होने पर **पुन+रमते** बना। **द्वितीय रेफ** के परे होने पर **पूर्व** में विद्यमान अण् **पुन** के **अकार** को **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से दीर्घ होने पर **पुना रमते** सिद्ध हुआ।

हरी रम्यः। हरि सुन्दर हैं। **हरिस्+रम्यः** में **सकार** के स्थान पर **ससजुषोः रुः** से **रुत्व** होकर **हरिर्+रम्यः** बना। पूर्व रेफ का **रम्यः** के **रेफ** के परे **रो रि** से लोप हुआ। यहाँ पर भी **एक रेफ** के **लोप** में **दूसरा रेफ** निमित्त बना। यदि **दूसरा रेफ** न होता तो **प्रथम रेफ** के लोप की प्राप्ति ही नहीं होती। अतः **दूसरा रेफ** लोप का **निमित्तक** है। लोप होने पर **हरि+रम्यः** बना। **द्वितीय रेफ** के परे होने पर पूर्व में विद्यमान अण् **हरि** के **इकार** को **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से दीर्घ होने पर **हरी रम्यः** सिद्ध हुआ।

शम्भू राजते। शिव जी शोभित होते हैं। **शम्भुस्+राजते** में **सकार** के स्थान पर **ससजुषोः रुः** से रुत्व होकर **शम्भुर्+राजते** बना। पूर्व रेफ का **राजते** के रेफ के परे **रो रि** से लोप हुआ। **हरि+रम्यः** बना। द्वितीय रेफ के परे होने पर पूर्व में विद्यमान अण् **शम्भु** के **उकार** को **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से दीर्घ होने पर **शम्भू राजते** सिद्ध हुआ।

अणः किम्? तृढः। वृढः। अब प्रश्न करते हैं कि **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** इस सूत्र में **अणः** पढ़ने की क्या जरूरत है? **ढकार और रेफ के लोप में निमित्तभूत ढकार और रेफ के परे होने पर पूर्व को दीर्घ हो,** इतने मात्र अर्थ से **पुना रमते** आदि प्रयोग सिद्ध हो जाते। उत्तर दिया- यदि **अणः** न पढ़ते तो **तृढः, वृढः** इन प्रयोगों में दोष आता अर्थात् यहाँ पर दीर्घ होने लगता। क्योंकि जब **अणः** नहीं पढ़ा जायेगा तो सूत्र **अण्** हो या **अण् से भिन्न** कोई भी **अच्** हो, उसको दीर्घ करने लगेगा। फलतः **तृह्, वृह्** धातु से **क्त** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **तकार** को **धत्व, हकार** को **ढत्व, धकार** को **टुत्व** आदि करके **तृढ्+ढः, वृढ्+ढः** बन जाने पर **ढो ढे लोपः** से लोप होने पर **तृ+ढः, वृ+ढः** बना हुआ है। यहाँ पर **ढकार** के लोप होने में निमित्तक **ढकार** परे है। अतः पूर्व **ऋकार** को दीर्घ होने लगता जिसके कारण **तृढः, वृढः** ऐसे अनिष्ट रूप बन जाते। उक्त अनिष्ट सिद्धि के निवारणार्थ इस सूत्र में **अणः** पढ़ा गया। **अण्** में **ऋकार** नहीं आता, अतः **ऋकार** को दीर्घ नहीं हुआ। यदि **अणः** यह पद न पढ़ते तो दीर्घ हो जाता।

११३- विप्रतिषेधे परं कार्यम्। विप्रतिषेधे सप्तम्यन्तं, परं प्रथमान्तं, कार्यं प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

तुल्यबल वाले सूत्रों में विरोध होने पर परकार्य होता है।

सुलोपविधायकं विधिसूत्रम्

११४. एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि ६।१।१३२॥

अककारयोरेतत्तदोर्यः सुस्तस्य लोपो हलि, न तु नञ्समासे।

एष विष्णुः। स शम्भुः। अकोः किम्? एषको रुद्रः।

अनञ्समासे किम्? असः शिवः। हलि किम्? एषोऽत्र।

....

अष्टाध्यायी के क्रम से जो सूत्र पर अर्थात् **बाद** का हो उसे **परसूत्र** एवं उसके द्वारा किये जाने वाले कार्य को **परकार्य** कहते हैं। **अन्यत्रान्यत्रलब्धावकाशयोरेकत्र प्राप्तिस्तुल्यबलविरोधः**। पृथक्-पृथक् स्थानों पर कार्य कर चुके सूत्र यदि कहीं एक साथ लगने के लिए प्रवृत्त हो जायें तो वह **तुल्यबलविरोध** कहाता है। यह सूत्र यह निर्णय देता है कि **तुल्यबलविरोध** होने पर **परकार्य** अर्थात् अष्टाध्यायी के क्रम में जो सूत्र पर हो, उस सूत्र के द्वारा किया जाने वाला कार्य हो जाना चाहिए। आगे **मनर्+रथः** में **हशि च** से रेफ के स्थान पर **उत्व** और **रो रि** से **रेफ** का लोप एकसाथ दोनों प्राप्त हुए। यही तुल्यबलविरोध हुआ। अतः इस सूत्र ने निर्णय दिया कि तुल्यबलविरोध होने पर **परकार्य** हो। अष्टाध्यायी के क्रम में परसूत्र **रो रि** ८।३।१४ परसूत्र है। यह आठवें अध्याय के तृतीय पाद का चौदहवाँ सूत्र है और **हशि चं** ६।१।१३४॥ पूर्वसूत्र है, क्योंकि यह छठे अध्याय के प्रथम पाद का एक सौ चौतीसवाँ सूत्र है। इस तरह इस परिभाषा सूत्र के नियमानुसार **रो रि** से रेफ का लोप होना चाहिए था किन्तु **पूर्वत्रासिद्धम्** के नियमानुसार **सपादसप्ताध्यायी** की दृष्टि में **त्रिपादी** सूत्र असिद्ध होते हैं। **रो रि** त्रिपादी है और **हशि च** सपादसप्ताध्यायी। त्रिपादी और सपादसप्ताध्यायी सूत्र एकत्र एक साथ लगने के लिए जहाँ पर प्रवृत्त होते हैं वहाँ **पूर्वत्रासिद्धम्** के नियम से त्रिपादी असिद्ध होकर वापस चला जाता है। अतः **मनर्+रथः** में **रो रि** असिद्ध होकर **हशि** च से ही उत्व हो जायेगा। तात्पर्य यह हुआ कि **सपादसप्ताध्यायियों** में **तुल्यबलविरोध** होने पर परकार्य होता है अर्थात् **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** का नियम **सपादसप्ताध्यायियों** में ही फलित होता है, **सपादसप्ताध्यायी** एवं **त्रिपादियों** के बीच में नहीं।

मनोरथः। मन की इच्छा, अभिलाषा। **मनस्+रथः** में **सकार** के स्थान पर **ससजुषो रुः** से **रु** आदेश होकर अनुबन्धलोप होने पर **मनर्+रथः** बना। अब **रो रि** से रेफ का लोप भी प्राप्त हुआ और **हशि च** से उत्व भी एक साथ प्राप्त हुआ। **तुल्यबलविरोध** हुआ तो **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** से परकार्य होने का नियम कर दिया। इस नियम के अनुसार परसूत्र **रो रि** से रेफ का लोप होना था किन्तु **पूर्वत्रासिद्धम्** के नियमानुसार यह सूत्र **रो रि** के समक्ष असिद्ध हुआ। अतः **हशि च** से ही उत्व हुआ। रेफ के स्थान पर उकार आदेश होने पर **मन+उ+रथः** बना। **मन+उ** में **आद्गुणः** से गुण होकर **मनोरथः** सिद्ध हुआ।

११४- एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि। एतच्च तच्च- एतत्तदौ, तयोः- एतत्तदोः, इतरेतरद्वन्द्वः। सोर्लोपः- सुलोपः, षष्ठीतत्पुरुषः। न नञ्समासः- अनञ्समासः, तस्मिन् अनञ्समासे, नञ्तत्पुरुषः। अविद्यमानः ककारो ययोस्तौ अकौ, तयोः- अकोः, बहुव्रीहिः। एतत्तदोः षष्ठ्यन्तं, सुलोपः प्रथमान्तम्, अकोः षष्ठ्यन्तम्, अनञ्समासे सप्तम्यन्तं, हलि सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

हल् के परे होने पर एतद् और तद् शब्द के बाद आने वाले सुप्रत्यय का लोप होता है किन्तु उन शब्दों में अकच् प्रत्यय न हुआ हो तो।

अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः से **एतत्** और **तद्** शब्दों में **अकच्** होता है। विना **अकच्** के रूप **एष कृष्णः, स श्याम** और **अकच्** प्रत्यय वाला रूप **एषकः कृष्णः, सकः श्यामः**। सु का लोप हल् प्रत्याहार के परे रहने पर ही होगा। जैसे- **कृष्ण** का **ककार** हल्वर्ण परे है, श्याम का शकार हल्वर्ण है। यदि उस शब्द में नञ्समास हुआ हो तो भी नहीं होगा। जैसे- **न सः= असः**। इस तरह **एतद्** और **तद्** शब्द से **अकच्** प्रत्यय न हुआ हो, **नञ्समास** न हुआ हो और हल् परे हो तो **एतद्** और **तद्** शब्द से हुए प्रथमा एकवचन वाले **सुप्रत्यय** का **लोप** हो जाता है।

एष विष्णुः। ये विष्णु हैं। **एष+सु+विष्णुः** में **सु** यह प्रथमा विभक्ति के एक वचन वाला प्रत्यय है। **सु** उसमें **उकार** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से **इत्संज्ञा** हुई और **तस्य लोपः** से **उकार** का लोप हुआ तो उसमें केवल **स्** बचा। उस **सकार** का **एतत्तदोः सुलोपोऽकोरञ्समासे हलि** से लोप हुआ, क्योंकि यहाँ **स्** से परे **हल्** भी है तथा **नञ्समास** भी नहीं है और अकच् प्रत्यय भी नहीं हुआ है। फलतः **सु** के **सकार** के लोप होने के बाद एष बचा। इस तरह **एष विष्णुः** बन गया।

स शम्भुः। वे शम्भु हैं। **स+सु+शम्भुः** में **सु** यह प्रथमा विभक्ति के एक वचन वाला प्रत्यय है। **सु** उसमें **उकार** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से **इत्संज्ञा** हुई और **तस्य लोपः** से **उकार** का लोप हुआ तो उसमें केवल **स्** बचा। उस **सकार** का **एतत्तदोः सुलोपोऽकोरञ्समासे हलि** से लोप हुआ, क्योंकि यहाँ **स्** से परे **हल्** भी है तथा **अकच्** प्रत्यय और **नञ्समास** भी नहीं हैं। **सु** के **सकार** के लोप होने के बाद **स** बचा। इस तरह स शम्भुः बन गया।

इस तरह से **अनञ्समास** में **हल्** परे होने पर **तद्** और **एतद्** शब्दों की **प्रथमा** के एकवचन में सु के लोपे होने के कारण कहीं भी विसर्ग नहीं रहता। **स गच्छति, स पठति, एष चलति, एष हसति** आदि।

अकोः किम्? **एषको रुद्रः**। सूत्र में यदि **अकोः** अर्थात् **अकच् प्रत्यय के ककार से रहित एतद् और तद् शब्द** ऐसा अर्थ न करते तो **एषको रुद्रः** में **एषकस्** के सु का लोप हो जाता और **एषक रुद्रः** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता। **अकोः** कहने से **अकच्** प्रत्यय वाले **एषक+स्** में **एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि** नहीं लगा। **एषक+स्+रुद्रः** में **सकार** के स्थान पर **ससजुषो रुः** से **रु** हुआ और उसके स्थान पर **हशि च** से **उत्व** हुआ, **एषक+उ+रुद्रः** बना। **एषक+उ** में **आद्गुणः** से **गुण** हो गया- **एषको रुद्रः** सिद्ध हुआ।

अनञ्समासे किम्? असः शिवः। सूत्र में यदि **अनञ्समासे** न कहते तो **अस+स्+शिवः** में दोष आता क्योंकि तब सूत्र **नञ्समास** में भी लगता और **अनञ्समास** में भी लगता। **असः** में **नञ्समास** हुआ है। यहाँ पर भी **सु** का लोप होकर **अस शिवः** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता। **अनञ्समासे** कहकर **नञ्समास** के लिए निषेध होने के कारण **अस+स्+शिवः** में **एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि** नहीं लगा, **सु** का लोप नहीं हुआ अपितु **सु** वाले **सकार** को **रुत्व** होकर **विसर्ग** हो गया- **असः शिवः** सिद्ध हुआ।

सुलोपविधायकं विधिसूत्रम्

११५. सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् ६।१।१३४॥

स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्येत।

सेमामविड्ढि प्रभृतिम्। सैष दाशरथी रामः।

इति विसर्गसन्धिः॥४॥

हलि किम्? एषोऽत्र। सूत्र में यदि **हलि** न कहते तो **एष+स्+अत्र** में दोष आता क्योंकि तब सूत्र **हल् परे** होने पर भी लगता और **अच् परे होने पर** भी तथा **कोई भी परे न हो** तब भी लगता। **एष+स्+अत्र** में **अच्** परे है **अत्र** का **अकार**। यहाँ पर भी **सु** का लोप होकर **एष+अत्र** और सवर्णदीर्घ होकर **एषात्र** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता। **हलि** कहकर **अच्** परे होने पर निषेध होने के कारण **एष+स्+अत्र** में **एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि** नहीं लगा, **सु** का लोप नहीं हुआ अपितु **सु** वाले **सकार** को **रुत्व** होकर **अतो रोरप्लुतादप्लुते** से **उत्व** हो गया- **एष+उ+अत्र** बना। **एष+उ** में **आद्गुणः** से **गुण** होकर **एषोऽत्र** सिद्ध हुआ।

११५- सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्। पादस्य पूरणं पादपूरणम्, षष्ठीतत्पुरुषः। सः तद् इत्यस्य अनुकरणं षष्ठ्यर्थे प्रथमान्तम्, अचि सप्तम्यन्तं, लोपे सप्तम्यन्तं, चेत् अव्ययपदं पादपूरणं प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि** से **सुलोपः** की अनुवृत्ति आती है और **स्यश्छन्दसि बहुलम्** से **बहुलम्** की अनुवृत्ति लाकर इस सूत्र में उसका अर्थ **एव** अर्थात् ही किया जाता है।

यदि केवल लोप होने से ही पाद पूरा होता हो तो अच् के परे होने पर तद् शब्द के सु का लोप हो जाय।

लौकिक **श्लोक** और वैदिक **मन्त्रों** में **पाद, चरण** होते हैं। लौकिक श्लोक में प्रायः चार चरण होते हैं और उनमें निश्चित संख्या में वर्ण हुआ करते हैं। एक अक्षर या एक मात्रा की भी न्यूनता या अधिकता होने पर छन्दोभंग हो जाता है। श्लोक को पद्य या छन्द भी कहते हैं। **अनुष्टुप्, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित, गायत्री, त्रिष्टुप्** आदि छन्द होते हैं।

पाद अर्थात् श्लोक, वैदिक मन्त्र आदि का चरण। **अच्** परे होने पर इस सूत्र की आवश्यकता पड़ती है। **हल्** परे होने पर तो **एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि** से ही काम हो जाता है। यदि **सु** के लोप करने पर ही **पादपूर्ति** अर्थात् **छन्दः** ठीक बैठता हो तो **सु** का लोप हो, अन्यथा न हो।

सेमामविड्ढि प्रभृतिम्। यह **ऋग्वेद** के **जगतीच्छन्दः** वाले मन्त्र का **एक पाद** है **सेमामविड्ढि प्रभृतिं य ईशिषे**। इस छन्द के प्रत्येक पाद में बारह अक्षर होते हैं। **स+स्+इमामविड्ढि** में **सु** वाले **स्** का लोप होने पर बारह अक्षर बनते हैं और यदि लोप नहीं हुआ तो **सकार** को **रुत्व, यत्व** करके **यकार** का लोप करने पर **स+इमामविड्ढि प्रभृतिं य इशिषे** बनता है। त्रिपादी होने के कारण **यकार** का लोप असिद्ध होगा तो **स+इमा** में **आद्गुणः** से गुण भी नहीं हो सकेगा। अतः **स इमामविड्ढि प्रभृतिं य इशिषे** ऐसा बनेगा। अब पाद में बारह अक्षर होने चाहिए थे, तेरह अक्षर हो गये। इस तरह **छन्दोभंग** हुआ। यदि **सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्** से **सकार** का लोप करते हैं तो **स+इमा** में गुण हो

जायेगा, क्योंकि यह सूत्र **सपादसप्ताध्यायी** का है। इसके द्वारा **सु** का लोप होने पर **आद्गुणः** की दृष्टि में **असिद्ध** नहीं होगा। **स+इ** में दो अक्षरों से एक ही अक्षर **से** बनेगा, जिससे पाद में बारह ही अक्षर रह जायेंगे। इस तरह पाद की पूर्ति होगी अर्थात् **छन्दः** ठीक से बैठेगा। अतः **सु** का लोप इस सूत्र से हो जाता है, फलतः **सेमामविड्ढि प्रभृतिं य ईशिषे** सिद्ध हो जाता है। यह वैदिक मन्त्र का उदाहरण है। लौकिक श्लोक के चरण का उदाहरण आगे देखिये।

सैष दाशरथी रामः। ये वे ही दशरथ-पुत्र राम हैं। यह **अनुष्टुप्-छन्दः** का एक **चरण** अर्थात् **पाद** है। इस छन्द के प्रत्येक पाद में आठ अक्षर होते हैं। **स+स्+एष दाशरथी रामः** में **सु** वाले **स्** का लोप होने पर आठ अक्षर बनते हैं और यदि लोप नहीं हुआ तो **सकार** को **रुत्व, यत्व** करके **यकार** का लोप करने पर **स+एष दाशरथी रामः** बनता है। **त्रिपादी** होने के कारण **यकार** का लोप **असिद्ध** होगा तो **स+एष** में **वृद्धिरेचि** से वृद्धि भी नहीं हो सकेगी। अतः **स एष दाशरथी रामः** ऐसा बनेगा। अब पाद में **आठ** अक्षर होने चाहिए थे, **नौ** अक्षर हो गये। **छन्दोभंग** हुआ। यदि इस सूत्र से **सकार** का लोप करते हैं तो **स+एष** में वृद्धि हो जायेगी, क्योंकि यह सूत्र सपादसप्ताध्यायी का है। **सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्** के द्वारा **सु** का लोप होने पर **वृद्धिरेचि** की दृष्टि में असिद्ध नहीं होगा। **स+ए** में दो अक्षरों से एक ही अक्षर **सै** बनेगा, जिससे पाद में **आठ** ही अक्षर रह जायेंगे। पाद की पूर्ति होगी अर्थात् **छन्दः** ठीक से बैठेगा। अतः **सु** का लोप इस सूत्र से हो जाता है। फलतः **सैष दाशरथी रामः** सिद्ध हो जाता है।

सैष दाशरथी रामः यह लौकिक उदाहरण है। इससे सम्बन्धित एक श्लोक प्रसिद्ध है, जिसमें चारों पादों में इस सूत्र के उदाहरण मिलते हैं-

सैष दाशरथी रामः, सैष राजा युधिष्ठिरः।
सैष कर्णो महादानी, सैष भीमो महाबलः॥

(ये वे भगवान् दशरथपुत्र श्रीराम हैं, ये वे राजा युधिष्ठिर हैं, ये वे महादानी कर्ण हैं और ये वे ही महाबली भीम हैं।)

जहाँ लोप करके नहीं अपितु अन्य किसी कारण से पादपूर्ति हो जाती है वहाँ तो **सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्** से सु का लोप नहीं होता है। जैसे **सोऽहमाजन्मशुद्धानाम्** भी **अनुष्टुप् छन्दः** का **चरण** है। यहाँ पर **सु** का लोप करते हैं तो **स+अ=सा, साहमाजन्मशुद्धानाम्** बन जाता है। ऐसा बनने पर भी **छन्दोभंग** तो नहीं हो रहा है किन्तु **सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्** से सु का लोप न करने पर भी **स्** को रुत्व करके **अतो रोरप्लुतादप्लुते** से **उत्व** और **स+उ** में गुण करके **सो+अहम्** में **एङः पदान्तादति** से पूर्वरूप करने पर भी पादपूर्ति होती है, **सोऽहमाजन्मशुद्धानाम्** बनता है। **एक चरण** में **आठ** अक्षर होने चाहिए, **आठ** ही अक्षर बनते हैं और **छन्दोभंग** भी नहीं होता है। अतः अन्य कारणों से **पादपूर्ति** हो रही है, इसलिए **सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्** से **सु** का लोप नहीं होगा।

परीक्षा

सन्धिप्रकरण पूर्ण हुआ। इसके बाद भी आप वैसे ही करें जैसे **संज्ञाप्रकरण, अच्सन्धि** और **हल्सन्धि** के अन्त में निर्देश दिया गया है। अब परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए आपको कम से कम ४० अंक प्राप्त करना अनिवार्य है। प्रत्येक प्रश्न पाँच-पाँच अंक के हैं।

१- व्याकरण के तीन मुनि कौन कौन हैं?

२- अभी तक आपने जितने सूत्र पढ़े उनमें किसी प्रत्याहार को लेकर कार्य करने वाले सूत्र कौन कौन से हैं?

३- यदि प्रत्याहार न बनते तो '**इको यणचि**' इस सूत्र के स्थान पर क्या और कैसा बनाना पड़ता? कल्पना कीजिए।

४- अच्सन्धि के कोई पाँच प्रयोग सिद्ध करें।

५- हल्सन्धि के भी पाँच प्रयोग सिद्ध करें।

६- विसर्गसन्धि के भी कोई पाँच प्रयोग सिद्ध करें।

७- सवर्णसंज्ञा के विषय वमें आप क्या जानते हैं? समझाइये।

८- हल्सन्धि, अच्सन्धि और विसर्गसन्धि की तुलना कीजिए।

९- स्थान और प्रयत्न से आप क्या समझते हैं?

१०- अव तक की प्रगति के आधार पर आप लघुसिद्धान्तकौमुदी को आगे कितने महीने में पूर्ण करेंगे?

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का विसर्गसन्धिप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ षड्लिङ्गेषु अजन्तपुँल्लिङ्गाः

प्रातिपदिकसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

११६. अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् १।२।४५॥

धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च वर्जयित्वार्थवच्छब्दस्वरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब षड्लिङ्गों के अन्तर्गत आने वाले शब्दों का प्रकरण प्रारम्भ होता है। अभी तक आपने सन्धि का ज्ञान कर लिया है। **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में सन्धि पाँच प्रकार की मानी गई है- १- अच्सन्धिः, २- प्रकृतिभावसन्धिः, ३- हल्सन्धिः, ४- स्वादिसन्धि और, ५- विसर्गसन्धि, किन्तु **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में अच्सन्धि, हल्सन्धि और विसर्गसन्धि में सभी सन्धियों को अन्तर्भूत किया गया है।

संस्कृत भाषा में सन्धिज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। तदनन्तर शब्दज्ञान अर्थात् पदज्ञान की आवश्यकता होती है। शब्द या पद भी तीन प्रकार के माने गये हैं- १- सुबन्त, २- तिङन्त और ३- अव्यय। अव्यय शब्दों का वर्णन अव्यय-प्रकरण में तथा तिङन्त शब्दों का वर्णन भ्वादि से लकारार्थ-प्रक्रिया तक करेंगे। यहाँ सुबन्त शब्दों का विवेचन कर रहे हैं। सुबन्त शब्दों में **अजन्तपुँल्लिङ्गप्रकरण** प्रथम है, क्योंकि माहेश्वरसूत्रों में अच् वर्ण पहले आते हैं।

सुप् ये २१ प्रत्यय हैं जो इसी प्रकरण में बताये जा रहे हैं। जैसे- सु, औ, जस्, अम्, औट्, शस्, टा, भ्याम्, भिस्, ङे, भ्याम्, भ्यस्, ङसि, भ्याम्, भ्यस्, ङस्, ओस्, आम्, ङि, ओस्, सुप्,। **सु, औ** के **सु** से लेकर अन्तिम प्रत्यय **सुप्** के पकार को लेकर सुप् प्रत्याहार माना गया है। सुप् प्रत्यहार में ये सारे के सारे इक्कीसों प्रत्यय आ गये। सुप् प्रत्याहार के प्रत्यय जिस शब्द के अन्त में लगे हों उस शब्द और प्रत्यय के समूह को सुबन्त कहते हैं। सुबन्त होने के बाद **"सुप्तिङन्तं पदम्"** से पदसंज्ञा हो जाती है। पदसंज्ञा होने के बाद वह पदसंज्ञा वाला अर्थात् **'पद'** कहलायेगा। व्यवहार में पद का प्रयोग होता है। जब-तक कोई शब्द पद नहीं होता तब-तक उसको भाषा के रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकेगा। इस प्रकरण में प्रत्यय का प्रयोग हो रहा है। प्रत्ययों का विधान सूत्र करते हैं। जिस शब्द से प्रत्यय होगा, वह शब्द प्रकृति है। प्रकृति से ही प्रत्यय होते हैं और प्रत्यय यदि है तो प्रकृति भी अवश्य है। इसलिए इस प्रकरण को पढ़ते समय **प्रकृति-प्रत्यय** क्या-क्या हैं? इसका ध्यान जरूर रखना।

सुबन्त अर्थात् जिनके में अन्त सुप् प्रत्यय लगते हैं ऐसे शब्द प्रथमतः दो प्रकार के हैं- अजन्त और हलन्त। जिन शब्दों के अन्त में अच् प्रत्याहार वाले वर्ण हों ऐसे शब्द अजन्त और जिन शब्दों के अन्त में हल् वर्ण लगे हों ऐसे शब्द हलन्त हैं। पुनः अजन्त और हलन्त दोनों ही शब्द पुँलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग करके तीनों ही लिङ्ग में हैं। इस प्रकार से इन शब्दों का वर्गीकरण इस प्रकार से किया गया-

१- अजन्तपुँलिङ्ग	२-अजन्तस्त्रीलिङ्ग	३- अजन्तनपुंसकलिङ्ग
४- हलन्तपुँल्लिङ्ग	५- हलन्तस्त्रीलिङ्ग,	६- हलन्तनपुंसकलिङ्ग।

इस प्रकार से इन के छ भेद हो गये। अतः कहीं-कहीं इनके लिए षड्लिङ्ग शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। सर्वप्रथम अजन्तपुल्लिङ्ग के शब्दों का प्रदर्शन कर रहे हैं।

११६-अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्। अर्थोऽस्यास्तीति अर्थवत्।, मतुप्-प्रत्ययः। न धातुः- अधातुः, न प्रत्ययः- अप्रत्ययः, नञ्तत्पुरुषः। अर्थवत् प्रथमान्तम्, अधातुः प्रथमान्तम्, अप्रत्ययः प्रथमान्तं, प्रातिपदिकं प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्।

धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त को छोड़कर अर्थवान् शब्द स्वरूप प्रातिपदिकसंज्ञक होता है।

प्रातिपदिकसंज्ञा के लिए **अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्** और **कृत्तद्धितसमासाश्च** ये दो ही सूत्र हैं। प्रातिपदिकसंज्ञा इसलिए जरूरी है कि जो आगे प्रत्यय बताये जा रहे हैं जैसे सुप् (सु, औ, जस्) आदि ये प्रातिपदिकसंज्ञक शब्दों से होते हैं। प्रातिपदिकसंज्ञा नहीं होगी तो सुप् आदि प्रत्यय भी नहीं होंगे।

शब्दों को पुनः दो भागों में रखा गया है- **१- व्युत्पन्न** अर्थात् **यौगिक** और **२- अव्युत्पन्न** अर्थात् **रूढ**। व्युत्पन्न और अव्युत्पन्न के विषय में सरलतया सामान्य रूप में समझने के लिए अभी केवल इतना ही जानें कि जिस शब्द के धातु, प्रकृति एवं प्रत्यय के भिन्न-भिन्न अर्थ होते हुए भी समुदाय में एक ही अर्थ बनता है उसे **व्युत्पन्न** शब्द कहते हैं और जिस शब्द में धातु, प्रकृति, प्रत्यय की कल्पना किये विना एवं उनके अर्थ विशेष की अपेक्षा के विना केवल सामान्य अर्थ मात्र समझा जाता है उन्हें **अव्युत्पन्न** कहते हैं। जैसे **रमन्ते योगिनो यस्मिन् स रामः** अर्थात् जिस ब्रह्म में योगिजन रमण करते हैं वह राम है, ऐसा अर्थ वाला रामशब्द **रमु क्रीडायाम्** धातु से घञ् प्रत्यय= (अ) होकर बना है, जिसमें प्रकृति और प्रत्यय दोनों के विशेष अर्थ एक हो जाते हैं, इसलिए यह शब्द व्युपन्न है ।

जब रामशब्द का प्रयोग सामान्य व्यक्ति के लिए किया जाता है तब वहाँ न धातु का अर्थ घटित होता है और न प्रत्यय का । अतः ऐसा राम शब्द अव्युत्पन्न है। अव्युत्पन्न शब्द की **प्रातिपदिकसंज्ञा अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्** से होगी और व्युत्पन्न पक्ष के शब्द की **प्रातिपदिकसंज्ञा** अगले सूत्र **''कृत्तद्धितसमासाश्च''** से होगी। आइये अब इस सूत्र के अर्थ पर विचार करते हैं-

उस शब्द की **प्रातिपदिकसंज्ञा** हो जिसका एक सामान्य कोई अर्थ हो किन्तु वह धातु, प्रत्यय या प्रत्ययान्त के रूप में न जाना जाता हो। इस प्रकार से धातुभिन्न, प्रत्ययभिन्न और प्रत्ययान्तभिन्न किन्तु अर्थ वाले शब्द की **प्रातिपदिकसंज्ञा** होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस शब्द का धातु और प्रत्यय के हिसाब से कोई विभाजन न हो किन्तु उसका अर्थ शास्त्र एवं लोक में प्रसिद्ध हो, ऐसे शब्द की **प्रातिपदिकसंज्ञा** होती है।

प्रातिपदिकसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

११७. कृत्तद्धितसमासाश्च १।२।४६।।

कृत्तद्धितान्तौ समासाश्च तथा स्युः।

स्वादिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११८. स्वौ-जसमौट्-छष्टाभ्याम्-भिस्-ङे-भ्याम्-भ्यस्-ङसि-भ्याम्-भ्यस्-ङसोसाम्-ङ्योस्-सुप् ४।१।२।।

सु औ जस् इति प्रथमा। अम् औट् शस् इति द्वितीया।
टा भ्याम् भिस् इति तृतीया। ङे भ्याम् भ्यस् इति चतुर्थी।
ङसि भ्याम् भ्यस् इति पञ्चमी। ङस् ओस् आम् इति षष्ठी।
ङि ओस् सुप् इति सप्तमी।

....

११७- **कृत्तद्धितसमासाश्च।** कृच्च, तद्धितश्च, समासश्च, कृत्तद्धितसमासाः, इतरेतरद्वन्द्वः। कृत्तद्धितसमासाः प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्** से **प्रातिपदिकम्** की अनुवृत्ति आती है।

कृदन्त, तद्धितान्त और समास भी पूर्ववत् प्रातिपदिकसंज्ञक होते हैं।

कृदन्त। कृत् ये प्रत्यय हैं जो धातु के बाद लगते हैं। धातु के बाद लगने वाले प्रत्ययों को **तिङ्** और **कृत्** कहते हैं। इन प्रत्ययों में **तिङ्** प्रत्ययों को छोडकर शेष प्रत्ययों की **कृत्** संज्ञा होती है। ऐसे **कृत्** प्रत्ययों का पूरा का पूरा प्रकरण ही है जो **कृदन्तप्रकरण** कहलाता है। धातु से कृत् प्रत्यय लगने के बाद वे शब्द **कृदन्त** कहलाते हैं- (कृत्+अन्त=कृदन्त)।

तद्धितान्त। सुबन्त शब्दों से **तद्धित** प्रत्यय होते हैं। जब सुबन्त शब्दों से विशेष अर्थ के प्रतिपादन के लिए जो प्रत्यय होते हैं, तब उन्हें **तद्धित-प्रत्यय** कहते हैं। तद्धित-प्रत्यय अन्त में हो ऐसे शब्दों को **तद्धितान्त** शब्द कहते हैं। तद्धित प्रत्ययों के भी कई प्रकरण हैं जो आगे बताये जायेगें।

समास। समास का अर्थ संक्षेप होता है। अनेक पद मिलकर एक पद हो जाने पर संक्षेप होता है। अतः इसे समास कहा जाता है। व्याकरणशास्त्र में समास एक अन्वर्थ संज्ञा है। समास में दो या दो से अधिक पद मिलकर एक पद हो जाते हैं एवं उनकी भिन्न-भिन्न अनेक विभक्तियाँ भी लुप्त हो जाती हैं और अन्त वाले शब्द में पुनः एक कोई विभक्ति आ जाती है। जैसे- रामः+हरिः+श्यामः- **रामहरिश्यामाः**। समास हो जाने के बाद पुनः प्रातिपदिक संज्ञा होती है।

यह सूत्र कृदन्त, तद्धितान्त और समास की प्रातिपदिकसंज्ञा करता है। इस सूत्र के द्वारा जिसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हो जाती है वह शब्द यौगिक अर्थात् व्युत्पन्न ही होता है। इस प्रकार यहाँ पर व्युत्पन्न पक्ष के राम शब्द की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा होती है और अव्युत्पन्न पक्ष के राम शब्द की **अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्** से प्रातिपदिकसंज्ञा होती है।

११८- **स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप्।** सुश्च, औश्च,

अधिकारसूत्राणि त्रीणि

११९. ङ्याप्प्रातिपदिकात् ४।१।१॥

१२०. प्रत्ययः ३।१।१॥

१२१. परश्च ३।१।२॥

इत्यधिकृत्य। ङ्यन्तादाबन्तात्प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः।

....

जश्च, अञ्च, औट् च, शश्च, टाश्च, भ्याञ्च, भिश्च, ङेश्च, भ्याञ्च, भ्यश्च, ङसिश्च, भ्याञ्च, भ्यश्च, ङश्च, ओश्च, आञ्च, ङिश्च, ओश्च, सुप् च तेषां समाहारद्वन्द्वः। यहाँ पर सु, औ, जस् आदि सभी में केवल समाहारद्वन्द्व-समास हुआ है। समाहारद्वन्द्व होने पर नपुंसकलिंग और एकवचन मात्र होता है। इसलिये सम्पूर्ण सूत्र में प्रथमा का एकवचन मात्र है। अतः **स्वौजसमौट्........सुप्** प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम् इतना ही समझना चाहिए। इस सूत्र का आगे के तीनों सूत्र **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्** का अधिकार लेकर निम्नलिखित अर्थ कर लिया जाता है।

सु, औ, जस् आदि ये प्रत्यय ङीप्रत्ययान्त, आप्प्रत्ययान्त और प्रातिपदिकसंज्ञक शब्दों से परे होते हैं।

११९- ङ्याप्प्रातिपदिकात्। ङी च, आप् च, प्रातिपदिकञ्च, तेषां समाहारद्वन्द्वः, ङ्याप्प्रातिपदिकम्, तस्मात् ङ्याप्प्रातिपदिकात्। ङ्याप्प्रातिदिकात् पञ्चम्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्।

१२०- प्रत्ययः। प्रत्ययः प्रथमान्तम्, एकपदमिदं सूत्रम्।

१२१- परश्च। परः प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

इन तीन सूत्रों का अधिकार लेकर **स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्-भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप्** का सम्मिलित अर्थ होता है-

ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से परे सु आदि प्रत्यय हों।

फलितार्थ यह है कि सु आदि प्रत्यय पर में ही होगा और पर में होने वाला वह प्रत्यय या तो ङी के बाद होगा या आप् के बाद होगा और या तो प्रातिपदिकसंज्ञक शब्द के बाद ही होगा। **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** ये तीन अधिकार सूत्र हैं। अधिकार सूत्र अपने में कुछ काम नहीं करते किन्तु दूसरे सूत्रों के उपकारक हो जाते हैं। प्रत्येक सूत्र में अधिकार बनकर जाते हैं और उनका कार्य सिद्ध करते हैं। इन तीन सूत्रों का अधिकार को लेकर ही **स्वौजसमौट्०** यह विधिसूत्र सु-औ-जस् आदि प्रत्ययों का विधान करता है।

संस्कृत साहित्य में जितने भी शब्द हैं वे प्रायः धातु से बने हैं। धातु से या तो तिङ् प्रत्यय होते हैं या तो कृत् प्रत्यय होते हैं। तिङ् प्रत्यय होने के बाद भवति, पठति, गच्छामि आदि रूप बनते हैं। उनकी प्रातिपदिक संज्ञा करने की कोई आवश्यकता नहीं है और न ही इनकी प्रातिपदिकसंज्ञा होती है। तिङन्त बन जाने के बाद **सुप्तिङन्तं पदम्** से पदसंज्ञा होकर व्यवहार में आता है। किन्तु कृत् प्रत्यय होने के बाद कृदन्त शब्द की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिक संज्ञा होने के बाद जब सु आदि विभक्तियाँ लगती हैं, तब उस सुबन्त की **पदसंज्ञा** होती है। पद के बाद भी जब अर्थविशेष की विवक्षा होने पर तद्धितप्रकरण के प्रत्यय लगते हैं, तब वे तद्धितान्त कहलाते हैं। फिर उनकी तद्धितान्त

एकवचनादिसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१२२. सुपः १।४।१०३॥

सुपस्त्रीणि त्रीणि वचनान्येकश एकवचनद्विवचनबहुवचनसंज्ञानि स्युः।

एकवचन-द्विवचनविधायकं नियमसूत्रम्

१२३. द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने १।४।२२॥

द्वित्वैकत्वयोरेते स्तः।

....

मानकर प्रातिपदिकसंज्ञा होती है। इसी प्रकार प्रातिपदिक से स्त्रीत्वबोधन कराने के लिए ङी, आप् आदि प्रत्यय होते हैं। यह सूत्र यही कहता है कि जो सुप् आदि प्रत्यय हैं वे ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से परे ही हों।

ये सुप् प्रत्यय सात विभक्तियों में बँटे हैं-

प्रथमा में- **सु, औ, जस्।** द्वितीया में- **अम्, औट्, शस्।**
तृतीया में- **टा, भ्याम्, भिस्।** चतुर्थी में- **ङे, भ्याम्, भ्यस्।**
पंचमी में- **ङसि, भ्याम्, भ्यस्।** षष्ठी में- **ङस्, ओस्, आम्**
सप्तमी में- **ङि, ओस्, सुप्।**

इन प्रत्ययों की प्रथमा, द्वितीया आदि संज्ञा करने वाला पाणिनीय व्याकरण में कोई सूत्र नहीं है किन्तु पाणिनि जी से पूर्ववर्ती आचार्यों ने प्रथमा से सप्तमी तक की विभक्तिसंज्ञा की है। उसी का व्यवहार यहाँ पर भी किया जाता है। कारक प्रकरण में प्रथमा, द्वितीया, तृतीया आदि विभक्तिविधायक सूत्र तो हैं।

१२२- सुपः। सुपः षष्ठ्यन्तम्, एकपदमिदं सूत्रम्। पाणिनीय-अष्टाध्यायी में इससे पहले एक सूत्र है- **तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः।** वह सम्पूर्ण सूत्र इस सूत्र में अनुवृत्त होकर आता है। अतः अर्थ बनता है- सुपः तानि एकशः एकवचन-द्विवचन-बहुवचनानि भवन्ति, अर्थात् सुप् के वे सारे वचन क्रमशः एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञक हो जाते हैं। इस प्रकार से सु की एकवचनसंज्ञा, औ की द्विवचनसंज्ञा और जस् की बहुवचनसंज्ञा हो जाती है। इसी प्रकार द्वितीया तृतीया आदि में समझना चाहिए। इसी विषय को तालिका के माध्यम से समझ सकते हैं-

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	सु	औ	जस्
द्वितीया	अम्	औट्	शस्
तृतीया	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी	ङसि	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी	ङि	ओस्	सुप्।

१२३- द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने। द्वे च एकञ्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः, द्व्येके, तयोर्द्व्येकयोः। द्विवचनञ्च एकवचनञ्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः, द्विवचनैकवचने। द्व्येकयोः सप्तम्यन्तं, द्विवचनैकवचने प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

अवसानसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१२४. विरामोऽवसानम् १।४।११०॥

वर्णानामभावोऽवसानसंज्ञः स्यात्। रुत्वविसर्गौ। रामः।

....

द्वित्व संख्या और एकत्व संख्या की विवक्षा में क्रमशः द्विवचन और एकवचन होता है।

संस्कृत-व्याकरण में वचन का अर्थ है- संख्या। एक वस्तु या एक व्यक्ति के लिए एकसंख्या और दो वस्तु या दो व्यक्तियों के लिए दो संख्या एवं अनेक वस्तु एवं अनेक व्यक्तियों के लिए अनेक संख्या का व्यवहार लोक में होता है। उसी को यहाँ पर वचन कहते हैं। एक संख्या के लिए एकवचन का, दो संख्या के लिए द्विवचन का और तीन एवं तीन से अधिक संख्या के लिए बहुवचन का प्रयोग होता है। कैसी जगह पर कौन सी विभक्ति हो इसका विधान आगे कारक(विभक्त्यर्थ) प्रकरण में किया जायेगा किन्तु कौन सा वचन हो, इसका विधान **द्व्येकयोर्द्विवचैकवचने** और **बहुषु बहुवचनम्** ये दो सूत्र यहाँ पर कर रहे हैं। इस सूत्र ने यहाँ पर कहा कि यदि दो संख्या की विवक्षा हो तो द्विवचन और एक संख्या की विवक्षा हो तो एकवचन का प्रयोग किया जाय। जैसे- दो राम हैं तो द्विवचन औ आयेगा- राम राम औ तथा एक राम है तो एकवचन सु आयेगा-राम सु। यद्यपि सु आदि विभक्तियाँ **स्वौजसमौट्०** से प्राप्त थीं ही तथापि इस सूत्र से यह नियम किया गया कि एकत्व संख्या के लिए एकवचन और द्वित्व संख्या के लिए द्विवचन ही हो। **बहुषु बहुवचनम्** के सम्बन्ध में भी यही समझना चाहिए। अतः ये दोनों सूत्र नियमसूत्र माने जाते हैं।

१२४- **विरामोऽवसानम्**। विरामः प्रथमान्तम्, अवसानं प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्।

वर्णों का अभाव अवसानसंज्ञक होता है।

लोक में **अवसान** का अर्थ होता है- **समाप्त होना**। यहाँ पर भी अवसान का समाप्त होना ही अर्थ है अर्थात् वर्णों का अभाव हो जाना। किसी भी शब्द के बाद फिर उस शब्द से सम्बन्धित कोई भी वर्ण न हो। जैसे **रामर्** के बाद कोई वर्ण नहीं है। **रामर्** के बाद जो खाली जगह है, वही वर्णों का अभाव है और उसी की अवसान-संज्ञा हुई। यहाँ पर **अवसान-संज्ञा** का एक प्रयोजन **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से विसर्ग करना।

रामः। अब आइये रामशब्द के सिद्ध करने की प्रक्रिया को समझते हैं। सुप् प्रत्यय सात विभक्तियों और तीन वचनों में बँटे हुए हैं। सात तिक्के इक्कीस अर्थात् इक्कीस रूप बनेंगे। सात विभक्तियों के अतिरिक्त एक **सम्बोधन** विभक्ति भी है किन्तु उसमें लगभग प्रथमा के जैसे ही रूप बनते हैं, केवल एकवचन में प्रायः अलग होता है। अब सबसे पहले प्रथमा विभक्ति के एकवचन में क्या रूप बनता है? इसको देखते हैं।

ध्यान रहे कि पड्लिङ्गों में सामान्य रूप राम-शब्द की तरह ही बनेंगे और विशेष रूप तत्तद् स्थलों पर बताये जायेंगे। अतः रामशब्द को आप अच्छी तरह से समझ लें, अन्यथा आगे समझ नहीं पायेंगे।

रामः। रमु क्रीडायाम्। **रमु** धातु है और उसका अर्थ क्रीड़ा करना है। रमु में उकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होकर के केवल **रम्** बचता है। कृदन्त में **हलश्च** सूत्र से घञ् प्रत्यय हुआ और घकार का **लशक्वतद्धिते** से तथा ञकार का **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होने के बाद **तस्य लोपः** से लोप होकर केवल **अ** बचा है। **रम्+अ** बना। रकारोत्तरवर्ती **अकार** की **अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा** से उपधासंज्ञा होकर **अत उपधाया** सूत्र से वृद्धि हुई तो अकार जो है वह **आकार** बन गया। **राम्+अ** बना। **म्+अ=म**, वर्णसम्मेलन हुआ **राम** बना। इतनी प्रक्रिया तो पहले की है। अब हमें **राम** के बाद की प्रक्रिया जाननी है।

पहले ही बताया जा चुका है कि शब्द व्युत्पन्न और अव्युत्पन्न के रूप में दो प्रकार के हैं। व्युत्पन्नपक्ष के रामशब्द की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा होती है और अव्युत्पन्नपक्ष के रामशब्द की **अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्** से प्रातिपदिक संज्ञा होती है। प्रातिपदिक संज्ञा होने के बाद **प्रत्ययः, परश्च** और **ङ्याप्प्रातिपदिकात्** इन तीन सूत्रों के अधिकार से युक्त होकर **स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङे-भ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्-भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप्** इस सूत्र ने सुप् प्रत्यय होने का विधान किया। राम के बाद सु, औ, जस् आदि इक्कीस प्रत्यय प्राप्त हुए और उनको सात विभक्तियों में विभाजित किया गया। इसके बाद प्रथमादि सातों विभक्तियों में **सुपः** इस सूत्र से एकवचन, द्विवचन एवं बहुवचन की व्यवस्था की गई। तदनन्तर कारक प्रकरण के सूत्र **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से प्रथमा विभक्ति का विधान हुआ। प्रथमा विभक्ति में सु, औ, जस् ये तीन प्रत्यय हैं तो कौन सा प्रत्यय यहाँ लगेगा? ऐसी आकांक्षा में **द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने** सूत्र ने एकसंख्या की विवक्षा में एकवचन का विधान कर दिया। इन तीनों प्रत्ययों में एकवचन प्रत्यय है- सु। अतः राम के बाद सु प्रत्यय हो गया- **राम सु** बना। सु में उकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होकर और **तस्य लोपः** से लोप हो गया तो केवल स् बचा- **राम स्** बना। सकार के स्थान पर **ससजुषो रुः** से रु आदेश हो गया- **राम रु** बना। रु में भी उकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप हो गया- **राम र्** बना। रामर् के बाद की खाली जगह की **विरामोऽवसानम्** से अवसानसंज्ञा हो गई और रकार के स्थान पर **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से विसर्ग हो गया- **रामः** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार से बालकशब्द से बालकः, श्यामशब्द से श्यामः आदि बनाइये।

इस प्रक्रिया को आप पुनः समझें, बार-बार आवृत्ति करें। तभी आगे बढ़ें, अन्यथा आगे समझ में नहीं आयेगा।

इसी को संस्कृत में संक्षिप्ततया इस प्रकार सिद्ध कर सकते हैं-

रामः। अव्युत्पन्नस्य रामशब्दस्य **अर्थवदधातुरप्रातिपदिकम्** इतिसूत्रेण एवञ्च व्युत्पन्नस्य रामशब्दस्य **कृत्तद्धितसमासाश्च** इतिसूत्रेण प्रातिपदिकसंज्ञायां **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा, द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने** इतिसूत्रद्वयसहकारेण **स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङे-भ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्-भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप्** इतिसूत्रेण प्रथमाया एकवचने सुविभक्तौ 'राम सु' इति जाते अनुबन्धलोपे **रामस्** इति जाते सकाररस्य स्थाने **ससजुषो रुः** इतिसूत्रेण रुत्वे रु इत्यत्र उकारस्य इत्संज्ञायां लोपे रामर् इति जाते **विरामोऽवसानम्** इति सूत्रेण अवसानसंज्ञायां **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** इति सूत्रेण रेफस्य स्थाने विसर्गादेशे **रामः** इति रूपं सिद्धम्।

एकशेषविधायकं विधिसूत्रम्

१२५. सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ १।२।६४।।

एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेक एव शिष्यते।

पूर्वसवर्णदीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

१२६. प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ६।१।१०२।।

अकः प्रथमाद्वितीययोरचि पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशः स्यात्। इति प्राप्ते।

....

१२५- सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ। समानं रूपं येषां ते सरूपाः, तेषां सरूपाणाम्, बहुव्रीहिः। शिष्यते इति शेषः, एकश्चासौ शेषः, एकशेषः, कर्मधारयसमासः। एका चासौ विभक्तिः, एकविभक्तिः, तस्याम् एकविभक्तौ, कर्मधारयः। सरूपाणां षष्ठ्यन्तम्, एकशेषः प्रथमान्तम्, एकविभक्तौ सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। एकविभक्तौ सरूपाणाम् एकशेषः (भवति)।

एक (यावत् अर्थात् सभी) विभक्ति के विषय में जितने शब्द एक ही जैसे दीखते हैं, उनमें से एक ही शेष रहता अर्थात् बाकी शब्दों का लोप हो जाता है।

[1]एक ही विभक्ति में जितने शब्द समान रूप के हैं और समान रूप से उच्चारित हैं उनमें से एक ही शेष रह जाता है और बाकी लोप हो जाते हैं। जो शेष रहता है वह लोप हुए वर्णों के अर्थ का वाचक होता है- **यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी।**

समानो रूपः सरूपः, तेषां सरूपाणाम् एकशेषः। एक ही विभक्ति में यदि एक जैसे ही अनेक शब्द उच्चारित हों तो उनमें एक शब्द ही रहता है और बाकी शब्द नहीं रहते। जैसे दो राम के लिए राम राम दो बार उच्चारण होगा, अनेक रामों के लिए राम, राम, राम, राम आदि अनेक रामों का उच्चारण होगा। यदि ये सारे राम आदि एक ही विभक्ति में हैं तो केवल एक राम का शेष होगा और बाकी लुप्त हो जायेंगे। जो शेष है वह लुप्त हुए का भी वाचक होगा। इस प्रकार से एक राम से अनेक राम समझे जायेंगे। यह सूत्र एकशेष-प्रकरण का है। इस प्रकरण में भी एकशेष ही हुआ है।

१२६- प्रथमयोः पूर्वसवर्णः। प्रथमयोः षष्ठ्यन्तं, पूर्वसवर्णः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अकः सवर्णे दीर्घः** से **दीर्घः** की, **इको यणचि** से **अचि** की, **एकः पूर्वपरयोः** इस सूत्र से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

अकः प्रथमयोः अचि पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वसवर्णदीघ एकादेशो भवति। अर्थात् अक् प्रत्याहार से प्रथमा और द्वितीया विभक्ति सम्बन्धी अच् के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश होता है।

टिप्पणी- १- यहाँ पर एक शब्द एकत्वसंख्यावाची न होकर सम्पूर्ण के अर्थ में है। इसीलिए भिन्न-भिन्न अर्थ को बताने वाले व्युत्पन्न और अव्युत्पन्न दो **राम** शब्द हों तो भी एकशेष होता है, क्योंकि दोनों के सभी विभक्तियों में समानरूप होते हैं परन्तु जननीवाची **मातृ** शब्द और परिमाणवाची **मातृ** शब्द का एकशेष नहीं होता, क्योंकि **जननीवाची मातृ** शब्द के **माता, मातरौ, मातरः** आदि और **परिमाणवाची मातृ** शब्द के **माता, मातारौ, मातारः** आदि रूप होते हैं। इस तरह दो **मातृ** शब्दों के **भ्याम्** आदि कुछ विभक्तियों में समान रूप होने पर भी सभी विभक्तियों में समान रूप न होने से एकशेष नहीं होता। अतः **माता च माता च मातृमातरौ** बनना है।

पूर्वसवर्णदीर्घनिषेधकं विधिसूत्रम्

१२७. नादिचि ६।१।१०४।।

आदिचि न पूर्वसवर्णदीर्घः। वृद्धिरेचि। रामौ।

....

एकादेश के विषय में तो आप अच्छी तरह से जानते ही होंगे कि पूर्व और पर के स्थान पर एक ही आदेश होता है किन्तु यहाँ पर जो एकादेश होगा वह पूर्व का ही सवर्णी होगा और दीर्घ भी होगा। जैसे- हरि+अस् में पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होगा तो पूर्व का ही सवर्णी **ई** होगा। कथञ्चित् यदि परसवर्ण का विधान होता तो **आ** हो जाता है। किन्तु यहाँ पर पूर्वसवर्णदीर्घ का विधान हुआ है। यदि यह सूत्र न होता तो **हरीन्** आदि रूप नहीं बन पाते, क्योंकि वहाँ पर **अकः सवर्णे दीर्घः** नहीं लगता, यण् होकर अनिष्ट रूपों की सिद्धि होती।

१२७- **नादिचि।** न अव्ययपदम्, आद् पञ्चम्यन्तम्, इचि सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** से **पूर्वसवर्ण** और **अकः सवर्णे दीर्घः** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है।

अवर्ण से इच् के परे होने पर पूर्वसवर्ण दीर्घ न हो।

यह सूत्र **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** का निषेधसूत्र है। यदि अवर्ण से इच्(प्रत्याहार) परे हो तो पूर्वसवर्णदीर्घ नहीं हो और अन्यत्र तो पूर्वसवर्णदीर्घ हो जाय।

रामौ। दो राम की विवक्षा में राम-राम से प्रथमा का द्विवचन औ विभक्ति हुई। [1]**राम राम औ** बना। यहाँ पर एक ही विभक्ति में दो रामों का उच्चारण हुआ है। अतः एक राम का **सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ** से लोप और एक राम का शेष हुआ। **राम औ** बना। **राम+औ** में **आद्गुणः** से गुण प्राप्त हुआ, उसे बाधकर **वृद्धिरेचि** से वृद्धि प्राप्त हुई। उसे भी बाधकर सूत्र लगा- **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः**। इस सूत्र का अर्थ है- **अक् से प्रथमा और द्वितीया विभक्ति सम्बन्धी अच् के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश हो।** अक् है राम में मकारोत्तरवर्ती **अकार**, प्रथमा विभक्ति-सम्बन्धी अच् परे है **औ**, पूर्व में है अकार और पर में है औकार। दोनों के स्थान पर पूर्वसवर्णदीर्घ अर्थात् पूर्व में विद्यमान वर्ण का सवर्णी दीर्घ आ होगा, क्योंकि पूर्व का वर्ण अकार है उसका सवर्णी दीर्घ आ ही हो सकता है। इस प्रकार से आकाररूप पूर्वसवर्णदीर्घ प्राप्त हो रहा था तो उसे निषेध करने के लिए सूत्र लगा- **नादिचि।** यह सूत्र अवर्ण से इच् परे रहने पर पूर्वसवर्णदीर्घ का निषेध करता है। अवर्ण है राम में **अकार**, इच् परे है **औ**। अतः पूर्वसवर्णदीर्घ का निषेध हो गया। अब पुनः **राम+औ** में **वृद्धिरेचि** सूत्र लगा और वृद्धि हो गई- **रामौ** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार से आप **बालक** से **बालकौ**, **श्याम** से **श्यामौ** आदि भी बना सकते हैं।

टिप्पणी- (१) यह प्रक्रिया शास्त्र में प्रथम प्रवेश करने वाले छात्रों की सरलता के लिए है। वस्तुतः द्वित्व की विवक्षा में जब **राम राम** या बहुत्व की विवक्षा में **राम राम राम** आयेंगे, तब उसी अवस्था में एकशेष होगा और शिष्ट जो एक **राम** है, वह **यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी** के अनुसार द्वित्व या बहुत्व का वाचक होकर उससे द्वित्वविवक्षा में द्विवचन तथा बहुत्वविवक्षा में बहुवचन प्रत्यय होते हैं।

बहुवचनविधायकं नियमसूत्रम्

१२८. बहुषु बहुवचनम् १।४।२१॥

बहुत्वविवक्षायां बहुवचनं स्यात्।

इत्संज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१२९. चुटू १।३।७॥

प्रत्ययाद्यौ चुटू इतौ स्तः।

विभक्तिसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१३०. विभक्तिश्च १।४।१०४॥

सुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः।

इत्संज्ञानिषेधसूत्रम्

१३१. न विभक्तौ तुस्माः १।३।४॥

विभक्तिस्थास्तवर्गसमा नेतः। इति सस्य नेत्त्वम्। रामाः।

....

१२८- **बहुषु बहुवचनम्।** बहुषु सप्तम्यन्तं, बहुवचनं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

बहुत्व संख्या की विवक्षा में बहुवचन होता है।

जिस प्रकार से **द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने** द्वित्वसंख्या की विवक्षा द्विवचन और एकत्वसंख्या की विवक्षा में एकवचन करता है, उसी प्रकार यह सूत्र बहुवचन की विवक्षा हो अर्थात् अनेक संख्या की विद्यमानता हो तो बहुवचन का विधान करता है। राम राम राम या उससे भी अधिक संख्या की, बहुत्व की विवक्षा में बहुवचन के प्रत्यय जस् आदि होंगे। इसके बाद **सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ** से एक राम का शेष रहेगा और बाकी राम का लोप हो जायेगा।

१२९- **चुटू।** चुश्च टुश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः, चुटू। चुटू प्रथमान्तम्, एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **षः प्रत्ययस्य** इस सूत्र से **प्रत्ययस्य** की, **आदिर्ञिटुडवः** इस सूत्र से **आदिः** की और **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से **इत्** की अनुवृत्ति आती है।

प्रत्यय के आदि में स्थित चवर्ग और टवर्ग इत्संज्ञक होते हैं।

किसी भी अर्थात् कृत्, तद्धित, सुप्, तिङ् आदि प्रत्यय के आदि में स्थित चवर्ग च्, छ्, ज्, झ्, ञ् और टवर्ग ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण् की इत्संज्ञा हो जाती है। जैसे- जस् में जकार की और टा में टकार की इत्संज्ञा हो जाती है। बाद में उन वर्णों का **तस्य लोपः** से लोप हो जाता है।

१३०- **विभक्तिश्च।** विभक्तिः प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सुपः** से विभक्तिविपरिणाम करके **सुप्** तथा **तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः** से विभक्तिविपरिणाम करके **तिङ्** की अनुवृत्ति आती है।

सुप् और तिङ् ये विभक्तिसंज्ञक होते हैं।

सुप् और तिङ् की विभक्तिसंज्ञा होने का एक फल अगले सूत्र से इत्संज्ञानिषेध करना भी है।

सम्बुद्धिसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१३२. एकवचनं सम्बुद्धिः २।३।४९॥

सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं सम्बुद्धिसंज्ञं स्यात्।

अङ्गसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१३३. यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् १।४।१३॥

यः प्रत्ययो यस्मात् क्रियते तदादिशब्दस्वरूपं तस्मिन्नङ्गं स्यात्।

....

१३१-न विभक्तौ तुस्माः। तुश्च, स् च, मश्च, तेषामितरेतरद्वन्द्वः, तुस्माः। न अव्ययपदं, विभक्तौ सप्तम्यन्तं, तुस्माः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

विभक्ति में स्थित तवर्ग, सकार और मकार इत्संज्ञक नहीं होते हैं।

यह **हलन्त्यम्** का बाधक सूत्र है। तु-तवर्ग, सकार और मकार यदि ये विभक्ति में स्थित हैं तो इनकी इत्संज्ञा का निषेध करता है। जैसे- जस्, शस्, भिस्, भ्यस्, ओस् में सकार की और अम्, भ्याम्, आम् में मकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा प्राप्त हो रही थी, उसे इस सूत्र से निषेध किया गया।

रामाः। बहुत्व संख्या की विवक्षा में राम, राम, राम, राम से **बहुषु बहुवचनम्** से बहुवचन **जस्** प्रत्यय का विधान किया गया- **राम राम राम जस्** बना। **सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ** से एक राम का शेष और अन्यों का लोप- **राम जस्** बना। जस् में जकार की प्रत्ययादि चवर्ग होने से **चुटू** से इत्संज्ञा करके **तस्य लोपः** से लोप हो गया- **राम अस्** बना। अस् में सकार की भी **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा प्राप्त हो रही थी। उसे **न विभक्तौ तुस्माः** से निषेध हो गया। **राम अस्** है। राम+अस् में **आद्गुणः** से गुण प्राप्त था, उसे बाधकर **अकः सवर्णे दीर्घः** से सवर्णदीर्घ प्राप्त हुआ। उसे भी बाधकर के सूत्र लगा- **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः**। इस सूत्र से पूर्वसवर्ण दीर्घ होकर रामास् बना। सकार के स्थान पर **ससजुषो रुः** से रुत्व हुआ। अनुबन्ध लोप होने के बाद रेफ के स्थान पर **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से विसर्ग हुआ- **रामाः**। अब इसी प्रकार से बालक से **बालकाः**, श्याम से **श्यामाः** आदि भी बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

उक्त प्रकार से आपने प्रथमा विभक्ति के तीनों वचनों के रूप देखा। अब इनका पुनःपुनः अभ्यास करें। कहीं भी कोई सन्देह हो तो अपने गुरु जी से पूछें। अब इसके बाद सम्बोधन के विषय में जानेंगे। सम्बोधन में भी **प्रथमा** विभक्ति ही होती है।

१३२- एकवचनं सम्बुद्धिः। एकवचनं प्रथमान्तं, सम्बुद्धिः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सम्बोधने च** से **सम्बोधने** की तथा **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से **प्रथमा** इस पद की विभक्तिविपरिणाम अर्थात् षष्ठीविभक्तियुक्त करके **प्रथमायाः** की अनुवृत्ति आती है।

सम्बोधन में प्रथमा का एकवचन सम्बुद्धिसंज्ञक होता है।

दूसरे को अपनी तरफ आकृष्ट करना और तदर्थ उसके नाम या किसी शब्दविशेष से उसे इंगित करने को **सम्बोधन** कहते हैं। जैसे अरे राम! हे कृष्ण! ओ पिता जी! अये वत्स! आदि। इस प्रकार से सम्बोधन में जो प्रथमा विभक्ति है उसके एकवचन की सम्बुद्धिसंज्ञा होती है अर्थात् 'सु' की सम्बुद्धिसंज्ञा होती है। सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति का विधान **सम्बोधने च** यह सूत्र करता है।

लोपविधायकं विधिसूत्रम्

१३४. एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः ६।१।६९॥

एङन्ताद्ध्रस्वान्ताच्चाङ्गाद्धल्लुप्यते सम्बुद्धेश्चेत्।

हे राम। हे रामौ। हे रामाः।

....

१३३-यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्। विधानं विधिः। प्रत्ययस्य विधिः प्रत्ययविधिः, षष्ठीतत्पुरुषः। तत् प्रकृतिरूपम् आदिर्यस्य शब्दस्वरूपस्य तत्- तदादि, बहुव्रीहिः। यस्मात् पञ्चम्यन्तं, प्रत्ययविधिः प्रथमान्तं, तदादि प्रथमान्तं, प्रत्यये सप्तम्यन्तम्, अङ्गं प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

जो प्रत्यय जिस शब्द से विधान किया जाता है, वह शब्द आदि में है जिसके, ऐसा शब्दस्वरूप उस प्रत्यय के परे होने पर अङ्गसंज्ञक होता है।

जिस प्रकृति से प्रत्यय होता है उस प्रत्यय के परे रहने पर पूर्व में जो भी प्रकृति है और प्रकृति में आगम, आदेश आदि अथवा उस प्रकृति से विहित प्रत्यय के पहले कोई दूसरा **शप्, श्नम्** आदि जैसे विकरण प्रत्यय हुए हों तो भी उस विकरण शप् आदि प्रत्ययविशिष्ट प्रकृति को अङ्ग कहा जाता है। अतः तादृश सम्पूर्ण प्रकृति की अङ्गसंज्ञा होती है। **तदादि**-शब्द के प्रयोग से उस प्रत्यय के परे होने पर यदि प्रत्यय के समय प्रकृति कुछ और रही हो और प्रत्यय के बाद पुनः अन्य कोई विकरण प्रत्यय हुए हों या आगम, आदेश आदि हुए हों तो भी उस आगम, आदेश सहित प्रकृति की अङ्गसंज्ञा हो जाती है। जैसे- तिङन्तप्रकरण में **भू-धातु** से मिप् प्रत्यय आया तो मिप् के परे होने पर भू अङ्गसंज्ञक है तो भू से मिप् के बीच में शप्, अनुबन्धलोप, भू को गुण, अव् आदेश करने के बाद भव+मि बना तो भी मि के परे होने पर पूर्व में विद्यमान **भव** भी अङ्गसंज्ञक हो जाता है। व्याकरणशास्त्र में अङ्ग कहने से पर में प्रत्यय होते हुए पूर्व में जो प्रकृति है उसे जानना चाहिए। जैसे **राम+सु** में **सु** प्रत्यय **राम** इस प्रकृति से हुआ। अतः **सु** के परे रहते **राम** यह शब्द **अङ्गसंज्ञक** है।

राम सु इत्यादि में **सु** प्रत्यय के परे रहते [1]व्यपदेशिवद्भाव से **राम** को भी **तदादि** मानकर **अङ्गसंज्ञा** होती है।

१३४- एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः। एङ् च, ह्रस्वश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः- एङ्ह्रस्वम्, तस्मात्, एङ्ह्रस्वात्। एङ्ह्रस्वात् पञ्चम्यन्तं, सम्बुद्धेः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से **हल्** की अनुवृत्ति आती है।

एङन्त अङ्ग और ह्रस्वान्त अङ्ग से पर में रहने वाले सम्बुद्धि के हल् का लोप होता है।

एङ् प्रत्याहार है, अङ्ग संज्ञा है। यह सूत्र केवल सम्बोधन के एकवचन में ही लगता है, क्योंकि सम्बुद्धिसंज्ञा केवल उसी की ही होती है। इस तरह एङन्त अङ्ग और

टिप्पणी(१) विशिष्टः(मुख्यः) अपदेशः(व्यवहारः) व्यवदेशः, स अस्यास्तीति व्यपदेशी-मुख्यव्यवहारवान्। व्यपदेशिना तुल्यं व्यपदेशिवत्- मुख्य व्यवहार वाले जैसा। वस्तुतः जो मुख्यव्यवहार वाला नहीं है, उसे वैसा मानना ही **व्यवदेशीवद्भाव** करना है। यहाँ **सु** के परे रहते प्रकृति **राम** किसी के आदि में नहीं है अर्थात् तदादि नहीं है, फिर भी वैसा मानकर अर्थात् **व्यपदेशीवद्भाव** करके उस **राम** की **अङ्गसंज्ञा** की जाती है।

पूर्वरूपविधायकं विधिसूत्रम्

१३५. अमि पूर्वः ६।१।१०७॥

अकोऽम्यचि पूर्वरूपमेकादेशः। रामम्। रामौ।

इत्संज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१३६. लशक्वतद्धिते १।३।८॥

तद्धितवर्जप्रत्ययाद्या लशकवर्गा इतः स्युः।

....

ह्रस्वान्त अङ्ग से परे सम्बुद्धि के हल् का लोप हो जाता है। ह्रस्वान्त का उदाहरण- **हे रामस्- हे राम**, एङन्त का उदाहरण- **हे हरेस्- हे हरे, विष्णोस्- हे विष्णो। हे रमेस्- हे रमे** इत्यादि। हे, भोः, अयि आदि सम्बोधनसूचक शब्दों का पूर्वप्रयोग होता है अर्थात् सम्बोधन में हे, अयि, भोः आदि के प्रयोग करने का प्रचलन है। प्रथमा विभक्ति के समान ही सम्बोधन में रूप बनते हैं किन्तु एकवचन में एङन्त और ह्रस्वान्त से परे सु के सकार का लोप होता है।

हे राम। सम्बोधन के एकवचन में प्रथमा का एकवचन सु आया, अनुबन्धलोप करके **राम+स्** बना। राम की अङ्गसंज्ञा और स् की सम्बुद्धिसंज्ञा करके स् की **एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः** से लोप हुआ और **हे** का पूर्वप्रयोग हुआ **हे राम।**

हे रामौ। हे रामाः। जैसे प्रथमा के द्विवचन और बहुवचन में आपने **रामौ, रामाः** बनाया, उसी तरह सम्बोधन के द्विवचन और बहुवचन में भी **रामौ, रामाः** बनाने के बाद हे का पूर्वप्रयोग करने पर **हे रामौ** और **हे रामाः** सिद्ध हो जाते हैं।

१३५- **अमि पूर्वः।** अमि सप्तम्यन्तं, पूर्वः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अकः सवर्णे दीर्घः** से अकः की और **इको यणचि** से **अचि** की अनुवृत्ति आती है और **एकः पूर्वपरयोः** का अधिकार है।

अक् से अम् सम्बन्धी अच् के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर पूर्वरूप एक आदेश होता है।

पूर्वरूप और पररूप के विषय में हम पहले भी समझा चुके हैं। हाँ, यहाँ इतना जानना जरूरी है कि यह अक् पूर्व में हो और अम् का अकार पर में हो तो ही पूर्वरूप एकादेश करता है।

रामम्। राम-शब्द से **कर्मणि द्वितीया** इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति का विधान हुआ और एकत्वविवक्षा में द्वितीया विभक्ति का एकवचन **अम्** आया- **राम अम्** बना। **राम+अम्** में **आद्गुणः** से गुण की प्राप्ति हुई उसे बाधकर **अकः सवर्णे दीर्घः** से सवर्णदीर्घ प्राप्त हुआ। उसे भी बाधकर सूत्र लगा- **अमि पूर्वः।** अक् है राम में मकारोत्तरवर्ती अकार और अम् का अकार भी परे है। पूर्व में है अ और पर में भी अ ही है। दोनों के स्थान पर पूर्वरूप हुआ तो एक ही अकार बना। **राम्+अ+म्** हुआ। वर्णसम्मेलन हुआ- **रामम्** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार आप श्याम से श्यामम्, बालक से बालकम् आदि सिद्ध करने का भी अभ्यास करें।

रामौ। द्वितीया के द्विवचन में **औट्** आया। टकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा हुई और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। **राम राम औ** बना। एकशेष हुआ। **राम औ** बना। प्रथमा के द्विवचन में जैसे वृद्धि होकर रामौ बना था, वैसे ही यहाँ पर भी **रामौ** सिद्ध करें।

नत्वविधायकं विधिसूत्रम्

१३७. तस्माच्छसो नः पुंसि ६।१।१०३॥

पूर्वसवर्णदीर्घात्परो यः शसः सस्तस्य नः स्यात् पुंसि।

णत्वविधायकं विधिसूत्रम्

१३८. अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ८।४।२॥

अट् कवर्गः पवर्ग आङ् नुम् एतैर्व्यस्तैर्यथासम्भवं मिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्यां परस्य नस्य णः समानपदे। इति प्राप्ते।

१३६- लशक्वतद्धिते। लश्च, शश्च, कुश्च, तेषां समाहारद्वन्द्वः, लशकु। न तद्धितम्- अतद्धितं, तस्मिन् अतद्धिते। लशकु प्रथमान्तम्, अतद्धिते सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **षः प्रत्ययस्य** से षः की, **आदिर्ञिटुडवः** से **आदिः** की और **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत् की अनुवृत्ति आती है।

तद्धित को छोड़कर प्रत्यय के आदि में विद्यमान लकार, तालव्य शकार और कवर्ग इत्संज्ञक होते हैं।

इस तरह इस सूत्र से शस् में शकार, लट्, लिट्, लुट्, लेट् आदि में लकार और क्विप् आदि में ककार की इत्संज्ञा इस सूत्र के द्वारा प्राप्त होती है। तद्धित वाले प्रत्ययों में उक्त कार्य नहीं होता। **पाणिनीयाष्टाध्यायी** के चतुर्थाध्याय के प्रथमपाद के **तद्धिताः** सूत्र के अधिकार में पढ़े गये पाँचवें अध्याय की समाप्ति तक के सभी सूत्रों से किये गये प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहा जाता है।

१३७- तस्माच्छसो नः पुंसि। तस्मात् पञ्चम्यन्तं, शसः षष्ठ्यन्तं, नः प्रथमान्तं, पुंसि सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

पूर्वसवर्णदीर्घ से परे शस् के सकार के स्थान पर नकार आदेश होता है, पुँल्लिङ्ग में।

तस्मात् का अर्थ यहाँ पर **पूर्वसवर्ण** है, क्योंकि **तत्** शब्द पूर्व प्रसंग का बोधक होता है। इस सूत्र से पूर्व का सूत्र था- **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः**। अतः उस पूर्वसवर्ण से परे शस् के सकार के स्थान पर नकार आदेश होता है, केवल पुँल्लिङ्ग में, ऐसा अर्थ सम्पन्न होता है। ध्यान रहे कि यह पूर्वसवर्णदीर्घ के हो जाने के बाद ही लगता है और पूर्वसवर्णदीर्घ अक् से प्रथमा और द्वितीया विभक्ति सम्बन्धी अच् के परे रहने पर ही होता है।

१३८- अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि। अट् च कुश्च पुश्च आङ् च नुम् च, तेषामितरेतरद्वन्द्वः, अट्कुप्वाङ्नुमः, अट्कुप्वाङ्नुम्भिर्व्यवायः- अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायः, तस्मिन् अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवाये, तृतीयातत्पुरुषः। अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवाये सप्तम्यन्तम्, अपि अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **रषाभ्यां नो णः समानपदे** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होकर आता है।

अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम् इनका अलग-अलग या दो, तीन, चार वर्ण मिलकर व्यवधान होने पर भी रेफ और षकार से परे नकार के स्थान पर णकार आदेश होता है, समानपद में।

अष्टाध्यायी में इस के पहले का सूत्र **रषाभ्यां नो णः समानपदे** है। वह रेफ और

णत्वनिषेधसूत्रम्

१३९. पदान्तस्य ८।४।३७॥

नस्य णो न। रामान्।

इनात्स्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१४०. टाङसिङसामिनात्स्याः ७।१।१२॥

अदन्ताट्टादीनामिनादयः स्युः। णत्वम्। रामेण।

....

षकार से परे नकार के स्थान पर णकार आदेश करता है समानपद में। रेफ या षकार के बाद नकार के बीच में किसी भी वर्ण का व्यवधान नहीं होना चाहिए। किन्तु यह सूत्र भी कहता है कि व्यवधान नहीं होना चाहिए, हाँ यदि किसी का व्यवधान भी हो तो केवल अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम् का ही व्यवधान हो। अर्थात् रेफ से परे नकार का णत्व होता है और षकार से परे नकार का भी णत्व हो जाता है। रेफ और नकार के बीच या षकार और नकार के बीच यदि कोई वर्ण हो तो अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम ही हो, अन्य कोई वर्ण न हो। इनके व्यवधान में भी णत्व होता है और व्यवधान न होने पर भी णत्व हो जाता है। समानपदे का तात्पर्य यह है कि रेफ या षकार और नकार दोनों एक ही पद में विद्यमान हों।

१३९- पदान्तस्य। पदान्तस्य षष्ठ्यन्तम्। इस सूत्र में **रषाभ्यां नो णः समानपदे** से **नः** और णः की तथा **न भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपाम्** से न की अनुवृत्ति आती है।

पदान्त नकार को णत्व नहीं होता है।

यह निषेध सूत्र है। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से प्राप्त णत्व यदि पद के अन्त्य में विद्यमान नकार के स्थान पर हो रहा है तो वह न हो। अन्यत्र वह सूत्र णत्व करता है किन्तु पद के अन्त्य में यदि नकार है तो उसके स्थान पर प्राप्त णत्व नहीं होता।

रामान्। राम राम राम से बहुत्वविवक्षा में द्वितीया का बहुवचन शस् आया। एकशेष हुआ। **राम शस्** बना। शस् के शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा हुई और **तस्य लोपः** से लोप हुआ- अस् बचा, राम+अस् बना। **राम+अस्** में गुण को बाधकर वृद्धि प्राप्त, उसे भी बाधकर **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** से पूर्वसवर्णदीर्घ हुआ, **रामास्** बना। उसके बाद सूत्र लगा- **तस्माच्छसो नः पुंसि**। पूर्वसवर्णदीर्घ से परे शस् के सकार को नकारादेश होता है। इससे रामास् के सकार को नकार हुआ- **रामान्** बना। रामान् के नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** णत्व करना चाहता था किन्तु **पदान्तस्य** ने निषेध कर दिया। रामान् ही रह गया। अर्थात् णत्व नहीं हुआ। **रामान्** सिद्ध हुआ। अब इसी प्रकार बालकान्, श्यामान् आदि की भी सिद्धि करें।

अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि यह सूत्र यहाँ पर कैसे घटित हुआ? उसे देखिये- रामान् में प्रथम वर्ण रकार (रेफ) है और अन्तिम वर्ण है नकार। रेफ से परे नकार को णत्व होता है किन्तु इन दोनों के मध्य आ, म्, आ इतने वर्णों का व्यवधान है। क्या इतने वर्णों के व्यवधान होने पर भी णत्व हो सकता है? सूत्र के अर्थ पर विचार करिये। यदि रेफ और नकार के बीच किसी वर्ण का व्यवधान हो तो अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम् इतने वर्णों का व्यवधान हो सकता है। यहाँ पर तीन वर्णों में से आ, आ ये दो वर्ण तो अट् प्रत्याहार

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

१४१. सुपि च ७।३।१०२॥

यञादौ सुपि अतोऽङ्गस्य दीर्घः। रामाभ्याम्

ऐसादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१४२. अतो भिस ऐस् ७।१।९॥

अनेकाल्शित्सर्वस्य। रामैः।

....

में आते हैं और मकार पवर्ग में आता है। अतः इनके व्यवधान के में णत्व के लिए कोई बाधा नहीं है। इसलिए णत्व की प्राप्ति हुई थी।

१४०- **टाङसिङसामिनात्स्याः**। टाश्च ङसिश्च ङश्च, तेषामितरेतरद्वन्द्वः, टाङसिङसः, तेषां- टाङसिङसाम्। इनश्च, आच्च, स्यश्च, तेषामितरेतरद्वन्द्वः, इनात्स्याः। टाङसिङसां षष्ठ्यन्तम्, इनात्स्याः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अतो भिस ऐस्** से **अतः**, **अङ्गस्य** से विभक्तिविपरिणाम होकर **अङ्गात्** की अनुवृत्ति आ रही है।

अदन्त अङ्ग से परे टा, ङसि, ङस् इनके स्थान पर क्रमशः इन, आत्, स्य ये आदेश होते हैं।

यहाँ स्थानी भी तीन हैं और आदेश भी तीन। अतः **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** इस सूत्र के नियमानुसार क्रम से होगा। स्थानी में प्रथम टा के स्थान पर आदेश में प्रथम इन आदेश, स्थानी में द्वितीय ङसि के स्थान पर आदेश में द्वितीय आत् आदेश और स्थानी में तीसरे ङस् के स्थान पर आदेश में तीसरा स्य आदेश होगा। अदन्त= ह्रस्व अकारान्त।

रामेण। तृतीया विभक्ति के एकवचन में **टा** है। तृतीया विभक्ति का विधान करता है कारक-प्रकरण का सूत्र- **कर्तृकरणयोस्तृतीया**। एकत्वसंख्या की विवक्षा में एकवचन टा है। **राम टा** बना। टा में टकार की **चुटू** सूत्र से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। **राम आ** बना। टा सम्बन्धी आकार के स्थान पर **टाङसिङसामिनात्स्याः** से **इन** आदेश हुआ- **राम इन** बना। **राम+इन** में **आद्गुणः** से गुण हो गया, **रामेन** हुआ। अब **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से नकार के स्थान पर णत्व हुआ- **रामेण**। अब इसी प्रकार श्यामेन, बालकेन आदि भी बनायें। इनमें अन्तर इतना ही है कि रेफ या षकार के अभाव में नकार का णत्व नहीं हुआ।

१४१- **सुपि च**। सुपि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अतो दीर्घो यञि** इस सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति होती है। **अङ्गस्य** का अधिकार भी चल ही रहा है। **अदन्ताङ्गस्य दीर्घो भवति यञादौ सुपि।**

ह्रस्व अकारान्त अङ्ग के अन्त्य को दीर्घ हो यञ् प्रत्याहार वाला वर्ण आदि में हो ऐसे सुप् विभक्ति के परे रहने पर।

अलोऽन्त्यस्य की उपस्थिति से **अन्त्य के स्थान पर** यह अर्थ बनता है।

रामाभ्याम्। राम-राम शब्द से तृतीय का द्विवचन भ्याम् आया, एक राम का शेष और एक राम का लोप- **सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ** से। **राम+भ्याम्** बना। **सुपि च**। अदन्त अङ्ग है राम और उसका अन्त्य वर्ण है राम में मकारोत्तरवर्ती अकार, उससे यञादि सुप् परे है भ्याम्- सुप् तो पूरा भ्याम् है और उसका आदि वर्ण भ् यञ् प्रत्याहार में आता है। अतः भ्याम् के परे रहने पर राम के अकार का दीर्घ हुआ- **रामाभ्याम्** बना। इसी प्रकार

यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१४३. ङेर्यः ७।१।१३॥

अतोऽङ्गात्परस्य ङेर्यादेशः।

स्थानिवद्भावविधायकम् अतिदेशसूत्रम्

१४४. स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ १।१।५६॥

आदेशः स्थानिवत्स्यान्नतु स्थान्यलाश्रयविधौ।

इति स्थानिवत्त्वात् सुपि चेति दीर्घः। रामाय। रामाभ्याम्।

....

चतुर्थी एवं पञ्चमी विभक्ति के द्विवचन में भी **रामाभ्याम्** ही बनेगा। इसी प्रकार श्याम से **श्यामाभ्याम्** और बालक से **बालकाभ्याम्** भी बनाइये।

१४२- अतो भिस ऐस्। अतः पञ्चम्यन्तं, भिसः षष्ठ्यन्तम्, ऐस् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। यहाँ **अङ्गस्य** का भी अधिकार है।

ह्रस्व अकारान्त अङ्ग से परे भिस् के स्थान पर ऐस् आदेश होता है।

भिस् के सकार की इत्संज्ञा प्राप्त है, उसका **न विभक्तौ तुस्माः** से निषेध होता है। **अनेकाल् शित्सर्वस्य** इस परिभाषा सूत्र के बल पर सम्पूर्ण **भिस्** के स्थान पर **ऐस्** आदेश होता है। ह्रस्व अकारान्त शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में ही मिलेंगे, स्त्रीलिङ्ग में नहीं क्योंकि स्त्रीलिङ्ग में ह्रस्व अकारान्त सभी शब्द **अजाद्यतष्टाप्** सूत्र से आकारान्त बन जाते हैं या अन्य सूत्रों से स्त्रीत्वबोधक ङीप्, ङीष् आदि होकर ईकारान्त आदि बनते हैं।

रामैः। राम-राम-राम से तृतीया का बहुवचन भिस् आया। एक राम का शेष और अन्य राम का लोप। राम भिस् में **अतो भिस ऐस्** लगाया गया। अदन्त अङ्ग है राम और उससे परे भिस् सम्पूर्ण के स्थान पर ऐस् आदेश हुआ। **राम+ऐस्** बना। **राम+ऐस् वृद्धिरेचि** से वृद्धि होकर **रामैस्** बना। सकार का **ससजुषो रुः** से रुत्व और रेफ का **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से विसर्ग हुआ, **रामैः** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार श्याम से **श्यामैः** और बालक से **बालकैः** भी बनाइये।

१४३- ङेर्यः। ङेः षष्ठ्यन्तं, यः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अतो भिस ऐस्** से **अतः** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

ह्रस्व अवर्णान्त अङ्ग से परे 'ङे' के स्थान पर 'य' आदेश होता है।

इस सूत्र से **राम ङे** में ङे के स्थान पर **य** आदेश होकर **राम+य** बन जाता है।

१४४- स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ। स्थानिवद् अव्ययपदम्, आदेशः प्रथमान्तम्, अनल्विधौ सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

आदेश स्थानी के समान होता है किन्तु यदि स्थानी सम्बन्धी अल् को आश्रय लेकर कोई विधि(कार्य) करना हो तो नहीं होता।

इस सूत्र के द्वारा किये गये कार्य को **स्थानिवद्भाव** कहते हैं। **स्थानिवद्भाव** का तात्पर्य **स्थानी के जैसा भाव**। पहले स्थानी में हम जो भाव रखते थे, वैसा ही भाव आदेश में भी रखना, क्योंकि आदेश स्थानी के स्थान पर, स्थानी को हटाकर होता है। स्थानिवद्भाव से स्थानी का स्थानित्व आदेश में भी आ जाता है। लोक व्यवहार में जैसे गुरु के बाद गुरु का स्थानापन्न व्यक्ति लगभग उसी प्रकार का अधिकार, सम्मान आदि प्राप्त करता है। पिता के बाद

एत्वविधायकं विधिसूत्रम्

१४५. बहुवचने झल्येत् ७।३।१०३॥

झलादौ बहुवचने सुप्यतोऽङ्गस्यैकारः। रामेभ्यः। सुपि किम्? पचध्वम्।

....

पिता के स्थानापन्न पुत्र पिता के कतिपय अधिकार खास करके सम्पत्ति आदि का स्वतः ही अधिकारी हो जाता है। वहाँ केवल कागजी खाना-पूर्ति करनी पड़ती है। इसी प्रकार स्थानी के स्थान पर आने वाला आदेश भी आदेश के गुणों को प्राप्त हो जाता है। आदेश स्थानी जैसा होता है, अनल्विधि में **स्थानिना तुल्यं- स्थानिवत्**, स्थानी का जैसा होना अर्थात् स्थानी में जो गुण है वह गुण आदेश में भी आ जाय, स्थानी को मानकर के होने वाले सारे कार्य आदेश को भी हो जायें। किन्तु यह कार्य अल्विधि में नहीं होगा। अल्विधि का तात्पर्य अल् प्रत्याहार है और अल् को निमित्त मानकर होने वाली विधि। किसी एक अल् मात्र को (एक वर्ण विशेष को) निमित्त मानकर के होने वाली विधि में स्थानिवद् भाव नहीं होगा। जैसे आगे **सुपि च** से दीर्घ करना है। इस सूत्र से होने वाली दीर्घविधि में सुप् को निमित्त माना गया। सुप् केवल एक वर्ण न होकर वर्णों के समुदाय से बना प्रत्यय है। **राम+ङे** में 'ङे' के स्थान पर जो 'य' आदेश हुआ, उस आदेश में 'ङे' इस स्थानी का जो सुप् अर्थात् सुप्त्व गुण था वह गुण आ जायेगा।

वैसे केवल 'य' यह आदेश सुप् के अन्तर्गत नहीं आता फिर भी इस सूत्र से स्थानिवद्भाव हो जाने पर ङे में जो सुप्त्व था वह 'य' में भी आ जाता है। 'य' को सुप् मान लिया जाता है। अत एव **सुपि च** सूत्र से राम+य में दीर्घ होकर **रामाय** बन जाता है।

रामाय। राम शब्द से **चतुर्थी सम्प्रदाने** इस कारक के सूत्र से चतुर्थी का विधान किया गया। एकत्व संख्या में एकवचन **ङे** आया। ङकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप हुआ- **राम+ए** बना। इसके बाद **ङेर्यः** से ङे-सम्बन्धी एकार के स्थान पर **'य'** आदेश हुआ- **राम+य** बना। **स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ** से **य** के स्थानिवद्भाव होने से सुप् मान लिया गया। **राम+य** में यञादि सुप् य को मान कर अदन्त अंग राम के अन्त्य वर्ण अकार के स्थान पर दीर्घ आदेश हुआ- **रामाय** बना। अब इसी प्रकार श्याम से श्यामाय और बालक से बालकाय बनाने का प्रयत्न करे।

चतुर्थी के द्विवचन में भी तृतीया के द्विवचन के समान **रामाभ्याम्** ही बनेगा। इसी प्रकार से बालक से बालकाभ्याम् और श्याम से श्यामाभ्याम् भी बनाकर देखिये।

१४५- बहुवचने झल्येत्। बहुवचने सप्ताम्यन्तं, झलि सप्तम्यन्तम्, एत् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अतो दीर्घो यञि** से **अतः** की एवं **सुपि च** से **सुपि** की अनुवृत्ति और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

झलादि बहुवचन सुप् के परे रहने पर अदन्त अङ्ग के अन्त के स्थान पर एकार आदेश हो।

पूर्व में अदन्त अर्थात् ह्रस्व अकार हो और पर में सुप् हो, वह सुप् बहुवचन वाला हो और उसका आदि वर्ण झल् प्रत्याहार के अन्तर्गत का वर्ण हो। ऐसी स्थिति में पूर्व में विद्यमान ह्रस्व अकार के स्थान पर एकार आदेश हो जायेगा। इस सूत्र में **बहुवचने** कहने के कारण रामस्य आदि एकवचन में एत्व नहीं हुआ।

रामेभ्यः। रामशब्द से बहुत्व विवक्षा में चतुर्थी का बहुवचन भ्यस् आया, एकशेष

चर्त्वविधायकं विधिसूत्रम्

१४६. वाऽवसाने ८।४।५६॥

अवसाने झलां चरो वा। रामात्, रामाद्। रामाभ्याम्। रामेभ्यः। रामस्य।

एत्वविधायकं विधिसूत्रम्

१४७. ओसि च ७।३।१०४॥

अतोऽङ्गस्यैकारः। रामयोः।

....

हुआ। राम+भ्यस् बना। **बहुवचने झल्येत्** से राम के अकार के स्थान पर एकार आदेश हुआ। रामेभ्यस् बना। अन्त सकार को रुत्व हुआ और उसके स्थान पर विसर्ग हुआ- **रामेभ्यः**। बालक के **बालकेभ्यः** और श्याम से **श्यामेभ्यः** आदि भी बनाने का प्रयत्न करें।

१४६- **वावसाने**। वा अव्ययपदम्, अवसाने सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **झलां जश् झशि** से **झलां** की तथा **अभ्यासे चर्च** से **चर्** की अनुवृत्ति है।

अवसान परे होने पर झल् के स्थान पर विकल्प से चर् आदेश होता है।

विरामोऽवसानम् का स्मरण करें। अवसान परे होने पर झलों के स्थान पर चर् आदेश होते हैं विकल्प से। अतः इस सूत्र के लगने के बाद दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। झल्-प्रत्याहार में वर्ग के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ अक्षर तथा श्, ष्, स्, ह् ये वर्ण आते हैं। इस विषय में **खरि च** की व्याख्या का अवलोकन करें।

रामात्, रामाद्। **अपादाने पञ्चमी** से पञ्चमी विभक्ति का विधान होता है। रामशब्द से एकत्वसंख्या की विवक्षा में पञ्चमी का एकवचन ङसि आया। ङकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और इकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा, दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हो गया, अस् बचा, राम अस् बना। ङसि-सम्बन्धी अस् के स्थान पर **टाङसिङसामिनात्स्याः** से आत् आदेश हुआ- **राम आत्** बना। राम+आत् में **अकः सवर्णे दीर्घः** से सवर्णदीर्घ हुआ- **रामात्** बना। तकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से जशत्व होकर दकार हो गया- **रामाद्** बन गया। दकार के स्थान पर **वावसाने** से चर्त्व होकर तकार हो गया। जब झल् के स्थान पर चर् आदेश का विधान होता है तो **स्थानेऽन्तरतमः** के सहयोग से स्थान और अल्पप्राण प्रयत्न की तुल्यता पर च्, ट्, त्, क्, प् में से कोई एक वर्ण होगा। रामाद् के दकार के स्थान पर स्थान और अल्पप्राण की तुल्यता होने के कारण तकार आदेश हुआ। **रामात्** बना। चर्त्व का विधान विकल्प से है। चर्त्व न होने के पक्ष में दकार ही रह गया, अतः **रामाद्** भी बनेगा। इस प्रकार से पञ्चमी के एक वचन में **रामात्, रामाद्** दो रूप बन गये। अब इसी प्रकार से श्याम से **श्यामात्-श्यामाद्** और बालक से **बालकात्-बालकाद्** रूप बनाइये।

पञ्चमी के द्विवचन में पूर्ववत् **रामाभ्याम्** और बहुवचन में **रामेभ्यः** भी बनाते जाइये। इसी प्रकार श्याम से **श्यामाभ्याम्** और **श्यामेभ्यः** तथा बालक से **बालकाभ्याम्** और **बालकेभ्यः** भी बनाकर ही आगे बढ़िये।

रामस्य। षष्ठी विभक्ति का विधान कारक प्रकरण में **षष्ठी शेषे** से होता है। राम शब्द से षष्ठी का एकवचन ङस् आया। ङकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप हो गया। **राम अस्** बना। अस् के स्थान पर **टाङसिङसामिनात्स्याः** से स्य आदेश हुआ- **रामस्य** बना। इसी प्रकार से श्याम से **श्यामस्य** और बालक से **बालकस्य** बनाइये।

नुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

१४८. ह्रस्वनद्यापो नुट् ७।१।५४॥

ह्रस्वान्तान्नद्यन्तादाबन्ताच्चाङ्गात्परस्यामो नुडागमः।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

१४९. नामि ६।४।३॥

अजन्ताङ्गस्य दीर्घः। रामाणाम्। रामे। रामयोः। सुपि एत्वे कृते-

....

१४७- ओसि च। ओसि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अतो भिस ऐस्** और **बहुवचने झल्येत्** से क्रमशः **अतः** और **एत्** की अनुवृत्ति एवं **अङ्गस्य** का अधिकार आता है।

ह्रस्व अकारान्त अङ्ग से ओस् के परे रहने पर अकार के स्थान पर एकार आदेश होता है।

रामयोः। रामशब्द से षष्ठी का द्विवचन ओस् आया और एकशेष हुआ- **राम ओस्** बना। **न विभक्तौ तुस्माः** से निषेध होने के कारण ओस् के सकार की इत्संज्ञा नहीं हुई। **राम+ओस्** में गुण, वृद्धि प्राप्त हुई तो उसे बाधकर सूत्र लगा- **ओसि च**। अदन्त अङ्ग को एकार आदेश होता है ओस् के परे रहने पर। अदन्त अङ्ग है राम और उसके अकार के स्थान पर एकार आदेश हो गया- **रामे+ओस्** बना। रामे+ओस् में **एचोऽयवायावः** से एकार के स्थान पर अय् आदेश हुआ- **राम्+अय्+ओस्** बना। वर्णसम्मेलन होते हुए म् अ से मिला, **य्** जाकर **ओ** से मिला- **रामयोस्** बना। सकार का रुत्व हुआ और उसके स्थान पर विसर्ग हुआ- **रामयोः** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार से सप्तमी के द्विवचन में भी **रामयोः** ही बनता है। इसी प्रकार श्याम से **श्यामयोः** और बालक से **बालकयोः** भी बनाइये।

१४८- ह्रस्वनद्यापो नुट्। ह्रस्वश्च, नदी च, आप्च, ह्रस्वनद्याप्, तस्मात्, ह्रस्वनद्यापः, समहारद्वन्द्वः। ह्रस्वनद्यापः पञ्चम्यन्तं, नुट् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है और **आमि सर्वनाम्नः सुट्** से **आमि** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का सम्बन्ध ह्रस्वान्त से भी है, नद्यन्त से भी है और आबन्त से भी है।

ह्रस्वान्त अङ्ग, नद्यन्त अङ्ग और आबन्त अङ्ग से परे आम् को नुट् आगम हो।

ह्रस्व वर्ण अन्त में हो उसे ह्रस्वान्त, नदीसंज्ञक वर्ण (स्त्रीलिंग के ईकार और ऊकार) अन्त में हों उन्हें नद्यन्त और आप् प्रत्यय अन्त में हो ऐसे आबन्त, ऐसे शब्दों से परे षष्ठीविभक्ति के बहुवचन वाले आम् को नुट् का आगम हो जाता है। नुट् में टकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है और उकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है तथा दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हो जाता है। इस आगम में टकार की इत्संज्ञा होने के कारण यह टित् कहलाता है। टित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियमानुसार जिसको आगम का विधान किया गया उसके आदि में होगा। यहाँ पर **ह्रस्वनद्याप्रो नुट्** ने आम् को नुट् का विधान किया है। अतः आम् के आदि में स्थित आकार के आद्यावयव होकर के बैठेगा।

१४९- नामि। नामि सप्तम्यन्तम्, एकपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है और **अचश्च** इस परिभाषा सूत्र से यहाँ पर **अचः** उपस्थित होता है और वह **अङ्ग** का विशेषण बन जाता है। **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है।

षत्वविधायकं विधिसूत्रम्

१५०. आदेशप्रत्यययोः ८।३।५९॥

इण्कुभ्यां परस्यापदान्तस्यादेशस्य प्रत्ययावयवश्च यः सस्तस्य मूर्धन्यादेशः। ईषद्विवृतस्य सस्य तादृश एव षः। रामेषु। एवं कृष्णादयोऽप्यदन्ताः।

....

नाम् के परे होने पर अजन्त अङ्ग को दीर्घ होता है।

यह निषेधसूत्र नहीं है, अपितु नाम् के परे रहने पर अजन्त अङ्ग को दीर्घ का विधान करने वाला सूत्र है। नाम् अर्थात्- न्+आम्=नाम्, तस्मिन् नामि। नुट् वाला नकार और आम् का वर्णसम्मेलन होकर नाम् बनता है तथा नाम् के परे रहने पर उक्त अर्थ को लाने के लिए सप्तमी विभक्ति लगाई गई। यदि शब्द अजन्त हो और जब **ह्रस्वनद्यापो नुट्** से नुट् हो गया हो ऐसे नकार सहित आम् के परे रहने पर इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

रामाणाम्। रामशब्द से षष्ठी के बहुवचन में आम् प्रत्यय हुआ, अन्य रामों का लोप और एक राम का शेष (एकशेष) हुआ, **राम+आम्** में **ह्रस्वनद्यापो नुट्** से ह्रस्वान्त मानकर नुट् का आगम हुआ। टकार और उकार की इत्संज्ञा तथा लोप, टित् होने के कारण आम् के पहले अर्थात् आदि में आद्यावयव बनकर बैठ गया- **राम+न्+आम्** बना। न्+आ=ना हुआ। **राम+नाम्** में **नामि** से राम में मकारोत्तरवर्ती अकार को दीर्घ हुआ- **रामानाम्** बना। नाम् के नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व हुआ- **रामाणाम्** बना। इसी प्रकार बालक से **बालकानाम्** और श्याम से **श्यामानाम्** भी बनेंगे। आप प्रयत्न करिये, अन्तर केवल इतना ही है कि बालक और श्याम शब्द में रेफ या मूर्धन्य षकार के न होने के कारण णत्व सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई।

रामे। सप्तमी विभक्ति का विधान **सप्तम्यधिकरणे च** करता है। राम शब्द से सप्तमी का एकवचन **ङि** आया। ङकार की इत्संज्ञा और लोप हुआ। **राम+इ** बना। **आद्गुणः** से गुण हुआ- **रामे** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार बालक से **बालके** और श्याम से **श्यामे** भी बनाइये।

रामयोः। जिस प्रकार से आपने षष्ठी के द्विवचन में रामयोः बनाया था, उसी प्रकार से सप्तमी के द्विवचन में भी **रामयोः** बनाइये, क्योंकि षष्ठी के द्विवचन में ओस् है और सप्तमी के द्विवचन में भी ओस् है। अतः समान ही रूप होंगे। इसी प्रकार श्याम शब्द से **श्यामयोः** और बालकशब्द से **बालकयोः** ऐसे रूप होंगे।

१५०- आदेशप्रत्यययोः। आदेशश्च प्रत्ययश्च आदेशप्रत्ययौ, तयोः- आदेशप्रत्यययोः। इतरेतरद्वन्द्वः। षष्ठ्यन्तमेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **इण्कोः** और **अपदान्तस्य मूर्धन्य** का अधिकार है और **सहे साडः सः** से **सः** की अनुवृत्ति आती है।

इण् प्रत्याहार और कवर्ग से परे अपदान्त आदेश रूप सकार या प्रत्ययावयव जो सकार, उसके स्थान पर मूर्धन्य वर्ण आदेश होता है।

जिस सकार को हम षत्व करने जा रहे हैं वह सकार इण् से परे या कवर्ग से परे हो, पद के अन्त में स्थित न हो, या तो प्रत्यय का अवयव सकार हो या आदेश रूप सकार हो, दोनों प्रकार के सकार के स्थान पर मूर्धन्य आदेश होता है। मूर्धन्य वर्ण तो **ऋ, ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, र्, ष्** ये सभी हैं। एक सकार के स्थान पर ये सभी मूर्धन्य वर्ण प्राप्त हो जायेंगे। एक के स्थान पर अनेक की प्राप्ति होना अनियम है। नियमार्थ सूत्र आता है- **स्थानेऽन्तरतमः**। स्थान से मिलता ही नहीं, क्योंकि स्थानी सकार का स्थान दन्त है और

आदेश सभी मूर्धास्थानी हैं। अब प्रयत्न से मिलाया गया तो बाह्यप्रयत्न में सकार का विवार-श्वास-अघोष-महाप्राण प्रयत्न है। उपर्युक्त मूर्धन्य वर्णों में इस प्रकार का वर्ण षकार के अतिरिक्त अन्य हो ही नहीं सकता। अतः सकार के स्थान पर षकार आदेश हो जाता है।

रामेषु। राम से सप्तमी के बहुवचन में सुप् प्रत्यय हुआ, पकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा हुई और **तस्य लोपः** से लोप हुआ- राम सु बना। राम+सु में **बहुवचने झल्येत्** से अकार के स्थान पर एत्व हुआ- रामे+सु बना। इसके बाद सूत्र लगा- **आदेशप्रत्यययोः।** एत्व हो जाने के बाद रामे का एकार इण् बन गया है। उससे परे प्रत्यय का अवयव सकार है और पद के अन्त में भी नहीं है, क्योंकि रामेसु इतना पद होता है और उसके अन्त में तो सु का उकार ही आता है। इसलिये पदान्त वर्ण उकार है सकार नहीं। अतः सकार के स्थान पर सभी मूर्धन्य वर्ण आदेश के रूप में प्राप्त हुए और **स्थानेऽन्तरतमः** के द्वारा बाह्यप्रयत्न की तुल्यता से केवल **षकार** आदेश हुआ- **रामेषु** सिद्ध हुआ। अब इसी प्रकार श्याम से **श्यामेषु** और बालक से **बालकेषु** भी बनाइये।

इस प्रकार से आपने रामशब्द के सातों विभक्तियों में तीनों वचनों के इक्कीस रूपों का साधन किया। इनको तालिका के माध्यम से भी देखते हैं-

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	रामः	रामौ	रामाः
द्वितीया	रामम्	रामौ	रामान्
तृतीया	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
चतुर्थी	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
पञ्चमी	रामात्-रामाद्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
षष्ठी	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
सप्तमी	रामे	रामयोः	रामेषु
सम्बोधन	हे राम!	हे रामौ!	हे रामाः!

विभक्तियों का सामान्य अर्थ इस प्रकार से किया गया है-

विभक्ति	**कारक**	**चिह्न**
प्रथमा	कर्ता	ने
द्वितीया	कर्म	को
तृतीया	करण	से, द्वारा
चतुर्थी	सम्प्रदान	के लिये, को
पञ्चमी	अपादान	से (पृथक्त्व में)
षष्ठी	सम्बन्ध	का, के, की, रा, रे, री
सप्तमी	अधिकरण	में, पर
सम्बोधन	सम्बोधन	हे, भो, अरे आदि।

रामशब्द अकारान्त पुँल्लिङ्ग है और संसार में ह्रस्व-अकारान्त पुँल्लिङ्ग वाले जितने भी शब्द हैं, उनमें केवल सर्वादिगण पठित शब्दों को छोड़कर अन्य सभी शब्द रामशब्द के समान सिद्ध किये जायेंगे और रूप भी उसी प्रकार के बनेंगे। रामशब्द के सारे रूप कण्ठाग्र होंगे तो उन समस्त शब्दों की सिद्धि भी आप कर सकेंगे। इस लिये आप लोगों

से बार-बार यही निवेदन किया जा रहा है कि रामशब्द के सारे रूपों की सिद्धि प्रक्रिया को ठीक तरह से समझ लें एवं कण्ठस्थ कर लें। आइये आगे कुछ शब्दों को अर्थ सहित जानते हैं जिनके रूप रामशब्द के समान होते हैं और जो ह्रस्व-अकारान्त पुँल्लिङ्ग हैं तथा सर्वादियों से भिन्न हैं-

अध्यापक=शिक्षक	अर्चक=पुजारी	काण=काना
कृपण=कंजूस	केशव=श्रीकृष्ण	कोविद=विद्वान
विप्र=ब्राह्मण	चिकित्सक=वैद्य	तस्कर=चोर
नारिकेल=नारियल	मधुप=भौंरा	गर्दभ=गदहा
गज=हाथी	खग=पक्षी	याचक=भिक्षुक

रामशब्द की सिद्धि आपने कर ली है। अब आपको यह आत्मविश्वास हो जाना चाहिए कि संस्कृतभाषा में सर्वादियों को छोड़कर जितने भी अकारान्त शब्द हैं वे सभी शब्द रामशब्द के समान होते हैं। रामशब्द के समान ही सातों विभक्तियों में उनके रूप बनेंगे। अन्तर केवल इतना ही हो सकता है कि तृतीया के एकवचन में और षष्ठी के बहुवचन में जहाँ णत्व का प्रसंग आता है वहीं पर रेफ और मूर्धन्य षकार से परे किन्तु अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम् के अतिरिक्त अन्य किसी वर्ण से अव्यवहित न हो ऐसे नकार को णत्व हो जाता है, अन्यत्र णत्व नहीं होता। जैसे रामेण, चौरेण, गर्भाणाम् इत्यादि।

अब आप कुछ अभ्यास करें किन्तु पुस्तक देखकर नहीं। बीच-बीच में अभ्यास इस लिए करना होता है कहीं आप भूल तो नहीं गये हैं? क्योंकि जब तक यह विषय आत्मसात् नहीं होता तब तक भूलने की सम्भावना ज्यादा रहती है।

अभ्यास

(१) व्युत्पन्न और अव्युत्पन्न शब्दों के विषय में आप क्या जानते हैं?
(२) प्रातिपदिकसंज्ञा के लिये एक ही सूत्र से काम क्यों नहीं चलता?
(३) ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च इन तीन सूत्रों की क्या उपयोगिता है?
(४) एकशेष कहने का तात्पर्य क्या है?
(५) पूर्वसवर्णदीर्घ और सवर्णदीर्घ में क्या अन्तर है?
(६) विभक्ति किसे कहते हैं?
(७) सम्बुद्धिसंज्ञा कहाँ होती है?
(८) व्याकरण में अङ्गसंज्ञा किसकी होती है?
(९) पूर्वरूप और पूर्वसवर्णदीर्घ में क्या अन्तर हो सकता है?
(१०) सुप् विभक्ति में जिनकी इत्संज्ञा रोकी गई है वे वर्ण कौन-कौन से हैं?
(११) णत्व के लिए किस की अनिवार्य आवश्यकता होती है?
(१२) णत्व में किन वर्णों का व्यवधान मान्य है?
(१३) किस अवस्था में णत्व का निषेध हो जाता है?
(१४) स्थानिवद्भाव किसे कहते हैं?
(१५) स्थानिवद्भाव न होता तो क्या हानि होती?
(१६) नामि और आदेशप्रत्यययोः इनका स्पष्ट अर्थ लिखिये।
(१७) केशव, नारायण, विवेक इन शब्दों के रूप लिखिये।

सर्वनामसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१५१. सर्वादीनि सर्वनामानि १।१।२७॥

सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम।

गणसूत्रम्- **पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्।**

गणसूत्रम्- **स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्।**

गणसूत्रम्- **अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः।**

त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम्।

....

(१८) अकारान्त और अदन्त में क्या अन्तर है?

(१९) रामाभ्याम् में **बहुवचने झल्येत्** से एत्व क्यों नहीं हुआ?

(२०) रामेभ्यः में **सुपि च** से दीर्घ क्यों नहीं होता?

(२१) रामौ, रामान्, रामाभ्याम्, रामाय, रामेभ्यः, रामात्, रामस्य, रामाणाम् और रामेषु इन प्रयोगों की लिखित रूप में सिद्धि दिखाइये।

यदि आप ऊपर के सारे प्रश्नों के उत्तर देने में समर्थ हैं तो आप आगे पढ़ने के अधिकारी हैं, अन्यथा नहीं। क्योंकि रामशब्द की पूर्ण तैयारी के विना आगे का पाठ समझ में ही नहीं आयेगा। इसीलिए हम बार-बार यही निर्देश दे रहे हैं कि जैसे मकान बनाने वाला जमीन से एक हाथ खाली जगह छोड़कर उसके ऊपर मकान नहीं बना सकता, उसी प्रकार यदि पहले की प्रक्रिया तैयार नहीं है तो आगे की प्रक्रिया भी तैयार नहीं हो सकती, समझ में ही नहीं आयेगा। अतः विषय को समझते हुए आगे बढ़ें। पुस्तक को बार-बार पढ़ें, अपने गुरु जी से पूछने में न हिचकें। जहाँ समझ में न आये, वहाँ चिन्तन करें। समझ में अवश्य आयेगा। यह टीका हम ने हर प्रकार के लोगों को समझ में आये, इस दृष्टि से लिखी है।

जिन अकारान्त शब्दों में **राम**-शब्द की अपेक्षा कुछ अन्तर होता है, अब उनका वर्णन किया जा रहा है। वे शब्द सर्वादि हैं। पाणिनि जी ने प्रक्रिया में सरलता के लिए एक अलग से गणपाठ भी बनाया है। शब्दों को सीधे सूत्र में लेने की अपेक्षा गणपाठ बनाकर एक सूत्र से अनेक शब्दों का अनुशासन किया है। इस विषय में आप गणपाठ को देखना। यहाँ पर प्रथमतः सर्वादि ही दिये जा रहे हैं।

१५१- **सर्वादीनि सर्वनामानि**। सर्वः आदिर्येषां तानि (शब्दस्वरूपाणि सर्वादीनि), बहुव्रीहिः। सर्वादीनि प्रथमान्तं, सर्वनामानि प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सर्वादीनि सर्वनामसंज्ञकानि स्युः।**

जो शब्द सर्वादि गण में पढ़े गये हैं, वे सर्वनामसंज्ञक होते हैं।

सर्वादिगण में कौन-कौन से शब्द आते हैं, यह भी यहीं पर दिखाया गया है। सर्वनामसंज्ञा का प्रयोजन भी आगे क्रमशः स्पष्ट होता जायेगा। सर्वादिगण में **सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम** ये शब्द तो हैं ही साथ ही आगे भी अन्य गणसूत्रों के अनुसार कुछ विशेष शब्द भी माने गये हैं।

शीविधायकं विधिसूत्रम्

१५२. जसः शी ७।१।१७॥

अदन्तात्सर्वनाम्नो जसः शी स्यात्। अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः। सर्वे।

....

पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्। संज्ञाभिन्न व्यवस्था अर्थ में **पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर** शब्द की सर्वादि में गणना की जाती है। अतः इन सात शब्दों की उक्त अर्थ में सर्वनामसंज्ञा होती है, अन्य अर्थों में नहीं।

स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्। यदि स्वशब्द का अर्थ **धन और ज्ञाति (बन्धु) हो** तो उस अवस्था में सर्वादिगण में माना जायेगा। अतः उक्त अर्थ से भिन्न अर्थ में सर्वनामसंज्ञा हो जायेगी।

अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः। अन्तर शब्द का अर्थ **बाहर या पहनने योग्य** ऐसा अर्थ हो तो वह सर्वादिगण में माना जाता है। अतः उक्त अर्थ में सर्वनामसंज्ञा होती है।

त्यद्, तद्, यद्-। सर्वादिगण के अन्तर्गत त्यदादिगण है। त्यदादि अर्थात् **त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्,भवतु, किम्** की भी सर्वनामसंज्ञा होती है।

इस तरह सर्वादिगण में कुल **३५** शब्द ही आते हैं। सर्वादिगण वाले शब्दों की **सर्वनामसंज्ञा** होती है।

सर्वः, सर्वौ। सर्वशब्द के प्रथमा में रामशब्द के समान ही **सर्वः** बनता है, अर्थात् सर्वशब्द की **अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्** से प्रातिपदिकसंज्ञा, प्रथमाविभक्ति का एकवचन सु प्रत्यय, उकार की इत्संज्ञा और लोप, सकार के स्थान पर **ससजुषो रुः** से रुत्व, अवसानसंज्ञा और **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से विसर्ग करके **सर्वः** बन जाता है। इसी प्रकार **रामौ** के समान सर्वशब्द से प्रथमा का द्विवचन औ प्रत्यय, पूर्वसवर्णदीर्घ की प्राप्ति और उसका निषेध, पुनः **वृद्धिरेचि** से दीर्घ होकर **सर्वौ** बन जायेगा। अब रामशब्द की अपेक्षा सर्वशब्द में जो विशेष रूप सूत्रों के द्वारा सिद्ध होते हैं, उनकी प्रक्रिया को आगे के सूत्रों से देखिये।

१५२- जसः शी। जसः षष्ठ्यन्तं, शी प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अतो भिस ऐस्** से **अतः** की और **सर्वनाम्नः स्मै** से **सर्वनाम्नः** की अनुवृत्ति आती है।

सर्वनामसंज्ञक अदन्तशब्द से परे जस् के स्थान पर शी आदेश होता है।

शी आदेश शित् भी है और अनेकाल् भी। किन्तु यहाँ पर अनेकाल् मानकर के ही **अनेकाल्शित्सर्वस्य** से सम्पूर्ण **जस्** के स्थान पर **शी** आदेश हो जाता है क्योंकि आदेश के समय शकार की इत्संज्ञा प्राप्त ही नहीं थी क्योंकि **लशक्वतद्धिते** प्रत्यय के आदि में स्थित लकार, शकार आदि की इत्संज्ञा करता है। यहाँ पर जिस तरह से **जस्** में प्रत्ययत्व है, उसी तरह **शी** में प्रत्ययत्व लाने के लिए **स्थानिवद्भाव** करना पड़ेगा। तभी **शी** प्रत्यय कहलायेगा। प्रत्ययत्व आ जाने के बाद ही **शी** में शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा हो सकेगी। इस तरह प्रत्ययत्व के विना इत्संज्ञा नहीं हो सकती और इत्संज्ञा के विना शित् नहीं बनेगा। अतः शित् को मानकर सर्वादेश भी नहीं किया जा सकेगा। अतः **शि** (श्+ई) को अनेकाल् मानकर के ही **जसः शी** से सर्वादेश हुआ है। **शी** हो जाने के बाद उसके शकार की इत्संज्ञा और लोप हो जाने के बाद केवल **ई** बचता है।

स्मैविधायकं विधिसूत्रम्

१५३. सर्वनाम्नः स्मै ७।१।१४॥

अतः सर्वनाम्नो ङेः स्मै। सर्वस्मै।

स्मात्स्मिन्नादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१५४. ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ ७।१।१५॥

अतः सर्वनाम्न एतयोरेतौ स्तः। सर्वस्मात्।

....

सर्वे। सर्वशब्द से प्रथमा के बहुवचन में जस् विभक्ति अर्थात् जस् प्रत्यय उपस्थित हुआ। सर्व जस् बना। जस् में जकार की **चुटू** से इत्संज्ञा हुई और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। सकार की भी **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा की प्राप्ति हुई थी किन्तु **न विभक्तौ तुस्माः** से इत्संज्ञा का निषेध हुआ तो सर्व अस् बना। जस् सम्बन्धी अस् के स्थान पर **जसः शी** से शी आदेश हुआ और उसके शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप हुआ- **सर्व ई** बना। सर्व+ई में **आद्गुणः** से गुण हुआ- **सर्वे** बना। इसी प्रकार विश्व से **विश्वः, विश्वौ, विश्वे**, उभय से **उभयः, उभये** आदि भी बनाते जाइये। **उभय-शब्द** का द्विवचन नहीं होता, अतः एकवचन और बहुवचन में ही रूप बनते हैं।

यहाँ पर यह भी ध्यान देना है कि **डतर** और **डतम** ये प्रत्यय हैं! जहाँ प्रत्यय का ग्रहण होता है वहाँ प्रत्ययान्त का भी ग्रहण होता है। अतः **डतर** और **डतम** से डतर-डतम प्रत्ययान्त का ग्रहण होगा, जिनका कथन यथासमय किया जायेगा। कुछ सर्वादि हलन्त हैं तो उनका कथन हलन्त प्रकरण में होगा, कुछ अन्य लिंगों के हैं तो उनका कथन भी यथास्थान ही होगा।

सर्वम्, सर्वौ, सर्वान्, सर्वेण, सर्वाभ्याम्, सर्वैः। ये सभी रूप रामशब्द के समान हैं। इसलिये आप स्वयं ही सिद्ध करने का प्रयत्न करें।

१५३- सर्वनाम्नः स्मै। सर्वनाम्नः पञ्चम्यन्तं, स्मै लुप्तप्रथमाकं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अतो भिस ऐस्** से **अतः** की और **ङेर्यः** से **ङे** की अनुवृत्ति है।

सर्वनामसंज्ञक अदन्त शब्द से परे ङे के स्थान पर स्मै आदेश होता है।

ङे में ङकार की इत्संज्ञा और लोप होने के बाद **ए** के स्थान पर **स्मै** आदेश होता है। यद्यपि **स्मै** यह आदेश अनेकाल् वाला है फिर भी यहाँ पर आदेशी अर्थात् स्थानी ए ऐसे एक वर्ण होने के कारण अन्त्यादेश-सर्वादेश का प्रश्न ही व्यर्थ है।

सर्वस्मै। सर्वशब्द से चतुर्थी का एकवचन ङे आया, ङ् की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा हुई और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। ङे-सम्बन्धी **ए** के स्थान पर **सर्वनाम्नः स्मै** से स्मै आदेश हुआ- सर्व स्मै- **सर्वस्मै** सिद्ध हुआ।

सर्वाभ्याम्। सर्वेभ्यः। जैसे रामाभ्याम् और रामेभ्यः आपने बनाया था, उसी प्रकार से **सर्वाभ्याम्। सर्वेभ्यः** भी बना सकते हैं।

१५४- ङसिङ्योः स्मात्-स्मिनौ। ङसिङ्योः षष्ठ्यन्तं, स्मात्स्मिनौ प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। यहाँ पर भी **सर्वनाम्नः** और **अतः** की अनुवृत्ति आती है। ह्रस्व-अकारान्त सर्वनामसंज्ञक-शब्द से परे पञ्चमी के एकवचन ङसि के स्थान पर स्मात् आदेश और सप्तमी के एकवचन ङि के स्थान पर स्मिन् आदेश करता है। यहाँ पर स्थानी की संख्या

सुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

१५५. आमि सर्वनाम्नः सुट् ७।१।५२॥

अवर्णान्तात्परस्य सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुडागमः। एत्वषत्वे। सर्वेषाम्। सर्वस्मिन्। शेषं रामवत्। एवं विश्वादयोऽप्यदन्ताः।

उभशब्दो नित्यं द्विवचनान्तः। उभौ। उभौ। उभाभ्याम्। उभाभ्याम्। उभयोः। उभयोः। तस्येह पाठोऽकजर्थः।

उभयशब्दस्य द्विवचनं नास्ति। उभयः। उभये। उभयम्। उभयान्। उभयेन। उभयैः। उभयस्मै। उभयेभ्यः। उभयस्मात्। उभयेभ्यः। उभयस्य। उभयेषाम्। उभयस्मिन्। उभयेषु।

डतरडतमौ प्रत्ययौ, प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणमिति तदन्ता ग्राह्याः।

नेम इत्यर्धे।

समः सर्वपर्यायस्तुल्यपर्यायस्तु न, यथासङ्ख्यमनुदेशः समानामिति ज्ञापकात्।

....

भी दो है और आदेश की संख्या भी दो ही है, अतः **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** इस परिभाषा सूत्र के बल पर क्रमशः स्थानी में प्रथम ङसि के स्थान पर आदेश में प्रथम स्मात् आदेश और स्थानी में द्वितीय ङि के स्थान पर आदेश में द्वितीय स्मिन् आदेश होते हैं।

सर्वस्मात्, सर्वस्माद्। सर्वशब्द से पञ्चमी का एकवचन ङसि आया और ङकार एवं इकार की इत्संज्ञा और लोप हुआ। सर्व+अस् बना। ङसि-सम्बन्धी अस् के स्थान पर **टाङसिङसामिनात्स्याः** से आत् आदेश की प्राप्ति थी, उसे बाधकर **ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ** से स्मात् आदेश हुआ- **सर्व+स्मात्** बना। तकार की **झलां जशोऽन्तो** से जश्त्व होकर द् हो गया- **सर्वस्माद्** बना। दकार के स्थान पर **वावसाने** से विकल्प से चर्त्व होकर **सर्वस्मात्** बना। चर्त्व न होने के पक्ष में **सर्वस्माद्** ही रह गया। इस प्रकार दो रूप बन गये।

सर्वाभ्याम्। सर्वेभ्यः। सर्वस्य। सर्वयोः। जैसे रामाभ्याम्, रामेभ्यः, रामस्य, रामयोः आपने बनाये थे उसी प्रकार से ही इनकी भी सिद्धि करें।

१५५- **आमि सर्वनाम्नः सुट्।** आमि सप्तम्यन्तं, सर्वनाम्नः पञ्चम्यन्तं, सुट् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **आज्जसेरसुक्** से **आत्** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है। **अवर्णान्त से परे सर्वनाम से विहित आम् को सुट् का आगम होता है।**

यह सूत्र **ह्रस्वनद्यापो नुट्** का बाधक है। अन्यत्र सर्वत्र नुट् होता है किन्तु सर्वनामसंज्ञकशब्दों से सुट् होगा।

सर्वेषाम्। सर्वशब्द से षष्ठी के बहुवचन में आम् प्रत्यय हुआ। **सर्व+आम्** में **ह्रस्वनद्यापो नुट्** से नुट् प्राप्त था, उसे बाधकर सूत्र लगा- **आमि सर्वनाम्नः सुट्।** अवर्णान्त शब्द है सर्व, सर्वनामसंज्ञक से विहित आम् है ही, उसको सुट् आगम हुआ। सुट् का टकार और सु में उकार इत्संज्ञक हैं, अतः इत्संज्ञक होकर लुप्त हुये। केवल स् बचा। टित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से आम् के आदि में **स्** बैठा- **सर्व+स्+आम्** हुआ। स्+आ=सा. **सर्व+साम्** में **बहुवचने झल्येत्** से एत्व हुआ- **सर्वे+साम्** बना। एत्व हो जाने से अकारान्त सर्वशब्द में इण्प्रत्याहार आ गया, क्योंकि एकार इण्प्रत्याहार में आता है। अब

सूत्र लगा- **आदेशप्रत्यययोः**। इसने इण् से परे प्रत्यय के अवयव साम् के सकार को षत्व कर दिया- **सर्वेषाम्** बन गया।

सर्वस्मिन्। सप्तमी के एकवचन में ङि- विभक्ति, ङकार की इत्संज्ञा, लोप। ङसिङ्योः **स्मात्स्मिनौ** से स्मिन् आदेश। सर्वस्मिन्।

सर्वयोः। **सर्वेषु**। रामयोः, रामेषु की तरह बनाइये।

हे सर्व! हे सर्वौ! हे राम! हे रामौ! की तरह ही बनाइये।

हे सर्वे! जैसे सर्वशब्द के प्रथमा के एकवचन बनाया, वैसे ही बनाकर हे का पूर्वप्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार से आपने अकारान्त सर्वशब्द की सिद्धि की। ये सर्वनामसंज्ञक शब्द विशेषण होते हैं। विशेष्य जिस लिङ्ग और वचन का होता है विशेषण भी उसी लिङ्ग और वचन का होता है। अतः विशेष्य के लिङ्ग के अनुसार विशेषण का भी लिङ्ग बदलता है। फलतः सर्वादि-गण के शब्द तीनों लिङ्गों में होते हैं। यहाँ पर केवल पुँल्लिङ्ग के रूप बनाये गये हैं, अन्य लिङ्गों के रूप उसी प्रकरण में देखेंगे।

शब्दों की सिद्धि के साथ रूप भी कण्ठस्थ होने चाहिए कि जब जिस विभक्तियुक्त शब्दरूप की आवश्यकता हो, तत्काल उच्चारित हो सके।

सर्व-शब्द की रूपमाला

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्मात्, सर्वस्माद्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु
सम्बोधन	हे सर्व	हे सर्वौ	हे सर्वे

सर्वादिगण में दूसरा शब्द है विश्व (सम्पूर्ण)। उसके रूप भी सर्वशब्द के समान ही होंगे।

विश्व-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विश्वः	विश्वौ	विश्वे
द्वितीया	विश्वम्	विश्वौ	विश्वान्
तृतीया	विश्वेन	विश्वाभ्याम्	विश्वैः
चतुर्थी	विश्वस्मै	विश्वाभ्याम्	विश्वेभ्यः
पञ्चमी	विश्वस्मात्-द्	विश्वाभ्याम्	विश्वेभ्यः
षष्ठी	विश्वस्य	विश्वयोः	विश्वेषाम्
सप्तमी	विश्वस्मिन्	विश्वयोः	विश्वेषु
सम्बोधन	हे विश्व	हे विश्वौ	हे विश्वे

तीसरे और चौथे सर्वादि हैं- **उभ** और **उभय।**

उभशब्दो नित्यं द्विवचनान्तः। उभशब्द में एकवचन और बहुवचन नहीं होते, केवल द्विवचन ही होता है। इस प्रकार से प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में **उभौ, उभौ** एवं तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी के द्विवचन में **उभाभ्याम्, उभाभ्याम्, उभाभ्याम्,** तथा षष्ठी, सप्तमी के द्विवचन में **उभयोः, उभयोः** ये सात रूप ही होते हैं।

अब यहाँ पर प्रश्न उठता है कि जब उभ शब्द केवल द्विवचनान्त ही है और द्विवचन में सर्वनामसंज्ञा को मानकर होने वाला कोई कार्य होता नहीं है तो इसे सर्वादिगण में क्यों पढ़ा गया? उत्तर देते हैं- **तस्येह पाठोऽकजर्थः।** उभशब्द का सर्वादिगण में पाठ अकच् प्रत्यय के लिए है। **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः** यह सूत्र अव्ययसंज्ञक-शब्द और सर्वनामसंज्ञक-शब्दों से **अकच्** प्रत्यय करता है। उभ की सर्वनामसंज्ञा का फल उक्त सूत्र से अकच् करके **उभकौ** की सिद्धि है।

उभयशब्दस्य द्विवचनं नास्ति। उभय-शब्द में द्विवचन नहीं है, अतः एकवचन और बहुवचन में ही रूप बनते हैं।

प्रथमा में-	उभयः, उभये।	द्वितीया में-	उभयम्, उभयान्।
तृतीया में-	उभयेन. उभयैः।	चतुर्थी में-	उभयस्मै, उभयेभ्यः।
पञ्चमी में-	उभयस्मात्-द्, उभयेभ्यः।	षष्ठी में-	उभयस्य, उभयेषाम्।
सप्तमी में-	उभयस्मिन्, उभयेषु।	सम्बोधन में-	हे उभय! हे उभये।

डतर-डतमौ प्रत्ययौ, प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणमिति तदन्ता ग्राह्याः। सर्वादिगण में पाँचवें और छठे हैं- **डतर** और **डतम।** ये प्रत्यय हैं। **प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्** यह एक परिभाषा है। **प्रत्यय के ग्रहण के प्रत्ययान्त का ग्रहण होता है।** अतः **डतर** और **डतम** से डतर-डतम प्रत्ययान्त ही लिये जायेंगे। **किम्, यद्, तद्, एक** इन चार शब्दों से डतर-डतम प्रत्ययान्त रूप देखे जाते हैं। जैसे किम्-शब्द से **कतर-कतम**, यद् शब्द से **यतर-यतम** और तद् से **ततर-ततम।** इनके रूप भी सर्वशब्द के समान ही बनते हैं। केवल कतरशब्द के रूप यहाँ दिये जा रहे हैं, बाकी के रूप बनाना आपका काम है।

कतर-शब्द के रूप

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	कतरः	कतरौ	कतरे
द्वितीया	कतरम्	कतरौ	कतरान्
तृतीया	कतरेण	कतराभ्याम्	कतरैः
चतुर्थी	कतरस्मै	कतराभ्याम्	कतरेभ्यः
पञ्चमी	कतरस्मात्-द्	कतराभ्याम्	कतरेभ्यः
षष्ठी	कतरस्य	कतरयोः	कतरेषाम्
सप्तमी	कतरस्मिन्	कतरयोः	कतरेषु
सम्बोधन	हे कतर	हे कतरौ	हे कतरे।

सर्वादिगण में सातवाँ शब्द **अन्य** (दूसरा), आठवाँ **अन्यतर** (दोनों में से एक), नौवाँ **इतर** (भिन्न) दशवाँ **त्वत्** तथा ग्यारहवाँ **त्व** (अथवा) बारहवाँ **नेम**(आधा), तेरहवाँ **सम** (सब) और चौदहवाँ **सिम** (सब) हैं। त्वत् शब्द का प्रयोग केवल वेद में देखा गया

वैकल्पिकसर्वनामसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१५६. पूर्व-परावर-दक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् १।१।३४॥

एतेषां व्यवस्थायामसंज्ञायां च सर्वनामसंज्ञा गणसूत्रात्सर्वत्र या प्राप्ता सा जसि वा स्यात्। पूर्वे, पूर्वाः। असंज्ञायां किम्? उत्तराः कुरवः।

स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था।

व्यवस्थायां किम्? दक्षिणा गाथकाः। कुशला इत्यर्थः।

....

है। उसके रूप कुछ भिन्न होंगे। बाकी के रूप सर्वशब्द के समान ही होंगे। त्व के रूप भी सर्व की तरह ही होते हैं।

नेम इत्यर्धे। नेम शब्द की **अर्ध** (आधा) अर्थ में ही सर्वनामसंज्ञा होगी जिसकी जस् के परे होने पर **प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च** से विकल्प से सर्वनामसंज्ञा होती है और शेष जगहों पर नित्य से सर्वनामसंज्ञा होती है।

समः सर्वपर्यायस्तुल्यपर्यायस्तु न, यथासङ्ख्यमनुदेशः समानामिति ज्ञापकात्। **सम-शब्द** के दो अर्थ हैं- तुल्य और सब अर्थात् तुल्यपर्याय और सर्वपर्याय। तुल्यपर्याय होने पर अर्थात् **सम** का अर्थ **तुल्य** होने पर सर्वनामसंज्ञा नहीं होगी और सर्वपर्याय अर्थात् सर्व का जो अर्थ है वही अर्थ सम का भी हो तो सम की सर्वनामसंज्ञा होगी। तुल्यपर्याय होने पर सर्वनामसंज्ञा नहीं होती है, इस पर प्रमाण देते है पाणिनि जी का सूत्र- **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्।** यदि तुल्यपर्याय की भी सर्वनामसंज्ञा होती तो पाणिनि जी **समानाम्** की जगह **समेषाम्** लिखते। इस तरह सर्वपर्याय सम-शब्द के भी रूप सर्व-शब्द की तरह ही होंगे। **१५६- पूर्व-परावर-दक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्।** पूर्वञ्च परञ्च अवरञ्च दक्षिणञ्च उत्तरञ्च, अपरञ्च, अधरञ्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः, पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि। न संज्ञा असंज्ञा, तस्याम् असंज्ञायाम्, नञ्-तत्पुरुषः। पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि प्रथमान्तं, व्यवस्थायां सप्तम्यन्तम्, असंज्ञायां सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सर्वादीनि सर्वनामानि** से **सर्वनामानि** और **विभाषा जसि** से **विभाषा** और **जसि** की अनुवृत्ति आती है।

संज्ञाभिन्न व्यवस्था अर्थ में पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर इन सात शब्दों की सर्वादिगण में आने वाले पूर्वपरावर० इत्यादि गणसूत्र से सभी जगह जो सर्वनामसंज्ञा प्राप्त थी वह (सर्वनामसंज्ञा) जस् के परे होने पर विकल्प से होती है।

संज्ञाभिन्न व्यवस्था अर्थ में **पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर** शब्द भी सर्वादिगण में माने जाते हैं, जिनकी सर्वनामसंज्ञा **सर्वादीनि सर्वनामानि** से होती है किन्तु जस् परे होने पर इस सूत्र से विकल्प से सर्वनामसंज्ञा की गई। वैकल्पिक सर्वनामसंज्ञा का फल है जस् में **पूर्वे, पूर्वाः** आदि दो रूपों का होना। सर्वनामसंज्ञा के पक्ष में **जशः शी** से शी होगा और संज्ञा न होने के पक्ष में शी भी नहीं होगा। सर्वादिगण में पाठ नित्य से सर्वत्र पूर्वादि-शब्दों की सर्वनामसंज्ञा करने के लिए है तो इस सूत्र में केवल जस् के परे होने पर

वैकल्पिकसर्वनामसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१५७. स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् १।१।३५॥

ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य प्राप्ता सञ्ज्ञा जसि वा। स्वे, स्वाः। आत्मीयाः, आत्मान इति वा। ज्ञातिधनवाचिनस्तु स्वाः, ज्ञातयोऽर्था वा।

....

विकल्प से संज्ञा करने के लिए है। इसी तरह **परे, पराः। अवरे, अवराः। दक्षिणे, दक्षिणाः। उत्तरे, उत्तराः, अपरे, अपराः। अधरे, अधराः** आदि दो-दो रूप बनते हैं।

असंज्ञायां किम्? उत्तराः कुरवः। इस सूत्र में **असंज्ञायां** यह पद न पढ़ा जाय तो यह सूत्र संज्ञा में भी लगेगा और असंज्ञा में भी। संज्ञा अर्थ में भी सर्वनामसंज्ञा होने से **उत्तराः कुरवः**(उत्तर कुरु) इस प्रयोग में भी संज्ञा होकर **उत्तरे कुरवः** ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगेगा। अतः सूत्र में **असंज्ञायाम्** पढ़कर यह व्यवस्था बनी कि असंज्ञा में पूर्व आदि की सर्वनामसंज्ञा हो और संज्ञा अर्थ में न हो।

स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था। स्वस्य पूर्वादिशब्दस्य अभिधेयेन अर्थेन अपेक्षस्य अवधेर्नियमो व्यवस्था। **जहाँ पूर्व आदि शब्दों के अपने अर्थों से अवधि के नियम की अपेक्षा हो वहाँ पर प्रयुक्त पूर्व आदि शब्दों में व्यवस्था है।** जैसे- **अयोध्या पूर्वा। कुतः? वृन्दावनात्।** अयोध्या पूर्वदिशा में स्थित है। इस वाक्य के बाद इस अवधि की अपेक्षा होती है कि कहाँ से पूर्व है? इस पर उत्तर मिलता है- वृन्दावन से। यहाँ पर पूर्व शब्द का अर्थ अवधि के नियम की आकांक्षा रखता है। अतः **पूर्व**-शब्द यहाँ पर व्यवस्था अर्थ में है।

व्यवस्थायां किम्? दक्षिणा गाथकाः। इस सूत्र में **व्यवस्थायाम्** यह न पढ़ा जाय तो क्या होगा? उत्तर देते हैं- **दक्षिणा गाथकाः** में दोष आयेगा। क्योंकि यहाँ पर **दक्षिणाः** यह शब्द व्यवस्था अर्थ में न होकर कुशल, चतुर अर्थ में है। यदि व्यवस्थायाम् नहीं पढ़ेंगे तो व्यवस्था या व्यवस्थाभिन्न किसी भी अर्थ में संज्ञा होने लगेगी और जस् के स्थान पर शी होकर कुशल अर्थ वाले दक्षिण शब्द में भी **दक्षिणे, दक्षिणाः** ऐसे दो रूप बनने लगेंगे। दक्षिणे ऐसा अनिष्ट रूप न बने, एतदर्थ **व्यवस्थायाम्** लिखा गया है।

१५७- स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्। ज्ञातिश्च धनञ्च ज्ञातिधने, ज्ञातिधनयोराख्या ज्ञातिधनाख्या, न ज्ञातिधनाख्या अज्ञातिधनाख्या, तस्याम् अज्ञातिधनाख्यायाम्। स्वं प्रथमान्तम्, अज्ञातिधनाख्यायाम् सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सर्वादीनि सर्वनामानि** से **सर्वनामानि** तथा **विभाषा जसि** पूरा सूत्र आता है।

स्वशब्द का बन्धु एवं धन से भिन्न अर्थ हो तो गणसूत्र से सभी विभक्तियों के परे प्राप्त सर्वनामसंज्ञा जस् के परे होने पर विकल्प से होती है।

सर्वादीनि सर्वनामानि के गण में ऐसा ही सूत्र पठित है। वहाँ पर ज्ञाति और धन से भिन्न अर्थ में सभी विभक्तियों के परे अथवा विभक्ति न हो तो भी नित्य से सर्वनामसंज्ञा प्राप्त थी किन्तु यह सूत्र केवल **जस्** के परे रहते **सर्वनामसंज्ञा** विकल्प से करता है।

स्व-शब्द के चार अर्थ हैं- आत्मा(स्वयं) आत्मीय(अपना) ज्ञाति(बान्धव) और धन। इनमें आत्मा और आत्मीय अर्थ में सर्वनामसंज्ञा होती है और ज्ञाति तथा बान्धव अर्थ में नहीं होती है।

वैकल्पिकसर्वनामसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१५८. अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः १।१।३६॥

बाह्ये परिधानीये चार्थेऽन्तरशब्दस्य प्राप्ता सञ्ज्ञा जसि वा।

अन्तरे, अन्तरा वा गृहाः, बाह्या इत्यर्थः। अन्तरे, अन्तरा वा शाटकाः परिधानीया इत्यर्थः।

वैकल्पिक-स्मात्-स्मिन्नादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१५९. पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ७।१।१६॥

एभ्यो ङसिङ्योः स्मात्-स्मिनौ वा स्तः।

पूर्वस्मात्, पूर्वात्। पूर्वस्मिन्, पूर्वे। एवं परादीनाम्। शेषं सर्ववत्।

....

स्वे, स्वाः। **सर्वादीनि सर्वनामानि** गणसूत्र के अन्तर्गत **स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्** का पाठ होने से नित्य से सर्वनामसंज्ञा प्राप्त थी तो जस् के परे होने पर उसे बाधकर के इस **स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्** सूत्र से विकल्प से सर्वनामसंज्ञा हो गई। सर्वनामसंज्ञा होने के पक्ष में **जसः शी** से **शी** आदेश हुआ, **सर्वे** की तरह **स्वे** बना और न होने के पक्ष में **रामाः** की तरह **स्वाः** बना। इस तरह दो रूप हो गये। **स्वे, स्वाः** का अर्थ हुआ **स्वयं** या **अपने**। जहाँ ज्ञाति और धन होगा वहाँ पर सर्वनामसंज्ञा न होने से केवल **स्वाः** बनेगा।

१५८- अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः। बहिसा योगो बहिर्योगः, बहिर्योगश्च उपसंव्यानञ्च बहियोगोपसंव्याने, तयोः बहिर्योगोपसंव्यानयोः। अन्तरं प्रथमान्तं, बहिर्योगोपसंव्यानयोः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सर्वादीनि सर्वनामानि** से **सर्वनामानि** तथा **विभाषा जसि** पूरा आता है।

अन्तर-शब्द का बाहर तथा परिधानीय अर्थ हो तो गणसूत्र से सभी विभक्तियों में प्राप्त सर्वनामसंज्ञा जस् के परे होने पर विकल्प से होती है।

सर्वादीनि सर्वनामानि के गण में ऐसा ही सूत्र पठित है। वहाँ पर **बाह्य और परिधानीय** अर्थ में सभी विभक्तियों परे अथवा विभक्ति न भी हो, सर्वत्र नित्य से सर्वनामसंज्ञा प्राप्त थी किन्तु केवल जस् के पर यह संज्ञा यहाँ पर विकल्प से हो जाती है। सर्वनामसंज्ञा होने के पक्ष में जस् के स्थान पर शी आदेश होकर **अन्तरे** और न होने के पक्ष में **अन्तराः** बनता है। इसका अर्थ होगा **बाहर स्थित घर आदि** और **परिधानीय वस्त्र साड़ी** आदि।

इस तरह पूर्व तीन सूत्रों से **पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व, अन्तर्** इन नौ शब्दों की जस् विभक्ति के परे रहने पर सर्वनामसंज्ञा विकल्प से होती है जिससे प्रथमा के बहुवचन में दो-दो रूप होते हैं। इन नौ शब्दों में पञ्चमी के एकवचन और सप्तमी के एकवचन में भी अग्रिम सूत्र **पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा** के द्वारा **स्मात्** और **स्मिन्** आदेश विकल्प से होते हैं। फलतः इन दो वचनों में एकपक्ष में सर्वशब्द के समान तथा एकपक्ष में रामशब्द के समान रूप होते हैं।

१५९- पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा। पूर्वः आदिर्येषां ते पूर्वादयः, तेभ्यः पूर्वादिभ्यः, बहुव्रीहिः। इस सूत्र में **ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ** से पूरा सूत्र अनुवर्तन होता है।

जसि वैकल्पिकसर्वनामसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१६०. प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च १।१।३३।।

एते जसि उक्तसंज्ञा वा स्युः। प्रथमे, प्रथमाः।

तयः प्रत्ययः। द्वितये, द्वितयाः। शेषं रामवत्। नेमे, नेमाः। शेषं सर्ववत्। वार्तिकम्- **तीयस्य ङित्सु वा।** द्वितीयस्मै, द्वितीयायेत्यादि। एवं तृतीयः। निर्जरः।

....

पूर्व, पर आदि नौ शब्दों से परे ङसि और ङि के स्थान पर स्मात् और स्मिन् आदेश विकल्प से होते हैं।

पूर्वोक्त त्रिसूत्री में स्थित पूर्व, पर आदि नौ शब्दों में सर्वनामसंज्ञा के नित्य से होने के कारण ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ से **स्मात्** और **स्मिन्** ये आदेश भी नित्य से ही प्राप्त थे। उन्हें बाधकर यह सूत्र विकल्प से उक्त आदेश करता है। **स्मात्** और **स्मिन्** होने के पक्ष में सर्वशब्द की तरह **पूर्वस्मात्, परस्मात्, पूर्वस्मिन्, परस्मिन्** आदि तथा न होने के पक्ष में रामशब्द की तरह **पूर्वात्, परात्, पूर्वे, परे** आदि दो-दो रूप बनते हैं। इस तरह से उक्त नवों शब्दों से पञ्चमी और सप्तमी की एकवचन में दो-दो रूप हो जाते हैं। **पूर्व**शब्द के रूप यहाँ पर दिये जा रहे हैं, अन्य आठ शब्दों के रूप आप स्वयं बनाइये।

पूर्व-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पूर्वः	पूर्वौ	पूर्वे, पूर्वाः
द्वितीया	पूर्वम्	पूर्वौ	पूर्वान्
तृतीया	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः
चतुर्थी	पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
पञ्चमी	पूर्वस्मात्, पूर्वात्	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
षष्ठी	पूर्वस्य	पूर्वयोः	पूर्वेषाम्
सप्तमी	पूर्वस्मिन्, पूर्वे	पूर्वयोः	पूर्वेषु
सम्बोधन	हे पूर्व!	हे पूर्वौ!	हे पूर्वे! हे पूर्वाः!

इस प्रकार से सर्वादिगण में पठित तेईस शब्दों के रूपों के विषय में आपको जानकारी हुई। शेष **त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, युष्मद्, अस्मद्, भवतु-भवत्, किम्** ये दस जो सर्वादिगणीय शब्द हैं, वे हलन्त हैं। अतः इनके रूप हलन्तप्रकरण में देखेंगे। शेष के अर्थात् एक और द्वि शब्दों के रूप यहाँ बनाने पड़ेंगे। द्वि शब्द में तो **त्यदादीनामः** इस सूत्र से इकार के स्थान पर अकार आदेश होकर यह अकारान्त बन जाता है तथा केवल द्विवचन में ही रूप बनते हैं। द्विवचन में सर्वनामसंज्ञा को मानकर कोई कार्य नहीं हो रहा है, अतः इसके रूप अकारान्त बनाकर **राम** की तरह बनेंगे। जैसे- **द्वौ, द्वौ, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वयोः, द्वयोः।** एक शब्द का केवल एकवचन मात्र है। अतः इसके रूप होंगे- **एकः, एकम्, एकेन, एकस्मै, एकस्मात्, एकस्य, एकस्मिन्।**

१६०- प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च। प्रथमश्च चरमश्च, तयश्च, अल्पश्च, अर्धश्च, कतिपयश्च, नेमश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः, प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाः। प्रथमचरमतयाल्पार्ध-

कतिपयनेमाः प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सर्वादीनि सर्वनामानि** से **सर्वनामानि** तथा **विभाषा जसि** यह पूरा सूत्र अनुवर्तन होता है।

प्रथम, चरम, तयप्प्रत्ययान्त शब्द, अल्प, अर्ध, कतिपय और नेम शब्दों की जस् के परे होने पर सर्वनामसंज्ञा विकल्प से होती है।

उपर्युक्त शब्दों में केवल **नेम** शब्द की **सर्वनामसंज्ञा** गणसूत्र से प्राप्त थी और शेष शब्दों की प्राप्त ही नहीं थी। विकल्प को विभाषा कहते हैं। यह सूत्र **उभयत्र विभाषा** है। अन्य सूत्रों से नित्य प्राप्त होने पर उसे बाधकर विकल्प से करने वाले सूत्र को **प्राप्त-विभाषा**, अन्य सूत्रों से प्राप्त न होने पर सीधे विकल्ल्प से करने वाला **अप्राप्त-विभाषा** और प्राप्त होने पर भी तथा प्राप्त न होने पर भी विकल्प से करने वाला **प्राप्ताप्राप्त-विभाषा** अर्थात् **उभयत्रविभाषा** कहते हैं। यहाँ पर **नेम** शब्द में प्राप्त होने पर और शेष प्रथम आदि शब्दों में प्राप्त न होने पर विकल्प से करने के कारण यह सूत्र **उभयत्र-विभाषा** है। **सर्वनामसंज्ञा** होने के पक्ष में **जसः शी** से **शी** आदेश होकर **सर्वे** की तरह **प्रथमे**, **चरमे** आदि तथा **सर्वनामसंज्ञा** न होने के पक्ष में **रामाः** की तरह **प्रथमाः**, **चरमाः** आदि रूप सिद्ध होते हैं। **नेम-शब्द** के जस् में वैकल्पिक रूप और शेष विभक्तियों में सर्व-शब्द की तरह बनते हैं तथा प्रथम आदि शब्दों के जस् में वैकल्पिक रूप और शेष विभक्तियों में राम-शब्द की तरह बनते हैं। **नेम-शब्द** जस् में मात्र विकल्प से करने के लिए यहाँ पर पठित है, अन्यथा इसकी सर्वनामसंज्ञा तो गणसूत्र से प्राप्त है।

सूत्र में **तय-शब्द** से **तय्-प्रत्ययान्त** का ग्रहण किया जाता है। **प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्।** द्वि-शब्द से तयप् प्रत्यय होकर **द्वितय** बना है। उससे **जस्** में **द्वितये**, **द्वितयाः** ये दो रूप तथा शेष विभक्तियों में रामशब्द की तरह बनते हैं।

तीयस्य ङित्सु वा। यह वार्तिक है। **तीय-प्रत्ययान्त शब्दों से ङित् विभक्ति के परे होने पर सर्वनामसंज्ञा विकल्प से होती है।**

तीय-प्रत्ययान्त शब्दों से सर्वनामसंज्ञा प्राप्त ही नहीं थी, अप्राप्तसंज्ञा को यह विकल्प से करता है। ङकार की इत्संज्ञा होने के कारण **ङे, ङसि, ङस्, ङि** ये चार **ङिद्विभक्ति** कहलाते हैं। इनके परे होने पर तीय-प्रत्ययान्त शब्दों की वैकल्पिक सर्वनामसंज्ञा इस वार्तिक से की जाती है। सर्वनामसंज्ञा होने से संज्ञाप्रयुक्त कार्य **ङे** के स्थान पर **स्मै** आदेश, **ङसि** के स्थान पर **स्मात्** आदेश और **ङि** के स्थान पर **स्मिन्** आदेश हो जायेंगे जिससे **सर्व** की तरह रूप बनेंगे तथा सर्वनामसंज्ञा न होने के पक्ष में **राम** की तरह रूप बनेंगे। द्वि और त्रि शब्दों से तीय प्रत्यय होता है। अतः ङिद्विभक्ति में **द्वितीयस्मै-द्वितीयाय, तृतीयस्मै-तृतीयाय, द्वितीयस्मात्-द्वितीयात्, तृतीयस्मात्-तृतीयात्, द्वितीयस्मिन्-द्वितीये, तृतीयस्मिन्-तृतीये** तथा शेष विभक्तियों में राम-शब्द की तरह रूप बनाइये।

निर्जरः। देवता। **निर्गता जरा यस्मात्** जिससे जरा अवस्था निकल चुकी है अर्थात् जरा=बुढ़ापा ही नहीं है जिसमें, उसे **निर्जर** कहते हैं। अकारान्त पुँल्लिङ्ग होने के कारण सु विभक्ति में **रामः** की तरह रुत्व और विसर्ग करके **निर्जरः** बनाइये।

स्मरण रहे कि **सु, भ्याम्, भिस्, भ्यस्, सुप्** ये हलादि विभक्ति और **औ, जस्, अम्, औट्, शस्, टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम्, ङि** ये अजादि विभक्ति हैं। अनुबन्धलोप होने के बाद जिसके आदि में अच् वर्ण हो वह अजादि और अनुबन्धलोप होने के बाद भी हल् वर्ण ही आदि में रहे, वह हलादि विभक्ति है। अतः उपदेश काल में जस्,

वैकल्पिकजरसादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१६१. जराया जरसन्यतरस्याम् ७।२।१०१।।

अजादौ विभक्तौ।

परिभाषा- **पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च।**

परिभाषा- **निर्दिश्यमानस्यादेशा भवति।**

परिभाषा- **एकदेशविकृतमनन्यवत्।** इति जर-शब्दस्य जरस्।

निर्जरसौ। निर्जरस इत्यादि। पक्षे हलादौ च रामवत्। विश्वपाः।

....

शस् आदि हलादि होने पर भी जकार और शकार आदि की इत्संज्ञा और लोप होकर ये अजादि बन जाते हैं। अग्रिम सूत्र से अजादिविभक्ति के परे होने पर जरस् आदेश होता है। **१६१- जराया जरसन्यतरस्याम्।** जरायाः षष्ठ्यन्तं, जरस् प्रथमान्तम्, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अचि र ऋतः** से **अचि, अष्टन आ विभक्तौ** से **विभक्तौ** की अनुवृत्ति आती है। **यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे** इस परिभाषा से **अचि** यह पद **विभक्तौ** का विशेषण बनता है। विभक्ति के परे होने पर, कैसी विभक्ति? अजादि विभक्ति। अतः अजादि विशेषण है और विभक्ति विशेष्य है।

अजादि विभक्ति के परे होने पर जरा के स्थान जरस् आदेश विकल्प से होता है।

निर्जरसौ। निर्जर+औ में अजादि विभक्ति परे है औ। अतः **जराया जरसन्यतरस्याम्** से जरस् आदेश का विधान हुआ किन्तु **निर्जर** में **जरा** तो है नहीं। **निर्गता जरा यस्मात्** इस विग्रह में **निर्** के साथ **जरा** का समास होकर **जरा** को ह्रस्व होने से **निर्जर** बन गया है। अब वर्तमान में जरा-शब्द तो है नहीं। कैसे जरा के स्थान पर जरस् आदेश हो? इस समस्या का समाधान अग्रिम परिभाषा से करते हैं-

पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च। यह परिभाषा-सूत्र न होकर पृथक् परिभाषा है। **पद और अङ्ग के अधिकार में जिसके स्थान पर जो आदेश विधान किया जाये वह आदेश उसके तथा तदन्त अर्थात् वह जिसके अन्त में हो, उस समुदाय के स्थान पर भी होता है।**

जराया जरसन्यतरस्याम् में **अङ्गस्य** का अधिकार है। अतः यहाँ पर **जरा** के स्थान पर विहित आदेश **जरान्त निर्जर** के स्थान पर भी माना जाना चाहिए। इस तरह पूरे जरान्त **निर्जर** शब्द के स्थान पर **जरस्** आदेश प्राप्त हुआ क्योंकि **अनेकाल् शित्सर्वस्य** इस परिभाषा सूत्र के अनुसार अनेकाल् आदेश सम्पूर्ण **निर्जर** के स्थान पर प्राप्त होता है। अतः सर्वादेश को रोकने के लिए अग्रिम परिभाषा आती है।

निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति। यह भी परिभाषा है। **आदेश जिसके स्थान पर निर्दिष्ट किये गये हों, केवल उसी के स्थान पर ही होते हैं।** अर्थात् सूत्र से जितने वर्णों के स्थान पर आदेश बताये गये हैं, उतने ही वर्णों के स्थान आदेश हों, न अधिक वर्णों के स्थान पर और न ही कम वर्णों के स्थान पर। इस तरह जरस् आदेश **निर्जर** के अन्तर्गत **जरा** के स्थान पर ही होगा।

इस तरह इस परिभाषा के नियम से **निर्जर** के स्थान पर आदेश न होकर **जरा**

के स्थान पर ही होने की व्यवस्था बनी किन्तु **निर्जर** में जरा कहाँ है? यहाँ तो जर है और **जराया जरसन्यतरस्याम्** तो जरा के स्थान पर आदेश का विधान करता है और निर्दिश्यमान भी जरा ही है। इस समस्या का समाधान अग्रिम परिभाषा कर रही है।

एकदेशविकृतमनन्यवत्। यह भी पृथक् परिभाषा ही है, परिभाषा सूत्र नहीं। **किसी एक भाग अथवा अवयव के विकृत होने से वह अन्य के समान नहीं होता अर्थात् वही माना जाता है।**

यह परिभाषा लौकिक न्याय पर आधारित है। **छिन्ने पुच्छे शुनि न चाश्वो न तु गर्दभः।** जैसे कुत्ते की पूँछ कट जाने पर वह कुत्ता ही रहता है, न तो घोड़ा और न तो गदहा ही बन जाता है अर्थात् अन्य नहीं बन जाता। उसी तरह **जरा** में ह्रस्व होकर **जर** बनने के बाद भी वह जरा-शब्द ही कहलाता है। इस तरह से इस परिभाषा के बल पर **निर्जर** के अन्तर्गत जर के स्थान पर **जरस्** आदेश हो जाता है जिससे **निर्जरस्** बन जाता है।

निर्जरसौ। निर्जर-निर्जर से औ विभक्ति आने पर एकशेष होकर **निर्जर औ** बना। उपर्युक्त तीन परिभाषाओं की सहायता से **जर** के स्थान पर **जराया जरसन्यतरस्याम्** से जरस् आदेश हो गया, **निर्जरस्+औ** बना। अब अवर्णान्त न होकर सकारान्त बना। अतः वृद्धि आदि का प्रसंग नहीं रह गया। **स्+औ** में वर्णसम्मेलन होकर **निर्जरसौ** सिद्ध हुआ।

अब अजादि-विभक्ति के परे होने पर इसी तरह जरस् आदेश करके वर्णसम्मेलन करने पर **निर्जरसौ, निर्जरसः** आदि बनते हैं। हलादि विभक्ति के परे होने पर जरस् आदेश प्राप्त ही नहीं है। अतः अजादि विभक्ति में जरस् आदेश न होने के पक्ष में तथा हलादि विभक्ति के परे होने पर राम-शब्द की तरह रूप बनते हैं।

तृतीया के बहुवचन भिस् के परे हलादि विभक्ति होने के कारण जरस् आदेश प्राप्त नहीं है किन्तु **अतो भिस ऐस्** से **ऐस्** आदेश करने पर अजादि बन जाता है। अतः अब **जरस्** आदेश हो जाय? इस प्रश्न पर **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** आदि ग्रन्थों में एक और परिभाषा पढ़ी गई है- **सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य।** द्वयोः संयोगः सन्निपातः। सन्निपातो लक्षणं निमित्तं यस्य स सन्निपातलक्षणः, तादृशो विधिः तस्य सम्बन्धस्य विघाताय निमित्तं न भवति अर्थात् **जिस के विद्यमान होने पर जो कार्य हुआ हो, वह कार्य उसके निमित्त के विनाशक कार्य में निमित्त नहीं बनता।** लौकिक उदाहरण भी देखें- जैसे पिता से पुत्र उत्पन्न होता है और वह पुत्र पिता के विनाश के लिए निमित्त नहीं बनता। इस परिभाषा के कार्य को **उपजीव्यविरोध** भी कहते हैं। वैसे यह परिभाषा **कष्टाय क्रमणे** इत्यादि सूत्रों के निर्देश से अनित्य मानी जाती है। यदि यह परिभाषा नित्य होती तो **कष्ट+ङे** में कष्ट को अदन्त मानकर ङे के स्थान पर य आदेश होने के बाद उसी य को निमित्त मानकर कष्ट के अकार को **सुपि च** से दीर्घ नहीं होना चाहिए था। इस तरह अनेक निर्देशों से यह परिभाषा अनित्य है। अनित्य होने के कारण भाष्य आदि में जिस जगह पर इसकी प्रवृत्ति बताई गई है, वहाँ पर ही प्रवृत्त होगी, अन्यत्र नहीं।

यहाँ पर भी **निर्जर** के अकार को निमित्त बनाकर ऐस् आदेश हुआ। अब ऐस् को निमित्त बनाकर उसी अकार का विनाश अर्थात् निर्जर के स्थान पर हलन्त जरस् आदेश करने में ऐस् निमित्त नहीं बनता। अतः ऐस् के परे होने पर **जरस्** नहीं किया जाता है। फलतः **निर्जरैः** ऐसा रूप बनता है।

पूर्वसवर्णदीर्घनिषेधकं विधिसूत्रम्

१६२. दीर्घाज्जसि च ६।१।१०५॥

दीर्घाज्जसि इचि च परे पूर्वसवर्णदीर्घो न स्यात्।

विश्वपौ। विश्वपा:। हे विश्वपा:। विश्वपाम्। विश्वपौ।

....

निर्जर-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	निर्जर:	निर्जरसौ-निर्जरौ	निर्जरस:-निर्जरा:
द्वितीया	निर्जरसम्-निर्जरम्	निर्जरसौ-निर्जरौ	निर्जरान्
तृतीया	निर्जरसा-निर्जरेण	निर्जराभ्याम्	निर्जरै:
चतुर्थी	निर्जरसे-निर्जराय	निर्जराभ्याम्	निर्जरेभ्य:
पञ्चमी	निर्जरस:-निर्जरात्	निर्जराभ्याम्	निर्जरेभ्य:
षष्ठी	निर्जरस:-निर्जरस्य	निर्जरसो:-निर्जरयो:	निर्जरसाम्-निर्जराणाम्
सप्तमी	निर्जरसि-निर्जरे	निर्जरसो:-निर्जरयो:	निर्जरेषु
सम्बोधन	हे निर्जर!	हे निर्जरसौ-हे निर्जरौ	हे निर्जरस:-हे निर्जरा:

विश्वपा:। विश्वं पाति=रक्षतीति विश्वपा:, विश्व की रक्षा करने वाला। विश्व-पूर्वक पा-धातु से कृत्प्रकरण में विच्-प्रत्यय करके उसके सर्वापहार लोप से विश्वपा बना है। **क्विब्विड्विजन्ता धातुत्वं न जहति** अर्थात् **क्विप्, विट्** और **विच्** प्रत्ययों के लगने के बाद भी **धातुत्व** बना ही रहता है, इस नियम से **विश्व-पा** में **पा** का धातुत्व विद्यमान है, अत: उसे धातु मानकर के आगे आकार का लोप आदि किया जाता है। उक्त प्रत्यय और लोप के बाद **विश्वपा** ही रहा। इससे सु-प्रत्यय आया। उकार की इत्संज्ञा और लोप होने पर सकार को रुत्व और विसर्ग करके **विश्वपाः** सिद्ध होता है। स्मरण रहे कि यह शब्द आकारान्त धातु से निर्मित है, स्त्रीलिङ्ग आबन्त नहीं।

१६२- दीर्घाज्जसि च। दीर्घात् पञ्चम्यन्तं, जसि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **नादिचि** से **इचि** और **न, प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** से **पूर्वसवर्णः** और **अकः सवर्णे दीर्घः** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है।

दीर्घ से जस् और इच् परे रहने पर पूर्वसवर्णदीर्घ नहीं होता है।

विश्वपौ में **नादिचि** से निषेध होने पर काम चल सकता था किन्तु आगे पपी-शब्द के औ में इसकी आवश्यकता पड़ती ही है, अत: यहाँ पर पढ़ा गया।

विश्वपौ। विश्वपा से औ, **वृद्धिरेचि** से **वृद्धि** प्राप्त, उसे बाधकर **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** से **पूर्वसवर्णदीर्घ** प्राप्त, उसका **दीर्घाज्जसि** से निषेध होने पर पुन: **वृद्धिरेचि** से वृद्धि होकर **विश्वपौ** सिद्ध हुआ।

विश्वपा:। बहुवचन में भी पूर्वसवर्णदीर्घ का निषेध होकर **विश्वपा+अस्** में **अकः सवर्णे दीर्घ** से दीर्घ होकर सकार को रुत्वविसर्ग करके **विश्वपाः** बन जाता है।

हे विश्वपा:। सम्बोधन में प्रथमा एकवचन की तरह **विश्वपाः** बनाकर **हे** का पूर्वप्रयोग करके **हे विश्वपाः** बन जाता है। एङन्त और ह्रस्वान्त न होने के कारण **एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः** से सकार का लोप नहीं हुआ।

सर्वनामस्थानसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१६३. सुडनपुंसकस्य १।१।४३॥

स्वादिपञ्चवचनानि सर्वनामस्थानसंज्ञानि स्युरक्लीबस्य।

पदसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्।

१६४. स्वादिष्वसर्वनामस्थाने १।४।१७॥

कप्-प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं पदं स्यात्।

....

विश्वपाम्। विश्वपौ। पूर्वसवर्णदीर्घ को बाधकर **विश्वपा+अम्** में **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर **विश्वपाम्** बन जाता है। प्रथमा के द्विवचन की तरह द्वितीया के द्विवचन में भी **विश्वपौ** बनता है।

१६३- सुडनपुंसकस्य। न नपुंसकम्- अनपुंसकं, तस्य अनपुंसकस्य, नञ्तत्पुरुषः। सुट् प्रथमान्तम्, अनपुंसकस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **शि सर्वनामस्थानम्** से **सर्वनामस्थानम्** की अनुवृत्ति आती है।

सु आदि पाँच वचनों की सर्वनामस्थान संज्ञा होती है किन्तु नपुंसकलिङ्ग में नहीं।

इस सूत्र में सुट्-प्रत्याहार का व्यवहार है। जो सु-औ-जस्-अम्-औट् विभक्तियाँ हैं उनमें प्रथमा के एकवचन सु से लेकर द्वितीया के द्विवचन औट् तक पाँच वचनों को सुट्-प्रत्याहार माना गया है। इनकी इस सूत्र से **सर्वनामस्थानसंज्ञा** की जाती है किन्तु यह संज्ञा नपुंसकलिङ्ग में नहीं होगी। सर्वनामसंज्ञा का फल **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ, अप्तृन्तृच्०** आदि सूत्रों से दीर्घ आदि करना है। यहाँ तो इस लिए पढ़ा गया है कि अग्रिम सूत्र में असर्वनामस्थान की आवश्यकता होती है। असर्वनामस्थान को जानने के लिए पहले सर्वनामस्थान जानना जरूरी है।

१६४- स्वादिष्वसर्वनामस्थाने। न सर्वनामस्थानम्- असर्वनामस्थानं, तस्मिन् असर्वनामस्थाने, नञ्तत्पुरुषः। स्वादिषु सप्तम्यन्तम्, असर्वनामस्थाने सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सुप्तिङन्तं पदम्** से **पदम्** की अनुवृत्ति आती है।

सर्वनामस्थानसंज्ञक प्रत्ययों को छोड़कर सु लेकर कप् प्रत्यय पर्यन्त के प्रत्ययों के परे होने पर पूर्व का शब्दस्वरूप पदसंज्ञक होता है।

स्वौजसमौट्- ४।१।२ से **उरः प्रभृतिभ्यः कप्** ५।४।१५१ तक के सभी प्रत्यय **स्वादि** कहलाते हैं। इसके अन्तर्गत आने वाले असर्वनामस्थान अर्थात् सर्वनामस्थानसंज्ञक प्रत्ययों से भिन्न की पदसंज्ञा होती है। जिस तरह **सुप्तिङन्तं पदम्** सूत्र सुबन्त और तिङन्त की पदसंज्ञा करता है उसी तरह यह सूत्र जो सु, औ, जस् आदि सुप् प्रत्यय हैं, उनमें से सर्वनामस्थानसंज्ञक से भिन्न और भसंज्ञक से भिन्न, इसी प्रकार कप् प्रत्यय के पूर्व के स्वादि प्रत्ययों के बाद के सभी प्रत्ययों के परे रहते **पदसंज्ञा** करता है। यह सूत्र उक्त सुप् आदि प्रत्ययों के परे रहने पर पूर्व में स्थित केवल शब्द की पदसंज्ञा करता है किन्तु **सुप्तिङन्तं पदम्** यह सूत्र सुप् सहित शब्द की पदसंज्ञा करता है। दोनों के पदों में यह एक विशेष अन्तर है। अग्रिम सूत्र **यचि भम्** से यकारादि या अजादि प्रत्यय के परे रहने पर पूर्व की भसंज्ञा होती है और शेष अर्थात् हलादि विभक्ति के परे रहने पर पूर्व की इस सूत्र से

भ-संज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१६५. यचि भम् १।४।१८॥

यादिष्वजादिषु च कप्-प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं भसंज्ञं स्यात्।

एकसंज्ञाधिकारार्थं नियमसूत्रम्

१६६. आ कडारादेका संज्ञा १।४।१॥

इत ऊर्ध्वं कडाराः कर्मधारय इत्यतः प्रागेकस्यैकैव संज्ञा ज्ञेया। या पराऽनवकाशा च।

....

पदसंज्ञा हो जाती है। दोनों सूत्र असर्वनामस्थान में ही लगते हैं। इस तरह यह व्यवथा बन गई कि असर्वनामस्थान यकारादि या अजादि प्रत्यय के परे रहने पर पूर्व की भसंज्ञा और असर्वनामस्थान स्वादि हलादि प्रत्यय के परे रहने पर पूर्व की पदसंज्ञा होती है। इस सूत्र से जिसकी पदसंज्ञा हो गई, उसे पद के द्वारा ग्रहण केवल व्याकरण की प्रक्रिया में ही होगा, लोक में या सामान्यतया भाषा आदि में इस सूत्र के द्वारा की गई पदसंज्ञा को पद के रूप में नहीं माना जाता।

१६५- **यचि भम्।** य् च, अच् च यच्, (समाहारद्वन्द्वः), तस्मिन् यचि। यचि सप्तम्यन्तं, भं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** सम्पूर्ण सूत्र अनुवर्तन होता है। यच् का अर्थ है यकार और अच्।

सर्वनामस्थानसंज्ञक प्रत्ययों से भिन्न यकारादि या अजादि प्रत्यय जो स्वादि से लेकर कप् प्रत्यय तक में आते हैं, उनके परे रहने पर पूर्व में विद्यमान प्रकृति भसंज्ञक होती है।

स्वादिष्वसर्वनामस्थाने असर्वनामस्थान स्वादि प्रत्ययों के परे रहने पर पूर्व की पदसंज्ञा करता है और यह सूत्र अजादि स्वादि प्रत्ययों एवं यकारादि स्वादि प्रत्ययों के परे रहने पर **भसंज्ञा** करता है। यह सूत्र भी कप्प्रत्ययावधिक है।

१६६- **आ कडारादेका संज्ञा।** आ अव्ययपदं, कडारात् पञ्चम्यन्तम्, एका प्रथमान्तं, संज्ञा प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

इस सूत्र से लेकर 'कडारा कर्मधारये' तक एक की एक ही संज्ञा होती है, ऐसा समझना चाहिए।

अनेक जगहों पर एक शब्द की कई संज्ञायें होती हैं। जैसे- तव्यत् आदि की कृत् संज्ञा भी और कृत्यसंज्ञा भी। इसी तरह असर्वनामस्थान अजादि के परे **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से **पदसंज्ञा** और **यचि भम्** से **भसंज्ञा,** यदि एक जगह दोनों संज्ञायें होती हैं तो दोनों संज्ञाओं को मानकर होने वाले दोनों कार्य एक ही जगह पर होंगे। इससे अनेक अनिष्ट रूपों की सिद्धि होने लगेगी। अतः सूत्रकार ने इस सूत्र को बनाकर यह निर्णय दिया कि अन्यत्र दो संज्ञायें होती है किन्तु प्रथमाध्याय, चतुर्थपाद के प्रथमसूत्र **आ कडारादेका संज्ञा** से द्वितीयाध्याय, द्वितीयपाद के अड़तीसवें सूत्र **कडारा कर्मधारये** तक के सूत्रों से जो भी संज्ञायें होती हैं वे एक की एक ही संज्ञा होगी, दो संज्ञायें नहीं। **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** और **यचि भम्** ये दोनों सूत्र इसके अन्तर्गत आते हैं, अतः यहाँ पर किसी शब्द की या तो पदसंज्ञा होगी और या तो भसंज्ञा।

आकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

१६७. आतो धातोः ६।४।१४०।।

आकारान्तो यो धातुस्तदन्तस्य भस्याङ्गस्य लोपः। अलोऽन्त्यस्य। विश्वपः। विश्वपा। विश्वपाभ्यामित्यादि। एवं शङ्खध्मादयः। धातोः किम्? हाहान्। हरिः। हरी।

....

इस तरह से एकसंज्ञाधिकार होने से एक समस्या और आती है कि जब दोनों संज्ञायें एक साथ प्राप्त हों तो कौन सी संज्ञा की जाय? इस पर मूलकार ने लिखा- **या पराऽनवकाशा च**। अष्टाध्यायी के क्रम से जो पर हो और जो संज्ञासूत्र परस्पर में अनवकाश अर्थात् कम जगहों पर लगने वाली हो, वह संज्ञा हो जाय अर्थात् दो संज्ञाओं की प्राप्ति एक साथ हो जाय तो दो संज्ञाओं में जो पर भी हो और निरवकाश हो, वही संज्ञा मानी जाय। उक्त दोनों सूत्रों में **यचि भम्** परसूत्र है और अनवकाश भी क्योंकि **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदसंज्ञा असर्वनामस्थान से भिन्न सभी स्वादियों में प्राप्त हो सकती है किन्तु **यचि भम्** से भसंज्ञा स्वादियों में भी केवल अजादि या यकार आदि में हो ऐसे प्रत्ययों के परे होने पर ही होती है। अतः दोनों संज्ञाओं की प्राप्ति में निरवकाश होने से **भसंज्ञा** ही बलवती हो जाती है। जहाँ भसंज्ञा की प्राप्ति नहीं हो सकती, वहाँ पर पदसंज्ञा हो जायेगी। इस तरह यहाँ पर शस्, टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम्, ङि, ओस् के परे होने पर **भसंज्ञा** और शेष भ्याम्, भिस्, भ्यस् और सुप् के परे पूर्व की पदसंज्ञा हो जाती है।

१६७- आतो धातोः। आतः षष्ठ्यन्तं, धातोः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अल्लोपोऽनः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है। **भस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है। **आतः** और **धातोः** में तदन्तविधि होकर आकारान्त धातु और तदन्त **अङ्ग** लिया जाता है। **अलोऽन्त्यस्य** की प्रवृत्ति से उस अङ्ग के **अन्त्य का** यह अर्थ आ जाता है।

आकारान्त जो धातु, वह धातु अन्त में हो ऐसा जो भसंज्ञक अङ्ग का लोप होता है।

यह सूत्र आकारान्त धातु अन्त में होने पर भी लोप करता है और भसंज्ञक होने पर **व्यपदेशीवद्भाव** से केवल धातु में भी प्रवृत्त होकर लोप करता है।

विश्वपः। द्वितीया के बहुवचन में **विश्व** से **शस्** आया और अनुबन्धलोप होने पर **विश्वपा+अस्** बना। यहाँ पर पूर्वसवर्णदीर्घ प्राप्त था उसे बाधकर के **आतो धातोः** से भसंज्ञक विश्वपा के अन्त्य आकार का लोप हो जाता है। इस सूत्र के लगने पहले **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदसंज्ञा और **यचि भम्** से भसंज्ञा की प्राप्ति थी तो आ **कडारादेका संज्ञा** के द्वारा पर और अनवकाश एक ही संज्ञा के निर्णय से **यचि भम्** से विश्वपा की भसंज्ञा हो गई है। आकार का लोप होने पर **विश्वप्+अस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर सकार का रुत्वविसर्ग करके **विश्वपः** सिद्ध हुआ।

उक्त रीति से ही टा आदि अजादि विभक्ति के परे होने पर आकार का लोप करके **विश्वप्** बनाकर वर्णसम्मेलन करने पर **विश्वपा, पिश्वपे, विश्वपः** आदि बनते हैं और हलादिविभक्ति के परे होने पर भसंज्ञा न होने के कारण पदसंज्ञा तो होती है किन्तु यहाँ पर पदसंज्ञाप्रयुक्त कोई कार्य नहीं है। अदन्त न होने के कारण **सुपि च, बहुवचने झल्येत्**

आदि की प्रवृत्ति नहीं होगी। अतः केवल प्रत्यय जोड़ना और प्रत्यय के अन्त में सकार हो तो रुत्व विसर्ग आदि करने से **विश्वपाभ्याम्, विश्वपाभिः, विश्वपाभ्यः** आदि रूप बन जाते हैं। **आम्** में भी **ह्रस्वान्त, नद्यन्त और आबन्त** के अभाव में नुट् का आगम नहीं होता है, अतः आकार का लोप होकर **विश्वपाम्** बनता है।

विश्वपा-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः
द्वितीया	विश्वपाम्	विश्वपौ	विश्वपः
तृतीया	विश्वपा	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभिः
चतुर्थी	विश्वपे	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
पञ्चमी	विश्वपः	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
षष्ठी	विश्वपः	विश्वपोः	विश्वपाम्
सप्तमी	विश्वपि	विश्वपोः	विश्वपासु
सम्बोधन	हे विश्वपाः!	हे विश्वपौ!	हे विश्वपाः

विश्वपा की तरह **शङ्खध्मा** आदि शब्दों के रूप भी समझना चाहिए। **शङ्खं धमति** शङ्ख बजाता है। यह भी आकारान्त ध्मा-धातु है। उसी तरह आकार का लोप आदि करके रूप बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

शङ्खध्मा-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	शङ्खध्माः	शङ्खध्मौ	शङ्खध्माः
द्वितीया	शङ्खध्माम्	शङ्खध्मौ	शङ्खध्मः
तृतीया	शङ्खध्मा	शङ्खध्माभ्याम्	शङ्खध्माभिः
चतुर्थी	शङ्खध्मे	शङ्खध्माभ्याम्	शङ्खध्माभ्यः
पञ्चमी	शङ्खध्मः	शङ्खध्माभ्याम्	शङ्खध्माभ्यः
षष्ठी	शङ्खध्मः	शङ्खध्मोः	शङ्खध्माम्
सप्तमी	शङ्खध्मि	शङ्खध्मोः	शङ्खध्मासु
सम्बोधन	हे शङ्खध्माः!	हे शङ्खध्मौ!	हे शङ्खध्माः!

धातोः **किम्? हाहान्।** अब प्रश्न करते हैं कि **आतो धातोः** में **धातोः** क्यों पढ़ा गया? उत्तर देते हैं कि यदि **धातोः** नहीं पढ़ा जायेगा तो यह सूत्र धातु के आकार का भी लोप करेगा और अधातु के आकार का भी। फलतः **हाहा** इस आकारान्त अधातु के आकार भी लोप होकर हाहः ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगेगा। अतः **धातोः** पढ़ा गया जिसके कारण **हाहा+अस्** में आकार का लोप न होकर पूर्वसवर्णदीर्घ हुआ और सकार के स्थान पर **तस्माच्छसो नः पुंसि** से नकारादेश होकर **हाहान्** सिद्ध हुआ।

हाहा-शब्द गन्धर्व का वाचक है। तृतीया के एकवचन **हाहा+आ** में सवर्णदीर्घ, चतुर्थी के एकवचन **हाहा+ए** में वृद्धि, पञ्चमी और षष्ठी एकवचन **हाहा+अस्** में सवर्णदीर्घ करके सकार को रुत्वविसर्ग, षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन **हाहा+ओस्** में वृद्धि और रुत्वविसर्ग, षष्ठी के बहुवचन **हाहा+आम्** में सवर्णदीर्घ, सप्तमी के एकवचन **हाहा+इ** में गुण करके निम्नलिखित रूप सिद्ध हो जाते हैं।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

१६८. जसि च ७।३।१०९॥

ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणः। हरयः।

....

हाहा-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	हाहाः	हाहौ	हाहाः
द्वितीया	हाहाम्	हाहौ	हाहान्
तृतीया	हाहा	हाहाभ्याम्	हाहाभिः
चतुर्थी	हाहै	हाहाभ्याम्	हाहाभ्यः
पञ्चमी	हाहाः	हाहाभ्याम्	हाहाभ्यः
षष्ठी	हाहाः	हाहौः	हाहाम्
सप्तमी	हाहे	हाहौः	हाहासु
सम्बोधन	हे हाहाः!	हे हाहौ!	हे हाहाः।

अभी तक अकारान्त शब्दों के बारे में बताया गया। अब इकारान्त शब्दों का कथन कर रहे हैं, जैसे- हरिशब्द। यह इकारान्त पुँल्लिङ्गशब्द है।

हरिः। हरि-शब्द से प्रथमा का एकवचन सु आया, उकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। सकार को रुत्व करके रेफ के स्थान पर विसर्ग कर देने पर हरिः सिद्ध हो जाता है।

हरी। हरि-शब्द से प्रथमा का द्विवचन औ आया। **हरि+औ** में **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** से पूर्वसवर्णदीर्घ हुआ। पूर्व में इकार है अतः पूर्व के इकार और पर के औकार के स्थान पर पूर्व का दीर्घसवर्णी **ईकार** एकादेश हुआ- **हर्+ई** हुआ। **र्+ई** में वर्णसम्मेलन हुआ- **हरी**।

१६८- **जसि च**। जसि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ह्रस्वस्य गुणः** से पूरा सूत्र अनुवृत्त हो जाता है।

जस् विभक्ति के परे रहते अन्त में ह्रस्व हो ऐसे अङ्ग के अन्त्यवर्ण को गुण होता है।

हरयः। इकारान्त पुँल्लिङ्ग हरि-शब्द से प्रथमा के बहुवचन में जस् विभक्ति आई। जकार की **चुटू** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। **हरि+अस्** बना। इस स्थिति में सूत्र लगा- **जसि च**। जस् परे है जस् वाला अस् और ह्रस्वान्त अङ्ग है हरि, उसका अन्तिम वर्ण है इकार, उसी का गुण हुआ। इकार का जब गुण होता है तो एकार होता है। क्योंकि जब इकार के स्थान पर गुण की प्राप्ति होगी तो **अ, ए, ओ** ये तीनों प्राप्त होंगे। एक के स्थान पर तीनों की प्राप्ति होना अनियम हुआ। नियमार्थ सूत्र लगता है- **स्थानेऽन्तरतमः**। प्रसंग रहने पर स्थान, अर्थ, गुण, प्रमाण से तुल्यतम आदेश होता है। स्थान से मिलाने पर स्थानी इकार का स्थान है- तालु। आदेश **अ, ए, ओ** में तालुस्थान वाला कोई भी वर्ण नहीं है किन्तु कण्ठतालुस्थान वाला ए है। यत्किञ्चित् स्थान से तुल्यता इकार का एकार के साथ हुआ। इसलिये हरि के इकार के स्थान पर गुणरूप एकार आदेश

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

१६९. ह्रस्वस्य गुणः ७।३।१०८॥

सम्बुद्धौ। हे हरे। हरिम्। हरी। हरीन्।

घिसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१७०. शेषो घ्यसखि १।४।७॥

शेष इति स्पष्टार्थम्। ह्रस्वौ याविदुतौ तदन्तं सखिवर्जं घिसंज्ञम्।

....

हुआ। **हर् ए+अस्** बना। **र्+ए=रे**, हरे+अस् में **एचोऽयवायावः** से एकार के स्थान पर अय् आदेश हुआ। **हर्+अय्+अस्** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **हरयस्** बना। सकार के रुत्व और विसर्ग करने पर **हरयः** सिद्ध हुआ।

१६९- ह्रस्वस्य गुणः। ह्रस्वस्य षष्ठ्यन्तं, गुणः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सम्बुद्धौ च** से **सम्बुद्धौ** की अनुवृत्ति है।

सम्बुद्धि के परे रहते ह्रस्व को गुण होता है।

यह सूत्र केवल सम्बुद्धि के परे गुण करने के लिए है।

हे हरे! इकारान्त पुँल्लिङ्ग हरि-शब्द से सम्बोधन के लिए प्रथमा का एकवचन सु आया। अनुबन्ध लोप हुआ। स् बचा। सम्बुद्धिसंज्ञा हुई और **ह्रस्वस्य गुणः** से इकार के स्थान पर गुण आदेश हुआ। **हरे स्** बना। गुण होकर एङन्त बन जाने के बाद **एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः** से सकार का लोप हुआ और हे का पूर्वप्रयोग हुआ- **हे हरे**। द्विवचन और बहुवचन में केवल हे का ही पूर्वप्रयोग करना है। **हे हरी! हे हरयः!**

हरिम्। हरी। हरीन्। इकारान्त पुँल्लिङ्ग हरि-शब्द से द्वितीया एकवचन अम् आया, हरि+अम् में **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **हरिम्।** प्रथमा के द्विवचन के समान यहाँ भी **हरी** है। बहुवचन में शस्, शकार की इत्संज्ञा और लोप। **हरि+अस्** में **प्रथमयोः पूर्वसवर्ण** से पूर्वसवर्णदीर्घ होकर **हरीस्** बना। **तस्माच्छसो नः पुंसि** से सकार के स्थान पर नकार आदेश हुआ- हरीन्।

१७०- शेषो घ्यसखि। न सखि असखि। शेषः प्रथमान्तं, घि प्रथमान्तम्, असखि प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ङिति ह्रस्वश्च** से **ह्रस्वः** और **यूस्त्र्याख्यौ नदी** से **यू** की अनुवृत्ति आती है।

ह्रस्व जो इकार और उकार, तदन्त शब्द घिसंज्ञक होता है, सखि-शब्द को छोड़कर।

यू का अर्थ है (इ+उ, प्रथमा के द्विवचन में यू) इकार और उकार। शेष का अर्थ है बचा हुआ। इससे पहले के सूत्र **ङिति ह्रस्वश्च** से बचा हुआ जो ह्रस्व इकार और उकार, उसकी घिसंज्ञा हो। वैसे दीर्घ ईकार और ऊकार वाले नित्य स्त्रीलिंगी शब्द की नदीसंज्ञा होती है। कभी-कभी ह्रस्व इकार और उकार की भी नदी संज्ञा होती है **ङिति ह्रस्वश्च** आदि सूत्रों से। इन सूत्रों से जिनकी नदीसंज्ञा नहीं हुई है ऐसे ह्रस्व इकार और उकार की घिसंज्ञा होती है किन्तु ह्रस्व इकारान्त होते हुए भी सखिशब्द की घिसंज्ञा नहीं होनी चाहिए। घिसंज्ञा का प्रयोजन ना-आदेश, गुण आदि कार्य हैं।

नादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१७१. आङो नाऽस्त्रियाम् ७।३।१२०॥

घेः परस्याङो ना स्यादस्त्रियाम्। आङिति टासंज्ञा।

हरिणा। हरिभ्याम्। हरिभिः।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

१७२. घेर्ङिति ७।३।१११॥

घिसंज्ञस्य ङिति सुपि गुणः। हरये। हरिभ्याम्। हरिभ्यः।

....

सूत्र में **शेषः** का प्रयोजन बताते हैं- **शेष इति स्पष्टार्थम्।** यहाँ पर शेष का अन्य कोई प्रयोजन नहीं है, केवल स्पष्टता के लिए है। **उक्तादन्यः शेषः।** कहने के बाद जो बचे, उसे शेष कहते हैं। **यू स्त्र्याख्यौ नदी** और **ङिति ह्रस्वश्च** से स्त्रीलिङ्ग में दीर्घ ईकार और ऊकार तथा स्त्रीलिङ्गीय ह्रस्व इकार-उकार की नदीसंज्ञा होने के बाद शेष ह्रस्व, इकार और उकार की स्वतः **घिसंज्ञा** प्राप्त होगी, क्योंकि अपवाद के क्षेत्र को छोड़कर उत्सर्ग शास्त्र प्रवृत्त होते हैं। **प्रकल्प्य चापवादविषयं तत उत्सर्गोऽभिनिविशते। शेषो घ्यसखि** उत्सर्ग अर्थात् सामान्य सूत्र है और **ङिति ह्रस्वश्च** अपवाद सूत्र। अपवाद सूत्र के द्वारा छोड़े गये इ-उ-वर्ण की स्वतः घिसंज्ञा प्राप्त होती है। अतः **शेषो घ्यसखि** में **शेष-शब्द** केवल स्पष्टता के लिए है, अत्यावश्यक नहीं है।

१७१- आङो नास्त्रियाम्। न स्त्री- अस्त्री, तस्याम्- अस्त्रियाम्। आङः षष्ठ्यन्तं, ना लुप्तप्रथमाकम्, अस्त्रियां सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अच्च घेः** से **घेः** की अनुवृत्ति आ रही है।

घिसंज्ञक शब्द से परे आङ् के स्थान पर ना आदेश होता है, स्त्रीलिंग में नहीं।

इस सूत्र में आङ् से तृतीया-एकवचन का टा लिया गया है क्योंकि **प्राचीन आचार्यों ने टा की आङ्-संज्ञा** की है।

हरिणा। हरि-शब्द से तृतीया के एकवचन में टा आया। टकार की **चुटू** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। **हरि+आ** बना। ऐसी स्थिति में हरि की **शेषो घ्यसखि** से घिसंज्ञा हुई। **आङो नास्त्रियाम्** से टा के आकार के स्थान पर ना आदेश हुआ- **हरि+ना** बना। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व हुआ- **हरिणा** सिद्ध हुआ।

हरिभ्याम्। हरि से तृतीया का द्विवचन भ्याम् आया- हरिभ्याम् बना। यहाँ पर **सुपि च** से दीर्घ नहीं होगा, क्योंकि हरि शब्द अदन्त न होकर इदन्त है।

चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में भी **हरिभ्याम्** ही बनता है।

हरिभिः। बहुवचन भिस् आया। यहाँ पर भी **अतो भिस ऐस्** से ऐस् आदेश नहीं होगा, क्योंकि हरि शब्द अदन्त नहीं है इदन्त है। **हरि+भिस्** में सकार का रुत्व हुआ और विसर्ग हुआ- **हरिभिः** सिद्ध हुआ।

१७२- घेर्ङिति। घेः षष्ठ्यन्तं, ङिति सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ह्रस्वस्य गुणः** से **गुणः** और **सुपि च** से **सुपि** की अनुवृत्ति आ रही है।

पूर्वरूपविधायकं विधिसूत्रम्

१७३. ङसिङसोश्च ६।१।११०॥

एङो ङसिङसोरति पूर्वरूपमेकादेशः। हरेः २। हर्योः २। हरीणाम्।

....

घिसंज्ञक को गुण होता है ङित् सुप् के परे रहने पर।

जिस में ङकार की इत्संज्ञा होती है वह ङित् हो जाता है। जैसे ङे, ङसि, ङस्, ङि में ङकार की इत्संज्ञा हो रही है। ऐसे ङित् सुप् के परे रहने पर ही यह सूत्र काम करता है।

हरये। हरि-शब्द से चतुर्थी का एकवचन ङे आया। ङकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। हरि की **शेषो घ्यसखि** से घिसंज्ञा हुई। हरि+ए में इकार के स्थान पर **घेर्ङिति** से गुण हुआ- **हरे+ए** बना। ऐसी स्थिति में **एचोऽयवायावः** से एकार के स्थान पर अय् आदेश हुआ- **हर्+अय्+ए** बना। वर्णसम्मेलन हुआ-**हरये** सिद्ध हुआ।

हरिभ्यः। हरि से चतुर्थी का बहुवचन भ्यस् आया। हरिभ्यस् में सकार का रुत्व और विसर्ग हुआ- **हरिभ्यः** सिद्ध हुआ। यहाँ पर **बहुवचने झल्येत्** से एत्व नहीं हुआ, क्योंकि हरि अदन्त नहीं है, इदन्त है। पञ्चमी के बहुवचन में **हरिभ्यः** ही बनेगा।

एक बात बताना चाहता हूँ कि प्रत्यय, आगम और आदेशों में जिस वर्ण की भी इत्संज्ञा और लोप किया जाता है, ऐसे वर्णों को अनुबन्ध कहते हैं। **इत्संज्ञायोग्यत्वम् अनुबन्धत्वम्।** अर्थात् जो वर्ण इत्संज्ञा का योग्य है उसे अनुबन्ध कहा जाता है। अब हम **हलन्त्यम्, उपदेशेऽजनुनासिक इत्, लशक्वतद्धिते, चुटू** आदि सूत्रों से जो जिस वर्ण की इत्संज्ञा होती है, उसे आगे केवल **अनुबन्धलोप** कहेंगे और आप समझना कि अमुक-अमुक वर्ण की अमुकसूत्र से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप हो रहा है।

अब बार-बार सूत्र घटाने की प्रक्रिया को संक्षेप कर रहे हैं अर्थात् केवल संकेत मात्र करेंगे तो भी आप समझना कि यह कार्य अमुक सूत्र से हो रहा है। जैसे आपने एत्व, दीर्घ, णत्व, षत्व आदि करने वाले सूत्र पढ़ लिये हैं, उसी प्रकार घिसंज्ञा, सर्वनामसंज्ञा, प्रातिपदिकसंज्ञा आदि भी जान चुके हैं। अतः सूत्रों की व्याख्या या साधनी प्रक्रिया को ज्यादा लम्बा न करके संकेत करते हुए चलेंगे। जैसे **'हरि की घिसंज्ञा हुई'** ऐसा कहा तो आप समझेंगे कि हरि शब्द ह्रस्व इकारान्त है, अतः इसकी **शेषो घ्यसखि** से घिसंज्ञा हुई। इसी प्रकार णत्व हुआ कहने से **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व, षत्व कहने से **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व आदि समझते जाना। जहाँ पर समझ में न आये, अपने शिक्षकों से तो पूछ ही सकते हैं।

१७३- ङसिङसोश्च। ङसिश्च ङस् च, ङसिङसौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः, तयोः ङसिङसोः। ङसिङसोः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **एङः पदान्तादति** से **एङः** और **अति** की अनुवृत्ति आई है। **एकः पूर्वपरयोः** पूरे सूत्र का अधिकार है।

एङ् से ङसि और ङस् सम्बन्धी ह्रस्व अकार के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश होता है।

हरेः। हरि-शब्द से पञ्चमी का एकवचन ङसि आया, अनुबन्धलोप हुआ,

औदादेशादिविधायकं विधिसूत्रम्

१७४. अच्च घेः ७।३।११९॥

इदुद्भ्यामुत्तरस्य ङेरौत्, घेरच्च। हरौ। हरिषु। एवं कव्यादयः।

....

घिसंज्ञा हुई। **हरि+अस्** में **घेर्ङिति** से गुण हुआ- **हरे+अस्** बना। **हरे+अस्** में अय् आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर के **ङसिङसोश्च** से पूर्व के एकार और पर के अकार के स्थान पर पूर्वरूप एकार एकादेश हुआ-**हरेस्** बना। सकार का रुत्व-विसर्ग, हरेः यह रूप सिद्ध हुआ। षष्ठी के एकवचन में भी **हरेः** ही बनेगा।

हर्योः। षष्ठी-द्विवचन ओस्, हरि+ओस् में **इको यणचि** से यण् **हर्+य्+ओस्** बना। **र्+य्+ओस्** में वर्णसम्मेलन हुआ- **हर्योस्** बना। सकार का रुत्व-विसर्ग, **हर्योः**। सप्तमी के द्विवचन में भी **हर्योः** ही बनेगा।

हरीणाम्। षष्ठी-बहुवचन में आम् आया, हरि+आम् में **ह्रस्वनद्यापो नुट्** से नुट् आगम, **नामि** से दीर्घ करके **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व हुआ- **हरीणाम्** सिद्ध हुआ।

१७४-अच्च घेः। अत् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, घेः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **इदुद्भ्याम्** से **इदुद्भ्याम्** की, **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** से **ङेः** की और **औत्** से **औत्** की अनुवृत्ति है।

ह्रस्व इकार और उकार से परे ङि के स्थान पर औत् (औकार) आदेश और घिसंज्ञक के स्थान पर अत्(अकार) आदेश होता है।

यह सूत्र दो काम करता है- प्रथमतः ह्रस्व इकार और उकार से परे ङि के स्थान पर औकार आदेश और दूसरा- घिसंज्ञक वर्ण अर्थात् ह्रस्व इकार और उकार के स्थान पर **अत्** अर्थात् **ह्रस्व अकार** आदेश।

हरौ। हरि-शब्द से सप्तमी का एकवचन ङि-विभक्ति, अनुबन्धलोप, घिसंज्ञा, **घेर्ङिति** से गुण प्राप्त, उसे बाधकर **अच्च घेः**। इससे हरि से परे ङि के इकार के स्थान पर औकार आदेश और हरि के इकार के स्थान पर अकार आदेश करके **हर+औ** बना। **वृद्धिरेचि** से वृद्धि होकर **हरौ** सिद्ध हुआ।

हरिषु। सप्तमी के बहुवचन में सुप्, अनुबन्धलोप, षत्व करके **हरिषु** सिद्ध हुआ।

हरिशब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	हरिः	हरी	हरयः
द्वितीया	हरिम्	हरी	हरीन्
तृतीया	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
चतुर्थी	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
पञ्चमी	हरेः	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
षष्ठी	हरेः	हर्योः	हरीणाम्
सप्तमी	हरौ	हर्योः	हरिषु
सम्बोधन	हे हरे	हे हरी	हे हरयः।

अनङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१७५. अनङ् सौ ७।१।९३॥

सख्युरङ्गस्यानङादेशोऽसम्बुद्धौ सौ।

उपधासंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१७६. अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा १।१।६५॥

अन्त्यादल: पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञ:।

....

अब इसी प्रकार ह्रस्व-इकारान्त पुँल्लिग के सारे शब्दों का रूप बनाने चाहिए। कुछ ही शब्द ऐसे हैं जो हरि-शब्द जैसे नहीं हैं, जैसे पति, सखि आदि। बाकी सारे ह्रस्व-इकारान्त शब्द हरि के अनुसार रूप वाले होते हैं। अब आप निम्नलिखित शब्दों के रूप बनाइये।

शब्द-अर्थ	**शब्द-अर्थ**	**शब्द-अर्थ**
अग्नि=आग	अतिथि=मेहमान	अरि=शत्रु
उदधि=समुद्र	अहि=साँप	उपाधि=उपाधि
ऋषि=मुनि	कपि=वानर	कवि=कविताकार
गिरि=पहाड	ध्वनि=आवाज	निधि=खजाना
नृपति=राजा	पशुपति=शिव	पाणि=हाथ
प्रतिनिधि=प्रतितिधि	पाणिनि=प्रसिद्ध मुनि	मणि=मणि
मारुति=हनुमान	मुनि=ऋषि	यति=संन्यासी
रमापति=विष्णु	रवि=सूर्य	राशि=ढेर
विधि=तरीका	सन्धि=मेल	सभापति= सभा मुख्य
समाधि=समाधि	सारथि=ड्राइवर	सुमति=श्रेष्ठ बुद्धि वाला

१७५- अनङ् सौ। अनङ् प्रथमान्तं, सौ सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सख्युरसम्बुद्धौ** यह पूरा सूत्र आता है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

सम्बुद्धि-भिन्न सु के परे होने पर अङ्गसंज्ञक सखि-शब्द के स्थान पर अनङ् आदेश होता है।

अनङ् में ङकार तथा नकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा होती है। इत्संज्ञा का फल लोप है, यह विदित है ही। अन् शेष रहता है। ङित् होने के कारण **ङिच्च** के नियम से अन्त्य-वर्ण सखि के इकार के स्थान पर **अनङ्** होगा। सु परे हो किन्तु वह सम्बुद्धि न हो। स्मरण रहे कि **एकवचनं सम्बुद्धिः** से सम्बोधन के एकवचन की **सम्बुद्धिसंज्ञा** होती है।

१७६- अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा। अल: पञ्चम्यन्तम्, अन्त्यात् पञ्चम्यन्तं, पूर्व: प्रथमान्तम्, उपधा प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। यह सूत्र उपधासंज्ञा करता है।

वर्णों के समुदाय में से जो अन्तिम वर्ण हो, उससे पूर्व के वर्ण की यह उपधासंज्ञा होती है।

इस सूत्र के प्रवृत्त होने में पद, अपद, धातु, प्रातिपदिक, आगम, आदेश आदि किसी की अपेक्षा न होकर वर्णों के किसी भी समुदाय में जो अन्त्य हो उससे पूर्ववर्ण की अपेक्षा होती है। जैसे राम में अन्त्यवर्ण है मकार के बाद का अकार और उससे पूर्व का

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

१७७. सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६।४।८॥

नान्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने।

अपृक्तसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१७८. अपृक्त एकाल् प्रत्ययः १।२।४१॥

एकाल्प्रत्ययो यः सोऽपृक्तसंज्ञः स्यात्।

सुलोपविधायकं विधिसूत्रम्

१७९. हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् ६।१।६८॥

हलन्तात्परं दीर्घौ यौ ङ्यापौ तदन्ताच्च परं सुतिसीत्येतदपृक्तं हल् लुप्यते।

....

वर्ण है मकार, अतः मकार की उपधासंज्ञा हो जायेगी किन्तु मकार की उपधासंज्ञा करने का कोई फल नहीं है। अतः इत्संज्ञा भी नहीं की जाती। क्योंकि **या या संज्ञा सा सा फलवती** जो भी संज्ञा की जाती है, उसका कोई न कोई प्रयोजन होता है। संज्ञा करने के बाद भी कोई प्रयोजन सिद्ध न हो रहा हो तो संज्ञा का करना ही व्यर्थ है। अतः महाभाष्य में अनेक जगहों पर भाष्यकार का वचन आता है **प्रयोजनाभावादित्सञ्ज्ञापि न**। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए।

१७७- सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ। न सम्बुद्धिः- असम्बुद्धिः, तस्याम् असम्बुद्धौ। सर्वनामस्थाने सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदम्, असम्बुद्धौ सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **नोपधायाः** से **न** तथा **उपधायाः** की और **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है। यहाँ न का अर्थ **निषेध** न होकर **नकारान्त** ऐसा अर्थ है।

सर्वनामस्थानसंज्ञक प्रत्यय के परे रहने पर नकारान्त उपधासंज्ञक वर्ण को दीर्घ आदेश होता है।

१७८- अपृक्त एकाल् प्रत्ययः। एकश्चासौ अल् एकाल्। अपृक्तः प्रथमान्तम्, एकाल् प्रथमान्तं, प्रत्ययः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

एक अल् अल् रूप जो प्रत्यय वह अपृक्तसंज्ञक होता है अर्थात् उसकी अपृक्तसंज्ञा होती है।

उदाहरणार्थ- सु प्रत्यय में स् तथा उ दो अल् थे किन्तु उकार की इत्संज्ञा और लोप हो जाने के कारण केवल स् बचा हुआ है। इसलिए सु का सकार एक मात्र अल् है, अतः उसकी अपृक्तसंज्ञा हो गई।

१७९- हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्। हल् च ङीप् च आप् च तेषामितरेतरद्वन्द्वो हल्ङ्यापः, तेभ्यो हल्ङ्याब्भ्यः। सु श्च, तिश्च, सिश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः, सुतिसि, सुतिसिनोऽपृक्तं सुतिस्यपृक्तम्। हल्ङ्याब्भ्यः पञ्चम्यन्तं, दीर्घात् पञ्चम्यन्तं, सुतिस्यपृक्तं प्रथमान्तं, हल् प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **लोपो व्योर्वलि** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है। सुतिसिनो यत् अपृक्तं हल्, स लुप्यते।

नकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

१८०. न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८।२।७॥

प्रातिपदिकसंज्ञकं यत्पदं तदन्तस्य नस्य लोपः। सखा।

णिद्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्

१८१. सख्युरसम्बुद्धौ ७।१।९२॥

सख्युरङ्गात्परं सम्बुद्धिवर्जं सर्वनामस्थानं णिद्वत्स्यात्।

....

जिसके अन्त्य में हल् हो ऐसे हलन्त से परे तथा दीर्घ जो ङी और आप् अन्त में हों ऐसे ङ्यन्त एवं आबन्त शब्दों से परे सु-ति-सि का जो अपृक्तसंज्ञक हल्, उसका लोप होता है।

जिसका लोप होगा वह सु का सकार होगा या ति का तकार होगा या सि का सकार होगा किन्तु अपृक्त (एक अल्) हो तो और उसके पूर्व में हल् अक्षर हो या ङी प्रत्यय के बाद बचा हुआ ईकार अथवा आप् (टाप्) प्रत्यय के बाद बचा हुआ आकार दीर्घ ही बने हुए हों तभी।

१८०- न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य। न लुप्तषष्ठीकं पदं, लोपः प्रथमान्तं, प्रातिपदिक लुप्तषष्ठीकं पदं, अन्तस्य षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

प्रातिपदिकसंज्ञक जो पद, उसके अन्त में विद्यमान नकार का लोप होता है।

मेरे द्वारा लिखित **ऋजुसिद्धान्तकौमुदी** और उसकी टीका **श्रीधरमुखोल्लासिनी** में इस सूत्र का पदविभाग कुछ भिन्न तरीके से किया गया था। वहाँ पर **नलोपः** एक पद माना गया था। ऋजुता के लिए ऐसा था, किन्तु प्रौढ़ छात्रों को यहाँ लघुसिद्धान्तकौमुदी के हिसाब से समझना चाहिए।

सखि। मित्र। **सखि-शब्द** इकारान्त है, किन्तु **शेषो घ्यसखि** में **असखि** निषेध के कारण इसकी घिसंज्ञा नहीं होती है। अतः घिसंज्ञाप्रयुक्त कार्य ना आदेश, गुण, अत् आदेश आदि नहीं होंगे।

सखा। सखि से प्रथमा का एकवचन सु आया, अनुबन्धलोप होने के बाद **सखि स्** बना। **ङिच्च** की सहायता से सखि के अन्त्य वर्ण के इकार के स्थान पर **अनङ् सौ** से **अनङ्** आदेश हुआ। ङकार और अकार की इत्संज्ञा होने के बाद **अन्** बचा। **सख्+अन्+स्** हुआ। **सख्+अन्** में वर्णसम्मेलन हुआ- **सखन्** बना। अन्त्य वर्ण नकार से पहले का वर्ण खकारोत्तरवर्ती अकार की **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** से **उपधासंज्ञा** और सु की **सुडनपुंसकस्य** से **सर्वनामस्थानसंज्ञा** हो जाती है। **सखन्+स्** में **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** से उपधा को दीर्घ हुआ- **सखान्+स्** बना। स् केवल एक अल् है और प्रत्यय भी। अतः उसकी **अपृक्त एकाल् प्रत्ययः** से **अपृक्तसंज्ञा** हो गई और सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ। यहाँ पर हलन्त **सखान्** से परे सु-सम्बन्धी अपृक्त हल् **स्** है। उसके लोप होने पर **सखान्** बना। नकार की **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ। **सखा** सिद्ध हुआ। यहाँ पर सु का लोप पहले ही हो गया था तथापि **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** से सु-प्रत्ययत्व मानकर पदसंज्ञक माना जाता है और पद के अन्त में विद्यमान नकार का लोप हो जाता है।

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

१८२. अचो ञ्णिति ७।२।११५॥

अजन्ताङ्गस्य वृद्धिर्ञिति णिति च परे। सखायौ। सखायः। हे सखे। सखायम्। सखायौ। सखीन्। सख्या। सख्ये।

उत्वविधायकं विधिसूत्रम्

१८३. ख्यत्यात्परस्य ६।१।११२॥

खितिशब्दाभ्यां खीतीशब्दाभ्यां कृतयणादेशाभ्यां परस्य ङसिङसोरत उः। सख्युः।

....

१८१- **सख्युरसम्बुद्धौ।** न सम्बुद्धिः- असम्बुद्धिः, तस्यां सम्बुद्धौ। सख्युः पञ्चम्यन्तम्, असम्बुद्धौ सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **इतोऽत् सर्वनामस्थाने** से **सर्वनामस्थाने** तथा **गोतो णित्** से **णित्** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

अङ्गसंज्ञक सखिशब्द से परे सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान को णिद्वद्भाव होता है।

णिद्वद्भाव का तात्पर्य- जो णित् नहीं है अर्थात् जिस प्रत्यय आदि में णकार की इत्संज्ञा नहीं हुई है, वह भी णित् की तरह हो जाय अर्थात् णित् को मानकर जो कार्य हो सकता है, वह कार्य हो जाय। यह अतिदेश सूत्र है। जो वैसा नहीं है, उसे वैसा मानना ही अतिदेश है। औ, जस्, अम्, औट् ये स्वतः णित् नहीं हैं किन्तु इस सूत्र से सखि-शब्द से परे इनको णित् जैसा कर दिया जाता है। यहाँ पर णिद्वद्भाव का फल **अचो ञ्णिति** से वृद्धि करना है।

१८२- **अचो ञ्णिति।** ञ् च ण् च ञ्णौ, ञ्णौ इतौ यस्य तत् ञ्णित्, तस्मिन् ञ्णिति, द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिसमासः। अचः षष्ठ्यन्तं, ञ्णिति सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

ञित् या णित् प्रत्यय के परे होने पर अजन्त अङ्ग की वृद्धि होती है।

सखायौ। सखि से प्रथमा का द्विवचन औ आया। सखि से परे औ की **सख्युरसम्बुद्धौ** से णिद्वद्भाव हो जाने पर सखि के इकार की **अचो ञ्णिति** से वृद्धि हो गई। इकार की वृद्धि ऐ होती है। अतः **सखै+औ** बना। **एचोऽयवायावः** से ऐकार के स्थान पर आय् आदेश हुआ- **सख्+आय्+औ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **सखायौ** सिद्ध हुआ।

सखायः। सखायम्। सखायौ। सर्वनामस्थान अर्थात् औट् तक इसी तरह णिद्वद्भाव करके **अचो ञ्णिति** से वृद्धि करके आय् आदेश करके वर्णसम्मेलन करें।

हे सखे। हे सखायौ। हे सखायः। सखि+स् में **एकवचनं सम्बुद्धि** से सम्बुद्धिसंज्ञा, **एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः** से स् का लोप, हे का पूर्वप्रयोग **हे सखे**। द्विवचन और बहुवचन में प्रथमा की तरह बनाकर हे का पूर्वप्रयोग करने पर **हे सखायौ, हे सखायः** बन जाते हैं।

सखीन्। सखि+शस्, सखि+अस्, पूर्वसवर्णदीर्घ-सखीस्, नत्व- **सखीन्।**

सख्या। सखि+टा, सखि+आ, यण्- **सख्या।** घिसंज्ञा न होने से **आङो नाऽस्त्रियाम्** से ना आदेश नहीं हुआ।

सखिभ्याम्। सखिभिः। सखिभ्यः। भ्याम् में कुछ भी नहीं करना है, केवल प्रत्यय लाकर जोड़ना है। भिस् और भ्यस् में सकार का रुत्वविसर्ग करना है।

औदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१८४. औत् ७।३।११८॥

इतः परस्य ङेरौत्। सख्यौ। शेषं हरिवत्।

....

सख्ये। सखि+ङे, सखि+ए, यण्-सख्+य्+ये=सख्ये। घिसंज्ञा न होने के कारण **घेर्ङिति** से गुण नहीं हुआ।

१८३- **ख्यत्यात्परस्य।** ख्यश्च त्यश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः- ख्यत्यम्, तस्मात् ख्यत्यात्। ख्यत्यात् पञ्चम्यन्तं, परस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ङसिङसोश्च** से **ङसिङसोः** तथा **एङः पदान्तादति** से विभक्तिविपरिणाम करके **अतः** एवं **ऋत उत्** से **उत्** का अनुवर्तन है।

जिनके स्थान पर यण् किया गया हो ऐसे खि-शब्द और ति-शब्द अथवा खी-शब्द और ती-शब्द से परे ङसि और ङस् के अकार के स्थान पर उत् अर्थात् ह्रस्व उकार आदेश होता है।

सूत्र में **ख्यत्यात्** ऐसा खि+अ=ख्य, ति+अ=त्य यण् किया हुआ शब्द पढ़ा गया है। खि-ति और खी-ति में यण् करके **ख्यत्य** बनता है। यण् होने पर ही यह सूत्र लगे, इसलिए ऐसा निर्देश किया गया है।

सख्युः। पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में ङसि और ङस् के आने पर अनुबन्धलोप करने पर **सखि+अस्** बना है। यण् करके **सख्+य्+अस्** बना। वर्णसम्मेलन करने पर **सख्यस्** बना। विभक्ति के अकार के स्थान पर **ख्यत्यात्परस्य** से उकार आदेश होकर **सख्युस्** बना। सकार का रुत्वविसर्ग हुआ- **सख्युः।**

सख्योः। सखीनाम्। हर्योः की तरह सख्योः और हरीणाम् की तरह सखीनाम्। रेफ और षकार न होने के कारण नकार को णकार नहीं हुआ।

१८४- **औत्।** औत् प्रथमान्तम्, एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **इदुद्भ्याम्** से **इदुद्भ्याम्** तथा **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** से ङेः की अनुवृत्ति आती है।

ह्रस्व इकार और उकार से परे ङे के स्थान पर औत् अर्थात् औकार आदेश होता है।

इसका बाधक **अच्च घेः** है। घिसंज्ञा होने पर वह लगता है और न होने पर यह। **अच्च घेः** अकार आदेश और औकार आदेश दो कार्य एक साथ करता है किन्तु यह केवल औकार आदेश ही करता है। वह अनेक जगह पर लगता है, क्योंकि पुँल्लिङ्ग में **सखि** और **पति** को छोड़कर ह्रस्व इकारान्त सभी शब्द घिसंज्ञक होते हैं, अतः **अच्च घेः** का कार्य ज्यादा होता है फिरभी यह उत्सर्ग अर्थात् सामान्य सूत्र है और वह अपवाद, क्योंकि यह केवल इकार, उकार से परे कार्य करता है तो वह घिसंज्ञक इकार उकार में।

सख्यौ। सखि से ङि, अनुबन्धलोप करके **सखि+इ** में इकार के स्थान पर **औत्** से औकार आदेश, **सखि+औ** में यण् करने पर **सख्यौ** सिद्ध होता है।

सखिषु। हरिषु की तरह यह भी बन जाता है।

घिसंज्ञाविधायकं नियमसूत्रम्

१८५. पतिः समास एव १।४।८॥

घिसंज्ञः। पत्या। पत्ये। पत्युः२। शेषं हरिवत्। समासे तु भूपतये। कतिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः।

सखि-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सखा	सखायौ	सखायः
द्वितीया	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृतीया	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
चतुर्थी	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
पञ्चमी	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
षष्ठी	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
सप्तमी	सख्यौ	सख्योः	सखीषु
सम्बोधन	हे सखे	हे सखायौ	सखायः

१८५- **पतिः समास एव**। पतिः प्रथमान्तं, समासे सप्तम्यन्तम्, एव अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। अनुवृत्तिः- **शेषो घ्यसखि** से **घिः** आता है।

समास होने पर ही पति शब्द घिसंज्ञक होता है।

शेषो घ्यसखि से समास और असमास दोनों स्थिति में घिसंज्ञा की प्राप्त हो रही थी तो इस सूत्र ने नियम कर दिया कि पतिशब्द की घिसंज्ञा तभी होगी जब किसी शब्द के साथ समस्त हो अर्थात् समास को प्राप्त हुआ हो। समास होने के लिए कम से कम दो शब्द तो चाहिए ही। अकेले शब्द में कभी समास नहीं होता। जैसे रमायाः पतिः= रमा+पति=रमापति। **रमापति** ऐसे ही किसी शब्द के साथ समास हो जाने के बाद ही **पति** शब्द की **घिसंज्ञा** होगी, अकेले पति शब्द की नहीं। घिसंज्ञा का फल तृतीया का एकवचन में **आङो नास्त्रियाम्** से ना आदेश, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी के एकवचनों में **घेर्ङिति** से गुण होना और **अच्च घेः** से औत्व एवं अत्व करना आदि-आदि। ये सब कार्य अकेले पति शब्द में नहीं होंगे। शेष जगह पति के रूप हरि शब्द के जैसे ही होंगे जैसे- पतिः, पती, पतयः, पतिम्, पती, पतीन् आदि।

पत्या। पति शब्द के तृतीया एकवचन में टा विभक्ति है। अनुबन्धलोप, पति+आ, घिसंज्ञा के अभाव मे ना आदेश नहीं हुआ। ति के इकार के स्थान पर **इको यणचि** से यण् हुआ- **पत्+य्+आ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **पत्या** सिद्ध हुआ।

पत्ये। चतुर्थी के एकवचन में **पति+ए** है। घिसंज्ञा के अभाव में **घेर्ङिति** से गुण नहीं हुआ। यण् होकर **पत्य् ए** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **पत्ये** सिद्ध हुआ।

पत्युः। पति के पञ्चमी के एकवचन में ङसि और षष्ठी के एकवचन में ङस् आया। अनुबन्धलोप हुआ- **पति+अस्** बना। **इको यणचि** से यण् हुआ- **पत्य्+अस्** बना। अस् के अकार के स्थान पर **ख्यत्यात्परस्य** से उत्व हुआ- **पत्य्+उस्** बना। वर्णसम्मेलन हुआ-पत्युस् बना। सकार का रुत्वविसर्ग हुआ- **पत्युः** सिद्ध हुआ।

सङ्ख्यासंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१८६. बहुगणवतुडति सङ्ख्या १।१।२३॥

षट्संज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१८७. डति च १।१।२५॥

डत्यन्ता सङ्ख्या षट्संज्ञा स्यात्।

पत्यौ। पति शब्द से सप्तमी में ङि-विभक्ति आई, अनुबन्धलोप हुआ। पति+इ में **औत्** से ङि वाले इकार के स्थान पर औकार आदेश हुआ। **पति+औ** में **इको यणचि** से यण् हुआ- **पत्यौ** सिद्ध हुआ।

पतिशब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पतिः	पती	पतयः
द्वितीया	पतिम्	पती	पतीन्
तृतीया	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
चतुर्थी	पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
पञ्चमी	पत्युः	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
षष्ठी	पत्युः	पत्योः	पतीनाम्
सप्तमी	पत्यौ	पत्योः	पतिषु
सम्बोधन	हे पते	हे पती	हे पतयः।

जब पति शब्द का किसी शब्द के साथ समास होगा तो उसके रूप हरि शब्द के समान होंगे। जैसे **भुवः पतिः= भूपतिः।**

भूपतिशब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भूपतिः	भूपती	भूपतयः
द्वितीया	भूपतिम्	भूपती	भूपतीन्
तृतीया	भूपतिना	भूपतिभ्याम्	भूपतिभिः
चतुर्थी	भूपतये	भूपतिभ्याम्	भूपतिभ्यः
पञ्चमी	भूपतेः	भूपतिभ्याम्	भूपतिभ्यः
षष्ठी	भूपतेः	भूपत्योः	भूपतीनाम्
सप्तमी	भूपतौ	भूपत्योः	भूपतिषु
सम्बोधन	हे भूपते	हे भूपती	हे भूपतयः।

कतिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। किम्-शब्द से **डति**-प्रत्यय होकर **कति** बनता है और नित्य बहुवचन में ही प्रयोग होता है। **कति**=कितना।

१८६- बहुगणवतुडति सङ्ख्या। बहुश्च, गणश्च, वतुश्च, डतिश्च, तेषां समाहारद्वन्द्वः, बहुगणवतुडति। बहुगणवतुडति प्रथमान्तं, सङ्ख्या प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। (बहुगणशब्दौ वतु-डति प्रत्ययान्तौ च सङ्ख्यासंज्ञकाः स्युः।)

लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

१८८. षड्भ्यो लुक् ७।१।२२॥

जश्शसो:।

लुक्-श्लु-लुप्-संज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१८९. प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः १।१।६१॥

लुक्श्लुलुप्शब्दैः कृतं प्रत्ययादर्शनं क्रमात् तत्तत्संज्ञं स्यात्।

अतिदेशसूत्रम्

१९०. प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् १।१।६२॥

प्रत्यये लुप्ते तदाश्रितं कार्यं स्यात्। इति जसि चेति गुणे प्राप्ते।

....

बहु, गण शब्द तथा वतु और डति प्रत्ययान्त शब्द सङ्ख्यासंज्ञक होते हैं।

प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम् इस परिभाषा के बल से वतु और डति से वतुप्रत्ययान्त और डतिप्रत्ययान्त का ग्रहण किया जाता है।

१८७- **डति च**। डति प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **बहुगणवतुडति सङ्ख्या** से सङ्ख्या की तथा **ष्णान्ता षट्** से **षट्** की अनुवृत्ति आती है।

डतिप्रत्ययान्त सङ्ख्यासंज्ञक शब्द षट्-संज्ञक होते हैं।

१८८- **षड्भ्यो लुक्**। षड्भ्यः पञ्चम्यन्तं, लुक् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **जश्शसोः शिः** से **जश्शसोः** की अनुवृत्ति आती है।

षट्संज्ञक शब्दों से परे जस् और शस् का लुक् होता है।

१८९- **प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः**। लुक् च श्लुश्च, लुप्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः। **अदर्शनं लोपः** से **अदर्शनम्** की अनुवृत्ति आती है।

लुक्, श्लु और लुप् शब्द का उच्चारण करके जो प्रत्यय का अदर्शन किया जाता है, उस अदर्शन की क्रमशः लुक्, श्लु और लुक् संज्ञा होती है।

अदर्शन मात्र को लोप कहते हैं किन्तु व्याकरण शास्त्र में विविध कार्यों की सिद्धि के लिए आचार्य ने लुक्, श्लु और लुप् के द्वारा भी अदर्शन किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस तरह लोप एक अदर्शन है, उसी तरह लुक्, श्लु और लोप भी अदर्शन ही है। यह सूत्र विधान करता है कि यदि सूत्र में लुक्, श्लु और लुप् शब्द का उच्चारण करके प्रत्यय का अदर्शन किया जाता है तो जिस तरह से सामान्य अदर्शन को लोप कहा जाता है उसी तरह यहाँ क्रमशः लुक्, श्लु और लुप् कहा जाय।

लोप करने पर **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** के नियम से उनको मानकर के होने वाला कार्य, उनके अदर्शन होने पर भी होता है किन्तु **न लुमताङ्गस्य** से निषेध होने के कारण लुक्, श्लु, लुप् होने पर तदाश्रित कार्य नहीं होता। यह बात आगे स्पष्ट होगी।

१९०- **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्**। प्रत्ययस्य लोपः प्रत्ययलोपः, तस्मिन् प्रत्ययलोपे, षष्ठीतत्पुरुषः। प्रत्ययस्य लक्षणं निमित्तं यस्य तत् प्रत्ययलक्षणम्, बहुव्रीहिः।

प्रत्यय लुप्त होने पर अर्थात् प्रत्यय के लोप हो जाने पर प्रत्यय को मानकर होने वाला कार्य हो जाता है।

प्रत्ययलक्षणनिषेधसूत्रम्

१९१. न लुमताङ्गस्य १।१।६३॥

लुमता शब्देन लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्यं न स्यात्।

कति २। कतिभिः। कतिभ्यः २। कतीनाम्। कतिषु।

युष्मदस्मत्षट्संज्ञकास्त्रिषु सरूपाः।

त्रिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। त्रयः। त्रीन्। त्रिभिः। त्रिभ्यः २।

....

वे कार्य जो प्रत्यय को निमित्त मान कर होते हैं, प्रत्यय के अदर्शन होने पर भी हों। जैसे **जसि च** से जस् के परे होने पर पूर्व इगन्त अङ्ग को गुण होता है, वह प्रत्यय जस् के लोप होने पर भी हो।

१९१- **न लुमताङ्गस्य**। लुः (एकदेशः) अस्यास्तीति लुमान्, तेन लुमता। न अव्ययपदं, लुमता तृतीयान्तम्, अङ्गस्य षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है।

लु-वाले (लुक्, श्लु, लुप्) वाले शब्द से प्रत्यय का अदर्शन होने पर उन्हें निमित्त मानकर होने वाला अङ्गसम्बन्धी कार्य नहीं होता।

लुक्, श्लु और लु ये लु वाले वर्ण हैं अर्थात् इनमें लु का उच्चारण है। लोप में लु नहीं है। जहाँ पर लु वाले शब्दों से प्रत्यय का अदर्शन किया गया हो, वहाँ तदाश्रित कार्य अर्थात् प्रत्यय को निमित्त मानकर होने वाला अङ्गकार्य नहीं होता है। इस तरह लोप और श्लुक्, श्लु, लुप् में अन्तर स्पष्ट हुआ कि लोप होने पर भी तदाश्रित अङ्गकार्य होता है और लुक्, श्लु, लुप् होने पर तदाश्रित अङ्गकार्य नहीं होता है। यद्यपि उक्त चारों शब्दों से अदर्शन अर्थात् एक तरह का लोप ही किया जाता है तथापि इसका अगला जो परिणाम है, वह भिन्न-भिन्न है।

कति। किम्-शब्द से डति-प्रत्यय होकर कति बना है। उससे बहुवचन में जस् आया। अनुबन्धलोप होकर **कति+अस्** बना। कति की **बहुगणवतुडति सङ्ख्या** से सङ्ख्यासंज्ञा और **डति च** से **षट्संज्ञा** करके षट्संज्ञक कति से परे जस् का **षड्भ्यो लुक्** से लुक् हुआ तो **कति** मात्र रह गया। अब यहाँ पर **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** के नियम से जस् को निमित्त मानकर होने वाला कार्य **जसि च** से कति के इकार को गुण हो जाना चाहिए था किन्तु **श्लु** इस लुमान् शब्द से प्रत्यय का अदर्शन होने के कारण **न लुमताङ्गस्य** से निषेध हो गया। अतः गुण नहीं हुआ। इस तरह सिद्ध रूप **कति** ही है। शस् में भी यही प्रक्रिया होती है।

कतिभिः। कतिभ्यः। कतीनाम् और **कतिषु** ये प्रयोग हरि-शब्द की तरह बनते हैं। अतः हरिशब्द की प्रक्रिया का स्मरण करें। इस तरह **कति** के रूप केवल बहुवचन में इस तरह बने- **कति, कति, कतिभिः, कतिभ्यः, कतिभ्यः, कतीनाम्, कतिषु।**

युष्मदस्मत्षट्संज्ञकास्त्रिषु सरूपाः। युष्मत्, अस्मत् और षट्-संज्ञक शब्द तीनों लिङ्गों में समान रूप वाले होते हैं। तीनों लिङ्गों के लिए त्वम्, युवाम्, यूयम्। अहम्, आवाम्, वयम्। कति पुरुषाः?, कति स्त्रियः? कति पुस्तकानि ही बनते हैं।

त्रयः। तीन। त्रि-शब्द नित्य बहुवचन वाला है। जस् आया, अनुबन्धलोप होकर

त्रयादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१९२. त्रेस्त्रयः ७।१।५३॥

त्रिशब्दस्य त्रयादेशः स्यादामि। त्रयाणाम्। त्रिषु। गौणत्वेऽपि प्रियत्रयाणाम्।

अत्वविधायकं विधिसूत्रम्

१९३. त्यदादीनामः ७।२।१०२॥

एषामकारो विभक्तौ।

वार्तिकम्- **द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः।**

द्वौ २। द्वाभ्याम् ३। द्वयोः २। पाति लोकमिति पपीः सूर्यः। **दीर्घाज्जसि च**। पप्यौ २। पप्यः। हे पपीः। पपीम्। पपीन्। पप्या। पपीभ्याम् ३। पपीभिः। पप्ये। पपीभ्यः २। पप्यः २। पप्योः २। **दीर्घत्वान्न नुट्**, पप्याम्। **ङौ तु सवर्णदीर्घः**, पपी। पप्योः। पपीषु। एवं वातप्रम्यादयः। बह्व्यः श्रेयस्यो यस्य स बहुश्रेयसी।

....

त्रि+अस् बना। **जसि च** से इकार को गुण होकर **एकार** और इसके स्थान पर **अय्** आदेश होकर **त्र्+अय्+अस्** बना। वर्णसम्मेलन और सकार का रुत्वविसर्ग करके **त्रयः** सिद्ध हुआ।

त्रीन्। द्वितीया के बहुवचन में शस्, अनुबन्धलोप। **त्रि+अस्** में पूर्वसवर्णदीर्घ के बाद **त्रीस्** बनने के बाद **तस्माच्छसो नः पुंसि** से सकार के स्थान पर नत्व हुत्वा **त्रीन्**।

त्रिभिः। **त्रिभ्यः** त्रि-शब्द से तृतीया का बहुवचन भिस् आया, सकार का रुत्वविसर्ग हुआ- **त्रिभिः**। चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन में भ्यस् आकर सकार का रुत्वविसर्ग होकर- **त्रिभ्यः** सिद्ध हुआ।

१९२- **त्रेस्त्रयः**। त्रेः षष्ठ्यन्तं, त्रयः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **आमि सर्वनाम्नः सुट्** से **आमि** की अनुवृत्ति आती है।

आम् के परे रहने पर त्रिशब्द के स्थान पर त्रय आदेश होता है।

त्रय आदेश अदन्त है।

त्रयाणाम्। **त्रिषु**। त्रिशब्द से आम् परे रहने पर **त्रेस्त्रयः** से त्रय आदेश हुआ। **त्रय+आम्** में **ह्रस्वनद्यापो नुट्** से नुट् और **नामि** से दीर्घ करके णत्व हो गया- **त्रयाणाम्**। सप्तमी के एकवचन सुप् आने पर अनुबन्ध लोप हुआ। **त्रि+सु** में **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व हो गया- **त्रिषु** सिद्ध हुआ।

गौणत्वेऽपि प्रियत्रयाणाम्। समास आदि करके त्रि शब्द अप्रधान हो जाय तो भी त्रय आदेश होता है जिससे प्रियत्रयाणाम् बनता है। तात्पर्य यह है कि **प्रियास्त्रयः सन्ति यस्य स प्रियत्रिः**, तीन प्रिय हैं, जिसके व पुरुष **प्रियत्रि** है। यहाँ बहुव्रीहि समास होने के कारण तीन प्रिय वाला अन्य किसी पुरुष का अर्थ प्रधान है, न कि समास किये गये **प्रिय** और **त्रि** का। अतः प्रियत्रि में स्थित **त्रि** शब्द अप्रधान अर्थात् गौण है तो भी यह सूत्र **प्रियत्रि** से **आम्** विभक्ति होने पर **त्रि** के स्थान पर **त्रय** आदेश करता है।

१९३- **त्यदादीनामः**। त्यद् आदिर्येषां ते त्यदादयः, तेषां त्यदादीनाम्, बहुव्रीहिः। त्यदादीनां

षष्ठ्यन्तम्, अः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अष्टन आ विभक्तौ** से **विभक्तौ** की अनुवृत्ति आती है।

विभक्ति के परे होने पर त्यदादिगण में पठित शब्दों के अन्त्य वर्ण के स्थान पर अकार आदेश होता है।

द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः। इस सूत्र से अकार करने के लिए भाष्यकार ने त्यदादिगण में **त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि** ये आठ शब्द ही माना है युष्मत्, अस्मत्, भवतु और किम् को छोड़ दिया है।

द्वौ। द्विशब्द केवल द्विवचन वाला है। उससे प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में औ, औट् विभक्ति आई और **औट्** में अनुबन्ध लोप। **त्यदादीनामः** से द्वि के इकार के स्थान पर अत्व हुआ तो **द्व** बना। **द्व+औ** में वृद्धि को बाधकर होने वाले पूर्वसवर्णदीर्घ का **नादिचि** से निषेध होने से पुनः **वृद्धिरेचि** से वृद्धि हुई- **द्व+औ** बना। वर्णसम्मेलन हुआ-**द्वौ।**

द्वाभ्याम्। द्वि-शब्द से तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी के द्विवचन में भ्याम् आया। **त्यदादीनामः** से अत्व हुआ। **द्व+भ्याम्** में **सुपि च** से दीर्घ हुआ- **द्वाभ्याम्।**

द्वयोः। द्विशब्द से षष्ठी और सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ओस्, अत्व, **द्व+ओस्** में **ओसि च** से एत्व, और अय् आदेश, **द्व+अय्+ओस्** में वर्णसम्मेलन, सकार का रुत्वविसर्ग करने पर **द्वयोः** की सिद्धि हुई। इस तरह **द्वि** के रूप बने- **द्वौ, द्वौ, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वयोः, द्वयोः।**

इस तरह ह्रस्व अकारान्त शब्दों की प्रक्रिया बताकर अब दीर्घ ईकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों की प्रक्रिया बताई जा रही है।

पपीः। पाति लोकमिति **पपीः।** लोक की रक्षा करने वाला, सूर्य। पा रक्षणे धातु से उणादि में **ई** प्रत्यय, द्वित्व, आकार का लोप करके **पपी** बना है। इससे सु, अनुबन्धलोप, **पपी+स्** बना। हलन्त, ङ्यन्त, आबन्त न होने के कारण **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतीस्यपृक्तं हल्** से सकार का लोप नहीं हुआ तो उसका रुत्वविसर्ग हुआ- **पपीः।**

पप्यौ। पप्यः। पपी+औ में **इको यणचि** से यण् प्राप्त, उसे बाधकर **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** से पूर्वसवर्ण प्राप्त, उसका **दीर्घाज्जसि च** निषेध हुआ तो पुनः **यण्** ही हुआ- **पप्+य्+औ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **पप्यौ** सिद्ध हुआ। बहुवचन में भी यण् होकर **पप्यः** बनता है।

पपीम्। पप्यौ। पपीन्। द्वितीया के एकवचन में पपी+अम्, पूर्वरूप, **पपीम्।** द्विवचन में प्रथमा की तरह **पप्यौ।** बहुवनंचन में पूर्वसवर्ण दीर्घ, सकार को **तस्माच्छसो नः पुंसि** से नत्व करके **पपीन्।**

पप्या। पपीभ्याम्। पपीभिः। तृतीया के एकवचन में **पपी टा, पपी+आ,** यण् **पप्या।** यहाँ पर दीर्घ होने के कारण घिसंज्ञा नहीं हुई, अतः ना आदेश नहीं हुआ। द्विवचन में **पपी+भ्याम्=पपीभ्याम्।** बहुवचन में **पपी+भिस्,** सकार का रुत्वविसर्ग, **पपीभिः।**

पप्ये। पप्यः। चतुर्थी के एकवचन में **पपी ङे, पपी+ए,** यण् **पप्ये।** पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में ङसि और ङस्, अनुबन्धलोप करके **पपी+अस्,** यण् और सकार को रुत्वविसर्ग करके **पप्यः।**

पप्योः। षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में **पपी+ओस्,** यण्, सकार का रुत्वविसर्ग, **पप्योः।**

नदीसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१९४. यू स्त्र्याख्यौ नदी १।४।३॥

ईदूदन्तौ नित्यस्त्रीलिङ्गौ नदीसंज्ञौ स्तः।

वार्तिकम्- **प्रथमलिङ्गग्रहणं च।**

पूर्वं स्त्र्याख्यस्योपसर्जनत्वेऽपि नदीत्वं वक्तव्यमित्यर्थः।

....

पप्याम्। षष्ठी के बहुवचन में **पपी+आम्**, दीर्घ होने और नद्यन्त या आबन्त न होने के कारण **ह्रस्वनद्यापो नुट्** से **नुट्** नहीं हुआ तो यण् करके **पप्+य्+आम्=पप्याम्।**

पपी। पपीषु। सप्तमी के एकवचन में **पपी ङि, पपी+इ, अकः सवर्णे दीर्घः** से सवर्णदीर्घ होकर **पपी** बना। बहुवचन में **पपी+सु**, षत्व, **पपीषु।**

हे पपीः, हे पप्यौ, हे पप्यः। प्रथमा की तरह बनाकर हे का पूर्वप्रयोग।

पपी-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पपीः	पप्यौ	पप्यः
द्वितीया	पपीम्	पप्यौ	पप्यः।
तृतीया	पप्या	पपीभ्याम्	पपीभिः
चतुर्थी	पप्ये	पपीभ्याम्	पपीभ्यः
पञ्चमी	पप्यः	पपीभ्याम्	पपीभ्यः
षष्ठी	पप्यः	पप्योः	पप्याम्
सप्तमी	पपी	पप्योः	पपीषु
सम्बोधन	हे पपीः	हे पप्यौ	हे पप्यः।

इसी प्रकार **वातप्रमी, ययी** आदि शब्दों के रूप होते हैं।

बह्व्यः श्रेयस्यो यस्य स बहुश्रेयसी। बहुत सी अतिप्रशंसनीय अथवा कल्याणकारिणी (स्त्रियाँ) हैं जिसकी, वह पुरुष **बहुश्रेयसी। श्रेयसी**-शब्द ङीप्-प्रत्ययान्त होने के कारण स्त्रीलिङ्ग में है किन्तु समास होकर **श्रेयसी वाला जो पुरुष** ऐसा अर्थ बन जाने के बाद **बहुश्रेयसी** शब्द पुँल्लिङ्ग बन गया किन्तु शब्द ङ्यन्त ही रहता है। अतः ङ्यन्त को मानकर होने वाले सुलोप आदि सभी कार्य होते हैं।

बहुश्रेयसी। प्रथमा का एकवचन सु, अनुबन्धलोप, **बहुश्रेयसी+स्**, सकार की अपृक्तसंज्ञा, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतीस्यपृक्तं हल्** से लोप होकर **बहुश्रेयसी** बना।

बहुश्रेयस्यौ। बहुश्रेयस्यः। द्विवचन में **बहुश्रेयसी+औ** में **इको यणचि** से यण् प्राप्त, उसे बाधकर **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** से पूर्वसवर्ण दीर्घ प्राप्त, उसका **दीर्घाज्जसि च** से निषेध होने पर पुनः **यण्** ही हुआ, **बहुश्रेयस्+य्+औ= बहुश्रेयस्यौ।** बहुवचन में **बहुश्रेयसी जस्, बहुश्रेयसी+अस्, बहुश्रेयस्+य्+अस्, बहुश्रेयस्यस्, बहुश्रेयस्यः।**

१९४- **यू स्त्र्याख्यौ नदी।** ईश्च ऊश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः, यू, स्त्रियम् आचक्षाते इति स्त्र्याख्यौ। यू लुप्तप्रथमाकं, स्त्र्याख्यौ प्रथमान्तं, नदी प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

नित्य स्त्रीलिङ्ग दीर्घ ईकारान्त और दीर्घ ऊकारान्त शब्द नदीसंज्ञक होते हैं।

जिन शब्दों का केवल स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग होता है, ऐसे शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग

ह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्

१९५. अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः ७।३।१०७॥

सम्बुद्धौ। हे बहुश्रेयसि।

आडागमविधायकं विधिसूत्रम्

१९६. आण्नद्याः ७।३।११२॥

नद्यन्तात्परेषां ङितामाडागमः।

....

कहलाते हैं और वे ईदन्त और ऊदन्त भी हों तो उनकी नदीसंज्ञा हो जायेगी। नदीसंज्ञा का फल **अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः, आण्नद्याः, ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** आदि की प्रवृत्ति है।

प्रथमलिङ्गग्रहणं च। यहाँ नदीसंज्ञा के विषय में प्रथम लिङ्ग का भी ग्रहण होता है अर्थात् समास होने के पहले यदि स्त्रीलिङ्ग था समास आदि होने के बाद पुँल्लिङ्ग हो गया हो तो भी स्त्रीलिङ्ग मानकर उसकी नदीसंज्ञा हो जायेगी। जैसे- **बहुश्रेयसी** में केवल श्रेयसी शब्द स्त्रीलिङ्ग है किन्तु बहु के साथ समास होकर के पुँल्लिङ्ग को कहने के कारण यह पुँल्लिङ्ग हो गया है फिर भी इस वार्तिक के बल पर प्रथमलिङ्ग स्त्रीलिङ्ग का ग्रहण होने के कारण इसकी नदीसंज्ञा हो जाती है।

१९५- अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः। अम्बा अर्थो यस्य स अम्बार्थः, बहुव्रीहिः। अम्बार्थश्च नदी च अम्बार्थनद्यौ, तयोः अम्बार्थनद्योः, इतरेतरद्वन्द्वः। अम्बार्थनद्योः षष्ठ्यन्तं, ह्रस्वः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सम्बुद्धौ च** से **सम्बुद्धौ** की अनुवृत्ति और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

अम्बार्थक शब्दों और नद्यन्त अङ्गों (शब्दों) को सम्बुद्धि के परे होने पर ह्रस्व होता है।

जिन शब्दों का अर्थ अम्बा(माता) है, ऐसे शब्द और जिनकी नदीसंज्ञा हो गई है, ऐसे शब्दों के अन्त में विद्यमान वर्ण को ह्रस्व हो जाता है। **अलोऽन्त्यस्य** परिभाषा की उपस्थिति से अन्त्य वर्ण को ह्रस्व आदेश होगा।

हे बहुश्रेयसि। सम्बोधन का एकवचन सु, **प्रथमलिङ्गग्रहणं च** इस वार्तिक के सहयोग से **यू स्त्र्याख्यौ नदी** से नदीसंज्ञा करके **अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः** से **सी** के ईकार को ह्रस्व होकर **बहुश्रेयसि+स्** बना। ह्रस्व होने के बाद **एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः** से स् का लोप हुआ और हे का पूर्वप्रयोग हुआ- **हे बहुश्रेयसि।**

बहुश्रेयसीम्। बहुश्रेयसीन्। द्वितीया के एकवचन में **बहुश्रेयसी+अम्, अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर **बहुश्रेयसीम्।** बहुवचन में **बहुश्रेयसी+शस्, बहुश्रेयसी+अस्,** पूर्वसवर्णदीर्घ, **बहुश्रेयसीस्,** नत्व, **बहुश्रेयसीन्।**

बहुश्रेयस्या। तृतीया के एकवचन में **बहुश्रेयसी+टा, बहुश्रेयसी+आ, इको यणचि** से यण् करके **बहुश्रेयस्या** बन जाता है।

बहुश्रेयसीभ्याम्। तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी के द्विवचन में **बहुश्रेयसीभ्याम्।**

बहुश्रेयसीभिः। तृतीया बहुवचन में भिस् के सकार को रुत्वविसर्ग, **बहुश्रेयसीभिः।**

१९६- आण्नद्याः। आट् प्रथमान्तं, नद्याः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **घेर्ङिति** से विभक्ति और वचन विपरिणाम करके **ङिताम्** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

नद्यन्त अङ्ग से परे ङिद्विभक्ति को आट् का आगम होता है।

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

१९७. आटश्च ६।१।९०॥

आटोऽचि परे वृद्धिरेकादेशः। बहुश्रेयस्यै। बहुश्रेयस्याः। बहुश्रेयसीनाम्।

आमादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१९८. ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ७।३।११६॥

नद्यन्तादाबन्तान्नीशब्दाच्च परस्य ङेराम्। बहुश्रेयस्याम्। शेषं पपीवत् अङ्यन्तत्वान्न सुलोपः। अतिलक्ष्मीः। शेषं बहुश्रेयसीवत्। प्रधीः।

....

आट् में टकार की इत्संज्ञा होने से टित् है और **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से ङित् के आदि में बैठेगा। सूत्र में **आट्+नद्याः** में टकार के स्थान पर **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** से अनुनासिक आदेश होकर णकार बना है। अतः आण् आगम ऐसा भ्रमित नहीं होना चाहिए। स्मरण रहे कि **ङे, ङसि, ङस्** और **ङि** ये **ङिद्विभक्ति** हैं।

१९७- आटश्च। आटः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इको यणचि** से **अचि** और **वृद्धिरेचि** से **वृद्धिः** की अनुवृत्ति आती है तथा **एकः पूर्वपरयोः** का अधिकार है।

आट् से अच् परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक एक आदेश होता है।

यहाँ पर **वृद्धिरेचि** से वृद्धि करके भी काम चल सकता था किन्तु अन्यत्र आट् आगम और अजादि धातु आ+इक्षत= ऐक्षत आदि में इसकी आवश्यकता होती है। अतः यह सूत्र बनाया गया है।

बहुश्रेयस्यै। चतुर्थी के एकवचन में **बहुश्रेयसी+ए, यू स्त्र्याख्यौ नदी** से नदीसंज्ञा करके **आण्नद्याः** से ङित् ए को आट् का आगम, टकार की इत्संज्ञा करके लोप, टित् होने के कारण ए के आदि में बैठा- **बहुश्रेयसी+आ+ए** बना। **आ+ए** में **आटश्च** से वृद्धि होकर **ऐ** बना। **बहुश्रेयसी+ऐ** में **इको यणचि** से यण् होकर **बहुश्रेयस्+य्+ऐ**, वर्णसम्मेलन होकर **बहुश्रेयस्यै** सिद्ध हुआ।

बहुश्रेयसीभ्यः। चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन में भ्यस्, सकार को रुत्वविसर्ग करके **बहुश्रेसीभ्यः** सिद्ध होता है।

बहुश्रेयस्याः। पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में **ङसि** और **ङस्**, अनुबन्धलोप, **बहुश्रेयसी+अस्** में आट् आगम, वृद्धि करके यण् और सकार को रुत्वविसर्ग करने पर **बहुश्रेयस्याः** सिद्ध होता है।

बहुश्रेयस्योः। षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में **बहुश्रेयसी+ओस्** में यण् होकर सकार का रुत्व और विसर्ग हुआ- **बहुश्रेयस्योः** बना।

बहुश्रेयसीनाम्। षष्ठी के बहुवचन आम् के परे होने पर नदीसंज्ञक मानकर **ह्रस्वनद्यापो नुट्** से नुट होकर **बहुश्रेयसीनाम्** बनता है। यहाँ दीर्घ होते हुए भी **नामि** से पुनः दीर्घ करते हैं, क्योंकि सूत्रों की प्रवृत्ति बादलों की तरह होती है-- **पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिः**। जैसे बादल जल पर भी बरसते है और स्थल पर भी। इसी तरह शास्त्र अर्थात् सूत्र जहाँ ह्रस्व है, वहाँ तो दीर्घ करता ही है और जहाँ पहले से दीर्घ है, वहाँ पर भी दीर्घ करता है। हाँ, यह अलग है कि दीर्घ करने या न से कोई भिन्नता नहीं आती है।

१९८- ङेराम्नद्याम्नीभ्यः। नदी च आप् च नीश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो नद्याम्न्यः, तेभ्यो नद्याम्नीभ्यः। नद्याम्नीभ्यः पञ्चम्यन्तं, ङेः षष्ठ्यन्तम्, आम् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

नद्यन्त, आबन्त और नी-शब्द से परे ङि के स्थान पर आम् आदेश होता है।

बहुश्रेयस्याम्। सप्तमी के एकवचन मे **बहुश्रेयसी+इ,** नदीसंज्ञा, इ के स्थान पर **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** से आम् आदेश, **बहुश्रेयसी+आम्** में **आम्** को स्थानिवद्भाव करने से ङित् मानकर **आण्नद्याः** से आट् आगम, **बहुश्रेयसी+आ+आम्** हुआ। **आ+आम्** में **आटश्च** से वृद्धि हुई। दोनों आकार के स्थान पर वृद्धि होने पर एकादेश आ मात्र हुआ, **बहुश्रेयसी+आम्** बना। यण् होकर **बहुश्रेयस्+य्+आम्** हुआ। वर्णसम्मेलन करके **बहुश्रेयस्याम्** सिद्ध हुआ।

बहुश्रेयसीषु। सुप् में केवल **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व होता है।

बहुश्रेयसी-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	बहुश्रेयसी	बहुश्रेयस्यौ	बहुश्रेयस्यः
द्वितीया	बहुश्रेयसीम्	बहुश्रेयस्यौ	बहुश्रेयसीन्
तृतीया	बहुश्रेयस्या	बहुश्रेयसीभ्याम्	बहुश्रेयसीभिः
चतुर्थी	बहुश्रेयस्याः	बहुश्रेयसीभ्याम्	बहुश्रेयसीभ्यः
पञ्चमी	बहुश्रेयस्याः	बहुश्रेयसीभ्याम्	बहुश्रेयसीभ्यः
षष्ठी	बहुश्रेयस्याः	बहुश्रेयस्योः	बहुश्रेयसीनाम्
सप्तमी	बहुश्रेयस्याम्	बहुश्रेयस्योः	बहुश्रेयसीषु
सम्बोधन	हे बहुश्रेयसि	हे बहुश्रेयस्यौ	हे बहुश्रेयस्यः

अङ्यन्तत्वान्न सुलोपः, अतिलक्ष्मीः। चुरादिगणीय धातु **लक्ष दर्शने अङ्कने च** से उणादिसूत्र **लक्षेर्मुट् च** से ई प्रत्यय तथा मुट् आगम होकर **लक्ष्मी** वना। लक्ष्मीम् अतिक्रान्तः, लक्ष्मी का अतिक्रमण करने वाला अर्थात् लक्ष्मी से भी श्रेष्ठ। यद्यपि लक्ष्मी शब्द स्त्रीलिङ्ग में है तथापि समास करने पर लक्ष्मी का अतिक्रमण करने वाला पुरुष पुँल्लिङ्ग हुआ। अतः **प्रथमलिङ्गग्रहणं च** की सहायता **यू स्त्र्याख्यौ नदी** से यह नदीसंज्ञक हो जाता है, फलतः नदीसंज्ञाप्रयुक्त सभी कार्य हो जाते हैं किन्तु ङीप्, ङीष् आदि कोई प्रत्यय नहीं हुआ है, अतः ङ्यन्त न होने के कारण **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से सु का लोप नहीं हुआ। सकार को रुत्व और उसका विसर्ग करके **अतिलक्ष्मीः** बना। शेष सभी रूप बहुश्रेयसी की तरह ही होते हैं।

अतिलक्ष्मी-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अतिलक्ष्मीः	अतिलक्ष्म्यौ	अतिलक्ष्म्यः
द्वितीया	अतिलक्ष्मीम्	अतिलक्ष्म्यौ	अतिलक्ष्मीन्
तृतीया	अतिलक्ष्म्या	अतिलक्ष्मीभ्याम्	अतिलक्ष्मीभिः
चतुर्थी	अतिलक्ष्म्यै	अतिलक्ष्मीभ्याम्	अतिलक्ष्मीभ्यः
पञ्चमी	अतिलक्ष्म्याः	अतिलक्ष्मीभ्याम्	अतिलक्ष्मीभ्यः

इयङुवङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१९९. अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ६।४।७७॥

श्नुप्रत्ययान्तस्येवर्णोवर्णान्तस्य धातोर्भ्रू इत्यस्य चाङ्गस्येयङुवङौ स्तोऽजादौ प्रत्यये परे। इति प्राप्ते।

यण्विधायकं विधिसूत्रम्

२००. एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य ६।४।८२॥

धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यणजादौ प्रत्यये। प्रध्यौ। प्रध्यः। प्रध्यम्। प्रध्यौ। प्रध्यः। प्रध्यि। शेषं पपीवत्। एवं ग्रामणीः। ङौ तु ग्रामण्याम्। अनेकाचः किम्? नीः, नियौ, नियः। अमि शसि च परत्वादियङ्, नियम्। ङेराम्, नियाम्। असंयोगपूर्वस्य किम्? सुश्रियौ। यवक्रियौ।

....

षष्ठी	अतिलक्ष्म्याः	अतिलक्ष्म्योः	अतिलक्ष्मीणाम्
सप्तमी	अतिलक्ष्म्याम्	अतिलक्ष्म्योः	अतिलक्ष्मीषु
सम्बोधन	हे अतिलक्ष्मि	हे अतिलक्ष्म्यौ	हे अतिलक्ष्म्यः

प्रधीः। प्रध्यायतीति प्रधीः। विशेष रूप से चिन्तन करने वाला, विद्वान्। प्र उपसर्ग और **ध्यै** चिन्तायाम् धातु से क्विप् प्रत्यय, सर्वापहार, सम्प्रसारण आदि होकर **प्रधी** बना है। **क्विब्विड्विजन्ता धातुत्वं न जहति** अर्थात् **क्विप्, विट्** और **विच्** प्रत्ययों के लगने के बाद भी **धातुत्व** बना ही रहता है, इस नियम से **ध्यै** के **धी** में धातुत्व विद्यमान है, अतः उसे धातु मानकर के आगे **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** से यण् आदि कार्य किये जाते हैं। उक्त प्रत्यय और लोप के बाद **विश्वपा** तरह ही यह भी धातु ही रहा। यह **प्रधी** अङ्यन्त है, अतः सु का लोप न होकर रुत्वविसर्ग होता है- **प्रधीः**।

१९९- अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ। श्नुश्च, धातुश्च, भ्रुश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः श्नुधातुभ्रुवः, तेषां श्नुधातुभ्रुवाम्। इश्च उश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो यू, तयोः य्वोः। इयङ् च उवङ् तयोरितरेतरद्वन्द्वः, इयङुवङौ। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

अजादि प्रत्यय के परे होने पर श्नु-प्रत्ययान्त अङ्ग, इवर्णान्त और उवर्णान्त धातु रूप अङ्ग एवं भ्रू रूप अङ्ग के अन्त्य वर्ण इकार और उकार के स्थान पर क्रमशः इयङ् और उवङ् आदेश होते हैं।

इयङ् और उवङ् में ङकार और अकार की इत्संज्ञा होती है। **इय्** और **उव्** शेष रह जाता है। ङकार की इत्संज्ञा होने **ङिच्च** की उपस्थिति से अन्त वर्ण के स्थान पर ही ये आदेश होते हैं। ये आदेश इकार और उकार के स्थान पर प्राप्त हो रहे हैं। स्थानी भी इकार और उकार दो हैं और आदेश भी इयङ् और उवङ् दो हैं। समान संख्या होने के कारण **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** के नियम से क्रमशः होगा अर्थात् इवर्ण के स्थान पर इयङ् और उवर्ण के स्थान पर उवङ् आदेश होगा।

२००- एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य। न एकम्, अनेकम्, अनेके एकाचः यस्मिन् सोऽनेकाच्,

तस्य अनेकाचः नञ्तत्पुरुषगर्भो बहुव्रीहिः। नास्ति संयोगः पूर्वो यस्य स असंयोगपूर्वः, तस्य असंयोगपूर्वस्य, बहुव्रीहिः। एः षष्ठ्यन्तम्, अनेकाचः षष्ठ्यन्तम्, असंयोगपूर्वस्य षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **इणो यण्** से **यण्** और **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **अचि** एवं एकदेश **धातु** को षष्ठ्यन्त में विपरिणाम करके उसकी अनुवृत्ति आती है।

धात्ववयव असंयोग पूर्व वाला जो इवर्णान्त धातु, वह अन्त में हो ऐसे अनेकाच् अङ्ग को यण् होता है अजादि प्रत्यय के परे होने पर।

धातु का अवयव जो संयोग, वह पूर्व में न हो ऐसा जो इवर्ण, वह इवर्ण अन्त में ऐसा जो धातु, वह धातु अन्त में ऐसा जो अनेकाच् अङ्ग, उसके स्थान पर यण् होता है, अजादि प्रत्यय के परे होने पर। **अलोऽन्त्यस्य** के द्वारा अन्त्य ई को यण् होता है। पर जो इवर्ण हो वह धातु का ही हो और उससे पूर्व में कोई संयोगसंज्ञक वर्ण न हों। तात्पर्य यह हुआ कि अजादि प्रत्यय के परे होने पर अनेकाच् अङ्ग को यण् आदेश होता है, जिसके अन्त में इवर्णान्त धातु हो परन्तु धातु के इवर्ण से पूर्व धातु की अवयव संयोग न हो तो। यह सूत्र जहाँ-जहाँ प्रवृत्त होगा, वहाँ-वहाँ सर्वत्र **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** की अवश्च प्राप्ति होती है। अतः अनवकाश होने के कारण यह सूत्र **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** का अपवाद हुआ।

प्रध्यौ। प्रधी+औ में यण् प्राप्त, उसे बाधकर पूर्वसवर्णदीर्घ प्राप्त और उसका भी **दीर्घाज्जसि च** निषेध होने पर सूत्र लगा- **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ**। अजादि प्रत्यय परे है औ, धातु का इवर्ण है प्रधी का ईकार, अतः ईकार के स्थान पर इयङ् आदेश प्राप्त हुआ, उसे बाधकर सूत्र लगा **एरचेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य**। अजादि प्रत्यय परे है ही। इवर्णान्त धातु है धी (यहाँ पर ध्यै से सम्प्रसारण होकर **धी** बना है, और **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस परिभाषा के बल पर धातु ही बना हुआ है।), उससे पूर्व में कोई संयोग भी नहीं है। वह धी अन्त में है ऐसा अनेकाच् अङ्ग है प्रधी, उसके इकार के स्थान पर यण् हो गया तो **प्रध्+य्+औ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **प्रध्यौ** सिद्ध हुआ।

प्रधी से अजादिविभक्ति के परे होने पर पूर्वरूप पूर्वसवर्णदीर्घ आदि को भी बाध कर **एरचेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** से यण् होता है क्योंकि **अमि पूर्वः** अम् के परे होने पर सभी शब्दों में तथा **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** भी अन्य शब्दों में प्रवृत्त होते हैं किन्तु यह सूत्र केवल धातु के अवयव असंयोग पूर्व वाले इकारान्त धातु से युक्त अनेकाच् अङ्ग होने पर ही प्रवृत्त होता है। अम् और शस् में भी यण् होकर **प्रध्यम्** और **प्रध्यः** बनते हैं। शेष रूप **पपी-शब्द** की तरह ही होते हैं।

ईकारान्त पुँल्लिङ्ग प्रधी-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्रधीः	प्रध्यौ	प्रध्यः
द्वितीया	प्रध्यम्	प्रध्यौ	प्रध्यः
तृतीया	प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभिः
चतुर्थी	प्रध्ये	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः
पञ्चमी	प्रध्यः	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः
षष्ठी	प्रध्यः	प्रध्योः	प्रध्याम्
सप्तमी	प्रध्यि	प्रध्योः	प्रधीषु
सम्बोधन	हे प्रधीः	हे प्रध्यौ	हे प्रध्यः

इसी तरह **ग्रामणी**-शब्द के रूप भी होते हैं किन्तु ग्राम+नी=ग्रामणी में नीशब्द होने के कारण सप्तमी के एकवचन ङि में **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** से आम् आदेश होता है, यण् होकर **ग्रामण्याम्** रूप सिद्ध होता है। ग्रामं नयतीति **ग्रामणीः**। गाँव का नेता। ग्रामपूर्वक नी-धातु है।

ईकारान्त पुँल्लिङ्ग ग्रामणी-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ग्रामणीः	ग्रामण्यौ	ग्रामण्यः
द्वितीया	ग्रामण्यम्	ग्रामण्यौ	ग्रामण्यः
तृतीया	ग्रामण्या	ग्रामणीभ्याम्	ग्रामणीभिः
चतुर्थी	ग्रामण्ये	ग्रामणीभ्याम्	ग्रामणीभ्यः
पञ्चमी	ग्रामण्यः	ग्रामणीभ्याम्	ग्रामणीभ्यः
षष्ठी	ग्रामण्यः	ग्रामण्योः	ग्रामण्याम्
सप्तमी	ग्रामण्याम्	ग्रामण्योः	ग्रामणीषु
सम्बोधन	हे ग्रामणीः	हे ग्रामण्यौ	ग्रामण्यः

अनेकाचः किम्? नीः, नियौ, नियः। यदि **एरचेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** में **अनेकाचः** नहीं कहेंगे तो सूत्र एकाच् और अनेकाच् दोनों जगह लगता, जिससे एकाच् नी-शब्द में भी यण् होकर **न्यौ, न्यः** ऐसे अनिष्ट रूप बनते। अतः अनेकाच् पढ़ा गया। यण् नहीं हुआ तो **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इयङ् आदेश हुआ जिससे **नियौ, नियः** आदि रूप बने।

नियौ। नि+औ में **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से नि के इकार के स्थान पर इयङ् आदेश हुआ। इयङ् में ङकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और यकारोत्तवर्ती अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होकर दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हुआ। इय् बचा। **न्+इय्+औ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **नियौ** सिद्ध हुआ।

अम् और शस् में भी इस सूत्र के परे होने के कारण इयङ् ही होता है जिससे **नियम्, नियः** रूप बनते हैं। ङि के स्थान पर आम् होता है जिससे **नियाम्** रूप बनता है।

ईकारान्त एकाच् पुँल्लिङ्ग नी-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	नीः	नियौ	नियः
द्वितीया	नियम्	नियौ	नियः
तृतीया	निया	नीभ्याम्	नीभिः
चतुर्थी	निये	नीभ्याम्	नीभ्यः
पञ्चमी	नियः	नीभ्याम्	नीभ्यः
षष्ठी	नियः	नियोः	नियाम्
सप्तमी	नियाम्	नियोः	नीषु
सम्बोधन	हे नीः	हे नियौ	हे नियः

असंयोगपूर्वस्य किम्? सुश्रियौ। यवक्रियौ। यदि **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** में **असंयोगपूर्वस्य** नहीं पढ़ते तो संयोगपूर्व होने पर भी सूत्र लगता जिससे सुपूर्वक **श्री** धातु के ईकार के पूर्व **श्+र्** यह संयोग है और यव पूर्वक **क्री** धातु में **क्+र्** का संयोग है तो ऐसे ईकार के स्थान पर भी यण् होकर **सुश्र्यौ, यवक्र्यौ** ऐसे अनिष्ट बनने लगते। उसे

गतिसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

२०१. गतिश्च १।४।६०॥

प्रादयः क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः।

वार्तिकम्- **गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते।** शुद्धधियौ।

....

रोकने के लिए सूत्र में असंयोगपूर्व कहा। यहाँ पर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इयङ् होकर **सुश्रियौ, यवक्रियौ** आदि रूप बनते हैं।

सुष्ठु श्रयतीति सुश्रीः। अच्छी तरह से आश्रय लेने वाला। सुपूर्वक **श्रिञ् सेवायाम्** धातु है। क्विप् प्रत्यय और दीर्घ करके सुश्री बना है। स्त्रीत्व के अभाव में नदीसंज्ञा और सु का लोप आदि कार्य नहीं होते हैं।

ईकारान्त पुँल्लिङ्ग अनेकाच्, संयोगपूर्व सुश्री-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुश्रीः	सुश्रियौ	सुश्रियः
द्वितीया	सुश्रियम्	सुश्रियौ	सुश्रियः
तृतीया	सुश्रिया	सुश्रीभ्याम्	सुश्रीभिः
चतुर्थी	सुश्रिये	सुश्रीभ्याम्	सुश्रीभ्यः
पञ्चमी	सुश्रियः	सुश्रीभ्याम्	सुश्रीभ्यः
षष्ठी	सुश्रियः	सुश्रियोः	सुश्रियाम्
सप्तमी	सुश्रियि	सुश्रियोः	सुश्रीषु
सम्बोधन	हे सुश्रीः!	हे सुश्रियौ!	हे सुश्रियः!

यवं क्रीणातीति यवक्रीः। यव पूर्वक क्री धातु है। **सुश्री** की तरह ही रूप होते हैं।

ईकारान्त पुँल्लिङ्ग अनेकाच्, संयोगपूर्व यवक्री-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	यवक्रीः	यवक्रियौ	यवक्रियः
द्वितीया	यवक्रियम्	यवक्रियौ	यवक्रियः
तृतीया	यवक्रिया	यवक्रीभ्याम्	यवक्रीभिः
चतुर्थी	यवक्रिये	यवक्रीभ्याम्	यवक्रीभ्यः
पञ्चमी	यवक्रियः	यवक्रीभ्याम्	यवक्रीभ्यः
षष्ठी	यवक्रियः	यवक्रियोः	यवक्रियाम्
सप्तमी	यवक्रियि	यवक्रियोः	यवक्रीषु
सम्बोधन	हे यवक्रीः	हे यवक्रियौ	हे यवक्रियः

२०१- गतिश्च। गतिः प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रादयः** से **प्रादयः** तथा **उपसर्गाः क्रियायोगे** से **क्रियायोगे** का अनुवर्तन होता है।

प्र, परा आदि क्रिया के योग में गतिसंज्ञक होते हैं।

स्मरण होगा कि **उपसर्गाः क्रियायोगे** से प्र, परा आदि बाईस प्रादियों की **उपसर्गसंज्ञा** हुई थी, उनकी उसी स्थिति में **गतिसंज्ञा** भी होती है। अष्टाध्यायी में ये सूत्र साथ-साथ पढ़े गये हैं। गतिसंज्ञा के अनेक प्रयोजन हैं किन्तु इस प्रकरण में **गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते** इस वार्तिक में गति क्या है? यह जानने के लिए गतिसंज्ञा की आवश्यकता है।

यण्निषेधकं विधिसूत्रम्

२०२. न भूसुधियोः ६।४।८५॥

एतयोरचि सुपि यण्न। सुधियौ। सुधिय इत्यादि।

सुखमिच्छतीति सुखीः। सुतीः। सुख्यौ। सुत्यौ। सुख्युः। सुत्युः।

शेषं प्रधीवत्। शम्भुर्हरिवत्। एवं भान्वादयः।

....

गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते। यह वार्तिक है। **जिस शब्द का पूर्वपद गतिसंज्ञक या कारक से भिन्न हो, उसको एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य से यण् नहीं होता है।** कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण ये छः कारक हैं। उन शब्दों में **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** से यण् होता है, जिसका पूर्वपद या तो गतिसंज्ञक हो या कारक हो। यदि गतिसंज्ञक भी न हो और कारक भी न हो, अन्य कोई भिन्न हो तो इस सूत्र से यण् नहीं होगा। जैसे कि **शुद्धा धीर्यस्य** इस विग्रह में बहुव्रीहि समास करके **शुद्धधी** बना है। इसमें शुद्धा पूर्वपद और धी उत्तरपद है। पूर्वपद **शुद्धा** गतिसंज्ञक और कारक न होकर धी का विशेषण है। अतः कारक से भिन्न पूर्वपद वाला शब्द हुआ- **शुद्धधी।** अतः इस वार्तिक के बल पर **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** नहीं लगेगा, यण् नहीं होगा, इयङ् होकर **शुद्धधियौ** आदि रूप बनेंगे।

ईकारान्त पुँल्लिङ्ग गतिकारकपूर्वपदभिन्न शुद्धधी-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	शुद्धधीः	शुद्धधियौ	शुद्धधियः
द्वितीया	शुद्धधियम्	शुद्धधियौ	शुद्धधियः
तृतीया	शुद्धधिया	शुद्धधीभ्याम्	शुद्धधीभिः
चतुर्थी	शुद्धधिये	शुद्धधीभ्याम्	शुद्धधीभ्यः
पञ्चमी	शुद्धधियः	शुद्धधीभ्याम्	शुद्धधीभ्यः
षष्ठी	शुद्धधियः	शुद्धधियोः	शुद्धधियाम्
सप्तमी	शुद्धधियि	शुद्धधियोः	शुद्धधीषु
सम्बोधन	हे शुद्धधीः	हे शुद्धधियौ	हे शुद्धधियः

२०२- **न भूसुधियोः।** भूश्च सुधीश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो भूसुधियौ, तयोर्भूसुधियोः। न अव्ययपदं, भूसुधियोः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **अचि, ओः सुपि** से **सुपि** और **इणो यण्** से **यण्** की अनुवृत्ति आती है।

अजादि सुप् प्रत्यय के परे होने पर भू और सुधी शब्द को यण् नहीं होता है।

यह सूत्र **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** और **ओः सुपि** का निषेधक है। **भू** और **धी** असंयोगपूर्व और इकारान्त तथा उकारान्त धातु हैं। यण् निषेध होने से **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इयङ् और उवङ् होंगे। यह सूत्र **सुधी+उपास्यः** में यण् निषेध नहीं करता क्योंकि वह सूत्र अजादि सुप् के परे नहीं केवल अच् के परे होने पर यण् करता है और यह सूत्र अजादि सुप् के परे होने पर यण् का निषेध करता है।

सुष्ठु ध्यायतीति सुधीः। श्रेष्ठ चिन्तन, ध्यान करने वाला। सु प्रादि है और **ध्यै चिन्तायाम्** धातु है। क्विप् प्रत्यय और सम्प्रसारण होकर सुधी बनता है। उससे सु प्रत्यय, ङ्यन्त न होने के कारण सु का लोप नहीं होता। रुत्व और विसर्ग करके **सुधीः** सिद्ध हुआ।

सुधियौ। सुधी+औ में **इको यणचि** से यण् प्राप्त, उसे बाधकर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इयङ् प्राप्त, उसे भी बाधकर **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** से यण् प्राप्त, उसका **न भूसुधियोः** से निषेध होने पर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इयङ् हुआ। अनुबन्धलोप होने पर **सुध्+इय्+औ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **सुधियौ** सिद्ध हुआ। इसी तरह अजादिविभक्ति के परे सर्वत्र इयङ् होता है।

ईकारान्त पुँल्लिङ्ग सुधी-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
द्वितीया	सुधियम्	सुधियौ	सुधियः
तृतीया	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
चतुर्थी	सुधिये	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
पञ्चमी	सुधियः	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
षष्ठी	सुधियः	सुधियोः	सुधियाम्
सप्तमी	सुधियि	सुधियोः	सुधीषु
सम्बोधन	हे सुधीः	हे सुधियौ	हे सुधियः

सुखमिच्छतीति सुखीः। जो अपने लिए सुख चाहे, वह। **सुख-शब्द** से **नामधातुप्रकरण** में क्यच् प्रत्यय, धातुसंज्ञा, ईत्व होकर सुखीय बनता है। उससे क्विप् प्रत्यय, सर्वापहार लोप, **अतो लोपः** से अकार और **लोपो व्योर्वलि** से यकार का लोप करके **सुखी** बनता है। इसी तरह बनता है- **सुतमिच्छतीति सुतीः**। जो अपने लिए पुत्र चाहे। इनसे प्रथमा के एकवचन में सु, रुत्वविसर्ग होकर **सुखीः** और **सुतीः** बनता है। धातु होने के कारण अजादि विभक्ति के परे **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** से यण् होकर **सुख्यौ, सुख्यः, सुत्यौ, सुत्यः** आदि रूप बनते हैं। **सुखी** और **सुती** में दीर्घ **खी** और **ती** शब्द होने के कारण पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में **ख्यत्यात्परस्य** से उकार आदेश होकर **सुख्युः** और **सुत्युः** बनते हैं।

ईकारान्त पुँल्लिङ्ग सुखी-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुखीः	सुख्यौ	सुख्यः
द्वितीया	सुख्यम्	सुख्यौ	सुख्यः
तृतीया	सुख्या	सुखीभ्याम्	सुखीभिः
चतुर्थी	सुख्ये	सुखीभ्याम्	सुखीभ्यः
पञ्चमी	सुख्युः	सुखीभ्याम्	सुखीभ्यः
षष्ठी	सुख्युः	सुख्योः	सुख्याम्
सप्तमी	सुख्यि	सुख्योः	सुखीषु
सम्बोधन	हे सुखीः	हे सुख्यौ	हे सुख्यः

इसी तरह **सुती** के भी रूप बनते हैं।

अब इस प्रकार से अजन्तपुँल्लिङ्गप्रकरण में इकारान्त (**इ** और **ई** अन्त वाले शब्दों) शब्दों का कथन पूर्ण हुआ। इसके बाद उकारान्त शब्दों का प्रसंग है। ह्रस्व-उकारान्त गुरु, भानु आदिशब्द हरिशब्द के समान ही होते हैं। **हरि-शब्द** में इकार के गुण होने से

तृज्वद्विधायकमतिदेशसूत्रम्

२०३. तृज्वत् क्रोष्टुः ७।१।९५।।

अयम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने परे।

क्रोष्टुशब्दस्य स्थाने क्रोष्टृशब्दः प्रयोक्तव्य इत्यर्थः।

....

एकार बन जाता है तो शम्भु आदि उकारान्त शब्द में उकार के स्थान पर ओकार गुण होता है। शेष सम्पूर्ण हरिशब्द के समान ही है।

शम्भुर्हरिवत्। शम्भु शब्द हरि शब्द की तरह होता है। शम्भु=शिव।

शम्भुः। शम्भु से सु, रुत्वविसर्ग, **शम्भुः**।

शम्भू। शम्भु+औ, **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** से पूर्वसवर्ण होने पर **उकार** और **औकार** के स्थान पर पूर्ववर्ण **उकार** का सवर्णी ऊकार एकादेश हुआ- **शम्भ्+ऊ=शम्भू**।

शम्भवः। **शम्भुशब्द** के जस् विभक्ति में शम्भु+अस्, गुण- शम्भो+अस्, अव् आदेश- शम्भ्+अव्+अस्, वर्णसम्मेलन- शम्भवस्, सकार का रुत्वविसर्ग, **शम्भवः**। अब द्वितीया के एकवचन में शम्भु+अम् में पूवरूप होगा तो उकार और अकार के स्थान पर उकार एकादेश ही होगा- **शम्भुम्**। शम्भु+औट्, शम्भु+औ में पूर्वसवर्णदीर्घ होने पर **शम्भू**। शम्भु+शस्, शम्भु+अस्, शम्भूस्, **शम्भून्**। शम्भु+ङे, शम्भु+ए, शम्भो+ए, शम्भ्+अव्+ए=**शम्भवे**। शम्भु+ङसि, शम्भु+अस्, शम्भो+अस्, शम्भोस्, **शम्भोः**। शम्भु+ओस्, शम्भ्+व्+ओस्=शम्भ्वोस्, **शम्भ्वोः**। शम्भु+आम्, शम्भु+न्+आम्, शम्भु+नाम्, **शम्भूनाम्**। शम्भु+ङि, शम्भु+इ, शम्भ+औ, **शम्भौ**। शेष प्रक्रिया सरल ही है। इसी प्रकार से भानु आदि समस्त उकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों की भी साधनी करें।

उकारान्त पुँल्लिङ्ग शम्भु-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	शम्भुः	शम्भू	शम्भवः
द्वितीया	शम्भुम्	शम्भू	शम्भून्
तृतीया	शम्भुना	शम्भुभ्याम्	शम्भुभिः
चतुर्थी	शम्भवे	शम्भुभ्याम्	शम्भुभ्यः
पञ्चमी	शम्भोः	शम्भुभ्याम्	शम्भुभ्यः
षष्ठी	शम्भोः	शम्भ्वोः	शम्भूनाम्
सप्तमी	शम्भौ	शम्भ्वोः	शम्भुषु
सम्बोधन	हे शम्भो!	शम्भू!	शम्भवः!

इसी प्रकार निम्नलिखित उकारान्त शब्दों के भी रूप बनाइये।

अणु= अत्यन्त छोटा	अंशु=किरण	इन्दु=चन्द्रमा
ऋजु=सरल	ऋतु= मौसम	कटु=तीखा
क्रतु= यज्ञ	गुरु=गुरु	जिज्ञासु= जानने को इच्छुक
तन्तु=धागा	दयालु= दया वाला	धातु= धातु
पटु=चतुर	पशु=जानवर	भानु=सूर्य
वाहु=भुजा	वायु=हवा	विष्णु=नारायण
शिशु=बालक	सूनु=पुत्र	हेतु=कारण।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

२०४. ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः ७।३।११०॥

ऋतोऽङ्गस्य गुणो ङौ सर्वनामस्थाने च। इति प्राप्ते।

अनङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२०५. ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसाञ्च ७।१।९४॥

ऋदन्तानामुशनसादीनां चानङ् स्यादसम्बुद्धौ सौ।

....

२०३- **तृज्वत् क्रोष्टुः**। तृचा तुल्यं तृज्वत्। तृज्वत् अव्ययपदं, क्रोष्टुः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सख्युरसम्बुद्धौ** से **असम्बुद्धौ** और **इतोऽत् सर्वनामस्थाने** से **सर्वनामस्थाने** की अनुवृत्ति आती है।

सम्बुद्धि से भिन्न सर्वनामस्थान के परे होने पर क्रोष्टु-शब्द तृच्-प्रत्ययान्त की तरह होता है अर्थात् क्रोष्टु के स्थान पर क्रोष्टृ आदेश होता है।

आचार्य इसे रूपातिदेश सूत्र मानते हैं। **तृच्** एक कृत्प्रकरण का प्रत्यय है। धातुओं से तृच् होता है। कृ से तृच् होकर कर्तृ, हृ से हर्तृ, पठ् से पठितृ आदि बनते हैं। तृच् प्रत्यय के लगने से जैसा रूप बनता है वैसा रूप सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान के परे होने पर भी हो जाय। क्रोष्टु-शब्द में यदि तृच् होता है तो षकार के योग में तृ के तकार को **ष्टुना ष्टुः** से टुत्व होकर **क्रोष्टृ** बनता है। वह यहाँ हो जाय। इस पर **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** की व्याख्या में विशेष वर्णन करेंगे। **स्थानेऽन्तरतमः** से अर्थकृत तुल्यता से **क्रोष्टु** के स्थान पर **क्रोष्टृ** आदेश होता है। यहाँ पर तो केवल इतना ही जानें कि तृजन्त होने पर क्रोष्टृ बनता है।

२०४- **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः**। ऋतः षष्ठ्यन्तं, ङिसर्वनामस्थानयोः सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है और **ह्रस्वस्य गुणः** से **गुणः** की अनुवृत्ति आती है।

ह्रस्व-ऋकारान्त अङ्ग को गुण होता है ङि और सर्वनामस्थान के परे रहने पर।

सर्वनामस्थानसंज्ञा के सम्बन्ध में पूर्वसूत्र का स्मरण करें। इस सूत्र से जब गुण होगा तो **उरण् रपरः** से रपर भी हो जाता है। यद्यपि सु के परे रहने पर इस सूत्र का उपयोग नहीं हो पाता, क्योंकि तब **ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसाञ्च से** अनङ् आदेश हो जाता है।

२०५- **ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसाञ्च**। ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसाम् षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सख्युरसम्बुद्धौ** से **असम्बुद्धौ** की और **अनङ् सौ** से **सौ** की अनुवृत्ति आती ही है तथा **अङ्गस्य** का अधिकार है।

ऋत् अर्थात् ह्रस्व-ऋकारान्त, उशनस्, पुरुदंसस् और अनेहस् शब्दरूप अङ्ग के स्थान पर अनङ् आदेश होता है सम्बुद्धि-भिन्न सु के परे रहने पर।

इस आदेश में ङकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और नकारोत्तरवर्ती अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा तथा दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हो जायेगा। ङकार की इत्संज्ञा होने के कारण यह आदेश **ङित्** कहलायेगा। अतः अनेक अल् वर्ण होने के कारण यह अनेकाल् होने पर भी **ङिच्च** के अनुसार अन्त्य वर्ण के स्थान पर ही होगा।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

२०६. अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम् ६।४।११॥

अबादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने परे।

क्रोष्टा। क्रोष्टारौ। क्रोष्टारः। क्रोष्टॄन्।

....

२०६- अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम्। आपश्च, तृन् च, तृच् च, स्वसा च, नप्ता च, नेष्टा च, त्वष्टा च, क्षत्ता च, होता च, पोता च, प्रशास्ता च, तेषामितरेतरद्वन्द्वः, **अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तारः**, तेषाम्- **अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम्।** यह सम्पूर्णसूत्र षष्ठी के बहुवचन का है। अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशासास्तृणाम् षष्ठ्यन्तम्, एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **उपधायाः** से उपधायाः की, **ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से **दीर्घः** की तथा **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** से **असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने** की अनुवृत्ति आती है।

अप्शब्द, तृन्प्रत्यान्तशब्द, तृच्प्रत्ययान्त शब्द तथा स्वसृ, नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षत्तृ, होतृ और प्रशास्तृ शब्दों की उपधा को दीर्घ होता है, सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान के परे होने पर।

उपधासंज्ञा के सम्बन्ध में **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** का स्मरण करें।

क्रोष्टा। क्रोष्टु-शब्द ऋकारान्त है। उससे प्रथमा का एकवचन सु आया। उकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा हुई और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। स् ही बचा हुआ है। क्रोष्टृ+स् बना। सु-विभक्ति प्रथमा का एकवचन है। अतः **सुडनपुंसकस्य** से सु की सर्वनामस्थानसंज्ञा हुई। तब सूत्र लगा- **तृज्वत् क्रोष्टुः**। सर्वनामस्थान परे है, अतः क्रोष्टु के स्थान पर **क्रोष्टृ** आदेश हो गया। **क्रोष्टृ+स्** में **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः** से ऋदन्त होने के कारण सर्वनामस्थान के परे रहते ऋकार के स्थान पर गुण की प्राप्ति हो रही थी, उसे बाधकर सूत्र लगा **ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च**। पूर्वसूत्र को यह सूत्र इसलिए बाधेगा कि पूर्व सूत्र समस्त ऋदन्त शब्दों से सर्वनामस्थानसंज्ञक पाँच वचनों के परे रहने पर लगता है और यह सूत्र केवल सु के परे रहने पर लगता है। अतः यह सूत्र निरवकाश या कम क्षेत्र वाला विशेष सूत्र हुआ और पूर्वसूत्र अधिक क्षेत्र वाला, अधिक जगह लगने की क्षमता वाला सामान्य सूत्र हुआ। हमेशा सामान्य सूत्र से विशेष सूत्र बलवान् होता है और बलवान् सूत्र निर्बल सूत्र को बाधता है।

अतः वर्तमान स्थिति में **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः** को **ऋदुशनस्पुरुदंशोऽनेहसां च** यह सूत्र बाधता है। अब इस सूत्र से अनङ् आदेश का विधान हुआ। अनङ् में ङकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और नकार के बाद वाले अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा तथा दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हुआ तो बचा अन्। यह अनङ् का अन् किसके स्थान पर हो? सूत्र ने आदेश तो किया किन्तु यह निश्चित नहीं हुआ कि अनङ् आदेश किसके स्थान पर होना चाहिए? क्योंकि सूत्र ने ऋकारान्त शब्द के स्थान पर आदेश का विधान किया फिर भी क्या सम्पूर्ण शब्द के स्थान पर कर देना चाहिए? इस सन्देह की स्थिति में परिभाषा-सूत्र नियमार्थ पहुँचा- **अनेकाल् शित्सर्वस्य।** यह आदेश अनेक अल् वाला है। इसलिए इस सूत्र के नियमानुसार अनेकाल् आदेश सभी वर्णों के स्थान पर होता

वैकल्पिकतृज्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्

२०७. विभाषा तृतीयादिष्वचि ७।१।९७।।

अजादिषु तृतीयादिषु क्रोष्टुर्वा तृज्वत्। क्रोष्ट्रा। क्रोष्ट्रे।

....

है। धातृ इस सम्पूर्ण के स्थान पर अनङ् की प्राप्ति हो रही थी तो इसे रोकने के लिए इस सूत्र का बाधक सूत्र लगा- **ङिच्च**। इस सूत्र ने नियम रखा कि यद्यपि अनेकाल् आदेश सभी वर्णों के स्थान पर होता है फिर भी यदि वह ङित् हो तो सर्वादेश न होकर अन्त्यादेश होता है अर्थात् अन्त्य वर्ण के स्थान पर ही आदेश होता है।

क्रोष्टृ में अन्त्य वर्ण है ऋकार, अत: अनङ् वाला अन् धातृ के ऋकार को हटाकर हुआ- **क्रोष्ट्+अन्+स्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ **क्रोष्टन् स्** बना। **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** से **क्रोष्टन्** में टकार के बाद वाले अकार की उपधासंज्ञा हो गई, क्योंकि अन्त्यवर्ण है नकार, उससे पूर्व का वर्ण है अकार, अत: अकार की ही उपधासंज्ञा हो सकती है। इसके बाद सूत्र लगा- **अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम्।** तृज्वद्भाव होने पर **क्रोष्टृ** बना था। अत: तृच्प्रत्ययान्त मानकर उपधा को दीर्घ हुआ। उपधा है नकार से पूर्ववर्ती अकार, उसको दीर्घ हुआ तो आकार बन गया- क्रोष्टान् स् बना। सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ, क्योंकि हलन्त है क्रोष्टान् और उससे परे सुसम्बन्धि अपृक्त हल् है स्, इसलिये इस सूत्र से सकार का लोप किया गया- **क्रोष्टान्** बना। सुविभक्ति के लगने से **सुप्तिङन्तं पदम्** से पदसंज्ञा हुई किन्तु सु के लोप होने के बाद भी वह पदत्व बना ही हुआ है। अत: क्रोष्टान् एक पद है। पद के अन्त में विद्यमान नकार है क्रोष्टान् का नकार, उसका **नलोप: प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ तो बना- **क्रोष्टा।**

क्रोष्टारौ। क्रोष्टार:। क्रोष्टारम्। क्रोष्टारौ। औ-विभक्ति के आने पर क्रोष्टृ+औ में अनङ् आदेश नहीं होगा, क्योंकि वह केवल सु के परे रहने पर हो सकता है। अत: **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयो:** से ऋकार के स्थान पर **उरण् रपर:** के सहयोग से **अर्-गुण** हुआ- **क्रोष्ट्+अर्+औ** बना। **क्रोष्ट्+अर्** में वर्णसम्मेलन हुआ- **क्रोष्टर्** बना। **क्रोष्टर्+औ** में उपधाभूत टकारोत्तरवर्ती अकार का दीर्घ करने के लिए सूत्र लगा- **अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम्।**इससे दीर्घ होने के बाद **क्रोष्टार्+औ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **क्रोष्टारौ**। इसी प्रकार **क्रोष्टृ+अस्, क्रोष्टृ+अम्** में भी गुण करके दीर्घ करने पर **क्रोष्टारस्, क्रोष्टारम्, क्रोष्टारौ** बन जाते हैं। जस् के सकार का रुत्वविसर्ग करके **क्रोष्टार:** बन जाता है।

क्रोष्टून्। द्वितीया के बहुवचन में शस् आया, शकार का **लशक्वतद्धिते** से लोप हो जाने पर **कोष्टु+अस्** बना। सर्वनामस्थान न होने के कारण **तृज्वत् क्रोष्टु:** से तृज्वद्भाव नहीं हुआ। **क्रोष्टु+अस्** है, **प्रथमयो: पूर्वसवर्ण:** से पूर्वसवर्णदीर्घ होने पर **क्रोष्टूस्** बना। सकार के स्थान पर **तस्माच्छसो न: पुंसि** से नकार आदेश हुआ तो **क्रोष्टून्** बना।

२०७- विभाषा तृतीयादिष्वचि। तृतीया आदिर्येषां ते तृतीयादय:, तेषु तृतीयादिषु। विभाषा प्रथमान्तं, तृतीयादिषु सप्तम्यन्तम्, अचि सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **तृज्वत् क्रोष्टु:** से **तृज्वत्** आता है।

अजादि तृतीया आदि विभक्ति के परे होने पर विकल्प से तृज्वद्भाव अर्थात् क्रोष्टृ आदेश होता है।

उदेकादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२०८. ऋत उत् ६।१।१११॥

ऋतो ङसिङसोरति उदेकादेशः। रपरः।

सलोपविषये नियमसूत्रम्

२०९. रात्सस्य ८।२।२४॥

रेफात्संयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नान्यस्य।

रस्य विसर्गः। क्रोष्टुः २। क्रोष्ट्रोः २।

वार्तिकम्- **नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन।**

क्रोष्टूनाम्। क्रोष्टरि। पक्षे हलादौ च शम्भुवत्।

हूहूः। हूह्वौ। हूह्वः। हूहूम् इत्यादि। अतिचमूशब्दे तु नदीकार्यं विशेषः। हे अतिचमु। अतिचम्वै। अतिचम्वाः। अतिचमूनाम्। खलपूः।

....

अजादि विभक्ति के परे वह भी तृतीया से प्रारम्भ करके, न कि प्रथमा और द्वितीया की अजादि विभक्ति, उसके परे होने पर क्रोष्टु के स्थान पर क्रोष्टृ आदेश विकल्प से होता है। तृतीयादि अजादि विभक्ति हैं- **टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम्, ङि, ओस्।** इस आदेश के न होने के पक्ष में उकारान्त भानुशब्द की तरह रूप बनते हैं।

क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना। क्रोष्टु से तृतीया का एकवचन में टा, अनुबन्धलोप, **क्रोष्टु+आ** बना। **विभाषा तृतीयादिष्वचि** से वैकल्पिक **क्रोष्टृ** आदेश हुआ, **क्रोष्टृ+आ** बना। **इको यणचि** से ऋकार के स्थान पर यण् होकर र् हुआ- **क्रोष्ट्र्+आ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **क्रोष्ट्रा।** क्रोष्टृ आदेश न होने के पक्ष में क्रोष्टु उकारान्त है, अतः **भानुना** की तरह घिसंज्ञा होकर **आङो नाऽस्त्रियाम्** से ना आदेश होकर **क्रोष्टुना** बनेगा।

क्रोष्टुभ्याम्। क्रोष्टुभिः। क्रोष्टुभ्यः। क्रोष्टुभ्याम् में केवल भ्याम् प्रत्यय को जोड़ना मात्र है किन्तु भिस् और भ्यस् के सकार को रुत्वविसर्ग भी किया जाता है। अतः **क्रोष्टुभ्याम्, क्रोष्टुभिः, क्रोष्टुभ्यः** बन जाते हैं।

क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे। क्रोष्टु से चतुर्थी का एकवचन में ङे, अनुबन्धलोप, **क्रोष्टु+ए** बना। **विभाषा तृतीयादिष्वचि** से वैकल्पिक **क्रोष्टृ** आदेश हुआ, **क्रोष्टृ+ए** बना। **इको यणचि** से ऋकार के स्थान पर यण् होकर र् हुआ- **क्रोष्ट्र्+ए** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **क्रोष्ट्रे।** क्रोष्टृ आदेश न होने के पक्ष में क्रोष्टु उकारान्त है, अतः **भानवे** की तरह घिसंज्ञा होकर **घेर्ङिति** से गुण करके अव् आदेश होने पर **क्रोष्ट्+अव्+ए,** वर्णसम्मेलन होकर **क्रोष्टवे** बनेगा।

२०८-ऋत उत्। ऋतः पञ्चम्यन्तम्, उत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ङसिङसोश्च** से **ङसिङसोः** की, **एङः पदान्तादति** से **अति** की अनुवृत्ति आती है और **एकः पूर्वपरयोः** से सम्पूर्ण सूत्र का अधिकार है।

ह्रस्व ऋकार से ङसि और ङस् सम्बन्धी अकार के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश होता है।

पूर्व में ह्रस्व-ऋकार हो और पर में ङसि और ङस् का अकार हो तो पूर्व और पर के स्थान में उकार एकादेश होता है। ऋकार के स्थान पर उकार आदेश प्राप्त होने के कारण **उरण् रपरः** से रपर होकर **उर्** ऐसा आदेश हो जायेगा।

२०९- **रात्सस्य।** रात् पञ्चम्यन्तं, सस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **संयोगान्तस्य लोपः** पूरे सूत्र का अनुवर्तन होता है।

रेफ से परे यदि संयोगान्तलोप हो तो केवल सकार का ही हो, अन्य का नहीं।

संयोगान्त वर्ण का लोप करने के लिए **संयोगान्तस्य लोपः** पर्याप्त है। वह संयोग के अन्त में विद्यमान किसी वर्ण का लोप करता है तो **क्रोष्टुर्स्** में भी सकार का लोप उसीसे हो जायेगा। अतः यहाँ पर **रात्सस्य** की क्या आवश्यकता है? उत्तर है कि **सिद्धे सति आरभ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति।** सिद्ध होने पर भी उसीके विषय में पुनः कथन होना नियम के लिए होता है। यहाँ सकार का लोप सिद्ध होते हुए भी पुनः सकार के लोप के लिए इस सूत्र का आरम्भ यह नियम बनाता है कि **यदि रेफ से परे किसी संयोगान्त वर्ण का लोप होता हो तो केवल सकार का ही लोप हो अन्य वर्ण का नहीं।** यह सूत्र तो ऐसा नियम मात्र बनाता है। **क्रोष्टुर्+स्** में सकार का लोप तो **संयोगान्तस्य लोपः** से ही होता है।

क्रोष्टुः। पञ्चमी के एकवचन में क्रोष्टु-शब्द से ङसि आया, अनुबन्धलोप हुआ- **क्रोष्टु+अस्** बना। **विभाषा तृतीयादिष्वचि** से वैकल्पिक **क्रोष्टृ** आदेश हुआ- **क्रोष्टृ**+**अस्** बना। **इको यणचि** से यण् प्राप्त था, उसे बाधकर **ऋत उत्** के **उरण् रपरः** की सहायता से के ऋकार और अस् के अकार के स्थान पर **उर्** एकादेश हुआ- **क्रोष्ट् उर् स्** बना। ट् उ से मिला- **क्रोष्टुर् स्** बना। सकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप हुआ और रकार का **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से विसर्ग हुआ- **क्रोष्टुः** सिद्ध हुआ। षष्ठी के एकवचन में भी **क्रोष्टुः** ही बनेगा। आदेश न होने के पक्ष में **भानोः** की तरह **क्रोष्टोः** बनेगा।

क्रोष्ट्रोः। क्रोष्टु से षष्ठी एवं सप्तमी का द्विवचन में ओस्, **क्रोष्टु+ओस्** बना। **विभाषा तृतीयादिष्वचि** से वैकल्पिक **क्रोष्टृ** आदेश हुआ, **क्रोष्टृ+ओस्** बना। **इको यणचि** से ऋकार के स्थान पर यण् होकर र् हुआ- **क्रोष्ट्र्+ओस्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **क्रोष्ट्रोस्** बना सकार का रुत्व और विसर्ग करके **क्रोष्ट्रोः** सिद्ध हुआ। क्रोष्टृ आदेश न होने के पक्ष में क्रोष्टु उकारान्त है, अतः **भान्वोः** की तरह गुण, अव् आदेश होने पर **क्रोष्ट्+अव्+ओस्,** वर्णसम्मेलन और सकार का रुत्वविसर्ग करने पर **क्रोष्ट्वोः** बनेगा।

नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन। यह वार्तिक है। **पूर्वविप्रतिषेध के कारण प्राप्त नुम्, अच् परे होने पर रेफादेश और तृज्वद्भाव से पहले नुट् होता है।**

विप्रतिषेधे परं कार्यम् यह वहाँ लगता है जहाँ पर समान स्थल पर दो सूत्र एक साथ लगने के लिए प्रवृत्त होते हों। वहाँ पर यह सूत्र कहता है कि यदि तुल्यबलविरोध हो तो पूर्व सूत्र का निषेध और परसूत्र की प्रवृत्ति होनी चाहिए। **क्रोष्टु** शब्द से आम् के परे होने पर **ह्रस्वनद्यापो नुट् ७।१।५४।।** की और **तृज्वत् क्रोष्टुः ७।१।९५।।** की एकसाथ प्रवृत्ति थी। इन दोनों में पूर्वसूत्र **ह्रस्वनद्यापो नुट्** है और परसूत्र **तृज्वत् क्रोष्टुः** है। **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** के नियम से नुट् को रोककर के तृज्वद्भाव की प्राप्ति हो रही थी।

ऐसा यदि हो जाता तो **क्रोष्टॄणाम्** ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध हो जाता। उसे रोकने के कात्यायन जी ने वार्तिक बनाया- **नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन**। अब पहले नुट् होगा। नुट् होने से अजादि नहीं मिला, इसलिए तृज्वद्भाव भी नहीं हुआ।

नुम् का उदाहरण **इकोऽचि विभक्तौ** और अच् के परे होने पर रेफ आदेश का उदाहरण **अचि र ऋतः** में देखेंगे।

क्रोष्टूनाम्। षष्ठी के बहुवचन में आम्, **नुट्** और **तृज्वद्भाव** एक साथ प्राप्त, **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** के नियम से **तृज्वद्भाव** प्राप्त **नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन** के नियम से पहले नुट् आगम हुआ। **क्रोष्टु+नाम्** में अजादि न मिलने के कारण तृज्वद्भाव नहीं हुआ। **नामि** से दीर्घ होकर **क्रोष्टूनाम्** सिद्ध हुआ।

क्रोष्टरि। सप्तमी के एकवचन में क्रोष्टु-शब्द से ङि आया, अनुबन्धलोप हुआ- क्रोष्टु+इ। **विभाषा तृतीयादिष्वचि** से वैकल्पिक **क्रोष्टृ** आदेश हुआ- **क्रोष्टृ+इ** बना। **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः** से गुण हुआ, **क्रोष्टर्+इ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **क्रोष्टरि** सिद्ध हुआ। क्रोष्टृ आदेश न होने के पक्ष में **भानौ** की तरह **क्रोष्टौ** बनेगा।

क्रोष्टृ आदेश न होने के पक्ष में और हलादि के परे होने पर उकारान्त भानु शब्द की तरह रूप बनते हैं।

उकारान्त पुँल्लिङ्ग क्रोष्टु-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	क्रोष्टा	क्रोष्टारौ	क्रोष्टारः
द्वितीया	क्रोष्टारम्	क्रोष्टारौ	क्रोष्टून्
तृतीया	क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभिः
चतुर्थी	क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
पञ्चमी	क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
षष्ठी	क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टूनाम्
सप्तमी	क्रोष्टरि, क्रोष्टौ	क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टुषु
सम्बोधन	हे क्रोष्टो	हे क्रोष्टारौ	हे क्रोष्टारः!

अब दीर्घ ऊकारान्त शब्दों को बताने जा रहे हैं।

हूहू शब्द गन्धर्वविशेष का वाचक है। दीर्घ, ऊकारान्त है। घिसंज्ञा, नदीसंज्ञा आदि कुछ भी नहीं हो रही है। अतः इसके अलग ही रूप बनते हैं। सु का रुत्वविसर्ग, औ, जस्, औ में **दीर्घाज्जसि च** से पूर्वसवर्ण दीर्घ के निषेध होने के कारण यण्, अम् में पूर्वरूप और शस् में पूर्वसवर्ण दीर्घ, शेष अजादि विभक्ति के परे होने पर **इको यणचि** से यण् करने पर निम्नलिखित रूप सिद्ध होंगे-

ऊकारान्त पुँल्लिङ्ग हूहू-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	हूहूः	हूह्वौ	हूह्वः
द्वितीया	हूहूम्	हूह्वौ	हूहून्
तृतीया	हुह्वा	हूहूभ्याम्	हूहूभिः
चतुर्थी	हुह्वे	हूहूभ्याम्	हूहूभ्यः
पञ्चमी	हुह्वः	हूहूभ्याम्	हूहूभ्यः

यण्विधायकं विधिसूत्रम्

२१०. ओः सुपि ६।४।८३॥

धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य उवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादचि सुपि। खलप्वौ। खलप्वः। एवं सुल्वादयः। स्वभूः। स्वभुवौ। स्वभुवः। वर्षाभूः।

....

षष्ठी	हुह्वः	हूह्वोः	हूह्वाम्
सप्तमी	हूह्वि	हूह्वोः	हूहूषु
सम्बोधन	हे हूहूः	हे हूह्वौ:	हे हूह्वः

अतिचमूशब्दे तु नदीकार्यं विशेषः। चमू शब्द ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग है और सेना का वाचक है। **चमूम् अतिक्रान्तः** विग्रह में समास करके **अतिचमू** शब्द बना। सेना को अतिक्रमण करने वाला अर्थात् सेना पर विजय प्राप्त करने वाला कोई पुरुष, योद्धा, राजा आदि। इस तरह **अतिचमू**-शब्द पुँल्लिङ्ग बन गया। **प्रथमलिङ्गग्रहणं च** की सहायता से **यू स्त्र्याख्यौ नदी** से नदीसंज्ञा होती है जिससे नदीसंज्ञा प्रयुक्त कार्य **अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः** से ह्रस्व, **आण्नद्याः** से आट् आगम और **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** से आम् आदेश आदि कार्य होंगे। इसके रूप **बहुश्रेयसी** की तरह चलेंगें। **बहुश्रेयसी** में ईकार के स्थान पर यण् होकर यकार आदेश होता था तो **अतिचमू** में ऊकार के स्थान पर वकार आदेश होगा। दोनों शब्दों में एक अन्तर यह भी है कि वह ङ्यन्त था इसलिए सुलोप होता था और यह ङ्यन्त नहीं है, अतः सु का लोप नहीं होगा।

ऊकारान्त पुँल्लिङ्ग अतिचमू-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अतिचमूः	अतिचम्वौ	अतिचम्वः
द्वितीया	अतिचमूम्	अतिचम्वौ	अतिचमून्
तृतीया	अतिचम्वा	अतिचमूभ्याम्	अतिचमूभिः
चतुर्थी	अतिचम्वै	अतिचमूभ्याम्	अतिचमूभ्यः
पञ्चमी	अतिचम्वाः	अतिचमूभ्याम्	अतिचमूभ्यः
षष्ठी	अतिचम्वाः	अतिचम्वोः	अतिचमूनाम्
सप्तमी	अतिचम्वाम्	अतिचम्वोः	अतिचमूषु
सम्बोधन	हे अतिचमु	हे अतिचम्वौ	हे अतिचम्वः

खलपूः। खलं पुनातीति खलपूः। खलियान साफ करने वाला सेवक आदि। खल पूर्वक पू धातु है। नित्यस्त्रीलिङ्गी न होने के कारण नदीसंज्ञा नहीं होती है। अङ्यन्त होने से सु का लोप नहीं होता है। खलपू+स्, सकार को रुत्वविसर्ग होकर **खलपूः** सिद्ध हुआ।

२१०- ओः सुपि। ओः षष्ठ्यन्तं, सुपि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** से **अनेकाचः** और **असंयोगपूर्वस्य** तथा **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **धातोः** तथा **अचि** एवं **इयो यण्** से **यण्** की अनुवृत्ति आती है।

धात्ववयव असंयोग पूर्व वाला जो उवर्ण, वह अन्त्य में हो ऐसा जो धातु, वह अन्त्य में हो ऐसे अनेकाच् अङ्ग को यण् होता है अजादि प्रत्यय के परे होने पर।

धातु का अवयव जो संयोग, वह पूर्व में न हो ऐसा जो उवर्ण, वह उवर्ण अन्त में ऐसा जो धातु, वह धातु अन्त में ऐसा जो अनेकाच् अङ्ग, उसके उवर्ण के स्थान पर यण् होता है, अजादि प्रत्यय के परे होने पर। जो उवर्ण हो वह धातु का ही हो और उससे पूर्व में कोई संयोगसंज्ञक वर्ण न हों। तात्पर्य यह हुआ कि अजादि प्रत्यय के परे होने पर अनेकाच् अङ्ग को यण् आदेश होता है, जिसके अन्त में उवर्णान्त धातु है परन्तु धातु के उवर्ण से पूर्व धातु का अवयव संयोग न हो तो। इसकी प्राप्ति में **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** की अवश्च प्राप्ति है। अतः अनवकाश होने के कारण यह सूत्र **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** का अपवाद हुआ। **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** ईकार को यण् करता है और यह **ओः सुपि** ऊकार को। **खलपू**-शब्द के रूप साधने के लिए **प्रधी**-शब्द की सिद्धि का स्मरण करें। वहाँ पर ईकार के स्थान यण् होकर य् हो जाता था तो खलपू में यण् होकर व् आदेश होगा।

खलप्वौ। खलप्वः। अजादिविभक्ति के परे होने पर **ओः सुपि** से यण् होता है।

ऊकारान्त पुँल्लिङ्ग खलपू-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	खलपूः	खलप्वौ	खलप्वः
द्वितीया	खलप्वम्	खलप्वौ	खलप्वः
तृतीया	खलप्वा	खलपूभ्याम्	खलपूभिः
चतुर्थी	खलप्वे	खलपूभ्याम्	खलपूभ्यः
पञ्चमी	खलप्वः	खलपूभ्याम्	खलपूभ्यः
षष्ठी	खलप्वः	खलप्वोः	खलप्वाम्
सप्तमी	खलप्वि	खलप्वोः	खलपूषु
सम्वोधन	हे खलपूः	हे खलप्वौ	हे खलप्वः

एवं सुल्वादयः। सुष्ठु लुनातीति सुलूः। अच्छी तरह काटने वाला। इसी तरह सुलू आदि शब्दों के भी रूप बनाइये। जैसे- सुलूः, सुल्वौ, सुल्वः। सुल्वम्, सुल्वौ, सुल्वः आदि।

स्वभूः। स्वभुवौ। स्वभुवः। स्वयं भवति, स्वस्माद्भवतीति स्वभूः। ब्रह्मा। इसमें भी ङ्यन्त न होने कारण सु लोप नहीं होगा और नित्यस्त्रीलिङ्गी न होने के कारण नदीसंज्ञा भी नहीं होगी। सु का रुत्व और विसर्ग करके **स्वभूः** सिद्ध हो जाता है। अजादिविभक्ति के परे होने परे **इको यणचि** से यण् प्राप्त था, उसे बाधकर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् प्राप्त हुआ, उसे भी बाधकर **ओः सुपि** से यण् प्राप्त हुआ। उसका **न भूसुधियोः** से निषेध होने के कारण पुनः **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् आदेश होकर **स्वभुवौ, स्वभुवः** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

ऊकारान्त पुँल्लिङ्ग स्वभू-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	स्वभूः	स्वभुवौ	स्वभुवः
द्वितीया	स्वभुवम्	स्वभुवौ	स्वभुवः
तृतीया	स्वभुवा	स्वभूभ्याम्	स्वभूभिः
चतुर्थी	स्वभुवे	स्वभूभ्याम्	स्वभूभ्यः

यण्विधायकं विधिसूत्रम्

२११. वर्षाभ्वश्च ६।४।८४॥

अस्य यण् स्यादचि सुपि। वर्षाभ्वावित्यादि। दृन्भूः।

वार्तिकम्- **दृन्करपुनःपूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः।** दृन्भ्वौ। एवं करभूः।

धाता। हे धातः। धातारौ। धातारः।

(वार्तिकम्) **ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्।** धातृणाम्। एवं नप्त्रादयः।

नप्त्रादिग्रहणं व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम्। तेनेह न- पिता। पितरौ। पितरः। पितरम्। शेषं धातृवत्। एवं जामात्रादयः। ना। नरौ।

....

पञ्चमी	स्वभुवः	स्वभूभ्याम्	स्वभूभ्यः
षष्ठी	स्वभुवः	स्वभुवोः	स्वभुवाम्
सप्तमी	स्वभुवि	स्वभुवोः	स्वभूषु
सम्बोधन	हे स्वभूः	हे स्वभुवौ	हे स्वभुवः

वर्षाभूः। वर्षासु भवतीति वर्षाभूः। वर्षा काल में होने वाला, मेंढ़क। वर्षा-पूर्वक भू-धातु से क्विप् प्रत्यय, सर्वापहार लोप होकर **वर्षाभू** बना है। उससे सु, रुत्व और विसर्ग करने पर- **वर्षाभूः**।

२११- **वर्षाभ्वश्च**। वर्षाभ्वः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से अचि, **ओः सुपि** से सुपि और **इणो यण्** से **यण्** की अनुवृत्ति आती है।

अजादि सुप् के परे होने पर वर्षाभू शब्द को यण् होता है।

वर्षाभू से अजादि विभक्ति के परे होने पर **इको यणचि** से **यण्** प्राप्त था, उसके बाद औ, जस्, औट् के परे होने पर उसे बाधकर **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** से **पूर्वसवर्ण** की प्राप्ति थी, उसका **दीर्घाज्जसि च** से निषेध होने के कारण **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् प्राप्त हो गया एवं अम् के परे होने पर **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप और शस् के परे होने पर **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** से पूर्वसवर्ण और **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर **ओः सुपि** से यण् प्राप्त था, उसका **न भूसुधियोः** से निषेध प्राप्त था, उसे भी बाधकर **वर्षाभ्वश्च** से यण् का विधान होता है।

इस तरह **वर्षाभू** से अजादि विभक्ति के परे होने पर सर्वत्र **वर्षाभ्वश्च** से यण् होगा और हलादि विभक्ति में कुछ भी नहीं करना है। यह नित्यस्त्रीलिङ्गी न होने के कारण नदीसंज्ञक नहीं है।

ऊकारान्त पुँल्लिङ्ग वर्षाभू-शब्द के रूप

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	वर्षाभूः	वर्षाभ्वौ	वर्षाभ्वः
द्वितीया	वर्षाभ्वम्	वर्षाभ्वौ	वर्षाभ्वः
तृतीया	वर्षाभ्वा	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभिः
चतुर्थी	वर्षाभ्वे	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभ्यः
पञ्चमी	वर्षाभ्वः	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभ्यः

षष्ठी	वर्षाभ्वः	वर्षाभ्वोः	वर्षाभ्वाम्
सप्तमी	वर्षाभ्वि	वर्षाभ्वोः	वर्षाभूषु
सम्बोधन	हे वर्षाभूः	हे वर्षाभ्वौ	वर्षाभ्वः

दृन्भूः। दृन्-अव्यय है और भू धातु। सु, रुत्वविसर्ग करके **दृन्भूः**।

दृन्करपुनःपुर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः। यह वार्तिक है। **अजादि सुप् के परे होने पर दृन्, कर, और पुनर् पूर्वक भू धातु को यण् का विधान करना चाहिए।**

दृन्-कर-पुनर्पूर्वक भू में **न भूसुधियोः** से निषेध प्राप्त था, इसलिए वार्तिक का आरम्भ हुआ है। यण् होने के बाद इसके रूप भी **वर्षाभू** की तरह ही बनते हैं- **दृन्भूः, दृन्भ्वौ, दृन्भ्वः** आदि। इसी तरह **करे भवति** हाथ में होने वाले नाखून आदि अर्थ में **करभूः, करभ्वौ, करभ्वः** तथा **पुनर्भवति** पुनः होता है अर्थ में **पुनर्भूः, पुनर्भ्वौ, पुनर्भ्वः** आदि सिद्ध होते हैं।

ऊकारान्त शब्द भी पूर्ण हुए। अब ऋकारान्त शब्दों का प्रकरण प्रारम्भ होता है।

धाता। धारण, पोषण करने वाला, विधाता, ब्रह्मा। **डुधाञ्** धातु से तृन् या तृच् प्रत्यय करके **धातृ** बनता है। **धातृ** से सु प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः** से गुण प्राप्त, उसे बाधकर **ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च** से अनङ् आदेश, **धात्+अन्+स्** वर्णसम्मेलन होकर **धातन्+स** बना। **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** से त के अकार की उपधासंज्ञा और **अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम्** से उपधा को दीर्घ हुआ, **धातान्+स्** बना। **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से स् का लोप हुआ और **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नकार का लोप हुआ तो **धाता** सिद्ध हुआ।

धातारौ। **धातृ** से औ प्रत्यय, **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः** से ऋकार को गुण, **धात्+अर्+औ** वर्णसम्मेलन होकर **धातर्+औ** बना। **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** से त के अकार की उपधासंज्ञा और **अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम्** से उपधा को दीर्घ हुआ, **धातार्+औ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **धातारौ** सिद्ध हुआ। इसी तरह की प्रक्रिया करके सर्वनामस्थान अर्थात् जस्, अम्, औट् में **धातारः, धातारम्, धातारौ** बनाइये।

धातॄन्। शस् अनुबन्धलोप करके **धातृ+अस्**, पूर्वसवर्णदीर्घ करके **धातॄस्** बना। **तस्माच्छसो नः पुंसि** से नत्व करके **धातॄन्** बन जाता है। अब अजादि विभक्ति के परे होने पर **इको यणचि** से यण् करके रूप बनते हैं।

धात्रा। टा के आने पर **धातृ+आ** में यण् होकर **धात्+र्+आ=धात्रा**।

धातृ+भ्याम्=धातृभ्याम्। **धातृ+भिस्=धातृभिः**। **धातृ+भ्यस्=धातृभ्यः**।

धात्रे। ङे, ए, **धातृ+ए**, यण्, **धात्+र्+ए** वर्णसम्मेलन होकर **धात्रे**।

धातुः। धातृ+ङसि, धातृ+अस्, **ऋत उत्** से **उर्** आदेश, **धातुर्+स्** सकार का लोप करने पर **धातुर्**, रेफ का विसर्ग करके **धातुः** बना। इसी तरह ङस् में भी बनता है।

धात्रोः। धातृ+ओस्, यण्, धात्+र्+ओस्, वर्णसम्मेलन, धात्रोस्, रुत्वविसर्ग **धात्रोः**।

ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्। यह वार्तिक है। **ऋवर्ण से परे नकार के स्थान पर णकार आदेश होता है।** जिस तरह णत्व करने वाले सूत्र रेफ और षकार से परे नकार को णत्व करते हैं उसी तरह इस वार्तिक ऋकार से परे नकार को भी णत्व होता है। णत्व प्रकरण के सूत्रों से जिनका व्यवधान मान्य है, उनका व्यवधान इस वार्तिक के सम्बन्ध में भी मान्य ही होंगे।

धातृणाम्। आम् प्रत्यय, नुट्, दीर्घ, इस वार्तिक से णत्व करके **धातृणाम्** बना।

धातरि। ङि में **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः** से गुण करके वर्णसम्मेलन करने पर **धातरि** सिद्ध होता है।

धातृषु। धातृ+सु, अनुबन्धलोप, षत्व, **धातृषु**।

हे धातः। सम्बुद्धि में अनङ् नहीं होता है। इसलिए **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः** से गुण करके **धातर्+स्** बना। सकार का लोप और रेफ का विसर्ग करके हे का पूर्वप्रयोग।

ऋकारान्त पुँल्लिङ्ग धातृ-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धाता	धातारौ	धातारः
द्वितीया	धातारम्	धातारौ	धातॄन्
तृतीया	धात्रा	धातृभ्याम्	धातृभिः
चतुर्थी	धात्रे	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
पञ्चमी	धातुः	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
षष्ठी	धातुः	धात्रोः	धातृणाम्
सप्तमी	धातरि	धात्रोः	धातृषु
सम्बोधन	हे धातः	हे धातारौ	हे धातारः।

अब इसी तरह नप्तृ(नाती), नेष्टृ(ऋत्विक्) , त्वष्टृ (विश्वकर्मा), क्षत्तृ(क्षत्रिय), होतृ(होता) पोतृ (ऋत्विक् आदि), प्रशास्तृ(प्रशासक) शब्दों के रूप बनते हैं। निम्नलिखित शब्दों के रूप भी लगभग इसी तरह बनते हैं।

कतृ=कर्ता	गन्तृ=जाने वाला	जेतृ=जीतने वाला
क्रेतृ=खरीदने वाला	ज्ञातृ=जानने वाला	दातृ=देने वाला
पठितृ=पढ़ाने वाला	भर्तृ=स्वामी या पति	भोक्तृ=भोग करने वाला
रक्षितृ=रक्षा करने वाला	रचयितृ=रचना करने वाला	वक्तृ=बोलने वाला
सवितृ=सूर्य या प्रेरक	स्मर्तृ=स्मरण करने वाला	हन्तृ=मारने वाला

शङ्का- **अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम्** में तृन् और तृच् प्रत्ययान्त शब्दों में दीर्घ का विधान किया गया है और **नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षत्तृ, होतृ, पोतृ और प्रशास्तृ** शब्द भी तो तृन् या तृच् प्रत्यय होकर सिद्ध हुए हैं तो तृन्, तृच् के ग्रहण से नप्तृ आदि का भी ग्रहण हो जाता। अतः **अप्तृन्तृचः** से काम चल जाता। इतना लम्बा सूत्र क्यों बनाया गया?

समाधान- सिद्धे सति आरम्भ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति। सिद्ध होते हुए पुनः उसी कार्य के दूसरा सूत्र बनाना या अधिक कथन करना एक नियम बनाने के लिए होता है। उक्त स्थलों पर तृन्, तृच् प्रत्ययान्त मानकर दीर्घ स्वतः सिद्ध होते हुए भी पुनः नप्तृ आदि पढ़ना भी एक नियम बनाता है। वह यह कि **उणादिनिष्पन्नानां तृन्तृजन्तानां दीर्घश्चेद् नप्त्रादीनामेव**। अर्थात् उणादि प्रकरण में कहे गये तृन् और तृच् प्रत्ययान्त शब्दों के उपधा को यदि दीर्घ हो तो केवल नप्त्रादि (नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षत्तृ, होतृ और प्रशास्तृ) शब्दों को ही हो अन्यों को न हो। नप्त्रादि शब्द उणादिगण में सिद्ध हुए हैं। इस नियम के अनुसार नप्त्रादि शब्दों को छोड़कर उणादिगण में सिद्ध अन्य शब्दों में उपधा को दीर्घ नहीं

वैकल्पिकदीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

२१२. नृ च ६।४।६॥

अस्य नामि वा दीर्घः। नृणाम्, नृणाम्।

....

होगा। यह नियम **अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षतृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम्** से प्राप्त दीर्घ के लिए है, **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** के लिए नहीं है।

तेनेह न। पिता। पितरौ। पितरः। उक्त नियम के कारण उणादिगण में निष्पन्न तृच्-प्रत्ययान्त पितृ-शब्द में दीर्घ नहीं हुआ तो **पितरौ, पितरः, पितरम्, पितरौ** बन गये। यदि दीर्घ होता तो **पितारौ, पितारः, पितारम्, पितारौ** ऐसे अनिष्ट रूप बन जाते। सु के परे होने पर तो **ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च** से अनङ् आदेश होने के कारण शब्द नान्त बन गया है और **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** से दीर्घ होकर सकार और नकार का लोप होकर के **पिता** सिद्ध होता है। शेष रूप धातृ के समान होते हैं।

ऋकारान्त पुँल्लिङ्ग पितृ-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पिता	पितरौ	पितरः
द्वितीया	पितरम्	पितरौ	पितॄन्
तृतीया	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
चतुर्थी	पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
पञ्चमी	पितुः	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
षष्ठी	पितुः	पित्रोः	पितॄणाम्
सप्तमी	पितरि	पित्रोः	पितृषु
सम्बोधन	हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः।

इसी तरह जामातृ(दामाद) भ्रातृ(भाई) शब्दों के रूप बनते हैं। जैसे **जामाता, जामातरौ, जामातरः, जामातरम्, जामातरौ, जामातॄन्, जामात्रा, जामातृभ्याम्** आदि। इसी तरह **भ्राता, भ्रातरौ, भ्रातरः, भ्रातरम्, भ्रातरौ, भ्रातॄन्, भ्रात्रा, भातृभ्याम्** इत्यादि।

ना। मनुष्य। ऋकारान्त नृ से सु, गुण प्राप्त, उसे बाधकर अनङ् आदेश करके **न्+अन्+स्** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **नन्+स्** बना। **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** से उपधा दीर्घ होकर **नान्+स्** बना। सकार और नकार का लोप करने **ना** सिद्ध हो जाता है।

नरौ। नृ+औ में **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः** से ऋकार को गुण करके अर् आदेश होकर **नर्+औ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **नरौ** सिद्ध हुआ। इसी तरह जस्, अम्, औट् में क्रमशः **नरः, नरम्, नरौ** बनाइये।

नॄन्। नृ+शस्, नृ+अस्, पूर्वसवर्ण दीर्घ **नॄस्,** नत्व करके **नॄन्** सिद्ध हुआ।

न्रा। नृ+टा, नृ+आ, **इको यणचि** से यण्, **न्+र्+आ,** वर्णसम्मेलन, **न्रा।**

नृ+भ्याम्=नृभ्याम्। नृ+भिस्=नृभिः। नृ+भ्यस्=नृभ्यः। नृ+सुप्=नृषु।

न्रे। नृ+ङे, नृ+ए, यण्, न्+र्+ए= **न्रे।**

नुः। नृ से ङसि, ङस्, नृ+अस्, **ऋत उत्,** न्+उर्+स्, सलोप, रेफ का विसर्ग।

न्रोः। नृ+ओस्, यण्, **न्+र्+ओस्=न्रोस्, न्रोः।**

णिद्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्

२१३. गोतो णित् ७।१।९०॥

ओकाराद्विहितं सर्वनामस्थानं णिद्वत्। गौः। गावौ। गावः।

....

२१२- **नृ च।** नृ लुप्तषष्ठीकं पदं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **छन्दस्युभयथा** से **उभयथा, ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से **दीर्घः** और **नामि** से **नामि** की अनुवृत्ति आती है।

नाम् के परे होने पर नृ शब्द को विकल्प से दीर्घ होता है।

छन्दस्युभयथा से आए हुए **उभयथा** का अर्थ है- दोनों हो अर्थात् दीर्घ भी और न भी। इस तरह विकल्प सिद्ध होता है।

नृणाम्, नृणाम्। नृ से आम्, नुट् करके **नृ+नाम्** बना। **नामि** से नित्य से दीर्घ प्राप्त था, उसे बाधकर के **नृ च** से वैकल्पिक दीर्घ हुआ और **ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्** से णत्व करके **नृणाम्** सिद्ध हुआ। दीर्घ न होने के पक्ष में **नृणाम्** ही रह गया।

नरि। नृ+ङि, नृ+इ, **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः** से गुण करके न्+अर्+इ=**नरि।**

सम्बोधन में भी गुण होकर न्+अर्+स्=नर्+स्, सकार का लोप, रेफ का विसर्ग करके हे का पूर्वप्रयोग करने पर **हे नः** सिद्ध हुआ। **हे नरौ। हे नरः।** ये रूप मनुष्यवाचक ऋकारान्त नृ-शब्द के थे। मनुष्यवाचक ही अकारान्त नर-शब्द भी है। उसके रूप अकारान्त होने के कारण रामशब्द की तरह होते हैं।

ऋकारान्त पुँल्लिङ्ग नृ-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ना	नरौ	नरः
द्वितीया	नरम्	नरौ	नॄन्
तृतीया	न्रा	नृभ्याम्	नृभिः
चतुर्थी	न्रे	नृभ्याम्	नृभ्यः
पञ्चमी	नुः	नृभ्याम्	नृभ्यः
षष्ठी	नुः	न्रोः	नृणाम्, नृणाम्
सप्तमी	नरि	न्रोः	नृषु
सम्बोधन	हे नः	हे नरौ	हे नरः।

ऋकारान्त शब्दों के कथन के बाद लृकारान्त, एकारान्त शब्द ज्यादा प्रसिद्ध नहीं हैं। अतः उनका कथन न करके कौमुदीकार ओकारान्त शब्द शुरु कर रहे हैं।

२१३- **गोतो णित्।** गोतः पञ्चम्यन्तं, णित् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इतोऽत् सर्वनामस्थाने** से विभक्तिपरिणाम करके **सर्वनामस्थानम्** की अनुवृत्ति आती है।

ओकारान्त शब्द से विधान किये गये सर्वनामस्थानसंज्ञक प्रत्यय को णिद्वद्भाव होता है।

इस सूत्र के सम्बन्ध में भाष्य में दो वार्तिक पढ़े गये हैं- **ओतो णिदिति वक्तव्यम्** और **विहितविशेषणञ्च।** इसका मतलब यह है कि **गोतो णित्** की जगह **ओतो णित्** पढ़ना चाहिए और **विहितम्** इतना विशेषण पद और जोड़ना चाहिए। जिससे गो-शब्द

आकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२१४. औतोऽम्शसोः ६।१।९३॥

ओतोऽम्शसोरचि आकार एकादेशः।

गाम्, गावौ, गाः, गवा, गवे। गोः। इत्यादि।

....

के अतिरिक्त **सुद्यो** आदि शब्दों में भी णिद्वद्भाव हो सके। **विहितम्** पढ़ने से यह लाभ होगा कि ओकारान्त से विधान किये गये सर्वनामस्थान को णिद्वद्भाव हो या अन्य को नहीं। प्रत्यय के विधानकाल में प्रकृति ओकारान्त नहीं थी किन्तु बाद में गुण आदि होकर जैसे- **हे भानो+स्** आदि में ओकारान्त बन गई है, उस अवस्था में **ओकारान्त से परे** ऐसा अर्थ होगा तो णिद्वद्भाव होकर वृद्धि हो जायेगी, जिससे **हे भानौः** ऐसा अनिष्ट होने लगेगा। यदि **ओकारान्त से विहित** ऐसा अर्थ होगा तो जो शब्द प्रकृति अवस्था में ओकारान्त होगा, उससे परे का णिद्वद्भाव हो जायेगा, बाद में ओकारान्त बने हुए शब्दों से नहीं। णिद्वद्भाव का फल है **अचो ञ्णिति** से णित् को मानकर होने वाली वृद्धि।

गौः। बैल। ओकारान्त गो शब्द से सु, गो+स्, **गोतो णित्** से स् को णिद्वद्भाव करके णित् माना गया तो **अचो ञ्णिति** से ओकार की वृद्धि करके औकार हुआ, **गौ+स्** बना। सकार को रुत्व और विसर्ग करके **गौः** सिद्ध हुआ।

गावौ। गावः। गो+औ, णिद्वद्भाव, वृद्धि करके **गौ+औ** बना। **एचोऽयवायावः** से गौ के औकार के स्थान **आव्** आदेश होकर **ग्+आव्+औ**, वर्णसम्मेलन करके **गावौ** बना। इसी तरह **गावः** भी बनता है।

२१४- औतोऽम्शसोः। आ लुप्तप्रथमाकम्, ओतः पञ्चम्यन्तम्, अम्शसोः सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **इको यणचि** से **अचि** की अनुवृत्ति आती है और **एकः पूर्वपरयोः** का अधिकार है।

ओकार से अम् और शस् सम्बन्धी अच् के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर आकार एकादेश होता है।

गाम्। गो+अम्, णिद्वद्भाव होकर वृद्धि प्राप्त थी, उसे बाधकर **औतोऽम्शसोः** से गो के ओकार और अम् के अकार के स्थान पर **आकार** आदेश हुआ, **ग्+आ+म्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **गाम्** सिद्ध हुआ।

गाः। गो+शस्, अनुबन्धलोप, गो+अस्, पूर्वसवर्ण दीर्घ की प्राप्ति थी, उसे बाधकर **औतोऽम्शसोः** से गो के ओकार और अस् के अकार के स्थान पर **आकार** आदेश हुआ, **ग्+आ+स्** बना। वर्णसम्मेलन होकर सकार को रुत्व और विसर्ग **गाः** सिद्ध हुआ।

गवा। गो+टा, गो+आ, अवादेश, **गवा**। **गो+भ्याम्=गोभ्याम्**। **गो+भिः=गोभिः**।

गवे। गो+ङे, गो+ए, अवादेश, **गवे**। **गो+भ्यस्=गोभ्यः**।

गोः। गो+ङसि, गो+अस्, **ङसिङसोश्च** से पूर्वरूप, गो+स्, रुत्व और विसर्ग करके **गोः** बना। इसी तरह ङस् के परे होने पर भी होगा।

गवोः। गो+ओस्, ग्+अव्+ओस्=गवोस्, गवोः।

गवाम्। गो+आम्, ग्+अव्+आम्=गवाम्। **गवि**। गो+ङि, गो+इ, ग्+अव्+इ=गवि।

गोषु। गो+सुप्, गो+सु, गोषु।

आकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२१५. रायो हलि ७।२।८५॥

अस्याकारादेशो हलि विभक्तौ। राः। रायौ। रायः। राभ्यामित्यादि। ग्लौः। ग्लावौ। ग्लावः। ग्लौभ्यामित्यादि।

इत्यजन्तपुँल्लिङ्गाः॥५॥

....

ओकारान्त पुँल्लिङ्ग गो-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गौः	गावौ	गावः
द्वितीया	गाम्	गावौ	गाः
तृतीया	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
चतुर्थी	गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः
पञ्चमी	गोः	गोभ्याम्	गोभ्यः
षष्ठी	गोः	गवोः	गवाम्
सप्तमी	गवि	गोः	गोषु
सम्बोधन	हे गौः	हे गावौ	हे गावः

अब ऐकारान्त शब्दे रूप बता रहे हैं।

२१५- **रायो हलि**। रायः षष्ठ्यन्तं, हलि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अष्टन आ विभक्तौ** से आ और **विभक्तौ** की अनुवृत्ति आती है।

हलादि विभक्ति के परे होने पर रै शब्द के ऐकार के स्थान पर आकार आदेश होता है।

राः। धन। रै से सु आया और **रायो हलि** से ऐकार के स्थान पर आकार आदेश हुआ, रा+स् बना। रुत्वविसर्ग करके **राः** सिद्ध हुआ।

रायौ। **रायः**। अजादि विभक्ति के परे होने पर **एचोऽयवायावः** से आय् आदेश होकर र्+आय् बनता है और आगे अच् में मिलता है, जिससे **रायौ**, **रायः** आदि बनते हैं। हलादि विभक्ति के परे **रायो हलि** से आकारान्तादेश होकर **राभ्याम्**, **राभिः** आदि रूप बनते हैं।

ऐकारान्त पुँल्लिङ्ग रै-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	राः	रायौ	रायः
द्वितीया	रायम्	रायौ	रायः
तृतीया	राया	राभ्याम्	राभिः
चतुर्थी	राये	राभ्याम्	राभ्यः
पञ्चमी	रायः	राभ्याम्	राभ्यः
षष्ठी	रायः	रायोः	रायाम्
सप्तमी	रायि	रायोः	रासु
सम्बोधन	हे राः	हे रायौ	हे रायः

अब औकारान्त शब्द बता रहे हैं।

औकारान्त ग्लौशब्द चन्दमा का वाचक है। **ग्लौः**। चन्द्रमा। **ग्लौ+स्, ग्लौः**।

अजादिविभक्ति के परे रहने पर **एचोऽयवायावः** से आव् आदेश होकर **ग्लावौ, ग्लावः** आदि रूप सिद्ध होते हैं तो हलादिविभक्ति के परे कोई कार्य नहीं होते।

औकारान्त पुँल्लिङ्ग ग्लौ-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ग्लौः	ग्लावौ	ग्लावः
द्वितीया	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लावः
तृतीया	ग्लावा	ग्लौभ्याम्	ग्लौभिः
चतुर्थी	ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
पञ्चमी	ग्लावः	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
षष्ठी	ग्लावः	ग्लावोः	ग्लावाम्
सप्तमी	ग्लावि	ग्लावोः	ग्लौषु
सम्बोधन	हे ग्लौः	हे ग्लावौ	हे ग्लावः

अब आप परीक्षा के लिए जुट जायें। आपको उत्तीर्ण होने के लिए १०० में ७० अङ्क तो प्राप्त करने ही होंगे। ७० से ८० तक तृतीय-श्रेणी, ८० से ९० तक द्वितीय श्रेणी और ९० से १०० अङ्क तक प्रथम श्रेणी है। हमें आशा है कि आप प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने वाले प्रतिभावान् छात्र हैं।

जब आप मूल और टीका में बताये गये विषयों को अच्छी तरह समझ गये हैं तो स्वेच्छया परीक्षा देने के लिए तैयार हो जायें। सबसे पहले अपनी पूजनीय पुस्तक **लघुसिद्धान्तकौमुदी** को सुन्दर कपड़े से बाँधकर उसकी पूजा करें और दो दिन के लिए सुरक्षित रख दें। इसके बाद कम से कम पचास पृष्ठ की कापी लेकर आप बैठ जायें। प्रश्न लम्बे हैं, इस लिए पाँच घण्टे लगेंगे। अतः ढ़ाई-ढ़ाई घण्टे की दो पारियों में पूरा कर सकते हैं। जब अपना ही मूल्यांकन के लिए आप कटिबद्ध हैं तो न तो परीक्षा में नकल करनी है और न ही किसी से पूछना है। हाँ, तो आत्मानुशासन के साथ परीक्षा में उत्तीर्ण होना आपका लक्ष्य होना चाहिए।

निम्नलिखित प्रश्न पाँच-पाँच अङ्क के हैं। सभी प्रश्न अनिवार्य हैं।

परीक्षा

१. अजन्तपुँल्लिङ्ग शब्द से आप क्या समझते हैं?

२. प्रथमा, द्वितीया आदि विभक्तियों का विधान करने वाले सूत्र किस प्रकरण में बताये गये हैं?

३. सुप्-प्रत्ययों के कौन-कौन से वर्ण इत्संज्ञक हैं?

४. सुप्-प्रत्ययों में अजादि और हलादि प्रत्ययों का विभाजन करें। याद रहे कि अनुबन्ध के लोप हो जाने के बाद अजादि और हलादि गिने जाते हैं।

५. इस प्रकरण के दीर्घविधायक, ऐस्त्वविधायक, एत्वविधायक, णत्व और षत्वविधायक सूत्रों को उनके अध्याय-पाद सहित क्रमशः लिखें।

६. सर्वनामसंज्ञा का क्या फल है? उन सूत्रों के साथ बतायें।

७. ङित्-विभक्ति और उन्हें मानकर कार्य करने वाले सूत्र एवं चार प्रयोग भी लिखें।
८. घिसंज्ञा के द्वारा कौन-कौन से कार्य सिद्ध हो रहे हैं? पाँच उदाहरण भी दीजिए।
९. सर्वनामस्थानसंज्ञा का क्या फल है?
१०. आदेश किस अवस्था में सर्वादेश और किस अवस्था में अन्त्यादेश होते हैं?
११. उपधासंज्ञा का प्रयोजन कहाँ-कहाँ है?
१२. इकारान्त होते हुए भी पति-शब्द के कुछ रूप हरि-शब्द से भिन्न क्यों होते हैं?
१३. स्थानिवद्भाव किसे कहते हैं? लौकिक उदाहरण देकर समझाइये।
१४. राम, हरि, पति, भानु और धातृ शब्द के चतुर्थी-एकवचन के प्रयोगों को सिद्ध करें।
१५. राम, हरि, पति, भानु और धातृ शब्द के समान रूप चलने वाले अन्य शब्दों के तृतीया के एकवचन के रूप सिद्ध करिये।
१६. किन्हीं पाँच अकारान्त शब्दों की सातों विभक्तियों के रूप लिखिए।
१७. किन्हीं पाँच इकारान्त शब्दों की सातों विभक्तियों के रूप लिखिए।
१८. किन्हीं पाँच उकारान्त शब्दों की सातों विभक्तियों के रूप लिखिए।
१९. किन्हीं पाँच ऋकारान्त शब्दों की सातों विभक्तियों के रूप लिखिए।
२०. अजन्तपुँल्लिङ्ग के अध्ययन के बाद व्याकरण-शास्त्र के ज्ञान के विषय में आप कैसा अनुभव कर रहे हैं? एक पृष्ठ में लिखिए।

अब आपने इन प्रश्नों के उत्तर लिख दिए हों तो अपने गुरु जी को मूल्यांकन करने में कम से कम एक दिन का समय दीजिए और आप अपने सहपाठियों के साथ में इन्हीं प्रश्नों के विषय में संवाद करिये।

यहाँ आकर के एक बात और बताना चाहता हूँ कि पढ़ने से जितना ज्ञान होता है उससे भी ज्यादा ज्ञान पढ़ाने से होता है अर्थात् दस बार स्वयं पढ़ना और एक बार दूसरे को बताना बराबर होता है। अत: आप पढ़ते हुए भी आपसे छोटे या आपसे कम-ज्ञान वाले सहपाठियों को पढ़ाने में कदापि आलस्य न करें। आप कभी भी यह न सोचें कि दूसरे को बता देने से वह मुझसे ज्यादा जानकार निकल जायेगा। आप जितना दूसरों को जानकार बनायेंगे आप उससे कई गुणा ज्यादा जानकार बनेंगे। यह तो विद्या है, बाँटने से बढ़ती है और रखने से क्षीण होती है।

आप अपने गुरु जी का भी उतना ही सम्मान करते हैं न? जितना कि अपने माता-पिता का। यदि नहीं करते हैं तो आप पढ़कर भी कुछ नहीं हैं। केवल पुस्तक पढ़कर प्राप्त की गई विद्या अधूरी होती है। गुरु की कृपा के विना विद्या पूर्ण फलदायी नहीं होती है। इसका ध्यान अवश्य रखें।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का अजन्तपुँल्लिङ्गप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथाजन्तस्त्रीलिङ्गाः

रमा।

शीविधायकं विधिसूत्रम्

२१६. औङ आपः ७।१।१८॥

आबन्तादङ्गात्परस्यौङः शी स्यात्। औङित्यौकारविभक्तेः संज्ञा। रमे। रमाः

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अजन्तपुँल्लिङ्गप्रकरण के बाद **अजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरण** प्रारम्भ होता है। यहाँ भी प्रत्याहार के क्रम से ही शब्दों का विवेचन करेंगे किन्तु स्त्रीलिङ्ग में अकारान्तशब्द नहीं हैं, अतः आकारान्तशब्द से ही प्रारम्भ हैं। स्त्रीलिङ्गशब्द दो प्रकार के होते हैं। पहले तो जो शब्द पुँल्लिङ्ग में भी हैं और स्त्रीलिङ्ग के लिए टाप्, डाप्, ङीप्, ङीष्, ङीन् आदि प्रत्यय किये जाते हैं और कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं जिन्हें स्त्रीत्व के लिए कोई विशेष प्रत्यय नहीं होता अपितु स्वतः स्त्रीलिँङ्ग में होते हैं। स्त्रीप्रत्ययों का विवेचन **स्त्रीप्रत्ययाः** नामक प्रकरण में देखेंगे।

रमा। रमा शब्द की उत्पत्ति **रमु क्रीडायाम्** इस धातु से अच् प्रत्यय करके **रम** होकर **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् प्रत्यय करके हुई है। इसमें टाप् प्रत्यय करने के कारण यह शब्द आबन्त कहलाता है। टाप् में पकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और टकार की **चुटू** से इत्संज्ञा और दोनों का **तस्य लोपः** से लोप होता है, केवल आ ही बचता है। रम+आ में **अकः सवर्णे दीर्घः** से सवर्णदीर्घ होकर **रमा** बन जाता है। रमा का अर्थ है- **रमते विष्णुना साकम्** अर्थात् जो भगवान् विष्णु के साथ रमण करती है वह **लक्ष्मी।**

रमा शब्द से प्रथमा का एकवचन सु आया, उकार की इत्संज्ञा और लोप होने के बाद उस सकार की **अपृक्त एकाल् प्रत्ययः** से **अपृक्तसंज्ञा** हुई तो **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** इस सूत्र से लोप होकर **रमा** प्रयोग सिद्ध हुआ। यहाँ सु-विभक्ति का लोप होने पर भी विभक्ति के रहते हुए जो कार्य होते हैं, वे कार्य होते रहेंगे। **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्।** प्रत्यय के लोप होने पर भी प्रत्यय को मानकर जो जो भी कार्य होते हैं वे होते रहेंगे। जैसे प्रत्यय रूप विभक्ति, सुप् आदि को मानकर होने वाली **पदसंज्ञा** आदि। अतः यहाँ सु का सम्पूर्ण लोप हुआ तो भी **रमा** में पदसंज्ञा विद्यमान ही है।

२१६- औङ आपः। औङः षष्ठ्यन्तम्, आपः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **जसः शी** से **शी** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

आबन्त अङ्ग से परे औविभक्ति के स्थान पर शी आदेश होता है।

एकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२१७. सम्बुद्धौ च ७।३।१०६॥

आप एकारः स्यात्सम्बुद्धौ। एङ्ह्रस्वादिति सम्बुद्धिलोपः।

हे रमे। हे रमे। हे रमाः। रमाम्। रमे। रमाः।

एकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२१८. आङि चापः ७।३।१०५॥

आङि ओसि चाप एकारः। रमया। रमाभ्याम्। रमाभिः।

....

प्राचीन आचार्यों ने **औ** और **औट्** इन दो विभक्तियों को **औङ्** संज्ञा की है। अतः यहाँ औङ् से प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के द्विवचन का औ लिया जाता है। यह सूत्र केवल स्त्रीलिङ्ग में लगता है, क्योकि आबन्त अङ्ग स्त्रीलिङ्ग में ही मिलेगा। **औ** के स्थान पर जो शी आदेश किया गया, उसमें शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा होकर **तस्य लोपः** से लोप हो जाता है। यहाँ पर **औ** तो प्रत्यय है किन्तु उसके स्थान पर आदेश होने वाला **शी** आदेश प्रत्यय नहीं है। अतः शी में **स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ** से स्थानिवद्भाव होकर प्रत्ययत्व आ जाता है। अतः **लशक्वतद्धिते** यह सूत्र घटित हुआ।

रमे। रमा से प्रथमा का द्विवचन औ आया। रमा+औ में सवर्णदीर्घ और पूर्वसवर्णदीर्घ की प्राप्ति थी, उन्हें बाधकर सूत्र लगा- **औङ आपः**। आबन्त अङ्ग है रमा और उससे परे औ के स्थान पर शी आदेश हुआ। शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा हुई और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। **रमा+इ** बना, **आद्गुणः** से गुण होकर **रमे** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार द्वितीया के द्विवचन में भी **रमे** ही बनेगा।

रमाः। प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में क्रमशः जस् और शस् प्रत्यय आये और अनुबन्धलोप होने के बाद केवल अस् ही बचा। रमा+अस् में पूर्वसवर्णदीर्घ होकर रमास् बना। सकार का रुत्वविसर्ग होकर **रमाः** सिद्ध हुआ।

२१७- **सम्बुद्धौ च**। सम्बुद्धौ सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **आङि चापः** से **आपः** की तथा **बहुवचने झल्येत्** से **एत्** की अनुवृत्ति आती है।

आबन्त अङ्ग को एकार आदेश होता है सम्बुद्धि के परे रहने पर।

सम्बुद्धि के परे रहने पर आकार के स्थान पर एकार आदेश हो जाता है।

हे रमे। रमा से सम्बोधन में प्रथमा का एकवचन सु आया, अनुबन्धलोप हुआ। **एकवचनं सम्बुद्धिः** से सम्बुद्धिसंज्ञा हुई और **सम्बुद्धौ च** से आकार के स्थान पर एकार आदेश हुआ- **रमे स्** बना। सकार का **एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः** से लोप हुआ और **हे** का पूर्वप्रयोग हुआ- **हे रमे!**

हे रमे! हे रमाः! में केवल **हे** का पूर्वप्रयोग मात्र करना है, बाकी प्रथमा विभक्ति के समान ही है।

रमाम्। द्वितीया के एकवचन में रमा से अम् विभक्ति आई। रमा+अम् में **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर **रमाम्** सिद्ध हुआ।

याडागमविधायकं विधिसूत्रम्

२१९. याडापः ७।३।११३॥

आपो ङितो याट्। वृद्धिः। रमायै। रमाभ्याम्। रमाभ्यः। रमायाः। रमयोः। रमाणाम्। रमायाम्। रमासु। एवं दुर्गाम्बिकादयः।

....

रमाः। द्वितीया के बहुवचन में स्त्रीलिङ्ग होने के कारण **तस्माच्छसो नः पुंसि** से नत्व नहीं हुआ। प्रथमा के बहुवचन की तरह **रमाः** बन गया।

२१८- आङि चापः। आङि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदम्, आपः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ओसि च** से **ओसि** की और **बहुवचने झल्येत्** से **एत्** की अनुवृत्ति आती है तथा **अङ्गस्य** इस सूत्र का अधिकार तो है ही।

आङ् और ओस् के परे रहने पर आबन्त अङ्ग को एकार आदेश होता है।

यहाँ पर **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से आबन्त अङ्ग के अन्त्यवर्ण आकार के स्थान पर ही एकार-आदेश होगा। इस सूत्र में आङ् से तृतीया-विभक्ति के एकवचन का टा ही गृहीत है। टा में टकार की **चुटू** से इत्संज्ञा होने पर आ बचता है, वह **आङ्** कहलाता है, क्योंकि प्राचीन आचार्यों ने टा की **आङ्संज्ञा** की है।

रमया। रमा-शब्द से तृतीया का एकवचन टा आया, अनुबन्धलोप हुआ। **रमा+आ** में सवर्णदीर्घ की प्राप्ति थी, उसे बाधकर सूत्र लगा- **आङि चापः**। आबन्त अङ्ग रमा है और आङ् परे है- आ, तो रमा के आकार के स्थान पर एकार आदेश हुआ- **रमे+आ** बना। एकार के स्थान पर **एचोऽयवायावः** से अय् आदेश हुआ- **रम्+अय्+आ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **रमया** सिद्ध हुआ।

रमाभ्याम्। तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में भ्याम् आया और रमा से जुड़ गया- **रमाभ्याम्**। यहाँ पर अदन्त अर्थात् ह्रस्व-अकारान्त न होने के कारण **सुपि च** से दीर्घ नहीं हुआ।

रमाभिः। तृतीया के बहुवचन में भिस् आया और सकार का रुत्वविसर्ग होकर **रमाभिः** बन गया। यहाँ पर अदन्त अर्थात् ह्रस्व अकारान्त न होने के कारण **अतो भिस ऐस्** से ऐस् आदेश और **बहुवचने झल्येत्** से एत्व भी नहीं हुआ।

२१९- याडापः। याट् प्रथमान्तम्, आपः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **घेर्ङिति** से ङिति इस सप्तमी को षष्ठी विभक्ति में बदलकर **ङितः** बनाकर अनुवृत्ति लाई जाती है।

आबन्त अङ्ग से परे ङित् विभक्ति को याट् का आगम होता है।

यह आगम है, अतः किसी भी वर्ण को हटाकर के नहीं होता। आदेश हमेशा किसी के स्थान पर होगा और आगम किसी वर्ण के बगल में आकर बैठेगा। इस सूत्र से विभक्ति को याट् आगम का विधान हुआ है तो टित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से उसके आगे ही बैठेगा। याट् में टकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है और लोप हो जाता है। एक बात और स्मरण रहे ही कि ङित्-विभक्ति ङे, ङसि, ङस् और ङि ये चार हैं। इन्हीं चार प्रत्ययों के परे रहने पर यह सूत्र लग सकता है।

रमायै। चतुर्थी के एकवचन में रमा-शब्द से ङे आया। ङकार का **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। **रमा+ए** में **वृद्धिरेचि** से वृद्धि प्राप्त थी, उसे बाधकर सूत्र लगा- **याडापः।** आबन्त अङ्ग है रमा, उससे ङिद्विभक्ति परे ङे का ए, अतः याट् का आगम हुआ, टकार की इत्संज्ञा हुई और लोप हुआ। टित् होने के कारण ए के आदि में बैठ गया- **रमा+या+ए** बना। **रमाया+ए** में **वृद्धिरेचि** से वृद्धि हुई- **रमायै** सिद्ध हुआ।

रमाभ्यः। चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन मे भ्यस् आता है और सकार का रुत्व-विसर्ग होकर **रमाभ्यः** सिद्ध हो जाता है। अदन्त न होने के कारण **बहुवचने झल्येत्** से एत्व नहीं होता है।

रमायाः। पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में क्रमशः ङसि और ङस् प्रत्यय हुए और अनुबन्धलोप होने के बाद केवल अस् ही बचा। रमा+अस् में **याडापः** से याट् का आगम होकर **रमा+या+अस्** बना। या+अस् में **अकः सवर्णे दीर्घः** से सवर्णदीर्घ होकर रमायास् बना। सकार का रुत्व-विसर्ग हुआ- **रमायाः।**

रमयोः। षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में ओस् आया। **रमा+ओस्** में **आङि चापः** से आकार के स्थान पर एकार-आदेश होकर **रमे+ओस्** बना। एकार के स्थान पर **एचोऽयवायावः** से अय् आदेश होकर **रम्+अय्+ओस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **रमयोस्** बना। सकार का रुत्व और विसर्ग हुआ- **रमयोः** सिद्ध हुआ।

रमाणाम्। षष्ठी के बहुवचन में आम् आया। **रमा+आम्** में आबन्त मानकर **ह्रस्वनद्यापो नुट्** से नुट् का आगम हुआ- **रमा+न्+आम्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ, **रमानाम्** बना। दीर्घ होते हुए भी **नामि** से पुनः दीर्घ हुआ। क्योंकि जब सूत्र से प्राप्त है तो आवश्यकता न होते हुए भी कार्य तो होगा ही। नकार का **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व हुआ- **रमाणाम्** सिद्ध हुआ।

रमायाम्। सप्तमी के एकवचन में ङि आया, अनुबन्धलोप हुआ। रमा+इ में **याडापः** से याट् आगम होकर **रमा+या+इ** बना। **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** से ङि के इकार के स्थान पर आम् आदेश हुआ- **रमा+या+आम्** बना। **या+आम्** में सवर्णदीर्घ हुआ- **रमायाम्।**

रमासु। सप्तमी के बहुवचन में सुप् आया और पकार का लोप हुआ। **रमासु।** यहाँ पर इण् न होने के कारण **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व नहीं हुआ।

इस प्रकार से आबन्त अर्थात् आकारान्त स्त्रीलिङ्ग रमाशब्द के सातों विभक्तियों में रूप सिद्ध हुए। अब इनकी रूपमाला भी देखिए।

आबन्तस्त्रीलिङ्ग रमा-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	रमा	रमे	रमाः
द्वितीया	रमाम्	रमे	रमाः
तृतीया	रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः
चतुर्थी	रमायै	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
पञ्चमी	रमायाः	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
षष्ठी	रमायाः	रमयोः	रमाणाम्
सप्तमी	रमायाम्	रमयोः	रमासु
सम्बोधन	हे रमे!	हे रमे!	हे रमाः!

अब इसी प्रकार निम्नलिखित शब्दों के भी रूप बनाइये।

अचला=पृथ्वी	अजा=बकरी	अमावस्या=एक तिथि
अयोध्या=एक नगरी	अर्चा=पूजा	अवस्था=दशा
अहिंसा=हिंसा न होना	आकाङ्क्षा=इच्छा	आज्ञा=आदेश
आशा=आशा	इच्छा=चाह	उपमा=सादृश्य
उमा=पार्वती	अम्बिका-लक्ष्मी	कथा=कहानी
कन्या=कुँवारी	कला=कला	कल्पना=रचना
कृपा=दया	क्षमा=क्षमा	क्षुधा=भूख
गङ्गा=एक पवित्र नदी	गवेषणा=खोज	गोशाला=गाय का स्थान
ग्रीवा=गर्दन	घोषणा=ढिंढोरा	चन्द्रिका=चाँद
चिकित्सा=रोगोपचार	चिन्ता=चिन्ता	चेतना=समझ, ज्ञान
जनता=जनसमूह	जाया=पत्नी	जिज्ञासा=जानने की इच्छा
तनया=पुत्री	तन्द्रा=ऊँघना	तुला=तराजू
त्वरा=शीघ्रता	दया=दया	दक्षिणा=दान विशेष
देवता=देवता	धरा=पृथ्वी	धारणा=विचार
निशा=रात्री	नौका=किश्ती	परीक्षा=परीक्षा
पाठशाला=विद्यालय	पिपासा=पीने की इच्छा	पीड़ा=दु:ख
प्रतिज्ञा=प्रण	प्रतिभा=विशेष बुद्धि	प्रतिमा=मूर्ति
प्रतिष्ठा=स्थापना, इज्जत	बाधा=रुकावट	भाषा=बोली
माया=छल	माला=माला	यात्रा=यात्रा
रचना=बनाना	राधा=राधा	रेखा=लकीर
वनिता=स्त्री	वसुधा=पृथ्वी	वामा=सुन्दरी
विद्या=विद्या	व्यथा=दु:ख	शर्करा=शक्कर
शाखा=टहनी	शारदा=सरस्वती	शिक्षा=उपदेश
शिला=पत्थर	शोभा=चमक	सङ्ख्या=सङ्ख्या
संज्ञा=नाम	सभा=सभा	सुता=लड़की
सुधा=अमृत	सुरा=शराब	सेना=सेना
सेवा=सेवा	स्पर्धा=प्रतियोगिता	स्पृहा=इच्छा
स्वतन्त्रता=स्वाधीनता	हरिद्रा=हल्दी	होरा=एक घण्टा

इन रूपों में यह जरूर ध्यान देना कि षष्ठी के बहुवचन में कहाँ कहाँ णत्व होता है और कहाँ कहाँ नहीं? रेफ और मूर्धन्य षकार से परे नकार को णत्व होता है यदि उनके बीच में कोई वर्ण व्यवधान के रूप में हो तो अट्, कवर्ग और पवर्ग वाले वर्ण हो तभी अन्य वर्णों के व्यवधान में नहीं। यहाँ पर आप **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** का स्मरण करें।

जिन शब्दों की सर्वनामसंज्ञा होती है, ऐसे शब्दों में रमाशब्द की अपेक्षा क्या विशेषता है? रमाशब्द और स्त्रीलिङ्गी सर्वनामसंज्ञक शब्दों में एक ही भिन्नता यह है कि ङित् विभक्ति के परे रहने पर जहाँ रमा शब्द जैसे आकारान्त स्त्रीलिङ्गी शब्दों में **याडापः** से याट् का आगम होता है और सर्वनामसंज्ञक शब्दों में **सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च** से स्याट् का आगम और आप् अर्थात् आकार को ह्रस्व भी हो जाता है। बस, इतना ही अन्तर है।

स्याडागम-ह्रस्व-विधायकं सूत्रम्

२२०. सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च ७।३।११४॥

अबन्तात्सर्वनाम्नो ङितः स्याट् स्यादापश्च ह्रस्वः।सर्वस्यै। सर्वस्याः। सर्वासाम्। सर्वस्याम्। शेषं रमावत्। एवं विश्वादय आबन्ताः।

....

२२०- **सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च।** सर्वनाम्नः पञ्चम्यन्तं, स्याट् प्रथमान्तं, ह्रस्वः प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **याडापः** से **आपः**, **घेर्ङिति** से **ङिति** ये दो पद आते हैं।

सर्वनामसंज्ञक आबन्त शब्द से परे ङित् विभक्ति को स्याट् का आगम होता है।

स्याट्+ह्रस्वः में **झयो होऽन्यतरस्याम्** से पूर्वसवर्ण ढकार आदेश हुआ है।

सर्वस्यै। सर्वा+ङे, सर्वा+ए, सर्व+स्या+ए, स्या+ए में वृद्धि, सर्वस्यै।

सर्वस्याः। सर्वा+ङसि, सर्वा+अस् सर्व+स्या+अस्, स्या+अस् में सवर्णदीर्घ- सर्वस्यास्, सकार का रुत्व और विसर्ग- **सर्वस्याः।**

सर्वासाम्। सर्वा+आम्, सुट्, सर्वा+स्+आम्, वर्णसम्मेलन, **सर्वासाम्।**

सर्वस्याम्। सर्वा+ङि, सर्वा+इ, सर्व+स्या+इ, इकार के स्थान पर **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** से आम्, सर्व+स्या+आम्, स्या+आम् में सवर्णदीर्घ- **सर्वस्याम्।**

सर्वशब्द के स्त्रीलिङ्ग में जो सर्वाशब्द है उसके रूप नीचे दिये जा रहे हैं।

आबन्तस्त्रीलिङ्ग सर्वा-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
द्वितीया	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
तृतीया	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
चतुर्थी	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
षष्ठी	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
सप्तमी	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु
सम्बोधन	हे सर्वे	हे सर्वे	हे सर्वाः।

अब इसी प्रकार विश्व का स्त्रीलिङ्ग में विश्वा, कतर का कतरा, कतम का कतमा आदि शब्दों के रूप भी होंगे। विश्वा, विश्वे विश्वाः। कतरा, कतरे, कतराः, कतरस्यै, कतरस्याः, कतरस्याम्, एवं कतमा, कतमे, कतमाः, कतमस्यै, कतमस्याः, कतमस्याम् आदि। सर्वा के रूप एवं प्रयोगसिद्धि तैयार हो जाने पर इसके रूप बनाने में कोई कठिनाई नहीं है। सर्वादिगण के अन्य शब्द जैसे- अन्य से अन्या, अन्यतर से अन्यतरा, इतर से इतरा, नेम से नेमा, सम का समा, सिम का सिमा, पूर्वा, परा, अवरा, दक्षिणा, उत्तरा, अपरा, अधरा, स्वा, अन्तरा, एका के रूप भी बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

वैकल्पिकसर्वनामसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

२२१. विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ १।१।२८॥

सर्वनामता वा। उत्तरपूर्वस्यै, उत्तरपूर्वायै।

तीयस्येति वा सर्वनामसंज्ञा। द्वितीयस्यै, द्वितीयायै। एवं तृतीया।

अम्बार्थेति ह्रस्वः। हे अम्ब। हे अक्क। हे अल्ला।

जरा। जरसौ इत्यादि। पक्षे रमावत्। गोपाः विश्वपावत्। मतीः। मत्या।

....

२२१- विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ। दिशां समासः- दिक्समासः, तस्मिन् दिक्समासे, षष्ठीतत्पुरुषः। विभाषा प्रथमान्तं, दिक्समासे सप्तम्यन्तं, बहुव्रीहौ सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **सर्वादीनि सर्वनामानि** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है। दिक्समासे बहुव्रीहौ सर्वादीनि सर्वनामानि विभाष स्युः।

दिशावाचकशब्दों के बहुव्रीहि समास में सर्वादि की विकल्प से सर्वनामसंज्ञा होती है।

दिङ्नामान्यन्तराले से दिशावाचक शब्दों का बहुव्रीहिसमास होता है। उनमें **सर्वादीनि सर्वनामानि** से नित्य से सर्वनामसंज्ञा प्राप्त थी तो इससे वैकल्पिक हो गई। दिशा वाचक दिक्-शब्द स्त्रीलिङ्गी है। इसलिए उसके विशेषण पूर्वा आदि शब्द भी स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त किये जाते हैं। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर इन चार दिशाओं का अन्तराल अर्थात् बीच का भाग उपदिशा कहलाता है। जैसे- पूर्वा और दक्षिण दिशा का अन्तराल दक्षिणपूर्वा, दक्षिण और पश्चिम का अन्तराल दक्षिणपश्चिमा, पश्चिम और उत्तर का भाग पश्चिमोत्तरा और उत्तर और पूर्व का भाग उत्तरपूर्वा।

उत्तरपूर्वा। उत्तरस्याश्च पूर्वस्याश्च दिशोर्यदन्तरालं सा दिक् उत्तरपूर्वा। यहाँ पर बहुव्रीहि समास हुआ है। अब उत्तरपूर्वा शब्द की **सर्वादीनि सर्वनामानि** से नित्य से प्राप्त सर्वनामसंज्ञा **विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ** से विकल्प से हो गई किन्तु सर्वनामसंज्ञा को आधार मानकर होने वाले कार्य **सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च** से स्याट् आगम और ह्रस्व ङिद्विभक्ति में ही होते हैं, अतः वैकल्पिक सर्वनामसंज्ञा का फल भी ङिद्विभक्ति में मिलेगा। जैसे सर्वनामसंज्ञा होने के पक्ष में स्याट् आगम और ह्रस्व होकर **उत्तरपूर्वस्यै, उत्तरपूर्वस्याः, उत्तरपूर्वस्याम्** और सर्वनामसंज्ञा न होने के पक्ष में **रमायै** की तरह **उत्तरपूर्वायै, उत्तरपूर्वायाः, उत्तरपूर्वायाम्** आदि। शेष सर्वा-शब्द की तरह **उत्तरपूर्वा, उत्तरपूर्वे, उत्तरपूवाः** आदि बन जायेंगे।

तीयस्येति वा सर्वनामसंज्ञा। अजन्तपुँल्लिङ्ग में **तीयस्य ङित्सु वा** यह वार्तिक पहले पढ़ा जा चुका है। वह ङिद्विभक्ति के परे होने पर तीयप्रत्ययान्त शब्दों की सर्वनामसंज्ञा विकल्प से करता है। **द्वितीया** एवं **तृतीया** शब्द तीयप्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग हैं। इनसे **ङिद्विभक्ति** के परे सर्वनामसंज्ञा होने के पक्ष में **द्वितीयस्यै, द्वितीयस्याः, द्वितीयस्याम्** एवं **तृतीयस्यै, तृतीयस्याः, तृतीयस्याम्** और सर्वनामसंज्ञा न होने के पक्ष में रमा-शब्द की तरह **द्वितीयायै, द्वितीयायाः, द्वितीयायाम्** एवं **तृतीयायै, तृतीयायाः, तृतीयायाम्** रूप बनेंगे। ङिद्विभक्ति न होने पर तो सर्वनामसंज्ञा प्राप्त ही नहीं है, अतः शेष रूप रमा की तरह ही बनेंगे।

द्वितीया के सारे रूप नीचे दिये जा रहे हैं, उसी तरह तृतीया के भी होते हैं।

आबन्तस्त्रीलिङ्ग तीयप्रत्ययान्त द्वितीया-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	द्वितीया	द्वितीये	द्वितीयाः
द्वितीया	द्वितीयाम्	द्वितीये	द्वितीयाः
तृतीया	द्वितीयया	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभिः
चतुर्थी	द्वितीयस्यै, द्वितीयायै	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभ्यः
पञ्चमी	द्वितीयस्याः, द्वितीयायाः	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभ्यः
षष्ठी	द्वितीयस्याः, द्वितीयायाः	द्वितीययोः	द्वितीयानाम्
सप्तमी	द्वितीयस्याम्, द्वितीयायाम्,	द्वितीययोः	द्वितीयासु
सम्बोधन	हे द्वितीये	हे द्वितीये	हे द्वितीयाः

अम्बा, अक्का और **अल्ला** इन तीन शब्दों का अर्थ **माता** है। आबन्त होने के कारण इसके रूप रमा की तरह होते हैं किन्तु अम्बार्थक होने के कारण केवल सम्बोधन में **अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः** से ह्रस्व होकर **हे अम्ब!, हे अक्क!, हे अल्ल!** ये रूप भिन्न होते हैं।

जरा। जरसौ इत्यादि। पक्षे रमावत्। स्त्रीलिङ्ग में विशुद्ध जरा-शब्द मिलता है, अतः **जराया जरसन्यतरस्याम्** की प्रवृत्ति में कोई व्यवधान नहीं है। अतः अजादिविभक्ति के परे होने पर जरस् आदेश सीधे होता है। जरस् आदेश होने के पक्ष में वर्णसम्मेलन करके निर्जरस् की तरह तथा जरस् आदेश न होने के पक्ष में और हलादि विभक्ति के परे होने पर रमा की तरह रूप बनते हैं।

आबन्तस्त्रीलिङ्ग जरा-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	जरा	जरसौ, जरे	जरसः, जराः
द्वितीया	जरसम्, जराम्	जरसौ, जरे	जरसः, जराः
तृतीया	जरसा, जरया	जराभ्याम्	जराभिः
चतुर्थी	जरसे, जरायै	जराभ्याम्	जराभ्यः
पञ्चमी	जरसः, जरायाः	जराभ्याम्	जराभ्यः
षष्ठी	जरसः, जरायाः	जरसोः, जरयोः	जरसाम् जराणाम्
सप्तमी	जरसि, जरायाम्	जरसोः, जरयोः	जरासु
सम्बोधन	हे जरे!	हे जरसौ, हे जरे	हे जरसः, हे जराः

गोपा विश्वपावत्। गां पाति (रक्षतीति) गोपाः। गौओं की रक्षा करने वाली स्त्री को **गोपा** कहते हैं। गोपा शब्द के रूप पुँल्लिङ्ग विश्वपा शब्द की तरह होते हैं क्योंकि विश्वपा शब्द में विश्व-पूर्वक पा-धातु था तो गोपा में **गो-पूर्वक पा-धातु** है। यह आबन्त नहीं है, अतः स्त्रीलिङ्गप्रयुक्त कोई कार्य नहीं हो रहा है। रूप निम्नलिखित हैं।

स्त्रीलिङ्ग- गोपा-शब्द के रूप

प्रथमा- गोपाः, गोपौ, गोपाः। **द्वितीया-** गोपाम्, गोपौ, गोपः,
तृतीया- गोपा, गोपाभ्याम्, गोपाभिः **चतुर्थी-** गोपे, गोपाभ्याम्, गोपाभ्यः
पञ्चमी- गोपः, गोपाभ्याम्, गोपाभ्यः **षष्ठी-** गोपः, गोपोः, गोपाम्
सप्तमी- गोपि, गोपोः, गोपासु **सम्बोधन-** हे गोपाः, हे गोपौ, हे गोपाः।

वैकल्पिकनदीसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

२२२. ङिति ह्रस्वश्च १।४।६।।

इयङुवङ्स्थानौ स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिङ्गावीदूतौ, ह्रस्वौ चेवर्णोवर्णौ स्त्रियां वा नदीसंज्ञौ स्तो ङिति। मत्यै, मतये। मत्या:२। मते:२।

....

यदि **गोपस्य स्त्री**, गोप की पत्नी, ऐसा विग्रह करके रूप सिद्ध करेंगे तो वहाँ पा धातु नहीं मिलेगा, अपितु अकारान्त **गोप-शब्द** से स्त्रीत्व प्रत्यय विधायक सूत्र **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से ङीष् प्रत्यय होकर **गोपी** बनेगा जिसके रूप **नदी-शब्द** के समान होते हैं।

इस तरह **आबन्त स्त्रीलिङ्ग** एवं धातु वाले आकार युक्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों का कथन किया गया। अब इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों का विवेचन कर रहे हैं।

मति:। बुद्धि। मन ज्ञाने धातु से क्तिन्-प्रत्यय होकर **मति** सिद्ध हुआ है। उससे सु, रुत्वविसर्ग करके **मति:** सिद्ध हुआ। **मति** के रूप द्वितीया के बहुवचन और तृतीया के एकवचन एवं ङिद्विभक्ति को छोड़कर अन्यत्र पुँल्लिङ्ग **हरि-शब्द** की तरह ही चलते हैं।

मती। मति+औ, पूर्वसवर्णदीर्घ। **मतय:**। मति+जस्, मति+अस्, **जसि च** से गुण, मते+अस्, अयादेश, मत्+अय्+अस्, वर्णसम्मेलन, मतयस्, रुत्वविसर्ग, **मतय:**।

द्वितीया के एकवचन में **मति+अम्**, पूर्वरूप, **मतिम्**। बहुवचन में **मति+शस्**, मति+अस्, पूर्वसवर्णदीर्घ, मतीस्, स्त्रीलिङ्ग में नत्व नहीं होता है, अत: सकार को रुत्व और विसर्ग होकर **मती:** सिद्ध हुआ।

तृतीया के एकवचन में **मति+आ**, यण्, **मत्या** बना। यहाँ पर घिसंज्ञा होते हुए भी **आङो नास्त्रियाम्** में **अस्त्रियाम्** से निषेध होने के कारण **ना** आदेश नहीं होता।

मति+भ्याम्=मतिभ्याम्। मति+भिस्=मतिभि:।

२२२- ङिति ह्रस्वश्च। ङिति सप्तम्यन्तं, ह्रस्व: प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **नेयङुवङ्स्थानावस्त्री** सूत्र से न पद को छोड़कर और **यू स्त्र्याख्यौ नदी** ये दोनों सूत्र पूरे का पूरे अनुवर्तन होते हैं।

स्त्रीशब्द को छोड़कर नित्य स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान, इयङ् और उवङ् के स्थानी दीर्घ ईकार और दीर्घ ऊकार तथा स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान ह्रस्व इकार और उकार भी विकल्प से नदीसंज्ञक होते हैं, ङित् विभक्ति के परे होने पर।

इस सूत्र का अर्थ थोड़ा टेड़ा है। अत: ध्यान देकर के समझें। स्त्रीलिङ्ग शब्द को दो भागों में विभाजित किया गया- एक नित्यस्त्रीलिङ्ग और दूसरा वर्तमान में स्त्रीलिङ्ग। पुन: दो भागों में विभाजित किया गया- **प्रथम** दीर्घ ईकार-उकार और दूसरा ह्रस्व इकार-उकार। ऐसे दीर्घ ईकार-ऊकार अन्त में होने वाले शब्द नित्यस्त्रीलिङ्ग हों, इनमें इयङ् और उवङ् आदेश होने की योग्यता हो किन्तु साक्षात् **स्त्री-शब्द** न हो। **द्वितीय** ह्रस्व इकार-उकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग हो। दोनों तरह के शब्दों से ङित् विभक्ति ङे, ङसि, ङस्, ङि के परे होने पर विकल्प से नदीसंज्ञा हो जाती है।

दीर्घ ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दों से **यू स्त्राख्यौ नदी** से नित्य से नदीसंज्ञा प्राप्त थी तथा ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त शब्दों से प्राप्त ही नहीं थी, ऐसे शब्दों से ङित्

ङेरामादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२२३. इदुद्भ्याम् ७।३।११७॥

इदुद्भ्यां नदीसंज्ञकाभ्यां परस्य ङेराम्। मत्याम्, मतौ।
शेषं हरिवत्। एवं बुद्ध्यादयः।

....

प्रत्ययों परे रहते विकल्प से नदीसंज्ञा करने के लिए इस सूत्र का आरम्भ है। यहाँ प्रसङ्ग मति शब्द का है। मति शब्द इकारान्त होने के कारण घिसंज्ञक है। नदीसंज्ञा घिसंज्ञा का बाधक है। अतः नदीसंज्ञा होने के पक्ष में नदीसंज्ञाश्रित कार्य और नदीसंज्ञा न होने के पक्ष घिसंज्ञक मानकर घिसंज्ञाश्रित कार्य होते हैं।

मत्यै, मतये। मति से चतुर्थी का एकवचन ङे, अनुबन्धलोप, मति+ए। घिसंज्ञा को बाधकर **ङिति ह्रस्वश्च** से वैकल्पिक नदीसंज्ञा हुई। नदीसंज्ञा होने से **आण्नद्याः** से आट् आगम हुआ, **मति+आ+ए** बना। **आ+ए** में **आटश्च** से वृद्धि हुई, **ऐ** हुआ, **मति+ऐ** बना। **इको यणचि** से यण् होकर **मत्+य्+ऐ** वर्णसम्मेलन होकर **मत्यै** सिद्ध हुआ। नदीसंज्ञा न होने के पक्ष नदीसंज्ञाश्रित कार्य नहीं होंगे। अतः घिसंज्ञक मानकर के **मति+ए** में इकार को **घेर्ङिति** से गुण होकर **मते+ए** बना। अय् आदेश होकर **मतये** सिद्ध हुआ।

मत्याः, मतेः। मति से पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में क्रमशः ङसि और ङस्, अनुबन्धलोप, मति+अस्। घिसंज्ञा को बाधकर **ङिति ह्रस्वश्च** से वैकल्पिक नदीसंज्ञा हुई। नदीसंज्ञा होने से **आण्नद्याः** से आट् आगम हुआ, **मति+आ+अस्** बना। **आ+अस्** में **आटश्च** से वृद्धि हुई, **आस्** हुआ, **मति+आस्** बना। **इको यणचि** से यण् होकर **मत्+य्+आस्** वर्णसम्मेलन होकर **मत्यास्,** सकार को रुत्वविसर्ग करके **मत्याः** सिद्ध हुआ। नदीसंज्ञा न होने के पक्ष नदीसंज्ञाश्रित कार्य नहीं होंगे। अतः घिसंज्ञक मानकर के **मति+अस्** में इकार को **घेर्ङिति** से गुण होकर **मते+अस्** बना। **ङसिङसोश्च** से पूर्वरूप होकर **मतेस्** बना। सकार को रुत्वविसर्ग करके **मतेः** सिद्ध हुआ।

मत्योः। मति+ओस्, यण्, रुत्वविसर्ग। **मतीनाम्,** मति+आम्, नुट्, दीर्घ।

२२३- **इदुद्भ्याम्।** इच्च उच्च इदुतौ, ताभ्याम् इदुद्भ्याम्, इतरेतरद्वन्द्वः। **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** नदी एकदेश का विभक्ति और वचन विपरिणाम करके **नदीभ्याम्** की तथा ङे और **आम्** की अनुवृत्ति आती है।

नदीसंज्ञक ह्रस्व इकार और उकार से परे ङि के स्थान पर आम् आदेश होता है।

उक्त सूत्र से इस सूत्र में **आप्** और **नी** की अनुवृत्ति नहीं आती क्योंकि इस सूत्र में ह्रस्व इकार और उकार पढ़े गये हैं। आप् और नी में ह्रस्व इकार और उकार का होना सम्भव नहीं है। इस सूत्र की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि मति-शब्द से सप्तमी के एकवचन में **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** से ङि को आम् आदेश तथा **औत्** से औकार आदेश एकसाथ प्राप्त थे। **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** के नियम से परकार्य **औत्** से औकार आदेश है। यदि औकार आदेश हो जाय तो सख्यौ की तरह **मत्यौ** ऐसा अनिष्ट रूप होने लगेगा। अतः इस सूत्र का आरम्भ करके कहा गया कि नदीसंज्ञक ह्रस्व इकार उकार से ङि के स्थान पर आम् ही हो।

मत्याम्, मतौ। मति से सप्तमी का एकवचन ङि, अनुबन्धलोप, मति+इ। घिसंज्ञा को बाधकर **ङिति ह्रस्वश्च** से वैकल्पिक नदीसंज्ञा हुई। नदीसंज्ञा होने से **इदुद्भ्याम्** से इ के स्थान पर आम् आदेश, **मति+आम्** बना। **आण्नद्याः** से आट् आगम हुआ, **मति+आ+आम्** बना। **आ+आम्** में **आटश्च** से वृद्धि हुई, **आम्** हुआ, **मति+आम्** बना। **इको यणचि** से यण् होकर **मत्+य्+आम्** वर्णसम्मेलन होकर **मत्याम्**, सिद्ध हुआ। नदीसंज्ञा न होने के पक्ष में नदीसंज्ञाश्रित कार्य नहीं होंगे। अतः घिसंज्ञक मानकर के **मति+इ** में इकार को **अच्च घेः** से अकार आदेश तथा प्रत्यय इकार के स्थान पर औकार आदेश होकर **मत+औ** बना। वृद्धि होकर **मतौ** सिद्ध हुआ।

शेष रूप हरि शब्द की तरह ही होते हैं।

ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिङ्ग मति-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मतिः	मती	मतयः
द्वितीया	मतिम्	मती	मतीः
तृतीया	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
चतुर्थी	मत्यै, मतये	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
पञ्चमी	मत्याः, मतेः	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
षष्ठी	मत्याः, मतेः	मत्योः	मतीनाम्
सप्तमी	मत्याम्, मतौ	मत्योः	मतिषु
सम्बोधन	हे मते!	हे मती!	हे मतयः

इसी तरह **बुद्धि** आदि शब्दों के रूप में जानने चाहिए। निम्नलिखित शब्दों के रूप भी मति की तरह ही होते हैं।

अङ्गुलि= अंगुली	अपकृति=अपकार	अवनि=पृथ्वी
आकृति=आकार	आवलि=पंक्ति	आवृत्ति=दुहराना
उक्ति=वचन	उन्नति=उन्नति	उपलब्धि=प्राप्ति
औषधि=दवा	कान्ति=सौन्दर्य	कीर्ति=यश
कृति=कार्य	कृषि=खेति	ख्याति=प्रसिद्धि
गति=चाल	ग्लानि=अवसाद	जाति=जाति
तिथि=तारीख	दृष्टि=नजर	द्युति=चमक
धृति=धैर्य	नियति=भाग्य	नीति=नीति
पङ्क्ति=कतार	प्रकृति=स्वभाव	प्रतिकृति=छाया, समान
प्रतिपत्ति=ज्ञान, प्राप्ति	प्रतीति=अनुभव	प्रत्यासत्ति=समीपता
प्रत्युक्ति=उत्तर	प्रशस्ति=प्रशंसा	प्रसुप्ति=निद्रा
प्रीति=प्रेम	बुद्धि=बुद्धि	भक्ति=श्रद्धा
भणिति=कथन	भीति=डर	भुक्ति=खाना
भूति=कल्याण	भूमि=पृथ्वी	भृति=मजदूरी
भ्रान्ति=भ्रम	मुक्ति=मोक्ष	मूर्ति=प्रतिमा
युक्ति=उपाय	युवति= जवान स्त्री	योनि=उत्पत्तिस्थान

तिसृ-चतस्रादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२२४. त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ ७।२।९९॥

स्त्रीलिङ्गयोरेतौ स्तो विभक्तौ।

रेफादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२२५. अचि र ऋतः ७।२।१००॥

तिसृ-चतसृ एतयोर्ऋकारस्य रेफादेशः स्यादचि। गुणदीर्घोत्वानामपवादः। तिस्रः। तिस्रः। तिसृभिः। तिसृभ्यः। तिसृभ्यः। आमि नुट्।

....

रजनि=रात्रि	रीति=तरीका	रुचि=रुचि
रूढि=प्रसिद्धि	लिपि=वर्णमाला	वसति=वास, घर
विकृति=विकार	विज्ञप्ति=प्रार्थना	विनति=नम्रता
विपत्ति= आपत्ति	विवृति=व्याख्या	विशुद्धि विशेष शुद्धि
विस्मृति=भूलना	वीचि=तरंग	वृत्ति=जीविका
वृष्टि=वर्षा	व्याकृति=व्याकरण	शक्ति=ताकत
शान्ति=शान्ति	श्रुति=वेद	सन्तति=सन्तान
सम्पत्ति=धन	संस्तुति=सिफारिश	सिद्धि=सिद्ध होना
सूक्ति=सुन्दर वचन	स्तुति=प्रार्थना	स्थिति=ठहरना
स्फूर्ति=फुर्ती	स्मृति=स्मरण	हानि=हानि

तीन संख्या वाचक त्रिशब्द और चार संख्या का वाचक चतुर्-शब्द है। ये केवल बहुवचनान्त हैं।

२२४- **त्रिचतुरोः तिसृचतसृ**। त्रिश्च, चतुश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः, त्रिचतुरौ, तयोः त्रिचतुरोः। तिसृ च चतसृ च तयोः समाहारद्वन्द्वः, तिसृचतसृ। त्रिचतुरोः षष्ठ्यन्तं, स्त्रियां सप्तम्यन्तं, तिसृचतसृ प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अष्टन आ विभक्तौ** से **विभक्तौ** की अनुवृत्ति आती है।

विभक्ति के परे होने पर स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान त्रि और चतुर् शब्द के स्थान पर क्रमशः तिसृ और चतसृ आदेश होता है।

चतुर्-शब्द हलन्त होने के कारण हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरण में सिद्ध होगा।

२२५- **अचि र ऋतः**। अचि सप्तम्यन्तं, रः प्रथमान्तम्, ऋतः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ** से विभक्तिविपरिणाम करके **तिसृचतस्रोः** की अनुवृत्ति आती है।

अच् परे हो तो तिसृ और चतसृ के ऋकार के स्थान पर रेफ आदेश होता है।

यह सूत्र **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः** का बाधक है।

तिस्रः, तिसृभिः, तिसृभ्यः। त्रि से प्रथमा का बहुवचन जस्, अनुबन्धलोप करके त्रि+अस् बना। **त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ** से त्रि के स्थान पर **तिसृ** आदेश हुआ। **तिसृ+अस्** बना। पूर्वसवर्णदीर्घ प्राप्त हुआ, उसे बाधकर **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः** से गुण प्राप्त था, उसे बाधकर **अचि र ऋतः** से **तिसृ** के ऋकार के स्थान पर **र्** आदेश हुआ,

दीर्घनिषेधकं विधिसूत्रम्

२२६. न तिसृचतसृ ६।४।४॥

एतयोर्नामि दीर्घो न। तिसृणाम्। तिसृषु।

द्वे। द्वे। द्वाभ्याम् द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वयोः। द्वयोः।

गौरी। गौर्य्यौ। गौर्य्यः। हे गौरि। गौर्य्यै इत्यादि। एवं नद्यादयः।

लक्ष्मीः। शेषं गौरीवत्। एवं तरीतन्त्र्यादयः। स्त्री। हे स्त्रि।

....

तिस्+र्+अस् बना। वर्णसम्मेलन होकर **तिस्रः** बना। शस् में केवल पूर्वसवर्णदीर्घ प्राप्त था, उसे बाधकर रेफादेश होकर **तिस्रः** ही बनता है। **भिस्, भ्यस्** में भी **तिसृ** आदेश करके सकार का रुत्व और विसर्ग करने पर **तिसृभिः** और **तिसृभ्यः** बन जाते हैं।

२२६- न तिसृचतसृ। तिसृश्च चतसृश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः, तिसृचतसृ, तयोः तिसृचतस्रोः। न अव्ययपदं, तिसृचतसृ लुप्तषष्ठीकं पदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **नामि** से **नामि, ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है।

नाम परे होने पर तिसृ और चतसृ को दीर्घ नहीं होता है।

तिसृणाम्। त्रि से षष्ठी का बहुवचन आम् आया। **त्रि+आम्** में **त्रेस्त्रयः** से त्रय आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर **त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ** से **तिसृ** आदेश हुआ, **तिसृ+आम्** बना। अब एक साथ **ह्रस्वनद्यापो नुट्** से नुट् आगम और **अचि र ऋतः** से **रेफादेश** आदेश प्राप्त हुआ तो **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** के नियम से परकार्य रेफादेश ही प्राप्त हुआ तो वार्तिक लगा- **नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन।** पूर्वविप्रतिषेध के नियम से प्राप्त नुम्, अच् के परे होने पर रेफादेश और तृज्वद्भाव के पहले नुट् होता है। यहाँ पर अच् के परे होने पर रेफ़ादेश प्राप्त है, अतः उससे पहले नुट् ही हुआ- **तिसृ+न्+आम्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **तिसृ+नाम्** बना। **नामि** से ऋकार को दीर्घ प्राप्त था तो **न तिसृचतसृ** से निषेध हो गया। **ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्** से णत्व होकर **तिसृणाम्** सिद्ध हुआ।

तिसृषु। तिसृ+सुप्, तिसृ+सु, षत्व होकर **तिसृषु** सिद्ध हुआ।

इस तरह त्रि शब्द के स्त्रीलिङ्ग में रूप बनते हैं- **तिस्रः, तिस्रः, तिसृभिः, तिसृभ्यः, तिसृभ्यः, तिसृणाम्, तिसृषु।** चतुर् के स्थान **चतसृ** आदेश होने के बाद वह भी अजन्त बन जाता है। उसके रूप **चतस्रः, चतस्रः, चतसृभिः, चतसृभ्यः, चतसृभ्यः, चतसृणाम्, चतसृषु** सिद्ध होते हैं।

द्वे। द्विशब्द नित्य द्विवचनान्त है। विभक्ति के परे **त्यदादीनामः** से अत्व हो जाता है। द्व+औ में स्त्रीत्व की विवक्षा में **अजाद्यतष्टाप्** से टाप्, अनुबन्धलोप होकर **द्व+आ+औ** बना। **द्व+आ** में सवर्णदीर्घ होकर **द्वा** बना। **द्वा+औ** मे **औङ आपः** से औ के स्थान पर **शी** आदेश, अनुबन्धलोप करके **द्वा+ई** बना। गुण करने पर **द्वे** सिद्ध हुआ। द्वितीया के द्विवचन में भी **द्वे** ही बनता है। तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में भ्याम्, अत्व, टाप्, सवर्णदीर्घ करके **द्वाभ्याम्** सिद्ध होता है। षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में **द्वा+ओस्** में **आङि चापः** से एकार आदेश, एकार के स्थान पर अय् आदेश करके **द्व+अय्+ओस्,** वर्णसम्मेलन, रुत्वविसर्ग करके **द्वयोः** सिद्ध होता है। **द्वे, द्वे, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वयोः, द्वयोः।**

ह्रस्व इकारान्त शब्दों के बाद अब दीर्घ ईकारान्त शब्दों का वर्णन करते हैं।

गौरी। गौर-शब्द से **षिद्गौरादिभ्यश्च** से ङीष् होकर **गौरी** बना है। उससे सु आया। ङ्यन्त होने के कारण **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से स् का लोप हुआ, **गौरी** सिद्ध हुआ।

गौर्य्यौ। गौरी+औ में पूर्वसवर्णदीर्घ प्राप्त, उसका **दीर्घाज्जसि च** से निषध हो जाने पर **इको यणचि** से यण् होकर **गौर्+य्+औ** बना। यकार को **अचो रहाभ्यां द्वे** से द्वित्व होकर **गौर्+य्+य्+औ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **गौर्य्यौ** सिद्ध हुआ। द्वित्व न होने के पक्ष में **गौर्यौ** ही रहा। **गौर्य्यौ** में दो यकार और **गौर्यौ** में एक एकार है। इसी तरह **गौर्य्यः**, **गौर्यः** भी समझना। अम् और शस् को छोड़कर शेष अच् के परे होने पर यण् होगा और यण् होने पर एक पक्ष यकार का द्वित्व और एक पक्ष द्वित्व का अभाव, इस तरह एक यकार और द्वियकार के रूप बनते हैं। हम यहाँ एक यकार के ही रूप दिखा रहे हैं किन्तु आप द्वियकार वाले रूप भी जानना।

गौरीम्। गौरी से द्वितीया का एकवचन अम् आया। **गौरी+अम्** में **इको यणचि** से यण् प्राप्त था, उसे बाधकर **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर **गौरीम्** बना।

गौरीः। गौरी से द्वितीया के बहुवचन में शस्, अनुबन्धलोप, गौरी+अस् में **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** से पूवसवर्णदीर्घ और सकार का रुत्वविसर्ग होकर **गौरीः** सिद्ध हुआ।

गौर्या। तृतीया का एकवचन टा, अनुबन्धलोप, **गौरी+आ** में यण् होकर **गौर्या**।

गौरीभ्याम्। गौरीभिः। गौरीभ्यः। इन तीन प्रयोगों में तृतीया, चतुर्थी का भ्याम्, चतुर्थी एवं पञ्चमी का द्विवचन भ्याम् आता है। तृतीया बहुवचन में भिस् तथा चतुर्थी, पञ्चमी के बहुवचन में भ्यस् आता है और लग जाता है। भिस् और भ्यस् के सकार का रुत्वविसर्ग करना होता है।

गौर्यै। गौरी शब्द से चतुर्थी का एकवचन ङे, अनुबन्धलोप, नदीसंज्ञा, गौरी+अस् में **आण्नद्याः** से ङिद्विभक्ति को आट् का आगम और टकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होकर **तस्य लोपः** से लोप हो गया। टित् होने के कारण यह ङिद्विभक्ति **ए** के आगे अर्थात् पहले आकर टित् आगम **आ** बैठ गया। **गौरी+आ+ए** बना। इसमें **इको यणचि** से यण् हुआ- **गौर्+य्+आ+ए** हुआ। वर्णसम्मेलन हुआ- **गौर्य्+आ+ए** बना। **आटश्च** से वृद्धि हुई- **गौर्यै**।

गौर्याः। पञ्चमी के एकवचन ङसि और षष्ठी के एकवचन ङस् आया, अनुबन्धलोप हुआ, **गौरी+अस्** में **आण्नद्याः** से आट् आगम, टित् होने के कारण अस् के पहले बैठा, यण् हुआ, **आटश्च** से वृद्धिसंज्ञक एकादेश हुआ, वर्णसम्मेलन हुआ और सकार का रुत्वविसर्ग होने पर- **गौर्याः** सिद्ध हुआ।

गौर्योः। षष्ठी और सप्तमी के द्विचवचन में ओस् आता है और ङित् न होने कारण आट् नहीं हुआ और आट् न होने के कारण **आटश्च** से वृद्धि भी नहीं हुई किन्तु **गौरी+ओस्** में **इको यणचि** से यण् हुआ और सकार को रुत्वविसर्ग हुआ- **गौर्योः**।

गौरीणाम्। षष्ठी के बहुवचन में आम् विभक्ति आई, नदीसंज्ञक होने के कारण **ह्रस्वनद्यापो नुट्** से नुट् आगम और **नामि** से दीर्घ, **अट्कुप्वाङ्व्यवायेऽपि** से णत्व होकर **गौरीणाम्** सिद्ध हुआ।

गौर्याम्। सप्तमी के एकवचन में ङि आया, अनुबन्धलोप हुआ, नदीसंज्ञा के बाद **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** से ङे के स्थान पर आम् आदेश और **आण्नद्याः** से आट् आगम और **आटश्च** से वृद्धि होकर **गौर्याम्** बना।

गौरीषु। सप्तमी के बहुवचन में सुप् आया, अनुबन्धलोप हुआ, नदी का ईकार इण् है, अतः उससे परे सु के सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व हुआ- **गौरीषु**।

हे गौरि! सम्बोधन में सु आया, अनुबन्धलोप हुआ। नदीसंज्ञक होने के कारण **अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः** से गौरी के ईकार हो ह्रस्व होकर **गौरि+स्** बना। **एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः** से सकार का लोप हुआ और हे का पूर्वप्रयोग हुआ- **हे गौरि**। यहाँ पर एक यकार और द्वियकार वाले रूप दिये जा रहे है।

ङ्यन्तस्त्रीलिङ्ग गौरी-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गौरी	गौर्य्यौ, गौर्यौ	गौर्य्यः, गौर्यः
द्वितीया	गौरीम्	गौर्य्यौ, गौर्यौ	गौरीः
तृतीया	गौर्य्या, गौर्या	गौरीभ्याम्	गौरीभिः
चतुर्थी	गौर्य्यै, गौर्यै	गौरीभ्याम्	गौरीभ्यः
पञ्चमी	गौर्य्याः, गौर्याः	गौरीभ्याम्	गौरीभ्यः
षष्ठी	गौर्य्याः, गौर्याः	गौर्य्योः, गौर्योः	गौरीणाम्
सप्तमी	गौर्य्याम्, गौर्याम्	गौर्य्योः, गौर्योः	गौरीषु
सम्बोधन	हे गौरि	हे गौर्य्यौ, हे गौर्यौ	हे गौर्य्यः, हे गौर्यः

इसी तरह नदी आदि ङ्यन्त स्त्रीलिङ्गी शब्दों के रूप भी समझें किन्तु जिसमें रेफ और हकार नहीं है, वहाँ पर **अचो रहाभ्यां द्वे** नहीं लगेगा। अतः द्वित्व नहीं होगा।

ङ्यन्तस्त्रीलिङ्ग नदी-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	नदी	नद्यौ	नद्यः
द्वितीया	नदीम्	नद्यौ	नदीः
तृतीया	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
चतुर्थी	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
पञ्चमी	नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
षष्ठी	नद्याः	नद्योः	नदीनाम्
सप्तमी	नद्याम्	नद्योः	नदीषु
सम्बोधन	हे नदि!	हे नद्यौ!	हे नद्यः!

अब निम्नलिखित ईकारान्त स्त्रीलिङ्गी शब्दों की सिद्धि करें।

अमरावती= इन्द्रपुरी	इन्द्राणी=इन्द्र की पत्नी	एकादशी=एक तिथि
कदली=केला	कामिनी=स्त्री	कावेरी=एक नदी
किंवदन्ती=अफवाह	कुटी=कुटिया	काशी=एक नगरी
कुमारी=कुँवारी	कौमुदी=चाँदनी	क्षत्रियाणी= क्षत्रिया स्त्री
गर्भिणी=गर्भवती	गायत्री=गायत्री	गृहिणी=घरेलू स्त्री
गोष्ठी=सभा	जननी=माता	तरुणी=जवान स्त्री
तामसी=तमोगुण वाली	दासी=नौकरानी	देवकी=एक स्त्री
देवी=देवपत्नी	दैनन्दिनी=डायरी	द्रौपदी=एक स्त्री
धरित्री=पृथ्वी	नगरी=नगर	नटी=नट की स्त्री

नलिनी=कमलिनी	नारी=स्त्री	पत्नी=भार्या
पदवी=मार्ग, पद	परिपाटी=सिलसिला	पार्वती=एक देवपत्नी
पितामही=दादी	पुत्री=बेटी	पुरी=नगरी
पृथ्वी=भूमि	पौर्णमासी=पूर्णिमा	प्रणाली=तरीका
प्राची=पूर्वदिशा	बदरी=बेर	भवती=आप
भवानी=एक देवपत्नी	भागीरथी=गङ्गा	भारती=संस्कृत-भाषा
मञ्जरी=कोपल	मसी=स्याही	मही=पृथ्वी
मातामही=नानी	मातुलानी=मामी	मालती=चमेली
मुरली=बाँसुरी	मेदिनी=पृथिवी	यामिनी=रात्रि
युवती=जवान स्त्री	रजनी=रात	राक्षसी=राक्षस की स्त्री
राजधानी=राजधानी	राज्ञी=रानी	रोहिणी=एक नक्षत्र
लेखनी=कलम	वसुमती=पृथ्वी	वाणी=वाणी
वापी=बावड़ी	वाराणसी=काशी	वारुणी=मदिरा
विदुषी=विद्यावती स्त्री	वाहिनी=सेना	वीथी=रास्ता
वैजयन्ती=पताका	वैदेही=सीता	वैयासिकी=व्यास की रचना।
शर्वरी=रात्रि	शाटी=वस्त्र, साड़ी	शैली=रीति
श्रेणी=पंक्ति	सखी=सहेली	सपत्नी=सौतन
सरस्वती=वाग्देवी	सरोजिनी=कमल समूह	साध्वी=पतिव्रता
सुन्दरी=रूपवती	सूची=सुई	सौदामिनी=बिजनी
हरिणी=मादा हिरन	हरीतकी=हरड़	हिमानी=बर्फ समूह

इतना ध्यान रखें कि षष्ठी-बहुवचन में कहाँ णत्व होता है और कहाँ नहीं?

लक्ष्मीः। नदीशब्द में ङीप् होने के कारण ङ्यन्त है किन्तु लक्ष्मी शब्द में ङीप् न होने कारण ङ्यन्त नहीं है। ङ्यन्त न होने के कारण **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से सु का लोप नहीं हुआ किन्तु उसका रुत्वविसर्ग हुआ- लक्ष्मीः। केवल सु में भिन्न रूप बनता है, बाकी सर्वत्र लक्ष्मी शब्द के रूप नदीशब्द के समान ही होते हैं।

लक्ष्मी आदि शब्दों के सु के लोप के सम्बन्ध में एक पद्य प्रचलित है-

अवी-तन्त्री-तरी-लक्ष्मी-धी-ह्री-श्रीणामुणादिषु।

अपि स्त्रीलिङ्गवृत्तीनां सोर्लोपो न कदाचन॥ अर्थात् उणादि में सिद्ध होने वाले **अवी, तन्त्री, तरी, लक्ष्मी, धी, ह्री, श्री** ये शब्द यद्यपि स्त्रीलिङ्ग में है तथापि (ङ्यन्त न होने के कारण) इनसे परे सु का लोप कदापि नहीं होता है।

अङ्यन्त-स्त्रीलिङ्ग लक्ष्मी-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	लक्ष्मीः	लक्ष्म्यौ	लक्ष्म्यः
द्वितीया	लक्ष्मीम्	लक्ष्म्यौ	लक्ष्मीः
तृतीया	लक्ष्म्या	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभिः
चतुर्थी	लक्ष्म्यै	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्यः
पञ्चमी	लक्ष्म्याः	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्यः
षष्ठी	लक्ष्म्याः	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीणाम्

इयङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२२७. स्त्रियाः ६।४।७९॥

अस्येयङ् स्यादजादौ प्रत्यये परे। स्त्रियौ। स्त्रियः।

वैकल्पिकेयङ्विधायकं विधिसूत्रम्

२२८. वाम्शसोः ६।४।८०॥

अमि शसि च स्त्रिया इयङ् वा स्यात्।

स्त्रियम्, स्त्रीम्। स्त्रियः, स्त्रीः। स्त्रिया। स्त्रियै। स्त्रियाः। परत्वान्नुट्। स्त्रीणाम्। स्त्रीषु। श्रीः। श्रियौ। श्रियः।

....

सप्तमी	लक्ष्याम्	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीषु
सम्बोधन	हे लक्ष्मि	हे लक्ष्म्यौ	हे लक्ष्म्यः

इसी तरह अवी, तरी, तन्त्री आदि शब्दों के रूप भी समझने चाहिए।

स्त्री-शब्द **स्त्यै** धातु से ङीप् होकर बना है, इसलिए ङ्यन्त है। नित्यस्त्रीलिङ्ग में विद्यमान है, अतः नदीसंज्ञक भी है।

स्त्री। स्त्री से सु, **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से उसका लोप।

हे स्त्रि। नदीसंज्ञक होने के कारण **अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः** से स्त्री के ईकार को ह्रस्व करके **एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः** से स् का लोप और **हे** का पूर्वप्रयोग होने पर **हे स्त्रि** बनता है।

२२७- **स्त्रियाः**। स्त्रियाः षष्ठ्यन्तमेकपदमिदं सूत्रम्। **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **अचि** और **इयङ्** की अनुवृत्ति आती है।

अजादि प्रत्यय के परे होने पर स्त्री शब्द के ईकार के स्थान पर इयङ् आदेश होता है।

स्त्री शब्द में धातु का ईकार न होने के कारण **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इयङ् प्राप्त नहीं था, अतः इस सूत्र का आरम्भ हुआ।

स्त्रियौ। स्त्री+औ में **इको यणचि** से यण् प्राप्त, उसे बाधकर **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** से पूर्वसवर्णदीर्घ प्राप्त, उसके **दीर्घाज्जसि च** से निषेध होने पर पुनः **यण्** प्राप्त हो रहा था, तब **स्त्रियाः** से इयङ् आदेश का विधान हुआ। अनुबन्धलोप के बाद ईकार के स्थान पर इय् बैठा, **स्त्+इय्+औ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **स्त्रियौ** सिद्ध हुआ। इसी तरह **इयङ्** करके **स्त्रियः** सिद्ध होता है।

२२८- **वाम्शसोः**। अम् च शस् च, अम्शसौ, तयोः- अम्शसोः। वा अव्ययपदम्, अम्शसोः सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **इयङ्** और **स्त्रियाः** से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

अम् और शस् के परे होने पर स्त्रीशब्द को इयङ् विकल्प से होता है।

स्त्रियाः से नित्य से प्राप्त इयङ् को अम् और शस् के परे विकल्प से करता है।

स्त्रियः। स्त्री+अम् में **इको यणचि** से यण् प्राप्त, उसे बाधकर **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** से पूर्वसवर्णदीर्घ की प्राप्ति, उसे बाधकर **अमि पूर्वः** से **पूर्वरूप** की प्राप्ति हो रही थी, तव **स्त्रियाः** से नित्य से इयङ् आदेश का विधान हुआ, उसे भी बाधकर **वाम्शसोः**

नदीसंज्ञानिषेधकं सूत्रम्

२२९. नेयङुवङ्स्थानावस्त्री १।४।४॥

इयङुवङोः स्थितिर्ययोस्तावीदूतौ नदीसंज्ञौ न स्तो न तु स्त्री।
हे श्रीः। श्रियै, श्रिये। श्रियाः, श्रियः।

....

से विकल्प से **इयङ् आदेश**, अनुबन्धलोप के बाद ईकार के स्थान पर इय् बैठा, **स्त्र्+इय्+अम्** बना। वर्णमम्मेलन होकर **स्त्रियम्** सिद्ध हुआ। इयङ् न होने के पक्ष में **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर **स्त्रीम्** सिद्ध हुआ। इसी तरह शस् में इयङ् होने के पक्ष में **स्त्रियः** बनता है और न होने के पक्ष में पूर्वसवर्ण दीर्घ होकर **स्त्रीः** हो जाता है।

अब अजादिविभक्ति के परे होने पर **स्त्रियाः** से इयङ् आदेश करके वर्णसम्मेलन करना और हलादिविभक्ति के परे तो कोई कार्य नहीं है किन्तु आम् के परे **स्त्रियाः** की अपेक्षा **ह्रस्वनद्यापो नुट्** के परे होने के कारण पहले नुट् होगा और नुट् होने के बाद अजादि नहीं रहेगा तो इयङ् भी नहीं होगा, अतः **स्त्रीणाम्** बनेगा।

ङ्यन्त-नित्यस्त्रीलिङ्ग स्त्री-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः
द्वितीया	स्त्रियम्, स्त्रीम्	स्त्रियौ	स्त्रियः, स्त्रीः
तृतीया	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः
चतुर्थी	स्त्रियै	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
पञ्चमी	स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
षष्ठी	स्त्रियाः	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
सप्तमी	स्त्रियाम्	स्त्रियोः	स्त्रिषु
सम्बोधन	हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रियः

श्रयति हरिम् इति श्रीः। हरि का आश्रय लेने वाली, लक्ष्मी, शोभा आदि। **श्रिञ् सेवायाम्** धातु से क्विप् और दीर्घ करके **श्री** बनता है। यहाँ पर ङीप् आदि का ईकार नहीं है। धातु का ईकार होने के कारण **इयङ्** होता है और ङ्यन्त न होने के कारण सु का लोप नहीं होता। **नेयङुवङ्स्थानावस्त्री** से निषेध होने के कारण नदीसंज्ञा नहीं होती किन्तु ङित् विभक्ति के परे होने पर **ङिति ह्रस्वश्च** से वैकल्पिक नदीसंज्ञा हो जाती है।

श्रीः। सु, अनुबन्धलोप, रुत्व, विसर्ग, **श्रीः**।

श्रियौ। श्री+औ, धातु से पूर्व अवयव ईकार से पूर्व धातु का ही अवयव संयोग श्र् है और अनेकाच् अङ्ग भी नहीं है। अतः **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** से यण् नहीं हुआ। **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इयङ् होकर **श्र्+इय्+औ** बना। वर्ण सम्मेलन, **श्रियौ**। जस् मे **श्री+अस्, इयङ्, श्र्+इय्+अस्** वर्णसम्मेलन, रुत्वविसर्ग, **श्रियः**।

२२९- नेयङुवङ्स्थानावस्त्री। इयङ् च उवङ् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः, इयङुवङौ, इयङुवङौ स्थितिः स्थानं ययोस्तौ इयङुवङ्स्थानौ, बहुव्रीहिः। न स्त्री- अस्त्री, नञ्तत्पुरुषः। न अव्ययपदम्, इयङुवङ्स्थानौ प्रथमान्तम्, अस्त्री प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **यू स्त्र्याख्यौ नदी** से **यू** और **नदी** की अनुवृत्ति आती है।

वैकल्पिकनदीसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

२३०. वामि १।४।५॥

इयङुवङ्स्थानौ स्त्र्याख्यौ यू आमि वा नदीसंज्ञौ स्तो न तु स्त्री। श्रीणाम्, श्रियाम्। श्रियि, श्रियाम्। धेनुर्मतिवत्।

....

इयङ् और उवङ् के स्थानीभूत दीर्घ ईकार और ऊकार ये नदीसंज्ञक नहीं होते हैं।

श्री आदि शब्दों में **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इयङ् आदेश होता है, अतः श्री का ईकार इयङ् का स्थानी है।

हे श्रीः। सम्बोधन में प्रथमा का एकवचन सु, अनुबन्धलोप, **यू स्त्र्याख्यौ नदी** से नदीसंज्ञा प्राप्त, उसे **नेयङुवङ्स्थानावस्त्री** से निषेध होने के कारण नदीत्वाभावात् **अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः** से ह्रस्व नहीं हुआ। अतः **एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः** से स् का लोप भी नहीं हुआ। उसका रुत्व और विसर्ग हुआ तथा हे का पूर्वप्रयोग होकर **हे श्रीः** सिद्ध हुआ।

श्रियम्। श्रियौ। श्रियः। श्रियः। इयङ् आदेश।

श्रियै, श्रिये। श्री+ङे, श्री+ए, **यू स्त्र्याख्यौ नदी** से प्राप्त नदीसंज्ञा का **नेयङुवङ्स्थानावस्त्री** से निषेध, पुनः ङे विभक्ति के ङित् होने के कारण **ङिति ह्रस्वश्च** से वैकल्पिक नदीसंज्ञा होती है। नदीसंज्ञा के पक्ष में **आण्नद्याः** से आट् आगम हुआ, **श्री+आ+ए** बना। **आ+ए** में **आटश्च** से वृद्धि होकर **ऐ** बना। **श्री+ए** में **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इयङ् होकर **श्र्+इय्+ऐ** बना। वर्ण सम्मेलन, **श्रियै** सिद्ध हुआ। इसी तरह की विधि करके पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी के एकवचन में क्रमशः **श्रियाः-श्रियः, श्रियाः-श्रियः, श्रियाम्-श्रियि** रूप सिद्ध होते हैं।

ओस् के परे होने पर इयङ् और वर्णसम्मेलन होकर **श्रियोः** बनता है।

२३०- **वामि**। वा अव्ययपदम्, आमि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **नेयङुवङ्स्थानावस्त्री** से **नेयङुवङ्स्थानौ** और **यू स्त्र्याख्यौ नदी** पूरा सूत्र का अनुवृत्त होता है।

इयङ् और उवङ् के स्थानी नित्य स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान ईकार और ऊकार आम् के परे होने पर विकल्प से नदीसंज्ञक होते है किन्तु स्त्रीशब्द में यह नियम नहीं लगता।

यू स्त्र्याख्यौ नदी से नित्य से प्राप्त नदीसंज्ञा इस सूत्र से विकल्प से होती है जिससे नदीसंज्ञा के पक्ष में **ह्रस्वनद्यापो नुट्** से नुट् का आगम हो जाता है। नदीसंज्ञा के अभाव में इयङ् आदेश होगा।

श्रीणाम्, श्रियाम्। षष्ठी के बहुवचन में **श्री+आम्** है। **वामि** से नदीसंज्ञा के पक्ष में **नुट्**, **नामि** से दीर्घ ईकार को भी दीर्घ आदेश, णत्व करके **श्रीणाम्** सिद्ध हुआ। नदीसंज्ञा न होने के पक्ष में **इयङ्** होकर **श्र्+इय्+आम्**, वर्णसम्मेलन होकर **श्रियाम्** सिद्ध होता है।

अङ्यन्त-नित्यस्त्रीलिङ्ग श्री-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
द्वितीया	श्रियम्	श्रियौ	श्रियः

तृज्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्

२३१. स्त्रियां च ७।१।९६।।

स्त्रीवाची क्रोष्टुशब्दस्तृजन्तवद्रूपं लभते।

....

तृतीया	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभि:
चतुर्थी	श्रियै, श्रिये	श्रीभ्याम्	श्रीभ्य:
पञ्चमी	श्रिया:, श्रिय:	श्रीभ्याम्	श्रीभ्य:
षष्ठी	श्रिया:, श्रिय:	श्रियो:	श्रीणाम्, श्रियाम्
सप्तमी	श्रियाम्, श्रियि	श्रियो:	श्रीषु
सम्बोधन	हे श्री:	हे श्रियौ	हे श्रिय:

स्मरणीय:- नदीसंज्ञा का उपयोग केवल ङे, ङसि, ङस्, ङि, आम् और सम्वोधन में ही होता है। जिन शब्दों में इयङ् और उवङ् आदेश होते हैं, उसमें **नेयङुवङ्स्थानावस्त्री** से नदीसंज्ञा का निषेध हो जाता है किन्तु ङिद्विभक्ति के परे **ङिति ह्रस्वश्च** और **वामि** से वैकल्पिक नदीसंज्ञा हो जाती है। **अस्त्री** कहकर निषेध करने के कारण ये नियम स्त्रीशब्द में नहीं लगते अर्थात् स्त्रीशब्द की नित्य से नदीसंज्ञा होती है।

ईकारान्त शब्दों के विवेचन के बाद अब उकारान्त शब्दों का विवेचन करते हैं।

धेनुर्मतिवत्। धेनुशब्द के रूप मतिशब्द की तरह होते हैं। मतिशब्द इकारान्त होने के कारण इकार को गुण होकर एकार होता था तो धेनु उकारान्त है, अत: उकार को गुण होकर ओकार होगा।

उकारान्त स्त्रीलिङ्ग धेनु-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धेनु:	धेनू	धेनव:
द्वितीया	धेनुम्	धेनू	धेनू:
तृतीया	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभि:
चतुर्थी	धेन्वै, धेनवे	धेनुभ्याम्	धेनुभ्य:
पञ्चमी	धेन्वा:, धेनो:	धेनुभ्याम्	धेनुभ्य:
षष्ठी	धेन्वा:, धेनो:	धेन्वो:	धेनूनाम्
सप्तमी	धेन्वाम्, धेनौ	धेन्वो:	धेनुषु
सम्बोधन	हे धेनो!	हे धेनू	हे धेनव:

इसी तरह निम्नलिखित के भी रूप जानें।

अलावु= लताविशेष	उडु=तारा	कण्डु=खुजली
करेणु=हथिनी	काकु=स्वर-विकृति	खर्जु=खुजली
गण्डु=गाँठ	चञ्चु=चोंच	जम्बु=जामुन
तनु=शरीर	रज्जु=रस्सी	रेणु=धूल
वार्ताकु=बैगन	शतद्रु=सतलुज	सरयु=एक ऐतिहासिक नदी
धेनु=गाय	स्नायु=नस	हनु=ठ्योड़ी

ङीप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

२३२. ऋन्नेभ्यो ङीप् ४।१।५॥

ऋदन्तेभ्यो नान्तेभ्यश्च स्त्रियां ङीप्।

क्रोष्ट्री गौरीवत्। भ्रूः श्रीवत्। स्वयम्भूः पुंवत्।

....

२३१- स्त्रियां च। स्त्रियाम् सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **तृज्वत् क्रोष्टुः** इस पूरे सूत्र का अनुवर्तन होता है।

स्त्रीवाची क्रोष्टुशब्द भी तृज्-प्रत्ययान्त की तरह होता है अर्थात् तृज्वद्भाव को प्राप्त होता है।

पुँल्लिङ्ग के क्रोष्टु शब्द का स्मरण करें। वहाँ कुछ विभक्तियों के परे उकारान्त शब्द तृज्वद्भाव होकर ऋकारान्त बन गया था। यहाँ अर्थात् स्त्रीलिङ्ग में विभक्ति की अपेक्षा नहीं है। स्त्रीत्व की विवक्षा मात्र में तृज्वद्भाव को प्राप्त हो जाता है। **क्रोष्टुशब्द क्रोष्टृशब्द** के रूप में आता है और अग्रिम सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर **क्रोष्ट्री** बन जाता है।

२३२- ऋन्नेभ्यो ङीप्। ऋतश्च, नाश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः, ऋन्नास्तेभ्यः-ऋन्नेभ्यः। ऋन्नेभ्यः पञ्चम्यन्तं, ङीप् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ङ्याप्प्रातिपदिकात्** से वचनविपरिणाम करके **प्रातिपदिकेभ्यः** के अनुवृत्ति आती है।

ऋकारान्त और नकारान्त प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है।

स्त्रीप्रत्यय प्रकरण में स्त्रीत्व के लिए ङीप्, ङीष्, ङीन् आदि प्रत्ययों का विधान करने वाले अनेकों सूत्र हैं किन्तु यहाँ पर यह सामान्य सूत्र दिया गया है।

क्रोष्टृशब्द तृज्वद्भाव होने से ऋकारान्त है और स्वामिन् शब्द नकारान्त है। इन दोनों से ङीप् प्रत्यय हुआ। पकार की हलन्त्यम् से इत्संज्ञा और ङकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और दोनों का **तस्य लोपः** से लोप होकर केवल ई ही बचता है। ऋकारान्त कोष्टृ+ई में **इको यणचि** से यण् होकर **क्रोष्ट्+र्+ई** में वर्णसम्मेलन होने पर **क्रोष्ट्री** बनता है। इसी प्रकार नकारान्त स्वामिन् शब्द से ङीप् होकर **स्वामिन्+ई=स्वामिनी** बन जाता है। ङ्यन्त स्त्रीलिङ्ग होने के कारण इनके रूप **गौरी** की तरह ही होते हैं।

उकारान्त स्त्रीलिङ्ग क्रोष्टु-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	क्रोष्ट्री	क्रोष्ट्र्यौ	क्रोष्ट्र्यः
द्वितीया	क्रोष्ट्रीम्	क्रोष्ट्र्यौ	क्रोष्ट्रीः
तृतीया	क्रोष्ट्र्या	क्रोष्ट्रीभ्याम्	क्रोष्ट्रीभिः
चतुर्थी	क्रोष्ट्र्यै	क्रोष्ट्रीभ्याम्	क्रोष्ट्रीभ्यः
पञ्चमी	क्रोष्ट्र्याः	क्रोष्ट्रीभ्याम्	क्रोष्ट्रीभ्यः
षष्ठी	क्रोष्ट्र्याः	क्रोष्ट्र्योः	क्रोष्ट्रीणाम्
सप्तमी	क्रोष्ट्र्याम्	क्रोष्ट्र्योः	क्रोष्ट्रीषु
सम्बोधन	हे क्रोष्ट्रि!	क्रोष्ट्र्यौ!	क्रोष्ट्र्यः!

इसी प्रकार कर्तृ से कर्त्री, हर्तृ से हर्त्री, विद्यार्थिन् से विद्यार्थिनी, दण्डिन् से दण्डिनी,

योगिन् से योगिनी, स्वामिन् से स्वामिनी आदि बन जाते हैं। इन शब्दों की सातों विभक्तियों में नदी-शब्द के समान रूप चलते हैं। आप बनाने का प्रयत्न करें। इन शब्दों के रूप अपनी अभ्यासपुस्तिका में भी लिखें और उच्चारण करके अभ्यास भी करें।

स्वामिन्-शब्द हलन्त है, इसलिए **हलन्तस्त्रीलिङ्ग** का विषय है, फिर भी ङीप् होकर ईकारान्त बन जाने के कारण अजन्त जैसा बन गया है। अतः उसके रूप यहाँ पर दिये जा रहे हैं।

ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग स्वामिनी-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	स्वामिनी	स्वामिन्यौ	स्वामिन्यः
द्वितीया	स्वामिनीम्	स्वामिन्यौ	स्वामिनीः
तृतीया	स्वामिन्या	स्वामिनीभ्याम्	स्वामिनीभिः
चतुर्थी	स्वामिन्यै	स्वामिनीभ्याम्	स्वामिनीभ्यः
पञ्चमी	स्वामिन्याः	स्वामिनीभ्याम्	स्वामिनीभ्यः
षष्ठी	स्वामिन्याः	स्वामिन्योः	स्वामिनीनाम्
सप्तमी	स्वामिन्याम्	स्वामिन्योः	स्वामिनीषु
सम्बोधन	हे स्वामिनि!	हे स्वामिन्यौ!	स्वामिन्यः!

भ्रूः श्रीवत्। भ्रू-शब्द के रूप श्री-शब्द की तरह होते हैं। **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** में भ्रू का ग्रहण है, अतः इसके ऊकार के स्थान पर **उवङ्** आदेश होता है। उवङ् की स्थिति होने के कारण **नेयङुवङ्स्थानावस्त्री** नदीसंज्ञा का निषेध होने पर भी ङिद्विभक्ति के परे **ङिति ह्रस्वश्च** तथा आम् के परे होने पर **वामि** से वैकल्पिक नदीसंज्ञा हो जाने के कारण इसके रूप **श्री** की तरह ही बन जाते हैं। **भ्रू+औ, भ्र्+उवङ्, भ्र्+उव्+औ=भ्रुवौ।**

ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग भ्रू-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भ्रूः	भ्रुवौ	भ्रुवः
द्वितीया	भ्रुवम्	भ्रुवौ	भ्रुवः
तृतीया	भ्रुवा	भ्रूभ्याम्	भ्रूभिः
चतुर्थी	भ्रुवै, भ्रुवे	भ्रूभ्याम्	भ्रूभ्यः
पञ्चमी	भ्रुवाः, भ्रुवः	भ्रूभ्याम्	भ्रूभ्यः
षष्ठी	भ्रुवाः, भ्रुवः	भ्रुवोः	भ्रुवाम्, भ्रूणाम्
सप्तमी	भ्रुवाम्, भ्रुवि	भ्रुवोः	भ्रूषु
सम्बोधन	हे भ्रूः!	हे भ्रुवौ	हे भ्रुवः!

स्वयम्भूः पुंवत्। स्वयम्भू शब्द पुँल्लिङ्ग की तरह होता है अर्थात् जैसे पुँल्लिङ्ग में स्वभू और स्वयम्भू शब्द के रूप बनते हैं, इसी तरह स्त्रीलिङ्ग में बनते हैं। यह विशेषण शब्द है, अतः विशेष्य के अनुसार इसके रूप होते है। नित्यस्त्रीलिङ्गी न होने के कारण **यू स्त्र्याख्यौ नदी** से नदीसंज्ञा नहीं होती है। अतः **ओः सुपि** से प्राप्त यण् का **न भूसुधियोः** से निषेध होता है। तदनन्तर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् होकर स्वयम्भूः, स्वयम्भुवौ, स्वयम्भुवः बन जाते हैं।

विध्यन्तर्गतं-ङीप्टाप्प्रतिषेधसूत्रम्

२३३. न षट्स्वस्रादिभ्यः ४।१।१०॥

ङीप्टापौ न स्तः।

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा।

याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः॥

स्वसा। स्वसारौ। माता पितृवत्। शसि मातॄः।

द्यौर्गोवत्। राः पुंवत्। नौग्लौवत्॥

इत्यजन्तस्त्रीलिङ्गाः॥६॥

....

ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग स्वयम्भू-शब्द के रूप

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	स्वयम्भूः	स्वयम्भुवौ	स्वयम्भुवः
द्वितीया	स्वयम्भुवम्	स्वयम्भुवौ	स्वयम्भुवः
तृतीया	स्वयम्भुवा	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभिः
चतुर्थी	स्वयम्भुवे	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभ्यः
पञ्चमी	स्वयम्भुवः	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभ्यः
षष्ठी	स्वयम्भुवः	स्वयम्भुवोः	स्वयम्भुवाम्
सप्तमी	स्वयम्भुवि	स्वयम्भुवोः	स्वयम्भूषु
सम्बोधन	हे स्वयम्भूः!	हे स्वयम्भुवौ!	हे स्वयम्भुवः!

वधू(बहू), जम्बू(जामून), श्वश्रू(सास), चमू(सेना), चञ्चू(चोंच), तनू(शरीर), चम्पू(गद्यपद्यमिश्रित काव्य), कमण्डलू(कमण्डल) आदि शब्दों के रूप गौरी की तरह ही बनते हैं। अन्तर यह है कि इन शब्दों में अङ्यन्त होने के कारण सु का लोप नहीं होता और उकार के स्थान पर यण् होकर व् आदेश होता है, जिससे वधूः, वध्वौ, वध्वः आदि रूप सिद्ध होते हैं। **जम्बू, चञ्चू, तनू** ये शब्द ह्रस्व उकारान्त भी हैं। ऐसी अवस्था में इनके रूप **धेनु** शब्द की तरह होंगे।

२३३- **न षट्स्वस्रादिभ्यः।** षट् च स्वस्रादयश्च षट्स्वस्रादयः, इतरेतरद्वन्द्वः, तेभ्यः षट्स्वस्रादिभ्यः। न अव्ययपदं, षट्स्वस्रादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से ङीप् और **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** की अनुवृत्ति आती है।

षट्संज्ञक शब्द और स्वस्रादि गणपठित शब्दों से स्त्रीत्व की ववक्षा में ङीप् और टाप् न हों।

यह सूत्र पूर्व सूत्र **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से पञ्चन्, षष्, स्वसृ, दुहितृ आदि शब्दों से प्राप्त **ङीप्** और **टाप्** आदि स्त्रीत्व-बोधक प्रत्ययों का निषेध करता है। षट्संज्ञक शब्द और स्वस्रादिगणपठित शब्दों से **ङीप्** और **टाप्** नहीं होते हैं अर्थात् इन शब्दों में स्त्रीप्रत्यय न करने पर भी स्वतः स्त्रीत्व का बोध हो जाता है। **स्वसृ**(बहन), **तिसृ**(तीन संख्या, स्त्रीलिङ्ग), **चतसृ**(चार की संक्ष्या, स्त्रीलिङ्ग में), **ननान्दृ** (ननद), **दुहितृ**(लड़की), **यातृ**(देवरानी) **और मातृ ये शब्द स्वस्रादि हैं।**

स्वसा। स्वसृ-शब्द बहन का वाचक है। उससे स्त्रीलिङ्ग का कोई प्रत्यय नहीं हुआ। उणानिनिष्पन्न होते हुए भी **अप्तृन्तृच्स्वसृ०** आदि सूत्र में पठित होने के कारण सर्वनामस्थान में उपधादीर्घ होता है। अतः इसके रूप पुँलिङ्ग धातृ-शब्द के समान ही चलते हैं। केवल शस् में नत्व न होकर **स्वसृः** बनेगा। **स्वसा, स्वसारौ, स्वसारः। स्वसारम्, स्वसारौ, स्वसृः** आदि। इसी तरह **तिस्रः, तिस्रः** आदि रूप बनाये जा चुके हैं। **ननान्दृ, दुहितृ, यातृ** आदि **अप्तृन्तृच्०** के अन्तर्गत न आने के कारण सर्वनामस्थान में उपधादीर्घ नहीं होता किन्तु सु में **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** से दीर्घ होता है। **ननान्दा, ननान्दरौ, ननान्दरः, दुहित, दुहितरौ, दुहितरः, याता, यातरौ, यातरः** आदि बनते हैं। इसी प्रकार मातृ-शब्द के शस् में मातृः बनता है, बाकी रूप पितृशब्द के समान ही होंगे।

ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग मातृ-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	माता	मातरौ	मातरः
द्वितीया	मातरम्	मातरौ	मातृः
तृतीया	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
चतुर्थी	मात्रे	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
पञ्चमी	मातुः	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
षष्ठी	मातुः	मात्रोः	मातृणाम्
सप्तमी	मातरि	मात्रोः	मातृषु
सम्बोधन	हे मातः!	हे मातरौ!	हे मातरः!

ओकारान्त द्यो-शब्द के रूप अजन्तपुँल्लिङ्ग के समान होते हैं, अर्थात् **गोतो णित्** से णिद्वद्भाव करके **अचो ञ्णिति** से वृद्धि होकर सु में **द्यौः**, अम् और शस् में आकार एकादेश आदि होकर इसके रूप बनते हैं- द्यौः, द्यावौ, द्यावः, द्याम्, द्यावौ, द्याः, द्यवा, द्योभ्याम्, द्योभिः आदि।

पुँल्लिङ्ग में गो-शब्द के रूप बनाये गये हैं। वह बैल का वाचक था। स्त्रीलिङ्ग में गो-शब्द गाय का वाचक है। इसके रूप भी पुँल्लिङ्ग की तरह ही होते हैं।

ऐकारान्त रै-शब्द के रूप पुँल्लिङ्ग की तरह ही बनते हैं। स्मरण रहे कि **रायो हलि** से हल् के परे होने पर आकार अन्तादेश होता है और अजादिविभक्ति के परे होने पर **एचोऽयवायावः** से **आय्** आदेश होता है।

औकारान्त नौ-शब्द के रूप भी पुँल्लिङ्ग में **ग्लौ-शब्द** की तरह होते हैं। स्मरण रहे कि **हलादिविभक्ति** के परे कोई प्रक्रिया नहीं होती और **अजादिविभक्ति** के परे **एचोऽयवायावः** से आव् आदेश होता है। **नौ नावौ नावः, नावम्, नावौ, नावः, नावा, नौभ्याम्, नौभिः** इत्यादि रूप बनते हैं।

इस प्रकार से अजन्तस्त्रीलिङ्ग के शब्दों का विवेचन संक्षिप्त रूप से किया गया। अब बारी है परीक्षा की। इससे पहले आपको स्मरण दिला दूँ कि **पाणिनीयाष्टाध्यायी** का पारायण तो नहीं छूटा है न! यदि अष्टाध्यायी के सारे सूत्र **लघुसिद्धान्तकौमुदी** पूर्ण करने के पहले ही कण्ठस्थ हो जायें तो बहुत बड़ी उपलब्धि होगी जिससे आपको

कौमुदी के अध्ययन के समय अष्टाध्यायी उलटनी नहीं पड़ेगी और श्रुत विषय समझ में भी आ जायेगा।

आप परीक्षा के लिए जुट गये होंगे। आपको उत्तीर्ण होने के लिए १०० में ७० अङ्क तो प्राप्त करने ही होंगे। ७० से ८० तक तृतीय-श्रेणी, ८० से ९० तक द्वितीय श्रेणी और ९० से १०० अङ्क तक प्रथम श्रेणी है। हमें आशा है कि आप प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने वाले प्रतिभावान् छात्र हैं।

जब आप मूल और टीका में बताये गये विषयों को अच्छी तरह समझ गये हैं तो स्वेच्छया परीक्षा देने के लिए तैयार हो जायें। सबसे पहले अपनी पूजनीय पुस्तक **लघुसिद्धान्तकौमुदी** को सुन्दर कपड़े से बाँधकर उसकी पूजा करें और दो दिन के लिए सुरक्षित रख दें। इसके बाद कम से कम पचास पृष्ठ की कापी लेकर आप बैठ जायें। प्रश्न लम्बे हैं, इस लिए पाँच घण्टे लगेंगे। अतः ढ़ाई-ढ़ाई घण्टे की दो पारियों में पूरा कर सकते हैं। जब अपना ही मूल्यांकन के आप कटिबद्ध हैं तो न तो परीक्षा में नकल करनी है और न ही किसी से पूछना है। हाँ तो, आत्मानुशासन के साथ परीक्षा में उत्तीर्ण होना आपका लक्ष्य होना चाहिए।

परीक्षा

सूचना- निम्नलिखित प्रश्न दस-दस अङ्क के हैं।

१- रमा-शब्द के किन्हीं दस रूपों की सिद्धि करें।
२- नदी-शब्द के किन्हीं दस रूपों की सिद्धि करें।
३- सर्वा-शब्द के किन्हीं दस रूपों की सिद्धि करें।
४- नदीसंज्ञा और घिसंज्ञा में क्या अन्तर है?
५- कुमारी, लता, कौमुदी, भामा, शर्वरी और द्रौपदी शब्द के पूरे रूप लिखें।
६- ङिद्विभक्ति के विषय में आप क्या जानते हैं?
७- अजन्त और हलन्त विभक्तियों के सम्बन्ध में बताइये।
८- **याडापः** और **सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च** की तुलना कीजिए।
९- किन-किन शब्दों से ङीप् और टाप् नहीं होते और क्यों?
१०- औङ् और आङ् का व्यवहार किन किन सूत्रों में हुआ है और उससे आप क्या समझते हैं?

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का अजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथाजन्त-नपुंसकलिङ्गाः

अमादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२३४. अतोऽम् ७।१।२४॥

अतोऽङ्गात् क्लीबात् स्वमोरम्। **अमि पूर्वः**। ज्ञानम्।

एङ्ह्रस्वादिति हल्लोपः। हे ज्ञान।

शी-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

२३५. नपुंसकाच्च ७।१।१९॥

क्लीबादौङः शी स्यात्। भसंज्ञायाम्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब क्रमप्राप्त **अजन्तनपुंसकलिङ्गी** शब्दों का विवेचन प्रारम्भ करते हैं। ये शब्द भी अकारान्तादि के क्रम से हैं। नपुंसकलिङ्ग में पुँल्लिङ्ग से ज्यादा अन्तर नहीं होता। प्रथमा में जैसे रूप बनते हैं वैसे ही द्वितीया विभक्ति में भी बनेंगे। तृतीया से सप्तमी तक लगभग पुँल्लिङ्ग के जैसे रूप होते हैं। जो विशेषता है, उसे इस प्रकरण में बताया जा रहा है।
२३४- **अतोऽम्**। अतः पञ्चम्यन्तम्, अम् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अङ्गस्य** का अधिकार तो है ही साथ ही **स्वमोर्नपुंसकात्** इस सम्पूर्ण की अनुवृत्ति आती है।

नपुंसकलिङ्ग अदन्त **अङ्ग से परे सु और अम् के स्थान पर अम् आदेश होता है।**

यह सूत्र स्वमोर्नपुंसकात् का बाधक है। उससे सम्पूर्ण **सु** और **अम्** का लुक् अर्थात् लोप प्राप्त था, किन्तु इस सूत्र से सु और अम् के स्थान पर अम् आदेश का विधान किया गया है। अम् यह आदेश अनेकाल् है। अतः **अनेकाल् शित्सर्वस्य** के नियम से सर्वादेश होता है अर्थात् सम्पूर्ण सु और अम् के स्थान पर **अम्** यह आदेश हो जाता है।

स्थानिवद्भाव होने से सु में विद्यमान विभक्तित्व अम् में भी आ जाता है। अतः **अम्** के **मकार** की इत्संज्ञा **न विभक्तौ तुस्माः** से निषिद्ध हो जाती है।

ज्ञानम्। ज्ञान-शब्द अकारान्त है और ज्ञान ही इसका अर्थ है। इससे प्रथमा का एकवचन सु आया और अनुबन्धलोप हुआ। **ज्ञान स्** में सु-सम्बन्धी सकार का **स्वमोर्नपुंसकात्** से लुक् प्राप्त था, उसे बाधकर **अतोऽम्** से अम् आदेश हुआ- **ज्ञान+अम्** बना। इस स्थिति में **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर **ज्ञानम्** यह रूप सिद्ध हुआ।
२३५- **नपुंसकाच्च**। नपुंसकात् पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **औङ आपः** से **औङः** की और **जशः शी** से **शी** की अनुवृत्ति आती है।

लोपविधायकं विधिसूत्रम्

२३६. यस्येति च ६।४।१४८॥

ईकारे तद्धिते च परे भस्येवर्णावर्णयोर्लोपः। इत्यल्लोपे प्राप्ते-

वार्तिकम्- **औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः।** ज्ञाने।

शि-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

२३७. जश्शसोः शिः ७।१।२०॥

क्लीबादनयोः शिः स्यात्।

सर्वनामस्थानसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

२३८. शि सर्वनामस्थानम् १।१।४२॥

'शि' इत्येतदुक्तसंज्ञं स्यात्।

नपुंसक अङ्ग से परे औ विभक्ति के स्थान में शी आदेश होता है।

केवल नपुंसकलिङ्ग में ही यह सूत्र लगता है।

२३६- **यस्येति च।** इश्च यश्च यम्, समाहारद्वन्द्वः, तस्य यस्य। यस्य षष्ठ्यन्तम्, ईति सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। नस्तद्धिते से **तद्धिते** और **अल्लोपो नः** से लोपः की अनुवृत्ति आती है। **भस्य** का अधिकार आ रहा है।

ईकार और तद्धित के परे होने पर भसंज्ञक इवर्ण और अवर्ण का लोप होता है।

नपुंसकाच्च से औ के स्थान पर किये गये शी के ईकार के परे रहते ज्ञान+ई में इससे अकार का लोप प्राप्त हो रहा था तो इसे रोकने के लिए अगला वार्तिक आता है। स्मरण रहे कि असर्वनामस्थान अजादि स्वादि के परे होने पर **यचि भम्** से भसंज्ञा होती है।

औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः। औङ् के स्थान पर किये गये शी के परे होने पर **यस्येति च** का निषेध कहना चाहिए अर्थात् अन्यत्र **यस्येति च** लोप करता है किन्तु औ के स्थान पर आदेश किये गये शी वाले ईकार के परे रहने पर लोप नहीं करता है।

ज्ञाने। ज्ञान-शब्द से प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में औ और औट् प्रत्यय आये। औट् में टकार की इत्संज्ञा और लोप हुआ। **ज्ञान+औ** में वृद्धि प्राप्त थी। उसे बाधकर सूत्र लगा- **नपुंसकाच्च।** इससे औ के स्थान पर शी आदेश हुआ। शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा हो गई और लोप हो गया। **ज्ञान+ई** में **यचि भम्** से **ज्ञान** की भसंज्ञा हो गई और **यस्येति च** से नकारोत्तरवर्ती अकार का लोप प्राप्त हुआ तो **औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः** से उसका निषेध हुआ। **ज्ञान+ई** में **आद्गुणः** से गुण होकर बना- **ज्ञाने।**

२३७- **जश्शसोः शिः।** जश्च शश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः, जश्शसौ, तयोः जश्शसोः। जश्शसोः षष्ठ्यन्तं, शिः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **स्वमोर्नपुंसकात्** से **नपुंसकात्** की अनुवृत्ति आती है।

नपुंसकलिङ्ग वाले शब्द से परे जस् और शस् विभक्ति के स्थान पर शि आदेश होता है।

नुमागमविधायकं विधिसूत्रम्

२३९. नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२।।

झलन्तस्याजन्तस्य च क्लीबस्य नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने।

परिभाषासूत्रम्

२४०. मिदचोऽन्त्यात्परः १।१।४७।।

अचां मध्ये योऽन्त्यस्तस्मात्परस्तस्यैवान्तावयवो मित् स्यात्।

उपधादीर्घः। ज्ञानानि। पुनस्तद्वत्। शेषं पुंवत्। एवं धनवनफलादयः।।

....

स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ से स्थानिवद्भाव होकर उस **शि** में भी प्रत्ययत्व आ जाता हैं अतः शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा हो जाती है।

२३८- **शि सर्वनामस्थानम्।** शि लुप्तप्रथमाकं, सर्वनामस्थानम् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

शि यह आदेश सर्वनामस्थानसंज्ञक होता है।

जो जस् और शस् के स्थान पर **शि** आदेश हुआ, उसकी सर्वनामस्थानसंज्ञा का विधान यह सूत्र करता है। नपुंसकलिङ्ग में **सुडनपुंसकस्य** से सर्वनामस्थानसंज्ञा की प्राप्ति ही नहीं थी और वैसे भी शस् की अन्यत्र कहीं भी सर्वनामस्थानसंज्ञा नहीं होती है सो नपुंसकलिङ्ग में जस् और शस् को अप्राप्त सर्वनामस्थानसंज्ञा का विधान इस सूत्र से हुआ। इसका फल आगे स्पष्ट होगा। हाँ, इतना जरूर ध्यान रखें कि किसी भी संज्ञा का कोई न कोई प्रयोजन अवश्य ही है।। **प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते।** प्रयोजन के विना तो मन्द अर्थात् बुद्धिहीन व्यक्ति भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता है तो यहाँ तो महामुनि पाणिनि जी का प्रश्न है। महाभाष्य में कहा गया है कि पाणिनि जी ने जो सूत्र आदि बनाये, उसमें एक अक्षर भी अनर्थक नहीं है अर्थात् व्यर्थ नहीं है। इतनी बड़ी संज्ञा का प्रयोजन क्या है, स्वयं आगे देखें।

२३९- **नपुंसकस्य झलचः।** झल् च अच् तयोः समाहारद्वन्द्वः, झलच्, तस्य झलचः। नपुंसकस्य षष्ठ्यन्तं, झलचः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इदितो नुम्धातोः** से **नुम्** की और **उगिदचां सर्वनामस्थाने चाऽधातोः** से **सर्वनामस्थाने** की अनुवृत्ति आती है।

सर्वनामस्थान के परे रहने पर नपुंसकलिङ्ग में विद्यमान झलन्त और अजन्त शब्दों को नुम् का आगम होता है।

२४०- **मिदचोऽन्त्यात्परः।** म् इत् यस्य स मित्, बहुव्रीहिः। मित् प्रथमान्तम्, अचः षष्ठ्यन्तम्, अन्त्यात् पञ्चम्यन्तं, परः प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

अचों के मध्य में जो अन्त्य अच् उससे परे उसका ही अन्तावयव होकर मित् आगम बैठता है।

जिस प्रकार से टित् और कित् होने पर **आद्यन्तौ टकितौ** यह सूत्र अन्त और आदि का अवयव होने का विधान करता था, उसी प्रकार यह सूत्र जो आगम मित् हो अर्थात् जिस आगम में मकार की इत्संज्ञा होती हो, ऐसा आगम, जिसको विधान किया गया है, उसमें जो अन्तिम अच् है, उसका अन्तिम अवयव होकर बैठे, ऐसा विधान करता है। यदि अन्त्य अच् के बाद यदि कोई हल् वर्ण हो तो अच् के बाद और हल् के पहले ही यह आगम बैठेगा। तात्पर्य हुआ कि जिस समुदाय को मित् आगम कहा जाये उस समुदाय में जितने अच्

हों, उनमें से अन्तिम अच् से परे मित् को रखना चाहिए तथा उस मित् को उस समुदाय का अन्तिम अवयव समझना चाहिए।

ज्ञानानि। ज्ञान-शब्द से प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में क्रमशः जस् और शस् प्राप्त हुए। जस् में जकार की **चुटू** से इत्संज्ञा और शस् में शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा हुई और दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हुआ। ज्ञान+अस् बना। अस् के स्थान पर **जश्शसोः शिः** से शि आदेश हुआ और शकार का **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा होकर **तस्य लोपः** से लोप हुआ। **ज्ञान+इ** बना। शि-सम्बन्धी इकार की **शि सर्वनामस्थानम्** से सर्वनामस्थानसंज्ञा हुई और सूत्र लगा- **नपुंसकस्य झलचः।** सर्वनामस्थान परे है इ, अजन्त नपुंसक शब्द है ज्ञान, अतः इस सूत्र से **ज्ञान** को नुम् का आगम हुआ। नुम् में मकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और उकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा हुई और दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हुआ। न् बचा है। अब यह न्. ज्ञान के आदि, मध्य या अन्त में कहाँ हो? यह सन्देह हुआ अर्थात् अनियम हुआ तो नियमार्थ परिभाषा सूत्र आया- **मिदचोऽन्त्यात् परः।** ज्ञान में अच् हैं ज्ञा में आकार और न में अकार, अन्त्य अच् है- न का अकार, अतः अन्त्य अच् न के अकार के बाद नुम् का **नकार** बैठ गया- **ज्ञान+न्+इ** बना। ज्ञानन् में अन्त्य वर्ण है **न्,** उससे पूर्व अल् है नकारोत्तरवर्ती अकार, उसकी **अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा** से उपधासंज्ञा हुई और **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** से दीर्घ हुआ- **ज्ञानान्+इ** बना। वर्णसम्मेलन होकर सिद्ध हुआ- **ज्ञानानि।**

इस प्रकार से प्रथमा और द्वितीया के एकवचन में सु और अम् के स्थान पर अम् आदेश होकर समान ही रूप बने। द्विवचन में भी दोनों के स्थान पर शी आदेश होकर समान रूप ही बने और बहुवचन में भी जस् और शस् के स्थान पर शि आदेश, सर्वनामस्थानसंज्ञा, नुम् आगम एवं उपधादीर्घ होकर समान ही रूप बने। इसीलिए प्रथमा के तीनों रूप सिद्ध करने के बाद मूल में कहा गया कि **पुनस्तद्वत्,** जैसे प्रथमा में बने फिर वैसे ही रूप द्वितीया में भी बनते हैं। जैसे प्रथमा में ज्ञानम्, ज्ञाने, ज्ञानानि रूप बने उसी तरह द्वितीया में भी ज्ञानम्, ज्ञाने, ज्ञानानि ही बनेंगे। समस्त नपुंसकप्रकरण में यही स्थिति रहेगी।

तृतीया से सप्तमी तक अकारान्त पुँल्लिङ्ग में जो रूप बनते हैं अकारान्त नपुंसक में भी वैसे रूप बनेंगे। यदि कथंचित् ज्ञान-शब्द पुँल्लिङ्ग में होता तो इसके तृतीया में रूप बनते- ज्ञानेन, ज्ञानाभ्याम्, ज्ञानैः। अब यह शब्द नपुंसक में है तो भी ज्ञानेन, ज्ञानाभ्याम्, ज्ञानैः ही बन रहे हैं। सम्बोधन में ज्ञानम् बनने के बाद मकार का **एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः** से लोप होता है और हे का पूर्वप्रयोग होता है- हे ज्ञान!। सम्बोधन के द्विवचन और बहुवचन में प्रथमा में जैसे रूप बनते हैं, वैसे ही यहाँ भी बनते हैं। यह नियम सर्वत्र है। इस प्रकार से ज्ञान-शब्द के रूप प्रथमा और द्वितीया में समान बने और तृतीया से सप्तमी तक पुँल्लिङ्ग की तरह ही बने।

अकारान्त नपुंसक ज्ञान-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि
द्वितीया	ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि
तृतीया	ज्ञानेन	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानैः
चतुर्थी	ज्ञानाय	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानेभ्यः
पञ्चमी	ज्ञानात्, ज्ञानाद्	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानेभ्यः

षष्ठी	ज्ञानस्य	ज्ञानयो:	ज्ञानानाम्
सप्तमी	ज्ञाने	ज्ञानयो:	ज्ञानेषु
सम्बोधन	हे ज्ञान।	हे ज्ञाने!	हे ज्ञानानि!

अब इसी प्रकार निम्नलिखित अकारान्त नपुंसक शब्दों के रूप जानें।

अक्षर=अकारादि वर्ण	अगार=घर	अघ=पाप
अङ्ग=अवयव	अमृत=अमृत	अम्भोज=कमल
अरण्य=जंगल	अरविन्द=कमल	अवसान=विराम
आनन=मुख	आसन=आसन	आस्य=मुख
इन्द्रिय=अंग	इन्धन=लकड़ी	उदक=जल
उदर=पेट	उद्यान=बगींचा	कनक=सुवर्ण
कमल=कमल	कार्य=काम	क्षेत्र=खेत
गौरव=प्रतिष्ठा	चन्दन=चन्दन	चरण=पैर
चामीकर=सोना	जठर=पेट	जल=पानी
तत्त्व=यथार्थ	तथ्य=यथार्थ	तैल=तेल
तोय=जल	दु:ख=दु:ख	दैव=भाग्य
द्वार=दरवाजा	धन=धन	नयन=नेत्र
नवनीत=माखन	नेत्र=आँख	पङ्कज=कमल
पत्र=पत्ता	पानीय=जल	पुष्प=फूल
फल=फल	बीज=कारण	भय=डर
भुवन=संसार	भोजन=भोजन	मन्दिर=मन्दिर
मित्र=मित्र	मुख=मुख	मूल्य=कीमत
मौन=चुप्पी	यन्त्र=यन्त्र	यौवन=जवानी
रजत=चान्दी	रत्न=मणि	रहस्य=गोप्य
राज्य=राज्य	लक्षण=लक्षण	लवण=नमक
लाघव= हलकापन	लालन=लाड़ करना	वचन=वचन
वन=जंगल	वाक्य=वाक्य	वाङ्मय=शास्त्र
वाद्य=बाजा	वासर=दिन	वाहन=सवारी
विवर=छिद्र	वीर्य=बल, पराक्रम	वृत्त=चरित्र
वेतन=तनख्वाह	वैर=दुश्मनी	शस्त्र=हथियार
शास्त्र=धर्मग्रन्थ	शैशव=बचपन	श्रवण=कान
सत्य=सच	सदन=घर	सरसिज=कमल
सादृश्य=समान दीखना	साधन=उपकरण	साहस=साहस
सिंहासन=राजगद्दी	सुख=सुख	सुवर्ण=सोना
सोपान=सीढ़ी	सौभाग्य=अच्छा भाग्य	स्तेय=चोरी
स्तोत्र=स्तुतिगीत	स्थान=जगह	हर्म्य=महल
हवन=होम	हाटक=सोना	हास्य=हँसी
हित=भलाई	हिम=बर्फ	हिरण्य=सुवर्ण
हृदय=दिल	हैयङ्गवीन=ताजामाखन	ज्ञान=ज्ञान

अदडादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२४१. अद्ड्-डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः ७।१।२५॥

एभ्यः क्लीबेभ्यः स्वमोरद्डादेशः स्यात्।

टेर्लोपविधायकं विधिसूत्रम्

२४२. टेः ६।४।१४३॥

डिति भस्य टेर्लोपः। कतरद्, कतरद्। कतरे। कतराणि। हे कतरत्। शेषं पुंवत्। एवं कतमत्। इतरत्। अन्यत्। अन्यतरत्। अन्यतमस्य तु अन्यतममित्येव।

वार्तिकम्- **एकतरात्प्रतिषेधो वक्तव्यः।** एकतरम्।

....

२४१- **अद्ड्-डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः।** डतर आदियेषां ते डतरादयः, बहुव्रीहिः। अद्ड् प्रथमान्तं, डतरादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, पञ्चभ्यः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **स्वमोर्नपुंसकात्** से वचनविपरिणाम करके **नपुंसकेभ्यः** और **स्वमोः** की अनुवृत्ति आती है।

डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर इन पाँच नपुंसक शब्दों से परे सु और अम् के स्थान पर अद्ड् आदेश होता है।

यह पहले भी बताया जा चुका है कि डतर और डतम आदि प्रत्यय हैं। प्रत्ययों के ग्रहण में तदन्त अर्थात् प्रत्ययान्त ग्रहण होता है। अतः डतर-डतम प्रत्ययान्त शब्दों का ग्रहण होगा। **अद्ड्** में **डकार** की इत्संज्ञा होती है। डकार की इत्संज्ञा होने से डित् हो गया है। डित् होने से **टेः** से टि का लोप किया जा सकता है।

२४२- **टेः।** टेः षष्ठ्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **ति विंशतेर्डिति** से **डिति** और **अल्लोपोऽनः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है। **भस्य** का अधिकार है।

डित् के परे होने पर भसंज्ञक अङ्ग के टि का लोप होता है।

कतरत्, कतरद्। किम्-शब्द से डतर प्रत्यय होकर **कतर** बना है। उससे सु प्रत्यय, उसके स्थान पर **अतोऽम्** से **अम्** आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर के **अद्ड्-डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः** से **अद्ड्** आदेश हुआ। अनुबन्धलोप होने के बाद **कतर+अद्** बना। कतर में रकारोत्तरवर्ती अकार की **अचोऽन्त्यादि टि** से टिसंज्ञा हुई, उसका **टेः** से लोप हुआ, **कतर्+अद्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **कतरद्** बना। अवसान के परे होने पर **वावसाने** से दकार के स्थान पर वैकल्पिक चर्त्व हुआ- **कतरत्।** चर्त्व न होने के पक्ष में **कतरद्।** इसी तरह **अम्** में भी बनता है।

कतरे। कतर-शब्द से प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में औ और औट् प्रत्यय आये। औट् में टकार की इत्संज्ञा और लोप हुआ। **कतर+औ** में वृद्धि प्राप्त थी। उसे बाध कर सूत्र लगा- **नपुंसकाच्च।** इससे औ के स्थान पर शी आदेश हुआ। शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा हो गई और लोप हो गया। **कतर+ई** में **यचि भम्** से पूर्व की भसंज्ञा हो गई और **यस्येति च** से रकारोत्तरवर्ती अकार का लोप प्राप्त हुआ तो **औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः** से उसका निषेध हुआ। **करत+ई** में **आद्गुणः** से गुण होकर **कतरे** सिद्ध हुआ।

ह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्

२४३. ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य १।२।४७।।

अजन्तस्येत्येव। श्रीपं ज्ञानवत्।

....

कतराणि। कतर-शब्द से प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में क्रमशः जस् और शस् प्राप्त हुए। **ज्ञानानि** की तरह अस् के स्थान पर **जश्शसोः शिः** से शि आदेश, अनुबन्धलोप करके **कतर+इ** बना। **शि सर्वनामस्थानम्** से सर्वनामस्थानसंज्ञा और **नपुंसकस्य झलचः**। नुम् का आगम, **मिदचोऽन्त्यात् परः** की सहायता से अन्त्य अच् र के अकार के बाद नुम् का **नकार** बैठ गया- **कतर+न्+इ** बना। कतर+न् में अन्त्य वर्ण **है न्**, उससे पूर्व अल् है रकारोत्तरवर्ती अकार, उसकी **अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा** से उपधासंज्ञा हुई और **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** से दीर्घ हुआ- **कतरान्+इ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **कतरानि** बना। रेफ से परे नकार को णत्व होकर **कतराणि** सिद्ध हुआ।

हे कतरत्। सम्बोधन के सु के स्थान पर अद्ड् आदेश करके हे का पूर्वप्रयोग करने पर **हे कतरत्, हे कतरद्** ये रूप बन जाते हैं।

शेष रूप पुँल्लिङ्ग की तरह अर्थात् सर्वशब्द की तरह समझना चाहिए। कतरेण, कतरस्मै, कतरस्मात् इत्यादि। इसी तरह कतमत्-कतमद्, कतमे, कतमानि। अन्यत्-अन्यद्, अन्ये, अन्यानि। अन्यतरत्-अन्यतरद्, अन्यतरे, अन्यतराणि। इतरत्-इतरद् इतरे, इतराणि आदि भी समझने चाहिए। अन्यतम शब्द डतरादि पाँच में नहीं आता है, अतः अद्ड् आदेश नहीं होता। इसलिए **ज्ञानम्** की तरह **अन्यतमम्** बनेगा।

एकतरात्प्रतिषेधो वक्तव्यः। यह वार्तिक है। **एकतर शब्द से परे सु और अम् के स्थान पर अद्ड् आदेश का निषेध कहना चाहिए**। डतर-प्रत्ययान्त होने के कारण **एकतर** से भी अद्ड् आदेश प्राप्त था, उसका यह वार्तिक निषेध करता है। अतः सु और अम् में **ज्ञानम्** की तरह **एकतरम्** बनता है। शेष रूप **कतर** की तरह बनते हैं।

२४३- **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य**। ह्रस्वः प्रथमान्तं, नपुंसके सप्तम्यन्तं, प्रातिपदिकस्य षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

नपुंसकलिङ्ग में अजन्त प्रातिपदिक को ह्रस्व होता है।

जहाँ पर भी ह्रस्व, दीर्घ या प्लुत का विधान किया जाता है, वहाँ पर **अचश्च** इस परिभाषा सूत्र से **अचः** यह पद आता है। इस सूत्र में भी वह पद आया और नियम किया कि अजन्त को ही ह्रस्व हो। **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से अन्त्य वर्ण को ह्रस्व होता है।

श्रीपं ज्ञानवत्। श्रीप= लक्ष्मी की रक्षा करने वाला कुल। विश्वपा की तरह **श्रियं पातीति, श्रीपा**। श्रीपूर्वक पा धातु है। उसके पुँल्लिङ्ग में विश्वपा की तरह ही रूप बनते हैं किन्तु नपुंसकलिङ्ग में **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** से पा के आकार को ह्रस्व होकर **श्रीप** बना। इस तरह श्रीपा शब्द ज्ञान की तरह अदन्त बन गया। अतः श्रीप के रूप भी ज्ञान की तरह श्रीपम्, श्रीपे, श्रीपाणि, श्रीपम्, श्रीपे, श्रीपाणि, श्रीपेण, श्रीपाभ्याम्, श्रीपैः आदि होते हैं।

लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

२४४. स्वमोर्नपुंसकात् ७।१।२३।।

लुक् स्यात्। वारि।

नुमागमविधायकं विधिसूत्रम्

२४५. इकोऽचि विभक्तौ ७।१।७३।।

इगन्तस्य क्लीबस्य नुमचि विभक्तौ। वारिणी। वारीणि।

न लुमतेत्यस्यनित्यत्वात्पक्षे सम्बुद्धिनिमित्तो गुणः। हे वारे, हे वारि।

आङो नाऽस्त्रियाम्- वारिणा। **घेर्ङितीति** गुणे प्राप्ते-

वार्तिकम्- **वृद्ध्यौत्त्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन।**

वारिणा। वारिणे। वारिणः। वारिणोः। नुमचिरेति नुट्। वारीणाम्।

वारिणि। हलादौ हरिवत्।

....

२४४- स्वमोर्नपुंसकात्। सुश्च अम्, तयोरितरेतरद्वन्द्वः, स्वमौ, तयोः स्वमोः। स्वमोः षष्ठ्यन्तं, नपुंसकात् पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **षड्भ्यो लुक्** से **लुक्** की अनुवृत्ति आती है।

नपुंसक से परे सु और अम् का लुक् होता है।

लुक् भी लोप जैसा ही है किन्तु लुक् होने पर भी जिसका लुक् हुआ, उसे मानकर होने वाले कार्य नहीं होते हैं अर्थात् लुक् का अर्थ भी अदर्शन ही है किन्तु लोप और लुक् आदि में अन्तर यह है कि लोप होने के पहले जो कार्य होते थे वे कार्य लोप हो जाने के बाद भी **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** के बल पर हो जाते हैं किन्तु प्रत्यय आदि के लुक् होने से पहले जो अङ्गसम्बन्धी कार्य होते थे वे कार्य लुक् आदि होने के बाद नहीं होते हैं। प्रत्ययलक्षण के लिए सूत्र है- **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्।** इसका अर्थ है प्रत्यय का लोप होने पर भी उसे मानकर होने वाले कार्य हों। इसके बाद इसका निषेध सूत्र है- **न लुमताङ्गस्य।** यह लुक् आदि होने पर पूर्व सूत्र का निषेध करता है।

वारि। जल। अब इकारान्त शब्दों का विवेचन शुरू हो जाता है। वारि इकारान्त है। इससे प्रथमा का एकवचन सु आया, अनुबन्धलोप हुआ। **वारि+स्** में सु वाले सकार का **स्वमोर्नपुंसकात्** से लुक् हुआ। इसी प्रकार द्वितीया के एकवचन में प्राप्त अम् का भी इसी सूत्र से लुक् होकर **वारि** ही बना।

२४५- इकोऽचि विभक्तौ। इकः षष्ठ्यन्तम्, अचि सप्तम्यन्तं, विभक्तौ सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **नपुंसकस्य झलचः** से **नपुंसकस्य** की और **इदितो नुम् धातोः** से **नुम्** की अनुवृत्ति आती है।

इगन्त नपुंसक अङ्ग को नुमागम होता है, अजादि विभक्ति के परे रहते।

इस सूत्र के द्वारा इगन्त शब्द को नुम् आगम होता है। नुम् में मकार और उकार इत्संज्ञक हैं। केवल न् बचता है। मकार की इत्संज्ञा होने के कारण यह मित् हुआ। **मिदचोऽन्त्यात्परः** के सहयोग से यह अन्त्य अच् के बाद ही बैठेगा।

वारिणी। वारि शब्द से प्रथमा के द्विवचन में औ आया और उसके स्थान पर

नपुंसकाच्च से शी आदेश हुआ, अनुबन्धलोप हुआ- **वारि+ई** बना। इसके बाद सूत्र लगा- **इकोऽचि विभक्तौ**। नपुंसक है ही, इक् प्रत्याहार का वर्ण वारि में इकार तथा अजादि विभक्ति है औ। अतः नुम् आगम हुआ, अनुबन्धलोप होने के बाद मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात्परः** के नियम से अन्त्य अच् वारि में इकार के बाद न् बैठा- **वारि+न्+ई** हुआ, वर्णसम्मेलन हुआ- **वारिनी** बना, **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व हुआ- **वारिणी** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार द्वितीया के द्विवचन में भी बनेगा।

वारीणि। प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में क्रमशः जस् और शस् विभक्ति, अनुबन्धलोप, **वारि+अस्** में अस् के स्थान पर **जश्शसोः शिः** से शि आदेश, शकार की इत्संज्ञा, लोप, **शि सर्वनामस्थानम्** से सर्वनामस्थानसंज्ञा, **वारि+इ** में **इकोऽचि विभक्तौ** से नुम्, **वारि+न्+इ=वारिन्** में रि के इकार की उपधासंज्ञा और **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** से उसको उपधादीर्घ, **वारीन्** इ, वर्णसम्मेलन **वारीनि**, णत्व, **वारीणि**।

न लुमतेत्यस्यानित्यत्वात्पक्षे सम्बुद्धिनिमित्तो गुणः। हे वारे, हे वारि। प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः, प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् और **न लुमताङ्गस्य** का स्मरण करें। प्रत्यय का लोप होने पर भी प्रत्यय को निमित्त मानकर होने वाले कार्य हो जाते हैं, यह कथन **प्रत्ययलोपे प्रत्ययंलक्षणम्** का है किन्तु लुक्, श्लु, लुप् के द्वारा लोप होने पर प्रत्यय को निमित्त मानकर अङ्गसम्बन्धी कार्य नहीं हो सकता, यह निषेध है। सम्बोधन के सु के स्थान पर भी अम् आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर **स्वमोर्नपुंसकात्** से लुक् होकर वारि रह गया। अब प्रत्ययलक्षण से सम्बुद्धि मानकर **ह्रस्वस्य गुणः** से गुण प्राप्त होता है किन्तु **न लुमताङ्गस्य** से निषेध हो जाने के कारण प्रत्ययलक्षणाश्रित अङ्गकार्य नहीं हुआ अर्थात् वारि के इकार को गुण नहीं हो सका। किन्तु महाभाष्यकार पतञ्जलि विविध कारणों से **न लुमताङ्गस्य** को अनित्य मानते हैं। कहीं होता है और कहीं नहीं होता है, अर्थात् कहीं निषेध प्रवृत्त होता है और कहीं नहीं। अतः अनित्य हुआ। यहाँ पर भी अनित्य मानने के पक्ष में निषेध नहीं हुआ तो **ह्रस्वस्य गुणः** से वारि के इकार को गुण होकर **वारे+स्** बना। इस तरह **वारे+स्** और **वारि+स्** दोनों स्थिति में **एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्ध** से हल् का लोप होकर, हे का पूर्वप्रयोग करके **हे वारे, हे वारि** दो रूप बने।

वारिणा। तृतीया के एकवचन में टा, अनुबन्धलोप, **वारि+आ** में **इकोऽचि विभक्तौ** से नुम् प्राप्त हुआ किन्तु पर सूत्र होने के कारण **आङो नाऽस्त्रियाम्** से ना आदेश होकर **वारि+ना** बना और णत्व होकर **वारिणा**।

हलादिविभक्ति में नुम् प्राप्त नहीं है, अतः हरिशब्द की तरह ही रूप बनते हैं।

वारिभ्याम्। तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी के द्विवचन में भ्याम् विभक्ति आकर वारि से जुड़ जाता है- **वारिभ्याम्**।

वारिभिः। तृतीया के बहुवचन में भिस् आया, जुड़ गया और सकार का रुत्वविसर्ग हुआ- **वारिभिः**।

वृद्ध्यौत्त्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन। यह वार्तिक है। **पूर्वविप्रतिषेध से वृद्धि, औत्त्व, तृज्वद्भाव और गुण से पहले नुम् का आगम होता है।** तात्पर्य यह है कि एकसाथ **अचो ञ्णिति** से वृद्धि और **इकोऽचि विभक्तौ** से नुम्, **अच्च घेः** से औत्त्व और इससे नुम्, **तृज्वत्क्रोष्टुः** से तृज्वद्भाव और इससे नुम् तथा **घेर्ङिति** से गुण और **इकोऽचि विभक्तौ** से नुम् प्राप्त होने पर **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** के नियम से पूर्व नुम् कार्य

को बाधकर परकार्य वृद्धि आदि प्राप्त हो रहे थे तो वार्तिककान ने वार्तिक बनाकर यह निर्णय दिया कि वृद्धि आदि और नुम् एकसाथ प्राप्त होकर विप्रतिषेध होने पर पहले नुम् का आगम ही करना चाहिए। यहाँ **वारि**-शब्द से ङे के परे होने पर **घेर्ङिति** से गुण और **इकोऽचि विभक्तौ** से नुम् एकसाथ प्राप्त होने पर परकार्य गुण ही प्राप्त हो रहा था। इस वार्तिक के नियम से पहले नुम् होगा।

वारिणे। वारि से चतुर्थी का एकवचन ङे, अनुबन्धलोप, **वारि+ए**, नुम्, णत्व, वर्णसम्मेलन, **वारिणे**।

वारिभ्यः। चतुर्थी एवं पञ्चमी का बहुवचन भ्यस् आया, जुड़ गया, सकार का रुत्वविसर्ग हुआ- **वारिभ्यः**।

वारिणः। पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में ङसि और ङस्, अनुबन्धलोप, **वारि+अस्** में नुम्, णत्व, वर्णसम्मेलन, वारिणः।

वारिणोः। षष्ठी और सप्तमी का द्विवचन ओस् आया, **वारि+ओस्** में नुम्, करके **वारिन्+ओस्** बना। णत्व, वर्णसम्मेलन, सकार का रुत्वविसर्ग, **वारिणोः**।

नुमचिरेति नुट्। षष्ठी के बहुवचन आम् के आने पर **वारि+आम्** में **ह्रस्वनद्यापो नुट्** से नुट् प्राप्त और **इकोऽचि विभक्तौ** से नुम् प्राप्त हुआ तो पर होने से इससे नुट् को बाधकर नुम् होना चाहिए था, किन्तु **नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन** के नियम से नुट् ही हुआ। **वारि+न्+आम्** में **नामि** से दीर्घ होकर णत्व भी होगा- **वारीणाम्**। यद्यपि **नुम्** और **नुट्** दोनों में अनुवन्धलोप होने के बाद न् ही शेष रहता है, फिरभी नुट् आम् को होता है और टित् होने के कारण उसके आदि में बैठता है और नुम् इगन्त को होता है और मित् होने के कारण अन्त्य अच् के बाद बैठता है। नुम् होने पर पूर्व में अजन्त अङ्ग और उससे परे **नाम्** भी नहीं मिलेगा और **नामि** से दीर्घ नहीं हो पायेगा। अतः **वारिणाम्** ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगेगा। नुट् आम् को ही होता है, पूर्व में **वारि** अजन्त अङ्ग और नाम् परे मिलेगा। अतः **नाम्** के परे रहते दीर्घ होकर **वारीणाम्** यह रूप सिद्ध होता है।

वारिणि। वारि से सप्तमी के एकवचन में ङि, अनुबन्धलोप, नुम्, वर्णसम्मेलन, णत्व, **वारिणि**।

वारिषु। सप्तमी के बहुवचन में सुप्, पकार का लोप, **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व होकर **वारिषु** बन जाता है।

इकारान्त नपुंसक वारि-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वारि	वारिणी	वारीणि
द्वितीया	वारि	वारिणी	वारीणि
तृतीया	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
चतुर्थी	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
पञ्चमी	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
षष्ठी	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
सप्तमी	वारिणि	वारिणोः	वारिषु
सम्बोधन	हे वारे, हे वारि	हे वारिणी	हे वारीणि

अनङ्-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

२४६. अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः ७।१।७५।।

एषामनङ् स्याट्टादावचि।

अल्लोपविधायकं विधिसूत्रम्

२४७. अल्लोपोऽनः ६।४।१३४।।

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपः। दध्ना। दध्ने। दध्नः। दध्नः। दध्नोः। दध्नोः।

....

वारिशब्द की तरह रूप चलने वाले प्रचलित शब्द कम ही हैं। उकारान्त अनेक शब्द मिलते हैं। उकारान्त शब्दों से भी **इकोऽचि विभक्तौ** से नुम् होता है। यह आगे स्पष्ट हो जायेगा।

दधि। दधिनी। दधीनि। (दही) दधि शब्द से प्रथमा और द्वितीया में वारि-शब्द की तरह रूप बनते हैं और तृतीया आदि अजादि विभक्ति में भिन्न रूप बनाने के लिए निम्न सूत्र प्रवृत्त होता है।

२४६- **अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः।** अस्थि च दधि च सक्थि च अक्षि च तेषामितरेतरद्वन्द्वः, अस्थिदधिसक्थ्यक्षीणि, तेषाम् अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम्। अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णाम् षष्ठ्यन्तम्, अनङ् प्रथमान्तम्, उदात्तः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **इकोऽचि विभक्तौ** से **विभक्तौ** और **अचि** इन दो पदों का वचनविपरिणाम करके **अक्षु** और **विभक्तिषु** की तथा **तृतीयादिषु भाषितपुस्कं पुंवद् गालवस्य** से **तृतीयादिषु** की अनुवृत्ति आती है।

तृतीयादि अजादि विभक्ति के परे होने पर अस्थि, दधि, सक्थि और अक्षि शब्द को अनङ् आदेश होता है।

अनङ् में नकारोत्तरवर्ती अकार और ङकार की इत्संज्ञा होती है। अन् शेष रहता है। ङित् होने के कारण **ङिच्च** से अन्त्य वर्ण इकार के स्थान पर ही यह आदेश होता है। टा से सुप् तक तृतीयादि विभक्ति हैं, उसमें भी यह अजादिविभक्ति के परे होने पर ही प्रवृत्त होता है।

२४७- **अल्लोपोऽनः।** अत् लुप्तषष्ठीकं पदं, लोपः प्रथमान्तम्, अनः षष्ठ्यन्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **भस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है। **भसंज्ञा** असर्वनामस्थान यजादि और स्वादि के परे होने पर पूर्व की होती है।

सर्वनामस्थान भिन्न यकारादि और अजादि स्वादि प्रत्यय के परे होने पर अङ्ग का अवयव जो अन्, उसके अकार का लोप होता है।

भस्य से सर्वनामस्थान भिन्न यकारादि, अजादि स्वादि प्रत्ययों का आक्षेप होता है। उनके परे रहने पर ही यह सूत्र लगेगा। इससे अनङ् आदेश वाले अकार का लोप हो जाता है।

दध्ना। दधि से टा, दधि+आ है। **अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः** से अनङ् आदेश होकर **दध्+अन्+आ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **दधन्+आ** बना।। **अल्लोपोऽनः** से धकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ। **दध्+न्+आ** बना। पुनः वर्णसम्मेलन होकर **दध्ना** सिद्ध हुआ। इसी तरह **दधि+ए, दध्+अन्+ए=दधन्+ए, दध्+न्+ए=दध्ने।** **दधि+अस्, दध्+अन्+अस्,**

ईकारान्त भाषितपुंस्क सुधी-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुधि	सुधिनी	सुधीनि
द्वितीया	सुधि	सुधिनी	सुधीनि
तृतीया	सुधिया, सुधिना	सुधिभ्याम्	सुधिभिः
चतुर्थी	सुधिये, सुधिने	सुधिभ्याम्	सुधिभ्यिः
पञ्चमी	सुधियः, सुधिनः	सुधिभ्याम्	सुधिभ्यिः
षष्ठी	सुधियः, सुधिनः	सुधियोः, सुधिनोः	सुधियाम्, सुधीनाम्
सप्तमी	सुधियि, सुधिनि	सुधियोः, सुधिनोः	सुधिषु
सम्बोधन	हे सुधे, हे सुधि	हे सुधिनी	हे सुधीनि

अब उकारान्त नपुंसक मधु आदि शब्दों के रूपों को भी **वारि**-शब्द की तरह बनाने का प्रयत्न करें। वारि और मधु शब्द के रूपों में अन्तर केवल इतना ही है कि वारि-शब्द के बाद किये गये नुम् के नकार का रेफ से परे होने के कारण णत्व हो जाता है किन्तु मधु के बाद वाले नुम् के नकार का रेफ या मूर्धन्य षकार से परे न होने के कारण णत्व नहीं होता। मधु=शहद।

उकारान्त नपुंसकलिङ्ग मधु-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मधु	मधुनी	मधूनि
द्वितीया	मधु	मधुनी	मधूनि
तृतीया	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
चतुर्थी	मधुने	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
पञ्चमी	मधुनः	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
षष्ठी	मधुनः	मधुनोः	मधूनाम्
सप्तमी	मधुनि	मधुनोः	मधुषु
सम्बोधन	हे मधो, हे मधु	हे मधुनी	हे मधूनि

अब मधु शब्द की तरह चलने वाले निम्नलिखित शब्दों के भी रूप भी बनाने का प्रयत्न करें।

अम्बु=जल अश्रु=आँसू उडु=तारा
जतु=लाख जानु=घुटना तनु=पतला
तालु=दाँतों के पीछे मुख की खुरदरी छत त्रपु=पिघलने वाला सीसा,
दारु=लकड़ी वसु=धन लघु=छोटा
वस्तु=पदार्थ श्मश्रु=दाड़ी सानु=पर्वत की चोटी

सुष्ठु लुनातीति सुलु। सु+लू इसके अजन्त होने के कारण नपुंसक में **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** से **ह्रस्व** होकरह **सुलु** बनता है। जो अच्छी तरह से काटता है, उसे सुलु कहते हैं। शस्त्र। विशेष्यनिघ्न होने के कारण इसके रूप तीनों लिङ्ग में चलते हैं। एक अर्थ विशेष को लेकर तीनों लिङ्गों में होने के कारण प्रवृत्तिनिमित्त एक हुआ। इस लिए पुंवद्भाव होगा। पुँल्लिङ्ग में **ओः सुपि** से यण् होकर **सुलूः, सुल्वौ, सुल्वः** रूप बनते हैं।

नपुंसकलिङ्ग में भी तृतीयादि अजादिविभक्ति के परे होने पर पुंवद्भाव होकर यण् वाला एक रूप और पुंवद्भाव न होने के पक्ष में नुम् वाला रूप होगा।

उकारान्त भाषितपुंस्क सुलू-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुलु	सुलुनी	सुलूनि
द्वितीया	सुलु	सुलुनी	सुलूनि
तृतीया	सुल्वा, सुलुना	सुलुभ्याम्	सुलुभिः
चतुर्थी	सुल्वे, सुलुने	सुलुभ्याम्	सुलुभ्यः
पञ्चमी	सुल्वः, सुलुनः	सुलुभ्याम्	सुलुभ्यः
षष्ठी	सुल्वः, सुलुनः	सुल्वोः, सुलुनोः	सुल्वाम्, सुलूनाम्
सप्तमी	सुल्वि, सुलुनि	सुल्वोः, सुलुनोः	सुलुषु
सम्बोधन	हे सुलो, हे सुलु	हे सुलुनी	हे सुलूनि

इसी तरह निम्नलिखित भाषितपुंस्क शब्दों के रूप बनाइये। अन्तर यह होता है कि यह उकारान्त धातु नहीं है तो पुँल्लिङ्ग में **ओः सुपि** से यण् नहीं होगा अपितु भानु-शब्द की तरह रूप बनेंगे। पुंवद्भाव न होने के पक्ष में मधु-शब्द की तरह रूप होंगे।

ऋजु=सरल	कटु=तीता	गुरु=भारी
पटु=चतुर	मृदु=कोमल	विभु=व्यापक
साधु=सरल, अच्छा	स्वादु=स्वादिष्ट	

उकारान्त शब्दों के विवेचन के बाद ऋकारान्त नपुंसक शब्दों का वर्णन कर रहे हैं।

धातृ। धारण करने वाला कुल। यह शब्द धारण करना अर्थ में पुँल्लिङ्ग में प्रयुक्त हो चुका है और उसी अर्थ को लेकर नपुंसकलिङ्ग में भी प्रवृत्त है। अतः प्रवृत्तिनिमित्त एक ही हुआ और भाषितपुंस्क भी। इसलिए तृतीयादि अजादि विभक्ति के परे होने पर विकल्प से पुंवद्भाव होकर दो-दो रूप बनेंगे। पुँल्लिङ्ग में तृतीयादि अजादि विभक्ति के परे यण् होता है और यहाँ नुम्।

ऋकारान्त भाषितपुंस्क धातृ-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धातृ	धातृणी	धातृणि
द्वितीया	धातृ	धातृणी	धातृणि
तृतीया	धात्रा, धातृणा	धातृभ्याम्	धातृभिः
चतुर्थी	धात्रे, धातृणे	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
पञ्चमी	धातुः, धातृणः	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
षष्ठी	धातुः, धातृणः	धात्रोः, धातृणोः	धातृणाम्
सप्तमी	धातरि, धातृणि	धात्रोः, धातृणोः	धातृषु
सम्बोधन	हे धातः, हे धातृ	हे धातृणी	हे धातृणि

इसी तरह **ज्ञातृ, कर्तृ, वक्तृ, श्रोतृ** आदि शब्दों के रूप भी समझें।

ऋकारान्त शब्दों के बाद अब ओकारान्त शब्द का विवेचन करते हैं।

नियमसूत्रम्

२५०. एच इग्घ्रस्वादेशे १।१।४८॥

आदिश्यमानेषु ह्रस्वेषु एच इगेव स्यात्।

प्रद्यु। प्रद्युनी। प्रद्यूनि प्रद्युनेत्यादि। प्ररि। प्ररिणी। प्ररीणि। प्ररिणा।

एकदेशविकृतमनन्यवत्। प्रराभ्याम्। प्ररीणाम्।

सुनु। सुनुनी। सुनूनि। सुनुनेत्यादि।

इत्यजन्तनपुंसकलिङ्गाः॥७॥

....

२५०- एच इग्घ्रस्वादेशे। ह्रस्वस्य आदेशः=ह्रस्वादेशः, तस्मिन् ह्रस्वादेशे, षष्ठीतत्पुरुषः। एचः षष्ठ्यन्तम्, इक् प्रथमान्तं, ह्रस्वादेशे सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

एचों के स्थान पर यदि ह्रस्व का विधान हो तो इक् रूप ही ह्रस्व होता है। ऐसा इसलिए कहना पड़ा कि एच् का ह्रस्व वर्ण ही नहीं होता है। यदि एच् को ह्रस्व करना हो तो कौन सा वर्ण हो? इस पर यह सूत्र नियम कर देता है कि एच् के स्थान पर **स्थानेऽन्तरतमः** की सहायता से स्थान से मिलता जुलता **इक्** आदेश हो। एच् में ए, **ओ, ऐ, औ** ये चार हैं और ह्रस्व वर्ण **अ, इ, उ, ऋ,** लृ पाँच हैं। समसंख्या न होने कारण **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** की प्रवृत्ति नहीं होती है। अतः स्थान से मिलाने पर ए-एं स्थान पर **इ** और **अ** एवं **ओ-औ** के स्थान पर **उ** और **अ** आदेश प्राप्त हो जाते हैं। उसमें यह सूत्र नियम करता है कि **इक्** ही आदेश हो न कि **अ।**

प्रकृष्टा द्यौर्यस्मिन् दिने, तद् (दिनम्) प्रद्यु। बादल आदि रहित स्वच्छ आकाश वाला दिन। केवल द्यो शब्द तो पुँल्लिङ्ग में ही होता है किन्तु प्र-पूर्वक द्यो शब्द नपुंसक है। अतः **प्रद्यो** को **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** से ह्रस्व का विधान हुआ तो **एच इग्घ्रस्वादेशे** के नियम से **स्थानेऽन्तरतमः** की सहायता से **प्रद्यो** के **ओकार** के स्थान पर उकार आदेश हुआ तो **प्रद्यु** बना। अब इसके रूप उकारान्त **मधु**-शब्द की तरह बन जाते हैं।

ओकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रद्यो-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्रद्यु	प्रद्युनी	प्रद्यूनि
द्वितीया	प्रद्यु	प्रद्युनी	प्रद्यूनि
तृतीया	प्रद्युना	प्रद्युभ्याम्	प्रद्युभिः
चतुर्थी	प्रद्युने	प्रद्युभ्याम्	प्रद्युभ्यः
पञ्चमी	प्रद्युनः	प्रद्युभ्याम्	प्रद्युभ्यः
षष्ठी	प्रद्युनः	प्रद्युनोः	प्रद्यूनाम्
सप्तमी	प्रद्युनि	प्रद्युनोः	प्रद्युषु
सम्बोधन	हे प्रद्यो!, हे प्रद्यु	हे प्रद्युनी	हे प्रद्यूनि!

प्ररि। प्रकृष्टो राः-धनं यस्य कुलस्य तत् कुलं **प्ररि।** जिसमें विपुल धन हो, ऐसा कुल। पुँल्लिङ्ग में रै-शब्द है तो नपुंसकलिङ्ग में प्र-पूर्वक रै-शब्द। रै धन का वाचक है तो

प्रै विपुल धन वाले कुल का। नपुंसक में जब प्रै बना तो **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** से **एच इग्घ्रस्वादेशे** के नियमानुसार **ऐ** के स्थान पर **इ** रूप ह्रस्व हुआ, **प्ररि** बना। अब उससे सु आदि प्रत्यय आते हैं। प्ररि बनने के बाद यह वारि शब्द की तरह हुआ अर्थात् अजादिविभक्ति के परे रहते **वारि** की तरह इसके रूप बनते हैं किन्तु प्रै जब **प्ररि** बन गया तो भी **एकदेशविकृतन्यायेन** भ्याम्, भिस्, भ्यस्, सुप् इन हलादिविभक्तियों के परे होने पर **रायो हलि** से आकार आदेश होकर **प्राभ्याम्, प्राभिः** बनते हैं।

ऐकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रै-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्ररि	प्ररिणी	प्रीणि
द्वितीया	प्ररि	प्ररिणी	प्रीणि
तृतीया	प्ररिणा	प्राभ्याम्	प्राभिः
चतुर्थी	प्ररिणे	प्राभ्याम्	प्राभ्यः
पञ्चमी	प्ररिणः	प्राभ्याम्	प्राभ्यः
षष्ठी	प्ररिणः	प्ररिणोः	प्रीणाम्
सप्तमी	प्ररिणिं	प्ररिणोः	प्रासु
सम्बोधन	हे प्ररे!, हे प्ररि	हे प्ररिणी	हे प्रीणि!

सुनु। सुष्ठु नौर्यस्य तत् कुलम्, सुनु। सुन्दर नौका वाला कुल। **स्त्रीलिङ्ग** में औकारान्त **नौ**-शब्द रूप बनाये गये थे। जब सु का नौ के साथ समास हुआ और विशेष्य के अनुसार सुनौ शब्द शब्द का प्रयोग नपुंसक लिङ्ग में हुआ तो औकार को **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** से ह्रस्व हुआ। **एच इग्घ्रस्वादेशे** के नियम से औकार को ह्रस्व इक् के रूप में **उ** हुआ तो उकारान्त **सुनु** शब्द बना। इस तरह इसके रूप मधु-शब्द की तरह बनेंगे।

औकारान्त नपुंसकलिङ्ग सुनौ-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुनु	सुनुनी	सुनूनि
द्वितीया	सुनु	सुनुनी	सुनूनि
तृतीया	सुनुना	सुनुभ्याम्	सुनुभिः
चतुर्थी	सुनुने	सुनुभ्याम्	सुनुभ्यः
पञ्चमी	सुनुनः	सुनुभ्याम्	सुनुभ्यः
षष्ठी	सुनुनः	सुनुनोः	सुनूनाम्
सप्तमी	सुनुनि	सुनुनोः	सुनुषु
सम्बोधन	हे सुनो!, हे सुनु!	हे सुनुनी	हे सुनूनि!

अब इसके बाद बारी है परीक्षा की। प्रत्येक प्रश्न के दस-दस अंक होंगे। आजतक परीक्षा की जो नियमावली आप को अपनाने के लिए बताई गई थी, उनका पालन यहाँ भी करना है। पुस्तक की पूजा करने के बाद आप परीक्षा में बैठेंगे। आज की परीक्षा दो घण्टे में पूरी होगी। ७० प्रतिशत अंक प्राप्त करने पर तृतीय श्रेणी, अस्सी प्रतिशत अंकों में द्वितीय श्रेणी और नब्बे प्रतिशत अंक मिलने पर प्रथम श्रेणी मानी जायेगी।

हम बार-बार छात्रों को यह निर्देश दे रहे हैं कि **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** के विना व्याकरण का ज्ञान अपूर्ण है और उक्त कौमुदी के पूर्णतः ज्ञान के लिए पहले **पाणिनीयाष्टाध्यायी** के सूत्रों के क्रम से रटना अच्छा रहता है। रटन में असुविधा होने पर प्रतिदिन पारायण भी कर सकते हैं। लघुसिद्धान्तकौमुदी के पूर्ण होते होते **अष्टाध्यायी** के सभी सूत्र कण्ठस्थ हो जायें, ऐसा प्रयत्न अवश्य करें।

परीक्षा

१- ज्ञान-शब्द के जैसे किन्हीं पाँच शब्दों के रूप लिखिये।

२- वारि-शब्द में **अतोऽम्** से **अम्** क्यों नहीं होता? और ज्ञानशब्द में **स्वमोर्नपुंसकात्** से लुक् क्यों नहीं होता?

३- **उपधासंज्ञा** का उपयोग अभी तक आपने कहाँ कहाँ किया?

४- **सर्वनामसंज्ञा** और **सर्वनामस्थानसंज्ञा** में क्या अन्तर है?

५- उकारान्त नपुंसकलिङ्ग के किन्हीं पाँच शब्दों के रूप लिखिये।

६- **भाषितपुंस्क** का तात्पर्य समझाइये।

७- **प्रवृत्तिनिमित्त** क्या है? स्पष्ट करिये।

८- किन्हीं इकारान्त नपुंसक पाँच शब्दों के **आम्** प्रत्यय के साथ रूप सिद्ध कीजिए।

९- **पुँल्लिङ्ग** और **नपुंसकलिङ्ग** की भिन्नता के विषय में पाँच सूत्रों का उदाहरण देकर समझाइये।

१०- **एच इग्घ्रस्वादेशे** की व्याख्या करें।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का अजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ हलन्तपुँल्लिङ्गाः

ढत्वविधायकं विधिसूत्रम्

२५१. हो ढः ८।२।३१॥

हस्य ढः स्याज्झलि पदान्ते च।

लिट्, लिड्। लिहौ। लिहः। लिड्भ्याम्। लिट्त्सु, लिट्सु।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

आपने अभी तक अजन्त शब्दों के तीनों लिङ्गों में जो रूप होते हैं, उन्हें जाना। आपने यह भी जाना होगा कि प्रत्येक प्रकरण में शब्दों का जो क्रम रखा गया है वह प्रत्याहार का ही क्रम है। जैसे प्रत्याहार में पहले अ, उसके बाद इ, उसके बाद उ आदि का क्रम है, उसी प्रकार पहले अकारान्त रामशब्द, उसके बाद इकारान्त हरिशब्द, उसके बाद उकारान्त भानुशब्द और उसके बाद ऋकारान्त **धातृ** शब्द आदि का क्रम आपने वहाँ देखा। अब हलन्तपुँल्लिङ्गप्रकरण में भी प्रत्याहार के क्रम से शब्दों का विवेचन किये जायेंगे किन्तु इनमें भी कुछ हलन्त शब्दों का उदाहरण यहाँ पर नहीं दिया गया है। जैसे लकारान्त, ङकारान्त, णकारान्त आदि क्योंकि ऐसे शब्द बहुत कम मिलते हैं। अतः जो हलन्त शब्द अति प्रसिद्ध हैं और बहुत मिलते भी हैं, उन्हीं का इस प्रकरण में सिद्धि की गई है। हल् प्रत्याहार में सबसे पहले ह् है, अतः हकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्द लिह् से शुरू करते हैं।

लिह् चाटने अर्थ वाला एक धातु है। उससे कृदन्तप्रकरण के सूत्र **क्विप् च** से क्विप् प्रत्यय होता है और उसका सर्वापहार लोप हो जाता है। सर्वापहारलोप का तात्पर्य यह है कि प्रत्यय में जितने वर्ण होते हैं उन सबका लोप हो जाना। जैसे क्विप् प्रत्यय में पकार का **हलन्त्यम्** से, ककार का **लशक्वतद्धिते** से, इकार उच्चारणार्थक था, इसलिए वह चला जायेगा, बाकी वकार का **वेरपृक्तस्य** से इत्संज्ञा हो जाती है और **तस्य लोपः** इस सूत्र से इत्संज्ञक वर्णों का लोप हो जाता है। अतः क्विप् प्रत्यय में कुछ भी नहीं बचा। यही सर्वापहार लोप हुआ।

एक बात और भी ध्यान में रखना कि पाणिनीयव्याकरण में लोप का अर्थ नाश नहीं है अपितु अदर्शन है। इस लिए सर्वथा वर्णों का नाश नहीं होता। अब यहाँ एक प्रश्न आता है कि जब प्रत्यय कर के सर्वापहार लोप ही करना है तो प्रत्यय का विधान ही क्यों किया जाता है? जब मकान बनाकर तत्काल गिराना ही है तो फिर मकान क्यों बनाया जाय? आप यह समझें कि मकान बनाकर गिराने के बाद भी वहाँ पड़ा हुआ मलवा यह सूचित करता है कि यहाँ पर पहले मकान था। इसी तरह प्रत्यय करके लोप करने पर भी

स्थानिवद्भाव या **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** के बल पर वहाँ पर यह प्रत्ययान्त बन जाता है या प्रत्यय को मानकर होने वाले कार्य हो सकते हैं। यह लाभ मिलता है। जब लिह् धातु से क्विप् प्रत्यय किया गया और सर्वापहार लोप किया गया तो यह शब्द क्विप्-प्रत्ययान्त बन गया। क्विप्-प्रत्यय कृत्-प्रकरण का है, अतः **क्विप्-प्रत्ययान्त लिह्** धातु अब कृदन्त-शब्द बन गया है। कृदन्त मानकर उसके **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिसंज्ञा हुई और सु आदि विभक्तियाँ होने लगीं।

२५१- हो ढः। हः षष्ठ्यन्तं, ढः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **झलो झलि** से **झलि** की और **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से **अन्ते** की अनुवृत्ति आती है। **पदस्य** सूत्र का अधिकार है।

झल् परक या पदान्त में विद्यमान हकार के स्थान पर ढकार आदेश होता है।

या तो पदान्त में विद्यमान हकार हो या तो उस हकार से झल् परे हो, तभी ढकार आदेश होता है । **ढः** में जो अकार है, वह उच्चारणार्थ है, अतः केवल ढ् मात्र आदेश होगा।

लिट्, लिड्। चाटने वाला। लिह् धातु से क्विप् प्रत्यय, सर्वापहार लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा आदि के बाद प्रथमा का एकवचन सु प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **लिह्+स्** बना। हलन्त से परे सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हो गया। लिह् में सकार के लोप होने पर **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** (प्रत्यय के लोप होने पर भी प्रत्यय को मानकर होने वाला अंगकार्य हो) से प्रत्ययान्त अर्थात् सुबन्त मानकर **सुप्तिङन्तं पदम्** से पदसंज्ञा हुई है। इसलिए लिह् एक पद है। पद के अन्त में विद्यमान हकार पदान्त हकार है। उस पदान्त हकार का **हो ढः** से ढकार आदेश हुआ- **लिढ्** बना। ढकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर डकार हुआ- **लिड्** बना। **लिड्** के बाद के खाली स्थान की **विरामोऽसानम्** से अवसानसंज्ञा हुई और **वावसाने** से डकार के स्थान पर विकल्प से चर्त्व हुआ तो डकार के स्थान पर टकार हुआ। इस प्रकार से **लिट्** बना। चूँकि चर्त्व वैकल्पिक है, अतः एक पक्ष में चर्त्व नहीं हुआ तो डकार ही रह गया- **लिड्**। इस तरह से **लिट्, लिड्** ये दो रूप सिद्ध हुए।

हलन्तप्रकरण में अजादि-विभक्ति और हलादि-विभक्ति का अधिक ध्यान रखना चाहिए। इस प्रकरण में अजादि-विभक्ति के परे होने पर लगभग कोई कार्य नहीं होता है, केवल वर्णसम्मेलन करने की आवश्यकता होती है किन्तु हलादि-विभक्ति के परे होने पर ढत्व, जश्त्व आदि अनेक कार्य होते हैं।

लिहौ। लिहः। लिहम्। लिहौ। लिहः। लिहा। लिह् को धातु से शब्द बनाने के बाद जब प्रथमा के द्विवचन में औ विभक्ति आई तो **लिह्+औ** बना। वर्णसम्मेलन अर्थात् हकार जाकर विभक्ति वाले औकार से मिल गया- **लिहौ** बन गया। इसी तरह **लिह्** से जब **जस्** विभक्ति आई और विभक्ति में अनुबन्धलोप हो गया, **लिह्+अस्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ और प्रत्यय के सकार के स्थान पर रुत्व और उसके स्थान पर विसर्ग आदेश हुआ तो बन गया- **लिहः**। इसी प्रकार से अम् के आने पर लिह्+अम् में वर्णसम्मेलन हुआ तो बना- **लिहम्**। इसी तरह औट् के आने पर अनुबन्धलोप होने के बाद **लिह्+औ** में वर्णसम्मेलन होकर बना- **लिहौ**। द्वितीया के बहुवचन में शस् के आने पर सबसे पहले तो अनुबन्धलोप अर्थात् शकार का **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा होकर **तस्य लोपः** से लोप हुआ तो **लिह्+अस्** बना। वर्णसम्मेलन होने के बाद सकार का रुत्वविसर्ग हुआ- **लिहः**। इसी तरह तृतीया के

एकवचन में टा विभक्ति, टकार का चुटू से इत्संज्ञा होकर लोप, लिह्+आ, वर्णसम्मेलन करने पर **लिहा** बना।

अब आप **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** और **यचि भम्** इन दो सूत्रों के कार्य का स्मरण करें। **यचि भम्** से अजादिविभक्ति के परे रहने पर पूर्व की भसंज्ञा होती है और शेष अर्थात् हलादि विभक्ति के परे रहने पर पूर्व की **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदसंज्ञा हो जाती है। दोनों सूत्र असर्वनामस्थान में ही लगते हैं। इस तरह यह व्यवस्था बन गई कि असर्वनामस्थान अजादि विभक्ति के परे रहने पर पूर्व की भसंज्ञा और असर्वनामस्थान हलादि विभक्ति भ्याम्, भिस्, भ्यस्, सुप् के परे रहने पर पूर्व की पदसंज्ञा होती है। स्मरण रहे कि नपुंसकलिङ्ग को छोड़कर पुँल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में सु, औ, जस्, अम्, औट् इन पाँच वचनों की **सुडनपुंसकस्य** से सर्वनामस्थानसंज्ञा होती है और नपुंसकलिङ्ग में जस् और शस् के स्थान पर हुए आदेशरूप शि की सर्वनामस्थानसंज्ञा होती है। इस सूत्र से जिसकी पदसंज्ञा हो गई, उसे पद के द्वारा ग्रहण केवल व्याकरण में शास्त्रीय प्रक्रिया में ही होगा, लोक में या सामान्यतया भाषा आदि में **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** के द्वारा की गई पदसंज्ञा को पद के रूप में नहीं माना जाता।

लिड्भ्याम्। लिड्भिः। धातु के बाद शब्द बने लिह् से तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी का द्विवचन भ्याम् आया। असर्वनामस्थान हलादि-विभक्ति भ्याम् के परे रहने पर लिह् की **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदसंज्ञा हुई। लिह् पद मान लिया गया तो लिह् में जो अन्त्य वर्ण हकार है, वह पदान्त हुआ। इस तरह पदान्त हकार के स्थान पर **हो ढः** से ढत्व हुआ- **लिढ्+भ्याम्** बना। यद्यपि यहाँ पदान्त न मानकर के झल्परक मानकर भी ढत्व किया जा सकता है तथापि आगे शास्त्रप्रक्रिया लाघव एवं सरलता तथा सूत्र में घटित होने के कारण पदान्तत्व मानकर ही ढत्व का विधान हुआ है। लिढ् में ढकार का जश्त्व किया गया तो बना- **लिड्भ्याम्**। इसी तरह **भिस्** के आने के बाद भी पदसंज्ञा और ढत्व, जश्त्व करके सकार के स्थान पर रुत्वविसर्ग करके **लिड्भिः** बन जाता है।

लिहे। चतुर्थी का एकवचन ङे, अनुबन्धलोप करके लिह्+ए में वर्णसम्मेलन हुआ तो बन जाता है- **लिहे**।

लिड्भ्यः। चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन में भ्यस् आता है। **लिह्+भ्यस्** में पदसंज्ञा, ढत्व, जश्त्व, सकार का रुत्वविसर्ग करके **लिड्भ्यः** सिद्ध हो जाता है।

लिहः। पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में क्रमशः ङसि और ङस् प्रत्यय, अनुबन्धलोप होने पर **लिह्+अस्** में वर्णसम्मेलन और सकार का रुत्वविसर्ग होकर **लिहः** बन जाता है।

लिहोः। षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में ओस् विभक्ति है, **लिह्+ओस्** में वर्णसम्मेलन होने के बाद सकार का रुत्व और विसर्ग कर के बनता है- **लिहोः**।

लिहाम्। षष्ठी के बहुवचन में आम् प्रत्यय, **लिह्+आम्** में वर्णसम्मेलन, **लिहाम्**।

लिहि। सप्तमी के एकवचन में ङि प्रत्यय, अनुबन्धलोप होने के बाद **लिह्+इ** में वर्णसम्मेलन होकर **लिहि** बना।

लिट्सु,। सप्तमी के बहुवचन में सुप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, पदसंज्ञा, ढत्व, जश्त्व करने के बाद **लिड्+सु** बना। **डः सि धुट्** से विकल्प से धुट् आगम, अनुबन्धलोप होकर

घादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२५२. दादेर्धातोर्घः ८।२।३२॥

झलि पदान्ते चोपदेशे दादेर्धातोर्हस्य घः।

....

लिड्+ध्+सु बना। डकार के योग में धकार को **ष्टुना ष्टुः** से टुत्व प्राप्त था तो **न पदान्ताट्टोरनाम्** से निषेध हुआ। अब डकार और धकार दोनों को **खरि च** से चर्त्व होकर डकार के स्थान पर टकार और धकार के स्थान पर तकार हो जाने के बाद बना- **लिट्त्सु** सिद्ध हुआ। धुट् आगम न होने के पक्ष में **लिट्सु** ही रहेगा।

हे लिट्! हे लिड्! हे लिहौ! हे लिहः! सम्बोधन में भी वही रूप बनते हैं, केवल **हे** का पूर्वप्रयोग करना मात्र है।

अब आप अजादि विभक्ति के परे रहने पर वर्णसम्मेलन और रुत्वविसर्ग करना तो समझ ही गये होंगे। नहीं समझे हैं तो फिर समझने की चेष्टा करें। क्योंकि आगे अजादि विभक्ति के परे रहने पर ज्यादा विवेचन नहीं किया जायेगा। हलन्तप्रकरण है, अतः ज्यादा विवेचन हलादि विभक्तियों के परे रहने पर ही होगा।

लिह् धातु चाटने के अर्थ में है। जब शब्द बना तो इसका अर्थ हुआ- चाटने वाला।

हकारान्त पुँल्लिङ्ग लिह्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	लिट्, लिड्	लिहौ	लिहः
द्वितीया	लिहम्	लिहौ	लिहः
तृतीया	लिहा	लिड्भ्याम्	लिड्भिः
चतुर्थी	लिहे	लिड्भ्याम्	लिड्भ्यः
पञ्चमी	लिहः	लिड्भ्याम्	लिड्भ्यः
षष्ठी	लिहः	लिहोः	लिहाम्
सप्तमी	लिहि	लिहोः	लिट्त्सु, लिट्सु
सम्बोधन	हे लिट्, हे लिड्	हे लिहौ	हे लिहः

हकारान्त पुँल्लिङ्ग के सारे शब्द प्रायः इसी प्रकार के रूप वाले होते हैं। कुछ ही शब्द हैं जैसे जो हकारान्त होते हुए दकारादि या मुह्, स्निह्, स्नुह् आदि शब्द हैं, जिनके वैकल्पिक कुछ और भी रूप बन जाते हैं।

२५२- दादेर्धातोर्घः। दः आदौ यस्य स दादिस्तस्य दादेः, बहुव्रीहिः। दादेः षष्ठ्यन्तं, धातोः षष्ठ्यन्तं, घः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। भाष्यकार ने यहाँ **उपदेशे** का ग्रहण किया है। **हो ढः** से **हः** तथा **झलो झलि** से **झलि** आता है। **पदस्य** का अधिकार है।

उपदेश अवस्था में जो दकारादि धातु, उसके हकार के स्थान पर घकार आदेश होता है, झल् के परे होने पर या पदान्त में।

यह सूत्र **हो ढः** का बाधक है। अन्यत्र **ढकार** आदेश होता है किन्तु धातु यदि उपदेश अवस्था से ही दकार आदि वाला हो तो उसके अन्त हकार के स्थान पर **घकार** आदेश होगा। घ में भी अकार उच्चारणार्थ है, अतः **घ्** मात्र होता है।

भषादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२५३. एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः ८।२।३७।।

धात्ववयवस्यैकाचो झषन्तस्य बशो भष् से ध्वे पदान्ते च।

धुक्, धुग्। दुहौ। दुहः। धुग्भ्याम्। धुक्षु।।

....

२५३- एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः। एकोऽच् यस्मिन्, स एकाच्, तस्य एकाचः। झष् अन्ते यस्य स झषन्तः, तस्य झषन्तस्य। स् च ध्व् च स्ध्वौ, तयोः स्ध्वोः। एकाचः षष्ठ्यन्तं, बशः षष्ठ्यन्तं, भष् प्रथमान्तं, झषन्तस्य षष्ठ्यन्तं, स्ध्वोः सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **दादेर्धातोर्घः** से **धातोः** तथा **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से **अन्ते** की अनुवृत्ति आती है और **पदस्य** का अधिकार है।

धातु का अवयव जो झषन्त एकाच्, उसके बश् के स्थान पर भष् आदेश होता है, सकार या ध्व् के परे होने पर अथवा पदान्त में।

झष् प्रत्याहार में **झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्,** बश् प्रत्याहार में **ब्, ग्, ड्** और **द्** ये और भष् प्रत्याहार में **भ्, घ्, ढ्, ध्** ये वर्ण आते हैं। धातु का अवयव एकाच् जिसमें झष् अन्त में हो। इससे अनेकाच् धातु के एक अवयव का भी ग्रहण होता है। उस एकाच् में जो **बश्** अर्थात् **ब्, ग्, ड्** और **द्** के स्थान पर भष् अर्थात् **भ्, घ्, ढ्, ध्** आदेश के रूप में होते हैं किन्तु आगे या तो सकार मिले या तो **ध्व** मिले या पद के अन्त में हो। इस सूत्र का उदाहरण यहाँ पर धुक्, धुक् है किन्तु तिङन्त में अनेक **भोत्स्यते, धोक्ष्यते, अधुग्ध्वम्** तथा नामधातु में **गर्धभ्** आदि अनेक उदाहरण मिलते हैं।

धुक्, धुग्। दुहने वाला। **दुह प्रपूरणे** धातु से कृत्प्रकरण का **क्विप्** प्रत्यय और उसका सर्वापहार होकर **दुह्** बना है। यह धातु उपदेश अवस्था में दकारादि है। सु आने पर उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हो गया। **हो ढः** से ढत्व प्राप्त था, उसे बाधकर के **दादेर्धातोर्घः** से हकार के स्थान पर **घ्** आदेश हो गया। **दुघ्** बना। अब सूत्र लगा- **एंकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः।** झष् है घ्, धात्ववयव झषन्त एकाच् हुआ- **दुघ्,** बश् है- द्, उसके स्थान पर भष् अर्थात् भ्, घ्, ढ्, ध् ये चारों प्राप्त हुए। अनियम होने पर **स्थानेऽन्तरतमः** ने स्थान से साम्य मिलाने का नियम किया तो दन्तस्थानी दकार के स्थान पर धकार ही मिला है। अतः दुघ् के दकार के स्थान पर धकार आदेश हो गया- **धुघ्** हुआ। **झलां जशोऽन्ते** से घकार को जश्त्व होकर गकार बन गया और **वाऽवसाने** से वैकल्पिक चर्त्व होने पर क् आदेश हुआ। इस तरह **धुक्, धुग्** दो रूप सिद्ध हुए।

अजादि विभक्ति के गरे होने पर केवल प्रत्यय के साथ प्रकृति को जोड़ना है जिससे दुहौ, दुहः, दुहम्, दुहौ, दुहः, दुहा आदि रूप बनते हैं। भ्याम् आदि हलादि विभक्ति के परे होने पर **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पूर्व की पदसंज्ञा होने के कारण पदान्त मिल जाता है, अतः **एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः** से भष् आदेश होकर **धुग्भ्याम्, धुग्भिः** आदि रूप बन जाते हैं। **सुप्** के परे होने पर घत्व, भष् आदेश, जश्त्व करने पर **धुग्+सु** बनता है। उसके बाद सकार रूप खर् के परे होने पर गकार के स्थान पर **खरि च** से चर्त्व होकर ककार बन जाता है। ककार से परे सु के सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व होता है। अब क्+ष् का संयोग हुआ। **क्** और **ष्** का संयोग होने एर **क्ष्** बनता है। अतः **धुक्षु** यह रूप सिद्ध हुआ।

वैकल्पिकघादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२५४. वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् ८।२।३३॥

एषां हस्य वा घो झलि पदान्ते च। ध्रुक्, ध्रुग्, ध्रुट्, ध्रुड्। द्रुहौ। द्रुहः। ध्रुग्भ्याम्, ध्रुड्भ्याम्। ध्रुक्षु, ध्रुट्त्सु, ध्रुट्सु। एवं मुक्, मुग् इत्यादि।

....

हकारान्त पुँल्लिङ्ग दुह्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धुक्, धुग्	दुहौ	दुहः
द्वितीया	दुहम्	दुहौ	दुहः
तृतीया	दुहा	धुग्भ्याम्	धुग्भिः
चतुर्थी	दुहे	धुग्भ्याम्	धुग्भ्यः
पञ्चमी	दुहः	धुग्भ्याम्	धुग्भ्यः
षष्ठी	दुहः	दुहोः	दुहाम्
सप्तमी	दुहि	दुहोः	धुक्षु
सम्बोधन	हे धुक्, हे धुग्	हे दुहौ	हे दुहः

२५४- **वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम्।** द्रुहश्च मुहश्च ष्णुहश्च ष्णिट् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो द्रुहमुहष्णुहष्णिहः, तेषां द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम्। वा अव्ययपदं, द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **हो ढः** से **हः**, **दादेर्धातोर्घः** से **घः**, **झलो झलि** से **झलि** और **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से **अन्ते** की अनुवृत्ति आती है और **पदस्य** का अधिकार है।

द्रुह्, मुह्, ष्णुह् और ष्णिह् धातु के हकार के स्थान पर विकल्प से घकार आदेश होता है झल् परे रहने पर या पदान्त में।

द्रुह, मुह, ष्णुह में अकार उच्चारणार्थ है। केवल उपर्युक्त चार धातुओं के लिए यह सूत्र है। **द्रुह्** में **दादेर्धातोर्घः** से नित्य से **घ** प्राप्त होने पर उसे बाधकर यह विकल्प से करता है। शेष तीन शब्दों में **हो ढः** से नित्य से ढकारादेश प्राप्त होने पर विकल्प घकारादेश करने के लिए इसका आरम्भ है। घ न होने के पक्ष में **हो ढः** से **ढकार** आदेश हो जाता है। इस तरह **द्रुह्** से सु के आने पर **हकार के स्थान पर घकार आदेश, दकार** के स्थान पर भष् होकर **धकार** करके जश्त्व, विकल्प से चर्त्व होकर घकारादेश पक्ष में **ध्रुक्, ध्रुग्** ये दो रूप और **ढकार** आदेश होने के पक्ष में **ध्रुट्, ध्रुड्** ये दो रूप, कुल चार रूप बनते हैं। इसी तरह भ्याम्, भिस् आदि हलादि विभक्ति के परे होने पर भी घकार और ढकार आदेश होने पर **ध्रुग्भ्याम्, ध्रुड्भ्याम्** आदि दो-दो रूप बनते हैं। सुप् में घकार होने के पक्ष में **धुक्षु** की तरह **ध्रुक्षु** और ढकार आदेश होने के पक्ष में **लिट्त्सु, लिट्सु** की तरह **ध्रुट्त्सु, ध्रुट्सु** ये तीन रूप सिद्ध होते हैं। शेष अजादि के परे केवल प्रकृति और प्रत्यय को मिलाना मात्र है।

हकारान्त पुँल्लिङ्ग द्रुह्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ध्रुक्, ध्रुग्, ध्रुट्, ध्रुड्	द्रुहौ	द्रुहः
द्वितीया	द्रुहम्	द्रुहौ	द्रुहः

सकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२५५. धात्वादेः षः सः ६।१।६४॥

स्नुक्, स्नुग्, स्नुट्, स्नुड्। एवं स्निक्, स्निग्, स्निट्, स्निड्।
विश्ववाट्, विश्ववाड्। विश्ववाहौ। विश्ववाहः। विश्ववाहम्। विश्ववाहौ।

....

तृतीया	द्रुहा	ध्रुग्भ्याम्, ध्रुड्भ्याम्	ध्रुग्भिः, ध्रुड्भिः
चतुर्थी	द्रुहे	ध्रुग्भ्याम्, ध्रुड्भ्याम्	ध्रुग्भ्यः, ध्रुड्भ्यः
पञ्चमी	द्रुहः	ध्रुग्भ्याम्, ध्रुड्भ्याम्	ध्रुग्भ्यः, ध्रुड्भ्यः
षष्ठी	द्रुहः	द्रुहोः	द्रुहाम्
सप्तमी	द्रुहि	द्रुहोः	ध्रुक्षु, ध्रुट्त्सु, ध्रुट्सु
सम्बोधन	हे ध्रुक्, हे ध्रुग्, हे ध्रुट्, हे ध्रुड्	हे द्रुहौ	हे द्रुहः

इसी तरह **मुह्** के भी रूप बनाइये। इनमें अन्तर यह है कि इन तीन धातुओं के बश्-प्रत्याहार वाले न होने के कारण **भष्** आदेश नहीं होता।

२५५- धात्वादेः षः सः। धातोरादिः- धात्वादिः, तस्य धात्वादेः, षष्ठीतत्पुरुषः। धात्वादेः षष्ठ्यन्तं, षः षष्ठ्यन्तं, सः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **धात्वादेः षकारस्य स्थाने सकारादेशो भवति।**

धातु के आदि में विद्यमान षकार के स्थान पर सकार आदेश होता है।

यह सूत्र केवल धातु-मात्र में ही लगता है और आदि में विद्यमान षकार के स्थान पर ही सकार करता है। यदि षकार को निमित्त बना कर तवर्ग के स्थान पर टवर्ग हुआ है तो षकार के सकार बन जाने के बाद टवर्ग भी तवर्ग में बदल जाता है क्योंकि व्याकरण शास्त्र में एक नियम है- **निमित्तापाये नैमित्तिकस्यप्यपायः**। अर्थात् निमित्त का नाश होने पर नैमित्तिक(निमित्त के कारण उत्पन्न का भी नाश होना चाहिए। जैसे **ष्णिह्** धातु है। यहाँ षकार को निमित्त मानकर नकार के स्थान पर **रषाभ्यां नो णः समानपदे** से णकार आदेश हुआ था। जब **धात्वादेः षः सः** से षकार के स्थान पर सकार आदेश हुआ तो निमित्त षकार का नाश हुआ। अतः नैमित्तिक णकार का भी अपाय अर्थात् नाश हो जायेगा। तात्पर्य यह है कि णकार भी नकार में बदल जायेगा। इस तरह ष्णिह् धातु स्निह् में बदल जाता है। यहाँ पर अपाय अर्थात् नाश का तात्पर्य **अपने पूर्व रूप में आ जाना** है।

ष्णिह् और **ष्णुह्** धातुओं में **धात्वादेः षः सः** से सकार आदेश और **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के नियम से णकार का नकार के रूप में आ जाने के बाद **स्निह्** और **स्नुह्** बन गये। इनसे सु आकर लोप होने के बाद **हो ढः** से ढत्व प्राप्त, उसे बाधकर **वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम्** से वैकल्पिक घकार आदेश, जश्त्व और वैकल्पिक चर्त्व करके **स्निक्, स्निग्** एवं **स्नुक्, स्नुग्** ये दो दो रूप बनते हैं। घकार आदेश न होने के पक्ष में **हो ढः** से ढकार आदेश होकर जश्त्व, वैकल्पिक चर्त्व होकर **स्निट्, स्निड्** और **स्नुट्, स्नुड्** ये दो रूप बनते हैं। इस तरह कुल मिलाकर सु में चार-चार रूप बने। शेष प्रक्रिया **द्रुह्** की तरह ही करें।

विश्ववाट्, विश्ववाड्। विश्ववाहौ। विश्ववाहः। विश्वं वहति, विश्व को धारण करने वाला, भगवान्। विश्व-पूर्वक वह् धातु से ण्वि प्रत्यय आदि कार्य कृदन्त में होते

सम्प्रसारणसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

२५६. इग्यणः सम्प्रसारणम् १।१।४५।।

यणः स्थाने प्रयुज्यमानो य इक् स सम्प्रसारणसंज्ञः स्यात्।

ऊठादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२५७. वाह ऊठ् ६।४।१३२।।

भस्य वाह सम्प्रसारणमूठ्।

पूर्वरूपविधायकं विधिसूत्रम्

२५८. सम्प्रसारणाच्च ६।१।१०८।।

सम्प्रसारणादचि पूर्वरूपमेकादेशः। एत्येधत्यूठ्स्विति वृद्धिः। विश्वौहः, इत्यादि।

....

हैं। **विश्ववाह्** यह प्रातिपदिक है। इससे सु आने पर सु का लोप और **हो ढः** से ढत्व, ढकार को जशत्व होकर डकार और डकार को वैकल्पिक चर्त्व होकर **विश्ववाट्, विश्ववाड्** ये दो रूप बने। औ, जश्, अम्, औट् में प्रकृति और प्रत्यय से मिलाने पर **विश्ववाहौ, विश्ववाहः, विश्ववाहम्, विश्ववाहौ** बन गये।

२५६- **इग्यणः सम्प्रसारणम्।** इक् प्रथमान्तं, यणः षष्ठ्यन्तं, सम्प्रसारणं प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

यण् के स्थान पर प्रयोग किया जाने वाला जो इक् वह सम्प्रसारण-संज्ञक होता है।

यण् के स्थान पर यदि इक् का प्रयोग किया जाता हो तो उसे सम्प्रसारण संज्ञा से जाना जाय। तात्पर्य यह है कि जहाँ जहाँ भी सम्प्रसारण का उच्चारण हो, वहाँ-वहाँ **यण्** के स्थान पर **इक्** होना समझा जाय।

२५७- **वाह ऊठ्।** वाहः षष्ठ्यन्तम्, ऊठ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **वसोः सम्प्रसारणम्** से **सम्प्रसारणम्** की अनुवृत्ति आती है और **भस्य** का अधिकार है।

भसंज्ञक वाह् धातु के स्थान पर सम्प्रसारणसंज्ञक ऊठ् आदेश होता है।

ठकार इत्संज्ञक है। ऊठ् आदेश सीधे न करके सम्प्रसारणसंज्ञा से जोड़ने का फल यह है कि सम्प्रसारण होने पर अग्रिम सूत्र **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप किया जायेगा।

२५८- **सम्प्रसारणाच्च।** सम्प्रसारणात् पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इको यणचि** से **अचि** और **अमि पूर्वः** से **पूर्वः** की अनुवृत्ति आती है। **एकः पूर्वपरयोः** का अधिकार है।

सम्प्रसारण से अच् के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर पूर्वरूप एक आदेश होता है।

विश्वौहः। विश्ववाह् से द्वितीया का बहुवचन शस्, अनुबन्धलोप करके **विश्ववाह्+अस्** बना। अस् के परे होने पर विश्ववाह् की **यचि भम्** से **भसंज्ञा** हो गई और **वाह ऊठ्** से वाह् के व् के स्थान पर सम्प्रसारणसंज्ञक ऊठ् आदेश हुआ। ठकार की इत्संज्ञा हुई। **विश्व+ऊ+आह्+अस्** बना। ऊ+आ में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप एकादेश ऊ हुआ,

आमागमविधायकं विधिसूत्रम्

२५९. चतुरनडुहोरामुदात्तः ७।१।९८॥

अनयोराम् स्यात् सर्वनामस्थाने परे।

नुमागमविधायकं विधिसूत्रम्

२६०. सावनडुहः ७।१।८२॥

अस्य नुम् स्यात् सौ परे। अनड्वान्।

....

विश्व+ऊह्+अस् बना। **विश्व+ऊह्** में अकार और ऊकार के स्थान पर **एत्येधत्यूठ्सु** से वृद्धि हुई, **विश्वौह्+अस्** बना। वर्णसम्मेलन और सकार का रुत्वविसर्ग करके **विश्वौहः** सिद्ध हुआ। अब अजादि विभक्ति के परे होने पर इसी तरह **विश्वौह्** बनाकर आगे जोड़ते जाना है तथा हलादिविभक्ति के परे होने पर **हो ढः** से ढत्व और **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व करके ड् बनता है। सुप् में धुट् करके लिह्-शब्द की तरह तीन रूप होते हैं।

हकारान्त पुँल्लिङ्ग विश्ववाह्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विश्ववाट्, विश्ववाड्	विश्ववाहौ	विश्ववाहः
द्वितीया	विश्ववाहम्	विश्ववाहौ	विश्वौहः
तृतीया	विश्वौहा	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भिः
चतुर्थी	विश्वौहे	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भ्यः
पञ्चमी	विश्वौहः	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भ्यः
षष्ठी	विश्वौहः	विश्वौहोः	विश्वौहाम्
सप्तमी	विश्वौहि	विश्वौहोः	विश्ववाट्त्सु, विश्ववाट्सु
सम्बोधन	हे विश्ववाट्, हे विश्ववाड्,	हे विश्ववाहौ,	हे विश्ववाहः!

२५९- **चतुरनडुहोरामुदात्तः**। चतुश्च अनडुह् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः, चतुरनडुहौ, तयोः चतुरनडुहोः। चतुरनडुहोः षष्ठ्यन्तम्, आम् प्रथमान्तम्, उदात्तः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **इतोऽत्सर्वनामस्थाने** से **सर्वनामस्थाने** की अनुवृत्ति आती है।

सर्वनामस्थान के परे रहने पर चतुर् और अनडुह् शब्द को आम् का आगम होता है।

आम् में मकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। मकार की इत्संज्ञा होने के कारण यह मित् आगम हुआ, अतः **मिदचोऽन्त्यात्परः** से अन्त्य अच् के बाद होने का विधान हुआ। इस सूत्र में **उदात्तः** यह पद उदात्तस्वर का विधान करता है किन्तु **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में स्वरप्रकरण को नहीं लिया गया है। अतः यहाँ उदात्त कथन नहीं कर रहे हैं।

२६०- **सावनडुहः**। सौ सप्तम्यन्तम्, अनडुहः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **आच्छीनद्योर्नुम्** से **नुम्** की अनुवृत्ति आती है। यह सूत्र केवल अनडुह् शब्द के लिए है।

सु के परे रहने पर अनडुह् शब्द को नुम् का आगम होता है।

यह भी मित् है। अतः अन्त्य अच् के बाद ही बैठेगा।

अमागमविधायकं विधिसूत्रम्

२६१. अम् सम्बुद्धौ ७।१।९९॥

हे अनड्वन्। अनड्वाहौ। अनड्वाहः। अनडुहः। अनडुहा।

दत्वविधायकं विधिसूत्रम्

२६२. वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः ८।२।७२॥

सान्तवस्वन्तस्य स्रंसादेश्च दः स्यात् पदान्ते। अनडुद्भ्यामित्यादि। सान्तेति किम्? विद्वान्। पदान्ते किम्? स्रस्तम्। ध्वस्तम्।

....

अनड्वान्। (बैल)। अनडुह् शब्द से प्रथमा का एकवचन सु आया, अनुबन्ध लोप हुआ। **अनडुह् स्** है। **चतुरनडुहोरामुदात्तः** से आम् हुआ, मकार की इत्संज्ञा हुई और लोप हो गया। मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात्परः** के नियम से अन्त्य अच् डु के उकार के बाद और ह् के पहले बैठा- **अनडु+आ+ह्+स्** बना। अब **सावनडुहः** से नुम् होने के बाद उसमें अनुबन्धलोप के बाद न् बचा। मित् होने के कारण नुम् का नकार भी अन्त्य अच् आ के बाद ही बैठा- **अनडु+आ+न्+ह्+स्** बना। **डु+आ** में **इको यणचि** से यण् हुआ- **अनड्वा+न्+ह्+स्** बना। सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ। हकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप हुआ तो बना- **अनड्वान्।**

अनड्वाहौ। अनडुह् शब्द से प्रथमा का द्विवचन औ आया, **अनडुह्+औ** बना। **चतुरनडुहोरामुदात्तः** से आम्, अनुबन्धलोप, **अनडु+आ+ह्+औ** बना। **डु+आ** में यण् होकर **अनड्वाह् औ** बना, हकार औ से मिला- **अनड्वाहौ।** यहाँ सु परे न होने के कारण **सावनडुहः** से नुम् नहीं हुआ। इसी प्रकार **अनड्वाहः, अनड्वाहम्, अनड्वाहौ** भी बनाइये।

अनडुहः। द्वितीया के बहुवचन में शस् आता है, अनुबन्धलोप होकर अस् बचता है। **अनडुह्+अस्** में सर्वनामस्थानसंज्ञक न होने के कारण **चतुरनडुहोरामुदात्तः** से आम् नहीं होगा। वर्णसम्मेलन करके सकार का रुत्वविसर्ग कर देने से बन जायेगा- **अनडुहः।**

२६१- अम् सम्बुद्धौ। अम् प्रथमान्तं, सम्बुद्धौ सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **चतुरनडुहोरामुदात्तः** से **चतुरनडुहोः** की अनुवृत्ति आती है। **अनडुहशब्दस्य अमागमो भवति सम्बुद्धौ।**

सम्बुद्धि के परे रहते अनडुह् शब्द को अम् का आगम होता है।

हे अनड्वन्! सम्बुद्धि में **अनडुह्+स्** में **अम् सम्बुद्धौ** से अम् आगम होकर **अनडु+अ+ह्+स्** बना। **डु+अ** में यण् हुआ- **अनड्व्+अ+ह्+स्** में **सावनडुहः** से नुम् आगम होकर **अनड्वन्+ह्+स्** बना। सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से, हकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप होने पर बना- **अनड्वन्** और हे का पूर्वप्रयोग हुआ- **हे अनड्वन्!**

अब आगे समस्त अजादि विभक्ति में वर्णसम्मेलन और आवश्यकतानुसार सकार का रुत्वविसर्ग हो जायेगा। जिससे **अनडुहा, अनडुहे** आदि बनते जायेंगे।

२६२- वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः। वसुश्च स्रंसुश्च ध्वंसुश्च अनडुह् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहस्तेषाम्। वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां षष्ठ्यन्तं, दः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ससजुषो रुः** से एकदेश **सः** की अनुवृत्ति आती है। **पदस्य** का अधिकार है।

मूर्धन्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२६३. सहेः साडः सः ८।३।५६॥

साड्रूपस्य सहेः सस्य मूर्धन्यादेशः।

तुराषाट्, तुराषाड्। तुरासाहौ। तुरासाहः। तुराषाड्भ्यामित्यादि।

....

सकारान्त वसु-प्रत्ययान्त शब्द, स्रंस्, ध्वंस् और अनडुह् शब्दों के स्थान पर दकार आदेश होता है पदान्त में।

वसु एक प्रत्यय है। अतः **प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्** के अनुसार **वसुप्रत्ययान्त** लिया जायेगा। **अलोऽन्त्यस्य** लगकर उक्त सभी शब्दों के अन्त्य के स्थान पर दकारादेश होगा।

अनडुद्भ्याम्। अनडुह् से तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी के द्विवचन में भ्याम् आता है, पदसंज्ञा, उसके बाद **वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः** से हकार के स्थान पर दकार आदेश होकर **अनडुद्भ्याम्** बना। इसी प्रकार से **अनडुद्भिः, अनडुद्भ्यः, अनडुत्सु** आदि भी बनायें।

हकारान्त पुँल्लिङ्ग अनडुह्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः
द्वितीया	अनड्वाहम्	अनड्वाहौ	अनडुहः
तृतीया	अनडुहा	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भिः
चतुर्थी	अनडुहे	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
पञ्चमी	अनडुहः	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
षष्ठी	अनडुहः	अनडुहोः	अनडुहाम्
सप्तमी	अनडुहि	अनडुहोः	अनडुत्सु
सम्बोधन	हे अनड्वन्	हे अनड्वाहौ	हे अनड्वाहः

सान्तेति किम्? विद्वान्। प्रश्न यह है कि **वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः** इस सूत्र में सान्त की अनुवृत्ति क्यों की गई? उत्तर देते हैं कि यदि सान्त नहीं कहते तो सान्त शब्द के स्थान पर और असान्त शब्द के स्थान पर उभयत्र दकार आदेश होता। विद्वस्-शब्द यद्यपि वसु-प्रत्ययान्त होने से सान्त ही है किन्तु सु विभक्ति में विद्वान् बन जाने के बाद इससे नकार के स्थान भी दकार आदेश होकर **विद्वात्** ऐसा अनिष्ट रूप होने लगता। **सान्त** कहने के बाद तो वसुप्रत्ययान्त होते हुए भी दकार आदेश करते समय उसे सान्त ही बने रहना चाहिए।

पदान्ते किम्? स्रस्तम्। ध्वस्तम्। यदि सूत्र में **पदान्ते** की अनुवृत्ति नहीं आती तो पदान्त और अपदान्त दोनों जगह स्थित सकार के स्थान पर दकार आदेश होता। स्रस्+तम्, ध्वस्+तम् में सकार पदान्त में नहीं है, यहाँ पर दकार आदेश हो जाता और **स्रत्तम्, ध्वत्तम्** ऐसे अनिष्ट रूप बन जाते।

२६३- सहेः साडः सः। सहेः षष्ठ्यन्तं, साडः षष्ठ्यन्तं, सः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अपदान्तस्य मूर्धन्यः** से **मूर्धन्यः** की अनुवृत्ति आती है।

औकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२६४. दिव औत् ७।१।८४॥

दिविति प्रातिपदिकस्यौत्स्यात् सौ। सुद्यौः। सुदिवौ।

....

साड् रूप प्राप्त सह् धातु के सकार के स्थान पर मूर्धन्य आदेश होता है।

साड्-रूप का तात्पर्य यह है कि सह्-धातु से क्विप्, दीर्घ, ढत्व, जश्त्व होने पर जब **साड्** बनता है, तब यह सूत्र लगेगा। स्मरण रहे कि **हो ढः** से ढत्व पदान्त हकार के स्थान पर या झल् परे होने पर ही होता है। इस तरह सकार के स्थान पर मूर्धन्य वर्ण **ऋ, ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, र्, ष्** ये सभी प्राप्त होते हैं। **स्थानेऽन्तरतमः** की सहायता से ईषद्विवृत प्रयत्न वाले सकार के साथ वैसा ही प्रयत्न वाला षकार मिलता है। अतः सकार के स्थान पर षकार आदेश होता है। इस तरह जहाँ-जहाँ **हो ढः** से ढकार होता है, वहाँ वहाँ षकार आदेश होगा, अन्यत्र नहीं। अतः अजादिविभक्ति के परे होने पर **षकारादेश** नहीं होगा।

तुराषाट्, तुराषाड्। इन्द्र। **तुरं साहयते।** तुर-पूर्वक ण्यन्त **सह्**-धातु से क्विप्, सर्वापहार, णिलोप, दीर्घ करके **तुरासाह्** बना है। इससे सु, लोप, **हो ढः** से ढत्व करके **तुरासाड्** बना। **सहेः साडः सः** से साड् के सकार के स्थान पर षकार आदेश हुआ, **तुराषाड्** बना। डकार को **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व होकर **तुराषाट्, तुराषाड्** ये दो रूप सिद्ध हुए।

हकारान्त पुँल्लिङ्ग तुरासाह्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	तुराषाट्, तुराषाड्	तुरासाहौ	तुरासाहः
द्वितीया	तुरासाहम्	तुरासाहौ	तुरासाहः
तृतीया	तुरासाहा	तुराषाड्भ्याम्	तुराषाड्भिः
चतुर्थी	तुरासाहे	तुराषाड्भ्याम्	तुराषाड्भ्यः
पञ्चमी	तुरासाहः	तुराषाड्भ्याम्	तुराषाड्भ्यः
षष्ठी	तुरासाहः	तुरासाहोः	तुरासाहाम्
सप्तमी	तुरासाहि	तुरासाहोः	तुराषाट्त्सु, तुराषाट्सु
सम्बोधन	हे तुराषाट्, तुराषाड्	हे तुरासाहौ	हे तुरासाहः

इस तरह प्रत्याहार के क्रम से हकारान्त शब्दों का विवेचन करके वकारान्त शब्दों का विवेचन प्रारम्भ करते हैं। यकारान्त शब्दों का प्रयोग बहुत ही कम है, अतः यहाँ उन्हें स्थान नहीं दिया गया है।

२६४- दिव औत्। दिवः षष्ठ्यन्तम्, औत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सावनडुहः** से सौ की अनुवृत्ति आती है।

सु के परे होने पर दिव् इस प्रातिपदिक को औकार आदेश होता है।

अलोऽन्त्यस्य परिभाषा की उपस्थिति से सुदिव् में अन्त्य वर्ण वकार के स्थान पर औकार आदेश हो जाता है।

सुद्यौः। सुदिव् से सु, **दिव औत्** से वकार के स्थान पर औकार अन्तादेश होने

उकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२६५. दिव उत् ६।१।१३१॥

दिवोऽन्तादेश उकारः स्यात् पदान्ते। सुद्युभ्यामित्यादि।

चत्वारः। चतुरः। चतुर्भिः। चतुर्भ्यः।

....

पर सुदि+औ+स् बना। दि+औ में यण् होकर द्यौ बना। सकार का रुत्व और विसर्ग हो गया- **सुद्यौः** सिद्ध हुआ।

अब अजादिविभक्ति के परे होने पर केवल प्रकृति को प्रत्यय से जोड़ना मात्र है। सुदिवौ, सुदिवः इत्यादि।

२६५- दिव उत्। दिवः षष्ठ्यन्तम्, उत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **एङः पदान्तादति** से विभक्तिविपरिणाम करके **पदान्ते** की अनुवृत्ति आती है।

पद के अन्त में विद्यमान दिव् को उकार अन्तादेश होता है।

हलादि विभक्ति के परे पूर्व का सुदिव् **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदसंज्ञक है। वकार के स्थान पर उकार आदेश होता है।

सुद्युभ्याम्। सुदिव् से भ्याम् और सुदिव् की पदसंज्ञा करके **दिव उत्** से वकार के स्थान पर उकार आदेश होकर **सुदि+उ+भ्याम्** बना। **सुदि+उ** में **इको यणचि** से यण् होकर **सुद्युभ्याम्** सिद्ध होता है।

वकारान्त पुँल्लिङ्ग सुदिव्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुद्यौः	सुदिवौ	सुदिवः
द्वितीया	सुदिवम्	सुदिवौ	सुदिवः
तृतीया	सुदिवा	सुद्युभ्याम्	सुद्युभिः
चतुर्थी	सुदिवे	सुद्युभ्याम्	सुद्युभ्यः
पञ्चमी	सुदिवः	सुद्युभ्याम्	सुद्युभ्यः
षष्ठी	सुदिवः	सुदिवोः	सुदिवाम्
सप्तमी	सुदिवि	सुदिवोः	सुद्युषु
सम्बोधन	हे सुद्यौः	हे सुदिवौ	हे सुदिवः

प्रत्याहारक्रम से अब वकारान्त के बाद रेफान्त अर्थात् रकारान्त-शब्दों का प्रसंग है। यहाँ पर रेफान्त चतुर्-शब्द बहुत्व संख्या का वाचक है। इसके केवल बहुवचन ही होता है, एकवचन और द्विवचन नहीं।

चत्वारः। चतुर्-शब्द से प्रथमा के बहुवचन में जस्, अनुबन्धलोप, **चतुर्+अस्** में **चतुरनडुहोरामुदात्तः** से आम् आगम, मित् होने के कारण अन्त्य अच् तु में उकार के बाद और रेफ के पहले हुआ, **चतु+आ+र्** बना। **चतु+आ** में **इको यणचि** से यण् हुआ, **चत्वार्+अस्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ, चत्वारस् बना, सकार का रुत्व और विसर्ग हुआ- चत्वारः।

चतुरः। चतुर् से द्वितीया के बहुवचन में शस्, अनुवन्धलोप, चतुर्+अस् में यहाँ पर आम् आदि करने वाला कोई सूत्र नहीं है। अतः वर्णसम्मेलन हुआ- चतुरः।

नुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

२६६. षट्चतुर्भ्यश्च ७।१।५५॥

एभ्य आमो नुडागमः।

णत्वविधायकं विधिसूत्रम्

२६७. रषाभ्यां नो णः समानपदे ८।४।१॥

अचो रहाभ्यां द्वे। चतुर्ण्णाम्, चतुर्णाम्।

....

चतुर्भिः। तृतीया के बहुवचन भिस् में वर्णसम्मेलन और सकार का रुत्वविसर्ग।

चतुर्भ्यः। चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन में भी वर्णसम्मेलन और सकार का रुत्वविसर्ग ही करना है।

२६६- षट्चतुर्भ्यश्च। षट् च, चत्वारश्च, षट्चत्वारस्तेषामितरेतरद्वन्द्वः, षट्चतुर्भ्यः। षट्चतुर्भ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **आमि सर्वनाम्नः सुट्** से आमि, तथा **ह्रस्वनद्यापो नुट्** से नुट् की अनुवृत्ति आती है।

षट्संज्ञक-शब्द और चतुर् शब्द से परे आम् को नुट् होता है।

यह नुट् आगम टित् है और आम् को विहित है। अतः **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से आम् के आदि में ही बैठेगा।

२६७- रषाभ्यां नो णः समानपदे। रश्च षश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः- रषौ, ताभ्यां रषाभ्याम्। रषाभ्यां पञ्चम्यन्तं, नः षष्ठ्यन्तं, णः प्रथमान्तं, समानपदे सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में किसी सूत्र से किसी भी पद की अनुवृत्ति नहीं है।

रेफ और मूर्धन्य-षकार से परे नकार के स्थान पर णकार आदेश होता है समानपद में।

अर्थात् रेफ से परे हो या षकार से परे हो, ऐसे नकार णकार बन जाता है किन्तु रेफ और नकार या षकार और नकार दोनों एक ही पद में हों तो। जैसे चतुर्+नाम् (चतुर्णाम्) में रेफ और नकार एक ही पद में हैं। भिन्न पद में होने पर णत्व नहीं होगा। जैसे- **हरिर्नयति** में **हरिर्** का रेफ पूर्वपद में और **नयति** का नकार उत्तरपद में है, दोनों वर्ण एकपद में नहीं हैं। इसलिए भिन्नपद हुए। अतः नयति के नकार को णत्व नहीं हुआ। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** में यह सम्पूर्ण सूत्र जाता है। दोनों के णत्व में अन्तर यह है कि यह सूत्र रेफ और षकार से नकार के बीच किसी भी वर्ण की दखलंदाजी नहीं चाहता अर्थात् अव्यवधान में करता है और **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** व्यवधान में भी करता है किन्तु यदि किसी वर्ण का व्यवधान हो तो केवल अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ् और नुम् का ही व्यवधान हो सकता है। यही तुलना है इन दोनों सूत्रों की।

चतुर्ण्णाम्, चतुर्णाम्। चतुर्-शब्द से षष्ठी के बहुवचन में आम् आया, **षट्चतुर्भ्यश्च** से आम् को नुट् का आगम। अनुबन्धलोप होने के बाद टित् होने के कारण आद्यवयव अर्थात् आम् के आदि में हुआ- **चतुर्+न्+आम्** हुआ। **रषाभ्यां नो णः समानपदे** से रेफ से परे नकार को णत्व हुआ- **चतुर्+ण्+आम्** बना। **अचो रहाभ्यां द्वे** से णकार

नियमसूत्रम्

२६८. रोः सुपि ८।३।१६॥

रोरेव विसर्गः सुपि। षत्वम्। षस्य द्वित्वे प्राप्ते।

द्वित्वनिषेधकं विधिसूत्रम्

२६९. शरोऽचि ८।४।४९॥

अचि परे शरो न द्वे स्तः। चतुर्षु।

नकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२७०. मो नो धातोः ८।२।६४॥

धातोर्मस्य नः स्यात् पदान्ते। प्रशान्।

....

को विकल्प से द्वित्व होकर वर्णसम्मेलन हुआ और रेफ का ऊर्ध्वगमन हुआ- **चतुर्ण्णाम्।** द्वित्व न होने के पक्ष में एक णकार वाला **चतुर्णाम्** ही रह गया।

२६८- **रोः सुपि।** रोः षष्ठ्यन्तं, सुपि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से **विसर्जनीयः** की अनुवृत्ति आती है।

सप्तमी के बहुवचन सुप् के परे होने पर रु के स्थान पर ही विसर्ग होता है, अन्य के स्थान पर नहीं।

यह नियम सूत्र है। **सिद्धे सति आरभ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति।** सिद्ध होने पर भी पुनः उसी कार्य के लिए सूत्र का आरम्भ होना कुछ विशेष नियम के लिए होता है। **रु** के स्थान पर **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से विसर्ग आदेश सिद्ध है ही तो इस सूत्र के आरम्भ से यह नियम बना कि यदि **सुप्** जो सप्तमी का बहुवचन प्रत्यय है, इसके परे होने पर यदि विसर्ग हो तो केवल **रु** के रेफ का ही विसर्ग हो, अन्य का नहीं। इस तरह **चतुर्+सु** में रेफ के स्थान पर विसर्ग नहीं हुआ, क्योंकि चतुर् का रेफ रु आदेश होकर के आया नहीं है, अपितु स्वतः पहले से ही विद्यमान है।

२६९- **शरोऽचि।** शरः षष्ठ्यन्तम्, अचि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **नादिन्याक्रोशे पुत्रस्य** से **न** और **अचो रहाभ्यां द्वे** से **द्वे** की अनुवृत्ति आती है।

अच् परे हो तो शर् को द्वित्व नहीं होता है।

चतुर्+षु में **अचो रहाभ्यां द्वे** से वैकल्पिक द्वित्व प्राप्त होता है, उसका यह निषेध करता है। अच् से परे रेफ और उससे परे यर् ष् मिलता है। अतः द्वित्व की प्राप्ति थी। यदि शर् से अच् परे हो तो द्वित्व न हो। यहाँ पर ष् के बाद **उ** अच् ही है।

चतुर्षु। चतुर्-शब्द से सप्तमी के बहुवचन में सुप् आया, अनुबन्धलोप होने के बाद **चतुर्+सु** में रेफ के स्थान पर **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से विसर्ग आदेश प्राप्त था तो **रोः सुपि** के नियम से रुक गया। रेफ को इण् मानकर **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व होने पर बना- **चतुर्+षु** बना। रेफ से परे षकार को द्वित्व प्राप्त था, उसका **शरोऽचि** से निषेध हुआ- **चतुर्षु।**

रकारान्त शब्द के बाद बारी है मकारान्त शब्दों की, क्योंकि लकारान्त या वकारान्त शब्द बहुत कम मिलते हैं।

कादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२७१. किमः कः ७।२।१०३॥

किमः कः स्याद्विभक्तौ। कः। कौ। के इत्यादि। शेषं सर्ववत्।

....

२७०- मो नो धातोः। मः षष्ठ्यन्तं, नः प्रथमान्तं, धातोः पष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **पदस्य** का अधिकार है और **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से **अन्ते** की अनुवृत्ति आती है।

पदान्त में विद्यमान धातु के मकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

सु के लोप होने के वाद तथा भ्याम् आदि हलादिविभक्ति के परे होने के बाद पदान्त मिलता है, अतः वहाँ पर नकार आदेश होता है और अजादि के पर होने पर पदसंज्ञा नहीं होती है, अतः मकार ही रह जाता है।

प्रशान्। प्र-पूर्वक शम्-धातु से **प्रशाम्** बना है। उससे सु और उसका लोप, मकार के स्थान पर **मो नो धातोः** से नकार आदेश होने के बाद **प्रशान्** सिद्ध हुआ। अजादि विभक्ति के परे केवल प्रकृति-प्रत्यय का मेलन मात्र करना होता है।

मकारान्त पुँल्लिङ्ग प्रशाम्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्रशान्	प्रशामौ	प्रशामः
द्वितीया	प्रशामम्	प्रशामौ	प्रशामः
तृतीया	प्रशामा	प्रशान्भ्याम्	प्रशान्भिः
चतुर्थी	प्रशामे	प्रशान्भ्याम्	प्रशान्भ्यः
पञ्चमी	प्रशामः	प्रशान्भ्याम्	प्रशान्भ्यः
षष्ठी	प्रशामः	प्रशामोः	प्रशामाम्
सप्तमी	प्रशामि	प्रशामोः	प्रशान्सु
सम्बोधन	हे प्रशान्!	हे प्रशामौ!	हे प्रशामः !

२७१- किमः कः। किमः षष्ठ्यन्तं, कः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अष्टन आ विभक्तौ** से **विभक्तौ** की अनुवृत्ति आती है।

किम् शब्द के स्थान पर क आदेश होता है, विभक्ति के परे होने पर।

यह सूत्र किसी भी विभक्ति के परे रहने पर मकारान्त किम् के स्थान पर अकारान्त क आदेश करता है। **क** के अनेकाल् होने के कारण **अनेकाल् शित् सर्वस्य** के नियम से सम्पूर्ण किम् के स्थान पर होता है। फलतः हलन्त किम् शब्द अजन्त बन जाता है। किम् सर्वादिगण में भी आता है, इसलिए इसकी **सर्वादीनि सर्वनामानि** से सर्वनामसंज्ञा होती है। अतः इसके रूप सर्वशब्द के समान ही होते हैं।

कः। कौ। के। किम् शब्द से विभक्ति के आते ही **किमः कः** से **क** आदेश हो जाता है। इस तरह अकारान्त **क** से सु के परे होने पर अनुबन्धलोप और रुत्वविसर्ग होकर **कः।** इसी तरह क+औ में वृद्धि होकर **कौ** तथा जस् में सर्वे की तरह **के** बन जाते हैं। इस तरह किम्-शब्द सर्व-शब्द के समान रूप वाला हो जाता है। त्यद्, तद्,

मादेशविधायकं नियमसूत्रम्

२७२. इदमो मः ७।२।१०८॥

सौ। त्यदाद्यत्वापवादः।

अयादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२७३. इदोऽय् पुंसि ७।२।१११॥

इदम इदोऽय् सौ पुंसि। अयम्। त्यदाद्यत्वे।

....

यद्, एतत्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मत्, अस्मत्, भवतु और किम् इतने शब्दों में सम्बोधन नहीं होता।

मकारान्त पुँल्लिङ्ग किम्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कः	कौ	के
द्वितीया	कम्	कौ	कान्
तृतीया	केन	काभ्याम्	कैः
चतुर्थी	कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
पञ्चमी	कस्मात्, कस्माद्	काभ्याम्	केभ्यः
षष्ठी	कस्य	कयोः	केषाम्
सप्तमी	कस्मिन्	कयोः	केषु

अब मकारान्त पुँल्लिङ्ग इदम्-शब्द का विवेचन करते हैं। यह शब्द भी सर्वादिगण में आता है, इसलिए इसकी **सर्वादीनि सर्वनामानि** से सर्वनामसंज्ञा होती है।

२७२- इदमो मः। इदमः षष्ठ्यन्तं, मः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तदोः सः सावनन्त्ययोः** से सौ की अनुवृत्ति आती है।

सु के परे होने पर इदम् शब्द के मकार के स्थान पर मकार ही आदेश होता है।

मकार के स्थान पर पुनः मकार ही आदेश करने का क्या तात्पर्य है? **इदम्-शब्द** त्यदादिगण में आता है। अतः **त्यदादीनामः** से इदम् के मकार के स्थान पर अकार आदेश प्राप्त था, उससे प्राप्त अत्व न होकर मकार के स्थान पर मकार ही हो। अर्थात् सु के परे रहने पर इदम् के मकार के स्थान पर अकार आदेश न होकर मकार ही हो और अत्व न हो, अतः मकार के स्थान पर मकारादेश ही किया।

२७३- इदोऽय् पुंसि। इदः षष्ठ्यन्तम्, अय् प्रथमान्तं, पुंसि सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **इदमो मः** से इदमः तथा **यः सौ** से सौ की अनुवृत्ति आती है। **इदम्-शब्द के इद् भाग के स्थान पर अय् आदेश होता है सु के परे होने पर पुँल्लिङ्ग में।**

इदम् शब्द को दो भाग करके (इद् और अम्) इस सूत्र से इद् भाग के स्थान पर अय् आदेश होगा सु के परे रहने पर किन्तु केवल पुँल्लिङ्ग में ही।

अयम्। इदम्-शब्द मकारान्त है। इससे सु प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **त्यदादीनामः** से अत्व प्राप्त था, उसे बाधकर **इदमो मः** से मकार के स्थान पर मकार ही आदेश। **इदम् स्**

परररूपविधायकं विधिसूत्रम्

२७४. अतो गुणे ६।१।९७॥

अपदान्तादतो गुणे पररूपमेकादेशः।

मकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२७५. दश्च ७।२।१०९॥

इदमो दस्य मः स्याद्विभक्तौ। इमौ। इमे।

त्यदादेः सम्बोधनं नास्तीत्युत्सर्गः।

....

में **इदोऽय् पुंसि** से **इद्** के स्थान पर **अय्** आदेश हुआ- **अय्+अम्+स्** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **अयम् स्** बना। सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ- **अयम्** सिद्ध हुआ।

२७४- अतो गुणे। अतः पञ्चम्यन्तं, गुणे सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **उस्यपदान्तात्** से **अपदान्तात्** और **एङः पदान्तादति** से **अति** की अनुवृत्ति आती है। **एकः पूर्वपरयोः** का अधिकार तो है ही।

अपदान्त अकार से गुण (अ, ए, ओ) के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर पररूप एक आदेश होता है।

गुण-शब्द से **अदेङ् गुणः** से विहित गुणसंज्ञक वर्ण **अ, ए, ओ** ही लिए जायेंगे। यह सूत्र **वृद्धिरेचि, अकः सवर्णे दीर्घः** आदि का अपवादसूत्र है॥

२७५- दश्च। दः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अष्टन आ विभक्तौ** से **विभक्तौ** की और **इदमो मः** से **मः** की अनुवृत्ति आती है।

इदम् शब्द के दकार के स्थान पर मकार आदेश हो विभक्ति के परे रहते।

इमौ। इदम् से प्रथमा का द्विवचन औ आया, विभक्ति के परे रहने पर **त्यदादीनामः** से मकार के स्थान पर अत्व अर्थात् अकार-आदेश हुआ- **इद+अ+औ** बना। **इद+अ** में **अतो गुणे** से पूर्व इद के **अकार** और पर अत्व वाले **अकार** दोनों के स्थान पर पररूप अकार ही आदेश हुआ तो बना- **इद।** अब **इद+औ** में **दश्च** से दकार के स्थान पर मकारादेश हुआ तो बना- **इम।** **इम+औ** में रामवत् **वृद्धिरेचि** से वृद्धि हुई- **इमौ।** इसी प्रकार द्वितीया के द्विवचन औट् में भी **इमौ** बन जायेगा।

इमे। प्रथमा के बहुवचन में जस् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **त्यदादीनामः** से अत्व, **अतो गुणे** से पररूप, सर्वनामसंज्ञक होने के कारण **जसः शी** से जस् वाले अस् के स्थान पर शी-आदेश, अनुबन्धलोप, **दश्च** से मत्व होने पर **इम+ई** बना। **आद्गुणः** से गुण हुआ- **इमे।**

त्यदादेः सम्बोधनं नास्तीत्युसर्गः। त्यदादिगणीय शब्दों में सम्बोधन नहीं बनता। जैसे हे यह, अरे तुम, हे मैं, हे आप, हे कौन आदि बड़े अटपटे लगते हैं। इस लिए सम्बोधन का प्रयोग नहीं होता। अतः रूप बनाने की जरूरत ही नहीं।

इमम्। द्वितीया के एकवचन में अम्, **त्यदादीनामः** से अत्व, **अतो गुणे** से पररूप, **दश्च** से मत्व होने पर **इम+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **इमम्।**

इमान्। द्वितीया के बहुवचन में शस्, अनुबन्धलोप, **त्यदादीनामः** से अत्व, **अतो गुणे**

अनादेशविधायकं सूत्रम्

२७६. अनाप्यकः ७।२।११२॥

अककारस्येदम इदोऽनापि विभक्तौ। आबिति प्रत्याहारः। अनेन।

लोपविधायकं विधिसूत्रम्

२७७. हलि लोपः ७।२।११३॥

अककारस्येदम इदो लोप आपि हलादौ।

नानर्थकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे।

....

से पररूप, **दश्च** से मत्व होने पर **इम+अस्** बना। **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** से पूर्वसवर्णदीर्घ- **इमास्** बना। सकार का **तस्माच्छसो नः पुंसि** से नत्व होकर- **इमान्** सिद्ध हुआ।

२७६- **अनाप्यकः**। नास्ति क् यस्मिन् स अक्, तस्य अकः, बहुव्रीहिः। अन् प्रथमान्तम्, आपि सप्तम्यन्तम्, अकः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **इदमो मः** से **इदमः**, **इदोऽय् पुंसि** से **इदः** और **अष्टन आ विभक्तौ** से **विभक्तौ** की अनुवृत्ति आती है।

आप्-प्रत्याहार की विभक्ति के परे रहने पर अकच् प्रत्यय के ककार से रहित इदम्-शब्द के इद्-भाग के स्थान पर अन्-आदेश होता है।

इदम् शब्द में **अव्ययसर्वनाम्नामकच्प्राक्टेः** से यदि अकच् न हुआ हो तो तभी यह सूत्र प्रवृत्त होता है क्योंकि अकच् के बाद इदम्-शब्द **इदकम्** बन जाता है अर्थात् ककारयुक्त हो जाता है। सूत्र में **अकः** का अर्थ है **न कः=अकः** अर्थात् जहाँ ककार नहीं है, आपि यह शब्द आप् प्रत्याहार का वाचक है **औङ आपः** का जैसा टाप् आदि प्रत्यय का नहीं।

प्रत्याहार केवल चतुर्दश-सूत्रों से ही नहीं बनते हैं अपितु **सुप्** आदि भी प्रत्याहार है। सु औ जस् वाले सु से लेकर सुप् के पकार तक का **सुप्** भी प्रत्याहार है तो तिप्तस्झि० आदि में ति से लेकर **महिङ्** के ङकार को लेकर तिङ्-प्रत्याहार माना गया है। इसी तरह इस सूत्र में भी **आप्** प्रत्याहार ही है। तृतीया के एकवचन **टा** वाले **आ** से लेकर **सुप्** के प् तक को **आप्** प्रत्याहार माना गया। अर्थात् तृतीया विभक्ति से सप्तमी विभक्ति तक सारे प्रत्यय **आप्**-प्रत्याहार के अन्तर्गत आते हैं।

अनेन। इदम् से तृतीया का एकवचन टा आया, अनुबन्धलोप हुआ। अत्व हुआ, पररूप हुआ तो बना- **इद आ**। **दश्च** से मत्व प्राप्त था, उसे बाधकर **अनाप्यकः** से इद में इद् के स्थान पर अन् आदेश हुआ तो **अन्+अ+आ** बना। **अन्+अ** में वर्णसम्मेलन होने पर रामवत् अदन्त अन से टा-सम्बन्धी आ के परे रहने पर **टाङसिङसामिनात्स्याः** से इन आदेश हुआ- **अन+इन**। **आद्गुणः** से गुण होकर अनेन सिद्ध हुआ।

२७७- **हलि लोपः**। हलि सप्तम्यन्तं, लोपः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अनाप्यकः** से **अकः** और **आपि**, **इदमो मः** से **इदमः**, **इदोऽय् पुंसि** से **इदः** और **अष्टन आ विभक्तौ** से **विभक्तौ** की अनुवृत्ति आती है।

अकच्-प्रत्यय के ककार से रहित इदम्-शब्द के इद्-भाग का लोप होता है हलादि आप् विभक्ति के परे रहने पर।

अतिदेश-सूत्रम्

२७८. आद्यन्तवदेकस्मिन् १।१।२१॥

एकस्मिन् क्रियमाणं कार्यमादाविव अन्त इव च स्यात्।

सुपि चेति दीर्घः। आभ्याम्।

....

यह सूत्र हलादि विभक्ति में **अनाप्यकः** को बाधेगा और अजादि में लगेगा ही नहीं। अतः अजादि में अनाप्यकः से अन् आदेश होगा। तृतीया से सप्तमी के बीच जो हलादि-विभक्ति हैं, वहीं पर यह सूत्र लगेगा। **त्यदादीनामः** से अत्व होने के बाद इद में इद् का लोप हो जाने पर केवल **अ** ही बचेगा।

नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे। यह परिभाषा है। **अनर्थक में अलोऽन्त्यस्य परिभाषा की प्रवृत्ति नहीं होती किन्तु अभ्यास का विकार अनर्थक हो तो भी प्रवृत्ति होती है।**

निरर्थक और अर्थवान् का निर्णय करने के लिए परिभाषा है- **समुदायो ह्यर्थवान्, तस्यैकदेशोऽनर्थकः**। अर्थात् समुदाय अर्थवान् होता है किन्तु समुदाय का एक भाग अनर्थक होता है। जैसे- **इदम्** यह वर्णों का समुदाय अर्थवान् है और केवल इद् या अम् निरर्थक।

इद+भ्याम् आदि तृतीयादि हलादि विभक्ति के परे होने पर **अनाप्यकः** को बाध कर **हलि लोपः** से इद्-भाग का लोप प्राप्त हुआ तो **अलोऽन्त्यस्य** की प्रवृत्ति होकर अन्त्य के स्थान पर लोप होना चाहिए था किन्तु **नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे** के नियम से यहाँ पर **अलोऽन्त्य**-परिभाषा प्रवृत्त नहीं होती। अतः सम्पूर्ण इद् का लोप हो जाता है।
२७८- आद्यन्तवदेकस्मिन्। आदिश्च अन्तश्च इतरेतरद्वन्द्वः, आद्यन्तौ, तयोरिव आद्यन्तवत्। आद्यन्तवत् अव्ययपदम्, एकस्मिन् सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

आदि और अन्त को मानकर होने वाला कार्य केवल एक को ही मानकर भी हो अर्थात् एक ही वर्ण को आदि भी माना जाय और अन्त भी।

इस सूत्र के द्वारा किये गये कार्य को **व्यपदेशिवद्भाव**[1] कहते हैं। यह सूत्र लोकप्रसिद्ध न्याय पर स्थित है। जैसे लोक में- **देवदत्तस्य एक एव पुत्रः, स एव ज्येष्ठः, स एव मध्यमः, स एव कनिष्ठः**। अर्थात् देवदत्त का एक ही पुत्र है, चाहे उसे जेष्ठ मानो या मझला मानो अथवा कनिष्ठ मानो।

आदि और अन्त शब्द सापेक्ष हैं अर्थात् दूसरे की अपेक्षा करते हैं क्योंकि जब तक अन्य वर्ण न हों, आदि और अन्त की व्यवस्था नहीं बन सकती है। **यस्मात् पूर्वं नास्ति परमस्ति स आदिः, यस्मात् पूर्वमस्ति परं च नास्ति सोऽन्तः**। जिससे पूर्व नहीं है और पर है, उसे आदि तथा जिससे पूर्व है और पर नहीं है, वह अन्त है। इदम् में इद-भाग का लोप होने पर केवल अ बचा है। अब **सुपि च** से दीर्घ करना है। वह अदन्त अङ्ग को दीर्घ करता है। केवल अ तो अत् मात्र है, अदन्त अङ्ग कैसे माना जाय? अर्थात् अन्त मानने के लिए उससे आदि में भी कुछ होना चाहिए। इस सन्देह की निवृत्ति के लिए **आद्यन्तवदेकस्मिन्**

टिप्पणी(१) वि-विशिष्टः=मुख्यः, अपदेशः=व्यवहारः इति व्यपदेशः। स अस्यास्तीति व्यपदेशी, तेन तुल्यं व्यपदेशिवत्। मुख्यव्यवहारवान् इव इत्यर्थः। तस्य भावो व्यपदेशिवद्भावः।

ऐसादेशनिषेधसूत्रम्

२७९. नेदमदसोरकोः ७।१।११।।

अककारयोरिदमदसोर्भिस ऐस् न। एभिः। अस्मै। एभ्यः। अस्मात्। अस्य। अनयोः। एषाम्। अस्मिन्। अनयोः। एषु।

....

का अवतरण है। यह कहता है एक में आदि भी है और अन्त भी। एक पुत्र को चाहे बड़ा समझो, या मझला या छोटा समझो। यह लोकन्याय है। यही व्यपदेशिवद्भाव है।

आभ्याम्। इदम् से तृतीया, चतुर्थी एवं पञ्चमी के द्विवचन मे भ्याम् आया, अत्व और पररूप होने के बाद **इद+भ्याम्** बना है। **हलि लोपः** से इद्-भाग के लोप होने के बाद **अ+भ्याम्** बना। रामवत् व्यपदेशिवद्भाव से अदन्त बन जाने के बाद **सुपि च** से दीर्घ होकर **आभ्याम्** सिद्ध हुआ।

२७९- नेदमदसोरकोः। इदञ्च अदश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः-इदमदसौ, तयोः- इदमदसोः। नास्ति क् ययोस्तौ अकौ, तयोः- अकोः। न अव्ययपदम्, इदमदसोः षष्ठ्यन्तम्, अकोः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अतो भिस ऐस्** से **भिसः** और **ऐस्** की अनुवृत्ति आती है।

अकच् के ककार से रहित इदम् और अदस् शब्दों से परे भिस् के स्थान पर ऐस् आदेश नहीं होता है।

यह सूत्र **अतो भिस ऐस्** से प्राप्त ऐस् आदेश का निषेधक है।

एभिः। इदम् से तृतीया का बहुवचन **भिस्** आया। अत्व एवं पररूप होने के बाद इद+भिस् में **हलि लोपः** से इद्-भाग का लोप हुआ, **अ+भिस्** बना। अब रामशब्द के समान अदन्त बन जाने के बाद **अतो भिस ऐस्** से भिस् के स्थान पर ऐस् आदेश की प्राप्ति हो रही थी तो **नेदमदसोरकोः** ने निषेध कर दिया। अकार के स्थान पर **बहुवचने झल्येत्** से एत्व हुआ तो **एभिस्** बना, सकार का रुत्व और विसर्ग हुआ- **एभिः।**

अस्मै। इदम् से चतुर्थी के एकवचन में ङे विभक्ति है। अनुबन्धलोप, अत्व और पररूप होने के बाद इद+ए में सर्वनामसंज्ञक होने के कारण **सर्वनाम्नः स्मै** से **ङे** के स्थान पर **स्मै** आदेश होने पर **इद+स्मै** बना। पहले तो अजादि प्रत्यय परे होने के कारण **हलि लोपः** से लोप प्राप्त नहीं था किन्तु स्मै आदेश करने पर हलादि-प्रत्यय हुआ, अतः **हलि लोपः** से इद्-भाग का लोप हुआ तो बना **अस्मै।** स्मै का सकार यञ्-प्रत्याहार में नहीं आता, अतः **सुपि च** से दीर्घ नहीं हुआ। बहुवचन न होने के कारण **बहुवचने झल्येत्** से एत्व भी नहीं हुआ।

एभ्यः। इदम् से चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन में भ्यस् आया, इदम् में **त्यदादीनामः** से अत्व और **अतो गुणे** से पररूप होकर इद+भ्यस् बना। इद में इद्-भाग का **हलि लोपः** से लोप हुआ तो अ+भ्यस् बना। **बहुवचने झल्येत्** से अकार के स्थान पर एत्व कर दिये जाने से **एभ्यस्** हुआ और सकार का रुत्व-विसर्ग हुआ- **एभ्यः।**

अस्मात्। इदम् से पञ्चमी का एकवचन ङसि, अनुबन्धलोप, अत्व, पररूप, **इद+अस्** में इद अदन्त हुआ है, अतः **ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ** से स्मात् आदेश, **इद+स्मात्** में **हलि लोपः** से इद्-भाग का लोप होने पर **अस्मात्** सिद्ध हुआ।

अस्य। इदम् से षष्ठी का एकवचन ङस् आया, अनुबन्धलोप, पररूप, **इद+अस्**

एनादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२८०. द्वितीयाटौस्स्वेनः २।४।३४॥

इदमेतदोरन्वादेशे।

किञ्चित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः।

यथा- अनेन व्याकरणमधीतमेनं छन्दोऽध्यापयेति।

अनयोः पवित्रं कुलमेनयोः प्रभूतं स्वमिति।

एनम्। एनौ। एनान्। एनेन। एनयोः। एनयोः। राजा।

....

में **टाङसिङसामिनात्स्याः** से अस् के स्थान पर स्य आदेश और **हलि लोपः** से इद्-भाग का लोप हुआ-**अस्य** सिद्ध हुआ।

अनयोः। इदम् से षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में ओस्, अत्व और पररूप होने के बाद **इद+ओस्** बना है। **अनाप्यकः** से इद्-भाग के स्थान पर अन्-आदेश होने पर **अन+ओस्** बना। **ओसि च** से एत्व हुआ- **अने+ओस्** बना। **एचोऽयवायावः** से अय् आदेश होकर **अन्+अय्+ओस्** बना। वर्णसम्मेलन हुआ और सकार का रुत्वविसर्ग हुआ- **अनयोः**।

एषाम्। इदम् से षष्ठी के बहुवचन में आम्, अत्व, पररूप, **इद+आम्** में सर्वनामसंज्ञक एवं अदन्त बन जाने के कारण **आमि सर्वनाम्नः सुट्** से सुट् आगम, **इद स् आम्, स्+आ** में वर्णसम्मेलन, **इद+साम्** में हलादि हो जाने कारण **हलि लोपः** से इद्-भाग का लोप होकर **अ+साम्** बना। **बहुवचने झल्येत्** एत्व, **ए+साम्** में **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व होकर **एषाम्** बना।

अस्मिन्। इदम् से सप्तमी का एकवचन ङि, अनुबन्धलोप, अत्व, पररूप हो जाने के बाद **इद+इ** में **ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ** से स्मिन् आदेश होकर **इद+स्मिन्** बना। अब हलादि हो जाने के कारण **हलि लोपः** से इद्-भाग का लोप हुआ- **अस्मिन्** सिद्ध हुआ।

एषु। इदम् से सप्तमी का बहुवचन सुप् आया, अनुबन्धलोप, अत्व, पररूप, **इद+सु** में **हलि लोपः** से इद्-भाग का लोप, **अ+सु** में **बहुवचने झल्येत्** से एत्व और **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व होकर बना- **एषु**।

मकारान्त इदम्- शब्द के पुँल्लिङ्ग में रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अयम्	इमौ	इमे
द्वितीया	इमम्	इमौ	इमान्
तृतीया	अनेन	आभ्याम्	एभिः
चतुर्थी	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पञ्चमी	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
षष्ठी	अस्य	अनयोः	एषाम्
सप्तमी	अस्मिन्	अनयोः	एषु

२८०- **द्वितीयाटौस्स्वेनः**। द्वितीया च टाश्च, ओस् च, तेषामितरेतरद्वन्द्वः- द्वितीयाटौसः, तेषु द्वितीयाटौस्सु। द्वितीयाटौस्सु सप्तम्यन्तम्, एनः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

नलोपनिषेधविधायकं विधिसूत्रम्

२८१. न ङिसम्बुद्ध्योः ८।२।८॥

नस्य लोपो न ङौ सम्बुद्धौ च। हे राजन्।

वार्तिकम्- **ङावुत्तरपदे प्रतिषेधो वक्तव्यः।** ब्रह्मनिष्ठः।

राजानौ। राजानः। राज्ञः।

....

इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयायादौ से इदमः और अन्वादेशे तथा एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्तौ से एतदः की अनुवृत्ति आती है।

द्वितीया विभक्ति, टा और ओस् के परे होने पर इदम् और एतद् शब्द के स्थान पर एन आदेश होता है, अन्वादेश में।

किसी कार्य को बोधन कराने के लिए ग्रहण किये हुए का पुनः दूसरे कार्य को बोधन कराने के लिए ग्रहण करना अन्वादेश है। जैसे- **अनेन व्याकरणमधीतमेनं छन्दोध्यापयेति।** इसने व्याकरण पढ़ लिया है, अब इसे छन्दः अर्थात् वेद पढ़ाओ। एक कार्य के बाद तत्काल दूसरे कार्य के लिए कथन ही अन्वादेश है। इसी तरह- **अनयोः पवित्रं कुलमेनयोः प्रभूतं स्वमिति।** इन दोनों का कुल पवित्र है तथा इनका धन भी बहुत है। कुल की पवित्रता के बोधन के लिए एक बार ग्रहण और धन की विपुलता बताने दूसरी बार ग्रहण किया गया। अतः अन्वादेश है।

अन्वादेश में द्वितीय वार उच्चारित इदम् और एतद् शब्द के स्थान पर अम्, औट्, शस्, टा, ओस् के परे एन आदेश होकर **इमम्, इमम्, इमान्, अनेन, अनयोः** तथा **एतम्, एतौ, एतान्, एतेन, एतयोः** के स्थान पर क्रमशः **एनम्, एनौ, एनान्, एनेन, एनयोः** ये रूप सिद्ध होते हैं।

अन्वादेश के विषय में विशेष ध्यान रखें। यदि **अनेन व्याकरणमधीतमिमं छन्दोऽध्यापय** और **अनयोः पवित्रं कुलमनयोः प्रभूतं स्वम्** ऐसा प्रयोग हुआ तो बहुत गड़बड़ हो जायेगा।

मकारान्त शब्दों के बाद अब नकारान्त पुँलिङ्ग राजन् शब्द का विवेचन करते हैं। राजन्= राजा। यह शब्द **राजृ दीप्तौ** धातु से कनिन् प्रत्यय करके सिद्ध हुआ है। यह प्रत्यय कृत्प्रकरण का है, अतः **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हुई।

राजा। राजन् शब्द से प्रथमा का एकवचन सु आया। अनुबन्धलोप, **राजन् स्** में **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** से ज में अकार की उपधासंज्ञा होती है और **सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ** से उपधादीर्घ होकर **राजान् स्** बनता है। सकार की **अपृक्त एकाल् प्रत्ययः** से अपृक्तसंज्ञा होकर **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से उसका लोप हो जाता है। नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होकर **राजा** बन जाता है।

राजानौ। राजानः। राजानम्। राजानौ। राजन् से प्रथमा के द्विवचन में औ, राजन् औ में उपधासंज्ञा और उपधादीर्घ होकर राजान्+औ में वर्णसम्मेलन होकर **राजानौ** बना। इसी प्रकार आगे विभक्ति लाकर अनुबन्धलोप करके उपधासंज्ञा और उपधादीर्घ करें और वर्णसम्मेलन करते जाइये, राजानः, राजानम्, राजानौ बन जायेंगे।

नलोपासिद्धविधायकं नियमसूत्रम्

२८२. नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति ८।२।२॥

सुब्विधौ स्वरविधौ संज्ञाविधौ तुग्विधौ कृति च नलोपोऽसिद्धो नान्यत्र राजाश्व इत्यादौ। इत्यसिद्धत्वादात्वमेत्वमैस्त्वं च न।

राजभ्याम्। राजभिः। राज्ञि, राजनि। राजसु। यज्वा। यज्वानौ। यज्वानः।

....

२८१- न ङिसम्बुद्ध्योः। ङिश्च सम्बुद्धिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः, ङिसम्बुद्धी, तयोः- ङिसम्बुद्ध्योः। न अव्ययपदं, ङिसम्बुद्ध्योः सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

ङि और सम्बुद्धि के परे होने पर नकार का लोप नहीं होता है।

राजन् से परे सम्बुद्धि के **सु** का हल्ङ्यादिलोप होने पर नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप प्राप्त होने पर यह निषेध करता है। इस निषेध को भी निषेध करने वाला अग्रिम वार्तिक है।

ङावुत्तरपदे प्रतिषेधो वक्तव्यः। यह वार्तिक है। **उत्तरपद-परक ङि के परे होने पर नकार के लोप के निषेध का निषेध कहना चाहिए** अर्थात् **न ङिसम्बुद्ध्योः** इस सूत्र का निषेध कहना चाहिए। इससे **ब्रह्मन्+ङि+निष्ठः** में नकार के लोप का निषेध नहीं हुआ अपितु नकार का लोप हुआ और **ब्रह्मनिष्ठः** बना। अन्यथा **ब्रह्मन्निष्ठः** ऐसा अनिष्ट रूप बनता।

हे राजन्। राजन् से सम्बोधन में सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप होकर **राजन्** बना। **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** में **असम्बुद्धौ** कहने के कारण दीर्घ नहीं हुआ। नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप प्राप्त था, **न ङिसम्बुद्ध्योः** से निषेध हुआ। हे का पूर्वप्रयोग करके **हे राजन्!** सिद्ध हुआ।

ज् और ञ् का वर्णसम्मेलन होता है तो **ज्ञ्** बन जाता है, जैसे कि त् और र् के संयोग से **त्र्** और क् और ष् के संयोग से **क्ष्** बनता है।

राज्ञः। **राज्ञा**। राजन् से द्वितीया के बहुवचन में शस् आया और अनुबन्धलोप हुआ, **राजन्+अस्** हुआ। **यचि भम्** से भसंज्ञा हुई। अब सूत्र लगा- **अल्लोपोऽनः**। **राज्+अन्+अस्** में अङ्गावयव असर्वनामस्थान परक अन् है राजन् में अन्तिम भाग, उसके अकार का लोप हुआ तो बचा- **राज्+न्+अस्**। **राज्+न्** में जकार के योग में **स्तोः श्चुना श्चुः** से श्चुत्व होकर नकार के स्थान पर ञकार बन गया। **राज्+ञ्** बना। जकार और ञकार के सम्मेलन में ज्ञकार बन जाता है। अतः इनका वर्णसम्मेलन हुआ- **राज्ञ्+अस्** बना। ज्ञ् और अ में भी वर्णसम्मेलन हुआ तो **राज्ञस्** बना। सकार का रुत्व और विसर्ग हुआ- **राज्ञः**। इसी प्रकार तृतीया के एकवचन में टा, अनुबन्धलोप करके **राजन्+आ** में अकारलोप, श्चुत्व और जकार-ञकार का सम्मेलन करके **राज्ञ्+आ** बन जाने के बाद वर्णसम्मेलन करें तो राज्ञा भी बन जायेगा। इसी तरह आगे भी अजादि विभक्ति में करते जायेंगे तो **राज्ञे**, **राज्ञः**, **राज्ञोः**, **राज्ञाम्** आदि बनते जायेंगे। **राज्ञाम्** में ह्रस्वान्त अङ्ग न होने के कारण **ह्रस्वनद्यापो नुट्** से नुट् आगम नहीं होगा। हलादिविभक्ति के पृथक् कथन कर रहे हैं।

२८२- नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति। नस्य लोपो नलोपः, षष्ठीतत्पुरुषः। सुप् च, स्वरश्च, संज्ञा च, तुक् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः- सुप्स्वरसंज्ञातुकः, तेषां विधयः,

सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधय:,(षष्ठीतत्पुरुष:) तेषु सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु। नलोप: प्रथमान्तं, सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु सप्तम्यन्तं, कृति सप्तम्यन्तम्, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **पूर्वत्रासिद्धम्** से लिङ्गविपरिणाम करके **असिद्धः** की अनुवृत्ति आती है।

सुप् की विधि, स्वर की विधि, संज्ञा की विधि और कृत् के परे रहने पर तुक् आगम की विधि करने पर नकार का लोप असिद्ध होता है, अन्यत्र नहीं।

इस प्रकरण के प्रसंग में सुप् को आश्रय मानकर होने वाली सुप्-विधि करनी है। नकार का **नलोप: प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हो जाने के बाद भी यह सूत्र नकार का लोप असिद्ध अर्थात् लोप न होने का जैसा नियम करता है। नकार के लोप असिद्ध हो जाने के बाद **सुपि च** से आत्व अर्थात् दीर्घ, **बहुवचने झल्येत्** से एत्व और **अतो भिस् ऐस्** से ऐस् आदि नहीं होंगे। उदाहरण आगे स्पष्ट किए जा रहे हैं।

सुप् की विधि, स्वर की विधि, संज्ञा की विधि और कृत् के परे तुग्विधि में ही नकार का लोप असिद्ध होने के कारण **राज्ञ:अश्व:, राजन्+अश्व:** में नकार का लोप होकर **राज+अश्व:** बना। यहाँ पर दीर्घ करना है, उपर्युक्त विधियाँ नहीं। अत: नकार का लोप असिद्ध नहीं हुआ। अत: सवर्णदीर्घ हो गया **राजाश्व:** बन गया। यदि नकार का लोप असिद्ध हो जाता तो **दीर्घ** नहीं हो पाता।

राजभ्याम्। राजन् से तृतीया का द्विवचन भ्याम् आया। **राजन्+भ्याम्** में **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से राजन् की पदसंज्ञा हुई और पदान्त नकार का **नलोप: प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ- **राज+भ्याम्** बना। ऐसी स्थिति में **सुपि च** से दीर्घ की प्राप्ति हो रही थी, क्योंकि वह सूत्र अदन्त को दीर्घ करता है। नकार के लोप हो जाने के बाद **राज** अदन्त अर्थात् ह्रस्व अकारान्त बन गया था, सो दीर्घ को रोकने के लिए सूत्र लगा- **नलोप: सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति।** हमें आगे **सुपि च** से सुप् की विधि दीर्घ करनी है तो इससे नकार का लोप ही असिद्ध कर दिया गया। जब नकार का लोप ही असिद्ध हुआ तो **सुपि च** को अदन्त अर्थात् ह्रस्व अकारान्त दृष्टिगोचर नहीं हुआ। इसलिए दीर्घ भी नहीं किया। राजभ्याम् ही रह गया। यदि यह सूत्र न होता तो **सुपि च** से दीर्घ होकर के **राजाभ्याम्** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

यद्यपि न लोप: **प्रातिपदिकान्तस्य** के त्रिपादी होने के कारण **पूर्वत्रासिद्धम्** से ही असिद्ध हो रहा था, फिर भी इसका आरम्भ क्यों किया गया? इसका उत्तर यह है कि **नलोप असिद्ध हो तो इतनी विधियों में ही हो, अन्यत्र न हो,** ऐसा नियम करने के लिए। अत: **राज+अश्व:** में उक्त विधियाँ नहीं हो रही हैं, अत: नलोप असिद्ध नहीं होगा। इसलिए दीर्घ होकर **राजाश्व:** यह रूप सिद्ध हो जाता है।

राजभि:। राजभ्य:। राजसु। राजन् शब्द से तृतीया का बहुवचन भिस् आया। पदसंज्ञा, नकार का लोप, भिस् के स्थान पर ऐस्-आदेश की प्राप्ति और नकारलोप को असिद्ध कर देने से ऐस् आदेश का न होना आदि प्रक्रिया करके सकार का रुत्वविसर्ग करने से **राजभि:** यह सिद्ध हुआ। इसी प्रकार **राजभ्य: में भी** चतुर्थी और पञ्चमी के बहुवचन में भ्यस् विभक्ति, पदसंज्ञा, नकार का लोप, **बहुवचने झल्येत्** से एत्व की प्राप्ति और नकारलोप को असिद्ध कर देने पर एत्व का न होना आदि प्रक्रिया करके सकार का रुत्वविसर्ग करने से **राजभ्य:** यह सिद्ध हो जायेगा। इसी प्रकार से सप्तमी के बहुवचन में भी एत्व के अभाव होने से षत्व भी नहीं होगा तो केवल **राजसु** ही रह जायेगा।

अकारलोपनिषेधविधायकं विधिसूत्रम्

२८३. न संयोगाद्वमन्तात् ६।४।१३७।।

वमन्तसंयोगादनोऽकारस्य लोपो न।

यज्वनः। यज्वना। यज्वभ्याम्। ब्रह्मणः। ब्रह्मणा।

....

राज्ञि, राजनि। राजन् से सप्तमी के एकवचन में ङि, अनुबन्धलोप, भसंज्ञा, **राजन्+ इ** में **अल्लोपोऽनः** से नित्य अन् के अकार का लोप प्राप्त था, उसे बाधकर **विभाषा ङिश्योः** से विकल्प से अकार का लोप किया। लोप होने पर **राज्+न्+इ** श्चुत्व और ञकार एवं जकार से मेल से ज्ञकार बन गया। **राज्ञ्+इ** में वर्णसम्मेलन हुआ- **राज्ञि**। अकार के लोप न होने के पक्ष में **राजन्+इ** है, वर्णसम्मेलन हुआ- **राजनि** ही रह गया। इस प्रकार से राजन् के सप्तमी के एकवचन में दो रूप सिद्ध हुए। अब आप इतना जरूर ध्यान रखें कि प्रथमा के एकवचन और आगे हलादि-विभक्ति के परे रहने पर पदसंज्ञा करके नकार का लोप करना, सर्वनामस्थानसंज्ञा की स्थिति में उपधादीर्घ और असर्वनामस्थान अजादि विभक्ति के परे रहने पर अन् के अकार का लोप करके श्चुत्व और ज्ञत्व करके रूप बनाने हैं।

नकारान्त राजन्- शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	राजा	राजानौ	राजानः
द्वितीया	राजानम्	राजानौ	राज्ञः
तृतीया	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
चतुर्थी	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः
पञ्चमी	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
षष्ठी	राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
सप्तमी	राज्ञि, राजनि	राज्ञोः	राजसु
सम्बोधन	हे राजन्	हे राजानौ	हे राजानः

अब आप इसी प्रकार निम्नलिखित अन्-अन्त शब्दों के भी रूप बनायें।

अणिमन्=अत्यन्त अणु	कालिमन्=कालापन	गरिमन्=गौरवता
जडिमन्=जड़ता	प्रथिमन्=विस्तार	प्रेमन्= प्रेम
भूमन्=बहुत्व	मधुरिमन्=मधुरता	महिमन्=महत्त्व
रक्तिमन्=लाली	लघिमन्=हल्कापन	शुक्लिमन्=सफेदी

यज्वन् शब्द अन्नन्त अर्थात् अन्-अन्त होने के कारण राजन् शब्द के जैसे ही इसके रूप होने चाहिए और कुछ अंश में हैं भी किन्तु **अन्** के अकार के लोप के सम्बन्ध में भिन्न है। शसादि विभक्ति के परे रहने पर राजन् में अन् अकार का लोप होता है किन्तु यज्वन् आदि शब्दों में नहीं होता। अतः पृथक् कथन किया गया।

यज्वा। यज्वानौ। यज्वानः। यज्वानम्। यज्वानौ। यज्वन् से **सु, औ, जस्, अम्** और औट् में **राजन्-शब्द** के समान उपधादीर्घ और सु में सकार का लोप और नकार का लोप आदि करके **यज्वा, यज्वानौ, यज्वानः, यज्वानम्, यज्वानौ** बनाइये।

२८३- न संयोगाद्वमन्तात्। वश्च मश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो वमौ, तौ अन्तौ यस्य स वमन्तः,

द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः, तस्मात् वमन्तात्। न अव्ययपदं, संयोगात् पञ्चम्यन्तं, वमन्तात् पञ्चम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अल्लोपोऽनः** से **अनः** की अनुवृत्ति आती है।

वकारान्त संयोग और मकारान्त संयोग से परे अन् के अकार का लोप नहीं होता है।

यज्+व्+अन् में ज् और व् का संयोग है और संयोग के अन्त में वकार है। अतः **अल्लोपोऽनः** से प्राप्त अकार के लोप का निषेध हो जाता है।

यज्वनः। यज्वन् से द्वितीया के बहुवचन में शस्, अनुबन्धलोप, **अल्लोपोऽनः** से अकार का लोप प्राप्त और **न संयोगाद्वमन्तात्** से लोप का निषेध। वर्णसम्मेलन और सकार का रुत्वविसर्ग करने पर **यज्वनः** सिद्ध हुआ। अब इसी प्रकार आगे सम्पूर्ण अजादि विभक्ति के परे रहते यही विधि करनी है। हलादि विभक्ति में तो पदसंज्ञा होकर पदान्त नकार का लोप होगा और नकार का लोप असिद्ध होने के कारण **सुपि च** से दीर्घ, **अतो भिस ऐस्** से ऐस् आदेश और **बहुवचने झल्येत्** से एत्व नहीं होगा तथा अन्त में सकार है तो रुत्वविसर्ग होगा। बस इतना कार्य करना है।

वकारान्तसंयोग वाले नकारान्त यज्वन्- शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	यज्वा	यज्वानौ	यज्वानः
द्वितीया	यज्वानम्	यज्वानौ	यज्वनः
तृतीया	यज्वना	यज्वभ्याम्	यज्वभिः
चतुर्थी	यज्वने	यज्वभ्याम्	यज्वभ्यः
पञ्चमी	यज्वनः	यज्वभ्याम्	यज्वभ्यः
षष्ठी	यज्वनः	यज्वनोः	यज्वनाम्
सप्तमी	यज्वनि	यज्वनोः	यज्वसु
सम्बोधन	हे यज्वन्!	यज्वानौ!	यज्वानः!

ये तो हुए वकारान्तसंयोग वाले शब्द के रूप। अब मकारान्त संयोग वाले नकारान्त ब्रह्मन् शब्द के रूप भी इसी प्रकार ही बनेंगे। (ब्रह्मन्=विधाता)

मकारान्तसंयोग वाले नकारान्त ब्रह्मन्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ब्रह्मा	ब्रह्माणौ	ब्रह्माणः
द्वितीया	ब्रह्माणम्	ब्रह्माणौ	ब्रह्मणः
तृतीया	ब्रह्मणा	ब्रह्मभ्याम्	ब्रह्मभिः
चतुर्थी	ब्रह्मणे	ब्रह्मभ्याम्	ब्रह्मभ्यः
पञ्चमी	ब्रह्मणः	ब्रह्मभ्याम्	ब्रह्मभ्यः
षष्ठी	ब्रह्मणः	ब्रह्मणोः	ब्रह्मणाम्
सप्तमी	ब्रह्मणि	ब्रह्मणोः	ब्रह्मसु
सम्बोधन	हे ब्रह्मन्!	हे ब्रह्माणौ!	हे ब्रह्माणः!

अब आप निम्नलिखित शब्दों के रूप भी इसी प्रकार ही जानें।

आत्मन्=आत्मा	शार्ङ्गधन्वन्=विष्णु	कृष्णवर्त्मन्=अग्नि
मातरिश्वन्=वायु	सुधर्मन्=देवसभा	अग्रजन्मन्=बड़ा भाई
शर्मन्=एक उपाधि	पाप्मन्=पापी	अध्वन्=मार्ग

नियमसूत्रम्

२८४. इन्हन्पूषार्यम्णां शौ ६।४।१२॥

एषां शावेवोपधाया दीर्घो नान्यत्र। इति निषेधे प्राप्ते।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

२८५. सौ च ६।४।१३॥

इन्नादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सौ। वृत्रहा। हे वृत्रहन्।

....

२८४- **इन्हन्पूषार्यम्णां शौ।** इन् च हन् च पूषा च अर्यमा च तेषामितरेतरद्वन्द्वः- इन्हनपूषार्यमाणः, तेषाम् इनहन्पूषार्यम्णाम्। इनहन्पूषार्यम्णां षष्ठ्यन्तं, शौ सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **नोपधायाः** से **उपधायाः** और **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

इन् अन्त में हो ऐसे शब्द, हन् अन्त में हो ऐसे शब्द एवं पूषन् और अर्यमन् शब्दों की उपधा को शि के परे होने पर ही दीर्घ हो, अन्यत्र नहीं।

जब नपुंसकलिङ्ग के जस् और शस् के स्थान पर शि आदेश होता है, तब उसी के परे होने पर दीर्घविधान करता है। शि सर्वनामस्थान होने के कारण **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** से ही वहाँ दीर्घ हो सकता है, फिर दीर्घ विधान करने के लिए इस सूत्र का आरम्भ नियम के लिए है। वह यह कि इन्, हन्, पूषन्, अर्यमन् शब्दों में यदि दीर्घ हो तो शि के परे रहने पर ही हो, अन्यत्र नहीं। **सिद्धे सति आरभ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति।** इस तरह वृत्रहन् शब्द में सु के परे होने पर भी दीर्घ का निषेध प्राप्त हुआ तो अग्रिम सूत्र **सौ च** का आरम्भ करना पड़ा।

२८५- **सौ च।** सौ सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इन्हन्पूषार्यम्णां शौ** से **इन्हन्पूषार्यम्णाम्** की, **नोपधायाः** से **उपधायाः** की, **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से **दीर्घः** की तथा **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** से **असम्बुद्धौ** की अनुवृत्ति है। **अङ्गस्य** का अधिकार तो है ही।

इन् अन्त में हो ऐसे शब्द, हन्-शब्दान्त, पूषन् और अर्यमन् के अङ्गों की उपधा को सम्बुद्धि-भिन्न सु के परे रहने पर ही दीर्घ हो, अन्य विभक्तियों के परे नहीं।

इससे पहले की प्रक्रिया यह थी कि **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** से सर्वनामस्थान अर्थात् **सु, औ, जस्, अम्, औट्** के परे रहने पर उपधा को दीर्घ प्राप्त था तो उसे निषेध करने के लिए पाणिनि जी ने निषेध-सूत्र बनाया- **इन्हन्पूषार्यम्णां शौ।** इन्-अन्त शब्द और हन्-पूषन्-अर्यमन् शब्द को शि के परे रहने पर ही दीर्घ हो। फलतः इन शब्दों में सु आदि के परे दीर्घ रूक गया। ऐसा होने पर **औ, जस्, अम्, औट्** के परे रहने पर दीर्घ का निषेध होना तो पाणिनि जी को इष्ट था किन्तु सु के परे दीर्घ का निषेध होना पाणिनि जी को इष्ट नहीं था। अतः सु के परे दीर्घ का विधान करने के लिए उन्होंने यह सूत्र बनाया। इससे यह तात्पर्य निकला कि यद्यपि इन शब्दों में दीर्घनिषेध है फिर भी सु के परे रहने पर तो दीर्घ होगा ही।

णत्वविधायकं विधिसूत्रम्

२८६. एकाजुत्तरपदे णः ८।४।१२॥

एकाजुत्तरपदं यस्य तस्मिन् समासे पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य प्रातिपदिकान्त-नुम्विभक्तिस्थस्य नस्य णः। वृत्रहणौ।

कुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

२८७. हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु ७।३।५४॥

ञिति णिति प्रत्यये नकारे च परे हन्तेर्हकारस्य कुत्वम्। वृत्रघ्नः इत्यादि। एवं शार्ङ्गिन्, यशस्विन्, अर्यमन्, पूषन्॥

....

यह उपधा को दीर्घ करता है। इन् वह है, जो तद्धित-प्रकरण में **अत इनिठनौ** इत्यादि-सूत्रों से **इनि** तथा कृदन्त में **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** से **णिनि** प्रत्यय होकर शेष बचा है। दोनों प्रत्ययों में इन् शेष बचता है। इस सूत्र में ऐसे प्रत्ययान्त शब्दों को ही इन्नन्त माना गया है।

वृत्रहा। वृत्रं हतवान् इति वृत्रहा, इन्द्र। अन्नन्त **वृत्रहन्** शब्द से प्रथमा का एकवचन सु आया, अनुबन्धलोप के बाद उपधासंज्ञा होकर नान्त वृत्रहन् के उपधा को दीर्घ प्राप्त था किन्तु **इनहन्पूषार्यम्णां शौ** के नियम से निषेध प्राप्त हुआ तो उसे भी बाधकर **सौ च** से दीर्घ हुआ **वृत्रहान्+स्** बना। स् का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप और नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ तो बना- **वृत्रहा।**

२८६- **एकाजुत्तरपदे णः।** एकोऽज् यस्मिन् स एकाच्, एकाच् उत्तरपदं यस्य तद् एकाजुत्तरपदम्, तस्मिन् एकाजुत्तरपदे। एकाजुत्तरपदे सप्तम्यन्तं, णः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **पूर्वपदात्संज्ञायामगः** के विभक्तिविपरिणाम करके **पूर्वपदाभ्याम्** तथा **रषाभ्यां नो णः समानपदे** और **प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च** इन दो पूरे सूत्रों की अनुवृत्ति आती है।

एक अच् वाला उत्तरपद है जिसके, ऐसे समास में पूर्वपद में स्थित निमित्त ऋ, रेफ और षकार से परे प्रातिपदिकान्त, नुम् तथा विभक्ति में स्थित नकार को णकार हो जाता है।

स्मरण रहे कि नकार के स्थान पर णत्व करने के लिए निमित्त पूर्व में स्थित ऋकार, रेफ और षकार ही होते हैं। उनसे परे नकार को णकार होता है किन्तु वह नकार या तो प्रातिपदिकान्त हो, या नुम वाला हो या विभक्ति का हो। एक बात और भी है कि निमित्त वाले पद के साथ समास भी हुआ हो तो ही णत्व होगा, अन्यथा नहीं।

वृत्रहणौ। वृत्र+हन् में समास हुआ है, पूर्वपद में त्र का रेफ है और उत्तरपद में एकाच् हन् है। हन् का नकार प्रातिपदिकान्त है। अतः नकार को णत्व होकर **वृत्रहण्+औ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **वृत्रहणौ** सिद्ध हुआ। इसी तरह **वृत्रहणः, वृत्रहणम्, वृत्रहणौ** भी बन जाते हैं।

२८७- **हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु।** ञ् च ण् च, तयोरितरेतरद्वन्द्वः, ञ्णौ, तौ इतौ ययोस्तौ ञ्णितौ, बहुव्रीहिः। ञ्णितौ च नश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो ञ्णिन्नाः, तेषु ञ्णिन्नेषु। **चजोः कु घिण्ण्यतोः** से **कुः** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

ञित्, णित् प्रत्यय एवं नकार के परे होने पर हन् धातु के हकार के स्थान पर कवर्ग आदेश होता है।

वृत्रघ्नः। वृत्रहन् से शस्, अस्, वृत्रहन्+अस् में **एकाजुत्तरपदे णः** से नकार को णत्व प्राप्त होता है किनतु णत्वविधायक सूत्र त्रिपादी है। अतः **पूर्वत्रासिद्धम्** के नियम से **अल्लोपोऽनः** की दृष्टि में णत्वविधायक सूत्र असिद्ध हुआ। इस लिए पहले अकार के लोप होने के के बाद **वृत्रह्+न्+अस्** बना। अब भी णत्व नहीं होता, क्योंकि इस समय उत्तरपद में जो ह्न् अवशिष्ट है, वह एकाच् नहीं है। अब नकार को परे मानकर हो **हन्तेर्ञ्णिन्नेषु** से हकार के स्थान पर कवर्ग आदेश प्राप्त हुआ। **स्थानेऽन्तरतमः** के नियम से **संवार, नाद, घोष, महाप्राण** प्रयत्न वाले हकार के स्थान पर तादृश प्रयत्न वाला ही घ् आदेश हुआ- **वृत्रघ्+न्+अस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **वृत्रघ्नः** सिद्ध हुआ। अजादिविभक्ति के परे इसी तरह की प्रक्रिया होगी और हलादिविभक्ति के परे नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होगा।

हन्नन्त वृत्रहन्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वृत्रहा	वृत्रहणौ	वृत्रहणः
द्वितीया	वृत्रहणम्	वृत्रहणौ	वृत्रघ्नः
तृतीया	वृत्रघ्ना	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभिः
चतुर्थी	वृत्रघ्ने	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्यः
पञ्चमी	वृत्रघ्नः	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्यः
षष्ठी	वृत्रघ्नः	वृत्रघ्नोः	वृत्रघ्नाम्
सप्तमी	वृत्रहणि, वृत्रघ्नि	वृत्रघ्नोः	वृत्रहसु
सम्बोधन	हे वृत्रहन्!	हे वृत्रहणौ!	हे वृत्रहणः!

इसी तरह इन्नन्त शार्ङ्गिन्, यशस्विन् और अर्यमन् तथा पूषन् शब्द के रूप होते हैं। कवर्ग आदेश तो हकार वाले में ही होता है। शार्ङ्गी, शार्ङ्गिणौ, शार्ङ्गिणः, शार्ङ्गिणम्, शार्ङ्गिणौ, शार्ङ्गिणः। यहाँ अन् नहीं है, अतः **अल्लोपो नः** का विषय नहीं है। शार्ङ्गिणा, शार्ङ्गिभ्याम् इत्यादि। इसी तरह यशस्वी, यशस्विनौ, यशस्विनः, यशस्विनम्, यशस्विनौ, यशस्विनः, यशस्विना, यशस्विभ्याम् इत्यादि। अर्यमन् और पूषन् के अन् होने के कारण शसादि के परे अकार का लोप होता है। अर्यमा, अर्यमणौ, अर्यमणः, अर्यमणम्, अर्यमणौ, अर्यम्णः, अर्यम्णा, अर्यमभ्याम् इत्यादि। इसी तहर पूषा, पूषणौ, पूषणः, पूषणम्, पूषणौ, पूष्णः। पूष्णा, पूषभ्याम् इत्यादि। इन दो शब्दों में **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से ही णत्व होता है।

अब आप निम्नलिखित इन्नन्त शब्दों के भी रूप बनाइये।

अज्ञानिन्=अज्ञानी	अतिशायिन्=अतिशय श्रेष्ठ	अधिकारिन्=अधिकारी
अधीतिन्=विद्वान्	अनुयायिन्=अनुयायी	अन्तेवासिन्=शिष्य
आगामिन्=आने वाला	आततायिन्=जघन्य पापी	उपजीविन्=सेवक
उपयोगिन्=उपयोगी	एकाकिन्=अकेला	कपालिन्=शंकर जी
कामिन्=कामी	किरणमालिन्=सूर्य	केसरिन्=शेर
क्रोधिन्=क्रोधी	गुणिन्=गुणयुक्त	गृहमेधिन्=गृहस्थी

तृ इत्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२८८. मघवा बहुलम् ६।४।१२८॥

मघवन्-शब्दस्य वा तृ इत्यन्तादेशः। ऋ इत्।

....

गृहिन्=गृहस्थी	चक्रिन्=चक्रधारी	जन्मिन्=प्राणी
ज्ञानिन्=ज्ञानी	तपस्विन्=तपस्वी	त्यागिन्=त्यागी
दण्डिन्=दण्डधारी	दन्तिन्=हाथी	दूरदर्शिन्=दूरदृष्टि वाला
देहिन्=जीवात्मा	द्वारिन्=द्वारपाल	धनिन्=धनवान्
निवासिन्=निवास करने वाला	पक्षिन्=पक्षी	परदेशिन्=विदेशी
प्रवासिन्=परदेश गया हुआ	प्राणिन्=प्राणी	बलशालिन्=बलवान्
बुद्धिशालिन्=बुद्धिमान्	ब्रह्मचारिन्=ब्रह्मचारी	ब्रह्मवादिन्=ब्रह्मवादी
भागिन्=हिस्सेदार	भोगिन्=भोगी, साँप, राजा	मनस्विन्=बुद्धिमान्
मनीषिन्=बुद्धिमान्	मन्त्रिन्=मन्त्री	मानिन्=मानी
मालिन्=मालाधारी	मेधाविन्=बुद्धिमान्	योगिन्=योगी
रोगिन्=रोगी	लिङ्गिन्=चिह्नवाला	लोभिन्=लोभी
वनमालिन्=वनमाला-धारी	वनवासिन्=वनवासी	वशवर्तिन्=आज्ञाकारी
वशिन्=वश में रहने वाला	वाग्मिन्=वाक्पटु	वैरिन्=शत्रु
व्यापिन्=व्यापक	व्रतिन्=व्रतधारी	शरीरिन्=जीवात्मा
शास्त्रिन्=शास्त्र जानने वाला	शिल्पिन्=कारीगर	शेषशायिन्=विष्णु
श्रमिन्=परिश्रम करने वाला	श्रेष्ठिन्=धनी	संयमिन्=संयमी
सङ्गिन्=साथी	सत्यवादिन्=सत्यवादी	सहकारिन्=सहयोगी
स्वामिन्=स्वामी	हस्तिन्=हाथी	हितैषिन्=हितचिन्तक

ये सभी शब्द इन्-प्रत्ययान्त शब्द हैं। लोगों से यह त्रुटि अधिकतर हो जाती है कि आम् के परे योगि-नाम् में दीर्घ कर देते हैं किन्तु **नामि** से यहाँ दीर्घ नहीं होगा क्योंकि वह **नाम्** परे रहते अजन्त अङ्ग को करता है और यहाँ **योगिन्** शब्द **नान्त** है, न कि अजन्त। अतः योगिनाम्, व्रतिनाम् ऐसा ही ह्रस्व इकार अभीष्ट है। इन्नन्त-शब्द का जिस किसी शब्द के साथ भी समास होगा तो नकार का लोप होगा किन्तु इकार ह्रस्व ही रहेगा। ध्यान रहे कि इन्-प्रत्ययान्त शब्दों का केवल मात्र सु-प्रत्यय के परे रहने पर ही दीर्घ होता है और सर्वत्र ह्रस्व इकार ही रहता है।

इन्-प्रत्ययान्त शब्दों का यदि स्त्रीलिङ्ग में रूप बनाना हो तो इनसे **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से ङीप्-प्रत्यय करके अनुबन्धलोप के बाद शेष दीर्घ ईकार ही जुड़कर ज्ञानिन्+ई=ज्ञानिनी, योगिन्+ई=योगिनी आदि बनाया जाता है और इसके रूप नदीशब्द के समान ही चलते हैं। **ज्ञानिनी, ज्ञानिन्यौ, ज्ञानिन्यः, योगिनी, योगिन्यौ, योगिन्यः** इत्यादि।

२८८- मघवा बहुलम्। मघवा षष्ठ्यर्थे प्रथमान्तं, बहुलं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अर्वणस्त्रसावनञः** से तृ की अनुवृत्ति आती है।

मघवन् शब्द को विकल्प से तृ अन्तादेश होता है।

तृ में दो अल् है- त् और ऋ। अतः अनेकाल् मानकर **अनेकाल् शित्सर्वस्य** से

नुमागमविधायकं विधिसूत्रम्

२८९. उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ७।१।७०॥

अधातोरुगितो नलोपिनोऽञ्चतेश्च नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने परे। मघवान्। मघवन्तौ। मघवन्तः। हे मघवन्। मघवद्भ्याम्। तृत्वाभावे मघवा। सुटि राजवत्।

....

सर्वादेश का विधान चाहिए था किन्तु तृ को अनेकाल् नहीं माना गया है, क्योंकि एक परिभाषा है- **नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम्।** अर्थात् अनुबन्ध को लेकर अनेकाल् की व्यवस्था नहीं होनी चाहिए। तृ में ऋकार अनुबन्ध है अर्थात् उसकी **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है। त् बचता है। अनुबन्ध सहित अनेकाल् है और अनुबन्धरहित होने पर एकाल् है। उक्त परिभाषा के बल पर इसे एकाल् ही मानना चाहिए। अतः सर्वादेश न होकर **अलोऽन्त्यस्य** के बल पर अन्त्य वर्ण **मघवन्** के नकार के स्थान पर ही **तृ** आदेश होता है।

बहुल के चार अर्थ होते हैं, यह कृत्यप्रकरण में स्पष्ट होगा किन्तु यहाँ पर **विकल्प से** ऐसा अर्थ लिया जाता है।

२८९- उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः। उक् इत् येषां ते उगितः, बहुव्रीहिः। उगितश्च अच् च, तेषामितरेतरद्वन्द्वः- उगिदचः, तेषाम् उगिदचाम्। न धातुः- अधातुः, तस्य अधातोः, नञ्तत्पुरुषः। उगिदचां षष्ठ्यन्तं, सर्वनामस्थाने सप्तम्यन्तम्, अधातोः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **इदितो नुम् धातोः** से **नुम्** की अनुवृत्ति आती है।

सर्वनामस्थान परे होने पर धातुभिन्न उगित् को तथा जिसके नकार का लोप हो चुका हो ऐसी अञ्चु धातु को नुम् का आगम होता है।

सर्वनामस्थान के परे होने पर नुम् का आगम करता है किन्तु जिससे आगम होता है वह धातु-भिन्न शब्द हो और उक् प्रत्याहार अर्थात् उ, ऋ, लृ की इत्संज्ञा हुई हो या नकार लोप वाला अञ्चु धातु हो।

मघवा। इन्द्र। मघवन् शब्द से प्रथमा का एकवचन सु, **मघवन्+स्** में **मघवा बहुलम्** से नकार के स्थान पर **तृ** आदेश हुआ, अनुबन्धलोप होने पर **मघवत्+स्** बना। **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से नुम् आगम, अनुबन्धलोप और मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात्परः** के नियम से अन्त्य अच् वकारोत्तरवर्ती अकार के बाद बैठा तो बना- **मघवन्त्+स्।** सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ और तकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप हुआ तो बना- **मघवन्। उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से वकारोत्तरवर्ती अकार को दीर्घ होकर **मघवान्** बना। यहाँ पर परत्रिपादी **संयोगान्तस्य लोपः** के द्वारा किया गया तकार का लोप पूर्व त्रिपादी **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** की दृष्टि में असिद्ध होने के कारण नकार का लोप नहीं हुआ, क्योंकि नकार का लोप करने के लिए नकार का अन्त में होना आवश्यक है। जब तकार का लोप ही असिद्ध हुआ तो नकार अन्त में मिलेगा ही नहीं।

मघवन्तौ। मघवन् शब्द से औ, तृ अन्तादेश, नुम् का आगम करके वर्णसम्मेलन होने पर **मघवन्तौ** सिद्ध हुआ। नान्त उपधा न मिलने के कारण दीर्घ नहीं हुआ। इसी तरह **मघवन्तः, मघवन्तम्, मघवन्तौ** बनते हैं। असर्वनाम शसादि में नुम् का आगम नहीं होगा,

सम्प्रसारणविधायकं विधिसूत्रम्

२९०. श्वयुवमघोनामतद्धिते ६।४।१३३॥

अन्नन्तानां भानामेषामतद्धिते सम्प्रसारणम्।
मघोनः। मघवभ्याम्। एवं श्वन्, युवन्।

....

अतः मघवतः, मघवता बनते हैं। हलादि विभक्ति के पर तकार को **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व करके दकार हो जाता है, जिससे **मघवद्भ्याम्, मघवद्भिः** आदि रूप होते हैं।

स्मरण रहे कि **तृ** आदेश बहुल अर्थात् विकल्प से है। आदेश न होने के पक्ष में सुट् अर्थात् सु, औ, जस्, अम्, औट् में राजन् शब्द की तरह **मघवा, मघवानौ, मघवानः, मघवानम्, मघवानौ** रूप बनते हैं। शस् और उससे आगे की प्रक्रिया में भसंज्ञा अर्थात् अजादि विभक्ति के परे सम्प्रसारण होता है और हलादिविभक्ति के परे तकार को जश्त्व होता है।

२९०- **श्वयुवमघोनामतद्धिते**। श्वा च युवा च मघवा च तेषामितरेतरद्वन्द्वः श्वयुवमघवानः, तेषां श्वयुवमघोनाम्। न तद्धितः-अतद्धिस्तस्मिन्। श्वयुवमघोनां षष्ठ्यन्तम्, अतद्धिते सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अल्लोपोऽनः** से विभक्तिविपरिणाम करके **अनाम्** तथा **वसोः सम्प्रसारणम्** से **सम्प्रसारणम्** की अनुवृत्ति आती है। **भस्य** की अधिकार है, वह बहुवचन में होकर आता है।

अन् अन्त वाले भसंज्ञक श्वन्, युवन् और मघवन् शब्दों को तद्धितभिन्न प्रत्यय के परे होने पर सम्प्रसारण होता है।

सम्प्रसारण के विषय में **इग्यणः सम्प्रसारणम्** का स्मरण करें। यण् के स्थान पर इक् होने को सम्प्रसारण कहते हैं। य् के स्थान पर इ, व् के स्थान पर उ, र् के स्थान पर ऋ और ल् के स्थान पर लृ हो जाता है।

मघोनः। मघवन् से तृत्वाभाव पक्ष के असर्वनामस्थान शस् के परे **मघवन्+अस्** है। असर्वनामस्थान होने के कारण भसंज्ञा हुई है। **श्वयुवमघोनामतद्धिते** से **व्** के स्थान पर सम्प्रसारण होकर **मघउ+अन्+अस्** बना। उ+अ में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **उ** बन गया। **मघ+उ** में गुण होकर **मघोन्+अस्** बना। वर्णसम्मेलन और सकार को रुत्वविसर्ग होकर **मघोनः** सिद्ध हुआ। अव आगे अजादि विभक्ति के परे इसी प्रकार की प्रक्रिया होती है और हलादि के परे नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होकर **मघोनः, मघवद्भ्याम्** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

नकारान्त मघवन्-शब्द के तृ-पक्ष के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मघवा	मघवन्तौ	मघवन्तः
द्वितीया	मघवन्तम्	मघवन्तौ	मघवतः
तृतीया	मघवता	मघवद्भ्याम्	मघवद्भिः
चतुर्थी	मघवते	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्यः
पञ्चमी	मघवतः	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्यः
षष्ठी	मघवतः	मघवतोः	मघवताम्
सप्तमी	मघवति	मघवतोः	मघवत्सु
सम्बोधन	हे मघवन्!	हे मघवन्तौ!	हे मघवन्तः!

सम्प्रसारणनिषेधकं सूत्रम्

२९१. न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम् ६।१।३७॥

सम्प्रसारणे परतः पूर्वस्य यणः सम्प्रसारणं न स्यात्।

इति यकारस्य नेत्त्वम्। अतएव ज्ञापकादन्त्यस्य यणः पूर्वं सम्प्रसारणम्।

यूनः। यूना। युवभ्याम् इत्यादिः। अर्वा। हे अर्वन्।

....

नकारान्त मघवन्-शब्द के तृत्वाभाव पक्ष के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मववा	मघवानौ	मघवानः
द्वितीया	मघवानम्	मघवानौ	मघोनः
तृतीया	मघोना	मघवभ्याम्	मघवभिः
चतुर्थी	मघोने	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
पञ्चमी	मघोनः	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
षष्ठी	मघोनः	मघोनोः	मघोनाम्
सप्तमी	मघोनि	मघोनोः	मघवसु
सम्बोधन	हे मघवन्!	हे मघवानौ!	हे मघवानः!

इसी तरह श्वन् और युवन् शब्द के रूप भी समझना चाहिए। श्वा, श्वानौ, श्वानः, श्वानम्, श्वानौ बनाने के बाद शसादि अजादि विभक्ति के परे होने पर **श्वयुवमघोनामतद्धिते** से सम्प्रसारण होता है, जिसमें श्व के वकार के स्थान पर उकार आदेश हो जाने पर **श्+उ+अन्+अस्** बनता है। **उ+अ** में पूर्वरूप होकर **श्+उन्+अस्** बन जाता है। वर्णसम्मेलन करके- शुनः, शुना, श्वभ्याम्, श्वभिः, शुने, श्वभ्यः, शुनः, शुनोः, शुनाम्, शुनि, और श्वसु ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

युवन् के भी सर्वनामस्थान तक राजन् की तरह **युवा, युवानौ, युवानः, युवानम्, युवानौ** रूप बनते हैं। शसादि अजादि विभक्ति के परे होने पर **युवन्** में वकार को ही सम्प्रसार होकर **युउ+अन्**, पूर्वरूप होकर **यु+उन्**, सर्वणदीर्घ होकर **यून्** बन जाता है और वर्णसम्मेलन होने पर- यूनः, यूना, युवभ्याम्, युवभिः, यूने, युवभ्यः, यूनः, यूनोः, यूनाम्, यूनि, युवसु, हे युवन् ये रूप बनते हैं।

युवन् शब्द में दो यण् हैं- एक यकार और दूसरा वकार। अब सन्देह होता है कि दोनों यणों को सम्प्रसारण हो या एक को? यदि एक को हो तो प्रथम यण् को हो कि द्वितीय यण् को? इस पर अग्रिम सूत्र निर्णय देता है।

२९१- न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्। न अव्ययपदं, सम्प्रसारणे सप्तम्यन्तं, सम्प्रसारणम् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

सम्प्रसारण के परे रहते पूर्व को सम्प्रसारण नहीं होता है।

सम्प्रसारण के परे सम्प्रसारण नहीं होता अर्थात् पहले पर यण् को सम्प्रसारण होता है, तभी तो इस सूत्र की आवश्यकता पड़ी। पूर्व यण् का सम्प्रसारण पहले होता तो सम्प्रसारण परे मिलता ही नहीं। अत एव यह ज्ञापक हुआ कि पहले पर यण् अर्थात् युवन् में व् को सम्प्रसारण होता है। उस सम्प्रसारण के परे होने पर प्रथम यण् को सम्प्रसारण प्राप्त था, उसका यह सूत्र निषेध करता है अर्थात् युवन् में य् को सम्प्रसारण नहीं होता।

तृ-इत्यन्तादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२९२. अर्वणस्त्रसावनञः ६।४।१२७॥

नञा रहितस्यार्वन्नित्यस्याङ्गस्य तृ इत्यन्तादेशो न तु सौ।

अर्वन्तौ। अर्वन्तः। अर्वद्भ्यामित्यादि।

आकारान्तादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२९३. पथिमथ्यृभुक्षामात् ७।१।८५॥

एषामाकारोऽन्तादेशः सौ परे।

अकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२९४. इतोऽत् सर्वनामस्थाने ७।१।८६॥

पथ्यादेरिकारस्याकारः स्यात् सर्वनामस्थाने परे।

अर्वा। घोड़ा। अर्वन् शब्द से सु, राजन् की तरह सुलोप, दीर्घ, नलोप करके **अर्वा** बन जाता है। सम्बोधन में हे अर्वन्!

२९२. अर्वणस्त्रसावनञः। न सुः-असु, तस्मिन् असौ। न विद्यते नञ् यस्य स अनञ्, तस्य अनञः। अर्वणः षष्ठ्यन्तं, तृ लुप्तप्रथमाकम्, असौ सप्तम्यन्तम्, अनञः षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

नञ् से रहित अर्वन् अङ्ग को तृ अन्तादेश होता है, सु परे हो तो नहीं।

तृ में दो अल् है- त् और ऋ। अतः अनेकाल् मानकर **अनेकाल् शित्सर्वस्य** से सर्वादेश का विधान चाहिए था किन्तु तृ को अनेकाल् नहीं माना गया है, क्योंकि **नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम्** के अनुसार अनुबन्ध को लेकर अनेकाल् की व्यवस्था नहीं होनी चाहिए। तृ में ऋकार अनुबन्ध। त् बचता है। अनुबन्ध सहित अनेकाल् है और अनुबन्धरहित होने पर एकाल् है। उक्त परिभाषा के बल पर इसे एकाल् ही मानना चाहिए। अतः सर्वादेश न होकर **अलोऽन्त्यस्य** के बल पर अन्त्य वर्ण **अर्वन्** के नकार के स्थान पर ही आदेश होता है। सु के परे नहीं होता, शेष सभी विभक्तियों के परे होने पर होता है।

जिस तरह से **मघवन्** शब्द से तृ अन्तादेश करके रूप बनाये थे, उसी तरह औ से आगे सुप् तक रूप बन जाते हैं। जैसे- अर्वन् औ, अर्वत् औ, नुम्, अर्वन्त् औ, वर्णसम्मेलन, **अर्वन्तौ। अर्वन्तः, अर्वन्तम्, अर्वन्तौ, अर्वतः, अर्वता, अर्वद्भ्याम्** इत्यादि।

२९३- पथिमथ्यृभुक्षामात्। पन्थाश्च मन्थाश्च ऋभुक्षाश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः पथिमथ्यृभुक्षाणः, तेषां पथिमथ्यृभुक्षाम्। पथिमथ्यृभुक्षाम् षष्ठ्यन्तम्, आत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सावनडुहः** से **सौ** की अनुवृत्ति आती है।

पथिन्, मथिन् और ऋभुक्षिन् शब्दों को सु के परे होने पर आकार अन्तादेश होता है।

अलोऽन्त्यस्य की उपस्थिति से अन्त्य वर्ण नकार के स्थान पर यह आदेश होता है और केवल सु के परे होने पर ही लगता है।

२९४- इतोऽत् सर्वनामस्थाने। इतः षष्ठ्यन्तम्, अत् प्रथमान्तं, सर्वनामस्थाने सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **पथिमथ्यृभुक्षामात्** से **पथिमथ्यृभुक्षाम्** की अनुवृत्ति आती है।

न्थादेशविधायकं विधिसूत्रम्

२९५. थो न्थः ७।१।८७॥

पथिमथोस्थस्य न्थादेशः सर्वनामस्थाने। पन्था। पन्थानौ। पन्थानः।

टिलोपविधायकं विधिसूत्रम्

२९६. भस्य टेर्लोपः ७।१।८८॥

भस्य पथ्यादेष्टेर्लोपः। पथः। पथा। पथिभ्याम्। एवं मथिन्, ऋभुक्षिन्।

....

पथिन्, मथिन् और ऋभुक्षिन् शब्दों के इकार के स्थान पर अकार आदेश होता है सर्वनामस्थान के परे होने पर।

२९५- थो न्थः। थः षष्ठ्यन्तं, न्थः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **पथिमथ्यृभुक्षामात्** से **पथिमथ्यृभुक्षाम्** तथा **इतोऽत् सर्वनामस्थाने** से **सर्वनामस्थाने** की अनुवृत्ति आती है।

पथिन्, मथिन् और ऋभुक्षिन् शब्दों के थकार के स्थान पर न्थ आदेश होता है सर्वनामस्थान के होने पर।

पन्थाः। रास्ता, मार्ग। पथिन् शब्द से सु, **पथिमथ्यृभुक्षामात्** से पथिन् के नकार के स्थान पर आकार आदेश हुआ- **पथि+आ+स्** बना। **इतोऽत् सर्वनामस्थाने** से थि के इकार के स्थान पर अकार आदेश हुआ- **पथ+आ+स्** बना। **थो न्थः** से थ के स्थान पर न्थ आदेश हुआ- **पन्थ+आ+स्** बना। **पन्थ+आ** में सवर्णदीर्घ करके स् का रुत्वविसर्ग करके **पन्थाः** सिद्ध हुआ।

पन्थानौ। पथिन् से औ, **इतोऽत् सर्वनामस्थाने** से थि के इकार के स्थान पर अकार आदेश हुआ- **पथन्+औ** बना। **थो न्थः** से थ के स्थान पर **न्थ** आदेश हुआ- **पन्थन्+औ** बना। **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** से दीर्घ करके **पन्थान् औ** बना, वर्णसम्मेलन होकर **पन्थानौ** सिद्ध हुआ। इसी तरह **पन्थानः, पन्थानम्, पन्थानौ** बन जाते हैं।

२९६- **भस्य टेर्लोपः**। भस्य षष्ठ्यन्तं, टेः षष्ठ्यन्तं, लोपः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **पथिमथ्यृभुक्षामात्** से **पथिमथ्यृभुक्षाम्** की अनुवृत्ति आती है।

भसंज्ञक पथिन्, मथिन् और ऋभुक्षिन् शब्दों की टि का लोप होता है।

स्मरण रहे कि भसंज्ञा शस् से सुप् तक की अजादि विभक्ति के परे होती है और यहाँ पथिन् आदि में **अचोऽन्त्यादि टि** से अन्त्य अच् और उसके अन्त में स्थित हल् अर्थात् इन् की टिसंज्ञा हो जाती है।

पथः। पथिन् से शस्, अनुबन्धलोप। सर्वनामस्थान न होने के कारण आकारादेश, अकारादेश, न्थादेश आदि कुछ भी नहीं होते। पथिन् में अन्त्य अच् थि में इकार, और उसके अन्त में स्थित नकार अर्थात् इन् समुदाय की **अचोऽन्त्यादि टि** से टिसंज्ञा हो गई और **भस्य टेर्लोपः** से टि का लोप गया, **पथ्+अस्** बना, वर्णसम्मेलन और रुत्वविसर्ग करके **पथः** सिद्ध हुआ। इसी तरह आगे अज्जादिविभक्ति के परे होने पर टि का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **पथा, पथे, पथः, पथोः, पथाम्, पथि** ये रूप और हलादि विभक्ति के परे होने नकार का लोप करके **पथिभ्याम्, पथिभिः, पथिभ्यः पथिषु** ये रूप बन जाते हैं।

षट्संज्ञाविधायकं विधिसूत्रम्

२९७. ष्णान्ता षट् १।१।२४॥

षान्ता नान्ता च संख्या षट्संज्ञा स्यात्। पञ्चन् शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। पञ्च। पञ्च। पञ्चभिः। पञ्चभ्यः। पञ्चभ्यः। नुट्।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

२९८. नोपधायाः ६।४।७॥

नान्तस्योपधाया दीर्घो नामि। पञ्चानाम्। पञ्चसु।

....

नकारान्त पथिन्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पन्था	पन्थानौ	पन्थानः
द्वितीया	पन्थानम्	पन्थानौ	पथः
तृतीया	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
चतुर्थी	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
पञ्चमी	पथः	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
षष्ठी	पथः	पथोः	पथाम्
सप्तमी	पथि	पथोः	पथिषु
सम्बोधन	हे पन्थाः	हे पन्थानौ	हे पन्थानः!

इसी तरह **मथिन्**(मथानी) और **ऋभुक्षिन्**(इन्द्र) शब्दों के रूप बनाने चाहिए। **मन्थाः, मन्थानौ, मन्थानः, मन्थानम्, मन्थानौ, मथः, मथा, मथिभ्याम्, मथिभिः** इत्यादि। ऋभुक्षिन् शब्द में थ न होने के कारण न्थ आदेश नहीं होता और क्ष् में विद्यमान ष् के कारण उससे परे नकार को णत्व होता है। शेष पथिन् की तरह ही है। **ऋभुक्षाः, ऋभुक्षाणौ, ऋभुक्षाणः, ऋभुक्षाणम्, ऋभुक्षाणौ, ऋभुक्षः, ऋभुक्षा, ऋभुक्षिभ्याम्, ऋभुक्षिभिः** इत्यादि।

२९७- **ष्णान्ता षट्**। ष् च ण् च ष्णौ, ष्णौ अन्तौ यस्याः सा ष्णान्ता। ष्णान्ता प्रथमान्तं, षट् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **बहुगणवतुडति सङ्ख्या** से **सङ्ख्या** की अनुवृत्ति आती है।

षकारान्त और नकारान्त सङ्ख्यावाचक शब्दों की षट्-संज्ञा होती है।

षट्-संज्ञा का फल **षड्भ्यो लुक्, षट्चतुर्भ्यश्च** आदि सूत्रों की प्रवृत्ति है। पञ्चन्-शब्द केवल बहुवचनान्त है।

पञ्च। पाँच। **पञ्चन्** से जस्, नकारान्त होने के कारण **ष्णान्ता षट्** से **षट्संज्ञा** करके **षड्भ्यो लुक्** से जस् का लुक् हुआ, **पञ्चन्** शेष रहा। नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ- **पञ्च**। इसी तरह शस् में भी बनता है। भिस् और भ्यस् के परे रहने पर नकार का लोप करके **पञ्चभिः, पञ्चभ्यः** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

२९८- **नोपधायाः**। न अव्ययपदम्, उपधायाः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से **दीर्घः** एवं **नामि** से **नामि** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

नकारान्त उपधा को दीर्घ होता है, नाम् के परे होने पर।

पञ्चानाम्। पञ्चन्+आम्, षट्संज्ञा के बाद **षट्चतुर्भ्यश्च** से नुट्, **पञ्चन्+न्+आम्-**

आत्वविधायकं विधिसूत्रम्

२९९. अष्टन आ विभक्तौ ७।२।८४॥

हलादौ वा स्यात्।

औशादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३००. अष्टाभ्य औश् ७।१।२१॥

कृताकारादष्टनो जश्शसोरौश्।

अष्टभ्य इति वक्तव्ये कृतात्वनिर्देशो जश्शसोर्विषये आत्वं ज्ञापयति। अष्टौ। अष्टौ। अष्टाभिः। अष्टाभ्यः। अष्टाभ्यः। अष्टानाम्। अष्टासु। आत्वाभावे अष्ट, पञ्चवत्।

....

पञ्चन्+नाम् बना। **नोपधायाः** से दीर्घ होकर **पञ्चान् नाम्** बना। **नुट्** से युक्त होने के कारण **नाम्** हलादि है, अतः **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदसंज्ञा होकर नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ- **पञ्चा नाम्, पञ्चानाम्।**

पञ्चसु। पञ्चन्+सु बनने के बाद **न** का लोप करके **पञ्चसु** सिद्ध होता है।

२९९- अष्टन आ विभक्तौ। अष्टनः षष्ठ्यन्तम्, आः प्रथमान्तं, विभक्तौ सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **रायो हलि** से **हलि** की अनुवृत्ति आती है।

हलादि विभक्ति के परे रहने पर अष्टन् शब्द को विकल्प से आकार अन्तादेश होता है।

३००- अष्टाभ्य औश्। अष्टाभ्यः पञ्चम्यन्तम्, औश् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **जश्शसो शिः** से **जश्शसोः** की अनुवृत्ति आती है।

आकार आदेश किये गये अष्टन् शब्द से परे जस् और शस् के स्थान पर औश् आदेश होता है।

औश् में शकार की इत्संज्ञा होती हैं। शित् होने के कारण **अनेकाल् शित्सर्वस्य** के नियम से सर्वादेश अर्थात् सम्पूर्ण जस् या शस् के स्थान पर औश् आदेश होता है। **षड्भ्यो लुक्** को बाधकर यह लगता है।

अष्टन् शब्द से भिस् में **अष्टाभिः-अष्टभिः** और भ्यस् में **अष्टाभ्यः** और **अष्टभ्यः** ये दो रूप बनते हैं तो **अष्टाभ्य औश्** की जगह **अष्टभ्य औश्** पढ़ने से काम चल जाता, एक मात्रा की लाघव हो जाता, फिर भी आकार पढ़ा गया। इससे यह निर्देश मिलता है कि यद्यपि **अष्टन आ विभक्तौ** हलादिविभक्ति के परे रहने पर ही आत्व करता है, तथापि जस् और शस् के परे होने पर भी आत्व होता है। अतः मूलकार ने वृत्ति में ही लिख दिया कि **कृताकारादष्टनः** अर्थात् आकार आदेश किये जाने के बाद उससे परे जस् और शस् को औश् हो जाय।

अष्टन्-शब्द नित्य बहुवचनान्त है।

अष्टौ। अष्टन् से जस् और शस्। अनुबन्धलोप होने के बाद, **अष्टाभ्य औश्** में आत्वनिर्देश होने के कारण अजादिविभक्ति के परे रहने पर भी **अष्टन आ विभक्तौ** से आकार अन्तादेश हुआ अर्थात न के स्थान पर आ आदेश हुआ- **अष्ट+आ**, सवर्णदीर्घ होने

क्विन्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

३०१. ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च ३।२।५९।।

एभ्यः क्विन्, अञ्चेः सुप्युपपदे, युजिक्रुञ्चोः केवलयोः, क्रुञ्चेर्नलोपाभावश्च निपात्यते। कनावितौ।

....

पर **अष्टा+अस्** बना। **अष्टाभ्य औश्** से जस् के अस् के स्थान पर औश् आदेश हुआ। **अष्टा+औ** में वृद्धि होकर **अष्टौ** हुआ। आकार आदेश न होने के पक्ष में पञ्चन्-शब्द की तहर **अष्टन्+अस्** है। **षड्भ्यो लुक्** से अस् का लुक हुआ और नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नकार का लोप हुआ- **अष्ट** बना। इस तरह दो-दो रूप बन गये। **भिस्, भ्यस्, सुप्** में **अष्टन आ विभक्तौ** से वैकल्पिक आत्व होकर **अष्टाभिः, अष्टाभ्यः, अष्टासु** बनते हैं और आत्वाभाव पक्ष में नलोप करके **अष्टभिः, अष्टभ्यः, अष्टासु** बनते हैं।

नित्य बहुवचनान्त नकारान्त अष्टन्-शब्द के रूप

विभक्ति	आत्व पक्ष	आत्वाभाव पक्ष
प्रथमा	अष्टौ	अष्ट
द्वितीया	अष्टौ	अष्ट
तृतीया	अष्टाभिः	अष्टभिः
चतुर्थी	अष्टाभ्यः	अष्टभ्यः
पञ्चमी	अष्टाभ्यः	अष्टभ्यः
षष्ठी	अष्टानाम्	अष्टानाम्
सप्तमी	अष्टासु	अष्टसु

३०१- **ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च।** ऋत्विक् च, दधृक् च, स्रक् च, दिक् च, उष्णिक् च अञ्चुश्च युजिश्च क्रुङ् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः- ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चु-युजिक्रुञ्चस्तेषाम् ऋत्विग्दधृक्स्रगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चाम्। ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चाम् पञ्चम्यर्थे षष्ठी, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **स्पृशोऽनुदके क्विन्** से **क्विन्** की अनुवृत्ति आती है।

सुप् उपपद में हो ऐसे ऋतु-पूर्वक यज् धातु, द्वित्व किये गये धृष् धातु के दधृष्, स्रज्, दिश्, उत्पूर्वक स्निह् धातु, उपपद रहित युज् और क्रुञ्च् धातु से क्विन् प्रत्यय होता है और क्रुन्च के नकार का लोपाभाव का निपातन भी होता है।

सूत्र के द्वारा आदेश आदि किये विना जैसा प्रचलित रूप है, वैसा ही रूप सूत्र में पढ़कर भी आचार्य पाणिनि जी ने शब्दों का अनुशासन किया है। जैसे **कुञ्च के नकार का लोप न हो,** इस प्रकार के अर्थ को वाला सूत्र न पढ़कर सीधे **क्रुञ्च्** पढ़ दिया है। इससे यह निर्देश दिया है कि क्रुञ्च् के नकार का लोप नहीं होता। इसी तरह के कार्य को निपातन कहते हैं। शिष्ट के द्वारा रचित ग्रन्थों में पढ़े गये शिष्ट शब्दों का पाणिनि हूबहू उसी रूप में सूत्र में पढ़ते हैं किन्तु प्रकृति-प्रत्यय का विधान नहीं करते हैं तो वहाँ पर जिस प्रकृति और प्रत्यय की कल्पना की जा सकती है, उस प्रकृति और प्रत्यय की कल्पना करके उस तरह का रूप बना लेना चाहिए। कहने तात्पर्य यह है कि यहाँ पर विना नकार का लोप किये ही **क्रुञ्च्** यह रूप साधु है, यह निर्देश है।

कृत्संज्ञाविधायकं सञ्ज्ञासूत्रम्

३०२. कृदतिङ् ३।१।९३॥

अत्र धात्वधिकारे तिङ्भिन्नः प्रत्ययः कृत्संज्ञः स्यात्।

अपृक्तवकारस्य लोपविधायं विधिसूत्रम्

३०३. वेरपृक्तस्य ६।१।६७॥

अपृक्तस्य वस्य लोपः।

कुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

३०४. क्विन्प्रत्ययस्य कुः ८।२।६२॥

क्विन्प्रत्ययो यस्मात्तस्य कवर्गोऽन्तादेशः पदान्ते।

अस्यासिद्धत्वाच्चोः कुरिति कुत्वम्।

ऋत्विक्, ऋत्विग्। ऋत्विजौ। ऋत्विग्भ्याम्।

....

यह कृत्प्रकरण का सूत्र है। क्विन् में नकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और ककार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा होती है। इकार उच्चारण के लिए है। शेप रहता है- व। उसका भी अग्रिम सूत्र **वेरपृक्तस्य** से लोप होता है। इस तरह इस प्रत्यय के सारे वर्ण लुप्त हो जाते हैं। जव प्रत्ययों के सभी वर्णों का लोप होता है तो उसे **सर्वापहार** या **सर्वापहार** लोप कहते हैं।

३०२- **कृदतिङ्**। कृत् प्रथमान्तम्, अतिङ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में आचार्य गण **तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्** से तत्र की अनुवृत्ति मानते हैं और **धातोः** का अधिकार आ रहा है।

इस धातोः के अधिकार में होने वाले तिङ् से भिन्न प्रत्ययों की कृत्संज्ञा होती है।

तिप्, तस्, झि आदि धातुओं से होंने वाले अठारह प्रत्यय तिङ् हैं। उनसे भिन्न जितने भी प्रत्यय जो धातु से विधान किये जाते हैं, उन सबकी इस सूत्र से कृत्संज्ञा हो जाती हैं। कृत्संज्ञा के बाद वह शव्द कृदन्त बन जाता है और उसकी **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिक संज्ञा होती है। तिङ् को रोकने के लिए सूत्र में **अतिङ्** पढ़ा गया है। अन्यथा तिङन्त भवति, पठति की भी कृत्संज्ञा होकर सु आदि प्रत्यय होने लगते। इस तरह से क्विन् प्रत्यय भी कृदन्तप्रकरण के अन्तर्गत आता है।

३०३- **वेरपृक्तस्य**। वेः षष्ठ्यन्तम्, अपृक्तस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **लोपो व्योर्वलि** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है।

अपृक्तसंज्ञक वकार का लोप होता है।

स्मरण रहे कि एक अल् प्रत्यय अपृक्तसंज्ञक होता है। यदि व् एक अल् के रूप में रह जाय तो उसका लोप हो जाता है अर्थात् प्रत्ययों में केवल एक वकार रह नहीं पाता है।

३०४- **क्विन्प्रत्ययस्य कुः**। क्विन् प्रत्ययो यस्मात् स क्विन्प्रत्ययः, तस्य क्विन्प्रत्ययस्य। **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से **अन्ते** की अनुवृत्ति आती है और **पदस्य** का अधिकार है।

क्विन् प्रत्यय जिससे किया गया है, ऐसे शब्द के पदान्त में कवर्ग अन्तादेश होता है।

नुम्-विधायकं विधिसूत्रम्

३०५. युजेरसमासे ७।१।७१॥

युजेः सर्वनामस्थाने नुम् स्यादसमासे। सुलोपः। संयोगान्तलोपः। कुत्वेन नस्य ङः। युङ्। अनुस्वारपरसवर्णौ। युञ्जौ। युञ्जः। युग्भ्याम्।

....

परत्रिपादी होने के कारण **चोः कुः** के समक्ष यह सूत्र असिद्ध हो जाता है। दोनों सूत्र कुत्व करते हैं। **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** परत्रिपादी है और **चोः कुः** पूर्वत्रिपादी है। अतः **पूर्वत्रासिद्धम्** के नियम से **चोः कुः** इस पूर्वत्रिपादी के समक्ष **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** यह परत्रिपादी असिद्ध है।

ऋत्विक्, ऋत्विग्। ऋतु-पूर्वक यज् धातु से **ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चु-युजिक्रुञ्चां च** से क्विन् प्रत्यय होने के बाद सभी वर्णों का लोप हुआ अर्थात् **सर्वापहार लोप** हुआ। **वचिस्वपियजादीनां किति** से यज् में यकार को सम्प्रसारण होकर इकार और **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **ऋतु+इज्**, वर्णसम्मेलन होकर **ऋत्विज्** बना। क्विन् प्रत्यय कृत् है, अतः उसकी **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। सु आया, **ऋत्विज्+स्**, सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप होने के बाद **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** भी प्राप्त हुआ और **चोः कुः** भी प्राप्त हुआ। परत्रिपादी इस सूत्र के असिद्ध होने के कारण **चोः कुः** से ही कुत्व हुआ। जकार के स्थान पर कवर्ग अर्थात् **क्, ख्, ग्, घ्, ङ्** ये पाँचों प्राप्त हुए। **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** के नियम से स्थानी में तृतीय जकार के स्थान पर आदेश में तृतीय ग् आदेश हुआ। गकार के स्थान पर **वाऽवसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके **ऋत्विक्, ऋत्विग्** ये दो रूप सिद्ध हुए।

ऋत्विज् शब्द से अजादि विभक्ति के परे होने पर वर्णसम्मेलन करके **ऋत्विजौ**, ऋत्विजः, **ऋत्विजम्**, **ऋत्विजः** आदि रूप बनते हैं और हलादि विभक्ति के परे होने पर पदसंज्ञा होकर जकार के स्थान पर कुत्व होकर ग् आदेश करके **ऋत्विग्भ्याम्, ऋत्विग्भिः** आदि रूप सिद्ध होते हैं। सुप् में कुत्व करके **खरि च** से चर्त्व होकर क्, और उससे पर सु के सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व होकर क् और ष् के संयोग से **क्ष्** बन जाता है। इस तरह **ऋत्विक्षु** यह रूप सिद्ध हो जाता है।

जकारान्त ऋत्विज्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ऋत्विक्, ऋत्विग्	ऋत्विजौ	ऋत्विजः
द्वितीया	ऋत्विजम्	ऋत्विजौ	ऋत्विजः
तृतीया	ऋत्विजा	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भिः
चतुर्थी	ऋत्विजे	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भ्यः
पञ्चमी	ऋत्विजः	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भ्यः
षष्ठी	ऋत्विजः	ऋत्विजोः	ऋत्विजाम्
सप्तमी	ऋत्विजि	ऋत्विजोः	ऋत्विक्षु
सम्बोधन	हे ऋत्विक्, हे ऋत्विग्,	हे ऋत्विजौ	ऋत्विजः

३०५- **युजेरसमासे।** न समासः, असमासः, तस्मिन् असमासे। युजेः षष्ठ्यन्तम्, असमासे

कुत्वादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३०६. चोः कुः ८।२।३०॥

चवर्गस्य कवर्गः स्याज्झलि पदान्ते च।

सुयुक्, सुयुग्। सुयुजौ। सुयुग्भ्याम्। खन्। खञ्जौ। खन्भ्याम्।

....

सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से **सर्वनामस्थाने** और **इदितो नुम् धातोः** से **नुम्** की अनुवृत्ति आती है।

सर्वनामस्थान के परे होने पर युज् को नुम् का आगम होता है, यदि समास न हुआ हो तो।

अनुबन्धलोप होकर न् मात्र शेष रहता है। मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात्परः** के नियम से अन्त्य अच् यु के उकार के बाद स्थित होता है अर्थात् उकार और जकार के बीच में अवस्थित रहता है। कुत्व न होने की स्थिति में जकार के योग में नकार को चुत्व होकर ञकार बन जाता है।

युङ्। युज् धातु से **ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च** से क्विन् प्रत्यय होने के बाद सभी वर्णों का लोप हुआ अर्थात् **सर्वापहार लोप** हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अनुबन्धलोप, **युजेरसमासे** से नुम् का आगम, उकार के बाद स्थिति, **युन्ज् स्** बना। सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप, जकार का संयोगान्त लोप, नकार के स्थान पर **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** से अनुनासिक स्थान वाले नकार के स्थान कुत्व होकर अनुनासिक ङकार आदेश हुआ, **युङ्** सिद्ध हुआ।

युञ्जौ। युज् से उपर्युक्त तरीके से क्विन्, सर्वापहार, प्रातिपदिकसंज्ञा करके औ आया। **युजेरसमासे** से नुम् होकर **युन्+ज्+औ** बना। झल् परे या पदान्त न मिलने के कारण कुत्व नहीं हुआ। नकार को **स्तोः श्चुना श्चुः** से चवर्ग आदेश होकर ञकार बन गया और वर्णसम्मेलन होकर **युञ्जौ** सिद्ध हुआ। इसी तरह **युञ्जः, युञ्जम्, युञ्जौ**,आदि बन जाते हैं। शसादि से आगे असर्वनामस्थान के परे नुम् नहीं होता। अतः **युजः, युजा, युजे, युजः, युजोः, युजाम्, युजि** आदि बनते हैं। हलादि विभक्ति के परे होने पर **चोः कुः** से कुत्व होकर **गकार** आदेश हो जाता है जिससे **युग्भ्याम्, युग्भिः, युग्भ्यः, युक्षु** ये रूप सिद्ध होते हैं।

३०६- चोः कुः। चोः षष्ठ्यन्तं, कुः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **झलो झलि** से **झलि** तथा **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से **अन्ते** की अनुवृत्ति आती है। **पदस्य** का अधिकार है।

चवर्ग के स्थान पर कवर्ग आदेश होता है झल् के परे रहने पर या पदान्त में।

कवर्ग में क्, ख्, ग्, घ्, ङ् ये पाँच होते हैं और **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** की सहायता से क्रमशः आदेश होते हैं।

सुयुक्, सुयुग्। श्रेष्ठ योगी। सु-पूर्वक युज् धातु से क्विप्, सर्वापहार आदि होकर सु प्रत्यय आया और उसका लोप तथा पदान्त जकार के स्थान पर **चोः कुः** से कुत्व होकर गकार हुआ, **सुयुग्** बना। **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व होकर **सुयुक्, सुयुग्** सिद्ध हुए। अब अजादि विभक्ति के परे केवल आगे प्रत्यय से मिलाना और हलादि विभक्ति के परे **चोः कुः** से कुत्व करके **गकार** आदेश होने पर **सुयुजौ, सुयुजः, सुयुजम्, सुयुजा, सुयुग्भ्याम्,**

षत्वविधायकं विधिसूत्रम्

३०७. व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः ८।२।३६॥

झलि पदान्ते च। जश्त्वचर्त्वे।

राट्, राड्। राजौ। राजः। राड्भ्याम्। एवं विभ्राट्, देवेट्, विश्वसृट्।

उणादिसूत्रम्- **परौ व्रजेः षः पदान्ते।**

परावुपपदे व्रजेः क्विप् स्याद्दीर्घश्च पदान्ते षत्वमपि। परिव्राट्। परिव्राजौ।

....

सुयुग्भिः, सुयुजे, सुयुग्भ्यः, सुयुजः, सुयुजोः, सुयुजाम्, सुयुजि, सुयुक्षु, हे सुयुक्, हे सुयुजः ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

खन्। लंगड़ा। **खजि** धातु से क्विप्, सर्वापहार, नुम्, परसवर्ण आदि करके **खञ्ज्** बना है। उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आया और उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप, जकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप, जकार का लोप होने के कारण **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के नियमानुसार ञकार भी नकार के रूप में आया, **खन्** बना। संयोगान्तलोप **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** की दृष्टि में असिद्ध होने के कारण नकार का लोप नहीं हुआ। अतः **खन्** यह रूप सिद्ध हुआ। अब आगे अजादिविभक्ति के परे होने पर **खञ्ज्** को प्रत्ययों में जोड़ने पर और हलादि विभक्ति के परे होने पर जकार का संयोगान्तलोप करने पर **खञ्जौ, खञ्जः, खञ्जम्, खञ्जा, खन्भ्याम्, खन्भिः, खञ्जे, खन्भ्यः, खञ्जः, खञ्जोः, खञ्जाम्, खञ्जि, खन्सु, हे खन्** ये रूप बन जाते हैं। सुप् में **नश्च** इस सूत्र से वैकल्पिक धुट् आगम होकर उसको चर्त्व करके **खन्त्सु** भी बनता है।

३०७- **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः**। व्रश्चश्च भ्रस्जश्च सृजश्च मृजश्च यजश्च राजश्च भ्राजश्च छश्च श् च, तेषामितरेतरद्वन्द्वो व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशः, तेषां व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशाम्। व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षष्ठ्यन्तं, षः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **झलो झलि** से **झलि** और **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से **अन्ते** की अनुवृत्ति आती है। **पदस्य** का अधिकार है और **अलोऽन्त्यस्य** परिभाषा उपस्थित है।

झल् परे रहने पर या पदान्त में व्रश्च्, भ्रस्ज्, सृज्, मृज्, यज्, राज् और छकारान्त एवं शकारान्त धातुओं के स्थान पर षकार अन्तादेश होता है।

इस सूत्र से उपर्युक्त धातुओं के अन्त्य वर्ण के स्थान पर षकार आदेश होने के बाद **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर स्थान की साम्यता से डकार होता है। यह सूत्र बहुत उपयोगी है, तिङन्त और कृदन्त में भी इसकी आवश्यकता पड़ती है।

राट्, राड्। प्रकाशवान् या राजा। **राजृ** धातु से क्विप्, सर्वापहारलोप होने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आया और उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप होने के बाद **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से जकार के स्थान पर षकार आदेश हुआ, **राष्** बना। षकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर स्थान की साम्यता से डकार आदेश हुआ, **राड्** बना। डकार को **वाऽवसाने** से वैकल्पिक चर्त्व होकर **राट्** और **राड्** ये दो रूप सिद्ध हो गये। अब आगे अजादिविभक्ति के पर झल् परे या पदान्त न मिलने के कारण षकारादेश नहीं होता। अतः प्रकृति को प्रत्यय से जोड़ने का मात्र कार्य

दीर्घान्तादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३०८. विश्वस्य वसुराटोः ६।३।१२८॥

विश्वशब्दस्य दीर्घोऽन्तादेशः स्याद्वसौ राट्शब्दे च परे।

विश्वाराट्, विश्वाराड्। विश्वराजौ। विश्वाराड्भ्याम्।

....

रहता है। जैसे- राजौ, राजः, राजम्, राजा, राजे, राजः, राजोः, राजाम्, राजि। हलादिविभक्ति के परे होने पर झल् परे भी मिलता है और **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदसंज्ञा होने के कारण पदान्त भी मिलता है। अतः षकार आदेश होकर जश्त्व होने पर **राड्भ्याम्, राड्भिः, राड्भ्यः** ये रूप बन जाते हैं। सुप् के परे होने पर **डः सि धुट्** से धुट् का आगम और धकार डकार को चर्त्व करके **धुट्त्सु** और **धुट्सु** ये दो रूप बनते हैं।

जकारान्त राज्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	राट्, राड्	राजौ	राजः
द्वितीया	राजम्	राजौ	राजः
तृतीया	राजा	राड्भ्याम्	राड्भिः
चतुर्थी	राजे	राड्भ्याम्	राड्भ्यः
पञ्चमी	राजः	राड्भ्याम्	राड्भ्यः
षष्ठी	राजः	राजोः	राजाम्
सप्तमी	राजि	राजोः	राट्त्सु, राट्सु
सम्बोधन	हे राट्, हे राड्	हे राजौ	हे राजः!

इसी तरह विभ्राज्, देवेज् और विश्वसृज् के भी रूप बनते हैं। जैसे- विपूर्वक भ्राज् धातु से **विभ्राट्, विभ्राड्, विभ्राजौ, विभ्राजः, विभ्राजम्, विभ्राजौ, विभ्राजः, विभ्राजा, विभ्राड्भ्याम्** इत्यादि। इसी प्रकार से **देवपूर्वक यज्** धातु से क्विप्, सम्प्रसारण आदि होकर **देवेज्** बन जाता है। उससे सु आदि आने के बाद **देवेट् देवेड्, देवेजौ, देवेजः, देवेजम्, देवेजौ, देवेजः, देवेजा, देवेड्भ्याम्** आदि रूप बन जाते हैं। इसी तरह **विश्व** पूर्वक **सृज्** से भी क्विप् आदि करके **विश्वसृज्** बना है। उससे सु आदि लाने पर **विश्वसृट्, विश्वसृड्, विश्वसृजौ, विश्वसृजः, विश्वसृड्भ्याम्** इत्यादि रूप सिद्ध होते हैं।

परौ व्रजेः षः पदान्ते। यह उणादि का सूत्र है। इसकी वृत्ति है- **परावुपपदे व्रजेः क्विप् स्याद्दीर्घश्च पदान्ते षत्वमपि। अर्थात् परिपूर्वक व्रज् धातु से क्विप् प्रत्यय, धातु को दीर्घ और पदान्त में षकार अन्तादेश भी होता है।**

परिव्राट्, परिव्राड्। संन्यासी। परिपूर्वक व्रज् धातु से **परौ व्रजेः षः पदान्ते** क्विप्, सर्वापहारलोप और व्रज् में अकार को दीर्घ करके परिव्राज् बना। उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु आया और उसका लोप हुआ। जकार के स्थान पर **परौ व्रजेः षः पदान्ते** से षकार आदेश हुआ। षकार को जश्त्व करके **वाऽवसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके **परिव्राट्, परिव्राड्** सिद्ध हुए। आगे **परिव्राजौ, परिव्राजः, परिव्राजा, परिव्राड्भ्याम्** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

३०८- विश्वस्य वसुराटोः। वसुश्च राट् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः, वसुराटौ, तयोः वसुराटोः।

स्कोर्लोपविधायकं विधिसूत्रम्

३०९. स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ८।२।२९।।

पदान्ते झलि च यः संयोगस्तदाद्योः स्कोर्लोपः। भृट्।

सस्य श्चुत्वेन शः। **झलां जश् झशि** इति शस्य जः। भृज्जौ। भृड्भ्याम्। त्यदाद्यत्वं पररूपत्वं च।

....

विश्वस्य षष्ठ्यन्तं, वसुराटोः सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। ढ्रलोपे **पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है।

वसु और राट् शब्द के परे होने पर विश्वशब्द को दीर्घ अन्तादेश होता है।

राज् के स्थान पर **राट्** पढ़ने से पदान्त का संकेत होता है। अतः राट् या राड् बनने के बाद ही यह सूत्र लगता है, अन्यत्र नहीं। अतः अजादिविभक्ति के परे होने पर दीर्घ नहीं होगा।

विश्वाराट्, विश्वाराड्। विश्व के स्वामी, भगवान्। विश्व-पूर्वक राज् धातु से क्विप् प्रत्यय, सर्वापहार लोप होकर प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु और उसका लोप करने पर विश्वराज् बना हुआ है। **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से जकार के स्थान पर षकार आदेश हुआ तो विश्वराड् बना। **विश्वस्य वसुराटोः** से राड् के परे होने पर विश्व को दीर्घ अन्तादेश हुआ, विश्वाराड् बना। वैकल्पिक चर्त्व करके **विश्वाराट्, विश्वाराड्** ये दो रूप सिद्ध हुए। इसी तरह हलादिविभक्ति के परे होने पर षकारादेश और दीर्घ दोनों होंगे और अजादिविभक्ति के परे होने पर यह कार्य नहीं होगा। इस प्रकार से **विश्वराजौ, विश्वराजः, विश्वराजा, विश्वाराड्भ्याम्, विश्वाराड्भिः, विश्वाराड्भ्यः** इत्यादि रूप वन जाते हैं।

३०९- **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च।** स् च क् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः स्कौ, तयोः स्कोः। संयोगस्य आदी संयोगादी, तयोः संयोगाद्योः, षष्ठीतत्पुरुषः। **संयोगान्तस्य लोपः** से **लोपः** तथा **झलो झलि** से **झलि** की अनुवृत्ति आती है।

पदान्त में या झल् के परे होने पर संयोग में जो प्रथम सकार या ककार, उनका लोप होता है।

यद्यपि यह सूत्र **संयोगान्तस्य लोपः** की दृष्टि में परत्रिपादी होने के कारण असिद्ध है तथापि इस सूत्र के आरम्भ के कारण असिद्ध होते हुए भी उसका अपवाद है। **संयोगान्तस्य लोपः** संयोग के अन्त्य वर्ण का लोप करता है तो यह सूत्र संयोग में आदिवर्ण सकार या ककार का लोप करता है।

भृट्। जो भुजने, भुनने के काम करता है, भुजुआ। भ्रस्ज धातु से क्विप्, सम्प्रसारण और पूर्वरूप करके कृदन्त में ही **भृस्ज्** बनता है। उससे सु, उसके लोप होने पर संयोगादि सकार का **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से लोप होकर भृज् बना। जकार के स्थान पर **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से षकार आदेश होकर **भृड्** बना। जश्त्व होकर डकार आदेश हुआ। डकार के स्थान पर वैकल्पिक चर्त्व होकर **भृट्, भृड्** ये दो रूप सिद्ध हो गये। आगे भी हलादिविभक्ति के परे सकार का लोप और षकार आदेश, उसके स्थान पर जश्त्व होकर **भृड्भ्याम्, भृड्भिः, भृड्भ्यः** और सुप् में वैकल्पिक धुट् का आगम

सत्वविधायकं विधिसूत्रम्

३१०. तदोः सः सावनन्त्ययोः ७।२।१०६॥

त्यदादीनां तकारदकारयोरनन्त्ययोः सः स्यात् सौ।

स्यः। त्यौ। त्ये। सः। तौ। ते। तम्। यः। यौ। ये। एषः। एतौ। एते।

....

होकर **भृद्त्सु, भृद्सु** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं और अजादि विभक्ति की कुछ विशेष प्रक्रिया आगे बताई जा रही है।

भृज्जौ। भृस्ज् से औ आया। पदान्त या झल् न मिलने के कारण सकार का लोप नहीं हुआ। सकार को **स्तोः श्चुना श्चुः** से श्चुत्व होकर शकार बन गया। शकार के स्थान पर **झलां जश् झशि** से जश् आदेश होकर जकार हुआ, **भृज्ज् औ** बना। वर्णसम्मेलन होकर भृज्जौ सिद्ध हुआ। इस तरह **भृज्जः, भृज्जम्, भृज्जौ, भृज्जः, भृज्जा, भृज्जे, भृज्जः, भृज्जोः, भृज्जाम्, भृज्जि** ये रूप बनते हैं। सम्बोधन में **हे भृट्, हे भृड्, हे भृज्जौ, हे भृज्जः**।

इस तरह जकारान्त शब्दों का विवेचन हुआ। अब दकारान्त सर्वनामसंज्ञक शब्दों का प्रसंग आता है। उसमें त्यदादिगणीय त्यद्, तद् आदि में विभक्ति के परे होने पर **त्यदादीनामः** से अत्व और **अतो गुणे** से पररूप होने पर अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

३१०- तदोः सः सावनन्त्ययोः। तश्च द् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः- तदौ, तयोस्तदोः। न अन्त्यौ- अनन्त्यौ, तयोरनन्त्ययोः। तदोः षष्ठ्यन्तं, सः प्रथमान्तं, सौ सप्तम्यन्तम्, अनन्त्ययोः षष्ठ्यन्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **त्यदादीनामः** से **त्यदादीनाम्** की अनुवृत्ति आती है।

त्यद् आदियों के अनन्त्य तकार और दकार के स्थान पर सकार आदेश होता है सु के परे होने पर।

त्यदादि गण पठित जितने भी शब्द हैं उनमें जो तकार और दकार हैं, यदि वे तकार और दकार अन्त्य-वर्ण के रूप में नहीं हैं तो उनके स्थान पर सकार आदेश होता है, केवल सु के परे रहने पर।

त्यदादिगण में पठित हलन्त शब्दों में **त्यदादीनामः** से अन्त्य हल् वर्ण के स्थान पर अकार आदेश होता है और उसके बाद **अतो गुणे** से पररूप होकर पे अदन्त अर्थात् ह्रस्व अकारान्त बन जाते हैं। उनमें से कुछ शब्दों के रूप पुँल्लिङ्ग के सर्व-शब्द के समान ही हो जाते हैं किन्तु त्यद्, तद्, एतद् शब्दों के तकार के स्थान पर सकार आदेश भी होता है। अदस् शब्द के दकार के स्थान पर सकार आदेश हो जाता है।

स्यः। त्यद् से प्रथमा का एकवचन सु आया, अनुबन्धलोप, **त्यदादीनामः** से अत्व हुआ- **त्य+अ+स्** बना। **त्य+अ** में **अतो गुणे** से पररूप होकर **त्य+स्** बना। त्य के तकार के स्थान पर **तदोः सः सावनन्त्ययोः** से सत्व होकर **स्य+स्** बना। सकार का रुत्वविसर्ग होकर बना- **स्यः**।

त्यौ। त्ये। त्यद् शब्द से विभक्ति के आने के बाद **त्यदादीनामः** से अत्व करके **अतो गुणे** से पररूप करना और पुँल्लिङ्ग में सर्वशब्द के जैसे रूप बने थे उसी प्रकार से सिद्ध करते जाना।

सः। **तौ**। ते। जैसे आपने **स्यः** बनाया वैसे ही **सः** भी बन जायेगा।

अमादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३११. ङे प्रथमयोरम् ७।१।२८।।

युष्मदस्मद्भ्यां परस्य ङे इत्येतस्य प्रथमाद्वितीययोश्चामादेशः।

त्वाहादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३१२. त्वाहौ सौ ७।२।९४।।

अनयोर्मपर्यन्तस्य त्वाहौ आदेशौ स्तः।

....

दकारान्त तद्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सः	तौ	ते
द्वितीया	तम्	तौ	तान्
तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः
चतुर्थी	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पञ्चमी	तस्मात्, तस्माद्	ताभ्याम्	तेभ्यः
षष्ठी	तस्य	तयोः	तेषाम्
सप्तमी	तस्मिन्	तयोः	तेषु

एषः। एतद् शब्द के रूप भी त्यद् के समान ही होंगे किन्तु सु के परे होने पर त्यद् और तद् शब्द में आदि में विद्यमान तकार के स्थान पर सकार आदेश हुआ है तो एतद् शब्द में मध्य में स्थित तकार के स्थान पर सकारादेश होगा। सकार को षत्व भी होगा। आगे भी अत्व और पररूप करके **एतौ, एते, एतम्, एतौ, एतान्, एताभ्याम्, एतैः** आदि रूप सिद्ध हो जाते हैं। **द्वितीयाटौस्स्वेनः** से अन्वादेश में एतद् शब्द के स्थान पर द्वितीया, टा और ओस् के परे होने पर **एन** आदेश होकर **एनम्, एनौ, एनान्, एनेन, एनयोः,** एनयोः ये रूप भी बनते हैं।

३११. ङे प्रथमयोरम्। प्रथमा च प्रथमा च द्वन्द्वापवाद एकशेषः प्रथमे, तयोः प्रथमयोः। ङे लुप्तषष्ठीकं पदं, प्रथमयोः षष्ठ्यन्तम्, अम् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्** से युष्मदस्मद्भ्याम् की अनुवृत्ति आती है।

युष्मद् और अस्मद् शब्दों से परे ङे तथा प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के स्थान पर अम् आदेश होता है।

ङे आदि विभक्ति के स्थान पर आदेश होने के कारण **स्थानिवद्भावेन अम्** में भी प्रत्ययत्व आता है। **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा की प्राप्ति और उसका **न विभक्तौ तुस्माः** से निषेध होता है। इस लिए पूरा अम् ही आदेश के रूप में बैठता है।

३१२- त्वाहौ सौ। त्वश्च अहश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः त्वाहौ। त्वाहौ प्रथमान्तं, सौ सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **युष्मदस्मदोरनादेशे** से **युष्मदस्मदोः** की अनुवृत्ति आती है और **मपर्यन्तस्य** का अधिकार है।

सु के परे होने पर युष्मद् और अस्मद् शब्दों के म-पर्यन्त भाग के स्थान पर क्रमशः त्व और अह आदेश होते हैं।

लोपविधायकं विधिसूत्रम्

३१३. शेषे लोपः ७।२।९०॥

एतयोष्टिलोपः। त्वम्। अहम्।

युवावादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३१४. युवावौ द्विवचने ७।२।९२॥

द्वयोरुक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य युवावौ स्तो विभक्तौ।

आत्वविधायकं विधिसूत्रम्

३१५. प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् ७।२।८८॥

औङ्येतयोरात्वं लोके। युवाम्। आवाम्।

....

म-पर्यन्त भाग युष्मद् शब्द में **युष्म्** और अस्मद् शब्द में **अस्म्** है। इस तरह युष्म् के स्थान पर **त्व** और अस्म् के स्थान पर **अह** आदेश हो जाते हैं।

३१३- शेषे लोपः। शेषे सप्तम्यन्तं, लोपः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **युष्मदस्मदोरनादेशे** से **युष्मदस्मदोः** की अनुवृत्ति आती है और **मपर्यन्तस्य** का अधिकार अपकर्षण करके पूर्व सूत्र में लाया जाता है।

युष्मद् और अस्मद् शब्द के मपर्यन्त भाग से शेष टि का लोप होता है।

इस सूत्र में **शेष** का तात्पर्य इसके पहले के प्रसंगानुसार आत्व, यत्व के लिए निमित्त जो विभक्तियाँ, उनसे से भिन्न विभक्ति से है। शायद इसीलिए कुछ पुस्तकों में इस सूत्र के अर्थ में यह लिखा है- **आत्वयत्वनिमित्तेतरविभक्तौ परतो युष्मदस्मदोरन्त्यस्य लोपः स्यात्।**

युष्मद् और **अस्मद्** शब्द में मपर्यन्त भाग के बाद जो शेष रहता है, वह टिसंज्ञक ही होता है। युष्मद् और अस्मद् इन दोनों शब्दों की सिद्धि एक साथ कर रहे हैं।

त्वम्। युष्मद्-शब्द से सु विभक्ति आई। **ङे प्रथमयोरम्** से उसके स्थान पर अम् आदेश हुआ, **युष्मद् अम्** बना। **त्वाहौ सौ** से मपर्यन्त भाग **युष्म्** के स्थान पर **त्व** आदेश हुआ। **त्व+अद्+अम्** बना। **शेषे लोपः** से अद् का लोप हुआ, **त्व अम्** बना। **त्व+अम्** में **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर **त्वम्** सिद्ध हुआ।

अहम्। अस्मद्-शब्द से सु विभक्ति आई। **ङे प्रथमयोरम्** से उसके स्थान पर अम् आदेश हुआ, **अस्मद् अम्** बना। **त्वाहौ सौ** से मपर्यन्त भाग **अस्म्** के स्थान पर **अह** आदेश हुआ। **अह+अद्+अम्** बना। **शेषे लोपः** से अद् का लोप हुआ, **अह अम्** बना। **अह+अम्** में **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर **अहम्** सिद्ध हुआ।

३१४- युवावौ द्विवचने। युवश्च आवश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो युवावौ। युवावौ प्रथमान्तं, द्विवचने सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **युष्मदस्मदोरनादेशे** से **युष्मदस्मदोः** तथा **अष्टन आ विभक्तौ** से **विभक्तौ** की अनुवृत्ति आती है। **मपर्यन्तस्य** का अधिकार है।

द्वित्व की उक्ति में विभक्ति के परे होने पर युष्मद् और अस्मद् शब्दों के मपर्यन्त भाग के स्थान पर क्रम से युव और आव आदेश होते हैं।

३१५- प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्। प्रथमायाः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विवचने

यूयवयादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३१६. यूयवयौ जसि ७।२।९३॥

अनद्योर्मपर्यन्तस्य। यूयम्। वयम्।

....

सप्तम्यन्तं, भाषायां सप्तम्यन्तं, चतुष्पदं सूत्रम्। **युष्मदस्मदोरनादेशे** से **युष्मदस्मदोरनादेशे** और **अष्टन आ विभक्तौ** से **विभक्तौ** की अनुवृत्ति आती है।

लोक में प्रथमा विभक्ति के द्विवचन के परे होने पर युष्मद् और अस्मद् शब्द को आकार आदेश होता है।

यह आदेश **अलोऽन्त्यस्य** की उपस्थिति से अन्त्य वर्ण दकार के स्थान पर होता है। प्रथमा की तरह द्वितीया विभक्ति में द्विवचन में भी आत्व करना आचार्य को इष्ट है। उसके लिए **द्वितीयायाञ्च** सूत्र बनाया है। यहाँ पर सिद्धान्तकौमुदीकार भट्टोजिदीक्षित आदि आचार्यों का मानना है यह है कि **प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्** इतना लम्बा सूत्र बनाकर केवल प्रथमा के द्विवचन में ही आत्व करने की अपेक्षा **औङि भाषायाम्** ऐसा लघु सूत्र बनाते तो **औ** और **औट्** दोनों में ही आत्व हो जाता और अल्पाक्षर वाला सूत्र भी बन जाता।

युवाम्। युष्मद् से औ विभक्ति, उसके स्थान पर **ङे प्रथमयोरम्** से अम् आदेश होकर **युष्मद्+अम्** बना। **युवावौ द्विवचने** से मपर्यन्त भाग के स्थान पर युव आदेश हुआ, **युव+अद्+अम्** बना। अब **अतो गुणे** से पररूप होकर **युवद्+अम्** बना। दकार के स्थान पर **प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्** से आकार आदेश होकर **युव+आ+अम्** बना। **युव+आ** में सवर्णदीर्घ तथा **युवा+अम्** में पूर्वरूप होकर **युवाम्** सिद्ध हुआ।

आवाम्। अस्मद् से औ विभक्ति, उसके स्थान पर **ङे प्रथमयोरम्** से अम् आदेश होकर **अस्मद्+अम्** बना। **युवावौ द्विवचने** से मपर्यन्त भाग के स्थान पर आव आदेश हुआ, **आव+अद्+अम्** बना। अब **अतो गुणे** से पररूप होकर **आवद्+अम्** बना। दकार के स्थान पर **प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्** से आकार आदेश होकर **आव+आ+अम्** बना। **आव+आ** में सवर्णदीर्घ तथा **आवा+अम्** में पूर्वरूप होकर **आवाम्** सिद्ध हुआ।

प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् में **भाषायाम्** के पढ़ने से लौकिक प्रयोग में आत्व होता है और वैदिक प्रयोग में आत्व नहीं होता है, जिससे वहाँ **युवम्, आवम्** बनते हैं।

३१६- **यूयवयौ जसि।** यूयश्च वयश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो यूयवयौ। यूयवयौ प्रथमान्तं, जसि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **युष्मदस्मदोरनादेशे** से **युष्मदस्मदोः** की अनुवृत्ति आती है। **मपर्यन्तस्य** का अधिकार है।

जस् के परे होने पर युष्मद् और अस्मद् शब्दों को मपर्यन्त भाग के स्थान पर क्रमशः यूय और वय आदेश होते हैं।

यूयम्। युष्मद् से जस् और उसके स्थान पर अम् आदेश होने पर **यूयवयौ जसि** से मपर्यन्त भाग के स्थान पर **यूय** आदेश हुआ। अम् को स्थानिवद्भावेन जस् माना जाता है। **यूय+अद्+अम्** बना। **अद्** का **शेषे लोपः** से लोप हुआ, **यूय+अम्** बना। पूर्वरूप होकर **यूयम्** सिद्ध हुआ।

वयम्। अस्मद् से जस् और उसके स्थान पर अम् आदेश होने पर **यूयवयौ**

त्वमादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३१७. त्वमावेकवचने। ७।२।९७॥

एकस्योक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य त्वमौ स्तो विभक्तौ।

आमादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३१८. द्वितीयायाञ्च ७।२।८७॥

अनयोरात् स्यात्। त्वाम्। माम्।

नकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३१९. शसो न ७।१।२९॥

आभ्यां शसो नः स्यात्। अमोऽपवादः। **आदेः परस्य।** संयोगान्तलोपः। युष्मान्। अस्मान्।

....

जसि से मपर्यन्त भाग के स्थान पर **वय** आदेश हुआ। **वय+अद्+अम्** बना। **अद्** का **शेषे लोपः** से लोप हुआ, **वय+अम्** बना। पूर्वरूप होकर **वयम्** सिद्ध हुआ।

३१७- त्वमावेकवचने। त्वश्च मश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः:-त्वमौ। एकस्य वचनं कथनम्, एकवचनम्, तस्मिन् एकवचने। त्वमौ प्रथमान्तन्तम्, एकवचने सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अष्टन आ विभक्तौ** से **विभक्तौ** और **युष्मदस्मदोरनादेशे** से **युष्मदस्मदोः** की अनुवृत्ति आती है। **मपर्यन्तस्य** का अधिकार है।

विभक्ति के परे होने पर युष्मद् और अस्मद् के मपर्यन्त भाग के स्थान पर क्रमशः त्व और म आदेश होते हैं, एकत्व अर्थ का कथन हो तो।

३१८- **द्वितीयायाञ्च।** द्वितीयायां सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अष्टन आ विभक्तौ** से **विभक्तौ** और **युष्मदस्मदोरनादेशे** से **युष्मदस्मदोः** की अनुवृत्ति आती है।

द्वितीया विभक्ति के परे होने पर युष्मद् और अस्मद् शब्द को आकार आदेश होता है।

अलोऽन्त्य-परिभाषा के द्वारा अन्त्य वर्ण दकार के स्थान पर यह आदेश हो जाता है।

त्वाम्। युष्मद् शब्द से द्वितीया का एकवचन **अम्** आया और उसके स्थान पर **ङे प्रथमयोरम्** से अम् ही आदेश हुआ। **त्वमावेकवचने** से मपर्यन्त भाग युष्म् के स्थान पर **त्व** आदेश होकर **त्व+अद्+अम्** बना। **त्व+अद्** में **अतो गुणे** से पररूप हुआ, **त्वद्+अम्** बना। दकार के स्थान पर **द्वितीयायाञ्च** से आकार आदेश हुआ, **त्व+आ+अम्** बना। **त्व+आ** में सवर्णदीर्घ होकर **त्वा** बना। **त्वा+अम्** में **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर **त्वाम्** सिद्ध हुआ।

माम्। अस्मद् शब्द से द्वितीया का एकवचन अम्, **ङे प्रथमयोरम्** से अम् के स्थान पर अम् आदेश, **त्वमावेकवचने** से मपर्यन्त भाग अस्म् के स्थान पर **म** आदेश हुआ, **म+अद्+अम्** बना। **म+अद्** में **अतो गुणे** से पररूप हुआ, **मद्+अम्** बना। दकार के स्थान पर **द्वितीयायाञ्च** से आकार आदेश हुआ, **म+आ+अम्** बना। **म+आ** में सवर्णदीर्घ होकर **मा** बना। **मा+अम्** में **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर **माम्** सिद्ध हुआ।

यकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३२०. योऽचि ७।२।८९॥

अनयोर्यकारादेशः स्यादनादेशेऽजादौ परतः। त्वया। मया।

....

द्वितीया के द्विवचन में भी प्रथमा की तरह **युवाम्** और **आवाम्** ही बनते हैं किन्तु यहाँ पर **युव+अद्+अम्, आव+अद्+अम्** होने पर **द्वितीयायाञ्च** से आत्व होता है और वहाँ पर **प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्** से आत्व होता है, इतना अन्तर समझना चाहिए।

३१९- शसो न। शसः षष्ठ्यन्तं, न लुप्तप्रथमाकं पदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्रम में **युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्** से **युष्मदस्मद्भ्याम्** की अनुवृत्ति आती है।

युष्मद् और अस्मद् शब्दों से परे शस् के स्थान पर नकार आदेश होता है।

यह सूत्र **ङेप्रथमयोरम्** का अपवाद है। **युष्मद्, अस्मद्** से पर में स्थित शस् को यह कार्य विहित है। अतः **आदेः परस्य** की सहायता से शस् सम्बन्धी अस् के आदि वर्ण अकार के स्थान पर न् आदेश हो जाता है और अस् के सकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप होता है।

युष्मान्। युष्मद् शब्द से द्वितीया के बहुवचन में शस् आया, अनुबन्धलोप होकर **युष्मद्+अस्** बना। **अस्** के स्थान पर **ङेप्रथमयोरम्** से **अम्** आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर **शसो न** से अकार के स्थान पर **न्** आदेश हुआ, **युष्मद्+न्+स्** बना। **द्वितीयायाञ्च** से दकार के स्थान पर **आकार** आदेश हुआ, **युष्म+आ+न्+स्** बना। **युष्म+आ** में सवर्णदीर्घ, सकार का संयोगान्तलोप करने पर **युष्मान्** सिद्ध हुआ।

अस्मान्। अस्मद् शब्द से द्वितीया के बहुवचन में शस् आया, अनुबन्धलोप होकर **अस्मद्+अस्** बना। **अस्** के स्थान पर **ङेप्रथमयोरम्** से **अम्** आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर **शसो न** से अकार के स्थान पर **न्** आदेश हुआ, **अस्मद्+न्+स्** बना। **द्वितीयायाञ्च** से दकार के स्थान पर **आकार** आदेश हुआ, **अस्म+आ+न्+स्** बना। **अस्म+आ** में सवर्णदीर्घ, सकार का संयोगान्तलोप करने पर **अस्मान्** सिद्ध हुआ।

३२०- योऽचि। यः प्रथमान्तम्, अचि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **युष्मदस्मदोरनादेशे** से **युष्मदस्मदोः** और **अनादेशे** एवं **अष्टन आ विभक्तौ** से **विभक्तौ** की अनुवृत्ति आती है।

अनादेश अजादि विभक्ति के परे होने पर युष्मद् और अस्मद् शब्दों को यकार आदेश होता है।

जिस विभक्ति के स्थान पर कोई आदेश न हुआ हो, वह अनादेश विभक्ति कहलाती है। **अलोऽन्त्यस्य** की प्रवृत्ति से अन्त्य वर्ण दकार के स्थान पर यकार हो जाता है।

त्वया। युष्मद् शब्द से तृतीया के एकवचन में टा, अनुबन्धलोप होकर **युष्मद्+आ** बना। **त्वमावेकवचने** से मपर्यन्त **युष्म्** के स्थान पर **त्व** आदेश हुआ, **त्व+अद्+आ** बना। **त्व+अद्** में पररूप होकर **त्वद्+आ** बना। **दकार** के स्थान पर **योऽचि** से यकार आदेश होकर **त्वय्+आ** बना, वर्णसम्मेलन होकर **त्वया** सिद्ध हुआ।

मया। अस्मद् शब्द से तृतीया के एकवचन में टा, अनुबन्धलोप होकर **अस्मद्+आ**

आकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३२१. युष्मदस्मदोरनादेशे ७।२।८६।।

अनयोरात्स्यादनादेशे हलादौ विभक्तौ।

युवाभ्याम्। आवाभ्याम्। युष्माभिः। अस्माभिः।

तुभ्यमह्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३२२. तुभ्यमह्यौ ङयि ७।२।९५।।

अनयोर्मपर्यन्तस्य। टिलोपः। तुभ्यम्। मह्यम्।

....

बना। **त्वमावेकवचने** से मपर्यन्त **अस्म्** के स्थान पर **म** आदेश हुआ, **म+अद्+आ** बना। **म+अद्** में पररूप होकर **मद्+आ** बना। दकार के स्थान पर **योऽचि** से यकार आदेश होकर **मय्+आ** बना, वर्णसम्मेलन होकर **मया** सिद्ध हुआ।

३२१- **युष्मदस्मदोरनादेशे**। युस्मच्च अस्मच्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो युष्मदस्मदौ, तयोः युष्मदस्मदोः। नास्ति आदेशो यस्य हलादिप्रत्ययस्य स अनादेशस्तस्मिन् अनादेशे। **रायो हलि** से हलि और **अष्टन आ विभक्तौ** से **विभक्तौ** की अनुवृत्ति आती है।

अनादेश हलादि विभक्तियों के परे होने पर युष्मद् और अस्मद् शब्दों के स्थान पर आकार ओदश होता है।

अलोऽन्त्यस्य की सहायता से अन्त्यवर्ण दकार के स्थान पर आकार हो जायेगा।

युवाभ्याम्। युष्मद् शब्द से तृतीया का द्विवचन भ्याम् आया। **युवावौ द्विवचने** से मपर्यन्त भाग **युष्म्** के स्थान पर **युव** आदेश हुआ, **युव+अद्+भ्याम्** बना। **युव+अद्** में पररूप और दकार के स्थान पर **युष्मदस्मदोरनादेशे** से आकार आदेश होने पर **युवाभ्याम्** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार की प्रक्रिया से चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में भी **युवाभ्याम्** ही बनता है।

आवाभ्याम्। अस्मद् शब्द से तृतीया का द्विवचन भ्याम् आया। **युवावौ द्विवचने** से मपर्यन्त भाग **अस्म्** के स्थान पर **आव** आदेश हुआ, **आव+अद्+भ्याम्** बना। **आव+अद्** में पररूप और दकार के स्थान पर **युष्मदस्मदोरनादेशे** से आकार आदेश होने पर **आवाभ्याम्** सिद्ध हुआ। इसी तरह चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन में भी **आवाभ्याम्** ही बनता है।

युष्माभिः। युष्मद् शब्द से तृतीया का बहुवचन भिस् आया, **युष्मद्+भिस्** बना। दकार के स्थान पर **युष्मदस्मदोरनादेशे** से आकार आदेश होने पर **युष्मा+भिस्** हुआ। सकार को रुत्व और विसर्ग करके **युष्माभिः** सिद्ध हुआ।

अस्माभिः। अस्मद् शब्द से तृतीया का बहुवचन भिस् आया, **अस्मद्+भिस्** बना। दकार के स्थान पर **युष्मदस्मदोरनादेशे** से आकार आदेश होने पर **अस्मा+भिस्** हुआ। सकार को रुत्व और विसर्ग करके **अस्माभिः** सिद्ध हुआ।

३२२- **तुभ्यमह्यौ ङयि**। तुभ्यश्च मह्यश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः, तुभ्यमह्यौ। तुभ्यमह्यौ प्रथमान्तं, ङयि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **युष्मदस्मदोरनादेशे** से **युष्मदस्मदोः** की अनुवृत्ति आती है और **मपर्यन्तस्य** का अधिकार है।

ङे के परे होने पर युष्मद् और अस्मद् शब्दों के मपर्यन्त भाग के स्थान पर तुभ्य और मह्य आदेश होते हैं।

अभ्यमादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३२३. भ्यसोऽभ्यम् ७।१।३०॥

आभ्यां परस्य। युष्मभ्यम्। अस्मभ्यम्।

अदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३२४. एकवचनस्य च ७।१।३२॥

आभ्यां ङसेरत्। त्वत्। मत्।

....

तुभ्यम्। युष्मद् शब्द से चतुर्थी के एकवचन में ङे आया और उसके स्थान पर **ङेप्रथमयोरम्** से **अम्** आदेश हुआ, **युष्मद्+अम्** बना। **तुभ्यमह्यौ ङयि** से मपर्यन्त भाग **युष्म्** के स्थान पर **तुभ्य** आदेश हुआ, **तुभ्य+अद्+अम्** बना। पररूप हुआ, **तुभ्यद्+अम्** अना। **शेषे लोपः** से टिलोप हुआ, **तुभ्य्+अम्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **तुभ्यम्** सिद्ध हुआ।

मह्यम्। अस्मद् शब्द से चतुर्थी के एकवचन में ङे आया और उसके स्थान पर **ङेप्रथमयोरम्** से **अम्** आदेश हुआ, **अस्मद्+अम्** बना। **तुभ्यमह्यौ ङयि** से मपर्यन्त भाग **अस्म्** के स्थान पर **मह्य** आदेश हुआ, **मह्य+अद्+अम्** बना। पररूप हुआ, **मह्यद्+अम्** अना। **शेषे लोपः** से टिलोप हुआ, **मह्य्+अम्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **मह्यम्** सिद्ध हुआ।

३२३- भ्यसोऽभ्यम्। भ्यसः षष्ठ्यन्तम्, अभ्यम् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्** से **युष्मदस्मद्भ्याम्** की अनुवृत्ति आती है।

युष्मद् और अस्मद् शब्दों से परे भ्यस् के स्थान पर अभ्यम् आदेश होता है।

अभ्यम् आदेश अनेकाल् होने के कारण सर्वादेश होता है अर्थात् सम्पूर्ण भ्यस् के स्थान पर अभ्यम् आदेश हो जाता है।

युष्मभ्यम्। युष्मद् शब्द से चतुर्थी के बहुवचन भ्यस् आया। **भ्यसोऽभ्यम्** से **भ्यस्** के स्थान पर **अभ्यम्** आदेश हुआ, **युष्मद्+अभ्यम्** बना। **शेषे लोपः** से अद् टि का लोप हुआ, युष्म्+अभ्यम् बना। वर्णसम्मेलन होकर **युष्मभ्यम्** सिद्ध हुआ।

अस्मभ्यम्। अस्मद् शब्द से चतुर्थी के बहुवचन भ्यस् आया। **भ्यसोऽभ्यम्** से **भ्यस्** के स्थान पर **अभ्यम्** आदेश हुआ, **अस्मद्+अभ्यम्** बना। **शेषे लोपः** से अद् टि का लोप हुआ, **अस्म्+अभ्यम्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अस्मभ्यम्** सिद्ध हुआ।

३२४- एकवचनस्य च। एकवचनस्य षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्** से **युष्मदस्मद्भ्याम्** तथा **पञ्चम्या अत्** पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

युष्मद् और अस्मद् शब्दों से परे ङसि को अत् आदेश होता है।

त्वत्। युष्मद् शब्द से पञ्चमी का एकवचन ङसि, अनुबन्धलोप होकर **युष्मद्+अस्** बना। **ङसि** वाले **अस्** के स्थान पर **एकवचनस्य च** से **अत्** आदेश हुआ, **युष्मद्+अत्** बना। **त्वमावेकवचने** से मपर्यन्त भाग **युष्म्** के स्थान पर **त्व** आदेश हुआ, **त्व+अद्+अत्** बना। पररूप होकर टि का लोप हुआ, **त्व्+अत्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **त्वत्** सिद्ध हुआ।

मत्। अस्मद् शब्द से पञ्चमी का एकवचन ङसि, अनुबन्धलोप होकर **अस्मद्+अस्** बना। **ङसि** वाले **अस्** के स्थान पर **एकवचनस्य च** से **अत्** आदेश हुआ, **अस्मद्+अत्** बना। **त्वमावेकवचने** से मपर्यन्त भाग **अस्म्** के स्थान पर **म** आदेश हुआ, **म+अद्+अत्** बना। पररूप होकर टि का लोप हुआ, **म्+अत्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **मत्** सिद्ध हुआ।

अदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३२५. पञ्चम्या अत् ७।१।३१॥

आभ्यां पञ्चम्या भ्यसोऽत् स्यात्। युष्मत्। अस्मत्।

तवममादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३२६. तवममौ ङसि ७।२।९६॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य तवममौ स्तो ङसि।

अशादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३२७. युस्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् ७।१।२७॥

तव। मम। युवयोः। आवयोः।

....

३२५- **पञ्चम्या अत्**। पञ्चम्याः षष्ठ्यन्तम्, अत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्** से **युष्मदस्मद्भ्याम्** तथा **भ्यसोऽभ्यम्** से **भ्यसः** की अनुवृत्ति आती है।

युष्मद् और अस्मद् शब्दों से परे पञ्चमी के भ्यस् को अत् आदेश होता है।

युष्मत्। युष्मद् शब्द से पञ्चमी का बहुवचन भ्यस् आया। **पञ्चम्या अत्** से भ्यस् के स्थान पर **अत्** आदेश हुआ और युष्मत् में अत् का **शेषे लोपः** से लोप हुआ, **युष्म्+अत्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **युष्मत्** सिद्ध हुआ।

अस्मत्। अस्मद् शब्द से पञ्चमी का बहुवचन भ्यस् आया। **पञ्चम्या अत्** से **भ्यस्** के स्थान पर **अत्** आदेश हुआ और अस्मत् में अत् का **शेषे लोपः** से लोप हुआ, **अस्म्+अत्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अस्मत्** सिद्ध हुआ।

३२६- **तवममौ ङसि**। तवश्च ममश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः तवममौ। तवममौ प्रथमान्तं, ङसि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **युष्मदस्मदोरनादेशे** से **युष्मदस्मदोः** की अनुवृत्ति आती है और **मपर्यन्तस्य** का अधिकार है।

ङस् के परे होने पर युष्मद् और अस्मद् शब्दों के मपर्यन्त भाग के स्थान पर क्रमशः तव और मम आदेश होते हैं।

३२७- **युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्**। युष्मच्च अस्मच्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो युष्मदस्मदौ, ताभ्यां-युष्मदस्मद्भ्याम्। युष्मदस्मद्भ्याम् पञ्चम्यन्तं, ङसः षष्ठ्यन्तम्, अश् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

युष्मद् और अस्मद् शब्दों से परे ङस् के स्थान पर अश् आदेश होता है।

अश् में शकार की इत्संज्ञा होती है। शित् होने के कारण **आदेः परस्य** को बाधकर **अनेकाल् शित्सर्वस्य** से सर्वादेश होता है।

तव। युष्मद् शब्द से षष्ठी का एकवचन ङस् आया, अनुबन्धलोप होने पर **युष्मद्+अस्** बना। **तवममौ ङसि** से युष्मद् के मपर्यन्त भाग युष्म् के स्थान पर **तव** आदेश हुआ, **तव+अद्+अस्** बना। अस् के स्थान पर **युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्** से **अश्** आदेश हुआ, **तव+अद्+अ** बना। पररूप और टि का लोप होकर **तव्+अ**, वर्णसम्मेलन होकर तव सिद्ध हुआ।

आकमादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३२८. साम आकम् ७।१।३३॥

आभ्यां परस्य साम आकं स्यात्।

युष्माकम्। अस्माकम्। त्वयि। मयि। युवयोः। आवयोः। युष्मासु। अस्मासु।

....

मम। अस्मद् शब्द से षष्ठी का एकवचन ङस् आया, अनुबन्धलोप होने पर **अस्मद्+अस्** बना। **तवममौ ङसि** से अस्मद् के मपर्यन्त भाग अस्म् के स्थान पर **मम** आदेश हुआ, **मम+अद्+अस्** बना। अस् के स्थान पर **युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्** से अश् आदेश हुआ, **मम+अद्+अ** बना। पररूप और टि का लोप होकर **मम्+अ,** वर्णसम्मेलन होकर **मम** सिद्ध हुआ।

युवयोः। युष्मद् शब्द से षष्ठी एवं सप्तमी का द्विवचन ओस् आया, **युष्मद्+ओस्** बना। मपर्यन्त भाग युष्म् के स्थान पर **युवावौ द्विवचने** से **युव** आदेश हुआ, **युव+अद्+ओस्** बना। **युव+अद्** में पररूप होकर **युवद्+ओस्** बना। **शेषे लोपः** से टि का लोप प्राप्त था, उसे बाधकर **योऽचि** से दकार के स्थान पर यकार आदेश हुआ, **युवय्+ओस्** बना। वर्णसम्मेलन और रुत्वविसर्ग होकर **युवयोः** सिद्ध हुआ।

आवयोः। अस्मद् शब्द से षष्ठी एवं सप्तमी का द्विवचन ओस् आया, **अस्मद्+ओस्** बना। मपर्यन्त भाग अस्म् के स्थान पर **युवावौ द्विवचने** से **आव** आदेश हुआ, **आव+अद्+ओस्** बना। **आव+अद्** में पररूप होकर **आवद्+ओस्** बना। **शेषे लोपः** से टि का लोप प्राप्त था, उसे बाधकर **योऽचि** से दकार के स्थान पर यकार आदेश हुआ, **आवय्+ओस्** बना। वर्णसम्मेलन और रुत्वविसर्ग होकर **आवयोः** सिद्ध हुआ।

३२८- साम आकम्। सामः षष्ठ्यन्तम्, आकं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश्** से युष्मदस्मद्भ्याम् की अनुवृत्ति आती है। **युष्मद् और अस्मद् शब्दों से परे साम् को आकम् आदेश होता है।**

यद्यपि युष्मद् और अस्मद् शब्द हलन्त होने के कारण **आमि सर्वनाम्नः सुट्** की प्राप्ति नहीं थी तथापि किसी स्थिति में दकार के लोप होने पर अकारान्त बन जाने के कारण सुट् हो सकता है। अतः सुट् सहित आम् अर्थात् साम् के स्थान पर आकम् आदेश का विधान है।

युष्माकम्। युष्मद् शब्द से षष्ठी का बहुवचन आम् आया, **युष्मद्+आम्** बना। **साम आकम्** से आम् के स्थान पर **आकम्** आदेश हुआ, **युष्मद्+आकम्** बना। **शेषे लोपः** से टिलोप होकर **युष्म्+आकम्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **युष्माकम्** सिद्ध हुआ।

अस्माकम्। अस्मद् शब्द से षष्ठी का बहुवचन आम् आया, **अस्मद्+आम्** बना। **साम आकम्** से आम् के स्थान पर **आकम्** आदेश हुआ, **अस्मद्+आकम्** बना। **शेषे लोपः** से टिलोप होकर **अस्म्+आकम्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अस्माकम्** सिद्ध हुआ।

त्वयि। युष्मद् शब्द से सप्तमी का एकवचन ङि, अनुबन्धलोप होकर **युष्मद्+इ** बना। **त्वमावेकवचने** से मपर्यन्त भाग युष्म् के स्थान पर **त्व** आदेश होकर **त्व+अद्+इ** बना। पररूप हुआ और दकार के स्थान पर **योऽचि** से यकार आदेश होकर **त्वय्+इ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **त्वयि** सिद्ध हुआ।

वांनावादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३२९. युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वांनावौ ८।१।२०॥

पदात्परयोरपादादौ स्थितयोः षष्ठ्यादिविशिष्टयोर्वां नौ इत्यादेशौ स्तः।

....

मयि। अस्मद् शब्द से सप्तमी का एकवचन ङि, अनुबन्धलोप होकर **अस्मद्+इ** बना। **त्वमावेकवचने** से मपर्यन्त भाग अस्म् के स्थान पर **म** आदेश होकर **म+अद्+इ** बना। पररूप हुआ और दकार के स्थान पर **योऽचि** से यकार आदेश होकर **मय्+इ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **मयि** सिद्ध हुआ।

युष्मासु। युष्मद् शब्द से सप्तमी का बहुवचन सुप् आया। अनुबन्धलोप होकर **युष्मद्+सु** बना। **युष्मदस्मदोरनादेशे** से दकार के स्थान पर आकार आदेश होकर **युष्म+आ+सु** बना। सर्वणदीर्घ होकर **युष्मासु** सिद्ध हुआ।

अस्मासु। अस्मद् शब्द से सप्तमी का बहुवचन सुप् आया। अनुबन्धलोप होकर **अस्मद्+सु** बना। **युष्मदस्मदोरनादेशे** से दकार के स्थान पर आकार आदेश होकर **अस्म+आ+सु** बना। सर्वणदीर्घ होकर **अस्मासु** सिद्ध हुआ।

त्यदादि का सम्बोधन नहीं होता है, यह पहले ही कहा जा चुका है। अगर सम्वोधन होता तो कैसा होता? हे तुम! हे मैं! न, ऐसा नहीं हो सकता है।

दकारान्त युष्मद्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वितीया	त्वाम्	युवाम्	युष्मान्
तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
चतुर्थी	तुभ्यम्	युवाभ्याम्	युष्मभ्यम्
पञ्चमी	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
षष्ठी	तव	युवयोः	युष्माकम्
सप्तमी	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

दकारान्त अस्मद्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वितीया	माम्	आवाम्	अस्मान्
तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
चतुर्थी	मह्यम्	आवाभ्याम्	अस्मभ्यम्
पञ्चमी	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
षष्ठी	मम	आवयोः	अस्माकम्
सप्तमी	मयि	आवयोः	अस्मासु

३२९- युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वांनावौ। युष्मच्च अस्मच्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः- युष्मदस्मदौ, तयोः- युष्मदस्मदोः। षष्ठी च चतुर्थी च द्वितीया च तयोरितरेतरद्वन्द्वः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयाः, तासु तिष्टतः इति षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थौ, तयोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः।

वस्-नस्-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

३३०. बहुवचनस्य वस्नसौ ८।१।२१॥

उक्तविधयोरनयोः षष्ठ्यादिबहुवचनान्तयोर्वस्नसौ स्तः।

ते-मे-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

३३१. तेमयावेकवचनस्य ८।१।२२॥

उक्तविधयोरनयोः षष्ठीचतुर्थ्येकवनचनान्तयोस्ते मे एतौ स्तः।

त्वामादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३३२. त्वामौ द्वितीयायाः ८।१।२३॥

द्वितीयैकवचनान्तयोस्त्वा मा इत्यादेशौ स्तः।

....

वाम् च नौ च तयोरितरेतरद्वन्द्वः- वांनावौ। युष्मदस्मदोः षष्ठ्यन्तं, षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः षष्ठ्यन्तं, वांनावौ प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **पदात्** तथा **अनुदात्तं सर्वमपदादौ** इन सूत्रों का अधिकार है।

पद से परे और अपदादि में स्थित षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति से युक्त युष्मद् और अस्मद् शब्दों के स्थान पर क्रमशः वाम् और नौ आदेश होते हैं।

पदात् का अर्थ पद से परे और **अपदादौ** का अर्थ पद के आदि में स्थित न हो अर्थात् यह सूत्र वाक्य के प्रथम पद में प्रवृत्त नहीं होता है। यद्यपि यह सूत्र षष्ठी आदि विभक्ति में वचन की अपेक्षा नहीं करता फिर भी एकवचन और बहुवचन में आगे के सूत्रों से बाधित हो जाने के कारण द्विवचन मात्र में लगता है।

३३०- **बहुवचनस्य वस्नसौ**। वस् च नस् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः- वस्नसौ। बहुवचनस्य षष्ठ्यन्तं, वस्नसौ प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वांनावौ** से **युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः** की अनुवृत्ति आती है। **पदात्** तथा **अनुदात्तं सर्वमपदादौ** इन सूत्रों का अधिकार है।

पद से परे और अपदादि में स्थित षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति के बहुवचन से युक्त युष्मद् और अस्मद् शब्दों के स्थान पर क्रमशः वस् और नस् आदेश होते हैं।

केवल बहुवचन में ही लगने के कारण यह सूत्र **युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वांनावौ** का अपवाद हो जाता है।

३३१- **तेमयावेकवचनस्य**। तेश्च मेश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः, तेमयौ। तेमयौ प्रथमान्तम्, एकवचनस्य षष्ठ्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वांनावौ** से **युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः** की अनुवृत्ति आती है। **पदात्** तथा **अनुदात्तं सर्वमपदादौ** इन सूत्रों का अधिकार है।

पद से परे और अपदादि में स्थित षष्ठी, चतुर्थी विभक्ति के एकवचन से युक्त युष्मद् और अस्मद् शब्दों के स्थान पर क्रमशः ते और मे आदेश होते हैं।

यह सूत्र द्वितीया विभक्ति में **त्वामौ द्वितीयायाः** से बाधित होने के कारण **षष्ठी** और **चतुर्थी** में प्रवृत्त होता है।

सूत्रचतुष्टयस्योदाहरणानि श्लोकद्वयेन

श्रीशस्त्वाऽवतु मापीह, दत्तात्ते मेऽपि शर्म सः।
स्वामी ते मेऽपि स हरिः, पातु वामपि नौ विभुः।।
सुखं वां नौ ददात्वीशः पतिर्वामपि नौ हरिः।
सोऽव्याद्वो नः शिवं वो नो दद्यात् सेव्योऽत्र वः स नः।।

वार्तिकम्- **एकवाक्ये युष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः।** एकतिङ् वाक्यम्। ओदनं पच, तव भविष्यति।

वार्तिकम्- **एते वान्नावादयोऽनन्वादेशे वा वक्तव्याः।** अन्वादेशे तु नित्यं स्युः। धाता ते भक्तोऽस्ति, धाता तव भक्तोऽस्ति वा। तस्मै ते नम इत्येव। सुपात्, सुपाद्। सुपादौ।।

....

३३२- त्वामौ द्वितीयायाः। त्वाश्च माश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः, त्वामौ। त्वामौ प्रथमान्तं, द्वितीयायाः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वांनावौ** से **युष्मदस्मदोः** तथा **तेमयावेकवचनस्य** से **एकवचनस्य** की अनुवृत्ति आती है। **पदात्** तथा **अनुदात्तं सर्वमपदादौ** इन सूत्रों का अधिकार है।

पद से परे और अपदादि में स्थित द्वितीया विभक्ति के एकवचन से युक्त युष्मद् और अस्मद् शब्दों के स्थान पर क्रमशः त्वा और मा आदेश होते हैं।

अब उपर्युक्त चारों सूत्रों का उदाहरण **श्रीशस्त्वा** आदि दो श्लोकों से देते हैं-

श्रीशस्त्वावतु मापीह। श्रीशः त्वा अवतु मा अपि इह। **इह**=इस लोक में, **श्रीशः**=लक्ष्मीपति भगवान् नारायण, **त्वा-त्वां**= तुझे, **अपि**=तथा, **मा-माम्**=मुझे, **अवतु**=बचावें अर्थात् तुम्हारी और मेरी रक्षा करें। यह श्लोक एक चरण **त्वामौ द्वितीयायाः** का उदाहरण है। युष्मद् और अस्मद् शब्द के द्वितीया के एकवचन **त्वाम्** और **माम्** के स्थान पर क्रमशः **त्वा** और **मा** आदेश हुए हैं। अर्थ तो वही है जो **त्वाम्** और **माम्** का है।

दत्तात्ते मेऽपि शर्म सः। स्वामी ते मेऽपि स हरिः। दत्तात् ते मे अपि शर्म सः। स्वामी ते मे अपि स हरिः। **सः**=वे (हरि) **ते-तुभ्यम्**=तुझे(तुम्हारे लिए), **अपि**=तथा, **मे-मह्यम्**=मुझे(मेरे लिए), **शर्म**=कल्याण, **दत्तात्**=प्रदान करें। **स हरिः**=वे हरि, **ते-तव**=तुम्हारे, **अपि**=तथा, **मे-मम**=मेरे, **स्वामी(अस्ति)**=स्वामी हैं। ये दो चरण **तेमयावेकवचनस्य** के उदाहरण हैं। युष्मद् और अस्मद् शब्द के चतुर्थी के एकवचन **तुभ्यम्** और **मह्यम्** तथा षष्ठी के एकवचन **तव** और **मम** के स्थान पर क्रमशः **ते** और **मे** आदेश हुए हैं।

पातु वामपि नौ विभुः।। सुखं वां नौ ददात्वीशः, पतिर्वामपि नौ हरिः। पातु वाम् अपि नौ विभुः। सुखं वाम् नौ ददातु ईशः, पतिः वाम् अपि नौ हरिः।। **विभुः**=सर्वव्यापक(वे हरि) **वाम्-युवाम्**=तुम दोनों को, **अपि**=तथा, **नौ-आवाम्**=हम दोनों को **पातु**=बचावें अर्थात् रक्षा करें। **ईशः**=भगवान्, **वाम्-युवाभ्याम्**=तुम दोनों को, (और) **नौ**=हम दोनों को **सुखम्**=सुख, **ददातु**=प्रदान करें। (वे) **हरिः**=हरि (भगवान्) **वाम्-युवयोः**=तुम दोनों के, **अपि**=तथा, **नौ-आवयोः**=हम दोनों के, **पतिः**=पति(स्वामी) हैं। ये तीन चरण **युष्मदस्मदोः**

षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वांनावौ के उदाहरण हैं। युष्मद् और अस्मद् शब्द के द्वितीया के द्विवचन **युवाम्** और **आवाम्**, चतुर्थी के द्विवचन **युवाभ्याम्** और **आवाभ्याम्** तथा **षष्ठी** के द्विवचन **युवयोः** और **आवयोः** के स्थान पर क्रमशः **वाम्** और **नौ** आदेश हुए हैं।

सोऽव्याद्वो नः शिवं वो नो दद्यात् सेव्योऽत्र वः स नः॥ सः अव्यात्, वः, नः। शिवम्, वः नः दद्यात्। सेव्यः, अत्र, वः सः नः। **सः**=लक्ष्मीपति भगवान्, **वः-युष्मान्**=तुम सब की (और), **नः-अस्मान्**=हम सब की, **अव्यात्**=रक्षा करें। (वे भगवान्) **वः-युष्मभ्यम्**=तुम सबों को (और) **नः-अस्मभ्यम्**=हम सबों को, **शिवम्**=कल्याण, **दद्यात्**=देवें। **अत्र**=इस संसार में, **सः**= वे भगवान्, **वः-युष्माकम्**=तुम सबके, **नः-अस्माकम्**=हम सब के भी, **सेव्यः**=सेवनीय अर्थात् आराधनीय हैं। यह श्लोकार्ध **बहुवचनस्य वस्नसौ** का उदाहरण है। युष्मद् और अस्मद् शब्द की द्वितीया के बहुवचन **युष्मान्** और **अस्मान्**, चतुर्थी के बहुवचन **युष्मभ्यम्** और **अस्मभ्यम्** तथा षष्ठी के बहुवचन **युष्माकम्** और **अस्माकम्** के स्थान पर क्रमशः **वस्** और **नस्** आदेश हुए हैं।

एकवाक्ये युष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः। यह वार्तिक है। उपर्युक्त चार सूत्रों से **युष्मद्** और **अस्मद्** के स्थान पर जो आदेश विधान किए गए हैं, **वे एक ही वाक्य में होंगे**। अतः युष्मदस्मदादेश के निमित्तों को भी उसी एक वाक्य में होना चाहिए। जैसे- **पदात्परयोः अपदादौ स्थितयोः** अर्थात् पद से परे और पद के आदि में स्थित न हों। ऐसी स्थिति एक ही वाक्य में होनी चाहिए, दूसरे वाक्य में नहीं। एक ही वाक्य में पद से परे और पद के आदि स्थित न हो, ऐसे द्वितीया, चतुर्थी और षष्ठ्यन्त युष्मद् और अस्मद् शब्द के स्थान पर क्रमशः वाम्, नौ तथा वस्, नस् एवं त्वा, मा आदेश हों।

वाक्य किसे कहते हैं? **एकतिङ् वाक्यम्**। एक तिङ् विभक्ति के कर्ता, कर्म आदि से युक्त समूह को वाक्य कहते हैं। जैसे- **देवदत्तो गृहं गच्छति**। यहाँ पर **देवदत्तः** कर्ता है, **गृहम्** कर्म है और तिङन्त क्रिया है- **गच्छति**। इस तरह **देवदत्तो गृहं गच्छति** यह समुदाय एक वाक्य है। **(त्वम्) ओदनं पच, तव भविष्यति** इस वाक्य में **त्वम् ओदनं पच**, इतना एक वाक्य है और **तव भविष्यति** यह दूसरा वाक्य है। क्योंकि **पच** एक तिङन्त क्रिया है और **भविष्यति** एक तिङन्त क्रिया है। दो तिङन्त क्रिया होने के कारण दो वाक्य हो गये। वार्तिक के अनुसार एक ही वाक्य में ही उपर्युक्त आदेश होते हैं। **तव भविष्यति** का **तव** पद के आदि में स्थित है और पद से परे नहीं है। **ओदनं पच** को पद मानकर **पद से परे** अर्थ नहीं कर सकते, क्योंकि वह एक ही वाक्य में नहीं है, दूसरे वाक्य में है। अतः **तव** के स्थान पर **ते** आदेश नहीं हुआ।

एते वान्नावादयोऽनन्वादेशे वा वक्तव्याः। यह वार्तिक है। **ये वाम्, नौ आदि अनन्वादेश में विकल्प से होते हैं और अन्वादेश में नित्य से होते हैं**। अन्वादेश और अनन्वादेश के सम्बन्ध में इदम् शब्द में बताया जा चुका है। एक कथन के बाद उसी के लिए दूसरा कथन किया जाता है तो उसे अन्वादेश कहते हैं। अन्वादेश में ये आदेश नित्य से होते हैं। **धाता ते भक्तोऽस्ति, धाता तव भक्तोऽस्ति**। ब्रह्मा आपका भक्त है, इस वाक्य में अन्वादेश नहीं है अर्थात् अनन्वादेश है। अतः **तव** के स्थान पर विकल्प से **ते** आदेश हुआ। इसी तरह **यो विद्वान्! ते नमः** और **यो विद्वान्! तस्मै नमः** में भी अनन्वादेश होने के कारण विकल्प से होता है।

पदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३३३. पादः पत् ६।४।१३०॥

पाच्छब्दान्तं यदङ्गं भं तदवयवस्य पाच्छब्दस्य पदादेशः। सुपदः। सुपदा। सुपाद्भ्याम्। अग्निमत्, अग्निमद्। अग्निमथौ। अग्निमथः॥

....

सुपात्, सुपाद्। सुन्दर पैरों वाला। सु=शोभनौ पादौ यस्य, स सुपात्। सुपाद्+सु में **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से स् का लोप होकर दकार के स्थान पर **वाऽवसाने** से विकल्प से चर्त्व होकर **सुपात्, सुपाद्** दो रूप बनते हैं। औ आदि अजादिविभक्ति के परे होने पर केवल वर्णसम्मेलन करके **सुपादौ, सुपादः, सुपादम्, सुपादौ** ये रूप बनते हैं। शस् और उससे आगे हलादिविभक्ति के परे भसंज्ञा होने के कारण अग्रिम सूत्र से पत् आदेश होता है।

३३३- पादः पत्। पादः षष्ठ्यन्तं, पत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **भस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

पाद-शब्द अन्त में हो ऐसे भसंज्ञक पाद् के स्थान पर पद् आदेश होता है।

भसंज्ञा असर्वनामस्थान अजादि विभक्ति के परे पूर्व की होती है। अतः शसादि अजादि विभक्ति में इससे पाद् के स्थान पर पद् आदेश होता है, असर्वनामस्थान और हलादि विभक्ति के परे नहीं। **पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च** इस परिभाषा के बल पर **सुपाद्** पूरे के स्थान पर **पद्** आदेश प्राप्त था, **निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति** के नियम से केवल **पाद्** के स्थान पर ही **पद्** आदेश होता है।

सुपदः। सुपाद् से शस्, अनुबन्धलोप, भसंज्ञा, **पादः पत्** से पद् आदेश करके **सुपद्+अस्**, वर्णसम्मेलन होकर **सुपदः** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार से **सुपदा, सुपदे, सुपदः, सुपदोः, सुपदाम्, सुपदि** बनते हैं। हलादिविभक्ति के परे भसंज्ञा न होने से पद् आदेश नहीं होगा। अतः **सुपाद्भ्याम्, सुपाद्भिः, सुपाद्भ्यः, सुपात्सु** ये रूप बनते हैं।

तकारान्त शब्दों के कथन के बाद अब थकारान्त शब्द का कथन करते हैं।

अग्निमत्, अग्निमद्। अग्नि का मन्थन करने वाला। **अग्निं मथ्नातीति अग्निमत्। अग्नि** पूर्वक **मन्थ्** धातु से **क्विप्** प्रत्यय, उसका सर्वापहार लोप, प्रत्ययलक्षण से कित् मानकर **मन्थ्** के नकार का **अनिदितां हल उपधाया क्ङिति** से लोप होकर **अग्निमथ्** बना है। उससे सु प्रत्यय आकर **अग्निमथ्+स्** बना है। स् का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप, थकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर **दकार** हो जाता है। दकार के स्थान पर **वाऽवसाने** से वैकल्पिक चर्त्व होकर **अग्निमत्, अग्निमद्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं। आगे अजादिविभक्ति के परे होने पर केवल वर्णसम्मेलन करके और हलादिविभक्ति के परे होने पर **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदसंज्ञा करके **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व करके **अग्निमथौ, अग्निमथः, अग्निमथम्, अग्निमथा, अग्निमद्भ्याम्, अग्निमद्भिः, अग्निमद्भ्यः, अग्निमथे, अग्निमथः, अग्निमथोः, अग्निमथाम्, अग्निमथि, अग्निमत्सु** ये रूप बनते हैं।

थकारान्त शब्द के विवेचन के बाद अब चकारान्त शब्दों का विवेचन करते हैं। प्रपूर्वक अञ्च् धातु का अर्थ है- **श्रेष्ठ गति वाला, पहले चलने वाला, पूर्व का देश, पूर्व काल आदि।**

नकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

३३४. अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति ६।४।२४॥

हलन्तामनिदितामङ्गानामुपधाया नस्य लोपः किति ङिति। नुम्। संयोगान्तलोपः। नस्य कुत्वेन ङः। प्राङ्। प्राञ्चौ। प्राञ्चः।

अकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

३३५. अचः ६।४।१३८॥

लुप्तनकारस्याञ्चतेर्भस्याकारस्य लोपः।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

३३६. चौ ६।३।१३८॥

लुप्ताकारनकारेऽञ्चतौ परे पूर्वस्याणो दीर्घः। प्राचः। प्राचा। प्राग्भ्याम्। प्रत्यङ्। प्रत्यञ्चौ। प्रतीचः। प्रत्यग्भ्याम्। उदङ्। उदञ्चौ।

....

३३४- अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति। इत् इत् अस्ति येषां ते इदितः, न इदितः- अनिदितः, तेषाम् अनिदिताम्, बहुव्रीहिगर्भो नञ्तत्पुरुषः। क् च ङ् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः क्ङौ। क्ङौ इतौ यस्य स क्ङित्, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः, तस्मिन् क्ङिति। **अङ्गस्य** का अधिकार है। **श्नान्नलोपः** से न इस लुप्तषष्ठीक पद और **लोपः** की अनुवृत्ति आती है।

जिनके इकार की इत्संज्ञा नहीं हुई है ऐसे हलन्त अङ्गों की उपधा के नकार का लोप होता है कित् और ङित् के परे होने पर।

प्राङ्। प्र-पूर्वक अञ्चु धातु है। अञ्चु धातु का अर्थ गति और पूजा है। यहाँ पर केवल गत्यर्थक अञ्च् धातु का ही ग्रहण है। उकार की इत्संज्ञा हुई है। प्र+अञ्च् में **ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च** से क्विन् प्रत्यय, सर्वापहार लोप, करके प्रत्ययलक्षणेन क्विन्-प्रत्ययान्त और कित् परे मानकर **अनिदितां हल उपधाया क्ङिति** से अञ्च् में ञकार-स्थानीय नकार का लोप हुआ। **प्र+अच्** बना। सवर्णदीर्घ होकर **प्राच्** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु आया, उसका लोप हुआ। प्राच् में **उगिदचां सर्वनामस्थानोऽधातोः** से नुम्, अनुबन्धलोप, मित् होने के कारण अन्त्य अच् प्रा के आकार के बाद न् बैठा, **प्रान्+च्** बना। **चकार** का **संयोगान्तलोप** और नकार के स्थान पर **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** से कुत्व होकर **ङकार** बना, **प्राङ्** सिद्ध हुआ।

प्राञ्चौ। प्राच् से औ विभक्ति, सर्वनामस्थान परे होने के कारण नुम् का आगम करके **प्रान्+च्+औ** बना। नकार के स्थान पर **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार और उसके स्थान पर **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से परसवर्ण होकर ञकार हुआ, **प्राञ्च्+औ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **प्राञ्चौ** सिद्ध हुआ। इसी तरह **प्राञ्चः, प्राञ्चम्, प्राञ्चौ** भी बन जाते हैं।

३३५- अचः। अचः षष्ठ्यन्तम्, एकपदमिदं सूत्रम्। **अल्लोपोऽनः** से **अल्लोपः** की अनुवृत्ति आती है। **भस्य** का अधिकार है।

लोप हुआ है नकार का, ऐसे अञ्च् धातु के भसंज्ञक अकार का लोप होता है।

३३६- चौ। चौ सप्तम्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से **पूर्वस्य, दीर्घः,** और **अणः** की अनुवृत्ति आती है। **चु** से नकार रहित अच् धातु का ग्रहण है।

अकार और नकार का लोप हो गया हो, ऐसे अञ्च् धातु के परे होने पर पूर्व के अण् को दीर्घ होता है।

प्राचः। प्राच् से शस्, अनुबन्धोप, सर्वनामस्थान परे न होने के कारण **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से नुम् नहीं हुआ किन्तु **अचः** से **प्र+अच्=प्राच्** का जो अकार है, उसका लोप हो गया, **प्र+च्+अस्** बना। अब **चौ** से **प्र** में अकार का दीर्घ हुआ, **प्रा+च्+अस्** बना। वर्णसम्मेलन और रुत्वविसर्ग होकर **प्राचः** सिद्ध हुआ। इसी तरह आगे अजादिविभक्ति के परे कार्य होता है और हलादि विभक्ति के परे भसंज्ञा न होने के कारण **प्राच्** में चकार को जश्त्व होकर गकार बन जाता है। सुप् में गकार को **खरि च** से चर्त्व होकर ककार, उससे परे सकार को षत्व और क्-ष् के संयोग को क्षत्व होकर **प्राक्षु** यह रूप सिद्ध हो जाता है।

चकारान्त प्र-पूर्वक अञ्च्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः
द्वितीया	प्राञ्चम्	प्राञ्चौ	प्राचः
तृतीया	प्राचा	प्राग्भ्याम्	प्राग्भिः
चतुर्थी	प्राचे	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्यः
पञ्चमी	प्राचः	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्यः
षष्ठी	प्राचः	प्राचोः	प्राचाम्
सप्तमी	प्राचि	प्राचोः	प्राक्षु
सम्बोधन	हे प्राङ्!	हे प्राञ्चौ!	हे प्राञ्चः!

प्रति-पूर्वक अञ्च् धातु का अर्थ होता है- पीछे या विपरीत जाने वाला, पश्चिम का देश, काल आदि। इसकी प्रक्रिया भी लगभग प्र-अञ्च् की तरह होती है। अन्तर यह है है कि उसमें प्र+अच् में सवर्णदीर्घ होकर प्राच् बनता है तो यहाँ प्रति+अच् में यण् होकर **प्रत्यच्** बनता है। उसके बाद नुम्, संयोगान्तलोप, कुत्व होकर **प्रत्यङ्, प्रत्यञ्चौ** आदि रूप बनते हैं। शसादि अजादि विभक्ति के परे **प्रति+अच्** में अकार का लोप और प्रति के इकार को दीर्घ होकर ईकार हो जाता है, जिससे **प्रतीचः, प्रतीचा** आदि रूप बनते हैं। हलादि विभक्ति के परे होने पर **प्रत्यग्भ्याम्** आदि रूप बन जाते हैं।

चकारान्त प्रति-पूर्वक अञ्च्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्रत्यङ्	प्रत्यञ्चौ	प्रत्यञ्चः
द्वितीया	प्रत्यञ्चम्	प्रत्यञ्चौ	प्रतीचः
तृतीया	प्रतीचा	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भिः
चतुर्थी	प्रतीचे	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्यः
पञ्चमी	प्रतीचः	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्यः
षष्ठी	प्रतीचः	प्रतीचोः	प्रतीचाम्
सप्तमी	प्रतीचि	प्रतीचोः	प्रत्यक्षु
सम्बोधन	हे प्रत्यङ्!	हे प्रत्यञ्चौ!	हे प्रत्यञ्चः!

ईकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३३७. उद ईत् ६।४।१३९।।

उच्छब्दात्परस्य लुप्तनकारस्याञ्चतेर्भस्याकारस्य ईत्।

उदीचः। उदीचा। उदग्भ्याम्।

सम्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३३८. समः समि ६।३।९३।।

वप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ। सम्यङ्। सम्यञ्चौ। समीचः। सम्यग्भ्याम्।

....

(उत्) उद् -पूर्वक अञ्च् का अर्थ है- ऊपर जाने वाला, उत्तर के देश, काल आदि। इसकी प्रक्रिया औट् तक पूर्ववत् ही होती है। नकार का लोप तो सर्वत्र ही होता है किन्तु नुम् सर्वनामस्थान के परे ही होता है। उद्+अञ्च्, नकार का लोप करने पर उद्+अच्, वर्णसम्मेलन होकर **उदच्** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा करके नुम् का आगम, सुलोप, संयोगान्तलोप, कुत्व करके प्राङ् की तरह **उदङ्**, प्राञ्चौ आदि की तरह **उदञ्चौ, उदञ्चः** आदि बनते हैं। शस् आदि की प्रक्रिया आगे देखिये।

३३७- उद ईत्। उदः पञ्चम्यन्तम्, ईत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अचः** से **अचः**, अल्लोपोऽनः से विभक्तिविपरिणाम करके **अतः** की अनुवृत्ति आती है। **भस्य** का अधिकार है।

उद् से परे लोप हो गया है नकार, ऐसे अञ्च् धातु के भसंज्ञक अकार के स्थान पर ईकार आदेश होता है।

उदीचः। उदच् से शस्, अनुबन्धलोप, भसंज्ञा करके अच् के अकार के स्थान पर उद ईत् से ईकार आदेश होकर **उदीच्+अस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **उदीचः** सिद्ध हुआ। हलादि में **प्राग्भ्याम्** आदि की तरह **उदग्भ्याम्, उदग्भिः** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

चकारान्त उद्-पूर्वक अञ्च्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	उदङ्	उदञ्चौ	उदञ्चः
द्वितीया	उदञ्चम्	उदञ्चौ	उदीचः
तृतीया	उदीचा	उदग्भ्याम्	उदग्भिः
चतुर्थी	उदीचे	उदग्भ्याम्	उदग्भ्यः
पञ्चमी	उदीचः	उदग्भ्याम्	उदग्भ्यः
षष्ठी	उदीचः	उदीचोः	उदीचाम्
सप्तमी	उदीचि	उदीचोः	उदक्षु
सम्बोधन	हे उदङ्!	हे उदञ्चौ!	हे उदञ्चः!

३३८- समः समि। समः षष्ठ्यन्तं, समि लुप्तप्रथमाकं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतौ वप्रत्यये** से **अञ्चतौ** और **वप्रत्यये** की अनुवृत्ति आती है।

व-प्रत्ययान्त अञ्च् के परे होने पर सम् के स्थान पर समि आदेश होता है।

सम् पूर्वक अञ्च् धातु से क्विन्, सर्वापहार लोप करने पर प्रत्ययलक्षणेन क्विप्

सध्र्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३३९. सहस्य सध्रिः ६।३।९५॥

तथा। सध्र्यङ्।

....

वाले वकार को वप्रत्यय मानकर **समः समि** से **समि** आदेश, नकार का लोप आदि होकर **समि+अच्=सम्यच्** बन जाता है। उसकी प्रातिपदिक संज्ञा करके आगे की प्रक्रिया की जाती है।

सम्यङ्। ठीक से चलने वाला। सम्यच् से सु, नुम्, सुलोप, संयोगान्तलोप, कुत्व करके **प्राङ्** की तरह **सम्यङ्** सिद्ध होता है। **प्राञ्चौ** आदि की तरह **सम्यञ्चौ, सम्यञ्चः** आदि बनते हैं। शसादि से आगे **समि+अच्** इस स्थिति में अकार का **अचः** से लोप और **चौ** से पूर्व इकार को दीर्घ करके **समीचः, समीचा** आदि रूप सिद्ध होते हैं। हलादिविभक्ति में **प्राग्भ्याम्** आदि की तरह **सम्यग्भ्याम्, सम्यग्भिः** आदि बन जाते हैं।

चकारान्त सम्-पूर्वक अञ्च्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सम्यङ्	सम्यञ्चौ	सम्यञ्चः
द्वितीया	सम्यञ्चम्	सम्यञ्चौ	समीचः
तृतीया	समीचा	सम्यग्भ्याम्	सम्यग्भिः
चतुर्थी	समीचे	सम्यग्भ्याम्	सम्यग्भ्यः
पञ्चमी	समीचः	सम्यग्भ्याम्	सम्यग्भ्यः
षष्ठी	समीचः	समीचोः	समीचाम्
सप्तमी	समीचि	समीचोः	सम्यक्षु
सम्बोधन	हे सम्यङ्!	हे सम्यञ्चौ!	हे सम्यञ्चः!

३३९- सहस्य सध्रिः। सहस्य षष्ठ्यन्तं, सध्रिः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतौ वप्रत्यये** से **अञ्चतौ** और **वप्रत्यये** की अनुवृत्ति आती है।

वप्रत्ययान्त अञ्च् के परे हो तो सह के स्थान पर सध्रि आदेश होता है।

सह+अञ्च् में क्विन्, सर्वापहार लोप, नकार का लोप करके **सहस्य सध्रिः** से सह के स्थान पर **सध्रि** आदेश करके **सध्रि+अच्,** यण् होकर **सध्र्यच्** बना। उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होने के बाद आगे की प्रक्रिया निम्नवत् होती है।

सध्र्यङ्। साथ चलने वाला। **सध्र्यच्** से सु, उसका लोप, नुम्, संयोगान्तलोप, कुत्व करके **प्राङ्** की तरह **सध्र्यङ्** सिद्ध हो जाता है। आगे **प्राञ्चौ** आदि की तरह **सध्र्यञ्चौ, सध्र्यञ्चः** तथा शसादि विभक्ति के परे अकार का लोप और पूर्व को दीर्घ होकर **सध्रीचः, सध्रीचा** एवं हलादि विभक्ति के परे **प्राग्भ्याम्** आदि की तरह **सध्र्यग्भ्याम्, सध्र्यग्भ्यः** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

चकारान्त सह-पूर्वक अञ्च्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सध्र्यङ्	सध्र्यञ्चौ	सध्र्यञ्चः
द्वितीया	सध्र्यञ्चम्	सध्र्यञ्चौ	सध्रीचः

तिर्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३४०. तिरसस्तिर्यलोपे ६।३।९४॥

अलुप्ताकारेऽञ्चतौ वप्रत्ययान्ते तिरसस्तिर्यादेशः। तिर्यङ्। तिर्यञ्चौ। तिरश्चः। तिर्यग्भ्याम्।

....

तृतीया	सध्रीचा	सध्र्यग्भ्याम्	सध्र्यग्भिः
चतुर्थी	सध्रीचे	सध्र्यग्भ्याम्	सध्र्यग्भ्यः
पञ्चमी	सध्रीचः	सध्र्यग्भ्याम्	सध्र्यग्भ्यः
षष्ठी	सध्रीचः	सध्रीचोः	सध्रीचाम्
सप्तमी	सध्रीचि	सध्रीचोः	सध्र्यक्षु
सम्बोधन	हे सध्र्यङ्!	हे सध्र्यञ्चौ!	हे सध्र्यञ्चः!

३४०- **तिरसस्तिर्यलोपे**। नास्ति लोपो यस्य स अलोपः, तस्मिन् अलोपे, बहुव्रीहिः। तिरसः षष्ठ्यन्तं, तिरि लुप्तप्रथमान्तम्, अलोपे सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतौ वप्रत्यये** से **अञ्चतौ** और **वप्रत्यये** की अनुवृत्ति आती है।

अलुप्त अकार वाले वप्रत्ययान्त अञ्च् के परे हो तो तिरस् के स्थान पर तिरि आदेश होता है।

शसादि में **तिरसस्तिर्यलोपे** नहीं लगता है। क्योंकि वहाँ **अचः** से अकार का लोप हो जाता है।

तिरस् पूर्वक अञ्च् धातु का अर्थ टेड़ा चलने वाला, पशु, पक्षी है। क्विन् प्रत्यय, सर्वापहार लोप, नकार का लोप करके **तिरसस्तिर्यलोपे से तिरि** आदेश होकर **तिरि+अच्=तिर्यच्** सिद्ध होता है। उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके आगे की प्रक्रिया की जाती है।

तिर्यङ्। तिर्यच् से सु, उसका लोप, नुम्, संयोगान्तलोप, कुत्व करके **प्राङ्** की तरह **तिर्यङ्** सिद्ध हो जाता है। आगे **प्राञ्चौ** आदि की तरह **तिर्यञ्चौ, तिर्यञ्चः** आदि रूप बनते हैं। शसादि में अकार के लोप होने के कारण **तिरसस्तिर्यलोपे** नहीं लगता। पूर्व में अण् न होने के कारण दीर्घ की सम्भावना भी नहीं है। अतः **तिरश्चः, तिरश्चा** आदि बनते हैं। हलादि के परे भसंज्ञा न होने के कारण अकार का लोप नहीं होता और लोप न होने के कारण तिरसस्तिर्यलोपे लगता है। अतः **तिर्यग्भ्याम्, तिर्यग्भिः** आदि रूप बनते हैं।

चकारान्त तिरस्-पूर्वक अञ्च्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्चः
द्वितीया	तिर्यञ्चम्	तिर्यञ्चौ	तिरश्चः
तृतीया	तिरश्चा	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भिः
चतुर्थी	तिरश्चे	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्यः
पञ्चमी	तिरश्चः	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्यः
षष्ठी	तिरश्चः	तिरश्चोः	तिरश्चाम्
सप्तमी	तिरश्चि	तिरश्चोः	तिर्यक्षु
सम्बोधन	हे तिर्यङ्!	हे तिर्यञ्चौ!	हे तिर्यञ्चः!

नकारलोपनिषेधकं विधिसूत्रम्

३४१. नाञ्चेः पूजायाम् ६।४।३०।।

पूजार्थस्याञ्चतेरुपधाया नस्य लोपो न। प्राङ्। प्राञ्चौ। नलोपाभावादलोपो न। प्राञ्चः। प्राङ्भ्याम्। प्राङ्क्षु। एवं पूजार्थे प्रत्यङ्ङादयः। क्रुङ्। क्रुञ्चौ। क्रुङ्भ्याम्। पयोमुक्, पयोमुग्। पयोमुचौ। पयोमुग्भ्याम्। उगित्त्वान्नुमि-

....

३४१- **नाञ्चेः पूजायाम्।** न अव्ययपदम्, अञ्चेः षष्ठ्यन्तं, पूजायां सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से **उपधायाः** तथा **श्नान्नलोपः** से **न** और **लोपः** की अनुवृत्ति आती है।

पूजार्थक अञ्च् के उपधाभूत नकार का लोप नहीं होता है।

अञ्च् धातु के **पूजा** और **गति** दो अर्थ हैं। दोनों अर्थ में **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से नकार का लोप प्राप्त होता है किन्तु पूजार्थक में इस सूत्र से निषेध होने के कारण गति अर्थ में ही नकार का लोप हो पाता है। नकार का लोप न होने पर **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से नुम् भी नहीं होता। शेष प्रक्रिया गत्यर्थक होने पर **प्राङ्, प्राञ्चौ, प्राञ्चः, प्राञ्चम्, प्राञ्चौ,** की तरह ही है। जब शब्द में ही नकार का लोप नहीं हुआ है तो शसादि में भी **प्राञ्चः, प्राञ्चा** आदि रूप बनते हैं। हलादि विभक्ति के परे होने पर **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पूर्व की पदसंज्ञा होने के कारण चकार का संयोगान्तलोप और ञकार की स्थानी नकार को कुत्व होकर **प्राङ्भ्याम्, प्राङ्भिः** आदि रूप बनते हैं।

चकारान्त पूजार्थक प्र-पूर्वक अञ्च्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः
द्वितीया	प्राञ्चम्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः
तृतीया	प्राञ्चा	प्राङ्भ्याम्	प्राङ्भिः
चतुर्थी	प्राञ्चे	प्राङ्भ्याम्	प्राङ्भ्यः
पञ्चमी	प्राञ्चः	प्राङ्भ्याम्	प्राङ्भ्यः
षष्ठी	प्राञ्चः	प्राञ्चोः	प्राञ्चाम्
सप्तमी	प्राञ्चि	प्राञ्चोः	प्राङ्क्षु
सम्बोधन	हे प्राङ्!	हे प्राञ्चौ!	हे प्राञ्चः!

इसी तरह पूजार्थक प्रपूर्वक अञ्च् से **प्रत्यञ्च्**, प्रातिपदिकसंज्ञा आदि करके **प्राङ्** की तरह **प्रत्यङ्, प्रत्यञ्चौ, प्रत्यञ्चः, प्रत्यङ्भ्याम्,** एवं **उदञ्च्** से **उदङ्, उदञ्चौ, उदञ्चः, उदङ्भ्याम्** आदि बनते हैं। इसी तरह सम्+अञ्च् के **सम्यङ्, सम्यञ्चौ, सम्यञ्चः, सम्यङ्भ्याम्,** सह्+अञ्च् के **सध्र्यङ्, सध्र्यञ्चौ, सध्र्यञ्चः, सध्र्यङ्भ्याम्** आदि बनाते जाइये। उक्त रीति से ही **तिरस्+अञ्च्** के रूप **तिर्यङ्, तिर्यञ्चौ, तिर्यञ्चः, तिर्यङ्भ्याम्** आदि बनते हैं।

क्रुङ्। क्रौंच पक्षी। **क्रुञ्च्** धातु से **ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च** से क्विन् प्रत्यय, सर्वापहार लोप करके **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से प्राप्त नकार का लोप का उक्त सूत्र से ही निपातन होने पर **क्रुञ्च्** ही रह जाता है। उसकी

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

३४२. सान्त महतः संयोगस्य ६।४।१०॥

सान्तसंयोगस्य महतश्च यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने। महान्। महान्तौ। महान्तः। हे महन्! महद्भ्याम्।

....

प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु, उसका लोप करके चकार का संयोगान्त लोप होता है। चकार के संनियोग से चुत्व होकर **क्रुन्+च्=क्रुञ्च्** बना था। निमित्तीभूत चकार के लोप होने के बाद नैमित्तिक ञकार भी अपने रूप में अर्थात् नकार के रूप में आ गया। **क्रुन्** बना। **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** से कुत्व होकर **क्रुङ्** सिद्ध हुआ। अब आगे **क्रुञ्चौ, क्रुञ्चः, क्रुञ्चम्, क्रुञ्चौ, क्रुञ्चः, क्रुञ्चा, क्रुङ्भ्याम्, क्रुङ्भिः** आदि भी बन जायेंगे।

पयोमुक्, पयोमुग्। बादल। पयो मुञ्चतीति पयोमुक्। पयस् पूर्वक मुच् धातु से क्विप् प्रत्यय, सर्वापहार लोप होकर **पयोमुच्** बना है। उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु प्रत्यय, उसका लोप, चकार को **चोः कुः** से कुत्व होकर गकार तथा **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर गकार करके **पयोमुग्** बना है। **वाऽवसाने** से वैकल्पिक चर्त्व होकर **पयोमुक्, पयोमुग्** ये दो रूप बनते हैं। आगे अजादिविभक्ति में केवल वर्णसम्मेलन और हलादिविभक्ति के परे होने पर **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदसंज्ञा होकर **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर निम्नलिखित रूप सिद्ध हो जाते हैं-

चकारान्त पयोमुच्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पयोमुक्, पयोमुग्	पयोमुचौ	पयोमुचः
द्वितीया	पयोमुचम्	पयोमुचौ	पयोमुचः
तृतीया	पयोमुचा	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भिः
चतुर्थी	पयोमुचे	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भ्यः
पञ्चमी	पयोमुचः	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भ्यः
षष्ठी	पयोमुचः	पयोमुचोः	पयोमुचाम्
सप्तमी	पयोमुचि	पयोमुचोः	पयोमुक्षु
सम्बोधन	हे पयोमुक्, पयोमुग्!	हे पयोमुचौ!	हे पयोमुचः!

इस तरह से चकारान्त शब्दों का वर्णन करके अब तकारान्त शब्दों का विवेचन प्रारम्भ करते हैं।

मह पूजायाम् इस धातु से उणादिसूत्र से शतृप्रत्ययान्त निपातन करके **महत्** शब्द बना है। शतृ में ऋकार की इत्संज्ञा हुई और ऋकार उक् प्रत्याहार में आता है। अतः यह शब्द उगित् कहलाता है। उगित् होने के कारण सर्वनामस्थान के परे होने पर **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से नुम् का आगम होता है।

३४२ - सान्त महतः संयोगस्य। स् अन्ते यस्य सः सान्तः, तस्य सान्तस्य। सान्त इति लुप्तषष्ठीकं पदं, महतः षष्ठ्यन्तं, संयोगस्य षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **नोपधायाः से न** और **उपधायाः** तथा **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः से दीर्घः** एवं **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** यह पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान के परे होने पर सकारान्त संयोग एवं महत् शब्द में जो नकार, उसकी उपधा को दीर्घ होता है।

जिसको दीर्घ होना है वह उपधा ऐसी होगी- सकारान्त संयोग वाले शब्द की उपधा या महत् शब्द में नुम् होने के बाद शेष नकार की उपधा। सकारान्त संयोग का उदाहरण विद्वस् आदि शब्दों में मिलेगा, यहाँ पर महत् शब्द के दीर्घ का उदाहरण दिखाया गया है।

महान्। मह् धातु से ऋकारान्त **शतृ** प्रत्यय होकर ऋ की इत्संज्ञा होने पर महत् बना है। अतः यह शब्द उगित् है। अब तकारान्त महत् शब्द से प्रथमा का एकवचन सु आया, अनुबन्धलोप हुआ। **महत्+स्** में **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से नुम् आगम, अनुबन्धलोप और मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात्परः** के नियम से अन्त्य अच् हकारोत्तरवर्ती अकार के बाद बैठा तो बना- **महन्त्+स्।** यहाँ पर तकार की उपधा है नकार, किन्तु सूत्र में नकार को दीर्घ करना इष्ट नहीं है तो नकार को अन्त्य वर्ण मान कर उससे पूर्व के वर्ण अकार की उपधासंज्ञा, उसको **सान्त महतः संयोगस्य** से दीर्घ करके **महान् त् स्** बना। सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ और तकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप हुआ तो बना- महान्। यहाँ पर परत्रिपादी **संयोगान्तस्य लोपः** के द्वारा किया गया तकार का लोप पूर्व त्रिपादी **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** की दृष्टि में असिद्ध होने के कारण नकार का लोप नहीं हुआ, क्योंकि नकार का लोप करने के लिए नकार का अन्त में होना आवश्यक है। जब तकार का लोप ही असिद्ध हुआ तो नकार अन्त में मिलेगा ही नहीं।

महान्तौ। महत् शब्द से औ, नुम् का आगम और **सान्त महतः संयोगस्य** से दीर्घ करके वर्णसम्मेलन होने पर **महान्तौ** सिद्ध हुआ।

महान्तः। महत् शब्द से जस्, अनुबन्धलोप, नुम् का आगम और **सान्त महतः संयोगस्य** से दीर्घ करके वर्णसम्मेलन होने पर सकार का रुत्वविसर्ग करने पर **महान्तः** सिद्ध हुआ।

महान्तम्। महत् शब्द से अम्, नुम् का आगम और **सान्त महतः संयोगस्य** से दीर्घ करके वर्णसम्मेलन होने पर **महान्तम्** सिद्ध हुआ।

अब आगे अजादि विभक्ति में सर्वनामस्थानसंज्ञा के अभाव में नुम् भी नहीं होता और दीर्घ भी नहीं होता है। केवल आपको वर्णसम्मेलन ही करना है और यदि प्रत्यय के अन्त में सकार आता हो तो उसके स्थान पर रुत्वविसर्ग ही करना है, जिससे महतः, महता आदि रूप बनेंगे। हलादि विभक्ति के परे होने पर महत् के तकार को **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व करके दकार बनाना है, जिससे **महद्भ्याम्, महद्भिः** आदि रूप बनेंगे। सम्बोधन में दीर्घ नहीं होगा, अतः **हे महन्!** बनेगा।

तकारान्त महत्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	महान्	महान्तौ	महान्तः
द्वितीया	महान्तम्	महान्तौ	महतः
तृतीया	महता	महद्भ्याम्	महद्भिः
चतुर्थी	महते	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
पञ्चमी	महतः	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
षष्ठी	महतः	महतोः	महताम्

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

३४३. अत्वसन्तस्य चाधातोः ६।४।१४।।

अत्वन्तस्योपधाया दीर्घो धातुभिन्नासन्तस्य चासम्बुद्धौ सौ परे। उगित्त्वान्नुम्। धीमान्। धीमन्तौ। धीमन्तः। हे धीमन्! शसादौ महद्वत्। भातेर्डवतुः। डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः। भवान्। भवन्तौ। भवन्तः। शत्रन्तस्य भवन्।

....

सप्तमी	महति	महतोः	महत्सु
सम्बोधन	हे महन्!	हे महान्तौ!	हे महान्तः!

अब अन्य तकारान्त शब्दों में दीर्घ करने का प्रसंग आगे बता रहे हैं।

३४३- **अत्वसन्तस्य चाधातोः**। अतुश्च अश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः- अत्वसौ, तावन्ते यस्य स अत्वसन्तः, **तस्य** अत्वसन्तस्य द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः। **अत्वसन्तस्य** षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदम्, अधातोः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **नोपधायाः** से न और **उपधायाः** तथा **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से दीर्घः एवं **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** यह पूरे सूत्र की तथा **सौ च** से **सौ** की अनुवृत्ति आती है।

सम्बुद्धि-भिन्न सु के परे होने पर अतु जिसके अन्त में हो उसकी उपधा को दीर्घ होता है एवं धातु को छोड़कर अस् जिसके अन्त में हो उसकी उपधा को भी दीर्घ हो जाता है।

इस प्रकार से यह सूत्र भी लगभग वही कार्य करता है जो **सान्त महतः संयोगस्य** करता है। अन्तर इतना ही है कि वह सूत्र केवल सान्तसंयोग और महत् शब्द के उपधा को ही दीर्घ करता है किन्तु यह मतुप्, वतुप् प्रत्यय वाले अनेक शब्दों में तथा अस्-अन्त वाले समस्त धातुओं की उपधा को दीर्घ करता है और यह सूत्र केवल सु के परे रहते करता है तो वह सर्वनामस्थानसंज्ञक सु, औ, जस्, अम्, औट् पाँचों प्रत्यय के परे रहते करता है।

धीमान्। धीमन्तौ। धीमन्तः। धी से मतुप् प्रत्यय होकर धीमत् बनता है। अतः यह मतु के अतु-अन्त वाला शब्द है। इस लिए **अत्वसन्तस्य चाधातोः** से सु के परे रहने पर दीर्घ होता है। बाकी विधि जैसे महत् शब्द में हुई, उसी प्रकार यहाँ पर करके **धीमान्।**

सु के अतिरिक्त अन्य सर्वनामस्थान के परे रहने पर केवल नुम् का आगम और वर्णसम्मेलन करना है, **धीमन्तौ, धीमन्तः** आदि शब्द सिद्ध होते जायेंगे। असर्वनामस्थान शस् से आगे अजादि विभक्ति के परे केवल वर्णसम्मेलन और हलादि विभक्ति के परे धीमत् के तकार को **झलां जशोऽन्ते** से जशत्व करना है। अतः शसादि में यह शब्द महत्-शब्द के समान ही है।

तकारान्त धीमत्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धीमान्	धीमन्तौ	धीमन्तः
द्वितीया	धीमन्तम्	धीमन्तौ	धीमतः
तृतीया	धीमता	धीमद्भ्याम्	धीमद्भिः

अभ्यस्तसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

३४४. उभे अभ्यस्तम् ६।१।५॥

षाष्ठद्वित्वप्रकरणे ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्तसंज्ञे स्तः।

नुम्-निषेधकं विधिसूत्रम्

३४५. नाभ्यस्ताच्छतुः ७।१।७८॥

अभ्यस्तात्परस्य शतुर्नुम् न। ददत्, ददद्। ददतौ। ददतः।

....

चतुर्थी	धीमते	धीमद्भ्याम्	धीमद्भ्यः
पञ्चमी	धीमतः	धीमद्भ्याम्	धीमद्भ्यः
षष्ठी	धीमतः	धीमतोः	धीमताम्
सप्तमी	धीमति	धीमतोः	धीमत्सु
सम्बोधन	हे धीमन्!	हे धीमन्तौ	हे धीमन्तः!

भवान्। भवन्तौ। आप। भा-धातु से औणादिक डवतु प्रत्यय करके कृदन्त में **भवत्** सिद्ध होता है। उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होने पर सु विभक्ति आई, अत्वन्त होने के कारण **अत्वसन्तस्य चाधातोः** से उपधादीर्घ, **उगिदचां सर्वनामस्थानोऽधातोः** से नुम् करके सुलोप, संयोगान्त तकार का लोप करके **भवान्** बनता है। सु के अतिरिक्त अन्यत्र दीर्घ होता नहीं है। अतः **भवन्तौ, भवन्तः, भवन्तम्, भवन्तौ, भवतः, भवता, भवद्भ्याम्** आदि रूप सिद्ध हो जाते हैं।

भू-धातु से शतृ प्रत्यय होकर भी **भवत्** बनता है। अतु न होने के कारण दीर्घ नहीं होता। शेष प्रक्रिया पूर्ववत् ही होती है। रूप- **भवन्, भवन्तौ, भवन्तः, भवन्तम्, भवन्तौ, भवतः, भवता, भवद्भ्याम्** इत्यादि। इसका अर्थ है- **होने वाला।**

३४४- उभे अभ्यस्तम्। उभे प्रथमान्तम्, अभ्यस्तं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **एकाचो द्वे प्रथमस्य** से **द्वे** की अनुवृत्ति आती है।

छठे अध्याय के द्वित्वप्रकरण में जो द्वित्व किया गया है, उन दोनों का समुदाय अभ्यस्तसंज्ञक होता है।

द्वित्व का प्रकरण अष्टाध्यायी में दो जगह आता है- षष्ठाध्याय और अष्टमाध्याय में। यहाँ षष्ठाध्याय के द्वित्व प्रकरण को ही लिया गया है, अष्टम अध्याय के द्वित्व को नहीं। अतः अष्टमाध्याय के सूत्रों से द्वित्व होने पर उनकी अभ्यस्तसंज्ञा नहीं होगी।

३४५- नाभ्यस्ताच्छतुः। न अव्ययपदम्, अभ्यस्तात् पञ्चम्यन्तं, शतुः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **इदितो नुम् धातोः** से **नुम्** की अनुवृत्ति आती है।

अभ्यस्त से परे शतृ-प्रत्यय को नुम् का आगम न हो।

यह सूत्र **उगिदचां सर्वनामस्थानोऽधातोः** से प्राप्त नुम् का निषेध करता है।

ददत्, ददद्। देता हुआ। दा धातु से शतृ-प्रत्यय, श्लु, द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, ह्रस्व और आकार का लोप आदि करके **ददत्** सिद्ध होता है। उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा और **उभे अभ्यस्तम्** से समुदाय की अभ्यस्तसंज्ञा करके सु, नुम् की प्राप्ति, **नाभ्यस्ताच्छतुः** से नुम् का निषेध होने पर **ददत्** ही रहा। सु का लोप करके तकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व करके **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व होकर **ददत्, ददद्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते

अभ्यस्तसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

३४६. जक्षित्यादयः षट् ६।१।६॥

षड्धातवोऽन्ये जक्षितिश्च सप्तम एते अभ्यस्तसंज्ञाः स्युः।

जक्षत्, जक्षद्। जक्षतौ। जक्षतः। एवं जाग्रत्, दरिद्रत्, शासत्, चकासत्।

गुप्, गुब्। गुपौ। गुपः। गुब्भ्याम्।

....

हैं। अजादिविभक्ति के परे केवल वर्णसम्मेलन और हलादिविभक्ति के परे जश्त्व करने पर **ददत्** के रूप बनते हैं- ददतौ, ददतः, ददतम्, ददतौ, ददतः, ददता, ददद्भ्याम्, ददद्भिः, ददते, ददद्भ्यः, ददतः, ददतोः, ददताम्, ददति, ददत्सु, हे ददत्, हे ददद्, हे ददतौ, हे ददतः!

३४६- जक्षित्यादयः षट्। इति आदिर्येषां ते इत्यादयः। इतिशब्देन जक्ष्-परामर्शः। जक्ष् प्रथमान्तम्, इत्यादयः प्रथमान्तं, षट् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **उभे अभ्यस्तम्** से **अभ्यस्तम्** की अनुवृत्ति आती है।

जागृ आदि छः धातु और सातवीं धातु जक्ष् भी अभ्यस्तसंज्ञक होती हैं।

द्वित्व के विना ही इन सात धातुओं की अभ्यस्तसंज्ञा इस सूत्र से की जाती है। इन सात धातुओं के विषय में एक प्राचीन श्लोक प्रचलित है-

जक्षि-जागृ-दरिद्रा-शास्-दीधीङ्-वेवीङ्-चकास्तथा।
अभ्यस्तसंज्ञा विज्ञेया धातवो मुनिभाषिताः॥

उपर्युक्त सात धातुओं की अभ्यस्तसंज्ञा होने पर शतृ-प्रत्ययान्त की स्थिति में **नाभ्यस्ताच्छतुः** से नुम् का निषेध किया जाता है।

जक्षत्। खाता हुआ या हँसता हुआ। **जक्ष भक्षहसनयोः।** जक्ष् धातु से शतृ करके जक्षत् बना है। प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु विभक्ति, अभ्यस्तसंज्ञा होने के कारण **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से प्राप्त नुम् का **नाभ्यस्ताच्छतुः** से निषेध होता है। सु का लोप करके तकार के स्थान पर जश्त्व करके दकार होता है और **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके **जक्षत्, जक्षद्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं।

अजादिविभक्ति में वर्णसम्मेलन और हलादिविभक्ति के परे जश्त्व करके- जक्षतौ, जक्षतः, जक्षतम्, जक्षता, जक्षद्भ्याम्, जक्षद्भिः, जक्षते, जक्षद्भ्याम्, जक्षद्भ्यः, जक्षतः, जक्षतोः, जक्षताम्, जक्षति, जक्षत्सु ये रूप सिद्ध होते हैं। इसी तरह से **जाग्रत्**(जागता हुआ) शब्द के- जाग्रत्, जाग्रद्, जाग्रतौ, जाग्रतः, जाग्रतम्, जाग्रता, जाग्रद्भ्याम्, जाग्रद्भिः, जाग्रते, जाग्रतः, जाग्रतोः, जाग्रताम्, जाग्रति, जाग्रत्सु। इसी तरह **दरिद्रत्**(दरिद्रता को प्राप्त होता हुआ) के- दरिद्रत्, दरिद्रद्, दरिद्रतौ, दरिद्रतः, दरिद्रतम्, दरिद्रता, दरिद्रद्भ्याम्, दरिद्रद्भिः, दरिद्रते, दरिद्रद्भ्यः, दरिद्रतः, दरिद्रतोः, दरिद्रताम्, दरिद्रति, दरिद्रत्सु। इसी तरह **शासत्, चकासत्** के भी रूप बन जाते हैं। उक्त सभी शब्दों के सम्बोधन में प्रथमा की तरह ही रूप होते हैं, केवल **हे** का पूर्वप्रयोग विशेष होता है।

तकारान्त शब्दों का विवेचन पूर्ण करके अब पकारान्त शब्दों का विवेचन प्रारम्भ करते हैं।

गुप्, गुब्। रक्षा करने वाला। गोपायतीति गुप्। गुप्(गुपू) धातु से क्विप् प्रत्यय, सर्वापहारलोप करके गुप् बना है। उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु प्रत्यय, उसका लोप,

कञ्-क्विन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

३४७. त्यदादिषु दृशोऽनालोकने कञ्च ३।२।६०॥

त्यदादिषूपपदेष्वज्ञानार्थाद् दृशेः कञ् स्यात्, चात् क्विन्।

आकारान्तादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३४८. आ सर्वनाम्नः ६।३।९१॥

सर्वनाम्न आकारोऽन्तादेशः स्याद् दृग्दृशवतुषु।

तादृक्, तादृग्। तादृशौ। तादृशः। तादृग्भ्याम्। **व्रश्चेति** षः। जशत्वचर्त्वे। विट्, विड्। विशौ। विशः। विड्भ्याम्।

....

पकार को जशत्व करके वैकल्पिक चर्त्व करने पर **गुप्, गुब्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं। अब अजादिविभक्ति में वर्णसम्मेलन और हलादिविभक्ति में जशत्व करके इसके रूप- गुपौ, गुपः, गुपम्, गुपा, गुब्भ्याम्, गुब्भिः, गुपे, गुब्भ्यः, गुपः, गुपोः, गुपाम्, गुपि, गुप्सु, हे गुप्! हे गुपौ! हे गुपः! ये रूप सिद्ध होते हैं।

अब शकारान्त शब्दों का प्रकरण प्रारम्भ होता है।

३४७- त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च। त्यद् आदिर्येषां ते त्यदादयः, तेषु त्यदादिषु, बहुव्रीहिः। आलोचनं ज्ञानम्, न आलोचनम् अनालोचनं, तस्मिन् अनालोचने। त्यदादिषु सप्तम्यन्तं दृशः पञ्चम्यन्तम्, अनालोचने सप्तम्यन्तं कन् प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **स्पृशोऽनुदके क्विन्** से **क्विन्** की अनुवृत्ति आती है।

त्यद् आदि शब्दों के उपपद होने पर ज्ञानभिन्न अर्थ के वाचक दृश् धातु से कन् एवं क्विन् प्रत्यय हों।

सूत्र में चकार पढ़े जाने के कारण बारी-बारी से दोनों प्रत्यय हो जाते हैं। कन् होने के पक्ष अकार शेष रहता है और धातु से युक्त होने पर अकारान्त शब्द बन जाता है, जिसके पुँल्लिङ्ग में **रामशब्द** की तरह ही **तादृशः, तादृशौ, तादृशाः** आदि रूप बनते हैं। स्त्रीलिङ्ग में **टिड्ढाणञ्०** आदि सूत्रों से **ङीप्** होकर **नदी** की तरह **तादृशी**, नपुंसकलिङ्ग में **ज्ञानम्** की तरह **तादृशम्** आदि रूप बनते हैं। क्विन् प्रत्यय होने के पक्ष में सर्वापहार लोप हो जाता है, जिससे धातु हलन्त ही रहता है। उसके रूप हलन्त शब्दों की तरह बनते हैं। चाहे क्विन् हो या कन्, त्यदादि में आकारान्तादेश दोनों में होता है।

३४८- आ सर्वनाम्नः। आ लुप्तप्रथमाकं पदं, सर्वनाम्नः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **दृग्दृशवतुषु** यह सूत्र आता है।

दृग्, दृश् शब्द तथा वतु प्रत्यय के परे होने पर सर्वनामसंज्ञक शब्द को आकार अन्तादेश होता है।

तादृक्, तादृग्। वैसा दीखने वाला। **तद्** इस त्यदादि से परे **दृश्** धातु है। उससे **त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च** से क्विन् प्रत्यय हुआ, सर्वापहारलोप होकर **आ सर्वनाम्नः** से दृश् के परे होने पर तद् दकार के स्थान पर आकार आदेश होकर **तादृश्** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु-प्रत्यय, उसका लोप करके **तादृश्** ही रहा। शकार के स्थान पर **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** से कुत्व और **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से षत्व की

कवर्गादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३४९. नशेर्वा ८।२।६३॥

नशेः कवर्गोऽन्तादेशो वा पदान्ते।

नक्, नग्, नट्, नड्। नशौ। नशः। नग्भ्याम्, नड्भ्याम्।

....

प्राप्ति एक साथ हुई किन्तु परत्रिपादी होने के कारण **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** असिद्ध हुआ तो **व्रश्चभ्रसजसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से षकार आदेश हुआ। **तादृष्** बना। षकार को जश्त्व होकर डकार बना। अब डकार के स्थान पर कुत्व होकर गकार बना। **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व होकर **तादृक्, तादृग्** ये दो रूप सिद्ध हो गये। अजादि विभक्ति के परे होने पर केवल वर्णसम्मेलन और हलादिविभक्ति के परे होने पर षत्व, जश्त्व, कुत्व, करके तादृशौ, तादृशः, तादृशम्, तादृशा, तादृग्भ्याम्, तादृग्भिः, तादृशे, तादृग्भ्यः, तादृशः, तादृशोः, तादृशाम्, तादृशि, तादृक्षु, हे तादृक्-ग्, हे तादृशौ! हे तादृशः! ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

त्यदादिगण में त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, (अदस्, एक, द्वि) युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम् ये शब्द आते हैं। इनसे भी कन् और क्विन् दोनों प्रत्यय होते हैं तथा दृग्, दृश्, वतु के परे होने पर आकार अन्तादेश होता है। जैसे- **त्यद्** से **त्यादृशः** और **त्यादृक्**(उसके जैसा दीखने वाला), **यद्** से **यादृशः** और **यादृक्** (जैसा दीखने वाला), **एतद्** से **एतादृशः**- और **एतादृक्** (ऐसा), **इदम्** से **ईदृशः** और **ईदृक्** (ऐसा) **अदस्, एक, द्वि** के रूप अप्रचलित हैं, **युष्मद्** के **युष्मादृशः** और **युष्मादृक्** (तुम्हारे जैसा) **अस्मद्** के **अस्मादृशः** और **अस्मादृक्** (हमारे जैसा) **भवत्** के **भवादृशः** और **भवादृक्** (आपके जैसा) **किम्** के **कीदृशः** और **कीदृक्** ये सम्पन्न हो जाते हैं। **इदम्** और **किम्** को आकार आदेश न होकर **ईश्** और **की** आदेश होते हैं।

विट्, विड्। वैश्य। **विश प्रवेशने** धातु से क्विन्, सर्वापहारलोप करके **विश्** रह जाता है। उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु प्रत्यय, उसका लोप, **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से शकार के स्थान पर षत्व करके **विष्** बनता है। जश्त्व करके वैकल्पिक चर्त्व करने पर **विट्, विड्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। अजादिविभक्ति के परे होने पर केवल वर्णसम्मेलन करना और हलादिविभक्ति के परे षत्व और जश्त्व करने पर **विशौ, विशः, विशम्, विशा, विड्भ्याम्, विड्भिः, विशे, विड्भ्यः, विशः, विशोः, विशाम्, विशि, विट्त्सु-विट्सु** ये रूप बनते हैं।

३४९- **नशेर्वा**। नशेः षष्ठ्यन्तं, वा अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **पदस्य** का अधिकार है। **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** से **कुः** तथा **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से **अन्ते** की अनुवृत्ति आती है। **अलोऽन्त्यस्य** से **अन्त्यस्य** की उपस्थिति होती है।

पदान्त में नश् शब्द को विकल्प से कवर्ग अन्तादेश होता है।

नक्, नग्, नट्, नड्। नाशवान्, नश्वर। **नश्(णश् णदर्शने)** धातु से क्विप्, सर्वापहारलोप करके **नश्** बना है। उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु प्रत्यय, उसका लोप। शकार के स्थान **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से षत्व कर, षकार के स्थान पर जश्त्व करके डकार होने पर **नशेर्वा** से शकार के स्थान पर विकल्प से कुत्व होकर गकार हुआ, **नग्** बना। **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके **नक्, नग्** ये दो रूप सिद्ध हुए।

क्विन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

३५०. स्पृशोऽनुदके क्विन् ३।२।५८॥

अनुदके सुप्युपपदे स्पृशेः क्विन्। घृतस्पृक्, घृतस्पृग्। घृतस्पृशौ। घृतस्पृशः। दधृक्, दधृग्। दधृषौ। दधृग्भ्याम्। रत्नमुषौ। रत्नमुड्भ्याम्। षट्, षड्। षड्भिः। षड्भ्यः। षण्णाम्। षट्सु। रुत्वं प्रति षत्वस्यासिद्धत्वात् **सजुषो** रुरिति रुत्वम्।

....

नशेर्वा से कुत्व न होने के पक्ष में डकारान्त ही है। डकार के स्थान पर **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करने पर **नट्, नड्** ये दो रूप बनते हैं। इस तरह प्रथमा के एकवचन में चार रूप सिद्ध हो गये। अन्य हलादिविभक्ति के परे **वाऽवसाने** के न लगने के कारण डकार और गकार वाले दो ही रूप होते हैं तथा अजादि विभक्ति के परे केवल वर्णसम्मेलन होता है। इस तरह नश् शब्द के रूप बनते हैं- नशौ, नशः, नशम्, नशा, नग्भ्याम्-नड्भ्याम्, नग्भिः-नड्भिः, नशे, नग्भ्यः-नड्भ्यः, नशः, नशोः, नशाम्, नशि, नट्त्सु-नट्सु-नक्षु। सम्बोधन में प्रथमा के रूपों के साथ **हे** का पूर्वप्रयोग होता है।

३५०- स्पृशोऽनुदके क्विन्। न उदकम् अनुदकं, तस्मिन् अनुदके। स्पृशः पञ्चम्यन्तम्, अनुदके सप्तम्यन्तं, क्विन् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **सुपि स्थः** से **सुपि** की अनुवृत्ति आती है।

उदक-शब्द से भिन्न अन्य सुबन्त के उपपद होने पर स्पृश् धातु से क्विन् प्रत्यय होता है।

स्मरण रहे कि क्विन् प्रत्यय एक प्रयोजन **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** से कुत्व करना है।

घृतस्पृक्, घृतस्पृग्। घी को छूने वाला। **घृत पूर्वक स्पृश्** धातु से **स्पृशोऽनुदके क्विन्** से क्विन् प्रत्यय, उसका सर्वापहारलोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सु प्रत्यय, उसका लोप, **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से शकार के स्थान षकार आदेश और षकार के स्थान पर जश्त्व होने पर डकार आदेश हुआ। डकार के स्थान पर **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** से कुत्व होकर गकार हुआ और **वाऽवसाने** से वैकल्पिक चर्त्व होकर ककार हुआ, चर्त्व न होने के पक्ष में गकार ही रह गया। इस तरह **घृतस्पृक्, घृतस्पृग्** ये दो रूप सिद्ध हुए। आगे अजादि विभक्ति के परे होने पर केवल वर्णसम्मेलन और हलादिविभक्ति के परे होने पर षत्व, जश्त्व, कुत्व करके इसके रूप बनते हैं- घृतस्पृशौ, घृतस्पृशः, घृतस्पृशम्, घृतस्पृशा, घृतस्पृग्भ्याम्, घृतस्पृग्भिः, घृतस्पृशे, घृतस्पृग्भ्यः, घृतस्पृशः, घृतस्पृशोः, घृतस्पृशाम्, घृतस्पृशि, घृतस्पृक्षु, हे घृतस्पृक्-ग्! हे घृतस्पृशौ! हे घृतस्पृशः!

इस तरह शकारान्त शब्दों का विवेचन करके अब षकारान्त शब्दों का विवेचन प्रारम्भ करते हैं।

दधृक्, दधृग्। धर्षण करने वाला, तिरस्कार करने वाला। धृष् धातु से **ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च** से क्विन्-प्रत्ययान्त निपातन करके **दधृष्** निष्पन्न हुआ है। उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, उसका लोप, षकार को जश्त्व करके डकार और उसके स्थान पर **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** से कुत्व होकर **दधृग्** बना। वैकल्पिक चर्त्व होने

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

३५१. **र्वोरुपधाया दीर्घ इकः ८।२।७६॥**

रेफवान्तयोर्धात्वोरुपधाया इको दीर्घः पदान्ते।

पिपठीः। पिपठिषौ। पिपठीर्भ्याम्।

....

पर **दधृक्, दधृग्** ये दो रूप सिद्ध हुए। अजादि विभक्ति के परे षकार आगे मिल जाता है और हलादिविभक्ति के परे होने पर जश्त्व करके डकार, कुत्व करके गकार हो जाता है। दधृषौ, दधृषः, दधृषम्, दधृषा, दधृग्भ्याम्, दधृग्भिः, दधृषे, दधृग्भ्यः, दधृषः, दधृषोः, दधृषाम्, दधृषि, दधृक्षु, हे दधृक्-ग्! हे दधृषौ! हे दधृषः! ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

रत्नमुट्, रत्नमुड्। रत्न को चुराने वाला। रत्नानि मुष्णातीति रत्नमुट्। **मुष स्तेये** धातु है। उसके क्विप् प्रत्यय, सर्वापहार लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, उसका भी लोप, षकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व करके **रत्नमुड्,** वैकल्पिक चर्त्व करके **रत्नमुट्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। अजादि विभक्ति के परे वर्णसम्मेलन और हलादिविभक्ति के परे होने पर जश्त्व करके रत्नमुषौ, रत्नमुषः, रत्नमुषम्, रत्नमुषा, रत्नमुड्भ्याम्, रत्नमुड्भिः, रत्नमुषे, रत्नमुड्भ्यः, रत्नमुषः, रत्नमुषोः, रत्नमुषाम्, रत्नमुषि, रत्नमुट्त्सु-रत्नमुट्सु, हे रत्नमुट्! हे रत्नमुषौ! हे रत्नमुषः! बनते हैं।

षट् शब्द छः संख्या का वाचक है, अतः केवल बहुवचनान्त है। इसकी **ष्णान्ता षट्** से षट्संज्ञा होती है और जस् और शस् का **षड्भ्यो लुक्** से लुक् हो जाता है। डकार को वैकल्पिक चर्त्व करके प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में **षट्, षड्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं। भिस्, भ्यस्, आम् और सुप् में क्रमशः **षड्भिः, षड्भ्यः, षण्णाम्, षट्सु** ये रूप बनते हैं। **षण्णाम्** में ष्टुत्व और अनुनासिक की प्रक्रिया **हल्सन्धि** में बताई जा चुकी है।

३५१- र्वोरुपधाया दीर्घ इकः। र् च व् च र्वौ-र्वौ, तयोः- र्वोः। र्वोः षष्ठ्यन्तम्, उपधायाः षष्ठ्यन्तं, दीर्घः प्रथमान्तम्, इकः षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **सिपि धातो रुर्वा** से धातोः की और **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से **अन्ते** की अनुवृत्ति आती है। **पदस्य** का अधिकार है।

पदान्त में रेफान्त और वकारान्त धातु की उपधा इक् को दीर्घ होता है।

पिपठीः। पढ़ने की इच्छा रखने वाला। पठ् धातु से सन्, द्वित्व, अभ्यासकार्य, अभ्यास को इत्व, इट् का आगम और सन् के सकार को षत्व करके **पिपठिष्** बना है। इसकी पहले **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होती है और धातुत्वात् क्विप् प्रत्यय, उसका सर्वापहारलोप, **पिपठिष्** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि प्रत्यय आते हैं। यहाँ पर सु आया **पिपठिष्+स्** बना। स् का लोप करके **पिपठिष्** है। परत्रिपादी **आदेशप्रत्यययोः** के द्वारा किया गया षत्व पूर्वत्रिपादी **ससजुषो रुः** की दृष्टि में असिद्ध होने के कारण इस सूत्र से **ष्** को **स्** मानकर के रु आदेश हुआ। **पिपठिर्** बना। **र्वोरुपधाया दीर्घ इकः** से ठकारोत्तरवर्ती उपधाभूत इकार को दीर्घ हुआ- **पिपठीर्** बना। रेफ का विसर्ग हुआ- **पिपठीः** सिद्ध हुआ। आगे अजादिविभक्ति के परे रुत्व और दीर्घ नहीं होते हैं। अतः **पिपठिष्** के षकार को अच् में मिलाने तथा हलादिविभक्ति के परे **र्वोरुपधाया दीर्घ इकः** से दीर्घ करके रूप सिद्ध होते हैं।

मूर्धन्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३५२. नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ८।३।५८।।

एतैः प्रत्येकं व्यवधानेऽपि इण्कुभ्यां परस्य सस्य मूर्धन्यादेशः।

ष्टुत्वेन पूर्वस्य षः। पिपठीष्षु, पिपठीःषु।

चिकीः। चिकीर्षौ। चिकीर्भ्याम्। चिकीर्षु। विद्वान्। विद्वांसौ। हे विद्वन्!

....

३५२- **नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि**। नुम् च विसर्जनीयश्च, शर् च तेषामितरेतरद्वन्द्वो नुम्विसर्जनीयशरः, तेषां व्यवायो नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायः, तस्मिन् नुम्विसर्जनीयशर्व्यवाये। नुम्विसर्जनीयशर्व्यवाये सप्तम्यन्तम्, अपि अव्ययं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इण्कोः** का अधिकार है। **सहेः साडः सः** से **सः** तथा **अपदान्तस्य मूर्धन्यः** से **मूर्धन्यः** की अनुवृत्ति आती है।

नुम्, विसर्जनीय और शर् इन में किसी एक के व्यवधान होने पर भी इण् और कवर्ग से परे सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

षत्व के लिए निमित्त इण् और कवर्ग है। **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व करने के लिए सकार और इण् या कवर्ग के बीच में किसी अन्य का व्यवधान नहीं होना चाहिए। यह सूत्र यहाँ पर विधान करता है कि यदि व्यवधान हो तो नुम्, विसर्जनीय विसर्ग और शर् प्रत्याहार के वर्ण श्, ष्, स् का ही व्यवधान हो सकता है अर्थात् इनके व्यवधान होने पर मूर्धन्य आदेश के लिए कोई बाधा नहीं मानी जाती है।

पिपठीष्षु, पिपठीःषु। पिपठिष् से सप्तमी का बहुवचन सुप्, अनुबन्धलोप होकर **पिपठिष्+सु** बना है। पहले **ससजुषो रुः** से रुत्व करके **र्वोरुपधायाा दीर्घ इकः** से दीर्घ होकर **पिपठीर्+सु** बना। रेफ को **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से विसर्ग हुआ। विसर्ग के स्थान पर **विसर्जनीयस्य सः** से सकारादेश प्राप्त था, उसे बाधकर **वा शरि** से वैकल्पिक विसर्ग आदेश हुआ। इस तरह **पिपठीः+सु** और **पिपठीस्+सु** बन गये। अब हमें **आदेशप्रत्यययोः** से सुप् के सकार को षकारादेश करना है किन्तु ईकार और सकार के बीच में एक जगह विसर्ग का और एक जगह सकार का व्यवधान है। फलतः सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई। अतः सूत्र लगा- **नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि**। इससे विसर्ग और सकार के व्यवधान में भी दोनों जगह सु के सकार को मूर्धन्यादेश अर्थात् षत्व हुआ। अतः **पिपठीस्+षु** और **पिपठीःषु** बन गये। **पिपठीस्+षु** में **ष्टुना ष्टुः** से सकार को ष्टुत्व होकर षकार बन गया। **पिपठीष्षु** बन गया। इस तरह **पिपठीःसु** और **पिपठीष्षु** दो रूप सिद्ध हो गये।

षकारान्त पिपठिष्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पिपठीः	पिपठिषौ	पिपठिषः
द्वितीया	पिपठिषम्	पिपठिषौ	पिपठिषः
तृतीया	पिपठिषा	पिपठीर्भ्याम्	पिपठीर्भिः
चतुर्थी	पिपठिषे	पिपठीर्भ्याम्	पिपठीर्भ्यः
पञ्चमी	पिपठिषः	पिपठीर्भ्याम्	पिपठीर्भ्यः
षष्ठी	पिपठिषः	पिपठिषोः	पिपठिषाम्

संप्रसारणविधायकं विधिसूत्रम्

३५३. वसोः सम्प्रसारणम् ६।४।१३१।।

वस्वन्तस्य भस्य सम्प्रसारणं स्यात्। विदुषः। **वसुस्रंस्विति** दः। विद्वद्भ्याम्।

....

सप्तमी	पिपठिषि	पिपठिषोः	पिपठीष्षु, पिपिठीःषु
सम्बोधन	हे पिपठीः	हे पिपिठिषौ	हे पिपठिषः!

चिकीः। करने की इच्छा वाला। कर्तुमिच्छतीति चिकीर्षति। कृ धातु से सन्, द्वित्व आदि सन्नन्त की प्रक्रिया करके **चिकीर्ष्** बना। उसकी धातुसंज्ञा और क्विप् प्रत्यय, सर्वापहारलोप आदि करके **चिकीर्ष्** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई। सु प्रत्यय, उसका लोप करके षकार के असिद्ध होने के कारण सकार दिखाई देता है। अतः उसका **रात्सस्य** के नियमानुसार **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप हुआ, **चिकीर्** बना। रेफ का विसर्ग हुआ, **चिकीः** सिद्ध हुआ। यहाँ पर सनाद्यन्त-धातुसंज्ञा होने के पहले ही दीर्घ हो चुका है, अतः स्वादि प्रत्यय के आने के बाद में दीर्घ का प्रश्न नहीं है। अब आगे अजादि विभक्ति के परे वर्णसम्मेलन और हलादिविभक्ति के परे षकार का **संयोगान्तलोप** करके निम्नलिखित रूप सिद्ध होते हैं।

षकारान्त चिकीर्ष्-शब्द के रूप

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	चिकीः	चिकीर्षौ	चिकीर्षः
द्वितीया	चिकीर्षम्	चिकीर्षौ	चिकीर्षः
तृतीया	चिकीर्षा	चिकीर्भ्याम्	चिकीर्भिः
चतुर्थी	चिकीर्षे	चिकीर्भ्याम्	चिकीर्भ्यः
पञ्चमी	चिकीर्षः	चिकीर्भ्याम्	चिकीर्भ्यः
षष्ठी	चिकीर्षः	चिकीर्षोः	चिकीर्षाम्
सप्तमी	चिकीर्षि	चिकीर्षोः	चिकीर्षु
सम्बोधन	हे चिकीः	हे चिकीर्षौ	हे चिकीर्षः!

षकारान्त शब्दों के निरूपण के बाद अब सकारान्त शब्दों का निरूपण करते हैं।

विद्वान्। ज्ञाता। विद् ज्ञाने धातु से वसु प्रत्यय होकर **विद्वस्** शब्द सिद्ध होता है। उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होने के बाद सु प्रत्यय, **उगिदचां सर्वनामस्थानोऽधातोः** से नुम् होकर **विद्वन्स्+स्** बना। **सान्त महतः संयोगस्य** से नकार के उपधाभूत अकार को दीर्घ हुआ, **विद्वान्+स्+स्** बना। स् का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप, सकार का संयोगान्तलोप करके **विद्वान्** सिद्ध हुआ। आगे सर्वनामस्थान के परे रहने पर नुम् और दीर्घ करके नकार को **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार करके **विद्वांसौ, विद्वांसः** आदि रूप बनते हैं। असर्वनामस्थान के परे होने पर आगे का सूत्र प्रवृत्त होता है।

३५३- वसोः सम्प्रसारणम्। वसोः षष्ठ्यन्तं, सम्प्रसारणं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **भस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

वसु-प्रत्ययान्तभसंज्ञक अङ्ग को सम्प्रसारण होता है।

स्मरण रहे कि भसंज्ञा शसादि अजादि तथा यकारादि प्रत्यय के परे पूर्व को होती

है और सम्प्रसारण में यण् के स्थान पर इक् होता है। यहाँ **वस्** में वकार के स्थान पर सम्प्रसारण होकर उकार होता है।

विदुषः। विद्वस्-शब्द से शस्, अनुबन्धलोप, भसंज्ञा करके **विद्+वस्** में वकार के स्थान पर **वसोः सम्प्रसारणम्** से सम्प्रसारण होकर उकार हुआ, **विद्+उ+अस्+अस्** बना। **उ+अस्** में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **उस्** हो गया, **विद्+उस्+अस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **विदुस्+अस्** बना। उकार से परे सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से **षत्व** होकर **विदुष्+अस्** बना। वर्णसम्मेलन और सकार को रुत्व और विसर्ग करके **विदुषः** बना। आगे अजादिविभक्ति के परे होने पर यही प्रक्रिया होती है जिससे **विदुषा, विदुषे, विदुषः, विदुषाम्** आदि रूप बनते हैं और हलादिविभक्ति के परे होने पर भसंज्ञा के अभाव में सम्प्रसारण नहीं होता किन्तु **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदसंज्ञा होकर **वसुस्रंसुध्वस्वनडुहां दः** से सकार के स्थान दकार आदेश होकर **विद्वद्भ्याम्, विद्वद्भिः** आदि रूप बनते हैं। सुप् के परे होने पर दकार के स्थान पर **खरि च** से चर्त्व होकर तकार आदेश होता है और सम्बोधन में दीर्घ नहीं होता है।

सकारान्त विद्वस्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
द्वितीया	विद्वांसम्	विद्वांसौ	विदुषः
तृतीया	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
चतुर्थी	विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
पञ्चमी	विदुषः	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
षष्ठी	विदुषः	विदुषोः	विदुषाम्
सप्तमी	विदुषि	विदुषोः	विद्वत्सु
सम्बोधन	हे विद्वन्!	हे विद्वांसौ	हे विद्वांसः

इसयुन् प्रत्ययान्त शब्दों के रूप भी लगभग **विद्वस्** शब्द की तरह ही होते हैं। अन्तर इतना है कि सम्प्रसारण और पदान्त में दत्व नहीं होता है। श्रेयस् शब्द इयसुन् प्रत्यय होकर सिद्ध हुआ है। श्रेयान्(दोनों में अधिक कल्याणकारी, अच्छा) इसके रूप भी देखिये-

सकारान्त इयसुन्-प्रत्ययान्त श्रेयस्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	श्रेयान्	श्रेयांसौ	श्रेयांसः
द्वितीया	श्रेयांसम्	श्रेयांसौ	श्रेयसः
तृतीया	श्रेयसा	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभिः
चतुर्थी	श्रेयसे	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभ्यः
पञ्चमी	श्रेयसः	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभ्यः
षष्ठी	श्रेयसः	श्रेयसोः	श्रेयसाम्
सप्तमी	श्रेयसि	श्रेयसोः	श्रेयस्सु, श्रेयःसु
सम्बोधन	हे श्रेयन्!	हे श्रेयांसौ!	हे श्रेयांसः!

इसी तरह अन्य इयसुन् प्रत्ययान्त शब्दों को भी जानना चाहिए।

असुङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३५४. पुंसोऽसुङ् ७।१।८९॥

सर्वनामस्थाने विवक्षिते पुंसोऽसुङ् स्यात्।

पुमान्। हे पुमन्। पुमांसौ। पुंसः। पुम्भ्याम्। पुंसु।

ऋदुशनेत्यनङ्। उशना। उशनसौ।

वार्तिकम्- **अस्य सम्बुद्धौ वानङ्, नलोपश्च वाच्यः।** हे उशन, हे उशनन्! हे उशनसौ। उशनोभ्याम्। उशनस्सु।

अनेहा। अनेहसौ। हे अनेहः। वेधाः। वेधसौ। हे वेधः। वेधोभ्याम्।

....

अणीयस् दोनों में अत्यन्त सूक्ष्म- **अणीयान्, अणीयांसौ, अणीयसः, अणीयोभ्याम्।**
अल्पीयस् दोनों में अधिक थोड़ा- **अल्पीयान्, अल्पीयांसौ, अल्पीयसः, अल्पीयोभ्याम्।**
कनीयस् दोनों में अधिक थोड़ा- **कनीयान्, कनीयांसौ, कनीयसः, कनीयोभ्याम्।**
गरीयस् दोनों में अधिक भारी- **गरीयान्, गरीयांसौ, गरीयसः, गरीयोभ्याम्।**
ज्यायस् दोनों में अधिक बड़ा, वृद्ध- **ज्यायान्, ज्यायांसौ, ज्यायसः, ज्यायोभ्याम्।**
पटीयस् दोनों में अधिक चतुर- **पटीयान्, पटीयांसौ, पटीयसः, पटीयोभ्याम्।**
पापीयस् दोनों में अधिक पापी- **पापीयान्, पापीयांसौ, पापीयसः, पापीयोभ्याम्।**
प्रेयस् दोनों में अधिक प्रिय- **प्रेयान्, प्रेयांसौ, प्रेयसः, प्रेयोभ्याम्।**
बलीयस् दोनों में अधिक बली- **बलीयान्, बलीयांसौ, बलीयसः, बलीयोभ्याम्।**
भूयस् दोनों में अधिक ज्यादा- **भूयान्, भूयांसौ, भूयसः, भूयोभ्याम्।**
महीयस् दोनों में अधिक बड़ा- **महीयान्, महीयांसौ, महीयसः, महीयोभ्याम्।**
लघीयस् दोनों में अधिक छोटा- **लघीयान्, लघीयांसौ, लघीयसः, लघीयोभ्याम्।**
वरीयस् दोनों में अधिक विशाल- **वरीयान्, वरीयांसौ, वरीयसः, वरीयोभ्याम्।**
साधीयस् दोनों में अधिक अच्छा- **साधीयान्, साधीयांसौ, साधीयसः, साधीयोभ्याम्।**

३५४- पुंसोऽसुङ्। पुंसः षष्ठ्यन्तम्, असुङ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **इतोऽत् सर्वनामस्थाने** से सर्वनामस्थाने की अनुवृत्ति आती है।

सर्वनामस्थानसंज्ञक प्रत्यय की विवक्षा हो तो पुंस् को असुङ् आदेश होता है।

असुङ् में उकार और ङकार की इत्संज्ञा होती है। ङित् होने के कारण **ङिच्च** के नियम से अन्त्य वर्ण **पुम्स्** के सकार के स्थान पर यह आदेश हो जाता है।

पुमान्। पुरुष। **पूञ् पवने** धातु से डुम्सुन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, टिलोप आदि होकर **पुम्स्** सिद्ध हुआ है। उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु प्रत्यय आने पर सर्वनामस्थानसंज्ञा होकर पुम्स् के सकार के स्थान **पुंसोऽसुङ्** से असुङ् आदेश, अनुबन्धलोप होकर **पुम्+अस्+स्** वर्णसम्मेलन होकर **पुमस्+स्** बना। उगिदचां **सर्वनामस्थानेऽधातोः** से नुम् होकर **पुमन्स्+स्** बना। **सान्त महतः संयोगस्य** से दीर्घ होकर **पुमान्स्+स्** बना। सु वाले सकार का हल्ङ्यादि लोप, शब्द के सकार का संयोगान्तलोप होकर **पुमान्** सिद्ध हुआ। अब सर्वनामस्थान अजादिविभक्ति के परे होने पर असुङ् आदेश और दीर्घ और नकार को **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार होकर **पुमांसौ, पुमांसः** आदि रूप बनते हैं। असर्वनामस्थान

अजादिविभक्ति के परे होने पर असुङ् आदेश और दीर्घ नहीं होते। अतः केवल नकार को अनुस्वार करके वर्णसम्मेलन होकर **पुंसः, पुंसा, पुंसे** आदि रूप सिद्ध होते हैं। हलादिविभक्ति भ्याम् आदि के परे होने पर **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदसंज्ञा करके सकार का संयोगान्तलोप होता है। मकार को **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार और उसको **वा पदान्तस्य** से वैकल्पिक परसवर्ण के रूप में मकार हो जाता है, जिससे **पुम्भ्याम्, पुम्भिः** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

सकारान्त पुम्स्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः
द्वितीया	पुमांसौ	पुमांसौ	पुंसः
तृतीया	पुंसा	पुम्भ्याम्	पुम्भिः
चतुर्थी	पुंसे	पुम्भ्याम्	पुम्भ्यः
पञ्चमी	पुंसः	पुम्भ्याम्	पुम्भ्यः
षष्ठी	पुंसः	पुंसोः	पुंसाम्
सप्तमी	पुंसि	पुंसोः	पुंसु
सम्बोधन	हे पुमन्!	हे पुमांसौ!	हे पुमांसः

परसवर्ण न होने के पक्ष में पुंभ्याम्, पुंभिः आदि रूप भी बनते हैं।

उशना। शुक्राचार्य। **उशनस्** इस सकारान्त शब्द से सु, **ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च** से सकार के स्थान पर अनङ् आदेश होकर **उशनन्+स्** बना। **सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ** से दीर्घ होकर **उशनान्+स्** बना। सु का लोप और नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होकर **उशना** सिद्ध हुआ। औ आदि अजादि विभक्ति के परे अनङ् आदेश नहीं होता है। अतः दीर्घ भी नहीं होगा। केवल वर्णसम्मेलन करके **उशनसौ, उशनसः** आदि रूप बन जाते हैं। हलादिविभक्ति के परे होने पर पदसंज्ञा होकर स् को रुत्व और **हशि च** से उत्व होकर **आद्गुणः** से गुण होने पर **उशनोभ्याम्, उशनोभिः** आदि रूप बनते हैं। सुप् में **वा शरि** से वैकल्पिक विसर्ग आदेश होने से विसर्ग वाला और सकार वाला दो रूप बनते हैं। सम्बोधन में-

अस्य सम्बुद्धौ वानङ्, नलोपश्च वा वाच्यः। यह वार्तिक है। **उशनस् शब्द के सम्बुद्धि के परे होने पर विकल्प से अनङ् आदेश और विकल्प से नकार का लोप होता है।** अतः अनङ् आदेश होकर नकार के लोप होने के पक्ष में **हे उशन!** और लोप न होने के पक्ष में **हे उशनन्** तथा अनङ् आदेश भी न होने के पक्ष में सकार को रुत्वविसर्ग होकर **हे उशनः!** ये तीन रूप सिद्ध होते हैं।

सकारान्त उशनस्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	उशना	उशनसौ	उशनसः
द्वितीया	उशनसम्	उशनसौ	उशनसः
तृतीया	उशनसा	उशनोभ्याम्	उशनोभिः
चतुर्थी	उशनसे	उशनोभ्याम्	उशनोभ्यः
पञ्चमी	उशनसः	उशनोभ्याम्	उशनोभ्यः
षष्ठी	उशनसः	उशनसोः	उशनसाम्

औकारादेशसुलोपविधायकं विधिसूत्रम्

३५५. अदस औ सुलोपश्च ७।२।१०७॥

अदस औकारोऽन्तादेशः स्यात्सौ परे सुलोपश्च।

तदोरिति सः। असौ। त्यदाद्यत्वम्। पररूपत्वम्। वृद्धिः।

....

सप्तमी	उशनसि	उशनसोः	उशनःसु, उशनस्सु
सम्बोधन	हे उशन, उशनन्, उशनः,	हे उशनसौ!	हे उशनसः!

अनेहा। समय। अनेहस् शब्द के रूप भी उशनस् शब्द की तरह होते हैं। **अनेहा, अनेहसौ, अनेहसः, अनेहसम्, अनेहसौ, अनेहसः अनेहसा, अनेहोभ्याभ्याम्, अनेहोभिः, अनेहसे, अनेहोभ्यः, अनेहसः, अनेहसोः, अनेहसाम्, अनेहसि, ८.नेहस्सु, हे अनेहः।**

वेधा। ब्रह्मा। विपूर्वक धा धातु से असि प्रत्यय होकर **वेधस्** शब्द सिद्ध हुआ है। उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु प्रत्यय, **अत्वसन्तस्य चाधातोः** से दीर्घ होकर **वेधास्+स्** बना। सु के सकार का लोप और वेधास् के सकार का रुत्व और विसर्ग होकर **वेधाः** सिद्ध होता है। आगे अजादि विभक्ति के परे होने पर केवल वर्णसम्मेलन करना तथा हलादि विभक्ति के परे **स्** को रुत्व और उसको उत्व करके गुण करने पर **वेधोभ्याम्, वेधोभिः** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

सकारान्त वेधस्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वेधाः	वेधसौ	वेधसः
द्वितीया	वेधसम्	वेधसौ	वेधसः
तृतीया	वेधसा	वेधोभ्याम्	वेधोभिः
चतुर्थी	वेधसे	वेधोभ्याम्	वेधोभ्यः
पञ्चमी	वेधसः	वेधोभ्याम्	वेधोभ्यः
षष्ठी	वेधसः	वेधसोः	वेधसाम्
सप्तमी	वेधसि	वेधसोः	वेधस्सु, वेधःसु
सम्बोधन	हे वेधः	हे वेधसौ!	हे वेधसः

इसी तरह निम्नलिखित शब्दों के भी रूप बनते हैं-

चन्द्रमस् चन्द्रमा- **चन्द्रमाः, चन्द्रमसौ, चन्द्रमसा, चन्द्रमोभ्याम्** आदि।
सुमेधस् अच्छी बुद्धि वाला- **सुमेधाः, सुमेधसौ, सुमेधसा, सुमेधोभ्याम्।**
सुमनस् देवता, **सुमनाः, सुमनसौ, सुमनसः, सुमनसा, सुमनोभ्याम्।**
वनौकस् वनवासी, **वनौकाः, वनौकसौ, वनौकसः, वनौकसा, वनौकोभ्याम्।**
दिवौकस् देवता, **दिवौकाः, दिवौकसौ, दिवौकसः, दिवौकसा, दिवौकोभ्याम्।**
जातवेदस् अग्नि, **जातवेदाः, जातवेदसौ, जातवेदसः, जातवेदसा, जातवेदोभ्याम्।**
पुरोधस् पुरोहित, **पुरोधाः, पुरोधसौ, पुरोधसः, पुरोधसा, पुरोधोभ्याम्।**
अङ्गिरस् एक ऋषि, **अङ्गिराः, अङ्गिरसौ, अङ्गिरसः, अङ्गिरसा। अङ्गिरोभ्याम्।**

३५५- अदस औ सुलोपश्च। सोर्लोपः सुलोपः, षष्ठीतत्पुरुषः। अदसः षष्ठ्यन्तम्, औ लुप्तप्रथमाकं पदं, सुलोपः प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **तदोः सः सावनन्त्ययोः** से **सौ** की अनुवृत्ति आती है।

उदूत्मत्वविधायकं विधिसूत्रम्

३५६. अदसोऽसेर्दादु दो मः ८।२।८०॥

अदसोऽसान्तस्य दात्परस्य उदूतौ स्तो दस्य मश्च।

आन्तरतम्याद्ध्रस्वस्य उः, दीर्घस्य ऊः। अमू। जसः शी। गुणः।

ईदादेशमत्वविधायकं विधिसूत्रम्

३५७. एत ईद् बहुवचने ८।२।८१॥

अदसो दात्परस्यैत ईद्, दस्य च मो बह्वर्थोक्तौ। अमी।

पूर्वत्रासिद्धमिति विभक्तिकार्यं प्राक् पश्चादुत्वमत्वे। अमुम्। अमू।

अमून्। मुत्वे कृते घिसंज्ञायां नाभावः।

....

सु के परे होने पर अदस् शब्द को औकार अन्तादेश और सु का लोप होता है।

यह सूत्र दो कार्य एक साथ करता है- प्रथम औकार आदेश और दूसरा सु का लोप। सकार के स्थान पर औकार आदेश होने के बाद हलन्त न मिलने के कारण सुलोप का भी विधान करना पड़ा।

असौ। वह(दूर का) **अदस्** शब्द से सुप्रत्यय। यह सर्वादिगण के अन्तर्गत त्यदादिगण में है, इस कारण से सर्वनामसंज्ञक है। **त्यदादीनामः** से अत्व प्राप्त था, उसे बाधकर के **अदस औ सुलोपश्च** से सकार के स्थान पर **औ** आदेश और सु का लोप ये दोनों कार्य हुए- **अद+औ** बना। **वृद्धिरेचि** से वृद्धि होकर **अदौ** बना। प्रत्ययलक्षण के द्वारा सु विभक्ति मानकर **तदोः सः सावनन्तययोः** से दकार के स्थान पर सकार आदेश होकर **असौ** सिद्ध हुआ।

३५६- अदसोऽसेर्दादु दो मः। नास्ति सिः यस्य सः- असिः, तस्य असेः। अदसः षष्ठ्यन्तम्, असेः षष्ठ्यन्तं, दात् पञ्चम्यन्तम्, उ लुप्तप्रथमाकं, दः षष्ठ्यन्तं, मः प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

जिसके अन्त में सकार न हो ऐसे अदस् शब्द के दकार से परे वर्ण को उकार और ऊकार आदेश और दकार को मकार आदेश होता है।

त्यदादीनामः से सकार के स्थान पर अकार आदेश होने पर सकारान्त नहीं रहेगा। **अदस्** में दकार के बाद अकार है किन्तु दीर्घ या वृद्धि के विधान होने के बाद दीर्घ आकार आदि भी हो सकता है। उस ह्रस्व या दीर्घ वर्ण के स्थान पर इस सूत्र के द्वारा उकारादेश का विधान हो जाता हैं **स्थानेऽन्तरतमः** के द्वारा प्रमाण से सादृश्य लेने पर ह्रस्व वर्ण के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश और दीर्घ वर्ण के स्थान पर दीर्घ ऊकार आदेश हो जाता है। यह सूत्र दकार के स्थान पर मकार आदेश भी करता है। इस तरह से इस सूत्र के द्वारा उत्व और मत्व दो कार्य होते हैं।

अमू। अदस् से द्विवचन औ। **त्यदादीनामः** से सकार के स्थान पर अकार आदेश करके **अतो गुणे** से पररूप करने पर **अद+औ**, वृद्धि होकर **अदौ** बना। **अदसोऽसेर्दादु दो मः** से **स्थानेऽन्तरतमः** की सहायता से **प्रमाण** के सादृश्य को लेकर औकार के स्थान पर दीर्घ ऊकार आदेश और दकार के स्थान पर मकार आदेश हुआ तो **अमू** सिद्ध हुआ।

निषेधात्मकाविधिसूत्रम्

३५८. न मु ने ८।२।३॥

नाभावे कर्तव्ये कृते च मुभावो नासिद्धः।

अमुना। अमूभ्याम् ३। अमीभिः। अमुष्मै। अमीभ्यः २। अमुष्मात्। अमुष्य। अमुयोः२। अमीषाम्। अमुष्मिन्। अमीषु।

इति हलन्तपुँल्लिङ्गाः॥८॥

....

३५७- **एत ईद् बहुवचने।** एतः षष्ठ्यन्तम्, इद् प्रथमान्तं, बहुवचने सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अदसोऽसेर्दादु दो मः** से **अदसः, दात्, दः, मः** की अनुवृत्ति आती है।

अदस् शब्द के दकार से परे एकार को ईकार तथा दकार को मकार आदेश होता है बहुवचन में।

अमी। अदस् से बहुवचन में जस् आया, अनुबन्धलोप। **त्यदादीनामः** से अत्व और **अतो गुणे** से पररूप होकर **अद+अस्** बना। **जसः शी** से जस् के स्थान **शी** आदेश, अनुबन्धलोप करके **अद+इ** में गुण करके **अदे** बना। **एत ईद् बहुवचने** से एकार के स्थान पर ईकार आदेश और दकार के स्थान पर मकार आदेश होने पर **अमी** सिद्ध हुआ।

पूर्वत्रासिद्धमिति विभक्तिकार्यं प्राक्, पश्चादुत्वमत्वे। अदस् से अम् विभक्ति, अत्व और पररूप होने के बाद **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप और **अदसोऽसेर्दादु दो मः** से उत्वमत्व एक साथ प्राप्त हो रहे थे तो **पूर्वत्रासिद्धम्** के नियम से उत्वमत्वविधायक सूत्र के त्रिपादी होने से असिद्ध हुआ। अतः पहले **अमि पूर्वः** से विभक्तिकार्य होकर बाद में उत्वमत्व होते हैं।

अमुम्। अदस् से द्वितीया का एकवचन अम्, **त्यदादीनामः** से अत्व और पररूप होकर **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर **अदम्** बन जाता है। इसके बाद **अदसोऽसेर्दादु दो मः** से दकारोत्तरवर्ती अकार को उत्व और दकार को मत्व आदेश होकर **अमुम्** सिद्ध हुआ।

अमून्। अदस् से द्वितीया का बहुवचन शस्, अनुबन्धलोप, अत्व, पररूप करने के बाद **अद+अस्** बना है। यहाँ पर भी **पूर्वत्रासिद्धम्** के नियम से उत्वमत्व के असिद्ध होने के कारण पहले विभक्तिकार्य **प्रथमयोः पूर्वसवर्णः** से पूर्वसवर्णदीर्घ होकर **अदास्** बना। **तस्माच्छसो नः पुंसि** से सकार के स्थान पर नकार आदेश होकर **अदान्** बना। अब **अदसोऽसेर्दादु दो मः** से दीर्घ आकार के स्थान दीर्घ ऊकार और दकार के स्थान पर मकार आदेश होकर **अमून्** सिद्ध हुआ।

३५८- **न मु ने।** म् च उश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो मु। न अव्ययपदं, मु लुप्तप्रथमान्तं, ने सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **पूर्वत्रासिद्धम्** से **असिद्धम्** की अनुवृत्ति आती है।

ना आदेश करना हो या कर लिया गया हो इन दोनों अवस्थाओं में मु-भाव असिद्ध नहीं होता।

अमुना। अदस् से टा, अनुबन्धलोप, अत्व और पररूप करके **अद+आ** बना। अब यहाँ पर **अदसोऽसेर्दादु दो मः** और **टाङसिङसामिनात्स्याः** की एकसाथ प्राप्ति थी किन्तु पर होने के कारण **अदसोऽसेर्दादु दो मः** से उत्व-मत्व ही हुआ। यहाँ **पूर्वत्रासिद्धम्** के द्वारा उत्वमत्वविधायक सूत्र असिद्ध नहीं हुआ, क्योंकि यदि ऐसा होता तो **न मु ने** यह सूत्र व्यर्थ

होता। कारण यह है कि **न मु ने** यह सूत्र **ना की कर्तव्यता में उत्वमत्व** को **असिद्ध नहीं होने** देता। यदि शास्त्रासिद्धपक्ष को स्वीकार करके पहले ही उत्वमत्व नहीं होता तो पुनः **ना** की कर्तव्यता में असिद्ध न हो, ऐसा कहना व्यर्थ होता। इस तरह **न मु ने** इस सूत्रारम्भसामर्थ्य से त्रिपादी होते हुए भी पहले उत्वमत्व हो जाता है। उसके बाद **आङो नास्त्रियाम्** से ना होकर **अमुना** सिद्ध हो जाता है।

अमुभ्याम्। अदस् से तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी के द्विवचन भ्याम् के आने पर अत्व और पररूप करके **अद+भ्याम्** बना। **सुपि च** से दीर्घ करके **अदा+भ्याम्** बना। **अदसोऽसेर्दादु दो मः** से दीर्घ वर्ण आकार के स्थान पर दीर्घ ऊकार तथा दकार के स्थान पर मकार आदेश करके **अमूभ्याम्** सिद्ध हुआ।

अमीभिः। अदस् से तृतीया के बहुवचन भ्यस् के आने पर अत्व, पररूप करके **अद+भिस्** बना। **अतो भिस् ऐस्** से ऐस् आदेश प्राप्त था, उसका **नेदमदसोरकोः** से निषेध हुआ। **एत ईद् बहुवचने** से ईत्व और मत्व होकर **अमीभिः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **अमीभ्यः** भी बनता है।

अमुष्मै। अदस् से चतुर्थी का एकवचन ङे, अनुबन्धलोप, अत्व, पररूप करके **अद+ए** बना। **सर्वनाम्नः स्मै** से **स्मै** आदेश होकर उत्वमत्व और सकार को षत्व करने पर **अमुष्मै** सिद्ध होता है।

अमुष्मात्। अदस् से पञ्चमी का एकवचन ङसि, अनुबन्धलोप, अत्व, पररूप करके **अद+अस्** बना। **ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ** से **स्मात्** आदेश होकर उत्वमत्व और सकार को षत्व करने पर **अमुष्मात्** सिद्ध होता है।

अमुष्य। अदस् से षष्ठी का एकवचन ङस्, अनुबन्धलोप, अत्व, पररूप करके **अद+अस्** बना। **टाङसिङसामिनात्स्याः** से **स्य** आदेश होकर उत्वमत्व और सकार को षत्व करने पर **अमुष्य** सिद्ध होता है।

अमुयोः। अदस् से षष्ठी और सप्तमी का द्विवचन ओस्, अत्व, पररूप करके **अद+ओस्** बना। **ओसि च** से एकार आदेश **अदे+ओस्,** अय् आदेश और वर्णसम्मेलन होकर **अदयोस्** बना। **अदसोऽसेर्दादु दो मः** से ह्रस्व अकार के स्थान पर उकार आदेश और दकार के स्थान पर मकार आदेश होकर **अमुयोस्,** सकार को रुत्व और विसर्ग करके **अमुयोः** सिद्ध हुआ।

अमीषाम्। अदस् शब्द से षष्ठी का बहुवचन आम् आया। अत्व और पररूप करके **अद+आम्** बना। **आमि सर्वनाम्नः सुट्** से सुट् का आगम करके **अद+साम्** बना। **बहुवचने झल्येत्** से एत्व होकर **अदे+षाम्** बना। **एत ईद् बहुवचने** से ईत्व और मत्व होने पर **अमी+साम्** और षत्व होकर **अमीषाम्** सिद्ध हुआ।

अमुष्मिन्। अदस् से सप्तमी का एकवचन ङि, अनुबन्धलोप, अत्व, पररूप करके **अद+इ** बना। **ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ** से **स्मिन्** आदेश होकर उत्वमत्व और सकार को षत्व करने पर **अमुष्मिन्** सिद्ध होता है।

अमीषु। अदस् से सुप्, अनुबन्धलोप, अत्व, पररूप करके **अद+सु** बना। **एत ईद् बहुवचने** से ईत्व और मत्व करके **अमीसु,** षत्व करके **अमीषु** सिद्ध हुआ।

त्यदादि में सम्बोधन होता नहीं है।

सकारान्त अदस्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	असौ	अमू	अमी
द्वितीया	अमुम्	अमू	अमून्
तृतीया	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
चतुर्थी	अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पञ्चमी	अमुष्मात्, अमुष्माद्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
षष्ठी	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
सप्तमी	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु

इस प्रकार से संक्षेप में **हलन्त-पुँल्लिङ्गप्रकरण** यहीं पूर्ण होता है। **लघुसिद्धान्तकौमुदी** एक प्रारम्भिक ग्रन्थ है। इसके बाद **वैयाकरण-सिद्धान्तकौमुदी** का अध्ययन करना है। कौमुदी की जो प्रक्रिया है उसे **नव्यव्याकरण** और अष्टाध्यायी के क्रम से काशिका आदि ग्रन्थ की जो प्रक्रिया है, उसे **प्राचीनव्याकरण** कहते हैं। नव्य और प्राचीन का बड़ा मतभेद देखने को मिलता है। जो **प्राचीनव्याकरण** के अध्येता हैं वे **नव्यव्याकरण** पढ़ने वालों की सूत्र भाष्य आदि के क्रम को त्याग करने के कारण निन्दा करते हैं और नव्यवैयाकरण लोग प्राचीन ग्रन्थों में वास्तविक सिद्धान्त प्रतिपादित न होने से और सरलता से व्याकरण के सिद्धान्तों को जानने के लिए भी नवीन ग्रन्थों की आवश्यकता है, ऐसा कहते हैं।

मेरे मत में तो आज के परिप्रेक्ष्य में नव्य और प्राचीन दोनों पद्धति एक दूसरे के पूरक हो सकती हैं। हमने अपने अध्यापन-काल में इसका अच्छा अनुभव किया है। अष्टाध्यायी के क्रम को जाने विना कौमुदी का अध्ययन अपूर्ण है और कौमुदी में जिस प्रकार से प्रक्रिया का सरलता से सिलसिलेवार ढंग से समझाया कराया है, उसका प्राचीन पद्धति में अभाव है। हाँ, अत्यन्त प्रतिभाशाली छात्रों के लिए तो चाहे प्राचीन पद्धति हो या नवीन पद्धति, दोनों ही सुगम हैं, किन्तु सामान्य बुद्धि वाले छात्रों के लिए प्रक्रिया का सरलता से ज्ञान करना प्राचीन-पद्धति में दुर्गम है किन्तु सूत्रों का व्याख्यान एवं अनुवृत्तिज्ञान के लिए तो वह भी आवश्यक है। अतः शास्त्रार्थ एवं प्रक्रिया दोनों का एक साथ ज्ञान करने के लिए **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** के अध्ययन के समय **काशिका** ग्रन्थ को सामने रखकर साथ-साथ सूत्रों का नियमित रूप से अध्ययन करना चाहिए।

मेरे विचार में तो सबसे श्रेष्ठ क्रम यह रहेगा कि जो छात्र व्याकरण पढ़ने के लिए आते हैं उन्हें सबसे पहले मेरे द्वारा सरलीकृत **ऋजुसिद्धान्तकौमुदी** पढ़ाई जाय, जिससे प्रक्रिया का सामान्य ज्ञान हो जायेगा। साथ साथ **पाणिनीयाष्टाध्यायी** के एक अध्याय के हिसाब से प्रतिमाह पारायण कराया जाय। छोटे छात्रों से यदि अष्टाध्यायी का उच्चारण ठीक से करा लिया जाय और उन्हें प्रथम माह में प्रथमाध्याय और द्वितीय माह में द्वितीयाध्याय के क्रम से पारायण करा लिया जाय तो आठ माह अथवा अधिकतम एक वर्ष में छात्रों को अष्टाध्यायी के सम्पूर्ण सूत्र कण्ठस्थ हो जायेंगे, क्योंकि छात्रावस्था में प्रतिदिन पाठ अर्थात् पारायण से जल्दी याद हो जाता है। यह मेरा स्वयं एवं छात्रों से कराया गया अनुभव है। इस प्रकार से एक वर्ष में **ऋजुसिद्धान्तकौमुदी** और **पाणिनीयाष्टाध्यायी** दोनों याद हो जायेंगे। इसके बाद छात्र की रुचि के हिसाब से **काशिका** पढ़ायें या **लघुसिद्धान्तकौमुदी**

या वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी। हाँ, इतना मेरा सुझाव अवश्य मानें कि कौमुदी के क्रम में काशिका और काशिका के क्रम में कौमुदी को साथ जरूर रखा जाय।

छात्र यह समझ गये होंगे कि हमें साथ-साथ **पाणिनीयाष्टाध्यायी** का प्रतिमास एक-एक अध्याय के क्रम से पारायण करना ही है। परीक्षा के नियमों का ध्यान तो आपको होगा ही। इस परीक्षा में पूर्णाङ्क १०० है और प्रत्येक प्रश्न ५ अंक के हैं।

परीक्षा

१- हलन्तपुँल्लिङ्गप्रकरण में सर्वनामस्थानसंज्ञा को लेकर लगने वाले सूत्र कौन-कौन हैं?

२- आपने इस प्रकरण में कहाँ कहाँ मित् आगम किया?

३- आगम और आदेश में क्या अन्तर है?

४- **रषाभ्यां नो णः समानपदे** और **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** में क्या अन्तर है?

५- **अनाप्यकः** में आपि का क्या अर्थ है?

६- लिह् शब्द के हलादिविभक्ति के परे होने पर जो रूप बनते हैं, सिद्ध करके दिखाइये।

७- इदम् और राजन् शब्द के पूरे रूप लिखिये।

८- युष्मद् शब्द के सभी बहुवचनान्त रूपों की सिद्धि करें।

९- अदस् के द्विवचनान्त रूपों की सिद्धि करें।

१०- क्विन् और कन् प्रत्ययों में क्या अन्तर है, उदाहरण सहित बताइये।

११- श्रीशस्त्वावतु मापीह इन दोनों श्लोकों की उदाहरण सहित व्याख्या करें।

१२- अन्वादेश और अनन्वादेश को स्पष्ट करें।

१३- अञ्च् धातु को जिनके के साथ जोड़कर के आपने पढ़ा, उनमें से किसी एक शब्द के सभी रूप लिखें।

१४- **न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्** की व्याख्या करके इसके तात्पर्य को स्पष्ट करें।

१५- सकारान्त, चकारान्त और मकारान्त किन्ही तीन शब्दों के रूप लिखिए।

१६- **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** की व्याख्या करें।

१७- इस प्रकरण में दीर्घ विधान करने वाले सूत्रों का विभक्ति, अनुवृत्ति सहित अर्थ करिये।

१८- नत्व को असिद्ध करने वाला सूत्र कितने पदों वाला है और नत्व के असिद्ध होने का क्या फल है? दिखाइये।

१९- इस प्रकरण में दिखाये गये शब्दों में कौन-कौन से शब्द सर्वादि अर्थात् सर्वनामसंज्ञक हैं?

२०- अभ्यस्तसंज्ञा और उसके प्रयोजन के सम्बन्ध में उदाहरण सहित विवेचन करें।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का हलन्तपुँल्लिङ्गप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ हलन्त-स्त्रीलिङ्गाः

धकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३५९. नहो धः ८।२।३४॥

नहो हस्य धः स्याज्झलि पदान्ते च।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्।

३६०. नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ ६।३।११६॥

क्विबन्तेषु पूर्वपदस्य दीर्घः। उपानत्, उपानद्। उपानहौ। उपानत्सु। क्विन्नन्तत्वात् कुत्वेन घः। उष्णिक्, उष्णिग्। उष्णिहौ। उष्णिग्भ्याम्। द्यौः। दिवौ। दिवः। द्युभ्याम्। गीः। गिरौ। गीर्भ्याम्। एवं पूः। चतस्रः। चतसृणाम्। का। के। काः। सर्वावत्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब आप **हलन्तस्त्रीलिङ्ग** में प्रवेश कर रहे हैं। हलन्त शब्दों से स्त्रीत्वार्थ बोध के लिए खास कोई प्रत्यय नहीं है, जैसे अजन्त शब्दों से **ङीप्, ङीष्, टाप्** आदि प्रत्यय होते हैं। अतः लिङ्गानुशासन के अनुसार ही स्त्रीलिङ्ग का निर्धारण करके हलन्त शब्दों के रूप बनाये जाते हैं। सर्वादिगण के अन्तर्गत आने वाले त्यदादिगणीय शब्दों में **त्यदादीनामः** से अत्व होने के बाद **अजाद्यतष्टाप्** से टाप्-प्रत्यय करके आबन्त बन जाते हैं। उसके बाद उनके रूप अजन्त के जैसे हो जाते हैं। कुछ ही सर्वादिगण के शब्द बचते हैं जिन्हें हलन्तस्त्रीलिङ्ग में साधना होता है।

३५९- नहो धः। नहः षष्ठ्यन्तं, धः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **झलो झलि** से **झलि**, **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से **अन्ते** की अनवृत्ति आती है और **पदस्य** का अधिकार है।

नह् हे हकार के स्थान पर धकार आदेश होता है झल् परे होने पर या पदान्त में।

३६०- नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ। नहिश्च वृतिश्च वृषिश्च, व्यधिश्च, रुचिश्च, सहिश्च तनिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः- नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनयः, तेषु नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु। नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु सप्तम्यन्तं, क्वौ सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से **पूर्वस्य** और **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है।

क्विप् प्रत्ययान्त नह्, वृत्, वृष्, व्यध्, रुच्, सह्, तन् धातुओं के परे होने पर पूर्वपद को दीर्घ होता है।

अलोऽन्त्यस्य की सहायता से अन्त्य के स्थान पर दीर्घ आदेश होता है। यह पूर्व में विद्यमान उपसर्ग आदि को दीर्घ करता है यदि इनसे पर में उक्त धातुओं से यदि क्विप् प्रत्यय हुआ हो तो।

उपानत्, उपानद्। पादुका, जूता। उपपूर्वक नह् धातु से क्विप् प्रत्यय होकर **नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ** से उप के अकार को दीर्घ हुआ, **उपानह्** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा होने के बाद सु विभक्ति आई और सु का लोप, हकार के स्थान पर **नहो धः** से धकार आदेश, जश्त्व होकर दकार और वैकल्पिक चर्त्व होकर तकार आदेश होकर **उपानत्, उपानद्** ये दो रूप सिद्ध हुए। आगे अजादि विभक्ति के परे धकार आदेश नहीं होता है, अतः हकार आगे जाकर मिलता है और भ्याम् आदि हलादि विभक्ति के परे होने पर धकार आदेश होता है और उस धकार को **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर **उपानद्भ्याम्** इत्यादि रूप बनते हैं। सुप् के परे धकार होने के बाद **खरि च** से चर्त्व होकर **उपानत्सु** बनता है।

हकारान्त स्त्रीलिङ्ग उपानह्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	उपानत्, उपानद्	उपानहौ	उपानहः
द्वितीया	उपानहम्	उपानहौ	उपानहः
तृतीया	उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः
चतुर्थी	उपानहे	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
पञ्चमी	उपानहः	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
षष्ठी	उपानहः	उपानहोः	उपानहाम्
सप्तमी	उपानहि	उपानहोः	उपानत्सु
सम्बोधन	हे उपानत्, हे उपानद्!	हे उपानहौ	हे उपानहः!

उष्णिक्, उष्णिग्। उष्णिहौ। उष्णिग्भ्याम्। उत्-पूर्वक **ष्णिह्** धातु से **ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च** क्विन् प्रत्ययान्त **उष्णिह्** निपातन हुआ। उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि विभक्तियाँ आती हैं। सु का लोप करके **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** से कुत्व करने घकार आदेश, जश्त्व करके गकार आदेश और वैकल्पिक चर्त्व करके ककार आदेश होकर **उष्णिक्, उष्णिग्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं। आगे अजादि विभक्ति के परे होने पर हकार अच् में मिलता जाता है और हलादिविभक्ति के परे कुत्व होकर घकार और जश्त्व होकर गकार हो जाता है जिससे **उष्णिहौ, उष्णिहः, उष्णिहम्, उष्णिहा, उष्णिग्भ्याम्, उष्णिग्भिः, उष्णिहे, उष्णिग्भ्यः, उष्णिहः, उष्णिहोः, उष्णिहाम्, उष्णिहि, उष्णिक्षु, हे उष्णिक्, हे उष्णिग्** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं। **उष्णिक्** एक छन्दः का नाम है।

द्यौः। आकाश या स्वर्ग। वकारान्त दिव् शब्द। केवल **दिव्** शब्द स्त्रीलिङ्ग में है और **सुदिव्** शब्द पुँल्लिङ्ग में प्रयुक्त हुआ है। इसके रूप सुदिव् की तरह ही **द्यौः, दिवौ, दिवः, दिवा, द्युभ्याम्** आदि होते हैं।

गीः, गिरौ, गिरः। वाणी। गिर् यह शब्द गृ धातु से क्विप् प्रत्यय, सर्वापहारलोप, इत्व और रपर होकर बना है। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा के बाद सु विभक्ति, उसका लोप, **र्वोरुपधाया दीर्घ इकः** से पदान्त में उपधादीर्घ होकर **गीर्** बना। रेफ का विसर्ग होकर **गीः** सिद्ध हुआ। आगे अजादिविभक्ति के परे दीर्घ नहीं होता और हलादिविभक्ति के परे रहते

यकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३६१. यः सौ ७।२।११०॥

इदमो दस्य यः। इयम्। त्यदाद्यत्वम्। पररूपत्वम्। टाप्। **दश्चेति** मः। इमे। इमाः। इमाम्। अनया। हलि लोपः। आभ्याम्। आभिः। अस्यै। आभ्यः। अस्याः। अनयोः। आसाम्। अस्याम्। आसु। त्यदाद्यत्वम्। टाप्। स्या। त्ये। त्याः। एवं तद्, एतद्। वाक्, वाग्। वाचौ। वाग्भ्याम्। वाक्षु। अप्शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। **अप्तृन्निति** दीर्घः। आपः। अपः।

....

पदान्त में होने के कारण **र्वोरुपधाया दीर्घ इकः** से दीर्घ होता है। अजादि के परे वर्णसम्मेलन और हलादिविभक्ति में रेफ का ऊर्ध्वगमन होकर रूप बनते हैं- **गिरौ, गिरः, गिरम्, गिरा, गीर्भ्याम्, गीर्भिः, गिरे, गीर्भ्यः, गिरः, गिरोः गिराम्, गिरि।** रोः सुपि के नियम से विसर्ग नहीं होता पर इण्-रेफ से परे सकार को षत्व होता है- **गीर्षु। हे गीः, हे गिरौ, हे गिरः!** इसी तरह नगर का वाचक पुर् शब्द के भी रूप होते हैं- **पूः, पुरौ, पुरः, पुरम्, पुरा, पूर्भ्याम्, पूर्भिः, पुरे, पूर्भ्यः, पुरः, पुरोः, पुराम्, पुरि, पूर्षु, हे पूः, हे पुरौ, हे पुरः।**

चतस्रः। चार। चतुर् शब्द के पुँल्लिङ्ग में **चत्वारः, चतुरः** आदि बहुवचन के रूप बने थे। स्त्रीलिङ्ग में **त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ** से **चतसृ** आदेश होकर केवल बहुवचन में ही रूप बनते हैं। **चतसृ** से आगे जस् और शस् होकर अनुबन्धलोप होकर चतसृ+अस् बना है। ऋकार के स्थान पर **अचि र ऋतः** से रेफादेश होकर **चतस्+र्+अस्** वर्णसम्मेलन और रुत्वविसर्ग होकर **चतस्रः** सिद्ध हुआ। यहाँ **इको यणचि** से यण् करने पर भी **चतस्रः** सिद्ध हो जाता किन्तु जस् में उसका बाधक **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः** से गुण प्राप्त हो रहा था, अतः **अचि र ऋतः** की आवश्यकता हुई। आगे भिस् और भ्यस् के परे क्रमशः **चतसृभिः, चतसृभ्यः** ये रूप बनते हैं। आम् के परे ह्रस्वान्त होने के कारण नुट् होकर **चतसृणाम्** तथा सुप् के परे **चतसृषु** रूप सिद्ध होते हैं।

का। किम् शब्द से पुँल्लिङ्ग में **किमः कः** से **क** आदेश होकर **कः, कौ, के** आदि रूप बनाये जा चुके हैं। स्त्रीलिङ्ग में भी विभक्ति के परे क आदेश होता है और अदन्त बन जाने के बाद **अजाद्यतष्टाप्** से टाप्, अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ होकर **का+स्** बनता है। **आबन्त** होने के कारण **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से स् का लोप होकर **का** सिद्ध हुआ। टाप् करके शब्द किम् शब्द अजन्त बनता है। अतः इसके रूप अजन्तस्त्रीलिङ्ग सर्वशब्द की तरह बनते हैं।

मकारान्त किम् शब्द के स्त्रीलिङ्ग में रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	का	के	काः
द्वितीया	काम्	के	काः
तृतीया	कया	काभ्याम्	काभिः
चतुर्थी	कस्यै	काभ्याम्	काभ्यः
पञ्चमी	कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः

षष्ठी	कस्याः	कयोः	कासाम्
सप्तमी	कस्याम्	कयोः	कासु
सम्बोधन	(नहीं होता है।)		

३६१- **यः सौ।** यः प्रथमान्तं, सौ सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **इदमो मः** से **इदमः** और **दश्च** से **दः** की अनुवृत्ति आती है।

सु के परे होने पर इदम् के दकार के स्थान पर यकार आदेश होता है।

यह सूत्र केवल स्त्रीलिङ्ग में ही प्रवृत्त होता है, क्योंकि पुँल्लिङ्ग में सु के परे होने पर **इदोऽय् पुंसि** से इद्-भाग के स्थान पर अय् कर देने से दकार नहीं मिलता और नपुंसक में भी सु का लोप हो जाने के कारण सु परे नहीं मिलता।

इदम्-शब्द की सिद्धि में पुँल्लिङ्ग की रूपसिद्धि का स्मरण करें। यदि वहाँ की प्रक्रिया याद है तो यहाँ भी सरल होगा, अन्यथा नहीं।

इयम्। इदम् से सु, अत्व को बाधकर मकार के स्थान पर मकार ही आदेश हुआ और **यः सौ** से दकार के स्थान पर यकार आदेश हुआ और सु के सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ- **इयम्।**

इमे। इदम्+औ, त्यदाद्यत्व, पररूप, **अजाद्यतष्टाप्** से टाप्, अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ करने से **इदा+औ** बना। **दश्च** से दकार को मकार, **औङ आपः** से औकार के स्थान पर शी आदेश, अनुबन्धलोप, **इमा+ई** में गुण करने पर **इमे** सिद्ध हुआ।

इमाः। इदम्+जस्, अनुबन्धलोप, अत्व, टाप्, मत्व, सवर्णदीर्घ, रुत्वविसर्ग- **इमाः।**

इमाम्। इदम्+अम्, अत्व, टाप्, मत्व, पूर्वरूप- **इमाम्।**

इमाः। इदम्+शस्, अनुबन्धलोप, अत्व, टाप्, मत्व, पूर्वसवर्णदीर्घ, रुत्वविसर्ग- **इमाः।**

अनया। इदम्+टा, अनुबन्धलोप, अत्व, टाप्, इदा+आ। **अनाप्यकः** से इद्-भाग के स्थान पर अन् आदेश, अना+आ, **आङि चापः** से आकार के स्थान पर एकार और **एचोऽयवायावः** से अय् आदेश होकर वर्णसम्मेलन- **अनया।**

आभ्याम्। इदम्+भ्याम्, अत्व, टाप्, सवर्णदीर्घ, **इदा+भ्याम्** में **हलि लोपः** से इद्-भाग का लोप, **आ+भ्याम्=आभ्याम्।** इसी प्रकार **आभिः** और **आभ्यः** भी बनाइये।

अस्यै। ङे-विभक्ति, अनुबन्धलोप, अत्व, टाप् आदि करके **सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च** से स्याट् आगम और ह्रस्व, इद्भाग का लोप करके **अ+स्या+ए** बना। **स्या+ए** में **वृद्धिरेचि** से वृद्धि, **अस्यै।** इसी प्रकार ङसि और ङस् में भी यही कार्य करके **अस्याः** बनाइये।

अनयोः। इदम्+ओस्, अत्व, टाप्, इदा+ओस्, **अनाप्यकः** से इद्-भाग के स्थान पर अन् आदेश, अना+ओस्, **आङि चापः** से आकार के स्थान पर एकार और **एचोऽयवायावः** से अय् आदेश होकर वर्णसम्मेलन, रुत्वविसर्ग- **अनयोः।**

आसाम्। इदम्+आम्, अत्व, टाप्, इदा+आम्। **आमि सर्वनाम्नः सुट्** से सुट्, **हलि लोपः** से इद्-भाग का लोप- **आसाम्।**

अस्याम्। इदम्+ङि, अनुबन्धलोप, अत्व, टाप्, **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** से आम्, इदा+आम्, स्याट् और ह्रस्व, इद्-भाग का लोप, सवर्णदीर्घ, **अस्याम्।**

आसु। **हलि लोपः** से इद्-भाग का लोप, शेष प्रक्रिया पूर्ववत्।

जिस तरह से पुँल्लिङ्ग में द्वितीया विभक्ति, टा और ओस् के परे होने पर

द्वितीयाटौस्स्वेनः से एन आदेश होता है, उसी तरह से स्त्रीलिङ्ग में भी **एन** आदेश होकर टाप् करके स्वादि कार्य करने पर इसके रूप बनते हैं जो नीचे रूपतालिका में जोड़े गये हैं।

मकारान्त-इदम्-शब्द के स्त्रीलिङ्ग में रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	इयम्	इमे	इमाः
द्वितीया	इमाम्, एनाम्	इमे, एने	इमाः, एनाः
तृतीया	अनया, एनया	आभ्याम्	आभिः
चतुर्थी	अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः
पञ्चमी	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
षष्ठी	अस्याः	अनयोः, एनयोः	आसाम्
सप्तमी	अस्याम्	अनयोः, एनयोः	आसु

त्यद् यद्, तद्, एतद् में भी विभक्ति के आने के बाद **त्यदादीनामः** से अत्व, **अतो गुणे** पररूप करके **अजाद्यतष्टाप्** से टाप्, अनुबन्धलोप और सवर्णदीर्घ कर सर्वनामसंज्ञा करके ये शब्द आबन्त सर्वनाम त्या, या, ता, एता बन जाते हैं। त्या, ता और एता में सु के परे रहते **तदोः सः सावनन्त्ययोः** से सत्व और एसा में सकार को षत्व भी होता है। अतः **स्या त्ये त्याः, या ये याः, सा ते ताः, एषा एते एताः** इत्यादि रूप बनते हैं।

वाच्-शब्द का अर्थ है वाणी। चकारान्त स्त्रीलिङ्ग वाच् से सु आदि विभक्तियों के आने के बाद अजादिविभक्ति के परे रहने पर तो केवल वर्णसम्मेलन ही होगा किन्तु हलादिविभक्ति के परे वाच् की पदसंज्ञा और चकार के स्थान पर **चोः कुः** से कुत्व करके स्थानी में प्रथम चकार के स्थान पर आदेश में प्रथम ककार आदेश होता है। वाच् से वाक् बनने के बाद **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व करके गकार आदेश हो जाता है, जैसे- वाग्भ्याम्, वाग्भ्यः आदि। किन्तु सु में सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो** लोप होने के बाद अवसान के परे रहने पर **वाऽवसाने** से विकल्प से चर्त्व होकर एक पक्ष में ककारान्त और एक पक्ष में गकारान्त रूप बनेंगे। इसी प्रकार सुप् के परे रहने पर ककार से परे सुप् के सकार का **आदेशप्रत्यययोः** षत्व होकर क्+ष् का संयोग होने पर क्ष् बन जाता है। फलतः **वाक्षु** ऐसा रूप बन जाता है।

चकारान्त-स्त्रीलिङ्ग वाच्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वाक्, वाग्	वाचौ	वाचः
द्वितीया	वाचम्	वाचौ	वाचः
तृतीया	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
चतुर्थी	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
पञ्चमी	वाचः	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
षष्ठी	वाचः	वाचोः	वाचाम्
सप्तमी	वाचि	वाचोः	वाक्षु
सम्बोधन	हे वाक्, हे वाग्	हे वाचौ	हे वाचः

अप्-शब्द जल का वाचक है और नित्य बहुवचनान्त है।

आपः। अप् से प्रथमा का बहुवचन जस् आया। **अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृ-**

तकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३६२. अपो भि ७।४।४८॥

अपस्तकारो भादौ प्रत्यये। अद्भिः। अद्भ्यः। अद्भ्यः। अपाम्। अप्सु। दिक्, दिग्। दिशौ। दिशः। दिग्भ्याम्।

त्यदादिष्विति दृशेः क्विन्विधानादन्यत्रापि कुत्वम्। दृक्, दृग्। दृशौ। दृग्भ्याम्। त्विट्, त्विड्। त्विषौ। त्विड्भ्याम्। ससजुषो रुरिति रुत्वम्। सजूः। सजुषौ। सजूर्भ्याम्। आशीः, आशिषौ। आशीर्भ्याम्।

असौ। उत्वमत्वे। अमू। अमूः। अमुया। अमूभ्याम् ३। अमूभिः। अमुष्यै। अमूभ्यः२। अमुष्याः। अमुयोः२। अमूषाम्। अमुष्याम्। अमूषु।

इति हलन्तस्त्रीलिङ्गाः॥९॥

होतृपोतृप्रशास्तृणाम् से उपधा को दीर्घ होकर **आप्+अस्** बना। वर्णसम्मेलन और सकार को रुत्वविसर्ग होकर **आपः** सिद्ध हुआ।

अपः। अप् से द्वितीया का वहुवचन शस्, अनुबन्धलोप, **अप्+अस्** बना। वर्णसम्मेलन, सकार को रुत्वविसर्ग करके **अपः** सिद्ध हुआ।

३६२- **अपो भि**। अपः षष्ठ्यन्तं, भि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अच उपसर्गात्तः** से तः की अनुवृत्ति आती है।

भकारादि प्रत्यय के परे होने पर अप् शब्द को तकार अन्तादेश होता है।

अलोऽन्त्यस्य की उपस्थिति से अन्त्य वर्ण पकार के स्थान पर तकार आदेश हो जाता है।

अद्भिः। अप्-शब्द से भिस्, **अपो भि** से पकार के स्थान पर तकार आदेश होने पर **अत्+भिस्** बना। **झलां जशोऽन्ते** से जश् आदेश के रूप में दकार होकर **अद्+भिस्**, वर्णसम्मेलन होकर **अद्भिः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **अद्भ्यः** भी बन जाता है।

अपाम्। अप् से आम्, वर्णसम्मेलन करके **अपाम्** और सुप् में **अप्+सु**, वर्णसम्मेलन होकर **अप्सु** सिद्ध हुआ।

हे आपः। सम्बोधन में प्रथमा के रूप के साथ हे का पूर्वप्रयोग किया जाता है।

दिक्, दिग्। दिशा। **अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्ट्रत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम्** से क्विन् प्रत्ययान्त **दिश्** शब्द का निपातन हुआ है। क्विन् होने के कारण सु और हलादिविभक्ति के परे **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** से कुत्व होता है। कुत्व होने से पहले शकारान्त होने के कारण **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजश्छषां षः** से षत्व और पकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर डकार होता है। डकार के स्थान पर कुत्व होकर गकार और वैकल्पिक चर्त्व होकर **दिक्, दिग्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं। आगे अजादि विभक्ति के परे होने पर शकार का वर्णसम्मेलन होगा और हलादिविभक्ति के परे षत्व, डत्व, कुत्व होगा, जिससे- दिशौ, दिशः, दिशम्, दिशा, दिग्भ्याम्, दिग्भिः, दिशे, दिग्भ्यः, दिशः, दिशोः, दिशाम्, दिशि, दिक्षु, हे दिक्-दिग्, हे दिशौ, हे दिशः! ये रूप सिद्ध होते हैं।

त्यदादिष्विति दृशेः क्विन्विधानादन्यत्रापि कुत्वम्। त्यद् आदि उपपद रहते दृश्

धातु से क्विन् का विधान किया गया है, अतः अन्यत्र अर्थात् त्यद् आदि के उपपद न रहने पर भी इसको कुत्व हो जाता है। तात्पर्य यह है कि **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** का अर्थ **क्विन्प्रत्ययान्त शब्द** ऐसा न होकर **जिस धातु से क्विन् प्रत्यय का विधान किया जाता है, उसका** यह अर्थ माना गया है। त्यद् आदि के उपपद रहने पर दृश् धातु से क्विन् का विधान किया गया है। यद्यपि केवल दृश् से क्विन् का विधान नहीं होता है तथापि जिस धातु से किसी स्थिति में कभी क्विन् का विधान किया गया हो उसको भी कुत्व हो जाता है। अतः दृश् को इस सूत्र से कुत्व किया जाता है जिससे **तादृश्** की तरह इसके रूप तो- दृक्, दृग्, दृशौ, दृशः, दृशम्, दृशौ, दृशः, दृशा, दृग्भ्याम्, दृग्भिः, दृशे, दृग्भ्यः, दृशः, दृशोः, दृशाम्, दृशि, दृशोः, दृक्षु, हे दृक्, हे दृग् बनते हैं। **दृश्** का अर्थ है- आँख या दृष्टि।

त्विट्, त्विड्। कान्ति। **त्विष्** धातु से क्विप् प्रत्यय होकर **त्विष्** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि विभक्तियाँ आती हैं। षकारान्त होने से इसके सभी रूप पुँल्लिङ्ग **रत्नमुष्** की तरह त्विट्, त्विड्, त्विषौ, त्विषः, त्विषम्, त्विषा, त्विड्भ्याम्, त्विड्भिः, त्विषे, त्विड्भ्यः, त्विषः, त्विषोः, त्विषाम्, त्विषि, त्विट्त्सु-त्विट्सु, हे त्विट्, हे त्विषौ, हे त्विषः! बनते हैं।

सजूः। मित्र। सह जुषते=सेवते इति सजूः। **जुष्** धातु से सजुष् सिद्ध हुआ है। उससे सु विभक्ति, उसका लोप, **ससजुषो रुः** से रु होने पर **सजुर्** बना। **र्वोरुपधाया दीर्घ इकः** से दीर्घ होकर **सजूर्** बना। रेफ का विसर्ग, **सजूः**। अजादिविभक्ति के परे केवल वर्णसम्मेलन और हलादिविभक्ति के परे होने पर रुत्व और दीर्घ होकर इसके रूप सिद्ध होते हैं। सजुषौ, सजुषः, सजुषम्, सजुषा, सजूर्भ्याम्, सजूर्भिः, सजुषे, सजूर्भ्यः, सजुषः, सजुषोः, सजुषाम्, सजुषि, सजूःषु-सजूर्षु, हे सजूः!

आशीः। आशीर्वाद। **आ** पूर्वक **शास्** धातु से क्विप्, सर्वापहार, इत्व, षत्व करके आशिष् सिद्ध हुआ है। उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु विभक्ति, उसका लोप। प्रातिपदिकसंज्ञा के पहले **शासिवसिघसीनां च** से किये गये षत्व **ससजुषो रुः** की दृष्टि में असिद्ध होने के कारण **ससजुषो रुः** से रुत्व करके **आशिर्** बना। पदान्त में **र्वोरुपधाया दीर्घ इकः** से दीर्घ होकर **आशीर्** बना। रेफ का विसर्ग हुआ, **आशीः**। अजादिविभक्ति के परे होने पर **आशिष्** के षकार का आगे वाले वर्ण के साथ वर्णसम्मेलन और हलादिविभक्ति के परे होने पर रुत्व और दीर्घ होकर- आशिषौ, आशिषः, आशिषम्, आशिषा, आशीर्भ्याम्, आशीर्भिः, आशिषे, आशीर्भ्यः, आशिषः, आशिषोः, आशिषाम्, आशिषि, आशीःषु-आशीर्षु, हे आशीः! ये रूप सिद्ध होते हैं।

असौ। अदस् शब्द से पुँल्लिङ्ग की तरह **असौ** सिद्ध होता है।

अमूः। अदस् से औ और औट् में, त्यदाद्यत्व, पररूप, टाप्, सवर्णदीर्घ करके **अदा+औ** बना। **औङ आपः** से औ के स्थान पर शी आदेश होकर गुण करके **अदे** बना। **अदसोऽसेर्दादु दो मः** से ऊकार और मकार आदेश होकर **अमू** सिद्ध हुआ।

अमू। जस् और शस् अत्व, पररूप, टाप्, सवर्णदीर्घ करके **अदा+अस्** बना। सवर्णदीर्घ होकर **अदास्** बना। **अदसोऽसेर्दादु दो मः** से ऊत्व और मत्व होकर तथा सकार को रुत्व और विसर्ग होकर **अमूः** सिद्ध हुआ।

ध्यान रहे कि अदस् शब्द के स्त्रीलिङ्ग में अत्व और पररूप करने पर टाप् और सवर्णदीर्घ होकर **अदा** बनता है। उसके बाद आगे की प्रक्रिया होती है। उत्वमत्व की प्रक्रिया में ह्रस्व वर्ण के स्थान पर ह्रस्व उकार और दीर्घ वर्ण के स्थान पर दीर्घ ऊकार आदेश होता है।

पुँल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में होने वाले अन्तर की स्पष्टता को समझना जरूरी है। स्त्रीलिङ्ग में **औङ आपः, आङि चापः, सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च, ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** ये सूत्र अधिक लगते हैं।

अमूम्। **अदा+अम्,** पूर्वरूप करके **अदाम्,** उत्वमत्व करके **अमूम्** सिद्ध होता है।

अमुया। अदा+टा, **आङि चापः** से एकार आदेश, **अदे+आ,** अय् आदेश, **अदया,** उत्वमत्व, **अमुया।**

अमूभ्याम्। अदा+भ्याम्, उत्वमत्व करके **अमूभ्याम्।** इसी तरह **अमूभिः, अमूभ्यः** भी बनते हैं।

अमुष्यै। अदा+ए, सर्वनामसंज्ञक होने के कारण **सर्वनामः स्याड्ढ्रस्वश्च** से ह्रस्व और स्याट् का आगम करके **अद+स्या+ए** बना। **स्या+ए** में वृद्धि करके **स्यै** और उत्वमत्व करके अमुस्यै, षत्व करके **अमुष्यै** सिद्ध हुआ।

अमुष्याः। ङसि और ङस् के परे होने पर अदा+अस्, स्याट् और ह्रस्व, सवर्णदीर्घ, उत्वमत्व करके सकार का रुत्वविसर्ग करके **अमुष्याः** बन जाता है।

अमुयोः। ओस् में **अदा+ओस्, आङि चापः** से एकार आदेश, **अदे+ओस्,** अय् आदेश करके **अदयोस्,** उत्वमत्व करके **अमुयोस्,** सकार को रुत्वविसर्ग करके **अमुयोः।**

अमूषाम्। अदा+आम्, सुट्, अदा+साम्, ऊत्वमत्व करके सकार को षत्व करके **अमूषाम्** सिद्ध होता है।

अमुष्याम्। अदा+इ, **ङेराम्नद्याम्नीभ्यः** से आम् आदेश, स्याट्, ह्रस्व करके **अद+स्याम्,** उत्वमत्व करके **अमुष्याम्।**

अमूषु। अदा+सु, **ऊत्व, मत्व, षत्व** करके **अमूषु।**

सकारान्त अदस्-शब्द के स्त्रीलिङ्ग में रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	असौ	अमू	अमूः
द्वितीया	अमूम्	अमू	अमूः
तृतीया	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
चतुर्थी	अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
पञ्चमी	अमुष्याः	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
षष्ठी	अमुष्याः	अमुयोः	अमूषाम्
सप्तमी	अमुष्याम्	अमुयोः	अमूषु

परीक्षा

नोटः- प्रकरण छोटा है, अतः हम यहाँ पर परीक्षा में केवल **५०** अंक ही दे रहे हैं। सभी प्रश्न **५-५** अंक के हैं।

१. गिर् और पुर् शब्द के सभी रूप बनायें।

२. तद्, सर्वा और इदम् शब्दों के रूप लिखें।

३. वाच् शब्द में हलादिविभक्ति के परे होने पर जैसे रूप बनते हैं, उनकी सिद्धि करें।

४. पुँल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में अदस् शब्द के रूपों का अन्तर सूत्रप्रदर्शन पूर्वक स्पष्ट करें।

५ दिश्, दृश् और त्विष् के रूप लिखें।
६. उपानह् शब्द के हलादिविभक्ति के रूपों की सिद्धि करें।
७. अप् शब्द के सभी रूपों की सिद्धि दिखायें।
८. चतुर् शब्द के पुँल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग के अन्तर को स्पष्ट करें।
९. हलन्तस्त्रीलिङ्ग के षकारान्त शब्दों के रूप लिखें।
१०. हलन्तस्त्रीलिङ्ग के शब्दों का प्रयोग करके दस वाक्य बनायें।

यहाँ पर छात्रों को एक निर्देश देना चाहता हूँ कि लिखकर याद करना अधम प्रक्रिया मानी गई है, अतः साधनी आदि कभी लिखकर याद न करें किन्तु याद हो जाने के बाद आप अपनी पुस्तिका में लिख सकते हैं। आप अलग-अलग पुस्तिकाओं में एक क्रम से सूत्र, शब्दों के रूप और विशेष याद रखने योग्य बातें नोट कर सकते हैं। याद होने के बाद लिखने से वह विषय सुदृढ़ हो जाता है। प्रतिदिन एक घण्टा पूर्वपठित विषयों की आवृत्ति के लिए जरूर लगायें।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का
हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ हलन्तनपुंसकलिङ्गाः

स्वमोर्लुक्। दत्वम्। स्वनडुत्, स्वनडुद्। स्वनडुही। **चतुरनडुहोरित्याम्।**
स्वनड्वांहि। पुनस्तद्वत्। शेषं पुंवत्। वाः। वारी। वारि। वार्भ्याम्।
चत्वारि। किम्। के। कानि। इदम्। इमे। इमानि।

वार्तिकम्- **अन्वादेशे नपुंसके वा एनद्वक्तव्यः।**
एनत्, एने, एनानि। एनेन। एनयोः।
अहः। **विभाषा ङिश्योः।** अह्नी, अहनी। अहानि।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **हलन्तनपुंसकलिङ्ग** प्रारम्भ कर रहे हैं।

स्वनडुत्, स्वनडुद्। अच्छे बैल वाला कुल। **सु+अनडुह्=स्वनडुह्।** नपुंसकलिङ्ग में **सुडनपुंसकस्य** से सर्वनामस्थानसंज्ञा नहीं होती किन्तु **शि सर्वनामस्थानम्** से जस् और शस् के स्थान पर होने वाले शि की सर्वनामस्थानसंज्ञा हो जाती है। सर्वनामस्थानसंज्ञा के अभाव में नुम्, आम् आदि भी नहीं होते हैं। अतः सु के **स्वमोर्नपुंसकात्** से लोप होने के बाद प्रत्ययलक्षण से पदसंज्ञा करके **वसुस्रंस्वनडुहां दः** से हकार के स्थान पर दकार आदेश होता है और दकार के स्थान पर **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व होकर **स्वनडुत्, स्वनडुद्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। अम् में भी यही रूप बनता है।

स्वनडुही। औं के स्थान पर **नपुंसकाच्च** से **शी** होकर **स्वनडुह्+ई**, वर्णसम्मेलन करके **स्वनडुही** सिद्ध होता है। औट् में भी यही रूप बनता है।

स्वनड्वांहि। जस् और शस् के स्थान पर शि आदेश हुआ, उसकी सर्वनामस्थानसंज्ञा हुई और **चतुरनडुहोरामुदात्तः** से आम् तथा **नपुंसकस्य झलचः** से नुम् होकर **अनडु+आन्+शि** बना। यण्, नकार को अनुस्वार और वर्णसम्मेलन करके **स्नड्वांहि** सिद्ध हुआ। अब आगे अजादिविभक्ति के परे होने पर केवल वर्णसम्मेलन और हलादिविभक्ति के परे दत्व करके पुँल्लिङ्ग की तरह- स्वनडुहा, स्वनडुद्भ्याम्, स्वनडुद्भिः, स्वनडुहे, स्वनडुद्भ्यः, स्वनडुहः, स्वनडुहोः, स्वनडुहाम्, स्वनडुहि, स्वनडुत्सु, हे स्वनडुत् ये रूप सिद्ध होते हैं।

वाः। जैसे अजन्त में वारि-शब्द जल का वाचक है, उसी प्रकार हलन्त में वार्-शब्द भी जल का ही वाचक है। वार् से सु आया, अनुबन्धलोप, **स्वमोर्नपुंसकात्** से सु का लोप, और रेफ का विसर्ग करके **वाः** बन गया।

वारी। औ, **नपुंसकाच्च** से **शी,** अनुबन्धलोप, वर्णसम्मेलन, वारी।

वारि। जस्, अनुबन्धलोप, **जश्शसोः शि** से शि आदेश, अनुबन्धलोप, **वार्+इ** में वर्णसम्मेलन, **वारि।**

इसी प्रकार द्वितीया में भी **वाः, वारी, वारि।**

तृतीया से अजादिविभक्ति में वर्णसम्मेलन और हलादिविभक्ति में रेफ का ऊर्ध्वगमन होकर निम्नलिखितानुसार रूप सिद्ध होंगे।

रेफान्त-नपुंसकलिङ्ग वार्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वाः	वारी	वारि
द्वितीया	वाः	वारी	वारि
तृतीया	वारा	वार्भ्याम्	वार्भिः
चतुर्थी	वारे	वार्भ्याम्	वार्भ्यः
पञ्चमी	वारः	वार्भ्याम्	वार्भ्यः
षष्ठी	वारः	वारोः	वाराम्
सप्तमी	वारि	वारोः	वार्षु
सम्बोधन	हे वाः!	हे वारी!	हे वारि!

चत्वारि। चतुर् शब्द से केवल बहुवचन के ही रूप होते हैं। जस् और शस् के स्थान पर शि आदेश, अनुबन्धलोप, **चतुरनडुहोरामुदात्तः** से आम्, **चतु+आर्** में यण्, **चत्वार्+इ,** वर्णसम्मेलन **चत्वारि।** तृतीया से सप्तमी तक पुँल्लिङ्ग के समान रूप होते हैं। **चत्वारि, चत्वारि, चतुर्भिः, चतुर्भ्यः, चतुर्भ्यः, चतुर्ण्णाम्-चतुर्णाम्, चतुर्षु।**

किम्। किम् से सु विभक्ति और उसका **स्वमोर्नपुंसकात्** से लुक् हुआ। अतः विभक्ति परे नहीं मिली, इसलिए **किमः कः** से क आदेश नहीं हुआ, **किम्।**

के। किम् से औ, उसके स्थान पर शी आदेश, अनुबन्धलोप, विभक्ति परे है, अतः **किमः कः** से क आदेश, क+ई में गुण, **के।**

कानि। किम् से जस्, उसके स्थान पर **जश्शसोः शिः** से **शि** आदेश, अनुबन्ध लोप, विभक्ति के परे होने पर क आदेश, अजन्त के समान **ज्ञानानि** के जैसे नुम्, दीर्घ होकर कानि रूप सिद्ध होता है। द्वितीया में भी यही रूप बनेंगे। तृतीया से सप्तमी तक सर्वशब्द के समान पुँल्लिङ्ग के जैसे रूप बनेंगे।

मकारान्त-किम्-शब्द के नपुंसकलिङ्ग में रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	किम्	के	कानि
द्वितीया	किम्	के	कानि
तृतीया	केन	काभ्याम्	कैः
चतुर्थी	कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
पञ्चमी	कस्मात्, कस्माद्	काभ्याम्	केभ्यः
षष्ठी	कस्य	कयोः	केषाम्
सप्तमी	कस्मिन्	कयोः	केषु

इदम्। इदम् से सु, उसका **स्वमोर्नपुंसकात्** से लुक्, इदम्। विभक्ति के लुक् हो जाने से **इदमो मः** और **त्यदादीनामः** नहीं लगे।

इमे। इदम् से औ, शी आदेश, त्यदादि-अत्व, **दश्च** से मकार आदेश, इम+ई में गुण करके **इमे** बनाइये।

इमानि। इदम् से जस्, शि आदेश, अत्व, मत्व, ज्ञानानि के जैसे नुम्, उपधादीर्घ आदि करके **इमानि** बन जाता है। इसी प्रकार द्वितीया में भी **इदम्, इमे, इमानि।** तृतीया से सप्तमी तक तो पुँल्लिङ्ग के समान ही रूप बनते हैं।

मकारान्त-इदम्-शब्द के नपुंसकलिङ्ग में रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	इदम्	इमे	इमानि
द्वितीया	इदम्	इमे	इमानि
तृतीया	अनेन	आभ्याम्	एभिः
चतुर्थी	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पञ्चमी	अस्मात्, अस्माद्	आभ्याम्	एभ्यः
षष्ठी	अस्य	अनयोः	एषाम्
सप्तमी	अस्मिन्	अनयोः	एषु

अन्वादेशे नपुंसके वा एनद्वक्तव्यः। यह वार्तिक है। **अन्वादेश में नपुंसकलिङ्ग में द्वितीया, टा और ओस् के परे रहने पर इदम् और एतद् शब्द के स्थान पर एनत् आदेश विकल्प से होता है।**

एनत्, एने, एनानि, एनेन, एनयोः। इदम् शब्द के अन्वादेश में **एनत्** आदेश होकर अम् का लुक करके विभक्ति परे न मिलने के कारण अत्व नहीं होता, अतः **एनत्** ही रह जाता है। औट् में शी आदेश, तकार के स्थान पर अत्व और पररूप होकर **एन+ई** गुण होकर **एने** सिद्ध हो जाता है। शस् के स्थान पर शी, एनत् आदेश, अत्व, पररूप, नुम् और दीर्घ करके **एनानि।** टा में एनत् आदेश, अत्व, पररूप, इन आदेश, गुण करके **एनेन** और ओस् में यही प्रक्रिया करके **ओसि च** से एत्व ओर अय् आदेश करके **एनयोः** सिद्ध होता है।

अहः। दिन। अहन्+सु, **स्वमोर्नपुंसकात्** से सु का लुक् करके **रोऽसुपि** से नकार के स्थान पर रुत्व करके **अहर्** बना। रेफ का विसर्ग, **अहः।**

अह्नी, अहनी। अहन् से औ, उसके स्थान पर **नपुंसकाच्च** से **शी** आदेश, उसके परे रहने पर **विभाषा ङिश्योः** से हकारोत्तरवर्ती अकार का वैकल्पिक लोप करने पर **अह्न्+ई** बना। वर्णसम्मेलन करके **अह्नी** सिद्ध हुआ। लोप न होने के पक्ष में **अहन्+ई** है, वर्णसम्मेलन होकर **अहनी** बन गया। इस तरह दो रूप सिद्ध हुए।

अहानि। जस् और शस् के स्थान पर शि आदेश होने पर सर्वनामस्थानसंज्ञा, उपधादीर्घ करके **अहानि** सिद्ध हो जाता है।

अह्ना। अहन् से तृतीया के एकवचन में टा, **अल्लोपोऽनः** से अकार का लोप होकर **अह्न्+आ,** वर्णसम्मेलन होकर **अह्ना** सिद्ध हुआ।

रुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

३६३. अहन् ८।२।६८।।

अहन्नित्यस्य रुः पदान्ते। अहोभ्याम्।

दण्डि। दण्डिनी। दण्डीनि। सुपथि। टेर्लोपः। सुपथी। सुपन्थानि।

ऊर्क्, ऊर्ग्। ऊर्जी, ऊर्न्जि। नरजानां संयोगः।

तत्। ते। तानि। यत्। ये। यानि। एतत्। एते। एतानि।

गवाक्, गवाग्। गोची। गवाञ्चि। पुनस्तद्वत्। गोचा। गवाग्भ्याम्।

शकृत्। शकृती। शकृन्ति। ददत्।।

....

३६३- **अहन्।** अहन् लुप्तषष्ठीकम् एकपदमिदं सूत्रम्। **ससजुषो रुः** से **रुः** तथा **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से **अन्ते** की अनुवृत्ति आती है। **पदस्य** का अधिकार आता है। **अलोऽन्त्यस्य** भी उपस्थित है।

पदान्त में अहन् के नकार के स्थान पर रु आदेश होता है।

अहोभ्याम्। अहन् से भ्याम्, **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से भ्याम् के परे होने पर पूर्व की पदसंज्ञा करके **अहन्** से नकार के स्थान पर रु आदेश करके **अहर्+भ्याम्** बना। रु के स्थान पर **हशि च** से उत्व और **आद्गुणः** से गुण होकर **अहोभ्याम्** सिद्ध हुआ। इसी तरह **अहोभिः, अहोभ्यः** आदि की सिद्धि होती है। अजादिविभक्ति के परे **अल्लोपोऽनः** से अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन और ङि के परे **विभाषा ङिश्योः** से वैकल्पिक लोप करके निम्नानुसार रूप सिद्ध होते हैं-

नकारान्त-अहन्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
द्वितीया	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
तृतीया	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
चतुर्थी	अह्ने	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
पञ्चमी	अह्नः	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
षष्ठी	अह्नः	अह्नोः	अह्नाम्
सप्तमी	अह्नि, अहनि	अह्नोः	अहःसु, अहस्सु
सम्बोधन	हे अहः!	हे अह्नी!, हे अहनी!	हे अहानि!

दण्डि। दण्ड वाला कुल। नकारान्त दण्डिन्-शब्द से सु, उसका लुक्, नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप, **दण्डि।**

दण्डिनी। दण्डिन् से औ, शी आदेश, अनुबन्धलोप, वर्णसम्मेलन, **दण्डिनी।**

दण्डीनि। दण्डिन् से जस्, शि आदेश, अनुबन्धलोप, वर्णसम्मेलन, उपधादीर्घ होकर **दण्डीनि** सिद्ध होता है। इसी प्रकार द्वितीया में भी **दण्डि, दण्डिनी, दण्डीनि।** तृतीया से सप्तमी तक हलादिविभक्ति के परे रहने पर **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदसंज्ञा करके **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नकार का लोप और अजादिविभक्ति में केवल वर्णसम्मेलन

करके निम्नलिखित रूप बनते हैं। सम्बोधन में **न लुमताङ्गस्य** को अनित्य मानने से दो रूप बनते हैं।

नकारान्त-दण्डिन्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	दण्डि	दण्डिनी	दण्डीनि
द्वितीया	दण्डि	दण्डिनी	दण्डीनि
तृतीया	दण्डिना	दण्डिभ्याम्	दण्डिभिः
चतुर्थी	दण्डिने	दण्डिभ्याम्	दण्डिभ्यः
पञ्चमी	दण्डिनः	दण्डिभ्याम्	दण्डिभ्यः
षष्ठी	दण्डिनः	दण्डिनोः	दण्डिनाम्
सप्तमी	दण्डिनि	दण्डिनोः	दण्डिषु
सम्बोधन	हे दण्डि, हे दण्डिन्	हे दण्डिनी	हे दण्डीनि

सुपथि। सुन्दर मार्ग वाला नगर। सुपथिन्-शब्द से सु, उसका लुक् होकर नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होकर **सुपथि** सिद्ध होता है।

सुपथी। सुपथिन् शब्द से औ, शी आदेश, सर्वनामस्थानसंज्ञा न होने के कारण भसंज्ञा करके **भस्य टेर्लोपः** से टिसंज्ञक इन्-भाग का लोप करके **सुपथ्+ई**, वर्णसम्मेलन होकर **सुपथी** सिद्ध हुआ।

सुपन्थानि। सुपथिन् से जस्, शि आदेश, सर्वनामस्थानसंज्ञा, **इतोऽत् सर्वनामस्थाने** से इकार के स्थान पर अकार आदेश, **थो न्थः** से थकार के स्थान पर **न्थ्** आदेश करके **सुपन्थन्+ई** बना। उपधादीर्घ और वर्णसम्मेलन करके **सुपन्थानि** सिद्ध हुआ। इसी तरह अम्, औट्, शस् में भी **सुपथि, सुपथी, सुपन्थानि** बनते हैं। अब आगे अजादिविभक्ति के परे होने पर भसंज्ञा करके **भस्य टेर्लोपः** से टि का लोप और वर्णसम्मेलन तथा हलादिविभक्ति के परे होने पर पदसंज्ञा करके **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नकार का लोप करने पर निम्नानुसार के रूप सिद्ध होते हैं-

नकारान्त सुपथिन्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुपथि	सुपथी	सुपन्थानि
द्वितीया	सुपथि	सुपथी	सुपन्थानि
तृतीया	सुपथा	सुपथिभ्याम्	सुपथिभिः
चतुर्थी	सुपथे	सुपथिभ्याम्	सुपथिभ्यः
पञ्चमी	सुपथः	सुपथिभ्याम्	सुपथिभ्यः
षष्ठी	सुपथः	सुपथोः	सुपथाम्
सप्तमी	सुपथि	सुपथोः	सुपथिषु
सम्बोधन	हे सुपथि, हे सुपथिन्	हे सुपथी	हे सुपन्थानि!

ऊर्क्, ऊर्ग्। बल या तेज। **ऊर्ज्** धातु से क्विप् प्रत्यय होकर **ऊर्ज्** सिद्ध होता है। उससे सु, उसका लुक्, जकार को **चोः कुः** से कुत्व होकर गकार और गकार के स्थान पर वैकल्पिक चर्त्व करके **ऊर्क्** और **ऊर्ग्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं। **रात्सस्य** के नियमानुसार रेफ से परे सकार का ही लोप होता है, अन्य का नहीं। अतः यहाँ **ज** का लोप नहीं होता।

ऊर्जी। ऊर्ज् से औ, शी आदेश, वर्णसम्मेलन करके **ऊर्जी** सिद्ध हुआ।

ऊर्न्जि। ऊर्ज् से जस्, शी आदेश, **नपुंसकस्य झलचः** से नुम् आगम, नकार ऊकार के बाद और रेफ से पहले बैठा, **ऊन्र्ज्+इ**, वर्णसम्मेलन होकर **ऊर्न्जि** सिद्ध हुआ। इसमें नकार, रकार और जकार का संयोग है। इसी तरह द्वितीया के भी रूप बनते हैं। तृतीया से अजादि विभक्ति के परे होने पर केवल वर्णसम्मेलन और हलादिविभक्ति के परे होने पर पदसंज्ञा होकर **चोः कुः** से कुत्व होने पर गकार आदेश होकर **ऊर्जा, ऊर्ग्भ्याम्, ऊर्ग्भिः, ऊर्जे, ऊर्ग्भ्यः, ऊर्जः, ऊर्जोः, ऊर्जाम्, ऊर्जि, ऊर्क्षु, हे ऊर्क्! हे ऊर्ग्** ये रूप सिद्ध होते हैं।

तत्। सर्वनामसंज्ञक तकारान्त तत्-शब्द से सु, लुक्, **तत्।**

ते। तत्, औ, शी आदेश, विभक्ति के परे होने के कारण **त्यदादीनामः** से अकारान्तादेश, त+ई में गुण, **ते।**

तानि। तत् से जस्, शि आदेश, अत्व, ज्ञानानि के समान नुम्, उपधादीर्घ आदि करके **तानि।** द्वितीया में भी इसी प्रकार से रूप बनेंगे। तृतीया से सप्तमी तक पुँल्लिङ्ग के समान ही रूप बनेंगे। इसी प्रकार से यत्-शब्द से **यत्, ये, यानि** आदि रूप बनाइये।

गवाक्, गवाग्। गो-पूर्वक अञ्च् धातु है। **ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिग्युजिक्रुञ्चां च** से क्विन् प्रत्यय, सर्वापहार लोप होकर **गो+अञ्च्** बनता है। **अञ्च्** धातु के दो अर्थ हैं- गति और पूजा। गति अर्थ में **अनिदितां हल उपधाया क्ङिति** से ञकार के स्थानी नकार का लोप होता है जिससे **गो+अच्** बनता है और पूजा अर्थ होने पर **नाञ्चेः पूजायाम्** से नकार के लोप का निषेध होने से **गो+अञ्च्** ही रह जाता है। इसके बाद प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु आदि विभक्तियाँ आती हैं। गत्यर्थक् अञ्च् के साथ **गाम् अञ्चति गच्छतीति** अर्थात् **पृथ्वी पर या गौ के पीछे चलने वाला कुल** यह अर्थ होता है और पूजा अर्थ होने पर में **पृथ्वी या गौ की पूजा करने वाला कुल** यह अर्थ बनता है। **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में केवल गतिपक्ष के रूप बताये गये हैं जिसमें नकार का लोप हो गया है।

अब **गो+अच्** से सु प्रत्यय, उसका **स्वमोर्नपुंसकात्** से लुक्, **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** से कुत्व प्राप्त किन्तु **पूर्वत्रासिद्धम्** के नियम से असिद्ध होने के कारण **चोः कुः** से चकार के स्थान पर कुत्व होकर ककार बन गया। **गो+अक्** बना। ककार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर गकार हो जाता है। उसके बाद **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व होकर **गो+अक्, गो+अग्** ये दो रूप बन गये। **गो+अक्** और **गो+अग्** में तीन-तीन प्रकार की सन्धि प्राप्त है। **अवङ् स्फोटायनस्य** से गो के ओकार के स्थान पर विकल्प से **अवङ्** आदेश होकर **गव+अक्,** सवर्णदीर्घ होकर **गवाक्** यह एक रूप, अवङ् आदेश न होने के पक्ष में **सर्वत्र विभाषा गोः** से प्रकृतिभाव होकर **गोअक्** यह दूसरा रूप तथा उससे प्रकृतिभाव भी न होने के पक्ष में **एङः पदान्तादति** से पूर्वरूप होने से **गोऽक्** यह तीसरा रूप, इस तरह तीन रूप सिद्ध हुए। ये तो **वावसाने** से चर्त्व होने के पक्ष के रूप हुए, चर्त्व न होने के पक्ष में **गवाग्, गोअग्, गोऽग्।** इस तरह सु के परे छः रूप सिद्ध हुए। **गवाक्-गवाक्, गोअक्-गोअग्, गोऽक्-गोऽग्।**

गोची। औ के परे होने पर **औ** के स्थान पर **नपुंसकाच्च** से **शी** आदेश होकर **गो+अच्+ई** बना। नपुंसकलिङ्ग होने के कारण **शी** की सर्वनामसंज्ञा नहीं होती। अतः इसके पर रहते पूर्व की **भसंज्ञा** होकर **अचः** इस सूत्र से **अच्** के अकार का लोप हुआ तो **गोच्+ई**

बना। वर्णसम्मेलन होकर **गोची** यह एक ही रूप बना। अकार का लोप होने से **अवङ् स्फोटायनस्य, सर्वत्र विभाषा गोः** और **एङः पदान्तादति** ये सूत्र नहीं लग सके। इस तरह भसंज्ञा के स्थलों पर इसी प्रकार की बात समझनी चाहिए।

गवाञ्चि, गोअञ्चि, गोऽञ्चि। जस् के आने पर **जश्शसोः शिः** से जस् के स्थान पर **शि** आदेश हुआ। अनुबन्धलोप होकर **गो+अच्+इ** बना। नपुंसकलिङ्ग होने पर भी शि की **शि सर्वनामस्थानम्** से सर्वनामस्थानसंज्ञा होती है, अतः भसंज्ञा नहीं होती। **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से नुम्, अनुबन्धलोप होकर वह **मिदचोऽन्त्यात्परः** के नियम से अन्त्य अच् के बाद होकर- **गो+अन्+च्+इ** बना। **नश्चापदान्तस्य झलि** से अन् के नकार को अनुस्वार और चकार के परे होने पर **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से परसवर्ण होकर **ञकार** हुआ, **गो+अञ्च्+इ** बना। **अञ्च्+इ** में भी वर्णसम्मेलन होकर **अञ्चि** बना। अब **गो+अञ्चि** में तीनों सन्धियाँ अर्थात् अवङ् आदेश होकर सवर्णदीर्घ, प्रकृतिभाव और पूर्वरूप होकर **गवाञ्चि, गोअञ्चि, गोऽञ्चि** ये तीन रूप सिद्ध हुए। इस तरह से विविध प्रक्रिया ओं के द्वारा प्रथमा के तीनों वचनों में १० रूप सिद्ध हुए।

नपुंसकलिङ्ग में द्वितीया विभक्ति की प्रक्रिया प्रथमा की तरह ही होती है। अतः द्वितीया विभक्ति में भी उसी तरह दस ही रूप बने। १०+१०=२०।

गोचा। तृतीया का एकवचन टा, अनुबन्धलोप होने पर **गो+अच्+आ** बना। भसंज्ञा होने के बाद **अचः** से अकार का लोप होकर **गो+च्+आ**, वर्णसम्मेलन होकर **गोचा** यह रूप सिद्ध हुआ। अब आगे भी अजादिविभक्ति के परे रहने पर यही प्रक्रिया होगी।

गवाग्भ्याम्, गोअग्भ्याम्, गोऽग्भ्याम्। भसंज्ञा न होने के कारण **अचः** से अकार का लोप नहीं होता। **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदसंज्ञा तो होती ही है। अतः **गो+अच्+भ्याम्** में चकार को **चोः कुः** से कुत्व होकर ककार आदेश और **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर **गकार** आदेश करके **गो+अग्+भ्याम्** बन जाता है। इसके बाद तीनो सन्धि याँ अर्थात् अवङ् आदेश होकर सवर्णदीर्घ, प्रकृतिभाव और पूर्वरूप होकर **गवाग्भ्याम्, गोअग्भ्याम्, गोऽग्भ्याम्** ये तीन रूप सिद्ध होते हैं। आगे भी हलादिविभक्ति के परे होने पर यही प्रक्रिया होती है। इस तरह तृतीया विभक्ति के तीनो वचनों में ७ रूप बने। २०+७=२७।

चतुर्थी, पञ्चमी के एकवचन में क्रमशः **गोचे** और **गोचः** तथा द्विवचन में **गवाग्भ्याम्, गोअग्भ्याम्, गोऽग्भ्याम्** तथा बहुवचन में **गवाग्भ्यः, गोअग्भ्यः, गोऽग्भ्यः** इस तरह सात-सात रूप बने। ७+७=१४, प्रथमा से पञ्चमी तक २७+१४=४१।

षष्ठी के एकवचन में **गोचः**, द्विवचन में **गोचोः** और बहुवचन में **गोचाम्** ये तीन ही रूप बने। ४१+३=४४।

सप्तमी के एकवचन में **गोचि**, द्विवचन में **गोचोः** तथा बहुवचन में **गो+अच्+सु** बनने के वाद जश्त्व करके **खरि च** से चर्त्व होकर पुनः ककार ही बन जाता है। उससे परे सु के सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व होकर **क्** और **ष्** के संयोग में **क्ष्** हो जाता है, जिससे **गवाक्षु, गोअक्षु, गोऽक्षु** ये तीन रूप बनते हैं। इस तरह सप्तमी में पाँच रूप बने। ४४+५=४९।

सम्बोधन में प्रथमा की तरह ही ९ रूप बनते हैं।

गतिपक्ष में गोअञ्च् शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गवाक्, गवाग्	गोची	गवाञ्चि
	गोअक्, गोअग्		गोअञ्चि
	गोऽक्, गोऽग्		गोऽञ्चि।
द्वितीया	गवाक्, गवाग्	गोची	गवाञ्चि
	गोअक्, गोअग्		गोअञ्चि
	गोऽक्, गोऽग्		गोऽञ्चि।
तृतीया	गोचा	गवाग्भ्याम्	गवाग्भिः
		गोअग्भ्याम्	गोअग्भिः
		गोऽग्भ्याम्	गोऽग्भिः
चतुर्थी	गोचे	गवाग्भ्याम्	गवाग्भ्यः
		गोअग्भ्याम्	गोअग्भ्यः
		गोऽग्भ्याम्	गोऽग्भ्यः
पञ्चमी	गोचः	गवाग्भ्याम्	गवाग्भ्यः
		गोअग्भ्याम्	गोअग्भ्यः
		गोऽग्भ्याम्	गोऽग्भ्यः
षष्ठी	गोचः	गोचोः	गोचाम्
सप्तमी	गोचि	गोचोः	गवाक्षु
			गोअक्षु
			गोऽक्षु
सम्बोधन	हे गवाक्, हे गवाग्	हे गोची	हे गवाञ्चि
	हे गोअक्, हे गोअग्		हे गोअञ्चि
	हे गोऽक्, हे गोऽग्		हे गोऽञ्चि!

ये रूप गत्यर्थक धातु के थे। अब पूजार्थक धातु के रूप भी देखते हैं। **नाञ्चेः पूजायाम्** से नकार का लोप निषेध होने पर **गो+अञ्च्** है। प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु आदि विभक्तियाँ आती हैं।

गवाङ्, गोअङ्, गोऽङ्। गो+अञ्च् से सु विभक्ति के आने के बाद उसका **स्वमोर्नपुंसकात्** से सु का लुक्, **संयोगान्तस्य लोपः** से चकार का लोप, चकार के संयोग से नकार के स्थान पर श्चुत्व होकर ञकार हुआ था। अब चकार के हटने से **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के न्यायानुसार ञकार भी नकार के रूप में आ गया, **गो+अन्** बना। **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** से नकार के स्थान पर कुत्व होकर **ङकार** हो गया, **गो+अङ्** बना। अब तीनों सन्धियाँ अर्थात् अवङ् आदेश होकर सवर्णदीर्घ, प्रकृतिभाव और पूर्वरूप होकर **गवाङ्, गोअङ्, गोऽङ्** ये तीन रूप सिद्ध हुए।

आगे अजादिविभक्ति के परे **अचः** से अकार का लोप नहीं होगा, क्योंकि वह नकार के लोप होने पर ही लगता है। यहाँ पूजार्थक में **नाञ्चेः पूजायाम्** से नकार के लोप का निषेध हुआ है।

गवाञ्ची, गोअञ्ची, गोऽञ्ची। औ के स्थान पर **नपुंसकाच्च** से शी आदेश करके अनुबन्धलोप करने पर **गो+अञ्च्+ई=गो+अञ्ची** बना है। अब तीनों सन्धियाँ अर्थात् अवङ् आदेश होकर सवर्णदीर्घ, प्रकृतिभाव और पूर्वरूप होकर **गवाञ्ची, गोअञ्ची, गोऽञ्ची** ये तीन रूप बने।

गवाञ्चि, गोअञ्चि, गोऽञ्चि। जस् के स्थान शी आदेश, अनुबन्धलोप, नकार का लोप न होने के कारण **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातो** से नुम् भी नहीं हुआ। **नपुंसकस्य झलचः** से भी नुम् नहीं होगा क्योंकि उसके अर्थ में जिस झलन्त को नुम् का विधान किया जाता है वह झल् अच् से परे होना चाहिए। **अञ्च्** में झल् है चकार और वह ञकार रूप हल् से परे है अच् से परे नहीं है। **अञ्च्+इ** में वर्णसम्मेलन होकर **अञ्चि** बना। **गो+अञ्चि** में अब तीनों सन्धियाँ अर्थात् अवङ् आदेश होकर सवर्णदीर्घ, प्रकृतिभाव और पूर्वरूप होकर **गवाञ्चि, गोअञ्चि, गोऽञ्चि** ये तीन रूप सिद्ध हुए। इस तरह पूजार्थक **गोअञ्च्** के प्रथमा में तीन-तीन रूप होने से नौ रूप बने। इसी तरह द्वितीया में नौ रूप बनते हैं। ९+९=१८।

गवाञ्चा, गोअञ्चा, गोऽञ्चा। गो+अञ्च् से टा, अनुबन्धलोप करके तीनों सन्धियाँ अर्थात् अवङ् आदेश होकर सवर्णदीर्घ, प्रकृतिभाव और पूर्वरूप होकर **गवाञ्चा, गोअञ्चा, गोऽञ्चा** ये तीन रूप सिद्ध होते हैं।

गवाङ्भ्याम्, गोअङ्भ्याम्, गोऽङ्भ्याम्। भ्याम् के परे **गो+अञ्च्+भ्याम्** में चकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप हुआ तो **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के नियमानुसार ञकार भी नकार के रूप आ गया, **गो+अन्+भ्याम्** बना। नकार के स्थान पर **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** से कुत्व होकर **ङकार** हुआ, **गो+अङ्भ्याम्** बना। अब तीनों सन्धियाँ अर्थात् अवङ् आदेश होकर सवर्णदीर्घ, प्रकृतिभाव और पूर्वरूप होकर **गवाङ्भ्याम्, गोअङ्भ्याम्, गोऽङ्भ्याम्** ये तीन रूप सिद्ध हुए। इसी तरह **भिस्** में भी **गवाङ्भिः, गोअङ्भिः, गोऽङ्भिः** ये तीन ही रूप बनते हैं। इस तरह तृतीया में भी ९ रूप बन गये। १८+९=२७।

चतुर्थी और पञ्चमी में भी तृतीया की तरह प्रक्रिया होती है। षष्ठी के तीनों वचन में भसंज्ञा होती है। अतः तीनों वचन में तीन-तीन ही रूप बनते हैं। सप्तमी के एकवचन और द्विवचन की प्रक्रिया भी लगभग यही है। इस तरह प्रथमा के एकवचन से सप्तमी के द्विवचन तक २० वचनों में प्रत्येक में तीन तीन रूप होते हैं। सुप् में ६ रूप बनते हैं।

सुप् के परे होने पर ङकार को **ङ्णोः कुक्टुक् शरि** से वैकल्पिक कुक् का आगम और **चयो द्वितीया शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्** इस वार्तिक से ककार के स्थान पर वैकल्पिक द्वितीय वर्ण आदेश होने पर खकारयुक्त एक रूप और द्वितीयवर्ण न होने के पक्ष में ककारयुक्त एक रूप जिसमें सकार को षत्व होकर क्ष् बन जाता है और कुक् आगम न होने पर सामान्य रूप इस तरह **अवङ्** वाले के पक्ष में **गवाङ्ख्षु, गवाङ्क्षु, गवाङ्षु** ये तीन रूप होते हैं। इसी तरह प्रकृतिभाव के पक्ष में भी **गोअङ्ख्षु, गोअङ्क्षु, गोअङ्षु** तथा पूर्वरूप के पक्ष में **गोऽङ्ख्षु, गोऽङ्क्षु, गोऽङ्षु** बनते हैं। इस तरह सुप् में **नौ** रूप सिद्ध हुए किन्तु आचार्यगण द्वितीयवर्ण रूप आदेश का रूप न गिन कर के केवल ६ ही रूप गिनते हैं। इस तरह ६०+६=६६ ही रूप हुए।

पूजा-पक्ष में गोअञ्च् शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गवाङ्	गवाञ्ची	गवाञ्चि
	गोअङ्	गोअञ्ची	गोअञ्चि
	गोऽङ्	गोऽञ्ची	गोऽञ्चि।
द्वितीया	गवाङ्	गवाञ्ची	गवाञ्चि
	गोअङ्	गोअञ्ची	गोअञ्चि
	गोऽङ्	गोऽञ्ची	गोऽञ्चि।
तृतीया	गवाञ्चा	गवाङ्भ्याम्	गवाङ्भिः
	गोअञ्चा	गोअङ्भ्याम्	गोअङ्भिः
	गोऽञ्चा	गोऽङ्भ्याम्	गोऽङ्भिः
चतुर्थी	गवाञ्चे	गवाङ्भ्याम्	गवाङ्भ्यः
	गोअञ्चे	गोअङ्भ्याम्	गोअङ्भ्यः
	गोऽञ्चे	गोऽङ्भ्याम्	गोऽङ्भ्यः
पञ्चमी	गवाञ्चः	गवाङ्भ्याम्	गवाङ्भ्यः
	गोअञ्चः	गोअङ्भ्याम्	गोअङ्भ्यः
	गोऽञ्चः	गोऽङ्भ्याम्	गोऽङ्भ्यः
षष्ठी	गवाञ्चः	गवाञ्चोः	गवाञ्चाम्
	गोअञ्चः	गोअञ्चोः	गोअञ्चाम्
	गोऽञ्चः	गोऽञ्चोः	गोऽञ्चाम्
सप्तमी	गवाञ्चि	गवाञ्चोः,	गवाङ्खु, गवाङ्क्षु, गवाङ्षु
	गोअञ्चि	गोअञ्चोः,	गोअङ्खु, गोअङ्क्षु, गोअङ्षु
	गोऽञ्चि	गोऽञ्चोः,	गोऽङ्खु, गोऽङ्क्षु, गोऽङ्षु
सम्बोधन	हे गवाङ्	हे गवाञ्ची	हे गवाञ्चि
	हे गोअङ्	हे गोअञ्ची	हे गोअञ्चि
	हे गोऽङ्	हे गोऽञ्ची	हे गोऽञ्चि!

गतिपक्ष के ४९ और पूजापक्ष के ६६ मिलाकर ११५ रूप हुए। जस् और शस् में गति और पूजा दोनों पक्ष में एक समान रूप बनते हैं, अतः ६ रूप घटाकर १०९ रूप आचार्यों ने माना है।

इस शब्द के विषय में कुछ मनमोहक पद्य प्रचलित हैं-

१. प्रश्नात्मक रोचक पद्य

जायन्ते नव सौ, तथामि च नव, भ्याम्भिस्भ्यसां सङ्गमे,
षटसङ्ख्यानि, नवैव सुप्यथ जसि त्रीण्येव तद्वच्छसि।
चत्वार्यन्यवचःसु कस्य विबुधाः! शब्दस्य रूपाणि तत्
जानन्तु प्रतिभान्ति चेन्निगदितं षाण्मासिकोऽत्रावधिः॥

हे विद्वानों! यदि आप में प्रतिभा है तो हम आपको छः माह तक की अवधि तक उत्तरीय एक प्रश्न पूछते हैं। आप उस शब्द को जानने का प्रत्यन्त करें, जिसके सु, अम्, और

वैकल्पिक-नुमागमविधायकं विधिसूत्रम्

३६४. वा नपुंसकस्य ७।१।७९॥

अभ्यस्तात् परो यः शता तदन्तस्य क्लीबस्य वा नुम् सर्वनामस्थाने। ददन्ति, ददति। तुदत्।

....

सुप् में नौ-नौ, भ्याम्, भिस्, भ्यस् में छः छः, जस् और शस् में तीन-तीन तथा अन्य वचनों में चार-चार रूप बनते हैं।

इसीके उत्तर में आगे दो पद्य कहे गये हैं।

२. **गवाक्शब्दस्य रूपाणि क्लीबेऽर्चागतिभेदतः।**
असन्ध्यवङ्पूर्वरूपैर्नवाधिकशतं मतम्॥

नपुंसकलिङ्ग में गति और पूजा के भेद से तथा असन्धि अर्थात् प्रकृतिभाव, अवङ् आदेश और पूर्वरूप के कारण गोपूर्वक अञ्च् के एक सौ नौ रूप होते हैं।

३. **स्वम्सुप्सु नव षड् भादौ षट्के स्युस्त्रीणि जश्शसोः।**
चत्वारि शेषे दशके रूपाणीति विभावय॥

इस शब्द के सु, अम् और सुप् में नौ-नौ, भ्याम् भिस्, भ्यस् इन छः भकारादि प्रत्ययों के परे छः छः रूप, जस् और शस् में तीन-तीन रूप तथा शेष दसों में चार-चार रूप समझना चाहिए।

चकारान्त-शब्द के बाद अब तकारान्त शब्द का कथन करते हैं।

शकृत्। विष्ठा। तकारान्त शकृत् शब्द से सु, उसका **स्वमोर्नपुंसकात्** से लुक् करके तकार को वैकल्पिक चर्त्व करने पर **शकृत्, शकृद्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं।

शकृती। औ के स्थान शी आदेश, अनुबन्धलोप करके **शकृत्+ई,** वर्णसम्मेलन करके **शकृती** सिद्ध हो जाता है।

शकृन्ति। जस् के स्थान पर शि आदेश करके **शकृत्+इ** में **नपुंसकस्य झलचः** से नुम् होकर नकार के स्थान पर अनुस्वार और परसवर्ण करके **शकृन्ति** बनता है। इसी तरह द्वितीया में भी बनते हैं। तृतीया आदि अजादिविभक्ति के परे होने पर वर्णसम्मेलन और हलादिविभक्ति के परे तकार को **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर दकार होता है जिससे शकृता, शकृद्भ्याम्, शकृद्भिः, शकृते, शकृद्भ्यः, शकृतः, शकृतोः, शकृताम्, शकृति, शकृत्सु, हे शकृत्! ये रूप सिद्ध होते हैं। इसी तरह **यकृत्** आदि शब्दों के भी रूप होते हैं।

ददत्, ददद्। देता हुआ कुल। **(डुदाञ्)** दा धातु से शतृप्रत्यय, श्लु, द्वित्व, अभ्यासह्रस्व, आलोप आदि होकर **ददत्** सिद्ध हुआ है। उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु, उसका लुक, जश्त्व और वैकल्पिक चर्त्व करके **ददत्, ददद्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं। औ के परे होने पर शी आदेश करके अनुबन्धलोप, **ददत्+ई,** वर्णसम्मेलन होकर **ददती** बनता है।

३६४- वा नपुंसकस्य। वा अव्ययपदं, नपुंसकस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **नाभ्यस्ताच्छतुः** से **शतुः, इदितो नुम् धातोः** से **नुम्, उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से **सर्वनामस्थाने** की अनुवृत्ति आती है।

अभ्यस्तसंज्ञक से परे जो शतृ-प्रत्यय, तदन्त नपुंसकलिङ्ग को सर्वनामस्थान के परे होने पर विकल्प से नुम् का आगम होता है।

वैकल्पिकनुमागमविधायकं विधिसूत्रम्

३६५. आच्छीनद्योर्नुम् ७।१।८०॥

अवर्णान्तादङ्गात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नुम् वा शीनद्योः।
तुदन्ती, तुदती। तुदन्ति।

....

नपुंसकस्य झलचः से प्राप्त नुम् का **नाभ्यस्ताच्छतुः** से निषेध हुआ। अब विकल्प से करने के लिए इस सूत्र का आरम्भ है।

ददन्ति, ददति। ददत् से जस्, शि आदेश, **ददत्+इ** में सर्वनामस्थानसंज्ञा होकर **नपुंसकस्य झलचः** से नुम् प्राप्त उसका **उभे अभ्यस्तम्** से अभ्यस्तसंज्ञा होकर **नाभ्यस्ताच्छतुः** से निषेध होने के बाद **वा नपुंसकस्य** से वैकल्पि नुम् होकर **ददन्त्+इ** बना। नकार को अनुस्वार और परसवर्ण होकर **ददन्त्+इ** ही बना। वर्णसम्मेलन होकर **ददन्ति** सिद्ध हुआ। नुम् न होने के पक्ष में **ददति** बनता है। इसी तरह द्वितीया के रूप बनते हैं। तृतीया से अजादिविभक्ति के परे होने पर केवल वर्णसम्मेलन होता है और हलादिविभक्ति के परे तकाद को जश्त्व होकर दकार तथा सुप् के परे दकार को पुनः चर्त्व होकर रूप बनते हैं- ददता, ददद्भ्याम्, ददद्भिः, ददते, ददद्भ्यः, ददतः, ददतोः, ददताम्, ददति, ददत्सु, हे ददत्-ददद्!

तुदत्, तुदद्। दुःख देता हुआ कुल आदि। तुद् धातु से शतृ प्रत्यय होकर **तुदत्** बनता है। उससे सु, उसका लुक्, जश्त्व, वैकल्पिक चर्त्व करके उक्त रूप बनते हैं।

३६५- आच्छीनद्योर्नुम्। शी च नदी च शीनद्यौ, तयोः शीनद्योः। आत् पञ्चम्यन्तं, शीनद्योः सप्तम्यन्तं, नुम् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **नाभ्यस्ताच्छतु** से **शतुः** और **वा नपुंसकस्य** से **वा** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

अवर्णान्त अङ्ग से परे जो शतृ-प्रत्यय का अवयव, तदन्त अङ्ग को विकल्प से नुम् का आगम होता है यदि शी या नदीसंज्ञक अर्थात् ङी आदि परे हो तो।

तुदन्ती, तुदती। तुदत् से औ, उसके स्थान पर शी, अनुबन्धलोप करके **तुदत्+ई** है। **आच्छीर्नद्योर्नुम्** से शी वाले **ईकार** के परे रहने पर वैकल्पिक नुम् का आगम करके **तुदन्त्+ई** बना। नकार को अनुस्वार और परसवर्ण करके **तुदन्त्+ई** ही है। वर्णसम्मेलन होकर **तुदन्ती** सिद्ध हुआ। नुम् न होने के पक्ष में **तुदती** ही रहेगा।

तुदन्ति। जस्, शि आदेश, सर्वनामस्थानसंज्ञा, **नपुंसकस्य झलचः** से नुम् का आगम करके **तुदन्त्+इ**, नकार को अनुस्वार और परसवर्ण करके **तुदन्ति** सिद्ध हुआ। द्वितीया में भी प्रथमा की तरह रूप बनते हैं। तृतीया आदि अजादिविभक्ति के परे केवल वर्णसम्मेलन और हलादिविभक्ति के परे तकार को जश्त्व करके तुदता, तुदद्भ्याम्, तुदद्भिः, तुदते, तुदद्भ्यः, तुदतः, तुदतोः, तुदताम्, तुदति, तुदत्सु, हे तुदत्! ये रूप बन जाते हैं।

पचत्। पकाता हुआ कुल आदि। पच् धातु से शतृ प्रत्यय होकर, **पचत्** बना है। उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु, उसका लुक्, तकार को जश्त्व और वैकल्पिक चर्त्व करके **पचत्, पचद्** ये दो रूप बनते हैं।

नुमागमविधायकं विधिसूत्रम्

३६६. शप्श्यनोर्नित्यम् ७।१।८१।।

शप्श्यनोरात् परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नित्यं नुम् शीनद्योः। पचन्ती। पचन्ति। दीव्यत्। दीव्यन्ती। दीव्यन्ति। धनुः। धनुषी। **सान्तेति दीर्घः। नुम्विसर्जनीयेति षः।** धनूंषि। धनुषा। धनुर्भ्याम्। एवं चक्षुर्हविरादयः। पयः। पयसी। पयांसि। पयसा। पयोभ्याम्। सुपुम्। सुपुंसी। सुपुमांसि। अदः। विभक्तिकार्यम्। उत्वमत्वे। अमू। अमूनि। शेषं पुंवत्।

इति हलन्तनपुंसकलिङ्गाः।।१०।।

इति षड्लिङ्गप्रकरणम्।।

....

३३६- **शप्श्यनोर्नित्यम्।** शप् च श्यन् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः शप्श्यनौ, तयोः शप्श्यनोः। शप्श्यनोः षष्ठ्यन्तं, नित्यं क्रियाविशेषणं द्वितीयान्तम्। **आच्छीनद्योर्नुम्** से **आत्** और **नुम्** तथा **नाभ्यस्ताच्छतुः** से **शतुः** की अनुवृत्ति आती है।

शप् और श्यन् के अवर्ण से परे जो शतृ-प्रत्यय का अवयव तदन्त जो अङ्ग, उसको नित्य से नुम् का आगम होता है।

पचन्ती। शतृ-प्रत्यय होने के बाद बने **पचत्** से औ विभक्ति, उसके स्थान पर शी आदेश हुआ। **पचत्+ई** में **शप्श्यनोर्नित्यम्** से शी वाले ईकार के परे होने पर नुम् का आगम करके नकार को अनुस्वार और परसवर्ण करने पर **पचन्ती** यह रूप सिद्ध हुआ। जस् में **तुदन्ति** की तरह **पचन्ति** सिद्ध होता है। द्वितीया में प्रथमा की तरह रूप होते हैं। तृतीया आदि अजादिविभक्ति के परे होने पर केवल वर्णसम्मेलन और हलादिविभक्ति के परे तकार को जश्त्व करके- **पचता, पचद्भ्याम्, पचद्भिः, पचते, पचद्भ्यः, पचतः, पचतोः, पचताम्, पचति, पचत्सु, हे पचत्!** आदि रूप बनते हैं।

दिव् धातु दिवादिगणीय होने के कारण श्यन् वाला है तथा दीर्घ होकर **दीव्यत्** बना है। उससे सु आदि प्रत्ययों के आने के बाद **पचत्** की तरह ही इसके रूप बनते हैं। शी में श्यन् होने के कारण नुम् होता है। **दीव्यत्, दीव्यद, दीव्यन्ती, दीव्यन्ति। दीव्यता, दीव्यद्भ्याम्** इत्यादि।

तकारान्त के बाद अब षकारान्त का कथन प्रारम्भ होता है।

धनुः। धनु। षकारान्त धनुष् शब्द से सु, उसका लुक्, **आदेशप्रत्यययोः** से किये गये षत्व के असिद्ध होने के कारण **ससजुषो रुः** से सकार मानकर रु, उसको विसर्ग करके **धनुः** सिद्ध हुआ। **औ** के स्थान शी आदेश होकर वर्णसम्मेलन मात्र से **धनुषी** बना। जस् के स्थान पर शि आदेश होकर **धनुष्+इ** में **नपुंसकस्य झलचः** से नुम् और **सान्तमहतः संयोगस्य** से उपधादीर्घ नुम् के नकार का **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार करके **धनूंषि** बन जाता है। इसी तरह द्वितीया में भी बनते हैं। तृतीया से अजादिविभक्ति के परे होने पर केवल वर्णसम्मेलन और हलादिविभक्ति के परे होने पर **ससजुषो रुः** से रु होकर- **धनुषा, धनुर्भ्याम्, धनुर्भिः, धनुषे, धनुर्भ्यः, धनुषः, धनुषोः, धनुषाम्, धनुषि, धनुःषु-धनुष्षु, हे धनुः!** ये रूप सिद्ध होते हैं। इसी तरह **चक्षुष्, हविष्** आदि शब्दों के भी रूप जानने चाहिए।

पयः। सकारान्त पयस् शब्द दूध का वाचक है। सु, लुक्, **पयः।**

पयसी। पयस् से औ, शी, वर्णसम्मेलन, **पयसी।**

पयांसि। पयस् से जस्, शि आदेश, अनुबन्धलोप, पयस्+इ में **नपुंसकस्य झलचः** से नुम् और **सान्तमहतः संयोगस्य** से उपधादीर्घ नुम् के नकार का **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार करके **पयांसि** बन जाता है। इसी प्रकार द्वितीया में भी बनेगा। तृतीया से सप्तमी तक अजादि-विभक्ति के परे केवल वर्णसम्मेलन करना और हलादिविभक्ति के परे पयस् की **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदसंज्ञा और स्कार के स्थान पर **ससजुषोः रुः** से रुत्व और **हशि च** से उत्व और **आद्गुणः** से गुण होकर **पयोभ्याम्, पयोभिः** आदि बनाइये। सुप् के परे रहने पर हश् के अभाव में उत्व नहीं होगा।

सकारान्त-पयस्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पयः	पयसी	पयाँसि
द्वितीया	पयः	पयसी	पयाँसि
तृतीया	पयसा	पयोभ्याम्	पयोभिः
चतुर्थी	पयसे	पयोभ्याम्	पयोभ्यः
पञ्चमी	पयसः	पयोभ्याम्	पयोभ्यः
षष्ठी	पयसः	पयसोः	पयसाम्
सप्तमी	पयसि	पयसोः	पयःसु
सम्बोधन	हे पयः	हे पयसी	हे पयाँसि।

इसी प्रकार सकारान्त मनस् शब्द के भी रूप बनेंगे।

सकारान्त-मनस्-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मनः	मनसी	मनाँसि
द्वितीया	मनः	मनसी	मनाँसि
तृतीया	मनसा	मनोभ्याम्	मनोभिः
चतुर्थी	मनसे	मनोभ्याम्	मनोभ्यः
पञ्चमी	मनसः	मनोभ्याम्	मनोभ्यः
षष्ठी	मनसः	मनसोः	मनसाम्
सप्तमी	मनसि	मनसोः	मनःसु
सम्बोधन	हे मनः	हे मनसी	हे मनाँसि।

पयस्, मनस् आदि शब्द जैसे अनेक शब्दों जैसे अयस्, उरस्, ओकस्, ओजस्, चेतस्, छन्दस्, तपस्, तमस्, तेजस्, नभस्, यशस्, रक्षस्, रजस्, रेतस्, वक्षस्, वर्चस्, वयस्, शिरस्, सरस्, सहस् आदि के भी रूप आप बनायें और अभ्यास करें।

व्याकरण-शास्त्र संसार के सभी शब्दों के रूप नहीं बनाता किन्तु सूत्र आदि बनाकर एक, दो उदाहरण दे सकता है। शेष अनेक शब्दों के विषय में आप सूत्र आदि लगाकर सिद्ध कर सकें, ऐसा अभ्यास आपको व्याकरण के माध्यम से स्वयं करना होगा। अतः व्याकरण एक मार्गदर्शक है। सभी शब्दों की सिद्धि व्याकरणशास्त्र में प्रदर्शित करना तो सम्भव ही नहीं है, क्योंकि शब्दों की कोई निश्चित संख्या ही नहीं है। जीवन भर केवल

शब्दों का उच्चारण मात्र करें तो एक जीवन में एक अंश शब्द भी उच्चारित नहीं हो सकते। इतने अथाह शब्द हैं।

अत: व्याकरण के माध्यम से नियम जानकर असंख्य शब्दों को जाना जा सकता है। इसलिए कहा जाता है कि एक रूप सिद्ध करने के बाद इसी तरह के अनेक रूप बनाने की चेष्टा करें।

सुपुम्। जिस नगर या कुल में अच्छे पुरुष हों। कुल। सुपुम्स् शब्द से सु, उसका लुक्, सकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप करके **सुपुम्** बना। औ आदि अजादि के परे सकार का संयोगान्तलोप नहीं होता क्योंकि वह संयोगान्तपद नहीं है। अत: मकार को अनुस्वार करके सकार का वर्णसम्मेलन करके **सुपुंसी** बनता है। जस् में शि आदेश होकर सर्वनामस्थानसंज्ञा करके **पुंसोऽसुङ्** से **असुङ्** आदेश होकर **सुपुमस्** बना। **नपुंसकस्य झलचः** से नुम्, **सान्तमहतः संयोगस्य** से दीर्घ होकर **सुपुमान्स्+इ** बना। नकार को अनुस्वार और सकार का वर्णसम्मेलन होकर **सुपुमांसि** सिद्ध हुआ। इसी तरह द्वितीया में भी बनते हैं। तृतीया से अजादिविभक्ति के परे होने पर सुपुम्स् में मकार को अनुस्वार करके वर्णसम्मेलन करना और हलादिविभक्ति के परे होने पर सकार का संयोगान्तलोप करना होता है जिससे **सुपुंसा, सुपुम्भ्याम्, सुपुम्भिः, सुपुंसे, सुपुम्भ्यः, सुपुंसः, सुपुंसोः, सुपुंसाम्, सुपुंसि, सुपुंसु** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अदः। अदस् शब्द से सु, उसका लुक्, सकार का रुत्वविसर्ग करके **अदः** सिद्ध होता है। सु के लुक् होने से विभक्ति परे नहीं मिलता अत: **त्यदादीनामः** से अत्व नहीं होता और सान्त होने के कारण **अदसोऽसेर्दादु दो मः** से उत्वमत्व नहीं होता है।

अमू। अदस् औ, **नपुंसकाच्च** से **शी**, अदस् ई, **त्यदादीनामः** से अत्व और **अतो गुणे** से पररूप होकर **अद+ई** बना। गुण होकर **अदे** बना। **अदसोऽसेर्दादु दो मः** से ऊत्व और मत्व होकर **अमू** सिद्ध हुआ।

अमूनि। अदस्+जस्, अदस्+इ अत्व, पररूप करके **अद+इ** बना। नुम्, उपधादीर्घ करके **अदानि** बना। ऊत्व और मत्व होकर **अमूनि** सिद्ध हुआ। इसी तरह द्वितीया में भी **अदः, अमू, अमूनि** ही बनते हैं। तृतीया से सप्तमी तक के सभी रूप पुँल्लिङ्ग की तरह ही बनते हैं।

परीक्षा

अब आप परीक्षा के लिए तैयार हो जाइये। पुस्तक को कपड़े से बाँधकर रखें और पूजा करें। पुस्तिका और लेखनी लेकर बैठ जाइये। इस परीक्षा के पूर्णाङ्क ५० ही हैं। अत: तीन घण्टे में परीक्षा पूरी हो सकती है। प्रत्येक प्रश्न ५ अंक के हैं।

१- **गोअञ्च्** के सभी रूप लिखिए।

२- स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में इदम् के अन्तर को स्पष्ट करें।

३- **चोः कुः** से चकार के स्थान पर ककार आदेश ही क्यों होता है? ख्, ग्, घ्, आदि क्यों नहीं होते?

४- वारी में **स्वमोर्नपुंसकात्** से विभक्ति से लुक् क्यों नहीं हुआ?

....

५- यत्, किम् शब्द के हलन्तस्त्रीलिङ्ग एवं हलन्तनपुंसकलिङ्ग के सारे रूप लिखिये।
६- इदम्-शब्द के तीनों लिङ्गों के रूप लिखिये।
७- दण्डिन्, मनस् और पयस् शब्द के रूप लिखिये।
८- एतत्-शब्द के हलादिविभक्ति के परे जो रूप बनते हैं, उनकी सिद्धि दिखाइये।
९- अदस् एवं सुपुम्स् शब्द के रूप लिखिए।
१०- **आच्छीनद्योर्नुम्** और **शप्श्यनोर्नित्यम्** की व्याख्या करें।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथाव्ययानि

अव्ययसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

३६७. स्वरादिनिपातमव्ययम् १।१।३७॥

स्वरादयो निपाताश्च अव्ययसंज्ञाः स्युः।

स्वरादयः-

स्वर्। अन्तर्। प्रातर्। पुनर्। सनुतर्। उच्चैस्। नीचैस्। शनैस्। ऋधक्। ऋते। युगपत्। आरात्। पृथक्। ह्यस्। श्वस्। दिवा। रात्रौ। सायम्। चिरम्। मनाक्। ईषत्। जोषम्। तूष्णीम्। बहिस्। अवस्। समया। निकषा। स्वयम्। वृथा। नक्तम्। नञ्। हेतौ। इद्धा। अद्धा। सामि। वत्। ब्राह्मणवत्। क्षत्रियवत्। सना। सनत्। सनात्। उपधा। तिरस्। अन्तरा। अन्तरेण। ज्योक्। कम्। शम्। सहसा। विना। नाना। स्वस्ति। स्वधा। अलम्। वषट्। श्रौषट्। वौषट्। अन्यत्। अस्ति। उपांशु। क्षमा। विहायसा। दोषा। मृषा। मिथ्या। मुधा। पुरा। मिथो। मिथस्। प्रायस्। मुहुस्। प्रवाहुकम्। प्रवाहिका। आर्यहलम्। अभीक्ष्णम्। साकम्। सार्धम्। नमस्। हिरुक्। धिक्। अथ। अम्। आम्। प्रताम्। प्रशान्। प्रतान्। मा। माङ्। (आकृतिगणोऽयम्)।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

संस्कृत-वाङ्मय में दो प्रकार के शब्द होते हैं- विकारी और अविकारी। जो शब्द विभक्ति-वचन-प्रत्यय आदि के द्वारा विकार को प्राप्त हो जाते हैं वे विकारी हैं, जो सुबन्त, तिङन्त आदि हैं और जो शब्द सदा सभी विभक्तियों में विकारहित अर्थात् एकसमान रहते हैं वे अविकारी हैं, जैसे अपि, न, च, यदि, विना आदि। व्याकरणशास्त्र में अविकारी शब्दों को अव्यय कहा गया है। अव्यय के कुछ शब्द स्वरादिगण में लिये गये हैं तो कुछ निपात हैं। निपात उन्हें कहते हैं जो **प्रागीश्वरान्निपाताः** सूत्र से **अधिरीश्वरे** सूत्र तक के ४३ सूत्रों के द्वारा जिन शब्दों का कथन हुआ। इसके लिए आप अष्टाध्यायी देख लें।

उन शब्दों की भी अव्ययसंज्ञा की गई है जो **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः, कृन्मेजन्तः, क्त्वातोसुन्कसुनः, अव्ययीभावश्च** इन सूत्रों के कथन में आते हैं। हम इनके विषय में आगे वर्णन कर रहे हैं। अव्ययसंज्ञा के अनेक फल हैं, उनमें से अव्यय-शब्दों से आये हुए सुप्-प्रत्ययों का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् करना भी एक फल है।

३६७- स्वरादिनिपातमव्ययम्। स्वर् आदौ येषां ते स्वरादयः। स्वरादयश्च निपाताश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः स्वरादिनिपातम्। स्वरादिनिपातं प्रथमान्तम्, अव्ययं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

निपाताः-

च। वा। ह। अह। एव। एवम्। नूनम्। शश्वत्। युगपत्। भूयस्। कूपत्। कुवित्। नेत्। चेत्। चण्। कच्चित्। यत्र। नह। हन्त। माकिः। माकिम्। नकिः। नकिम्। माङ्। नञ्। यावत्। तावत्। त्वै। द्वै। न्वै। रै। श्रौषट्। वौषट्। स्वाहा। स्वधा। वषट्। तुम्। तथाहि। खलु। किल। अथो। अथ। सुष्ठु। स्म। आदह।

वार्तिकम्- **उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च।** अवदत्तम्। अहंयुः। अस्तिक्षीरा। अ। आ। इ। ई। उ। ऊ। ए। ऐ। ओ। औ। पशु। शुकम्। यथाकथाच। पाट्। प्याट्। अङ्ग। है। हे। भोः। अये। द्य। विषु। एकपदे। युत्। आतः। चादिराकृतिगणः।

....

स्वर आदि शब्द और निपातसंज्ञक शब्द अव्ययसंज्ञक होते हैं।

पाणिनीयव्याकरण में सूत्रपाठ, धातुपाठ के अतिरिक्त गणपाठ भी है जो सूत्र में आदि, प्रभृति शब्दों के द्वारा जाना जाता है। जैसे- स्वरादि, सर्वादि, चादि आदि। **स्वरादिनिपातमव्ययम्** में भी स्वर्+आदि=स्वरादि गणपाठ है। इन स्वरादिगण के शब्द और निपातसंज्ञक शब्दों की अव्ययसंज्ञा का विधान यह सूत्र करता है। स्वरादिगणपाठ में जितने शब्द दिखाये गये हैं, उतने ही स्वरादि नहीं हैं, ये तो उदाहरणमात्र हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेकों शब्द स्वरादिगण में आते हैं। अतः गणपाठ में **आकृतिगणोऽयम्** कहा गया। अर्थात् जो शब्द गणपाठ में नहीं दर्शाये जा सके किन्तु आकृति एवं व्यवहार से उस गण के जैसे लगते हैं, उन्हें भी उस गण का माना जाय।

जिनकी इस सूत्र से अव्ययसंज्ञा होती है, उन्हें अर्थ सहित दर्शाते हैं-

स्वरादयः-

स्वर्=स्वर्ग।	अन्तर्=अन्दर।	प्रातर्=सुबह।
पुनर्=दुबारा।	सनुतर्=छिपना।	उच्चैस्=ऊँचा।
नीचैस्=नीँचा।	शनैस्=धीरे से।	ऋधक्=सत्य।
ऋते=विना।	युगपत्=एकसाथ।	आरात्=दूर और समीप।
पृथक्=अलग।	ह्यस्=बीता हुआ कल।	श्वस्=आने वाला कल।
दिवा=दिन।	रात्रौ=रात में।	सायम्=शाम का समय।
चिरम्=देर तक।	मनाक्=थोड़ा सा।	ईषत्=थोड़ा।
जोषम्=चुप।	तूष्णीम्=चुप।	बहिस्=बाहर।
अवस्=बाहर।	अधस्=नीचे।	समया=समीप।
निकषा=समीप।	स्वयम्=अपने आप।	वृथा=व्यर्थ।
नक्तम्=रात्रि।	नञ्=नहीं।	हेतौ=निमित्त।
इद्धा=प्रकट।	अद्धा=वस्तुतः।	सामि=आधा।
वत्=जैसे।	ब्राह्मणवत्=ब्राह्मण जैसे।	क्षत्रियवत्=क्षत्रिय जैसे।
सना=सदा।	सनत्=सदा।	सनात्=सदा।
उपधा=भेद	तिरस्=टेढ़ा।	अन्तरा=अन्दर से।
अन्तरेण=विना।	ज्योक्=लम्बे समय तक।	कम्=जल।

शम्=सुख। सहसा=अचानक। विना=अलावा।
नाना=बगैरह। स्वस्ति=कल्याण। स्वधा=पितरों को जल देते समय उच्चार्यमाण शब्द।
अलम्=सजाना। अलम्=पर्याप्त।
वषट्। श्रौषट्। वौषट्= देवाराधन में प्रयोग किये जाते हैं। अन्यत्=अन्य, अतिरिक्त।
अस्ति=विद्यमान। उपांशु=एकान्त। क्षमा=माफी।
विहायसा=आकाश। दोषा=रात्रि। मृषा=असत्य।
मिथ्या=झूठ। मुधा=व्यर्थ। पुरा=प्राचीन समय में।
मिथो=एकान्त। मिथस्=परस्पर। प्रायस्=ज्यादातर।
मुहुस्=पुन:पुन:, बारंबार। प्रवाहुकम्=उसी समय। प्रवाहिका=समान काल।
आर्यहलम्=बलपूर्वक। अभीक्ष्णम्=निरन्तर। साकम्=साथ।
सार्धम्=साथ। नमस्=नमस्कार। हिरुक्=विना।
धिक्=धिक्कार। अथ=आरम्भ। अम्=शीघ्र।
आम्= जी हाँ। प्रताम्=ग्लानि। प्रशान्=तुल्य।
प्रतान्=तुल्य। मा=निषेध। माङ्=मत, निषेध।

(आकृतिगणोऽयम्= स्वरादि आकृतिगण है)।

निपाता:-

च= और, भी। वा=विकल्प। ह=निश्चय से कहते हैं।
अह=आश्चर्य। एव=निश्चय। एवम्=इस प्रकार से।
नूनम्=निश्चय। शश्वत्=नित्य। युगपत्=एकसाथ।
भूयस्=पुन:। कूपत्=प्रश्न या प्रशंसा में। कुवित्=बहुत।
नेत्=ऐसा न हो। चेत्=अगर। चण्=यदि।
कच्चित्=कहीं ऐसा तो? यत्र=जहाँ। नह=निश्चित निषेध।
हन्त=हर्ष प्रकट करना। माकि:=मत। माकिम्=मत।
नकि:= न कोई। नकिम्=न कोई। माङ्=निषेध।
नञ्=नहीं। यावत्=जबतक, अवधि, जितना। तावत्= तब तक, उतना।
त्वै=विशेष, वितर्क। द्वै=विकर्त। न्वै=वितर्क।
रै=अनादर। श्रौषट्। वौषट्। स्वाहा। स्वधा। वषट्= स्वरादि में देखें।
तुम्=निरादर में प्रयुक्त। तथाहि=क्योंकि, कारण कि। खलु=कथन में एक शैली।
किल=यह भी बातचीत की एक शैली है। अथो=आरम्भ, अनन्तर।
अथ=प्रारम्भ। सुष्ठु=सुन्दर। स्म= भूतकाल में। आदह=हिंसा, निन्दा।

वार्तिकम्- **उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च।** अर्थ:- **उपसर्ग जैसे, विभक्ति जैसे और स्वर जैसे भी शब्दों को चादिगण में माने गये हैं।**

अवदत्तम्= दिया जा चुका। अहंयु:=अहंकार वाला। अस्तिक्षीरा=दूधवाली गाय।
अ=सम्बोधन, अनन्त। आ=पूर्व के कथन से भिन्न। इ=सम्बोधन।
ई=सम्बोधन। उ=सम्बोधन। ऊ। ए। ऐ। ओ। औ=सम्बोधन। पशु=ठीक तरह।
शुकम्=शीघ्र। यथाकथाच=लगभग, अनादर। पाट्। प्याट्=सम्बोधन।
अङ्ग=सम्बोधन में। है। हे। भो:। अये=सम्बोधन। द्य=हिंसा।
विपु= नाना, अनेक। एकपदे=एकसाथ। युत्=घृणा।
आत:=इस कारण से भी। (चादिराकृतिगण:= **चादि भी आकृतिगण है**)।

अव्ययसंज्ञाविधायकं द्वितीयं सूत्रम्

३६८. तद्धितश्चासर्वविभक्तिः १।१।३८॥

यस्मात्सर्वा विभक्तयो न भवन्ति तादृशस्तद्धितान्तशब्दोऽव्ययं स्यात्।
परिगणनं कर्तव्यम्- तसिलादयः प्राक्पाशपः।
शस्प्रभृतयः प्राक्समासान्तेभ्यः। अम्। आम्। कृत्वोऽर्थाः। तसिवती। नानाञौ। एतदन्तमप्यव्ययम्।

....

३६८-**तद्धितश्चासर्वविभक्तिः**। न भवन्ति सर्वा विभक्तयो यस्मात्, स असर्वविभक्तिः। तद्धितः प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, असर्वविभक्तिः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **स्वरादिनिपातमव्ययम्** से **अव्ययम्** की अनुवृत्ति आती है।

जिससे सारी विभक्तियाँ नहीं आ सकतीं, ऐसे तद्धितान्तशब्द अव्ययसंज्ञक होते हैं।

कुछ ऐसे शब्द हैं जो तद्धित प्रत्यय लगकर सिद्ध हुए हैं किन्तु उनसे सारी विभक्तियाँ नहीं आ सकती, ऐसे शब्दों की भी अव्ययसंज्ञा होती है। जैसे इदम् शब्द से तसिल् प्रत्यय करके **अतः** बनाया जाता है और इसका अर्थ है- **इससे, इसके द्वारा**। **अतः** इससे प्रथमा, द्वितीया आदि विभक्ति की आवश्यकता ही नहीं दीखती। इस लिए **अतः** जैसे शब्द असर्वविभक्तिक हैं। ऐसे शब्दों की अव्ययसंज्ञा का विधान यह सूत्र करता है।

परिगणनं कर्तव्यम्। अब यह कह रहे हैं कि जिनसे सारी विभक्तियाँ नहीं आ सकतीं, ऐसे शब्द कितने हैं? इनका परिगणन अर्थात् संख्या से प्रदर्शन करना चाहिए। इसी लिए कहा- **तसिलादयः प्राक्पाशपः**। तसिल् प्रत्यय से लेकर पाशप् प्रत्यय तक के प्रत्यय जिनके अन्त में हों ऐसे शब्द असर्वविभक्ति हैं। तसिलादि में त्रल्, ह, अत्, दा, र्हिल्, धुना, दानीम्, थाल्, थमु, था, अस्ताति, अतसुच्, रिल्, रिष्टात्, आति, एनप्, आच्, आहि, असि, धा, ध्यमुञ्, एधाच् और पाशप् ये प्रत्यय हैं और ये प्रत्यय जिनके अन्त में हों, ऐसे शब्द अव्यय हो जाते हैं।

उपर्युक्त प्रत्ययों के लगने से निम्नलिखित शब्द बन जाते हैं- जैसे तसिल् से अतः(इस लिए), ततः(वहाँ से), कुतः (कहाँ से), यतः (जहाँ से), परितः (चारों ओर से), अभितः (दोनों ओर), त्रल् से अत्र(यहाँ), कुत्र(कहाँ), तत्र(वहाँ), सर्वत्र(सभी जगह), ह से इह(यहाँ), कुह(कहाँ), अत् से क्व(अन्य), दा से सदा(हमेशा), सर्वदा(हमेशा), कदा(कब), अन्यदा(दूसरे दिन), र्हिल् से कर्हि(कब), यर्हि(जब), तर्हि(तब), धुना से अधुना(इस समय), दानीम् से इदानीम्(इस समय), तदानीम्(उस समय), थाल् से यथा(जैसे), तथा(वैसे), कथा(कैसे), उभयथा(दोनों प्रकार से), थमु से इत्थम्(इस तरह), कथम्(कैसे), अस्ताति से पुरस्तात्(आगे), परस्तात्(पीछे), अतसुच् से दक्षिणतः(दक्षिण से), उत्तरतः(उत्तर से), रिल् से उपरि(ऊपर), रिष्टात् से उपरिष्टात्(ऊपर से), आति से पश्चात्(पीछे), एनप् से उत्तरेण(उत्तर से), दक्षिणेन(दक्षिण से), आच् से दक्षिणा(दक्षिण में), आहि से दक्षिणाहि(दक्षिण में), असि से पुरः(सामने), धा से एकधा(एक बार),

अव्ययसंज्ञाविधायकं तृतीयं सूत्रम्

३६९. कृन्मेजन्तः १।१।३९॥

कृद्यो मान्त एजन्तश्च तदन्तमव्ययं स्यात्।

स्मारं स्मारम्। जीवसे। पिबध्यै।

अव्ययसंज्ञाविधायकं चतुर्थं सूत्रम्

३७०. क्त्वातोसुन्कसुनः १।१।४०॥

एतदन्तमव्ययम्। कृत्वा। उदेतोः। विसृपः।

....

ध्यमुञ् से ऐकध्यम्(एक प्रकार से), एधाच् से द्वेधा(दो प्रकार से), त्रेधा(तीन प्रकार से) और पाशप् से वैयाकरणपाशः आदि शब्द बन जाते हैं, जिनकी अव्ययसंज्ञा हो जाती है। इनकी पूरी परिगणना करेंगे तो बहुत मोटा ग्रन्थ बन जायेगा। इसलिए संक्षेप में बताकर आगे चल रहे हैं। छात्रों को जिज्ञासा होती है तो **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में देख लेंगे।

शस्प्रभृतयः प्राक्समासान्तेभ्यः। कृत्वोऽर्थाः। तसिवती। नानाञौ। शस् प्रत्यय से लेकर समासान्त प्रत्ययों से पहले तक, कृत्व अर्थ में होने वाले प्रत्यय, आ, आम् प्रत्यय, तसि तथा वति, ना, नाञ् इन प्रत्ययों के लगने के बाद बने शब्द भी अव्ययसंज्ञक होंगे। इसके अतिरिक्त भी और प्रत्यय हैं- शस्, तसि, च्वि, साति, त्रा, डाच्, आम्, कृत्वसुच्, सुच्, धा, ना, नाञ् आदि। इनका भी विवेचन विस्तार के भय से नहीं कर रहे हैं।

३६९- कृन्मेजन्तः। म् च एच् च मेचौ, मेचौ अन्तौ यस्य स मेजन्तः। कृत् प्रथमान्तं, मेजन्तः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **स्वरादिनिपातमव्ययम्** से **अव्ययम्** की अनुवृत्ति आती है।

कृत्संज्ञक प्रत्यय जो मान्त और एजन्त, तदन्त शब्द अव्ययसंज्ञक होते हैं।

कृत्प्रकरण में होने वाले प्रत्ययों में से जो मकारान्त और एजन्त अर्थात् **ए, ओ, ऐ, औ** ये वर्ण अन्त में हों ऐसे प्रत्यय वाले शब्दों की भी अव्ययसंज्ञा का विधान इस सूत्र के माध्यम से होता है। कृत्प्रकरण में तुमुन् प्रत्यय होता है और अनुबन्धलोप होकर केवल तुम् ही बचता है और पठ् धातु पहले है तो पठ्+इ+तुम्=पठितुम् बन जाता है। यह पठितुम् मान्त कृदन्तशब्द है, अतः इस सूत्र से इसकी अव्ययसंज्ञा हो जाती है। इसी प्रकार स्मारम् स्मारम्, वक्षे, एषे, जीवसे, पिबध्यै आदि की भी कृत् एजन्त मानकर अव्ययसंज्ञा हो जाती है।

३७०- क्त्वातोसुन्कसुनः। क्त्वा च तोसुन् च कसुन् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः क्त्वातोसुन्कसुनः। क्वातोसुन्कसुनः प्रथमान्तम्, एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **स्वरादिनिपातमव्ययम्** से **अव्ययम्** की अनुवृत्ति आती है।

क्त्वा, तोसुन् और कसुन् प्रत्ययान्त शब्द भी अव्ययसंज्ञक होते हैं।

क्त्वा, तोसुन्, कसुन् ये कृत्प्रकरण के प्रत्यय हैं। इनमें अनुबन्धलोप होकर क्रमशः त्वा, तोस्, अस् ही शेष रह जाता है। इन प्रत्ययों के लगने से बनने वाले शब्दों की भी इस सूत्र से अव्ययसंज्ञा होती है। क्त्वा के उदाहरण हैं- कृत्वा, पठित्वा, भूत्वा

अव्ययसंज्ञाविधायकं पञ्चमं सूत्रम्

३७१. अव्ययीभावश्च १।१।४१।।

अधिहरि।

लुग्-विधायकं विधिसूत्रम्

३७२. अव्ययादाप्सुपः २।४।८२।।

अव्ययाद्विहितस्यापः सुपश्च लुक्। तत्र शालायाम्।

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।

वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्।।

वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः।

आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा।।

वगाहः, अवगाहः। पिधानम्, अपिधानम्।

इत्यव्ययानि।।११।।

....

आदि, तोसुन् के उदेतोः, प्रवदितोः कसुन् के विसृपः, आतृदः आदि हैं। इनमें क्त्वा प्रत्यय लोक और वेद दोनों में तथा तोसुन् कसुन् प्रत्यय केवल वेद में ही प्रयुक्त होते हैं।

३७१- अव्ययीभावश्च। अव्ययीभावः प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **स्वरादिनिपातमव्ययम्** से **अव्ययम्** की अनुवृत्ति आती है।

अव्ययीभाव समास को प्राप्त शब्द अव्ययसंज्ञक होते हैं।

समासों में एक अव्ययीभाव समास भी है। जो शब्द अव्ययीभाव समास होकर सिद्ध हुए हैं, उन शब्दों की अव्ययसंज्ञा का विधान यह सूत्र करता है। जैसे **हरि+अधि** में अव्ययीभाव समास होकर **अधिहरि** बना और इस सूत्र से उसकी अव्ययसंज्ञा हो गई।

३७२- अव्ययादाप्सुपः। आप् च सुप् च तयोः समाहारद्वन्द्वः, आप्सुप्, तस्मात्, आप्सुपः। अव्ययाद् पञ्चम्यन्तम्, आप्सुपः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** से लुक् की अनुवृत्ति आती है।

अव्ययसंज्ञक शब्दों से विहित आप् और सुप् का लुक् होता है।

अव्ययसंज्ञा का मुख्यफल उनसे प्राप्त सुप् प्रत्यय और आप् अर्थात्, टाप्, चाप्, डाप् आदि प्रत्ययों का लुक् अर्थात् लोप करना है। इस प्रकार से अभी जितने भी शब्दों की आपने अव्ययसंज्ञा की उन सभी शब्दों से सुप् विभक्ति तो आती है पर उसका इस सूत्र से लुक् हो जाता है। फलतः प्रथमा से सप्तमी तक एक ही रूप बनता है। जैसे **तत्र** यह शब्द त्रल्-प्रत्ययान्त होने के कारण **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से अव्ययसंज्ञक है। उससे प्रथमा का एकवचन आया या पञ्चमी आई और उसका इस सूत्र से लुक् हो गया तो तत्र का तत्र ही रह गया, विभक्ति के आने के बाद भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इसी प्रकार समस्त अव्ययसंज्ञक शब्दों के सम्बन्ध में समझना चाहिए।

तत्र शालायाम्। उस शाला में। **तत्र** यह शब्द तद् शब्द से त्रल् प्रत्यय होकर बना है। त्रल् प्रत्ययान्त शब्द अव्ययसंज्ञक होता है। **शालायाम्** इस स्त्रीलिङ्गशब्द का विशेषण होने से टाप् प्रत्यय और उससे सु प्रत्यय दोनों हुए थे। **अव्ययादाप्सुपः** से उसका लुक् होकर **तत्र** मात्र शेष रहा।

अब एक प्रश्न यह आता है कि जब प्रत्यय के विधान करने के बाद उसका लोप ही करना है तो इन अव्ययसंज्ञक शब्दों से प्रत्यय ही क्यों लायें? इसका उत्तर यही है कि जब तक सुप् या तिङ् विभक्ति नहीं लगेगी तब तक **सुप्तिङन्तं पदम्** से उसकी पदसंज्ञा नहीं होती। पदसंज्ञा के विना शब्द पद नहीं बनता। यदि पद न बने तो **अपदं न प्रयुञ्जीत** (अपद शब्दों का व्यवहार ही नहीं होता) इस नियम के अनुसार वह शब्द प्रयोग में लाने योग्य ही नहीं रहता। अतः विभक्ति लाकर उसके लोप होने के बाद भी वह शब्द प्रत्ययान्त माना जाता है और उसकी पदसंज्ञा हो जाती है तथा पद प्रयोग के योग्य हो जाता है। इसलिए अन्य कोई कारण न होते हुए भी विभक्ति का करना अनिवार्य होता है।

अब अव्यय की परिभाषा को श्लोक के माध्यम से बता रहे हैं-

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्।। जो तीनों लिङ्गों में, सभी विभक्तियों में और सभी वचनों में विकार को प्राप्त नहीं होता है, एक जैसा ही रहता है अर्थात् नहीं बदलता है, वह अव्यय है।

निष्कर्ष यह है कि कुछ ऐसे शब्द हैं जिनको हम न तो सुबन्त के रूप में देख पाते हैं और न ही तिङन्त के रूप में, क्योंकि प्रयोग करने के लिए या तो सुवन्त का होना आवश्यक है या तो तिङन्त का होना। अब ऐसे शब्द जो न तिङन्त दीखते और न सुबन्त, तो उन्हें क्या माना जाय? अव्ययप्रकरण से यही पता लगा कि जो ऐसे शब्द हैं, वे अव्यय हैं, जिनमें विभक्ति का अता-पता नहीं है फिर भी सुबन्त तो हैं ही।

अब **अव** और **अपि** उपसर्गों के विषय में **भागुरि आचार्य** का मत बताते हैं-

वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः।
आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा।।

भागुरि नामक आचार्य अव और अपि इन उपसर्गों में अकार का लोप करना चाहते हैं तथा हलन्तशब्दों से भी स्त्रीत्वबोधक आप् प्रत्यय का विधान अभीष्ट मानते हैं। जैसे- अकार का लोप करके **अव+गाहः** में **वगाहः** और **अपि+धानम्** में **पिधानम्** तथा **वाच्, निश्, दिश्** आदि शब्दों से आप् (टाप्) करके **वाचा, निशा, दिशा** बनाते हैं। यह भागुरि का मत है, पाणिनि जी का नहीं।

इस प्रकार से आप ने अभी तक **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में सबसे पहले संज्ञा का ज्ञान किया, उसके बाद सन्धि का ज्ञान किया, उसके बाद षड्-लिङ्गों के अन्तर्गत अजन्त और हलन्त शब्दों के रूपों का ज्ञान किया। अन्ततः अव्ययशब्दों का भी ज्ञान किया। अब इसके बाद तिङन्त की बारी है।

आप इन प्रकरणों की आवृत्ति प्रतिदिन करें, अन्यथा आप भूल जायेंगे। पढ़े हुए

विषय को भूलना भी असफलता का कारण तो है ही साथ ही एक दोष भी है। अतः प्रतिदिन आवृत्ति करके पढ़े हुए विषय को तरोताजा बनाये रखें। इस बात का जरूर ध्यान रखें।

परीक्षा

सूचना- **सभी प्रश्न १० अङ्क के हैं। परीक्षा का समय- तीन घण्टे।**

१- आपने अभी तक जितने प्रकरण पढ़े, एक पृष्ठ में उनका परिचयात्मक लेख लिखें।

२- यदि स्वर् आदि की अव्ययसंज्ञा न हो तो क्या हानि है? सोदाहरण स्पष्ट करें।

३- अव्यय-शब्दों में विभक्तियाँ क्यों नहीं दीखतीं? सोदाहरण विवरण प्रस्तुत करें।

४- अभी तक के व्याकरण-अध्ययन में आप कैसा अनुभव कर रहे हैं? एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

५- अव्ययसंज्ञा-विधायक पाँचों सूत्रों की तुलना करें।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी टीका में अव्ययप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ तिङन्ते भ्वादयः

लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ्।
एषु पञ्चमो लकारश्छन्दोमात्रगोचरः।

लकारार्थविधायकं विधिसूत्रम्

३७३. लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः ३।४।६९॥

लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब आप **तिङन्त** में प्रवेश कर रहे हैं। जैसे सुप्+अन्त=सुबन्त होता है, वैसे ही **तिङ्+अन्त=तिङन्त** है। जैसे अजन्तपुँल्लिङ्ग से हलन्तनपुंसकलिङ्ग तक सुबन्त कहलाता है, उसी प्रकार **भ्वादिप्रकरण** से लेकर **लकारार्थप्रकरण** तक तिङन्त कहलाता है। तिङ् भी एक प्रत्याहार है जो तिप् के ति से शुरू करके महिङ् के ङकार को लेकर बना है। तिङ् प्रत्याहार में अठारह प्रत्यय हैं। जिनका क्रमशः वर्णन हम आगे करेंगे।

धातुओं का यह प्रकरण संस्कृतव्याकरण का प्राण है। धातुओं से ही क्रियारूपों और कृदन्तरूपों की रचना होती है। माना यह जाता है कि संस्कृतजगत में जितने भी शब्द हैं, वे सब धातुओं से ही बने हैं। अतः छात्रों को यदि विद्वान् बनना हो या संस्कृत भाषा को आत्मसात् करना हो तो तिङन्तप्रकरण को पूर्णतः कण्ठाग्र कर लेना चाहिए। जिस छात्र की इस प्रकरण में जितनी गति होगी उसका संस्कृत-भाषा पर उतना ही अधिकार होगा। यह प्रकरण अन्य प्रकरणों की अपेक्षा कठिन है फिर भी आपको घबराने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि हम आपके साथ हैं। इस ग्रन्थ के नामानुसार हम सरल से सरल तरीके से आपको समझायेंगे किन्तु आपको धैर्य धारण करना होगा एवं ज्ञान के लिए कटिबद्ध बने रहना होगा।

वैसे भी हमने व्याख्या की जो शैली अपनायी है, वह वास्तव में लिखने की व्याख्यात्मक शैली नहीं है अपितु २७ वर्ष तक व्याकरण पढ़ाने का जो अनुभव है, जिस प्रकार से छात्र समझ सकता है, उस पाठन शैली को लिपिबद्ध किया है। अतः यह ग्रन्थ उन विद्वानों के लिए नहीं है जो व्याकरणशास्त्र का ज्ञान कर चुके हैं। उन्हें यहाँ पर नूतन कुछ भी नहीं मिलेगा, क्योंकि हमने उन छात्रों के लिये यह लिखा है जो कि जो सरलता से **लघुसिद्धान्तकौमुदी** या **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में प्रविष्ट नहीं हो पाते हैं। उनका मित्र बनकर व्याकरण-शास्त्र की प्रारम्भिक बातें उनके मस्तिष्क में बैठा सकूँ, जो मेरे शिष्यत्व में अध्ययन कर रहे हैं या करने के लिए आते हैं। यदि इससे अन्य लोगों को भी

लाभ मिला तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा। हाँ, नूतन जिज्ञासु छात्रों के लिए यह मेरी सरल प्रक्रिया है। अतः उन्हें तो इसमें पूर्ण आशावान् होना चाहिए और धैर्यता पूर्वक पूरा ग्रन्थ पढ़ लेना चाहिए। आइए, अब तिङन्त प्रकरण की बात करते हैं। एक बात यहाँ पर यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि पूववर्ती व्याख्याताओं ने हिन्दी में धातु-शब्द का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में किया है किन्तु मैंने संस्कृत भाषा की तरह पुँल्लिङ्ग और हिन्दी की तरह स्त्रीलिङ्ग दोनों लिङ्गों में ही प्रयोग किया है।

तिङन्त पद क्रियापद है। इसमें तीन भाग होंगे- १- धातु, २- तिङ् प्रत्यय और ३- धातु और प्रत्ययों के बीच में होने वाले शप् आदि विकरण प्रत्यय। जैसे पाणिनि ने सूत्रपाठ अष्टाध्यायी के रूप में बनाया है, उसी प्रकार धातुपाठ भी बनाया है और धातुओं का सामान्य अर्थ भी बताया है। कई आचार्यों का मत है कि धातु के अर्थ पाणिनि जी के द्वारा निर्मित नहीं है अपितु भीमसेन नामक किसी विद्वान् ने जोड़ा है। धातुपाठ को दस भागों में विभाजित किया है। १. भ्वादिगण, २. अदादिगण, ३. जुहोत्यादिगण, ४. दिवादिगण, ५. स्वादिगण, ६. तुदादिगण; ७. रुधादिगण, ८. तनादिगण, ९. क्र्यादिगण और १०. चुरादिगण।

यहाँ सर्वप्रथम भ्वादिगण से प्रारम्भ कर रहे हैं। दसों गणों में तिङ् ही प्रत्यय लगेंगे। तिङ् यद्यपि आदेश हैं फिर भी धातुओं से होने वाले जो लट् आदि लकार के रूप में प्रत्यय हैं, उनके स्थान पर होने के कारण स्थानिवद्भाव से या **प्रत्ययः** सूत्र के अधिकार में पठित होने के कारण भी प्रत्यय ही कहलाते हैं। **लट्, लिट्** आदि जो प्रत्यय हैं इनमें अनुबन्धलोप होकर केवल **ल्** मात्र शेष बचता है, अतः इन्हें लकार भी कहा जाता है। इनमें से पाँचवाँ लेट्-लकार केवल वेद में प्रयुक्त होता है, लौकिक संस्कृत साहित्य में नहीं। लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट् इन ६ लकारों में टकार की इत्संज्ञा होती है। अतः ये टित् लकार हैं और टित् को मानकर जो भी कार्य होगा वह इन्हीं लकारों के विषय में होगा। लङ्, लिङ्, लुङ् और लृङ् इनमें ङकार की इत्संज्ञा होती है, अतः ये ङित् लकार हैं। ङित् को मानकर होने वाले कार्य इन्हीं लकारों में होंगे।

ये लकार भिन्न-भिन्न अर्थों को लेकर होते हैं, उनमें से मुख्यतया तो काल अर्थात् समय के आधार पर ही हैं। जैसे वर्तमान काल के लिए लट् लकार, भूतकाल के लिए लिट्, लङ् और लुङ् लकार और भविष्यत्काल के लिए लुट् और लृट् लकार हैं। लेट् लकार तो वेद का विषय है। शेष लोट् लकार और लिङ् लकार आज्ञा आदि अर्थ में तथा लृङ् लकार क्रियातिपत्ति अर्थात् क्रिया की असिद्धि अर्थ में होते हैं।

धातु से लकार होंगे और लकार के स्थान पर तिङ् प्रत्यय होंगें। तिङ् भी अठारह हैं- **तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस्, त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहि, महिङ्।** अठारह में से नौ-नौ करके दो भागों में बँटे हैं। प्रथम नौ परस्मैपदी हैं और दूसरे नौ आत्मनेपदी हैं। इनका भी विवरण आगे देखेंगे।

धातु और तिप्, तस् आदि प्रत्ययों के बीच में आने वाले जो प्रत्यय हैं, उन्हें विकरण कहते हैं। उनमें से भ्वादिगण में शप्, अदादि में शप् होकर शप् का लुक्, जुहोत्यादि में शप् होकर शप् का श्लु, दिवादि में श्यन्, स्वादि में श्नु, तुदादि में श, रुधादिगण में श्नम्, तनादि में उ, क्र्यादि में श्ना और चुरादि में णिच् प्रत्यय होकर शप् होते हैं।

धातुओं को **सकर्मक** और **अकर्मक** इन दो भागों मे बाँटा गया है। सकर्मक और अकर्मक के लक्षण और परिभाषा के विषय में आगे जाकर इससे बड़े ग्रन्थों में विशेष वर्णन

आता है। हम यहाँ **लघुसिद्धान्तकौमुदीस्तरीय** छात्रों को सरलता से बोध कराने के लिए इतना बता रहे हैं कि जिस धातु अर्थात् क्रिया के साथ कर्म लग सकता है, वह धातु सकर्मक और जिस धातु अर्थात् क्रिया के साथ कर्म लग ही नहीं सकता है, वह धातु अकर्मक है। जैसे- **रामः पठति** (राम पढ़ता है) में राम क्या पढ़ता है? **रामः व्याकरणं पठति** में पठति क्रिया के साथ **व्याकरणम्** यह कर्म लगा। अतः पठ् धातु सकर्मक है। इसी प्रकार **रामः शेते** (राम सोता है) में राम क्या सोता है? यह प्रश्न भी नहीं बनता है और उत्तर भी क्या दें? राम क्या सोता है? कोई उत्तर नहीं। कर्म लगने की योग्यता ही नहीं है। अतः सोने के अर्थ वाला **शी** यह धातु अकर्मक है। इसी प्रकार आप समस्त धातुओं के वाक्य बनाकर प्रयोग करना। आपको सकर्मक और अकर्मक का ज्ञान हो जायेगा।

इससे ज्यादा समझने के लिए सकर्मक और अकर्मक का मुख्य अर्थ समझना पड़ेगा। धातु के दो अर्थ हैं- **फल** और **व्यापार**। जैसे **रामः पचति** में पच् धातु है। इसमें पकाने का सारा कार्य जैसे चावल धोना, पकाने वाले बरतन में रखना, आग जलाना, चूल्हे पर रखना, करछूल से चलाना, बीच-बीच में पका कि नहीं यह जानने के लिए चावल के दानों को देखना, पानी ज्यादा हो तो निकाल देना और बरतन को चूल्हे से नीचे उतारने तक की सारी क्रियायें पच् धातु का व्यापार है। क्रिया को ही व्यापार कहते हैं और उस व्यापार का जो परिणाम है उसे फल कहा जाता है। जैसे- पकाने रूप व्यापार का फल चावल में कोमलता, नरमपन आना आदि है, जिसे विक्लिति कहा जाता है। इसी तरह सभी धातुओं के दो-दो अर्थ होते हैं- **फल** और **व्यापार**। व्यापार हमेशा कर्ता के अधीन रहता है अर्थात् कर्ता के आश्रय में रहता है और फल कभी कर्म के अधीन तो कभी कर्ता के। सकर्मक धातुओं में व्यापार कर्ता में और फल कर्म में रहता है तो अकर्मक धातुओं में व्यापार और फल दोनों कर्ता में ही आश्रित रहते हैं, क्योंकि अकर्मक धातुओं में कर्म होता ही नहीं। **देवदत्तः तण्डुलान् पचति** इस वाक्य में सम्पूर्ण क्रिया देवदत्त में निहित है और फल जो नरमपन है, वह कर्म अर्थात् तण्डुल(चावल) में रहता है। अतः कहा जाता है कि **फलाश्रयः कर्म** और **व्यापाराश्रयः कर्ता**।

कहीं-कहीं फल और व्यापार को इस प्रकार से अलग-अलग में आश्रित नहीं दिखा सकते। जैसे- **रामः शेते**। राम सोता है, इस वाक्य में सोने का सारा कार्य राम कर रहा है इस लिए व्यापार राम के अधीन है किन्तु फल किस में है? किसी अन्य में? नहीं। शयन का जो फल है, वह भी राम में ही निहित है। ऐसे धातुओं को अकर्मक कहते हैं।

सकर्मक धातुओं का लक्षण है- **फलव्यधिकरणव्यापारवाचकत्वं सकर्मकत्वम्** अर्थात् **जिस धातु का फल और व्यापार भिन्न भिन्न अधिकरण में रहता है, वह धातु सकर्मक है**। तात्पर्य यह है कि जिन धातुओं के फल और व्यापार के आश्रय भिन्न-भिन्न हों, वे धातु सकर्मक कहलाते हैं। जैसे- **देवदत्तः तण्डुलान् पचति** में व्यापार देवदत्त में आश्रित है और फल तण्डुल में।

अकर्मक धातुओं का लक्षण- **फलसमानाधिकरणव्यापारवाचकत्वमकर्मकत्वम्** अर्थात् **जिस धातु का फल और व्यापार एक ही अधिकरण में रहता है, वह धातु अकर्मक है**। तात्पर्य यह है कि जिन धातुओं के फल और व्यापार का आश्रय एक ही हो, वे धातु अकर्मक कहलाते हैं। जैसे- **रामः शेते** अर्थात् राम सोता है। इस वाक्य में व्यापार और फल एक ही व्यक्ति राम में आश्रित है। अतः **शी (शेते)** धातु अकर्मक है। अकर्मक

लट्-लकारविधायकं विधिसूत्रम्

३७४. वर्तमाने लट् ३।२।१२३॥

वर्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट् स्यात्। अटावितौ। उच्चारणसामर्थ्याल्लस्य नेत्त्वम्। **भू सत्तायाम्॥१॥** कर्तृविवक्षायां भू ल् इति स्थिते।

....

धातुओं की सामान्यतया पहचान के लिए एक पद्य प्रचलित है-

लज्जा-सत्ता-स्थिति-जागरणं, वृद्धि-क्षय-भय-जीवित-मरणम्।
शयन-क्रीडा-रुचि-दीप्त्यर्थं धातुगणं तमकर्मकमाहुः॥

लज्जा, सत्ता, स्थिति, जागरण, वृद्धि, नाश, भय, जीना, मरना, सोना, खेलना, रुचि और दीप्ति अर्थ वाले धातुओं को आचार्यों ने अकर्मक माना है। यह सामान्यतः कथन है। इसके अलावा भी **हस्**(हँसना), **वृष्**(बरसना) आदि अनेक धातुएँ अकर्मक हैं।

पूरे तिङन्तप्रकरण में प्रत्ययों का जहाँ भी विधान हो रहा हैं, वहाँ **धातोः** इस सूत्र का अधिकार है। अतः सारे प्रत्यय धातु के बाद हीं होंगे।

३७३- लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः। न विद्यते कर्म येषां तेऽकर्मकास्तेभ्यः। लः प्रथमान्तं, कर्मणि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, भावे सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदम्, अकर्मकेभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कर्तरि कृत्** से **कर्तरि** की अनुवृत्ति आती है। चकारात् **कर्तरि** पद का अनुकर्षण भी होता है। इस तरह अर्थ में **कर्तरि** पद का दो बार प्रयोग होता है।

सकर्मक धातुओं से कर्ता और कर्म अर्थ में एवं अकर्मक धातुओं से भाव और कर्ता अर्थ में लकार होते हैं।

इस सूत्र का अर्थ करते समय इसके दो भाग करते हैं। एक भाग का अर्थ यह है कि **सकर्मक धातुओं से लकार कर्म और कर्ता अर्थ में हों** और दूसरे भाग का अर्थ यह है कि **अकर्मक धातुओं से लकार कर्ता और भाव अर्थ में हों।** जब धातुओं को सकर्मक और अकर्मक के रूप में दो भागों में बाँटा गया तो उसका पहला फल यही है कि **सकर्मक धातुओं से लकार का विधान हो तो वे लकार कर्ता और कर्म अर्थ को लेकर के ही आयेंगे और अकर्मक धातुओं से लकार का विधान हो तो वे लकार कर्ता और भाव अर्थ को लेकर के ही आयेंगे।** जो प्रत्यय जिस अर्थ में होते हैं, वे उसी अर्थ को दर्शाते हैं। यहाँ पर इस सूत्र से लकार कर्ता, कर्म और भाव अर्थ में हो रहे हैं तो उनके स्थान पर होने वाले जो भी तिङ् आदेश हैं, उनके भी कर्ता, कर्म और भाव अर्थ ही होंगे। इसी प्रकार से जिस काल अर्थात् समय-विशेष को आधार मानकर लकार का विधान होगा। वे लकारादेश तिङ् प्रत्यय उन्हीं कालों को दर्शायेंगे। आगे जाकर वचनों में इनका विभाजन होगा तो लकार का अर्थ वचन अर्थात् संख्या भी माना जायेगा। इस प्रकार से लकार के अर्थ हुए- कर्ता, कर्म या भाव, संख्या और काल।

सकर्मक-धातुओं से कर्ता-अर्थ में प्रत्यय होने पर **कर्तृवाच्य** के और कर्म अर्थ में प्रत्यय होने पर **कर्मवाच्य** के वाक्य बनेंगे। इसी प्रकार अकर्मक-धातुओं से भी कर्ता-अर्थ में प्रत्यय होने पर **कर्तृवाच्य** और भाव अर्थ में प्रत्यय होने पर **भाववाच्य** वाले वाक्य बनते हैं।

३७४- वर्तमाने लट्। वर्तमाने सप्तम्यन्तं, लट् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। तिङन्त में प्रत्यय

लकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३७५. तिप्-तस्-झि-सिप्-थस्-थ-मिब्-वस्-मस्-तातां-झ-थासाथां-ध्वमिड्-वहि-महिङ् ३।४।७८॥

एतेऽष्टादश लादेशाः स्युः।

....

करने वाले सभी सूत्रों में **धातोः** का अधिकार है तो इस सूत्र में भी **धातोः** का अधिकार है। **प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार भी चल रहा है।

वर्तमान कालिक क्रिया से युक्त अर्थात् वर्तमान काल की क्रिया को जब धातु प्रकट करती है, तब उस अर्थ में धातु से लट् लकार होता है।

वैयाकरणों का मानना है कि धातु ही भूत, वर्तमान और भविष्यत् अर्थ को कहता है, लकार तो उस अर्थ को द्योतित करने के लिए आते हैं। इसीलिए **वर्तमानेऽर्थे धातोर्लट् भवति** ऐसा न कहकर **वर्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट्** ऐसा वृत्ति में कहा गया। इसी प्रकार अन्य लकारों के विषय में भी समझना चाहिए।

लट् में टकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा तथा अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और दोनों का **तस्य लोपः** से लोप होगा। केवल **ल्** बचेगा। उच्चारण किये जाने के कारण लकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा नहीं होगी, अन्यथा विधान ही व्यर्थ हो जायेगा।

भू धातु **सत्ता** अर्थ में है। अपने आपको धारण करने का नाम **सत्ता** है। **राम होता है** इस वाक्य में **राम अपने स्थिति को धारण कर रहा है** यह तात्पर्य निकलता है। **सत्ता** भी एक प्रकार की क्रिया ही है। **भ्वादिगण** में पठित और **क्रियावाचक** होने के कारण **भू** की **भूवादयो धातवः** से धातुसंज्ञा होती है।

जिस प्रथम क्षण से आरम्भ होकर कोई कार्य जिस अन्तिम क्षण में समाप्त होता है, उस समग्र काल को **वर्तमान काल** कहते हैं। जैसे **रामः पचति**(राम पकाता है।) में राम आग जलाता है, बरतन को चूल्हे पर रखता है, पानी गरम करता है, उसमें चावल डालता है, करछुल से हिलाता है, चावल के गले व अधगले का निश्चय करने के लिए बार-बार थोड़ा-थोड़ा निकालकर अंगुलियों से मसल कर परीक्षा करता है तथा सिद्ध हो जाने पर बरतन को चूल्हे से नीचे उतारता है। राम की इन सभी क्रियाओं को **पकाता है** इस एक ही क्रिया से व्यवहार करते हैं। इतनी सारी क्रियायें वर्तमान काल में ही आती हैं।

३७५- तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ्। तिप् च तश्च, झिश्च, सिप् च, थश्च, थश्च, मिप् च, वश्च, मश्च, तश्च, आताञ्च, झश्च, थाश्च, आथाञ्च, ध्वञ्च, इट् च, वहिश्च, महिङ् च, तेषां समाहारद्वन्द्वः तिप्तस्झिसिप्थस्-थमिब्वस्मस्-तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ्। सम्पूर्णं प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **लस्य** और **प्रत्ययः** का अधिकार है।

लकार के स्थान पर तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस्, त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहि, महिङ् ये अठारह आदेश होते हैं।

दसों लकारों के स्थान पर ये अठारह आदेश के रूप में होंगे। इनमें से तिप्, सिप्, मिप् में पकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है और **इट्** में **टकार** की एवं **महिङ्** में ङकार

परस्मैपदसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

३७६. लः परस्मैपदम् १।४।९९॥

लादेशाः परस्मैपदसंज्ञाः स्युः।

आत्मनेपदसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

३७७. तङानावात्मनेपदम् १।४।१००॥

तङ्प्रत्याहारः शानच्कानचौ चैतत्संज्ञाः स्युः। पूर्वसंज्ञाऽपवादः।

....

की। इत्संज्ञक वर्ण का **तस्य लोपः** से लोप होता है। तस्, थस्, वस्, मस् और थास् के सकार की तथा आताम्, आथाम्, ध्वम् में मकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा तो प्राप्त होती है किन्तु **न विभक्तौ तुस्माः** उसका निषेध कर देता है। अन्य किसी वर्ण की तो इत्संज्ञा प्राप्त ही नहीं है।

पकार की इत्संज्ञा पित् को मानकर होने वाले कार्य= स्वरविधान, गुण आदि के लिए और **ङकार** की इत्संज्ञा ङित् को मानकर होने वाले कार्य के लिए है। इट् में टकार स्पष्ट समझने के लिए पढ़ा गया है, अन्य कोई प्रयोजन नहीं है। **महिङ्** में ङकार तिङ् और तङ् प्रत्याहार के लिए पढ़ा गया है।

३७६- लः **परस्मैपदम्**। लः षष्ठ्यन्तं, परस्मैपदं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

लकार के स्थान पर जो तिप्, तस्, झि आदि आदेश हुए, वे परस्मैपदसंज्ञक होते हैं।

इस सूत्र से तिप् आदि अठारहों की परस्मैपदसंज्ञा की प्राप्ति होती है, इस पर अग्रिम सूत्र **तङानावात्मनेपदम्** आता है।

३७७- **तङानावात्मनेपदम्**। तङ् च आनश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः- तङानौ। तङानौ प्रथमान्तम्, आत्मनेपदं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **लः परस्मैपदम्** से लः की अनुवृत्ति आती है।

तङ् प्रत्याहार और शानच्-कानच् प्रत्यय आत्मनेपदसंज्ञक होते हैं।

इस सूत्र में **आन** शब्द से **शानच्** और **कानच्** प्रत्ययों का बोध होता है क्योंकि दोनों में शकार और ककार की इत्संज्ञा करने पर **आन** ही शेष रहता है। शानच् और कानच् ये दोनों कृत्प्रकरण में होने वाले प्रत्यय हैं, इनकी आत्मनेपदसंज्ञा करने से आत्मनेपद के निमित्त वाले अनुदात्तेत् ङित् आदि धातुओं से ये प्रत्यय होते हैं। तङ् अर्थात् त, आताम् वाले त से महिङ् के ङकार को लेकर माना गया नौ आदेशों वाला प्रत्याहार। **लः परस्मैपदम्** से अठारहों की परस्मैपदसंज्ञा प्राप्त थी तो इस सूत्र ने उसे बाधकर यह नियम कर दिया कि उन अठारह आदेशों में से द्वितीय जो नौ तङ् प्रत्याहार में आने वाले आदेश हैं, उनकी तो आत्मनेपदसंज्ञा होगी। इस प्रकार द्वितीय नवक की आत्मनेपदसंज्ञा हो जाने के बाद शेष जो प्रथम नवक तिप् से मस् तक के आदेश हैं, इनकी पूर्वसूत्र से परस्मैपदसंज्ञा हो जायेगी। इस प्रकार से अठारह तिप् तस् आदि आदेशों को दो भागों में बाँटा गया। तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस्, ये नौ परस्मैपदसंज्ञक और त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहि, महिङ् ये नौ आत्मनेपदसंज्ञक हो गये। यद्यपि ये सब लकार के स्थान पर होने वाले

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

३७८. अनुदात्तङित आत्मनेपदम् १।३।१२॥

अनुदात्तेतो ङितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात्।

उभयपदविधायकं विधिसूत्रम्

३७९. स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले १।३।७२॥

स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात् कर्तृगामिनि क्रियाफले।

....

आदेश हैं तथापि धातुओं से विहित लकार को प्रत्यय माना गया है। अतः स्थानिवद्भाव से या **प्रत्ययः** सूत्र के अधिकार में आने से ये **प्रत्यय** भी कहलाते हैं। इसलिए आगे इनका तिबादि प्रत्ययों के रूप में व्यवहार किया जायेगा।

अब कैसे धातुओं से परस्मैपदसंज्ञक प्रत्ययों का विधान हो और कैसे धातुओं से आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्ययों का? इसका निर्णय आगे के सूत्रों से किया जा रहा है।

३७८- अनुदात्तङित आत्मनेपदम्। अनुदात्तश्च ङ् च अनुदात्तङौ, तौ इतौ यस्य सः- अनुदात्तङित्, तस्मात् अनुदात्तङितः। अनुदात्तङितः पञ्चम्यन्तम्, आत्मनेपदं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **भूवादयो धातवः** से **धातवः** प्रथमान्त पद को पञ्चमी एकवचन में बदल कर **धातोः** की अनुवृत्ति की जाती है।

अनुदात्त-इत्संज्ञक धातु और ङकार-इत्संज्ञक धातुओं से आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय होते हैं।

छात्रों को लः **परस्मैपदम्**, **तङानावात्मनेपदम्** और **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्**, **स्वरितञित कर्त्रभिप्राये क्रियाफले**, **शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्** इन सूत्रों का अन्तर स्पष्ट रूप से समझना चाहिए। पहले के दो सूत्र परस्मैपद और आत्मनेपद किसे कहते हैं, यह बताने के लिए अर्थात् परस्मैपदसंज्ञा और आत्मनेपदसंज्ञा करने के लिए हैं। बाद के **अनुदात्तङितः** आदि सूत्र उन परस्मैपदसंज्ञक तिप्, तस् आदि और आत्मनेपदसंज्ञक त, आताम् आदि के विधान के लिए हैं। अर्थात् पहले के दो सूत्र संज्ञासूत्र हैं और बाद के दो सूत्र विधिसूत्र हैं।

धातुपाठ में पाणिनि जी ने इसी प्रयोजन के लिए ही धातुओं में अनुबन्ध लगाया है। जिस धातु में ङकार या अनुदात्त स्वर वाला वर्ण अनुबन्ध लगा हो (अनुबन्ध तो इत्संज्ञा और लोप के लिए होता है, अतः उनकी इत्संज्ञा हुई हो) ऐसे अनुदात्तेत् और ङित् धातुओं से आत्मनेपद अर्थात् तङ्-प्रत्याहार वाले त, आताम्, झ आदि का ही प्रयोग करना चाहिए। इस सूत्र के प्रसंग में आने वाले धातुओं को आत्मनेपदी धातु कहा जाता है। अर्थात् जिन ध ातुओं से आत्मनेपद का विधान हो, ऐसी धातुएँ **आत्मनेपदी** और जिन धातुओं से परस्मैपद का विधान हो, ऐसी धातुएँ **परस्मैपदी** तथा जिन धातुओं से आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों का विधान होता है ऐसी धातुएँ **उभयपदी** मानी जाती हैं।

३७९- स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले। स्वरितश्च ञ् च स्वरितञौ, तौ इतौ यस्य स स्वरितञित्, तस्मात्- स्वरितञितः। कर्तारम् अभिप्रैति=गच्छति इति कर्त्रभिप्रायम्(फलम्) तस्मिन्। क्रियायाः फलं क्रियाफलं, तस्मिन्। स्वरितञितः पञ्चम्यन्तं, कर्त्रभिप्राये सप्तम्यन्तं,

परस्मैपदविधायकं विधिसूत्रम्

३८०. शेषात्कर्तरि परस्मैपदम् १।३।७८॥

आत्मनेपदनिमित्तहीनाद्धातोः कर्तरि परस्मैपदं स्यात्।

प्रथमादिपुरुषसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

३८१. तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः १।४।१०१॥

तिङ उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमादेतत्संज्ञाः स्युः।

....

क्रियाफले सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में भी **भूवादयो धातवः** से **धातवः** प्रथमान्त पद को पञ्चमी एकवचन में बदल कर **धातोः** की अनुवृत्ति की जाती है।

जिस धातु में स्वरित की या ञकार की इत्संज्ञा हुई हो, उस धातु से आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय होता है यदि क्रिया का फल कर्ता को प्राप्त हो रहा हो तो, (अन्यथा परस्मैपद का प्रयोग होता है)।

इस सूत्र के प्रसंग में आने वाले धातुओं को **उभयपदी** कहा जाता है। क्रिया का जो मुख्य उद्देश्य (जिसकी सिद्धि के लिए क्रिया की जा रही हो) उसे क्रियाफल कहा जाता है। अतः क्रिया का फल यदि कर्ता को मिल रहा हो तो आत्मनेपद, नहीं तो परस्मैपद का विधान इस सूत्र से हुआ। जैसे पच्-धातु का (भात, दाल आदि) पकाना अर्थ है। यदि पकाने वाला पाचक अपने लिए पका रहा है अर्थात् पाचनक्रिया का फल(प्रयोजन) उसे ही मिल रहा है तो पच्-धातु से आत्मनेपद का प्रयोग होकर **पचते** बनेगा और यदि दूसरों के लिए पका रहा है अर्थात् पाचनक्रिया का फल किसी अन्य को मिलने वाला है तो परस्मैपद का प्रयोग होकर **पचति** बनेगा। आत्मने (पदम्) अर्थात् अपने लिए और परस्मै (पदम्) अर्थात् दूसरे के लिए ऐसा अन्वर्थ(कर्ता के अनुसार की जाने वाले) संज्ञा समझनी चाहिए।

३८०- शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्। शेषात् पञ्चम्यन्तं, कर्तरि सप्तम्यन्तं, परस्मैपदं प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में भी **भूवादयो धातवः** से **धातवः** प्रथमान्त पद को पञ्चमी एकवचन में बदल कर **धातोः** की अनुवृत्ति की जाती है।

आत्मनेपद के निमित्तों से रहित धातुओं से कर्ता में परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय होते हैं।

जिस धातु में आत्मनेपद प्रयोग के लिए जो-जो भी कारण बताये गये हैं, यदि वे कारण न हों तो उन धातुओं से परस्मैपद होना चाहिए। **शेष** का अर्थ कहने से जो बचे- **उक्तादन्यः शेषः।**

आत्मनेपद के विधान के लिए अनेकों सूत्र हैं। इस प्रकरण में तो बस दो ही सूत्र दिये गये हैं। जो धातु उन सूत्रों के कथन के अन्तर्गत नहीं आती हैं, उन समस्त धातुओं से परस्मैपद का विधान करना इस सूत्र का कार्य है।

३८१- तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः। प्रथमश्च मध्यमश्च उत्तमश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः प्रथममध्यमोत्तमाः। तिङः षष्ठ्यन्तं, त्रीणि प्रथमान्तं, त्रीणि प्रथमान्तं, प्रथममध्यमोत्तमाः प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **लः परस्मैपदम्** से **परस्मैपदम्** और **तङानावात्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** इन दोनों पदों को षष्ठीविभक्ति में बदलकर **परस्मैपदस्य,**

एकवचनादिसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

३८२. तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः १।४।१०२॥

लब्धप्रथमादिसंज्ञानि तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रत्येकमेकवचनादिसंज्ञानि स्युः।

....

आत्मनेपदस्य की अनुवृत्ति लायी जाती है। इसीको सूत्र की वृत्ति में **उभयोः पदयोः** से कहा गया है।

तिङ् के दोनों पदों अर्थात् आत्मनेपद और परस्मैपद के तीन-तीन त्रिक क्रम से प्रथमपुरुष, मध्यमपुरुष और उत्तमपुरुषसंज्ञक होते हैं।

त्रिक का अर्थ **तीन का समूह।** परस्मैपद के नौ और आत्मनेपद के नौ इन प्रत्ययों के तीन-तीन त्रिक बना लिए गये। परस्मैपद में **तिप्, तस्, झि** का एक त्रिक, **सिप्, थस्, थ** का दूसरा त्रिक और **मिप्, वस्, मस्** का तीसरा त्रिक, इसी प्रकार आत्मनेपद में भी **त, आताम्, झ** का एक त्रिक, **थास्, आथाम्, ध्वम्** का दूसरा त्रिक और **इट्, वहि, महिङ्** का तीसरा त्रिक, इस प्रकार से तीन तीन त्रिक बनाकर इन त्रिकों की क्रमशः **प्रथमपुरुषसंज्ञा, मध्यमपुरुषसंज्ञा** और **उत्तमपुरुषसंज्ञा** होती है। इस प्रकार से परस्मैपद में **तिप्, तस्, झि** की **प्रथमपुरुषसंज्ञा, सिप्, थस्, थ** की **मध्यमपुरुषसंज्ञा** और **मिप्, वस्, मस्** की **उत्तमपुरुषसंज्ञा** हुई। आत्मनेपद में भी **त, आताम्, झ** की **प्रथमपुरुषसंज्ञा, थास्, आथाम्, ध्वम्** की **मध्यमपुरुषसंज्ञा** और **इट्, वहि, महिङ्** की **उत्तमपुरुषसंज्ञा** हुई। इस प्रकार इन प्रत्ययों को प्रथमादि पुरुष में विभाजित करने के बाद अग्रिमसूत्र से एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञाएँ की जाती हैं।

३८२- **तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः।** एकवचनञ्च द्विवचनञ्च बहुवचनञ्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः एकवचनद्विवचनबहुवचनानि। तानि प्रथमान्तम्, एकवचनद्विवचनबहुवचनानि प्रथमान्तम्, एकशः अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः** से **तिङः** और **त्रीणि त्रीणि** की अनुवृत्ति आती है।

प्रथमपुरुष आदि संज्ञा होने के बाद जो त्रिक में तीन-तीन हैं, वे क्रमशः एकवचनसंज्ञक, द्विवचनसंज्ञक और बहुवचनसंज्ञक होते हैं।

इसी तरह सुप् की भी एकवचन आदि संज्ञा की गई थी।

परस्मैपद

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तिप्	तस्	झि
मध्यमपुरुष	सिप्	थस्	थ
उत्तमपुरुष	मिप्	वस्	मस्

आत्मनेपद

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	त	आताम्	झ
मध्यमपुरुष	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तमपुरुष	इट्	वहि	महिङ्

मध्यमपुरुषविधायकं विधिसूत्रम्

३८३. युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः १।४।१०५॥

तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च मध्यमः।

....

अब ये प्रथमपुरुषसंज्ञक, मध्यमपुरुषसंज्ञक और उत्तमपुरुषसंज्ञक प्रत्यय कहाँ हों, इसके लिए आगे तीन विधिसूत्र लिखे गये हैं-

३८३- **युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः**। युष्मदि सप्तम्यन्तम्, उपपदे सप्तम्यन्तं, समानाधिकरणे सप्तम्यन्तं, स्थानिनि सप्तम्यन्तम्, अपि अव्ययपदं, मध्यमः प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

तिङ् के वाच्य (अर्थ) जो कारक (कर्ता अथवा कर्म), उन्हें बताने वाले युष्मद्-शब्द के उपपद में होने पर, उस युष्मद् शब्द का प्रयोग होने पर या प्रयोग न होने पर विवक्षा मात्र होने पर भी मध्यमपुरुष होता है।

सूत्र में पठित **समानाधिकरणे** का ही अर्थ है- तिङ्-वाच्य-कारकवाचिनि। **समानाधिकरण** एक ही अधिकरण में रहने वाले को कहते हैं। अर्थ में शब्द वाच्य-वाचकभाव सम्बन्ध से रहता है। अतः **अर्थ** ही शब्द का अधिकरण(आधार) होता है। यदि दो शब्दों के समान अर्थ हो तो उन शब्दों को समानाधिकरण शब्द कहा जाता है। जब तिङ्-प्रत्यय का कर्ता या कर्म अर्थ होता है और उसी अर्थ को युष्मद् शब्द कहता है तो समानाधिकरण युष्मद्-शब्द हो जाता है। जैसे **त्वं पठसि** में कर्ता अर्थ में विहित लकार के स्थान में **सिप्** आदेश होने से उसका भी कर्ता ही अर्थ है और उसी कर्ता अर्थ को प्रथमान्त युष्मद्-शब्द अर्थात् **त्वम्** कह रहा है। अतः तिङ्-वाच्य (अर्थ) जो कारक (कर्ता), उसका वाचक युष्मद्-शब्द होने से अर्थात् समानाधिकरण होने से मध्यमपुरुष हुआ है। उसी प्रकार **मया त्वं ज्ञायसे**(मुझ से तुम जाने जा रहे हो) में कर्म अर्थ में विहित लकार के स्थान पर आए हुए से(थास्) का भी कर्म ही अर्थ होता है और उसी कर्म अर्थ को इस वाक्य में प्रथमान्त युष्मद्-शब्द कह रहा है। अतः तिङ् का वाच्य (अर्थ) जो कारक (कर्म) उसका वाचक युष्मद्-शब्द होने से अर्थात् समानाधिकरण होने से मध्यम पुरुष होता है। लकार कर्ता, कर्म और भाव अर्थ में होते हैं। अतः उसके स्थान पर आये हुए तिङ् का भी वही अर्थ होता है। तिङ् के वाच्य भाव(क्रिया) के साथ समानाधिकरण अर्थात् उसी अर्थ को कहने वाला युष्मद्-शब्द कभी भी नहीं हो सकता। इसलिए अवशिष्ट तिङ् का वाच्य कारक जो कर्ता या कर्म, उस अर्थ को कहने वाले युष्मद्-शब्द होने पर मध्यमपुरुष होता है। इसी प्रकार **अस्मद्युत्तमः** सूत्र में **समानाधिकरणे** जाकर **अस्मदि** का विशेषण बनता है। अतः उस सूत्र का तिङ्-वाच्य कारक कर्ता या कर्म तद्वाचक अस्मद्-शब्द के उपपद में होने पर उत्तमपुरुष हो, ऐसा अर्थ बनता है। जहाँ युष्मद् और अस्मद् दोनों समानाधिकरण न हो अर्थात् युष्मद् और अस्मद् शब्द तिङ्वाच्य कारक कर्ता या कर्म के वाचक न हों, अपितु कोई दूसरा समानाधिकरण हो तब प्रथमपुरुष होता है।

उपपदम्। उप=समीप में उच्चारित, **पदम्**=पद। युष्मद् शब्द के समीप में उच्चारित होने पर मध्यम पुरुष होता है किन्तु वह युष्मद् शब्द **तिङ् के वाच्य कारक** कर्ता या कर्म के **वाची** के रूप में समान अधिकरण में हो तो। तात्पर्य यह है कि उस वाक्य की जो क्रिया

उत्तमपुरुषविधायकं विधिसूत्रम्

३८४. अस्मद्युत्तमः १।४।१०७॥

तथाभूतेऽस्मद्युत्तमः।

प्रथमपुरुषविधायकं विधिसूत्रम्

३८५. शेषे प्रथमः १।४।१०८॥

मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमः स्यात्। भू ति इति जाते।

....

है, उसमें लकार, तिप् आदि जिस अर्थ में हुआ है उसी अर्थ के लिए युष्मद् शब्द का प्रयोग किया जाता हो। जैसे- **त्वं पुस्तकं पठसि** इस वाक्य में पठसि क्रिया में लट् लकार कर्ता अर्थ में है और वाक्य में भी युष्मद् शब्द का प्रथमान्त रूप **त्वम्** कर्ता अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है। अतः दोनों का एक ही अधिकरण हुआ। एकाधिकरण अर्थात् समानाधिकरण होने से पठ् धातु से मध्यमपुरुष हुआ। यदि भिन्न अधिकरण होगा तो मध्यमपुरुष नहीं होगा। जैसे- **रामस्त्वां पश्यति** इस वाक्य में दृश् धातु से लकार तो कर्ता अर्थ में हुआ और युष्मद् शब्द भी कर्म अर्थ में द्वितीयान्त होकर प्रयुक्त हो रहा है फिर भी कर्ता और कर्म भिन्न-भिन्न अधिकरण होने के कारण समानाधिकरण नहीं हुआ। अतः मध्यमपुरुष न होकर प्रथमपुरुष हुआ। इसी तरह **अहं त्वां कथयामि** इस वाक्य में भी कथय से लकार कर्ता अर्थ में हुआ है और युष्मद् शब्द का द्वितीयान्त रूप कर्म अर्थ में प्रयुक्त हुआ। इसलिए यहाँ भी युष्मद् शब्द समानाधिकरण नहीं हुआ। अतः मध्यमपुरुष नहीं हुआ।

प्रयोग हो या प्रयोग की सम्भावना हो कहने का तात्पर्य यह है कि कभी-कभी युष्मद-शब्द के प्रयोग न होने पर भी किन्तु उस समय में भी अन्य किसी शब्द का प्रयोग नहीं होना चाहिए। जैसे- **त्वं गच्छसि** या **गच्छसि**। युष्मत् शब्द के साक्षात् प्रयोग में तो मध्यमपुरुष होता ही है साथ ही उसकी सम्भावना मात्र में भी मध्यमपुरुष होता है। इसके लिए ही सूत्र में **स्थानिनि** शब्द का प्रयोग हुआ है। **स्थानिनि** पद का अर्थ वृत्ति में **अप्रयुज्यमाने** किया है। जिसको आदेश होता है, उसे **स्थानी** कहते हैं। आदेश होने के बाद स्थानी का लोप हो जाता है अर्थात् प्रयोग में नहीं रहता। अतः **स्थानिनि** का **स्थानी के प्रयोग न होने पर** इतना अर्थ हुआ। **स्थानिन्यपि** इसमें **अपि** शब्द के जुड़ने से **अप्रयुज्यमाने प्रयुज्यमाने च** अर्थात् **प्रयोग न होने पर** और **प्रयोग होने पर भी**, यह अर्थ निकलता है।

२८४- अस्मद्युत्तमः। अस्मदि सप्तम्यन्तम्, उत्तमः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः** से **उपपदे समानाधिकरणे स्थानिनि अपि** इतने पदों की अनुवृत्ति होती है।

तिङ् के वाच्य (अर्थ) जो कारक (कर्ता अथवा कर्म), उसको बताने वाले अस्मद्-शब्द के उपपद में होने पर, उस अस्मद् शब्द का प्रयोग होने पर या प्रयोग न होने पर विवक्षा मात्र होने पर भी उत्तम-पुरुष होता है।

इसकी व्याख्या भी पूर्वसूत्र की तरह ही समझनी चाहिए। वहाँ युष्मद् शब्द के विषय में मध्यमपुरुष का विधान है तो यहाँ अस्मद्-शब्द के विषय में उत्तमपुरुष का विधान है। जैसे **अहं गच्छामि** अथवा **गच्छामि** इन प्रयोगों में अस्मद् शब्द का प्रथमान्त रूप

सार्वधातुकसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

३८६. तिङ्शित्सार्वधातुकम् ३।४।११३॥

तिङः शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्संज्ञाः स्युः॥

शप्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

३८७. कर्तरि शप् ३।१।६८॥

कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप्।

....

अहम् कर्ता के रूप में प्रयुक्त है अथवा **गच्छामि** इस क्रिया में कर्ता **अहम्** विवक्षित है, क्योंकि लट् लकार कर्ता अर्थ में हुआ है। अतः समानाधिकरण है। फलतः उत्तमपुरुष का प्रयोग हुआ।

३८५- **शेषे प्रथमः**। शेषे सप्तम्यन्तं, प्रथमः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

उत्तमपुरुष और मध्यमपुरुष का विषय न होने पर प्रथमपुरुष होता है।

उत्तमपुरुष और मध्यमपुरुष के लिए प्रयोग होने में जो कारण बताये गये, उससे भिन्न शेष हुआ अर्थात् **उक्तादन्यः शेषः**। इसके पूर्व दो सूत्रों के द्वारा कथित कारणों के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थिति में प्रथमपुरुष का प्रयोग होना चाहिए। इस प्रकार से इन तीन सूत्रों से जो व्यवस्था दी गई, वह यह कि युष्मत्-शब्द के प्रयोग या प्रयोग की विवक्षा में मध्यमपुरुष, अस्मत्-शब्द के प्रयोग या प्रयोग की विवक्षा होने पर उत्तमपुरुष और शेष सर्वत्र प्रथमपुरुष का प्रयोग होता है।

३८६- **तिङ्शित्सार्वधातुकम्**। श् इत् यस्य स शित्, बहुव्रीहिः। तिङ् च शिच्च तयोः समाहारद्वन्द्वः तिङ्शित्। तिङ्शित् प्रथमान्तं, सार्वधातुकं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोः** सूत्र का अधिकार है।

धातु से किये गये तिङ् और शित् प्रत्यय सार्वधातुकसंज्ञक होते हैं।

यह सूत्र सार्वधातुकसंज्ञा करता है उनकी, जो धातु से विधान किए गए हों और वे या तो तिङ् हों या शकार-इत्संज्ञक प्रत्यय हों। इससे पूरे तिङ् की सार्वधातुकसंज्ञा होती है किन्तु लिट् और आशीर्लिङ् में इस सूत्र को बाधकर **लिट् च** एवं **लिङाशिषि** सूत्र से **आर्धधातुकसंज्ञा** भी होती है। **कर्तरि शप्** से होने वाले शप्-प्रत्यय की भी इसी सूत्र से सार्वधातुकसंज्ञा होती है।

३८७- **कर्तरि शप्**। कर्तरि सप्तम्यन्तं, शप् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति है।

कर्ता अर्थ में किये गये सार्वधातुकसंज्ञक प्रत्यय के परे रहने पर धातु से शप् प्रत्यय होता है।

शप् में पकार की **हलन्त्यम्** से और शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा होती है। केवल **अ** ही बचता है। यह शप् प्रकृति धातु और प्रत्यय तिङ् के बीच में होता है। अतः **प्रकृतिप्रत्यययोर्मध्ये यः पतति स विकरणः** अर्थात् प्रकृति और प्रत्यय के बीच में जो होता है, वह विकरण है, इस नियम से **शप्** को **विकरण** माना जाता है। भ्वादि में शप् होता है। अतः भ्वादिगणीय धातु को शब्विकरणधातु कहा जाता है।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

३८८. सार्वधातुकार्धधातुकयोः ७।३।८४॥

अनयोः परयोरिगन्ताङ्गस्य गुणः। अवादेशः। भवति। भवतः।

....

३८८- **सार्वधातुकार्धधातुकयोः**। सार्वधातुकञ्च आर्धधातुकञ्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः सार्वधातुकार्धधातुके, तयोः सार्वधातुकार्धधातुकयोः। सार्वधातुकार्धधातुकयोः सप्तम्यन्तम्, एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **मिदेर्गुणः** से **गुणः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है। **इको गुणवृद्धी** इस परिभाषासूत्र से **इकः** यह पद भी आता है।

सार्वधातुक और आर्धधातुक के परे रहने पर इगन्त अङ्ग को गुण होता है। **अलोऽन्त्यस्य** के नियम से अन्त्य वर्ण इकार, उकार, ऋकार और लृकार के स्थान पर गुण आदेश हो जाता है। **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** के नियम से सार्वधातुक और आर्धधातुक के अव्यवहित पूर्व के स्थान पर गुण होता है।

भवति। भू धातु है। **भू सत्तायाम्।** भू धातु का अर्थ सत्ता है। सत्ता माने स्थिति। इस प्रकरण में सबसे पहले भू धातु है, भू धातु आदि में होने के कारण इस प्रकरण के सारे धातु भ्वादिगणीय धातु माने जाते हैं। भू में उकार को पाणिनि जी ने अनुनासिक नहीं माना, इसलिए **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से उसकी इत्संज्ञा नहीं हुई। इस धातु में कभी कर्म नहीं लग सकता है, इसलिए यह धातु अकर्मक है। अकर्मक धातु से **लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः** के अनुसार कर्ता अर्थ में लकार होने का विधान हुआ तो **वर्तमाने लट्** ने वर्तमान अर्थ में भू-धातु से लट्-लकार का विधान हुआ।

भू लट् में टकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होकर दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हुआ तो **भू+ल्** बना। लकार के स्थान पर **तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ्** से तिप् आदि अठारहों आदेश प्राप्त हुए। उनमें प्रथम-नवक तिप् आदि की **लः परस्मैपदम्** से परस्मैपदसंज्ञा और द्वितीय-नवक त, आताम् आदि की **तङानावात्मनेपदम्** से आत्मनेपदसंज्ञा हुई। इसके बाद **तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः** से प्रथमपुरुष, मध्यमपुरुष और उत्तमपुरुषसंज्ञा हुई। आत्मनेपद के विधान होने के लिए कोई कारण न होने के निमित्त **शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्** से भू-धातु के बाद परस्मैपद का विधान हुआ। परस्मैपद में भी नौ-प्रत्यय और तीन पुरुष हैं। मध्यमपुरुष और उत्तमपुरुष का विषय न होने के कारण **शेषे प्रथमः** से प्रथमपुरुष का विधान हुआ।

एकत्वसंख्या की विवक्षा में **द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने** के नियम से एकवचन तिप् आया। तिप् में पकार की **हलन्त्यम्** इस सूत्र से इत्संज्ञा हुई और **तस्य लोपः** से उसका लोप हुआ। केवल ति बचा, **भू+ति** बना। ति धातु से विहित तिङ् है। अतः **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से ति की सार्वधातुकसंज्ञा हुई। इसके बाद सूत्र लगा- **कर्तरि शप्।** कर्ता अर्थ में सार्वधातुक परे है ति, क्योंकि लकार कर्ता अर्थ में हुआ है और उसके स्थान पर हुए ति में भी कर्ता अर्थ स्थानिवद्भाव से विद्यमान है। अतः भू धातु से शप् प्रत्यय का विधान हुआ। शप् में पकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा हुई। दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हुआ। केवल अ बचा, **भू+अ+ति** बना।

अन्तादेशविधायकं विधिसूत्रम्

३८९. झोऽन्तः ७।१।३॥

प्रत्ययावयवस्य झस्यान्तादेशः। **अतो गुणे**। भवन्ति।

भवसि। भवथः। भवथ।

शप् वाले अकार की भी **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा हुई, क्योंकि शप् भी धातु से विहित है और शकार की इत्संज्ञा होने के कारण शित् भी है। अब सूत्र लगा- **सार्वधातुकार्धधातुकयोः**। सार्वधातुक परे है शप् वाला अकार और इगन्त अङ्ग है भू, उसके अन्त में है- ऊकार। इसको गुण हुआ तो उ के स्थान पर यत्किञ्चत् स्थानसाम्यता से ओ गुण होता है। भू के ऊकार के स्थान पर गुण होकर भो हुआ, **भो+अ+ति** बना। **भो+अ** में **एचोऽयवायावः** से अव् आदेश हुआ- **भ्+अव्+अ+ति** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **भ्+अ=भ** और **व्+अ=व**, ति= **भवति** यह रूप सिद्ध हुआ।

आप इस प्रक्रिया को अनेक बार करना, क्योंकि जैसे रामशब्द की अच्छी तैयारी से आगे के शब्दों की सिद्धि में सरलता होती है, उसी प्रकार भू धातु को ठीक से मुखाग्र करने पर आगे के धातुओं की सिद्धि में सरलता होगी।

भवतः। इसकी प्रक्रिया भी भवति के समान ही है। लट् लकार के स्थान पर प्रथमपुरुष का द्विवचन तस् आता है। **भू+तस्**, बना, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, पुनः शप् की सार्वधातुकसंज्ञा, गुण, अव् आदेश, वर्णसम्मेलन होने के बाद **भवतस्** बना है, सकार का रुत्व और विसर्ग हो जाने के बाद **भवतः** सिद्ध हो गया।

३८९- **झोऽन्तः**। झः षष्ठ्यन्तम्, अन्तः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से विभक्तिविपरिणाम करके **प्रत्ययस्य** की अनुवृत्ति आती है।

प्रत्यय के अवयव झकार के स्थान पर अन्त् आदेश होता है।

झकार की चुटू से इत्संज्ञा प्राप्त थी, उसे बाधकर यह सूत्र लगता है।

भवन्ति। भू धातु से प्रथमपुरुष का बहुवचन झि आया, उसमें झकार की इत्संज्ञा प्राप्त थी, उसे बाधकर झोऽन्तः से अन्त् आदेश हुआ, **भू+अन्त्+इ** बना। **अन्त्+इ=अन्ति**। सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, पुनः शप् की सार्वधातुकसंज्ञा, गुण, अव् आदेश, वर्णसम्मेलन होने के बाद **भव+अन्ति** बना है, **अतो गुणे** से पररूप हो जाने के बाद **भवन्ति** ऐसा रूप सिद्ध हो गया।

भवसि। भू धातु से **युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः** से मध्यमपुरुष का विधान, एकवचन सिप्, पकार का लोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्ध लोप, पुनः शप् की सार्वधातुकसंज्ञा, गुण, अव् आदेश, वर्णसम्मेलन होने के बाद **भवसि** बना।

भवथः। भू धातु से **युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः** से मध्यमपुरुष का विधान, द्विवचन में थस्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, पुनः शप् की सार्वधातुकसंज्ञा, गुण, अवादेश, वर्णसम्मेलन होने के बाद **भवथस्** बना। सकार का रुत्वविसर्ग हुआ- **भवथः**।

भवथ। भू धातु से **युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः** से मध्यमपुरुष

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

३९०. अतो दीर्घो यञि ७।३।१०१॥

अतोऽङ्गस्य दीर्घो यञादौ सार्वधातुके।

भवामि। भवावः। भवामः। स भवति। तौ भवतः। ते भवन्ति। त्वं भवसि। युवां भवथः। यूयं भवथ। अहं भवामि। आवां भवावः। वयं भवामः।

....

का विधान, बहुवचन थ आया, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, पुनः शप् की सार्वधातुकसंज्ञा, गुण, अव् आदेश, वर्णसम्मेलन होने के बाद **भवथ** बना।

३९०- अतो दीर्घो यञि। अतः षष्ठ्यन्तं, दीर्घः प्रथमान्तं, यञि सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है ही।

अदन्त अङ्ग को दीर्घ होता है यञ् प्रत्याहार आदि में हो ऐसे सार्वधातुक के परे रहते।

इसके द्वारा भू के बाद किये गये शप् के अकार को दीर्घ होता है। प्रश्न यह हो सकता है कि अङ्गसंज्ञा तो प्रकृति की होती है, यहाँ तो प्रकृति केवल भू है, शप् तो प्रत्यय है। ऐसी स्थिति में शप् को अङ्गसंज्ञक कैसे माना गया? इसका उत्तर यह है शप् केवल प्रत्यय न होकर विकरण भी है। अङ्गसंज्ञा विकरण सहित की भी मानी जायेगी। अतः शप् सहित भू को अङ्ग माना जायेगा। शप् के अकार को इस सूत्र से दीर्घ होगा।

भवामि। भू धातु से **अस्मद्युत्तमः** से उत्तमपुरुष का विधान, एकवचन मिप्, पकार की इत्संज्ञा होकर लोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, पुनः शप् की सार्वधातुकसंज्ञा, गुण, अव् आदेश, वर्णसम्मेलन होने के बाद **भव+मि** बना। मि यञादि सार्वधातुक है, अतः **अतो दीर्घो यञि** से भव के अकार को दीर्घ हुआ- **भवामि।**

भवावः। भू धातु से **अस्मद्युत्तमः** से उत्तमपुरुष का विधान, द्विवचन वस्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, पुनः शप् की सार्वधातुकसंज्ञा, गुण, अव् आदेश, वर्णसम्मेलन होने के बाद **भव+वस्** बना। वस् यञादि सार्वधातुक है, अतः **अतो दीर्घो यञि** से भव के अकार को दीर्घ हुआ- **भवावस्** बना, सकार को रुत्वविसर्ग हुआ- **भवावः।**

भवामः। भू धातु से **अस्मद्युत्तमः** से उत्तमपुरुष का विधान हुआ, बहुवचन मस् आया, उसकी सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, पुनः शप् की सार्वधातुकसंज्ञा, गुण, अव् आदेश, वर्णसम्मेलन होकर **भव+मस्** बना। **मस्** यञादि सार्वधातुक है, अतः **अतो दीर्घो यञि** से भव के अकार को दीर्घ, **भवामस्** बना, सकार को रुत्वविसर्ग हुआ- **भवामः।**

भू धातु के लट् लकार के रूप

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमपुरुष	भवति	भवतः	भवन्ति।
मध्यमपुरुष	भवसि	भवथः	भवथ।
उत्तमपुरुष	भवामि	भवावः	भवामः।

लिट्लकारविधायकं विधिसूत्रम्

३९१. परोक्षे लिट् ३।२।११५॥

भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात्। लस्य तिबादयः।

णलाद्यादेशविधायकं विधिसूसूत्रम्

३९२. परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ३।४।८२॥

लिटस्तिबादीनां नवानां णलादयः स्युः। भू अ इति स्थिते।

वुगागमविधायकं विधिसूत्रम्

३९३. भुवो वुग् लुङ्लिटोः ६।४।८८॥

भुवो वुगागमः स्याल्लुङ्लिटोरचि।

....

३९२- **परोक्षे लिट्।** परोक्षे सप्तम्यन्तं, लिट् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अनद्यतने लट्** से **अनद्यतने** की अनुवृत्ति आती है और **भूते** और **धातोः** का अधिकार चल रहा है।

भूत, अनद्यतन परोक्ष अर्थ में रहने वाली धातुओं से लिट् लकार होता है।

बीते हुए समय को भूत कहते हैं। अपने इन्द्रियों के पीछे को परोक्ष कहते हैं। जो आज का हो उसे अद्यतन कहते हैं और जो आज का नहीं है, उसे अनद्यतन कहते हैं। ये तीनों अर्थात् भूत, अनद्यतन, परोक्ष एक ही क्रिया में हों तो ऐसी धातुओं से लिट् का प्रयोग होता है। केवल भूत में नहीं, केवल परोक्ष में नहीं और केवल अनद्यतन में नहीं, तीनों एक साथ होने पर इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है। लिट् में भी टकार और इकार की इत्संज्ञा और लोप हो जाने के बाद ल् ही बचता है तथा लकार के स्थान पर उसी प्रकार से तिप्, तस् आदि होते हैं।

३९२- **परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः।** णल् च अतुश्च, उश्च, थल्च, अथुश्च, अश्च, णल् च, वश्च मश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः। परस्मैपदानां षष्ठ्यन्तं णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **लिटस्तझयोरेशिरेच्** से **लिटः** की अनुवृत्ति आती है।

लिट् लकार के स्थान पर आदेश हुए तिप् आदि नौ प्रत्ययों के स्थान पर क्रमशः णल्, अतुस्, उस्, थल्, अथुस्, अ, णल्, व, म आदेश होते हैं।

इस प्रकार से तिप् के स्थान पर णल्, तस् के स्थान पर अतुस्, झि के स्थान पर उस्, सिप् के स्थान पर थल्, थस् के स्थान पर अथुस्, थ के स्थान पर अ, मिप् के स्थान पर णल्, वस् के स्थान पर व और मस् के स्थान पर म आदेश होते हैं।

३९३- **भुवो वुग् लुङ्लिटोः।** लुङ् च लिट् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः, तयोः लुङ्लिटोः। भुवः षष्ठ्यन्तं, वुक् प्रथमान्तं, लुङ्लिटोः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **अचि** की अनुवृत्ति आती है।

लुङ् और लिट् लकार से सम्बन्धित अच् के परे रहने पर भू धातु को वुक् आगम होता है।

वुक् में ककार और उकार की इत्संज्ञा हो जाती है, केवल व् बचता है। ककार

द्वित्वविधायकं विधिसूत्रम्

३९४. लिटि धातोरनभ्यासस्य ६।१।८॥

लिटि परेऽनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तः, आदिभूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य। भूव् भूव् अ इति स्थिते।

अभ्याससंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

३९५. पूर्वोऽभ्यासः ६।१।४॥

अत्र ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽभ्याससंज्ञः स्यात्।

हलादिशेषविधायकं विधिसूत्रम्

३९६. हलादिः शेषः ७।४।६०॥

अभ्यासस्यादिर्हल् शिष्यते, अन्ये हलो लुप्यन्ते। इति वलोपः।

....

की इत्संज्ञा होने के कारण कित् हुआ और **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से अन्तावयव होकर बैठता है। भू को वुक् आगम हुआ है, अतः भू के अन्त में बैठेगा।

३९४- लिटि धातोरनभ्यासस्य। लिटि सप्तम्यन्तं, धातोः षष्ठ्यन्तम्, अनभ्यासस्य षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **एकाचो द्वे प्रथमस्य** और **अजादेर्द्वितीयस्य** का अधिकार आ रहा है।

लिट् के परे होने पर अनभ्यास धातु के अवयव प्रथम एकाच् को द्वित्व हो जाता है परन्तु यदि धातु का आदिभूत (पहला अक्षर) अच् हो तो उस अच् से परे दूसरे एकाच् भाग को द्वित्व होता है।

जिस धातु की अभी तक अभ्यास-संज्ञा नहीं हुई है, उस धातु को द्वित्व होता है, लिट् लकार के परे रहने पर। यदि धातु में अनेक अच् हों तो हल्-सहित प्रथम एक अच् को द्वित्व होता है और यदि धातु का आदिवर्ण अच् हो और धातु अनेकाच् हो तो प्रथम एकाच् को द्वित्व न होकर द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है।

यद्यपि इस सूत्र की अनेकाच् धातुओं में ही प्रवृत्ति होनी चाहिए, क्योंकि अनेकाच् धातुओं में प्रथम एकाच या द्वितीय एकाच् हो सकता है, फिर भी एकाच् धातुओं में व्यपदेशिवद्भाव से अनेकाच् मानकर द्वित्व किया जाता है।

३९५- पूर्वोऽभ्यासः। पूर्वः प्रथमान्तम्, अभ्यासः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। द्वित्व करने पर दो हो जाते हैं।

इन छठवें अध्याय के सूत्रों से द्वित्व होने पर जो दो-दो बार उच्चारित हो रहे हैं, उनमें पूर्व का रूप अभ्याससंज्ञक होता है।

भूव् को द्वित्व होने पर भूव् भूव् हुआ तो पूर्व **भूव्** की अभ्याससंज्ञा हुई।

३९६- हलादिः शेषः। हल् प्रथमान्तम्, आदिः प्रथमान्तं, शेषः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

अभ्यास का आदि हल् शेष रहता है और अन्य हलों का लोप होता है।

द्वित्व होने पर पूर्व की जो अभ्याससंज्ञा हुई थी, उसमें यदि अनेक हल् हैं तो आदि में विद्यमान हल् ही शेष रहता है और अन्य हलों का लोप हो जाता है। यह सूत्र आदि

ह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्

३९७. ह्रस्वः ७।४।५९॥

अभ्यासस्याचो ह्रस्वः स्यात्।

अत्वविधायकं विधिसूत्रम्

३९८. भवतेरः ७।४।७३॥

भवतेरभ्यासोकारस्य अः स्याल्लिटि।

चर्त्वविधायकं विधिसूत्रम्

३९९. अभ्यासे चर्च ८।४।५४॥

अभ्यासे झशां चरः स्युर्जशश्च। झशां जशः खयां चर इति विवेकः।

बभूव। बभूवतुः। बभूवुः।

....

हल् का शेष हो इतना ही कहता है, आगे **अन्य का लोप हो** यह अर्थ स्वतः आ जाता है। यह सूत्र अचों का लोप नहीं करता। जैसे भूव् में भ् और व् दो हल् है, उनमें से भ् शेष रहता है और व् का लोप होता है। उकार जो अच् है वह तो रहेगा ही।

३९७- ह्रस्वः। ह्रस्वः प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

अभ्यास के अच् को ह्रस्व होता है।

भू में ऊकार के स्थान पर ह्रस्व होकर उकार बन जाता है।

३९८- भवतेरः। भवतेः षष्ठ्यन्तम्, अः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **व्यथो लिटि** से लिटि और **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आ रही है।

भूधातु के अभ्यास के उकार के स्थान पर अकार आदेश होता है, लिट् के परे होने पर।

भू के ऊकार के स्थान पर अकार आदेश होकर भ बन जायेगा।

३९९- अभ्यासे चर्च। अभ्यासे सप्तम्यन्तं, चर् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **झलां जश् झशि** से झलां और जश् की अनुवृत्ति आती है।

अभ्यास में झल् के स्थान पर जश् और चर् आदेश होते हैं।

सूत्रार्थ के अनुसार यहाँ झल् के स्थान पर जश् और चर् दो प्रकार के आदेश हो रहे थे तो झलों को दो भागों में विभाजित किया गया- झश् और खय्। इन दोनों के स्थान पर क्रमशः जश् और चर् आदेश होंगे। झल् में **श्, ष्, स्** भी आते हैं किन्तु उनके स्थान चर् आदेश किया भी जाय तो स्थान, प्रयत्न आदि की साम्यता से शकार के स्थान पर शकार, षकार के स्थान पर षकार और सकार के स्थान पर सकार ही आदेश हो जाते हैं।

बभूव। भू धातु से कर्ता अर्थ में परोक्ष, अनद्यतन, भूत अर्थ में **परोक्षे लिट्** से लिट् लकार हुआ, अनुबन्धलोप, उसके स्थान पर तिप् आदि आदेश प्राप्त हुए। प्रथमपुरुषसंज्ञा, प्रथमपुरुष का एकवचन तिप् आया। अनुबन्धलोप होकर **भू+ति** बना। यहाँ ति की सार्वधातुकसंज्ञा नहीं होती है क्योंकि अग्रिमसूत्र **लिट् च** से सार्वधातुकसंज्ञा को बाधकर लिट्

आर्धधातुकसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

४००. लिट् च ३।४।११५।।

लिडादेशस्तिङ्ङार्धधातुकसंज्ञः।

इडागमविधायकं विधिसूत्रम्

४०१. आर्धधातुकस्येड्वलादेः ७।२।३५।।

वलादेरार्धधातुकस्येडागमः स्यात्।

बभूविथ। बभूवथुः। बभूव। बभूव। बभूविव। बभूविम।

....

लकार की आर्धधातुकसंज्ञा हो जाती है। अतः **कर्तरि शप्** से शप् भी नहीं हुआ। ति के स्थान पर **परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः** से णल् आदेश हुआ। णल् में लकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और णकार की **चुटू** से इत्संज्ञा तथा दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हुआ। केवल **अ** बचा। **भू अ** बना। **भुवो वुग् लुङ्लिटोः** से वुक् आगम हुआ, अनुबन्धलोप होकर **व्** बचा, कित् होने के कारण भू के अन्त में बैठा, **भूव् अ** बना। **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से भूव् को द्वित्व हुआ, **भूव् भूव् अ** बना। **पूर्वोऽभ्यासः** से पहले वाले **भूव्** की अभ्याससंज्ञा हुई और **हलादि शेषः** से अभ्याससंज्ञक भूव् में जो आदि हल् है भ्, उसका शेष और अन्य हल् वकार का लोप हुआ, **भू भूव् अ** बना। **ह्रस्वः** से अभ्याससंज्ञक भू के ऊकार को ह्रस्व होकर **भु** हुआ, **भु भूव् अ** बना। **भवतेरः** से भु के उकार के स्थान पर अकार आदेश हुआ, **भ भूव् अ** बना। **अभ्यासे चर्च** से झश् भकार के स्थान पर जश् बकार आदेश हुआ, **बभूव् अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **बभूव** सिद्ध हुआ।

बभूवतुः। बभूवुः। भू धातु से कर्ता अर्थ और परोक्ष, अनद्यतन, भूत काल में **परोक्षे लिट्** से लिट् लकार, अनुबन्धलोप, उसके स्थान पर तिप् आदि आदेश प्राप्त हुए। प्रथमपुरुषसंज्ञा, प्रथमपुरुष का द्विवचन तस् आया, भू+तस् बना। यहाँ तस् की सार्वधातुकसंज्ञा नहीं होती है क्योंकि अग्रिम सूत्र **लिट् च** से सार्वधातुकसंज्ञा को बाधकर लिट् लकार की आर्धधातुकसंज्ञा हो जाती है। अतः **कर्तरि शप्** से शप् भी नहीं हुआ। तस् के स्थान पर **परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः** से अतुस् आदेश हुआ, भू अतुस् बना। **भुवो वुग् लुङ्लिटोः** से वुक् आगम, अनुबन्धलोप व् बचा, कित् होने के कारण भू के अन्त में बैठा, **भूव् अतुस्** बना। **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से भूव् को द्वित्व हुआ, **भूव् भूव् अतुस्** बना। **पूर्वोऽभ्यासः** से पहले वाले भूव् की अभ्याससंज्ञा हुई और **हलादि शेषः** से अभ्याससंज्ञक भूव् में भ् जो आदि हल् है, उसका शेष और अन्य हल् वकार का लोप, **भू भूव् अतुस्** बना। **ह्रस्वः** से अभ्याससंज्ञक भू के ऊकार को ह्रस्व, **भु भूव् अतुस्** बना। **भवतेरः** से भु के उकार के स्थान पर अकार आदेश, **भ भूव् अतुस्** बना। **अभ्यासे चर्च** से झश् भकार के स्थान पर जश् बकार आदेश, **बभूव् अतुस्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **बभूवतुस्** बना। सकार के स्थान पर रुत्वविसर्ग हुआ तो **बभूवतुः** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार बहुवचन में झि और उसके स्थान पर उस् आदेश होकर **बभूवुः** बनेगा।

४००- **लिट् च**। लिट् लुप्तषष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से तिङ् और **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकम्** की अनुवृत्ति आती है।

लिट् लकार के स्थान पर आदेश हुए तिङ् आर्धधातुकसंज्ञक होते हैं।

लिट् की **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा प्राप्त होती है और उसे बाधकर इस सूत्र से आर्धधातुकसंज्ञा हो जाती है। **लिट्** को लुप्तषष्ठीक पद इस लिए माना गया क्योंकि यहाँ पर तिङ् की अनुवृत्ति आने से **लिट्** का अर्थ **लिट् के स्थान पर** ऐसा माना गया है।

४०१- आर्धधातुकस्येड्वलादेः। वल् आदौ यस्य स वलादिः, तस्य वलादेः। आर्धधातुकस्य षष्ठ्यन्तम्, इट् प्रथमान्तं, वलादेः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

वल् प्रत्याहार वाला वर्ण आदि में हो, ऐसे आर्धधातुक को इट् का आगम होता है।

टकार की इत्संज्ञा होती है और टित् होने के कारण यह आर्धधातुक के आदि में आकर बैठता है।

बभूविथ। बभूवथुः। बभूव। बभूव। बभूविव। बभूविम। भू धातु से कर्ता अर्थ और परोक्ष, अनद्यतन, भूत काल में **परोक्षे लिट्** से लिट् लकार हुआ, अनुबन्धलोप हुआ, उसके स्थान पर तिप् आदि आदेश प्राप्त हुए। प्रथमपुरुषादि संज्ञा, मध्यमपुरुष के एकवचन की प्राप्ति, सिप् आया, भू+सिप् बना। पकार का लोप। यहाँ सि की सार्वधातुकसंज्ञा नहीं होती है क्योंकि **लिट् च** से सार्वधातुकसंज्ञा को बाधकर लिट् लकार की आर्धधातुकसंज्ञा हो जाती है। अतः **कर्तरि शप्** से शप् भी नहीं हुआ। सि के स्थान पर **परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः** से **थल्** आदेश हुआ, अनुबन्धलोप, **भू थ** बना। **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से वलादि आर्धधातुक थ को इट् आगम हुआ, टकार की इत्संज्ञा और लोप हुआ, इ बचा। टित् होने के कारण थ के आदि में बैठा, **भू इ थ** बना। अब यह अजादि बना तो **भुवो वुग् लुङ्लिटोः** से भू को **वुक्** आगम हुआ, अनुबन्धलोप होकर व् बचा, कित् होने पर भू के अन्त में बैठा, **भूव् इ थ** बना। **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से भूव् को द्वित्व हुआ, भूव् भूव् इ थ बना। **पूर्वोऽभ्यासः** से पहले वाले भूव् की अभ्याससंज्ञा हुई और **हलादि शेषः** से अभ्याससंज्ञक भूव् में भ् जो आदि हल् है, उसका शेष और अन्य हल् वकार का लोप हुआ, भू भूव् इ थ बना। **ह्रस्वः** से अभ्याससंज्ञक **भू** के **ऊकार** को **ह्रस्व** होकर भु हुआ, भु भूव् इ थ बना। **भवतेरः** से भु के **उकार** के स्थान पर **अकार** आदेश हुआ, भ भूव् इ थ बना। **अभ्यासे चर्च** से झश् भकार के स्थान पर जश् बकार आदेश हुआ, बभूव् इ थ बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **बभूविथ** बना।

अब इसी प्रकार मध्यमपुरुष के द्विवचन के **थस्** के स्थान पर **अथुस्** आदेश होकर **बभूवतुः** के समान **बभूवथुः** बनेगा।

मध्यमपुरुष के बहुवचन में **अ** आदेश होकर णल् के ही समान **बभूव** और उत्तमपुरुष के एकवचन में भी णल् आदेश होकर **बभूव** बना। उत्तमपुरुष के द्विवचन में व आदेश होकर **बभूविव** और बहुवचन में म आदेश होकर **बभूविम** बनेंगे। यहाँ पर यह ध्यान देना होगा कि यदि वल् प्रत्याहार आगे है तो इट् का आगम होगा और नहीं तो इट् आगम नहीं होगा। वुक् आगम करने के लिए अच् परे होना जरूरी है। **लिट्** में जहाँ प्रत्यय या आदेश अच् नहीं है, वहाँ पर इट् आगम होने के बाद **अच् परे** मिल जाता है।

लुट्लकारविधायकं विधिसूत्रम्

४०२. अनद्यतने लुट् ३।३।१५॥

भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट्।

स्यतासिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

४०३. स्यतासी लृलुटोः ३।१।३३॥

धातोः 'स्य-तासी' एतौ प्रत्ययौ स्तो लृलुटोः परतः।

शबाद्यपवादः। लृ इति लृङ्लृटोर्ग्रहणम्।

आर्धधातुकसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

४०४. आर्धधातुकं शेषः ३।४।११४॥

तिङ्शिद्भ्योऽन्यो धातोरिति विहितः प्रत्यय एतत्संज्ञः स्यात्। इट्।

डारौरसादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४०५. लुटः प्रथमस्य डारौरसः २।४।८५॥

'डा-रौ-रस्' एते क्रमात् स्युः। डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः। भविता।

....

४०२- अनद्यतने लुट्। अनद्यतने सप्तम्यन्तं, लुट् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **भविष्यति गम्यादयः** से भविष्यति की अनुवृत्ति आती है।

अनद्यतन भविष्यत् अर्थ में धातु से लुट् लकार होता है।

आने वाले समय को भविष्यत् कहते हैं। जो आज का है, उसे अद्यतन और जो आज का विषय नहीं है, उसे अनद्यतन कहते हैं। भविष्यत् होते हुए जो आज का विषय न हो ऐसे काल में धातु से लुट् लकार हो। इसका तात्पर्य यह है कि आज के भविष्यत् में लुट् होता ही नहीं है। भविता का अर्थ होगा- आने वाले कल या उसके बाद में होने वाला।

४०३- स्यतासी लृलुटोः। स्यश्च तासिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः स्यतासी। आ च लुट् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः- लृलुटौ, तयोः लृलुटोः। स्यतासी प्रथमान्तं, लृलुटोः सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

लृट्, लृङ् और लुट् लकार के परे रहने पर धातु से स्य और तासि प्रत्यय होते हैं।

यह सूत्र शप् आदि प्रत्ययों को बाधकर लगता है। लृ से लृट् और लृङ् दोनों लकारों का ग्रहण है। **यथासंख्य** से लृ को स्य और लुट् को तासि हो जाता है।

४०४- आर्धधातुकं शेषः। आर्धधातुकं प्रथमान्तं, शेषः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

धातु से विहित एवं तिङ् और शित् से भिन्न प्रत्यय आर्धधातुकसंज्ञक होते हैं।

अष्टाध्यायी में इस सूत्र से पहले **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** पढ़ा गया है। अतः इस सूत्र में शेष का अर्थ हुआ- **तिङ्** और **शित्** से शेष क्योंकि **उक्तादन्यः शेषः** अर्थात् कहने से बचा हुआ जो भी है, वह शेष है। धातु से विहित जितने भी प्रत्यय होंगे, उनमें यदि तिङ् और शित् न हों तो उनकी आर्धधातुकसंज्ञा होती है। यह सूत्र व्यापक है, कृदन्त आदि में भी लगता है। अतः इस सूत्र को ठीक से समझना चाहिए।

सकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

४०६. तासस्त्योर्लोपः ७।४।५०।।

तासेरस्तेश्च सस्य लोपः स्यात् सादौ प्रत्यये परे।

सकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

४०७. रि च ७।४।५१।।

रादौ प्रत्यये परे तथा।

भवितारौ। भवितारः। भवितासि। भवितास्थः। भवितास्थ। भवितास्मि। भवितास्वः। भवितास्मः।

....

४०५- **लुटः प्रथमस्य डारौरसः।** डाश्च रौश्च रश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः- डारौरसः। लुटः षष्ठ्यन्तं, प्रथमस्य षष्ठ्यन्तं, डारौरसः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

लुट् लकार के प्रथमपुरुष के स्थान पर क्रमशः डा, रौ, रस् ये आदेश होते हैं।

परस्मैपद में **तिप्** के स्थान पर डा, **तस्** के स्थान पर **रौ** और **झि** के स्थान पर **रस्** आदेश तथा आत्मनेपद में **त** के स्थान पर डा, **आताम्** के स्थान पर **रौ** और **झ** के स्थान पर **रस्** आदेश होंगे।

भविता। भू-धातु से कर्ता अर्थ में **अनद्यतने लुट्** से लुट्-लकार का विधान, अनुबन्धलोप हुआ। लकार के स्थान पर तिप् आदेश, अनुबन्धलोप। **भू+ति** में ति की **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा हुई और **कर्तरि शप्** से शप् प्राप्त हुआ, उसे बाध कर **स्यतासी लृलुटोः** से तासि-प्रत्यय हुआ। तासि में इकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। **भू+तास्+ति** बना। तास् धातु से विहित है, तिङ् और शित् से भिन्न भी है। अतः इसकी **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा हुई और **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से तास् को इट् का आगम हुआ तो बना **भू+इ+तास्+ति। भू+इ** में **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण, भो+इ बना, **एचोऽयवायावः** से अव् आदेश होकर **भ्+अव्+इ** बना, वर्णसम्मेलन होने पर- **भवि** बना, आगे तास् ति भी है। **भवितास् ति** में ति के स्थान पर **लुटः प्रथमस्य डारौरसः** से **डा** आदेश हुआ। डकार की **चुटू** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप, **भवितास् आ** बना। भवितास् में अन्त्य अच् है ता का आकार, वह सकार के आदि में है। अतः आस् की **अचोऽन्त्यादि टि** से टिसंज्ञा हुई और डिद्विधानसामर्थ्यात् भसंज्ञा न होने पर भी **टेः** इस सूत्र से टिसंज्ञक आस् का लोप हुआ तो बना- **भवित् आ। भवित्+आ** में वर्णसम्मेलन होने पर **भविता** सिद्ध हुआ।

४०६- **तासस्त्योर्लोपः।** ताश्च अस्तिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वस्तासस्ती, तयोस्तासस्त्योः। तासस्त्योः षष्ठ्यन्तं, लोपः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सः स्यार्धधातुके** से **सि** की अनुवृत्ति आती है।

तासि प्रत्यय के और अस्-धातु के सकार का लोप होता है सकारादि प्रत्यय परे हो तो।

लृट्-लकारविधायकं विधिसूत्रम्

४०८. लृट् शेषे च ३।३।१३॥

भविष्यदर्थाद्धातोर्लृट् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यां वा। स्यः। इट्। भविष्यति। भविष्यतः। भविष्यन्ति। भविष्यसि। भविष्यथः। भविष्यथ। भविष्यामि। भविष्यावः। भविष्यामः।

....

४०७- **रि च**। रि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तासस्त्योर्लोपः** पूरा सूत्र अनुवर्तन होकर आता है।

तासि प्रत्यय और अस्-धातु के सकार का लोप होता है रकारादि प्रत्यय के परे होने पर।

भवितारौ। भवितारः। भू-धातु से कर्ता अर्थ में **अनद्यतने लुट्** से लुट्-लकार का विधान हुआ, अनुबन्धलोप लकार के स्थान पर प्रथमपुरुष का द्विवचन तस् आदेश हुआ। **भू+तस्** में तस् की **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा हुई और **कर्तरि शप्** से शप् प्राप्त हुआ, उसे बाधकर **स्यतासी लृलुटोः** से तासि-प्रत्यय हुआ। तासि में इकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। **भू+तास्+तस्** बना। तास् धातु से विहित है, तिङ् और शित् से भिन्न भी है। अतः इसकी **आर्धधातुकं शेषः** आर्धधातुकसंज्ञा हुई और **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से तास् को इट् का आगम हुआ तो बना **भू+इ+तास्+तस्।** भू+इ में **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण, **भो+इ** बना, **एचोऽयवायावः** से अव् आदेश होकर **भ्+अव्+इ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **भवि** बना, आगे तास् तस् भी है। **भवितास् तस्** में तस् के स्थान पर **लुटः प्रथमस्य डारौरसः** से **रौ** आदेश हुआ, **भवितास् रौ** बना। **रि च** से तास् के सकार का लोप हुआ तो **भवितारौ** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार से **भवितारः** में भी जानना चाहिए। अन्तर केवल इतना ही है कि यह बहुवचन है और झि आता है तथा उसके स्थान पर **लुटः प्रथमस्य डारौरसः** से रस् आदेश होता है। रस् के सकार का रुत्व और विसर्ग होकर **भवितारः** सिद्ध हो जाता है।

भवितासि। मध्यमपुरुष के एकवचन में सिप् आता है, अनुबन्धलोप। तासि, अनुबन्धलोप, आर्धधातुकसंज्ञा, इट् का आगम, गुण, अवादेश, वर्णसम्मेलन के बाद **भवितास् सि** में तास् के सकार का **तासस्त्योर्लोपः** से लोप होकर **भवितासि** सिद्ध हो जाता है।

भवितास्थः। भवितास्थ। भवितास्मि। भवितास्वः। भवितास्मः। इन प्रयोगों में क्रमशः थस्, थ, मिप्, वस्, मस् प्रत्यय आयेंगे। तासि, अनुबन्धलोप, आर्धधातुकसंज्ञा, इट् का आगम, गुण, अवादेश, वर्णसम्मेलन करने पर ये रूप सिद्ध हो जायेंगे। सकारादि और रकारादि प्रत्ययों के परे न होने के कारण सकार का लोप नहीं हो रहा है। शेष प्रक्रिया पूर्ववत् ही है किन्तु रूपसिद्धि में आप आलस्य नहीं करना। एक-एक करके सिद्ध करते जाना।

लट् लकार भवति आदि का अर्थ- **होता है** आदि।

लिट् लकार बभूव आदि का अर्थ- **कभी हुए थे** जो मैं ने नहीं देखा

लुट् लकार भविता आदि का अर्थ- **कल या आगे भविष्य में होगा** आदि अर्थ समझना चाहिए।

लोट्लकारविधायकं विधिसूत्रम्

४०९. लोट् च ३।३।१६२॥

विध्याद्यर्थेषु धातोर्लोट्।

....

४०८- **लृट् शेषे च।** लृट् प्रथमान्तं, शेषे सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **भविष्यति गम्यादयः** से **भविष्यति** और **तुमन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्** से **क्रियायां क्रियार्थायाम्** की अनुवृत्ति आती है।

एक क्रिया के लिए दूसरी क्रिया उपपद हो या न हो तो (सामान्य) भविष्यत् काल में लृट्-लकार होता है।

सामान्य का तात्पर्य यह है कि इससे पहले **अनद्यतने लुट्** से अनद्यतन भविष्यत् काल में लुट्-लकार का विधान किया गया था किन्तु प्रस्तुत सूत्र अद्यतन-अनद्यतन दोनों में लृट् करता है। इसमें परोक्ष या अपरोक्ष आदि की भी अपेक्षा नहीं है, क्योंकि भविष्यत्काल हमेशा परोक्ष ही होता है। एक क्रिया के लिए दूसरी क्रिया का प्रयोग यहाँ उतना प्रसिद्ध नहीं है, उत्तरकृदन्तप्रकरणस्थ तुमुन्-प्रत्यय के प्रकरण में स्पष्ट हो जायेगा। वैसे जब एक क्रिया दूसरी क्रिया के लिए की जाती है तो पहली क्रिया को **क्रियार्थक क्रिया** कहा जाता है। यह सूत्र क्रियार्थक-क्रिया होने पर और क्रियार्थक-क्रिया के न होने पर दोनों अवस्थाओं में धातु से लृट् लकार करता है। जैसे- **पठिष्यति इति गच्छति** में पठन क्रिया के लिए गमन क्रिया है। अतः पठन-क्रियार्थक गमन क्रिया के उपपद में रहते पठ् धातु से लृट् होकर **पठिष्यति** (इति गच्छति) रूप सिद्ध होता है। जब क्रियार्थक क्रिया उपपद में न हो तो भी धातु से सामान्य भविष्यत् अर्थ में लृट् होता है। अतः केवल **पठिष्यति, खादिष्यति** आदि भी होंगे।

भविष्यति। भविष्यतः। भविष्यन्ति। भविष्यसि। भविष्यथः। भविष्यथ। भविष्यामि। भविष्यावः। भविष्यामः। भू-धातु से **लृट् शेषे च** से सामान्य भविष्यत् अर्थ में लृट्-लकार, अनुबन्धलोप, तिप् आदेश, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् की प्राप्ति, उसे बाधकर **स्यतासी लृलुटोः** से स्य-प्रत्यय, भू+स्य+ति बना। स्य की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा, उसको **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से इडागम, टित् होने के कारण उसके आदि में बैठा, भू+इ+स्य+ति बना। भू में ऊकार का **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण, भो+इ में **एचोऽयवायावः** से अव् आदेश, भ्+अव्+इ+स्य+ति बना। इ से परे स्य के सकार का **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व हुआ, वर्णसम्मेलन करके **भविष्यति** बना। **भविष्यतः** में भी यही प्रक्रिया अपनानी है। भिन्नता केवल तस् और सकार के रुत्वविसर्ग करने में है। **भविष्यन्ति** में झि के झकार के स्थान पर **झोऽन्तः** से अन्त्-आदेश और **अतो गुणे** से पररूप करना है। **भविष्यसि, भविष्यथः, भविष्यथ** भी **भविष्यति** की तरह बनेंगे, द्विवचन में सकार को रुत्वविसर्ग होगा। **भविष्यामि** में **अतो दीर्घो यञि** से स्य के अकार को दीर्घ होगा और **भविष्यावः, भविष्यामः** में दीर्घ के बाद सकार को रुत्वविसर्ग करिये।

४०९- **लोट् च।** लोट् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्** पूरे सूत्र का अनुवर्तन होता है।

लिङ्लोड्विधायकं विधिसूत्रम्

४१०. आशिषि लिङ्लोटौ ३।३।१७३॥

उत्वविधायकं विधिसूत्रम्

४११. एरुः ३।४।८६॥

लोट इकारस्य उः। भवतु।

तातङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४१२. तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् ७।१।३५॥

आशिषि तुह्योस्तातङ् वा। परत्वात्सर्वादेशः। भवतात्।

....

विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न एवं प्रार्थना इन अर्थों में धातु से लोट् लकार होता है।

विधि आदि के विशेष अर्थ आगे **विधिनिमन्त्रणामन्त्रणा-धीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्** में ही स्पष्ट करेंगे।

इस सूत्र के विधान में काल अर्थात् समय से कोई मतलब नहीं है।

४१०- आशिषि लिङ्लोटौ। लिङ् च लोट् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो लिङ्लोटौ। आशिषि सप्तम्यन्तं, लिङ्लोटौ प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

आशीर्वाद अर्थ में धातु से लिङ् और लोट् लकार होते हैं।

विधि आदि और आशीर्वाद अर्थों में लिङ् और लोट् दोनों लकारों का विधान है।

४११- एरुः। एः षष्ठ्यन्तम्, उः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **लोटो लङ्वत्** से **लोटः** की अनुवृत्ति आती है।

लोट् लकार सम्बन्धी इकार के स्थान पर उकार आदेश होता है।

लोट् लकार में जो भी इकार मिलेगा, उसके स्थान पर यह सूत्र उकार-आदेश करता है।

४१२- तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्। तुश्च हिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वस्तुही, तयोस्तुह्योः। तुह्योः षष्ठ्यन्तं, तातङ् प्रथमान्तम्, आशिषि सप्तम्यन्तम्, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

केवल आशीर्वाद अर्थ में हुए जो तु और हि, उनके स्थान पर तातङ् आदेश विकल्प से होता है।

तातङ् में ङकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा, त में अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और दोनों का **तस्य लोपः** से लोप होने से केवल तात् ही बचता है। तात् ङित् है, अतः ङित् को मानकर होने वाले कार्य सम्पूर्ण स्थानी को आदेश, गुण का अभाव आदि होंगे।

विशेषः- आशीर्वाद अर्थ में लोट् तथा लिङ् दोनों लकार होते हैं, परन्तु लोट् में प्रथमपुरुष और मध्यमपुरुष के एकवचन में दो-दो रूप बनते हैं और बाकी रूप **विधि** आदि अर्थ के समान ही होते हैं। कहने का तात्पर्य यह हुआ कि **विधि** आदि अर्थ में तातङ् नहीं होता और **आशीर्वाद** अर्थ में होता है। लिङ् में सारे रूपों में अन्तर आता है अर्थात् आशीर्वाद

अतिदेशसूत्रम्

४१३. लोटो लङ्वत् ३।४।८५॥

लोटस्तामादयः सलोपश्च।

तामाद्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४१४. तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः ३।४।१०१॥

ङितश्चतुर्णां तामादयः क्रमात् स्युः। भवताम्। भवन्तु।

....

अर्थ में होने वाले लिङ् को आशीर्लिङ् कहते है जिसके रूप **भूयात्, भूयास्ताम्, भूयासुः** आदि होते हैं और विधि आदि अर्थ में होने वाले लिङ् को विधिलिङ् कहते हैं जिसके रूप **भवेत्, भवेताम्, भवेयुः** आदि बनते हैं। रूपों का अन्तर स्पष्ट है। अतः **आशीर्लिङ्** नाम से एक अलग ही लकार का प्रयोग होता है।

भवतु, भवतात्। भू-धातु से **लोट् च** इस सूत्र के द्वारा **विधि** आदि अर्थ में लोट् लकार का विधान हुआ, तिप् आया, अनुबन्धलोप हुआ। **भू ति** बना। ति की सार्वधातुकसंज्ञा और **कर्तरि शप्** से शप्, अनुबन्धलोप होने के बाद **भू+अ+ति** बना। शप् वाले अकार की सार्वधातुकसंज्ञा, भू में ऊकार का **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण, **भो+अ+ति** बना। **भो+अ** में **एचोऽयवायावः** से अव् आदेश, **भ्+अव्+अ+ ति** बना, वर्णसम्मेलन- **भवति** बना। अब सूत्र लगा- **एरुः।** लोट् लकार से सम्बन्धित इकार है भवति का इकार, उसके स्थान पर उकार आदेश हुआ तो बना- **भवतु।** इसके बाद सूत्र लगा- **तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्।** आशीर्वाद अर्थ में लोट् लकार होता ही है। अतः **भवतु** बन जाने के बाद तु के स्थान पर इस सूत्र से तातङ् आदेश हुआ। अनुबन्धलोप हुआ, तात् बचा। **भवतात्** बना। यह सूत्र विकल्प से तातङ् आदेश करता है एक पक्ष में आदेश नहीं हुआ तो तु ही रह गया- **भवतु।** इस प्रकार से तिप् में **भवतु** और **भवतात्** ये दो रूप बने।

४१३- **लोटो लङ्वत्।** लोटः षष्ठ्यन्तं, लङ्वत् अव्ययम्, द्विपदमिदं सूत्रम्।

लोट् लकार लङ् के समान होता है।

लङ् लकार में ङकार की इत्संज्ञा होने से वह ङित् है। इसी प्रकार लोट् लकार स्वतः ङित् नहीं, टित् है। अतः ङित् को मानकर होने वाले कार्य नहीं हो पा रहे थे। इसीलिए पाणिनि जी ने इस सूत्र को बनाया। लोट् लकार को भी लङ् के समान ङित्-लकार माना जाय, जिससे ङित् को मानकर होने वाले कार्य हो जायें। ङित् को मानकर होने वाले कार्यों का विवरण आगे देखेंगे। यह सूत्र जब **ताम्** आदि आदेश करना हो अथवा **नित्यं ङितः** से सलोप करना हो, तब प्रवृत्त होगा, अन्यत्र नहीं।

४१४- **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः।** तश्च थश्च थश्च मिप् च तेषामितरेतरद्वन्द्वस्तस्थस्थमिपः, तेषां तस्थस्थमिपाम्। ताम् च तम् च तश्च अम् च तेषामितरेतरद्वन्द्वस्तान्तन्तामः। तस्थस्थमिपां षष्ठ्यन्तं, तान्तन्तामः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **नित्यं ङितः** से ङितः की अनुवृत्ति आती है।

ङित् लकारों के स्थान पर हुए तस्, थस्, थ और मिप् के स्थान पर क्रमशः ताम्, तम्, त और अम् आदेश होते हैं।

हिविधायकं विधिसूत्रम्

४१५. सेर्ह्यपिच्च ३।४।८७॥

लोटः सेर्हिः सोऽपिच्च।

हेर्लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

४१६. अतो हेः ६।४।१०५॥

अतः परस्य हेर्लुक्। भव, भवतात्। भवतम्। भवत।

....

भवताम्। भू धातु से लोट् लकार, अनुबन्धलोप, प्रथमपुरुष का द्विवचन तस्, भू तस्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश होने के बाद **लोटो लङ्वत्** से लोट् लकार सम्बन्धी **तस्** को **ङिद्वद्भाव** का अतिदेश हुआ। **ङित्** मान लिए जाने के कारण **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से तस् के स्थान पर **ताम्** आदेश होकर **भवताम्** सिद्ध हुआ।

भवन्तु। भू धातु से लोट् लकार, अनुबन्धलोप, प्रथमपुरुष का बहुवचन झि आदेश, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, झ् के स्थान पर **झोऽन्तः** से अन्त् आदेश, वर्णसम्मेलन, **भू+अ+अन्ति** बना। गुण, अव् आदेश होकर **भ्+अव्+अ+अन्ति** बना, वर्णसम्मेलन हुआ, **भव अन्ति** बना। **भव+अन्ति** में **अतो गुणे** से पररूप हुआ, **भवन्ति** बना। **एरुः** से ति में इकार के स्थान पर उत्व होकर **भवन्तु** सिद्ध हुआ।

४१५- सेर्ह्यपिच्च। सेः षष्ठ्यन्तं, हिः प्रथमान्तम्, अपित् प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **लोटो लङ्वत्** से **लोटः** की अनुवृत्ति आती है।

लोट् लकार के सि के स्थान पर हि आदेश होता है और वह अपित् होता होता है।

सिप् में पकार की इत्संज्ञा होती है, अतः वह स्वतः पित् है। अतः यह सूत्र पित् को अपित् होने का अतिदेश कर रहा है। इसका प्रयोजन आगे **एहि, स्तुहि** आदि में **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वत् करके **क्ङिति च** से गुण का निषेध करना है किन्तु इस धातु में अपित्-करण का कोई प्रयोजन नहीं है। अभी आपने पहले **लोटो लङ्वत्** से अङित् लकार को ङित् लकार का अतिदेश किया था। अव यहाँ पित् प्रत्यय को अपित् कर रहे हैं। इसी को अतिदेश कहते हैं। **जो वैसा नहीं है, उसको वैसा मान लिया जाय, ऐसा विधान ही अतिदेश कहलाता है।**

४१६- अतो हेः। अतः पञ्चम्यन्तं, हेः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **चिणो लुक्** से **लुक्** की अनुवृत्ति आती है। यहाँ **अङ्गस्य** इस अधिकृत पद का विभक्तिविपरिणाम करके **अङ्गात्** आ जाता है।

ह्रस्व अकार से परे हि का लुक् हो जाय।

यहाँ ह्रस्व अकार से परे इस लिए कहा गया कि कहीं **एहि, स्तुहि** आदि में हि का लुक् न हो जाय।

भव, भवतात्। भू धातु से लोट् लकार, उसके स्थान पर मध्यमपुरुष का एकवचन सिप् आदेश, अनुबन्धलोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश, वर्णसम्मेलन आदि होकर के **भवसि** बना। **सेर्ह्यपिच्च** से सि के स्थान पर हि आदेश हुआ,

नि-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

४१७. मेर्निः ३।४।८९॥

लोटो मेर्निः स्यात्।

आडागमविधायकं विधिसूत्रम्

४१८. आडुत्तमस्य पिच्च ३।४।९२॥

लोडुत्तमस्याट् स्यात् पिच्च। हिन्योरुत्वं न, इकारोच्चारणसामर्थ्यात्।

....

भवहि बना, हि का **अतो हेः** से लुक् प्राप्त था, उसे बाधकर के **तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्** से वैकल्पिक तातङ् आदेश हुआ, तातङ् में अनुबन्धलोप होकर तात् बचा है, **भवतात्** बन गया। तातङ् आदेश विकल्प से हुआ है, न होने के पक्ष में **अतो हेः** से हि का लुक् होकर **भव** बन जायेगा। इस तरह से सिप् में **भव, भवतात्** दो रूप बनेंगे।

भवतम्। भू धातु से लोट् लकार, अनुबन्धलोप, मध्यमपुरुष का द्विवचन थस्, **भू थस्** बना। सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश करके **भवथस्** बना। **लोटो लङ्वत्** से लोट् लकार सम्बन्धी **थस्** को ङिद्वद्भाव का अतिदेश हुआ, ङित् मान लिए जाने के कारण **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से **थस्** के स्थान पर **तम्** आदेश होकर **भवतम्** सिद्ध हुआ।

भवत। भू धातु से लोट् लकार, अनुबन्धलोप, मध्यमपुरुष का बहुवचन थ आया, **भू थ** बना। सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश करके **भवथ** बना। **लोटो लङ्वत्** से लोट् लकार सम्बन्धी **थ** को ङिद्वद्भाव का अतिदेश हुआ और ङित् मान लिए जाने के कारण **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से **थ** के स्थान पर **त** आदेश होकर **भवत** सिद्ध हुआ।

४१७- **मेर्निः**। मेः षष्ठ्यन्तं, निः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **लोटो लङ्वत्** से **लोटः** की अनुवृत्ति आती है।

लोट् लकार के मि के स्थान पर नि आदेश होता है।

४१८- **आडुत्तमस्य पिच्च**। आड् प्रथमान्तम्, उत्तमस्य षष्ठ्यन्तं, पित् प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **लोटो लङ्वत्** से **लोटः** की अनुवृत्ति आती है।

लोट् लकार के उत्तमपुरुष को आट् का आगम होता है और वह आट् सहित उत्तमपुरुष पित् के समान होता है।

उत्तमपुरुष में केवल मिप् तो पित् है किन्तु वस्, मस् पित् नहीं हैं। इनको भी पित् के समान हो जाने का अतिदेश यह सूत्र कर रहा है। आट् में टकार की इत्संज्ञा होगी और टित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियमानुसार प्रत्यय के आदि में होगा।

यहाँ भ्वादिगण में यदि आट् का आगम न भी होता तो भी **अतो दीर्घो यञि** से दीर्घ होकर **भवानि, भवाव, भवाम** आदि रूप सिद्ध हो जाते, कोई दोष न आता किन्तु अदादिगण, जुहोत्यादिगण आदि में इस सूत्र की नितान्त आवश्यकता पड़ेगी, जिससे **अदानि, अदाव, अदाम, जुहवानि** आदि रूप सिद्ध हो सकेंगे। इसलिए न्यायवशात् यहाँ पर भी इस सूत्र की प्रवृत्ति दिखाई गई है।

हिन्योरुत्वं न, इकारोच्चारणसामर्थ्यात्। मि और नि के इकार को **एरुः** से उत्व

उपसर्गविषयकं विधिसूत्रम्

४१९. ते प्राग्धातोः १।४।८०॥

ते गत्युपसर्गसंज्ञा धातोः प्रागेव प्रयोक्तव्याः।

णत्वविधायकं विधिसूत्रम्

४२०. आनि लोट् ८।४।१६॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य लोडादेशस्यानीत्यस्य नस्य णः स्यात्। प्रभवाणि।

वार्तिकम्- **दुरः षत्वणत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः।** दुःस्थितिः। दुर्भवानि।

वार्तिकम्- **अन्तःशब्दस्याङ्किविधिणत्वेषूपसर्गत्वं वाच्यम्।** अन्तर्भवाणि।

....

नहीं होता क्योंकि यदि उकार आदेश ही करना होता तो नि के स्थान पर नु का उच्चारण और हि के स्थान पर हु का उच्चारण करते।

भवानि। भू धातु से लोट् लकार, उसके स्थान पर उत्तमपुरुष का एकवचन मिप् आया। अनुबन्धलोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **मेर्निः** से मि के स्थान पर **नि** आदेश और **आडुत्तमस्य पिच्च** से आट् का आगम, गुण, अवादेश करने पर **भव+आनि** बना और **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ होकर **भवानि** सिद्ध हुआ।

४१९- **ते प्राग्धातोः।** ते प्रथमान्तं, प्राक् अव्ययपदं, धातोः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

उन गतिसंज्ञकों और उपसर्गसंज्ञकों का धातु से पहले ही प्रयोग होता है।

अष्टाध्यायी में **उपसर्गाः क्रियायोगे, गतिश्च** आदि सूत्रों से जिनकी गतिसंज्ञा हुई है, उनको इस सूत्र में ते(वे) से निर्देश किया गया है। उनका प्रयोग कहाँ हो? धातु के पहले हो या धातु के बाद हो? अव्यवधान में ही हो या व्यवधान होने पर भी हो? इस पर यह सूत्र निर्णय देता है कि धातु से अव्यवहित पूर्व में ही हो। जैसे- **प्र+हरति=प्रहरति, आ+हरति=आहरति, अनु+भवति= अनुभवति** इत्यादि। वेद में **छन्दसि परेऽपि** एवं **व्यवहिताश्च** इत्यादि सूत्रों के द्वारा धातु से पर में और व्यवधान होने पर भी ये गति और उपसर्ग लग जाते हैं।

४२०- **आनि लोट्।** आनि लुप्तषष्ठीकं पदं, लोट् इत्यपि लुप्तषष्ठीकं पदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य** से उपसर्गात् की, **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** इस सम्पूर्ण सूत्र की **रषाभ्यां नो णः समानपदे** से **रषाभ्यां, नः** और **णः** की अनुवृत्ति आती है।

उपसर्ग में स्थित निमित्त से परे लोट् लकार के आनि के नकार को णकार आदेश होता है।

णत्वविधायक सूत्र अष्टाध्यायी के अष्टमाध्याय के चतुर्थपाद में हैं। **रषाभ्यां नो णः समानपदे, अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** इन सूत्रों से णत्व का प्रकरण प्रारम्भ होता है। नकार को णकार होने में रेफ और षकार को निमित्त माना गया है। इनसे परे नकार को णकार होता है। **ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्** इस वार्तिक से ऋकार को भी णत्व के लिए निमित्त माना गया है। इस तरह णत्व होने के लिए पूर्व में रेफ या षकार अथवा ऋकार होना चाहिए। जिस णत्वविधायक सूत्र में **'उपसर्गस्थ निमित्त'** ऐसा पढ़ा गया हो, उससे यही समझना चाहिए कि नकार से पहले विद्यमान रेफ, षकार और ऋकार। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** के अनुसार यदि निमित्त(रेफ, षकार और ऋकार) से स्थानी(नकार) के बीच किसी का

सकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

४२१. नित्यं ङितः ३।४।९९।।

सकारान्तस्य ङिदुत्तमस्य नित्यं लोपः। **अलोऽन्त्यस्येति सलोपः।** भवाव। भवाम।

....

व्यवधान हो तो अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम् का ही हो सकता है, अन्य का नहीं। इनके व्यवधान न होने पर तो णत्व होता ही है। **आनि लोट्** यह सूत्र लोट् लकार के मिप् में नि आदेश और आट् आगम होकर **आनि** बनने के बाद ही लगता है।

प्रभवाणि। प्र+भू से पहले आप **भवानि** बना लें। **प्र+भवानि** बन गया है। यहाँ उपसर्ग है-प्र, णत्व का निमित्त है प्र का रेफ, उससे परे नकार है **भवानि** में **आनि** का **नकार।** रेफ और नकार के बीच अ+भ+अ+व्+आ=**अभवा** का व्यवधान है। ये सभी वर्ण अट् और पवर्ग के बीच में आते हैं। अतः इनके व्यवधान में णत्व के लिए कोई बाधा नहीं है। फलतः नकार को णत्व हो गया- **प्रभवाणि।**

दुरः षत्वणत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः। यह वार्तिक है। **षत्व और णत्व विधि करनी हो तो दुर् का उपसर्गत्व निषेध होता है, ऐसा कहना चाहिए।** यह उपसर्गत्व का निषेधक वार्तिक है। धातु के योग में **दुर्** की **उपसर्गाः क्रियायोगे** से **उपसर्गसंज्ञा** होती है किन्तु जहाँ षत्व या णत्व करना है वहाँ पर इसे उपसर्ग न माना जाय, यह इस वार्तिक का तात्पर्य है। उपसर्गत्व के अभाव में उपसर्ग को निमित्त मानकर के होने वाले कार्य नहीं हो सकेंगे। जैसे- **दुर्+स्थितिः-दुःस्थितिः** में **उपसर्गात् सुनोति-सुवति०** से होने वाला षत्व बाधित हुआ क्योंकि यह सूत्र उपसर्ग में स्थित निमित्त से परे सकार को षत्व करता है। इसी तरह **दुर्+भवानि** में **आनि लोट्** से णत्व बाधित हुआ। क्यों कि यह सूत्र उपसर्ग में स्थित निमित्त से परे नकार को णकार करता है।

अन्तःशब्दस्याङ्किविधिणत्वेषूपसर्गत्वं वाच्यम्। यह वार्तिक है। **अङ्-प्रत्यय के विधान में, किप्रत्यय के विधान में और णत्व के विधान में अन्तर्-शब्द को उपसर्ग कहना चाहिए।** अप्राप्त उपसर्गत्व में उपसर्गत्व का विधान करता है। जैसे- **अन्तर्**-शब्द की उपसर्गसंज्ञा कहीं किसी सूत्र से प्राप्त नहीं है किन्तु उपर्युक्त तीन विधियाँ करनी हों तो उसको उपसर्ग माना जाय। उपसर्ग मानने का फल- **आनि लोट्** से नकार को णत्व करना है। जैसे- **अन्तर्+भवानि** में अन्तर् शब्द के उपसर्गत्व न होने के कारण भवानि के नकार को णत्व प्राप्त नहीं था तो इस वार्तिक से उपसर्ग मान लिये जाने के कारण **आनि लोट्** से णत्व होकर **अन्तर्भवाणि** बन गया।

४२१- नित्यं ङितः। नित्यं द्वितीयान्तं क्रियाविशेषणं, ङितः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **स उत्तमस्य** इस सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **इतश्च लोपः परस्मैपदेषु** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है। **सः** यह षष्ठ्यन्त पद **उत्तमस्य** का विशेषण है। अतः **येन विधिस्तदन्तस्य** से तदन्तविधि होकर **सकारान्त** अर्थ बनता है।

ङित् लकार के सकारान्त उत्तमपुरुष का लोप होता है।

वस् और मस् पूरे का लोप प्राप्त था, **अलोऽन्त्यस्य** के नियम से अन्त्य अल् सकार का ही लोप होता है।

लङ्-लकार-विधायकं विधिसूत्रम्

४२२. अनद्यतने लङ् ३।२।१११॥

अनद्यतनभूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात्।

अडागमविधायकं विधिसूत्रम्

४२३. लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ६।४।७१॥

एष्वङ्गस्याट्।

लोपविधायकं विधिसूत्रम्

४२४. इतश्च ३।४।१००॥

ङितो लस्य परस्मैपदमिकारान्तं यत्तदन्तस्य लोपः।

अभवत्। अभवताम्। अभवन्। अभवः। अभवतम्। अभवत।

अभवम्। अभवाव। अभवाम।

....

भवाव। भवाम। भू धातु से लोट् लकार, उसके स्थान पर उत्तमपुरुष का द्विवचन वस् आया, **आडुत्तमस्य पिच्च** से आट् का आगम हुआ, **भू आवस्** बना। सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, गुण, अवादेश होकर **भव आवस्** बना। **भव+आवस्** में **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ हुआ, **भवावस्** बना। **सकार** का **नित्यं ङितः** से लोप हुआ, **भवाव** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार बहुवचन में **भवाम** बनाना चाहिए।

४२२- **अनद्यतने लङ्।** अनद्यतने सप्तम्यन्तं, लङ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

अनद्यतन भूतकाल में लङ् लकार होता है।

पहले भी बताया जा चुका है कि जो आज का विषय है, उसे अद्यतन और जो आज का विषय नहीं है, उसे अनद्यतन कहा जाता है। यहाँ पर भूतकाल ऐसा है जो आज का न हो अर्थात् कल, परसों और उसके पहले का हो। ऐसा होने पर लङ्लकार का प्रयोग करना चाहिए। जैसे ''आज सुबह मैंने जलपान किया'' इस वाक्य में आज का विषय बताया गया है, अतः यहाँ पर लङ् लकार का प्रयोग नहीं होगा।

४२३- **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः।** लुङ् च लङ् च लृङ् च तेषामितरेतरद्वन्द्वो लुङ्लङ्लृङः, तेषु लुङ्लङ्लृङ्क्षु। लुङ्लङ्लृङ्क्षु सप्तम्यन्तम्, अट् प्रथमान्तम्, उदात्तः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। यहाँ पर **अङ्गस्य** का अधिकार है।

लुङ्, लङ्, लृङ् के परे रहने पर धातु-रूप अङ्ग को अट् आगम का होता है।

अट् में टकार की इत्संज्ञा होती है, टित् होने के कारण धातु के आदि में बैठता है। यह सूत्र स्वर का भी विधान करता है- जो अट् हो वह उदात्त स्वर वाला हो। किन्तु लघुसिद्धान्तकौमुदी में स्वर का विधान दिखाया नहीं गया है।

४२४- **इतश्च।** इतः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **नित्यं ङितः** से **ङितः** तथा **इतश्च लोपः परस्मैपदेषु** से **लोपः परस्मैपदेषु** की अनुवृत्ति आती है।

ङित् लकार के स्थान पर जो परस्मैपद ह्रस्व इकारान्त, उस के अन्त्य(इकार) का लोप होता है।

अभवत्। भू धातु से अनद्यतन भूतकाल अर्थ में **अनद्यतने लङ्** से लङ् लकार, **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** से धातु को अट् का आगम, अनुबन्धलोप, प्रथमपुरुष का एकवचन तिप् आदेश, अनुबन्धलोप होकर अभू ति बना। ति की सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, अभू अ ति में **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से भू का गुण, अवादेश होकर वर्णसम्मेलन हुआ- **अभवति** बना। **ति** में इकार का **इतश्च** से लोप हुआ- **अभवत्** बना।

अभवताम्। भूधातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ्लकार, अट् आगम, प्रथमपुरुष का द्विवचन तस्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश होकर **अभव+तस्** बना। **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से **तस्** के स्थान पर **ताम्** आदेश होकर **अभवताम्** सिद्ध हुआ।

अभवन्। भू से लङ्, अट् आगम, झि, अन्त् आदेश, अभू अन्ति, शप्, अभू अ अन्ति, गुण, अवादेश, अभव अन्ति, **अतो गुणे** से पररूप, **अभवन्ति**, ति के इकार का **इतश्च** से लोप और तकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप होकर **अभवन्** सिद्ध हुआ।

अभवः। भू धातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ् लकार, अट् आगम, अनुबन्धलोप, उसके स्थान पर मध्यमपुरुष का एकवचन **सिप्** आदेश, अनुबन्धलोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश होकर **अभव+सि** बना। इकार का **इतश्च** से लोप होकर **अभवस्** बना। सकार का रुत्वविसर्ग हुआ- **अभवः**।

अभवतम्। भूधातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ्लकार, अट्, मध्यमपुरुष का द्विवचन थस्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश होकर **अभव+थस्** बना। **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से **थस्** के स्थान पर **तम्** आदेश होकर **अभवतम्।**

अभवत। भूधातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ्लकार, अट्, मध्यमपुरुष का बहुवचन थ, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश होकर **अभव+थ** बना। **तस्थस्थमिपां** तान्तन्तामः से **थ** के स्थान पर **त** आदेश होकर **अभवत।**

अभवम्। भूधातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ्लकार, अट् आगम, उत्तमपुरुष का एकवचन मिप्, अनुबन्धलोप, अट् का आगम, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश, **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से मि के स्थान पर अम् आदेश, **अभव अम्** बना। **अतो गुणे** से पररूप होकर **अभवम्** सिद्ध हुआ।

अभवाव। भू धातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ् लकार, **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** से धातु को अट् आगम, अनुबन्धलोप, उत्तमपुरुष का द्विवचन वस् आदेश होकर **अभू वस्** बना। सि की सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **अभू अ वस्** में **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से भू को गुण, अवादेश होकर वर्णसम्मेलन हुआ- **अभव वस्** बना। **अतो दीर्घो यञि** से दीर्घ होकर **अभवावस्** बना। सकार का **नित्यं ङितः** से लोप हुआ- **अभवाव।**

अभवाम। भू धातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ् लकार, **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** से धातु को अट् आगम, अनुबन्धलोप, उत्तमपुरुष का बहुवचन मस् आदेश होकर **अभू मस्** बना। सि की सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **अभू अ मस्** में **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से भू को गुण, अवादेश होकर वर्णसम्मेलन हुआ- **अभव मस्** बना। **अतो दीर्घो यञि** से दीर्घ होकर **अभवामस्** बना। सकार का **नित्यं ङितः** से लोप हुआ- **अभवाम।**

लङ्-लकार-विधायकं विधिसूत्रम्

४२२. अनद्यतने लङ् ३।२।१११॥

अनद्यतनभूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात्।

अडागमविधायकं विधिसूत्रम्

४२३. लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ६।४।७१॥

एष्वङ्गस्याट्।

लोपविधायकं विधिसूत्रम्

४२४. इतश्च ३।४।१००॥

ङितो लस्य परस्मैपदमिकारान्तं यत्तदन्तस्य लोपः।

अभवत्। अभवताम्। अभवन्। अभवः। अभवतम्। अभवत।

अभवम्। अभवाव। अभवाम।

....

भवाव। भवाम। भू धातु से लोट् लकार, उसके स्थान पर उत्तमपुरुष का द्विवचन वस् आया, **आडुत्तमस्य पिच्च** से आट् का आगम हुआ, **भू आवस्** बना। सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, गुण, अवादेश होकर **भव आवस्** बना। **भव+आवस्** में **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ हुआ, **भवावस्** बना। **सकार** का **नित्यं ङितः** से लोप हुआ, **भवाव** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार बहुवचन में **भवाम** बनाना चाहिए।

४२२- अनद्यतने लङ्। अनद्यतने सप्तम्यन्तं, लङ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

अनद्यतन भूतकाल में लङ् लकार होता है।

पहले भी बताया जा चुका है कि जो आज का विषय है, उसे अद्यतन और जो आज का विषय नहीं है, उसे अनद्यतन कहा जाता है। यहाँ पर भूतकाल ऐसा है जो आज का न हो अर्थात् कल, परसों और उसके पहले का हो। ऐसा होने पर लङ्लकार का प्रयोग करना चाहिए। जैसे ''आज सुबह मैंने जलपान किया'' इस वाक्य में आज का विषय बताया गया है, अतः यहाँ पर लङ् लकार का प्रयोग नहीं होगा।

४२३- लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः। लुङ् च लङ् च लृङ् च तेषामितरेतरद्वन्द्वो लुङ्लङ्लृङः, तेषु लुङ्लङ्लृङ्क्षु। लुङ्लङ्लृङ्क्षु सप्तम्यन्तम्, अट् प्रथमान्तम्, उदात्तः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। यहाँ पर **अङ्गस्य** का अधिकार है।

लुङ्, लङ्, लृङ् के परे रहने पर धातु-रूप अङ्ग को अट् आगम का होता है।

अट् में टकार की इत्संज्ञा होती है, टित् होने के कारण धातु के आदि में बैठता है। यह सूत्र स्वर का भी विधान करता है- जो अट् हो वह उदात्त स्वर वाला हो। किन्तु लघुसिद्धान्तकौमुदी में स्वर का विधान दिखाया नहीं गया है।

४२४- इतश्च। इतः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **नित्यं ङितः** से ङितः तथा **इतश्च लोपः परस्मैपदेषु** से **लोपः परस्मैपदेषु** की अनुवृत्ति आती है।

ङित् लकार के स्थान पर जो परस्मैपद ह्रस्व इकारान्त, उस के अन्त्य(इकार) का लोप होता है।

अभवत्। भू धातु से अनद्यतन भूतकाल अर्थ में **अनद्यतने लङ्** से लङ् लकार, **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** से धातु को अट् का आगम, अनुबन्धलोप, प्रथमपुरुष का एकवचन तिप् आदेश, अनुबन्धलोप होकर अभू ति बना। ति की सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, अभू अ ति में **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से भू का गुण, अवादेश होकर वर्णसम्मेलन हुआ- अभवति बना। **ति** में इकार का **इतश्च** से लोप हुआ- **अभवत्** बना।

अभवताम्। भूधातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ्लकार, अट् आगम, प्रथमपुरुष का द्विवचन तस्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश होकर **अभव+तस्** बना। **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से **तस्** के स्थान पर **ताम्** आदेश होकर **अभवताम्** सिद्ध हुआ।

अभवन्। भू से लङ्, अट् आगम, झि, अन्त् आदेश, अभू अन्ति, शप्, अभू अ अन्ति, गुण, अवादेश, अभव अन्ति, **अतो गुणे** से पररूप, **अभवन्ति**, ति के इकार का **इतश्च** से लोप और तकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप होकर **अभवन्** सिद्ध हुआ।

अभवः। भू धातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ् लकार, अट् आगम, अनुबन्धलोप, उसके स्थान पर मध्यमपुरुष का एकवचन **सिप्** आदेश, अनुबन्धलोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश होकर **अभव+सि** बना। इकार का **इतश्च** से लोप होकर **अभवस्** बना। सकार का रुत्वविसर्ग हुआ- **अभवः।**

अभवतम्। भूधातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ्लकार, अट्, मध्यमपुरुष का द्विवचन थस्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश होकर **अभव+थस्** बना। **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से **थस्** के स्थान पर **तम्** आदेश होकर **अभवतम्।**

अभवत। भूधातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ्लकार, अट्, मध्यमपुरुष का बहुवचन थ, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश होकर **अभव+थ** बना। **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से **थ** के स्थान पर **त** आदेश होकर **अभवत।**

अभवम्। भूधातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ्लकार, अट् आगम, उत्तममपुरुष का एकवचन मिप्, अनुबन्धलोप, अट् का आगम, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, गुण, अवादेश, **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से मि के स्थान पर अम् आदेश, **अभव अम्** बना। **अतो गुणे** से पररूप होकर **अभवम्** सिद्ध हुआ।

अभवाव। भू धातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ् लकार, **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** से धातु को अट् आगम, अनुबन्धलोप, उत्तममपुरुष का द्विवचन वस् आदेश होकर **अभू वस्** बना। सि की सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **अभू अ वस्** में **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से भू को गुण, अवादेश होकर वर्णसम्मेलन हुआ- **अभव वस्** बना। **अतो दीर्घो यञि** से दीर्घ होकर **अभवावस्** बना। सकार का **नित्यं ङितः** से लोप हुआ- **अभवाव।**

अभवाम। भू धातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ् लकार, **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** से धातु को अट् आगम, अनुबन्धलोप, उत्तममपुरुष का बहुवचन मस् आदेश होकर **अभू मस्** बना। सि की सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **अभू अ मस्** में **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से भू को गुण, अवादेश होकर वर्णसम्मेलन हुआ- **अभव मस्** बना। **अतो दीर्घो यञि** से दीर्घ होकर **अभवामस्** बना। सकार का **नित्यं ङितः** से लोप हुआ- **अभवाम।**

विधिलिङ्लकारविधायकं सूत्रम्

४२५. विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ३।३।१६१॥

एष्वर्थेषु धातोर्लिङ्।

यासुडागमविधायकं विधिसूत्रं, ङिद्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रञ्च

४२६. यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ३।४।१०३॥

लिङः परस्मैपदानां यासुडागमो ङिच्च।

....

४२५- **विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्।** विधिश्च निणन्त्रणञ्च आमन्त्रणञ्च अधीष्टञ्च, सम्प्रश्नश्च, प्रार्थनञ्च विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनानि, तेषु विधि निमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु। विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु सप्तम्यन्तं, लिङ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न, प्रार्थन अर्थों में धातु से लिङ् लकार होता है।

यह सूत्र काल के विषय को लेकर लकार का विधान नहीं कर रहा है।

विधि- अपने से छोटे अर्थात् पुत्र, भाई, सेवक आदि को आाज्ञा देना **विधि** कहाता है। जैसे- **तुम पुस्तक दो, बेटे! घर जाओ** आदि।

निमन्त्रण- अवश्य-कर्तव्य में प्रेरणा देने को निमन्त्रण कहते हैं। जैसे- श्राद्ध आदि कार्य में दौहित्र अर्थात् अपनी लड़की के लड़के का भी भोजन अनिवार्य होता है तो वहाँ यह अनिवार्यरूप से भोजनार्थ आना ही है इस प्रकार से प्रेरणा देना ही निमन्त्रण है।

आमन्त्रण- ऐसी प्रेरणा का नाम आमन्त्रण है कि जिसमें प्रेरक तो प्रेरणा देगा किन्तु जिसे प्रेरणा दी जाती है वह उस कार्य को करे या नहीं अर्थात् कामचारिता, अपनी इच्छा पर निर्भर होती है। जैसे- **आप सभी सत्संग में आमन्त्रित हैं** इस वाक्य से यह स्पष्ट होता है कि सत्संग में जाने की प्रेरणा मिल रही है किन्तु हमें अपनी व्यवस्था के अनुसार जाना है। यदि अवकाश है तो जा सकते हैं, नहीं तो न जाने पर भी कोई आपत्ति नहीं है।

अधीष्ट- किसी बड़े गुरु आदि को सत्कारपूर्वक किसी कार्य को करने की प्रेरणा देना। जैसे किसी आचार्य से कहा जाय कि **आप मेरे पुत्र को पढ़ायें।**

सम्प्रश्न- किसी बड़े के समीप एक निश्चयार्थ प्रश्न करना सम्प्रश्न कहलाता है। जैसे- **गुरु जी! या पिता जी! मैं वेद पढ़ूँ या व्याकरण?**

प्रार्थना- मांगने का नाम प्रार्थन (प्रार्थना) है। जैसे **मैं पानी पीना चाहता हूँ।**

आशीर्वाद- वक्ता का किसी दूसरे के लिए अप्राप्त वस्तु की कामना करना आशीर्वाद कहाता है। जैसे- किसी को कहा जाय कि **आप दीर्घजीवी हों, आपको सम्पदा मिले** आदि।

४२६- **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च।** यासुट् प्रथमान्तं, परस्मैपदेषु सप्तम्यन्तम्, उदात्तः प्रथमान्तं, ङित् प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **लिङः सीयुट्** से **लिङः** की अनुवृत्ति आती है।

लिङ् लकार के परस्मैपदी प्रत्ययों को यासुट् का आगम होता है और वह ङित् जैसा होता है।

सकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

४२७. लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ७।२।७९।।

सार्वधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः। इति प्राप्ते।

इयादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४२८. अतो येयः ७।२।८०।।

अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य यास् इत्यस्य इय्। गुणः।

लोपविधायकं विधिसूत्रम्

४२९. लोपो व्योर्वलि ६।१।६६।।७

भवेत्। भवेताम्।

....

यह सूत्र परस्मैपद में लगता है और **लिङः सीयुट्** आत्मनेपद में लगता है। परस्मैपद में यासुट् का आगम और आत्मनेपद में सीयुट् का आगम होता है। यासुट् में टकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और उकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होकर दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हो जाता है तो केवल यास् ही शेष रह जाता है। टित् होने के कारण जिसको भी विधान किया जाता है, उसके आदि में बैठता है। यह स्वतः ङित् नहीं है, अतः ङित्वप्रयुक्त कार्य की सिद्धि के लिए पाणिनि जी ने इसी सूत्र से यासुट् को ङिद्वद्भाव का अतिदेश भी कर दिया है। अतः यह सूत्र विधिसूत्र भी है और अतिदेशसूत्र भी है।

४२७- लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य। अन्ते भवोऽन्त्यः, न अन्त्यः अनन्त्यः, तस्य अनन्त्यस्य। लिङः षष्ठ्यन्तं, स लुप्तषष्ठीकं पदं, लोपः प्रथमान्तम्, अनन्त्यस्य षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **रुदादिभ्यः सार्वधातुके** से विभक्तिविपरिणाम करके **सार्वधातुकस्य** की अनुवृत्ति आती है।

सार्वधातुक लिङ् के अनन्त्य सकार का लोप होता है।

अन्त्य में न हो, ऐसे सकार का ही लोप प्राप्त होता है। भव+यास्+त् में सकार का लोप प्राप्त था, उसे बाधकर अग्रिम सूत्र लगता है। यह सूत्र सार्वधातुक के सकार का लोप करता है आर्धधातुक सकार का नहीं। **यास्** की स्वतः सार्वधातुकसंज्ञा या आर्धधातुकसंज्ञा तो नहीं होती किन्तु आगम होने के कारण यदि सार्वधातुक को आगम हुआ है तो सार्वधातुक के ग्रहण से सार्वधातुक और आर्धधातुक को आगम हुआ है तो आर्धधातुक के ग्रहण से आर्धधातुक होता है। एक परिभाषा है- **यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते।** आगम जिसको कहे जाते हैं उसी के अङ्ग होते हैं और उसी के ग्रहण से उनका ग्रहण होता है। जिसको आगम हुआ है, वह जिस गुण वाला है, आगम भी उसी गुण वाला हो जाता है। जैसे आगमी यदि णित् है तो आगम भी णित् और आगमी ङित् है तो आगम भी ङित् ही होगा। अतः यह यासुट् सार्वधातुक लिङ् अर्थात् विधिलिङ् में यह सार्वधातुक माना जायेगा और आशीर्लिङ् में लिङ् आर्धधातुक होने के कारण यह आर्धधातुक माना जायेगा।

४२८- अतो येयः। अतः पञ्चम्यन्तं, या लुप्तषष्ठीकं पदम्, इयः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **रुदादिभ्यः सार्वधातुके** से विभक्तिविपरिणाम करके **सार्वधातुकस्य** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है, उसका पञ्चम्यन्त में विपरिणाम होता है।

जुसादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४३०. झेर्जुस् ३।४।१०८।।

लिङो झेर्जुस् स्यात्।

भवेयुः। भवेः। भवेतम्। भवेत। भवेयम्। भवेव। भवेम।

....

अदन्त अङ्ग से परे सार्वधातुक के अवयव यास् के स्थान पर इय् आदेश होता है।

४२९- लोपो व्योर्वलि। व् च य् च व्यौ, तयोर्व्योः। लोपः प्रथमान्तं, व्योः षष्ठ्यन्तं, वलि सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

वल् प्रत्याहार के परे रहने पर पूर्व में विद्यमान वकार और यकार का लोप होता है।

भवेत्। भू धातु से विधि आदि अर्थ में **विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्** से लिङ् लकार का विधान हुआ, उसके स्थान पर प्रथमपुरुष का एकवचन तिप् आया, अनुबन्धलोप होने के बाद उसकी सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप होकर **भू अ ति** बना। गुण, अवादेश होकर **भव+ति** बना। लिङ् लकार सम्बन्धी ति को **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् का आगम, अनुबन्धलोप, टित् होने के कारण ति के आदि में बैठा **भव यास् ति** बना। **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** से यास् के सकार का लोप प्राप्त था, उसे बाधकर **अतो येयः** से यास् के स्थान पर इय् आदेश हुआ- **भव इय् ति** बना। **भव+ इय्** में **आद्गुणः** से गुण हुआ- **भवेय् ति** बना। यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप हुआ- **भवेति** बना। ति के इकार का **इतश्च** से लोप हुआ तो बना- **भवेत्।**

भवेताम्। भू धातु से **विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्** से लिङ् लकार का विधान हुआ, उसके स्थान पर प्रथमपुरुष का द्विवचन तस् आया, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, धातु को गुण, अवादेश करके **भव+तस्** बना। **तस्** के स्थान पर **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से **ताम्** आदेश हुआ तो **भव+ताम्** बना। **तस्** को **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् का आगम, अनुबन्धलोप, टित् होने के कारण **ताम्** के आदि में बैठा **भव+यास्+ताम्** बना। **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** से यास् के सकार का लोप प्राप्त था, उसे बाधकर **अतो येयः** से **यास्** के स्थान पर **इय्** आदेश हुआ- **भव+इय्+ताम्** बना। **भव+इय्** में **आद्गुणः** से गुण हुआ- **भवेय् ताम्** बना। यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप होकर **भवेताम्** बना।

४३०- झेर्जुस्। झेः षष्ठ्यन्तं, जुस् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **लिङः सीयुट्** से **लिङः** की अनुवृत्ति आती है।

लिङ् लकार के स्थान पर हुए झि पूरे के स्थान पर जुस् आदेश होता है।

जुस् में जकार की **चुटू** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होकर केवल उस् ही बचता है।

भवेयुः। भू धातु से लिङ्, उसके स्थान पर प्रथमपुरुष का बहुवचन झि, उसके स्थान पर **झोऽन्तः** से अन्त् आदेश प्राप्त था, उसको बाधकर **झेर्जुस्** से जुस् आदेश, जुस् में जकार की इत्संज्ञा और लोप, **भू उस्,** सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, गुण, अवादेश, यासुट्

आर्धधातुकसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

४३१. लिङाशिषि ३।४।११६॥

आशिषि लिङस्तिङ् आर्धधातुकसंज्ञः स्यात्।

....

आगम, अनुबन्धलोप, **भव+यास्+उस्** हुआ। **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** से यास् के सकार का लोप प्राप्त था, उसे बाधकर यास् के स्थान पर **अतो येयः** से **इय्** आदेश होकर **भव+इय्+उस्** बना है। वल् प्रत्याहार वाले वर्ण के परे न मिलने पर यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप नहीं हुआ। **भव+इय्** में **आद्गुणः** से गुण हुआ तो **भवेय् उस्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ, **भवेयुस्** बना, सकार का रुत्वविसर्ग हुआ- **भवेयुः**।

भवेः। मध्यमपुरुष का एकवचन सिप्, अनुबन्धलोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, गुण, अवादेश, यासुट्, अनुबन्धलोप, यकार का लोप, **भव+इ** में गुण, **भवेसि** बना, इकार का **इतश्च** से लोप और सकार का रुत्व विसर्ग होकर **भवेः** सिद्ध होता है।

भवेतम्। भू लिङ्, मध्यमपुरुष द्विवचन थस्, भू थस्, भू शप् थस्, भू अ थस्, भो अ थस्, भव+थस्, भव+तम्, भव यास् तम्, भव इय् तम्, भवेय् तम्, **भवेतम्**।

भवेत। भू लिङ्, मध्यमपुरुष बहुवचन थ, भू थ, भू शप् थ, भू अ थ, भो अ थ, भव थ, भव त, भव यास् त, भव इय् त, भवेय् त, **भवेत**।

भवेयम्। भू लिङ्, उत्तमपुरुष का एकवचन मिप्, भू मिप्, भू अ मि, भो अ मि, भव मि, भव अम्, भव यास् अम्, भव इय् अम्। भवेय् अम्, **भवेयम्**।

भवेव। **भवेम**। उत्तमपुरुष में द्विवचन और बहुवचन में लकार के स्थान में वस् और मस् आदेश, शप्, गुण, यास्, इय्, गुण, यकार का लोप, सकार का **नित्यं ङितः** से लोप करके **भवेव**, **भवेम** ये बन जाते हैं।

पहले ही बताया जा चुका है **आशीर्वाद** अर्थ में दो लकार हैं- लोट् और लिङ्। लोट् लकार के विषय में तो **लोट् च** सूत्र में आप पढ़ चुके हैं। अब लिङ् लकार के विषय में बता रहे हैं। वैसे तो लिङ् लकार के विषय में भी आप पढ़ चुके है किन्तु लिङ् लकार विधिलिङ् और आशीर्लिङ् दो भागों में बँटा हुआ है क्यों कि आशीर्वाद अर्थ में जो लिङ् उसके लिए भिन्न सूत्र बने हुए हैं और विधि आदि अर्थ में हुए लिङ् लकार के लिए भिन्न सूत्र बने हुए हैं। इसी प्रकार आशीर्वाद अर्थ में हुए लिङ् की आर्धधातुकसंज्ञा होती है और विधि आदि अर्थ में हुए लिङ् की सार्वधातुकसंज्ञा होती है। ऐसे कई अनेंकों कारण हैं कि लिङ् लकार दो भागों में बँट जाता है।

दस लकारों में से लेट् लकार का प्रयोग केवल वेद में ही किये जाने के कारण लोक में केवल नौ लकार ही रह गये थे किन्तु लिङ् लकार को आशीर्लिङ् और विधिलिङ् करके दो भाग बना दिये जाने से पुनः दस ही लकार हो गये हैं।

४३१- लिङाशिषि। लिङ् लुप्तषष्ठीकम्, आशिषि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से **तिङ्** और **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकम्** की अनुवृत्ति आती है।

आशीर्वाद अर्थ में हुए लिङ् के स्थान पर जो तिङ् प्रत्यय, उसकी आर्धधातुकसंज्ञा हो जाती है।

फलतः आशीर्लिङ् आर्धधातुकसंज्ञक हो जाता है।

कित्वविधायकमतिदेशसूत्रम्

४३२. किदाशिषि ३।४।१०४।।

आशिषि लिङो यासुट् कित्। **स्कोः संयोगाद्योरिति** सलोपः।

गुणवृद्धिनिषेधकं विधिसूत्रम्

४३३. क्ङिति च १।१।५।।

गित्किङिन्निमित्ते इग्लक्षणे गुणवृद्धी न स्तः।

भूयात्। भूयास्ताम्। भूयासुः। भूयाः। भूयास्तम्। भूयास्त। भूयासम्। भूयास्व। भूयास्म।

....

४३२- **किदाशिषि।** कित् प्रथमान्तम्, आशिषि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **लिङः सीयुट्** से लिङः की और **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् की अनुवृत्ति आती है।

आशीर्वाद अर्थ में विहित लिङ् लकार के स्थान पर हुए तिङ् को किया गया यासुट् आगम किद्वद्भाव को प्राप्त होता है।

यासुट् तो **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से होगा किन्तु वहाँ किसी ककार की इत्संज्ञा नहीं है, अतः कित् नहीं हैं। अविद्यमान कित् को कित् अर्थात् किद्वद्भाव का अतिदेश इसके द्वारा हो रहा है। कित् करने के अनेक प्रयोजन हैं, जो आगे जाकर स्पष्ट होंगे।

४३३- **क्ङिति च।** ग् च क्, ङ् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः क्कङः, ते इतो यस्य स क्ङित्, तस्मिन्। क्ङिति सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इको गुणवृद्धी** इस सम्पूर्ण सूत्र और **न धातुलोप आर्धधातुके** से **न** का अनुवर्तन किया जाता है।

गित्, कित् और ङित् को निमित्त मानकर इक् के स्थान पर होने वाले गुण और वृद्धि नहीं होते।

विधिसूत्र और निषेधसूत्र एकस्थानीय होते हैं अर्थात् एक ही स्थान पर प्रवृत्त होते हैं।

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम्।

इस सूत्र लक्षण में निषेधसूत्र को विधिसूत्र की कोटि में माना गया है। इस लिए यह सूत्र भी विधिसूत्र ही है। यह व्यापक सूत्र है। इसकी बहुत आवश्यकता पड़ेगी। इसलिए इस सूत्र पर ज्यादा ध्यान देना होगा।

भूयात्। भू धातु से **आशिषि लिङ्लोटौ** के द्वारा आशीर्वाद अर्थ में लिङ् लकार और उसके स्थान पर प्रथमपुरुष का एकवचन ति आया, **भू ति** बना। ति की **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा प्राप्त, उसे बाधकर **लिङाशिषि** से आर्धधातुकसंज्ञा हुई। सार्वधातुक न होने से **कर्तरि शप्** से शप् नहीं हुआ। **भू+ति** में **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से ति को यासुट् का आगम हुआ, अनुबन्धलोप करने पर यास् बचा। टित् होने के कारण ति के आदि में आकर बैठा- **भू यास् ति** बना। यास् को **किदाशिषि** से कित्त्व हुआ। अर्थात् उसको कित् जैसा मान लिया गया। **भू+यास् ति** में ति का जो आर्धधातुकत्व है, वह उसके आगम में भी आ जाता है। अतः यास् इस आर्धधातुक को मानकर **सार्वधातुकार्धधातुकयोः**

लुङ्लकारविधायकं विधिसूत्रम्

४३४. लुङ् ३।२।११०॥

भूतार्थे धातोर्लुङ् स्यात्।

....

से भू में ऊकार को गुण प्राप्त था, उसे निषेध करने के लिए सूत्र आया- **क्ङिति च**। जब यासुट् को किद्वद्भाव किया गया तो यास् कित् हुआ। इस कित् को मानकर प्राप्त भू के ऊकार के स्थान पर जो गुण है, उसका निषेध हुआ, अर्थात् गुण नहीं हुआ। ति में इकार का **इतश्च** से लोप हुआ तो बना **भू यास् त्**। स् और त् के बीच में कोई अच् नहीं है, अतः स्त् की **हलोऽनन्तराः संयोगः** से संयोग-संज्ञा हुई और संयोग के आदि में स्थित वर्ण **सकार** का **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से लोप हुआ तो बना- **भूयात्**।

भूयास्ताम्। भू धातु से लिङ्, प्रथमपुरुष का द्विवचन तस्, **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् हुआ **भू+यास्+तस्** बना, यास् को कित् करके गुण का अभाव, **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से तस् के स्थान पर ताम् आदेश, **भूयास्ताम्** बना। यहाँ पर स् और त् का संयोग न तो पदान्त में है और न ही इससे झल् परे है। इसलिए **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से सकार का लोप नहीं हुआ और **भूयास्ताम्** सिद्ध हुआ।

भूयासुः। भू लिङ्, भू झि, **झेर्जुस्** से जुस्, अनुबन्धलोप, **भू+उस्**, **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् हुआ, **भू+यास्+उस्** बना, यास् को किद्वद्भाव करके गुण का निषेध, वर्णसम्मेलन करके **भूयासुस्** बना। सकार को रुत्व और विसर्ग करके **भूयासुः** यह सिद्ध हुआ।

भूयाः। भू से मध्यमपुरुष का एकवचन सिप्, अनुबन्धलोप, **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् हुआ **भू+यास्+सि** बना, यास् को कित् करके गुण का अभाव, सि के सकार का **इतश्च** से लोप करके **भू+यास्+स्** बना। पूर्व सकार का **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** लोप और दूसरे सकार को रुत्वविसर्ग करके **भूयाः** सिद्ध हो जाता है।

भूयास्तम्। **भूयास्त**। मध्यमपुरुष के द्विवचन और बहुवचन **थस्** और **थ** आये। **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् हुआ **भू+यास्+थस्** और **भू+यास्+थ** बने, यास् को कित् करके गुण का अभाव, **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से **थस्** के स्थान पर **तम्** आदेश, और थ के स्थान पर त आदेश, वर्णसम्मेलन करके **भूयास्तम्** और **भूयास्त** बनाइये।

भूयासम्, भूयास्व, भूयास्म। उत्तमपुरुष में क्रमशः मिप्, वस्, मस् प्रत्यय। **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् हुआ- **भू+यास्+मि**, **भू+यास्+वस्** और **भू+यास्+मस्** बने। यास् को कित् करके गुण का अभाव, **भूयास्+मि** में **अम्** आदेश और **वस् मस्** के सकार का **नित्यं ङितः** से लोप एवं शेष प्रक्रिया पूर्ववत् करके उक्त रूप सिद्ध होते हैं।

४३४- लुङ्। लुङ् प्रथमान्तम्, एकपदमिदं सूत्रम्। **भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार चला आ रहा है।

(सामान्य) भूतकाल में लुङ् लकार होता है।

जैसे- लिट् लकार में विशेष भूतकाल ग्राह्य था कि परोक्ष और अनद्यतन के साथ भूतकाल होना चाहिए। उसी प्रकार लङ् लकार के विषय में अनद्यतन होना चाहिए था किन्तु लुङ् लकार के विषय में सामान्य भूतकाल ही है।

लुङ्लकारविधायकं विधिसूत्रम्

४३५. माङि लुङ् ३।३।१७५॥

सर्वलकारापवादः।

लङ्लुङ्लकारविधायकं विधिसूत्रम्

४३६. स्मोत्तरे लङ् ३।३।१७६॥

स्मोत्तरे माङि लङ् स्याच्चाल्लुङ्।

च्लिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

४३७. च्लि लुङि ३।१।४३॥

शबाद्यपवादः।

सिचादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४३८. च्लेः सिच् ३।१।४४॥

इचावितौ।

....

४३५- **माङि लुङ्**। माङि सप्तम्यन्तं, लुङ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोः**, **प्रत्ययः**, **परश्च** अधिकार पहले से ही आ रहा है।

माङ्-शब्द के उपपद रहते धातु से लुङ् लकार होता है।

यह सभी लकारों का अपवाद है।

४३६- **स्मोत्तरे लङ् च**। स्म उत्तरो यस्मात्, स्मोत्तरम्, तस्मिन् स्मोत्तरे। **माङि लुङ्** से माङि की अनुवृत्ति आती है और **धातोः**, **प्रत्ययः**, **परश्च** अधिकार पहले से ही आ रहा है।

स्म परे हो ऐसे माङ्-शब्द के उपपद होने पर धातु से लङ् और लुङ् लकार होते हैं।

सूत्र में **च** पढ़े जाने के कारण **लुङ् लकार** भी होता है, यह अर्थ होता है।

४३७- **च्लि लुङि**। च्लि प्रथमान्तं, लुङि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से **धातोः** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः**, **परश्च** का अधिकार है।

लुङ् लकार के परे होने पर धातु से च्लि प्रत्यय होता है।

यह शप् आदि का अपवाद है। चकार की **चुटू** से इत्संज्ञा हो जाती है, लि का इकार उच्चारणार्थक है। अतः केवल ल् बचता है।

४३८- **च्लेः सिच्**। च्लेः षष्ठ्यन्तं, सिच् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

च्लि के स्थान पर सिच् आदेश होता है।

सिच् में **चकार** की **हलन्त्यम्** से तथा इकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है और दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हो जाता है।

यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि **च्लि** के स्थान पर **सिच्** होता ही है तो सीधे **सिच्** प्रत्यय ही क्यों न किया जाय? **च्लि लुङि** और **च्लेः सिच्** इन दो सूत्र के बदले केवल **सिच् लुङि** पढ़ने पर भी काम हो जाता है? उत्तर संक्षेप में यह है कि आचार्य च्लि के स्थान पर जैसे **सिच्** करते हैं, उसी प्रकार आगे कहीं **चङ्**, कहीं, **अङ्** और कहीं **क्स**

सिचो लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

४३९. गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु २।४।७७॥

एभ्यः सिचो लुक् स्यात्। गापाविहेणादेशपिबती गृह्येते।

गुणनिषेधकं विधिसूत्रम्

४४०. भूसुवोस्तिङि ७।३।८८॥

भू सू एतयोः सार्वधातुके तिङि परे गुणो न।

अभूत्। अभूताम्। अभूवन्। अभूः। अभूतम्। अभूत। अभूवम्। अभूव। अभूम।

....

आदेश का भी विधान करते हैं। वहाँ पर बाध्यबाधकभाव से अनेक भिन्न-भिन्न कार्यों की सिद्धि होती है। अतः **सिच्, चङ, अङ्, क्सः** आदि के एक कोई स्थानी का होना आवश्यक है। एतदर्थ **च्लि** ऐसा सामान्य प्रत्यय करके **सिच्** आदि आदेशों का विधान किया है। इस बात को आप **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में अच्छी तरह समझेंगे।

४३९- **गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु**। गातिश्च स्थाश्च घुश्च पाश्च भूश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो गातिस्थाघुपाभुवः, तेभ्यो गातिस्थाघुपाभूभ्यः, गातिस्थाघुपाभूभ्यः पञ्चम्यन्तं, सिचः षष्ठ्यन्तं, परस्मैपदेषु सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** से **लुक्** की अनुवृत्ति आती है।

इण्धातु के स्थान पर हुए गा-धातु, स्था-धातु, घु-संज्ञक-धातु, पाधातु और भू-धातु से परे सिच् का लुक् होता है।

एक स्वतन्त्र गा-धातु भी है, उसे सूत्रस्थ **गा** से न लेने के लिए **इणादेश गा ध** ातु कहा गया अर्थात् इस सूत्र में **इण्** धातु के स्थान पर होने वाला **गा** धातु ही ग्राह्य है, स्वतन्त्र गा--धातु या अन्य धातु के स्थान पर होने वाला ग्राह्य नहीं है। दा-रूप और धा-रूप धातुओं की घुसंज्ञा दाधाघ्वदाप् सूत्र से हो होती है, उन घुसंज्ञक धातु का ग्रहण है। इसी प्रकार एक स्वतन्त्र पा धातु भी है, किन्तु इस सूत्र में पिब आदेश होने वाला पा धातु ही ग्राह्य है। इसके लिए महाभाष्य प्रमाण है।

४४०- **भूसुवोस्तिङि**। भूश्च सूश्च भूसुवौ, तयोर्भूसुवोः। भूसुवोः षष्ठ्यन्तं, तिङि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके** से **न** और **सार्वधातुके** की तथा **मिदेर्गुणः** से **गुणः** की अनुवृत्ति आती है।

सार्वधातुक तिङ् के परे रहने पर भू और सू धातु के इक् को गुण न हो।

अभूत्। भू धातु से सामान्य भूत अर्थ में **लुङ्** से लुङ् लकार का विधान हुआ, **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** से भू धातु को अट् का आगम, लकार के स्थान पर प्रथमपुरुष का एकवचन **तिप्** आदेश, अनुबन्धलोप, टित् होने के कारण भू के आदि में बैठा, **अभू ति** बना। ति की सार्वधातुकसंज्ञा, **कर्तरि शप्** से शप् की प्राप्ति, उसको बाधकर **च्लि लुङि** से च्लि प्रत्यय, च्लि में चकार की **चुटू** से इत्संज्ञा, उसके बाद लोप, उच्चारणार्थक इकार के स्वतः चले जाने से **ल्** के स्थान पर **च्लेः सिच्** से सिच् आदेश, अनुबन्धलोप, **अभू स् ति** बना। (सिच् के सकार की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा होती है। जिसका भू धातु

अडाटोर्निषेधकं विधिसूत्रम्

४४१. न माङ्योगे ६।४।७४॥

अडाटौ न स्तः। मा भवान् भूत्। मा स्म भवत्। मा स्म भूत्।

....

में कोई प्रयोजन नहीं है, अन्यत्र प्रयोजन है) सिच् के सकार का **गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु** से लुक् अर्थात् लोप हो गया, **अभू ति** बना। ति सार्वधातुक के परे रहने पर भू के ऊकार के स्थान पर **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण प्राप्त था उसको **भूसुवोस्तिङि** ने निषेध कर दिया। **अभू ति** में ति के इकार का **इतश्च** से लोप हुआ- **अभूत्** बना।

अभूताम्। प्रथमपुरुष के द्विवचन में भी यही विधि होगी। उसमें **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से तस् के स्थान पर ताम् आदेश करना चाहिए और **ताम्** प्रत्यय में इकार न होने के कारण **इतश्च** की प्रवृत्ति नहीं है। शेष कार्य अभूत् की तरह करके **अभूताम्** सिद्ध करें। भू लुङ्, अभू लुङ्, अभू तस्, अभू ताम्, अभू च्लि ताम्, अभू स् ताम्, अभू ताम्, **अभूताम्।**

अभूवन्। लुङ् लकार में अच् परे हो तो **भुवो वुग् लुङ्लिटोः** से वुक् का आगम होता है। झि के स्थान पर अन्त् आदेश होने पर तथा मिप् के स्थान पर अम् आदेश होने पर अच् मिलता है। अतः इन दोनों जगह में इस सूत्र से वुक् का आगम होगा। वुक् में ककार और उकार की इत्संज्ञा होकर केवल व् ही शेष रहता है और वह कित् होने के कारण भू के अन्त में बैठता है। शेष कार्य अभूत् की तरह ही है। अभू झि, अभू अन्ति, अभूव् अन्ति, अभूव् स् अन्ति, अभूव् अन्ति, अभूवन्ति, अभूवन् त्, तकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप होकर **अभूवन्** बना।

अभूः। मध्यमपुरुष के एकवचन में अभूत् की तरह ही **अभूः** बनता है। अन्तर केवल इतना ही है कि सि के इकार का **इतश्च** से लोप होने के बाद सकार को रुत्व और विसर्ग होता है।

अभूतम्। **अभूत**। मध्यमपुरुष के द्विवचन और बहुवचन में ये दो रूप **अभूताम्** की तरह ही बनते हैं अर्थात् धातु से लकार, अट् आगम और तिङ् आदेश के बाद सार्वधातुकसंज्ञा, च्लि, सिच्, सकार का लोप आदि यथावत् ही होते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि **अभूताम्** में **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से **ताम्** आदेश होता है और यहाँ पर क्रमशः **तम्** और **त** आदेश होते हैं।

अभूवम्। उत्तमपुरुष में मिप् के स्थान पर **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से अम् आदेश करके शेष प्रक्रिया **अभूवन्** की तरह ही होती है।

अभूव। **अभूम**। उत्तमपुरुष के द्विवचन और बहुवचन **वस्** और **मस्** में सकार का **नित्यं ङितः** से लोप करना न भूलें। शेष प्रक्रिया पूर्ववत् ही है।

४४१- न माङ्योगे। माङो योगो माङ्योगस्तस्मिन्। न अव्ययपदं, माङ्योगे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** से **अट्** और **आडजादीनाम्** से **आट्** की अनुवृत्ति आती है।

माङ् इस अव्यय के योग में अट् और आट् आगम नहीं होते।

मा भवान् भूत्। मा स्म भवत्। मा स्म भूत्। ये तीनों **माङि लुङ्** और **स्मोत्तरे लङ् च** के उदाहरण हैं। **माङ्** में **ङ्कार** की इत्संज्ञा होकर केवल **मा** बचा है। उसके योग

लृङ्लकारविधायकं विधिसूत्रम्

४४२. लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ३।३।१३९॥

हेतु-हेतुमद्भावादि लिङ्निमित्तं तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात् क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम्।

अभविष्यत्। अभविष्यताम्। अभविष्यन्। अभविष्यः। अभविष्यतम्। अभविष्यत। अभविष्यम्। अभविष्याव। अभविष्याम।

सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत्, इत्यादि ज्ञेयम्।

अत सातत्यगमने॥२॥ अतति।

....

में लुङ् और **स्म** उत्तर वाले **माङ्** के योग में लुङ् और **लङ्** दोनों लकार हुए हैं। उक्त तीनों स्थलों पर **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** से **अट्** आगम की प्राप्ति थी, उसका **न माङ्योगे** से निषेध हुआ है। इस तरह **भूत्** यह लुङ् में और **भवत्** यह लङ् में अट् रहित तिप् के रूप हैं। इसी तरह सभी तिप्, तस् आदि प्रत्ययों के परे समझना चाहिए।

४४२- **लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ।** लिङः निमित्तं लिङ्निमित्तम्, तस्मिन् लिङ्निमित्ते, षष्ठीतत्पुरुषः॥ क्रियायाः अतिपत्ति क्रियातिपत्तिः, तस्याम् क्रियातिपत्तौ, षष्ठीतत्पुरुषः। लिङ्निमित्ते सप्तम्यन्तं, लृङ् प्रथमान्तं, क्रियातिपत्तौ सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन्** से **भविष्यति** की अनुवृत्ति आती है।

लिङ् के निमित्त जो हेतु-हेतुमद्भाव आदि, उसमें क्रिया का भविष्यत्काल में होना (प्रकट करना) हो तो धातु से लृङ् लकार होता है क्रिया की असिद्धि गम्यमान होने पर।

हेतु कारण को कहते हैं। **हेतुरस्यास्तीति हेतुमत्**, कारण जिसका है वह अर्थात् कारण वाले कार्य को हेतुमत् कहते हैं। **हेतुहेतुमतोर्भावः=हेतुहेतुमद्भावः**, (षष्ठीतत्पुरुषः)। कार्य-कारण के असाधारण धर्मविशेष को अर्थात् कार्यकारणभाव को ही **हेतुहेतुमद्भाव** कहा जाता है। **हेतुहेतुमद्भावः आदिर्यस्य तद् (निमित्तम्) हेतुहेतुमद्भावादि।** कार्यकारणभाव आदि में जिसके ऐसे निमित्त को हेतुहेतुमद्भावादि कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि जहाँ हेतुहेतुमद्भावरूप सम्बन्ध रहता है, वहाँ **हेतुहेतुमतोर्लिङ्** इस सूत्र से लिङ् लकार होता है। जैसे- **कृष्णं नमेत् चेत् सुखं यायात्** अर्थात् कृष्ण को नमन करे तो सुख प्राप्त करे। इस वाक्य में नमन-क्रिया सुख-प्राप्ति का हेतु है और सुखप्राप्ति-क्रिया सहेतुक है। अतः इसे हेतुमत् कहा जाता है। इस प्रकार यहाँ दोनों क्रियाओं में **हेतुहेतुमद्भाव** रूप सम्बन्ध है। इस प्रकार का सम्बन्ध जहाँ दो क्रियाओं में रहता है वहाँ पर सामान्यतः **हेतुहेतुमतोर्लिङ्** सूत्र से लिङ् लकार होता है परन्तु जब हेतुहेतुमद्भाव आदि सम्बन्ध होने पर **भविष्यत्काल** और **क्रिया की असिद्धि** प्रतीत होती हो तो हेतु और हेतुमत् दोनों क्रियाओं में **लृङ्** लकार होता है। जैसे **सुवृष्टिश्चेदभविष्यत् तदा सुभिक्षमभविष्यत्** यदि अच्छी वृष्टि होगी तो सुकाल होगा। यहाँ सुवृष्टि होना क्रिया हेतु तथा सुभिक्ष होना क्रिया हेतुमत् कार्य है। अतः दोनों में लृङ् लकार हुआ।

इस तरह हेतु और हेतुमान् भाव का तात्पर्य कार्यकारणभाव ही समझना चाहिए।

जैसे ईंटे होंगी तो मकान बन जायेगा। परिश्रम से पढ़ोगे तो परीक्षा में उत्तीर्ण होगे। इन वाक्यों में यह दीखता है कि यदि कारण होगा तो कार्य भी होगा। हेतु विद्यमान रहेगा तो हेतुमान् अर्थात् उससे होने वाला कार्य भी सिद्ध हो जायेगा आदि। अब इन वाक्यों से यह भी स्पष्ट होता है कि कार्य अभी नहीं हुआ है अर्थात् क्रिया की सिद्धि नहीं हुई है। इसमें भविष्यत्काल होना चाहिए। जैसे अच्छी वृष्टि अर्थात् वर्षा होगी तो अनाज भी अच्छा होगा। हेतु-हेतुमद्भाव तो भूतकाल और वर्तमान काल में भी होते हैं किन्तु इस सूत्र की प्रवृत्ति में हेतु-हेतुमद्भाव के होते हुए भविष्यत्काल का होना आवश्यक है।

अभविष्यत्। अभविष्यताम्। अभविष्यन्। अभविष्यः। अभविष्यतम्। अभविष्यत। अभविष्यम्। अभविष्याव। अभविष्याम। हेतु-हेतुमद्भाव और क्रिया की अनिष्पत्ति अर्थ गम्यमान होने पर भविष्यत्काल में **लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ** से लृङ् लकार का विधान हुआ, **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** से अट् का आगम, अनुबन्धलोप होकर लकार के स्थान पर प्रथमपुरुष का एकवचन तिप् आया, **भू ति** बना, होकर **अभू ति** बना। ति की सार्वधातुकसंज्ञा होकर **कर्तरि शप्** से शप् प्राप्त था, उसे बाधकर **स्यतासी लृलुटोः** से स्य हुआ। स्य की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा करके **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से इट् का आगम हुआ, **अभू इ स्य ति** बना। भू को गुण अवादेश होकर **अभवि स्य ति** बना। स्य के सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व करके **अभविष्यति** बना, ति में इकार का **इतश्च** से लोप हुआ तो **अभविष्यत्** सिद्ध हुआ।

लृङ् लकार के सम्बन्ध में मोटामोटी रूप में यह समझें कि यह लकार लगभग लृट् लकार जैसा ही है, उससे विशेषता यह है कि धातु के पहले अट् का आगम होता है और **ति, झि, सि** में **इतश्च** से इकार का लोप होता है तथा **तस्, थस्, थ, मिप्** के स्थान पर **ताम्, तम्, त, अम्** ये आदेश एवं वस्, मस् में **नित्यं ङितः** से सकार का लोप ये कार्य विशेष होते है। इस तरह मोटे तौर पर यह कहें कि भविष्यति अट् का आगम और इकार का लोप करके **अभविष्यत्** बना लें। इसी तरह **अभविष्यताम्, अभविष्यन्, अभविष्यः, अभविष्यतम्, अभविष्यत, अभविष्यम्, अभविष्याव, अभविष्याम** भी बना लें।

इस तरह से आपने भू धातु के दसों लकारों के रूप बना लिए। एक लकार में नौ रूप हैं तो दस लकारों के नब्बे रूप हो गये। इस तरह प्रत्येक धातु के ९०-९० रूप बनते हैं। यदि धातु उभयपदी अर्थात् परस्मैपदी और आत्मनेपदी है तो रूप दो गुने हो जायेंगे। इस तरह १८० होंगे। उसमें भी कई धातुओं में अनेक कार्यों में वैकल्पिक रूप बनते है। इस तरह रूपों की संख्या और बढ़ जाती है। फिर आगे णिजन्त में लगभग २००, सन्नन्त में लगभग २००, यङन्त में लगभग २००, यङ्लुङन्त में लगभग २०० करके एक धातु के हजार से भी ऊपर रूप बन जाते हैं।

इसके बाद उपसर्ग भी लगते हैं। २२ उपसर्ग हैं, उनमें अधिकतर धातु के साथ जुड़ते हैं। कहीं एक ही उपसर्ग धातु से जुड़ता है तो कहीं एक से अधिक दो, तीन भी लगते हैं। कहीं वे ही उपसर्ग व्यत्यास अर्थात् आगे, पीछे होकर लगते हैं। इस तरह एक धातु के लाखों भी रूप हो सकते हैं। एक धातु को अच्छी तरह से समझ लिया जाय तो हजारों, लाखों शब्दों को समझा जा सकता है।

इस लिए मैं छात्रों से बारम्बार कहता हूँ कि आप जो पढ़ रहे हैं, उसे अच्छी तरह

भू-धातु लोट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भवतु,भवतात्	भवताम्	भवन्तु
मध्यमपुरुष	भव, भवतात्	भवतम्	भवत
उत्तमपुरुष	भवानि	भवाव	भवाम:

भू-धातु लङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
मध्यमपुरुष	अभव:	अभवतम्	अभवत
उत्तमपुरुष	अभवम्	अभवाव	अभवाम

भू-धातु विधिलिङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भवेत्	भवेताम्	भवेयु:
मध्यमपुरुष	भवे:	भवेतम्	भवेत
उत्तमपुरुष	भवेयम्	भवेव	भवेम

भू-धातु आशीर्लिङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासु:
मध्यमपुरुष	भूया:	भूयास्तम्	भूयास्त
उत्तमपुरुष	भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

भू-धातु लुङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
मध्यमपुरुष	अभू:	अभूतम्	अभूत
उत्तमपुरुष	अभूवम्	अभूव	अभूम

भू-धातु लृङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
मध्यमपुरुष	अभविष्य:	अभविष्यतम्	अभविष्यत
उत्तमपुरुष	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

उपसर्गों के सम्बन्ध में

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते। प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्।।

उपसर्ग से धातु का अर्थ बदल जाता है। जैसे हृ-धातु से हार बनता है, इसका अर्थ है हरण करना, ले जाना। इसमें प्र उपसर्ग को जोड़ने पर प्रहार करना अर्थात् किसी के प्रति आक्रमण करना अर्थ हो जाता है। इसी प्रकार आ उपसर्ग के लगने से **आहार**=खाना, सं-उपसर्ग के लगने से **संहार** अर्थात् विनाश करना, वि-उपसर्ग के लगने से विहार अर्थात् घूमना और परि-उपसर्ग के लगने से परिहार अर्थात् हटाना या रोकना, ऐसा अर्थ बन जाता

है। तिङन्त में हृ-धातु का **हरति** ऐसा रूप बनता है। इसमें उपसर्गों को धातु से पहले जोड़ने पर **प्रहरति, आहरति, संहरति, विहरति और परिहरति** रूप बनते हैं। इनका अर्थ पूर्वोक्त ही है।

भू धातु से **भवति** आदि रूप बनते हैं। इसके पहले उपसर्गों को जोड़ने से **प्र+भवति=प्रभवति, सम्भवति, परिभवति, पराभवति, अनुभवति** आदि रूप बन जाते हैं। उपसर्ग के लगने से धातु के अर्थ बदल जाने के कारण प्रभवति=समर्थ होता है, सम्भवति=सम्भव होता है, परिभवति=अपमानित होता है, पराभवति=पराजित करता है और अनुभवति=अनुभव करता है आदि अर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार से प्रत्येक धातु के प्रत्येक लकार के प्रत्येक पुरुष और वचन में ये उपसर्ग लग सकते हैं। जिस प्रकार आपने भू-धातु के दसों लकारों में ९० रूप बनाये, उसी प्रकार से मात्र एक उपसर्ग के जुड़ने से ९० रूप और बन जाते हैं। हाँ, इस बात का ध्यान जरूर रखना कि लङ्-लुङ-लृङ् लकारो में अट् एवं आट् का आगम होता है तो वहाँ पर उपसर्गों का प्रयोग अट्-आट् से पहले ही करना तथा वहाँ कोई यण्, गुण आदि सन्धि प्राप्त है तो सन्धि भी करनी चाहिए। जैसे अनु+भू के लङ् लकार में **अनु+अभवत्**, यण् होकर के **अन्वभवत्** एवं **प्र+अभवत्**, दीर्घ होकर के **प्राभवत्** आदि रूपों को बनाना चाहिए। कहीं कहीं रेफ और षकार वाले उपसर्ग से परे धातु का नकार हो तो उसका णत्व भी हो जाता है और कहीं कहीं धातु के सकार के स्थान पर षकार आदेश भी होता है। इसके लिए विशेष सूत्र **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में मिलेंगे।

हम यहाँ पर अनु-उपसर्ग लगे भू-धातु के रूप दिखा रहे हैं। आगे आप इसी प्रकार से और भी उपसर्गों को लगाकर रूप बनाने का प्रयास करें।

अनु-उपसर्ग पूर्वक भू-धातु (वर्तमान काल लट् लकार)

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमपुरुष	अनुभवति	अनुभवतः	अनुभवन्ति
मध्यमपुरुष	अनुभवसि	अनुभवथः	अनुभवथ
उत्तमपुरुष	अनुभवामि	अनुभवावः	अनुभवामः

अनु-उपसर्ग पूर्वक भू-धातु (परोक्ष, अनद्यतन भूतकाल, लिट् लकार)

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमपुरुष	अनुबभूव	अनुबभूवतुः	अनुबभूवुः
मध्यमपुरुष	अनुबभूविथ	अनुबभूवथुः	अनुबभूव
उत्तमपुरुष	अनुबभूव	अनुबभूविव	अनुबभूविम

अनु-उपसर्ग पूर्वक भू-धातु (अनद्यतन भविष्यत्काल, लुट् लकार)

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमपुरुष	अनुभविता	अनुभवितारौ	अनुभवितारः
मध्यमपुरुष	अनुभवितासि	अनुभवितास्थः	अनुभवितास्थ
उत्तमपुरुष	अनुभवितास्मि	अनुभवितास्वः	अनुभवितास्म

अनु-उपसर्ग पूर्वक भू-धातु (सामान्य भविष्यत्काल, लृट् लकार)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अनुभविष्यति	अनुभविष्यतः	अनुभविष्यन्ति
मध्यमपुरुष	अनुभविष्यसि	अनुभविष्यथः	अनुभविष्यथ
उत्तमपुरुष	अनुभविष्यामि	अनुभविष्यावः	अनुभविष्यामः

अनु-उपसर्ग पूर्वक भू-धातु (आज्ञार्थक, लोट् लकार)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अनुभवतु, अनुभवतात्	अनुभवताम्	अनुभवन्तु
मध्यमपुरुष	अनुभव, अनुभवतात्	अनुभवतम्	अनुभवत
उत्तमपुरुष	अनुभवानि	अनुभवाव	अनुभवाम

अनु-उपसर्ग पूर्वक भू-धातु (अनद्यतन भूतकाल लङ् लकार)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अन्वभवत्	अन्वभवताम्	अन्वभवन्
मध्यमपुरुष	अन्वभवः	अन्वभवतम्	अन्वभवत
उत्तमपुरुष	अन्वभवम्	अन्वभवाव	अन्वभवाम

अनु-उपसर्ग पूर्वक भू-धातु (विध्यर्थक, विधिलिङ् लकार)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अनुभवेत्	अनुभवेताम्	अनुभवेयुः
मध्यमपुरुष	अनुभवेः	अनुभवेतम्	अनुभवेत
उत्तमपुरुष	अनुभवेयम्	अनुभवेव	अनुभवेम

अनु-उपसर्ग पूर्वक भू-धातु (आशीर्लिङ् लकार)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अनुभूयात्	अनुभूयास्ताम्	अनुभूयासुः
मध्यमपुरुष	अनुभूयाः	अनुभूयास्तम्	अनुभूयास्त
उत्तमपुरुष	अनुभूयासम्	अनुभूयास्व	अनुभूयास्म

अनु-उपसर्ग पूर्वक भू-धातु (सामान्य भूतकाल, लुङ् लकार)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अन्वभूत्	अन्वभूताम्	अन्वभूवन्
मध्यमपुरुष	अन्वभूः	अन्वभूतम्	अन्वभूत
उत्तमपुरुष	अन्वभूवम्	अन्वभूव	अन्वभूम

अनु-उपसर्ग पूर्वक भू-धातु (हेतु-हेतुमद्भावादि, लृङ् लकार)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अन्वभविष्यत्	अन्वभविष्यताम्	अन्वभविष्यन्
मध्यमपुरुष	अन्वभविष्यः	अन्वभविष्यतम्	अन्वभविष्यत
उत्तमपुरुष	अन्वभविष्यम्	अन्वभविष्याव	अन्वभविष्याम

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

४४३. अत आदेः ७।४।७०॥

अभ्यासस्यादेरतो दीर्घः स्यात्।

आत। आततुः। आतुः। आतिथ। आतथुः। आत। आत। आतिव आतिम। अतिता। अतिष्यति। अततु।

....

आपने अब तक भू-धातु के दसों लकारों के रूपों की सिद्धि और उपसर्ग के प्रयोग के विषय में जाना। अब एक बार पूरी आवृत्ति करके निम्नलिखित अभ्यास भी करिये।

अभ्यासः

१- धातु और शब्दों में आप क्या अन्तर पाते हैं?

२- कौन कौन लकार किस काल और किन अर्थों में होते हैं?

३- किस-किस लकार में सार्वधातुकसंज्ञा और किस-किस लकार में आर्धधातुकसंज्ञा होती है?

४- किन-किन स्थितियों में प्रथम-मध्यम-उत्तमपुरुषों का प्रयोग होता है?

५- कहाँ आत्मनेपद का प्रयोग होता है और कहाँ परस्मैपद या कहाँ उभयपद का? स्पष्ट करें।

६- किन-किन लकारों में अट् का आगम होता है?

७- लिट् और लङ् लकार में क्या अन्तर है?

८- लुट् और लृट् लकार में आप क्या अन्तर पाते हैं?

९- अद्यतन और अनद्यतन के विषय में बताइये।

१०- एक बार भू धातु के सारे रूप मौखिक ही सिद्ध करें।

११- अपनी कापी में प्र-उपसर्ग लगाकर भू धातु के सारे रूप लिखिये।

१२- भ्वादि में अभी तक आपने जितने सूत्र पढ़े, वे वृत्ति-अर्थ सहित आपको कण्ठस्थ हैं क्या? नहीं तो उनको कण्ठस्थ करें।

....

अत सातत्यगमने। अत धातु **निरन्तर चलना** अर्थ में है। **अतति**= चलता ही रहता है। अत में तकारोत्तरवर्ती अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप होता है। अत् शेष रह जाता है। भू में ऊकार की इत्संज्ञा इसलिए नहीं हुई कि उसमें अनुनासिकत्व नहीं है पर **अत** में अकार अनुनासिक है। इसलिए उसकी अनुनासिक मानकर इत्संज्ञा हुई।

अतति। अत सातत्यगमने धातु है। **त** में **अकार** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा हुई और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। इससे लट् लकार, तिप् आदेश, अनुबन्धलोप, ति की सार्वधातुकसंज्ञा और **कर्तरि शप्** से शप्, अनुबन्धलोप करके **अत्+अ+ति** बना, वर्णसम्मेलन होकर **अतति** सिद्ध हुआ। यहाँ इगन्त न होने के कारण गुण नहीं हुआ। अब आगे तस् आदि में भी इसी प्रकार से रूप बनाइये। **तस्, थस्, वस्, मस्** में सकार को रुत्वविसर्ग, झि में अन्त् आदेश, **मिप्, वस् मस्** में **अतो दीर्घो यञि** से दीर्घ करके **अतति,** अततः, **अतन्ति, अतसि, अतथः, अतथ, अतामि, अतावः अतामः** सिद्ध हो जाते हैं।

४४३- **अत आदेः**। अतः षष्ठ्यन्तम्, आदेः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** और **दीर्घः इणः किति** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है।

अभ्यास में विद्यमान आदि ह्रस्व अकार को दीर्घ होता है।

यद्यपि अत् धातु के अभ्यास को इस सूत्र से दीर्घ होने पर भी और न होने पर भी समान ही रूप बनते हैं, तथापि **अर्च** आदि धातुओं से **आनर्च** आदि बनाने के लिए इस सूत्र की आवश्यकता होती है। यह सूत्र यहाँ पर भी प्रवृत्त हो सकता है। अतः न्यायसंगति से यहाँ पर ही दिखाया गया है।

आत। अत् से लिट्, तिप्, अनुबन्धलोप, **परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः** से णल् आदेश, अनुबन्धलोप, **अत् अ** बना, **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से धातु को द्वित्व, **अत् अत् अ** बना। अभ्याससंज्ञा और **हलादि शेषः** से हलादिशेष होकर **अ अत् अ** बना, अभ्याससंज्ञक अ का **अत आदेः** से दीर्घ करने पर **आ अत् अ** बना। **आ+अत्** में **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ होकर **आत् अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **आत** बना। इसी प्रकार **आत्** बनाते जाइये और आगे **तस्** आदि के स्थान पर **अतुस्** आदि आदेश करके उसमें मिलाते जाइये। इस प्रकार से आततुः, आतुः, आतिथ (इट् आगम करके), आतथुः, आत, आत, आतिव, आतिम बनते हैं।

याद रहे कि तिप् आदि नौ के स्थान पर **परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः** से णल् आदि नौ आदेश होते हैं और **थल्, वस्, मस्** के परे रहने पर **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से इट् का आगम होता है।

अतिता। अत् से लुट् लकार, तिप् आदेश, अनुबन्धलोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् प्राप्त, उसे बाधकर **स्यतासी लृलुटोः** से तासि, अनुबन्धलोप, उसकी आर्धधातुकसंज्ञा, **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् का आगम, **अत् इ तास् ति** बना, **लुटः प्रथमस्य डारौरसः** से डा आदेश, तास् में **आस्** इस टि का लोप कर के **अत्+इ+त्+आ** बना, वर्णसम्मेलन करके **अतिता** बना। पूरे लुट् लकार में इट् का आगम होगा, गुण प्राप्त ही नहीं है। शेष विधि भू-धातु के समान ही है। इस प्रकार से लुट् में अत् के रूप बनते हैं- अतिता, अतितारौ, अतितारः, अतितासि, अतितास्थः, अतितास्थ, अतितास्मि, अतितास्वः, अतितास्मः।

अतिष्यति। अत् से लृट् लकार, उसके स्थान पर तिप् आदेश, अनुबन्धलोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् प्राप्त, उसे बाधकर **स्यतासी लृलुटोः** से स्य, उसकी आर्धधातुकसंज्ञा, **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् का आगम करके **अत् इ स्य ति** बना, वर्णसम्मेलन होकर **अतिस्यति** बना, इकार से परे स्य के सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व हुआ- **अतिष्यति**। अब इसी प्रकार आगे भी बनाते जाइये। स्य प्रत्यय और इट् का आगम करके इस प्रकार से लृट् में अत् के रूप बनते हैं- **अतिष्यति, अतिष्यतः, अतिष्यन्ति, अतिष्यसि, अतिष्यथः, अतिष्यथ, अतिष्यामि, अतिष्यावः, अतिष्यामः**।

अततु। अत् से लोट्, तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **अत् अ ति** बना, वर्णसम्मेलन हुआ और **भवतु** के समान **एरुः** से उत्व करके **अततु** बना। **तु** को **तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्** से एक पक्ष में **तातङ्** आदेश होकर **अततात्** भी बनता है। यदि भू-धातु के सारे लकारों के रूप याद हैं तो बनाने में कोई कठिनाई नहीं होगी, अन्यथा समझ में नहीं आयेगा। इस प्रकार से लोट्-लकार में अत् के रूप बनते हैं- **अततु-अततात्, अतताम्, अतन्तु, अत-अततात्, अततम्, अतत, अतानि, अताव, अताम**। तिप् और सिप् में विकल्प से तातङ् आदेश होकर दो-दो रूप बनते हैं।

आडागमविधायकं विधिसूत्रम्

४४४. आडजादीनाम् ६।४।७२।।

अजादेरङ्गस्याट् लुङ्लङ्लृङ्क्षु।

आतत्। अतेत्। अत्यात्। अत्यास्ताम्। लुङि सिचि इडागमे कृते।

....

४४४- **आडजादीनाम्**। अच् आदिर्येषां ते अजादयस्तेषाम्। आट् प्रथमान्तम्, अजादीनां षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** से **लुङ्लङ्लृङ्क्षु** एवं **उदात्त** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का वचनविपरिणाम करके **अङ्गानाम्** का अधिकार आता है।

लुङ्, लङ् और लृङ्, लकार के परे रहने पर अजादि अङ्ग रूप धातु को आट् का आगम होता है।

इससे पूर्व का सूत्र **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** अट् का आगम करता है और यह आट् आगम करता है। यह अजादि धातु में ही लगता है, इसलिए पूर्वसूत्र से यह सूत्र विशेष है। अत एव यह सूत्र पूर्वसूत्र का अपवादसूत्र है। इस प्रकार से लुङ्, लङ् और लृङ्, लकार के परे रहने पर अजादि धातुओं को **आट्** और हलादि धातुओं को **अट्** का आगम होना निश्चित हुआ।

आतत्। अत् धातु से **अनद्यतने लङ्** से लङ्-लकार, **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** अट् आगम प्राप्त था किन्तु **अत्** धातु के अजादि होने के कारण उसे बाधकर **आडजादीनाम्** से आट् का आगम हुआ, टित् होने के कारण धातु से पहले बैठा, लकार के स्थान पर तिप्, **आ+अत्+ति** बना। सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **आ+अत्** में **आटश्च** से वृद्धि हुई तो **आत् अ ति** में वर्णसम्मेलन करके **आतति** बना, **इतश्च** से इकार का लोप हुआ- **आतत्**। अब तस् आदि में भी यही प्रक्रिया अपनाना। विशेष- **तस्, थस्, थ, मिप्** में **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से ताम् आदि आदेश, **सिप्** में **इतश्च** से इकार का लोप और सकार का रुत्वविसर्ग, वस्, मस् में **अतो दीर्घो यञि** से दीर्घ तथा सकार का **नित्यं ङितः** से लोप आदि करने से अत् धातु के लङ्-लकार में निम्नानुसार रूप वनते हैं- **आतत्, आतताम्, आतन्, आतः, आततम्, आतत, आतम्, आताव, आताम।**

अतेत्। अत् धातु से **विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्** से लिङ्-लकार, उसके स्थान पर तिप् होकर **अत्+ति** बना। सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **अत्+अति** बना। **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् आगम, अनुबन्धलोप, **अत्+अ+यास्+ति** बना। **यास्** के स्थान पर **अतो येयः** से इय् आदेश, यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप करके **अत्+अ+इ+ति** बना। **अ+इ** में **आद्गुणः** से गुण करके वर्णसम्मेलन करने पर **इतश्च** से इकार का लोप किया गया तो बना- **अतेत्**। तस् आदि में भी यही प्रक्रिया अपनाना। विशेष यह है कि- **तस्, थस्, थ, मिप्** में **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से ताम् आदि आदेश, सिप् में **इतश्च** से इकार का लोप और सकार को रुत्वविसर्ग, **झि** के स्थान पर **झेर्जुस्** से **जुस्** आदेश, वलादि के परे रहने पर यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप, अन्यथा नहीं, वस् मस् में सकार का **नित्यं ङितः** से लोप आदि करने से अत् धातु के विधि लिङ्-लकार में निम्नानुसार रूप बनते हैं- **अतेत्, अतेताम्, अतेयुः, अतेः, अतेतम्, अतेत, अतेयम्, अतेव, अतेम।**

ईडागमविधायकं विधिसूत्रम्

४४५. अस्तिसिचोऽपृक्ते ७।३।९६॥

विद्यमानात् सिचोऽस्तेश्च परस्यापृक्तस्य हल ईडागमः।

सलोपविधायकं विधिसूत्रम्

४४६. इट ईटि ८।२।२८॥

इटः परस्य सस्य लोपः स्यादीटि परे।

वार्तिकम्- **सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः।** आतीत्। आतिष्टाम्।

....

आशीर्लिङ् में **अत्** धातु से **आशिषि लिङ्लोटौ** से लिङ्-लकार, तिप् आदि आदेश, उसकी **लिङाशिषि** से आर्धधातुकसंज्ञा होने के कारण शप् नहीं होगा, यासुट् आगम, अन्त में इकार के रहने पर **इतश्च** से उसका लोप, तिप् और सिप् में सकार का **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से लोप, **तस्, थस्, थ, मिप्** के स्थान पर **ताम्, तम्, त, अम्** आदेश, **सिप्** के सकार को रुत्वविसर्ग, **वस्** और **मस्** के सकार का **नित्यं ङितः** से लोप करके निम्न प्रकार के रूप सिद्ध होते हैं- **अत्यात्, अत्यास्ताम्, अत्यासुः, अत्याः, अत्यास्तम्, अत्यास्त, अत्यासम्, अत्यास्व, अत्यास्म।** ध्यान रहे कि आशीर्लिङ् में अत् धातु को गुण प्राप्त ही नहीं है, अतः **क्ङिति च** से निषेध करने की आवश्यकता भी नहीं है।

४४५- अस्तिसिचोऽपृक्ते। अस्तिश्च सिच् च तयोः समाहारद्वन्द्वः- अस्तिसिच्, तस्य अस्तिसिचः। यहाँ पर समास की एक अन्य प्रक्रिया भी बताई गई है- सिच् च अस् च तयोः समाहारद्वन्द्वः सिचः, अस्तिश्चासौ सिचश्च अस्तिसिचः, सौत्रात् पञ्चमी का लुक्। अस्तिसिचः पञ्चम्यन्तम्, अपृक्ते सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **उतो वृद्धिर्लुकि हलि** से **हलि** और **ब्रुव ईट्** से **ईट्** की अनुवृत्ति आती है।

विद्यमान सिच् प्रत्यय और अस् धातु से परे अपृक्त हल् को ईट् का आगम होता है।

विद्यमान सिच् कहने से यह सूत्र केवल लुङ्-लकार में ही लगेगा, क्योंकि च्लि और च्लि के स्थान में होने वाला सिच् लुङ्-लकार में ही होता है। जो विद्यमान सिच् उससे या अस् धातु से परे अपृक्तसंज्ञक हल् को ईट् आगम का विधान किया गया। इसमें **ई** टित् है और ईकार दीर्घ है। टित् होने से अपृक्त के आदि में बैठेगा। अपृक्त हल् तिप् और सिप् में इनके इकार के लोप होने के बाद ही मिलता है। अतः यह सूत्र तिप् और सिप् में ही लगता है। स्मरण रहे कि एक अल् वाले प्रत्यय की **अपृक्त एकाल् प्रत्ययः** से अपृक्तसंज्ञा होती है।

४४६- इट ईटि। इटः पञ्चम्यन्तम्, ईटि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **रात्सस्य** से **सस्य** और **संयोगान्तस्य लोपः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है।

इट् से ईट् परे होने पर बीच के सकार का लोप होता है।

इट् और ईट् दोनों ही आगम हैं। इट् **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** आदि सूत्र से किया गया है और ईट् **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से। **इट ईटि** इस सूत्र से सकार के लोप होने के बाद इ+ई में **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ करना था किन्तु **इट ईटि ८.२.२८** यह सूत्र त्रिपादी

जुसादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४४७. सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ३।४।१०९।।

सिचोऽभ्यस्ताद्विदेश्च परस्य ङित्सम्बन्धिनो झेर्जुस्।

आतिषुः। आतीः। आतिष्टम्। आतिष्ट। आतिषम्। आतिष्व। आतिष्म। आतिष्यत्। **षिध गत्याम्।।३।।**

....

है, इसके द्वारा किया गया कार्य सपादसप्ताध्यायी **अकः सवर्णे दीर्घः** ६.१.१०१ की दृष्टि में **पूर्वत्रासिद्धम्** के नियमानुसार असिद्ध है। बीच में सकार दीखने के कारण **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ एकादेश नहीं हो रहा था तो वार्तिककार को वार्तिक बनाना पड़ा-

सिच्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः। एकादेश विधि की कर्तव्यता में सिच् का लोप सिद्ध होता है। अन्यत्र तो सपादसप्ताध्यायी की दृष्टि में त्रिपादी असिद्धा होती है किन्तु कोई एकादेश की विधि करनी हो तो सिच् का लोप सिद्ध माना जायेगा। इस प्रकार से दीर्घरूप एकादेश की विधि में सकार का लोप सिद्ध हो जायेगा। फलतः **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ हो जायेगा।

आतीत्। अत् धातु से लुङ् लकार, **आडजादीनाम्** से आट् आगम, तिप् आदेश करके आ **अत् ति** बना, च्लि, सिच् आदेश, अनुबन्धलोप होकर ति में इकार का **इतश्च** से लोप करके **आ+अत्+स्+त्** बना। सिच् के सकार की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा, उसको **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् का आगम, टित् होने से सकार के आदि में बैठा, आ+अत्+ **इस्**+त् बना। तकार की अपृक्तसंज्ञा करके **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से ईट् का आगम हुआ और वह भी टित् होने के कारण अपृक्त तकार के आदि में बैठा, **आ+अत्+इस्+ई+त्** बना। सकार का **इट ईटि** से लोप हुआ और सवर्णदीर्घ की कर्तव्यता में **सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः** इस वार्तिक से त्रिपादी लोप भी **अकः सवर्णे दीर्घः** की दृष्टि में सिद्ध ही हुआ तो उससे इ+ई में सवर्णदीर्घ एकादेश **ई** हुआ। **आ+अत्+ई+त्** बना, **आ+अत्** में **आटश्च** से वृद्धि हुई और **आत्+ई+त्** में वर्णसम्मेलन हुआ- **आतीत्।**

आतिष्टाम्। तस् में **आ+अत्+इस्+ताम्** बना लेने के बाद वृद्धि कर **आतिस् ताम्** में सकार का **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व और षकार से परे ताम् के तकार को **ष्टुना ष्टुः** से ष्टुत्व होकर टकार बन गया, **आतिष् टाम्** बना हुआ है, वर्णसम्मेलन कर देने पर **आतिष्टाम्** सिद्ध हो जाता है। यहाँ **ताम्** यह अपृक्त नहीं है, अतः दीर्घ ईट् आगम नहीं हुआ।

४४७- **सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च।** सिच् च अभ्यस्तश्च विदिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः सिजभ्यस्तविदयः, तेभ्यः सिजभ्यस्तविदिभ्यः। सिजभ्यस्तविदिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **नित्यं ङितः** से **ङितः** और **झेर्जुस्** से जुस् की अनुवृत्ति आती है।

सिच्-प्रत्यय, अभ्यस्तसंज्ञक धातु और विद् धातु से परे ङित् लकार के झि के स्थान पर जुस् आदेश होता है।

इस सूत्र के द्वारा आदेश करने पर **अनेकाल् शित्सर्वस्य** के नियम से अनेकाल् जुस् आदेश सम्पूर्ण झि के स्थान पर होता है, **झोऽन्तः** के समान केवल **झ्** के स्थान पर नहीं।

लघुसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

४४८. ह्रस्वं लघु १।४।१०॥

गुरुसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

४४९. संयोगे गुरु १।४।११॥

संयोगे परे ह्रस्वं गुरु स्यात्।

....

आतिषुः। अत् से लुङ्, झि आदेश, आट् का आगम, च्लि, सिच् आदेश, उसकी आर्धधातुकसंज्ञा और आर्धधातुक को इट् आगम करने पर **सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च** से झि के स्थान पर जुस् आदेश, जुस् में जकार की **चुटू** से इत्संज्ञा करके लोप करने पर **आ+अत्+इ+उस्** बना। **आटश्च** से वृद्धि, षत्व करके वर्णसम्मेलन और उसके सकार को रुत्वविसर्ग करने पर **आतिषुः** यह सिद्ध हुआ।

आतीः। यह रूप **आतीत्** के समान ही सिद्ध होगा किन्तु सकार को रुत्व और विसर्ग विशेष होता है। द्विवचन और बहुवचन में **आतिष्टाम्** की तरह प्रक्रिया होती है। **आतिषम्** में मिप् के स्थान पर अम् आदेश और **वस् मस्** के सकार का लोप करना न भूलें। षत्व सभी जगह होगा। **आतिष्टम्। आतिष्ट। आतिषम्। आतिष्व। आतिष्म।**

आतिष्यत्। अत् से लृङ् लकार, आट् का आगम, तिप्, अनुबन्धलोप, ति की सार्वधातुकसंज्ञा, शप् प्राप्त उसे बाधकर **स्यतासी लृलुटोः** से स्य, उसकी भी आर्धधातुकसंज्ञा, **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से इट् का आगम, ति में इकार का **इतश्च** से लोप, आ+अत् में **आटश्च** से वृद्धि, इ से परे स्य के सकार को षत्वादि करके **आतिष्यत्** बन जाता है। इसके बाद तस् आदि में भी लगभग यही प्रक्रिया होगी। **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से ताम् आदि आदेश, झि में **अन्त्** आदेश और **अन्ति** में इकार का लोप एवं तकार का संयोगान्तलोप, वस् और मस् में **अतो दीर्घो यञि** से दीर्घ, सकार का लोप आदि कार्य विशेष होंगे। इस प्रकार से अत् धातु के लृङ् लकार में **आतिष्यत्, आतिष्यताम्, आतिष्यन्, आतिष्यः, आतिष्यतम्, आतिष्यत, आतिष्यम्, आतिष्याव, आतिष्याम** ये रूप सिद्ध होते हैं।

षिध धातु **गति** अर्थ में है। धकारोत्तरवर्ती अनुनासिक अकार का लोप होकर **षिध्** बचता है और आदि षकार के स्थान पर **धात्वादेः षः सः** से दन्त्य सकार आदेश होकर **सिध्** बन जाता है। इसके बाद लकार आते हैं। **गति** के चार अर्थ होते हैं- **गमन, प्राप्ति, ज्ञान** और **मोक्ष।** जहाँ जो भी धातु गत्यर्थक होगा, वहाँ ये चारों अर्थ उपस्थित होते हैं और प्रसंग के अनुसार एक अर्थ निश्चित हो जाता है।

४४८- ह्रस्वं लघु। ह्रस्वं प्रथमान्तं, लघु प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

ह्रस्व अच् लघुसंज्ञक होता है।

ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः से एकमात्रिक की ह्रस्वसंज्ञा, द्विमात्रिक की दीर्घसंज्ञा और त्रिमात्रिक की प्लुतसंज्ञा का विधान संज्ञाप्रकरण में ही हो चुका है। **लघुसंज्ञा** का प्रयोजन **पुगन्तलघूपधस्य च** आदि सूत्रों की प्रवृत्ति है, जो आगे स्पष्ट किया जाएगा।

४४९- संयोगे गुरु। संयोगे सप्तम्यन्तं, गुरु प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ह्रस्वं लघु** से **ह्रस्वं** की अनुवृत्ति आती है।

संयोग के परे रहने पर पूर्वस्थ ह्रस्व अच् गुरुसंज्ञक होता है।

गुरुसंज्ञाविधायकं द्वितीयं संज्ञासूत्रम्

४५०. दीर्घं च १।४।१२॥

गुरु स्यात्।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

४५१. पुगन्तलघूपधस्य च ७।३।८६॥

पुगन्तस्य लघूपधस्य चाङ्गस्येको गुणः सार्वधातुकार्धधातुकयोः।

धात्वादेरिति सः। सेधति। षत्वम्। सिषेध।

....

हलोऽनन्तराः संयोगः से दो या दो से अधिक हलों के बीच में यदि अच् न हो तो उस हल्-समूह की संयोगसंज्ञा होती है, यह भी संज्ञाप्रकरण में बताया जा चुका है। ऐसे संयोग के परे होने पर पूर्व में जो ह्रस्व वर्ण है, उसकी गुरुसंज्ञा होती है, न कि संयोग की। जैसे पत्रम् में त्र् इन दो वर्णों के बीच में कोई अच् नहीं है, अतः यह संयोग है। इसके परे होने पर प में अकार की गुरुसंज्ञा हुई।

४५०- **दीर्घञ्च**। दीर्घं प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **संयोगे गुरु** से **गुरु** की अनुवृत्ति आती है।

दीर्घ भी गुरुसंज्ञक होता है।

४५१- **पुगन्तलघूपधस्य च**। पुक् अन्ते यस्य तत् पुगन्तम्, लघ्वी उपधा यस्य तद् लघूपधम्, पुगन्तञ्च लघूपधञ्च तयोः समाहारद्वन्द्वः पुगन्तलघूपधम्, तस्य पुगन्तलघूपधस्य। पुगन्तलघूपध्यस्य षष्ठ्यन्तं च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है और **मिदेर्गुणः** से **गुणः** एवं **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** इस सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **इको गुणवृद्धी** इस परिभाषा-सूत्र से इकः यह षष्ठ्यन्त पद उपस्थित होता है।

सार्वधातुक और आर्धधातुक के परे होने पर पुक् प्रत्यय अन्त में हो ऐसे अङ्ग के इक् और लघुसंज्ञक वर्ण उपधा में हो ऐसे अङ्ग के इक् को गुण होता है।

पुक् एक आगम है और उपधा एक संज्ञा है जो **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** से विहित होती है तथा लघु भी संज्ञा ही है, जो ह्रस्व की होती है। तिङन्तप्रकरण में सामान्यतया गुण करने के लिए **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** और **पुगन्तलघूपधस्य च** ये ही दो सूत्र प्रसिद्ध हैं। पूर्वसूत्र इक् अन्त में हो तो गुण करता है और यह सूत्र इक् उपधा में हो तो गुण करता है (पुक् प्रत्ययान्त अङ्ग के इक् को भी करता है)। स्मरण रहे कि अन्त्य वर्ण से पूर्व के वर्ण की उपधासंज्ञा होती है। ऐसा वर्ण लघु अर्थात् ह्रस्व भी होना चाहिए।

सेधति। षिध धातु में पहले तो धकारोत्तरवर्ती अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा हुई और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। **धात्वादेः षः सः** से षकार के स्थान पर सकार आदेश होने पर सिध् बना है। उससे लट्-लकार, तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **सिध्+अ+ति** बना। **सिध्** में अन्त्य वर्ण है **ध्**, उससे पूर्व के वर्ण **सि** में **इकार** की उपधासंज्ञा हुई, इसलिए **लघूपध** है **सि** का **इकार**, सार्वधातुक परे है **शप्** वाला **अकार**। इस प्रकार से **सि** में इकार को **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण हुआ। इकार को गुण **ए** होकर **सेध्** बना। **सेध्+अ+ति** में वर्णसम्मेलन हुआ- **सेधति।**

किद्वद्विधायकमतिदेशसूत्रम्

४५२. असंयोगाल्लिट् कित् १।२।५॥

असंयोगात्परोऽपिल्लिट् कित् स्यात्।

सिषिधतुः। सिषिधुः। सिषेधिथ। सिषिधथुः। सिषिध। सिषेध। सिषिधिव। सिषिधिम। सेधिता। सेधिष्यति। सेधतु। असेधत्। सेधेत्। सिध्यात्। असेधीत्। असेधिष्यत्। **एवं चिती संज्ञाने॥४॥ शुच शोके॥५॥ गद व्यक्तायां वाचि॥६॥** गदति।

....

इसी प्रकार से **सेधति, सेधतः, सेधन्ति, सेधसि, सेधथः, सेधथ, सेधामि, सेधावः, सेधामः** बनायें।

सिषेध। षिध से सिध् बनने के बाद लिट्-लकार, तिप्, णल् आदेश, अनुबन्ध लोप, **सिध् अ** बना, **लिट् च** से आर्धधातुकसंज्ञा, **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व, **सिध् सिध+अ**, **पूर्वोऽभ्यासः** से अभ्याससंज्ञा, **हलादि शेषः** से प्रथम **सिध्** के **धकार** का लोप और **सकार** शेष रहा, **सि सिध् अ** बना। आर्धधातुक के परे रहने पर **सिध्** में इकार को **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण, **सि सेध् अ**, प्रथम **सि** में इण् है इकार, उससे परे द्वितीय **सेध्** के **सकार** के स्थान पर **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व होकर **सि षेध् अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **सिषेध** सिद्ध हुआ।

४५२- असंयोगाल्लिट् कित्। न संयोगः असंयोगः, तस्मात् असंयोगात्। असंयोगात् पञ्चम्यन्तं, लिट् प्रथमान्तं, कित् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **सार्वधातुकमपित्** से **अपित्** की अनुवृत्ति आती है।

असंयोग से परे पित् से भिन्न लिट् लकार को किद्वद्भाव होता है।

यह अतिदेश करता है। इससे जो पहले से कित् नहीं है, उसे कित् जैसा बनाकर **क्ङिति च** आदि सूत्रों से गुणनिषेध आदि प्रयोजन सिद्ध होंगे, जो आगे स्पष्ट हो जायेंगे।

सिषिधतुः। सिषिधुः। षिध से सिध् बनने के बाद लिट्-लकार, तस्, अतुस् आदेश, **सिध् अतुस्** बना, **लिट् च** से आर्धधातुकसंज्ञा, **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व, **सिध् सिध् अतुस्**, **पूर्वोऽभ्यासः** से अभ्याससंज्ञा, **हलादि शेषः** से प्रथम **सिध्** के धकार का लोप और सकार शेष रहा, **सि सिध् अतुस्** बना। **सिसिध्** में कोई संयोग नहीं है, उससे परे लिट्-लकार सम्बन्धी **अतुस्** को **असंयोगाल्लिट् कित्** से किद्वद्भाव, आर्धधातुक के परे रहने पर **सिध्** में इकार को **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण प्राप्त, अतुस् कित् है, अतः **क्ङिति च** से गुण का निषेध, **सिसिध्+अतुस्** है। प्रथम सि में इण् है इकार, उससे परे द्वितीय **सिध्** के सकार के स्थान पर **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व, **सि षिध् अतुस्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **सिषिधतुस्** बना। सकार का रुत्व और विसर्ग हुआ **सिषिधतुः**। अब इसी प्रकार प्रथमपुरुष के बहुवचन में **झि** और उसके स्थान पर **उस्** आदेश होने के बाद **सिषिधुः** भी सरलता से बन जायेगा।

सिषेधिथ। मध्यमपुरुष के एकवचन में सिप्, थल् आदेश, **थ** वल् प्रत्याहार में आता है, अतः **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् का आगम करके शेष कार्य सिषेध के समान करने पर **सिषेधिथ** भी बन जायेगा।

सिषिधथुः। सिषिध। इनको **सिषिधतुः** की तरह बनाइये।

सिषेध। इसको प्रथमपुरुष एकवचन की तरह बनाइये।

सिषिधिव। सिषिधिम। इनको भी **सिषिधतुः** की तरह ही बनाइये। यहाँ पर वलादि आर्धधातुक के परे रहने पर इट् का आगम भी होगा।

सेधिता। षिध से सिध् बन जाने के बाद लुट् लकार, तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् प्राप्त, उसे बाधकर तासि प्रत्यय, उसकी आर्धधातुकसंज्ञा, इट् का आगम, सिध् में **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण, डा आदेश आदि करके **सेधिता** बन जायेगा। इसी तरह **सेधितारौ, सेधितारः। सेधितासि, सेधितास्थः, सेधितास्थ। सेधितास्मि, सेधितास्वः, सेधितास्मः** भी बनाइये। यदि आपको भू-धातु में की गई प्रक्रिया आती है तो इन प्रयोगों की सिद्धि में कोई कठिनाई नहीं आयेगी और यदि प्रक्रिया नहीं आती है तो फिर कभी भी नहीं समझेंगे।

लृट् लकार में सिध् ति, सिध् स्य ति, सिध् इ स्य ति, सेध् इ स्य ति, सेध् इ ष्य ति, वर्णसम्मेलन **सेधिष्यति।** आगे- **सेधिष्यतः, सेधिष्यन्ति। सेधिष्यसि, सेधिष्यथः, सेधिष्यथ। सेधिष्यामि, सेधिष्यावः, सेधिष्यामः** भी बनाइये।

लोट् लकार में अत् धातु में आपने जो प्रक्रिया की है, वही प्रक्रिया सिध् में भी करें और विशेषतया **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण करके बनाइये- **सेधतु-सेधतात्, सेधताम्, सेधन्तु। सेध-सेधतात्, सेधतम्, सेधत। सेधानि, सेधाव, सेधाम।**

लङ् लकार में अत् धातु में आपने जो प्रक्रिया की है, वही प्रक्रिया सिध् में भी करें और हलादिधातु होने के कारण अट् का आगम तथा विशेषतया **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण करके बनाइये- **असेधत्, असेधताम्, असेधन्। असेधः, असेधतम्, असेधत। असेधम्, असेधाव, असेधाम।**

विधिलिङ् लकार में अत् धातु में आपने जो प्रक्रिया की है, वही प्रक्रिया सिध् में भी करें और विशेषतया **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण करके बनाइये- **सेधेत्, सेधेताम्, सेधेयुः। सेधेः, सेधेतम्, सेधत। सेधेयम्, सेधेव, सेधेम।**

आशीर्लिङ् लकार में अत् धातु में आपने जो प्रक्रिया की है, वही प्रक्रिया सिध् में भी करें और विशेषतया **पुगन्तलघूपधस्य च** से प्राप्त गुण का **लिङाशिषि** से यासुट् को किद्वद्भाव करके **क्ङिति च** से निषेध करना न भूलें। इस तरह से बनाइये- **सिध्यात्, सिध्यास्ताम्, सिध्यासुः। सिध्याः, सिध्यास्तम्, सिध्यास्त। सिध्यासम्, सिध्यास्व, सिध्यास्म।**

लुङ् लकार में अत् धातु में आपने जो प्रक्रिया की है, वही प्रक्रिया सिध् में भी करें किन्तु हलादि धातु होने के कारण यहाँ अट् आगम होगा, आट् नहीं। विशेषतया **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण करके बनाइये- **असेधीत्, असेधिष्टाम्, असेधिषुः। असेधीः असेधिष्टम्, असेधिष्ट। असेधिषम्, असेधिष्व, असेधिष्म।**

लृङ् लकार में अत् धातु में आपने जो प्रक्रिया की है, वही प्रक्रिया सिध् में भी करें और हलादिधातु होने के कारण अट् का आगम तथा विशेषतया **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण करके बनाइये- **असेधिष्यत्, असेधिष्यताम्, असेधिष्यन्। असेधिष्यः, असेधिष्यतम्, असेधिष्यत। असेधिष्यम्, असेधिष्याव, असेधिष्याम।**

चिती संज्ञाने। चिती धातु **होश में आना या ठीक तरह से जानकारी प्राप्त करना,** इस अर्थ में है।। **चिती** में ईकार की इत्संज्ञा होकर केवल **चित्** ही बचता है। इसके रूप भी **सिध्** धातु की तरह ही बनाइये जैसे कि लघूपधगुण होकर **चेतति** बनता है।

णत्वविधायकं विधिसूत्रम्

४५३. नेर्गद-नद-पत-पद-घु-मा-स्यति-हन्ति-याति-वाति-द्राति-प्साति- वपति-वहति-शाम्यति-चिनोति- देग्धिषु च ८।४।१७॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य नेर्नस्य णो गदादिषु परेषु। प्रणिगदति।

....

लट् के रूप- चेतति, चेततः, चेतन्ति, चेतसि, चेतथः, चेतथ। चेतामि, चेतावः, चेतामः। **लिट्**- चिचेत, चिचिततुः, चिचितुः। चिचेतिथ, चिचितथुः, चिचित। चिचेत, चिचितिव, चिचितिम। **लुट्** चेतिता, चेतितारौ, चेतितारः। चेतितासि, चेतितास्थः, चेतितास्थ। चेतितास्मि, चेतितास्वः, चेतितास्मः। **लृट्**- चेतिष्यति, चेतिष्यतः, चेतिष्यन्ति। चेतिष्यसि, चेतिष्यथः, चेतिष्यथ। चेतिष्यामि, चेतिष्यावः, चेतिष्यामः। **लोट्**- चेततु-चेततात्, चेतताम्, चेतन्तु। चेत-चेततात्, चेततम्, चेतत। चेतानि, चेताव, चेताम। **लङ्**- अचेतत्, अचेतताम्, अचेतन्। अचेतः, अचेततम्, अचेतत। अचेतम्, अचेताव, अचेताम। **विधिलिङ्**- चेतेत्, चेतेताम्, चेतेयुः। चेतेः, चेतेतम्, चेतेत। चेतेयम्, चेतेव, चेतेम। **आशीर्लिङ्**- चित्यात्, चित्यास्ताम्, चित्यासुः। चित्याः, चित्यास्तम्, चित्यास्त। चित्यासम्, चित्यास्व, चित्यास्म। **लुङ्**- अचेतीत्, अचेतिष्टाम्, अचेतिषुः। अचेतीः, अचेतिष्टम्, अचेतिष्ट। अचेतिषम्, अचेतिष्व, अचेतिष्म। **लृङ्**- अचेतिष्यत्, अचेतिष्यताम्, अचेतिष्यन्। अचेतिष्यः, अचेतिष्यतम्, अचेतिष्यत। अचेतिष्यम्, अचेतिष्याव, अचेतिष्याम।

शुच शोके। शुच् धातु **शोक करना, चिन्ता करना, चिन्तन करना** अर्थ में है। इसमें चकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा होकर केवल **शुच्** ही शेष रहता है। लघूपधगुण होकर **शोचति** बनता है। इसके सभी लकारों में **सिध्** और **चित्** के समान ही रूप बनते हैं। **लट**- शोचति, शोचतः, शोचन्ति। शोचसि, शोचथः, शोचथ। शोचामि, शोचावः, शोचामः। **लिट्**- शुशोच, शुशुचतुः, शुशुचुः। शुशोचिथ, शुशुचथुः शुशुच। शुशोच, शुशुचिव, शुशुचिम। **लुट्**- शोचिता, शोचितारौ, शोचितारः। शोचितासि, शोचितास्थः, शोचितास्थ। शोचितास्मि, शोचितास्वः, शोचितास्मः। **लृट्**- शोचिष्यति, शोचिष्यतः, शोचिष्यन्ति, शोचिष्यसि, शोचिष्यथः, शोचिष्यथ। शोचिष्यामि, शोचिष्यावः, शोचिष्यामः। **लोट्**- शोचतु-शोचतात्, शोचताम्, शोचन्तु। शोच-शोचतात्, शोचतम्, शोचत। शोचानि, शोचाव, शोचाम। **लङ्**- अशोचत्, अशोचताम्, अशोचन्। अशोचः, अशोचतम्, अशोचत। अशोचम्, अशोचाव, अशोचाम। **विधिलिङ्**- शोचेत्, शोचेताम्, शोचेयुः। शोचेः, शोचेतम्, शोचेत। शोचेयम्, शोचेव, शोचेम। **आशीर्लिङ्**- शुच्यात्, शुच्यास्ताम्, शुच्यासुः। शुच्याः, शुच्यास्तम्, शुच्यास्त। शुच्यासम्, शुच्यास्व, शुच्यास्म। **लुङ्**- अशोचीत्, अशोचिष्टाम्, अशोचिषुः। अशोचीः, अशोचिष्टम्, अशोचिष्ट। अशोचिषम्, अशोचिष्व, अशोचिष्म। **लृङ्**- अशोचिष्यत्, अशोचिष्यताम्, अशोचिष्यन्। अशोचिष्यः, अशोचिष्यतम्, अशोचिष्यत। अशोचिष्यम्, अशोचिष्याव, अशोचिष्याम।

गद व्यक्तायां वाचि। **गद्** धातु **स्पष्ट उच्चारण करना** अर्थ में है। इसमें **दकारोत्तरवर्ती अकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होने पर **गद्** बचता है।

गदति। गद्, गद् लट्, गद् तिप्, गद् ति, गद् शप् ति, गद् अ ति, **गदति।** आगे गदतः, गदन्ति। गदसि, गदथः, गदथ। गदामि, गदावः, गदामः।

चवर्गादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४५४. कुहोश्चुः ७।४।६२॥

अभ्यासकवर्गहकारयोश्चवर्गादेशः।

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

४५५. अत उपधायाः ७।२।११६॥

उपधाया अतो वृद्धिः स्यात् ञिति णिति च प्रत्यये परे।

जगाद। जगदतुः। जगदुः। जगदिथ। जगदथुः। जगद।

....

४५३- **नेर्गद-नद-पत-पद-घु-मा-स्यति-हन्ति-याति-वाति-द्राति-प्साति-वपति-वहति-शाम्यति-चिनोति-देग्धिषु च।** गदश्च नदश्च पतश्च पदश्च घुश्च माश्च स्यतिश्च हन्तिश्च यातिश्च वातिश्च द्रातिश्च प्सातिश्च वपतिश्च वहतिच शाम्यतिश्च चिनोतिच देग्धिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धयः, तेषु गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु। नेः पञ्चम्यन्तं, गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** इस पूरे सूत्र की तथा **रषाभ्यां नो णः समानपदे** से **रषाभ्यां, नः, णः** की एवञ्च **उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य** से **उपसर्गात्** की अनुवृत्ति आती है।

उपसर्गस्थ निमित्त(रेफ, षकार और ऋकार) से परे नि उपसर्ग के नकार को णत्व होता है गद्, नद्, पत्, पद्, घुसंज्ञक धातु, मा, षो, हन्, या, वा, द्रा, प्सा, वप्, वह्, शम्, चि, दिह् इन धातुओं के परे होने पर।

यह उक्त धातुओं के परे होने पर उपसर्गों में स्थित रेफ और षकार हो और उसके बाद द्वितीय उपसर्ग नि हो तो उसी नि के नकार को णत्व करता है। जैसे गदति के पहले प्र और नि उपसर्ग लगने पर **प्रनि+गदति** है। इस सूत्र से णत्व होने पर **प्रणिगदति** बन गया। इसी तरह **प्रनि+नदति=प्रणिनदति, प्रनि+पतति=प्रणिपतति** इत्यादि। आगे **प्रणिजगाद, प्रणिगदिता** इत्यादि भी समझना चाहिए।

४५४- **कुहोश्चुः।** कुश्च ह् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः कुहौ, तयोः कुहोः। कुहोः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

अभ्यास में विद्यमान कवर्ग और हकार के स्थान पर चवर्ग आदेश होता है।

इस सूत्र से केवल अभ्यास में ही कार्य करने के कारण जहाँ-जहाँ द्वित्व होता है वहीं-वहीं प्रवृत्त होता है क्योंकि जहाँ द्वित्व होता है, अभ्यास भी वहीं मिलता है।

४५५- **अत उपधायाः।** अतः षष्ठ्यन्तम्, उपधायाः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** तथा **अचो ञ्णिति** से **ञ्णिति** की अनुवृत्ति आती है।

ञित् और णित् प्रत्यय के परे रहने पर उपधाभूत ह्रस्व अकार की वृद्धि होती है।

जगाद। गद् से लिट्, तिप्, णल्, अ, **गद्+अ** में द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, हलादिशेष करने पर **ग+गद्+अ** बना। अभ्यास के कवर्ग गकार के स्थान पर **कुहोश्चुः** से चवर्ग आदेश

णत्वविधायकं विधिसूत्रम्

४५३. नेर्गद-नद-पत-पद-घु-मा-स्यति-हन्ति-याति-वाति-द्राति-प्साति- वपति-वहति-शाम्यति-चिनोति- देग्धिषु च ८।४।१७॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य नेर्नस्य णो गदादिषु परेषु। प्रणिगदति।

....

लट् के रूप- चेतति, चेततः, चेतन्ति, चेतसि, चेतथः, चेतथ। चेतामि, चेतावः, चेतामः। **लिट्**- चिचेत, चिचिततुः, चिचितुः। चिचेतिथ, चिचितथुः, चिचित। चिचेत, चिचितिव, चिचितिम। **लुट्** चेतिता, चेतितारौ, चेतितारः। चेतितासि, चेतितास्थः, चेतितास्थ। चेतितास्मि, चेतितास्वः, चेतितास्मः। **लृट्**- चेतिष्यति, चेतिष्यतः, चेतिष्यन्ति। चेतिष्यसि, चेतिष्यथः, चेतिष्यथ। चेतिष्यामि, चेतिष्यावः, चेतिष्यामः। **लोट्**- चेततु-चेततात्, चेतताम्, चेतन्तु। चेत-चेततात्, चेततम्, चेतत। चेतानि, चेताव, चेताम। **लङ्**- अचेतत्, अचेतताम्, अचेतन्। अचेतः, अचेततम्, अचेतत। अचेतम्, अचेताव, अचेताम। **विधिलिङ्**- चेतेत्, चेतेताम्, चेतेयुः। चेतेः, चेतेतम्, चेतेत। चेतेयम्, चेतेव, चेतेम। **आशीर्लिङ्**- चित्यात्, चित्यास्ताम्, चित्यासुः। चित्याः, चित्यास्तम्, चित्यास्त। चित्यासम्, चित्यास्व, चित्यास्म। **लुङ्**- अचेतीत्, अचेतिष्टाम्, अचेतिषुः। अचेतीः, अचेतिष्टम्, अचेतिष्ट। अचेतिषम्, अचेतिष्व, अचेतिष्म। **लृङ्**- अचेतिष्यत्, अचेतिष्यताम्, अचेतिष्यन्। अचेतिष्यः, अचेतिष्यतम्, अचेतिष्यत। अचेतिष्यम्, अचेतिष्याव, अचेतिष्याम।

शुच शोके। शुच् धातु **शोक करना, चिन्ता करना, चिन्तन करना** अर्थ में है। इसमें चकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा होकर केवल **शुच्** ही शेष रहता है। लघूपधगुण होकर **शोचति** बनता है। इसके सभी लकारों में **सिध्** और **चित्** के समान ही रूप बनते हैं। **लट**- शोचति, शोचतः, शोचन्ति। शोचसि, शोचथः, शोचथ। शोचामि, शोचावः, शोचामः। **लिट्**- शुशोच, शुशुचतुः, शुशुचुः। शुशोचिथ, शुशुचथुः शुशुच। शुशोच, शुशुचिव, शुशुचिम। **लुट्**- शोचिता, शोचितारौ, शोचितारः। शोचितासि, शोचितास्थः, शोचितास्थ। शोचितास्मि, शोचितास्वः, शोचितास्म। **लृट्**- शोचिष्यति, शोचिष्यतः, शोचिष्यन्ति, शोचिष्यसि, शोचिष्यथः, शोचिष्यथ। शोचिष्यामि, शोचिष्यावः, शोचिष्यामः। **लोट्**- शोचतु-शोचतात्, शोचताम्, शोचन्तु। शोच-शोचतात्, शोचतम्, शोचत। शोचानि, शोचाव, शोचाम। **लङ्**- अशोचत्, अशोचताम्, अशोचन्। अशोचः, अशोचतम्, अशोचत। अशोचम्, अशोचाव, अशोचाम। **विधिलिङ्**- शोचेत्, शोचेताम्, शोचेयुः। शोचेः, शोचेतम्, शोचेत। शोचेयम्, शोचेव, शोचेम। **आशीर्लिङ्**- शुच्यात्, शुच्यास्ताम्, शुच्यासुः। शुच्याः, शुच्यास्तम्, शुच्यास्त। शुच्यासम्, शुच्यास्व, शुच्यास्म। **लुङ्**- अशोचीत्, अशोचिष्टाम्, अशोचिषुः। अशोचीः, अशोचिष्टम्, अशोचिष्ट। अशोचिषम्, अशोचिष्व, अशोचिष्म। **लृङ्**- अशोचिष्यत्, अशोचिष्यताम्, अशोचिष्यन्। अशोचिष्यः, अशोचिष्यतम्, अशोचिष्यत। अशोचिष्यम्, अशोचिष्याव, अशोचिष्याम।

गद व्यक्तायां वाचि। **गद्** धातु **स्पष्ट उच्चारण करना** अर्थ में है। इसमें दकारोत्तरवर्ती अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होने पर **गद्** बचता है।

गदति। गद्, गद् लट्, गद् तिप्, गद् ति, गद् शप् ति, गद् अ ति, **गदति**। आगे गदतः, गदन्ति। गदसि, गदथः, गदथ। गदामि, गदावः, गदामः।

चवर्गादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४५४. कुहोश्चुः ७।४।६२॥

अभ्यासकवर्गहकारयोश्चवर्गादेशः।

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

४५५. अत उपधायाः ७।२।११६॥

उपधाया अतो वृद्धिः स्यात् ञिति णिति च प्रत्यये परे।

जगाद। जगदतुः। जगदुः। जगदिथ। जगदथुः। जगद।

....

४५३- **नेर्गद-नद-पत-पद-घु-मा-स्यति-हन्ति-याति-वाति-द्राति-प्साति-वपति-वहति-शाम्यति-चिनोति-देग्धिषु च।** गदश्च नदश्च पतश्च पदश्च घुश्च माश्च स्यतिश्च हन्तिश्च यातिश्च वातिश्च द्रातिश्च प्सातिश्च वपतिश्च वहतिच शाम्यतिश्च चिनोतिच देग्धिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धयः, तेषु गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु। नेः पञ्चम्यन्तं, गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** इस पूरे सूत्र की तथा **रषाभ्यां नो णः समानपदे** से **रषाभ्यां, नः, णः** की एवञ्च **उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य** से **उपसर्गात्** की अनुवृत्ति आती है।

उपसर्गस्थ निमित्त(रेफ, षकार और ऋकार) से परे नि उपसर्ग के नकार को णत्व होता है गद्, नद्, पत्, पद्, घुसंज्ञक धातु, मा, षो, हन्, या, वा, द्रा, प्सा, वप्, वह्, शम्, चि, दिह् इन धातुओं के परे होने पर।

यह उक्त धातुओं के परे होने पर उपसर्गों में स्थित रेफ और षकार हो और उसके बाद द्वितीय उपसर्ग नि हो तो उसी नि के नकार को णत्व करता है। जैसे गदति के पहले प्र और नि उपसर्ग लगने पर **प्रनि+गदति** है। इस सूत्र से णत्व होने पर **प्रणिगदति** बन गया। इसी तरह **प्रनि+नदति=प्रणिनदति, प्रनि+पतति=प्रणिपतति** इत्यादि। आगे **प्रणिजगाद, प्रणिगदिता** इत्यादि भी समझना चाहिए।

४५४- **कुहोश्चुः।** कुश्च ह् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः कुहौ, तयोः कुहोः। कुहोः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

अभ्यास में विद्यमान कवर्ग और हकार के स्थान पर चवर्ग आदेश होता है।

इस सूत्र से केवल अभ्यास में ही कार्य करने के कारण जहाँ-जहाँ द्वित्व होता है वहीं-वहीं प्रवृत्त होता है क्योंकि जहाँ द्वित्व होता है, अभ्यास भी वहीं मिलता है।

४५५- **अत उपधायाः।** अतः षष्ठ्यन्तम्, उपधायाः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** तथा **अचो ञ्णिति** से **ञ्णिति** की अनुवृत्ति आती है।

ञित् और णित् प्रत्यय के परे रहने पर उपधाभूत ह्रस्व अकार की वृद्धि होती है।

जगाद। गद् से लिट्, तिप्, णल्, अ, **गद्+अ** में द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, हलादिशेष करने पर **ग+गद्+अ** बना। अभ्यास के कवर्ग गकार के स्थान पर **कुहोश्चुः** से चवर्ग आदेश

णत्वविधायकं विधिसूत्रम्

४५३. नेर्गद-नद-पत-पद-घु-मा-स्यति-हन्ति-याति-वाति-द्राति-प्साति- वपति-वहति-शाम्यति-चिनोति- देग्धिषु च ८।४।१७॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य नेर्नस्य णो गदादिषु परेषु। प्रणिगदति।

....

लट् के रूप- चेतति, चेततः, चेतन्ति, चेतसि, चेतथः, चेतथ। चेतामि, चेतावः, चेतामः। **लिट्**- चिचेत, चिचिततुः, चिचितुः। चिचेतिथ, चिचितथुः, चिचित। चिचेत, चिचितिव, चिचितिम। **लुट्** चेतिता, चेतितारौ, चेतितारः। चेतितासि, चेतितास्थः, चेतितास्थ। चेतितास्मि, चेतितास्वः, चेतितास्मः। **लृट्**- चेतिष्यति, चेतिष्यतः, चेतिष्यन्ति। चेतिष्यसि, चेतिष्यथः, चेतिष्यथ। चेतिष्यामि, चेतिष्यावः, चेतिष्यामः। **लोट्**- चेततु-चेततात्, चेतताम्, चेतन्तु। चेत-चेततात्, चेततम्, चेतत। चेतानि, चेताव, चेताम। **लङ्**- अचेतत्, अचेतताम्, अचेतन्। अचेतः, अचेततम्, अचेतत। अचेतम्, अचेताव, अचेताम। **विधिलिङ्**- चेतेत्, चेतेताम्, चेतेयुः। चेतेः, चेतेतम्, चेतेत। चेतेयम्, चेतेव, चेतेम। **आशीर्लिङ्**- चित्यात्, चित्यास्ताम्, चित्यासुः। चित्याः, चित्यास्तम्, चित्यास्त। चित्यासम्, चित्यास्व, चित्यास्म। **लुङ्**- अचेतीत्, अचेतिष्टाम्, अचेतिषुः। अचेतीः, अचेतिष्टम्, अचेतिष्ट। अचेतिषम्, अचेतिष्व, अचेतिष्म। **लृङ्**- अचेतिष्यत्, अचेतिष्यताम्, अचेतिष्यन्। अचेतिष्यः, अचेतिष्यतम्, अचेतिष्यत। अचेतिष्यम्, अचेतिष्याव, अचेतिष्याम।

शुच शोके। शुच् धातु **शोक करना, चिन्ता करना, चिन्तन करना** अर्थ में है। इसमें चकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा होकर केवल **शुच्** ही शेष रहता है। लघूपधगुण होकर **शोचति** बनता है। इसके सभी लकारों में **सिध्** और **चित्** के समान ही रूप बनते हैं। **लट**- शोचति, शोचतः, शोचन्ति। शोचसि, शोचथः, शोचथ। शोचामि, शोचावः, शोचामः। **लिट्**- शुशोच, शुशुचतुः, शुशुचुः। शुशोचिथ, शुशुचथुः शुशुच। शुशोच, शुशुचिव, शुशुचिम। **लुट्**- शोचिता, शोचितारौ, शोचितारः। शोचितासि, शोचितास्थः, शोचितास्थ। शोचितास्मि, शोचितास्वः, शोचितास्म। **लृट्**- शोचिष्यति, शोचिष्यतः, शोचिष्यन्ति, शोचिष्यसि, शोचिष्यथः, शोचिष्यथ। शोचिष्यामि, शोचिष्यावः, शोचिष्यामः। **लोट्**- शोचतु-शोचतात्, शोचताम्, शोचन्तु। शोच-शोचतात्, शोचतम्, शोचत। शोचानि, शोचाव, शोचाम। **लङ्**- अशोचत्, अशोचताम्, अशोचन्। अशोचः, अशोचतम्, अशोचत। अशोचम्, अशोचाव, अशोचाम। **विधिलिङ्**- शोचेत्, शोचेताम्, शोचेयुः। शोचेः, शोचेतम्, शोचेत। शोचेयम्, शोचेव, शोचेम। **आशीर्लिङ्**- शुच्यात्, शुच्यास्ताम्, शुच्यासुः। शुच्याः, शुच्यास्तम्, शुच्यास्त। शुच्यासम्, शुच्यास्व, शुच्यास्म। **लुङ्**- अशोचीत्, अशोचिष्टाम्, अशोचिषुः। अशोचीः, अशोचिष्टम्, अशोचिष्ट। अशोचिषम्, अशोचिष्व, अशोचिष्म। **लृङ्**- अशोचिष्यत्, अशोचिष्यताम्, अशोचिष्यन्। अशोचिष्यः, अशोचिष्यतम्, अशोचिष्यत। अशोचिष्यम्, अशोचिष्याव, अशोचिष्याम।

गद व्यक्तायां वाचि। गद् धातु **स्पष्ट उच्चारण करना** अर्थ में है। इसमें दकारोत्तरवर्ती **अकार** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होने पर **गद्** बचता है।

गदति। गद्, गद् लट्, गद् तिप्, गद् ति, गद् शप् ति, गद् अ ति, **गदति**। आगे गदतः, गदन्ति। गदसि, गदथः, गदथ। गदामि, गदावः, गदामः।

चवर्गादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४५४. कुहोश्चुः ७।४।६२॥

अभ्यासकवर्गहकारयोश्चवर्गादेशः।

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

४५५. अत उपधायाः ७।२।११६॥

उपधाया अतो वृद्धिः स्यात् ञिति णिति च प्रत्यये परे।

जगाद। जगदतुः। जगदुः। जगदिथ। जगदथुः। जगद।

....

४५३- **नेर्गद-नद-पत-पद-घु-मा-स्यति-हन्ति-याति-वाति-द्राति-प्साति-वपति-वहति-शाम्यति-चिनोति-देग्धिषु च।** गदश्च नदश्च पतश्च पदश्च घुश्च माश्च स्यतिश्च हन्तिश्च यातिश्च वातिश्च द्रातिश्च प्सातिश्च वपतिश्च वहतिच शाम्यतिश्च चिनोतिच देग्धिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धयः, तेषु गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु। नेः पञ्चम्यन्तं, गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** इस पूरे सूत्र की तथा **रषाभ्यां नो णः समानपदे** से **रषाभ्यां, नः, णः** की एवञ्च **उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य** से **उपसर्गात्** की अनुवृत्ति आती है।

उपसर्गस्थ निमित्त(रेफ, षकार और ऋकार) से परे नि उपसर्ग के नकार को णत्व होता है गद्, नद्, पत्, पद्, घुसंज्ञक धातु, मा, षो, हन्, या, वा, द्रा, प्सा, वप्, वह्, शम्, चि, दिह् इन धातुओं के परे होने पर।

यह उक्त धातुओं के परे होने पर उपसर्गों में स्थित रेफ और षकार हो और उसके बाद द्वितीय उपसर्ग **नि** हो तो उसी नि के नकार को णत्व करता है। जैसे गदति के पहले प्र और नि उपसर्ग लगने पर **प्रनि+गदति** है। इस सूत्र से णत्व होने पर **प्रणिगदति** बन गया। इसी तरह **प्रनि+नदति=प्रणिनदति, प्रनि+पतति=प्रणिपतति** इत्यादि। आगे **प्रणिजगाद, प्रणिगदिता** इत्यादि भी समझना चाहिए।

४५४- **कुहोश्चुः।** कुश्च ह् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः कुहौ, तयोः कुहोः। कुहोः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

अभ्यास में विद्यमान कवर्ग और हकार के स्थान पर चवर्ग आदेश होता है।

इस सूत्र से केवल अभ्यास में ही कार्य करने के कारण जहाँ-जहाँ द्वित्च होता है वहीं-वहीं प्रवृत्त होता है क्योंकि जहाँ द्वित्व होता है, अभ्यास भी वहीं मिलता है।

४५५- **अत उपधायाः।** अतः षष्ठ्यन्तम्, उपधायाः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** तथा **अचो ञ्णिति** से **ञ्णिति** की अनुवृत्ति आती है।

ञित् और णित् प्रत्यय के परे रहने पर उपधाभूत ह्रस्व अकार की वृद्धि होती है।

जगाद। गद् से लिट्, तिप्, णल्, अ, **गद्+अ** में द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, हलादिशेष करने पर **ग+गद्+अ** बना। अभ्यास के कवर्ग गकार के स्थान पर **कुहोश्चुः** से चवर्ग आदेश

णित्वातिदेशविधायकम् अतिदेशसूत्रम्

४५६. णलुत्तमो वा ७।१।९१।।

उत्तमो णल् वा णित् स्यात्।

जगाद, जगद। जगदिव। जगदिम। गदिता। गदिष्यति। गदतु। अगदत्। गदेत्। गद्यात्।

....

हुआ तो ग् के स्थान पर ज् हुआ, **ज+गद्+अ** बना। जगद् में गकारोत्तरवर्ती अकार की **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** से उपधासंज्ञा हुई और **अत उपधायाः** से उपधा में स्थित ह्रस्व अकार की वृद्धि हुई तो **जगाद्+अ** बना, वर्णसम्मेलन होने पर **जगाद** सिद्ध हुआ। यहाँ पर णित् प्रत्यय परे है अ, क्योंकि जब तिप् के स्थान पर णल् हुआ तो णकार की इत्संज्ञा की गई थी। इस तरह लिट्-लकार में प्रथमपुरुष एकवचन और उत्तमपुरुष एकवचन में णित् मिलेगा एवं उसी के परे रहने पर ही वृद्धि होगी अन्यत्र नहीं।

जगदतुः। जगदुः। गद् से तस्, अतुस्, द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, कवर्ग आदेश, **जगद्+अतुस्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ और सकार को रुत्वविसर्ग हुआ तो **जगदतुः** बना। इसी तरह **जगदुः** भी बनेगा।

जगदिथ। मध्यमपुरुष के एकवचन में सिप् के स्थान पर थल् होगा और उसको इट् का आगम करके शेष प्रक्रिया पूर्ववत् ही रहेगी। द्विवचन और बहुवचन में **जगदतुः** की तरह ही प्रक्रिया करके **जगदथुः** और **जगद** भी बनाइये।

४५६- **णलुत्तमो वा।** णल् प्रथमान्तम्, उत्तमः प्रथमान्तं, वा अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **गोतो णित्** से **णित्** की अनुवृत्ति आती है।

उत्तम पुरुष वाले णल् को विकल्प से णित् माना जाय।

प्रथमपुरुष और उत्तमपुरुष में दो णल् हैं, इसलिए प्रथमपुरुष के णल् को रोकने के लिए **उत्तमः** को पढ़ा गया। यह अतिदेश सूत्र है। णल् में णित् तो स्वतः रहता ही है, किन्तु विशेष कार्यसिद्धि के लिए पहले से विद्यमान णित्त्व को इस सूत्र में विकल्प से णित्त्व मानने का विधान प्राप्त होता है। णित्व होते हुए भी एक बार उसे णित् माना जाय और एक बार न माना जाय। वैकल्पिक णित्व का प्रयोजन **जगाद-जगद** आदि दो रूप बनाना है।

जगाद, जगद। अन्य प्रक्रिया पूर्ववत् करके **अत उपधायाः** से वृद्धि करने से पहले **णलुत्तमो वा** से णिद्विकल्प करके उसके बाद वृद्धि करें। णित्व के पक्ष में **अत उपधायाः** से वृद्धि होगी और णित् न होने के पक्ष में वृद्धि नहीं होगी। इस तरह दो रूप बनते हैं।

जगदिव। जगदिम। इनमें विशेषतया वस्, मस् के स्थान पर व और म आदेश होने के बाद **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् आगम होकर **जगदिव, जगदिम** ये दो रूप सिद्ध होते हैं।

इस तरह से गद् के लिट् लकार में निम्नानुसार रूप बने- **जगाद, जगदतुः, जगदुः, जगदिथ, जगदथुः, जगद, जगाद-जगद, जगदिव, जगदिम।**

लुट् में गद् से तिप् आदि आदेश, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् को बाधकर तासि प्रत्यय, उसकी आर्धधातुकसंज्ञा, उसको इट् का आगम, डा आदि आदेश, टि का लोप, वर्णसम्मेलन

वैकल्पिकवृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

४५७. अतो हलादेर्लघोः ७।२।७॥

हलादेर्लघोरकारस्य वृद्धिर्वेडादौ परस्मैपदे सिचि।

अगादीत्, अगदीत्। अगदिष्यत्। **णद अव्यक्ते शब्दे।।७।।**

....

आदि करके रूप बनते हैं- गदिता, गदितारौ, गदितारः। गदितासि, गदितास्थः, गदितास्थ। गदितास्मि, गदितास्वः, गदितास्मः।

लृट्- गदिष्यति, गदिष्यतः, गदिष्यन्ति। गदिष्यसि, गदिष्यथः, गदिष्यथ। गदिष्यामि, गदिष्यावः, गदिष्यामः। **लोट्-** गदतु-गदतात्, गदताम्, गदन्तु। गद-गदतात्, गदतम्, गदत, गदानि, गदाव, गदाम। **लङ्-** अगदत्, अगदताम्, अगदन्। अगदः, अगदतम्, अगदत। अगदम्, अगदाव, अगदाम। **विधिलिङ्-** गदेत्, गदेताम्, गदेयुः। गदेः, गदेतम्, गदेत। गदेयम्, गदेव, गदेम। **आशीर्लिङ्-** गद्यात्, गद्यास्ताम्, गद्यासुः। गद्याः, गद्यास्तम्, गद्यास्त। गद्यासम्, गद्यास्व, गद्यास्म।

५५७- **अतो हलादेर्लघोः**। हल् आदौ यस्य स हलादिः, तस्य हलादेः। अतः षष्ठ्यन्तं, हलादेः षष्ठ्यन्तं, लघोः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **नेटि** से **इटि, ऊर्णोतेर्विभाषा** से **विभाषा** और **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति होती है।

हलादि धातु के लघुसंज्ञक अकार के स्थान पर विकल्प से वृद्धि होती है। वदव्रजहलन्तस्याचः से प्राप्त वृद्धि का **नेटि** से निषेध प्राप्त था, उसे भी बाधकर यह सूत्र इट् आगम आदि में हो ऐसे सिच् के परे रहने पर हलादि धातु में विद्यमान ह्रस्व अकार की विकल्प से वृद्धि का विधान करता है।

अगादीत्, अगदीत्। गद् से लुङ्, अट् का आगम, तिप्, **अगद् ति** बना। च्लि, उसके स्थान पर सिच्, उसकी आर्धधातुकसंज्ञा, **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् का आगम करके **अगद् इस् ति** बना है। ति में इकार की **इतश्च** से इत्संज्ञा और लोप करके **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से त् को ईट् का आगम करके **अगद्+इस्+ईत्** बना है। ऐसी स्थिति में **वदव्रजहलन्तस्याचः** से प्राप्त वृद्धि का **नेटि** से निषेध प्राप्त था, उसे भी बाधकर अतो हलादेर्लघोः से वैकल्पिक वृद्धि हुई। **अगाद्+इस्+ईत्** बना, **इट ईटि** से सकार का लोप, सवर्णदीर्घ आदि करके वर्णसम्मेलन करने पर **अगादीत्** ऐसा रूप बनता है। वृद्धि न होने के पक्ष **अगदीत्** ही रहेगा। इस प्रकार गद् धातु के लुङ् लकार में दो-दो रूप बनते हैं।

लुङ् के वृद्धिपक्ष में- अगादीत्, अगादिष्टाम्, अगादिषुः। अगादीः, अगादिष्टम्, अगादिष्ट। अगादिषम्, अगादिष्व, अगादिष्म।

लुङ्- वृद्धि के अभाव के पक्ष में- अगदीत्, अगदिष्टाम्, अगदिषुः। अगदीः, अगदिष्टम्, अगदिष्ट। अगदिषम्, अगदिष्व, अगदिष्म।

लृङ् लकार में- अगदिष्यत्, अगदिष्यताम्, अगदिष्यन्। अगदिष्यः, अगदिष्यतम्, अगदिष्यत। अगदिष्यम्, अगदिष्याव, अगदिष्याम।

णद अव्यक्ते शब्दे। णद् धातु **अस्पष्ट शब्द करना** अर्थ में है। दकारोत्तरवर्ती अकार इत्संज्ञक है। णकार के स्थान पर **णो नः** से नकारादेश होकर **नद्** बन जाता है।

नकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४५८. णो नः ६।१।६५॥

धात्वादेर्णस्य नः। **णोपदेशास्त्वनर्दनाटिनाथ्नाध्नन्दनक्कनॄनृतः।**

णत्वविधायकं विधिसूत्रम्

४५९. उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य ८।४।१४॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य णोपदेशस्य धातोर्नस्य णः।

प्रणदति। प्रणिनदति। नदति। ननाद।

....

४५८- णो नः। णः षष्ठ्यन्तं, नः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **धात्वादेः षः सः** से **धात्वादेः** की अनुवृत्ति आती है।

धातु के आदि में विद्यमान णकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

इस तरह सब णकारादि धातु नकारादि बन जाते हैं। धातु के आदि में स्थित णकार को ही नकार आदेश होता है, बीच में या अन्त में विद्यमान णकार को नहीं। अतः भण्, क्वण्, अण् आदि धातुओं के णकार को नत्व नहीं होगा।

णोपदेशास्त्वनर्दनाटिनाथ्नाध्नन्दनक्कनॄनृतः। नर्दश्च नाटिश्च नाथ् च नाध् च नन्द च नक्क च नॄश्च नृत् च तेषामितरेतरद्वन्द्वो नर्दनाटिनाथ्नाध्नन्दनक्कनॄनृतः, न नर्दनाटिनाथ्नाध्नन्दनक्कनॄनृतः, अनर्दनाटिनाथ्नाध्नन्दनक्कनॄनृतः। द्वन्द्वसमास करके नञ् समास किया गया। अतः इतने धातुओं का निषेध है अर्थात् **नर्द्, नाटि, नाथ्, नाध्, नन्द, नक्क्, नॄ और नृत् इन धातुओं को छोड़कर शेष नकारादि दीखने वाली धातुएँ णोपदेश हैं** अर्थात् पहले णकारादि हैं और बाद में नकारादि बन जाती हैं।

यद्यपि धातुपाठ में णोपदेश और नोपदेश धातुओं का ज्ञान अच्छी तरह से हो सकता है तथापि यहाँ प्रश्न उठता है कि प्रयोगदशा में तो दोनों धातु के एक जैसे रूप होते हैं, क्योंकि णकारादि धातु भी **णो नः** से नकारादि बन जाते हैं। अतः यह कैसे पता चले कि कौन सा धातु उपदेश अवस्था में णोपदेश अर्थात् णकारादि था और कौन सा धातु नोपदेश अर्थात् नकारादि था? इस शंका के समाधान के लिए मूल में यह लिखा गया कि नद् आदि आठ धातुओं को छोड़कर शेष सभी नकारादि रूप बनने वाले धातु णोपदेश हैं। **णद अव्यक्ते शब्दे** यह धातु उक्त आठ धातुओं में नहीं आता, अतः यह णोपदेश है। णोपदेश होने का फल आगे स्पष्ट होगा।

उक्त आठ धातुएँ हैं- **नर्द शब्दे**, भ्वादिः, **नट अवस्यन्दने**, चुरादिः, **नाथृ नाधृ याच्ञादौ** भ्वादिः, **टुनदि समृद्धौ**, भ्वादिः, **नक्क नाशने**, चुरादिः, **नॄ नये**, क्र्यादिः, **नृती गात्रविक्षेपे** दिवादिः।

४५९- उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य। न समासः असमासः, तस्मिन् असमासे, नञ्तत्पुरुषः। णः उपदेशे यस्य स णोपदेशः, तस्य णोपदेशस्य, षष्ठीतत्पुरुषः। उपसर्गात् पञ्चम्यन्तम्, असमासे सप्तम्यन्तम्, अपि अव्ययपदं, णोपदेशस्य षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **रषाभ्यां नो णः, अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** और **उपसर्गात्** की अनुवृत्ति ऊपर से आ रही है।

उपसर्ग में स्थित निमित्त से परे णोपदेश धातु के नकार को णकार आदेश होता है।

एत्वाभ्यासलोपविधायकं विधिसूत्रम्

४६०. अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ६।४।१२०॥

लिण्निमित्तादेशादिकं न भवति यदङ्गं, तदवयवस्यासंयुक्तहल्मध्यस्थस्यात एत्त्वमभ्यासलोपश्च किति लिटि। नेदतुः। नेदुः।

....

प्रणदति। प्र-पूर्वक **णद्** धातु से **प्रणदति** बनता है। इसके पहले **नदति** बनाना जरूरी है।

नदति। **णद** धातु में अकार की इत्संज्ञा और **णो नः** से णकार के स्थान पर नकारादेश करने के बाद **नद्** बन जाता है। उससे लट्, तिप्, शप्, वर्णसम्मेलन करके **नदति** सिद्ध हो जाता है। **नदति, नदतः, नदन्ति। नदसि, नदथः, नदथ। नदामि, नदावः, नदामः।** **प्र उपसर्ग पूर्वक णद् धातु** से भी यही प्रक्रिया करने पर **प्र+नदति** बना। णत्व के लिए निमित्त **प्र** में रेफ है, अतः **उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य** से नदति के नकार को णकार होकर **प्रणदति** सिद्ध हुआ।

प्रणिनदति। **प्र** और **नि** इन दो उपसर्गों के लगने से **प्रनि+नदति** बना। **नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च** से द्वितीय उपसर्गस्थ नि के नकार को णत्व होकर **प्रणिनदति** सिद्ध हुआ। यहाँ धातु के नकार को **उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य** से इस कारण णत्व नहीं हुआ क्योंकि उपसर्ग में स्थित निमित्त **प्र** के रेफ से धातु नकार के बीच में नि इस उपसर्ग के नकार का व्यवधान है। णत्व के लिए निमित्त और निमित्ती के बीच में यदि व्यवधान हो तो अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ् और नुम् का ही व्यवधान हो सकता है, अन्य वर्णों का नहीं।

ननाद। लिट्, तिप्, णल्, द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, हलादिशेष, **अचो ञ्णिति** से उपधा की वृद्धि करके **ननाद** की सिद्धि होती है।

४६०- अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि। एकः शब्दोऽसहायवाची। एकौ असंयुक्तौ हलौ, तयोर्मध्यः एकहल्मध्यस्तत्र। आदेशः आदिर्यस्य स आदेशादिः, न आदेशादिरनादेशादिस्तस्य। अतः षष्ठ्यन्तम्, एकहल्मध्ये सप्तम्यन्तम्, अनादेशादेः षष्ठ्यन्तं, लिटि सप्तम्यन्तम्। **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से **किति** और **घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च** से **एत्** तथा **अभ्यासलोपश्च** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

यहाँ **लिटि** की आवृत्ति होती है। एक में निमित्त सप्तमी है जो **अनादेशादेः** के एकादेश **आदेशादेः** के साथ अन्वित होता है जिससे अर्थ बनता है- **लिट् को निमित्त मान कर आदेश न हुआ हो।** दूसरा **लिटि** यह पद **किति** का विशेष्य है। **अङ्गस्य** में अवयव षष्ठी है।

लिट् लकार को निमित्त मानकर आदेश आदि न हुआ हो ऐसे अङ्ग के असंयुक्त हलों के मध्य में स्थित अत् अर्थात् ह्रस्व अकार के स्थान पर एकार आदेश और अभ्यास का लोप होता है, कित् लिट् के परे होने पर।

उसी धातु में यह सूत्र लगेगा जहाँ लिट् को निमित्त मानकर कोई आदेश न हुआ हो और जो धातु का अवयव अकार हो, जो असंयुक्त अर्थात् संयोगसंज्ञा से रहित हलों के बीच में बैठा हो। इस सूत्र के कार्य को **एत्वाभ्यासलोप** से जाना जाता है। इस सूत्र की प्रवृत्ति में कारण हैं- १. लिट् को निमित्त मानकर धातु के स्थान पर कोई आदेश न हुआ हो, २.

एत्वाभ्यासविधायकं द्वितीयं सूत्रम्

४६१. थलि च सेटि ६।४।१२१॥

प्रागुक्तं स्यात्।

नेदिथ। नेदथुः। नेद। ननाद, ननद। नेदिव। नेदिम।नदिता। नदिष्यति। नदतु। अनदत्। नदेत्। नद्यात्। अनादीत्, अनदीत्। अनदिष्यत्।

टुनदि समृद्धौ।८॥

....

धातु का अवयव ह्रस्व अकार ऐसा हो जो दोनों ओर से एक एक अर्थात् असंयुक्त हल् से घिरा हो, ३. धातु का अवयव ह्रस्व अकार हो और ४. कित् लिट् परे हो। णकारादि धातुओं को नकार आदेश लिट् को निमित्त मानकर नहीं होता अपितु लकार के आने के पहले ही होता है, अतः कोई बाधा नहीं है। तिप्, सिप् और मिप् में पकार की इत्संज्ञा होती है, अतः पित् है। पित् होने के कारण **असंयोगाल्लिट् कित्** से वह कित् नहीं बनता है। अतः सूत्र तिप्, सिप्, मिप् में नहीं लगता है, शेष में लगेगा।

नेदतुः। नेदुः। णद से नद् बनने के बाद लिट्, तस्, अतुस्, द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, हलादिशेष होकर **न नद् अतुस्** बना है। लिट्-लकार के स्थान पर हुए अतुस् को **असंयोगाल्लिट् कित्** से किद्वद्भाव हुआ। अब सूत्र लगा **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि।** यहाँ पर लिट् लकार को आश्रय मानकर भिन्नरूप का कोई आदेश नहीं हुआ है। कित् लिट् अतुस् के परे रहते धातु में संयोग नहीं है। अतः अभ्याससंज्ञक **न** का लोप और द्वितीय **नद** के नकारोत्तरवर्ती अकार के स्थान पर एकार आदेश होकर **नेद्+अतुस्** बना। वर्णसम्मेलन हुआ और सकार को रुत्वसिसर्ग हुआ **नेदतुः**। इसी प्रकार झि प्रत्यय लाकर उसके स्थान पर उस् आदेश करके एत्व और अभ्यासलोप करने पर **नेदुः** भी बन जायेगा।

५६१- थलि च सेटि। इटा सहितः सेट्, तस्मिन्। थलि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, सेटि सप्तम्यन्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** यह सम्पूर्ण सूत्र अनुवृत्त होकर आता है।

लिट् लकार को निमित्त मानकर आदेश आदि न हुआ हो ऐसे अङ्ग के असंयुक्त हलों के मध्य में स्थित अत् अर्थात् ह्रस्व अकार के स्थान पर एकार आदेश और अभ्यास का लोप होता है, इट् से युक्त थल् के परे होने पर।

इसका अर्थ भी पूर्व सूत्र के समान है किन्तु विशेषता इतनी ही है कि वह कित् लिट् के परे रहने पर कार्य करता है और यह इट् से युक्त **थल्** के परे होने पर ही लगता है। इस सूत्र की आवश्यकता इस लिए पड़ी कि पूर्वसूत्र से थल् के परे रहने पर प्राप्त नहीं था, क्योंकि अपित् लिट् को कित् किया जाता है और कित् के परे होने पर ही वह लगता है। स्थानिवद्भाव से थल् भी पित् होता है। अतः किद्वद्भाव नहीं हो सकता।

नेदिथ। मध्यमपुरुष के एकवचन में सिप्, उसके स्थान पर थल्, अनुबन्धलोप, द्वित्व आदि कार्य करके **न नद् थ** में **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से इट् का आगम करके **न नद् इथ** बना लिया गया। अब **थलि च सेटि** से एत्व और अभ्यास का लोप हुआ **नेद् इथ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **नेदिथ।**

इत्संज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

४६२. आदिर्ञिटुडवः १।३।५।

उपदेशे धातोराद्या एते इतः स्युः।

नुमागमविधायकं विधिसूत्रम्

४६३. इदितो नुम् धातोः ७।१।५८।।

नन्दति। ननन्द। नन्दिता। नन्दिष्यति। नन्दतु। अनन्दत्। नन्देत्। नन्द्यात्। अनन्दीत्। अनन्दिष्यत्। **अर्च पूजायाम्।।९।।** अर्चति।

....

थस्, थ, वस्, मस् में **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** से एत्व और अभ्यासलोप, वस् मस् में इट् आगम आदि कार्य होंगे। मिप् में **णलुत्तमो वा** लगाकर **ननाद-ननद** ये रूप बन जायेंगे। इस प्रकार से नद (णद) धातु के लिट् लकार में निम्नानुसार रूप बनेंगे। **ननाद, नेदतुः, नेदुः। नेदिथ, नेदथुः, नेद। ननाद-ननद, नेदिव, नेदिम।**

अब आप लुट् से लृङ् लकार तक के सारे रूपों की सिद्धि स्वयं करें। स्मरण रहे कि लुङ्-लकार में **अतो हलादेर्लघोः** से वृद्धि विकल्प से होकर **अनादीत्** और **अनदीत्** दो रूप बनेंगे। अन्यत्र गद्-धातु के समान ही रूप होंगे। हम यहाँ रूपों की तालिका दे रहे हैं, इनकी सिद्धि करना आपका काम है। यदि अभी तक आपने ठीक से प्रक्रिया को लगाया है तो कोई परेशानी नहीं आयेगी।

लुट् नदिता, नदितारौ, नदितारः। नदितासि, नदितास्थः, नदितास्थ, नदितास्मि, नदितास्वः, नदितास्मः। **लृट्**- नदिष्यति, नदिष्यतः, नदिष्यन्ति। नदिष्यसि, नदिष्यथः, नदिष्यथ। नदिष्यामि, नदिष्यावः, नदिष्यामः। **लोट्**- नदतु-नदतात्, नदताम्, नदन्तु। नद-नदतात्, नदतम्, नदत। नदानि, नदाव, नदाम। **लङ्**- अनदत्, अनदताम्, अनदन्। अनदः, अनदतम्, अनदत। अनदम्, अनदाव, अनदाम। **विधिलिङ्**- नदेत्, नदेताम्, नदेयुः। नदेः, नदेतम्, नदेत, नदेयम्, नदेव, नदेम। **आशीर्लिङ्**- नद्यात्, नद्यास्ताम्, नद्यासुः। नद्याः, नद्यास्तम्, नद्यास्त। नद्यासम्, नद्यास्व, नद्यास्म। लुङ्- **वृद्धिपक्ष**- अनादीत्, अनादिष्टाम्, अनादिषुः। अनादीः, अनादिष्टम्, अनादिष्ट। अनादिषम्, अनादिष्व, अनादिष्म। लुङ्- **वृद्धि के अभाव पक्ष में**- अनदीत्, अनदिष्टाम्, अनदिषुः। अनदीः, अनदिष्टम्, अनदिष्ट। अनदिषम्, अनदिष्व, अनदिष्म। **लृङ्**- अनदिष्यत्, अनदिष्यताम्, अनदिष्यन्। अनदिष्यः, अनदिष्यतम्, अनदिष्यत। अनदिष्यम्, अनदिष्याव, अनदिष्याम।

टुनदि समृद्धौ। टुनदि यह धातु **समृद्धि होना** अर्थ में है।

४६२- आदिर्ञिटुडवः। ञिश्च टुश्च डुश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो ञिटुडवः। आदिः प्रथमान्तं, ञिटुडवः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से **उपदेशे** और **इत्** की अनुवृत्ति आती है।

उपदेश अवस्था में धातु के आदि में विद्यमान ञि, टु और डु इत्संज्ञक होते है।

उपदेश में **ञि, टु, डु** धातुओं में ही मिलते हैं। अतः अर्थ में **धातोः** कहा गया। यहाँ पर उपदेश अवस्था में पठित **टु** है, अतः उसकी इस सूत्र से इत्संज्ञा हुई तो उसका **तस्य**

लोपः से लोप होकर **नदि** बचा। दकारोत्तरवर्ती इकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होकर लोप हुआ तो **नद्** बचा। इसके बाद आगे की प्रक्रिया होती है।

४६३- इदितो नुम् धातोः। इत् इत् यस्य स इदित्, तस्य इदितः, बहुव्रीहिः। इदितः षष्ठ्यन्तं, नुम् प्रथमान्तं, धातोः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

इदित् धातु को नुम् का आगम होता है।

इत् अर्थात् ह्रस्व इकार, उसकी इत्संज्ञा जिस धातु में हुई है वह धातु इदित् हुआ। ऐसे धातु से नुम् का आगम करता है यह सूत्र। जैसे **टुनदि समृद्धौ** इस धातु में पहले टु की **अदिर्ञिटुडवः** से इत्संज्ञा हुई और इकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा हुई, केवल **नद्** बचा। इकार की इत्संज्ञा होने के कारण यह धातु **इदित्** हुआ। अतः इस सूत्र से **नुम्** का आगम हुआ। **नुम्** में **मकार** और **इकार** इत्संज्ञक हैं, केवल **न्** ही बचा है। मकार की इत्संज्ञा होने के कारण यह **मित्** है। अतः **मिदचोऽन्त्यात् परः १.१.४७** के नियम से मित् आगम अन्त्य अच् के बाद होता है तो अन्त्य अच् है नकारोत्तरवर्ती अकार, उसके बाद नुम् वाला नकार बैठा, **नन्द्** बना। अब **नन्द्** को ही धातु मानकर कार्य करेंगे।

नन्दति। **टुनदि** में **टु** की इत्संज्ञा और इकार की इत्संज्ञा तथा दोनों का लोप करके **नद्** बचा। **इदितो नुम्धातोः** से नुम् का आगम होकर **नन्द्** बना है। अब इससे लट्, तिप्, शप् आदि करके **नन्द्, अ ति** बन जायेगा। वर्णसम्मेलन होकर **नन्दति** बन जाता है।

लिट् में नन्द् बनके बाद- नन्द् लिट्, नन्द् तिप्, नन्द् णल्, नन्द् अ, नन्द् नन्द् अ, न नन्द् अ, वर्णसम्मेल करके **ननन्द** बनेगा। **नन्द्** संयुक्त है अर्थात् नन्द् में संयोगसंज्ञा होने के कारण एत्वाभ्यासलोप नहीं हुआ।

संयोग के परे होने के कारण ह्रस्व न के अकार की गुरुसंज्ञा हुई है। लघुसंज्ञक न होने से **अतो हलादेर्लघोः** से वैकल्पिक वृद्धि भी नहीं होगी। इस प्रकार से **नन्द** (टुनदि) धातु के रूप निम्नानुसार बनते हैं-

लट्- नन्दति, नन्दतः, नन्दन्ति। नन्दसि, नन्दथः, नन्दथ। नन्दामि, नन्दावः नन्दामः।
लिट्- ननन्द, ननन्दतुः, ननन्दुः। ननन्दिथ, ननन्दथुः, ननन्द। ननन्द, ननन्दिव, ननन्दिम।
लुट्- नन्दिता, नन्दितारौ, नन्दितारः। नन्दितासि, नन्दितास्थः, नन्दितास्थ, नन्दितास्मि, नन्दितास्वः, नन्दितास्मः। **लृट्**- नन्दिष्यति, नन्दिष्यतः, नन्दिष्यन्ति। नन्दिष्यसि, नन्दिष्यथः, नन्दिष्यथ। नन्दिष्यामि, नन्दिष्यावः, नन्दिष्यामः। **लोट्**- नन्दतु-नन्दतात्, नन्दताम्, नन्दन्तु। नन्द-नन्दतात्, नन्दतम्, नन्दत। नन्दानि, नन्दाव, नन्दाम। **लङ्**- अनन्दत्, अनन्दताम्, अनन्दन्। अनन्दः, अनन्दतम्, अनन्दत। अनन्दम्, अनन्दाव, अनन्दाम। **विधिलिङ्**- नन्देत्, नन्देताम्, नन्देयुः। नन्देः, नन्देतम्, नन्देत। नन्देयम्, नन्देव, नन्देम। **आशीर्लिङ्**- नन्द्यात्, नन्द्यास्ताम्, नन्द्यासुः। नन्द्याः, नन्द्यास्तम्, नन्द्यास्त। नन्द्यासम् नन्द्यास्व, नन्द्यास्म। **लुङ्**- अनन्दीत्, अनन्दिष्टाम्, अनन्दिषुः। अनन्दीः, अनन्दिष्टम्, अनन्दिष्ट। अनन्दिषम्, अनन्दिष्व, अनन्दिष्म। **लृङ्**- अनन्दिष्यत्, अनन्दिष्यताम्, अनन्दिष्यन्। अनन्दिष्यः, अनन्दिष्यतम्, अनन्दिष्यत। अनन्दिष्यम्, अनन्दिष्याव, अनन्दिष्याम।

अर्च पूजायाम्। अर्च धातु **पूजा करना** अर्थ में है। चकारोत्तरवर्ती **अकार** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है। **अर्च्** बचता है।

अर्चति। अर्च् से लट्, तिप्, शप्, अनुबन्धलोप करके **अर्च्+अ+ति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अर्चति** सिद्ध हुआ। **अर्च् धातु के लट् के रूप**- अर्चति, अर्चतः, अर्चन्ति। अर्चसि, अर्चथः, अर्चथ। अर्चामि, अर्चावः, अर्चामः।

नुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

४६४. तस्मान्नुड् द्विहलः ७।४।७१॥

द्विहलो धातोर्दीर्घीभूतात्परस्य नुट् स्यात्। आनर्च। आनर्चतुः। अर्चिता। अर्चिष्यति। अर्चतु। आर्चत्। अर्चेत्। अर्च्यात्। आर्चीत्। आर्चिष्यत्।

व्रज गतौ॥१०॥ व्रजति। वव्राज। व्रजिता। व्रजिष्यति। व्रजतु। अव्रजत्। व्रजेत्। व्रज्यात्।

....

४६४- **तस्मान्नुड् द्विहलः**। द्वौ हलौ यस्य स द्विहल्, तस्य द्विहलः। तस्मात् पञ्चम्यन्तं, नुट् प्रथमान्तं, द्विहलः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

दो हल् वाले धातु के दीर्घीभूत अभ्यास के आकार से परे अङ्ग को नुट् का आगम होता है।

अतः आदेः के बाद इस सूत्र को पढ़ा गया है। अतः इस सूत्र के **तस्मात्** इस सर्वनामपद से पूर्व के प्रसंग को लिया जाता है। पूर्व सूत्र से अकार को दीर्घ होकर के आकार बन जाता है तो तस्मात् का अर्थ भी दीर्घीभूत आकार लिया जायेगा। नुट् में उकार और टकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है और केवल **न्** मात्र शेष बचता है।

आनर्च। अर्च् से लिट्, तिप्, णल्, अनुबन्धलोप होकर **अर्च्+अ** बना। अर्च् को द्वित्व करके हलादिशेष करने पर **अअर्च्+अ** बना। अभ्यास के अकार को **अत आदेः** से दीर्घ हो गया **आअर्च्+अ** बना। उस दीर्घीभूत आकार से परे **अर्च्** को **तस्मान्नुड् द्विहलः** से नुट् का आगम हुआ। नुट् में उकार और टकार की इत्संज्ञा हुई। टित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से आकार से परे अर्च् के आदि में बैठा- **आ+न्+अर्च्+अ** बना। वर्णसम्मेलन करने पर **आनर्च** सिद्ध हुआ। इस तरह पूरे लिट् लकार में नुट् होकर रूप सिद्ध होते हैं। **आनर्चतुः** आदि में एत्व और अभ्यासलोप इस लिए नहीं हुआ कि अर्च् का अकार हल् के बीच में भी नहीं है और धातु में संयोग भी है।

लिट्- आनर्च, आनर्चतुः, आनर्चुः। आनर्चिथ, आनर्चथुः, आनर्च। आनर्च, आनर्चिव, आनर्चिम। **लुट्**- अर्चिता, अर्चितारौ, अर्चितारः। अर्चितासि, अर्चितास्थः, अर्चितास्थ। अर्चितास्मि, अर्चितास्वः, अर्चितास्मः। **लृट्**- अर्चिष्यति, अर्चिष्यतः, अर्चिष्यन्ति। अर्चिष्यसि, अर्चिष्यथः, अर्चिष्यथ। अर्चिष्यामि, अर्चिष्यावः, अर्चिष्यामः। **लोट्**- अर्चतु-अर्चतात्, अर्चताम्, अर्चन्तु। अर्च-अर्चतात्, अर्चतम्, अर्चत। अर्चानि, अर्चाव, अर्चाम।

अजादि होने के कारण लङ्, लुङ्, लृङ् में अट् की जगह आट् का आगम होता है और **आटश्च** से वृद्धि होती है जिससे **आर्चत्, आर्चीत्, आर्चिष्यत्** आदि बनते हैं।

लङ्- आर्चत्, आर्चताम्, आर्चन्। आर्चः, आर्चतम्, आर्चत। आर्चम्, आर्चाव, आर्चाम।

विधिलिङ्- अर्चेत्, अर्चेताम्, अर्चेरन्। अर्चेः, अर्चेतम्, अर्चेत। अर्चेयम्, अर्चेव, अर्चेम।

आशीर्लिङ्- अर्च्यात्, अर्च्यास्ताम्, अर्च्यासुः। अर्च्याः, अर्च्यास्तम्, अर्च्यास्त। अर्च्यासम्, अर्च्यास्व, अर्च्यास्म। **लुङ्**- आर्चीत्, आर्चिष्टाम्, आर्चिषुः। आर्चीः, आर्चिष्टम्, आर्चिष्ट। आर्चिषम्, आर्चिष्व, आर्चिष्म। **लृङ्**- आर्चिष्यत्, आर्चिष्यताम्, आर्चिष्यन्। आर्चिष्यः, आर्चिष्यतम्, आर्चिष्यत। आर्चिष्यम्, आर्चिष्याव, आर्चिष्याम।

व्रज गतौ। व्रज धातु **गति** अर्थ में है। जकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा होती है

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

४६५. वदव्रजहलन्तस्याचः ७।२।३॥

एषामचो वृद्धिः सिचि परस्मैपदेषु। अव्राजीत्। अव्रजिष्यत्।

कटे वर्षावरणयोः॥११॥ कटति। चकाट। चकटतुः। कटिता। कटिष्यति। कटतु। अकटत्। कटेत्। कट्यात्।

....

और **व्रज्** शेष रहता है। इससे भी **व्रजति** आदि रूप बनते हैं। लिट् में **व्रज्** को द्वित्व। **व्रजति**= जाता है। **लट्**- व्रजति, व्रजतः, व्रजन्ति। व्रजसि, व्रजथः, व्रजथ। व्रजामि, व्रजावः, व्रजामः। **लिट्**- वव्राज, वव्रजतुः, वव्रजुः। वव्रजिथ, वव्रजथुः, वव्रज। वव्राज-वव्रज, वव्रजिव, वव्रजिम। **लुट्**- व्रजिता, व्रजितारौ, व्रजितारः। व्रजितासि, व्रजितास्थः, व्रजितास्थ। व्रजितास्मि, व्रजितास्वः, व्रजितास्मः। **लृट्**- व्रजिष्यति, व्रजिष्यतः, व्रजिष्यन्ति। व्रजिष्यसि, व्रजिष्यथः, व्रजिष्यथ। व्रजिष्यामि, व्रजिष्यावः, व्रजिष्यामः। **लोट्**- व्रजतु-व्रजतात्, व्रजताम्, व्रजन्तु। व्रज-व्रजतात्, व्रजतम्, व्रजत। व्रजानि, व्रजाव, व्रजाम। **लङ्**- अव्रजत्, अव्रजताम्, अव्रजन्। अव्रजः, अव्रजतम्, अव्रजत। अव्रजम्, अव्रजाव, अव्रजाम। **विधिलिङ्**- व्रजेत्, व्रजेताम्, व्रजेयुः। व्रजेः, व्रजेतम्, व्रजेत। व्रजेयम्, व्रजेव, व्रजेम। **आशीर्लिङ्**- व्रज्यात्, व्रज्यास्ताम्, व्रज्यासुः। व्रज्याः, व्रज्यास्तम्, व्रज्यास्त। व्रज्यासम्, व्रज्यास्व, व्रज्यास्म।

४६५- वदव्रजहलन्तस्याचः। वदश्च व्रजश्च हलन्तश्च तेषां समाहारद्वन्द्वो वदव्रजहलन्तम्, तस्य वदव्रजहलन्तस्य। वदव्रजहलन्तस्य षष्ठ्यन्तम्, अचः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सिचि वृद्धिः परस्मैदेषु** यह पूरा सूत्र आता है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

वद्, व्रज् और हलन्त धातुओं के अङ्ग के अवयव अच् की वृद्धि होती है, सिच् आदि में हो ऐसे परस्मैपद के परे होने पर।

इस सूत्र में प्रश्न यह आता है कि वद् और व्रज् धातु भी हलन्त ही हैं तो **हलन्तस्याचः** से काम चल जाता, वद् और व्रज् धातुओं का पृथक् ग्रहण क्यों किया गया? उत्तर यह है कि केवल हलन्त मात्र से इनका ग्रहण करने से इसे बाधकर **अतो हलादेर्लघोः** से वैकल्पिक वृद्धि होती। उसे रोकने के लिए इन धातुओं का पृथक् ग्रहण किया गया है। विशेष रूप से विधानसामर्थ्यात् वैकल्पिक वृद्धि को बाधकर नित्य से वृद्धि होती है।

अव्राजीत्। व्रज् से लुङ्, अट् का आगम, तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् प्राप्त, उसे बाधकर च्लि, सिच् आदेश, अनुबन्धलोप, वलादिलक्षण इट् आगम, **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से दीर्घ ईट् का आगम करने पर **अव्रज्+इस्+ईत्** बना है। ऐसी स्थिति में **वदव्रजहलन्तस्याचः** से व्रज् में अच् अकार है, उसकी वृद्धि हो गई- **अव्राज्+इस्+ईत्** बना। **इट ईटि** से सकार का लोप, **सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः** इस वार्तिक की सहायता से **अकः सवर्णे दीर्घः** से सवर्णदीर्घ करके बन गया- **अव्राजीत्।**

वदव्रजहलन्तस्याचः से वृद्धि लुङ् के सभी रूपों में होगी किन्तु ईट् का आगम तिप्, सिप् में ही होता है, क्योंकि विद्यमान सिच् से परे अपृक्त हल् **तिप्** और **सिप्** में ही मिलेगा। अन्यत्र केवल इट् आगम होगा और सकार के स्थान पर षत्व होकर यदि आगे तवर्ग है तो ष्टुत्व होगा और अच् वर्ण है तो वणसम्मेलन होगा। इस प्रकार से रूप बनेंगे- अव्राजीत्, अव्राजिष्टाम्, अव्राजिषुः। अव्राजीः, अव्राजिष्टम्, अव्राजिष्ट, अव्राजिषम्, अव्राजिष्व, अव्राजिष्म।

वृद्धिनिषेधकं विधिसूत्रम्

४६६. ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् ७।२।५॥

हमयान्तस्य क्षणादेर्ण्यन्तस्य श्वयतेरेदितश्च वृद्धिर्नेडादौ सिचि। अकटीत्। अकटिष्यत्। **गुपू रक्षणे॥१२॥**

....

लृङ् में- अव्रजिष्यत्, अव्रजिष्यताम्, अव्रजिष्यन्। अव्रजिष्यः, अव्रजिष्यतम्, अव्रजिष्यत। अव्रजिष्यम्, अव्रजिष्याव, अव्रजिष्याम।

अब तक आप समझ गए होंगे कि यदि भू धातु में प्रयोग किए गए सभी सूत्र एवं भूधातु की सारी प्रक्रिया तैयार हो जाए तो आगे अन्य धातुओं की प्रक्रिया में सरलता होती है अर्थात् प्रक्रिया समझ में आती है, अन्यथा आगे के धातुओं में कठिनाई आयेगी।

कटे वर्षावरणयोः। **कटे** धातु **बरसना** और **ढकना** अर्थों में है। एकार की इत्संज्ञा होती है, अतः यह **एदित्** कहलाता है।

कटति। कटे में अनुबन्धलोप करके **कट्** बनने के बाद लट्, तिप्, शप् करके **कटति, कटतः कटन्ति** आदि रूप बनते हैं। लिट् में तिप्, णल्, अनुबन्धलोप, द्वित्व, हलादिशेष करके **ककट्+अ,** अभ्यास के ककार को **कुहोश्चुः** से चकार और उपधावृद्धि करके **चकाट** बनता है। आगे **चकटतुः, चकटुः, चकटिथ** आदि बनते हैं। लुट् में **कटिता, कटितारौ, कटितारः** आदि, लृट् में- **कटिष्यति, कटिष्यतः, कटिष्यन्ति** आदि, लोट् में **कटतु-कटतात्, कटताम्, कटन्तु** आदि, लुङ् में **अकटत्, अकटताम्, अकटन्** आदि, विधिलिङ् में- **कटेत्, कटेताम्, कटेयुः** आदि, आशीर्लिङ् में- **कट्यात्, कट्यास्ताम्, कट्यासुः** आदि रूप बनते हैं।

४६६- **ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्।** ह् च, म् च य् च तेषामितरेतरद्वन्द्वो ह्म्यः, ह्म्यः अन्ते येषां ते ह्म्यान्ताः, एत् इत् यस्य स एदित्। ह्म्यान्ताश्च, क्षणश्च, श्वसश्च, जागृ च, णिश्च, श्विश्च, एदित् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः, ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदितः, तेषाम् ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्। ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् षष्ठ्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** पूरे सूत्र की तथा **नेटि** से **न** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

इडादि सिच् के परे होने पर हकारान्त, मकारान्त और यकारान्त धातु तथा क्षण्, श्वस्, जागृ, णिच्प्रत्ययान्त धातु, श्वि एवं एदित् धातु रूप अङ्गों की वृद्धि नहीं होती है

यह सूत्र **वदव्रलहलन्तस्याचः** से नित्य से प्राप्त और **अतो हलादेर्लघोः** से विकल्प से प्राप्त वृद्धि का निषेध करता है। यहाँ प्रसंग में एदित् धातु कट् है। अन्य धातुओं का उदाहरण तत्तत्प्रकरणों में देखेंगे।

अकटीत्। कट् से लुङ् लकार, अट् का आगम, तिप्, इकार का लोप, शप् प्राप्त, उसे बाधकर च्लि और उसके स्थान पर सिच् आदेश अनुबन्धलोप, इट् का आगम, ईट् का आगम करके **अकट्+इ+स्+ई+त्** बना। **वदव्रजहलन्तस्याचः** से नित्य से प्राप्त वृद्धि को बाधकर **अतो हलादेर्लघोः** से विकल्प से प्राप्त थी, उसका **ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्** से निषेध होने पर **इट ईटि** से सकार का लोप और

स्वार्थे आयप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

४६७. गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः ३।१।२८॥

एभ्य आयः प्रत्ययः स्यात् स्वार्थे।

धातुसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

४६८. सनाद्यन्ता धातवः ३।१।३२॥

सनादयः कमेर्णिङन्ताः प्रत्यया अन्ते येषां ते धातुसंज्ञकाः। धातुत्वाल्लडादयः। गोपायति।

....

सवर्णदीर्घ करके **अकट्+ईत्**, वर्णसम्मेलन होकर **अकटीत्** सिद्ध होता है। आगे **अकटिष्टाम्, अकटिषुः, अकटीः, अकटिष्टम्, अकटिष्ट, अकटिषम्, अकटिष्व, अकटिष्म।**
लृङ्- **अकटिष्यत्, अकटिष्यताम्, अकटिष्यन्** आदि।

गुपू रक्षणे। गुपू धातु **रक्षा करना** अर्थ में है। ऊकार की इत्संज्ञा होती है, **गुप्** बचता है। **ऊदित्** का फल वैकल्पिक इट् आदि करना है, जो आगे जाकर स्पष्ट होता है। **गुप्** से स्वार्थ में **आय** प्रत्यय होता है।

४६७- गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः। गुपूश्च धूपश्च विच्छिश्च पणिश्च पनिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो गुपूधूपविच्छिपणिपनयः, तेभ्यो गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्यः। गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, आयः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से वचनविपरिणाम करके **धातुभ्यः** की अनुवृत्ति आती है।

गुपू, धूप, विच्छि, पणि और पनि इन धातुओं से स्वार्थ में आय-प्रत्यय होता है।

आय हलन्त नहीं, अदन्त है। **अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति।** किसी अर्थ विशेष को लिए विना अर्थात् अर्थनिर्देश के विना किये जाने वाले प्रत्यय स्वार्थ में होते हैं अर्थात् जिससे प्रत्यय हो रहा है, उसका जो अर्थ है, उसी अर्थ को बताते हैं, किसी विशेष अर्थ को नहीं। प्रकृत सूत्र से भी आय-प्रत्यय स्वार्थ में ही हुआ है। अतः धातुओं से किये गये आय का कोई विशेष अर्थ नहीं है।

गुप् से आय प्रत्यय होने के बाद गुप्+आय बना। धातु से विहित होने के कारण **आर्धधातुकं शेषः** से आय की आर्धधातुकसंज्ञा होती है और **पुगन्तलघूपधस्य च** से उपधाभूत उकार को गुण होकर ओकार होता है जिससे **गोप्+आय=गोपाय** बनता है। इसकी पुनः अग्रिम सूत्र से धातुसंज्ञा होती है।

४६८- सनाद्यन्ता धातवः। सन् आदौ येषां ते सनादयः, सनादयः अन्ते येषां ते सनाद्यन्ताः। सनाद्यन्ताः प्रथमान्तं, धातवः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

'कमेर्णिङ्' से 'गुप्तिज्किद्भ्यः सन्' तक जो बारह प्रत्यय कहे गये हैं, उन सन् आदि प्रत्यय जिनके अन्त में लगे हों, वे धातुसंज्ञक होते हैं।

अष्टाध्यायी के क्रम में सन्, क्यच्, काम्यच्, क्यङ्, क्यष्, आचार अर्थ में होने वाला क्विप्, णिच्, यङ्, यक्, आय, ईयङ्, णिङ् ये सनादि हैं।

कहा भी गया है-

सन्-क्यच्-काम्यच्-क्यङ्-क्यषोऽथाचारक्विब्-णिज्-यङ्स्तथा।

वैकल्पिकायाद्यादेशविधायकं सूत्रम्

४६९. आयादय आर्धधातुके वा ३।१।३१॥

आर्धधातुकविवक्षायाम् आयादयो वा स्युः।

वार्तिकम्-**कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि।**

आस्कासोराम्विधानान्मस्य नेत्त्वम्।

....

यगाय ईयङ् णिङ् चेति द्वादशामी सनादयः॥

उपर्युक्त प्रत्ययों के लगने के बाद प्रत्ययान्त समुदाय की **सनाद्यन्ता धातवः** से पुनः धातुसंज्ञा हो जाती है।

संख्या	प्रत्यय	प्रत्ययविधायक सूत्र	प्रत्ययान्त रूप
१.	सन्	**गुप्तिज्किद्भ्यः सन्** आदि	जुगुप्सते।
२.	क्यच्	**सुप आत्मनः क्यच्** आदि	पुत्रीयति।
३.	काम्यच्	**काम्यच्च** आदि	पुत्रकाम्यति।
४.	क्यङ्	**कर्तुः क्यङ् सलोपश्च** आदि	श्येनायते।
५.	क्यष्	**लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्**	लोहितायते।
६.	आचारार्थ क्विप्-	**सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः**	कृष्णति।
७.	णिच्	**सत्यापपाशरूपवीणा.....णिच्**	चोरयति।
८.	यङ्	**धातोरेकाचो हलादेःक्रियासमभिहारे०**	बोभूयते।
९.	यक्	**कण्ड्वादिभ्यो यक्**	कण्डूयति।
१०.	आय	**गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः**	गोपायति।
११.	ईयङ्	**ऋतेरीयङ्**	ऋतीयते।
१२.	णिङ्	**कमेर्णिङ्**	कामयते।

इन बारह प्रत्ययों में क्यष् और ईयङ् का वर्णन **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में नहीं है, शेष दस प्रत्ययों का वर्णन है। यहाँ पर आय-प्रत्यय का प्रसंग है।

गोपायति। गुप् धातु से स्वार्थ में **गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः** से आय प्रत्यय हुआ, गुप्+आय बना। **आय** की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा हुई और उसके परे होने पर गुप् में गकारोत्तरवर्ती उकार की **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण हुआ, **गोप्+आय** बना। वर्णसम्मेलन होकर **गोपाय** बना। **गोपाय** की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा हुई। धातुसंज्ञा होने से वर्तमान काल में लट् लकार, उसके स्थान पर तिप्, अनुबन्धलोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, उसमें भी अनुबन्धलोप होकर **गोपाय+अ+ति** बना। **गोपाय+अ** में **अतो गुणे** से पररूप होकर **गोपाय, गोपाय+ति=गोपायति** सिद्ध हुआ। गोपायति, गोपायतः, गोपायन्ति। गोपायसि, गोपायथः, गोपायथ। गोपायामि, गोपायावः, गोपायामः।

४६९- आयादय आर्धधातुके वा। आय आदौ येषां ते आयादयः। आयादयः प्रथमान्तम्, आर्धधातुके सप्तम्यन्तं, वा अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

आर्धधातुक प्रत्यय की विवक्षा में आय आदि प्रत्यय विकल्प से होते हैं।

आय आदि में तीन प्रत्यय होते हैं- **आय, ईयङ्** और **णिङ्**। आर्धधातुक की विवक्षा में ये विकल्प से होते हैं। **लिट्, लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ्** और **लृङ्** इन

अल्लोपविधायकं विधिसूत्रम्

४७०. अतो लोपः ६।४।४८॥

आर्धधातुकोपदेशे यददन्तं तस्यातो लोप आर्धधातुके।

लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

४७१. आमः २।४।८१॥

आमः परस्य लुक्।

....

लकारों में आर्धधातुक मिलता है, क्योंकि क्रमशः लिट्, तासि, स्य, लिङ्, च्लि, स्य की आर्धधातुकसंज्ञा होती है। उनकी कर्तव्यता हो तो यह सूत्र पहले ही आय आदि विकल्प से होने का विधान करता है। इससे प्रत्येक में दो-दो रूप होंगे- एक आय आदि के पक्ष में और एक आय आदि के अभाव में।

कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि। यह वार्तिक है। **कास् और अनेकाच् धातु से आम् प्रत्यय होता है लिट् के परे होने पर।**

यहाँ मकार की इत्संज्ञा नहीं होती है क्योंकि इस वार्तिक से **आस्** और **कास्** धातुओं से भी आम् का विधान किया गया है। **कास्** धातु से आम् हो और उसके मकार की इत्संज्ञा भी हो तो मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात्परः** के नियम से अन्त्य अच् के बाद ही आम् वाला आकार बैठेगा। **का+आ+स्** बनेगा। सवर्णदीर्घ होकर **कास्** ही बनेगा। अतः आम् का विधान व्यर्थ प्रतीत हुआ। इसी तरह **दयायासश्च** इस सूत्र के द्वारा **आस्** धातु से **आम्** का विधान होता है। यदि वहाँ पर मकार का लोप हो तो **आ+आ+स्**,में सवर्णदीर्घ करके **आस्** ही बनेगा। अतः **आस्** से भी आम् का विधान व्यर्थ हो जायेगा। ये व्यर्थ होकर यह ज्ञापित करते हैं कि इस प्रकरण में आम् प्रत्यय होने के बाद मकार की इत्संज्ञा नहीं होगी। जब मकार की इत्संज्ञा नहीं होगी तो मित् के अभाव में **मिदचोऽन्त्यात्परः** भी नहीं लगेगा और **परश्च** के नियम से आस्, कास्, गोपाय आदि से परे ही आम् होगा।

गोपाय से लिट्, उसके स्थान पर तिप्, उसके स्थान पर णल् आदेश, उसका अनुबन्धलोप करके **गोपाय+अ** बना था। **कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि** से आम् करके **गोपाय+आम्+अ** बना। आम् की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा हो जाती है।

४७०- अतो लोपः। अतः षष्ठ्यन्तं, लोपः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अनुदात्तोपदेश-वनति-तनोत्यादीनामनुनासिकोलोपो झलि क्ङिति** से एकदेश **उपदेश** की सप्तमी में परिवर्तित करके अनुवृत्ति आती है। **आर्धधातुके** का अधिकार है। उसकी दो बार आवृत्ति होती है। **अङ्गस्य** भी का अधिकार है।

आर्धधातुक प्रत्यय के उपदेश के समय जो अदन्त अङ्ग, उसके अन्त्य अत् (ह्रस्व अकार) का लोप हो जाता है आर्धधातुक के ही परे होने पर।

आर्धधातुक के उपदेश के समय अदन्त है **गोपाय** और आर्धधातुक परे है आम्। अतः **गोपाय** के **अकार** का लोप हो जाता है जिससे **गोपाय्+आम्=गोपायाम्+अ** बना।

४७१- आमः। आमः पञ्चम्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** से **लुक्** की अनुवृत्ति आती है।

कृभ्वस्तीनामनुप्रयोजकं विधिसूत्रम्

४७२. कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ३।१।४०॥

आमन्ताल्लिट्पराः कृभ्वस्तयोऽनुप्रयोज्यन्ते। तेषां द्वित्वादि।

अदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४७३. उरत् ७।४।६६॥

अभ्यासऋवर्णस्य अत् प्रत्यये। रपरः। हलादिशेषः। वृद्धिः। गोपायाञ्चकार।

द्वित्वात् परत्वाद्यणि प्राप्ते-

....

आम् से परे (प्रत्यय) का लुक् होता है।

इस तरह आम् के परे जो लिट् आदि हैं, उनका लुक् हो जाता है। **गोपायाम्+अ** में लिट् लकार सम्बन्धी **अ** के इससे लुक् हो जाने से **गोपायाम्** मात्र शेष रहा है।

४७२- **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि**। कृञ् प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनुप्रयुज्यते तिङन्तपदं, लिटि सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि** से विभक्ति बदलकर **आमः** की अनुवृत्ति आती है।

आमन्त धातु से परे लिट् लकार सहित कृ, भू और अस् इन धातुओं का अनुप्रयोग होता है।

कृञ् यह प्रत्याहार है। इसके अन्दर **कृ, भू** और **अस्** ये तीन धातुएँ आती हैं। जिस धातु से आम् का विधान किया गया, उस आमन्त धातु से परे लिट् लकार को साथ में लेकर **कृ, भू** और **अस्** ये तीन धातु बारी-बारी से अनुप्रयुक्त होते हैं अर्थात् इनका प्रयोग किया जाता है। स्मरण रहे कि आमन्त से परे लिट् सम्बन्धी अ का **आमः** से लुक् हो चुका है। अब **कृ, भू** और **अस्** का अनुप्रयोग होगा तो नये लिट् को लेकर ही होगा। **कृ, भू, अस्** के अनुप्रयोग होने पर भी धातु के अर्थ में कोई अन्तर नहीं होता।

४७३- उरत्। उः षष्ठ्यन्तम्, अत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

प्रत्यय के परे होने पर अभ्यास के ऋवर्ण के स्थान पर अत् आदेश होता है।

अत् इस रूप में आदेश न होकर **ह्रस्व अवर्ण** आदेश है। **अत्** यह तपर-ग्रहण किया गया है। ऋवर्ण के स्थान पर प्राप्त होने के कारण **उरण् रपरः** से रपर होकर **ऋ** के स्थान पर **अर्** आदेश होगा।

अब गोपायाञ्चकार की प्रक्रिया को ध्यान से समझें क्योंकि इस प्रक्रिया की आवश्यकता बहुत्र होती है।

गोपायाञ्चकार। गुप् धातु से लिट् लकार के लाने की इच्छा में **गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आय्** से नित्य से प्राप्त आय प्रत्यय को बाधकर **आयादय आर्धधातुके वा** से विकल्प से **आय** हुआ। यहाँ पहले आय होने के पक्ष के ही रूप बनाये जा रहे हैं। जैसा कि पहले भी आप ने आय करने के बाद आर्धधातुकसंज्ञा, उपधागुण आदि प्रक्रिया की, वही प्रक्रिया यहाँ भी अपनाने से **गोपाय** बना। इसकी धातुसंज्ञा करके लिट् लकार आया। उसके स्थान पर तिप्, अनुबन्धलोप, उसके स्थान पर णल् आदेश, उसका भी

अजादेशनिषेधकं विधिसूत्रम्

४७४. द्विर्वचनेऽचि १।१।५९॥

द्वित्वनिमित्तेऽचि अच आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ये।

गोपायाञ्चक्रतुः। गोपायाञ्चक्रुः।

....

अनुबन्धलोप करने पर **गोपाय+अ** बना। **कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि** इस वार्तिक से आम् प्रत्यय, उसकी भी आर्धधातुकसंज्ञा करके **गोपाय** में अकार का **अतो लोपः** से लोप हुआ- **गोपाय्+आम्+अ** बना। **गोपाय्+आम्** में वर्णसम्मेलन होकर **गोपायाम्** बना। गोपायाम् से परे **अ** का **आमः** सूत्र से लुक् हुआ, **गोपायाम्** रह गया। **मान्त कृदन्त** होने प्रातिपदिकसंज्ञा करके आई हुई सु आदि विभक्तियों का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हुआ, क्योंकि यह मान्त कृदन्त होने से **कृन्मेजन्तः** से **अव्ययसंज्ञक** है। **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि** से लिट् को साथ में लेकर पहले कृ धातु का अनुप्रयोग हुआ, **गोपायाम् कृ लिट्** बना। लिट् के स्थान पर तिप् आदेश, उसके स्थान णल् आदेश होकर **गोपायाम्+कृअ** बना। कृ का **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व हुआ, **गोपायाम् कृ कृ अ** बना। प्रथम कृ की **पूर्वोऽभ्यासः** से अभ्याससंज्ञा हुई और **उरत्** से ऋकार के स्थान अत् आदेश हुआ और **उरण् रपरः** की सहायता से रपर होकर अर् आदेश हुआ, **गोपायाम् कर् कृ अ** बना। **हलादि शेषः** से कर् में ककार का शेष और रकार का लोप हुआ। **गोपायाम् ककृ अ** बना। **कुहोश्चुः** से अभ्याससंज्ञक ककार के स्थान पर चवर्ग में च आदेश होकर **गोपायाम् चकृ अ** बना। **गोपायाम्** के मकार के स्थान पर **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार और अनुस्वार के स्थान पर **वा पदान्तस्य** से वैकल्पिक परसवर्ण होकर **ञकार** आदेश हुआ तो **गोपायाञ्चकृ अ** बना। णल् वाला अकार णित् है, अतः **अचो ञ्णिति** से **गोपायाञ्चकृ** के ऋकार की वृद्धि हुई। **उरण् रपरः** की सहायता से **ऋकार** की वृद्धि **आर्** होती है। इस तरह से **गोपायाञ्चकार्+अ**, वर्णसम्मेलन होकर **गोपायाञ्चकार** सिद्ध हुआ। परसवर्णाभाव पक्ष में **गोपायांचकार** भी सिद्ध होता है।

इस प्रक्रिया का बार-बार अभ्यास करें।

४७४- द्विर्वचनेऽचि। द्विरुच्यतेऽस्मिन् इति द्विर्वचनम्, अधिकरण अर्थ में ल्युट् प्रत्ययः। द्विर्वचने सप्तम्यन्तम्, अचि सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अचः परस्मिन् पूर्वविधौ** से **अचः** की, **स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ** से **आदेशः** और **न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वार-दीर्घजश्चर्विधिषु** से **न** की अनुवृत्ति आती है।

द्वित्वनिमित्तक अच् को मानकर अच् के स्थान पर आदेश नहीं होता है, द्वित्व की कर्तव्यता में।

द्विवचन में **गोपायाञ्चकृ+अतुस्** है। यहाँ पर **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व और **इको यणचि** से यण् एक साथ प्राप्त होते हैं। **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** के अनुसार परकार्य के विधान होने से **इको यणचि** से यण् प्राप्त हो रहा है। यदि **कृ** को यण् पहले हो तो **क्र्+अतुस्** बनेगा और इस स्थिति में **अच्** के न होने से **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व नहीं हो पायेगा, क्योंकि यह सूत्र एकाच् को द्वित्व करता है। अतः यण् को रोकने के लिए इस सूत्र की आवश्यकता है।

इण्निषेधात्मकं विधिसूत्रम्

४७५. एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ७।२।१०॥

उपदेशे यो धातुरेकाज् अनुदात्तश्च तत आर्धधातुकस्येड् न।

ऊदृदन्तैर्यौति-रु-क्ष्णु-शीङ्-स्नु-नु-क्षु-श्वि-डीङ्-श्रिभिः।
वृङ्वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः॥

....

इस सूत्र से निषेध तब तक के लिए है जब तक कि द्वित्व नहीं होता। द्वित्व होने के बाद निषेध नहीं होता अर्थात् अजादेश करने वाले सूत्र लग सकते हैं।

गोपायाञ्चक्रतुः। द्विवचन में **गोपायाम्+कृ+अतुस्** में कृ को द्वित्व प्राप्त और ऋकार को यण् प्राप्त, **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** के नियम से पहले यण् की प्राप्ति हो रही थी तो **द्विर्वचनेऽचि** से यह बताया कि जब द्वित्व की विवक्षा हो तो अन्य कोई भी आदेश पहले नहीं होंगे। अतः कृ को द्वित्व, **उरत्** से अत्व, **उरण् रपरः** से रपर करके **कर्** बना। हलादिशेष होने पर **क** बना, **कुहोश्चुः** से ककार के स्थान पर चुत्व होकर चकार बन गया। इस तरह **गोपायाञ्चकृ+अतुस्** बना। अब द्वित्व करने के बाद **चकृ** के ऋकार के स्थान पर **इको यणचि** से यण् होकर **चक्र्** हुआ। **गोपायाम्+चक्र्+अतुस्** में मकार को अनुस्वार और परसवर्ण करके वर्णसम्मेलन और **अतुस्** के सकार को रुत्वविसर्ग करके **गोपायाञ्चक्रतुः** सिद्ध हुआ। इसी तरह बहुवचन में झि और उसके स्थान पर उस् आदेश करके **गोपायाञ्चक्रुः** सिद्ध होता है।

४७५- **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्**। एकोऽच् यस्मिन् स एकाच्, तस्य एकाचः। एकाचः पञ्चम्यन्तम्, उपदेशे सप्तम्यन्तम्, अनुदात्तात् पञ्चम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ऋत इद्धातोः** से **धातोः**, **नेड्वशि कृति** से **न** एवं **इट्** की अनुवृत्ति आती है।

उपदेश अवस्था में जो धातु एक अच् वाला हो और साथ ही अनुदात्त भी हो तो उस धातु से परे आर्धधातुक प्रत्यय को इट् का आगम नहीं होता है।

यह सूत्र **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** का निषेधक है। सूत्र में पठित **उपदेशे** इस पद का **एकाचः** के साथ भी अन्वय है और **अनुदात्तात्** के साथ भी। यहाँ पर **देहलीदीपकन्याय** चरितार्थ होती है। जैसे- दहलीज पर रखा दीपक अन्दर और बाहर दोनों तरफ प्रकाश देता है, उसी तहर बीच में पढ़ा गया **उपदेशे** यह शब्द **एकाचः** के साथ अन्वित होता है और **अनुदात्तात्** के साथ भी। एक ही धातु उपदेश अवस्था में अनुदात्त हो और उपदेश अवस्था में ही एकाच् भी हो यह सूत्र लगेगा।

यहाँ पर अनुबन्ध से रहित धातु को ही एकाच् या अनेकाच् माना गया है। उस एकाच् धातु में अनुदात्तत्व भी विद्यमान रहना चाहिए। यहाँ यह समझना जरूरी है कि अनुदात्तेत् धातुओं और अनुदात्त धातुओं में अन्तर है। जैसे **एध वृद्धौ** धातु धकारोत्तरवर्ती अकार अनुदात्त है और उसकी **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है। अतः यह धातु अनुदात्तेत् कहलाती है। इसलिए **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** सूत्र के द्वारा इस **एध्** धातु से आत्मनेपद होता है परन्तु इस **एध्** धातु को अनुदात्त धातु नहीं माना जाता। इसलिए इससे परे वलादि आर्धधातुक को इट् आगम का निषेध इस सूत्र से नहीं होता परन्तु **गुपू** धातु अनुदात्तेत् नहीं अपितु उदात्तेत् है। अतः उससे परस्मैपद होता है किन्तु अनुदात्त धातु मानी जाती है। इसलिए इस सूत्र से इट् आगम का निषेध प्राप्त होता है।

कान्तेषु शक्लेकः।
चान्तेषु पच्-मुच्-रिच्-वच्-विच्-सिचः षट्।
छान्तेषु प्रच्छेकः।
जान्तेषु त्यज्-निजिर्-भज्-भञ्ज्-भुज्-भ्रस्ज्-मस्ज्-यज्-युज्-रुज्-रञ्ज्-विजिर्-स्वञ्ज्-सञ्ज्-सृजः पञ्चदश।

....

अब निम्नलिखित कारिका से अजन्त एकाच् धातुओं में अनुदात्त धातुओं की व्यवस्था करते हैं।

ऊदृदन्तैर्यौति-रु-क्ष्णु-शीङ्-स्नु-नु-क्षु-श्वि-डीङ्-श्रिभिः।
वृङ्वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः॥

दीर्घ ऊकारान्त धातु, दीर्घ ॠकारान्त धातु, यु, रु, क्ष्णु, शीङ्, स्नु, नु, क्षु, श्वि, डीङ्, श्रि, वृङ् और वृञ् इन धातुओं को छोड़कर अन्य धातुएँ जो अजन्त धातुओं में एकाच् वे सभी धातुएँ निहत अर्थात् अनुदात्त हैं, ऐसा समझना चाहिए।

इस पद्य में उल्लिखित धातु उदात्त हैं, अनुदात्त नहीं है और इनसे भिन्न धातु अनुदात्त हैं। अजन्तों में उदात्त धातु कम और अनुदात्त धातु ज्यादा हैं, इस लिए उदात्त धातु को गिनाकर शेष धातुओं को अनुदात्त कह दिया गया है।

अजन्तों में अनुदात्त अधिक हैं और उदात्त कम। इसलिए उदात्तों को गिनकर बता दिया है। इनसे भिन्न अनुदात्त हैं।

कारिकास्थ अजन्त एकाच् उदात्त धातुओं का विवरण-

यु मिश्रणामिश्रणयोः(अदादिः) **रु शब्दे**(अदादिः)
क्ष्णु तेजने(अदादिः) **शीङ् स्वप्ने**(अदादिः)
स्नु प्रस्रवणे(अदादिः) **णु (नु)स्तुतौ**(अदादिः)
टुक्षु शब्दे(अदादिः) **टुओश्वि गतिवृद्ध्योः**(भ्वादिः)
डीङ् विहायसा गतौ(दिवादिः) **श्रिञ् सेवायाम्**(भ्वादिः)
वृङ् सम्भक्तौ(क्र्यादिः) **वृञ् वरणे**(स्वादिश्चुरादिश्च)

निहताः=अनुदात्ताः। हलन्तों में उदात्त धातु वहुत और अनुदात्त धातु कम हैं, अतः सीधे अनुदात्त धातुओं का परिगणन करते हैं-

ककारान्त धातुओं में- **शक्** (शक्लृ शक्तौ, स्वादिः) एक ही धातु अनुदात्त है। लृकार जोड़कर इसलिए कहा गया कि अन्य शकि, शक आदि धातुएँ न लिए जायें।

चकारान्त धातुओं में- **पच्** (डुपचष् पाके भ्वादिः), **मुच्** (मुच्लृ मोक्षणे, तुदादिः), **रिच्** (रिचिर् विरेचने, रुधादिः) तथा (रिच वियोजनसम्पर्चनयोः, चुरादिः), **वच्** (वच परिभाषणे, अदादिः), **विच्** (विचिर् पृथग्भावे, रुधादिः) और **सिच्** (षिच क्षरणे, तुदादिः) ये छः धातुएँ अनुदात्त हैं।

छकारान्त धातुओं में- **प्रच्छ्** (प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्, तुदादिः) एक ही धातु अनुदात्त है।

जकारान्त धातुओं में त्यज् (त्यज हानौ, भ्वादिः), **निजिर्** (णिजिर् शौचपोषणयोः, जुहोत्यादिः), **भज्** (भज सेवायाम्, भ्वादिः), **भञ्ज्** (भञ्जो आमर्दने, रुधादिः), **भुज्** (भुज पालनाऽभ्यवहारयोः, रुधादिः), तथा (भुजो कौटिल्ये, तुदादिः), **भ्रस्ज्** (भ्रस्ज पाके, तुदादिः),

दान्तेषु अद्-क्षुद्-खिद्-छिद्-तुद्-नुद्-पद्य-भिद्-विद्यति-विनद्-विन्द्-शद्-सद्-स्विद्य-स्कन्द्-हदः षोडश।

धान्तेषु क्रुध्-क्षुध्-बुध्य-बन्ध्-युध्-रुध्-राध्-व्यध्-साध्-शुध्-सिध्या एकादश।

नान्तेषु मन्यहनी द्वौ।

पान्तेषु आप्-क्षिप्-छुप्-तप्-तिप्-तृप्य-दृप्य-लिप्-लुप्-वप्-शप्-स्वप्-सृपस्त्रयोदशः।

....

मस्ज् (टुमस्जो शुद्धौ, तुदादिः), **यज्** (यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु, भ्वादिः), **युज्**, (युजिर् योगे, रुधादिः), **युज्** (युज समाधौ, दिवादिः), तथा (युज संयमने, चुरादिः), **रुज्** (रुजो भङ्गे, तुदादिः), **रञ्ज्** (रञ्ज रागे, भ्वादिः), **विजिर्** (विजिर् पृथग्भावे, जुहोत्यादिः), **स्वञ्ज्** (ष्वञ्ज परिष्वङ्गे, भ्वादिः), **सञ्ज्** (षञ्ज सङ्गे, भ्वादिः) और **सृज्** (सृज विसर्गे, दिवादिः) ये पन्द्रह धातुएँ अनुदात्त हैं।

दकारान्त धातुओं में- **अद्** (अद भक्षणे, अदादिः), **क्षुद्** (क्षुदिर् सम्पेषणे, रुधादिः), **खिद्** (खिद दैन्ये, रुधादिः), तथा (खिद परिघाते, तुदादिः), **छिद्** (छिदिर् द्वैधिकरणे, रुधादिः), **तुद्** (तुद व्यथने, तुदादिः), **नुद्** (णुद प्रेरणे, तुदादिः), **पद्य** (पद गतौ, दिवादिः), **भिद्** (भिदिर् विदारणे, रुधादिः), विद्य (विद सत्तायाम्, दिवादिः), **विनद्** (विद विचारणे, रुधादिः), **विन्द्** (विद्लृ लाभे, तुदादिः) **शद्** (शद्लृ शातने, भ्वादिः), **सद्** (षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु (भ्वादिः), **स्विद्य** (ञिष्विदा गात्रप्रक्षरणे, दिवादिः), **स्कन्द्** (स्कन्दिर् गतिशोषणयोः, भ्वादिः) और **हद्** (हद पुरीषोत्सर्गे, भ्वादिः) ये सोलह धातुएँ अनुदात्त हैं। पद्य, विद्य और **स्विद्य** में यकार दिवादिगण के निर्देश के लिए है। **विनद्** यह रुधादिगण के लिए एवं **विन्द्** यह तुदादिगण के निर्देश के लिए है। इसी तरह एक ही धातु अनेक गणों में हो तो अन्य गणीय धातु के निवारण के लिए **श्यन्** आदि के द्वारा निर्देश किया गया है।

धकारान्त धातुओं में **क्रुध्** (क्रुध क्रोधे, दिवादिः), **क्षुध्** (क्षुध बुभुक्षायाम्, दिवादिः), बुध्य (बुध अवगमने, दिवादिः), **बन्ध्** (बन्ध बन्धने, क्र्यादिः), **युध्** (युध सम्प्रहारे, दिवादिः), रुध् (रुधिर् आवरणे, रुधादिः) तथा (रुध कामे, दिवादिः), **राध्** (राध संसिद्धौ, स्वादिः), तथा (राध वृद्धौ, दिवादिः), **व्यध्** (व्यध ताडने, दिवादिः), **शुध्** (शुध शौचे, दिवादिः), साध् (साध संसिद्धौ, स्वादिः) और **सिध्य** (षिधु संराद्धौ, दिवादिः) ये ग्यारह धातुएँ अनुदात्त हैं। यहाँ पर दिवादिगणीय ग्रहण करने के लिए बुध् और सिध् धातुओं में श्यन् प्रत्ययान्त निर्देश किया गया है।

नकारान्त धातुओं में- **मन्य** (मन ज्ञाने, दिवादिः) और **हन्** (हन हिंसागत्योः, अदादिः)ये दो धातु अनुदात्त हैं। **मन्य** में श्यन् निर्देश है अर्थात् दिवादिगणीय ही मान्य हैं।

पकारान्त धातुओं में- **आप्** (आप्लृ व्याप्तौ, स्वादिः), तथा (आप्लृ लम्भने, चुरादिः), **क्षिप्** (क्षिप प्रेरणे, तुदादिः), **छुप्** (छुप स्पर्शे, तुदादिः), **तप्** (तप सन्तापे, भ्वादिः), तथा (तप ऐश्वर्ये, दिवादिः) तथा (तप दाहे, चुरादिः), **तिप्** (तिपृ क्षरणे, भ्वादिः), **तृप्य** (तृप प्रीणने, दिवादिः), **दृप्य** (दृप हर्षमोहनयोः, दिवादिः), **लिप्** (लिप उपदेहे, तुदादिः), **लुप्** (लुप्लृ छेदने, तुदादिः), **वप्** (डुवप बीजसन्ताने, भ्वादिः), **शप्**

भान्तेषु यभ्-रभ्-लभस्त्रयः।

मान्तेषु गम्-नम्-यम्-रमश्चत्वारः।

शान्तेषु क्रुश्-दश्-दिश्-दृश्-मृश्-रिश्-रुश्-लिश्-विश्-स्पृशो दश।

षान्तेषु कृष्-त्विष्-तुष्-द्विष्-दुष्-पुष्य-पिष्-विष्-शिष्-शुष्-श्लिष्या एकादश।

सान्तेषु घस्-वसती द्वौ।

हान्तेषु दह्-दिह्-दुह्-नह्-मिह्-रुह्-लिह-वहोऽष्टौ।

अनुदात्ता हलन्तेषु धातवस्त्र्यधिकं शतम्।

गोपायाञ्चकर्थ। गोपायाञ्चक्रथुः। गोपायाञ्चक्र।

गोपायाञ्चकार-गोपायाञ्चकर। गोपायाञ्चकृव। गोपायाञ्चकृम।

गोपायाम्बभूव। गोपायामास। जुगोप। जुगुपतुः। जुगुपुः।

....

(शप आक्रोशे, दिवादिः), **स्वप्** (ञिष्वप् शये, अदादिः) और **सृप्** (सृप्लृ गतौ, भ्वादिः) ये तेरह धातुएँ अनुदात्त हैं।

भकारान्त धातुओं में- **यभ्** (यभ मैथुने, भ्वादिः), **रभ्** (रभ राभस्ये, भ्वादिः) और **लभ्** (डुलभष् प्राप्तौ, भ्वादिः) ये तीन ही धातुएँ अनुदात्त हैं।

मकारान्त धातुओं में- **गम्** (गम्लृ गतौ, भ्वादिः), **नम्** (णम प्रह्वत्वे शब्दे च, भ्वादिः) **यम्** (यमु उपरमे, भ्वादिः) और **रम्** (रमु क्रीडायाम्, भ्वादिः) ये चार धातुएँ अनुदात्त हैं।

शकारान्त धातुओं में- **क्रुश्** (क्रुश आह्वाने रोदने च, भ्वादिः), **दश्** (दंश दशने, भ्वादिः), **दिश्** (दिश अतिसर्जने, तुदादिः), **दृश्** (दृशिर प्रेक्षणे, भ्वादिः), **मृश्** (मृश आमर्शने, तुदादिः), **रिश्, रुश्** (रुश रिश हिंसायाम्, तुदादिः) **लिश्** (लिश अल्पीभावे, दिवादिः)तथा (लिश गतौ, तुदादिः), **विश्** (विश प्रवेशने, तुदादिः) और **स्पृश्** (स्पृश संस्पर्शे, तुदादिः) ये दस धातुएँ अनुदात्त हैं।

षकारान्त धातुओं में- **कृष्** (कृष विलेखने, भ्वादिः), **त्विष्** (त्विष दीप्तौ, भ्वादिः), **तुष्** (तुष प्रीतौ, दिवादिः), **द्विष्** (द्विष अप्रीतौ, अदादिः), **दुष्** (दुष वैकृत्ये, दिवादिः), **पुष्य** (पुष पुष्टौ, दिवादिः), **पिष्** (पिष्लृ सञ्चूर्णने, रुधादिः), **विष्** (विष्लृ व्याप्तौ) तथा (विषु सेचने, भ्वादिः) तथा (विष विप्रयोगे, क्र्यादिः), **शिष्** (शिष हिंसायाम्, भ्वादिः) तथा (शिष्लृ विशेषणे, रुधादिः) एवं (शिष असर्वोपयोगे, चुरादिः), **शुष्** (शुष शोषणे, दिवादिः) और **श्लिष्य** (श्लिष आलिङ्गने, दिवादिः) ये ग्यारह धातुएँ अनुदात्त हैं।

सकारान्त धातुओं में- **घस्** (घस्लृ अदने, भ्वादिः) और **वस्** (वस निवासे, भ्वादिः) ये दो धातुएँ अनुदात्त हैं।

हकारान्त धातुओं में- **दह्** (दह भस्मीकरणे, भ्वादिः), **दिह्** (दिह उपचये, अदादिः), **दुह्** (दुह प्रपूरणे, अदादिः), **नह्** (णह बन्धने, दिवादिः), **मिह्** (मिह सेचने, भ्वादिः), **रुह्** (रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च, भ्वादिः), **लिह्** (लिह आस्वादने, अदादिः) और **वह्** (वह प्रापणे, भ्वादि) ये आठ धातुएँ अनुदात्त हैं।

इस तरह हलन्त धातुओं में एक सौ तीन (१०३) धातुएँ अनुदात्त हैं।

वैकल्पिकेड्विधायकं विधिसूत्रम्

४७६. स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा ७।२।४४॥

स्वरत्यादेरूदितश्च परस्य वलादेरार्धधातुकस्येड् वा स्यात्।

जुगोपिथ, जुगोप्थ। गोपायिता, गोपिता, गोप्ता। गोपायिष्यति, गोपिष्यति, गोप्स्यति। गोपायतु। अगोपायत्। गोपायेत्। गोपाय्यात्, गुप्यात्। अगोपायीत्।

....

गोपायाञ्चकर्थ। गुपू धातु से अनुप्रयुज्यमान **कृ** धातु उपदेश अवस्था में एकाच् है और **ऊदॄदन्तैः०** कारिका में न आने के कारण अनुदात्त है। अतः आर्धधातुक के परे **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् का निषेध हुआ। अतः **गोपायाम्+चकृ+थ** में इट् का आगम नहीं हुआ अपितु **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से ऋकार को गुण होकर अर् हुआ, **गोपायाम्+चकर्+थ** बना। मकार को अनुस्वार एवं परसवर्ण तथा रेफ का ऊर्ध्वगमन होकर **गोपायाञ्चकर्थ** सिद्ध हुआ। इसी तरह उत्तमपुरुष के द्विवचन और बहुवचन में भी इट् का निषेध होता है। अन्यत्र इट् की प्राप्ति ही नहीं है क्यों कि वलादि नहीं है। अतः इट् निषेध का भी प्रश्न नहीं है। इस तरह गुप् धातु के लिट् लकार में कृ का अनुप्रयोग होने पर रूप बने- गोपायाञ्चकार, गोपायाञ्चक्रतुः, गोपायाञ्चक्रुः, गोपायाञ्चकर्थ, गोपायाञ्चक्रथुः, गोपायाञ्चक्र, गोपायाञ्चकार-गोपायाञ्चकर, गोपायाञ्चकृव, गोपायाञ्चकृम।

गोपायाम् से भू का अनुप्रयोग होने पर **गोपायाम् भू लिट्** बना। अब जिस तरह से भू धातु से **बभूव** बनाया गया था, उसी तरह यहाँ भी वही प्रक्रिया होती है। इस तरह **गोपायाम्+बभूव** बन गया है। मकार को अनुस्वार और उसका परसवर्ण करने पर ब का सवर्णी मकार हो जाता है, जिससे **गोपायाम्बभूव** सिद्ध हो जाता है।

गोपायाम्बभूव, गोपायाम्बभूवतुः, गोपायाम्बभूवुः, गोपायाम्बभूविथ, गोपायाम्बभूवथुः, गोपायाम्बभूव, गोपायाम्बभूव, गोपायाम्बभूविव, गोपायाम्बभूविम। भू धातु के दीर्घ ऊकारान्त होने के कारण अनुदात्त नहीं है, अतः **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् का निषेध नहीं हुआ।

गोपायाम् से **अस्** का अनुप्रयोग होने पर अस्+लिट्, अस्+तिप्, अस्+णल्, अस्+अ, अस्अस्+अ, अअस्+अ, **अत आदेः** से दीर्घ होकर **आअस्+अ**, आ+अस् में सवर्णदीर्घ होकर **आस्+अ**, वर्णसम्मेलन होकर **आस** बना। **गोपायाम्+आस** में वर्णसम्मेलन होकर **गोपायामास** सिद्ध हुआ। गोपायामास, गोपायामासतुः, गोपायामासुः, गोपायामासिथ, गोपायामासथुः, गोपायामास, गोपायामास, गोपायामासिव, गोपायामासिम।

आयादय आर्धधातुके वा से आर्धधातुक की विवक्षा में **आय** विकल्प से हो रहा था। अभी तक **आय** आदेश के पक्ष के रूप बनाये गये। अब आय न होने के पक्ष में- **जुगोप** बनता है।

जुगोप। गुप् से आय न होने के पक्ष में लिट् लकार, तिप्, णल् आदेश, अनुबन्धलोप करके **गुप्+अ** बना है। गुप् को द्वित्व, गुप्गुप्+अ, हलादिशेष- गुगुप् अ, **कुहोश्चुः** से चुत्व करके **जुगुप्+अ** बना। **पुगन्तलघूपधस्य च** से उपधा को गुण होकर **जुगोप्+अ**, वर्णसम्मेलन होकर **जुगोप** सिद्ध हुआ। अपित् अर्थात् तिप्, सिप् और मिप् को छोड़कर अन्यत्र **असंयोगाल्लिट् कित्** से किद्वद्भाव होकर **क्ङिति च** से गुण का निषेध होता है। **जुगोप, जुगुपतुः, जुगुपुः** ये रूप बने। थल् में अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

४७६- स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा। ऊत् इत् यस्य स ऊदित्। स्वरतिश्च सूतिश्च सूयतिश्च धूञ् च ऊदित् च तेषां समाहारद्वन्द्वः स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदित्, तस्य स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितः। स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितः पञ्चम्यन्तं, वा अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है।

स्वरति रूप वाले स्वृ आदि और ऊदित् धातुओं से परे वलादि आर्धधातुक को विकल्प से इट् का आगम होता है।

सूत्रोक्त धातुएँ हैं- **स्वृ शब्दोपतापयोः, षूङ् प्राणिगर्भविमोचने, षूङ् प्राणिप्रसवे, धूञ् कम्पने।** गुपू धातु में दीर्घ ऊकार की इत्संज्ञा हुई है, अतः यह **ऊदित्** है।

जुगोपिथ, जुगोप्थ। थल् में **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से विकल्प से इट् का आगम होकर **जुगोपिथ** बना और इट् न होने के पक्ष में **जुगोप्थ** सिद्ध हुआ। इस तरह आय न होने के पक्ष में रूप बने- जुगोप, जुगुपतुः, जुगुपुः, जुगोपिथ-जुगोप्थ, जुगुपथुः, जुगुप, जुगोप, जुगुपिव-जुगुप्व, जुगुपिम-जुगुप्म।

लिट् के अतिरिक्त **लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ्** और **लृङ्** ये लकार आर्धधातुक हैं। अतः इनमें **आय** प्रत्यय विकल्प से होगा। **आय** और **इट्** दोनों होने के पक्ष के रूप और आय न होने और **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से इट् होने के पक्ष के रूप तथा और इट् न होने के पक्ष के भी रूप होंगे। इस तरह तीन-तीन रूप सिद्ध होते हैं।

लुट् में- आय प्रत्यय और इट् होने के पक्ष में- गोपायिता, गोपायितारौ, गोपायितारः, गोपायितासि, गोपायितास्थः, गोपायितास्थ, गोपायितास्मि, गोपायितास्वः, गोपायितास्मः। **आय न होने व इट् होने के पक्ष में-** गोपिता, गोपितारौ, गोपितारः, गोपितासि, गोपितास्थः, गोपितास्थ, गोपितास्मि, गोपितास्वः, गोपितास्मः **एवं इट् न होने के पक्ष में-** गोप्ता, गोप्तारौ, गोप्तारः, गोप्तासि, गोप्तास्थः, गोप्तास्थ, गोप्तास्मि, गोप्तास्वः, गोप्तास्मः।

लृट् में- आय और इट् होने के पक्ष में- गोपायिष्यति, गोपायिष्यतः, गोपायिष्यन्ति, गोपायिष्यसि, गोपायिष्यथः, गोपायिष्यथ, गोपायिष्यामि, गोपायिष्यावः, गोपायिष्यामः। **आय न होने व इट् होने के पक्ष में-** गोपिष्यति, गोपिष्यतः, गोपिष्यन्ति, गोपिष्यसि, गोपिष्यथः, गोपिष्यथ, गोपिष्यामि, गोपिष्यावः, गोपिष्यामः। **इट् न होने के पक्ष में-** गोप्स्यति, गोप्स्यतः, गोप्स्यन्ति, गोप्स्यसि, गोप्स्यथः, गोप्स्यथ, गोप्स्यामि, गोप्स्यावः, गोप्स्यामः।

लोट्, लङ् और विधिलिङ् में कोई आर्धधातुक प्रत्यय नहीं है, अतः लट् की तरह आय नित्य से ही होता है।

लोट्- गोपायतु-गोपायतात्, गोपायताम्, गोपायन्तु, गोपाय-गोपायतात्, गोपायतम्, गोपायत, गोपायानि, गोपायाव, गोपायाम। **लङ्-** अगोपायत्, अगोपायताम्, अगोपायन्, अगोपायः, अगोपायतम्, अगोपायत, अगोपायम्, अगोपायाव, अगोपायाम। **विधिलिङ्-** गोपायेत्, गोपायेताम्, गोपायेयुः, गोपायेः, गोपायेतम्, गोपायेत, गोपायेयम्, गोपायेव, गोपायेम।

आशीर्लिङ् में वलादि आर्धधातुक के न मिलने के कारण इट् प्राप्त नहीं होता। **आय पक्ष के रूप-** गोपाय्यात्, गोपाय्यास्ताम्, गोपाय्यासुः, गोपाय्याः, गोपाय्यास्तम्, गोपाय्यास्त, गोपाय्यासम्, गोपाय्यास्व, गोपाय्यास्म। **आयाभावे-** गुप्यात्, गुप्यास्ताम्, गुप्यासुः, गुप्याः, गुप्यास्तम्, गुप्यास्त, गुप्यासम्, गुप्यास्व, गुप्यास्म।

अगोपायीत्। गोपाय से लुङ्, अट् आगम, तिप्, शप् प्राप्त होने पर उसे बाधकर

वृद्धिनिषेधकं सूत्रम्

४७७. नेटि ७।२।४॥

इडादौ सिचि हलन्तस्य वृद्धिर्न। अगोपीत्, अगौप्सीत्।

सकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

४७८. झलो झलि ८।२।२६॥

झलः परस्य सस्य लोपो झलि। अगौप्ताम्। अगौप्सुः। अगौप्सीः। अगौप्तम्। अगौप्त। अगौप्सम्। अगौप्स्व। अगौप्स्म। अगोपायिष्यत्, अगोपिष्यत्, अगोप्स्यत्।

क्षि क्षये॥१३॥ क्षयति। चिक्षाय। चिक्षियतुः। चिक्षियुः।

एकाच इति निषेधे प्राप्ते-

....

च्लि, सिच्, इट् आगम, ति के इकार का लोप करके **अगोपाय+इस्+ईत्** बना। **अतो लोपः** से यकारोत्तरवर्ती अकार का लोप, **इट ईटि** से सिच् का लुक्, दोनों इकारों में दीर्घ करके **अगोपाय्+ईत्**, वर्णसम्मेलन करके **अगोपायीत्** सिद्ध हुआ। यहाँ आर्धधातुक प्रत्यय की अपेक्षा थी, अतः **आयादय आर्धधातुके वा** से **आय प्रत्यय** विकल्प से हुआ है। आय न होने के पक्ष में और **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से इट् के पक्ष में **अगुप्+इस्+ईत्** है। हलन्त होने के कारण **वदव्रजहलन्तस्याचः** से गुप् के उकार को वृद्धि प्राप्त होती है। इस पर अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होकर वृद्धि का निषेध करता है।

४७७- **नेटि**। न अव्ययपदम्, इटि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **वदव्रलहन्तस्याचः** से हलन्तस्य की और **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

इट् आदि में हो ऐसे सिच् के परे होने पर हलन्त धातु को वृद्धि नहीं होती है।

वदव्रजहलन्तस्याचः के द्वारा वद्, व्रज् और हलन्त धातुओं को सिच् परे होने पर वृद्धि कही गई है, उसका यहाँ इडादि सिच् के परे होने पर निषेध किया गया है परन्तु **वद्** और **व्रज्** धातुओं का विशेष विधान है, अतः उनमें निषेध प्रवृत्त नहीं होगा, निषेध केवल हलन्तों में ही होगा।

अगोपीत्। अगुप्+इस्+ईत् होने के बाद **वदव्रजहलन्तस्याचः** से प्राप्त वृद्धि का यह निषेध करता है। वृद्धि न होने पर **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण हुआ- उकार को गुण **ओ** होता है। अतः **अगोप्+इस्+ईत्** बना। सकार का लोप, सवर्णदीर्घ, वर्णसम्मेलन होकर **अगोपीत्** सिद्ध हुआ। इट् भी न होने के पक्ष में **अगुप्+स्+ईत्** है। यहाँ वलादि को मान कर होने वाला इट् नहीं हुआ है और अपृक्त को मानकर **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से किया जाने वाला ईट् आगम हुआ है। यहाँ पर वृद्धि का **नेटि** से निषेध नहीं होगा, क्योंकि इट् न होने के कारण इडादि सिच् नहीं मिलता। अतः **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि हो गई, जिससे **अगौप्+स्+ईत्** बना। वर्णसम्मेलन करके **अगौप्सीत्** बना। यहाँ **इट ईटि** से सकार का लोप भी नहीं होगा क्योंकि इट् से परे सकार नहीं है।

लुङ् के द्विवचन में आय होने के पक्ष में कुछ विशेष नहीं है, अतः **अगोपायिष्टाम्**

बनता है। इसी तरह आय न होने तथा इट् होने के पक्ष में **अगोपिष्टाम्** बनता है। इट् न होने के पक्ष में सकार का लोप करने के लिए अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है-

४७८- झलो झलि। झल: षष्ठ्यन्तं, झलि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **रात्सस्य** से **सस्य** और **संयोगान्तस्य लोप:** से **लोप:** की अनुवृत्ति आती है।

झल् से परे सकार का लोप होता है झल् के परे होने पर।

अगौप्ताम्। अगुप्+स्+ताम् में वृद्धि होकर **अगौप्+स्+ताम्** बना। झलो झलि से सकार का लोप होने पर **अगौप्+ताम्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अगौप्ताम्** यह रूप सिद्ध हुआ। बहुवचन में **अगौप्+स्+उस्** में झल् परे न होने के कारण सकार का लोप नहीं हुआ। अत: **अगौप्सु:** बना। इस तरह **गुप्** धातु के **आय पक्ष** और **आय** न होने के पक्ष में तथा **इट्** होने के पक्ष और इट् न होने के पक्ष में भिम्नलिखित रूप सिद्ध होते हैं।

गुप् के लुङ् में आय और इट् आगम पक्ष के रूप

पुरुष	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमपुरुष	अगोपायीत्	अगोपायिष्टाम्	अगोपायिषु:
मध्यमपुरुष	अगोपायी:	अगोपायिष्टम्	अगोपायिष्ट
उत्तमपुरुष	अगोपायिषम्	अगोपायिष्व	अगोपायिष्म

गुप् के आय न होने व इट् आगम पक्ष के रूप

पुरुष	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमपुरुष	अगोपीत्	अगोपिष्टाम्	अगोपिषु:
मध्यमपुरुष	अगोपी:	अगोपिष्टम्	अगोपिष्ट
उत्तमपुरुष	अगोपिषम्	अगोपिष्व	अगोपिष्म

गुप् के आय न होने व इट् भी न होने के पक्ष में रूप

पुरुष	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमपुरुष	अगौप्सीत्	अगौप्ताम्	अगौप्सु:
मध्यमपुरुष	अगौप्सी:	अगौप्तम्	अगौप्त
उत्तमपुरुष	अगौप्सम्	अगौप्स्व	अगौप्स्म

लृङ् लकार में तो कोई कठिनाई नहीं है। **स्य** यह आर्धधातुक प्रत्यय है, अत: **आय** विकल्प से होगा। आय होने के पक्ष में **अगोपाय+इस्य+त्** में **अतो लोप:** से **गोपाय** के **अकार** का लोप, स्य के सकार को षत्व, वर्णसम्मेलन होकर अगोपायिष्यत्, अगोपायिष्यताम्, अगोपायिष्यन्, अगोपायिष्य:, अगोपायिष्यतम्, अगोपायिष्यत, अगोपायिष्यम्, अगोपायिष्याव, अगोपायिष्याम बनते हैं। आय न होने और वैकल्पिक इट् होने के पक्ष में अगोपिष्यत्, अगोपिष्यताम्, अगोपिष्यन्, अगोपिष्य:, अगोपिष्यतम्, अगोपिष्यत, अगोपिष्यम्, अगोपिष्याव, अगोपिष्याम और इट् न होने के पक्ष में अगोप्स्यत्, अगोप्स्यताम्, अगोप्स्यन्, अगोप्स्य:, अगोप्स्यतम्, अगोप्स्यत, अगोप्स्यम्, अगोप्स्याव, अगोप्स्याम।

क्षि क्षये। क्षि धातु **नाश होना, क्षीण होना** अर्थ में हैं। ध्यान रहे कि नाश करना अर्थ नहीं है। अत: अकर्मक है। यदि नाश करना अर्थ होता तो सकर्मक हो जाता। **क्षि** में इकार की इत्संज्ञा नहीं होती है।

क्षयति। क्षि धातु से लट्, तिप्, शप् करके **क्षि+अ+ति** है। **क्षि** के इकार को

इड्विधायकं नियमसूत्रम्

४७९. कृ-सृ-भृ-वृ-स्तु-द्रु-स्रु-श्रुवो लिटि ७।२।१३॥

क्रादिभ्य एव लिट इण्न स्याद् अन्यस्मादनिटोऽपि स्यात्।

....

सार्वधातुकार्धधातुकयोः से गुण होकर क्षे बनता है और उसके स्थान पर **एचोऽयवायावः** से अय् आदेश होकर **क्ष्+अय्+अ+ति** बना। वर्णसम्मेलन होकर रूप बने- क्षयति, क्षयतः, क्षयन्ति, क्षयसि, क्षयथः, क्षयथ, क्षयामि, क्षयावः, क्षयामः।

चिक्षाय। क्षि से लिट्, तिप्, णल्, **क्षि+अ** बना। द्वित्व होकर **क्षिक्षि+अ** बना। हलादिशेष होने पर क्षि में विद्यमान क् और ष् में से ष् का लोप तथा **क्** शेष बचा, **किक्षि+अ** बना। **कुहोश्चुः** से ककार के स्थान पर चुत्व आदेश हुआ, **चिक्षि+अ** बना। **अचो ञ्णिति** से क्षि में इकार को वृद्धि होकर **चिक्षै+अ** बना। आय् आदेश होकर **चिक्षाय** सिद्ध हुआ। द्विवचन में णित् न होने के कारण वृद्धि नहीं होती और **असंयोगाल्लिट् कित्** से किद्वद्भाव होकर **क्ङिति च** से गुण निषेध होता है। अतः **चिक्षि+अतुस्** में इकार के स्थान पर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इयङ् आदेश होकर **चिक्ष्+इय्+अतुस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **चिक्षियतुः** सिद्ध होता है। इसी तरह बहुवचन में **चिक्षियुः** बनता है। क्षि में संयोग होने से कैसे **असंयोगाल्लिट् कित्** से किद्वद्भाव होगा? ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि **क्षि** में **क्** और **ष्** का संयोग आदि में है। उससे परे परे अतुस् आदि प्रत्यय नहीं हैं अर्थात् **संयोग** और **प्रत्यय** की बीच में अव्यवधान हो तो यह निषेध लगता है अर्थात् जिस धातु में संयोग अन्त में होता है, ऐसी धातुओं से परे लिट् को ही कित् नहीं होता, जैसे कि **ननन्द्+अतुस्** आदि में

४७९- **कृ-सृ-भृ-वृ-स्तु-द्रु-स्रु-श्रुवो लिटि**। कृश्च सृश्च भृश्च वृश्च स्तुश्च द्रुश्च स्रुश्च श्रुश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुः, सौत्रं पुंस्त्वम्। तस्मात् कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवः। कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवः पञ्चम्यन्तं, लिटि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **नेड् वशि कृति** से **न** और **इट्** की अनुवृत्ति आती है।

कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु और श्रु धातुओं से परे ही लिट् को इट् न हो, अन्य अनिट् धातुओं से परे लिट् को इट् का आगम हो जाय।

यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि कृ, सृ, भृ ये तीन धातुएँ एकाच् और अनुदात्त हैं, अतः **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से ही इनमें इट् का निषेध हो रहा था और अनुदात्त न होने से वृ में **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध न होने पर भी **श्र्युकः किति** से निषेध हो रहा था तो पुनः निषेध करने के लिए इस सूत्र में **कृ, सृ, भृ, वृ** का ग्रहण क्यों किया गया? इसका उत्तर यह है कि **सिद्धे सति आरम्भ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति**। सिद्ध होते हुए पुनः वही विधि कही जाती है तो वहाँ कुछ न कुछ नियम बनता है। यहाँ पर नियम यह बना कि- **कृ आदि धातुओं से ही परे लिट् को इट् का आगम न हो, उनके अतिरिक्त अन्य अनिट् धातुओं से परे लिट् को इट् का आगम हो जाय।** इस नियम के अनुसार कृ आदि धातुओं के अतिरिक्त धातुओं से परे वलादि आर्धधातुक को इट् का निषेध कहा गया हो तो भी इट् हो जायेगा।

इस सूत्र के उक्त चार धातुओं के अतिरिक्त अन्य जो स्तु, द्रु, स्रु और श्रु धातुएँ हैं, वे निमयमार्थ नहीं अपितु किसी अन्य प्रयोजन के लिए पढ़ी गई हैं। वह प्रयोजन यह है

इण्निषेधकं विधिसूत्रम्

४८०. अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् ७।२।६१॥

उपदेशेऽजन्तो यो धातुस्तासौ नित्यानिट् ततस्थल इण् न।

इण्निषेधकं विधिसूत्रम्

४८१. उपदेशेऽत्वतः ७।२।६२॥

उपदेशेऽकारवतस्तासौ नित्यानिटः परस्य थल इण् न स्यात्।

....

कि इन धातुओं से परे थल् को **ऋतो भारद्वाजस्य** से वैकल्पिक इट् प्राप्त था, तथा वस्, मस् को **क्रादि नियम** से इट् प्राप्त था, उसे रोकने के लिए **स्तु, द्रु, स्रु, श्रु** का ग्रहण किया गया है। तात्पर्य यह है कि लिट् में उक्त चारों धातुओं को कहीं भी इट् न हो। इस तरह यह सिद्ध हुआ कि इन आठों धातुओं से परे लिट् सम्बन्धी सभी वलादि आर्धधातुक को इडागम नहीं होता।

क्रादिनियम व्याकरणशास्त्र में प्रसिद्ध है। वह यह कि **कृ आदि धातुओं से ही लिट् को इट् का आगम नहीं होता, उनके अतिरिक्त अन्य अनिट् धातुओं से परे लिट् को इट् का आगम हो जाता है।** इस नियम के अनुसार कृ आदि धातुओं के अतिरिक्त धातुओं से लिट् को जहाँ इट् का निषेध कहा गया है वहाँ भी इट् हो जायेगा।

४८०- अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्। तासि इव तास्वत्, सप्तम्यन्ताद्वतिः। अविद्यमान इट् यस्मिन् स अनिट्, बहुव्रीहिः। अचः पञ्चम्यन्तं, तास्वत् अव्ययपदम्, थलि सप्तम्यन्तम्, अनिटः पञ्चम्यन्तं, नित्यं क्रियाविशेषणम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **उपदेशेऽत्वतः** से **उपदेशे** का अपकर्षण होता है। **तासि च क्लृपः** से **तासि, गमेरिट् परस्मैपदेषु** से **इट्** तथा **न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः** से **न** की अनुवृत्ति आती है।

उपदेश अवस्था में अजन्त धातु, जो तासि प्रत्यय के परे होने पर अनिट् हो, उससे परे थल् को इट् नहीं होता है।

जैसे **क्षि** धातु उपदेश अवस्था में अजन्त है और तासि प्रत्यय के परे होने पर नित्य से अनिट् रहता है जिससे **क्षेता** रूप बनता है, इस धातु से **क्रादिनियम** (कृ आदि धातुओं से ही लिट् को इट् न हो, अन्य से हो) से इट् की प्राप्ति थी, इस सूत्र के द्वारा प्राप्त इट् का थल् में निषेध हो जाता है। स्मरण रहे कि यह सूत्र थल् में इट् का निषेध करता है, अन्यत्र नहीं।

इस प्रसंग का अग्रिम सूत्र है-

४८१- उपदेशेऽत्वतः। अत् अस्य अस्तीति अत्वान्, मतुप्, तस्य अत्वतः। उपदेशे सप्तम्यन्तम्, अत्वतः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्** से **तास्वत्, थलि, अनिट्** और **नित्यम्, तासि च क्लृपः** से **तासि, गमेरिट् परस्मैपदेषु** से **इट्** तथा **न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः** से **न** की अनुवृत्ति आती है।

उपदेश अवस्था में ह्रस्व अकार वाली धातु, जो तासि के परे नित्य से अनिट् हो, उससे परे थल् को इट् नहीं होता है।

पूर्वसूत्र से अजन्त धातुओं में निषेध किया गया तो इस सूत्र से जिसमें ह्रस्व अकार हो ऐसी धातुओं से परे **थल्** को इट् निषेध किया गया। अकारान्त धातु भी अकारवान् होता

थल्विषयक-भारद्वाजनियमसूत्रम्

४८२. ऋतो भारद्वाजस्य ७।२।६३॥

तासौ नित्यानिट ऋदन्तादेव थलो नेट्, भारद्वाजस्य मते। तेन अन्यस्य (धातोः) स्यादेव। अयमत्र सङ्ग्रहः-

अजन्तोऽकारवान् वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम्।
ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत्॥

चिक्षयिथ, चिक्षेथ। चिक्षियथुः। चिक्षिय। चिक्षाय, चिक्षय। चिक्षियिव। चिक्षियिम। क्षेता। क्षेष्यति। क्षयतु। अक्षयत्। क्षयेत्।

....

है फिर भी उसको अजन्त मानकर पूर्वसूत्र से ही इट् का निषेध किया जा सकता है। अतः यहाँ अकारवान् से हलन्त अकारवान् धातु को ही लेना चाहिए। अतः ऐसी धातुएँ **तासि** के परे अनिट् होती हैं। जैसे- पक्ता, शक्ता आदि। तात्पर्य यह है कि यदि ये धातुएँ तासि में अनिट् हैं तो थल् में भी अनिट् ही रहेंगी।

इन दोनों सूत्रों से **तासि** के परे अनिट् होने वाले अजन्त और अकारवान् धातुओं से थल् में इट् का निषेध किया गया। अब अग्रिम सूत्र से इस विषय में भारद्वाज ऋषि का मत बतलाया जाता है।

४८२- **ऋतो भारद्वाजस्य।** ऋतः पञ्चम्यन्तं, भारद्वाजस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्** से **तास्वत्, थलि, अनिट्, नित्यम्** की तथा **तासि च क्लृपः** से **तासि, गमेरिट् परस्मैपदेषु** से **इट्** तथा **न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः** से **न** की अनुवृत्ति आती है।

भारद्वाज **ऋषि के मत में- तासि प्रत्यय के परे होने पर नित्य से अनिट् होने वाले केवल ह्रस्व ऋकारान्त धातुओं से ही थल् को इट् न हो (अन्य धातुओं से थल् को इट् हो जाय)।**

अब प्रश्न उठता है कि ऋदन्त धातु भी अजन्त ही हैं तो **अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्** से इट् का निषेध प्राप्त था ही, पुनः इस सूत्र से निषेध करने का क्या प्रयोजन? इस पर उत्तर यह है कि **सिद्धे सति आरभ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति।** सिद्ध होते हुए उसी कार्य के लिए पुनः विधान करना नियम के लिए होता है। यहाँ पर नियमार्थ माना गया है। नियम यह है कि **तासि के परे नित्य अनिट् केवल ऋदन्त धातु से परे ही थल् को इट् न हो, अन्य धातुओं से परे थल् को इट् हो जाय।** यह **भारद्वाज ऋषि** का मत है। पाणिनि जी ने भारद्वाज का नाम लेकर ही यह सिद्ध कर दिया कि यह मत उनका है, मेरा नहीं। दो मत होने पर, वह भी किसी प्रतिष्ठित ऋषि का मत हो तो पाणिनि जी उनका सम्मान भी करते हैं। उनका संकेत है कि यहाँ पर दोनों मतों को माना ज़ाय।

इस तरह यहाँ पर विकल्प सिद्ध हुआ- भारद्वाज के मत में और पाणिनि आदि अन्य आचार्यों के मत में। **भारद्वाज के मत में ऋदन्तभिन्न धातुओं से परे थल् को इट् का आगम होता है और पाणिनि आदि अन्य ऋषियों के मत में इट् नहीं होता है। जैसे-** या धातु है, वह तासि के परे अनिट् है, ऋदन्त से भिन्न भी है तो भारद्वाज के मत में थल् में इट् होगा जिससे **ययिथ** बनेगा और पाणिनि के मत में इट् नहीं होगा, अतः **ययाथ** बनेगा।

पूर्वोक्त चारों सूत्रों का निचोड़ एक ही कारिका में संग्रह करके बताया गया है- **अजन्तोऽकारवान् वा** आदि से। इसका प्रथम भाग है- **अजन्तोऽकारवान् वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम्।** अन्वय- **यः तासि नित्यानिट्(तादृशः) अजन्तः अकारवान् वा अयम् थलि वेट्**, (वा=विकल्पेन इट् अस्ति यस्य स धातुः वेट्) अर्थात् जो धातु तासि प्रत्यय के परे नित्य से अनिट् होते हुए अजन्त या अकार वाली धातु हैं, वे थल् में विकल्प से इट् वाली होती हैं। जैसे **पपिथ-पपाथ**। यह **ऋतो भारद्वाजस्य** का उदाहरण है। इस उदाहरण में **अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्** और **उपदेशेऽत्वतः** ये दो सूत्र थल् के इट् का निषेध कर रहे थे किन्तु ऋदन्तभिन्न होने के कारण **भारद्वाजनियम** से इट् हो जाता है और अन्यों के मत में इट् नहीं होता।

कारिका का दूसरा भाग है- **ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट्।** ईदृङ्=इसी तरह तासि के परे रहते नित्यानिट् ह्रस्व ऋकारान्त धातु थल् के परे रहने पर भी नित्य से अनिट् ही रहता है। कारण यह है कि ऐसे धातु को तो **अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्** और **उपदेशेऽत्वतः** ये दो सूत्र भी निषेध कर रहे हैं और स्वयं भारद्वाज जी भी। अतः ऋदन्त धातु थल् में नित्यानिट् होते हैं।

कारिका का तीसरा भाग है- **क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत्।** अर्थात् **कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु** और **श्रु** इन आठ धातुओं को छोड़कर शेष सभी अनुदात्त धातु लिट् में सेट् हो जाते हैं। अर्थात् लिट् में इट् हो जाता है। छिद्, भिद् आदि धातु कृ आदि आठ धातुओं से भिन्न हैं, अतः अनुदात्त होने पर भी इन से परे लिट् को इट् हो जाता है। **बिभेदिथ, बिभेदिव, बिभेदिम, चिच्छेदिथ, चिच्छेदिव, चिच्छेदिम** आदि। कारिका तीसरा भाग **कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि** के लिए है। **क्षि** आदि धातु कृ आदि से भिन्न है, अतः इससे लिट् में इट् होता है। अन्तर यह है कि लिट् के केवल थल् में पूर्वोक्त भारद्वाज नियम के अनुसार विकल्प से इट् होता है- **चिक्षयिथ, चिक्षेथ।**

चिक्षयिथ, चिक्षेथ। क्षि धातु से लिट्, सिप् उसके स्थान पर थल् आदेश करके, धातु को द्वित्व, हलादिशेष, चुत्व होने पर **चिक्षि थ** बना। **थ** को **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** इट् प्राप्त था, उसका **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध प्राप्त हुआ। **कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि** के नियम से लिट् में इट् होने का नियम प्राप्त हुआ। पुनः **अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्** से थल् होने के कारण इट् का निषेध प्राप्त हुआ तो **ऋतो भारद्वाजस्य** से भारद्वाज के मत में इट् और अन्यों के मत में इट् का निषेध हुआ। इस तरह विकल्प से इट् का आगम हुआ। **चिक्षि+इथ** बना। **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण होकर **चिक्षे इथ, अय्** आदेश, **चिक्षयिथ** सिद्ध हुआ। इट् न होने के पक्ष **चिक्षेथ** बना। इस तरह दो रूप सिद्ध हुए।

द्विवचन अथुस्, में अजादि होने के कारण वलादि नहीं है, अतः इट् का प्रसंग नहीं है। **व** और **म** में थल् नहीं है, अतः थल्-विषयक तीनों सूत्र नहीं लगते। अतः **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् निषेध प्राप्त था, **क्रादिनियम** से इट् होता है। जिससे **चिक्षयिव, चिक्षयिम** ये रूप बनते हैं।

लिट् के रूप- चिक्षाय, चिक्षियतुः, चिक्षियुः, चिक्षयिथ-चिक्षेथ, चिक्षियथुः, चिक्षिय, चिक्षाय-चिक्षय, चिक्षयिव, चिक्षयिम।

लुट्- क्षेता, क्षेतारौ, क्षेतारः, क्षेतासि, क्षेतास्थः, क्षेतास्थ, क्षेतास्मि, क्षेतास्वः, क्षेतास्मः।

लुट् लकार में इट् होता ही नहीं है, क्योंकि **ऊद्दन्तैर्यौति०** इस कारिका के

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

४८३. अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः ७।४।२५।।

अजन्ताङ्गस्य दीर्घो यादौ प्रत्यये न तु कृत्सार्वधातुकयोः। क्षीयात्।

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

४८४. सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ७।२।१।।

इगन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्यात् परस्मैपदे सिचि। अक्षैषीत्। अक्षेष्यत्। **तप सन्तापे।।१४।।** तपति। ततापा तेपतुः। तेपुः। तेपिथ-ततप्थ। तेपिव। तेपिम। तप्ता। तप्स्यति। तपतु। अतपत्। तपेत्। तप्यात्। अताप्सीत्। अताप्ताम्। अतप्स्यत्। **क्रमु पादविक्षेपे।।१५।।**

....

नियम से यह धातु उपदेश अवस्था मे एकाच् और अनुदात्त है। अतः **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् का निषेध हो जाता है। इसी तरह लृट्, लुङ्, लृङ् लकार में भी इट् का निषेध हो जाता है।

लृट्- क्षेष्यति, क्षेष्यतः, क्षेष्यन्ति, क्षेष्यसि, क्षेष्यथः, क्षेष्यथ, क्षेष्यामि, क्षेष्यावः, क्षेष्यामः।
लोट्- क्षयतु-क्षयतात्, क्षयताम्, क्षयन्तु, क्षय-क्षयतात्, क्षयतम्, क्षयत, क्षयाणि, क्षयाव, क्षयाम। **लङ्**- अक्षयत्, अक्षयताम्, अक्षयन्, अक्षयः, अक्षयतम्, अक्षयत, अक्षयम्, अक्षयाव, अक्षयाम। **विधिलिङ्**- क्षयेत्, क्षयेताम्, क्षयेयुः, क्षयेः, क्षयेतम्, क्षयेत, क्षयेयम्, क्षयेव, क्षयेम।
४८३- **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः**। कृत् च सार्वधातुकञ्च कृत्सार्वधातुके, न कृत्सार्वधातुके अकृत्सार्वधातुके, तयोः अकृत्सार्वधातुकयोः। अकृत्सार्वधातुकयोः सप्तम्यन्तं, दीर्घः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है। **अचश्च** इस परिभाषा सूत्र से **अचः** की उपस्थिति होती है। **अयङ् यि क्ङिति** से **यि** की अनुवृत्ति आती है।

यकार जिस के आदि में हो ऐसे प्रत्यय के परे होने पर अजन्त अङ्ग को दीर्घ होता है किन्तु कृत्-संज्ञक प्रत्ययों और सार्वधातुक प्रत्ययों के परे होने पर नहीं।

क्षीयात्। क्षि से आशीर्लिङ्, तिप्, यासुट्, अनुबन्धलोप, संयोगादिलोप करके क्षि+यात् बना है। अकृत्सार्वधातुयोदीर्घः से दीर्घ होकर **क्षीयात्** सिद्ध हुआ।

आशीर्लिङ्- क्षीयात्, क्षीयास्ताम्, क्षीयासुः, क्षीयाः, क्षीयास्तम्, क्षीयास्त, क्षीयासम्, क्षीयास्व, क्षीयास्म।

४८४- **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु**। सिचि सप्तम्यन्तं, वृद्धिः प्रथमान्तं, परस्मैपदेषु सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है। **इको गुणवृद्धी** से **इकः** की उपस्थिति होती है। **अलोऽन्त्यस्य** की भी उपस्थिति है।

परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय जिससे परे हो ऐसे सिच् के परे रहते इगन्त अङ्ग को वृद्धि होती है।

क्षि से लुङ् लकार, तिप्, अट् का आगम, **इतश्च** से इकार का लोप, च्लि, उसके स्थान पर सिच् आदेश, अनिट् होने के कारण इट् नहीं किन्तु अपृक्त को मानकर होने वाला **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से ईट् का आगम करके **अक्षि+स्+ईत्** बना। **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से सिच् के परे रहते क्षि के इकार को वृद्धि करके **अक्षै+स्+ईत्** बना। सकार

वैकल्पिकश्यन्विधायकं विधिसूत्रम्

४८५. वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः ३।१।७०॥

एभ्यः श्यन् वा कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे। पक्षे शप्।

....

को षत्व करके वर्णसम्मेलन करके **अक्षैषीत्** सिद्ध हुआ। **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से होने वाला ईट् केवल तिप् और सिप् में ही हो पाता है, क्योंकि एक अल् अपृक्त यहीं पर ही मिलता है। अतः द्विवचन में **अक्षि+स्+ताम्** में वृद्धि, षत्व, षकार के परे तकार को ष्टुत्व करके **अक्षैष्टाम्** बनता है।

लुङ् के रूप- अक्षैषीत्, अक्षैष्टाम्, अक्षैषुः, अक्षैषीः, अक्षैष्टम्, अक्षैष्ट, अक्षैषम्, अक्षैष्व, अक्षैष्म। **लृङ् के रूप**- अक्षेष्यत्, अक्षेष्यताम्, अक्षेष्यन्, अक्षेष्यः, अक्षेष्यतम्, अक्षेष्यत, अक्षेष्यम्, अक्षेष्याव, अक्षेष्याम।

तप सन्तापे। तप धातु का **सन्ताप** अर्थ है। सन्ताप के भी अनेक अर्थ होते हैं- जैसे- तपना, चमकना, दुःखी होना, तपस्या करना, गरम करना आदि। प्रसंग के अनुसार अर्थ किया जाता है। अकार की इत्संज्ञा होकर **तप्** बचता है। अनिट् है, अतः भारद्वाजनियम में थल् में विकल्प से इट् होगा। इस धातु में कोई अलग से विशेष सूत्र नहीं लगता। अतः इसके रूप बनाने में कोई परेशानी नहीं है। लिट् में एत्वाभ्यास लोप, लिट् के थल् में वैकल्पिक इट्, लुङ् में **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि, लुङ् के द्विवचन आदि में **झलो झलि** से सकार का लोप करें।

लट्- तपति, तपतः, तपन्ति, तपसि, तपथः, तपथ, तपामि, तपावः, तपामः।

लिट्- तताप, तेपतुः, तेपुः, तेपिथ-ततप्थ, तेपथुः, तेप, तताप-ततप, तेपिव, तेपिम।

लुट्- तप्ता, तप्तारौ, तप्तारः, तप्तासि, तप्तास्थः, तप्तास्थ, तप्तास्मि, तप्तास्वः, तप्तास्मः।

लृट्- तप्स्यति, तप्स्यतः, तप्स्यन्ति, तप्स्यसि, तप्स्यथः, तप्स्यथ, तप्स्यामि, तप्स्यावः, तप्स्यामः।

लृट्- तपतु-तपतात्, तपताम्, तपन्तु, तप-तपतात्, तपतम्, तपत, तपानि, तपाव, तपाम।

लङ्- अतपत्, अतपताम्, अतपन्, अतपः, अतपतम्, अतपत, अतपम्, अतपाव, अतपाम।

विधिलिङ्- तपेत्, तपेताम्, तपेयुः, तपेः, तपेतम्, तपेत, तपेयम्, तपेव, तपेम।

आशीर्लिङ्- तप्यात्, तप्यास्ताम्, तप्यासुः, तप्याः, तप्यास्तम्, तप्यास्त, तप्याम्, तप्यास्व, तप्यास्म।

लुङ्- अताप्सीत्, अताप्ताम्, अताप्सुः, अताप्सीः, अताप्तम्, अताप्त, अताप्सम्, अताप्स्व, अताप्स्म।

लृङ्- अतप्स्यत्, अतप्स्यताम्, अतप्स्यन्, अतप्स्यः, अतप्स्यतम्, अतप्स्यत, अतप्स्यम्, अतप्स्याव, अतप्स्याम।

क्रमु पादविक्षेपे। क्रमु धातु पादविक्षेप अर्थात् कदम बढ़ाना, चलना अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होती है, **क्रम्** शेष रहता है। उदित् होने से **उदितो वा** की प्रवृत्ति कृत्प्रकरण में होती है। यह धातु सेट् है अर्थात् थल्, तासि आदि में इट् होता है।

४८५- वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः। भ्राशश्च भ्लाशश्च भ्रमुश्च क्रमुश्च, क्लमुश्च, त्रसिश्च त्रुटिश्च लष् च तेषां समाहारद्वन्द्वः भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुंटिलष्, तस्माद् भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः। वा अव्ययपदं, भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **दिवादिभ्यः श्यन्** से **श्यन्, सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके,** और **कर्तरि शप्** से **कर्तरि** की अनुवृत्ति आती है।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

४८६. क्रमः परस्मैपदेषु ७।३।७६।।

क्रमो दीर्घः परस्मैपदे शिति। क्राम्यति, क्रामति। चक्राम। क्रमिता। क्रमिष्यति। क्राम्यतु, क्रामतु। अक्राम्यत्, अक्रामत्। क्राम्येत्, क्रामेत्। क्रम्यात्, अक्रमीत्। अक्रमिष्यत्। **पा पाने।।१६।।**

....

कर्ता अर्थ वाले सार्वधातुक के परे होने पर भ्राश्, भ्लाश्, भ्रम्, क्रम्, क्लम्, त्रस्, त्रुटि और लष् धातुओं से विकल्प से श्यन् होता है।

यह शप् को बाधकर के होता है। वैकल्पिक है, अतः न होने के पक्ष में शप् भी हो जाता है। श्यन् में शकार और नकार की इत्संज्ञा होती है। शित् के अनेक प्रयोजन हैं। सामान्यतया श्यन् दिवादिगणीय धातुओं से होता है किन्तु यहाँ पर उक्त धातुओं से विशेष विधान किया गया है। यहाँ प्रसंग में **क्रम्** धातु है।

४८६- क्रमः परस्मैपदेषु। क्रमः पञ्चम्यन्तं, परस्मैपदेषु सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ष्ठिवुक्लमुचमां शिति** से **शिति** और **शमामष्टानां दीर्घः श्यनि** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

परस्मैपदपरक शित् के परे होने पर क्रम को दीर्घ होता है।

अचश्च से **अचः** की उपस्थिति होने से **क्रम्** में अच्-अकार के स्थान पर दीर्घ हो जायेगा। परस्मैपद में ही दीर्घ होता है। यदि अर्थभेद या उपसर्ग आदि से यह धातु आत्मनेपदी हो जाय तो दीर्घ नहीं होता है। जैसे- प्रक्रमते, आक्रमते।

क्राम्यति। क्रम् से लट्, तिप्, शप् प्राप्त, उसे बाधकर के **वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः** से वैकल्पिक श्यन्, अनुबन्धलोप करके **क्रम्+यति** बना। **क्रमः परस्मैपदेषु** से दीर्घ होकर **क्राम्+यति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **क्राम्यति** सिद्ध हुआ। श्यन् न होने के पक्ष में शप् ही होता है। अतः **क्रामति** यह रूप बनेगा। दीर्घ दोनों में होता है, क्योंकि शप् और श्यन् दोनों ही शित् प्रत्यय हैं।

लट्-लकार श्यन् पक्ष में- क्राम्यति, क्राम्यतः, क्राम्यन्ति, क्राम्यसि, क्राम्यथः, क्राम्यथ, क्राम्यामि, क्राम्यावः, क्राम्यामः। **शप् पक्ष में-** क्रामति, क्रामतः, क्रामन्ति, क्रामसि, क्रामथः, क्रामथ, क्रामामि, क्रामावः, क्रामामः। **लिट्-** चक्राम, चक्रमतुः, चक्रमुः, चक्रमिथ, चक्रमथुः, चक्रम, चक्राम-चक्रम, चक्रमिव, चक्रमिम। **लुट्-**क्रमिता, क्रमितारौ, क्रमितारः, क्रमितासि। **लृट्-** क्रमिष्यति, क्रमिष्यतः, क्रमिष्यन्ति, क्रमिष्यसि। **लोट् , श्यन्-पक्षे-** क्राम्यतु-क्राम्यतात्, क्राम्यताम्, क्राम्यन्तु। **शप्पक्षे-** क्रामतु-क्रामतात्, क्रामताम्, क्रामन्तु। **लङ्- श्यन्पक्षे-** अक्राम्यत्, अक्राम्यताम्, अक्राम्यन्। **शप्पक्षे-** अक्रामत्, अक्रामताम्, अक्रामन्। **विधिलिङ्-** क्राम्येत्, क्राम्येताम्, क्राम्येयुः। क्रामेत्, क्रामेताम्, क्रामेयुः। **आशीर्लिङ्-** क्रम्यात्, क्रम्यास्ताम्, क्रम्यासुः आदि।

लुङ् में- अक्रम्+इस्+ईत् बनने के बाद **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि प्राप्त, उसका **नेटि** से निषेध प्राप्त, उसे भी बाधकर **अतो हलादेर्लघोः** से वैकल्पिक इट् प्राप्त, मकारान्त होने के कारण उसे भी बाधकर के **ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्वेदिताम्** से निषेध हुआ। सकार का **इटः इटि** से लोप करके सवर्णदीर्घ करने पर **अक्रमीत्** यह रूप बनता है। अक्रमीत्,

पिबाद्यादेशविधायकं सूत्रम्

४८७. पा-घ्रा-ध्मा-स्था-म्ना-दाण्-दृश्यर्ति-सर्ति-शद-सदां पिब-जिघ्र-धम-तिष्ठ-मन-यच्छ-पश्यर्च्छ-धौ-शीय-सीदा: ७।३।७८॥

पादीनां पिबादय: स्युरित्संज्ञकशकारादौ प्रत्यये परे। पिबादेशोऽदन्तस्तेन न गुण:। पिबति।

....

अक्रमिष्टाम्, अक्रमिषु:, अक्रमी:, अक्रमिष्टम्, अक्रमिष्ट, अक्रमिषम्, अक्रमिष्व, अक्रमिष्म। **लृङ् में-** अक्रमिष्यत्, अक्रमिष्यताम्, अक्रमिष्यन् आदि।

पा धातु पीने के अर्थ में है। अनिट् है। **पिबति**= पीता है।

४८७- पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीय-सीदा:। पाश्च घ्राश्च ध्माश्च स्थाश्च म्नाश्च दाण्च दृशिश्च अर्तिश्च सर्तिश्च शद् च, सद् च तेषामितरेतरद्वन्द्व: पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसद:, तेषां पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्ति-सर्तिशदसदां। पिबश्च जिघ्रश्च धमश्च तिष्ठ, मनश्च यच्छश्च पश्यश्च ऋच्छश्च धौश्च शीयश्च सीदश्च तेषामितरेतरद्वन्द्व: पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदा:। पाघ्राध्मास्थाम्ना-दाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां षष्ठ्यन्तं, पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदा: प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ष्ठिवुक्लमुचमां शिति** से **शिति** की अनुवृत्ति आती है।

इत्संज्ञक शकरादि प्रत्यय के परे रहते पा, घ्रा आदि धातुओं के स्थान पर पिब, जिघ्र आदि आदेश होते हैं।

इत्संज्ञक शकार जैसे तिङन्त प्रकरण में **शप्, श्यन्, श** आदि और **कृदन्त प्रकरण** के **शतृ, शानच्, खश्** आदि प्रत्ययों के परे होने पर यह सूत्र **पा, घ्रा** आदि धातुओं के स्थान पर **पिब, जिघ्र** आदि आदेश करता है। **यथासंख्यमनुदेश: समानाम्** के नियम से क्रमश: होता है और सभी आदेश अनेकाल् हैं, अत: **अनेकाल्शित्सर्वस्य** के नियम से सर्वादेश भी होता है। लिट्, लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ् और लृङ् लकारों में यह आदेश नहीं होगा, क्योंकि यहाँ शकार-इत्संज्ञक प्रत्यय नहीं मिलता है। **ये पिब** आदि आदेश अदन्त हैं। यदि हलन्त आदेश होते तो **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण होकर **पेबति** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

इस प्रकार से **पा** के स्थान पर **पिब, घ्रा** के स्थान पर **जिघ्र, ध्मा** के स्थान पर **धम, स्था** के स्थान पर **तिष्ठ, म्ना** के स्थान पर **मन, दाण्** के स्थान पर **यच्छ, दृश्** के स्थान पर **पश्य, ऋ** के स्थान पर **ऋच्छ, सृ** के स्थान पर **धौ, शद्** के स्थान पर **शीय** और **सद्** के स्थान पर **सीद** आदेश होंगे।

पिबति। पा धातु से लट्, तिप्, शप् अनुबन्धलोप करके **पा+अ+ति** बना। **पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदा:** से शकार इत्संज्ञक शप् वाले अकार के परे होने पर पा के स्थान पर पिब आदेश हुआ, **पिब अ ति** बना। **पिब+अ** में **अतो गुणे** से पररूप हुआ- **पिबति।**

लट्- पिबति, पिबत:, पिबन्ति। पिबसि, पिबथ:, पिबथ। पिबामि, पिबाव:, पिबाम:।

औकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४८८. आत औ णलः ७।१।३४॥

आदन्ताद्धातोर्णल औकारादेशः स्यात्। पपौ।

आकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

४८९. आतो लोप इटि च ६।४।६४॥

अजाद्योरार्धधातुकयोः क्ङिदिटोः परयोरातो लोपः।

पपतुः। पपुः। पपिथ, पपाथ। पपथुः। पप। पपौ। पपिव। पपिम। पाता। पास्यति। पिबतु। अपिबत्। पिबेत्।

....

४८८- **आत औ णलः**। आतः पञ्चम्यन्तम्, औ लुप्तप्रथमाकं, णलः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

आकारान्त धातु से परे लिट् लकार के णल् के स्थान पर औकार आदेश होता है।

पपौ। पा धातु से लिट् लकार, तिप् आदेश, उसके स्थान पर णल् आदेश करके **पा अ** बना। शकार-इत्संज्ञक प्रत्यय के अभाव में पिब आदेश नहीं हुआ। **आत औ णलः** से णल् के अकार के स्थान पर औकार आदेश हुआ- **पा औ** बना। पा का द्वित्व, **पा पा औ**, एक ही हल् है, अतः हलादि शेष की कोई आवश्यकता नहीं। **ह्रस्वः** से प्रथम पा के आकार को ह्रस्व हुआ **पपा+औ** में **वृद्धिरेचि** से वृद्धि होकर **पपौ** बना।

४८९- **आतो लोप इटि च**। आतः षष्ठ्यन्तं, लोपः प्रथमान्तम्, इटि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुके** का अधिकार है और **दीङो युडचि क्ङिति** से **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

अजादि आर्धधातुक कित्, ङित् प्रत्यय और आर्धधातुक इट् आगम के परे रहते आकार का लोप होता है।

पपतुः। **पा** धातु से लिट्, तस्, अतुस् आदेश, **लिट् च** से आर्धधातुकसंज्ञा **पा अतुस्** में द्वित्व, ह्रस्व, पपा **अतुस्** हुआ। अजादि आर्धधातुक परे है अतुस्, अतः **आतो लोप इटि च** से पपा के आकार का लोप हुआ **पप् अतुस्** बना। वर्णसम्मेलन और सकार को रुत्वविसर्ग हुआ- **पपतुः**। इसी प्रकार से **पपुः** भी बनाइये।

पपिथ-पपाथ। पा धातु से लिट्, सिप्, थल्, द्वित्व, ह्रस्व करके **पपा थ** बना है। **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् प्राप्त था, उसका **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध प्राप्त हुआ तो उसे भी बाधकर **ऋतो भारद्वाजस्य** से वैकल्पिक इट् हुआ। इट् होने के पक्ष में **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप होकर **पप्+इथ** हुआ और वर्णसम्मेलन करके **पपिथ** सिद्ध हो गया। इट् के न होने के पक्ष में **पपाथ** ही रह जायेगा।

पपथुः। **पप**। इन दोनो में लिट्, थस् और थ, उनके स्थान पर अथुस् और अ आदेश करके द्वित्व, ह्रस्व, **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करें।

पपौ। जैसे प्रथमपुरुष के णल् में बनाया था, उसी प्रकार से उत्तमपुरुष के णल् में भी बनाइये।

एत्वविधायकं विधिसूत्रम्

४९०. एर्लिङि ६।४।६७॥

घुसंज्ञकानां मास्थादीनां च एत्वं स्यादार्धधातुके किति लिङि।

पेयात्। **गातिस्थेति सिचो लुक्।** अपात्। अपाताम्।

जुसादेशविषयकं नियमसूत्रम्

४९१. आतः ३।४।११०॥

सिज्लुकि आदन्तादेव झेर्जुस्।

....

पपिव। पपिम। इन दोनों प्रयोग में **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् और **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप करना न भूलें।

इस प्रकार से पा धातु के लिट् लकार में **पपौ, पपतुः, पपुः, पपिथ-पपाथ, पपथुः, पप, पपौ, पपिव, पपिम** ये रूप सिद्ध हुए।

एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् से इट् निषेध होने के कारण यह धातु अनिट् है। अतः तासि, स्य, सिच् के परे रहने पर भी इट् का आगम नहीं होगा।

पाता। पा धातु से लुट्, तिप्, तासि, इट् प्राप्त, इट् का निषेध, डा आदेश, टि का लोप करके पाता बन जाता है। पाता, पातारौ, पातारः, पातासि, पातास्थः, पातास्थ, पातास्मि, पातास्वः, पातास्मः।

लृट्- पास्यति, पास्यतः, पास्यन्ति, पास्यसि, पास्यथः, पास्यथ, पास्यामि, पास्यावः, पास्यामः।

लोट्- पिबतु-पिबतात्, पिबताम्, पिबन्तु। पिब-पिबतात्, पिबतम्, पिबत, पिबानि, पिबाव, पिबाम।

लङ्- अपिबत्, अपिबताम्, अपिबन्, अपिबः, अपिबतम्, अपिबत, अपिबम्, अपिबाव, अपिबाम।

विधिलिङ्- पिबेत्, पिबेताम्, पिबेयुः, पिबेः, पिबेतम्, पिबेत, पिबेयम्, पिबेव, पिबेम।

४९०- एर्लिङि। एः प्रथमान्तं, लिङि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **घुमास्थागापाजहातिसां हलि** से **घुमास्थागापाजहातिसाम्** तथा **दीङो युडचि क्ङिति** से **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

आर्धधातुकसंज्ञक कित्-लिङ् परे हो तो घुसंज्ञक धातु तथा मा, स्था, गा, पा, हा और षो धातु को एकार आदेश होता है।

यह आदेश अङ्ग को होता है, फलतः अङ्ग के अन्त में विद्यमान आकार के स्थान पर ही होगा।

पेयात्। पा धातु से आशीर्वाद अर्थ में लिङ् लकार, तिप्, यासुट् का आगम, **किदाशिषि** से यासुट् को कित्व, **एर्लिङि** से पा में आकार के स्थान पर एकार आदेश हुआ- **पेयात्।** इस प्रकार से पा धातु के आशिर्लिङ् में रूप बनते हैं- **पेयात्, पेयास्ताम्, पेयासुः, पेयाः, पेयास्तम्, पेयास्त, पेयासम्, पेयास्व, पेयास्म।**

अपात्। अपाताम्। पा धातु से लुङ् लकार, तिप्, अट् का आगम, च्लि, सिच्, ति में इकार का लोप, **अपा स् त्** बना। अनिट् धातु होने के कारण इट् आगम नहीं हुआ। सिच् के सकार का **गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु** से लोप होने के कारण विद्यमान सिच् नहीं रहा। अतः **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से दीर्घ ईट् आगम भी नहीं हुआ- **अपात्।** इसी प्रकार से द्विवचन में **अपाताम्** भी बनाइये।

परऱूपविधायकं विधिसूत्रम्

४९२. उस्यपदान्तात् ६।१।९६

अपदान्तादकारादुसि परे पररूपमेकादेशः।

अपुः। अपास्यत्। **ग्लै हर्षक्षये॥१७॥** ग्लायति।

आत्वविधायकं विधिसूत्रम्

४९३. आदेच उपदेशेऽशिति ६।१।४५॥

उपदेशे एजन्तस्य धातोरात्त्वं न तु शिति।

जग्लौ। ग्लाता। ग्लास्यति। ग्लायतु। अग्लायत्। ग्लायेत्।

....

४९१- **आतः**। आतः पञ्चम्यन्तम्, एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च** से **सिचः** और **झेर्जुस्** पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

सिच् के लुक् होने पर आदन्त धातु से परे ही झि को जुस् आदेश होता है, अन्य धातुओं से परे को नहीं।

गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु से सिच् का लुक् हो चुका होता है, अतः सिच् का अर्थ सिच् का लुक् होने पर ऐसा अर्थ किया गया। यह सूत्र नियमार्थ है, क्योंकि झि के स्थान पर जुस् आदेश **सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च** से भी सिद्ध है। **सिद्धे सत्यारम्भमाणो विधिर्नियमाय भवति।** यहाँ यह नियम बनता है कि **सिच् का लुक् होने पर यदि झि को जुस् आदेश करना हो तो वह केवल आकारान्त धातुओं से परे ही हो, अन्य धातुओं से नहीं।**

४९२- **उस्यपदान्तात्**। न पदान्तम् अपदान्तम्, तस्मात् अपदान्तात्। उसि सप्तम्यन्तम्, अपदान्तात् पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **आद्गुणः** से **आत्** और **इको यणचि** से **अचि** की अनुवृत्ति तथा **एकः पूर्वपरयोः** का पूरा अधिकार आ रहा है।

अपदान्त अकार से उस् के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर पररूप एकादेश होता है।

अपुः। पा धातु से लुङ्, झि, अट् का आगम, च्लि, सिच्, सिच् के लुक् हो जाने पर **अ पा झि** बना हुआ है। झि के स्थान पर **आतः** से जुस् आदेश, अनुबन्धलोप, **अपा+उस्** बना। **आद्गुणः** से गुण प्राप्त था, उसे बाधकर **उस्यपदान्तात्** से पा में आकार और उस् के उकार के स्थान पर पररूप होकर उकार ही आदेश हुआ। **अप्+उस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर सकार का रुत्वविसर्ग हुआ- **अपुः**।

इस प्रकार से लुङ् लकार में निम्नलिखित रूप बन जाते हैं- अपात्, अपाताम्, अपुः, अपाः अपातम्, अपात, अपाम्, अपाव, अपाम।

लृङ् लकार में- अपास्यत्, अपास्यताम्, अपास्यन्, अपास्यः, अपास्यतम्, अपास्यत, अपास्यम्, अपास्याव, अपास्याम।

ग्लै हर्षक्षये। ग्लै धातु हर्षक्षय अर्थात् दुःखी होना, मुरझाना, थकना आदि अर्थ में है। अन्त में ऐ होने के कारण यह एजन्त धातु है। किसी वर्ण की इत्संज्ञा नहीं होती है।

वैकल्पिकात्वविधायकं विधिसूत्रम्

४९४. वाऽन्यस्य संयोगादेः ६।४।६८॥

घुमास्थादेरन्यस्य संयोगादेर्धातोरात एत्वं वाऽऽर्धधातुके किति लिङि। ग्लेयात्, ग्लायात्।

....

ग्लायति। ग्लै से लट्, तिप्, शप् करके **ग्लै+अति** बना। ऐकार के स्थान पर आय् आदेश होकर **ग्ल्+आय्+अति=ग्लायति** सिद्ध हुआ। **ग्लायतः, ग्लायन्ति** आदि।

४९३- आदेच उपदेशेऽशिति। श् इत् यस्य स शित्, न शित् अशित्, तस्मिन्(विषये) अशिति, नञ्तत्पुरुष। **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से **धातोः** की अनुवृत्ति आती है।

उपदेश अवस्था में एजन्त धातु के अन्त्य अल् के स्थान पर आकार आदेश होता है परन्तु शित्प्रत्यय का विषय हो तो नहीं।

लिट्, लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ्, लृङ् इन लकारों में शप्, श्यन् आदि नहीं होता, अतः ये अशित् है। इन लकारों में यह सूत्र लगता है और लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् इन लकारों में शित् होने के कारण नहीं लगता। **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से एच् अर्थात् ए, ओ, ऐ, औ के स्थान पर आकार आदेश होता है।

जग्लौ। ग्लै से लिट्, तिप्, णल्, **ग्लै+अ** बना। **आदेच उपदेशेऽशिति** से ऐकार के स्थान पर आकार आदेश हुआ, **ग्ला+अ** बना। **आत औ णलः** से णल् वाले अकार के स्थान पर औकार आदेश होकर **ग्ला+औ** बना। **ग्ला** को द्वित्व, हलादि शेष करके **गाग्ला+औ** बना। **ह्रस्वः** से गा को ह्रस्व होकर **गग्ला** बना। **कुहोश्चुः** से **चुत्व** होकर **जग्ला+औ** बना। वृद्धि होकर **जग्लौ** सिद्ध हुआ। **ग्लै** को आत्व करने के बाद यह **पा** धातु के जैसा आकारान्त बन जाता है। अतः पपतुः, पपुः आदि की तरह **जग्लतुः, जग्लुः, जग्लिथ-जग्लाथ, जग्लथुः, जग्ल, जग्लौ, जग्लिव, जग्लिम** बन जाते हैं। स्मरण रहे कि अशित् प्रत्ययों के परे आत्व होता है।

लुट्- ग्लाता, ग्लातारौ, ग्लातारः, ग्लातासि, ग्लातास्थः, ग्लातास्थ, ग्लातास्मि, ग्लातास्वः, ग्लातास्मः।**लृट्**- ग्लास्यति, ग्लास्यतः, ग्लास्यन्ति, ग्लास्यसि, ग्लास्यथः, ग्लास्यथ, ग्लास्यामि, ग्लास्यावः, ग्लास्यामः। **लोट्**- ग्लायतु-ग्लायतात्, ग्लायताम्, ग्लायन्तु, ग्लाय-ग्लायतात्, ग्लायतम्, ग्लायत, ग्लायानि, ग्लायाव, ग्लायाम। **लङ्**- अग्लायत्, अग्लायताम्, अग्लायन्, अग्लायः, अग्लायतम्, अग्लायत, अग्लायम्, अग्लायाव, अग्लायाम। **विधिलिङ्**- ग्लायेत्, ग्लायेताम्, ग्लायेयुः, ग्लायेः, ग्लायेतम्, ग्लायेत, ग्लायेयम्, ग्लायेव, ग्लायेम।

४९४- वान्यस्य संयोगादेः। संयोगः आदिर्यस्य स संयोगादिः, तस्य संयोगादेः। वा अव्ययपदम्, अन्यस्य षष्ठ्यन्तं, संयोगादेः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **एर्लिङि** से **लिङि, आतो लोप इटि च** से **आतः** और **दीङो युडचि क्ङिति** से **किति** की अनुवृत्ति आती है। **आर्धधातुके** और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

घु, मा, स्था आदि धातुओं से अतिरिक्त संयोगादि धातु के आकार के स्थान पर एकार आदेश विकल्प होता है आर्धधातुक कित् लिङ् परे हो तो।

अष्टाध्यायी के क्रम में इससे दो सूत्र पहले **घुमास्थागापाजहातिसां हलि** यह

इट्-सगागमविधायकं विधिसूत्रम्

४९५. यमरमनमातां सक् च ७।२।७३।।

एषां सक् स्यादेभ्यः सिच इट् स्यात् परस्मैपदेषु।

अग्लासीत्। अग्लास्यत्। **ह्वृ (ह्वृ) कौटिल्ये।।१८।।** ह्वरति।

....

सूत्र पढ़ा गया है। उसमें पठित धातुओं से भिन्न धातुओं को **अन्यस्य** से कहा गया है। पूर्व प्रसंग में आये धातुओं से अन्य धातुएँ यदि संयोगादि हों और अन्त में आकार हो तो ऐसे धातुओं के आकार के स्थान पर एकार आदेश कित् लिङ् अर्थात् आशीर्लिङ् के यासुट् के परे होने पर होता है।

ग्लेयात्, ग्लायात्। ग्लै से आशीर्लिङ्, तिप्, यासुट् आगम, कित्व करके **आदेच उपदेशेऽशिति** से आत्व होकर **ग्ला+यास्+त्** बना। **वान्यस्य संयोगादेः** से वैकल्पिक एकार आदेश करने पर **ग्लेयास् त्** बना। संयोगादि सकार का लोप करके **ग्लेयात्** बना। एकार आदेश न होने के पक्ष में आकार ही रह जाता है, **ग्लायात्**। इस तरह दो रूप बनते हैं। **आशीर्लिङ्** में **एत्वपक्ष** में- ग्लेयात्, ग्लेयास्ताम्, ग्लेयासुः, ग्लेयाः, ग्लेयास्तम्, ग्लेयास्त, ग्लेयासम्, ग्लेयास्व, ग्लेयास्म। **एत्व न होने पर** ग्लायात्, ग्लायास्ताम्, ग्लायासुः, ग्लायाः, ग्लायास्तम्, ग्लायास्त, ग्लायासम्, ग्लायास्व, ग्लायास्म।

४९५- **यमरमनमातां सक् च।** यमश्च रमश्च नमश्च आत् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः यमरमनमातः, तेषां यमरमनमातां षष्ठ्यन्तं, सक् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अञ्जेः सिचि** से सिचि तथा **स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु** से **परस्मैपदेषु** एवं **इडत्यर्तिव्ययतीनाम्** से **इट्** की अनुवृत्ति आती है।

परस्मैपद मे सिच् परे होने पर यम्, रम्, नम् तथा आकारान्त धातुओं सक् का आगम और साथ ही सिच् को इट् का आगम भी होता है।

यह सूत्र दो कार्य करता है- सक् का आगम और सिच् को इट् का आगम। सक् में ककार की इत्संज्ञा होती है और सकारोत्तरवर्ती अकार उच्चारणार्थक है। अतः केवल स् मात्र शेष बचता है।

अग्लासीत्। ग्लै से लुङ्, तिप्, सिच्, आत्व, **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से **ईट्** आगम करके **अग्ला+स्+ईत्** बना। **ग्ला** यह आकारान्त अङ्ग है। अतः **यभरमनमातां सक् च** से सक् और इट् होकर **अग्ला+स्+इ+स्+ईत्** बना। **इट ईटि** से सकार का लोप करके **इ+ई** में सवर्णदीर्घ होकर **अग्ला+स्+ईत्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अग्लासीत्** सिद्ध हुआ। द्विवचन में ईट् आगम नहीं होगा किन्तु सक् और इट् आगम होंगे, अतः सिच् के सकार का लोप भी नहीं होगा। **अग्लास्+इ+स्+ताम्** है। इकार से परे सकार को षकार और उससे परे तकार को ष्टुत्व होकर वर्णसम्मेलन करने पर **अग्लासिष्टाम्** सिद्ध हुआ।

लुङ्- अग्लासीत्, अग्लासिष्टाम्, अग्लासिषुः, अग्लासीः, अग्लासिष्टम्, अग्लासिष्ट, अग्लासिषम्, अग्लासिष्व, अग्लासिष्म। **लृङ्**- अग्लास्यत्, अग्लास्यताम्, अग्लास्यन्, अग्लास्यः, अग्लास्यतम्, अग्लास्यत, अग्लास्यम्, अग्लास्याव, अग्लास्याम।

ह्वृ कौटिल्ये। ह्+वृ=ह्वृ यह धातु **कुटिल व्यवहार करना** अर्थ में है। अनिट् है। इस धातु का प्रयोग कम ही होता है।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

४९६. ऋतश्च संयोगादेर्गुणः ७।४।१०॥

ऋदन्तस्य संयोगादेरङ्गस्य गुणो लिटि। उपधाया वृद्धिः। जह्वार। जह्वरतुः। जह्वरुः। जह्वर्थः। जह्वरथुः। जह्वर। जह्वार, जह्वर। जह्वरिव, जह्वरिम। ह्वर्ता।

इडागमविधायकं विधिसूत्रम्

४९७. ऋद्धनोः स्ये ७।२।७०॥

ऋतो हन्तेश्च स्यस्येट्। ह्वरिष्यति। ह्वरतु। अह्वरत्। ह्वरेत्।

....

ह्वरति। ह्वृ से लट्, तिप्, शप्, गुण करके **ह्वृ+अर्+अ+ति**, वर्णसम्मेलन करके **ह्वरति** सिद्ध होता है।

४९६- ऋतश्च संयोगादेः। संयोगः आदिर्यस्य स संयोगादिः, तस्य संयोगादेः। ऋतः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, संयोगादेः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **दयेतेर्दिगि लिटि** से **लिटि** की अनुवृत्ति आती है।

संयोग आदि में हो ऐसे ऋदन्त अङ्ग को गुण होता है लिट् के परे होने पर।

यद्यपि **तिप्** में इस सूत्र की आवश्यकता नहीं है। **ह्वृ** से लिट्, तिप्, णल्, अ, ह्वृ को द्वित्व होकर **उरत्** से अर् करके हलादिशेष, **हह्वृ+अ**, **कुहोश्चुः** से चुत्व करके जकार और **अचो ञ्णिति** से वृद्धि करने पर **जह्वार** बन जाता है किन्तु तस् आदि में वृद्धि नहीं होती है। अतः इस सूत्र की आवश्यकता होती है। जब सूत्र पढ़ा ही गया है और अन्य सूत्रों का अपवाद भी बन रहा है तो तिप् में भी यह सूत्र प्रवृत्त होगा।

जह्वार। ह्वृ से लिट्, तिप्, णल् करके **द्विर्वचनेऽचि** के अनुसार सर्वप्रथम द्वित्व, **उरत्** से अर्, हलादिशेष, चुत्व करके **झ** आदेश, **अभ्यासे चर्च** से झकार के स्थान पर जकार आदेश करके **जह्वृ+अ** बना। अब **अचो ञ्णिति** से वृद्धि प्राप्त थी, उसे बाधकर के **ऋतश्च संयोगादेः** से गुण होकर **जह्वर्+अ** बना। अब **अत उपधायाः** से उपधा की वृद्धि करके **जह्वार+अ**, वर्णसम्मेलन करके **जह्वार** सिद्ध हुआ। तस् आदि में भी यही प्रक्रिया होती है। वहाँ पर वृद्धि प्राप्त नहीं होती है किन्तु **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से प्राप्त गुण का **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित्व होने के कारण **क्ङिति च** से निषेध हो रहा था। अतः **ऋतश्च संयोगादेः** से पुनः गुण होता है। **थल्** में ऋदन्त धातु होने के कारण अन्यमत और भारद्वाजमत दोनों के नियम से इट् नहीं होता है। इस तरह लिट् में रूप बने- जह्वार, जह्वरतुः, जह्वरुः, जह्वर्थ, जह्वरथुः, जह्वर, जह्वार-जह्वर, जह्वरिव, जह्वरिम।

अनिट् होने के कारण **लुट् में**- ह्वर्ता, ह्वर्तारौ, ह्वर्तारः, ह्वर्तासि, ह्वर्तास्थः, ह्वर्तास्थ, ह्वर्तास्मि, ह्वर्तास्वः, ह्वर्तास्मः।

४९७- ऋद्धनोः स्ये। ऋत् च हन् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः ऋद्धनौ, तयोः ऋद्धनोः। ऋद्धनोः षष्ठ्यन्तं, पञ्चम्यर्थे षष्ठी। स्ये सप्तम्यन्तं, षष्ठ्यर्थे सप्तमी। द्विपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुस्येड्वलादेः** से **इट्** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

ऋदन्त धातु तथा हन् धातु से परे स्य को इट् का आगम होता है।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

४९८. गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः ७।४।२९॥

अर्तेः संयोगादेर्ऋदन्तस्य च गुणः स्याद्यकि यादावार्धधातुके लिङि च। ह्वर्यात्। अह्वार्षीत्। अह्वरिष्यत्। **श्रु श्रवणे॥१९॥**

....

हन् और **ऋकारान्त** धातुओं के अनुदात्त और एकाच् होने के कारण अनिट् होने से **तासि** प्रत्यय के परे भी अनिट् हैं और **स्य** के परे भी अनिट् ही थे परन्तु आचार्य **स्य** को इट् आगम करना चाहते हैं। अतः उन्होंने इस सूत्र का आरम्भ किया। हन् धातु का उदाहरण अदादि में मिलता है। यहाँ पर केवल ऋदन्त का उदाहरण है।

ह्वरिष्यति। ह्वृ से लृट्, तिप्, स्य, आर्धधातुकसंज्ञा, अनुदात्त धातु होने के कारण **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् का निषेध प्राप्त था, स्य के परे **ऋद्धनोः स्ये** से इट् का विधान किया गया। **ह्वृ+स्य+ति** में इट् आगम करके ह्वृ के ऋकार को **सार्वधातुकार्धधातुयोः** से गुण करके **ह्वर्+इ+स्य+ति** बना। इकार से परे सकार को षत्व करके वर्णसम्मेलन करने पर **ह्वरिष्यति** सिद्ध हुआ।

लृट् में- ह्वरिष्यति, ह्वरिष्यतः, ह्वरिष्यन्ति, ह्वरिष्यसि, ह्वरिष्यथः, ह्वरिष्यथ, ह्वरिष्यामि, ह्वरिष्यावः, ह्वरिष्यामः।

लोट्- ह्वरतु-ह्वरतात्, ह्वरताम्, ह्वरन्तु, ह्वर-ह्वरतात्, ह्वरतम्, ह्वरत, ह्वराणि, ह्वराव, ह्वराम।

लङ्- अह्वरत्, अह्वरताम्, अह्वरन्, अह्वरः, अह्वरतम्, अह्वरत, अह्वरम्, अह्वराव, अह्वराम।

विधिलिङ्- ह्वरेत्, ह्वरेताम्, ह्वरेयुः, ह्वरेः, ह्वरेतम्, ह्वरेत, ह्वरेयम्, ह्वरेव, ह्वरेम।

४९८- **गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः**। अर्तिश्च संयोगादिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः, अर्तिसंयोगादी, तयोः अर्तिसंयोगाद्योः। **रीङ् ऋतः** से **ऋतः** तथा **अकृत्सार्वधातुकयोः** से **असार्वधातुके** एवं **रिङ् शयग्लिङ्क्षु** से **यग्लिङोः** और **अयङ् यि क्ङिति** से **यि** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार आ रहा है।

ऋ-धातु तथा संयोगादि ऋदन्त धातु के अङ्ग को गुण होता है यक् अथवा यकारादि धातु के परे होने पर।

अर्ति से ऋ धातु को लिया गया है। **ऋतः** की अनुवृत्ति लाकर संयोगादि को उसका विशेषण बनाया गया है। संयोगादि जो ऋदन्त धातु। यहाँ ह्वृ संयोगादि ऋदन्त धातु है। यासुट् आगम होने पर यकारादि आर्धधातुक मिलता है। **क्ङिति च** से प्राप्त निषेध में यह गुण करता है।

ह्वर्यात्। ह्वृ से आशीर्लिङ्, तिप्, **लिङाशिषि** से आर्धधातुकसंज्ञा, यासुट् का आगम करके उसको **किदाशिषि** से कित्व किये जाने के कारण **ह्वृ+यास्+त्** में प्राप्त गुण का **क्ङिति च** से निषेध प्राप्त था। **गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः** से गुण हुआ। **ह्वर्+यास्+त्** बना। सकार का **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से लोप होकर वर्णसम्मेलन हुआ- **ह्वर्यात्।**

आशीर्लिङ्- ह्वर्यात्, ह्वर्यास्ताम्, ह्वर्यासुः, ह्वर्याः, ह्वर्यास्तम्, ह्वर्यास्त, ह्वर्यासम्, ह्वर्यास्व, ह्वर्यास्म।

अह्वार्षीत्। लुङ्, तिप्, इकार का लोप, च्लि, सिच्, ईट् का आगम, अट् का आगम आदि होकर **अह्वृ+स्+ईत्** बना है। **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से ऋकार की वृद्धि होकर **अह्वार्+स्+ईत्** बना। रेफ इण् में आता है। अतः **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व होकर वर्णसम्मेलन हुआ- **अह्वार्षीत्।**

श्रृ इत्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

४९९. श्रुवः शृ च ३।१।७४॥

श्रुवः शृ इत्यादेशः स्यात्, श्नुप्रत्ययश्च। शृणोति।

ङिद्वद्भावविधायकम् अतिदेशसूत्रम्

५००. सार्वधातुकमपित् १।२।४॥

अपित्सार्वधातुकं ङिद्वत्। शृणुतः।

....

लुङ्- अह्वार्षीत्, अह्वार्ष्टाम्, अह्वार्षुः, अह्वार्षीः, अह्वार्ष्टम्, अह्वार्ष्ट, अह्वार्षम्, अह्वार्ष्व, अह्वार्ष्म। लृङ् में **ऋद्धनोः स्ये** से इट् आगम होता है। **रूप**- अह्वरिष्यत्, अह्वरिष्यताम्, अह्वरिष्यन्, अह्वरिष्यः, अह्वरिष्यतम्, अह्वरिष्यत, अह्वरिष्यम्, अह्वरिष्याव, अह्वरिष्याम।

ह्व की तरह **स्मृ चिन्तायाम्** के भी रूप बनते हैं। **स्मरति। सस्मार। स्मर्ता। स्मरिष्यति। स्मरतु। अस्मरत्। स्मरेत्। स्मर्यात्। अस्मार्षीत्। अस्मरिष्यत्।**

श्रु श्रवणे। श्रु धातु सुनने के अर्थ में है।

४९९- श्रुवः शृ च। श्रुवः पञ्चम्यन्तं, शृ लुप्तप्रथमाकं पदं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **स्वादिभ्यः श्नुः** से **श्नुः, कर्तरि शप्** से **कर्तरि** और **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

कर्ता अर्थ को कहने वाले सार्वधातुक के परे होने पर श्रु के स्थान पर शृ आदेश और उससे परे श्नु प्रत्यय भी होता है।

यह सूत्र दो कार्य एक साथ करता है- एक तो **श्रु** के स्थान पर **शृ** आदेश और **कर्तरि शप्** से प्राप्त शप् को बाधकर **श्नु** प्रत्यय। श्नु में शकार की इत्संज्ञा होती है, नु मात्र बचता है। शित् होने के कारण सार्वधातुकसंज्ञा होती है। अपित् सार्वधातुक बन जाने के कारण **सार्वधातुकमपित्** से ङित् होने के कारण नु परे रहते शृ को गुण निषेध हो जाता है।

शृणोति। श्रु से लट्, तिप्, शप् प्राप्त, उसे बाधकर **श्रुवः शृ च** से **श्रु** के स्थान पर शृ आदेश और श्नु प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **शृ नु ति** बना। नु की सार्वधातुकसंज्ञा करके अग्रिम सूत्र **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव करने के बाद **शृ** के ऋकार को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से प्राप्त गुण का **क्ङिति च** से निषेध हो गया किन्तु ति को सार्वधातुक मानकर नु के उकार को उक्त सूत्र से गुण हुआ। **शृ+नोति** बना। **ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्** इस वार्तिक से नकार को णत्व करके **शृणोति** सिद्ध हुआ।

५००- सार्वधातुकमपित्। सार्वधातुकं प्रथमान्तम्, अपित् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्** से **ङित्** की अनुवृत्ति आती है।

अपित् (पित्-भिन्न) सार्वधातुक ङित् की तरह होता है।

यह अतिदेश-सूत्र है। जो सार्वधातुक पित् न हो, उसे यह ङित् जैसे होने का अतिदेश करता है, अर्थात् ङित् को मानकर होने वाले समस्त कार्य हो जाते हैं। ङित् को मानकर **क्ङिति च** से गुणवृद्धिनिषेध आदि कार्य होते हैं। परस्मैपद में तिप्, सिप् और मिप् ये तीन प्रत्यय पित् हैं, अतः इनको ङिद्वत् नहीं होता और शेष छः प्रत्ययों को ङिद्वत् हो जाता है किन्तु आत्मनेपद में तो कोई भी प्रत्यय पित् नहीं है, अर्थात् सभी अपित् हैं, अतः सभी

यण्विधायकं विधिसूत्रम्

५०१. हुश्नुवोः सार्वधातुके ६।४।८७॥

हुश्नुवोरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्योवर्णस्य यण् स्यादचि सार्वधातुके। श्रृण्वन्ति।श्रृणोषि।श्रृणुथः।श्रृणुथ।श्रृणोमि।

वैकल्पिकोकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

५०२. लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः ६।४।१०७॥

असंयोगपूर्वस्य प्रत्ययोकारस्य लोपो वा म्वोः परयोः। श्रृण्वः,श्रृणुवः।श्रृण्मः,श्रृणुमः। शुश्राव। शुश्रुवतुः। शुश्रुवुः। शुश्रोथ। शुश्रुवथुः। शुश्रुव। शुश्राव। शुश्रुव। शुश्रुम। श्रोता। श्रोष्यति।श्रृणोतु, श्रृणुतात्।श्रृणुताम्।श्रृण्वन्तु।

....

प्रत्ययों में ङिद्वद्भाव हो जाता है। शप् में पकार की इत्संज्ञा होती है, अतः पित् होने के कारण ङित् नहीं हो सका। फलतः **भवति** इत्यादि प्रयोगों में **क्ङिति च** से गुण का निषेध नहीं हुआ।

श्रृणुतः। श्रु से लट्, तस्, शप् प्राप्त, उसे बाधकर श्रृ आदेश और श्नु प्रत्यय करके **श्रृ+नु+तस्** बना। श्नु और तस् दोनों अपित् और सार्वधातुक हैं। अतः **सार्वधातुकमपित्** से दोनों को ङिद्वद्भाव करके दोनों जगह **क्ङिति च** से गुण का निषेध होने पर **श्रृणुतः** बना।

५०१- हुश्नुवोः सार्वधातुके। हुश्च श्नुश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो हुश्नुवौ, तयोर्हुश्नुवोः। हुश्नुवोः षष्ठ्यन्तं, सार्वधातुके सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **अचि**, **इणो यण्** से **यण्**, **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** से **अनेकाचः** और **असंयोगपूर्वस्य** तथा **ओः सुपि** से **ओः** की अनुवृत्ति आती है।

हु धातु और श्नु-प्रत्ययान्त जो अनेकाच् अङ्ग, उसके असंयोगपूर्व उकार के स्थान पर यण् आदेश होता है अजादि सार्वधातुक परे हो तो।

हु और **श्नु** के **उकार** को गुण होता है यदि **श्नु** के उकार के पहले संयोग न हो, और नु को लेकर अनेकाच् बनता हो तो। किसी भी धातु में नु के लगने के बाद तो अनेकाच् बनेगा ही। अनेकाच् अङ्ग और उकार से पूर्व संयोग न हो, ऐसा कहने से आप्+नु+अन्ति में उकार से पहले पकार और नकार का संयोग है। अतः वहाँ यण् न होकर उवङ् होता है।

श्रृण्वन्ति। श्रु से झि, अन्त् आदेश, श्रृ आदेश और **श्नु** प्रत्यय करके **श्रृनु+अन्ति** बना। श्रृनु अनेकाच् अङ्ग है और नु का उकार असंयोगपूर्व भी है अर्थात् उकार के पहले संयोग भी नहीं है। अतः **हुश्नुवोः सार्वधातुके** से उकार के स्थान पर यण् होकर व् आदेश हुआ। **श्रृन्व्+अन्ति** में **णत्व** और वर्णसम्मेलन करके **श्रृण्वन्ति** सिद्ध हुआ।

श्रृणोषि। **श्रृणोति** की तरह इसे भी बनाइये। **श्रृणोमि** भी इसी तरह बनता है। **श्रृणुतः** की तरह **श्रृणुथः** और **श्रृणुथ** भी बनता है।

५०२- लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः। म् च व् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो म्वौ, तयोर्म्वोः। लोपः प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तं, म्वोः सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् से उतः की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है। **अस्य** पद से पूर्व सूत्र का परामर्श होता है।

असंयोगपूर्व प्रत्यय के उकार का विकल्प से लोप होता है म् और व् के परे होने पर।

जो प्रत्यय का उकार है, वह असंयोगपूर्व हो अर्थात् उस उकार से पूर्व में संयोग न हो। **श्रु** की अवस्था में उकार के पहले **श्+र्** का संयोग है और **शृणु** की अवस्था में उकार के अव्यवहित पहले केवल **ण्** मात्र है, अर्थात् संयोग नहीं है।

शृण्वः, शृणुवः। उत्तमपुरुष के द्विवचन में **शृणु+वस्** बनाने के बाद **लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः** से उकार का लोप करने पर **शृण्वः**, लोप न होने पर **शृणुवः**। इसी तरह बहुवचन में **शृण्मः, शृणुमः** दो-दो रूप बनते हैं।

शुश्राव। लिट् में शप् की प्राप्ति नहीं है, अतः शृ आदेश भी नहीं और **श्नु** प्रत्यय भी नहीं है। **श्रु** से लिट्, तिप्, णल् करके **श्रु+अ** बना। **श्रु** को द्वित्व करके **श्रुश्रु,** हलादिशेष करके **शुश्रु+अ** बना। **अचो ञ्णिति** से वृद्धि करने पर **शुश्रौ+अ** बना। **आव्** आदेश करके वर्णसम्मेलन करने पर **शुश्राव** यह रूप सिद्ध हुआ।

शुश्रुवतुः। द्विवचन में अतुस् होता है। **श्रु+अतुस्** में **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित्व हो गया है। **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से प्राप्त गुण का कित् होने के कारण **क्ङिति च** से निषेध हुआ। फिर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् प्राप्त था किन्तु **द्विर्वचनेऽचि** के नियम से निषेध हुआ तो पहले द्वित्व हुआ। हलादिशेष करके **शुश्रु+अतुस्** बना। अब उवङ् आदेश और अनुबन्धलोप करके **शुश्र्+उव्+अतुस्** बना। वर्णसम्मेलन और सकार को रुत्वविसर्ग करके **शुश्रुवतुः** बना। इसी तरह **शुश्रुवुः, शुश्रुवथुः, शुश्रुव** भी बनते हैं। मध्यमपुरुष के एकवचन में **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् निषेध होने के कारण **शुश्रु+थ** बना है। सिप् पित् होने के कारण कित् न हो सका। अतः गुण होने में कोई बाधा नहीं है। गुण होकर **शुश्रोथ** सिद्ध हुआ। उत्तमपुरुष के एकवचन में णल् होने के कारण प्रथमपुरुष के एकवचन की तरह **शुश्राव** बन जाता है किन्तु **णलुत्तमो वा** से वैकल्पिक णिद्वद्भाव हो जाने के कारण णित्त्व के पक्ष में तो वृद्धि होती है किन्तु णित् न होने के पक्ष में गुण होगा। इस तरह **शुश्राव, शुश्रव** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। वस् और मस् में इट्, उवङ्, गुण, वृद्धि कुछ भी नहीं प्राप्त है। अतः **शुश्रुव, शुश्रुम** ये रूप बनते हैं।

लिट्- शुश्राव, शुश्रुवतुः, शुश्रुवुः, शुश्रोथ, शुश्रुवथुः, शुश्रुव, शुश्राव-शुश्रव, शुश्रुव, शुश्रुम।

एकाच् अनुदात्त धातु होने के कारण लुट्, लृट् में इट् का आगम नहीं होता। **लुट्-** श्रोता, श्रोतारौ, श्रोतारः, श्रोतासि, श्रोतास्थः, श्रोतास्थ, श्रोतास्मि, श्रोतास्वः, श्रोतास्मः। **लृट्-** श्रोष्यति, श्रोष्यतः, श्रोष्यन्ति, श्रोष्यसि, श्रोष्यथः, श्रोष्यथ, श्रोष्यामि, श्रोष्यावः, श्रोष्यामः।

शृणोतु। लोट, तिप्, शृ आदेश, श्नु प्रत्यय, गुण, णत्व, **एरुः** से उत्व करके **शृणोतु** बन जाता है। **तुह्योस्तातङाशिष्यन्यतरस्याम्** से एकपक्ष में **तातङ्** होकर **शृणुतात्** भी बनता है। द्विवचन में **तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः** से ताम् आदेश करके **शृणुताम्** और बहुवचन में **शृण्वन्ति** बनाने के बाद **एरुः** से उत्व करके **शृण्वन्तु** बन जाता है।

हेर्लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

५०३. उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् ६।४।१०६॥

असंयोगपूर्वात् प्रत्ययोतो हेर्लुक्।

श्रृणु,श्रृणुतात्।श्रृणुतम्।श्रृणुत। गुणावादेशौ।श्रृणवानि।श्रृणवाव।श्रृणवाम। अश्रृणोत्। अश्रृणुताम्। अश्रृण्वन्। अश्रृणोः। अश्रृणुतम्। अश्रृणुत। अश्रृणवम्। अश्रृण्व, अश्रृणुव। अश्रृण्म, अश्रृणुम। श्रृणुयात्। श्रृणुयाताम्। श्रृणुयुः।श्रृणुयाः।श्रृणुयातम्।श्रृणुयात।श्रृणुयाम्।श्रृणुयाव।श्रृणुयाम। श्रूयात्। अश्रौषीत्। अश्रोष्यत्। **गम्लृ गतौ॥२०॥**

....

५०३- उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्। नास्ति संयोगः पूर्वो यस्मात्, स असंयोगपूर्वः, तस्मात् असंयोगपूर्वात्। उतः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, प्रत्ययात् पञ्चम्यन्तम्, असंयोगपूर्वात् पञ्चम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **अतो हेः** से **हेः** और **चिणो लुक्** से **लुक्** की अनुवृत्ति आती है।

जिसके पूर्व में संयोग नहीं है, ऐसा प्रत्यय का अवयव जो उकार, उससे परे हि का लुक् हो जाता है।

श्रृणु, श्रृणुतात्। मध्यमपुरुष के एकवचन में **श्रृणु+हि** बनने के बाद एकपक्ष में **तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्** से **तातङ्** होता है और तातङ् न होने के पक्ष में **उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्** से हि का लुक हो जाता है। इस तरह **श्रृणु** और **श्रृणुतात्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। द्विवचन और वहुवचन में **श्रृणुतम्, श्रृणुत** बनते हैं।

श्रृणवानि। श्रु से मिप्, श्रृ आदेश, **श्नु** प्रत्यय, **मेर्निः** से नि आदेश, **आडुत्तमस्य पिच्च** से आट् का आगम करके **श्रृणु+आनि** बना। णु को गुण और अव् आदेश करके **श्रृणवानि** सिद्ध हुआ। वस् और मस् में **आडुत्तमस्य पिच्च** से आट् आगम और उसे पित् किये जाने के कारण **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित्त्व नहीं हुआ। अतः गुणनिषेध भी नहीं हुआ। इस तरह **श्रृणवाव, श्रृणवाम** सिद्ध हुए।

लङ्- अश्रृणोत्, अश्रृणुताम्, अश्रृण्वन्, अश्रृणोः, अश्रृणुतम्, अश्रृणुत। अश्रृणवम्, अश्रृण्व-अश्रृणुव, अश्रृण्म-अश्रृणुम। **वस्, मस्** में **लोपश्चास्यान्यतरस्याम् म्वोः** से विकल्प से उ-लोप होकर दो-दो रूप सिद्ध होते हैं।

विधिलिङ् में **यास्** के स्थान पर **इय्** आदेश नहीं होता क्योंकि वह अदन्त अङ्ग से परे नहीं है अपितु लिङः **सलोपोऽनन्त्यस्य** से पकार का लोप होकर बनते हैं- श्रृणुयात्, श्रृणुयाताम्, श्रृणुयुः, श्रृणुयाः, श्रृणुयातम्, श्रृणुयात, श्रृणुयाम्, श्रृणुयाव, श्रृणुयाम।

आशीर्लिङ् में सर्वत्र **यास्** के परे रहते **श्रु** को उकार को **अकृत्सार्वधातुकयोः** से दीर्घ होता है। श्रूयात्, श्रूयास्ताम्, श्रूयासुः, श्रूयाः, श्रूयास्तम्, श्रूयास्त, श्रूयासम्, श्रूयास्व, श्रूयास्म।

लुङ् के तिप् और सिप् में अनिट् होने से **सिच्** को इडागम नहीं होता परन्तु अपृक्त हल् त् औ स् को दीर्घ वाला ईट् आगम होता ह। अन्यत्र अपृक्त न होने से **ईट्** न होकर **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से वृद्धि और सिच् से सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व करके रूप बनते हैं- अश्रौषीत्, अश्रौष्टाम्, अश्रौषुः, अश्रौषीः, अश्रौष्टम्, अश्रौष्ट, अश्रौषम्, अश्रौष्व, अश्रौष्म।

छत्वविधायकं विधिसूत्रम्

५०४. इषुगमियमां छः ७।३।७७॥

एषां छः स्यात् शिति। गच्छति। जगाम।

उपधालोपविधायकं विधिसूत्रम्

५०५. गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि ६।४।९८॥

एषामुपधाया लोपोऽजादौ क्ङिति न त्वङि।

जग्मतुः। जग्मुः। जगमिथ-जगन्थ। जग्मथुः। जग्म। जगाम-जगम।

जग्मिव। जग्मिम। गन्ता।

....

लृट्- अश्रोष्यत्, अश्रोष्यताम्, अश्रोष्यन्, अश्रोष्यः, अश्रोष्यतम्, अश्रोष्यत, अश्रोष्यम्, अश्रोष्याव, अश्रोष्याम।

गम्लृ गतौ। इस धातु का **जाना** अर्थ है। लृ की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है, केवल **गम्** ही शेष रहता है। **गच्छति**=जाता है।

५०४- इषुगमियमां छः। इषुश्च गमिश्च यम् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः- इषुगमियमः, तेषाम् इषुगमियमाम्। इषुगमियमां षष्ठ्यन्तं, छः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ष्ठिवुक्लमुचमां शिति** से **शिति** की अनुवृत्ति आती है।

शित् के परे होने पर इष्, गम् और यम् धातु के स्थान पर छकार होता है।

अलोऽन्त्यस्य के नियम से अन्त्य मकार के स्थान पर छकार आदेश होता है।

गच्छति। गम्लृ से गम् बन जाने के बाद लट्, तिप्, शप्, करके **गम्+अ+ति** में **इषुगमियमां छः** से मकार के स्थान पर छकार आदेश हुआ- **गछ् अ ति** बना। **छे च** से छकार को तुक् का आगम हुआ। अनुबन्धलोप हुआ, त् बचा, **गत्छ् अति** बना। छकार के योग में **स्तोः श्चुना श्चुः** से श्चुत्व होकर चकार बन गया, **गच्छ्+अति** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **गच्छति।**

लट्- गच्छति, गच्छतः, गच्छन्ति, गच्छसि, गच्छथः, गच्छथ, गच्छामि, गच्छावः, गच्छामः।

जगाम। गम् धातु से लिट्, तिप्, णल्, अनुबन्धलोप होने के बाद **गम् अ** बना। गम् को द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, अभ्यासलोप होकर **गगम् अ** बना। **कुहोश्चुः** से गकार के स्थान पर चुत्व होकर जकार आदेश हुआ- **जगम् अ** बना। शित् प्रत्यय के अभाव में **इषुगमियमां छः** ये छकार आदेश नहीं हुआ। **जगम्+अ** में **अत उपधायाः** से उपधा की वृद्धि हुई- **जगाम् अ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **जगाम** सिद्ध हुआ।

५०५- गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि। गमश्च हनश्च जनश्च खनश्च घस् च तेषामितरेतरद्वन्द्वो गमहनजनखनघसः, तेषां गमहनजनखनघसाम्। क् च ङ् च क्ङौ, क्ङौ इतौ यस्य स क्ङित्, तस्मिन् क्ङिति। न अङ् अनङ्, तस्मिन् अनङि। गमहनजनखनघसां षष्ठ्यन्तं, लोपः प्रथमान्तं, क्ङिति सप्तम्यन्तम्, अनङि सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। सूत्र में **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **अचि** और **उदुपधाया गोहः** से **उपधायाः** की अनुवृत्ति आ रही है।

इडागमविधायकं विधिसूत्रम्

५०६. गमेरिट् परस्मैपदेषु ७।२।५८॥

गमे: परस्य सादेरार्धधातुकस्येट् स्यात् परस्मैपदेषु।

गमिष्यति। गच्छतु। अगच्छत्। गच्छेत्। गम्यात्।

....

अजादि कित् ङित् के परे होने पर गम्, हन्, जन्, खन् और घस् धातु के उपधा का लोप होता है किन्तु ङित् भी यदि अङ् वाला हो तो लोप नहीं होगा।

जग्मतुः। गम् धातु से लिट्, तस्, उसके स्थान पर अतुस् आदेश, द्वित्व, हलादिशेष कर के **कुहोश्चुः** से चुत्व करने के वाद **जगम् अतुस्** बना। **जगम्** में गकारोत्तरवर्ती अकार उपधा है, अत: उसका **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से लोप हुआ, जग्म् अतुस् बना। वर्णसम्मेलन और सकार का रुत्वविसर्ग हुआ- **जग्मतुः**। इसी प्रकार **जग्मुः** भी बनेगा।

जगमिथ-जगन्थ। गम् धातु से लिट् लकार का सिप्, उसके स्थान पर थल् आदेश, अनुबन्धलोप, द्वित्व, हलादिशेष करके **कुहोश्चुः** से चुत्व करके **जगम्+थ** बना। गम् धातु भी **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् निषेध होने के कारण अनिट् है। इसलिए इट् प्राप्त नहीं था, फिर भी **ऋतो भारद्वाजस्य** के नियम से विकल्प से इट् हुआ। इट् के पक्ष में **जगम्+इथ** में वर्णसम्मेलन होकर **जगमिथ** बना। **उपदेशेऽत्वतः** से इट् न होने के पक्ष में **जगम्+थ** है। **नश्चापदान्तस्य झलि** से मकार के स्थान पर अनुस्वार और **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से परसवर्ण होकर अनुस्वार के स्थान पर नकार आदेश हुआ तो **जगन्थ** सिद्ध हुआ।

जग्मथुः। **जग्म**। इन रूपों को **जग्मतुः** की तरह साधिए।

जगाम-जगम। उत्तमपुरुष के एकवचन में प्रथमपुरुष की तरह **जगाम** बनता है किन्तु **णलुत्तमो वा** से णित्व विकल्प से होने के कारण णित्व के पक्ष में **अत उपधाया** से वृद्धि होगी, **जगाम** बनेगा और णित्वाभाव में वृद्धि नहीं होगी, अत: **जगम** बनेगा।

जग्मिव। **जग्मिम**। में क्रादिनियम से इट् होता है और **जगम्** के उपधाभूत अकार का **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से लोप होता है। शेष प्रक्रिया पूर्ववत् ही है। इस प्रकार से गम् धातु के रूप बने- जगाम, जग्मतुः, जग्मुः, जगमिथ-जगन्थ, जग्मथुः, जग्म, जगाम-जगम, जग्मिव, जग्मिम।

लुट् लकार में भी **एकाच् उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध होने से इट् नहीं होगा। गम् के मकार का अनुस्वार और परसवर्ण होकर नकार आदेश होने पर **गन्ता** बनेगा। **गन्ता, गन्तारौ, गन्तारः, गन्तासि, गन्तास्थः, गन्तास्थ, गन्तास्मि, गन्तास्वः, गन्तास्मः**।

५०६- गमेरिट् परस्मैपदेषु। गमे: षष्ठ्यन्तम्, इट् प्रथमान्तं, परस्मैपदेषु सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः** से से तथा **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से **आर्धधातुकस्य** की अनुवृत्ति आ रही है।

गम् धातु से परे सकारादि आर्धधातुक को इट् आगम होता है परस्मैपद में।

गम् धातु अनिट् है, अत: लुट् और लृट् लकार के स्य को इट् करने के लिए विशेष विधान किया।

अङ्गादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५०७. पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु ३।१।५५॥

श्यन्विकरणपुषादेर्द्युतादेर्ॢदितश्च परस्य च्लेरङ् परस्मैपदेषु।

अगमत्। अगमिष्यत्।

इति परस्मैपदिनः।

....

गमिष्यति। गम् धातु से लृट्-लकार, तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् प्राप्त, उसे बाधकर **स्यतासी लृलुटोः** से स्य प्रत्यय, उसकी **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा और **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् प्राप्त, उसे **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** निषेध प्राप्त, उसे भी बाधकर **गमेरिट् परस्मैपदेषु** से इट् का आगम, टित् होने के कारण स्य के आदि में स्थिति, इकार से परे स्य के सकार का **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व करके **गम्+इष्य+ति** में वर्णसम्मेलन, **गमिष्यति** सिद्ध हुआ। इस प्रकार से लृट् में रूप बनते हैं- गमिष्यति, गमिष्यतः, गमिष्यन्ति, गमिष्यसि, गमिष्यथः, गमिष्यथ, गमिष्यामि, गमिष्यावः, गमिष्यामः।

गच्छतु। गम् धातु से लृट् लकार ले आकर **गच्छति** बनाइये और **एरुः** से उत्व करके तो **गच्छतु** बन जायेगा। इसको समझने के लिए आप भू धातु की प्रक्रिया को स्मरण करें और इस धातु में छकारादेश और तुक् का आगम तथा चुत्व भी करें।

लोट्- गच्छतु-गच्छतात्, गच्छताम्, गच्छन्तु, गच्छ-गच्छतात्, गच्छतम्, गच्छत, गच्छानि, गच्छाव, गच्छाम। **लङ्**- अगच्छत्, अगच्छताम्, अगच्छन्, अगच्छः, अगच्छतम्, अगच्छत, अगच्छम्, अगच्छाव, अगच्छाम। **विधिलिङ्**- गच्छेत्, गच्छेताम्, गच्छेयुः, गच्छेः, गच्छेतम्, गच्छेत, गच्छेयम्, गच्छेव, गच्छेम। **आशीर्लिङ्**- गम्यात्, गम्यास्ताम्, गम्यासुः, गम्याः, गम्यास्तम्, गम्यास्त, गम्यासम्, गम्यास्व, गम्यास्म।

५०७- पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु। पुष् आदिर्येषां ते पुषादयः, द्युत् आदिर्येषां ते द्युतादयः, लृत् इत् येषां ते ॢदितः। पुषादयश्च द्युतादयश्च ॢदितश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः पुषादिद्युताद्यॢदित्, तस्मात्। पुषादिद्युताद्यॢदितः पञ्चम्यन्तं, परस्मैपदेषु सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **च्लेः सिच्** से **च्लेः** तथा **अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्** से **अङ्** की अनुवृत्ति आती है।

पुष आदि धातु, द्युत आदि धातु तथा ॡ इत्संज्ञक हों, ऐसे धातुओं से पर च्लि के स्थान पर अङ् आदेश होता है, परस्मैपद में।

पुषादि और **द्युतादि** गण हैं और ॡ की इत्संज्ञा जिस धातु में होती है, उस धातु को ॡदित् कहते हैं। इस सूत्र का कार्य च्लि के स्थान पर अङ् आदेश करना है। जैसे-, च्लि के स्थान पर अभी तक आप सिच् आदेश कर रहे थे, अव गम् आदि धातु में अङ् आदेश करेंगे। गम्ॡ में ॡ की इत्संज्ञा हुई है, अतः यह धातु ॡदित् है।

अगमत्। गम् धातु से लुङ् लकार, अट् का आगम, लकार के स्थान पर तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा, **कर्तरि शप्** से शप् प्राप्त था, उसे बाधकर **च्लि लुङि** से च्लि प्रत्यय, अनुब्रन्धलोप, उसके स्थान पर **च्लेः सिच्** से सिच् आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर **पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु** से अङ् आदेश हुआ। **अगम् अत्** बना। अनिट् धातु होने से इट् होना ही नहीं है। वर्णसम्मेलन करके **अगमत्** बनता है।

लुङ् में- अगमत्, अगमताम्, अगमन्, अगमः, अगमतम्, अगमत, अगमम्, अगमाव, अगमाम।

लृङ् लकार में- स्य को **गमेरिट् परस्मैपदेषु** से इट् आगम होता है। अगमिष्यत्, अगमिष्यताम्, अगमिष्यन्, अगमिष्यः, अगमिष्यतम्, अगमिष्यत, अगमिष्यम्, अगमिष्याव, अगमिष्याम।

इस प्रकार से आपने भ्वादिगण में पठित परस्मैपदी धातुओं के विषय में जानकारी प्राप्त की। अब इसके बाद आत्मनेपद में प्रवेश करेंगे। उसके पहले आप अपनी परीक्षा भी कर लें कि अभी तक आपने जो अध्ययन किया है, उसमें आप कितने सफल हैं? यदि पूरी तैयारी नहीं हो पायी है तो पुनः एक बार पढ़ लें, प्रतिदिन आवृत्ति कर लें। पढ़ने के बाद प्रतिदिन आवृत्ति तो होनी ही चाहिए, अन्यथा सारा विस्मृत हो जायेगा। इस लिए आप जितना पढ़ रहे हैं, उससे ज्यादा अपने साथियों के साथ विमर्श भी करें, आप स्वयं प्रश्न पूछें या आप उत्तर दें। पूछने और बताने में कोई संकोच न करें। मुझे पूरा विश्वास है कि आप **पाणिनीयाष्टाध्यायी** की आवृत्ति बराबर कर रहे होंगे। आपका स्नान और भोजन भले छूट जाये किन्तु अष्टाध्यायी का पारायण नहीं छूटना चाहिए। जब तक अष्टाध्यायी के सारे सूत्र कण्ठस्थ नहीं होगे, तब तक व्याकरणशास्त्र के विषय में समझ पाना कठिन होगा। अतः आपका अष्टाध्यायी पारायण का नियम निरन्तर चलना चाहिए। प्रतिमाह एक अध्याय के हिसाब से पारायण करेंगे तो प्रतिभाशाली छात्र को एक माह में एक अध्याय कण्ठस्थ हो जायेगा। इस हिसाब से तो आठ ही माह में पूरी अष्टाध्यायी कण्ठस्थ हो जाएगी। यदि आठ माह में नहीं भी कर सके तो सोलह माह में अवश्य कण्ठस्थ हो जायेगी।

परीक्षा का जो नियम बना हुआ है, उसका पालन कर पुस्तक का पूजन करें।

परीक्षा

सूचना- पहला प्रश्न ५० अंक का और शेष प्रश्न १०-१० अंक के हैं।

१- अभी तक भ्वादिगण में जितने धातु आपने पढ़े, उनके लिट् एवं लुङ् लकार के रूपों को विना पुस्तक के सहारे अपनी स्मरणशक्ति के बल पर पुस्तिका में उतारें।

२- भू के लुङ्, अत् के लिट्, सिध् के आशीर्लिङ्, गद् के लोट् और गम् के लुङ् लकार के प्रथमपुरुष-एकवचन की रूप की सिद्धि कीजिए।

३- **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से किस-किस लकार में इट् आगम हो पाता है?

४- **पाघ्राध्मा**- इस सूत्र को पूरा लिखकर इसकी वृत्ति, अर्थ और किस धातु के स्थान पर क्या आदेश होता है, इसका पूरा विवरण दीजिए।

५- **अतो हलादेर्लघोः** और **वदव्रजहलन्तस्याचः** की तुलना करिये।

६- उपसर्ग के विषय में आप कितना जानते हैं? बताइये।

इस तरह श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या में
भ्वादि का परस्मैपदप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथात्मनेपदिनः

एध वृद्धौ॥१॥

एत्वविधायकं विधिसूत्रम्

५०८. टित आत्मनेपदानां टेरे: ३।४।७९॥

टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्वम्। एधते।

....

अभी तक आपने परस्मैपदी धातुओं का ज्ञान किया। अब हम आत्मनेपदी धातुओं को जानने के लिए आत्मनेपद में प्रवेश कर रहे हैं। कैसे धातुओं से आत्मनेपद का प्रयोग होता है, इस विषय में संक्षिप्त जानकारी भ्वादि के आदि में आपको मिल गई थी फिर भी याद दिला रहे हैं कि **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** इस सूत्र के अनुसार जो धातु अनुदात्तेत् अर्थात् अनुदात्त की इत्संज्ञा वाला हो और जो धातु ङित् हो, ऐसे धातुओं से आत्मनेपद का प्रयोग करना चाहिए। इसके अतिरिक्त भी अनेक सूत्र आत्मनेपद का विधान करते हैं किन्तु सर्वसामान्य यही सूत्र है।

लकार के स्थान पर आदेश होने वाले आत्मनेपदी प्रत्ययों को तालिका के माध्यम से पुनः स्मरण कर लें।

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम-पुरुष	त	आताम्	झ
मध्यम-पुरुष	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तम-पुरुष	इट्	वहिङ्	महिङ्

एध वृद्धौ। एध् धातु **बढ़ना** अर्थ में है। इस में धकारोत्तरवर्ती अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है। अकार अनुदात्त स्वर वाला है, अतः यह धातु अनुदात्तेत् हुआ। इसलिए **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** सूत्र के नियम से इस धातु से आत्मनेपद का विधान हुआ। जिस धातु से आत्मनेपद का विधान होता है, वह धातु आत्मनेपदी होता है। अतः **एध्** धातु आत्मनेपदी है।

५०८- टित आत्मनेपदानां टेरे। टितः षष्ठ्यन्तम्, आत्मनेपदानां षष्ठ्यन्तं, टेः षष्ठ्यन्तम्, ए लुप्तप्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **लस्य** इस सूत्र का अधिकार है। इसलिए अर्थ में भी **लकार के स्थान पर** यह अर्थ आयेगा।

टित् लकार के आत्मनेपद प्रत्ययों के टि के स्थान पर एकार आदेश होता है।

टि संज्ञा है। **अचोऽन्त्यादि टि** से अन्त्य अच् की टिसंज्ञा होती है। केवल **टि** के स्थान पर ही यह ए आदेश होगा।

एधते। एध धातु का बढ़ना अर्थ है। धकारोत्तरवर्ती अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा हुई और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। एध् बचा। एध् से लट् लकार और उसके

इयादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५०९. आतो ङितः ७।२।८१॥

अतः परस्य ङितामाकारस्य इय् स्यात्। एधेते। एधन्ते।

से-इत्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५१०. थासः से ३।४।८०॥

टितो लस्य थासः से स्यात्।

एधसे। एधेथे। एधध्वे। **अतो गुणे।** एधे। एधावहे। एधामहे।

....

स्थान पर आत्मनेपद में प्रथमपुरुष का एकवचन त आया। **एध् त** बना। त की **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा हुई और **कर्तरि शप्** से शप् हुआ। अनुबन्धलोप, **एध् अ त** बना। वर्णसम्मेलन हुआ, एधत में तकारोत्तरवर्ती अन्त्य अच् अकार की **अचोऽन्त्यादि टि** से टिसंज्ञा हुई और **टित आत्मनेपदानां टेरे** से उसके स्थान पर एकार आदेश हुआ- **एधते** सिद्ध हुआ।

५०९- **आतो ङितः**। आतः षष्ठ्यन्तं, ङितः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अतो येयः** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होकर आता है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

अदन्त अङ्ग से परे ङित्-प्रत्ययों के आकार के स्थान पर इय् आदेश होता है।

यह सूत्र आताम् और आथाम् के आकार के स्थान पर इय् आदेश करता है। यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप हो जाता है।

एधेते। एध् धातु से प्रथमपुरुष का द्विवचन आताम् आया। **एध्+आताम्,** सार्वधातुक संज्ञा, शप्, अनुवन्धलोप, **एध् अ आताम्** में आताम् की **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव करके **आतो ङितः** से आताम् के आकार के स्थान पर इय् आदेश हुआ- **एध् अ इय् ताम्** बना। यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप हुआ। **एध् अ इ ताम्** बना। **अ+इ** में **आद्गुणः** से गुण हुआ, ए बना। **एध् ए ताम्** में वर्णसम्मेलन हुआ- **एधेताम्** बना। **एधेताम्** में अन्त्य अच् ताम् में आ है। अतः **मकार सहित आ** अर्थात् **आम्** की **अचोऽन्त्यादि टि** से टिसंज्ञा हुई और टि के स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरेः** से एत्व हुआ- **एधेते** बना।

एधन्ते। एध् धातु से प्रथमपुरुष का बहुवचन झ आया। झ् के स्थान पर **झोऽन्तः** से अन्त् आदेश हुआ **अन्त्+अ** बना। वर्णसम्मेलन हुआ तो **अन्त** बना। अन्त की सार्वधातुकसंज्ञा करके शप् हुआ, अनुवन्धलोप, **एध् अ अन्त** बना। **अ+अन्त** में **अतो गुणे** से पररूप होकर अन्त ही हुआ। **एध्+अन्त** में वर्णसम्मेलन और अन्त्य अच् तकारोत्तरवर्ती अकार की टिसंज्ञा और उसके स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे** एत्व हुआ- **एधन्ते** सिद्ध हुआ।

५१०- **थासः से**। थासः षष्ठ्यन्तं, से लुप्तप्रथमाकं पदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **टित आत्मनेपदानां टेरे** से **टितः** की अनुवृत्ति आती है और **लस्य** सूत्र का अधिकार चल रहा है।

टित् लकार वाले थास् के स्थान पर से आदेश होता है।

आम्-विधायकं विधिसूत्रम्

५११. इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ३।१।३६॥

इजादिर्यो धातुर्गुरुमानृच्छत्यन्यस्तत आम् स्याल्लिटि।

....

एधसे। एध् से मध्यमपुरुष एकवचन थास्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **एध् अ थास्** बना। **थासः से** से थास् के स्थान पर से आदेश हुआ, वर्णसम्मेलन करके **एधसे** सिद्ध हुआ।

एधेथे। जैसे आताम् आने पर एधेते बनता है तो उसी प्रकार से आथाम् अर्थात् मध्यमपुरुष के द्विवचन आथाम् के आने पर **एधेथे** बनता है।

एधध्वे। एध् से मध्यमपुरुष का बहुवचन ध्वम् आया, शप्, ध्वम् में अम् की टिसंज्ञा और टि के स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व करके **एध् अ ध्वे** बना, वर्णसम्मेलन करके **एधध्वे** सिद्ध हुआ।

एधे। उत्तमपुरुष का एकवचन इट्, शप्, **एध् अ इ** में टिसंज्ञक इ के स्थान पर एत्व करके एध् अ ए बना। अ+ए में **अतो गुणे** से पररूप एकादेश होकर ए ही बना। वर्णसम्मेलन करके **एधे** सिद्ध होता है।

एधावहे। एध् से वहि, शप् करने के बाद टिसंज्ञक जो हि का इकार उसके स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व करने के बाद **वहे** बनेगा। वकार यञ् प्रत्याहार में आता है। अतः **अतो दीर्घो यञि** से दीर्घ होकर **एधावहे** सिद्ध हो जाता है।

एधामहे। बहुवचन में **महिङ्** आयेगा। ङकार की इत्संज्ञा की जाती है। यह ङकार ङित्करण के लिए नहीं है, अपितु ति से ङ् तक गिनकर तिङ् प्रत्याहार बनाने के लिए है। शप् करने के बाद टिसंज्ञक जो हि का इकार उसके स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व करने के बाद **महे** बनेगा। मकार यञ् प्रत्याहार में आता है। अतः **अतो दीर्घो यञि** से दीर्घ होकर **एधामहे** सिद्ध हो जाता है।

लट्- एधते, एधेते, एधन्ते, एधसे, एधेथे, एधध्वे, एधे, एधावहे, एधामहे।

५११- इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः। इच् आदिर्यस्य स इजादिस्तस्माद् इजादेः। गुरुरस्त्यस्मिन् इति गुरुमान्, तस्माद् गुरुमतः। न ऋच्छ् अनृच्छ्, तस्मात् अनृच्छः। इजादेः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, गुरुमतः पञ्चम्यन्तम्, अनृच्छः पञ्चम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से **धातोः** और **कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि** से **लिटि** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

ऋच्छ धातु से भिन्न इजादि जो गुरु-वर्ण से युक्त धातु, उससे परे आम् प्रत्यय होता है लिट् के परे होने पर।

इच् एक प्रत्याहार है, वह आदि में है जिस धातु के, वह धातु इजादि हुआ। दीर्घवर्ण और संयोगपरक ह्रस्व-वर्ण की गुरुसंज्ञा होती है। अतः जिस धातु में दीर्घवर्ण या संयोग हो वह धातु गुरुमान् अर्थात् गुरुसंज्ञक वर्ण वाला होता है। ऋच्छ् धातु में च्छ् का संयोग है, अतः यह भी गुरुमान् हुआ। ऋच्छ्-धातु से आम् प्रत्यय अभीष्ट नहीं था, इसलिए निषेध करने के लिए सूत्र में **अनृच्छः** पढ़ा गया। आम् के मकार की इत्संज्ञा नहीं होती है। अतः पूरा आम् धातु से परे होता है। लिट् परे रहते विहित होने से धातु और लिट् के बीच में बैठ जाता है।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

५१२. आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य १।३।६३।।

आम्प्रत्ययो यस्मादित्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः।

आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात् कृञोऽप्यात्मनेपदम्।

....

५१२- **आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य।** आम् प्रत्ययो यस्मात् स आम्प्रत्ययः, आम्प्रत्ययेन तुल्यम् आम्प्रत्ययवत्। आम्प्रत्ययवत् अव्ययपदं, कृञः षष्ठ्यन्तम्, अनुप्रयोगस्य षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

आम्-प्रकृति वाली धातु अर्थात् आम्-प्रत्यय जिस धातु से होता है, ऐसी धातु के समान अनुप्रयोग की जाने वाली कृ-धातु से भी आत्मनेपद ही होता है।

आम्-प्रत्ययो यस्मात्......इत्यादि सूत्र में आये हुए आम्प्रत्यवत् शब्दका अर्थ बताने के लिए विग्रह दिखाया गया है। यहाँ पर **वत्** प्रत्यय का इव(समान, तुल्य) अर्थ है और आम्प्रत्यय में अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि समास है।

वहुव्रीहि समास दो प्रकार का होता है- **तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि** और **अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि।** सामान्यतः बहुव्रीहि समास अन्य पदार्थ को कहता है पर जब केवल अन्यपदार्थ का ही ग्रहण किया जाता है अर्थात् समस्यमान पदों के अर्थ को छोड़ दिया जाता है तव **अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि** होता है और जब समस्यमान पद के अर्थ का भी अन्यपदार्थ के साथ में ग्रहण होता है तो **तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि** होता है। जैसे- **दृष्टसागरं (पुरुषम्) आनय में दृष्टः सागरो येन स तम्**= देख लिया है सागर जिसने ऐसे पुरुष को लाइये, इसमें केवल अन्यपदार्थ पुरुष को ही लाया जाता है न कि समस्यमान सागर पदार्थ को भी। अतः क्रिया में समस्यमान पदार्थ का सम्वन्ध न होने से यह **अतद्गुणसंविज्ञान** बहुव्रीहि हुआ। इसी तरह **आम् प्रत्ययो यस्मात् सः** (आम् प्रत्यय हुआ जिससे वह) में भी आम् प्रत्यय जिससे होता है, ऐसा अन्य पदार्थ प्रकृति(मूल धातु) मात्र को लिया जाता है न कि आम् प्रत्यय को भी। अतः यहाँ भी **अतद्गुणसंविज्ञान नामक बहुव्रीहि** हुआ है। **तद्गुणसंविज्ञान** बहुव्रीहि में जैसे- **लम्बकर्णम् आनय**(बड़े-बड़े, लम्वे कान वाले वाले को लाइये) में लम्वे कान वाले अन्यपदार्थ पुरुष के साथ-साथ समस्यमान पदार्थ **लम्बे कानों** को भी लाया जाता है। अतः **आनय** क्रिया में अन्यपदार्थ के साथ-साथ समस्यमान पदार्थ का भी अन्वय हुआ। इसलिए इसमें **तद्गुणसंविज्ञान नामक बहुव्रीहि समास** माना जाता है।

जिससे आम्-प्रत्यय का विधान होता है, ऐसे धातु को **आम्प्रकृतिक** कहते हैं। कृ-धातु के **ञित्** होने से **परस्मैपदी** और **आत्मनेपदी** अर्थात् **उभयपदी** है। अतः यहाँ पर अनुप्रयुज्यमान कृ धातु में सन्देह हुआ कि आम्प्रकृतिक **एध्** धातु के बाद में प्रयोग होने पर भी **कृ** से दोनों पद हों या उनमें से कोई एक पद हो? इसी को बताने के लिए इस सूत्र को पढ़ा गया और इसने निर्णय दिया कि ऐसे अनुप्रयुज्यमान कृ-धातु से केवल आत्मनेपद ही हो। यह सन्देह केवल कृ-धातु के विषय में उपस्थित होता है, क्योंकि यह उभयपदी है। **भू** और **अस्** धातु केवल परस्मैपदी हैं, इसलिए उनमें कोई सन्देह नहीं है।

एशिरेजादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५१३. लिटस्तझयोरेशिरेच् ३।४।८१॥

लिडादेशयोस्तझयोरेश्-इरेजेतौ स्तः।

एधाञ्चक्रे। एधाञ्चक्राते। एधाञ्चक्रिरे। एधाञ्चकृषे। एधाञ्चक्राथे।

....

५१३- **लिटस्तझयोरेशिरेच्**। तश्च झश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वस्तझौ, तयोस्तझयोः। एश् च इरेच् च तयोः समाहारद्वन्द्वः एशिरेच्। लिटः षष्ठ्यन्तं, तझयोः षष्ठ्यन्तम्, एशिरेच् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

लिट् लकार के स्थान पर आदेश हुए त और झ के स्थान पर क्रमशः एश् और इरेच् आदेश होते हैं।

एधाञ्चक्रे। एध् धातु से लिट् लकार, त आदेश, **एध् त** बना। सूत्र लगा- **इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः**। एध् धातु इजादि है (आदि वर्ण एकार इच् है और गुरुमान् भी)। लिट् परे भी है। अतः धातु से आम् प्रत्यय हुआ, **एधाम् त** बना। **आमः** से आम् से परे लिट् लकार सम्बन्धी त का लोप हुआ, **एधाम्** रह गया। **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि** से लिट् को साथ में लेकर कृ धातु का अनुप्रयोग हुआ, **एधाम् कृ लिट्** बना। लिट् के स्थान पर **आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य** से आत्मनेपद का त आदेश हुआ। **एधाम् कृ त** बना। **त** के स्थान पर **लिटस्तझयोरेशिरेच्** से एश् आदेश हुआ, शकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप हुआ। **एधाम्+कृ+ए** बना। इस स्थिति में **इको यणचि** से यण् प्राप्त था, उसका **द्विर्वचनेऽचि** से निषेध हुआ। फिर **कृ** का **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व हुआ, **एधाम् कृ कृ ए** बना। प्रथम **कृ** की **पूर्वोऽभ्यासः** से अभ्याससंज्ञा हुई और **उरत्** से ऋकार के स्थान अत् आदेश हुआ और **उरण् रपरः** की सहायता रपर होकर अर् आदेश हुआ, **एधाम् कर् कृ ए** बना। **हलादि शेषः** से कर् में ककार का शेष और रकार का लोप हुआ। **एधाम् ककृ ए** बना। **कुहोश्चुः** से अभ्याससंज्ञक ककार के स्थान पर चवर्ग में च आदेश होकर **एधाम् चकृ ए** बना। आमन्त **एधाम्** आदि मान्त और लिट् लकार की धातु से विहित होने के कारण कृत्संज्ञक भी है। अतः **एधाम्** को कृदन्त मानकर **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा करके स्वादि प्रत्यय आते हैं। **एधाम्** का **कृन्मेजन्तः** से अव्ययसंज्ञा होने से उन सु आदि प्रत्ययों का **अव्ययादाप्सुपः** से लोप हो जाता है। सु आदि के लोप होने पर भी **एकदेशविकृतमनन्यवत्** न्याय से पूर्व में की हुई पदसंज्ञा रहती है। अतः पदान्त में होने के कारण **एधाम्** के मकार के स्थान पर **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार और अनुस्वार के स्थान पर **वा पदान्तस्य** से परसवर्ण होकर ञकार आदेश हुआ तो **एधाञ्चकृ** ए बना। लिट्-लकार-सम्बन्धी ए तो **लिट् च** सूत्र से आर्धधातुकसंज्ञक है ही, अतः **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से ऋकार के स्थान पर गुण प्राप्त था किन्तु **असंयोगाल्लिट् कित्** से लिट् लकार कित् बन गया है, इसलिए **क्ङिति च** से गुणनिषेध हुआ। **एधाञ्चकृ+ए** में **इको यणचि** से यण् होकर ऋकार के स्थान पर रकार आदेश हुआ- **एधाञ्चक् र् ए** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **एधाञ्चक्रे**।

एधाञ्चक्राते। लिट् लकार के प्रथमपुरुष के द्विवचन में भी इसी प्रकार से प्रक्रिया करनी है। जैसे एध् धातु से लिट् लकार, आताम् आदेश, **एध् आताम्** बना। सूत्र

लगा **इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः**। एध् धातु इजादि और गुरुमान् है। लिट् परे भी है। अतः धातु से आम् प्रत्यय हुआ, **एधाम् आताम्** बना। **आमः** से आम् से पर लिट् लकार सम्बन्धी आताम् का लोप हुआ, **एधाम्** रह गया। **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि** से लिट् को साथ में लेकर कृ धातु का अनुप्रयोग हुआ, **एधाम् कृ लिट्** बना। लिट् के स्थान पर **आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य** से आत्मनेपद का विधान हुआ, द्विवचन में आताम् आदेश हुआ। **एधाम् कृ आताम्** बना। **द्विर्वचनेऽचि** से द्वित्व की कर्तव्यता में यण् के निषेध होकर **कृ** का **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व हुआ, **एधाम् कृ कृ आताम्** बना। प्रथम कृ की **पूर्वोऽभ्यासः** से अभ्याससंज्ञा हुई और **उरत्** से ऋकार के स्थान पर अत् आदेश हुआ और **उरण् रपरः** की सहायता रपर होकर अर् आदेश हुआ, **एधाम् कर् कृ आताम्** बना। **हलादि शेषः** से कर् में ककार का शेष और रकार का लोप हुआ। **एधाम् ककृ आताम्** बना। **कुहोश्चुः** से अभ्याससंज्ञक ककार के स्थान पर चवर्ग में च आदेश होकर **एधाम् चकृ आताम्** बना। एधाम् के मकार के स्थान पर **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार और अनुस्वार के स्थान पर **वा पदान्तस्य** से परसवर्ण होकर ञकार आदेश हुआ तो **एधाञ्चकृ आताम्** बना। लिट्-लकार-सम्बन्धी ए तो **लिट् च** सूत्र से आर्धधातुकसंज्ञक है ही, अतः **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से ऋकार के स्थान पर गुण प्राप्त था किन्तु **असंयोगाल्लिट् कित्** से लिट्-लकार कित् बन गया है, इसलिए **क्ङिति च** से गुणनिषेध हुआ। **एधाञ्चकृ+आताम्** में **इको यणचि** से यण् होकर ऋकार के स्थान पर रकार आदेश हुआ- **एधाञ्चक् र् आताम्** बना। आताम् में टिसंज्ञक आम् के स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व हुआ, **एधाञ्चक्र् आते** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **एधाञ्चक्राते**। इसी प्रकार से पूरे लिट् लकार में **एधाञ्चकृ** तक बन जाने के बाद आगे के प्रत्यय के साथ प्रक्रिया करनी चाहिए अर्थात् धातु से लिट्, **आम्**, उसका लुक्, पुनः लिट् को साथ लेकर **कृ** का अनुप्रयोग, अनुप्रयुक्त **कृ** धातु को द्वित्व, **उरत्** से अत्, रपर, हलादिशेष, अभ्यास को चर्त्व, अनुस्वार, परसवर्ण आदि प्रक्रियाएँ होती हैं।

एधाञ्चक्रिरे। लिट् लकार के प्रथमपुरुष के बहुवचन में झ के स्थान पर **लिटस्तझयोरेशिरेच्** से इरेच् आदेश और अनुबन्धलोप करके अन्य प्रक्रिया एधाञ्चकृ बनाने तक पूर्ववत् करें, एधाञ्चकृ इरे बन जायेगा। **एधाञ्चकृ+इरे** में **इको यणचि** से यण् होकर एधाञ्चक्र् इरे बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **एधाञ्चक्रिरे**।

एधाञ्चकृषे। मध्यमपुरुष के एकवचन में एधाञ्चकृ तक की प्रक्रिया पूर्ववत् ही होगी किन्तु थास् के स्थान **थासः से** से **से** आदेश होकर **एधाञ्चकृ+से** बना है और **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व होकर **एधाञ्चकृषे** रूप बनता है। यहाँ पर **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से इट् का आगम नहीं होगा क्योंकि अब यहाँ पर कृ धातु बन गया है और यह अनिट् धातु है। केवल एध् धातु से तो **एधिता** आदि में इट् होता ही है।

एधाञ्चक्राथे। मध्यमपुरुष के द्विवचन में एधाञ्चकृ तक की प्रक्रिया पूर्ववत् ही होगी किन्तु आथाम् में टिसंज्ञक आम् के स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व होकर **एधाञ्चकृ आथे** बना है। **इको यणचि** से यण् होकर **एधाञ्चकृ आथे** बन गया। **एधाञ्चकृ+आथे** में **इको यणचि** से यण् होकर **एधाञ्चक्र् आथे** बना, वर्णसम्मेलन होकर **एधाञ्चक्राथे** ऐसा रूप सिद्ध हुआ।

ढत्वविधायकं विधिसूत्रम्

५१४. इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् ८।३।७८॥

इणन्तादङ्गात्परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य ढः स्यात्।

एधाञ्चकृढ्वे। एधाञ्चक्रे। एधाञ्चकृवहे। एधाञ्चकृमहे। एधाम्बभूव। एधामास। एधिता। एधितारौ। एधितारः। एधितासे। एधितासाथे।

....

५१४- इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्। षीध्वं च लुङ् च लिट् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः षीध्वंलुङ्लिटः, तेषां षीध्वंलुङ्लिटाम्। इणः पञ्चम्यन्तं, षीध्वंलुङ्लिटां षष्ठ्यन्तं, धः प्रथमान्तम्, अङ्गात् पञ्चम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **अपदान्तस्य मूर्धन्यः** से **मूर्धन्यः** की अनुवृत्ति आती है।

इणन्त अङ्ग से परे षीध्वम्, लुङ् और लिट् लकार से सम्बन्धित धकार के स्थान पर मूर्धन्य आदेश अर्थात् ढकार आदेश होता है।

धकार के स्थान पर प्राप्त मूर्धन्य आदेश **स्थानेऽन्तरतम** की सहायता से गुण(प्रयत्न) की तुल्यता मिलाकर संवार, नाद, घोष महाप्राण प्रयत्न वाला **ढकार** होता है। अतः सूत्रार्थ में **ढकारादेश** कहा गया है। इस तरह से यह सूत्र इणन्त अङ्ग से परे षीध्वं, लुङ् और लिट् के धकार के स्थान पर ढकार आदेश करता है।

एधाञ्चकृढ्वे। मध्यमपुरुष के बहुवचन में एधाञ्चकृ तक की प्रक्रिया पूर्ववत् ही होगी किन्तु ध्वम् के धकार के स्थान पर **इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्** से ढकार आदेश करके **एधाञ्चकृ ढ्वम्** बन जाता है। ढ्वम् में टिसंज्ञक अम् के स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व होकर **एधाञ्चकृढ्वे** बन गया।

एधाञ्चक्रे। उत्तमपुरुष के एकवचन में इट् प्रत्यय और अनुबन्धलोप करके एधाञ्चकृ तक की प्रक्रिया पूर्ववत् ही होगी किन्तु टिसंज्ञक इ के स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व होकर ए बना है। **एधाञ्चकृ ए** में **इको यणचि** से यण् होकर **एधाञ्चक् र् ए** बना, वर्णसम्मेलन होकर **एधाञ्चक्रे** बना।

एधाञ्चकृवहे। एधाञ्चकृमहे। उत्तमपुरुष के द्विवचन और बहुवचन में क्रमशः वहि और महिङ् प्रत्यय होगें और अनुबन्धलोप करके एधाञ्चकृ तक की प्रक्रिया पूर्ववत् ही होगी किन्तु टिसंज्ञक इकार के स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व होकर वहे और महे बन जाता है। इस तरह **एधाञ्चकृवहे** और **एधाञ्चकृमहे** की सिद्धि हो जाती है।

इस तरह एध् धातु के लिट् लकार में कृ-धातु के अनुप्रयोग होने पर **एधाञ्चक्रे, एधाञ्चक्राते, एधाञ्चक्रिरे, एधाञ्चकृषे, एधाञ्चक्राथे, एधाञ्चकृढ्वे, एधाञ्चक्रे, एधाञ्चकृवहे, एधाञ्चकृमहे** ये रूप सिद्ध हुए। एधाम् से भू धातु का अनुप्रयोग करके **एधाम् भू** बना लेने के बाद जैसे भू-धातु के लिट् लकार में आपने रूप बनाया है, उसी तरह यहाँ भी बनाइये और एधाम् बभूव में मकार के स्थान पर **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार और **वा पदान्तस्य** से परसवर्ण होकर मकार आदेश हो जाता है- **एधाम्बभूब।** भू-धातु स्वभावतः परस्मैपदी है, अतः यहाँ पर परस्मैपद में ही रूप बनते हैं। इसी प्रकार अस् धातु भी परस्मैपदी है।

सकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

५१५. धि च ८।२।२५॥

धादौ प्रत्यये परे सस्य लोपः। एधिताध्वे।

हकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५१६. ह एति ७।४।५२॥

तासस्त्योः सस्य हः स्यादेति परे।

एधिताहे। एधितास्वहे। एधितास्महे। एधिष्यते। एधिष्येते। एधिष्यन्ते। एधिष्यसे। एधिष्येथे। एधिष्यध्वे। एधिष्ये। एधिष्यावहे। एधिष्यामहे।

....

एध्-धातु के लिट्-लकार में भू-धातु का अनुप्रयोग होने पर- एधाम्बभूव, एधाम्बभूवतुः, एधाम्बभूवुः, एधाम्बभूविथ, एधाम्बभूवथुः, एधाम्बभूव, एधाम्बभूव, एधाम्बभूविव, एधाम्बभूविम ये रूप सिद्ध होते हैं।

एध्-धातु के लिट्-लकार में अस् धातु का अनुप्रयोग होने पर अस् धातु से लिट् के स्थान पर तिप्, णल् आदेश, अस् का द्वित्व, **हलादि शेषः** से सकार का लोप करके **अ अस्** बना। **अ+अस्** में **अत आदेः** से दीर्घ होकर **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ होकर **आस् अ** बना। **एधाम् आस् अ** में मकार आस् के आकार से मिला- **एधामास् अ** बना। वर्णसम्मेलन करके **एधामास** बन गया। एधामास् बनने तक की प्रक्रिया एक ही होगी और आगे **अतुस्** आदि प्रत्ययों को जोड़कर और जहाँ इट् प्राप्त है, वहाँ इट् का आगम करके निम्नलिखित रूप सिद्ध हो जायेंगे- एधामास। एधामासतुः। एधामासुः। एधामासिथ। एध ामासथुः। एधामास। एधामास। एधामासिव। एधामासिम।

एधिता। एध्-धातु से लुट् लकार में- एध् लुट्, एध् त, एध् तास् त, एध् इतास् त, एधितास् त, एधितास् डा, एधितास् आ, एधित् आ, एधिता। यह प्रक्रिया आप समझ गये होंगे। इसी प्रकार से **एधितारौ, एधितारः, एधितासे, एधितासाथे** तक बनाइये।

५१५- धि च। धि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **रात्सस्य** से **सस्य** और **संयोगान्तस्य लोपः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है।

धकारादि प्रत्यय के परे होने पर सकार का लोप होता है।

एधिताध्वे। एध्-धातु से लुट् लकार, एध् लुट्, लुट् के स्थान पर ध्वम् आदेश, एध् ध्वम्, एध् तास् ध्वम्, एध् इतास् ध्वम्, एधितास् ध्वम्, **धि च** से सकार का लोप हुआ- एधिता ध्वम् बना। ध्वम् में टिसंज्ञक अम् के स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व करके ध्वे बना, **एधिताध्वे** सिद्ध हुआ।

५१६- ह एति। हः प्रथमान्तम्, एति सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तासस्त्योर्लोपः**से **तासस्त्योः** और **सः स्यार्धधातुके** से **सः** की अनुवृत्ति आती है।

एकार के परे रहने पर तास् और अस् धातु के सकार के स्थान पर हकार आदेश होता है।

एधिताहे। एध्-धातु से लुट् लकार, एध् लुट्, उत्तमपुरुष का एकवचन इट्, एध् इट्, एध् इ, एध् तास् इ, एध् इतास् इ, एधितास् इ, टिसंज्ञक इ के स्थान पर **टित**

आमादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५१७. आमेतः ३।४।९०॥

लोट एकारस्याम् स्यात्। एधताम्, एधेताम्, एधन्ताम्।

वामादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५१८. सवाभ्यां वामौ ३।४।९१॥

सवाभ्यां परस्य लोडेतः क्रमाद् वामौ स्तः।

एधस्व। एधेथाम्। एधध्वम्।

....

आत्मनेपदानां टेरे से एत्व करके एधितास् ए बना, एकार के परे होने पर **ह एति** से सकार के स्थान पर हकार आदेश हुआ- **एधिताह् ए** बना, वर्णसम्मेलन करके **एधिताहे** सिद्ध हुआ।

एधितास्वहे। एधितास्महे। उत्तमपुरुष के द्विवचन और बहुवचन में तासि, इट् का आगम, वहि और महि में **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व करके उक्त रूप बन जाते हैं।

इस प्रकार से एध् धातु के लुट् लकार के रूप निम्नानुसार हुए- एधिता, एधितारौ, एधितारः। एधितासे, एधितासाथे, एधिताध्वे, एधिताहे, एधितास्वहे, एधितास्महे।

लृट्-लकार में स्य और इट् का आगम, इकार से परे स्य के सकार को षत्व करके बनाइये- एधिष्यते, एधिष्येते, एधिष्यन्ते, एधिष्यसे, एधिष्येथे, एधिष्यध्वे, एधिष्ये, एधिष्यावहे, एधिष्यामहे।

५१७- आमेतः। आम् प्रथमान्तम्, एतः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **लोटो लङ्वत्** से **लोटः** की अनुवृत्ति आती है।

लोट् लकार के एकार के स्थान पर आम् आदेश होता है।

एधताम्। एध् धातु से लोट् लकार, त आदेश, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **एध् अ त** बना, त के टि को एत्व और वर्णसम्मेलन करके **एधते** बना। ते के एकार के स्थान पर इस सूत्र से आम् आदेश हुआ- **एधताम्।**

एधेताम्। एध् धातु से लोट् लकार, आताम् आदेश, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **एध् अ आताम्** बना, **आतो ङितः** से आताम् के आकार के स्थान पर इय् आदेश हुआ- **एध् अ इय् ताम्** बना। यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप हुआ। एध् **अ इ ताम्** बना। **अ+इ** में **आद्गुणः** से गुण हुआ, ए बना। **एध् ए ताम्** में वर्णसम्मेलन हुआ- **एधेताम्** बना। **एधेताम्** में अन्त्य अच् ताम् में आम् है। अतः मकार सहित आ अर्थात् आम् की **अचोऽन्त्यादि टि** से टिसंज्ञा हुई और टि के स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरेः** से एत्व हुआ- **एधेते** बना। **ते** के एकार के स्थान पर इस सूत्र से आम् आदेश हुआ- **एधेताम्।**

एधन्ताम्। एध् धातु से लोट् लकार, झ आदेश, झ के स्थान पर **झोऽन्तः** से झ् के स्थान पर अन्त् आदेश, **एध् अन्त** बना। सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **एध् अ अन्त** बना। **अ+अन्त** में **अतो गुणे** से पररूप करके **अन्त** बना, **एध्+अन्त** हुआ। अन्त में के टिसंज्ञक अकार के स्थान पर एत्व और वर्णसम्मेलन करके **एधन्ते** बना। ते के एकार के स्थान पर इस सूत्र से आम् आदेश हुआ- **एधन्ताम्।**

ऐकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५१९. एत ऐ ३।४।९३॥

लोडुत्तमस्य एतः ऐः स्यात्।

एधै। एधावहै। एधामहै। **आटश्च।** ऐधत। ऐधेताम्। ऐधन्त। ऐधथाः। ऐधेथाम्। ऐधध्वम्। ऐधे। ऐधावहि। ऐधामहि।

....

५१८- **सवाभ्यां वामौ।** सश्च वश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः सवौ, ताभ्यां सवाभ्याम्। वश्च अम् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः वामौ। सवाभ्यां पञ्चम्यन्तं, वामौ प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **लोटो लङ्वत्** से **लोटः** और **आमेतः** से **एतः** की अनुवृत्ति आती है।

स और व से परे लोट् लकार के एकार के स्थान पर स्थान पर क्रम से व और अम् आदेश होता है।

यहाँ पर निमित्त भी दो है स् और व् तथा आदेश भी दो हैं- व और अम्। अतः **यथासंख्यामनुदेशः समानाम्** के नियमानुसार क्रम से होगा अर्थात् सकार से पर एकार के स्थान पर व आदेश और वकार से पर एकार के स्थान पर अम् आदेश।

एधस्व। एध् धातु से लोट् लकार, थास् आदेश, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्ध लोप, **एध् अ थास्** बना है। **थासः से** से थास् के स्थान पर से आदेश होने पर से के सकार से परे एकार के स्थान पर **सवाभ्यां वामौ** से व आदेश हुआ- **एध् अ स् व** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **एधस्व** सिद्ध हुआ।

एधेथाम्। एध् धातु से लोट् लकार, आथाम् आदेश, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **एध् अ** आथाम् बना है। **आतो ङितः** से आथाम् के आकार के स्थान पर इय् आदेश हुआ- **एध् अ इय् आथाम्** बना। यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप हुआ। **एध् अ इ थाम्** बना। **अ+इ** में **आद्गुणः** से गुण हुआ, ए बना। **एध् ए थाम्** में वर्णसम्मेलन हुआ- **एधेथाम्** बना। **एधेथाम्** में अन्त्य अच् थाम् में आम् है। अतः मकार सहित आ अर्थात् आम् की **अचोऽन्त्यादि टि** से टिसंज्ञा हुई और टि के स्थान पर **टित आत्मनेपदानां टेरेः** से एत्व हुआ- **एधेथे** बना। थे के एकार के स्थान पर **आमेतः** से आम् आदेश हुआ- **एधेथाम्।**

एधध्वम्। एध् धातु से लोट् लकार, ध्वम् आदेश, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप, **एध् अ ध्वम्** बना। ध्वम् में अम् की टिसंज्ञा और उसके स्थान **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व करके **एध् अ ध्वे** बना। **ध्वे** में वकार से परे एकार के स्थान पर **सवाभ्यां वामौ** से **अम्** आदेश हुआ- **एध् अ ध्वम्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **एधध्वम्** सिद्ध हुआ।

५१९- **एत ऐ।** एतः षष्ठ्यन्तम्, ऐ लुप्तप्रथमाकं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **लोटो लङ्वत्** से **लोटः** और **आडुत्तमस्य पिच्च** से **उत्तमस्य** की अनुवृत्ति आती है।

लोट् लकार के उत्तमपुरुष के एकार के स्थान पर ऐकार आदेश होता है।

एधै। एध् धातु से लोट्, इ आदेश, शप्, **एध्+अ+इ** बना है। इ के स्थान पर एत्व होकर **एध् अ ए** बना और **एत ऐ** से एकार के स्थान पर ऐकार आदेश हुआ- **एध् अ ऐ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **एधै।**

एधावहै। एधामहै। शप् करके के बाद **एध् अ वहि** और **एध् अ महि** बना है।

सीयुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

५२०. लिङः सीयुट् ३।४।१०२॥

सलोपः। एधेत। एधेयाताम्।

....

अतो दीर्घो यञि से शप् के अकार को दीर्घ और टि को एत्व करने के बाद **एध् आ वहे** और **एध् आ महे** बना, एकार के स्थान **एत ऐ** से ऐकारादेश करके वर्णसम्मेलन करने पर **एधावहै** और **एधामहै** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

इस प्रकार से **एध्** धातु के **लोट्** लकार में रूप बने- एधताम्, एधेताम्, एधन्ताम्, एधस्व, एधेथाम्, एधध्वम्, एधै, एधावहै, एधामहै।

ऐधत। एध् धातु से लङ् लकार, त आदेश, **एध् त** बना। अजादि धातु होने के कारण धातु के पहले **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** को बाधकर **आडजादीनाम्** से आट् का आगम हुआ। **आ+एध्+त** बना। सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप करके **आ+एध्+अ+त** बना। **आ+एध् में आटश्च** से वृद्धि हुई, ऐध् बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **ऐधत** यह रूप सिद्ध हुआ। लङ् लकार और उसके बाद के लकार टित् नहीं हैं, ङित् हैं। अतः **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व नहीं होगा। थास् के स्थान पर **से** आदेश भी नहीं होगा। **आताम्** और **आथाम्** में **आतो ङितः** से इय् आदेश और यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप, झ में झकार के स्थान पर अन्त् आदेश और **अतो गुणे** से पररूप, इट् के परे होने पर शप् के अकार और इ में गुण, वहि और महि में **अतो दीर्घो यञि** से दीर्घ आदि करके लुङ् लकार के रूप बनाइये- ऐधत, ऐधेताम्, ऐधन्त, ऐधथाः, ऐधेथाम्, ऐधध्वम्, ऐधे, ऐधावहि, ऐधामहि।

५२०- **लिङः सीयुट्**। लिङः षष्ठ्यन्तं, सीयुट् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

लिङ् लकार को सीयुट् आगम होता है।

सीयुट् में टकार की **हलन्त्यम्** से तथा उकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा एवं दोनों का **तस्य लोपः** से लोप होकर केवल सीय् शेष रहता है। टित् होने के कारण लकार के आदि में बैठता है। परस्मैपद में सीयुट् को बाधकर **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् आगम होता है।

एधेत। एध् धातु से विधि आदि अर्थ में लिङ् लकार, त आदेश, शप्, अनुबन्ध लोप, **एध् अ त** बना। **लिङः सीयुट्** से सीयुट् आगम, अनुबन्धलोप, **एध्+अ+सीय्+त** बना। सीय् में सकार का **लिङः सलोपोऽन्त्यस्य** से लोप होकर **एध्+अ+ईय्+त** बना। यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप होता है। वर्णसम्मेलन होने पर **एध+ई त** बना। **एध+ई** में **आद्गुणः** से गुण हुआ- **एधेत** सिद्ध हुआ।

एधेयाताम्। एध् धातु से विधि आदि अर्थ में लिङ् लकार, आताम् आदेश, शप्, अनुबन्धलोप, **एध्+अ+आताम्** बना। **लिङः सीयुट्** से सीयुट् आगम, अनुबन्धलोप, **एध्+अ+सीय्+आताम्** बना। सीय् में सकार का **लिङः सलोपोऽन्त्यस्य** से लोप होकर **एध्+अ+ईय्+आताम्** बना। वल् परे न होने के कारण यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप नहीं होता है। वर्णसम्मेलन होने पर **एध+ईय् आताम्** बना। **एध+ई** में **आद्गुणः** से गुण हुआ- **एधेय्+आताम्**, यकार आकार के साथ मिला- **एधेयाताम्** सिद्ध हुआ।

रनादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५२१. झस्य रन् ३।४।१०५॥

लिङो झस्य रन् स्यात्। एधेरन्। एधेथाः। एधेयाथाम्। एधेध्वम्।

अदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५२२. इटोऽत् ३।४।१०६॥

लिङादेशस्य इटोऽत् स्यात्। एधेय। एधेवहि। एधेमहि।

....

५२१- **झस्य रन्**। झस्य षष्ठ्यन्तं, रन् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **लिङः सीयुट्** से **लिङः** की अनुवृत्ति आती है।

लिङ् लकार के झ के स्थान पर रन् आदेश होता है।

झोऽन्तः सूत्र को बाधकर के इससे **रन्** आदेश होता है। **रन्** अनेकाल् है, अतः सम्पूर्ण झ के स्थान पर होता है। रन् के नकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा प्राप्त थी, उसका **न विभक्तौ तुस्माः** से निषेध हो जाता है।

एधेरन्। एध् धातु से विधि आदि अर्थ लिङ् लकार, झ आदेश, झ के स्थान पर **झस्य रन्** से रन् आदेश, शप्, एध्+अ+रन् बना। सीयुट् आगम, अनुबन्धलोप, सकार का लोप, **एध्+अ+इय्+रन्** बना। **अ+इय्** में गुण, यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप, **एधेरन्**।

एधेथाः। एध् धातु से विधि आदि अर्थ लिङ् लकार, थास् आदेश, शप्, एध्+अ+थास् बना। सीयुट् आगम, अनुबन्धलोप, **सीय्** के सकार का लोप, **एध्+अ+इय्+थास्** बना। **अ+इय्** में गुण, यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप और थास् के सकार को रुत्वविसर्ग होकर **एधेथाः** सिद्ध हुआ।

एधेयाथाम्। एध् धातु से विधि आदि अर्थ लिङ् लकार, आथाम् आदेश, शप्, एध्+अ+आथाम् बना। सीयुट् आगम, अनुबन्धलोप, सकार का लोप, **एध्+अ+इय्+आथाम्** बना। अ+इय् में गुण, **एध्+एय्+आथाम्** में वर्णसम्मेलन कर लेने पर **एधेयाथाम्** रूप सिद्ध हुआ।

एधेध्वम्। एध् धातु से विधि आदि अर्थ लिङ् लकार, ध्वम् आदेश, शप्, एध्+अ+ध्वम् बना। सीयुट् आगम, अनुबन्धलोप, सकार का लोप, **एध्+अ+इय्+ध्वम्** बना। **अ+इय्** में गुण, यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप, **एधेध्वम्**।

५२२- **इटोऽत्**। इटः षष्ठ्यन्तम्, अत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **लिङः सीयुट्** से **लिङः** की अनुवृत्ति आती है।

लिङ् के स्थान पर आदेश हुए इट् के स्थान पर अत् अर्थात् ह्रस्व अकार आदेश होता है।

एधेय। उत्तमपुरुष का एकवचन इट्, अनुबन्धलोप, शप् आदि करके **एध्+अ+इ** बना है। सीयुट् आगम, अनुबन्धलोप, सकार का लोप करके **एध्+अ+इय्+इ** बना है। इ के स्थान पर **इटोऽत्** से अकार आदेश हुआ, **एध्+अ+इय्+अ** बना। **अ+इय्** में गुण और वर्णसम्मेलन करके **एधेय** बना।

एधेवहि। एधेमहि। इन दोनों प्रयोगों की भी शप्, सीयुट्, सकार का लोप, गुण, यकार का लोप, वर्णसम्मेलन करने पर सिद्धि होती है।

सुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

५२३. सुट् तिथोः ३।४।१०७॥

लिङस्तथोः सुट्। यलोपः। आर्धधातुकत्वात् सलोपो न।

एधिषीष्ट। एधिषीयास्ताम्। एधिषीरन्। एधिषीष्ठाः। एधिषीयास्थाम्। एधिषीध्वम्। एधिषीय। एधिषीवहि। एधिषीमहि। ऐधिष्ट। ऐधिषाताम्।

....

इस तरह एध् धातु के विधिलिङ् में रूप बने- एधेत, एधेयाताम्, एधेरन्, एधेथाः, एधेयाथाम्, एधेध्वम्, एधेय, एधेवहि, एधेमहि।

५२३- सुट् तिथोः। सुट् प्रथमान्तं तिथोः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **लिङः सीयुट्** से **लिङः** की अनुवृत्ति आती है।

लिङ् लकार के त और थ को सुट् का आगम होता है।

सुट् में टकार और इकार की इत्संज्ञा होती है। इत्संज्ञा का फल लोप है। केवल स् शेष रहता है। टित् होने के कारण यह तकार और थकार के आदि में बैठता है। इस तरह त के पहले लगने से **स्त**, आताम् में तकार के पहले होने पर **आस्ताम्**, थास् में थकार के पहले लगने से **स्थास्** और आथाम् में भी थकार के पहले लगने से **आस्थाम्** बन जाते हैं।

विधिलिङ् में भी सुट् आगम होता है किन्तु उसका **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** से लोप हो जाने के कारण सुट् आगम का कोई फल नहीं रह जाता है। आशीर्लिङ् में सकार का लोप प्राप्त नहीं होता, क्योंकि यह लकार **लिङाशिषि** से आर्धधातुक बना है और उसको होने वाला सीयुट् आगम भी आर्धधातुक ही माना जाता है। लोपविधायक सूत्र सार्वधातुक सकार का ही लोप करता है।

एधिषीष्ट। एध् धातु से आशीर्वाद अर्थ में लिङ् लकार, उसके स्थान पर त आदेश, उसकी **लिङाशिषि** से आर्धधातुक-संज्ञा, **लिङः सीयुट्** से सीयुट् का आगम, अनुबन्धलोप, **एध्+सीय्+त** बना। सीय् की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा और उसको **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् आगम, **एध्+इ+सीय्+त** बना, तकार को **सुट् तिथोः** से सुट् का आगम, अनुबन्धलोप, **एध्+इ+सीय्+स्त** बना, यकार का लोप, इकार से परे सीय् के सकार का और ईकार से परे स्त के सकार का **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व, षकार से परे तकार का **ष्टुना ष्टुः** से टुत्व, **एध्+इ+षी+ष्ट** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **एधिषीष्ट**।

इस प्रकार से एधिषी (वल् परे होने पर यकार का लोप, अन्यत्र नहीं) बना लेने के बाद यदि सुट् आगम हुआ है तो सुट् के सकार का भी षत्व और तकार-थकार का टुत्व (थकार का टुत्व ठकार) आदि करके (इट् में अकार आदेश) **एध् के आशीर्लिङ्** में रूप बनते हैं- एधिषीष्ट, एधिषीयास्ताम्, एधिषीरन्, एधिषीष्ठाः, एधिषीयास्थाम्, एधिषीध्वम्(यहाँ पर **इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्** से ढ नहीं होता, क्योंकि **धि** का इकार इण् में तो आता है पर वह सीयुट् को विहित होने के कारण उसके परे रहते एध् मात्र की अङ्गसंज्ञा होती है और एध् इणन्त नहीं है तथा एधि इणन्त होने पर भी अङ्ग नहीं है।

एधिषीय, एधिषीवहि, एधिषीमहि। इनकी प्रक्रिया सरल ही है।

ऐधिष्ट। एध् धातु से लुङ् लकार में त प्रत्यय, **आडजादीनाम्** से आट् आगम करके **आ+एध्+त** बना। च्लि और उसके स्थान पर सिच्, अनुबन्धलोप, सकार शेष, उसकी

अत्-इत्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५२४. आत्मनेपदेष्वनतः ७।१।५॥

अनकारात्परस्यात्मनेपदेषु झस्य अदित्यादेशः स्यात्।

ऐधिषत। ऐधिष्ठाः। ऐधिषाथाम्। ऐधिढ्वम्। ऐधिषि। ऐधिष्वहि। ऐधिष्महि। ऐधिष्यत। ऐधिष्येताम्। ऐधिष्यन्त। ऐधिष्यथाः। ऐधिष्येथाम्। ऐधिष्यध्वम्। ऐधिष्ये। ऐधिष्यावहि। ऐधिष्यामहि।

कमु कान्तौ॥२॥

....

आर्धधातुक संज्ञा और उसको वलादिलक्षण इट् आगम करने पर **आ+एध्+इस्+त** बना। **आ+एध्** में **आटश्च** से वृद्धि होकर **ऐध्** बना, इस् में सकार को षत्व और षकार से परे टकार का टुत्व करके **ऐध्+ इष्+ट** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **ऐधिष्ट।**

ऐधिषाताम्। एध् धातु से लुङ् लकार में आताम् प्रत्यय, **आडजादीनाम्** से आट् आगम करके **आ+एध्+आताम्** बना। च्लि और उसके स्थान सिच्, अनुबन्धलोप, सकार शेष, उसकी आर्धधातुक संज्ञा और उसको वलादिलक्षण इट् आगम करने पर **आ+एध्+इस्+आताम्** बना। **आ+एध्** में **आटश्च** से वृद्धि होकर **ऐध्** बना, इस् में सकार को षत्व करके **ऐध्+ इष्+आताम्** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **ऐधिषाताम्।**

५२४- आत्मनेपदेष्वनतः। न अत् अनत्, तस्मात् अनतः। आत्मनेपदेषु सप्तम्यन्तम्, अनतः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **झोऽन्तः** से **झः** तथा **अदभ्यस्तात्** से **अत्** की अनुवृत्ति आती है।

ह्रस्व अकार से भिन्न वर्ण से परे आत्मनेपद के झकार के स्थान पर अत् आदेश होता है।

अत् में तकार का **न विभक्तौ तुस्माः** से निषेध होने के कारण इत्संज्ञा नहीं होती है। यह अत् आदेश केवल झ् के स्थान पर हुआ है, झ (झ्+अ) सम्पूर्ण के स्थान पर नहीं।

ऐधिषत। एध् धातु से लुङ्, झ, उसके स्थान पर **आत्मनेपदेष्वनतः** से अत् आदेश, एध्+अत बना। आट् आगम, च्लि, सिच्, इट् करके **आ+एध्+इस्+अत** बना है। आ+एध् में वृद्धि हुई और इस् के सकार को षत्व, वर्णसम्मेलन करके **ऐधिषत** की सिद्धि होती है।

शेष प्रयोगों में भी आट् आगम, च्लि, सिच् आदेश, आर्धधातुकसंज्ञा, इट् आगम, वृद्धि, षत्व आदि होंगे। इस तरह से एध् धातु के लुङ् लकार में निम्नलिखित रूप सिद्ध होते हैं- ऐधिष्ट, ऐधिषाताम्, ऐधिषत। ऐधिष्ठाः, ऐधिषाथाम्, ऐधिढ्वम्। ऐधिषि, ऐधिष्वहि, ऐधिष्महि। **ऐधिढ्वम्** में **ऐध्+इस्+ध्वम्** बन जाने के बाद **धि च** से सकार का लोप हो जाता है **इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्** से ढत्व होता है, क्योंकि **ध्वम्** प्रत्यय के परे रहते तदादि होने से **ऐधिस्** की अङ्गसंज्ञा होती है और अब सलोप होने के बाद बचा हुआ **ऐधि** भी एकदेशविकृतन्याय से अङ्ग ही है और स्वतः इणन्त भी। अतः इणन्त अङ्ग होने से **ऐधि** इससे परे लुङ् के धकार को **ढकार** होता है।

ऐधिष्यत। एध् धातु से लृङ् लकार में त, **आडजादीनाम्** से आट् आगम,

स्यतासी लृलुटोः से स्य, उसकी आर्धधातुकसंज्ञा, **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् आगम, **आ+एध्** में **आटश्च** से वृद्धि और इकार से परे स्य के सकार के स्थान पर **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व कर वर्णसम्मेलन करने पर **ऐधिष्यत** सिद्ध हो जाता है।

एध् धातु के लृङ्-लकार के रूप- ऐधिष्यत, ऐधिष्येताम्, ऐधिष्यन्त। ऐधिष्यथाः, ऐधिष्येथाम्, ऐधिष्यध्वम्। ऐधिष्ये, ऐधिष्यावहि, ऐधिष्यामहि।

इस प्रकार से आपने भ्वादिप्रकरण में आत्मनेपदी **एध्** धातु के रूप जान लिया। धातुपाठ के अनुसार भ्वादिगण में लगभग एक हजार धातुएँ हैं, जिसमें एकतिहाई से भी ज्यादा धातुएँ आत्मनेपदी हैं।

लघुसिद्धान्तकौमुदी पढ़ने के बाद छात्रों को **वैयाकरणसिन्द्धान्तकौमुदी** का अध्ययन करना है।। **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** का पूर्ण ज्ञान तभी हो सकता है, जब आपने अष्टाध्यायी के सारे सूत्र रट लिये हों। सूत्र और वार्तिक मिलाकर चार हजार से ऊपर इनका रटन करना मामूली बात नहीं है। अतः हम आपको बार-बार यही निर्देश दे रहे हैं कि प्रतिमाह एक अध्याय के नियम से अष्टाध्यायी-सूत्रपाठ का पारायण करें। पारायण अर्थात् आवृत्ति करने से शीघ्र कण्ठस्थ हो जाते हैं। आशा है कि आप मेरे निर्देशनों को मानने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

अब एध धातु के सभी रूपों को तालिका में देखते हैं।

लट् लकार

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमपुरुष	एधते	एधेते	एधन्ते
मध्यमपुरुष	एधसे	एधेथे	एधध्वे
उत्तमपुरुष	एधे	एधावहे	एधामहे

लिट् लकार, कृ का अनुप्रयोग

प्रथमपुरुष	एधाञ्चक्रे	एधाञ्चक्राते	एधाञ्चक्रिरे
मध्यमपुरुष	एधाञ्चकृपे	एधाञ्चक्राथे	एधाञ्चकृढ्वे
उत्तमपुरुष	एधाञ्चक्रे	एधाञ्चकृवहे	एधाञ्चकृमहे

लिट् लकार, भू का अनुप्रयोग

प्रथमपुरुष	एधाम्बभूव	एधाम्बभूवतुः	एधाम्बभूवुः
मध्यमपुरुष	एधाम्बभूविथ	एधाम्बभूवथुः	एधाम्बभूव
उत्तमपुरुष	एधाम्बभूव	एधाम्बभूविव	एधाम्बभूविम

लिट् लकार, अस् का अनुप्रयोग

प्रथमपुरुष	एधामास	एधामासतुः	एधामासुः
मध्यमपुरुष	एधामासिथ	एधामासथुः	एधामास
उत्तमपुरुष	एधामास	एधामासिव	एधामासिम

लुट् लकार

प्रथमपुरुष	एधिता	एधितारौ	एधितारः
मध्यमपुरुष	एधितासे	एधितासाथे	एधिताध्वे
उत्तमपुरुष	एधिताहे	एधितास्वहे	एधितास्महे

णिङ्विधायकं विधिसूत्रम्

५२५. कमेर्णिङ् ३।१।३०॥

स्वार्थे। ङित्त्वात्तङ्। कामयते।

....

लृट् लकार

प्रथमपुरुष	एधिष्यते	एधिष्येते	एधिष्यन्ते
मध्यमपुरुष	एधिष्यसे	एधिष्येथे	एधिष्यध्वे
उत्तमपुरुष	एधिष्ये	एधिष्यावहे	एधिष्यामहे

लोट् लकार

प्रथमपुरुष	एधताम्	एधेताम्	एधन्ताम्
मध्यमपुरुष	एधस्व	एधेथाम्	एधध्वम्
उत्तमपुरुष	एधै	एधावहै	एधामहै

लङ् लकार

प्रथमपुरुष	ऐधत	ऐधेताम्	ऐधन्त
मध्यमपुरुष	ऐधथाः	ऐधेथाम्	ऐधध्वम्
उत्तमपुरुष	ऐधे	ऐधावहि	ऐधामहि

विधिलिङ् लकार

प्रथमपुरुष	एधेत	एधेयातम्	एधेरन्
मध्यमपुरुष	एधेथाः	एधेयाथाम्	एधेध्वम्
उत्तमपुरुष	एधेय	एधेवहि	एधेमहि

आशीर्लिङ् लकार

प्रथमपुरुष	एधिषीष्ट	एधिषीयास्ताम्	एधिषीरन्
मध्यमपुरुष	एधिषीष्ठाः	एधिषीयास्थाम्	एधिषीध्वम्
उत्तमपुरुष	एधिषीय	एधिषीवहि	एधिषीमहि

लुङ् लकार

प्रथमपुरुष	ऐधिष्ट	ऐधिषाताम्	ऐधिषत
मध्यमपुरुष	ऐधिष्ठाः	ऐधियाथाम्	ऐधिढ्वम्
उत्तमपुरुष	ऐधिषि	ऐधिष्वहि	ऐधिष्महि

लृङ् लकार

प्रथमपुरुष	ऐधिष्यत	ऐधिष्येताम्	ऐधिष्यन्त
मध्यमपुरुष	ऐधिष्यथाः	ऐधिष्येथाम्	ऐधिष्यध्वम्
उत्तमपुरुष	ऐधिष्ये	ऐधिष्यावहि	ऐधिष्यामहि।

कमु कान्तौ। कमु धातु कान्ति अर्थात् इच्छा अर्थ में है। उकार की इत्संज्ञा होती है और इससे **गुपू** धातु से जिस तरह आय प्रत्यय हुआ था उसी तरह स्वार्थ में **णिङ्** प्रत्यय होता है। उसके बाद **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होकर लकार आते हैं।

५२५- कमेर्णिङ्। कमेः पञ्चम्यन्तं, णिङ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

अयादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५२६. अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु ६।४।५५।।

आम् अन्त आलु आय्य इत्नु इष्णु एषु णेरयादेशः स्यात्। कामयाञ्चक्रे। आयादय इति णिङ् वा। चकमे। चकमाते। चकमिरे। चकमिषे। चकमाथे। चकमिध्वे। चकमे। चकमिवहे। चकमिमहे। कामयिता।। कामयितासे। कमिता। कामयिष्यते, कमिष्यते। कामयताम्। अकामयत। कामयेत। कामयिषीष्ट।।

....

कम् धातु से स्वार्थ में णिङ् प्रत्यय होता है।

अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति। सूत्र में कोई अर्थ निर्देश नहीं है, अतः यह प्रत्यय स्वार्थिक है अर्थात् धातु के अर्थ को ही पुष्ट करता है, विशेष अर्थ नहीं लाता। **णिङ्** में **णकार** और **ङकार** की इत्संज्ञा होती है। **इ** बचता है। इसके ङित् होने से **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से आत्मनेपद होता है। णित् होने के कारण वृद्धि आदि कार्य होते हैं।

कामयते। कमु धातु है, उकार की इत्संज्ञा होने के बाद कम् से **कमेर्णिङ्** से णिङ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप होने के बाद **कम्+इ** बना। **अत उपधायाः** से ककारोत्तरवर्ती अकार को वृद्धि होने पर **काम्+इ,** वर्णसम्मेलन होने पर **कामि** बना। **कामि** की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होकर लट् लकार, त, शप् करके **कामि+अ+त** बना। शप् वाले अकार के परे होने पर **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से **कामि** के इकार को गुण करके **कामे+अत** बना। अय् आदेश होकर **काम्+अय्+अत** बना। वर्णसम्मेलन होकर **कामयत** बना। **टित आत्मनेपदानां टेरेः** से एत्व होकर **कामयते** सिद्ध हुआ। कामयते, कामयेते, कामयन्ते, कामयसे, कामयेथे, कामयध्वे, कामये, कामयावहे, कामयामहे।

५२६- अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु। आम् च अन्तश्च आलुश्च आय्यश्च इत्नुश्च इष्णुश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः आमन्ताल्वाय्येत्न्विष्णवः, तेषु आमन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु। अय् प्रथमान्तम्, आमन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **णेरनिटि** से **णेः** की अनुवृत्ति आती है।

आम्, अन्त, आलु, आय्य, इत्नु और इष्णु के परे होने पर णि के स्थान पर अय् आदेश होता है।

यह सूत्र **णेरनिटि** से प्राप्त **णि** के लोप का बाधक है।

कामयाञ्चक्रे। कम् से लिट् लकार की विवक्षा है। लिट् आर्धधातुक है। अतः **आयादय आर्धधातुके वा** की सहायता से **कमेर्णिङ्** से **णिङ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, उपधा की वृद्धि करके **कामि,** धातुसंज्ञा, लिट्, त आदेश, **कास्यनेकाच आम्वक्तव्यो लिटि** से आम्, **आमः** से लिट् का लुक्, **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि** से लिट् को साथ लेकर **कृ** का अनुप्रयोग, **कृ** धातु उभयपदी होने के कारण यह द्विविधा थी कि **कृ** से परस्मैपद हो या आत्मनेपद अथवा उभयपद तो **आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य** से आत्मनेपद ही होने का विधान। इस तरह **कामि+आम्+कृ+त** बना। **कामि** के इकार को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण प्राप्त था, उसे बाधकर **णेरनिटि** से लोप प्राप्त हुआ। उसे भी बाधकर के **आमन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु** से अय् आदेश हुआ, **कामयाम्+कृत** बना। अब **एधाञ्चक्रे** की

वैकल्पिकढत्वविधायकं विधिसूत्रम्

५२७. विभाषेटः ८।३।७९।।

इणः परो य इट् ततः परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य वा ढः।

कामयिषीढ्वम्। कामयिषीध्वम्। कमिषीष्ट। कमिषीध्वम्।

....

तरह कृ को द्वित्व, अर्, हलादिशेष, चुत्व, त के स्थान पर **एश्** आदेश और **यण्** करके **कामयाञ्चक्रे** सिद्ध हो जाता है।

लिट् में कृ के अनुप्रयोग में- कामयाञ्चक्रे, कामयाञ्चक्राते, कामयाञ्चक्रिरे, कामयाञ्चकृषे, कामयाञ्चक्राथे, कामयाञ्चकृढ्वे, कामयाञ्चक्रे, कामयाञ्चकृवहे, कामयाञ्चकृमहे।

लिट् में भू के अनुप्रयोग में- कामयाम्बभूव, कामयाम्बभूवतुः, कामयाम्बभूवुः, कामयाम्बभूविथ, कामयाम्बभूवथुः, कामयाम्बभूव, कामयाम्बभूव, कामयाम्बभूविव, कामयाम्बभूविम।

लिट् में अस् के अनुप्रयोग में- कामयामास, कामयामासतुः, कामयामासुः, कामयामासिथ, कामयामासथुः, कामयामास, कामायामास, कामयामासिव, कामयामासिम।

णिङ् न होने के पक्ष में- चकमे, चकमाते, चकमिरे, चकमिषे, चकमाथे, चकमिध्वे, चकमे, चकमिवहे, चकमिमहे।

लुट्- णिङ् होने के पक्ष में- कामयिता, कामयितारौ, कामयितारः, कामयितासे, कामयितासाथे, कामयिताध्वे, कामयिताहे, कामयितास्वहे, कामयितास्महे।

लुट्- णिङ् न होने के पक्ष में- कमिता, कमितारौ, कमितारः, कमितासे, कमितासाथे, कमिताध्वे, कमिताहे, कमितास्वहे, कमितास्महे।

लृट्- णिङ् होने के पक्ष में- कामयिष्यते, कामयिष्येते, कामयिष्यन्ते, कामयिष्यसे, कामयिष्येथे, कामयिष्यध्वे, कामयिष्ये, कामयिष्यावहे, कामयिष्यामहे।

लृट्- णिङ् न होने के पक्ष में- कमिष्यते, कमिष्येते, कमिष्यन्ते, कमिष्यसे, कमिष्येथे, कमिष्यध्वे, कमिष्ये, कमिष्यावहे, कमिष्यामहे।

लोट्- इस लकार में नित्य से णिङ् होता है। कामयताम्, कामयेताम्, कामयन्ताम्, कामयस्व, कामयेथाम्, कामयध्वम्, कामयै, कामयावहै, कामयामहै।

लङ्- नित्य से णिङ्। अकामयत, अकामयेताम्, अकामयन्त, अकामयथाः, अकामयेथाम्, अकामयध्वम्, अकामये, अकामयावहि, अकामयामहि।

विधिलिङ्- कामयेत, कामयेताम्, कामयेरन्, कामयेथाः, कामयेथाम्, कामयेध्वम्, कामयेय, कामयेवहि, कामयेमहि।

कामयिषीष्ट। कामि+इ+सीय्+ट में यकार का लोप, आर्धधातुकगुण, एकार को अय् आदेश, सुट् का आगम, **कामय्+इ+सी+स्+त** बना। दोनों सकारो षत्व करके पकार के योग में तकार को ष्टुत्व करके **कामयिषीष्ट** बन जाता है।

५२७- **विभाषेटः**। विभाषा प्रथमान्तम्, इटः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्** यह पूरा सूत्र तथा **अपदान्तस्य मूर्धन्यः** से **मूर्धन्यः** की अनुवृत्ति आ रही है।

इण् प्रत्याहार से परे जो इट्, उससे परे षीध्वम्, लुङ् और लिट् के धकार के स्थान पर विकल्प से मूर्धन्य(ढकार) आदेश होता है।

चङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५२८. णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ् ३।१।४८॥

ण्यन्तात् श्र्यादिभ्यश्च च्लेश्चङ् स्यात् कर्त्रर्थे लुङि परे।

अकामि अ त इति स्थिते।

णिलोपविधायकं विधिसूत्रम्

५२९. णेरनिटि ६।४।५१॥

अनिडादावार्धधातुके परे णेर्लोपः स्यात्।

ह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्

५३०. णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः ७।४।१॥

चङ्परे णौ यदङ्गं तस्योपधाया ह्रस्वः स्यात्।

....

षीध्वम् का धकार है। अतः इससे वैकल्पिक ढत्व होकर **कामयिषीढ्वम्** और **कामयिषीध्वम्** ये दो रूप बनते हैं।

आशीर्लिङ्- णिङ्पक्ष- कामयिषीष्ट, कामयिषीयास्ताम्, कामयिषीरन्, कामयिषीष्ठाः, कामयिषीयास्थाम्, कामयिषीढ्वम्-कामयिषीध्वम्, कामयिषीय, कामयिषीवहि, कामयिषीमहि।

णिङ्भावे- कमिषीष्ट, कमिषीयास्ताम्, कमिषीरन्, कमिषीष्ठाः, कमिषीयास्थाम्, कमिषीध्वम्, कमिषीय, कमिषीवहि, कमिषीमहि।

५२८- णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्। णिश्च श्रिश्च द्रुश्च स्रुश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः णिश्रिद्रुस्रवः, तेभ्यः णिश्रिद्रुस्रुभ्यः। णिश्रिद्रुस्रुभ्यः पञ्चम्यन्तं, कर्तरि सप्तम्यन्तं, चङ् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। च्लि लुङि से लुङि और च्लेः सिच् से च्लेः की अनुवृत्ति आती है।

णि अन्त में हो ऐसे धातु और श्रि, द्रु, स्रु धातुओं से परे च्लि के स्थान पर चङ् आदेश होता है कर्त्रर्थक लुङ् के परे होने पर।

प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम् यह एक परिभाषा है। जहाँ-जहाँ प्रत्ययों का ग्रहण होता है, वहाँ-वहाँ प्रत्ययान्त का ग्रहण होता है अर्थात् जैसे इस सूत्र में णि का ग्रहण किया गया है तो इससे णि अन्त में ऐसे धातु को लिया गया। चकार और ङकार की इत्संज्ञा होती है, केवल अकार बचता है।

५२९- णेरनिटि। णेः षष्ठ्यन्तम्, अनिटि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुके** का अधिकार है। **अतो लोपः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है।

इट् आदि में न हो ऐसे आर्धधातुक के परे होने पर णि का लोप होता है।

इस सूत्र में सामान्य णि का ग्रहण है अर्थात् अनुबन्ध नहीं लगा है। अतः णिङ् और णिच् दोनों के णि के इकार का लोप हो जायेगा।

५३०- णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः। णौ सप्तम्यन्तं, चङि सप्तम्यन्तम्, उपधाया षष्ठ्यन्तं, ह्रस्वः प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

चङ् के परे होने परे जो णि, उसके परे रहने पर जो अङ्ग, उसकी उपधा को ह्रस्व होता है।

द्वित्वविधायकं विधिसूत्रम्

५३१. चङि ६।१।११॥

चङि परे अनभ्यासस्य धात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तोऽजादेर्द्वितीयस्य।

सन्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्

५३२. सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे ७।४।९३॥

चङ्परे णौ यदङ्गं तस्य योऽभ्यासो लघुपरस्तस्य सनीव कार्यं स्यात्, णावग्लोपेऽसति।

इदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५३३. सन्यतः ७।४।७९॥

अभ्यासस्यात इत् स्यात् सनि।

....

ध्यान रखना कि केवल णि के परे नहीं अपितु णि से भी चङ् परे हो, तभी यह सूत्र प्रवृत्त होता है।

५३१- चङि। चङि सप्तम्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से **धातोः** और **अनभ्यासस्य** की अनुवृत्ति और **एकाचो द्वे प्रथमस्य, अजादेर्द्वितीयस्य** का अधिकार है।

चङ् के परे होने पर अभ्यासभिन्न धातु के अवयव प्रथम एकाच् को द्वित्व होता है किन्तु यदि धातु अजादि और अनेकाच् हो तो द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है।

५३२- सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे। सनि इव सन्वत्। चङ्परो यस्मात् स चङ्परः, तस्मिन् चङ्परे। अको लोपः अग्लोपः, न अग्लोपः अनग्लोपः, तस्मिन् अग्लोपे, बहुव्रीहिगर्भतत्पुरुषः। सन्वत् अव्ययपदं, लघुनि सप्तम्यन्तम्, अनग्लोपे सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

चङ्-परक णि के परे होने पर जो अङ्ग, उसका जो अभ्यास, उससे यदि लघु वर्ण परे हो तो उस अभ्यास को सन्वद्भाव होता है किन्तु यदि णि को मानकर अक् का लोप न हुआ हो तो।

इस सूत्र का कार्य जो सन् नहीं है उसे सन् की तरह बनाना अर्थात् सन् को मानकर जो कार्य होता है वह सन् के न होने पर भी हो जाय। यह अतिदेश सूत्र है। सन् प्रत्यय सन्नन्त प्रकरण में होता है, भ्वादि में सन् कहाँ से होगा? किन्तु इस सूत्र के बल पर असन् भी सन् की तरह होता है। सन्वद्भाव का फल **सन्यतः** इस सूत्र की प्रवृत्ति है।

इस सूत्र की प्रवृत्ति में सबसे पहले चङ् को देखना है, उसके बाद उससे पूर्व णि को ढूँढना है, इसके बाद अङ्ग को और फिर उस अङ्ग का अवयव अभ्यास जो लघुपरक हो, इस के साथ ही यह भी देखना है कि उस णि को मानकर अक् अर्थात् **अ, इ, उ, ऋ, लृ** का लोप न हुआ हो।

५३३- सन्यतः। सनि सप्तम्यन्तम्, अतः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** और **भृञामित्** से **इत्** की अनुवृत्ति आती है।

सन् के परे होने पर अभ्यास के अत् के स्थान पर इत् होता है।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

५३४. दीर्घो लघोः ७।४।९४॥

लघोरभ्यासस्य दीर्घः स्यात् सन्वद्भावविषये। अचीकमत। णिङभावपक्षे--

वार्तिकम्- **कमेश्च्लेश्चङ् वाच्यः।** अचकमत। अकामयिष्यत। अकमिष्यत।

अय गतौ॥३॥ अयते।

....

५३४- दीर्घो लघोः। दीर्घः प्रथमान्तं, लघोः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

सन्वद्भाव के विषय में अभ्यास के लघु को दीर्घ होता है।

अचीकमत। कामि से लुङ्, त, अट् का आगम करके **अकामि+त** बना। **च्लि लुङि** से **च्लि,** उसके स्थान पर **च्लेः सिच्** से सिच् आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर के **णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्** से **चङ्** आदेश हुआ। **अकामि+अत** बना। **णेरनिटि** से णि वाले इकार का लोप हुआ। **अकाम्+अत** बना। **णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः** से ककारोत्तरवर्ती अकार को ह्रस्व होकर **अकम्+अत** बना। **कम्** को चङि से द्वित्व हुआ- **कम्-कम्,** हलादिशेष, **ककम्** बना, **कुहोश्चुः** से चुत्व होकर **चकम्,** इस तरह **अचकम्+अत** बना। **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** के अनुसार णि का लोप होने पर भी आवश्यकता के अनुसार उसको मानकर होने वाला अङ्ग कार्य होता है तो यहाँ पर चङ् के अकार रूप प्रत्यय के परे **ककम्** अङ्ग है। अतः **सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे** से सन्वद्भाव हुआ अर्थात् **चकम्** इस अभ्यास में लघुपर है ककारोत्तरवर्ती अकार और उससे पूर्व च को सन् परे होने पर होने वाले कार्य हो जाय, इस प्रकार का अतिदेश इस सूत्र से हुआ। अब **सन्यतः** से **अचकम्+अत** में चकारोत्तरवर्ती अकार को इत्व हुआ- **अचिकम्+अत** बना। इसके बाद **दीर्घो लघोः** से **चि** के इकार को दीर्घ हुआ- **अचीकम्+अत** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अचीकमत** सिद्ध हुआ। इस रूप को सिद्ध करने में छात्रगण प्रायः गलती करते हैं। अतः इसका अभ्यास बार-बार होना चाहिए। णिजन्त आदि प्रकरणों में इस प्रकार की प्रक्रिया ज्यादा होती है।
लुङ् में णिङ्पक्ष के रूप- अचीकमत, अचीकमेताम्, अचीकमन्त, अचीकमथाः, अचीकमेथाम्, अचीकमध्वम्, अचीकमे, अचीकमावहि, अचकमामहि।

णिङ् न होने के पक्ष **चङ्** भी प्राप्त नही होगा। अतः अगला वार्तिक लगता है-

कमेश्च्लेश्चङ् वाच्यः। कम धातु से परे च्लि को चङ् हो, ऐसा कहना चाहिए। णिङ् न होने पर सन्वद्भाव भी नहीं होगा, अतः इत्व भी नहीं होगा। वार्तिक से चङ् होने के कारण द्वित्व आदि कार्य होंगे। इसी तरह **अकामि+अत, अकाम्+अत, अकम्+अत, कम्-कम्, ककम्, चकम्, अचकम्+अत** होते हुए **अचकमत** यह रूप सिद्ध होता है।
णिङ् न होने के पक्ष के रूप- अचकमत, अचकमेताम्, अचकमन्त, अचकमथाः, अचकमेथाम्, अचकमध्वम्, अचकमे, अचकमावहि, अचकमामहि।
लृङ्- णिङ्पक्षे- अकामयिष्यत, अकामयिष्येताम्, अकामयिष्यन्त, अकामयिष्यथाः, अकामयिष्येथाम्, अकामयिष्यध्वम्, अकामयिष्ये, अकामयिष्यावहि, अकामयिष्यामहि। **णिङ्** के अभाव पक्ष में अकमिष्यत, अकमिष्येताम् आदि रूप बनते हैं।

लत्वविधायकं विधिसूत्रम्

५३५. उपसर्गस्यायतौ ८।२।१९॥

अयतिपरस्य उपसर्गस्य यो रेफस्तस्य लत्वं स्यात्। प्लायते। पलायते।

आम्विधायकं विधिसूत्रम्

५३६. दयायासश्च ३।१।३७॥

दय् अय् आस् एभ्य आम् स्याल्लिटि।

अयाञ्चक्रे। अयिता। अयिष्यते। अयताम्। आयत। अयेत। अयिषीष्ट। विभाषेट:। अयिषीढ्वम्, अयिषीध्वम्। आयिष्ट। आयिढ्वम्, आयिध्वम्। आयिष्यत। **द्युत दीप्तौ॥४॥** द्योतते।

....

अय गतौ। अय धातु गति(जाना) अर्थ में है। **गति** के चार अर्थ होते हैं- **गमन, ज्ञान, प्राप्ति** और **मोक्ष**। प्रसंग के अनुसार अर्थ किया जाता है। यकारोत्तरवर्ती अनुदात्त अकार की इत्संज्ञा होती है, अय् शेष बचता है और अनुदात्तेत् होने से आत्मनेपदी होता है।

अयते। अय् से लट्, त, शप् और एत्व करके **अय्+अ+ते** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अयते** सिद्ध होता है। **अयते, अयेते, अयन्ते, अयसे, अयेथे, अयध्वे, अये, अयावहे, अयामहे।**

५३५- **उपसर्गस्यायतौ**। उपसर्गस्य षष्ठ्यन्तम्, अयतौ सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **कृपो रो लः** से **रः** और **लः** की अनुवृत्ति आती है।

अय् धातु के परे होने पर उपसर्ग के रेफ को लकार आदेश होता है।

प्लायते। प्र पूर्वक अयते में **उपसर्गस्यायतौ** से प्र के रेफ के स्थान पर लत्व करके **प्ल+अयते** बना। सवर्णदीर्घ होकर **प्लायते** सिद्ध हुआ। इसी तरह **परा+अयते** में लत्व होकर **पला+अयते=पलायते** बनता है।

५३६- **दयायासश्च**। दय् च आय् च आस् च तेषां समहारद्वन्द्वो दयायास्, तस्मात् दयायासः। दयायासः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि** से **लिटि** की अनुवृत्ति आती है।

लिट् के परे होने पर दय्, अय् और आस् इन धातुओं से आम् प्रत्यय होता है।

अयाञ्चक्रे। अय् से लिट्, **दयायासश्च** से आम, आम से परे लिट् का लुक्, कृ का अनुप्रयोग करके **अयाम्+कृ+त** बना। द्वित्व, **उरत्** से अत्व, हलादिशेष, चुत्व, एश् आदेश आदि करके **एधाञ्चक्रे** की तरह **अयाञ्चक्रे** बन जाता है।

लिट्- कृ का अनुप्रयोग- अयाञ्चक्रे, अयाञ्चक्राते, अयाञ्चक्रिरे, अयाञ्चकृषे, अयाञ्चक्राथे, अयाञ्चकृढ्वे, अयाञ्चक्रे, अयाञ्चकृवहे, अयाञ्चकृमहे। **भू** का अनुप्रयोग- अयाम्बभूव, अयाम्बभूवतुः, अयाम्बभूवुः, अयाम्बभूविथ, अयाम्बभूवथुः, अयाम्बभूव, अयाम्बभूव, अयाम्बभूविव, अयाम्बभूविम। **अस्** का अनुप्रयोग- अयामास, अयामासतुः, अयामासुः, अयामासिथ, अयामासथुः, अयामास, अयामास, अयामासिव, अयामासिम। **लुट्-** अयिता, अयितारौ, अयितारः, अयितासे, अयितासाथे, अयिताध्वे, अयिताहे, अयितास्वहे, अयितास्महे। **लृट्-** अयिष्यते, अयिष्येते, अयिष्यन्ते, अयिष्यसे, अयिष्येथे, अयिष्यध्वे, अयिष्ये, अयिष्यावहे,

सम्प्रसारणविधायकं विधिसूत्रम्

५३७. द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम् ७।४।६७॥

अनयोरभ्यासस्य सम्प्रसारणं स्यात्। दिद्युते।

....

अयिष्यामहे। **लोट्**- अयताम्, अयेताम्, अयन्ताम्, अयस्व, अयेथाम्, अयध्वम्, अयै, अयावहै, अयामहै। **लङ्**- आयत, आयेताम्, आयन्त, आयथाः, आयेथाम्, आयध्वम्, आये, आयावहि, आयामहि। **विधिलिङ्**- अयेत, अयेताम्, अयेरन्, अयेथाः, अयेथाम्, अयेध्वम्, अयेय, अयेवहि, अयेमहि। **आशीर्लिङ्**- अयिषीष्ट, अयिषीयास्ताम्, अयिषीरन्, अयिषीष्ठाः, अयिषीयास्थाम्, अयिषीढ्वम्-अयिषीध्वम्, अयिषीय, अयिषीवहि, अयिषीमहि। **लुङ्**- आयिष्ट, आयिषाताम्, आयिषत, आयिष्ठाः, आयिषाथाम्, आयिढ्वम्-आयिध्वम्, आयिषि, आयिष्वहि, आयिष्महि। **लृङ्**- आयिष्यत, आयिष्येताम्, आयिष्यन्त, आयिष्यथाः, आयिष्येथाम्, आयिष्यध्वम्, आयिष्ये, आयिष्यावहि, आयिष्यामहि।

द्युत दीप्तौ। द्युत धातु **चमकना, प्रकाशित होना, प्रकट होना** अर्थ में है। तकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा होती है। **द्युत्** शेष रहता है।

द्योतते। द्युत् से लट्, त, शप्, उपधागुण, एत्व करके **द्योतते** सिद्ध होता है। **लट्**- द्योतते, द्योतेते, द्योतन्ते, द्योतसे, द्योतेथे, द्योतध्वे, द्योते, द्योतावहे, द्योतामहे।

५३७- द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम्। द्युतिश्च स्वापिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो द्युतिस्वापी, तयोर्द्युतिस्वाप्योः। द्युतिस्वाप्योः सप्तम्यन्तं, सम्प्रसारणं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

द्युत् धातु तथा ण्यन्त स्वप् धातु के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है।

स्मरण रहे कि **इग्यणः सम्प्रसारणम्** के नियम से यण् के स्थान पर होने वाले इक् को सम्प्रसारण कहते हैं अर्थात् सम्प्रसारण का तात्पर्य **यण्** के स्थान पर **इक्** होना है। यहाँ द्युत् धातु को द्वित्व करने पर अभ्यास अर्थात् पूर्व द्युत् में विद्यमान यकार के स्थान पर इकार होता है।

दिद्युते। द्युत् से लिट्, उसके स्थान त आदेश, उसके स्थान पर एश् आदेश करके द्वित्व करने पर **द्युत्+द्युत्+ए** बना है। अभ्याससंज्ञक प्रथम द्युत् में विद्यमान यकार के स्थान पर **द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम्** से सम्प्रसारण आदेश करने पर इकार हुआ, **द्+इ+उत्** बना। **इ+उ** में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **इकार** ही हुआ, **दित्+द्युत्+ए** बना। हलादिशेष होकर **दिद्युत्+ए** बना। वर्णसम्मेलन करके **दिद्युते** यह रूप सिद्ध हुआ।

लिट्- दिद्युते, दिद्युताते, दिद्युतिरे, दिद्युतिषे, दिद्युताथे, दिद्युतिध्वे, दिद्यते, दिद्युतिवहे, दिद्युतिमहे। **लुट्**- द्योतिता, द्योतितारौ, द्योतितारः, द्योतितासे, द्योतितासाथे, द्योतिताध्वे, द्योतिताहे, द्योतिताास्वहे, द्योतितास्महे। **लृट्**- द्योतिष्यते, द्योतिष्येते, द्योतिष्यन्ते, द्योतिष्यसे, द्योतिष्येथे, द्योतिष्यध्वे, द्योतिष्ये, द्योतिष्यावहे, द्योतिष्यामहे। **लोट्**- द्योतताम्, द्योतेताम्, द्योतन्ताम्, द्योतस्व, द्योतेथाम्, द्योतध्वम्, द्योतै, द्योतावहै, द्योतामहै। **लङ्**- अद्योतत, अद्योतेताम्, अद्योतन्त, अद्योतथाः, अद्योतेथाम्, अद्योतध्वम्, अद्योते, अद्योतावहि, अद्योतामहि। **विधिलिङ्**- द्योतेत, द्योतेयाताम्, द्योतेरन्, द्योतेथाः, द्योतेयाथाम्, द्योतेध्वम्, द्योतेय, द्योतेवहि, द्योतेमहि। **आशीर्लिङ्**- द्योतिषीष्ट, द्योतिषीयास्ताम्, द्योतिषीरन्, द्योतिषीष्ठाः, द्योतिषीयास्थाम्, द्योतिषीध्वम्, द्योतिषीय, द्योतिषीवहि, द्योतिषीमहि।

वैकल्पिकपरस्मैपदविधायकं विधिसूत्रम्

५३८. द्युद्भ्यो लुङि १।३।९१॥

द्युतादिभ्यो लुङः परस्मैपदं वा स्यात्। पुषादीत्यङ्। अद्युतत्, अद्योतिष्ट। अद्योतिष्यत। एवं **श्विता वर्णे**॥५॥ **ञिमिदा** स्नेहने॥६॥ **ञिष्विदा** स्नेहनमोचनयोः॥७॥ मोहनयोरित्येके। **ञिक्ष्विदा** चेत्येके। **रुच** दीप्तावभिप्रीतौ च॥८॥ **घुट** परिवर्तने॥९॥ **शुभ** दीप्तौ॥१०॥ **क्षुभ** संचलने॥११॥ **णभ तुभ** हिंसायाम्॥१२, १३॥ **स्रंसु भ्रंसु, ध्वंसु** अवस्रंसने॥१४, १५,१६॥ **ध्वंसु** गतौ च। **स्रम्भु** विश्वासे॥१७॥ **वृतु** वर्तने॥१८॥ वर्तते। ववृते। वर्तिता।

....

५३८- **द्युद्भ्यो लुङि**। द्युद्भ्यः पञ्चम्यन्तं, लुङि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **वा क्यषः** से **वा** तथा **शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्** से **परस्मैपदम्** की अनुवृत्ति आती है। **द्युत् आदि धातुओं से परे लुङ् के स्थान पर विकल्प से परस्मैपद होता है।**

धातुपाठ में द्युतादिगण में बाईस धातु पढ़े गये हैं, उनका यहाँ पर ग्रहण होता है। विकल्प से होने के कारण लुङ् के स्थान पर एकपक्ष में परस्मैपद और एकपक्ष में आत्मनेपद होते हैं। ऐसा केवल लुङ् लकार में है, अन्य लकारों में तो आत्मनेपद ही होता है।

अद्युतत्। द्युत् से लुङ् लकार आने पर **द्युद्भ्यो लुङि** से वैकल्पिक परस्मैपद का विधान हुआ। अट् का आगम, ति में इकार का **इतश्च** से लोप करके **अद्युत्+त्** बना। च्लि करके उसके स्थान पर **पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु** से अङ् आदेश होकर **अद्युत+अत्** बना। **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण होकर **अद्योत्+अत्**, वर्णसम्मेलन होकर **अद्योतत्** बना। सिच् न होने के कारण **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से ईट् और वलादि न होने के कारण **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् का आगम दोनों नहीं हुए। परस्मैपद न होने के पक्ष में आत्मनेपद होगा जिसमें अङ् न होने के कारण सिच् होता है और वलादिलक्षण इट् का आगम करके गुण, षत्व, ष्टुत्व करने पर **अद्योतिष्ट** यह रूप सिद्ध होता है।

लुङ् के परस्मैपद में- अद्युतत्, अद्युतताम्, अद्युतन्, अद्युतः, अद्युततम्, अद्युतत, अद्युतम्, अद्युताव, अद्युताम। **आत्मनेपद में**- अद्योतिष्ट, अद्योतिषाताम्, अद्योतिषत, अद्योतिष्ठाः, अद्योतिषाथाम्, अद्योतिढ्वम्, अद्योतिषि, अद्योतिष्वहि, अद्योतिष्महि। **लृङ्**- अद्योतिष्यत, अद्योतिष्येताम्, अद्योतिष्यन्त, अद्योतिष्यथाः, अद्योतिष्येथाम्, अद्योतिष्यध्वम्, अद्योतिष्ये, अद्योतिष्यावहि, अद्योतिष्यामहि।

एवं श्विता वर्णे। इसी तरह **श्विता** आदि धातुओं के रूप बनते हैं। **श्विता** धातु **सफेद होना** अर्थ में है। आकार की इत्संज्ञा होती है, **श्वित्** बचता है। इसके रूप **द्युत्** की तरह ही होते हैं- **श्वेतते, श्वेतेते, श्वेतन्ते** इत्यादि। **द्युत्** में उकार को गुण होकर ओकार होता है तो **श्वित्** में इकार को गुण होकर एकार होता है, यही अन्तर है। **लिट्**- शिश्विते, शिश्विताते, शिश्वितिरे। **लुट्**- श्वेतिता, श्वेतितारौ, श्वेतितारः। **लृट्**- श्वेतिष्यते, श्वेतिष्येते, श्वेतिष्यन्ते। **लोट्**- श्वेतताम्, श्वेतेताम्, श्वेतन्ताम्। **लङ्**- अश्वेतत, अश्वेतेताम्, अश्वेतन्त। **विधिलिङ्**- श्वेतेत, श्वेतेयाताम्, श्वेतेरन्। **आशीर्लिङ्**- श्वेतिषीष्ट, श्वेतिषीयास्ताम् श्वेतिषीरन्।

लुङ् के परस्मैपद में- अश्वेतत्, अश्वेतताम्, अश्वेतन्। **लुङ् के आत्मनेपद में**- अश्वेतिष्ट, अश्वेतिषाताम्, अश्वेतिषत। **लृङ्**- अश्वेतिष्यत, अश्वेतिष्येताम्, अश्वेतिष्यन्त।

ञिमिदा स्नेहने। ञिमिदा धातु **चिकना होना, गीला होना** अर्थ में है। **ञि** की **आदिर्ञिटुडवः** से और दकारोत्तरवर्ती आकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है। **मिद्** बचता है। इसके रूप भी द्युत् की तरह ही होते हैं। हम यहाँ पर प्रत्येक लकार में मात्र एक रूप ही दिखा रहे हैं किन्तु आप तीनों पुरुषों के तीनों वचनों में रूप बनाने का प्रयत्न करना। **रूप**- मेदते। मिमिदे। मेदिता। मेदिष्यते। मेदताम्। अमेदत। मेदेत। मेदिषीष्ट। अमिदत्-अमेदिष्ट। अमेदिष्यत।

ञिष्विदा स्नेहन-मोचनयोः। मोहनयोरित्येके। ञिक्ष्विदा चेत्येके। **ञिष्विदा** धातु **स्नेहन** अर्थात् **स्निग्ध होना, पसीना होना** और **पसीना छोड़ना** अर्थ में है। कुछ आचार्य **स्नेहन** और **मोहन** अर्थात् **मोहित होना** ऐसा अर्थ मानते हैं तो कुछ आचार्य धातु को ही **ञिष्विदा** की जगह **ञिक्ष्विदा** मानते हैं। **ञि** की **आदिर्ञिटुडवः** से तथा आकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है। **धात्वादेः षः सः** से षकार के स्थान पर सकार आदेश होता है। इस तरह **स्विद्** बचता है। **ञिक्ष्विदा** धातु मानने के पक्ष में **क्ष्विद्** बचता है। इसके रूप भी **द्युत्** धातु की तरह ही होते हैं। स्वेदते। सिस्विदे। स्वेदिता। स्वेदिष्यते। स्वेदताम्। अस्वेदत। स्वेदेत। स्वेदिषीष्ट। अस्विदत-अस्वेदिष्ट। अस्वेदिष्यत। अथवा क्ष्वेदते। चिक्ष्विदे। क्ष्वेदिता। क्ष्वेदिष्यते। क्ष्वेदताम्। अक्ष्वेदत। क्ष्वेदेत। क्ष्वेदिषीष्ट। अक्ष्विदत्-अक्ष्वेदिष्ट। अक्ष्वेदिष्यत।

रुच दीप्तावभिप्रीतौ च। रुच धातु **चमकना** और **प्रीति का विषय होना** अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होती है। **रुच्** बचता है। इसके रूप द्युत् की तरह ही बनते हैं। रोचते। रुरुचे। रोचिता। रोचिष्यते। रोचताम्। अरोचत। रोचेत। रोचिषीष्ट। अरुचत्-अरोचिष्ट। अरोचिष्यत।

घुट परिवर्तने। घुट धातु **परिवर्तन होना** अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होकर **घुट्** शेष रहता है। घोटते। जुघुटे। घोटिता। घोटिष्यते। घोटताम्। अघोटत। घोटेत। घोटिषीष्ट। अघुटत्-अघोटिष्ट। अघोटिष्यत।

शुभ दीप्तौ। शुभ धातु **चमकना, शोभा पाना** अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होकर **शुभ्** बचता है। शोभते। शुशुभे। शोभिता। शोभिष्यते। शोभताम्। अशोभत। शोभेत। शोभिषीष्टं अशुभत्-अशोभिष्ट। अशोभिष्यत।

क्षुभ सञ्चलने। क्षुभ धातु **व्याकुल होना** या **विचलित होना** अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होन के बाद **क्षुभ्** के रूप भी **द्युत्** की तरह ही चलते हैं। क्षोभते। चुक्षुभे। क्षोभिता। क्षोभिष्यते। क्षोभताम्। अक्षोभत। क्षोभेत। क्षोभिषीष्ट। अक्षुभत्-अक्षोभिष्ट। अक्षोभिष्यत।

णभ हिंसायाम्। णभ धातु **हिंसा करना** अर्थ में है। **णो नः** से आदि में स्थित णकार के स्थान पर नकार आदेश और भकार के अकार की इत्संज्ञा होकर **नभ्** शेष रहता है। **नभते।** एत्वाभ्यासलोप होकर- नेभे, नेभाते, नेभिरे। नभिता। नभिष्यते। नभताम्। अनभत। नभेत। नभिषीष्ट। अनभत्-अनभिष्ट। अनभिष्यत।

तुभ हिंसायाम्। तुभ धातु **हिंसा करना** अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होकर रूप बनते हैं- तोभते। तुतुभे। तोभिता। तोभिष्यते। तोभताम्। अतोभत। तोभेत। तोभिषीष्ट। अतुभत्-अतोभिष्ट। अतोभिष्यत।

वैकल्पिकपरस्मैपदविधायकं विधिसूत्रम्

५३९. वृद्भ्यः स्यसनोः १।३।९२॥

वृतादिभ्यः पञ्चभ्यो वा परस्मैपदं स्यात् स्ये सनि च।

इण्निषेधकं विधिसूत्रम्

५४०. न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ७।२।५९॥

वृतुवृधुशृधुस्यन्दूभ्यः सकारादेरार्धधातुकस्येण् न स्यात् तङानयोरभावे। वर्त्स्यति, वर्तिष्यते। वर्तताम्। अवर्तत। वर्तेत। वर्तिषीष्ट। अवर्तिष्ट। अवर्त्स्यत्, अवर्तिष्यत। **दद दाने॥१९॥** ददते।

....

स्रंसु, भ्रंसु, ध्वंसु अवस्रंसने। ध्वंसु गतौ च। ये तीनों धातु **नीचे गिरना** अर्थ में हैं और **ध्वंसु** धातु **गति** अर्थ में भी है। सबमें उकार की इत्संज्ञा होती है और **स्रंस्, भ्रंस्,** ध्वस् शेष रहते हैं। अन्य लकारों में सामान्य रूप होते हैं किन्तु **लुङ्** लकार में **अङ्** होने के पक्ष में **अनिदितां हल उपधाया क्ङिति** से नकार से उत्पन्न अनुस्वार का लोप होकर **अस्रसत्, अभ्रसत्, अध्वसत्** ये रूप बनते है। **स्रंस्** के रूप- स्रंसते, सस्रंसे, स्रंसिता, स्रंसिष्यते, स्रंसताम्, अस्रंसत, स्रंसेत, स्रंसिषीष्ट, अस्रसत्-अस्रंसिष्ट, अस्रंसिष्यत। इसी तरह **भ्रंस्** के भी रूप बनाइये- भ्रंसते, बभ्रंसे, भ्रंसिता, भंसिष्यते, भ्रंसताम्, अभ्रंसत, भ्रंसेत, भ्रंसिषीष्ट, अभ्रसत्-अभ्रंसिष्ट, अभ्रंसिष्यत। एवं प्रकारेण **ध्वंस्** के रूप- ध्वंसते, दध्वंसे, ध्वंसिता, ध्वंसिष्यते, ध्वंसताम्, अध्वंसत, ध्वंसेत, ध्वंसिषीष्ट, अध्वसत्-अध्वंसिष्ट, अध्वंसिष्यत।

स्रम्भु विश्वासे। स्रम्भु धातु **विश्वास करना** अर्थ में है। उकार की इत्संज्ञा होती है, **स्रम्भ्** शेष रहता है। **स्रन्+भ्** में नकार को अनुस्वार और परसवर्ण करके **स्रम्भ्** बना है। अन्य लकारों में सामान्य रूप होते हैं किन्तु **लुङ्** लकार में **अङ्** होने के पक्ष में **अनिदितां हल उपधाया क्ङिति** से नकार से उत्पन्न मकार का लोप होकर **अस्रभत्** बनता है। स्रम्भते, सस्रम्भे, स्रम्भिता, स्रम्भिष्यते, स्रम्भताम्, अस्रम्भत, स्रम्भेत, स्रम्भिषीष्ट, अस्रभत्-अस्रम्भिष्ट, अस्रम्भिष्यत।

वृतु वर्तने। वृतु धातु **वर्तन** अर्थात् **होना** अर्थ में है। उकार की इत्संज्ञा होकर **वृत्** शेष रहता है।

वर्तते। ववृते। वर्तिता। वृत् से लट्, त, शप्, अनुबन्धलोप होकर **वृत्+अत** बना। **पुगन्तलघूपधस्य च** से वृ के ऋकार के स्थान पर गुण होकर अर् हुआ, **व्+अर्=वर्, वर्+त्=वर्त्, वर्त्+अत** बना। एत्व और वर्णसम्मेलन होकर **वर्तते** सिद्ध हुआ। **लिट्** में **वृत्+त, वृत+ए, वृत्+वृत्+ए, वृ+वृत्+ए, (उरत्) वर्+वृत्+ए, व+वृत्+ए=ववृते** सिद्ध होता है और **लुट्** में **वृत्+इ+तास्+ति, वृत्+इ+तास्+डा, वृत्+इ+ता, वर्त्+इ+ता=वर्तिता** बनता है।

५३९- वृद्भ्यः स्यसनोः। स्यश्च सन् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः स्यसनौ, तयोः स्यसनोः। वृद्भ्यः पञ्चम्यन्तं, स्यसनोः सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **वा क्यषः** से **वा** तथा **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से **परस्मैपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

स्य और सन् के परे होने पर वृत् आदि पाँच धातुओं से विकल्प से परस्मैपद होता है।

वृतु वर्तने(होना), **वृधु वृद्धौ**(बढ़ना), **श्रृधु शब्दकुत्सायाम्**(कुत्सित शब्द करना, अपान वायु का शब्द होना), **स्यन्दू प्रस्रवणे**(बहाना) और **कृपू सामर्थ्ये**(समर्थ होना) ये पाँच धातुएँ **वृतादि** हैं।

५४०- न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः। न अव्ययपदं, वृद्भ्यः पञ्चम्यन्तं, चतुर्भ्यः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **सेऽसिचि........**से से, **आर्धधातुकस्येड्** वलादेः से **आर्धधातुकस्य** और **गमेरिट् परस्मैपदेषु** से **परस्मैपदेषु** की अनुवृत्ति आती है।

परस्मैपद अर्थात् तङ् और आन का विषय न हो तो वृत् आदि चार धातुओं से सकारादि आर्धधातुक के परे इट् का आगम नहीं होता।

वृद्भ्यः यह बहुवचन गण को सूचित करता है। वृत् गण में चार धातु वृतु, वृधु, शृधु और स्यन्दू हैं। सकारादि आर्धधातुक **लृट्** और **लृङ्** में मिलता है।

वर्त्स्यति, वर्तिष्यते। वृत् से लुट्, **वृद्भ्यः स्यसनोः** से वैकल्पिक परस्मैपद का विधान हुआ, स्य प्रत्यय करके **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से इट् आगम की प्राप्ति थी किन्तु परस्मैपद के पक्ष में **न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः** से निषेध हुआ, गुण होकर **वर्त्+स्यति=वर्त्स्यति** सिद्ध हुआ। परस्मैपद न होने के पक्ष में आत्मनेपद और आत्मनेपद होने पर इट् का निषेध नहीं हुआ। अतः **वर्तिष्यते** यह रूप बना। इस तरह लृट् और लृङ् में दो-दो रूप बनते हैं।

लट्- वर्तते, वर्तेते, वर्तन्ते, वर्तसे, वर्तेथे, वर्तध्वे, वर्ते, वर्तावहे, वर्तामहे।
लिट्- ववृते, ववृताते, ववृतिरे, ववृतिषे, ववृताथे, ववृतिध्वे, ववृते, ववृतिवहे, ववृतिमहे।
लुट्- वर्तिता, वर्तितारौ, वर्तितारः, वर्तितासे, वर्तितासाथे, वर्तिताध्वे, वर्तिताहे, वर्तितास्वहे, वर्तितास्महे। **लृट्- (परस्मैपद)** वर्त्स्यति, वर्त्स्यतः, वर्त्स्यन्ति, वर्त्स्यसि, वर्त्स्यथः, वर्त्स्यथ, वर्त्स्यामि, वर्त्स्यावः, वर्त्स्यामः। **(आत्मनेपद)** वर्तिष्यते, वर्तिष्येते, वर्तिष्यन्ते, वर्तिष्यसे, वर्तिष्येथे, वर्तिष्यध्वे, वर्तिष्ये, वर्तिष्यावहे, वर्तिष्यामहे। **लोट्-** वर्तताम्, वर्तेताम्, वर्तन्ताम्, वर्तस्व, वर्तेथाम्, वर्तध्वम्, वर्तै, वर्तावहै, वर्तामहै। **लङ्-** अवर्तत, अवर्तेताम्, अवर्तन्त, अवर्तथाः, अवर्तेथाम्, अवर्तध्वम्, अवर्ते, अवर्तावहि, अवर्तामहि। **विधिलिङ्-** वर्तेत, वर्तेयाताम्, वर्तेरन्, वर्तेथाः, वर्तेयाथाम्, वर्तेध्वम्, वर्तेय, वर्तेवहि, वर्तेमहि। **आशीर्लिङ्-** वर्तिषीष्ट, वर्तिषीयास्ताम्, वर्तिषीरन्, वर्तिषीष्ठाः, वर्तिषीयास्थाम्, वर्तिषीध्वम्, वर्तिषीय, वर्तिषीवहि, वर्तिषीमहि। **लुङ् में- द्युद्भ्यो लुङि** से एकपक्ष में परस्मैपद हो जाता है और **पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्पैदेषु** से अङ् होता है। अवृतत्, अवृतताम्, अवृतन्, अवृतः, अवृततम्, अवृतत, अवृतम्, अवृताव, अवृताम। **आत्मनेपद** में इट् होता है। अवर्तिष्ट, अवर्तिषाताम्, अवर्तिषत, अवर्तिष्ठाः, अवर्तिषाथाम्, अवर्तिढ्वम्, अवर्तिषि, अवर्तिष्वहि, अवर्तिष्महि। **लृङ्** में **वृद्भ्यः स्यसनोः** से परस्मैपद होने के पक्ष में इट् का निषेध और आत्मनेपद में इट् होता है-- अवर्त्स्यत्, अवर्त्स्यताम्, अवर्त्स्यन्, अवर्त्स्यः, अवर्त्स्यतम्, अवर्त्स्यत, अवर्त्स्यम्, अवर्त्स्याव, अवर्त्स्याम और आत्मनेपद में- अवर्तिष्यत, अवर्तिष्येताम्, अवर्तिष्यन्त, अवर्तिष्यथाः, अवर्तिष्येथाम्, अवर्तिष्यध्वम्, अवर्तिष्ये, अवर्तिष्यावहि, अवर्तिष्यामहि।

दद दाने। दद धातु देना इस अर्थ में है। अकार अनुदात्त है, उसकी इत्संज्ञा होती है। अतः आत्मनेपदी है। इससे लट्, त्, शप्, एत्व करके **ददते** रूप बनता है।

एत्वाभ्यासनिषेधसूत्रम्

५४१. न शस-दद-वादि-गुणानाम् ६।४।१२६॥

शसेर्ददेर्वकारादीनां गुणशब्देन विहितो योऽकारः, तस्य एत्वाभ्यासलोपौ न। दददे, दददाते, दददिरे। ददिता। ददिष्यते। ददताम्। अददत। ददेत। ददिषीष्ट। अददिष्ट। अददिष्यत। **त्रपूष् लज्जायाम्। २०॥** त्रपते।

एत्वाभ्यासलोपविधायकं विधिसूत्रम्

५४२. तॄफलभजत्रपश्च ६।४।१२२॥

एषामत एत्त्वामभ्यासलोपश्च स्यात् किति लिटि सेटि थलि च। त्रेपे। त्रपिता, त्रप्ता। त्रपिष्यते, त्रप्स्यते। त्रपताम्। अत्रपत। त्रपेत। त्रपिषीष्ट, त्रप्सीष्ट। अत्रपिष्ट, अत्रप्त। अत्रपिष्यत, अत्रप्स्यत।

इत्यात्मनेपदिनः।

....

५४१- न शसददवादिगुणानाम्। शसश्च ददश्च वादिश्च गुणश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः शसददवादिगुणाः, तेषां शसददवादिगुणानाम्। न अव्ययपदं, शसददवादिगुणानाम् षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** से **अतः, घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च** से **एत्** और **अभ्यासलोपः**, **च** की अनुवृत्ति आती है।

शस्, दद् तथा वकारादि धातुओं के ह्रस्व अकार तथा गुण के विधान से उत्पन्न अकार को एत्व और अभ्यासलोप नहीं होते हैं।

दददे। दद् धातु से लिट्, त, एश् आदेश करके दद् को द्वित्व और अभ्यास लोप करने पर द+दद्+ए बना। यहाँ **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** से एत्व और अभ्यासलोप प्राप्त था, उसका **न शसददवादिगुणानाम्** से निषेध हुआ। दद्द्+ए में वर्णसम्मेलन होकर **दददे** सिद्ध हुआ। **लट्-** ददते, ददेते, ददन्ते, ददसे, ददेथे, ददध्वे, ददे, ददावहे, ददामहे। **लिट्-** दददे, दददाते, दददिरे, दददिषे, दददाथे, दददिध्वे, दददे, दददिवहे, दददिमहे। **लुट्-** ददिता, ददितारौ, ददितारः, ददितासे, ददितासाथे, ददिताध्वे, ददिताहे, ददितास्वहे, ददितास्महे। **लृट्-** ददिष्यते, ददिष्येते, ददिष्यन्ते, ददिष्यसे, ददिष्येथे, ददिष्यध्वे, ददिष्ये, ददिष्यावहे, ददिष्यामहे। **लोट्-** ददताम्, ददेताम्, ददन्ताम्, ददस्व, ददेथाम्, ददध्वम्, ददै, ददावहै, ददामहै। **लङ्-** अददत, अददेताम्, अददन्त, अददथाः, अददेथाम्, अददध्वम्, अददे, अददावहि, अददामहि। **विधिलिङ्-** ददेत, ददेयाताम्, ददेरन्, ददेथाः, ददेयाथाम्, ददेध्वम्, ददेय, ददेवहि, ददेमहि। **आशीर्लिङ्-** ददिषीष्ट, ददिषीयास्ताम्, ददिषीरन्, ददिषीष्ठाः, ददिषीयास्थाम्, ददिषीध्वम्, ददिषीय, ददिषीवहि, ददिषीमहि। **लुङ्-** अददिष्ट, अददिषाताम्, अददिषत, अददिष्ठाः, अददिषाथम्, अददिढ्वम्, अददिषि, अददिष्वहि, अददिष्महि। **लृङ्-** अददिष्यत, अददिष्येताम्, अददिष्यन्त, अददिष्यथाः, अददिष्येथाम्, अददिष्यध्वम्, अददिष्ये, अददिष्यावहि, अददिष्यामहि।

त्रपूष् लज्जायाम्। त्रपूष् धातु **लज्जा** अर्थात् **शरमाना** अर्थ में है। ऊकार और षकार की इत्संज्ञा होती है। **त्रप्** शेष रहता है। ऊदित् होने से **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से इट् विकल्प से होता है। षित् होने का फल कृदन्त में **षिद्भिदादिभ्योऽङ्** से अङ् आदि प्रत्यय करना है।

त्रपते। त्रप् से लट्, त, शप्, एत्व करके **त्रपते** सिद्ध होता है।

५४२- तॄफलभजत्रपश्च। तॄश्च फलश्च भजश्च त्रप् च तेषां समाहारद्वन्द्वः तॄफलभजत्रप्, तस्य तॄफलभजत्रपः। तॄफलभजत्रपः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** से **अतः, घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च** से एत्, अभ्यासलोपः, **च** की और **गमहनजनखनघसां लोपः** **क्ङित्यनङि** से **किति** एवं **थलि च सेटि** की अनुवृत्ति आती है।

तॄ, फल्, भज् और त्रप् धातुओं के अत् को एकार आदेश तथा अभ्यास का लोप होता है कित् लिट् और सेट् थल् के परे होने पर।

त्रेपे। त्रप् से लिट्, त, एश् आदेश, द्वित्व, हलादिशेष करके **तत्रप्+ए** बना। त्रप् में संयोग होने के कारण अप्राप्त एत्व और अभ्यास का लोप **तॄफलभजत्रपश्च** से विधान हुआ अर्थात् **त** के लोप और त्रप् में अकार के स्थान पर एकार आदेश होकर **त्रेप्+ए** बना। वर्णसम्मेलन होकर **त्रेपे** सिद्ध हुआ।

लट्- त्रपते, त्रपेते, त्रपन्ते, त्रपसे, त्रपेथे, त्रपध्वे, त्रपे, त्रपावहे, त्रपामहे। **लिट्-** त्रेपे, त्रेपाते, त्रेपिरे, त्रेपिषे, त्रेपाथे, त्रेपिध्वे-त्रेब्ध्वे, त्रेपे-त्रेप्से, त्रेपिवहे-त्रेप्वहे, त्रेपिमहे-त्रेप्महे। **लुट्- (इट् पक्षे)** त्रपिता, त्रपितारौ, त्रपितारः, त्रपितासे, त्रपितासाथे, त्रपिताध्वे, त्रपिताहे, त्रपितास्वहे, त्रपितास्महे। **(इडभावपक्षे)** त्रप्ता, त्रप्तारौ, त्रप्तारः, त्रप्तासे, त्रप्तासाथे, त्रप्ताध्वे, त्रप्ताहे, त्रप्तास्वहे, त्रप्तास्महे। **लृट्- (इट्पक्षे)** त्रपिष्यते, त्रपिष्येते, त्रपिष्यन्ते, त्रपिष्यसे, त्रपिष्येथे, त्रपिष्यध्वे, त्रपिष्ये, त्रपिष्यावहे, त्रपिष्यामहे। **इडभावपक्षे-** त्रप्स्यते, त्रप्स्येते, त्रप्स्यन्ते, त्रप्स्यसे, त्रप्स्येथे, त्रप्स्यध्वे, त्रप्स्ये, त्रप्स्यावहे, त्रप्स्यामहे। **लोट्-** त्रपताम्, त्रपेताम्, त्रपन्ताम्, त्रपस्व, त्रपेथाम्, त्रपध्वम्, त्रपै, त्रपावहै, त्रपामहै। **लङ्-** अत्रपत, अत्रपेताम्, अत्रपन्त, अत्रपथाः, अत्रपेथाम्, अत्रपध्वम्, अत्रपे, अत्रपावहि, अत्रपामहि। **विधिलिङ्-** त्रपेत, त्रपेयाताम्, त्रपेरन्, त्रपेथाः, त्रपेयाथाम्, त्रपेध्वम्, त्रपेय, त्रपेवहि, त्रपेमहि। **आशीर्लिङ्- (इट्पक्षे)** त्रपिषीष्ट, त्रपिषीयास्ताम्, त्रपिषीरन्, त्रपिषीष्ठाः, त्रपिषीयास्थाम्, त्रपिषीध्वम्, त्रपिषीय, त्रपिषीवहि, त्रपिषीमहि। **इडभावपक्षे-** त्रप्सीष्ट, त्रप्सीयास्ताम्, त्रप्सीरन्, त्रप्सीष्ठाः, त्रप्सीयास्थाम्, त्रप्सीध्वम्, त्रप्सीय, त्रप्सीवहि, त्रप्सीमहि। **लुङ्-** (इट्पक्षे) अत्रपिष्ट, अत्रपिषाताम्, अत्रपिषत, अत्रपिष्ठाः, अत्रपिषाथाम्, अत्रपिढ्वम्, अत्रपिषि, अत्रपिष्वहि, अत्रपिष्महि। **(इडभावपक्षे)** अत्रप्त, अत्रप्साताम्, अत्रप्सत, अत्रप्थाः, अत्रप्साथाम्, अत्रब्ध्वम्, अत्रप्सि, अत्रप्स्वहि, अत्रप्स्महि। **लृङ्- (इट्पक्षे)** अत्रपिष्यत, अत्रपिष्येताम्, अत्रपिष्यन्त, अत्रपिष्यथाः, अत्रपिष्येथाम्, अत्रपिष्यध्वम्, अत्रपिष्ये, अत्रपिष्यावहि, अत्रपिष्यामहि। **(इडभावपक्षे)** अत्रप्स्यत, अत्रप्स्येताम्, अत्रप्स्यन्त, अत्रप्स्यथाः, अत्रप्स्येथाम्, अत्रप्स्यध्वम्, अत्रप्स्ये, अत्रप्स्यावहि, अत्रप्स्यामहि।

अभ्यासः

आपने परस्मैपद और आत्मनेपद में क्या-क्या अन्तर पाया? आप इस विषय पर कम से कम दस पृष्ठ का एक व्याख्यात्मक लेख लिखिए। इस लेख में परस्मैपद और आत्मनेपद की तुलना होनी चाहिए और दोनों पदों का अन्तर स्पष्ट हो जाना चाहिए। **आत्मनेपद** और **परस्मैपद** होने में क्या कारण है, यह भी स्पष्ट होना चाहिए। इससे आपकी व्याख्या करने की शैली अभी से बन जायेगी और सूत्रों की तुलना और अन्तर करने की प्रवृत्ति भी बढ़ जायेगी और लट्-लकार से लृङ्-लकार के बीच में क्या भिन्नता है? यह भी स्पष्ट कीजिए।

अथोभयपदिनः

श्रिञ् सेवायाम्॥१॥ श्रयति, श्रयते। शिश्राय, शिश्रिये। श्रयितासि, श्रयितासे। श्रयिष्यति, श्रयिष्यते। श्रयतु, श्रयताम्। अश्रयत्, अश्रयत। श्रयेत्, श्रयेत। श्रीयात्, श्रयिषीष्ट। चङ्। अशिश्रियत्, अशिश्रियत। अश्रयिष्यत्, अश्रयिष्यत। **भृञ् भरणे॥२॥** भरति, भरते। बभार। बभ्रतुः। बभ्रुः। बभर्थ। बभृव। बभृम। बभ्रे। बभृषे। भर्तासि, भर्तासे। भरिष्यति, भरिष्यते। भरतु, भरताम्। अभरत्, अभरत। भरेत्, भरेत।

....

अब **भ्वादिगण** में **उभयपदी** धातुओं का विवेचन आरम्भ करते हैं। **श्रिञ्** धातु में ञकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। ञित् होने के कारण **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से उभयपद का विधान होता है। यद्यपि यह सूत्र केवल आत्मनेपद का विधान करता है, तथापि कर्तृगामि क्रियाफल न होने पर आत्मनेपद नहीं हो पाता, अतः आत्मनेपद के निमित्त से रहित होने पर **शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्** से स्वतः परस्मैपद हो जाता है। जैसे- पच् धातु भी उभयपदी है, **देवदत्तः पचति**= देवदत्त पकाता है, इस वाक्य में पाचनक्रिया यदि अपने लिए हो रही हैं तो आत्मनेपद का विधान होगा। जैसे- **देवदत्तः पचते**। दूसरे के लिए हो रही है तो परस्मैपद का विधान होगा। जैसे- **देवदत्तः पचति**। इसी तरह से पच् धातु से दोनों पद अर्थात् **आत्मनेपद** और **परस्मैपद** हो जायेंगे।

श्रिञ् सेवायाम्। श्रिञ् धातु **सेवा करना** अर्थ में है। ञकार की इत्संज्ञा हुई है, अतः उभयपदी हुआ। **श्रिञ्** धातु के एकाच् एवं अजन्त होते हुए भी **ऊदॄदन्तैः०** कारिका के मध्य आता है। अतः यह सेट् है।

श्रयति, श्रयते। श्रि से लट्-लकार, परस्मैपद में तिप्, अनुबन्धलोप, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् कर के श्रि+अ+ति बना। श्रि में इकार का **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण करके श्रे+अ+ति बना, अय् आदेश होकर **श्र्+अय्+अति** बना। वर्णसम्मेलन करके **श्रयति** बना। आत्मनेपद में त आता है और उसका **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व होता है और शेष प्रक्रिया श्रयति के समान ही है। इसी तरह आत्मनेपद में त, शप्, अनुबन्धलोप, सार्वधातुकसंज्ञा, गुण, अयादेश, एत्व एवं वर्णसम्मेलन करके **श्रयते** बनता है।

परस्मैपद लट्-लकार के रूप- श्रयति, श्रयतः, श्रयन्ति। श्रयसि, श्रयथः, श्रयथ। श्रयामि, श्रयावः, श्रयामः। **आत्मनेपद में-** श्रयते, श्रयेते, श्रयन्ते। श्रयसे, श्रयेथे, श्रयध्वे। श्रये, श्रयावहे, श्रयामहे।

शिश्राय। श्रि धातु से लिट् लकार, परस्मैपद में तिप्, उसके स्थान पर णल्, अनुबन्धलोप, श्रि+अ बना। द्वित्व, हलादिशेष करके **शिश्रि+अ** बना। अब **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इकार के स्थान पर इयङ् प्राप्त था किन्तु णित् के परे होने पर उसे बाधकर **अचो ञ्णिति** से वृद्धि हुई, **शिश्रै+अ** बना, **एचोऽयवायावः** से आय् आदेश होकर **शिश्र्+आय्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **शिश्राय** सिद्ध हुआ। इसी तरह उत्तमपुरुष के एकवचन में **मिप्** के स्थान पर णल् आदेश होने के बाद **शिश्राय** ही बनेगा और णित्

न होने के पक्ष में गुण होकर **शिश्रय** बनेगा। शेष में इकार के स्थान पर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इयङ् आदेश होकर शिश्र्+इय्=**शिश्रिय्** बनेगा और आगे अजादि में मिलेगा। इस तरह रूप सिद्ध होंगे- शिश्राय, शिश्रियतुः, शिश्रियुः। शिश्रयिथ, शिश्रियथुः, शिश्रिय। शिश्राय-शिश्रय, शिश्रियिव, शिश्रियिम। **आत्मनेपद** में सभी जगह इयङ् ही होगा। इस तरह रूप बनते हैं- शिश्रिये, शिश्रियाते, शिश्रियिरे। शिश्रियिषे, शिश्रियाथे, शिश्रियिढ्वे-शिश्रियिध्वे। शिश्रिये, शिश्रियिवहे, शिश्रियिमहे।

लुट् लकार में दोनों पदों में तासि, इट् का आगम, **श्रि** को गुण और अय् आदेश आदि होकर रूप बनते हैं- **परस्मैपद** में- श्रयिता, श्रयितारौ, श्रयितारः। श्रयितासि, श्रयितास्थः श्रयितास्थ। श्रयितास्मि, श्रयितास्वः, श्रयितास्मः। **आत्मनेपद में**- श्रयिता, श्रयितारौ, श्रयितारः। श्रयितासे, श्रयितासाथे, श्रयिताध्वे। श्रयिताहे, श्रयितास्वहे, श्रयितास्महे।

लृट् लकार में स्य, इट् का आगम, गुण, अय् आदेश, स्य के सकार को षत्व आदि हो जाते हैं और रूप बनते हैं- **परस्मैपद** में- श्रयिष्यति, श्रयिष्यतः, श्रयिष्यन्ति। श्रयिष्यसि, श्रयिष्यथः, श्रयिष्यथ। श्रयिष्यामि, श्रयिष्यावः, श्रयिष्यामः। **आत्मनेपद** में- श्रयिष्यते, श्रयिष्येते, श्रयिष्यन्ते। श्रयिष्यसे, श्रयिष्येथे, श्रयिष्यध्वे। श्रयिष्ये, श्रयिष्यावहे, श्रयिष्यामहे।

लोट् लकार में दोनों पदों में शप्, गुण और अय् आदेश होकर रूप बनते हैं- परस्मैपद में- श्रयतु-श्रयतात्, श्रयताम्, श्रयन्तु। श्रय-श्रयतात्, श्रयतम्, श्रयत। श्रयाणि, श्रयाव, श्रयाम। **आत्मनेपद** में- श्रयताम्, श्रयेताम्, श्रयन्ताम्। श्रयस्व, श्रयेथाम्, श्रयध्वम्। श्रयै, श्रयावहै, श्रयामहै।

लङ् लकार में दोनों पदों में अट् का आगम, शप्, गुण और अय् आदेश आदि होकर रूप बनते हैं- **परस्मैपद** में- अश्रयत्, अश्रयताम्, अश्रयन्। अश्रयः, अश्रयतम्, अश्रयत। अश्रयम्, अश्रयाव, अश्रयाम। **आत्मनेपद** में अश्रयत, अश्रयेताम्, अश्रयन्त। अश्रयथाः, अश्रयेथाम्, अश्रयध्वम्। अश्रये, अश्रयावहि, अश्रयामहि।

विधिलिङ् लकार के परस्मैपद में- शप्, यासुट् आगम, गुण, अयादेश आदि होकर रूप बनते हैं- श्रयेत्, श्रयेताम्, श्रयेयुः। श्रयेः, श्रयेतम्, श्रयेत। श्रयेयम्, श्रयेव, श्रयेम। **आत्मनेपद** में यासुट् न होकर सीयुट् होता है। इस तरह रूप बनते हैं- श्रयेत, श्रयेयाताम्, श्रयेरन्। श्रयेथाः श्रयेयाथाम्, श्रयेध्वम्। श्रयेय, श्रयेवहि, श्रयेमहि।

श्रीयात्। श्रि धातु के **आशीर्लिङ्** के **परस्मैपद** में यासुट् करने पर यकारादि प्रत्यय मिल जाता है, अतः **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से दीर्घ होकर रूप बनते हैं- श्रीयात्, श्रीयास्ताम्, श्रीयासुः। श्रीयाः, श्रीयास्तम्, श्रीयास्त। श्रीयासम्, श्रीयास्व, श्रीयास्म। **आत्मनेपद** में सीयुट्, इट् आगम, त और थ को सुट् का आगम, षत्व, गुण, अयादेश आदि होकर रूप बनते हैं- श्रयिषीष्ट, श्रयिषीयास्ताम्, श्रयिषीरन्। श्रयिषीष्ठाः, श्रयिषीयास्थाम्, श्रयिषीढ्वम्-श्रयिषीध्वम्, श्रयिषीय, श्रयिषीवहि, श्रयिषीमहि।

आप उपर्युक्त रूपों की सिद्धि तभी कर सकेंगे जब भू धातु और एध धातु के रूप पूर्णतया कण्ठस्थ हों और उनकी प्रक्रिया भी उसी तरह याद हो। अन्यथा ये रूप आप कभी नहीं बना सकेंगे।

अशिश्रियत्। श्रि धातु से लुङ्-लकार, तिप्, अट् का आगम, **अ श्रि ति**, इकारलोप, **अश्रि त्**, च्लि, उसके स्थान पर सिच् प्राप्त, उसे बाधकर के **णिश्रिद्रुस्रुभ्यः**

रिङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५४३. रिङ् शयग्लिङ्क्षु ७।४।२८॥

शे यकि यादावार्धधातुके लिङि च ऋतो रिङ् आदेशः स्यात्। रीङि च प्रकृते रिङ्विधानसामर्थ्याद्दीर्घो न। भ्रियात्।

....

कर्तरि चङ् से चङ् आदेश, अनुबन्धलोप, अश्रि+अत् बना। चङि से श्रि को द्वित्व, अश्रिश्रि+अत्, अभ्याससंज्ञा और हलादिशेष होने पर श्रि में शि बचा, अशिश्रि+अत् बना। श्रि के इकार के स्थान पर अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ से इयङ् आदेश होकर अशिश्र्+इय्+अत् बना, वर्णसम्मेलन हुआ तो अशिश्रियत् सिद्ध हुआ। अब इसी तहर से परस्मैपद में रूप बनाइये- अशिश्रियत्, अशिश्रियताम्, अशिश्रियन्। अशिश्रियः, अशिश्रियतम्, अशिश्रियत। अशिश्रियम्, अशिश्रियाव, अशिश्रियाम। आत्मनेपद में भी लगभग यही प्रक्रिया करके रूप बनते हैं- अशिश्रियत, अशिश्रियेताम्, अशिश्रियन्त। अशिश्रियथाः, अशिश्रियेथाम्, अशिश्रियध्वम्। अशिश्रिये, अशिश्रियावहि, अशिश्रियामहि।

श्रि धातु के लृङ्-लकार में अट् आगम कर के रूप बनते हैं- परस्मैपद में- अश्रयिष्यत्, अश्रयिष्यताम्, अश्रयिष्यन्, अश्रयिष्यः, अश्रयिष्यतम्, अश्रयिष्यत, अश्रयिष्यम्, अश्रयिष्याव, अश्रयिष्याम। आत्मनेपद में- अश्रयिष्यत, अश्रयिष्येताम्, अश्रयिष्यन्त, अश्रयिष्यथाः, अश्रयिष्येथाम्, अश्रयिष्यध्वम्, अश्रयिष्ये, अश्रयिष्यावहि, अश्रयिष्यामहि।

श्रि धातु में आ उपसर्ग के लगने से आश्रयति, आश्रयते इत्यादि रूप बनते हैं। इसके दोनों पदों के दसों लकारों में प्र, आ, सम्, आदि उपसर्ग लगाकर रूप बनाने चाहिए। एक बात का ध्यान अवश्य रखें कि जब लङ् आदि लकारों में अट् आगम होता है तो उपसर्ग के बाद और धातु के पहले होगा। जैसे विना उपसर्ग के अश्रयत् बनता है, प्र उपसर्ग के लगाने के बाद प्र+अश्रयत्=प्राश्रयत् बनेगा, अप्रश्रयत् नहीं। यही बात सर्वत्र समझना चाहिए।

भृञ् भरणे। भृञ् धातु भरण करना अर्थात् पालन करना अर्थ में है। ञकार की इत्संज्ञा होती है, भृ शेष रहता है। ञकार की इत्संज्ञा होने के कारण यह उभयपदी है।

भरति, भरते। भृ से लट्, तिप्, शप्, ऋकार के स्थान पर अर्-गुण करके भरति सिद्ध होता है। आत्मनेपद में लट्, त, शप्, एत्व, गुण करके भरते बन जाता है।

बभार। लिट् में तिप्, णल्, द्वित्व, हलादिशेष करके बभृ+अ बना। अचो ञ्णिति से वृद्धि करके बभार बनता है। अतुस् आदि में असंयोगाल्लिट् कित् से कित्व करके गुण निषेध होने पर यण् होकर बभ्रतुः, बभ्रुः बनते हैं। थल् में कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि से इट्-निषेध होता है।

लट्- परस्मैपद- भरति, भरतः, भरन्ति, भरसि, भरथः, भरथ, भरामि, भरावः, भरामः।
लट्- आत्मनेपद- भरते, भरेते, भरन्ते, भरसे, भरेथे, भरध्वे, भरे, भरावहे, भरामहे।
लिट्- उभयपद- बभार, बभ्रतुः, बभ्रुः। बभ्रे, बभ्राते, बभ्रिरे।
लुट्- उभयपद- भर्ता, भर्तारौ, भर्तारः, भर्तासि, भर्तास्थः। भर्तासे, भर्तासाथे, भर्ताध्वे।
लृट्- (**ऋद्धनोः स्ये**) भरिष्यति, भरिष्यते। **लोट्**- भरतु, भरताम्। **लङ्**- अभरत्, अभरत।
विधिलिङ्- भरेत्, भरेत।

किद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्

५४४. उश्च १।२।१२॥

ऋवर्णात्परौ झलादी लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तङि।

भृषीष्ट। भृषीयास्ताम्। अभार्षीत्।

....

५४३- रिङ् शयग्लिङ्क्षु। शश्च यक् च लिङ् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः शयग्लिङः, तेषु शयग्लिङ्क्षु। रिङ् प्रथमान्तं, शयग्लिङ्क्षु सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अयङ् यि क्ङिति** से **यि, अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से **असार्वधातुके, रीङ् ऋतः** से **ऋतः** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

श, यक् अथवा यकारादि आर्धधातुक लिङ् परे हो तो ह्रस्व ऋकार के स्थान पर रिङ् आदेश होता है।

इस सूत्र में रीङ् ऋतः सूत्र से रीङ् की अनुवृत्ति आ सकती थी, पुनः इस सूत्र में रिङ् ग्रहण करने की क्या आवश्यकता थी? इसके उत्तर में कहा जाता है कि रिङ् की अनुवृत्ति न लाकर पुनः रिङ् ग्रहण सामर्थ्य से यकारादि प्रत्यय के परे रहते भी **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से दीर्घ नहीं होता अर्थात् यकारादि प्रत्यय के परे रहते भी ह्रस्व इकार को ही रखने के लिए रीङ् का विधान किया गया है।

भ्रियात्। भृ धातु से परस्मैपद के आशीर्वाद अर्थ में लिङ्, तिप्, इकार का लोप, यासुट् करके **भृ+यास्+त्** बना। **रिङ् शयग्लिङ्क्षु** से भृ के ऋकार के स्थान पर रिङ् आदेश हुआ, **भ्+रि+यास्+त्** बना। **भ्+रि** में वर्णसम्मेलन होकर **भ्रि** बना। सकार का लोप करके **भ्रियात्** सिद्ध हुआ। रिङ् के विधान होने से यह तात्पर्य निकलता है कि रि के इकार को **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से दीर्घ नहीं होता है। अतः ह्रस्व इकार ही रह गया। रूप- भ्रियात्, भ्रियास्ताम्, भ्रियासुः, भ्रियाः, भ्रियास्तम्, भ्रियास्त, भ्रियासम्, भ्रियास्व, भ्रियास्म। आत्मनेपद के लिए अगला सूत्र लगता है।

५४४- उश्च। उः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इको झल्** से वचनविपरिणाम करके **झलौ** की तथा **लिङ्सिचावात्मनेपदेषु** से **आत्मनेपदेषु** और **असंयोगाल्लिट् कित्** से वचनविपरिणाम करके **कितौ** की अनुवृत्ति आती है।

ऋवर्ण से परे आत्मनेपद सम्बन्धी झलादि लिङ् और सिच् कित् की तरह होते हैं।

यह अतिदेश सूत्र है। अकित् लिङ् और सिच् को कित् करता है। कित्व का फल गुण का निषेध है। स्मरण रहे कि यह सूत्र आत्मनेपद में ही लगता है।

भृषीष्ट। भृ धातु से आत्मनेपद के आशीर्वाद अर्थ में लिङ्, त, सीयुट् आगम और सुट् का आगम करके **भृ+सीय्+स्+त** बना। **उश्च** से सकारादि लिङ् त कित् हो गया। कित् होने से **क्ङिति च** से भृ के ऋकार को गुण का निषेध हुआ। अब यकार का लोप, षत्व और ष्टुत्व करके **भृषीष्ट** सिद्ध होता है। भृषीष्ट, भृषीयास्ताम्, भृषीरन्, भृषीष्ठाः, भृषीयास्थाम्, भृषीढ्वम्, भृषीय, भृषीवहि, भृषीमहि।

अभार्षीत्। भृ से परस्मैपद लुङ्, ति, अट् का आगम, इकार का लोप, च्लि, सिच् आदेश करके **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से ईट् का आगम करने पर **अभृ+स्+ईत्** बना। **सिचि**

सिज्लोपविधायकं विधिसूत्रम्

५४५. ह्रस्वादङ्गात् ८।२।२७॥

सिचो लोपो झलि। अभृत। अभृषाताम्। अभरिष्यत्, अभरिष्यत।

हृञ् हरणे॥३॥ हरति, हरते। जहार। जहर्थ। जह्रिव। जह्रिम। जह्रे। जह्रिषे। हर्तासि, हर्तासे। हरिष्यति, हरिष्यते। हरतु, हरताम्। अहरत्, अहरत। हरेत्, हरेत। ह्रियात्, हृषीष्ट। हृषीयास्ताम्। अहार्षीत्, अहृत। अहरिष्यत्, अहरिष्यत। **धृञ् धारणे॥४॥** धरति, धरते। **णीञ् प्रापणे॥५॥** नयति, नयते। **डुपचष् पाके॥६॥** पचति, पचते। पपाच। पेचिथ, पपक्थ। पेचे। पक्तासि, पक्तासे। **भज सेवायाम्॥७॥** भजति, भजते। बभाज, भेजे। भक्तासि, भक्तासे। भक्ष्यति, भक्ष्यते। अभाक्षीत्। अभक्त। अभक्षाताम्। **यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु॥८॥** यजति, यजते॥

....

वृद्धिः परस्मैपदेषु से भृ के ऋकार को वृद्धि होकर **अभार्+स्+ईत्** बना। सकार को षत्व और रेफ का ऊर्ध्वगमन होकर वर्णसम्मेलन हुआ- **अभार्षीत्।** आगे- अभार्ष्टाम्, अभार्षुः, अभार्षीः, अभार्ष्टम्, अभार्ष्ट, अभार्षम्, अभार्ष्व, अभार्ष्म।

५४५- **ह्रस्वादङ्गात्।** ह्रस्वात् पञ्चम्यन्तम्, अङ्गात् पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **रात्सस्य** से **सस्य, संयोगान्तस्य लोपः** से **लोपः** और **झलो झलि** से **झलि** की अनुवृत्ति आती है।

ह्रस्वान्त अङ्ग से परे सिच् का लोप होता है झल् परे होने पर।

अभृत। भृ से आत्मनेपद में लुङ्, त, अट् का आगम, च्लि, सिच् होकर **अभृ+स्+त** बना। **उश्च** से किद्वद्भाव होने के कारण गुण का निषेध हुआ। सकार का ह्रस्वादङ्गात् से लोप हुआ- **अभृत** बन गया। जहाँ झल् परे नहीं मिलता, वहाँ सकार का लोप नहीं होता है। **रूप**- अभृषाताम्, अभृषत, अभृथाः, अभृषाथाम्, अभृढ्वम्, अभृषि, अभृष्वहि, अभृष्महि।

लृङ् परस्मैपद- अभरिष्यत्, अभरिष्यताम्, अभरिष्यन्, अभरिष्यः, अभरिष्यतम्, अभरिष्यत, अभरिष्यम्, अभरिष्याव, अभरिष्याम। **आत्मनेपद**- अभरिष्यत, अभरिष्येताम्, अभरिष्यन्त, अभरिष्यथाः, अभरिष्येथाम्, अभरिष्यध्वम्, अभरिष्ये, अभरिष्यावहि, अभरिष्यामहि।

हृञ् हरणे। हृञ् धातु **हरण करना** अर्थ में है। हरण के चार अर्थ हैं- **प्रापण**=ले जाना, **स्वीकार**=स्वीकार करना, **स्तेय**=चुराना और **नाशन**= नाश करना। **ञकार** की इत्संज्ञा होने के कारण **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से उभयपदी बन गया। लिट् लकार को छोड़कर अन्य लकारों में **भृ** धातु की तरह ही रूप बनते हैं। **भृ** में द्वित्व हलादिशेष होकर **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होता है तो हृ में द्वित्व, हलादिशेष होकर **कुहोश्चु** से चुत्व।

लट्- हरति, हरते। **लिट्- (परस्मैपद)** जहार, जह्रतुः, जह्रुः, जहर्थ, जह्रथुः, जह, जहार-जहर, जह्रिव, जह्रिम। **(आत्मनेपद)** जह्रे, जह्राते, जह्रिरे, जह्रिषे, जह्राथे, जह्रिढ्वे-जह्रिध्वे, जह्रे, जह्रिवहे, जह्रिमहे। **लुट्**- हर्ता, हर्तासि, हर्तासे। **लृट्**- हरिष्यति, हरिष्यते। **लोट्**- हरतु, हरताम्। **लङ्**- अहरत्, अहरत। **विधिलिङ्**- हरेत्, हरेत। **आशीर्लिङ्**- ह्रियात्, ह्रियास्ताम्, ह्रियासुः। हृषीष्ट, हृषीयास्ताम्, हृषीयासुः इत्यादि। **लुङ्- (परस्मैपद)** अहार्षीत्, अहार्ष्टाम्,

अहार्षुः, अहार्षीः, अहार्ष्टम्, अहार्ष्ट, अहार्षम्, अहार्ष्व, अहार्ष्म। **(आत्मनेपद)** अहृत, अहृषाताम्, अहृषत, अहृथाः, अहृषाथाम्, अहृढ्वम्, अहृषि, अहृष्वहि, अहृष्महि। **लृङ्-** अहरिष्यत्, अहरिष्यत।

उपसर्ग को लेकर इसी धातु पर एक पद्य प्रसिद्ध है-

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।

प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्॥ अर्थात् उपसर्ग से धातु का अर्थ अन्य रूप में हो जाता है। जैसे- हृ धातु में पृथक्-पृथक् उपसर्ग से **प्र+हारः=प्रहार, आ+हारः=आहार** आदि बनते हैं। इसी तरह **प्रहरति, आहरति, संहरति, विहरति, परिहरति** आदि।

धृञ् धारणे। धृञ् धातु **धारण करना** अर्थ में है। ञकार की इत्संज्ञा होने के कारण **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से उभयपदी बन गया। सभी लकारों में हृ धातु की तरह ही रूप बनते हैं।

लट्- धरति, धरते। **लिट्-परस्मैपद-** दधार, दध्रतुः, दध्रुः, दधर्थ, दध्रथुः, दध्र, दधार-दधर, दध्रिव, दध्रिम। **(आत्मनेपद)** दध्रे, दध्राते, दध्रिरे, दध्रिषे, दध्राथे, दध्रिढ्वे-दध्रिध्वे, दध्रे, द्रधिवहे, दध्रिमहे। **लुट्-** धर्ता, धर्तासि, धर्तासे। **लृट्-** धरिष्यति, धरिष्यते। **लोट्-** धरतु, धरताम्। **लङ्-** अधरत्, अधरत। **विधिलिङ्-** धरेत्, धरेत। **आशीर्लिङ्-** ध्रियात्, ध्रियास्ताम्, ध्रियासुः। धृषीष्ट, धृषीयास्ताम्, धृषीरन् इत्यादि। **लुङ्-** (परस्मैपद) अधार्षीत्, अधार्ष्टाम्, अधार्षुः, अधार्षीः, अधार्ष्टम्, अधार्ष्ट, अधार्षम्, अधार्ष्व, अधार्ष्म। (आत्मनेपद) अधृत, अधृषाताम्, अधृषत, अधृथाः, अधृषाथाम्, अधृढ्वम्, अधृषि, अधृष्वहि, अधृष्महि। **लृङ्-** अधरिष्यत्, अधरिष्यत।

णीञ् प्रापणे। णीञ् धातु **ले जाना** अर्थ में है। **णो नः** से णकार के स्थान पर नकार आदेश होता है और ञकार इत्संज्ञक हैं। **नी** बचता है। यह भी अनिट् और उभयपदी है।

नयति। नी से लट्, तिप्, शप्, नी के ईकार को गुण और अय् आदेश करके **नयति** सिद्ध होता है। लिट् में **निनि+अ,** वृद्धि, आय् आदेश करके **निनाय।** अतुस् आदि अजादि विभक्ति के परे होने पर **नी+अतुस्** में **द्विर्वचनेऽचि** के नियम से पहले द्वित्व होकर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से प्राप्त इयङ् आदेश को बाधकर **एरचेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** से यण् होकर **निन्यतुः, निन्युः** आदि बनते हैं। यही प्रक्रिया आत्मनेपद में भी होती है।

लट्- नयति, नयते। **लिट्- (परस्मैपद)** निनाय, (यण् होकर) निन्यतुः, निन्युः, निनयिथ-निनेथ, निन्यथुः, निन्य, निनाय-निनय, निन्यिव, निन्यिम। **(आत्मनेपद)** यण् होकर निन्ये, निन्याते, निन्यिरे, निन्यिषे, निन्याथे, निन्यिढ्वे-निन्यिध्वे, निन्ये, निन्यिवहे, निन्यिमहे। **लुट्-** नेता, नेतासि, नेतासे। **लृट्-** नेष्यति, नेष्यते। **लोट्-** नयतु, नयताम्। **लङ्-** अनयत्, अनयत। **विधि लिङ्-** नयेत्, नयेताम्, नयेयुः। नयेत, नयेयाताम्, नयेरन्। **आशीर्लिङ्-** नीयात्, नीयास्ताम्, नीयासुः। नेषीष्ट, नेषीयास्ताम्, नेषीरन्। **लुङ्- (परस्मैपद)** अनैषीत्, अनैष्टाम्, अनैषुः, अनैषीः, अनैष्टम्, अनैष्ट, अनैषम्, अनैष्व, अनैष्म। **(आत्मनेपद)** अनेष्ट, अनेषाताम्, अनेषत। **लृङ्-** अनेष्यत्, अनेष्यत।

डुपचष् पाके। डुपचष् धातु **पकाना** अर्थ में है। **आदिर्ञिटुडवः** से डु की इत्संज्ञा होती है। षकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है और स्वरित अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से। केवल **पच्** बचता है। स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी है। **लिट्** में एत्वाभ्यासलोप,

अनिट् होने के कारण थल् में वैकल्पिक इट्, लुट् में तासि के तकार के परे रहते पच् के चकार को **चोः कुः** से कुत्व होकर ककार आदेश होता है जिससे **पक्ता** रूप बनता है। लृट् में स्य के परे होने पर चकार को कुत्व और ककार से परे सकार को षत्व होने पर **क्** और **ष्** का संयोग होने पर क्ष् बनता है जिससे **पक्ष्यति** बनता है।

लट्- पचति, पचते। **लिट्- (परस्मैपद)** पपाच, पेचतुः, पेचुः, पेचिथ-पपक्थ, पेचथुः, पेच, पपाच-पपच, पेचिव, पेचिम। **(आत्मनेपद)** पेचे, पेचाते, पेचिरे, पेचिषे, पेचाथे, पेचिध्वे, पेचे, पेचिवहे, पेचिमहे। **लुट्**- पक्ता, पक्तारौ, पक्तारः, पक्तासि, **आत्मनेपद** में पक्तासे, पक्तासाथे, पक्ताध्वे आदि। **लृट्**- पक्ष्यति, पक्ष्यतः, पक्ष्यन्ति एवं पक्ष्यते, पक्ष्येते, पक्ष्यन्ते आदि। **लोट्**- पचतु, पचताम्। **लङ्**- अपचत्, अपचत। **विधिलिङ्**- पचेत्, पचेताम्, पचेयुः। पचेत, पचेयाताम् पचेरन्। **आशीर्लिङ्**- पच्यात्, पच्यास्ताम्, पच्यासुः। पक्षीष्ट, पक्षीयास्ताम्, पक्षीरन्। धातु के अनिट् होने के कारण लुङ्- में भी इट् नहीं होता है। अतः जहाँ-जहाँ झल् परे मिलता है, वहाँ-वहाँ **झलो झलि** से सकार का लोप होता है। **(परस्मैपद)** अपाक्षीत्, अपाक्ताम्, अपाक्षुः, अपाक्षीः, अपाक्तम्, अपाक्त, अपाक्षम्, अपाक्ष्व, अपाक्ष्म। **(आत्मनेपद)** अपक्त, अपक्षाताम्, अपक्षत, अपक्थाः, अपक्षाथाम्, अपग्ध्वम्, अपक्षि, अपक्ष्वहि, अपक्ष्महि। लृङ्- अपक्ष्यत्, अपक्ष्यत।

भज सेवायाम्। भज धातु **सेवा करना, भजन करना, आश्रय लेना** अर्थ में है। स्वरित अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है। केवल **भज्** बचता है। स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी है। **लिट्** में **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व आदेश होने के कारण **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** प्राप्त नहीं था किन्तु **तृफलभजत्रपश्च** से एत्वाभ्यासलोप हो जाता है। अनिट् होने के कारण थल् में वैकल्पिक इट्, लुट् में तासि के तकार के परे रहते भज् के जकार को **चोः कुः** से कुत्व होकर गकार आदेश और गकार को **खरि च** से चर्त्व होकर ककार होता है जिससे **भक्ता** रूप बनता है। **लृट्** में **स्य** के परे होने पर जकार को कुत्व, उसे चर्त्व होकर ककार होता है और ककार से परे सकार को षत्व होने पर **क्** और ष् का संयोग होने पर क्ष् बनता है जिससे **भक्ष्यति** बनता है।

लट्- भजति, भजते। लिट्- **(परस्मैपद)** बभाज, भेभतुः, भेजुः, भेजिथ-बभक्थ, भेजथुः,भेज, बभाज-बभज, भेजिव, भेजिम। **(आत्मनेपद)** एत्वाभ्यास लोप होकर- भेजे, भेजाते, भेजिरे, भेजिषे, भेजाथे, भेजिध्वे, भेजे, भेजिवहे, भेजिमहे। **लुट्**- भक्ता, भक्तारौ, भक्तारः, भक्तासि, **आत्मनेपद** में भक्तासे, भक्तासाथे, भक्ताध्वे आदि। **लृट्**- भक्ष्यति, भक्ष्यतः, भक्ष्यन्ति एवं भक्ष्यते, भक्ष्येते, भक्ष्यन्ते आदि। **लोट्**- भजतु, भजताम्। **लङ्**- अभजत्, अभजत। **विधि लिङ्**- भजेत्, भजेताम्, भजेयुः। भजेत, भजेयाताम् भजेरन्। **आशीर्लिङ्**- भज्यात्, भज्यास्ताम्, भज्यासुः। भक्षीष्ट, भक्षीयास्ताम्, भक्षीरन्। लुङ्- (परस्मैपद) अभाक्षीत्, अभाक्ताम्, अभाक्षुः, अभाक्षीः, अभाक्तम्, अभाक्त, अभाक्षम्, अभाक्ष्व, अभाक्ष्म। (आत्मनेपद) अभक्त, अभक्षाताम्, अभक्षत, अभक्थाः, अभक्षाथाम्, अभग्ध्वम्, अभक्षि, अभक्ष्वहि, अभक्ष्महि। **लृङ्**- अभक्ष्यत्, अभक्ष्यत।

यज देवपूजा-सङ्गतिकरण-दानेषु। यज धातु **देवताओं की पूजा करना, संगति करना तथा दान देना** अर्थ में है। स्वरित अकार की इत्संज्ञा होती है, यज् बचता है। स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी है। यह अनिट् है।

सम्प्रसारणविधायकं विधिसूत्रम्

५४६. लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् ६।१।१७॥

वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चाभ्यासस्य सम्प्रसारणं लिटि। इयाज।

सम्प्रसारणविधायकं विधिसूत्रम्

५४७. वचिस्वपियजादीनां किति ६।१।१५॥

वचिस्वप्योर्यजादीनां च सम्प्रसारणं स्यात् किति।

ईजतुः। ईजुः। इयजिथ, इयष्ठ। ईजे। यष्टा॥

....

यजति। यज् से लट्, तिप्, शप्, वर्णसम्मेलन, **यजति।** आत्मनेपद में एत्व करके **यजते।**

५४६- लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्। लिटि सप्तम्यन्तम्, अभ्यासस्य षष्ठ्यन्तम्, उभयेषां षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **ष्यङः सम्प्रसारणम्** से **सम्प्रसारणम्** की अनुवृत्ति आती है। अष्टाध्यायी के क्रम में पूर्वसूत्र **वचिस्वपियजादीनां किति** में वर्णित वच्यादि और **ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च** में वर्णित ग्रह्यादि, दो धातु-समूहों का ग्रहण यहाँ पर **उभयेषाम्** इस पद के द्वारा किया गया है।

लिट् के परे रहने पर वच् आदि धातुओं और ग्रह् आदि धातुओं के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है।

वच्यादिगण में वच्, स्वप्, यज्, वप्, वह्, वस्, वेञ्, व्येञ्, ह्वेञ्, वद् और श्वि ये ग्यारह धातुएँ हैं तो ग्रह्यादिगण में ग्रह्, ज्या, वय्, व्यध्, वश्, व्यच्, व्रश्च्, प्रच्छ् और भ्रस्ज् ये नौ धातुएँ हैं। स्मरण होगा ही कि सम्प्रसारण का तात्पर्य यण् के स्थान पर इक् का होना है। यज् धातु में यकार है, उसका सम्प्रसारण इकार होता है।

इयाज। यज् से लिट्, तिप्, णल्, अनुबन्धलोप होकर; द्वित्व, हलादिशेष करके **ययज्+अ** बना है। **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** से अभ्यास **य्+अ** में यकार को सम्प्रसारण होने पर **इ+अ** बना। **इ+अ** में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **इ** मात्र बना। आगे **यज्+अ** है। **यज्** में अकार को **अत उपधायाः** से वृद्धि होकर **इ+याज्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **इयाज** सिद्ध हुआ।

५४७- वचिस्वपियजादीनां किति। यज् आदिर्येषां ते यजादयः। वचिश्च स्वपिश्च यजादयश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो वचिस्वपियजादयः, तेषां वचिस्वपियजादीनाम्। वचिस्वपियजादीनां षष्ठ्यन्तं, किति सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ष्यङः सम्प्रसारणम्** से **सम्प्रसारणम्** की अनुवृत्ति आती है।

कित् के परे होने पर वच्, स्वप् तथा यजादि धातुओं को सम्प्रसारण होता है।

असंयोगाल्लिट् कित् से तिप्, सिप्, मिप् को छोड़कर अन्यों को कित् होता है। अतः वहीं पर ही यह सम्प्रसारण करेगा।

एक नियम है- **सम्प्रसारणं तदाश्रयञ्च कार्यं बलवत्** अर्थात् सम्प्रसारण और सम्प्रसारण के आश्रित कार्य पूर्वरूप आदि बलवान् होते हैं। इसके अनुसार सबसे पहले

कादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५४८. षढो: क: सि ८।२।४१॥

यक्ष्यति, यक्ष्यते। इज्यात्, यक्षीष्ट। अयाक्षीत्, अयष्ट।

वह प्रापणे॥९॥ वहति, वहते। उवाह। ऊहतु:। ऊहु:। उवहिथ।

....

सम्प्रसारण होता है, तब द्वित्व आदि कार्य होते हैं। **इयाज** में पहले द्वित्व इसलिए हुआ कि **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** यह सूत्र अभ्यास को ही द्वित्व करता है और द्वित्व करने के बाद ही अभ्यास बनता है।

सम्प्रसारण करने वाले इन दो सूत्रों में तिप्, सिप्, मिप् को छोड़कर अन्यत्र कित् के परे **वचिस्वपियजादीनां किति** यह सूत्र द्वित्व होने के पहले ही सम्प्रसारण करता है और लिट् के तिप्, सिप्, मिप् में **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** यह सूत्र द्वित्व होने के बाद अभ्यास को सम्प्रसारण करता है। इस अन्तर को समझना आवश्यक है।

ईजतु:। यज् से लिट्, तस्, उसके स्थान पर अतुस् आदेश करके **वचिस्वपियजादीनां किति** से **यज्** में यकार को सम्प्रसारणसंज्ञक इकार आदेश और उसके बाद वाले अकार के बीच पूर्वरूप होकर केवल इकार ही बना। इस तरह **यज्** धातु **इज्** में बदल गया। अब **इज्+अतुस्** में **इज्** को द्वित्व होकर हलादिशेष होने पर **इ+इज्+अतुस्** बना। **इ+इ** में सवर्णदीर्घ होकर **ईज्+अतुस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **ईजतु:** सिद्ध हुआ। इसी तरह **ईजु:** भी बन जाता है।

इयजिथ, इयष्ठ। यज् जकारान्त अनुदात्तों की गणना में आता है। अत: **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से अनिट् है किन्तु थल् में **ऋतो भारद्वाजस्य** से भारद्वाज के मत में ऋदन्तभिन्न होने के कारण इट् हो जाता है, अन्यों के मत में नहीं होता। अत: विकल्प से इट् हो जायेगा। यहाँ पर सिप् सम्बन्धी थल् होने के कारण स्थानिवद्भावेन यह भी पित् है, अत: **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित् नहीं हुआ। इस लिए **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** से अभ्यास को सम्प्रसारण होता है। इट् के परे रहने पर भी सम्प्रसारण हो रहा है और इट् न होने पर भी सम्प्रसारण हो रहा है, जिससे **इयजिथ** और **इयष्ठ** ये दो रूप सिद्ध हो गये।

आत्मनेपद में पित् न होने के कारण नवों प्रत्ययों में कित्त्व होता है। अत: **वचिस्वपियजादीनां किति** से सम्प्रसारण होकर **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप करके सवर्णदीर्घ करके **ईजे, ईजाते, ईजिरे** आदि रूप बनते हैं।

लुट् के दोनों पदों में यज्+ता में जकार के स्थान पर **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजमृजयजराज-भ्राजच्छशां ष:** से **षकार** आदेश होता है और षकार से परे तकार को ष्टुत्व करने पर **यष्टा** आदि रूप बनते हैं।

५४८- षढो: क: सि। षश्च ढ् च तयोरितरेतरद्वन्द्व: षढौ, तयो: षढो:। षढो: षष्ठ्यन्तं, क: प्रथमान्तं, सि सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

सकार के परे होने पर षकार और ढकार के स्थान पर ककार आदेश होता है।

यक्ष्यति। लृट् के दोनों पदों में **यज्+स्य** में **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजमृजयजराजभ्राजच्छशां ष:** से **षकार** आदेश होकर **यष्+स्य** बनता है और **षढो: क: सि** से षकार के स्थान पर

धादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५४९. झषस्तथोर्धोऽधः ८।२।४०॥

झषः परयोस्तथोर्धः स्यान्न तु दधातेः।

ढकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

५५०. ढो ढे लोपः ८।३।१३॥

....

ककार आदेश करके **यक्+स्य** बनता है। ककार से परे सकार को षत्व होकर **यक्+ष्य** बनता है। **क्+ष्** के संयोग से क्ष् होने के कारण **यक्ष्य** बन जाता है। आगे दोनों पदों के प्रत्यय तो हैं ही। इस तरह **यक्ष्यति** और **यक्ष्यते** आदि रूप बनते हैं।

आशीर्लिङ् के परस्मैपद में यासुट् के कित् होने के कारण **वचिस्वपियजादीनां किति** से सम्प्रसारण होकर **इज्यात्** बनता है किन्तु आत्मनेपद में सीयुट् के कित् न होने के कारण सम्प्रसारण नहीं होता। अतः षत्व, कत्व, क्षत्व होकर **यक्षीष्ट** बनता है।

लुङ् के परस्मैपद में च्लि को सिच् होकर **अयज्+स्+ईत्** में **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि करके जकार को षत्व, पकार को कत्व, सिच् के सकार को षत्व करके **अयाक्षीत्** सिद्ध होता है। आत्मनेपद में अपृक्त के अभाव में ईट् नहीं होता और वृद्धि भी नहीं होती किन्तु **अयज्+स्+त** में सिच् के सकार का **झलो झलि** से लोप होता है। जकार के स्थान पर षत्व और षकार के योग में तकार को ष्टुत्व होकर **अयष्ट** बनता है।

लट्- यजति, यजते। **लिट्-(परस्मैपद)** इयाज, ईजतुः, ईजुः, इयजिथ-इयष्ठ, ईजथुः, ईज, इयाज-इयज, ईजिव, ईजिम। **(आत्मनेपद)** ईजे, ईजाते, ईजिरे, ईजिषे, ईजाथे, ईजिध्वे, ईजे, ईजिवहे, ईजिमहे। **लुट्**- यष्टा, यष्टारौ, यष्टारः यष्टासि। यष्टासे। **लृट्**- यक्ष्यति, यक्ष्यते। **लोट्**- यजतु, यजताम्। **लङ्**- अयजत्, अयजत। **विधिलिङ्**- यजेत्, यजेत। **आशीर्लिङ्**- इज्यात्। यक्षीष्ट, यक्षीयास्ताम्, यक्षीरन्, यक्षीष्ठाः, यक्षीयास्थाम्, यक्षीध्वम्, यक्षीय, यक्षीवहि, यक्षीमहि। **लुङ् (परस्मैपद)** अयाक्षीत्, अयाष्टाम्, अयाक्षुः, अयाक्षीः, अयाष्टम्, अयाष्ट, अयाक्षम्, अयाक्ष्व, अयाक्ष्म। **(आत्मनेपद)** अयष्ट, अयक्षाताम्, अयक्षत, अयष्ठाः, अयक्षाथाम्, अयड्ढ्वम्, अयक्षि, अयक्ष्वहि, अयक्ष्महि। **लृङ्**- अयक्ष्यत्, अयक्ष्यत।

वह प्रापणे। वह धातु **प्रापण** अर्थात् **ले जाना** अर्थ में है। स्वरित अकार की इत्संज्ञा होती है। वह् शेष रहता है। लट्, तिप्, शप् करके **वहति, वहते** आदि रूप बनते हैं। यह यजादिसमूह में आता है अतः सम्प्रसारण के योग्य है।

उवाह। वह् से लिट्, तिप्, णल्, अ, द्वित्व, हलादिशेष, अभ्यास को सम्प्रसारण करके उपधावृद्धि करने पर **इयाज** की तरह **उवाह** सिद्ध होता है। अतुस् आदि में भी **ईजतुः** आदि की तरह **ऊहतुः** आदि सिद्ध होते हैं। दोनों धातुओं में अन्तर यह है कि यज् में यकार को सम्प्रसारण होकर इकार होता है तो वह् में वकार को सम्प्रसारण होकर उकार होता है।

५४९- झषस्तथोर्धोऽधः। तश्च थ् च तथौ, तयोस्तथोः। न धाः अधाः, तस्मात् अधः। झषः पञ्चम्यन्तं, तथोः षष्ठ्यन्तं, धः प्रथमान्तम्, अधः पञ्चम्यन्तम्।

झष् प्रत्याहार वाले वर्णों से परे तकार और थकार के स्थान पर धकार आदेश होता है किन्तु धा धातु से परे न हो।

५५०- ढो ढे लोपः। ढः प्रथमान्तं, ढे सप्तम्यन्तं, लोपः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

ओदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५५१. सहिवहोरोदवर्णस्य ६।३।११२॥

अनयोरवर्णस्य ओत्स्याड्ढलोपे। उवोढ। ऊहे। वोढा। वक्ष्यति। अवाक्षीत्। अवोढाम्। अवाक्षुः। अवाक्षीः। अवोढम्। अवोढ। अवाक्षम्। अवाक्ष्व। अवाक्ष्म। अवोढ। अवक्षाताम्। अवक्षत। अवोढाः। अवक्षाताम्। अवोढ्वम्। अवक्षि। अवक्ष्वहि। अवक्ष्महि।

इति भ्वादयः॥१२॥

....

ढकार के परे रहने पर पूर्व ढकार का लोप होता है।

५५१- **सहिवहोरोदवर्णस्य।** सहिश्च वह् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः सहिवहौ, तयोः सहिवहोः। सहिवहोः षष्ठ्यन्तम्, ओत् प्रथमान्तम्, अवर्णस्य षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से उपयोगी अंश **ढलोपे** की अनुवृत्ति आती है।

ढकार का लोप हुआ हो तो सह् और वह् धातु के अकार के स्थान पर ओकार आदेश होता है।

उवहिथ, उवोढ। वह् धातु हकारान्त अनुदात्तों की गणना में आता है। अतः **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से अनिट् है किन्तु थल् में **ऋतो भारद्वाजस्य** से भारद्वाज के मत में ऋदन्तभिन्न होने के कारण इट् हो जाता है, अन्यों के मत में नहीं होता। अतः विकल्प से इट् हो जायेगा। यहाँ पर सिप् सम्बन्धी थल् होने के कारण स्थानिवद्भावेन यह भी पित् है, अतः **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित् नहीं हुआ। इसलिए **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** से अभ्यास को सम्प्रसारण होता है। इट् के परे रहने पर भी सम्प्रसारण हो रहा है और इट् न होने पर भी सम्प्रसारण हो रहा है, जिससे **उवहिथ** और **उवोढ** ये दो रूप सिद्ध हो गये। इट् न होने के पक्ष में **उवह्+थ** है। **उवह्** के हकार के स्थान पर **हो ढः** से ढकार आदेश होकर उससे परे थकार के स्थान पर **झषस्तथोर्धोऽधः** से धकार आदेश हुआ और **उवढ्+ध** बना। ढकार से धकार के स्थान पर **ष्टुना ष्टुः** से ष्टुत्व होकर **ढकार** हुआ, **उवढ्+ढ** बना। **ढो ढे लोपः** से ढकार के परे होने पर पूर्व ढकार का लोप हुआ, **उव+ढ** बना। **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से उव के अकार को दीर्घ प्राप्त था, उसे बाधकर के **सहिवहोरोदवर्णस्य** से अकार के स्थान पर ओकार आदेश होकर **उवोढ** सिद्ध हुआ। इट् होने के पक्ष में **उवहिथ** बनता है।

आत्मनेपद में अपित् होने के कारण किद्वद्भाव होकर सम्प्रसारण करने पर **ईजे** की तरह **ऊहे, ऊहाते, ऊहिरे** बनते हैं।

लुट् के दोनों पदों में हकार के स्थान पर **हो ढः** से ढकार आदेश होता है। **झषस्तथोर्धोऽधः** से तास् के तकार के स्थान पर धकार आदेश होकर **वढ्+धा** बनता है। ढकार से परे धकार के स्थान पर **ष्टुना ष्टुः** से ष्टुत्व होकर **ढकार** होकर **वढ्+ढा** बनता है। **ढो ढे लोपः** से ढकार के परे होने पर पूर्व ढकार का लोप, **व+ढा** में **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से उव के अकार को दीर्घ प्राप्त, उसे बाधकर **सहिवहोरोदवर्णस्य** से अकार के स्थान पर ओकार आदेश होकर **वोढा, वोढारौ, वोढारः, वोढासि, वोढासे** आदि रूप बनते हैं।

वक्ष्यति। लृट् के दोनों पदों में वह्+स्य में **हो ढः** से **ढकार** आदेश होकर **वढ्+स्य** बनता है और **षढोः कः सि** से ढकार के स्थान पर ककार आदेश करके **वक्+स्य** बनता है। ककार से परे सकार को षत्व होकर **वक्+ष्य** बनता है। **क्+ष्** के संयोग में **क्ष्** होने के कारण **वक्ष्य** बन जाता है। आगे दोनों पदों के प्रत्यय तो हैं ही। इस तरह **वक्ष्यति** और **वक्ष्यते** ये रूप बनते हैं। विधिलिङ् में कोई विशेष नहीं है। रूप- **वहेत्, वहेत** आदि बनते हैं।

आशीर्लिङ् के परस्मैपद में यासुट् के कित् होने के कारण **वचिस्वपियजादीनां किति** से सम्प्रसारण होकर **उह्यात्** बनता है किन्तु आत्मनेपद में सीयुट् के कित् न होने के कारण सम्प्रसारण नहीं होता। अतः षत्व, कत्व, क्षत्व होकर **वक्षीष्ट** बनता है।

लुङ् के परस्मैपद में च्लि को सिच् होकर **अयज्+स्+ईत्** में **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि करके जकार को षत्व, षकार को कत्व, सिच् के सकार को षत्व करके **अवाक्षीत्** सिद्ध होता है। तस्, थस्, थ के परे रहने पर **झषस्तथोर्धोऽधः** से धकार आदेश, **हो ढः** से ढकार आदेश, एक ढकार का लोप, **सहिवहोरोदवर्णस्य** से ओकार आदेश होकर क्रमशः **अवोढाम्, अवोढम्, अवोढ** बनते हैं। शेष में **हो ढः** से ढकार होने के बाद **षढोः कः सि** से ककार आदेश होकर षत्व, क्षत्व आदि होते हैं। आत्मनेपद में अपृक्त के अभाव में ईट् नहीं होता और वृद्धि भी नही होती किन्तु **अवढ्+स्+त** में सिच् के सकार का **झलो झलि** से लोप होता है। तकार को **झषस्तथोर्धोऽधः** से धत्व और धकार को ष्टुत्व होकर ढकार हो जाने के बाद पूर्व ढकार का लोप करके **सहिवहोरोदवर्णस्य** से ओकार आदेश करने पर **अवोढ** बनता है। तकार और थकार के स्थान पर धकार आदेश होने के कारण **अवोढाः, अवोढ्वम्,** बनते हैं।

लट्- वहति, वहते। **लिट्-(परस्मैपद)** उवाह, ऊहतुः, ऊहुः, उवहिथ-उवोढ, ऊहथुः, ऊह, उवाह-उवह, ऊहिव, ऊहिम। **(आत्मनेपद)** ऊहे, ऊहाते, ऊहिरे, ऊहिषे, ऊहाथे, ऊहिढ्वे-ऊहिध्वे, ऊहे, ऊहिवहे, ऊहिमहे। **लुट्**- वोढा, वोढासि, वोढासे। **लृट्**- वक्ष्यति, वक्ष्यते। **लोट्**- वहतु, वहताम्। **लङ्**- अवहत्, अवहत। **विधिलिङ्**- वहेत्, वहेत। **आशीर्लिङ्**- उह्यात्, उह्यास्ताम्, उह्यासुः। वक्षीष्ट, वक्षीयास्ताम्, वक्षीरन्, वक्षीष्ठाः, वक्षीयास्थाम्, वक्षीध्वम्, वक्षीय, वक्षीवहि, वक्षीमहि। **लुङ्** (परस्मैपद) अवाक्षीत्, अवोढाम्, अवाक्षुः, अवाक्षीः, अवोढम्, अवोढ, अवाक्षम्, अवाक्ष्व, अवाक्ष्म। (आत्मनेपद) अवोढ, अवक्षाताम्, अवक्षत, अवोढाः, अवक्षाथाम्, अवोढ्वम्, अवक्षि, अवक्ष्वहि, अवक्ष्महि। **लृङ्**- अवक्ष्यत्, अवक्ष्यत।

अभ्यास

अब आप भ्वादिप्रकरण का आद्योपान्त अध्ययन करें और अच्छी तरह समझने के बाद ही अगले प्रकरण में प्रवेश करें। इस प्रकरण में जितने धातु बताये गये हैं, उनके रूप विना पुस्तक देखे अपनी पुस्तिका में उतारें और उसके बाद अपने गुरु जी को दिखायें या इस पुस्तक से मिलायें। आप यदि सारे रूप जान चुके हैं और लिख सकते हैं एवं प्रयोग भी कर सकते हैं तो तभी अदादिप्रकरण में प्रवेश करें। अन्यथा आगे बढ़ना व्यर्थ है।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का
तिङन्त-भ्वादि प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ-अदादयः

अद भक्षणे॥१॥

शपो लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

५५२. अदिप्रभृतिभ्यः शपः २।४।७२॥

लुक् स्यात्।

अत्ति। अत्तः। अदन्ति। अत्सि। अत्थः। अत्थ। अद्मि। अद्वः। अद्मः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब तिङन्तप्रकरण का दूसरा **अदादिप्रकरण** प्रारम्भ होता है। इस प्रकरण में अद् धातु पहला है, इसलिए इसे **अदादिप्रकरण** कहते हैं। अदादिगण की विशेषता यह है कि जैसे भ्वादिगण में धातु और तिप् आदि के बीच में शप् होता है, वैसे इस प्रकरण में शप् प्रत्यय होने के बाद उसका लुक्(लोप) होता है। भ्वादिगणीय धातुओं को शप्-विकरण ध ातु कहते हैं तो इस प्रकरण के धातुओं को शब्लुग्विकरण धातु कहते हैं।

अद भक्षणे। अद धातु **भक्षण** अर्थात् **खाना** अर्थ में है। **अत्ति**= खाता है। अद में अन्त अकार उदात्त स्वर वाला है और उसकी **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होकर अद् बचता है। आत्मनेपद के लिए कोई निमित्त न होने के कारण परस्मैपदी है।

५५२- **अदिप्रभृतिभ्यः शपः**। अदिः प्रभृतिः(आदिः) येषां ते अदिप्रभृतयः, तेभ्यः अदिप्रभृतिभ्यः। अदिप्रभृतिभ्यः पञ्चम्यन्तं, शपः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** से **लुक्** की अनुवृत्ति आती है।

अदादिगण में पठित धातुओं से किये गये शप् का लुक् होता है।

लुक् भी लोप ही है। अन्तर इतना है कि लोप होने पर स्थानिवद्भाव या **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** आदि से शप् आदि मानकर अनेक कार्य हो सकते हैं किन्तु लुक् करने पर **न लुमताऽङ्गस्य** से निषेध होने से प्रत्ययलक्षण नहीं होता।

अत्ति। अद धातु में अकार के लोप होने के बाद **अद्** बचा, उससे लट्-लकार तिप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ति की **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा, **कर्तरि शप्** से शप्, शप् का **अदिप्रभृतिभ्यः शपः** से लुक्, **अद्+ति** में दकार के स्थान पर **खरि च** से चर्त्व होकर तकार आदेश हुआ, **अत्+ति** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **अत्ति** बना। इसी प्रकार तस् में सकार को रुत्वविसर्ग करके **अत्तः** भी बनेगा। बहुवचन में झ् के स्थान पर अन्त् आदेश करके

घस्लृ-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

५५३. लिट्यन्यतरस्याम् २।४।४०॥

अदो घस्लृ वा स्याल्लिटि। जघास। उपधालोपः।

षत्वविधायकं विधिसूत्रम्

५५४. शासिवसिघसीनां च ८।३।६०॥

इण्कुभ्यां परस्यैषां सस्य षः स्यात्। घस्य चर्त्वम्।

जक्षतुः। जक्षुः। जघसिथ। जक्षथुः। जक्ष। जघास, जघस। जक्षिव।

जक्षिम। आद। आदतुः। आदुः।

....

अद्+अन्त्+इ=अदन्ति बन जाता है। सिप्, थस्, थ में अद् के दकारं को **खरि च** से चर्त्व होगा। मिप्, वस्, मस् में खर् परे न मिलने के कारण चर्त्व नहीं होगा। इस प्रकार से अद् धातु के लट्-लकार में रूप बनते हैं- अत्ति, अत्तः, अदन्ति। अत्सि, अत्थः अत्थ। अद्मि, अद्वः, अद्मः।

५५३- लिट्यन्यतरस्याम्। लिटि सप्तम्यन्तम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति** से **अदः** की तथा **लुङ्सनोर्घस्लृ** से **घस्लृ** की अनुवृत्ति आती है।

लिट् लकार के परे होने पर अद् धातु के स्थान पर विकल्प से घस्लृ आदेश होता है।

घस्लृ में लृकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होने पर घस् बचता है।

जघास। अद् धातु से लिट्-लकार, तिप् आदेश, उसके स्थान पर णल् आदेश, अनुबन्धलोप, **अद्+अ** बना। **लिट्यन्यतरस्याम्** से घस्लृ आदेश हुआ, **घस्+अ** बना। घस् को **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व हुआ, **घस्घस्+अ** बना, हलादिशेष हुआ, **घघस्+अ** बना। **कुहोश्चुः** से चुत्व होकर अभ्यास के घकार के स्थान पर झकार और **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर जकार हो गया, **जघस्+अ** बना। **अत उपधायाः** से उपधासंज्ञक घकारोत्तरवर्ती अकार की वृद्धि, **जघास्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **जघास।**

५५४- शासिवसिघसीनां च। शासिश्च वसिश्च घसिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः शासिवसिघसयः, तेषां शासिवसिघसीनाम्। शासिवसिघसीनां षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **इण्कोः** का अधिकार है और **अपदान्तस्य मूर्धन्यः** से **मूर्धन्यः** की अनुवृत्ति आती है।

इण् और कवर्ग से परे शास्, वस् और घस् धातु के सकार के स्थान पर षकार आदेश होता है।

आदेश या प्रत्यय का अवयव सकार न होने के कारण **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व प्राप्त नहीं हो रहा था तो इस सूत्र को बनाया गया।

जक्षतुः। अद् धातु से लिट्, तस्, अतुस्, घस्लृ आदेश, उसको द्वित्व, हलादिशेष, चुत्व और चर्त्व होकर **जघस्+अतुस्** बना। **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से उपधाभूत घकारोत्तरवर्ती अकार का लोप, **जघ्स्+अतुस्** बना, सकार के स्थान पर **शासिवसिघसीनां च** से षत्व हुआ, **जघ्ष्+अतुस्** बना। षकार के परे होने पर घकार के स्थान पर **खरि च** से चर्त्व होकर ककार आदेश हुआ, **जक्ष्+अतुस्** बना। क् और ष् का संयोग होने पर क्ष् बनता है, अतः

इडागमविधायकं विधिसूत्रम्

५५५. इडत्यर्तिव्ययतीनाम् ७।२।६६॥

अद् ऋ व्येञ् एभ्यस्थलो नित्यमिट् स्यात्।

आदिथ। अत्ता। अत्स्यति। अत्तु। अत्तात्। अत्ताम्। अदन्तु।

हेर्धिविधायकं विधिसूत्रम्

५५६. हुझल्भ्यो हेर्धिः ६।४।१०१॥

होर्झलन्तेभ्यश्च हेर्धिः स्यात्।

अद्धि-अत्तात्। अत्तम्। अत्त। अदानि। अदाव। अदाम।

....

क्+ष्=क्ष् हो गया, **जक्ष्+अतुस्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ, **जक्षतुस्** बना, सकार को रुत्वविसर्ग हुआ तो **जक्षतुः** सिद्ध हुआ। **असंयोगाल्लिट् कित्** से तिप्, सिप्, मिप् को छोड़कर शेष प्रत्ययों को किद्वद्भाव हुआ। अतः तिप्, सिप्, मिप् के अतिरिक्त अन्य प्रत्ययों के परे होने पर **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से उपधा के लोप होने पर **जक्ष्** बनाकर आगे वर्णसम्मेलन करें। इस तरह अद् धातु के घस्लृ आदेश होने के पक्ष में निम्नलिखित रूप सिद्ध हो जाते हैं- जघास, जक्षतुः, जक्षुः। जघसिथ, जक्षथुः, जक्ष। जघास-जघस, जक्षिव, जक्षिम।

लिट् में **घस्लृ** आदेश वैकल्पिक है। आदेश न होने के पक्ष में अद् को द्वित्व, हलादिशेष होने पर **अअद्** बना। **अत आदेः** से दीर्घ और **आ+अद्** में सवर्णदीर्घ करके **आद्** बन जाता है और आगे वर्णसम्मेलन होने पर निम्नलिखित रूप सिद्ध हो जाते हैं- **आद, आदतुः, आदुः।**

५५५- **इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम्।** अत्तिश्च अर्तिश्च व्ययतिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः अत्त्यर्तिव्ययतयः, तेषाम् अत्त्यर्तिव्ययतीनाम्। इट् प्रथमान्तम्, अत्त्यर्तिव्ययतीनां षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम्** से विभक्ति का विपरिणाम करके **थलः** का तथा **नित्यम्** का अनुवर्तन होता है।

अद्, ऋ और व्येञ् इन धातुओं से परे थल् को नित्य से इट् आगम होता है।

अद् धातु के थल् में **भारद्वाजनियम** से प्राप्त वैकल्पिक इट् आगम को बाधकर इस सूत्र से नित्य से विधान होता है जिससे **आदिथ** यह एक मात्र रूप बनता है।

आदिथ, आदथुः, आद। आद, आदिव, आदिम।

यह धातु थल् में तो सेट् होता है किन्तु तासि आदि प्रत्यय के परे होने पर इट् का अभाव अर्थात् नेट् होता है। अतः लुट्-लकार में अद् से तिप्, तासि, डा आदेश करके **अद्+ता** बना। दकार को चर्त्व होकर **अत्+ता** बना, वर्णसम्मेलन होकर **अत्ता** बन जाता है। इस तरह लुट्-लकार में रूप बने- अत्ता, अत्तारौ, अत्तारः। अत्तासि, अत्तास्थः, अत्तास्थ। अत्तास्मि, अत्तास्वः, अत्तास्मः।

लृट्-लकार में **अद्+स्य+ति**, इट् का अभाव, दकार को चर्त्व करके बनाइये- अत्स्यति, अत्स्यतः, अत्स्यन्ति। अत्स्यसि, अत्स्यथः, अत्स्यथ। अत्स्यामि, अत्स्यावः, अत्स्यामः।

लोट्-लकार में अत्ति के बाद **एरुः** से उत्व और एक पक्ष में

अडागमविधायकं विधिसूत्रम्

५५७. अदः सर्वेषाम् ७।३।१००॥

अदः परस्यापृक्तसार्वधातुकस्य अट् स्यात् सर्वमतेन।

आदत्। आत्ताम्, आदन्। आदः। आत्तम्। आत्त। आदम्। आद्व। आद्म।

अद्यात्। अद्याताम्, अद्युः। अद्यात्। अद्यास्ताम्। अद्यासुः।

....

तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् से तातङ् आदेश करने पर भ्वादि की तरह दो रूप बनते हैं- **अत्तु-अत्तात्।** तस् में **अत्ताम्** और झि में **अदन्तु** बनते हैं।

५५६- हुझल्भ्यो हेर्धिः। हुश्च झलश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो हुझलः, तेभ्यो हुझल्भ्यः। हुझल्भ्यः पञ्चम्यन्तं, हेः षष्ठ्यन्तं, धिः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

हु और झलन्त धातुओं से परे हि के स्थान पर धि आदेश होता है।

अद् धातु झलन्त है।

अद्धि। अद् से लोट्, सिप्, शप्, उसका लुक्, **सेर्ह्यपिच्च** से सि के स्थान पर हि आदेश, **अद्+हि** बना। हि के स्थान पर **हुझल्भ्यो हेर्धिः** से धि आदेश करके **अद्धि** सिद्ध हुआ। थस् और थ में **अत्तम्, अत्त** बनते हैं। मिप्, वस्, मस् में **आडुत्तमस्य पिच्च** से आट् का आगम होकर **अद्+आमि**, वर्णसम्मेलन-**अदामि।** वस् और मस् में आडागम, सकार का लोप करके **अद्+आव, अद्+आम,** वर्णसम्मेलन करके **अदाव, अदाम।** सिद्ध होते हैं।

अद् धातु के लोट् लकार के रूप- अत्तु-अत्तात्, अत्ताम्, अदन्तु, अद्धि-अत्तात्, अत्तम्, अत्त, अदानि, अदाव, अदाम।

५५७- अदः सर्वेषाम्। अदः षष्ठ्यन्तं, सर्वेषाम् षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से **अपृक्ते** की षष्ठी विभक्ति में बदलकर, **तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके** से **सार्वधातुके** को षष्ठी में बदलकर **सार्वधातुकस्य** और **अड् गार्ग्यगालवयोः** से अट् की अनुवृत्ति आती है।

अद् धातु से परे अपृक्तसंज्ञक सार्वधातुक प्रत्यय को अट् आगम होता है, सभी आचार्यों के मत में।

अष्टाध्यायीक्रम में इस सूत्र से पहले **गालव** और **गार्ग्य** ऋषि के मतों का प्रसंग चल रहा था, जिसके कारण विकल्प से हो रहा था। उस विकल्प को रोकने के लिए सूत्रकार ने यहाँ **सर्वेषाम्** यह पद देकर सभी आचार्यों के मत में अट् होता है, किसी एक आचार्य के मत में नहीं। अतः विकल्प से नहीं होगा, यह बताया है। केवल ङित् लकार सम्बन्धी **तिप्** और **सिप्** में ही इकार का **इतश्च** से लोप होने के कारण अपृक्त मिलता है। अतः यह सूत्र ङित् लकार में तिप् और सिप् का मात्र विषय है। अट् आगम टित् होने के कारण तिप् के त् और सिप् के स् के पहले रहेगा।

आदत्। अद् से लङ् लकार, तिप्, अनुबन्धलोप, **आडजादीनाम्** से धातु को आट् आगम, शप्, उसका लुक्, ति में इकार का **इतश्च** से लोप करके **आ+अद्+त् बना।** त् की अपृक्तसंज्ञा करके **अदः सर्वेषाम्** से उसको अट् आगम किया तो **आ+अद्+अत्** बना। **आ+अद्** में **आटश्च** से वृद्धि करके वर्णसम्मेलन करने पर **आदत्** सिद्ध हुआ। सिप् में **आदः** बनता है। अन्यत्र अट् आगम नहीं होता है।

घस्लृ-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

५५८. लुङ्सनोर्घस्लृ २।४।३७॥

अदो घस्लृ स्याल्लुङि सनि च। लृदित्वादङ्। अघसत्। आत्स्यत्।

हन हिंसागत्योः॥२॥ हन्ति।

....

इस प्रकार से अद् धातु के लङ् लकार में निम्नानुसार रूप बनते हैं- आदत्, आत्ताम्, आदन्। आदः, आत्तम्, आत्त। आदम्, आद्व, आद्म।

अद्यात् अद्याताम्। अद् धातु से विधिलिङ्, तिप्, इकार का लोप, शप्, उसका लुक्, **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् आगम, अनुबन्धलोप, **अद्+यास्+त्** बना। सकार का **लिङः सलोपोऽन्त्यस्य** से लोप हुआ, वर्णसम्मेलन हुआ- **अद्यात्।** इसी प्रकार **अद्याताम्** भी बनेगा। **अद्+तस्,** शप्, लुक्, यासुट्, तामादेश, सलोप, वर्णसम्मेलन- **अद्याताम्** बना।

अद्युः। अद् धातु से विधिलिङ्, झि, अन्त् आदेश को बाधकर **झेर्जुस्** से जुस् आदेश, अनुबन्ध लोप, शप्, उसका लुक्, **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से यासुट् आगम, अनुबन्धलोप, **अद्+यास्+उस्** बना। यास् के सकार का **लिङः सलोपोऽन्त्यस्य** से लोप हुआ, **अद्+या+उस्** बना। **या+उस्** में **उस्यपदान्तात्** से पररूप होकर युस् बना, **अद्+युस्** में वर्णसम्मेलन हुआ और सकार को रुत्वविसर्ग हुआ- **अद्युः।**

अद् धातु के विधिलिङ् के रूप- अद्यात्, अद्याताम्, अद्युः। अद्याः, अद्यातम्, अद्यात। अद्याम्, अद्याव, अद्याम।

आशीर्लिङ् में अद्यात्, अद्यास्ताम्, अद्यासुः। अद्याः, अद्यास्तम्, अद्यास्त। अद्यासम्, अद्यास्व, अद्यास्म।

५५८- लुङ्सनोर्घस्लृ। लुङ् च सञ्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो लुङ्सनौ, तयोर्लुङ्सनोः। लुङ्सनोः सप्तम्यन्तं, घस्लृ लुप्तप्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति** से **अदः** की अनुवृत्ति आती है।

लुङ् लकार और सन् के परे होने पर अद् धातु के स्थान पर घस्लृ आदेश होता है।

घस्लृ में लृ की इत्संज्ञा होती है, **घस्** शेष रहता है।

अघसत्। अद् से लुङ्, अट् आगम, तिप्, अद् के स्थान पर **लुङ्सनोर्घस्लृ** से घस्लृ आदेश, अनुबन्धलोप, शप् प्राप्त, उसके स्थान पर च्लि, च्लि के स्थान पर **पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु** से अङ् आदेश, अनुबन्धलोप, **अघस्+अत्,** वर्णसम्मेलन **अघसत्।**

अद् के लुङ्-लकार के रूप- **अघसत्, अघसताम्, अघसन्। अघसः, अघसतम्, अघसत। अघसम्, अघसाव, अघसाम।**

अद् के लृङ् में आट् आगम, स्य आदि करने पर रूप बनते हैं- **आत्स्यत्, आत्स्यताम्, आत्स्यन्। आत्स्यः, आत्स्यतम्, आत्स्यत। आत्स्यम्, आत्स्याव, आत्स्याम।**

हन हिंसागत्योः। हन धातु **हिंसा करना** और **गति** अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होती है और **हन्** शेष रहता है।

अनुनासिकलोपविधायकं विधिसूत्रम्

५५९. अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति ६।४।३७।।

अनुनासिकान्तानामेषां वनतेश्च लोपः स्याज्झलादौ किति ङिति परे। **यमि-रमि-नमि-गमि-हनि-मन्यतयोऽनुदात्तोपदेशाः। तनु क्षणु क्षिणु ऋणु तृणु घृणु वनु मनु तनोत्यादयः।** हतः। घ्नन्ति। हंसि। हथः। हथ। हन्मि। हन्वः। हन्मः। जघान। जघ्नतुः। जघ्नुः।

....

हन्ति। हन् से लट्, तिप्, शप्, उसका लुक् करके **हन्+ति** है। नकार के स्थान पर **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार और अनुस्वार के स्थान पर **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से परसवर्ण करके पुनः नकार ही हो जाता है, **हन्ति।**

५५९- अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति। अनुदात्तः उपदेशे येषां ते अनुदात्तोपदेशाः। तनोतिर् आदियेषां ते तनोत्यादयः, बहुव्रीहिः। अनुदात्तोपदेशाश्च वनतिश्च तनोत्यादयश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादयः, तेषाम् अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनाम्। क् च ङ् च क्ङौ, तौ इतौ यस्य तत् क्ङित्, तस्मिन् क्ङिति। अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनां षष्ठ्यन्तम्, अनुनासिक इति लुप्तषष्ठीकं पदं, लोपः प्रथमान्तं, झलि सप्तम्यन्तं, क्ङिति सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

वन् धातु, अनुनासिकान्त अनुदात्तोपदेश धातु और अनुनासिकान्त तन् आदि धातुओं के अनुनासिक का लोप होता है झलादि कित् ङित् के परे होने पर।

अनुदात्त धातुओं की गणना भ्वादिप्रकरण में हो चुकी है। उनमें अनुनासिक वर्ण अन्त वाली अनुदात्त ये धातुएँ हैं- **यम्, रम्, नम्, गम्, हन्, मन्।** तनोत्यादि धातु हैं- **तनु, क्षिणु, क्षणु, ऋणु, तृणु घृणु, वनु, मनु।** यदि इन धातुओं से झलादि कित् ङित् परे हो तो धातु में विद्यमान अनुनासिक वर्ण का लोप हो जाता है।

हतः। हन् से तस्, शप्, उसका लुक् करके **हन्+तस्** है। तस् अपित् सार्वधातुक होने के कारण उसे **सार्वधातुकमपित्** से ङित् हुआ है, तस् का तकार झल् में आता है और हन् धातु अनुनासिक अनुदात्तोपदेश है। अतः हन् के नकार का **अनुदात्तोपदेश-वनति-तनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति** से लोप हो गया, **ह+तस्** बना। सकार का रुत्वविसर्ग होकर **हतः** सिद्ध हुआ।

घ्नन्ति। हन्+अन्ति में झलादि न होने के कारण अनुनासिक का लोप नहीं हुआ किन्तु **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से उपधाभूत हन् के अकार का लोप हुआ, **ह्+न्+अन्ति** बना। नकार के परे होने पर **हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु** से हकार को घकार आदेश होकर **घ्+न्+अन्ति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **घ्नन्ति** सिद्ध हुआ। इस तरह से **लट्** के रूप बने- हन्ति, हतः, घ्नन्ति, हंसि, हथः, हथ, हन्मि, हन्वः, हन्मः।

जघान। हन् से लिट्, तिप्, णल् आदेश करके **हन्+अ** बना है। द्वित्व, हलादि शेष करके **ह+हन्+अ** बना। **कुहोश्चुः** से हकार को कुत्व होकर झकार और उसके स्थान पर **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर जकार होकर **जहन्+अ** बना। णित् परे मानकर **हो**

कुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

५६०. अभ्यासाच्च ७।३।५५॥

अभ्यासात्परस्य हन्तेर्हस्य कुत्वं स्यात्।

जघनिथ, जघन्थ। जघ्नथुः। जघ्न। जघान, जघन। जघ्निव। जघ्निम।

हन्ता। हनिष्यति। हन्तु, हतात्। हताम्। घ्नन्तु।

जादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५६१. हन्तेर्जः ६।४।३६॥

हौ परे।

अतिदेशविधायकमधिकारसूत्रम्

५६२. असिद्धवदत्राभात् ६।४।२२॥

इत ऊर्ध्वम् आपादसमाप्तेराभीयम्, समानाश्रये तस्मिन् कर्तव्ये तदसिद्धम्।

इति जस्यासिद्धत्वान्न हेर्लुक्। जहि, हतात्। हतम्। हत। हनानि। हनाव।

हनाम। अहन्। अहताम्। अघ्नन्। अहन्। अहतम्। अहत। अहनम्।

अहन्व। अहन्म। हन्यात्। हन्याताम्। हन्युः।

....

हन्तेर्ज्णिन्नेषु से कुत्व होकर घकार हुआ, **जघन्+अ** बना। **अत उपधाया** से वृद्धि होकर **जघान** सिद्ध हुआ। आगे **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित्व होने के कारण **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से उपधालोप होने पर कुत्व होकर **जघ्नतुः, जघ्नुः** आदि रूप बनते हैं।
५६०- अभ्यासाच्च। अभ्यासात् पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **हो हन्तेर्ज्णिन्नेषु** से हः और **चजोः कु घिण्यतोः** से **कु** की अनुवृत्ति आती है।

अभ्यास से परे भी हन् धातु के हकार के स्थान पर कवर्ग आदेश होता है।

हो हन्तेर्ज्णिन्नेषु ञित्, णित् प्रत्यय और नकार के परे ही कुत्व करता है। जहाँ ऐसा नहीं है वहाँ अभ्यास से परे हन् के हकार को कुत्व का विधान इस सूत्र के द्वारा किया गया है।

जघनिथ, जघन्थ। हन् धातु के अनिट् होने पर भी **थल्** में भारद्वाजनियम से विकल्प से इट् होता है। इट् और अनिट् दोनों पक्ष में **हो हन्तेर्ज्णिन्नेषु** से कुत्व की प्राप्ति नहीं थी। अतः **अभ्यासाच्च** से हकार को कुत्व होकर **जघनिथ, जघन्थ** ये दो रूप बने। शेष रूप सरल ही हैं। **लिट्-** जघान, जघ्नतुः, जघ्नुः, जघनिथ-जघन्थ, जघ्नथुः, जघ्न, जघान-जघन, जघ्निव, जघ्निम।

लुट्- हन्ता, हन्तारौ, हन्तारः, हन्तासि, हन्तास्थः, हन्तास्थ, हन्तास्मि, हन्तास्वः, हन्तास्मः।
लृट् में- ऋद्धनोः स्ये से इट् का आगम होता है। हनिष्यति, हनिष्यतः, हनिष्यन्ति, हनिष्यसि, हनिष्यथः, हनिष्यथ, हनिष्यामि, हनिष्यावः, हनिष्यामः।

हन्तु, हतात्। लोट् में **हन्ति** बनाकर **एरुः** से उत्व करके **हन्तु** बनता है किन्तु **तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्** से तातङ् होने के पक्ष में **हन्+तात्** है। नकार का **अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति** से लोप होकर **हतात्** भी बनता है। आगे **हताम्, घ्नन्तु** सरल ही हैं।

५६१- हन्तेर्जः। हन्तेः षष्ठ्यन्तं, जः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **शा हौ** से **हौ** की अनुवृत्ति आती है।

हि के परे होने पर हन् के स्थान पर ज आदेश होता है।

ज के अनेकाल होने के कारण हन् सम्पूर्ण के स्थान पर सर्वादेश होता है।

५६२- असिद्धवदत्राभात्। असिद्धवत् अव्ययपदम्, अत्र अव्ययपदम्, आ अव्ययपदं, भात् पञ्चम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

किसी आश्रय को लेकर किया गया आभीय कार्य पुनः दूसरे आभीय के प्रति असिद्ध होता है।

भस्य ६।४।१२९॥ इस सूत्र का अधिकार चतुर्थपाद की समाप्ति पर्यन्त है। **असिद्धवदत्राभात्** से जहाँ तक भसंज्ञा का अधिकार है उन सूत्रों के कार्य को **आभीय** कहते हैं। **भम् अभिव्याप्य आभीयम्। आभीये कर्तव्ये आभीयम् असिद्धम्।** समान है आश्रय जिसका अर्थात् जिन कार्यों का निमित्त समान हो, उन्हें समानाश्रय कहते हैं। समान आश्रय में यदि दूसरा आभीय कार्य करना हो तो पहला आभीय कार्य असिद्ध होता है। **जहि** इस प्रयोग में दो सूत्र आभीय के अन्तर्गत आते हैं- **हन्तेर्जः** ६.४.३६ और **अतो हेः** ६.४.१०५। पहले प्रवृत्त होने वाला सूत्र **हन्तेर्जः** है और उत्तर सूत्र **अतो हेः** है। यहाँ पर **अतो हेः** से हि के लुक् की कर्तव्यता में **हन्तेर्जः** का कार्य असिद्ध होता है। इसीलिए हि का लुक् नहीं हो पाता है। अन्यथा ज को अदन्त मान कर हि का लुक हो जाता और **जहि** के स्थान पर **ज** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता क्योंकि **ज** आदेश और **हि** के लुक् समानाश्रय आभीय कार्य हैं। **ज** आदेश का आश्रय निमित्त(प्रकृति) हन् धातु और प्रत्यय दोनों ही हैं एवं हि-लोप का आश्रय-निमित्त भी प्रकृति-अदन्त अङ्ग ज(हन्) और प्रत्यय दोनों ही हैं। अतः दोनों समानाश्रय आभीय कार्य होने से, पहले किया हुआ आभीय **ज** आदेश बाद में प्राप्त आभीय हिलोप करते समय असिद्ध(के समान) हो जाता है। असिद्ध होने से हि-लोप के प्रति हन् ही दीखता है। अतः **अतो हेः** से लोप नहीं होता।

जहि, हतात्। हन् धातु से लोट्, मध्यमपुरुष का एकवचन सिप्, शप्, उसका लुक्, सि के स्थान पर हि आदेश, **हन्तेर्जः** से हन् धातु के स्थान पर ज आदेश होने पर **ज+हि** बना। **असिद्धवदत्राभात्** से पूर्वशास्त्र **हन्तेर्जः** के असिद्ध होने के कारण **अतो हेः** से हि का लुक् नहीं हुआ। **जहि** ही रह गया। तातङ् आदेश होने के पक्ष में हि के अभाव में ज आदेश भी नहीं होता है किन्तु तातङ् के ङित् होने के कारण **अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति** से अनुनासिक नकार का लोप होने पर **हतात्** यह सिद्ध हो जाता है। आगे **हतम्, हत, हनानि** भी सरल ही हैं। **हनाव** और **हनाम** में आट् आगम होने के कारण **हन्+आव** और **हन्+आम** है। झलादि न मिलने के कारण अनुनासिकलोप नहीं हुआ। इस तरह से लोट् में रूप बने- **हन्तु-हतात्, हताम्, घ्नन्तु, जहि-हतात्, हतम्, हत, हनानि, हनाव, हनाम।**

अहन्। लङ् में अट् आगम, तिप्, शप्, उसका लुक् करने के बाद **अहन्+त्** है। तकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप होकर **अहन्** बना।

अहताम्। तस् और उसके स्थान पर ताम् आदेश होने के बाद **अहन्+ताम्** है। ताम् के परे होने पर अनुनासिकलोप होकर **अहताम्** बनता है। बहुवचन में **अहन्+अन्** है। उपधालोप, कुत्व करके **अघ्नन्** बनता है।

अधिकारसूत्रम्

५६३. आर्धधातुके २।४।३५॥

इत्यधिकृत्य।

वधादेशविधायकं सूत्रद्वयम्

५६४. हनो वध लिङि २।४।४२॥

५६५. लुङि च २।४।४३॥

वधादेशोऽदन्तः। आर्धधातुके इति विषयसप्तमी, तेन आर्धधातुकोपदेशे अकारान्तत्वादतो लोपः। वध्यात्। वध्यास्ताम्। आदेशस्यानेकाच्त्वादेकाच इतीण्निषेधाभावादिट्। **अतो हलादेः** इति वृद्धौ प्राप्तायाम्।

....

सिप् में भी इकार के लोप के बाद सकार का संयोगान्तलोप होकर **अहन्** ही बनता है। लङ् के रूप- अहन् अहताम्, अघ्नन्, अहन्, अहतम्, अहत, अहनम्, अहन्व, अहन्म।

विधिलिङ्- हन्यात्, हन्याताम्, हन्युः, हन्याः, हन्यातम्, हन्यात, हन्याम्, हन्याव, हन्याम।

५६३- आर्धधातुके। आर्धधातुके सप्तम्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। यह अधिकार सूत्र है।

आर्धधातुक में या आर्धधातुक की विवक्षा में।

आर्धधातुके का अधिकार **ण्यक्षत्रियार्षञितो लुगणिञोः २।४।५८।** तक जाता है। **आर्धधातुके** इस पद में विषय-सप्तमी मानकर **आर्धधातुक के विषय में** ऐसा अर्थ किया जाता है न कि पर सप्तमी मानकर **आर्धधातुके परे रहते** ऐसा। **आर्धधातुके** के अधिकार में जो कार्य होगा वह आर्धधातुक के परे नहीं अपितु आर्धधातुक के विषय में या आर्धधातुक की विवक्षा में होगा।

५६४- हनो वध लिङि। हनः षष्ठ्यन्तं, वध लुप्तप्रथमाकं पदं, लिङि सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुके** का अधिकार है।

हन् धातु के स्थान पर वध आदेश होता है आर्धधातुक लिङ् की विवक्षा होने पर।

आर्धधातुके के अधिकार के कारण इस सूत्र से आशीर्लिङ में ही **वध** आदेश होता है क्योंकि **लिङाशिषि** से आशीर्लिङ् की आर्धधातुकसंज्ञा होती है, विधिलिङ् की नहीं होती।

५६५- लुङि च। लुङि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुके** का अधिकार है ही, **हन वध लिङि** से **हन** और **वध** की अनुवृत्ति आती है।

हन् धातु के स्थान पर वध आदेश होता है आर्धधातुक लुङ् की विवक्षा में।

वध आदेश अदन्त है अर्थात् धकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा नहीं होती है। अतः आर्धधातुकोपदेश में यह धातुरूप आदेश अदन्त है, फलतः **अतो लोपः** से अकार का लोप हो जाता है।

अनेक आचार्य इन दोनों सूत्रों का सम्मिलित अर्थ करते हैं- **हन् धातु के स्थान पर वध आदेश होता है, आर्धधातुक लिङ् और लुङ् की विवक्षा होने पर।**

वध्यात्। हन् से आशीर्लिङ् की विवक्षा में **हनो वध लिङि** से **वध** आदेश होने

स्थानिवद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्

५६६. अचः परस्मिन् पूर्वविधौ १।१।५७॥

परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत्, स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये। इत्यल्लोपस्य स्थानिवत्तान्न वृद्धिः। अवधीत्। अहनिष्यत्।

यु मिश्रणामिश्रणयोः॥३॥

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

५६७. उतो वृद्धिर्लुकि हलि ७।३।८९॥

लुग्विषये उतो वृद्धिः पिति हलादौ सार्वधातुके नत्वभ्यस्तस्य। यौति। युतः। युवन्ति। यौषि। युथः। युथ। यौमि। युवः। युमः। युयाव। यविता। यविष्यति। यौतु, युतात्। अयौत्। अयुताम्। अयुवन्। युयात्। इह उतो वृद्धिर्न, भाष्ये- **पिच्च ङिन्न, ङिच्च पिन्न** इति व्याख्यानात्। युयाताम्। युयुः। यूयात्। यूयास्ताम्। यूयासुः। अयावीत्। अयविष्यत्।
या प्रापणे॥४॥ याति। यातः। यान्ति। ययौ। याता। यास्यति। यातु। अयात्। अयाताम्।

....

के बाद लिङ्, ति, यासुट्, अनुबन्धलोप **वध+यास्+त्** बना। उसके बाद **अतो लोपः** से अकार का और **स्कोः संयोगाद्योः** से सकार का लोप होकर **वध्यात्** सिद्ध होता है। वध्यात्, वध्यास्ताम्, वध्यासुः, वध्याः, वध्यास्तम्, वध्यास्त, वध्यासम्, वध्यास्व, वध्यास्म।

५६६- **अचः परस्मिन् पूर्वविधौ।** अचः षष्ठ्यन्तं, परस्मिन् सप्तम्यन्तं, पूर्वविधौ सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ** से **स्थानिवत्** और **आदेशः** की अनुवृत्ति आती है।

पर को निमित्त मानकर हुआ अजादेश स्थानिवत् होता है, यदि उस स्थानिभूत अच् से पूर्व देखे गये के स्थान पर कोई कार्य करना हो तो।

अच् के स्थान पर हुए आदेश को अजादेश कहा जाता है। **स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ** से अनल्विधि में और.इससे अल्विधि में स्थानिवद्भाव होता है। ध्यान रहे कि यह सूत्र आदेश के पहले जो अच् के रूप में स्थानी थी, उससे पूर्व की किसी विधि के करने में ही करता है।

अवधीत्। लुङ् लकार की विवक्षा में **लुङि च** से **वध** आदेश करके लुङ्, अट्, तिप्, इकार का लोप, च्लि, सिच्। यद्यपि **हन्** धातु एकाच् होने के कारण अनिट् है फिरभी **वध** आदेश के अनेकाच् होने के कारण सेट् हो जाता है। अतः वलादि आर्धधातुक को इट् होगा। **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से ईट् होकर **अवध+इस्+ईत्** बना। **अतो लोपः** से **अवध** में ध कारोत्तरवर्ती अकार का लोप होने के बाद हलन्त धातु मानकर **अतो हलादेर्लघोः** से वकारोत्तरवर्ती अकार को वैकल्पिक वृद्धि प्राप्त थी। ऐसी स्थिति में **अचः परस्मिन् पूर्वविधौ** से स्थानिवद्भाव हो जाता है अर्थात् अकार के लोप का स्थानिवद्भाव होकर अदन्त जैसा दीखता है। यहाँ पर स्थानिभूत अच् है **वध** का अ। उस अकार से पूर्व को वृद्धि प्राप्त है। स्थानिवद्भावेन धातु और सिच् के बीच में अकार दीखने के कारण वृद्धि नहीं हुई। **इट ईटि** से सकार का लोप, सवर्णदीर्घ, वर्णसम्मेलन होकर **अवधीत्** सिद्ध हुआ।

लुङ्- अवधीत्, अवधिष्टाम्, अवधिषु:, अवधी:, अवधिष्टम्, अवधिष्ट, अवधिषम्, अवधिष्व, अवधिष्म। लृङ्- अहनिष्यत्, अहनिष्यताम्, अहनिष्यन् आदि।

यु मिश्रणामिश्रणयोः। यु धातु मिलाना और **अलग करना** दोनों अर्थों में हैं। **उदृदन्तैः**..... इस कारिका के अनुसार यह धातु सेट् है।

५६७- **उतो वृद्धिर्लुकि हलि**। उत: षष्ठ्यन्तं, वृद्धि: प्रथमान्तं, लुकि सप्तम्यन्तं, हलि सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है। **नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके** से **न, अभ्यस्तस्य, पिति** और **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

लुक् के विषय में अभ्यस्त से भिन्न उदन्त अङ्ग को वृद्धि होती है हलादि पित् सार्वधातुक परे हो तो।

लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में तिप्, सिप् और मिप् के परे रहते पूर्व को वृद्धि हो जाती है।

यौति। यु से लट्, तिप्, शप्, उसका लुक् करके **यु+ति** बना। **ति** पित् सार्वधातुक है, अत: **उतो वृद्धिर्लुकि हलि** से वृद्धि होकर **यौ+ति=यौति** सिद्ध हुआ। इसी तरह **यौषि, यौमि** भी सिद्ध होते हैं। शेष में पित् न होने के कारण वृद्धि नहीं होती। अन्ति के परे होने पर अजादि परे मिलता है, अत: **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् होकर **युवन्ति** बनता है। इस तरह लट् में रूप बनते हैं- यौति, युत:, युवन्ति, यौषि, युथ:, युथ, यौमि, युव:, युम:।

लिट् के तिप् में **युयु+अ** है, **अचो ञ्णिति** से वृद्धि होकर **युयौ+अ** बना। आव् आदेश होकर **युयाव** सिद्ध हुआ। अपित् में इयङ् आदेश होता है। युयाव, युयुवतु:, युयुवु:। युयविथ, युयुवथु:, युयुव। युयाव-युयव, युयुविव, युयुविम।

लुट- यविता, यवितारौ, यवितार:। यवितासि, यवितास्थ:। यवितास्थ, यवितास्मि, यवितास्व:, यवितास्म:। लृट्- यविष्यति, यविष्यत:, यविष्यन्ति। यविष्यसि, यविष्यथ:, यविष्यथ। यविष्यामि, यविष्याव:, यविष्याम:। लोट्- यौतु-युतात्, युताम्, युवन्तु। युहि-युतात्, युतम्, युत। यवानि, यवाव, यवाम। लङ्- अयौत्, अयुताम्, अयुवन्। अयौ:, अयुतम्, अयुत। अयवम्, अयुव, अयुम।

विधिलिङ् में यु+यास्+त् है। तिप् पित् है और उसको यासुट् आगम हुआ है, वह **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** से ङित् है किन्तु ति में विद्यमान पित्व उसके आगम **यासुट्** में भी आ जाता है। **यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते**। अत: यास् को पित् मानकर **उतो वृद्धिर्लुकि हलि** से वृद्धि हो जानी चाहिए। इसके समाधान के लिए **महाभाष्यकार** ने किसी दूसरे उपाय से वृद्धि को रोका है। उनका कहना है कि **ङिच्च पिन्न, पिच्च ङिन्न** अर्थात् जो ङित् होता है वह पित् नहीं होता और जो पित् होता है वह ङित् नहीं होता। यासुट् ङित् है, अत: उसमें पित्त्व नहीं आ सकता। पित्त्वाभावात् वृद्धि भी नहीं होती। अत: **युयात्** ही रह जाता है।

युयात्, युयाताम, युयु:। युया:, युयातम्, युयात। युयाम्, युयाव, युयाम।

आशीर्लिङ् में सार्वधातुक न होने से वृद्धि नहीं होती है किन्तु **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से दीर्घ होकर यूयात्, यूयास्ताम्, यूयासु:। यूया:, यूयास्तम्, यूयास्त। यूयासम्, यूयास्व, यूयास्म रूप बनते हैं।

लुङ् में यु से तिप्, अट्, सिच्, इट्, ईट् होने पर **अयु+इस्+ईत्** बना है। **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से वृद्धि होकर **अयौ**, सकार का **इट ईटि** से लोप करके सवर्णदीर्घ,

वैकल्पिकजुसादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५६८. लङः शाकटायनस्यैव ३।४।१११॥

आदन्तात्परस्य लङो झेर्जुस् वा स्यात्।

अयुः, अयान्। यायात्। यायाताम्, यायुः, यायात्, यायास्ताम्, यायासुः, अयासीत्, अयास्यत्। **वा गतिगन्धनयोः॥५॥ भा दीप्तौ॥६॥ ष्णा शौचे॥७॥ श्रा पाके॥८॥ द्रा कुत्सायां गतौ॥९॥ प्सा भक्षणे॥१०॥ रा दाने॥११॥ ला आदाने॥१२॥ दाप् लवने॥१३॥ पा रक्षणे॥१४॥ ख्या प्रकथने॥१५॥** अयं सार्वधातुक एव प्रयोक्तव्यः। **विद ज्ञाने॥१६॥**

....

अयौ+ईत् बना। आव् आदेश होकर **अयावीत्** सिद्ध हुआ। अयावीत्, अयाविष्टाम्, अयाविषुः, अयावीः, अयाविष्टम्, अयाविष्ट, अयाविषम्, अयाविष्व, अयाविष्म।

लृङ्- अयविष्यत्, अयविष्यताम्, अयविष्यन् इत्यादि।

या प्रापणे। या धातु जाना अर्थ में है। अनिट् है। लिट् में **पा** धातु की प्रक्रिया का स्मरण करें जैसे कि **णल्** में **आत औ णलः** से औकार आदेश और **अतुस्** आदि में **आतो लोप इटि च** से आकार लोप आदि।

लट्- याति, यातः, यान्ति, यासि, याथः, याथ, यामि, यावः, यामः।

लिट्- पा धातु की तरह- ययौ, ययतुः, ययुः, ययिथ-ययाथ, ययथु, यय, ययौ, ययिव, ययिम।

लुट्-याता, यातारौ, यातारः, यातासि, यातास्थः, यातास्थ, यातास्मि, यातास्वः, यातास्मः।

लृट्- यास्यति, यास्यतः, यास्यन्ति, यास्यसि, यास्यथः, यास्यथ, यास्यामि, यास्यावः, यास्यामः।

लोट्- यातु-यातात्, याताम्, यान्तु, याहि-यातात्, यातम्, यात, यानि, याव, याम।

५६८- लङः शाकटायनस्यैव। लङः षष्ठ्यन्तं, शाकटायनस्य षष्ठ्यन्तम्, एव अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **आतः** और **झेर्जुस्** ये दोनों सूत्र अनुवर्तित होते हैं।

आदन्त धातु से परे लङ् के झि के स्थान पर विकल्प से जुस् आदेश होता है।

लङ् के तिप् और तस् में **अयात्, अयाताम्** बनते हैं। **झि** के स्थान पर अप्राप्त जुस् आदेश का **लङः शाकटायनस्यैव** से विकल्प से होकर **अया+उस्** बना। **उस्यपदान्तात्** से पररूप होकर **अयुः** सिद्ध हुआ। जुस् न होने के पक्ष में **अन्त्** आदेश होकर तकार का संयोगान्तलोप होकर **अयान्** बनता है। अयात्, अयाताम्, अयुः-अयान्, अयाः, अयातम्, अयात, अयाम्, अयाव, अयाम। **विधिलिङ्**- यायात्, यायाताम्, यायुः, यायाः, यायातम्, यायात, यायाम्, यायाव, यायाम। **आशीर्लिङ्**- यायात्, यायास्ताम्, यायासुः, यायाः, यायास्तम्, यायास्त, यायासम्, यायास्व, यायास्म।

लुङ् में **यमरमनमातां सक् च** से इट् व सक् होकर रूप बनते हैं- अयासीत्, अयासिष्टाम्, अयासिषुः, अयासीः, अयासिष्टम्, अयासिष्ट, अयासिषम्, अयासिष्व, अयासिष्म। **लृङ्**- अयास्यत्, अयास्यताम्, अयास्यन् आदि।

वा गतिगन्धनयोः। वा धातु **गति** अर्थात् वायु का चलना **और गन्धन** अर्थात् सूचित करना, हिंसा, उत्साहित करना आदि अर्थ में है। इस धातु समग्र के रूप **या** धातु की तरह ही होते हैं। **लट्**- वाति, वातः, वान्ति, वासि, वाथः, वाथ, वामि, वावः, वामः। **लिट्**- ववौ, ववतुः, ववुः, वविथ-ववाथ, ववथुः, वव, ववौ, वविव, वविम। **लुट्**- वाता, वातारौ,

वातारः आदि। **लृट्**- वास्यति, वास्यतः, वास्यन्ति। **लोट्**- वातु-वातात्, वाताम्, वान्तु, वाहि-वातात्, वातम्, वात, वानि, वाव, वाम। **लङ्**- अवात्, अवाताम्, अवुः। **विधिलिङ्**- वायात्, वायाताम्, वायुः। **आशीर्लिङ्**- वायात्, वायास्ताम्, वायासुः। **लुङ्**- अवासीत्, अवासिष्टाम्, अवासिषुः, अवासीः, अवासिष्टम्, अवासिष्ट, अवासिषम्, अवासिष्व, अवासिष्म। **लृङ्**- अवास्यत्, अवास्यताम्, अवास्यन् आदि।

भा दीप्तौ। भा धातु **चमकना** अर्थ में है। इसमें किसी वर्ण की इत्संज्ञा नहीं है अतः यह आत्मनेपदनिमित्त से हीन है। इसके रूप भी **या** की तरह ही चलते हैं। यहाँ पर प्रत्येक लकार से एक-एक रूप प्रदर्शित हैं, शेष स्वयं बनायें। भाति। बभौ, बभतुः, बभुः। भाता। भास्यति। भातु। अभात्। भायात्। भायात्। अभासीत्। अभास्यत्।

ष्णा शौचे। ष्णा-धातु **स्नान करना** अर्थ में है। **धात्वादेः षः सः** से षकार के स्थान पर सकार आदेश और **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के अनुसार णकार भी नकार में आ जाता है, क्योंकि षकार के योग में ही नकार ष्टुत्व होकर णकार में बदल गया था। जब निमित्त षकार ही सकार में बदल गया तो नैमित्तिक णकार को भी नकार में बदलना पड़ेगा ही। इस तरह यह धातु **स्ना** बन जाता है। इसके रूप भी **या** की तरह ही **स्नाति, स्नातः, स्नान्ति** आदि होते हैं किन्तु लिट् में थोड़ा ध्यान देना होगा क्योंकि यहाँ पर हलादिशेष होकर **सा+स्ना+औ** में अभ्यास को ह्रस्व होकर **सस्नौ, सस्नतुः, सस्नुः** आदि रूप बनते हैं। **आशीर्लिङ्** में **वान्यस्य संयोगादेः** से वैकल्पिक एत्व होकर दो-दो रूप बनते हैं। आगे के लकारों में- **स्नाता। स्नास्यति। स्नातु। अस्नात्। स्नायात्। स्नेयात्-स्नायात्। अस्नासीत्। अस्नास्यत्।**

श्रा पाके। श्रा-धातु **पकना** अर्थ में है। **पकाना** अर्थ होता तो सकर्मक होता किन्तु **पकना** अर्थ है, अतः अकर्मक है। इसकी सारी प्रक्रिया **या** की तरह ही है किन्तु **आशीर्लिङ्** में **वान्यस्य संयोगादेः** से वैकल्पिक एत्व होकर दो-दो रूप बनते हैं। **श्राति, शश्रौ, श्राता, श्रास्यति, श्रातु, अश्रात्, श्रायात्, श्रेयात्-श्रायात्, अश्रासीत्, अश्रास्यत्।**

प्सा भक्षणे। प्सा-धातु **भक्षण करना** अर्थ में है। यह भी संयोगादि धातु है, अतः आशीर्लिङ् में वैकल्पिक एत्व होता है, शेष रूप **या** की तरह ही होते हैं। **प्साति, पप्सौ, प्साता, प्सास्यति, प्सातु, अप्सात्, प्सायात्, प्सेयात्-प्सायात्, अप्सासीत्, अप्सास्यत्।**

रा दाने। रा-धातु **देने** अर्थ में है। इसकी भी सारी प्रक्रिया या धातु के समान ही है। **लट्**- राति, रातः, रान्ति। रासि, राथः, राथ। रामि, रावः, रामः। **लिट्**- ररौ, ररतुः, ररुः। ररिथ-रराथ, ररथुः, रर। ररौ, ररिव, ररिम। **लुट्**- राता, रातारौ, रातारः। रातासि, रातास्थः, रातास्थ। रातास्मि, रातास्वः, रातास्मः। **लृट्**- रास्यति, रास्यतः, रास्यन्ति। रास्यसि, रास्यथः, रास्यथ। रास्यामि, रास्यावः, रास्यामः। **लोट्**- रातु-रातात्, राताम्, रान्तु। राहि-रातात्, रातम्, रात। राणि, राव, राम। **लङ्**- अरात्, अराताम्, अरुः। अराः, अरातम्, अरात। अराम्, अराव, अराम। **विधिलिङ्**- रायात्, रायाताम्, रायुः। रायाः, रायातम्, रायात। रायाम्, रायाव, रायाम। **आशीर्लिङ्**- रायात्, रायास्ताम्, रायासुः। रायाः, रायास्तम्, रायास्त। रायासम्, रायास्व, रायास्म। **लुङ्**- अरासीत्, अरासिष्टाम्, अरासिषुः। अरासीः, अरासिष्टम्, अरासिष्ट। अरासिषम्, अरासिष्व, अरासिष्म। **लृङ्**- अरास्यत्, अरास्यताम्, अरास्यन्। अरास्यः, अरास्यतम्, अरास्यत। अरास्यम्, अरास्याव, अरास्याम।

ला आदाने। ला-धातु **ग्रहण करना** अर्थ में है। इसकी प्रक्रिया भी **या** की तरह ही है। लाति, ललौ, लाता, लास्यति, लातु, अलात्, लायात्, लायात्, अलासीत्, अलास्यत्।

गलाद्यादेशविधायकं सूत्रम्

५६९. विदो लटो वा ३।४।८३॥

वेत्तेर्लटः परस्मैपदानां णलादयो वा स्युः। वेद। विदतुः। विदुः। वेत्थ। विदथुः। विद। वेद। विद्व। विद्म। पक्षे- वेत्ति। वित्तः। विदन्ति।

....

दाप् लवने। दाप्-धातु **काटना** अर्थ में है। पकार की इत्संज्ञा होती है, दा मात्र अवशिष्ट है। इसके रूप भी **या** की तरह ही हैं। **दाति, ददौ, दाता, दास्यति, दातु, अदात्, दायात्, दायात्, अदासीत्, अदास्यत्।**

पा रक्षणे। पा-धातु **रक्षा करना** अर्थ में है। इसकी भी प्रक्रिया या धातु के समान ही है। **लट्-** पाति, पातः, पान्ति। पासि, पाथः, पाथ। पामि, पावः, पामः। **लिट्-** पपौ, पपतुः, पपुः। पपिथ-पपाथ, पपथुः, पप। पपौ, पपिव, पपिम। **लुट्-** पाता, पातारौ, पातारः। पातासि, पातास्थः, पातास्थ। पातास्मि, पातास्वः, पातास्मः। **लृट्-** पास्यति, पास्यतः, पास्यन्ति। पास्यसि, पास्यथः, पास्यथ। पास्यामि। पास्यावः, पास्यामः। **लोट्-** पातु-पातात्, पाताम्, पान्तु। पाहि-पातात्, पातम्, पात। पानि, पाव, पाम। **लङ्-** अपात्, अपाताम्, अपुः। अपाः, अपातम्, अपात। अपाम्, अपाव, अपाम। **विधिलिङ्-** पायात्, पायाताम्, पायुः। पायाः, पायातम्, पायात। पायाम्, पायाव, पायाम। **आशीर्लिङ्-** पायात्, पायास्ताम्, पायासुः। पायाः, पायास्तम्, पायास्त। पायासम्, पायास्व, पायास्म। **लुङ्-** अपासीत्, अपासिष्टाम्, अपासिषुः। अपासीः, अपासिष्टम्, अपासिष्ट, अपासिषम्, अपासिष्व, अपासिष्म। **लृङ्-** अपास्यत्, अपास्यताम्, अपास्यन्। अपास्यः, अपास्यतम्, अपास्यत। अपास्यम्, अपास्याव, अपास्याम।

ख्या प्रकथने। ख्या-धातु **कहना** अर्थ में है। इस धातु का प्रयोग सार्वधातुक में ही होता है अर्थात् लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में ही इसके रूप होते हैं, लिट् आदि आर्धधातुकों में नहीं। **लट्-** ख्याति, ख्यातः, ख्यान्ति। **लोट्-** ख्यातु-ख्यातात्, ख्याताम्, ख्यान्तु। **लङ्-** अख्यात्, अख्याताम्, अख्युः। **विधिलिङ्-** ख्यायात्, ख्यायाताम्, ख्यायुः।

विद ज्ञाने। विद-धातु **जानना** अर्थ में है। उदात्त अकार की इत्संज्ञा होती है, **विद्** शेष रहता है। इसी धातु से कृत्प्रकरण में **विद्वान्, विद्या, वेद** आदि शब्द बनते हैं।

५६९- विदो लटो वा। विदः पञ्चम्यन्तं, लटः षष्ठ्यन्तं, वा अव्ययं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

विद् धातु से परे लट् के परस्मैपद के स्थान पर णल् आदि नौ प्रत्यय विकल्प से होते हैं।

अभी तक लिट् लकार के परस्मैपद प्रत्ययों के स्थान पर ही णल्, अतुस्, उस् आदि आदेश होते आये हैं। यहाँ केवल विद धातु से लट् लकार में भी ये आदेश हो रहे हैं। द्वित्व आदि तो नहीं होते हैं।

वेद। विद् से लट्, तिप्, उसके स्थान पर णल् आदेश करके, शप्, उसका लुक् करके विद्+अ बना। **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण होकर **वेद्+अ**, वर्णसम्मेलन होकर **वेद** सिद्ध हुआ। **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव होने से अपित् में गुण नहीं होता। सिप् के स्थान पर थल् होकर **विद्+थ** हुआ। गुण होकर **वेद्+थ** बना। **खरि च** से चर्त्व होकर तकार हुआ तो **वेत्थ** सिद्ध हुआ। इस तरह लट् के रूप बने- **वेद, विदतुः, विदुः, वेत्थ, विदथुः, विद,**

आम्विधायकं विधिसूत्रम्

५७०. उष-विद-जागृभ्योऽन्यतरस्याम् ३।१।३८॥

एभ्यो लिटि आम् वा स्यात्। विदेरदन्तत्वप्रतिज्ञानादामि न गुणः। विदाञ्चकार, विवेद। वेदिता। वेदिष्यति।

निपातनार्थं विधिसूत्रम्

५७१. विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् ३।१।४१॥

वेत्तेर्लोटि आम् गुणाभावो लोटो लुक् लोडन्तकरोत्यनुप्रयोगश्च वा निपात्यते, पुरुषवचने न विवक्षिते।

....

वेद, विद्व, विद्म। णल् आदि आदेश न होने के पक्ष में **विद्+ति**, गुण एवं चर्त्व होकर **वेत्ति** बनता है। आगे सिप् और मिप् में गुण, अन्यत्र गुणाभाव होकर रूप बनते हैं- **वेत्ति, वित्तः, विदन्ति, वेत्सि, वित्थः, वित्थ, वेद्मि, विद्वः, विद्मः।**

५७०- उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम्। उषश्च विदश्च जागा च तेषामितरेतरद्वन्द्व उषविदजागारः, तेभ्य उषविदजागृभ्यः। उषविदजागृभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि** से **आम्** और **लिटि** की अनुवृत्ति आती है।

उष्, विद् और जागृ धातुओं से परे विकल्प से आम् होता है लिट् परे होने पर।

आम् के सन्नियोग में **विद्** धातु को अदन्त **विद** ऐसा निपातन किया गया है, अतः **आम्** के परे होने पर यह धातु अदन्त ही रहता है।

विदाञ्चकार। विद धातु से लिट्, उसके परे होने पर **उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम्** से आम् और विद् को **विद** के रूप में निपातन आदि करके **विद+आम्+लिट्** बना। विद् को हलन्त समझकर आम् को आर्धधातुक मानकर के **पुगन्तलघूपधस्य च** से **विद्** में उपधागुण प्राप्त हो सकता था किन्तु आम्विधायक सूत्र में **विद्** को **विद** के रूप में अदन्तत्व निपातन होने के कारण गुण नहीं हुआ अपितु **अतो लोपः** से लोप हुआ। **विद्+आम्** में वर्णसम्मेलन होकर **विदाम्** से परे लिट् का **आमः** से लुक् हुआ। **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि** से लिट् को पर लेकर **कृ, भू, अस्** का बारी-बारी से अनुप्रयोग हुआ। कृ के पक्ष में **गोपायाञ्चकार** की तरह **विदाञ्चकार** बन जाता है।

कृ-धातु के अनुप्रयोग होने पर- विदाञ्चकार, विदाञ्चक्रतुः, विदाञ्चक्रुः, विदाञ्चकर्थ, विदाञ्चक्रथुः, विदाञ्चक्र, विदाञ्चकार-विदाञ्चकर, विदाञ्चकृव, विदाञ्चकृम। **भू-धातु का अनुप्रयोग होने पर-** विदाम्बभूव, विदाम्बभूवतुः आदि। **अस्-धातु का अनुप्रयोग होने पर-** विदामास, विदामासतुः आदि। **आम् न होने के पक्ष में-** विवेद, विविदतुः आदि।

लुट्- वेदिता, वेदितारौ, वेदितारः आदि। **लृट्-** वेदिष्यति, वेदिष्यतः, वेदिष्यन्ति।

५७१- विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्। विदाङ्कुर्वन्तु क्रियापदम्, इति अव्ययपदम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

लोट् लकार के परे होने पर विद् धातु से आम् प्रत्यय, उसके परे होने पर लघूपधगुण का अभाव, लोट् का लुक् और लोडन्त कृ-धातु का अनुप्रयोग ये सब कार्य विकल्प से होते हैं।

उप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

५७२. तनादिकृञ्भ्य उः ३।१।७९॥

तनादेः कृञश्च उः प्रत्ययः स्यात्। शपोऽपवादः। गुणौ। विदाङ्करोतु।

उदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५७३. अत उत्सार्वधातुके ६।४।११०॥

उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽत उत्सार्वधातुके क्ङिति।

विदाङ्कुरुतात्। विदाङ्कुरुताम्, विदाङ्कुर्वन्तु। विदाङ्कुरु।

विदाङ्करवाणि। अवेत्। अवित्ताम्। अविदुः।

....

यह निपातन करने वाला सूत्र है। सूत्र में **विदाङ्कुर्वन्तु** यह सिद्ध रूप दिखाया गया है। इस रूप की सिद्धि में जो जो भी प्रक्रिया अपेक्षित हो, वह-वह कर लेनी चाहिए अर्थात् **विद्** धातु से **विदाङ्कुर्वन्तु** बनाने में जो जो कार्य अपेक्षित है, जो जो आगम, आदेश, किसी प्रक्रिया का अभाव आदि करने में स्वतन्त्र हैं। जैसे **विद्+ति** में आम् किया गया और आम् के परे होने पर लघूपधगुण प्राप्त होता है, उसका अभाव अर्थात् गुण को रोका गया और आम् से **लोट्** को साथ लेकर **कृ** का अनुप्रयोग किया गया। इस तरह कमोबेस आम्प्रकृतिक धातु से लिट् लकार में बनने वाले रूपों की तरह प्रक्रिया की गई, किन्तु लोट् लकार होने के कारण द्वित्व आदि नहीं हुए। उत्व आदि तो उत्सर्गतः प्राप्त हैं ही। इस निपातन और अग्रिम सूत्र की प्रवृत्ति के बाद **विदाङ्करोतु** सिद्ध होगा। इस निपातन में पुरुष और वचन की विवक्षा नहीं की गई है अर्थात् लोट् लकार के तीनों पुरुष और सभी वचनों में यह निपातन होगा।

५७२- तनादिकृञ्भ्य उः। तन् आदि येषां ते तनादयः, तनादयश्च कृञ् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः तनादिकृञः, तेभ्यः तनादिकृञ्भ्यः। तनादिकृञ्भ्यः पञ्चम्यन्तम्, उः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कर्तरि शप्** से **कर्तरि** और **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

कर्त्रर्थक सार्वधातुक के परे होने पर तनादिगणीय धातु और कृ धातु से उ प्रत्यय होता है।

यह सूत्र शप् का अपवाद है। **उ** भी एक विकरण है।

विदाङ्करोतु। विद् धातु से लोट्, तिप्, शप्, उसका लुक् करके **विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्** से आम्, लघूपध गुण का अभाव, लोट् का लुक्, लोट् को पर लेकर कृ का अनुप्रयोग आदि निपातित होकर विदाम्+कृति बना। कृ से ति के परे रहते **कर्तरि शप्** से शप् प्राप्त था, उसे बाधकर **तनादिकृञ्भ्य उः** से **उ** प्रत्यय हुआ, **विदाम्+कृ+उ+ति** बना। उ की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा हुई और उसके परे होने पर **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से **कृ** के ऋकार को गुण हुआ। **उरण् रपरः** की सहायता से रपर होकर **अर्** हुआ। **विदाम्+कर्+उति** बना। उ को भी गुण होकर ओकार और **ति** के इकार को **एरुः** से उकार होकर **विदाम्+करोतु** बना। विदाम् में मकार को **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार और उसको **वा पदान्तस्य** से परसवर्ण होकर **विदाङ्करोतु** यह रूप सिद्ध होता

रुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

५७४. दश्च ८।२।७५।।

धातोर्दस्य पदान्तस्य सिपि रुर्वा। अवेः, अवेत्। विद्यात्। विद्याताम्। विद्युः। विद्यात्। विद्यास्ताम्। अवेदीत्। अवेदीष्यत्।

अस भुवि।।१७।। अस्ति।

....

है। तु होने के बाद **तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्** से **तातङ्** आदेश होकर **विदाङ्कुरुतात्** बनता है जिसके लिए अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

५७३- अत उत्सार्वधातुके। अतः षष्ठ्यन्तम्, उत् प्रथमान्तं, सार्वधातुके सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्** से **उतः** और **प्रत्ययात्** की, **नित्यं करोतेः** से **करोतेः** और **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

सार्वधातुक कित्, ङित् के परे होने पर उप्रत्ययान्त कृञ् धातु के ह्रस्व अकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश होता है।

तनादिकृञ्भ्य उः से किये गये उकार के आर्धधातुक होने के कारण उसके परे रहते कृ के ऋकार को सभी वचनों में गुण होता है। गुण होकर जो उकार बना, उसके स्थान पर यह सूत्र उकार आदेश करता है कित्, ङित् के परे रहते।

विदाङ्कुरुतात्। अन्य प्रक्रिया पूर्ववत् होकर ति के इकार के स्थान पर उकार होने के बाद तातङ् आदेश होकर **विदाङ्कर्+उ+तात्** बना है। ककारोत्तरवर्ती अकार के स्थान पर **अत उत्सार्वधातुके** से उकार आदेश होकर **विदाङ्कुर्+उ+तात्** हुआ। वर्णसम्मेलन करने पर **विदाङ्कुरुतात्** सिद्ध हुआ।

विदाङ्कुरुताम्। विद् से लोट्, शप्, शप् का लुक, आम्, गुणाभाव, लोट् का लुक्, लोडन्त कृ का अनुप्रयोग, तस्, उसके स्थान पर ताम् आदेश, कृ को गुण, उसके अकार को उकार आदेश करके **विदाङ्कुरुताम्** सिद्ध होता है। अब आगे **विदाङ्कुर्वन्तु, विदाङ्कुरु-विदाङ्कुरुतात्, विदाङ्कुरुतम्, विदाङ्कुरुत** ये रूप लगभग इसी प्रक्रिया से सिद्ध होते हैं। उत्तमपुरुष में आट् का आगम होता है, अतः **आनि, आव, आम** के परे होने पर **कुरु** के उकार को गुण और अवादेश होकर **विदाङ्करवाणि, विदाङ्करवाव, विदाङ्करवाम** बनते हैं।

आम् आदि का निपातन वैकल्पिक है। निपातन के अभाव में- वित्तु-वित्तात्, वित्ताम्, विदन्तु, विद्धि-वित्तात्, वित्तम्, वित्त, वेदानि, वेदाव, वेदाम।

५७४- दश्च। दः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सिपि धातो रुर्वा** यह पूरा सूत्र अनुवर्तित होता है। **पदस्य** का अधिकार है।

सिप् के परे होने पर धातु के पदान्त दकार के स्थान पर विकल्प से रु आदेश होता है।

लङ् में **अवेत्, अवित्ताम्, अविदुः**, इन तीन प्रयोगों की प्रक्रिया सरल ही है। सिप् में **अविद्+स्** है। **पुगन्तलघूपधस्य च** से लघूपधगुण होकर सकार का संयोगान्तलोप होता है और दकार के स्थान पर **दश्च** से वैकल्पिक रुत्व करके उसके स्थान पर विसर्ग आदेश करने पर **अवेः** बन जाता है। रुत्व न होने के पक्ष में दकार को **वावसाने** से

अल्लोपविधायकं विधिसूत्रम्

५७५. श्नसोरल्लोपः ६।४।१११॥

श्नस्यास्तेश्चातो लोपः सार्वधातुके क्ङिति।

स्तः। सन्ति। असि। स्थः। स्थ। अस्मि। स्वः। स्मः।

षत्वविधायकं विधिसूत्रम्

५७६. उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः ८।३।८७॥

उपसर्गेण प्रादुसश्चास्तेः सस्य षो यकारेऽचि परे।

निष्यात्। प्रनिषन्ति। प्रादुःषन्ति। यच्परः किम्? अभिस्तः।

....

वैकल्पिक चर्त्व होकर **अवेत्** और **अवेद्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं। इस तरह सिप् में तीन रूप बन गये। शेष रूप- **अवित्तम्, अवित्त, अवेदम्, अविद्व, अविद्म।**
विधिलिङ्- विद्यात्, विद्याताम्, विद्युः, विद्याः, विद्यातम्, विद्यात, विद्याम्, विद्याव, विद्याम। **आशीर्लिङ्-** विद्याद्, विद्यास्ताम्, विद्यासुः आदि। **लुङ्-** अवेदीत्, अवेदिष्टाम्, अवेदिषुः, अवेदीः, अवेदिष्टम्, अवेदिष्ट, अवेदिषम्, अवेदिष्व, अवेदिष्म। **लृङ्-** अवेदिष्यत्, अवेदिष्यताम्, अवेदिष्यन् आदि।

अस भुवि। अस धातु **सत्ता, होना** आदि अर्थों में है। सकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा होती है, **अस्** बचता है। उदात्तेत् होने और आत्मनेपद के निमित्तों से हीन होने के कारण यह धातु परस्मैपदी है।

अस्ति। अस् धातु से लट्, तिप्, शप्, उसका लुक्, वर्णसम्मेलन करके **अस्ति** बनता है।

५७५- श्नसोरल्लोपः। श्नश्च अस् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः श्नसौ(अत्र **शकन्ध्वादिपररूपम्**। श्नसोः षष्ठ्यन्तम्, अल्लोपः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अत उत्सार्वधातुके** से **सार्वधातुके** और **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

श्नम् के अकार और अस् धातु के अकार का लोप होता है सार्वधातुक कित्, ङित् परे रहते।

तिप्, सिप्, मिप् में पित् होने के कारण **सार्वधातुकमपित्** से ङित् नहीं हो पाता है, अतः अल्लोप नहीं होता है। शेष में ङिद्वद्भाव हो जाने के कारण अकार का लोप हो जाता है।

स्तः। सन्ति। अस् से प्रथमपुरुष का द्विवचन तस्, **अस्+तस्** बना। शप्, उसका लुक् करके **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव करके **श्नसोरल्लोपः** से अस् के अकार का लोप हुआ, **स्+तस्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ, **स्तस्** बना, सकार को रुत्व और विसर्ग हुआ- **स्तः** बना। **झि** में **श्नसोरल्लोपः** से अकार का लोप होकर **स्+अन्ति**, वर्णसम्मेलन होकर **सन्ति।**

इस प्रकार से अस् धातु के लट्-लकार में रूप बनते हैं- **अस्ति, स्तः, सन्ति। असि, स्थः, स्थ। अस्मि, स्वः, स्मः।**

५७६- उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः। उपसर्गश्च प्रादुष् च उपसर्गप्रादुषौ। य् च अच् च तौ

'भू' इत्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५७७. अस्तेर्भू २।४।५२।।

आर्धधातुके। बभूव। भविता। भविष्यति। अस्तु-स्तात्। स्ताम्, सन्तु।

....

यचौ, तौ परौ यस्मात् स यच्परः, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः। उपसर्गप्रादुर्भ्याम् पञ्चम्यन्तम्, अस्तिः प्रथमान्तं, यच्परः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **सहेः साडः सः** से **सः** और **अपदान्तस्य मूर्धन्यः** से **मूर्धन्यः** की अनुवृत्ति आती है। **इण्कोः** का अधिकार है किन्तु **इण्** का यहाँ पर उपयोग है और **कोः** का नहीं है। अतः सूत्र का अर्थ बनता है-

उपसर्गस्थ इण् से परे या प्रादुस् इस अव्यय से परे अस् धातु के सकार के स्थान पर मूर्धन्य षकार आदेश होता है यकार और अच् के परे होने पर।

जिस सकार के स्थान पर षकार हो रहा है उससे परे या तो यकार होना चाहिए या अच्।

निष्यात्। प्रनिषन्ति। नि-उपसर्ग से अस् धातु के विधिलिङ् का स्यात् परे है। उपसर्गस्थ इण् नि का इकार है, उससे परे अस् का सकार है और उस सकार से यकार परे मिलता है। अतः **उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः** से षकार आदेश हुआ- **निष्यात्** सिद्ध हुआ। **प्रनि+सन्ति** में सकार से अच् परे सकारोत्तरवर्ती अकार मिलता है। अतः षत्व होकर **प्रनिषन्ति** बना।

प्रादुःषन्ति। प्रादुस् इस अव्यय से परे **सन्ति** के सकार को षत्व होकर प्रादुस् के सकार को रुत्व और विसर्ग होने पर **प्रादुःषन्ति** सिद्ध होता है।

यच्परः किम्? अभिस्तः। यदि सूत्र में **यच्परः** अर्थात् **यकार और अच् परे** ऐसा न कहते तो **अभि+स्तः** में सकार को षत्व हो जाता जिससे षकार से परे तकार को भी ष्टुत्व होकर **अभिष्टः** ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध हो जाता। **यच्परः** कहने से यहाँ पर सकार से न तो यकार परे है और न ही अच्, किन्तु तकार परे है। अतः षत्व नहीं हुआ।

५७७- **अस्तेर्भूः।** अस्तेः षष्ठ्यन्तं, भूः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **आर्धधातुके** इसका अधिकार आ रहा है।

आर्धधातुक की विवक्षा होने पर अस् धातु के स्थान पर भू आदेश होता है।

बभूव। अस् धातु से लिट्, तिप्, णल्, अ, **अस्+अ** बना। **अस्तेर्भूः** से अस् के स्थान पर भू आदेश करने पर **भू+अ** बना। अब जैसे भ्वादिप्रकरण के लिट् लकार में प्रक्रिया हुई, उसी प्रकार से **बभूव** आदि बनाइये। **बभूव, बभूवतुः, बभूवुः। बभूविथ, बभूवथुः, बभूव। बभूव, बभूविव, बभूविम।**

लुट् लकार में तासि आर्धधातुकसंज्ञक है। अतः आर्धधातुक की विवक्षा में **अस्तेर्भूः** से भू आदेश होकर भ्वादिगणीय प्रक्रिया के अनुसार ही रूप हो जाते हैं। **भविता, भवितारौ, भवितारः। भवितासि, भवितास्थः, भवितास्थ। भवितास्मि, भवितास्वः, भवितास्मः।**

लृट् में भी भू आदेश करके बनाइये- **भविष्यति, भविष्यतः, भविष्यन्ति। भविष्यसि, भविष्यथः, भविष्यथ। भविष्यामि, भविष्यावः, भविष्यामः।**

अस्तु-स्तात्। अस् धातु से लोट्, शप्, उसका लोप, **एरुः** से उत्व करके

एत्वाभ्यासलोपविधायकं विधिसूत्रम्

५७८. घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ६।४।११९॥

घोरस्तेश्च एत्वं स्याद्धौ परेऽभ्यासलोपश्च। एत्वस्यासिद्धत्वाद्धेर्धिः। स्नसोरित्यल्लोपः। तातङ्पक्षे एत्वं न, परेण तातङा बाधात्। एधि-स्तात्। स्तम्। स्त। असानि। असाव। असाम। आसीत् आस्ताम्। आसन्। स्यात्। स्याताम्। स्युः। भूयात्। अभूत्। अभविष्यत्।

इण् गतौ॥१८॥ एति। इतः।

....

अस्तु, तु के स्थान पर वैकल्पिक तातङ् आदेश करके तात् को ङित् मानकर **श्नसोरल्लोपः** से अस् के अकार का लोप करने पर **स्तात्** बन जाता है, आदेशाभाव में **अस्तु** ही रहता है। **स्ताम्** और **सन्तु** में भी अकार का लोप होता है।

५७८- घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च। घुश्च अस् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो घ्वसौ, तयोर्घ्वसोः। घ्वसोः षष्ठ्यन्तम्, एत् प्रथमान्तम्, हौ सप्तम्यन्तम्, अभ्यासलोपः प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

हि के परे होने पर घुसंज्ञक धातु और अस् धातु के स्थान पर एकार आदेश होता है यदि अभ्यास हो तो उसका लोप भी हो जाता है।

यह सूत्र दो काम करता है- पहला यह कि **हि** के परे होने पर घुसंज्ञक धातु और **अस्** धातु के स्थान पर **एकार** आदेश तथा दूसरा यदि अभ्यास हो तो उसका लोप भी होता है। इस सूत्र के द्वारा किये गये एत्व को **हुझल्भ्यो हेर्धिः** की दृष्टि में असिद्ध माना जाता है। यदि यह सिद्ध होता तो धि करने के लिए झलन्त नहीं मिलता और धि आदेश ही नहीं हो पाता। दा-रूप और धा-रूप धातुओं की **दाधाघ्वदाप्** से घुसंज्ञा होती है।

एधि। अस् धातु से लोट् लकार के मध्यमपुरुष का एकवचन सिप् आया, **अस् सि,** शप्, उसका लुक्, **सेर्ह्यपिच्च** से सि के स्थान पर हि आदेश, **अस् हि** बना। **घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च** से अस् के स्थान पर एकार आदेश होकर **ए हि** बना। एत्व को असिद्ध मानकर **हुझल्भ्यो हेर्धिः** से हि के स्थान पर धि आदेश हो जाता है। इस तरह **एधि** सिद्ध हो जाता है। एक पक्ष में **हि** के स्थान पर **तातङ्** आदेश होता ही है। उस पक्ष में **श्नसोरल्लोपः** से अकार का लोप भी होगा और **स्तात्** यह रूप बनेगा।

उत्तमपुरुष में **अस् मि,** अस् नि, **आडुत्तमस्य पिच्च** से आट् आगम होकर **अस् आनि,** वर्णसम्मेलन होकर **असानि** बनता है। इसी तरह वस् मस् में भी आट् आगम होता है। इस तरह अस् धातु के लोट् लकार में निम्नलिखित रूप सिद्ध होते हैं- **अस्तु-स्तात्, स्ताम्, सन्तु। एधि-स्तात्, स्तम्, स्त। असानि, असाव, असाम।**

आसीत्। अस् धातु से लङ्, **आडजादीनाम्** से आट् आगम, तिप्, शप्, उसका लुक्, **आ+अस्+ति, आ+अस्+त्** में **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से अपृक्त तकार को ईट् आगम हुआ और टित् होने के कारण उसके आदि में बैठा। **आ+अस्+ईत्** बना। **आ+अस्** में **आटश्च** से वृद्धि हुई, **आस्+ईत्** हुआ, वर्णसम्मेलन होने पर **आसीत्** सिद्ध हुआ। यह ईट् केवल तिप् और सिप् में ही होता है, क्योंकि एक अल् अपृक्त प्रत्यय तिप्, सिप् में ही मिल

यणविधायकं विधिसूत्रम्

५७९. इणो यण् ६।४।८१॥

अजादौ प्रत्यये परे। यन्ति।

....

पाता है। द्विवचन में तस् के स्थान पर ताम् आदेश होने पर **आस्ताम्** बनता है। बहुवचन में झि के झकार के स्थान पर अन्त् आदेश और इकार का लोप करके संयोगान्तलोप करने पर अन् शेष रहता है और **आ+अस्+अन्** से **आसन्** बना लेना आसान ही है। सिप् में ईट् का आगम करना भी आप नहीं छोड़ेंगे। इस तरह अस् धातु के लङ् में रूप बनते हैं- **आसीत्, आस्ताम्, आसन्। आसीः, आस्तम्, आस्त। आसम्, आस्व, आस्म।**

विधिलिङ् में यासुट् आगम होता है और उसे ङिद्वद्भाव भी किया जाता है। तीनों पुरुष और तीनों वचनों में यासुट् के ङित् होने से **श्नसोरल्लोपः** से अस् से अकार का लोप होकर धातु का केवल स् शेष रहता है जिससे निम्नलिखित रूप सिद्ध होते हैं- **स्यात्, स्याताम्, स्युः। स्याः, स्यातम्, स्यात। स्याम्, स्याव, स्याम।**

आशीर्लिङ् में लिङ् लकार की **लिङाशिषि** से आर्धधातुकसंज्ञा की जाती है और **अस्तेर्भूः** से अस् धातु के स्थान पर भू आदेश हो जाता है जिससे भ्वादिगणीय **भू** धातु के समान रूप सिद्ध हो जाते हैं। भूयात्, भूयास्ताम्, भूयासुः। भूयाः, भूयास्तम्, भूयास्त। भूयासम्, भूयास्व, भूयास्म।

लुङ्- लकार में सिच् की आर्धधातुकसंज्ञा होती है। अतः आर्धधातुक की विवक्षा में पूर्ववत् भू आदेश होता है। अब भ्वादिगणीय भू धातु की तरह सिच् का लुक् आदि करके रूप बनते हैं- **अभूत्, अभूताम्, अभूवन्। अभूः, अभूतम्, अभूत। अभूवम्, अभूव, अभूम।**

लृङ् लकार में भी स्य की आर्धधातुकसंज्ञा होने के कारण अस् धातु के स्थान पर भू आदेश करके शुद्ध भू धातु की तरह रूप बनते हैं- **अभविष्यत्, अभविष्यताम्, अभविष्यन्। अभविष्यः, अभविष्यतम्, अभविष्यत। अभविष्यम्, अभविष्याव, अभविष्याम।**

इण् गतौ। इण्-धातु **गति** अर्थ में है। णकार की इत्संज्ञा होती है, **इ** बचता है। णकार लगाने का प्रयोजन यह है कि **इणो यण्, इणो गा लुङि** इत्यादि सूत्रों में केवल इसी धातु का ग्रहण हो, इङ् आदि का ग्रहण न हो।

एति। इ से लट्, तिप्, शप्, उसका लुक् करके **इ+ति** बना। **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से इकार को गुण होकर एति सिद्ध हुआ। द्विवचन में **इ+तस्,** रुत्वविसर्ग करके **इतः** सिद्ध होता है।

५७९- इणो यण्। इणः षष्ठ्यन्तं, यण् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है और **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **अचि** की अनुवृत्ति आती है।

अजादि प्रत्यय के परे होने पर इण् धातु को यण् आदेश होता है।

यन्ति। बहुवचन में **इ+अन्ति** है। **इको यणचि** से **यण्** प्राप्त है, उसे बाधकर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इयङ् आदेश प्राप्त है, उसे भी बाधकर **इणो यण्** से इकार के स्थान पर यण् हुआ अर्थात् इकार के स्थान पर यकार आदेश हुआ, **य्+अन्ति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **यन्ति** सिद्ध हुआ।

इयङुवङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५८०. अभ्यासस्यासवर्णे ६।४।७८॥

अभ्यासस्य इवर्णोवर्णयोरियङुवङौ स्तोऽसवर्णेऽचि। इयाय।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

५८१. दीर्घ इणः किति ७।४।६९॥

इणोऽभ्यासस्य दीर्घः स्यात् किति लिटि। ईयतुः। ईयुः। इययिथ, इयेथ। एता। एष्यति। एतु। ऐत्। ऐताम्। आयन्। इयात्।

....

लट्- एति, इतः, यन्ति, एषि, इथः, इथ, एमि, इवः, इमः।

५८०- अभ्यासस्यासवर्णे। न सवर्णः असवर्णः, तस्मिन् असवर्णे। अभ्यासस्य षष्ठ्यन्तम्, असवर्णे सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से अचि, य्वोः और इयङुवङौ की अनुवृत्ति आती है।

असवर्ण अच् के परे होने पर अभ्यास के इवर्ण और उवर्ण के स्थान पर क्रमशः इयङ् और उवङ् आदेश होते हैं।

इयाय। इण् से लिट्, तिप्, णल्, अ, इ+अ बना। इ को द्वित्व करके इइ+अ बना। द्वितीय इकार को **अचो ञ्णिति** से वृद्धि होकर **इऐ+अ** बना। आय् आदेश होकर इ+आय्+अ बना। अब प्रथम इवर्ण के स्थान पर **अभ्यासस्यासवर्णे** से इयङ् होकर इय्+आय्+अ बना। वर्णसम्मेलन होकर **इयाय** सिद्ध हुआ।

५८१- दीर्घ इणः किति। दीर्घः प्रथमान्तम्, इणः षष्ठ्यन्तं, किति सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** और **व्यथो लिटि** से **लिटि** की अनुवृत्ति आती है।

कित् लिट् के परे होने पर इण् धातु के अभ्यास को दीर्घ होता है।

ईयतुः। इ+इ+अतुस् में अतुस् कित् लिट् है। **दीर्घ इणः किति** से अभ्यास इवर्ण को दीर्घ होकर ई+इ+अतुस् बना। **इणो यण्** से द्वितीय इकार को यण् होकर यकार हुआ, **ई+य्+अतुस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **ईयतुः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **ईयुः** सिद्ध हुआ।

इययिथ, इयेथ। अनिट् धातु होने के कारण थल् में भारद्वाज नियम से वैकल्पिक इट् होगा। द्वित्व, इट् आदि होकर **इ+इ+इथ** बना है। द्वितीय इकार को आर्धधातुक गुण होकर **इ+ए+इथ** बना। ए+इथ में **एचोऽयवायावः** से अय् आदेश होकर **इ+अय्+इथ** बना। अब **अभ्यासस्यासवर्णे** से प्रथम इकार को इयङ् होकर **इय्+अय्+इथ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **इययिथ** सिद्ध हुआ। इट् न होने के पक्ष में **इयेथ** बनता है।

लिट् के रूप- इयाय, ईयतुः, ईयुः, इययिथ-इयेथ, ईयथुः, ईय, इयाय-इयय, ईयिव, ईयिम।

लुट्, लृट् में धातु के इकार को गुण करना है।

लुट्- एता, एतारौ, एतारः, एतासि, एतास्थः, एतास्थ, एतास्मि, एतास्वः, एतास्मः।

लृट्- एष्यति, एष्यतः, एष्यन्ति, एष्यसि, एष्यथः, एष्यथ, एष्यामि, एष्यावः, एष्यामः।

लोट्- इतु-इतात्, इताम्, यन्तु, इहि-इतात्, इतम्, इत, अयानि, अयाव, अयाम।

अजादि धातु होने के कारण **लङ्** में आट् का आगम होता है। आ+इ+त् है। **आटश्च** से वृद्धि होकर **ऐत्** सिद्ध होता है। यह वृद्धि आट् आगम और धातु के इकार के

ह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्

५८२. एतेर्लिङि ७।४।२४॥

उपसर्गात्परस्य इणोऽणो ह्रस्व आर्धधातुके किति लिङि। निरियात्। **उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्।** अभीयात्। अण: किम्? समेयात्।

....

बीच का है, अत: कित् और ङित् का प्रसंग नहीं है। इस कारण **क्ङिति च** यह निषेध सूत्र भी नहीं लगता। तीनों पुरुषों के तीनों वचनों में वृद्धि होती है। प्रथमपुरुष के बहुवचन में **आ+इ+अन्ति** है। इकार का लोप, तकार का संयोगान्तलोप करके **आ+इ+अन्** बना है। **आ+इ** में **आटश्च** से वृद्धि होकर **ऐ+अन्** बना। ऐकार के स्थान पर आय् आदेश होकर **आय्+अन्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **आयन्** सिद्ध हुआ।

लङ्- ऐत्, ऐताम्, आयन्, ऐ:, ऐतम्, ऐत, आयम्, ऐव, ऐम।

विधिलिङ्- इयात्, इयाताम्, इयु:, इया:, इयातम्, इयात, इयाम्, इयाव, इयाम।

आशीर्लिङ्- ईयात्, ईयास्ताम्, ईयासु:, ईया:, ईयास्तम्, ईयास्त, ईयासम्, ईयास्व, ईयास्म। यहाँ पर **अकृत्सार्ववधातुकयोर्दीर्घ:** से दीर्घ हुआ है।

५८२- एतेर्लिङि। एते: षष्ठ्यन्तं, लिङि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **केऽण:** से **अण:**, **उपसर्गात् ह्रस्व ऊहते:** से **उपसर्गात्** और **ह्रस्व:** तथा **अयङ् यि क्ङिति** से **किति** की अनुवृत्ति आती है।

उपसर्ग से परे इण्-धातु के अण् को ह्रस्व आदेश होता है आर्धधातुक कित् लिङ् के परे होने पर।

निरियात्। इण् धातु के आशीर्लिङ् में निर् उपसर्ग पूर्वक **निर्+ईयात्** है। **एतेर्लिङि** से ई को ह्रस्व होकर **निरियात्** बना।

उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्। यह परिभाषा है। एक ही काल में दोनों ओर का आश्रयण करने पर **अन्तादिवच्च** नहीं लगता।

अभि+ईयात् में सवर्णदीर्घ होकर **अभीयात्** बना। यहाँ पर सवर्णदीर्घ होकर बने ई को **अन्तादिवच्च** से पर का आदि भाग मान कर **ईयात्** बन जाने से इण् धातु का अण् मिल जाता है और इधर इसी तरह ई को पूर्व का अन्तभाग मान कर **अभि** यह उपसर्ग का भी मान लिया जाता है। इस प्रकार से उपसर्ग से परे इण् के इकार को **एतेर्लिङि** से ह्रस्व हो जाना चाहिए। ऐसी स्थिति में एक न्याय उपस्थित होता है- **उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्** अर्थात् **अन्तादिवच्च** से एक ओर आश्रय करके अन्तादिवद्भाव किया जा सकता है किन्तु दोनों ओर आश्रय करके नहीं किया जा सकता। जैसे कि यहाँ पर उपसर्ग और अण् दोनों का आश्रय हो रहा है। अत: अन्तादिवद्भाव नहीं हुआ और उपसर्ग से परे अण् न मिलने के कारण ह्रस्व भी नहीं हुआ- **अभीयात्।**

अण: किम्? समेयात्। अब प्रश्न करते हैं कि इस सूत्र में अण: की अनुवृत्ति नहीं लाते तो क्या होता? उत्तर दिया **समेयात्। सम्+आ** ये दो उपसर्ग हैं और **ईयात्** यह आशीर्लिङ् का रूप है। **आ+ईयात्** में गुण होकर **एयात्** बना। **सम्+एयात्=समेयात्** बना। सूत्र में **अण:** कहने से एकार अण् में नहीं आता, अत: ह्रस्व नहीं होता। अन्यथा उक्त सूत्र से ह्रस्व हो जाता और **समियात्** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

गादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५८३. इणो गा लुङि २।४।४५॥

गातिस्थेति सिचो लुक्। अगात्। ऐष्यत्। **शीङ् स्वप्ने॥१९॥**

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

५८४. शीङः सार्वधातुके गुणः ७।४।२१॥

क्ङिति चेत्यस्यापवादः। शेते। शयाते।

....

५८३- इणो गा लुङि। इणः षष्ठ्यन्तं, गा लुप्तप्रथमाकं पदं, लुङि वैषयिकं सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

लुङ् की विवक्षा में इण् धातु के स्थान पर गा आदेश होता है।

गा आदेश लुङ् की विवक्षा में होता है, अन्यथा इङ् धातु के अजादि होने के कारण **आडजादीनाम्** से आट् आगम होने के बाद ही **गा** आदेश होता। यहाँ पर गा आदेश पहले होने के कारण **आट्** आगम न होकर **अट्** होता है।

अगात्। इ-धातु से लुङ् की विवक्षा में **गा** आदेश, उसके बाद लुङ् लकार अट् आगम, ति, च्लि, सिच् करके **अ+गा+स्+त्** बना। **गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु** से सिच् का लुक्, सिच् के अभाव में **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से ईट् नहीं हुआ। इस तरह **अगात्** सिद्ध हुआ।

लुङ्- अगात्, अगाताम्, अगुः, अगाः, अगातम्, अगात, अगाम्, अगाव, अगाम।

लृङ्- ऐष्यत्, ऐष्यताम्, ऐष्यन्, ऐष्यः, ऐष्यतम्, ऐष्यत, ऐष्यम्, ऐष्याव, ऐष्याम।

परस्मैपदी धातुओं का विवेचन करके अब आत्मनेपदी धातुओं का विवेचन प्रारम्भ करते हैं।

शीङ् स्वप्ने। शीङ्-धातु **शयन करना** अर्थात् **सोना** अर्थ में है। ङकार की इत्संज्ञा होती है। **शी** बचता है। ङित् होने के कारण **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से आत्मनेपदी होता है। यह धातु सेट् है अर्थात् इससे परे वलादि आर्धधातुक को इट् होता है।

५८४- शीङः सार्वधातुके गुणः। शीङः षष्ठ्यन्तं, सार्वधातुके सप्तम्यन्तं, गुणः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

सार्वधातुक परे हो तो शीङ् को गुण हो जाता है।

आत्मनेपद में पित् कोई नहीं है, अतः **सार्वधातुकमपित्** से ङित् हो जाने के कारण गुण नहीं हो पा रहा था, अतः इस सूत्र का आरम्भ किया गया। यह केवल सार्वधातुक के परे होने पर ही अर्थात् लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् में ही लगता है।

शेते। शी से लट्, त, शप्, शप् का लुक करके **शी+त** बना। **शीङः सार्वधातुके गुणः** से शी के ईकार को गुण होकर **शे+त** बना। **टित आत्मनेपदानां टेरेः** से एत्व होकर **शेते** सिद्ध हुआ। द्विवचन में **शी+आताम्** में भी गुण और एत्व करके **शे+आते** बना। अय् आदेश होकर **शयाते** सिद्ध होता है।

५८५- शीङो रुट्। शीङः पञ्चम्यन्तं, रुट् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **झोऽन्तः** से **झः** और **अदभ्यस्तात्** से षष्ठ्यन्त में परिणत करके **अतः** की अनुवृत्ति आती है।

शीङ् से परे झ् के स्थान पर आदेश हुए अत् को रुट् का आगम होता है।

रुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

५८५. शीङो रुट् ७।१।६॥

शीङः परस्य झादेशस्यातो रुडागमः स्यात्। शेरते। शेषे। शयाथे। शेध्वे। शये। शेवहे। शेमहे। शिश्ये। शिश्याते। शिश्यिरे। शयिता। शयिष्यते। शेताम्। शयाताम्। अशेत। अशयाताम्। अशेरत। शयीत। शयीयाताम्। शयीरन्। शयिषीष्ट। अशयिष्ट। अशयिष्यत।

इङ् अध्ययने॥२०॥ इङिकावध्युपसर्गतो न व्यभिचरतः।

अधीते। अधीयाते। अधीयते।

....

उकार और टकार की इत्संज्ञा होती है और र् शेष रहता है। टित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से **अत्** का आद्यवयव होकर बैठता है।

शेरते। शी से झ, शप्, उसका लुक्, झ के स्थान पर **आत्मनेपदष्वनतः** से अत् आदेश करके **शी+अत** बना। **शीङो रुट्** से अत् को रुट् का आगम, अनुबन्धलोप, **र्+अत=रत, शी+रत** बना। **शीङः सार्वधातुके गुणः** से गुण और **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व होकर **शेरते** सिद्ध हुआ।

लट्- शेते, शयाते, शेरते, शेषे, शयाथे, शेध्वे, शये, शेवहे, शेमहे।

शिश्ये। शी से लिट्, त, द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, शी को ह्रस्व, त को एश् आदेश करके **शिशी+ए** बना। यण् होकर **शिश्ये** सिद्ध हुआ।

लिट्- शिश्ये, शिश्याते, शिश्यिरे, शिश्यिषे, शिश्याथे, शिश्यिढ्वे-शिश्यिध्वे, शिश्ये, शिश्यिवहे, शिश्यिमहे। **लुट्**- शयिता, शयितारौ, शयितारः, शयितासे, शयितासाथे, शयिताध्वे, शयिताहे, शयितास्वहे, शयितास्महे। **लृट्**- शयिष्यते, शयिष्येते, शयिष्यन्ते, शयिष्यसे, शयिष्येथे, शयिष्यध्वे, शयिष्ये, शयिष्यावहे, शयिष्यामहे। **लोट्**- शेताम्, शयाताम्, शेरताम्, शेष्व, शयाथाम्, शेध्वम्, शयै, शयावहै, शयामहै। **लङ्**- अशेत, अशयाताम्, अशेरत, अशेथाः, अशयाथाम्, अशेध्वम्, अशयि, अशेवहि, अशेमहि। **विधिलिङ्**- शयीत, शयीयाताम्, शयीरन्, शयीथाः, शयीयाथाम्, शयीध्वम्, शयीय, शयीवहि, शयीमहि। **आशीर्लिङ्**- शयिषीष्ट, शयिषीयास्ताम्, शयिषीरन्, शयिषीष्ठाः, शयिषीयास्थाम्, शयिषीढ्वम्-शयिषीध्वम्, शयिषीय, शयिषीवहि, शयिषीमहि। **लुङ्**- अशयिष्ट, अशयिषाताम्, अशयिषत, अशयिष्ठाः, अशयिषाथाम्, अशयिढ्वम्-अशयिध्वम्, अशयिषि, अशयिष्वहि, अशयिष्महि। **लृङ्**- अशयिष्यत, अशयिष्येताम्, अशयिष्यन्त, अशयिष्यथाः, अशयिष्येथाम्, अशयिष्यध्वम्, अशयिष्ये, अशयिष्यावहि, अशयिष्यामहि।

इङ् अध्ययने। इङ् धातु **अध्ययन करना** अर्थात् **पढ़ना** अर्थ में है। ङकार की इत्संज्ञा होती है, **इ** शेष रहता है। यह धातु और **इक् स्मरणे** धातु **अधि** उपसर्ग के विना प्रयोग नहीं किये जाते अर्थात् इन दो धातुओं के पूर्व में **अधि** उपसर्ग लगाकर ही प्रयोग किया जाता है।

अधीते। अधि पूर्वक **इ** से लट्, त, शप्, उसका लुक् करके **अधि+इ+त** बना। **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वत् होने के कारण **क्ङिति च** से गुण का निषेध, **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व होकर **इते** बना। **अधि+इते** में सवर्णदीर्घ होने पर **अधीते** बना। द्विवचन में

गाङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५८६. गाङ् लिटि २।४।४९॥

इङो गाङ् स्याल्लिटि। अधिजगे। अधिजगाते। अधिजगिरे। अध्येता। अध्येष्यते। अधीताम्। अधीयाताम्। अधीयताम्। अधीष्व। अधीयाथाम्। अधीध्वम्। अध्ययै। अध्ययावहै। अध्ययामहै। अध्यैत। अध्यैयाताम्। अध्यैयत। अध्यैथाः। अध्यैयाथाम्। अध्यैध्वम्। अध्यैयि। अध्यैवहि। अध्यैमहि। अधीयीत। अधीयीयाताम्। अधीयीरन्। अध्येषीष्ट।

....

अधि+इ+आते है, **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से धातु के इकार को इयङ् होकर **इयाते** बना। **अधि+इयाते** में सवर्णदीर्घ होकर **अधीयाते** बनता है। इसी तरह बहुवचन में भी अत् आदेश, इयङ्, सवर्णदीर्घ होकर **अधीयते** बनता है।

लट्- अधीते, अधीयाते, अधीयते, अधीषे, अधीयाथे, अधीध्वे, अधीये, अधीवहे, अधीमहे।

५८६- गाङ् लिटि। गाङ् प्रथमान्तं, लिटि सप्तम्यन्तं (विषये सप्तमी), द्विपदमिदं सूत्रम्। **इङश्च** से **इङः** की अनुवृत्ति है।

लिट् की विवक्षा में इङ् धातु के स्थान पर गाङ् आदेश होता है।

लिटि यह पद विषय-सप्तमी होने के कारण लिट् लकार की विवक्षा में गाङ् आदेश होता है। इसके ङकार की इत्संज्ञा होती है। आत्मनेपदार्थ ङित्करण है। यद्यपि इङ् में ङित् होने से स्थानिवद्भावेन गा में ङित्व आ जाता, तथापि **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन् ङित्** इस सूत्र में केवल इसी का ग्रहण हो, अन्य गा का ग्रहण न हो, इसको जताने के लिए इसे ङित् किया गया है।

अधिजगे। अधि-पूर्वक इ-धातु से लिट् की विवक्षा में **गाङ् लिटि** से गा आदेश, लिट्, त, एश् आदेश, द्वित्व करके **अधि+गागा+ए** बना। ह्रस्व, **कुहोश्चुः** से चुत्व करके **अधि+जगा+ए** बना। **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप करके **अधिजगे** सिद्ध हुआ। इसी तरह आगे भी बनेंगे।

लिट्- अधिजगे, अधिजगाते, अधिजगिरे, अधिजगिषे, अधिजगाथे, अधिजगिध्वे, अधिजगे, अधिजगिवहे, अधिजगिमहे।

लुट् में **अधि+इ+ता** है, धातु के इकार को सार्वधातुक गुण होकर **अधि+एता** बना। यण् होकर **अध्येता** बनता है। अध्येता, अध्येतारौ, अध्येतारः, अध्येतासे, अध्येतासाथे, अध्येताध्वे, अध्येताहे, अध्येतास्वहे, अध्येतास्महे।

लृट् में भी धातु को गुण और **स्य** के सकार को षत्व होकर **अधि+एष्यते** में यण् करके रूप बनते हैं। अध्येष्यते, अध्येष्येते, अध्येष्यन्ते, अध्येष्यसे, अध्येष्येथे, अध्येष्यध्वे, अध्येष्ये, अध्येष्यावहे, अध्येष्यामहे।

लोट् में **लट्** की तरह **अधीते** रूप बना कर **आमेतः** से आम् आदि करके रूप बनते हैं- अधीताम्, अधीयाताम्, अधीयताम्, अधीष्व, अधीयाथाम्, अधीध्वम्, अध्ययै, अध्ययावहै, अध्ययामहै।

लङ् में **आट्** करके धातु के ईकार के साथ **आटश्च** से वृद्धि करने पर **अधि+ऐत** बनता है। इसके बाद यण् आदि करके रूप बनते हैं- अध्यैत, अध्यैयाताम्, अध्यैयत, अध्यैथाः, अध्यैयाथाम्, अध्यैध्वम्, अध्यैयि, अध्यैवहि, अध्यैमहि।

वैकल्पिकगाङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५८७. विभाषा लुङ्लृङोः २।४।५०॥

इङो गाङ् वा स्यात्।

ङिद्विधायकमतिदेशसूत्रम्

५८८. गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन् ङित् १।२।१॥

गाङादेशात्कुटादिभ्यश्च परेऽञ्णितः प्रत्यया ङितः स्युः।

ईदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५८९. घुमास्थागापाजहातिसां हलि ६।४।६६॥

एषामात ईत्स्याद्धलादौ क्ङित्यार्धधातुके।

अध्यगीष्ट। अध्यैष्ट। अध्यगीष्यत। अध्यैष्यत।

दुह प्रपूरणे॥ २१॥ दोग्धि। दुग्धः। दुहन्ति। धोक्षि। दुग्धे। दुहाते। दुहते। धुक्षे। दुहाथे। धुग्ध्वे। दुहे। दुह्वहे, दुह्महे। दुदोह, दुदुहे। दोग्धासि, दोग्धासे। धोक्ष्यति, धोक्ष्यते। दोग्धु-दुग्धात्। दुग्धाम्। दुहन्तु। दुग्धि-दुग्धात्। दुग्धम्। दुग्ध। दोहानि। दोहाव। दोहाम। दुग्धाम्। दुहाताम्। दुहताम्। धुक्ष्व। दुहाथाम्। धुग्ध्वम्। दोहै। दोहावहै। दोहामहै। अधोक्। अदुग्धाम्। अदुहन्। अदोहम्। अदुग्ध। अदुहाताम्। अदुहत। अधुग्ध्वम्। दुह्यात्। दुहीत।

....

विधिलङ् में **अधि+इत** बनने पर सीयुट् और सुट्, दोनों सकारों का लोप और इय् के यकार का लोप करके **अधि+इ+ईत** होने पर धातु के इकार के स्थान पर इयङ् करने से **अधि+इय्+ईत** बनता है। सवर्णदीर्घ करके वर्णसम्मेलन करने पर **अधीयीत** सिद्ध होता है। अधीयीत, अधीयीयाताम्, अधीयीरन्,, अधीयीथाः, अधीयीयाथाम्, अधीयीध्वम्, अधीयीय, अधीयीवहि, अधीयीमहि।

आशीर्लिङ् में सीयुट्, सुट्, आर्धधातुकगुण, यण् और षत्व करने पर **अध्येषीष्ट** बनता है। अध्येषीष्ट, अध्येषीयास्ताम्, अध्येषीरन्, अध्येषीष्ठाः, अध्येषीयास्थाम्, अध्येषीढ्वम्, अध्येषीय, अध्येषीवहि, अध्येषीमहि।

५८७- विभाषा लुङ्लृङोः। लुङ् च लृङ् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो लुङ्लृङौ, तयोर्लुङ्लृङोः। विभाषा प्रथमान्तं, लुङ्लङोः सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इङश्च** से **इङः** और **गाङ् लिटि** से **गाङ्** की अनुवृत्ति आती है।

लुङ् और लृङ् की विवक्षा में इङ् के स्थान पर विकल्प से गाङ् आदेश होता है।

५८८- गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्। कुट आदिर्येषां ते कुटादयः, बहुव्रीहिः। गाङ् च कुटादयश्च ते गाङ्कुटादयः, तेभ्यः गाङ्कुटादिभ्यः। ञ् च ण् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो ञ्णौ, ञ्णौ इतौ यस्य स ञ्णित् बहुव्रीहिः, न ञ्णित् अञ्णित्, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः।

गाङ् आदेश और कुटादि धातुओं से परे ञित् और णित् से भिन्न प्रत्यय ङिद्वत् होता है।

५८९- **घुमास्थागापाजहातिसां हलि।** घुश्च माश्च स्थाश्च गाश्च पाश्च जहातिश्च साश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो घुमास्थागापाजहातिसाः, तेषां घुमास्थागापाजहातिसाम्। घुमास्थागापाजहातिसां षष्ठ्यन्तं, हलि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **दीङो युडचि क्ङिति** से **क्ङिति** की, **आतो लोप इटि च** से **आतः** की और **ईद्यति** से **ईत्** की अनुवृत्ति आती है। **आर्धधातुके** का अधिकार है।

घु, मा, स्था, गा, पा, हा (ओहाक्) और सा (षो) धातुओं के आकार के स्थान पर ईकार आदेश होता है हलादि कित्, ङित् आर्धधातुक के परे होने पर।

अध्यगीष्ट। अधि-पूर्वक इ-धातु से लुङ् की विवक्षा में **विभाषा लुङ्लृङोः** से वैकल्पिक गाङ् आदेश करके लुङ्, अट्, त, सिच् करके **अधि+अ+गा+स्+त** बना। गा से परे ञित्, णित् से भिन्न प्रत्यय सिच् वाला सकार है, उसको **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन् ङित्** से **ङिद्वद्भाव** हुआ और **घुमास्थागापाजहातिसां हलि** से गा के आकार के स्थान पर **ईकार** आदेश होकर **अधि+अ+गी+स्+त** बना। ईकार से परे सकार को षत्व और पकार से पर तकार को ष्टुत्व करके **अधि+अ+गीष्ट** बना। **अधि+अ** में यण् करके **अध्यगीष्ट** सिद्ध हुआ। **गाङ् आदेश** न होने के पक्ष में **इ** धातु के अजादि होने के कारण **आडजादीनाम्** से आट् का आगम होकर **अधि+आ+इ+स्+त** बनता है। **आ+इ** में **आटश्च** से वृद्धि करके **ऐ, अधि+ऐ** में यण् होकर **अध्यैस्त** बना। सकार को षत्व और तकार को ष्टुत्व और वर्णसम्मेलन करके **अध्यैष्ट** सिद्ध होता है। इस तरह लुङ् में दो-दो रूप बनते हैं।

लुङ् में (गादेशपक्ष में) अध्यगीष्ट, अध्यगीषाताम्, अध्यगीषत, अध्यगीष्ठाः, अध्यगीषाथाम्, अध्यगीढ्वम्, अध्यगीषि, अध्यगीष्वहि, अध्यगीष्महि। **गाङ् के अभाव में-** अध्यैष्ट, अध्यैषाताम्, अध्यैषत, अध्यैष्ठाः, अध्यैषाथाम्, अध्यैढ्वम्, अध्यैषि, अध्यैष्वहि, अध्यैष्महि।

लृङ् में भी गाङ् आदेश विकल्प से होता है। आदेश के पक्ष में ङिद्वद्भाव, ईत्व करके रूप बनते हैं- अध्यगीष्यत, अध्यगीष्येताम्, अध्यगीष्यन्त, अध्यगीष्यथाः, अध्यगीष्येथाम्, अध्यगीष्यध्वम्, अध्यगीष्ये, अध्यगीष्यावहि, अध्यगीष्यामहि। गाङ् न होने के पक्ष में- अध्यैष्यत, अध्यैष्येताम्, अध्यैष्यन्त, अध्यैष्यथाः, अध्यैष्येथाम्, अध्यैष्यध्वम्, अध्यैष्ये, अध्यैष्यावहि, अध्यैष्यामहि।

अब उभयपदी धातुओं का प्रकरण प्रारम्भ होता है।

दुह प्रपूरणे। दुह धातु **प्रपूरण** अर्थात् **दुहना** अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होती है और **दुह्** शेष रहता है। अनिट् धातुओं की गणना में आता है। अनिट् होते हुए अजन्त एवं अकारवान् न होने से थल् में नित्य से इट् होता है।

दोग्धि। दुह् से लट्, परस्मैपद में ति, शप्, उसका लुक् करके **दुह्+ति** है। **लघूपधगुण** करके **दोह्+ति** बना। **दादेर्धातोर्घः** से हकार के स्थान पर **घकार** आदेश और **झषस्तथोर्धोऽधः** से ति के तकार के स्थान पर **धकार** आदेश करके **दोघ्+धि** बना। घकार के स्थान पर **झलां जश् झशि** से जश्त्व **गकार** होकर **दोग्धि** सिद्ध हुआ।

दुग्धः। द्विवचन में सारी प्रक्रिया **दोग्धि** की तरह किन्तु अपित् सार्वधातुक ङित् होने के कारण गुण का निषेध हुआ। **दुग्+धस्=दुग्धः।**

दुहन्ति। बहुवचन में झल् परे न मिलने के कारण **दादेधातोर्घः** से घकार नहीं हुआ और तकार एवं थकार न होने के कारण धकार भी नहीं हुआ तो **दुह्+अन्ति** में केवल वर्णसम्मेलन होकर **दुहन्ति** सिद्ध हुआ।

धोक्षि। दुग्धः। दुग्ध। दुह् से सिप्, शप्, शब्लुक् करके **दुह्+सि** है। गुण करके **दादेर्धातोर्घः** से हकार के स्थान घकार आदेश करके **दोघ्+सि** बना। **एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः** से सकार के परे होने के कारण धातु के दकार के स्थान पर भष् होकर धकार होता है। इस तरह **धोघ्+सि** बना। घकार को जश्त्व करके गकार और गकार को सकार के परे रहते **खरि च** से चर्त्व होकर ककार हुआ और ककार से परे सि के सकार को षत्व होकर **धोक्+षि** बना। क् और ष् के संयोग होने पर **क्ष्** होता है। अतः **धोक्षि** यह रूप सिद्ध हुआ। प्रथमपुरुष के द्विवचन की तरह मध्यमपुरुष के द्विवचन और बहुवचन में **दुग्धः, दुग्ध** बन जाते हैं, क्योंकि **झषस्तथोर्धोर्धः** यह सूत्र तकार और थकार दोनों के स्थान पर धकार आदेश करता है।

दोह्मि। दुह्वः। दुह्मः। उत्तमपुरुष में **झल्** के परे न होने के कारण **घकार** आदेश नहीं हुआ। केवल वर्णसम्मेलन करके उक्त तीनों रूप बन जाते हैं।

लट् के परस्मैपद में- दोग्धि, दुग्धः, दुहन्ति, धोक्षि, दुग्धः, दुग्ध, दोह्मि, दुह्वः, दुह्मः।

आत्मनेपद में पित् न होने के कारण सभी प्रत्यय **सार्वधातुकमपित्** से ङित् होते हैं, अतः गुण का प्रसंग नहीं है किन्तु घकार आदेश, सकार और ध्वम् के परे रहने पर दकार को धकार आदेश, केवल **त** के स्थान पर धकार आदेश होकर सिद्ध होते हैं, साथ ही आताम्, झ, आथाम् में अजादि के परे होने के कारण केवल वर्णसम्मेलन होता है। उत्तमपुरुष में परस्मैपद की तरह केवल वर्णसम्मेलन करना होता है। बाकी शप्, शप् का लुक्, एत्व आदि तो होते ही हैं।

लट् के आत्मनेपद में- दुग्धे, दुहाते, दुहते, धुक्षे, दुहाथे, धुग्ध्वे, दुहे, दुह्वहे, दुह्महे।

दुदोह, दुदुहे। लिट् में द्वित्व, हलादिशेष, गुण और गुण का निषेध आदि करके रूप बनते हैं।

लिट् के परस्मैपद में- दुदोह, दुदुहतुः, दुदुहुः, दुदोहिथ, दुदुहथुः, दुदुह, दुदोह, दुदुहिव, दुदुहिम। **आत्मनेपद-** दुदुहे, दुदुहाते, दुदुहिरे, दुदुहिषे, दुदुहाथे, दुदुहिढ्वे-दुदुहिध्वे, दुदुहे, दुदुहिवहे, दुदुहिमहे। अनिट् धातु के होते हुए भी **क्रादिनियम** से लिट् में इट् हो जाता है।

लुट् में ता के तकार को झल् परे मानकर **दादेर्धातोर्घः** से हकार के स्थान पर घकार आदेश और तकार के स्थान पर **झषस्तथोर्धोऽधः** से धकार एवं गुण करके **दोग्धा** बनता है। **परस्मैपद में-** दोग्धा, दोग्धारौ, दोग्धारः, दोग्धासि, दोग्धास्थः, दोग्धास्थ, दोग्धास्मि, दोग्धास्वः, दोग्धास्मः। **आत्मनेपद में-** दोग्धा, दोग्धारौ, दोग्धारः, दोग्धासे, दोग्धासाथे, दोग्धाध्वे, दोग्ध हे, दोग्धास्वहे, दोग्धास्महे।

लृट् में स्य के सकार के परे रहते घत्व, भष्त्व, षत्व, चर्त्व, क्षत्व होकर **धोक्ष्यति, धोक्ष्यतः** आदि रूप बनते हैं। **परस्मैपद** में- धोक्ष्यति, धोक्ष्यतः, धोक्ष्यन्ति, धोक्ष्यसि, धोक्ष्यथः, धोक्ष्यथ, धोक्ष्यामि, धोक्ष्यावः, धोक्ष्यामः। **आत्मनेपद में-** धोक्ष्यते, धोक्ष्येते, धोक्ष्यन्ते, धोक्ष्यसे, धोक्ष्येथे, धोक्ष्यध्वे, धोक्ष्ये, धोक्ष्यावहे, धोक्ष्यामहे।

लोट् में सभी कार्य लट् की तरह ही होते है। किन्तु लोट् के विशेष कार्य होकर रूप बनते हैं- **परस्मैपद** में- दोग्धु-दुग्धात्, दुग्धाम्, दुहन्तु, दुग्धि-दुग्धात्, दुग्धम्. दुग्ध,

किद्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्

५९०. लिङ्सिचावात्मनेपदेषु १।२।११॥

इक्समीपाद्धलः परौ झलादी लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तङि। धुक्षीष्ट।

....

दोहानि, दोहाव, दोहाम। **आत्मनेपद** में- दुग्धाम्, दुहाताम्, दुहताम्, धुक्ष्व, दुहाथाम्, धुग्ध्वम्, दोहै, दोहावहै, दोहामहै।

लङ्- में दुह् लङ्, अट् आगम, तिप्, शप्, उसका लुक्, ति में इकार का **इतश्च** से लोप करके **अदुह् त्** बना है। लघूपधगुण होकर **अदोह्+त्** बना। तकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **अदोह्** में पदान्त हकार के स्थान पर **दादेर्धातोर्घः** से घकार आदेश और धातु के आदि दकार को **एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः** से भष् करके घकार को जश्त्व करने पर **अधोग्** बना। **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके **अधोक्, अधोग्** ये दो रूप बनते हैं। द्विवचन में **अदुह्+ताम्** है। घत्व, धत्व, जश्त्व करके **अदुग्धाम्** बनता है। बहुवचन में **अदुह्+अन्ति** है। इकार का लोप, तकार का संयोगान्तलोप करके **अदुह्+अन्** बना। वर्णसम्मेलन करके **अदुहन्** सिद्ध हुआ। सिप् में तिप् की तरह **अधोक्, अधोग्** बनते हैं। थस् और थ में तस् की तरह **अदुग्धम्, अदुग्ध** बनते हैं। उत्तमपुरुष में **अदोहम्, अदुह्व, अदुह्म**।

लङ् के रूप परस्मैपद में- अधोक्-अधोग्, अदुग्धाम्, अदुहन्, अधोक्-अधोग्, अदुग्धम्, अदुग्ध, अदोहम्, अदुह्व, अदुह्म। **आत्मनेपद** में- अदुग्ध, अदुहाताम्, अदुहत, अदुग्धाः, अदुहाथाम्, अधुग्ध्वम्, अदुहि, अदुह्वहि, अदुह्महि।

विधिलिङ्, परस्मैपद- दुह्यात्, दुह्याताम्, दुह्युः, दुह्याः, दुह्यातम्, दुह्यात, दुह्याम्, दुह्याव, दुह्याम। **आत्मनेपद**- दुहीत, दुहीयाताम्, दुहीरन्, दुहीथाः, दुहीयाथाम्, दुहीध्वम्, दुहीय, दुहीवहि, दुहीमहि।

आशीर्लिङ्, परस्मैपद- दुह्यात्, दुह्यास्ताम्, दुह्यासुः, दुह्याः, दुह्यास्तम्, दुह्यास्त, दुह्यासम्, दुह्यास्व, दुह्यास्म।

५९०- लिङ्सिचावात्मनेपदेषु। लिङ् च सिच् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो लिङ्सिचौ। लिङ्सिचौ प्रथमान्तम्, आत्मनेपदेषु सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इको झल्** सम्पूर्ण सूत्र, **हलन्ताच्च** से हलन्तात् और **असंयोगाल्लिट् कित्** से **कित्** की अनुवृत्ति आती है। **झल्** जो है यह **लिङ्सिचौ** का विशेषण है और **हलन्तात्** का अर्थ है **समीपवर्ती हल् से**।

इक् के समीप जो हल् उससे परे झलादि लिङ् और सिच् कित् होते हैं तङ् के परे होने पर।

लिङ् लकार में लिङ् के स्थान पर त, आताम् आदि आदेश हुए हैं। उनको सीयुट् करके झलादि होने से वे कित् हो जाते हैं और **लुङ्** लकार का **सिच्** कित् हो जाता है।

धुक्षीष्ट। दुह् से आशीर्लिङ्, त, सीयुट्, सुट् करके **दुह्+सीय्+स्+त** बना है। यहाँ दकारोत्तरवर्ती उकार इक् है, इसके समीप् हल् है **ह्**, उससे परे झलादि लिङ है- **सीय्+स्+त**। अतः **लिङ्सिचावात्मनेपदेषु** से उसको कित्त्व अर्थात् किद्वद्भाव हुआ। कित् के परे होने पर दुह् में प्राप्त लघूपधगुण का निषेध हुआ। इसके बाद हकार को घत्व, घकार को जश्त्व करके गकार, दकार को भष्त्व करके धकार बना, सकार के परे होने पर गकार

क्सादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५९१. शल इगुपधादनिटः क्सः ३।१।४५॥

इगुपधो यः शलन्तस्तस्मादनिटश्च्लेः क्सादेशः स्यात्। अधुक्षत्।

वैकल्पिकक्सलोपविधायकं विधिसूत्रम्

५९२. लुग्वा दुह-दिह-लिह-गुहामात्मनेपदे दन्त्ये ७।३।७३॥

एषां क्सस्य लुग्वा स्याद् दन्त्ये तङि। अदुग्ध, अधुक्षत।

....

को चर्त्व होकर ककार, ककार से परे सकार को षत्व करके **धुक्+षीय्+स्+त** बना। ककार और षकार के संयोग से क्षकार, यकार का लोप करके **धुक्षी+स्+त** बना। सकार को षत्व और उसके योग में तकार को ष्टुत्व होकर **धुक्षीष्ट** सिद्ध हुआ।

आशीर्लिङ् के रूप- धुक्षीष्ट, धुक्षीयास्ताम्, धुक्षीरन्, धुक्षीष्ठाः, धुक्षीयास्थाम्, धुक्षीध्वम्, धुक्षीय, धुक्षीवहि, धुक्षीमहि।

५९१- शल इगुपधादनिटः क्सः। शलः पञ्चम्यन्तम्, इगुपधाद् पञ्चम्यन्तम्, अनिटः षष्ठ्यन्तं, क्सः प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **च्लेः सिच्** से **च्लेः** और **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से **धातोः** की अनुवृत्ति आती है।

इक् जिसकी उपधा में हो ऐसा जो शल् अन्त वाला धातु, उससे परे अनिट् च्लि के स्थान पर क्स आदेश होता है।

यह सूत्र **च्लेः सिच्** का अपवाद है और ककार की इत्संज्ञा होकर **स** यह अदन्त ही शेष रहता है। क्स और सिच् में यही अन्तर है कि क्स कित् है और अदन्त **स** शेष रहता है सिच् में केवल **स्** बचता है।

अधुक्षत्। दुह् से लुङ्, अट् का आगम, त, च्लि, उसके स्थान पर सिच् प्राप्त, उसे बाधकर **शल इगुपधादनिटः क्सः** से क्स आदेश, अनुबन्धलोप करके **अदुह्+स+त** बना। स कित् है, अतः **क्ङिति च** से लघूपधगुण का निषेध हुआ। अब घत्व, भष्त्व, जश्त्व, चर्त्व, षत्व करके **अधुक्षत्** सिद्ध हुआ।

परस्मैपद लुङ् के रूप- अधुक्षत्, अधुक्षताम्, अधुक्षन्, अधुक्षः, अधुक्षतम्, अधुक्षत, अधुक्षम्, अधुक्षाव, अधुक्षाम।

५९२- लुग्वा दुह-दिह-लिह-गुहामात्मनेपदे दन्त्ये। दुहश्च दिहश्च लिहश्च गुह् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः दुहदिहलिहगुहः, तेषां दुहदिहलिहगुहाम्। दन्तेषु भवो दन्त्यः (**शरीरावयवाद्यत्**) लुक् प्रथमान्तं, वा अव्ययपदं, दुहदिहलिहगुहां षष्ठ्यन्तम्, आत्मनेपदे सप्तम्यन्तं, दन्त्ये सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **क्सस्याचि** से **क्सस्य** की अनुवृत्ति आती है।

दुह्, दिह्, लिह् और गुह् धातुओं से परे क्स का विकल्प से लुक् होता है दन्त्यादि तङ् के परे होने पर।

आत्मनेपद में दन्त्यादि **त, थास्, ध्वम्** और **वहि** है। इनके परे होने पर विकल्प से और अग्रिम सूत्र से अच् के परे होने पर नित्य से क्स का लोप होता है। **अलोऽन्त्यस्य** की उपस्थिति से अन्त्य अल् अकार मात्र का लोप होता है और स् शेष रहता है।

अदुग्ध, अधुक्षत। दुह् से लुङ् लकार, अट् का आगम, त, च्लि, उसके स्थान पर सिच् प्राप्त था, उसे बाधकर **शल इगुपधादनिटः क्सः** से **क्स** हुआ। उसका त के परे

नित्येन क्सलोपविधायकं विधिसूत्रम्

५९३. क्सस्याचि ७।३।७२॥

अजादौ तङि क्सस्य लोपः। अधुक्षाताम्। अधुक्षन्त। अदुग्धाः, अधुक्षथाः। अधुक्षाथाम्। अधुग्ध्वम्, अधुक्षध्वम्। अधुक्षि। अदुह्वहि, अधुक्षावहि। अधुक्षामहि। अधोक्ष्यत। एवं **दिह उपचये॥२२॥ लिह आस्वादने॥२३॥** लेढि। लीढः। लिहन्ति। लेक्षि। लीढे। लिहाते। लिहते। लिक्षे। लिहाथे। लीढ्वे। लिलेह, लिलिहे। लेढासि, लेढासे। लेक्ष्यति, लेक्ष्यते। लेढु। लीढाम्। लिहन्तु। लीढि। लेहानि। लीढाम्। अलेट्, अलेड्। अलिक्षत्, अलीढ, अलिक्षत। अलेक्ष्यत्, अलेक्षत।

ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि॥२४॥

....

होने पर **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से **लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये** से विकल्प से **स** के अकार का लुक् हुआ। **अदुह्+स्+त** बना। सकार का **झलो झलि** से लोप हुआ। अब घत्व, होकर **अदुघ्+त** बना। सकारादि प्रत्यय न होने के कारण भष्त्व नहीं हुआ। घकार से परे तकार को **झषस्तथोर्धोऽधः** से धकार आदेश होकर **अदुघ्+ध** बना। घकार को जश्त्व होकर गकार बना। इस तरह **अदुग्ध** सिद्ध हुआ। क्स के लुक् न होने के पक्ष में **अदुह्+स्+त** है। घत्व, भष्त्व, जश्त्व करके **अधुक्+स+त** बना। ककार से परे सकार को षत्व और **क्+ष्** का क्षत्व होकर **अधुक्षत** सिद्ध हुआ।

५९३- क्सस्याचि। क्सस्य षष्ठ्यन्तम्, अचि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **घोर्लोपो लेटि वा** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है। अग्रिम सूत्र **लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये** से तङ् का अर्थबोधक **आत्मनेपदे** का अपकर्षण करके **अचि** का विशेष्य बनाया जाता है।

अजादि तङ् अर्थात् आत्मनेपद के परे होने पर क्स का लोप होता है।

यहाँ पर भी **अलोऽन्त्यस्य** की उपस्थिति से अन्त्य अल् **अकार** का लोप होकर **स्** शेष रहता है। अकार के लोप का प्रयोजन **आतो ङितः** से इय् आदेश को रोकना है, अन्यथा स के अदन्त होने पर इय् होकर अनिष्ट रूप बन जाता।

लुङ् प्रथमपुरुष के द्विवचन में **अदुह्+स+आताम्** है। यहाँ पर अजादि तङ् **आताम्** है। अतः **क्सस्याचि** से **स** के अकार का लुक् हुआ, **अदुह्+स्+आताम्** बना। अब घत्व, भष्त्व, जश्त्व, चर्त्व, षत्व, क्षत्व करके **अधुक्ष्+आताम्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अधुक्षाताम्** सिद्ध हुआ। बहुवचन में झ के स्थान पर अन्त् आदेश होने से अजादि बन जाता है। अतः क्स के अकार का लोप आदि करके **अधुक्षन्त** बन जाता है। **थास्, ध्वम्, वहि** में विकल्प से लुक् होकर दो-दो रूप बनते हैं और आथाम् में **क्यस्याचि** से नित्य से लुक् होता है। शेष जगहों पर क्स का लुक् नहीं होता।

लुङ् आत्मनेपद के रूप- अदुग्ध-अधुक्षत, अधुक्षाताम्, अधुक्षन्त, अदुग्धाः-अधुक्षथाः, अधुक्षाथाम्, अधुग्ध्वम्-अधुक्षध्वम्, अदुह्वहि-अधुक्षावहि, अधुक्षामहि। **लृङ्-** अधोक्ष्यत्, अधोक्ष्यत।

दिह उपचये। दिह् धातु उपचय अर्थात् वृद्धि, बढ़ाना अर्थ में है। इसके रूप **दुह्** की तरह ही होते हैं। अन्तर यह है कि **दुह्** को गुण होने पर ओकार **दोह्** होता है तो **दिह्**

....

में इकार को गुण होकर एकार **देह्** बनता है। कुछ आचार्यों ने इसका एक अर्थ **लेप करना** भी माना है और देह, सन्देह, देहिन् आदि शब्दों की सिद्धि भी इसी धातु से बताई है।

लट्-(परस्मैपद)देग्धि, दिग्धः, दिहन्ति। धेक्षि, दिग्धः, दिग्ध, देह्मि, दिह्वः, दिह्मः।
(आत्मनेपद) दिग्धे, दिहाते, दिहते, धिक्षे, दिहाथे, धिग्ध्वे, दिहे, दिह्वहे, दिह्महे।

लिट्- दिदेह, दिदिहतुः, दिदिहुः। दिदिहे, दिदिहाते, दिदिहिरे।

लुट्- देग्धा, देग्धारौ, देग्धारः, देग्धासि। देग्धासे, देग्धासाथे, देग्धाध्वे।

लृट्- धेक्ष्यति, धेक्ष्यतः, धेक्ष्यन्ति। धेक्ष्यते, धेक्ष्येथे, धेक्ष्यध्वे।

लोट्- दिग्धु-दिग्धात्, दिग्धाम्, दिहन्तु, दिग्धि-दिग्धात्, दिग्धम्, दिग्ध, देहानि, देहाव, देहाम।
दिग्धाम्, दिहाताम्, दिहताम्, धिक्ष्व, दिहाथाम्, धिग्ध्वम्, देहै, देहावहै, देहामहै।

लङ्- अधेक्-अधेग्, अदिग्धाम्, अदिहन्। अदिग्ध, अदिहाताम्, अदिहत।

विधिलिङ्- दिह्यात्, दिह्याताम्, दिह्युः। दिहीत, दिहीयाताम्, दिहीरन्।

आशीर्लिङ्- दिह्यात्, दिह्यास्ताम्, दिह्यासुः। धिक्षीष्ट, धिक्षीयास्ताम्, धिक्षीरन्।

लुङ्- अधिक्षत्, अधिक्षताम्, अधिक्षन्। अदिग्ध-अधिक्षत, अधिक्षाताम्, अधिक्षन्त।
अदिग्धाः-अदिक्षथाः, अधिक्षाताम्, अधिग्ध्वम्-अधिक्षध्वम्, अधिक्षि, अधिह्वहि-अधिक्षावहि, अधिक्षामहि।

लृङ्- अधेक्ष्यत्, अधेक्ष्यताम्, अधेक्ष्यन्। अधेक्ष्यत, अधेक्ष्येताम्, अधेक्ष्यन्त।

लिह आस्वादने। लिह धातु **आस्वादन** अर्थात् **चाटना** अर्थ में है। स्वरित अकार की इत्संज्ञा होने के कारण उभयपदी है। **लिह्** शेष रहता है। दकारादि न होने के कारण **दादेर्धातोर्घः** का विषय नहीं है और बश् प्रत्याहार के वर्ण न होने के कारण **एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः** का भी विषय नहीं है। हकारान्त होने के कारण **हो ढः** से ढत्व होता है।

लेढि। लिह् से लट्, परस्मैपद तिप्, शप्, उसका लुक्, लघूपधगुण करके लेह्+ति बना। **हो ढः** से ढत्व करके **झषस्तथोर्धोऽधः** से ति के तकार को धकार करके लेढ्+धि बना। ढकार के योग में धकार को ष्टुत्व होकर ढकार हुआ, **लेढ्+ढि** बना। **ढो ढे लोपः** से पूर्व ढकार का लोप होकर **लेढि** सिद्ध हुआ। द्विवचन आदि अपित् में **सार्वधातुकमपित्** से ङित्त्व हो जाने के कारण गुण का निषेध होता है। अतः **लि+ढस्** बना हुआ है। **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से पूर्व के अण् इकार को दीर्घ होकर **लीढः** सिद्ध हुआ। बहुवचन में झल् परे न होने कारण ढत्व नहीं हुआ, केवल वर्णसम्मेलन करके **लिहन्ति** बनता है। सिप् में गुण होकर **लेढ्+सि** बना है। **षढोः कः सि** से ढकार को ककार और ककार से परे सि के सकार को षत्व और ककार तथा षकार के संयोग में क्षकार **लेक्षि** सिद्ध हुआ। थस् में ढत्व, धत्व, ष्टुत्व, ढकार का लोप, दीर्घ करके **लीढः** बनता है। **थ** में इसी प्रकार से **लीढ** बनता है। उत्तमपुरुष में झल् न मिलने के कारण ढत्व नहीं होता। अतः वर्णसम्मेलन करके **लेह्मि, लिह्वः, लिह्मः** सिद्ध होते हैं। इस तरह परस्मैपद में रूप बने- **लेढि, लीढः, लिहन्ति, लेक्षि, लीढः, लीढ, लेह्मि, लिह्वः, लिह्मः**। आत्मनेपद में कोई कठिनाई नहीं है। अपित् होने के कारण गुण कहीं भी नहीं होता है और जहाँ झलादि मिलता है, वहाँ ढत्व होगा, अन्यत्र नहीं। ढकार के बाद तकार और थकार को धकार आदेश और उसके स्थान पर ष्टुत्व होकर ढकार आदि करके ढलोप, दीर्घ आदि होकर रूप बनते हैं- **लीढे, लिहाते, लिहते, लिक्षे, लिहाथे, लीढ्वे, लिहे, लिह्वहे, लिह्महे**।

लिट् में दोनों पदों में **दुह्** की तरह ही रूप बनते हैं- लिलेह, लिलिहतु:, लिलिहु:, लिलेहिथ, लिलिहथु:, लिलिह, लिलेह, लिलिहिव, लिलिहिम। लिलिहे, लिलिहाते, लिलिहिरे, लिलिहिषे, लिलिहाथे, लिलिहिढ्वे-लिलिहिध्वे, लिलिहे, लिलिहिवहे, लिलिहिमहे।

लुट् में लघूपधगुण होकर **लेह्+ता** बनने के बाद ढत्व, धत्व, ष्टुत्व करके **लेढ्+ढा** बनता है। ढकार का लोप करके **लेढा** सिद्ध हो जाता है। लेढा, लेढारौ, लेढार:, लेढासि। लेढासे, लेढासाथे, लेढाध्वे, लेढाहे, लेढास्वहे, लेढास्महे।

लृट् में लघूपधगुण, ढत्व करके **लेढ्+स्यति** बना। **षढो: क: सि** से ढकार को ककार और ककार से परे सकार को **आदेशप्रत्यययो:** से षत्व करके **लेक्+ष्यति** बना। ककार और षकार के संयोग से क्षकार होकर **लेक्ष्यति** सिद्ध हुआ। लेक्ष्यति, लेक्ष्यत:, लेक्ष्यन्ति। लेक्ष्यते, लेक्ष्येते, लेक्ष्यन्ते आदि।

लोट् में लट् की तरह ही कार्य होकर कुछ विशेष कार्य उत्व आदि होते हैं- लेढु-लीढात्, लीढाम्, लिहन्तु। सिप् में- लिह् सि, लिह् हि, लिढ् हि होने के बाद **हुझल्भ्यो हेर्धि:** से हि को **धि, लिढ् धि,** ष्टुत्व, पूर्व के ढ का लोप, दीर्घ होकर **लीढि** बनता है। तातङ् होने के पक्ष में- लीढात्। आगे- लीढम्, लीढ, लेहानि, लेहाव, लेहाम। **आत्मनेपद** में- लीढाम्, लिहाताम्, लिहताम्, लिक्ष्व, लिहाथाम्, लीढ्वम्, लेहै, लेहावहै, लेहामहै।

लङ् में तिप्, अट् का आगम, शप्, उसका लुक्, इकार का लोप, लघूपधगुण करके **अलेह्+त्** बना है। **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से अपृक्त तकार का लोप करके पदान्त हकार को ढत्व, जश्त्व करके, **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके **अलेट्-अलेड्** ये दो रूप बनते हैं। सिप् में भी ये ही रूप बनते हैं क्योंकि वहाँ अपृक्त सकार का लोप होता है। अन्य रूपों में कोई विशेषता नहीं है। परस्मैपद के रूप-
अलेट्-अलेड्, अलीढाम्, अलिहन्, अलेट्-अलेड्, अलीढम्, अलीढ, अलेहम्, अलिह्व, अलिह्म। **आत्मनेपद**- अलीढ, अलिहाताम्, अलिहत, अलीढा:, अलिहाथाम्, अलीढ्वम्, अलिहि, अलिह्वहि, अलिह्महि।
विधिलिङ्- लिह्यात्, लिह्याताम्, लिह्यु:। लिहीत, लिहीयाताम्, लिहीरन्।
आशीर्लिङ्- लिह्यात्, लिह्यास्ताम्, लिह्यासु:। लिक्षीष्ट, लिक्षीयास्ताम्, लिक्षीरन्।
लुङ् परस्मैपद में- अधुक्षत् की तरह ही- अलिक्षत्, अलिक्षताम्, अलिक्षन्। **आत्मनेपद** में दन्त्यादि प्रत्ययों में **लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये** से क्स के अकार का वैकल्पिक लुक् और अजादि के परे **क्सस्याचि** से नित्य से क्स के अकार का लोप होता है। इस तरह रूप बनते हैं- अलीढ-अलिक्षत, अलिक्षाताम्, अलिक्षन्त, अलीढा:-अलिक्षथा:, अलिक्षाथाम्, अलीढ्वम्-अलिक्षध्वम्, अलिक्षि, अलिह्वहि-अलिक्षावहि, अलिक्षामहि।
लृङ्- अलेक्ष्यत्, अलेक्ष्यताम्, अलेक्ष्यन्। अलेक्ष्यत, अलेक्ष्येताम्, अलेक्ष्यन्त।

ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि। ब्रूञ् धातु **स्पष्ट बोलना** अर्थ में है जैसे- **रामो ब्रवीति,** किन्तु **अश्वो ब्रवीति** नहीं होगा क्योंकि घोड़े आदि पशुओं की बोली अस्पष्ट है। ञकार की इत्संज्ञा होती है। ञित् होने के कारण **स्वरितञित कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से उभयपदी है। चकारान्त अनिट् धातुओं में **वच्** के रूप में इसकी गणना है।

आहादेशविधायकं णलादिविधायकं च विधिसूत्रम्

५९४. ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ३।४।८४॥

ब्रुवो लटस्तिबादीनां पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युर्ब्रुवश्चाहादेशः।
आह। आहतुः। आहुः।

थकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५९५. आहस्थः ८।२।३५॥

झलि परे। चर्त्वम्। आत्थ। आहथुः।

ईडागमविधायकं विधिसूत्रम्

५९६. ब्रुव ईट् ७।३।९३॥

ब्रुवः परस्य हलादेः पित ईट् स्यात्।
ब्रवीति। ब्रूतः। ब्रुवन्ति। ब्रूते। ब्रुवाते। ब्रुवते।

....

५९४- **ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः।** ब्रुवः पञ्चम्यन्तं, पञ्चानां षष्ठ्यन्तम्, आदितः अव्ययपदम्, आहः प्रथमान्तं, ब्रुवः षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **विदो लटो वा** से **लटः** और **वा** की तथा **परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः** से **परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसः** की अनुवृत्ति आती है।

ब्रू-धातु से परे लट् के स्थान पर हुए तिप्, तस्, झि, सिप् और थस् इन पाँच प्रत्ययों के स्थान पर क्रमशः णल्, अतुस्, उस्, थल् और अथुस् ये पाँच आदेश विकल्प से होते हैं साथ ही ब्रू के स्थान पर आह आदेश भी हो जाता है।

यह सूत्र दो कार्य करता है- प्रथम तो णल् आदि आदेश और दूसरा धातु के स्थान पर आह आदेश। अभी तक लिट् लकार के स्थान पर हुए तिप् आदि के स्थान पर णल् आदि आदेश हो रहे थे। यहाँ पर ब्रू धातु के लट् के आदि से पाँच प्रत्ययों के स्थान पर भी इस सूत्र से उक्त आदेशों का विधान हुआ है।

आह। ब्रू धातु से लट्, तिप्, शप्, उसका लुक् करके **ब्रू+ति** बना। **ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः** से **ति** के स्थान पर वैकल्पिक **णल्** और **ब्रू** के स्थान पर वैकल्पिक **आह्** आदेश होकर **आह्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **आह** सिद्ध हुआ। लिट् न होने के कारण द्वित्व आदि का प्रसंग नहीं है। इसी तरह द्विवचन और बहुवचन में **आहतुः** और **आहुः** ये रूप बनते हैं।

५९५- **आहस्थः।** आहः षष्ठ्यन्तं, थः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **झलो झलि** से **झलि** की अनुवृत्ति आती है। षष्ठीनिर्दिष्ट होने से **अलोऽन्त्यस्य** की उपस्थिति होती है।

झल् परे होने पर आह् के अन्त्य अल् हकार के स्थान पर थकार आदेश होता है।

आत्थ। ब्रू से सिप्, उसके स्थान पर थल् आदेश और धातु के स्थान पर **आह्** आदेश करके **आह्+थ** बना। **आहस्थः** से हकार के स्थान पर थकार आदेश हुआ तो **आथ्+थ** बना। पूर्व थकार को **खरि च** से चर्त्व होकर **आत्थ** सिद्ध हुआ। द्विवचन में **आहथुः** बनेगा ही। **आह्** और **णल्** आदि न होने के पक्ष में अग्रिम सूत्र लगता है।

वचादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५९७. ब्रुवो वचिः २।४।५३॥

आर्धधातुके। उवाच। ऊचतुः। ऊचुः। उवचिथ, उवक्थ। ऊचे। वक्तासि, वक्तासे। वक्ष्यति, वक्ष्यते। ब्रवीतु, ब्रूतात्। ब्रुवन्तु। ब्रूहि। ब्रवाणि। ब्रूताम्। ब्रवै। अब्रवीत्। अब्रूत। ब्रूयात्, ब्रुवीत। उच्यात्, वक्षीष्ट।

....

५९६- ब्रुव ईट्। ब्रुवः पञ्चम्यन्तम्, ईट् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **उतो वृद्धिर्लुकि हलि** से **हलि** और **नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके** से **पिति** एवं **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

ब्रू से परे हलादि पित् को ईट् का आगम होता है।

इस तरह तिप्, सिप् और मिप् में ही ईट् हो पाता है।

ब्रवीति। ब्रू से लट् में आह् आदि न होने के पक्ष में **ब्रू+ति** है। पित् ति को **ब्रुव ईट्** से ईट् का आगम होकर **ब्रू+ईति** बना। सार्वधातुकगुण होकर **ब्रो+ईति** हुआ। अव् आदेश होकर **ब्रवीति** सिद्ध हुआ। द्विवचन में पित् न होने के कारण ईट् नहीं होता। अतः **ब्रूतः** बनता है। बहुवचन में **ब्रू+अन्ति** है। **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् होकर **ब्र्+उव्+अन्ति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **ब्रुवन्ति** सिद्ध हुआ। सिप् और मिप् में ईट्, गुण और अव् आदेश होते है तथा शेष में कुछ नहीं होता। इस तरह **ब्रू** के परस्मैपद में रूप बनते हैं- आह-ब्रवीति, आहतुः-ब्रूतः, आहुः-ब्रुवन्ति, आत्थ-ब्रवीषि, आहथुः-ब्रूथः, ब्रूथ, ब्रवीमि, ब्रूवः, ब्रूमः। आत्मनेपद में ङित्त्व के कारण कहीं भी गुण नहीं होगा और पित् न होने से ईट् भी नहीं होगा। अजादि प्रत्ययों के परे उवङ् होता है। इस तरह रूप बनते हैं- ब्रूते, ब्रुवाते, ब्रुवते, ब्रूषे, ब्रुवाथे, ब्रूध्वे, ब्रुवे, ब्रूवहे, ब्रूमहे।

५९७- ब्रुवो वचिः। ब्रुवः षष्ठ्यन्तं, वचिः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुके** का अधिकार है।

आर्धधातुक की विवक्षा में ब्रू के स्थान पर वच् आदेश होता है।

उवाच। ब्रू से लिट् लकार में आर्धधातुकसंज्ञा होती ही है, उसकी विवक्षा में **ब्रुवो वचि** से वच् आदेश हुआ। उसके बाद, परस्मैपद में तिप्, णल् होकर **वच्+अ** बना। **वच्** को द्वित्व, हलादिशेष होकर **व+वच्+अ** बना। **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** से अभ्यास के वकार को सम्प्रसारण होकर उकार और **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **उवच्+अ** बना। **अत उपधायाः** से वृद्धि होकर **उवाच** सिद्ध हुआ। द्विवचन में तो **वचिस्वपियजादीनां किति** से द्वित्व के पहले ही सम्प्रसारण होकर **उच्+अतुस्** बनता है। उच् को द्वित्व, हलादिशेष की प्रक्रिया में चकार का लोप होकर **उ+उच्+अतुस्** बना। सवर्णदीर्घ, वर्णसम्मेलन और सकार को रुत्वविसर्ग करके **ऊचतुः** सिद्ध होता है। इसी तरह बहुवचन में **ऊचुः** बनता है। **थल्** में क्रादिनियम से इट् की प्राप्ति, **उपदेशेऽत्वतः** से इट् का निषेध, पुनः **ऋतो भारद्वाजस्य** के अनुसार वैकल्पिक इट् होता है। इट् के पक्ष में **वच्+इथ** ऐसी स्थिति है। वच् को द्वित्व, हलादिशेष, सम्प्रसारण करके **उवच्+इथ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **उवचिथ** सिद्ध हुआ। इट् न होने के पक्ष में चकार को **चोः कुः** से कुत्व करके **उवक्थ** बनता है। इस तरह परस्मैपद लिट् में रूप बनते हैं- उवाच, ऊचतुः, ऊचुः, उवचिथ-उवक्थ, ऊचथुः, ऊच। उवाच-उवच, ऊचिव, ऊचिम।

च्लेरङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

५९८. अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ३।१।५२॥

एभ्यश्च्लेरङ् स्यात्।

उमागमविधायकं विधिसूत्रम्

५९९. वच उम् ७।४।२०॥

अङि परे। अवांचत्, अवोचत। अवक्ष्यत्, अवक्ष्यत।

गणसूत्रम्- **चर्करीतं च।** चर्करीतमिति यङ्लुगन्तस्य संज्ञा, तददादौ बोध्यम्।

ऊर्णुञ् आच्छादने॥२५॥

....

लिट् के आत्मनेपद में- वचिस्वपियजादीनां किति से पहले ही सम्प्रसारण होकर रूप बनते हैं- ऊचे, ऊचाते, ऊचिरे, ऊचिषे, ऊचाथे, ऊचिध्वे, ऊचे, ऊचिवहे, ऊचिमहे।

लुट्- वच्+तास्+डा, वच्+ता, **चोः कुः** से कुत्व होकर **वक्ता।** वक्ता, वक्तारौ, वक्तारः, वक्तासि। वक्तासे, वक्तासाथे, वक्ताध्वे, वक्ताहे, वक्तास्वहे, वक्तास्महे।

लृट्- वच्+स्यति, कुत्व, पत्व, क्षत्व होकर **वक्ष्यति** बनता है। वक्ष्यते।

लोट्- ब्रवीतु-ब्रूतात्, ब्रूताम्, ब्रुवन्तु, ब्रूहि-ब्रूतात्, ब्रूतम्, ब्रूत, ब्रवाणि, ब्रवाव, ब्रवाम। **आत्मनेपद-** ब्रूताम्, ब्रुवाताम्, ब्रुवताम्, ब्रूष्व, ब्रुवाथाम्, ब्रूध्वम्, ब्रवै, ब्रवावहै, ब्रवामहै।

लङ्- अब्रवीत्, अब्रूताम्, अब्रुवन्, अब्रवीः, अब्रूतम्, अब्रूत, अब्रवम्, अब्रूव, अब्रूम। **आत्मनेपद-** अब्रूत, अब्रुवाताम्, अब्रुवत, अब्रूथाः, अब्रुवाथाम्, अब्रूध्वम्, अब्रुवि, अब्रूवहि, अब्रूमहि।

विधिलिङ्- ब्रूयात्, ब्रूयाताम्, ब्रूयुः, ब्रूयाः। ब्रुवीत, ब्रवीयाताम्, ब्रुवीरन्।

आशीर्लिङ्- उच्यात्, उच्यास्ताम्, उच्यासुः। वक्षीष्ट, वक्षीयास्ताम्, वक्षीरन्।

५९८- **अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्।** अस्यतिश्च वक्तिश्च ख्यातिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः अस्यतिवक्तिख्यातयः, तेभ्यः अस्यतिवक्तिख्यातिभ्यः। अस्यतिवक्तिख्यातिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अङ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **च्लेः सिच्** से **च्लेः** की, **णिश्रिदुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्** से **कर्तरि** और **च्लि लुङि** से **लुङि** की अनुवृत्ति आती है।

अस्, वच् और ख्या इन धातुओं से परे च्लि के स्थान पर अङ् आदेश होता है।

५९९- **वच उम्।** वचः षष्ठ्यन्तम्, उम् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ऋदृशोऽङि गुणः** से **अङि** की अनुवृत्ति आती है।

अङ् के परे होने पर वच् धातु को उम् का आगम होता है।

मकार की इत्संज्ञा होती है। मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात् परः** से अन्त्य अच् वकारोत्तरवर्ती अकार के बाद और चकार के पहले होता है।

अवोचत्। ब्रू से लुङ् की विवक्षा में **ब्रुवो वचि** से वच् आदेश, लुङ्, अट् का आगम, ति, करके अवच्+त् बना। च्लि, उसके स्थान पर सिच् प्राप्त, उसे बाधकर के

वैकल्पिकवृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

६००. ऊर्णोतेर्विभाषा ७।३।९०॥

वा वृद्धिः स्याद् हलादौ पिति सार्वधातुके।

ऊर्णौति, ऊर्णोति। ऊर्णुतः, ऊर्णुवन्ति। ऊर्णुते। ऊर्णुवाते। ऊर्णुवते।

वार्तिकम्- उर्णोतेराम्नेति वाच्यम्।

....

अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् से अङ् आदेश करके **अवच्+अत्** बना। **वच उम्** से उम् का आगम, **अव+उच्+अत्** बना। **अव+उच्** में गुण होकर **अवोच्** बना। आगे वर्णसम्मेलन करके **अवोचत्** सिद्ध हुआ। इसी तरह ही आत्मनेपद में भी होता है।

लुङ्- अवोचत्, अवोचताम्, अवोचन्, अवोचः, अवोचतम्, अवोचत, अवोचम्, अवोचाव, अवोचाम। अवोचत, अवोचेताम्, अवोचन्त, अवोचथाः, अवोचेथाम्, अवोचध्वम्, अवोचे, अवोचावहि, अवोचामहि। **लृङ्-** अवक्ष्यत्। अवक्ष्यत।

चर्करीतं च। इसे गणसूत्र माना जाता है। **चर्करीत** यह यङ्लुगन्त की संज्ञा है, इसे अदादिगण में मानना चाहिए। यह वचन पाणिनि जी ने धातुपाठ के अदादिगण में पढ़ा है। इसका तात्पर्य यह है कि **चर्करीत** को अदादिगण में गिना जाये। पाणिनि से पूर्ववर्ती आचार्यों ने यङ्लुगन्त धातुओं को **चर्करीत** संज्ञा दी थी। उसी का व्यवहार पाणिनि जी ने यहाँ पर किया है। **चर्करीत** का अदादिगण में पाठ करने से यङ्लुगन्त में **अदिप्रभृतिभ्यः शपः** से **शप्** का लुक् हो सकता है।

ऊर्णुञ् आच्छादने। ऊर्णुञ् धातु **आच्छादन** अर्थात् **ढकने** के अर्थ में है। ञकार की इत्संज्ञा होती है, **ऊर्णु** शेष रहता है। ञित् होने से उभयपदी है और अनेकाच् होने से सेट् है।

६००- **ऊर्णोतेर्विभाषा।** ऊर्णोतेः षष्ठ्यन्तं, विभाषा प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **उतो वृद्धिर्लुकि हलि** से **वृद्धिः** और **हलि** की तथा **नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके** से **पिति** और **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

हलादि पित् सार्वधातुक के परे होने पर ऊर्णुञ् धातु की विकल्प से वृद्धि होती है।

लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् ये सार्वधातुक हैं और तिप, सिप्, मिप् ये पित् हैं। विधिलिङ् में यासुट् के ङित् होने के कारण वृद्धि का निषेध होता है।

ऊर्णौति, ऊर्णोति। ऊर्णु से लट्, तिप्, शप्, उसका लुक् करके **ऊर्णु+ति** है। **ति** के पित् होने के कारण **ऊर्णोतेर्विभाषा** से **णु** के उकार की विकल्प से औ के रूप में वृद्धि होकर **ऊर्णौति** सिद्ध हुआ। वृद्धि न होने के पक्ष में **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से ओकार गुण होकर **ऊर्णोति** बना। इसी तरह सिप् और मिप् में भी दो-दो रूप बनते हैं। द्विवचन में तो अपित् सार्वधातुक होने के कारण ङित् है, अतः गुण भी निषिद्ध है- **ऊर्णुतः।** बहुवचन में **झि** के स्थान पर **अन्त्** आदेश होने के बाद अजादि मिलता है। अतः **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से णु के उकार के स्थान पर **उवङ्** होकर **ऊर्णुवन्ति** बनता है। आत्मनेपद में सभी अपित् हैं अतः ङित् हो जाते हैं। अतः वृद्धि भी नहीं होगी और गुण भी नहीं होगा।

द्वित्वनिषेधकसूत्रम्

६०१. न न्द्राः संयोगादयः ६।१।३॥

अचः पराः संयोगादयो नदरा द्विर्न भवन्ति। नु शब्दस्य द्वित्वम्। ऊर्णुनाव। ऊर्णुनुवतुः। ऊर्णुनुवुः।

वैकल्पिकङिद्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्

६०२. विभाषोर्णोः १।२।३॥

इडादिप्रत्ययो वा ङित् स्यात्। ऊर्णुनुविथ, ऊर्णुनविथ। ऊर्णुविता, ऊर्णविता। ऊर्णुविष्यति, ऊर्णविष्यति। ऊर्णौतु, ऊर्णोतु। ऊर्णवानि। ऊर्णवै।

....

लट्, परस्मैपद- ऊर्णौति-ऊर्णोति, ऊर्णुतः, ऊर्णुवन्ति, ऊर्णौषि-ऊर्णोषि, ऊर्णुथः, ऊर्णुथ, ऊर्णौमि-ऊर्णोमि, ऊर्णुवः, ऊर्णुमः। **आत्मनेपद**- ऊर्णुते, ऊर्णुवाते, ऊर्णुवते, ऊर्णुषे, ऊर्णुवाथे, ऊर्णुध्वे, ऊर्णुवे, ऊर्णुवहे, ऊर्णुमहे।

वार्तिकम्- **ऊर्णोतेराम्नेति वाच्यम्।** ऊर्णुञ् धातु से लिट् में आम् नहीं होता है। **कास्यनेकाच आम् वक्तव्यः** को बाधकर **इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः** से आम् प्राप्त होता है। उसका यह वार्तिक निषेध करता है।

६०१- **न न्द्राः संयोगादयः।** न् च द् च रश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो न्द्राः। संयोगस्य आदयः संयोगादयः। न अव्ययपदं, न्द्राः प्रथमान्तं, संयोगादयः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अजादेर्द्वितीयस्य** से अजादेः और **एकाचो द्वे प्रथमस्य** से द्वे की अनुवृत्ति आती है।

अच् से परे संयोग के आदि में स्थित नकार, दकार और रकार को द्वित्व नहीं होता है।

ऊर्णु आदिभूत अच् वाला अनेकाच् धातु है। अतः **अजादेर्द्वितीयस्य** के नियम से द्वितीय एकाच **र्णु** को द्वित्व प्राप्त है। र्णु में रेफ को द्वित्व करना आचार्य को अभीष्ट नहीं था। अतः इस सूत्र से रेफ के द्वित्व का निषेध किया गया। अब णु को द्वित्व किया जा सकता है क्या? नहीं, क्योंकि रेफ के योग में नकार को णत्व हुआ था। अब रेफ के अलग हो जाने से **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के नियम से णकार भी नकार को प्राप्त होता है। इस तरह णु भी नु के रूप में आयेगा और केवल **नु** मात्र को द्वित्व होगा।

ऊर्णुनाव। ऊर्णु से लिट्, तिप्, णल् करके ऊर्णु+अ बना। **ऊर्+णु** में णु को नु मानकर द्वित्व हुआ- ऊर्+णु+नु+अ बना। नु को **अचो ञ्णिति** से वृद्धि होकर **ऊर्णुनौ+अ** बना। आव् आदेश और वर्णसम्मेलन करके **ऊर्णुनाव** सिद्ध हुआ। अतुस् के परे वृद्धि प्राप्त नहीं है, अतः **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से नु के उकार के स्थान पर उवङ् होकर **ऊर्णु+न्+उव्+अतुस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **ऊर्णुनुवतुः** सिद्ध हुआ। बहुवचन में भी इसी तरह **ऊर्णुनुवुः** बनता है।

६०२- **विभाषोर्णोः।** विभाषा प्रथमान्तम्, ऊर्णोः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **विज इट्** से इट् और **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्** से ङित् की अनुवृत्ति आती है।

ऊर्णुञ् धातु से परे इट् आदि में हो ऐसा प्रत्यय विकल्प से ङित् होता है।

लिट् में थल्, व, म में इट् होता है और तासि, स्य, सिच् को भी इट् होता है।

इनमें इस सूत्र से वैकल्पिक ङित् का अतिदेश कर देने से **क्ङिति च** से गुण का निषेध हो जाता है। गुणाभाव में इट् को अजादि मानकर उवङ् आदेश और ङित् न होने के पक्ष में गुण होकर दो-दो रूप सिद्ध होते हैं।

ऊर्णुनुविथ, ऊर्णुनविथ। मध्यमपुरुष के एकवचन सिप्, उसके स्थान पर थल् होने के बाद इट् का आगम और नु को द्वित्व करके **उर्णु+नु+इथ** बना है। यहाँ पर पित् होने के कारण ङित् नहीं था। अतः नित्य सार्वधातुक गुण प्राप्त था किन्तु **विभाषोर्णोः** से ङिद्वद्भाव कर देने के कारण गुणनिषेध हो गया। नु के उकार को उवङ् होकर **ऊर्णु+न्+उव्+इथ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **ऊर्णुनुविथ** बना। ङित् वैकल्पिक है, ङित् न होने के पक्ष में **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से नु के उकार को गुण होकर **ओकार** हुआ, **ऊर्णुनो+इथ** बना। ओकार के स्थान पर अव् आदेश और वर्णसम्मेलन होकर **ऊर्णुनविथ** सिद्ध हुआ। द्विवचन और बहुवचन में उवङ् होकर **ऊर्णुनुवथुः, ऊर्णुनुव।** प्रथमपुरुष के एकवचन की तरह उत्तमपुरुष के एकवचन में बनता है किन्तु **णलुत्तमो वा** से वैकल्पिक णित् होने से **ऊणुनाव-ऊणुनव** ये दो रूप बनते हैं। द्विवचन और बहुवचन में इट् आदि में होने के कारण **विभाषोर्णोः** से वैकल्पिक ङित् तो होता है किन्तु **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित्त्व हो जाने के कारण गुण नहीं हो पाता। अतः उवङ् वाले एक-एक ही रूप बनते हैं-**ऊर्णुनुविव, ऊर्णुनुविम।** आत्मनेपद में से, ध्वे, वहे, महे को इट् तो हो जाता है किन्तु **असंयोगाल्लिट् कित्** से नित्य कित्त्व हो जाने के कारण गुणनिषेध हो जाता है और उवङ् होकर रूप बनते हैं।

लिट् के परस्मैपद के रूप- ऊर्णुनाव, ऊर्णुनुवतुः, ऊर्णुनुवुः, ऊर्णुनुविथ-ऊर्णुनविथ, ऊर्णुनुवथुः, ऊर्णुनव, ऊर्णुनाव-ऊर्णुनव, ऊर्णुनुविव, ऊर्णुनुविम। **आत्मनेदपद में**- ऊर्णुनुवे, ऊर्णुनुवाते, ऊर्णुनुविरे, ऊर्णुनुविषे, ऊर्णुनुवाथे, ऊर्णुनुविढ्वे-ऊर्णुनुविध्वे(**विभाषेटः**) ऊर्णुनुवे, ऊर्णुनुविवहे, ऊर्णुनुविमहे।

लुट् में- इडादिप्रत्यय होने के कारण विकल्प से ङित् होकर ङित् के पक्ष में उवङ् और ङित् के अभाव में गुण अवादेश होकर दो-दो रूप सिद्ध होते हैं। **परस्मैपद के ङित्त्वपक्ष में**- ऊर्णुविता, ऊर्णुवितारौ, ऊर्णुवितारः, ऊर्णुवितासि, ऊर्णुवितास्थः, ऊर्णुवितास्थ, ऊर्णुवितास्मि, ऊर्णुवितास्वः, ऊर्णुवितास्मः। **ङित्त्वाभावपक्षे**- ऊर्णविता, ऊर्णवितारौ, ऊर्णवितारः, ऊर्णवितासि, ऊर्णवितास्थः, ऊर्णवितास्थ, ऊर्णवितास्मि, ऊर्णवितास्वः, ऊर्णवितास्मः। **आत्मनेपद में**- ऊर्णुवितासे-ऊर्णवितासे।

लृट् में भी लुट् की तरह ही दो-दो रूप बनते हैं। **ऊर्णुविष्यति-ऊर्णविष्यति। ऊर्णुविष्यते-ऊर्णविष्यते।**

लोट्- परस्मैपद के प्रथमपुरुष के एकवचन में **लट्** की तरह वैकल्पिक वृद्धि करके **एरुः** से उत्व करके **ऊर्णौतु-ऊर्णोतु** बनते हैं। **तातङ्** होने के पक्ष में ङित् होने के कारण पित् नहीं होगा, क्योंकि **भाष्य** में **ङिच्च पिन्न, पिच्च ङिन्न** कहा गया है। पित् न होने के कारण वैकल्पिक वृद्धि भी नहीं होगी, अतः **ऊर्णुतात्** बनता है। इस तरह तीन रूप बने। सिप् में हि होने के पक्ष में **ऊर्णुहि** बनता है। यहाँ पर **उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्** से हि का लुक् नहीं होता, क्योंकि वह सूत्र असंयोगपूर्व होने पर करता है यह धातु संयोगपूर्व है और तातङ् के पक्ष में **ऊर्णुतात्** बनता ही है। उत्तमपुरुष में **आडुत्तमस्य पिच्च** से आट् आगम होता है। आगम के पित् होने पर भी हलादि के अभाव में **ऊर्णोतेर्विभाषा** से वैकल्पिक वृद्धि नहीं होती। गुण होकर

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

६०३. गुणोऽपृक्ते ७।३।९१॥

ऊर्णोतेर्गुणोऽपृक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके। वृद्ध्यपवादः। और्णोत्। और्णोः। ऊर्णुयात्। ऊर्णुयाः। ऊर्णुवीत। ऊर्णूयात्। ऊर्णुविषीष्ट। ऊर्णविषीष्ट।

....

ऊर्णो+आनि, अव् आदेश और वर्णसम्मेलन होकर **ऊर्णवानि**। आत्मनेपद के रूप सामान्य हैं। **परस्मैपद के रूप**- ऊर्णौतु-ऊर्णोतु-ऊर्णुतात्, ऊर्णुताम्, ऊर्णुवन्तु, ऊर्णुहि-ऊर्णुतात्, ऊर्णुतम्, ऊर्णुत, ऊर्णवानि, ऊर्णवाव, ऊर्णवाम। **आत्मनेपद में**- ऊर्णुताम्, ऊर्णुवाताम्, ऊर्णुवताम्, ऊर्णुष्व, ऊर्णुवाथाम्, ऊर्णुध्वम्, ऊर्णवै, ऊर्णवावहै, ऊर्णवामहै।

६०३- **गुणोऽपृक्ते**। गुणः प्रथमान्तम्, अपृक्ते सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **उतो वृद्धिर्लुकि हलि** से **हलि, नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके** से **पिति, सार्वधातुके** और **ऊर्णोतेर्विभाषा** से **ऊर्णोतेः** की अनुवृत्ति आती है।

अपृक्त हलादि पित् सार्वधातुक के परे होने पर ऊर्णु को गुण होता है।

यह सूत्र **ऊर्णोतेर्विभाषा** का अपवाद है। यहाँ अपृक्त हल् तिप् और सिप् सम्बन्धी ही मिलता है।

और्णोत्। ऊर्णु से लङ्, अजादि होने के कारण **आडजादीनाम्** से आट् का आगम, तिप्, शप्, शप् का लुक् करके **आ+ऊर्णु+त्** बना। **आ+ऊर्णु** में **आटश्च** से वृद्धि होकर **और्णु+त्** बना। **णु** के उकार को **ऊर्णोतेर्विभाषा** से वैकल्पिक वृद्धि प्राप्त थी, उसे बाधकर **गुणोऽपृक्ते** से गुण होकर **और्णोत्** सिद्ध हुआ। यही प्रक्रिया सिप् में भी होती है किन्तु वहाँ पर अपृक्त सकार का रुत्व विसर्ग होकर **और्णोः** बन जाता है। मिप् के स्थान पर अम् आदेश होने के कारण अपृक्त नहीं मिलता। फलतः हलादि न होने से वृद्धि और अपृक्त न होने से विशेष गुण ये दोनों नहीं होते। अतः सार्वधातुकगुण होकर **और्णवम्** बनता है। शेष जगहों पर गुण नहीं होता। आत्मनेपद में भी गुण का प्रसंग नहीं है, क्योंकि न तो पित् मिलता है और न ही अपृक्त।

लङ्- परस्मैपद के रूप- और्णोत्, और्णुताम्, और्णुवन्, और्णोः, और्णुतम्, और्णुत, और्णवम्, और्णुव, और्णुम। **आत्मनेपद**- और्णुत, और्णुवाताम्, और्णुवत, और्णुथाः, और्णुवाथाम्, और्णुध्वम्, और्णवि, और्णुवहि, और्णुमहि।

विधिलिङ् में यासुट् ङित् है, अतः पित् नहीं हो सकता। फलतः वैकल्पिक वृद्धि नहीं होगी और ङित्त्व के कारण सार्वधातुकगुण का भी निषेध होगा। आत्मनेपद में सीयुट् के सकार का **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** से लोप होने के कारण अच् मिलता है, अतः उवङ् होकर रूप सिद्ध होते हैं। **परस्मैपद**- ऊर्णुयात्, ऊर्णुयाताम्, ऊर्णुयुः, ऊर्णुयाः, ऊर्णुयातम्, ऊर्णुयात, ऊर्णुयाम्, ऊर्णुयाव, ऊर्णुयाम। **आत्मनेपद**- ऊर्णुवीत, ऊर्णुवीयाताम्, ऊर्णुवीरन्, ऊर्णुवीथाः, ऊर्णुवीयाथाम्, ऊर्णुवीध्वम्, ऊर्णुवीय, ऊर्णुवीवहि, ऊर्णुवीमहि।

आशीर्लिङ् के परस्मैपद में **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से दीर्घ होता है और आत्मनेपद में सीयुट्, सुट्, इट् आदि होकर **उर्णु+इ+सीस्+त** है, **विभाषोर्णोः** से इडादिप्रत्यय को विकल्प से ङित् होकर उवङ् और अङित् के पक्ष में आर्धधातुकगुण

वैकल्पिकवृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

६०४. ऊर्णोतेर्विभाषा ७।२।६।।

इडादौ सिचि वा वृद्धिः परस्मैपदे परे। पक्षे गुणः। और्णावीत्, और्णुवीत्, और्णवीत्। और्णाविष्टाम्, और्णुविष्टाम्, और्णविष्टाम्। और्णुविष्ट, और्णविष्ट। और्णुविष्यत्, और्णविष्यत्। और्णुविष्यत, और्णविष्यत।।

इत्यदादयः।।१३।।

....

होकर रूप बनते हैं। **परस्मैपद**- ऊर्णूयात्, ऊर्णूयास्ताम्, ऊर्णूयासुः आदि। **आत्मनेपद, ङित्त्वपक्ष में उवङ्**- ऊर्णुविषीष्ट, ऊर्णुविषीयास्ताम्, ऊर्णुविषीरन्, ऊर्णुविषीष्ठाः, ऊर्णुविषीयास्थाम्, ऊर्णुविषीढ्वम्-ऊर्णुविषीध्वम्, ऊर्णुविषीय, ऊर्णुविषीवहि, ऊर्णुविषीमहि। **अङित् के पक्ष में गुण**- ऊर्णविषीष्ट, ऊर्णविषीयास्ताम्, ऊर्णविषीरन् आदि।

६०४- **ऊर्णोतेर्विभाषा**। ऊर्णोतेः षष्ठ्यन्तं, विभाषा प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है और **नेटि** से इटि की अनुवृत्ति आती है।

परस्मैपद सिच् के परे होने पर जो इडादि सिच् उसके परे रहते ऊर्णु धातु को विकल्प से वृद्धि होती है।

और्णावीत्। लुङ्, आट् आगम, तिप्, च्लि, सिच् करके ह्रस्व इडागम और दीर्घ ईडागम करने के बाद **आ+ऊर्णु+इस्+ईत्** बना है। ऊर्णु के उकार की **ऊर्णोतेर्विभाषा** से वैकल्पिक वृद्धि करके **आ+ऊर्णौ+इस्+ईत्** बना। **आ+ऊ** में **आटश्च** से वृद्धि होकर **और्णौ+इस्+ईत्** बना। औकार को आव् आदेश करके **इट ईटि** से सकार का लोप और इ+ई में सवर्णदीर्घ करके वर्णसम्मेलन करने पर **और्णावीत्** सिद्ध हुआ। वृद्धि न होने के पक्ष में **विभाषोर्णोः** से वैकल्पिक ङित्त्व होता है। ङित्त्व के पक्ष में उवङ् और अङित् में आर्धधातुकगुण होकर **और्णुवीत्** और **और्णवीत्** ये रूप बनते हैं। इस तरह तीन-तीन रूप बन गये।

लुङ्(परस्मैपद) वृद्धिपक्ष में- और्णावीत्, और्णाविष्टाम्, और्णाविषुः, और्णावीः, और्णाविष्टम्, और्णाविष्ट, और्णाविषम्, और्णाविष्व, और्णाविष्म। **वृद्ध्यभावे ङित्त्वपक्षे उवङ्**- और्णुवीत्, और्णुविष्टाम्, और्णुविषुः, और्णुवीः, और्णुविष्टम, और्णुविष्ट, और्णुविषम्, और्णुविष्व, और्णुविष्म। **ङित्त्वाभावे गुणः**- और्णवीत्, और्णविष्टाम्, और्णविषुः आदि।

लृङ् में- इडादिप्रत्यय के परे विकल्प से ङित् होकर ङित्त्वपक्ष में उवङ् और ङित्त्वाभाव में गुण होकर दो-दो रूप बनते हैं। परस्मैपद में- **और्णुविष्यत्-और्णविष्यत्**। आत्मनेपद में- **और्णुविष्यत-और्णविष्यत**।

परीक्षा

द्रष्टव्यः- प्रत्येक प्रश्न पाँच-पाँच अंक के हैं।

१- भ्वादि और अदादिप्रकरण में मूलभूत अन्तर क्या है?

२- लुक् और लोप में क्या अन्तर है?

३- शासिवसिघसीनाञ्च में कौन-कौन पद कहाँ-कहाँ से अनुवृत्त होते हैं?

४- किन-किन लकारों के किन-किन प्रत्ययों को किन-किन सूत्रों से किद्वद्भाव किया जाता है?

५- यदि शप् का लुक् न होता तो अद् धातु के लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में कैसे रूप बनते?

६- अस् धातु के ङित् लकारों के रूप लिखिए।

७- वा धातु के टित् लकारों के रूप लिखिए।

८- अदादिगण में पढ़े गये सभी धातुओं के लोट् लकार में मध्यमपुरुष एकवचन के रूपों की सूत्र लगाकर सिद्धि कीजिए।

९- अदादिगणीय सभी आकारान्त धातुओं के लिट् लकार के रूप लिखिए।

१०- किस लकार की प्रक्रिया में आप कठिनाई अनुभव करते हैं, यदि करते हैं तो क्यों?

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का अदादिप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ जुहोत्यादयः

हु दानादनयोः॥१॥

शपः श्लुविधायकं विधिसूत्रम्

६०५. जुहोत्यादिभ्यः श्लुः २।४।७५॥

शपः श्लुः स्यात्।

द्वित्वविधायकं विधिसूत्रम्

६०६. श्लौ ६।१।१०॥

धातोर्द्वे स्तः। जुहोति। जुहुतः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब तिङन्तप्रकरण का तीसरा जुहोत्यादिप्रकरण आरम्भ होता है। इस गण के आदि में हु धातु है, अतः ह्वादिगण अर्थात् ह्वादिप्रकरण कहना चाहिए था किन्तु जुहोत्यादि कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकरण में **शप्** को **श्लु** (लोप जैसा) होता है और उसके होने के बाद धातु को द्वित्व हो जाता है। जैसे **हु** धातु से **ति** के परे होने पर शप् को श्लु और धातु को द्वित्व होकर **जुहोति** रूप बनता है। गण की इस विशेषता को दिखाने के लिए **जुहोत्यादि** कहा गया। **जुहोतिः (हु धातुः) आदिरस्ति येषां ते जुहोत्यादयः।**

हु धातु **देना और खाना** अर्थ में है। लोक में यज्ञ करने के अर्थ में इसका प्रयोग ज्यादा होता है। यह धातु अनिट् है।

६०५- जुहोत्यादिभ्यः श्लुः। जुहोतिरादिर्येषां ते जुहोत्यादयः, तेभ्यो जुहोत्यादिभ्यः। जुहोत्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, श्लुः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अदिप्रभृतिभ्यः शपः** से **शपः** की अनुवृत्ति आती है।

जुहोत्यादिगण में पठित धातुओं से परे शप् का श्लु आदेश है।

श्लु भी एक तरह का लोप ही है। जैसे अदादिगण में लुक् को भी लोप माना गया, उसी तरह श्लु को भी लोप ही समझा जाता है।। श्लु करने का विशेष कारण यह है कि श्लु के बाद **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** से प्राप्त प्रत्ययलक्षण कार्य का **न लुमताङ्गस्य** से निषेध किया जाता है जिससे शप् आदि के लुक् होने पर उसको मानकर होने वाले कार्य भी रूक जाते हैं।

अदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६०७. अदभ्यस्तात् ७।१।४।।

झस्यात् स्यात्। हुश्नुवोरिति यण्। जुह्वति।

आमादिविधायकं विधिसूत्रमतिदेशसूत्रञ्च

६०८. भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ३।१।३९।।

एभ्यो लिटि आम् वा स्यादामि श्लाविव कार्यञ्च।

जुहवाञ्चकार, जुहाव। होता। होष्यति। जुहोतु, जुहुतात्। जुहुताम्। जुह्वतु। जुहुधि। जुहवानि। अजुहोत्। अजुहुताम्।

....

६०६- **श्लौ**। श्लौ सप्तम्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से **धातोः** की तथा **एकाचो द्वे प्रथमस्य** से **द्वे** की अनुवृत्ति आती है।

श्लु के परे होने पर धातु को द्वित्व होता है।

जुहोति। हु धातु से लट्-लकार, उसके स्थान पर तिप् आदेश, अनुबन्धलोप, ति की सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, उसका **जुहोत्यादिभ्यः श्लुः** से श्लु(लोप)। हु ति में शप् को श्लु हुआ है, उसके होने पर धातु को **श्लौ** से द्वित्व, हुहु ति। इस प्रकरण में द्वित्व होने पर प्रथम की अभ्याससंज्ञा तो होती ही है। अभ्यास हु को **कुहोश्चुः** से चुत्व होकर हकार को झकार, उसके स्थान पर **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर जु बना। जुहु+ति हुआ। ति को सार्वधातुक मानकर हु के उकार को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण, **जुहोति**।

तिप्, सिप्, मिप् को छोड़कर अन्य प्रत्ययों को **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव हो जाने के कारण उनके परे होने पर **क्ङिति च** से गुण का निषेध हो जाता है। अतः द्विवचन आदि में गुण नहीं होता। **जुहुतः**।

६०७- **अदभ्यस्तात्**। अत् प्रथमान्तम्, अभ्यस्तात् पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **झोऽन्तः** से **झः** तथा **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से वचनविपरिणाम करके **प्रत्ययादेः** की अनुवृत्ति आती है।

अभ्यस्तसंज्ञक धातु से परे प्रत्यय के आदि अवयव झकार के स्थान पर अत् आदेश होता है।

जुह्वति। हु धातु से प्रथमपुरुष के बहुवचन में झि आया, शप्, उसका श्लु, हु को द्वित्व, हुहु झि बना, **कुहोश्चुः** से कुत्व और **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर **जुहु** बना। जुहु की **उभे अभ्यस्तम्** से अभ्यस्तसंज्ञा हुई, **अदभ्यस्तात्** से झि के झकार के स्थान पर अत् आदेश हुआ- **अत्+इ=अति** बना। **जुहु+अति** में **इको यणचि** से यण् प्राप्त था, उसे बाधकर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् प्राप्त था, उसे भी बाधकर **हुश्नुवोः सार्वधातुके** से द्वितीय हु के उकार को यण् होकर व् आदेश हुआ, **जुह्व्+अति** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **जुह्वति**।

हु धातु के लट् के रूप- **जुहोति, जुहुतः, जुह्वति। जुहोषि, जुहुथः, जुहुथ। जुहोमि, जुहुवः, जुहुमः।**

६०८- भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च। भीश्च ह्रीश्च भा च हुश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो भीह्रीभृहुवः, तेषां भीह्रीभृहुवाम्। श्लौ इव इति श्लुवत्, इवार्थे वतिप्रत्ययः। भीह्रीभृहुवां षष्ठ्यन्तं, श्लुवत् अव्ययं, च अव्ययं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि** से **लिटि** और **उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है।

भी, ह्री, भृ और हु धातुओं से वैकल्पिक आम् और आम् के परे होने पर श्लु के समान द्वित्व आदि कार्य भी हों।

यह सूत्र पहले तो आम् करेगा, फिर आम् में श्लुवद्भाव करता है। जिस प्रकार से श्लु को मानकर द्वित्व आदि कार्य होते हैं, उसी प्रकार आम को मानकर भी होंगे। आम् होने के बाद की प्रक्रिया तो **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि** से **कृ, भू, अस्** का अनुप्रयोग आदि होती ही हैं।

जुहवाञ्चकार। हु-धातु से लिट्, तिप्, णल्, अ। **हु+अ** में **भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च** से आम् और श्लुवद्भाव होने पर **श्लौ** से द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, **कुहोश्चुः** से चुत्व, **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होने के बाद **जु+हु+आम्+अ** बना। **आमः** से लिट् का लुक्, **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि** से **लिट्** को साथ लेकर **कृ** का अनुप्रयोग, **हु+आम्+कृ+लिट्** बना। **तिप्** आदेश होकर उसके स्थान पर णल् आदेश होकर **जु+हु+आम्+कृ+अ** बना। आम् तिङ् और शित् से भिन्न होने के कारण **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञक है। अतः उसके परे होने पर जुहु के उकार को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण होकर **जुहो+आम्** बना, अवादेश होकर **जुहवाम्** बना। आगे **कृ+अ** भी है। अब **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व, उरत्, रपर, हलादिशेष, चुत्व होकर **चकृ+अ** में **अचो ञ्णिति** से वृद्धि और वर्णसम्मेलन हुआ- **चकार** बना। **जुहवाम्+चकार** में मकार को **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार और **वा पदान्तस्य** से परसवर्ण करके **जुहवाञ्चकार** सिद्ध हो जाता है। अब आगे भी आप स्वयं बनाइये- जुहवाञ्चक्रतुः, जुहवाञ्चक्रुः। जुहवाञ्चकर्थ, जुहवाञ्चक्रथुः, जुहवाञ्चक्र, जुहवाञ्चकार-जुहवाञ्चकर, जुहवाञ्चकृव, जुहवाञ्चकृम।

भू के अनुप्रयोग होने पर- जुहवाम्बभूव, जुहवाम्बभूवतुः, जुहवाम्बभूवुः। जुहवाम्बभूविथ, जुहवाम्बभूवथुः, जुहवाम्बभूव। जुहवाम्बभूव, जुहवाम्बभूविव, जुहवाम्बभूविम।

अस् के अनुप्रयोग होने पर- जुहवामास, जुहवामासतुः, जुहवामासुः। जुहवामासिथ, जुहवामासथुः, जुहवामास। जुहवामास, जुहवामासिव, जुहवामासिम।

आम् आदि न होने के पक्ष में- हु से लिट्, तिप्, णल्, अ होकर **हु** को **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व, चुत्व, जश्त्व आदि होकर **जुहु+अ** में **अचो ञ्णिति** से वृद्धि, **जुहौ+अ,** आव् आदेश, वर्णसम्मेलन होकर **जुहाव** बनता है। अजादि के परे होने पर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से हु के उकार के स्थान पर उवङ्, अनुबन्धलोप, उव् शेष, वर्णसम्मेलन होकर **जुहुवतुः** आदि बनते हैं। इस तरह आप स्वयं- जुहाव, जुहुवतुः, जुहुवुः। जुहोथ-जुहविथ, जुहुवथुः, जुहुव। जुहाव-जुहव, जुहुविव, जुहुविम बनायें।

लुट् लकार के रूप (अनिट्)- होता, होतारौ, होतारः। होतासि, होतास्थः, होतास्थ। होतास्मि, होतास्वः, होतास्मः।

लृट् के रूप- होष्यति, होष्यतः, होष्यन्ति। होष्यसि, होष्यथः, होष्यथ। होष्यामि, होष्यावः, होष्यामः।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

६०९. जुसि च ७।३।८३।।

इगन्ताङ्गस्य गुणोऽजादौ जुसि। अजुहवुः। जुहुयात्। हूयात्। अहौषीत्। अहोष्यत्। **ञिभी भये।।२।।** बिभेति।

....

लोट् लकार में- जुहोतु-जुहुतात्, जुहुताम्, जुह्वतु। **हुझल्भ्यो हेर्धिः** से हि को धि आदेश होकर- जुहुधि-जुहुतात्, जुहुतम्, जुहुत। जुहवानि, जुहवाव, जुहवाम।

लङ् लकार में- **अजुहोत्** और **अजुहुताम्** भी आप बना सकते हैं।

६०९- **जुसि च**। जुसि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **क्सस्याचि** से **अचि** तथा **मिदेर्गुणः** से **गुणः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

अजादि जुस् के परे होने पर इगन्त अङ्ग को गुण होता है।

अजुहवुः। हु धातु से प्रथमपुरुष बहुवचन झि, शप्, श्लु, द्वित्वादि, अट् आगम, झि के स्थान पर अत् आदेश प्राप्त, अभ्यस्तसंज्ञक होने के कारण उसे बाधकर **सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च** से जुस् आदेश, अनुबन्धलोप, **अजुहु+उस्** में **जुसि च** से गुण, **अजुहो+उस्**, अव् आदेश, वर्णसम्मेलन, सकार को रुत्वविसर्ग, **अजुहवुः**।

हु धातु के लङ् के रूप- **अजुहोत्, अजुहुताम्, अजुहवुः। अजुहोः, अजुहुतम्, अजुहुत। अजुहवम्, अजुहुव, अजुहुम।**

विधिलिङ् में हु धातु से शप्, श्लु, द्वित्व, यासुट् आदि करने पर निम्नानुसार रूप सिद्ध होते हैं- **जुहुयात्, जुहुयाताम्, जुहुयुः। जुहुयाः, जुहुयातम्, जुहुयात। जुहुयाम्, जुहुयाव, जुहुयाम।**

आशीर्लिङ् में हु धातु से यासुट् के परे होने पर **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से हु को दीर्घ होकर रूप सिद्ध होते हैं- **हूयात्, हूयास्ताम्, हूयासुः। हूयाः, हूयास्तम्, हूयास्त। हूयासम्, हूयास्व, हूयास्म।**

लुङ् लकार में हु धातु से लुङ्, अट्, तिप्, च्लि, सिच् आदेश, इकार का लोप, अपृक्त हल् को ईट् आगम करके **अहु+स्+ईत्** बना। सिच् वाले सकार के परे होने पर **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से हु के उकार की वृद्धि हुई, **अहौ+स्+ईत्** बना, षत्व और वर्णसम्मेलन करके **अहौषीत्** सिद्ध हुआ। ईट् आगम तो तिप् और सिप् में ही हो सकता है। अन्यत्र वृद्धि, षत्व और टुत्व आदि करके निम्नलिखित रूप बनते हैं- **अहौषीत्, अहौष्टाम्, अहौषुः। अहौषीः, अहौष्टम्, अहौष्ट। अहौषम्, अहौष्व, अहौष्म।**

लृङ् लकार में- **अहोष्यत्, अहोष्यताम्, अहोष्यन्। अहोष्यः, अहोष्यतम्, अहोष्यत। अहोष्यम्, अहोष्याव, अहोष्याम।**

ञिभी भये। ञिभी धातु डरना अर्थ में है। **ञि** की **आदिर्ञिटुडवः** से इत्संज्ञा होती है और उसका लोप होकर **भी** बचता है। ञीत् होने का फल **ञीतः क्तः** सूत्र की प्रवृत्ति है जो कृदन्तप्रकरणम् में स्पष्ट होगा। इसी धातु से भीम, भयानक, भय, भीति आदि शब्द बनते हैं। यह हु की तरह ही अनिट् है।

वैकल्पिकेकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६१०. भियोऽन्यतरस्याम् ६।४।११५॥

इकारो वास्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके। बिभितः, बिभीतः। बिभ्यति। बिभयाञ्चकार, बिभाय। भेता। भेष्यति। बिभेतु, बिभितात्, बिभीतात्। अबिभेत्। बिभीयात्। भीयात्। अभैषीत्। अभेष्यत्। **ह्री लज्जायाम्॥३॥** जिह्रेति। जिह्रीतः। जिह्रियति। जिह्रयाञ्चकार, जिह्राय। ह्रेता। ह्रेष्यति। जिह्रेतु। अजिह्रेत्। जिह्रीयात्। ह्रीयात्। अह्रैषीत्। अह्रेष्यत्।

पॄ पालनपूरणयोः॥४॥

....

बिभेति। भी से लट्, तिप्, शप्, उसका श्लु, **श्लौ** से द्वित्व करके **भीभी+ति** बना। पूर्व की अभ्याससंज्ञा करके **भी** को ह्रस्व और भकार को **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर **बिभी+ति** बना। द्वितीय भी के ईकार को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण होकर **बिभेति** सिद्ध हुआ। मध्यमपुरुष के एकवचन में **बिभेषि** और उत्तमपुरुष के एकवचन में **बिभेमि** बनते हैं।

६१०- **भियोऽन्यतरस्याम्।** भियः षष्ठ्यन्तम्, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इद् दरिद्रस्य** से **इत्**, **ई हल्यघोः** से **हलि**, **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से **क्ङिति** और **अत उत् सार्वधातुके** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

हलादि कित्, ङित् सार्वधातुक के परे होने पर धातु को विकल्प से इकार आदेश होता है।

अलोऽन्त्यस्य की उपस्थिति से अन्त्य वर्ण भी के ईकार के स्थान पर ह्रस्व इकार हो जाता है। वैकल्पिक होने के कारण एक पक्ष में ह्रस्व इकार और एक पक्ष में दीर्घ ईकार वाले रूप बनते हैं। तिप्, सिप्, मिप् को छोड़कर अन्य सभी **सार्वधातुकमपित्** से ङित् हैं। झि के झकार के स्थान पर **अदभ्यस्तात्** से **अत्** आदेश होने के कारण हलादि नहीं है, शेष सभी हलादि हैं। अतः दो-दो रूप होंगे।

बिभितः, बिभीतः। भी से तस्, शप्, श्लु, द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, ह्रस्व, जश्त्व करके **बिभी+तस्** बना। **भियोऽन्यतरस्याम्** से **भी** के **ईकार** के स्थान पर वैकल्पिक **इकार** आदेश होकर **बिभितस्** बना। सकार को रुत्व और विसर्ग होकर **बिभितः** सिद्ध हुआ। **इकार** आदेश न होने के पक्ष में **बिभीतः** बनता है। इस तरह दो रूप बन गये। आगे **थस्, थ, वस्, मस्** में भी इस तरह दो-दो रूप बनेंगे।

बिभ्यति। भी से प्रथमपुरुष का बहुवचन झि, उसके झकार के स्थान पर **अदभ्यस्तात्** से **अत्** आदेश होकर **बिभी+अति** बना है। हलादि न मिलने के कारण इकार आदेश नहीं होता किन्तु **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** से यण् होकर **बिभ्यति** बनता है।

लट् के रूप- बिभेति, बिभितः-बिभीतः, बिभ्यति, बिभेषि, बिभिथः-बिभीथः, बिभिथ-बिभीथ, बिभेमि, बिभिवः-बिभीवः, बिभिमः-बिभीमः।

लिट् में हु की तरह **भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च** से आम्, द्वित्व, गुण करके **बिभयाम्** बनाकर **कृञ्** का अनुप्रयोग करके **बिभयाञ्चकार**, **भू** का अनुप्रयोग करके **बिभयाम्बभूव**

और अस् का अनुप्रयोग करके बिभयामास आदि रूप बनते हैं। आम् आदि न होने के पक्ष में बिभाय बन जाता है।

लिट् के रूप- कृ के अनुप्रयोग में- बिभयाञ्चकार, बिभयाञ्चक्रतुः, बिभयाञ्चक्रुः, बिभयाञ्चकर्थ, बिभयाञ्चक्रथुः, बिभयाञ्चक्र, बिभयाञ्चकार-बिभयाञ्चकर, बिभयाञ्चकृव, बिभयाञ्चकृम। **भू** के अनुप्रयोग में- बिभयाम्बभूव, बिभयाम्बभूवतुः, बिभयाम्बभूवुः, बिभयाम्बभूविथ, बिभयाम्बभूवथुः, बिभयाम्बभूव, बिभयाम्बभूव, बिभयाम्बभूविव, बिभयाम्बभूविम। **अस्** के अनुप्रयोग में- बिभयामास, बिभयामासतुः, बिभयामासुः, बिभयामासिथ, बिभयामासथुः, बिभयामास, बिभयामास, बिभयामासिव, बिभयामासिम। **आम** आदि न होने के पक्ष में- बिभाय, बिभ्यतुः, बिभ्युः, बिभयिथ-बिभेथ, बिभ्यथुः, बिभ्य, बिभाय-बिभय, बिभ्यिव, बिभ्यिम। **लुट्-** भेता, भेतारौ, भेतारः। **लृट्-** भेष्यति, भेष्यतः, भेष्यन्ति। **लोट्-** बिभेतु-बिभितात्-बिभीतात्, बिभिताम्-बिभीताम्, बिभ्यतु, बिभिहि-बिभीहि-बिभितात्- बिभीतात्, बिभितम्-बिभीतम्, बिभित-बिभीत, बिभयानि, बिभयाव, बिभयाम।

लङ्- अबिभेत्, अबिभिताम्-अबिभीताम्, अबिभयुः। अबिभेः, अबिभितम्-अबिभीतम्, अबिभित-अबिभीत। अबिभयम्, अबिभिव-अबिभीव, अबिभिम-अबिभीम।

विधिलिङ्- में यासुट् होने से हलादि ङित् सार्वधातुक होने के कारण सर्वत्र वैकल्पिक इत्व हो जाता है। बिभियात्-बिभीयात्, बिभियाताम्-बिभीयाताम्, बिभियुः-बिभीयुः, बिभियाः-बिभीयाः, बिभियातम्-बिभीयातम्, बिभियात-बिभीयात, बिभियाम्-बिभीयाम्, बिभियाव-बिभीयाव, बिभियाम-बिभीयाम।

आशीर्लिङ्- भीयात्, भीयास्ताम्, भीयासुः, भीयाः, भीयास्तम्, भीयास्त, भीयासम्, भीयास्व, भीयास्म। **लुङ्- सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से वृद्धि होती है- अभैषीत्, अभैष्टाम्, अभैषुः, अभैषीः, अभैष्टम्, अभैष्ट, अभैषम्, अभैष्व, अभैष्म।

लृङ्- अभेष्यत्, अभेष्यताम्, अभेष्यन्, अभेष्यः, अभेष्यतम्, अभेष्यत, अभेष्यम्, अभेष्याव, अभेष्याम।

ह्री लज्जायाम्। ह्री धातु **लज्जा करना, शरमाना** अर्थ में है। इसमें किसी की इत्संज्ञा नहीं हुई है। आत्मनेपद के निमित्तों से रहित है, अतः परस्मैपदी है। अनिट् है। इसकी प्रक्रिया भी **भी** की तरह ही होती है किन्तु **भियोऽन्यतरस्याम्** नहीं लगेगा और संयोगपूर्व में होने के कारण **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** नहीं लगेगा। उस स्थल पर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इयङ् हो जायेगा। ह्री को द्वित्व होकर हलादिशेष, ह्रस्व होने पर **हि+ह्री** बनता है और **कुहोश्चुः** से चुत्व होकर झकार औ जश्त्व होकर जकार हो जाता है।
लट्- जिह्रेति, जिह्रीतः, जिह्रियति, जिह्रेषि, जिह्रीथः, जिह्रीथ, जिह्रेमि, जिह्रीवः, जिह्रीमः। **लिट्-** (आम् के पक्ष में) जिह्रयाञ्चकार, जिह्रयाम्बभूव, जिह्रयामास। (आम् के अभाव में) जिह्राय, जिह्रियतुः, जिह्रियुः, जिह्रयिथ-जिह्रेथ, जिह्रियथुः, जिह्रिय, जिह्राय-जिह्रय, जिह्रियिव, जिह्रियिम। **लुट्-** ह्रेता, ह्रेतारौ, ह्रेतारः, ह्रेतासि आदि। **लृट्-** ह्रेष्यति, ह्रेष्यतः, ह्रेष्यन्ति, ह्रेष्यसि आदि। **लोट्-** जिह्रेतु-जिह्रीतात्, जिह्रीताम्, जिह्रियतु, जिह्रीहि-जिह्रीतात्, जिह्रीतम्, जिह्रीत, जिह्रयाणि, जिह्रयाव, जिह्रयाम। **लङ्-** अजिह्रेत्, अजिह्रीताम्, अजिह्रयुः, अजिह्रेः, अजिह्रीतम्, अजिह्रीत, अजिह्रयम्, अजिह्रीव, अजिह्रीम। **विधिलिङ्-** जिह्रीयात्, जिह्रीयाताम्, जिह्रीयुः, जिह्रीयाः, जिह्रीयातम्, जिह्रीयात आदि। **आशीर्लिङ्-** ह्रीयात्, ह्रीयास्ताम्, ह्रीयासुः, ह्रीयाः, ह्रीयास्तम्, ह्रीयास्त, ह्रीयासम् आदि।

इकारान्तादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६११. अर्तिपिपर्त्योश्च ७।४।७७॥

अभ्यासस्य इकारोऽन्तादेशः स्यात् श्लौ। पिपर्ति।

उदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६१२. उदोष्ठ्यपूर्वस्य ७।१।१०२॥

अङ्गावयवौष्ठ्यपूर्वो य ॠत् तदन्तस्याङ्गस्य उत् स्यात्।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

६१३. हलि च ८।२।७७॥

रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घो हलि। पिपूर्तः। पिपुरति। पपार।

....

लुङ्- अह्वैषीत्, अह्वैष्टाम्, अह्वैष्ट, अह्वैषीः, अह्वैष्टम्, अह्वैष्ट, अह्वैषम्, अह्वैष्व, अह्वैष्म।
लृङ्- अह्वेष्यत्, अह्वेष्यताम्, अह्वेष्यन्।

पॄ पालनपूरणयोः। पॄ धातु **पालन करना** और **पूर्ण करना** अर्थ में है। दीर्घ ॠकारान्त है। दीर्घ-ॠकारान्त होने से इसको इट् हो जाता है अर्थात् सेट् है।

६११- अर्तिपिपर्त्योश्च। अर्तिश्च पिपर्तिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्व अर्तिपिपर्ती, तयोः अर्तिपिपर्त्योः। अर्तिपिपर्त्योः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य**, **भृञामित्** से **इत्** और **णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ** से **श्लौ** की अनुवृत्ति आती है।

ऋ-धातु और पॄ धातु के अभ्यास के अन्त्य वर्ण के स्थान पर इकार आदेश होता है श्लु के परे होने पर।

पिपर्ति। पॄ धातु से लट्, तिप्, शप्, श्लु, द्वित्व करके **पॄ+पॄ+ति** बना। उरत् से अर्, हलादिशेष करके **प+पॄ+ति** बना। अभ्यास के अकार के स्थान पर **अर्तिपिपर्त्योश्च** से इकार आदेश करने पर **पि+पॄ+ति** बना। अनभ्यास पॄ के ॠ को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण होकर **पिपर्+ति** बना। रेफ का ऊर्ध्वगमन होकर **पिपर्ति** सिद्ध हुआ।

६१२- उदोष्ठ्यपूर्वस्य। ओष्ठयोर्भवः ओष्ठ्यः। ओष्ठ्यः पूर्वो यस्य स ओष्ठ्यपूर्वः, तस्य ओष्ठ्यपूर्वस्य। उत् प्रथमान्तम्, ओष्ठ्यपूर्वस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ॠत इद्धातोः** से **ॠतः** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

अङ्ग का अवयव ओष्ठस्थान वाला वर्ण पूर्व में हो, ऐसा जो ॠवर्ण, तदन्त अङ्ग को उत् अर्थात् ह्रस्व उकार आदेश होता है।

पॄ धातु में आदि पकार ओष्ठस्थान वाला है। अतः यह सूत्र लगता है।

६१३- हलि च। हलि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सिपि धातो रुर्वा** से **धातोः** तथा **र्वोरुपधाया दीर्घ इकः** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

हल् के परे होने पर रेफान्त और वकारान्त धातु की उपधा रूप इक् को दीर्घ होता है।

र्वोरुपधाया दीर्घ इकः यह सूत्र पदान्त में दीर्घ करता है और यह सूत्र अपदान्त में भी हल् के परे होने पर दीर्घ करता है। दोनों सूत्रों में बस इतना ही अन्तर है।

पिपूर्तः। तस् में **अर्तिपिपर्त्योश्च** से इत्व करने के बाद **पि+पॄ+तस्** बना है।

वैकल्पिकह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्

६१४. शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा ७।४।१२॥

एषां लिटि ह्रस्वो वा स्यात्। पप्रतुः।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

६१५. ऋच्छत्यॄताम् ७।४।११॥

तौदादिकऋच्छेर्ऋधातोॠतां च गुणो लिटि। पपरतुः। पपरुः।

....

अलोऽन्त्यस्य की सहायता से अनभ्यास पॄ के ॠकार के स्थान पर **उदोष्ठ्यपूर्वस्य** से उत् अर्थात् ह्रस्व उकार आदेश प्राप्त है किन्तु **उरण् रपरः** की सहायता से रपर होकर **उर्** आदेश हो जाता है। इस तरह **पि+पुर्+तस्** बना। **हलि च** से रेफान्त उपधा रूप **पु** के उकार को दीर्घ हुआ, **पिपूर्+तस्** बना। रेफ का ऊर्ध्वगमन और सकार को रुत्व, विसर्ग करके **पिपूर्तः** सिद्ध हुआ।

पिपुरति। बहुवचन में झकार के स्थान पर अत् आदेश होता है, अभ्यास को इत्व, धातु को उत्व करके **पिपुर्+अति** बना है। वर्णसम्मेलन होकर **पिपुरति** सिद्ध हुआ।

लट् के रूप- पिपर्ति, पिपूर्तः, पिपुरति, पिपर्षि, पिपूर्थः, पिपूर्थ, पिपर्मि, पिपूर्वः, पिपूर्मः।

पपार। पॄ से लिट्, तिप्, णल्, द्वित्व, उरत् करके हलादिशेष करने पर **पपॄ+अ** बना। **अचो ञ्णिति** से वृद्धि होकर **पपार** सिद्ध हुआ।

६१४- **शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा।** शॄश्च दॄश्च पॄश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः शॄदॄप्रः, तेषां शॄदॄप्राम्। शॄदॄप्रां षष्ठ्यन्तं, ह्रस्वः प्रथमान्तं, वा अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **दयतेर्दिगि लिटि** से **लिटि** की अनुवृत्ति आती है।

कित् लिट् के परे होने पर शॄ, दॄ और पॄ धातुओं को विकल्प से ह्रस्व होता है।

अचश्च इस परिभाषा सूत्र की उपस्थिति से **ऋकार** को विकल्प से ह्रस्व किया जाता है।

६१५- **ऋच्छत्यॄताम्।** ऋच्छतिश्च ऋ च ॠत् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः ऋच्छत्यॄतः, तेषाम् ऋच्छत्यॄताम्। ऋच्छत्यॄताम् षष्ठ्यन्तमेकपदमिदं सूत्रम्। **ऋतश्च संयोगादेर्गुणः** से **गुणः** और **दयतेर्दिगि लिटि** से **लिटि** की अनुवृत्ति आती है।

तुदादि के ऋच्छ धातु, ऋ-धातु और ॠकारान्त धातुओं को गुण होता है।

इको गुणवृद्धी की उपस्थिति से **इक्** अर्थात् **ऋकार** या **ॠकार** के स्थान पर ही गुण हो पाता है।

पप्रतुः, पपरतुः। लिट् के द्विवचन **पॄ+अतुस्** में द्वित्व, उरत्, हलादि शेष करके **पपॄ+अतुस्** बना। **शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा** से दीर्घ ॠकार को वैकल्पिक ह्रस्व होकर **पपृ+अतुस्** बना। ह्रस्वपक्ष में ह्रस्वविधान के सामर्थ्य से **ऋच्छत्यॄताम्** से गुण नहीं होगा। अतः **इको यणचि** से यण् होकर **पप्+र्+अतुस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **पप्रतुः** सिद्ध हुआ। ह्रस्व न होने के पक्ष में **ऋच्छत्यॄताम्** से ॠकार को गुण होकर अर् हो जाता है, जिससे **पपर्+अतुस्** हुआ। वर्णसम्मेलन होकर **पपरतुः** सिद्ध हुआ। इसी तरह आगे भी **पप्रुः-पपरुः** आदि बनते हैं।

वैकल्पिकेड्विधायकं विधिसूत्रम्

६१६. वृतो वा ७।२।३८॥

वृङ्वृञ्भ्यामृदन्ताच्चेटो दीर्घो वा स्यान्न तु लिटि।

परीता, परिता। परीष्यति, परिष्यति। पिपर्तु। अपिपः। अपिपूर्ताम्। अपिपरुः। पिपूर्यात्। पूर्यात्। अपारीत्।

....

लिट् के रूप- पपार, पप्रतुः-पपरतुः, पप्रुः-पपरुः, पपरिथ, पप्रथुः-पपरथुः, पप्र-पपर, पपार-पपर, पप्रिव-पपरिव, पप्रिम-पपरिम।

६१६- वृतो वा। वृ च ऋत् च तयोः समाहारद्वन्द्वो वृत्, तस्मात्। वृतः पञ्चम्यन्तं, वा अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से **इट्** और **ग्रहोऽलिटि दीर्घः** से **दीर्घः** और **अलिटि** की अनुवृत्ति आती है।

वृङ्, वृञ् और ऋदन्त धातुओ से परे इट् को विकल्प से दीर्घ होता है किन्तु लिट् परे हो तो नहीं।

वृ में अनुबन्ध न होने के कारण ङकारानुबन्धक **वृङ्** और ञकारानुबन्धक **वृञ्** ये दोनों लिए जाते हैं। **अलिटि** का तात्पर्य लिट् में नहीं होता और लकारों में हो जाता है।

परीता, परिता। पृ से लुट्, तासि, इट् का आगम, डा आदि करके गुण करने पर **पर्+इ+ता** बना है। **वृतो वा** से इट् को वैकल्पिक दीर्घ करने पर **परीता** बना। दीर्घ न होने के पक्ष में **परिता** ही रहेगा। इस तरह दो रूप बन गये। आगे लृट्-लकार में भी वैकल्पिक दीर्घ होगा।

लुट्- दीर्घपक्षे में- परीता, परीतारौ, परीतारः। दीर्घाभाव में- परिता, परितारौ, परितारः।
लृट्- दीर्घपक्ष में- परीष्यति, परीष्यतः, परीष्यन्ति और दीर्घाभाव में परिष्यति, परिष्यतः आदि।

लोट् में लट् की तरह ही प्रक्रिया होती है किन्तु लोट् में होने वाले विशेष उत्व, हित्व, तातङ्, आट् आगम आदि कार्य भी होंगे। तातङ् में ङित्त्व के कारण गुण का निषेध होकर **उदोष्ठ्यपूर्वस्य** से उत्व तथा **हलि च** से दीर्घ हो जाता है। इसी तरह अपित्त्व के कारण ङित् हो जाने से **हि** में भी समझना चाहिए। उत्तमपुरुष में आट् का आगम पित् है, अतः गुण हो जाता है। **झि** में **अदभ्यस्तात्** से झकार को अत् आदेश हो जाता है।

लोट् के रूप- पिपर्तु-पिपूर्तात्, पिपूर्ताम्, पिपरतु, पिपूर्हि-पिपूर्तात्, पिपूर्तम्, पिपूर्त, पिपराणि, पिपराव, पिपराम।

लङ् में- पृ से तिप्, अट्, इकार का लोप, शप्, श्लु, द्वित्व और **अर्तिपिपर्त्योश्च** से अभ्यास को इत्त्व, सार्वधातुकगुण, रपर आदि होने के बाद **अपिपर्+त्** बना। त् का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप होने पर **अपिपर्** बना। रेफ का विसर्ग हुआ- **अपिपः**। सिप् में भी **अपिपः** ही बनता है। मिप् में यही प्रक्रिया होकर **अपिपरम्** बनता है। शेष जगहों पर **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव होने के कारण गुणनिषेध होकर **उदोष्ठ्यपूर्वस्य** से उत्व और **हलि च** से दीर्घ होता है किन्तु झि में **सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च** से जुस् और **जुसि च** से गुण होकर **अपिपरुः** बनता है।

दीर्घनिषेधकं विधिसूत्रम्

६१७. सिचि च परस्मैपदेषु ७।२।४०॥

अत्र इटो न दीर्घः। अपारिष्टाम्। अपरीष्यत्, अपरिष्यत्।

ओहाक् त्यागे॥५॥ जहाति।

वैकल्पिकेत्त्वविधायकं विधिसूत्रम्

६१८. जहातेश्च ६।४।११६॥

इद्वा स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके। जहितः।

....

लङ्- अपिपः, अपिपूर्ताम्, अपिपरुः, अपिपः, अपिपूर्तम्, अपिपूर्त, अपिपरम्, अपिपूर्व, अपिपूर्म।

विधिलिङ् में यासुट् के ङित् होने के कारण गुण नहीं होता, अतः **उदोष्ठ्यपूर्वस्य** से उत्त्व तथा **हलि च** से दीर्घ होकर इसके रूप बनते हैं- पिपूर्यात्, पिपूर्याताम्, पिपूर्युः, पिपूर्याः, पिपूर्यातम्, पिपूर्यात, पिपूर्याम्, पिपूर्याव, पिपूर्याम।

आशीर्लिङ् में शप् और श्लु नहीं होते, जिसके कारण द्वित्व आदि नहीं होता। यासुट् को कित्त्व करने के कारण गुण का निषेध होकर उत्व तथा **हलि च** से दीर्घ हो जाता है- पूर्यात्, पूर्यास्ताम्, पूर्यासुः, पूर्याः, पूर्यास्तम्, पूर्यास्त, पूर्यासम्, पूर्यास्व, पूर्यास्म।

अपारीत्। लुङ् में अपॄ+इस्+ईत् बनने के बाद **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से वृद्धि होकर सकार का **इट ईटि** से लोप ई+ई में सवर्णदीर्घ होकर **अपारीत्** सिद्ध हुआ।
६१७- **सिचि च परस्मैपदेषु**। सिचि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, परस्मैपदेषु सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **वॄतो वा** से **वॄतः**, **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से **इट्**, **ग्रहोऽलिटि दीर्घः** से **दीर्घः** और **न लिङि** से **न** की अनुवृत्ति आती है।

परस्मैपदपरक सिच् के परे होने पर वृङ्, वृञ् और ॠदन्त धातुओं से परे इट् को दीर्घ नहीं होता।

इट् को **वॄतो वा** से प्राप्त वैकल्पिक दीर्घ का निषेध करता है।

अपारिष्टाम्। अपार्+इस्+ताम् में **वॄतो वा** से इट् वाले इकार को वैकल्पिक दीर्घ प्राप्त था, उसका **सिचि च परस्मैपदेषु** से निषेध हुआ। सकार को षत्व और षकार के योग में तकार को ष्टुत्व होकर **अपारिष्टाम्** बना।
लुङ्- अपारीत्, अपारिष्टाम्, अपारिषुः, अपारीः, अपारिष्टम्, अपारिष्ट, अपारिषम्, अपारिष्व, अपारिष्म।
लृङ् में इट् को वैकल्पिक दीर्घ करके अपरीष्यत्, अपरिष्यत् आदि दो-दो रूप बनते हैं।

ओहाक् त्यागे। ओहाक् धातु **छोडने** अर्थ में है। **ओ** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा और अन्त्य ककार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है, **हा** बचता है। आत्मनेपद निमित्तों से हीन है, अतः परस्मैपदी है। उपदेश अवस्था में अनुदात्त होने के कारण अनिट् भी है।

जहाति। हा से लट्, तिप्, शप्, श्लु, द्वित्व, ह्रस्व और **कुहोश्चुः** से हकार के स्थान पर चुत्व करके झकार और उसको जश्त्व करके जकार होने पर **जहाति** सिद्ध होता है।

ईदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६१९. ई हल्यघोः ६।४।११३॥

श्नाभ्यस्तयोरात ईत् स्यात् सार्वधातुके क्ङिति हलादौ न तु घोः।

जहीतः।

आतो लोपविधायकं विधिसूत्रम्

६२०. श्नाभ्यस्तयोरातः ६।४।११२॥

अनयोरातो लोपः क्ङिति सार्वधातुके।

जहति। जहौ। हाता। हास्यति। जहातु-जहितात्-जहीतात्।

....

६१८- **जहातेश्च**। जहातेः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इद् दरिद्रस्य** से **इत्**, **भिञोऽतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्**, **ई हल्यघोः** से **हलि**, **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से **क्ङिति** और **अत उत्सार्वधातुके** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

हलादि कित्, ङित् सार्वधातुक के परे होने पर ओहाक् धातु को विकल्प से ह्रस्व इकार आदेश होता है।

यह अग्रिम सूत्र **श्नाभ्यस्तयोरातः** का अपवाद है।

६१९- **ई हल्यघोः**। न घुः अघुः, तस्य अघोः। ई लुप्तप्रथमाकं पदं, हलि सप्तम्यन्तम्, अघोः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अत उत्सार्वधातुके** से **सार्वधातुके** की, **श्नाभ्यस्तयोरातः** से **आतः** और **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

श्ना प्रत्यय और अभ्यस्तसंज्ञक धातु के आकार के स्थान पर ईकार आदेश होता है हलादि कित् ङित् सार्वधातुक के परे होने पर किन्तु घुसंज्ञक धातुओं को नहीं।

जहितः, जहीतः। हा से तस्, शप्, श्लु, द्वित्व, ह्रस्व, चुत्व, जशत्व करके जहा+तस् बना है। **सार्वधातुकमपित्** से **तस्** ङित् है और हलादि भी। अतः इसके परे होने पर **श्नाभ्यस्तयोरातः** से आकार का लोप प्राप्त था, उसे बाधकर **ई हल्यघोः** से दीर्घ ईकार आदेश प्राप्त हुआ, उसे भी बाधकर **जहातेश्च** से हा के आकार के स्थान पर विकल्प से इकार आदेश हुआ, **जहितः** बना। इकार आदेश न होने के पक्ष में **ई हल्यघोः** से नित्य से ईकार आदेश होकर **जहीतः** बना। इस तरह दो रूप सिद्ध हुए।

६२०- **श्नाभ्यस्तयोरातः**। श्नाश्च अभ्यस्तश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः श्नाभ्यस्तौ, तयोः श्नाभ्यस्तयोः। श्नाभ्यस्तयोः षष्ठ्यन्तम्, आतः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **श्नसोरल्लोपः** से **लोपः**, **अत उत्सार्वधातुके** से **सार्वधातुके** और **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

कित्, ङित् सार्वधातुक के परे होने पर श्ना-प्रत्यय के तथा अभ्यस्तसंज्ञक धातु के आकार का लोप होता है।

इस सूत्र से केवल झि के परे होने पर ही लोप हो पाता है क्योंकि अन्यत्र हलादि के मिलने के कारण इसे बाधकर **ई हल्यघोः** आदि सूत्र लगते हैं।

जहति। झि के स्थान पर **अदभ्यस्तात्** से अत् आदेश होने के बाद **जहा+अति** बना है। **श्नाभ्यस्तयोरातः** से हा के आकार का लोप होकर **जह्+अति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **जहति** सिद्ध हुआ।

आकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६२१. आ च हौ ६।४।११७॥

जहातेर्हौ परे आ स्याच्चादिदीतौ।

जहाहि, जहिहि, जहीहि। अजहात्। अजहुः।

लट् के रूप- जहाति, जहितः-जहीतः, जहति, जहासि, जहिथः-जहीथः, जहिथ-जहीथ, जहामि, जहिवः-जहीवः, जहिमः-जहीमः।

आकारान्त होने के कारण **लिट्** में **पा**-धातु की तरह प्रक्रिया होती है। अन्तर यह है कि पा के पकार के स्थान पर कोई आदेश नहीं होता किन्तु हा धातु के अभ्यास हकार के स्थान पर **कुहोश्चुः** से चुत्व होकर झकार और **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर **जकार** आदेश होता है जिससे **जहौ** आदि रूप बनते हैं। **लिट् के रूप**- जहौ, जहतुः, जहुः, जहिथ-जहाथ, जहथुः, जह, जहौ, जहिव, जहिम।

लुट् में अनिट् होने के कारण **हाता, हातारौ, हातारः** आदि रूप बनते हैं। इसी तरह **लृट्** में भी **हास्यति, हास्यतः, हास्यन्ति** आदि।

जहातु-जहितात्-जहीतात्। लोट्, प्रथमपुरुष, एकवचन में लट् की तरह **जहा+ति** बनाकर **एरुः** से उत्व करके **जहातु** बनता है, यहाँ पर कित्, ङित् न होने के कारण इत्व, ईत्व नहीं होते। किन्तु उसके बाद **तातङ्** करके, उसे ङित् मानकर **जहातेश्च** से इत्व और **ई हल्यघोः** से ईत्व करने पर **जहितात्, जहीतात्** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं। इस तरह तीन रूप बन गये। द्विवचन में **जहिताम्, जहीताम्** बनते हैं। बहुवचन में अत् आदेश होकर **जहा+अति** बना है। **श्नाभ्यस्तयोरातः** से आकार का लोप और **एरुः** से उत्व करने पर **जहतु** सिद्ध हो जाता है।

६२१- **आ च हौ।** आ लुप्तप्रथमाकं पदं, च अव्ययपदं, हौ सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **इद् दरिद्रस्य** से इत्, **ई हल्यघोः** से ई और **जहातेश्च** से **जहातेः** की अनुवृत्ति आती है।

हि के परे होने पर ओहाक् धातु के आकार के स्थान पर आकार आदेश होता है साथ ही इकार और ईकार आदेश भी होते हैं।

सूत्र में **चकार** पढ़े जाने के कारण, उसके बल पर पूर्व सूत्रों से विहित इकार और ईकार का भी विधान माना जाता है। इस तरह **हि** के परे होने पर आकार, इकार और ईकार वाले तीन रूप हो जाते हैं।

जहाहि, जहिहि, जहीहि। लोट् के सिप् में **जहा+हि** बना है। **सेर्ह्यपिच्च** से हि के अपित् होने के कारण **सार्वधातुकमपित्** से ङित् हुआ है। अतः पूर्व सूत्रों से इकार और ईकार आदेश प्राप्त थे किन्तु **आ च हौ** से आकार आदेश का विधान हुआ अर्थात् **हा** के आकार के स्थान पर एक पक्ष में आकार ही रहा, चकारात् इकार और ईकार आदेश भी हुए। इस तरह उक्त तीन रूप सिद्ध हुए। **लोट्** के रूप- जहातु-जहितात्-जहीतात्, जहिताम्-जहीताम् जहतु, जहाहि-जहिहि-जहीहि-जहितात्-जहीतात्, जहितम्-जहीतम्, जहित-जहीत, जहानि, जहाव, जहाम।

लङ् में पूर्ववत् ही है किन्तु झि के स्थान पर **सिचभ्यस्तविदिभ्यश्च** से जुस् करने पर **श्नाभ्यस्तयोरातः** से आकार का लोप होता है। इस तरह रूप बनते हैं- अजहात्, अजहिताम्-अजहीताम्, अजहुः, अजहाः, अजहितम्-अजहीतम्, अजहित-अजहीत, अजहाम्, अजहिव-अजहीव, अजहिम-अजहीम।

आकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

६२२. लोपो यि ६।४।११८॥

जहातेरालोपो यादौ सार्वधातुके। जह्यात्। एर्लिङि। हेयात्। अहासीत्। अहास्यत्। **माङ् माने शब्दे च॥६॥**

इदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६२३. भृञामित् ७।४।७६॥

भृञ् माङ् ओहाङ् एषां त्रयाणामभ्यासस्य इत्स्यात् श्लौ।

मिमीते। मिमाते। मिमते। ममे। माता। मास्यते। मिमीताम्। अमिमीत। मिमीत। मासीष्ट। अमास्त। अमास्यत। **ओहाङ् गतौ॥७॥** जिहीते। जिहाते। जिहते। जहे। हाता। हास्यते। जिहीताम्। अजिहीत। जिहीत। हासीष्ट। अहास्त। अहास्यत। **डुभृञ् धारणपोषणयोः॥८॥** बिभर्ति। बिभृतः। बिभ्रति। बिभृते। बिभ्राते। बिभ्रते। बिभराञ्चकार, बभार। बभर्थ। बभृव। बभृम। बिभराञ्चक्रे, बभ्रे। भर्तासि, भर्तासे। भरिष्यति, भरिष्यते। बिभर्तु। बिभराणि। बिभृताम्। अबिभः। अबिभृताम्। अबिभरुः। अबिभृत। बिभृयात्। बिभ्रीत। भ्रियात्, भृषीष्ट। अभार्षीत्, अभृत। अभरिष्यत्, अभरिष्यत। **डुदाञ् दाने॥९॥** ददाति। दत्तः। ददति। दत्ते। ददाते। ददते। ददौ, ददे। दातासि, दातासे। दास्यति, दास्यते। ददातु।

....

६२२- लोपो यि। लोपः प्रथमान्तं, यि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत उत्सार्वधातुके** से **सार्वधातुके** और **जहातेश्च** से **जहातेः** की अनुवृत्ति आती है।

यकारादि सार्वधातुक के परे होने पर ओहाक् धातु के आकार का लोप होता है।

विधिलिङ् सार्वधातुक है और आशीर्लिङ् **लिङाशिषि** से आर्धधातुकसंज्ञक है। अतः यह सूत्र विधिलिङ् में ही लगता है।

जह्यात्। विधि आदि अर्थों में लिङ्, तिप्, इकार का लोप, शप्, श्लु, द्वित्व, चुत्व, जश्त्व करके यासुट् करने पर जहा+यात् बना है। **लोपो यि** से हा के आकार के लोप होने पर **जह्+यात्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **जह्यात्** सिद्ध हुआ। जह्यात्, जह्याताम्, जह्युः, जह्याः, जह्यातम्, जह्यात, जह्याम्, जह्याव, जह्याम।

हेयात्। आर्धधातुक में शप्, श्लु नहीं होते। अतः द्वित्वादि भी नहीं होते हैं। **हा+यात्** बना है। **एर्लिङि** से आकार के स्थान पर एत्व करके **हेयात्** बन जाता है। हेयात्, हेयास्ताम्, हेयासुः, हेयाः, हेयास्तम्, हेयास्त, हेयासम्, हेयास्व, हेयास्म।

अहासीत्। लुङ् में **अहा+त्** है। पा-धातु की तरह **यमरमनमातां सक् च** से सक् आगम, सिच् को इट् आदि करके **अहासीत्** बन जाता है। अहासीत्, अहासिष्टाम्, अहासिषुः, अहासीः, अहासिष्टम्, अहासिष्ट, अहासिषम्, अहासिष्व, अहासिष्म।

लृङ्- अहास्यत्, अहास्यताम्, अहास्यन् आदि।

अब जुहोत्यादि में आत्मनेपदी धातुओं का कथन करते हैं-

माङ् माने शब्दे च। माङ् धातु नापना तथा शब्द करना अर्थ में है। ङकार की इत्संज्ञा होती है। ङित् होने के कारण आत्मनेपदी है। यह धातु अनिट् है।

६२३- **भृञामित्।** भृञां षष्ठ्यन्तम्, इत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ** से **त्रयाणाम्** और **श्लौ** और **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

श्लु के परे होने पर भृञ्, माङ् और ओहाङ् धातुओं के अभ्यास को ह्रस्व इकार आदेश होता है।

यह सूत्र **श्लु** के परे होने पर अभ्यास को **इकार** करता है। अतः लिट् में नहीं लगेगा।

मिमीते। मा धातु से लट्, त, शप्, श्लु, द्वित्व आदि करके अभ्याससंज्ञा करके ह्रस्व करने पर **ममा+त** बना है। **भृञामित्** से अभ्यास **म** के अकार के स्थान पर इकार आदेश होकर **मिमा+त** बना। हलादि त के परे होने पर **ई हल्यघोः** से **मा** के आकार के स्थान पर **ईकार** आदेश होकर **मिमी+त** बना। आत्मनेपद होने के कारण **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व होकर **मिमीते** सिद्ध हुआ। अजादि आताम् के परे होने पर **श्नाभ्यस्तयोरातः** से आकार का लोप होता है, **मिमाते।** झ के स्थान पर अत् आदेश होने के बाद यह भी अजादि ही है। अतः आकार का लोप होता है। **मिम्+अते=मिमते।** हलादि कित्, ङित् परे रहते तो **ई हल्यघोः** से ईत् होता है।

लट्- मिमीते, मिमाते, मिमते, मिमीषे, मिमाथे, मिमीध्वे, मिमे, मिमीवहे, मिमीमहे।

लिट् में- ममा+ए बनने के बाद **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप होकर **ममे** बनता है। इसी तरह आगे भी होता है। रूप- ममे, ममाते, ममिरे, ममिषे, ममाथे, ममिध्वे, ममे, ममिवहे, ममिमहे।

लुट्- माता, मातारौ, मातारः। लृट्- मास्यते, मास्येते, मास्यन्ते आदि।

लोट्- मिमीताम्, मिमाताम्, मिमताम्, मिमीष्व, मिमाथाम्, मिमीध्वम्, मिमै, मिमावहै, मिमामहै।

लङ्- अमिमीत, अमिमाताम्, अमिमत, अमिमीथाः, अमिमाथाम्, अमिमीध्वम्, अमिमि, अमिमीवहि, अमिमीमहि। **विधिलिङ्-** मिमीत, मिमीयाताम्, मिमीरन्, मिमीथाः, मिमीयाथाम्, मिमीध्वम्, मिमीय, मिमीवहि, मिमीमहि। **आशीर्लिङ्-** मासीष्ट, मासीयास्ताम्, मासीरन्, मासीष्ठाः, मासीयास्थाम्, मासीध्वम्, मासीय, मासीवहि, मासीमहि। **लुङ्-** अमास्त, अमासाताम्, अमासत, अमास्थाः, अमासाथाम्, अमाध्वम्, अमासि, अमास्वहि, अमास्महि। **लृङ्-** अमास्यत, अमास्येताम्, अमास्यन्त।

ओहाङ् गतौ। ओहाङ् धातु **जाना** अर्थ में है। **ओ** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से और ङकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। केवल **हा** शेष रहता है। ङित् होने के कारण आत्मनेपदी है। अनिट् भी है। श्लु होने पर **भृञामित्** से अभ्यास को इकार आदेश होता है। **मा**-धातु के रूप बनाने के बाद इसकी प्रक्रिया में कोई कठिनाई नहीं है। द्वित्व और अभ्याससंज्ञा करके हा को **कुहोश्चुः** से चुत्व और **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर जकार हो जाता है।

लट्- जिहीते, जिहाते, जिहते, जिहीषे, जिहाथे, जिहीध्वे, जिहे, जिहीवहे, जिहीमहे।

लिट्- जहे, जहाते, जहिरे, जहिषे, जहाथे, जहिद्वे-जहिध्वे, जहे, जहिवहे, जहिमहे।

लुट्- हाता, हातारौ, हातारः। **लृट्-** हास्यते, हास्येते, हास्यन्ते। **लोट्-** जिहीताम्, जिहाताम्,

जिहताम्, जिहीष्व, जिहाथाम्, जिहीध्वम्, जिहै, जिहावहै, जिहामहै। **लङ्**- अजिहीत, अजिहाताम्, अजिहत, अजिहीथाः, अजिहाथाम्, अजिहीध्वम्, अजिहि, अजिहीवहि, अजिहीमहि। **विधिलिङ्**- जिहीत, जिहीयाताम्, जिहीरन् आदि। **आशीर्लिङ्**- हासीष्ट, हासीयास्ताम्, हासीरन्, हासीष्ठाः आदि। **लुङ्**- अहास्त, अहासाताम्, अहासत, अहास्थाः, अहासाथाम्, अहाध्वम्, अहासि, अहास्वहि, अहास्महि। **लृङ्**- अहास्यत, अहास्येताम्, अहास्यन्त आदि।

डु-भृञ् धारणपोषणयोः। डुभृञ् धातु **धारण करना** और **पोषण करना** अर्थों में है। **आदिर्ञिटुडवः** से डु की इत्संज्ञा और ञकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। भृ शेष रहता है। ञित् होने के कारण **स्वरितञित कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से उभयपदी है। डु की इत्संज्ञा का फल आगे कृदन्त में **ड्वितः क्त्रिः** आदि सूत्रों में मिलेगा। सार्वधातुक लकारों में शप्, श्लु, द्वित्व, अभ्यास के ऋकार के स्थान पर **भृञामित्** से इत्व, रपर, हलादि शेष आदि कार्य होते हैं।

बिभर्ति। भृ से लट्, परस्मैपद में तिप्, शप्, श्लु, द्वित्व करके **भृभृ+ति** बना। अभ्यास के ऋकार के स्थान पर **भृञामित्** से रपर सहित इकार आदेश, हलादि शेष, **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर **बिभृ+ति** बना। भृ को सार्वधातुक गुण होकर **बिभर्ति** सिद्ध हुआ। तस् आदि में **सार्वधातुकमपित्** से ङित् होने के कारण गुण नहीं होता- **बिभृतः**। झि के झकार को अत् आदेश **बिभृ+अति** बना है। गुणाभाव है, अतः यण् होकर **बिभ्+र्+अति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **बिभ्रति** सिद्ध हुआ। आत्मनेपद में तो पित् के अभाव में सभी ङित् हैं, अतः गुण का प्रसंग ही नहीं है।

लट्- (परस्मैपद) बिभर्ति, बिभृतः, बिभ्रति, बिभर्षि, बिभृथः, बिभृथ, बिभर्मि, बिभृवः, बिभृम। (आत्मनेपद) बिभृते, बिभ्राते, बिभ्रते, बिभृषे, बिभ्राथे, बिभृध्वे, बिभ्रे, बिभृवहे, बिभृमहे।

बिभराञ्चकार। लिट् में **भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च** से वैकल्पिक आम् और श्लुवद्भाव होता है। आम् होने के पक्ष में **भृ+आम, भृ+भृ+आम्, भर्+भृ+आम्, भ+भृ+आम्, ब+भृ+आम्** होने के बाद **भृञामित्** से अभ्यास के अकार को इकार आदेश होकर **बिभृ+आम्** बना। आम् के परे भृ को गुण होकर अर् आदेश, **बिभर्+आम्=बिभराम्** बना। इसके बाद कृ, भू, अस् का अनुप्रयोग आदि कार्य होते हैं।

लिट्- आम् और कृ के अनुप्रयोग के पक्ष में- बिभराञ्चकार, बिभराञ्चक्रतुः, बिभराञ्चक्रु आदि। आत्मनेपद में- बिभराञ्चक्रे, बिभराञ्चक्राते, बिभराञ्चक्रिरे आदि। **भू के अनुप्रयोग में**- बिभराम्बभूव, बिभराम्बभूवतुः, बिभराम्बभूवुः आदि। **अस् के अनुप्रयोग में**- बिभरामास, बिभरामासतुः, बिभरामासुः आदि। **आम्, श्लुवद्भाव न होने के पक्ष में**- बभार, बभ्रतुः, बभ्रुः, बभर्थ, बभ्रथुः, बभ्र, बभार-बभर, बभृव, बभृम। आत्मनेपद में- बभ्रे, बभ्राते, बभ्रिरे, बभृषे, बभ्राथे, बभृढ्वे, बभ्रे, बभृवहे, बभृमहे। **लुट्**- भर्ता, भर्तारौ, भर्तारः, भर्तासि, भर्तासे। **लृट्** में **ऋद्धनोः स्ये** से इट् हो जाता है। भरिष्यति, भरिष्यते। **लोट्- (परस्मैपद)** बिभर्तु-बिभृतात्, बिभृताम्, बिभ्रतु, बिभृहि-बिभृतात्, बिभृतम्, बिभृत, बिभराणि, बिभराव, बिभराम। **(आत्मनेपद)** बिभृताम्, बिभ्राताम्, बिभ्रताम्, बिभृष्व, बिभ्राथाम्, बिभृध्वम्, बिभरै, बिभरावहै, बिभरामहै। **लङ्- (परस्मैपद)** अबिभः, अबिभृताम्, अबिभरुः, अबिभः, अबिभृतम्, अबिभृत, अबिभरम्, अबिभृव, अबिभृम। **(आत्मनेपद)** अबिभृत, अबिभ्राताम्, अबिभ्रत, अबिभृथाः, अबिभ्राथाम्, अबिभृध्वम्, अबिभ्रि, अबिभृवहि, अबिभृमहि। **विधिलिङ्- (परस्मैपद)** बिभृयात्, बिभृयाताम्, बिभृयुः, बिभृयाः, बिभृयातम्, बिभृयात,

घुसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

६२४. दाधा घ्वदाप् १।१।२०॥

दारूपा धारूपाश्च धातवो घुसंज्ञाः स्युर्दाप्दैपौ विना। **घ्वसोरित्येत्वम्।** देहि। दत्तम्। अददात्, अदत्त। दद्यात्, ददीत। देयात्, दासीष्ट। अदात्। अदाताम्, अदुः।

....

बिभृयाम्, बिभृयाव, बिभृयाम। (**आत्मनेपद**) बिभ्रीत, बिभ्रीयाताम्, बिभ्रीरन्, बिभ्रीथाः, बिभ्रीयाथाम्, बिभ्रीध्वम्, बिभ्रीय, बिभ्रीवहि, बिभ्रीमहि।

आशीर्लिङ्- (**परस्मैपद**) **रिङ् शयग्लिङ्क्षु** से ऋ को **रिङ्** होकर भ्रियात्, भ्रियास्ताम्, भ्रियासु, भ्रियाः, भ्रियास्तम, भ्रियास्त, भ्रियासम्, भ्रियास्व, भ्रियास्म। (**आत्मनेपद**) भृषीष्ट, भृषीयास्ताम्, भृषीरन्, भृषीष्ठाः, भृषीयास्थाम्, भृषीध्वम्, भृषीय, भृषीवहि, भृषीमहि।

लुङ्- परस्मैपद में **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से वृद्धि होती है किन्तु आत्मनेपद में **उश्च** से सिच् को कित् किये जाने के कारण वृद्धि नहीं होती और त, थास्, ध्वम् में **ह्रस्वादङ्गात्** से सिच् का लोप हो जाता है। **रूप**- (**परस्मैपद**) अभार्षीत्, अभार्ष्टाम्, अभार्षुः, अभार्षीः, अभार्ष्टम्, अभार्ष्ट, अभार्षम्, अभार्ष्व, अभार्ष्म। (**आत्मनेपद**) अभृत, अभृषाताम्, अभृषत, अभृष्ठाः, अभृषाथाम्, अभृढ्वम्, अभृषि, अभृष्वहि, अभृष्महि।

लृङ्- अभरिष्यत्, अभरिष्यत।

यहाँ तक **भृञामित्** के तीनों धातुओं का वर्णन हो गया। अब आगे के धातुओं में अभ्यास को इत्व नहीं होगा।

डुदाञ् दाने। डुदाञ् धातु **देना** अर्थ में है। **डु** और **ञ्** की इत्संज्ञा होती है और **दा** शेष रहता है। ञित् होने के कारण उभयपदी है। अनिट् होने पर भी थल् में भारद्वाजनियम के कारण इट् हो जाता है। यह धातु **दाधाघ्वदाप्** से घुसंज्ञक है।

ददाति। दा से लट्, तिप्, शप्, श्लु, द्वित्व, ह्रस्व करके **ददाति** बन जाता है।

दत्तः। ददा+तस् में **श्नाभ्यस्तयोरातः** से आकार का लोप करके **दद्+तस्** बना। **खरि च** से दकार को चर्त्व होकर तकार हो जाता है। **दत्तः**। बहुवचन में **अदभ्यस्तात्** से अत् आदेश होकर आकार के लोप से **ददति** बनता है। आत्मनेपद में सर्वत्र ङिद्वद्भाव होने के कारण आकार का लोप होकर यथासम्भव चर्त्व हो जाता है।

लट्- (**परस्मैपद**) ददाति, दत्तः, ददति, ददासि, दत्थः, दत्थ, ददामि, दद्वः, दद्मः। (**आत्मनेपद**) दत्ते, ददाते, ददते, दत्से, ददाथे, दद्ध्वे, ददे, दद्वहे, दद्महे।

लिट् के परस्मैपद में **पा**-धातु की तरह ही रूप बनते हैं। आत्मनेपद में सर्वत्र **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप होता है। (**परस्मैपद**) ददौ, ददतुः, ददुः, ददिथ-ददाथ, ददथुः, दद, ददौ, ददिव, ददिम। (**आत्मनेपद**) ददे, ददाते, ददिरे, ददिषे, ददाथे, ददिध्वे, ददे, ददिवहे, ददिमहे। **लुट्**- दाता, दातारौ, दातारः, दातासि। दातासे, दातासाथे, दाताध्वे आदि। **लृट्**- दास्यति, दास्यतः, दास्यन्ति। दास्यते, दास्येते, दास्यन्ते आदि।

लोट्, परस्मैपद, प्रथमपुरुष में **एरुः** से उत्व आदि होकर ददातु-दत्तात्, दत्ताम् ददतु सरलता से बन जाते हैं।

इदन्तादेशविधायकं विधिसूत्रं किद्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रञ्च

६२५. स्थाघ्वोरिच्च १।२।१७॥

अनयोरिदन्तादेशः सिच्च कित्स्यादात्मनेपदे।

अदित। अदास्यत्, अदास्यत। **डुधाञ् धारणपोषणयोः॥१०॥** दधाति।

....

६२४- दाधा घ्वदाप्। दाश्च दाश्च दाश्च तेषामेकशेषो दाः, धाश्च धाश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो धौ, दाश्च धौ च तेषामितरेतरद्वन्द्वो दाधाः। न दाप्, अदाप्। दाधाः प्रथमान्तं, घु लुप्तप्रथमाकम्, अदाप् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

दा-रूप वाले तथा धा-रूप वाले धातुओं की घुसंज्ञा होती है दाप् और दैप् को छोड़कर।

जो धातु स्वयं **दा** एवं **धा** के रूप में हों या आदेश आदि होकर **दा** एवं **धा** के रूप में आ जाती हों, ऐसी धातुओं की घुसंज्ञा की जाती है। कुछ धातु स्वतः दा एवं धा रूप वाली हैं और कुछ धातुओं में लोप, आदेश आदि होकर दा एवं धा के रूप में आ जाते हैं। उन सभी का यहाँ पर ग्रहण है किन्तु **दाप्** धातु में पकार के लोप तथा **दैप्** धातु में पकार के लोप एवं **आदेच उपदेशेऽशिति** से आत्व होकर दा के रूप में आने वाले इन दो धातुओं की घुसंज्ञा नहीं होती। घुसंज्ञा के अनेक प्रयोजन हैं, जैसे- **घुमास्थागापाजहातिसां हलि, घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च, एर्लिङि, गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु, स्थाघ्वोरिच्च, ई हल्यघोः** आदि। यह दा धातु इस सूत्र से घुसंज्ञक है।

देहि, दत्तात्। दा से लोट, सिप्, शप्, श्लु, द्वित्व, अभ्यास को ह्रस्व करके **ददा+सि** बना है। सि के स्थान पर **सेर्ह्यपिच्च** से हि आदेश करके **ददा+हि** वना। घुसंज्ञक होने के कारण **घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च** से घु के आकार को एत्व और अभ्याससंज्ञक द का लोप होकर **देहि** सिद्ध हुआ। हि के स्थान पर तातङ् होने के पक्ष में **श्नाभ्यस्तयोरातः** से आकार का लोप होकर **दत्तात्** बनता है। शेष रूप सरल ही हैं।

लोट्-(परस्मैपद) ददातु-दत्तात्, दत्ताम्, ददतु, देहि-दत्तात्, दत्तम्, दत्त, ददानि, ददाव, ददाम। **(आत्मनेपद)** दत्ताम्, ददाताम्, ददताम्, दत्स्व, ददाथाम्, दद्ध्वम्, ददै, ददावहै, ददामहै। **लङ्- (परस्मैपद)** अददात्, अदत्ताम्, अददुः, अददाः, अदत्तम्, अदत्त, अददाम्, अदद्व, अदद्म। **(आत्मनेपद)** अदत्त, अददाताम्, अददत, अदत्थाः, अददाथाम्, अदद्ध्वम्, अददि, अदद्वहि, अदद्महि। **विधिलिङ्- (परस्मैपद)** दद्यात्, दद्याताम्, दद्युः, दद्याः, दद्यातम्, दद्यात, दद्याम्, दद्याव, दद्याम। **(आत्मनेपद)** ददीत, ददीयाताम्, ददीरन्, ददीथाः, ददीयाथाम्, ददीध्वम्, ददीय, ददीवहि, ददीमहि।

आशीर्लिङ् में यासुट् के आर्धधातुक कित् होने के कारण **एर्लिङि** से घुसंज्ञक दा के आकार के स्थान पर एकार आदेश होकर **देयात्** आदि रूप वनते हैं। **(परस्मैपद)** देयात्, देयास्ताम्, देयासुः, देयाः, देयास्तम्, देयास्त, देयासम्, देयास्व, देयास्म। **(आत्मनेपद)** दासीष्ट, दासीयास्ताम्, दासीरन्, दासीष्ठाः, दासीयास्थाम्, दासीध्वम्, दासीय, दासीवहि, दासीमहि।

६२५- स्थाघ्वोरिच्च। स्थाश्च घुश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः स्थाघू, तयोः स्थाघ्वोः। स्थाघ्वोः षष्ठ्यन्तम्, इत् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **हनः सिच्** से **सिच्, असंयोगाल्लिट्**

भषादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६२६. दधस्तथोश्च ८।२।३८॥

द्विरुक्तस्य झषन्तस्य धाञो बशो भष् स्यात्तथोः स्ध्वोश्च परतः। धत्तः। दधति। दधासि। धत्थः। धत्थ। धत्ते। दधाते। दधते। धत्से। धद्ध्वे। घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च। धेहि। अदधात्, अधत्त। दध्यात्, दधीत। धेयात्, धासीष्ट। अधात्। अधित। अधास्यत्। अधास्यत।

णिजिर् शौचपोषणयोः॥११॥

वार्तिकम्- **इर इत्संज्ञा वाच्या।**

....

कित् से **कित्** और **लिङ्सिचावात्मनेपदेषु** से **आत्मनेपदेषु** की अनुवृत्ति आती है। **अलोऽन्त्यस्य** की भी उपस्थिति होती है।

स्था तथा घुसंज्ञक धातुओं के अन्त्य अल् के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश होता है तथा सिच् को किद्वद्भाव होता है आत्मनेपद के परे होने पर।

अदात्। अदित। परस्मैपद में **अदा+स्+त्** बना है। घुसंज्ञक होने के कारण **गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु** से सिच् का लुक् होता है जिससे **अदात्** सिद्ध हो जाता है। झि में **आतः** से झि के स्थान पर जुस् आदेश और **उस्यपदान्तात्** से पररूप होकर **अदुः** बनता है। आत्मनेपद में **अदा+स्+त** होने के बाद **स्थाघ्वोरिच्च** से दा के आकार को इकार और सिच् को किद्वद्भाव कर दिए जाने के बाद सिच् को निमित्त मान कर होने वाले गुण का निषेध करके **ह्रस्वादङ्गात्** से सकार का लोप करने पर **अदित** बन जाता है। जहाँ पर झल् परे न हो वहाँ सकार का लोप नहीं होता।

लुङ्-(**परस्मैपद**) अदात्, अदाताम्, अदुः, अदाः, अदातम्, अदात, अदाम्, अदाव, अदाम। (**आत्मनेपद**) अदित, अदिषाताम्, अदिषत, अदिथाः, अदिषाथाम्, अदिढ्वम्, अदिषि, अदिष्वहि, अदिष्महि। **लृङ्**- अदास्यत्, अदास्यत।

डुधाञ् धारणपोषणयोः। डुधाञ् धातु **धारण करना** और **पोषण करना** अर्थों में है। डु और ञ् की इत्संज्ञा होती है, धा शेष रहता है। ञित् होने से उभयपदी है। अनिट् है। धा-रूप होने से घुसंज्ञक भी है। श्लु होने पर द्वित्व आदि होकर **दधस्तथोश्च** से त, थ, स् और ध्व के परे होने पर अभ्यास के दकार को भष् करके धकार हो जाता है। शेष प्रक्रिया लगभग दा धातु की तरह ही है।

दधाति। दा धातु **ददाति** की तरह **दधाति** बन जाता है किन्तु **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर **धा** के स्थान पर **दकार** भी होता है।

६२६- दधस्तथोश्च। तश्च थ् च तथौ। तकारादकार उच्चारणार्थः। तयोः तथोः। दधः षष्ठ्यन्तं, तथोः सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **एकाचो बश् भष् झषन्तस्य स्ध्वोः** से **एकाचः** को छोड़कर सभी पद अनुवृत्त होते हैं।

तकार, थकार, सकार और ध्व के परे होने पर द्वित्व किये गये झषन्त धाञ् धातु के बश् के स्थान पर भष् आदेश होता है।

द्वित्व के बाद धाञ्, उसका झषन्त होना, उससे परे तकार, थकार, सकार और ध्व का होना इस सूत्र की प्रवृत्ति में कारण है।

धत्तः। **धा+तस्** के बाद शप्, श्लु, द्वित्व और अभ्यास को ह्रस्व करके **ध+धा+तस्** बना। अभ्यास के धकार के स्थान पर **अभ्यासे चर्च** से जश् करके **दधा+तस्** बना। **श्नाभ्यस्तयोरातः** से आकार के लोप होने पर **दध्+तस्** बना। अब झषन्त मिलने के कारण अभ्यास के दकार के स्थान पर **दधस्तथोश्च** से भष् आदेश होकर **धकार** हुआ, **ध ध्+तस्** बना। द्वितीय धकार को जश्त्व करके **खरि च** से चर्त्व करने पर तकार हुआ- **ध त्+तस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर सकार का रुत्वविसर्ग करने पर **धत्तः** सिद्ध हुआ। इसी तरह की ही प्रक्रिया प्रायः थकार, सकार आदि के परे रहने पर भी होती है। आकार के लोप न होने की स्थिति में झषन्त नहीं मिलता, अतः तकारादि के परे होने पर भी भष् आदेश नहीं होता।

लट् के रूप- (परस्मैपद) दधाति, धत्तः, दधति, दधासि, धत्थः, धत्थ, दधामि, दध्वः, दध्मः। **(आत्मनेपद)** धत्ते, दधाते, दधते, धत्से, दधाथे, धद्ध्वे, दधे, दध्वहे, दध्महे।

लिट् के परस्मैपद में **पा**-धातु की तरह ही रूप बनते हैं। आत्मनेपद में **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप होता है। **(परस्मैपद)** दधौ, दधतुः, दधुः, दधिथ-दधाथ, दधथुः, दध, दधौ, दधिव, दधिम। **(आत्मनेपद)** दधे, दधाते, दधिरे, दधिषे, दधाथे, दधिध्वे, दधे, दधिवहे, दधिमहे। **लुट्-** धाता, धातारौ, धातारः, धातासि। धातासे, धातासाथे, धाताध्वे आदि। **लृट्-** धास्यति, धास्यतः, धास्यन्ति। धास्यते, धास्येते, धास्यन्ते आदि। **लोट्-(परस्मैपद)** दधातु-धत्तात्, धत्ताम्, दधतु, धेहि-धत्तात्, धत्तम्, धत्त, दधानि, दधाव, दधाम। **(आत्मनेपद)** धत्ताम्, दधाताम्, दधताम्, धत्स्व, दधाथाम्, धद्ध्वम्, दधै, दधावहै, दधामहै। **लङ्- (परस्मैपद)** अदधात्, अधत्ताम्, अदधुः, अदधाः, अधत्तम्, अधत्त, अदधाम्, अधद्व, अधद्म। **(आत्मनेपद)** अधत्त, अदधाताम्, अदधत, अधत्थाः, अदधाथाम्, अधद्ध्वम्, अदधि, अदध्वहि, अदध्महि। **विधिलिङ्- (परस्मैपद)** दध्यात्, दध्याताम्, दध्युः, दध्याः, दध्यातम्, दध्यात, दध्याम्, दध्याव, दध्याम। **(आत्मनेपद)** दधीत, दधीयाताम्, दधीरन्, दधीथाः, दधीयाथाम्, दधीध्वम्, दधीय, दधीवहि, दधीमहि।

आशीर्लिङ् में यासुट् के आर्धधातुक कित् होने के कारण **एर्लिङि** से घुसंज्ञक दा के आकार के स्थान पर एकार आदेश होकर **धेयात्** आदि रूप बनते हैं। **(परस्मैपद)** धेयात्, धेयास्ताम्, धेयासुः, धेयाः, धेयास्तम्, धेयास्त, धेयासम्, धेयास्व, धेयास्म। **(आत्मनेपद)** धासीष्ट, धासीयास्ताम्, धासीरन्, धासीष्ठाः, धासीयास्थाम्, धासीध्वम्, धासीय, धासीवहि, धासीमहि।

अधात्। अधित। परस्मैपद में **अधा+स्+त्** बना है। घुसंज्ञक होने के कारण **गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु** से सिच् का लुक् होता है जिससे **अधात्** सिद्ध हो जाता है। झि में **आतः** से झि के स्थान पर जुस् आदेश और **उस्यपदान्तात्** से पररूप होकर **अधुः** बनता है। आत्मनेपद में **अधा+स्+त** होने के बाद **स्थाघ्वोरिच्च** से धा के आकार को इकार और सिच् को किद्वद्भाव कर दिए जाने के बाद सिच् को निमित्त मान कर होने वाले गुण का निषेध करके **ह्रस्वादङ्गात्** से सकार का लोप करने पर **अधित** बन जाता है। जहाँ पर झल् परे न हो वहाँ सकार का लोप नहीं होता।

लुङ्-(परस्मैपद) अधात्, अधाताम्, अधुः, अधाः, अधातम्, अधात, अधाम्, अधाव, अधाम। **(आत्मनेपद)** अधित, अधिषाताम्, अधिषत, अधिथाः, अधिषाथाम्, अधिढ्वम्, अधिषि, अधिष्वहि, अधिष्महि। **लृङ्-** अधास्यत्, अधास्यत।

णिजिर् शौचपोषणयोः। णिजिर् धातु **शुद्ध होना** और **पोषण करना** अर्थों में

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

६२७. णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ ७।४।७५।।

णिज्-विज्-विषामभ्यासस्य गुणः स्यात् श्लौ। नेनेक्ति। नेनिक्तः। नेनिजति। नेनिक्ते। निनेज, निनिजे। नेक्ता। नेक्ष्यति, नेक्ष्यते। नेनेक्तु। नेनिग्धि।

गुणनिषेधकं विधिसूत्रम्

६२८. नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके ७।३।८७।।

लघूपधगुणो न स्यात्। नेनिजानि। नेनिक्ताम्। अनेनेक्। अनेनिक्ताम्। अनेनिजुः। अनेनिजम्। अनेनिक्त। नेनिज्यात्। नेनिजीत। निज्यात्। निक्षीष्ट।

....

है। इसमें इर् की अग्रिम वार्तिक से इत्संज्ञा होती है। आदि णकार के स्थान पर **णो नः** से नकार आदेश होता है। निज् से लट् आदि होते हैं। स्वरितेत् होने से उभयपदी है। अनुदात्त धातुओं की कोटि में आता है।

इर इत्संज्ञा वाच्या। यह वार्तिक है। धातुओं में विद्यमान इर् की इत्संज्ञा होती है।

यद्यपि **हलन्त्यम्** से रेफ की और **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इकार की इत्संज्ञा करने पर भी काम चल सकता था फिर भी ऐसा नहीं किया गया, क्योंकि ऐसा करने पर धातु इदित् हो जाता और **इदितो नुम् धातोः** से नुम् होने का प्रसंग बन जाता। उसे रोकने के लिए सीधे **इर्** इस समुदाय की इत्संज्ञा की गई। अतः इदित् भी नहीं माना गया। दूसरी बात यह भी है कि इरित् धातुओं के सम्बन्ध में **इरितो वा** आदि सूत्रों की प्रसक्ति भी होती है।

६२७- **णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ।** णिजां षष्ठ्यन्तं, त्रयाणां षष्ठ्यन्तं, गुणः प्रथमान्तं, श्लौ सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

णिज्, विज् और विष् इन तीन धातुओं के अभ्यास को गुण होता है, श्लु के परे होने पर।

इको गुणवृद्धी की उपस्थिति से **इक्** को ही गुण होता है।

नेनेक्ति। निज् से लट्, तिप्, शप्, श्लु करके द्वित्व, अभ्यासंज्ञा, हलादिशेष करके **निनिज्+ति** बना। अभ्याससंज्ञक नि के इकार को **णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ** से गुण और अनभ्यास में **लघूपधगुण** होकर **नेनेज्+ति** बना। जकार को **चोः कुः** से कुत्व करके गकार और गकार को **खरि च** से चर्त्व होने पर **नेनेक्ति** सिद्ध हुआ। इस तरह श्लु में सर्वत्र उक्त सूत्र से गुण होता है किन्तु अपित् में ङित् होने का कारण लघूपधगुण नहीं हो पाता।

लट् (परस्मैपद)- नेनेक्ति, नेनिक्तः, नेनिजति, नेनेक्षि, नेनिक्थः, नेनिक्थ, नेनेज्मि, नेनिज्वः, नेनिज्मः। **(आत्मनेपद)** नेनिक्ते, नेनिजाते, नेनिजते, नेनिक्षे, नेनिजाथे, नेनिग्ध्वे, नेनिजे, नेनिज्वहे, नेनिज्महे।

लिट् में शप्-श्लु आदि नहीं होते। अतः अभ्यास का गुण भी नहीं होता। **(परस्मैपद)** निनेज, निनिजतुः, निनिजुः, निनेजिथः, निनिजथुः, निनिज, निनेज, निनिजिव, निनिजिम। **(आत्मनेपद)** निनिजे, निनिजाते, निनिजिरे, निनिजिषे, निनिजाथे, निनिजिध्वे, निनिजे, निनिजिवहे, निनिजिमहे। **लुट्-** नेक्ता, नेक्तारौ, नेक्तारः, नेक्तासि, नेक्तासे।

अङो विकल्पार्थं विधिसूत्रम्

६२९. इरितो वा ३।१।५७।।

इरितो धातोश्च्लेरङ् वा परस्मैपदेषु।

अनिजत्, अनैक्षीत्। अनिक्त। अनेक्ष्यत्, अनेक्ष्यत।

इति जुहोत्यादयः।।१४।।

....

लृट् में जकार को कुत्व होकर गकार और गकार को चर्त्व होकर ककार करके ककार से परे स्य के सकार को षत्व और क् और ष् के संयोग में क्ष् होता है। नेक्ष्यति, नेक्ष्यते।

६२८- नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके। न अव्ययपदम्, अभ्यस्तस्य षष्ठ्यन्तम्, अचि सप्तम्यन्तं, पिति सप्तम्यन्तं, सार्वधातुके सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **पुगन्तलघूपधस्य च** से **लघूपधस्य** और **मिदेर्गुणः** से **गुणः** की अनुवृत्ति आती है।

अजादि पित् सार्वधातुक के परे होने पर अभ्यस्त को लघूपधगुण नहीं होता।

लोट् में लट् की तरह ही कार्य होने के बाद लोट् के विशेष कार्य करके **नेनेक्तु-नेनिक्तात्, नेनिक्ताम्** आदि रूप बनते हैं किन्तु **हि** के अपित् होने के कारण ङित् हो जाता है, अतः गुण का निषेध हो जाता है और **हुझल्भ्यो हेर्धिः** से हि के स्थान पर **धि** आदेश करके जकार को कुत्व करके **नेनिग्धि** बन जाता है। उत्तमपुरुष के एकवचन में **नेनिज्+आनि** बनने के बाद लघूपधगुण प्राप्त था, उसका **नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके** से निषेध हो जाता है, जिससे **नेनिजानि** बन जाता है। आत्मनेपद के उत्तमपुरुष में भी इसी सूत्र से लघूपधगुण का निषेध किया जाता है और अन्यत्र ङित्त्व के कारण स्वतः निषेध होता है। **लोट् (परस्मैपद)** के रूप- नेनेक्तु, नेनिक्तात्, नेनिक्ताम्, नेनिजतु, नेनिग्धि-नेनिक्तात्, नेनिक्तम्, नेनिक्त, नेनिजानि, नेनिजाव, नेनिजाम। **(आत्मनेपद)** नेनिक्ताम्, नेनिजाताम्, नेनिजताम्, नेनिक्ष्व, नेनिजाथाम्, नेनिग्ध्वम्, नेनिजै, नेनिजावहै, नेनिजामहै।

लङ् के तिप् में **अनेनिज्+त्** बनने के बाद लघूपधगुण, तकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप, जकार को **चोः कुः** से कुत्व करके गकार, उसको **वावसाने** से चर्त्व करके ककार करके **अनेनेक्, अनेनेग्** ये दो रूप बनते हैं। सिप् में भी यही रूप बनते हैं। **झि** को **सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च** से जुस् आदेश होकर **अनेनिजुः** बनता है। मिप् में अमादेश होने के बाद **नाभ्यस्तास्याचि पिति सार्वधातुके** से गुणनिषेध होकर **अनेनिजम्** बनता है। आत्मनेपद में ङित्त्व के कारण सर्वत्र गुणनिषेध होता है।

लङ्- (परस्मैपद) अनेनेक्-अनेनेग्, अनेनिक्ताम्, अनेनिजुः, अनेनेक्-अनेनेग्, अनेनिक्तम्, अनेनिक्त, अनेनिजम्, अनेनिज्व, अनेनिज्म। **(आत्मनेपद)** अनेनिक्त, अनेनिजाताम्, अनेनिजत, अनेनिक्थाः, अनेनिजाथाम्, अनेनिग्ध्वम्, अनेनिजि, अनेनिज्वहि, अनेनिज्महि।

विधिलिङ्- परस्मैपद में- यासुट् के ङित् होने के कारण लघूपधगुण नहीं होता और आत्मनेपद में तो त, आताम् सभी ङित् हैं ही। **(परस्मैपद)** नेनिज्यात्, नेनिज्याताम्, नेनिज्युः आदि। **(आत्मनेपद)** नेनिजीत, नेनिजीयाताम्, नेनिजीरन्, नेनिजीथाः आदि।

आशीर्लिङ् में यासुट् के कित् होने से लघूपधगुण का निषेध और आत्मनेपद में **लिङ्सिचावात्मनेपदेषु** से झलादि लिङ् के कित् हो जाने के कारण गुण का निषेध हो जाता है। रूप- निज्यात्, निज्यास्ताम् निज्यासुः आदि। आत्मनेपद में- निक्षीष्ट, निक्षीयास्ताम्, निक्षीरन् आदि।

६२९- **इरितो वा।** इर् इत् यस्य स इरित्, तस्माद् इरितः। इरितः पञ्चम्यन्तं, वा अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से **धातोः**, **च्लेः सिच्** से **च्लेः**, **अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्** से **अङ्** और **पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु** से **परस्मैपदेषु** की अनुवृत्ति आती है। जिस धातु में इर् की इत्संज्ञा हुई हो वह इरित् धातु कहलाता है।

इरित् धातु से परे च्लि के स्थान पर विकल्प से अङ् आदेश हो जाता है परस्मैपद परे होने पर।

णिजिर् में इर् की इत्संज्ञा होकर **निज्** बना है। अतः इससे लुङ् में विकल्प से अङ् होता है।

अनिजत्, अनैक्षीत्। लुङ् के तिप् में **अनिज्+च्लि+त्** बना है। च्लि के स्थान पर सिच् आदेश प्राप्त था। उसे बाधकर के **इरितो वा** से वैकल्पिक अङ् आदेश हुआ। **अनिज्+अत्,** वर्णसम्मेलन होकर **अनिजत्** बना। अङ् न होने के पक्ष में सिच् होकर **अनिज्+स्+ईत्** है। **वदव्रजहलन्तस्याचः** से नि के इकार की वृद्धि, जकार को कुत्व, गकार को चर्त्व, सकार को षत्व, क्षत्व करके **अनैक्षीत्** बन जाता है। आत्मनेपद में **लिङ्सिचावात्मनेपदेषु** से सिच् को कित् होकर गुण का निषेध और **झलो झलि** से झल् परे होने पर सिच् के सकार का लोप होता है, अन्यत्र नहीं। आत्मनेपद में अङ् प्राप्त ही नहीं है।

लुङ् के रूप- परस्मैपद में अङ्पक्ष में- अनिजत्, अनिजताम्, अनिजन्, अनिजः, अनिजतम्, अनिजत, अनिजम्, अनिजाव, अनिजाम। **अङ् न होने पर-** अनैक्षीत्, अनैक्ताम्, अनैक्षुः, अनैक्षीः, अनैक्तम्, अनैक्त, अनैक्षम्, अनैक्ष्व, अनैक्ष्म। **आत्मनेपद में-** अनिक्त, अनिक्षाताम्, अनिक्षत, अनिक्थाः, अनिक्षाथाम्, अनिग्ध्वम्, अनिक्षि, अनिक्ष्वहि, अनिक्ष्महि। **लृङ्-** अनेक्ष्यत्, अनेक्ष्यत।

परीक्षा

द्रष्टव्यः- **सभी प्रश्न अनिवार्य हैं और उनके अंक भी दिये गये हैं।**

१- अपनी पुस्तिका में हु धातु के सारे रूप लिखें। ५
२- हु धातु के लिट् के सभी रूपों की सिद्धि करें। १५
३- हु धातु के लुङ् के सभी रूपों की सिद्धि करें। १५
४- हा-धातु के सभी रूप उतारें ५
५- **भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च** की व्याख्या करें। ५
६- **ई हल्यघोः** और **श्नाभ्यस्तयोरातः** में बाध्यबाधकभाव स्पष्ट करें। ५
७- अदादि और जुहोत्यादि का अन्तर करके एक पेज का लेख लिखें। १०
८- **भृञामित्** के अभाव में तीनों धातुओं के कैसे रूप बनते? स्पष्ट करें ५
९- जुह्वति में यदि **हुश्नुवोः सार्वधातुके** न लगता तो क्या रूप बनता? ५
१०- **इरितो वा** की पूर्ण व्याख्या करें। ५
११- जुहोत्यादिगणीय सभी धातुओं के लिट् लकार के रूप लिखें। २५

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का जुहोत्यादिप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ दिवादयः

दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु॥१॥

श्यन्-विधायकं विधिसूत्रम्

६३०. दिवादिभ्यः श्यन् ३।१।६९॥

शपोऽपवादः। **हलि चेति दीर्घः**। दीव्यति। दिदेव। देविता। देविष्यति। दीव्यतु। अदीव्यत्। दीव्येत्। दीव्यात्। अदेवीत्। अदेविष्यत्।

एवं षिवु तन्तुसन्ताने॥२। नृती गात्रविक्षेपे॥३॥ नृत्यति। ननर्त। नर्तिता।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

तिङन्त का चतुर्थ प्रकरण **दिवादि** है। जैसे भ्वादि में धातु और प्रत्ययों के बीच में विकरण के रूप में शप्, अदादि में शप् होकर उसका लुक् और जुहोत्यादि में शप् होकर उसके स्थान पर श्लु हुए, उसी प्रकार **दिवादि** में **शप्** को बाधकर **श्यन्** होता है। **श्यन्** में नकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा तथा **शकार** की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होकर केवल **य** बचता है। **य** शित् है, अतः उसकी **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा होती है। सार्वधातुक होते हुए अपित् भी है, अतः इसको **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव हो जाता है। ङित् होने से इसके परे होने पर पूर्व इक् को होने वाली गुणवृद्धि का **क्ङिति च** से निषेध होता है। इसलिए श्यन् के परे होने पर पूर्व को **गुण** और **वृद्धि** दोनों ही नहीं होते। श्यन् करने के पहले भी गुणवृद्धि नहीं कर सकते, क्योंकि **दिवादिभ्यः श्यन्** से श्यन् और गुण-वृद्धि एक साथ प्राप्त होते हैं, श्यन् के नित्य होने के कारण पहले नित्यकार्य श्यन् ही हो जाता है। एक परिभाषा है- **परनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः**, अर्थात् पूर्वसूत्र से परसूत्र बलवान् होता है, पर से नित्य, नित्य से अन्तरङ्ग और अन्तरङ्ग से अपवादसूत्र। तुलना में जो सूत्र बलवान् होता है, वही पहले लगता है। यहाँ पर नित्य का तात्पर्य नित्य से कार्य करना नहीं है अपितु **कृताकृतप्रसङ्गी नित्यः**, अर्थात् अन्य सूत्र से किसी काम के कर दिए जाने के बाद भी लगे और कार्य न किए जाने पर भी लगे, उसे नित्य कहा गया है। श्यन् करने वाला सूत्र गुण-वृद्धि के होने पर भी लगेगा और न हुए हों तब भी लगेगा। अतः श्यन् नित्य है, फलतः गुण-वृद्धि के पहले ही लगता है।

दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु। दिवु धातु में उकार की इत्संज्ञा हो जाती है, दिव् ही बचता है। आत्मनेपद-निमित्तक न होने से परस्मैपदी

है। इसके अनेक अर्थ हैं। जैसे- **क्रीड़ा=खेलना, विजिगीषा=जीतने की इच्छा करना, व्यवहार= क्रय-विक्रय रूप व्यवहार करना, द्युति=चमकना, स्तुति=स्तुति करना, मोद=प्रसन्न होना, मद=मदमत्त होना, स्वप्न=सोना, कान्ति=इच्छा करना** और **गति=गमन करना।** प्रसंग के अनुसार अर्थ किये जाते हैं।

३३०- **दिवादिभ्यः श्यन्**। दिव् आदिर्येषां ते दिवादयः, तेभ्यो दिवादिभ्यः। दिवादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, श्यन् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कर्तरि शप्** से **कर्तरि** और **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

कर्ता अर्थ में हुए सार्वधातुक प्रत्यय के परे होने पर दिवादिगण में पढ़े गये धातुओं से परे श्यन् प्रत्यय होता है।

यह सूत्र **कर्तरि शप्** का अपवाद है।

दीव्यति। दिव् धातु से लट्, तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् प्राप्त, उसे बाधकर **दिवादिभ्यः श्यन्** से श्यन्, शकार और नकार का लोप, **दिव्+य+ति** बना। दिव् में इकार की **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** से उपधासंज्ञा हुई और उसको **हलि च** से दीर्घ हुआ- **दीव्+य+ति** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **दीव्यति**।

लट् के रूप- दीव्यति, दीव्यतः, दीव्यन्ति, दीव्यसि, दीव्यथः, दीव्यथ, दीव्यामि, दीव्यावः, दीव्यामः।

लिट्-लकार में कोई विशेषता नहीं है। धातु सेट् अर्थात् इट् होने के योग्य है, अतः वलादि-आर्धधातुक के परे होने पर इट् आगम हो जाता है। पित् प्रत्ययों में लघूपधगुण होता है किन्तु अपितों में **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित्त्व होने के कारण **क्ङिति च** से उसका निषेध होता है। प्रक्रिया का दिग्दर्शन मात्र देखें- दिव् लिट्, दिव् तिप्, दिव् णल्, दिव् अ, दिव् दिव् अ, दि दिव् अ, दि देव् अ, **दिदेव**। अपित् में गुण नहीं होगा- **दिदिवतुः, दिदिवुः** आदि।

लिट् के रूप- दिदेव, दिदिवतुः, दिदिवुः। दिदेविथ, दिदिवथुः, दिदिव। दिदेव, दिदिविव, दिदिविम।

लुट् में दिव् लुट्, दिव् ति, दिव् तास् ति, दिव् इ तास् ति, देव् इ तास् ति, देव् इ तास् डा, देव् इ त् आ, वर्णसम्मेलन **देविता** सिद्ध हुआ। हल् परे न होने के कारण **हलि च** से दीर्घ नहीं हुआ। इस तरह रूप बनते हैं- देविता, देवितारौ, देवितारः। देवितासि, देवितास्थः, देवितास्थ। देवितास्मि, देवितास्वः, देवितास्मः।

लृट् में- देविष्यति, देविष्यतः, देविष्यन्ति। देविष्यसि, देविष्यथः, देविष्यथ। देविष्यामि, देविष्यावः, देविष्यामः।

लोट् में- लट् की तरह श्यन्, **हलि च** से दीर्घ होकर सिद्ध होते हैं- दीव्यतु-दीव्यतात्, दीव्यताम्, दीव्यन्तु। दीव्य-दीव्यतात्, दीव्यतम्, दीव्यत। दीव्यानि, दीव्याव, दीव्याम।

लङ् में- अट्, श्यन्, दीर्घ करके रूप बनाइये- अदीव्यत्, अदीव्यताम्, अदीव्यन्। अदीव्यः, अदीव्यतम्, अदीव्यत। अदीव्यम्, अदीव्याव, अदीव्याम।

विधिलिङ् में- श्यन् होकर भ्वादिगण की तरह यासुट्, **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** से प्राप्त सलोप को बाधकर **अतो येयः** से इय् आदेश, यकारलोप आदि कार्य होते हैं। दीव्येत्, दीव्येताम्, दीव्येयुः। दीव्येः, दीव्येतम्, दीव्येत। दीव्येयम्, दीव्येव, दीव्येम।

आशीर्लिङ् में- यासुट् के कित् होने के कारण लघूपधगुण निषिद्ध हो जाता है। केवल **हलि च** से उपधादीर्घ होकर बनते हैं- दीव्यात्, दीव्यास्ताम्, दीव्यासुः। दीव्याः, दीव्यास्तम्, दीव्यास्त। दीव्यासम्, दीव्यास्व, दीव्यास्म।

लुङ् लकार में भ्वादिगणीय **असेधीत्** की तरह रूप बनाइये- अदेवीत्, अदेविष्टाम्, अदेविषुः। अदेवीः, अदेविष्टम्, अदेविष्ट। अदेविषम्, अदेविष्व, अदेविष्म।

लृङ् में- अदेविष्यत्, अदेविष्यताम्, अदेविष्यन्। अदेविष्यः, अदेविष्यतम्, अदेविष्यत। अदेविष्यम्, अदेविष्याव, अदेविष्याम।

षिवु धातु **तन्तुसन्ताने= धागे का विस्तार करना** अर्थात् **सीना** अर्थ में है। उकार की इत्संज्ञा और लोप होता है। **धात्वादेः षः सः** से षकार के स्थान पर सकार आदेश होकर **सिव्** बन जाता है। इसके बाद की पूरी प्रक्रिया **दिव्** धातु की तरह ही होती है।

लट् के रूप- सीव्यति, सीव्यतः, सीव्यन्ति। सीव्यसि, सीव्यथः, सीव्यथ। सीव्यामि, सीव्यावः, सीव्यामः।

लिट् में द्वित्व आदि करके **सिसिव् अ** के बाद द्वितीय सि के सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व होता है और पित् में उपधागुण और अपित् में निषेध होकर निम्नलिखित रूप सिद्ध होते हैं- सिषेव, सिषिवतुः, सिषिवुः। सिषेविथ, सिषिवथुः, सिषिव। सिषेव, सिषिविव, सिषिविम।

लुट् में- सेविता, सेवितारौ, सेवितारः। सेवितासि, सेवितास्थः, सेवितास्थ। सेवितास्मि, सेवितास्वः, सेवितास्मः। **लृट् में**- सेविष्यति, सेविष्यतः, सेविष्यन्ति। सेविष्यसि, सेविष्यथः, सेविष्यथ। सेविष्यामि, सेविष्यावः, सेविष्यामः। **लोट् में**- सीव्यतु-सीव्यतात्, सीव्यताम्, सीव्यन्तु। सीव्य-सीव्यतात्, सीव्यतम्, सीव्यत। सीव्यानि, सीव्याव, सीव्याम। **लङ् में**- असीव्यत्, असीव्यताम्, असीव्यन्। असीव्यः, असीव्यतम्, असीव्यत। असीव्यम्, असीव्याव, असीव्याम। **विधिलिङ् में**- सीव्येत्, सीव्येताम्, सीव्येयुः। सीव्येः, सीव्येतम्, सीव्येत। सीव्येयम्, सीव्येव, सीव्येम। **आशीर्लिङ् में**- सीव्यात्, सीव्यास्ताम्, सीव्यासुः। सीव्याः, सीव्यास्तम्, सीव्यास्त। सीव्यासम्, सीव्यास्व, सीव्यास्म। **लुङ् में**- असेवीत्, असेविष्टाम्, असेविषुः। असेवीः, असेविष्टम्, असेविष्ट। असेविषम्, असेविष्व, असेविष्म। **लृङ् में**- असेविष्यत्, असेविष्यताम्, असेविष्यन्। असेविष्यः, असेविष्यतम्, असेविष्यत। असेविष्यम्, असेविष्याव, असेविष्याम।

नृती गात्रविक्षेपे। नृती धातु **गात्रविक्षेप** अर्थात् **नाचना** अर्थ में है। ईकार की इत्संज्ञा होती है। नृत् शेष रहता है। गुण होने पर **नर्त्** और **श्यन्** होने पर **नृत्य** बन जाता है।

नृत् के लट् में रूप- नृत्यति, नृत्यतः, नृत्यन्ति। नृत्यसि, नृत्यथः, नृत्यथ। नृत्यामि, नृत्यावः, नृत्यामः।

लिट् लकार में- नृत् तिप्, उसके स्थान पर णल् आदेश करके अनुबन्धलोप करने पर नृत्+अ बना। द्वित्व करने पर **नृत् नृत् अ** बना। नृ नृत् मे **उरत्** से अर् होने पर नर् नृत् अ बना। हलादिशेष होकर न नृत् अ बनने के बाद **पुगन्तलघूपधस्य च** से उपधाभूत नृ के ऋकार के स्थान पर रपर सहित गुण होकर **न नर्त् अ** बना, वर्णसम्मेलन होकर **ननर्त** सिद्ध हुआ।

यह गुण केवल तिप्, सिप् और मिप् में होगा क्योंकि शेष में तो **असंयोगाल्लिट् कित्** से किद्वद्भाव होकर **क्ङिति च** से गुण का निषेध हो जाता है। इसलिए **ननृत्+अतुस्**

इडागमविधायकं विधिसूत्रम्

६३१. सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः ७।२।५७॥

एभ्यः परस्य सिज्भिन्नस्य सादेरार्धधातुकस्येड् वा।

नर्तिष्यति, नर्त्स्यति। नृत्यतु। अनृत्यत्। नृत्येत्। नृत्यात्। अनर्तीत्, अनर्तिष्यत्, अनर्त्स्यत्। **त्रसी उद्वेगे॥४॥ वा भ्राशेति श्यन्वा।** त्रस्यति, त्रसति। तत्रास।

....

आदि में वर्णसम्मेलन होकर निम्नलिखित रूप सिद्ध हो जाते हैं- ननर्त, ननृततुः, ननृतुः। ननर्तिथ, ननृतथुः ननृत। ननर्त, ननृतिव, ननृतिम।

लुट् में- नर्तिता, नर्तितारौ, नर्तितारः। नर्तितासि, नर्तितास्थः, नर्तितास्थ। नर्तितास्मि, नर्तितास्वः, नर्तितास्मः।

६३१- **सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः**। न सिच् असिच्, तस्मिन् असिचि। कृतश्च चृतश्च छृदश्च, तृदश्च नृत् च तेषां समाहारद्वन्द्वः कृतचृतच्छृदतृदनृत्, तस्मात् कृतचृतच्छृदतृदनृतः। से सप्तम्यन्तम्, असिचि सप्तम्यन्तं, कृतचृतच्छृदतृदनृतः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् और **उदितो वा** से वा की अनुवृत्ति आती है।

कृत्, चृत्, छृद्, तृद् और नृत् धातु से परे सिच् से भिन्न सकारादि आर्धधातुक को विकल्प से इट् आगम होता है।

सूत्र में से का **सकारादि के परे होने पर** ऐसा अर्थ करने पर सिच् के परे होने पर भी विकल्प से इट् प्राप्त हो सकता था। इसलिए सिच् को रोकने के लिए **असिचि** ऐसा कहा।

नर्तिष्यति, नर्त्स्यति। नृत् धातु से से लृट् लकार, **नृत् स्य ति। आर्धधातुकं शेषः** से स्य की आर्धधातुकसंज्ञा होती है। उसको **सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः** से वैकल्पिक इट् आगम हुआ, **नृत् इस्य ति** बना। **पुगन्तलघूपधस्य च** से उपधाभूत ऋकार को रपर सहित गुण, **नर्त् इस्य ति** बना। इकार से परे सकार का **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व हुआ, **नर्तिष्यति** बन गया। इट् आगम न होने के पक्ष में षत्व भी नहीं हुआ, गुण करके **नर्त् स्य ति** में वर्णसम्मेलन हुआ- **नर्त्स्यति।**

नृत् धातु के लृट् के इट् आगम के **पक्ष में-** नर्तिष्यति, नर्तिष्यतः, नर्तिष्यन्ति। नर्तिष्यसि, नर्तिष्यथः, नर्तिष्यथ। नर्तिष्यामि, नर्तिष्यावः, नर्तिष्यामः। **इट् के अभाव में-** नर्त्स्यति, नर्त्स्यतः, नर्त्स्यन्ति। नर्त्स्यसि, नर्त्स्यथः, नर्त्स्यथ। नर्त्स्यामि, नर्त्स्यावः, नर्त्स्यामः।

लोट् के रूप- नृत्यतु-नृत्यतात्, नृत्यताम्, नृत्यन्तु। नृत्य-नृत्यतात्, नृत्यतम्, नृत्यत। नृत्यानि, नृत्याव, नृत्याम। **लङ् में-** अनृत्यत्, अनृत्यताम्, अनृत्यन्। अनृत्यः, अनृत्यतम्, अनृत्यत। अनृत्यम्, अनृत्याव, अनृत्याम। **विधिलिङ् में-** नृत्येत्, नृत्येताम्, नृत्येयुः। नृत्येः, नृत्येतम्, नृत्येत। नृत्येयम्, नृत्येव, नृत्येम।

आशीर्लिङ् में- नृत्यात्, नृत्यास्ताम्, नृत्यासुः। नृत्याः, नृत्यास्तम्, नृत्यास्त। नृत्यासम्, नृत्यास्व, नृत्यास्म। **लुङ् में-** अनर्तीत्, अनर्तिष्टाम्, अनर्तिषुः, अनर्तीः, अनर्तिष्टम्, अनर्तिष्ट, अनर्तिषम्, अनर्तिष्व, अनर्तिष्म। **लृङ् के इट् पक्ष में-** अनर्तिष्यत्, अनर्तिष्यताम्, अनर्तिष्यन्। अनर्तिष्यः, अनर्तिष्यतम्, अनर्तिष्यत। अनर्तिष्यम्, अनर्तिष्याव, अनर्तिष्याम। **इट् न होने के**

वैकल्पिकैत्वाभ्यासलोपविधायकं विधिसूत्रम्

६३२. वा जॄभ्रमुत्रसाम् ६।४।१२४॥

एषां किति लिटि सेटि थलि च एत्वाभ्यासलोपौ वा।

त्रेसतुः, तत्रसतुः। त्रेसिथ, तत्रसिथ। त्रसिता। **शो तनूकरणे॥५॥**

....

पक्ष में- अनत्स्यर्त्, अनत्स्यर्ताम्, अनत्स्यर्न्। अनत्स्यर्ः, अनत्स्यर्तम्, अनत्स्यर्त, अनत्स्यर्म्, अनत्स्यर्व, अनत्स्यर्म।

त्रसी उद्वेगे। त्रसी धातु **उद्वेग** अर्थात् **डरना** या **घबराना** अर्थ में है। ईकार की इत्संज्ञा होती है, त्रस् शेष रहता है। सेट् और परस्मैपदी है।

त्रस्यति, त्रसति। त्रस् से लट्, तिप्, शप् को बाधकर नित्य से श्यन् प्राप्त था, उसे बाधकर **वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः** से विकल्प से श्यन् हुआ। अनुबन्धलोप करके **त्रस्+यति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **त्रस्यति** सिद्ध हुआ। श्यन् न होने के पक्ष में शप् होता है। अतः **त्रसति** भी बन जाता है। त्रस्यति, त्रस्यतः, त्रस्यन्ति एवं त्रसति, त्रसतः, त्रसन्ति आदि।

तत्रास। लिट्, तिप्, णल्, अ, द्वित्व, हलादिशेष करके **तत्रस्+अ** बना। **अत उपधायाः** से वृद्धि होकर **तत्रास** सिद्ध हुआ।

६३२- **वा जॄभ्रमुत्रसाम्।** जॄश्च भ्रमुश्च, त्रस् च तेषामितरेतरद्वन्द्वो जॄभ्रमुत्रसः, तेषां जॄभ्रमुत्रसाम्। वा अव्ययपदं, जॄभ्रमुत्रसाम् षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** से अतः, लिटि तथा **घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च** से एत्, अभ्यासलोपः, च एवं **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से किति और **थलि च सेटि** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

कित् लिट् या सेट् थल् के परे होने पर जॄ, भ्रम्, त्रस् धातुओं को एत्त्व और अभ्यास का लोप विकल्प से होता है।

तिप्, सिप् और मिप् के पित् होने के कारण **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित् नहीं होता है। अतः इनमें एत्वाभ्यासलोप की प्राप्ति नहीं है। सिप्(थल्) में विशेष विधान होने के कारण हो जाता है।

त्रेसतुः, तत्रसतुः। लिट् के तस् में **त+त्रस्+अतुस्** बनने के बाद अप्राप्त का **वा जॄभ्रमुत्रसाम्** से विकल्प से एत्त्वाभ्यासलोप हुआ अर्थात् त का लोप और त्रस् के अकार को एत्व होकर **त्रेस्+अतुस्** बना। वर्णसम्मेलन और सकार को रुत्वविसर्ग होकर **त्रेसतुः** बना। एत्त्वाभ्यासलोप न होने के पक्ष में **तत्रस्+अतुस्=तत्रसतुः** बना। इस तरह दो रूप बन गये

लिट् के एत्वाभ्यासलोपपक्ष में- तत्रास, त्रेसतुः, त्रेसुः, त्रेसिथ, त्रेसथुः, त्रेस, तत्रास-तत्रस, त्रेसिव, त्रेसिम। **एत्त्वाभ्यास के अभाव में-** तत्रास, तत्रसतुः, तत्रसुः, तत्रसिथ, तत्रसथुः, तत्रस, तत्रास-तत्रस, तत्रसिव, तत्रसिम। **लोट्-** त्रसिता, त्रसितारौ, त्रसितारः आदि। **लृट्-** त्रसिष्यति, त्रसिष्यतः, त्रसिष्यन्ति आदि। **लोट्- (श्यन्पक्षे)** त्रस्यतु-त्रस्यतात्, त्रस्यताम्, त्रस्यन्तु। **(शप्पक्षे)** त्रसतु-त्रसतात्, त्रसताम्, त्रसन्तु। **लङ्-** श्यन् होने पर **अत्रस्यत्** और शप् होने पर- **अत्रसत्। विधिलिङ्-** त्रस्येत्, त्रसेत्। **आशीर्लिङ्-** त्रस्यात्, त्रस्यास्ताम्, त्रस्यासुः।

लुङ् में- वदव्रजहलन्तस्याचः से प्राप्त वृद्धि का **नेटि** से निषेध होने के

ओतो लोपविधायकं विधिसूत्रम्

६३३. ओतः श्यनि ७।३।७१।।

लोपः स्यात्।

श्यति। श्यतः। श्यन्ति। शशौ। शशतुः। शाता। शास्यति।

....

बाद पुनः **अतो हलादेर्लघोः** से वैकल्पिकवृद्धि होती है। **वृद्धिपक्ष के रूप**- अत्रासीत्, अत्रासिष्टाम्, अत्रासिषुः, अत्रासीः, अत्रासिष्टम्, अत्रासिष्ट, अत्रासिषम्, अत्रासिष्व, अत्रासिष्म। **वृद्धि के अभाव में**- अत्रसीत्, अत्रसिष्टाम्, अत्रसिषुः आदि। **लृङ्**- अत्रसिष्यत्, अत्रसिष्यताम् आदि।

शो तनूकरणे। शो धातु **पतला करना, छीलना** अर्थ में है। शो में ओकार की अनुनासिक न होने से इत्संज्ञा भी नहीं होती है।

६३३- ओतः श्यनि। ओतः षष्ठ्यन्तं, श्यनि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **घोर्लोपो लेटि वा** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है।

श्यन् के परे होने पर धातु के अन्त में विद्यमान ओकार का लोप होता है।

श्यति। शो धातु से लट्, तिप्, श्यन् करके **शो+यति** बना। **ओतः श्यनि** से ओकार का लोप होने पर **श्+यति** बना, वर्णसम्मेलन होने पर **श्यति** सिद्ध हुआ। इस प्रकार लट् लकार के रूप बनते हैं- श्यति, श्यतः, श्यन्ति। श्यसि, श्यथः, श्यथ। श्यामि, श्यावः, श्यामः।

शशौ। शो धातु से लिट्, तिप्, णल्, अ होने के बाद **शो+अ** बना। यहाँ पर श्यन् न होने के कारण शित् नहीं है और **शो** धातु उपदेश अवस्था में **एजन्त** है। अतः **आदेच उपदेशेऽशिति** से आत्व हुआ, **शा+अ** बना। **आत औ णलः** से अकार के स्थान पर औकार आदेश, **शा+औ** बना। शा को द्वित्व, **शाशा+औ**, अभ्याससंज्ञा करके **ह्रस्वः** से प्रथम शा के आकार को ह्रस्व होकर **शशा+औ** बना। पा-पाने धातु से **पपौ** की तरह **शशा+औ** में **वृद्धिरेचि** से वृद्धि हुई- **शशौ।**

णल् के परे होने पर शशौ और शेष में द्वित्व आदि करने के बाद **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप और वर्णसम्मेलन करके बनते हैं- शशौ, शशतुः, शशुः। शशिथ-शशाथ, शशथुः, शश। शशौ, शशिव, शशिम।

लुट् में भी **आदेच उपदेशेऽशिति** से आत्व होता है। शाता, शातारौ, शातारः। शातासि, शातास्थः, शातास्थ। शातास्मि, शातास्वः, शातास्मः। **लृट् में**- शास्यति, शास्यतः, शास्यन्ति। शास्यसि, शास्यथः, शास्यथ। शास्यामि, शास्यावः, शास्यामः। **लोट् में**- श्यतु-श्यतात्, श्यताम्, श्यन्तु। श्य-श्यतात्, श्यतम्, श्यत। श्यानि, श्याव, श्याम। **लङ्**- अश्यत्, अश्यताम्, अश्यन्। अश्यः, अश्यतम्, अश्यत। अश्यम्, अश्याव, अश्याम। **विधिलिङ्**- श्येत्, श्येताम्, श्येयुः। श्येः, श्येतम्, श्येत। श्येयम्, श्येव, श्येम।

आशीर्लिङ् में शित् न होने के कारण **आदेच उपदेशेऽशिति** से आत्व करके शायात्, शायास्ताम्, शायासुः। शायाः, शायास्तम्, शायास्त। शायासम्, शायास्व, शायास्म बन जाते हैं।

सिचो लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

६३४. विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः २।४।७८॥

एभ्यः सिचो लुग् वा स्यात् परस्मैपदे परे।

अशात्। अशाताम्, अशुः। इट्सकौ- अशासीत्। अशासिष्टाम्।

छो छेदने॥६॥ छ्यति। **षोऽन्तकर्मणि॥७॥** स्यति। ससौ।

दोऽवखण्डने॥८॥

द्यति। ददौ। देयात्। अदात्। **व्यध ताडने॥९॥**

....

६३४- विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः। घ्राश्च धेट् च शास् च छाश्च साश्च तेषां समहारद्वन्द्वो घ्राधेट्शाच्छास्, तस्मात् घ्राधेट्शाच्छासः। विभाषा प्रथमान्तं, घ्राधेट्शाच्छासः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु** से **सिचः** और **परस्मैपदेषु** की तथा **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** से **लुक्** की अनुवृत्ति आती है।

परस्मैपद के परे रहते घ्रा, धेट्, शो, छो और षो धातु से परे सिच् का विकल्प से लुक् होता है।

अशात्। शो धातु से लुङ्, तिप्, अट्, च्लि, सिच् और आत्व करके **अ+शा+स्+त्** बना। पा पाने धातु से **अपात्** की तरह यहाँ पर भी **विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः** से सिच् का वैकल्पिक लुक् होकर **अशात्** बना। सिच् विद्यमान न होने के कारण **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से इट् आगम और **यमरमनमातां सक् च** से **सक्** और **इट्** भी नहीं होते हैं। इस तरह लुङ् के रूप बने- अशात्, अशाताम्, अशुः। अशाः, अशातम्, अशात। अशाम्, अशाव, अशाम। सिच् के लुक् न होने के पक्ष में- **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से इट् आगम और **यमरमनमातां सक् च** से इट्-सक् करके सिद्ध होते हैं- अशासीत्, अशासिष्टाम्, अशासिषुः। अशासीः, अशासिष्टम्, अशासिष्ट। अशासिषम्, अशासिष्व, अशासिष्म।

लृङ् में- अशास्यत्, अशास्यताम्, अशास्यन्। अशास्यः, अशास्यतम्, अशास्यत। अशास्यम्, अशास्याव, अशास्याम।

छो छेदने। छो धातु काटने के अर्थ में है। इस में शित् के परे होने पर ओकार का लोप और अशित् के परे रहने पर आत्व करके शो धातु की तरह ही रूप सिद्ध होते हैं। विशेषता यह है कि लङ्, लुङ् और लृङ् लकारों में अट् आगम होने के बाद **छे च** से अ को तुक् आगम और तकार को छकार के परे होने के कारण **स्तोः श्चुना श्चुः** से चुत्व होकर चकार आदेश होता है, जिससे **अच्छ्यत्** आदि रूप बनते हैं।

छो धातु के लट् के रूप- छ्यति, छ्यतः, छ्यन्ति। छ्यसि, छ्यथः, छ्यथ। छ्यामि, छ्यावः, छ्यामः।

लिट् में **छे च** से तुक् आगम और **स्तोः श्चुना श्चुः** से चुत्व होने पर- चच्छौ, चच्छतुः, चच्छुः। चच्छिथ-चच्छाथ, चच्छथुः, चच्छ। चच्छौ, चच्छिव, चच्छिम। **लुट्**- छाता, छातारौ, छातारः। छातासि, छातास्थः, छातास्थ। छातास्मि, छातास्वः, छातास्मः। **लृट्**- छास्यति, छास्यतः छास्यन्ति। छास्यसि, छास्यथः, छास्यथ। छास्यामि, छास्यावः, छास्यामः। **लोट्**- छ्यतु-छ्यतात्, छ्यताम्, छ्यन्तु। छ्य-छ्यतात्, छ्यतम्, छ्यत। छ्यानि, छ्याव, छ्याम।

सम्प्रसारणविधायकं विधिसूत्रम्

६३५. ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छति-भृज्जतीनां ङिति च ६।१।१६॥

एषां सम्प्रसारणं स्यात् किति ङिति च।

विध्यति। विव्याध। विविधतुः। विविधुः। विव्यधिथ, विव्यद्ध। व्यद्धा। व्यत्स्यति। विध्येत्। विध्यात्। अव्यात्सीत्। **पुष पुष्टौ॥१०॥** पुष्यति। पुपोष। पुपोषिथ। पोष्टा। पोक्ष्यति। पुषादीत्यङ्। अपुषत्। **शुष शोषणे॥११॥** शुष्यति। शुशोष। अशुषत्। **णश अदर्शने॥१२॥** नश्यति। ननाश। नेशतुः।

....

लङ् अच्छ्यत्, अच्छ्यताम्, अच्छ्यन्। अच्छ्यः, अच्छ्यतम्, अच्छ्यत। अच्छ्यम्, अच्छ्याव, अच्छ्याम। **विधिलिङ्-** छ्येत्, छ्येताम्, छ्येयुः। छ्येः, छ्येतम्, छ्येत। छ्येयम्, छ्येव, छ्येम। **आशीर्लिङ्-** छायात्, छायास्ताम्, छायासुः। छायाः, छायास्तम्, छायास्त। छायासम्, छायास्व, छायास्म। **लुङ् में- सिच् के लुक् पक्ष में-** अच्छात्, अच्छाताम्, अच्छुः। अच्छाः, अच्छातम्, अच्छात। अच्छाम्, अच्छाव, अच्छाम। **लुक् न होने के पक्ष में-** अच्छासीत्, अच्छासिष्टाम्, अच्छासिषुः। अच्छासीः, अच्छासिष्टम्, अच्छासिष्ट। अच्छासिषम्, अच्छासिष्व, अच्छासिष्म। **लृङ्-** अच्छास्यत्, अच्छास्यताम्, अच्छास्यन्। अच्छास्यः, अच्छास्यतम्, अच्छास्यत। अच्छास्यम्, अच्छास्याव, अच्छास्याम।

षोऽन्तकर्मणि। षो धातु **अन्तकर्म** अर्थात् **नाश करना** अर्थ में है। **धात्वादेः षः सः** से षकार के स्थान पर दन्त्य सकार आदेश होता है। अन्त्य ओकार की इत्संज्ञा नहीं होती। अतः **सो** शेष रहता है। यह भी धातु पूर्ववत् अनिट् ही है। अनुनासिक न होने से इसकी भी सम्पूर्ण प्रक्रिया **शो तनूकरणे** की तरह ही होती है।

प्रत्येक लकार में तिप् के रूप- स्यति। ससौ। साता। सास्यति। स्यतु। अस्यत्। स्येत्। सायात्। असात्-असासीत्। असास्यत्।

दोऽवखण्डने। दो धातु **अवखण्डन** अर्थात् **काटना** अर्थ में है। इसमें भी सार्वधातुक ओकार की इत्संज्ञा होकर **द्** शेष रहता है। इसके भी सारे रूप **छो छेदने** की तरह ही रूप होते हैं किन्तु **दाधा घ्वदाप्** से घुसंज्ञा होने के कारण **लिङ्** में **एर्लिङि** से नित्य से एत्व तथा लुङ् में **गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु** से सिच् का लुक् आदि विशेष कार्य होते हैं।

प्रत्येक लकार के तिप् में रूप- द्यति। ददौ। दाता। दास्यति। द्यतु। अद्यत्। द्येत्। देयात्। अदात्(अदाताम्, अदुः)। अदास्यत्।

व्यध ताडने। व्यध धातु **ताडन** अर्थात् **बींधना** अर्थ में है। बाण आदि के द्वारा लक्ष्य करके बींधना आदि कहा जा सकता है। उदात्त अकार की इत्संज्ञा होती है। व्यध् शेष रहता है। परस्मैपदी और अनिट् है।

६३५- ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छति-भृज्जतीनां ङिति च। ग्रहिश्च ज्याश्च वयिश्च व्यधिश्च वष्टिश्च विचतिश्च वृश्चतिश्च पृच्छतिश्च भृज्जतिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छति-भृज्जतयः, तेषां ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छति-भृज्जतीनाम्। ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-

वृश्चति-पृच्छति-भृज्जतीनां षष्ठ्यन्तं, ङिति सप्तम्यन्तं, च अव्ययं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **वचिस्वपियजादीनां किति** से **किति** की तथा **ष्यङः सम्प्रसारणम्** से **सम्प्रसारणम्** की अनुवृत्ति आती है।

ग्रह्, ज्या, वय्, व्यध्, वश्, व्यच्, व्रश्च्, प्रच्छ् और भ्रस्ज् इन धातुओं को सम्प्रसारण होता है कित् या ङित् प्रत्यय के परे होने पर।

विध्यति। व्यध् से लट्, तिप्, श्यन्, अनुबन्धलोप होने पर **व्यध्+यति** बना। श्यन् का य अपित् सार्वधातुक होने के कारण **सार्वधातुकमपित्** से ङित् है। अतः **व्+य्+अ+ध्=व्यध्** के यकार के स्थान पर **ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छति-भृज्जतीनां ङिति** से सम्प्रसारण होकर इकार हो गया। **व्+इ+अ+ध्** बना। **इ+अ** में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **इकार** ही हो गया। इस तरह **विध्+यति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **विध्यति** सिद्ध हुआ। वकार का भी सम्प्रणार प्राप्त होता है किन्तु **न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्** से निषेध हो जाता है। निषेधक सूत्र का अर्थ है- **सम्प्रसारण के परे होने पर पूर्व को सम्प्रसारण नहीं होता।** इससे सिद्ध हो जाता है कि जहाँ दो वर्ण सम्प्रसारण के योग्य हों, वहाँ पर पहले पर वर्ण को सम्प्रसारण होता है।

लट्- विध्यति, विध्यतः, विध्यन्ति आदि।

विव्याध। लिट् में **व्यध्+अ** बनने के बाद द्वित्व होकर **व्यध्+व्यध्+अ** बना। **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** से अभ्यास को सम्प्रसारण होकर पूर्वरूप होने पर हलादि शेष होने के बाद **विव्यध्+अ** बना। उपधावृद्धि, वर्णसम्मेलन करके **विव्याध** बनता है। द्विवचन एवं बहुवचन में कित् होने के कारण **ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छति-भृज्जतीनां ङिति च** से पहले सम्प्रसारण होकर बाद में **विध्** को द्वित्व आदि कार्य होते हैं। **विविध्+अतुस्=विविधतुः।** थल् के कित्, ङित् न होने के कारण **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** से अभ्यास को सम्प्रसारण होता है। **भारद्वाजनियम** से थल् को इट् होने पर **विव्यधिथ** और इट् न होने के पक्ष में **विव्यध्+थ** बनने के बाद **झषस्तथोर्धोऽधः** से थकार के स्थान पर धकार आदेश और पूर्वधकार को जश्त्व होकर **विव्यद्ध** बनता है। लिट् के वस् और मस् में क्रादिनियम से नित्य से इट् हो जाता है।

लिट् के रूप- विव्याध, विविधतुः, विविधुः, विव्यधिथ-विव्यद्ध, विविधथुः, विविध, विव्याध-विव्यध, विविधिव, विविधिम।

लुट्- में इट् का अभाव है। **व्यध्+ता** में **झषस्तथोर्धोऽधः** से तकार को धकार होकर पूर्वधकार को जश्त्व होकर दकार होता है। व्यद्धा, व्यद्धारौ, व्यद्धारः, व्यद्धासि, व्यद्धास्थः आदि।

लृट्- **व्यध्+स्यति** में धकार को **खरि च** से चर्त्व होकर तकार होता है। व्यत्स्यति, व्यत्स्यतः, व्यत्स्यन्ति आदि। **लोट्**- विध्यतु-विध्यतात्, विध्यताम्, विध्यन्तु आदि। **लङ्**- अविध्यत्, अविध्यताम्, अविध्यन् आदि। **विधिलिङ्**- विध्येत्, विध्येताम्, विध्येयुः आदि। **आशीर्लिङ्**- में कित् होने के कारण सम्प्रसारण होता है। विध्यात्, विध्यास्ताम्, विध्यासुः आदि।

लुङ्- के तिप् में **अव्यध्+स्+ईत्** बनने के बाद **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि होकर धकार को **खरि च** से चर्त्व होता है, **अव्यात्सीत्।** तस् में **अव्याध्+स्+ताम्** बनने के बाद **झलो झलि** से सकार का लोप, **झषस्तथोर्धोऽधः** से तकार को धकार और पूर्वधकार को जश्त्व होकर दकार होने पर **अव्याद्धाम्** बनता है। झि के स्थान पर **सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च**

इटो विकल्पार्थं विधिसूत्रम्

६३६. रधादिभ्यश्च ७।२।४५॥

रध्, नश्, तृप्, दृप्, द्रुह्, मुह्, ष्णुह्, ष्णिह् एभ्यो वलाद्यार्धधातुकस्य वेट् स्यात्। नेशिथ।

....

से जुस् आदेश होने पर **अव्याध्+स्+उस्** बना है। झल् के परे न होने के कारण सकार का लोप नहीं हुआ। **अव्यात्सुः।**

लुङ् के रूप- अव्यात्सीत्, अव्याद्धाम्, अव्यात्सुः, अव्यात्सीः, अव्याद्धम्, अव्याद्ध, अव्यात्सम्, अव्यात्स्व, अव्यात्स्म। **लृङ्**- अव्यत्स्यत्, अव्यत्स्यताम् आदि।

पुष पुष्टौ। पुष धातु **पालना** या **पुष्ट करना** अर्थ में है। अनिट् है। अकार इत्संज्ञक है। अजन्त या अकारवान् न होने से क्रादिनियम से लिट् में सर्वत्र इट् होता है।

लट् के रूप- पुष्यति, पुष्यतः, पुष्यन्ति। पुष्यसि, पुष्यथः, पुष्यथ। पुष्यामि, पुष्यावः, पुष्यामः। **लिट् में**- पुपोष, पुपुषतुः, पुपुषुः। पुपोषिथ, पुपुषथुः, पुपुष। पुपोष, पुपुषिव, पुपुषिम। **लुट् में** षकार से परे तासि के तकार को **ष्टुना ष्टुः** से टुत्व और लघूपधगुण होकर- पोष्टा, पोष्टारौ, पोष्टारः। पोष्टासि, पोष्टास्थः, पोष्टास्थ। पोष्टास्मि, पोष्टास्वः, पोष्टास्मः।

पोक्ष्यति। पुष् धातु से लृट् लकार, तिप्, स्य, लघूपधगुण करके **पोष्+स्यति** बना। **षढोः कः सि** से स्य के सकार के परे होने के कारण पोष् के षकार के स्थान पर ककार आदेश हुआ- **पोक्+स्यति** बना। ककार से परे सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व होकर **पोक्+ष्यति** बना। ककार और षकार के संयोग होने पर क्ष् होकर- **पोक्ष्यति।**

लृट् के रूप- पोक्ष्यति, पोक्ष्यतः, पोक्ष्यन्ति। पोक्ष्यसि, पोक्ष्यथः, पोक्ष्यथ। पोक्ष्यामि, पोक्ष्यावः, पोक्ष्यामः। **लोट् में**- पुष्यतु-पुष्यतात्, पुष्यताम्, पुष्यन्तु। पुष्य-पुष्यतात्, पुष्यतम्, पुष्यत। पुष्याणि, पुष्याव, पुष्याम। **लङ् में**- अपुष्यत्, अपुष्यताम्, अपुष्यन्। अपुष्यः, अपुष्यतम्, अपुष्यत। अपुष्यम्, अपुष्याव, अपुष्याम। **विधिलिङ् में**- पुष्येत्, पुष्येताम्, पुष्येयुः। पुष्येः, पुष्येतम्, पुष्येत। पुष्येयम्, पुष्येव, पुष्येम। **आशीर्लिङ् में**- पुष्यात्, पुष्यास्ताम्, पुष्यासुः। पुष्याः, पुष्यास्तम्, पुष्यास्त। पुष्यासम्, पुष्यास्व, पुष्यास्म।

लुङ् में पुषादि धातु के होने के कारण **पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु** से च्लि के स्थान पर चङ् आदेश होकर **अपुषत्** बनता है। अपुषत्, अपुषताम्, अपुषन्। अपुषः, अपुषतम्, अपुषत। अपुषम्, अपुषाव, अपुषाम। **लृङ् में**- अपोक्ष्यत्, अपोक्ष्यताम्, अपोक्ष्यन्। अपोक्ष्यः, अपोक्ष्यतम्, अपोक्ष्यत। अपोक्ष्यम्, अपोक्ष्याव, अपोक्ष्याम।

शुष शोषणे। शुष धातु **शोषण** अर्थात् **सूखने** के अर्थ में है। ध्यान रहे कि सूखना ही अर्थ है, सुखाना नहीं। सुखाना अर्थ के लिए तो णिजन्त में **शोषयति** यह रूप बनता है। अकार की इत्संज्ञा होने के बाद शुष् के रूप भी पुष् के समान ही होते हैं। जैसे- शुष्यति। शुशोष। शोष्टा। शोक्ष्यति। शुष्यतु। अशुष्यत्। शुष्येत्। शुष्यात्। अशुषत्। अशोक्ष्यत्।

णश अदर्शने। णश धातु **अदर्शन** अर्थात् **लोप** या **नाश होना** अथवा **नेत्रों से ओझल होना अर्थ में है। णो नः** से आदि णकार के स्थान पर नकार आदेश और **उपदेशेऽज्नुनासिक इत्** से शकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा और लोप होने पर **नश्** बचता है। परस्मैपदी और सेट् है।

नुमागमविधायकं विधिसूत्रम्

६३७. मस्जिनशोर्झलि ७।१।६०॥

नुम् स्यात्। ननंष्ठ। नेशिव, नेश्व। नेशिम, नेश्म। नशिता, नंष्टा। नशिष्यति, नङ्क्ष्यति। नश्यतु। अनश्यत्। नश्येत्। नश्यात्। अनशत्।

षूङ् प्राणिप्रसवे॥१३॥ सूयते। सुषुवे। क्रादिनियमादिट्। सुषुविषे। सुषुविवहे। सुषुविमहे। सविता, सोता।

दुङ् परितापे॥१४॥ दीङ् क्षये॥१५॥ दीयते।

....

लट्- नश्+यति=नश्यति, नश्यतः, नश्यन्ति आदि।

६३६- रधादिभ्यश्च। रध् आदियेषां ते रधादयः, तेभ्यः रधादिभ्यः। रधादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** यह सम्पूर्ण सूत्र और **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से वा की अनुवृत्ति आती है।

रध्, नश्, तृप्, दृप्, द्रुह्, मुह्, ष्णुह्, ष्णिह् इन धातुओं से परे वलादि आर्धधातुक को इट् विकल्प से होता है।

६३७- मस्जिनशोर्झलि। मस्जिश्च नश् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो मस्जिनशौ, तयोर्मस्जिनशोः। मस्जिनशोः षष्ठ्यन्तं, झलि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इदितो नुम् धातोः** से **नुम्** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है, जिससे **प्रत्ययः** पद आक्षिप्त होता है और **झलि** से **झलादि प्रत्यय** यह अर्थ निकलता है।

झलादि प्रत्यय के परे होने पर मस्ज् और नश् धातुओं को नुम् आगम होता है।

ननाश। लिट्, तिप्, णल्, अ, नश् को द्वित्व, हलादिशेष होकर **ननश्+अ=ननाश।** तस् और झि में एत्वाभ्यासलोप होकर **नेशतुः, नेशुः** बनते हैं।

नेशिथ, ननंष्ठ। लिट् के सिप् में **ननश्+थ** बनने के बाद **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से नित्य से इट् प्राप्त था, उसे बाधकर **रधादिभ्यश्च** से विकल्प से इट् हुआ। इट् से युक्त थल् के परे होने पर **थलि च सेटि** से एत्वाभ्यासलोप हुआ- **नेश्+इथ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **नेशिथ** सिद्ध हुआ। इट् होने पर झलादि न मिलने के कारण **नुम्** नहीं हुआ। इट् न होने के पक्ष में एत्वाभ्यासलोप भी प्राप्त नहीं है। अतः **ननश्+थ** है। **मस्जिनशोर्झलि** से नुम् का आगम, मित् होने के कारण अन्त्य अच् नकारोत्तरवर्ती अकार के बाद और शकार के पहले बैठा। **ननन्श्+थ** बना। नकार को **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार, शकार को **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से षकार आदेश, षकार से परे थकार को **ष्टुना ष्टुः** से ष्टुत्व से **ठकार** आदेश होकर **ननंष्ठ** सिद्ध हुआ। इस तरह दो रूप बन गये- **नेशिथ, ननंष्ठ।**

लिट् के रूप- ननाश, नेशतुः, नेशुः, नेशिथ-ननंष्ठ, नेशथुः, नेश, ननाश-ननश, नेशिव, नेशिम। **लुट् में** इट्पक्ष और इट् के अभाव पक्ष में दो-दो रूप बनते हैं। नशिता, नशितारौ, नशितारः एवं नंष्टा, नंष्टारौ, नंष्टारः।

लृट् में- रधादिभ्यश्च से इट् होने के पक्ष में **नशिष्यति** और इट् के अभाव में नुम् का आगम होकर **नन्श्+स्यति** बना है। नकार को अनुस्वार, शकार को षकार आदेश

और सि के सकार के परे रहते षकार को **षढोः कः सि** से ककार आदेश होकर **नंक्+स्यति** बना। ककार से परे सकार को षत्व करके **क्षसंयोगे क्षः** होकर **नंक्ष्यति** बना। **क्ष्य में** विद्यमान ककार के परे होने पर **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से परसवर्ण होकर ङकार हुआ। इस तरह से **नङ्क्ष्यति** बना। **इट् के पक्ष में** नशिष्यति, नशिष्यतः, नशिष्यन्ति आदि। **इट् न होने के पक्ष में**- नङ्क्ष्यति, नङ्क्ष्यतः, नङ्क्ष्यन्ति।

लोट्- नश्यतु-नश्यतात्, नश्यताम्, नश्यन्तु आदि। **लङ्**- अनश्यत्, अनश्यताम्, अनश्यन् आदि। **विधिलिङ्**- नश्येत्, नश्येताम्, नश्येयुः। **आशीर्लिङ्**- झलादि न होने के कारण नुम् का आगम नहीं हुआ। नश्यात्, नश्यास्ताम्, नश्यासुः आदि। **लुङ्**- **पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु** से च्लि के स्थान पर अङ् आदेश होकर- अनशत्, अनशताम्, अनशन्, अनशः, अनशतम्, अनशत, अनशम्, अनशाव, अनशाम। **लृङ्**- अनशिष्यत्, अनङ्क्ष्यत्।

षूङ् प्राणिप्रसवे। षूङ् धातु **प्राणियों को पैदा करना** अर्थ में है। धातु के आदि षकार के स्थान पर **धात्वादेः षः सः** से सकार आदेश होता है। ङकार भी इत्संज्ञक है। सू बचता है। ङकारानुबन्ध के कारण आत्मनेपदी और **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से वलादि में **वेट्** है किन्तु लिट् में **श्र्युकः किति** से नित्य से इट् का निषेध प्राप्त होने पर क्रादिनियम से नित्य से इट् हो जाता है।

लट्- सूयते, सूयेते, सूयन्ते, सूयसे, सूयेथे, सूयध्वे, सूये, सूयावहे, सूयामहे।

लिट्- में **ए, आते, इरे, आथे, इट्** ये स्वतः ही अजादि है और से, ध्वे, वहे, महे में इट् होने के कारण अजादि है। अतः **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् आदेश होता है। द्वितीय सकार को षत्व हो जाता है। **रूप**- सुषुवे, सुषुवाते, सुषुविरे, सुषुविषे, सुषुवाथे, सुषुविढ्वे-सुषुविध्वे, सुषुवे, सुषुविवहे, सुषुविमहे।

लुट्- इट् होने के पक्ष में सविता, सवितारौ, सवितारः, सवितासे आदि और इट् न होने के पक्ष में सोता, सोतारौ, सोतारः, सोतासे आदि। इसी तरह **लृट्** में- सविष्यते, सविष्येते, सविष्यन्ते, सोष्यते, सोष्येते, सोष्यन्ते आदि। **लोट्**- सूयताम्, सूयेताम्, सूयन्ताम्, सूयस्व, सूयेथाम, सूयध्वम्, सूयै, सूयावहै, सूयामहै। **लङ्**- असूयत, असूयेताम्, असूयन्त, असूयथाः, असूयेथाम्, असूयध्वम्, असूये, असूयावहि, असूयामहि। **विधिलिङ्**- सूयेत, सूयेयाताम्, सूयेरन् आदि। **आशीर्लिङ्- इट् के पक्ष में**- सविषीष्ट, सविषीयास्ताम्, सविषीरन्, सविषीष्ठाः, सविषीयास्थाम्, सविषीढ्वम्-सविषीध्वम्, सविषीय, सविषीवहि, सविषीमहि। **इट् के अभाव में**- सोषीष्ट, सोषीयास्ताम्, सोषीरन् आदि। **लुङ् के इट्पक्ष में**- असविष्ट, असविषाताम्, असविषत, असविष्ठाः, असविषाथाम्, असविढ्वम्-असविध्वम्, असविषि, असविष्वहि, असविष्महि। **इट् न होने पर**- असोष्ट, असोषाताम्, असोषत, असोष्ठाः, असोषाथाम्, असोढ्वम्, असोषि, असोष्वहि, असोष्महि। **लृङ्**- असविष्यत, असोष्यत।

दूङ् परितापे। दूङ् धातु **परिताप** अर्थात् **दुःखी होना** अर्थ में है। ङकार की इत्संज्ञा होने से आत्मनेपदी है और ऊदन्त होने से सेट् है।

लट्- दूयते, दूयेते, दूयन्ते आदि। **लिट्**- दुदुवे, दुदुवाते, दुदुविरे आदि। **लुट्**- दविता, दवितारौ, दवितारः, दवितासे आदि। **लृट्**- दविष्यते, दविष्येते, दविष्यन्ते आदि। **लोट्**- दूयताम्, दूयेताम्, दूयन्ताम् आदि। **लङ्**- अदूयत, अदूयेताम्, अदूयन्त आदि। **विलिलिङ्**- दूयेत, दूयेयाताम्, दूयेरन् आदि। **आशीर्लिङ्**- दविषीष्ट, दविषीयास्ताम्, दविषीरन् आदि। **लुङ्**- अदविष्ट, अदविषाताम्, अदविषत आदि। **लृङ्**- अदविष्यत, अदविष्येताम् आदि।

युटागमविधायकं विधिसूत्रम्

६३८. दीङो युडचि क्ङिति ६।४।६३॥

दीङः परस्याजादेः क्ङित आर्धधातुकस्य युट्।

वार्तिकम्- **वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ।** दिदीये।

आत्वविधायकं विधिसूत्रम्

६३९. मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च ६।१।५०॥

एषामात्त्वं स्याल्ल्यपि चादशित्येज्निमित्ते। दाता। दास्यति।

वार्तिकम्- **स्थाघ्वोरित्त्वे दीङः प्रतिषेधः।** अदास्त। **डीङ् विहायसा गतौ॥१६॥**

डीयते। डिड्ये। डयिता। **पीङ् पाने॥१७॥** पीयते। पेता। अपेष्ट।

माङ् माने॥१८॥ मायते। ममे। **जनी प्रादुर्भावे॥१९॥**

....

दीङ् क्षये। दीङ् धातु **नष्ट होना** अर्थ में है। यह भी ङकार की इत्संज्ञा हो जाने के कारण आत्मनेपदी है और अनिट् कारिका के अनुसार अनिट् भी किन्तु लिट् में क्रादिनियम से नित्य से इट् होता है।

लट्- दूयते, दूयेते, दूयन्ते आदि।

६३८- **दीङो युडचि क्ङिति।** क् च ङ् च क्ङौ, तौ इतौ यस्य तत् क्ङित्, तस्मिन् क्ङिति। दीङः पञ्चम्यन्तं, युट् प्रथमान्तम्, अचि सप्तम्यन्तं, क्ङिति सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुके** का अधिकार है।

दीङ् से परे अजादि कित्, ङित् आर्धधातुक को युट् आगम होता है।

उकार और टकार की इत्संज्ञा होकर केवल **य्** बचता है और टित् होने के कारण अजादि आर्धधातुक का आदि-अवयव होकर बैठता है।

वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ। यह वार्तिक है। **उवङ् और यण् की कर्तव्यता में वुक् और युट् को सिद्ध कहना चाहिए।**

भाष्य में यह वार्तिक **असिद्धवदत्राभात्** सूत्र में पठित है। षष्ठाध्याय के चतुर्थपाद के बाइसवें सूत्र से पाद की समाप्ति पर्यन्त के सूत्र आभीय सूत्र कहलाते हैं और उक्त सूत्र से एक आभीय की कर्तव्यता में दूसरा आभीय असिद्ध कर दिया जाता है। इसी क्रम में **दीङो युडचि क्ङिति** इस आभीय के द्वारा किया गया युट् आगम **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** इस आभीय की कर्तव्यता में असिद्ध होने से यण् की प्राप्ति होती है। इसलिए आचार्य को वार्तिक के द्वारा कहना पड़ा कि उवङ् और यण् की कर्तव्यता में वुक् और युट् असिद्ध नहीं होते अर्थात् सिद्ध ही होते हैं। युट् के सिद्ध होने से अजादि न मिलने के कारण यण् और वुक् के सिद्ध होने से अजादि न मिलने से उवङ् नहीं होता।

दिदीये। लिट् के तिप् में **दिदी+ए** बनने के बाद **दीङो युडचि क्ङिति** से युट् आगम होकर **दिदी+य्+ए** बना। अब आभीयशास्त्र के द्वारा किया गया युट् **असिद्धवदत्राभात्** के नियम से आभीयशास्त्र **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** की दृष्टि में असिद्ध था तो **वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ** से सिद्ध हुआ अर्थात् आगे यकार दिखाई दिया। अब अजादि न मिलने के कारण यण्

नहीं हो सका। वर्णसम्मेलन होकर **दिदीये** सिद्ध हुआ। **लिट् के रूप**- दिदीये, दिदीयाते, दिदीयिरे, दिदीयिषे, दिदीयाथे, दिदीयिढ्वे-दिदीयिध्वे, दिदीये, दिदीयिवहे, दिदीयिमहे।

६३९- **मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च**। मीनातिश्च मिनोतिश्च दीङ् च तेषामितरेतरद्वन्द्वो मीनातिमिनोतिदीङः, तेषां मीनातिमिनोतिदीङाम्। मीनातिमिनोतिदीङां षष्ठ्यन्तं, ल्यपि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **आदेच उपदेशेऽशिति** यह पूरा सूत्र अनुवर्तित होता है।

ल्यप् के विषय में या एच् करने में निमित्त शिद्भिन्न प्रत्यय के विषय में क्र्यादि के मीञ्, स्वादि के मिञ् और दिवादि के दीङ् धातुओं को आकार अन्तादेश होता है।

एच् करने में निमित्त का तात्पर्य यह है जिसे निमित्त मानकर धातु में गुण, वृद्धि आदि होकर एच् अर्थात् **ए, ओ, ऐ, औ** बन जाता हो, वह वर्ण एच् निमित्तक है। एच् का निमित्त होते हुए शित् नहीं होना चाहिए। लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ्, लृङ् में स्य, तास् आदि एज्निमित्तक हैं। अतः इन लकारों में आत्त्व हो जाता है। जिस लकार में श्यन् होता है, वहाँ शित् होने के कारण नहीं होता।

दाता। दी से लुट्, त, तास्, डा आदि करके **दी+ता** बना। ता इस आर्धधातुक को मानकर धातु के ईकार को गुण होकर एकार बनता है। अतः एज्निमित्तक है ता। उसके परे होने पर **मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च** से धातु के ईकार के स्थान पर आकार आदेश होकर **दाता** सिद्ध हुआ।

लुट् में- दाता, दातारौ, दातारः, दातासे आदि। इसी तरह **लृट् में**- दास्यते, दास्येते, दास्यन्ते आदि। **लोट्**- दीयताम्, दीयेताम्, दीयन्ताम् आदि। **लङ्**- अदीयत, अदीयेताम्, अदीयन्त। **विधिलिङ्**- दीयेत, दीयेयाताम्, दीयेरन् आदि। **आशीर्लिङ्**- दासीष्ट, दासीयास्ताम्, दासीरन् आदि।

स्थाघ्वोरित्त्वे दीङः प्रतिषेध। यह भाष्य वार्तिक है। **स्थाघ्वोरिच्च से होने वाला इत्त्व दीङ् धातु में नहीं होता है।**

लुङ् में- **अदा+स्+त** बनने के बाद **दा-रूप** मानकर **दाधा घ्वदाप्** से घुसंज्ञा और **स्थाघ्वोरिच्च** से इत्व प्राप्त होता है किन्तु **स्थाघ्वोरित्त्वे दीङः प्रतिषेधः** से निषेध हो जाने से इत्व नहीं हुआ। अतः **अदास्त** ही रह गया। **रूप**- अदास्त, अदासाताम्, अदासत, अदास्थाः, अदासाथाम्, अदाध्वम्, अदासि, अदास्वहि, अदास्महि। **लृङ्**- अदास्यत, अदास्येताम्, अदास्यन्त आदि।

डीङ् विहायसा गतौ। डीङ् धातु **आकाशमार्ग से जाना** अर्थात् **उड़ना** अर्थ में है। ङकार की इत्संज्ञा होने से आत्मनेपदी है। **ऊदृदन्तैः** इस कारिका में आने के कारण सेट् है।

लट्- डीयते, डीयेते, डीयन्ते आदि। उत् उपसर्ग के लगने से **उड्डीयते** आदि रूप बनते हैं। **लिट्**- डिड्ये, डिड्याते, डिड्यिरे आदि। **लुट्**- डयिता, डयितारौ, डयितारः आदि। **लृट्**- डयिष्यते, डयिष्येते, डयिष्यन्ते। **लोट्**- डीयताम्, डीयेताम्, डीयन्ताम् आदि। **लङ्**- अडीयत, अडीयेताम्, अडीयन्त। **विधिलिङ्**- डीयेत, डीयेयाताम्, डीयेरन्। **आशीर्लिङ्**- डयिषीष्ट, डयिषीयास्ताम्, डयिषीरन्। **लुङ्**- अडयिष्ट, अडयिषाताम्, अडयिषत, अडयिष्ठाः, अडयिषाथाम्, अडयिढ्वम्-अडयिध्वम्, अडयिषि, अडयिष्वहि, अडयिष्महि। **लृङ्**- अडयिष्यत, अडयिष्येताम्, अडयिष्यन्त।

जादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६४०. ज्ञाजनोर्जा ७।३।७९॥

अनयोर्जादेशः स्याच्छिति। जायते। जज्ञे। जनिता। जनिष्यते।

....

पीङ् पाने। पीङ् धातु **पीना** अर्थ में है। ङित् होने से आत्मनेपदी है। अनिट् है।

लट्- पीयते, पीयेते, पीयन्ते। **लिट्**- पिप्ये, पिप्याते, पिप्यिरे। **लुट्**- पेता, पेतारौ, पेतारः, पेतासे। **लृट्**- पेष्यते, पेष्येते, पेष्यन्ते। **लोट्**- पीयताम्, पीयेताम्, पीयन्ताम्। **लङ्**- अपीयत, अपीयेताम्, अपीयन्त। **विधिलिङ्**- पीयेत, पीयेयाताम्, पीयेरन्। **आशीर्लिङ्**- पेषीष्ट, पेषीयास्ताम्, पेषीरन्। **लुङ्**- अपेष्ट, अपेषाताम्, अपेषत, अपेष्ठाः, अपेषाथाम्, अपेढ्वम्, अपेषि, अपेष्वहि, अपेष्महि। **लृङ्**- अपेष्यत, अपेष्येताम्, अपेष्यन्त।

माङ् माने। माङ् धातु **मापना** अर्थ में है। ङकार की इत्संज्ञा होने से आत्मनेपदी है। अनिट् है।

लट्- मायते, मायेते, मायन्ते। **लिट् में**- ममे, ममाते, ममिरे, ममिषे, ममाथे। **लुट्**- माता, मातारौ, मातारः, मातासे। **लृट्**- मास्यते, मास्येते, मास्यन्ते। **लोट्**- मायताम्, मायेताम्, मायन्ताम्। **लङ्**- अमायत, अमायेताम्, अमायन्त। **विधिलिङ्**- मायेत, मायेयाताम्, मायेरन्। **आशीर्लिङ्**- मासीष्ट, मासीयास्ताम्, मासीरन्। **लुङ्**- अमास्त, अमासाताम्, अमासत। **लृङ्**- अमास्यत, अमास्येताम्, अमास्यन्त।

जनी प्रादुर्भावे। जनी धातु **उत्पन्न होना** अर्थ में है। ईकार की इत्संज्ञा होती है। इसी धातु से जन, जननी, जनक, जाति, जन्मन्, जाया आदि शब्द बनते हैं। अनुदात्त की इत्संज्ञा होने के कारण यह आत्मनेपदी है। सेट् है।

६४०- ज्ञाजनोर्जा। ज्ञाश्च जन् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो ज्ञाजनौ, तयोः ज्ञाजनोः। ज्ञाजनोः षष्ठ्यन्तं, जा लुप्तप्रथमाकं पदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ष्ठिवुक्लमुचमां शिति** से **शिति** की अनुवृत्ति आती है।

शित् प्रत्यय के परे होने पर ज्ञा और जन् धातुओं के स्थान पर जा आदेश होता है।

अनेकाल् होने के कारण सर्वादेश हो जाता है।

जायते। जन् से लट्, त, श्यन् आदि होकर **जन्+यते** बना है। **ज्ञाजनोर्जा** से जा सर्वादेश होकर **जायते** बन गया। जायते, जायेते, जायन्ते। जायसे, जायेथे, जायध्वे, जाये, जायावहे, जायामहे।

जज्ञे। लिट् में श्यन् न होने से अशित् होने के कारण **जा** आदेश नहीं हुआ। द्वित्वादि होकर **जजन्+ए** बना है। **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से उपधालोप होकर **जज्+न्+ए** बना। जकार से परे नकार को श्चुत्व होकर ञकार हुआ, **जज्ञ्+ए** बना। **जकार** और **ञकार** के संयोग से **ज्ञ** बन गया, **जज्ञ्+ए,** वर्णसम्मेलन होकर **जज्ञे** सिद्ध हुआ। **लिट् के रूप**- जज्ञे, जज्ञाते, जज्ञिरे, जज्ञिषे, जज्ञाथे, जज्ञिध्वे, जज्ञे, जज्ञिवहे, जज्ञिमहे। **लुट्**- जनिता, जनितारौ, जनितारः। **लृट्**- जनिष्यते, जनिष्येते, जनिष्यन्ते। **लोट्**- जायताम्, जायेताम्, जायन्ताम्, जायस्व, जायेथाम्, जायध्वम्, जायै, जायावहै, जायामहै। **लङ्**- अजायत, अजायेताम्, अजायन्त, अजायथाः, अजायेथाम्, अजायध्वम्, अजाये, अजायावहि, अजायामहि।

वैकल्पिकचिणादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६४१. दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ३।१।६१॥

एभ्यश्च्लेश्चिण् वा स्यादेकवचने त-शब्दे परे।

लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

६४२. चिणो लुक् ६।४।१०४॥

चिणः परस्य लुक् स्यात्।

वृद्धिनिषेधकं विधिसूत्रम्

६४३. जनिवध्योश्च ७।३।३५॥

अनयोरुपधाया वृद्धिर्न स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च। अजनि, अजनिष्ट। **दीपी दीप्तौ॥२०॥** दीप्यते। दिदीपे। अदीपि, अदीपिष्ट। **पद गतौ॥२१॥** पद्यते। पेदे। पत्ता। पत्सीष्ट।

....

विधिलिङ्- जायेत, जायेयाताम्, जायेरन्, जायेथाः, जायेयाथाम्, जायेध्वम्, जायेय, जायेवहि, जायेमहि। **आशीर्लिङ्-** जनिषीष्ट, जनिषीयास्ताम्, जनिषीरन्, जनिषीष्ठाः, जनिषीयास्थाम्, जनिषीध्वम्, जनिषीय, जनिषीवहि, जनिषीमहि।

६४१- दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम्। दीपश्च जनश्च बुधश्च पूरिश्च तायिश्च प्यायिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो दीपजनबुधपूरितायिप्यायय:, तेभ्य: दीपजनबुध पूरितायिप्यायिभ्य:। दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्य: पञ्चम्यन्तम्, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **च्लेः सिच्** से **च्लेः** और **चिण् ते पदः** से **चिण्, ते** की अनुवृत्ति आती है।

एकवचन त शब्द के परे होने पर दीप्, जन्, बुध्, पूर्, ताय् और प्याय् धातुओं से परे च्लि के स्थान पर चिण् आदेश होता है।

६४२- चिणो लुक्। चिण: पञ्चम्यन्तं, लुक् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

चिण् से परे (तशब्द का) लुक् होता है।

यह सूत्र अङ्गाधिकार में है अर्थात् **अङ्गस्य** का अधिकार आता है। अङ्ग से परे प्रत्यय यहाँ पर केवल त ही मिलता है क्योंकि केवल त के परे ही चिण् हुआ है।

६४३- जनिवध्योश्च। जनिश्च वधिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो जनिवधी, तयोर्जनिवध्यो:। जनिवध्यो: षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अत उपधायाः** से **उपधायाः, मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः, नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः** से **न, आतो युक् चिण्कृतोः** से **चिण्कृतोः** और **अचो ञ्णिति** से **ञ्णिति** की अनुवृत्ति आती है।

चिण् के परे होने पर अथवा कृत्संज्ञक ञित् या णित् के परे होने पर जन् और वध् धातुओं की उपधा की वृद्धि नहीं होती है।

अजनि, अजनिष्ट। जन् से लुङ्, अट्, त, च्लि करके उसके स्थान पर **दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम्** से वैकल्पिक **चिण्** आदेश करने पर **अजन्+इत** बना। **चिणो लुक्** से त का लुक् हुआ, **अजन्+इ** बना। **चिण्** के इकार को णित् मानकर

चिणादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६४४. चिण् ते पदः ३।१।६०॥

पदेश्च्लेश्चिण् स्यात्तशब्दे परे। अपादि। अपत्साताम्। अपत्सत।

विद सत्तायाम्॥२२॥ विद्यते। वेत्ता। अवित्त। **बुध अवगमने॥२३॥** बुध्यते। बोद्धा। भोत्स्यते। भुत्सीष्ट। अबोधि, अबुद्ध। अभुत्साताम्।

युध सम्प्रहारे॥२४॥ युध्यते। युयुधे। योद्धा। अयुद्ध।

सृज विसर्गे॥२५॥ सृज्यते। ससृजे। ससृजिषे।

....

अत उपधायाः से वृद्धि प्राप्त होने पर **जनिवध्योश्च** से निषेध हुआ। इस तरह **अजनि** सिद्ध हुआ। चिण् न होने के पक्ष में सिच् आदेश होकर उसको इट् का आगम करके **अजन्+इस्+त** है। इकार से पर सकार को षत्व और षकार से पर तकार को ष्टुत्व करके **अजन्+इष्ट=अजनिष्ट** सिद्ध हुआ। इस तरह दो रूप बने। आताम् आदि में कहीं भी चिण् नहीं होता। अतः सिच् होकर एक ही रूप बनते हैं।

लुङ्- अजनि-अजनिष्ट, अजनिषाताम्, अजनिषत, अजनिष्ठाः, अजनिषाथाम्, अजनिढ्वम्, अजनिषि, अजनिष्वहि, अजनिष्महि। लृङ्- अजनिष्यत, अजनिष्येताम् आदि।

दीपी दीप्तौ। दीपी धातु **चमकना** अर्थ में है। ईकार की इत्संज्ञा होती है। ईदित् होने से निष्ठासंज्ञक प्रत्यय के परे रहते **श्वीदितो निष्ठायाम्** से इट् का निषेध होता है, अन्यत्र इट् होता है। अनुदात्तेत् होने से आत्मनेपदी है। अन्य रूप सामान्य ही हैं, केवल लुङ् के एकवचन में **दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम्** से चिण् होकर **चिणो लुक्** से त का लुक् होकर **अदीपि, अदीपिष्ट** ये दो रूप बनते हैं।

लट्- दीप्यते, दीप्येते, दीप्यन्ते। **लिट्**- दिदीपे, दिदीपाते, दिदीपिरे। **लुट्**- दीपिता, दीपितारौ, दीपितारः। **लृट्**- दीपिष्यते, दीपिष्येते, दीपिष्यन्ते। **लोट्**- दीप्यताम्, दीप्येताम्, दीप्यन्ताम्। **लङ्**- अदीप्यत, अदीप्येताम्, अदीप्यन्त। **विधिलिङ्**- दीप्येत, दीप्येयाताम्, दीप्येरन्। **आशीर्लिङ्**- दीपिषीष्ट, दीपिषीयास्ताम्, दीपिषीरन्। **लुङ्**- अदीपि-अदीपिष्ट, अदीपिषाताम्, अदीपिषत, अदीपिष्ठाः, अदीपिषाथाम्, अदीपिध्वम्, अदीपिषि, अदीपिष्वहि, अदीपिष्महि। **लृङ्**- अदीपिष्यत, अदीपिष्येताम्, अदीपिष्यन्त।

पद गतौ। पद धातु **जाना** अर्थ में है। अनुदात्त अकार की इत्संज्ञा होती है, **पद्** शेष रहता है। अनुदात्तेत् होने से आत्मनेपदी और अनुदात्तों में परिगणित होने से अनिट् है। इसी धातु में उपसर्ग आदि लगकर **उत्पत्तिः, सम्पत्तिः, विपत्तिः** आदि रूप बनते हैं।

लट्- पद्यते, पद्येते, पद्यन्ते। **लिट्**- पेदे, पेदाते, पेदिरे। **लुट्**- पत्ता, पत्तारौ, पत्तारः। **लृट्**- पत्स्यते, पत्स्येते, पत्स्यन्ते। **लोट्**- पद्यताम्, पद्येताम्, पद्यन्ताम्। **लङ्**-अपद्यत, अपद्येताम्, अपद्यन्त। **विधिलिङ्**- पद्येत, पद्येयाताम्, पद्येरन्। **आशीर्लिङ्**- पत्सीष्ट, पत्सीयास्ताम्, पत्सीरन्।

६४४- चिण् ते पदः। चिण् प्रथमान्तं, ते सप्तम्यन्तं, पदः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **च्लेः सिच्** से **च्लेः** की अनुवृत्ति आती है।

पद धातु से परे च्लि के स्थान पर चिण् आदेश होता है त-शब्द के परे होने पर।

अमागमविधायकं विधिसूत्रम्

६४५. सृजिदृशोर्झल्यमकिति ६।१।५८॥

अनयोरमागमः स्याज्झलादावकिति। स्रष्टा। स्रक्ष्यते। सृक्षीष्ट। असृष्ट। असृक्षाताम्। **मृष तितिक्षायाम्॥२६॥** मृष्यति, मृष्यते। ममर्ष। ममर्षिथ। ममृषिषे। मर्षितासि। मर्षिष्यति, मर्षिष्यते। **णह बन्धने॥२७॥** नह्यति, नह्यते। ननाह। नेहिथ, ननद्ध। नेहे। नद्धा। नत्स्यति। अनात्सीत्, अनद्ध।

इति दिवादयः॥१५॥

...

इस सूत्र से विधीयमान **चिण्** नित्य है।

अपादि। पद् से लुङ्, अट् का आगम, त, च्लि करके उसके स्थान पर **चिण् ते पदः** से नित्य से चिण् आदेश होकर **अपद्+इत** बना। **अत उपधायाः** से पकारोत्तरवर्ती अकार की वृद्धि और **चिणो लुक्** से त का लुक् करके **अपादि** बना। ताम् आदि में चिण् नहीं होगा।

लुङ् के रूप- अपादि, अपत्साताम्, अपत्सत, अपत्थाः, अपत्साथाम्, अपद्ध्वम्, अपत्सि, अपत्स्वहि, अपत्स्महि। **लृङ्**- अपत्स्यत, अपत्स्येताम्, अपत्स्यन्त।

विद सत्तायाम्। विद धातु **सत्ता** अर्थात् होना, विद्यमान रहना, पाया जाना अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होकर **विद्** शेष रहता है। अनुदात्तेत् होने के कारण आत्मनेपदी है। अनुदात्तों में पढ़े जाने से अनिट् है किन्तु लिट् में क्रादिनियम से सर्वत्र इट् होता है। **लट्**- विद्यते, विद्येते, विद्यन्ते। **लिट्**- विविदे, विविदाते, विविदिरे। **लुट्**- वेत्ता, वेत्तारौ, वेत्तारः। **लृट्**- वेत्स्यते, वेत्स्येते, वेत्स्यन्ते। **लोट्**- विद्यताम्, विद्येताम्, विद्यन्ताम्। **लङ्**- अविद्यत, अविद्येताम्, अविद्यन्त। **विधिलिङ्**- विद्येत, विद्येयाताम्, विद्येरन्। **आशीर्लिङ्**- वित्सीष्ट, वित्सीयास्ताम्, वित्सीरन्। **लुङ्** के **त** में **झलो झलि** से सकार का लोप होता है। अवित्त, अवित्साताम्, अवित्सत, अवित्थाः, अवित्साथाम्, अविद्ध्वम्, अवित्सि, अवित्स्वहि, अवित्स्महि। **लृङ्**- अवित्स्यत, अवित्स्येताम्, अवित्स्यन्त।

बुध अवगमने। बुध धातु **जानना** अर्थ में है। अनुदात्त अकार की इत्संज्ञा होकर बुध् शेष रहता है। अनिट् और आत्मनेपदी है। स्य, सीयुट् और सिच् के सकार के परे होने पर **एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः** से **बकार** के स्थान पर **भष्** आदेश होकर **भकार** हो जाता है। तासि के तकार को **झषस्तथोर्धोऽधः** से धकार आदेश होकर **बुध्** के पूर्व धकार को **झलां जश् झशि** से जश्त्व होकर दकार बनता है। लुङ् के त में **दीपजनबुध पूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम्** से चिण् होता है। उसके बाद **चिणो लुक्** से त का लुक् होता है। लघूपधगुण होता है। चिण् न होने के पक्ष में सिच् के सकार का **झलो झलि** से लोप होता है।

लट्- बुध्यते, बुध्येते, बुध्यन्ते। **लिट्**- बुबुधे, बुबुधाते, बुबुधिरे। **लुट्**- बोद्धा, बोद्धारौ, बोद्धारः। **लृट्**- भोत्स्यते, भोत्स्येते, भोत्स्यन्ते। **लोट्**- बुध्यताम्, बुध्येताम्, बुध्यन्ताम्। **लङ्**- अबुध्यत, अबुध्येताम्, अबुध्यन्त। **विधिलिङ्**- बुध्येत, बुध्येयाताम्, बुध्येरन्। **आशीर्लिङ्**- भुत्सीष्ट, भुत्सीयास्ताम्, भुत्सीरन्। **लुङ्**- अबोधि-अबुद्ध, अभुत्साताम्, अभुत्सत, अबुद्धाः, अभुत्साथाम्, अभुद्ध्वम्, अभुत्सि, अभुत्स्वहि, अभुत्स्महि। **लृङ्**- अभोत्स्यत, अभोत्स्येताम्, अभोत्स्यन्त।

युध सम्प्रहारे। युध धातु **युद्ध करना** अर्थ में है। अनुदात्त अकार की इत्संज्ञा होती है। **युध्** शेष रहता है। आत्मनेपदी एवं अनिट् है। चिण् और भष्भाव का विषय नहीं है।

लट्- युध्यते, युध्येते, युध्यन्ते। **लिट्**- युयुधे, युयुधाते, युयुधिरे। **लुट्**- योद्धा, योद्धारौ, योद्धारः। **लृट्**- योत्स्यते, योत्स्येते, योत्स्यन्ते। **लोट्**- युध्यताम्, युध्येताम्, युध्यन्ताम्। **लङ्**- अयुध्यत, अयुध्येताम्, अयुध्यन्त। **विधिलिङ्**- युध्येत, युध्येयाताम्, युध्येरन्। **आशीर्लिङ्**- युत्सीष्ट, युत्सीयास्ताम्, युत्सीरन्। **लुङ्**- अयुद्ध, अयुत्साताम्, अयुत्सत, अयुद्धाः, अयुत्साथाम्, अयुद्ध्वम्, अयुत्सि, अयुत्स्वहि, अयुत्स्महि। **लृङ्**- अयोत्स्यत, अयोत्स्येताम्, अयोत्स्यन्त।

सृज विसर्गे। सृज धातु **छोड़ना** अर्थ में है। तुदादिगण में पठित सृज धातु का **निर्माण करना, रचना करना, सृजना करना** आदि अर्थ है किन्तु दिवादिगणीय इस धातु का तो **छोड़ना** अर्थ ही उचित है।

लट्- सृज्यते, सृज्येते, सृज्यन्ते। **लिट्**- ससृजे, ससृजाते, ससृजिरे।

६४५- सृजिदृशोर्झल्यमकिति। सृजिश्च दृश् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः सृजिदृशौ, तयोः सृजिदृशोः। न कित् अकित्, तस्मिन्। सृजिदृशोः षष्ठ्यन्तं, झलि सप्तम्यन्तम्, अम् प्रथमान्तम्, अकिति सप्तम्यन्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्।

कित्-भिन्न झलादि प्रत्यय परे हो तो सृज् और दृश् धातुओं को अम् आगम होता है।

स्रष्टा। सृज् से लुट्, तासि, डा, टि का लोप करके **सृज्+ता** बना है। **सृजिदृशोर्झल्यमकिति** से **अम्** आगम हुआ। अनुबन्धलोप होकर अकार के मित् होने से अन्त्य अच् के बाद बैठा तो **सृ+अ+ज्+ता** बना। **सृ+अ** में यण् होकर **स्र्+अ=स्र, स्रज्+ता** बना। जकार के स्थान पर **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयज- राजभ्राजच्छशां षः** से षकार आदेश होकर **स्रष्+ता** बना। वर्णसम्मेलन होकर **स्रष्टा** सिद्ध हो गया। स्रष्टा, स्रष्टारौ, स्रष्टारः।

स्रक्ष्यते। लृट् में भी अम् आगम, यण्, षकारादेश करके **स्रष्+स्यत** बना है। **षढोः कः सि** से षकार के स्थान पर ककार आदेश, ककार से परे सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व, ककार और षकार के संयोग से क्षकार होकार **स्रक्ष्यते** सिद्ध होता है। स्रक्ष्यते, स्रक्ष्येते, स्रक्ष्यन्ते।

लोट्- सृज्यताम्, सृज्येताम्, सृज्यन्ताम्। **लङ्**- असृज्यत, असृज्येताम्, असृज्यन्त। **विधिलिङ्**- सृज्येत, सृज्येयाताम्, सृज्येरन्। **आशीर्लिङ्- लिङ्सिचावात्मनेपदेषु** से कित् होने के कारण **सृजिदृशोर्झल्यमकिति** से अम् नहीं होगा- सृक्षीष्ट, सृक्षीयास्ताम्, सृक्षीरन्। लुङ्- असृष्ट, असृक्षाताम्, असृक्षत, असृष्ठाः, असृक्षाथ्राम्, असृड्ढ्वम्, असृक्षि, असृक्ष्वहि, असृक्ष्महि। लृङ्- अस्रक्ष्यत, अस्रक्ष्येताम्, अस्रक्ष्यन्त।

मृष तितिक्षायाम्। मृष धातु **तितिक्षा** अर्थात् **सहना** अर्थ में है। स्वरित अन्त्य अकार की इत्संज्ञा होती है। स्वरितेत् होने से **स्वरितञित कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से उभयपदी हो जाता है। अनुदात्तधातुओं में परिगणित न होने से सेट् है।

लट्- मृष्यति, मृष्यतः, मृष्यन्ति। मृष्यते, मृष्येते, मृष्यन्ते। **लिट्**- ममर्ष, ममृषतुः, ममृषुः, ममर्षिथ। ममृषे, ममृषाते, ममृषिरे। **लुट्**- मर्षिता, मर्षितारौ, मर्षितारः, मर्षितासि, मर्षितासे। **लृट्**- मर्षिष्यति, मर्षिष्यते। **लोट्**- मृष्यतु-मृष्यतात्, मृष्यताम्, मृष्यन्तु। मृष्यताम्, मृष्येताम्, मृष्यन्ताम्। **लङ्**- अमृष्यत्, अमृष्यताम्, अमृष्यन्। अमृष्यत, अमृष्येताम्, अमृष्यन्त। **विधिलिङ्**- मृष्येत्, मृष्येताम्, मृष्येयुः। मृष्येत, मृष्येयाताम्, मृष्येरन्। **आशीर्लिङ्**- मृष्यात्,

मृष्यास्ताम्, मृष्यासुः। मृषीष्ट, मृषीयास्ताम्, मृषीरन्। लुङ्- अमर्षीत्, अमर्षिष्टाम्, अमर्षिषुः। अमर्षिष्ट, अमर्षिषाताम्, अमर्षिषत। लृङ्- अमर्षिष्यत्, अमर्षिष्यत।

णह बन्धने। णह धातु **बाँधना** अर्थ में है। स्वरित अन्त्य अकार की इत्संज्ञा होती है। अतः उभयपदी है। **णो नः** से नकार आदेश होता है। अनिट् है।

लट्- नह्यति, नह्यते। **लिट्**- ननाह, नेहतुः, नेहुः, नेहिथ, नेहथुः, नेह, ननाह-ननह, नेहिव, नेहिम। नेहे, नेहाते, नेहिरे, नेहिषे, नेहाथे, नेहिढ्वे-नेहिध्वे, नेहे, नेहिवहे, नेहिमहे। **लुट्- नहो धः** से हकार के स्थान पर धकार आदेश और **झषस्तथोर्धोऽधः** से तकार के स्थान पर धकार आदेश होने के बाद पूर्व धकार को जश्त्व होकर-नद्धा, नद्धासि, नद्धासे। **लृट्**- नत्स्यति, नत्स्यते। **लोट्**- नह्यतु-नह्यतात्, नह्यताम्। **लङ्**- अनह्यत्, अनह्यत। **विधि लिङ्**- नह्येत्, नह्येत। **आशीर्लिङ्**- नह्यात्, नत्सीष्ट। **लुङ्**- अनात्सीत्, अनाद्धाम्, अनात्सुः, अनात्सीः, अनाद्धम्, अनाद्ध, अनात्सम्, अनात्स्व, अनात्स्म। अनद्ध, अनत्साताम्, अनत्सत, अनद्धाः, अनत्साथाम्, अनद्ध्वम्, अनत्सि, अनत्स्वहि, अनत्स्महि। **लृङ्**- अनत्स्यत्, अनत्स्यत।

परीक्षा

द्रष्टव्यः- **सभी प्रश्न अनिवार्य हैं और उनके अंक भी दिये गये हैं।**

१- अपनी पुस्तिका में दिव्, षिव्, पुष् और जन् धातु के सारे रूप लिखें। २०

२- दिव् धातु के सभी लकारों में प्रथमपुरुष एकवचन के रूपों की सिद्धि सूत्रों को लगाकर करें। १५

३- जुहोत्यादिप्रकरण और दिवादिप्रकरण की तुलना करें। १०

४- नृत् धातु के सभी रूपों को पुस्तिका में उतारें। ५

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का दिवादिप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ स्वादयः

षुञ् अभिषवे॥१॥

शनु-विधायकं विधिसूत्रम्

६४६. स्वादिभ्यः श्नुः ३।१।७३॥

शपोऽपवादः। सुनोति। सुनुतः। **हुश्नुवोरिति यण्।** सुन्वन्ति। सुन्वः, सुनुवः। सुनुते। सुन्वाते। सुन्वते। सुन्वहे, सुनुवहे। सुषाव, सुषुवे। सोता। सुनु। सुनुवानि। सुनवै। सुनुयात्। सूयात्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

धातु-प्रकरण में **स्वादिप्रकरण** पाँचवाँ है। सु धातु आदि में होने के कारण यह **स्वादिप्रकरण** कहलाता है। जैसे भ्वादि में धातु और प्रत्ययों के बीच में विकरण के रूप में शप्, अदादि में शप् होकर उसका लुक्, जुहोत्यादि में शप् होकर श्लु और दिवादि में श्यन् हुए उसी प्रकार स्वादि में **शप्** को बाधकर **श्नु** होता है। **श्नु** में **शकार** की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होकर केवल **नु** बचता है। **नु** यह **शित्** है, अतः उसकी **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा होती है। सार्वधातुक होते हुए भी **अपित्** है, अतः इसको **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव हो जाता है। ङित् होने से इसके परे होने पर पूर्व इक् को मानकर होने वाली गुण-वृद्धि का **क्ङिति च** से निषेध होता है। इसलिए श्नु के परे होने पर पूर्व को गुण और वृद्धि दोनों ही नहीं होते। श्नु करने के पहले भी गुणवृद्धि नहीं कर सकते, क्योंकि **स्वादिभ्यः श्नुः** से श्नु और गुण-वृद्धि एक साथ प्राप्त होते हैं, श्नु के नित्य होने के कारण पहले नित्यकार्य श्नु ही हो जाता है। एक परिभाषा है- **परनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः**, अर्थात् पूर्वसूत्र से परसूत्र बलवान् होता है, पर से नित्य, नित्य से अन्तरङ्ग और अन्तरङ्ग से अपवाद सूत्र बलवान् होते हैं। तुलना में जो सूत्र बलवान् होता है, वही पहले लगता है। यहाँ पर नित्य का तात्पर्य नित्य से कार्य करना नहीं है अपितु **कृताकृतप्रसङ्गी नित्यः**, अर्थात् अन्य सूत्र से किसी काम के कर दिए जाने के बाद भी लगे और कार्य न किए जाने पर भी लगे, उसे नित्य कहा गया है। श्नु करने वाला सूत्र गुण-वृद्धि के होने पर भी लगेगा और गुणवृद्धि न होने पर भी लगेगा। अतः **नु** नित्य है, इसलिए गुण-वृद्धि के पहले होता है। **श्नु** के परे तिप् आदि सार्वधातुक हैं और तिप्, सिप् एवं मिप् ङित् नहीं होते हैं, अतः उनके परे **श्नु** के **उकार** को अवश्य **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण हो जाता है।

षुञ् अभिषवे। यह धातु अभिषव अर्थ में है। आचार्यों ने अभिषव के चार अर्थ किये हैं- **स्नान कराना, निचोड़ना, स्नान करना** और **सुरासन्धान** अर्थात् **शराब बनाना। धात्वादेः षः सः** से षकार के स्थान पर सकार आदेश होता है। ञकार की इत्संज्ञा होती है। सु बचता है। ञित् होने के कारण **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से उभयपदी है। **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् निषेध होने के कारण अनिट् भी है।

६४६- **स्वादिभ्यः श्नुः।** स्वादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, श्नुः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **कर्तरि शप्** से **कर्तरि** और **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

कर्ता अर्थ में हुए सार्वधातुकसंज्ञक प्रत्यय के परे होने पर स्वादिगणपठित धातुओं से शप् का बाधक श्नु प्रत्यय होता है।

शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप करके केवल नु शेष बचता है। शित् होने के कारण इसकी भी सार्वधातुकसंज्ञा होती है।

सुनोति। षुञ् धातु में ञकार का लोप, षकार के स्थान पर सकार करने के बाद सु बचा। उससे लट् लकार और उसके स्थान पर पहले परस्मैपद का प्रयोग हुआ तो तिप् आया, सार्वधातुकसंज्ञा करके शप् प्राप्त था, उसे बाधकर **स्वादिभ्यः श्नुः** से श्नु हुआ। शकार की इत्संज्ञा, सु+नु+ति बना। नु की सार्वधातुकसंज्ञा करके **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से सु के उकार को गुण प्राप्त था किन्तु **क्ङिति च** से गुणनिषेध हुआ, क्योंकि **सार्वधातुकमपित्** से नु को ङिद्वद्भाव हुआ है। ति को सार्वधातुक मानकर नु के ही उकार को गुण हुआ- **सुनोति।**

सुनुतः। द्विवचन में तस्, शेष प्रक्रिया पूर्ववत् हुई। तस् अपित् है, अतः ङिद्वद्भाव होकर नु को प्राप्त गुण का निषेध, सकार को रुत्वविसर्ग करके **सुनुतः** सिद्ध हुआ।

सुन्वन्ति। सु धातु से झि, अन्त् आदेश करके अन्ति बना, श्नु आदि करके सु+नु+अन्ति बना। **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर **हुश्नुवोः सार्वधातुके** से नु के उकार के स्थान पर यण् आदेश व् हो गया, सुन्व्+अन्ति बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **सुन्वन्ति।**

सुनोषि। सुनोति की तरह सुनोसि बनाकर सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व कर देने पर **सुनोषि** बन जाता है। इसी तरह **सुनोमि** भी बनाइये। **सुनुतः** की तरह **सुनुथः, सुनुथ, सुनुवः, सुनुमः** भी बना सकते हैं किन्तु **वस् और मस्** के परे होने पर **लोपश्चास्यान्यतरस्याम् म्वोः** से उकार का वैकल्पिक लोप करके **सुन्वः, सुनुवः** एवं **सुन्मः, सुनुमः** ऐसे दो-दो रूप बनते हैं। इस तरह से सु धातु के लट् के परस्मैपद में- सुनोति, सुनुतः, सुन्वन्ति। सुनोषि, सुनुथः, सुनुथ। सुनोमि, सुन्वः-सुनुवः, सुन्मः-सुनुमः।

आत्मनेपद में कोई पित् नहीं है, अतः **सार्वधातुकमपित्** से सभी ङित् हैं। फलतः सभी में गुण का निषेध रहेगा ही। परस्मैपद की तरह ही रूप बनाइये किन्तु अच् परे होने पर **हुश्नुवोः सार्वधातुके** से यण् और **टित आत्मनेपदानां टेरे** एत्व करना भी न भूलें। सुनुते, सुन्वाते, सुन्वते। सुनुषे, सुन्वाथे, सुनुध्वे। सुन्वे, सुन्वहे-सुनुवहे, सुन्महे-सुनुमहे।

लिट् में द्वित्वादि कार्य होकर **आदेशप्रत्यययोः** से द्वितीय सकार को षत्व हो जाता है। यह भी ध्यान रहे कि लिट् आर्धधातुक लकार है, अतः अजादि-प्रत्ययों के परे **हुश्नुवोः सार्वधातुके** से यण् न होकर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् ही होता है। प्रक्रिया आप स्वयं करिये। सरलता से रूपसिद्धि कर सकेंगे।

इड्-विधायकं विधिसूत्रम्

६४७. स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु ७।२।७२॥

एभ्यः सिच इट् स्यात् परस्मैपदेषु।

असावीत्, असोष्ट। **चिञ् चयने॥२॥** चिनोति, चिनुते।

....

लिट् में परस्मैपद के रूप- सुषाव, सुषुवतुः, सुषुवुः। सुषविथ-सुषोथ, सुषुवथुः, सुषुव। सुषाव-सुषव, सुषुविव, सुषुविम। **आत्मनेपद में**- सुषुवे, सुषुवाते, सुषुविरे। सुषुविषे, सुषुवाथे, सुषुविढ्वे-सुषुविध्वे। सुषुवे, सुषुविवहे, सुषुविमहे।

लुट् में आर्धधातुक परे होने के कारण गुण हो जाता है। **परस्मैपद के रूप**- सोता, सोतारौ, सोतारः। सोतासि, सोतास्थः, सोतास्थ। सोतास्मि, सोतास्वः, सोतास्मः। **आत्मनेपद में**- सोता, सोतारौ, सोतारः। सोतासे, सोतासाथे, सोताध्वे। सोताहे, सोतास्वहे, सोतास्महे।

लृट्- परस्मैपद में- सोष्यति, सोष्यतः, सोष्यन्ति। सोष्यसि, सोष्यथः, सोष्यथ। सोष्यामि, सोष्यावः, सोष्यामः। **आत्मनेपद में**- सोष्यते, सोष्येते, सोष्यन्ते। सोष्यसे, सोष्येथे, सोष्यध्वे। सोष्ये, सोष्यावहे, सोष्यामहे।

लोट्- सुनोतु-सुनुतात्, सुनुताम्, सुन्वन्तु।

सुनुहि। लोट्, मध्यमपुरुष के एकवचन में सारी प्रक्रिया पूर्ववत् ही है, **उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्** से हि का लुक् करके सुनु, तातङ् होने के पक्ष में **सुनुतात्** ये दो रूप बन जाते हैं। इस प्रकार से लोट् के **परस्मैपद में रूप** बने- सुनोतु-सुनुतात्, सुनुताम्, सुन्वन्तु। सुनु-सुनुतात्, सुनुतम्, सुनुत। सुनवानि, सुनवाव, सुनवाम। **आत्मनेपद में**- सुनुताम्, सुन्वाताम्, सुन्वताम्। सुनुष्व, सुन्वाथाम्, सुनुध्वम्। सुनवै, सुनवावहै, सुनवामहै।

लङ्- (परस्मैपद) असुनोत्, असुनुताम्, असुन्वन्। असुनोः, असुनुतम्, असुनुत। असुनवम्, असुनुव-असुन्व, असुनुम-असुन्म। **आत्मनेपद में**- असुनुत, असुन्वाताम्, असुन्वत। असुनुथाः, असुन्वाथाम्, असुनुध्वम्। असुन्वि, असुन्वहि-असुनुवहि, असुन्महि-असुनुमहि।

विधिलिङ्- (परस्मैपद) सुनुयात्, सुनुयाताम्, सुनुयुः। सुनुयाः, सुनुयातम्, सुनुयात। सुनुयाम्, सुनुयाव, सुनुयाम। **आत्मनेपद**- सुन्वीत, सुन्वीयाताम्, सुन्वीरन्। सुन्वीथाः, सुन्वीयाथाम्, सुन्वीध्वम्। सुन्वीय, सुन्वीवहि, सुन्वीमहि।

आशीर्लिङ्- (परस्मैपद) अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः से दीर्घ करके सूयात्, सूयास्ताम्, सूयासुः। सूयाः, सूयास्तम्, सूयास्त। सूयासम्, सूयास्व, सूयास्म। **आत्मनेपद**- सीयुट् और सुट् करके- सोषीष्ट, सोषीयास्ताम्, सोषीरन्। सोषीष्ठाः, सोषीयास्थाम्, सोषीढ्वम्। सोषीय, सोषीवहि, सोषीमहि।

६४७- स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु। स्तुश्च सुश्च धूञ् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः स्तुसुधूञः, तेभ्यः स्तुसुधूञ्भ्यः। स्तुसुधूञ्भ्यः पञ्चम्यन्तं, परस्मैपदेषु सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अञ्जेः सिचि** से **सिचि** की षष्ठी में विपरिणाम करके तथा **इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम्** से **इट्** की अनुवृत्ति आती है।

परस्मैपद के परे रहते स्तु, सु और धूञ् इन धातुओं से परे सिच् को इट् आगम होता है।

वैकल्पिककुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

६४८. विभाषा चेः ७।३।५८।।

अभ्यासात्परस्य कुत्वं वा स्यात्सनि लिटि च।

चिकाय, चिचाय। चिक्ये, चिच्ये। अचैषीत्। अचेष्ट।

स्तृञ् आच्छादने।।३।। स्तृणोति, स्तृणुते।

....

सु-धातु अनिट् है, इसलिए इट् प्राप्त नहीं था, अतः इस सूत्र से सिच् में इट् विधान किया गया है।

असावीत्। सु धातु से लुङ्, अट्, तिप्, च्लि, सिच् आदि करके **असु+स्+त्** बना, **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से ईट् आगम करके **असु+स्+ईत्** बन गया। **स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु** से सिच् को इट् आगम हुआ, टित् होने से उसके आदि में बैठा- **असु+इस्+ईत्** हुआ। **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से सु की वृद्धि और आव् आदेश होकर **असाव्+इस्+ईत्** बना। **इट ईटि** से सकार का लोप, दोनों इकारों में सवर्णदीर्घ और वर्णसम्मेलन करके **असावीत्** सिद्ध हुआ।

लुङ् में- परस्मैपद- असावीत्, असाविष्टाम्, असाविषुः। असावीः, असाविष्टम्, असाविष्ट। असाविषम्, असाविष्व, असाविष्म। **आत्मनेपद में-** असोष्ट, असोषाताम्, असोषत। असोष्ठाः, असोषाथाम्, असोढ्वम्। असोषि, असोष्वहि, असोष्महि।

लृङ्- परस्मैपद में- असोष्यत्, असोष्यताम्, असोष्यन्। असोष्यः, असोष्यतम्, असोष्यत। असोष्यम्, असोष्याव, असोष्याम। **आत्मनेपद में-** असोष्यत, असोष्येताम्, असोष्यन्त। असोष्यथाः, असोष्येथाम्, असोष्यध्वम्। असोष्ये, असोष्यावहि, असोष्यामहि।

चिञ् चयने। चिञ् धातु चयन करने, संग्रह करने, चुनने, बटोरने आदि अर्थ में है। इसमें भी ञकार की इत्संज्ञा होने से यह उभयपदी है और तासि और स्य आदि में अनिट् है किन्तु थल् में वेट् और अन्य लिट् में सेट् होता है। इसके रूप भी लगभग सु धातु की तरह ही चलते हैं किन्तु इस धातु में लुङ् में इट् आगम नहीं होता है।

लट् के परस्मैपद में- चिनोति, चिनुतः, चिन्वन्ति। चिनोषि, चिनुथः, चिनुथ। चिनोमि, चिन्वः-चिनुवः, चिन्मः-चिनुमः। **आत्मनेपद में-** चिनुते, चिन्वाते, चिन्वते। चिनुषे, चिन्वाथे, चिनुध्वे। चिन्वे, चिन्वहे-चिनुवहे, चिन्महे-चिनुमहे।

६४८- **विभाषा चेः**। विभाषा प्रथमान्तं, चेः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **चजोः कु घिण्यतोः** से **कु**, **अभ्यासाच्च** से **अभ्यासात्** और **सँल्लिटोर्जेः** से **सँल्लिटोः** की अनुवृत्ति आती है।

अभ्यास से परे चिञ् धातु को विकल्प से कुत्व होता है सन् या लिट् के परे होने पर।

लिट् में द्वित्वादि कार्य होकर **विभाषा चेः** से अभ्यास से परे चकार को कुत्व होकर वृद्धि, यण् आदेश करने पर रूप बनते हैं। **कुत्व के पक्ष में-** चिकाय, चिक्यतुः, चिक्युः, चिकयिथ-चिकेथ, चिक्यथुः, चिक्य, चिकाय-चिकय, चिक्यिव, चिक्यिम। **कुत्व न होने के पक्ष में-** चिचाय, चिच्यतुः, चिच्युः। चिचयिथ-चिचेथ, चिच्यथुः, चिच्य। चिचाय-चिचय, चिच्यिव, चिच्यिम। **आत्मनेपद में-** यण् होकर कुत्व होने के पक्ष में-

खयां शिष्टार्थं विधिसूत्रम्

६४९. शर्पूर्वाः खयः ७।४।६१॥

अभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शिष्यन्तेऽन्ये हलो लुप्यते। तस्तार। तस्तरतुः। तस्तरे। गुणोऽर्तीति गुणः। स्तर्यात्।

....

चिक्ये, चिक्याते, चिक्यिरे, चिक्यिषे, चिक्याथे, चिक्यिढ्वे-चिक्यिध्वे, चिक्ये, चिक्यिवहे, चिक्यिमहे। **कुत्व न होने के पक्ष में**- चिच्ये, चिच्याते, चिच्यिरे। चिच्यिषे, चिच्याथे, चिच्यिढ्वे-चिच्यिध्वे। चिच्ये, चिच्यिवहे, चिच्यिमहे।

लुट् में आर्धधातुक गुण हो जाता है। **परस्मैपद के रूप**- चेता, चेतारौ, चेतारः। चेतासि, चेतास्थः, चेतास्थ। चेतास्मि, चेतास्वः, चेतास्मः। **आत्मनेपद में**- चेता, चेतारौ, चेतारः। चेतासे, चेतासाथे, चेताध्वे। चेताहे, चेतास्वहे, चेतास्महे।

लृट्- परस्मैपद में- चेष्यति, चेष्यतः, चेष्यन्ति। चेष्यसि, चेष्यथः, चेष्यथ। चेष्यामि, चेष्यावः, चेष्यामः। **आत्मनेपद में**- चेष्यते, चेष्येते, चेष्यन्ते। चेष्यसे, चेष्येथे, चेष्यध्वे। चेष्ये, चेष्यावहे, चेष्यामहे।

लोट् के परस्मैपद में- चिनोतु-चिनुतात्, चिनुताम्, चिन्वन्तु। चिनु-चिनुतात्, चिनुतम्, चिनुत। चिनवानि, चिनवाव, चिनवाम। **आत्मनेपद में**- चिनुताम्, चिन्वाताम्, चिन्वताम्। चिनुष्व, चिन्वाथाम्, चिनुध्वम्। चिनवै, चिनवावहै, चिनवामहै।

लङ्- (परस्मैपद) अचिनोत्, अचिनुताम्, अचिन्वन्। अचिनोः, अचिनुतम्, अचिनुत। अचिनवम्, अचिनुव-अचिन्व, अचिनुम-अचिन्म। **आत्मनेपद**- अचिनुत, अचिन्वाताम्, अचिन्वत। अचिनुथाः, अचिन्वाथाम्, अचिनुध्वम्, अचिन्वि, अचिन्वहि-अचिनुवहि, अचिन्महि-अचिनुमहि।

विधिलिङ्- (परस्मैपद) चिनुयात्, चिनुयाताम्, चिनुयुः। चिनुयाः, चिनुयातम्, चिनुयात। चिनुयाम्, चिनुयाव, चिनुयाम। **आत्मनेपद**- चिन्वीत, चिन्वीयाताम्, चिन्वीरन्। चिन्वीथाः, चिन्वीयाथाम्, चिन्वीध्वम्। चिन्वीय, चिन्वीवहि, चिन्वीमहि।

आशीर्लिङ्- (परस्मैपद) अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः से दीर्घ करके चीयात्, चीयास्ताम्, चीयासुः। चीयाः, चीयास्तम्, चीयास्त। चीयासम्, चीयास्व, चीयास्म। **आत्मनेपद**- सीयुट् और सकार का लोप करके चेषीष्ट, चेषीयास्ताम्, चेषीरन्। चेषीष्ठाः, चेषीयास्थाम्, चेषीढ्वम्। चेषीय, चेषीवहि, चेषीमहि।

लुङ् में- परस्मैपद- अचैषीत्, अचैष्टाम्, अचैषुः। अचैषीः, अचैष्टम्, अचैष्ट। अचैषम्, अचैष्व, अचैष्म। **आत्मनेपद में**- अचेष्ट, अचेषाताम्, अचेषत। अचेष्ठाः, अचेषाथाम्, अचेढ्वम्। अचेषि, अचेष्वहि, अचेष्महि।

लृङ्- परस्मैपद में- अचेष्यत्, अचेष्यताम्, अचेष्यन्। अचेष्यः, अचेष्यतम्, अचेष्यत। अचेष्यम्, अचेष्याव, अचेष्याम। **आत्मनेपद में**- अचेष्यत, अचेष्येताम्, अचेष्यन्त। अचेष्यथाः, अचेष्येथाम्, अचेष्यध्वम्। अचेष्ये, अचेष्यावहि, अचेष्यामहि।

स्तृञ् आच्छादने। स्तृञ् धातु **आच्छादन** अर्थात् **ढाँकना=ढक देना** अर्थ में है। ञित् होने के कारण उभयपदी और **ऊदॄदन्तैः०** इस कारिका के अनुसार अनिट् है। लिट् में क्रादिनियम से इट् होता है किन्तु ऋदन्त होने के कारण थल् में भारद्वाजनियम से विकल्प नहीं होता।

इटो विकल्पाय विधिसूत्रम्

६५०. ऋतश्च संयोगादेः ७।२।४३॥

ऋदन्तात्संयोगादेः परयोर्लिङसिचोरिड्वा स्यात्तङि।
स्तरिषीष्ट, स्तृषीष्ट। अस्तरिष्ट, अस्तृत।**धूञ् कम्पने॥४॥** धूनोति, धूनुते। दुधाव। **स्वरतीति वेट्।** दुधविथ, दुधोथ।

....

लट्, परस्मैपद- स्तृणोति, स्तृणुतः, स्तृण्वन्ति। **आत्मनेपद-** स्तृणुते, स्तृण्वाते, स्तृण्वते।

६४९- शर्पूर्वाः खयः। शर् पूर्वो येषां ते शर्पूर्वाः। शर्पूर्वाः प्रथमान्तं, खयः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **हलादिः शेषः** से वचनविपरिणाम करके **शेषाः** एवम् **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

जिस अभ्यास में पूर्व में शर् हो, उस अभ्यास के खय् का ही शेष होता है, अन्य हल् लुप्त हो जाते हैं।

स्मरण रहे कि **हलादिः शेषः** यह सूत्र किसी भी आदि हल् का शेष करता है किन्तु यह उसका बाधक है। यदि खय् के पहले शर् हो तो आदि हल् का शेष न होकर शर् से परे विद्यमान खय् का शेष होता है।

तस्तार। स्तृ से लिट्, तिप्, णल्, द्वित्व होकर **स्तृ+स्तृ+अ** बना। इसके बाद उरत्‌ह से अर् होकर **स्तर्+स्तृ+अ** बना। **हलादिः शेषः** से आदि सकार का शेष और अन्त्य त्र् का लोप हो रहा था किन्तु पूर्व में सकार शर् है और उससे परे खय् तकार है, अतः उसे बाधकर **शर्पूर्वाः खयः** से **तकार** का शेष और सकार और रेफ का लोप हो गया। **त+स्तृ+अ** बना। **ऋतश्च संयोगादेर्गुणः** से ऋकार को गुण होकर **अत उपधायाः** से वृद्धि होकर **तस्तार** सिद्ध हुआ। अतुस् आदि में भी यही प्रक्रिया होती है। गुण सभी जगह किन्तु णित् को छोड़कर अन्यत्र वृद्धि नहीं होती। तस्तरतुः, तस्तरुः आदि। **आत्मनेपद** में भी लगभग यही प्रक्रिया है।

लिट्, परस्मैपद- तस्तार, तस्तरतुः, तस्तरुः, तस्तर्थ, तस्तरतुः, तस्तर, तस्तार-तस्तर, तस्तरिव, तस्तरिम। **आत्मनेपद-** तस्तरे, तस्तराते, तस्तरिरे, तस्तरिषे, तस्तराथे, तस्तरिढ्वे-तस्तरिध्वे, तस्तरे, तस्तरिवहे, तस्तरिमहे।

लुट् में गुण होता है। स्तर्ता, स्तर्तारौ, स्तर्तारः, स्तर्तासि, स्तर्तासे। **लृट् में- ऋद्धनोः स्ये** से इट् का आगम होकर स्तरिष्यति, स्तरिष्यते। **लोट्-** स्तृणोतु-स्तुणुतात्, स्तृणुताम्। **लङ्-** अस्तृणोत्, अस्तृणुत। **विधिलिङ्-** स्तृणुयात्, स्तृण्वीत। **आशीर्लिङ्** के **परस्मैपद** में **गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः** से गुण होकर **स्तर्यात्** बनता है। **आत्मनेपद** में अग्रिम सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

६५०- ऋतश्च संयोगादेः। संयोगः आदिर्यस्य स संयोगादिः, तस्य संयोगादेः। ऋतः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, संयोगादेः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **लिङ्सिचावात्मनेपदेषु** इस सूत्र के सभी पदों की तथा **इट् सनि वा** से **इट्** और **सनि** की अनुवृत्ति होती है।

संयोग जिस के आदि में हो ऐसे ऋदन्त धातु से परे लिङ् और सिच् को विकल्प से इट् आगम होता है आत्मनेपद में।

इण्निषेधकं विधिसूत्रम्

६५१. श्र्युकः क्किति ७।२।११॥

श्रिञ एकाच उगन्ताच्च गित्कितोरिण् न।

परमपि स्वरत्यादि विकल्पं बाधित्वा पुरस्तात् प्रतिषेधकाण्डारम्भ-सामर्थ्यादनेन निषेधे प्राप्ते क्रादिनियमान्नित्यमिट्।

दुधुविवि। दुधुवे। अधावीत्, अधविष्ट, अधोष्ट। अधविष्यत्, अधोष्यत्। अधविष्यताम्, अधोष्यताम्। अधविष्यत, अधोष्यत।

इति स्वादयः॥१६॥

....

स्तरिषीष्ट, स्तृषीष्ट। आशीर्लिङ् के आत्मनेपद में सीयुट् आदि होकर स्तृ+सी+स्+त बना है। अनिट् धातु होने के कारण इट् प्राप्त नहीं था किन्तु **ऋतश्च संयोगादेः** के विशेष विधान से विकल्प से इट् हो गया। **स्तृ+इ+सी+स्+त** बना। **स्तृ** को सार्वधातुकगुण, इकार से परे सकार को षत्व, ईकार से परे सकार को भी षत्व, षकार से परे तकार को ष्टुत्व करके **स्तरिषीष्ट** बनता है। इट् न होने के पक्ष में **उश्च** इस सूत्र से लिङ् को कित्त्व हो जाने के कारण **क्ङिति च** से गुण का निषेध हुआ। अतः **स्तृषीष्ट** ही बना रहा। इस तरह दो रूप बन गये।

आशीर्लिङ्, आत्मनेपद, इट्पक्ष- स्तरिषीष्ट, स्तरिषीयास्ताम्, स्तरिषीरन् आदि। इट् के अभाव में **उश्च** से कित् होने के कारण गुणनिषेध हो जाता है। स्तृषीष्ट, स्तृषीयास्ताम्, स्तृषीरन् आदि।

लुङ्, परस्मैपद- अस्तार्षीत्, अस्तार्ष्टाम्, अस्तार्षुः, अस्तार्षीः, अस्तार्ष्टम्, अस्तार्ष्ट, अस्तार्षम्, अस्तार्ष्व, अस्तार्ष्म। **आत्मनेपद में- उश्च** से कित् होने के कारण गुणवृद्धि नहीं होती है और **ह्रस्वादङ्गात्** से झल् के परे रहते सकार का लोप होता है। अस्तृत, अस्तृषाताम्, अस्तृषत, अस्तृथाः, अस्तृषाथाम्, अस्तृढ्वम्, अस्तृषि, अस्तृष्वहि, अस्तृष्महि। **लृङ्-** अस्तरिष्यत्, अस्तरिष्यत।

धूञ् कम्पने। धूञ् धातु **कँपाना** अर्थ में है। ञकार की इत्संज्ञा होने से उभयपदी है। **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से यह धातु वेट् है।

लट्, परस्मैपद- धूनोति, धूनुतः, धून्वन्ति, धूनोषि, धूनुथः, धूनुथ, धूनोमि, धून्वः-धूनुवः, धून्मः-धूनुमः। **आत्मनेपद-** धूनुते, धून्वाते, धून्वते, धूनुषे, धून्वाथे, धूनुध्वे, धून्वे, धून्वहे-धूनुवहे, धून्महे-धूनुमहे। **लिट्, परस्मैपद-** दुधाव, दुधुवतुः, दुधुवुः। **थल्** में **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से वैकल्पिक इट् होकर **दुधविथ-दुधोथ** दो रूप बनते हैं।

६५१- श्र्युकः क्किति। श्रिश्च उक्च तयोः समाहारद्वन्द्वः श्र्युक्, तस्मात् श्र्युकः। ग् च क् च क्कौ, तौ इतौ यस्य तत् क्कित्, तस्मिन् क्किति। श्र्युकः पञ्चम्यन्तं, क्किति सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से **एकाचः** और **नेड् वशि कृति** से **न** तथा **इट्** की अनुवृत्ति आती है। उक् प्रत्याहार है।

श्रिञ् धातु से परे या एकाच् उगन्त धातु से परे गित् और कित् प्रत्ययों को इट् आगम नहीं होता है।

आर्धधातुकस्येड् वलादेः यह सूत्र इट् का विधायक औत्सर्गिक सूत्र है और **श्र्युकः क्किति** सूत्र उसका निषेधक है तथा **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** यह विकल्प से इट् का विधान करता है। **धूञ्** धातु के लिट् के **वस्** में पहले तो नित्य से इट् प्राप्त था, उसे बाधकर विकल्प से प्राप्त हुआ और **श्र्युकः किति** निषेध भी प्राप्त हुआ है अर्थात् एक तरफ **श्र्युकः किति** से इट् का निषेध प्राप्त है तो दूसरी तरफ **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से वैकल्पिक इट् प्राप्त है। ये दोनों सूत्र अपने-अपने कार्यों में चरितार्थ हो चुके हैं। जैसे **भूतः, भूतवान्** में इट् का निषेध और **धोता, धविता** में इट् का विकल्प। दोनों में कोई भी निरवकाश नहीं है। ऐसी स्थिति में **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** से परकार्य इट् का विकल्प होना चाहिए था किन्तु ऐसा न होकर कुछ भिन्न ही होता है। देखिये मूल में-

परमपि स्वरत्यादिनिषेधं बाधित्वा पुरस्तात् प्रतिषेधकाण्डारम्भसामर्थ्यादनेन निषेधे प्राप्ते क्रादिनियमान्नित्यमिट्। अर्थात् **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** यह सूत्र यद्यपि **श्र्युकः क्किति** से पर है तथापि **विधिकाण्ड** से पूर्व **निषेधकाण्ड** को प्रारम्भ करने से **निषेध** की प्रधानता समझनी चाहिए। अतः निषेध ही प्रवृत्त होगा, विकल्प नहीं। इस तरह यहाँ भी निषेध प्राप्त हुआ किन्तु इसमें भी क्रादिनियम की प्रबलता से नित्य से इट् हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि **अष्टाध्यायी** के सप्तम अध्याय के द्वितीयपाद मे **नेड् वशि कृति, एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्, श्र्युकः क्किति** आदि इट् के निषेधक सूत्रों को पहले पढ़कर के बाद में इट्विधायक या वैकल्पिक इट् विधायक सूत्र पढ़े गये हैं। नियम तो यह होना चाहिए कि पहले विधि हो और बाद में उसका निषेध। विधान से पूर्व निषेध करना युक्तिसंगत नहीं बैठता। फिर भी पाणिनि जी ने ऐसा किया है, वह जरूर किसी कारणवश ही होगा। इससे यह सिद्ध होता है कि इट् और इट् के निषेध के सम्बन्ध में यदि कहीं विकल्प और निषेध युगपत् प्राप्त हैं तो वहाँ निषेध को ही प्राथमिकता देनी चाहिए। इस तरह वस्, मस् में क्रानिदनियम से इट् होकर **दुधुविव, दुधुविम** ये रूप सिद्ध होते हैं।

लिट्- दुधाव, दुधुवतुः, दुधुवुः, दुधविथ-दुधोथ, दुधुवथुः, दुधुव, दुधाव-दुधव, दुधुविव, दुधुविम। **आत्मनेपद**- दुधुवे, दुधुवाते, दुधुविरे।

लुट्- **इट्पक्षे**- धविता, धवितारौ, धवितारः, धवितासि, धवितासे। **इडभावे**- धोता, धोतारौ, धोतारः, धोतासि, धोतासे।

लृट्- **इट्पक्षे**- धविष्यति, धविष्यते। **इडभावे**- धोष्यति, धोष्यते।

लोट्- धूनोतु-धूनुतात्, धूनुताम्, धूनवन्तु। धूनुताम्, धून्वाताम्, धून्वताम्।

लङ्- अधूनोत्, अधूनुताम्, अधूनवन्, अधूनोः। अधूनुत, अधून्वाताम्, अधून्वत।

विधिलिङ्- धूनुयात्, धूनुयाताम्, धूनुयुः। धून्वीत, धून्वीयाताम्, धून्वीरन्।

आशीर्लिङ्- धूयात्, धूयास्ताम्, धूयासुः। **आत्मनेपद में इट् होने पर** धविषीष्ट, धविषीयास्ताम्, धविषीरन् और **इट् न होने पर** धोषीष्ट, धोषीयास्ताम्, धोषीरन्।

लुङ्- परस्मैपद में **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से विकल्प से इट् प्राप्त था, उसे बाधकर के **स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु** से नित्य से इट् होकर **अधावीत्** बनता है। अधावीत्, अधाविष्टाम्, अधाविषुः, अधावीः, अधाविष्टम्, अधाविष्ट, अधाविषम्, अधाविष्व, अधाविष्म। **आत्मनेपद** में तो विकल्प से ही इट् होता है। अधविष्ट, अधविषाताम्, अधविषत। अधोष्ट, अधोषाताम्, अधोषत।

लृङ्- अधविष्यत्, अधोष्यत्। अधविष्यत, अधोष्यत।

आप **पाणिनीयष्टाध्यायी** का एक-एक अध्याय के क्रम से मासिक पारायण कर ही रहे होंगे, ऐसा हमें विश्वास है।

परीक्षा

द्रष्टव्यः:- **सभी प्रश्न अनिवार्य हैं और उनके अंक भी दिये गये हैं।**

१- अपनी पुस्तिका में सुञ् और चिञ् धातु के सारे रूप लिखें। १०

२- सुञ् धातु के सभी लकारों में प्रथमपुरुष एकवचन के रूपों की सिद्धि सूत्रों को लगाकर करें। १५

३- चिञ् धातु के लुङ् लकार के सभी रूपों की सिद्धि दिखाइये। १५

४- दिवादि-प्रकरण और स्वादि-प्रकरण की तुलना करें। १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का स्वादिप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ तुदादयः

तुद व्यथने॥१॥

श-विधायकं विधिसूत्रम्

६५२. तुदादिभ्यः शः ३।१।७७॥

शपोऽपवादः। तुदति, तुदते। तुतोद। तुतोदिथ। तुतुदे। तोत्ता। अतौत्सीत्। अतुत्त। **णुद प्रेरणे॥२॥** नुदति, नुदते। नुनोद। नोत्ता। **भ्रस्ज पाके॥३॥** **ग्रहिज्येति** सम्प्रसारणम्। सस्य श्चुत्वेन शः। शस्य जश्त्वेन जः। भृज्जति। भृज्जते।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

धातु-प्रकरण में **तुदादिप्रकरण** छठा है। तुद् धातु आदि में होने के कारण यह **तुदादिप्रकरण** कहाता है। जैसे भ्वादि में धातु और प्रत्ययों के बीच में विकरण के रूप में शप्, अदादि में शप् होकर उसका लुक्, जुहोत्यादि में शप् होकर श्लु, दिवादि में श्यन् और स्वादि में श्नु हुए, उसी प्रकार तुदादि में शप् को बाधकर **श** होता है। **श** में शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होकर केवल **अ** बचता है। अ शित् है, अतः उसकी **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा होती है किन्तु सार्वधातुक होते हुए भी वह अपित् है, अतः इसको **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव हो जाता है। ङित् होने से इसके पूर्व इक् को प्राप्त गुण और वृद्धि का **क्ङिति च** से निषेध होता है। इसलिए श के परे होने पर पूर्व को गुण और वृद्धि दोनों ही नहीं होते। श करने के पहले भी गुणवृद्धि नहीं कर सकते, क्योंकि **तुदादिभ्यः शः** से श और गुण-वृद्धि एक साथ प्राप्त होते हैं, श के नित्य होने के कारण पहले नित्यकार्य श ही हो जाता है। **परनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः**, अर्थात् पूर्वसूत्र से परसूत्र बलवान् होता है, पर से नित्य, नित्य से अन्तरङ्ग और अन्तरङ्ग से अपवाद सूत्र बलवान होते हैं। तुलना में जो सूत्र बलवान् होता है, वही पहले लगता है। यहाँ पर नित्य का तात्पर्य नित्य से कार्य करना नहीं है अपितु **कृताकृतप्रसङ्गी नित्यः**, अर्थात् अन्य सूत्र से किसी काम के कर दिए जाने के बाद भी लगे और कार्य न किए जाने पर भी लगे, उसे नित्य कहा गया है। श करने वाला सूत्र गुण-वृद्धि के होने पर भी लगेगा और न होने पर भी लगेगा। अतः श नित्य है, गुण-वृद्धि के पहले ही लगता है।

तुद व्यथने। तुद धातु **दुःख देना, सताना, चुभोना** आदि अर्थ में हैं। तुद में

स्वरित अकार की इत्संज्ञा होने के कारण **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से उभयपदी है। **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् निषेध होने के कारण अनिट् भी है किन्तु लिट् में इट् हो जाता है।

६५२- तुदादिभ्यः शः। तुदादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, शः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कर्तरि शप्** से **कर्तरि** और **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

कर्ता अर्थ में हुए सार्वधातुकसंज्ञक प्रत्यय के परे होने पर तुदादिगणपठित धातुओं से शप् का बाधक श प्रत्यय होता है।

शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप करके केवल अ शेष बचता है। शित् होने के कारण इसकी भी सार्वधातुकसंज्ञा होती है। शप् और श में अन्तर इतना ही है कि शप् पित् है, श पित् नहीं है। पित् और अपित् का फल आप जानते ही हैं।

तुदति। तुद् से लट्, तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् प्राप्त, उसे बाधकर **तुदादिभ्यः शः** से श, अनुबन्धलोप, **तुद्+अ+ति** बना। श वाला अ अपित् सार्वधातुक है, अतः **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव होने से तुद् के उकार के स्थान पर **पुगन्तलघूपधस्य च** से प्राप्त लघूपधगुण का **क्ङिति च** से निषेध हुआ। वर्णसम्मेलन करके **तुदति** सिद्ध हुआ।

लट् के परस्मैपद में- तुदति, तुदतः, तुदन्ति। तुदसि, तुदथः, तुदथ। तुदामि, तुदावः तुदामः। **आत्मनेपद-** तुदते, तुदेते, तुदन्ते। तुदसे, तुदेथे, तुदध्वे। तुदे, तुदावहे, तुदामहे।

लिट् में तिप्, णल्, द्वित्व, हलादिशेष, लघूपधगुण करके रूप सिद्ध होते हैं। **परस्मैपद में-** तुतोद, तुतुदतुः, तुतुदुः। तुतोदिथ, तुतुदथुः, तुतुद। तुतोद, तुतुदिव, तुतुदिम। **आत्मनेपद में-** तुतुदे, तुतुदाते, तुतुदिरे। तुतुदिषे, तुतुदाथे, तुतुदिध्वे। तुतुदे, तुतुदिवहे, तुतुदिमहे।

लुट् में- तासि के तकार के परे रहते तुद् के दकार को **खरि च** से चर्त्व करना है। **परस्मैपद में-** तोत्ता, तोत्तारौ, तोत्तारः। तोत्तासि, तोत्तास्थः, तोत्तास्थ। तोत्तास्मि, तोत्तास्वः, तोत्तास्मः। **आत्मनेपद में-** तोत्ता, तोत्तारौ, तोत्तारः। तोत्तासे, तोत्तासाथे, तोत्ताध्वे। तोत्ताहे, तोत्तास्वहे, तोत्तास्महे।

लृट्, परस्मैपद में- तोत्स्यति, तोत्स्यतः, तोत्स्यन्ति। तोत्स्यसि, तोत्स्यथः, तोत्स्यथ। तोत्स्यामि, तोत्स्यावः, तोत्स्यामः। **आत्मनेपद में-** तोत्स्यते, तोत्स्येते, तोत्स्यन्ते। तोत्स्यसे, तोत्स्येथे, तोत्स्यध्वे। तोत्स्ये, तोत्स्यावहे, तोत्स्यामहे।

लोट्, परस्मैपद में- तुदतु-तुदतात्, तुदताम्, तुदन्तु। तुद-तुदतात्, तुदतम्, तुदत। तुदानि, तुदाव, तुदाम। **आत्मनेपद में-** तुदताम्, तुदेताम्, तुदन्ताम्। तुदस्व, तुदेथाम्, तुदध्वम्। तुदै, तुदावहै, तुदामहै।

लङ्, परस्मैपद में- अतुदत्, अतुदताम्, अतुदन्। अतुदः, अतुदतम्, अतुदत। अतुदम्, अतुदाव, अतुदाम। **आत्मनेपद में-** अतुदत, अतुदेताम्, अतुदन्त। अतुदथाः, अतुदेथाम्, अतुदध्वम्। अतुदे, अतुदावहि, अतुदामहि।

विधिलिङ्, परस्मैपद- तुदेत्, तुदेताम्, तुदेयुः। तुदेः, तुदेतम्, तुदेत। तुदेयम्, तुदेव, तुदेम। **आत्मनेपद-** तुदेत, तुदेयाताम्, तुदेरन्। तुदेथाः, तुदेयाथाम्, तुदेध्वम्। तुदेय, तुदेवहि, तुदेमहि।

आशीर्लिङ्, परस्मैपद- तुद्यात्, तुद्यास्ताम्, तुद्यासुः। तुद्याः, तुद्यास्तम्, तुद्यास्त। तुद्यासम्, तुद्यास्व, तुद्यास्म। **आत्मनेपद-** तुत्सीष्ट, तुत्सीयास्ताम्, तुत्सीरन्। तुत्सीष्ठाः, तुत्सीयास्थाम्, तुत्सीध्वम्। तुत्सीय, तुत्सीवहि, तुत्सीमहि।

अतौत्सीत्। तुद् से लुङ्, अट् आगम, तिप्, च्लि, सिच्, इकार का लोप करके **अतुद्+स्त्** बना। **अस्तिसिचोऽपृक्ते** से ईट् आगम करके **अतुद्+स्+ईत्** बना। **वदव्रजहलन्तस्याचः** से तुद् के उकार की वृद्धि हो जाती है। **अतौद्+स्+ईत्** बना। दकार को चर्त्व करके **अतौत्+स्+ईत्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **अतौत्सीत्।**

अतौत्ताम्। तुद् से लुङ्, अट् आगम, तस्, ताम् आदेश, च्लि, सिच् करके **अतुद्+स्+ताम्** बना। **वदव्रजहलन्तस्याचः** से तुद् के उकार की वृद्धि हो जाती है। **अतौद्+स्+ ताम्** बना। सकार का **झलो झलि** से लोप हुआ, अतौद् के दकार को **खरि च** से चर्त्व होकर **अतौत्+ताम्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **अतौत्ताम्।** ताम्, तम्, त, थास् और ध्वम् में सकार का **झलो झलि** से लोप होता है। आत्मनेपद में वृद्धि प्राप्त ही नहीं होती है। इस तरह रूप सिद्ध होते हैं- **परस्मैपद में-** अतौत्सीत्, अतौत्ताम्, अतौत्सुः। अतौत्सीः, अतौत्तम्, अतौत्त। अतौत्सम्, अतौत्स्व, अतौत्स्म। **आत्मनेपद में-** अतुत्त, अतुत्साताम्, अतुत्सत। अतुत्थाः, अतुत्साथाम्, अतुद्ध्वम्। अतुत्सि, अतुत्स्वहि, अतुत्स्महि।

लृङ्, परस्मैपद में- अतोत्स्यत्, अतोत्स्यताम्, अतोत्स्यन्। अतोत्स्यः, अतोत्स्यतम्, अतोत्स्यत। अतोत्स्यम्, अतोत्स्याव, अतोत्स्याम। **आत्मनेपद में-** अतोत्स्यत, अतोत्स्येताम्, अतोत्स्यन्त। अतोत्स्यथाः, अतोत्स्येथाम्, अतोत्स्यध्वम्। अतोत्स्ये, अतोत्स्यावहि, अतोत्स्यामहि।

णुद प्रेरणे। णुद धातु **प्रेरणा करना, फेंकना, परे हटाना, दूर करना** आदि अर्थ में है। दकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा होती है। णकार के स्थान पर **णो नः** इस सूत्र से नकार आदेश होकर नुद् बन जाता है। यह धातु भी **उभयपदी** है। नुद् के रूप भी तुद् धातु की तरह ही चलते हैं।

लट् के परस्मैपद में- नुदति, नुदतः, नुदन्ति। नुदसि, नुदथः, नुदथ। नुदामि, नुदावः नुदामः। **आत्मनेपद में-** नुदते, नुदेते, नुदन्ते। नुदसे, नुदेथे, नुदध्वे। नुदे, नुदावहे, नुदामहे। **लिट्, परस्मैपद में-** नुनोद, नुनुदतुः, नुनुदुः। नुनोदिथ, नुनुदथुः, नुनुद। नुनोद, नुनुदिव, नुनुदिम। **आत्मनेपद में-** नुनुदे, नुनुदाते, नुनुदिरे। नुनुदिषे, नुनुदाथे, नुनुदिध्वे। नुनुदे, नुनुदिवहे, नुनुदिमहे। **लुट्, परस्मैपद में-** नोत्ता, नोत्तारौ, नोत्तारः। नोत्तासि, नोत्तास्थः, नोत्तास्थ। नोत्तास्मि, नोत्तास्वः, नोत्तास्मः। **आत्मनेपद में-** नोत्ता, नोत्तारौ, नोत्तारः। नोत्तासे, नोत्तासाथे, नोत्ताध्वे। नोत्ताहे, नोत्तास्वहे, नोत्तास्महे। **लृट्, परस्मैपद में-** नोत्स्यति, नोत्स्यतः, नोत्स्यन्ति। नोत्स्यसि, नोत्स्यथः, नोत्स्यथ। नोत्स्यामि, नोत्स्यावः, नोत्स्यामः। **आत्मनेपद में-** नोत्स्यते, नोत्स्येते, नोत्स्यन्ते। नोत्स्यसे, नोत्स्येथे, नोत्स्यध्वे। नोत्स्ये, नोत्स्यावहे, नोत्स्यामहे। **लोट्, परस्मैपद में-** नुदतु-नुदतात्, नुदताम्, नुदन्तु। नुद-नुदतात्, नुदतम्, नुदत। नुदानि, नुदाव, नुदाम। आत्मनेपद में- नुदताम्, नुदेताम्, नुदन्ताम्। नुदस्व, नुदेथाम्, नुदध्वम्। नुदै, नुदावहै, नुदामहै। **लङ्, परस्मैपद में-** अनुदत्, अनुदताम्, अनुदन्। अनुदः, अनुदतम्, अनुदत। अनुदम्, अनुदाव, अनुदाम। **आत्मनेपद में-** अनुदत, अनुदेताम्, अनुदन्त। अनुदथाः, अनुदेथाम्, अनुदध्वम्। अनुदे, अनुदावहि, अनुदामहि।

विधिलिङ्, परस्मैपद- नुदेत्, नुदेताम्, नुदेयुः। नुदेः, नुदेतम्, नुदेत। नुदेयम्, नुदेव, नुदेम। **आत्मनेपद-** नुदेत, नुदेयाताम्, नुदेरन्। नुदेथाः, नुदेयाथाम्, नुदेध्वम्। नुदेय, नुदेवहि, नुदेमहि। **आशीर्लिङ्, परस्मैपद-** नुद्यात्, नुद्यास्ताम्, नुद्यासुः। नुद्याः, नुद्यास्तम्, नुद्यास्त। नुद्यासम्, नुद्यास्व, नुद्यास्म। **आत्मनेपद-** नुत्सीष्ट, नुत्सीयास्ताम्, नुत्सीरन्। नुत्सीष्ठाः, नुत्सीयास्थाम्, नुत्सीध्वम्। नुत्सीय, नुत्सीवहि, नुत्सीमहि। **लुङ्, परस्मैपद में-** अनौत्सीत्,

रमागमविधायकं विधिसूत्रम्

६५३. भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम् ६।४।४७।।

भ्रस्जे रेफस्योपधायाश्च स्थाने रमागमो वा स्यादार्धधातुके। मित्त्वादन्त्यादचः परः। स्थानषष्ठीनिर्देशाद्रोपधयोर्निवृत्तिः। बभर्ज। बभर्जतुः। बभर्जिथ, बभर्ष्ठ। बभ्रज्ज। बभ्रज्जतुः। बभ्रज्जिथ। **स्कोरिति** सलोपः। **व्रश्चेति** षः। बभ्रष्ठ। बभर्जे, बभ्रज्जे। भर्ष्टा,भ्रष्टा। भर्क्ष्यति,भ्रक्ष्यति।

वार्तिकम्- **क्ङिति रमागमं बाधित्वा सम्प्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन।**

भृज्ज्यात्,भृज्ज्यास्ताम्। भृज्ज्यासुः। भर्क्षीष्ट, भ्रक्षीष्ट। अभार्क्षीत्, अभ्राक्षीत्। अभर्ष्ट, अभ्रष्ट। **कृष विलेखने।।४।।** कृषति, कृषते। चकर्ष, चकृषे।

....

अनौत्ताम्, अनौत्सुः। अनौत्सीः, अनौत्तम्, अनौत्त। अनौत्सम्, अनौत्स्व, अनौत्स्म। **आत्मनेपद में**- अनुत्त, अनुत्साताम्, अनुत्सत। अनुत्थाः, अनुत्साथाम्, अनुद्ध्वम्। अनुत्सि, अनुत्स्वहि, अनुत्स्महि। **लृङ्, परस्मैपद में**- अनोत्स्यत्, अनोत्स्यताम्, अनोत्स्यन्। अनोत्स्यः, अनोत्स्यतम्, अनोत्स्यत। अनोत्स्यम्, अनोत्स्याव, अनोत्स्याम। **आत्मनेपद**- अनोत्स्यत, अनोत्स्येताम्, अनोत्स्यन्त। अनोत्स्यथाः, अनोत्स्येथाम्, अनोत्स्यध्वम्। अनोत्स्ये, अनोत्स्यावहि, अनोत्स्यामहि।

भ्रस्ज पाके। भ्रस्ज धातु **भुनना** अर्थ में है। स्वरित अकार की इत्संज्ञा होती है। स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी है। अनुदात्तों में परिगणना होने के कारण अनिट् है किन्तु लिट् में क्रादिनियम से इट् होता है साथ ही भारद्वाजनियम से थल् में विकल्प से इट् होता है।

भृज्जति। भ्रस्ज् से लट्, परस्मैपद, तिप्, श आदि करके **भ्रस्ज्+अति** बना। **सार्वधातुकमपित्** से श वाला **अकार** ङित् हो जाता है। अतः **ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टि-विचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च** से **भ्रस्ज्** के रेफ के स्थान पर सम्प्रसारण ऋकार होकर **भ्+ऋ+अस्ज्** बना। **ऋ+अ** में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप एकादेश होकर **ऋकार** ही हुआ, **भृस्ज्** बना। सकार को जकार के योग में **स्तोः श्चुना श्चुः** से श्चुत्व होकर **शकार** और उसको **झलां जश् झशि** से जश्त्व होकर जकार बना। इस तरह **भृज्ज्+अति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **भृज्जति** सिद्ध हुआ।

लट्- भृज्जति, भृज्जतः, भृज्जन्ति। भृज्जते, भृज्जेते, भृज्जन्ते।

६५३- भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम्। रश्च उपधा च तयोरितरेतरद्वन्द्वो रोपधे, तयोः रोपधयोः। भ्रस्जः षष्ठ्यन्तं, रोपधयोः षष्ठ्यन्तं, रम् प्रथमान्तम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुके** का अधिकार है।

आर्धधातुक के परे होने पर भ्रस्ज् धातु के रेफ और उपधा के स्थान पर विकल्प से रम् आगम होता है।

रम् में अकार उच्चारणार्थक है और मकार की इत्संज्ञा होती है, र् शेष रहता है। कौमुदीकार यहाँ पर एक शंका उपस्थापित कर उसका समाधान करते हैं, वह यह कि मित् करने से यह प्रतीत होता है कि यह आगम है और **रोधपयोः** इस पद में स्थानषष्ठी निर्देश होने के कारण यह प्रतीत होता है कि यह आदेश है। यदि आदेश है तो मित् का कोई

प्रयोजन नहीं है, क्योंकि मित् अन्त्य अच् के बाद करने के लिए होता है और यदि आगम है तो **रेफ और उपधा के स्थान पर** यह कहना भी ठीक नहीं है। अब यहाँ आगम मानकर अन्त्य अच् के बाद करें या आदेश मानकर रेफ और उपधा के स्थान पर करें, यह तो शंका है। उत्तर यह देते हैं कि आचार्य के व्यवहार को देखकर दोनों कार्य करना चाहिए। एक तो यह कि मित् होने के कारण अन्त्य अच् को **रम्** आगम हो जाय और दूसरा **रोपधयोः** कहने से रेफ और उपधा का हटना भी हो जाय। इस तरह यह आगम भी सिद्ध होगा और आदेश भी। **भ्रस्ज्** में अन्त्य अच् है **भ्+र्+अ** का अकार। अतः अकार के बाद और सकार के पहले रम् वाला र् बैठेगा साथ ही रेफ है अकार के पहले का रेफ तथा उपधा है अन्त्य अल् जकार से पहले का सकार। इस तरह रेफ और सकार ये दोनो हटेंगे। इतना सब करने का फल यह हुआ कि एक तो सकार हट गया और दूसरा अकार के पहले का रेफ हटकर अकार के बाद आगम वाला रेफ बैठ गया। एक रेफ का हटना और दूसरा रेफ का आना हुआ। अन्तर यह हुआ कि पहले रेफ अकार के पहले था और अब रेफ अकार के बाद है। इस तरह **भर्ज्** बन गया। यह कार्य वैकल्पिक है। अतः ऐसा न होने के पक्ष में तो भ्रस्ज् रहता है ही।

बभर्ज। भ्रस्ज् से लिट्, तिप्, णल् आदि करके **भ्रस्ज् अ** बना है। **भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम्** से रम् आगम और रेफ तथा उपधाभूत सकार की निवृत्ति करके **भर्ज्** बना। इसका द्वित्व, हलादिशेष करके **भभर्ज्** बना। अभ्यास के भकार के स्थान पर **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर **बभर्ज्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **बभर्ज** सिद्ध हुआ। इसी तरह **बभर्जतुः**, **बभर्जुः** भी बन जाते हैं। थल् में भारद्वाज नियम से वैकल्पिक इट् आगम होकर **बभर्जिथ** बनता है। इट् न होने के पक्ष में **बभर्ज्+थ** में झल् परे मिलता है। अतः **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से जकार के स्थान पर षकार आदेश, उसको जश्त्व, थकार को ष्टुत्व होकर **बभर्ष्ठ** बनता है। अब रम् आगम न होने के पक्ष में रूप देखते हैं- **भ्रस्ज्** को द्वित्व होकर हलादिशेष होने पर **बभ्रस्ज्** है। सकार को श्चुत्व और जश्त्व करके जकार ही बनता है। **बभ्रज्ज्+अ=बभ्रज्ज** सिद्ध होता है।

लिट्, परस्मैपद, रमागमपक्ष, - बभर्ज, बभर्जतुः, बभर्जुः, बभर्जिथ-बभर्ष्ठ, बभर्जथुः, बभर्ज, बभर्ज, बभर्जिव, बभर्जिम। **रमागम न होने पर**- बभ्रज्ज, बभ्रज्जतुः, बभ्रज्जुः, बभ्रज्जिथ-बभ्रष्ठ, बभ्रज्जथुः, बभ्रज्ज, बभ्रज्ज, बभ्रज्जिव, बभ्रज्जिम। **आत्मनेपद, रमागमपक्ष**- बभर्जे, बभर्जाते, बभर्जिरे, बभर्जिषे, बभर्जाथे, बभर्जिध्वे, बभर्जे, बभर्जिवहे, बभर्जिमहे। **रमागम न होने पर**- बभ्रज्जे, बभ्रज्जाते, बभ्रज्जिरे, बभ्रज्जिषे, बभ्रज्जाथे, बभ्रज्जिध्वे, बभ्रज्जे, बभ्रज्जिवहे, बभ्रज्जिमहे।

लुट्- रमागमे- भर्ष्टा, भर्ष्टारौ, भर्ष्टारः, भर्ष्टासि, भर्ष्टासे। **आगमाभावे**- भ्रष्टा, भ्रष्टारौ, भ्रष्टारः, भ्रष्टासि, भ्रष्टासे।

लृट्- स्य, रम् आगम करके **भर्ज्+स्यति**, जकार को षकार आदेश, उसके स्थान पर **षढोः कः सि** से ककार आदेश, ककार से परे सकार को षत्व करके क्षत्व होने पर **भर्क्ष्यति, भर्क्ष्यते** बनता है। रम् आगम न होने के पक्ष में **भ्रक्ष्यति, भ्रक्ष्यते**।

लोट्- भृज्जतु-भृज्जतात्, भृज्जताम्, भृज्जन्तु। भृज्जताम्, भृज्जेताम्, भृज्जन्ताम्।

लङ्- अभृज्जत्, अभृज्जताम्, अभृज्जन्। अभृज्जत, अभृज्जेताम्, अभृज्जन्त।

विधिलिङ्- भृज्जेत्, भृज्जेताम्, भृज्जेयुः। भृज्जेत, भृज्जेयाताम्, भृज्जेरन्।

क्ङिति रमागमं बाधित्वा सम्प्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन। यह वार्तिक है। कित् ङित् आर्धधातुक के परे रम् आगम को बाधकर पूर्वविप्रतिषेध से सम्प्रसारण होता है।

आशीर्लिङ् आर्धधातुक है और यहाँ यासुट् को कित् होता है। आर्धधातुक कित् होने के कारण **ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च** से सम्प्रसारण और **भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम्** से रम् आगम एक साथ प्राप्त है। दोनों सूत्र अपनी अपनी जगहों पर चरितार्थ हो चुके हैं। ऐसी स्थिति में **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** के नियम से परकार्य रम् का आगम प्राप्त हो रहा है। यदि रम् आगम होगा तो अनिष्ट रूप बनेगा। अतः कात्यायन ने इस वार्तिक का आरम्भ किया। इसके नियमानुसार रम् को बाध कर सम्प्रसारण होता है।

भृज्ज्यात्। भ्रस्ज् से आशीर्वाद अर्थ में लिङ्, तिप्, आर्धधातुकसंज्ञा, यासुट्, उसको कित्त्व करके **भ्रस्ज्+यास्+त्** बना। वार्तिक के नियम से रम् को बाधकर सम्प्रसारण ऋकार आदेश करने पर **भृस्ज्+यात्** बना। सकार को श्चुत्व और जश्त्व करने पर **भृज्ज्यात्** सिद्ध हुआ। **भृज्ज्यात्, भृज्ज्यास्ताम्, भृज्ज्यासुः।** आत्मनेपद के आशीर्लिङ् में कित् या ङित् न होने के कारण सम्प्रसारण नहीं होता अपितु वैकल्पिक रम् आगम होकर **भर्ज्+सीस्+त** बना है। जकार को षत्व, षकार को सकार के परे होने पर कत्व, ककार से परे सकार को षत्व, ककार और षकार के संयोग में क्षत्व करके **भर्क्षीस्+त** बना। ईकार से परे सकार को षत्व और षकार से परे तकार को ष्टुत्व करके **भर्क्षीष्ट** सिद्ध हुआ। **भर्क्षीष्ट, भर्क्षीयास्ताम्, भर्क्षीरन्।** रम् आगम न होने के पक्ष में **भ्रक्षीष्ट, भ्रक्षीयास्ताम्, भ्रक्षीरन्।**

लुङ्, परस्मैपद में रमागम होने पर- अभार्क्षीत्, अभार्ष्टाम्, अभार्क्षुः, अभार्क्षीः, अभार्ष्टम्, अभार्ष्ट, अभार्क्षम्, अभार्क्ष्व, अभार्क्ष्म। **रम् न होने पर-** अभ्राक्षीत्, अभ्राष्टाम्, अभ्राक्षुः, अभ्राक्षीः, अभ्राष्टम्, अभ्राष्ट, अभ्राक्षम्, अभ्राक्ष्व, अभ्राक्ष्म। **आत्मनेपद में** रम् आगम होने पर- **अभर्ज्+स्+त** बना है। **झलो झलि** से सकार का लोप, जकार को षत्व और षकार से परे तकार को ष्टुत्व करके **अभर्ष्ट** बनता है। आताम् में झल् परे न मिलने पर सकार का लोप नहीं होता। अतः षत्व, कत्व, षत्व, क्षत्व करके **अभार्क्षाताम्** बनता है। **रमागम के पक्ष में-** अभर्ष्ट, अभर्क्षाताम्, अभर्क्षत, अभर्ष्ठाः, अभर्क्षाथाम्, अभर्ढ्वम्, अभर्क्षि, अभर्क्ष्वहि, अभर्क्ष्महि। **रम् न होने पर-** अभ्रष्ट, अभ्रक्षाताम्, अभ्रक्षत, अभ्रष्ठाः, अभ्रक्षाथाम्, अभ्रढ्वम्, अभ्रक्षि, अभ्रक्ष्वहि, अभ्रक्ष्महि।

लृङ्, परस्मैपद, रमागम- अभर्क्ष्यत्, अभर्क्ष्यताम्, अभर्क्ष्यन्। **रम् के अभाव में-** अभ्रक्ष्यत्, अभ्रक्ष्याताम्, अभ्रक्ष्यन्। **आत्मनेपद-** अभर्क्ष्यत, अभ्रक्षत।

कृष विलेखने। कृष धातु **विलेखन** अर्थात् **हल चलाना** अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होकर **कृष्** बचता है। भ्वादि के **कृष् धातु** का **खींचना** अर्थ है जिसके **कर्षति** आदि रूप बनते हैं। इस प्रकरण के **कृष् धातु** के **कृषति** आदि बनते हैं। स्वरित अकार की इत्संज्ञा होने से यह उभयपदी है और अनुदात्तों में परिगणित होने से अनिट् है किन्तु क्रादिनियम से लिट् में इट् हो जाता है।

लट्- कृषति, कृषतः, कृषन्ति। कृषते, कृषेते, कृषन्ते। **लिट्-** चकर्ष, चकृषतुः, चकृषुः। चकृषे, चकृषाते, चकृषिरे।

वैकल्पिकामागमविधायकं विधिसूत्रम्

६५४. अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ६।१।५९।।

उपदेशेऽनुदात्तो य ऋदुपधस्याम् वा स्याज्झलादावकिति।

क्रष्टा, कर्ष्टा। कृक्षीष्ट।

वार्तिकम्- **स्पृशमृशकृषतृपदृपां च्लेः सिज्वा वाच्यः।**

अक्राक्षीत्, अकार्क्षीत्, अकृक्षत्। अकृष्ट। अकृक्षाताम्। अकृक्षत।

क्सपक्षे- अकृक्षत। अकृक्षाताम्। अकृक्षन्त। **मिल सङ्गमे।।५।।** मिलति, मिलते। मिमेल। मेलिता। अमेलित्। **मोच्लृ मोचने।।६।।**

....

६५४- अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्। ऋत् उपधायां यस्य स ऋदुपधः, तस्य ऋदुपधस्य। अनुदात्तस्य षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदम्, ऋदुपधस्य षष्ठ्यन्तम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **आदेच उपदेशेऽशिति** से उपदेशे और **सृजिदृशोर्झल्यमकिति** से **झलि, अम्, अकिति** की अनुवृत्ति आती है।

उपदेश अवस्था में अनुदात्त जो ऋदुपध धातु, उसको विकल्प से अम् का आगम होता है कित् से भिन्न झलादि प्रत्यय के परे होने पर।

मकार की इत्संज्ञा होती है, मित् होने के कारण अकार **मिदचोऽन्त्यात्परः** से अन्त्य अच् के बाद बैठता है।

क्रष्टा। कृष् से लुट् में कृष्+ता बना है। उपदेश अवस्था में अनुदात्त और ऋकार उपधा वाला धातु होने के कारण अकित् झलादि **ता** के परे होने पर **अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्** से अम् आगम हुआ। मकार की इत्संज्ञा हुई। कृ का ऋकार अन्त्य अच् है, उसके बाद अ बैठा, **कृ+अष्+ता** बना। **कृ+अ** में यण् होकर **क्+र्+अ=क्र, क्रष्+ता** में षकार के योग से तकार को ष्टुत्व होकर **क्रष्टा** सिद्ध हुआ। क्रष्टा, क्रष्टारौ, क्रष्टारः, क्रष्टासि-क्रष्टासे। अम् आगम न होने के पक्ष में **कृष् के ऋकार** को उपधा गुण होकर **कर्ष्टा** आदि रूप सिद्ध होते हैं। कर्ष्टा, कर्ष्टारौ, कर्ष्टारः, कर्ष्टासि-कर्ष्टासे।

लृट्- अम्पक्षे- क्रक्ष्यति, क्रक्ष्यतः, क्रक्ष्यन्ति। क्रक्ष्यते, क्रक्ष्येते, क्रक्ष्यन्ते। अम् के अभाव में- कर्क्ष्यति, कर्क्ष्यतः, कर्क्ष्यन्ति। कर्क्ष्यते, कर्क्ष्येते, कर्क्ष्यन्ते। **लोट्**- कृषतु-कृषतात्, कृषताम्, कृषन्तु। कृषताम्, कृषेताम्, कृषन्ताम्। **लङ्**- अकृषत्, अकृषत। **विधिलिङ्**- कृषेत्, कृषेत। **आत्मनेपद**- कृष्यात्, कृक्षीष्ट।

स्पृशमृशकृषतृपदृपां च्लेः सिज्वा वाच्यः। यह वार्तिक है। स्पृश्, मृश्, कृष्, तृप्, दृप् धातुओं से परे च्लि के स्थान पर विकल्प से सिच् होता है।

स्पृश्, मृश् और कृष् से परे च्लि के स्थान पर **शल इगुपधादनिटः क्सः** से क्स आदेश और तृप् एवं दृप् धातुओं के **पुषादि** होने के कारण **पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु** से अङ् की प्राप्ति थी, उसे बाधकर इस वार्तिक से वैकल्पिक **सिच्** आदेश का ही विधान किया जाता है। सिच् न होने के पक्ष में यथाप्राप्त **क्स** और **अङ्** हो जाते हैं।

अक्राक्षीत्, अकार्क्षीत्। कृ से लुङ्, अट्, ति होकर **अकृष्+त्** बना है। च्लि होकर उसके स्थान पर क्स आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर **स्पृशमृशकृषतृपदृपां च्लेः सिज्वा**

वाच्यः से वैकल्पिक सिच् आदेश, वैकल्पिक अम् का आगम करके **अक्रष्+स्+त** बना। ईट् आगम करके **वदव्रजहलन्तस्याचः** से क्र की वृद्धि करके धातु के पकार को **षढोः कः सि** से ककार आदेश, ककार से परे सिच् के सकार को षत्व और क्+ष् के संयोग में क्षत्व करके **अक्राक्षीत्** बनता है। अम् न होने के पक्ष में **अकार्क्षीत्** बनता है। सिच् न होकर **क्स** होने के पक्ष में **अकृक्षत्** बनता है।

लुङ्, परस्मैपद, अम्, सिच्- अक्राक्षीत्, अक्राष्टाम्, अक्राक्षुः, अक्राक्षीः, अक्राष्टम्, अक्राष्ट, अक्राक्षम्, अक्राक्ष्व, अक्राक्ष्म। **अमोऽभावे-** अकार्क्षीत्, अकार्ष्टाम्, अकार्क्षुः, अकार्क्षीः, अकार्ष्टम्, अकार्ष्ट, अकार्क्षम्, अकार्क्ष्व, अकार्क्ष्म। **क्स के पक्ष में -** अकृक्षत्, अकृक्षताम्, अकृक्षन्, अकृक्षः, अकृक्षतम्, अकृक्षत, अकृक्षम्, अकृक्षाव, अकृक्षाम। **आत्मनेपद में- सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से वृद्धि नहीं होती और **लिङ्सिचावात्मनेपदेषु** से किद्वद्भाव होने के कारण **अनुदात्तस्य चर्दुप०** से अम् का आगम भी नहीं होता। सिच् होकर- अकृष्ट, अकृक्षाताम्, अकृक्षत, अकृष्ठाः, अकृक्षाथाम्, अकृढ्वम्, अकृक्षि, अकृक्ष्वहि, अकृक्ष्महि। **क्सपक्षे-** अकृक्षत, अकृक्षाताम्, अकृक्षन्त, अकृक्षथाः, अकृक्षाथाम्, अकृक्षध्वम्, अकृक्षि, अकृक्षावहि, अकृक्षामहि।

लृङ्- अम्पक्षे- अक्रक्ष्यत्, अक्रक्ष्यत। **अमोऽभावे-** अकर्क्ष्यत्, अकर्क्ष्यत।

मिल सङ्गमे। मिल धातु **मिलना, संयुक्त होना** अर्थ में है। स्वरित अकार की इत्संज्ञा होने से **उभयपदी** और **सेट्** है। इसके भी रूप सरल ही हैं।

लट्, परस्मैपद में- मिलति, मिलतः, मिलन्ति। मिलसि, मिलथः, मिलथ। मिलामि, मिलावः, मिलामः। **आत्मनेपद में-** मिलते, मिलेते, मिलन्ते। मिलसे, मिलेथे, मिलध्वे। मिले, मिलावहे, मिलामहे। **लिट्, परस्मैपद में-** मिमेल, मिमिलतुः, मिमिलुः। मिमेलिथ, मिमिलथुः, मिमिल। मिमेल, मिमिलिव, मिमिलिम। **आत्मनेपद में-** मिमिले, मिमिलाते, मिमिलिरे। मिमिलिषे, मिमिलाथे, मिमिलिध्वे। मिमिले, मिमिलिवहे, मिमिलिमहे। **लुट्, परस्मैपद में-** मेलिता, मेलितारौ, मेलितारः। मेलितासि, मेलितास्थः, मेलितास्थ। मेलितास्मि, मेलितास्वः, मेलितास्मः। **आत्मनेपद में-** मेलिता, मेलितारौ, मेलितारः। मेलितासे, मेलितासाथे, मेलिताढ्वे-मेलिताध्वे। मेलिताहे, मेलितास्वहे, मेलितास्महे। **लृट्, परस्मैपद में-** मेलिष्यति, मेलिष्यतः, मेलिष्यन्ति। मेलिष्यसि, मेलिष्यथः, मेलिष्यथ। मेलिष्यामि, मेलिष्यावः, मेलिष्यामः। **आत्मनेपद में-** मेलिष्यते, मेलिष्येते, मेलिष्यन्ते। मेलिष्यसे, मेलिष्येथे, मेलिष्यध्वे। मेलिष्ये, मेलिष्यावहे, मेलिष्यामहे। **लोट्, परस्मैपद में-** मिलतु-मिलतात्, मिलताम्, मिलन्तु। मिल-मिलतात्, मिलतम्, मिलत। मिलानि, मिलाव, मिलाम। **आत्मनेपद में-** मिलताम्, मिलेताम्, मिलन्ताम्। मिलस्व, मिलेथाम्, मिलध्वम्। मिलै, मिलावहै, मिलामहै। **लङ्, परस्मैपद में-** अमिलत्, अमिलताम्, अमिलन्। अमिलः, अमिलतम्, अमिलत। अमिलम्, अमिलाव, अमिलाम। **आत्मनेपद में-** अमिलत, अमिलेताम्, अमिलन्त। अमिलथाः, अमिलेथाम्, अमिलध्वम्। अमिले, अमिलावहि, अमिलामहि। **विधिलिङ्, परस्मैपद में-** मिलेत्, मिलेताम्, मिलेयुः। मिलेः, मिलेतम्, मिलेत। मिलेयम्, मिलेव, मिलेम। **आत्मनेपद में-** मिलेत, मिलेयाताम्, मिलेरन्। मिलेथाः, मिलेयाथाम्, मिलेध्वम्। मिलेय, मिलेवहि, मिलेमहि। **आशीर्लिङ्, परस्मैपद में-** मिल्यात्, मिल्यास्ताम्, मिल्यासुः। मिल्याः, मिल्यास्तम्, मिल्यास्त। मिल्यासम्, मिल्यास्व, मिल्यास्म। **आत्मनेपद में-** मेलिषीष्ट, मेलिषीयास्ताम्, मेलिषीरन्। मेलिषीष्ठाः, मेलिषीयास्थाम्, मेलिषीढ्वम्-मेलिषीध्वम्। मेलिषीय, मेलिषीवहि, मेलिषीमहि। **लुङ्, परस्मैपद में-** अमेलीत्,

नुमागमविधायकं विधिसूत्रम्

६५५. शे मुचादीनाम् ७।१।५९॥

मुच्लिप्विद्लुप्सिच्कृत्खिद्पिशां नुम् स्यात् शे परे।

मुञ्चति, मुञ्चते। मोक्ता। मुच्यात्। मुक्षीष्ट। अमुचत्, अमुक्त। अमुक्षाताम्।

लुप्लृ छेदने॥७॥ लुम्पति, लुम्पते। लोप्ता। अलुपत्। अलुप्त॥

विद्लृ लाभे॥८॥ विन्दति, विन्दते। विवेद, विविदे।

व्याघ्रभूतिमते सेट्। वेदिता। भाष्यमतेऽनिट्। परिवेत्ता।

षिच क्षरणे॥९॥ सिञ्चति, सिञ्चते।

....

अमेलिष्टाम्, अमेलिषुः। अमेलीः, अमेलिष्टम्, अमेलिष्ट। अमेलिषम्, अमेलिष्व, अमेलिष्म। **आत्मनेपद में-** अमेलिष्ट, अमेलिषाताम्, अमेलिषत। अमेलिष्ठाः, अमेलिषाथाम्, अमेलिढ्वम्-अमेलिध्वम्। अमेलिपि, अमेलिष्वहि, अमेलिष्महि। **लृङ्, परस्मैपद में-** अमेलिष्यत्, अमेलिष्यताम्, अमेलिष्यन्। अमेलिष्यः, अमेलिष्यतम्, अमेलिष्यत। अमेलिष्यम्, अमेलिष्याव, अमेलिष्याम। **आत्मनेपद में-** अमेलिष्यत, अमेलिष्येताम्, अमेलिष्यन्त। अमेलिष्यथाः, अमेलिष्येथाम्, अमेलिष्यध्वम्। अमेलिष्ये, अमेलिष्यावहि, अमेलिष्यामहि।

मुच्लृ मोचने। मुच्लृ धातु **छोड़ना** अर्थ में है। स्वरित लृकार की इत्संज्ञा होती है, मुच् शेष रहता है। स्वरितत् होने से **उभयपदी** है। अनिट् होते हुए भी लिट् में इट् होता है। लृदित् होने से **पुषादि0 से च्लि** के स्थान पर अङ् होता है।

६६५- **शे मुचादीनाम्।** मुच् आदौ येषां ते मुचादयः, तेषां मुचादीनाम्। शे सप्तम्यन्तं, मुचादीनां षष्ठ्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **इदितो नुम् धातोः** से **नुम्** की अनुवृत्ति आती है।

शप्रत्यय के परे होने पर मुच्, लिप्, विद्, लुप्, सिच्, कृत्, खिद् और पिश् धातुओं को नुम् का आगम होता है।

नुम् में उकार और मकार की इत्संज्ञा तथा लोप होने पर केवल नकार शेष रहता है।

मुञ्चति। मुच् धातु से लट्, तिप्, श, **मुच्+अ+ति** बना। **शे मुचादीनाम्** से नुम्, अनुबन्धलोप, मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात्परः** की सहायता से अन्त्य अच् मु के उकार के बाद बैठा- **मुन्च्** बना, नकार को **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार और **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से परसवर्ण होकर **ञकार** बन गया, **मुञ्च्+अ+ति** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **मुञ्चति।**

लट्-लकार परस्मैपद में- मुञ्चति, मुञ्चतः, मुञ्चन्ति। मुञ्चसि, मुञ्चथः, मुञ्चथ। मुञ्चामि, मुञ्चावः, मुञ्चामः। **आत्मनेपद में-** मुञ्चते, मुञ्चेते, मुञ्चन्ते। मुञ्चसे, मुञ्चेथे, मुञ्चध्वे। मुञ्चे, मुञ्चावहे, मुञ्चामहे।

लिट् में- श न होने के कारण नुम् भी नहीं होता है। **परस्मैपद में-** मुमोच, मुमुचतुः, मुमुचुः। मुमोचिथ, मुमुचथुः, मुमुच। मुमोच, मुमुचिव, मुमुचिम। **आत्मनेपद में-** मुमुचे, मुमुचाते, मुमुचिरे। मुमुचिषे, मुमुचाथे, मुमुचिध्वे। मुमुचे, मुमुचिवहे, मुमुचिमहे।

लुट् में लघूपधगुण और चकार के स्थान पर **चोः कुः** से कुत्व होकर ककार हो जाता है। **परस्मैपद-** मोक्ता, मोक्तारौ, मोक्तारः। मोक्तासि, मोक्तास्थः, मोक्तास्थ। मोक्तास्मि, मोक्तास्वः, मोक्तास्मः। **आत्मनेपद में-** मोक्ता, मोक्तारौ, मोक्तारः। मोक्तासे, मोक्तासाथे, मोक्ताध्वे। मोक्ताहे, मोक्तास्वहे, मोक्तास्महे।

मोक्ष्यति। मुच् से लृट्, ति, स्य, करके **मुच्+स्यति** बना। **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण होकर **मोच्+स्यति** बना। चकार के स्थान पर **चोः कुः** से कुत्व करके ककार हुआ। ककार से परे स्य के सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व होकर **मोक्+ष्यति** बना। ककार और षकार के संयोग होने पर क्ष बन जाता है। **मोक्ष्यति** बना। इस प्रकार लृट् के रूप बने- **परस्मैपद में-** मोक्ष्यति, मोक्ष्यतः, मोक्ष्यन्ति। मोक्ष्यसि, मोक्ष्यथः, मोक्ष्यथ। मोक्ष्यामि, मोक्ष्यावः, मोक्ष्यामः। **आत्मनेपद में-** मोक्ष्यते, मोक्ष्येते, मोक्ष्यन्ते। मोक्ष्यसे, मोक्ष्यथे, मोक्ष्यध्वे। मोक्ष्ये, मोक्ष्यावहे, मोक्ष्यामहे। **लोट्, परस्मैपद में-** मुञ्चतु-मुञ्चतात्, मुञ्चताम्, मुञ्चन्तु। मुञ्च-मुञ्चतात्, मुञ्चताम्, मुञ्चत। मुञ्चानि, मुञ्चाव, मुञ्चाम। **आत्मनेपद में-** मुञ्चताम्, मुञ्चेताम्, मुञ्चन्ताम्। मुञ्चस्व, मुञ्चेथाम्, मुञ्चध्वम्। मुञ्चै, मुञ्चावहै, मुञ्चामहै। **लङ्, परस्मैपद में-** अमुञ्चत्, अमुञ्चताम्, अमुञ्चन्। अमुञ्चः, अमुञ्चतम्, अमुञ्चत, अमुञ्चम्, अमुञ्चाव, अमुञ्चाम। **आत्मनेपद में-** अमुञ्चत, अमुञ्चेताम्, अमुञ्चन्त। अमुञ्चथाः, अमुञ्चेथाम्, अगुञ्चध्वम्। अमुञ्चे, अमुञ्चावहि, अमुञ्चामहि। **विधिलिङ्, परस्मैपद में-** मुञ्चेत्, मुञ्चेताम्, मुञ्चेयुः। मुञ्चेः, मुञ्चेतम्, मुञ्चेत। मुञ्चेयम्, मुञ्चेव, मुञ्चेम। **आत्मनेपद में-** मुञ्चेत, मुञ्चेयाताम्, मुञ्चेरन्। मुञ्चेथाः, मुञ्चेयाथाम्, मुञ्चेध्वम्। मुञ्चेय, मुञ्चेवहि, मुञ्चेमहि। **आशीर्लिङ्, परस्मैपद में-** मुच्यात्, मुच्यास्ताम्, मुच्यासुः। मुच्याः, मुच्यास्तम्, मुच्यास्त। मुच्यासम्, मुच्यास्व, मुच्यास्म। **आत्मनेपद में-** कुत्व, सीयुट् के सकार को षत्व और क्ष्-संयोग में क्षत्व करके बनाइये- मुक्षीष्ट, मुक्षीयास्ताम्, मुक्षीरन्। मुक्षीष्ठाः, मुक्षीयास्थाम्, मुक्षीध्वम्। मुक्षीय, मुक्षीवहि, मुक्षीमहि।

लुङ्, परस्मैपद में- तिप्, अट्, च्लि, उसके स्थान पर **पुषादिद्युताद्यलृदितः परस्मैपदेषु** से अङ् होकर **अमुच्+अ+त्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **अमुचत्। अमुचत्, अमुचताम्, अमुचन्। अमुचः, अमुचतम्, अमुचत। अमुचम्, अमुचाव, अमुचाम।** आत्मनेपद में- अङ् नहीं होता है किन्तु सिच् हो जाता है, क्योंकि **पुषादिद्युताद्यलृदितः परस्मैपदेषु** यह सूत्र परस्मैपद में ही करता है। **अमुच्+स्+त में झलो झलि** से सकार का लोप और चकार को कुत्व होकर **अमुक्त** बनता है। जहाँ झल् परे न मिलने के कारण सकार का लोप नहीं हो पाता, वहाँ कुत्व होकर सकार को षत्व और क्षत्व होकर **अमुक्षाताम्** आदि बनते हैं। इस तरह रूप बनते हैं- अमुक्त, अमुक्षाताम्, अमुक्षत। अमुक्थाः, अमुक्षाथाम्, अमुग्ध्वम्। अमुक्षि, अमुक्ष्वहि, अमुक्ष्महि।

लृङ्, परस्मैपद में- अमोक्ष्यत्, अमोक्ष्यताम्, अमोक्ष्यन्। अमोक्ष्यः, अमोक्ष्यतम्, अमोक्ष्यत। अमोक्ष्यम्, अमोक्ष्याव, अमोक्ष्याम। **आत्मनेपद में-** अमोक्ष्यत, अमोक्ष्येताम्, अमोक्ष्यन्त। अमोक्ष्यथाः, अमोक्ष्येथाम्, अमोक्ष्यध्वम्। अमोक्ष्ये, अमोक्ष्यावहि, आमोक्ष्यामहि।

लुप्लृ छेदने। लुप्लृ धातु **काटना** अर्थ में है। स्वरित लृकार की इत्संज्ञा होती है और **लुप्** शेष रहता है। अनिट् होने पर भी लिट् में क्रादिनियम से इट् हो जाता है। इसकी प्रक्रिया मुच् धातु की तरह ही है किन्तु जहाँ श परे मिलता है, वहाँ **शे मुचादीनाम्** से नुम् होकर नकार को अनुस्वार परसवर्ण होकर **लुम्प्** बन जाता है।

लुप्यति, लुम्पते। लुलोप, लुलुपे। लोप्ता, लोप्तासि, लोप्तासे। लोप्स्यति, लोप्स्यते। लुम्पतु, लुम्पताम्। अलुम्पत्, अलुम्पत। लुम्पेत्, लुम्पेत। लुप्यात्, लुप्सीष्ट। अलुपत्, अलुप्त। अलोप्स्यत्, अलोप्स्यत।

विद्लृ लाभे। विद्लृ धातु प्राप्त करना अर्थ में है। इसके लृ की इत्संज्ञा होती है, विद् शेष रहता है। उभयपदी है। इसके अनिट् होने में मतभेद है। व्याघ्रभूति आचार्य इसे सेट् मानते हैं और भाष्यकार के मत में यह अनिट् है।

विन्दति। विद् से लट्, तिप्, श, **शे मुचादीनाम्** से नुम् करके **विन्द्+अति** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **विन्दति**।

लट्, परस्मैपद में- विन्दति, विन्दतः, विन्दन्ति। विन्दसि, विन्दथः, विन्दथ। विन्दामि, विन्दावः, विन्दामः। **आत्मनेपद में**- विन्दते, विन्देते, विन्दन्ते। विन्दसे, विन्देथे, विन्दध्वे। विन्दे, विन्दावहे, विन्दाम हे। **लिट्, परस्मैपद में**- विवेद, विविदतुः, विविदुः। विवेदिथ, विविदथुः, विविद। विवेद, विविदिव, विविदिम। **आत्मनेपद में**- विविदे, विविदाते, विविदिरे। विविदिषे, विविदाथे, विविदिध्वे। विविदे, विविदिवहे, विविदिमहे। **लुट्, परस्मैपद में**-(भाष्यमत में अनिट्) वेत्ता, वेत्तारौ, वेत्तारः। वेत्तासि, वेत्तास्थः, वेत्तास्थ। वेत्तास्मि, वेत्तास्वः, वेत्तास्मः। **आत्मनेपद में**- वेत्ता, वेत्तारौ, वेत्तारः। वेत्तासे, वेत्तासाथे, वेत्ताध्वे। वेत्ताहे, वेत्तास्वहे, वेत्तास्महे। व्याघ्रभूति के मत में- सेट् होने से **वेदिता, वेदितारौ** आदि भी हो सकते हैं। **लृट्, परस्मैपद में**- वेत्स्यति, वेत्स्यतः, वेत्स्यन्ति। वेत्स्यसि, वेत्स्यथः, वेत्स्यथ। वेत्स्यामि, वेत्स्यावः, वेत्स्यामः। **आत्मनेपद में**- वेत्स्यते, वेत्स्येते, वेत्स्यन्ते। वेत्स्यसे, वेत्स्येथे, वेत्स्यध्वे। वेत्स्ये, वेत्स्यावहे, वेत्स्यामहे। **लोट्, परस्मैपद में**- विन्दतु-विन्दतात्, विन्दताम्, विन्दन्तु। विन्द-विन्दतात्, विन्दतम्, विन्दत। विन्दानि, विन्दाव, विन्दाम। **आत्मनेपद में**- विन्दताम्, विन्देताम्, विन्दन्ताम्। विन्दस्व, विन्देथाम्, विन्दध्वम्। विन्दै, विन्दावहै, विन्दामहै। **लङ्, परस्मैपद में**- अविन्दत्, अविन्दताम्, अविन्दन्। अविन्दः, अविन्दतम्, अविन्दत। अविन्दम्, अविन्दाव, अविन्दाम। **आत्मनेपद में**- अविन्दत, अविन्देताम्, अविन्दन्त। अविन्दथाः, अविन्देथाम्, अविन्दध्वम्। अविन्दे, अविन्दावहि, अविन्दामहि। **विधिलिङ्, परस्मैपद में**- विन्देत्, विन्देताम्, विन्देयुः। विन्देः, विन्देतम्, विन्देत। विन्देयम्, विन्देव, विन्देम। **आत्मनेपद में**- विन्देत, विन्देयाताम्, विन्देरन्। विन्देथाः, विन्देयाथाम्, विन्देध्वम्। विन्देय, विन्देवहि, विन्देमहि। **आशीर्लिङ्, परस्मैपद में**- विद्यात्, विद्यास्ताम्, विद्यासुः। विद्याः, विद्यास्तम्, विद्यास्त। विद्यासम्, विद्यास्व, विद्यास्म। **आत्मनेपद में**- वित्सीष्ट, वित्सीयास्ताम्, वित्सीरन्। वित्सीष्ठाः, वित्सीयास्थाम्, वित्सीध्वम्। वित्सीय, वित्सीवहि, वित्सीमहि। **लुङ्, परस्मैपद में**- अविदत्, अविदताम्, अविदन्। अविदः, अविदतम्, अविदत। अविदम्, अविदाव, अविदाम। **आत्मनेपद में**- अवित्त, अवित्साताम्, अवित्सत। अवित्थाः, अवित्साथाम्, अविद्ध्वम्। अवित्सि, अवित्स्वहि, अवित्स्महि। **लृङ्, परस्मैपद में**- अवेत्स्यत्, अवेत्स्यताम्, अवेत्स्यन्। अवेत्स्यः, अवेत्स्यतम्, अवेत्स्यत। अवेत्स्यम्, अवेत्स्याव, अवेत्स्याम। **आत्मनेपद में**- अवेत्स्यत, अवेत्स्येताम्, अवेत्स्यन्त। अवेत्स्यथाः, अवेत्स्येथाम्, अवेत्स्यध्वम्। अवेत्स्ये, अवेत्स्यावहि, अवेत्स्यामहि।

परिवेत्ता। परिपूर्वक विद् धातु से तृच् प्रत्यय होकर अनिट् की स्थिति में **परिवेत्ता** बनता है। बड़े भाई के अविवाहित रहते हुए जब छोटा भाई विवाह कर ले, उसे **परिवेत्ता** कहते हैं।

अङ्गादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६५६. लिपिसिचिह्वश्च ३।१।५३।।

एभ्यश्च्लेरङ् स्यात्। असिचत्।

वैकल्पिकाङ्गादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६५७. आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ३।१।५४।।

लिपिसिचिह्वः परस्य च्लेरङ् वा। असिचत, असिक्त।

लिप उपदेहे।।१०।। उपदेहो वृद्धिः। लिम्पति, लिम्पते। लेप्ता। अलिपत्। अलिपत, अलिप्त।

इत्युभयपदिनः।

....

षिच क्षरणे। षिच धातु **सींचना** अर्थ में है। **धात्वादेः षः सः** से षकार के स्थान पर सकार आदेश होत. है और चकारोत्तरवर्ती स्वरित अकार इत्संज्ञक है। अतः यह उभयपदी है और अनुदात्तों में परिगणित होने के कारण अनिट् है किन्तु लिट् में क्रादिनियम से इट् हो जाता है। **मुचादि** में आने के कारण **शे मुचादीनाम्** से श के परे रहते नुम् आगम होता है। **लट्**- सिञ्चति, सिञ्चते। **लिट्**- सिषेच, सिषिचे। **लुट्**- सेक्ता, सेक्तासि, सेक्तासे। **लृट्**- सेक्ष्यति, सेक्ष्यते। **लोट्**- सिञ्चतु-सिञ्चतात्, सिञ्चताम्। **लङ्**- असिञ्चत्, असिञ्चत। **विधिलिङ्**- सिञ्चेत्, सिञ्चेत। **आशीर्लिङ्**- सिच्यात्, सिक्षीष्ट।

६५६- **लिपिसिचिह्वश्च।** लिपिश्च सिचिश्च ह्वाश्च तेषां समाहारद्वन्द्वो लिपिसिचिह्वाः (पुंस्त्वं सौत्रम्)। तस्माद् लिपिसिचिह्वः। लिपिसिचिह्वः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **च्लेः सिच्** से च्लेः और **अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्** से **अङ्** और **णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्** से **कर्तरि** की अनुवृत्ति आती है।

लिप्, सिच् और ह्वे इन धातुओं से परे च्लि के स्थान पर अङ् आदेश होता है।

इन धातुओं से परे च्लि के स्थान पर अङ् प्राप्त नहीं था, अतः औत्सर्गिक सिच् आदेश प्राप्त हो रहा था, उसे बाध कर के इस सूत्र से अङ् आदेश किया गया है। परस्मैपद में इस सूत्र से नित्य से होता है और आत्मनेपद में अग्रिम सूत्र से विकल्प से होता है।

असिचत्। सिच् से लुङ्, तिप्, अट्, च्लि, **लिपिसिचिह्वश्च** से अङ् आदेश होकर **असिचत्** बन जाता है। असिचत्, असिचताम्, असिचन् आदि।

६५७- **आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्।** आत्मनेपदेषु सप्तम्यन्तम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **च्लेः सिच्** से च्लेः, **अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्** से **अङ्** की **लिपिसिचिह्वश्च** से **लिपिसिचिह्वः** और **णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्** से **कर्तरि** की अनुवृत्ति आती है।

लिप्, सिच् और ह्वे धातुओं से परे च्लि के स्थान पर विकल्प से अङ् आदेश होता है आत्मनेपद के परे होने पर।

असिचत, असिक्त। आत्मनेपद के लुङ् में **च्लि** के स्थान पर **आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्** से अङ् होने के पक्ष में **असिचत** बनता है। अङ् न होने के पक्ष में **झलो झलि** से सकार का लोप करके चकार को **चोः कुः** से कुत्व होकर **असिक्त** बनता है। जहाँ झल् परे नहीं मिलता वहाँ सकार का लोप भी नहीं होता और कुत्व भी नहीं होता।

कृती छेदने॥११॥ कृन्तति। चकर्त। कर्तिता। कर्तिष्यति, कर्त्स्यति। अकर्तीत्॥
खिद परिघाते॥१२॥ खिन्दति। चिखेद। खेत्ता॥
पिश अवयवे॥ १३॥ पिंशति। पेशिता॥
ओव्रश्चू छेदने॥१४॥ वृश्चति। वव्रश्च। वव्रश्चिथ, वव्रष्ठ। व्रश्चिता, व्रष्टा। व्रश्चिष्यति, व्रक्ष्यति। वृश्च्यात्। अव्रश्चीत्। अव्राक्षीत्॥
व्यच व्याजीकरणे॥१५॥ विचति। विव्याच। विविचतुः व्यचिता। व्यचिष्यति। विच्यात्। अव्याचीत्, अव्यचीत्।
व्यचेःकुटादित्वमनसीति तु नेह प्रवर्तते, अनसीति पर्युदासेन कृन्मात्रविषयत्वात्॥
उछि उञ्छे॥१६॥ उञ्छति।
'उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्'। इति यादवः॥
ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु॥१७॥
ऋच्छति। **ऋच्छत्यृतामिति** गुणः। द्विहल्ग्रहणस्यानेकहलुपलक्षणत्वान्नुट्। आनर्च्छ। आनर्च्छतुः। ऋच्छिता॥ **उज्झ उत्सर्गे॥१८।** उज्झति॥
लुभ विमोहन॥१९॥ लुभति।

लुङ् के आत्मनेपद में रूप, अङ् होने पर- असिचत, असिचेताम्, असिचन्त। **अङ् न होने पर-** असिक्त, असिक्षाताम्, असिक्षत। लृङ्- असेक्ष्यत्, असेक्ष्यत।

लिप उपदेहे। लिप् धातु **उपदेह** अर्थात् **लेप आदि से बढ़ाना, लीपना** आदि अर्थों में है। पकारोत्तरवर्ती अकार की इत्संज्ञा होती है। स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी है। अनिट् है किन्तु क्रादिनियम से लिट् में इट् हो जाता है। **मुचादि** होने के कारण नुम् आगम होता है। इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया **सिच्** की तरह ही होती है।
लट्- लिम्पति, लिम्पते। **लिट्**- लिलेप, लिलिपे। **लुट्**- लेप्ता, लेप्तासि, लेप्तासे। **लृट्**- लेप्स्यति, लेप्स्यते। **लोट्**- लिम्पतु-लिम्पतात्, लिम्पताम्। **लङ्**- अलिम्पत्, अलिम्पत। **विधिलिङ्**- लिम्पेत्, लिम्पेत। **आशीर्लिङ्**- लिप्यात्, लिप्सीष्ट। **लुङ्**- अलिपत्, अलिपत-अलिप्त।

यहाँ तक तुदादि के उभयपदी धातुओं का विवेचन पूर्ण हो गया। इसके पहले के प्रकरण में पहले परस्मैपदी धातुओं का विवेचन होता था, उसके बाद आत्मनेपदी और उसके बाद उभयपदी धातुओं का, किन्तु तुदादिगण का प्रथम धातु **तुद्** है और वह स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी है। अतः पहले उभयपदियों का विवेचन प्रारम्भ किया। अब परस्मैपदी धातुओं का विवेचन प्रारम्भ करते हैं।

कृती छेदने। कृती धातु **काटना, छेदन करना** अर्थ में है। अन्त्य ईकार उदात्त और अनुनासिक है। ईकार की इत्संज्ञा के बाद केवल **कृत्** शेष रहता है। **ईदित्** होने का फल कृदन्त में **श्वीदितो निष्ठायाम्** से इट् का निषेध आदि है। मुचादि होने के कारण इससे भी नुम् आगम होता है। अनुदात्तों में परिगणित न होने से सेट् है। इस धातु में सिच्भिन्न सकारादि आर्धधातुक स्य के परे होने पर **सेऽसिचिकृतचृतच्छृततृदनृतः(६३१)** से इट् विकल्प से किया जाता है।

रूप- कृन्तति। चकर्त, चकृततुः, चकृतुः। कर्तिता। कर्तिष्यति, कर्त्स्यति। कृन्ततु। अकृन्तत्। कृन्तेत्। कृत्यात्। अकर्तीत्, अकर्तिष्टाम्, अकर्तिषुः। अकर्तिष्यत्-अकर्त्स्यत्।

खिद परिघाते। खिद धातु **प्रहार करना, सताना, दुःख देना** अर्थ में है। अन्त्य अकार उदात्त और अनुनासिक है। अकार की इत्संज्ञा के बाद केवल **खिद्** शेष रहता है। मुचादि होने के कारण इससे भी नुम् आगम होता है। अनुदात्तों में परिगणित होने से अनिट् है।

रूप- खिन्दति। चिखेद, चिखिदतुः, चिखिदुः। खेत्ता। खेत्स्यति। खिन्दतु। अखिन्दत्। खिन्देत्। खिद्यात्। अखैत्सीत्। अखेत्स्यत्।

पिश अवयवे। पिश धातु **अवयव करना, पीसना** अर्थ में है किन्तु ऐसे अर्थ का प्रयोग नहीं मिलता। कहीं कहीं **विभाग करना, देना, प्रकाशित करना** आदि अर्थों में यह धातु प्रयुक्त हुआ है। अन्त्य अकार उदात्त और अनुनासिक है। अकार की इत्संज्ञा के बाद केवल **पिश्** शेष रहता है। मुचादि होने के कारण इससे भी नुम् का आगम होता है। अन्त्य अच् पि के इकार के बाद नुम् का नकार बैठता है और उसका अनुस्वार होकर **पिंश्** बन जाता है। अनुदात्तों में परिगणित न होने से सेट् है।

रूप- पिंशति। पिपेश। पेशिता। पेशिष्यति। पिंशतु। अपिंशत्। पिंशेत्। पिश्यात्। अपेशीत्। अपेशिष्यत्।

यहाँ तक ही मुचादि माने गये हैं। अतः अब आगे नुम् नहीं होगा।

ओव्रश्चू छेदने। ओव्रश्चू धातु **छेदन करना, काटना** अर्थ में है। आदि ओकार और अन्त्य ऊकार की इत्संज्ञा होती है, केवल **व्रश्च्** शेष रहता है। ऊदित् होने के कारण **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से आर्धधातुक को विकल्प से इट् का आगम होता है।

वृश्चति। व्रश्च् से लट्, तिप्, श करके **सार्वधातुकमपित्** से श के अकार को ङित् हो जाने से **ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च** से व्र में विद्यमान रेफ के स्थान पर सम्प्रसारण होकर ऋकार हो जाता है। **वृश्च्+अति=वृश्चति।**

वव्रश्च। लिट्, तिप्, णल् होने के बाद व्रश्च् को द्वित्व करके **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** से अभ्यास को सम्प्रसारण करके **वृश्च व्रश्च,** हलादि शेष, उरत् से अर् करके पुनः हलादिशेष करके **वव्रश्च्+अ** बना। वर्णसम्मेलन, **वव्रश्च।** थल्, वस् मस् में इट् विकल्प से होता है।

रूपः- वव्रश्च, वव्रश्चतुः, वव्रश्चुः, वव्रश्चिथ-वव्रष्ठ, वव्रश्चथुः, वव्रश्च, वव्रश्च, वव्रश्चिव-वव्रश्च्व, वव्रश्चिम-वव्रश्च्म। **लुट्**-इट्पक्षे- **व्रश्चिता,** इट् के अभाव में- **व्रष्टा।** लृट्- व्रश्चिष्यति, व्रक्ष्यति। **लोट्**- वृश्चतु। लङ्- अवृश्चत्। **विधिलिङ्**- वृश्चेत्। **आशीर्लिङ्**- वृश्च्यात्। लुङ्- इट् होने के पक्ष में **नेटि** से वृद्धि का निषेध होकर **अव्रश्चीत्, अव्रश्चिष्टाम्, अव्रश्चिषुः** आदि रूप बनते हैं और इट् न होने के पक्ष में वृद्धि होकर **अव्राक्षीत्, अव्राष्टाम्, अव्राक्षुः** आदि रूप बनते हैं। लृङ्- अव्रश्चिष्यत्, अव्रक्ष्यत्।

व्यच व्याजीकरणे। व्यच धातु **छलना, ठगना, धोखा देना** अर्थ में है। अन्त्य अकार की इत्संज्ञा होती है। यह परस्मैपदी और सेट् है। सम्प्रसारणी अर्थात् इस धातु को कित् ङित् के परे होने पर सम्प्रसारण होता है। श के परे रहते **ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चति-पृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च** से तथा लिट् में **लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्** से सम्प्रसारण होता है। सम्प्रसारण में **व्यच्** के यकार को इकार हो जाता है।

विचति। विव्याच। व्यचिता। व्यचिष्यति। विचतु। अविचत्। विचेत्। विच्यात्। लुङ् में **अतो हलादेर्लघोः** से वैकल्पिक वृद्धि होकर **अव्याचीत्** और **अव्यचीत्** ये दो रूप बनते हैं। **अव्यचिष्यत्।**

व्यचेः कुटादित्वमनसि। यह **महाभाष्य** का वार्तिक है। अस् से भिन्न अन्य प्रत्ययों के परे व्यच् को कुटादिगणीय मानना चाहिए। स्मरण रहे कि कुटादि को **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्** से ङिद्वत् किया जाता है। अस् प्रत्यय कृत्प्रकरण में होता है। **अनसि** यहाँ पर **पर्युदास** है। पर्युदास का तात्पर्य है निषेध। **पर्युदास** के रूप में जो निषेध होता है वह तद्भिन्न तत्सदृश का ग्रहण कराता है। **अस् से भिन्न किन्तु अस् के सदृश के परे रहने पर।** अस् जिस तरह कृत् है उसी तरह अस्-भिन्न अन्य कृत् के परे तो हो सकता है किन्तु अस् परे नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि वह अनस् कृत् होना चाहिए। यहाँ तिङन्तप्रकरण में कृत् परे होने का प्रसंग नहीं है। अतः व्यच् धातु को सर्वत्र कुटादिगणीय नहीं माना जा सकता। फलतः इससे परे सिच् आदि भी ङित् नहीं होते।

उछि उञ्छे। उछि धातु **अनाज के एक-एक दाने को चुनना** अर्थ में है। अन्त्य इकार की इत्संज्ञा होती है। इदित् होने के कारण **इदितो नुम् धातोः** से नुम् होता है। नकार को अनुस्वार और परसवर्ण होकर ञकार बनाया जाता है। यह धातु सेट् है। लिट् में गुरुमान् और इजादि दोनों होने के कारण आम् हो जाता है जिससे आम से परे का लुक् और कृ,भू, अस् का अनुप्रयोग करके **गोपायाञ्चकार** की तरह रूप बनते हैं।

खेत में फसल के कट जाने के बाद किसान जब अपना अनाज उठा लेता था तब मुनिजन उस खेत में जाकर इधर-उधर बिखरे अनाज के दाने या बालियों को बटोर कर उससे अपना जीवन-निर्वाह करते थे। इसीको मुनिवृत्ति कहते हैं। जैसा कि मूलकार ने **वैजयन्तीकोषकार यादव** को उद्धृत करते हुए लिखा है- **उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्।** अर्थात् अनाज के दानों को बीनना **उञ्छ** है और अनाज के बालियों का बीनना **शिल** है।

उञ्छति। उञ्छाञ्चकार, उञ्छाम्बभूव, उञ्छामास। उञ्छिता। उञ्छिष्यति। उञ्छतु। औञ्छत्। उञ्छेत्। उञ्छ्यात्। औञ्छीत्। औञ्छिष्यत्।

ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु। ऋच्छ धातु **गति, इन्द्रियों का बल नष्ट होना, कठिन या दृढ़ होना** अर्थों में है। अन्त्य अकार की इत्संज्ञा होकर **ऋच्छ्** शेष रहता है। यह परस्मैपदी और सेट् है। इसका वास्तविक मूल रूप तो ऋछ है किन्तु **छे च** से तुक् का आगम और छकार के योग में तकार को श्चुत्व होकर **ऋच्छ्** बन जाता है।

लट् में **ऋच्छति** बनता है।

लिट् में चकार और छकार के संयोग से गुरुमान् होते हुए भी **इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः** से आम् नहीं होता क्योंकि **अनृच्छः** यह पढ़कर ऋच्छ धातु में निषेध किया गया है। द्वित्व, अर्, हलादिशेष होकर **अ+ऋच्छ्+अ** बनने के बाद **अत आदेः** से अभ्यास के अकार को दीर्घ करके अनभ्यास ऋकार को **ऋच्छत्यृताम्** से गुण होकर **आ+अर्+च्छ्+अ** बना। अब **तस्मान्नुड्द्विहलः** से नुट् का आगम करके **आ+न्+अर्+च्छ्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **आनर्च्छ।** अब यहाँ प्रश्न यह उठता है कि **तस्मान्नुड् द्विहलः** में द्विहल् धातु को नुट् आगम करने का विधान है और यहाँ पर **र्च्छ्** ये तीन हलों के संयोग में यह सूत्र कैसे लगेगा? इसका उत्तर मूलकार इस तरह देते हैं- **द्विहल्ग्रहणस्यानेकहलुपलक्षणान्नुट्।** अर्थात् यह द्विहल् अनेक हलों का भी उपलक्षण है। **उपलक्षण** की परिभाषा है कि **स्वप्रतिपादकत्वे सति स्वेतरप्रतिपादकत्वमुपलक्षणत्वम्।** अर्थात् जिसके द्वारा अपना ग्रहण कर के अपने से अन्यों का ग्रहण हो जाय उसे **उपलक्षण** कहते हैं। एक उदाहरण प्रसिद्ध

इटो विकल्पाय विधिसूत्रम्

६५८. तीषसहलुभरुषरिषः ७।२।४८॥

इच्छत्यादेः परस्य तादेरार्धधातुकस्येड्वा स्यात्। लोभिता, लोब्धा। लोभिष्यति। **तृप, तृम्फ तृप्तौ॥२०-२१॥** तृपति। ततर्प तर्पिता। अतर्पीत्। तृम्फति।

वार्तिकम्- **शे तृम्फादीनां नुम् वाच्यः।**

आदिशब्दः प्रकारे, तेन येऽत्र नकारानुषक्तास्ते तृम्फादयः। ततृम्फ। तृफ्यात्॥ **मृड, पृड, सुखने॥२२-२३॥** मृडति। पृडति। **शुन गतौ॥ २४॥** शुनति॥ **इषु इच्छायाम्॥ २५॥** इच्छति। एषिता, एष्टा। एषिष्यति। इष्यात्। ऐषीत्॥ **कुट कौटिल्ये॥ २६॥**

गाङ्कुटादीति ङित्वम्॥ चुकुटिथ। चुकोट, चुकुट। कुटिता॥

पुट संश्लेषणे॥२७॥ पुटति। पुटिता।

स्फुट विकसने॥२८॥ स्फुटति। स्फुटिता।

स्फुर, स्फुल संचलने॥ २९-३०॥ स्फुरति। स्फुलति॥

....

है- जैसे **काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्** अर्थात् कौओं से दही को बचाओ। इसका तात्पर्य यह है कि न केवल कौओं से अपितु दही के विनाशक कुत्ते, बिल्ली आदि से भी बचाना है। इसी तरह यहाँ उक्त सूत्र पर द्विहल् शब्द अनेक हल् का भी उपलक्षण है। अतः यहाँ पर नुट् होने में कोई आपत्ति नहीं है।

रूप- ऋच्छति। आनर्च्छ, आनर्च्छतुः, आनर्च्छुः आदि। ऋच्छिता। ऋच्छिष्यति। ऋच्छतु। आर्च्छत्। ऋच्छेत्। ऋच्छ्यात्। आर्च्छीत्। आर्च्छिष्यत्।

उज्झ उत्सर्गे। उज्झ धातु **उत्सर्ग** अर्थात् **छोड़ना** अर्थ में है। यह परस्मैपदी और सेट् है। उज्झति। उज्झाञ्चकार, उज्झाम्बभूव, उज्झामास। उज्झिता। उज्झिष्यति। उज्झतु। औज्झत्। उज्झेत्। उज्झ्यात्। औज्झीत्। औज्झिष्यत्।

लुभ विमोहने। लुभ धातु **लुभाना** अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होती है, लुभ् शेष रहता है। वलादि आर्धधातुक को नित्य से इट् और तकारादि आर्धधातुक तासि के तकार के परे रहते अग्रिम सूत्र **तीषसहलुभरुषरिषः** से वेट् हो जाता है। **लट्** में **लुभति** और **लिट्** में **लुलोभ, लुलुभतुः।**

६५८- तीषसहलुभरुषरिषः। इषश्च सहश्च लुभश्च रुषश्च रिट् च तेषां समाहारद्वन्द्वः इषहसलुभरुषरिट्, तस्मात् इषसहलुभरुषरिषः। ति सप्तम्यन्तम्, इषसहलुभरुषरिषः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से **आर्धधातुकस्य इट्** और **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से **वा** की अनुवृत्ति आती है।

इष्, सह्, लुभ्, रुष् और रिष् धातुओं से परे तकारादि आर्धधातुक को विकल्प से इट् आगम होता है।

नित्य से प्राप्त इट् का यह सूत्र बाधक है।

लोभिता, लोब्धा। तास्-प्रत्यय तकारादि आर्धधातुक है। अत **तीषसहलुभरुषरिषः** से विकल्प से इट् हुआ। इट् होने के पक्ष में **लोभिता** और इट् न होने के पक्ष में **लोभ्+ता** इस स्थिति में **झषस्तथोर्धोऽधः** से तकार को धकार और भकार को **झलां जश् झशि** से जश्त्व बकार होकर **लोब्धा** बन जाता है। **रूप**- लोभिता, लोभितारौ, लोभितारः। इसी तरह लोब्धा, लोब्धारौ, लोब्धारः। आगे- लोभिष्यति। लुभतु। अलुभत्। लुभेत्। लुभ्यात्। अलोभीत्। अलोभिष्यत्।

तृप, तृम्फ तृप्तौ। तृप और तृम्फ धातु **तृप्त करना** अर्थ में है। दोनों परस्मैपदी और सेट् हैं। दिवादिगणीय तृप् क **तृप्यति** आदि रूप होते हैं। उससे यह भिन्न है।

तृप् के रूप- तृपति। ततर्प। तर्पिता। तर्पिष्यति। तृपतु। अतृपत्। तृपेत्। तृप्यात्। अतर्पीत्। अतर्पिष्यत्।

शे तृम्फादीनां नुम् वाच्यः। यह वार्तिक है। **श के परे होने पर तृम्फ आदि धातुओं को नुम् हो ऐसा कहना चाहिए।** यहाँ पर **तृम्फादि** का **आदिशब्द** प्रकार वाचक है अर्थात् तृम्फ आदि अर्थ न होकर तृम्फ जैसे धातुएँ गृहीत हैं। जिस तरह **तृम्फ** नकारोपध (मकारोपध) है, उसी तरह तुदादि प्रकरण में नकार उपधा वाली(मकारोपध) धातुएँ **तृम्फादि** कहलाती हैं। इसी लिए **शुम्भ, उम्भ** आदि धातुओं में इस वार्तिक स नुम् हो जाता है। एक शंका यह हो सकती है कि **तृम्फ्** में तो स्वतः मकार है, इसमें नुम् की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर यह है कि **तुदादिभ्यः शः** से श होने के बाद उसके अकार को अपित् सार्वधातुक मानकर **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से नकार का लोप होने पर **तृफ्** ही बच जाता है। अतः नुम् की आवश्यकता होती है। नुम् होने के बाद नकार को अनुस्वार और अनुस्वार को परसवर्ण मकार होकर पुनः **तृम्फ** ही बन जाता है। जहाँ श नहीं होता, वहाँ ङित् न होने के कारण नकार का लोप भी नहीं होता और नुम् भी नहीं होता। उपधा में लघु वर्ण न होने के कारण लिट् में गुण नहीं होता है।

रूप- तृम्फति। ततृम्फ। तृम्फिता। तृम्फिष्यति। तृम्फतु। अतृम्फत्। तृम्फेत्। तृफ्यात्। अतृम्फीत्। अतृम्फिष्यत्।

मृड पृड सुखने। मृड और पृड धातु **सुख देना** अर्थ में है। अन्त्य अकार की इत्संज्ञा होती है। ये दोनों परस्मैपदी और सेट् हैं।

मृड् के रूप- मृडति, ममर्ड। मर्डिता। मर्डिष्यति। मृडतु। अमृडत्। मृडेत्। मृड्यात्। अमर्डीत्। अमर्डिष्यत्।

पृड् के रूप- पृडति, पपर्ड। पर्डिता। पर्डिष्यति। पृडतु। अपृडत्। पृडेत्। पृड्यात्। अपर्डीत्। अपर्डिष्यत्।

शुन गतौ। शुन धातु **जाना** अर्थ में है। अकार की इत्संज्ञा होती है और शुन् शेष रहता है। यह परस्मैपदी और सेट् है। **रूप**- शुनति। शुशोन। शोनिता। शोनिष्यति। शुनतु। अशुनत्। शुनेत्। शुन्यात्। अशोनीत्। अशोनिष्यत्।

इषु इच्छायाम्। इष् धातु इच्छा अर्थ में है। उकार इत्संज्ञक है। शित् के परे होने पर **इषुगमियमां छः** से षकार के स्थान पर छकार आदेश और छकार के परे रहते इकार को **छे च** से तुक् का आगम होकर तकार को श्चुत्व होकर **इच्छ्** हो जाता है। तकारादि आर्धधातुक के परे होने पर **तीषसहलुभरुषरिषः** से वेट् होता है। लिट् में सवर्ण अच् के परे होने पर **अभ्यासस्यासवर्णे** से इयङ् आदेश होकर **इयेष** आदि रूप बनते हैं।

वैकल्पिकषत्वविधायकं विधिसूत्रम्

६५९. स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः ८।३।७६॥

षत्वं वा स्यात्। निःष्फुरति, निःस्फुरति।

णू स्तवने॥ ३१॥ परिणूतगुणोदयः। नुवति। नुनाव। नुविता।

टुमस्जो शुद्धौ॥३२॥ मज्जति। ममज्ज। ममज्जिथ। **मस्जिनशोरिति** नुम्।

वार्तिकम्- **मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम्वाच्यः।** संयोगादिलोपः। ममङ्क्थ।

मङ्क्ता। मङ्क्ष्यति। अमाङ्क्षीत्। अमाङ्क्ताम्। अमाङ्क्षुः।

रुजो भङ्गे॥३३॥ रुजति। रोक्ता। रोक्ष्यति। अरौक्षीत्।

भुजो कौटिल्ये॥३४॥ रुजिवत्। **विश प्रवेशने॥ ३५॥** विशति।

मृश आमर्शने॥३६॥ आमर्शनं स्पर्शः।

अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्। अम्राक्षीत्, अमार्क्षीत्, अमृक्षत्।

षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु॥३७॥ सीदतीत्यादि॥

शद्लृ शातने॥३८॥

....

लट्- इच्छति, इच्छतः, इच्छन्ति।

लिट् में इप् लिट्, तिप्, णल्, अ, द्वित्व, हलादिशेष करके **इ+इष्+अ** बना। लघूपधगुण करके **इ+एष्+अ, अभ्यासस्यासवर्णे** से इयङ्, वर्णसम्मेलन करके **इयेष** बना। आगे- ईषतुः, ईषुः, इयेपिथ, ईषथुः, ईष। इयेष, ईषिव, ईषिम।

एषिता-एष्टा। एषिष्यति। इच्छतु। ऐच्छत्। इच्छेत्। इष्यात्। ऐषीत्। ऐषिष्यत्।

कुट कौटिल्ये। कुट धातु **टेंढ़ा होना, टेंढ़ा करना, धोखा देना** आदि अर्थों में है। अन्त्य अकार इत्संज्ञक है। **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्** से णित् भिन्न जगहों पर ङिद्वत् हो जाने के कारण गुण का निषेध होगा। **श** के परे होने पर तो वैसे भी गुणनिषेध है। यहाँ पर कुटादि का फल श न होने पर ही होता है।

रूप- कुटति। चुकोट, चुकुटतुः, चुकुटुः, चुकुटिथ, चुकुटथुः, चुकुट, चुकोट-चुकुट, चुकुटिव, चुकुटिम। कुटिता। कुटिष्यति। कुटतु। अकुटत्। कुटेत्। कुट्यात्। अकुटीत्। अकुटिष्यत्।

पुट संश्लेषणे। पुट धातु **मिलाना या आलिंगन करना** अर्थ में है। अकार इत्संज्ञक है। यह भी परस्मैपदी, सेट् तथा कुटादिगण के अन्तर्गत आता है। अतः ङिद्वत् हो जाने के कारण गुण आदि नहीं होंगे। **रूप-** पुटति। पुपोट। पुटिता। पुटिष्यति। पुटतु। अपुटत्। पुटेत्। पुट्यात्। अपुटीत्। अपुटिष्यत्।

स्फुट विकसने। स्फुट धातु **खिलना, विकसित होना** अर्थ में है। यह भी अकारेत्संज्ञक, परस्मैपदी, सेट् और कुटादि है। अतः इसके रूप भी कुटधातु की तरह ही होते हैं। स्फुटति। पुस्फोट। स्फुटिता। स्फुटिष्यति। स्फुटतु। अस्फुटत्। स्फुटेत्। स्फुट्यात्। अस्फुटीत्। अस्फुटिष्यत्।

स्फुर, स्फुल सञ्चलने। स्फुर और स्फुल ये दो धातुएँ **संचलन** अर्थात् **हिलना, स्पन्दित होना, नेत्र आदि अंगों का फड़कना, चेष्टा करना, प्रकाशित होना, भासित**

होना, कांपना आदि अर्थों में है। ये दोनों पूर्ववत् अकारेत्संज्ञक, परस्मैपदी, सेट् और कुटादि हैं। अतः इनके रूप कुट् की तरह होते हैं।

स्फुर् के रूप- स्फुरति। **शर्पूर्वाः खयः**। पुस्फोर। स्फुरिता। स्फुरिष्यति। स्फुरतु। अस्फुरत्। स्फुरेत्। **हलि च** से दीर्घ होकर- स्फूर्यात्। अस्फुरीत्। अस्फुरिष्यत्।

स्फुल् के रूप- स्फुलति। पुस्फोल। स्फुलिता। स्फुलिष्यति। स्फुलतु। अस्फुलत्। स्फुलेत्। रेफान्त न होने से **हलि च** से दीर्घ भी नहीं होगा- स्फुल्यात्। अस्फुलीत्। अस्फुलिष्यत्।

६५९- **स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः**। स्फुरतिश्च स्फुलतिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः स्फुरतिस्फुलती, तयोः स्फुरतिस्फुलत्योः। निर् च निश्च विश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो निर्निवयः, तेभ्यो निर्निविभ्यः। स्फुरतिस्फुलत्योः षष्ठ्यन्तं, निर्निविभ्यः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सहेः षाढः सः** से **सः**, **अपदान्तस्य मूर्धन्यः** से **मूर्धन्यः** और **सिवादीनां वाड्व्यवायेऽपि** से **वा** की अनुवृत्ति आती है।

निर्, नि और वि उपसर्ग से परे स्फुर् और स्फुल् धातुओं के सकार को विकल्प से षकार आदेश होता है।

निःष्फुरति, निःस्फुरति। यहाँ पर **निर्** उपसर्ग के रेफ को विसर्ग करने के बाद **शर्परे खरि वा विसर्गलोपो वक्तव्यः** वार्तिक से वैकल्पिक विसर्गलोप और षत्व होकर **निष्फुरति** एवं विसर्गलोप के अभावपक्ष में **वा शरि** से विसर्ग के स्थान में विसर्ग ही होने पर **निःष्फुरति** तथा उसके भी अभावपक्ष में **विसर्जनीयस्य सः** से सकार और उसके स्थान पर **ष्टुना ष्टुः** ष्टुत्व होकर **निष्ष्फुरति** ये तीन रूप होते हैं। इससे षत्व न होने के पक्ष में **निःस्फुरति** भी बनता है।

णू स्तवने। णू धातु **स्तुति करना** या **प्रशंसा करना** अर्थ में है। **णो नः** से धातु के आदि में विद्यमान णकार के स्थान पर नकार आदेश होकर **नू** बन जाता है। इस धातु के **परिणूत-गुणोदयः** आदि प्रयोग मिलते हैं। अतः यह धातु ऊदन्त है न कि उदन्त। इसमें किसी वर्ण की इत्संज्ञा नहीं होती है। यह धातु परस्मैपदी, सेट् और कुटादि है। अतः णित् और णित् से भिन्न में **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्** से ङिद्वद्भाव होता है। अजादि प्रत्यय के परे **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **उवङ्** होता है।

नुवति। नू से लट्, तिप्, श, अपित् शित् होने के कारण ङिद्वद्भाव होकर गुण का निषेध, **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **उवङ्** आदेश, **न्+उव्+अ+ति**, वर्णसम्मेलन, **नुवति**। **नुवतः**, **नुवन्ति** आदि।

लिट् में- नुनाव, नुनुवतुः, नुनुवुः, नुनुविथः, नुनुवथुः, नुनुव, नुनाव-नुनव, नुनुविव, नुनुविम। **आगे**- **नुविता**। **नुविष्यति**। **नुवतु**। **अनुवत्**। **नुवेत्**। **नूयात्**। **अनुवीत्**। **अनुविष्यत्**।

टुमस्जो शुद्धौ। टुमस्जो धातु **शुद्ध होना** अर्थ में है। **आदिर्ञिटुडवः** से **टु** की इत्संज्ञा होती है और अन्त्य ओकार भी इत्संज्ञक है। इस तरह केवल **मस्ज्** शेष रहता है। **टु** की इत्संज्ञा का फल कृदन्त में **ट्वितोऽथुच्** की प्रवृत्ति और ओकार की इत्संज्ञा का फल **ओदितश्च** की प्रवृत्ति है। उदात्तेत् होने से परस्मैपदी और जकारान्त अनुदात्त होने से अनिट् है। लिट् में क्रादिनियम से इट् और थल् में भारद्वाज के मत में विकल्प से इट् होता है।

मज्जति। मस्ज् से लट्, तिप्, श के बाद **मस्ज्+अ+ति** बना। सकार को **स्तोः**

श्चुना श्चुः से शकार होकर **मश्ज्** बना। शकार को **झलां जश् झशि** से जशत्व होकर जकार हो गया। **मज्ज्+अति,** वर्णसम्मेलन होकर **मज्जति** सिद्ध हुआ। **मज्जतः। मज्जन्ति।**

मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम्वाच्यः। यह वार्तिक है। **मस्ज् धातु में अन्त्य से पूर्व को नुम् हो ऐसा कहना चाहिए।** नुम् में उकार और मकार की इत्संज्ञा होती है। **मस्जिनशोर्झलि** से हुए नुम् के मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात्परः** के नियम से अत्य अच् मकारोत्तरवर्ती अकार के बाद होना चाहिए था किन्तु इस वार्तिक से अन्त्य वर्ण से पूर्व को विहित होने के कारण अन्त्य वर्ण जकार से पूर्व होगा।

ममङ्क्थ-ममज्जिथ। ममस्ज्+थ में भारद्वाज नियम से इट् होने के पक्ष में झल् परे न होने के कारण नुम् नहीं होता। अतः **ममज्जिथ** बन जाता है किन्तु इट् न होने के पक्ष में झल् परे मिलता है, अतः **मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम्वाच्यः** की सहायता से **मस्जिनशोर्झलि** से अन्त्य वर्ण जकार से पहले नुम् आगम होकर **ममस्न्ज्+थ** बना। **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से **सन्ज्** इस संयोग के आदि में विद्यमान सकार का लोप हो जाता है और जकार को **चोः कुः** से कुत्व होकर गकार होता है। इस तरह **ममन्ग्+थ** बना। गकार को **खरि च** से चर्त्व होकर ककार होकर **ममन्क्+थ** बना। नकार को अनुस्वार और परसवर्ण होकर **ङकार** हुआ। **ममङ्क्+थ, ममङ्क्थ** सिद्ध हुआ।

लिट् के रूप- ममज्ज, ममज्जतुः, ममज्जुः, ममङ्क्थ-ममज्जिथ, ममज्जथुः , ममज्ज, ममज्ज, ममज्जिव, ममज्जिम।

लुट् में- मस्ज्+ति, मस्ज्+तास्+ति, मस्ज्+तास्+डा, मस्ज्+ता बनने के बाद अन्त्य वर्ण से पहले नुम् का आगम, संयोगादि सकार का लोप, नुम् के नकार को अनुस्वार और परसवर्ण करके **मङ्क्ता** बनता है। आगे- मङ्क्तारौ, मङ्क्तारः, मङ्क्तासि आदि बनते जाते हैं।

लृट् में- मस्ज्+ति, मस्ज्+स्य+ति बनने के बाद अन्त्य वर्ण से पहले नुम् का आगम, संयोगादि सकार का लोप, नुम् के नकार को अनुस्वार और परसवर्ण करके **मङ्क्+स्यति** बनता है। ककार से परे सकार को षत्व और ककार और षकार के योग में क्षत्व होकर **मङ्क्ष्यति** बन जाता है। आगे **मङ्क्ष्यतः, मङ्क्ष्यन्ति** आदि बनते हैं।

अन्य लकारों में- मज्जतु। अमज्जत्। मज्जेत्। मज्ज्यात्।

लुङ्- तिप्, अट्, च्लि, सिच्, ईट्, नुम् करके **वदव्रजहलन्तस्याचः** से हलन्तलक्षणा वृद्धि होकर **अमास्नज्+स्+ईत्** बना। संयोगादि सकार का लोप, कुत्व, षत्व, चर्त्व, क्षत्व, नकार को अनुस्वार और अनुस्वार को परसवर्ण करके **अमाङ्क्षीत्** बनता है। ताम् में **झलो झलि** से सकार का लोप करके शेष कार्य पूर्व तरह करने पर **अमाङ्क्ताम्** बनता है। अन्यत्र यथायोग्य प्रक्रिया करके रूप बनाइये।

लुङ् के रूप- अमाङ्क्षीत्, अमाङ्क्ताम्, अमाङ्क्षुः, अमाङ्क्षीः, अमाङ्क्तम्, अमाङ्क्त, अमाङ्क्षम्, अमाङ्क्ष्व, अमाङ्क्ष्म। **लृङ्-** अमङ्क्ष्यत्।

रुजो भङ्गे। रुजो धातु **तोड़ना** अर्थ में है। अनुनासिक ओकार इत्संज्ञक है। उदात्तेत् होने के कारण परस्मैपदी और जकारान्त अनुदात्तों में पठित होने से अनिट् है।

रूप- रुजति। रुरोज। रोक्ता। रोक्ष्यति। रुजतु। अरुजत्। रुजेत्। रुज्यात्। अरौक्षीत्। अरोक्ष्यत्।

भुजो कौटिल्ये। रुजिवत्। **भुजो** यह धातु **टेढ़ा करना** अर्थ में है। ओदित्, परस्मैपदी और अनिट् है। इसके रूप **रुज्** धातु की तरह ही होते हैं।

रूप- भुजति। बुभोज। भोक्ता। भोक्ष्यति। भुजतु। अभुजत्। भुजेत्। भुज्यात्। अभौक्षीत्। अभोक्ष्यत्।

विश प्रवेशने। विश धातु **प्रवेश करना** अर्थ में है। इसमें अकार इत्संज्ञक है। परस्मैपदी है और अनुदात्त धातुओं में परिगणित होने से अनिट् है। इस धातु से लुट् में **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से शकार के स्थान पर षकार आदेश होने पर ता के तकार ष्टुत्व होकर टकार होकर **वेष्टा** बनता है लृट् में षकार के स्थान पर **षढोः कः सि** से ककारादेश होने पर **वेक्+ष्यति** बनता है और **क्** और **ष्** के योग में **क्ष** हो जाता है, जिससे **वेक्ष्यति** यह रूप बन जाता है। लुङ् में **शल इगुपधादनिटः क्सः** से क्स आदेश होकर **अविक्षत्** बनता है।

रूप- विशति, विशतः, विशन्ति। विवेश, विविशतुः, विविशुः। वेष्टा, वेष्टारौ, वेष्टारः। वेक्ष्यति, वेक्ष्यतः, वेक्ष्यन्ति। विशतु-विशतात्, विशताम्, विशन्तु। अविशत्, अविशताम्, अविशन् । विशेत्, विशेताम्, विशेयुः। विश्यात्, विश्यास्ताम्, विश्यासुः। अविक्षत्, अविक्षताम्, अविक्षन्। अवेक्ष्यत्, अवेक्ष्यताम्, अवेक्ष्यन्।

मृश आमर्शने। आमर्शनं स्पर्शः। मृश धातु आमर्शन अर्थात् **स्पर्श करना, छूना** अर्थ में है। शकारोत्तरवर्ती अकार इत्संज्ञक है। अनिट् है।

लट्- मृशति, मृशतः, मृशन्ति।

लिट्- ममर्श, ममृशतुः, ममृशुः, ममर्शिथ ममृशथुः, ममृश, ममर्श, ममृशिव, ममृशिम।

लुट् में- यह धातु अनिट् है। **मृश्+ता** बनने के बाद **अनुदात्तस्य चर्दुपध स्यान्यतरस्याम्** से विकल्प से अम् का आगम होकर **मृ+अश्+ता** बना। **मृ+अश्** में **इको यणचि** से यण् होकर **म्रश्+ता** बना। शकार को **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से षत्व और षकार के योग में ता के तकार को ष्टुत्व होकर **म्रष्टा** बन जाता है। **अम्** न होने के पक्ष में **गुण** होकर **मर्ष्टा** बनता है। इस तरह दो-दो रूप बनते हैं। **म्रष्टा, म्रष्टारौ, म्रष्टारः** और **मर्ष्टा, मर्ष्टारौ, मर्ष्टारः** आदि।

लृट् में भी वैकल्पिक अम् आगम, यण् तथा अम् के अभाव में गुण होकर शकार को षत्व, षकार को **षढोः कः सि** से कत्व, ककार से परे सकार को षत्व और ककार-षकार के संयोग से क्षत्व होकर दो-दो रूप बनते हैं। **म्रक्ष्यति, म्रक्ष्यतः, म्रक्ष्यन्ति** और **मर्क्ष्यति, मर्क्ष्यतः, मर्क्ष्यन्ति** आदि।

आगे- मृशतु। अमृशत्। मृशेत्, मृश्यात् आदि।

अम्राक्षीत्, अमार्क्षीत्, अमृक्षत्। लुङ् में **अमृश्+त्** बनने के बाद **च्लि**, उसके स्थान पर **क्स** प्राप्त, उसे बाधकर **स्पृशमृशकृषतृपदृपां च्लेः सिज्वा वाच्यः** से विकल्प से **सिच्** होने पर उसकी विद्यमानता में ईट् होकर **अमृश्+स्+ईत्** बना। **अनुदात्तस्य चर्दुपध स्यान्यतरस्याम्** से विकल्प से अम् का आगम होने पर **अमृ+अश्+स्+ईत्** बना। **अमृ+अश्** में यण् होकर **अम्+र्+अश्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अम्रश्+स्+ईत्** बना। **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि होकर **अम्राश्+स्+ईत्** बना। **श्** को षत्व, सकार के परे होने पर षकार को **षढोः कः सि** से कत्व होने पर ककार से पर सकार को षत्व होकर **अम्राक्+ष्+ईत्** बना।

क्षसंयोगे क्षः, **अम्राक्ष्+ईत्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अम्राक्षीत्** सिद्ध हुआ। अम् का आगम वैकल्पिक है। उसके न होने के पक्ष में वृद्धि होकर **अमार्क्षीत्** बना। **सिच्** भी वैकल्पिक है। उसके अभाव में **शल इगुपधादनिटः क्सः** से **च्लि** के स्थान पर **क्स** आदेश हुआ। **क्स** कित् है, अतः अम् आगम नहीं हुआ और लघूपधगुण भी नहीं हुआ। सिच् के अभाव में ईट् भी नहीं होता। इस तरह **अमृश्+सत्** में षत्व, कत्व, षत्व और क्षत्व होकर वर्णसम्मेलन होकर **अमृक्षत्** सिद्ध हुआ। इस तरह तीन रूप सिद्ध हुए।

लुङ् के रूप- **अमागम के पक्ष में**- अम्राक्षीत्, अम्राष्टाम्, अम्राक्षुः, अम्राक्षीः, अम्राष्टम्, अम्राष्ट, अम्राक्षम्, अम्राक्ष्व, अम्राक्ष्म। **अम् के अभाव में**- अमार्क्षीत्, अमार्ष्टाम्, अमार्क्षुः, अमार्क्षीः, अमार्ष्टम्, अमार्ष्ट, अमार्क्षम्, अमार्क्ष्व, अमार्क्ष्म। **क्स के पक्ष में**- अमृक्षत्, अमृक्षाताम्, अमृक्षन्, अमृक्षः, अमृक्षतम्, अमृक्षत, अमृक्षम्, अमृक्षाव, अमृक्षाम।

लृङ्- अम्रक्ष्यत्, अमर्क्ष्यत्।

षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु। षद्लृ धातु **विशीर्ण होना(फटना), गति** और **दुखी होना** अर्थ में है। **धात्वादेः षः सः** से षकार के स्थान पर सकार आदेश होता है। लृकार की इत्संज्ञा होती है, **सद्** शेष रहता है। उदात्त होने से परस्मैपदी और अनुदात्तों में परिगणित होने से अनिट् है। लृकार की इत्संज्ञा होने से लृदित् हुआ। इसका फल लुङ् में च्लि के स्थान पर अङ् आदेश होना है। अनिट् होने पर भी लिट् में क्रादिनियम से नित्य से इट् और थल् में भारद्वाजनियम से विकल्प से इट् होता है। इत्संज्ञक शकारादि प्रत्ययों के परे अर्थात् श के परे होने पर **पाघ्राध्मास्थाम्ना-दाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः** से सद् के स्थान पर **सीद्** आदेश होता है। इस तरह **लट्** में **सीदति, सीदतः** आदि रूप बनते हैं।

लिट् में- इत्संज्ञक शकारादि प्रत्यय के अभाव में **सीद्** आदेश नहीं होता। अतः **सद्** को ही द्वित्व होकर **ससद्+अ** बनने के बाद उपधावृद्धि होकर **ससाद** बन जाता है। अतुस आदि में **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** से एत्व और अभ्यास लोप होकर **सेदतुः सेदुः** आदि रूप बनते हैं। थल् में इट् के पक्ष में **थलि च सेटि** से एत्वाभ्यास लोप होकर **सेदिथः** बनता है। इट् न होने के पक्ष में दकार को चर्त्व होकर **ससत्थ** बनता है। इस तरह **लिट्** के रूप होते हैं- **ससाद, सेदतुः, सेदुः, सेदिथ-ससत्थ, सेदथुः, सेद, ससाद-ससद, सेदिव, सेदिम।**

आगे- **सत्ता। सत्स्यति। सीदतु। असीदत्। सीदेत्। सद्यात्।**

लुङ्- लृदित् होने के कारण **पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु** से च्लि के स्थान पर अङ् होकर **असदत्, असदताम्** आदि रूप बनते हैं।

शद्लृ शातने। शद्लृ धातु बरबाद होना, मुरझाना आदि अर्थ में है। उदात्त **लृ** की इत्संज्ञा होती है। शद् शेष रहता है। **पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः** से शित् के परे रहने पर शद् के स्थान पर **शीय** आदेश होता है। यह परस्मैपदी और अनिट् है। लिट् में क्रादिनियम से नित्य से इट् और थल् में भरद्वाजनियम से विकल्प से इट् होता है। जहाँ पर **श** होने वाला होता है, वहाँ पर **शदेः शितः** यह अग्रिम सूत्र आत्मनेपद का विधान करता है।

तङानयोर्विधायकं विधिसूत्रम्

६६०. शदेः शितः १।३।६०॥

शिद्भाविनोऽस्मात्तङानौ स्तः। शीयते। शीयताम्। अशीयत। शीयेत।

शशाद। शत्ता। शत्स्यति। अशदत्। अशत्स्यत्॥ **कॄ विक्षेपे॥३१॥**

इदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६६१. ॠत इद्धातोः ७।१।१००॥

ॠदन्तस्य धातोरङ्गस्य इत् स्यात्।

किरति। चकार। चकरतुः। चकरुः। करीता, करिता। कीर्यात्॥

६६०- **शदेः शितः**। श् इत् यस्य स शित्, तस्य शितः। शदेः पञ्चम्यन्तं, शितः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

शिद्भावी अर्थात् यदि शित् प्रत्यय होने वाला हो तो शद् धातु से आत्मनेपद (तङ् और आन) होता है।

तुदादिगण में शप् के स्थान पर श होता है। जहाँ धातु से शित् प्रत्यय हो सकता है, ऐसे लकार हैं- लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ्। इनमें आत्मनेपद का विधान होगा और शेष लकारों में परस्मैपद ही रहेगा।

शीयते। शद् धातु से लट्, श की विवक्षा में **शदेः शितः** से आत्मनेपद तङ् के विधान से त आया, **शद्+त** बना। श होकर **पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः** से **शीय** आदेश होकर **शीय+अत** बना। पररूप और एत्व होकर **शीयते** सिद्ध हुआ।

लट्- शीयते, शीयेते, शीयन्ते, शीयसे, शीयेथे, शीयध्वे, शीये, शीयावहे, शीयामहे।

लिट्- शशाद, शेदतुः, शेदुः, शेदिथ-शशत्थ, शेदथुः, शेद आदि।

लुट्- शत्ता, शत्तारौ, शत्तारः। लृट्- शत्स्यति, शत्स्यतः, शत्स्यन्ति। लोट्- शीयताम्, शीयेताम्, शीयन्ताम्। लङ्- अशीयत, अशीयेताम्, अशीयन्त। विधिलिङ्- शीयेत, शीयेयाताम्, शीयेरन्। आशीर्लिङ्- शद्यात्, शद्यास्ताम्, शद्यासुः। लुङ्- अशदत्, अशदताम्, अशदन्। लृङ्- अशत्स्यत्, अशत्स्यताम्, अशत्स्यन्।

कॄ विक्षेपे। कॄ धातु **विक्षेप** अर्थात् **बिखेरना, फेंकना** आदि अर्थों में है। दीर्घ ॠकारान्त है। परस्मैपदी और ॠकारान्त होने से सेट् भी है।

६६१- **ॠत इद्धातोः**। ॠतः षष्ठ्यन्तम्, इत् प्रथमान्तं, धातोः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

ॠदन्त धातुरूप अङ्ग को ह्रस्व इकार आदेश होता है।

अलोऽन्त्यस्य इस परिभाषा के बल पर अन्त्य वर्ण ॠकार के स्थान पर ही **उरण् रपरः** की सहायता से इर् आदेश हो जाता है।

किरति। विक्षेपार्थक **कॄ** से लट्, तिप्, श, अनुबन्धलोप करके **कॄ+अति** बना। **ॠत इद्धातोः** से ॠकार के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश प्राप्त था तो रपर होकर **इर्** हुआ। **क्+इर्+अति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **किरति** सिद्ध हुआ। इस तरह लट् में- **किरति, किरतः किरन्ति** आदि रूप बन जाते हैं।

सुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

६६२. किरतौ लवने ६।१।१४०॥

उपात्किरतेः सुट् छेदने। उपस्किरति।

वार्तिकम्- **अडभ्यासव्यवायेऽपि सुट् कात् पूर्व इति वक्तव्यम्।**

उपास्किरत्। उपचस्कार॥

सुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

६६३. हिंसायां प्रतेश्च ६।१।१४१॥

उपात्प्रतेश्च किरतेः सुट् स्यात् हिंसायाम्।

उपस्किरति। प्रतिस्किरति॥ **गॄ** निगरणे॥४०॥

....

चकार। लिट्, तिप्, णल्, द्वित्व, उरत्, हलादिशेष आदि करके **कक्+अ** बना। **कुहोश्चुः** से चुत्व, **ऋच्छत्यॄताम्** से गुण करके उपधावृद्धि होने पर **चकार** सिद्ध होता है। आगे- **ऋच्छत्यॄताम्** से गुण होकर- चकरतुः, चकरु, चकरिथ, चकरथुः, चकर, चकार-चकर, चकरिव, चकरिम।

लुट् में **कॄ+इ+ता** में गुण होकर **वॄतो वा** से इट् को वैकल्पिक दीर्घ होकर **करीता-करिता** दो रूप बनते हैं। इसी तरह लृट् में भी **करीष्यति-करिष्यति** ये दो रूप बनते हैं। **लोट्** में- **किरतु-किरतात्, किरताम्, किरन्तु** आदि। **लङ्** में- अकिरत्। **विधिलिङ्** में- किरेत्। **आशीर्लिङ्** में **कॄ+यात्** होने पर **ॠत इद्धातोः** से इत्व, रपर और **हलि च** से दीर्घ होकर **कीर्यात्, कीर्यास्ताम्, कीर्यासुः** आदि रूप बनते हैं। **लुङ्** में- **अकॄ+इस्+ईत्** में सकार का लोप, सवर्णदीर्घ, **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से वृद्धि होकर **अकार्+ईत्**, वर्णसम्मेलन, **अकारीत्** बन जाता है। **अकारीत्, अकारिष्टाम्, अकारिषुः** आदि। लृङ् में **वॄतो वा** से वैकल्पिक दीर्घ होकर **अकरीष्यत्-अकरिष्यत्।**

६६२- **किरतौ लवने।** किरतौ सप्तम्यन्तं, लवने सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु** से **उपात्** की और **सुट् कात्पूर्वः** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

उप उपसर्ग से परे कॄ धातु को सुट् का आगम होता है यदि काटने का विषय हो तो।

सुट् में उकार और टकार की इत्संज्ञा के बाद सकार शेष रहता है। टित् होने के कारण धातु के आदि में बैठता है।

उपस्किरति। काटता है। काटना अर्थ होने के कारण **उप+किरति** में **किरतौ लवने** से सुट् होकर **उपस्किरति** सिद्ध हो जाता है।

अडभ्यासव्यवायेऽपि सुट् कात् पूर्व इति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। **अट् या अभ्यास के व्यवधान होने पर भी ककार से पूर्व यथाविहित सुट् का आगम हो ऐसा कहना चाहिए।** लङ् में अट् आगम होने पर **उप+अकिरत्** बना है। उप और धातु के बीच में अट् का व्यवधान है। **उपात्** इस पञ्चमी के कारण **तस्मादित्युत्तरस्य** के नियम से उप से अव्यवहित ककार को सुट् का विधान है। यहाँ पर **अट्** के व्यवधान होने के कारण प्राप्त

वैकल्पिकलत्वविधायकं विधिसूत्रम्

६६४. अचि विभाषा ८।२।२१॥

गिरते रेफस्य लो वाऽजादौ प्रत्यये।

गिरति, गिलति। जगार, जगाल। जगरिथ, जगलिथ। गरीता, गरिता, गलीता, गलिता॥ **प्रच्छ ज्ञीप्सायायाम्॥४१॥**

ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम्। पृच्छति। पप्रच्छ। पप्रच्छतुः। पप्रच्छुः। प्रष्टा। प्रक्ष्यति। अप्राक्षीत्। **मृङ्** प्राणत्यागे॥४२॥

....

नहीं था। अतः **वार्तिककार** ने यह वार्तिक बनाया। लङ् में **उप+अकिरत्** में अकार के व्यवधान में और उप+चकार में अभ्यास के व्यवधान में भी सुट् होकर **उपास्किरत्** और **उपचस्कार** ये दो रूप सिद्ध हो सके।

६६३- **हिंसायां प्रतेश्च।** हिंसायां सप्तम्यन्तं, प्रतेः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु** से उपात् की, **किरतौ लवने** से लवने की और **सुट् कात्पूर्वः** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

उप या प्रति उपसर्ग से परे कृ धातु को सुट् का आगम होता है यदि हिंसा का विषये हो तो।

उपस्किरति। प्रतिस्किरति। हिंसा करता है। **उप+किरति, प्रति+किरति** में हिंसा अर्थ होने के कारण **हिंसायां प्रतेश्च** से सुट् होकर **उपस्किरति, प्रतिस्किरति** बन जाते हैं। इसी तरह पूर्ववार्तिक के सहयोग से **उपचस्कार, प्रतिचस्कार** बन जाते हैं।

गॄ निगरणे। गॄ धातु **निगलना** अर्थ में है। इसके रूप **कॄ** धातु की तरह ही होते हैं। अन्तर इतना ही है कि अजादि प्रत्ययों के परे होने पर अग्रिम सूत्र **अचि विभाषा** से लकारादेश होता है।

६६४- **अचि विभाषा।** अचि सप्तम्यन्तं, विभाषा प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ग्रो यङि** से ग्रः एवं कृपो रो लः से लः की अनुवृत्ति आती है।

अजादि प्रत्यय के परे रहते गॄ धातु के रेफ के स्थान पर विकल्प से ल आदेश होता है।

गिरति, गिलति। गॄ धातु से लट्, तिप्, श करके **ॠत इद्धातोः** से रपरसहित इत्व होने के बाद गिर्+अति बना। **अचि विभाषा** से श वाले अकाररूप अच् के परे रहते गिर् के रेफ के स्थान पर विकल्प से **लकार** आदेश होने पर **गिलति** बना। न होने के पक्ष में **गिरति** ही रह जाता है।

लिट् में तिप्, णल्, द्वित्व, उरत्व, हलादिशेष, चुत्व, **अचो ञ्णिति** से वृद्धि करके **जगार** बनता है। आगे **अचि विभाषा** से विकल्प से रेफ के स्थान पर लकार आदेश होने पर **जगाल** बनता है। इस तरह लत्व पक्ष में **जगलतुः, जगलुः** आदि और लत्वाभाव में **जगरतुः-जगरुः** आदि रूप बनते हैं। लिट् लकार को छोड़कर अन्यत्र के इट् को विकल्प से **वृतो वा** से दीर्घ होने के कारण **लुट्** में- **गरीता-गलीता, गरिता-गलिता** और **लृट्** में **गरीष्यति-गलीष्यति, गरिष्यति-गलिष्यति** आदि रूप बनते हैं। अन्य लकारों में क्रमशः **गिरतु-गिलतु। अगिरत्-अगिलत्। गिरेत्-गिलेत्।** आशीर्लिङ् में अजादि परे न मिलने के

कारण लत्व नहीं होगा- **गीर्यात्**। अब लुङ् लकार में **अगारीत्-अगालीत्**। लृङ् में **अगरीष्यत्-अगलीष्यत्, अगरिष्यत्, अगलिष्यत्**।

प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्। प्रच्छ धातु **जानने की इच्छा** अर्थ में है। छकारोत्तरवर्ती उदात्त अकार की इत्संज्ञा होने से **प्रच्छ्** यह उदात्तेत् है, अतः परस्मैपदी है। छकार के पहले वाला चकार छकार के परे होने पर **छे च** से तुक् और उसको चुत्व होकर बना है। यह धातु अनुदात्तों में परिगणित होने के कारण नित्य अनिट् है किन्तु क्रादिनियम से लिट् के वलादि आर्धधातुक को नित्य से इट् और भारद्वाज नियम से थल् में विकल्प से इट् होता है। **ङित्** अर्थात् श वाले अकार के परे होने पर **प्र** के रेफ को सम्प्रसारण होकर ऋकार हो जाता है।

पृच्छति। प्रच्छ् से लट्, तिप्, श करने के बाद **प्रच्छ्+अति** बना है। श वाले अकार के अपित् सार्वधातुक होने के कारण **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वत् हो गया है। अतः **ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि-वष्टि-विचति-वृश्चति-पृच्छति-भृज्जतीनां ङिति च** से रेफ को सम्प्रसारण होकर ऋकार हुआ, **प्+ऋ+अ+च्छ्+अति** बना। **ऋ+अ** में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **ऋकार** ही बना। इस तरह **पृच्छ्+अति=पृच्छति** सिद्ध हुआ। पृच्छति, पृच्छतः, पृच्छन्ति आदि।

लिट् में- **प्रच्छ्** से तिप्, णल्, द्वित्व, हलादिशेष करके **पप्रच्छ** बनता है। पप्रच्छतुः, पप्रच्छुः, पप्रच्छिथ-पप्रष्ठ, पप्रच्छथुः, पप्रच्छ, पप्रच्छ, पप्रच्छिव, पप्रच्छिम।

लुट् में- **प्रच्छ्+ता** में छकार के स्थान पर **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से षकारादेश हुआ और अब छ् के न रहने से उसको हुआ च् भी चला जाता है। षकार से परे ता को टुत्व होकर **प्रष्टा** बनता है। प्रष्टा, प्रष्टारौ, प्रष्टारः।

लृट् में- **प्रच्छ्+स्यति** में षत्व हुआ। छकार के स्थान पर षकार हो जाने से छकार को मानकर हुआ तुक् भी स्वतः चला गयां अतः **प्रष्+स्यति** बना। उसके बाद **षढोः कः सि** से षकार के स्थान पर ककारादेश और ककार से परे सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से **षत्व** करके ककार और षकार के संयोग में क्ष् बन जाता है, जिससे **प्रक्ष्यति, प्रक्ष्यतः, प्रक्ष्यन्ति** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

आगे- **पृच्छतु-पृच्छतात्। अपृच्छत्। पृच्छेत्। पृच्छ्यात्।**

अप्राक्षीत्। लुङ् में **अप्रच्छ्+स्+ईत्** बनने के बाद **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि होकर **अप्राच्छ्+स्+ईत्** बना। **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से छ् के स्थान पर षत्व करके **षढोः कः सि** से षकार के स्थान पर ककार आदेश और सकार के स्थान पर षत्व होने के बाद क्षत्व होकर **अप्राक्ष्+ईत्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अप्राक्षीत्** सिद्ध हुआ। **तस्** में **झलो झलि** से सिच् के सकार का लोप होता है और षत्व, ष्टुत्व होने पर **अप्राष्टाम्** बनता है। आगे- **अप्राक्षुः, अप्राक्षीः, अप्राष्टम्, अप्राष्ट, अप्राक्षम्, अप्राक्ष्व, अप्राक्ष्म। लृङ्** में- **अप्रक्ष्यत्** आदि।

मृङ् प्राणत्यागे। मृङ् धातु **प्राण त्यागना** अर्थात् **मरना** अर्थ में है। ङकार की इत्संज्ञा होती है। ङित् होने के कारण **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से आत्मनेपदी हो जाता है। अनुदात्तेत् होने के कारण अनिट् है। **शविकरण, लुङ्** और **लिङ्** लकारों में ही अग्रिम सूत्र से आत्मनेदपद और शेष लकारों में परस्मैपद होता है। तात्पर्य यह है कि लट्, लोट्, लङ्, लिङ्, और लुङ् में आत्मनेपदी तथा लिट्, लुट्, लृट् और लृङ् में परस्मैपदी होता है।

तङ्विधायकं नियमसूत्रम्

६६५. म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च १। ३। ६१॥

लुङ्लिङोः शितश्च प्रकृतिभूतान्मृङस्तङ् नान्यत्र। रिङ्। इयङ्। म्रियते। ममार। मर्ता। मरिष्यति। मृषीष्ट। अमृत॥

पृङ् व्यायामे॥४३॥ प्रायेणायं व्याङ्पूर्वः॥ व्याप्रियते। व्यापप्रे। व्यापप्राते। व्यापरिष्यते। व्यापृत। व्यापृषाताम्॥

जुषी प्रीतिसेवनयोः॥४४॥ जुषते। जुजुषे॥

ओविजी भयचलनयोः॥४५॥ प्रायेणायमुत्पूर्वः। उद्विजते॥

६६५- **म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च।** म्रियतेः पञ्चम्यन्तं, लुङ्लिङोः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **शदेः शितः** से **शितः**, **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

मृङ् धातु से लुङ्, लिङ् अथवा शित्-प्रकृतिभूत अर्थात् शित् प्रत्यय होने वाले लकार के स्थान पर आत्मनेपद होता है, अन्य लकारों में नहीं।

यह सूत्र नियमार्थ माना जाता है, क्योंकि **मृङ्** धातु के **ङित्** होने के कारण सभी लकारों में आत्मनेपद स्वतः सिद्ध था, फिर इस सूत्र से आत्मनेपद का विधान **सिद्धे सति आरम्भ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति** के अनुसार इस धातु से आत्मनेपद हो तो केवल लुङ्, लिङ् और शित् प्रत्यय होने वाले लकारों के स्थान पर ही हो, अन्य लकारों में परस्मैपद ही हो, यह नियम बनाता है।

म्रियते। मृ से लट्, त, श करने के बाद **मृ+अत** बना। **रिङ्शयग्लिङ्क्षु** से ऋकार के स्थान पर रिङ् आदेश होकर **म्रि+अत** बना। **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इकार के स्थान पर इयङ् आदेश होने पर **म्रिय्+अत** बना। **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व और वर्णसम्मेलन होने पर **मियते** बना। आगे- **म्रियेते, म्रियन्ते** आदि। **लिट्** में तो उपर्युक्त नियम से परस्मैपद ही होगा। अतः **मृ** से तिप्, णल्, द्वित्व, उरत्व, हलादिशेष, वृद्धि होकर वर्णसम्मेलन होने पर **ममार** बन जाता है। आगे- **मम्रतुः, मम्रुः, ममर्थ, मम्रथुः, मम्र, ममार-ममर, ममृव, ममृम।**

लुट् में मर्ता। लृट् में- **ऋद्धनोः स्ये** से **इट्** आगम होकर **मरिष्यति**। आगे- **म्रियताम्। अम्रियत। म्रियेत। मृषीष्ट। अमृत। अमरिष्यत्।**

पृङ् व्यायामे। पृङ् धातु **व्यायाम करना** अर्थ में है। इस धातु का प्रयोग प्रायः वि और आङुपसर्गपूर्वक ही होता है। इस धातु में ङकार की इत्संज्ञा होने के कारण ङित् होने से **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से आत्मनेपदी बन जाता है और **ऊदृदन्तै०** में न आते हुए अजन्त और एकाच् होने से अनुदात्त भी है। अनुदात्त होने से यह धातु नित्य अनिट् है परन्तु क्रादिनियम से लिट् में नित्य से इट् होता है।

लट् में- **व्यापृ** से लिट्, त, श होने पर **व्यापृ+अत** बना। **रिङ्शयग्लिङ्क्षु** से ऋकार के स्थान पर रिङ् आदेश होकर **व्याप्रि+अत** बना। **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से इकार के स्थान पर इयङ् आदेश होने पर **व्याप्रिय्+अत** बना। **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व तथा वर्णसम्मेलन होने पर **व्याप्रियते** बना। इसी प्रकार आगे- **व्याप्रियेते, व्याप्रियन्ते**

ङिद्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्

६६६. विज इट् १।२।२।

विजेः पर इडादिप्रत्ययो ङिद्वत्। उद्विजिता।।

।।इति तुदादयः।।१७।।

....

आदि रूप बनते हैं। **लिट्** में- **व्यापृ** से लिट्, त, एश्, द्वित्व, उरत्व, हलादिशेष करने पर **व्यापपृ+ए** बना। यण् तथा वर्णसम्मेलन होने पर **व्यापप्रे** बना। **लुट्** में- **व्यापर्ता। लृट्** में **ऋद्धनोः स्ये** से इडागम होने पर **व्यापरिष्यते। व्याप्रियताम्।** जहां अट् का आगम होता है, वहां अडागम होने के बाद **आ** और **अ** में सवर्णदीर्घ होकर **आ** ही बनता है। अतः **लङ्** में **व्याप्रियत** बनता है। **व्याप्रियेत। व्यापृषीष्ट। लुङ्** में- ह्रस्व से परे सकार मिलने से सिच् के सकार का **ह्रस्वादङ्गात्** से लोप होने पर **व्यापृत** बना। **लृङ्** में- **व्यापरिष्यत।**

जुषी प्रीतिसेवनयोः। जुषी धातु **प्रीति** अर्थात् **प्रसन्न होने** तथा **सेवन करने** अर्थ में है। अनुबन्धलोप होने पर यह धातु हलन्त कहलाती है। **जुषी** धातु में विद्यमान ईकार अनुदात्त है। अतः उसकी इत्संज्ञा होने पर यह धातु अनुदात्तेत् कहलाती है। फलतः **अनुदात्तङित आत्मनेपदम् से** आत्मनेपदी बन जाता है। इस धातु का हलन्त अनुदात्तों में पठन न होने से यह उदात्त है फलतः यह धातु सेट् है।

लट् में- **जुष्** धातु से लट्, त, श होने के बाद **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व तथा वर्णसम्मेलन होने पर **जुषते** बना। **लिट्** में- जुष् से लिट्, त, एश्, द्वित्व, हलादिशेष तथा वर्णसम्मेलन होकर **जुजुषे** बना। इसी प्रकार आगे- **जोषिता। जोषिष्यते। जुषताम्। अजुषत। जुषेत। जोषिषीष्ट। अजोषिष्ट। अजोषिष्यत।**

ओविजी भयचलनयोः। ओविजी धातु **डरना** और **डर से काँपना** अर्थ में है। इस धातु का प्रयोग प्रायः उत् उपसर्गपूर्वक ही किया जाता है। **ओविजी** में ओ और जी में ईकार की इत्संज्ञा होने पर **विज्** बचता है और उत् उपसर्गपूर्वक होने के कारण **उद्विज्** धातु बनता है। **ओविजी** में ईकार अनुदात्त होने से उसकी इत्संज्ञा होने पर यह धातु अनुदात्तेत् बन जाता है, फलतः यह आत्मनेपदी होता है। अनुदात्तों में गणना नहीं है, अतः सेट् है।

लट्- उद्विजते। **लिट्**- उद्विविजे, उद्विविजाते, उद्विविजिरे।

६६६- विज इट्। विजः पञ्चम्यन्तम्, इट् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्** से **ङित्** की अनुवृत्ति आती है।

विज् धातु से परे इट् आदि वाला प्रत्यय ङिद्वद्भाव को प्राप्त होता है।

लुट् में **उद्विज्+इता** होने के बाद **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण प्राप्त था, उसे निषेध करने के लिए **इट् सहित ता** को ङिद्वत् हुआ, फलतः **क्ङिति च** से गुण का निषेध होकर **उद्विजिता** ही रह गया। इसी तरह **उद्विजिष्यति** आदि में भी समझना चाहिए। आगे के लकारों में क्रमशः देखें- **उद्विजताम्। उदविजत** (उपसर्ग के बाद ही अट् बैठता है।) **उद्विजेत। उद्विजिषीष्ट। उदविजिष्ट। उदविजिष्यत।**

इस तरह से तुदादि में इतने ही धातुओं का समावेश **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में किया गया है। अदादि, जुहोत्यादि, स्वादि की अपेक्षा इस गण के धातुओं के रूप सरल होते हैं फिर भी प्रक्रिया सामान्य जानकारी तक ही सीमित रखकर विशेष ज्ञान

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी के बाद ही हो सकता है। उन ग्रन्थों के लिए पूर्वाधार तैयार करना या सामान्य जानकारी रखना इस ग्रन्थ का कार्य है।

परीक्षा

द्रष्टव्यः- सभी प्रश्न अनिवार्य हैं और उनके अंक भी दिये गये हैं।

१- अपनी पुस्तिका में तुद् और नुद् धातु के सारे रूप लिखें। १०

२- मुच्लृ धातु के सभी लकारों में मध्यमपुरुष एकवचन के रूपों की सिद्धि सूत्रों को लगाकर करें। १५

३- विन्द् धातु के लुङ् लकार के सभी रूपों की सिद्धि दिखाइये १५

४- स्वादि-प्रकरण और तुदादि-प्रकरण की तुलना करें। १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का तुदादिप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ रुधादिप्रकरणम्

रुधिर् आवरणे॥१॥

श्नम्-विधायकं विधिसूत्रम्

६६७. रुधादिभ्यः श्नम् ३।१।७८॥

शपोऽपवादः। रुणद्धि। **श्नसोरल्लोपः**- रुन्धः। रुन्धन्ति। रुणत्सि। रुन्धः। रुन्ध। रुणध्मि। रुन्ध्वः। रुन्ध्मः। रुन्धे। रुन्धाते। रुन्धते। रुन्त्से। रुन्धाथे। रुन्ध्वे। रुन्धे। रुन्ध्वहे। रुन्ध्महे। रुरोध-रुरुधे। रोद्धासि-रोद्धासे। रोत्स्यति-रोत्स्यते। रुणद्धु-रुन्धात्। रुन्धाम्। रुन्धन्तु। रुन्धि। रुणधानि। रुणधाव। रुणधाम। रुन्धाम्। रुन्धाताम्। रुन्धताम्। रुन्त्स्व। रुणधै। रुणधावहै। रुणधामहै। अरुणत्-अरुणद्। अरुन्धाम्। अरुन्धन्। अरुणः। अरुणत्-अरुणद्। अरुन्ध। अरुन्धाताम्। अरुन्धत। अरुन्धाः। रुन्ध्यात्। रुन्धीत। रुध्यात्। रुत्सीष्ट। अरुधत्, अरौत्सीत्। अरुद्ध। अरुत्साताम्। अरुत्सत। अरोत्स्यत्, अरोत्स्यत।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

धातु-प्रकरण में **रुधादिप्रकरण** सातवाँ है। रुधिर् धातु आदि में होने के कारण यह रुधादिप्रकरण कहलाता है। जैसे भ्वादि में धातु और प्रत्ययों के बीच में विकरण के रूप में शप्, अदादि में शप् होकर उसका लुक्, जुहोत्यादि में शप् होकर श्लु, दिवादि में श्यन् और स्वादि में श्नु और तुदादि में श हुए, उसी प्रकार रुधादि में शप् को बाधकर **श्नम्** होता है। श्नम् में मकार की **हलन्त्यम्** से तथा शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होकर केवल **न** बचता है। मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात्परः** के नियम से अन्त्य अच् के बाद बैठेगा। रुध् में रु के बाद और ध् के पहले बैठेगा। न शित् है, अतः उसकी **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा होती है। सार्वधातुक होते हुए भी अपित् है, अतः इसको **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव हो जाता है। ङित् होने से इसके पूर्व को प्राप्त गुण और वृद्धि का **क्ङिति च** से निषेध होता है। इसलिए न के परे होने पर पूर्व को गुण और वृद्धि दोनों ही नहीं होते। श्नम् करने के पहले भी गुणवृद्धि नहीं कर सकते, क्योंकि **रुधादिभ्यः श्नम्** से श्नम् और गुण-वृद्धि एक साथ प्राप्त होते हैं और **श्नम्** के नित्य होने के कारण पहले नित्यकार्य **श्नम्** ही होता है।

भिदिर् विदारणे॥२॥ छिदिर द्वैधीकरणे॥३॥ युजिर् योगे॥४॥ रिचिर् विरेचने॥५॥ रिणक्ति, रिङ्क्ते। रिरेच। रेक्ता। रेक्ष्यति। अरिणक्। अरिचत्, अरैक्षीत्, अरिक्त। **विचिर् पृथग्भावे॥६॥** विनक्ति, विङ्क्ते। **क्षुदिर् सम्पेषणे॥७॥** क्षुणत्ति, क्षुन्ते। क्षोत्ता। अक्षुदत्। अक्षौत्सीत्, अक्षुत्त। **उच्छृदिर् दीप्तिदेवनयोः॥८॥** छृणत्ति, छृन्ते। चच्छर्द। **सेऽसिचीति वेट्।** चच्छृदिषे, चच्छृत्से। छर्दिता। छर्दिष्यति, छर्त्स्यति। अच्छृदत्, अच्छर्दीत्, अच्छर्दिष्ट॥ **उतृदिर् हिंसानादरयोः॥९॥** तृणत्ति, तृन्ते॥ **कृती वेष्टने॥१०॥** कृणत्ति॥ **तृह, हिसि हिंसायाम्॥११-१२॥**

....

रुधिर् आवरणे। रुधिर् धातु **रोकने** अर्थ में है। इसमें इर् को **इर इत्संज्ञा वाच्या** इस वार्तिक से इत्संज्ञा होती है, रुध् शेष रहता है। स्वरित इ की इत्संज्ञा होने के कारण यह धातु स्वरितेत् है, अतः उभयपदी है। अनिट् होते हुए भी लिट् में इट् होता है।

६६७- **रुधादिभ्यः श्नम्।** रुधादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, श्नम् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कर्तरि शप्** से **कर्तरि** और **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

कर्ता अर्थ में हुए सार्वधातुकसंज्ञक प्रत्यय के परे होने पर रुधादिगणपठित धातुओं से शप् का बाधक श्नम् प्रत्यय होता है।

रुणद्धि। रुधिर् धातु है। **इर इत्संज्ञा वाच्या** से इर् की इत्संज्ञा और **तस्य लोपः** से लोप होकर रुध् बचा। रुध् से लट्, तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप् प्राप्त, उसे बाधकर **रुधादिभ्यः श्नम्** से श्नम्, अनुबन्धलोप करके अन्त्य अच् रु में जो उकार, उसके बाद **न** बैठा, **रुनध् ति** बना। रेफ से परे नकार के स्थान पर **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व हुआ और **झषस्तथोर्धोऽधः** से झष् है रुध् में धकार, उससे परे प्रत्यय के तकार के स्थान पर धकार आदेश हुआ- **रुणध्+धि** बना। **रुणध्+धि** में प्रथम धकार के स्थान पर **झलां जश् झशि** से जश्त्व होकर द् आदेश हुआ, **रुणद्+धि** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **रुणद्धि।**

रुन्धः। रुध् से तस्, श्नम्, अनुबन्धलोप, **रुनध् तस्** बना। **सार्वधातुकमपित्** से तस् ङित् है, अतः **श्नसोरल्लोपः** से न के अकार का लोप हुआ, **रुन्ध् तस्** बना। **झषस्तथोर्धोऽधः** से तस् के तकार को धकार आदेश हुआ, प्रथम धकार का **झरो झरि सवर्णे** से वैकल्पिक लोप हुआ- **रुन्+धस्** बना। नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व और **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार प्राप्त है। दोनों त्रिपादी हैं, किन्तु णत्वविधायक सूत्र के परत्रिपादी होने के कारण पूर्वत्रिपादी अनुस्वारविधायक सूत्र के प्रति णत्वविधान असिद्ध होने के कारण अनुस्वार ही हुआ और **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से अनुस्वार को परसवर्ण होकर पुनः नकार ही बन गया। वर्णसम्मेलन और सकार को रुत्वविसर्ग होने पर **रुन्धः** सिद्ध हुआ। धकार के लोप न होने के पक्ष में प्रथम धकार को जश्त्व करके दकार बनने पर **रुन्द्धः** सिद्ध होता है।

रुन्धन्ति। रुध् से झि, अन्त् आदेश, श्नम्, अनुबन्धलोप, **रुनध्+अन्ति** बना। **सार्वधातुकमपित्** से **अन्ति** ङित् है, अतः **श्नसोरल्लोपः** से न के अकार का लोप हुआ, **रुन्ध्+अन्ति** बना। नकार के स्थान पर **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार और **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से परसवर्ण होकर पुनः नकार ही बन गया, वर्णसम्मेलन हुआ- **रुन्धन्ति।**

रुणत्सि। रुध् से सिप्, श्नम्, अनुबन्धलोप, **रुनध् सि** बना। पित् होने के कारण **सार्वधातुकमपित्** से सि ङित् न हो सका, अतः **श्नसोरल्लोपः** से न के अकार का लोप भी नहीं हुआ, **रुनध्+सि** है। नकार को णत्व और धकार को जश्त्व करके दकार हुआ, **रुणद्+सि** बना। सकार के परे होने पर दकार के स्थान पर **खरि च** से चर्त्व होकर तकार आदेश हुआ, **रुणत्+सि** बना, वर्णसम्मेलन होकर **रुणत्सि** सिद्ध हुआ।

रुन्धः। रुन्ध। रुध् से थस्, श्नम्, अनुबन्धलोप, **रुनध् थस्** बना। **सार्वधातुकमपित्** से थस् ङित् है, अतः **श्नसोरल्लोपः** से न के अकार का लोप हुआ, **रुन्ध् थस्** बना। **झषस्तथोर्धोऽधः** से थस् के थकार को धकार आदेश हुआ, प्रथम धकार का **झरो झरि सवर्णे** से वैकल्पिक लोप हुआ- **रुन्+धस्** बना, नकार के स्थान पर **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार और **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से परसवर्ण होकर पुनः नकार ही बन गया। वर्णसम्मेलन और सकार का रुत्वविसर्ग हुआ- **रुन्धः**। धकार के लोप न होने के पक्ष में प्रथम धकार को जश्त्व करके दकार बनने पर **रुन्द्धः** सिद्ध होता है। इसी प्रकार बहुवचन में **रुन्ध, रुन्द्ध** भी बनाइये।

रुणध्मि। रुध् से मिप्, श्नम्, अनुबन्धलोप, **रुनध् मि** बना। पित् होने के कारण **सार्वधातुकमपित्** से मि ङित् न हो सका, अतः **श्नसोरल्लोपः** से न के अकार का लोप भी नहीं हुआ, **रुनध्+मि** है। नकार को णत्व और धकार को जश्त्व करके दकार हुआ, **रुणद्+मि** बना, वर्णसम्मेलन होकर **रुणध्मि** सिद्ध हुआ।

रुन्ध्वः। रुन्ध्मः। रुध् से वस्, श्नम्, अनुबन्धलोप, **रुनध् वस्** बना। **सार्वधातुकमपित्** से वस् ङित् है, अतः **श्नसोरल्लोपः** से न के अकार का लोप हुआ, **रुन्ध् वस्** बना। नकार के स्थान पर **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार और **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से परसवर्ण होकर पुनः नकार ही बन गया। वर्णसम्मेलन और सकार को रुत्वविसर्ग- **रुन्ध्वः**। इसी तरह **रुन्ध्मः** भी बनाइये। इस तरह से रुध् धातु के परस्मैपद लट् में रूप सिद्ध हुए- **रुणद्धि, रुन्धः-रुन्द्धः, रुन्धन्ति। रुणत्सि, रुन्धः-रुन्द्धः, रुन्ध-रुन्द्ध। रुणध्मि, रुन्ध्वः, रुन्ध्मः।**

आत्मनेपद में पित् न होने के कारण सभी नौ प्रत्यय **सार्वधातुकमपित्** से ङित् हैं। इसलिए सभी रूपों में **श्नसोरल्लोपः** से न के अकार का लोप होता है। तस्, थस् और थ के तकार, थकार के स्थान पर **झषस्तथोर्धोऽधः** से धकार आदेश, अनुस्वार, परसवर्ण, एत्व **झरो झरि सवर्णे** से वैकल्पिक धकार का लोप करके रूप बनाइये- रुन्धे-रुन्द्धे, रुन्धाते, रुन्धते (**आत्मनेपदेष्वनतः**)। रुन्त्से, रुन्धाथे, रुन्ध्वे-रुन्द्ध्वे। रुन्धे, रुन्ध्वहे, रुन्ध्महे।

लिट्-लकार में तिप्, णल्, द्वित्व आदि करके रूप बनाइये- रुरोध, रुरुधतुः, रुरुधुः। रुरोधिथ, रुरुधथुः, रुरुध। रुरोध, रुरुधिव, रुरुधिम। आत्मनेपद में- रुरुधे, रुरुधाते, रुरुधिरे। रुरुधिषे, रुरुधाथे, रुरुधिध्वे। रुरुधे, रुरुधिवहे, रुरुधिमहे।

लुट्-लकार में लघूपधगुण, तास् के तकार के स्थान पर **झषस्तथोर्धोऽधः** से धकार आदेश, जश्त्व आदि करके रूप बनते हैं- **परस्मैदपद**- रोद्धा, रोद्धारौ, रोद्धारः। रोद्धासि, रोद्धास्थः, रोद्धास्थ। रोद्धास्मि, रोद्धास्वः, रोद्धास्मः। **आत्मनेपद**- रोद्धा, रोद्धारौ, रोद्धारः। रोद्धासे, रोद्धासाथे, रोद्धाध्वे। रोद्धाहे, रोद्धास्वहे, रोद्धास्महे।

लोट् परस्मैपद में **एरुः** से उत्व, धत्व, जश्त्व आदि करके- रुणद्धु, रुन्धात्-रुन्द्धात्, रुन्धाम्-रुन्द्धाम्, रुन्धन्तु। सिप् में- **सेर्ह्यपिच्च** से हि आदेश और हि के स्थान पर **हुझल्भ्यो**

ह्रेर्धिः से धि आदेश करके **रुन्धि-रुन्द्धि** तातङ् के पक्ष में **रुन्धात्-रुन्द्धात्** बनते हैं। आगे- **रुन्धम्-रुन्द्धम्, रुन्ध-रुन्द्ध,** आट् आगम- **आडुत्तमस्य पिच्च** से- पित् होने से ङित् नहीं है, अतः अकार का लोप भी नहीं हुआ- रुणधानि, रुणधाव, रुणधाम। आत्मनेपद में- रुन्धाम्-रुन्द्धाम्, रुन्धाताम्, रुन्धताम्। रुन्त्स्व, रुन्धाथाम्, रुन्ध्वम्-रुन्द्ध्वम्। रुणधै, रुणधावहै, रुणधामहै।

लङ्-लकार परस्मैपद में- प्रथमपुरुष एकवचन में **अरुनध्+ति** इस स्थिति में **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से अपृक्त तकार का लोप होकर पदान्त में विद्यमान धकार को **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व करके दकार और उसके स्थान पर **वावसाने** से चर्त्व करके तकार करने पर दो रूप **अरुणत्** और **अरुणद्** बनते हैं। इसी प्रकार सिप् में भी बनते हैं पर यहाँ **दश्च** से रुत्व होकर **अरुणः** भी बनता है।

लङ्-लकार परस्मैपद में- अरुणत्-अरुणद्, अरुन्धाम्-अरुन्द्धाम्, अरुन्धन्। अरुणः-अरुणत्-अरुणद्, अरुन्धम्-अरुन्द्धम्, अरुन्ध-अरुन्द्ध। अरुणधम्, अरुन्ध्व, अरुन्ध्म। **आत्मनेपद में-** अरुन्ध-अरुन्द्ध, अरुन्धाताम्, अरुन्धत। अरुन्धाः-अरुन्द्धाः, अरुन्धाथाम्, अरुन्ध्वम्-अरुन्द्ध्वम्। अरुन्धि, अरुन्ध्वहि, अरुन्ध्महि। **विधिलिङ् परस्मैपद में-** रुन्ध्यात्, रुन्ध्याताम्, रुन्ध्युः। रुन्ध्याः, रुन्ध्यातम्, रुन्ध्यात। रुन्ध्याम्, रुन्ध्याव, रुन्ध्याम। **आत्मनेपद में-** रुन्धीत, रुन्धीयाताम्, रुन्धीरन्। रुन्धीथाः, रुन्धीयाथाम्, रुन्धीध्वम्। रुन्धीय, रुन्धीवहि, रुन्धीमहि। **आशीर्लिङ् परस्मैपद में-** रुध्यात्, रुध्यास्ताम्, रुध्यासुः। रुध्याः, रुध्यास्तम्, रुध्यास्त। रुध्यासम्, रुध्यास्व, रुध्यास्म। **आत्मनेपद में-** रुत्सीष्ट, रुत्सीयास्ताम्, रुत्सीरन्। रुत्सीष्ठाः, रुत्सीयास्थाम्, रुत्सीध्वम्। रुत्सीय, रुत्सीवहि, रुत्सीमहि।

लुङ् परस्मैपद में- **इरितो वा** से च्लि को विकल्प से अङ् आदेश होने के कारण बनते हैं- अरुधत्, अरुधताम्, अरुधन्, अरुधः, अरुधतम्, अरुधत, अरुधम्, अरुधाव, अरुधाम। **अङ्** न होने के पक्ष में **च्लि** के स्थान पर सिच् होकर **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि होकर धकार को चर्त्व करके बनते हैं- अरौत्सीत्, अरौद्धाम्, अरौत्सुः। अरौत्सीः, अरौद्धम्, अरौद्ध। अरौत्सम्, अरौत्स्व, अरौत्स्म। **आत्मनेपद में-** अरुद्ध, अरुत्साताम्, अरुत्सत। अरुद्धाः, अरुत्साथाम्, अरुध्वम्-अरुद्ध्वम्। अरुत्सि, अरुत्स्वहि, अरुत्स्महि।

लृङ् **परस्मैपद में-** अरोत्स्यत्, अरोत्स्यताम्, अरोत्स्यन्। अरोत्स्यः, अरोत्स्यतम्, अरोत्स्यत। अरोत्स्यम्, अरोत्स्याव, अरोत्स्याम। **आत्मनेपद में-** अरोत्स्यत, अरोत्स्येताम्, अरोत्स्यन्त। अरोत्स्यथाः, अरोत्स्येथाम्, अरोत्स्यध्वम्। अरोत्स्ये, अरोत्स्यावहि, अरोत्स्यामहि।

भिदिर् विदारणे। भिदिर् धातु **तोड़ना, फाड़ना, चीरना** अर्थ में है। इसमें भी **इर्** की इत्संज्ञा होती है, भिद् अवशिष्ट रहता है। इसके रूप भी रुध् की तरह ही बनते हैं। यहाँ पर **झरो झरि सवर्णे** से जहाँ-जहाँ झर् का लोप हो सकता है, वहाँ के लोपपक्ष के रूप दे रहे हैं। लोप न होने के पक्ष के रूप आप अपने आप समझ सकते हैं।

लट् परस्मैपद- भिनत्ति, भिन्तः, भिन्दन्ति। भिनत्सि, भिन्थः, भिन्थ। भिनद्मि, भिन्द्वः, भिन्द्मः। **आत्मनेपद-** भिन्ते, भिन्दाते, भिन्दते। भिन्त्से, भिन्दाथे, भिन्ध्वे। भिन्दे, भिन्द्वहे, भिन्द्महे।

लिट् परस्मैपद- बिभेद, बिभिदतुः, बिभिदुः। बिभेदिथ, बिभिदथुः, बिभिद। बिभेद, बिभिदिव, बिभिदिम। **आत्मनेपद-** बिभिदे, बिभिदाते, बिभिदिरे। बिभिदिषे, बिभिदाथे, बिभिदिध्वे। बिभिदे, बिभिदिवहे, बिभिदिमहे।

लुट् परस्मैपद- भेत्ता, भेत्तारौ, भेत्तारः। भेत्तासि, भेत्तास्थः, भेत्तास्थ। भेत्तास्मि, भेत्तास्वः, भेत्तास्मः। **आत्मनेपद**-भेत्ता, भेत्तारौ, भेत्तारः। भेत्तासे, भेत्तासाथे, भेत्ताध्वे। भेत्ताहे, भेत्तास्वहे, भेत्तास्महे।

लृट् परस्मैपद- भेत्स्यति, भेत्स्यतः, भेत्स्यन्ति। भेत्स्यसि, भेत्स्यथः, भेत्स्यथ। भेत्स्यामि, भेत्स्यावः, भेत्स्यामः। **आत्मनेपद**- भेत्स्यते, भेत्स्येते, भेत्स्यन्ते। भेत्स्यसे, भेत्स्येथे, भेत्स्यध्वे। भेत्स्ये, भेत्स्यावहे, भेत्स्यामहे। **लोट् परस्मैपद**- भिनत्तु-भिन्तात्, भिन्ताम्, भिन्दन्तु। **हुझल्भ्यो हेधिः**- भिन्धि-भिन्तात्, भिन्तम्, भिन्त। भिनदानि, भिनदाव, भिनदाम। **आत्मनेपद**- भिन्ताम्, भिन्दाताम्, भिन्दताम्। भिन्त्स्व, भिन्दाथाम्, भिन्ध्वम्। भिनदै, भिनदावहै, भिनदामहै। **लङ्परस्मैपद**- अभिनत्-अभिनद्,अभिन्ताम्,अभिन्दन्। अभिनः- अभिनत्-अभिनद्, अभिन्तम्, अभिन्त। अभिनदम्, अभिन्द्व, अभिन्द्म। **आत्मनेपद**- अभिन्द, अभिन्दाताम्, अभिन्दत। अभिन्थाः, अभिन्दाथाम्, अभिन्ध्वम्। अभिन्दि, अभिन्द्वहि, अभिन्द्महि। **विधिलिङ् परस्मैपद**- भिन्द्यात्, भिन्द्याताम्, भिन्द्युः। भिन्द्याः, भिन्द्यातम्, भिन्द्यात। भिन्द्याम्, भिन्द्याव, भिन्द्याम। **आत्मनेपद**- भिन्दीत, भिन्दीयाताम्, भिन्दीरन्। भिन्दीथाः, भिन्दीयाथाम्, भिन्दीध्वम्। भिन्दीय, भिन्दीवहि, भिन्दीमहि। **आशीर्लिङ् परस्मैपद**- भिद्यात्, भिद्यास्ताम्, भिद्यासुः। भिद्याः, भिद्यास्तम्, भिद्यास्त। भिद्यासम्, भिद्यास्व, भिद्यास्म। **आत्मनेपद**- भित्सीष्ट, भित्सीयास्ताम्, भित्सीरन्। भित्सीष्ठाः, भित्सीयास्थाम्, भित्सीध्वम्। भित्सीय, भित्सीवहि, भित्सीमहि। **लुङ्- अङ् के पक्ष में**- अभिदत्, अभिदताम्, अभिदन्, अभिदः, अभिदतम्, अभिदत, अभिदम्, अभिदाव, अभिदाम। **सिच् के पक्ष में**- अभैत्सीत्, अभैत्ताम्, अभैत्सुः। अभैत्सीः, अभैत्तम्, अभैत्त। अभैत्सम्, अभैत्स्व, अभैत्स्म। **आत्मनेपद**- अभित्त, अभित्साताम्, अभित्सत। अभित्थाः, अभित्साथाम्, अभिध्वम्। अभित्सि, अभित्स्वहि, अभित्स्महि। **लृङ् परस्मैपद**- अभेत्स्यत्, अभेत्स्यताम्, अभेत्स्यन्। अभेत्स्यः, अभेत्स्यतम्, अभेत्स्यत। अभेत्स्यम्, अभेत्स्याव, अभेत्स्याम। **आत्मनेपद**- अभेत्स्यत, अभेत्स्येताम्, अभेत्स्यन्त। अभेत्स्यथाः, अभेत्स्येथाम्, अभेत्स्यध्वम्। अभेत्स्ये, अभेत्स्यावहि, अभेत्स्यामहि।

छिदिर् द्वैधीकरणे। छिदिर् धातु **दो टुकड़े करने** अर्थ में है। इसमें भी इर् की इत्संज्ञा होकर छिद् बचता है और इसके रूप भी भिद् की तरह ही चलते हैं। सभी लकारों के दोनों पदों के प्रथमपुरुष एकवचन के रूप मात्र दिये जा रहे हैं। शेष रूपों को आप स्वयं बनाने का प्रयत्न करें।

छिनत्ति-छिन्ते। लिट् में **छे च** से तुक् आगम और तकार को **स्तोः श्चुना श्चुः** से चुत्व होकर **चिच्छेद-चिच्छिदे** बनते हैं। **छेत्तासि-छेत्तासे। छेत्स्यति-छेत्स्यते। छिनत्तु-छिन्ताम्। अच्छिनत्-अच्छिन्त। छिन्द्यात्-छिन्दीत। छिद्यात्-छित्सीष्ट। अच्छिदत्-अच्छैत्सीत्-अच्छित्त। अच्छेत्स्यत्-अच्छेत्स्यत।**

युजिर् योगे। युजिर् धातु **जोड़ने, मिलाने** आदि अर्थ में है। इसमें भी इर् की इत्संज्ञा होती है, युज् बचता है और इसके रूप भी भिद् की तरह ही चलते हैं। **चोः कुः** से कुत्व होकर जब **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से परसवर्ण होता है तो ककार के परे रहते अनुस्वार के स्थान पर ङकार आदेश और जकार के परे रहने पर ञकार आदेश होकर **युङ्क्तः, युञ्जन्ति** जैसे रूप बनते हैं। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

लृट् और लृङ् में कुत्व करके जकार के स्थान पर गकार आदेश और **खरि च** से चर्त्व करके गकार के स्थान पर ककार आदेश करना चाहिए। इसके बाद ककार से परे

सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व कर के ककार-षकार के संयोग से क्ष् बनता है जिससे **योक्ष्यति-योक्ष्यते** आदि रूप बनते हैं। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए।

अन्य धातुओं की तरह युज् धातु के एक-एक रूप सिद्ध करने के लिए आप बैठ जायें तो समस्त रूपों की सिद्धि कर सकेंगे। यहाँ पर युज् धातु के सभी लकारों के दोनों पदों के प्रथमपुरुष एकवचन के रूप मात्र दिये जा रहे हैं। शेष रूपों को आप स्वयं बनाने का प्रयत्न करें।

युनक्ति-युङ्क्ते। युयोज-युयुजे। योक्तासि-योक्तासे। योक्ष्यति-योक्ष्यते। युनक्तु-युङ्क्ताम्। अयुनक्-अयुङ्क्त। युञ्ज्यात्-युञ्जीत। युज्यात्-युक्षीष्ट। अयुजत्-अयौक्षीत्-अयुक्त। अयोक्ष्यत्-अयोक्ष्यत।

रिचिर् विरेचने। रिचिर् धातु **विरेचन** अर्थात् **निकालना, खाली करना** अर्थों में है। इर् की इत्संज्ञा के बाद **रिच्** बचता है। स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी और चकारान्त अनुदात्त होने के कारण अनिट् है फिर भी लिट् में क्रादिनियम से नित्य से इट् होता है। इसकी प्रक्रिया युज् धातु की तरह ही होती है। अन्तर यह है कि **रिच्** में रेफ होने के कारण श्नम् के नकार को णत्व होता है।

रिणक्ति-रिङ्क्ते। रिरेच-रिरिचे। रेक्ता, रेक्तासि-रेक्तासे। रेक्ष्यति-रेश्यते। रिणक्तु-रिङ्क्तात्, रिङ्क्ताम्, रिञ्चन्तु। रिङ्क्ताम्, रिञ्चाताम्, रिञ्चताम्। अरिणक्-अरिणग्, अरिङ्क्ताम्, अरिञ्चन्। अरिङ्क्त, अरिञ्चाताम्, अरिञ्चत। रिञ्च्यात्-रिञ्चीत। रिच्यात्-रिक्षीष्ट। अरिचत्-अरैक्षीत्-अरिक्त। अरेक्ष्यत्-अरेक्ष्यत।

विचिर् पृथग्भावे। विचिर् धातु **पृथग्भाव** अर्थात् **अलग करना** अर्थ में है। इर् की इत्संज्ञा के बाद **विच्** बचता है। स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी और चकारान्त अनुदात्त होने के कारण अनिट् है फिर भी लिट् में क्रादिनियम से नित्य इट् होता है। इसकी प्रक्रिया **रिचिर्** धातु की तरह ही होती है। अन्तर यह है कि **विच्** में रेफ न होने के कारण श्नम् के नकार को णत्व नहीं होता है।

विनक्ति-विङ्क्ते। विवेच-विविचे। वेक्तासि-वेक्तासे। वेक्ष्यति-वेक्ष्यते। विनक्तु-विङ्क्ताम्। अविनक्-अविङ्क्त। विञ्च्यात्-विञ्चीत। विच्यात्-विक्षीष्ट। अविचत्-अवैक्षीत्-अविक्त। अवेक्ष्यत्-अवेक्ष्यत।

क्षुदिर् सम्पेषणे। क्षुदिर् धातु **सम्पेषण** अर्थात् **पीसना, मसलना, चूर्ण करना** आदि अर्थों में है। इर् की इत्संज्ञा के बाद **क्षुद्** बचता है। स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी और अनुदात्त होने के कारण अनिट् है फिर भी लिट् में क्रादिनियम से नित्य से इट् होता है। इसकी प्रक्रिया **छिदिर्** धातु की तरह ही होती है। अन्तर यह है कि **क्षुदिर्** में ष् होने के कारण श्नम् के नकार को णत्व होता है।

क्षुणत्ति-क्षुन्ते। चुक्षोद-चुक्षुदे। क्षोत्ता, क्षोत्तासि-क्षोत्तासे। क्षोत्स्यति-क्षोत्स्यते। क्षुणत्तु-क्षुन्ताम्। अक्षुणत्-अक्षुन्त। क्षुन्द्यात्-क्षुन्दीत। क्षुद्यात्-क्षुत्सीष्ट। अक्षुदत्-अक्षौत्सीत्-अक्षुत्त। अक्षोत्स्यत्-अक्षोत्स्यत।

उच्छृदिर् दीप्तिदेवनयोः। उच्छृदिर् धातु **चमकना** और **खेलना** अर्थों में है। आदि उकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है। छकार के परे उसी उकार को तुक् का आगम हुआ था। उकार के जाने के बाद तुक् वाले चकार की भी स्वतः निवृत्ति हो गई। इसके बाद इर् की इत्संज्ञा होकर **छृद्** बचता है। उदित् का फल **उदितो वा** से **क्त्वा** के परे

इमागमविधायकं विधिसूत्रम्

६६८. तृणह इम् ७।३।९२॥

तृहः श्नमि कृते इमागमो हलादौ पिति सार्वधातुके।

तृणेढि। तृण्ढः। ततर्ह। तर्हिता। अतृणेट्॥

....

विकल्प से इट् का आगम करना है। स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी और सेट् है किन्तु सिच् से भिन्न सकारादि प्रत्ययों के परे होनें पर **सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः** से विकल्प से इट् होता है। यहाँ **ऋ** होने के कारण उससे परे **श्नम्** मे नकार को णत्व होता है।

छृणत्ति-छृन्ते। चच्छर्द-चच्छृदे। छर्दितासि-छर्दितासे। छर्दिष्यति-छत्स्र्यति, छर्दिष्यते-छत्स्र्यते। छृणत्तु-छृन्ताम्। अच्छृणत्-अछृन्त। छृन्द्यात्-छृन्दीत। छृद्यात्-छर्दिषीष्ट-छृत्सीष्ट। अच्छृदत्-अच्छर्दीत्-अच्छर्दिष्ट। अच्छर्दिष्यत्-अच्छत्स्र्यत्-अच्छर्दिष्यत-अच्छत्स्र्यत।

उतृदिर् हिंसानादरयोः। उतृदिर् धातु **हिंसा करना** और **अनादर करना** अर्थों में है। आदि उकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होती है। इर् की इत्संज्ञा होकर **तृद्** बचता है। उदित् का फल **उदितो वा** से **क्त्वा** के परे विकल्प से इट् का आगम करना है। स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी और सेट् है किन्तु सिच् से भिन्न सकारादि प्रत्ययों के परे होने पर **सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः** से विकल्प से इट् होता है। यहाँ **ऋ** होने के कारण उससे परे **श्नम्** मे नकार को णत्व होता है।

तृणत्ति-तृन्ते। ततर्द-ततृदे। तर्दितासि-तर्दितासे। तर्दिष्यति-तर्त्स्यति, तर्दिष्यते-तर्त्स्यते। तृणत्तु-तृन्ताम्। अतृणत्-अतृन्त। तृन्द्यात्-तृन्दीत। तृद्यात्-तर्दिषीष्ट-तृत्सीष्ट। अतृदत-अतर्दीत्-अतर्दिष्ट। अतर्दिष्यत्-अतर्त्स्यत्- अतर्दिष्यत-अतर्त्स्यत।

क्रम यह है कि पहले परस्मैपदी उसके बाद आत्मनेपदी तब उभयपदी धातुओं का विवचन हो किन्तु **रुधादिभ्यः श्नम्** इस सूत्र को देखते हुए पहले उभयपदी **रुधिर्** का कथन करके अब परस्मैपदी धातुओं का प्रकरण प्रारम्भ करते हैं।

कृती वेष्टने। कृती धातु **लपेटना** अर्थ में है। ईकार की इत्संज्ञा होती है, **कृत्** शेष रहता है। उदात्तेत् होने से परस्मैपदी है। अनुदात्त नहीं है, अतः सेट् है किन्तु सिच् से भिन्न सकारादि प्रत्ययों के परे होने पर **सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः** से विकल्प से इट् होता है।

कृणत्ति। चकर्त। कर्तिता। कर्तिष्यति-कर्त्स्यति। कृणत्तु। अकृणत्। कृन्त्यात। कृत्यात्। अकर्तीत्। अकर्तिष्यत्-अकर्त्स्यत्।

तृह हिसि हिंसायाम्। तृह और हिसि धातु **हिंसा करना** अर्थ में है। **तृह** में अन्त्य अकार और **हिसि** में अन्त्य इकार की इत्संज्ञा होती है। **हिस्** में इदित् होने के कारण **इदितो नुम् धातोः** से नुमागम होकर **हिंस्** हो जाता है।

६६८- **तृणह इम्।** तृणहः षष्ठ्यन्तम्, इम् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **श्नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके** से **पिति** और **सार्वधातुके** की तथा **उतो वृद्धिर्लुकि हलि** से **हलि** की अनुवृत्ति आती है।

हलादि पित् सार्वधातुक के परे होने पर श्नम् होने के बाद तृह धातु को इम् का आगम होता है।

नकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

६६९. श्नान्नलोपः ६।४।२३।।

श्नमः परस्य नस्य लोपः स्यात्! हिनस्ति। जिहिंस। हिंसिता।।

....

तृणहः में श्नम् युक्त रूप पठित होने के कारण श्नम् करने के बाद इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है, यह सूचित होता है। इम् में मकार की इत्संज्ञा होती है। मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात्परः** से अन्त्य अच् के बाद इ बैठता है।

तृणेढि। तृह् से लट्, तिप्, श्नम् करने के बाद **तृनह्+ति** बना। **तृणह इम्** से इम् होकर नकारोत्तरवर्ती अकार के बाद बैठा, **तृन+इह+ति** बना। **तृन+इह** में गुण होकर **तृनेह्+ति** बना। ऋकार से परे नकार को **ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्** वार्तिक से णत्व हुआ। **हो ढः** से हकार को ढत्व, **झषस्तथोर्धोऽधः** से ति के तकार को धत्व, ढकार के योग में धकार को ष्टुत्व होकर ढकार हो जाने के बाद **तृणेढ्+ढि** बना। पूर्व ढकार का **ढो ढे लोपः** से लोप होकर **तृणेढि** सिद्ध हुआ। तस् के परे रहते **श्नसोरल्लोपः** से नकारोत्तरवर्ती अकार के लोप होने पर **तृन्ह्+तस्** बना। ढत्व, धत्व, ष्टुत्व, ढलोप करके नकार को अनुस्वार और परसवर्ण करके **तृण्ढः** बन जाता है। **झि** के परे होने पर अकार का लोप, नकार को अनुस्वार करने पर **तृंहन्ति** बनता है। **सिप्** में ढत्व होने के बाद **तृणेढ्+सि** इस स्थिति में **षढोः कः सि** से कत्व, षत्व करके क् और ष् के संयोग में क्ष बनता है, जिससे **तृणेक्षि** सिद्ध हो जाता है। आगे **तृण्ढः, तृण्ढ, तृणेह्मि(तृणेह्मि) तृंह्वः, तृंह्मः** ये रूप बनते हैं। ततर्ह, ततृहतुः, ततृहुः, ततर्हिथ, ततृहथुः, ततृह, ततर्ह, ततृहिव, ततृहिम। **लिट्-** तर्हिता। **लृट्-** तर्हिष्यति। **लोट्-** तृणेढु-तृण्ढात्, तृण्ढाम्, तृंहन्तु, तृण्ढि-तृण्ढात्, तृण्ढम्, तृण्ढ, तृणहानि, तृणहाव, तृणहाम।

लङ् में- **अतृनह्+त्** बनने के बाद **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से त् का लोप, इम् का आगम, गुण, हकार का ढत्व, जश्त्व, णत्व, **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करने पर **अतृणेट्-अतृणेड्** ये दो रूप बनते हैं। अतृणेट्-अतृणेड्, अतृण्ढाम्, अतृंहन्, अतृणेट्-अतृणेड्, अतृण्ढम्, अतृण्ढ, अतृणहम्, अतृंह्व, अतृंह्म। आगे के लकारों में- **तृंह्यात्। तृह्यात्। अतर्हीत्। अतर्हिष्यत्** आदि बन रूप बन जाते हैं।

हिसि हिंसायाम्। हिंसार्थक **हिसि** धातु में इकार के लोप होने के बाद **इदितो नुम् धातोः** से नुम् होकर **हिन्स्** बना हुआ है।

६६९- श्नान्नलोपः। नस्य लोपो नलोपः। श्नात् पञ्चम्यन्तं, नलोपः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

श्नम् से परे नकार का लोप होता है।

हिनस्ति। हिंसार्थक **हिस्** धातु से नुम्, लट्, तिप् के बाद **हिन्स्+ति** बना है। शप् को बाधकर **रुधादिभ्यः श्नम्** से **श्नम्** हुआ, मित् होने के कारण अन्त्य अच् हि के इकार के बाद बैठा- **हिनन्स्+ति** बना। **श्नम्** वाले न से परे **नुम्** के नकार का **श्नान्नलोपः** से लोप हो गया, **हिनस्+ति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **हिनस्ति** सिद्ध हुआ। आगे- हिंस्तः, हिंसन्ति, हिनस्सि, हिंस्थः, हिंस्थ, हिनस्मि, हिंस्वः, हिंस्मः। **लिट्-** जिहिंस, जिहिंसतुः, जिहिंसुः। **लुट्-** हिंसिता। **लृट्-** हिंसिष्यति। **लोट्-** हिनस्तु-हिंस्तात्, हिंस्ताम्, हिंसन्तु, हिन्धि-हिंस्तात्, हिंस्तम्, हिंस्त, हिनसानि, हिनसाव, हिनसाम।

दत्त्वविधायकं विधिसूत्रम्

६७०. तिप्यनस्तेः ८।२।७३॥

पदान्तस्य सस्य दः स्यात्तिपि न त्वस्तेः। ससजुषोरुरित्यस्यापवादः। अहिनत्, अहिनद्। अहिंस्ताम्। अहिंसन्॥

वैकल्पिकरुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

६७१. सिपि धातो रुर्वा ८।२।७४॥

पदान्तस्य धातोः सस्य रुः स्याद्वा, पक्षे दः।
अहिनः, अहिनत्, अहिनद्। **उन्दी क्लेदने॥१३॥** उनत्ति। उन्तः। उन्दन्ति। उन्दाञ्चकार। औनत्, औनद्। औन्ताम्। औन्दन्। औनः, औनत्, औनद्। औनदम्। **अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु॥१४॥** अनक्ति। अङ्क्तः। अञ्जन्ति। अङ्क्ता। आनञ्ज। आनञ्जिथ, आनङ्क्थ। अञ्जिता, अङ्क्ता। अङ्ग्धि। अनजानि। आनक्॥

....

६७०-**तिप्यनस्तेः**। न अस्तिः अनस्ति, तस्य अनस्तेः। तिपि सप्तम्यन्तम्, अनस्तेः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **पदस्य** का अधिकार आ रहा है। **ससजुषोः रुः** से **सः** की तथा **वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः** से **दः** की अनुवृत्ति आ रही है।

तिप् परे होने पर पदान्त सकार को दकार आदेश होता है किन्तु अस् धातु के सकार को नहीं होता।

यह सूत्र **ससजुषो रुः** का अपवाद है।

अहिनत्-अहिनद्। लङ् लकार में नुम्, तिप्, अट्, श्नम् करने के बाद नुम् वाले नकार का लोप करके **अहिन+स्त्** बना है। तकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **अहिन+स्** बना। सकार के स्थान पर **तिप्यनस्तेः** से दकार आदेश करके **अहिनद्** बना। दकार को **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके **अहिनत्, अहिनद्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं। द्विवचन और बहुवचन में पूर्ववत् **श्नसोरल्लोपः** से अकार का लोप होकर **अहिंस्ताम्, अहिंसन्** ये रूप बनते हैं।

६७१-**सिपि धातो रुर्वा**। सिपि सप्तम्यन्तं, धातोः षष्ठ्यन्तं, रुः प्रथमान्तं, वा अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **ससजुषो रुः** से **सः** की अनुवृत्ति आती है और **पदस्य** का अधिकार आ रहा है।

सिप् के परे होने पर धातु के पदान्त सकार को विकल्प से रु आदेश होता है।

रुत्व न होने के पक्ष में **झलां जशोऽन्ते** से दकार ही हो जाता है।

अहिनः, अहिनत्, अहिनद्। सिप् में **अहिनस्+स्** बनने के बाद अपृक्त सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप होकर **अहिनस्** बना। सकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से दकार आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर **सिपि धातो रुर्वा** से वैकल्पिक रुत्व हुआ। उसके बाद रेफ को विसर्ग करके **अहिनः** यह रूप बना। रुत्व वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **झलां जशोऽन्ते** से दकार आदेश होकर वैकल्पिक चर्त्व करने पर तिप् की

इडागमविधायकं विधिसूत्रम्

६७२. अञ्जेः सिचि ७।२।७१।

अञ्जेः सिचो नित्यमिट् स्यात्। आञ्जीत्।। **तञ्चू संकोचने।।१५।।** तनक्ति। तञ्चिता, तङ्क्ता।। **ओविजी भयचलनयोः।।१६।।** विनक्ति,विङ्क्तः। विज इडिति ङित्वम्। विविजिथ। विजिता। अविनक्। अविजीत्।। **शिष्लृ विशेषणे।।१७।।** शिनष्टि। शिष्टः। शिषन्ति। शिनक्षि। शिशेष। शिशेषिथ। शेष्टा। शेक्ष्यति। हेर्धिः। शिण्ड्ढि। शिनषाणि। अशिनट्। शिंष्यात्। शिष्यात्। अशिषत्। एवं **पिष्लृ संचूर्णने।। १८।। भञ्जो आमर्दने।।१९।।** श्नान्नलोपः। भनक्ति। बभञ्जिथ, बभङ्क्थ। भङ्क्ता। भङ्ग्धि। अभाङ्क्षीत्।। **भुज पालनाभ्यवहारयोः।।२०।।** भुनक्ति। भोक्ता। भोक्ष्यति। अभुनक्।

....

तरह सिप् में भी **अहिनत्, अहिनद्** ये दो रूप बन गये। इस तरह सिप् में तीन रूप बने। **लङ् के रूप**- अहिनत्-अहिनद्, अहिंस्ताम्, अहिंसन्, अहिनः-अहिनत्-अहिनद्, अहिंस्तम्, अहिंस्त, अहिनसम्, अहिंस्व, अहिंस्म।

विधिलिङ्- हिंस्यात्, हिंस्याताम्, हिंस्युः। **आशीर्लिङ्**- हिंस्यात्, हिंस्यास्ताम्, हिंस्यासुः आदि। **लुङ्**- अहिंसीत्, अहिंसिष्टाम्, अहिंसिषुः आदि। **लृङ्**- अहिंसिष्यत्।

उन्दी क्लेदने। उन्दी धातु **भीगोना, गीला करना** अर्थ में है। ईकार की इत्संज्ञा होती है। यह धातु उदात्त है और उदात्तेत् होने से सेट् व परस्मैपदी भी है। लिट् में इजादि और गुरुमान् होने के कारण **इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः** से आम् होकर कृ, भू, अस् का अनुप्रयोग आदि होते हैं।

उनत्ति, उन्तः, उन्दन्ति। उन्दाञ्चकार, उन्दाम्बभूव, उन्दामास। उन्दिता। उन्दिष्यति। उन्दतु। औनत्-औनद्। उन्द्यात्। उद्यात्। औन्दीत्। औन्दिष्यत्।

अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु। अञ्जू धातु **विवेचन करना, स्निग्ध करना, चमकना** और **गति** अर्थों में है। जकारोत्तरवर्ती उदात्त ऊकार की इत्संज्ञा होती है, अतः ऊदित् कहलाता है। उदात्तेत् होने से परस्मैपदी और ऊदित् होने से **स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा** से वेट् हो जाता है। जकार के पहले के नकार के स्थान पर चुत्व होकर ञकार बना हुआ है। लोप के प्रसंग में नकार मानकर ही उसका **श्नान्नलोपः** से लोप हो जाता है।

लट् के तिप् में- **अनक्ति।** तस् में नकार के लोप और **श्नसोरल्लोपः** से अकार के लोप होने पर **अन्ज्+तस्** बना है। जकार को **चोः कुः** से कुत्व होकर गकार और गकार को **खरि च** से चर्त्व होकर ककार हो जाता है, फिर नकार को अनुस्वार और परसवर्ण करने पर ङकार हो जाता है। इस तरह **अङ्क्तस्** इस स्थिति में रुत्वविसर्ग होकर **अङ्क्तः** ऐसा रूप बन जाता है। बहुवचन में कुत्व आदि की प्राप्ति नहीं है। अतः **अञ्जन्ति** बनता है। आगे- अनक्षि, अङ्क्थः, अङ्क्थ, अनज्मि, अञ्ज्वः, अञ्ज्मः। **लिट्** में- तिप्, णल्, द्वित्व, **अत आदेः** से दीर्घ एवं **तस्मान्नुड् द्विहलः** से नुट् का आगम होकर **आनञ्ज** बनता है। आगे- **आनञ्जतुः, आनञ्जुः, आनञ्जिथ-आनङ्क्थ, आनञ्जथुः, आनञ्ज, आनञ्ज,**

आनञ्जिव-आनञ्ज्व, आनञ्जिम-आनञ्ज्म बनते हैं। **लुट्**- अञ्जिता-अङ्क्ता। **लृट्**- अञ्जिष्यति-अङ्क्ष्यति। **लोट्**- अनक्तु। **लङ्**- आनक्-आनग्। **विधिलिङ्**- अञ्ज्यात्। **आशीर्लिङ्**- अज्यात्।

६७२- **अञ्जेः सिचि।** अञ्जेः पञ्चम्यन्तं, सिचि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम्** से **इट्** की अनुवृत्ति आती है।

अञ्जू धातु से परे सिच् को नित्य से इट् का आगम होता है।

स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा से विकल्प से प्राप्त इट् को बाध कर यह नित्य से इट् का आगम करता है।

आञ्जीत्। आ+अञ्ज्+स्+ईत् होने के बाद विकल्प से प्राप्त इट् को बाधकर **अञ्जेः सिचि** से नित्य से इट् आगम हुआ- बीच के सकार का **इट ईटि** से लोप होने पर इ+ई में सवर्णदीर्घ करके आ+अ में **आटश्च** से वृद्धि करके **आञ्जीत्** सिद्ध हो जाता है। **आञ्जीत्, आञ्जिष्टाम्, आञ्जिषुः** आदि। **लृङ्**- आञ्जिष्यत्, आङ्क्ष्यत्।

तञ्चू संकोचने। तञ्चू धातु **संकोचन** अर्थात् **संकुचित करना** अर्थ में है। यह भी **अञ्जू** की तरह नकारोपध, परस्मैपदी और ऊदित होने के कारण वेट् है। इसकी सारी प्रक्रिया **अञ्जू** की तरह होती है किन्तु जब **खरि च** से चर्त्व की आवश्यकता नहीं होती और **लुङ्** में **अञ्जेः सिचि** नहीं लगता अर्थात् विकल्प से इट् होता है।

लट् में- तनक्ति, तङ्क्तः, तञ्चन्ति, तनक्षि, तङ्क्थः, तङ्क्थ, तनच्मि, तञ्च्वः, तञ्च्मः। **लिट्** में- तिप्, णल्, द्वित्व, **ततञ्च, ततञ्चतुः, ततञ्चुः।** **लुट्**- तञ्चिता-तङ्क्ता। **लृट्**- तञ्चिष्यति-तङ्क्ष्यति। **लोट्**- तनक्तु। **लङ्**- अतनक्-अतनग्। **विधिलिङ्**- तञ्च्यात्। **आशीर्लिङ्**- तच्यात्। **लुङ्** के **इडभावपक्ष** में **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि और **इट्पक्ष** में **नेटि** से निषेध होकर **अतञ्चीत्-अताङ्क्षीत्** बनते हैं। **लृङ्**- अतञ्चिष्यत्-अतङ्क्ष्यत्।

ओविजी भयचलनयोः। ओविजी धातु **डरना** और **चलना** अर्थ में है। ओकार और ईकार इत्संज्ञक हैं, **विज्** बचता है। उदात्तेत् होने से परस्मैपदी है, सेट् है। **विज इट्** से इडादि प्रत्ययों को ङिद्वद्भाव होता है। विनक्ति, विङ्क्तः, विञ्जन्ति। विवेज, विविजतुः। विजिता। विजिष्यति। विनक्तु। अविनक्। विञ्ज्यात्। विज्यात्। अविजीत्। अविजिष्यत्।

शिष्लृ विशेषणे। शिष्लृ धातु **विशेषण** अर्थात् **विशेषित करना, विशेष करके बताना** आदि अर्थों में है। उदात्त लृकार की इत्संज्ञा होकर **शिष्** शेष रहता है। परस्मैपदी है किन्तु अनुदात्तों में परिगणित होने से अनिट् है। लिट् में क्रादिनियम से इट् होता है। लृदित् का प्रयोजन **पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु** की प्रवृत्ति है। अन्त में षकार होने के कारण इसके योग में प्रत्यय के तकार आदि को ष्टुत्व हो जाता है। स्य आदि के परे षकार को **षढोः कः सि** से ककार होकर उसके योग में आगे के सकार को षत्व और ककार तथा षकार के योग में क्षत्व आदि तो होते ही हैं।

शिनष्टि, शिंष्टः, शिंषन्ति, शिनक्षि, शिंष्ठः, शिंष्ठ, शिनष्मि, शिंष्वः, शिंष्मः। शिशेष, शिशिषतुः, शिशिषुः, शिशेषिथ-शिशिष्ठ, शिशिषथुः, शिशिष, शिशेष, शिशिषिव, शिशिषिम। शेष्टा। शेक्ष्यति। शिनष्टु-शिंष्टात्, शिंष्टाम्, शिंषन्तु, शिण्ढि-शिंष्टात्, शिंष्टम्, शिंष्ट, शिनषाणि, शिनषाव, शिनषाम। अशिनट्-अशिनड्। शिंष्यात्। शिष्यात्। लुङ् में लृदित्त्वादङ् होकर- अशिषत्, अशिषताम्, अशिषन् आदि। अशेक्ष्यत्।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

६७३. भुजोऽनवने १।३।६६॥

तङानौ स्तः। ओदनं भुङ्क्ते। अनवने किम्? महीं भुनक्ति। **ञिइन्धी दीप्तौ॥२१॥** इन्द्धे। इन्धाते। इन्धते। इन्त्से। इन्ध्वे। इन्धाञ्चक्रे। इन्धिता। इन्धाम्। इन्धाताम्। इनधै। ऐन्ध। ऐन्धाताम्। ऐन्धाः। **विद विचारणे॥२२॥** विन्ते। वेत्ता॥

इति रुधादयः॥१८॥

....

पिष्लृ सञ्चूर्णने। पिष्लृ धातु **संचूर्णन** अर्थात् **पीसना** अर्थ में है। उदात्त लृकार की इत्संज्ञा होकर **पिष्** शेष रहता है। परस्मैपदी है किन्तु अनुदात्तों में परिगणित होने से अनिट् है। लिट् में क्रादिनियम से इट् होता है। लृदित् का प्रयोजन **पुषादिद्युताद्यलृदितः परस्मैपदेषु** की प्रवृत्ति है। अन्त में षकार होने के कारण इसके योग में प्रत्यय के तकार आदि को ष्टुत्व हो जाता है। स्य आदि के परे षकार को **षढोः कः सि** से ककार होकर उसके योग में आगे के सकार को षत्व, ककार तथा षकार के योग में क्षत्व आदि तो होते ही हैं।

पिनष्टि, पिंष्टः, पिंषन्ति, पिनक्षि, पिंष्ठः, पिंष्ठ, पिनष्मि, पिंष्वः, पिंष्मः। पिपेष, पिपिषतुः। पेष्टा। पेक्ष्यति। पिनष्टु-पिंष्टात्, पिंष्टाम्, पिंषन्तु, पिण्ढि-पिंष्टात्, पिंष्टम्, पिंष्ट, पिनषाणि, पिनषाव, पिनषाम। अपिनट्-अपिनड्। पिंष्यात्। पिष्यात्। लुङ् में **लृदित्त्वादङ् होकर**- अपिषत्, अपिषताम्, अपिषन् आदि। **अपेक्ष्यत्।**

भञ्जो आमर्दने। भञ्जो धातु **आमर्दन** अर्थात् **तोड़ना** अर्थ में है। उदात्त ओकार की इत्संज्ञा होने के कारण ओदित् और परस्मैपदी है। ओदित् होने का फल क्त और क्तवतु प्रत्ययों के तकार को **ओदितश्च** से नकारादेश करना है। अनुदात्तों में परिगणित है, अतः अनिट् है। यह धातु मूल रूप में **भन्ज्** है, जकार के योग में श्चुत्व होकर ञकार बना है। अतः **श्नान्नलोपः** से श्नम् के उत्तरवर्ती ञकार बने नकार का लोप हो जाता है।

भनक्ति। भङ्क्तः, भञ्जन्ति, भनक्षि, भङ्क्थः, भङ्क्थ, भनज्मि, भञ्ज्वः, भञ्ज्मः। बभञ्ज, बभञ्जतुः, बभञ्जुः। भङ्क्ता। भङ्क्ष्यति। भनक्तु। अभनक्-अभनग्। भञ्ज्यात्। भज्यात्। अभाङ्क्षीत्। अभङ्क्ष्यत्।

भुज पालनाभ्यवहारयोः। भुज धातु **पालन** और **भक्षण करना** अर्थों में है। उदात्त अकार की इत्संज्ञा होती है, **भुज्** शेष रहता है। यह **पालन करना** अर्थ में परस्मैपदी है और **भक्षण करना** अर्थ में अग्रिम सूत्र **भुजोऽनवने** से आत्मनेपदी हो जाता है। अनुदात्तों में परिगणित होने से अनिट् भी है किन्तु लिट् में क्रादिनियम से इट् हो जाता है।

भुनक्ति। भुङ्क्तः, भुञ्जन्ति, भुनक्षि, भुङ्क्थः, भुङ्क्थ, भुनज्मि, भुञ्ज्वः, भुञ्ज्मः। बुभोज, बुभुजतुः, बुभुजुः। भोक्ता। भोक्ष्यति। भुनक्तु। अभुनक्-अभुनग्। भुञ्ज्यात्। भुज्यात्। अभौक्षीत्। अभोक्ष्यत्।

यहाँ तक परस्मैपद धातुओं का वर्णन हुआ। अब आत्मनेपदी धातुओं का

वर्णन करते हैं। भुज धातु पालन अर्थ में परस्मैपदी था, अब भक्षण अर्थ में आत्मनेपद के लिए सूत्र उपस्थापित करते हैं-

६७३- **भुजोऽनवने।** न अवनम् अनवनं, तस्मिन् अनवने। भुजः पञ्चम्यन्तम्, अनवने सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

पालन से भिन्न(भक्षण) अर्थ में भुज् धातु से आत्मनेपद होता है।

ओदनं भुङ्क्ते। भक्षण अर्थ में आत्मनेपद होकर **भुङ्क्ते** बना किन्तु रक्षण, पालन अर्थ में तो **महीं भुनक्ति** बनता है।

अनवने किम्? महीं भुनक्ति। यदि इस सूत्र में **अनवने** यह पद नहीं रखा जायेगा तो **पालन** और **भक्षण** दोनों अर्थों में आत्मनेपद होने लगेगा। **भक्षण** अर्थ में आत्मनेपद तो अभीष्ट है किन्तु **पालन** अर्थ में आत्मनेपद अभीष्ट नहीं है, उसे रोकने के लिए इस सूत्र में **अनवने** यह पद देकर **अवन** अर्थात् पालन अर्थ में आत्मनेपद होने से रोका गया।

भुङ्क्ते, भुञ्जाते, भुञ्जते। बुभुजे, बुभुजाते, बुभुजिरे। भोक्ता, भोक्तासि। भोक्तासे। भोक्ष्यते। भुङ्क्ताम्, भुञ्जाताम्, भुञ्जताम्, भुङ्क्ष्व। अभुङ्क्त, अभुञ्जाताम्, अभुञ्जत। भुञ्जीत, भुञ्जीयाताम्, भुञ्जीरन्। भुक्षीष्ट, भुक्षीयास्ताम्, भुक्षीरन्। अभुक्त, अभुक्षाताम्, अभुक्षत। अभोक्ष्यत।

ञिइन्धी दीप्तौ। ञिइन्धी धातु **दीप्ति** अर्थात् **चमकना** अर्थ में है। आदि में विद्यमान ञि की **आदिर्ञिटुडवः** से इत्संज्ञा होती है। अन्त्य ईकार तो इत्संज्ञक है ही। इस तरह **इन्ध्** शेष रह जाता है। अनुदात्तेत् होने से आत्मनेपदी और अनुदात्तों की पंक्ति में न होने से सेट् है। **ञीत्** होने से कृत्प्रकरण में **ञीतः क्तः** से वर्तमानकाल में **क्त** प्रत्यय हो जायेगा और **ईदित्** करने का फल वहीं कृदन्त में **श्वीदितो निष्ठायाम्** से इट् का निषेध है। इस धातु में यथासम्भव **लकार** के स्थान पर हुए तकार आदि के स्थान पर **झषस्तथोर्धोऽधः** से धत्व, **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व और **झरो झरि सवर्णे** से झर् का वैकल्पिक लोप आदि होंगे। **लिट्** में **इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः** से आम्, उसके बाद कृ, भू, अस् का अनुप्रयोग आदि भी होंगे।

इन्धे-इन्द्धे, इन्धाते, इन्धते, इन्त्से, इन्धाथे, इन्ध्वे-इन्द्ध्वे, इन्धे, इन्ध्वहे, इन्ध्महे। इन्धाञ्चक्रे, इन्धाम्बभूव, इन्धामास। इन्धिता। इन्धिष्यते। इन्धाम्-इन्द्धाम्, इन्धाताम्, इन्धताम्, इन्त्स्व। ऐन्ध-ऐन्द्ध। इन्धीत। इन्धिषीष्ट। ऐन्धिष्ट। ऐन्धिष्यत।

विद विचारणे। विद धातु **विचारण** अर्थात् **विचार करना** अर्थ में है। अनुदात्त अकार की इत्संज्ञा होकर **विद्** शेष बचता है। धातु अनुदात्तों में परिगणित है, अतः अनिट् भी है किन्तु क्रादिनियम से लिट् में इट् हो जाता है।

विद् धातु को चार गणों में भिन्न-भिन्न अर्थों में पढ़ा गया है। जैसे- अदादि में **विद ज्ञाने,** दिवादि में **विद सत्तायाम्,** तुदादि में **विद्लृ लाभे** और इस गण मे **विद विचारणे।** सबके अलग अलग रूप बनते हैं।

विन्ते-विन्त्ते, विन्दाते, विन्दते, विन्त्से, विन्दाथे, विन्द्ध्वे, विन्दे, विन्द्वहे, विन्द्महे। विविदे, विविदाते, विविदिरे। वेत्ता, वेत्तासे। वेत्स्यते। विन्ताम्। अविन्त। विन्दीत। वित्सीष्ट। अवित्त। अवेत्स्यत।

परीक्षा

द्रष्टव्यः- **सभी प्रश्न अनिवार्य हैं और उनके अंक भी दिये गये हैं।**

१- अपनी पुस्तिका में इस गण के सभी धातुओं के सारे रूप लिखें। ५०

२- इस गण के सभी बाईस धातुओं के लङ् लकार प्रथम पुरुष के एकवचन के रूपों की सिद्धि सूत्र लगाकर दिखायें। २०

३- श्नम् में शित् करने का तात्पर्य समझाइये। ५

४- इस गण के ओदित् धातुओं में ओदित् का फल बताइये १०

५- **षढोः कः सि** और **ष्टुना ष्टुः** का प्रयोग करके इस गण के किन्हीं पाँच प्रयोगों की सिद्धि दिखाइये। १०

६- पूर्वप्रकरण से इस प्रकरण की तुलना में एक पेज का लेख लिखिये-५

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का रुधादिप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ तनादयः

तनु विस्तारे॥१॥

उ-विधायकं विधिसूत्रम्

६७४. तनादिकृञ्भ्य उः ३।१।७९॥

शपोऽपवादः।

तनोति-तनुते। ततान-तेने। तनितासि-तनितासे। तनिष्यति-तनिष्यते। तनोतु-तनुताम्। अतनोत्-अतनुत। तनुयात्-तन्वीत। तन्यात्-तनिषीष्ट। अतानीत्-अतनीत्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

धातु-प्रकरण में **तनादिप्रकरण** आठवाँ है। तनु धातु आदि में होने के कारण यह **तनादिप्रकरण** कहलाता है। जैसे भ्वादि में धातु और प्रत्ययों के बीच में विकरण के रूप में शप्, अदादि में शप् होकर उसका लुक्, जुहोत्यादि में शप् होकर श्लु, दिवादि में श्यन् और स्वादि में श्नु, रुधादि में श्नम् होते हैं, उसी प्रकार **तनादि** में शप् को बाधकर **उ** होता है।

तनु विस्तारे। तनु धातु **विस्तार करना, फैलाना** आदि अर्थ में प्रयुक्त होता है। उकार स्वरित है, उकार की इत्संज्ञा होती है, **तन्** अवशिष्ट रहता है। **स्वरितेत्** होने के कारण **उभयपदी** है। यह **सेट्** अर्थात् **तासि** आदि में **इट्** होने वाला धातु है।

६७४- **तनादिकृञ्भ्य उः**। तनादिकृञ्भ्यः पञ्चम्यन्तम्, उः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कर्तरि शप्** से **कर्तरि** और **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

कर्ता अर्थ में हुए सार्वधातुकसंज्ञक प्रत्यय के परे होने पर तनादिगणपठित धातुओं से और कृञ् धातु से शप् का बाधक उ प्रत्यय होता है।

उ यह विकरण न तो शित् है और न ही पित्। अतः इसकी सार्वधातुकसंज्ञा नहीं होती है किन्तु आर्धधातुकसंज्ञा हो जाती है।

तनोति। तन् से लट्, तिप्, शप् प्राप्त, उसे बाधकर **तनादिकृञ्भ्य उः** से उ प्रत्यय, **तन्+उ+ति** बना। **ति** सार्वधातुक है ही, अतः उसके परे होने पर प्रत्यय के उकार का **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण होकर **तन्+ओ+ति** हुआ, वर्णसम्मेलन होकर **तनोति** बना।।

तिप्, सिप् और **मिप्** ये पित् हैं, इन्हें छोड़कर अन्य अपित् हैं। अपित् प्रत्ययों को **सार्वधातुकमपित्** से ङित् बना दिये जाने के कारण **क्ङिति च** से गुण निषेध हो जाता है, जिससे **तनुतः** आदि रूप बनते हैं। बहुवचन में **तनु+अन्ति** में **इको यणचि** से यण् होकर

वैकल्पिकसिचो लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

६७५. तनादिभ्यस्तथासोः २।४।७९॥

तनादेः सिचो वा लुक् स्यात् तथासोः।

अतत, अतनिष्ट। अतथाः, अतनिष्ठाः। अतनिष्यत्, अतनिष्यत।

षणु दाने॥२॥ सनोति, सनुते॥

....

तन्वन्ति बनता है। वस् और मस् में **लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः** से नु के उकार का विकल्प से लोप होता है। लोट् सिप् में नु से परे हि का **उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्** से लोप होता है।

लट् के रूप- परस्मैपद में- **तनोति, तनुतः, तन्वन्ति। तनोषि, तनुथः, तनुथ। तनोमि, तन्वः-तनुवः, तन्मः-तनुमः।** आत्मनेपद में- **तनुते, तन्वाते, तन्वते। तनुषे, तन्वाथे, तनुध्वे। तन्वे, तन्वहे-तनुवहे, तन्महे-तनुमहे।**

लिट् में तन् धातु से तिप्, णल्, अ, द्वित्व, हलादिशेष करके **ततन्+अ** बना। **अत उपधायाः** से उपधावृद्धि होकर **ततान्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ **ततान** सिद्ध हुआ। **तस्, झि, थस्, थ, वस्** और **मस्** में **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित्व होकर **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** से अभ्याससंज्ञक पूर्व **त** का लोप और **तन्** में तकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर और सिप् में **थलि च सेटि** से एत्वाभ्यासलोप होता है। इस प्रकार से रूप बनते हैं- **ततान, तेनतुः, तेनुः। तेनिथ, तेनथुः, तेन। ततान-ततन, तेनिव, तेनिम।** आत्मनेपद में तो सभी प्रत्ययों में एत्वाभ्यासलोप होता ही है- तेने, तेनाते, तेनिरे। तेनिषे, तेनाथे, तेनिध्वे। तेने, तेनिवहे, तेनिमहे।

लुट् परस्मैपद में- तनिता, तनितारौ, तनितारः। तनितासि, तनितास्थः, तनितास्थ। तनितास्मि, तनितास्वः, तनितास्मः। **आत्मनेपद में**- तनिता, तनितारौ, तनितारः। तनितासे, तनितासाथे, तनिताध्वे। तनिताहे, तनितास्वहे, तनितास्महे।

लृट् परस्मैपद में- तनिष्यति, तनिष्यतः, तनिष्यन्ति। तनिष्यसि, तनिष्यथः, तनिष्यथ। तनिष्यामि, तनिष्यावः, तनिष्यामः। **आत्मनेपद में**- तनिष्यते, तनिष्येते, तनिष्यन्ते। तनिष्यसे, तनिष्येथे, तनिष्यध्वे। तनिष्ये, तनिष्यावहे, तनिष्यामहे।

लोट् परस्मैपद में- तनोतु-तनुतात्, तनुताम्, तन्वन्तु। तनुहि-तनुतात्, तनुतम्, तनुत। तनवानि, तनवाव, तनवाम। **आत्मनेपद में**- तनुताम्, तन्वाताम्, तन्वताम्। तनुष्व, तन्वाथाम्, तनुध्वम्। तनवै, तनवावहै, तनवामहै।

लङ् परस्मैपद में- अतनोत्, अतनुताम्, अतन्वन्। अतनोः, अतनुतम्, अतनुत। अतनवम्, अतन्व-अतनुव, अतन्म-अतनुम। **आत्मनेपद में**- अतनुत, अतन्वाताम्, अतन्वत। अतनुथाः, अतन्वाथाम्, अतनुध्वम्। अतन्वि, अतन्वहि-अतनुवहि, अतन्महि-अतनुमहि।

विधिलिङ् परस्मैपद में- तनुयात्, तनुयाताम्, तनुयुः। तनुयाः, तनुयातम्, तनुयात। तनुयाम्, तनुयाव, तनुयाम। **आत्मनेपद में**- तन्वीत, तन्वीयाताम्, तन्वीरन्। तन्वीथाः, तन्वीयाथाम्, तन्वीध्वम्। तन्वीय, तन्वीवहि, तन्वीमहि।

आशीर्लिङ् परस्मैपद में- तन्यात्, तन्यास्ताम्, तन्यासुः। तन्याः, तन्यास्तम्, तन्यास्त। तन्यासम्, तन्यास्व, तन्यास्म। **आत्मनेपद में**- तनिषीष्ट, तनिषीयास्ताम्, तनिषीरन्। तनिषीष्ठाः, तनिषीयास्थाम्, तनिषीध्वम्। तनिषीय, तनिषीवहि, तनिषीमहि।

वैकल्पिकात्वविधायकं विधिसूत्रम्

६७६. ये विभाषा ६।४।४३।।

जनसनखनामात्त्वं वा यादौ क्ङिति। सायात्, सन्यात्।।

....

लुङ् परस्मैपद में- **अतानीत्, अतानिष्टाम्, अतानिषुः। अतानीः, अतानिष्टम्, अतानिष्ट। अतानिषम्, अतानिष्व, अतानिष्म।**

६७५- तनादिभ्यस्तथासोः। तन् आदिर्येषां ते तनादयः, तेभ्यस्तनादिभ्यः। तश्च थाश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्तथासौ, तयोस्तथासोः। तनादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, तथासोः सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु** से **सिचः, ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** से **लुक्** और **विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः** से **विभाषा** की अनुवृत्ति आती है।

तनादिगणीय धातुओं से परे सिच् का विकल्प से लुक् होता है त और थास् के परे होने पर।

अतत-अतनिष्ट। तन् से लुङ् के आत्मनेपद में त आने के बाद अट्, सिच् होकर **अतन्+स्त** बना है। सिच् के सकार का **तनादिभ्यस्तथासोः** से वैकल्पिक लुक् होकर **अतन्+त** बना। नकार का **अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति** से लोप होकर **अतत** सिद्ध हुआ। सिच् के लुक् न होने के पक्ष में इट् का आगम, षत्व और ष्टुत्व होकर **अतनिष्ट** बनता है।

आत्मनेपद में- अतत-अतनिष्ट, अतनिषाताम्, अतनिषत। अतथाः-अतनिष्ठाः, अतनिषाथाम्, अतनिध्वम्। अतनिषि, अतनिष्वहि, अतनिष्महि।

लृङ् परस्मैपद में- अतनिष्यत्, अतनिष्यताम्, अतनिष्यन्। अतनिष्यः, अतनिष्यतम्, अतनिष्यत। अतनिष्यम्, अतनिष्याव, अतनिष्याम। **आत्मनेपद में-** अतनिष्यत, अतनिष्येताम्, अतनिष्यन्त। अतनिष्यथाः, अतनिष्येथाम्, अतनिष्यध्वम्। अतनिष्ये, अतनिष्यावहि, अतनिष्यामहि।

षणु दाने। **षणु** धातु **देना** अर्थ में है। **धात्वादेः षः सः** से आदि **षकार** के स्थान पर **सकार** आदेश होता है और **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के नियम से **णकार** भी नकार को प्राप्त होता है। **उकार** की इत्संज्ञा होती है, **सन्** शेष रहता है। इस तरह यह धातु उदित् और **स्वरितेत्** है। **उदित्** का फल **उदितो वा** से क्त्वा को इट् विकल्प से होना है तो **स्वरितेत्** होने से **उभयपदी** हो जाता है। अनुदात्तों में इसकी गणना नहीं है, अतः सेट् है। आशीर्लिङ् और लुङ् लकारों में अग्रिम सूत्रों से आत्त्व हो जाने के कारण भिन्न रूप बनते हैं और शेष लकारों में इसके रूप **तन्** धातु की तरह ही होते हैं।

सन् से लट्, तिप्, उ करके **सन्+उ+ति** बना है। गुण करके वर्णसम्मेलन करने पर **सनोति** बन जाता है। आत्मनेपद में गुण नहीं होता। अतः **सनुते** बनता है। अन्य लकारों के रूप भी बना लें और विशेष रूप के लिए अग्रिम सूत्रों को समझें।

६७६- ये विभाषा। ये सप्तम्यन्तं, विभाषा प्रथमान्तम्। **जनसनखनां सञ्झलोः** से **जनसनखनाम्** तथा **विड्वनोरनुनासिकस्यात्** से **आत्** और **अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति** से **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

जन्, सन् और खन् धातुओं के नकार को विकल्प से आकार आदेश होता है यकारादि कित्, ङित् प्रत्ययों के परे रहने पर।

नित्येनात्वविधायकं विधिसूत्रम्

६७७. जनसनखनां सञ्झलोः ६।४।४२।।

एषामाकारोऽन्तादेशः स्यात् सनि झलादौ क्ङिति।।

असात, असनिष्ट। असाथाः, असनिष्ठाः। **क्षणु हिंसायाम्।।३।।** क्षणोति, क्षणुते। **ह्म्यन्तेति न वृद्धिः।** अक्षणीत्, अक्षत, अक्षणिष्ट। अक्षथाः, अक्षणिष्ठाः। **क्षिणु च।।४।।** उप्रत्यये लघूपधस्य गुणो वा। क्षेणोति, क्षिणोति। क्षेणिता। अक्षेणीत्, अक्षित, अक्षेणिष्ट। **तृणु अदने।।५।।** तृणोति, तर्णोति, तृणुते, तर्णुते। **डुकृञ् करणे।।६।।** करोति।।

....

आत्व के लिए अग्रिम सूत्र **जनसनखनां सञ्झलोः** भी है किन्तु वह सन् और झलादि कित्, ङित् के परे नित्य से करता है और यह यकारादि कित् ङित् के परे विकल्प से करता है। यही अन्तर है इन दोनों सूत्रों में।

आशीर्लिङ् में यासुट् होने के बाद **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से सलोप करके **सन्+या+त्** बना है। इसमें यकारादि प्रत्यय मिलता है। अतः नकार के स्थान पर विकल्प से आत्व होकर **स+आ+यात्** बना। दीर्घ आदि करने पर **सायात्** बना। आत्त्व न होने के पक्ष में **सन्यात्** ही रहता है। आत्मनेपद में **सनिषीष्ट** बनता है।

लुङ् के परस्मैपद में इट् होने के कारण झलादि नहीं मिलता, इस लिए आत्व नहीं हुआ। **अतो हलादेर्लघोः** से वैकल्पिक वृद्धि होकर **अतानीत्-अतनीत्** ये दो रूप बनते हैं किन्तु **आत्मनेपद** में अग्रिम सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

६७७- **जनसनखनां सञ्झलोः।** जनश्च सनश्च खन् च तेषामितरेतरद्वन्द्वो जनसनखनः, तेषां जनसनखनाम्। सन् च झल् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः सञ्झलौ, तयोः। जनसनखनां षष्ठ्यन्तं, सञ्झलोः सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **विड्वनोरनुनासिकस्यात्** से **आत्** और **अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति** से **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

जन्, सन् और खन् धातुओं के नकार को आकार आदेश होता है सन् या झलादि कित्, ङित् प्रत्ययों के परे रहने पर।

यह सूत्र **अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति** का वाधक है।

लुङ् के आत्मनेपद में **असन्+स्+त** बनने के बाद **सिच्** के सकार का **तनादिभ्यस्तथासोः** से वैकल्पिक लोप होकर **असन्+त** बना है। झलादि ङित् है **त** क्योंकि **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वत् हुआ है। अतः **जनसनखनां सञ्झलोः** से नकार को आत्व होकर सवर्णदीर्घ हुआ- **असात** बना। सकार के लोप न होने के पक्ष में **इट्** का आगम होता है। अतः **असन्+इस्+त** बनने के बाद षत्व, ष्टुत्व करके **असनिष्ट** बन जाता है। यही प्रक्रिया **थल्** में भी अपनायी जाती है, जिससे **असाथाः, असनिष्ठाः** ये दो रूप बन जाते हैं।

षणु के रूप- लट्- सनोति, सनुतः, सन्वन्ति। सनुते, सन्वाते, सन्वते इत्यादि।
लिट्- ससान, सेनतुः, सेनुः। सेने, सेनाते, सेनिरे इत्यादि।
लुट्- सनिता, सनितारौ, सनितारः। सनितासे। सनितासाथे, सनिताध्वे इत्यादि।
लृट्- सनिष्यति, सनिष्यते। **लुट्-** सनोतु-सनुतात्, सनुताम्, सन्वन्तु। सनुताम्, सन्वाताम्।
लङ्- असनोत्, असनुताम्, असन्वन्। असनुत, असन्वाताम्, असन्वत।
विधिलिङ्- सनुयात्, सनुयाताम्, सनुयुः। सन्वीत, सन्वीयाताम्, सन्वीरन्।
आशीर्लिङ्- सायात्, सायास्ताम्, सायासुः। सन्यात्, सन्यास्ताम्, सन्यासुः। सनिषीष्ट, सनिषीयास्ताम्, सनिषीरन् इत्यादि।
लुङ्- परस्मैपद के वृद्धिपक्ष में- असानीत्, असानिष्टाम्, असानिषुः आदि। **वृद्धि न होने के पक्ष में-** असनीत्, असनिष्टाम्, असनिषुः इत्यादि। **आत्मनेपद में-** असात-असनिष्ट, असनिषाताम्, असनिषत। असाथाः-असनिष्ठाः, असनिषाथाम्, असनिध्वम्। असनिषि, असनिष्वहि, असनिष्महि।
लृङ्- असनिष्यत्, असनिष्यत इत्यादि।

क्षणु हिंसायाम्। क्षणु धातु **हिंसा करना** अर्थ में है। **उकार** की इत्संज्ञा होती है, **क्षण्** शेष रहता है। अतः यह धातु उदित् और **स्वरितेत्** है। **उदित्** का फल **उदितो वा** से क्त्वा को इट् विकल्प से होना है तो **स्वरितेत्** होने का फल **उभयपदी** होना है। अनुदात्तों में इसकी गणना नहीं है, अतः सेट् है। लुङ् लकार में **ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्** से वृद्धि निषिद्ध हो जाती है। शेष लकारों में इसके रूप **तन्** धातु की तरह ही होते हैं।
क्षणु के रूप- लट्- क्षणोति, क्षणुतः, क्षण्वन्ति। क्षणुते, क्षण्वाते, क्षण्वते इत्यादि।
लिट्- चक्षाण, चक्षणतुः, चक्षणुः। चक्षणे, चक्षणाते, चक्षणिरे इत्यादि।
लुट्- क्षणिता, क्षणितारौ, क्षणितारः। क्षणितासि। क्षणितासे, क्षणितासाथे, क्षणिताध्वे इत्यादि।
लृट्- क्षणिष्यति, क्षणिष्यते। **लोट्-** क्षणोतु-क्षणुतात्, क्षणुताम्, क्षण्वन्तु। क्षणुताम्, क्षण्वाताम्।
लङ्- अक्षणोत्, अक्षणुताम्, अक्षण्वन्। अक्षणुत, अक्षण्वाताम्, अक्षण्वत।
विधिलिङ्- क्षणुयात्, क्षणुयाताम्, क्षणुयुः। क्षण्वीत, क्षण्वीयाताम्, क्षण्वीरन्।
आशीर्लिङ्- क्षण्यात्, क्षण्यास्ताम्, क्षण्यासुः। क्षणिषीष्ट, क्षणिषीयास्ताम्, क्षणिषीरन् इत्यादि।
लुङ्-अक्षणीत्, अक्षणिष्टाम्, अक्षणिषुः इत्यादि। **आत्मनेपद में-** अक्षत-अक्षणिष्ट।
लृङ्- अक्षणिष्यत्, अक्षणिष्यत इत्यादि।

क्षिणु च। क्षिणु धातु भी **हिंसा करना** अर्थ में ही है। **उकार** की इत्संज्ञा होती है, **क्षिण्** शेष रहता है। यह धातु **क्षण्** की तरह ही है किन्तु **ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्** की प्रवृत्ति नहीं होती क्योंकि उक्त सूत्र में पढ़ी गई धातुओं में **क्षिण्** धातु नहीं आती।

उप्रत्यये लघूपधस्य गुणो वा। उ-प्रत्यय के परे होने पर **पुगन्तलघूपधस्य च** से होने वाला लघूपधगुण विकल्प से होता है, यह कथन कौमुदीकार का है। कौमुदीकार का अभिप्राय यह है **संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः** अर्थात् जिस विधि में संज्ञा निमित्त हो, वह विधि अनित्य होती है। इस परिभाषा के अनुसार **पुगन्तलघूपधस्य च** से होने वाली गुणविधि उपधासंज्ञा-निमित्तक होने से अनित्य है। अनित्य का मतलब है- कभी होना और कभी न होना। इसीलिए इसके **क्षेणोति, क्षेणुतः** आदि गुण वाले और **क्षिणोति, क्षिणुतः** आदि गुणाभाव वाले रूप बनते हैं।
क्षणु के रूप- लट्- क्षेणोति, क्षेणुतः, क्षेण्वन्ति। क्षिणोति, क्षिणुतः क्षिण्वन्ति। क्षिणुते, क्षिण्वाते, क्षिण्वते।

उकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६७८. अत उत्सार्वधातुके ६।४।११०॥

उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽकारस्य उः स्यात् सार्वधातुके क्ङिति। कुरुतः।

....

लिट्- चिक्षेण, चिक्षिणतुः, चिक्षिणुः। चिक्षिणे, चिक्षिणाते, चिक्षिणिरे इत्यादि।
लुट्- क्षेणिता, क्षेणितारौ, क्षेणितारः। क्षेणितासि, क्षेणितास्थः। क्षेणितासे, क्षेणितासाथे, क्षेणिताध्वे।
लृट्- क्षेणिष्यति, क्षेणिष्यते। **लुट्**- क्षेणोतु-क्षेणुतात्, क्षेणुताम्, क्षेण्वन्तु। क्षिणोतु-क्षिणुतात्, क्षिणुताम्, क्षिण्वन्तु। क्षेणुताम्, क्षेण्वाताम्, क्षेण्वताम्। क्षिणुताम्, क्षिण्वाताम्, क्षिण्वताम्।
लङ्- अक्षेणोत्, अक्षेणुताम्, अक्षेण्वन्। अक्षिणोत्, अक्षिणुताम्, अक्षिण्वन्। अक्षेणुत, अक्षेण्वाताम्, अक्षेण्वत। अक्षिणुत, अक्षिण्वाताम्, अक्षिण्वत। **विधिलिङ्**- क्षेणुयात्, क्षेणुयाताम्, क्षेणुयुः। क्षिणुयात्, क्षिणुयाताम्, क्षिणुयुः। क्षेण्वीत, क्षेण्वीयाताम्, क्षेण्वीरन्। क्षिण्वीत, क्षिण्वीयाताम्, क्षिण्वीरन् इत्यादि। **आशीर्लिङ्**- क्षिण्यात्, क्षिण्यास्ताम्, क्षिण्यासुः। क्षिणिषीष्ट, क्षिणिषीयास्ताम्, क्षिणिषीरन्। **लुङ्**-अक्षेणीत्, अक्षेणिष्टाम्, अक्षेणिषुः इत्यादि। **आत्मनेपद में**- अक्षित-अक्षेणिष्ट।
लृङ्- अक्षेणिष्यत्, अक्षेणिष्यत इत्यादि।

तृणु अदने। तृणु धातु **खाना** अर्थ में है। उकार की इत्संज्ञा करके **तृण्** बचता है। यह उदित्, उभयपदी और सेट् है। उ-प्रत्यय के परे रहने पर विकल्प से लघूपधगुण हो जाता है।
तृणु के रूप- लट्- तर्णोति-तृणोति। तर्णुते-तृणुते।
लिट्- ततर्ण, ततृणतुः, ततृणुः। ततृणे, ततृणाते, ततृणिरे।
लुट्- तर्णिता, तर्णितासि-तर्णितासे। **लृट्**- तर्णिष्यति, तर्णिष्यते।
लुट्- तर्णोतु-तृणोतु। तर्णुताम्-तृणुताम्। **लङ्**- अतर्णोत्, अतृणोत्। अतर्णुत-अतृणुत।
विधिलिङ्- तर्णुयात्-तृणुयात्। तर्ण्वीत, तृण्वीत। **आशीर्लिङ्**- तृण्यात्-तर्णिषीष्ट।
लुङ्- अतर्णीत्, अतर्णिष्टाम्, अतर्णिषुः। अतृत-अतर्णिष्ट, अतर्णिषाताम्, अतर्णिषत।
लृङ्- अतर्णिष्यत्, अतर्णिष्यत।

डुकृञ् करणे। डुकृञ् धातु का अर्थ है- **करना।** इसमें डु की **आदिर्ञिटुडवः** से इत्संज्ञा और ञकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, **कृ** मात्र बचता है। **ड्वित्** होने का फल **ड्वितः क्त्रिः** से **क्त्रि** आदि प्रत्ययों का विधान होना है। उसके बाद **क्त्रेर्मम् नित्यम्** से मप् प्रत्यय होकर **पक्त्रिमम्** आदि की सिद्धि होती है। ञित् होने के कारण यह धातु **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से उभयपदी बन जाता है। अनिट् है।

करोति। कृ-धातु से लट्, तिप्, शप् प्राप्त, उसे बाधकर उ-प्रत्यय, **कृ+उ+ति** बना। उ आर्धधातुक है, उसके परे रहते **कृ** के **ऋकार** के स्थान पर **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से रपर-सहित अर्-गुण हुआ- **कर्+उ+ति** बना। पुनः ति सार्वधातुक के परे रहते इसी सूत्र से उ को भी **ओ-गुण** हुआ, **कर्+ओ+ति** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **करोति** सिद्ध हुआ।
६७८- अत उत्सार्वधातुके। अतः षष्ठ्यन्तम्, उत् प्रथमान्तं, सार्वधातुके सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्** से **प्रत्ययात्, नित्यं करोतेः** से **करोतेः** तथा **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

सार्वधातुक कित् या ङित् के परे होने पर उप्रत्ययान्त कृ धातु के अकार के स्थान पर ह्रस्व उकार आदेश होता है।

उपधादीर्घनिषेधकं विधिसूत्रम्

६७९. न भकुर्छुराम् ८।२।७९॥

भस्य कुर्छुरोरुपधाया न दीर्घः। कुर्वन्ति।

उकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

६८०. नित्यं करोतेः ६।४।१०८॥

करोतेः प्रत्ययोकारस्य नित्यं लोपो म्वोः परयोः।

कुर्वः। कुर्मः। कुरुते। चकार, चक्रे। कर्तासि, कर्तासे। करिष्यति, करिष्यते। करोतु। कुरुताम्। अकरोत्, अकुरुत।

....

तिप्, सिप् और मिप् को छोड़कर अन्यत्र **कृ** को गुण होकर अकार और रपर होकर **अर्** हो जाने पर इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

कुरुतः। कृ-धातु से लट्, तस्, शप् प्राप्त, उसे बाधकर उ-प्रत्यय, **कृ+उ+तस्** बना। उ आर्धधातुक है, उसके परे रहते कृ के ऋकार के स्थान पर **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से रपर-सहित अर्-गुण हुआ- **कर्+उ+तस्** बना। तस् यह **सार्वधातुकमपित्** से ङित् होने के कारण **सार्वधातुक** होते हुए भी इसके परे रहते **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से उ को गुण नहीं हुआ, **कर्+उ+तस्** ही रहा। **अत उत्सार्वधातुके** से **कर्** में ककारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **उकार** आदेश हुआ-**कुर्+उ+तस्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ और सकार को रुत्वविसर्ग करके **कुरुतः** सिद्ध हुआ।

६७९- न भकुर्छुराम्। भञ्च कुर्च छुर्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो भकुर्छुरः, तेषां भकुर्छुराम्। न अव्ययपदं, भकुर्छुराम् षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **र्वोरुपधाया दीर्घ इकः** से **उपधायाः** और **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है।

भसंज्ञक एवं कुर् और छुर् के उपधा को दीर्घ आदेश नहीं होता है।

हलि च से प्राप्त दीर्घ का यह निषेधविधायक सूत्र है।

कुर्वन्ति। लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन में **झि** के **झकार** को **अन्त्** आदेश, गुण, अकार को उकार आदेश तथा प्रत्यय वाले उकार के स्थान पर **इको यणचि** से यण् (वकार)करके **कुर्+व्+अन्ति** बना। **हलि च** से उपधा को दीर्घ प्राप्त था, **न भकुर्छुराम्** से निषेध हो गया। वर्णसम्मेलन होकर **कुर्वन्ति** सिद्ध हुआ। आगे **करोषि, कुरुथः, कुरुथ, करोमि** बनाइये।

६८०- नित्यं करोतेः। नित्यं प्रथमान्तं, करोतेः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्** से **प्रत्ययस्य** और **उतः** की विभक्तिविपरिणाम करके तथा **लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः** से **लोपः** और **म्वोः** की अनुवृत्ति आती है।

मकार और वकार के परे होने पर कृ-धातु से परे प्रत्यय के उकार का नित्य से लोप होता है।

लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः से विकल्प से प्राप्त उकारलोप को बाधकर यह सूत्र नित्य से करता है।

कुर्वः, कुर्मः। कुर्+उ+वस्, कुर्+उ+मस् में वस् और मस् के वकार और मकार को आधार मानकर **नित्यं करोतेः** से उकार का लोप हुआ। **कुर्+वस्, कुर्+मस्** बना,

उलोपविधायकं विधिसूत्रम्

६८१. ये च ६।४।१०९॥

कृञ उलोपो यादौ प्रत्यये परे। कुर्यात्-कुर्वीत। क्रियात्, कृषीष्ट। अकार्षीत्, अकृत। अकरिष्यत्, अकरिष्यत।

....

वर्णसम्मेलन और सकार को रुत्वविसर्ग करने पर **कुर्वः** और **कुर्मः** सिद्ध हो गये। इस तरह कृधातु के लट् लकार परस्मैपद में रूप बने- करोति, कुरुतः, कुर्वन्ति। करोषि, कुरुथः, कुरुथ। करोमि, कुर्वः, कुर्मः। **आत्मनेपद में-** कुरुते, यण् करके कुर्वाते, कुर्वते। कुरुषे, कुर्वाथे, कुरुध्वे। कुर्वे, कुर्वहे, कुर्महे।

चकार। आपने **गोपायाञ्चकार** और **एधाञ्चक्रे** ये रूप उन प्रकरणों में बनाये थे न? उनकी प्रक्रिया में कृ और लिट् की प्रक्रिया का स्मरण करें। कृ से लिट्, तिप्, णल्, अ करके **कृ+अ** बना। द्वित्व, **कृ+कृ अ।** उरत्, रपर, **कर्+कृ+अ,** हलादिशेष, **कुहोश्चुः** से चुत्व, **चकृ+अ, अचो ञ्णिति** से रपर-सहित वृद्धि, **चकार्**+अ, वर्णसम्मेलन- **चकार।** आत्मनेपद में णित् न होने के कारण वृद्धि नहीं होती। अतः **चकृ**+ए में **इको यणचि** से यण् करके **चक्रे** बनता है। इस प्रकार से कृ-धातु के लिट् में रूप बने- **परस्मैपद में-** चकार, चक्रतुः, चक्रुः। चकर्थ, चक्रथुः, चक्र। चकार-चकर, चकृव, चकृम। **आत्मनेपद में-** चक्रे, चक्राते, चक्रिरे। चकृषे, चक्राथे, चकृढ्वे। चक्रे, चकृवहे, चकृमहे।

लुट् लकार के परस्मैपद में- कर्ता, कर्तारौ, कर्तारः। कर्तासि, कर्तास्थः, कर्तास्थ। कर्तास्मि, कर्तास्वः, कर्तास्मः। **आत्मनेपद में-** कर्ता, कर्तारौ, कर्तारः। कर्तासे, कर्तासाथे, कर्ताध्वे। कर्ताहे, कर्तास्वहे, कर्तास्महे।

करिष्यति। कृ धातु से लृट्, ति, स्य करके **ऋद्धनोः स्ये** से **स्य** को **इट्** आगम हुआ, टित् होने के कारण **स्य** के आदि में बैठा, **कृ+इ+स्यति** बना। **स्य** की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा करके कृ के ऋकार को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से रपरसहित गुण करके **कर्+इ+स्यति** बना। इकार से परे सकार को षत्व करके वर्णसम्मेलन करने पर **करिष्यति** यह रूप बनता है।

लृट् लकार के **परस्मैपद में-** करिष्यति, करिष्यतः, करिष्यन्ति। करिष्यसि, करिष्यथः, करिष्यथ। करिष्यामि, करिष्यावः, करिष्यामः। **आत्मनेपद में-** करिष्यते, करिष्येते, करिष्यन्ते। करिष्यसे, करिष्येथे, करिष्यध्वे। करिष्ये, करिष्यावहे, करिष्यामहे।

लोट् परस्मैपद में- करोतु-कुरुतात्, कुरुताम्, कुर्वन्तु। कुरु-कुरुतात्, कुरुतम्, कुरुत। करवाणि, करवाव, करवाम। **आत्मनेपद में-** कुरुताम्, कुर्वाताम्, कुर्वताम्। कुरुष्व, कुर्वाथाम्, कुरुध्वम्। करवै, करवावहै, करवामहै।

लङ् परस्मैपद में- अकरोत्, अकुरुताम्, अकुर्वन्। अकरोः, अकुरुतम्, अकुरुत। अकरवम्, अकुर्व, अकुर्म। **आत्मनेपद में-** अकुरुत, अकुर्वाताम्, अकुर्वत। अकुरुथाः, अकुर्वाथाम्, अकुरुध्वम्। अकुर्वि, अकुर्वहि, अकुर्महि।

६८१- ये च। ये सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **नित्यं करोतेः** से **करोतेः, उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्** से **उतः** और **प्रत्ययात्** का विभक्तिविपरिणाम करके तथा **लोपश्चास्यान्यतरस्याम्म्वोः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है।

सुडागमविधायकं विधिसूत्रद्वयम्

६८२. सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे ६।१।१३७॥

६८३. समवाये च ६।१।१३८॥

सम्परिपूर्वस्य करोतेः सुट् स्याद् भूषणे संघाते चार्थे।

संस्करोति। अलङ्करोतीत्यर्थः। संस्कुर्वन्ति। सङ्घीभवन्तीत्यर्थः। सम्पूर्वस्य क्वचिदभूषणेऽपि सुट्। संस्कृतं भक्षा इति ज्ञापकात्।

....

यकारादि प्रत्यय के परे होने पर कृ-धातु से परे प्रत्यय के उकार का लोप होता है।

कुर्यात्। कृ-धातु से विधिलिङ्, तिप्, यासुट्, गुण, उत्व आदि करके **कुर्+उ+यास्+त** बना। धातु से परे उकार का **ये च** से लोप हुआ, सकार का **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** से लोप हुआ, वर्णसंम्मेलन हुआ- **कुर्यात्।** विधिलिङ् परस्मैपद के रूप- **कुर्यात्, कुर्याताम्, कुर्युः। कुर्याः, कुर्यातम्, कुर्यात। कुर्याम्, कुर्याव, कुर्याम।** आत्मनेपद में सीयुट् होकर सकार का **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** से लोप होता है, यकारादि प्रत्यय के अभाव में **ये च** नहीं लगता, यण्, वर्णसम्मेलन करके बनते हैं- कुर्वीत, कुर्वीयाताम्, कुर्वीरन्। कुर्वीथाः, कुर्वीयाथाम्, कुर्वीढ्वम्। कुर्वीय, कुर्वीवहि, कुर्वीमहि।

क्रियात्। कृ-धातु से आशीर्वाद अर्थ में लिङ्, तिप्, यासुट् करके **कृ+यास्+त्** बना है। यकारादि आर्धधातुक लिङ् परे है यास्, इसलिए **रिङ् शयग्लिङ्क्षु** से कृ के ऋकार के स्थान पर रिङ् आदेश, अनुबन्धलोप, **क्+रि+यास्+त्** बना। सकार का **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च** से लोप हुआ, वर्णसम्मेलन हुआ, **क्रियात्।**

आशीर्लिङ् परस्मैपद में- क्रियात्, क्रियास्ताम्, क्रियासुः। क्रियाः, क्रियास्तम्, क्रियास्त। क्रियासम्, क्रियास्व, क्रियास्म। **आत्मनेपद में-** कृषीष्ट, कृषीयास्ताम्, कृषीरन्। कृषीष्ठाः, कृषीयास्थाम्, कृषीढ्वम्। कृषीय, कृषीवहि, कृषीमहि।

लुङ् में तिप्, अट् आगम, च्लि, सिच्, अपृक्तहल् को ईट् आगम करके **अकृ+स्+ईत्** बना। **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से कृ के ऋकार की वृद्धि करके **अकार्+स्+ईत्** बना, सकार को षत्व और वर्णसम्मेलन करके **अकार्षीत्** बना। **अकार्षीत्, अकार्ष्टाम्, अकार्षुः। अकार्षीः, अकार्ष्टम्, अकार्ष्ट। अकार्षम्, अकार्ष्व, अकार्ष्म।**

अकृत। कृ धातु से लुङ्-लकार के आत्मनेपद में त, अट् आगम, च्लि, सिच् करके **अकृ+स्+त** बना। झल् के परे होने पर सकार का **ह्रस्वादङ्गात्** से लोप हुआ- **अकृत।** झल् परे न होने के कारण सकार का लोप नहीं हुआ- **अकृषाताम्** बना। **अकृत, अकृषाताम्, अकृषत। अकृष्ठाः, अकृषाथाम्, अकृढ्वम्। अकृषि, अकृष्वहि, अकृष्महि।**

लृङ्, परस्मैपद में- **अकरिष्यत्, अकरिष्यताम्, अकरिष्यन्। अकरिष्यः, अकरिष्यतम्, अकरिष्यत। अकरिष्यम्, अकरिष्याव, अकरिष्याम।** आत्मनेपद में- **अकरिष्यत, अकरिष्येताम्, अकरिष्यन्त। अकरिष्यथाः, अकरिष्येथाम्, अकरिष्यध्वम्। अकरिष्ये, अकरिष्यावहि, अकरिष्यामहि।**

सुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

६८४. उपात् प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च ६।१।१३९॥

उपात्कृञः सुट् स्यादेष्वर्थेषु चात्प्रागुक्तयोरर्थयोः। प्रतियत्नो गुणाधानम्। विकृतमेव वैकृतं विकारः। वाक्याध्याहार आकाङ्क्षितैकदेशपूरणम्। उपस्कृता कन्या। उपस्कृता ब्राह्मणाः। एधो दकस्योपस्कुरुते। उपस्कृतं भुङ्क्ते। उपस्कृतं ब्रूते। **वनु याचने॥७॥** वनुते। ववने। **मनु अवबोधने॥८॥** मनुते। मेने। मनिता। मनिष्यते। मनुताम्। अमनुत। मन्वीत। मनिषीष्ट। अमत, अमनिष्ट। अमनिष्यत॥

इति तनादिप्रकरणम्॥१९॥

....

६८२- सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे। सम् च परिश्च सम्परी, ताभ्यां सम्परिभ्याम्। सम्परिभ्यां पञ्चम्यन्तं, करोतौ सप्तम्यन्तं, भूषणे सप्तम्यन्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्।

६८३- समवाये च। समवाये सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। कौमुदीकार ने यहाँ पर दोनों सूत्रों को सम्मिलित कर अर्थ किया है। यहाँ पर **सुट् कात्पूर्वः** इस सूत्र का अधिकार आता है।

यदि सजाना या समूह अर्थ हो तो सम् और परि उपसर्ग से परे कृञ् धातु के ककार से पहले ही सुट् आगम होता है।

सुट् में टकार और उकार की इत्संज्ञा होती है।

संस्करोति। सम् उपसर्गपूर्वक कृ धातु से **संस्करोति** रूप बनता है। **करोति** तो आप बना ही चुके हैं। सम् और करोति के बीच में अर्थात् ककार से पहले **सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे** से सुट् का आगम, अनुबन्धलोप करके **सम्+स्+करोति** बना। मकार के स्थान पर अनुस्वार करके वर्णसम्मेलन करने पर **संस्करोति** रूप बना। **संस्करोति**=संस्कार करता है। **परिष्करोति** भी बनाइये। यहाँ पर सकार को षत्व होता है। सुट् होने से **सम्+कृ** से **संस्कृत** भी बनता है।

संस्कुर्वन्ति। सम् उपसर्गपूर्वक कृ धातु से लट्, प्रथमपुरुष बहुवचन में **संस्कुर्वन्ति** रूप बनता है। **कुर्वन्ति** तो आप बना ही चुके हैं। सम् और कुर्वन्ति के बीच में अर्थात् ककार से पहले **समवाये च** से सुट् का आगम, अनुबन्धलोप करके **सम्+स्+कुर्वन्ति** बना। मकार के स्थान पर अनुस्वार करके वर्णसम्मेलन करने पर **संस्कुर्वन्ति** रूप बना। इसका अर्थ हुआ **संघीभूत होते हैं या एकत्र होते हैं।**

सम्पूर्वस्य क्वचिदभूषणेऽपि सुट्। संस्कृतं भक्षा इति ज्ञापकात्। सम्-पूर्वक कृ धातु से कहीं-कहीं संस्कारभिन्न, भूषणभिन्न अर्थ में भी सुट् होता है, इसका प्रमाण है पाणिनि जी का सूत्र **संस्कृतं भक्षाः।** यह सूत्र भक्ष्यविषयों को एक से दूसरे के मिलाने, सानने के अर्थ में प्रत्यय का विधान करता है। वहाँ पर भक्ष्य अर्थ में **संस्कृतम्** का प्रयोग हुआ है अर्थात् भक्ष्य वस्तुओं के सम्बन्ध में **सुट्** करके **संस्कृत** शब्द का प्रयोग किया गया है।

६८४- उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च। प्रतियत्नश्च वैकृतश्च वाक्याध्याहारश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहाराः, तेषु। उपात् पञ्चम्यन्तं, प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं त्रिपदं सूत्रम्। **सम्परिभ्यां करोतौ**

भूषणे से करोतौ और भूषणे की समवाये च से समवाये की अनुवृत्ति तथा सुट् कात्पूर्वः का अधिकार है।

उप उपसर्ग से परे कृ धातु को सुट् का आगम होता है, यदि प्रतियत्न, वैकृत और वाक्याध्याहार गम्यमान हो तो।

सूत्र में **च** पढ़ा गया है, अतः पूर्व के सूत्रों से **भूषणे, समवाये** का अनुवर्तन किया गया है। **प्रतियत्नो गुणाधानम्**। किसी वस्तु में नये गुणों का आधान अर्थात् उनको उत्पन्न करना **प्रतियत्न** है। **विकृतमेव विकारः**। विकार को ही **वैकृत** कहा गया है। **वाक्याध्याहार आकाङ्क्षितैकदेशपूरणम्**। आकांक्षित वाक्य के एकदेश अर्थात् पदों के अध्याहार को **वाक्याध्याहार** कहा जाता है। ये तीनों और भूषण तथा समवाय अर्थ में भी **उप** इस उपसर्ग परे **कृ** धातु को सुट् आगम का विधान किया गया।

प्रतियत्न का उदाहरण- **एधो दकस्योपस्कुरुते**। **एधः**=लकड़ी, **दकस्य**=जल को **उपस्कुरुते**=उपस्कृत अर्थात् गुणयुक्त करती है। आयुर्वेद में विभिन्न लकड़ियों का गुण जल में उतारने का प्रयोग मिलता है। इस तरह यहाँ पर प्रतियत्न अर्थात् गुणाधान अर्थ बन रहा है। अतः **उप+कुरुते** में **उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च** से **सुट्** होकर **उपस्कुरुते** बन गया। **कृ** धातु यद्यपि उभयपदी है तथापि **गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः** से **प्रतियत्न** अर्थ में केवल आत्मनेपद ही हुआ है।

वैकृत का उदाहरण- **उपस्कृतं भुङ्क्ते**। विकृत ढंग से खाता है। **उप+कृतम्** में **वैकृत** अर्थ के आधार पर **उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च** से **सुट्** आगम होकर **उपस्कृतम्** बना है।

वाक्याध्याहार का उदाहरण- **उपस्कृतं ब्रूते**। वाक्यगत पदों का अध्याहार करते हुए बोलता है। यहाँ पर भी **उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च** से सुट् आगम हुआ है।

भूषण अर्थात् **सजाना** अर्थ का उदाहरण- **उपस्कृता कन्या**। सजी हुई कन्या। यहाँ पर भी **उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च** से सुट् का आगम हुआ है।

समवाय अर्थात् **इकट्ठा होना** अर्थ का उदाहरण- **उपस्कृता ब्राह्मणाः**। इकठ्ठे हुए ब्राह्मण। **धातूनामनेकार्थाः** अथवा **शब्दानामनेकार्थाः** अर्थात् शब्दों के अनेकार्थ होते हैं, इस नियम के अनुसार **उपस्कृत** एक ही शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं।

यहाँ तक उभयपदी धातुओं का विवेचन करके अब आत्मनेपदी धातुओं का विवेचन करते हैं।

वनु याचने। **वनु** धातु **याचने** अर्थात् **मांगने** अर्थ में है। उकार की इत्संज्ञा करके **वन्** बचता है। यह उदित् होते हुए स्वरितेत् है, अतः आत्मनेपदी है और अनुदात्तों में परिगणित न होने से सेट् है। **तन्** धातु के आत्मनेपद के रूपों की तरह इसके रूप होते हैं किन्तु **लिट्** में **न शसददवादिगुणानाम्** से निषेध हो जाने के कारण एत्वाभ्यासलोप नहीं होता है।

वनु के रूप- लट्- वनुते, वन्वाते, वन्वते। **लिट्**- ववने, ववनाते, ववनिरे।

लुट्- वनिता, वनितारौ, वनितारः, वनितासे। **लृट्**- वनिष्यते, वनिष्येते, वनिष्यन्ते।

लुट्- वनुताम्, वन्वाताम्, वन्वताम्। **लङ्**- अवनुत, अवन्वाताम्, अवन्वत।

विधिलिङ्- वन्वीत, वन्वीयाताम्, वन्वीरन्। **आशीर्लिङ्**- वनिषीष्ट, वनिषीयास्ताम्, वनिषीरन्।

लुङ्- अवत-अवनिष्ट, अवनिषाताम्, अवनिषत, अवथाः-अवनिष्ठाः, अवनिषाथाम्, अवनिढ्वम्, अवनिषि, अवनिष्वहि, अवनिष्महि। **लृङ्**- अवनिष्यत, अवनिष्येताम्, अवनिष्यन्त।

मनु अवबोधने। **मनु** धातु **अवबोधने** अर्थात् जानना-मानना अर्थ में है। उकार की इत्संज्ञा करके **मन्** बचता है। यह उदित् होते हुए स्वरितेत् है, अतः आत्मनेपदी है और अनुदात्तों में परिगणित न होने से सेट् है। इसकी प्रक्रिया लगभग **वन्** धातु की तरह ही है किन्तु **लिट्** में **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** से एत्वाभ्यासलोप हो जाता है।

वनु के रूप- लट्- मनुते, मन्वाते, मन्वते। **लिट्-** मेने, मेनाते, मेनिरे।

लुट्- मनिता, मनितारौ, मनितारः, मनितासे। **लृट्-** मनिष्यते, मनिष्येते, मनिष्यन्ते।

लुट्- मेनुताम्, मन्वाताम्, मन्वताम्। **लङ्-** अमनुत, अमन्वाताम्, अमन्वत।

विधिलिङ्- मन्वीत, मन्वीयाताम्, मन्वीरन्। **आशीर्लिङ्-** मनिषीष्ट, मनिषीयास्ताम्, मनिषीरन्।

लुङ्- अमत-अमनिष्ट, अमनिषाताम्, अमनिषत, अमथाः-अमनिष्ठाः, अमनिषाथाम्, अमनिढ्वम्, अमनिषि, अमनिष्वहि, अमनिष्महि। **लृङ्-** अमनिष्यत, अमनिष्येताम्, अमनिष्यन्त।

धातु-प्रकरण में आप आठवाँ प्रकरण पूर्ण कर चुके हैं। धातु और धातु के रूपों का आपको अवश्य ज्ञान हो गया होगा। जितने धातु अभी तक बताये गये हैं, उनकी सिद्धि आप अच्छी तरह से कर सकें और सारे रूप मुखाग्र हों तो आगे बढ़ने में सुविधा होगी। आप **पाणिनीयाष्टाध्यायी** का मासिक पारायण कर ही रहे होंगे। प्रतिमाह एक अध्याय के नियम से पाठ करने पर आठ अध्याय आठ महीने में पूर्ण हो जाते हैं। इतने में ही सारे सूत्र मुखाग्र हो सकते हैं। यदि नहीं हो सके तो दुबारा आवृत्ति करने पर सोलह महीने में तो अवश्य ही कण्ठस्थ हो जायेंगे। आप प्रयास जारी रखें।

परीक्षा

द्रष्टव्यः- **सभी प्रश्न अनिवार्य हैं और उनके अंक भी दिये गये हैं।**

१- अपनी पुस्तिका में तन् और कृ धातु के सारे रूप लिखें। २५

३- तन्, कृ, और मन् धातुओं के लिट्, लोट्, लङ् और लुङ् लकार के मध्यमपुरुष में सभी रूपों की सिद्धि दिखाइये। २५

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का
तनादि-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ क्र्यादयः

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये॥१॥

श्ना-विधायकं विधिसूत्रम्

६८५. क्र्यादिभ्यः श्ना ३।१।८१॥

शपोऽपवादः। क्रीणाति। **ई हल्यघोः।** क्रीणीतः। श्नाभ्यस्तयोरातः। क्रीणन्ति। क्रीणासि। क्रीणीथः। क्रीणीथ। क्रीणामि। क्रीणीवः। क्रीणीमः। क्रीणीते। क्रीणाते। क्रीणते। क्रीणीषे। क्रीणाथे। क्रीणीध्वे। क्रीणे। क्रीणीवहे। क्रीणीमहे। चिक्राय। चिक्रियतुः। चिक्रियुः। चिक्रयिथ-चिक्रेथ। चिक्रिय। चिक्रिये। क्रेता। क्रेष्यति-क्रेष्यते। क्रीणातु-क्रीणीतात्। क्रीणीताम्। अक्रीणात्-अक्रीणीत। क्रीणीयात्-क्रीणीत। क्रीयात्-क्रेषीष्ट। अक्रैषीत्-अक्रेष्ट। अक्रेष्यत्-अक्रेष्यत। **प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च॥२॥** प्रीणाति, प्रीणीते। **श्रीञ् पाके॥३॥** श्रीणाति, श्रीणीते। **मीञ् हिंसायाम्॥४॥**

श्रीधरमुखोल्लासिनी

धातु-प्रकरण में **क्र्यादिप्रकरण** का नवम स्थान है। **क्री** धातु आदि में होने के कारण **क्र्यादिप्रकरण** कहलाता है। जैसे भ्वादि में धातु और प्रत्ययों के बीच में विकरण के रूप में शप्, अदादि में शप् होकर उसका लुक्, जुहोत्यादि में शप् होकर श्लु, दिवादि में श्यन् और स्वादि में श्नु, तुदादि में श, रुधादि में श्नम् और तनादि में उ होते हैं, उसी प्रकार **क्र्यादि में शप्** को बाधकर **श्ना** होता है।

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये। डुक्रीञ् धातु **द्रव्यों का परिवर्तन करना** अर्थात् **खरीदना** अर्थ में है। **डु** की **आदिर्ञिटुडवः** से और ञकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। केवल **क्री** ही शेष रहता है। **ञित्** होने के कारण यह **उभयपदी** हो जाता है। यह अनिट् अर्थात् तासि आदि में इट् न होने वाला धातु है।

६८५- क्र्यादिभ्यः श्ना। क्र्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, श्ना लुप्तप्रथमाकं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कर्तरि शप्** से **कर्तरि** और **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

कर्ता अर्थ में हुए सार्वधातुकसंज्ञक प्रत्यय के परे होने पर क्र्यादिगणपठित धातुओं से श्ना प्रत्यय होता है।

शकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा होती है। शित् होने से सार्वधातुक है और अपित् होने से **सार्वधातुकमपित्** से ङित् हो जाता है। अतः इसके परे होने पर **क्ङिति च** से निषेध होने के कारण गुण और वृद्धि नहीं होते। यह **शप्** का बाधक है।

क्रीणाति। क्री धातु से लट्, तिप्, शप् प्राप्त, उसे बाधकर श्ना, अनुबन्धलोप, **क्री+ना+ति** बना। **क्री** के रेफ से परे **ना** के **नकार** को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से **णत्व** होकर **क्रीणाति** रूप सिद्ध हो जाता है।

क्रीणीतः। क्री से द्विवचन तस्, श्ना करके **क्री+ना+तस्** बना। तस् ङित् है, अतः उसके परे होने पर ना के आकार के स्थान पर **ई हल्यघोः** से ईकार आदेश हुआ, **क्री+नी+तस्** बना, णत्व और रुत्वविसर्ग करके **क्रीणीतः** सिद्ध हुआ।

क्रीणन्ति। बहुवचन में **क्री+ना+अन्ति** बनने के बाद **श्नाभ्यस्तयोरातः** से **ना** के आकार का लोप हुआ, नकार का णत्व करके वर्णसम्मेलन करने पर **क्रीणन्ति** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार आगे भी हलादि ङित् सार्वधातुक के परे ईत्व और अजादि ङित् सार्वधातुक के परे होने पर आकार का लोप करने पर सभी रूप बन जायेंगे। **लट् के रूप परस्मैपद में**- क्रीणाति, क्रीणीतः, क्रीणन्ति। क्रीणासि, क्रीणीथः, क्रीणीथ। क्रीणामि, क्रीणीवः, क्रीणीमः। **आत्मनेपद में**- क्रीणीते, क्रीणाते, क्रीणते। क्रीणीषे, क्रीणाथे, क्रीणीध्वे। क्रीणे, क्रीणीवहे, क्रीणीमहे।

लिट् परस्मैपद में तिप्, णल्, अनुबन्धलोप होकर **क्री+अ** होने के बाद **क्री** को द्वित्व, हलादिशेष करके **कीक्री अ** बना। **ह्रस्वः** से प्रथम क्री के ईकार को ह्रस्व इकार आदेश हुआ, **किक्री+अ** में **कुहोश्चुः** से चुत्व, **चिक्री**, **अचो ञ्णिति** से वृद्धि, **चिक्रै+अ**, आय् आदेश, वर्णसम्मेलन करने पर **चिक्राय** रूप सिद्ध हुआ। अतुस् आदि में **असंयोगाल्लिट् कित्** से कित्व होकर गुण का निषेध होता है और **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से ईकार के स्थान पर इयङ् आदेश होकर **चिक्रियतुः** आदि रूप सिद्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए।

लिट् परस्मैपद के रूप- चिक्राय, चिक्रियतुः, चिक्रियुः। चिक्रयिथ-चिक्रेथ, चिक्रियथुः, चिक्रिय। चिक्राय-चिक्रय, चिक्रियिव, चिक्रियिम। **आत्मनेपद में**- चिक्रिये, चिक्रियाते, चिक्रियिरे। चिक्रियिषे, चिक्रियाथे, चिक्रियिढ्वे-चिक्रियिध्वे। चिक्रिये, चिक्रियिवहे, चिक्रियिमहे।

लुट् परस्मैपद में- क्रेता, क्रेतारौ, क्रेतारः। क्रेतासि, क्रेतास्थः, क्रेतास्थ। क्रेतास्मि, क्रेतास्वः, क्रेतास्मः। **आत्मनेपद में**- क्रेता, क्रेतारौ, क्रेतारः। क्रेतासे, क्रेतासाथे, क्रेताध्वे। क्रेताहे, क्रेतास्वहे, क्रेतास्महे।

लृट् परस्मैपद में- क्रेष्यति, क्रेष्यतः, क्रेष्यन्ति। क्रेष्यसि, क्रेष्यथः, क्रेष्यथ। क्रेष्यामि, क्रेष्यावः, क्रेष्यामः। **आत्मनेपद में**- क्रेष्यते, क्रेष्येते, क्रेष्यन्ते। क्रेष्यसे, क्रेष्येथे, क्रेष्यध्वे। क्रेष्ये, क्रेष्यावहे, क्रेष्यामहे।

लोट् परस्मैपद में- क्रीणातु-क्रीणीतात्, क्रीणीताम्, क्रीणन्तु। क्रीणीहि-क्रीणीतात्, क्रीणीतम्, क्रीणीत। क्रीणानि। लोट् लकार के **वस्** और **मस्** में **आडुत्तमस्य पिच्च** से पित् आट्-आगम होने के कारण आकार का व्यवधान है। अतः हल् परे नहीं मिलता है जिससे

ईत्व नहीं होता और पित् होने के कारण आकार का लोप भी नहीं होता। अतः सवर्णदीर्घ होकर- क्रीणाव, क्रीणाम। **आत्मनेपद में**- क्रीणीताम्, क्रीणाताम्, क्रीणताम्। क्रीणीष्व, क्रीणाथाम्, क्रीणीध्वम्। क्रीणै, क्रीणावहै, क्रीणामहै।

लङ् परस्मैपद में- अक्रीणात्, अक्रीणीताम्, अक्रीणन्। अक्रीणाः, अक्रीणीतम्, अक्रीणीत। अक्रीणाम्, अक्रीणीव, अक्रीणीम। **आत्मनेपद में**- अक्रीणीत, अक्रीणाताम्, अक्रीणत। अक्रीणीथाः, अक्रीणाथाम्, अक्रीणीध्वम्। अक्रीणि, अक्रीणीवहि, अक्रीणीमहि।

विधिलिङ् परस्मैपद में- क्रीणीयात्, क्रीणीयाताम्, क्रीणीयुः। क्रीणीयाः, क्रीणीयातम्, क्रीणीयात। क्रीणीयाम्, क्रीणीयाव, क्रीणीयाम। **आत्मनेपद में**- क्रीणीत, क्रीणीयाताम्, क्रीणीरन्। क्रीणीथाः, क्रीणीयाथाम्, क्रीणीध्वम्। क्रीणीय, क्रीणीवहि, क्रीणीमहि।

आशीर्लिङ् में- क्रीयात्, क्रीयास्ताम्, क्रीयासुः। क्रीयाः, क्रीयास्तम्, क्रीयास्त। क्रीयासम्, क्रीयास्व, क्रीयास्म। **आत्मनेपद में**- क्रेषीष्ट, क्रेषीयास्ताम्, क्रेषीरन्। क्रेषीष्ठाः, क्रेषीयास्थाम्, क्रेषीढ्वम्। क्रेषीय, क्रेषीवहि, क्रेषीमहि।

लुङ् परस्मैपद में- **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से वृद्धि। अक्रैषीत्, अक्रैष्टाम्, अक्रैषुः। अक्रैषीः, अक्रैष्टम्, अक्रैष्ट। अक्रैषम्, अक्रैष्व, अक्रैष्म। **आत्मनेपद में**- **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण। अक्रेष्ट, अक्रेषाताम्, अक्रेषत। अक्रेष्ठाः, अक्रेषाथाम्, अक्रेढ्वम्, अक्रेषि, अक्रेष्वहि, अक्रेष्महि।

लृङ् परस्मैपद में- अक्रेष्यत्, अक्रेष्यताम्, अक्रेष्यन्। अक्रेष्यः, अक्रेष्यतम्, अक्रेष्यत। अक्रेष्यम्, अक्रेष्याव, अक्रेष्याम। **आत्मनेपद में**- अक्रेष्यत, अक्रेष्येताम्, अक्रेष्यन्त। अक्रेष्यथाः, अक्रेष्येथाम्, अक्रेष्यध्वम्। अक्रेष्ये, अक्रेष्यावहि, अक्रेष्यामहि।

प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च। प्रीञ् धातु **तृप्त करना, तृप्त होना, चमकना** अर्थों में है। यह भी क्रीञ् धातु की तरह ञित् होने से उभयपदी है। इसके भी रूप क्रीञ् की तरह ही चलते हैं। यहाँ पर लट् लकार के पूरे रूप और शेष लकारों के प्रथमपुरुष के एकवचन के ही रूप दिये जा रहे हैं, शेष रूप आप स्वयं बनाने का प्रयत्न करें।

लट् परस्मैपद में- प्रीणाति, प्रीणीतः, प्रीणन्ति। प्रीणासि, प्रीणीथः, प्रीणीथ। प्रीणामि, प्रीणीवः, प्रीणीमः। **आत्मनेपद में**- प्रीणीते, प्रीणाते, प्रीणते। प्रीणीषे, प्रीणाथे, प्रीणीध्वे। प्रीणे, प्रीणीवहे, प्रीणीमहे।

लिट्- **पिप्राय-पिप्रिये**। लुट्- **प्रेता, प्रेतासि-प्रेतासे**। लृट्- **प्रेष्यति-प्रेष्यते**। लोट्- **प्रीणातु-प्रीणीताम्**। लङ्- **अप्रीणात्-अप्रीणीत**। विधिलिङ्- **प्रीणीयात्-प्रीणीत**। आशीर्लिङ्- **प्रीयात्-प्रेषीष्ट**। लुङ्- **अप्रैषीत्-अप्रेष्ट**। लृङ्- **अप्रेष्यत्-अप्रेष्यत**।

श्रीञ् पाके। श्रीञ् धातु **पकाना** अर्थ में है। यह भी प्रीञ् धातु की तरह ञित् होने से उभयपदी है। इसके भी रूप क्रीञ् की तरह ही चलते हैं। यहाँ पर लट् लकार के पूरे रूप और शेष लकारों के प्रथमपुरुष के एकवचन के ही रूप दिये जा रहे हैं, शेष रूप आप स्वयं बनाने का प्रयत्न करें।

लट् परस्मैपद में- श्रीणाति, श्रीणीतः, श्रीणन्ति। श्रीणासि, श्रीणीथः, श्रीणीथ। श्रीणामि, श्रीणीवः, श्रीणीमः। **आत्मनेपद में**- श्रीणीते, श्रीणाते, श्रीणते। श्रीणीषे, श्रीणाथे, श्रीणीध्वे। श्रीणे, श्रीणीवहे, श्रीणीमहे।

लिट्- **शिश्राय-शिश्रिये**। लुट्- **श्रेता, श्रेतासि-श्रेतासे**। लृट्- **श्रेष्यति-श्रेष्यते**।

णत्वविधायकं विधिसूत्रम्

६८६. हिनुमीना ८।४।१५॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्यैतयोर्नस्य णः स्यात्।

प्रमीणाति, प्रमीणीते। मिनातीत्यात्त्वम्। ममौ। मिम्यतुः। ममिथ, ममाथ। मिम्ये। माता। मास्यति। मीयात्, मासीष्ट। अमासीत्। अमासिष्टाम्। अमास्त। **षिञ् बन्धने॥५॥** सिनाति, सिनीते। सिषाय, सिष्ये। सेता। **स्कुञ् आप्लवने॥६॥**

....

लोट्- **श्रीणातु-श्रीणीताम्।** लङ्- **अश्रीणात्-अश्रीणीत।** विधिलिङ्- **श्रीणीयात्-श्रीणीत।** आशीर्लिङ्- **श्रीयात्-श्रेषीष्ट।** लुङ्- **अश्रैषीत्-अश्रेष्ट।** लृङ्- **अश्रेष्यत्-अश्रेष्यत।**

मीञ् हिंसायाम्। यह धातु **हिंसा करना** अर्थ में है। **ञकार** की इत्संज्ञा होती है। **मी** शेष रह जाता है। **ञित्** होने से उभयपदी तथा उदात्तों में न पढ़े जाने के कारण अनुदात्त है, अतः **तासि** आदि के परे अनिट् है किन्तु क्रादिनियम से लिट् में इट् हो जाता है साथ ही **थल्** में भारद्वाज के नियम से विकल्प से इट् होता है।

लट् में **मीनाति, ई हल्यघोः** से **ईत्त्व** होकर **मीनीतः, श्नाभ्यस्तयोरातः** से आकार का लोप- **मिनन्ति, मिनीते, मीनाते, मीनते** आदि रूप बनते हैं। **लिट्** में **मिनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च** से **मी** के ईकार को **आत्त्व** होकर **मा** बन जाता है। उसके बाद **पपौ** की तरह **आत औ णलः** से **णल्** के स्थान पर **औकार** आदेश, वृद्धि आदि होकर **ममौ** बनता है। **अतुस्** में कित्व होने से एज्निमित्त परे न मिलने के कारण आत्त्व नहीं होता। अतः **मिमी+अतुस्** में **एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य** से **यण्** होकर **मिम्यतुः** बन जाता है।

लिट् में इसके रूप- ममौ, मिम्यतुः, मिम्युः, ममिथ-ममाथ, मिम्यथुः, मिम्य, ममौ, मिम्यिव, मिम्यिम। मिम्ये, मिम्याते, मिम्यिरे, मिम्यिषे, मिम्याथे, मिम्यिढ्वे-मिम्यिध्वे, मिम्ये, मिम्यिवहे, मिम्यिमहे बनते हैं। **लुट्** में एज्निमित्त मिल जाने से **मिनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च** से आत्त्व होकर- माता, मातारौ, मातारः, मातासि, मातासे। **लृट्** में- मास्यति, मास्यते। **लोट्** में- मीनातु-मीनीतात्, मीनीताम्, मीनन्तु, मीनीहि। **आत्मनेपद में-** मीनीताम्, मीनाताम् मीनताम्। लङ् में- अमीनात्, अमीनीताम्, अमीनन्। **आत्मनेपद में-** अमीनीत, अमीनीताम्, अमीनत। **परस्मैपद विधिलिङ्** में- मीनीयात्, मीनीयाताम्, मीनीयुः। **आत्मनेपद में-** मीनीत, मीनीयाताम्, मीनीरन्। **आशीर्लिङ्** में- मीयात्, मीयास्ताम्, मीयासुः। **आत्मनेपद में-** मासीष्ट, मासीयास्ताम्, मासीरन्। लुङ् में आत्त्व हो जाने के बाद **यमरमनमातां सक् च** से **सक्** और उसको **इट्** का आगम होकर- अमासीत्, अमासिष्टाम्, अमासिषुः **आत्मनेपद** में अमास्त, अमासाताम्, अमासत आदि रूप बनते हैं। **लृङ्** में- अमास्यत्, अमास्यत।

६८६- **हिनुमीना।** हिनुश्च मीनाश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो हीनुमीनौ, तयोर्हीनुमीना इति लुप्तषष्ठीकं पदम्। यहाँ पर आचार्य ने विभक्ति के विना ही पढ़ा है। **उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य** से **उपसर्गात्** और **रषाभ्यां नो णः समानपदे** पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है।

उपसर्गस्थ निमित्त से परे हिनु और मीना के नकार को णकार आदेश होता है।

स्वादिगणीय **हि** धातु से **श्नु** और इस गण के **मी** धातु से **श्ना** करके **हिनु** और

श्नुविधायकं विधिसूत्रम्

६८७. स्तन्भुस्तुन्भुस्कन्भुस्कुन्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च ३।१।८२॥

चात् श्ना। स्कुनोति, स्कुनाति। स्कुनुते, स्कुनीते। चुस्काव, चुस्कुवे। स्कोता। अस्कौषीत्, अस्कोष्ट।

स्तन्भ्वादयश्चत्वारः सौत्राः। सर्वे रोधनार्थाः परस्मैपदिनः।

....

मीना बन जाने के बाद उपसर्ग में यदि **रेफ** और **षकार** हो तो प्रत्यय वाले **नकार** को इससे **णकार** आदेश हो जाता है। स्मरण रहे कि सूत्रार्थ में **उपसर्गस्थान्निमित्तात्** का तात्पर्य **रेफ** और **षकार** ही है। स्वादि में **प्र+हिनोति** में **प्रहिणोति** रूप बन जाता है।

प्रमीणाति। प्र+मीनाति में उक्त सूत्र **हिनुमीना** से णत्व होकर **प्रमीणाति** बन जाता है। इसी तरह **प्र+मीनीते** से भी **प्रमीणीते** बनता है।

षिञ् बन्धने। यह धातु **बाँधना** अर्थ में है। **ञकार** की इत्संज्ञा होती है। **धात्वादेः षः सः** से सकार आदेश होता है। **सि** शेप रह जाता है। **षोपदेश** होने से **सिषाय** में **आदेशावयव** द्वितीय **सकार** को **षत्व** हो जायेगा। ञित् होने से उभयपदी तथा उदात्तों में न पढ़े जाने के कारण अनुदात्त है, अतः **तासि** आदि के परे अनिट् है किन्तु क्रादिनियम से लिट् में इट् हो जाता है साथ ही **थल्** में भारद्वाज के नियम से विकल्प से इट् होता है। इस धातु में **आत्त्व** का प्रसंग नहीं है, किन्तु **ई हल्यघोः** की प्रवृत्ति तो यथास्थान पर होती ही है।

रूपमाला-

लट्- सिनाति, सिनीतः, सिनन्ति, सिनीते, सिनाते, सिनते। **लिट्-** सिषाय, सिष्यतुः, सिष्युः। सिष्ये, सिष्याते, सिष्यिरे। **लुट्-** सेता, सेतारौ, सेतारः, सेतासि, सेतासे। **लृट्-** सेष्यति, सेष्यते।

लोट्- सिनातु-सिनीतात्, सिनीताम्, सिनन्तु। सिनीताम्, सिनाताम्, सिनताम्,

लङ्- असिनात्, असिनीताम्, असिनन्। असिनीत, असिनीताम्, असिनत।

विधिलिङ्- सिनीयात्, सिनीयाताम्, सिनीयुः। सिनीत, सिनीयाताम्, सिनीरन्।

आशीर्लिङ्- सीयात्, सीयास्ताम्, सीयासुः। सेषीष्ट, सेषीयास्ताम्, सेषीरन्।

लुङ्- **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु।** असैषीत्, असैष्टाम्, असैषुः। असेष्ट, असेषाताम्, असेषत।

लृङ्- असेष्यत्। असेष्यत।

स्कुञ् आप्रवणे। यह धातु **कूदना, ऊपर उठाना** अर्थ में है। **ञकार** की इत्संज्ञा होती है। **स्कु** शेष रह जाता है। ञित् होने से उभयपदी तथा उदात्तों में न पढ़े जाने के कारण अनुदात्त है, अतः **तासि** आदि के परे अनिट् होता है किन्तु क्रादिनियम से लिट् में नित्य से इट् हो जाता है साथ ही **थल्** में भारद्वाज के नियम से विकल्प से इट् होता है। इस धातु से आग्रिम सूत्र के द्वारा **श्ना** और **श्नु** दोनों का विधान किया गया है।

६८७- **स्तन्भुस्तुन्भुस्कन्भुस्कुन्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च।** स्तन्भुश्च स्तुन्भुश्च स्कन्भुश्च स्कुन्भुश्च स्कुञ् च [illegible]पामितरेतरद्वन्द्वः स्तन्भुस्तुन्भुस्कन्भुस्कुन्भुस्कुञस्तेभ्यः। स्तन्भुस्तुन्भुस्कन्भुस्कुन्भुस्कुञ्भ्य. पञ्चम्यन्तं, श्नुः प्रथमान्तं च अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **क्र्यादिभ्यः श्ना** से **श्ना, कर्तरि शप्** से **कर्तरि** और **सार्वधातुके यक्** से **सार्वधातुके** की अनुवृत्ति आती है।

कर्त्रर्थक सार्वधातुक के परे होने पर स्तन्भु, स्तुन्भु, स्कन्भु, स्कुन्भु एवं स्कुञ् **धातुओं से श्नु प्रत्यय होता है और पक्ष में श्ना भी होता है।**

शानजादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६८८. हलः श्नः शानज्झौ ३।१।८३॥

हलः परस्य श्नः शानजादेशः स्याद्धौ परे। स्तभान।

....

स्तन्भु आदि चार धातुएँ धातुपाठ में पठित नहीं हैं किन्तु पाणिनि जी ने सूत्र में पढ़ा है, अतः ये **सौत्र धातु** कहलाते हैं। इन सभी धातुओं का **रोकना** अर्थ है। यहाँ पर **स्कुञ्** धातु का प्रसंग है। **श्ना** होने के पक्ष में **स्कुनाति** और **श्नु** होने के पक्ष में **स्कुनोति** रूप बनते हैं।

रूपमाला-

लट्- परस्मैपद श्नुपक्ष- स्कुनोति, स्कुनुतः, स्कुन्वन्ति। **परस्मैपद श्नापक्ष-**स्कुनाति, स्कुनीतः, स्कुनन्ति। **आत्मनेपद श्नुपक्ष-** स्कुनुते, स्कुन्वाते, स्कुन्वते। **आत्मनेपद श्नापक्ष-** स्कुनीते, स्कुनाते, स्कुनते। **लिट्- शर्पूर्वाः खयः।** चुस्काव, चुस्कुवतुः, चुस्कुवुः, चुस्कविथ-चुस्कोथ। चुस्कुवे, चुस्कुवाते, चुस्कुविरे। **लुट्-** स्कोता, स्कोतारौ, स्कोतारः, स्कोतासि, स्कोतासे। **लृट्-** स्कोष्यति, स्कोष्यते। **लोट्- परस्मैपद श्नुपक्ष-** स्कुनोतु-स्कुनुतात्, स्कुनुताम्, स्कुन्वन्तु। **परस्मैपद श्नापक्ष-** स्कुनातु-स्कुनीतात्, स्कुनीताम्, स्कुनन्तु। **आत्मनेपद श्नुपक्ष-** स्कुनुताम्, स्कुन्वाताम्, स्कुन्वताम्। **आत्मनेपद श्नापक्ष-** स्कुनीताम्, स्कुनाताम्, स्कुनताम्। **लङ्- परस्मैपद श्नुपक्ष-** अस्कुनोत्, अस्कुनुताम्, अस्कुन्वन्। **परस्मैपद श्नापक्ष-** अस्कुनात्, अस्कुनीताम्, अस्कुनन्। **आत्मनेपद श्नुपक्ष-** अस्कुनुत, अस्कुन्वाताम्, अस्कुन्वत। **आत्मनेपद श्नापक्ष-** अस्कुनीत, अस्कुनाताम्, अस्कुनत। **परस्मैपद विधिलिङ्-** स्कुनुयात्, स्कुनीयात्। **आत्मनेपद-** स्कुनीत, स्कुन्वीत। **परस्मैपद आशीर्लिङ्-** स्कूयात्। **आशीर्लिङ्** में आर्धधातुक लकार होने के कारण **श्ना, श्नु** दोनों नहीं होते। अतः एक ही रूप बनता है। आत्मनेपद में भी और परस्मैपद में भी। **स्कोषीष्ट।** लुङ्- **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से वृद्धि- अस्कौषीत्, अस्कौष्टाम्, अस्कौषुः। सार्वधातुकगुण- अस्कोष्ट, अस्कोषाताम्, अस्कोषत। लृङ्- अस्कोष्यत्, अस्कोष्यत।

अब **स्तन्भु** आदि चार धातु के विषय में बताते हैं। ये चारो **रोकने** अर्थ में सूत्र में पठित सौत्र धातुएँ हैं। **उकार** की इत्संज्ञा होती है। **स्तन्भ्, स्तुन्भ्, स्कन्भ्** और **स्कुन्भ्** शेष रह जाते हैं। ये चारो **उदित्** और **सेट्** हैं। अतः परस्मैपदी हैं। **स्तन्भुस्तुन्भुस्कन्भुस्कुन्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च** से **श्ना** और **श्नु** दोनों विकरण आते हैं और इनके अपित् शित् होने के कारण **सार्वधातुकमपित्** से धातुएँ ङित् हो जाती हैं। अतः उपधाभूत नकार का **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से लोप हो जाता है। आर्धधातुक के परे रहते ङित्त्वाभाव होने से लोप न हो पाने के कारण उपधाभूत नकार को **अनुस्वार** और **परसवर्ण** होकर **स्तम्भ्, स्तुम्भ्, स्कम्भ्** और **स्कुम्भ्** हो जाते हैं। लिट् में द्वित्व के बाद **शर्पूर्वाः खयः** से दो धातुओं में तकार और दो धातुओं में ककार शेष रह जाते हैं।

लट्-श्नुपक्ष- स्तभ्नोति, स्तभ्नुतः, स्तभ्नुवन्ति। यहाँ पर पूर्व में संयोग होने से **हुश्नुवोः सार्वधातुके** से यण् नहीं होता किन्तु **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से उवङ् हो जाता है। **श्नापक्ष** में स्तभ्नाति, स्तभ्नीतः। स्तभ्नन्ति। **लिट्-** तस्तम्भ, तस्तम्भतुः, तस्तम्भुः। तस्तम्भिथ। **लुट्-** स्तम्भिता। **लृट्-** स्तम्भिष्यति। **लोट्** के **श्नु** पक्ष में स्तभ्नोतु-स्तभ्नुतात्,

वैकल्पिकाङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६८९. जृस्तन्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च ३।१।५८।।

च्लेरङ् वा स्यात्।

षत्वविधायकं विधिसूत्रम्

६९०. स्तन्भेः ८।३।६७।।

स्तन्भेः सौत्रस्य सस्य षः स्यात्। व्यष्टभत्। अस्तम्भीत्।

युञ् बन्धने।।७।। युनाति, युनीते। योता। **क्रूञ् शब्दे।।८।।** क्रूनाति, क्रूनीते। क्रविता। **द्रूञ् हिंसायाम्।।९।।** द्रूणाति, द्रूणीते। **पूञ् पवने।।१०।।**

....

स्तभ्नुताम्, स्तभ्नुवन्तु। **श्ना** के पक्ष में भी **स्तभ्नातु-स्तभ्नीतात्, स्तभ्नीताम्, स्तम्भ्नुवन्तु** बन जाने के बाद **सिप्** में कुछ विशेषता के लिए निम्नलिखित सूत्र प्रवृत्त होता है।

६८८-हलः श्नः शानज्झौ। हलः पञ्चम्यन्तं, श्नः षष्ठ्यन्तं, शानच् प्रथमान्तं, हौ सप्तम्यन्तमनेकपदं सूत्रम्।

हल् से परे श्ना के स्थान पर शानच् आदेश होता है।

शानच् में **शकार** और **चकार** की इत्संज्ञा के बाद **आन** शेष रहता है। अनेकाच् होने के कारण सर्वादेश हुआ है।

स्तभान। स्तन्भ् से **लोट्** में **सिप्** के स्थान पर **हि** आदेश हो जाने के बाद **स्तभ्+ना+हि** बना है। श्ना वाले ना के स्थान पर **हलः श्नः शानज्झौ** से **शानच्** आदेश होकर अनुबन्धलोप के बाद **स्तभ्+आन+हि** बना। **अतो हेः** से हि का लोप हो जाता है, जिससे **स्तभान** बन जाता है।

लोट्- श्ना के पक्ष में- स्तभ्नातु-स्तभ्नीतात्, स्तभ्नीताम्, स्तभ्नन्तु, स्तभान-स्तभ्नीतात्, स्तभ्नीतम्, स्तभ्नीत, स्तभ्नानि, स्तभ्नाव, स्तभ्नाम। **लङ्- श्नुपक्ष-** अस्तभ्नोत्, अस्तभ्नुताम्, अस्तभ्नुवन्। **श्नापक्ष-** अस्तभ्नात्, अस्तभ्नीताम्, अस्तभ्नन्। **विधिलिङ्-श्नुपक्ष-** स्तभ्नुयात्। **श्नापक्ष-** स्तभ्नीयात्। **आशीर्लिङ्** में यासुट् के कित् होने के कारण **अनिदितां हल उपधाया क्ङिति** से मकार-रूप नकार का लोप करके **स्तभ्यात्, स्तभ्याताम्, स्तभ्यासुः।**

६८९- जृस्तन्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च। जृश्च, स्तन्भुश्च, म्रुचुश्च, म्लुचुश्च, ग्रुचुश्च, ग्लुचुश्च, ग्लुञ्चुश्च, श्विश्च तेषामितरेतरद्वन्द्व जृस्तन्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्वयः, तेभ्यः। जृस्तन्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **च्लेः सिच्** से **च्लेः**, **अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्** से **अङ्** और **इरितो वा** से **वा** की अनुवृत्ति आती है।

जृ, स्तन्भु, म्रुचु, म्लुचु, ग्रुचु, ग्लुचु, ग्लुञ्चु और श्वि धातुओं से परे च्लि के स्थान पर विकल्प से अङ्-आदेश होता है।

अङ् में **ङकार** की इत्संज्ञा होकर **अ** शेष रह जाता है।

अस्तभत्, अस्तम्भीत्। लुङ् में **स्तम्भ्** से तिप्, इकार का लोप, अट् का आगम, च्लि, उसके स्थान पर **जृस्तन्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च** से विकल्प से **अङ्** आदेश करके **अस्तम्भ्+अत्** बना है। **अङ्** के **ङित्** होने के कारण उपधाभूत मकार स्थानीय नकार का **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से लोप होकर **अस्तभ्+अत्** बना। वर्णसम्मेलन

होकर **अस्तभत्** सिद्ध हुआ। अङ् न होने के पक्ष में च्लि के स्थान पर **सिच्** होकर **इट्** और **ईट्** आगम होने के बाद सकार का **इट ईटि** से लोप और सवर्णदीर्घ करके **अस्तम्भीत्** सिद्ध हो जाता है। इस तरह **अङ्** के पक्ष में **अस्तभत्, अस्तभताम्, अस्तभन्** और **सिच्** के पक्ष में **अस्तम्भीत्, अस्तम्भिष्टाम्, अस्तम्भिषुः** आदि रूप बनते हैं। लृङ् में **अस्तम्भिष्यत्।**

६९०- स्तन्भेः। षष्ठ्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **उपसर्गात् सुनोति०** से **उपसर्गात्** तथा **सहेः साडः सः** से **सः** की अनुवृत्ति और **अपदान्तस्य मूर्धन्यः** एवं **इणकोः** का अधिकार है।

उपसर्गस्थ निमित्त से परे सौत्र धातु स्तन्भ् के सकार के स्थान पर षकार आदेश होता है।

व्यष्टभत्। **वि+अस्तभत्** में षत्व के लिए उपसर्ग में स्थित निमित्त है **इकार,** उससे परे धातु के सकार को षत्व हो जाता है। **प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि** सूत्र होने के कारण अट् के व्यवधान होने पर भी षत्व होता। **षकार** के योग में तकार को **ष्टुना ष्टुः** से टवर्ग आदेश होकर **वि+अष्टभत्** बना। यण् होकर **व्यष्टभत्** बन जाता है।

स्तुन्भ् धातु के प्रथमपुरुष एकवचन के रूप- **स्तुभ्नोति, स्तुभ्नाति। तुस्तुम्भ। स्तुम्भिता। स्तुम्भिष्यति। स्तुभ्नोतु, स्तुभ्नातु। अस्तुभ्नोत्, अस्तुभ्नात्। स्तुभ्नुयात्, स्तुभ्नीयात्। स्तुभ्यात्। अस्तुम्भीत्। अस्तुम्भिष्यत्।**

स्कन्भ् धातु के प्रथमपुरुष एकवचन के रूप- **स्कभ्नोति, स्कभ्नाति। चस्कम्भ। स्कम्भिता। स्कम्भिष्यति। स्कभ्नोतु, स्कभ्नातु। अस्कभ्नोत्, अस्कभ्नात्। स्कभ्नुयात्, स्कभ्नीयात्। स्कभ्यात्। अस्कम्भीत्। अस्कम्भिष्यत्।**

स्कुन्भ् धातु के प्रथमपुरुष एकवचन के रूप- **स्कुभ्नोति, स्कुभ्नाति। चुस्कुम्भ। स्कुम्भिता। स्कुम्भिष्यति। स्कुभ्नोतु, स्कुभ्नातु। अस्कुभ्नोत्, अस्कुभ्नात्। स्कुभ्नुयात्, स्कुभ्नीयात्। स्कुभ्यात्। अस्कुम्भीत्। अस्कुम्भिष्यत्।**

युञ् बन्धने। युञ् धातु **बाँधने** अर्थ में है। ञकार की इत्संज्ञा होती है, **यु** शेष रहता है। ञित् होने से **उभयपदी** है और **ऊदृदन्तै०** इस कारिका में परिगणित न होने से **अनिट्** है लिट् में क्रादिनियम से नित्य से इट् होता है परन्तु थल् में भारद्वाजनियम से विकल्प से हो जाता है।

लट्- युनाति। युनीते। **लिट्-** युयाव, युयुवतुः, युयुवुः, युयविथ-युयोथ। युयुवे, युयुवाते, युयुविरे। **लुट्-** योता, योतासि। योतासे। **लृट्-** योष्यति, योष्यते। **लोट्-** युनातु, युनीताम्। **लङ्-** अयुनात्, अयुनीत। **विधिलिङ्-** युनीयात्, युनीत। **आशीर्लिङ्-** यूयात्, योषीष्ट। **लुङ्-** अयौषीत्, अयोष्ट। **लृङ्-** अयोष्यत्, अयोष्यत।

क्नूञ् शब्दे। यह धातु **शब्द करना** अर्थ में है। ञकार की इत्संज्ञा होती है, **क्नू** शेष रहता है। ञित् होने से **उभयपदी** है और **ऊदन्त** होने से **सेट्** है।

लट्- क्नूनाति। क्नूनीते। **लिट्-** चुक्नाव, चुक्नुवतुः, चुक्नुवुः, चुक्नविथ। चुक्नुवे, चुक्नुवाते, चुक्नुविरे। **लुट्-** क्नविता, क्नवितासि, क्नवितासे। **लृट्-** क्नविष्यति, क्नविष्यते। **लोट्-** क्नूनातु, क्नूनीताम्। **लङ्-** अक्नूनात्, अक्नूनीत। **विधिलिङ्-** क्नूनीयात्, क्नूनीत। **आशीर्लिङ्-** क्नूयात्, क्नविषीष्ट। **लुङ्-** अक्नावीत्, अक्नविष्ट। **लृङ्-** अक्नविष्यत्, अक्नविष्यत।

द्रूञ् हिंसायाम्। यह धातु **हिंसा करना** अर्थ में है। ञकार की इत्संज्ञा होती है,

ह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्

६९१. प्वादीनां ह्रस्वः ७।३।८०॥

पूञ्-लूञ्-स्तॄञ्-कॄञ्-वॄञ्-धूञ्-शॄ-पॄ-वॄ-भॄ-मॄ-दॄ-जॄ-झॄ-धॄ-नॄ-कॄ-ॠ-गॄ-ज्या-री-ली-व्ली-प्लीनां चतुर्विंशतेः शिति ह्रस्वः। पुनाति, पुनीते। पविता। **लूञ् छेदने॥११॥** लुनाति, लुनीते। **स्तॄञ् आच्छादने॥१२॥** स्तृणाति। **शर्पूर्वाः खयः।** तस्तार, तस्तरतुः। तस्तरे। स्तरीता, स्तरिता। स्तृणीयात्, स्तृणीत। स्तीर्यात्॥

....

क्नू शेष रहता है। ञित् होने से **उभयपदी** है और **ऊदन्त** होने से **सेट्** है। **श्ना** में रेफ से परे नकार मिलने के कारण णत्व हो जाता है।

लट्- द्रूणाति। द्रूणीते। **लिट्**- दुद्राव, दुद्रुवतुः दुद्रुवुः, दुद्रविथ। दुद्रुवे, दुद्रुवाते, दुद्रुविरे। **लुट्**- द्रविता, द्रवितासि, द्रवितासे। **लृट्**- द्रविष्यति, द्रविष्यते। **लोट्**- द्रुणातु, द्रुणीताम्। **लङ्**- अद्रूणात्, अद्रूणीत। **विधिलिङ्**- द्रूणीयात्, द्रूणीत। **आशीर्लिङ्**- द्रूयात्, द्रविषीष्ट। **लुङ्**- अद्रावीत्, अद्रविष्ट। **लृङ्**- अद्रविष्यत्, अद्रविष्यत।

पूञ् पवने। पूञ् धातु **पवित्र करना** अर्थ में है। ञकार की इत्संज्ञा होती है, **पू** शेष रहता है। ञित् होने से **उभयपदी** है और वलादि आर्धधातुक को इट् होता है। **श्ना** के परे रहते अग्रिम सूत्र **प्वादीनां ह्रस्वः** से ह्रस्व हो जाता है।

६९१- प्वादीनां ह्रस्वः। प्वादीनां षष्ठ्यन्तं, ह्रस्वः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ष्ठिवुक्लमुचमां शिति** से **शिति** की अनुवृत्ति आती है।

शित् परे होने पर पूञ्, लूञ्, स्तॄञ्, कॄञ्, वॄञ्, धूञ्, शॄ, पॄ, वॄ, भॄ, मॄ, दॄ, जॄ, झॄ, धॄ, नॄ, कॄ, ॠ, गॄ, ज्या, री, ली, व्ली और प्ली धातुओं को ह्रस्व होता है।

लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में श्ना के शित्व के कारण ह्रस्व करने के लिए यह लगेगा, शेष लकारों में नहीं लगेगा।

पुनाति। पू-धातु से लट्, तिप्, श्ना करके **पू+नाति** बना। **प्वादीनां ह्रस्वः** से पू के ऊकार को ह्रस्व होने पर- **पुनाति**। इस प्रकार से परस्मैपद में रूप बनते हैं- **पुनाति, पुनीतः, पुनन्ति। पुनासि, पुनीथः, पुनीथ। पुनामि, पुनीवः, पुनीमः।** आत्मनेपद में- **पुनीते, पुनाते, पुनते। पुनीषे, पुनाथे, पुनीध्वे। पुने, पुनीवहे, पुनीमहे।** शेष लकारों के प्रथमपुरुष के एकवचन के ही रूप दिये जा रहे हैं, शेष रूपों को आप स्वयं बनाने का प्रयत्न करें।

लिट्- **पुपाव-पुपुवे।** लुट्- **पविता, पवितासि-पवितासे।** लृट्- **पविष्यति-पविष्यते।** लोट्- **पुनातु-पुनीताम्।** लङ्- **अपुनात्-अपुनीत।** विधिलिङ्- **पुनीयात्-पुनीत।** आशीर्लिङ्- **पूयात्-पविषीष्ट।** लुङ्- **अपावीत्-अपविष्ट।** लृङ्- **अपविष्यत्-अपविष्यत।**

लूञ् छेदने। लूञ् धातु **काटना** अर्थ में है। यह भी **पूञ्** की तरह ही **उभयपदी** है और सेट् है। इसकी ह्रस्व आदि सम्पूर्ण प्रक्रिया पूञ् की तरह ही होती है अर्थात् पूञ् की तरह ही इसके रूप बनते हैं। इसके सभी लकारों के प्रथमपुरुष के एकवचन के ही रूप दिये जा रहे हैं, शेष रूपों को आप स्वयं बनाने का प्रयत्न करें।

वैकल्पिकेड्विधायकं विधिसूत्रम्

६९२. लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु ७।२।४२॥

वृङ्वृञ्भ्यामृदन्ताच्च परयोर्लिङ्सिचोरिड् वा स्यात्तङि।

दीर्घनिषेधकं विधिसूत्रम्

६९३. न लिङि ७।२।३९॥

वृत इटो लिङि न दीर्घः। स्तरिषीष्ट। उश्चेति कित्त्वम्। स्तीर्षीष्ट। सिचि च परस्मैपदेषु। अस्तारीत्। अस्तारिष्टाम्। अस्तारिषुः। अस्तरीष्ट, अस्तरिष्ट। अस्तीर्ष्ट। **कॄञ् हिंसायाम्॥१३॥** कृणाति, कृणीते। चकार, चकरे। **वॄञ् वरणे॥१४॥** वृणाति, वृणीते। ववार, ववरे। वरिता, वरीता। उदोष्ठ्येत्युत्त्वम्। वूर्यात्। वरिषीष्ट। वूर्षीष्ट। अवारीत्। अवारिष्टाम्। अवरिष्ट, अवरीष्ट। अवूर्ष्ट। **धूञ् कम्पने॥१५॥** धुनाति, धुनीते। धविता, धोता। अधावीत्। अधविष्ट, अधोष्ट। **ग्रह उपादाने॥१६॥** गृह्णाति, गृह्णीते। जग्राह, जगृहे।

....

लट्- **लुनाति-लुनीते।** लिट्- **लुलाव-लुलुवे।** लुट्- **लविता, लवितासि-लवितासे।** लृट्- **लविष्यति-लविष्यते।** लोट्- **लुनातु-लुनीताम्।** लङ्- **अलुनात्-अलुनीत।** विधि लिङ्- **लुनीयात्-लुनीत।** आशीर्लिङ्- **लूयात्-लविषीष्ट।** लुङ्- **अलावीत्-अलविष्ट।**

लृङ्- **अलविष्यत्-अलविष्यत।**

स्तॄञ् आच्छादने। स्तॄञ् धातु **ढकना** अर्थ में है। ञित् होने के कारण उभयपदी और ॠदन्त होने के कारण सेट् है। शित् के परे होने पर **प्वादीनां ह्रस्वः** से ह्रस्व होता है। **लिट्** में **ऋच्छत्यॄताम्** से गुण हो जाता है। **आशीर्लिङ्** में **ॠत इद् धातोः** से **इत्त्व, रपर** आदि भी होते हैं। इट् में **वॄतो वा** से विकल्प से इट् को दीर्घ होता है।

लट्- स्तृणाति। स्तृणीते। **लिट्**- तस्तार, तस्तरे। **लुट्**- स्तरीता-स्तरिता, स्तरीतासि-स्तरितासि, स्तरीतासे, स्तरितासे। **लृट्**- स्तरीष्यति-स्तरिष्यति, स्तरीष्यते-स्तरिष्यते। **लोट्**- स्तृणातु, स्तृणीताम्। **लङ्**- अस्तृणात्, अस्तृणीत। **विधिलिङ्**- स्तृणीयात्, स्तृणीत। **आशीर्लिङ्** के आत्मनेपद में वैकल्पिक इट् आगम के लिए अग्रिम सूत्र है।

६९२- **लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु।** लिङ् च सिच्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो लिङ्सिचौ, तयोः। लिङ्सिचोः षष्ठ्यन्तम्, आत्मनेपदेषु सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **वॄतो वा** से **वॄतः** और **इट् वा सनि** से **इट्** और **वा** की अनुवृत्ति आती है।

वृङ्, वृञ् और ॠदन्त धातुओं से परे लिङ् और सिच् को विकल्प से इट् का आगम होता है तङ् के परे रहने पर।

वॄतः का पदच्छेद है- **वृ+ॠतः**। अतः दीर्घ ॠकारान्त धातु का भी ग्रहण किया जाता है।

६९३- **न लिङि।** न अव्ययं, लिङि सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **वॄतो वा** से **वॄतः, आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से **इट्** तथा **ग्रहोऽलिटि दीर्घः** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है।

वृङ्, वृञ् और ॠदन्त धातुओं से परे इट् को दीर्घ नहीं होता है लिङ् परे रहते।

लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु से इट् होने के पक्ष में **वॄतो वा** से प्राप्त वैकल्पिक इट् के दीर्घ का इससे निषेध किया जाता है।

स्तरिषीष्ट, स्तीर्षीष्ट। आशीर्लिङ् में **स्तॄ+सीय्+स्+त** बन जाने के बाद **लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु** से विकल्प से **इट्** का आगम करके आर्धधातुक गुण करके **स्तरि+सीय्+स्+त** बना। **वॄतो वा** से **इट्** को दीर्घ प्राप्त था, उसका **न लिङि** से निषेध किया गया। सकार का लोप, षत्व, ष्टुत्व करके **स्तरिषीष्ट** बना। इट् न होने के पक्ष में **उश्च** से झलादि लिङ् को किद्वद्भाव करके गुणनिषेध हुआ और **ॠत इद्धातोः** से **रपर-इत्त्व** करके **हलि च** से दीर्घ होने पर **स्तीर्षीष्ट** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार आशीर्लिङ् में दो-दो रूप सिद्ध होंगे।

अस्तारीत्। लुङ् में सिच् का **इट ईटि** से लुक्, सवर्णदीर्घ आदि करके **अस्तॄ+ईत्** बन जाने के बाद **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु** से वृद्धि होकर **अस्तारीत्** बन जाता है। **अस्तारीत्, अस्तारिष्टाम्, अस्तारिषुः** आदि। आत्मनेपद में **लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु** से विकल्प से इट् होता है। इट् के पक्ष में **वॄतो वा** से इट् को विकल्प से दीर्घ करने पर **अस्तरीष्ट, अस्तरिष्ट** दो रूप बन जाते हैं। इट् के अभाव में **उश्च** से सिच् को किद्वद्भाव हो जाने से गुण का निषेध हो जाता है। तब इत्त्व, रपर और **हलि च** से दीर्घ करके **अस्तीर्ष्ट** बनता है। इस तरह इट्पक्ष और इडभाव में दो-दो रूप बन जाते हैं। इट् हो कर दीर्घ होने के पक्ष में-**अस्तरीष्ट, अस्तरीषाताम्, अस्तरीषत** और **अस्तरिष्ट, अस्तरिषाताम्, अस्तरिषत।** इट् न होने के पक्ष में **अस्तीर्ष्ट, अस्तीर्षाताम्, अस्तीर्षत** आदि।

लृङ् में- **अस्तरीष्यत्-अस्तरिष्यत्, अस्तरीष्यत-अस्तरिष्यत** आदि।

कॄञ् हिंसायाम्। **कॄञ्** धातु **हिंसा करना** अर्थ में है। ञित् होने के कारण उभयपदी और ॠदन्त होने के कारण सेट् है। **प्वादि** के अन्तर्गत आता है, अतः शित् के परे होने पर **प्वादीनां ह्रस्वः** से ह्रस्व होता है। **लिट्** में **ऋच्छत्यॄताम्** से गुण हो जाता है। **आशीर्लिङ्** में **ॠत इद् धातोः** से **इत्त्व, रपर** आदि भी होते हैं। **वॄतो वा** से विकल्प से इट् को दीर्घ होता है।

लट्- कृणाति। कृणीते। **लिट्**- चकार, चकरे। **लुट्**- करीता-करिता, करीतासि-करितासि, करीतासे, करितासे। **लृट्**- करीष्यति-करिष्यति, करीष्यते-करिष्यते। **लोट्**- कृणातु, कृणीताम्। **लङ्**- अकृणात्, अकृणीत। **विधिलिङ्**- कृणीयात्, कृणीत। **आशीर्लिङ्**- कीर्यात्, करिषीष्ट-कीर्षीष्ट। **लिङ्**- अकारीत्, अकरीष्ट-अकरिष्ट, अकीर्ष्ट। **लृङ्**- अकरीष्यत्-अकरिष्यत्, अकरीष्यत-अकरिष्यत।

वृञ् वरणे। **वृञ्** धातु **वरण करना, स्वीकार करना** अर्थ में है। ञित् होने के कारण उभयपदी और ॠदन्त होने के कारण सेट् है। **प्वादि** के अन्तर्गत आता है, अतः शित् के परे होने पर **प्वादीनां ह्रस्वः** से ह्रस्व होता है। इस तरह इसके सम्पूर्ण रूप **कॄञ** की तरह ही होते हैं किन्तु ओष्ठ्यपूर्व होने के कारण ॠकार को **ॠत इद्धातोः** से इत्त्व न होकर **उदोष्ठ्यपूर्वस्य** से उत्त्व हो जाता है। **लिट्** में **ऋच्छत्यॄताम्** से गुण हो जाता है। इट् को **वॄतो वा** से विकल्प से दीर्घ होता है।

लिट् के णल् में ग्रह् को द्वित्व, चुत्व, उपधा की **अत उपधायाः** से वृद्धि होकर **जग्राह** बनता है किन्तु पित्-भिन्न अतुस् आदि को **असंयोगाल्लिट् कित्** से किद्वद्भाव होकर **ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टि-विचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च** से सम्प्रसारण होता है जिससे **जगृहतुः, जगृहुः** आदि रूप बनते हैं। आत्मनेपद में सर्वत्र कित्त्व के विद्यमान रहने के कारण सम्प्रसारण होगा ही।

ग्रह् से विहित **इट्** को अग्रिम सूत्र **ग्रहोऽलिटि दीर्घः** से सर्वत्र दीर्घ हो जाता है किन्तु **लिट्** के **इट्** को नहीं। यह बात ध्यान में रखना चाहिए।

६९४- ग्रहोऽलिटि दीर्घः। ग्रहः पञ्चम्यन्तम्, अलिटि सप्तम्यन्तं, दीर्घः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से विभक्तिविपरिणाम करके **इटः** और **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से **एकाचः** की अनुवृत्ति आती है। **विहितस्य** का अध्याहार है।

एक अच् वाली ग्रह धातु से परे विधान किये गये इट् को दीर्घ होता है किन्तु लिट् के परे नहीं।

ग्रहीता, ग्रहीष्यति, ग्रहीषीष्ट और **अग्रहीत्** में **ग्रहोऽलिटि दीर्घः** से दीर्घ हो जाता है।

अग्रहीत्। लुङ् लकार में **अग्रह्+इस्+ईत्** बनने के बाद **वदव्रजहलन्तस्याचः** से वृद्धि प्राप्त थी, उसका **नेटि** निषेध करता है। पुनः **अतो हलादेर्लघोः** से वैकल्पिक वृद्धि प्राप्त होती है, उसका भी **ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्** से निषेध हो जाता है। तब **ग्रहोऽलिटि दीर्घः** से **इट्** को दीर्घ होकर **अग्रह्+ईस्+ईत्** बना। **एकदेशविकृतन्यायेन** पूर्व **ईकार** को **इट्** ही मानकर **इट ईटि** से सकार का लोप, दीर्घ करके **अग्रहीत्** बनता है। शेष रूपों को आप स्वयं बनायें। स्मरण रहे कि **लोट्** के **सिप्** में **हलः श्नः शानज्झौ** से **शानच्** आदेश होकर **गृहाण** बनता है।

इस धातु का उपयोग पर्याप्त मात्रा में होता है। इस लिए सारे रूप अवश्य याद करें। छात्रों के सुविधार्थ **ग्रह धातु** के रूप दिये जा रहे हैं।

लट्(परस्मैपद) गृह्णाति, गृह्णीतः, गृह्णन्ति, गृह्णासि, गृह्णीथः, गृह्णीथ, गृह्णामि, गृह्णीवः, गृह्णीमः। **आत्मनेपद-** गृह्णीते, गृह्णाते, गृह्णते, गृह्णीषे, गृह्णाथे, गृह्णीध्वे, गृह्णे, गृह्णीवहे, गृह्णीमहे।

लिट्-(परस्मैपद) जग्राह, जगृहतुः, जगृहुः, जग्रहिथ, जगृहथुः, जगृह, जग्राह-जग्रह, जगृहिव, जगृहिम। **(आत्मनेपद)** जगृहे, जगृहाते, जगृहिरे, जगृहिषे, जगृहाथे, जगृहिढ्वे-जगृहिध्वे, जगृहे, जगृहिवहे, जगृहिमहे।

लुट्(परस्मैपद) ग्रहीता, ग्रहीतारौ, ग्रहीतारः, ग्रहीतासि, ग्रहीतास्थः, ग्रहीतास्थ, ग्रहीतास्मि, ग्रहीतास्वः, ग्रहीतास्मः। **(आत्मनेपद)** ग्रहीता, ग्रहीतारौ, ग्रहीतारः, ग्रहीतासे, ग्रहीतासाथे, ग्रहीताध्वे, ग्रहीताहे, ग्रहीतास्वहे, ग्रहीतास्महे।

लृट्(परस्मैपद) ग्रहीष्यति, ग्रहीष्यतः, ग्रहीष्यन्ति, ग्रहीष्यसि, ग्रहीष्यथः, ग्रहीष्यथ, ग्रहीष्यामि, ग्रहीष्यावः, ग्रहीष्यामः। **(आत्मनेपद)** ग्रहीष्यते, ग्रहीष्येते, ग्रहीष्यन्ते, ग्रहीष्यसे, ग्रहीष्येथे, ग्रहीष्यध्वे, ग्रहीष्ये, ग्रहीष्यावहे, ग्रहीष्यामहे।

लोट्(परस्मैपद) गृह्णातु-गृह्णीतात्, गृह्णीताम्, गृह्णन्तु, गृहाण-गृह्णीतात्, गृह्णीतम्, गृह्णीत, गृह्णानि, गृह्णाव, गृह्णाम। **(आत्मनेपद)** गृह्णीताम्, गृह्णाताम्, गृह्णताम्, गृह्णीष्व, गृह्णाथाम्, गृह्णीध्वम्, गृह्णै, गृह्णावहै, गृह्णामहै।

लङ्(परस्मैपद) अगृह्णात्, अगृह्णीताम्, अगृह्णन्, अगृह्णः, अगृह्णीतम्, अगृह्णीत, अगृह्णम्, अगृह्णीव, अगृह्णीम। **(आत्मनेपद)** अगृह्णीत, अगृह्णाताम्, अगृह्णत, अगृह्णीथाः, अगृह्णाथाम्, अगृह्णीध्वम्, अगृह्णि, अगृह्णीवहि, अगृह्णीमहि।

विधिलिङ्(परस्मैपद) गृह्णीयात्, गृह्णीयाताम्, गृह्णीयुः, गृह्णीयाः, गृह्णीयातम्, गृह्णीयात, गृह्णीयाम्, गृह्णीयाव, गृह्णीयाम। **(आत्मनेपद)** गृह्णीत, गृह्णीयाताम्, गृह्णीरन्, गृह्णीथाः, गृह्णीयाथाम्, गृह्णीध्वम्, गृह्णीय, गृह्णीवहि, गृह्णीमहि।

आशीर्लिङ्(परस्मैपद) गृह्यात्, गृह्यास्ताम्, गृह्यासुः, गृह्याः, गृह्यास्तम्, गृह्यास्त, गृह्यासम्, गृह्यास्व, गृह्यास्म। **(आत्मनेपद)** ग्रहीषीष्ट, ग्रहीषीयास्ताम्, ग्रहीषीरन्, ग्रहीषीष्ठाः, ग्रहीषीयास्थाम्, ग्रहीषीढ्वम्-ग्रहीषीध्वम्, ग्रहीषीय, ग्रहीषीवहि, ग्रहीषीमहि।

लुङ्(परस्मैपद) अग्रहीत्, अग्रहीष्टाम्, अग्रहीषुः, अग्रहीः, अग्रहीष्टम्, अग्रहीष्ट, अग्रहीषम्, अग्रहीष्व, अग्रहीष्म। **(आत्मनेपद)** अग्रहीष्ट, अग्रहीषाताम्, अग्रहीषत, अग्रहीष्ठाः, अग्रहीषाथाम्, अग्रहीढ्वम्-अग्रहीध्वम्, अग्रहीषि, अग्रहीष्वहि, अग्रहीष्महि।

लृङ्(परस्मैपद) अग्रहीष्यत्, अग्रहीष्यताम्, अग्रहीष्यन्, अग्रहीष्यः, अग्रहीष्यतम्, अग्रहीष्यत, अग्रहीष्यम्, अग्रहीष्याव, अग्रहीष्याम। **(आत्मनेपद)** अग्रहीष्यत, अग्रहीष्येताम्, अग्रहीष्यन्त, अग्रहीष्यथाः, अग्रहीष्येथाम्, अग्रहीष्यधवम्, अग्रहीष्ये, अग्रहीष्यावहि, अग्रहीष्यामहि। उभयपदी धातुओं का विवेचन पूर्ण हुआ। अब परस्मैपदी धातुओं का विवेचन प्रारम्भ करते हैं।

कुष निष्कर्षे। कुष धातु **निष्कर्ष** अर्थात् **बाहर निकालना** अर्थ में प्रयुक्त है। उदात्त अकार की इत्संज्ञा होती है, **कुष्** शेष रह जाता है। आत्मनेपद के निमित्तों से हीन होने के कारण **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से परस्मैपद का विधान होता है। यह धातु अनुदात्तों में परिगणित नहीं है, अतः सेट् है। इसके रूप सरल हैं। यह धातु हलन्त है, अतः लोट्, परस्मैपद के सि में **हलः श्नः शानज्झौ** से शानच् होकर **कुषाण** बनता है।

लट्- कुष्णाति, कुष्णीतः, कुष्णन्ति। **लिट्-** चुकोप, चुकुषतुः, चुकुषुः, चुकोषिथ। **लुट्-** कोषिता, कोषितासि। **लृट्-** कोषिष्यति। **लोट्-** कुष्णातु-कुष्णीतात्। **लङ्-** अकुष्णात्। **विधिलिङ्-** कुष्णीयात्। **आशीर्लिङ्-** कुष्यात्। **लुङ्-** अकोषीत्। **लृङ्-** अकोषिष्यत्।

अश भोजने। अश धातु **भोजन करना** अर्थ में प्रयुक्त है। उदात्त अकार की इत्संज्ञा होती है, **अश्** शेष रह जाता है। आत्मनेपद के निमित्तों से हीन होने के कारण **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से परस्मैपद का विधान होता है। यह धातु अनुदात्तों में परिगणित नहीं है, अतः सेट् है। इसके भी रूप सरल ही हैं। यह धातु हलन्त है, अतः लोट्, परस्मैपद के सि में **हलः श्नः शानज्झौ** से शानच् होकर **अशान** बनता है।

लट्- अश्नाति, अश्नीतः, अश्नन्ति। **लिट्-** आश, आशतुः, आशुः, आशिथ। **लुट्-** अशिता, अशितासि। **लृट्-** अशिष्यति। **लोट्-** अश्नातु-अश्नीतात्, अशान। **लङ्-** आश्नात्, आश्नीताम्। **विधिलिङ्-** अश्नीयात्। **आशीर्लिङ्-** अश्यात्। **लुङ्-** आशीत्। **लृङ्-** आशिष्यत्।

मुष स्तेये। मुष धातु **स्तेये** अर्थात् **चुराना** अर्थ में है। उदात्त अकार की इत्संज्ञा होती है, **मुष्** शेष रह जाता है। आत्मनेपद के निमित्तों से हीन होने के कारण परस्मैपदी है। यह धातु षकारान्त अनुदात्तों में परिगणित नहीं है, अतः सेट् है। इसके भी रूप सरल हैं। यह

धातु हलन्त है, अतः लोट्, परस्मैपद के सि में **हलः श्नः शानज्झौ** से शानच् होकर **मुषाण** बनता है।

लट्- मुष्णाति, मुष्णीतः, मुष्णन्ति। **लिट्-** मुमोष, मुमुषतुः, मुमुषुः, मुमोषिथ। **लुट्-** मोषिता, मोषितासि। **लृट्-** मोषिष्यति। **लोट्-** मुष्णातु-मुष्णीतात्। **लङ्-** अमुष्णात्। **विधिलिङ्-** मुष्णीयात्। **आशीर्लिङ्-** मुष्यात्। **लुङ्-** अमोषीत्। **लृङ्-** अमोषिष्यत्।

ज्ञा अवबोधने। ज्ञा धातु **जानना** अर्थ में है। **भू** की तरह यहाँ भी किसी वर्ण की इत्संज्ञा नहीं होती। आत्मनेपद के निमित्तों से हीन होने के कारण परस्मैपदी है। यह धातु **ऊदॄदन्तै०** इस कारिका में परिगणित नहीं है, अतः अनुदात्त है। फलतः इट् नहीं होगा किन्तु लिट् में **क्रादिनियम** से नित्य से इट् और **थल्** में **भारद्वाजनियम** से विकल्प से इट् होता है। **श्ना** इस शित् प्रत्यय के परे **ज्ञाजनोर्जा** से **ज्ञा** के स्थान पर **जा** आदेश होता है। लिट् में **पपौ** की तरह **जज्ञौ** बनता है। हलादि शेष होते समय **ज्ञ** का आदि वर्ण **ज्** ही शेष रहता है। यह धातु **अनुपसर्गाज्ज्ञः** के अनुसार कर्तृगामि क्रियाफल में आत्मनेपदी भी हो जाती है।

लट्- जानाति, जानीतः, जानन्ति। जानीते, जानाते, जानते। **लिट्-** जज्ञौ, जज्ञतुः, जज्ञुः, जज्ञिथ-जज्ञाथ। जज्ञे, जज्ञाते, जज्ञिरे। **लुट्-** ज्ञाता, ज्ञातासि, ज्ञास्यते। **लृट्-** ज्ञास्यति, ज्ञास्यते। **लोट्-** जानातु-जानीतात्, जानीताम्, जानन्तु। जानीताम्, जानाताम्, जानताम्। **लङ्-** अजानात्, अजानीताम्, अजानन्। अजानीत, अजानीताम्, अजानत। **विधिलिङ्-** जानीयात्, जानीयात। **आशीर्लिङ्** में **वान्यस्य संयोगादेः** से वैकल्पिक एत्त्व होकर ज्ञेयात्-ज्ञायात्। ज्ञासीष्ट। लुङ्-में **यमरमनमातां सक् च** से सक् एवम् इट् होकर अज्ञासीत्, अज्ञासिष्टाम्, अज्ञासिषुः आदि। आज्ञास्त। **लृङ्-** अज्ञास्यत्, अज्ञास्यत।

वृङ् सम्भक्तौ। यह धातु **पूजा करना, सेवा करना** अर्थ में है। ङकार की इत्संज्ञा होती है। ङित् होने से आत्मनेपदी बन जाता है। सेट् है। लिट् में कित्त्व के कारण **श्र्युकः किति** से इडागम का निषेध होता है।

लट्- वृणीते, वृणाते, वृणते। **लिट्-** वव्रे, वव्राते, वव्रिरे। **लुट्-** वरीता-वरिता। **लृट्-** वरीष्यते-वरिष्यते। **लोट्-** वृणीताम्, वृणाताम्, वृणताम्। वृणीष्व। **लङ्-** अवृणीत। **विधिलिङ्-** वृणीत। **आशीर्लिङ्-** अवरीष्ट-अवरिष्ट। **लुङ्-** अवरिष्ट-अवृत। **लृङ्-** अवरीष्यत-अवरिष्यत।

परीक्षा

१-	अपनी पुस्तिका में **क्री** धातु के सभी रूप लिखें।	१०
२-	**क्री** के लिट् तथा लुङ् के सभी रूपों की सिद्धि करे।	२०
३-	**जॄस्तम्भुम्रुचुः०** इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या करें।	२०

श्री वरदाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी की गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का क्र्यादि-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ चुरादयः

चुर स्तेये॥१॥

णिच्-विधायकं विधिसूत्रम्

६९५. सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-वर्ण-चूर्ण-चुरादिभ्यो णिच् ३।१।२५॥

एभ्यो णिच् स्यात्। **चूर्णान्तेभ्यः प्रातिपदिकाद्धात्वर्थ** इत्येव सिद्धे तेषामिह ग्रहणं प्रपञ्चार्थम्। **चुरादिभ्यस्तु** स्वार्थे। **पुगन्तेति** गुणः। **सनाद्यन्ता** इति धातुत्वम्। तिप्शबादि। गुणायादेशौ। चोरयति।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **चुरादिप्रकरण** का प्रारम्भ होता है। तिङन्त-प्रकरण अथवा धातु-प्रकरण में यह **दसवाँ** प्रकरण है। किन्तु अन्य प्रकरणों से यह नितान्त भिन्न है। अन्य प्रकरणों में धातु और लकार के बीच में शप् आदि विकरण होते हैं किन्तु इस प्रकरण में मूलधातु से कोई विकरण नहीं होता। जब धातु से लकार आने के पहले ही स्वार्थ में **णिच्** प्रत्यय होता है, उस ण्यन्त की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होनेपर लकार आते हैं, तब शप् होता है। णिच् किसी अर्थ को लेकर नहीं होता। जिस प्रत्यय में किसी अर्थ विशेष की अपेक्षा नहीं रखी जाती, वह प्रत्यय स्वार्थ में विहित होता है अर्थात् प्रकृति के अर्थ को ही परिपुष्ट करने के लिए ही होता है, अन्य किसी विशेष अर्थ का प्रतिपादन नहीं करता। कहा भी गया है- **अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति।** इस प्रकरण में होने वाला णिच् लकार के पहले आता है और णिजन्त होने के बाद **सनाद्यन्ता धातवः** से पुनः धातुसंज्ञक बन जाता है। उसके बाद ही लट्, तिप्, शप् आदि होते हैं।

चुर स्तेये। चुर् धातु **चोरी करना** अर्थ में है। अन्त्य अकार इत्संज्ञक नहीं है, उच्चारणार्थ लगा हुआ है अर्थात् उभयपद के विधान के लिए नहीं है क्योंकि उभयपद के विधान के लिए आगे **णिचश्च** कहा जा रहा है।

६९५- सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-वर्ण-चूर्ण-चुरादिभ्यो णिच्। चुर् आदिर्येषां ते चुरादयः। सत्यापश्च, पाशश्च, रूपञ्च, वीणा च, तूलञ्च, श्लोकश्च, सेना च, लोम च, त्वचश्च वर्म च वर्णञ्च, चूर्णञ्च, चुरादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः

सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-वर्ण-चूर्ण-चुरादयस्तेभ्यः, बहुव्रीहिगर्भो द्वन्द्वः। सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-वर्ण-चूर्ण-चुरादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, णिच् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **प्रत्ययः** और **परश्च** इन दोनों सूत्रों का अधिकार है।

सत्याप, पाश, रूप, वीणा, तूल, श्लोक, सेना, लोम, त्वच, वर्म, वर्ण, चूर्ण आदि नामधातुओं और चुर् आदि गणपठित धातुओं से परे स्वार्थ में णिच् प्रत्यय होता है।

णिच् में चकार की **हलन्त्यम्** से तथा णकार की **चुटू** से इत्संज्ञा होकर दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हो जाता है। केवल **इ** बचता है। णित् होने के कारण **अत उपधायाः**, **अचो ञ्णिति** आदि से वृद्धि या **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण आदि होते हैं। इसके बाद प्रकृति-प्रत्ययरूप समुदाय की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा हो जाती है।

चूर्णान्तेभ्यः प्रातिपदिकाद्धात्वर्थ इत्येव सिद्धे तेषामिह ग्रहणं प्रपञ्चार्थम्। चुरादिभ्यस्तु स्वार्थे। कौमुदीकार यहाँ पर कह रहे हैं कि इस सूत्र में **सत्याप, पाश** आदि शब्दों को पढ़ना आवश्यक नहीं है, केवल **चुरादिभ्यो णिच्** कहने से काम चल जाता, क्योंकि इनमें **प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च** इस गणसूत्र से ही काम चल सकता है। **प्रातिपदिकों से धातु के अर्थ में बहुल से णिच्च हो और उस णिच् को प्रत्यय की की तरह मान कर के सभी कार्य हों।** इस तरह **सत्याप से चूर्ण पर्यन्त के धातुओं से णिच् हो सकता है।** फिर **सत्याप** से लेकर **चूर्ण** पर्यन्त की इतनी धातुओं का यहाँ पर कथन करना केवल विस्तार मात्र अर्थात् स्पष्टतया ज्ञान कराना ही लक्ष्य है। यहाँ पर **चुरादिभ्यो णिच्** इतना ही सूत्र करने से काम चल सकता है।

चुरादि धातुओं से तो स्वार्थ में ही णिच् होता है अर्थात् इस प्रत्यय के लगने के बाद भी धातु के अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता।

जिस तरह से आगे **चुर्** से णिच् करके **चोरयति** बनाया जा रहा है उसी तरह **सत्याप** से **सत्यापयति**(सत्य को करता या कहता है), **विपाशयति**(पाश को छुड़ाता है), **रूपयति**(रूप देता है), **वीणयति**(वीणा के साथ गाता है), **तूलयति**(तोलता है), **श्लोकयति**(श्लोकों से स्तुति करता है) आदि बनाये जाते हैं।

चोरयति। चुर्-धातु से लट् लकार के आने के पहले ही स्वार्थ में **सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-वर्ण-चूर्ण-चुरादिभ्यो णिच्** से णिच् प्रत्यय हुआ। णिच् में णकार की **चुटू** से और चकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा हुई तथा दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हुआ, इ बचा। **चुर्+इ** बना। णिच् वाले **इकार** की **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकसंज्ञा** हुई और **पुगन्तलघूपधस्य च** से उपधाभूत **चुर्** के **उकार** को गुण होकर **चोर्+इ** हुआ, वर्णसम्मेलन हुआ तो **चोरि** बना। चुर् प्रकृति और णिच् प्रत्यय का समुदाय **चोरि** है, उसकी **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा हुई। धातु होने के कारण वर्तमान काल में **वर्तमाने लट्** से लट् लकार और उसके स्थान पर तिप्, उसकी सार्वधातुकसंज्ञा, उसको शप्, अनुबन्धलोप करके **चोरि+अ+ति** बना। शप् वाला अकार सार्वधातुक है, उसके परे रहते **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से **चोरि** के **इकार** को गुण करके **चोरे+अति** बना। **अय्** आदेश होने पर **चोर्+अय्+अति** बना, वर्णसम्मेलन होने पर **चोरयति**

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

६९६. **णिचश्च १।३।७४॥**

णिजन्तादात्मनेपदं स्यात् कर्तृगामिनि क्रियाफले। चोरयते। चोरयामास। चोरयिता। चोर्यात्, चोरयिषीष्ट। **णिश्री**ति चङ्। **णौ चङी**ति ह्रस्वः। **चङी**ति द्वित्वम्। हलादिशेषः। **दीर्घो लघो**रित्यभ्यासस्य दीर्घः। अचूचुरत्, अचूचुरत। अचोरयत्-अचोरयत। **कथ वाक्यप्रबन्धे॥२॥** अल्लोपः। **अचः परस्मिन् पूर्वविधौ।** अल्विध्यर्थमिदम्। परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत् स्यात् स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये। इति स्थानिवत्त्वान्नोपधावृद्धिः। कथयति। अग्लोपित्वाद्दीर्घसन्वद्भावौ न। अचकथत्। **गण संख्याने॥३॥** गणयति।

....

सिद्ध हुआ। इस प्रकार से लट्-लकार के परस्मैपद में रूप बनते हैं- **चोरयति, चोरयतः, चोरयन्ति। चोरयसि, चोरयथः, चोरयथ। चोरयामि, चोरयावः, चोरयामः।**

६९६- **णिचश्च।** णिचः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** और **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से **कर्त्रभिप्राये** और **क्रियाफले** की अनुवृत्ति आती है।

णिजन्त धातुओं से आत्मनेपद का विधान होता है, यदि क्रिया का फल कर्ता को प्राप्त हो रहा हो तो।

जिस प्रकार से **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** यह उभयपद का विधान करता है, उसी प्रकार यह सूत्र भी क्रिया का फल कर्ता को प्राप्त हो तो णिजन्त धातु से आत्मनेपद का विधान करता है और क्रिया का फल कर्ता को नहीं मिल रहा हो तो परस्मैपद भी हो जाता है।

चोरयते। चुर् धातु से णिच् आदि करके **चोरि** बनाने के बाद लट् के स्थान पर **णिचश्च** से आत्मनेपद का विधान हुआ, त आया, उसकी सार्वधातुकसंज्ञा, उसको शप्, अनुबन्धलोप करके **चोरि+अ+त** बना। शप् वाला अकार सार्वधातुक है, उसके परे रहते **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से **चोरि** के **इकार** को गुण करके **चोरे+अत** बना। **अय्** आदेश होने पर **चोर्+अय्+अत** बना, वर्णसम्मेलन होने पर **चोरयत** बना। **त** में **अकार** को **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व हुआ- **चोरयते** सिद्ध हुआ। इस प्रकार से लट्-लकार के आत्मनेपद के रूप बनते हैं- **चोरयते, चोरयेते, चोरयन्ते। चोरयसे, चोरयेथे, चोरयध्वे। चोरये, चोरयावहे, चोरयामहे।**

चुरादिगण में णिच् के आ जाने से सब धातु **अनेकाच्** बन जाते हैं। अतः सभी धातुओं से लिट् में आम्-प्रत्यय आदि वलादि आर्धधातुक को इट् भी हो जाते हैं।

कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि। इस वार्तिक का स्मरण करें। यह अनेकाच् धातुओं से भी आम् का विधान करता है। आम् होने के बाद तो **आमः** से लिट् का लुक् और **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि** से लिट् को पर लेकर कृ, भू और अस् का अनुप्रयोग होता है। आप **गोपायाञ्चकार** की प्रक्रिया का स्मरण करें।

चोरयाञ्चकार। चुर्-धातु से लिट् लकार की प्राप्ति थी, उसे बाधकर स्वार्थ में **सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-वर्ण-चूर्ण-चुरादिभ्यो णिच्** से णिच् प्रत्यय हुआ। णिच् में णकार की **चुटू** से और चकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा हुई तथा दोनों का **तस्य लोपः** से लोप हुआ, इ बचा। **चुर्+इ** बना। **णिच्** वाले **इकार** की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा हुई और **पुगन्तलघूपधस्य च** से उपधाभूत चुर् के उकार को गुण होकर **चोर्+इ** हुआ, वर्णसम्मेलन हुआ तो **चोरि** बना। चुर् प्रकृति और णिच् प्रत्यय का समुदाय चोरि है, उसकी **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा हुई। धातु होने के कारण परोक्षभूत काल में **परोक्षे लिट्** से लिट् लकार और उसके स्थान पर तिप्, उसके स्थान पर णल् करके **चोरि+अ** बना। **कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि** वार्तिक से धातु के बाद आम् हुआ। **चोरि+आम्+अ** बना। **चोरि** के **इकार** के स्थान पर **अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु** से **अय्** आदेश हुआ, **चोर्+अय्+आम्** बना, वर्णसम्मेलन हुआ, **चोरयाम्+अ** बना। **आमः** से लिट् के **अ** का लोप हुआ। **कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि** से लिट् को साथ में लेकर पहले **कृ** का अनुप्रयोग हुआ। **चोरयाम्+कृ+लिट्** बना। लिट् के स्थान पर तिप्, उसके स्थान पर णल्, अनुबन्धलोप, कृ को **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से द्वित्व, **उरत्** से अर्, हलादिशेष, **कुहोश्चुः** से चुत्व आदि करके **चोरयाम्+चकृ+अ** बना। कृ के ऋकार की **अचो ञ्णिति** से आर्-वृद्धि हुई **चोरयाम्+चक्+आर्+अ=चोरयाम्+चकार** बना। मकार का अनुस्वार और अनुस्वार का परसवर्ण करके ञकार बना। इस तरह **चोरयाञ्चकार** सिद्ध हुआ। आगे के रूप आप स्वयं बनायें।

चुरादिगणीय सभी धातु णिच् के कारण अनेकाच् हो जाते हैं, अतः सभी धातुओं से लिट् में आम्, कृ, भू, अस् का अनुप्रयोग आदि होता ही है। आम् प्रत्यय की प्रकृति बनी हुई ण्यन्त **चोरि** धातु के उभयपदी होने से अनुप्रयुज्यमान कृ-धातु भी उभयपदी हो जाती है।

लिट् परस्मैपद में- चोरयाञ्चकार, चोरयाञ्चक्रतुः, चोरयाञ्चक्रुः। चोरयाञ्चकर्थ, चोरयाञ्चक्रथुः, चोरयाञ्चक्र। चोरयाञ्चकार-चोरयाञ्चकर, चोरयाञ्चकृव, चोरयाञ्चकृम। **आत्मनेपद में**- चोरयाञ्चक्रे, चोरयाञ्चक्राते, चोरयाञ्चक्रिरे। चोरयाञ्चकृषे, चोरयाञ्चक्राथे, चोरयाञ्चकृढ्वे। चोरयाञ्चक्रे, चोरयाञ्चकृवहे, चोरयाञ्चकृमहे।

भू और **अस्** के अनुप्रयोग होने पर केवल परस्मैपद ही होगा, क्योंकि भू और **अस्** धातु केवल परस्मैपदी हैं- चोरयाम्बभूव, चोरयाम्बभूवतुः, चोरयाम्बभूवुः। चोरयाम्बभूविथ, चोरयाम्बभूवथुः, चोरयाम्बभूव। चोरयाम्बभूव, चोरयाम्बभूविव, चोरयाम्बभूविम। इसी प्रकार चोरयामास, चोरयामासतुः, चोरयामासुः। चोरयामासिथ, चोरयामासथुः, चोरयामास। चोरयामास, चोरयामासिव, चोरयामासिम।

लुट् में **णिच्** आदि करके **चोरि** बनाने के बाद तिप्, तासि, इट् आदि करके **चोरि+इ+तास्+ति** बना है। इकार को गुण अयादेश, डा आदेश, टिलोप, वर्णसम्मेलन करके **चोरयिता** सिद्ध होता है। **परस्मैपद में** चोरयिता, चोरयितारौ, चोरयितारः। चोरयितासि, चोरयितास्थः, चोरयितास्थ। चोरयितास्मि, चोरयितास्वः, चोरयितास्मः। **आत्मनेपद में**- चोरयिता, चोरयितारौ, चोरयितारः। चोरयितासे, चोरयितासाथे, चोरयिताध्वे। चोरयिताहे, चोरयितास्वहे, चोरयितास्महे।

लृट् परस्मैपद- चोरयिष्यति, चोरयिष्यतः, चोरयिष्यन्ति। चोरयिष्यसि,

चोरयिष्यथः, चोरयिष्यथ। चोरयिष्यामि, चोरयिष्यावः, चोरयिष्यामः। **आत्मनेपद में**- चोरयिष्यते, चोरयिष्येते, चोरयिष्यन्ते। चोरयिष्यसे, चोरयिष्येथे, चोरयिष्यध्वे। चोरयिष्ये, चोरयिष्यावहे, चोरयिष्यामहे।

लोट् परस्मैपद- चोरयतु-चोरयतात्, चोरयताम्, चोरयन्तु। चोरय-चोरयतात्, चोरयतम्, चोरयत। चोरयाणि, चोरयाव, चोरयाम। आत्मनेपद में- चोरयताम्, चोरयेताम्, चोरयन्ताम्। चोरयस्व, चोरयेथाम्, चोरयध्वम्। चोरयै, चोरयावहै, चोरयामहै।

लङ् परस्मैपद- अचोरयत्, अचोरयताम्, अचोरयन्। अचोरयः, अचोरयतम्, अचोरयत। अचोरयम्, अचोरयाव, अचोरयाम। **आत्मनेपद**- अचोरयत, अचोरयेताम्, अचोरयन्त। अचोरयथाः, अचोरयेथाम्, अचोरयध्वम्। अचोरये, अचोरयावहि, अचोरयामहि।

विधिलिङ् परस्मैपद- चोरयेत्, चोरयेताम्, चोरयेयुः। चोरयेः, चोरयेतम्, चोरयेत। चोरयेयम्, चोरयेव, चोरयेम। **आत्मनेपद**- चोरयेत, चोरयेयाताम्, चोरयेरन्। चोरयेथाः, चोरयेयाथाम्, चोरयेध्वम्। चोरयेय, चोरयेवहि, चोरयेमहि।

चोर्यात्। चोरि बनने के बाद आशीर्लिङ्, ति, यासुट् करके **चोरि+यास्+त्** बना। यास् आर्धधातुक तो है, परन्तु वलादि न होने के कारण उससे इट् नहीं हुआ। **णि** है **चोरि** का **इकार**, अतः **णेरनिटि** से **चोरि** के **इकार** का लोप हुआ- **चोर्+यास्+त्** बना, सकार का लोप करके **चोर्यात्** यह रूप सिद्ध हुआ। शेष रूप आप स्वयं सिद्ध करें।

परस्मैपद में- चोर्यात्, चोर्यास्ताम्, चोर्यासुः। चोर्याः, चोर्यास्तम्, चोर्यास्त। चोर्यासम्, चोर्यास्व, चोर्यास्म।

आत्मनेपद में- चोरयिषीष्ट, चोरयिषीयास्ताम्, चोरयिषीरन्। चोरयिषीष्ठाः, चोरयिषीयास्थाम्, चोरयिषीढ्वम्-चोरयिषीध्वम्। चोरयिषीय, चोरयिषीवहि, चोरयिषीमहि। -

अचूचुरत्। चोरि से लुङ्, तिप् अट् आगम करके **अचोरि+त्** बना। **च्लि** करके उसके स्थान पर **सिच्** आदेश प्राप्त था, उसको बाधकर **णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्** से ण्यन्त-धातु मानकर च्लि के स्थान पर **चङ्** आदेश हुआ। **चकार** और **ङ्कार** की इत्संज्ञा और लोप होने के बाद अ बचा। **अचोरि+अ+त्** बना। अब **णेरनिटि** से **णि** के **इकार** का लोप करने पर **अचोर्+अ+त्** बना। **णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः** से उपधाभूत **चो** के **ओकार** को **ह्रस्व** हुआ तो उकार हुआ। **अचुर्+अत्** बना। **चङि** से **चुर्** को **द्वित्व** हुआ, उसकी अभ्याससंज्ञा और हलादि शेष कर **अचुचुर्+अत्** बना। **सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे** इसने अभ्यास **चु** के लिए **सन्वद्भाव** अर्थात् **सन्** के परे होने पर जो कार्य हो सकते हैं, वे कार्य हो जायें ऐसा अतिदेश कर दिया। **सन्वद्भाव** होने के बाद अभ्यास **चु** को **दीर्घो लघोः** से **दीर्घ** हुआ, **अचूचुर्+अत्** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **अचूचुरत्**। यही प्रक्रिया अन्य परस्मैपद तस्, झि आदि और आत्मपेपद त, आताम् आदि में भी समझनी चाहिए।

चुरादिगण में विशेष ध्यान लुङ् लकार में देना होता है क्योंकि अन्य लकारों में तो **णिच्** के बाद सरल ही रूप बनते हैं। लुङ् में **चङ्, द्वित्व, सन्वद्भाव** आदि कार्य विशेष होते हैं।

चुर्-चोरि के लुङ् के रूप, परस्मैपद में- अचूचुरत्, अचूचुरताम्, अचूचुरन्। अचूचुरः, अचूचुरतम्, अचूचुरत। अचूचुरम्, अचूचुराव, अचूचुराम। **आत्मनेपद में**- अचूचुरत, अचूचुरेताम्, अचूचुरन्त। अचूचुरथाः, अचूचुरेथाम्, अचूचुरध्वम्। अचूचुरे, अचूचुरावहि, अचूचुरामहि।

लृङ् परस्मैपद में- अचोरयिष्यत्, अचोरयिष्यताम्, अचोरयिष्यन्। अचोरयिष्यः, अचोरयिष्यतम्, अचोरयिष्यत। अचोरयिष्यम्, अचोरयिष्याव, अचोरयिष्याम। **आत्मनेपद में-** अचोरयिष्यत, अचोरयिष्येताम्, अचोरयिष्यन्त। अचोरयिष्यथाः, अचोरयिष्येथाम्, अचोरयिष्यध्वम्। अचोरयिष्ये, अचोरयिष्यावहि, अचोरयिष्यामहि।

कथ वाक्यप्रबन्धे। कथ धातु **वाक्यप्रबन्ध** अर्थात् **वाक्यों का उच्चारण करना, बोलना** आदि अर्थों में है। यह धातु **अदन्त** ही है अर्थात् अन्त्य अकार की इत्संज्ञा नहीं होती। पाणिनि जी ने इसमें **अनुनासिकत्व** की प्रतिज्ञा नहीं की है। इसी तरह के अनेक धातु हैं।

कथ इस अदन्त धातु से ही **सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-वर्ण-चूर्ण-चुरादिभ्यो णिच्** से **णिच्** प्रत्यय करके **कथ**+**इ** बन जाता है। **णिच्** को आर्धधातुक मानकर **अतो लोपः** से थकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ। **कथ्**+**इ** में **अत उपधायाः** ककारोत्तरवर्ती उपधाभूत अकार की वृद्धि करने के लिए प्रवृत्त था किन्तु **अचः परस्मिन् पूर्वविधौ** से अकार के लोप को स्थानिवद्भाव करके वृद्धि को रोका जाता है। स्थानिवद्भावविधायक सूत्र का अर्थ है- **पर को निमित्त मानकर हुआ अजादेश स्थानिवत् हो, यदि उस स्थानिभूत अच् से पूर्व देखे गये के स्थान पर कार्य करना हो तो।** यहाँ पर **अच् के** स्थान पर हुआ **आदेश** है **अतो लोपः** से किया गया **अकार** का लोप, उस अकार से पूर्व में विद्यमान अकार की वृद्धि करनी है। इस तरह यह सूत्र पूरा का पूरा घट गया। फलतः लोप का स्थानिवद्भाव हुआ अर्थात् अकार के लोप होने पर भी स्थानिवत्त्वेन बीच में अकार मान लिया गया, जिससे **कथ** में उपधा अकार न बन कर थकार बन गया। थकार की वृद्धि का प्रसंग नहीं हो सकता। अतः **अत उपधायाः** से वृद्धि नहीं हो सकी, **कथि** ही बन गया। उपधावृद्धि हो जाती तो **काथि** बन जाता। अब **कथि** की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा करके **णिचश्च** से कर्तृगामी क्रियाफल में आत्मनेपद होता है, अन्यथा परस्मैपद का विधान होता है। परस्मैपद में लट्, तिप्, शप् करके **कथि+अति** बना। इकार को सार्वधातुकगुण, अयादेश करके **कथयति** सिद्ध हो जाता है। आत्मनेपद में **कथयते**। शेष रूप सरल ही हैं।

यदि धातु से णिच् करने के पहले ही **चुर्** की तरह अकार की इत्संज्ञा करके लोप किया जाता तो **स्थानिवद्भाव** का प्रसंग न आता, फलतः वृद्धि होकर **काथि** हो जाता और उससे **काथयति** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता। **चुर्** में तो **अत्** न होने के कारण वृद्धि प्राप्त ही नहीं होती किन्तु उपधागुण होकर **चोरि** बनता है। णिच् आने के बाद अकार का लोप करने से धातु **अग्लोपी** बन जाता है, जिससे लुङ् में **सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे** से सन्वद्भाव नहीं होगा। फलतः दीर्घ आदि कार्य भी नहीं होंगे। अक्=प्रत्याहार है। जहाँ उसका लोप होता है, उसे **अग्लोपी** कहा जाता है।

चुरादिगण में धातुओं को **अदन्त** मानने के दो फल हैं- १- गुण, वृद्धि का निषेध, और २- अग्लोपी हो जाने से सन्वद्भाव का न होना।

यहाँ पर सभी लकारों के प्रथमपुरुष एकवचन के ही रूप दिये जा रहे हैं। आप सभी पुरुषों के तीनों वचनों में रूप बना लें, क्योंकि सरल ही हैं।

लट्- कथयति, कथयते। **लिट्-** कथयाञ्चकार, कथयाम्बभूव, कथयामास। **लुट्-** कथयिता, कथयितासि, कथयितासे। **लृट्-** कथयिष्यति, कथयिष्यते। **लोट्-** कथयतु-कथयतात्, कथयताम्। **लङ्-** अकथयत्, अकथयत। **विधिलिङ्-** कथयेत्, कथयेत।

ईकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

६९७. ई च गणः ७।४।९७॥

गणयतेरभ्यासस्य ई स्याच्चङ् परे णौ चादत्। अजीगणत्, अजगणत्।

इति चुरादयः॥२१॥

....

आशीर्लिङ्- **अतो लोपः** से अकार का और **णेरनिटि** से **णि** का लोप करके **कथ्यात्।** आत्मनेपद में **कथयिपीष्ट** बनता है। **लुङ्** में **णि** को मानकर अकार का लोप हुआ है। अतः यह धातु **अग्लोपी** है। फलतः **सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे** से सन्वद्भाव नहीं हुआ और दीर्घ भी नहीं हुआ। चङ् तो होगा ही, जिससे **अचकथत्, अचकथत** आदि रूप वन जाते हैं। लृङ्- अकथयिष्यत्, अकथयिष्यत।

गण संख्याने। गण धातु **गिनना** अर्थ में है। यह भी **कथ** की तरह ही अदन्त है। स्वार्थ में णिच्, **अतो लोपः** से अन्त्य अकार का लोप, वृद्धि की प्राप्ति, स्थानिवद्भाव करके वृद्धि का अभाव, **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा करके **कथयति** की ही तरह **गणयति** बन जाता है। **लट्** से **आशीर्लिङ्** तक तथा **लृङ्** में **कथ** की तरह ही रूप होते हैं। **लुङ्** में अग्रिम सूत्र **ई च गणः** से एक पक्ष में **ईकार** आदेश और एक पक्ष में **अकार** ही रह जाने से **अजीगणत्, अजगणत्** ऐसे दो-दो रूप बन जाते हैं।

६९७- **ई च गणः।** ई लुप्तप्रथमाकं पदं, च अव्ययपदं, गणः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** और **सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे** से **चङ्परे** की अनुवृत्ति आती है। **चङ् परे हो** ऐसा **णि** ही मिल सकता है, अतः **णौ** का अध्याहार किया जाता है।

चङ् परे हो ऐसे णि के परे होने पर गण धातु के अभ्यास को ईकार आदेश होता है, सूत्र में चकार पढ़ा गया है, इससे अत् आदेश भी हो सकता है अथवा अकार ही रह जाता है।

इस तरह से इस सूत्र से एक पक्ष में **ईकार** और एक पक्ष में **अकार** हो जाते हैं।

अजीगणत्, अजगणत्। गणि से लुङ्, तिप्, अडागम, च्लि, उसके स्थान पर प्राप्त सिच् को बाधकर ण्यन्त मानकर **णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्** से चङ्, णिलोप, द्वित्त्व तथा अभ्यास को चुत्व करके **अजगण्+अत्** बना है। **ई च गणः** से अभ्याससंज्ञक जकारोत्तरवर्ती अकार को **ईकार** आदेश करने पर **अजीगण्+अत्** बना। वर्णसम्मेलन करके **अजीगणत्** सिद्ध हुआ। **अकार** होने के पक्ष में **अजगण्+अत्** है। वर्णसम्मेलन, **अजगणत्।** इसी तरह आत्मनेपद में भी **अजीगणत, अजगणत** ऐसे रूप हो जाते हैं।

यहाँ पर सभी लकारों के प्रथमपुरुप के एकवचन के ही रूप दिये जा रहे हैं। आप सभी पुरुषों के तीनों वचनों में रूप बना लें, क्योंकि सरल ही हैं।

लट्- गणयति, गणयते। **लिट्**- गणयाञ्चकार, गणयाम्बभूव, गणयामास। **लुट्**- गणयिता, गणयितासि, गणयितासे। **लृट्**- गणयिष्यति, गणयिष्यते। **लोट्**- गणयतु-गणयतात्, गणयताम्। **लङ्**- अगणयत्, अगणयत। **विधिलिङ्**- गणयेत्, गणयेत। **आशीर्लिङ्- अतो लोपः** से अकार का और **णेरनिटि** से णि का लोप करके **गण्यात्। आत्मनेपद** में **गणयिषीष्ट** बनता है। **लुङ्** में **णि** को मान कर अकार का लोप हुआ है। अतः **अग्लोपी**

है। फलतः **सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे** से सन्वद्भाव और दीर्घ नहीं हुए। चङ् तो होगा ही, जिससे **अजगणत्, अजगणत** आदि रूप बन जाते हैं। **लृङ्**- अगणयिष्यत्, अगणयिष्यत।

चुरादि में ऐसे बहुत से धातु हैं, जिनके रूप आप स्वयं बना सकते हैं। कुछ धातुओं के अर्थ एवं लट्, लुङ् लकार के प्रथमपुरुष एकवचन के रूप दिये जा रहे हैं। शेष रूपों को बनाना आपका काम है। कुछ धातु ऐसे हैं जिनके अकार के स्थान पर **सन्यतः** से इत्व होकर **दीर्घो लघोः** से दीर्घ होता है।

धातु	अर्थ	लट्	लुङ्
भक्ष अदने	भक्षण करना	भक्षयति-भक्षयते	अबभक्षयत्-अबभक्षयत
तड आघाते	पीटना	ताडयति-ताडयते	अतीतडत्-अतीतडत
तुल उन्माने	तोलना	तोलयति-तोलयते	अतूतुलत्-अतूतुलत
पूज पूजायाम्	पूजा करना	पूजयति-पूजयते	अपूपुजत्-अपूपुजत
क्षल शौचकर्मणि	धोना	क्षालयति-क्षालयते	अचिक्षलत्-अचिक्षलत
चिति स्मृत्याम्	चिन्तन करना	चिन्तयति-चिन्तयते	अचिचिन्तत्-अचिचिन्तत
पाल रक्षणे	पालन करना	पालयति-पालयते	अपीपलत्-अपीपलत
वृजी वर्जने	छोड़ना	वर्जयति-वर्जयते	अवीवृजत्-अवीवृजत
लक्ष दर्शनाङ्कनयोः,	देखना, चिह्नित करना	लक्षयति-लक्षयते	अललक्षत्-अललक्षत
रच प्रतियत्ने	रचना करना	रचयति-रचयते	अररचत्- अररचत
स्पृह ईप्सायाम्	चाहना	स्पृहयति-स्पृहयते	अपस्पृहत्-अपस्पृहत
दण्ड दण्डनिपातने	दण्ड देना	दण्डयति-दण्डयते	अददण्डत्-अददण्डत
वर्ण वर्णने	वर्णन करना	वर्णयति-वर्णयते	अववर्णत्-अववर्णत

परीक्षा

१- अपनी पुस्तिका में चुर्, गण और कथ धातु के सारे रूप लिखें और लुङ् के दोनों पदों के सभी रूपों की सिद्धि करें। ३०

२- सन्वद्भाव एवं उसको मानकर होने वाले कार्यों के सम्बन्ध में एक लेख लिखिये। १०

२- अन्य धातुप्रकरणों की अपेक्षा चुरादिप्रकरण की विशेषता बताइये १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का चुरादि-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ ण्यन्तप्रक्रिया

कर्तृसंज्ञा-विधायकं संज्ञासूत्रम्

६९८. स्वतन्त्रः कर्ता १।४।५४॥

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्।

हेतु-कर्तृसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

६९९. तत्प्रयोजको हेतुश्च १।४।५५॥

कर्तुः प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च स्यात्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब तिङन्त में णिजन्त अर्थात् **ण्यन्तप्रकरण** आरम्भ होता है। इस प्रकरण में अलग से कोई धातु नहीं हैं। भ्वादि से लेकर चुरादि तक के दशगणीय धातुओं से ही इस प्रकरण में **णिच्** होता है। उन धातुओं से **प्रेरणा** अर्थात् **कराना** अर्थ में णिच् किया जाता है। जैसे हिन्दी आदि भाषा में पढ़ने से पढ़ाना, करने से कराना, लिखने से लिखाना, खाने से खिलाना, देखने से दिखाना आदि क्रियाएँ बनती हैं, उसी प्रकार से संस्कृत के धातुओं से भी ऐसी ही अर्थों के लिए **णिच्** प्रत्यय करके क्रमशः पठति से **पाठयति**, करोति से **कारयति**, लिखति से **लेखयति**, खादति से **खादयति**, पश्यति से **दर्शयति** आदि बना लिया जाता है। जैसे **पठ्** धातु का अर्थ **पढ़ना** है, **णिच्** करके **पाठि** बनाने के बाद इसका अर्थ **पढ़ाना** हो जाता है। आइये, प्रेरणार्थक ण्यन्त अर्थात् णिजन्त प्रकरण को समझते हैं।

६९८- **स्वतन्त्रः कर्ता**। स्वतन्त्रः प्रथमान्तं, कर्ता प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **कारके** का अधिकार चल रहा है।

क्रिया में स्वतन्त्र रूप से विवक्षित कारक कर्तृ(कर्ता)संज्ञक होता है।

वाक्य में कर्ता, कर्म, क्रिया आदि होते हैं। वाक्य में जो प्रधान होता है या क्रिया की सिद्धि के लिए जिसकी नितान्त अनिवार्यता होती है, जो वाक्य में प्रधानतया अवस्थित रहता है, जिसके विना क्रिया हो ही नहीं पाती है, ऐसे कारक की **कर्तृसंज्ञा**(कर्ता-संज्ञा) इस सूत्र से की जाती है। कर्ता ही क्रिया का जनक होता है। कर्ता के अनुसार ही क्रिया में लिङ्ग, संख्या आदि का निर्धारण होता है। **जैसे राम पढ़ता है** इस वाक्य में क्रिया है- **पढ़ता है**, इस क्रिया की सिद्धि में **राम** की अनिवार्य भूमिका है, उसके विना क्रिया की सिद्धि हो ही नहीं सकती। अतः **राम** को कर्ता माना गया।

णिच्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७००. हेतुमति च ३।१।२६॥

प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् स्यात्।

भवन्तं प्रेरयति भावयति।

....

६९९- तत्प्रयोजको हेतुश्च। तस्य (कर्तुः) प्रयोजकः(प्रवर्तयिता) तत्प्रयोजकः। तत्प्रयोजकः प्रथमान्तं, हेतुः प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **स्वतन्त्रः कर्ता** से **कर्ता** की अनुवृत्ति आती है।

कर्ता के प्रयोजक की हेतुसंज्ञा और कर्तृसंज्ञा होती हैं।

प्रेरक की दोनों संज्ञाएँ होती हैं। जैसे **राम पढ़ता है** यह सामान्य वाक्य है। इसको प्रेरणार्थक में बनाया जाय तो **श्याम राम को पढ़ाता है**, ऐसा वाक्य बनेगा। **राम** जो पहले के वाक्य में **कर्ता** है, वह इस वाक्य में **कर्म** बना हुआ है। पढ़ने का कार्य **राम** कर रहा है और **पढ़ाने** का कार्य **श्याम** कर रहा है। अतः **श्याम** प्रेरक होने से **कर्ता** भी बन गया अर्थात् कर्तृसंज्ञक हो गया। श्याम राम को पढ़ाने में हेतु भी है, अतः वह **हेतुसंज्ञक** भी हो जाता है। तात्पर्य यह है कि जहाँ **प्रेरणार्थक-ण्यन्त** धातु होती है वहाँ दो कर्ता होते हैं- **प्रयोज्य कर्ता** और **प्रयोजक कर्ता**। प्रयोज्य कर्ता वह है जो प्रेरक के द्वारा किसी क्रिया के करने में प्रेरित होता हो। जैसे- **रामः पठति** में पठन-क्रिया करने वाला राम है। अतः वह पठन-क्रिया में स्वतन्त्ररूप से विवक्षित होने से **कर्ता** है और जब ऐसे पढ़ते हुए राम को पढ़ने के लिए (ज्ञान बढ़ाने के लिए) जो सहायता करता है, वह **प्रयोजक (प्रेरक) कर्ता** कहलाता है। जैसे- **पठन्तं रामं (पठितुम्) प्रेरयति, पाठयति श्यामः**। पढ़ते हुए राम को पढ़ने के लिए प्रेरणा देता है श्याम। इस वाक्य में प्रेरक, सहायक हुआ **श्याम**। अतः इस इस **प्रयोजक, प्रेरक, सहायक श्याम** की **कर्तृसंज्ञा** और **हेतुसंज्ञा** दोनों ही होती हैं। इसलिए **श्याम प्रयोजक कर्ता** कहलाता है और प्रयोजक की प्रेरणा से पढ़ने वाला राम **प्रयोज्य कर्ता** कहलाता है।

७००- हेतुमति च। हेतुमति सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से **धातोः** और **सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोम-त्वच-वर्म-वर्ण-चूर्ण-चुरादिभ्यो णिच्** से **णिच्** की अनुवृत्ति आती है।

प्रयोजक-प्रेरक कर्ता के व्यापार (प्रेषण-प्रेरण आदि) वाच्य होने पर धातु से णिच् प्रत्यय होता है।

जहाँ पर भी होने से होवाना, पढ़ने से पढ़ाना आदि अर्थ की अपेक्षा होती है, वहाँ पर इस सूत्र से णिच् हो जाता है। णिच् होने के बाद चुरादिगण की तरह प्रक्रिया चलती है। जैसे- **भवन्तं प्रेरयति भावयति।** जैसे- **देवदत्तः भवति-** देवदत्त होता है, होने वाले देवदत्त को यज्ञदत्त होवाता है अर्थात् होने की प्रेरणा देता है। ऐसी परिस्थिति में **भू** से **हेतुमति च** सूत्र के द्वारा **णिच्** प्रत्यय हो जाता है। **णिच्** में **णकार** और **चकार** की इत्संज्ञा होकर **इ** बचता है। भू+इ में **अचो ञ्णिति** से वृद्धि होने पर **भौ+इ** बना, **आव्** आदेश होकर **भावि** बना। **भावि** की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होती है। **णिजन्त** होने के बाद **णिच्चश्च** से दोनों **परस्मैपद** और **आत्मनेपद** हो जाते हैं।

इत्वविधायकं विधिसूत्रम्

७०१. ओः पुयण्ज्यपरे ७।४।८०॥

सनि परे यदङ्गं तदवयवाभ्यासोकारस्य इत् स्यात् पवर्गयण्जकारेष्ववर्णपरेषु परतः। अबीभवत्। **ष्ठा गतिनिवृत्तौ॥१॥**

....

भावयति। भू धातु से **भावि** बनने के बाद लट्-लकार, तिप्, शप्, अनुबन्धलोप, **भावि+अति** बना। **इकार** को गुण और उसको अय् आदेश, **भाव्+अय्+अति** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **भावयति** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार से दोनों पदों में रूप बनाइये।

लट् परस्मैपद में- भावयति, भावयतः, भावयन्ति। भावयसि, भावयथः, भावयथ। भावयामि, भावयावः, भावयामः। **आत्मनेपद में-** भावयते, भावयेते, भावयन्ते। भावयसे, भावयेथे, भावयध्वे। भावये, भावयावहे, भावयामहे।

लिट् परस्मैपद में कृ का अनुप्रयोग होने पर- भावयाञ्चकार, भावयाञ्चक्रतुः, भावयाञ्चक्रुः। भावयाञ्चकर्थ, भावयाञ्चक्रथुः, भावयाञ्चक्र। भावयाञ्चकार- भावयाञ्चकर, भावयाञ्चकृव, भावयाञ्चकृम। **आत्मनेपद में-** भावयाञ्चक्रे, भावयाञ्चक्राते, भावयाञ्चक्रिरे। भावयाञ्चकृषे, भावयाञ्चक्राथे, भावयाञ्चकृढ्वे। भावयाञ्चक्रे, भावयाञ्चकृवहे, भावयाञ्चकृमहे। **भू का अनुप्रयोग होने पर-** भावयाम्बभूव, भावयाम्बभूवतुः, भावयाम्बभूवुः। भावयाम्बभूविथ, भावयाम्बभूवथुः, भावयाम्बभूव। भावयाम्बभूव, भावयाम्बभूविव, भावयाम्बभूविम। **अस् का अनुप्रयोग होने पर-** भावयामास, भावयामासतुः भावयामासुः। भावयामासिथ, भावयामासथुः भावयामास। भावयामास, भावयामासिव, भावयामासिम।

लुट् परस्मैपद में- भावयिता, भावयितारौ, भावयितारः। भावयितासि, भावयितास्थः, भावयितास्थ। भावयितास्मि, भावयितास्वः, भावयितास्मः। **आत्मनेपद में-** भावयिता, भावयितारौ, भावयितारः। भावयितासे, भावयितासाथे, भावयिताध्वे। भावयिताहे, भावयितास्वहे, भावयितास्महे।

लृट् परस्मैपद में- भावयिष्यति, भावयिष्यतः, भावयिष्यन्ति। भावयिष्यसि, भावयिष्यथः, भावयिष्यथ। भावयिष्यामि, भावयिष्यावः, भावयिष्यामः। **आत्मनेपद में-** भावयिष्यते, भावयिष्येते, भावयिष्यन्ते। भावयिष्यसे, भावयिष्येथे, भावयिष्यध्वे। भावयिष्ये, भावयिष्यावहे, भावयिष्यामहे।

लोट् परस्मैपद में- भावयतु-भावयतात्, भावयताम्, भावयन्तु। भावय-भावयतात्, भावयतम्, भावयत। भावयानि, भावयाव, भावयाम। **आत्मनेपद में-** भावयताम्, भावयेताम्, भावयन्ताम्। भावयस्व, भावयेथाम्, भावयध्वम्। भावयै, भावयावहै, भावयामहै।

लङ् परस्मैपद में- अभावयत्, अभावयताम्, अभावयन्। अभावयः, अभावयतम्, अभावयत। अभावयम्, अभावयाव, अभावयाम। **आत्मनेपद में-** अभावयत, अभावयेताम्, अभावयन्त। अभावयथाः, अभावयेथाम्, अभावयध्वम्। अभावये, अभावयावहि, अभावयामहि।

विधिलिङ् परस्मैपद में- भावयेत्, भावयेताम्, भावयेयुः। भावयेः, भावयेतम्, भावयेत। भावयेयम्, भावयेव, भावयेम। **आत्मनेपद में-** भावयेत, भावयेयाताम्, भावयेरन्। भावयेथाः, भावयेयाथाम्, भावयेध्वम्। भावयेय, भावयेवहि, भावयेमहि।

आशीर्लिङ् परस्मैपद में- णेरनिटि से इकार का लोप होता है- भाव्यात्,

भाव्यास्ताम्, भाव्यासु:। भाव्या:, भाव्यास्तम्, भाव्यास्त। भाव्यासम्, भाव्यास्व, भाव्यास्म। **आत्मनेपद में**- भावयिषीष्ट, भावयिषीयास्ताम्,, भावयिषीरन्। भावयिषीष्ठा:, भावयिषीयास्थाम्, भावयिषीढ्वम्-भावयिषीध्वम्। भावयिषीय, भावयिषीवहि, भाविषीमहि।

५११- ओ: पुयण्ज्यपरे। पुश्च, यण्च, ज् च तेषां समाहारद्वन्द्व: पुयण्ज्, तस्मिन् पुयण्जि। अ: परो यस्मात्, स अपरस्तस्मिन् अपरे। ओ: षष्ठ्यन्तं, पुयण्जि सप्तम्यन्तम्, अपरे सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य**, **भृञामित्** से **इत्** और **सन्यत:** से **सनि** की अनुवृत्ति आती है।

सन् परे होने पर जो अङ्ग, उसके अवयव अभ्यास के उकार के स्थान पर इकार आदेश होता है, यदि पवर्ग, यण्, जकार में से कोई परे हो किन्तु इनसे भी परे अकार होना चाहिए।

परिभाषा- णिच्यच आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ये। द्वित्व करना हो तो **णिच्** को मानकर अच् के स्थान पर आदेश नहीं करना चाहिए। इस परिभाषा के बल पर **भू** से **हेतुमति च** द्वारा **णिच्** होने के बाद लुङ्-लकार में द्वित्व की कर्तव्यता में **भू** के स्थान पर वृद्धिरूपी अचादेश नहीं होता। अत: भू+इ इसी अवस्था में **सनाद्यन्ता धातव:** से धातुसंज्ञा होकर लुङ्, च्लि, चङ् आदि होने पर **चङि** से द्वित्व हो जाता है।

अबीभवत्। **भू+इ** से लुङ्, अट् आगम, तिप्, करके **अभू+इ+त्** बना। च्लि करके उसके स्थान पर **सिच्** आदेश प्राप्त था, उसको बाधकर **णिश्रिद्रुस्रुभ्य: कर्तरि चङ्** से ण्यन्त-धातु मानकर च्लि के स्थान पर **चङ्** आदेश हुआ। **चकार** और **ङकार** की इत्संज्ञा और लोप होने के बाद **अ** बचा। **अभू+इ+अ+त्** बना। **णिच्यच आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ये** इस परिभाषा की सहायता से पहले **चङि** सूत्र से **भू** को द्वित्व हुआ, उसकी अभ्याससंज्ञा **ह्रस्व:** से प्रथम भू को ह्रस्व हुआ और **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होकर **बु** हुआ, **अबु+भू+इ+अत्** बना। दीर्घ आदि के होने के बाद पहले निषिद्ध **भू** की **अचो ञ्णिति** से **वृद्धि** हो गई तो **भू** के स्थान पर **भौ** बन गया। **आव्** आदेश होकर **अबु+भाव्+इ+अत्** बना। अब **णौ चङ्युपधाया ह्रस्व:** से उपधाभूत **भाव्** के **आकार** को ह्रस्व हुआ। **अबु+भव्+इ+अत्** बना। **णेरनिटि** से णिच् वाले **इकार** का लोप हुआ। **अबु+भव्+अत्** बना। **सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे** से अभ्यास **बु** के लिए **सन्वद्भाव** अर्थात् सन् के परे होने पर जो कार्य हो सकते हैं, वे कार्य हो जायें ऐसा **अतिदेश** कर दिया। **सन्वद्भाव** होने के बाद अभ्यास **बु** को **ओ: पुयण्ज्यपरे** से **इत्** अर्थात् **ह्रस्व इकार** आदेश हुआ- **अबि+भव्+अत्** बना। **दीर्घो लघो:** से **बि** के **इकार** को दीर्घ हुआ, **अबी+भव्+अत्** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **अबीभवत्।** यही प्रक्रिया परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों जगह समझनी चाहिए।

लुङ् परस्मैपद में- अबीभवत्, अबीभवताम्, अबीभवन्। अबीभव:, अबीभवतम्, अबीभवत। अबीभवम्, अबीभवाव, अबीभवाम। **आत्मनेपद में**- अबीभवत, अबीभवेताम्, अबीभवन्त। अबीभवथा:, अबीभवेथाम्, अबीभवध्वम्। अबीभवे, अबीभवावहि, अबीभवामहि।

लृङ् परस्मैपद में- अभावयिष्यत्, अभावयिष्यताम्, अभावयिष्यन्। अभावयिष्य:, अभावयिष्यतम्, अभावयिष्यत। अभावयिष्यम्, अभावयिष्याव, अभावयिष्याम। **आत्मनेपद में**- अभावयिष्यत, अभावयिष्येताम्, अभावयिष्यन्त। अभावयिष्यथा:, अभावयिष्येथाम्, अभावयिष्यध्वम्। अभावयिष्ये, अभावयिष्यावहि, अभावयिष्यामहि।

पुगागमविधायकं विधिसूत्रम्

७०२. अर्तिह्रीब्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ् णौ ७।३।३६॥

स्थापयति।

....

ष्ठा गतिनिवृत्तौ आदि धातुओं से भी णिजन्त में रूप बनाते हैं। ष्ठा धातु गति की निवृत्ति अर्थात् **ठहरने** अर्थ में है। यह भ्वादिगण का **परस्मैपदी** धातु है। **धात्वादेः षः सः** से **षकार** के स्थान पर **सकार** आदेश हुआ। **षकार** के कारण ही थकार जो है, वह **ठकार** बन गया था, जब **षकार** ही **सकार** में आ गया तो **ठकार** भी अपने पुराने रूप **थकार** में आ जाता है। **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः**। इस तरह **ष्ठा** धातु **स्था** में बदल गया। भ्वादि में **पाघ्राध्मास्थाम्ना०** से तिष्ठ आदेश होकर **तिष्ठति** आदि रूप बनते हैं। अब **णिजन्तप्रकरण में हेतुमति च** से णिच् होने के बाद अग्रिम सूत्र **अर्ति-ह्री-व्ली-री-क्नूयी-क्ष्माय्यातां पुङ् णौ से पुक्** का आगम होकर **स्थापयति** बनता है। **तिष्ठति**=ठहरता है और **स्थापयति**= ठहरवाता है, रूकवाता है।

७०२-**अर्ति-ह्री-व्ली-री-क्नूयी-क्ष्माय्यातां पुङ् णौ**। अतिश्च ह्रीश्च व्लीश्च रीश्च क्नूयीश्च क्ष्मायीश्च आच्च तेषामितरेतरद्वन्द्व अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातस्तेषाम्। इस सूत्र में **अङ्गस्य** का अधिकार है।

ऋ, ह्री, व्ली, री, क्नूयी, क्ष्मायी और आकारान्त धातुओं को पुक् का आगम होता है णि के परे होने पर।

पुक् में उकार और ककार कि इत्संज्ञा होती है। प् शेष रहता है। कित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से धातु के अन्त में बैठता है जिससे **ऋ**+**इ** से **अर्पि**, **ह्री**+**इ** से **ह्रेपि**, **व्ली**+**इ** से **व्लेपि**, **री**+**इ** से **रेपि**, **क्नू**+**इ** से **क्नोपि**, **क्ष्मा**+**इ** से **क्ष्मापि** और आकारान्त **स्था**+**इ** से **स्थापि**, **दा**+**इ** से **दापि**, **धा**+**इ** से **धापि**, **ज्ञा**+**इ** से **ज्ञापि** बन जाते हैं। आगे लकार आदि करके **अर्पयति**, **ह्रेपयति**, **व्लेपयति**, **रेपयति**, **क्नोपयति**, **क्ष्मापयति**, **स्थापयति**, **दापयति**, **धापयति और ज्ञापयति** बना लिए जाते हैं।

स्थापयति। ष्ठा से स्था बन जाने के बाद **हेतुमचि च** से प्रेरणार्थ में णिच् होकर अनुबन्धलोप होने के बाद **स्था**+**इ** बना। **अर्ति-ह्री-व्ली-री-क्नूयी-क्ष्माय्यातां पुङ् णौ** से स्था को **पुक्** का आगम हुआ। अनुबन्धलोप होने के बाद **प्** बचा। कित् होने के कारण **स्था** के अन्त में बैठा। **स्थाप्**+**इ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **स्थापि** बना। **स्थापि** की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होकर लट् लकार, तिप्, शप् करके **स्थापि**+**अ**+**ति** बना। इकार को गुण, अय् आदेश करके **स्थाप्**+**अय्**+**अति** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **स्थापयति** सिद्ध हुआ। अब इसी प्रकार दोनों पदों के सभी लकारों में रूप बनाना चाहिए।

लट् परस्मैपद में- स्थापयति, स्थापयतः, स्थापयन्ति। स्थापयसि, स्थापयथः, स्थापयथ। स्थापयामि, स्थापयावः, स्थापयामः। **आत्मनेपद में**- स्थापयते, स्थापयेते, स्थापयन्ते। स्थापयसे, स्थापयेथे, स्थापयध्वे। स्थापये, स्थापयावहे, स्थापयामहे।

अब आगे के लकारों के प्रथमपुरुष एकवचन के रूप दिये जा रहे हैं, शेष रूपों को आप स्वयं जानने की चेष्टा करें।

लिट्- स्थापयाञ्चकार-स्थापयाञ्चक्रे, स्थापयाम्बभूव, स्थापयामास। **लुट्**- स्थापयिता,

इदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

७०३. तिष्ठतेरित् ७।४।५॥

उपधाया इदादेशः स्याच्चङ्परे णौ। अतिष्ठिपत्।

घट चेष्टायाम्॥२॥

....

स्थापयितासि-स्थापयितासे। **लृट्-** स्थापयिष्यति-स्थापयिष्यते। **लोट्-** स्थापयतु-स्थापयताम्। **लङ्-** अस्थापयत्-अस्थापयत। **विधिलिङ्-** स्थापयेत्-स्थापयेत। **आशीर्लिङ्-** स्थाप्यात्-स्थापयिषीष्ट।

७०३-तिष्ठतेरित्। तिष्ठतेः षष्ठ्यन्तम्, इत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः** से **णौ, चङि** और **उपधायाः** की अनुवृत्ति आती है।

चङ्-परक णि परे हो तो स्था-धातु की उपधा के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश होता है।

अतिष्ठिपत्। स्थापि इस णिजन्त धातु से लुङ्, तिप्, अट्, च्लि, चङ् तथा णि का लोप करने पर **अस्थाप्+अत्** बना। अव यहाँ चङ्-परक णि के परे होने से **स्थाप्** के उपधाभूत **आकार** के स्थान पर **तिष्ठतेरित्** से ह्रस्व इकार आदेश हुआ, **अस्थिप्+अत्** बना। **चङि** से **स्थिप्** को द्वित्व, **स्थिप् स्थिप्** में हलादिशेष होने पर **शर्पूर्वाः खयः** (यह सूत्र हलादि शेष में यदि शर् पहले हो तो खय् को शेष और अन्य हलों का लोप करता है। यह **हलादि शेषः** बाधक है।) से सकार और पकार का लोप हुआ, थि् बचा। **थिस्थिप्** बना। **अभ्यासे चर्च** से चर्त्व होकर **ति** हुआ, **अतिस्थिप्+अत्** बना। **ति** के इकार से परे सकार के स्थान पर **आदेशप्रत्यययोः** से **षत्व** हुआ और पकार से परे **थकार** को **ष्टुना ष्टुः** से **ष्टुत्व** हुआ- **अतिष्ठिप्+अत्** हुआ, वर्णसम्मेलन हुआ- **अतिष्ठिपत्** सिद्ध हुआ।

परस्मैपद- अतिष्ठिपत्, अतिष्ठिपताम्, अतिष्ठिपन्। अतिष्ठिपः, अतिष्ठिपतम्, अतिष्ठिपत। अतिष्ठिपम्, अतिष्ठिपाव, अतिष्ठिपाम। **आत्मनेपद-** अतिष्ठिपत, अतिष्ठिपेताम्, अतिष्ठिपन्त। अतिष्ठिपथाः, अतिष्ठिपेथाम्, अतिष्ठिपध्वम्। अतिष्ठिपे, अतिष्ठिपावहि, अतिष्ठिपामहि।

लृङ्- परस्मैपद- अस्थापयिष्यत्, अस्थापयिष्यताम्, अस्थापयिष्यन्। अस्थापयिष्यः, अस्थापयिष्यतम्, अस्थापयिष्यत। अस्थापयिष्यम्, अस्थापयिष्याव, अस्थापयिष्याम। **आत्मनेपद में-** अस्थापयिष्यत, अस्थापयिष्येताम्, अस्थापयिष्यन्त। अस्थापयिष्यथाः, अस्थापयिष्येथाम्, अस्थापयिष्यध्वम्। अस्थापयिष्ये, अस्थापयिष्यावहि, अस्थापयिष्यामहि।

घट चेष्टायाम्। घट धातु **चेष्टा करना, प्रयत्न करना** अर्थ में है। यह धातु भ्वादिगण में अनुदात्तेत् के रूप में पठित होने से आत्मनेपदी है। वहाँ **घटते, जघटे** आदि रूप बनते हैं। यहाँ पर णिच् होने के बाद **णिचश्च** की प्रवृत्ति के कारण उभयपदी बन जाता है। इस प्रकरण में प्रयोजक व्यापार, प्रेरणा आदि अर्थ के लिए **हेतुमति च** से **णिच्** होकर **अत उपधायाः** से वृद्धि होकर **घाट्+इ** बनता है। इस स्थिति में ह्रस्व करने के लिए अग्रिम सूत्र है।

७०४- मितां ह्रस्वः। मितां षष्ठ्यन्तं, ह्रस्वः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **ऊदुपधाया गोहः** से **उपधायाः** और **दोषो णौ** से **णौ** की अनुवृत्ति आती है।

ह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्

७०४. मितां ह्रस्वः ६।४।९२।।

घटादीनां ज्ञपादीनां चोपधाया ह्रस्वः स्याण्णौ। घटयति।

ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने च।।३।। ज्ञपयति। अजिज्ञपत्।।

इति ण्यन्तप्रक्रिया।।२२।।

....

णि के परे होने पर मित् अर्थात् घटादि धातुओं और ज्ञपादि धातुओं के उपधा को ह्रस्व होता है।

धातुपाठ में कुछ निसर्गतः **अमित्** धातुओं को **मित् अतिदेश** किया गया है। ऐसे धातु हैं **घटादि धातु** और **चुरादि** के **ज्ञप् आदि धातु**। इनमें स्वतः **मित्** नहीं हुआ है किन्तु **मितां ह्रस्वः** आदि सूत्रों की प्रवृत्ति के लिए **मिद्वद्भाव** किया गया है।

घाट्+इ में इस सूत्र से उपधाभूत आकार को ह्रस्व होकर **घट्+इ** बन जाता है जिससे **घटयति** आदि रूप बनते हैं।

लट्- घटयति, घटयते। **लिट्**- घटयाञ्चकार, घटयाञ्चक्रे, घटयाम्बभूव, घटयामास। **लुट्**- घटयिता, घटयितासि, घटयितासे। **लृट्**- घटयिष्यति, घटयिष्यते। **लोट्**- घटयतु-घटयतात्, घटयताम्। **लङ्**- अघटयत्, अघटयत। **विधिर्लिङ्**- घटयेत्, घटयेत। **आशीर्लिङ्**- घट्यात्, घटयिषीष्ट। **लुङ्**- अजीघटत्, अजीघटत। **लृङ्**- अघटयिष्यत्, अघटयिष्यत।

ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने च। यह धातु **जानना** और **जनाना** अर्थ में है। अकार का लोप होता है, णिच् के बाद उपधा की वृद्धि होती है और मित् मान करके **मितां ह्रस्वः** से ह्रस्व होकर **ज्ञपि** की धातुसंज्ञा होती है जिससे **ज्ञपयति, ज्ञपयते** आदि रूप बनते हैं। लुङ् में **च्लि** को **चङ्**, द्वित्व, णिलोप, सन्वद्भाव होकर **सन्यतः** से इत्त्व करके **अजिज्ञपत्** सिद्ध होता है। स्मरण रहे कि अभ्यास में लघु न होने से **दीर्घो लघोः** से दीर्घ नहीं होता।

लट्- ज्ञपयति, ज्ञपयते। **लिट्**- ज्ञपयाञ्चकार, ज्ञपयाञ्चक्रे, ज्ञपयाम्बभूव, ज्ञपयामास। **लुट्**- ज्ञपयिता, ज्ञपयितासि, ज्ञपयितासे। **लृट्**- ज्ञपयिष्यति, ज्ञपयिष्यते। **लोट्**- ज्ञपयतु-ज्ञपयतात्, ज्ञपयताम्। **लङ्**- अज्ञपयत्, अज्ञपयत। **विधिलिङ्**- ज्ञपयेत्, ज्ञपयेत। **आशीर्लिङ्**- ज्ञप्यात्, ज्ञपयिषीष्ट। **लुङ्**- अजिज्ञपत्, अजिज्ञपत। **लृङ्**- अज्ञपयिष्यत्, अज्ञपयिष्यत।

अब एक प्रश्न उठता है कि **चुरादि** में णिच् होने के बाद उस धातु से प्रेरणा आदि अर्थ के लिए **ण्यन्तप्रक्रिया** का णिच् करना पड़ेगा ही। ऐसी स्थिति में दोनों णिचों का श्रवण किस तरह से होगा या क्या रूप बनेंगे? चुरादिगणीय धातुओं से जब **हेतुमति च** से णिच् करते हैं तो तब वहाँ पर दो णिच् उपस्थित होते ही हैं, एक स्वार्थ णिच् और एक प्रयोजकव्यापार वाला णिच्। यहाँ पर स्वार्थ णिच् का **णेरनिटि** से लोप करके एक ही णिच् रह जाता है और रूप चुरादिगण जैसा ही बनता है अर्थात् हेतुमण्णिच् के रहने पर भी इसकी रूपमाला और प्रक्रिया चुरादिगण की तरह ही होती है, कुछ भी अन्तर नहीं होता।

णिजन्त में ऐसे बहुत से धातुओं के रूप आप स्वयं बना सकते हैं। कुछ धातुएँ, उनके अर्थ एवं लट् तथा लुङ् लकार के प्रथमपुरुष एकवचन के रूप दिये जा रहे हैं। शेष रूपों को बनाना आपका काम है। कुछ धातु ऐसे हैं जिनके अकार के स्थान पर **सन्यतः** से इत्व होकर **दीर्घो लघोः** से दीर्घ होता है। जहाँ धातु में पहले से ही दीर्घ है, वहाँ पर

णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः से ह्रस्व होकर तब इत्व, उसके बाद फिर दीर्घ होता है। आकारान्त धातुओं से तो णिच् के परे होने पर पुक् आगम होता ही है। णिच् होने के बाद धातुओं का अर्थ बदल जाता है। जैसे **पढ़ना** अर्थ है तो यहाँ पर **पढ़ाना** अर्थ हो जायेगा। पुनश्च आपको स्मरण कराते हैं कि जो धातुएँ चुरादि आदि में णिजन्त हुए हैं उनके णिजन्त प्रकरण में लगभग समान ही रूप होते हैं। जैसे चुरादि में **चोरयति** तो णिजन्त में भी **चोरयति**। क्योंकि दोनों प्रकरणों में णिच् ही हो रहा है।

धातु	ण्यन्तार्थ	सामान्य-रूप	णिजन्त-लट्	णिजन्त लुङ्
अद्	खिलाना	अत्ति	आदयति	आदिदत्
कुप्	कुपित करना	कुप्यति	कोपयति	अचूकुपत्
कृ	कराना	करोति	कारयति	अचीकरत्
क्री	खरीदवाना	क्रीणाति	क्रापयति	अचीक्रपत्
क्रीड्	खेलाना	क्रीडति	क्रीडयति	अचिक्रीडत्
खाद्	खिलाना	खादति	खादयति	अचखादत्
गम्	भिजवाना	गच्छति	गमयति	अजीगमत्
ग्रह्	ग्रहण करवाना	गृह्णाति	ग्राहयति	अजिग्रहत्
चल्	चलाना	चलति	चालयति	अचीचलत्
जन्	पैदा करना	जायते	जनयति	अजिज्ञपत्
जप्	जप कराना	जपति	जापयति	अजीजपत्
जागृ	जगाना	जागर्ति	जागरयति	अजजागरत्
जि	जीताना	जयते	जाययति	अजीजयत्
जीव्	जिलाना	जीवति	जीवयति	अजिजीवत्
ज्ञा	बोध कराना	जानाति	ज्ञापयति	अजिज्ञपत्
तप्	तपाना	तपति	तापयति	अतीतपत्
तुष्	प्रसन्न करना	तुष्यति	तोषयति	अतूतुषत्
त्यज्	छुड़ाना	त्यजति	त्याजयति	अतित्यजत्
दह्	जलाना	दहति	दाहयति	अदीदहत्
दा	दिलवाना	ददाति	दापयति	अदीदपत्
दृश्	दिखाना	पश्यति	दर्शयति	अदीदृशत्
ध्यै	ध्यान करवाना	ध्यायति	ध्यापयति	अदिध्यपत्
नम्	झुकाना	नमति	नामयति	अनीनमत्
नश्	नष्ट करना	नश्यति	नाशयति	अनीनशत्
पच्	पकवाना	पचति	पाचयति	अपीपचत्
पठ्	पढ़ाना	पठति	पाठयति	अपीपठत्
पा	पिलाना	पिबति	पाययति	अपीपिबत्
पुष्	पुष्ट करना	पुष्यति	पोषयति	अपूपुषत्
बुध्	बोध कराना	बुध्यति	बोधयति	अबूबुधत्
भाष्	बुलवाना	भाषते	भाषयति	अबीभषत्
भुज्	खिलाना	भुनक्ति	भोजयति	अबूभुजत्

मिल्	मिलाना	मिलति	मेलयति	अमीमिलत्
मुद्	प्रसन्न करना	मोदते	मोदयति	अमूमुदत्
मुह्	मुग्ध करना	मोहते	मोहयति	अमूमुहत्
यज्	यज्ञ करवाना	यजति	याजयति	अयीयजत्
युज्	मिलवाना	योजते	योजयति	अयूयुजत्
युध्	युद्ध कराना	युध्यति	योधयति	अयूयुधत्
रक्ष्	रक्षा कराना	रक्षति	रक्षयति	अरीरक्षत्
रम्	रमण कराना	रमते	रमयति	अरीरमत्
रुच्	पसन्द कराना	रोचते	रोचयति	अरूरुचत्
रुद्	रुलाना	रोदिति	रोदयति	अरूरुदत्
लभ्	प्राप्त कराना	लभते	लम्भयति	अललम्भत
लस्ज्	लज्जित करना	लज्जते	लज्जयति	अललज्जत्
लिख्	लिखाना	लिखति	लेखयति	अलीलिखत्
लुभ्	लुभाना	लोभते	लोभयति	अलूलुभत्
वच्	कहलवाना	वक्ति	वाचयति	अवीवचत्
वस्	वास कराना	वसति	वासयति	अवीवसत्
वृध्	बढ़ाना	वर्धते	वर्धयति	अवीवृधत्
शी	सुलाना	शेते	शाययति	अशीशयत्
शुच्	शोक कराना	शोचति	शोचयति	अशूशुचत्
शुध्	शुद्ध कराना	शोधयति	शोधयति	अशूशुधत्
शुष्	सूखाना	शुष्यति	शोषयति	अशूशुषत्
श्रु	सुनाना	श्रृणोति	श्रावयति	अशुश्रवत्
सिच्	सिचवाना	सिञ्चति	सेचयति	असीषिचत्
स्ना	स्नान कराना	स्नाति	स्नापयति	असिस्नपत्
स्मृ	स्मरण करना	स्मरति	स्मारयति	अमिस्मरत्
स्वप्	सुलाना	स्वपिति	स्वापयति	असूषुपत्
हन्	मरवाना	हन्ति	घातयति	अजीघतत्
हस्	हसना	हसति	हासयति	अजीहसत्
हृ	हरण कराना	हरति	हारयति	अजीहरत्

परीक्षा

द्रष्टव्यः- **सभी प्रश्न अनिवार्य हैं और उनके अंक भी दिये गये हैं।**

१- अपनी पुस्तिका में भू और स्था धातु के णिजन्त के सारे रूप लिखें २०

२- भू-धातु के णिजन्त लुङ् लकार के सभी रूपों की सिद्धि दिखाइये १५

३- अन्य धातुप्रकरणों की अपेक्षा णिजन्तप्रकरण की विशेषता बताइये १५

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का ण्यन्त-प्रक्रिया पूरी हुई।

अथ सन्नन्तप्रक्रिया

सन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७०५. धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ३।१।७॥

इषिकर्मण इषिणैककर्तृकाद्धातोः सन् प्रत्ययो वा स्यादिच्छायाम्।

पठ व्यक्तायां वाचि॥१॥

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **सन्नन्तप्रकरण** का आरम्भ होता है। **सन्+अन्त=सन्नन्त,** सन् अन्त में हो ऐसी धातुओं का प्रकरण। इस प्रकरण में अलग से कोई धातुएँ नहीं होती हैं किन्तु भ्वादि से चुरादि तक की धातुओं से इस प्रकरण में सन् आदि करके कार्य किया जाता है। **सन्** प्रत्यय करने के बाद उस सन्नन्त की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा की जाती है। उसके बाद लट् आदि लकार होते हैं। यह सन् प्रत्यय **इच्छा अर्थ** में होता है। जैसे पढ़ने की इच्छा करता है- **पिपठिषति**। जाने की इच्छा करता है- **जिगमिषति**। करने की इच्छा करता है- **चिकीर्षति**।

७०५- धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा। समानः कर्ता यस्य स समानकर्तृकस्तस्मात्। धातोः पञ्चम्यन्तं, कर्मणः पञ्चम्यन्तं, समानकर्तृकाद् पञ्चम्यन्तम्, इच्छायां सप्तम्यन्तं, वा अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **गुप्तिज्किद्भ्यः सन्** से **सन्** की अनुवृत्ति आती है।

जो इच्छार्थक इष्-धातु का कर्म हो और इष्-धातु के साथ समानकर्तृक भी हो उस धातु से इच्छा अर्थ में विकल्प से सन् प्रत्यय होता है।

किसी भी धातु से सन् प्रत्यय तब होता है, जब यदि वह धातु दो शर्तों को पूरा करता हो तो। जैसे इष्-धातु (चाहना) का कर्म हो, और इष् धातु का जो कर्ता, उस क्रिया का भी वही कर्ता हो। जैसे- **रामः पठितुमिच्छति इति पिपठिषति**। राम पढ़ना चाहता है। यहाँ पठ् धातु से इच्छा अर्थ में सन्-प्रत्यय हुआ है। **पठ्** धातु यहाँ अर्थरूप से **इष्** का ही कर्म है तथा **इष्** के साथ समानकर्तृक भी है अर्थात् **इष्** का जो कर्ता है, वही कर्ता **पठ्** का है।

सन् में **नकार** की इत्संज्ञा होती है, **स** अवशिष्ट रहता है। इस **स** की **आर्धधातुकसंज्ञा** होती है और यदि धातु सेट् है तो इसको इट् आगम होता है, अनिट् हो तो नहीं। ऐसी सन्नन्त धातुओं से परे आर्धधातुक प्रत्यय हो तो स के अकार का **अतो लोपः** से लोप हो जाता है। शप् आदि के परे होने पर तो **अतो गुणे** से पररूप हो जाता है।

द्वित्वविधायकं विधिसूत्रम्

७०६. सन्यङोः ६।१।९॥

सन्नन्तस्य यङन्तस्य च धातोरनभ्यासस्य प्रथमस्यैकाचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य। **सन्यतः**। पठितुमिच्छति पिपठिषति। कर्मणः किम्? गमनेन इच्छति। समानकर्तृकात् किम्? शिष्याः पठन्तु इतीच्छति गुरुः।

वा ग्रहणाद्वाक्यमपि। लुङ्सनोर्घस्लृ।

....

सन्नन्त का विग्रह तुमुन् प्रत्ययान्त के साथ इच्छति लगाकर किया जाता है। जैसे- **पठितुम् इच्छति- पिपठिषति। भवितुम् इच्छति- बुभूषति।**

पठ व्यक्तायां वाचि। पठ्-धातु व्यक्त वाणी बोलना अर्थात् पढ़ना, इस अर्थ में है। यह भ्वादिगणीय धातु हैं। केवल **परस्मैपदी** है। **सन्नन्त** होने के बाद भी पूर्वधातु यदि आत्मनेपदी है तो सन्नन्त से भी आत्मनेपद ही होगा और यदि पूर्व अवस्था में परस्मैपदी है तो सन्नन्त से भी परस्मैपद ही होगा। इसके लिए पाणिनीय सूत्र है- **पूर्ववत्सनः**।

७०६- **सन्यङोः**। सन् च यङ् च तयोरितरतरयोगद्वन्द्वः सन्यङौ, तयोः सन्यङोः। सन्यङोः षष्ठ्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **एकाचो द्वे प्रथमस्य** और **अजादेर्द्वितीयस्य** का अधिकार आ रहा है।

सन्नन्त और यङन्त धातु के प्रथम एकाच् को द्वित्व होता है, यदि वे अजादि हों तो उनके द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है।

ज्यादातर धातु एकाच् ही मिलते हैं, अतः पूरे धातु को द्वित्व होता है। अनेकाच् धातु मिले और वह हलादि हो तो दो अचों में प्रथम एकाच् को द्वित्व, यदि धातु अजादि है तो द्वितीय एकाच् का द्वित्व होगा।

पठ् से **धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा** से **सन्**, अनुबन्धलोप करके स बचा। पठ्+स बना। स की आर्धधातुकसंज्ञा और इट् का आगम करके **पठ्+इस** बना। सन्यङोः से **पठ्** को द्वित्व करके **पठ्+पठ्+इस** बना। अभ्याससंज्ञा और हलादिशेष करके **पपठ्+इस** बना। पपठ्+इस् में **सन्यतः** से अभ्याससंज्ञक प्रथम **प** के **अकार** के स्थान पर **इकार** आदेश करके **पिपठ्+इस** बन जाता है। **इ** से परे **सकार** के स्थान पर **आदेशप्रत्यययोः** से षत्व करके **पिपठ्+इष** बना, वर्णसम्मेलन हुआ, **पिपठिष** बना। पिपठिष की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होकर लट् आदि लकार आते हैं।

पिपठिषति। पठ् धातु से सन्, इट्, द्वित्व, इत्व, षत्व करके **पिपठिष** की धातुसंज्ञा की गई। उसके बाद लट्, तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अनुबन्धलोप करके **पिपठिष+अति** बना है। **अतो गुणे** से **पिपठिष** के षकारोत्तरवर्ती अकार और शप् के अकार के स्थान पर पररूप होकर एक ही अकार बना- **पिपठिषति।** अब इसी प्रकार से आगे के रूपों की सिद्धि आप स्वयं करें। सभी लकारों के रूप दिये जा रहे हैं।

लट्- पिपठिषति, पिपठिषतः, पिपठिषन्ति। पिपठिषसि, पिपठिषथः, पिपठिषथ। पिपठिषामि, पिपठिषावः, पिपठिषामः।

लिट् में **पिपठिष**-धातु के अनेकाच् होने से **कास्यनेकाच आम्वक्तव्यो लिटि** इस वार्तिक से आम् प्रत्यय करके **अतो लोपः** से षकारोत्तरवर्ती अकार का लोप करें। इसके

बाद की प्रक्रिया **भावयाञ्चकार** की तरह ही होती है। पिपठिषाञ्चकार, पिपठिषाञ्चक्रतुः, पिपठिषाञ्चक्रुः। पिपठिषाञ्चकर्थ, पिपठिषाञ्चक्रथुः, पिपठिषाञ्चक्र। पिपठिषाञ्चकार-पिपठिषाञ्चकर, पिपठिषाञ्चकृव, पिपठिषाञ्चकृम।

लुट्- **अतो लोपः** से अलोप करके- पिपठिषिता, पिपठिषितारौ, पिपठिषितारः। पिपठिषितासि, पिपठिषितास्थः, पिपठिषितास्थ। पिपठिषितास्मि, पिपठिषितास्वः, पिपठिषितास्मः।

लृट्- पिपठिषिष्यति, पिपठिषिष्यतः, पिपठिषिष्यन्ति। पिपठिषिष्यसि, पिपठिषिष्यथः, पिपठिषिष्यथ। पिपठिषिष्यामि, पिपठिषिष्यावः, पिपठिषिष्यामः।

लोट्- पिपठिषतु-पिपठिषतात्, पिपठिषताम्, पिपठिषन्तु। पिपठिष-पिपठिषतात्, पिपठिषतम्, पिपठिषत। पिपठिषाणि, पिपठिषाव, पिपठिषाम।

लङ्- अपिपठिषत्, अपिपठिषताम्, अपिपठिषन्। अपिपठिषः, अपिपठिषतम्, अपिपठिषत। अपिपठिषम्, अपिपठिषाव, अपिपठिषाम।

विधिलिङ्- पिपठिषेत्, पिपठिषेताम्, पिपठिषेयुः। पिपठिषेः, पिपठिषेतम्, पिपठिषेत। पिपठिषेयम्, पिपठिषेव, पिपठिषेम।

आशीर्लिङ्- पिपठिष्यात्, पिपठिष्यास्ताम्, पिपठिष्यासुः। पिपठिष्याः, पिपठिष्यास्तम्, पिपठिष्यास्त। पिपठिष्यासम्, पिपठिष्यास्व, पिपठिष्यास्म।

लुङ्- अपिपठिषीत्, अपिपठिषिष्टाम्, अपिपठिषिषुः। अपिपठिषीः, अपिपठिषिष्टम्, अपिपठिषिष्ट। अपिपठिषम्, अपिपठिषिषाव, अपिपठिषिषाम।

लृङ्- अपिपठिष्यत्, अपिपठिष्यताम्, अपिपठिष्यन्। अपिपठिष्यः, अपिपठिष्यतम्, अपिपठिष्यत। अपिपठिष्यम्, अपिपठिष्याव, अपिपठिष्याम।

कर्मणः किम्? गमनेन इच्छति। अब प्रश्न करते हैं कि **धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा** इस सूत्र में **कर्मणः** क्यों कहा? उत्तर दिया **गमनेन इच्छति** अर्थात् जाने से वस्तु आदि की इच्छा करता है। इस वाक्य में **गम्** धातु **इष्** धातु का कर्म नहीं है, अपितु करण है। अतः समानकर्ता होते हुए भी **पठ्** धातु से **सन्** नहीं हुआ।

समानकर्तृकात् किम्? शिष्याः पठन्तु इतीच्छति गुरुः। अब दूसरा प्रश्न करते है कि इस सूत्र में **समानकर्तृकात्** यह शब्द क्यों पढ़ा जाय? उत्तर दिया- **शिष्याः पठन्तु इतीच्छति गुरुः** अर्थात् शिष्य पढ़ें, ऐसा चाहते हैं गुरु। यहाँ पर **पठ्** धातु के **कर्ता** है **शिष्य** और **इष्** धातु के कर्ता हैं **गुरु**। इस लिए भिन्न-भिन्न कर्ता होने अर्थात् समानकर्ता न होने के कारण **पठ् से सन्** नहीं हुआ।

वा ग्रहणाद्वाक्यमपि। धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा इस सूत्र में **वा** शब्द का कथन है तो एक पक्ष में वाक्य ही रहेगा अर्थात् **पिपठिषति** यह सन्-प्रत्ययान्त रूप तो होता ही है साथ ही **पठितुमिच्छति** यह वाक्य भी बनता है।

अब आगे **अद भक्षणे** धातु से **सन्** प्रत्यय की प्रक्रिया बता रहे हैं। **अद्** से **अत्तुमिच्छति** विग्रह से **सन्** होकर **जिघत्सति** बनता है। **सन्** होने के बाद **लुङ्सनोर्घस्लृ** से **अद्** के स्थान पर **घस्लृ** आदेश होकर **घस्+स** बनने के बाद **स** की आर्धधातुकसंज्ञा करके इट् प्राप्त हुआ किन्तु **घस्** धातु के अनुदात्त होने के कारण **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् का निषेध हो जाता है और सकार के स्थान पर तकार आदेश करने के लिए अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

तकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

७०७. सः स्यार्धधातुके ७।४।४९॥

सस्य तः स्यात् सादावार्धधातुके। अत्तुमिच्छति जिघत्सति।

एकाच इति नेट्।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

७०८. अज्झनगमां सनि ६।४।१६॥

अजन्तानां हन्तेरजादेशगमेश्च दीर्घो झलादौ सनि।

....

७०७- **सः स्यार्धधातुके।** सः षष्ठ्यन्तं, सि सप्तम्यन्तम्, आर्धधातुके सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **अच उपसर्गात्तः** से तः की अनुवृत्ति आती है।

सकारादि आर्धधातुक के परे होने पर सकार के स्थान पर तकार आदेश होता है।

यह सूत्र वहीं लगता है जहाँ पर पूर्व में सकार ही हो और पर में भी सकार ही हो किन्तु पर सकार आर्धधातुकसंज्ञक हो अर्थात् सकार आदि में स्थित आर्धधातुक परे हो। **घस्+स** में ऐसी स्थिति में इससे **तकार** आदेश होता है। इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी यह सूत्र प्रवृत्त होता है। जैसे- **वस्** धातु के लृट् के **वस्+स्यति** में भी पूर्व सकार को तकार आदेश होकर **वत्स्यति** बनता है।

जिघत्सति। अत्तुमिच्छति। **अद्** से सन् करके **धातु** के स्थान पर **लुङ्सनोर्घस्लृ** से **घस्लृ** आदेश होकर **घस्+स** बना है। **सन्** वाला **स** आर्धधातुक है। **घस्** यह धातु अनुदात्त एकाच् है। अतः इट् का आगम नहीं होता। अतः **सः स्यार्धधातुके** से पूर्व सकार के स्थान पर **तकार** आदेश होकर **घत्+स** बना। **सन्** के परे **घत्** को द्वित्व, हलादिशेष, **कुहोश्चुः** से कुत्व और **अभ्यासे चर्च** से जश्त्व होने पर **जघत्+स** बना। **सन्यतः** से प्रथम अकार को इत्व होकर **जिघत्स** बना। इसकी **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा हुई। लट्, तिप्, शप् करके **जिघत्स+अति** बना। **अतो गुणे** से पररूप होकर **जिघत्सति** सिद्ध हुआ। **जिघत्सति, जिघत्सतः, जिघत्सन्ति** आदि।

लट्- जिघत्सति। **लिट्-** जिघत्साञ्चकार, जिघत्साम्बभूव, जिघत्सामास। **लुट्-** जिघत्सिता। **लृट्-** जिघत्सिस्यति। **लोट्-** जिघत्सतु। **लङ्-** अजिघत्सत्। **विधिलिङ्-** जिघत्सेत्। **आशीर्लिङ्-** जिघत्स्यात्। **लुङ्-** अजिघत्सीत्। **लृङ्-** अजिघत्स्यत्।

७०८- **अज्झनगमां सनि।** अच्च हन् च गम् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः- अज्झनगमस्तेषाम्। अज्झनगमां षष्ठ्यन्तं, सनि सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति** से झलि और **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से दीर्घः की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

अजन्त धातु और हन् तथा अच् के स्थान पर आदेश होने वाली गम् धातु को भी दीर्घ होता है झलादि सन् के परे होने पर।

महाभाष्य के अनुसार यहाँ पर **गम्लृ** धातु का ग्रहण नहीं है अपितु **इण्, इक्** आदि के स्थान पर आदेश के रूप में होने वाले **गम्** को लिया जाता है।

किद्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्

७०९. इको झल् १।२।९॥

इगन्ताज्झलादिः सन् कित् स्यात्। **ॠत इद्धातोः**। कर्तुमिच्छति चिकीर्षति।

....

७०९- **इको झल्**। इकः पञ्चम्यन्तं, झल् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **रुदविदमुष०** से **सन्** और **असंयोगाल्लिट् कित्** से **कित्** की अनुवृत्ति आती है।

इगन्त से परे झलादि सन् कित् होता है।

सामान्यतया **सन्** कित् नहीं होता किन्तु **इगन्त** से परे सन् यदि झलादि हो तो उसे इस सूत्र से कित् मान लिया जाता है। यहाँ पर कित् का फल है- **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से प्राप्त गुण का **क्ङिति च** से निषेध करना। सन् का सकार तो स्वतः झल् है, पुनः झलादि कहने की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर है- **सन्** प्रत्यय को सेट् धातुओं से इट् आगम होता है और अनिट् धातुओं से नहीं। जब इट् आगम होता है तो **यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते** परिभाषा के अनुसार **सन्** प्रत्यय अजादि बन जाता है और जब इट् आगम नहीं होता तो **सन्** प्रत्यय झलादि होता है। यह सूत्र जहाँ इट् नहीं होता वहाँ पर झलादि मानकर किद्वद्भाव करता है।

चिकीर्षति। कर्तुमिच्छति। करने की इच्छा करता है। **डुकृञ् करणे** धातु है। अनुबन्धलोप हो जाने के बाद केवल **कृ** बचता है। उससे सन् प्रत्यय करने पर **कृ+स** बना। **सन्** के **आर्धधातुक** होने के कारण **इट्** प्राप्त था किन्तु **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध हुआ। **अज्झनगमां सनि** से **कृ** को दीर्घ हुआ- **कॄ+स** बना। सन् को आर्धधातुक मान कर **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण प्राप्त था किन्तु **इको झल्** से सन् को किद्वद्भाव कर दिए जाने के कारण **क्ङिति च** से निषेध हुआ। दीर्घ हुए **कॄ** के दीर्घ ॠकार को **ॠत इद्धातोः** से इत्त्व, रपर करके **किर्+स** बना। **हलि च** से उपधाभूत इकार को दीर्घ हुआ- **कीर्+स** बना। **आदेशप्रत्यययोः** से सकार को षत्व हुआ, **कीर्+ष** बना। **सन्यङोः** से धातु के एकाच् **कीर्** को द्वित्व होकर हलादिशेष और ह्रस्व करके चुत्व **कुहोश्चुः** से चुत्व करने पर **चिकीर्+ष** बना। **चिकीर्ष** की धातुसंज्ञा करके लट्, तिप्, शप्, पररूप करने पर **चिकीर्षति** सिद्ध हो जाता है। अब आगे सभी पुरुष और सभी वचनों में रूप बना सकते हैं। ध्यान रहे कि **कृ** धातु उभयपदी है। अतः **पूर्ववत्सनः** के नियम से आत्मनेपद में भी इसके रूप बनते हैं।

पूर्ववत्सनः इस सूत्र के अनुसार **सन्** की **प्रकृति** धातु आत्मनेपदी हो तो आत्मनेपद और परस्मैपदी हो तो परस्मैपद होता है। **कृ** धातु के उभयपदी होने के कारण सन्नन्त से भी उभयपद होता है।

लट्- चिकीर्षति, चिकीर्षते। **लिट्**- चिकीर्षाञ्चकार, चिकीर्षाम्बभूव, चिकीर्षामास, चिकीर्षाञ्चक्रे। **लुट्**- चिकीर्षिता, चिकीर्षितासि, चिकीर्षितासे। **लृट्**- चिकीर्षिष्यति, चिकीर्षिष्यते। **लोट्**- चिकीर्षतु, चिकीर्षताम्। **लङ्**- अचिकीर्षत्, अचिकीर्षत। **विधिलिङ्**- चिकीर्षेत्, चिकीर्षेत। **आशीर्लिङ्**- चिकीर्ष्यात्, चिकीर्षीष्ट। **लुङ्**- अचिकीर्षीत्, अचिकीर्षिष्ट। **लृङ्**- अचिकीर्षिष्यत्, अचिकीर्षिष्यत।

इण्निषेधकं विधिसूत्रम्

७१०. सनि ग्रहगुहोश्च ७।२।१२॥

ग्रहेर्गुहेरुगन्ताच्च सन इण् न स्यात्। बुभूषति।

इति सन्नन्तप्रक्रिया॥२३॥

....

७१०-सनि ग्रहगुहोश्च। ग्रहश्च गुह् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो ग्रहगुहौ, तयोः। सनि सप्तम्यन्तं, ग्रहगुहोः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययं, त्रिपदं सूत्रम्। **नेड् वशि कृति** से **नेट्** और **श्र्युकः किति** से **उकः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

ग्रह्, गुह् और उगन्त धातुओं से परे सन् को इट् का आगम नहीं होता।

बुभूषति। भवितुमिच्छति। होना चाहता है। **भू सत्तायाम्** धातु है। उससे सन् करने के बाद **ऊदन्त** धातु होने से इट् प्राप्त था, उसका **सनि ग्रहगुहोश्च** से निषेध कर दिया गया। आर्धधातुक गुण प्राप्त था, उसका भी **इको झल्** से किद्वद्भाव करके निषेध हुआ। **सन्यङोः** से धातु को द्वित्व करके हलादिशेष, ह्रस्व, जश्त्व करने पर **बुभूष** ऐसा सन्नन्त रूप बना। इसकी धातुसंज्ञा करके लट्, तिप्, शप्, पररूप करने पर **बुभूषति।** भू धातु केवल परस्मैपदी है, अतः **पूर्ववत्सनः** के नियम से सन्नन्त में भी **बुभूषति** सिद्ध हुआ।

लट्- बुभूषति। **लिट्-** बुभूषाञ्चकार, बुभूषाम्बभूव, बुभूषामास। **लुट्-** बुभूषिता। **लृट्-** बुभूषिष्यति। **लोट्-** बुभूषतु। **लङ्-** अबुभूषत्। **विधिलिङ्-** बुभूषेत्। **आशीर्लिङ्-** बुभूष्यात्। **लुङ्-** अबुभूषीत्। **लृङ्-** अबुभूष्यत्।

लघुसिद्धान्तकौमुदी में चार ही धातुआं की प्रक्रिया दिखाई गई है। इस प्रकरण बहुत से धातुओं के रूप आप स्वयं बना सकते हैं। सन्नन्त प्रक्रिया जटिल है, इसमें अनेक प्रकार के उत्सर्ग और अपवाद तथा विशिष्ट कार्य होते हैं। इसलिए **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में उन्हें नहीं दिखाया गया है। छात्रों को जानकारी मिले इसलिए कुछ-कुछ धातुओं का अर्थ एवं लट्-लकार के प्रथमपुरुष एकवचन के रूप यहाँ व्याख्या में दिये जा रहे हैं। शेष रूपों को बनाना आपका काम है एवं विशेष जिज्ञासा को शान्त करने के लिए तो इसके बाद तो **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** पढ़नी ही है।

सन् होने के बाद धातु का अर्थ बदल जाता है। जैसे **पढ़ना** अर्थ है तो यहाँ पर पढ़ने की इच्छा करना अर्थ हो जायेगा। याद रहे कि सन्नन्त में पदव्यवस्था मूल धातु के समान ही होती है। यदि मूल धातु **परस्मैपदी** है तो सन्नन्त होने के बाद भी **परस्मैपदी** ही रहेगा, यदि **आत्मनेपदी** है तो सन्नन्त में भी **आत्मनेपेदी** ही रहेगा।

धातु	अर्थ	सामान्य-रूप	सन्नन्त लट्
अर्च्	पूजने की इच्छा करना	अर्चति	अर्चिचिषति
आप्	पाने की इच्छा करना	आप्नोति	ईप्सति
अधि+इङ्	पढ़ने की इच्छा करना	अधीते	अधिजिगांसते
कथ्	कहने की इच्छा करना	कथयति	चिकथयिषति-ते
कुप्	कोप करने की इच्छा करना	कुप्यति	चुकोपिषति
कृ	करने की इच्छा करना	करोति	चिकीर्षति
क्रीड्	खेलने की इच्छा करना	क्रीडति	चिक्रीडिषति
खन्	खोदने की इच्छा करना	खनति	चिखनिषति

खाद्	खाने की इच्छा करना	खादति	चिखादिषति
गण्	गिनने की इच्छा करना	गणयति	जिगणयिषति-ते
गद्	कहने की इच्छा करना	गदति	जिगदिषति
गम्	जाने की इच्छा करना	गच्छति	जिगमिषति
गृ	निगलने की इच्छा करना	गिरति, गिलति	जिगरिषति, जिगलिषति
ग्रह्	ग्रहण करने की इच्छा करना	गृह्णाति	जिघृक्षति-ते
घ्रा	सूँघने की इच्छा करना	जिघ्रति	जिघ्रासति
चर्	चरने की इच्छा करना	चरति	चिचरिषति
चल्	चलने की इच्छा करना	चलति	चिचलिषति
चि	चयन करने की इच्छा करना	चिनोति	चिचीषति
छिद्	काटने की इच्छा करना	छिनत्ति	चिच्छित्सति-ते
चुर्	चुराने की इच्छा करना	चोरयति	चुचोरयिषति-ते
जन्	पैदा होने की इच्छा करना	जायते	जिजनिषते
जि	जीतने की इच्छा करना	जयति	जिगीषति
ज्ञा	जानने की इच्छा करना	जानाति	जिज्ञासते
तॄ	तरने की इच्छा करना	तरति	तितीर्षति
दिव्	चमकने की इच्छा करना	दीव्यति	दिदेविषति
दृश्	देखने की इच्छा करना	पश्यति	दिदृक्षते
जीव	जीने की इच्छा करना	जीवति	जिजीविषति
पच्	पकाने की इच्छा करना	पचति	पिपक्षति-ते
पा	पीने की इच्छा करना	पिबति	पिपासति
बुध्	जानने की इच्छा करना	बुध्यते	बुभुत्सते
भुज्	खाने की इच्छा करना	भुञ्जते	बुभुक्षते
भू	होने की इच्छा करना	भवति	बूभूषति
मुच्	छूटने की इच्छा करना	मुच्यते	मुमुक्षते
मृ	मरने की इच्छा करना	म्रियते	मुमूर्षते
लभ्	पाने की इच्छा करना	लभते	लिप्सते

परीक्षा

द्रष्टव्यः- सभी प्रश्न अनिवार्य हैं और उनके अंक भी दिये गये हैं।

१-	अपनी पुस्तिका में पठ् धातु के सन्नन्त के सारे रूप लिखें	१०
२-	पठ्-धातु के सन्नन्त लुङ् लकार के सभी रूपों की सिद्धि दिखाइये	१५
३-	णिजन्तप्रकरण की अपेक्षा सन्नन्तप्रकरण की विशेषता बताइये	१०
४-	अपने प्रयत्न से गम् धातु के सन्नन्त के सभी रूप लिखें	१०
५-	**धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा** की व्याख्या करें।	५

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का सन्नन्त-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ यङन्तप्रक्रिया

यङ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७११. धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ३।१।२२॥

पौनःपुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातोरेकाचो हलादेर्यङ् स्यात्।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

७१२. गुणो यङ्लुकोः ७।४।८२॥

अभ्यासस्य गुणो यङि यङ्लुकि च परतः। ङिदन्तत्वादात्मनेपदम्। पुनःपुनरतिशयेन वा भवति बोभूयते। बोभूयाञ्चक्रे। अबोभूयिष्ट।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **यङन्तप्रक्रिया** का प्रारम्भ होता है। **क्रिया के बार-बार करने** या **अतिशय क्रिया का होना अर्थ में हलादि एकाच् धातुओं से यङ् प्रत्यय होता है।** यङ् प्रत्यय के अन्त में होने के कारण धातुओं को **यङन्त** और इस प्रकरण को **यङन्तप्रक्रिया** कहा जाता है। इस प्रकरण के लिए अलग से कोई धातु पठित नहीं है किन्तु **भू** आदि धातुओं से ही यह प्रत्यय किया जाता है।

७११- **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्**। क्रियायाः समभिहारः क्रियासमभिहारः, तस्मिन्। धातोः पञ्चम्यन्तम्, एकाचः पञ्चम्यन्तं, हलादेः पञ्चम्यन्तं, क्रियासमभिहारे सप्तम्यन्तं, यङ् प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

क्रिया का बार-बार होना अथवा अतिशय होना अर्थ द्योत्य होने पर एक् अच् वाले हलादि धातुओं से परे यङ् प्रत्यय होता है।

इस प्रत्यय के लिए आवश्यक तीन बातें हैं- **एकाच् धातु, हलादि** और **क्रियासमभिहार**। क्रिया का बार-बार होना या अतिशय होना ही **क्रियासमभिहार** है।

यङ् में केवल ङकार ही इत्संज्ञक है, अतः **य** पूरा शेष रहता है। ङित् होने के कारण **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से आत्मनेपद हो जाता है। यङ् करने के बाद **सन्यङोः** से द्वित्व होता है, उसके बाद अग्रिमसूत्र **गुणो यङ्लुकोः** से गुण हो जाता है। उसके बाद यङ् के सनादिगण में आने के कारण यङन्त की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा की जाती है। उसके बाद लट् आदि लकार होते हैं।

७१२- **गुणो यङ्लुकोः**। यङ् च लुक् च यङ्लुकौ तयोः यङ्लुकोः। गुणः प्रथमान्तं, यङ्लुकोः सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** की अनुवृत्ति आती है।

यङ् या यङ् के लुक् परे होने पर अभ्यास को गुण होता है।

बोभूयते। बार बार या अतिशय होता है। **भू सत्तायाम्** धातु है। इससे **पुनःपुनरतिशयेन वा भवति** अर्थ में **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से यङ् हुआ। ङकार की इत्संज्ञा के बाद लोप करके **भू+य** बना। धातु से विहित होने के कारण **आर्धधातुकं शेषः** से **य** की **आर्धधातुकसंज्ञा** हो गई तो **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से **भू** के **ऊकार** को गुण प्राप्त हुआ। **य** के **ङित्** होने के कारण **क्ङिति च** से गुणनिषेध हुआ। अब **सन्यङोः** से एङन्त के प्रथम एकाच् भू का द्वित्व हो गया- **भूभू+य** बना। द्वित्व के बाद **ह्रस्वः** से प्रथम भू के ऊकार को **ह्रस्व** करके **भुभू+य** बना। **भकार** के स्थान पर **अभ्यासे चर्च** से जश् आदेश करके **बुभूय** बना। **बु** इसकी **अभ्याससंज्ञा** करके **गुणो यङ्लुकोः** से अभ्यास के ऊकार को गुण हुआ- **बोभूय** बना। इसकी **सनाद्यन्ता धातवः** से **धातुसंज्ञा** हो गई। उसके बाद वर्तमान काल में **लट्** लकार, उसके स्थान पर **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपद** का विधान हुआ। **त** आया। **बोभूय+त** बना। शप् होकर **बोभूय+अ+त** बना। **बोभूय+अ** में **अतो गुणे** से पररूप होकर दोनों अकार के स्थान पर एक **अकार** हुआ- **बोभूय+त** बना। **टित आत्मनेपदानां टेरेः** से एत्व होकर **बोभूयते** बना।

लट् के रूप- बोभूयते, बोभूयेते, बोभूयन्ते। बोभूयसे, बोभूयेथे, बोभूयध्वे। बोभूये, बोभूयावहे, बोभूयामहे।

बोभूयाञ्चक्रे। बोभूय से लिट्, अनेकाच् होने के कारण आम्, आम् को आर्धधातुक मानकर **अतो लोपः** से यकारोत्तरवर्ती अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **बोभूयाम्+लिट्** बना। आम् के परे लिट् का लुक्, लिट् को परे लेकर **कृ** का अनुप्रयोग, उससे भी आत्मनेपद का ही विधान करके **बोभूयाम्+कृ त** बना। अब **एधाञ्चक्रे** की तरह त को एश् आदेश कृ को द्वित्व, उरत्, हलादिशेष, यण् आदि करके **बोभूयाञ्चक्रे** बन जाता है। इसके लिए पहले की प्रक्रिया याद रहनी चाहिए।

लिट् के रूप- बोभूयाञ्चक्रे, बोभूयाञ्चक्राते, बोभूयाञ्चक्रिरे, बोभूयाञ्चकृषे, बोभूयाञ्चक्राथे, बोभूयाञ्चकृढ्वे, बोभूयाञ्चक्रे, बोभूयाञ्चकृवहे, बोभूयाञ्चकृमहे। बोभूयाम्बभूव। बोभूयामास।

बोभूयिता। लुट् में **बोभूय** से लुट्, त, तासि, इट् का आगम, डा आदेश **अतो लोपः** का अकार लोप करके, **तास्** के **टि** का लोप करने पर **बोभूयिता** बनता है।

लुट् के रूप- बोभूयिता, बोभूयितारौ, बोभूयितारः, बोभूयितासे, बोभूयितासाथे, बोभूयिताध्वे, बोभूयिताहे, बोभूयितास्वहे, बोभूयितास्महे।

लृट् के रूप- बोभूयिष्यते, बोभूयिष्येते, बोभूयिष्यन्ते, बोभूयिष्यसे, बोभूयिष्येथे, वोभूयिष्यध्वे, बोभूयिष्ये, बोभूयिष्यावहे, बोभूयिष्यामहे।

लोट् के रूप- बोभूयताम्, बोभूयेताम्, बोभूयन्ताम्, बोभूयस्व, बोभूयेथाम्, बोभूयध्वम्, बोभूयै, बोभूयावहै, बोभूयामहै।

लङ् के रूप- अबोभूयत, अबोभूयेताम्, अबोभूयन्त, अबोभूयथाः, अबोभूयेथाम्, अबोभूयध्वम्, अबोभूये, अबोभूयावहि, अबोभूयामहि।

विधिलिङ् के रूप- बोभूयेत, बोभूयेताम्, बोभूयेरन्, बोभूयेथाः, बोभूयेथाम्, बोभूयेध्वम्, बोभूयेय, बोभूयेवहि, बोभूयेमहि।

यङ्विधानार्थं नियमसूत्रम्

७१३. नित्यं कौटिल्ये गतौ ३।१।२३॥

गत्यर्थात् कौटिल्य एव यङ् स्यान्न तु क्रियासमभिहारे।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

७१४. दीर्घोऽकितः ७।४।८३॥

अकितोऽभ्यासस्य दीर्घो यङ्यङ्लुकोः। कुटिलं व्रजति वाव्रज्यते।

य-शब्दस्य लोपविधायकं विधिसूत्रम्

७१५. यस्य हलः ६।४।४९॥

यस्येति संघातग्रहणम्। हलः परस्य यशब्दस्य लोप आर्धधातुके। **आदेः परस्य। अतो लोपः।** वाव्रजाञ्चक्रे। वाव्रजिता।

आशीर्लिङ् के रूप- बोभूयिषीष्ट, बोभूयिषीयास्ताम्, बोभूयिषीरन्, बोभूयिषीष्ठाः, बोभूयिषीष्ठाम्, बोभूयिषीढ्वम्-बोभूयिषीध्वम्, बोभूयिषीय, बोभूयिषीवहि, बोभूयिषीमहि।

लुङ् के रूप- अबोभूयिष्ट, अबोभूयिषाताम्, अबोभूयिषत, अबोभूयिष्ठाः, अबोभूयिषाथाम्, अबोभूयिढ्वम्-अबोभूयिध्वम्, अबोभूयिषि, अबोभूयिष्वहि, अबोभूयिष्महि।

लृङ् के रूप- अबोभूयिष्यत, अबोभूयिष्येताम्, अबोभूयिष्यन्त, अबोभूयिष्यथाः, अबोभूयिष्येथाम्, अबोभूयिष्यध्वम्, अबोभूयिष्ये, बोभूयिष्यावहि, अबोभूयिष्यामहि।

७१३- **नित्यं कौटिल्ये गतौ**। नित्यं द्वितीयान्तं क्रियाविशेषणम्। कौटिल्ये सप्तम्यन्तं, गतौ सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से **धातोः** और **यङ्** की अनुवृत्ति आती है।

गत्यर्थक धातु से कुटिलगमन (टेढ़ा चलना) अर्थ द्योतित होने पर ही धातु से यङ् होता है अर्थात् क्रियासमभिहार अर्थ में नहीं होता।

धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् से **क्रियासमभिहार** अर्थ में सभी हलादि धातुओं से प्राप्त यङ् को गत्यर्थक धातु से **कुटिलता से जाना** अर्थ होने ही हो, इसके लिए यह सूत्र बनाया गया है। अतः **पुनःपुनः अतिशयेन गच्छति** इस अर्थ में यङ् नहीं होगा।

७१४- **दीर्घोऽकितः**। न कित् यस्य स अकित्, तस्य। दीर्घः प्रथमान्तम्, अकितः षष्ठ्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** और **गुणो यङ्लुकोः** से **यङ्लुकोः** की अनुवृत्ति आती है।

अकित् अभ्यास को दीर्घ होता है यङ् या यङ्लुक् परे होने पर।

वाव्रज्यते। कुटिलं व्रजति। टेढ़ा चलता है। **व्रज गतौ** धातु है। उससे **नित्यं कौटिल्ये गतौ** के नियम से **यङ्** होकर **सन्यङोः** से धातु को द्वित्व, अभ्यासकार्य, हलादिशेष करने पर **व+व्रज्+य** बना। **दीर्घोऽकितः** से अभ्यास के अकार को दीर्घ होकर **वाव्रज्य** बना। लट्, आत्मनेपद का त, शप्, पररूप, एत्व करके **वाव्रज्यते** बनता है। **वाव्रज्यते, वाव्रज्येते, वाव्रज्यन्ते।**

रीगागमविधायकं विधिसूत्रम्

७१६. रीगृदुपधस्य च ७।४।९०॥

ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रीगागमो यङ्यङ्लुकोः।
वरीवृत्यते। वरीवृताञ्चक्रे। वरीवृतिता।

....

७१५- यस्य हलः। यस्य षष्ठ्यन्तं, हलः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अतो लोपः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है। इस सूत्र में **यस्य** का अर्थ है **अकार सहित यकार का।** य्+अ=**य** ऐसा पूरा समूह।

हल् से परे य का लोप होता है आर्धधातुक परे होने पर।

इस सूत्र से अकार सहित पूरे **य** के लोप प्राप्त होने पर **आदेः परस्य** की सहायता से केवल **य्** का लोप होता है। अकार का लोप तो **अतो लोपः** से होता है। **बोभूयाञ्चक्रे** में हल् से परे न मिलने के कारण और **बोभूयते** में आर्धधातुक न मिलने के कारण **य** का लोप नहीं होता।

वाव्रजाञ्चक्रे। यङ्, द्वित्व आदि होने के बाद **वाव्रज्य** धातु बना है। उससे लिट् में **कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि** से **आम्,** उसका लुक्, **लिट्** सहित **कृ** का अनुप्रयोग करके **वाव्रज्य+कृ+लिट्** बना है। **यकार** का **यस्य हलः** से लोप तथा अकार का **अतो लोपः** से लोप करने पर **वाव्रज्** बना। आगे **चक्रे** बनाने की प्रक्रिया पूर्ववत् है। इस तरह लिट् में **वाव्रजाञ्चक्रे** बन जाता है। आर्धधातुक के परे सर्वत्र यकार और अकार का लोप किया जाता है।

लट्- वाव्रज्यते। **लिट्**- वाव्रजाञ्चक्रे। **लुट्**- वाव्रजिता। **लृट्**- वाव्रजिष्यते। **लोट्**- वाव्रज्यताम्। **लङ्**- अवाव्रज्यत। **विधिलिङ्**- वाव्रज्येत। **आशीर्लिङ्**- वाव्रजिषीष्ट। **लुङ्**- अवाव्रजिष्ट। **लृङ्**- अवाव्रजिष्यत।

७१६- रीगृदुपधस्य च। ऋत् उपधा यस्य, स ऋदुपधस्तस्य। रीक् प्रथमान्तम्, ऋदुपधस्य षष्ठ्यन्तं, च अव्ययं, त्रिपदं सूत्रम्। **अत्र लोपोऽभ्यासस्य** से **अभ्यासस्य** और **गुणो यङ्लुकोः** से **यङ्लुकोः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

उपधा में ह्रस्व ऋकार वाली धातु के अभ्यास को रीक् का आगम होता है, यङ् या यङ्लुक् परे होने पर।

रीक् में ककार इत्संज्ञक है, कित् होने के कारण अभ्यास के अन्त में बैठता है।

वरीवृत्यते। पुनःपुनः अतिशयेन वर्तते। **वृतु वर्तने** धातु है। **वृत्** से **यङ्**, द्वित्व, अभ्यासकार्य, हलादिशेष करके **व+वृत्य** बना है। **रीगृदुपधस्य च** से अभ्यास **व** को **रीक्** का आगम, अनुबन्धलोप, अन्त्यावयव होकर **वरीवृत्य** बना। इसकी धातुसंज्ञा करके लट्, त, शप्, पररूप आदि होकर **वरीवृत्यते, वरीवृत्येते, वरीवृत्यन्ते** आदि बन जाते हैं। लिट् में **यस्य हलः, अतो लोपः** की प्रवृत्ति होती है जिससे **वरीवृताञ्चक्रे** बन जाता है।

लट्- वरीवृत्यते। **लिट्**- वरीवृताञ्चक्रे। **लुट्**- वरीवृतिता। **लृट्**- वरीवृतिष्यते। **लोट्**- वरीवृत्यताम्। **लङ्**- अवरीवृत्यत। **विधिलिङ्**- वरीवृत्येत। **आशीर्लिङ्**- वरीवृतिषीष्ट। **लुङ्**- अवरीवृतिष्ट। **लृङ्**- अवरीवृतिष्यत।

णत्वनिषेधकं विधिसूत्रम्

७१७. क्षुभ्नादिषु च ८।४।३९॥

णत्वं न। नरीनृत्यते। जरीगृह्यते।

इति यङन्तप्रक्रिया॥२४॥

....

७१७- **क्षुभ्नादिषु च**। क्षुभ्ना आदिर्येषां ते क्षुभ्नादयस्तेषु। क्षुभ्नादिषु सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **रषाभ्यां नो णः समानपदे** से **नः** और **णः** तथा **न भाभूपू०** से **न** की अनुवृत्ति आती है।

क्षुभ्ना आदि गण में पठित शब्दों में नकार को णत्व नहीं होता है।

क्षुभ्नादिगण में होने के कारण **क्षुभ संचलने** इस क्र्यादिगणीय धातु से **क्षुभ्नाति** में णत्व नहीं होता तो **नरीनृत्य** के भी क्षुभ्नादि में होने के कारण णत्व नहीं होता।

नरीनृत्यते। जिस तरह से **वृत्** से **वरीवृत्यते** बना, उसी तरह **नृती गात्रविक्षेपे** के **नृत्** से **नरीनृत्यते** बनता है। यहाँ पर रेफ से परे द्वितीय नकार को **अट् कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व प्राप्त था, उसका **क्षुभ्नादिषु च** से निषेध किया गया। अतः **नरीनृत्यते** ही रह गया।

लट्- नरीनृत्यते। **लिट्**- नरीनृताञ्चक्रे। **लुट्**- नरीनृतिता। **लृट्**- नरीनृतिष्यते। **लोट्**- नरीनृत्यताम्। **लङ्**- अनरीनृत्यत। **विधिलिङ्**- नरीनृत्येत। **आशीर्लिङ्**- नरीनृतिषीष्ट। **लुङ्**- अनरीनृतिष्ट। **लृङ्**- अनरीनृतिष्यत।

जरीगृह्यते। पुनःपुनः अतिशयेन गृह्णाति। बार बार अथवा अतिशय ग्रहण करता है। **ग्रह उपादाने** धातु है। **ग्रह्** से क्रियासमभिहार अर्थ में **यङ्** करके उसके ङित् होने के कारण **ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति** से ग्+र्+अ+ह्=ग्रह् में विद्यमान रेफ को सम्प्रसारण होता है। रेफ को सम्प्रसारण करने पर ऋकार हो जाता है। गृ+अह् में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **गृह्** बन जाता है। **गृह्+य** में धातु को द्वित्व, उरत्, हलादिशेष, चुत्व करके **जगृह्+य** बना। **ऋत्** धातु है, अतः **रीगृदुपधस्य च** से **रीक्** का आगम करके **जरीगृह्य** बना। इसकी धातुसंज्ञा करके **नरीनृत्यते** की तरह **जरीगृह्यते** बन जाता है।

लट्- जरीगृह्यते। **लिट्**- जरीगृहाञ्चक्रे। **लुट्**- जरीगृहिता। **लृट्**- जरीगृहिष्यते। **लोट्**- जरीगृह्यताम्। **लङ्**- अजरीगृह्यत। **विधिलिङ्**- जरीगृह्येत। **आशीर्लिङ्**- जरीगृहिषीष्ट। **लुङ्**- अजरीगृहिष्ट। **लृङ्**- अजरीगृहिष्यत।

इसके बाद अनेक धातुओं से यङ् करके रूप बनाये जाते हैं। कहीं अभ्यास को दीर्घ, कहीं य का लोप, कहीं इत्व, कहीं रीक् का आगम आदि का विधान मिलता है। कहीं कहीं पौनःपुन्य अर्थ में न हो कर अन्य अर्थों में भी यह प्रत्यय होता हैं। यहाँ **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में छात्रों के सारल्यार्थ केवल भू आदि कुछ ही धातुओं की प्रक्रिया दिखाई गई है। जिज्ञासु छात्रों के लिए कुछ धातुओं के यङन्त रूप यहाँ दिये जा रहे हैं। स्मरण रहे कि अजादि धातुओं और अनेकाच् धातुओं से यङ् नहीं होता है।

धातु	**यङन्तार्थ**	**सामान्य-रूप**	**यङन्त- लट्**
कम्प	बार-बार काँपना	कम्पते	चाकम्प्यते
काङ्क्ष्	बार-बार चाहना	काङ्क्षते	चाकाङ्क्षते

क्रन्द्	बार-बार रोना	क्रन्दते	चाक्रन्द्यते
क्रम्	बार-बार क्रमण करना	क्रमते	चङ्क्रम्यते
कृ	बार-बार करना	करोति	चेक्रीयते
क्री	बार-बार खरीदना	क्रीणाति	चेक्रीयते
क्रीड्	बार-बार खेलना	क्रीडति	चेक्रीड्यते
क्षि	बार-बार नष्ट होना	क्षयति	चेक्षीयते
खाद्	बार-बार खाना	खादति	चाखाद्यते
गम्	बार-बार जाना	गच्छति	जङ्गम्यते
गै	बार-बार गाना	गायति	जेगीयते
ग्रह्	बार-बार ग्रहण करना	गृह्णाति	जरीगृह्यते
घुष्	बार-बार घोषणा करना	घोषते	जोघुष्यते
घ्रा	बार-बार सूँघना	जिघ्रति	जेघ्रीयते
चर्	बार-बार बुरी तरह से चरना	चरति	चञ्चूर्यते
चल्	कुटिलता से चलना	चलति	चाचल्यते
जन्	बार-बार पैदा होना	जायते	जाजन्यते
जप्	निन्दित जप करना	जपति	जञ्जप्यते
जि	बार-बार जीताना	जयते	जेजीयते
जीव्	बार-बार जीना	जीवति	जेजीव्यते
ज्ञा	बार-बार जानना	जानाति	जाज्ञायते
तप्	बार-बार तपना	तपति	तातप्यते
त्यज्	बार-बार छोड़ना	त्यजति	तात्यज्यते
दह्	बुरी तरह जलना	दहति	दन्दह्यते
दा	बार-बार देना	ददाति	देदीयते
दृश्	बार-बार देखना	पश्यति	दरीदृश्यते
ध्यै	बार-बार ध्यान करना	ध्यायति	दाध्यायते
नम्	बार-बार झुकना	नमति	नंनम्यते
पच्	बार-बार पकना	पचति	पापच्यते
पठ्	बार-बार पढ़ना	पठति	पापठ्यते
पा	बार-बार पीना	पिबति	पेपीयते
बुध्	बार-बार जानना	बुध्यति	बोबुध्यते
भुज्	बार-बार खाना	भुनक्ति	बोभुज्यते
मिल्	बार-बार मिलना	मिलति	मेमिल्यते
मुद्	बार-बार प्रसन्न होना	मोदते	मोमुद्यते
यज्	बार-बार यज्ञ करना	यजति	याज्यज्यते
युज्	बार-बार मिलना	योजते	योयुज्यते
युध्	बार-बार युद्ध काना	युध्यति	योयुध्यते
रक्ष्	बार-बार रक्षा करना	रक्षति	रारक्ष्यते
रम्	बार-बार रमण करना	रमते	रंरम्यते

रुच्	बार-बार पसन्द करना	रोचते	रोरुच्यते
रुद्	बार-बार रोना	रोदिति	रोरुद्यते
लभ्	बार-बार प्राप्त करना	लभते	लालभ्यते
लिख्	बार-बार लिखना	लिखति	लेलिख्यते
वच्	बार-बार कहना	वक्ति	वावच्यते
वद्	बार-बार बोलना	वदति	वावद्यते
वन्द्	बार-बार बन्दना करना	वन्दते	वावन्द्यते
वस्	बार-बार वास कराना	वसति	वावस्यते
वृध्	बार-बार बढ़ना	वर्धते	वावर्ध्यते
शी	बार-बार सोना	शेते	शाशय्यते
शुच्	बार-बार शोक करना	शोचति	शोशुच्यते
शुध्	बार-बार शुद्ध करना	शोधयति	शोशुध्यते
श्रु	बार-बार सुनना	श्रृणोति	शोश्रूयते
सिच्	बार-बार सींचना	सिञ्चति	सेसिच्यते
स्मृ	बार-बार स्मरण करना	स्मरति	सास्मार्यते
स्वप्	बार-बार सोना	स्वपिति	सोषुप्यते
हन्	बार-बार मारना	हन्ति	जेघ्नीयते
हस्	बार-बार हँसना	हसति	जाहस्यते

परीक्षा

यङन्त प्रक्रिया पर पूर्णतया प्रकाश डालते हुए तीन पृष्ठ का लेख लिखें।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या की
यङन्त-प्रक्रिया पूरी हुई।

अथ यङ्लुक्प्रक्रिया

यङो लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

७१८. यङोऽचि च २।४।७४।।

यङोऽचि प्रत्यये लुक् स्यात्, चकारात्तं विनापि क्वचित्।
अनैमित्तिकोऽयमन्तरङ्गत्वादादौ भवति।
ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्त्वाद् द्वित्वम्। अभ्यासकार्यम्।
धातुत्वाल्लडादयः। **शेषात्कर्तरीति** परस्मैपदम्।
चर्करीतं चेत्यदादौ पाठाच्छपो लुक्।।

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **यङ्लुक्प्रक्रिया** प्रारम्भ होती है। इस प्रकरण में **क्रिया के बार-बार करने या अतिशय होने पर हलादि एकाच् धातुओं से यङ् प्रत्यय होकर उसका लुक् होता है। यङ्** प्रत्यय होने के बाद उसका लुक् किया जाता है। अतः ऐसे धातुओं को **यङ्लुगन्त** और इस प्रकरण को **यङ्लुक्प्रक्रिया** या **यङ्लुगन्तप्रक्रिया** कहा जाता है। **यङन्त** में जो अर्थ बताया गया, वही अर्थ **यङलुगन्त** में भी विद्यमान रहता है। **यङन्तप्रक्रिया** और **यङ्लुक्प्रक्रिया** में अन्तर यही है कि उसमें **यङ्** प्रत्यय विद्यमान रहता है और इसमें उसका लुक् किया जाता है। अर्थ मे कोई अन्तर नहीं है। इस प्रकरण के लिए अलग से कोई ध ातु पठित नहीं है किन्तु **भू** आदि धातुओं से ही **यङ्** प्रत्यय करके लुक् किया जाता है।

यङ्लुगन्त के प्रयोग के सम्बन्ध में वैयाकरणों में मतभेद है। कुछ आचार्य कहते हैं कि यह केवल वेद का विषय है, लौकिक प्रयोग का नहीं किन्तु कुछ आचार्य यह कहते हैं कि लोक में भी **यङलुगन्त** के प्रयोग उपलब्ध होते हैं। **लघुकौमुदीकार वरदराजाचार्य** ने मध्यममार्ग अपना कर **यङलुगन्त** का **क्वचित्** अर्थात् कहीं कहीं ही प्रयोग को स्वीकार किया है। इसीलिए उन्होंने **यङोऽचि च** में **क्वचित्** शब्द का प्रयोग किया है। यद्यपि इस प्रकरण में उन्होंने केवल **भू** धातु से प्रक्रिया दिखाई है तथापि अन्य विविध धातुओं से भी यह प्रत्यय किया जा सकता है।

७१८- यङोऽचि च। यङः षष्ठ्यन्तम्, अचि सप्तम्यन्तं, च अव्ययं, त्रिपदं सूत्रम्। **ण्यक्षत्रियार्षञितो लुगणिञोः** से **लुक्** और **बहुलं छन्दसि** से **बहुलम्** की अनुवृत्ति आती है।

अच् प्रत्यय के परे होने पर यङ् का लुक् हो जाता है, चकारात् अच् के विना भी कहीं कहीं इसका लुक् होता है।

ध्यान रहे कि यहाँ पर **अच्** प्रत्याहार नहीं है अपितु **अज्विधिः सर्वधातुभ्यः** से होने वाला **कृत्संज्ञक अच् प्रत्यय** है। इस सूत्र में **च** पढ़ा गया है। उसके बल पर **बहुलम्** की अनुवृत्ति मान ली जाती है। **बहुल** का अर्थ है- **कहीं प्रवृत्त होना, कहीं प्रवृत्त न होना, कहीं विकल्प से होना और कहीं कुछ विचित्र ही कार्य होना।** इसी **बहुल** का आश्रय लेकर इस सूत्र से **अच् प्रत्यय** के विना और किसी के परे होने या न होने पर भी **यङ्** का लुक् किया जाता है।

ध्यान रहे कि यह **यङ्लुक्** सर्वत्र नहीं होता। कहीं कहीं अर्थात् जहाँ जहाँ शिष्टों के प्रयोग मिलते हैं, वहाँ ही लुक् करना चाहिए।

अब प्रश्न होता है कि अच् प्रत्यय के अभाव में **यङ्** का लुक् कब होगा? उत्तर है- **अनैत्तिकोऽयमन्तरङ्गत्वादादौ भवति।** अर्थात् यह लुक् अनैमित्तिक है, क्योंकि अच् प्रत्यय न होने की स्थिति में किसी प्रत्यय, धातु या किसी निमित्त की अपेक्षा नहीं करता। अतः यह **अन्तरङ्ग** है। **अल्पापेक्षमन्तरङ्गम्** अथवा **अनिमित्तमन्तरङ्गम्।** जो कार्य किसी का आश्रय नहीं करता या अपेक्षाकृत कम करता है, वह कार्य **अन्तरङ्ग** होता है। **असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे।** यह परिभाषा है। **अन्तरङ्ग** कार्य करना हो तो **बहिरङ्ग** कार्य असिद्ध होता है। **यङ्लुक्** किसी की अपेक्षा नहीं करता, अतः **अन्तरङ्ग** है और द्वित्व, गुण आदि किसी को निमित्त मान कर के होते हैं, अतः वे **बहिरङ्ग** हैं। अन्तरङ्ग की कर्तव्यता में बहिरङ्ग असिद्ध होते हैं। इस लिए पहले अन्तरङ्ग कार्य **यङ्लुक्** ही होगा।

अब दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यदि पहले **यङ्** का लुक् कर दिया जायेगा तो **यङ्** के परे न होने से **सन्यङोः** से द्वित्व कैसे हो सकेगा? ग्रन्थकार ने उत्तर दिया-ततः **प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद्द्वित्त्वम्।** अर्थात् **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षमण्** इस सूत्र के द्वारा **प्रत्ययलक्षण** अर्थात् **प्रत्यय के लोप होने पर भी प्रत्यय को मान कर होने वाले कार्य हो सकते हैं,** इस नियम के आधार पर द्वित्व आदि कार्य हो सकते हैं। अब यहाँ पर यह शंका नहीं करनी चाहिए कि **लुक्** होने पर **न लुमताङ्गस्य** से **प्रत्ययलक्षण** का निषेध होना चाहिए, क्योंकि वह सूत्र अङ्गसम्बन्धी कार्यों में ही प्रत्ययलक्षण का निषेध करता है। यहाँ पर **प्रत्ययलक्षण** से **अङ्गकार्य** नहीं करना है किन्तु पूरे **यङन्त** को द्वित्व करना है, और वह अङ्गकार्य नहीं है। अतः यहाँ पर **प्रत्ययलक्षण** से द्वित्व आदि कार्य हो सकते हैं।

ण्यन्त, सन्नन्त और **यङन्त** की तरह **यङ्लुगन्त** की भी **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होती है जिससे लट् आदि लकार आते हैं। अथवा यूँ कहा जा सकता है कि **यङ्** प्रत्यय करने के बाद उसे यङन्त मान कर के पहले धातुसंज्ञा की गई और बाद में **एकदेशविकृतन्यायेन** अर्थात् **एकदेश में कुछ विकार, आगम, आदेश, लोप आदि हो जाने के बाद भी उसकी संज्ञात्व में कुछ भी कमी नहीं आती है,** इस नियम का आश्रय लेकर यङ्लुगन्त को धातु ही मान लिया जाता है।

शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् से परस्मैपद का विधान किया जाता है। यहाँ पर **प्रत्ययलक्षण** से **यङ्** को **ङित्** मान कर **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपद** नहीं किया जा सकता। क्योंकि **प्रत्ययलक्षण** से केवल प्रत्यय को निमित्त मानकर होने वाले कार्य हो सकते हैं। आत्मनेपद यह प्रत्यय-निमित्तक कार्य नहीं है। अतः **यङ्लुगन्त धातुओं** से केवल **परस्मैपद** ही होता है, **आत्मनेपद** नहीं।

चर्करीतं च यह गण सूत्र है। इसका पाठ **अदादि** में किया जा चुका है। प्राचीन

ईटो विकल्पाय विधिसूत्रम्

७१९. यङो वा ७।३।९४।।

यङ्लुगन्तात्परस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्येड् वा स्यात्।

भूसुवोरिति गुणनिषेधो यङ्लुकि भाषायां न, बोभोतु तेतिक्ते इति छन्दसि निपातनात्। बोभवीति, बोभोति। बोभूतः। **अदभ्यस्तात्**। बोभुवति। बोभवाञ्चकार, बोभवामास। बोभविता। बोभविष्यति। बोभवीतु, बोभोतु, बोभूतात्। बोभूताम्। बोभुवतु। बोभूहि। बोभवानि। अबोभवीत्, अबोभोत्। अबोभूताम्। अबोभवुः। बोभूयात्। बोभूयाताम्, बोभूयुः। बोभूयात्। बोभूयास्ताम्। बोभूयासुः। **गातिस्थे**ति सिचो लुक्।

यङो वेतीट्पक्षे गुणं बाधित्वा नित्यत्वाद् वुक्। अबोभूवीत्, अबोभोत्। अबोभूताम्। अबोभूवुः। अबोभविष्यत्।

इति यङ्लुक्प्रक्रिया।।२५।।

आचार्यों ने **चर्करीत** को **यङ्लुगन्त** की संज्ञा स्वीकार किया है अर्थात् **यङ्लुगन्त** को **चर्करीत** कहते हैं। **चर्करीत** को अदादि मान लेने के कारण **यङ्लुगन्त** से **अदादिगण** में होने वाले वाला कार्य **अदःप्रभृतिभ्यः शपः** से **शप्** का लुक् किया जाता है।

७१९- यङो वा। यङः पञ्चम्यन्तं, वा अव्ययं, द्विपदं सूत्रम्। **उतो वृद्धिर्लुकि हलि** से **हलि**, **नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके** से **सार्वधातुके** और **ब्रूव ईट्** से **ईट्** की अनुवृत्ति आती है।

यङ्लुगन्त से परे हलादि पित् सार्वधातुक को विकल्प से ईट् का आगम होता है।

टित् होने से **सार्वधातुक** के आदि में बैठेगा। **पित्** को विधान किये जाने के कारण यह वैकल्पिक **ईट्** केवल **सार्वधातुक तिप्, सिप्, मिप्** को ही हो सकता है।

बोभवीति, बोभोति। पुनःपुनः अतिशयेन भवति। **भू** धातु से **बारम्बार अथवा अतिशय होता है** इस अर्थ में **धातोरेकाचो क्रियासमभिहारे यङ्** से **यङ्** होने के बाद उसका **यङोऽचि च** से लुक् हो गया। पुनः **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** के नियम से उसे मानकर के **सन्यङोः** से **भू** को द्वित्व हुआ, **भूभू** बना। अभ्याससंज्ञा, ह्रस्व और जश्त्व करके **बुभू** बना। **गुणो यङ्लुकोः** से **अभ्यास** को **गुण** होकर **बोभू** बना। इसे **एकदेशविकृतन्यायेन** मानें या **चर्करीत(यङ्लुगन्त)** का **अदादिगण** में मानकर के **भूवादयो धातवः** से धातुसंज्ञा होती है। अतः **लट्** लकार आया, परस्मैपद **ति** प्रत्यय हुआ। उसकी सार्वधातुकसंज्ञा करके **कर्तरि शप्** से **शप्** हुआ। उसका **अदःप्रभृतिभ्यः शपः** से लुक् हुआ। इस तरह **बोभू+ति** बना। **यङो वा** से **ति** को **ईट्** का आगम हुआ- **बोभू+ईति** बना। **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से **भू** को गुण होकर **बोभो+ईति** बना। **अव्** आदेश होकर **बोभ्+अव्+ईति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **बोभवीति** सिद्ध हुआ। **ईट्** न होने के पक्ष में **बोभोति** बनता है। इसी तरह **सिप्** और **मिप्** में भी प्रक्रिया होती है जिससे **बोभवीषि-बोभोषि, बोभवीमि-बोभोमि** बनते हैं।

बोभूतः। पित् वाले **तिप्, सिप्, मिप्** को **सार्वधातुकमपित्** से ङिद्वद्भाव नहीं होता, अतः गुणनिषेध भी नहीं होगा किन्तु शेष प्रत्यय अपित् हैं, अतः ङिद्वद्भाव होकर गुण का निषेध हो जाता है जिससे **बोभूतः** आदि बनते हैं। इसी तरह **झि, थस्, थ, वस्, मस्** के परे भी यही प्रक्रिया होती है। **झि** में झकार के स्थान पर **अन्त्** आदेश को बाधकर के **अदभ्यस्तात्** से **अत्** आदेश होता है। गुणाभाव में धातु के **ऊकार** को अच् परे मिलने से **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **उवङ्** आदेश होकर **बोभुवति** बनता है।

लट्- बोभवीति-बोभोति, बोभूतः, बोभुवति, बोभवीषि-बोभोषि, बोभूथः, बोभूथ, बोभवीमि-बोभोमि, बोभूवः, बोभूमः।

लिट् में **बोभू** को अनेकाच् मान कर **आम्, आर्धधातुकगुण, अवादेश, कृ, भू, अस्** का अनुप्रयोग करके बोभवाञ्चकार, बोभवाम्बभूव, बोभवामास आदि बनाये जाते हैं। इनके रूप सरल ही हैं।

लुट् में **बोभू** से **तासि**, **इडागम, डा आदेश, टिलोप, आर्धधातुकगुण, अवादेश** आदि करके बोभविता, बोभवितारौ, बोभवितारः आदि सरलता से बनाये जा सकते हैं। इसी तरह **लृट्** में **स्य, इट्, आर्धधातुकगुण, अवादेश, षत्व** करके **बोभविष्यति, बोभविष्यतः, बोभविष्यन्ति** आदि भी आप आसानी से बना सकते हैं।

लोट्- बोभवीतु-बोभोतु-बोभूतात्, बोभूताम्, बोभुवतु, बोभूहि-बोभूतात्, बोभूतम्, बोभूत, बोभवानि, बोभवाव, बोभवाम।

लङ्- अबोभवीत्-अबोभोत्, अबोभूताम्, अबोभवुः, अबोभवीः, अबोभीः, अबोभूतम्, अबोभूत, अबोभवम्, अबोभूव, अबोभूम।

विधिलिङ्- बोभूयात्, बोभूयाताम्, बोभूयुः, बोभूयाः, बोभूयातम्, बोभूयात, बोभूयाम्, बोभूयाव, बोभूयाम।

आशीर्लिङ्- बोभूयात्, बोभूयास्ताम्, बोभूयासुः, बोभूयाः, बोभूयास्तम्, बोभूयास्त, बोभूयासम्, बोभूयास्व, बोभूयास्म।

लुङ् में **बोभू** से **ति, अट् आगम, च्लि,** उसको **सिच्** आदेश करके **अबोभू+स्+त्** बना है। **गातिस्थाभूपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु** से सिच् का लुक् करके **यङो वा** से वैकल्पिक **ईट्** करके **अबोभू+ईत्** बना। अब **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण और **भुवो वुक् लुङ्लिटोः** से वुक् आगम ये दो कार्य एक साथ प्राप्त हुए। पर होने के कारण **गुण** पहले होना चाहिए था किन्तु **परनित्यान्तरङ्गापवादामुत्तरोत्तरं बलीयः** के नियम से पर से भी नित्य के बलवान् होने के कारण पहले **वुक्** ही होगा। **कृताकृतप्रसङ्गी नित्यः** अर्थात् **विरोधी के प्रवृत्त होने पर भी जिसकी प्रवृत्ति हो सकती है, वह नित्य होता है।** यहाँ पर **गुण** होने पर भी **वुक्** हो सकता है और गुण के पहले भी हो सकता है। इस लिए वुक् नित्य हुआ। पर से नित्य बलवान् होने के कारण **वुक्** आगम किया गया। **अबोभूव्+ईत्** बना। अब वकार के व्यवधान के कारण गुण नहीं हो सकता। वर्णसम्मेलन करके **अबोभूवीत्** बना। **ईट्** के न होने पक्ष में **अजादि** परे न होने के कारण वुक् का आगम नहीं हो सकता। अतः सार्वधातुक गुण होकर **अबोभोत्** बनता है।

लुङ् के रूप- अबोभूवीत्-अबोभोत्, अबोभूताम्, अबोभूवुः, अबोभूवीः-अबोभोः, अबोभूतम्, अबोभूत, अबोभूवम्, अबोभूव, अबोभूम।

लृङ्- अबोभविष्यत्, अबोभविष्यताम्, अबोभविष्यन्।

यङ्लुगन्त के रूप प्रायः जटिल होते हैं और इन रूपों का प्रयोग भी प्रायः कम ही होता है। इस लिए लघुसिद्धान्तकौमुदी के स्तर के छात्रों को ध्यान में रख कर ही वरदराजाचार्य जी ने केवल भू धातु की प्रक्रिया दिखा कर प्रकरण को समाप्त कर दिया है। ध्यान रहे कि अजादि धातुओं से यङ् होता ही नहीं है तो यङ्लुक् होने का भी प्रसंग नहीं है।

यङ्लुक् के कुछ प्रसिद्ध रूप यहाँ पर दिये जा रहे हैं।
गम् से जङ्गमीति-जङ्गन्ति, पूञ् से पोपवीति-पोपोति, लुञ् से लोलवीति-लोलोति, ग्रह् से जाग्रहीति-जाग्राढि, प्रच्छ् से पाप्रच्छीति-पाप्रष्टि, विश् से वेविशीति-वेवेष्टि, चल् से चाचलीति, जि से जेजयीति-जेजेति, कृ से चर्करीति-चरीकरति-चर्कर्ति-चरीकर्ति, नृत् से नर्नृर्तीति-नरीनृतीति-नर्नर्ति-नरीनर्ति, तृ से तातरीति-तातर्ति, वृत् से वर्वृतीति-वरीवृतीति, मुद् से मुमुदीति-मोमोत्ति आदि रूप बनाये जास सकते हैं।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का
यङ्लुगन्तप्रक्रिया पूरी हुई।

अथ नामधातवः

क्यच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७२०. सुप आत्मनः क्यच् ३।१।८॥

इषिकर्मण एषितुः सम्बन्धिनः सुबन्तादिच्छायामर्थे क्यच्-प्रत्ययो वा स्यात्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **नामधातुप्रकरण** आरम्भ होता है। इस प्रकरण में धातुपाठ का कोई धातु नहीं होता है अपितु नाम अर्थात् सुबन्त प्रातिपदिक को धातु बनाने की प्रक्रिया बताई जाती है। **नाम से धातु** बन जाने के कारण इसे **नामधातुप्रकरण** कहा गया है। शब्द को धातु बनाने की रीति हिन्दी आदि भाषाओं में भी देखने को मिलती है। जैसे कि **अपना** से **अपनाना**, **धिक्कार** से **धिक्कारना**, **हाथ** से **हथियाना**, **चक्कर** से **चक्कराना** आदि प्रयोग होता है। अर्थात् शब्द को धातु की तरह प्रयोग किया गया है। इसी तरह संस्कृत में **पुत्र** से **पुत्रीयति**, **शिला** से **शिलायति**, **विष्णु** से **विष्णूयति**, **शब्द** से **शब्दायते** आदि बनाये जाते हैं। इस प्रकरण में यही प्रक्रिया बताई गई है।

५१७- सुप आत्मनः क्यच्। सुपः पञ्चम्यन्तम्, आत्मनः षष्ठ्यन्तं, क्यच् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः**, **परश्च** का अधिकार है। **धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा** से **कर्मणः**, **इच्छायाम्** और **वा** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्** के नियम से सुप् से सुबन्त का ग्रहण होता है।

इच्छार्थक इष् धातु के कर्म तथा इच्छुक के सम्बन्धी सुबन्त से चाहना **अर्थ में विकल्प से क्यच्** प्रत्यय होता है।

तात्पर्य यह है कि चाहने वाला व्यक्ति **अपने लिए कोई वस्तु चाहता है**, इस अर्थ को प्रकट करने के लिए अभीष्ट वस्तु के वाचक सुबन्त से वैकल्पिक **क्यच्** प्रत्यय इस सूत्र से हो जाता है।

ककार की **लशक्वतद्धिते** से तथा **चकार** की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है, केवल **य** शेष रहता है। **क्यच्** प्रत्यय **सनादि** प्रत्ययों में पठित है। अतः यह अन्त में है जिसके, उस समुदाय की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होती है। **धातुसंज्ञा** के समय जिस सुबन्त से यह प्रत्यय किया गया है, वह **सुप्** भी रहता है, अतः यह सुप् धातु का अवयव बन जाता है। उसका अग्रिम सूत्र **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हो जाता है। **एकदेशविकृतन्यायेन** धातु मानकर तब लट् आदि आते हैं। यह प्रत्यय वैकल्पिक है, अतः एक पक्ष में वाक्य ही रह जाता है।

सुपो लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

७२१. सुपो धातुप्रातिपदिकयोः २।४।७१॥

एतयोरवयवस्य सुपो लुक्।

ईकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

७२२. क्यचि च ७।४।३३॥

अवर्णस्य ईः। आत्मनः पुत्रमिच्छति पुत्रीयति।

....

५१८- **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः**। धातुश्च प्रातिपदिकञ्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो धातुप्रातिपदिके, तयोर्धातुप्रातिपदिकयोः। सुपः पठष्यन्तं, धातुप्रातिपदिकयोः षष्ठ्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** से **लुक्** की अनुवृत्ति आती है।

धातु और प्रातिपदिक के अवयव सुप् का लुक् होता है।

५१९- **क्यचि च**। क्यचि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **अस्य च्वौ** से **अस्य** और **ई घ्राध्मोः** से **ई** की अनुवृत्ति आती है।

क्यच् के परे होने पर अवर्ण के स्थान पर ईकार आदेश होता है।

पुत्रीयति। अपना पुत्र चाहता है। **आत्मनः पुत्रमिच्छति**। सुबन्त **पुत्र अम्** से **सुप आत्मनः क्यच्** से **क्यच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **पुत्र अम् य** बना। इसकी **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होने के बाद **अम्** धातु का अवयव बना। इसका **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **पुत्र+य** बना। **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से पुत्र को दीर्घ प्राप्त था, उसे बाध कर **क्यचि च** से अकार के स्थान पर ईकार आदेश हो गया- **पुत्रीय** बना। अब एकदेशविकृतन्यायेन धातु मानकर **लट्**, उसके स्थान पर परस्मैपद **ति** प्राप्त हुआ। आत्मनेपद के निमित्तों से हीन धातु है, अतः मात्र परस्मैपद ही होगा। **पुत्रीय+ति** बनने के बाद शप्, अनुबन्धलोप करके **पुत्रीय+अ+ति** बना। **पुत्रीय+अ** में **अतो गुणे** से पररूप होकर **पुत्रीयति** सिद्ध हुआ।

परस्य पुत्रमिच्छति= दूसरे का पुत्र चाहता है। इस अर्थ में क्यच् नहीं होगा क्योंकि इच्छा करने वाला अपना पुत्र नहीं चाह रहा है अपितु दूसरे के पुत्र को चाह रहा है। यदि विग्रह में **आत्मनः** पद न दें तो ऐसे स्थलों में भी क्यच् आदि होने लगेंगे।

लट् के रूप- **पुत्रीयति, पुत्रीयतः, पुत्रीयन्ति। पुत्रीयसि, पुत्रीयथः, पुत्रीयथ। पुत्रीयामि, पुत्रीयावः, पुत्रीयामः।**

पुत्रीयाञ्चकार। पुत्रीय से लिट्, अनेकाच् होने के कारण आम्, आम् को आर्धधातुक मानकर **अतो लोपः** से यकारोत्तरवर्ती अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **पुत्रीयाम्+लिट्** बना। आम् के परे रहते लिट् का लुक्, लिट् को परे लेकर **कृ** का अनुप्रयोग, उससे भी परस्मैपद, **पुत्रीयाम्+कृ अ** बना। अब **गोपायाञ्चकार** की तरह कृ को द्वित्व, उरत्, हलादिशेष, वृद्धि आदि करके **पुत्रीयाञ्चकार** बन जाता है। इसके लिए पहले की प्रक्रिया याद रहनी चाहिए। आगे **पुत्रीयाञ्चक्रतुः, पुत्रीयाञ्चक्रुः** आदि। भू के अनुप्रयोग में **पुत्रीयाम्बभूव** और अस् के अनुप्रयोग में **पुत्रीयामास**। लिट् में- **पुत्रीयिता**। लुट्- **पुत्रीयिष्यति**। लोट्- **पुत्रीयतु**। लङ्- **अपुत्रीयत्**। विधिलिङ्-**पुत्रीयेत्**। आशीर्लिङ्- **पुत्रीय्यात्**। लुङ्- **अपुत्रीयीत्**। लृङ्- **अपुत्रीयिष्यत्**।

पदसंज्ञाविषये नियमार्थं सूत्रम्

७२३. नः क्ये १।४।१५॥

क्यचि क्यङि च नान्तमेव पदं, नान्यत्। नलोपः। राजीयति। नान्तमेवेति किम्? वाच्यति। **हलि च।** गीर्यति। पूर्यति। धातोरित्येव। नेह- दिवमिच्छति दिव्यति।

....

७२३- नः क्ये। नः प्रथमान्तं, क्ये सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **सुप्तिङन्तं पदम्** से **पदम्** की अनुवृत्ति आती है।

क्य के परे होने पर नकारान्त ही पदसंज्ञक होता है, अन्य नहीं।

नः का अर्थ **नकारान्त शब्द** है, क्योंकि यह **नः** पद का विशेषण है। अतः तदन्त विधि होकर **नः** से नकारान्त अर्थ निष्पन्न होता है। **क्य** से **क्यच्, क्यङ्, क्यष्** इन तीनों प्रत्ययों का ग्रहण है।

आत्मनो राजानम् इच्छति इस विग्रह में **राजन्+अम्** से **क्यच्** प्रत्यय हुआ। **राजन्+अम्+क्य** की धातुसंज्ञा करने के बाद धातु के अवयव सुप् विभक्ति **अम्** के **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् करने के बाद भी **प्रत्ययलक्षण** से विभक्तित्व मानकर केवल **राजन्** में भी **सुप्तिङन्तं पदम्** से पदत्व तो है ही। अब पुनः पदसंज्ञा के लिए **नः क्ये** का कथन क्यों किया? इसका उत्तर यह है कि **सिद्धे सत्यारभ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति** अर्थात् कार्य सिद्ध वैसे भी हो रहा है तो पुनः उसी कार्य का विधान करना, विशेष नियम के लिए होता है। यहाँ पर पहले से ही पदत्व विद्यमान था तो पुनः पदसंज्ञा का विधान करके यह नियम बना कि **यदि क्य प्रत्ययों के परे रहते पूर्व में विद्यमान शब्द में पदत्व हो तो केवल नकारान्त शब्दों में ही हो, अन्य शब्दों में नहीं।** पदसंज्ञा के अनेक फल हैं। जैसे नकार का लोप, जश्त्व आदि। इस नियम से **राजन्+य** में **नः क्ये** से पदसंज्ञा के बाद नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप और ईत्व होकर **राजीयति** बन जायेगा और **आत्मनो वाचम् इच्छति** में **वाच्+य** में नकारान्त न होने से पदसंज्ञक नहीं है और पदत्व न होने से **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व और **चोः कुः** से कुत्व नहीं होगा जिससे **वाच्यति** सिद्ध होगा अन्यथा **वाग्यति** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता। अतः इस सूत्र को **नियम सूत्र** कहा जाता है।

राजीयति। आत्मनो राजानम् इच्छति। अपना राजा चाहता है(अपने देश का न कि अन्यदेश का) राजन्+अम् से **सुप आत्मनः क्यच्** से **क्यच्,** अनुबन्ध लोप, **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा, **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **अम्** का लुक्, **न क्ये** के नियम से **राजन्+य** के **राजन्** में पदत्व है ही। अतः **पदान्त नकार** का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप करके **राज+य** बना। **क्यचि च** से जकारोत्तरवर्ती अकार को **ईत्व** करके **राजीय** बना। **एकदेशविकृतन्यायेन** धातुत्वात् लट्, तिप्, शप्, पररूप करके **राजीयति** सिद्ध हो जाता है।

लट् के रूप- राजीयति, राजीयतः, राजीयन्ति, राजीयसि, राजीयथः, राजीयथ, राजीयामि, राजीयावः, राजीयामः। **लिट्** में **पुत्रीयाञ्चकार** की तरह **राजीयाञ्चकार**। आगे **राजीयाञ्चक्रतुः, राजीयाञ्चक्रुः** आदि। भू के अनुप्रयोग में **राजीयाम्बभूव** और अस् के

लोपविधयकं विधिसूत्रम्

७२४. क्यस्य विभाषा ६।४।५०॥

हल: परयो: क्यच्क्यङोर्लोपो वार्धधातुके। **आदेः परस्य। अतो लोपः।** तस्य स्थानिवत्त्वाल्लघूपधगुणो न। समिधिता-समिध्यिता।

....

अनुप्रयोग में **राजीयामास**। लुट् में- **राजीयिता**। लृट्- **राजीयिष्यति**। लोट्- **राजीयतु**। लङ्- **अराजीयत्**। विधिलिङ्-**राजीयेत्**। आशीर्लिङ्- **राजीय्यात्**। लुङ्- **अराजीयीत्**। लृङ्- **अराजीयिष्यत्**।

गीर्यति। आत्मनो गिरम् इच्छति। अपनी वाणी चाहता है। यहाँ पर **गिर्+अम्** इस प्रातिपदिक से **क्यच्**, धातुसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गिर्+य** बना। **हलि च** से उपधाभूत इकार को दीर्घ होकर **गीर्य** बना। इससे लट्, तिप्, शप्, पररूप करके **गीर्यति** सिद्ध होता है। आगे आर्धधातुक के परे रहने पर अग्रिम सूत्र से **क्य** का लोप करके **गीराञ्चकार** भी बन जायेगा। लुट् आदि में **गीरिता, गीरिष्यति** आदि रूप होते हैं। **क्य** का लोप वैकल्पिक है। सार्वधातुक में तो **य** का लोप प्राप्त ही नहीं है। अतः **गीर्यतु, अगीर्यत्, गीर्येत्** आदि बनाते जायें। **आशीर्लिङ्** में **गीर्यात्** और **लुङ्** में **अगीरीत्** तथा **लृङ्** में **अगीरिष्यत्** बन जायेंगे।

पूर्यति। आत्मनः पुरम् इच्छति। अपने लिए नगर चाहता है। जिस तरह से **गिर्** से **गीर्यति** बना, उसी तरह से **पुर्** से **पूर्यति** बनता है।

दिव्यति। आत्मनो दिवम् इच्छति। अपने लिए स्वर्ग चाहता है। यहाँ पर **दिव्+अम्** से **क्यच्** करके **दिव्+य** बना। अब **हलि च** से दीर्घ नहीं होगा, क्योंकि वह रेफान्त और वकारान्त धातु के उपधा को दीर्घ करता है। **दिव्** यह धातु नहीं है, अपितु अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है। अतः **दिव्यति** ही बनेगा। स्मरण रहे कि **गिर्, पुर्** शब्द गॄ और पॄ धातुओं से क्विप् प्रत्यय होकर बने हैं। प्रातिपदिक बन जाने के बाद भी इसमें धातुत्व बना हुआ है क्यों कि **क्विबन्ता विजन्ता विडन्ताः शब्दा धातुत्वं न जहति** अर्थात् क्विप् प्रत्ययान्त, विच् प्रत्ययान्त और विच् प्रत्ययान्त शब्द प्रातिपदिक बन जाने के बाद भी धातुत्व का त्याग नहीं करते। अतः **पुर्+य, गिर्+य** में धातु मान कर उपधा को दीर्घ हुआ और **दिव्+य** में दिव् के अव्युत्पन्न शब्द होने से धातु नहीं है, अतः दीर्घ नहीं हो सका।

समिध्यति। आत्मनः समिधमिच्छति। अपने लिए समिधा चाहता है। **समिध्+अम्** से **क्यच्** होकर, धातुसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **समिध्+य** बना। **नः क्ये** के नियम से पदसंज्ञा नहीं हुई, अतः धकार को **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व भी नहीं हुआ। इस तरह **समिध्य** यह धातु बन गया। उससे लट्, तिप्, शप् करके **समिध्यति** सिद्ध हुआ। लिट्, लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ् और लृङ् लकारों में अग्रिम सूत्र **क्यस्य विभाषा** से यकार का विकल्प से लोप किया जा रहा है।

७२४- **क्यस्य विभाषा**। क्यस्य षष्ठ्यन्तं, विभाषा प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **यस्य हलः** से **हलः** और **अतो लोपः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है। **आर्धधातुके** का अधिकार है।

हल् से परे क्यच् और क्यङ् का विकल्प से लोप होता है आर्धधातुक के परे होने पर।

काम्यज्-विधायकं विधिसूत्रम्

७२५. काम्यच्च ३।१।९॥

उक्तविषये काम्यच् स्यात्। पुत्रमात्मन इच्छति पुत्रकाम्यति। पुत्रकाम्यिता।

....

यस्य हलः से नित्य से यकार का लोप प्राप्त था, उसे बाधकर के विकल्प से किया गया। इस सूत्र से तो पूरे **य** अर्थात् यकार और अकार के समूह **य** का लोप प्राप्त होता है किन्तु **आदेः परस्य** इस परिभाषा के बल पर पर में जो आदि वर्ण हो, उसका ही लोप होता है। पर में आदि केवल **य्** है। अतः केवल **य्** का इससे लोप होगा और शेष बचे अकार का **अतो लोपः** से लोप होगा। इस तरह लोप तो पूरे **य** का ही होता है।

अकार के लोप का स्थानिवद्भाव हो जाने से लघूपधगुण नहीं होता।

समिधिता, समिध्यिता। लुट् लकार में **समिध्+य+इता** बन जाने के बाद **क्यस्य विभाषा** से विकल्प से यकार का लोप, शेष अकार का **अतो लोपः** से लोप हो जाने के बाद **पुगन्तलघूपधस्य च** से उपधागुण प्राप्त हो रहा था किन्तु अकार के लोप का स्थानिवद्भाव हो जाने से यहाँ पर अकार की विद्यमानता में उपधा में इकार मिल नहीं सकता। अतः गुण नहीं हो पाया। **यकार** के लोप के पक्ष में **समिधिता** बन जाता है। यकार के लोप न होने के पक्ष में भी **अतो लोपः** से अकार का लोप होता ही है। अतः **समिध्यिता** बन जाता है।

रूप- लट्- समिध्यति। **लिट्- यलोपपक्षे-** समिधाञ्चकार, समिधाम्बभूव, समिधामास। **यलोपाभावे-** समिध्याञ्चकार, समिध्याम्बभूव, समिध्यामास। **लुट्-** समिधिता, समिध्यिता। **लृट्-** समिधिष्यति, समिध्यिष्यति। **लोट्-** समिध्यतु। **लङ्-** असमिध्यत्। **विधिलिङ्-** समिध्येत्। **आशीर्लिङ्-** समिध्यात्, समिध्यात्। **लुङ्-** असमिधीत्, असमिध्यीत्। **लृङ्-** असमिधिष्यत्, असमिध्यिष्यत्।

अपना, अपने लिए, अपने सम्बन्धी को चाहना इस अर्थ को तीन प्रकार से प्रकट किया जा रहा है। १-**क्यच् प्रत्यय** के द्वारा, २- **काम्यच् प्रत्यय** के द्वारा और ३- **वाक्य** के द्वारा। **वाक्य** के द्वारा **आत्मनः पुत्रमिच्छति** और **क्यच्** के द्वारा **पुत्रीयति** तथा काम्यच् के द्वारा दिखाने के लिए अग्रिम सूत्र का अवतरण किया जा रहा है।

७२५-काम्यच्च। काम्यच् प्रथमान्तं, च अव्ययं, द्विपदं सूत्रम्। **सुप आत्मनः क्यच्** से **सुपः**, आत्मनः की और धातोः **कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा** से **कर्मणः, इच्छायाम्** एवं **वा** की अनुवृत्ति आती है।

इष् धातु के कर्म तथा इच्छुक के सम्बन्धी सुबन्त से चाहना अर्थ में विकल्प से काम्यच् प्रत्यय होता है।

चकार इत्संज्ञक है। जिस तरह से उक्त अर्थ में प्रारम्भ में **क्यच्** का विधान किया गया था, उसी तरह से उसी अर्थ में **काम्यच्** भी होता है। **शब्द** और **काम्य** दोनों के समूह की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होकर **लट्** आदि लकार आते हैं। स्मरण रहे कि **क्यच्** के न रहने से **क्यचि च** से **ईत्व** नहीं होता और लुट् आदि में भी **क्यस्य विभाषा** की प्रवृत्ति नहीं होती एवं **यस्य हलः** से यकार का लोप भी नहीं होता।

यहाँ पर प्रश्न हो सकता है कि **काम्य** में भी **य** तो है ही तो फिर उसका लोप आदि क्यों नहीं होता, जैसा कि **क्यच्** का होता था? उत्तर यह है कि **अर्थवद्ग्रहणे**

क्यज्-विधायकं सूत्रम्

७२६. उपमानादाचारे ३।१।१०॥

उपमानात् कर्मणः सुबन्तादाचारेऽर्थे क्यच्।

पुत्रमिवाचरति पुत्रीयति छात्रम्। विष्णूयति द्विजम्।

वार्तिकम्- **सर्वप्रातिपदिकेभ्य क्विब्वा वक्तव्यः। अतो गुणे।**

कृष्ण इवाचरति कृष्णति। स्व इवाचरति स्वति। सस्वौ।

....

नानर्थकस्य ग्रहणम् अर्थात् अर्थवान् के ग्रहण में अनर्थक का ग्रहण नहीं होता। **समुदायो ह्यर्थवान्, तस्यैकदेशोऽनर्थकः** अर्थात् समुदाय अर्थवान् होता है किन्तु उसका एकदेश अर्थवान नहीं होता। समूहात्मक **क्यच्, क्यङ्** आदि में केवल **य** अर्थवान् है। **काम्यच्** में केवल **य** एकदेश अर्थवान् नहीं है। अतः **यस्य हलः** के द्वारा निर्दिष्ट **य** से समूह के एकदेश **काम्य** का केवल **य** का ग्रहण नहीं किया जा सकता।

पुत्रकाम्यति। आत्मनः पुत्रमिच्छति। अपने लिए पुत्र चाहता है। यहाँ पर **पुत्र+अम्** इस सुबन्त से **काम्यच्च** से **काम्यच्** प्रत्यय हुआ। चकार की इत्संज्ञा और लोप होने के बाद **पुत्र+अम्+काम्य** की **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा हो गई और उसके अवयव **अम्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ- **पुत्रकाम्य** बना। इससे लट्, तिप्, शप्, अनुबन्धलोप करके **पुत्रकाम्य+अति** बना। पररूप होकर **पुत्रकाम्यति** सिद्ध हुआ। अब इसके सभी लकारों के तीनो पुरुष और तीनों वचनों में रूप बनाये जा सकते हैं।

रूप- लट्- पुत्रकाम्यति। **लिट्-** पुत्रकाम्याञ्चकार, पुत्रकाम्याम्बभूव, पुत्रकाम्यामास। **लुट्-** पुत्रकाम्यिता। **लृट्-** पुत्रकाम्यिष्यति। **लोट्-** पुत्रकाम्यतु। **लङ्-** अपुत्रकाम्यत्। **विधिलिङ्-** पुत्रकाम्येत्। **आशीर्लिङ्-** पुत्रकाम्यात्,। **लुङ्-** अपुत्रकाम्यीत्। **लृङ्-** अपुत्रकाम्यिष्यत्।

अब **आचारार्थक** प्रत्ययों का वर्णन कर रहे हैं।

७२६- उपमानादाचारे। उपमानात् पञ्चम्यन्तम्, आचारे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **सुप आत्मनः क्यच्** से **सुपः, क्यच्** और **धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा** से **कर्मणः** और **वा** की अनुवृत्ति आती है।

उपमानरूप कर्म सुबन्त से आचार अर्थ में विकल्प से क्यच् प्रत्यय होता है।

जिससे उपमा दी जाती है, उसे **उपमान** कहते हैं। **सुप आत्मनः क्यच्** से **इच्छा** अर्थ में और यहाँ इस सूत्र से **आचार** अर्थ में **क्यच्** का विधान किया गया। प्रक्रिया में किसी तरह की भिन्नता नहीं है। अर्थ में भेद होने के कारण अलग से बताया जा रहा है। अन्तर केवल इतना ही है कि वह **इच्छा-क्यच्** और यह **आचार-क्यच्** है। प्रसंग के अनुसार अर्थ किया जाता है। इसके वाक्य में सुबन्त शब्द के बाद **इव आचरति** जोड़ा जाता है।

पुत्रीयति छात्रम्। पुत्रम् इव आचरति। पुत्र की तरह आचरण करता है अथवा शिष्य के साथ पुत्र का सा व्यवहार करता है। यहाँ पर **पुत्र** की उपमा दी जा रही है, अतः पुत्र उपमान हुआ और **पुत्र+अम्** उपमान रूप कर्म सुबन्त हुआ। **पुत्र+अम्** इस उपमानरूप कर्म सुबन्त से **उपमानादाचारे** से **क्यच्** प्रत्यय होने के बाद अनुबन्धलोप, धातुसंज्ञा,

श्रीधरमुखोल्ल्लासिनी

अवयवरूप सुप् **अम्** का लुक् करके **क्यचि च** से इत्व करने के बाद लट्, तिप्, शप्, अनुबन्धलोप, पररूप करके पहले की तरह ही **पुत्रीयति** आदि सभी रूप बनाये जाते हैं।

विष्णूयति द्विजम्। विष्णुम् इव आचरति। ब्राह्मण को विष्णु की तरह मानता है अथवा ब्राह्मण से विष्णु भगवान् का सा व्यवहार रखता है, उसी तरह पूजता है। **विष्णु+अम्** इस उपमानरूप कर्म सुबन्त से **क्यच्** करके धातुसंज्ञा, अवयव सुप् का लुक करने के बाद **विष्णु+य** बना है। **विष्णु** में अकार न होने के कारण **क्यचि च से ईत्त्व** नहीं होता किन्तु **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से यकार के परे होने पर **विष्णु** के उकार को दीर्घ करने पर **विष्णूय** बनता है। इससे लट्, तिप्, शप्, पररूप करके **विष्णूयति** बन जाता है। इसके सभी लकारों में पूर्ववत् रूप बनाये जाते हैं।

रूप- लट्- विष्णूयति। **लिट्-** विष्णूयाञ्चकार, विष्णूयाम्बभूव, विष्णूयामास। **लुट्-** विष्णूयिता। **लृट्-** विष्णूयिष्यति। **लोट्-** विष्णूयतु। **लङ्-** अविष्णूयत्। **विधिलिङ्-** विष्णूयेत्। **आशीर्लिङ्-** विष्णूय्यात्,। **लुङ्-** अविष्णूयीत्। **लृङ्-** अविष्णूयिष्यत्।

अब इसी तरह **आचार** अर्थ में अनेक रूप बनाये जा सकते हैं। जैसे कि-
शत्रुमिवाचरति मित्रम्- **शत्रूयति मित्रम्** मित्र के साथ शत्रु का व्यवहार करता है।
मातरमिवाचरति परस्त्रियम्- **मात्रीयति परस्त्रियम्** माता की तरह मानता है परस्त्रियों को।
मित्रमिवाचरति पुत्रम्- **मित्रीयति पुत्रम्** पुत्र से मित्र की तरह व्यवहार करता है।
प्राकारीयति कुटीम् **प्राकारीयति** कुटी को महल की तरह मानता है। आदि आदि।

क्यच् की तरह **क्विप्** प्रत्यय के द्वारा भी आचार अर्थ को प्रकट करने की प्रक्रिया प्राप्त होती है, जिसमें वार्तिक के द्वारा यह प्रत्यय किया जा रहा है-

सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः। यह वार्तिक है। **उपमानरूप सभी प्रातिपदिकों से आचार अर्थ में विकल्प से क्विप् प्रत्यय होता है।** क्यच् और क्विप् के विधान में अन्तर यह है कि **क्यच्** उपमानरूप कर्म प्रातिपदिक से होता है और यह **क्विप्** उपमानरूप कर्ता प्रातिपदिक से होगा क्योंकि यह वार्तिक महाभाष्य में **कर्तुः क्यङ् सलोपश्च** में पढ़ा गया है। इस प्रत्यय के लिए **सुबन्त** होने की आवश्यकता नहीं है, सीधे प्रातिपदिक से ही होता है किन्तु वह **कर्ता** हो। सुप् न होने के कारण **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** की भी आवश्यकता नहीं होती। **क्विप्** में इकार **उच्चारणार्थक** है, ककार की **लशक्वतद्धिते** और **पकार** की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है तथा अपृक्त **वकार** का **वेरपृक्तस्य** से लोप होता है। इस तरह प्रत्यय के सभी वर्णों का लोप हो जाता है, कुछ भी नहीं बचता। इसे सर्वापहार या सर्वापहारलोप कहते हैं। जैसा कि **हलन्तपुँल्लिङ्ग** में वर्णन आ चुका है। **क्विप्** प्रत्यय करने का फल यही हुआ कि प्रातिपदिक कर्ता **धातु** बन गया। **आचारार्थक क्विप्** को **सनादि** के अन्तर्गत माना गया है। अतः **सनाद्यन्ता धातवः** से इसकी धातुसंज्ञा हो जाती है। उसके बाद **लट्, तिप्, शप्, पररूप** आदि करके रूप सिद्ध होता है। ध्यान रहे कि यह प्रत्यय कर्म में नहीं होता। अतः **कृष्णति भक्तम्** नहीं बनेगा किन्तु **कृष्णति नटः, कृष्णति शिशुः** आदि प्रथमान्त समानाधिकरण वाले ही रूप बनाये जाते हैं।

कृष्णति। कृष्ण इवाचरति नटः। नट कृष्ण की तरह आचरण करता है। यहाँ पर उपमानरूप कर्ता प्रातिपदिक से **सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः** से **क्विप्** प्रत्यय,

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

७२७. अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति ६।४।१५॥

अनुनासिकान्तस्योपधाया दीर्घः स्यात् क्वौ झलादौ च क्ङिति। इदमिवाचरति इदामति। राजेव राजानति। पन्था इव पथीनति।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

सर्वापहार लोप, **कृष्ण** की धातुसंज्ञा, लट्, तिप्, शप्, पररूप करके **कृष्णति** सिद्ध होता है। आगे सभी लकारों के रूप बनाये जा सकते हैं।

रूप- लट्- कृष्णति। **लिट्-** कृष्णाञ्चकार, कृष्णाम्बभूव, कृष्णामास। **लुट्-** कृष्णिता। **लृट्-** कृष्णिष्यति। **लोट्-** कृष्णतु। **लङ्-** अकृष्णत्। **विधिलिङ्-** कृष्णेत्। **आशीर्लिङ्-** कृष्ण्यात्,। **लुङ्-** अकृष्णीत्। **लृङ्-** अकृष्णिष्यत्।

स्व इवाचरति स्वति। अपनी तरह ही आचरण करता है। यहाँ उपमानवाचक कर्ता प्रातिपदिक **स्व** शब्द से **आचरण करना** अर्थ में **सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः** से क्विप्, सर्वापहारलोप, धातुसंज्ञा, लट्, तिप्, शप् करके **स्व+अति** बना है। पररूप करने पर **स्वति** बनता है। आगे सभी वचनों के रूप बना लें। लिट् में अनेकाच् न होने के कारण **आम्** नहीं होता। अतः **तिप्** के स्थान पर णल् करने के बाद **स्व+अ** बना। **अचो ञ्णिति** से अजन्त अकार की वृद्धि होने पर **स्वा+अ** बना। अब **आत औ णलः** से **णल्** के अकार के स्थान पर **औकार** आदेश होकर **स्वा+औ** बना। **स्वा** को द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, हलादिशेष, ह्रस्व करके **सस्वा+औ** बना। वृद्धि होकर **सस्वौ** बन गया। **अचो ञ्णिति** से णित् परे रहने पर ही वृद्धि होती है। अतः णल् के अलावा अन्यत्र अतुस् आदि में वृद्धि नहीं होगी किन्तु **अतो लोपः** से अकार का लोप करके **सस्वतुः, सस्वुः, सस्विथ, सस्वथुः, सस्व** बनते है। उत्तमपुरुष के **णल्** में **सस्वौ** बनता है। वस्, मस् में **सस्विव, सस्विम**।

लुट्- स्विता **लृट्-** स्विष्यति। **लोट्-** स्वतु। **लङ्-** अस्वत्। **विधिलिङ्-** स्वेत्। **आशीर्लिङ्-** स्व्यात्,। **लुङ्-** अस्वीत्, अस्विष्टाम्, अस्विषुः। **लृङ्-** अस्विष्यत्।

७२७- अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति। क्विश्च झल् तयोरितरेतरद्वन्द्वः क्विझलौ, तयोः क्विझलोः। क् च ङ् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः क्ङौ, तौ इतौ यस्य, यस्मिन् वा स क्ङित्, तस्मिन्। अनुनासिकस्य षष्ठ्यन्तं, क्विझलोः सप्तम्यन्तं, क्ङिति सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **नोपधायाः** से **उपधायाः** और **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

क्वि या झलादि कित्, ङित् के परे होने पर अनुनासिकान्त अङ्ग के उपधा को दीर्घ होता है।

इदम् इव आचरति- इदामति। इसकी तरह आचरण करता है। **इदम्** इस कर्ता प्रातिपदिक सर्वनाम से **सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः** से **क्विप्** करके सर्वापहारलोप करने पर **इदम्** ही बना। धातुसंज्ञा हुई और **अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति** से **प्रत्ययलक्षणेन** क्वि परं मान कर अनुनासिकान्त उपधा दकारोत्तरवर्ती अकार को दीर्घ हुआ- **इदाम्** बना। इससे लट्, तिप्, शप् करके **इदाम्+अति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **इदामति** सिद्ध हुआ।

क्यङ्-विधायकं विधिसूत्रम्

७२८. कष्टाय क्रमणे ३।१।१४॥

चतुर्थ्यन्तात् कष्टशब्दादुत्साहेऽर्थे क्यङ् स्यात्।
कष्टाय क्रमते कष्टायते। पापं कर्तुमुत्सहत इत्यर्थः।

....

श्रीधरमुखोल्ल्लासिनी

रूप- लट्- इदामति। **लिट्-** इदामाञ्चकार, इदामाम्बभूव, इदामामास। **लुट्-** इदामिता। **लृट्-** इदामिष्यति। **लोट्-** इदामतु। **लङ्-** ऐदामत्। **विधिलिङ्-** इदामेत्। **आशीर्लिङ्-** इदाम्यात्,। **लुङ्-** ऐदामीत्। **लृङ्-** ऐदामिष्यत्।

राजा इव आचरति- राजानति। राजा की तरह आचरण करता है। **राजन्** इस कर्ता प्रातिपदिक से **सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः** से **क्विप्** करके सर्वापहार करने पर **राजन्** ही बना। धातुसंज्ञा हुई और **अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति** से **प्रत्ययलक्षणेन** क्वि परे मानकर अनुनासिकान्त उपधा जकारोत्तरवर्ती अकार को दीर्घ हुआ- **राजान्** बना। इससे लट्, तिप्, शप् करके **राजान्+अति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **राजानति** सिद्ध हुआ।

रूप- लट्- राजानति। **लिट्-** राजानाञ्चकार, राजानाम्बभूव, राजानामास। **लुट्-** राजानिता। **लृट्-** राजानिष्यति। **लोट्-** राजानतु। **लङ्-** अराजानत्। **विधिलिङ्-** राजानेत्। **आशीर्लिङ्-** राजान्यात्,। **लुङ्-** अराजानीत्। **लृङ्-** अराजानिष्यत्।

पन्था इव आचरति- पथीनति। मार्ग की तरह आचरण करता है। **पथिन्** इस कर्ता प्रातिपदिक से **सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः** से **क्विप्** करके सर्वापहार करने पर **पथिन्** ही बना। धातुसंज्ञा हुई और **अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति** से **प्रत्ययलक्षणेन** क्वि परे मानकर अनुनासिकान्त उपधा थकारोत्तरवर्ती इकार को दीर्घ हुआ- **पथीन्** बना। इससे लट्, तिप्, शप् करके **पथीन्+अति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **पथीनति** सिद्ध हुआ।

रूप- लट्- पथीनति। **लिट्-** पथीनाञ्चकार, पथीनाम्बभूव, पथीनामास। **लुट्-** पथीनिता। **लृट्-** पथीनिष्यति। **लोट्-** पथीनतु। **लङ्-** अपथीनत्। **विधिलिङ्-** पथीनेत्। **आशीर्लिङ्-** पथीन्यात्,। **लुङ्-** अपथीनीत्। **लृङ्-** अपथीनिष्यत्।

अब क्यङ् प्रत्यय का विधान बतलाते हैं।

७२८- कष्टाय क्रमणे। कष्टाय चतुर्थ्यन्तं, क्रमणे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **कर्तुः क्यङ् सलोपश्च** से क्यङ् तथा **धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा** से **वा** की अनुवृत्ति आती है।

चतुर्थ्यन्त कष्ट शब्द से क्रमण अर्थात् उत्साह करना अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है।

ककार और **ङकार** की इत्संज्ञा होती है, **य** शेष रहता है। ङित् होने से आत्मनेपद होता है।

कष्टाय क्रमते- कष्टायते। कष्ट (पाप) करने का उत्साह करता है। **कष्ट+ङे** इस चतुर्थ्यन्त शब्द से **उत्साह करना** अर्थ में **कष्टाय क्रमणे** से **क्यङ्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप होने के बाद **धातुसंज्ञा,** अवयव सुप् का लुक् करके **कष्ट+य** बना। **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से दीर्घ होने पर **कष्टाय** बना। इससे लट्, त, शप्, पररूप, एत्व

क्यङ्-विधायकं विधिसूत्रम्

७२९. शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे ३।१।१७।।

एभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् स्यात्। शब्दं करोति शब्दायते।।

गणसूत्रम्- **तत्करोति तदाचष्टे।** इति णिच्।

गणसूत्रम्- **प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च।**

प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे णिच् स्यात्, इष्ठे यथा प्रातिपदिकस्य पुंवद्भाव-रभाव-टिलोप-विन्मतुब्लोप-यणादिलोप-प्रस्थस्फाद्यादेश-भसंज्ञाः, तद्वण्णावपि स्युः। इत्यल्लोपः। घटं करोत्याचष्टे वा घटयति।

इति नामधातवः।।२६।।

....

करके **कष्टायते** सिद्ध हो जाता है। आगे सभी लकारों के सभी वचनों के रूप बना सकते हैं। क्यङ् के ङित् होने से तदन्त धातु भी आत्मनेपदी हुई।

७२९- शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे। शब्दश्च वैरञ्च, कलहश्च, अभ्रञ्च, कण्वश्च मेघश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघास्तेभ्यः। शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः पञ्चम्यन्तं, करणे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **कर्मणो रोमन्थ०** से वचनविपरिणाम करके **कर्मभ्यः**, **कर्तुः क्यङ् सलोपश्च** से **क्यङ्** और **धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा** से **वा** की अनुवृत्ति आती है।

शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व और मेघ इन कर्मों से करना अर्थ में विकल्प से क्यङ् प्रत्यय होता है।

शब्दं करोति शब्दायते। शब्द करता है। **कष्ट** से **कष्टायते** की तरह ही **क्यङ्**, अनुबन्धलोप, धातुसंज्ञा, **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से दीर्घ करके **शब्दाय** बनता है। इससे लट्, त, शप्, पररूप, एत्व करके **शब्दायते** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **वैर** से वैरायते- वैर करता है, **कलह** से **कलहायते** कलह करता है, **अभ्र** से **अभ्रायते** मेघ बनता है, **कण्व** से **कण्वायते** पाप करता है, **मेघ** से **मेघायते** बादल बनता है आदि बनाये जा सकते हैं।

तत्करोति तदाचष्टे। यह गणसूत्र है। **यह उसे करता है, उसे कहता है इस अर्थ में प्रातिपदिकों से णिच् प्रत्यय होता है।**

प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च। यह भी गणसूत्र है। **प्रातिपदिकों से धातु के अर्थ में बहुल से णिच् प्रत्यय हो जाता है साथ ही इष्ठन् प्रत्यय के परे रहने पर जो-जो भी कार्य होते हैं वे वे कार्य इस णिच् प्रत्यय के परे रहने पर भी हो जायें।**

इष्ठन् के परे रहने पर क्या-क्या कार्य हो सकते हैं? उत्तर दिया- **इष्ठे यथा प्रातिपदिकस्य पुंवद्भाव-रभाव-टिलोप-विन्मतुब्लोप-यणादिलोप-प्रस्थस्फाद्यादेश-भसंज्ञाः, तद्वण्णावपि स्युः।** अर्थात् इष्ठन् प्रत्यय के परे रहने पर जैसे प्रातिपदिक को पुंवद्भाव, रभाव, टि का लोप, विन् और मतुप् का लोप, यणादिलोप, प्र-स्थ-स्फ आदि आदेश और भसंज्ञा आदि कार्य होते हैं, वैसे ही णि के परे होने पर भी ये सब कार्य होते हैं।

घटं करोति, घटमाचष्टे घटयति। घड़े को करता, बनाता है या घट को कहता

है। घट इस प्रातिपदिक से **तत्करोति तदाचष्टे** से **णिच्** प्रत्यय करके **प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च** से इष्ठवद्भाव का अतिदेश करके **घट+इ** में घट के भसंज्ञक न होते हुए भी इष्ठवद्भाव के कारण भसंज्ञा का अतिदेश हुआ। अतः टकारोवर्ती अकार का **यस्येति च** से लोप हुआ। **घट्+इ** बना। यहाँ **णिच्** को णित् मानकर के **अचो ञ्णिति** से वृद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि **अचः परस्मिन् पूर्वविधौ** से अकार के लोप को स्थानिवद्भाव करके बीच में अकार का व्यवधान दीखता है। अब **घटि** की धातुसंज्ञा करके **णिचश्च** से कर्तृगामि क्रियाफल में आत्मनेपद अन्यथा परस्मैपद का विधान होता है। अतः लट्, तिप् या त, शप्, गुण, अयादेश, वर्णसम्मेलन करके **घटयति, घटयते** सिद्ध हो जाते हैं। इसके भी सभी लकारों के सभी वचनों में रूप बनाये जाते हैं।

रूप- लट्- घटयति, घटयते। **लिट्-** घटयाञ्चकार, घटयाम्बभूव, घटयामास। **लुट्-** घटयिता, घटयितासि, घटयितासे। **लृट्-** घटयिष्यति, घटयिष्यते। **लोट्-** घटयतु, घटयताम्। **लङ्-** अघटयत्, अघटयत। **विधिलिङ्-** घटयेत्, घटयेत। **आशीर्लिङ्-** घट्यात्, घटिषीष्ट। **लुङ्-** ण्यन्त होने से **णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्** से चङ्, उसके बाद द्वित्वादि होकर- अजघटत्, अजघटत। **लृङ्-** अघटयिष्यत्, अघटयिष्यत।

इसके बाद अनेक सुबन्तों से नामधातुओं की प्रक्रिया बताई गई है। कहीं उपधा को दीर्घ, कहीं काम्यच् प्रत्यय, कहीं इच्छा अर्थ के अतिरिक्त आचार अर्थ में क्यच्, चतुर्थ्यन्त कष्टशब्द से क्यङ्, शब्दादि शब्दों से क्यङ्, प्रातिपदिकों से णिच् और इष्ठवद्भाव आदि का विधान मिलता है।

नामधातु के लट् प्रथम पुरुष एकवचन के कुछ रूप नीचे दिये जा रहे हैं।

शब्द	नामधात्वर्थ	लट् का रूप
पुत्र	अपने को पुत्र चाहता है	पुत्रीयति
वाच्	अपने लिए वाणी चाहता है	वाचीयति
राजन्	अपने लिए राजा चाहता है	राजीयति
गिर्	अपने लिए वाणी चाहता है	गीर्यति
पुर्	अपने लिए नगर चाहता है	पूर्यति
दिव्	अपने लिए स्वर्ग चाहता है	दिव्यति
पुत्र	अपने लिए पुत्र चाहता है(काम्यच् प्रत्यय)	पुत्रकाम्यति
पुत्र	शिष्य से पुत्र की तरह व्यवहार करता है	पुत्रीयति छात्रम्
विष्णु	ब्राह्मण को विष्णु की तरह मानता है	विष्णूयति द्विजम्
मातृ	दूसरी स्त्री को माता की तरह मानता है	मात्रीयति परकीयाम्
गर्दभ	घोड़े को गदहे की तरह समझता है	गर्दभीयति अश्वम्
प्रासाद	कुटिया को महल की तरह समझता है	प्रासादीयति कुटीम्
कृष्ण	नट कृष्ण की तरह अभिनय करता है	कृष्णति
इदम्	ऐसा व्यवहार करता है	इदामति
कष्ट	कष्ट सहने के लिए तैयार रहता है	कष्टायते
शब्द	शब्द करता है	शब्दायते
वैर	वैर करता है	वैरायते

कलह	कलह करता है	कलहायते
मेघ	मेघ बनता है	मेघायते
घट	घट बनाता है	घटयति
प्रकट	प्रकट करता है	प्रकटयति
दृढ	दृढ़ करता है	दृढयति

परीक्षा

द्रष्टव्यः- **सभी प्रश्न अनिवार्य हैं और उनके अंक भी दिये गये हैं।**

१- अपनी पुस्तिका में **पुत्र** शब्द से बने पुत्रीय इस नामधातु के सारे रूप लिखें। १०

२- **शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे** इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या करें। १०

३- **नामधातु प्रकरण** के विषय में एक परिचय दें। १०

४- **तत्करोति तदाचष्टे** और **प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च** इन दो गणसूत्रों की सोदाहरण व्याख्या करें। १०

५- **उपमानादाचारे** तथा **सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः** इन सूत्र और वार्तिक का अन्तर स्पष्ट करें। १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का नामधातु-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ कण्ड्वादयः

यक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७३०. कण्ड्वादिभ्यो यक् ३।१।२७॥

एभ्यो धातुभ्यो नित्यं यक् स्यात् स्वार्थे।

कण्डूञ् गात्रविघर्षणे॥१॥ कण्डूयति। कण्डूयत इत्यादि।

इति कण्ड्वादयः॥२७॥

....

श्रीधरमुखोल्ल्लासिनी

अब **कण्ड्वादिप्रकरण** का आरम्भ होता है। कण्डू+आदि=कण्ड्वादि। पाणिनीय गणपाठ में एक कण्ड्वादिगण है। इसके अन्तर्गत आने वाले शब्दों को धातु और प्रातिपदिक दोनों मान लिया गया है। **कण्ड्वादि** से विहित यक् के कित् होने से यह सिद्ध होता है कि ये धातुएँ हैं, क्योंकि कित् का फल गुणनिषेध है जो धातुओं में ही दीखता है प्रातिपदिकों में नहीं। पुनः कण्डूञ् धातु में दीर्घ ऊकार का होना यह सिद्ध करता है कि यह प्रातिपदिक हैं क्योंकि यदि धातु ही होती तो ह्रस्व उकार होने पर य के परे रहते **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से दीर्घ हो ही जाता। अतः दीर्घ ऊकार ग्रहण करने का तात्पर्य यह है कि ये प्रातिपदिक भी हैं। प्रातिपदिक मानकर इनके तीनों लिङ्गों में सभी विभक्तियों में रूप चलते हैं और ध ातु मानकर यक् आदि करके धातु की तरह रूप बनाये जाते हैं।

७३०- **कण्ड्वादिभ्यो यक्**। कण्डूः+आदिर्येषां ते कण्ड्वादयस्तेभ्यः कण्ड्वादिभ्यः। कण्ड्वादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, यक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से वचनविपरिणाम करके **धातुभ्यः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः**, **परश्च** का अधि कार है। **कण्डू आदि धातुओं से स्वार्थ में यक् प्रत्यय होता है।**

यक् में **ककार** इत्संज्ञक है, **य** शेष रहता है।

कण्डूञ् गात्रविघर्षणे। कण्डूञ् धातु **शरीर रगड़ने अर्थात् खुजलाने** अर्थ में है। ञकार की इत्संज्ञा होती है, **कण्डू** शेष रह जाता है।

कण्डूयति। कण्डू से **कण्ड्वादिभ्यो यक्** से **यक्**, **ककार** का लोप करके **कण्डू+य** बना। **य** की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा करके **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से ऊकार को गुण प्राप्त था, कित् परे होने के कारण **क्ङिति च** से गुण का निषेध हो गया। अब **कण्डूय** ऐसा बना है। **सनाद्यन्ता धातवः** से इसकी धातुसंज्ञा करके **लट्**, उसके स्थान पर तिप्, शप् करके **कण्डूय+अति** बना। **अतो गुणे** से पररूप करके **कण्डूयति** सिद्ध हुआ। यह धातु ञित् होने के कारण **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से उभयपदी हो जाता है। अतः **कण्डूयते** भी बनता है। आगे के रूप स्वयं बनायें।

लट्- कण्डूयति, कण्डूयते।
लिट्- कण्डूयाञ्चकार, कण्डूयाम्बभूव, कण्डूयामास, कण्डूयाञ्चक्रे।
लुट्- कण्डूयिता, कण्डूयितासि, कण्डूयितासे। लृट्- कण्डूयिष्यति, कण्डूयिष्यते।
लोट्- कण्डूयतु-कण्डूयतात्, कण्डूयताम्। लङ्- अकण्डूयत्, अकण्डूयत।
विधिलिङ्- कण्डूयेत्, कण्डूयेत। आशीर्लिङ्- कण्डूय्यात्, कण्डूयिषीष्ट।
लुङ्- अकण्डूयीत्, अकण्डूयिष्ट। लृङ्- अकण्डूयिष्यत्, अकण्डूयिष्यत।

कण्डू धातु न होकर जब प्रातिपदिक रहता है, तब इसके रूप ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग में वधू शब्द की तरह होते हैं।

ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग कण्डू-शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कण्डूः	कण्ड्वौ	कण्ड्वः
द्वितीया	कण्डूम्	कण्ड्वौ	कण्डूः
तृतीया	कण्ड्वा	कण्डूभ्याम्	कण्डूभिः
चतुर्थी	कण्ड्वै	कण्डूभ्याम्	कण्डूभ्यः
पञ्चमी	कण्ड्वाः	कण्डूभ्याम्	कण्डूभ्यः
षष्ठी	कण्ड्वाः	कण्ड्वोः	कण्डूनाम्
सप्तमी	कण्ड्वाम्	कण्ड्वोः	कण्डूषु
सम्बोधन	हे कण्डूः!	हे कण्ड्वौ	हे कण्ड्वः!

....

कण्ड्वादि गण के कुछ प्रसिद्ध शब्दों के धातु और सुबन्त के रूप देखें-

कण्ड्वादि शब्द	धातु रूप और अर्थ	सुबन्त और अर्थ
कण्डू	कण्डूयति=खुजलाता है	कण्डूः=खुजलाहट
सपर	सपर्यति=पूजा करता है	सपर्या=पूजा
मही	महीयते=पूजित होता है	मही=भूमि
सुख	सुखयति=सुखी होता है	सुखम्=सुख
भिषज्	भिषज्यति=चिकित्सा करता है	भिषक्=वैद्य
उषस्	उषस्यति=प्रातः होता है	उषाः=प्रातःकाल
उरस्	उरस्यति=बलवान् होता है	उरः=छाती
पयस्	पयस्यति=गाय दूध देती है	पयः=दूध

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का कण्ड्वादि-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ आत्मनेपदप्रक्रिया

आत्मनेपदविधायकं सूत्रम्

७३१. कर्तरि कर्मव्यतिहारे १।३।१४।।

क्रियाविनिमये द्योत्ये कर्तर्यात्मनेपदम्।

व्यतिलुनीते। अन्यस्य योग्यं लवनं करोतीत्यर्थः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **आत्मनेपदप्रक्रिया** का आरम्भ होता है। धातुप्रकरण के आरम्भ में कहा जा चुका है कि धातु से विहित लकारों के स्थान पर **परस्मैपद** और **आत्मनेपद** दो तरह के तिङ् प्रत्यय आदेश के रूप में होते हैं। किस तरह के धातुओं से **परस्मैपद** और किस तरह के धातुओं से **आत्मनेपद** हो, इसका सामान्य कथन तिङन्त प्रकरण के आदि में ही हो चुका है। सामान्यतया **अनुदात्तेत्** और **ङित्** धातुओं से **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपद** और **स्वरितेत्** और **ञित्** धातुओं से **कर्तृगामी क्रियाफल** होने पर **आत्मनेपद** अन्यथा परस्मैपद का विधान हो चुका है। इसी तरह जो धातु **आत्मनेपद** के लिए निमित्त नहीं बनता है, ऐसे धातुओं से **परस्मैपद** का विधान बताया जा चुका है। अब इस प्रकरण में विशेषतया आत्मनेपद का विधान दिखलाते हैं। यद्यपि **अष्टाध्यायी** के सूत्रानुसार **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में इसके लिए अनेक सूत्र बतलाये गये हैं किन्तु **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में केवल चौदह सूत्रों को दिखाया गया है।

७३१- **कर्तरि कर्मव्यतिहारे**। कर्मणो व्यतिहारः कर्मव्यतिहारस्तस्मिन्। कर्तरि सप्तम्यन्तं, कर्मव्यतिहारे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

क्रिया का विनिमय अर्थात् अदला-बदली अर्थ द्योत्य होने पर धातु से कर्तृवाच्य में आत्मनेपद होता है।

एक के योग्य कार्य को दूसरा करने लगे तो उसे **कर्मव्यतिहार** कहते हैं और एक दूसरे के साथ एक जैसी आपसी क्रिया को भी **कर्मव्यतिहार** कहते हैं।

व्यतिलुनीते। अन्य के योग्य काटने की क्रिया को कोई अन्य करता है। यहाँ पर **वि** और **अति** दो उपसर्ग पूर्वक **लूञ् छेदने** धातु है। यह धातु क्र्यादिगण में उभयपदी के रूप में पठित है। इसके परस्मैपद में **लुनाति** आदि तथा आत्मनेपद में **लुनीते** आदि रूप बनते हैं। **प्वादीनां ह्रस्वः** से इसको ह्रस्व होता है। इस प्रकरण में केवल इतना ही बतलाया गया

आत्मनेपदनिषधकं विधिसूत्रम्

७३२. न गतिहिंसार्थेभ्यः १।३।१५॥

व्यतिगच्छन्ति। व्यतिघ्नन्ति।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७३३. नेर्विशः १।३।१७॥

निविशते।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७३४. परिव्यवेभ्यः क्रियः १।३।१८॥

परिक्रीणीते। विक्रीणीते। अवक्रीणीते।

....

है कि यद्यपि यह धातु उभयपदी है फिर भी यदि इसका अर्थ **कर्मव्यतिहार** अर्थात् **अन्य के योग्य काटने की क्रिया को किसी अन्य के द्वारा होना** हो रहा हो तो केवल **आत्मनेपद** होता है। यहाँ पर केवल आत्मनेपद होता है, यह बतलाया गया। रूपसिद्धि तो तत्तत् प्रकरणों के अनुसार ही करनी चाहिए।

७३२- न गतिहिंसार्थेभ्यः। गतिश्च हिंसा च तयोरितरेतरद्वन्द्वो गतिहिंसे, गतिहिंसे अर्थौ येषां ते गतिहिंसार्थास्तेभ्यः। न अव्ययपदं, गतिहिंसार्थेभ्यः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **कर्तरि कर्मव्यतिहारे** से **कर्मव्यतिहारे** और **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

कर्मव्यतिहार अर्थ होने पर भी गति और हिंसा अर्थ वाले धातुओं से आत्मनेपद नहीं होता।

यह पूर्व सूत्र का अपवाद है। **गति** अर्थ वाले धातुओं और **हिंसा करना** अर्थ वाले धातुओं से **कर्मव्यतिहार** अर्थात् एक के करने योग्य को दूसरा करे तो भी **आत्मनेपद** नहीं होगा।

व्यतिगच्छन्ति। एक दूसरे की ओर जाते हैं। यहाँ पर कर्मव्यतिहार है और **गत्यर्थक** धातु है **गम्**। **कर्तरि कर्मव्यतिहारे** से **आत्मनेपद** प्राप्त था, उसका **न गतिहिंसार्थेभ्यः** से निषेध हुआ तो **परस्मैपद** ही हुआ- **व्यतिगच्छन्ति**।

व्यतिघ्नन्ति। एक दूसरे की हिंसा करते हैं। यहाँ पर कर्मव्यतिहार है और **हिंसा** अर्थ वाला धातु है **हन्**। **कर्तरि कर्मव्यतिहारे** से **आत्मनेपद** प्राप्त था, उसका **न गतिहिंसार्थेभ्यः** से निषेध हुआ तो **परस्मैपद** ही हुआ- **व्यतिघ्नन्ति**। इसी तरह **व्यतिसर्पन्ति**, **व्यतिहिंसन्ति**, **व्यतिधावन्ति** आदि में **कर्मव्यतिहार** होते हुए **गत्यर्थक** और **हिंसार्थक** धातुओं के प्रयोग में आत्मनेपद का निषेध हुआ।

७३३- नेर्विशः। नेः पञ्चम्यन्तं, विशः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

नि उपसर्ग पूर्वक विश् धातु से आत्मनेपद होता है।

केवल एक ही **विश्** धातु जो **नि** उपसर्ग से परे हो तभी यह सूत्र लगता है।

निविशते। विश् धातु तुदादिगण में **परस्मैपदी** है किन्तु **नि** उपसर्ग के योग में **नेर्विशः** से **आत्मनेपद** का विधान हुआ- **निविशते**।

७३४- परिव्यवेभ्यः क्रियः। परिश्च विश्च अवश्च तेपामितरेतरद्वन्द्वः परिव्यवास्तेभ्यः।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७३५. विपराभ्यां जेः १।३।१९॥

विजयते। पराजयते।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७३६. समवप्रविभ्यः स्थः १।३।२२॥

संतिष्ठते। अवतिष्ठते। प्रतिष्ठते। वितिष्ठते।

....

परिव्यवेभ्यः पञ्चम्यन्तं, क्रियः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

परि, वि और अव उपसर्गों से परे क्री धातु से आत्मनेपद होता है।

क्र्यादिगण का **डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये** धातु है। वहाँ पर **ञित्** होने के कारण **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से **उभयपदी** बना हुआ था किन्तु उक्त उपसर्गों के योग में केवल **आत्मनेपदी** ही होता है, परस्मैपदी अथवा उभयपदी नहीं होता।

परिक्रीणीते। निश्चित समय के लिए खरीदता है। **परि पूर्वक क्री** धातु से उभयपद प्राप्त था किन्तु **परिव्यवेभ्यः क्रियः** से केवल **आत्मनेपद** का ही विधान हुआ- **परिक्रीणीते**।

विक्रीणीते। बेचता है। **वि पूर्वक क्री** धातु से उभयपद प्राप्त था किन्तु **परिव्यवेभ्यः क्रियः** से केवल **आत्मनेपद** का ही विधान हुआ- **विक्रीणीते**।

अवक्रीणीते। खरीदता है। **अव पूर्वक क्री** धातु से उभयपद प्राप्त था किन्तु **परिव्यवेभ्यः क्रियः** से केवल **आत्मनेपद** का ही विधान हुआ- **अवक्रीणीते**।

७३५- विपराभ्यां जेः। विश्च पराश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो विपरौ, ताभ्याम्। विपराभ्यां पञ्चम्यन्तं, जेः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

वि और परा उपसर्गों से परे जि धातु से आत्मनेपद होता है।

धातुपाठ के अनुसार **जि** धातु से आत्मनेपद के निमित्तों से हीन होने के कारण **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से परस्मैपद होता है किन्तु **वि** और **परा** उपसर्ग के परे होने पर इस सूत्र से आत्मनेपद का विधान किया गया।

विजयते। जीतता है। **पराजयते**। पराजित होता है, घबराता है।

वि पूर्वक जि धातु के रूप- विजयते, विजयेते, विजयन्ते। विजिग्ये, विजिग्याते, विजिग्यिरे। विजेता, विजेतासे। विजेष्यते। विजयताम्, विजयेताम्, विजयन्ताम्, विजयस्व। व्यजयत। विजयेत। विजेषीष्ट। व्यजेष्ट, व्यजेषाताम्, व्यजेषत। व्यजेष्यत।

परा पूर्वक जि धातु के रूप- पराजयते। पराजिग्ये। पराजेता, पराजेतासे। पराजेष्यते। पराजयताम्। पराजयत। पराजयेत। पराजेषीष्ट। पराजेष्ट, पराजेषाताम्, पराजेषत। पराजेष्यत।

७३६- समवप्रविभ्यः स्थः। सम् च, अवश्च प्रश्च विश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः समवप्रवयस्तेभ्यः। समवप्रविभ्यः पञ्चम्यन्तं, स्थः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७३७. अपह्नवे ज्ञः १।३।४४॥

शतमपजानीते। अपलपतीत्यर्थः।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७३८. अकर्मकाच्च १।३।४५॥

सर्पिषो जानीते। सर्पिषोपायेन प्रवर्तत इत्यर्थः।

....

सम्, अव, प्र और वि उपसर्गों से परे स्था धातु से आत्मनेपद होता है।

भ्वादिगण में **ष्ठा गतिनिवृत्तौ** धातु पठित है। **धात्वादेः षः सः** से **षकार** के स्थान पर **सकार** आदेश होने के बाद **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के नियम से **ठकार** भी **थकार** हो गया जिससे **स्था** बन गया और आत्मनेपद के निमित्तों से हीन होने के कारण उससे परस्मैपद होकर **तिष्ठति** आदि रूप बन गये थे किन्तु **सम्, अव, प्र और वि** इन उपसर्गों से परे इस सूत्र से **आत्मनेपद** का विधान किया गया।

सन्तिष्ठते। रहता है, निवास करता है, ठहरता है। **सम्** पूर्वक **स्था** धातु से **समवप्रविभ्यः स्थः** से आत्मनेपद का विधान होने पर **सन्तिष्ठते** बना। इसी तरह **अवतिष्ठते**। रूकता है, प्रतीक्षा करता है। यहाँ पर **अव** उपसर्ग पूर्वक **स्था** धातु है। **प्रतिष्ठते**। प्रस्थान करता है, रवाना होता है, चल पड़ता है। यहाँ पर **प्र** उपसर्ग पूर्वक **स्था** धातु है। **वितिष्ठते**। स्थिर होता है। यहाँ पर **वि** उपसर्ग है। इन सभी प्रयोगों में **समवप्रविभ्यः स्थः** से **आत्मनेपद** का प्रयोग किया गया।

७३७- **अपह्नवे ज्ञः**। अपह्नवे सप्तम्यन्तं, ज्ञः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

छिपाना, इनकार करना अर्थ हो तो ज्ञा धातु से आत्मनेपद ही होता है।

ज्ञा धातु **क्र्यादिगण** में **परस्मैपदी** है, जिसके **जानाति** आदि रूप बनते हैं किन्तु यदि इस धातु से **छिपाना** आदि अर्थ निकले तो उससे **आत्मनेपद** ही होता है, ऐसा इस सूत्र से कहा गया है। **अप** उपसर्ग के लगने से इस धातु का **छिपाना** आदि अर्थ हो जाता है।

शतमपजानीते। सौ को छिपाता है या इनकार करता है। यहाँ पर **अप** उपसर्ग पूर्वक **ज्ञा** धातु है। **अपह्नवे ज्ञः** से आत्मनेपद का विधान हुआ, जिससे **अपजानीते** बना।

७३८- **अकर्मकाच्च**। अकर्मकात् पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **अपह्नवे ज्ञः** से **ज्ञः** और **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

अकर्मक ज्ञा धातु से आत्मनेपद होता है।

धातूनामनेकार्थाः अर्थात् धातु के अनेक अर्थ होते हैं। धातुपाठ में जो अर्थ निर्देश किया गया है, वह मुख्य अर्थ है। कभी-कभी धातु मुख्य अर्थ को छोड़कर अन्य अप्रधान अर्थों में भी प्रयुक्त हुआ करती है। जैसे कि **ज्ञा** धातु का **जानना** यह मुख्य अर्थ है, जिसके **जानाति** आदि रूप बनते हैं किन्तु कभी-कभी **प्रवृत्त होना** भी अर्थ बनता है। **जानना** अर्थ में तो **सकर्मक** है, उससे **परस्मैपद** ही होता है किन्तु **प्रवृत्त होना** अर्थ में

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७३९. उदश्चरः सकर्मकात् १।३।५३॥

धर्ममुच्चरते। उल्लङ्घ्य गच्छतीत्यर्थः।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७४०. समस्तृतीयायुक्तात् १।३।५४॥

रथेन सञ्चरते।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७४१. दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे १।३।५५॥

सम्पूर्वाद् दाणस्तृतीयान्तेन युक्तादुक्तं स्यात् तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थे।

दास्या संयच्छते कामी।

....

अकर्मक हो जाता है। ऐसी स्थिति में इस सूत्र के द्वारा **आत्मनेपद** का विधान किया जाता है।

सर्पिषो जानीते। घी के कारण भोजन में प्रवृत्त होता है। **सर्पिः** का अर्थ **घी** है। **प्रवृत्त होना** अर्थ में **ज्ञा** धातु अकर्मक बन गया है। ऐसी स्थिति में **अकर्मकाच्च** से आत्मनेपद हुआ- **सर्पिषो जानीते**। यहाँ पर **ज्ञा** धातु के योग में करण में षष्ठी होकर सर्पिषः बना है। '

७३९- **उदश्चरः सकर्मकात्**। उदः, चरः, सकर्मकात्, एतानि सर्वाणि पदानि पञ्चम्यन्तानि, त्रिपदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

उत् उपसर्ग पूर्वक सकर्मक चर धातु से आत्मनेपद होता है।

धर्ममुच्चरते। धर्म का उल्लंघन करके चलता है। **भ्वादिगण में चर गतौ भक्षणे च** धातु पठित है। आत्मनेपद के निमित्तों से हीन होने के कारण उससे परस्मैपद होता है जिससे **चरति** आदि रूप बनते हैं। यहाँ पर **चर्** धातु **उत्** उपसर्ग से युक्त है और सकर्मक भी। अतः **उदश्चरः सकर्मकात्** से आत्मनेपद का विधान किया गया, जिससे **उच्चरते** बना।

७४०- **समस्तृतीयायुक्तात्**। तृतीयया युक्तस्तृतीयायुक्तस्तस्मात्, तत्पुरुषः। समः पञ्चम्यन्तं, तृतीयायुक्तात् पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **उदश्चरः सकर्मकात्** से **चरः** तथा **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

सम् उपसर्ग से परे चर् धातु तृतीयान्त पद से युक्त हो तो उससे आत्मनेपद होता है।

रथेन सञ्चरते। रथ से चलता है। यहाँ पर **चर्** धातु **रथेन** इस तृतीयान्त पद से युक्त है और **सम्** उपसर्ग का योग भी। अतः **समस्तृतीयायुक्तात्** से आत्मनेपद हो गया- **रथेन सञ्चरते**।

७४१- **दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे**। चतुर्थ्या अर्थश्चतुर्थ्यर्थस्तस्मिन् चतुर्थ्यर्थे। दाणः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, सा प्रथमान्तं, चेत् अव्ययपदं, चतुर्थ्यर्थे सप्तम्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **समस्तृतीयायुक्तात्** यह पूरा सूत्र और **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७४२. पूर्ववत्सनः १।३।६२॥

सनः पूर्वो यो धातुस्तेन तुल्यं सन्नन्तादप्यात्मनेपदं स्यात्। एदिधिषते।

किद्वद्भावविधायकमतिदेशसूत्रम्

७४३. हलन्ताच्च १।२।१०॥

इक्समीपाद्धलः परो झलादिः सन् कित्। निविविक्षते।

....

सम् पूर्वक दाण् धातु यदि तृतीयान्त से युक्त हो तो उससे आत्मनेपद होता है परन्तु वह तृतीया यदि चतुर्थी के अर्थ में प्रयुक्त हो तो।

कारक के वार्तिक **अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थ्ये तृतीया** से अशिष्ट व्यवहार-पूर्वक देने में चतुर्थी के अर्थ में तृतीया विभक्ति का विधान होता है। यदि ऐसी ही स्थिति हो और सम् उपसर्ग का योग हो तो **दाण्** धातु से आत्मनेपद का विधान किया जाता है।

दास्या संयच्छते कामी। कामुक व्यक्ति दासी को रति या अन्य वस्तु देता है। यहाँ पर अशिष्ट व्यवहार है और **चतुर्थी** के अर्थ में **तृतीया** का विधान हुआ है। **सम्** उपसर्ग का योग भी है। अतः **दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थ्ये** से **आत्मनेपद** हुआ- **दास्या संयच्छते कामी।**

७४२- **पूर्ववत्सनः**। पूर्वेण तुल्यं पूर्ववत्। पूर्ववत् अव्ययपदं, सनः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

सन् प्रत्यय से पूर्व जिस धातु से आत्मनेपद हो, सन् प्रत्यय होने के बाद भी उससे आत्मनेपद ही होता है।

जैसे **णिजन्त** धातुओं से **णिचश्च** आदि के द्वारा **आत्मनेपद** का विधान होता है उसी तरह **सन्** प्रत्यय के बाद क्या हो? इसका उत्तर यह सूत्र देता है। यदि धातु सन् होने के पहले आत्मनेपदी हो तो सन् होने के बाद भी आत्मनेपदी ही हो अर्थात् यह सिद्ध होता है कि पूर्व अवस्था में यदि धातु परस्मैपदी हो तो सन्नन्त हो जाने के बाद भी परस्मैपदी ही होगा। **सन्** के पूर्व में धातु कैसी है, इसको जानने के लिए किसी अन्य सूत्र की आवश्यकता नहीं है क्योंकि **आत्मनेपद** के निमित्तों से हीन होने पर **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से **परस्मैपद** हो जाता है और आत्मनेपद के निमित्त वाला हो तो उससे आत्मनेपद ही हो जाता है। जैसे कि **एध्** धातु पहले से ही **आत्मनेपदी** है। अतः सन्नन्त होने के बाद भी उससे **आत्मनेपद** ही होता है इसी तरह **भू** धातु पहले से ही **परस्मैपदी** है। अतः सन्नन्त होने के बाद भी **परस्मैपद** ही होता है।

एदिधिषते। आत्मनेपदी **एध्** धातु से सन्नन्त के बाद भी आत्मनेपद होकर **एदिधिषते** बना। इसी तरह परस्मैपदी **भू** धातु से सन्नन्त के बाद भी परस्मैपद होकर **बुभूषति** बनता है।

७४३- **हलन्ताच्च**। हल् लुप्तपञ्चमीकं पदम्, अन्तात् पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **इको झल्** पूरा सूत्र, **रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च** से **सन्** और **असंयोगाल्लिट् कित्** से **कित्** की अनुवृत्ति आती है।

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७४४. गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः १।३।३२।।

गन्धनं सूचनम्- उत्कुरुते। सूचयतीत्यर्थः। अवक्षेपणं भर्त्सनम्। श्येनो वर्तिकामुत्कुरुते। भर्त्सयतीत्यर्थः। हरिमुपकुरुते। सेवत इत्यर्थः। परदारान् प्रकुरुते। तेषु सहसा प्रवर्तते। एधो दकस्योपस्कुरुते- गुणमाधत्ते। कथाः प्रकुरुते, प्रकथयतीत्यर्थः। शतं प्रकुरुते, धमार्थं विनियुङ्क्ते। एषु किम्? घटं करोति। **भुजोऽनवने।** ओदनं भुङ्क्ते। अनवने किम्? महीं भुनक्ति।

इत्यात्मनेपदप्रक्रिया।।२८।।

....

इक् के समीप विद्यमान हल् से परे झलादि सन् को किद्वद्भाव होता है।

सन् में कित्त्व विद्यमान नहीं रहता क्योंकि ककार ही नहीं है, कित् बनने का प्रश्न ही नहीं है किन्तु उसे कित् बनाकर उसे कित् मानकर के **क्ङिति च** से लघूपधगुण का निषेध होना अपेक्षित है। अतः आचार्य ने **हलन्ताच्च** इस अतिदेश सूत्र का अवतरण किया है।

निविविक्षते। नि पूर्वक विश् धातु से आत्मनेपद का विधान **नेर्विशः** से पहले ही हो चुका है। उस धातु से सन् प्रत्यय करने के बाद भी **पूर्ववत्सनः** से आत्मनेपद ही होगा। **नि+विश्** से **सन्** होने पर विश् के अनुदात्त होने से **एकाच उपदेशेऽदात्तात्** से इट् का निषेध हुआ है। सन् को आर्धधातुक मानकर **विश्** को उपधागुण प्राप्त होता है किन्तु **हलन्ताच्च** से सन् को किद्वद्भाव कर दिये जाने के कारण **क्ङिति च** से गुण का निषेध हो जाता है। इसके बाद **सन्यङोः** से धातु को द्वित्व, हलादिशेष करके **निविविश्+स** बना है। **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से शकार को षत्व करके **निविविष्+स** बना। **षढोः कः सि** से षकार के स्थान पर **ककार** आदेश करके ककार से परे सन् के सकार को षत्व करने पर **क्** और **ष्** के संयोग में **क्ष्** बना तो **निविविक्ष** बना। इससे **आत्मनेपद** का विधान होकर **निविविक्षते** बनता है।

७४४- गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः। गन्धनञ्च, अवक्षेपणञ्च, सेवनञ्च, साहसिक्यञ्च, प्रतियत्नश्च, प्रकथनञ्च, उपयोगश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो गन्धनावक्षेपणसेवन-साहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगास्तेषु। गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु सप्तम्यन्तं, कृञः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

गन्धन, अवक्षेपण, सेवन, साहसिक्य, प्रतियत्न, प्रकथन और उपयोग अर्थों में विद्यमान कृ धातु से आत्मनेपद होता है।

यह सूत्र कहता है कि **कृ** धातु से किसी उपसर्ग के लगने से या वैसे भी इन अर्थों की प्रतीति होती है तो उससे आत्मनेपद ही हो, न कि परस्मैपद। प्रत्येक अर्थ का उदाहरण नीचे दिया जा रहा है।

गन्धनं सूचनम्- गन्धन का अर्थ है- सूचित करना, दूसरे के दोष को प्रकट करना, चुगली करना आदि।

उत्कुरुते। सूचित करता है, चुगली करता है, दोष प्रकट करता है। उत् उपसर्ग पूर्वक **कृ** धातु से ऐसा अर्थ बनता है। अत: **गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्न-प्रकथनोपयोगेषु कृञः** से आत्मनेपद होकर **उत्कुरुते** बना।

अवक्षेपणं भर्त्सनम्। अवक्षेपण का अर्थ **भर्त्सना करना, निन्दा करना, तिरस्कार करना** आदि अर्थ है। **श्येनो वर्तिकामुत्कुरुते**। बाज बटेर का तिरस्कार करता है। उत् उपसर्ग पूर्वक **कृ** धातु से ऐसा अर्थ भी बनता है। अत: **गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्य-प्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः** से आत्मनेपद होकर **उत्कुरुते** बना।

सेवनम्। सेवा करना। **हरिमुपकुरुते**। हरि की सेवा करता है। **उप** उपसर्ग पूर्वक **कृ** धातु से ऐसा अर्थ बनता है। अत: आत्मनेपद होकर **उपकुरुते** बना।

साहसिक्यम्। बलपूर्वक विना विचारे किये जाने वाले निन्दित कर्म। **परदारान् प्रकुरुते**। पराई स्त्रियों में बलात् प्रवृत्त होता है। **प्र** उपसर्ग पूर्वक **कृ** धातु से ऐसा अर्थ बनता है। अत: आत्मनेपद होकर **प्रकुरुते** बना।

प्रतियत्नः। गुणाधान, किसी वस्तु में नये गुण का आधान करना। **एधो दकस्योपस्कुरुते**। लकड़ी पानी को गरम या गुणयुक्त करती है। **उप** उपसर्ग पूर्वक **कृ** धातु से ऐसा अर्थ बनता है। अत: आत्मनेपद और **उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च** से सुट् का आगम होकर **उपस्कुरुते** बना।

प्रकथनम्। अच्छी तरह से कहना। **कथाः प्रकुरुते**। कथाओं को भलीभाँति कहता है। **प्र** उपसर्ग पूर्वक **कृ** धातु से ऐसा अर्थ बनता है। अत: आत्मनेपद होकर **प्रकुरुते** बना।

उपयोगः। उपयोग करना, लगाना। **शतं प्रकुरुते**। सौ रूपये का उपयोग करता है। **प्र** उपसर्ग पूर्वक **कृ** धातु से ऐसा अर्थ भी बनता है। अत: आत्मनेपद होकर **प्रकुरुते** बना।

एषु किम्? घटं करोति। यदि **गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्न-प्रकथनोपयोगेषु कृञः** में इन अर्थों में ही आत्मनेपद होता है, ऐसा न कहते तो **घटं करोति** में आत्मनेपद भी हो जाता, जिससे अनिष्ट रूप की सिद्धि होती।

भुजोऽनवने। यह सूत्र **रुधादिगण** में आ चुका है। **पालन से भिन्न अर्थ में भुज् धातु से आत्मनेपद होता है**। इस धातु के **भक्षण** और **पालन करना** दो अर्थ हैं। **भक्षण करना** अर्थ में इस सूत्र से आत्मनेपद होकर **ओदनं भुङ्क्ते** और **पालन करना** अर्थ में **परस्मैपद** होकर **महीं भुनक्ति** बनता है। यदि **अनवने** न कहते तो **महीं भुनक्ति** में भी **आत्मनेपद** होने लगता।

कोई धातु किसी उपसर्ग के लगने से परस्मैपदी से आत्मनेपदी और आत्मनेपदी से परस्मैपदी हो जाता है। किसी शब्द-विशेष के योग में यह व्यवस्था बदल जाती है। इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या की आत्मनेपद-प्रक्रिया पूरी हुई।

अथ परस्मैपदप्रक्रिया

परस्मैपदविधायकं सूत्रम्

७४५. अनुपराभ्यां कृञः १।३।७९।।

कर्तृगे च फले गन्धनादौ च परस्मैपदं स्यात्। अनुकरोति। पराकरोति।

....

श्रीधरमुखोल्ल्लासिनी

अब **परस्मैपदप्रक्रिया** का आरम्भ होता है। धातुप्रकरण के आरम्भ में कहा जा चुका है कि धातु से विहित लकारों के स्थान पर **परस्मैपद** और **आत्मनेपद** दो तरह के तिङ् प्रत्यय आदेश के रूप में होते हैं। किस तरह के धातुओं से **परस्मैपद** और किस तरह के धातुओं से **आत्मनेपद** हो, इसका सामान्य कथन प्रकरण के आदि में ही हो चुका है। सामान्यतया **अनुदात्तेत्** और **ङित्** धातुओं से **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपद** और **स्वरितेत्** और **ञित्** धातुओं से **कर्तृगामी क्रियाफल** होने पर **आत्मनेपद** अन्यथा परस्मैपद का विधान हो चुका है। इस प्रकरण से पूर्व के प्रकरण में **आत्मनेपद** होने में जो विशेष निमित्त होते हैं, उनका भी कथन किया। भ्वादि के प्रारम्भ में जो धातु **आत्मनेपद** के लिए निमित्त नहीं बनते, ऐसी धातुओं से **परस्मैपद** का विधान बताया जा चुका है। अब जिस धातु से सामान्यतया आत्मनेपद या उभयपद प्राप्त है, ऐसे कतिपय धातुओं से केवल **परस्मैपद** का विधान इस प्रकरण में होता है। यद्यपि **अष्टाध्यायी** के सूत्रानुसार **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में इसके लिए अनेक सूत्र बतलाये गये हैं किन्तु **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में केवल छः सूत्रों को दिखाया गया है।

७४५- **अनुपराभ्यां** कृञः। अनुश्च पराश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः अनुपरौ, ताभ्याम्। अनुपराभ्यां पञ्चम्यन्तं, कृञः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से **कर्तरि** और **परस्मैपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

क्रियाफल के कर्तृगामी होने पर और गन्धन आदि अर्थ होने पर अनु अथवा परा उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से परस्मैपद ही होता है।

कृ धातु के **ञित्** होने के कारण **स्वरितञित कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** से **आत्मनेपद** और **परस्मैपद** दोनों प्राप्त थे तो इस सूत्र से पुनः परस्मैपद का विधान क्यों किया जा रहा है? इसका समाधान यह है कि **कृ** धातु से कर्तृगामी क्रियाफल न होने पर परस्मैपद प्राप्त था। क्रियाफल के कर्तृगामी होने पर तो आत्मनेपद प्राप्त था। ऐसी स्थिति में **अनु** पूर्वक **कृ** और **परा** पूर्वक **कृ** से परस्मैपद ही हो, इसके इस सूत्र का आरम्भ किया गया है। इसलिए क्रियाफल के कर्तृगामी होने या न होने दोनों अवस्थाओं में **अनु** और **परा** उपसर्ग से परे **कृ** धातु से परस्मैपद ही होता है, न कि आत्मनेपद। गन्धन आदि अर्थों में

परस्मैपदविधायकं सूत्रम्

७४६. अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः १।३।८०॥

क्षिप प्रेरणे। स्वरितेत्। अभिक्षिपति।

परस्मैपदविधायकं सूत्रम्

७४७. प्राद्वहः १।३।८१॥

प्रवहति।

परस्मैपदविधायकं सूत्रम्

७४८. परेर्मृषः १।३।८२॥

परिमृष्यति।

....

गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः से आत्मनेपद प्राप्त था, वहाँ पर भी **कृ** धातु के **अनु** और **परा** उपसर्ग पूर्वक होने पर तो परस्मैपद ही हो, इसके लिए भी इस सूत्र का आरम्भ किया गया है।

अनुकरोति। अनुकरण करता है, नकल करता है। **पराकरोति**। हटाता है, दूर करता है। यहाँ पर कर्तृगामी क्रियाफल में आत्मनेपद प्राप्त था, उसे बाधकर के **अनुपराभ्यां कृञः** से **परस्मैपद** हुआ- **अनुकरोति, पराकरोति**।

७४६- अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः। अभिश्च प्रतिश्च अतिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्व अभिप्रत्यतयस्तेभ्यः। अभिप्रत्यतिभ्यः पञ्चम्यन्तं, क्षिपः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से **कर्तरि** और **परस्मैपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

अभि, प्रति और अति उपसर्गों से परे क्षिप् धातु से कर्ता अर्थ में परस्मैपद होता है।

क्षिप प्रेरणे यह धातु स्वरितेत् है और तुदादिगण में पठित है, जिससे कर्तृगामी क्रियाफल में आत्मनेपद की प्राप्ति थी, उसे बाधने के लिए इस सूत्र का अवतरण है। अन्यत्र उभयपद हो किन्तु **अभि, प्रति, अति** उपसर्ग से परे हो तो उससे केवल **परस्मैपद** ही हो।

अभिक्षिपति। अभिभूत करता है, दबाता है। **स्वरितेत्** होने के कारण प्राप्त उभयपद को बाधकर **अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः** से केवल **परस्मैपद** का विधान किया गया- **अभिक्षिपति**। इसी तरह **प्रतिक्षिपति, अतिक्षिपति** भी बनेंगे।

७४७- प्राद्वहः। प्रात् पञ्चम्यन्तं, वहः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से **कर्तरि** और **परस्मैपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

प्र उपसर्ग से परे वह् धातु से परस्मैपद होता है।

प्रवहति। भ्वादि गण में **वह प्रापणे** धातु उभयपदी है। प्र उपसर्ग से परे होने पर कर्तृगामी क्रियाफल में भी परस्मैपद के विधान के लिए **प्राद्वहः** आया। इससे परस्मैपद होने पर **प्रवहति** सिद्ध हुआ।

७४८- परेर्मृषः। परेः पञ्चम्यन्तं, मृषः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से **कर्तरि** और **परस्मैपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

परि उपसर्ग से परे मृष् धातु से परस्मैपद होता है।

परस्मैपदविधायकं सूत्रम्

७४९. व्याङ्परिभ्यो रमः १।३।८३॥

रमु क्रीडायाम्। विरमति।

परस्मैपदविधायकं सूत्रम्

७५०. उपाच्च १।३।८४॥

यज्ञदत्तमुपरमति। उपरमयतीत्यर्थः। अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम्।

इति परस्मैपदप्रक्रिया॥२९॥

परिमृष्यति। दिवादि में **मृष तितिक्षायाम्** धातु पठित है। स्वरितेत् होने के कारण कर्त्रभिप्राय क्रियाफल में आत्मनेपद की प्राप्ति थी। उसे बाधकर **परेर्मृषः** से **परस्मैपद** हो गया- **परिमृष्यति।**

७४९- व्याङ्परिभ्यो रमः। विश्च आङ् च परिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो व्याङ्परयस्तेभ्यः। व्याङ्परिभ्यः पञ्चम्यन्तं, रमः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से **कर्तरि** और **परस्मैपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

वि, आङ् और परि उपसर्ग से परे रम् धातु से परस्मैपद होता है।

विरमति। भ्वादिगण में **रमु क्रीडायाम्** धातु अनुदात्तेत् है। अतः केवल **रम्** धातु आत्मनेपदी है किन्तु **वि, आङ्, परि** उपसर्ग के योग में यह धातु **व्याङ्परिभ्यो रमः** से परस्मैपदी हो जाता है, जिससे **विरमति**(रूकता है) **आरमति**(चारों ओर रमता है) और **परिरमति**(प्रसन्न होता है) आदि रूप बनते हैं।

केवल **रम्** धातु के अनुदात्तेत् और अनिट् होने के कारण इस तरह के रूप बनते थे- **लट्**- रमते, रमेते, रमन्ते आदि। **लिट्**- रेमे, रेमाते, रेमिरे, रेमिषे आदि। **लुट्**- रन्ता, रन्तारौ, रन्तारः, रन्तासे आदि। **लृट्**- रंस्यते, रंस्येते, रंस्यन्ते आदि। **लोट्**- रमताम्, रमेताम्, रमन्ताम्, रमस्व आदि। **लङ्**- अरमत, अरमेताम्, अरमन्त आदि। **विधिलिङ्**- रमेत, रमेयाताम्, रमेरन् आदि। **आशीर्लिङ्**- रंसीष्ट, रंसीयास्ताम्, रंसीरन् आदि। **लुङ्**- अरंस्त, अरंसाताम्, अरंसत आदि। **लृङ्**- अरंस्यत, अरंस्येताम्, अरंस्यन्त आदि। अब **वि** उपसर्ग के लगने से यह धातु **परस्मैपदी हो जाता है** जिसके रूप इस तरह से होंगे- **लट्**- विरमति, विरमतः, विरमन्ति आदि। **लिट्**- विरराम, विरेमतुः, विरेमुः, विरेमिथ-विररन्थ आदि। **लुट्**- विरन्ता, विरन्तारौ, विरन्तारः, विरन्तासि आदि। **लृट्**- विरंस्यति, विरंस्यतः, विरंस्यन्ति आदि। **लोट्**- विरमतु-विरमतात्, विरमताम्, विरमन्तु, विरम आदि। **लङ्**- व्यरमत्, व्यरमताम्, व्यरमन् आदि। **विधिलिङ्**- विरमेत्, विरमेताम्, विरमेयुः आदि। **आशीर्लिङ्**- विरम्यात्, विरम्यास्ताम्, विरम्यासुः आदि। **लुङ्**- व्यरंसीत्, व्यरंसिष्टाम्, व्यरंसिषुः आदि। **लृङ्**- व्यरंस्यत्, व्यरंस्यताम्, व्यरंस्यन् आदि। इसी तरह- आरमति, आरराम, आरन्ता, आरंस्यति, आरमतु, आरमत्, आरमेत्, आरम्यात्, आरंसीत्, आरंस्यत् और परिरमति, परिरराम, परिरन्ता, परिरंस्यति, परिरमतु, पर्यरमत्, परिरमेत्, परिरम्यात्, पर्यरंसीत्, पर्यरंस्यत् आदि रूप बनते हैं।

७५०-उपाच्च। उपात् पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **व्याङ्परिभ्यो रमः** से **रमः** तथा **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** से **कर्तरि** और **परस्मैपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

उप उपसर्ग से परे रम् धातु से भी परस्मैपद होता है।

यज्ञदत्तमुपरमति। यज्ञदत्त को हटाता है। यहाँ पर **रम्** धातु अन्तर्भावितण्यन्तार्थ है। अन्तर्भावितो ण्यन्तस्य अर्थो येन सः। जिसके अन्दर ण्यन्त का अर्थ रखा हुआ है वह **धातु अन्तर्भावितण्यन्तार्थ** कहलाती है अर्थात् जिस धातु में णिच् प्रत्यय का प्रेरणा आदि अर्थ भी विद्यमान रहता है, ऐसी धातुओं को अन्तर्भावितण्यन्तार्थ कहा जाता है। जैसे यहाँ **रम्** धातु का केवल **रमण करना** अर्थ न होकर **रमण कराने वाला** अर्थ भी है। इसलिए यहाँ पर प्रयुक्त **उपरमति** का **उपरमयति** ऐसा अर्थ किया जाता है। इसलिए उप पूर्वक **रम्** धातु से **अन्तर्भावितण्यन्तार्थ** अर्थात् **णिजन्तप्रक्रिया** में णिच् करने से जो प्रेरणा आदि अर्थ निकलता है, वह अर्थ णिच् के किये विना भी निकलने पर **उपाच्च** से **परस्मैपद** का विधान किया गया जिससे **उपरमति** सिद्ध हुआ।

णिच् प्रत्यय न करने पर भी धातुओं के अनेकार्थक होने के कारण कहीं कहीं धात्वर्थ के अन्दर णिच् का अर्थ भी सम्मिलित रहता है। इसी का नाम **अन्तर्भावितण्यर्थ** है।

परीक्षा

आत्मनेपद और **परस्मैपद प्रक्रियाओं** का सूत्र, उदाहरण देकर एक परिचय प्रस्तुत करें।

**श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या की
परस्मैपद-प्रक्रिया पूरी हुई।**

अथ भावकर्मप्रक्रिया

आत्मनेपदविधायकं विधिसूत्रम्

७५१. भावकर्मणोः १।३।१३॥

लस्यात्मनेपदम्।

यक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७५२. सार्वधातुके यक् ३।१।६७॥

धातोर्यक्, भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके।

भावः क्रिया। सा च भावार्थकलकारेणानूद्यते।

युष्मदस्मद्भ्यां सामानाधिकरण्याभावात् प्रथमः पुरुषः। तिङ्वाच्यक्रियाया अद्रव्यरूपत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादि किन्त्वेकवचनमेवोत्सर्गतः।

त्वया मया अन्यैश्च भूयते। बभूवे।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **भावकर्मप्रक्रिया** का आरम्भ करते हैं। **लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः** से **कर्ता**, **कर्म** और **भाव** अर्थ में लकारों का विधान हुआ है। स्मरण रहे कि **सकर्मक** धातुओं से **कर्ता** और **कर्म** में तथा **अकर्मक धातुओं** से **कर्म** और **भाव** अर्थ में लकार होते हैं। वाक्यों को इसी के आधार पर तीन भागों में बाँटा गया है- **कर्तृवाच्य**, **कर्मवाच्य** और **भाववाच्य**। इसके पहले सभी प्रकरणों में धातुओं कर्ता अर्थ में लकार हुए थे। अब **भाव** और **कर्म** अर्थों में लकार किये जा रहे हैं। इस स्थिति में जो रूपों में अन्तर आता है, उनके कथन के लिए इस प्रकरण का आरम्भ किया गया है।

यह प्रकरण अनुवाद के लिए अत्यन्त ही उपयोगी है। कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य बनाना इस प्रकरण से समझें।

भाव और कर्म में लकार के स्थान पर आत्मनेपद का प्रयोग होता है। कर्म में लकार करने पर कर्ता तृतीयान्त और कर्म प्रथमान्त हो जाता है। भाववाच्य में कर्ता तृतीयान्त होता है और अकर्मक होने से कर्म होता ही नहीं। इसके लिए कारक प्रकरण को समझना चाहिए।

७५१- भावकर्मणोः। भावश्च कर्म च तयोरितरेतरद्वन्द्वो भावकर्मणी, तयोर्भावकर्मणोः। भावकर्मणोः सप्तम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** से **आत्मनेपदम्** की अनुवृत्ति आती है।

....

भाव और कर्म अर्थ में हुए लकार के स्थान पर आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं।

इस तरह **भाव** और **कर्म** में केवल **आत्मनेपद** होता है, परस्मैपद नहीं।

७५२- सार्वधातुके यक्। सार्वधातुके सप्तम्यन्तं, यक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **चिण् भावकर्मणोः** से **भावकर्मणोः** तथा **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से **धातोः** की अनुवृत्ति आती है।

भाव या कर्मवाचक सार्वधातुक के परे होने पर धातु से यक् प्रत्यय होता है।

ककार इत्संज्ञक है, य शेष रहता है। कित् के कई फल हैं- गुणवृद्धि का निषेध, सम्प्रसारण आदि।

मूल में- **भावः क्रिया। सा च ....किन्त्वेकवचनमेवोत्सर्गतः। त्वया मया अन्यैश्च भूयते। बभूवे।** भाव क्रिया को कहते हैं। उस क्रियया का भावार्थक लकार से अनुवाद किया जाता है। युष्मद् और अस्मद् के साथ सामानाधिकरण्य न होने से केवल प्रथम पुरुष ही आता है। तिङ्वाच्य क्रिया के द्रव्यरूप न होने से द्वित्व आदि की प्रतीति नहीं होती, अतः द्विवचन आदि नहीं होगं किन्तु उत्सर्गतः एकवचन ही होगा।

भाव-शब्द का अर्थ क्रिया है। इस भाववाच्य में कर्म नहीं होता। यदि कर्म होगा तो **कर्मणि प्रयोग** माना जायेगा। भाव अर्थात् क्रिया अद्रव्यरूप होता है। अतः इसमें द्वित्व आदि संख्या की प्रतीति नहीं होती। अतः उत्सर्गतः एकवचन मात्र होता है, क्योंकि संख्या की विवक्षा न होने पर भी पद बनाने के लिए **सुप्-तिङ्** कोई प्रत्यय का होना आवश्यक होता है। कारण यह है कि **अपदं न प्रयुञ्जीत।** अपद का प्रयोग नहीं करना चाहिए, अर्थात् विना पद बनाये किसी भी शब्द का लोक में प्रयोग नहीं किया जा सकता, ऐसा नियम है।

भाववाच्य में लकार का युष्मद्, अस्मद् या अन्य किसी के साथ भी सामानाधिकरण्य नहीं होता। अतः मध्यमपुरुष और उत्तमपुरुष नहीं होते, सामान्यतः केवल प्रथमपुरुष होता है। स्मरण रहे कि युष्मद् के साथ सामानाधिकरण होने पर **युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यम** से मध्यमपुरुष और अस्मद् के साथ सामानाधिकरण्य होने पर **अस्मद्युत्तमः** से उत्तमपुरुष होता है एवं अन्य किसी के साथ सामानाधिकरण्य होने पर प्रथमपुरुष होता है परन्तु जब किसी के साथ भी सामान्याधिकरण्य न हो तो सामान्यतः केवल प्रथमपुरुष का एकवचन होता है। भाववाच्य में भाव अर्थ में प्रत्यय होने से अर्थात् कर्ता या कर्म अर्थ में प्रत्यय न होने से युष्मद्, अस्मद् या अन्य किसी के साथ सामान्याधिकरण नहीं होता। अतः प्रथमपुरुष और एकवचन मात्र होता है, जिससे लट् में भू का केवल **भूयते** मात्र रूप बनता है। **त्वया मया अन्यैश्च भूयते।** इसी प्रकार सभी लकारों में प्रथमपुरुष का एकवचन मात्र बनेगा। कर्मवाच्य में तो कर्म के अनुसार पुरुष और वचन होते हैं अर्थात् तीनों पुरुष और तीनों वचन होते हैं। स्मरण रहे कि इस भावकर्मवाच्य में कर्तृ+अर्थ के न होने के कारण **कर्तरि शप्** आदि से शप् आदि विकरण नहीं होते किन्तु भाव या कर्म अर्थ को बताने वाले सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहते किसी भी गण की किसी भी धातु से यक् विकरण ही होता है। इसीलिए **भूयते** की तरह अदादिगणीय **अद्** धातु का **अद्यते**, जुहोत्यादिगणीय **हु** धातु के **हूयते** आदि रूप बनते हैं।

भूयते। भू-धातु से भाव अर्थ में वर्तमान में लट् लकार, उसके स्थान पर **भावकर्मणोः** से आत्मनेपद के विधान होने से **भू+त** बना। उसकी सार्वधातुकसंज्ञा होने के

चिण्वद्भावादिविधायकमतिदेशसूत्रम्

७५३. स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च ६।४।६२।।

उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनाञ्च चिणीवाङ्गकार्यं वा स्यात् स्यादिषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः स्यादीनामिडागमश्च। चिण्वद्भावपक्षेऽयमिट्। चिण्वद्भावाद् वृद्धिः। भाविता, भविता। भाविष्यते। भविष्यते। भूयताम्। अभूयत। भाविषीष्ट, भविषीष्ट।।

....

बाद **सार्वधातुके यक्** से यक् हुआ। ककार की इत्संज्ञा, भू+य+त बना। य के कित् होने के कारण **क्ङिति च** से गुण का निषेध हुआ। त को **टित आत्मनेपदानां टेरे** से एत्व होकर **भूयते** सिद्ध हुआ। **भाव में- त्वया भूयते**(तुम होते हो, तुम्हारे द्वारा हुवा जाता है)। **मया भूयते**(मैं होता हूँ, मेरे द्वारा हुवा जाता है)। **अन्यैर्भूयते**(अन्य होते हैं, अन्यों के द्वारा हुवा जाता है)। **तेन भूयते, ताभ्यां भूयते, तैर्भूयते, त्वया भूयते, युवाभ्यां भूयते, युष्माभिर्भूयते, मया भूयते, आवाभ्यां भूवते, अस्माभिर्भूयते।**

लिट् में केवल- **बभूवे।** भू से लिट्, त, एश्, ए, वुक् का आगम, धातु को द्वित्व, हलादिशेष, अभ्यास को ह्रस्व, उकार को अकार आदेश, जश्त्व करके **बभूव्+ए** बना। वर्णसम्मेलन होकर **बभूवे। त्वया मया अन्यैश्च बभूवे।** तुम्हारे मेरे एवं अन्यों से हुआ करता था।

७५३- स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च। स्यश्च सिच्च सीयुट् च, तासिश्च तेषामितरेतयोगद्वन्द्वः स्यसिच्सीयुट्तासयः, तेषु स्यसिच्सीयुट्तासिषु। भावश्च कर्म च, भावकर्मणी, तयोर्भावकर्मणोः। अच्च, हनश्च ग्रहश्च दृश् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः- अज्झनग्रहदृशस्तेषामज्झनग्रहदृशाम्। चिणि इव चिद्वत्। स्यसिच्सीयुट्तासिषु सप्तम्यन्तं, भावकर्मणोः सप्तम्यन्तं, उपदेशे सप्तम्यन्तम्, अज्झनग्रहदृशां षष्ठ्यन्तं, वा अव्ययपदं, चिण्वत् अव्ययपदम्, इट् प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

भाव या कर्म अर्थ गम्यमान होने पर उपदेश अवस्था में अजन्त धातुओं एवं हन्, ग्रह्, और दृश् धातुओं को स्य, सिच्, सीयुट् और तासि के परे रहते विकल्प से चिण्वद्भाव होता है तथा चिण्वत् के पक्ष में स्य आदिओं को इट् का आगम भी होता है।

चिण्वद्भाव का तात्पर्य चिण् प्रत्यय के परे होने पर जो कार्य हो सकते हैं, वे कार्य इन धातुओं में भी हों। चिण् के परे होने पर होने वाले कार्य हैं- **अचो ञ्णिति** और **अत उपधायाः** से होने वाली वृद्धि, **आतो युक् चिण्कृतोः** से युक् का आगम, हो **हन्तेर्ञिन्नेषु** से हन् को कुत्व, **चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम्** से उपधा को वैकल्पिक दीर्घ आदि।

भाविता, भविता। लुट् में भू+तास्+त है। भू अजन्त है। अतः **स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च** से चिण्वद्भाव और **तास्** को इट् का आगम हुआ- **भू+इ+तास्+त** बना। चिण्वद्भाव होने से भू को **अचो ञ्णिति** से औकार वृद्धि हुई, **भौ+इ+तास्+त** बना। आव् आदेश होकर **भावितास्+त** बना। त को **लुटः प्रथमस्य**

चिणादेशविधायकं विधिसूत्रम्

७५४. चिण् भावकर्मणोः ३।१।६६॥

च्लेश्चिण् स्याद् भावकर्मवाचिनि तशब्दे परे।

अभावि। अभाविष्यत, अभविष्यत। अकर्मकोऽप्युपसर्गवशात् सकर्मकः। अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च। अनुभूयेते। अनुभूयन्ते। त्वमनुभूयसे। अहमनुभूये। अन्वभावि। अन्वभाविषाताम्, अन्वभविषाताम्। णिलोपः। भाव्यते। भावयाञ्चक्रे। भावयाम्बभूवे। भावयामासे। **चिण्वदिट्।** आभीयत्वेनासिद्धत्वाण्णिलोपः। भाविता, भावयिता। भाविष्यते, भावयिष्यते। अभाव्यत। भाव्येत। भाविषीष्ट, भावयिषीष्ट। अभावि। अभाविषाताम्। अभावयिषाताम्। बुभूष्यते। बुभूषाञ्चक्रे। बुभूषिता। बुभूषिष्यते। बोभूय्यते। बोभूयते। **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः।** स्तूयते विष्णुः। स्ताविता, स्तोता। स्ताविष्यते, स्तोष्यते। अस्तावी। अस्ताविषाताम्, अस्तोषाताम्। **ऋ गतौ। गुणोऽर्तीति** गुणः। अर्यते। **स्मृ स्मरणे।** स्मर्यते। सस्मरे। उपदेशग्रहणाच्चिण्वदिट्। आरिता, अर्ता। स्मारिता, स्मर्ता। **अनिदितामिति** नलोपः। स्रस्यते। इदितस्तु नन्द्यते। सम्प्रसारणम्- इज्यते।

....

डारौरसः से डा आदेश, डित् होने के कारण तास् में **टिसंज्ञक आस्** का लोप होने पर **भावित्+आ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **भाविता** सिद्ध हुआ। चिण्वद्भाव न होने के पक्ष में **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से इट् होकर **भविता** बनता है। **त्वया मया अन्यैश्च श्वो भाविता भविता वा**= तुम्हारे मेरे या अन्य किसी से कल होगा।

इसी तरह लृट् में **चिण्वद्भाव** पक्ष में **भाविष्यते**, चिण्वद्भावाभाव पक्ष में **भविष्यते** बनते हैं। **त्वया मया अन्यैश्च भाविष्यते भविष्यते वा**= तुम्हारे मेरे या अन्य किसी से होगा।

लोट् में- **भूयताम्। त्वया मया अन्यैश्च भूयताम्**= तुम्हारे मेरे या अन्य किसी से हो।

लङ् में- **अभूयत। त्वया मया अन्यैश्च ह्योऽभूयत**= तुम्हारे मेरे या अन्य किसी से कल हुआ था।

विधिलिङ् में- **भूयेत, त्वया मया अन्यैश्च भूयेत**= तुम्हारे मेरे या अन्य किसी से होना चाहिए।

आशीर्लिङ् में- **चिण्वद्भाव** पक्ष में **भाविषीष्ट** और चिण्वद्भाभावाभाव पक्ष में **भविषीष्ट। त्वया मया अन्यैश्च भाविषीष्ट भविषीष्ट वा**= तुम्हारे मेरे या अन्य किसी से हो। (आशीर्वाद)।

७५४-चिण् भावकर्मणोः। भावश्च कर्म च भावकर्मणी, तयोर्भावकर्मणोः। **चिण् ते पदः** से **ते** की अनुवृत्ति आती है।

भाव और कर्मवाची त-शब्द के परे होने पर च्लि के स्थान पर चिण् आदेश होता है।

चिण् में चकार और णकार की इत्संज्ञा होती है, इ शेष रहता है। णित् वृद्धि के लिए है।

अभावि। लुङ् में **अभू+त** बना है। **च्लि लुङि** से **च्लि** प्रत्यय, उसके स्थान पर **चिण् भावकर्मणोः** से **चिण्** आदेश, अनुबन्धलोप होकर **अभू+इत** बना। णित् होने के कारण **अचो ञ्णिति** से **भू** की वृद्धि होकर आव् आदेश हुआ, **अभाव्+इत** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अभावि+त** बना। **चिणो लुक्** से **त** का लुक् हुआ- **अभावि। त्वया मया अन्यैश्च अभावि**= तुम्हारे मेरे या अन्य किसी से हुआ।

अभाविष्यत। लृङ् में- **स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च** से चिण्वत् और इट् आगम होकर **अभाविष्यत**, न होने के पक्ष में **अभविष्यत। सुवृष्ट्या चेदभाविष्यत (अभविष्यत) सुभिक्षेणाभाविष्यत(अभविष्यत)** सुवृष्टि होगी तो सुभिक्ष होगा।

अकर्मकोऽप्युपसर्गवशात् सकर्मकः। अकर्मक धातु भी उपसर्ग के योग से कभी कभी सकर्मक हो जाता है। जैसे कि भू धातु अकर्मक है, इसके साथ **अनु** इस उपसर्ग के योग से **अनुभव करना है** अर्थ बन जाता है। **देवदत्तः आनन्दम् अनुभवति**=देवदत्त आनन्द का अनुभव करता है। इसके कर्मवाच्य में **देवदत्तेन आनन्दः अनुभूयते** बन जाता है। भाववाच्य में तो केवल प्रथमपुरुष और एकवचन ही होता है किन्तु धातु के सकर्मक बन जाने की स्थिति में जब कर्मवाच्य का प्रयोग हो तो सभी पुरुष और सभी वचन के रूप बनते हैं। जैसे- **अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च। अनुभूयेते। अनुभूयन्ते। (रामेण) त्वमनुभूयसे। (भवता) अहमनुभूये। अन्वभावि। अन्वभाविषाताम्, अन्वभविषाताम्।** इसी तरह-

तेन सुखमनुभूयते= उसके द्वारा सुख अनुभव किया जाता है।

साधकैः सुखमोक्षौ अनुभूयेते= साधकों के द्वारा सुख और मोक्ष अनुभव किये जाते हैं।

तेन शीतवर्षातपाः अनुभूयन्ते= उसके द्वारा शीत, वर्षा और धूप अनुभव किये जाते हैं।

ताभ्यां त्रिविधदुःखानि अनुभूयन्ते= उन दोनों के द्वारा तीन प्रकार के दुःख अनुभव किये जाते हैं।

तैः सच्चिदानन्दा अनुभूयन्ते= उन सबों के द्वारा सत्, चित् और आनन्द अनुभव किये जाते हैं।

त्वया धर्मार्थकाममोक्षा अनुभूयन्ते=तुम्हारे द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अनुभव किये जाते हैं।

युवाभ्यां सुखमनुभूयते=तुम दोनों के द्वारा सुख अनुभव किया जाता है।

युष्माभिः सुखदुःखे अनुभूयेते= तुम दोनों के द्वारा सुख और दुःख अनुभव किये जाते हैं।

मया लक्ष्मीनारायणौ अनुभूयेते= मेरे द्वारा लक्ष्मी और नारायण अनुभव किये जाते हैं।

आवाभ्यां शीतवर्षातपाः अनुभूयन्ते= हम दोनों के द्वारा शीत, वर्षा और धूप अनुभव किये जाते हैं।

अस्माभिर्ब्रह्मानुभूयते= हम लोगों के द्वारा ब्रह्म अनुभव किया जाता है।

रामेण सुखमनुभूयते= राम के द्वारा सुख अनुभव किया जाता है।

रामेण सुखदुःखे अनुभूयेते= राम के द्वारा सुख और दुःख अनुभव किये जाते हैं।

रामेण शीतवर्षातपाः अनुभूयन्ते= राम से शीत, वर्षा और धूप अनुभव किये जाते हैं।

रामेण त्वमनुभूयसे= राम के द्वारा तुम अनुभव किये जाते हो।
रामेण युवामनुभूयेथे= राम के द्वारा तुम दोनों अनुभव किये जाते हो।
रामेण यूयमनुभूयध्वे= राम के द्वारा तुम सब अनुभव किये जाते हो।
रमयाहमनुभूये= रमा के द्वारा मैं अनुभव किया जाता हूँ।
रमयावाममनुभूयावहे= रमा के द्वारा हम दोनों अनुभव किये जाते हैं।
रमया वयमनुभूयामहे= रमा के द्वारा हम सब अनुभव किये जाते हैं।

भाववाच्य और **कर्मवाच्य** के रूपों में कोई भेद नहीं है किन्तु **भाववाच्य** में केवल प्रथमपुरुष और एकवचन होता है तथा **कर्मवाच्य** में सभी पुरुष और सभी वचन होते हैं।

अब भू के कर्मवाच्य के रूपों का आनन्द लेते हैं-

लट्- अनुभूयते, अनुभूयेते, अनुभूयन्ते, अनुभूयसे, अनुभूयेथे, अनुभूयध्वे, अनुभूये, अनुभूयावहे, अनुभूयामहे।

लिट्- अनुबभूवे, अनुबभूवाते, अनुबभूविरे, अनुबभूविषे, अनुबभूवाथे, अनुबभूविढ्वे-अनुबभूविध्वे, अनुबभूवे, अनुबभूविवहे, अनुबभूविमहे।

लुट्- अनुभाविता, अनुभावितारौ, अनुभावितारः, अनुभावितासे, अनुभावितासाथे, अनुभाविताध्वे, अनुभाविताहे, अनुभावितास्वहे, अनुभावितास्महे।
अनुभविता, अनुभवितारौ, अनुभवितारः, अनुभवितासे, अनुभवितासाथे, अनुभविताध्वे, अनुभविताहे, अनुभवितास्वहे, अनुभवितास्महे।

लृट्- अनुभाविष्यते, अनुभाविष्येते, अनुभाविष्यन्ते, अनुभाविष्यसे, अनुभाविष्येथे, अनुभाविष्यध्वे, अनुभाविष्ये, अनुभाविष्यावहे, अनुभाविष्यामहे।
अनुभविष्यते, अनुभविष्येते, अनुभविष्यन्ते, अनुभविष्यसे, अनुभविष्येथे, अनुभविष्यध्वे, अनुभविष्ये, अनुभविष्यावहे, अनुभविष्यामहे।

लोट्- अनुभूयताम्, अनुभूयेताम्, अनुभूयन्ताम्, अनुभूयस्व, अनुभूयेथाम्, अनुभूयध्वम्, अनुभूयै, अनुभूयावहै, अनुभूयामहै।

लङ्- अन्वभूयत, अन्वभूयेताम्, अन्वभूयन्त, अन्वभूयथाः, अन्वभूयेथाम्, अन्वभूयध्वम्, अन्वभूये, अन्वभूयावहि, अन्वभूयामहि।

विधिलिङ्- अनुभूयेत, अनुभूयेयाताम्, अनुभूयेरन्, अनुभूयेथाः, अनुभूयेयाथाम्, अनुभूयेध्वम्, अनुभूयेय, अनुभूयेवहि, अनुभूयेमहि।

आशीर्लिङ्- अनुभाविषीष्ट, अनुभाविषीयास्ताम्, अनुभाविषीरन्,
अनुभाविषीष्ठाः, अनुभाविषीयास्थाम्, अनुभाविषीढ्वम्-अनुभाविषीध्वम्, अनुभाविषीय, अनुभाविषीष्वहि, अनुभाविषीष्महि।
अनुभविषीष्ट, अनुभविषीयास्ताम्, अनुभविषीरन्, अनुभविषीष्ठाः, अनुभविषीयास्थाम्, अनुभविषीढ्वम्-अनुभविषीध्वम्, अनुभविषीय, अनुभविषीष्वहि, अनुभविषीष्महि।

लुङ्- अन्वभावि, अन्वभाविषाताम्, अन्वभाविषत, अन्वभाविष्ठाः, अन्वभाविषाथाम्, अन्वभाविढ्वम्, अन्वभाविध्वम्, अन्वभाविषि, अन्वभाविष्वहि, अन्वभाविष्महि।
अन्वभावि, अन्वभविषाताम्, अन्वभविषत, अन्वभविष्ठाः, अन्वभविषाथाम्, अन्वभविढ्वम्, अन्वभविध्वम्, अन्वभविषि, अन्वभविष्वहि, अन्वभविष्महि।

लृङ्- अन्वभाविष्यत, अन्वभाविष्येताम्, अन्वभाविष्यन्त, अन्वभाविष्यथाः, अन्वभाविष्येथाम्,

अन्वभाविष्यध्वम्, अन्वभाविष्ये, अन्वभाविष्यावहि, अन्वभाविष्यामहि।

अन्वभविष्यत, अन्वभविष्येताम्, अन्वभविष्यन्त, अन्वभविष्यथाः, अन्वभविष्येथाम्, अन्वभविष्यध्वम्, अन्वभविष्ये, अन्वभविष्यावहि, अन्वभविष्यामहि।

यहाँ तक तो सामान्य भू धातु से भावकर्म में होने वाले रूपों का वर्णन किया गया। **हेतुमति च** से णिच् होने पर ण्यन्त भू धातु से, सन्नन्त भू धातु से, यङन्त भू धातु से और यङ्लुगन्त भूधातु से भी भावकर्म में प्रयोग बनते हैं। इसी तरह सभी धातुओं से भावकर्म में रूप बनाये जाते हैं। इस तरह एक धातु से अनन्त रूप बनते हैं तो सभी धातुओं से कितने रूप बन जाते होंगे, यह अनुमान लगाना बहुत ही कठिन है।

कोई भी अकर्मक धातु प्रेरणार्थक णिच् प्रत्यय करने के बाद सकर्मक हो जाता है। जैसे **देवदत्तो भवति** में भू धातु अकर्मक है किन्तु जब प्रेरणार्थक णिच् करके **भावयति** बनाया जाता है तो यह ण्यन्त **भावि** धातु सकर्मक हो जाता है। इसलिए **यज्ञदत्तो देवदत्तं भावयति**=यज्ञदत्त देवदत्त को होवाता है, इस वाक्य में **भावि** धातु का कर्म **देवदत्त** हो गया। अतः ऐसी सभी ण्यन्त धातुओं के कर्मवाच्य में ही रूप बनते हैं। यहाँ पर भी ण्यन्त **भावि** धातु से कर्म में लकार करके सभी पुरुष के सभी वचनों के रूप बनाये जा सकते हैं।

णिलोपः, भाव्यते। भू धातु से **हेतुमति च** से णिच् होने के बाद **भावि** बना है। इसकी धातुसंज्ञा हुई है। उससे सकर्मक होने से कर्मवाच्य में लट् लकार, **भावकर्मणोः** से **त** प्रत्यय करके **सार्वधातुके यक्** से **यक्** करने पर **भावि+य+त** बना। अनिडादि आर्धधातुक के परे होने पर **णेरनिटि** से **णि** का लोप करके **त** को एत्व करने पर **भाव्यते** रूप बनता है। **भाव्यते, भाव्येते, भाव्यन्ते** आदि।

भावयाञ्चक्रे। भावयाम्बभूवे। भावयामासे। लिट् में **भावि** से आम्, गुण अयादेश करके **भावयाम्** बनता है, लिट् का लुक् करके **कृ** का अनुप्रयोग करने पर क्रमशः **भावयाञ्चक्रे, भावयाञ्चक्राते, भावयाञ्चक्रिरे** आदि रूप तथा **भू** का अनुप्रयोग करने पर **भावयाम्बभूवे, भावयाम्बभूवाते, भावयाम्बभूविरे** आदि एवं **अस्** का अनुप्रयोग करने पर **भावयामासे, भावयामासाते, भावयामासिरे** आदि रूप बन जाते हैं।

आभीयत्वेनासिद्धत्वाण्णिलोपः। स्मरण रहे कि **असिद्धवदत्राभात् ६।४।२२॥** अर्थात् षष्ठाध्याय के चतुर्थ पाद के बाईसवें सूत्र से इस पाद की समाप्ति तक के सूत्रों को आभीय कहा जाता है और यदि एक ही जगह दो **आभीय** सूत्र लग रहे हों तो दूसरे आभीय की कर्तव्यता में पहला आभीय सूत्र असिद्ध हो जाता है। जैसा कि **भाविता** में हो रहा है। **स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च ६।४।६२॥** और **णेरनिटि ६।४।५१॥** ये दोनों सूत्र उक्त रीति से **आभीय** हैं। **लुट्** में **भावि+ता** बन जाने के बाद **स्यसिच्सीयुट्तासिषु०** से चिण्वदिट् करके **भावि+इता** बना है। अब हमें दूसरा आभीय कार्य **णेरनिटि** से **णि** के इकार का लोप करना है। दोनों कार्य समानाश्रय (समान निमित्त वाले) हैं। अतः **असिद्धवदत्राभात्** के नियम से दूसरे आभीय की कर्तव्यता में पहला आभीय असिद्ध होता है अर्थात् पहले **आभीय** कार्य **स्यसिच्सीयुट्तासिषु०** के द्वारा **चिण्वदिट्** दूसरे आभीय शास्त्र **णेरनिटि** की दृष्टि में असिद्ध होगा तो **णेरनिटि** से णि के इकार का लोप हो जायेगा। **णेरनिटि** से णि के लोप करने में **अनिट् आदि आर्धधातुक** निमित्त है। जब तक **चिण्वत् इट्** असिद्ध नहीं होगा, तब तक यह **णि** का लोप नहीं कर सकता। इस तरह एक आभीय की कर्तव्यता में दूसरा आभीय असिद्ध होता है जिससे

णेरनिटि से णि का लोप होकर **भाव्+इता=भाविता** सिद्ध हुआ। चिण्वदिट् वैकल्पिक है। इसके न लगने के पक्ष में **भावि+ता** है। **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से नित्य से इट् आगम हुआ- **भावि+इता** बना। यह इट् **णेरनिटि** की दृष्टि में असिद्ध नहीं होता, क्योंकि यह आभीय नहीं है। अतः णि का लोप भी नहीं हुआ। णि के इकार को गुण, अय् आदेश होकर **भावयिता** सिद्ध हुआ। इस तरह से दो रूप बन गये- **भाविता** और **भावयिता**। आगे तस् आदि में भी यही प्रक्रिया की जाती है, जिससे नौ दूने अठारह रूप **लुट्** में बन जाते हैं।

लृट् में भी इसी तरह की प्रक्रिया होती है जिससे दो-दो रूप बनते हैं।

भाविष्यते, भावयिष्यते। लृट् में **भावि** से चिण्वदिट् होकर उसके **आभीय** होने के कारण असिद्ध होने से **णि** का लोप होने पर **भाविष्यते, भाविष्येते, भाविष्यन्ते** आदि रूप बनते हैं और चिण्वदिट् न होने के पक्ष में **भावि+इष्यते** है, गुण, अयादेश, वर्णसम्मेलन करके **भावयिष्यते, भावयिष्येते, भावयिष्यन्ते** आदि रूप बनाये जाते हैं।

लोट् में **भाव्यताम्, भाव्येताम्, भाव्यन्ताम्** आदि। **लङ्** में **अभाव्यत, अभाव्येताम्, अभाव्यन्त** आदि। **विधिलिङ्** में **भाव्येत, भाव्येयाताम्, भाव्येरन्** आदि रूप बनते हैं।

आशीर्लिङ् में- **चिण्वदिट्** के पक्ष में **णि** का लोप करके **भाविषीष्ट, भाविषीयास्ताम्, भाविषीरन्** आदि बनते हैं तो चिण्वदिट् न होने के पक्ष में **भावयिषीष्ट, भावयिषीयास्ताम्, भावयिषीरन्** आदि रूप बना लिए जाते हैं। इसी तरह **लुङ्** में चिण्वदिट् के पक्ष में **अभावि, अभाविषाताम्, अभाविषत** और उसके अभाव में **अभावि, अभावयिषाताम्, अभावयिषत** आदि रूप बन जाते हैं। **लृङ्** में चिण्वदिट्पक्षे- **अभाविष्यत** और उसके अभाव में **अभावयिष्यत** आदि।

अब **सन्नन्त** धातु से **कर्म या भाव** में प्रत्यय करने पर कैसे रूप बनते हैं? इसका विवेचन करते हैं। यदि धातु अकर्मक है तो **सन्** प्रत्यय करने के बाद भी सन्नन्त धातु अकर्मक ही रहेगी और धातु सकर्मक हो तो सन्नन्त भी सकर्मक ही होगी। अतः सन्नन्त अकर्मक धातुओं से भाव में और सन्नन्त सकर्मक धातुओं से कर्म में लकार होंगे। इसी तरह यङन्त और यङ्लुगन्त के विषय में भी जानना चाहिए। इसीलिए **रामेण भूयते** की तरह सन्नन्त भू का **रामेण बुभूष्यते,** यङन्त भू का **रामेण बोभूय्यते** और यङ्लुगन्त भू का **रामेण बोभूयते** आदि भाववाच्य में ही रूप बनेंगे किन्तु **ण्यन्त** भू धातु का तो **रामेण श्यामो भाव्यते** आदि कर्मवाच्य में रूप बनते हैं।

भू धातु से **इच्छा** अर्थ में **धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा** से **सन्** प्रत्यय होकर **सन्यङोः** से द्वित्व आदि हो जाने पर **बुभूष** बनता है। उसकी धातुसंज्ञा होती है। अकर्मक होने के कारण कर्ता या भाव में प्रत्यय होकर कर्तृवाच्य या भाववाच्य के रूप बनते हैं। कर्तरि प्रयोग तो **देवदत्तः बुभूषति** है किन्तु भाव के प्रयोग में **बुभूष** इस सन्नन्त धातु से लट्, त, यक् करके **बुभूष+यत** बनता है। यहाँ पर **अतो लोपः** से **षकारोत्तरवर्ती अकार** का लोप करके टि को एत्व करने पर **बुभूष्यते** बन जाता है। इसका वाक्य में प्रयोग- **तेन बुभूष्यते** अर्थात् **उससे होने की इच्छा की जाती है।**

लिट् में **बुभूष** से आम्, **अतो लोपः** से अकार का लोप, लिट् का लुक्, **कृ, भू, अस्** का अनुप्रयोग आदि करके **बूभूषाञ्चक्रे, बुभूषाम्बभूवे, बुभूषामासे।**

लुट् में **बुभूष** से **चिण्वदिट्** करने के पक्ष में भी **बुभूषिता** बनता है और चिण्वदिट् न होने के पक्ष में भी **वलादिलक्षण इट्** होकर **बुभूषिता** ही बनता है। इस तरह

लुट् के रूपों में अन्तर नहीं है। **अतो लोपः** से अकार का लोप करना न भूलें। यहीं बात लृट् में भी होती है जिससे दोनों पक्षों में **बूभूषिष्यते** ही बनता है। **लोट्** में **बुभूष्यताम्**। लङ् में **अबुभूष्यत**। **विधिलिङ्- बुभूष्येत**। **आशीर्लिङ्** में **बुभूषिषीष्ट**। लुङ् का रूप- **अबुभूषि** और **लृङ्** का **अबुभूषिष्यत**।

इस तरह **सन्नन्त** से भाववाच्य में रूप बनाने की सामान्य प्रक्रिया बताकर अब **यङन्त** से भाववाच्य के रूप बतलाने का उपक्रम कर रहे हैं। **बुभूय्यते**।

भू धातु से क्रियासमभिहार अर्थ में **धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्** से **यङ्, सन्यङोः** से द्वित्व आदि करके **गुणो यङ्लुकोः** से गुण करने पर **बोभूय** बनता है। यह धातु अकर्मक है। अतः भाव अर्थ में लकार करके **बोभूय+त** बनता है। इससे **सार्वधातुके यक्** से **यक्** करके **बोभूय+यत** बना। **अतो लोपः** से **बोभूय** में यकारोत्तरवर्ती अकार का **लोप** करके **बोभूय्+यत** बना। टि को एत्व करने पर **बोभूय्यते** सिद्ध हो जाता है।

सभी लकारों के रूप- बोभूय्यते। बोभूयाञ्चक्रे, बोभूयाम्बभूवे, बोभूयामासे। बोभूयिता। बोभूयिष्यते। बोभूय्यताम्। अबोभूय्यत। बोभूय्येत। बोभूयिषीष्ट। अबोभूयि। अबोभूयिष्यत। ध्यान रहे कि **भाव** में प्रत्यय होने पर केवल प्रथमपुरुष और एकवचन ही होता है। इन रूपों को बनाने में कोई परेशानी नहीं आयेगी यदि पहले की प्रक्रिया तैयार है तो, अन्यथा तो अन्ध ेरे में तीर चलाने जैसा ही रहेगा।

भू धातु अकर्मक है। **लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः** के अनुसार इससे **कर्ता** और **भाव** अर्थ में ही लकार हो सकते हैं। **कर्तरि लकार** तो **भ्वादि** में बताई गई है इसी तरह **ण्यन्त** से कर्ता में, **सन्नन्त** से कर्ता में, **यङन्त** से कर्ता में और **यङ्लुगन्त** से कर्ता में भी तत्तत् प्रकरणों में हो चुके हैं। अभी यहाँ **भावकर्मप्रक्रिया** में केवल भू धातु, ण्यन्त भू धातु, सन्नन्त भू धातु और यङन्त भू धातु से **भाव** या कर्म के रूपों का सामान्य विवेचन किया गया। अब **यङ्लुगन्त** से भी **भाव** अर्थ में कैसे रूप बनते हैं, इसकी प्रक्रिया शुरू होती है।

बोभूयते। भू से यङ् करके उसका लुक् करने पर **बोभू** आप उस प्रकरण में बना चुके हैं। बोभू की धातुसंज्ञा करके **भाव** अर्थ में **लट्** लकार, **सार्वधातुक यक्** प्रत्यय करके बोभू+यत बना है। टि को एत्व करके **बोभूयते** बन जाता है।

रूप- **बोभूयते। बोभवाञ्चक्रे, बोभवाम्बभूवे, बोभवामासे**। चिण्वदिट्पक्षे- वृद्धि, आवादेश होकर **बोभाविता** और न होने के पक्ष में वलादिलक्षण इट् होकर गुण करने पर **बोभविता**। इसी तरह **लृट्** में **बोभाविष्यते, बोभविष्यते**। **लोट्- बोभूयताम्**। लङ्- **अबोभूयत**। **विधिलिङ्- बोभूयेत**। **आशीर्लिङ्- बोभाविषीष्ट- बोभविषीष्ट**। लिङ्- **अबोभावि**। **लृङ्- अबोभाविष्यत, अबोभविष्यत**।

स्तूयते विष्णुः। अदादिगण में **ष्टुञ् स्तुतौ** धातु पठित है। इसके वहाँ पर कर्तरि प्रयोग **स्तौति, स्तुतः, स्तुवन्ति** आदि होते हैं। सकर्मक होने से इससे **कर्म** में लकार होकर **स्तूयते** आदि बनते हैं। **स्तु** से **लट्, त, यक्**, एत्व आदि करके **स्तु+यते** बना है। **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से **दीर्घ** होकर **स्तूयते** बनता है। इसका कर्ता तृतीयान्त होगा। **स्तूयते विष्णुर्भक्तेन**। यह धातु सकर्मक है। भक्त से विष्णु की स्तुति की जाती है। **लिट्** में **शर्पूर्वाः खयः** लगकर **तुष्टुवे** ही बनता है क्यों कि धातु के एकाच् होने के कारण आम्

आदि नहीं होते। लुट में **चिण्वदिट्** और उसके अभाव में दो-दो रूप-**स्ताविता, स्तोता**। इसी तरह **लृट्** में भी- **स्ताविष्यते, स्तोष्यते**। लोट् में - **स्तूयताम्, स्तूयेताम्, स्तूयन्ताम्**। लङ्- **अस्तूयत, अस्तूयेताम्, अस्तूयन्त** आदि। विधिलिङ्- **स्तूयेत**। आशीर्लिङ्- **स्ताविषीष्ट, स्तोषीष्ट**। लुङ्- **अस्तावि, अस्ताविषाताम्-अस्तोषाताम्, अस्ताविषत-अस्तोषत** आदि। लृङ्- **अस्ताविष्यत, अस्तोष्यत**।

अर्यते। **ऋ गतौ** यह धातु जुहोत्यादिगण में सकर्मक के रूप में पठित है। इससे **कर्तृवाच्य** में **इयर्ति, इयृतः, इय्रति** आदि रूप बनते हैं तो यहाँ **कर्मवाच्य** में यक् होकर **ऋ+यत** बना हुआ है। यक् में कित् होने के कारण गुण का निषेध होकर **रिङ् शयग्लिङ्क्षु** से **ऋ** को **रिङ्** आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर के **गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः** से गुण हुआ तो एत्व आदि करने के बाद **अर्यते** सिद्ध हुआ।

लट् में- अर्यते, अर्येते, अर्यन्ते आदि।

लिट् में- **ऋ** से लिट्, त, एश्, द्वित्व करके **ऋ+ऋ+ए** बनता है। अभ्यास को उरत् से अत्त्व, रपर होकर **अर्+ऋ+ए** में हलादिशेष होने पर अभ्यास अकार का **अत आदेः** से दीर्घ होकर **आ+ऋ+ए** हुआ। ऋ को यण् होकर **आ+र्+ए** बना। वर्णसम्मेलन होकर **आरे** सिद्ध हुआ। आरे, आराते, आरिरे, आरिषे, आराथे, आरिढ्वे-आरिध्वे, आरे, आरिवहे, आरिमहे।

लुट्- में चिण्वदिट् के विकल्प से होने से आरिता-अर्ता। **लृट्- ऋद्धनोः स्ये** से इट्- आरिष्यते, अरिष्यते। **लोट्**- अर्यताम्। **लङ्**- आर्यत। **विधिलिङ्**- अर्येत। **आशीर्लिङ्**- आरिषीष्ट-ऋषीष्ट। **लुङ्**- आरि, आरिषाताम्-आर्षाताम्, आरिषत-आर्षत आदि। **लृङ्**- आरिष्यत-अरिष्यत आदि।

स्मर्यते। भ्वादि में परस्मैपदी **स्मृ स्मरणे** धातु है। उससे लट्, कर्म में यक्, **ऋतश्च संयोगादेर्गुणः** से गुण आदि करके **स्मर्यते** बन जाता है। **लिट्** में- सस्मरे। आगे- स्मारिता-स्मर्ता। स्मारिष्यते-स्मरिष्यते। स्मर्यताम्। अस्मर्यत। स्मर्येत। स्मारिषीष्ट, स्मृषीष्ट। अस्मारि, अस्मारिषाताम्-अस्मृषाताम्,, अस्मारिषत-अस्मृषत। अस्मारिष्यत-अस्मरिष्यत।

अब **स्रंसु(सन्सु)** जो भ्वादिगणीय अकर्मक आत्मनेपदी है, उससे भाव अर्थ में लकार होता है। **लट्** में **स्रन्स्+यत** बनने के बाद यक् के कित् होने के कारण **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से उपधा के नकार का लोप करके टि को एत्व करने पर **स्रस्यते** सिद्ध होता है। आगे के लकारों में **सस्रंसे, स्रंसिता, स्रंसिष्यते, स्रस्यताम्, अस्रस्यत, स्रस्येत, स्रंसिषीष्ट, अस्रंसिष्ट, अस्रंसिष्यत** आदि रूप बनते हैं। यक् होने के स्थलों में कित् को मानकर नकार का लोप होता है, अन्यत्र नहीं।

इदितस्तु नन्द्यते अर्थात् इदित् धातु में तो नकार का लोप नहीं हो सकता क्योंकि नकारविधायक सूत्र **अनिदिताम्** कहता है। **टुनदि समृद्धौ** से अनुबन्धलोप होने के बाद इदित् होने के कारण **इदितो नुम् धातोः** से नुम् होकर के **नन्द्** बना हुआ है। इसीलिए उसके नकार का लोप नहीं होता। अतः **नन्द्यते, ननन्दे, नन्दिता, नन्दिष्यते, नन्द्यताम्, अनन्द्यत, नन्द्येत, नन्दिषीष्ट, अनन्दि, अनन्दिष्यत** बनते हैं।

इज्यते। भ्वादि में **यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु** धातु पठित है। उससे कर्मवाच्य में **लट्, यक्** करके **यज+यत** बना। **वचिस्वपियजादीनां किति** से **यज्** में यकार को

आकारान्तादेशविधायकं विधिसूत्रम्

७५५. तनोतेर्यकि ६।४।४४।।

आकारोऽन्तादेशो वा स्यात्। तायते, तन्यते।

चिण्निषेधकं विधिसूत्रम्

७५६. तपोऽनुतापे च ३।१।६५।।

तपश्च्लेश्चिण् न स्यात् कर्मकर्तर्यनुतापे च। अन्वतप्त पापेन। **घुमास्थे**तीत्वम्। दीयते। धीयते। ददे।

....

सम्प्रसारण होकर **इकार** बना। **इज्+यत** में एत्व होकर **इज्यते** बना। **लिट्**- ईजे। आगे- यष्टा। यक्ष्यते। इज्यताम्। ऐज्यत। इज्येत। यक्षीष्ट। अयाजि, अयक्षाताम्, अयक्षत। अयक्ष्यत।

७५५- तनोतेर्यकि। तनोतेः पञ्चम्यन्तं, यकि सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **विड्वनोरनुनासिकस्यात्** से **आत्** और **ये विभाषा** से **विभाषा** की अनुवृत्ति आती है।

यक् के परे होने पर तन् धातु के नकार को विकल्प से आकार आदेश होता है।

तायते, तन्यते। **तनु विस्तारे** यह **तनादिगणीय** सकर्मक धातु है, इससे **कर्मवाच्य** में लट्, यक् होने के बाद **तनोतेर्यकि** से विकल्प से **नकार** को आत्व करके **त+आ+यते** बना है। सवर्णदीर्घ करके **तायते** सिद्ध हुआ, आत्व न होने के पक्ष में **तन्यते**। इस तरह दो रूप सिद्ध होते हैं। लिट् आदि आर्धधातुकों में यक् नहीं होता, अतः आत्व भी नहीं होगा किन्तु **अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि** से **एत्त्वाभ्यासलोप** होकर **तेने, तेनाते, तेनिरे** आदि रूप बन जाते हैं। लुट् में **तनिता** आगे **तनिष्यते, तायताम्-तन्यताम्, अतायत-अतन्यत, तायेत-तन्येत, तनिषीष्ट, अतानि, अतनिषाताम्, अतनिषत। अतनिष्यत** आदि रूप बनते हैं।

तप सन्तापे। भ्वादि में परस्मैपदी और **तपना** अर्थ में अकर्मक एवं **तपाना** अर्थ में सकर्मक दोनों में प्रयुक्त होने वाली धातु है। यहाँ पर **तपना** अर्थ वाली अकर्मक **तप्** धातु है। अतः भाववाच्य में रूप बनाये गये हैं। इसके कर्तृवाच्य में **तपति, तपतः, तपन्ति** आदि रूप इसके बनते हैं। इससे **भाववाच्य** में लकार, यक् करके **तप्यते, तेपे, तप्ता, तप्स्यते, तप्यताम्, अतप्यत, तप्येत, तप्सीष्ट, अतप्त, अतप्स्यत** ये रूप बनते हैं। कर्म अर्थ में सभी पुरुषों के सभी वचन हैं और भाव अर्थ में केवल प्रथमपुरुष का एकवचन ही होता है। लुङ् में कुछ विशेषता है, इसलिए निम्नलिखित सूत्र का अवतरण करते हैं।

७५६- तपोऽनुतापे च। तपः पञ्चम्यन्तम्, अनुतापे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **च्लेः सिच्** से **च्लेः, चिण् ते पदः** से **चिण्, न रुधः** से **न** और **अचः कर्मकर्तरि** से **कर्मकर्तरि** की अनुवृत्ति आती है।

कर्मकर्ता या पश्चात्ताप अर्थ में तप् धातु से परे च्लि को चिण् आदेश नहीं होता।

कर्मकर्ता का अर्थ अगले प्रकरण से स्पष्ट होगा। यहाँ पर **पश्चात्ताप** अर्थ में **चिण् भावकर्मणोः** से प्राप्त **चिण्** आदेश का निषेध किया जा रहा है। जहाँ पर **पश्चात्ताप** अर्थ नहीं होगा, वहाँ पर **चिण्** होकर **उदतापि** भी बनता है।

युगागमविधायकं विधिसूत्रम्

७५७. आतो युक् चिण्कृतोः ७।३।३३॥

आदन्तानां युगागमः स्यात् चिणि ञ्णिति कृति च।

दायिता, दाता। दायिषीष्ट, दासीष्ट। अदायि। अदायिषाताम्। भज्यते।

....

अन्वतप्त पापेन। पापी के द्वारा पछताया गया। यहाँ पर **अनु** पूर्वक **तप्** धातु का अर्थ **पश्चात्ताप करना** अर्थ प्रकट हो रहा है। इस लिए लुङ् लकार के **अनु+तप्+च्लि+त** में **चिण् भावकर्मणोः** से प्राप्त **चिण्** ओदश का निषेध किया गया। अतः **च्लेः सिच्** से **सिच्** आदेश होकर उसके सकार का **झलो झलि** से लोप होकर **अनु+अतप्त** बना। यण् होकर **अन्वतप्त** सिद्ध हुआ।

यहाँ पर **पाप**-शब्द पाप वाले **पापी पुरुष** का वाचक है। **पापम् अस्यास्तीति पापः। अर्शादिभ्योऽच्** से अच् प्रत्यय होकर बना हुआ है। इसका कर्तृवाच्य में **पापः अन्वतपत्** ऐसा रूप बनता है।

दीयते। डुदाञ् दाने, जुहोत्यादि का सकर्मक धातु है। **दा** से **ददाति** आदि रूप बनते हैं। यहाँ कर्मवाच्य में **लट्, त, यक्** करके **दा+यत** बना है। **घुमास्थागापाजहातिसां हलि** से **दा** के आकार को **ईत्त्व** होने के बाद टि को एत्व करके **दीयते** बन जाता है। आगे- **दीयेते, दीयन्ते** आदि। **लिट्** में **ददे, ददाते, ददिरे, ददिषे** आदि बनाइये। **लुट्** में **स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च** से विकल्प से **चिण्वदिट्** होने के पक्ष में अग्रिम सूत्र से **युक्** का आगम होता है।

७५७- आतो युक् चिण्कृतोः। चिण् च कृत् च तयोरितरेतरद्वन्द्वश्चिणकृतौ, तयोः। आतः षष्ठ्यन्तं, युक् प्रथमान्तं, चिण्कृतोः सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **अचो ञ्णिति** से **ञ्णिति** की अनुवृत्ति आती है।

चिण् अथवा ञित्-णित् कृत् प्रत्यय के परे होने पर आदन्त धातुओं को युक् का आगम होता है।

युक् में उकार और ककार इत्संज्ञक हैं। केवल **य्** शेष रहता है। कित् होने के कारण धातु का अन्तावयव होकर बैठता है। ध्यान रहे कि यह आगम केवल **आदन्त धातुओं को चिण्** या ञित्, **णित्** प्रत्यय के परे रहने पर ही होता है।

दायिता, दाता। दा धातु से भावकर्म में **लुट्, त, तासि** करके **चिण्वदिट्** आदि करके **दा+इता** बना है। **चिण्वत्** होने के कारण **णित्** परे मिल जाता है। अतः **आतो युक् चिण्कृतोः** से **धातु के आकार** को **युक्** का आगम हुआ तो **दाय्+इता** बना। वर्णसम्मेलन होकर **दायिता** सिद्ध हुआ। **चिण्वदिट्** न होने के पक्ष में इट् भी नहीं हुआ तो युक् का आगम भी नहीं हुआ। अतः **दाता** ही रह गया। इसी तरह **आशीर्लिङ्** में **चिण्वदिट्** होने के पक्ष में **युक्** होकर **दायिषीष्ट** और **चिण्वदिट्** न होने के पक्ष में **दासीष्ट** बनता है। इसी तरह **लुङ्** में **अदायि** बनता है। इसी के **तस्** में **अदायिषाताम्** और **चिण्वदिट्** न होने के पक्ष में **स्थाघ्वोरिच्च** से **दा** के आकार को **इकार** आदेश होकर **अदिषाताम्** बनता है। **झि** में **अदायिषत, अदिषत** आदि।

सकर्मक **दा** धातु के **कर्मवाच्य** के रूप- दीयते। ददे। दायिता-दाता। दायिष्यते-दास्यते।

वैकल्पिकनलोपविधायकं विधिसूत्रम्

७५८. भञ्जेश्च चिणि ६।४।३३॥

नलोपो वा स्यात्। अभाजि, अभञ्जि। लभ्यते।

वैकल्पिकनुमागमविधायकं विधिसूत्रम्

७५९. विभाषा चिण्णमुलोः ७।१।६९॥

लभेर्नुमागमो वा स्यात्। अलम्भि, अलाभि॥

इति भावकर्मप्रक्रिया॥३०॥

....

दीयताम्। अदीयत। दीयेत। दायिषीष्ट-दासीष्ट। अदायि, अदायिषाताम्-अदिषाताम्, अदायिषत-अदिषत। अदायिष्यत-अदास्यत।

धीयते। इसी तरह की प्रक्रिया **डुधाञ् धारणपोषणयोः** धातु की है। यह भी **जुहोत्यादि** का सकर्मक और उभयपदी है। **कर्मवाच्य में धा** से धीयते, दधे, धायिता-धाता, धायिष्यते-धास्यते, धीयताम्, अधीयत, धीयेत, धायिषीष्ट-धासीष्ट, अधायि, अधायिषाताम्-अधिषाताम्, अधायिषत-अधिषत, अधायिष्यत-अधास्यत।

भज्यते। भञ्जो आमर्दने(भन्ज्) धातु **तोड़ना** अर्थ में रुधादि में सकर्मक पठित है। इससे कर्मवाच्य में लट्, यक् होकर **भन्ज+यत** बना है। **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से नकार का लोप करके **भज्+यत** बना। टि को एत्व करके **भज्यते** सिद्ध होता है। आगे- भज्येते, भज्यन्ते। लिट् में- **बभञ्जे, बभञ्जाते, बभञ्जिरे, बभञ्जिषे** आदि बन जाते हैं। यह धातु **चिण्वदिट्** का विषय बनता नहीं है क्योंकि **उपदेश अवस्था में अजन्त** या हन् आदियों में नहीं आता। वैसे भी यह धातु अनिट् है। अतः लुट् आदि में कर्तृवाच्य की तरह ही **भन्ज्+ता में जकार को चोः कुः** से कुत्व करके **गकार** और उसके योग में नकार को अनुस्वार और परसवर्ण होकर **ङकार** करके **गकार** को **खरि च** से चर्त्व करके भङ्क्ता आदि रूप बनते हैं तो **लृट्** में कुत्व, अनुस्वार, परसवर्ण, षत्व, क्षत्व होकर के **भङ्क्ष्यते** बनता है। **लोट्** आदि में- **भज्यताम्, अभज्यत, भज्येत, भङ्क्षीष्ट** आदि रूप बनते हैं। लुङ् में अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है-

७५८- **भञ्जेश्च चिणि**। भञ्जेः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, चिणि सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **जान्तनशां विभाषा** से **विभाषा** और **श्नान्नलोपः** से **नलोपः** की अनुवृत्ति आती है।

चिण् के परे होने पर भन्ज् धातु के नकार का विकल्प से लोप होता है।

लुङ् में **अभन्ज्+इत** बना है। **भञ्जेश्च चिणि** से विकल्प से नकार का लोप हुआ तो **अभज्+इत** में **अत उपधायाः** से उपधावृद्धि होकर **अभाज्+इत** बना। **चिणो लुक्** से त का लोप होकर **अभाजि** सिद्ध हुआ। नकार के लोप न होने के पक्ष में उपधा में अकार मिलेगा नहीं, अतः वृद्धि भी नहीं होगी। अतः **अभञ्जि** बनता है। **अभाजि-अभञ्जि, अभाङ्क्षाताम्, अभङ्क्षत** आदि। **लृङ्- अभङ्क्ष्यत, अभङ्क्ष्येताम्, अभङ्क्ष्यन्त** आदि।

लभ्यते। डुलभष् प्राप्तौ, यह धातु भ्वादि में पठित है। इत्संज्ञा आदि होकर **लभ्** बचता है। आत्मनेपदी और अनिट् होने के कारण **लभते, लेभे, लब्धा, लप्स्यते, लभताम्, अलभत, लभेत, लप्सीष्ट, अलब्ध, अलप्स्यत** आदि रूप कर्तृवाच्य में बनते हैं। सकर्मक

होने के कारण **कर्मवाच्य** में लकार होकर **लभ्यते, लेभे, लब्धा, लप्स्यते, लभ्यताम्, अलभ्यत, लभ्येत, लप्सीष्ट** बनाइये और लुङ् में अगला सूत्र लगाइये-

७५९- विभाषा चिण्णमुलोः। चिण् च णमुल् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वश्चिणमुलौ, तयोः। विभाषा प्रथमान्तं, चिण्णमुलोः सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **लभेश्च** से **लभेः** और **इदितो नुम् धातोः** से **नुम्** की अनुवृत्ति आती है।

चिण् या णमुल् के परे होने पर लभ् धातु को विकल्प से नुम् का आगम होता है।

अलम्भि, अलाभि। लुङ् में **अलभ्+इत** बनने के वाद **विभाषा चिण्णमुलोः** से **नुम्** का आगम करके **अलम्भ्+इत** बना। मकार को अनुस्वार और उसको परसवर्ण करके **चिणो लुक्** से **त** का लोप करके **अलम्भि** सिद्ध होता है। **नुम्** न होने के पक्ष में उपधावृद्धि करके **अलाभि** वनता है। आगे के रूप- **अलप्साताम्, अलप्सत, अलब्धाः, अलप्साताम्, अलब्ध्वम्, अलप्सि, अलप्स्वहि, अलप्स्महि**। लृङ्- **अलप्स्यत**।

यहाँ **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में केवल भू के रूप दिखाये गये हैं। अब जिज्ञासुओं के लिए कुछ विशेष धातुओं के कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य के रूप यहाँ पर व्याख्या में दिखाये जा रहे हैं जो लट्, प्रथमपुरुष एकवचन के हैं।

मूलधातु	कर्तृवाच्य	भावकर्म	अर्थ
अर्च्	अर्चति	अर्च्यते	पूजा जाता है।
अस्	अस्ति	भूयते	हुआ जाता है।
आप्	आप्नोति	आप्यते	पाया जाता है।
इङ्	अधीते	अधीयते	पढ़ा जाता है।
इष्	इच्छति	इष्यते	चाहा जाता है।
कथ्	कथयति	कथ्यते	कहा जाता है।
कृ	करोति	क्रियते	किया जाता है।
कृष्	कर्षति	कृष्यते	जोता जाता है।
क्री	क्रीणाति	क्रीयते	खरीदा जाता है।
क्षिप्	क्षिपति	क्षिप्यते	फेंका जाता है।
खाद्	खादति	खाद्यते	खाया जाता है।
गण्	गणयति	गण्यते	गिना जाता है।
गम्	गच्छति	गम्यते	जाया जाता है।
गै	गायति	गीयते	गाया जाता है।
ग्रह्	गृह्णाति	गृह्यते	ग्रहण किया जाता है।
चिन्त्	चिन्तयति	चिन्त्यते	सोचा जाता है।
चुर्	चोरयति	चोर्यते	चुराया जाता है।
ज्ञा	जानाति	ज्ञायते	जाना जाता है।
तृ	तरति	तीर्यते	पार किया जा है।
त्यज्	त्यजति	त्यज्यते	छोड़ा जाता है।
दह्	दहति	दह्यते	जलाया जाता है।
दा	ददाति	दीयते	[illegible]या जाता है।

दुह्	दोग्धि	दुह्यते	दोहा जाता है।
दृश्	पश्यति	दृश्यते	देखा जाता है।
ध्यै	ध्यायति	ध्यायते	ध्यान किया जाता है।
नम्	नमति	नम्यते	नमस्कार किया जाता है।
नी	नयति	नीयते	ले जाया जाता है।
पच्	पचति	पच्यते	पकाया जाता है।
पठ्	पठति	पठ्यते	पढ़ा जाता है।
पा	पिबति	पीयते	पिया जाता है।
पाल्	पालयति	पाल्यते	पाला जाता है।
पूज्	पूजयति	पूज्यते	पूजा किया जाता है।
प्रच्छ्	पृच्छति	पृच्छ्यते	पूछा जाता है।
बन्ध्	बध्नाति	बध्यते	बाँधा जाता है।
ब्रू	ब्रवीति	उच्यते	कहा जाता है।
भाष्	भाषते	भाष्यते	कहा जाता है।
याच्	याचते	याच्यते	मांगा जाता है।

अनुवाद में इस प्रकरण का बहुत ही उपयोग होता है। **भ्वादि** से **चुरादि** और **णयन्त, सन्नन्त, यङन्त** एवं **यङ्लुगन्त** तक सभी धातुओं से कर्ता अर्थ में लकार होने से इन धातुरूपों को लगाकर जो वाक्य बनते हैं, उन्हें कर्तृवाच्य वाक्य कहा जाता है। अब उन्हीं धातुओं से यदि वे धातु सकर्मक हैं तो **कर्म** अर्थ में **लकार** करके **कर्मवाच्य** के वाक्य बनाये जाते हैं और यदि धातु अकर्मक है तो **भाव** अर्थ में लकार करके **भाववाच्य** के वाक्य बनाये जाते हैं। वाक्यों के प्रयोग में भावकर्मवाच्य का प्रयोग बहुत सुन्दर लगता है।

ध्यान रहे कि लकार या प्रत्यय जिस अर्थ में होते हैं, वह अर्थ **उक्त** होता है और शेष सभी अर्थ **अनुक्त** होते हैं। **कारक** में उक्त और अनुक्त बहुत ध्यान रखना पड़ता है। **अनुक्त कर्म** में **द्वितीया** विभक्ति होती है और **उक्त कर्म** में प्रथमा विभक्ति। **अनुक्त कर्ता** और **अनुक्त करण** में **तृतीया विभक्ति** होती है। जैसे कर्तृवाच्य में रामः ग्रन्थं **पठति** यह वाक्य है। इस वाक्य में **पठ्** धातु से लट् लकार **कर्ता अर्थ** में हुआ है। अतः इस वाक्य का कर्ता उक्त है। एक उक्त होता है तो शेष सभी अनुक्त होते हैं। अतः कर्म आदि सभी अनुक्त हुए। **कर्ता** में प्रथमा होना सामान्य नियम है, अतः राम से प्रथमा विभक्ति हुई। कर्म अनुक्त है तो **कर्मणि द्वितीया** से कर्म ग्रन्थ में द्वितीया विभक्ति हुई। यह तो हुआ कर्तृवाच्य का वाक्य। इसी को कर्मवाच्य में बनाते हैं। क्योंकि **पठ्** धातु सकर्मक है। अतः इससे **कर्म** अर्थ में लकार होकर **लट्, यक्, एत्व** आदि करके **पठ्यते** बनता है। **कर्म** अर्थ में लकार हुआ है, अतः **कर्म उक्त** हो गया, शेष सभी अनुक्त हुए। अतः उक्त कर्म में प्रथमा हुई और अनुक्त कर्ता में तृतीया विभक्ति हुई तो वाक्य बना- **रामेण ग्रन्थः पठ्यते।**

कारक का प्रयोग वक्ता के अधीन में होता है। **विवक्षातः कारकाणि भवन्ति।** यह कर्ता के अधीन है कि वह वाक्य को कर्तृवाच्य, भाववाच्य या कर्मवाच्य किस रूप में प्रयोग करना चाहता है! उसी रूप में वह बना सकता है।

कर्तृवाच्य	भाववाच्य या कर्मवाच्य
स: भवति	तेन भूयते।
त्वं भवसि	त्वया भूयते।
अहं भवामि	मया भूयते।
राम: ओदनं खादति	रामेण ओदन: खाद्यते।
त्वं घटं कुरु	त्वया घट: क्रियताम्।
त्वं पुस्तकं पठ	त्वया पुस्तकं पठ्यताम्।
अहं जलं न पास्यामि	मया जलं न पास्यते।
प्रसिद्ध: पुरुषो भवेत्	प्रसिद्धेन पुरुषेण भूयेत।
बाला: पुष्पाणि चिन्वन्ति	बालै: पुष्पाणि चीयन्ते।
भवान् ग्रामं गच्छतु	भवता ग्रामो गम्यताम्।
यूयं कार्यम् अकार्ष्ट	युष्माभि: कार्यम् अकारि।
ते देवान् यजेयु:	तै: देवा: इज्येरन्।
अहं त्वां नमामि	मया त्वं नम्यसे।
वयं युवां द्रक्ष्याम:	अस्माभिर्युवां द्रक्ष्येथे।
आवां युष्मान् रक्षेव	आवाभ्यां यूयं रक्षेध्वम्।
त्वं मां परिचिनु	त्वया अहं परिचीयै।
भवन्त: आवाम् अजानन्	भवद्भिरावामज्ञायावहि।
तौ अस्मान् अस्तौष्टाम्	ताभ्यां वयमस्ताविष्महि।

परीक्षा

विशेष प्रकरण होने के कारण इस परीक्षा में कोई समय निर्धारित नहीं है, फिर भी चिन्तन-मनन करते हुए आपको सामान्यत: तीन दिन में परीक्षा पूरी करनी होगी। ३०० पूर्णाङ्कों की परीक्षा में प्रथमश्रेणी के लिए २७५ से ऊपर, द्वितीयश्रेणी के लिए २४० से ऊपर और तृतीयश्रेणी के २०० से ऊपर अंक प्राप्त करने होंगे।

१. भावकर्मप्रक्रिया पर एक विस्तृत लेख लिखें ५०

२. अलग अलग कर्ता, कर्म और धातुओं का प्रयोग करके भिन्न-भिन्न पुरुष और वचन में **कर्तृवाच्य** के किन्हीं २५ वाक्यों को बदल कर भावकर्मवाच्य के अर्थ सहित वाक्य बनायें। ५०

३. **भू, हस्** और **शीङ्** इन तीन अकर्मक धातुओं के भाववाच्य में अर्थ सहित २५ वाक्य बनायें। ५०

४ अलग-अलग कर्ता और कर्म का प्रयोग करके कर्मवाच्य में **अनु+भू**, के सभी लकारों के तीनों पुरुषों के सभी वचनों में अर्थ सहित ९० वाक्य बनायें। १५०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या की भावकर्म-प्रक्रिया पूरी हुई।

अथ कर्मकर्तृप्रक्रिया

यदा कर्मैव कर्तृत्वेन विवक्षितं तदा सकर्मकाणामप्यकर्मकत्वात् कर्तरि भावे च लकारः।

कार्यातिदेशसूत्रम्

७६०. कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः ३।१। ८७॥

कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवत् स्यात्। कार्यातिदेशोऽयम्। तेन यगात्मनेपदचिण्चिण्वदिटः स्युः। पच्यते फलम्। भिद्यते काष्ठम्। अपाचि। अभेदि। भावे- भिद्यते काष्ठेन।

इति कर्मकर्तृप्रक्रिया॥३१॥

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **कर्मकर्तृप्रक्रिया** का आरम्भ होता है। **भावकर्मप्रक्रिया** की तरह इस प्रकरण का भी अनुवाद आदियों में और दैनिक प्रयोग में महत्त्वपूर्ण स्थान है। **विवक्षातः कारकाणि भवन्ति**। कारक वक्ता की इच्छा के अधीन होते हैं। एक ही वाक्य को कर्ता भिन्न-भिन्न रूप में प्रयोग कर सकता है। जैसे कि **अहं काष्ठं भिनद्मि** मैं लकड़ी तोड़ता हूँ, यह कर्तृवाच्य में मैंने प्रयोग किया। अब इसको कर्मवाच्य में प्रयोग कर सकता हूँ- **मया काष्ठं भिद्यते** मेरे द्वारा लकड़ी तोड़ी जाती है। अब इसी वाक्य को दूसरे प्रकार से भी कह सकते हैं- **भिद्यते काष्ठम्** अर्थात् लकड़ी स्वयं टूट रही है। इस तीसरे वाक्य को **कर्मकर्ता** कहते हैं। **जहाँ पर कर्म का प्रयोग कर्ता की तरह किया जाता है, उसे कर्मकर्तृवाच्य** कहा जाता है। हिन्दी में भी **पैर भूमि में धंसा जा रहा है, कपड़ा फटा जा रहा है।, धागा टूटता चला जा रहा है** आदि प्रयोग हम रोज देखते, सुनते हैं।

अब यहाँ पर अन्य प्रकरणों की अपेक्षा इस प्रकरण में होने वाली भिन्नता को बतलाते हैं।

यदा कर्मैव कर्तृत्वेन विवक्षितं तदा सकर्मकाणामप्यकर्मकत्वात् कर्तरि भावे च लकारः। जब वक्ता को **कर्म** ही **कर्तृत्वेन** कहना अभीष्ट हो तो **सकर्मक** धातुएँ भी **अकर्मक** बन जाती हैं। तब सभी सकर्मक धातुओं के भी **अकर्मक** होने से उन धातुओं से **कर्ता** और **भाव** अर्थ में ही **लकार** होते हैं अर्थात् जिस प्रकार से **लः कर्मणि च भावे**

चाकर्मकेभ्यः से सकर्मक धातुओं से कर्ता और कर्म अर्थ में और अकर्मक धातुओं से भाव और कर्ता अर्थ में लकार होते हैं, वैसे ही यहाँ पर **कर्मकर्ता** होने से धातु के अकर्मक बन जाने के कारण उससे **भाव** और **कर्म** अर्थ में ही लकार होते हैं।

७६०- **कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः**। तुल्या क्रिया यस्य स तुल्यक्रियः। कर्मण इव कर्मणि इव वा कर्मवत्। कर्मवत् अव्ययपदं, कर्मणा तृतीयान्तं, तुल्यक्रियः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। अत्र **कर्मणा** इत्यनेन कर्मकारकस्था क्रिया विवक्षिता। **कर्तरि शप्** से विभक्तिविपरिणाम करके **कर्ता** की अनुवृत्ति आती है।

कर्म में स्थित क्रिया के साथ तुल्य क्रिया वाला कर्ता कर्मवत् होता है।

तात्पर्य यह है कि **कर्म के कर्ता** बनने के पूर्व जो क्रिया कर्म में स्थित होती है, यदि वही क्रिया अब **कर्मकर्तृप्रक्रिया** के कर्ता में स्थित हो तो, और यह कब हो सकता है? जब कर्म ही कर्ता बने तब। अतः इसके कर्ता को **कर्मवद्भाव** हो जाता है। जैसे- **देवदत्तः काष्ठं भिनत्ति** अर्थात् देवदत्त लकड़ी को तोड़ता है। इस वाक्य में कर्ता है **देवदत्तः** और कर्म है **काष्ठम्**। अब इसमें **टुकड़े होना** रूप जो क्रिया कर्म **काष्ठ** में स्थित है, वही क्रिया **कर्म काष्ठ** को **कर्तृत्वेन** विवक्षा करके प्रयोग करने पर बने हुए कर्ता **काष्ठ** में भी विद्यमान है, अतः यह **तुल्यक्रियकर्ता** हो गया। फलतः **कर्मवद्भाव** हो जाता है। यहाँ **तृज्वत् क्रोष्टुः** आदि की तरह रूपातिदेश आदि न होकर कार्यातिदेश माना जाता है। अतः **कर्ता** को **कर्मवत्** रूप **अतिदेश** का फल यह निकलता है कि **कर्मवाच्य** में जो-जो कार्य होते हैं वे सब कार्य **कर्मकर्ता** में भी हो जायेंगे। कर्मवाच्य में होने वाले कार्य **आत्मनेपद, यक्, चिण्, चिण्वदिट्** आदि है, वे सभी कार्य **कर्मकर्ता** में भी अतिदिष्ट होते हैं। इस तरह यहाँ **कार्यातिदेश** सिद्ध माना गया।

पच्यते फलम्। फल स्वयं पकता है। यहाँ पर वस्तुतः **कालः फलं पचति** ऐसा कर्तृवाच्य का वाक्य बनता है किन्तु अतिशय सौकर्य या सरलता से कहने की वक्ता की अपेक्षा के कारण इस वाक्य को **कर्मकर्ता** में प्रयोग हुआ। उक्त वाक्य का कर्मकर्ता का वाक्य है- **पच्यते फलम्**। अर्थात् फल पकता है। **पकना** रूप जो क्रिया है, कर्मवाच्य और कर्मकर्ता के वाक्य में एक ही **फल** में अवस्थित है, अतः इसकी **कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः** से **कर्मवद्भाव** हो गया। फलतः **पच्** धातु से **आत्मनेपद, यक्** आदि होकर के **पच्यते** बना। नहीं तो **फलं पचति** ऐसा अनिष्ट वाक्य इस कर्मकर्तृविवक्षा में बनता।

और एक बात का ध्यान रखना जरूरी है- **पच्यते फलम्, भिद्यते काष्ठम्** आदि वाक्य कर्मकर्तृवद्भाव करने के बाद कर्तृवाच्य का है, न कि भाववाच्य का। अतः **काष्ठे पच्येते, काष्ठानि पच्यन्ते, त्वं पच्यसे, अहं पच्ये** आदि सभी रूप बनते हैं। कर्म को कर्ता बनाने के बाद वह कर्म कर्ता जैसा रहेगा, वैसे ही क्रियापद भी बनेंगे।

लिट् में **पेचे, पेचाते, पेचिरे** आदि बनेंगे तो **लुट्** में कर्मवद्भाव के बावजूद भी **स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट्** से चिण्वद्भाव नहीं हुआ, क्योंकि यह धातु **उपदेश में अजन्त** आदि नहीं है। अतः **पक्ता, पक्तारौ, पक्तारः** ही बनेगा, इट् आदि नहीं होंगे। आगे **लृट्** में **पक्ष्यते**। **लोट्** में **पच्यताम्**, लङ् में **अपच्यत**, विधिलिङ् में **पच्येत**, आशीर्लिङ् में **पक्षीष्ट**, लुङ् में **अपाचि, अपक्षाताम्, अपक्षत** और लृङ् में **अपक्ष्यत** सिद्ध होता है।

उक्त प्रकार से **भिद्यते काष्ठम्** लकड़ी अपने आप टूटती है। **भिद्यते, बिभिदे, भेत्ता, भेत्स्यति, भिद्यताम्, अभिद्यत, भिद्येत, भित्सीष्ट, अभेदि, अभित्साताम्, अभित्सत, अभेत्स्यत** आदि रूप बनाये जा सकते हैं। इसी कर्मकर्तृवाच्य में यदि लकार कर्ता अर्थ में न करके अकर्मक होने से भाव अर्थ में करेंगे तो सभी लकारों के प्रथमपुरुष के एकवचन में ही रूप बनेंगे। लकार के भाव अर्थ में होने से कर्मकर्ता अनुक्त हो जाता है। इसलिए इसमें तृतीया विभक्ति हो जाती है और उस कर्मकर्ता के बदलने पर भी क्रिया हमेशा वही रहेगी जैसा **काष्ठेन भिद्यते, काष्ठाभ्यां भिद्यते, काष्ठैर्भिद्यते, त्वया भिद्यते, मया भिद्यते** आदि।

कर्मकर्ता का उदाहरण श्रीमद्भागवत के प्रथमस्कन्ध के द्वितीय अध्याय स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है-

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या की
कर्मकर्तृप्रक्रिया पूरी हुई।

अथ लकारार्थ-प्रक्रिया

लृट्-लकारविधायकं विधिसूत्रम्

७६१. अभिज्ञावचने लृट् ३।२।११२।।

स्मृतिबोधिन्युपपदे भूतानद्यतने धातोर्लृट्। लङोऽपवादः। **वस निवासे।** स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः। एवं बुध्यसे, चेतयसे इत्यादिप्रयोगेऽपि।

लृट्-लकारनिषेधकं विधिसूत्रम्

७६२. न यदि ३।२।११३।।

यद्योगे उक्तं न। अभिजानासि कृष्ण यद्वने अभुञ्जमहि।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **लकारार्थप्रक्रिया** का प्रारम्भ होता है। आपको ज्ञात है कि लट् आदि लकार दस हैं। किन-किन अर्थों में कौन-कौन से लकार हों, इसके सम्बन्ध में भ्वादि में दस लकारों के लिए **वर्तमाने लट्, परोक्षे लिट्** आदि से निर्णय दे दिया गया है किन्तु इतना मात्र पूर्ण नहीं है। ये सामान्य अर्थ हैं, अब उनके उत्सर्गापवादरूप अन्य अर्थों का निर्णय करने के लिए इस प्रकरण का आरम्भ किया गया है। इसके लिए **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में केवल चार सूत्र बताये गये हैं, विशेष ज्ञान की अपेक्षा होने पर **अष्टाध्यायी** या **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** का अध्ययन करना चाहिए।

७६१- **अभिज्ञावचने लृट्।** अभिज्ञा स्मृतिः, सा उच्यतेऽनेनेति अभिज्ञावचनम्, तस्मिन्। अभिज्ञावचने सप्तम्यन्तं, लृट् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **भूते** का अधिकार आ रहा है और **अनद्यतने लङ्** से **अनद्यतने** की अनुवृत्ति आती है।

स्मृतिबोधक पद समीप में हो तो भूत अनद्यतन काल में धातु से लृट् लकार होता है।

भूत अनद्यतन में **अनद्यतने लङ्** से लङ् लकार का विधान हुआ है किन्तु **स्मृतिबोधक पद** के समीप में विद्यमान रहने पर **अनद्यतन** भूत में लृट् लकार होता है।

स्मरसि कृष्ण! गोकुले वत्स्यामः। याद है कृष्ण! हम लोग गोकुल में रहते थे। यहाँ पर **स्मृतिबोधकपद** है- **स्मरसि।** अतः इसके योग में भूतानद्यतन काल में भी **अनद्यतने लङ् अभिज्ञावचने लृट्** से लृट् लकार होकर **वत्स्यामः** बनता है। यहाँ **वस निवासे** धातु है। उससे लृट्, मध्यमपुरुष के बहुवचन में **वस्** होकर **स्यतासी लृलुटोः** से स्य, अनिट् धातु होने से इट् के निषेध होने पर धातु के सकार को **सः स्यार्धधातुके** से तकार

लट्-लकारविधायकं विधिसूत्रम्

७६३. लट् स्मे ३।२।११८॥

लिटोऽपवादः। यजति स्म युधिष्ठिरः।

वर्तमानातिदेशसूत्रम्

७६४. वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा ३।३।१३१॥

वर्तमाने ये प्रत्यया उक्तास्ते वर्तमानसामीप्ये भूते भविष्यति च वा स्युः।
कदागतोऽसि। अयमागच्छामि, अयमागमं वा।
कदा गमिष्यसि। एष गच्छामि, गमिष्यामि वा।

....

आदेश होकर **वत्स्यामः** बनता है। इसी तरह **बुध्यसे, चेतयसे अभिजानासि** आदि स्मृतिबोधक पदों के योग में **लृट्** लकार होता है।

७६२- **न यदि**। न अव्ययपदं, यदि सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अभिज्ञावचने लृट्** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है साथ ही **भूते, अनद्यतने, धातोः** का अधिकार है।

यद् शब्द के योग में स्मृतिबोधक पद के समीप रहने पर भी भूतानद्यतन अर्थ में लृट् नहीं होता।

यह सूत्र पूर्वसूत्र का अपवाद है। इस सूत्र से स्मृतिबोधक पद के रहते हुए भी यदि उस वाक्य में **यत्** शब्द का प्रयोग हुआ है तो **लृट्** न होकर **लङ्** ही होता है।

अभिजानासि कृष्ण! यद् वने अभुञ्ज्महि। कृष्ण! क्या तुम्हें याद है कि हम लोग वन में खाते थे। यहाँ पर स्मृतिबोधक पद **अभिजानासि** है। इसके योग में **भुज्** से भूतानद्यतन काल में **अभिज्ञावचने लृट्** से **लृट्** लकार प्राप्त था, तो **यत्** के योग में **न यदि** से उसका निषेध हुआ। अतः लङ् लकार ही हो गया- **अभुञ्ज्महि**। भुज् लङ्, अडागम, महि, श्नम्, अलोप, अनुस्वार, परसवर्ण होकर यह रूप सिद्ध होता है।

७६३- **लट् स्मे**। लट् प्रथमान्तं, स्मे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनद्यतने लङ्** से **अनद्यतने** और **परोक्षे लिट्** से **परोक्षे** की अनुवृत्ति आती है।

स्म शब्द उपपद में हो तो भूतानद्यतन परोक्ष अर्थ में धातु से परे लट् लकार होता है।

परोक्षे लिट् से भूत, अनद्यतन, परोक्ष में **लिट्** लकार की प्राप्ति थी, उसे बाधकर यह लगता है। इस सूत्र के बाद **अपरोक्षे च** भी पढ़ा गया है। उसका अर्थ है- **अपरोक्ष भूत अनद्यतन में धातु से लट् लकार होता है, यदि स्म शब्द उपपद हो तो।** इस तरह से स्म के योग होने पर **परोक्ष** और **अपरोक्ष** दोनों अर्थों में **लट्** लकार का विधान है।

यजति स्म युधिष्ठिरः। युधिष्ठिर यज्ञ करते थे। यहाँ भूत, अनद्यतन और परोक्ष अर्थ है फिर भी **स्म** उपपद के रहते **लट् स्मे** से **लट्** का विधान हुआ। अतः **यजति स्म युधिष्ठिरः** बन गया है। **स्म** के न रहने पर **इयाज युधिष्ठिरः** बनता है। जब **अपरोक्षे च** से **अपरोक्ष** भूत अर्थ में भी **स्म** के योग में **लट्** का विधान होता है तो **एवं स्म पिता ब्रवीति** पिता जी ऐसा कहते थे, आदि वाक्यों में भी **लट्** का प्रयोग हो सकता है।

७६४- **वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा**। समीपम् एव सामीप्यम्, वर्तमानस्य सामीप्यं वर्तमानसामीप्यं,

लिङ्लकारविधायकं विधिसूत्रम्

७६५. हेतुहेतुमतोर्लिङ् ३।३।१५६।।

वा स्यात्। कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात्। कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति।

भविष्यत्येवेष्यते। नेह। हन्तीति पलायते।

विधिनिमन्त्रणेति लिङ्। विधिः प्रेरणं भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम्। यजेत। निमन्त्रणं नियोगकरणम्। आवश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम्। इह भुञ्जीत। आमन्त्रणं कामचारानुज्ञा। इहासीत।

अधीष्टं सत्कारपूर्वको व्यापारः। पुत्रमध्यापयेद्भवान्।

सम्प्रश्नः सम्प्रसारणम्। किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम्।

प्रार्थनं याञ्ना। भो भोजनं लभेय। एवं लोट्।

इति लकारार्थप्रक्रिया।।३२।।

इति तिङन्तम्।

तस्मिन्। वर्तमानेन तुल्यं वर्तमानवत्। वर्तमानसामीप्ये सप्तम्यन्तं, वर्तमानवत् अव्ययपदं, वा अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्।

वर्तमान काल में जो प्रत्यय जिस अर्थ में कहे गये हैं, वे प्रत्यय वर्तमान काल के समीपवर्ती भूत और भविष्यत् काल में भी होते हैं विकल्प से।

वर्तमान काल के समीप **भूत काल** भी हो सकता है और **भविष्यत् काल** भी।

कदागतोऽसि, अयमागच्छामि, अयमागमं वा। यह वर्तमान के समीप भूत काल का उदाहरण है। किसी ने पूछा- कब आये हो? इस तरह से भूतकाल का प्रश्न हुआ तो उत्तर देने वाला व्यक्ति कुछ पहले ही आ चुका है किन्तु वह उत्तर देता है कि **यह आ ही रहा हूँ।** वह वर्तमान काल में उत्तर देता है। इस तरह **वर्तमान के समीप भूत काल में** भी **वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा** से लट् लकार का ही विधान हुआ। यह विधान वैकल्पिक है, अतः एक पक्ष भूत काल का ही लुङ् लकार हुआ- **अयम् आगमम्।**

कदा गमिष्यसि? एष गच्छामि, गमिष्यामि वा। यह वर्तमान के समीप भविष्यत् काल का उदाहरण है। किसी ने पूछा- कब जाओगे? इस तरह से भविष्यत्काल का प्रश्न हुआ तो उत्तर देने वाला व्यक्ति कुछ क्षण बाद जायेगा किन्तु वह उत्तर देता है कि **यह जा ही रहा हूँ।** वह वर्तमान काल में उत्तर देता है। इस तरह **वर्तमान के समीप भविष्यत् काल में** भी **वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा** से लट् लकार का ही विधान हुआ। यह विधान वैकल्पिक है, अतः एक पक्ष में भविष्यत् काल का ही लृट् लकार हुआ- **एष गमिष्यामि।**

७६५- हेतुहेतुमतोर्लिङ्। हेतुरस्यास्तीति हेतुमान्। हेतुश्च हेतुमान् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो हेतुहेतुमन्तौ, तयोर्हेतुमतोः। **विभाषा धातौ सम्भावन०** से **विभाषा** की अनुवृत्ति आती है।

हेतु और हेतुमान् अर्थात् कार्यकारण-भाव अर्थ क्रिया से प्रकट हो तो धातु से लिङ् लकार होता है।

हेतु और हेतुमान् भाव का तात्पर्य कार्यकारणभाव ही समझना चाहिए। जैसे ईंटें होते तो मकान बन जाता। परिश्रम से पढ़े होते तो परीक्षा में उत्तीर्ण होते। इन वाक्यों में यह दीखता है कि यदि कारण हुआ होता तो कार्य भी हो गया होता, हेतु विद्यमान रहता तो हेतुमान् अर्थात् उससे होने वाला कार्य भी सिद्ध हो गया होता आदि। अब इन वाक्यों से यह भी स्पष्ट होता है कि कार्य अभी नहीं हुआ है अर्थात् क्रिया कि सिद्धि नहीं हुई है। इसमें भविष्यत्काल होना चाहिए। जैसे अच्छी वृष्टि अर्थात् वर्षा होगी तो अनाज भी अच्छा होगा। हेतु-हेतुमद्भाव तो भूतकाल और वर्तमान काल में भी होते हैं किन्तु इस सूत्र की प्रवृत्ति में हेतु-हेतुमद्भाव के होते हुए भविष्यत्काल का होना आवश्यक है क्योंकि इस सूत्र में **भविष्यत्येव** यह वार्तिक पठित है।

कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात्। कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति। यदि कृष्ण को नमस्कार करोगे तो सुख प्राप्त करोगे। यहाँ पर सुख प्राप्ति रूप कार्य के लिए कृष्ण का नमन रूप कारण बताया जा रहा है। अतः हेतु **नम्** धातु और **हेतुमान् या** धातु दोनों से **लिङ्** लकार का प्रयोग होकर **नमेत्** और **यायात्** बने। यहाँ पर क्रमशः **नम्** और **या** धातु के **लिङ्** का रूप है। यह कार्य वैकल्पिक है। अतः एक पक्ष में **लृट्** भी होता है- **कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति।**

भविष्यत्येवेष्यते। नेह। **हन्तीति पलायते। हेतुहेतुमतोर्लिङ्** में **भविष्यति** अर्थात् **भविष्यत् काल** में ही, इतना अर्थ जोड़ना चाहिए। फलतः **हन्तीति पलायते** में **हेतुहेतुमद्भाव** अर्थात् **कार्यकारणभाव** के होते हुए भी **लिङ्** नहीं होगा। जैसे **हन्तीति पलायते** वह मारता है, इस लिए दूर भागता है। यहाँ पर कार्यकारणभाव है फिर भी भविष्यत्काल न होने से **लिङ्** न होकर **लट्** ही हुआ।

विधिनिमन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्। यह सूत्र भ्वादि में पढ़ा जा चुका है। यह **विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न, प्रार्थना** इन अर्थों में और आशीर्वाद अर्थ में धातु से लिङ् लकार का विधान करता है। इस सूत्र के विधान में काल अर्थात् समय से कोई मतलब नहीं है।

विधिः प्रेरणं भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम्। यजेत। अपने से छोटे अर्थात् पुत्र, भाई, सेवक आदि को आज्ञा देना **विधि** कहलाता है। जैसे- **तुम पुस्तक दो, बेटे! घर जाओ** आदि।

यजेत। यज्ञ करना चाहिए। यह विधि अर्थ है, अतः **विधिनिमन्त्रणाधीष्ट-सम्प्रश्न-प्रार्थनेषु लिङ्** से लिङ् लकार होकर **यजेत** बना।

निमन्त्रणं नियोगकरणम्। आवश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम्। अवश्य-कर्तव्य में प्रेरणा देने को निमन्त्रण कहते हैं। जैसे- श्राद्ध आदि में दौहित्र अर्थात् अपनी लड़की के लड़के का भोजन अनिवार्य होता है तो वहाँ यह अनिवार्यरूप से भोजनार्थ आना ही है इस प्रकार से प्रेरणा देना ही निमन्त्रण है। **इह भुञ्जीत। भुज्** धातु के लिङ् का रूप है- **भुञ्जीत।**

आमन्त्रणं कामचारानुज्ञा। ऐसी प्रेरणा का नाम **आमन्त्रण** है कि जिसमें प्रेरक तो प्रेरणा देगा किन्तु जिसे प्रेरणा दी जाती है वह उस कार्य को करे या न करे, स्वतन्त्र होता है अर्थात् कामचारिता, अपनी इच्छा पर निर्भर होती है। जैसे- **आप सभी विवाह की पार्टी में आमन्त्रित हैं** इस वाक्य से यह स्पष्ट होता है कि पार्टी में जाने की प्रेरणा मिल रही है

किन्तु हमें अपनी व्यवस्था के अनुसार जाना है। यदि अवकाश है तो जा सकते हैं, नहीं तो न जाने पर भी कोई आपत्ति नहीं है। दूसरा उदाहरण है- **इह आसीत।** यहाँ पर बैठ सकते हो। बैठने वाले की इच्छा और समय हो तो बैठेगा, नहीं तो नहीं भी बैठ सकता है। **आस** धातु से **लिङ्** का रूप है- **आसीत।**

अधीष्टं सत्कारपूर्वको व्यापारः। पुत्रमध्यापयेद्भवान्। किसी बड़े गुरु आदि को सत्कारपूर्वक किसी कार्य को करने की प्रेरणा देना **अधीष्ट** है। जैसे किसी आचार्य से कहा जाय कि- आप मेरे पुत्र को पढ़ायें। **अध्यापयेत्** यह अधि पूर्वक इङ् धातु के लिङ् का रूप है।

सम्प्रश्नं सम्प्रसारणम्। किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम्। किसी बड़े के समीप एक निश्चयार्थ प्रश्न करना **सम्प्रश्न** कहलाता है। जैसे- गुरु जी! या पिता जी! मैं वेद पढ़ूँ या न्यायशास्त्र? यहाँ पर **अधीयीय** यह लिङ् लकार का रूप है।

प्रार्थनं याच्ञा। भो भोजनं लभेय। मांगने का नाम **प्रार्थन** (प्रार्थना) है। जैसे- मैं भोजन चाहता हूँ।

इसी तरह **लोट्** सूत्र से इन्हीं अर्थों में **लोट्** लकार भी होता है।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या की लकारार्थ-प्रक्रिया पूरी हुई।

अथ कृदन्ते कृत्यप्रकरणम्

अधिकारसूत्रम्

७६६. धातोः ३।१।९१॥

आतृतीयाध्यायसमाप्तेर्ये प्रत्ययास्ते धातोः परे स्युः। **कृदतिङि**ति कृत्संज्ञा।

परिभाषासूत्रम्

७६७. वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ३।१।९४॥

अस्मिन् धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात् स्त्र्यधिकारोक्तं विना।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **कृदन्तप्रकरण** प्रारम्भ होता है। धातु से दो प्रकार के प्रत्यय होते हैं- तिङ् और कृत्। तिङ् तो प्रत्याहार है जो तिप् से लेकर महिङ् तक हैं और वे धातुओं से विहित लकारों के स्थान पर होते हैं। कृत्प्रत्यय वे हैं जिनकी **कृदतिङ्** से कृत्संज्ञा होती है, जिसमें अण्, अच्, णमुल्, अनीयर् आदि हैं। धातु से होने वाले प्रत्ययों में तिङ् प्रत्ययों को छोड़कर शेष सारे प्रत्यय कृत् कहलाते हैं। प्रातिपदिक (शब्द) वनाने के लिए सबसे पहले धातुओं से कृत् प्रत्यय किये जाते हैं। कृत् प्रत्यय लगने से वह कृदन्त बन जाता है और उसकी **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो जाती है। कृदन्त के ज्ञान के विना व्याकरण का ज्ञान सम्भव ही नहीं है। कहीं-कहीं भाषा में तिङन्त-क्रिया के विना कृदन्त-क्रिया से ही सारा व्यवहार किया जाता है और संस्कृत साहित्य में कृदन्तों का प्रयोग बहुतायत होता है।

कृदन्त को चार भागों में बाँटा गया है- कृत्य, पूर्वकृदन्त, उणादि और उत्तरकृदन्त। कृत्-संज्ञा के अन्तर्गत कुछ प्रत्ययों की कृत्यसंज्ञा होती है, इसीलिए इस प्रथम प्रकरण को कृत्यप्रकरण कहा जाता है।

७६६- धातोः। धातोः पञ्चम्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार आ रहा है।

तृतीयाध्याय के समाप्ति पर्यन्त जो प्रत्यय होते हैं, वे धातु से परे हों।

इस सूत्र से लेकर अर्थात् इस सूत्र की संख्या **तृतीय अध्याय के प्रथम पाद के** ९१वें सूत्र से लेकर **तृतीयाध्याय की समाप्ति पर्यन्त** अर्थात् **पाणिनीयाष्टाध्यायी** के तृतीयाध्याय के चतुर्थपाद के अन्तिम सूत्र **छन्दस्युभयथा** तक जो भी प्रत्यय हों वे धातु के बाद ही हों, **ऐसा अधिकार यह सूत्र करता है।**

स्मरण रहे कि **कृदतिङ्(३०२)** सूत्र द्वारा धातुओं से होने वाले तिङ्-भिन्न प्रत्ययों की कृत्संज्ञा होती है।

७६७- वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्। समानं रूपं यस्य स सरूपः, न सरूपः असरूपः। न स्त्री अस्त्री, तस्याम्, अस्त्रियाम्। वा अव्ययपदं, असरूपः प्रथमान्तम्, अस्त्रियां सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है और **उत्सर्गस्य अपवादप्रत्ययो बाधकः स्यात्** इन पदों का अध्याहार किया जाता है।

इस धातोः सूत्र के अधिकार में पढ़े गये असमानरूप अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग के विकल्प से बाधक होते हैं किन्तु यह बात स्त्र्यधिकार के प्रत्ययों में लागू नहीं होती।

शास्त्र अर्थात् सूत्र दो प्रकार के होते हैं- उत्सर्ग और अपवाद। जो सामान्यरूप से कार्य का विधान करते हैं, उन्हें **उत्सर्ग** और जो विशेष रूप से कार्य करते हैं, उनको **अपवाद** शास्त्र कहा जाता है। कौमुदी के प्रारम्भ से अभी तक यह नियम चला आ रहा था कि विशेष शास्त्र उत्सर्ग शास्त्र का नित्य से बाधक होता है किन्तु यहाँ आकर यह परिवर्तन हुआ कि उत्सर्ग शास्त्र को अपवाद शास्त्र के द्वारा विकल्प से बाधा जाता है अर्थात् उत्सर्ग शास्त्र भी लगेगा और विशेष शास्त्र भी। तात्पर्य यह है कि उत्सर्ग-सूत्रों विहित सामान्य प्रत्यय भी होंगे और अपवाद सूत्रों से विशेष विधान करके किये जाने वाले प्रत्यय भी होंगे। इसमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उत्सर्ग और अपवाद प्रत्ययों में समानता अर्थात् समानरूप नहीं होना चाहिए। समानरूप होने पर तो उत्सर्ग को विशेष शास्त्र नित्य से ही बाधता है अर्थात् दोनों प्रत्ययों में समानरूप होने पर सामान्य प्रत्यय को बाधकर नित्य से विशेष प्रत्यय हो जाता है। सूत्र में **अस्त्रियाम्** पढ़ा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि यह विकल्प से बाध ने वाला नियम **स्त्रियाम्** सूत्र के अधिकार में होने वाले प्रत्ययों के सम्बन्ध में लागू नहीं होगा।

कुछ उदाहरण देखें- **कृत्य, पूर्वकृदन्त** और **उत्तरकृदन्त** में **धातोः** के अधिकार वाले प्रत्यय होंगे। इन प्रकरणों होने वाले प्रत्ययों में से **तव्यत्तव्यानीयरः** से होने वाले प्रत्यय **तव्यत्, अनीयर्** और **अचो यत्** से होने वाला प्रत्यय **यत्** तथा **ण्वुल्तृचौ** से होने वाले **ण्वुल्** और **तृच्** आदि हैं। अनुबन्धलोप होने पर क्रमशः **तव्य, अनीय, य, वु** और **तृ** बचते हैं। ये प्रत्यय परस्पर असमानरूप वाले हैं अर्थात् एक दूसरे से भिन्न रूप वाले हैं। अतः **तव्यत्** को विकल्प से बाधकर **अनीयर्** और **यत्** होते हैं। इसी तरह **ण्वुल्** प्रत्यय को बाधकर विकल्प से **तृच्** प्रत्यय हो जाता है। यह असमान प्रत्ययों का उदाहरण है।

समानरूप प्रत्ययों में तो नित्य से बाध्यबाधकभाव होता है। जैसे कि **अचो यत्** से होने वाला **यत्** और **ऋहलोर्ण्यत्** से होने वाला **ण्यत्** प्रत्यय होता है। **यत्** में तकार की इत्संज्ञा होकर **य** बचता है और **ण्यत्** में भी **णकार** की **चुटू** से इत्संज्ञा और **तकार** की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होकर **य** ही बचता है। इस तरह दोनों प्रत्ययों में केवल **य** मात्र शेष बचता है। इस तरह दोनों रूपों में समानता है। इस पर प्रश्न यह हो सकता है कि **यत्** और **ण्यत्** में भले ही अनुबन्धलोप के बाद समानता है किन्तु अनुबन्धलोप के पहले तो असमान है ही। अतः समानता अनुबन्धरहित में देखना चाहिए कि अनुबन्धसहित में? इसके उत्तर में यह कहा जाता है- **नानुबन्धकृतमसारूप्यम्।** इस परिभाषा के अनुसार अनुबन्ध अर्थात् इत्संज्ञक वर्णों को मानकर असमानता नहीं माननी चाहिए। **यत्** और **ण्यत्** में अनुबन्धलोप करने के बाद **य** के रूप में समानता है, अर्थात् समानरूप प्रत्यय हो जाते हैं। अतः **यत्** इस सामान्य प्रत्यय को **ण्यत्** यह विशेष प्रत्यय नित्य से बाधता है अर्थात् बाधक **ण्यत्** तो हो जायेगा किन्तु बाध्य **यत्** नहीं होगा।

कृत्यसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

७६८. कृत्याः ३।१।९५॥

ण्वुल्तृचावित्यतः प्राक् कृत्यसंज्ञाः स्युः।

प्रत्ययार्थनिर्धारकं विधिसूत्रम्

७६९. कर्तरि कृत् ३।४।६७॥

कृत्प्रत्ययः कर्तरि स्यात्। इति प्राप्ते-

प्रत्ययार्थनिर्धारकं विधिसूत्रम्

७७०. तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ३।४।७०॥

एते भावकर्मणोरेव स्युः।

....

स्त्रियाम् के अधिकार में यह परिभाषा नहीं लगती। इसलिए **स्त्रियां क्तिन्** ३.३.९४ इस उत्सर्ग का **अ प्रत्ययात्** ३.३.१०२ यह अपवाद नित्य से बाधक होता है। **क्तिन्** और अ प्रत्ययों में असमानता होने पर भी विकल्प से बाध्यबाधकभाव नहीं होता अपितु नित्य से ही अ प्रत्यय **क्तिन्** का बाधक होता है जिससे **चिकीर्षा**, **जिहीर्षा** ऐसे अप्रत्ययान्त ही रूप बनते हैं, न कि क्तिन्प्रत्ययान्त भी। अन्य उदाहरण यथास्थल स्पष्ट हो जायेंगे।

७६८- **कृत्याः**। कृत्याः प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्।

ण्वुल्तृचौ से पहले जितने प्रत्यय कहे गये हैं, वे कृत्यसंज्ञक होते हैं।

यह सूत्र **कृत्यसंज्ञा** का अधिकार करता है इसलिए संज्ञासूत्र मानने में भी कोई आपत्ति नहीं है। इसका अधिकार **ण्वुल्तृचौ** के पहले तक जाता है। उससे पहले के प्रत्ययों की कृत्संज्ञा तो होती है और कृत्यसंज्ञा भी होती है। यहाँ एक संज्ञा का अधिकार न होने से संज्ञाद्वय का समावेश है। कृत्यप्रत्यय सात होते हैं-

तव्यं च तव्यतञ्चैवानीयर्केलिमरौ तथा।
यतं ण्यतं क्यपं चापि कृत्यान् सप्त प्रचक्षते॥

अर्थात् तव्यत्, तव्य, अनीयर्, केलिमर्, यत्, ण्यत् और क्यप् ये सात प्रत्यय कृत्य माने गये हैं।

७६९- **कर्तरि कृत्**। कर्तरि सप्तम्यन्तं, कृत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **कृत् प्रत्यय कर्ता अर्थ में होता है।**

कृत् प्रत्यय सामान्यतया कर्ता अर्थ में ही होते हैं।

कृदन्त में जितने भी प्रत्यय होते हैं, वे सब किसी एक अर्थविशेष को लेकर के ही होते हैं। अतः यह ध्यान देना कि अमुक प्रत्यय किस अर्थ में हो रहा है। जिस-जिस अर्थ में प्रत्यय होते हैं, उन-उन स्थलों पर उस अर्थ का द्योतन करते हैं। कर्ता अर्थ में होना यह सामान्य विधान है। तत्तत् जगहों पर विशेष सूत्रों के द्वारा अन्य अर्थों में भी प्रत्यय किये जायेंगे जो इस सूत्र के बाधक होंगे। इसका बाधक अग्रिम सूत्र है।

७७०- **तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः**। खलोऽर्थः खलर्थः, षष्ठीतत्पुरुषः। कृत्याश्च क्ताश्च खलर्थाश्च तेषामितरतरेद्वन्द्वः कृत्यक्तखलर्थाः। तयोः सप्तम्यन्तम्, एव अव्ययपदं, कृत्यक्तखलर्थाः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

तव्यतादिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७७१. तव्यत्तव्यानीयरः ३।१।९६॥

धातोरेते प्रत्ययाः स्युः। एधितव्यम्, एधनीयं त्वया।

भावे औत्सर्गिकमेकवचनं क्लीबत्वं च। चेतव्यश्चयनीयो वा धर्मस्त्वया। वार्तिकम्- **केलिमर उपसंख्यानम्।** पचेलिमा माषाः। पक्तव्या इत्यर्थः। भिदेलिमाः सरलाः। भेत्तव्या इत्यर्थः। कर्मणि प्रत्ययः।

....

कृत्य, क्त और खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्म अर्थ में ही होते है।

कृत्संज्ञक प्रत्यय के अन्तर्गत आने के कारण कृत्यप्रत्यय भी पूर्वसूत्र से कर्ता अर्थ में प्राप्त हो रहे थे, उसको बाधकर इस सूत्र ने कहा कि कृत्य-प्रत्यय, क्त-प्रत्यय और खलर्थप्रत्यय भाव और कर्म अर्थ में ही हों। क्त प्रत्यय पूर्वकृदन्तप्रकरण में और खलर्थ प्रत्यय उत्तरकृदन्तप्रकरण में आयेंगे। खल् प्रत्यय जिस अर्थ में होता है, उसी अर्थ में होने वाले प्रत्ययों को खलर्थ प्रत्यय कहते हैं।

७७१- तव्यत्तव्यानीयरः। तव्यच्च तव्यश्च अनीयर् च, तेषामितरेतरद्वन्द्वस्तव्यत्तव्यानीयरः। तव्यत्तव्यानीयरः प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च** और **धातोः** इन सूत्रों का अधिकार है।

धातु से तव्यत्, तव्य और अनीयर् प्रत्यय होते हैं।

तव्यत् में तकार की इत्संज्ञा होती है और लोप होकर **तव्य** ही शेष रहता है। एक तव्य तित् है और एक नहीं। तित् करने का फल **तित्स्वरितम्** से स्वरितस्वर का विधान है। अनियर् में रेफ इत्संज्ञक है। कृत्-प्रत्यय यदि शित् हैं तो उनकी **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा होती है और शित् से भिन्न हों तो उनकी **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा होती है। ये तीनों प्रत्यय शित् नहीं हैं, अतः इनकी आर्धधातुकसंज्ञा ही होगी। आर्धधातुक प्रत्यय वलादि हो और धातु अनिट् न हो तो उस वलादि प्रत्यय को **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् का आगम भी होगा।

तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः के नियम से तव्यत्, तव्य और अनीयर् ये अकर्मक धातु से भाव और कर्म अर्थ में हुए हैं। भाव अर्थ में स्वाभाविक रूप से नपुंसकलिङ्ग और एकवचन ही होता है। धातु के अर्थ क्रिया मात्र को **भाव** कहते हैं। भाव न तो स्त्रीलिङ्ग होता है और न ही पुँल्लिङ्ग, अतः स्वाभाविक रूप से नपुंसकलिङ्ग ही होगा। जिस क्रिया में कृत्य प्रत्यय लगा होता है, उसका कर्ता अनुक्त होने के कारण तृतीया विभक्ति वाला हो जाता है।

एधितव्यम्। अकर्मक **एध** वृद्धौ धातु को आपने भ्वादिप्रकरण में पढ़ा था। अनुबन्धलोप होकर एध् बचा हैं। उससे **तव्यत्तव्यानीयरः** से भाव अर्थ में तव्यत् या तव्य प्रत्यय हुए। **तव्यत्** होने के पक्ष में तकार की इत्संज्ञा होकर लोप हुआ, **तव्य** बचा। **एध्+तव्य** बना। **तव्य** की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा हुई और धातु अनिट् नहीं है, अतः **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् का आगम हुआ। टकार की इत्संज्ञा और लोप, टित् होने के कारण **तव्य** के आदि में बैठा, **एध्+इ+तव्य** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **एधितव्य** बना। **तव्य** कृत् प्रत्यय है, अतः कृदन्त शब्द हुआ। कृदन्त होने के कारण इसकी **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और सु विभक्ति आई। नपुंसक होने के कारण सु के स्थान पर

अतोऽम् से अम् आदेश और **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर ज्ञानम् की तरह **एधितव्यम्** बना। भाव अर्थ में प्रत्यय होने के कारण नपुंसकलिङ्ग तथा एकवचन ही होगा। यह एक क्रिया का ही रूप हुआ। एध् धातु का **वृद्धि** अर्थ होने से तो **एधितव्यम्** का अर्थ **बढ़ना चाहिए** ऐसा हुआ। इसका कर्ता अनुक्त होने से हमेशा तृतीयान्त ही होगा। कर्ता प्रथमपुरुष वाला, मध्यमपुरुष वाला या उत्तमपुरुष वाला कोई भी हो सकता है और एकवचन, द्विवचन या बहुवचन किसी भी वचन का हो सकता है किन्तु क्रियापद एकवचन और नपुंसकलिङ्ग वाला एधितव्यम् ही रहेगा। जैसे- **तेन एधितव्यम्, ताभ्याम् एधितव्यम्, तैः एधितव्यम्। त्वया एधितव्यम्, युवाभ्याम् एधितव्यम्, युष्माभिः एधितव्यम्, मया एधितव्यम्, आवाभ्याम् एधितव्यम्, अस्माभिः एधितव्यम्।** इसी प्रकार से सभी भावार्थक कृत्यप्रत्ययों के विषय में समझना चाहिए।

एधनीयम्। एध् धातु से **तव्यत्तव्यानीयरः** से अनीयर् प्रत्यय हुआ। **एध्+अनीयर्** हुआ। रकार का लोप करके **एध्+अनीय** बना। अनीय की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा हुई किन्तु अनीय वलादि नहीं है, अतः **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् का आगम नहीं हुआ। **एध्+अनीय** में वर्णसम्मेलन हुआ- **एधनीय** बना। अनीय कृत् प्रत्यय है, अतः कृदन्त के कारण इसकी **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और सु विभक्ति आई। नपुंसक होने के कारण सु के स्थान पर **अतोऽम्** से अम् आदेश और **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर ज्ञानम् की तरह **एधनीयम्** बना। भाव में प्रत्यय होने के कारण नपुंसक और एकवचन मात्र होगा। यह भी एक क्रिया का ही रूप हुआ। एध् धातु के वृद्धि अर्थ होने से **एधनीयम्** का अर्थ **बढ़ना चाहिए** हुआ। इसका भी कर्ता अनुक्त होने के कारण तृतीयान्त ही होगा। कर्ता प्रथमपुरुष वाला, मध्यमपुरुष वाला या उत्तमपुरुष वाला कोई भी हो सकता है और एकवचन, द्विवचन या बहुवचन कोई भी हो सकता है किन्तु क्रियापद **एधितव्यम्** एकवचन और नपुंसकलिङ्ग ही रहेगा।

चेतव्यः, चयनीयः। सकर्मक **चिञ्** (चयने) धातु का **संग्रह करना** अर्थ है। ञकार इत्संज्ञक है, उससे तव्य हुआ, **चि+तव्य** बना। तव्य की आर्धधातुकसंज्ञा और चि के इकार को **सार्वधातुकार्धकयोः** से गुण होकर **चे** बन गया, **चेतव्य** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सु विभक्ति, अनुबन्धलोप और रुत्वविसर्ग करने पर **चेतव्यः** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार अनीयर् करने पर **चि+अनीय** में चि को गुण चे, अय् आदेश करने पर **च्+अय्+अनीय** बना। वर्णसम्मेलन होकर चयनीय बना, उसकी प्रातिपदिकसंज्ञा और सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करने पर **चयनीयः** बना। यहाँ पर कर्म अर्थ में प्रत्यय हुआ है। अतः **चेतव्यः** आदि कर्म के विशेषण होते हैं अर्थात् कर्म जिस लिङ्ग, जिस विभक्ति और जिस वचन में है, ये भी वैसे ही होते हैं। इस लिए इस **त्वया धर्मः चेतव्यः** में धर्मशब्द कर्मसंज्ञक है और वह पुँल्लिङ्गी प्रथमा एकवचनान्त है। अतः **चेतव्यः** और **चयनीयः** भी पुँल्लिङ्ग प्रथमा एकवचनान्त बन गये। भाव अर्थ में प्रत्यय होगा तो नपुंसकलिङ्ग और एकवचन ही होगा तथा कर्म अर्थ में प्रत्यय होगा तो कर्म जिस लिङ्ग, विभक्ति और वचन का होगा कृत्यप्रत्ययान्त क्रियापद भी उसी लिङ्ग, विभक्ति और वचन का ही होगा। जैसे- तेन पुष्पं चेतव्यम्, ताभ्यां पुष्पं चेतव्यम्. तैः पुष्पं चेतव्यम्, तेन पुष्पे चेतव्ये, तेन पुष्पाणि चेतव्यानि, मया पुष्पाणि चेतव्यानि, मया लेखः पठितव्यः, युष्माभिः लेखः पठितव्यः, त्वया लेखाः पठितव्याः, सर्वैः पत्रे पठितव्ये आदि।

कृत्यल्युट्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७७२. कृत्यल्युटो बहुलम् ३।३।११३॥

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति॥

स्नात्यनेनेति स्नानीयं चूर्णम्। दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः।

कृदन्त होने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा होती है और सु आदि सभी विभक्तियाँ आती हैं। अतः कर्म अर्थ में प्रत्यय होने पर सातों विभक्तियों के तीनों वचनों में रूप बनते हैं।

जैसे- चेतव्यः, चेतव्यौ, चेतव्याः। चेतव्यम्, चेतव्यौ, चेतव्यान्। चेतव्येन, चेतव्याभ्याम्, चेतव्यैः। चेतव्याय, चेतव्याभ्याम्, चेतव्येभ्यः। चेतव्यात्, चेतव्याभ्याम्, चेतव्येभ्यः। चेतव्यस्य, चेतव्ययोः, चेतव्यानाम्। चेतव्ये, चेतव्ययोः, चेतव्येषु। हे चेतव्य!, हे चेतव्यौ! हे चेतव्याः! इसी प्रकार चेतव्यो धर्मः, चेतव्यौ धर्मौ, चेतव्याः धर्माः आदि।

केलिमर उपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। **धातुओं से केलिमर् प्रत्यय भी होता है।** अर्थात् **तव्यत्तव्यानीयरः** इस सूत्र में **केलिमर् प्रत्यय** भी जोड़ देना चाहिए। यह प्रत्यय भी सभी धातुओं से हो सकता है। भाष्यकार ने इस प्रत्यय को कर्म अर्थ में माना है। **केलिमर्** में ककार की **लशक्वतद्धिते** से और रकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होकर **एलिम** शेष रहता है। कित् होने के कारण गुणनिषेध हो जाता है।

पचेलिमा माषाः, पक्तव्या इत्यर्थः। (पकाने योग्य ऊड़द) **पच्(डुपचष् पाके)** धातु से **केलिमर उपसंख्यानम्** इस वार्तिक से **केलिमर्** प्रत्यय होकर अनुबन्धलोप होने पर **पच्+एलिम** बना। आगे **माषाः** यह विशेष्यपद है और उसमें पुँल्लिङ्ग, प्रथमा का बहुवचन है, अतः विशेषण **पचेलिम** शब्द से भी पुँल्लिङ्ग में प्रथमा का बहुवचन जस् विभक्ति आई और **रामाः** की तरह **पचेलिमाः** बन गया। **पचेलिमास्+माषाः** में सकार को रुत्व, रेफ को यत्व और यकार का लोप आदि कार्य होकर **पचेलिमा माषा** बन जाता है।

भिदेलिमाः सरलाः, भेत्तव्या इत्यर्थः। (सरल, सीधे (पेड़ आदि) काटने योग्य हैं) **भिद् (भिदिर् द्वैधीकरणे)** धातु से **केलिमर्** प्रत्यय करके अनुबन्धलोप करने पर **भिद्+एलिम** बना। **पुगन्तलघूपधस्य च** से प्राप्त गुण का कित् होने के कारण **क्ङिति च** से निषेध हुआ। वर्णसम्मेलन होकर **भिदेलिम** बना। **सरलाः** इस विशेष्यपद के कारण इसमें भी पुँल्लिङ्ग में प्रथमा का बहुवचन आकर **भिदेलिमाः** सिद्ध हुआ।

७७२- कृत्यल्युटो बहुलम्। कृत्यल्युटः प्रथमान्तं, बहुलं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **कृत्यसंज्ञकाः प्रत्यया ल्युट् च बहुलेन भवन्ति**

कृत्यसंज्ञक प्रत्यय और ल्युट् प्रत्यय बहुल से होते हैं।

बहुल का अर्थ **अधिकतर नहीं है**। यह पारिभाषिक शब्द है। इसकी परिभाषा बताने के लिए **वैयाकरणजगत्** में **क्वचित्प्रवृत्तिः** यह श्लोक प्रसिद्ध है। बहुल के चार अर्थ हैं- पहला- **क्वचित्प्रवृत्तिः**- ऐसा सूत्र जहाँ लगना चाहिए वहाँ तो लगता ही है और जहाँ लगने की योग्यता नहीं है, वहाँ भी लग जाता है। दूसरा- **क्वचित् अप्रवृत्तिः**- कहीं-कहीं लगने योग्य स्थानों पर भी नहीं लगता। तीसरा- **क्वचिद्विभाषा**- कहीं-कहीं विकल्प से होता है और चौथा- **क्वचिद् अन्यद् एव**- कहीं कुछ और ही भी होता है। और ही होता है का तात्पर्य यह है कि

यत्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७७३. अचो यत् ३।१।९७॥

अजन्ताद्धातोर्यत् स्यात्। चेयम्।

ईदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

७७४. ईद्यति ६।४।६५॥

यति परे आत ईत्स्यात्। देयम्। ग्लेयम्।

....

निर्धारित अर्थ, निर्धारित योग्यता के अतिरिक्त भी कुछ और ही विधान होता है। जैसे- **स्नानीयम्।** स्नान्ति अनेन (इसके द्वारा स्नान करते हैं, उबटन चूर्ण) इस विग्रह में अनेन में तृतीया है, वह करण अर्थ में है। कृत्य प्रत्यय तो भाव या कर्म अर्थ में होना चाहिए किन्तु बहुल होने के कारण **क्वचिदन्यदेव** अर्थात् कुछ और ही हुआ। तात्पर्य करण अर्थ में कृत्य-प्रत्यय का विधान कर दिया। इसी प्रकार **दानीयः** में दीयते अस्मै (जिसे दान दिया जाय) में सम्प्रदान अर्थ (चतुर्थी) में कृत्य-प्रत्यय का विधान कर दिया। यही **क्वचिदन्यदेव** है। इसी प्रकार से ल्युट् प्रत्यय के सम्बन्ध में समझना चाहिए। **स्नानीयम्** में स्ना धातु से अनीयर्, **स्ना+अनीय,** सवर्णदीर्घ करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप करके **स्नानीयम्** बना। चूर्ण नपुंसक लिङ्ग और एकवचनान्त होने के कारण यह भी नपुंसक लिङ्गी और एकवचनान्त हुआ।

दानीयः। दीयते अस्मै इस विग्रह में **कृत्यल्युटो बहुलम्** से बहुल से कृत्य-प्रत्यय अर्थात् अनीयर् प्रत्यय हुआ, **दा+अनीय** बना। सवर्णदीर्घ करके **दानीय** बना। सु, रुत्वविसर्ग हुआ, **दानीयः।** विप्रः पुँल्लिङ्ग और एकवचन का होने के कारण **दानीयः** भी पुँल्लिङ्ग और एकवचन का ही हुआ।

७७३- **अचो यत्।** अचः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** इन तीनों सूत्रों का अधिकार है।

अच् प्रत्याहार के वर्ण आदि में हों ऐसे धातुओं से यत् प्रत्यय होता है।

तकार की इत्संज्ञा होती है और य ही बचता है। यह भी कृत् और कृत्य दोनों ही है तथा भाव और कर्म अर्थ में ही हुआ है।

चेयम्। संग्रह करना, चयन करना अर्थ वाला चि धातु है। उससे **अचो यत्** से यत् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप होकर **चि+य** बना। य की आर्धधातुकसंज्ञा और चि के इकार की सार्वधातुकसंज्ञा, गुण करके **चेय** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप करके **चेयम्** सिद्ध हुआ। चेयम्=**संग्रह करने योग्य।**

जेयम्। जीतना अर्थ वाला जि धातु है। उससे **अचो यत्** से यत् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप होकर **जि+य** बना। य की आर्धधातुकसंज्ञा और जि के इकार को सार्वधातुक गुण करके **चेय** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप करके **जेयम्** सिद्ध हुआ। **जेयम्=जीतने योग्य।** अब इसी प्रकार निम्नलिखित धातुओं से निम्नानुसार रूप बनाइये।

नी-नेयम् (ले जाने योग्य)। **क्षि-क्षेयम्** (क्षीण होने योग्य) **आ+श्रि-आश्रेयम्** (आश्रय लेने योग्य) **श्रु-श्रव्यम्,** गुण होकर ओकार और **वान्तो यि प्रत्यये** से अव् आदेश। (सुनने योग्य)।

यत्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७७५. पोरदुपधात् ३।१।९८।।

पवर्गान्तादुपधाद्यत् स्यात्। ण्यतोऽपवादः। शप्यम्। लभ्यम्।

क्यप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७७६. एति-स्तु-शास्-वृ-दृ-जुषः क्यप् ३।१।१०९।।

एभ्यः क्यप् स्यात्।

....

७७४- **ईद्यति।** ईत् प्रथमान्तं, यति सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **आतो लोप इटि च** से **आतः** की अनुवृत्ति आती है।

यत्-प्रत्यय के परे होने पर धातु के अन्त में विद्यमान आकार के स्थान पर ईकार आदेश होता है।

देयम्। दान देने के अर्थ में दा धातु है, उससे **अचो यत्** से यत् प्रत्यय हुआ, तकार की इत्संज्ञा और लोप करके दा+य बना। **ईद्यति** से दा के आकार के स्थान पर ईकार आदेश हुआ, दी+य बना। य को आर्धधातुक मानकर दी में ईकार को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण, देय बना। देय की प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अमादेश, पूर्वरूप करके **देयम्** बना। **देयम्-** देने योग्य।

पेयम्। पीने के अर्थ में पा-धातु है, उससे देयम् की तरह पेयम् बनाइये। इसी प्रकार से ज्ञा से ज्ञेयम्, मा से मेयम्, स्था से स्थेयम्, गा से गेयम्, ध्या से ध्येयम्, घ्रा से घ्रेयम्, धा से धेयम्, हा से हेयम् भी बना सकते हैं।

७७५- **पोरदुपधात्।** अत् उपधायां यस्य स अदुपधः, तस्माद् अदुपधात्। पोः पञ्चम्यन्तम्, अदुपधात् पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। इस सूत्र में **अचो यत्** से **यत्** की अनुवृत्ति आती है।

पवर्ग अन्त में हो अथवा ह्रस्व अकार उपधा में हो, ऐसे धातु से यत् प्रत्यय होता है।

यह **ऋहलोर्ण्यत्** का अपवादसूत्र है।

शप्यम्। शप आक्रोशे, शप् धातु से **ऋहलोर्ण्यत्** से ण्यत् प्राप्त था, शप् पवर्गान्त भी है और अदुपध भी है, अतः उसे बाधकर **पोरदुपधात्** से यत् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **शप्य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अमादेश, पूर्वरूप होने पर **शप्यम्।**

लभ्यम्। प्राप्त्यर्थक डुलभष् धातु से अनुबन्धलोप होने पर लभ् बचा है, उससे यत् प्रत्यय करके **शप्यम्** की तरह **लभ्यम्** बनाइये। इसी तरह रम् से **रम्यम्, आ+रभ्** से **आरभ्यम्**, गम् से गम्यम्, तप् से तप्यम्, जप् से जप्यम्, नम् से नम्यम् आदि भी बनाइये।

७७६- **एति-स्तु-शास्-वृ-दृ-जुषः क्यप्।** एतिश्च स्तुश्च शाश्च वृश्च दृश्च जुष्च तेषां समाहारद्वन्द्व एतिस्तुशास्वृदृजुष्, तस्मात्। एति-स्तु-शास्-वृ-दृ-जुषः पञ्चम्यन्तं, क्यप् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

इण्, स्तु, शास्, वृ, दृ और जुष् इन धातुओं से क्यप् प्रत्यय होता है।

क्यप् में ककार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा और पकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और दोनों का **तस्य लोपः** से लोप होकर केवल य बचता है। पित् करने का फल

तुगागमविधायकं विधिसूत्रम्

७७७. ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ६।१।७१॥

इत्यः। स्तुत्यः। **शासु अनुशिष्टौ।**

इदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

७७८. शास इदङ्हलोः ६।४।३४॥

शास उपधाया इत्स्यादङि हलादौ क्ङिति।

शिष्यः। वृत्यः। आदृत्यः। जुष्यः।

वैकल्पिकक्यब्विधायकं विधिसूत्रम्

७७९. मृजेर्विभाषा ३।१।११३॥

मृजेः क्यब्वा। मृज्यः।

....

ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् से तुक् का आगम है और कित् करने का फल **क्ङिति च** से गुण का निषेध करना है।

७७७- **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्।** ह्रस्वस्य षष्ठ्यन्तं, पिति सप्तम्यन्तं, कृति सप्तम्यन्तं, तुक् प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **पिति कृति परे ह्रस्वस्य तुगागमो भवति।**

पित् कृत् के परे होने पर ह्रस्व वर्ण को तुक् का आगम होता है।

तुक् में उकार और ककार की इत्संज्ञा होती है। त् बचता है। कित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से अन्तावयव होकर तकार बैठेगा।

इत्यः। इण् गतौ। गत्यर्थक इ धातु से **अचो यत्** से यत् प्रत्यय की प्राप्ति थी, उसे बाधकर **एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्** से क्यप् हुआ, अनुबन्धलोप हुआ, **इ+य** में **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्** से तुक् आगम हुआ, अनुबन्धलोप होकर कित् होने के कारण ह्रस्व वर्ण इ के अन्तावयव होकर के बैठा, इत्य बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्वविसर्ग करके **इत्यः** बना। यदि यत् होता तो तुक् न हो पाता और गुण होकर अय् आदेश होकर **अय्यः** ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता।

स्तुत्यः। ष्टुञ्, स्तु धातु से भी इसी तरह क्यप्, तुक्, सु, रुत्वविसर्ग करके **स्तुत्यः** बनाइये।

७७८- **शास इदङ्हलोः**। अङ् च हल् च अङ्हलौ, तयोरङ्हलोः। शासः षष्ठ्यन्ताम्, इत् प्रथमान्तम्, अङ्हलोः सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अनिदितां हल उपधाया क्ङिति** से उपधायाः और **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

अङ् या हलादि कित् और ङित् परे हो तो शास् धातु की उपधा के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश होता है।

शिष्यः। (शासु अनुशिष्टौ) **शास्** धातु से **एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्** से **क्यप्** हुआ। **शास्+य** में **शास इदङ्हलोः** से शास् के आकार को इकार आदेश हुआ और इकार से परे सकार को **शासिवसिघसीनां च** से षत्व होकर **शिष्य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुविभक्ति, रुत्वविसर्ग होकर **शिष्यः** सिद्ध हुआ।

आगे क्यप् और तुक् करके वृ से **वृत्यः**, आ+दृ से **आदृत्यः** बनते हैं। जुष् से केवल क्यप् होकर **जुष्यः** बनता है।

ण्यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७८०. ऋहलोर्ण्यत् ३।१।१२४॥

ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोर्ण्यत्। कार्यम्। हार्यम्। धार्यम्।

कुत्वविधायकं विधिसूत्रम्

७८१. चजोः कु घिण्ण्यतोः ७।३।५२॥

चजोः कुत्वं स्याद् घिति ण्यति च परे।

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

७८२. मृजेर्वृद्धिः ७।२।११४॥

मृजेरिको वृद्धिः सार्वधातुकार्धधातुकयोः। मार्ग्यः।

....

७७९- **मृजेर्विभाषा**। मृजेः पञ्चम्यन्तं, विभाषा प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्** से **क्यप्** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

मृज् धातु से क्यप् प्रत्यय विकल्प से होता है।

मृज्यः। मृज् से विकल्प से क्यप् होकर कित् होने के कारण लघूपधगुण नहीं हुआ- **मृज्यः**। क्यप् न होने के पक्ष में **ऋहलोर्ण्यत्** से ण्यत् होकर **मृजेर्वृद्धिः** से वृद्धि और **चजोः कु घिण्ण्यतोः** से जकार को कुत्व होकर **मार्ग्यः** बनता है।

७८०- **ऋहलोर्ण्यत्**। ऋहलोः पञ्चम्यर्थे षष्ठी, ण्यत् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

ऋवर्णान्त और हलन्त धातुओं से ण्यत् प्रत्यय होता है।

णकार और तकार की इत्संज्ञा होती है। णित् का फल वृद्धि आदि है।

कार्यम्। डुकृञ् करणे, कृ-धातु से **ऋहलोर्ण्यत्** से ण्यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **कृ+य** में य के णित् होने के कारण **अचो ञ्णिति** से रपर-सहित आर्-वृद्धि, **क्+आर्+य**, वर्णसम्मेलन, **कार्य**, प्रातिपदिकसंज्ञा, सु विभक्ति, अमादेश, पूर्वरूप करके **कार्यम्** सिद्ध हुआ।

हार्यम्। धार्यम्। (हृञ् हरणे) हृ धातु तथा (धृञ् धारणे) धृ धातु से इसी प्रकार ण्यत्, वृद्धि, सु, अम्, पूर्वरूप करके **हार्यम्** और **धार्यम्** बनाइये।

७८१- **चजोः कुः घिण्ण्यतोः**। चश्च ज् च चजौ, तयोश्चजोः। घ् इद् यस्य स घित्(बहुव्रीहिः) घिच्च ण्यच्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो घिण्ण्यतौ, तयोर्घिण्ण्यतोः। चजोः षष्ठ्यन्तं, कु लुप्तप्रथमाकं, घिण्ण्यतोः सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

घित् या ण्यत् के परे होने पर चकार और जकार के स्थान पर कवर्ग आदेश होता है।

७८२- **मृजेर्वृद्धिः**। मृजेः षष्ठ्यन्तं, वृद्धिः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इको गुणवृद्धी** से **इकः** यह षष्ठ्यन्त पद उपस्थित होता है।

सार्वधातुक और आर्धधातुक के परे होने पर मृज् के इक् को गुण होता है।

यह सातवें अध्याय का सूत्र है और इस सूत्र में किस के परे होने पर वृद्धि होती है, यह नहीं बताया गया है किन्तु **धातोः कार्यमुच्यमानं तत्प्रत्यये भवति** अर्थात् यदि धातु को कोई कार्य होता है तो वह या तो सार्वधातुक प्रत्यय के परे होगा या तो आर्धधातुक प्रत्यय के परे होगा।

निपातनार्थं विधिसूत्रम्

७८३. भोज्यं भक्ष्ये ७।३।६९।।

भोग्यमन्यत्।

इति कृदन्ते कृत्यप्रक्रिया।।३३।।

....

सार्वधातुक या आर्धधातुक के परे होने पर मृज् के इक् की वृद्धि होगी।

मार्ग्यः। मृज् से क्यप् न होने के पक्ष में **ऋहलोर्ण्यत्** से ण्यत् हुआ और **चजोः कु घिण्ण्यतोः** से जकार को कुत्व होकर गकार हुआ और **मृजेर्वृद्धिः** से उपधाभूत ऋकार को वृद्धि होकर **मार्ग्य** बना। विभक्तिकार्य होकर **मार्ग्यः** सिद्ध हुआ।

७८३- **भोज्यं भक्ष्ये**। भोज्यं प्रथमान्तं, भक्ष्ये सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

भक्ष्य अर्थात् खाद्य अर्थ हो तो भुज् धातु से भोज्य का निपातन होता है।

(भुज पालनाभ्यवहारयोः) भुज् के दो अर्थ हैं, पालन और खाना। दोनों अर्थों में से ण्यत् होकर जकार को कुत्व प्राप्त था। **भोज्यं भक्ष्ये** से भक्ष्य अर्थ में कुत्व के अभाव का निपातन किया गया अर्थात् भुज् धातु से ण्यत् होने पर **भक्ष्य** अर्थ में कुत्व का अभाव होकर **भोज्यम्** बनता है और **पालन** अर्थ में कुत्व होकर **भोग्यम्** बनता है।

भोज्यम्। भुज पालनाभ्यवहारयोः। भुज् से ण्यत्, अनुबन्धलोप, उपधागुण करके **भोज्य** बना और स्वादिकार्य करके **भोज्यम्** सिद्ध हो जाता है।

सभी धातुओं से तव्यत्, अनीयर् होते हैं। ये असमान रूप वाले होने से किसी के नित्य से बाधक नहीं होते हैं। क्यप्, यत्, ण्यत् आदि सरूप प्रत्यय होने से आपस में एक दूसरे के नित्य से बाधक होते हैं। जहाँ क्यप् हुआ वहाँ ण्यत् नहीं हो सकता और जहाँ ण्यत् हुआ वहाँ यत् नहीं हो सकता किन्तु तव्यत्, अनीयर के बाद भी क्यप्, या ण्यत् अथवा यत् हो सकते हैं। जैसे- पठितव्यम्, पठनीयनम्, पाठ्यम्। गन्तव्यम्, गमनीयम्, गम्यम्। कर्तव्यम्, करणीयम्, कार्यम्। कथितव्यम्, कथनीयम्, कथ्यम्। खादितव्यम्, खादनीयम्, खाद्यम्।

परीक्षा

१- तिङन्त और कृदन्त में अन्तर बताइये। ५

२- तिङन्तप्रकरण की किन्हीं पन्द्रह धातुओं के तव्यत् और अनीयर् प्रत्यय लगाकर रूप बनाइये। १५

३- कृत्प्रत्यय करने वाले सूत्रों मे किन-किन सूत्रों का अधिकार रहता है? ५

४- कृत्यप्रक्रिया के **वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्** और **कृत्यलुटो बहुलम्** इन दो सूत्रों की व्याख्या करें। २०

५- **ऋहलोर्ण्यत्** और **अचो यत्** में बाध्यबाधक भाव स्पष्ट करें। ५

**श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का
कृदन्त-कृत्यप्रकरण पूर्ण हुआ।**

अथ पूर्वकृदन्तम्

ण्वुल्तृच्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७८४. ण्वुल्तृचौ ३।१।१३३॥

धातोरेतौ स्तः। **कर्तरि कृदि**ति कर्त्रर्थे।

अनाकावादेशविधायकं विधिसूत्रम्

७८५. युवोरनाकौ ७।१।१॥

यु-वु-एतयोरनाकौ स्तः। कारकः। कर्ता।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **पूर्वकृदन्तप्रकरण** प्रारम्भ होता है। कृत्यप्रकरण के बाद कृदन्त का यह दूसरा प्रकरण है। इस प्रकरण में भी **धातोः**, **प्रत्यय** और **परश्च** इन तीन सूत्रों का अधिकार है। जो भी प्रत्यय होंगे, वे सब धातु से परे ही विहित होंगे। कृदन्त की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा होती है और उसके बाद सु, औ, जस् आदि विभक्तियाँ भी आती हैं तथा सातों विभक्तियों में रूप बनते हैं। यदि शब्द विशेषण है तो विशेष्य के अनुसार लिङ्ग, विभक्ति और वचन होते हैं। कहीं-कहीं किसी प्रत्यय के लगने के बाद कोई शब्द एक निश्चित लिङ्ग वाला भी होता है। जैसे **प्रच्छ्** और **विच्छ्** धातुओं से **नङ्** प्रत्यय होने पर **प्रश्न** और **विश्न** ये शब्द नित्य पुँल्लिङ्गी ही होते हैं। इस प्रकरण के प्रत्यय धातु से विहित होने के कारण शित् होंगे तो सार्वधातुकसंज्ञक अन्यथा **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञक होंगे। वलादि-आर्धधातुक होने पर यदि धातु सेट् है तो इट् होगा और अनिट् है तो इट् नहीं होगा। इस प्रकरण में सामान्यतया **कर्तरि कृत्** से कर्ता अर्थ में प्रत्यय किये गये हैं और जहाँ अर्थ बदल जाता है वहाँ सूत्रों से अर्थनिर्देश किया है। तो आइये, इस प्रकरण में प्रवेश करते हैं।

७८४- **ण्वुल्तृचौ**। ण्वुल् च तृच् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः। ण्वुल्तृचौ प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **धातोः**, **प्रत्ययः**, **परश्च** इन तीनों सूत्रों का अधिकार है।

धातुमात्र से ण्वुल् और तृच् प्रत्यय होते हैं।

ये प्रत्यय **कर्तरि कृत्** के अनुसार कर्ता अर्थ में ही होंगे। ण्वुल् में णकार की **चुटू** से तथा लकार की **हलन्त्यम्** से एवं तृच् में चकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। इत्संज्ञा का फल लोप करना है। प्रत्यय, आगम और आदेशों में इस प्रकार के वर्णों की जो इत्संज्ञा और लोप रूप कार्य करते हैं, उस कार्य को संक्षेप में अनुबन्धलोप कहते हैं। आगे सर्वत्र अनुबन्धलोप से यही समझना चाहिए।

७८५- **युवोरनाकौ।** युश्च वुश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः, युवुः, सौत्रं पुंस्त्वं, तस्य युवोः। युवोः षष्ठ्यन्तम्, अनाकौ प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

यु और वु के स्थान पर क्रमशः अन और अक आदेश होते हैं।

ये दोनों आदेश अदन्त हैं। **अन** और **अक** ये दोनों ही अनेकाल् हैं, अतः **अनेकाल्शित् सर्वस्य** के द्वारा सर्वादेश होते हैं।

कारकः। करोतीति। करने वाला। डुकृञ् करणे। कृ धातु से **ण्वुल्तृचौ** से ण्वुल् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, वु बचा, **कृ+वु** बना। वु के स्थान पर **युवोरनाकौ** से अकादेश हुआ। **कृ+अक** बना। अक की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा हुई किन्तु यहाँ आर्धधातुकसंज्ञा का फल नहीं है, अन्य कतिपय प्रयोगों में होता है। ण्वुल् प्रत्यय णित् है। स्थानिवद्-भाव से णित्व अक में भी आ गया। अतः **अचो ञ्णिति** से कृ को **उरण् रपरः** की सहायता से आर्-वृद्धि हुई, **क्+आर्+अक** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **कारक** ऐसा अकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्द बना। कारक की प्रातिपदिकसंज्ञा और सु प्रत्यय आने के बाद रुत्वविसर्ग करके रामः की तरह **कारकः** भी सिद्ध हुआ। अब कारक-शब्द के सातों विभक्ति के रूपों को देखते हैं-

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कारकः	कारकौ	कारकाः
द्वितीया	कारकम्	कारकौ	कारकान्
तृतीया	कारकेण	कारकाभ्याम्	कारकैः
चतुर्थी	कारकाय	कारकाभ्याम्	कारकेभ्यः
पञ्चमी	कारकात्-द्	कारकाभ्याम्	कारकेभ्यः
षष्ठी	कारकस्य	कारकयोः	कारकाणाम्
सप्तमी	कारके	कारकयोः	कारकेषु
सम्बोधन	हे कारक!	हे कारकौ!	हे कारकाः!

स्त्रीलिङ्ग में टाप् और इत्व करके **कारिका** बनता है और उसके रूप रमा शब्द की तरह बनते हैं। जैसे- **कारिका, कारिके, कारिकाः, कारिकाम्, कारिके, कारिकाः** आदि।

नपुंसकलिङ्ग में ज्ञानशब्द की तरह रूप चलते हैं। जैसे- **कारकम्, कारके, कारकाणि** आदि।

कर्ता। करोतीति कर्ता। कृ-धातु से ही **ण्वुल्तृचौ** से तृच् प्रत्यय करके चकार की इत्संज्ञा और लोप करके तृ शेष बचा। तृ की आर्धधातुकसंज्ञा हुई और कृ का **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से अर्-गुण हुआ, **क्+अर्+तृ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ तो **कर्तृ** ऐसा ऋकारान्त शब्द बना। कर्तृ की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और सु विभक्ति आई। इसके बाद ऋकारान्त धातृ-शब्द की तरह ऋकार के स्थान पर **ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च** से अनङ् आदेश, अनुबन्धलोप, **कर्त्+अन्+स्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **कर्तन् स्** बना। त के अकार की **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** से उपधासंज्ञा करके **अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम्** से दीर्घ हुआ, **कर्तान् स्** बना। **अपृक्त एकाल् प्रत्ययः** से सकार की अपृक्तसंज्ञा करके **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से उसका लोप हुआ, **कर्तान्** बना। नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ, **कर्ता** सिद्ध हुआ।

इस तरह कर्तृ-शब्द के रूप धातृ-शब्द की तरह से बनते हैं। अतः धातृ-शब्द की प्रक्रिया का स्मरण करें, सारे रूप अपने आप बना लेंगे। हम यहाँ पर कर्तृ के सातों विभक्तियों के रूप दे रहे हैं किन्तु आगे सिद्ध किये जाने वाले सभी शब्दों के रूप नहीं दिये जायेंगे, केवल संकेत मात्र किया जायेगा कि इस शब्द के रूप अमुक शब्द की तरह होते हैं। उसके अनुसार आपको अपने आप प्रक्रिया करनी पड़ेगी। अतः सुबन्तप्रक्रिया को आप एक बार पुनः पढ़ लें, समझ लें तो आपको कठिनाई नहीं आयेगी।

कर्तृ-शब्द के पुँल्लिङ्ग के रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
द्वितीया	कर्तारम्	कर्तारौ	कर्तॄन्
तृतीया	कर्त्रा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः
चतुर्थी	कर्त्रे	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः
पञ्चमी	कर्तुः	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः
षष्ठी	कर्तुः	कर्त्रोः	कर्तॄणाम्
सप्तमी	कर्तरि	कर्त्रोः	कर्तृषु
सम्बोधन	हे कर्तः!	हे कर्तारौ!	हे कर्तारः!

स्त्रीलिङ्ग में **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से ङीप्, अनुबन्धलोप, यण् होकर **कर्त्री**-शब्द बन जाता है। इसके रूप नदी-शब्द की तरह चलते हैं। जैसे **कर्त्री, कर्त्र्यौ, कर्त्र्यः, कर्त्रीम्, कर्त्र्यौ, कर्त्रीः** आदि।

नपुसंकलिङ्ग में वारि-शब्द की तरह **कर्तृ, कर्तृणी, कर्तॄणि, कर्तृ, कर्तृणी, कर्तॄणि, कर्तृणा, कर्तृभ्याम्, कर्तृभिः** आदि रूप बनते हैं।

आपने इस तरह कृ-धातु से ण्वुल् और तृच् प्रत्ययों के लगने से बनने वाले रूपों को देखा। अब इसी तरह निम्नलिखित धातुओं से इन प्रत्ययों को लगाकर रूप बनाइये।

क्र.	धातु	विग्रह	ण्वुलप्रत्ययान्त रूप	अर्थ
१-	याच्	याचत इति	याचकः	मांगने वाला।
२-	नी	नयतीति	नायकः	ले जाने वाला।
३-	लिख्	लिखतीति	लेखकः	लिखने वाला।
४-	सेव्	सेवत इति	सेवकः	सेवा करने वाला।
५-	दृश्	पश्यतीति	दर्शकः	देखने वाला।
६-	पूञ्	पुनातीति	पावकः	पवित्र करने वाला, अग्नि।
७-	धाव्	धावतीति	धावकः	दौड़ने वाला।
८-	वह्	वहतीति	वाहकः	ढोने वाला
९-	चिन्त्	चिन्तयतीति	चिन्तकः	चिन्तन करने वाला।
१०-	गण्	गणयतीति	गणकः	गिनने वाला।
११-	पाल्	पालयतीति	पालकः	पालन करने वाला।
१२-	पाठि	पाठयतीति	पाठकः	पढ़ाने वाला।
१३-	अध्यापि	अध्यापयतीति	अध्यापकः	पढ़ाने वाला।

ल्यु-णिनि-अच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७८६. नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ३।१।१३४।।

नन्द्यादेर्ल्युः, ग्रह्यादेर्णिनिः, पचादेरच् स्यात्।

नन्दयतीति नन्दनः। जनमर्दयतीति जनार्दनः। लवणः। ग्राही। स्थायी। मन्त्री। पचादिराकृतिगणः।

....

अब तृच् प्रत्ययान्त कुछ शब्दों के उदाहरण देखें-

१४-	हृञ्	हरतीति	हर्ता	हरण करने वाला।
१५-	गम्	गच्छतीति	गन्ता	जाने वाला।
१६-	हन्	हन्तीति	हन्ता	मारने वाला।
१७-	भुज्	भुनक्तीति	भोक्ता	खाने वाला।
१८-	श्रु	श्रृणोतीति	श्रोता	सुनने वाला।
१९-	ज्ञा	जानातीति	ज्ञाता	जानने वाला।
२०-	दा	ददातीति	दाता	देने वाला।
२१-	क्री	क्रीणातीति	क्रेता	खरीदने वाला।
२२-	रच्	रचयतीति	रचयिता	रचने वाला।

इन सभी शब्दों के रूप बनाइये और धातुपाठ से धातु देखकर उनसे इन प्रत्ययों को लगाकर कैसे रूप बन सकते हैं, इसका भी प्रयत्न आप करें, आपकी प्रतिभा बढ़ेगी।

७८६- नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः। नन्दिश्च ग्रहिश्च पच् च तेषां समाहारद्वन्द्वो नन्दिग्रहिपच्, नन्दिग्रहिपच् आदिर्येषां ते नन्दिग्रहिपचादयः, तेभ्यो नन्दिग्रहिपचादिभ्यः, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः। ल्युश्च णिनिश्च अच्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो ल्युणिन्यचः। नन्दिग्रहिपचादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ल्युणिन्यचः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

नन्दि आदि, ग्रहि आदि और पच् आदि धातुओं से क्रमशः ल्यु, णिनि और अच् प्रत्यय होते हैं।

नन्दि आदि, ग्रहि आदि और पच् आदि तीन गणों के धातुओं से ल्यु, णिनि और अच् ये तीन प्रत्यय होते हैं। **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** के नियम से क्रमशः विधान होने पर नन्दि आदि धातुओं से ल्यु, ग्रहि आदि धातुओं से णिनि और पच् आदि धातुओं से अच् प्रत्यय हो जाते हैं।

ल्यु में लकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, यु बचता है और उसके स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अन** आदेश हो जाता है। इससे अकारान्त शब्द बनता है। णिनि में णकार की **चुटू** से तथा इकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है, इन् ही शेष रहता है। इस प्रत्यय के लगने के बाद शब्द इन्नन्त बन जाता है जिसके रूप इन्नन्त योगिन् शब्द की तरह बनते हैं। पच् में चकार की इत्संज्ञा होती है। अच्-प्रत्ययान्त शब्द अकारान्त राम-शब्द की तरह होता है।

नन्दनः। नन्दयतीति। प्रसन्न करने वाला। टुनदि समृद्धौ। **आदिर्ञिटुडवः**। **इदितो नुम् धातोः**। सूत्र में **नन्दि** ऐसा ण्यन्त निर्देश है। अतः ण्यन्त **नन्दि** से **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** से ल्यु, अनुबन्धलोप, **णेरनिटि** से णि का लोप, नन्द्+यु बना। यु के स्थान पर

युवोरनाकौ से **अन** आदेश, **नन्द्+अन**, वर्णसम्मेलन करने पर **नन्दन** बन गया। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्वविसर्ग करके राम-शब्द की तरह **नन्दनः** सिद्ध हुआ।

जनार्दनः। जनमर्दयति। भक्त-जनों को अपने धाम पहुँचाने वाले अथवा दुष्ट जनों का नाश करने वाले भगवान्। जन-शब्दपूर्वक ण्यन्त (अर्द्) अर्दि धातु से **ल्यु**, णिलोप, **अन** आदेश होकर **जन+अम्+अर्द्+अन** बना। **जन+अम्** की **तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्** से उपपदसंज्ञा और **उपपदमतिङ्** से समास होकर **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **अम्** का लोप हुआ। इस तरह **जन+अर्द्+अन** बना। **जन+अर्द्** में सवर्णदीर्घ और आगे वर्णसम्मेलन होकर **जनार्दन** बना। सु विभक्ति लगकर **जनार्दनः** सिद्ध हुआ।

लवणः। लुनातीति। काटने वाला। लूञ् धातु से ल्यु होकर अन आदेश और लू को आर्धधातुकगुण होकर अव् आदेश होने पर **लवन** बना। **नन्द्यादिगण** में **लवणः** पढ़े जाने के कारण निपातनात् णत्व होकर **लवण** बना। सु आदि विभक्ति करके **लवणः** सिद्ध हुआ।

मधुसूदनः। मधुं सूदयति। मधु नामक दैत्य को मारने वाले (विष्णु)। द्वितीयान्त मधु-शब्दपूर्वक ण्यन्त (सूद्) सूदि धातु से **ल्यु**, णिलोप, **अन** आदेश होकर **मधु+अम्+सूद्+अन** बना। **मधु+अम्** की **तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्** से उपपदसंज्ञा और**उपपदमतिङ्** से समास होकर **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **अम्** का लोप हुआ। इस तरह **मधु+सूद्+अन** बना। वर्णसम्मेलन होकर स्वादिकार्य होने पर **मधुसूदनः** सिद्ध हुआ।

उक्त प्रक्रिया करने पर ही शुभ् से **शोभनः**, वृध् से **वर्धनः**, मद् से **मदनः**, रम् से **रमणः** आदि बनते हैं।

ग्राही। गृह्णातीति। ग्रहण करने वाला। ग्रह उपादाने। ग्रह्-धातु से **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** से णिनि, अनुबन्धलोप करके **इन्** बचा। णित् होने के कारण **अत उपधायाः** से धातु के उपधाभूत अकार की वृद्धि हुई, **ग्राह्+इन्**, वर्णसम्मेलन **ग्राहिन्** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, **सौ च** से दीर्घ, सु का लोप, नकार का लोप करके योगी की तरह **ग्राही** बनाइये। इसके रूप भी योगी की तरह **ग्राही, ग्राहिणौ, ग्राहिणः, ग्राहिणम्, ग्राहिणौ, ग्राहिणः** आदि बनते हैं।

स्थायी। तिष्ठतीति। स्थित रहने वाला। **स्था**(ष्ठा गतिनिवृत्तौ)धातु से णिनि, अनुबन्धलोप करके **आतो युक् चिण्कृतोः** से **युक्** आगम, अनुबन्धलोप करके **स्था+य्+इन्** बना। वर्णसम्मेलन करके **स्थायिन्** बनाकर सु विभक्ति, उसका **हल्ङ्याब्भ्यः०** से लोप, उपधादीर्घ, नकार का लोप आदि करके **स्थायी** सिद्ध होता है। आगे स्थायिनौ, स्थायिनः आदि बनते हैं।

मन्त्री। मन्त्रणा करने वाला। मत्रि गुप्तभाषणे। मन्त्रयत इति विग्रह में ण्यन्त **मन्त्रि**-धातु से णिनि करके णिलोप करके **मन्त्रिन्** बनाकर **मन्त्री**, निपूर्वक वस्-धातु निवसतीति विग्रह में निवासिन् बनाकर **निवासी**, उत्पूर्वक सह् से **उत्साही** आदि रूप बनाइये।

पचः। पचतीति। पकाने वाला अर्थात् जो पकाता है। डुपचष् पाके। पच् से **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** से अच् करके पच बनता है, प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्वविसर्ग करके अकारान्त रामः की तरह **पचः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह वच् से वचः,

कप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७८७. इगुपध-ज्ञा-प्री-किरः कः ३।१।१३५॥

एभ्यः कः स्यात्। बुधः। कृशः। ज्ञः। प्रियः। किरः।

कप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७८८. आतश्चोपसर्गे ३।१।१३६॥

प्रज्ञः। सुग्लः।

....

वद् से वदः, पत् से पतः आदि बनते हैं। इसी प्रकार दीव्यतीति, जो अपने गुण एवं कर्मों से चमके वह **देवः** तथा **पचादिगण** में **देवट्** यह प्रातिपदिक टित् पठित होने से स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** से ङीप् करके **देवी** आदि भी बनाने का प्रयत्न करें।

पचादि आकृतिगण है। इसमें कितने धातु आते हैं, ऐसा कोई निश्चित नियम नहीं है। आकृति अर्थात् सिद्ध रूपों को देखकर पचादिगणीय होने का अनुमान मात्र लगाया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि जहाँ-जहाँ भी कर्ता अर्थ में अच्-प्रत्यय लगा रूप देखा जाय तो समझ लेना चाहिए कि यह **पचादिगणीय** है।

७८७- इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः। इक् उपधा यस्य स इगुपधः। इगुपधश्च ज्ञाश्च कृ च तेषां समाहारद्वन्द्व इगुपधज्ञाप्रिकिर्, तस्मात् इगुपधज्ञाप्रिकिरः। इगुपधज्ञाप्रीकिरः पञ्चम्यन्तं, कः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

इक् उपधा में हो ऐसे धातु ज्ञा, प्री और कृ धातुओं से क प्रत्यय होता है।

क में ककार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा होती है, अ बचता है।

बुधः। बुध्यत इति। जानने वाला। बुध अवगमने। बुध्-धातु से **इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः** से क प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **बुध्+अ** बना। **क** प्रत्यय के कित् होने से लघूपधगुण का **क्ङिति च** से निषेध होकर वर्णसम्मेलन करके **बुध** बना। प्रातिप्रदिकसंज्ञा, सु, रुत्वविसर्ग करके **रामः** की तरह **बुधः** बन जाता है।

कृशः। कृश्यतीति। कमजोर होता है, पतला होता है। कृश तनूकरणे। कृश् से क करके **कृशः** बन जाता है।

ज्ञः। जानातीति। जानने वाला या जो जानता है। ज्ञा अवबोधने। ज्ञा-धातु से क प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप, **ज्ञ्+अ=ज्ञ**, प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्वविसर्ग करके **ज्ञः** बन जाता है।

प्रियः। प्रीणातीति। प्रसन्न करने वाला, प्यारा। प्रीञ् तर्पणे। प्री-धातु से क, **प्री+अ** में **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से प्राप्त गुण का **क्ङिति च** से निषेध होने पर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से ईकार के स्थान पर इयङ् आदेश, अनुबन्धलोप, **प्र्+इय्+अ=प्रिय**, सु आदि होकर **प्रियः** सिद्ध हुआ।

किरः। किरतीति। बिखेरने वाला। कॄ विक्षेपे। कॄ-धातु से **इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः** से क, अनुबन्धलोप, **ॠत इद्धातोः** से ॠकार के स्थान पर रपर करके इर् आदेश, **क्+इर्+अ**, वर्णसम्मेलन, किर, सु आदि कार्य, **किरः।**

७८८- आतश्चोपसर्गे। आतः पञ्चम्यन्तम्, चाव्ययम्, उपसर्गे सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

कप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७८९. गेहे कः ३।१।१४४।।

गेहे कर्तरि ग्रहेः कः स्यात्। गृहम्।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७९०. कर्मण्यण् ३।२।१।।

कर्मण्युपपदे धातोरण् प्रत्ययः स्यात्। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः।

....

इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः से **कः** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। **उपसर्गे उपपदे आदन्ताद्धातोः कः स्यात्।**

उपसर्ग के उपपद रहते आकारान्त धातुओं से क प्रत्यय होता है।

ककार की इत्संज्ञा होती है। यहाँ कित् का फल आकार का लोप करना है। **तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्** से **उपपदसंज्ञा** की जाती है। अभी यहाँ पर उपपद का अर्थ **समीप** ही समझें। विशेष अर्थ उसी सूत्र में स्पष्ट करेंगे।

प्रज्ञः। प्रजानातीति। अधिक जानने वाला। **प्र** उपसर्ग पूर्वक **ज्ञा** (अवबोधने) आकारान्त धातु है। इससे **क** प्रत्यय हुआ। **प्र+ज्ञा+अ** बना। **आतो लोप इटि च** से धातु के आकार का लोप हुआ। **प्र+ज्ञ्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **प्रज्ञ** बना। स्वादिकार्य होकर **प्रज्ञः**।

सुग्लः। सुग्लायतीति। अधिक थकने वाला। **सु** उपसर्ग पूर्वक **ग्लै हर्षक्षये** धातु है। पहले **आदेच उपदेशेऽशिति** से आत्व होकर **आतोश्चोपसर्गे** से क प्रत्यय और **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप होकर स्वादिकार्य होने परह **सुग्लः** सिद्ध हो जाता है।

७८९- **गेहे कः**। गेहे सप्तम्यन्तं, कः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **विभाषा ग्रहः** से **ग्रहः** की अनुवृत्ति आती है और **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

ग्रह् धातु से क प्रत्यय होता है, यदि इसका कर्ता घर हो तो।

गृहम्। गृह्णाति धान्यादिकमिति गृहम्। जो धान्य आदि ग्रहण करता है अर्थात् घर। ग्रह् धातु से **गेहे कः** से क प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **ग्रह्+अ** बना। कित् प्रत्यय परे होने के कारण **ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च** से ग्रह् के रेफ के स्थान पर संप्रसारण होकर ऋकार हो जाता है। **ऋ+अ** में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **ऋ** ही बनता है। इस तरह **ग्+ऋ+ह्+अ=गृह** बना। सु, उसके स्थान पर अम् आदेश होकर नपुंसकलिङ्ग में **गृहम्** सिद्ध हुआ।

७९० - **कर्मण्यण्**। कर्मणि सप्तम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** इन तीनों पदों का अधिकार है।

कर्म उपपद होने पर धातुओं से अण् प्रत्यय होता है।

अण् में णकार की इत्संज्ञा होती है। णित् होने के कारण वृद्धि तो होगी ही, अन्य कार्य भी हो सकते हैं।

कुम्भकारः। कुम्भं करोति। **डुकृञ् करणे**। कुम्भ अर्थात् घड़ा बनाता है या घड़ा बनाने वाला। **कुम्भ+अम्+कृ** यहाँ पर **कुम्भ** यह **कर्म** है और **कृ** धातु है। **कुम्भ+अम्+कृ** इस अवस्था में कुम्भ की **तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्** से उपपदसंज्ञा हुई और कर्म उपपद रहने पर कृ-धातु से **कर्मण्यण्** से **अण्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप हुआ। **कुम्भ+कृ+अ** बना।

कप्रत्यय-विधायकं विधिसूत्रम्

७९१. **आतोऽनुपसर्गे कः ३।२।३॥**

आदन्ताद्धातोरनुपसर्गात् कर्मण्युपपदे कः स्यात्। अणोऽपवादः।

आतो लोप इटि च। गोदः। धनदः। कम्बलदः। अनुपसर्गे किम्? गोसन्दायः।

वार्तिकम्- **मूलविभुजादिभ्यः कः।** मूलानि विभुजति मूलविभुजो रथः।

आकृतिगणोऽयम्। महीध्रः। कुध्रः।

....

अकार णित् है, उसके परे रहते **अचो ञ्णिति** से कृ को आर्-वृद्धि हुई। **क्+आर=कार, कुम्भ+कार** बना। कार इस कृदन्त के योग में कुम्भ से **कर्तृकर्मणोः कृति** से षष्ठी विभक्ति ङस् आई। **कुम्भ ङस्+कार** में **उपपदमतिङ्** से उपपद समास होकर समास के अवयव सुप् ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् होकर **कुम्भकार** हुआ। इससे सु विभक्ति और रुत्वविसर्ग करके **कुम्भकारः** बन गया। यह तो वास्तविक प्रक्रिया है किन्तु इस प्रक्रिया में कुछ कठिन लगे तो बस, इतना समझना कि **कुम्भं करोति** इस विग्रह में कुम्भ कर्म है, उसकी उपपदसंज्ञा हुई और **कर्मण्यण्** से अण् हुआ। अण् के परे होने पर कृ की वृद्धि हुई, **कुम्भकार** बना। सु, रुत्वविसर्ग होकर **कुम्भकारः** सिद्ध हुआ। आपको कठिनाई इसलिए आ सकती है कि आपने अभी समास पढ़ा नहीं है। **उपपदमतिङ्** यह सूत्र समासप्रकरण क है।

जिस तरह से आपने कुम्भकारः बनाया, उसी तरह से निम्नलिखित शब्दों की प्रक्रिया भी कर सकते हैं- **भाष्यं करोतीति भाष्यकारः। सूत्रं करोतीति सूत्रकारः। सूत्रं धारयतीति सूत्रधारः।**

७९१- **आतोऽनुपसर्गे कः।** आतः पञ्चम्यन्तम्, अनुपसर्गे सप्तम्यन्तं, कः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कर्मण्यण्** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

कर्म के उपपद रहते उपसर्गरहित आकारान्त धातु से क प्रत्यय होता है।

यह सूत्र **कर्मण्यण्** का अपवाद है। क में ककार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा होती है, अकार शेष रहता है। कित् करने का फल **आतो लोप इटि च** से आकार का लोप करना है। यदि कित् न होता तो आकार का लोप प्राप्त न होता और **आतो युक् चिण्कृतोः** से युक् का आगम होकर अनिष्ट रूप सिद्ध हो जाता।

गोदः। कम्बलदः। धनदः। दा दाने। गां ददाति, धनं ददाति, कम्बलं ददाति। अर्थ भी क्रमशः **गौ देने वाला, कम्बल देने वाला, धन देने वाला।** इन तीनों प्रयोगों में दा धातु है और क्रमशः गो, कम्बल और धन उपपद हैं। कोई उपसर्ग नहीं है। अतः दा से **कर्मण्यण्** से प्राप्त अण् को बाधकर **आतोऽनुपसर्गे कः** से क प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आकार का **आतो लोप इटि च** से लोप हुआ। **गो+द्+अ, कम्बल+द्+अ, धन+द्+अ** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **गोद, कम्बलद** और **धनद** बने। प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु, रुत्वविसर्ग करके **गोदः, कम्बलदः** और **धनदः** ये रूप सिद्ध हुए।

इस सूत्र के कुछ अन्य उदाहरण-

१- नॄन् पातीति, **नृ+पा+क=नृपः**, मनुष्यों की रक्षा करने वाला, राजा।

२- भुवं पातीति, **भू+पा+क=भूपः**, पृथ्वी की रक्षा करने वाला, राजा।

टप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७९२. चरेष्टः ३।२।१६॥

अधिकरणे उपपदे। कुरुचरः।

....

३- जलं ददातीति, **जल+दा+क=जलदः**, जल देने वाला, बादल।

४- कृतं जानातीति, **कृत+ज्ञा+क=कृतज्ञः**, किये गये उपकार को मानने वाला।

५- मधु पिबतीति, **मधु+पा+क=मधुपः**, मधु पीने वाला, भ्रमर।

इसी तरह अनेक आकारान्त धातुओं से कर्म उपपद होने पर क प्रत्यय करके अनेक रूप बना सकते हैं।

मूलविभुजादिभ्यः कः। यह वार्तिक है। **मूलविभूज आदि शब्दों की सिद्धि के लिए क प्रत्यय हो, ऐसा कहना चाहिए।**

मूलविभुजो रथः। वृक्षों की जड़ों को टेंढ़ा कर देने वाला रथ। यहाँ **मूल शस्+वि+भुज्** ऐसा अलौकिक विग्रह है। **भुजो कौटिल्ये** धातु है। कर्ता अर्थ में उक्त **मूलविभुजादिभ्यः कः** इस वार्तिक से क प्रत्यय, अनुबन्धलोप, कित् होने से लघूपधगुण का अभाव, कृत् के योग में षष्ठी, **मूल+आम्+विभुज** में उपपदसमास होकर स्वादिकार्य करके **मूलविभुजः** बना।

आकृतिगणोऽयम्। मूलविभुजादि आकृतिगण है। इसके शब्दों क़ी परिगणना नहीं है। जहाँ क प्रत्यय, गुणाभाव जैसे रूप दीखें तो यह समझना चाहिए के ऐसे शब्द इस गण के अन्तर्गत आते हैं।

महीध्रः। मही (पृथ्वी) को धारण करने वाला, पर्वत। **महीं धरतीति**। मही+अम्+धृ (धृञ् धारणे)। **मूलविभुजादिभ्यः कः** से **क** प्रत्यय, कित्वात् गुणाभाव, **इको यणचि** से यण् होने पर ऋकार के स्थान पर र् आदेश होने पर **मही+ध्+र्+अ=मही+ध्र** बना। कृद्योग षष्ठी आने पर **मही+अस्+ध्र**, उपपदसमास करके स्वादिकार्य करने पर **महीध्रः** सिद्ध होता है।

कुध्रः। कु (पृथ्वी) को धारण करने वाला, पर्वत। **कुं धरतीति**। कु+अम्+धृ (धृञ् धारणे)। **मूलविभुजादिभ्यः कः** से **क** प्रत्यय, कित्वात् गुणाभाव, **इको यणचि** से यण् होने पर ऋकार के स्थान पर र् आदेश होने पर **कु+ध्+र्+अ=कु+ध्र** बना। कृद्योग षष्ठी आने पर **कु+अस्+ध्र**, उपपदसमास करके स्वादिकार्य करने पर **कुध्रः** सिद्ध होता है।

७९२- **चरेष्टः**। चरेः पञ्चम्यन्तं, टः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **धातोः**, **प्रत्ययः**, **परश्च** ये पद अधिकृत हैं और **अधिकरणे शेतेः** से **शेते** की अनुवृत्ति आती है।

अधिकरण के उपपद होने पर चर्-धातु से ट प्रत्यय होता है।

सूत्र में **चरेः** यह पद **चरि** का पञ्चम्यन्त रूप है। पाणिनि जी ने कहीं कहीं धातु के निर्देश में **इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे** से इक् प्रत्यय लगाया है, सो यह इक्-प्रत्ययान्त रूप है। ट-प्रत्यय में टकार की **चुटू** से इत्संज्ञा होकर केवल अकार ही शेष रहता है। इस प्रत्यय को टित् करने का फल **स्त्रीप्रत्यय** में **टिड्ढाणञ्** आदि सूत्रों की प्रवृत्ति है जिससे ङीप् आदि होते हैं।

कुरुचरः। कुरु देश में विचरण करने वाला। **कुरुषु चरति** विग्रह है। **कुरुषु** यह

टप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७९३. भिक्षासेनादायेषु च ३।२।१७।।

भिक्षाचरः। सेनाचरः। आदायेति ल्यबन्तम्, आदायचरः।।

टप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७९४. कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ३।२।२०।।

एषु द्योत्येषु करोतेष्टः स्यात्।।

सकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

७९५. अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य ८।३।४६।।

आदुत्तरस्यानव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं सादेशः करोत्यादिषु परेषु। यशस्करी विद्या। श्राद्धकरः। वचनकरः।।

....

अधिकरण उपपद में है। अतः **चर्**-धातु से **ट**-प्रत्यय होकर अनुबन्धलोप हुआ। **उपपदमतिङ्** से उपपदसमास होकर सुप्-विभक्ति का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् होकर **कुरुचर्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **कुरुचर** बना। सु-विभक्ति एवं उसका रुत्व और विसर्ग करके **कुरुचरः** सिद्ध हुआ।

चर् धातु में अधिकरण उपपद होने के अनेक उदाहरण हो सकते हैं। जैसे कि- निशायां चरतीति **निशाचरः** (रात्री में घूमने वाला राक्षस आदि), खे चरतीति **खेचरः** (आकाश में घूमने वाला, पक्षी, ग्रह, नक्षत्र आदि)।

७९३- **भिक्षासेनादायेषु च**। भिक्षा च सेना च आदायश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो भिक्षासेनादायाः, तेपु भिक्षासेनादायेषु। भिक्षासेनादायेषु सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **चरेष्टः** से **चरेः, टः** और **सुपि स्थः** से वचनविपरिणाम करके **सुप्सु** की अनुवृत्ति आती है साथ ही **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** इन पदों का अधिकार है।

भिक्षा, सेना और आदाय इन सुबन्तों के उपपद होने पर चर्-धातु से ट-प्रत्यय होता है।

चरेष्टः की तरह यहाँ अधिकरण अर्थात् सप्तमी विभक्ति ही हो, ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है किन्तु आवश्यकता के अनुसार कोई भी सुप् विभक्ति **भिक्षा, सेना, आदाय** में होनी चाहिए। **आदाय** ल्यप् प्रत्ययान्त अव्यय है। अव्यय में भी विभक्ति तो आती ही है।

भिक्षाचरः। भिक्षां चरतीति, भिक्षा के लिए घूमने वाला।

सेनाचरः। सेनां चरतीति, सेना मे जाने वाला।

आदायचरः। आदाय चरतीति, लेकर के चलने वाला।

उपर्युक्त तीनों प्रयोगों में उपपदसंज्ञा करके ट-प्रत्यय, उपपदसमास करके विद्यमान विभक्ति का लुक् करके वर्णसम्मेलन करके सु विभक्ति आती है और उसका रुत्व आदि कार्य करके तीनों रूप सिद्ध हो जाते हैं।

७९४- **कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु**। हेतुश्च ताच्छील्यञ्च आनुलोम्यञ्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो हेतुताच्छील्यानुलोम्यानि, तेषु। कृञः पञ्चम्यन्तं, हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **चरेष्टः** से **टः** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है ही।

हेतु(कारण), ताच्छील्य(तत्स्वभाव) और आनुलोम्य(आज्ञाकारिता) ये अर्थ द्योत्य होने पर कृ-धातु से ट-प्रत्यय होता है।

टकार इत्संज्ञक है, अ शेष रहता है। उक्त तीनों अर्थों के उदाहरण अग्रिम सूत्र के बाद रखे गये हैं।

७९५- अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य। कृ च कमिश्च कंसश्च कुम्भश्च पात्रञ्च कुशा च कर्णी च तेषामितरेतरद्वन्द्वः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्ण्यः, तेषु कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीषु। न अव्ययम् अनव्यव्यम्, नञ् तत्पुरुषः, तस्य अनव्ययस्य। अतः पञ्चम्यन्तं, कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीषु सप्तम्यन्तम्, अनव्ययस्य षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **विसर्जनीयस्य सः** से **विसर्जनीयस्य** और **सोऽपदादौ** से **सः** तथा **नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य** इस सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

ह्रस्व अकार से परे उत्तरपद में स्थित न हो, ऐसे अव्ययभिन्न विसर्ग को समास में नित्य से सकार आदेश होता है, यदि कृ, कम्, कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा और कर्णी ये परे हों तो।

यह विसर्गसन्धि का सूत्र है। इसके द्वारा विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश का विधान किया गया है। इसके विधान में पाँच नियम हैं-

१. जिसके स्थान पर सकार होना है, वह अव्ययभिन्न का विसर्ग हो।
२. वह विसर्ग ह्रस्व अकार से परे हो।
३. विसर्ग से परे कृ, कम् आदि में से कोई हो।
४. समस्तपद हो अर्थात् समास हो चुका हो।
५. उत्तरपद में स्थित न हो।

यशस्करी विद्या। यश देने वाली विद्या। यशः करोतीति-यशस्करी। यश के लिए विद्या हेतु है। अतः यशस्-पूर्वक कृ-धातु से **कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु** से हेतु अर्थ के द्योत्य होने पर ट-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अ बचा। अ की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा होकर कृ में ऋकार को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से रपर सहित गुण होकर **यशस्+कर्+अ=यशस्+कर** बना। कृत् के योग में **कर्तृकर्मणोः कृति** से षष्ठी विभक्ति हुई। **यशस् ङस् कर** में **उपपदमतिङ्** से समास होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्तियों का लुक् करने के बाद **यशस्+कर** में सकार को **ससजुषो रुः** से रुत्व करके **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से विसर्ग करने पर **यशः+कर** बना। यह विसर्ग ह्रस्व अकार से परे है, वह अव्यय वाला भी नहीं है, उससे कृ धातु परे है, समास भी हो गया है, और उत्तरपदस्थ भी नहीं है। **अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य** से विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश हुआ, **यशस्कर** बना। यह शब्द **विद्या** इस स्त्रीलिङ्ग शब्द का विशेषण है, अतः इसमें भी स्त्रीत्व की अपेक्षा है। फलतः **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** से **ङीप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अकार का **यस्येति च** से लोप करके **यशस्करी** बना। प्रातिपदिक होने के कारण विभक्तिकार्य करके **यशस्करी** यह सिद्ध हुआ। यह हेतु का उदाहरण है।

श्राद्धकरः। श्राद्धं करोति तच्छीलम् अर्थात् श्राद्ध करना जिसका स्वभाव है। यहाँ पर श्राद्ध-पूर्वक कृ-धातु से ताच्छील्य अर्थ के द्योत्य होने पर **कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु** से ट करके गुण आदि करने पर **श्राद्धकर** बनता है। यहाँ पर विसर्ग के न होने के कारण सत्व करने का प्रसंग नहीं है। प्रातिपदिक होने के कारण विभक्तिकार्य करके पुँल्लिङ्ग में

खश्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७९६. एजेः खश् ३।२।२८॥

णयन्तादेजेः खश् स्यात्।

मुमागमविधायकं विधिसूत्रम्

७९७. अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् ६।३।६७॥

अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च मुमागमः स्यात् खिदन्ते परे न त्वव्ययस्य। शित्त्वाच्छबादिः। जनमेजयतीति जनमेजयः।

....

श्राद्धकरः सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **तापङ्करः सूर्यः**, **दयाकरः सज्जनः** आदि भी बनाये जा सकते हैं।

वचनकरः। वचनं करोतीति वचनों को मानने वाला, आज्ञाकारी। यहाँ पर **वचन**-पूर्वक **कृ**-धातु से आनुलोम्य अर्थ के द्योत्य होने पर **कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु** से **ट** करके गुण आदि करने पर **वचनकर** बनता है। प्रातिपदिक होने के कारण विभक्तिकार्य करके पुँल्लिङ्ग में **वचनकरः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **आज्ञाकरः**, **वाक्यकरः** आदि भी बनाये जा सकते हैं।

७९६- **एजेः खश्**। एजेः पञ्चम्यन्तं, खश् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **कर्मण्यण्** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति आती है और **धातोः**, **प्रत्ययः**, **परश्च** का अधिकार है।

कर्म उपपद होने पर णिजन्त एज् धातु से खश् प्रत्यय होता है।

खकार की **लशक्वतद्धिते** से और **शकार** की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होकर दोनों का **तस्य लोपः** से लोप होकर **अकार** ही शेष रहता है। शित् होने के कारण इस अकार की **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** से सार्वधातुकसंज्ञा होकर **कर्तरि शप्** से शप् आदि होते हैं। खकार की इत्संज्ञा होने के कारण खित् भी है, अतः अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होकर मुम् का आगम हो जाता है।

७९७- **अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्**। अच् अन्तो यस्य स अजन्तः। अरुश्च द्विषच्च अजन्तश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः अरुर्द्विपदजन्तं, तस्य अरुर्द्विषदजन्तस्य। अरुर्द्विषदजन्तस्य षष्ठ्यन्तं, मुम् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। खित्यनव्ययस्य पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है और **अलुगुत्तरपदे** से उत्तरपदे का अधिकार आ रहा है।

अरुस्, द्विषत् तथा अजन्त शब्दों को मुम् का आगम होता है खिदन्त उत्तरपद में हो तो किन्तु यह आगम अव्यय को नहीं होगा।

मुम् में उकार और मकार की इत्संज्ञा होती है, म् ही शेष रहता है। मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात्परः** की सहायता से जिसको हुआ है उसके अन्त्य अच् के बाद यह बैठता है अर्थात् उसका अन्त्यावयव होकर रहता है।

जनमेजयः। जनम् एजयतीति जनमेजयः। लोगों को कँपाने वाला, परीक्षित् राजा का पुत्र। ऋकार-इत्संज्ञक **एजृ कम्पने** धातु है, उससे णिच् प्रत्यय होकर **एजि** बना है। पूर्व में जन यह कर्म उपपद में है। **जन+एजि** से **एजेः खश्** से खश् प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **जन+अम्+एजि+अ** बना। अ की सार्वधातुकसंज्ञा करके उसके परे शप् होकर उसमें भी

खच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७९८. प्रियवशे वदः खच् ३।२।३८॥

प्रियंवदः। वशंवदः।

मनिनादिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

७९९. अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ३।२।७५॥

मनिन् क्वनिप् वनिप् विच् एते प्रत्ययाः धातोः स्युः।

....

अनुबन्धलोप होकर **जन+अम्+एजि+अ+अ** बना। **अ+अ** में **अतो गुणे** से पररूप होकर एक ही अकार हुआ, **जन+अम्+एजि+अ** बना। अकार को सार्वधातुक मानकर **एजि** के इकार को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण होकर एकार और उसके स्थान पर अय् आदेश होकर **जन+अम्+एज्+अय्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **जन+अम्+एजय** बना। अब द्वितीया के स्थान पर **कर्तृकर्मणोः कृति** से **जन** से षष्ठी विभक्ति ङस् ले आकर **जन ङस्+एजय** में **उपपदमतिङ्** से उपपदसमास होकर षष्ठी का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ, **जन+एजय** हुआ। अब **एजय** खिदन्त है और वह परे भी है तथा **जन** यह अजन्त है और अव्यय भी नहीं है। अतः **अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्** से **जन** को मुम् का आगम होकर अनुबन्ध लोप करके **म्** शेष बचा। मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात्परः** से उस जन के नकार के अकार का अन्त्यावयव होकर के बैठा, **जनम्+एजय** बना। वर्णसम्मेलन होकर **जनमेजय** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि कार्य होने पर **जनमेजयः** यह सिद्ध हुआ। इसी तरह **वृक्षमेजयः**, **शत्रुमेजयः** आदि प्रयोग भी बनाये जा सकते हैं।

अरुष् और **द्विषत्** में मुम् होने का फल **अरुन्तुदः**, **द्विषन्तपः** आदि सिद्ध होना है।

७९८- प्रियवशे वदः खच्। प्रियश्च वशश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः प्रियवशम्, तस्मिन् प्रियवशे। प्रियवशे सप्तम्यन्तं, वदः पञ्चम्यन्तं, खच् प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **कर्मण्यण्** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति आती है।

प्रिय या वश रूप कर्म के उपपद होने पर वद् धातु से खच् प्रत्यय होता है।

खकार और चकार इत्संज्ञक हैं, **अ** ही शेष रहता है। खित् होने के कारण मुम् का आगम होता है। शित् न होने के कारण शबादि नहीं होंगे।

प्रियंवदः। प्रियंवदतीति, प्रिय बोलने वाला, मधुरभाषी। यहाँ पर प्रिय+अम् के उपपद होने पर **वद्** धातु से **खच्** प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप होने पर **प्रिय+वद्+अ** बना। **वद्+अ=वद।** कृद्योग षष्ठी होकर **प्रिय+ङस्+वद** में उपपदसमास, सुप् का लुक् करके **प्रिय+वद** बना। यकारोत्तरवर्ती अकार को **अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्** से मुम् का आगम अनुबन्ध लोप होने पर **प्रिय+म्+वद** में मकार के स्थान पर **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार और उसको **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** से परसवर्ण होकर **प्रियंवद** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, स्वादिकार्य होकर **प्रियंवदः** सिद्ध हुआ।

वशंवदः। वशं वदतीति, अधीन में बोलता है, आज्ञाकारी है। **वश** यह कर्म उपपद है। शेष सभी प्रक्रिया **प्रियंवदः** की तरह है।

७९९- अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते। अन्येभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अपि अव्ययपदं, दृश्यन्ते क्रियापदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च** से **मनिन्क्वनिब्वनिपः** और **विजुपे छन्दसि**

इणिनषेधकं विधिसूत्रम्

८००. नेड्वशि कृति ७।२।८।।

वशादेः कृत इण् न स्यात्। **शॄ हिंसायाम्।** सुशर्मा। प्रातरित्वा।

....

से **विच्** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः**, **प्रत्ययः**, **परश्च** इनका अधिकार है ही। **धातोः** इस एकवचन को वचनविपरिणाम करके **धातुभ्यः** बनाया गया है।

अन्य धातुओं से परे भी मनिन्, क्वनिप्, वनिप् और विच् प्रत्यय देखे जाते हैं।

अष्टाध्यायी में इस सूत्र के पहले **आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च** पढ़ा गया है। उससे आकारान्त धातुओं से वेद में मनिन्, क्वनिप् और वनिप् प्रत्ययों का विधान हुआ है। अब प्रकृत सूत्र से लोक में आकारान्त धातुओं के अतिरिक्त अन्य धातुओं से भी उक्त प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। सूत्र में **दृश्यन्ते** यह पद दिया है जिसका तात्पर्य है कि लोक में भी कहीं कहीं शिष्टों के ग्रन्थों में उक्त प्रत्यय देखे गये हैं। तात्पर्य यह है कि जहाँ-जहाँ शिष्टों ने उक्त प्रयोग किया है, उन्हें हम प्रकृत सूत्र से सिद्ध मान सकते हैं किन्तु अपने इच्छा से लोक में ऐसे प्रयोग नहीं करना चाहिए। उक्त चारों प्रत्ययों में अनुबन्धलोप होकर क्रमशः **मन्, वन्, वन्** शेष रहते हैं अर्थात् **मनिन्** में नकार अनुबन्ध है, इकार उच्चारणार्थ है। इसी तरह **क्वनिप्** में ककार और पकार इत्संज्ञक और इकार उच्चारणार्थ और वनिप् में पकार इत्संज्ञक और इकार उच्चारणार्थक है किन्तु विच् में सर्वापहारलोप अर्थात् सभी वर्णों का लोप हो जाता है। स्मरण रहे कि **कृत्** के **अपृक्त वकार** का **वेरपृक्तस्य** से लोप होता है।

८००- **नेड्वशि कृति।** न अव्ययपदम्, इट् प्रथमान्तं, वशि सप्तम्यन्तं, कृति सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

वश् प्रत्याहार आदि में हो ऐसे कृत् प्रत्यय के परे होने पर इट् का आगम नहीं होता।

वशि यह पद **कृति** का विशेषण है। वश् यह प्रत्याहार है, अतः **यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे** के नियम से तदादिविधि होकर **वशादि कृत् के परे होने पर** ऐसा अर्थ बन जाता है। वश् प्रत्याहार में व्, र्, ल्, ञ्, म्, ङ्, ण्, न्, झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्, ज्, ब्, ग्, ड्, द् ये वर्ण आते हैं। **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से प्राप्त इट् का यह निषेधक सूत्र है।

अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते के द्वारा किये जाने वाले **मनिन्, क्वनिप्, वनिप्** और विच् प्रत्ययों के क्रमशः उदाहरण-

सुशर्मा। सुष्ठु शृणाति हिनस्ति पापानीति, पापों का अच्छी तरह नाश करने वाला। सु-पूर्वक शॄधातु से **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** से **मनिन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **मन्** बचा, **सुशॄ+मन्** बना। यहाँ पर **मन्** की आर्धधातुकसंज्ञा होकर **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से इट् प्राप्त था, उसका **नेड् वशि कृति** से निषेध हुआ। ॠकार को गुण होकर **सुशर्+मन्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **सुशर्मन्** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा होने पर सु विभक्ति आई और **यज्वन्** से यज्वा की तरह **सुशर्मन्** से **सुशर्मा** बन गया। सुशर्माणौ, सुशर्माणः, सुशर्माणम्, सुशर्माणौ, सुशर्मणः, सुशर्मणा, सुशर्मभ्याम्, सुशर्मभिः, सुशर्मणे, सुशर्मभ्यः, सुशर्मणाम् आदि।

आदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८०१. विड्वनोरनुनासिकस्याऽऽत् ६।४।४१॥

अनुनासिकस्याऽऽस्यात्। विजायत इति विजावा।

ओणृ अपनयने। अवावा। विच्। **रुष रिष** हिंसायाम्। रोट्। रेट्। सुगण्।

....

प्रातरित्वा। प्रातरेति। प्रातः काल को जाने वाला। **प्रातर्**-पूर्वक **इण् गतौ** धातु है। **प्रातर्+इ** से **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** से **क्वनिप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **वन्** बचा, **प्रातर्+वन्** बना। यहाँ पर **वन्** की आर्धधातुकसंज्ञा होकर **आर्धधातुकस्येड्वलादेः** से इट् प्राप्त, उसका **नेड् वशि कृति** से निषेध होने पर **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्** से **तुक्** का आगम होकर **प्रातर्+इत्+वन्** हुआ। वर्णसम्मेलन होकर **प्रातरित्वन्** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा होने पर सु विभक्ति आई और **यज्वन्** से **यज्वा** की तरह **प्रातरित्वन्** से **प्रातरित्वा** बन गया। इसके रूप- प्रातरित्वा, प्रातरित्वानौ, प्रातरित्वानः, प्रातरित्वानम्, प्रातरित्वानौ, प्रातरित्वनः, प्रातरित्वना, प्रातरित्वभ्याम्, प्रातरित्वभिः, प्रातरित्वने, प्रातरित्वभ्यः, प्रातरित्वनोः, प्रातरित्वनाम्, प्रातरित्वनि, प्रातरित्वसु, हे प्रातरित्वन् आदि।

८०१- विड्वनोरनुनासिकस्यात्। विट् च वन् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो विड्वनौ, तयोः। विड्वनोः सप्तम्यन्तम्, अनुनासिकस्य षष्ठ्यन्तम्, आत् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

विट् और वन् के परे होने पर अनुनासिक के स्थान पर आत् अर्थात् आकार आदेश होता है।

अङ्गस्य के अधिकार के कारण **अनुनासिकस्य** यह **अङ्गस्य** का विशेषण है, सो तदन्तविधि हाने से **अनुनासिकान्त अङ्ग** को यह आदेश प्राप्त होता है पर **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से अन्त्य वर्ण के स्थान पर हो जाता है। **विट्** प्रत्यय के परे आत्व के उदाहरण **वैदिकी प्रक्रिया** में देख सकते हैं, यहाँ **वन्** प्रत्यय के परे का उदाहरण देखें।

विजावा। विजायत इति- विशेष रूप से उत्पन्न होने वाला या पुत्र, पौत्र के रूप में स्वयं जन्मने वाला। यह भी वैदिक प्रयोग ही है। **वि+जन्** से **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** से **वनिप्** प्रत्यय हुआ। इकार और पकार की इत्संज्ञा, **वन्** बचा। **विजन्+वन्** बना। इट् प्राप्त, उसका **नेड् वशि कृति** से निषेध होने पर **विजन्+वन्** में **विड्वनोरनुनासिकस्यात्** से अनुनासिक वर्ण **जन्** के **नकार** के स्थान पर **आकार** आदेश होकर **विज+आ+वन्** बना। सवर्णदीर्घ करके **विजावन्** सिद्ध हुआ। इससे **राजन्** की तरह विजावा, विजावानौ, विजावानः, विजावानम्, विजावानौ, विजाव्नः, विजाव्ना, विजावभ्याम्, विजावभिः, विजाव्ने, विजावभ्यः आदि रूप बनते हैं।

अवावा। ओणति, अपनयतीति। हटाने वाला। **ओणृ अपनयने** धातु है। अनुबन्ध लोप के बाद **ओण्** से **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** से **वनिप्** प्रत्यय हुआ। इकार और पकार की इत्संज्ञा, **वन्** बचा। **ओण्+वन्** बना। इट् प्राप्त, उसका **नेड् वशि कृति** से निषेध होने पर **ओण्+वन्** में **विड्वनोरनुनासिकस्यात्** से अनुनासिक वर्ण **ओण्** के **णकार** के स्थान पर **आकार** आदेश होकर **ओ+आ+वन्** बना। **ओ+आ** में **एचोऽयवायावः** से **अव्** आदेश होकर **अवावन्** सिद्ध हुआ। इससे **राजन्** की तरह अवावा, अवावानौ, अवावानः, अवावानम्,

क्विप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८०२. **क्विप् च ३।२।७६॥**

अयमपि दृश्यते। उखास्रत्। पर्णध्वत्। वाहभ्रट्।

....

अवावानौ, अवाव्नः, अवाव्ना, अवावभ्याम्, अवावभिः, अवाव्ने, अवावभ्यः आदि रूप बनते हैं।

रोट्। रेट्। ये दोनों **विच्** प्रत्यय के उदाहरण है। रोषति रेषति हिनस्तीति **रोट्, रेट्।** षकारान्त **रुष्** और **रिष्** धातु है। इनसे **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** से **विच्** प्रत्यय हुआ। **चकार** की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा, **इकार** उच्चारणार्थ है, **वकार** का **वेरपृक्तस्य** से लोप होकर **सर्वापहार** हो जाता है, अर्थात् कुछ भी नहीं बचता। पुनः प्रत्ययलक्षण से **विच्** प्रत्यय परे मान कर उसको आर्धधातुक समझ कर के **रिष्** और **रुष्** की उपधा इकार और उकार को **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण होकर **रेष्, रोष्** बन जाता है। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हो जाने के बाद **सु**, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप, **झलां जशोऽन्ते** से **षकार** के स्थान पर **जश्त्व** करके **डकार** आदेश होकर **रेड्, रोड्** बना। **वाऽवसाने** से विकल्प से **चर्त्व** होने पर **रेट्-रेड्** और **रोट्-रोड्** ये रूप बनते हैं। आगे अजादि विभक्ति के परे केवल वर्णसम्मेलन और हलादि विभक्ति के पर जश्त्व करके रूप बनाये जाते हैं। **रेट्-रेड्, रेषौ, रेषः, रेषम्, रेषौ, रेषः, रेषा, रेड्भ्याम्, रेड्भिः, रेषे, रेड्भ्यः** आदि। इसी तरह से **रोट्-रोड्, रोषौ, रोषः, रोषा, रोड्भ्याम्** आदि।

सुगण्। सुष्ठु गणयति। अच्छा गिनने वाला। **गण संख्याने** धातु है। चुरादि का है, अतः स्वार्थ में **णिच्** होकर **गणि** बना है। **सु** पूर्वक **गणि** से **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** से **विच्** प्रत्यय होकर सर्वापहार लोप हुआ। **णेरनिटि** से **इकार** का लोप करके **सुगण्** बचा। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके रूप बनाइये- **सुगण्, सुगणौ, सुगणः, सुगणम्, सुगणौ, सुगणः सुगणा, सुगणभ्याम्, सुगण्भिः** आदि।

८९२- **क्विप् च।** क्विप् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते** से वचन-विपरिणाम करके **दृश्यते** आता है।

धातु मात्र से क्विप् प्रत्यय भी होता है।

ककार की **लशक्वतद्धिते** से, पकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। अनेक हल् वर्णों का विना अच् की सहायता के उच्चारण नहीं हो सकता है, अतः इकार को उच्चारण के लिए लगाया गया है। उसकी इत्संज्ञा करने की आवश्यकता ही नहीं है, स्वतः निवृत्त हो जाता है। अब बचा है वकार, उसका **वेरपृक्तस्य** से लोप हो जाता है। इस प्रकार से क्विप् प्रत्यय में से कुछ भी नहीं बचता। इसीको **सर्वापहारलोप** कहते हैं। अब प्रश्न आता है कि यदि सर्वापहार लोप ही करना है तो प्रत्यय का विधान क्यों किया? इसका उत्तर यह है कि प्रत्यय करने से सर्वापहार लोप हो जाने पर भी स्थानिवद्भावेन, प्रत्ययलक्षणेन वा प्रत्ययत्व रहता ही है। तात्पर्य यह कि प्रत्यय को मानकर होने वाले कार्य लोप होने पर भी हो सकते हैं। यह कृत्-प्रकरण का प्रत्यय है, अतः लोप हो जाने पर भी शब्द क्विप्-प्रत्ययान्त बना रहता है। प्रत्ययान्त होने से कृदन्त भी बना रहेगा। कृदन्त मानकर **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो सकेगी। एक और बात भी है कि कृत् के परे होने पर कार्य करने वाले

ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् आदि सूत्रों की प्रवृत्ति भी हो सकेगी। इसी प्रकार कहीं **पित्** या **कित्** को मानकर के होने वाले कार्य भी हो सकते हैं।

उखास्रत्। उखायाः स्रंसते। बरतन से गिरने वाला। **स्रसु अवस्रंसने** धातु है। **उखा ङस्+स्रंस्** इस पञ्चम्यन्त उपपद वाले **स्रंस्** धातु से **क्विप् च** से क्विप् प्रत्यय, सर्वापहार लोप हुआ। उपपदसमास के बाद प्रातिपकिदसंज्ञा, विभक्ति का लुक्, प्रत्ययलक्षणेन क्विप् को परे मानकर **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से **स्रंस्** में विद्यमान अनुस्वार के स्थानी **नकार** का लोप हुआ, **स्रस्** बचा। **उखास्रस्** बना हुआ है। समासत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञा है ही। अतः सु आया। अपृक्तसंज्ञा करके **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ, **उखास्रस्** में अन्त्य सकार को **वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः** से **दकार** आदेश करके **उखास्रद्** बना। **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके **उखास्रत्, उखास्रद्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं। आगे उखास्रसौ, उखास्रसः, उखास्रसम्, उखास्रसौ, उखास्रसः, उखास्रसा, उखास्रद्भ्याम्, उखास्रद्भिः, उखास्रद्भ्यः, उखास्रसाम्, उखास्रत्सु आदि।

पर्णध्वत्। पर्णात् ध्वंसते। पत्ते से गिरने वाला। **ध्वंसु अवस्रंसने** धातु है। **पर्ण ङस्** इस पञ्चम्यन्त उपपद वाले **ध्वंस्** धातु से **क्विप् च** से क्विप् प्रत्यय, सर्वापहार लोप हुआ। उपपदसमास के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक्, प्रत्ययलक्षणेन क्विप् को परे मानकर **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से **ध्वंस्** में विद्यमान अनुस्वार के स्थानी **नकार** का लोप हुआ, **ध्वस्** बचा। **पर्णध्वस्** बना हुआ है। समासत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञा है ही। अतः सु आया। अपृक्तसंज्ञा करके **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतीस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ, **पर्णध्वस्** में अन्त्य सकार को **वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः** से **दकार** आदेश करके **पर्णध्वद्** बना। **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके **पर्णध्वत्, पर्णध्वद्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं। आगे पर्णध्वसौ, पर्णध्वसः, पर्णध्वसम्, पर्णध्वसौ, पर्णध्वसः, पर्णध्वसा, पर्णध्वंद्भ्याम्, पर्णध्वद्भिः, पर्णध्वद्भ्यः, पर्णध्वसाम्, पर्णध्वत्सु आदि।

वाहभ्रट्। वाहाद् भ्रंशते। घोड़े से गिरने वाला। **भ्रंशु अवस्रंसने** धातु है। **वाह ङस्+भ्रंश्** इस पञ्चम्यन्त उपपद वाले **भ्रंश्** धातु से **क्विप् च** से क्विप् प्रत्यय, सर्वापहार लोप हुआ। उपपदसमास के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक्, प्रत्ययलक्षणेन क्विप् को परे मानकर **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से **भ्रंश्** में विद्यमान अनुस्वार के स्थानी **नकार** का लोप हुआ, **भ्रश्** बचा। **वाहभ्रश्** बना। समासत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञा है ही। अतः सु आया। अपृक्तसंज्ञा करके **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतीस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ, **वाहभ्रश्** में अन्त्य शकार को **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से **षकार** आदेश करके **वाहभ्रष्** बना। **षकार** को **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व करके **डकार**, उसको **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके **टकार** हो जाता है। इससे **वाहभ्रट्, वाहभ्रड्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं। आगे वाहभ्रशौ, वाहभ्रशः, वाहभ्रशम्, वाहभ्रशौ, वाहभ्रशः, वाहभ्रशा, वाहभ्रड्भ्याम्, वाहभ्रड्भिः, वाहभ्रड्भ्यः, वाहभ्रशाम्, वाहभ्रट्त्सु, वाहभ्रट्सु आदि।

आगे **क्विप्** प्रत्ययान्त कुछ और उदाहरण दिये जा रहे हैं।

शास्त्रकृत्। शास्त्रं करोतीति। शास्त्र बनाने वाला। डुकृञ करणे। शास्त्र-पूर्वक कृ-धातु से **क्विप् च** से क्विप् प्रत्यय, ककार की **लशक्वतद्धिते** से, पकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा हो गई। अनेक हल् वर्णों का अच् की सहायता के विना उच्चारण नहीं हो सकता है, अतः इकार को उच्चारण के लिए लगाया गया है। उसकी इत्संज्ञा करने की आवश्यकता

ही नहीं है, अतः स्वतः निवृत्त हो गई। अब बचा है वकार, उसकी **वेरपृक्तस्य** से लोप हो गया। इस प्रकार से क्विप् प्रत्यय में से कुछ भी नहीं बचा अर्थात् सर्वापहार लोप हुआ। प्रत्ययलक्षण से क्विप् को परे मानकर **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्** से ह्रस्व वर्ण कृ के ऋकार को तुक् का आगम हुआ। अनुबन्धलोप करके त् बचा। कित् होने के कारण ऋकार के अन्त में बैठा। **शास्त्रकृत्** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अनुबन्धलोप करके सकार बचा। उसकी अपृक्तसंज्ञा करके **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ, **शास्त्रकृत्** सिद्ध हुआ। अजादिविभक्ति के परे रहते केवल वर्णसम्मेलन होगा और हलादिविभक्ति के परे रहने पर तकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर दकार बन जाता है। सुप् के परे होने पर जश्त्व होकर के दकार होता है, फिर **खरि च** से चर्त्व होकर तकार ही बन जाता है।

इस तरह सातों विभक्तियों में इसके रूप निम्नानुसार बनते हैं-

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	शास्त्रकृत्	शास्त्रकृतौ	शास्त्रकृतः
द्वितीया	शास्त्रकृतम्	शास्त्रकृतौ	शास्त्रकृतः
तृतीया	शास्त्रकृता	शास्त्रकृद्भ्याम्	शास्त्रकृद्भिः
चतुर्थी	शास्त्रकृते	शास्त्रकृद्भ्याम्	शास्त्रकृद्भ्यः
पञ्चमी	शास्त्रकृतः	शास्त्रकृद्भ्याम्	शास्त्रकृद्भ्यः
षष्ठी	शास्त्रकृतः	शास्त्रकृतोः	शास्त्रकृताम्
सप्तमी	शास्त्रकृति	शास्त्रकृतोः	शास्त्रकृत्सु
सम्बोधन	हे शास्त्रकृत्!	हे शास्त्रकृतौ!	हे शास्त्रकृतः!

मधुलिट्। मधु लेढीति। शहद को चाटने वाला। लिह् आस्वादने। मधुपूर्वक लिह्-धातु से क्विप् प्रत्यय, उसका सर्वापहार, मधुलिह् की प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, उसका लोप, हो ढः से ढत्व करके लिट्-लिड् की तरह **मधुलिट्-मधुलिड्** बनेंगे। सातों विभक्तियों में लिह्-शब्द की तरह ही रूप बनते हैं। जैसे-

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मधुलिट्-ड्	मधुलिहौ	मधुलिहः
द्वितीया	मधुलिहम्	मधुलिहौ	मधुलिहः
तृतीया	मधुलिहा	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भिः
चतुर्थी	मधुलिहे	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
पञ्चमी	मधुलिहः	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
षष्ठी	मधुलिहः	मधुलिहोः	मधुलिहाम्
सप्तमी	मधुलिहि	मधुलिहोः	मधुलिट्त्सु, मधुलिट्सु
सम्बोधन	हे मधुलिट्-ड्!	हे मधुलिहौ!	हे मधुलिहः!

विषभुक्। विषं भुङ्क्ते। विष खाने वाला। भुज पालनाभ्यवहारयोः। विष-पूर्वक भुज्-धातु से क्विप्, सर्वापहार लोप करके विषभुज् की प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, उसका लोप, **चोः कुः** से जकार को कुत्व करके गकार और उसको **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके ककार आदेश, चर्त्व न होने के पक्ष में गकार ही रहेगा। **विषभुक्-विषभुग्** दो रूप बनेंगे। अजादि विभक्ति के परे होने पर केवल वर्णसम्मेलन और हलादिविभक्ति के परे कुत्व करके

णिनिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८०३. सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ३।२।७८॥

अजात्यर्थे सुपि धातोर्णिनिस्ताच्छील्ये द्योत्ये। उष्णभोजी।

....

निम्नानुसार रूप बन जाते हैं-

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विषभुक्-ग्	विषभुजौ	विषभुजः
द्वितीया	विषभुजम्	विषभुजौ	विषभुजः
तृतीया	विषभुजा	विषभुग्भ्याम्	विषभुग्भिः
चतुर्थी	विषभुजे	विषभुग्भ्याम्	विषभुग्भ्यः
पञ्चमी	विषभुजः	विषभुग्भ्याम्	विषभुग्भ्यः
षष्ठी	विषभुजः	विषभुजोः	विषभुजाम्
सप्तमी	विषभुजि	विषभुजोः	विषभुक्षु
सम्बोधन	हे विषभुक्-ग्!	हे विषभुजौ!	हे विषभुजः!

८०३- **सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये**। न जातिरजातिस्तस्यामजातौ। सः (धात्वर्थः) शीलं (स्वभावो) यस्य स तच्छीलः, तस्य भावस्ताच्छील्यं, तस्मिन्। सुपि सप्तम्यन्तम्, अजातौ सप्तम्यन्तं, णिनिः प्रथमान्तं, ताच्छील्ये सप्तम्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **धातोः**, **प्रत्ययः**, **परश्च** का अधिकार है ही।

जात्यर्थ से भिन्न सुबन्त के उपपद होने पर धातु से परे णिनि प्रत्यय होता है यदि कर्ता का शील अर्थात् स्वभाव द्योतित हो तो।

ताच्छील्य का तात्पर्य स्वभाव से है। कर्ता अर्थ में प्रत्यय का विधान हो रहा है। अतः ताच्छील्य अर्थात् स्वभाव भी कर्ता का ही होगा किन्तु वह धातु के अर्थ के अनुसार का स्वभाव होना चाहिए। **णिनि** में णकार और अन्त्य इकार इत्संज्ञक हैं, **इन्** शेष रहता है।

उष्णभोजी। उष्णं भुङ्क्ते तच्छीलम्। गरमागरम खाने का स्वभाव वाला। **भुज** (पालनाभ्यवहारयोः) धातु है। **उष्ण** यह कर्म उपपद है। यहाँ पर जाति अर्थ से भिन्न सुबन्त उपपद है और **ताच्छील्य** अर्थात् **स्वभाव** अर्थ भी गम्यमान है। अतः **सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये** से **णिनि** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप होने के बाद **उष्ण+अम्+भुज्+इन्** बना। कृत् के योग में **कर्तृकर्मणोः कृति** से उपपद कर्म **उष्ण** के साथ षष्ठी विभक्ति आई तो **उष्ण ङस्+भुज् इन्** बना। अब **पुगन्तलघूपधस्य च** से **भुज्** को उपधागुण करके ओकार और **उपपदमतिङ्** से उपपदसमास करके **सुप्** का लुक्, **उष्णभोजिन्** यह प्रातिपदिक निष्पन्न हुआ। इससे **शार्ङ्गिन्** शब्द की तरह सुबन्त में रूप बनाये जाते हैं। उष्णभोजी, उष्णभोजिनौ, उष्णभोजिनः, उष्णभोजिनम्, उष्णभोजिनौ, उष्णभोजिनः, उष्णभोजिना, उष्णभोजिभ्याम्, उष्णभोजिभिः, उष्णभोजिने, उष्णभोजिभ्यः, उष्णभोजिनोः, उष्णभोजिनाम्, उष्णभोजिषु, हे उष्णभोजिन् आदि। इसी तरह कुछ अन्य प्रयोग भी देखें।

सत्यं वदति तच्छीलः (सत्य बोलने वाला) **सत्यवादी, सत्यवादिनौ, सत्यवादिनः।**

मृदु भाषते तच्छीलः (मधुर बोलने वाला। **मृदुभाषी, मदुभाषिणौ, मृदुभाषिणः।**

शीतं भुङ्क्ते तच्छीलः। (ठंडा खाने का स्वभाव वाला)**शीतभोजी, शीतभोजिनौ, शीतभोजिनः।**

णिनिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८०४. मनः ३।२।८२॥

सुपि मन्यतेर्णिनिः स्यात्। दर्शनीयमानी।

खश्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८०५. आत्ममाने खश्च ३।२।८३॥

स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यतेः सुपि खश् स्याच्चाण्णिनिः।

पण्डितमात्मानं मन्यते पण्डितम्मन्यः। पण्डितमानी।

....

मितं भाषते तच्छील:(कम बोलने का स्वभाव वाला) **मितभाषी, मितभाषिणौ, मितभाषिणः।**
प्रियं वदति तच्छील:(प्रिय बोलने का स्वभाव वाला) **प्रियवादी, प्रियवादिनौ, प्रियवादिनः।**

८०४- **मनः।** मनः पञ्चम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **सुप्यजातौ णिनिः** से **सुपि** और **णिनिः** की अनुवृत्ति आती है तथा **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

सुबन्त के उपपद होने पर मन् धातु से णिनि प्रत्यय होता है।

अनुबन्धलोप होकर **इन्** बचता है। **अपने को मानना** अर्थ में अग्रिम सूत्र **आत्ममाने खश्च** लगता है। अतः इस सूत्र से अपने को मानने अर्थ में नहीं अपि तु सामान्यतया **मानना, जानना** अर्थ में **णिनि** किया जाता है।

दर्शनीयमानी। दर्शनीयं मन्यते। सुन्दर, दर्शनीय मानने वाला। **दर्शनीय** कर्म के उपपद रहते **मन ज्ञाने** इस दिवादिगणीय धातु से **णिनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, णित् होने के कारण **मन्** के उपधा की **अत उपधायाः** से वृद्धि होती है। उपपद **दर्शनीय** से **कृत्** के योग में षष्ठी विभक्ति, उपपदसमास, विभक्ति का लुक् करके **दर्शनीयमानिन्** बना। इससे सु आदि विभक्ति के योजन से रूप बनते हैं-

दर्शनीयमानी,	दर्शनीयमानिनौ,	दर्शनीयमानिनः,
दर्शनीयमानिनम्,	दर्शनीयमानिनौ,	दर्शनीयमानिनः,
दर्शनीयमानिना,	दर्शनीयमानिभ्याम्,	दर्शनीयमानिभिः,
दर्शनीयमानिने,	दर्शनीयमानिभ्याम्,	दर्शनीयमानिभ्यः,
दर्शनीयमानिनः,	दर्शनीयमानिभ्याम्,	दर्शनीयमानिभ्यः,
दर्शनीयमानिनः,	दर्शनीयमानिनोः,	दर्शनीयमानिनाम्,
दर्शनीयमानिनि,	दर्शनीयमानिनोः,	दर्शनीयमानिषु,
हे दर्शनीयमानिन्	हे दर्शनीयमानिनौ,	हे दर्शनीयमानिनः।

८०५- **आत्ममाने खश्च।** मननं मानः, आत्मनः=स्वस्य मान आत्ममानः, तस्मिन्। आत्ममाने सप्तम्यन्तं, खः प्रथमान्त, च अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये** से **सुपि, णिनिः** और **मनः** से **मनः** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है ही।

यदि मन् धातु का कर्ता उसका कर्म भी हो अर्थात् अपने को मानता है, ऐसा अर्थ हो तो सुबन्त के उपपद होने पर मन् धातु से खश् और णिनि प्रत्यय होते हैं।

सूत्र में **चकार** पढ़ा गया है, अतः **णिनि** का समुच्चय है। **खश्** में खकार की

ह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्

८०६. खित्यनव्ययस्य ६।३।६६॥

खिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वः। ततो मुम्। कालिम्मन्या।

....

लशक्वतद्धिते से इत्संज्ञा होती है और **शकार** भी **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञक है ही। अतः अ शेष रहता है। **खित्** का प्रयोजन मुम् आगम और **शित्** का प्रयोजन सार्वधातुकसंज्ञा करना है। इस सूत्र से **अपने को मानना** अर्थ में ही ये प्रत्यय किये जाते हैं।

पण्डितम्मन्यः, पण्डितमानी। आत्मानं पण्डितं मन्यते। अपने को पण्डित मानने वाला। यहाँ पर **मन्** धातु का कर्ता अपने आप को पण्डित मान रहा है, अतः **मन्** धातु **आत्ममाने** अर्थ में प्रयुक्त है। **पण्डित** कर्म के उपपद रहते **मन ज्ञाने** इस दिवादिगणीय धातु से **खश्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, कृत् के योग में **षष्ठी** आती है, **पण्डित ङस्+मन्+अ** बना। है। **खश्** के शित् होने से उसकी **सार्वधातुकसंज्ञा** करके **कर्तरि शप्** से **शप्** प्राप्त था, दिवादि धातु होने के कारण उसे बाधकर के **दिवादिभ्यः श्यन्** से **श्यन्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप करने पर **य** बचा। **मन्+य+अ** में **अतो गुणे** से पररूप होकर **मन्य** बनता है। **उपपदमतिङ्** से उपपदसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, प्रातिपदिक के अवयव का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् करने पर **पण्डित+मन्य** बना है। **अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्** से खित् के परे रहने पर **मुम्** का आगम करके, उसको अनुस्वार और परसवर्ण करके **पण्डितम्मन्य** ऐसा **अदन्त** शब्द तैयार हो गया है। अब आगे **स्वादिकार्य** करके पण्डितम्मन्यः, पण्डितम्मन्यौ, पण्डितम्मन्याः आदि रूप बनाये जाते हैं। **खश्** के साथ **णिनि** प्रत्यय का समुच्चय है। अतः **णिनि** होने के पक्ष में **शित्** के न होने के कारण **श्यन्** आदि नहीं होंगे। **खित्** न होने के कारण **मुम्** आगम भी नहीं होगा। इस तरह **पण्डितमानिन्** प्रातिपदिक बनेगा। इसके रूप **दर्शनीयमानिन्** की तरह ही पण्डितमानी, पण्डितमानिनौ, पण्डितमानिनः आदि बना सकते हैं। इसी तरह आत्मानं शूरं मन्यते- शूरम्मन्यः-शूरमानी, वीरम्मन्यः-वीरमानी, धन्यम्मन्यः-धन्यमानी, ईश्वरम्मन्यः-ईश्वरमानी, विद्वन्मन्यः-विद्वन्मानी आदि बनाने का प्रयत्न करें।

८०६-**खित्यनव्ययस्य**। ख् इत् यस्य स खित्, तस्मिन्। न अव्ययम् अनव्ययं, तस्य। खिति सप्तम्यन्तम्, अनव्ययस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अलुगुत्तरपदे** से **उत्तरपदे** का अधिकार है। **इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य** से ह्रस्वः की अनुवृत्ति आती है। **उत्तरपदे** से **पूर्वपद** का आक्षेप किया जाता है।

खित् प्रत्यय जिसके अन्त में हो, ऐसे उत्तरपद के परे रहने पर पूर्वपद के अन्त्य वर्ण को ह्रस्व होता है, अनव्यय में अर्थात् अव्यय को ह्रस्व नहीं होता।

पूर्वपद को प्राप्त ह्रस्व **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से अन्त्य वर्ण को हो जाता है।

कालिम्मन्या। आत्मानं कालीं मन्यते। अपने को काली, दुर्गा मानने वाली, स्त्री। यहाँ पर **मन्** धातु की कर्त्री अपने आप को काली मान रही है, अतः **मन्** धातु **आत्ममाने** अर्थ में प्रयुक्त है। **काली** कर्म के उपपद रहते **मन ज्ञाने** इस दिवादिगणीय धातु से **खश्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, कृत् के योग में **षष्ठी** आती है, **काली ङस्+मन्+अ** बना। **खश्** के शित् होने से उसकी **सार्वधातुकसंज्ञा** करके **कर्तरि शप्** से **शप्** प्राप्त था, दिवादि धातु होने

णिनिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८०७. करणे यजः ३।२।८५॥

करणे उपपदे भूतार्थे यजेर्णिनिः कर्तरि।
सोमेनेष्टवान् सोमयाजी। अग्निष्टोमयाजी।

क्वनिप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८०८. दृशेः क्वनिप् ३।२।९४॥

कर्मणि भूते। पारं दृष्टवान् पारदृश्वा।

....

के कारण उसे बाधकर के **दिवादिभ्यः श्यन्** से **श्यन्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप करने पर य बचा। **मन्+य+अ** में **अतो गुणे** से पररूप होकर **मन्य** बनता है। **उपपदमतिङ्** से उपपदसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, प्रातिपदिक के अवयव का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् करने पर **काली+मन्य** बना है। **खित्यनव्ययस्य** से खिदन्त के परे **काली** के ईकार को ह्रस्व करके **कालि+मन्य** बना। अब **अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्** से खित् के परे रहने पर **मुम्** का आगम करके, उसको अनुस्वार और परसवर्ण करके **कालिम्मन्य** ऐसा **अदन्त** शब्द तैयार हो गया है। स्त्रीत्व की विवक्षा में **टाप्** होकर **कालिम्मन्या** बन जाता है। अब आगे **स्वादिकार्य** करके **कालिम्मन्या, कालिम्मन्ये, कालिम्मन्याः** आदि रूप बनाये जाते हैं। इसी तरह **आत्मानं सुन्दरीं मन्यते- सुन्दरिम्मन्या, सतिम्मन्या** आदि भी बनाये जा सकते हैं।

८०७- **करणे यजः**। करणे सप्तम्यन्तं, यजः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। **सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये** से **णिनि** की अनुवृत्ति आती है।

करण के उपपद होने पर भूतकाल की क्रिया के वाचक यज् धातु से कर्ता अर्थ में णिनि प्रत्यय होता है।

सोमयाजी। सोमेन इष्टवान्। सोमलता से यज्ञ कर चुका व्यक्ति। यहाँ पर **यज्ञ** करने में सोम यह करण है और **भूतकाल** में **करणे यजः** से **यज्** धातु से णिनि करके सोमयाजी, सोमयाजिनौ, सोमयाजिनः आदि बना सकते हैं। ध्यान रहे कि जहाँ जहाँ पर उपपद के रहने पर प्रत्यय होते हैं, वहाँ-वहाँ उपपद का धातु के साथ **उपपदसमास** अवश्य होता है, यह नहीं भूलना चाहिए। कृत् प्रत्यय के लगने के बाद तो कृदन्त मानकर के प्रातिपदिक संज्ञा होती ही है। उसके बाद सु आदि प्रत्ययों के बिना तो पद ही नहीं बनता और पद के बिना प्रयोग ही नहीं किया जा सकता। पाठकों को स्मरण कराते हैं कि व्याख्या में यदि कहीं कहीं उन सारी प्रक्रियाओं को नहीं दिखा सके तो भी आप समझ लें कि समास, स्वादिकार्य आदि सभी होते हैं।

अग्निष्टोमयाजी। अग्निष्टोमेन इष्टवान्। अग्निष्टोम यज्ञ कर चुका व्यक्ति। यहाँ पर यज्ञ करने में **अग्निष्टोम** यह **करण** है और **भूतकाल** में **करणे यजः** से **यज्** धातु से णिनि करके अग्निष्टोमयाजी, अग्निष्टोमयाजिनौ, अग्निष्टोमयाजिनः आदि बना सकते हैं।

८०८- **दृशेः क्वनिप्।** दृशेः पञ्चम्यन्तं, क्वनिप् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है और **कर्मणि हनः** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति आती है।

क्वनिप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८०९. राजनि युधि कृञः ३।२।९५॥

क्वनिप् स्यात्। युधिरन्तर्भावितण्यर्थः। राजानं योधितवान् राजयुध्वा। राजकृत्वा।

क्वनिप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८१०. सहे च ३।२।९६॥

कर्मणीति निवृत्तम्। सह योधितवान् सहयुध्वा। सहकृत्वा।

....

कर्म के उपपद होने पर भूतकालिक क्रिया में वर्तमान(विद्यमान) दृश् धातु से क्वनिप् प्रत्यय होता है।

कर्तरि कृत् के अनुसार यह प्रत्यय भी **कर्ता** अर्थ में ही होता है किन्तु **उपपद** जो है वह **कर्म** होना चाहिए। **क्वनिप्** में अनुबन्ध के लोप होने पर **वन्** शेष रहता है। अपृक्त न होने के कारण **वकार** का लोप नहीं होता।

पारदृश्वा। पारं दृष्टवान्। जो पार को देख चुका है अथवा पारंगत, निष्णात। यहाँ पर भूत काल है और **पार** यह कर्म उपपद है। **दृश्** धातु से **क्वनिप्**, अनुबन्धलोप, **कृत्** के योग में **कर्म में षष्ठी, उपपदसमास** करके सुप् का लुक् करके **पारदृश्वन्** यह प्रातिपदिक सिद्ध हुआ। इससे सु आदि विभक्ति लगा कर **पारदृश्वा, पारदृश्वानौ, पारदृश्वानः** आदि रूप बनते हैं। इसी तरह **शास्त्रदृश्वा, विश्वदृश्वा** आदि अनेक शब्दों की सिद्धि हो सकती है।

८०९- **राजनि युधि कृञः।** राजनि सप्तम्यन्तं, युधि सप्तम्यन्तं, कृञः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **भूते** तथा **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है और **कर्मणि हनः** से **कर्मणि** तथा **दृशेः क्वनिप्** से **क्वनिप्** की अनुवृत्ति आती है।

राजन् इस कर्म के उपपद होने पर भूतकालिक क्रिया में वर्तमान युध् और कृञ् धातुओं से क्वनिप् प्रत्यय होता है।

कर्तरि कृत् के अनुसार यह प्रत्यय भी **कर्ता** अर्थ में ही होता है किन्तु **उपपदसंज्ञक** जो कर्म है वह **राजन्** ऐसा ही होना चाहिए। अनुबन्धलोप होकर **वन्** शेष रहता है। **कौमुदीकार** लिखते हैं कि यहाँ पर **युध्** धातु **अन्तर्भावितण्यर्थ** है अर्थात् धातु में ही **णिच्** का अर्थ विद्यमान है। अतः **युद्ध किया** ऐसा अर्थ न होकर **युद्ध कराया** ऐसा अर्थ होगा।

राजयुध्वा। राजानं योधितवान् । राजा को लड़ाया जिसने। यहाँ पर भूतकाल है और **राजन्** यह कर्म उपपद है। **युध्** धातु से **क्वनिप्**, अनुबन्धलोप, **कृत्** के योग में **कर्म में षष्ठी, उपपदसमास** करके सुप् का लुक् करके **राजयुध्वन्** यह प्रातिपदिक सिद्ध हुआ। इससे सु आदि विभक्ति लगाकर **राजयुध्वा, राजयुध्वानौ, राजयुध्वानः** आदि रूप बनते हैं।

राजकृत्वा। राजानं कृतवान् । राजा को बनाया जिसने। यहाँ पर भूतकाल है और **राजन्** यह कर्म उपपद है। **कृ** धातु से **क्वनिप्**, अनुबन्धलोप, **कृत्** के योग में **कर्म में षष्ठी, उपपदसमास** करके सुप् का लुक् करके **राजकृ+वन्** बना। **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्** से **तुक्** आगम करके **राजकृत्वन्** यह प्रातिपदिक सिद्ध हुआ। इससे सु आदि विभक्ति लगाकर **राजकृत्वा, राजकृत्वानौ, राजकृत्वानः** आदि रूप बनते हैं।

ड-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८११. सप्तम्यां जनेर्डः ३।२।९७॥

अलुग्विधायकं विधिसूत्रम्

८१२. तत्पुरुषे कृति बहुलम् ६।३।१४॥

ङेरलुक्। सरसिजम्, सरोजम्।

....

८१०- **सहे च**। सहे सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च का अधिकार है तथा दृशेः **क्वनिप्** से **क्वनिप्** और राजनि युधि कृञः से **युधि कृञ्** की अनुवृत्ति आती है।

सह के उपपद होने पर भूतकालिक क्रिया में वर्तमान युध् और कृञ् धातुओं से क्वनिप् प्रत्यय होता है।

कर्मणि की अनुवृत्ति यहाँ पर नहीं आती। अतः कौमुदीकार ने लिखा- **कर्मणीति निवृत्तम्।** सह वैसे भी अव्यय है। अतः **सह** यह कर्म नहीं हो सकता। अर्थात् **सह** इस पद को देखते हुए **कर्मणि** स्वतः निवृत्त हुआ।

सहयुध्वा। सह योधितवान्। किसी के साथ युद्ध कर चुका व्यक्ति। यहाँ पर भूत काल है और **सह** यह उपपद है। **युध्** धातु से **क्वनिप्**, अनुबन्धलोप करके **सहयुध्वन्** यह प्रातिपदिक सिद्ध हुआ। इससे सु आदि विभक्ति लगाकर **राजयुध्वन्** की तरह **सहयुध्वा, सहयुध्वानौ, सहयुध्वानः** आदि रूप बनते हैं।

८११- **सप्तम्यां जनेर्डः**। सप्तम्यां सप्तम्यन्तं, जनेः पञ्चम्यन्तं, डः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च का अधिकार है। किसी पद की अनुवृत्ति नहीं है।

सप्तम्यन्त के उपपद रहने पर जन धातु से ड प्रत्यय होता है।

डकार की इत्संज्ञा होकर **अ** बचता है। डित् का फल **डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः** अर्थात् भसंज्ञा के विना भी **टि** का लोप करना। अन्यथा डित् का कोई प्रयोजन नहीं है।

८१२- **तत्पुरुषे कृति बहुलम्**। तत्पुरुषे सप्तम्यन्तं, कृति सप्तम्यन्तं, बहुलम् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम् से **सप्तम्याः** और **अलुगुत्तरपदे** सम्पूण सूत्र की अनुवृत्ति आती है।

तत्पुरुष समास में कृदन्त उत्तरपद के परे होने पर सप्तमी का बहुल से अलुक् होता है।

यह सूत्र **अलुक् समास** का है। समास होने पर जो **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से प्रातिपदिक के अवयव सुप् का लुक् प्राप्त होता है, उसका यह निषेध करता है। यदि तत्पुरुष समास हुआ हो और कृदन्त उत्तरपद में हो एवं पूर्वपद में सप्तमी विभक्ति हो तो उसका लुक् न हो। यह विधि **बहुल** से होती है। **बहुल** का तात्पर्य- **कहीं होना, कहीं न होना, कहीं विकल्प से होना** और **कहीं कुछ भिन्न ही होना।** आप **कृत्यप्रक्रिया** के **कृत्यलुटो बहुलम्** सूत्र में **बहुल** को भलीभाँति समझ चुके हैं। इस सूत्र में **उत्तरपदे** की अनुवृत्ति आने से वह कृति का विशेषण बन जाता है। फलतः **कृदन्ते** यह अर्थ निकलता है।

सरसिजम्, सरोजम्। तालाब में पैदा हुआ, कमल। **सरसि जातम्।** यहाँ पर

डप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८१३. उपसर्गे च संज्ञायाम् ३।२।९९॥

प्रजा स्यात् सन्ततौ जने॥

निष्ठासंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

८१४. क्तक्तवतू निष्ठा १।१।२६॥

एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः।

....

भूतकाल है और **सरस्+ङि** इस सप्तम्यन्त के उपपद होने पर **जन्** (**जनी प्रादुर्भावे**) धातु से **सप्तम्यां जनेर्डः** से ड प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **सरस्+ङि+जन्+अ** बना। **डित्** होने के कारण भसंज्ञा के न रहने पर भी **जन्** में जो टिसंज्ञक **अन्** है, उसका लोप हुआ और जकार प्रत्यय के अकार से मिल गया- **सरस्+ङि+ज** बना। पूर्वपद में विद्यमान सप्तमी विभक्ति का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् प्राप्त था। **तत्पुरुषे कृति बहुलम्** से अलुक् अर्थात् लुक् का निषेध हुआ। यहाँ पर **बहुल** का अर्थ **विकल्प** लिया गया। अतः सप्तमी का विकल्प से अलुक् हुआ। **सरसिज** यह प्रातिपदिक सिद्ध हुआ। इससे सु आदि विभक्ति लगाकर **सरसिजम्, सरसिजे, सरसिजानि** आदि रूप बनते हैं। जब **सप्तमी का अलुक् नहीं हुआ** अर्थात् लुक् हो गया तो **सरस्+ज** बनता है। इसमें **सरस्** पद है ही, अतः पदान्त सकार को रुत्व करके **हशि च** से उत्व करके **सर+उ+ज** बना। गुण होकर **सरोज** बना। स्वादि कार्य करके **सरोजम्, सरोजे, सरोजानि** आदि बनाते जायें। इसी तरह **मनसि जातं मनसिजम्, मनोजम्** मन में उत्पन्न होने वाला कामदेव, **वने जातं वनजम्** आदि अनेक शब्दों की सिद्धि की जाती है।

८१३- **उपसर्गे च संज्ञायाम्।** उपसर्गे सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, संज्ञायां सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। **सप्तम्यां जनेर्डः** से **जनेः** और **डः** की अनुवृत्ति आती है।

उपसर्ग उपपद होने पर भूतकाल में जन् धातु से ड प्रत्यय होता है संज्ञा के विषय में।

इस सूत्र के लिए **उपसर्ग** उपपद में होना चाहिए, **जन्** धातु होना चाहिए और प्रकृति और प्रत्यय से समुदायार्थ **संज्ञा** होनी चाहिए।

प्रजा। प्रजायत इति। जो उत्पन्न हुई है, जनता, सन्तति आदि। **प्र** पूर्वक **जन्** धातु है। संज्ञा अर्थ भी है। अतः **उपसर्गे च संज्ञायाम्** से **प्र+जन्** से **ड** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, टिसंज्ञक **अन्** का लोप करके **प्रज्+अ= प्रज** बना। यहाँ पर **कुगतिप्रादयः** से गतिसमास होता है। संज्ञा में **प्रजा** ऐसा स्त्रीप्रत्ययान्त शब्द प्रयुक्त होता है। अतः **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** प्रत्यय होकर **प्रजा** शब्द बना। इससे **रमा** शब्द की तरह **प्रजा, प्रजे, प्रजाः** आदि सुबन्त रूप बनते हैं।

८१४- **क्तक्तवतू निष्ठा।** क्तश्च क्तवतुश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः क्तक्तवतू। क्तक्तवतू प्रथमान्तं, निष्ठा प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

क्त और क्तवतु प्रत्यय निष्ठासंज्ञक होते हैं।

निष्ठाप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८१५. निष्ठा ३।२।१०२॥

भूतार्थवृत्तोर्धातोर्निष्ठा स्यात्।

तत्र **तयोरेवेति** भावकर्मणोः क्तः, **कर्तरि कृदिति** कर्तरि क्तवतुः। उकावितौ। स्नातं मया। स्तुतस्त्वया विष्णुः। विश्वं कृतवान् विष्णुः।

....

व्याकरणशास्त्र में जहाँ-जहाँ भी निष्ठा का नाम लिया जायेगा, वहाँ-वहाँ ये दोनों प्रत्यय समझे जायेंगे। दोनों प्रत्ययों में ककार **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञक है और क्तवतु में उकार भी **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञक है। क्रमशः **त** और **तवत्** शिष्ट होते हैं। कित् का फल गुणनिषेध आदि है।

८१५- **निष्ठा**। निष्ठा प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। कृदन्तप्रकरण के सूत्रों में **धातोः**, **प्रत्ययः**, **परश्च** इन तीन सूत्रों का अधिकार तो होता ही है, साथ ही इस सूत्र में **भूते** का भी अधिकार है।

निष्ठासंज्ञक क्त और क्तवतु प्रत्यय भूतकाल अर्थ में सभी धातुओं से होते हैं।

तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः के नियमानुसार **क्त** प्रत्यय **भाव** और **कर्म** अर्थ में तथा **कर्तरि कृत्** के निमयमानुसार **क्तवतु** प्रत्यय **कर्ता** अर्थ में होता है। **भाव** और कर्म अर्थ में **क्त** प्रत्यय होने से इसका कर्ता तृतीयान्त होगा किन्तु **क्तवतु** प्रत्यय कर्ता में होने से इसका कर्ता प्रथमान्त होगा।

स्नातं मया। मुझसे नहाया गया। ष्णा शौचे। **धात्वादेः षः सः** से षकार को सत्व करने पर ण भी न में बदल गया। स्ना से **निष्ठा** सूत्र के द्वारा भाव और भूतकाल अर्थ में क्त, अनुबन्धलोप, स्नात, प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अमादेश, पूर्वरूप **स्नातम्** बना। नपुंसकलिङ्ग और औत्सर्गिक एकवचन हुआ। इसका कर्ता अस्मद्-शब्द तृतीयान्त बना- **स्नातं मया**।

स्तुतस्त्वया विष्णुः। तुझ से विष्णु की स्तुति की गई अर्थात् तुमने विष्णु की स्तुति की। ष्टुञ् स्तुतौ। धात्वादेः षः सः। षकार के अभाव में टकार भी तकार में बदल गया। स्तु-धातु से कर्म और भूतकाल अर्थ में क्त प्रत्यय, अनुबन्धलोप, कित् होने के कारण सार्वधातुकार्धधातुकयोः से प्राप्त गुण का **क्ङिति च** से निषेध, स्तुत की प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्वविसर्ग, **स्तुतः** सिद्ध हुआ। यहाँ कर्ता युष्मत्-शब्द तृतीयान्त ही हुआ किन्तु कर्म में प्रत्यय होने के कारण कर्म जिस लिङ्ग, विभक्ति और वचन का होता है, क्रिया भी उसी लिङ्ग, विभक्ति और वचन का होगा। यहाँ पर विष्णु शब्द पुँल्लिङ्ग, प्रथमा, एकवचन का है, इसलिए स्तुतः भी पुँल्लिङ्ग, प्रथमा, एकवचन का ही हुआ- **स्तुतः त्वया विष्णुः**। स्तुतः के विसर्ग को **विसर्जनीयस्य सः** से सकार आदेश होकर **स्तुतस्त्वया विष्णुः** बन गया। अकारान्त स्तुत के पुँल्लिङ्ग में रामशब्द की तरह **स्तुतः, स्तुतौ, स्तुताः**, स्त्रीलिङ्ग में टाप् आदि होकर रमा शब्द की तरह **स्तुता, स्तुते, स्तुताः** और नपुंसकलिङ्ग में ज्ञानशब्द की तरह **स्तुतम्, स्तुते, स्तुतानि** आदि रूप बनते हैं।

विश्वं कृतवान् विष्णुः। विष्णु ने विश्व को बनाया। **(डुकृञ् करणे)** कृ-धातु से कर्ता अर्थ में निष्ठासंज्ञक क्तवतु प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तवत् बचा। कित् होने से गुण का

नकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८१६. रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ८।२।४२॥

रदाभ्यां परस्य निष्ठातस्य नः स्यात्, निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दस्य च। **शॄ हिंसायाम्। ॠत इत्।** रपरः। णत्वम्। शीर्णः। भिन्नः। छिन्नः।

....

निषेध, **कृतवत्** हलन्त शब्द बना। प्रातिपदिकसंज्ञा सु, कृतवत्+स् में धीमत् शब्द की तरह **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से अन्त्य अच् के बाद नुम् आगम, अनुबन्धलोप, **कृतवन्त्+स्** बना। **अत्वसन्तस्य चाधातोः** से वकारोत्तरवर्ती अकार को दीर्घ, **कृतवान्त् स्** बना। सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप, तकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप करने पर **कृतवान्** सिद्ध हुआ। इसके रूप धीमत् की तरह ही चलते हैं।

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कृतवान्	कृतवन्तौ	कृतवन्तः
द्वितीया	कृतवन्तम्	कृतवन्तौ	कृतवतः
तृतीया	कृतवता	कृतवद्भ्याम्	कृतवद्भिः
चतुर्थी	कृतवते	कृतवद्भ्याम्	कृतवद्भ्यः
पञ्चमी	कृतवतः	कृतवद्भ्याम्	कृतवद्भ्यः
षष्ठी	कृतवतः	कृतवतोः	कृतवताम्
सप्तमी	कृतवति	कृतवतोः	कृतवत्सु
सम्बोधन	हे कृतवन्!	हे कृतवन्तौ!	हे कृतवन्तः!

स्त्रीलिङ्ग में **उगितश्च** से ङीप् करके कृतवती बनता है और इसके रूप नदी-शब्द की तरह **कृतवती, कृतवत्यौ, कृतवत्यः** आदि बनते हैं। नपुंसकलिङ्ग में तान्त ही रहेगा और रूप बनेंगे- **कृतवत्, कृतवती, कृतवन्ति, कृतवत्, कृतवती, कृतवन्ति** और तृतीया से पुँल्लिङ्ग की तरह ही रूप बन जाते हैं।

अब आप अन्य धातुओं से भी क्त और क्तवतु प्रत्यय करके रूप बनाइये। जैसे- लिख् से **लिखितम्, लिखितः, लिखितवान्।** पठ् से **पठितम्, पठितः, पठितवान्।** चल् से **चलितम्, चलितः, चलितवान्।** गम् से **गतम्, गतः, गतवान्।** (गम् धातु में अनुनासिक मकार का **अनुदात्तोपदेश०** सूत्र से लोप होता है।) हस् से **हसितम्, हसितः, हसितवान्** इत्यादि।

८१६- **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः।** रश्च दश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो रदौ, ताभ्याम्। निष्ठायाः त् निष्ठात्, तस्य निष्ठातः, षष्ठीतत्पुरुषः। रदाभ्यां पञ्चम्यन्तं, निष्ठातः षष्ठ्यन्तं, नः प्रथमान्तं, पूर्वस्य षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं दः षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

रेफ या दकार से परे निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता और निष्ठा की अपेक्षा पूर्व में स्थित धातु के दकार को भी नकार आदेश होता है।

यह सूत्र रेफ या दकार से क्त-प्रत्यय के तकार के परे रहने पर लगता है, प्रत्यय के तकार के स्थान पर भी नकार करता है और यदि धातु के अन्त में दकार हो तो उसके स्थान पर भी नकार आदेश करता है।

शीर्णः। हिंसा किया गया, मारा गया। **शॄ हिंसायाम्** धातु है। **शॄ** धातु से **निष्ठा**

नकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८१७. संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः ८।२।४३॥

निष्ठातस्य नः स्यात्। द्राणः। ग्लानः।

....

इस सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **शृ+त** बना। **क्त** के कित् होने के कारण प्राप्त गुण का निषेध, **ऋृत इद्धातोः** से धातु में विद्यमान दीर्घ ऋकार के स्थान पर रपर सहित इकार आदेश होने पर **शिर्+त** बना। **हलि च** से रेफान्त उपधा को दीर्घ करके **शीर्+त** बना। रकार से परे निष्ठासंज्ञक तकार के स्थान पर **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** से नकार आदेश हुआ, **शीर्+न** बना। **रषाभ्यां नो णः समानपदे** से नकार को णत्व करके **रेफ** का ऊर्ध्वगमन होकर **शीर्ण** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग करके **शीर्णः** सिद्ध हुआ। **क्तवतु** प्रत्यय में यही प्रक्रिया होती है अर्थात् नत्व होकर **शीर्णवान्** बनता है।

छिन्नः। काटा गया। **छिदिर्** द्वैधीकरणे। **छिद्** धातु से **निष्ठा** सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, **ककार** का लोप, **छिद्+त** बना। दकार से परे निष्ठासंज्ञक तकार और धातु के दकार दोनों के स्थान पर **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** से नकार आदेश हुआ, **छिन्+न** बना, वर्णसम्मेलन, **छिन्न**। प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग, **छिन्नः**। **क्तवतु** प्रत्यय में यही प्रक्रिया होकर **छिन्नवान्** बनता है।

भिन्नः। तोड़ा गया। **भिदिर्** विदारणे। **भिद्** धातु से **निष्ठा** से **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **भिद्+त** बना। दकार से परे निष्ठासंज्ञक तकार है, अतः धातु के दकार और प्रत्यय के तकार दोनों के स्थान पर **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** से नकार आदेश हुआ, **भिन्+न** बना, वर्णसम्मेलन, **भिन्न**। प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग, **भिन्नः**। **क्तवतु** प्रत्यय में यही प्रक्रिया होती है अर्थात् नत्व होकर **भिन्नवान्** बनता है।

८१७-संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः। संयोगः आदिर्यस्य सः संयागादिस्तस्य। यण् अस्मिन्नस्तीति यण्वान्, तस्य। **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** से **निष्ठातः** और **नः** की अनुवृत्ति आती है।

संयोग जिस के आदि में हो ऐसे आकारान्त यण् वाले धातु से परे निष्ठा के तकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

यह सूत्र रदाभ्यां निष्ठातो नः **पूर्वस्य च दः** का समानान्तर सूत्र है। इस सूत्र की प्रवृत्ति में तीन हेतु होने चाहिए- धातु के आदि में संयोग हो, धातु में **यण्** अर्थात् **य्, व्, र्, ल्** में से कोई एक वर्ण हो और वह धातु **आकारान्त** हो। ऐसे में **निष्ठासंज्ञक तकार** के स्थान पर **नकार** हो जाता है।

द्राणः। दुर्गति को प्राप्त। **द्रा** कुत्सायां गतौ। **द्रा** धातु से **निष्ठा** सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **द्रा+त** बना। दकार, रकार से परे निष्ठासंज्ञक तकार नहीं है, अतः नत्व के लिए दूसरा सूत्र लगा- **संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः**। यहाँ पर **द्रा** धातु **द्** और र के संयोग होने से संयोगादि वाला भी है और रेफयुक्त होने के कारण **यण्वान्** भी है तथा आकारान्त भी। अतः निष्ठा के **तकार** के स्थान पर **नकार** आदेश हुआ, **द्रा+न** बना। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से नकार को णत्व करके, प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग, **द्राणः**। **क्तवतु** प्रत्यय में यही प्रक्रिया होकर **द्राणवान्** बनता है।

ग्लानः। खिन्न, दुःखी। **ग्लै** हर्षक्षये। **ग्लै** इस ऐकारान्त धातु से **निष्ठासंज्ञक** प्रत्यय

नकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८१८. ल्वादिभ्यः ८।२।४४॥

एकविंशतेर्लूञादिभ्यः प्राग्वत्।

लूनः। ज्या धातुः। ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम्।

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

८१९. हलः ६।४।२॥

अङ्गावयवाद्धलः परं यत्सम्प्रसारणं तदन्तस्य दीर्घः। जीनः।

नकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८२०. ओदितश्च ८।२।४५॥

भुजो भुग्नः। **टुओश्वि**, उच्छूनः।

....

की विवक्षा में **आदेच उपदेशेऽशिति** से **ऐकार** के स्थान पर **आकार** आदेश करके **ग्ला** बना है। उससे **निष्ठा** के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **ग्ला+त** बना। दकार से परे निष्ठासंज्ञक तकार नहीं है, अतः नत्व के लिए सूत्र लगा- **संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः**। यहाँ पर **ग्ला** धातु संयोगादि वाला भी है, यण्वान् है और आकारान्त भी। अतः निष्ठा के तकार के स्थान पर **नकार** आदेश हुआ, **ग्ला+न** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग, **ग्लानः**। **क्तवतु** प्रत्यय में यही प्रक्रिया होकर **ग्लानवान्** बनता है।

८१८- **ल्वादिभ्यः**। लू आदिर्येषां ते ल्वादयस्तेभ्यः। ल्वादिभ्यः पञ्चम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** से **निष्ठातः** और **नः** की अनुवृत्ति आती है।

लूञ् आदि इक्कीस धातुओं से परे निष्ठा के तकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

लूनः। काटा हुआ। **लूञ् छेदने**। लू धातु से **निष्ठा** सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **लू+त** बना। दकार से परे निष्ठासंज्ञक तकार नहीं है, अतः नत्व के लिए सूत्र लगा- **ल्वादिभ्यः**। इससे **तकार** के स्थान पर **नकार** आदेश हुआ, **लू+न** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग, **लूनः**। **क्तवतु** प्रत्यय में भी नत्व होकर **लूनवान्** बनता है।

८१९- हलः। हलः पञ्चम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **सम्प्रसारणस्य** से **सम्प्रसारणस्य** और **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

अङ्ग के अवयव हल् से परे जो सम्प्रसारण, तदन्त जो अङ्ग, उसको दीर्घ होता है।

अचश्च और **अलोऽन्त्यस्य** इन दो परिभाषासूत्रों की सहायता से **अन्त्य अच्** को ही दीर्घ हो सकता है। **सम्प्रसारणस्य** यह **अङ्गस्य** का विशेषण है, अतः **सम्प्रसारणान्तस्य** यह अर्थ हुआ है।

जीनः। बूढ़ा हुआ। **ज्या वयोहानौ**। ज्या इस आकारान्त धातु से **निष्ठा** सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **ज्या+त** बना। **ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चति-पृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च** से **यकार** को सम्प्रसारण करके **ज्+इ+आ+त** बना है। **इ+आ** में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **इ** मात्र बना। उसके बाद **हलः** से सम्प्रसारण रूप **जि** के

ककारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८२१. शुषः कः ८।२।५१।।

निष्ठातस्य कः। शुष्कः।

....

इकार को दीर्घ हुआ। जी+त बना। दकार से परे निष्ठासंज्ञक तकार नहीं है, अतः नत्व के लिए सूत्र लगा- **ल्वादिभ्यः**। इससे **तकार** के स्थान पर **नकार** आदेश हुआ, **जी+न** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग, **जीनः**। **क्तवतु** प्रत्यय में भी नत्व होकर **जीनवान्** बनता है।

८२०-**ओदितश्च**। ओत् इत् यस्य स ओदित्, बहुव्रीहिः तस्मात्। ओदितः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** से **निष्ठातः** और **नः** की अनुवृत्ति आती है।

ओदित् अर्थात् ओकार इत्संज्ञक धातुओं से परे निष्ठा के तकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

भुग्नः। तोड़ा गया, टेढ़ा किया गया। **भुजो कौटिल्ये**। **भुज्** धातु से **निष्ठा** सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **भुज्+त** बना। **ओदितश्च** से निष्ठा के **तकार** के स्थान पर **नकार** आदेश हुआ, **भुज्+न** बना। **ओदितश्च** परत्रिपादी सूत्र है, अतः इसके द्वारा किया गया कार्य पूर्वत्रिपादी **चोः कुः** की दृष्टि में असिद्ध होता है। अतः तकार मानकर के **चोः कुः** से धातु के **जकार** को कुत्व करके **गकार** हुआ- **भुग्न** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग करके **भुग्नः** सिद्ध हुआ। **क्तवतु** प्रत्यय में भी नत्व होकर **भुग्नवान्** बनता है।

उच्छूनः। सूजा हुआ, फूला हुआ। **टुओश्वि गतिवृद्ध्योः**। इस धातु में **टु** की **आदिर्ञिटुडवः** से और **ओ** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होकर लोप होने के बाद **श्वि** बचता है। **उत्** उपसर्ग पूर्वक **श्वि** धातु से **निष्ठा** सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, उत्+श्वि+त बना। **वचिस्वपियजादीनां किति** से **वकार** को **सम्प्रसारण** करके आगे पूर्वरूप करने पर **उत्+शु+त** बना है। अब **हलः** से सम्प्रसारण रूप **उ** को दीर्घ होकर **उत्+शू+त** बना। **ओदितश्च** से निष्ठा के **तकार** के स्थान पर **नकार** आदेश हुआ, **उत्+शू+न** बना। उपसर्ग के तकार को श्चुत्व और धातु के शकार को **शश्छोऽटि** से छत्व होकर **उच्छून** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग करके **उच्छूनः** सिद्ध हुआ। **क्तवतु** प्रत्यय में नत्व होकर **उच्छूनवान्** बनता है।

८२१- **शुषः कः**। शुषः पञ्चम्यन्तं, कः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** से **निष्ठातः** की अनुवृत्ति आती है।

शुष् धातु से परे निष्ठा के तकार के स्थान पर ककार आदेश होता है।

इस सूत्र में **कः** को देखकर **नः** की अनुवृत्ति रूक जाती है अर्थात् नहीं आती है।

शुष्कः। सूखा हुआ। **शुष शोषणे**। **शुष्** धातु से **निष्ठा** सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **शुष्+त** बना। अब **ष्टुना ष्टुः** से ष्टुत्व और **शुषः कः** से निष्ठा के **तकार** के स्थान पर **ककार** आदेश एक साथ प्राप्त हुए किन्तु **पूर्वत्रासिद्धम्** के नियम से **शुषः कः** इस पूर्वत्रिपादी के प्रति **ष्टुना ष्टुः** यह परत्रिपादी असिद्ध हुआ। अतः **शुषः कः** से तकार के स्थान पर **ककार** आदेश हुआ, **शुष्+क**, वर्णसम्मेलन होकर **शुष्क** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग करके **शुष्कः** सिद्ध हुआ। **क्तवतु** प्रत्यय में कत्व होकर **शुष्कवान्** बनता है।

वकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८२२. पचो वः ८।२।५२॥

पक्वः। **क्षै क्षये।**

मकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८२३. क्षायो मः ८।२।५३॥

क्षामः।

णिलोपविधायकं विधिसूत्रम्

८२४. निष्ठायां सेटि ६।४।५२॥

णेर्लोपः। भावितः। भावितवान्। **दृह हिंसायाम्।**

....

८२२- **पचो वः**। पचः पञ्चम्यन्तं, वः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** से **निष्ठातः** की अनुवृत्ति आती है।

पच् धातु से परे निष्ठा के तकार के स्थान पर वकार आदेश होता है।

इस सूत्र में **वः** पद को देखकर **नः** की अनुवृत्ति रूक जाती है अर्थात् नहीं आती है।

पक्वः। पका हुआ। **डुपचष्** पाके। **पच्** धातु से **निष्ठा** सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **पच्+त** बना। **पचो वः** से तकार के स्थान पर **वकार** आदेश होकर **पच्+व** बना। **चोः कुः** से चकार को **ककार** आदेश हुआ- **पक्+व** बना। वर्णसम्मेलन होकर **पक्व** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग करके **पक्वः** सिद्ध हुआ। **क्तवतु** प्रत्यय में भी वत्व होकर **पक्ववान्** बनता है।

८२३- **क्षायो मः**। क्षायः पञ्चम्यन्तं, मः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** से **निष्ठातः** की अनुवृत्ति आती है।

क्षै धातु से परे निष्ठा के तकार के स्थान पर मकार आदेश होता है।

क्षामः। क्षीण हुआ, कमजोर। **क्षै क्षये। क्षै** धातु से **क्त** प्रत्यय की विवक्षा में **आदेच उपदेशेऽशिति** से आत्त्व करके **क्षा** होने पर **निष्ठा** सूत्र से **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **क्षा+त** बना। **क्षायो मः** से तकार के स्थान पर **मकार** आदेश होकर **क्षा+म** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग करके **क्षामः** सिद्ध हुआ। **क्तवतु** प्रत्यय में भी मत्व होकर **क्षामवान्** बनता है।

८२४- **निष्ठायां सेटि**। इटा सह वर्तते सेट्, तस्मिन्। निष्ठायां सप्तम्यन्तं, सेटि सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **णेरनिटि** से **णेः** और **अतो लोपः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है।

इट् से युक्त निष्ठासंज्ञक प्रत्यय के परे होने पर णि का लोप होता है।

भावितः, भावितवान्। होने की प्रेरणा दे चुका। **भू सत्तायाम्।** भू से **हेतुमति च** के द्वारा णिच् करने पर **भावि** बना है। उससे **क्त** प्रत्यय होने पर **भावि+त** बना है। यहाँ पर **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् करके **भावि+इत** बना। अब **निष्ठायां सेटि** से णि के लोप होने पर **भाव्+इत** बना। वर्णसम्मेलन करने पर **भावितः** बना। क्तवतु प्रत्यय के योग में **भावितवान्** बनता है। यह पुँल्लिङ्ग का रूप है। स्त्रीलिङ्ग में **भाविता, भावितवती** बनते हैं। अण्यन्त भू धातु से तो **निष्ठा** सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **भू+त** बना।

निपातार्थं विधिसूत्रम्

८२५. दृढः स्थूलबलयोः ७।२।२०॥

स्थूले बलवति च निपात्यते।

हि-इत्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८२६. दधातेर्हिः ७।४।४२॥

तादौ किति। हितम्।

....

इट् प्राप्त था, **श्र्युकः किति** से **इट्** का निषेध हुआ. **भूत** बना है। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, रुत्वविसर्ग करके **भूतः** सिद्ध होता है। **क्तवतु** प्रत्यय में **भूतवान्** बनता है।

८२५- **दृढः स्थूलबलयोः**। स्थूलञ्च बलञ्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः स्थूलबले, तयोः। दृढः प्रथमान्तं, स्थूलबलयोः सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्।

स्थूल और बलवान् अर्थ में दृढ शब्द का निपातन किया जाता है।

जो कार्य सूत्रों की प्रक्रिया से सिद्ध नहीं हो रहा है, उस कार्य को सूत्रकार स्वयं अपने मन में बनाकर सिद्धकार्य शब्द को कण्ठतः सूत्र में पढ़ देते हैं। इसीको निपातन कहते हैं। अर्थात् शब्द की सिद्धि के लिए प्रक्रिया का अनुसरण न करके **यह शब्द शुद्ध है**, इस तरह से सीधे कहना ही **निपातन** है। यहाँ पर **दृह्** धातु से क्त प्रत्यय करने पर इट् होकर **दृहितः** ऐसा शब्द बनने जा रहा है। **मोटा** और **बलवान** अर्थ में **दृहितः** बनना अभीष्ट नहीं है। ऐसा बनने से रोकने के लिए **इट्** को रोकने वाला **निषेधक** सूत्र बनाना पढ़ता। आचार्य ने सोचा कि एक तो एक विशेष सूत्र बनाना ही पड़ता और दूसरा इसकी पूरी प्रक्रिया करनी पड़ेगी। जैसे कि जब **हकार** को **हो ढः** से ढत्व, **झषस्तथोर्धोऽधः** से निष्ठा के तकार के स्थान पर धत्व, धकार को ष्टुत्व करके **दृढ्+ढ** में **ढो ढे लोपः** से पूर्व ढकार का लोप आदि लम्बी प्रक्रिया करनी पड़ती। अतः एक ही सूत्र बना कर के सब काम निपटा लिया जाय। अतः कहा कि **मोटा** और **बलवान्** अर्थ में **दृह्** धातु से **क्त** प्रत्यय करने पर **दृढः** बनता है। अर्थात् अन्य अर्थों में इस धातु से **दृहितः** बन सकता है किन्तु उक्त अर्थ में तो **दृढः** ही बनेगा।

८२६- दधातेर्हिः। दधातेः षष्ठ्यन्तं, हिः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति** से ति और किति की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

तकारादि कित् प्रत्यय के परे होने पर धा धातु के स्थान पर हि आदेश होता है।

यहाँ पर **यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे** से तदादिविधि होकर **ति** से **तकारादि** अर्थ निकलता है। **अनेकाल्** होने के कारण **अनेकाल्शित् सर्वस्य** के नियम से यह **सर्वादेश** होता है।

हितम्। धारण किया हुआ। **डुधाञ् धारणपोषणयोः**। यहाँ **धा** धातु से **निष्ठा** सूत्र के द्वारा **क्त** प्रत्यय, ककार का लोप, **धा+त** बना। अनिट् धातु है। **दधातेर्हिः** से **धा** के स्थान पर **हि** आदेश हुआ- **हि+त** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, स्वादि कार्य करके **हितम्** सिद्ध हुआ। उपसर्गों के याग में इसी से **विहितम्, अभिहितम्, निहितम्** आदि प्रयोग होते हैं।

दथादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८२७. दो दद् घोः ७।४।४६॥

घुसंज्ञकस्य दा इत्यस्य दथ् स्यात् तादौ किति। चर्त्वम्। दत्तः।

....

८२७- दो दद् घोः। दः षष्ठ्यन्तं, दद् प्रथमान्तं, घोः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति** से ति और किति की अनुवृत्ति आती है।

तकारादि कित् प्रत्यय के परे होने पर घुसंज्ञक दा धातु के स्थान पर दद् आदेश होता है।

दत्तः। दिया गया। डुदाञ् दाने। दा धातु से निष्ठा सूत्र द्वारा **क्त** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **दा+त** बना। **दो दद् घोः** से दा के स्थान पर दद् आदेश होकर **दद्+त** बना। दकार को **खरि च** से चर्त्व होकर दत्तः सिद्ध हुआ। **क्तवतु** प्रत्यय होकर **दत्तवान्** बनता है।

भूतकाल में होने के कारण **क्त** और **क्तवतु** प्रत्ययान्त शब्दों को क्रिया की तरह प्रयोग कर सकते हैं। **स गृहं गतः, स गृहं गतवान्, तेन पुस्तकं पठितम्, स पुस्तकं पठितवान्। सा पुस्तकं पठितवती। तत् कुलं पठितवत्** आदि।

इस तरह से **निष्ठा** प्रत्यय और उसके स्थान पर होने वाले आदेश आदि का विवेचन किया गया। लोक में **निष्ठाप्रत्ययान्त** शब्दों का प्रयोग खूब होता है। अतः पाठक गण धातु से इन दोनों प्रत्ययों को लगा कर के शब्द बनाने का अभ्यास करें। यह ध्यान रहे कि धातु यदि अनिट् हो तो क्त में भी इट् नहीं होगा और धातु यदि सेट् है तो यहाँ पर भी उससे इट् होगा किन्तु कहीं-कहीं निष्ठा में इट् का निषेध किया गया है। वह विषय **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में नहीं रखा गया है। **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में इसका पूर्ण ज्ञान हो सकेगा। फिर छात्रों के लिए कुछ दिशा निर्देश कर रहे हैं। कुछ धातु के **निष्ठा** प्रत्ययान्त रूप दे रहे हैं। नीचे **मोटे काले** अक्षर में धातु हैं और सामान्य अक्षरों में पहला शब्द **क्त** प्रत्यय वाला और दूसरा शब्द **क्तवतु** प्रत्यय वाला है। अर्थ तो **धातुपाठ** से लिया जा सकता है।

धातु	प्रत्यय	धातु	प्रत्यय	धातु	प्रत्यय
अर्च	अर्चितः, अर्चितवान्	**आप्**	आप्तः, आप्तवान्	**इष्**	इष्टः, इष्टवान्
ईक्ष्	ईक्षितः, ईक्षितवान्	**कथ्**	कथितः, कथितवान्	**कुप्**	कुपितः, कुपितवान्
कृ	कृतः, कृतवान्	**क्री**	क्रीतः, क्रीतवान्	**क्रुध्**	क्रुद्धः, क्रुद्धवान्
क्षिप्	क्षिप्तः, क्षिप्तवान्	**खाद्**	खादितः, खादितवान्	**खिद्**	खिन्नः, खिन्नवान्
ख्या	ख्यातः, ख्यातवान्	**गद्**	गदितः, गदितवान्	**गम्**	गतः, गतवान्
गर्ज्	गर्जितः, गर्जितवान्	**गै**	गीतः, गीतवान्	**ग्रस्**	ग्रस्तः, ग्रस्तवान्
ग्रह्	गृहीतः, गृहीतवान्	**घुष्**	घोषितः, घोषितवान्	**घ्रा**	घ्रातः, घ्रातवान्
चर्व्	चर्वितः, चर्वितवान्	**चल्**	चलितः, चलितवान्	**चि**	चितः, चितवान्
चिन्त	चिन्तितः, चिन्तितवान्	**चुम्ब्**	चुम्बितः, चुम्बितवान्	**चेष्ट्**	चेष्टितः, चेष्टितवान्
छिद्	छिन्नः, छिन्नवान्	**जन्**	जातः, जातवान्	**जागृ**	जागरितः, जागरितवान्
जि	जितः, जितवान्	**जीव्**	जीवितः, जीवितवान्	**जुष्**	जुष्टः, जुष्टवान्

ज्ञा	ज्ञातः, ज्ञातवान्	तप्	तप्तः, तप्तवान्	तुष्	तुष्टः, तुष्टवान्
त्यज्	त्यक्तः, त्यक्तवान्	त्रस्	त्रस्तः, त्रस्तवान्	त्रै	त्रातः, त्रातवान्
दण्ड्	दण्डितः, दण्डितवान्	दह्	दग्धः, दग्धवान्	दा	दत्तः, दत्तवान्
दीप्	दीप्तः, दीप्तवान्	दुष्	दुष्टः, दुष्टवान्	दुह्	दुग्धः, दुग्धवान्
दृश्	दृष्टः, दृष्टवान्	धृ	धृतः, धृतवान्	ध्यै	ध्यातः, ध्यातवान्
नम्	नतः, नतवान्	नश्	नष्टः, नष्टवान्	निन्द्	निन्दितः, निन्दितवान्
नी	नीतः, नीतवान्	नु	नुतः, नुतवान्	पच्	पक्वः, पक्ववान्
पठ्	पठितः, पठितवान्	पत्	पतितः, पतितवान्	पा	पीतः, पीतवान्
पा	पातः, पातवान्	पाल्	पालितः, पालितवान्	पिष्	पिष्ट, पिष्टवान्
पीड्	पीडितः, पीडितवान्	पुष्	पुष्टः, पुष्टवान्	पूञ्	पूतः, पूतवान्
पूज्	पूजितः, पूजितवान्	प्रच्छ्	पृष्टः, पृष्टवान्	बन्ध्	बद्धः, बद्धवान्
बाध्	बाधितः, बाधितवान्	बुध्	बुद्धः, बुद्धवान्	ब्रू	उक्तः, उक्तवान्
भक्ष्	भक्षितः, भक्षितवान्	भाष्	भाषितः, भाषितवान्	भी	भीतः, भीतवान्
भुज्	भुक्तः, भुक्तवान्	भू	भूतः, भूतवान्	भूष्	भूषितः, भूषितवान्
भ्रंश्	भ्रष्टः, भ्रष्टवान्	भ्रम्	भ्रान्तः, भ्रान्तवान्	मण्ड्	मण्डितः, मण्डितवान्
मद्	मत्तः, मत्तवान्	मन्	मतः, मतवान्	मान्	मानितः, मानितवान्
मिल्	मिलितः, मिलितवान्	मुच्	मुक्तः, मुक्तवान्	मुह्	मुग्धः, मुग्धवान्
मृ	मृतः, मृतवान्	यज्	इष्टः, इष्टवान्	या	यातः, यातवान्
याच्	याचितः, याचितवान्	युज्	युक्तः, युक्तवान्	युध्	युद्धः, युद्धवान्
रक्ष्	रक्षितः, रक्षितवान्	रच्	रचितः, रचितवान्	रम्	रतः, रतवान्
राज्	राजितः, राजितवान्	रिच्	रिक्तः, रिक्तवान्	रुद्	रुदितः, रुदितवान्
रुध्	रुद्धः, रुद्धवान्	रुष्	रुष्टः, रुष्टवान्	लभ्	लब्धः, लब्धवान्
लिख्	लिखितः, लिखितवान्	लिप्	लिप्तः, लिप्तवान्	वच्	उक्तः, उक्तवान्
वन्द्	वन्दितः, वन्दितवान्	वस्	उषितः, उषितवान्	वाञ्छ्	वाञ्छितः, वाञ्छितवान्
विद्	विदितः, विदितवान्	वृ	वृतः, वृतवान्	वृध्	वर्धितः, वर्धितवान्
वेष्ट्	वेष्टितः, वेष्टितवान्	व्यथ्	व्यथितः, व्यथितवान्	व्यध्	विद्धः, विद्धवान्
शक्	शक्तः, शक्तवान्	शङ्क्	शङ्कितः, शङ्कितवान्	शप्	शप्तः, शप्तवान्
शम्	शान्तः, शान्तवान्	शास्	शिष्टः, शिष्टवान्	शिक्ष्	शिक्षितः, शिक्षितवान्
शी	शयितः, शयितवान्	शुच्	शोचितः, शोचितवान्	शुध्	शुद्धः, शुद्धवान्
शुभ्	शोभितः, शोभितवान्	शुष्	शुष्कः, शुष्कवान्	श्रम्	श्रान्तः, श्रान्तवान्
श्रि	श्रितः, श्रितवान्	श्रु	श्रुतः, श्रुतवान्	श्लिष्	श्लिष्टः, श्लिष्टवान्
सह्	सोढः, सोढवान्	सिच्	सिक्तः, सिक्तवान्	सूच्	सूचितः, सूचितवान्
सृज्	सृष्टः, सृष्टवान्	सेव्	सेवितः, सेवितवान्	स्खल्	स्खलितः, स्खलितवान्
स्तु	स्तुतः, स्तुतवान्	स्था	स्थितः, स्थितवान्	स्ना	स्नातः, स्नातवान्
स्पृश्	स्पृष्टः, स्पृष्टवान्	स्मृ	स्मृतः, स्मृतवान्	स्वप्	सुप्तः, सुप्तवान्
हन्	हतः, हतवान्	हस्	हसितः, हसितवान्	हा	हीनः, हीनवान्
हु	हुतः, हुतवान्	हृ	हृतः, हृतवान्	आ+ह्वे	आहूतः, आहूतवान्

स्मरण रहे कि **कृदन्तप्रकरण** में जो जो भी प्रत्यय होते हैं, उन **कृदन्त** शब्दों की

कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा होती है। इसके बाद प्राय: सभी शब्द ऐसे हैं, जिनके तीनों लिङ्गों में रूप बनते है और कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो किसी लिङ्गविशेष में ही प्रयुक्त होते हैं किन्तु **निष्ठा** प्रत्ययान्त शब्द भूतकाल में होते हैं। अत: इसके सभी लिङ्गों में रूप होते हैं। जैसे- **पठ्** धातु से **क्त** प्रत्यय करने पर पुँल्लिङ्ग में **पठित:**, स्त्रीलिङ्ग में **पठिता** और नपुंसकलिङ्ग में **पठितम्** एवं **क्तवतु** प्रत्यय होकर पुँल्लिङ्ग में **पठितवान्**, स्त्रीलिङ्ग में **पठितवती** और नपुंसकलिङ्ग में **पठितवत्** ये प्रथमा एकवचनान्त सिद्ध होते हैं।

क्त प्रत्ययान्त पठित शब्द के पुँल्लिङ्ग में रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पठित:	पठितौ	पठिता:
द्वितीया	पठितम्	पठितौ	पठितान्
तृतीया	पठितेन	पठिताभ्याम्	पठितै:
चतुर्थी	पठिताय	पठिताभ्याम्	पठितेभ्य:
पञ्चमी	पठितात्	पठिताभ्याम्	पठितेभ्य:
षष्ठी	पठितस्य	पठितयो:	पठितानाम्
सप्तमी	पठिते	पठितयो:	पठितेषु
सम्बोधन	हे पठित!	हे पठितौ!	हे पठिता:!

क्त प्रत्ययान्त पठिता शब्द के स्त्रीलिङ्ग में रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पठिता	पठिते	पठिता:
द्वितीया	पठिताम्	पठिते	पठिता:
तृतीया	पठितया	पठिताभ्याम्	पठिताभि:
चतुर्थी	पठितायै	पठिताभ्याम्	पठिताभ्य:
पञ्चमी'	पठिताया:	पठिताभ्याम्	पठिताभ्य:
षष्ठी	पठिताया:	पठितयो:	पठितानाम्
सप्तमी	पठितायाम्	पठितयो:	पठितासु
सम्बोधन	हे पठिते	हे पठिते!	हे पठिता:!

क्त प्रत्ययान्त पठित शब्द के नपुंसकलिङ्ग में रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पठितम्	पठिते	पठितानि
द्वितीया	पठितम्	पठिते	पठितानि

तृतीया से पुँल्लिङ्ग की तरह ही रूप होते हैं।

क्तवतु प्रत्ययान्त पठितवत् शब्द के पुँल्लिङ्ग में रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पठितवान्	पठितवन्तौ	पठितवन्त:
द्वितीया	पठितवन्तम्	पठितवन्तौ	पठितवन्त:
तृतीया	पठितवता	पठितवद्भ्याम्	पठितवद्भि:
चतुर्थी	पठितवते	पठितवद्भ्याम्	पठितवद्भ्य:

कानजादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८२८. लिटः कानज्वा ३।२।१०६॥

क्वस्वादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८२९. क्वसुश्च ३।२।१०७॥

लिटः कानच् क्वसुश्च वा स्तः। **तङानावात्मनेपदम्।** चक्राणः।

....

पञ्चमी	पठितवतः	पठितवद्भ्याम्	पठितवद्भ्यः
षष्ठी	पठितवतः	पठितवतोः	पठितवताम्
सप्तमी	पठितवति	पठितवतोः	पठितवत्सु
सम्बोधन	हे पठितवन्!	हे पठितवन्तौ!	हे पठितवन्तः!

क्तवतु प्रत्ययान्त पठितवत् (पठितवती) शब्द के स्त्रीलिङ्ग में रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पठितवती	पठितवत्यौ	पठितवत्यः
द्वितीया	पठितवतीम्	पठितवत्यौ	पठितवतीः
तृतीया	पठितवत्या	पठितवतीभ्याम्	पठितवतीभिः
चतुर्थी	पठितवत्यै	पठितवतीभ्याम्	पठितवतीभ्यः
पञ्चमी	पठितवत्याः	पठितवतीभ्याम्	पठितवतीभ्यः
षष्ठी	पठितवत्याः	पठितवत्योः	पठितवतीनाम्
सप्तमी	पठितवत्याम्	पठितवत्योः	पठितवतीषु
सम्बोधन	हे पठितवति!	हे पठितवत्यौ!	हे पठितवत्यः!

क्तवतु प्रत्ययान्त पठितवत् शब्द के नपुंसकलिङ्ग में रूप

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पठितववत्	पठितवती	पठितवन्ति
द्वितीया	पठितववत्	पठितवती	पठितवन्ति

तृतीया से पुँल्लिङ्ग की तरह ही रूप होते हैं।

८२८- लिटः कानज्वा। लिटः षष्ठ्यन्तं, कानच् प्रथमान्तं, वा अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्।

लिट् के स्थान पर कानच् आदेश विकल्प से होता है।

८२९- क्वसुश्च। क्वसुः प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **लिटः कानच् वा** से **लिटः** और **वा** की अनुवृत्ति आती है।

लिट् के स्थान पर क्वसु आदेश भी विकल्प से होता है।

इन दोनों का सम्मिलित अर्थ भी किया जा सकता है। वह इस तरह से- **लिट् के स्थान पर कानच् और क्वसु आदेश विकल्प से होते हैं।**

इन दो सूत्रों से पूर्वसूत्र **छन्दसि लिट्** से सामान्य भूतकाल में **लिट्** लकार होता है। वेद में उसी के स्थान पर इन दो सूत्रों के द्वारा **कानच्** और **क्वसु** प्रत्यय हो जाते हैं। अतः कानच् और क्वसु प्रत्ययान्त शब्द भी वेद में ही प्रयुक्त होते हैं परन्तु क्वसु-प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग कवियों ने कहीं-कहीं किया है। जैसे कि **रघुवंश** में **कालिदास** ने- **तं तस्थिवांसम्, श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषः** आदि प्रयोग किया है।

नकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८३०. म्वोश्च ८।२।६५॥

मान्तस्य धातोर्नत्वं म्वोः परतः। जगन्वान्।

शतृशानचादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८३१. लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ३।२।१२४॥

अप्रथमान्तेन समानाधिकरणे लट एतौ वा स्तः। शबादिः।

पचन्तं चैत्रं पश्य।

....

कानच् की **तङानावात्मनेपदम्** से आतमनेपदसंज्ञा होती है। **कानच्** में **आन** और **क्वसु** में **वस्** बचता है।

चक्राण। **कृ** धातु से लिट् के स्थान पर **कानच्** आदेश करके अनुबन्धलोप करने पर **कृ+आन** बना। स्थानिवद्भावेन **आन** को लिट् मान कर के **लिटि धातोरनभ्यासस्य** से **कृ** को द्वित्व, उरत्, रपर, हलादिशेष, चुत्व करके **चकृ+आन** बना। **आन** लिट् का अपित् है, अतः **असंयोगाल्लिट् कित्** से किद्वद्भाव हो गया है। अतः **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से प्राप्त गुण का **क्ङिति च** से निषेध हो जाता है। फलतः **चकृ+आन** में **इको यणचि** से यण् होकर **चक्राण** बनता है। प्रातिपदिकसंज्ञा, स्वादिकार्य करके **चक्राणः** सिद्ध हो जाता है।

८३०- **म्वोश्च।** म् च व् च म्वौ, तयोः म्वोः। म्वोः सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **मो नो धातोः** यह पूरा सूत्र आता है।

मकारान्त धातु के मकार के स्थान पर नकार आदेश होता है मकार और वकार के परे रहने पर।

जगन्वान्। **गम्** धातु से परे **लिट्** के स्थान पर **क्वसुश्च** से **क्वसु** आदेश, अनुबन्धलोप करके **गम्+वस्** बना। स्थानिद्वद्भावेन **वस्** को लिड्वत् मानकर **गम्** को द्वित्व, अभ्याससंज्ञा, हलादिशेष, चुत्व करके **जगम्+वस्** बना। प्राप्त इट् का **नेड् वशि कृति** से निषेध। पुनः **विभाषा गमहनविदविशाम्** से विकल्प से इट् का आगम करके **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से उपधालोप करने पर **जग्मिवस्** बनता है। इससे **जग्मिवान्** आदि सिद्ध होते हैं। इट् न होने के पक्ष में **म्वोश्च** से धातु के मकार के स्थान पर **नकार** आदेश करके **जगन्वस्** बनता है। अब **विद्वस्** शब्द की तरह **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से नुम्, **सान्तमहतः संयोगस्य** से दीर्घ करके, हल्ङ्याादिलोप, संयोगान्त सकार का लोप करने पर **जगन्वान्** सिद्ध होता है। **जगन्वान्, जगन्वांसौ, जगन्वांसः, जगन्वांसम्, जगन्वांसौ,** आगे **वसोः सम्प्रसारणम्** से सम्प्रसारण एवं अजादि कित् परे मिलने के कारण **गमहनजनखनघासामुपधालोपो झलि क्ङिति** से उपधाभूत अकार का लोप होकर **जग्मुषः, जग्मुषा** आदि बनते हैं। हलादि के परे **वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः** से दकार आदेश होने के कारण **जगन्वद्भ्याम्, जगन्वद्भिः** आदि रूप बनते हैं।

८३१- **लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे।** शता च शानच् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः शतृशानचौ। न प्रथमा अप्रथमा। समानम् अधिकरणं यस्य स समानाधिकरणः। अप्रथमया समानाधिकरणः अप्रथमासमानाधिकरणस्तस्मिन्। लटः षष्ठ्यन्तं, शतृशानचौ प्रथमान्तम्, अप्रथमासमानाधिकरणे सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

मुगागमविधायकं विधिसूत्रम्

८३२. आने मुक् ७।२।८२॥

अदन्ताङ्गस्य मुमागमः स्यादाने परे। पचमानं चैत्रं पश्य। लडित्यनुवर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणात् प्रथमासामानाधिकरण्येऽपि क्वचित्। सन् द्विजः।

....

अप्रथमान्त अर्थात् द्वितीयान्त आदि के साथ समानाधिकरण होने पर लट् के स्थान पर शतृ और शानच् आदेश होते हैं।

समानविभक्तिक अर्थात् शतृ-प्रत्ययान्त क्रियाशब्द और कारक की एक ही विभक्ति में होने की स्थिति हो तो लट् के स्थान पर शतृ और शानच् आदेश होते हैं। परस्मैपदी धातु से शतृ और आत्मनेपदी से शानच् तथा उभयपदी से दोनों प्रत्यय होते हैं। शानच् की **तङानावात्मनेपदम्** से आत्मनेपदसंज्ञा होती है। शित् होने के कारण **तिङ्शित् सार्वधातुकम्** से शतृ और शानच् की सार्वधातुकसंज्ञा होती है। शतृ में शकार और ऋकार इत्संज्ञक हैं। अत् शेष रहता है। शित् करण का फल सार्वधातुकसंज्ञा आदि है।। ऋकारेत्संज्ञा का फल **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से नुम् आदि करना है। शानच् में शकार और चकार इत्संज्ञक हैं, आन शेष रहता है। द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी इन सभी विभक्तियों के साथ एकविभक्तिक होने पर सर्वत्र शतृ, शानच् हो जाते हैं। शतृ की सार्वधातुकसंज्ञा करके शप् होगा।

पचन्तं चैत्रं पश्य। पकाते हुए चैत्र को देखो। यहाँ पर **चैत्रम्** द्वितीयान्त होने से **अप्रथमान्त** है। चैत्रम् यह पद जिस अर्थ को कहता है, **पच्** धातु से वर्तमान काल में लाया गया लट् भी उसी अर्थ को कहता है। अतः **अप्रथमान्त** के साथ **समान अधिकरण** है। इस अवस्था में **लट्** के स्थान पर **शतृ** और **शानच्** हो सकते हैं। यहाँ पर **शतृ** का उदाहरण दिखा रहे हैं। **पच्+लट्** में **लट्** के स्थान पर **लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे** से शतृ आदेश, अनुबन्धलोप, **पच्+अत्** बना, **अत्** की सार्वधातुकसंज्ञा करके **कर्तरि शप्** से शप्, अनुबन्धलोप, **पच्+अ+अत्** बना। **अ+अत्** में **अतो गुणे** से पररूप **पच्+अत्**, वर्णसम्मेलन, **पचत्**, प्रातिपदिकसंज्ञा, **अम्** विभक्ति, **पचत्+अम्** बना। **उगिदचां सर्वनामस्थाने धातोः** से नुम्, मित् होने के कारण अन्त्य अच् **चकार** के अकार के बाद बैठा, **पचन्त्+अम्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **पचन्तम्** सिद्ध हुआ। इसके शेष रूप **धीमत्** शब्द की तरह पुँल्लिङ्ग में **पचन्तौ**, **पचतः**, **पचता** आदि, स्त्रीलिङ्ग में **पचन्तीम्, पचन्त्यौ, पचन्त्यः** आदि बनेंगे।

आगे बताया जा रहा है कि कहीं कहीं प्रथमा के साथ समानाधिकरण होने पर भी ये आदेश होते हैं। अतः इनका प्रयोग प्रथमा, द्वितीया आदि कारक के साथ भी एकविभक्तिकत्वेन अन्वय होने पर ही होगा। जैसे प्रथमा के साथ समानाधिकरण के उदाहरण हैं- **रामः पठन् गच्छति**, द्वितीया का **पचन्तं चैत्रं पश्य**, तृतीया का **पचता चैत्रेण आनीतम्**, चतुर्थी का **पचते चैत्राय देहि**, पञ्चमी का **पचतश्चैत्रादानीतम्**, षष्ठी का **पचतश्चैत्रस्य पुस्तकम्** और सप्तमी का **पचति चैत्रे दयालुता नास्ति** आदि।

८३२- **आने मुक्।** आने सप्तम्यन्तं, मुक् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अतो येयः** से **अतः** की षष्ठी में विपरिणाम करके अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

वस्वादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८३३. विदेः शतुर्वसुः ७।१।३६॥

वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा। विदन्। विद्वान्।

....

आन के परे होने अदन्त अङ्ग को मुक् का आगम होता है।

मुक् में उकार और ककार इत्संज्ञक हैं। कित् होने के कारण अदन्त के अन्त में बैठैगा।

पचमानं चैत्रं पश्य। पच् धातु उभयपदी है, अतः शतृ और शानच् दोनों होते हैं। शतृ का प्रयोग आपने सिद्ध कर ही लिया, अब शानच् का प्रयोग सिद्ध करते हैं। पच् से शानच्, अनुबन्धलोपे, **पच्+आन**, सार्वधातुकसंज्ञा और शप्, अनुबन्धलोप, **पच्+अ+आन** बना। **पच्+अ=पच, पच+आन में आने मुक्** से पच के अकार को मुक् आगम, अनुबन्ध लोप, **पच+म्+आन,** वर्णसम्मेलन हुआ, **पचमान** ऐसा अकारान्त शब्द बना। प्रातिपदिकसंज्ञा करके पुँल्लिङ्ग में राम शब्द की तरह **पचमानः** और स्त्रीलिङ्ग में टाप् करके **पचमाना** शब्द बनाकर रमा शब्द की तरह रूप बनते हैं। अब प्रथमा, द्वितीया आदि किसी भी विभक्ति के साथ समानाधिकरण अर्थात् एकविभक्तिक करके प्रयोग करें। **पचमानं चैत्रं पश्य। पचमानेन चैत्रेण आनीतम्, पचमानाय चैत्राय देहि आदि। पचमानात् चैत्रादानीतम्, पचमानस्य चैत्रस्य पुस्तकं, पचमाने चैत्रे दयालुता नास्ति।**

वेद और **लोक** में प्रथमान्त के साथ सामानाधिकरण्य में भी **शतृ** और **शानच्** प्रत्यय के रूप पर्याप्त मात्रा में देखे जाते हैं किन्तु **लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे** से प्रथमान्त के साथ समानाधिकरण्य में ये आदेश कतई नहीं हो सकते। प्रथमान्त समानाधिकरण में काव्य और शास्त्रों में प्रयुक्त शतृ-शानच् प्रत्ययान्त शब्दों को भी सीधे असाधु मानना भी उचित नहीं है। सभी लोग प्रथमासमानाधिकरण में ऐसे रूप प्रचुर मात्रा में करते आ रहे हैं। क्या ऐसे शब्दों को असाधु माना जाय? इस पर कौमुदीकार कहते हैं कि **लडित्यनुवर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणात् प्रथमासामानाधिकरण्येऽपि क्वचित्** अर्थात् वर्तमाने लट् से विभक्तिविपरिणाम करके **लटः** की अनुवृत्ति हो सकती थी तो इस सूत्र में **लटः** क्यों पढ़ा? पुनः लट् पढ़ने का तात्पर्य यह है कि सर्वथा प्रथमासमानाधिकरण में निषेध नहीं किया गया है। क्योंकि पाणिनि जी ही ऐसा व्यवहार दिखाते हैं। **लटः** का इस सूत्र में पुनः पठन करना यह संकेत करने के लिए है कि कहीं कहीं प्रथमासमानाधिकरण में भी ये आदेश किये जा सकते हैं। अतः **सन् द्विजः** आदि प्रथमा के साथ समानाधिकरण वाले प्रयोगों में भी **शतृ** होता है। **अस्** धातु से **शतृ** करने पर **श्नसोरल्लोपः** से **अस्** के **अकार** का लोप करके प्रथमा के एक वचन में **सन्** बनता है। **सन् द्विजः**। विद्यमान ब्राह्मण। आगे **सन्तौ ब्राह्मणौ, सन्तो ब्राह्मणाः, सन्तं ब्राह्मणं, सतः ब्राह्मणान्।**

अब इसी प्रकार आपने अभी तक जितने धातुओं का अध्ययन किया, उनसे और धातुपाठ में देखकर अन्य प्रचलित धातुओं से भी शतृ और शानच् प्रत्यय लगाकर रूप बनाइये।

८३३- विदेः शतुर्वसुः। विदेः पञ्चम्यन्तं, शतुः षष्ठ्यन्तं, वसुः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है।

सत्संज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

८३४. तौ सत् ३।२।१२७॥

तौ शतृ-शानचौ सत्संज्ञौ स्तः।

वैकल्पिकसत्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८३५. लृटः सद्वा ३।३।१४॥

व्यवस्थितविभाषेयम्। तेनाप्रथमासामानाधिकरण्ये प्रत्ययोत्तरपदयोः सम्बोधने लक्षणहेत्वोश्च नित्यम्। करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य।

....

विद् धातु से परे शतृ के स्थान पर विकल्प से वसु आदेश होता है।

यह सूत्र केवल **विद्** धातु में लगता है। वसु में **उकार** की इत्संज्ञा होती है, **वस्** शेष रहता है।

विद्वान्। ज्ञाता, जानने वाला। **विद ज्ञाने। विद्** धातु से क्वचित् प्रथमासामानाधिकरण्य में भी **लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे** से लट् के स्थान पर **शतृ** आदेश हो जाने के बाद **शतृ** के स्थान पर **विदेः शतुर्वसुः** से विकल्प से **वसु** आदेश होकर **विद्+वस्** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु, नुम्, दीर्घ, सुलोप आदि करके **हलन्तपुँल्लिङ्ग** में **विद्वान्** बना चुके हैं। आगे **विद्वांसौ, विद्वांसौ, विदुषः, विदुषा, विद्वद्भ्याम्** आदि। जब **वसु** आदेश नहीं होता, तब **शतृ** ही है। अनुबन्धलोप के बाद **विद्+अत्** बना है। **शतृ** की सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, अदादिगणीय धातु होने का कारण उसका लुक् करके **विदत्** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके **विदन्, विदन्तौ, विदन्तः** आदि रूप बनते हैं।

८३४- **तौ सत्।** तौ प्रथमान्तं, सत् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तौ** यह पद **लटः शतृशानचावप्रथमा-समानाधिकरणे** से विहित **शतृ** और **शानच्** स्वरूपनिर्देश है।

शतृ और शानच् की सत् संज्ञा होती है।

जैसे- निष्ठा कहने से क्त और क्तवतु प्रत्यय का ज्ञान होता है, उसी प्रकार सत् कहने से शतृ और शानच् का ज्ञान होगा। **सत्-संज्ञा** का उपयोग **लृटः सद्वा** आदि सूत्रों में किया जायेगा।

८३५- **लृटः सद्वा।** लृटः षष्ठ्यन्तं, सत् प्रथमान्तं, वा अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **लिट् के स्थान पर सत्-संज्ञक अर्थात् शतृ और शानच् आदेश विकल्प से होते हैं।**

इस विकल्प को **व्यवस्थित विभाषा** कहा गया है। विभाषा का अर्थ विकल्प और व्यवस्थित का तात्पर्य है- जो विकल्प किसी स्थान पर नित्य से हो, अन्य स्थान पर एकपक्ष में भी न हो और किसी स्थान पर एक बार हो और एक बार न हो अर्थात् कहीं नित्य से प्रवृत्ति, कहीं नित्य से अप्रवृत्ति और कहीं दोनों व्यवस्था व्यवस्थित विभाषा में होती है।

तेनाप्रथमा..........नित्यम्। व्यवस्थित विभाषा मानने के कारण प्रथमाभिन्न के साथ सामानाधिकरण्य होने पर प्रत्यय और उत्तरपद के पर में होने पर, सम्बोधन में तथा लक्षण और हेतु अर्थ होने पर नित्य से लृट् के स्थान पर शतृ और शानच् होते हैं। सम्बोधन आदि में शतृ-शानच् करने वाला सूत्र लघुकौमुदी में नहीं दिये गये हैं। अतः हम भी इनका विवरण सिद्धान्तकौमुदी की व्याख्या में देने वाले हैं।

अधिकारसूत्रम्

८३६. आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ३।२।१३४॥

क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणाः प्रत्ययास्तच्छीलादिषु कर्तृषु बोध्याः।

तृन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८३७. तृन् ३।२।१३५॥

कर्ता कटान्।

....

करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य। कृ-धातु उभयपदी है। उससे लृट् लकार, उसके स्थान पर परस्मैपद में शतृ और आत्मनेपद में शानच् हुआ। दोनों में अनुबन्धलोप होने पर **कृ+अत्** और **कृ+आन** हुआ। शित् होने के कारण दोनों की सार्वधातुकसंज्ञा, स्थानिवद्भावेन लृट् का लकारत्व आया, **स्यतासी लृलुटोः** से स्य प्रत्यय होकर **कृ+स्य+अत्** और **कृ+स्य+आन** हुआ। **स्य** की **आर्धधातुकं शेषः** से आर्धधातुकसंज्ञा करके **ऋद्धनोः स्ये** से आर्धधातुक को इट् का आगम हुआ, **कृ+इस्य+अत्** एवं **कृ+इस्य+आन** हुआ। दोनों जगह **कृ** को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से अर्-गुण हुआ, **कर्+इस्य+अत्** एवं **कर्+इस्य+आन** हुआ। वर्णसम्मेलन होने पर **करिस्य+अत्** और **करिस्य+आन** हुआ। इकार से परे सकार को षत्व होकर **करिष्य+अत्** और **करिष्य+आन** हुआ। **करिष्य+अत्** में **अतो गुणे** से पररूप होकर **करिष्यत्** हुआ एवं **करिष्य+आन** में **आने मुक्** से मुक् आगम होकर **करिष्यमान** बना। षकार से परे होने के कारण नकार के स्थान पर **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व हुआ, **करिष्यमाण** बना। **करिष्यत्** और **करिष्यमाण** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और सु आया, **करिष्यत्** से प्रथमा में पठन् की तरह **करिष्यन्** और **करिष्यमाण** से रामः की तरह **करिष्यमाणः** बना तथा द्वितीया के एकवचन में **करिष्यन्तम्** और **करिष्यमाणम्** बने। इस तरह **करिष्यन्तं, करिष्यमाणं पश्य** ये रूप सिद्ध हुए।

८३६- आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु। स (धात्वर्थः) शीलं (स्वभावो) यस्य स तच्छीलम्। स (धात्वर्थो) धर्म आचारो यस्य स तद्धर्मा। साधु करोतीति साधुकारी। तस्य साधुकारी तत्साधुकारी। तच्छीलं च तद्धर्मा च तत्साधुकारी च तेषामितरेतरद्वन्द्वस्तच्छीलतद्धर्म-तत्साधुकारिणस्तेषु। आ अव्ययपदं, क्वेः पञ्चम्यन्तं, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **धातोः** का अधिकार होने से यहाँ पर तत् शब्द से धातु का ही बोध होता है।

यहाँ इस सूत्र से लेकर क्विप् प्रत्यय तक कहे जाने वाले सभी प्रत्यय तच्छील, तद्धर्मा और तत्साधुकारी कर्ता अर्थ में होते हैं, ऐसा समझना चाहिए।

उस धातु के अर्थ के स्वभाव वाला **तच्छील**, उस धातु के अर्थ के धर्म वाला **तद्धर्म** और उस धातु के अर्थ के अनुसार उत्तम कर्म करने वाला **तत्साधुकारी** है। **अष्टाध्यायी** के क्रम से आगे वक्ष्यमाण सूत्र **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप्** तक के प्रत्ययों के विषय में यह सूत्र अर्थ का निर्णय करता है। इस सूत्र लेकर क्विप् विधायक उक्त सूत्र तक के सभी प्रत्यय उक्त तीन अर्थों में ही होंगे। तात्पर्य यह है कि **कर्तरि कृत्** से विधीयमान कर्त्रर्थक प्रत्यय के साथ तच्छील, तद्धर्मा और तत्साधुकारी अर्थ भी लगा रहता है।

षाकन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८३८. जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् ३।२।१५५॥

षकारेत्संज्ञाविधायकं विधिसूत्रम्

८३९. षः प्रत्ययस्य १।३।६॥

प्रत्ययस्यादिः ष इत्संज्ञः स्यात्।

जल्पाकः। भिक्षाकः। कुट्टाकः। लुण्टाकः। वराकः। वराकी।

....

८३७- **तृन्।** तृन् प्रथमान्तमेकपदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार और **तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु** की अनुवृत्ति आती है।

तच्छील, तद्धर्म, तत्साधुकारी कर्ता अर्थ में धातुओं से तृन् प्रत्यय होता है।

नकार इत्संज्ञक है, तृ शेष रहता है। प्रकरण के आरम्भ में **तृच्** प्रत्यय का प्रसंग आया था। **तृन्** और **तृच्** प्रत्ययों की प्रक्रिया एक ही होती है। **तृन्** में नकार की इत्संज्ञा होने के कारण यह नित् होता है और इसका फल स्वर में अन्तर पड़ता है, रूपसिद्धि में नहीं।

कर्ता कटान्। करोति तच्छीलः। चटाई बनाने का स्वभाव वाला कृ-धातु से ही **तृन्** सूत्र से **तृन्** प्रत्यय करके नकार की इत्संज्ञा और लोप करके **तृ** शेष बचा। **तृ** की आर्धधातुकसंज्ञा हुई और **कृ** का **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से **अर्**-गुण हुआ, **क्+अर्+तृ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ तो **कर्तृ** ऐसा ऋकारान्त शब्द बना। **कर्तृ** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और सु विभक्ति आई। इसके बाद ऋकारान्त धातृ-शब्द की तरह ऋकार के स्थान पर **ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च** से अनङ् आदेश, अनुबन्धलोप, **कर्त्+अन्+स्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **कर्तन् स्** बना। त के अकार की **अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** से उपधासंज्ञा करके **अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृ- क्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम्** से दीर्घ हुआ, **कर्तान् स्** बना। **अपृक्त एकाल् प्रत्ययः** से सकार की अपृक्तसंज्ञा करके **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से उसका लोप, **कर्तान्** बना। नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप, **कर्ता** सिद्ध हुआ। **तृन्नन्त** कृदन्त शब्द के योग में **कर्तृकर्मणोः कृति** से प्राप्त षष्ठी विभक्ति का **न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्** से निषेध होकर **कर्मणि द्वितीया** से **कट** शब्द में द्वितीया विभक्ति हुई- **कर्ता कटान्।** यह **तच्छील कर्ता** का उदाहरण है।

८३८- **जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन्।** जल्पश्च भिक्षश्च कुट्टश्च लुण्टश्च वृङ् च तेषां समाहारद्वन्द्वो जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङ्, तस्मात्। जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः पञ्चम्यन्तं, षाकन् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार और **तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु** की अनुवृत्ति आती है।

जल्प, भिक्ष, कुट्ट, लुण्ट और वृङ् धातुओं से तच्छील, तद्धर्म, तत्साधुकारी कर्ता अर्थ में षाकन् प्रत्यय होता है।

षाकन् में षकार की अग्रिम सूत्र से इत्संज्ञा होती है और नकार तो **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञक है ही। इस तरह **आक** शेष रहता है।

८३९- **षः प्रत्ययस्य।** षः प्रथमान्तं, प्रत्ययस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **आदिर्ञिटुडवः** से आदिः और **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से **इत्** की अनुवृत्ति आती है।

प्रत्यय के आदि में विद्यमान षकार इत्संज्ञक होता है।

उप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८४०. सनाशंसभिक्ष उः ३।२।१६८॥

चिकीर्षुः। आशंसुः। भिक्षुः।

....

जल्पाकः। बहुत बोलने का स्वभाव वाला, बोलने को अपना धर्म समझने वाला अथवा अच्छी तरह से बोलने वाला। यहाँ पर **आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु** में वर्णित तीनों अर्थ घटित होते हैं। **जल्प** व्यक्तायां वाची। **जल्प्** धातु से उक्त तीनों अर्थ सहित कर्ता अर्थ में **जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन्** से **षाकन्** प्रत्यय हुआ। **ष्** की **षः प्रत्ययस्य** से और **न्** की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होकर **आक** शेष बचा। **जल्प्+आक** बना। वर्णसम्मेलन होकर **जल्पाक** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु, रुत्वविसर्ग करके **जल्पाकः** सिद्ध हुआ। कोश आदि के अनुसार **जल्पाकः** का अर्थ **ज्यादा बोलने वाला** है।

उक्त पद्धति से उन्हीं अर्थों में **भिक्ष्** आदि धातुओं से भी षाकन् प्रत्यय करके निम्नलिखित शब्द सिद्ध हो सकते हैं-

भिक्षाकः। भीख मांगने का स्वभाव, धर्म अथवा साधुकारिता वाला। **भिक्ष** भिक्षायामलाभे लाभे च।

कुट्टाकः। छेदन, भर्त्सन का स्वभाव, धर्म अथवा साधुकारिता वाला। **कुट्ट** छेदनभर्त्सनयोः।

लुण्टाकः। लूटने का स्वभाव, धर्म, साधुकारिता वाला। **लुण्ट** स्तेये।

वराकः। चुनने, वरण करने का स्वभाव, धर्म अथवा साधुकारिता वाला। **वृङ्** सम्भक्तौ।

षाकन् प्रत्यय **षित्** है। इस प्रत्यय के लगने से स्त्रीत्व की विवक्षा में **षिद्गौरादिभ्यश्च** से **ङीष्** प्रत्यय होकर **जल्पाकी, भिक्षाकी, कुट्टाकी, लुण्टाकी, वराकी** आदि रूप बनते हैं।

८४०- **सनाशंसभिक्ष उः**। सन् च आशंसश्च भिक्ष् च तेषां समाहारद्वन्द्वः सनाशंसभिक्ष्, तस्मात्। सनाशंसभिक्षः पञ्चम्यन्तम्, उः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च**, का अधिकार और **तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु** की अनुवृत्ति है।

सन्नन्त, आ+शंस् और भिक्ष् धातुओं से तच्छील, तद्धर्म, तत्साधुकारी कर्ता अर्थ में उ प्रत्यय होता है।

प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम् के नियम से **सन्** से **सन्नन्त** का ग्रहण किया गया है।

चिकीर्षुः। करने की स्वभावतः इच्छा वाला। **डुकृञ्** करणे। **कृ** धातु से **सन्** प्रत्यय करके **चिकीर्ष** बनता है और उसकी **सनाद्यन्ता धातवः** धातुसंज्ञा होती है। यह बात **सन्नन्तप्रक्रिया** में बताई जा चुकी है। **चिकीर्ष** यह **सन्नन्त** है। इससे **सनाशंसभिक्ष उः** से उ प्रत्यय हुआ। उकार की **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकसंज्ञा** करके **अतो लोपः** से षकारोत्तरवर्ती अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **चिकीर्षु** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु, रुत्वविसर्ग करके **चिकीर्षुः** सिद्ध हुआ। चिकीर्षू, चिकीर्षवः, चिकीर्षुम्, चिकीर्षून्, चिकीर्षुणा, चिकीर्षुभ्याम्, चिकीर्षुभिः, चिकीर्षवे इत्यादि इसके रूप बनते हैं।

आशंसुः। स्वभावतः इच्छा रखने वाला। **आङः शसि** इच्छायाम्। **आ** पूर्वक **शस्** धातु का इच्छा करना अर्थ है। **आ+शंस्** से **सनाशंसभिक्ष उः** से **उ** प्रत्यय होकर आशंसु

क्विप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८४१. भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप् ३।२।१७७॥

विभ्राट्। भाः।

लोपविधायकं विधिसूत्रम्

८४२. राल्लोपः ६।४।२१॥

रेफाच्छ्वोर्लोपः क्वौ झलादौ क्ङिति। धूः। विद्युत्। ऊर्क्। पूः। दृशिग्रहणस्यापकर्षाज्जवतेर्दीर्घः। जूः। ग्रावस्तुत्।

वार्तिकम्- **क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च।**

वक्तीति वाक्।

....

बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु, रुत्वविसर्ग करके **आशंसुः** सिद्ध हुआ। आगे आशंसू, आशंसवः, आशंसुम्, आशंसून्, आशंसुना, आशंसुभ्याम् इत्यादि इसके रूप बनते हैं।

भिक्षुः। स्वभावतः भीख मांगने वाला, भीखारी, याचनशील, साधु। **भिक्ष भिक्षायाम्। भिक्ष्** से **सनाशंसभिक्ष उः** से उ प्रत्यय होकर **भिक्षु** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु, रुत्वविसर्ग करके **भिक्षुः** सिद्ध हुआ। आगे भिक्षू, भिक्षवः, भिक्षुम्, भिक्षून्, भिक्षुणा इत्यादि इसके रूप बनते हैं।

८४१- **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप्**। भ्राजश्च भासश्च धुर्विश्च द्युतश्च ऊर्जिश्च पृ च जुश्च ग्रावस्तुश्च तेषां समाहारद्वन्द्वो भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तु, तस्मात्। भ्राजभास-धुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः पञ्चम्यन्तं, क्विप् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः,** परश्च का तो अधिकार है ही साथ ही **आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु** से **तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु** का भी अधिकार है।

भ्राज्, भास्, धुर्व, द्युत्, ऊर्ज्, पॄ, जु और ग्राव-पूर्वक स्तु धातुओं से तच्छील, तद्धर्म और तत्साधुकारी कर्ता अर्थ में क्विप् प्रत्यय होता है।

क्विप् में ककार, इकार, पकार की इत्संज्ञा होकर उनका लोप होता है तो शेष वकार का **वेरपृक्तस्य** से लोप होता है। इस तरह **क्विप्** में कुछ भी नहीं बचता अर्थात् **क्विप्** का सर्वापहार लोप हो जाता है। अब प्रश्न होता है कि जब सारे वर्णों का लोप ही करना है तो विधान करने का क्या लाभ हुआ? तो सुनिये, प्रत्ययलक्षणेन धातु कृदन्त बनता हैं जिससे प्रातिपदिकसंज्ञा हो सकेगी, **कित्** होने के कारण सम्प्रसारण होगा, गुण और वृद्धि का निषेध होगा और पित्त्व के कारण **तुक्** का आगम भी हो सकेगा।

विभ्राट्। चमकने का स्वभाव वाला। **भ्राजृ** दीप्तौ। **वि** पूर्वक **भ्राज्** धातु से **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय करके सर्वापहार लोप करने पर विभ्राज् ही बनता है। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु प्रत्यय, **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराज-भ्राजच्छशां षः** से जकार के स्थान पर **षकार** आदेश, षकार को **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर डकार को **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व होकर **विभ्राट्, विभ्राड्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। आगे **विभ्राजौ, विभ्राजः, विभ्राजम्, विभ्राजः, विभ्राजा, विभ्राड्भ्याम्** आदि रूप बनते हैं।

भाः। चमकने का स्वभाव वाला। भासृ दीप्तौ। **भास्** धातु से **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जि-पृजुग्रावस्तुवः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय करके सर्वापहार लोप करने पर **भास्** ही बनता है। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके पुनः **भास्** ही रह गया। शब्द के ही सकार को रुत्व और विसर्ग होकर **भाः** सिद्ध होता है। आगे भासौ, भासः, भासा, भाभ्याम्, भाभिः आदि।

८४२- राल्लोपः। रात् पञ्चम्यन्तं, लोपः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **छ्वोः शूडनुनासिके च** से **छ्वोः** और **अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति** से **क्विझलोः** तथा **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

रेफ से परे छकार या वकार का लोप होता है, यदि क्वि परे या झलादि कित्, ङित् परे हो तो।

धूः। चमकने के स्वभाव वाली। **धुर्वी** हिंसायाम्। **धुर्व्** धातु से **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जि-पृजुग्रावस्तुवः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय करके सर्वापहार लोप करने पर **धुर्व्** ही बनता है। प्रत्ययलक्षण से **क्विप्** को मानकर के **राल्लोपः** से **धुर्व्** में विद्यमान अन्त **वकार** का लोप हुआ। **धुर्** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्यादिलोप** करके पुनः **धुर्** ही रह गया। **र्वोरुपधाया दीर्घ इकः** से उपधा को दीर्घ करके रेफ को विसर्ग होकर **धूः** सिद्ध हुआ है। आगे **धुरौ, धुरः, धुरम्, धुरा, धूर्भ्याम्** आदि रूप बनते हैं।

विद्युत्। चमकने का स्वभाव वाला। **द्युत** दीप्तौ। **वि** पूर्वक **द्युत्** धातु से **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जि-पृजुग्रावस्तुवः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय करके सर्वापहार लोप करने पर **विद्युत्** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्यादिलोप** करके **विद्युत्** सिद्ध हुआ। आगे **विद्युतौ, विद्युतः, विद्युता, विद्युद्भ्याम्** आदि।

ऊर्क्। बलवान्। **ऊर्ज** बलप्राणनयोः। **ऊर्ज्** धातु से **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय करके सर्वापहार लोप करने पर **ऊर्ज्** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्यादिलोप** करके पुनः **ऊर्ज्** ही रह गया। **जकार** को **चोः कुः** से कुत्व करने पर **ऊर्ग्** बना। **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करने पर **ऊर्क्, ऊर्ग्** ये दो रूप बनते हैं। आगे **ऊर्जौ, ऊर्जः, ऊर्जा, ऊर्ग्भ्याम्** इत्यादि। यहाँ पर पदान्त क् या ग् का संयोगान्तलोप नहीं होता, क्योंकि **रात्सस्य** ने रेफ से परे स् का ही संयोगान्तलोप हो, अन्य का नहीं, ऐसा नियम किया है।

पूः। प्राणियों के पालन, पोषण करने का स्वभाव वाला। **पृ** पालनपूरणयोः। **पृ** धातु से **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जि-पृजुग्रावस्तुवः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय करके सर्वापहार लोप करने पर **पृ** बना। प्रत्ययलक्षण से **क्विप्** को कित् मान **गुण** का निषेध, **पृ** में ॠकार के स्थान पर **ॠत इद्धातोः** से इत्व प्राप्त था, उसे बाध कर के **उदोष्ठ्यपूर्वस्य** से उत्व, रपर, होकर **पुर्** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्यादिलोप** करके पुनः **पुर्** ही रह गया। **र्वोरुपधाया दीर्घ इकः** से उपधा को दीर्घ करके रेफ को विसर्ग होकर **पूः** सिद्ध होता है। आगे **पुरौ, पुरः, पुरम्, पुरा, पूर्भ्याम्** आदि रूप बनते हैं।

दृशिग्रहणस्यापकर्षाज्जवतेर्दीर्घः। ग्रन्थकार कहते हैं कि अग्रिम सूत्र **अन्येभ्योऽपि दृश्यते** से **दृश्यते** का अपकर्षण किया जाता है। उसका फल यह माना जायेगा कि इस सूत्र में कुछ कार्य ऐसे भी हैं, जो लोक में तो देखे जाते हैं किन्तु सूत्र आदि विधान नहीं करते, उनकी स्वीकृति **दृश्यते** पद के कारण समझी जाती है। जैसे कि **जूः** ऐसा प्रयोग लोक में

शूठादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८४३. च्छ्वोः शूडनुनासिके च ६।४।१९॥

सतुक्कस्य छस्य वस्य च क्रमात् श् ऊठ् इत्यादेशौ स्तोऽनुनासिके क्वौ झलादौ च क्ङिति। पृच्छतीति प्राट्। आयतं स्तौतीति आयतस्तूः। कटं प्रवते कटप्रूः। जूरुक्तः। श्रयति हरिं श्रीः।

....

देखा जाता है किन्तु सूत्रों से कहीं भी दीर्घ नहीं सिद्ध होता। अतः लोक में दृष्ट दीर्घपाठ को स्वीकृत कर लिया जाय, यह तात्पर्य **दृश्यते** इस पद से लगा लिया जाता है। फलतः गणपाठ में अपठित किन्तु सूत्र में पठित **सौत्र** धातु जु से **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जि-पृजुग्रावस्तुवः क्विप्** से क्विप्, सर्वापहार, उक्त प्रक्रिया से दीर्घ करके **जू** बन जाता है। अब प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु, उसको रुत्व और विसर्ग करके **जूः** सिद्ध हो जाता है। आगे **जुवौ, जुवः, जुवम्** इत्यादि रूप बनते हैं।

ग्रावस्तुत्। पाषाण, मूर्ति आदि अथवा सोम-अभिषव के साधन पत्थर आदि की स्तुति करने के स्वभाव वाला। **ग्रावन्** पूर्वक **ष्टुञ् स्तुतौ** धातु है। **ग्रावन्+अम्+स्तु** से **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जि-पृजुग्रावस्तुवः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय करके सर्वापहार लोप करने पर ग्रावन्+अम्+स्तु बना। उपपद समास। **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से अम् का लुक्, **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नकार का लोप, **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्** से स्तु को **तुक्** का आगम कर के ग्रावस्तुत् बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्** करके ग्रावस्तुत् सिद्ध हुआ। आगे **ग्रावस्तुतौ, ग्रावस्तुतः, ग्रावस्तुतम्** आदि रूप बनाये जा सकते हैं।

क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च। यह वार्तिक है। इसका अर्थ है- **वच्, प्रच्छ्, आयत पूर्वक स्तु, कट पूर्वक प्रु, जु और श्रि इन छः धातुओं से तच्छील आदि कर्ता अर्थ में क्विप् प्रत्यय होता है साथ ही इन धातुओं को दीर्घ होता है और सम्प्रसारण का अभाव भी।**

वाक्। बोलना जिसका स्वभाव है, वाणी। **वक्ति तच्छीला। वच** परिभाषणे। **वच्** से **क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रूजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च** से **क्विप्** प्रत्यय और उसके परे रहने पर **वचिस्वपियजादीनां किति** से प्राप्त सम्प्रसारण का अभाव एवं धातु को दीर्घ आदि करके **क्विप्** में सर्वापहार लोप करने पर **वाच्** बना। **प्रातिपदिकसंज्ञा** के बाद सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्** करके **चकार** को **चोः कुः** से कुत्व करके **वाक्** बना। ककार को जश्त्व करके **वावसाने** से चर्त्व करके **वाक्, वाग्** ये दो रूप बनते हैं। आगे **वाचौ, वाचः, वाचम्, वाचः, वाचा, वाग्भ्याम्** इत्यादि।

८४३- **च्छ्वोः शूडनुनासिके च।** च्छ् च व् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः च्छ्वौ, तयोः। श् च ऊठ् च तयोः समाहारद्वन्द्वः शूड्। च्छ्वोः षष्ठ्यन्तं, शूड् प्रथमान्तम्, अनुनासिके सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदं सूत्रम्। **अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति** से **क्विझलोः क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

अनुनासिकादि प्रत्यय के परे होने पर या क्वि परे होने पर अथवा झलादि कित् ङित् के परे होने पर तुक् सहित छकार के स्थान पर श् आदेश और वकार के स्थान पर ऊठ् आदेश होते हैं।

ष्ट्रन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८४४. दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ३।२।१८२॥

दाबादेः ष्ट्रन् स्यात् करणेऽर्थे। दात्यनेन दात्रम्। नेत्रम्।

....

पृच्छतीति प्राट्। पूछने का स्वभाव वाला। **प्रच्छ** ज्ञीप्सायाम्। **प्रच्छ्** धातु से **क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रूजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च** से **क्विप्** प्रत्यय और उसके परे रहने पर **ग्रहिज्यावयि०** से प्राप्त सम्प्रसारण का अभाव एवं धातु को दीर्घ आदि करके **क्विप्** में सर्वापहार लोप करने पर **प्राच्छ्** बना। **तुक्** सहित छकार अर्थात् **च्छ्** के स्थान पर **च्छ्वोः शूडनुनासिके च** से **शकार** आदेश होकर **प्राश्** बना। **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराज-भ्राजच्छशां षः** से शकर के स्थान पर षकार आदेश, उसको जश्त्व, वैकल्पिक चर्त्व करके **प्राट्, प्राड्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। आगे **प्राशौ, प्राशः** आदि सरल ही रूप होते हैं।

आयतं स्तौतीति आयतस्तूः। विस्तार से स्तुति करने के स्वभाव वाला। **आयत** पूर्वक **स्तु** धातु है। **क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रूजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च** से **क्विप्** प्रत्यय और दीर्घ करने के वाद **क्विप्** प्रत्यय का सर्वापहार लोप, **आयतस्तू** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्व, विसर्ग, **आयतस्तूः**। आगे अजादि में उवङ् होकर **आयतस्तुवौ, आयतस्तुवः** आदि।

कटं प्रवते कटप्रूः। चटाई बुनने वाला। **कट** पूर्वक **प्रुङ् गतौ** धातु है। **कट+प्रु** से **क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रूजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च** से **क्विप्** प्रत्यय, धातु को दीर्घ, आगे **क्विप्** में सर्वापहार लोप, **कटप्रू** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्व, विसर्ग, **कटप्रूः**। आगे **कटप्रुवौ, कटप्रुवः** आदि।

जूरुक्तः। **जूः** की सिद्धि पहले बताई जा चुकी है।

श्रयति हरिं श्रीः। हरि का आश्रय करना जिसका स्वभाव है, ऐसी लक्ष्मी। **श्रिञ् सेवायाम्।** **श्रि** से **क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रूजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च** से **क्विप्** प्रत्यय, धातु को दीर्घ, आगे **क्विप्** में सर्वापहार लोप, **श्री** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्व, विसर्ग, **श्रीः**। आगे अजादि में इयङ् होकर **श्रियौ, श्रियः** आदि।

८४४- दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे। दाप् च नीश्च शसश्च युश्च युजश्च स्तुश्च तुदश्च सिश्च सिचश्च मिहश्च पतश्च दशश्च नह् च तेषां समाहारद्वन्द्वो दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहस्तस्मात्। दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः पञ्चम्यन्तं, करणे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **धः कर्मणि ष्ट्रन्** से **ष्ट्रन्** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

दाप्, नी, शस्, यु, युज्, स्तु, तुद्, सि, सिच्, मिह्, पत्, दंश्, नह् इन धातुओं से परे करण अर्थ में ष्ट्रन् प्रत्यय होता है।

षकार का **षः प्रत्ययस्य** से लोप होता है। षकार के हट् जाने पर में टकार भी स्वतः हट् जाता है अर्थात् टकार तकार में परिवर्तित होता है। नकार की भी इत्संज्ञा होती है और उसका लोप हो जाता है। इस तरह **त्र** ही शेष रहता है।

दात्यनेन दात्रम्। जिससे काटा जाता है, वह साधन। **दाति अनेन। दाप्** लवने। पकार इत्संज्ञक है। **दा** से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्**

इण्निषेधकं विधिसूत्रम्

८४५. तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च ७।२।९॥

एषां दशानां कृत्प्रत्ययानामिण् न। शस्त्रम्। योत्रम्। योक्त्रम्। स्तोत्रम्। तोत्रम्। सेत्रम्। सेक्त्रम्। मेढ्रम्। पत्त्रम्। दंष्ट्रा। नद्ध्री।

....

प्रत्यय, अनुबन्धलोप। अनिट् धातु है, अतः इट् का प्रसंग नहीं है। अतः **दात्र** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **दात्रम्** सिद्ध हुआ।

नेत्रम्। नीयतेऽनेन। आँख, मथने की रस्सी आदि। **णीञ्** प्रापणे। ञकार इत्संज्ञक है। **णकार** के स्थान पर **णो नः** से **नकार** आदेश होता है। अब **नी** से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुद-सिसिचमिहपत-दशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप लोप, **नीत्र** बना। **त्र** को आर्धधातुक मानकर के **नी** के ईकार को **सार्वधातुकगुण** हुआ- **नेत्र** बना। अनिट् धातु है। अतः इट् का प्रसंग नहीं है। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **नेत्रम्** सिद्ध हुआ।

८४५- **तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च**। तिश्च तुश्च त्रश्च तश्च थश्च सिश्च सुश्च सरश्च कश्च सश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वस्तितुत्रतथसिसुसरकसास्तेषु। तितुत्रतथसिसुसरकसेषु सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **नेड् वशि कृति** से **न, इट्** और **कृति** की अनुवृत्ति आती है।

ति, तु, त्र, त, थ, सि, सु, सर, क और स इन कृत्प्रत्ययों को इट् का आगम नहीं होता।

सेट् धातुओं से प्राप्त इट् के निषेध के लिए है। अनिट् धातुओं से तो **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से ही निषेध सिद्ध है।

शस्त्रम्। जिससे हिंसा की जाती है, वह साधन, हथियार। शसति हिनस्ति अनेन। **शसु** हिंसायाम्। **शस्** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप लोप, **शस्+त्र** बना। **वलादिलक्षण इट्** प्राप्त था, उसका **तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च** से निषेध हो गया। **शस्त्र** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **शस्त्रम्** सिद्ध हुआ।

योत्रम्। युवन्त्यनेन। जिससे बाँधते हैं वह साधन, रस्सी। **यु** मिश्रणे। **यु** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **यु+त्र** बना। वलादिलक्षण इट् प्राप्त था, उसका **तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च** से निषेध हो गया। **यु** को आर्धधातुकगुण होकर **योत्र** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **योत्रम्** सिद्ध हुआ।

योक्त्रम्। **युञ्जन्त्यनेन**। जिससे जोड़ा जाता है वह साधन, रस्सी। **यु** मिश्रणे। **यु** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **यु+त्र** बना। **वलादिलक्षण इट्** प्राप्त था, उसका **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध हो गया। **युज्** को लघूपधगुण होकर **योज्+त्र** बना। जकार को कुत्व और उसको चर्त्व करके **योक्त्र** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **योक्त्रम्** सिद्ध हुआ।

स्तोत्रम्। **स्तुवन्त्यनेन।** जिससे स्तुति की जाती है वह साधन, स्तव, मन्त्र आदि। **ष्टुञ् स्तुतौ।** **स्तु** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **स्तु+त्र** बना। **वलादिलक्षण इट्** प्राप्त था, उसका **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध हो गया। **स्तु** को आर्धधातुकगुण होकर **स्तोत्र** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **स्तोत्रम्** सिद्ध हुआ।

तोत्त्रम्। **तुदन्त्यनेन।** जिससे पीटते हैं वह साधन, चाबुक, डंडा, अंकुश आदि। **तुद व्यथने।** **तुद्** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **तुद्+त्र** बना। **वलादिलक्षण इट्** प्राप्त था, उसका **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध हो गया। **तुद्** को उपधागुण होकर और दकार को **खरि च** से चर्त्व होकर **तोत्त्र** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **तोत्त्रम्** सिद्ध हुआ।

सेत्रम्। **सिन्वन्त्यनेन।** जिससे बाँधते हैं, वह साधन, बेड़ी, हथकड़ी इत्यादि। **षिञ् बन्धने।** **सि** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **सि+त्र** बना। **वलादिलक्षण इट्** प्राप्त था, उसका **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध हो गया। **सि** को आर्धधातुगुण होकर **सेत्र** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **सेत्रम्** सिद्ध हुआ।

सेक्त्रम्। **सिञ्चन्त्यनेन।** जिससे सींचा जाय वह साधन, सींचने का पात्र। **षिच क्षरणे।** **सिच्** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **सिच्+त्र** बना। **वलादिलक्षण इट्** प्राप्त था, उसका **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध हो गया। **स्तु** को आर्धधातुगुण होकर **सेच्+त्र** बना। चकार को कुत्व करके **सेक्त्र** बनता है। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **सेक्त्रम्** सिद्ध हुआ।

मेढ्रम्। **मेहन्त्यनेन।** जिससे मूत्रत्याग किया जाय वह साधन, मूत्रेन्द्रिय। **मिह सेचने।** **मिह्** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **मिह+त्र** बना। **वलादिलक्षण इट्** प्राप्त था, उसका **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध हो गया। **मिह्+त्र** उपधागुण होने के बाद हकार को **हो ढः** से ढत्व, **झषस्तथोर्धोऽधः** से तकार को धत्व करके ढकार के योग में धकार को ष्टुत्व करके **मेढ्+ढ्र** बना। **ढो ढे लोपः** से पूर्व ढकार का लोप करके **मेढ्र** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **मेढ्रम्** सिद्ध हुआ।

पत्त्रम्। **पतन्त्यनेन।** जिसके द्वारा पक्षी आदि उड़ते हैं, वह साधन, पंख आदि। **पत्लृ पतने।** **पत्** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **पत्+त्र** बना। **वलादिलक्षण इट्** प्राप्त था, उसका **तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च** से निषेध हो गया। **पत्त्र** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके **पत्त्रम्** सिद्ध हुआ।

दंष्ट्रा। **दशन्त्यनया।** जिसके द्वारा काटते हैं वह साधन, बड़ा दाँत, दाढ़ आदि। **दंश दंशने।** **दंश** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **दंश्+त्र** बना। **वलादिलक्षण इट्** प्राप्त था, उसका **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध हो गया। **दंश्** के शकार के स्थान पर **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः** से षकार आदेश, उससे पर प्रत्यय के तकार को ष्टुत्व करके **दंष्ट्र** बना। **षित्** होने के कारण **षिद्गौरादिभ्यश्च** से **ङीष्** प्राप्त था किन्तु **दंष्ट्र** शब्द के **अजादिगण** में होने के कारण उसे

इत्र-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८४६. अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः ३।२।१८४॥

अरित्रम्। लवित्रम्। धुवित्रम्। सवित्रम्। खनित्रम्। सहित्रम्। चरित्रम्।

....

बाधकर के **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होकर **दंष्ट्रा** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से सुलोप करके **दंष्ट्रा** सिद्ध हुआ।

नद्ध्री। नह्यतेऽनया। जिसके द्वारा बाँधा जाता है, वह साधन, चमड़े की रस्सी आदि। **णह** बन्धनो। **नह्** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **ष्ट्रन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **नह्+त्र** बना। **नहो धः** से **हकार** के स्थान पर **धकार** आदेश, उससे पर प्रत्यय के तकार को **झषस्तथोर्धोऽधः** से धकार आदेश करके **पूर्वधकार** को जश्त्व करने पर **नद्ध्र** बना। **षित्** होने के कारण **षिद्गौरादिभ्यश्च** से **ङीष्** होकर **नद्ध्री** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, **हल्ङ्यादिलोप** करके **नद्ध्री** सिद्ध हुआ।

आचार्य कहीं तो इट् का निषेध करने के लिए **तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च** सूत्र को बनाते हैं और कहीं अप्राप्त इट् का विधान न करके **ष्ट्रन्** प्रत्यय और **इट्** आगम के स्थान पर सीधे **इत्र** प्रत्यय करते हैं। अग्रिम सूत्र को देखिये।

८४६- **अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः।** अर्तिश्च लूश्च धूश्च सूश्च खनश्च सहश्च चर् च तेषां समाहारद्वन्द्वः, अर्तिलूधूसूखनसहचर्, तस्मात्। अर्तिलूधूसूखनसहचरः पञ्चम्यन्तम्, इत्रः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **करणे** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार तो है ही।

ऋ, लू, धू, सू, खन्, सह् और चर् धातुओं से करण अर्थ में इत्र प्रत्यय होता है।

अरित्रम्। ऋच्छन्त्यनेन। जिससे ले जाते है, चलाते हैं वह साधन, नौका का चप्पू। **ऋ** गतिप्रापणयोः। **ऋ** धातु से करण अर्थ में **अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः** से **इत्र** प्रत्यय होकर **ऋ+इत्र** बना। **इत्र** की **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकसंज्ञा** करके **ऋ** को **सार्वधातुकार्धतुकयोः** से गुण, रपर होकर **अर्+इत्र, अरित्र** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप, **अरित्रम्।**

लवित्रम्। लुनन्त्यनेन। जिससे काटते हैं, वह साधन, दात्र, दतिया, आरीनुमा काटने का हँसुआ आदि। **लूञ्** छेदने। **लू** धातु से करण अर्थ में **अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः** से **इत्र** प्रत्यय होकर **लू+इत्र** बना। **इत्र** की **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकसंज्ञा** करके **लू** के **ऊकार** को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण, अव् आदेश होकर **ल्+अव्+इत्र, लवित्र** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप, **लवित्रम्।**

धुवित्रम्। धुवन्त्यनेन। जिससे आग आदि को प्रज्वलित करते हैं, फूँकते हैं, वह साधन, पंखा, बांस आदि की फूँकनी। **धू** विधूनने। **धू** धातु से करण अर्थ में **अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः** से **इत्र** प्रत्यय होकर **धू+इत्र** बना। **इत्र** की **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकसंज्ञा** करके लू के **ऊकार** को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण प्राप्त था किन्तु **कुटादि** गण में इसके आने के कारण **गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्** से ङिद्वद्भाव हो जाने से **क्ङिति च** से गुण का निषेध हुआ। अतः **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **उवङ्** आदेश होकर **धुव्+इत्र, धुवित्र** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप, **धुवित्रम्।**

संज्ञायामित्रविधायकं विधिसूत्रम्

८४७. पुवः संज्ञायाम् ३।२।१८५॥

पवित्रम्।

इति पूर्वकृदन्तम्॥३४॥

....

सवित्रम्। सुवन्त्यनेन। जिससे प्रेरणाएँ प्राप्त होती हैं वह साधन। **षू** प्रेरणे। **सू** धातु से करण अर्थ में **अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः** से इत्र प्रत्यय होकर **सू+इत्र** बना। इत्र की **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकसंज्ञा** करके लू के **ऊकार** को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण, अवादेश करके **स्+अव्+इत्र, सवित्र** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप, **सवित्रम्।**

खनित्रम्। खनन्त्यनेन। जिससे खोदते हैं, वह साधन, फावड़ा, खुरपी आदि। **खनु** अवदारणे। **खन्** धातु से करण अर्थ में **अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः** से इत्र प्रत्यय होकर **खन्+इत्र, खनित्र** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप, **खनित्रम्।**

सहित्रम्। सहन्तेऽनेन। सहन करते हैं जिस कार्यकलाप से, वह कार्य। **षह** मर्षणे। **सह्** धातु से करण अर्थ में **अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः** से इत्र प्रत्यय होकर **सह्+इत्र, सहित्र** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप, **सहित्रम्।**

चरित्रम्। चरन्त्यनेन। जिसके द्वारा मनुष्य समाज में चल सकते हैं, वह आचरण, स्वभाव, व्यवहार आदि। **चर** गतिभक्षणयोः। **चर्** धातु से करण अर्थ में **अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः** से **इत्र** प्रत्यय होकर **चर्+इत्र, चरित्र** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप, **चरित्रम्।**

८४७- पुवः संज्ञायाम्। पुवः पञ्चम्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः** से **इत्रः** और **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे** से **करणे** की अनुवृत्ति आती है।

धातोः, प्रत्ययः, परश्च का अधिकार तो है ही।

यदि प्रकृति और प्रत्यय के समुदाय से संज्ञा अर्थ निकले तो पू धातु से करण अर्थ में इत्र प्रत्यय होता है।

तात्पर्य यह है कि पू से इत्र प्रत्यय करने पर जो शब्द बने उससे किसी की संज्ञा का बोध हो।

पवित्रम्। पवन्ते पुनन्ति वा अनेन। जिससे पवित्र, शुद्ध होते हैं, वह साधन। वेद के अनुसार इसका अर्थ **कुश, जल, वायु, अग्नि** आदि है। **पूङ्** पवने और **पूञ्** पवने दोनों धातुएँ यहाँ पर ग्राह्य हैं। पू धातु से करण अर्थ में **पुवः संज्ञायाम्** से इत्र प्रत्यय होकर **पू+इत्र** बना। इत्र की **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकसंज्ञा** करके **पू** के **ऊकार** को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण करके **अव्** आदेश होकर **प्+अव्+इत्र, पवित्र** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, पूर्वरूप, **पवित्रम्।**

आपने अभी तक जितने धातु पढ़े, उन सभी धातुओं से ण्वुल्, तृच्, क्त, क्तवतु, शतृ और शानच् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का प्रयत्न करें।

संस्कृतभाषा में सभी शब्द प्रायः धातुओं से ही निर्मित हैं। धातुओं से दो तरह के प्रत्यय होते हैं- तिङ् और कृत्। तिङन्त और कृदन्त में लगभग सारे शब्द समाये हैं। कृदन्त

से तद्धित के प्रत्यय भी होते हैं। अतः कृत्प्रकरण को अच्छी तरह समझ लेने के बाद संस्कृत भाषा में व्युत्पत्ति के लिए कोई परेशानी नहीं आती।

परीक्षा

द्रष्टव्यः- प्रत्येक प्रश्न दस अंक के हैं और अनिवार्य भी हैं।

१- ण्वुल और तृच् प्रत्यय लगाकर पाँच-पाँच रूपों की सिद्धि करें। १०
२- णिनि, ल्यु, अच्, क, अण् प्रत्यय लगाकर दो-दो रूपों की सिद्धि करें। १०
३- क्त, क्तवतु प्रत्यय लगाकर पाँच-पाँच शब्दों की सिद्धि करें। १०
४- शतृ और शानच् प्रत्यय लगाकर किन्हीं पाँच-पाँच शब्दों की सिद्धि करें। १०
५- ये बारह प्रत्यय करने वाले सूत्रों में आपस में कितनी समानता है, स्पष्ट करें। १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का पूर्वकृदन्त-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ कृदन्त उणादयः।

उण्प्रत्ययविधायकं शाकटायनसूत्रम्

कृ-वा-पा-जि-मि-स्वदि-साध्यशूभ्य उण्॥१॥

करोतीति कारुः। वातीति वायुः। पायुर्गुदम्। जायुरौषधम्। मायुः पित्तम्। स्वादुः। साध्नोति परकार्यमिति साधुः। आशु शीघ्रम्।

उणादिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८४८. उणादयो बहुलम् ३।३।१॥

एते वर्तमाने संज्ञायां च बहुलं स्युः। केचिदविहिता अप्यूह्याः।

संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे।
कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु॥

इत्युणादिप्रकरणम्॥३५॥

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **उणादिप्रकरण** प्रारम्भ करते हैं। **उणादिप्रत्ययान्त** शब्दों को कुछ आचार्य **व्युत्पन्न** मानते हैं तो कुछ आचार्य **अव्युत्पन्न**। विद्वानों के इसमें दो मत हैं। कुछ तो कहते हैं- पाणिनि के मत में औणादिक शब्द अव्युत्पन्न हैं परन्तु कुछ कहते हैं कि **उणादयो बहुलम्** इस सूत्र को बनाकर पाणिनि ने व्युत्पन्न माना है। कृदन्तप्रकरण के बीच में पाणिनि जी का लिखा एक ही सूत्र आता है, वह है **उणादयो बहुलम्।** इस सूत्र से पाणिनि जी ने उणादिप्रत्ययों का विधान किया है किन्तु वे प्रत्यय कौन-कौन हैं और किन-किन अर्थों में किस-किस से होते हैं, यह जान नहीं सकते। अतः शाकटायनमुनि के रचित **पञ्चपादी उणादिसूत्र** जिसमें लगभग साढ़ेसात सौ सूत्रों द्वारा सवा तीन सौ के करीब प्रत्ययों का प्रतिपादन किया गया है, का आश्रय लिया गया है। संस्कृत शास्त्र में अनेकों शब्द ऐसे हैं, जिनकी सिद्धि अष्टाध्यायी के सूत्रों से नहीं हो पाती है, उन सारे शब्दों को उणादि के अन्तर्गत सिद्ध मान लिया जाता है। हम इस प्रपञ्च में न पड़कर यही मानते हैं कि उणादि प्रत्ययों के विना पाणिनीय व्याकरण शास्त्र अधूरा है। अतः उणादिप्रकरण का सामान्य एवं संक्षिप्त ज्ञान कराते हैं।

शब्दसागर अथाह है। अतः उणादि में कितने प्रत्यय हो सकते हैं, इसका कथन भी असम्भव ही है, तथापि जो प्रचलित हैं, उनका ज्ञान भी शाकटायनमुनि के उणादिसूत्रों से पता चलेगा। यहाँ तो बस, एक ही सूत्र का उदाहरण देखते हैं।

कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्। कृ, वा, पा, जि, मि, स्वद्, साध् और अश् धातुओं से परे उण् प्रत्यय करता है।

करोतीति **कारुः**। कृ धातु से **कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्** से उण् प्रत्यय, अनुवन्धलोप, कृ+उ, कृ की वृद्धि, कार्+उ, वर्णसम्मेलन, कारु बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा, सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग, **कारुः** सिद्ध हुआ। जो करता है, वह कारु है।

वातीति **वायुः**। वा गतिगन्धनयोः। **वा** धातु से **उण्** होने के बाद **आतो युक् चिण्कृतोः** से **युक्** का आगम होकर उसका अनुबन्धलोप करके **य्** शेष बचा, **वा+य्+उ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **वायु**। प्रातिपदिकसंज्ञा, स्वादिकार्य- **वायुः**। वहने वाला- **वायुः**।

पायुर्गुदम्। पा रक्षणे। पाति=रक्षति अपानादिनिःसारणद्वारा शरीरमिति। अपान वायु आदि निकालकर शरीर की सुरक्षा करता है, ऐसा अङ्ग। **पा** धातु से उण्, युक् करके **पा+य्+उ** बना, वर्णसम्मेलन करके **पायु** बना, प्रातिपदिकसंज्ञा और स्वादिकार्य से **पायुः** सिद्ध हुआ।

जायुरौषधम्। जि अभिभवे। जो रोगों पर विजय प्राप्त करता है, औषध। जितने के अर्थ में प्रयुक्त **जि** धातु से **उण्**, अनुबन्धलोप, **जि** की वृद्धि, **जै+उ**, आय् आदेश, **जाय्+उ**, वर्णसम्मेलन, **जायु**, स्वादिकार्य करके **जायुः** सिद्ध हुआ।

मायुः पित्तम्। फेंकने के अर्थ में प्रयुक्त **मि** धातु है। जो शरीर में अतिरिक्त ऊष्मा आदि को फेंकता हो, पित्त नामक अंग। मि से उण्, वृद्धि, आय् आदेश, स्वादिकार्य करके **मायुः** सिद्ध हो जाता है।

स्वादुः। स्वद आस्वादने। स्वदते=रोचते इति स्वादुः। जो अच्छा, स्वादिष्ट लगे, वह स्वादु। **स्वद्** से **उण्**, उपधावृद्धि करके स्वादिकार्य करने पर **स्वादुः** सिद्ध हो जाता है।

साध्नोति परकार्यमिति **साधुः**। साध संसिद्धौ। जो दूसरों का उपकार करे, वह साधु है। **साध्** धातु से **उण्** करके वर्णसम्मेलन करके स्वादि कार्य करने पर **साधुः** सिद्ध हुआ।

आशु शीघ्रम्। अशूङ् व्याप्तौ। जो शीघ्र सर्वत्र व्याप्त हो जाय। **अश्** से **उण्**, उपधावृद्धि, स्वादिकार्य करके **आशु** बनता है। इसके रूप नपुंसकलिङ्ग में **मधु** शब्द की तरह चलते हैं।

८४८- **उणादयो बहुलम्**। उण् आदिर्येषां ते उणादयः। उणादयः प्रथमान्तं, बहुलं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

धातुओं से उण् आदि प्रत्यय वर्तमान काल में और संज्ञा में बहुल से होते हैं।

उण् आदि कहने से यहाँ पर शाकटायनमुनि के रचित उणादिसूत्रों से किये जाने वाले सभी प्रत्यय समझना ठीक रहेगा। पाणिनि जी ने उन सभी प्रत्ययों को उणादिगण में समेट लिया, यही जानना हमारे लिए उचित भी है। वे सभी प्रत्यय बहुल से होते हैं। बहुल का अर्थ अधिकतर नहीं है। यह पारिभाषिक-शब्द है। इसकी परिभाषा बताने के लिए वैयाकरण जगत में निम्नलिखित श्लोक प्रसिद्ध है-

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति॥

बहुल के चार अर्थ हैं- पहला- **क्वचित्प्रवृत्तिः**- जहाँ जो कार्य बहुल से हो ऐसा बताया

गया, ऐसा सूत्र जहाँ लगना चाहिए वहाँ तो लगता ही है और जहाँ लगने की योग्यता नहीं है, वहाँ भी लग जाता है। दूसरा- **क्वचित् अप्रवृत्तिः**- कहीं-कहीं लगने योग्य स्थानों पर भी नहीं लगता। तीसरा- **क्वचिद्विभाषा**- कहीं कहीं विकल्प से करता है और चौथा- **क्वचिद् अन्यद् एव**- अर्थात् कहीं कुछ और ही कर देता है। और ही होता है का तात्पर्य यह है कि निर्धारित अर्थ, निर्धारित योग्यता के अतिरिक्त भी कुछ और ही विधान कर देता है।

उणादि में प्रकृति और प्रत्यय कैसे होते हैं इसका कथन महाभाष्य में इस प्रकार से किया गया है-

संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे।
कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु॥

तात्पर्य यह है कि उणादि के सम्बन्ध में यदि किसी शब्द से प्रत्यय का विधान करने वाला कोई सूत्र न मिले तो स्वयं प्रकृति-प्रत्ययों की कल्पना कर लेनी चाहिए। पूर्वभाग में प्रकृति अर्थात् धातु और परभाग में प्रत्यय की कल्पना करें। उस प्रत्यय में भी शब्दानुरूप कार्य की आवश्यकता को देखते हुए अनुबन्धों को जोड़ लेना चाहिए। जैसे यदि गुण या वृद्धि का अभाव करना हो तो प्रत्यय को कित् या ङित्, यदि वृद्धि करनी हो तो प्रत्यय को ञित् या णित् करना चाहिए। इसी प्रकार से टिलोप आदि के लिए डित्करण आदि भी कर लेना चाहिए।

पाणिनि जी ने **उणादयो बहुलम्** को पूर्वकृदन्त और उत्तरकृदन्त के बीच में पढ़ा है। अतः यह भी कृदन्त का ही सूत्र है।

यह तो एक दिग्दर्शन मात्र है, पूर्णज्ञान के लिए शाकटायन के सभी सूत्रों को पढ़ना ही पढ़ेगा।

आपको फिर एक बात याद दिला दूँ की **लघुसिद्धान्तकौमुदी** व्याकरण शास्त्र में प्रवेश के लिए प्रवेशिका अर्थात् प्रवेश-परीक्षात्मक ग्रन्थ है। जैसे आजकल विद्यालयों में प्रवेश के लिए पहले प्रवेशः परीक्षा ली जाती है और छात्र उसमें उत्तीर्ण होने के लिए उस प्रकार की पुस्तकें पढ़ते हैं, जिससे अवश्य उत्तीर्ण हों, इसके वे लिए बहुत तैयारी करते हैं। इसी तरह इस कौमुदी को भी यही समझें कि व्याकरणशास्त्र में प्रवेश के लिए योग्यता प्राप्त कराने वाला यह ग्रन्थ है।

यह भी नहीं है कि इसके ज्ञान से केवल सामान्य ज्ञान मात्र होगा। यदि इस ग्रन्थ को आद्योपान्त अच्छी तरह पढ़ लिया गया, इसको अच्छी तरह से लगा लिया तो व्याकरण जगत् के अनेक नियम और उपनियमों का ज्ञान हो जायेगा और व्यावहारिक एवं अधिक प्रचलित शब्दों के विषय में आत्मनिर्भर भी बना जा सकेगा क्योंकि संज्ञाप्रकरण से लेकर सन्धि, सुबन्त, तिङन्त, कृदन्त, कारक, समास, तद्धित और स्त्रीप्रत्यय प्रकरणों के मुख्य विषय इसमें समाविष्ट हैं। लगभग सभी प्रकरणों का मार्गदर्शन किया गया है। अतः जिनको महावैयाकरण नहीं बनना है और संस्कृत भाषा का सामान्य ज्ञान करके अन्य शास्त्रों का अध्ययन करना है, उनके लिए यह ग्रन्थ पर्याप्त हो सकता है।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित सारसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का उणादिप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ उत्तरकृदन्तम्

तुमुन्ण्वुल्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८४९. तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ३।३।१०।।

क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यत्यर्थे धातोरेतौ स्तः।
मान्तत्वादव्ययत्वम्। कृष्णं द्रष्टुं याति। कृष्णं दर्शको याति।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में कृदन्त का अन्तिमप्रकरण **उत्तरकृदन्त** का आरम्भ होता है। इस प्रकरण में मुख्यतया **तुमुन्, ण्वुल्, घञ्, अच्, अप्, क्तिन्, क्त्वा** और **णमुल्** आदि प्रत्यय बताये जा रहे हैं। **उणादयो बहुलम्** के पहले का प्रकरण **पूर्वकृदन्त** और बाद का प्रकरण **उत्तरकृदन्त** है।

८४९- **तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्।** तुमन् च ण्वुल् च तयोरितरेतरद्वन्द्वस्तुमुन्ण्वुलौ। क्रिया अर्थः (प्रयोजनं) यस्याः सा क्रियार्था, तस्यां, बहुव्रीहिः। तुमुन्ण्वुलौ प्रथमान्तं, क्रियायां सप्तम्यन्तं, क्रियार्थायां सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **धातोः, प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है। **भविष्यति गम्यादयः** से **भविष्यति** की अनुवृत्ति आती है।

एक क्रिया के लिए दूसरी क्रिया समीप में होने पर भविष्यत् काल में धातु से परे तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय होते हैं।

किसी क्रिया की सिद्धि के लिए जब दूसरी क्रिया की जाती है तो वह दूसरी क्रिया पहली क्रिया की **क्रियार्था क्रिया** कहलाती है। जैसे भोक्तुं गच्छति= खाने के लिए जाता है। यहाँ खाना इस क्रिया के लिए ही गमनरूपी दूसरी क्रिया हो रही है। यही दूसरी क्रिया ही **क्रियार्था क्रिया** है। भविष्यत् काल का अर्थ इसलिए है कि अभी खाने के लिए जा रहा है अर्थात् खाया नहीं है। तुमुन्-प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग खूब होता है किन्तु इस अर्थ में ण्वुल्प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग कम ही होता है। तुमुन् में नकार की **हलन्त्यम्** से और उकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञा होकर लोप होने पर **तुम्** शेष रहता है। **तुम्** मान्त है। **मान्त कृदन्त** शब्द की **कृन्मेजन्तः** से **अव्ययसंज्ञा** होती है अर्थात् **मान्त कृदन्त** शब्द **अव्यय** होता है। आपको स्मरण होगा ही कि अव्यय का केवल एक ही रूप होता है अर्थात् अन्य सुबन्त की तरह सातों विभक्तियों के रूप नहीं होते।

तुम् की **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकसंज्ञा** होती है। यदि धातु **सेट्** होगा तो **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से **इट्** का आगम होगा और **अनिट्** होगा तो **इट्** नहीं होगा।

तुमन्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८५०. कालसमयवेलासु तुमुन् ३।३।१६७।।

कालार्थेषूपपदेषु तुमुन्। कालः समयो वेला वा भोक्तुम्।

....

पठितुं गच्छति। पढ़ने के लिए जाता है। यहाँ पर पढ़ने के लिए दूसरी क्रिया **गमन करना** है। ऐसी स्थिति में **पठ्** धातु से **तुमुन्**, अनुबन्धलोप, **पठ्+तुम्** बना। **तुम्** की आर्धधातुकसंज्ञा और उसको इट् का आगम हुआ, **पठ्+इ+तुम्** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **पठितुम्** बना। अव्ययसंज्ञा, प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु विभक्ति और अव्यय होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से **सु** का लुक् हुआ, **पठितुम्।**

कृष्णं द्रष्टुं याति। कृष्ण को देखने के लिए जाता है। यहाँ पर भी **देखने** के लिए दूसरी क्रिया **गमन करना** है। ऐसी स्थिति में **दृश्** धातु से **तुमुन्**, अनुबन्धलोप, **दृश्+तुम्** बना। **तुम्** की आर्धधातुकसंज्ञा और उसको इट् का आगम प्राप्त हुआ। उसका **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से निषेध हुआ। **दृश्+तुम्** में **सृजिदृशोर्झल्यमकिति** से **अम्** आगम, मित् होने से अन्त्य अच् का अवयव बना। **दृ+अश्** बना। यण् होकर **द्+र्+अश्**, वर्णसम्मेलन होने पर **द्रश्+तुम्** बना। **व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजश्छशां षः** से **शकार** के स्थान पर **षकार** आदेश, षकार से परे प्रत्यय के तकार को ष्टुत्व करके **द्रष्टुम्** बना। मान्त होने के कारण **कृन्मेजन्तः** से अव्ययसंज्ञा करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सु विभक्ति और अव्यय होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से **सु** का लुक् हुआ, **द्रष्टुम्।**

कृष्णं दर्शको याति। कृष्ण को देखने के लिए जाता है। यहाँ पर **देखने के लिए जाना** एक क्रिया के लिए दूसरी क्रिया हो रही है। अतः **दृश्** धातु से **ण्वुल्** प्रत्यय हो गया। अनुबन्धलोप होने के बाद **वु** बचा। उसके स्थान पर **अक** आदेश हो गया। **दृश्+अक** बना। **पुगन्तलघूपधस्य च** से दृ के **ऋकार** को **अर्-गुण** हुआ, **द्+अर्+श्+अक** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **दर्शक** बना, **रेफ** का **ऊर्ध्वगमन** हुआ, **दर्शक** बना। इसकी **प्रातिपदिकसंज्ञा** हुई, सु, रुत्वविसर्ग होकर **दर्शकः** सिद्ध हुआ। **याति** के परे होने पर **सु** को जो रु हुआ था, उस रेफ के स्थान पर **हशि च** से **उत्व** और गुण होकर **दर्शको याति** बना है।

८५०- कालसमयवेलासु तुमुन्। कालश्च समयश्च वेला च तेषामितरेतरद्वन्द्वः कालसमयवेलास्तासु। कालसमयवेलासु सप्तम्यन्तं, तुमुन् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **धातोः**, **प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है।

काल, समय, वेला जैसे काल अर्थवाची शब्दों के उपपद रहते धातुओं से तुमुन् प्रत्यय होता है।

भविष्यति अर्थ और **क्रियार्था क्रिया** के अभाव में पूर्व सूत्र से अप्राप्त **तुमुन्** का यह सूत्र विधान करता है।

कालः समयो वेला वा भोक्तुम्। भोजन के लिए समय। **भुज** पालनाभ्यवहारयोः। **भुज्** धातु से **कालसमयवेलासु तुमुन्** से **तुमुन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रत्यय की आर्धधातुकसंज्ञा, उपधागुण, **एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्** से इट् का निषेध, जकार को **चोः कुः** से कुत्व करके गकार, उसको **खरि च** से चर्त्व, ककार, **भोक्तुम्** बना। मान्त होने से अव्ययसंज्ञा, प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अव्ययत्वात् उसका लुक् करके **भोक्तुम्** बनता है। इसका प्रयोग- **भोक्तुं कालः, भोक्तुं समयः, भोक्तुं वेला।**

कुछ धातुओं से निष्पन्न तुमुन्नन्त शब्दों को यहाँ पर दिखा रहे हैं। अन्य धातुओं से भी आप तुमुन् प्रत्यय लगाकर रूप बनाने की चेष्टा करें।

अर्च-अर्चितुम्=पूजने के लिए
अव्-अवितुम्=बचाने के लिए
आप्-आप्तुम्=पाने के लिए
कृ-कर्तुम्=करने के लिए
क्रीड्-क्रीडितुम्=खेलने के लिए
खेल्-खेलितुम्=खेलने के लिए
गै, गा-गातुम्=गाने के लिए
चल्-चलितुम्=चलने के लिए
जप्-जपितुम्=जपने के लिए
जि-जेतुम्=जीतने के लिए
ज्ञा-ज्ञातुम्= जानने के लिए
त्रै, त्रा-त्रातुम्=बचाने के लिए
दा-दातुम्=देने के लिए
धाव्-धावितुम्=दौड़ने के लिए
ध्यै, ध्या-ध्यातुम्=ध्यान करने के लिए
नी-नेतुम्=ले जाने के लिए
पठ्-पठितुम्=पढ़ने के लिए
पा-पातुम्=पीने के लिए
ब्रू, वच्-वक्तुम्=कहने के लिए
भण्-भणितुम्=कहने के लिए
भुज्-भोक्तुम्=खाने के लिए
रक्ष्-रक्षितुम्=रक्षा करने के लिए
रम्-रन्तुम्=रमण करने के लिए
लभ्-लब्धुम्=पाने के लिए
विद्-वेदितुम्=जानने के लिए
शक्-शक्तुम्=सकने के लिए
श्रु-श्रोतुम्=सुनने के लिए
स्तु-स्तोतुम्=स्तुति करने के लिए
स्ना-स्नातुम्=नहाने के लिए
हन्-हन्तुम्=मारने के लिए
हृ-हर्तुम्=हरने के लिए
अध्यापि-अध्यापयितुम्=पढ़ाने के लिए
श्रावयितुम्=सुनाने के लिए
ग्राहयितुम्=ग्रहण कराने के लिए
कारयितुम्=करवाने के लिए
जनयितुम्=पैदा करने के लिए

अर्ज-अर्जितुम्=कमाने के लिए
अस्-भवितुम्=होने के लिए
कथ्-कथयितुम्=कहने के लिए
क्री-क्रेतुम्=खरीदने के लिए
खाद्-खादितुम्=खाने के लिए
गम्-गन्तुम्=जाने के लिए
ग्रह्-ग्रहीतुम्=ग्रहण करने के लिए
जन्-जनितुम्=पैदा होने के लिए
जागृ-जागरितुम्=जागने के लिए
जीव्-जीवितुम्=जीने के लिए
त्यज्-त्यक्तुम्=छोड़ने के लिए
दह्-दग्धुम्=जलाने के लिए
दृश्-द्रष्टुम्=देखने के लिए
धृ-धर्तुम्=धारण करने के लिए
नम्-नन्तुम्=झुकने के लिए
पच्-पक्तुम्=पकाने के लिए
पत्-पतितुम्=गिरने के लिए
पूज्-पूजयितुम्=पूजने के लिए
भक्ष्-भक्षयितुम्=खाने के लिए
भाष्-भाषितुम्=बोलने के लिए
भू-भवितुम्=होने के लिए
रच्-रचयितुम्=बनाने के लिए
रुद्-रोदितुम्=रोने के लिए
लिख्-लेखितुम्=लिखने के लिए
वृध्-वर्धितुम्=बढ़ने के लिए
शिक्ष्-शिक्षितुम्=सीखने के लिए
सेव्-सेवितुम्=सेवा करने के लिए
स्था-स्थातुम्=ठहरने के लिए
स्मृ-स्मर्तुम्=याद करने के लिए
हस्-हसितुम्=हसने के लिए
आ-ह्वे-आह्वातुम्=बुलाने के लिए
दर्शयितुम्=दिखाने के लिए
घातयितुम्=मरवाने के लिए
प्रसादयितुम्=प्रसन्न करने के लिए
लेखयितुम्=लिखवाने के लिए।
तोषयितुम्=खुश करने के लिए।

घञ्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८५१. भावे ३।३।१८॥

सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ्। पाकः।

घञ्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८५२. अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् ३।३।१९॥

कर्तृभिन्ने कारके घञ् स्यात्।

नकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

८५३. घञि च भावकरणयोः ६।४।२७॥

रञ्जेर्नलोपः स्यात्। रागः। अनयोः किम्? रज्यत्यस्मिन्निति रङ्गः।

....

८५१- **भावे**। भावे सप्तम्यन्तम्, एकपदं सूत्रम्। **पदरुजविशस्पृशो घञ्** से **घञ्** की अनुवृत्ति आती है और **धातोः**, **प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है।

सिद्धावस्था रूप में प्राप्त धातु का अर्थ वाच्य होने पर धातु से घञ् प्रत्यय होता है।

धात्वर्थ अर्थात् **क्रिया** दो प्रकार की होती है- पहली **सिद्धावस्थापन्न** और दूसरी **साध्यावस्थापन्न**। **यत्र क्रियायाः क्रियान्तराकाङ्क्षा सा सिद्धावस्थापन्ना** और **यत्र क्रियायाः क्रियान्तरानाकाङ्क्षा सा साध्यावस्थापन्ना** अर्थात् जिस क्रिया में अन्य क्रिया की आकांक्षा होती है, वह सिद्ध अवस्था को प्राप्त क्रिया है। जैसे- **पाकः**, **त्यागः** आदि और जिस क्रिया में अन्य क्रिया की आकांक्षा नहीं होती है, वह साध्य अवस्था को प्राप्त क्रिया है। जैसे- **पचति**, **त्यजति** आदि। जब क्रिया **सिद्ध अवस्थापन्न** होती है, तब वह द्रव्य की तरह हो जाती है। अतः ऐसी क्रिया से **घञ्** आदि प्रत्यय होते हैं। **घञ्** में **घकार** की **लशक्वतद्धिते** से और ञकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होकर केवल **अकार** ही शेष रहता है। **घित्** का फल **चजोः कु घिण्यतोः** से **कुत्व** और **ञित्** का फल **अत उपधायाः** आदि से वृद्धि आदि है।

पाकः। पचनं पाकः। डुपचष् पाके। पच् से **भावे** से घञ्, अनुबन्धलोप, **पच्+अ** बना। णित्व होने के कारण उपधाभूत पकारोत्तरवर्ती अकार को वृद्धि, **पाच्+अ** में चकार को **चजोः कु घिण्ण्यतोः** से कुत्व होकर ककार हुआ, **पाक** बना। प्रातिपदिक संज्ञा के बाद स्वादिकार्य होकर **पाकः** सिद्ध हुआ। आगे **पाकौ**, **पाकाः** आदि तो बनाये ही जा सकते हैं।

उक्त प्रक्रिया से ही **भज्** से **भागः**, **रम्** से **रामः**, **नश्** से **नाशः**, **पठ्** से **पाठः** आदि सिद्ध किये जा सकते हैं।

८५२- **अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्**। अकर्तरि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, कारके सप्तम्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **पदरुजविशस्पृशो घञ्** से **घञ्** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः**, **प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है।

कर्तृभिन्न कारक में धातु से परे घञ् प्रत्यय होता है संज्ञा के विषय में।

८५३- **घञि च भावकरणयोः**। भावश्च करणञ्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो भावकरणे, तयोः। घञि

घञ्-प्रत्यय-ककारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८५४. निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ३।३।४१॥

एषु चिनोतेर्घञ्, आदेश्च ककारः। उपसमाधानं राशीकरणम्। निकायः। कायः। गोमयनिकायः।

....

सप्तम्यन्तं, च अव्ययं, भावकरणयोः सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **रञ्जेश्च** से **रञ्जेः** और **श्नान्नलोपः** से **नलोपः** की अनुवृत्ति आती है।

भाव या करण अर्थ में विहित घञ् प्रत्यय के परे होने पर रन्ज् धातु के नकार का लोप होता है।

रञ्ज् धातु में **ञकार** का मूल **नकार** ही है। जकार के योग में उसका अनुस्वार और परसवर्ण होकर **ञकार** बना है। उसी नकार का लोप यह सूत्र करता है।

रागः। रज्यतेऽनेन। जिससे रँगा जाए अर्थात् रंगने का सामान, रंग आदि। **रञ्ज्** रागे। यहाँ पर कर्ता से भिन्न करण कारक की विवक्षा में **रञ्ज्** धातु से **अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्** से **घञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **रञ्ज्+अ** बना। **घञि च भावकरणयोः** से ञकार के स्थानी नकार का लोप करके **रज्+अ** बना। **अत उपधायाः** से उपधा की वृद्धि और **चजोः कु घिण्ण्यतोः** से जकार को कुत्व करके वर्णसम्मेलन करने पर **राग** बना। घञन्त शब्द पुँल्लिङ्ग होता है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्व, विसर्ग- **रागः।**

अनयोः किम्? रज्यत्यस्मिन्निति रङ्गः। यदि **घञि च भावकरणयोः** इस सूत्र में भावकरणयोः ऐसा नहीं कहते तो **रज्यति अस्मिन्** ऐसे विग्रह में **अकर्तरि च कारके** संज्ञायाम् से **अधिकरण** अर्थ में घञ् प्रत्यय होने पर नकार का लोप होकर अनिष्ट रूप बन जाता। **भावकरणयोः** पद देने से अधिकरण में नकार का लोप नहीं हुआ। अतः **रङ्गः** बन गया।

८५४- **निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः।** निवासश्च चितिश्च शरीरञ्च उपसमाधानञ्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो निवासचितिशरीरोपसमाधानानि, तेषु। निवासचितिशरीरोपसमाधानेषु सप्तम्यन्तं, आदेः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, कः प्रथमान्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **हस्तादाने चेरस्तेये** से **चेः**, **पदरुजविशस्पृशो घञ्** से **घञ्** तथा **अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

निवास, चिति(चयन), शरीर और उपसमाधान(राशीकरण) अर्थ में धातु से परे घञ् प्रत्यय होता है और धातु के आदिवर्ण के स्थान पर ककार आदेश भी होता है।

जहाँ रहते हैं, उसे **निवास**, जिसका चयन किया जाता है उसे **चिति**, अस्थियों के समूह को **शरीर** और **इकठ्ठे** करने को **उपसमाधान** कहते हैं। **निकायः। कायः। गोमयनिकायः।** ये क्रमशः **निवास, शरीर** और **उपसमाधान** के उदाहरण हैं। **चिति** का उदाहरण **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में नहीं दिया गया है। वैसे **आकायः** इस का उदाहरण हो सकता है। **नि+चि** से **निकायः, चि** से **कायः, आ+चि** से **आकायः** और **गोमय+नि+चि** से **गोमयनिकायः** बन जाते हैं। सभी में **चिञ्** चयने वाला **चि** धातु है। **निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः** से **घञ्** प्रत्यय और धातु के आदि में विद्यमान **चकार** के स्थान पर

अच्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८५५. एरच् ३।३।५६॥

इवर्णान्तादच्। चयः। जयः।

अप्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८५६. ॠदोरप् ३।३।५७॥

ॠवर्णान्तादुवर्णान्ताच्चाप्। करः। गरः। यवः। लवः। स्तवः। पवः।

वार्तिकम्- **घञर्थे कविधानम्।** प्रस्थः। विघ्नः।

....

ककार आदेश करके **काय** बनता है। फलतः **निकायः**(घर) **आकायः** (चयन की अग्नि या स्थान) **कायः**(चीयतेऽस्मिन् अस्थ्यादिकम् अथवा चीयते अन्नादिभक्षितेन स कायः, शरीर) और **गोमयनिकायः** (गोबर की राशि) ये शब्द सिद्ध हो जाते हैं।

८५५- एरच्। एः पञ्चम्यन्तम्, अच् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। यहाँ पर **भावे** और **संज्ञायाम्** को **अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्** ये दोनों सूत्र पूरे के पूरे अनुवृत्त हो रहे हैं और **धातोः**, **प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है।

इवर्णान्त धातु से अच् प्रत्यय होता है भाव या कर्ता से भिन्न कारक में।

चकार की इत्संज्ञा होकर केवल **अ** शेष रहता है। उसकी आर्धधातुकसंज्ञा होती है और उसके परे गुण आदि हो जाते हैं।

चयः। चयनं चयः। चयन करना, संग्रह करना। **चिञ् चयने** धातु है। **चि** से **एरच्** से अच् प्रत्यय, अनुबन्धलोप होने पर **चि+अ** बना। **अ** को आर्धधातुक मानकर **चि** के **इकार** को **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** से गुण होकर **चे+अ** बना। अय् आदेश होकर चय यह प्रातिपदिक सिद्ध हुआ। स्वादि कार्य करके **चयः। चयौ। चयाः** आदि बनाइये।

इसी तरह **जि** से **जयः**, **वि+जि** से **विजयः**, **क्षि** से **क्षयः**, **क्री** से **क्रयः**, ली से **लयः** आदि भी बनाने चाहिए।

८५६- ॠदोरप्। ॠत् च उश्च तयोः समाहाराद्वन्द्व ॠदुः, सौत्रं पुस्त्वम्। तस्माद् ॠदोः। ॠदोः पञ्चम्यन्तम्, अप् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। यहाँ पर **भावे** और **संज्ञायाम्** को छोड़कर **अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्** ये दोनों सूत्र पूरे के पूरे अनृवृत्त हो रहे हैं और **धातोः**, **प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है।

दीर्घ-ॠवर्णान्त धातु और उवर्णान्त धातुओं से अप् प्रत्यय होता है भाव या कर्ता से भिन्न कारक में।

पकार की इत्संज्ञा होकर केवल **अ** शेष रहता है। उसकी आर्धधातुकसंज्ञा होती है और उसके परे गुण आदि हो जाते हैं।

करः। करणं करः। बिखेरना। **कॄ विक्षेपे।** इससे **ॠदोरप्** से **अप्**, अनुबन्धलोप, उसकी आर्धधातुकसंज्ञा, आर्धधातुकगुण करके **कर्+अ**, वर्णसम्मेलन होकर **कर** यह प्रातिपदिक बना। स्वादिकार्य होकर **करः** सिद्ध होता है।

पवः। पवनं पवः। पूञ् पवने। उवर्णान्त होने के कारण **ॠदोरप्** से अप् आदि होकर गुण होने पर **पो+अ**, अवादेश, वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकसंज्ञा करके स्वादिकार्य करने पर **पवः** बन जाता है।

क्त्रिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८५७. ड्वितः क्त्रिः ३।३।८८॥

मप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८५८. क्त्रेर्मम्नित्यम् ४।४।२०॥

क्त्रिप्रत्ययान्तान्मप् निर्वृत्तेऽर्थे। पाकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम्। डुवप् उप्त्रिमम्।

....

लवः। लवनं लवः। लूञ् छेदने। उवर्णान्त होने के कारण **ऋदोरप्** से अप् आदि होकर गुण होने पर **लो+अ**, अवादेश, वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकसंज्ञा करके स्वादिकार्य करने पर **लवः** बन जाता है।

घञर्थे कविधानम्। यह वार्तिक है। **जिस अर्थ में घञ् का विधान किया गया है, उसी अर्थ में क प्रत्यय का विधान कहना चाहिए।** यह **महाभाष्य** का वार्तिक है जो कि **घञर्थे कविधानं स्थास्नापाव्यधिहनियुध्यर्थम्** इस रूप में है। **घञ्** के अर्थ में **स्था, स्ना, पा, व्यध्, हन्** और **युध्** धातुओं से परे **क** का विधान करना चाहिए। अतः **प्रस्थः, विघ्नः** में **घ** जिस अर्थ में होता है, उसी अर्थ में **क** प्रत्यय हुआ है।

प्रस्थः। प्रतिष्ठतेऽस्मिन् धान्यानि। जिसमें धान्य आदि का मान होता है, एक मान विशेष। प्राचीन काल का यह माप है। **ष्ठा** गतिनिवृत्तौ। **प्र** पूर्वक **स्था** धातु से **घञर्थ** अर्थात् भाव और **संज्ञाविषयक कर्तृभिन्न कारक** अर्थ में **घञर्थे कविधानम्** वार्तिक से **क** प्रत्यय, अनुबन्ध ककार की इत्संज्ञा, लोप करके **प्र+स्था+अ** बना। **आतो लोप इटि च** से धातु के आकार का लोप करके **प्रस्थ** बन गया। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके स्वादिकार्य करने पर **प्रस्थः** सिद्ध हुआ।

विघ्नः। विहन्यन्तेऽस्मिन्। रूकावट, विघ्न। **हन** हिंसागत्योः। **वि** पूर्वक **हन्** धातु से घञर्थ अर्थात् भाव और **संज्ञाविषयक कर्तृभिन्न कारक** अर्थ में **घञर्थे कविधानम्** वार्तिक से **क** प्रत्यय, अनुबन्ध ककार की इत्संज्ञा, लोप करके **वि+हन्+अ** बना। अजादि कित् के परे रहते **गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि** से धातु के उपधाभूत अकार का लोप करके **वि+ह्न्+अ** बना। हकार को **हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु** से कुत्व करके वर्णसम्मेलन करने पर **विघ्न** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके स्वादिकार्य करने पर **विघ्नः** सिद्ध हुआ।

८५७- ड्वितः क्त्रिः। डुः इद् यस्य स ड्वित्, तस्मात्। ड्वितः पञ्चम्यन्तं, क्त्रिः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **भावे** और **अकर्तरि च कारके** की अनुवृत्ति है तो **धातोः, प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है।

डु की इत्संज्ञा हुई हो, ऐसी धातु से भाव और कर्तृभिन्न कारक अर्थ में क्त्रि प्रत्यय होता है।

ककार इत्संज्ञक है, **त्रि** शेष रहता है। **डुपचष्** पाके आदि धातुओं में **डु** की इत्संज्ञा हुई होती है। केवल **क्त्रिप्रत्ययान्त** शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता है, उसके साथ अग्रिम सूत्र से **मप्** प्रत्यय भी जोड़ते हैं। **क्त्रि** यह कृत् प्रत्यय है तो **मप्** यह तद्धित प्रत्यय है।

८५८- क्त्रेर्मम्नित्यम्। क्त्रेः पञ्चम्यन्तं, मप् प्रथमान्तं, नित्यम् क्रियाविशेषणं द्वितीयान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः** से **निर्वृत्ते** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

अथुच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८५९. ट्वितोऽथुच् ३।३।८९॥

टुवेपृ कम्पने। वेपथुः।

नङ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८६०. यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ३।३।९०॥

यज्ञः। याच्ञा। यत्नः। विश्नः। प्रश्नः। रक्ष्णः।

....

क्त्रिप्रत्ययान्त शब्द से मप् प्रत्यय होता है निर्वृत्त अर्थ में।

निर्वृत्त का अर्थ है- **उत्पन्न हुआ, सिद्ध हुआ, रचा गया, बनाया गया आदि।**

पाकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम्। पाक से उत्पन्न, तैयार हुआ। **डुपचष्** पाके। **पच्** धातु ड्वित् है। अतः इससे **ड्वितः क्त्रिः** से **क्त्रि** प्रत्यय हुआ। ककार की इत्संज्ञा करके लोप। **पच्+त्रि** बना। चकार को कुत्व होकर **पक्त्रि** बना। इससे **क्त्रेर्मम्नित्यम्** से मप् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप करके **पक्त्रिम** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम् आदेश करके **पक्त्रिमम्** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार **डुवप्** बीजसन्ताने धातु है। वह भी ड्वित् है। अतः **वप्** से **क्त्रि** करके **वप्+त्रि** बना है। **वचिस्वपियजादीनां किति** से **सम्प्रसारण** होने के बाद पूर्वरूप होकर **उप्त्रि** बना। उससे **मप्** करने के बाद **उप्त्रिम** बना है। प्रातिपदिकत्वात् सु, अम् करके **उप्त्रिमम्** सिद्ध हुआ। बोना, गर्भाधान करना आदि।

८५९- **ट्वितोऽथुच्।** टु इत् यस्य स ट्वित्, तस्मात्। ट्वितः पञ्चम्यन्तम्, अथुच् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **भावे** एवं **अकर्तरि च कारके** की अनुवृत्ति और **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

टु की इत्संज्ञा जिस धातु में हुई है ऐसी ट्वित् धातु से भाव में अथुच् प्रत्यय होता है ।

चकार इत्संज्ञक है, **अथु** शेष रहता है।

वेपथुः। कम्पन। **टुवेपृ** कम्पने। **वेप्** धातु से **ट्वितोऽथुच्** से **अथुच्** प्रत्यय करके अनुबन्धलोप करने पर **वेप्+अथु** बना। वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्वविसर्ग करके **वेपथुः** सिद्ध हुआ। ऐसे ही कई ट्वित् धातुओं से अथुच् प्रत्यय करके **नन्दथुः, वमथुः, भ्राजथुः, मज्जथुः, याचथुः, स्फूर्जथुः** आदि भी बनते हैं।

८६०- **यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्।** यजश्च याचश्च यतश्च विच्छश्च प्रच्छश्च रक्ष् च तेषां समाहारद्वन्द्वः यजयाजयतविच्छप्रच्छरक्ष्, तस्मात्। यजयाजयतविक्छप्रच्छरक्षः पञ्चम्यन्तं, नङ् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **भावे** और **संज्ञायाम्** को छोड़कर **अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्** की अनुवृत्ति आती है **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

भाव और कर्तृभिन्न कारक में यज्, याच्, यत्, विच्छ्, प्रच्छ् और रक्ष् धातुओं से नङ्-प्रत्यय होता है।

नङ् में ङकार इत्संज्ञक है। ङित् करने के अनेक प्रयोजन हैं। **नङ्** प्रत्ययान्त शब्द **पुँल्लिङ्ग** होता है।

यज्ञः। यजनं यज्ञः। यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु। देवपूजा आदि अर्थ में विद्यमान यज्-धातु से **यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्** के द्वारा नङ् प्रत्यय हुआ, ङकार का लोप

नन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८६१. स्वपो नन् ३।३।९१॥

स्वप्नः।

कि-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८६२. उपसर्गे घोः किः ३।३।९२॥

प्रधिः। उपधिः।

....

हुआ, **यज्+न** बना। जकार से परे नकार का **स्तोः श्चुना श्चुः** से चुत्व होकर ञकार बन गया। **यज्+ञ** बना। जकार और ञकार का संयोग होने पर ज्ञ बन जाता है, अतः यहाँ **यज्ञ** बन गया। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई, सु हुआ और रुत्वविसर्ग हुआ, **यज्ञः**।

याच्ञा। टुयाचृ याच्ञायाम्। याच् धातु से पूर्ववत् भाव अर्थ में नङ् प्रत्यय होकर चुत्व करके **याच्ञ** बना। स्त्रीत्व में टाप् करके **याच्ञा** बना। यहाँ **ज्ञ** नहीं बनता क्योंकि जकार और ञकार के संयोग में ज्ञ बनता है, ञकार और चकार के संयोग में नहीं। **याच्ञा** बनने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सु विभक्ति और रमा की तरह सुलोप होकर **याच्ञा** सिद्ध होता है।

यत्नः। यतनं यत्नः। प्रयत्न। **यती प्रयत्ने**। **यत्** धातु से **यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्** से नङ् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप होकर **यत्+न, यत्न** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई, सु, उसके स्थान पर रुत्वविसर्ग हुआ, **यत्नः**।

विश्नः। विच्छनं विश्नः। **विच्छ् गतौ** । **विच्छ्** धातु से **यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्** से नङ् प्रत्यय हुआ, ङकार का लोप हुआ, **विच्छ्+न** बना। चकार सहित छकार के स्थान पर **च्छ्वोः शूडनुनासिके च** सूत्र से शकार आदेश होकर **विश्+न** बना। **शकार** को **स्तोः श्चुना श्चुः** से श्चुत्व प्राप्त था, **शात्** सूत्र से निषेध हुआ। अतः **विश्न** ही रह गया। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई, सु, उसके स्थान पर रुत्वविसर्ग हुआ, **विश्नः**।

प्रश्नः। प्रच्छनं प्रश्नः। **प्रच्छ् ज्ञीप्सायाम्**। **प्रच्छ्** धातु से **यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्** से नङ् प्रत्यय हुआ, ङकार का लोप हुआ, **प्रच्छ्+न**, बना। **च्छ्वोः शूडनुनासिके च** से सतुक् **च्छ्** के स्थान पर श आदेश हुआ- **प्रश्+न, प्रश्न** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई, सु, रुत्वविसर्ग, **प्रश्नः**।

रक्ष्णः। रक्षणं रक्ष्णः। **रक्ष पालने**। **रक्ष्** धातु से **यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्** से नङ् प्रत्यय हुआ, ङकार का लोप हुआ, **रक्ष्+न** बना। **रषाभ्यां नो णः समानपदे** से णत्व करके **रक्ष्णः** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई, सु, रुत्वविसर्ग हुआ, **रक्ष्णः**।

८६१- **स्वपो नन्**। स्वपः पञ्चम्यन्तं, नन् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **भावे** और **संज्ञायाम्** को छोड़कर **अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है।

भाव और कर्तृभिन्न कारक में स्वप् धातु से नन्-प्रत्यय होता है।

नकार इत्संज्ञक है। नन्-प्रत्ययान्त भी पुँल्लिङ्ग में ही होता है।

स्वप्नः। स्वपनं स्वप्नः। **ञिष्वप् शये**। **स्वप्** धातु से **स्वपो नन्** से नन् प्रत्यय हुआ, नकार का लोप हुआ, **स्वप्न** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई, सु, रुत्वविसर्ग, **स्वप्नः**।

क्तिन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८६३. स्त्रियां क्तिन् ३।३।९४॥

स्त्रीलिङ्गे भावे क्तिन् स्यात्। घञोऽपवादः। कृतिः। स्तुतिः।

वार्तिकम्- **ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः।** तेन नत्वम्।

कीर्णिः। लूनिः। धूनिः। पूनिः।

वार्तिकम्- **सम्पदादिभ्यः क्विप्।** सम्पत्। विपत्। आपत्।

वार्तिकम्- **क्तिन्नपीष्यते।** सम्पत्तिः। विपत्तिः। आपत्तिः।

....

८६२- **उपसर्गे घोः किः।** उपसर्गे सप्तम्यन्तं, घोः पञ्चम्यन्तं, किः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **भावे, अकर्तरि च कारके** की अनुवृत्ति आ रही है।

उपसर्ग उपपद होने पर घुसंज्ञक दा-धातु और धा-धातु से भाव अर्थ में कर्तृभिन्न कारक में कि प्रत्यय होता है।

दाधा घ्वदाप् से इन दो धातुओं की घुसंज्ञा होती है। **कि** में ककार **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञक है और इकार शेष रहता है। कित् होने के कारण धातु के आकार का **आतो लोप इटि च** से लोप हो जाता है।

प्रधिः। विधिः। प्रधीयन्ते काष्ठानि अस्मिन्निति प्रधिः। विधीयते, विधानम् इति वा विधिः। दोनों प्रयोगों में क्रमशः प्र और वि उपसर्ग और डुधाञ् धारणपोषणयोः धातु है। प्र-पूर्वक धा-धातु और वि-पूर्वक धा-धातु से **उपसर्गे घोः किः** से कि प्रत्यय, ककार का लोप, धा में आकार का भी **आतो लोप इटि च** से लोप करके **प्रध्+इ, विध्+इ** बना। वर्णसम्मेलन करके **प्रधि, विधि** बने। इनकी प्रातिपदिकसंज्ञा और सु विभक्ति करके हरि-शब्द की तरह रूप बनाइये- **प्रधिः, प्रधी, प्रधयः, विधिः, विधी, विधयः** आदि।

अब इसी तरह से आ-पूर्वक **दा** धातु से आदिः, प्र-पूर्वक दा धातु से **प्रदिः**, आ पूर्वक धा धातु से **आधिः**, वि+आ उपसर्ग पूर्वक धा धातु से **व्याधिः**, नि पूर्वक **धा** धातु से **निधिः**, सम्-पूर्वक धा धातु से **सन्धिः**, प्रति+नि पूर्वक धा धातु से **प्रतिनिधिः** आदि भी बनाइये।

८६३- **स्त्रियां क्तिन्।** स्त्रियां सप्तम्यन्तं, क्तिन् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **भावे, अकर्तरि च कारके** की अनुवृत्ति एवं **धातोः, प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है।

स्त्रीत्वयुक्त भाव की विवक्षा में धातु से क्तिन् प्रत्यय होता है।

क्तिन् में ककार और नकार इत्संज्ञक हैं, ति शेष रहता है। यह क्तिन् **भावे** से प्राप्त घञ् प्रत्यय का अपवाद है। भाव अर्थ में स्त्रीत्व की विवक्षा होने पर घञ् न होकर क्तिन् ही होगा।

कृतिः। करणं कृतिः। करना। कृ-धातु से भाव अर्थ में **स्त्रियां क्तिन्** से क्तिन् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप होकर **कृ+ति=कृति** बना। स्त्रीत्व की विवक्षा में प्रत्यय हुआ है तो कृति शब्द स्त्रीलिङ्ग वाला बन गया। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु करके **कृतिः** बनता है। इसके रूप मति शब्द की तरह चलते हैं। केवल शस् में नत्व नहीं होता है, इसलिए **कृतीः** बनता है। ङित्-विभक्ति ङे, ङसि, ङस्, ङि में वैकल्पिक नदीसंज्ञा होकर कुछ विशेष रूप बन जाते हैं। आइये, तालिका से समझें।

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कृतिः	कृती	कृतयः
द्वितीया	कृतिम्	कृती	कृतीः
तृतीया	कृत्या	कृतिभ्याम्	कृतिभिः
चतुर्थी	कृत्यै, कृतये	कृतिभ्याम्	कृतिभ्यः
पञ्चमी	कृत्याः, कृतेः	कृतिभ्याम्	कृतिभ्यः
षष्ठी	कृत्याः, कृतेः	कृत्योः	कृतीनाम्
सप्तमी	कृत्याम्, कृतौ	कृत्योः	कृतिषु
सम्बोधन	हे कृते!	हे कृती!	हे कृतयः!

स्तुतिः। स्तवनं स्तुतिः। ष्टुञ् स्तुतौ। षत्व आदि करके स्तु धातु बना है। इससे क्तिन् करके कृतिः की तरह **स्तुतिः** बन जाता है। इसके रूप भी कृति की तरह ही चलते हैं।

ॠल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः। यह वार्तिक है। ॠवर्णान्त धातु और लू आदि गणपठित धातु से परे किये गये क्तिन् प्रत्यय में निष्ठासंज्ञा की तरह व्यवहार किया जाता है। जैसे निष्ठाप्रत्यय में त को नकार आदेश होता है तो क्तिन् के तकार को भी नकार आदेश हो जाय। यही निष्ठावद्भाव है। इस वार्तिक के ल्वादि धातु हैं- **लूञ्, स्तॄञ्, कॄञ्, वॄञ्, धॄञ्, शॄ, पॄ, वॄ, भॄ, मॄ, दॄ, जॄ, झॄ, धॄ, नॄ, कॄ, ॠ, गॄ**,ज्या, री, ब्ली और प्ली।

कीर्णिः। **कॄ** विक्षेपे। **कॄ** धातु से क्तिन् करके **कॄ**+ति बना। **ॠत इद्धातोः** से रपरसहित इत्व अर्थात् इर् आदेश करके **किर्**+ति बना। **हलि च** से दीर्घ होकर **कीर्**+ति बना। **ॠल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः** इस वार्तिक से निष्ठावद्भाव करके ति के तकार के स्थान पर **ल्वादिभ्यः** से नकार आदेश हुआ, **कीर्**+नि बना। रेफ से परे नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व हुआ, **कीर्**+णि बना, वर्णसम्मेलन हुआ, रेफ का ऊर्ध्वगमन हुआ, **कीर्णि** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि विभक्ति लाकर कृति शब्द की तरह **कीर्णिः** बनाइये और कृति की तरह रूप चलाइये।

लूनिः। लवनं लूनिः, काटना। लूञ् छेदने। लू धातु से क्तिन् करके **लूति** बना। निष्ठावद्भाव करके **ल्वादिभ्यः** से तकार के स्थान पर नत्व करके **लूनि** बनाकर प्रातिपदिकसंज्ञा करके कृति की तरह रूप बनाइये- **लूनिः, लूनी, लूनयः**।

धूनिः। धूञ् कम्पने, काँपना। धू धातु से क्तिन् करके **धूति** बना। निष्ठावद्भाव करके **ल्वादिभ्यः** से नत्व करके धूनि बनाकर प्रातिपदिकसंज्ञा करके कृति की तरह रूप बनाइये- **धूनिः, धूनी, धूनयः**।

सम्पदादिभ्यः **क्विप्। क्तिन्नपीष्यते**। यह वार्तिक है। सम्पत् आदि से क्विप् प्रत्यय होता है और क्तिन् भी होता है। इन दोनों वार्तिक से दो प्रत्ययों का विधान हुआ। क्विप् का सर्वापहार लोप हो जाता है किन्तु **क्तिन्** में **ति** शेष रहता है।

सम्पत्। सम्पत्तिः। सम् पूर्वक **पद (गतौ)** धातु से क्विप्, सर्वापहारलोप करके **सम्पद्** ही रहा। प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु विभक्ति, सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ। दकार को **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके **सम्पत्-सम्पद्** बनते हैं। आगे सम्पदौ, सम्पदः, सम्पदम्, सम्पदौ, सम्पदः, सम्पदा, सम्पद्भ्याम् आदि रूप बनाये जाते हैं। क्तिन् होने के पक्ष में **सम्पद्+ति** बना। दकार के स्थान पर **खरि च** से चर्त्व करके तकार

निपातनार्थं विधिसूत्रम्

८६४. ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च ३।३।९७।।

एते निपात्यन्ते।

....

आदेश होता है। वर्णसम्मेलन होकर **सम्पत्ति** बनता है। अब प्रातिपदिकसंज्ञा करके कृति की तरह रूप बनाइये। **सम्पत्तिः, सम्पत्ती, सम्पत्तयः** आदि।

अब इसी प्रकार विपूर्वक पद से **विपत्-विपद्, विपत्तिः** और आपूर्वक पद् धातु से **आपत्-आपद् आपत्तिः** भी बना सकते हैं।

८६४- **ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च।** ऊतिश्च यूतिश्च जूतिश्च सातिश्च हेतिश्च कीर्तिश्च तेषामितरेतरद्वन्द्व ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयः। ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयः प्रथमान्तं, चाव्ययं, द्विपदं सूत्रम्। **मन्त्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्तः** से **उदात्तः** की तथा **भावे, अकर्तरि कारके** की अनुवृत्ति आती है। **स्त्रियां क्तिन्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

स्त्रीत्व से युक्त भाव एवं कर्ता से भिन्न कारक अर्थ में ऊति, यूति, जूति, साति, हेति और कीर्ति ये क्तिन्-प्रत्ययान्त शब्दों का निपातन होता है और ये शब्द उदात्त होते हैं।

जो कार्य प्रक्रिया के माध्यम से न दिखाकर सीधे सिद्ध शब्द को सूत्र में ही दिखाते हैं, उसे आचार्य ने **निपातन** नाम दिया है। उवत शब्दों को कुछ भी प्रक्रिया न करके सूत्र में भी आचार्य ने सीधे साधुत्व कथन के लिए पढ़ा है। अब आगे देखते हैं कि किस तरह की प्रक्रिया हो सकती थी, यदि निपातन न किया जाता तो!

ऊतिः। रक्षा, क्रीडा, लीला आदि। **अव रक्षणे** धातु है। **अव्** से स्त्रीत्वविशिष्ट भाव या कर्तृभिन्न कारक अर्थ में **क्तिन्** प्रत्यय करके **ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च** से **वकार** को ऊठ् आदेश आदि करने पर ही **ऊति** बन सकता है किन्तु **ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च** से निपातन होने से उन सूत्रों के लगे विना ही **ऊति** शब्द सिद्ध मान लिया गया। **निपातनात्** यह शब्द **अन्तोदात्त** मान लिया गया अर्थात् प्रत्यय **ति** यह उदात्त स्वर वाला हुआ। निपातन का यहाँ पर **क्तिन्** से नित् होने से प्राप्त आद्युदात्त को बाधकर अन्तोदात्त करना यही फल है। **ऊति** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और **मति**-शब्द की तरह **ऊतिः, ऊती, ऊतयः** आदि रूप बनते हैं। ध्यान रहे कि **क्तिन्** प्रत्ययान्त शब्द **स्त्रीलिङ्ग** ही होते हैं।

यूतिः। मिलाना, मेलन। **यु मिश्रणामिश्रणयोः** धातु है। **यु** से स्त्रीत्वविशिष्ट भाव या कर्तृभिन्न कारक अर्थ में **स्त्रियां क्तिन्** से **क्तिन्** प्रत्यय करके **युति** बन सकता है किन्तु **ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च** से निपातन होने से उन सूत्रों के लगे विना ही **युति** शब्द बन गया और निपातनात् ही **यु** को दीर्घ भी हो गया। **निपातनात्** यह शब्द **अन्तोदात्त** मान लिया गया अर्थात् प्रत्यय **ति** यह उदात्त स्वर वाला हुआ। **यूति** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और **मति**-शब्द की तरह **यूतिः, यूती, यूतयः** आदि रूप बनते हैं।

जूतिः। तेज चलना, गति, वेग। पाणिनि जी ने **जु** ऐसा धातुपाठ में नहीं पढ़ा है, फिर भी सूत्र में उक्त धातु के उल्लेख होने के कारण **जु गतौ** ऐसी सौत्र धातु मान ली जाती

ऊठादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८६५. ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च ६।४।२०॥

एषामुपधावकारयोरूठ् अनुनासिके क्वौ झलादौ क्ङिति। अतः क्विप्। जूः। तूः। स्रूः। ऊः। मूः।

....

है। जु से स्त्रीत्वविशिष्ट भाव या कर्तृभिन्न कारक अर्थ में **स्त्रियां क्तिन्** से **क्तिन्** प्रत्यय करके **जुति** बन सकता है किन्तु **ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च** से निपातन होने से उन सूत्रों के लगे विना ही **जुति** शब्द बन गया और निपातनात् ही जु को दीर्घ भी हो गया। **निपातनात्** यह शब्द **अन्तोदात्त** भी मान लिया गया। **जूति** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और **मति**-शब्द की तरह **जूतिः, जूती, जूतयः** आदि रूप बनते हैं।

सातिः। नाश, भेंट, दान। **षोऽन्तकर्मणि** धातु है। **धात्वादेः षः, सः** से **सकार** आदेश और **आदेच उपदेशेऽशिति** से आत्त्व करके सा बना। इससे स्त्रीत्वविशिष्ट भाव या कर्तृभिन्न कारक अर्थ में **स्त्रियां क्तिन्** से **क्तिन्** प्रत्यय करके **साति** बन गया है। यहाँ पर **द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति** से इत्व की प्राप्ति हो सकती है किन्तु **ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च** से निपातन होने से उसका अभाव हुआ और **साति** शब्द ही बन गया। **निपातनात्** यह शब्द **अन्तोदात्त** भी मान लिया गया। **साति** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और **मति**-शब्द की तरह **सातिः, साती, सातयः** आदि रूप बनते हैं।

हेतिः। अस्त्र, अग्निज्वाला, सूर्यकिरण। **हन हिंसागत्योः** धातु है। **हन्** से स्त्रीत्वविशिष्ट भाव या कर्तृभिन्न कारक अर्थ में **स्त्रियां क्तिन्** से **क्तिन्** प्रत्यय करके **अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति** से अनुनासिक न् का लोप हति बन सकता है किन्तु **ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च के निपातन** से एत्व होकर **हेति** बनाया गया है। यह शब्द **अन्तोदात्त** भी मान लिया गया। **हेति** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और मति-शब्द की तरह **हेतिः, हेती, हेतयः** आदि रूप बनते हैं।

कीर्तिः। यश। **कृत संशब्दने** चुरादि धातु है। **कृत्** से चौरादिक **णिच्** करके **ण्यासस्न्थो युच्** से **युच्** हो [illegible]ना था किन्तु **ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च** के निपातन से **क्तिन्** प्रत्यय ही हुआ और **णेरनिटि** से **णि** का लोप करके धातु के उपधाभूत ऋकार को इत्व, रपर, दीर्घ आदि होकर **कीर्ति** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और **मति**-शब्द की तरह **कीर्तिः, कीर्ती, कीर्तयः** आदि रूप बनते हैं।

८६५- **ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च**। ज्वरश्च त्वरश्च स्रिविश्च अविश्च मव् च तेषामितरेतरद्वन्द्वो ज्वरत्वरस्रिव्यविमवस्तेषाम्। ज्वरत्वरस्रिव्यविमवां षष्ठ्यन्तम्, उपधायाः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययं, त्रिपदं सूत्रम्। **च्छ्वोः शूडनुनासिके च** से **श्** को छोड़कर सम्पूर्ण सूत्र और **अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति** से **क्विझलोः** एवं **क्ङिति** की अनुवृत्ति आती है।

ज्वर्, त्वर्, स्रिव्, अव् तथा मव् धातुओं की उपधा और वकार दोनों के स्थान पर ऊठ् आदेश होता है यदि अनुनासिक, क्वि अथवा झलादि कित् के परे हो तो।

इच्छाशब्दस्य निपातनार्थं विधिसूत्रम्

८६६. इच्छा ३।३।१०१॥

इषर्निपातोऽयम्।

....

उक्त धातुओं से **क्वि** के परे इस सूत्र की प्रवृत्ति बताई गई है। अतः इन धातुओं से **क्विप्** प्रत्यय होगा, यह जान लेना चाहिए। **ठकार** इत्संज्ञक है, ऊ शेष रहता है।

जूः। ज्वरणं जूः। रोग। **ज्वर रोगे** धातु है। ज्वर् से **सम्पदादिभ्यः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय, सर्वापहार लोप होने के बाद प्रत्ययलक्षणेन **क्वि** को परे मानकर के **ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च** से **ज्+व्+अ+र्=ज्वर्** में उपधाभूत अकार और वकार अर्थात् **व्अ** के स्थान पर **ऊठ्** आदेश, अनुबन्धलोप होने पर **ज्+ऊ=जू, जूर्** बना। **जूर्** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके रेफ को विसर्ग करने पर **जूः** सिद्ध होता है। इसके रूप **जूः, जूरौ, जूरः, जूरम्, जूरौ, जूरः, जूरा, जूर्भ्याम्** आदि बनते हैं।

तूः। त्वरणं तूः। शीघ्रता। **ञित्वरा सम्भ्रमे** धातु है। **त्वर्** से **सम्पदादिभ्यः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय, सर्वापहार लोप होने के बाद प्रत्ययलक्षणेन **क्वि** को परे मानकर **ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च** से **त्+व्+अ+र्=त्वर्** में उपधाभूत अकार और वकार **व्अ** के स्थान पर **ऊठ्** आदेश, अनुबन्धलोप होने पर **त्+ऊ=तू, तूर्** बना। **तूर्** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु, उसका **हल्ङ्यादि** लोप करके रेफ को विसर्ग करने पर **तूः** सिद्ध होता है। इसके रूप **तूः, तूरौ, तूरः, तूरम्, तूरौ, तूरः, तूरा, तूर्भ्याम्** आदि बनते हैं।

स्रूः। स्रवणं स्रूः। गमन। **स्रिवु गतिशोषणयोः** धातु है। **स्रिव्** से **सम्पदादिभ्यः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय, सर्वापहार लोप होने के बाद प्रत्ययलक्षणेन **क्वि** को परे मान कर के **ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च** से **स्+र्+इ+व्=स्रिव्** में उपधाभूत इकार और अन्त्य वकार **इव्** के स्थान पर **ऊठ्** आदेश, अनुबन्धलोप होने पर **स्+र्=ऊ, स्रू** बना। **स्रू** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु, उसको रुत्वविसर्ग करके **स्रूः** यह बनता है। आगे अजादि विभक्ति के परे होने पर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **उवङ्** होकर **भ्रू** शब्द की तरह **स्रुवौ, स्रुवः** आदि बनते हैं।

ऊः। अवनम् ऊः। रक्षण। **अव रक्षणे** धातु है। **अव्** से **सम्पदादिभ्यः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय, सर्वापहार लोप होने के बाद प्रत्ययलक्षणेन **क्वि** को परे मान कर के **ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च** से **अव्** पूरे के स्थान पर **ऊठ्** आदेश, अनुबन्धलोप होने पर ऊ बना। **ऊ** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु, उसको रुत्वविसर्ग करके **ऊः** यह बनता है। आगे अजादि विभक्ति के परे होने पर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **उवङ्** होकर **भ्रू** शब्द की तरह **उवौ, उवः** आदि बनते हैं।

मूः। मवनं मूः। बन्धन। **मव बन्धने** धातु है। **मव्** से **सम्पदादिभ्यः क्विप्** से **क्विप्** प्रत्यय, सर्वापहार लोप होने के बाद प्रत्ययलक्षणेन **क्वि** को परे मान कर के **ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च** से **अव्** के स्थान पर **ऊठ्** आदेश, अनुबन्धलोप होने पर **म्+ऊ=मू** बना। **मू** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु, उसको रुत्वविसर्ग करके **मूः** यह बनता है। आगे अजादि विभक्ति के परे होने पर **अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ** से **उवङ्** होकर **भ्रू** शब्द की तरह **मुवौ, मुवः** आदि बनते हैं।

अकारप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८६७. अ प्रत्ययात् ३।३।१०२।।

प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियामकारः प्रत्ययः स्यात्। चिकीर्षा। पुत्रकाम्या।

....

८६६- इच्छा। प्रथमान्तमेकपदम्। **स्त्रियां क्तिन्** से **स्त्रियाम्** और **भावे** इस सूत्र की अनुवृत्ति है।

स्त्रीत्वविशिष्ट भाव अर्थ में 'इच्छा' शब्द का निपातन होता है।

तात्पर्य यह है कि **इष्** धातु से भाव अर्थ में **इच्छा** शब्द साधु है।

इच्छा। इषु इच्छायाम्। इष् धातु से भाव अर्थ में **इच्छा** का निपातन होने से धातु से श प्रत्यय, षकार के स्थान पर **इषुगमियमां छः** से छकार आदेश, तुक् आगम आदि सभी कार्य निपातनात् सिद्ध होते हैं। साथ ही स्त्रीलिङ्गता का भी निपातन है, जिससे **इच्छा** बन जाता है। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु का **हल्ङ्याब्भ्यो** लोप आदि करके **इच्छा, इच्छे, इच्छाः** रूप बनते हैं।

८६७- **अः प्रत्ययात्**। अः प्रथमान्तं, प्रत्ययात् पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **स्त्रियां क्तिन्** से **स्त्रियाम्, भावे, अकर्तरि कारके** की अनुवृत्ति है। **धातोः, प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार तो है ही।

स्त्रीत्वविशिष्ट भाव तथा कर्तृभिन्न कारक अर्थ में प्रत्ययान्त धातुओं से अ प्रत्यय होता है।

जब धातुओं से **सन्, यङ्, यक्, क्यच्, काम्यच्** आदि प्रत्यय किये जाते हैं तब धातु प्रत्ययान्त कहलाते हैं। ऐसे धातुओं से स्त्रीत्वविशिष्ट भाव आदि अर्थ में **अ** प्रत्यय का विधान इस सूत्र से किया जाता है।

चिकीर्षा। कर्तुमिच्छा चिकीर्षा। करने की इच्छा। **डुकृञ् करणे**। **कृ** धातु से **सन्** प्रत्यय करके **चिकीर्ष** बन चुका है। अतः यह प्रत्ययान्त धातु है। इससे **अः प्रत्ययात्** से **अ** प्रत्यय हुआ। अ की **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकसंज्ञा** करके **अतो लोपः** से **चिकीर्ष** के अकार के लोप होने पर **चिकीर्ष्+अ**, वर्णसम्मेलन करके **चिकीर्ष** ही बना। प्रत्यय करने पर भी स्वरूप में तो अन्तर नहीं आया किन्तु धातु से यह कृदन्त प्रातिपदिक बन गया। यह प्रत्यय स्त्रीत्व की विवक्षा में हुआ है। अतः **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होकर **चिकीर्षा** बना लिया जाता है। इसके बाद के सुप् का **हल्ङ्याब्भ्योलोप** करके **चिकीर्षा** ही बनता है। आगे **चिकीर्षे, चिकीर्षाः** आदि रूप बनते हैं।

उपर्युक्त तरीके से सभी धातुओं से यह प्रत्यय हो सकता है। जैसे कि **पठ्** धातु से सन् करके **पिपठिष्** से **पिपठिषा, वच्** धातु से सन् करके **विवक्ष्** से **विवक्षा, सन्नन्त** गम् से **जिगमिषा, सन्नन्त** जीव् से **जिजीविषा, सन्नन्त भुज्** से **बुभुक्षा** आदि।

पुत्रकाम्या। आत्मनः पुत्रस्यैषणम्। अपने लिए पुत्र की इच्छा। **पुत्र** शब्द से **काम्यच्** प्रत्यय करके **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञा होकर **पुत्रकाम्य** धातु बना है। अतः यह प्रत्ययान्त धातु है। इससे **अः प्रत्ययात्** से **अ** प्रत्यय हुआ। **अ** की **आर्धधातुकं शेषः** से **आर्धधातुकसंज्ञा** करके **अतो लोपः** से **पुत्रकाम्य** के **अन्त्य अकार** के लोप होने पर **पुत्रकाम्य्+अ**, वर्णसम्मेलन करके **पुत्रकाम्य** ही बना। प्रत्यय करने पर भी स्वरूप में तो यहाँ

अकारप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८६८. गुरोश्च हलः ३।३।१०३।।

गुरुमतो हलन्तात् स्त्रियामकारः प्रत्ययः स्यात्। ईहा।

युच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८६९. ण्यासश्रन्थो युच् ३।३।१०७।।

अकारस्यापवादः। कारणा। हारणा।

....

भी अन्तर नहीं आया किन्तु धातु से यह कृदन्त प्रातिपदिक बन गया। यह प्रत्यय स्त्रीत्व की विवक्षा में हुआ है। अतः **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होकर **पुत्रकाम्या** बना लिया जाता है। इसके बाद हुए सुप् का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** — **हल्ङ्यादिलोप** करके **पुत्रकाम्या** ही बनता है। आगे **पुत्रकाम्ये**, **पुत्रकाम्याः** आदि रूप बनते हैं।

८६८- **गुरोश्च हलः**। गुरोः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययं, हलः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **अः प्रत्ययात्** से अः की **भावे** यह सूत्र और **अकर्तरि च कारके** आदि की अनुवृत्ति आती है। **धातोः**, **प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है ही।

स्त्रीत्व की विवक्षा में भाव और कर्तृभिन्न कारक अर्थ में हलन्त गुरुमान् धातु से अ प्रत्यय होता है।

संयोगे गुरु, **दीर्घञ्च** से जिनकी **गुरुसंज्ञा** होती है, ऐसे वर्ण जिस धातु में हों और वह धातु हलन्त भी तो इससे अ प्रत्यय का विधान किया गया है। **गुरु अस्यास्तीति गुरुमान्**, जिसमें गुरुवर्ण हो वह धातु गुरुमान् हुआ। एक ओर दीर्घ वर्ण गुरु हैं तो दूसरी तरफ संयोग के परे होने पर ह्रस्व वर्ण भी गुरु हो जाता है। जैसे- **अर्च्**, **लज्ज्**, **शिक्ष्** आदि।

ईहा। चेष्टा। **ईह चेष्टायाम्** धातु दीर्घवर्ण वाला होने से **गुरुमान्** है और हलन्त भी। **ईह्** से **गुरोश्च हलः** से **अ** प्रत्यय करके **ईह** बनता है। स्त्रीत्वविवक्षा में यह प्रत्यय हुआ है, अतः इससे **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होकर **ईहा** बन जाता है। प्रातिपदिकसंज्ञा करके स्वादि कार्य करना न भूलें।

उक्त रीति से ही **शिक्ष्** से **शिक्षा**, **रक्ष्** से **रक्षा**, **हिंस्** से **हिंसा**, **भाष्** से **भाषा**, **आ+कांक्ष्** से **आकांक्षा** आदि बनाये जा सकते हैं।

८६९- **ण्यासश्रन्थो युच्**। णिश्च आस् च श्रन्थ् च तेषां समाहारद्वन्द्वो ण्यासस्रन्थ्, तस्माद् ण्यासस्रन्थः। ण्यासस्रन्थः पञ्चम्यन्तं, युच् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। इस सूत्र में पूर्ववत् **स्त्रियां**, **भावे**, **अकर्तरि च कारके**, **धातोः**, **प्रत्ययः**, **परश्च** आदि उपलब्ध हैं।

स्त्रीत्वविशिष्ट भाव और अकर्ता कारक की विवक्षा में ण्यन्त धातु, आस् और श्रन्थ् धातुओं से युच् प्रत्यय होता है।

यह सूत्र पूर्व के दो सूत्रों का बाधक है। **युच्** में चकार की इत्संज्ञा होती है, यु बचता है और उसके स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अन** आदेश होता है। **णि** आदि **धातोः** का विशेषण है। अतः **णि** से तदन्तविधि करके **ण्यन्त** अर्थ लिया जाता है।

कारणा। कराना। **कृ** धातु से **णिच्** करके **कारि** बनता है। उसकी धातुसंज्ञा करके **अः प्रत्ययात्** को बाधकर के **ण्यासश्रन्थो युच्** से **युच्** प्रत्यय करके उसके स्थान

क्त-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८७०. नपुंसके भावे क्तः ३।३।११४॥

ल्युट्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८७१. ल्युट् च ३।३।११५॥

हसितम्। हसनम्।

पर **युवोरनाकौ** से **अन** आदेश होकर **कारि+अन** बना। **णेरनिटि** से **णि** वाले **इकार** का लोप करके **कार्+अन** बना। वर्णसम्मेलन, रेफ से परे नकार को णत्व करके **कारण** बना। स्त्रीत्वविवक्षा में यह प्रत्यय हुआ है, अतः **टाप्** होकर **कारणा** बनता है। प्रातिपदिकसंज्ञा के बाद स्वादिकार्य करके **कारणा, कारणे कारणाः** आदि रूप बनते हैं।

हारणा। हराना। **हृ** धातु से **णिच्** करके **हारि** बनता है। उसकी धातुसंज्ञा करके **अः प्रत्ययात्** को बाधकर के **ण्यासश्रन्थो युच्** से **युच्** प्रत्यय करके उसके स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अन** आदेश होकर **हारि+अन** बना। **णेरनिटि** से **णि** वाले **इकार** का लोप करके **हार्+अन** बना। वर्णसम्मेलन, रेफ से परे नकार को णत्व करके हारण बना। स्त्रीत्वविवक्षा में यह प्रत्यय हुआ है, अतः **टाप्** होकर **हारणा** बनता है। प्रातिपदिकसंज्ञा के बाद स्वादिकार्य करके **हारणा, हारणे हारणाः** आदि रूप बनते हैं।

८७०- **नपुंसके भावे क्तः**। नपुंसके सप्तम्यन्तं, भावे प्रथमान्तं, क्तः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

नपुंसकत्व में भाव अर्थ में क्त प्रत्यय होता है।

यह प्रत्यय केवल भाव अर्थ में ही होता हैं, और यह (क्त)प्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिङ्ग वाला ही होता है। ककार इत्संज्ञक है, **त** शेष रहता है। इसके पहले भी **निष्ठा** से **क्त** प्रत्यय का विधान हो चुका है। इन दोनों स्थलों की विशेषता यह है कि **निष्ठा** से विहित क्त प्रत्यय **भूतकाल** में होता है और यह **कालसामान्य** में। उस क्त प्रत्ययान्त के तीनों लिङ्गों में रूप होते हैं तो इस क्तप्रत्ययान्त से केवल नपुंसकलिङ्ग में।

नपुंसकलिङ्ग में भाव अर्थ में **क्त** प्रत्यय के साथ **ल्युट्** प्रत्यय का विधान अग्रिम सूत्र से किया जाता है। अतः कौमुदीकार ने दोनों सूत्रों के उदाहरण एक साथ दिये हैं।

८७१- **ल्युट् च**। ल्युट् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। **नपुंसके भावे क्तः** से **नपुंसके, भावे** की अनुवृत्ति आती है।

नपुंसकत्व में भाव अर्थ में ल्युट् प्रत्यय भी होता है।

लकार और **टकार** इत्संज्ञक हैं, **यु** बचता है। उसके स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अन** आदेश होता है।

हसितम्, हसनम्। हँसना। **हस हसने**। यहाँ **हस्** धातु है। **नपुंसके भावे क्तः** से **क्त** प्रत्यय होने के बाद अनुबन्धलोप होकर **हस्+त** बना। प्रत्यय की आर्धधातुकसंज्ञा करके वलादि आर्धधातुकलक्षण इट् आगम होकर वर्णसम्मेलन हुआ- **हसित** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम् आदेश होकर **हसितम्** सिद्ध हुआ। **ल्युट् च** से **ल्युट्** होने के पक्ष में अनुबन्धलोप होकर **यु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अन** आदेश होकर **हस्+अन=हसन** बना। वलादि न होने के कारण **इट्** आगम नहीं हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, अम्, **हसनम्** बना। इस तरह **पठ्**

घ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८७२. पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण ३।३।११८॥

ह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्

८७३. छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य ६।४।९६॥

द्विप्रभृत्युपसर्गहीनस्य छादेर्ह्रस्वो घे परे।

दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेनेति दन्तच्छदः। आकुर्वन्त्यस्मिन्नित्याकरः।

....

से **पठनम्**, **गम्** से **गमनम्**, **लिख्** से **लेखनम्** इत्यादि सभी धातुओं से यह प्रत्यय किया जा सकता है। **णिजन्त** धातुओं से **ल्युट्** करने पर **णेरनिटि** से णि का लोप किया जाता है, इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

८७२- **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण**। पुंसि सप्तम्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तं, घः प्रथमान्तं, प्रायेण तृतीयान्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **करणाधिकरणयोश्च** से **करणाधिकरणयोः** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः**, **प्रत्ययः**, **परश्च** का अधिकार है।

पुँल्लिङ्ग में संज्ञा-वाच्य होने पर करण और अधिकरण अर्थ में प्रायः घ प्रत्यय होता है।

घकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा होती है, **अ** शेष रहता है। **घ** और **घित्** होने के अनेक प्रयोजन हैं। **घ** को निमित्त मान कर लगने वाला अगला ही सूत्र है। **घ** प्रत्ययान्त शब्द पुँल्लिङ्ग होता है।

८७३- **छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य**। द्वौ उपसर्गौ यस्य स द्व्युपसर्गः। न द्व्युपसर्गः अद्व्युपसर्गस्तस्य। छादेः षष्ठ्यन्तं, घे सप्तम्यन्तम्, अद्व्युपसर्गस्य षष्ठ्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **खचि ह्रस्वः** से **ह्रस्वः** और **ऊदुपधाया गोहः** से **उपधायाः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

दो या दो से अधिक उपसर्गों से युक्त न हो ऐसे छाद् अङ्ग की उपधा को ह्रस्व होता है घ प्रत्यय के परे होने पर।

दन्तच्छदः। दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेन। जिससे दाँत ढके जाते हैं। **छद अपवारणे**। छद् धातु से **णिच्** करने पर **छादि** बनता है। ण्यन्त होने से **सनाद्यन्ता धातवः** से धातुसंज्ञक तो है ही। अतः उससे **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** से **घ** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होने पर **छादि+अ** बना। **णेरनिटि** से णि का लोप होता है। इस तरह **छाद** बन जाता है। इससे पूर्व में **दन्त** है। कृत् के योग में **कर्तृकर्मणोः कृति** से षष्ठी विभक्ति प्राप्त हुई, उसका षष्ठी समास करके लुक् हो जाता है। **दन्त+छाद** में **छे च** से तुक् का आगम, तकार को श्चुत्व करके **दन्तच्छाद** बना है। **छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य** से **छाद्+अ** में छकारोत्तरवर्ती आकार को ह्रस्व होकर **दन्तच्छद** यह प्रातिपदिक बन जाता है। उससे स्वादिकार्य करके **दन्तच्छदः**।

आकरः। आकुर्वन्त्यस्मिन्। जहाँ मनुष्य अनेक प्रकार के खनिज प्राप्त करते हैं, खान। **आ+कृ** धातु से **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** से **घ** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होने पर **आ+कृ+अ** बना। प्रत्यय की आर्धधातुकसंज्ञा, धातु को गुण, रपर करके **आकर** प्रातिपदिक बनता है। उससे स्वादिकार्य करके **आकरः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **नि+ली** से **निलयः**, **आ+ली** से **आलयः** आदि भी बनाये जा सकते हैं।

घञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८७४. अवे तॄस्त्रोर्घञ् ३।३।१२०॥

अवतारः कूपादेः। अवस्तारो जवनिका।

घञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८७५. हलश्च ३।३।१२१॥

हलन्ताद् घञ्। घापवादः। रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः।
अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरित्यपामार्गः।

....

८७४- **अवे तॄस्त्रोर्घञ्।** तॄ च स्तॄ च तॄस्त्रौ, तयो तॄस्त्रोः। अवे सप्तम्यन्तं, तॄस्त्रोः षष्ठ्यन्तं, घञ् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **करणाधिकरणयोश्च** से **करणाधिकरणयोः** और **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** से **पुंसि, संज्ञायाम्, प्रायेण** की अनुवृत्ति है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार तो है ही।

अव उपसर्ग उपपद में होने पर तॄ धातु और स्तॄ धातुओं से करण और अधिकरण अर्थ में प्रायः घञ् होता है पुँल्लिङ्ग में।

घकार और **ञकार** इत्संज्ञक हैं, **अ** शेष रहता है। **ञित्** होने के कारण वृद्धि होगी।

अवतारः। अवतरन्त्यनेन। जिसके द्वारा स्नान आदि के लिए नीचे उतरते हैं, घाट, नदी, कुँआ आदि। **तॄ प्लवनसन्तरणयोः। अव+तॄ** में **अवे तॄस्त्रोर्घञ्** से **घञ्**, अनुबन्धलोप करके **अव+तॄ+अ** बना। ञित् के परे होने परे **तॄ** के ॠकार की **अचो ञ्णिति** से वृद्धि-रपर होकर **अवतार** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्वविसर्ग करके **अवतारः** सिद्ध हुआ।

अवस्तारः। अवस्तीर्यन्तेऽनेन। जिससे ढकते हैं, परदा आदि। **स्तॄञ् आच्छादने। अव+स्तॄ** में **अवे तॄस्त्रोर्घञ्** से **घञ्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप करके **अव+स्तॄ+अ** बना। ञित् के परे होने परे **स्तॄ** के ॠकार की **अचो ञ्णिति** से वृद्धि, रपर होकर **अवस्तार** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, रुत्वविसर्ग करके **अवस्तारः** सिद्ध हुआ।

८७५- **हलश्च।** हलः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **करणाधिकरणयोश्च** से **करणाधिकरणयोः** और **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** से **पुंसि, संज्ञायाम्, प्रायेण** तथा **अवे तॄस्त्रोर्घञ्** से **घञ्** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

हलन्त धातुओं से करण और अधिकरण अर्थ में घञ् होता है पुँल्लिङ्ग में।

यह **घ** प्रत्यय का अपवाद है।

रामः। रमन्ते योगिनोऽस्मिन्। जिसमें योगीजन रमण करते हैं, अर्थात् आनन्दित रहते हैं, उसे राम कहते हैं। **रमु क्रीडायाम्** धातु है। **रम्** धातु से **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** से घ प्रत्यय की प्राप्ति थी, उसे बाधकर के **हलश्च** से **घञ्** हुआ। अनुबन्धलोप होने के बाद **रम्+अ** बना। **अत उपधायाः** से उपधाभूत अकार की वृद्धि होकर **राम** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि करने पर **रामः** सिद्ध होता है।

अपामार्गः। अपमृज्यते व्याध्यादिरनेन। जिससे रोग आदि दूर किये जाते है, वह औषधविशेष। **अप** उपसर्ग है और **मृजू शुद्धौ** धातु है। **मृज्** धातु से **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण** से **घ** प्रत्यय की प्राप्ति थी, उसे बाधकर के **हलश्च** से **घञ्** हुआ। अनुबन्धलोप होने के बाद **अप+मृज्+अ** बना। **मृजेर्वृद्धिः** से ऋकार की वृद्धि, रपर, रेफ का ऊर्ध्वगमन होकर

खल्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८७६. ईषद्दुस्सुषुः कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ३।३।१२६॥

करणाधिकरणयोरिति निवृत्तम्। एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु खल्। तयोरेवेति भावे कर्मणि च। कृच्छ्रे- दुष्करः कटो भवता। अकृच्छ्रे- ईषत्करः। सुकरः।

युच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८७७. आतो युच् ३।३।१२८॥

खलोऽपवादः। ईषत्पानः सोमो भवता। दुष्पानः। सुपानः।

....

अप+मार्ज्+अ बना। **घित्** होने के कारण **चजोः कु घिण्यतोः** से जकार को कुत्व करके **अप+मार्ग्+अ** बना। **उपसर्गस्य घञ्मनुष्ये बहुलम्** से उपसर्ग के अकार को दीर्घ करके **अपामार्ग** बना। इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके सु आदि करने पर **अपामार्गः** सिद्ध होता है।

८७६- **ईषद्दुस्सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्।** ईषच्च दुश्च सुश्च तेषामितरेतरद्वन्द्व ईषद्दुस्सवस्तेषु। कृच्छ्रञ्च अकृच्छ्रञ्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः कृच्छ्राकृच्छ्रे, तौ अर्थौ येषां ते कृच्छ्राकृच्छ्रार्थास्तेषु। ईषद्दुस्सुषु सप्तम्यन्तं, कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु सप्तम्यन्तं, खल् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। इस सूत्र में **करणाधिकरणयोश्च** की निवृत्ति हो गई है।

दुःख और सुख अर्थ वाले ईषत्, दुस् एवं सु उपपद होने पर धातु से खल् प्रत्यय होता है।

खकार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा होती है। अन्त्य लकार तो इत्संज्ञक है ही। इस तरह केवल **अ** मात्र शेष बचता है। सूत्र में **इषद्दुस्सुषु** ऐसा सप्तमीनिर्देश होने के कारण इनकी **तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्** से उपपदसंज्ञा होती है, अतः उपपदसमास भी होगा। **तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः** के अनुसार **भाव** और **कर्म** अर्थ में ही यह प्रत्यय होता है।

दुष्करः। ईषत्करः। सुकरः। कृच्छ्र अर्थात् **कष्ट** अर्थ में **दुस्** पूर्वक **कृ** धातु और **अकृच्छ्र** अर्थात् सुख अर्थ में **सु** और **ईषत्** पूर्वक **कृ** धातु यहाँ पर प्रदर्शित है। **दुःखेन क्रियते इति दुष्करः** अर्थात् जो कष्ट से बनाया जा सके और **सुखेन क्रियते इति सुकरः** अर्थात् जो आसानी से बनाया जा सके। सुखार्थ में ही **ईषत्** का भी प्रयोग है। अतः **ईषत्करः** भी बनता है। यहाँ पर **दुस्, ईषत्** और **सु** उपपद में हैं और **कृ** धातु है। **ईषद्दुस्सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्** से **खल्** प्रत्यय करके अनुबन्धलोप होने पर **कृ** को आर्धधातुकगुण, रपर करके क्रमशः **दुष्कर, ईषत्कर, सुकर** बनते हैं। इनकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके, सु, रुत्वविसर्ग करने पर उक्त तीनों रूप सिद्ध होते हैं। **दुष्करः कटो भवता**= आपके द्वारा चटाई का बनना कठिन है। **ईषत्करः सुकरो वा कटो भवता**= आपके द्वारा चटाई आसानी से बन सकती है। **खल्** प्रत्यय के कर्म अर्थ में होने से अनुक्त कर्ता में तृतीया होकर **भवता** हुआ और कर्म के उक्त होने से **कटः** कर्म के अनुसार **ईषत्करः, सुकरः, दुष्करः** बन गये।

८७७- **आतो युच्।** आतः पञ्चम्यन्तं, युच् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **ईषद्दुस्सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्** से ईषद्दुस्सुषुः और **कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु** की अनुवृत्ति आती है। **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

दुःख और सुख अर्थ वाले ईषत्, दुस्, सु उपपद होने पर आकारान्त धातु से युच् प्रत्यय होता है।

क्वाप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८७८. अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ३।४।१८॥

प्रतिषेधार्थयोरलङ्खल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात्। प्राचां ग्रहणं पूजार्थम्। **अमैवाव्ययेनेति** नियमान्नोपपदसमासः। **दो दद् घोः**। अलं दत्त्वा। **घुमास्थेतीत्वम्**। पीत्वा खलु। अलङ्खल्वोः किम्? मा कार्षीत्। प्रतिषेधयोः किम्? अलङ्कारः।

....

यह सूत्र **ईषद्दुस्सुषुः कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्** का अपवाद है। **युच्** में **चकार** की इत्संज्ञा होती है, **यु** शेष बचता है। उसके स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अन** आदेश होता है। यह भी खलर्थ प्रत्यय है। अतः **तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः** के अनुसार **भाव** और **कर्म** अर्थ में ही होता है।

ईषत्पानः सोमो भवता। दुष्पानः। सुपानः। कृच्छ्र अर्थात् **कष्ट** अर्थ में **दुस्** पूर्वक **पा** धातु और **अकृच्छ्र** अर्थात् **सुख** अर्थ में **सु** और **ईषत्** पूर्वक **पा** धातु यहाँ पर है। **दुःखेन पीयत इति दुष्पानः** अर्थात् जो कष्ट से पान कर सके और **सुखेन पीयते इति सुपानः** अर्थात् जो आसानी से पान किया जा सके। सुखार्थ में ही **ईषत्** का भी प्रयोग है। अतः **ईषत्पानः** भी बनता है। यहाँ पर **दुस्, ईषत्** और **सु** उपपद में हैं और **पा पाने** धातु है। **आतो युच्** से **खल्** के अर्थ में **युच्** प्रत्यय करके अनुबन्धलोप होने पर **यु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अन** आदेश करके **दुष्पान, ईषत्पान, सुपान** बनते हैं। इनकी प्रातिपदिकसंज्ञा करके, सु, रुत्वविसर्ग करने पर उक्त तीनों रूप सिद्ध होते हैं।

दुष्पानः सोमो भवता= आपके द्वारा सोमरस का पान कर पाना कठिन है।

ईषत्पानः सुपानो वा सोमो भवता= आपके द्वारा सोमरस का पान आसानी से हो सकता है।

८७८- अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा। अलं च खलुश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः अलङ्खलू, तयोः। अलङ्खल्वोः सप्तम्यन्तं, प्रतिषेधयोः सप्तम्यन्तं, प्राचां षष्ठ्यन्तं, क्त्वा लुप्तप्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। धातोः, प्रत्ययः, परश्च का अधिकार है।

निषेध अर्थ में विद्यमान **अलं** और **खलु** शब्दों के उपपद होने पर धातुओं से **क्त्वा** प्रत्यय होता है।

क्त्वा में ककार की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा होती है, **त्वा** शेष रहता है। अलङ्खल्वोः यह सप्तम्यन्त है। इससे उपपद का निर्देश है। अतः **अलं दत्त्वा** और **पीत्वा खलु** में उपपद समास का किया जाना चाहिए था किन्तु **अमैवाव्ययेन** अर्थात् अम्(णमुल्) के साथ ही जिस उपपद का तुल्य विधान हो वह उपपद ही अव्यय के साथ समास को प्राप्त होता है, अन्य नहीं। इस नियम सूत्र के अनुसार यहाँ पर उपपदसमास नहीं होगा।

इस सूत्र में **प्राचाम्** यह पद विकल्प के लिए नहीं है अपितु **प्राचीन आचार्यों** के सम्मान के लिए है। धन्य हैं वे प्राचीन आचार्य, जिनका स्मरण पाणिनि जी अपने सूत्रों में करते हैं, विना किसी अन्य प्रयोजन के।

क्त्वा प्रत्ययान्त शब्द **क्त्वातोसुन्कसुनः** से **अव्ययसंज्ञक** हो जाता है, जिससे आई हुई विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लोप होता है।

क्वाप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८७९. समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ३।४।२१॥

समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोः क्त्वा स्यात्। भुक्त्वा व्रजति। **द्वित्वमतन्त्रम्।** भुक्त्वा पीत्वा व्रजति।

....

अलं दत्त्वा। मत दो। यहाँ पर **अलं** पूर्वक **दा** धातु है। निषेध अर्थ में विद्यमान **अलं** के योग में **अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा** से **क्त्वा** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **दा+त्वा** बना। **दो दद्घोः** से **दा** के स्थान पर **दद्** आदेश होकर दकार को चर्त्व करके **दत्+त्वा**, वर्णसम्मेलन करके **दत्त्वा** बना। क्त्वाप्रत्ययान्त होने से अव्ययसंज्ञा होती है, अतः सु का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होकर **दत्त्वा** सिद्ध हुआ। **अलं दत्त्वा। अमैवाव्ययेन** के नियमानुसार **अलम्** के उपपद रहते हुए भी **दत्त्वा** के साथ उपपद समास नहीं होता।

पीत्त्वा खलु। मत पीओ। यहाँ पर **खलु** उपपद वाला **पा** धातु है। निषेध अर्थ में विद्यमान **खलु** के योग में **अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा** से **क्त्वा** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **पा+त्वा** बना। **घुमास्थागापाजहातिसां हलि** से **पा** के **आकार** के स्थान पर **ईकार** आदेश होकर **पी+त्वा** बना। क्त्वाप्रत्ययान्त होने से अव्ययसंज्ञा होती है, अतः सु का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होकर **पीत्वा** सिद्ध हुआ। **पीत्वा खलु।** यहाँ पर भी **अमैवाव्ययेन** के नियमार्थ होने से उपपद समास नहीं होता।

अलङ्खल्वोः किम्? मा कार्षीत्। यदि **अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा** इस सूत्र में **अलङ्खल्वोः** न पढ़ते तो **मा कार्षीत्** इस निषेधात्मक **मा** के योग में भी **कार्षीत्** की जगह **क्त्वा** होकर अनिष्ट रूप बनने लगता। एतदर्थ **अलङ्खल्वोः** का पाठ किया गया। **कार्षीत्** यह पद **मा** के उपपद होने पर **कृ** धातु के लुङ् **अट्** का अभाव होकर बना है।

प्रतिषेधयोः किम्? अलङ्कारः। यदि **अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्वा** इस सूत्र में **प्रतिषेधयोः** (निषेधार्थक) न पढ़ते तो **अलङ्कारः** में **अलं** के योग में **कृ** धातु से क्त्वा होकर **अलङ्कृत्वा** ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता। अतः इसके निवारण के लिए **प्रतिषेधयोः** पढ़ा गया।

८७९- **समानकर्तृकयोः पूर्वकाले।** समानः कर्ता ययोस्तौ समानकर्तृकौ, तयोः समानकर्तृकयोः, पूर्वश्चासौ कालः पूर्वकालः, तस्मिन् पूर्वकाले। समानकर्तृकयोः षष्ठ्यन्तं, पूर्वकाले सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा** से **क्त्वा** की अनुवृत्ति आती है और **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

समानकर्तृक धात्वर्थों में पूर्वकाल में विद्यमान धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है।

जहाँ दो या दो से अधिक धातु हों और उन धातुओं का कर्ता एक ही तो वहाँ एक धातु की क्रिया सबसे पहले होगी, उसके बाद दूसरी क्रिया होगी, उसके बाद तीसरी क्रिया होगी और अन्त में मुख्यक्रिया होगी। यह सूत्र समानकर्तृक धातुओं में पूर्वकालिक क्रिया वाले धातु से क्त्वा प्रत्यय का विधान करता है। **ककार** इत्संज्ञक है, **त्वा** बचता है। इसका अर्थ जैसे- **कृत्वा=करके, भुक्त्वा=खाकर, भूत्वा=होकर** आदि समझें। क्त्वा प्रत्यय होने के बाद **क्त्वातोसुन्कसुनः** से अव्ययसंज्ञा हो जाती है।

भुक्त्वा व्रजति। राम खाकर के जाता है। यहाँ **भुज्** और **व्रज्** दो धातु हैं। खाने

कितोऽकिद्विधायकमतिदेशसूत्रम्

८८०. न क्त्वा सेट् १।२।१८॥

सेट् क्त्वा किन्न स्यात्। शयित्वा। सेट् किम्? कृत्वा।

....

का काम भी राम कर रहा है और जाने का काम भी राम ही कर रहा है, दोनों धातुओं का कर्ता एक राम ही है किन्तु यहाँ खाने का कार्य पहले और जाने का कार्य बाद में है। इसलिए **पूर्वकालिक क्रिया** है **खाना**। अतः **भुज्** धातु से **क्त्वा** प्रत्यय हुआ। ककार की इत्संज्ञा हुई, **त्वा** बचा। **भुज्+त्वा** बना। **चोः कुः** से **भुज्** के जकार को कुत्व, **भुग्+त्वा,** गकार को **खरि च** से चर्त्व होकर **ककार** हुआ, **भुक्त्वा** बना। अव्यय होने के कारण **सु** का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हुआ। **भुक्त्वा व्रजति।**

द्वित्वमतन्त्रम्। सूत्र में द्वित्व संख्या विवक्षित नहीं है अर्थात् **क्त्वा** प्रत्यय करने के लिए केवल दो ही क्रियायें हों, ऐसी बात नहीं है, अपितु दो या दो से अधिक अनेक क्रियाएँ हों तो भी उनमें से पूर्वकालिक क्रियाओं में **क्त्वा** प्रत्यय होता है। इसलिए **भुक्त्वा पीत्वा व्रजति** में **भुज्** और **पा** दोनों धातुओं से **क्त्वा** हुआ। तात्पर्य यह है कि यहाँ **समानकर्तृकयोः** ऐसा द्विवचनान्त पद द्वि धातु के लिए प्रधान नहीं है अपितु दो या दो से अधिक इस अर्थ को बताने के लिए मानना चाहिए। जितनी भी पूर्वकालिक क्रियायें होंगी, उन सब से **क्त्वा** होने के बाद यदि धातु सेट् हो तो **इट्** आदि होकर प्रातिपदिकसंज्ञा करके और अनिट् हो तो इट् के विना विभक्ति को लाकर एवं उसका लोप करके क्वान्त रूप सिद्ध होते हैं। **भुक्त्वा पीत्वा व्रजति।**

प्रेरणा आदि अर्थ में **णिच्** होने के बाद ण्यन्त धातु अथवा **चुरादि** के ण्यन्त धातुओं से भी **क्त्वा** प्रत्यय होकर रूप बनते हैं। जैसे- **कृ** से **णिच्** होने पर **कारि** बना है, उससे **क्त्वा** होने पर **कारि+त्वा** बना। इट् का आगम होकर **कारि+इत्वा** बना। इकार को गुण और **अय्** आदेश होकर **कार्+अय्+इत्वा** बना। वर्णसम्मेलन होकर **कारयित्वा** बन जाता है। इसी तरह **धारयित्वा, चोरयित्वा, पाययित्वा, खादयित्वा, पाठयित्वा** आदि बनाये जा सकते हैं। समास आदि हो जाने के बाद तो **क्त्वा** के स्थान पर **ल्यप्** आदेश होने के बाद ल्यप् का यकार वल् में नहीं आता, अतः वलादिलक्षण इट् का आगम नहीं होता। फलतः अनिडादि आर्धधातुक को परे मानकर **णेरनिटि** से **णिच्** के इकार का लोप हो जाता है, जिससे **अवधार्य, प्रधार्य, प्रचोर्य, प्रखाद्य, प्रपाय** आदि रूप बनाये जा सकते हैं।

८८०- **न क्त्वा सेट्।** इटा सह वर्तत इति सेट्। न अव्ययपदं, क्त्वा लुप्तप्रथमाकं, सेट् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **असंयोगाल्लिट् कित्** से **कित्** की अनुवृत्ति आती है।

इट् से युक्त क्त्वा को कित् न हो।

क्त्वा में ककार की इत्संज्ञा होने के कारण स्वतः **कित्** है। विद्यमान कित् को ही यह सूत्र **अकित्** मानने का अतिदेश करता है। अकित् होने से गुण का निषेध नहीं होगा, यही फल है।

शयित्वा। सोकर के। **शीङ् स्वप्ने।** शी धातु यदि पूर्ववर्ती क्रिया में आ जाय तो उससे भी **समानकर्तृकयोः पूर्वकाले** से क्त्वा होगा ही। वलादिलक्षण इट् आगम करके

विकल्पेन कित्त्वार्थं विधिसूत्रम्

८८१. रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च १।२।२६॥

इवर्णोवर्णोपधाद्धलादेः रलन्तात्परौ क्त्वासनौ सेटौ वा कितौ स्तः। द्युतित्वा, द्योतित्वा। लिखित्वा, लेखित्वा। व्युपधात् किम्? वर्तित्वा। रलः किम्? सेवित्वा। हलादेः किम्? एषित्वा। सेट् किम्? भुक्त्वा।

....

शी+इत्वा बना है। ऐसी अवस्था में कित् त्वा को **न क्त्वा सेट्** से अकिद्वद्भाव कर देने से शी के ईकार का **क्ङिति च** से गुण का निषेध नहीं हो पाता है। फलतः गुण होकर **शे+इत्वा,** अयादेश होकर **शयित्वा** सिद्ध हो जाता है।

सेट् किम्? कृत्वा। यदि **न क्त्वा सेट्** में **सेट्** नहीं कहते तो अनिट् **कृ** आदि धातुओं से भी परे **क्त्वा** को अकित् हो जाता, जिससे **गुण** आदि होकर **अकर्त्वा** ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता।

८८१- रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च। उश्च इश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो वी, वी उपधे यस्य स व्युपधः, तस्मात् व्युपधात्। हल् आदिर्यस्य स हलादिस्तस्य। रलः पञ्चम्यन्तं, व्युपधात् पञ्चम्यन्तं, हलादेः पञ्चम्यन्तं, सन् प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **पूङः क्त्वा च** से **क्त्वा, न क्त्वा सेट्** से **सेट्, नोपधात्थफान्ताद्वा** से **न** और **असंयोगाल्लिट् कित्** से **कित्** की अनुवृत्ति आती है।

इवर्ण और उवर्ण उपधा में है जिनकी ऐसी हलादि रलन्त धातुओं से परे इट् सहित क्त्वा और इट् सहित सन् विकल्प से कित् हों।

इस सूत्र की प्रवृत्ति में धातु के आदि में हल् वर्ण, अन्त में रल् प्रत्याहार वाला वर्ण और धातु के उपधा में इकार या उकार में से कोई एक वर्ण होना चाहिए। यदि ऐसा मिलता है तो इन धातुओं से परे **क्त्वा** को विकल्प से **कित्** अर्थात् किद्वद्भाव किया जायेगा। कित् मानने के पक्ष में गुण का निषेध और कित् न मानने के पक्ष में गुण होगा।

द्युतित्वा, द्योतित्वा। चमककर। **द्युत दीप्तौ।** द्युत् से क्त्वा, इट् होकर **द्युत्+इत्वा** बना है। **द्युत्** धातु हलादि भी है, रल् प्रत्याहारान्त भी है और उपधा में उकार भी है। अतः **रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च** से सेट् **क्त्वा** को वैकल्पिक कित् किया। कित् होने के पक्ष में गुण का निषेध होकर **द्युतित्वा** और **कित्** न होने के पक्ष में **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण होकर **द्योतित्वा** ये दो रूप बन गये।

लिखित्वा, लेखित्वा। लिखकर। **लिख अक्षरविन्यासे।** लिख् धातु से क्त्वा, इट् होकर **लिख्+इत्वा** बना है। **लिख्** धातु हलादि भी है, रल् प्रत्याहारान्त भी है और उपधा में इकार भी है। अतः **रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च** से सेट् **क्त्वा** को वैकल्पिक कित् किया। कित् होने के पक्ष में गुण का निषेध होकर **लिखित्वा** और **कित्** न होने के पक्ष में **पुगन्तलघूपधस्य च** से गुण होकर **लेखित्वा** ये दो रूप बन गये।

व्युपधात् किम्? वर्तित्वा। यदि **रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च** में **व्युपधात्** न कहते तो जिसमें इकार या उकार उपधा में नहीं है, ऐसे **वृत्** आदि ऋकारादि उपधा वाले धातुओं से भी वैकल्पिक किद्वद्भाव होकर गुणाभाव और गुण वाले दो रूप बनते। **व्युपधात्**

इटो विकल्पाय विधिसूत्रम्

८८२. उदितो वा ७।२।५६॥

उदितः परस्य क्त्व इड् वा।

शमित्वा, शान्त्वा। देवित्वा, द्यूत्वा। दधातेर्हिः, हित्वा।

....

कहने से **वृत्** धातु में यह सूत्र नहीं लगा। अतः **न क्त्वा सेट्** से नित्य से अकित् होने पर गुण होकर **वर्तित्वा** एक ही रूप बना।

रलः किम्? सेवित्वा। यदि **रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च** में **रलः** न कहते तो जिसमें रल् अन्त में नहीं है ऐसे **सिव्** आदि वकारान्त धातुओं से भी वैकल्पिक किद्वद्भाव होकर गुणाभाव और गुण वाले दो रूप बनते। **रलः** कहने से **सिव्** धातु में यह सूत्र नहीं लगा। अतः **न क्त्वा सेट्** से नित्य से अकित् होने पर गुण होकर **सेवित्वा** एक ही रूप बना।

हलादेः किम्? एषित्वा। यदि **रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च** में **हलादेः** न कहते तो जिस धातु के आदि में हल् नहीं है, अच् है, ऐसे **इष्** आदि इकारादि धातुओं से भी वैकल्पिक किद्वद्भाव होकर गुणाभाव और गुण वाले दो रूप बनते। **हलादेः** कहने से **इष्** धातु में यह सूत्र नहीं लगा। अतः **न क्त्वा सेट्** से नित्य से अकित् होने पर गुण होकर **एषित्वा** एक ही रूप बना।

सेट् किम्? भुक्त्वा। यदि **रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च** में **सेट्** न कहते तो जिस धातु से इट् नहीं हुआ है ऐसे **भुज्** आदि अनिट् धातुओं से भी वैकल्पिक किद्वद्भाव होकर गुणाभाव और गुण वाले दो रूप बनते। **सेट्** कहने से **भुज्** धातु में यह सूत्र नहीं लगा। नित्य से गुणनिषेध होकर **भुक्त्वा** एक ही रूप बना।

८८२- उदितो वा। उत् इत् यस्य स उदित्, तस्मात्। उदितः पञ्चम्यन्तं, वा अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **जृव्रश्च्योः क्त्वि** से विभक्तिविपरिणाम करके **क्त्वः** और **वसतिक्षुधोरिट्** से **इट्** की अनुवृत्ति आती है।

ह्रस्व उकार की इत्संज्ञा हुई हो **ऐसी उदित् धातु से परे क्त्वा को विकल्प से इट् का आगम होता है।**

शमित्वा, **शान्त्वा।** शान्त होकर। **शमु उपशमे। शम्** धातु से **समानकर्तृकयोः पूर्वकाले** से **क्त्वा,** अनुबन्धलोप, आर्धधातुकसंज्ञा, नित्य से इट् प्राप्त, उदित् होने के कारण उसे बाधकर के **उदितो वा** से विकल्प से **इट्** का आगम करके **शम्+इत्वा,** वर्णसम्मेलन होकर **शमित्वा** बन जाता है। इट् न होने के पक्ष में **शम्+त्वा** है। **अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति** से उपधा को दीर्घ और मकार को अनुस्वार, उसको परसवर्ण होकर **शान्त्वा** बनता है। दोनों रूपों की **क्त्वाप्रत्ययान्त** होने के कारण अव्ययसंज्ञा होती है, प्रातिपदिकत्वेन आई विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होकर **शमित्वा, शान्त्वा** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

देवित्वा, **द्यूत्वा।** जूआ खेल कर। **दिवु क्रीडाविजिगीषा०। दिव्** धातु से **समानकर्तृकयोः पूर्वकाले** से **क्त्वा,** अनुबन्धलोप, आर्धधातुकसंज्ञा, नित्य से इट् प्राप्त, उदित् होने से उसे बाधकर के **उदितो वा** से विकल्प से **इट्** का आगम करके **दिव्+इत्वा,** वर्णसम्मेलन होकर **देवित्वा** बन जाता है। इट् न होने के पक्ष में **दिव्+त्वा** बना है।

ह्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८८३. जहातेश्च क्त्वि ७।४।४३॥

हित्वा। हाङस्तु- हात्वा।

ल्यबादेशविधायकं विधिसूत्रम्

८८४. समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ७।१।३७॥

अव्ययपूर्वपदेऽनञ्समासे क्त्वो ल्यबादेशः स्यात्। तुक्।
प्रकृत्य। अनञ् किम्? अकृत्वा।

....

च्छ्वोः शूडनुनासिके च से **वकार** के स्थान पर **ऊठ्** आदेश दि+ऊ+त्वा बना। यण् करके **द्यूत्वा** बन गया। दोनों की **क्त्वाप्रत्ययान्त** होने के कारण अव्ययसंज्ञा होती है, प्रातिपदिकत्वेन आई विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होकर **देवित्वा, द्यूत्वा** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

हित्वा। धारण करके। **डुधाञ् धारणपोषणयोः**। अनिट् **धा** धातु से **क्त्वा** करके **धा+त्वा** बना। **दधातेर्हिः** से **धा** के स्थान पर **हि** आदेश करके **हित्वा** बना। अव्ययसंज्ञा, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुलुक् आदि तो पूर्ववत् है ही।

८८३- जहातेश्च क्त्वि। जहातेः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, क्त्वि सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **दधातेर्हिः** से हिः की अनुवृत्ति आती है।

क्त्वा प्रत्यय के परे होने पर दिवादिगणीय हा धातु के स्थान पर भी हि आदेश होता है।

जहातेः से केवल जुहोत्यादिगणीय **ओहाक् त्यागे** का ही ग्रहण है, **ओहाङ् गतौ** का नहीं।

हित्वा। छोड़कर। **ओहाक् त्यागे**। अनुबन्धलोप के बाद **हा** बचता है। इससे **क्त्वा** होने पर **हा+त्वा** बना। यह धातु **एकाच् उपदेशेऽनुदात्तात्** से **अनिट्** है। **जहातेश्च क्त्वि** से **हा** के स्थान पर **हि** आदेश होकर **हित्वा** सिद्ध हुआ। **ओहाङ्** वाले **हा** के स्थान पर यह आदेश नहीं होगा। अतः **हात्वा** ही रह जाता है।

८८४- समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्। न नञ् अनञ्, अनञ् पूर्वं यस्मिन् स अनञ्पूर्वः, तस्मिन्। समासे सप्तम्यन्तम्, अनञ्पूर्वे सप्तम्यन्तं, क्त्वः षष्ठ्यन्तं, ल्यप् प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

जिस समास के पूर्वपद में नञ् से भिन्न कोई अन्य अव्यय स्थित हो तो उस समास में धातु से परे क्त्वा के स्थान पर ल्यप् आदेश होता है।

नञ् अव्यय है। **अनञ्** कहने से **नञ्** से भिन्न और **नञ्** के समान **अव्यय** अर्थ लिया गया है। अर्थात् समास के पूर्वपद में नञ् से भिन्न अन्य कोई अव्यय हो तो उत्तरपदस्थ अर्थात् धातु से परे **क्त्वा** प्रत्यय के स्थान पर **ल्यप्** आदेश हो जाता है। **लकार** और **पकार** इत्संज्ञक हैं, **य** बचता है। जैसे **क्त्वा** प्रत्यय **कृत्संज्ञक, आर्धधातुक** और **कित्** है, उसी प्रकार उसके स्थान पर होने वाला **ल्यप्** भी **स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ** से **स्थानिवद्भाव** करके **कृत्संज्ञक, आर्धधातुक** और **कित्** माना जायेगा। **अल्विधि** होने के कारण वलादिलक्षण

इट् का अनल्विधौ से निषेध हो जायेगा। अतः इट् की कर्तव्यता में **स्थानिवद्भाव** ही नहीं होगा अन्यत्र हो जायेगा। इतना ध्यान रखना कि **ल्यप्** आदेश होने पर धातु से **इट्** का आगम नहीं होता। **नञ्** से भिन्न अव्ययों का कृत्संज्ञक क्त्वाप्रत्ययान्त के साथ **कुगतिप्रादयः** से समास करने के बाद ही इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

प्रकृत्य। प्र पूर्वक **कृ** धातु से **समानकर्तृकयोः पूर्वकाले** से **क्त्वा** प्रत्यय, ककार का लोप, **प्र+कृ+त्वा** बना। अनिट् धातु होने के कारण इट् प्राप्त ही नहीं है। **त्वा** की आर्धधातुकसंज्ञा, गुण प्राप्त, कित् होने के कारण **क्ङिति च** से गुण का निषेध, **प्र+कृत्वा** में उपपदसमास करके **समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्** से त्वा के स्थान पर **ल्यप्** आदेश, अनुबन्धलोप, **प्रकृ+य** बना। **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्** से **कृ** को **तुक्** का आगम करके **प्रकृत्य** बन जाता है। **क्त्वातोसुन्कसुनः** से अव्ययसंज्ञा होती है। प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सु** आदि विभक्ति की उपस्थिति, उनका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है। **प्रकृत्य।**

अन्य उदाहरण- **सङ्गम्य।** सम् पूर्वक गम् धातु से **समानकर्तृकयोः पूर्वकाले** से क्त्वा प्रत्यय, ककार का लोप, **सम्+गम्+त्वा** बना। अनिट् धातु होने के कारण इट् प्राप्त ही नहीं है। **सम्+गम्+त्वा** में समास करके **समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्** से त्वा के स्थान पर ल्यप् आदेश, अनुबन्धलोप, **सम्+गम्+य** बना। सम् के मकार को अनुस्वार और परसवर्ण करके ङकार बन गया, **सङ्+गम्+य** बना। वर्णसम्मेलन होकर **सङ्गम्य** बन गया। इसके बाद **क्त्वातोसुन्कसुनः** से अव्ययसंज्ञा होती है। प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति की उपस्थिति, उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होकर- **सङ्गम्य** सिद्ध हुआ।

अकृत्वा। (नञ्) **न+कृत्वा** में समास करके **अ+कृत्वा** बना है। **नञ्** पूर्व में होने पर सूत्र ने ल्यप् आदेश का निषेध किया है, अतः यहाँ पर ल्यप् आदेश नहीं हुआ, क्त्वा ही रह गया- **अकृत्वा।**

हम यहाँ कुछ धातुओं में **क्त्वा** प्रत्यय और **ल्यप्** आदेश लगाकर लिख रहे हैं। आप इनकी प्रक्रिया को समझें और अन्य धातुओं से भी क्त्वा-ल्यप् लगाकर रूप सिद्ध करने का प्रयत्न करें। अधिकतर धातुओं में उपसर्ग के लगने के बाद अर्थ भी बदल जाता है। अतः हम ने यहाँ पर **क्त्वान्त** और **ल्यबन्त** दोनों का अर्थ बदलने की स्थिति में क्रमशः दोनों अर्थों को दिखाया है।

अर्च-अर्चित्वा-समर्च्य=पूजकर के
अव्-अवित्वा-समव्य=बचाकर के
आप्-आप्त्वा- प्राप्य=पाकर के
कृ-कृत्वा-सङ्कृत्य=कर के
क्रीड्-क्रीडित्वा-सङ्क्रीड्य=खेलकर
खेल्-खेलित्वा-सङ्खेल्य=खेलकर के
गै, गा-गीत्वा-प्रगाय=गाकर के
चल्-चलित्वा-सञ्चल्य=चलकर के
जप्-जपित्वा-प्रजप्य=जपकर के
जि-जित्वा-विजित्य=जीतकर के
ज्ञा-ज्ञात्वा-विज्ञाय=जानकर के
दा-दत्त्वा-प्रदाय=देकर के

अर्ज-अर्जयित्वा-उपार्ज्य=कमाकर के
अस्-भूत्वा-अनुभूय=होकर, अनुभवकर के
कथ्-कथयित्वा-प्रकथय्य=कहकर के
क्री-क्रीत्वा-विक्रीय=खरीदकर, बेचकर के
खाद्-खादित्वा-प्रखाद्य=खाकर के
गम्-गत्वा-अवगम्य= जानकर के
ग्रह्-गृहीत्वा-सङ्गृह्य=ग्रहणकर के
जन्-जनित्वा-सञ्जाय=पैदा होकर के
जागृ-जागरित्वा-प्रजागर्य=जागकर के
जीव्-जीवित्वा-सञ्जीव्य=जीकर के
त्यज्-त्यक्त्वा-परित्यज्य=छोड कर के
दृश्-दृष्ट्वा-सन्दृश्य=देखकर के

णमुल्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८८५. आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ३।४।२२॥

आभीक्ष्णे द्योत्ये पूर्वविषये णमुल् स्यात् क्त्वा च।

....

धाव्-धावित्वा-प्रधाव्य=दौड़कर के
ध्यै, ध्या-ध्यात्वा-सन्ध्याय=ध्यानकर के
नी-नीत्वा-आनीय=ले जाकर, लाकर
पठ्-पठित्वा-प्रपठ्य=पढ़कर के
पा-पीत्वा-प्रपाय=पीकर के
भक्ष्-भक्षयित्वा-आभक्ष्य=खाकर
भाष्-भाषित्वा-सम्भाष्य=बोलकर के
धृ-धृत्वा-प्रधृत्य=धारणकर के
नम्-नत्वा-प्रणम्य=झुककर, प्रणामकर के
पच्-पक्त्वा-प्रपच्य=पकाकर के
पत्-पतित्वा, निपत्य=गिरकर के
पूज्-सम्पूज्य=पूजकर के
भण्-भणित्वा-आभण्य=कहकर के
भुज्-भुक्त्वा, उपभुज्य=खाकर के
भू-भूत्वा-सम्भूय=होकर के, सम्भव होकर के, रक्ष्-रक्षित्वा-संरक्ष्य=रक्षाकर के
रम्-रमित्वा-विरम्य=रमणकर, रूककर के, रुद्-रुदित्वा-प्ररुद्य=रोकर के
लभ्-लब्ध्वा-उपलभ्य=पाकर के
विद्-विदित्वा-संविद्य=जानकर के
शक्-शक्त्वा-अतिशक्य=सककर के
श्रु-श्रुत्वा-विश्रुत्य=सुनकर के
स्तु-स्तुत्वा-संस्तुत्य=स्तुतिकर के
स्पृश्-स्पृष्ट्वा-संस्पृश्य=छूकर के
स्मृ-स्मृत्वा-संस्मृत्य=यादकर के
हन्-हत्वा-निहत्य=मारकर के
हृ-हृत्वा-आहृत्य=हरकर, लाकर के
अध्यापि-अध्याप्य- पढ़ाकर के
श्रावयित्वा-संश्राव्य=सुनाकर के
ग्राहयित्वा-सङ्ग्राह्य=ग्रहण कराकर
कारयित्वा-प्रकार्य=करवाकर के
लिख्-लिखित्वा-आलिख्य=लिखकर के
वृध्-वर्धित्वा-संवृध्य=बढ़कर के
शिक्ष्-शिक्षित्वा-प्रशिक्ष्य=सीखकर के
सेव्-सेवित्वा-संसेव्य=सेवाकर के
स्था-स्थित्वा-उत्थाय=रहकर के, उठकर के
स्ना-स्नात्वा-प्रस्नाय=नहाकर के
स्वप्-सुप्त्वा-प्रसुप्य=सोकर के
हस्-हसित्वा-विहस्य=हसकर के
आ-ह्वे-आहूय=बुलाकर के
दर्शयित्वा-आदर्श्य=दिखाकर के
घातयित्वा-संघात्य=मरवाकर के
प्रसादयित्वा-प्रसाद्य=प्रसन्नकर के
लेखयित्वा-संलेख्य=लिखवाकर के

८८५- **आभीक्ष्ण्ये णमुल् च।** आभीक्ष्ण्ये सप्तम्यन्तं, णमुल् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **समानकर्तृकयोः पूर्वकाले** से **पूर्वकाले** और **अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा** से **क्त्वा** की अनुवृत्ति आती है तथा **धातोः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

समान कर्ता वाले दो धातुओं में पूर्वकालिक धातु से णमुल् और क्त्वा प्रत्यय होते हैं बार-बार होना अर्थ द्योतित होने पर।

यह भी **क्त्वा** का ही विषय है। इसमें दोनों प्रत्यय बारी-बारी से होते हैं। अर्थ में **क्रिया का बारम्बार होना** द्योतित होना चाहिए। **णमुल्** में आदि णकार की **चुटू** से और अन्त्य लकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। **उकार** उच्चारणार्थ लगाया गया है। इस तरह केवल **अम्** शेष रहता है। **णित्** होने से वृद्धि हो जायेगी। इस प्रत्यय के लगने के बाद वह प्रातिपदिक **मान्त कृत्** हो जाता है, जिससे **कृन्मेजन्तः** से अव्ययसंज्ञा होती है। फलतः उसके बाद की विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है।

द्वित्वविधायकं विधिसूत्रम्

८८६. नित्यवीप्सयोः ८।१।४॥

आभीक्ष्ण्ये वीप्सायां च द्योत्ये पदस्य द्वित्वं स्यात्।
आभीक्ष्ण्यं तिङन्तेषु अव्ययसंज्ञकेषु च कृदन्तेषु च।
स्मारं स्मारं नमति शिवम्। स्मृत्वा स्मृत्वा वा। पायम्पायम्।
भोजम्भोजम्। श्रावं श्रावम्।

णमुल्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

८८७. अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ३।४।२७॥

एषु कृञो णमुल् स्यात्, सिद्धोऽप्रयोगोऽस्य एवम्भूतश्चेत् कृञ्।
व्यर्थत्वात्प्रयोगानर्ह इत्यर्थः। अन्यथाकारम्। एवङ्कारम्। कथङ्कारम्।
इत्थङ्कारम्। भुङ्क्ते। सिद्धेति किम्? शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते।

इत्युत्तरकृदन्तम्॥३६॥

....

८८६- **नित्यवीप्सयोः**। नित्यं च वीप्सा च नित्यवीप्से, तयोः नित्यवीप्सयोः। सप्तम्यन्तं पदम्। **पदस्य** यह सूत्र अनुवृत्त होता है और **सर्वस्य द्वे** का अधिकार चल रहा है।

बार-बार होना और वीप्सा अर्थात् अनेक में व्याप्त होना अर्थ द्योतित होने पर पद को द्वित्व होता है।

आभीक्ष्ण्य का अर्थ द्वित्व और द्वित्व का तात्पर्य उस शब्द का दो बार पढ़ना अभिप्रेत है। यह द्वित्व तिङन्तों में, अव्यय में और कृदन्त पदों में होता है।

स्मारं स्मारं नमति शिवम्। शिव को बार बार स्मरण कर-कर के नमस्कार करता है। **स्मृ चिन्तायाम्।** यहाँ पर भी दो क्रियाएँ हैं। पूर्वकालिक क्रिया **स्मृ** और उत्तरकालिक क्रिया **नमति**। पूर्वकालिक धातु से **आभीक्ष्ण्ये णमुल् च** से **णमुल्** होकर अनुबन्धलोप होने पर स्मृ+अम् बना। **अचो ञ्णिति** से वृद्धि होकर **स्मार्+अम्** बना। वर्णसम्मेलन होने पर स्मारम् बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, अव्ययसंज्ञा, विभक्ति और उसके लोप होने पर नित्यवीप्सयोः से स्मारम् का द्वित्व हो गया- **स्मारम् स्मारम्** बना। अब क्त्वा होने के पक्ष में तो **स्मृत्वा** स्मृत्वा बनेगा ही अर्थात् द्वित्व **क्त्वा** के पक्ष में भी होगा।

इसी तरह अन्य धातुओं से भी णमुल्, क्त्वा और द्वित्व करके अनेक धातुओं से प्रयोग बना सकते हैं। कुछ उदाहरण यहाँ पर दिये जा रहे हैं।

पठ्	पाठं पाठम्, पठित्वा पठित्वा-	बार बार पढ़कर।
दृश्	दर्शं दर्शम्, दृष्ट्वा दृष्ट्वा-	बार बार देख कर।
ध्यै	ध्यायं ध्यायम्, ध्यात्वा ध्यात्वा	बार बार ध्यान कर।
खाद्	खादं खादम्, खादित्वा खादित्वा	बार बार खा कर।
कृ	कारं कारम्, कृत्वा कृत्वा	बार बार कर के।
पच्	पाचं पाचम्, पचित्वा पचित्वा	बार बार पका कर।

८८७- **अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत्।** अन्यथा च एवं च कथं च इत्थं च तेषामितरेतरद्वन्द्वः अन्यथैवंकथमित्थमस्तेषु। सिद्धोऽप्रयोगो यस्य स सिद्धाप्रयोगः। अन्यथैवंकथमित्थंसु

सप्तम्यन्तं, सिद्धाप्रयोगः प्रथमान्तं, चेत् अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ्** से **कृञ्** और **स्वादुमि णमुल्** से **णमुल्** की अनुवृत्ति आती है और **धातोः**, **प्रत्ययः**, **परश्च** का अधिकार है।

अन्यथा, एवम्, कथम्, इत्थम् के उपपद होने पर कृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है यदि कृञ् धातु अर्थहीन होने से प्रयोग के अयोग्य प्रतीत हो रहा हो तो।

सिद्धाप्रयोगः का तात्पर्य यह है कि यदि निष्पद्यमान शब्द में कृञ् धातु का अर्थ न प्रतीत हो रहा हो।

अन्यथाकारं भुङ्क्ते। अन्य प्रकार से खा रहा है। **एवङ्कारं भुङ्क्ते**। इस प्रकार से खाता है। **कथङ्कारं भुङ्क्ते**। कैसे खाता है? **इत्थङ्कारं भुङ्क्ते**। इस तरह से खाता है। इन चारों प्रयोगों में **कृ** धातु है और क्रमशः **अन्यथा, एवम्, कथम्,** इत्थम् ये उपपद हैं। **अन्यथाकारं भुङ्क्ते** का वही अर्थ है जो **अन्यथा भुङ्क्ते** का है। **कृ** धातु और उससे **णमुल्** प्रत्यय करके भी वही अर्थ निकल रहा है, जो पहले से था। इस तरह यहाँ पर **कृ** धातु **सिद्धाप्रयोग** सिद्ध हो रहा है। अतः **कृ** से **अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत्** से **णमुल्** करके **अन्यथाकारम्** बन जाता है। मकारान्त कृदन्त **कृन्मेजन्तः** से अव्ययसंज्ञक होता है। अतः सुप् का लुक् करके **अन्यथाकारम्** सिद्ध होता है। इसी तरह **एवङ्कारम्, कथङ्कारम्** और **इत्थङ्कारम्** के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए।

सिद्धेति किम्? शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते। प्रश्न यह कहते हैं कि **अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत्** इस सूत्र में यदि **सिद्धाप्रयोगश्चेत्** न हो तो क्या होता? इस पर उत्तर देते हैं कि **शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते** शिर को दूसरी तरफ करके भोजन करता है। इस वाक्य में **कृत्वा** सिद्धाप्रयोग अर्थात् निष्प्रयोजन नहीं है, यहाँ पर भी **णमुल्** होकर अनिष्ट रूप बन जाता। ऐसा न हो, इसके लिए सूत्र में **सिद्धाप्रयोगश्चेत्** यह कहा गया।

इस तरह से उत्तरकृदन्तप्रकरण को संक्षेप में पूर्ण किया गया। इतने प्रत्ययों की सम्यक् जानकारी होने के बाद तो अन्य विविध प्रत्ययों की भी जानकारी सरलता से हो सकती है। आपने अभी तक जितने धातु पढ़े, उन सभी धातुओं से तुमुन् और क्त्वा प्रत्यय लगाकर रूप बनाने का प्रयत्न करें।

परीक्षा

द्रष्टव्यः- प्रत्येक प्रश्न दस अंक के हैं और अनिवार्य भी हैं।

१- **तुमुन्** और **क्त्वा** प्रत्यय लगाकर किन्हीं पाँच रूपों की सिद्धि करें। १०

२- ल्यप् आदेश के किन्हीं दस रूपों की सिद्धि करें। १०

३- घ और घञ् प्रत्यय लगाकर किन्हीं दस रूपों की साधना करें। १०

४- क्तिन् प्रत्यय लगाकर दस रूपों की सिद्धि करें। १०

५- **क्त्वा, ल्यप्** प्रत्यय के पाँच-पाँच तथा **ण्यन्त** से **क्त्वा** और ल्यप् के दो-दो उदाहरण प्रक्रिया सहित दिखायें। १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का उत्तरकृदन्त-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ विभक्त्यर्थाः

प्रथमाविभक्तिविधायकं विधिसूत्रम्

८८८. प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा२।३।४६॥

नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः। मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः। प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये परिमाणमात्रे सङ्ख्यामात्रे च प्रथमा स्यात्।

प्रातिपदिकार्थमात्रे- उच्चैः। नीचैः। कृष्णः। श्रीः। ज्ञानम्।

लिङ्गमात्रे- तटः, तटी, तटम्। परिमाणमात्रे- द्रोणो व्रीहिः।

वचनं सङ्ख्या- एकः, द्वौ, बहवः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **विभक्त्यर्थप्रकरण (कारक)** प्रारम्भ होता है। आपने सन्धिप्रकरण के बाद अजन्तपुँल्लिङ्ग आदि छः प्रकरणों में सु आदि इक्कीस प्रत्ययों का विधान देखा। इन प्रत्ययों को सात विभक्तियों में विभाजित किया गया था। कौन सी विभक्ति किस अर्थ में होती है, यह बात इस **कारकप्रकरण** में बतायी जायेगी। अतः इस प्रकरण को **विभक्त्यर्थप्रकरण** भी कहते हैं। कारक शब्द का एक अर्थ कर्ता भी है। किन्तु यहाँ पर कारक शब्द पारिभाषिक है। **करोति क्रियां निर्वर्तयतीति कारकम्**, अथवा **क्रियान्वयि कारकम्** अथवा **साक्षात् क्रियाजनकं कारकम्।** जो क्रिया का निमित्त बने अर्थात् जो क्रिया का निष्पादन करे, जो क्रिया के साथ अन्वय अर्थात् सीधे सम्बन्ध रखे अथवा जो क्रिया का जनक है, उसे कारक कहते हैं।

ये कारक छः हैं- **कर्तृकारक, कर्मकारक, करणकारक, सम्प्रदानकारक, अपादानकारक और अधिकरणकारक।** सम्बन्ध को कारक नहीं माना गया हैं, क्योंकि षष्ठी को छोड़कर अन्य सभी कारकों का क्रिया के साथ साक्षात् अन्वय है किन्तु सम्बन्ध का सीधे अन्वय न होकर परम्परया अन्वय होता है। जैसे **रामः पठति** में **रामः** कर्ता का **पठति** क्रिया के साथ साक्षात् सम्बन्ध है और कर्ता और क्रिया एक दूसरे से आकांक्षा युक्त हैं, अतः सीधे सम्बन्ध रखते हैं। इस तरह क्रिया के साथ अन्वय करने की योग्यता होने के कारण प्रथमाविभक्ति युक्त **रामः** यह कारक हुआ।

इसी प्रकार **देवदत्तः पुस्तकं लिखति** इस वाक्य में **पुस्तकं** इस कर्म का **लिखति** इस क्रिया के साथ में सीधे सम्बन्ध हो रहा है। **पुस्तकं** और **लिखति** के बीच में

अन्य किसी शब्द की आवश्यकता नहीं है। इस तरह क्रिया के साथ अन्वय करने की योग्यता होने के कारण द्वितीयाविभक्तियुक्त **पुस्तकम्** यह **कर्म-कारक** हुआ।

गोपालः कराभ्यां प्रणमति (गोपाल दोनों हाथों से प्रणाम करता है) इस वाक्य में **कराभ्यां** इस करण साधन का **प्रणमति** इस क्रिया के साथ में सीधे सम्बन्ध हो रहा है। **कराभ्यां प्रणमति** के बीच में किसी अन्य शब्द की आवश्यकता नहीं है। इस तरह क्रिया के साथ अन्वय करने की योग्यता होने के कारण तृतीयाविभक्तियुक्त **कराभ्याम्** यह **करण-कारक** हुआ।

राजा धनं निर्धनाय ददाति या राजा निर्धनाय धनं ददाति (राजा धन निर्धन को देता है या राजा निर्धन को धन देता है) इस वाक्य में **निर्धनाय** इस सम्प्रदान का सीधा सम्बन्ध **ददाति** क्रिया के साथ हो रहा है। **निर्धनाय** और **ददाति** के बीच अन्य कोई शब्द न हो तो भी वाक्य की संगति बैठ जाती है। क्रिया के साथ अन्वय करने की योग्यता होने के कारण चतुर्थीविभक्तियुक्त **निर्धनाय** यह **सम्प्रदान-कारक** हुआ।

छात्राः पाठालयाद् आगच्छन्ति (छात्र पाठशाला से आ रहे हैं) इस वाक्य में **पाठालयात्** इस अपादान का **आगच्छन्ति** इस क्रिया के साथ में सीधे सम्बन्ध अर्थात् अन्वय हो रहा है। **पाठालयात्** और **आगच्छन्ति** के बीच में अन्य किसी शब्द की आवश्यकता नहीं है। इस तरह क्रिया के साथ अन्वय करने की योग्यता होने के कारण पञ्चमीविभक्तियुक्त **पाठालयात्** यह **अपादान-कारक** हुआ।

देवदत्तस्य पुत्रः शाकम् आनयति (देवदत्त का पुत्र शाक लाता है) इस वाक्य में **देवदत्तस्य** यह षष्ठीविभक्ति युक्त शब्द का **आनयति** क्रिया के साथ में सीधे अन्वय नहीं हो रहा है। **देवदत्त का लाता है**, ऐसा वाक्य ही नहीं बनता है। देवदत्त का और लाता है के बीच में किसी अन्य शब्द की आवश्यकता होती है। इस तरह क्रिया के साथ साक्षात् अन्वय करने की योग्यता न होने के कारण षष्ठीविभक्तियुक्त **देवदत्तस्य** यह कोई कारक नहीं हुआ।

बालकः कटे तिष्ठति (बालक चटाई पर बैठता है) इस वाक्य में **कटे** इस अधिकरण का सम्बन्ध **तिष्ठति** क्रिया के साथ सीधे हो रहा है। **कटे** और **तिष्ठति** के बीच में अन्य किसी शब्द की आवश्यकता नहीं है। इस तरह क्रिया के साथ अन्वय करने की योग्यता होने के कारण सप्तमीविभक्तियुक्त **कटे** यह **अधिकरण-कारक** हुआ।

विवक्षातः कारकाणि भवन्ति। वक्ता जिस प्रकार से अर्थात् जिस प्रकार के भाव से किसी को प्रस्तुत करना चाहता है या प्रस्तुत करता है, यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। वह **अग्निः पचति** या **अग्निना पचति** आदि किस रूप में प्रयोग करना चाहता है, उसी रूप में प्रयोग कर सकता है।

वाक्यज्ञान के लिए कारकप्रकरण का विशेष महत्त्व है। इसके विना वाक्य शुद्ध होना कठिन है। **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में कारकप्रकरण विस्तृत रूप में है किन्तु **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में केवल दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। फिर भी व्याख्या में प्रयत्न करेंगे कि बोलचाल के लिए आवश्यक कारक का समावेश हो जाय।

८८८- प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा। इस सूत्र का सामासिक विग्रह कुछ इस प्रकार से है- पदं पदं प्रतिपदं, प्रतिपदे भवं प्रातिपदिकं, प्रातिपदिकस्यार्थः प्रातिपदिकार्थः। प्रातिपदिकार्थश्च, लिङ्गञ्च, परिमाणञ्च, वचनञ्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः

प्रातिपदिकार्थलिङ्ग-परिमाणवचनानि, प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनानि एव प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रम्, तस्मिन् प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे, प्रथमा। प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे सप्तम्यन्तं, प्रथमा प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

प्रातिपदिकार्थमात्र में, लिङ्गमात्र की अधिकता में, परिमाणमात्र में और वचन में प्रथमा विभक्ति होती है।

नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः। किसी शब्द के उच्चारण करने पर निश्चितरूप से जिस अर्थ की उपस्थिति हो अर्थात् प्रतीति होती है उसे **प्रातिपदिकार्थ** कहते हैं। जिस शब्द के उच्चारण करने से यह पता चले कि यह शब्द इस अर्थ का ज्ञान कराता है, अथवा इस शब्द का यह अर्थ है, ऐसी प्रतीति जिस शब्द के विषय में हो जाये, उसे प्रातिपदिकार्थ कहते हैं।

सूत्र में जो **मात्र**-शब्द उच्चारित है। वह अवधारणार्थक है। इसमें चार मानक निश्चित किये गये हैं- प्रातिपदिकार्थ, लिङ्ग, परिमाण और वचन। इन चारों के साथ में मात्रशब्द का सम्बन्ध है। **द्वन्द्वादौ द्वन्द्वमध्ये द्वन्द्वान्ते च श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते। द्वन्द्वसमास** के आदि, मध्य और अन्त में पढ़ा गया शब्द द्वन्द्व के विग्रह में उच्चारित सभी शब्दों के साथ लग जाता है। द्वन्द्वसमास करके **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनानि** बनाया गया है और इसके अन्त में **मात्र** को जोड़ा जा रहा है, अतः **मात्र** का योग **प्रातिपदिकार्थ** के साथ भी, **लिङ्ग** के साथ भी, **परिमाण** के साथ भी और **वचन** के साथ भी हो जाता है। इसका यह अर्थ निकलता है-

प्रातिपदिकार्थ में ही, प्रातिपदिकार्थ होते हुए लिङ्गमात्र की अधिकता होने पर, प्रातिपदिकार्थ होते हुए परिमाणमात्र की अधिकता होने पर और प्रातिपदिकार्थ होते हुए संख्यामात्र भी रहने पर प्रथमा विभक्ति होती है।

प्रातिपदिकार्थमात्र तो सब में रहता ही है।

शब्दों से विभक्ति आना आवश्यक है, क्योंकि विभक्ति लगने के बाद **सुप्तिङन्तं पदम्** से **पदसंज्ञा** होती है। पद होने पर ही वह व्यवहार के योग्य हो जाता है। **अपदं न प्रयुञ्जीत** अर्थात् अपद का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जैसे- **श्री** शब्द है। जब तक इसमें विभक्ति नहीं लगाते तब तक उसका प्रयोग नहीं हो सकता। केवल वैयाकरण लोग विना विभक्ति के भी अर्थ समझेंगे किन्तु जो व्याकरण की प्रक्रिया को नहीं समझते, वे विभक्त्यन्त शब्द का ही अर्थ समझ सकते हैं। जैसे केवल **भू**-धातु का लोक में कोई अर्थ गम्य नहीं है किन्तु जब लट्, तिप्, शप्, गुण, अवादेश करके **भवति** बन जाता है तब उसका अर्थ सभी समझ सकते हैं। इसी प्रकार विना विभक्ति के कोई अर्थ नहीं समझ सकता। अतः पद बने विना उसका प्रयोग नहीं होता। **पद** बनने के लिए **तिङ्** आदि विभक्ति या **सुप्** आदि विभक्तियों का होना आवश्यक है। सुप् आदि विभक्ति कहाँ-कहाँ किस-किस प्रकार से की जायें, यही अर्थ निश्चय करता है **कारकप्रकरण** अर्थात् **विभक्त्यर्थप्रकरण।**

प्रातिपदिकार्थमात्रे। जिस शब्द का सीधा-सीधा अर्थमात्र उपस्थित है, ऐसे शब्द से प्रथमाविभक्ति होती है अर्थात् किसी शब्द के उच्चारण करने पर नियतरूप से जिस अर्थ की उपस्थिति हो अर्थात् प्रतीति होती हो ऐसे प्रातिपदिकार्थ से प्रथमाविभक्ति होने का उदाहरण है- **उच्चैः, नीचैः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम्।** इन शब्दों के उच्चारणमात्र से क्रमशः

ऊपर, नीचे, भगवान् कृष्ण, लक्ष्मी जी और ज्ञान ये अर्थ अपने आप किसी अन्य शक्ति के विना भी उपस्थित हो रहे हैं। इसलिए यहाँ पर **प्रातिपदिकार्थ** माना गया और **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से प्रथमाविभक्ति हुई।

उच्चैः। नीचैः। उच्चैस् और नीचैस् इन दो प्रातिपदिकों से **प्रातिपदिकार्थ मात्र** में **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से **प्रथमाविभक्ति** हुई, सु प्रत्यय उपस्थित हुआ। ये दोनों शब्द अव्ययसंज्ञक हैं, अतः **अव्ययादाप्सुपः** से सु विभक्ति का लोप हुआ। **उच्चैस्** और **नीचैस्** के **सकार** को **रुत्वविसर्ग** हुआ। सु के लोप होने पर भी प्रत्ययलक्षण के द्वारा विभक्त्यन्त माना गया। विभक्त्यन्त होने से **पदसंज्ञा** हो गई। पद होने से **प्रयोग योग्य** हो गये।

कृष्णः। कृष्ण का **वासुदेव** अर्थ निश्चित रूप से उपस्थित है। अतः प्रातिपदिकार्थ है। प्रातिपदिकार्थ में **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से प्रथमाविभक्ति हुई। एकत्व की विवक्षा में **द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने** से एकवचन **सु** आया। अनुबन्धलोप होने पर सकार को रुत्वविसर्ग हुआ- **कृष्णः।**

श्रीः। श्री शब्द के उच्चारण से **लक्ष्मी** यह अर्थ निश्चित रूप से उपस्थित है। अतः प्रातिपदिकार्थ हुआ। प्रातिपदिकार्थ में **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से प्रथमाविभक्ति हुई। एकत्वविवक्षा में **सु** आया, उसको रुत्वविसर्ग हुआ- **लक्ष्मीः।** लक्ष्मी-शब्द न तो ङ्यन्त है और न आबन्त ही। अतः **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से सु का लोप नहीं हुआ। शेष विभक्ति में नदी-शब्द की तरह रूप चलते हैं।

ज्ञानम्। ज्ञानशब्द का **ज्ञान, विद्या की सम्पन्नता** अर्थ निश्चित रूप से उपस्थित है। अतः प्रातिपदिकार्थ है। प्रातिपदिकार्थ में **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से प्रथमाविभक्ति हुई। एकत्वविवक्षा में **सु** आया। नपुंसकलिङ्ग होने के कारण सु के स्थान पर **अतोऽम्** से अम् हुआ और **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **ज्ञानम्।**

लिङ्गमात्राधिक्ये। कोई शब्द केवल अपने लिङ्ग को नहीं कह सकता अपितु लिङ्गविशिष्ट प्रातिपदिकार्थ को ही कहता है। जैसे पुरुषशब्द पुँल्लिङ्गयुक्त मनुष्यरूप प्रातिपदिकार्थ को, नारी-शब्द स्त्रीलिङ्गयुक्त नारी रूप प्रातिपदिकार्थ को तथा पुस्तकशब्द नपुंसकलिङ्गयुक्त पुस्तक रूप अर्थ को अवश्य कहते हैं किन्तु तट शब्द से उसमें विद्यमान वहुत लिङ्गों में से एक कोई लिङ्गयुक्त नदी का तीर अर्थ तो उपस्थित है किन्तु अनेक लिङ्ग अर्थ उपस्थित नहीं हैं। इसलिए **प्रातिपदिकार्थ** में प्रथमा नहीं हो सकती है। अतः प्रातिपदिकार्थ होते हुए लिङ्गमात्र की अधिकता हो तो भी प्रथमा विभक्ति हो, इसके लिए इस सूत्र में **लिङ्ग** ग्रहण किया गया है।

तटः, तटी, तटम्। अकारान्त तट-शब्द से प्रातिपदिकार्थ सहित लिङ्गमात्र की अधिकता में प्रथमाविभक्ति हुई। **पुँल्लिङ्ग** में **रामशब्द** की तरह, **स्त्रीलिङ्ग** में **नदीशब्द** की तरह और **नपुंसकलिङ्ग** में **ज्ञान**-शब्द की तरह प्रक्रिया होती है।

परिमाणमात्राधिक्ये। कहीं पर भी किसी शब्द से केवल परिमाण की अभिव्यक्ति नहीं हुआ करती अपितु प्रातिपदिकार्थ सहित परिमाण की अभिव्यक्ति हुआ करती है। अतः प्रातिपदिकार्थ सहित परिमाणमात्र की अधिकता होने पर प्रथमाविभक्ति होवे, इसलिए **परिमाणमात्राधिक्ये** कहा गया। जैसे **द्रोणो व्रीहिः।** द्रोण प्राचीनकाल का एक परिमाणवाचक

सम्बोधने प्रथमाविभक्तिविधायकं विधिसूत्रम्

८८९. सम्बोधने च २।३।४७॥

प्रथमा स्यात्। हे राम।

इति प्रथमा।

....

शब्द हैं, जैसे आजकल किलो, कुन्टल आदि है। द्रोण का अर्थ परिमाण-विशेष और इस सूत्र से परिमाणाधिक्य में जो सु प्रत्यय हुआ, उसका परिमाण सामान्य अर्थ है। जैसे **एक किलो चावल** इस वाक्य में **नाप** सामान्य परिमाण और **एक किलो** विशेष परिमाण, इस तरह से **एक किलो से नपा हुआ चावल** यह तात्पर्य निकलता है। इसी प्रकार से **द्रोण** का अर्थ भी **परिमाण** है और **परिमाण** अर्थ में हुए **सु** का अर्थ भी **परिमाण** ही है। दो परिमाणों में **द्रोण** का **परिमाण** अर्थ **विशेषण** और सु का परिमाण अर्थ **विशेष्य** है। पुनः **द्रोणः** विशेषण और **व्रीहिः** विशेष्य हुए। इस तरह से **द्रोण के रूप में जो परिमाण, उस परिमाण से नपा हुआ धान** यह अर्थ निश्चित हुआ। **व्रीहिः** में सु विभक्ति **प्रातिपदिकार्थमात्र** में और **द्रोणः** में सु विभक्ति **प्रातिपदिकार्थमात्र रहते हुए परिमाणमात्र की अधिकता** में हुई है, ऐसा समझना चाहिए।

यदि यहाँ पर परिमाण अर्थ में विभक्ति न की जाय तो अर्थात् प्रातिपदिकार्थ में ही विभक्ति मानी जाय तो **द्रोणो व्रीहिः** में **द्रोण** किसी वस्तु का मापक परिमाण का **व्रीहि**- धान्यविशेष जो माप्य=नापा जाने वाले के साथ **परिच्छेद्य-परिच्छेदक** (माप्य-मापक)**भाव** रूप सम्बन्ध नहीं होगा अपितु **नीलो घटः** की तरह अर्थात् **नीलाभिन्नो घटः**=नील गुण से अभिन्न घट की तरह **द्रोण** से अभिन्न **व्रीहि** ऐसे अभेद सम्बन्ध से अन्वय होने लगता, क्योंकि **नामार्थयोरभेदान्वयः**=एक नामार्थ=प्रातिपदिकार्थ का दूसरे नामार्थ के साथ में अभेदान्वय ही होता है, ऐसा नियम है। जो **द्रोणो व्रीहिः** में कथमपि सम्भव नहीं है क्योंकि- **द्रोण** नापने वाला मापक है और **व्रीहि** उससे नापी जाने वाली माप्य वस्तु है। **द्रोण** परिमाण और **व्रीहि** द्रव्य कभी भी एक नहीं हो सकते। अतः अभेदान्वय को बाधकर **परिच्छेद्य-परिच्छेदकभाव** रूप सम्बन्ध से अन्वय करने के लिए परिमाण अर्थ प्रथमा की जाती है।

संख्यामात्रे। एकः, द्वौ, बहवः। जैसे **एक** शब्द से **एकत्व** संख्या, **द्वि** शब्द से **द्वित्व** संख्या और **बहु** शब्द से **बहुत्व** संख्या का अर्थ स्वतः उपस्थित है। तात्पर्य यह है कि एक, द्वि, बहु आदि संख्यावाचक शब्दों से संख्या-अर्थ जो प्रातिपदिकार्थ है, वह उक्त है और उस उक्त अर्थ को बताने के लिए सु, औ आदि प्रत्यय नहीं किये जा सकते क्योंकि- **उक्तार्थानामप्रयोगः**, उक्तः=कहा गया है, अर्थः=अर्थ, जिन शब्दों का, ऐसे शब्दों का, अप्रयोगः=प्रयोग नहीं किया जा सकता, ऐसा नियम है। अतः एक, द्वि आदि से एकत्व, द्वित्व आदि संख्या रूप अर्थ के उक्त होने पर भी वचन-ग्रहणसामर्थ्य से **उक्तार्थानामप्रयोगः** इस नियम को बाधकर सु आदि प्रत्यय होते हैं। इसलिए **संख्यामात्रे** का उच्चारण किया। एक, द्वि, बहु ये स्वतः संख्यावाचक होते हुए भी में प्रथमा विभक्ति होनी ही चाहिए जिससे ये पद बन सकें। इन तीनों शब्दों से प्रातिपदिकार्थमात्र होते हुए संख्यामात्र की विशेषता में **प्रातिपदिकार्थलिङ्ग- परिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से प्रथमाविभक्ति हुई। **एक+सु**

कर्मसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

८९०. कर्तुरीप्सिततमं कर्म १।४।४९॥

कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

द्वितीयाविभक्तिविधायकं विधिसूत्रम्

८९१. कर्मणि द्वितीया २।३।२॥

अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात्। हरिं भजति।

अभिहिते तु कर्मादौ प्रथमा। हरिः सेव्यते। लक्ष्म्या सेवितः।

....

में रुत्वविसर्ग करके **एकः**। **द्वि+औ** में **त्यदादीनामः** से अत्व, **द्व+औ** बना। वृद्धि होकर **द्वौ** बना। **बहु+जस्** में **जसि च** से गुण करके अवादेश, रुत्वविसर्ग करके **बहवः** सिद्ध हुआ।
८८९- सम्बोधने च। सम्बोधने सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से **प्रथमा** की अनुवृत्ति आती है।

सम्बोधन में प्रथमाविभक्ति होती है।

हे राम! राम से सम्बोधन अर्थ में **सम्बोधने च** से प्रथमा, एकत्वविवक्षा में सु, उसका **एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः** से लोप, हे का पूर्वप्रयोग करके **हे राम!** सिद्ध हुआ।
८९०- कर्तुरीप्सिततमं कर्म। अतिशयेन ईप्सितम् ईप्सिततमम्। कर्तुः षष्ठ्यन्तम्, ईप्सिततमं प्रथमान्तं, कर्म प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

कर्ता को अपनी क्रिया के द्वारा अत्यन्त इष्ट अर्थात् जिसे विशेषरूप से प्राप्त करना चाहता है, उस कारक की कर्मसंज्ञा होती है।

एक वाक्य में **कर्ता**, **कर्म** और **क्रिया** ये तीन या तीन से अधिक भी होते हैं। इसमें कर्म कौन सा है? यह जानने के लिए इस सूत्र का सहारा लिया जाता है। जैसे **रामः पुस्तकं पठति** इस वाक्य में **पठति** यह **क्रिया** है और **रामः** यह **कर्ता** है। राम कर्ता को पठनक्रिया द्वारा अत्यन्त इष्ट है **पुस्तक**, अतः **पुस्तक** की कर्मसंज्ञा होती है। इसी प्रकार **देवदत्तः पत्रं लिखति** में कर्ता देवदत्त को लेखनक्रिया द्वारा अत्यन्त अभीष्ट है **पत्र**, अतः **पत्र** की कर्मसंज्ञा हुई। कर्मसंज्ञा का फल **कर्मणि द्वितीया** से द्वितीया विभक्ति का विधान करना है।
८९१- कर्मणि द्वितीया। कर्मणि सप्तम्यन्तं, द्वितीया प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अनभिहिते** का अधिकार है। **अभिहित** का अर्थ **उक्त** होता है, न अभिहितः=अनभिहितः= अनुक्तस्तस्मिन् अनभिहिते।

अनुक्त कर्म में द्वितीयाविभक्ति होती है।

अनुक्त कर्म अर्थात् जिस कर्म-रूप अर्थ को **कृत्, तिङ्** आदि के द्वारा न कहा गया हो अर्थात् **कर्म** अर्थ में **कृत्** आदि प्रत्यय न हुए हों वह। **यस्मिन् प्रत्ययः स उक्तः**। जिस अर्थ में प्रत्यय होता है, वह उक्त होता है। मोटे तौर पर जैसे- **रामः पुस्तकं पठति** इस वाक्य में **पठ्** धातु से लट् लकार **लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः** के द्वारा **कर्ता** अर्थ में हुआ। इसलिए इस वाक्य का कर्ता **उक्त** हुआ। एक **उक्त** होता है तो शेष स्वतः **अनुक्त** हो जाते हैं। इसलिए इस वाक्य में जो **कर्मवाचक** शब्द है **पुस्तक**, वह अनुक्त

हुआ। कर्म के अनुक्त होने पर **कर्मणि द्वितीया** इस सूत्र के द्वारा द्वितीयाविभक्ति का विधान होता है तो **पुस्तक** से द्वितीया विभक्ति हुई-**पुस्तकम्**। इसी तरह सभी जगह समझना चाहिए। उक्त और अनुक्त की व्यवस्था को भलीभाँति समझ लेना चाहिए।

पहले तो कर्म क्या है यह जानना और उसके बाद कर्म उक्त है कि अनुक्त यह जानना चाहिए। कर्ता अर्थ में प्रत्यय हुआ है तो कर्ता उक्त तथा कर्म अनुक्त होता है और कर्म अर्थ में प्रत्यय हुआ है तो कर्म उक्त तथा कर्ता अनुक्त होता है। कर्ता उक्त है तो कर्म आदि सारे स्वतः अनुक्त हो जायेंगे। इस सूत्र से अनुक्त कर्म में ही द्वितीया विभक्ति होती है। यदि कर्म ही उक्त हो जाय तो कर्म में द्वितीया विभक्ति नहीं हो पाती। कर्म के उक्त हो जाने के बाद तो **प्रातिपदिकार्थमात्र** में प्रथमा विभक्ति ही होती है।

(देवदत्तः) हरिं भजति। देवदत्त हरि का भजन करता है। इस वाक्य में **भज्** धातु से लट् लकार अर्थात् **ति** कर्ता अर्थ में हुआ, अतः कर्ता **उक्त** है। कर्ता के उक्त होने से **कर्म** स्वतः **अनुक्त** हो जायेगा। इस वाक्य का **कर्म** क्या है? इस प्रश्न पर हमने **कर्तुरीप्सिततं कर्म** से पूछा तो उसने कहा- **कर्ता को क्रिया के द्वारा प्राप्त करने में जो अत्यन्त इष्ट है, वही कर्म है**। यहाँ पर **कर्ता देवदत्त** भजनक्रिया के द्वारा **हरि** को प्राप्त करना चाहता है, इसलिए **हरि** यह **कर्म** हुआ। **कर्म अनुक्त** है इसलिए हरि में **कर्मणि द्वितीया** से **द्वितीया** विभक्ति हुई। **हरि** से **अम्** और **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर **हरिम्** सिद्ध होता है। **मकार** को **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार होकर **वा पदान्तस्य** से वैकल्पिक परसवर्ण हो जाता है तो **हरिम्भजति** बनता है। परसवर्ण न होने के पक्ष में **हरिं भजति**।

जब कोई विभक्ति प्राप्त न हो तो प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा विभक्ति हो जायेगी। जैसे हरिः **सेव्यते** इस वाक्य में सेव् धातु से कर्म अर्थ में प्रत्यय हुआ अतः कर्म उक्त हुआ। इसी प्रकार **लक्ष्म्या सेवितो हरिः** में क्त-प्रत्यय **तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः** से कर्म अर्थ में हुआ है। अतः कर्म के उक्त होने के कारण प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा विभक्ति होती है।

अनीप्सित कारक की भी **कर्मसंज्ञा** के लिए एक सूत्र है जो **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में पठित नहीं है। वह है- **तथायुक्तं चानीप्सितम्**। तथायुक्तं प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनीप्सितं प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** यह सम्पूर्ण पूर्वसूत्र अनुवृत्त होता है। इस सूत्र के **तथा** इस पद से पूर्व सूत्र में कथित विषय का ग्रहण है। **उस तरह के ईप्सिततम कर्म से युक्त अनीप्सित कारक की भी कर्मसंज्ञा होती है।**

ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति। देवदत्त गाँव को जाता हुआ तिनके को छूता है। मुख्य क्रिया **जाना** है और अमुख्य क्रिया **छूना** है। अतः ईप्सिततम कर्म **ग्राम** है, अतः उसकी पूर्वसूत्र से ही कर्मसंज्ञा हो जाती है किन्तु गाँव जाते हुए तिनके को **छूना** तो इप्सित नहीं है। अब उसमें कौन सी विभक्ति हो सकती है? इसी समस्या के समाधान के लिए यह सूत्र आकर अनीप्सित कारक **तृण** की भी कर्मसंज्ञा करता है जिससे **कर्मणि द्वितीया** से द्वितीया विभक्ति होकर **तृणम्** बन जाता है। ऐसे बहुत से उदाहरण मिल सकते हैं।

कर्मसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

८९२. अकथितं च १।४।५१॥

अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

दुह्-याच्-पच्-दण्ड्-रुधि-प्रच्छि-चि-ब्रू-शासु-जि-मथ्-मुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नी-हृ-कृष्-वहाम्॥

गां दोग्धि पयः। बलिं याचते वसुधाम्। तण्डुलानोदनं पचति। गर्गान् शतं दण्डयति। व्रजमवरुणद्धि गाम्। माणवकं पन्थानं पृच्छति। वृक्षमवचिनोति फलानि। माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा। शतं जयति देवदत्तम्। सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति। देवदत्तं शतं मुष्णाति। ग्राममजां नयति हरति कर्षति वहति वा।

अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा।

बलिं भिक्षते वसुधाम्। माणवकं धर्मं भाषते अभिधत्ते वक्तीत्यादि।

इति द्वितीया।

८९२- **अकथितं च**। अकथितं प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से **कर्म** की अनुवृत्ति आती है और **कारके** का अधिकार है।

अपादान आदि कारकों के द्वारा अविवक्षित कारक कर्मसंज्ञक होता है।

अकथित का तात्पर्य है **न कहना** अथवा कहने की इच्छा न करना। किसके द्वारा? **अपादान, सम्प्रदान, करण, अधिकरण** के द्वारा। यदि वक्ता की तत्तत् कारक के रूप में कहने की इच्छा न हुई तो उन कारकों को **अकथित** कहा जायेगा। ऐसे अकथित सामान्य कारकों की इस सूत्र से कर्मसंज्ञा हो जायेगी।

इस प्रकार से सभी **अकथित** की कर्मसंज्ञा प्राप्त हो रही थी तो इसके लिए श्लोक के द्वारा नियम बनाया कि- **जिस किसी भी धातु के योग में अकथितों की कर्मसंज्ञा नहीं होती किन्तु दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, रुध्, प्रच्छ्, चि, ब्रू, शास्, जि, मथ्, मुष्, नी, हृ, कृष्, वह् इन धातुओं के योग में ही जो अकथित अर्थात् वक्ता के द्वारा अपादान आदि विभक्ति के रूप में अविवक्षित हों उनकी कर्मसंज्ञा होती है, अन्यों की नहीं।** इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अपादान आदि विभक्तियाँ होंगी ही नहीं। वे विभक्तियाँ तो होती ही हैं किन्तु जब वक्ता के द्वारा अपादान आदि तत्तद् रूप में कहने की इच्छा नहीं की गई, तब इस सूत्र के द्वारा उनकी कर्मसंज्ञा की जायेगी। उदाहरण आगे देखिये-

देवदत्तो गां पयः दोग्धि (देवदत्त गाय से दूध दुहता है) इस वाक्य में **कर्ता** है **देवदत्त**, क्रियापद है **दोग्धि** (दुह् धातु, अदादि, लट्, प्रथमपुरुष एकवचन), दोहनक्रिया द्वारा कर्ता को अत्यन्त अभीष्ट वस्तु है **पयः**=दूध। अतः **पयस्** को इष्टतम कर्म मानकर **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति पहले ही हो चुकी है। यहाँ वक्ता **गो** को अपादान के रूप में कहना नहीं चाहता अपितु **उपयुज्यमान पयः** के प्रति निमित्त

मानता है। इस प्रकार अपादान के रूप में कहने की इच्छा न होने के कारण **गो** यह अविवक्षित हुआ। उसकी **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा हो गई और **कर्मणि द्वितीया** से द्वितीयाविभक्ति भी हो गई- **गां दोग्धि पयः**। यहाँ पर अपादान होने के कारण पञ्चमीविभक्ति होकर **गोः दोग्धि पयः** भी हो सकता है। दो कर्म हो जाने से एक प्रधान कर्म होगा जिसे इष्टतम कर्म कहते हैं और एक अप्रधान कर्म होगा जिसे अकथित कर्म कहते हैं। दो कर्म होने के कारण यह धातु **द्विकर्मक** माना जाता है। जिस वाक्य में **अकथितं च** की प्रवृत्ति होती है, उस वाक्य का धातु द्विकर्मक ही होगा। ऐसे द्विकर्मक धातुओं की संख्या सोलह है। ये हैं- **दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, रुध्, प्रच्छ्, चि, ब्रू, शास्, जि, मथ्, मुष्, नी, हृष्, कृष्** और **वह्**।

इस सूत्र से की जाने वाली संज्ञा **अर्थनिबन्धना** है अर्थात् इन धातुओं से मिलते-जुलते अर्थ वाले अन्य धातुओं के योग में भी अकथित की कर्मसंज्ञा की जायेगी। अब आगे व्याख्या में उक्त सभी धातुओं के क्रमशः उदाहरण दे रहे हैं।

(देवदत्तः) गां दोग्धि पयः। इसका उदाहरण तो आपने ऊपर देख ही लिया है।

(वामनः) बलिं याचते वसुधाम्। वामन भगवान् बलि से पृथ्वी माँगते हैं। कर्ता **वामन**, क्रिया **याचते**, इष्टतम कर्म **वसुधा** और अकथित कर्म **बलि** है। इष्टतम कर्म में कर्मसंज्ञा और द्वितीया विभक्ति तो निर्विवाद है ही। यहाँ पर अपादान होने के कारण पञ्चमीविभक्ति प्राप्त होकर **बलेः वसुधां याचते** ऐसा ही सम्भव हो रहा था किन्तु कर्ता के द्वारा अपादान के रूप में कहने की इच्छा न रखने पर **अकथितं च** से **कर्मसंज्ञा** होकर बलि में द्वितीयाविभक्ति हुई। अतः **बलिं याचते वसुधाम्** भी बन गया।

(पाचकः) तण्डुलानोदनं पचति। रसोइया चावलों से भात पकाता है। कर्ता **पाचक**, क्रिया **पचति**, इष्टतम कर्म **ओदन** और अकथित कर्म **तण्डुल** है। यहाँ पर तण्डुल में करण होने के कारण तृतीया विभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता से अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा होकर तण्डुल में द्वितीयाविभक्ति हुई- **तण्डुलान् ओदनं पचति**।

(प्रधानः) गर्गान् शतं **दण्डयति**। सरपंच गर्गों से सौ रुपये जुर्माना लगाता है। कर्ता प्रधान, क्रिया दण्डयति, इष्टतम कर्म **शत** और अकथित कर्म **गर्ग** है। यहाँ पर गर्ग में अपादान होने के कारण पञ्चमीविभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता से अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर **अकथितं** च से कर्मसंज्ञा होकर गर्ग में द्वितीयाविभक्ति हुई- **गर्गाञ्छतं दण्डयति**।

(कृष्णः) व्रजमवरुणद्धि गाम्। श्रीकृष्ण व्रज में गौ को रोकते हैं। कर्ता कृष्ण, क्रिया अवरुणद्धि, इष्टतम कर्म गौ और अकथित कर्म व्रज है। यहाँ पर व्रज में अधिकरण होने के कारण सप्तमीवभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता से अधिकरण अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा होकर व्रज में द्वितीयाविभक्ति हुई- **व्रजम् अवरुणद्धि गाम्**।

(पथिकः) माणवकं पन्थानं पृच्छति। पथिक बच्चे से मार्ग पूछता है। कर्ता पथिक, क्रिया पृच्छति, इष्टतम कर्म पन्था और अकथित कर्म माणवक है। यहाँ पर माणवक में अपादान की सम्भावना है किन्तु वक्ता से अपादान अविवक्षित होने से अकथित मानकर **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा होकर माणवक में द्वितीयाविभक्ति हुई- **माणवकं पन्थानं पृच्छति**।

(कृषकः) वृक्षमवचिनोति फलानि। कृषक वृक्ष से फल तोड़ता या चुनता है। कर्ता कृषक, क्रिया चिनोति, इष्टतम कर्म फल और अकथित कर्म वृक्ष है। यहाँ पर वृक्ष में अपादान होने के कारण पञ्चमीवभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता द्वारा अपादान अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा होकर वृक्ष में द्वितीयाविभक्ति हुई- **वृक्षम् अवचिनोति फलानि।**

(पिता) माणवकं धर्मं ब्रूते, शास्ति वा। पिता बच्चे को (ब्रह्मचारी के लिए) धर्म बताता है। ब्रू और शास् धातु का योग। कर्ता पिता, क्रिया ब्रूते और शास्ति, इष्टतम कर्म धर्म और अकथित कर्म माणवक है। यहाँ पर माणवक में सम्प्रदान होने के कारण चतुर्थी विभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता से सम्प्रदान अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा होकर माणवक में द्वितीया विभक्ति हुई- **माणवकं धर्मं ब्रूते, शास्ति वा।**

(यज्ञदत्तः) शतं जयति देवदत्तम्। यज्ञदत्त देवदत्त से सौ जीतता है। कर्ता यज्ञदत्त, क्रिया जयति, इष्टतम कर्म शत और अकथित कर्म देवदत्त है। यहाँ पर देवदत्त में अपादान होने के कारण पञ्चमीवभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता से अपादान अविवक्षित करने के कारण अकथित मानकर **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा होकर देवदत्त में द्वितीयाविभक्ति हुई- **शतं जयति देवदत्तम्।**

(देवासुराः) सुधां क्षीरनिधिं मथ्नन्ति। देव और दानव क्षीरसागर से अमृत मथते हैं। कर्ता देवासुर, क्रिया मथ्नन्ति, इष्टतम कर्म सुधा और अकथित कर्म क्षीरनिधि है। यहाँ पर क्षीरनिधि में अपादान या अधिकरण होने के कारण पञ्चमीविभक्ति या सप्तमीविभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता से अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा होकर **क्षीरनिधि** में द्वितीया विभक्ति हुई- **सुधां क्षीरनिधिं मथ्नन्ति।**

(रामदेवः) देवदत्तं शतं मुष्णाति। रामदेव देवदत्त से सौ रुपये चुराता है। कर्ता रामदेव, क्रिया मुष्णाति, इष्टतम कर्म शत और अकथित कर्म देवदत्त है। यहाँ पर देवदत्त में अपादान होने के कारण पञ्चमीवभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता से अपादान अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा होकर देवदत्त में द्वितीया विभक्ति **देवदत्तं शतं मुष्णाति।**

(पशुपालः) ग्राममजां नयति, हरति, कर्षति, वहति। पशुपालक गाँव में बकरी को ले जाता है। यहाँ नी, हृष्, कृष् और वह् चार धातुओं का प्रयोग है। कर्ता पशुपाल, क्रिया नयति, हरति, कर्षति, वहति, इष्टतम कर्म अजा और अकथित कर्म ग्राम है। यहाँ पर ग्राम में अधिकरण होने के कारण सप्तमीवभक्ति की सम्भावना है किन्तु वक्ता से अधिकरण अविवक्षित होने के कारण अकथित मानकर **अकथितं च** से कर्मसंज्ञा होकर ग्राम में द्वितीया विभक्ति हुई- **ग्रामम् अजां नयति, हरति, कर्षति वहति वा।**

अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा। इस **अकथितं च** सूत्र से जिन धातुओं के योग में कर्मसंज्ञा होती है, उन धातुओं का जो अर्थ, यदि वही अर्थ अन्य किसी धातु का भी हो तो उस धातु के योग में **अकथित कर्म** मान लिया जाता है। जैसे- **याच्** धातु का **माँगना** अर्थ है और **भिक्ष्** धातु का अर्थ भी **माँगना** ही है। इसलिए समानार्थक **भिक्ष्** धातु के योग में **कर्मसंज्ञा** होकर **बलिं भिक्षते वसुधाम्** बनता है। जैसे **ब्रू** धातु के योग में अकथित कर्म सम्भव है, उसी प्रकार से समानार्थक **भाष्, वच्, अभि+धा** के योग में भी अकथित

मानकर कर्मसंज्ञा करके **माणवकं धर्मं ब्रूते**, **शास्ति** की तरह **माणवकं धर्मं भाषते**, **वक्ति**, **अभिधत्ते** बना सकते हैं।

लघुसिद्धान्तकौमुदी में अपठित किन्तु अत्यन्त उपयोगी निम्न सूत्र को यहाँ दिया जा रहा है। छात्र इस पर अवश्य ध्यान दें- **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ**। गतिश्च बुद्धिश्च प्रत्यवसानञ्च गतिबुद्धिप्रत्यवसानानि, तानि अर्थः येषां ते गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थाः(धातवः)। शब्दः कर्म येषां ते शब्दकर्माणः। अविद्यमानं कर्म येषां ते अकर्मकाः। गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थाश्च शब्दकर्माणश्च अकर्मकाश्च ते गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ-शब्दकर्माकर्मकास्तेषाम्। न णिः अणिः, अणौ कर्ता अणिकर्ता। गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ-शब्दकर्माकर्मकाणां षष्ठ्यन्तम्, अणिकर्ता प्रथमान्तं, स प्रथमान्तं, णौ सप्तम्यन्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कारके** का अधिकार है और **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से **कर्म** की अनुवृत्ति आती है।

गति अर्थ वाले धातु, ज्ञान अर्थ वाले धातु, भोजन अर्थ वाले धातु, शब्द सम्बन्धी कर्म वाले धातु और अकर्मक धातुओं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्त अवस्था में कर्मसंज्ञा होती है।

इस सूत्र के अर्थ को समझने के पहले **ण्यन्त-कर्ता** और **अण्यन्त कर्ता** को समझना जरूरी है। आपने **ण्यन्तप्रकरण** में देखा कि **पठति** से **पाठयति**, **चलति** से **चालयति**, **भवति** से **भावयति** आदि रूप बने थे। किसी भी धातु से प्रेरणा अर्थ में **णिच्** होकर पुनः उसकी धातुसंज्ञा होकर लट् आदि लकार आते हैं। **णिच्**-प्रत्यय लगने के बाद धातु **ण्यन्त** हो जाता है। **णिच्** नहीं हुआ है तो वह **अण्यन्त** कहलायेगा। सामान्य धातु का कर्ता अन्य कुछ होता है तो णिजन्त धातु का कर्ता अन्य ही होता है। जैसे **देवदत्तः पठति** (देवदत्त पढ़ता है) में पठ् धातु है और अण्यन्त है। अण्यन्त अवस्था का कर्ता **देवदत्तः** है। अब **पठ्** धातु से **णिच्** कर दें, **ण्यन्त** हो जायेगा, **पाठयति** बनेगा। पाठयति का अर्थ हुआ- पढ़ाता है। पढ़ने वाला देवदत्त था तो पढाने वाला अन्य कोई होगा। आचार्य पढ़ाते हैं, अतः पढ़ाने के कर्ता आचार्य हुए। तब वाक्य बना- **आचार्यः देवदत्तं पाठयति**। इस प्रकार से आपने देखा कि अण्यन्त अवस्था में जो **देवदत्त** कर्ता था वह ण्यन्त अवस्था में कर्म हुआ। **देवदत्तः पठति**, **आचार्यः तं देवदत्तं पाठयति**= देवदत्त पढ़ता है और आचार्य उस देवदत्त को पढ़ाते हैं। दो वाक्यों में एक अण्यन्त अवस्था का वाक्य है तो एक ण्यन्त अवस्था का वाक्य है। यह सूत्र अण्यन्त अवस्था के कर्ता की ण्यन्त अवस्था में कर्मसंज्ञा करता है। उक्त वाक्य में अण्यन्त अवस्था का कर्ता देवदत्त था, उसी की इस सूत्र से कर्मसंज्ञा हुई। कर्मसंज्ञा का फल **कर्मणि द्वितीया** से द्वितीया विभक्ति करना है। इस वाक्य में पूर्व कर्ता **देवदत्त** में द्वितीया विभक्ति हुई- **आचार्यः देवदत्तं पाठयति**। अण्यन्त अवस्था में कर्ता के साथ क्रिया तो रहती ही है, इष्टतम कर्म भी रह सकता है और उसकी **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से कर्मसंज्ञा होकर उसमें द्वितीया विभक्ति होती है। वह इस सूत्र का विषय नहीं है।

सारे धातुओं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता को ण्यन्त में कर्मसंज्ञा नहीं करता किन्तु कुछ ही धातुओं में यह कार्य होता है। जैसे **गति अर्थ वाले धातु, ज्ञान अर्थ वाले धातु, भोजन अर्थ वाले धातु, शब्द सम्बन्धी कर्म वाले धातु** और **अकर्मक** धातु हों, उन्हीं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता को ण्यन्त अवस्था में कर्मसंज्ञा होती है। धातुपाठ में जिस धातु का अर्थ **गत्याम्, गतौ** आदि लिखा है ऐसे धातु, ज्ञान अर्थ वाले धातु, भोजन अर्थ वाले धातु,

जिन धातुओं का कर्म शब्द से सम्बन्ध रहता है, जैसे पढ़ाना आदि और जिन धातुओं में कर्म ही नहीं लगते ऐसे अकर्मक धातुओं के अण्यन्त की अवस्था को पहले देखना होगा। उसके बाद उन धातुओं में णिच् प्रत्यय अर्थात् ण्यन्त का रूप बनाना होगा। फिर अण्यन्त अवस्था के कर्ता को वर्तमान ण्यन्त अवस्था में इस सूत्र के द्वारा कर्मसंज्ञा की जायेगी। इनके उदाहरण क्रमशः बताये जा रहे हैं।

रामः कृष्णं गृहं गमयति। राम कृष्ण को घर भेजता है। यह गत्यर्थक **गम्** धातु का उदाहरण है। पहले इसमें अण्यन्त का वाक्य बनाइये- **कृष्णः गृहं गच्छति।** कर्ता **कृष्णः**, इष्टतम कर्म **गृहम्**, क्रिया **गच्छति** है। जाने वाले **कृष्ण** को भेजने वाला राम है। **गच्छति** इस अण्यन्त रूप को **हेतुमति च** से णिच् करके ण्यन्त में बदल दिया। गच्छति से गमयति बना। अण्यन्त अवस्था में **कृष्ण** कर्ता था तो उसको भेजने वाला राम ण्यन्त में कर्ता बना। गत्यर्थक धातु का योग है। अण्यन्त अवस्था के कर्ता **कृष्ण** की गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ-**शब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा हो गई और उसमें द्वितीया विभक्ति हो गई **रामः कृष्णं गृहं गमयति॥**

आचार्यश्छात्रं कौमुदीं बोधयति। आचार्य छात्र को कौमुदी समझाता है। यह बुद्ध्यर्थक **बुध्** धातु का उदाहरण है। पहले इसमें अण्यन्त का वाक्य बनाइये- **छात्रः कौमुदीं बुध्यते।**(बुध अवबोधने, दिवादि, आत्मनेपदी)। कर्ता **छात्रः**, इष्टतम कर्म **कौमुदीम्**, क्रिया **बुध्यते** है। समझने वाले छात्र को समझाने वाला **आचार्य** है। **बुध्यते** इस **अण्यन्त** रूप को **हेतुमति च** से णिच् करके ण्यन्त में बदल दिया। **बुध्यते** से **बोधयति** बना। अण्यन्त अवस्था में छात्र **कर्ता** था तो उसको समझाने वाला आचार्य **ण्यन्त** में **कर्ता** बना। बुद्ध्यर्थक धातु का योग है। अण्यन्त अवस्था के कर्ता **छात्र** की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा हो गई और उसमें द्वितीया विभक्ति हो गई- **आचार्यः छात्रं कौमुदीं बोधयति।**

माता पुत्रं क्षीरान्नं भोजयति। माता पुत्र को खीर खिलाती है। यह भोजनार्थक **भुज्** धातु का उदाहरण है। (**भुज पालनाभ्यवहारयोः**, रुधादि, भोजन अर्थ में आत्मनेपदी।) पहले इसमें अण्यन्त का वाक्य बनाइये- **पुत्रः क्षीरान्नं भुङ्क्ते।** कर्ता **पुत्रः**, इष्टतम कर्म **क्षीरान्नं**, क्रिया **भुङ्क्ते** है। खाने वाले पुत्र को खिलाने वाली माता है। इस अण्यन्तरूप को **हेतुमति च** से णिच् करके ण्यन्त में बदल दिया। भुङ्क्ते से **भोजयति** बना। अण्यन्त अवस्था में पुत्र कर्ता था तो उसको खिलाने वाली माता ण्यन्त में **कर्ता** बनी। भोजनार्थक धातु का योग है। अण्यन्त अवस्था के कर्ता पुत्र की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा हो गई और उसमें द्वितीया विभक्ति हो गई- **माता पुत्रं क्षीरान्नं भोजयति।**

गुरुः शिष्यान् वेदार्थान् पाठयति। गुरु शिष्यों को वेदार्थ (वेदों के अर्थों को) पढ़ाते हैं। यह **शब्दकर्मक पठ्** धातु का उदाहरण है। पहले इसमें अण्यन्त का वाक्य बनाइये- **शिष्यः वेदार्थं पठति।** कर्ता शिष्यः, इष्टतम कर्म वेदार्थम्, क्रिया पठति है। पढ़ने वाले शिष्य को पढ़ाने वाला गुरु है। **पठति** इस अण्यन्त रूप को **हेतुमति च** से णिच् करके ण्यन्त में बदल दिया। पठति से **पाठयति** बना। अण्यन्त अवस्था में शिष्य कर्ता था तो उसको पढ़ाने वाला गुरु ण्यन्त में कर्ता बना। शब्दकर्मक धातु का योग है। अण्यन्त अवस्था के कर्ता शिष्य की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ- शब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा हो गई और उसमें द्वितीया विभक्ति हो गई- **गुरुः शिष्यान् वेदार्थान् पाठयति।**

कर्तृसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

८९३. स्वतन्त्रः कर्ता १।४।५४।।

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्।

करणसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

८९४. साधकतमं करणम् १।४।४२।।

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात्।

....

कौशल्या रामं शाययति। कौशल्या राम को सुलाती है। यह अकर्मक (अदादि, आत्मनेपदी) शी धातु का उदाहरण है। पहले इसमें अण्यन्त का वाक्य बनाइये- **रामः शेते।** कर्ता राम, अकर्मक धातु होने के कारण इष्टतम कर्म नहीं है, क्रिया शेते है। सोने वाले राम को सुलाने वाली कौशल्या है। शेते इस अण्यन्त रूप को ण्यन्त में अर्थात् **हेतुमति च** से णिच् करके ण्यन्त में बदल दिया। शेते से शाययति बना। अण्यन्त अवस्था में राम कर्ता था तो उसको सुलाने वाली कौशल्या ण्यन्त में कर्ता बनी। अकर्मक धातु का योग है। अण्यन्त अवस्था के कर्ता राम की **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ- शब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ** से कर्मसंज्ञा हो गई और उसमें द्वितीया विभक्ति हो गई- **कौशल्या रामं शाययति।**

क्रिया की सिद्धि अर्थात् निष्पत्ति में जो जो साधक अर्थात् निमित्त होते हैं उन्हें कारक कहते हैं। जैसे- **कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण।** इन कारकों में से जो सबसे स्वतन्त्र हो अर्थात् जो क्रिया का निष्पादन करता हो, उसको **कर्ता** कहा गया है। तात्पर्य यह है कि जैसे अन्य कारक कर्ता से प्रेरित होकर क्रिया का निष्पादन करते हैं वैसे कर्ता अन्य कारकों से प्रेरित होकर क्रिया का निष्पादन नहीं करता अपितु स्वतन्त्रतया क्रिया का जनक होता है। कर्तृवाच्य में जिस प्रकार से कर्ता के अनुसार क्रिया में भी पुरुष और वचन की व्यवस्था की जाती है, उस प्रकार कर्म आदि के अनुसार नहीं है। इसलिए क्रिया में कर्ता स्वतन्त्र विवक्षित होता है।

८९३- स्वतन्त्रः कर्ता। स्वतन्त्रः प्रथमान्तं, कर्ता प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

क्रिया में स्वतन्त्र रूप से विवक्षित अर्थ कर्तृसंज्ञक होता है।

वाक्य में कर्ता, कर्म, क्रिया आदि होते हैं। वाक्य में जो प्रधान होता है या क्रिया की सिद्धि जिससे होती है, वह जो वाक्य में प्रधानतया अवस्थित रहता है, जिसके विना क्रिया हो ही नहीं पाती है, ऐसे कारक की **कर्तृसंज्ञा**(कर्ता-संज्ञा) इस सूत्र से की जाती है। कर्ता ही क्रिया का जनक होता है। कर्ता के अनुसार ही क्रिया में लिङ्ग, संख्या आदि का निर्धारण होता है। जैसे **राम पढ़ता है** इस वाक्य में क्रिया है- **पढ़ता है**, इस क्रिया की सिद्धि में राम की अनिवार्य भूमिका है, उसके विना क्रिया की सिद्धि हो ही नहीं सकती। अतः **राम** को कर्ता माना गया।

८९४- **साधकतमं करणम्।** साधकतमं प्रथमान्तं, करणं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में भी **कारके** का अधिकार है।

क्रिया की सिद्धि में अत्यन्त सहायक कारक की करणसंज्ञा होती है।

श्यामः वाहनेन आपणं गच्छति- श्याम गाड़ी से बाजार जाता है। इस वाक्य में

तृतीयाविभक्तिविधायकं विधिसूत्रम्

८९५. कर्तृकरणयोस्तृतीया २।३।१८॥

अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात्।

रामेण बाणेन हतो बाली।

इति तृतीया।

सम्प्रदानसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

८९६. कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् १।४।३२॥

दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः स्यात्।

....

श्याम के बाजार पहुँचने में अत्यन्त सहायक है **वाहन**। अत: **वाहन** की इस सूत्र से करणसंज्ञा हुई। करणसंज्ञा का फल तृतीया-विभक्ति करना है। वाहन में करणसंज्ञा होकर तृतीया विभक्ति हो गई- **वाहनेन**।

८९५- कर्तृकरणयोस्तृतीया। कर्ता च करणं च कर्तृकरणे, तयो:। कर्तृकरणयो: सप्तम्यन्तं, तृतीया प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अनभिहिते** का अधिकार है। अनभिहिते का अर्थ है- **अनुक्ते**।

अनुक्त कर्ता और अनुक्त करण में तृतीया-विभक्ति होती है।

रामेण बाणेन हतो बाली। राम के द्वारा बाण से बाली मारा गया। यहाँ हननक्रिया में स्वतन्त्रतया विवक्षित होने से **स्वतन्त्रः कर्ता** के अनुसार राम **कर्ता** है। इसी प्रकार हननक्रिया में अत्यन्त सहायक होने से **साधकतमं करणम्** से बाण की **करणसंज्ञा** हुई है। यहाँ पर हन् धातु से **तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः** से कर्म अर्थ में क्त प्रत्यय होकर हत: बना है। कर्म अर्थ में प्रत्यय होने के कारण कर्म उक्त हुआ और कर्ता, करण आदि स्वत: अनुक्त हुए। **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से अनुक्त कर्ता राम और अनुक्त करण बाण दोनों में तृतीयाविभक्ति हो गई- **रामेण बाणेन हतो बाली**। इस वाक्य में बाली कर्म है। कर्म के उक्त होने के कारण **कर्मणि द्वितीया** से **द्वितीया-विभक्ति** नहीं हुई, किन्तु **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाण- वचनमात्रे प्रथमा** से प्रातिपदिकार्थमात्र में **प्रथमा** विभक्ति हुई-बाली।

छात्रों को समझाने के लिए करण-तृतीया और दे रहे हैं-

बालकः कन्दुकेन क्रीडति। बालक गेंद से खेलता है। इस वाक्य में खेलन रूप क्रिया में स्वतन्त्र विवक्षित **बालक** है। **क्रीड्** धातु से **कर्ता** अर्थ में लकार हुआ है। अत: इस वाक्य में कर्ता **उक्त** है। **कर्ता** उक्त हुआ तो कर्म, करण आदि स्वत: अनुक्त हुए। बालक के खेलने में अत्यन्त सहायक है **गेंद**। अत: **गेंद** का वाचक **कन्दुक** शब्द **साधकतमं करणम्** से **करणसंज्ञक** है। **करणसंज्ञा** का फल **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से तृतीया विभक्ति करना है। अत: कन्दुक में तृतीया विभक्ति हो गई- **बालकः कन्दुकेन क्रीडति**।

८९६- कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्। कर्मणा तृतीयान्तं, यं द्वितीयान्तम्, अभिप्रैति तिङन्तं क्रियापदं, स प्रथमान्तं, सम्प्रदानं प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **कारके** का अधिकार है।

चतुर्थीविभक्तिविधायकं विधिसूत्रम्

८९७. चतुर्थी सम्प्रदाने २।३।१३।।

विप्राय गां ददाति।

चतुर्थीविभक्तिविधायकं विधिसूत्रम्

८९८. नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च २।३।१६।।

एभिर्योगे चतुर्थी। हरये नमः। प्रजाभ्यः स्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्। तेन दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः समर्थः शक्त इत्यादि।

इति चतुर्थी।

....

कर्ता, दान आदि कर्म के द्वारा जिससे सम्बन्ध करना चाहता है, उसकी सम्प्रदानसंज्ञा होती है।

सम्यक् प्रदानं सम्प्रदानम्, इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिसको वापस न लेने के लिए ही दिया जाता है, उसकी ही **सम्प्रदानसंज्ञा** होती है। जैसे- **विप्राय गां ददाति** में विप्र को गाय हमेशा के लिए दी गई, इसलिए विप्र की सम्प्रदानसंज्ञा होती है किन्तु **रजकस्य वस्त्रं ददाति** में धोबी को कपड़ा वापस लेने के लिए ही दिया जाता है। इसलिए रजक की सम्प्रदानसंज्ञा नहीं होती है। अतः **रजकस्य वस्त्रं ददाति** होता है।

८९७- **चतुर्थी सम्प्रदाने**। चतुर्थी प्रथमान्तं, सम्प्रदाने सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **अनभिहिते** का अधिकार है।

अनुक्त सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति का विधान होती है।

(यजमानः) विप्राय गां ददाति। (यजमान) विप्र को गौ देता है। कर्ता यजमान, क्रिया ददाति, दानक्रिया के द्वारा इष्टतम कारक गो, अतः गो को इष्टतम कारक मानकर उसकी कर्मसंज्ञा, द्वितीयाविभक्ति। यहाँ पर दानकर्म के द्वारा अभिप्रेत है **विप्र**, उसकी **कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्** से सम्प्रदानसंज्ञा और **चतुर्थी सम्प्रदाने** से चतुर्थीविभक्ति हुई, **विप्राय गां ददाति**। ददाति में लट्-लकार कर्ता अर्थ में है, कर्ता अर्थ में प्रत्यय होने के कारण कर्ता उक्त है, अतः कर्म आदि सभी अनुक्त हुए तो सम्प्रदान भी अनुक्त हुआ। **रजकस्य वस्त्रं ददाति** में धोबी को कपड़ा वापस लेने के लिए ही दिया जाता है। इसलिए रजक की सम्प्रदानसंज्ञा न होने से चतुर्थी भी नहीं हुई। अतः सम्बन्ध-सामान्य में षष्ठी हो गई, **रजकस्य वस्त्रं ददाति**।

८९८- **नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च**। नमश्च स्वस्तिश्च स्वाहा च स्वधा च अलं च वषट् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषडः, तेषां योगो नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधा-लंवषड्योगस्तस्मान्नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगात्। **चतुर्थी सम्प्रदाने** से **चतुर्थी** की अनुवृत्ति आती है।

नमस्, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलं, वषट् के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है।

इस सूत्र के द्वारा सम्प्रदानसंज्ञा की अपेक्षा नहीं की जाती और कारक की भी

अपादानसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

८९९. ध्रुवमपायेऽपादानम् १।४।२४।।

अपायो विश्लेषस्तस्मिन् साध्ये यद् ध्रुवमवधिभूतं कारकं तदपादानसंज्ञं स्यात्।

....

अपेक्षा नहीं होती। जैसे कर्मसंज्ञा, करणसंज्ञा कारक की ही होती है, वैसे यहाँ नहीं है। **नमस्** आदि ये शब्द जिस शब्द के साथ सम्बन्ध रखते हैं, उनमें चतुर्थी हो जायेगी। किसी पद-विशेष को देखकर होने वाली विभक्ति को **उपपदविभक्ति** कहते हैं और कारक को मानकर होने वाली विभक्ति को **कारकविभक्ति** कहते हैं। इस सूत्र से विधीयमान विभक्ति **उपपदविभक्ति** है।

हरये नमः। हरि को नमस्कार है। यहाँ पर हरि-शब्द **नमः** से सम्बन्धित अथवा युक्त है क्योंकि हरि को ही नमस्कार किया गया है। अतः **नमस्स्वस्तिस्वाहा-स्वधालंवषड्योगाच्च** से **हरि** में चतुर्थी विभक्ति हो गई- **हरये नमः**।

प्रजाभ्यः स्वस्ति। प्रजाओं का कल्याण हो। यहाँ पर स्वस्ति-शब्द प्रजा-शब्द से सम्बन्धित अथवा युक्त है क्योंकि प्रजाओं का ही कल्याण कहा जा रहा है। अतः **नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च** से **प्रजाभ्यः** में चतुर्थी विभक्ति हो गई- **प्रजाभ्यः स्वस्ति**।

अग्नये स्वाहा। यह अग्नि के लिए हवि(आहुति)। यहाँ पर स्वाहा-शब्द अग्नि-शब्द से सम्बन्धित अथवा युक्त है क्योंकि हवि अग्नि का नामोच्चारण करके ही दी जा रही है। अतः **नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च** से **अग्नये** में चतुर्थी विभक्ति हुई- **अग्नये स्वाहा**।

पितृभ्यः स्वधा। पितरों को यह अन्न और जल। यहाँ पर स्वधा-शब्द पितृ-शब्द से सम्बन्धित अथवा युक्त है क्योंकि तर्पण आदि पितरों के लिए ही दिया जाता है। अतः **नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च** से **पितृभ्यः** में चतुर्थी विभक्ति हो गई- **पितृभ्यः स्वधा**।

अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्। इस सूत्र में **अलम्** से **पर्याप्ति** अर्थात् **समर्थ** अर्थ वाले शब्दों का ग्रहण किया गया है। जैसे **अलम्** का अर्थ **समर्थ** है, उसी प्रकार **प्रभु, समर्थ, शक्त** का अर्थ भी समर्थ=पर्याप्त है, अतः उन सभी के योग में चतुर्थी की जाती है। जैसे- **दैत्येभ्यो हरिरलं, दैत्येभ्यो हरिः प्रभुः, दैत्येभ्यो हरिः समर्थः, दैत्येभ्यो हरिः शक्तः** इत्यादि वाक्यों में **अलम्, प्रभुः, समर्थः, शक्तः** के योग में चतुर्थी हुई। **दैत्यों को जीतने के लिए हरि समर्थ हैं।**

८९९- ध्रुवमपायेऽपादानम्। ध्रुवं प्रथमान्तम्, अपाये सप्तम्यन्तम्, अपादानं प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

अपाय(अलगाव) होने में जो ध्रुव है, उसकी अपादान-संज्ञा होती है।

वियोग, जुदाई, अलग होने को **अपाय** कहते हैं और वह अलगाव जिससे होता है उसे ध्रुव कहा गया है। ध्रुव का अर्थ अटल या अचल नहीं है, उसका अर्थ केवल वियोग जिससे होता है, वह है। इसलिए **धावतोऽश्वात् पतति** में पतन-क्रिया चलते हुए घोड़े से होने पर भी घोड़े की अपादानसंज्ञा होती है। इस अलग होने में जो ध्रुव उसकी अपादानसंज्ञा इस सूत्र से हो जाती है। अपादानसंज्ञा का फल **अपादाने पञ्चमी** से पञ्चमीविभक्ति होना है।

पञ्चमीविभक्तिविधायकं विधिसूत्रम्

९००. अपादाने पञ्चमी २।३।२८॥

ग्रामादायाति। धावतोऽश्वात् पतति।

इति पञ्चमी।

षष्ठीविभक्तिविधायकं विधिसूत्रम्

९०१. षष्ठी शेषे २।३।५०॥

कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिसम्बन्धः शेषस्तत्र षष्ठी। राज्ञः पुरुषः।

कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव।

सतां गतम्। सर्पिषो जानीते। मातुः स्मरति। एधो दकस्योपस्कुरुते। भजे शम्भोश्चरणयोः।

इति षष्ठी।

९००- **अपादाने पञ्चमी।** अपादाने सप्तम्यन्तं, पञ्चमी प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

अपादान में पञ्चमी होती है।

(पथिकः) ग्रामाद् आयाति। पथिक गाँव से आता है। यहाँ कर्ता **पथिक** है, आयाति क्रिया है और **पथिक** का **ग्राम** से अलगाव हो रहा है इसलिए पृथक्करण अथवा वियोग होना हुआ। गाँव से अलगाव हो रहा है, इसलिए गाँव ही ध्रुव है, अतः **ग्राम** की **ध्रुवमपायेऽपादानम्** से **अपादानसंज्ञा** और उससे ही **अपादाने पञ्चमी** से **पञ्चमीविभक्ति** हुई- **ग्रामादायाति।**

(अश्वारोही) धावतोऽश्वात् पतति। घुड़सवार दौड़ते हुए घोड़े से गिरता है। इस वाक्य में **दौड़ता हुआ घोड़ा** ध्रुव है अर्थात् दौड़ते हुए घोड़े से अलगाव हो रहा है, अतः उसकी अपादानसंज्ञा और पञ्चमीविभक्ति होकर **धावतोऽश्वात् पतति** बना। **धावत्** इस शतृ-प्रत्ययान्त शब्द में तो **अश्वात्** के **विशेषण** होने के कारण पञ्चमी है।

९०१- **षष्ठी शेषे।** षष्ठी प्रथमान्तं, शेषे सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

कारक और प्रातिपदिकार्थ से भिन्न स्व-स्वामिभावादि सम्बन्ध को शेष कहते हैं। उस शेष अर्थ में षष्ठी विभक्ति होती है।

शेष अर्थात् बचा हुआ, प्रातिपदिकार्थ, कर्म, करण, अपादान, अधिकरण आदि संज्ञायें जहाँ नहीं हुई हों वह शेष है। शेष कई प्रकार के सम्बन्धों से जुड़ा है। जैसे- **स्वस्वामिभावसम्बन्ध**(एक स्वामी और दूसरी वस्तु), **अवयवावयविभावसम्बन्ध**(एक अङ्ग और दूसरा अङ्गी), **जन्यजनकभावसम्बन्ध**(एक पैदा करने वाला और दूसरा पैदा होने वाला), **प्रकृतिविकृतिभावसम्बन्ध**(एक प्रकृति और दूसरी उससे होने वाली विकृति, विकार) आदि। सम्बन्ध एक होता है किन्तु द्विष्ठ अर्थात् दो में एक साथ रहता है। षष्ठी को कारक नहीं माना जाता है और इसके विधान में किसी संज्ञा की आवश्यकता नहीं होती है।

राज्ञः पुरुषः। राजा का आदमी। यहाँ राजा **स्वामी** है और पुरुष स्व है। **स्वस्वामिभाव सम्बन्ध** मानकर **षष्ठी शेषे** से **राजन्**-शब्द में षष्ठी हुई- **राज्ञः पुरुषः।**

अधिकरणसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

९०२. आधारोऽधिकरणम् १।४।४५।।

कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणं स्यात्।

....

मम गृहम्। मेरा घर। मैं स्वामी हूँ और घर स्व है। स्वस्वामिभावसम्बन्ध मानकर **षष्ठी शेषे** से अस्मत्-शब्द में षष्ठी विभक्ति हुई- **मम गृहम्।**

वृक्षस्य शाखा। वृक्ष की डाल। डाल अङ्ग है और वृक्ष अङ्गी, अवयवावयविभावसम्बन्ध मानकर **षष्ठी शेषे** से षष्ठी विभक्ति हुई- **वृक्षस्य शाखा।**

पितुः पुत्रम्। पिता का पुत्र। पिता जनक है और पुत्र जन्य। जन्यजनकभावसम्बन्ध में **षष्ठी शेषे** से षष्ठी हुई- **पितुः पुत्रम्।**

सुवर्णस्य कङ्कणम्। सोने का कंगन। सोना प्रकृति और उसको विकृत करके निर्मित कंगन विकृति है। प्रकृति-विकृतिभाव सम्बन्ध में **षष्ठी शेषे** से षष्ठी हुई- **सुवर्णस्य कङ्कणम्।**

कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव। कर्म आदि में भी सम्बन्धमात्र की विवक्षा करने पर षष्ठी होती है।

सतां गतम्। सज्जनों का गमन। इस वाक्य में **सत्** शब्द से सम्बन्ध की विवक्षा करने पर षष्ठी हुई। यहाँ गमन-क्रिया करने वाला होने से **सज्जन** कर्ता है और वह अनुक्त भी है। अतः अनुक्त कर्ता में **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से तृतीया होकर **सद्भिः** होना चाहिए, परन्तु जब गमन-क्रिया और सज्जन कर्ता में क्रिया-कर्तृभाव सम्बन्ध की विवक्षा की जाती है तो सम्बन्ध-सामान्य में षष्ठी होकर **सतां गतम्** सिद्ध होता है।

सर्पिषो जानीते। घी के लिए प्रवृत्त होता है। इसमें **सत्** शब्द से सम्बन्ध की विवक्षा करने पर षष्ठी हुई। यहाँ पर **घी** के कारण भोजन में प्रवृत्त होता है, अतः **सर्पिष्**(घी) करण था। इसलिए तृतीया प्राप्त थी किन्तु सम्बन्ध के रूप में विवक्षा करने के कारण षष्ठी हो जाती है।

मातुः स्मरति। माता का स्मरण करता है। यहाँ क्रिया-कर्मभाव सम्बन्ध की विवक्षा की गई अतः **मातृ** से षष्ठी हो गई। इसी तरह **एधो दकस्योपस्कुरुते।** लकड़ी जल का गुण ग्रहण करता है। इस वाक्य में कर्म **दक** की सम्बन्धत्वेन विवक्षा करने से षष्ठी हो गई- **दकस्य।** एवं प्रकारेण **भजे शम्भोश्चरणयोः।** शम्भु के चरणों का भजन करता हूँ। कर्म में सम्बन्ध की विवक्षा करने के कारण **चरणयोः** में षष्ठी हुई है।

मूलकार ने **कर्तृकर्मणोः कृति** यह सूत्र नहीं पढ़ा है। छात्रों के अध्ययन के लिए अति उपयुक्त समझकर हम यहाँ व्याख्या में दे रहे हैं।

कर्तृकर्मणोः कृति। कर्ता च कर्म च कर्तृकर्मणी, तयोः कर्तृकर्मणोः। कर्तृकर्मणोः षष्ठ्यन्तं, कृति सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **षष्ठी** की अनुवृत्ति आती है।

कृत् के योग होने पर कर्ता और कर्म में षष्ठी होती है।

कृष्णस्य कृतिः। कृष्ण की रचना। कृ धातु से क्तिन् प्रत्यय होकर **कृतिः** बना है। इसके योग में **कर्ता कृष्ण** में **कर्तृकर्मणोः कृति** से **षष्ठी** हुई।

जगतः कर्ता कृष्णः। संसार के कर्ता कृष्ण हैं। कृ धातु से तृच् प्रत्यय होकर **कर्ता** बना है। इसके योग में कर्म **जगत्** में **कर्तृकर्मणोः कृति** से षष्ठी हुई।

९०२- आधारोऽधिकरणम्। आधारः प्रथमान्तम्, अधिकरणं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

सप्तमीविभक्तिविधायकं विधिसूत्रम्

९०३. सप्तम्यधिकरणे च २।३।३६॥

अधिकरणे सप्तमी स्यात्, चकाराद् दूरान्तिकार्थेभ्यः।

औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा।

कटे आस्ते। स्थाल्यां पचति। मोक्षे इच्छास्ति। सर्वस्मिन्नात्मास्ति।

वनस्य दूरे अन्तिके वा।

इति सप्तमी।

इति विभक्त्यर्थाः॥३७॥

....

कर्ता कर्म के द्वारा उनमें रहने वाली क्रिया का आधार जो कारक वह अधिकरणसंज्ञक होता है।

क्रिया साक्षात् किसी आधार में नहीं रहती किन्तु कर्ता या कर्म द्वारा रहती है। जैसे **देवदत्तः कटे आस्ते** में **आसन**(रहना) क्रिया देवदत्त कर्ता के द्वारा **कट** में है और **स्थाल्यां तण्डुलं पचति** में पाक क्रिया **तण्डुल** कर्म के द्वारा **स्थाली**(पात्र) में है।

जिस में वस्तु स्थित रहे, वह **आधार** है। आधार में रहने वाली वस्तु **आधेय** होती है। जैसे बरतन में चावल। चावल के लिए बरतन आधार है, बरतन में रहने वाला चावल आधेय हुआ। इस सूत्र से आधार की **अधिकरणसंज्ञा** होती है।

९०३- **सप्तम्यधिकरणे च**। सप्तमी प्रथमान्तम्, अधिकरणे सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है तथा दूर और समीप वाचक शब्दों में सप्तमीविभक्ति होती है।

आधार के तीन भेद हैं- **औपश्लेषिक, वैषयिक** और **अभिव्यापक।**

औपश्लेषिक आधार- कटे आस्ते। स्थाल्यां पचति। यहाँ पर **कट** और **स्थाली** की अधिकरण संज्ञा होकर **सप्तम्यधिकरणे च** से सप्तमी विभक्ति हो जाती है।

उप=समीपे, श्लेषः संयोगादिसम्बन्ध उपश्लेषः। उपश्लेषसम्बन्धी आधार **औपश्लषिक आधार**। जहाँ आधार का आधेय के साथ संयोग आदि सम्बन्ध हो वहाँ **औपश्लेषिक आधार** होता है। जैसे- **कटे आस्ते**। चटाई पर है। यहाँ पर कट का बैठने वाले के साथ **संयोगसम्बन्ध** है, अतः कटे आस्ते में **औपश्लेषिक-आधार** है। इसी प्रकार **स्थाल्यां पचति** में भी समझना चाहिए।

वैषयिक आधार- मोक्षे इच्छास्ति। व्याकरणे रुचिः।

विषय का अर्थात् **विषयता-सम्बन्ध** से **आधार**। यह आधार बुद्धिस्थ होता है। जैसे- **मोक्षे इच्छास्ति**। मोक्ष के विषय में इच्छा है। यहाँ पर मोक्ष इच्छा का विषय है। इसी प्रकार **शास्त्रे रुचिः, नारायणे भक्तिः** आदि में भी समझना चाहिए।

अभिव्यापक आधार- सर्वस्मिन्नात्मास्ति।

जहाँ आधार के प्रत्येक स्थल पर आधेय की स्थिति हो वहाँ **अभिव्यापक आधार** समझना चाहिए। जैसे- **सर्वस्मिन् आत्मा अस्ति**। आत्मा सर्वत्र, सभी में है अर्थात् ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ आत्मा नहीं हो। यहाँ पर व्यापकता अर्थात् अभिव्यापक है।

इसलिए अभिव्यापक सम्बन्ध को लेकर सप्तमीविभक्ति हुई- **सर्वस्मिन्नात्मास्ति।** इसी प्रकार **तिलेषु तैलम्, दुग्धे घृतम्** आदि भी समझना चाहिए।

वनस्य दूरे। ग्रामस्य समीपे। सप्तम्यधिकरणे च इस सूत्र में चकार के पढ़ने से यह अर्थ निकाला गया है कि इस सूत्र के पहले **दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च** से जिन शब्दों से द्वितीया का विधान किया गया, उन्हीं शब्दों से सप्तमी भी हो। ऐसे दूर और अन्तिक वाचक दूर और समीप शब्दों से सप्तमी विभक्ति हुई- **वनस्य दूरे। ग्रामस्य समीपे।**

कारकप्रकरण भाषाविज्ञान की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। पाणिनीय अष्टाध्यायी में अथवा वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में इस प्रकरण को लगभग सवा सौ सूत्रों और वार्तिकों से पूर्ण किया गया है। ऐसे विशाल प्रकरण को यहाँ कुछ ही सूत्रों से ही बताया गया है। अतः यहाँ पर अत्यन्त संक्षिप्त कथन ही हो पाया है। इसलिए यह केवल दिग्दर्शनमात्र है।

अष्टाध्यायी का पारायण आप निरन्तर कर ही रहे होंगे। उसके प्रथम अध्याय में कर्म, करण आदि संज्ञा करने वाले सारे सूत्र आ जाते हैं तथा दूसरे अध्याय में विभक्ति के विधान के लिए सूत्र हैं। अतः इस प्रकरण को समझने के बाद अन्य सूत्र याद हों तो अलग से भी समझा जा सकता है।

अब इस प्रकरण के बाद समास प्रकरण में प्रवेश करना है। हमारी **लघुसिद्धान्तकौमुदी** की यात्रा धीरे-धीरे पूर्णता की ओर है। सबसे पहले **संज्ञाप्रकरण**, उसके बाद **सन्धिप्रकरण**, उसके बाद **षड्लिङ्गप्रकरण**, उसके बाद **धातुप्रकरण**, उसके बाद **कृदन्तप्रकरण** और उसके बाद **कारकप्रकरण** तक के पड़ाव हमने पूरे किये। अब इसके बाद **समासप्रकरण** और **तद्धितप्रकरण** दो पड़ाव बीच में आयेंगे। उसके बाद **स्त्रीप्रत्यय** अन्तिम पड़ाव है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि नवीन पड़ाव में पहुँचने पर पुरानी बातें विस्मृत सी हो जाती हैं। कहीं ऐसा यहाँ पर भी न हुआ हो! एतदर्थ आप प्रतिदिन पुराने प्रकरणों को भी देखते रहें।

परीक्षा

द्रष्टव्यः- प्रत्येक प्रश्न पाँच-पाँच अंक के हैं और अनिवार्य भी हैं।

१- प्रथमाविभक्ति के किन्हीं पाँच शब्दों की सिद्धि दिखाइये ५
२- द्वितीयाविभक्ति के किन्हीं पाँच शब्दों की सिद्धि दिखाइये ५
३- तृतीयाविभक्ति के किन्हीं पाँच शब्दों की सिद्धि दिखाइये ५
४- चतुर्थीविभक्ति के किन्हीं पाँच शब्दों की सिद्धि दिखाइये ५
५- पञ्चमीविभक्ति के किन्हीं पाँच शब्दों की सिद्धि दिखाइये ५
६- षष्ठीविभक्ति के किन्हीं पाँच शब्दों की सिद्धि दिखाइये ५
७- सप्तमीविभक्ति के किन्हीं पाँच शब्दों की सिद्धि दिखाइये ५
८- षष्ठी विभक्ति को कारक क्यों नहीं माना जाता और प्रातिपदिक से आप क्या समझते हैं? ५
९- उपपदविभक्ति क्या है? दो उदाहरण सहित बताइये। ५
१०- कारकप्रकरण पर एक पेज का एक लेख लिखिए। ५

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का विभक्त्यर्थ (कारक) प्रकरण पूर्ण हुआ।३७।।

अथ समासाः

तत्रादौ केवल-समासः

समासः पञ्चधा। तत्र समसनं समासः।
स च विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः प्रथमः॥१॥
प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावो द्वितीयः॥२॥
प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषस्तृतीयः।
तत्पुरुषभेदः कर्मधारयः। कर्मधारयभेदो द्विगुः॥३॥
प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिश्चतुर्थः॥४॥
प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः पञ्चमः॥५॥

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **समासप्रकरण** का आरम्भ होता है। समासज्ञान के विना संस्कृत का ज्ञान हो ही नहीं सकता। इसलिए समास का ज्ञान सन्धिज्ञान के साथ ही आवश्यक है। हिन्दी आदि भाषाओं में भी समास होता ही है। जैसे **रामनाम** इस वाक्य में राम का नाम= रामनाम, गङ्गा का जल=गङ्गाजल, देश का भक्त=देशभक्त, मत का अधिकार=मताधिकार आदि। हम हिन्दी आदि भाषाओं में समास हुए शब्दों का प्रयोग तो करते हैं, किन्तु यह नहीं जानते कि समास क्या होता है। आइये, समास के विषय में थोड़ी चर्चा करते हैं।

समास एक संज्ञा है। **अनेकपदानामेकपदीभवनं समासः**। अनेक पद मिलकर एकपद होना समास है। समास का विग्रह है- **समसनं समासः** अर्थात् संक्षिप्त होने को समास कहते हैं। दो या दो से अधिक शब्द जहाँ एक जगह, एकपद, एक अर्थ वाले बन जाते हैं, उसे समास कहते हैं। जैसे **गङ्गायाः जलम्** में **गङ्गायाः** षष्ठ्यन्त अलग पद है और **जलम्** प्रथमान्त अलग पद है। **गङ्गायाः** का अर्थ है- **गङ्गा का** और **जलम्** का अर्थ है **पानी**। ये पद भी अलग हैं और अर्थ भी अलग हैं। समास करके एक पद हो जायेगा- **गङ्गाजलम्** और अर्थ भी एक ही होगा- **गङ्गाजल**। इसलिए कहा जाता है कि समास में एकार्थीभाव-रूप सामर्थ्य रहता है। जहाँ पदार्थों की एक साथ उपस्थिति होती है, पृथक्-पृथक् नहीं, वहाँ एकार्थीभाव-रूप सामर्थ्य होता है। समास दो या दो से अधिक शब्दों के साथ होता है। समास के पाँच भेद होते हैं- **केवल या सामान्यसमास, अव्ययीभावसमास, तत्पुरुषसमास, बहुव्रीहिसमास** और **द्वन्द्वसमास**।

केवल-समास

इस समास में समास तो होता है किन्तु समासविशेष की संज्ञा नहीं होती है। इसीलिए इसे केवल-समास कहा जाता है। इसका उदाहरण है- **भूतपूर्वः**।

अव्ययीभाव-समास

इस समास में प्रायः **अव्यय** पूर्व में होता है। समास होने के बाद पूरा शब्द **अव्ययीभावश्च** से **अव्यय** बन जाता है। इस समास में पूर्वपद के अर्थ की प्रधानता होती है। इसका उदाहरण है- **उपकृष्णम्**=कृष्ण के समीप।

तत्पुरुष-समास

तत्पुरुषसमास में उत्तरपद अथवा परपद अर्थात् दूसरा या अन्तिम पद का अर्थ प्रधान होता है। इसका विग्रह करना भी सरल ही है। जैसे-

सः	पुरुषः	तत्पुरुषः	तं	पुरुषः	तत्पुरुषः
तेन	पुरुषः	तत्पुरुषः	तस्मै	पुरुषः	तत्पुरुषः
तस्मात्	पुरुषः	तत्पुरुषः	तस्य	पुरुषः	तत्पुरुषः
		तस्मिन् पुरुषः तत्पुरुषः आदि।			

बहुव्रीहि-समास-

इस समास में पूर्वपद का अर्थ भी प्रधान नहीं होता और उत्तरपद का अर्थ भी प्रधान नहीं होता किन्तु किसी अन्य ही पद का अर्थ प्रधान होता है। जैसे **पीतानि अम्बराणि यस्य सः पीताम्बरः**, पीले कपड़े हैं जिसके वह **कृष्ण**। समास होने के बाद यहाँ पर पीत का अर्थ भी प्रधान नहीं है और अम्बर का अर्थ भी प्रधान नहीं है किन्तु अन्य पदार्थ **कृष्ण** का अर्थ प्रधान हो गया। इसलिए बहुव्रीहिसमास अन्यपदार्थप्रधान माना जाता है।

द्वन्द्व-समास-

समास के लिए जितने शब्द लिये गये हैं, उन सभी शब्दों का अर्थ प्रधान होता है, अर्थात् उभयपदार्थप्रधान **द्वन्द्वसमास** होता है। इसके उदाहरण हैं- **रामश्च कृष्णश्च रामकृष्णौ**।

इसके अतिरिक्त भी **नञ्, कर्मधारय, द्विगु, उपपदसमास** आदि अनेक समास माने गये हैं किन्तु इन्हीं पाँचों के अन्तर्गत आने के कारण पृथक् नहीं बताया गया है। इस प्रकार से यहाँ दिग्दर्शन मात्र कराया गया है, विशेष रूप से तो उन्हीं प्रकरणों में देखेंगे।

विग्रहः-

समास में विग्रह बनाया जाता है। आपने विग्रह कृदन्त में भी बनाया है और आगे तद्धित में भी बनायेंगे। **कृत्, तद्धित, समास आदि की वृत्तियों के अर्थबोध कराने के लिए जो वाक्य या पदावली होती है, उसे विग्रह कहते हैं।** जैसे- **राज्ञः पुरुषः** यह राजपुरुष का विग्रह है। इसी प्रकार **पीतानि अम्बराणि यस्य** यह पीताम्बर का विग्रह है। विग्रह भी दो प्रकार के होते हैं- **लौकिक विग्रह** और **अलौकिक विग्रह**। लोक में प्रयुक्त होने वाला विग्रह **लौकिक विग्रह** है। जैसे- **राज्ञः पुरुषः** कहने से राजा का आदमी यह अर्थ लोक का सामान्य आदमी कर लेता है। **अलौकिक विग्रह** केवल व्याकरण की प्रक्रिया के लिए होता है। जैसे- **राजन् ङस् पुरुष सु**। राज्ञः में जो विभक्ति है, वह ङस् है और पुरुषः में जो विभक्ति है वह सु है। हम लोक में **राजन् ङस् पुरुष सु** का प्रयोग नहीं कर सकते। सबके समझने के लिए **राज्ञः पुरुषः** ही बोलना पड़ेगा। इसी प्रकार **देवदत्तः गृहं**

परिभाषासूत्रम्

९०४. समर्थः पदविधिः २।१।१॥

पदसम्बन्धी यो विधिः स समर्थाश्रितो बोध्यः।

समाससंज्ञाधिकारविधायकमधिकारसूत्रम्

९०५. प्राक्कडारात्समासः २।१।३॥

'कडारा कर्मधारये' इत्यतः प्राक् **समास** इत्यधिक्रियते।

....

गच्छति के लिए **देवदत्त+सु, गृह+अम्, गच्छ्+लट्** ऐसा नहीं बोल सकते। इससे यह ज्ञात हुआ कि लोक में प्रयोग करने योग्य विग्रह को **लौकिक विग्रह** और केवल व्याकरणशास्त्र की प्रक्रिया को सिद्ध करने के लिए बनाये गये विग्रह को **अलौकिक विग्रह** कहते हैं। समास के सूत्र अलौकिक विग्रह में ही लगते हैं।

९०४- समर्थः पदविधिः। पदस्य विधिः पदविधिः(षष्ठीतत्पुरुषः)। समर्थः प्रथमान्तं, पदविधिः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। नियम करने के कारण यह परिभाषा सूत्र है। इसको परिभाषा मानकर के ही यह नियम बनता है कि- **सम्पूर्ण पाणिनीय-अष्टाध्यायी में जहाँ कहीं भी पदों से सम्बन्धी कार्य कहा जायेगा, वह कार्य समर्थ पदों के आश्रय पर ही होगा, असमर्थ पदों के नहीं।**

आकांक्षा आदि के द्वारा पदार्थों में परस्पर सम्बन्ध होने की योग्यता होना ही सामर्थ्य है। जैसे **सुवर्णस्य** कहने के बाद यह आकांक्षा होती है कि **सुवर्ण का क्या?** उत्तर में कहा जाता है- **कङ्कणम्।** सोने का क्या? कंगना। **सोने का क्या?** की आकांक्षा कंगना से पूर्ण हो जाती है। इस तरह सुवर्णस्य और कङ्कणम् ये दोनों पद परस्पद आकांक्षायुक्त हैं। इन दोनों पद में **सामर्थ्य** है, इसलिए इनमें पदसम्बन्धी कार्य समास आदि हो जायेंगे। **भार्या सुवर्णस्य कङ्कणं राज्ञः** में **भार्या** का **सुवर्ण** के साथ और **कङ्कण** का राज्ञः के साथ परस्पर **आकांक्षा** न होने से **सामर्थ्य** नहीं है। अतः इन दो पदों का समास नहीं होता। सामर्थ्य दो प्रकार का होता है- **व्यपेक्षा** और **एकार्थीभाव।** १. वाक्य में परस्पर अन्वय होने की योग्यता रूप जो सामर्थ्य होता है, उसे **व्यपेक्षा** रूप सामर्थ्य कहा जाता है और २. समास हो जाने के बाद समस्त पदों के द्वारा जो विशिष्ट अर्थ की उपस्थिति होती है, उसे **एकार्थीभाव** रूप सामर्थ्य कहा जाता है। इसी प्रकार **कृत्, तद्धित** आदि प्रत्यय सम्बन्धी कार्य भी पदकार्य हैं। अतः वे भी समर्थ पदों में ही होते हैं।

९०५- प्राक्कडारात्समासः। प्राक् अव्ययपदं, कडारात् पञ्चम्यन्तं, समासः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। यह अधिकारसूत्र है।

कडाराः कर्मधारये इस सूत्र से पूर्व तक इस सूत्र का अर्थात् समासः इस पद का अधिकार चलता है।

यथा- **''सह सुपा''** यह सूत्र **प्राक्कडारात्समासः** सूत्र से लेकर **कडाराः कर्मधारये** इन दोनों सूत्रों के **मध्य** में आता है, अतः इस सूत्र में भी **समासः** का अधिकार होने से इस सूत्र में **समास** पद आता है। जहाँ-जहाँ भी **समासः** का अधिकार जाता है और उन सूत्रों से जो कार्य होता है, उसे समास कहते हैं।

समासविधायकं विधिसूत्रम्

९०६. सह सुपा २।१।४।।

सुप् सुपा सह सह वा समस्यते। समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुक्। परार्थाभिधानं वृत्तिः। कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः। वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः। स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा। तत्र पूर्वं भूत इति लौकिकः। पूर्व अम् भूत सु इत्यलौकिकः। भूतपूर्वः। **भूतपूर्वे चरडिति** निर्देशात् पूर्वनिपातः।

वार्तिकम्- **इवेन सह समासो विभक्त्यलोपश्च।** वागर्थौ इव वागर्थाविव।

इति केवलसमासः।।३८।।

....

९०६- सह सुपा। सह अव्ययपदं, सुपा तृतीयान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे** से **सुप्** और **प्राक्कडारात्समासः** से **समासः** की अनुवृत्ति आती है। **समर्थः पदविधिः** इस परिभाषासूत्र से समास के सभी सूत्रों में **समास समर्थाश्रित होना चाहिए,** यह नियम आता ही है।

सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है।

समास होने के बाद **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा होती है और प्रातिपदिक के अवयव सुप् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् होता है।

परार्थाभिधानं वृत्तिः। समास आदि में जब पद अपने स्वार्थ को पूर्णतया या अंशतः छोड़कर एक विशिष्ट अर्थ को कहने लग जाते हैं तो उसे आचार्यों ने वृत्ति कहा है। वृत्ति में शब्दों का अर्थ मिश्रित होकर एकाकार अर्थ का रूप धारण कर लेता है। यह **वृत्ति** पाँच प्रकार की है- **कृदन्तवृत्ति, तद्धितवृत्ति, समासवृत्ति, एकशेषवृत्ति** और **सनाद्यन्तधातुवृत्ति।**

वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः। स च लौकिकोऽलौकिकश्च। वृत्ति के अर्थ का बोध कराने के लिए जो वाक्य होता है उसे विग्रह कहते हैं, वह लौकिक और अलौकिक दो प्रकार का होता है। जो लोक के लिए समझने लायक विग्रह होता है, उसे **लौकिक विग्रह** और जो केवल व्याकरण में सूत्रादि के प्रवृत्ति के लिए अर्थात् शास्त्रीयनिर्वाह के लिए विग्रह होता है, उसे **अलौकिक विग्रह** कहते हैं।

भूतपूर्वः। (जो पहले हुआ हो।) **पूर्वं भूतः** यह लौकिक विग्रह और **पूर्व अम् भूत सु** यह अलौकिक विग्रह है। अलौकिक विग्रह में **पूर्व** के बाद **अम्** विभक्ति है और **भूत** के बाद **सु** विभक्ति है। लौकिक विग्रह में विभक्ति को जोड़कर प्रयोग किया गया है और अलौकिक विग्रह में विभक्ति को अलग ही रखा गया है। **पूर्व अम् भूत सु** इस अलौकिक विग्रह में समास करने के लिए सूत्र लगा- **सह सुपा।** सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है। **सुबन्त है- पूर्व अम्,** इसके साथ एकार्थीभाव सामर्थ्य रखने वाला समर्थ सुबन्त है- **भूत सु।** इस सूत्र से **'पूर्व अम् भूत सु'** का समास हो गया अर्थात् यह **पूरा समुदाय** समाससंज्ञा को प्राप्त हो गया। **समास** करने के बाद **'पूर्व अम् भूत सु'** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से **प्रातिपदिकसंज्ञा** हो गई, **'पूर्व अम् भूत**

सु' यह पूरा समुदाय **प्रातिपदिक** कहलाया। इसलिए इसमें लगे हुए प्रत्यय प्रातिपदिक के अवयव बन गये। **अम्** और सु इन दो प्रत्ययों का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **पूर्व भूत** बना। **भूतपूर्वे चरट्**। इस सूत्र में **भूत** का पहले प्रयोग और पूर्व का बाद में प्रयोग किया है। पाणिनि जी के इस निर्देश को मानकर हम भी **भूत** शब्द का पहले प्रयोग करते हैं। **भूतपूर्व** बना। पहले **'पूर्व अम् भूत सु'** की **प्रातिपदिकसंज्ञा** की गई थी किन्तु वह सब बदल गया, **भूतपूर्व** बना, फिर भी वह प्रातिपदिक बना हुआ है, क्योंकि एक परिभाषा है- **एकदेशविकृतमनन्यवत्**। एक भाग में कोई विकार आ जाय तो वह कोई दूसरा नहीं बन जाता, वह ही रहता है अथात् किसी कुत्ते की पूँछ कट जाय तो वह कुत्ता ही रहता है, अन्य प्राणी नहीं कहलाता। इस परिभाषा के बल पर पहले के प्रातिपदिक में विकृति आने पर भी **प्रातिपदिकत्व** बना रहता है। अतः **भूतपूर्व** को प्रातिपदिक मानकर **सु** विभक्ति आई, उसको रुत्व और विसर्ग हुआ- **भूतपूर्वः**।

इवेन सह समासो विभक्त्यलोपश्च। यह वार्तिक है। **इव शब्द के साथ सुबन्त का समास होता है और विभक्ति का लोप नहीं होता।**

यह सूत्र समास करने के साथ-साथ **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से प्राप्त विभक्ति के लुक् का निषेध भी करता है।

वागर्थाविव। (वाणी और अर्थ की तरह।) **वागर्थौ इव** यह लौकिक विग्रह और **वागर्थ औ इव** यह अलौकिक विग्रह है। अलौकिक विग्रह में समास करने के लिए वार्तिक लगा- **इवेन सह समासो विभक्त्यलोपश्च**। इसके द्वारा समास होने के बाद **वागर्थ औ इव** की प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई और बीच में विद्यमान **औ विभक्ति** का सुपो धातुप्रातिपदिकयोः से लुक् प्राप्त हुआ तो इसी वार्तिक के द्वारा उसके अलुक् का विधान हुआ। **वागर्थौ इव** बना। औकार के स्थान पर **एचोऽयवायावः** से आव् आदेश होकर **वागर्थाविव** बन गया।

समास की प्रक्रिया में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें-

१- समास हमेशा समर्थ अर्थात् परस्पर आकांक्षा वाले पदों में ही होता है।

२- समास में लौकिक और अलौकिक दो प्रकार के विग्रह होते हैं और अलौकिक विग्रह में ही समास करने वाला सूत्र लगता है।

३- समास करने के लिए किसी सूत्र या वार्तिक की प्रवृत्ति होती है।

४- समास करने के बाद सम्पूर्ण समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा होती है।

५- समास के बाद दो शब्दों में किस का पूर्वनिपात अर्थात् पूर्व में प्रयोग हो, यह निर्णय किया जाता है जो आगे के प्रकरणों में बताया जा रहा है जिसमें उपसर्जनसंज्ञा और उपसर्जनसंज्ञक का पूर्वनिपात आदि का समावेश है।

६- अन्त में समास के प्रातिपदिकसंज्ञक होने के कारण पुनः **सु** आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है किन्तु अब किये जाने वाले सु आदि प्रत्ययों का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् नहीं होगा क्योंकि ये अब प्रातिपदिक के अवयव नहीं हैं। समास के लिए बनाये गये विग्रह में समास होने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा होने से वे प्रातिपदिक के अवयव होते हैं।

परीक्षा

द्रष्टव्यः- प्रत्येक प्रश्न दस-दस अंक के हैं।

१- समास कितने होते हैं? उसका वर्णन कीजिए।

२- वृत्ति का क्या अर्थ है और कितने प्रकार की होती है? समझाइये।

३- **विग्रह** के सम्बन्ध में स्पष्टतया समझाइये।

४- **समर्थः पदविधिः** की व्याख्या कीजिए।

५- **भूतपूर्वः** इस समस्त शब्द की शुरु से सिद्धि दिखाइये।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का केवल-समास पूर्ण हुआ।

अथ-अव्ययीभावः

अधिकारसूत्रम्

९०७. अव्ययीभावः २।१।५।।

अधिकारोऽयं प्राक्तत्पुरुषात्।

समासविधायकं विधिसूत्रम्

९०८. अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु २।१।६।।

विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते सोऽव्ययीभावः। प्रायेणाविग्रहो नित्यसमासः, प्रायेणास्वपदविग्रहो वा।

विभक्तौ- **'हरि ङि अधि'** इति स्थिते-

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **अव्ययीभाव-समास** का आरम्भ होता है। प्रायः करके इस समास में एक पद **अव्ययसंज्ञक** होता है और एक पद अनव्यय। उस अव्यय के साथ समास होने पर पुनः उस समस्त शब्द की भी **अव्ययीभावश्च** से **अव्ययसंज्ञा** होती है अर्थात् **अव्ययीभाव** समास होने के बाद शब्द **अव्यय** बन जाता है। **इस समास में पूर्वपद के अर्थ की प्रधानता होती है।**

९०७- **अव्ययीभावः**। अव्ययीभावः प्रथममान्तम्, एकपदमिदं सूत्रम्। यह अधिकार सूत्र है।

तत्पुरुषः इस सूत्र से पहले तक अव्ययीभावः का अधिकार है।

यह सूत्र तत्पुरुषः से पहले तक के सभी सूत्रों में जा कर कहता है कि तुमने जो समास किया है- उसे **अव्ययीभाव-समास** कहते हैं।

९०८- **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु**। विभक्तिश्च, समीपं च समृद्धिश्च, व्यृद्धिश्च अर्थाभावश्च, अत्ययश्च, असम्प्रतिश्च, शब्दप्रादुर्भावश्च, पश्चाच्च, यथा च, आनुपूर्व्यञ्च, यौगपद्यञ्च, सादृश्यञ्च, सम्पत्तिश्च, साकल्यञ्च, अन्तवचनञ्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनानि, तेषु। अव्ययं प्रथमान्तं, विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-

उपसर्जनसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

९०९. प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् १।२।४३॥

समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञं स्यात्।

पूर्वप्रयोगविधायकं विधिसूत्रम्

९१०. उपसर्जनं पूर्वम् २।२।३०॥

समासे उपसर्जनं प्राक्प्रयोज्यम्। इत्यधेः प्राक्प्रयोगः।

सुपो लुक्, एकदेशविकृतन्यायस्यानन्यत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां स्वाद्युत्पत्तिः।

अव्ययीभावश्चेत्यव्ययत्वात् सुपो लुक्। अधिहरि।

....

सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे** से **सुप्** तथा **सह सुपा** से सह की अनुवृत्ति आती है। **समर्थः पदविधिः** परिभाषा सूत्र का अर्थ भी उपस्थित रहता है।

विभक्ति, समीप, समृद्धि(ऋद्धि का आधिक्य), व्यृद्धि(वृद्धि का अभाव), अर्थाभाव, अत्यय(नष्ट होना), असम्प्रति(अब युक्त न होना), शब्दप्रादुर्भाव(शब्द का प्रकाश या प्रसिद्धि), पश्चात्(पीछे), यथा(योग्यता, वीप्सा, पदार्थानतिवृत्ति और सादृश्य), आनुपूर्व्य(क्रमशः), यौगपद्य(एकसाथ होना), सादृश्य(सदृश), सम्पत्ति, साकल्य(सम्पूर्णता) और अन्त(समाप्ति) अर्थों में विद्यमान अव्यय का समर्थ सुबन्त के साथ नित्य से समास होता है।

९०९- प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्। प्रथमया निर्दिष्टं प्रथमानिर्दिष्टम्। प्रथमानिर्दिष्टं प्रथमान्तं, समासे सप्तम्यन्तम्, उपसर्जनं प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

समासविधायक सूत्र में प्रथमान्त जो पद, उसके द्वारा निर्दिष्ट शब्द उपसर्जनसंज्ञक होता है।

समास करने वाले सूत्रों में अथवा अनुवृत्ति लाकर बनाई गई वृत्ति में जो शब्द प्रथमाविभक्ति वाला है, उसके द्वारा निर्दिष्ट जो पद उसकी यह सूत्र **उपसर्जनसंज्ञा** करता है। जैसे **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तेवचनेषु** यह सूत्र समासविधायक है। इस सूत्र में प्रथमान्तपद है- **अव्ययम्।** इस पद से जिस का ग्रहण किया जाता है उसकी उपसर्जनसंज्ञा की जाती है तो आगे के प्रयोगों में अधि आदि पद अव्ययम् से गृह्यमाण हैं, अतः उनकी उपसर्जनसंज्ञा हो जायेगी।

९१०- उपसर्जनं पूर्वम्। उपसर्जनं प्रथमान्तं, पूर्वं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

उपसर्जनसंज्ञक का पूर्व में प्रयोग होता है।

यह सूत्र जिसकी **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हुई उसे पूर्व में प्रयोग करने का निर्देश देता है।

अधिहरि (हरि में) यह विभक्ति अर्थ में समास का उदाहरण है। इस प्रयोग में अधि शब्द सप्तमीविभक्ति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। **हरौ इति** यह लौकिक विग्रह और **हरि ङि अधि** यह अलौकिक विग्रह है। सूत्र अलौकिक विग्रह में ही लगते हैं। **हरि ङि**

नपुंसकलिङ्गविधायकं संज्ञासूत्रम्

९११. अव्ययीभावश्च २।४।१८॥

अयं नपुंसकं स्यात्।

सुपो लुङ्निषेधविधायकम् अमादेशविधायकं च विधिसूत्रम्

९१२. नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः २।४।८३॥

अदन्तादव्ययीभावात्सुपो न लुक्, तस्य पञ्चमीं विना अमादेशश्च स्यात्। गाः पातीति गोपास्तस्मिन्नित्यधिगोपम्।

....

अधि इस अलौकिक विग्रह में समास करने के लिए सूत्र लगा- **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य- यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु।** अव्यय का विभक्ति आदि अर्थों में समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है। यह अव्यय है- **अधि,** इसके साथ सामर्थ्य रखने वाला समर्थ सुबन्त है- **हरि ङि।** इस सूत्र से **हरि ङि अधि** का समास हो गया अर्थात् यह पूरा समुदाय **समाससंज्ञा** को प्राप्त हो गया। समास करने के बाद **हरि ङि अधि** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई, **हरि ङि अधि** यह पूरा समुदाय प्रातिपदिक कहलाया। इसलिए इसमें लगा ङि-प्रत्यय प्रातिपदिक का अवयव बन गया। **ङि** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **लुक्** हुआ। **हरि अधि** बना। **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** इस समासविधायक सूत्र में प्रथमान्तपद है- **अव्ययम्,** इस पद से निर्दिष्ट है- **अधि,** अतः **अधि** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **अधि** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **अधिहरि** बना। पहले **हरि ङि अधि** की प्रातिपदिकसंज्ञा की गई थी किन्तु वह सब बदल गया, **अधिहरि** बना, फिर भी वह प्रातिपदिक बना हुआ है। **एकदेशविकृतमनन्यवत्** के बल से विकृति होने पर भी वह प्रातिपदिक बना रहता है। अतः **अधिहरि** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और अव्ययप्रकरण के **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञक होने के कारण **अधिहरि** इस प्रातिपदिक से आई विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हुआ- **अधिहरि।**

९११- **अव्ययीभावश्च।** अव्ययीभावः प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **स नपुंसकम्** से **नपुंसकम्** की अनुवृत्ति आती है।

अव्ययीभाव-समास होने के बाद सिद्ध शब्द नपुंसकलिङ्ग वाला हो जाता है।

एक जैसे आनुपूर्वी वाले दो सूत्र दो स्थान पर भिन्न-भिन्न कार्य के लिए पढ़े गये हैं। एक तो अव्ययप्रकरण में है जो अव्ययसंज्ञा करता है और दूसरा इस प्रकरण में है जो नपुंसकलिङ्ग का विधान करता है।

९१२- **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः।** न अव्ययपदम्, अव्ययीभावात् पञ्चम्यन्तम्, अतः पञ्चम्यन्तम्, अम् प्रथमान्तं, तु अव्ययपदम्, अपञ्चम्याः षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

इस सूत्र में **अव्ययादाप्सुपः** से **सुपः** और **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** से **लुक्** की अनुवृत्ति आती है।

अदन्त अव्ययीभाव से परे सुप् का लुक् नहीं होता साथ ही पञ्चमी विभक्ति को छोड़कर के अन्य विभक्तियों के स्थान पर अम् आदेश होता है।

यह सूत्र **अव्ययादाप्सुपः** से प्राप्त सुप् के लुक् का निषेध करता है और साथ-साथ **सुप् विभक्ति** के स्थान पर **अम्** आदेश भी करता है किन्तु **पञ्चमी विभक्ति** के स्थान पर नहीं करता अर्थात् पञ्चमी विभक्ति को छोड़कर शेष विभक्तियों के स्थान पर **अम्** आदेश करता है, फिर भी इस सूत्र से **सुप्** के लुक् का निषेध तो पञ्चमी में भी होता ही है। **अम्** यह सु आदि प्रत्यय के स्थान में होने वाला आदेश है, अतः स्थानिवद्भावेन **अम्** में प्रत्ययत्व आ जायेगा जिससे **हलन्त्यम्** से प्राप्त मकार की इत्संज्ञा का **न विभक्तौ तुस्माः** से निषेध हो जायेगा। इसलिए पूरा **अम्** ही आदेश के रूप में रहेगा।

अधिगोपम्। गाः पातीति गोपाः, तस्मिन् गोपि इति, अधिगोपम्। **गोपि इति** लौकिकविग्रहः, **गोपा ङि अधि** इति अलौकिकविग्रहः। **गोपा ङि अधि** यह विभक्ति अर्थ में समास का उदाहरण है। इस प्रयोग में अधि शब्द सप्तमीविभक्ति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। **गोपा ङि अधि** इस अलौकिक विग्रह में समास करने के लिए सूत्र लगा- **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि- व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव- पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति- साकल्यान्तवचनेषु।** अव्यय का विभक्ति आदि अर्थों में समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है। अव्यय है- **अधि**, इसके साथ सामर्थ्य रखने वाला समर्थ सुबन्त है- **गोपा ङि**। इस सूत्र से **गोपा ङि अधि** का समास हो गया अर्थात् यह पूरा समुदाय समाससंज्ञा को प्राप्त हो गया। समास करने के बाद **गोपा ङि अधि** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई, **गोपा ङि अधि** यह पूरा समुदाय प्रातिपदिक कहलाया। इसलिए इसमें लगा ङि-प्रत्यय प्रातिपदिक का अवयव बन गया। **ङि** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **गोपा अधि** बना। **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावा-त्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्त-वचनेषु** इस समासविधायक सूत्र में प्रथमान्त पद है- **अव्ययम्**, इस पद से निर्दिष्ट है- **अधि**, अतः **अधि** की **उपसर्जनसंज्ञा** हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **अधि** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् **पर** में था **पूर्व** में आ गया- **अधिगोपा** बना। **अव्ययीभावश्च** से नपुंसक हुआ और **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** से **अधिगोपा** में पा के आकार को ह्रस्व होकर **अधिगोप** बना। इसकी **अव्ययीभावश्च**(द्वितीय सूत्र) से अव्ययसंज्ञा हुई। पहले **गोपा ङि अधि** की प्रातिपदिकसंज्ञा की गई थी किन्तु वह सव बदल गया और **अधिगोप** बना है, फिर भी वह प्रातिपदिक बना हुआ है क्योंकि- **एकदेशविकृतमनन्यवत्** के बल से विकृति होने पर भी वह प्रातिपदिक बना रहता है। अतः **अधिगोप** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और अव्ययसंज्ञक होने के कारण **अधिगोप** इस प्रातिपदिक से आई सु आदि विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो उसे निषेध करने के लिए सूत्र लगा- **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः**। इस सूत्र से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर **अम्** आदेश भी हुआ- **अधिगोप+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **अधिगोपम्**। इस सूत्र से पञ्चमी को छोड़कर सर्वत्र अम् आदेश होता है किन्तु सुप् लुक् का निषेध पञ्चमी में भी होता है।

बहुलेनाम्भावविधायकं विधिसूत्रम्

९१३. तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् २।४।८४॥

अदन्तादव्ययीभावात्तृतीयासप्तम्योर्बहुलमम्भावः स्यात्। अधिगोपम्, अधिगोपेन, अधिगोपे वा। कृष्णस्य समीपम् उपकृष्णम्। मद्राणां समृद्धिः- सुमद्रम्। यवनानां व्यृद्धिः- दुर्यवनम्। मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम्। हिमस्यात्ययोऽतिहिमम्। निद्रा सम्प्रति न युज्यत इत्यतिनिद्रम्। हरिशब्दस्य प्रकाश इतिहरि। विष्णोः पश्चाद्- अनुविष्णु। योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः। रूपस्य योग्यमनुरूपम्। अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम्। शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति।

....

इसलिए पञ्चमी को छोड़कर शेष विभक्तियों में समान रूप अर्थात् **अधिगोपम्** ही बनेंगे किन्तु पञ्चमी में **अधिगोपात्, अधिगोपाभ्याम्, अभिगोपेभ्यः** बनेंगे। तृतीया और सप्तमी विभक्ति में **तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्** से विकल्प से अम् आदेश होने के कारण **अधिगोपेन, अधिगोपाभ्याम्, अधिगोपैः** तथा **अधिगोपे, अधिगोपयोः, अधिगोपेषु** ये रूप भी अधिक बनते हैं। वैकल्पिक विधान करने वाले सूत्र को भी देखिये-

९१३- **तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्।** तृतीया च सप्तमी च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्तृतीयासप्तम्यौ, तयोः। तृतीयासप्तम्योः षष्ठ्यन्तं, वहुलं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से **अव्ययीभावात्, अतः** और **अम्** की अनुवृत्ति आती है।

अदन्त अव्ययीभाव से परे तृतीया और सप्तमी के स्थान पर बहुल से अम् आदेश होता है।

नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः से नित्य से प्राप्त **अम्** आदेश को **तृतीया** और **सप्तमी** विभक्ति के स्थान पर विकल्प से करता है। इस कार्य के उदाहरण ऊपर बताये जा चुके हैं। अब एक बार **अधिगोप** के सारे रूपों को तालिका में देखते हैं-

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अधिगोपम्	अधिगोपम्	अधिगोपम्
द्वितीया	अधिगोपम्	अधिगोपम्	अधिगोपम्
तृतीया	अधिगोपम्, अधिगोपेन	अधिगोपम्, अधिगोपाभ्याम्	अधिगोपम्, अधिगोपैः
चतुर्थी	अधिगोपम्	अधिगोपम्	अधिगोपम्
पञ्चमी	अधिगोपात्	अधिगोपाभ्याम्	अधिगोपेभ्यः
षष्ठी	अधिगोपम्	अधिगोपम्	अधिगोपम्
सप्तमी	अधिगोपम्, अधिगोपे	अधिगोपम्, अधिगोपयोः	अधिगोपम्, अधिगोपेषु
सम्बोधन	हे अधिगोपम्	हे अधिगोपम्	हे अधिगोपम्

इसी तरह मालायाम् इति- **अतिमालम्,** खट्वायाम् इति- **अतिखट्वम्** आदि बनाइये।

उपकृष्णम्। कृष्ण के समीप। **कृष्णस्य समीपम्** यह लौकिक विग्रह और **कृष्ण**

ङस् उप अलौकिक विग्रह है। समीप अर्थ में विद्यमान उप के साथ **कृष्ण ङस् उप** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **कृष्ण ङस् उप** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **ङस्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **कृष्ण उप** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **उप** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **उप** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **उपकृष्ण** बना। **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर उपकृष्ण को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और अव्ययप्रकरण के **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञक होने के कारण सु विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही **सु** के स्थान पर **अम्** आदेश भी हुआ- **उपकृष्ण+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **उपकृष्णम्**। पञ्चमी को छोड़कर सर्वत्र अम् आदेश और तृतीया और सप्तमी विभक्ति में **तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्** से विकल्प से अम् आदेश होने के कारण अम् के अभाव में **उपकृष्णम्, उपकृष्णेन, उपकृष्णाभ्याम्, उपकृष्णैः। उपकृष्णे, उपकृष्णयोः, उपकृष्णेषु** और अम् होने के पक्ष में सर्वत्र **उपकृष्णम्** ही बनता है।

उपकृष्ण की ही तरह कूपस्य समीपम्- **उपकूपम्**, वृक्षस्य समीपम् **उपवृक्षम्** आदि भी बनाइये।

सुमद्रम्। मद्रदेशवासियों की समृद्धि। **मद्राणां समृद्धिः** यह लौकिक विग्रह और **मद्र आम् सु** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर **सु** विभक्ति नहीं है अपितु **प्रादि** वाला **सु** है। समृद्धि के अर्थ में सु के साथ **मद्र+आम्+सु** में **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्था-भावा-त्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **मद्र+आम्+सु** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **आम्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **मद्र+सु** बना। प्रथमानिर्दिष्ट सु की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक सु का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- सु+मद्र बना। **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **सुमद्र** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और **अव्ययप्रकरण** के **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञक होने के कारण सु विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर **अम्** आदेश भी हुआ- **सुमद्र+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **सुमद्रम्**। शेष रूप **अधिगोप** की तरह बनते हैं।

सुमद्रम् की तरह **भिक्षाणां समृद्धिः- सुभिक्षम्** आदि भी बनाइये।

दुर्यवनम्। यवनों की समृद्धि का अभाव। **यवनानां व्यृद्धिः** यह लौकिक विग्रह और **यवन आम् दुर्** यह अलौकिक विग्रह है। वृद्धि का अभाव अर्थ में **यवन+आम्+दुर्** में **अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **यवन+आम्+दुर्** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो

गई। **आम्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **यवन+दुर्** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **दुर्** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **दुर्** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **दुर्+यवन** बना। रेफ का ऊर्ध्वगमन हुआ- **दुर्यवन** बना। **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **दुर्यवन** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और अव्ययप्रकरण के **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञक होने के कारण **सु** विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर **अम्** आदेश भी हुआ- **दुर्यवन+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **दुर्यवनम्।** शेष रूप **अधिगोप** की तरह बनते हैं।

दुर्यवनम् की तरह **शकानां व्यृद्धिः- दुःशकम्** आदि भी बनाइये।

निर्मक्षिकम्। मक्खियों का अभाव। **मक्षिकाणाम् अभावः** यह लौकिक विग्रह और **मक्षिका+आम्+निर्** अलौकिक विग्रह है। **वस्तु के अभाव** अर्थ में **निर्** के साथ **मक्षिका+आम्** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **मक्षिका+आम्+निर्** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। आम् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **मक्षिका+निर्** बना। प्रथमानिर्दिष्ट निर् की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **निर्** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **निर्+मक्षिका** बना। रेफ का ऊर्ध्वगमन हुआ- **निर्मक्षिका** बना। **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **निर्मक्षिका** को प्रातिपदिक मान कर सु विभक्ति आई और **अव्ययीभावश्च** से नपुंसकलिङ्ग हुआ और **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** से का में आकार को ह्रस्व होकर **निर्मक्षिक** बना। अव्ययसंज्ञक होने के कारण सु विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर अम् आदेश भी हुआ- **निर्मक्षिक+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **निर्मक्षिकम्।** शेष रूप अधिगोप की तरह बनते हैं।

इसी तरह **मशकानाम् अभावः- निर्मशकम्, विघ्नानाम् अभावः- निर्विघ्नम्** आदि भी बनाने की चेष्टा करें।

अतिहिमम्। हिम का अत्यय अर्थात् ध्वंस, नाश। **हिमस्यात्ययः** यह लौकिक विग्रह और **हिम+ङस्+अति** यह अलौकिक विग्रह है। अत्यय अर्थ में अति के साथ **हिम+ङस्** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **हिम+ङस्+अति** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **ङस्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **हिम+अति** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **अति** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **अति** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **अतिहिम** बना। **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **अतिहिम** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, सु विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो

....

ही गया साथ ही सु के स्थान पर **अम्** आदेश भी हुआ- **अतिहिम+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **अतिहिमम्**। शेष रूप **अधिगोप** की तरह बनते हैं।

अतिहिमम् की तरह **शीतस्य अत्ययः- अतिशीतम्** आदि भी बना सकते हैं।

अतिनिद्रम्। निद्रा इस समय उचित नहीं है। **निद्रा सम्प्रति न युज्यते** यह लौकिक विग्रह और **निद्रा+ङस्+अति** यह अलौकिक विग्रह है। असम्प्रति अर्थात् **इस समय उचित नहीं** इस अर्थ में **अति** के साथ **निद्रा+ङस्** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **निद्रा+ङस्+अति** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **निद्रा+अति** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **अति** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से **उपसर्जनसंज्ञा** हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक अति का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **अतिनिद्रा** बना एवं **अव्ययीभावश्च** से नपुंसकलिङ्ग, **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** से द्रा के आकार को ह्रस्व होकर **अतिनिद्र** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञक होकर **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई, उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर **अम्** आदेश भी हुआ- **अतिनिद्र+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **अतिनिद्रम्**। शेष रूप **अधिगोप** की तरह बनते हैं।

अतिनिद्रम् की तरह **कम्बलं सम्प्रति न युज्यते- अतिकम्बलम्** आदि भी जानिये।

इतिहरि। हरिनाम की प्रसिद्धि। **हरिशब्दस्य प्रकाशः** यह लौकिक विग्रह और **हरि+ङस्+इति** यह अलौकिक विग्रह है। **शब्दप्रादुर्भाव** अर्थात् **नाम की प्रसिद्धि** इस अर्थ में **इति** के साथ **हरि+ङस्** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य- यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **हरि+ङस्+इति** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **हरि+इति** बना। प्रथमानिर्दिष्ट इति की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **इति** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **इतिहरि** बना। **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **इतिहरि** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हुआ **इतिहरि**।

इतिहरि की तरह **पाणिनिशब्दस्य प्रकाशः- इतिपाणिनि, ज्ञानशब्दस्य प्रकाशः- इतिज्ञानम्** आदि भी आप बना सकेंगे।

अनुविष्णु। विष्णु के पीछे। **विष्णोः पश्चात्** यह लौकिक विग्रह और **विष्णु+ङस्+अनु** यह अलौकिक विग्रह है। **पश्चात्** अर्थात् **पीछे** इस अर्थ में **अनु** के साथ **विष्णु+ङस्** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **विष्णु+ङस्+अनु** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो

गई। ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **विष्णु+अनु** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **अनु** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **अनु** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **अनुविष्णु** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **अनुविष्णु** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हुआ **अनुविष्णु**।

इसी तरह **अनुरथम्, अनुशिष्यम्, अनुगोपालम्** आदि अनेकों प्रयोगों को भी आप बनाने का प्रयत्न करें तो कठिन नहीं लगेंगे।

योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः। **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** इस सूत्र में यथा के अर्थ में विद्यमान अव्यय के साथ समास का विधान हुआ है। यथा के चार अर्थ माने गये हैं- **योग्यता, वीप्सा, पदार्थानतिवृत्ति** और **सादृश्य**। **योग्यता** अर्थात् योग्य, उचित होना, **वीप्सा**- बारम्बार होना, **पदार्थानतिवृत्ति**- पद के अर्थ का उल्लंघन न करना और **सादृश्य** का अर्थ एक जैसा होना। यहाँ पर चारों अर्थों में समास का उदाहरण दिखाया जा रहा है।

अनुरूपम्। रूप के योग्य। **रूपस्य योग्यम्** यह लौकिक विग्रह और **रूप+ङस्+अनु** यह अलौकिक विग्रह में यथा के योग्यता अर्थ में विद्यमान अनु के साथ **रूप+ङस्** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य- यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **रूप+ङस्+अनु** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **रूप+अनु** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **अनु** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **अनु** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **अनुरूप** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **अनुरूप** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर अम् आदेश भी हुआ- **अनुरूप+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **अनुरूपम्**। शेष **अधिगोपम्** की तरह बनते हैं।

इसी तरह **गुणानां योग्यम्- अनुगुणम्, लेखस्य योग्यम्- अनुलेखम्, विद्यालयस्य योग्यम्- अनुविद्यालयम्** आदि में भी समास करने का प्रयत्न करें।

प्रत्यर्थम्। प्रत्येक अर्थ के प्रति। **अर्थमर्थं प्रति** लौकिक विग्रह और **अर्थ+अम्+प्रति** इस अलौकिक विग्रह में **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से यथा के वीप्सा अर्थ में विद्यमान **प्रति** के साथ **रूप+ङस्** का समास हो गया। समास करने के बाद **अर्थ+अम्+प्रति** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। अम् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **अर्थ+प्रति** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **प्रति** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **प्रति** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **प्रति+अर्थ** बना। **इको यणचि** से यण्

सादेशविधायकं विधिसूत्रम्

९१४. अव्ययीभावे चाकाले ६।३।८१।।

सहस्य सः स्यादव्ययीभावे न तु काले।

हरेः सादृश्यं सहरि। जेष्ठस्यानुपूर्व्येणेति अनुजेष्ठम्।

चक्रेण युगपत् सचक्रम्। सदृशः सख्या ससखि। क्षत्राणां सम्पत्तिः सक्षत्रम्। तृणमप्यपरित्यज्य सतृणमत्ति। अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते साग्नि।

....

होकर **प्रत्यर्थ** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **प्रत्यर्थ** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर अम् आदेश भी हुआ- **प्रत्यर्थ+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **प्रत्यर्थम्**। शेष रूप अधिगोपम् की तरह बनते हैं।

इसी तरह **छात्रं छात्रं प्रति- प्रतिछात्रम्, जनं जनं प्रति- प्रतिजनम्, गृहं गृहं प्रति- प्रतिगृहम्** आदि बनाने में आप सक्षम हो सकते हैं।

यथाशक्ति। शक्ति के अनुसार अर्थात् शक्ति के उल्लंघन के विना। **शक्तिम् अनतिक्रम्य** लौकिक विग्रह और **शक्ति अम् यथा** अलौकिक विग्रह में यथा के **पदार्थानतिवृत्ति** अर्थात् **पद के अर्थ का उल्लंघन न करना** इस अर्थ में विद्यमान **यथा** के साथ **शक्ति+अम्** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **शक्ति+अम्+यथा** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। अम् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **शक्ति+यथा** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **यथा** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **यथा** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **यथाशक्ति** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **यथाशक्ति** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हुआ- **यथाशक्ति**।

एवं प्रकारेण **बुद्धिम् अनतिक्रम्य- यथाबुद्धि, ज्ञानम् अनतिक्रम्य- यथाज्ञानम्** आदि जगहों पर समास करना चाहिए।

९१४- अव्ययीभावे चाकाले। अव्ययीभावे सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदम्, अकाले सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सहस्य सः संज्ञायाम्** से **सहस्य सः** की अनुवृत्ति आती है।

यदि काल का वाचक शब्द उत्तरपद में न हो तो अव्ययीभावसमास में सह के स्थान पर स आदेश होता है।

सहरि। हरि के सदृश। **हरेः सादृश्यम्** यह लौकिक विग्रह और **हरि+ङस्+सह** यह अलौकिक विग्रह है। **यथा** के सदृश अर्थ में विद्यमान सह के साथ **हरि+ङस्** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **हरि+ङस्+सह** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो

गई। ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **हरि+सह** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **सह** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **सह** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **सह+हरि** बना। **अव्ययीभावे चाकाले** से सह के स्थान पर स आदेश हुआ- **सहरि** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **सहरि** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हुआ- **सहरि।**

अनुज्येष्ठम्। ज्येष्ठ के क्रम से। **ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्येण** लौकिक विग्रह और **ज्येष्ठ+ङस्+अनु** अलौकिक विग्रह में **आनूपूर्व्य** अर्थ में विद्यमान **अनु** के साथ **ज्येष्ठ+ङस्** का **अव्ययं विभक्तिसमीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **ज्येष्ठ+ङस्+अनु** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **ज्येष्ठ+अनु** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **अनु** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **अनु** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **अनुज्येष्ठ** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **अनुज्येष्ठ** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर **अम्** आदेश भी हुआ- **अनु+ज्येष्ठ बना। अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **अनुज्येष्ठम्।** शेष **अधिगोप** की तरह बनते हैं।

इसी तरह **वृद्धस्य आनुपूर्व्येण- अनुवृद्धम्** आदि भी बनते हैं।

सचक्रम्। चक्र के साथ एक ही काल में। **चक्रेण युगपत्** लौकिक विग्रह और **चक्र+टा+सह** अलौकिक विग्रह में **यौगपद्य** अर्थात् **एक साथ एक ही काल में** इस अर्थ को लेकर **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से **चक्र+टा+सह** में समास हो गया। समास करने के बाद **चक्र+टा+सह** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **टा** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **चक्र+सह** बना। प्रथमानिर्दिष्ट सह की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक सह का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **सह+चक्र** बना। **अव्ययीभावे चाकाले** से सह के स्थान पर **स** आदेश हुआ- **सचक्र** बना। एकदेशविकृतमनन्यवत् से प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, अव्ययसंज्ञक होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से सु का लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर **अम्** आदेश भी हुआ- **सचक्र+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **सचक्रम्।** शेष रूप **अधिगोप** की तरह बनते हैं।

ससखि। सखा के समान। **सदृशः सख्या** लौकिक विग्रह और **सखि+टा+सह** अलौकिक विग्रह में सूत्र के द्वारा निर्दिष्ट सादृश्य अर्थात् समान अर्थ में **सखि+टा+सह** का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास

करन के बाद **सखि+टा+सह** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **टा** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **सखि+सह** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **सह** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **सह** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **सह+सखि** बना। **अव्ययीभावे चाकाले** से **सह** के स्थान पर **स** आदेश हुआ- **ससखि** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **ससखि** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हुआ- **ससखि**।

विशेषः- पहले **यथा** के चार अर्थों में से एक **सादृश्य** अर्थ समास बताया जा चुका है। पुनः यहाँ सादृश्य अर्थ में ही समास क्यों किया जा रहा है? अर्थात् **यथार्थ सादृश्य** और **सूत्रस्थ सादृश्य** में क्या अन्तर है? इसका उत्तर यह है कि जहाँ सादृश्य अर्थ गौण=अप्रधान हो, वहाँ पर भी समास हो जाय। इस लिए दुबारा सादृश्य का ग्रहण किया गया। जब हम कहते हैं कि **वह अपने मित्र के सदृश है** तो यहाँ पर सादृश्य गौण होता है और सादृश्य वाला व्यक्ति प्रधान होता है। जब हम कहते हैं कि **उसमें अपने मित्र की समानता है** तो यहाँ सादृश्य प्रधान होता है और सादृश्य वाला व्यक्ति गौण। इस तरह सादृश गौण हो अथवा प्रधान, दोनों अवस्थाओं में समास के लिए दो बार सादृश्य अर्थ में समास का विधान किया गया।

सक्षत्रम्। क्षत्रियों के अनुरूप आत्मभाव की वृद्धि। **क्षत्राणां सम्पत्तिः** लौकिक विग्रह और **क्षत्र+भिस्+सह** अलौकिक विग्रह में अनुरूप आत्मभाव की वृद्धि रूप सम्पत्ति अर्थ में विद्यमान **सह** का **क्षत्र भिस्** के साथ **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति- शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **क्षत्र+भिस्+सह** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। आम् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **क्षत्र+सह** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **सह** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **सह** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **सह+क्षत्र** बना। **अव्ययीभावे चाकाले** से सह के स्थान पर स आदेश हुआ- **स+क्षत्र** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर **अम्** आदेश भी हुआ- **सक्षत्र+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **सक्षत्रम्**। शेष रूप **अधिगोप** की तरह बनते हैं।

सतृणम्(अत्ति) तिनके को भी छोड़े बिना सम्पूर्ण खाता है। **तृणम् अपि अपरित्यज्य** लौकिक विग्रह और **तृण+टा+सह** अलौकिक विग्रह में **साकल्य** अर्थात् **सम्पूर्ण** अर्थ में विद्यमान **सह** का **तृण टा** के साथ **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावा-त्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **तृण+टा+सह** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **टा** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **तृण+सह** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **सह** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **सह** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात्

समासविधायकं विधिसूत्रम्

९१५. नदीभिश्च २।१।२०॥

नदीभिः सह संख्या समस्यते।

वार्तिकम्- **समाहारे चायमिष्यते।**

पञ्चगङ्गम्। द्वियमुनम्।

....

पर में था पूर्व में आ गया- **सह+तृण** बना। **अव्ययीभावे चाकाले** से सह के स्थान पर **स** आदेश हुआ- **सतृण** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ तो **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति के लुक् का निषेध तो हो ही गया साथ ही सु के स्थान पर **अम्** आदेश भी हुआ- **सतृण+अम्** बना। **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप हुआ- **सतृणम्**। शेष रूप अधिगोप की तरह बनते हैं।

साग्नि (अधीते) अग्निग्रन्थ की समाप्ति तक पढ़ता है। **अग्निग्रन्थपर्यन्तम्** लौकिक विग्रह और **अग्नि+टा+सह** अलौकिक विग्रह में **अन्त** अर्थात् **यहाँ तक** इस अर्थ में विद्यमान **सह** का **अग्नि टा** के साथ **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **अग्नि+टा+सह** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **टा** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **अग्नि+सह** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **सह** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **सह** का पूर्वप्रयोग हुआ अर्थात् पर में था पूर्व में आ गया- **सह+अग्नि** बना। **अव्ययीभावे चाकाले** से सह के स्थान पर स आदेश हुआ- **स+अग्नि** बना। सवर्णदीर्घ हुआ- **साग्नि** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर साग्नि को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हुआ **साग्नि**।

९१५- नदीभिश्च। नदीभिस्तृतीयान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **सङ्ख्या वंश्येन** से **सङ्ख्या** की अनुवृत्ति आती है और **सुप्, सह सुपा, प्राक्कडारात् समासः, अव्ययीभावः** इन पदों का अधिकार आ ही रहा है।

सङ्ख्यावाचक सुबन्त शब्द का नदीवाचक सुबन्त शब्दों के साथ समास होता है, और वह अव्ययीभाव समास कहलाता है।

समाहारे चायमिष्यते। यह वार्तिक है। **यह समास समाहार अर्थ में ही इष्ट है।**

पञ्चगङ्गम्। पाँच गङ्गाओं का समूह। **पञ्चानां गङ्गानां समाहारः** यह लौकिक विग्रह है और **पञ्चन् आम् गङ्गा आम्** यह अलौकिक विग्रह है। ऐसी अवस्था में **नदीभिश्च** से समास हो जाता है। समासविधायक सूत्र **नदीभिश्च** में अनुवृत्त पद **सङ्ख्या** यह प्रथमान्त है और इसके द्वारा निर्दिष्ट शब्द **पञ्चन् आम्** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से **उपसर्जनसंज्ञा** हो जाती है और उसी का पूर्वनिपात भी होता है। **पञ्चन्+आम्+गङ्गा+आम्** की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से **प्रातिपदिकसंज्ञा** करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से विभक्तियों का लुक् होकर **पञ्चन्+गङ्गा** बना। विभक्ति के लुक्

तद्धितसंज्ञासूत्रम् अधिकारसूत्रञ्च

९१६. तद्धिताः ४।१।७६॥

आपञ्चमसमाप्तेरधिकारोऽयम्।

समासान्तटज्विधायकं विधिसूत्रम्

९१७. अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः ५।४।१०७॥

शरदादिभ्यष्टच् स्यात् समासान्तोऽव्ययीभावे।

शरदः समीपमुपशरदम्। प्रतिविपाशम्।

गणसूत्रम्- **जराया जरश्च।** उपजरसमित्यादि।

....

हो जाने पर भी प्रत्ययलक्षण द्वारा **पञ्चन्** में पदत्व मानकर के नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होकर **पञ्चगङ्गा** बना। **अव्ययीभावश्च** से नपुंसक मानकर के **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** से **गङ्गा** के आकार को ह्रस्व करके **पञ्चगङ्ग** बना। सु उसका लुक् प्राप्त, उसे बाधकर के **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से **अम्** आदेश, पूर्वरूप होकर **पञ्चगङ्गम्** सिद्ध हुआ।

द्वियमुनम्। दो यमुना नदियों का समूह। **द्वयोर्यमुनयोः समाहारः** यह लौकिक विग्रह है और **द्वि ओस् यमुना ओस्** यह अलौकिक विग्रह है। ऐसी अवस्था में **नदीभिश्च** से समास हो जाता है। समासविधायक सूत्र **नदीभिश्च** में अनुवृत्त पद **सङ्ख्या** यह प्रथमान्त है और इसके द्वारा निर्दिष्ट शब्द **द्वि ओस्** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से **उपसर्जनसंज्ञा** हो जाती है और उसी का पूर्वनिपात भी होता है। **द्वि+ओस्+यमुना+ओस्** की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से **प्रातिपदिकसंज्ञा** करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से विभक्तियों का लुक् होकर **द्वि+यमुना** बना। **अव्ययीभावश्च** से नपुंसक मानकर के **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** से **यमुना** के आकार को ह्रस्व करके **द्वियमुन** बना। सु उसका लुक् प्राप्त, उसे बाधकर के **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से **अम्** आदेश, पूर्वरूप होकर **द्वियमुनम्** सिद्ध हुआ।

९१६- तद्धिताः। तद्धिताः प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्।

यह सूत्र ४.१.७६ से लेकर पाँचवें अध्याय की समाप्ति तक तद्धितसंज्ञा का अधिकार करता है।

इसको **अधिकारसूत्र** और **संज्ञासूत्र** भी माना गया है। पञ्चम अध्याय की समाप्ति पर्यन्त जो-जो प्रत्यय बतायेंगे, उन सबकी यह **तद्धितसंज्ञा** करता यद्यपि यह सूत्र तद्धितप्रकरण का है, अतः वहीं पर इसको देना चाहिए, तथापि समास करने के बाद कुछ सूत्र कुछ विशेष प्रत्ययों का विधान करते हैं, जिनको **समासान्त प्रत्यय** कहा जाता है। पाणिनि जी ने समासान्त प्रत्ययों को भी **तद्धिताः** इस सूत्र के अधिकार में पढ़ा है। अतः समासान्त प्रत्ययों की भी **तद्धितसंज्ञा** होती है, यह दिखाने के लिए **तद्धिताः** यह सूत्र यहाँ पर पढ़ा गया है।

९१७- अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः। शरत् प्रभृतिर्येषां ते शरत्प्रभृतयः। अव्ययीभावे सप्तम्यन्तं, शरत्प्रभृतिभ्यः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से **टच्** की अनुवृत्ति आती है

और **तद्धिताः, समासान्ताः, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्** का अधिकार आ रहा है।

शरत् आदि शब्दों से समासान्त तद्धितसंज्ञक टच् प्रत्यय होता है अव्ययीभाव में।

टच् में **टकार** और **चकार** इत्संज्ञक हैं, **अकार** शेष रहता है। इससे हलन्त शब्द भी अजन्त बन जाता है। **शरदादिगण** है। इसके अन्तर्गत शरद्, विपाश्, अनस्, मनस्, उपानह्, दिव्, हिमवत्, अनडुह्, दिश्, दृश्, विश्, चेतस्, चतुर्, त्यद्, तद्, यद्, कियत् ये शब्द आते हैं।

उपशरदम्। शरद् (ऋतु) के समीप वाली ऋतु। **शरदः समीपम्** लौकिक विग्रह और **शरद्+ङस्+उप** अलौकिक विग्रह में **समीप** इस अर्थ में विद्यमान उप का **शरद् ङस्** के साथ **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **शरद्+ङस्+उप** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **शरद्+उप** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **सह** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **उप** का पूर्वप्रयोग हुआ **उप+शरद्** बना। **अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः** से समासान्त **टच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **उपशरद्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **उपशरद** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **उपशरद** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ, किन्तु **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति अलुक् हुआ और सु के स्थान पर नपुंसकत्वात् **अम्** आदेश होकर पूर्वरूप करने पर **उपशरदम्** बना।

प्रतिविपाशम्। विपाश(नदी) के सम्मुख। **विपाशं विपाशं (विपाशाया अभिमुखम्) प्रति** लौकिक विग्रह और **विपाश्+अम्+प्रति** अलौकिक विग्रह में **सम्मुख** इस अर्थ में विद्यमान प्रति का **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **विपाश्+अम्+प्रति** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। अम् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **विपाश्+प्रति** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **प्रति** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **प्रति** का पूर्वप्रयोग हुआ **प्रति+विपाश्** बना। **अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः** से समासान्त **टच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **प्रतिविपाश्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **प्रतिविपाश** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **प्रतिविपाश** को **प्रातिपदिक** मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ, किन्तु **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति अलुक् हुआ और **सु** से स्थान पर नपुंसकत्वात् **अम्** आदेश होकर पूर्वरूप करने पर **प्रतिविपाशम्** बना।

जराया जरश्च। यह गणसूत्र शरत्प्रभृति में पठित है। **अव्ययीभाव समास में जराशब्द से समासान्त टच् के साथ ही जरस् आदेश भी होता है।**

समासान्तटज्विधायकं विधिसूत्रम्

९१८. अनश्च ५।४।१०८।।

अन्नन्तादव्ययीभावाट्टच् स्यात्।

भस्य टेर्लोपविधायकं विधिसूत्रम्

९१९. नस्तद्धिते ६।४।१४४।।

नान्तस्य भस्य टेर्लोपस्तद्धिते। उपराजम्। अध्यात्मम्।।

....

उपजरसम्। बुढ़ापे के निकट। **जरायाः समीपम्** लौकिक विग्रह और **जरा ङस् उप** अलौकिक विग्रह है। समीप अर्थ में **उप** का **जरा ङस्** के साथ **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **जरा+ङस्+उप** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **ङस्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **जरा+उप** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **उप** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **उप** का पूर्वप्रयोग हुआ **उप+जरा** बना। **अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः** से समासान्त **टच्** प्रत्यय और **जराया जरश्च** इस गणसूत्र से **जरा** के स्थान पर **जरस्** आदेश होकर **उपजरस्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **उपजरस** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **उपजरस** को **प्रातिपदिक** मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ, किन्तु **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति का अलुक् हुआ और **सु** के स्थान पर **अम्** आदेश होकर पूर्वरूप करने पर **उपजरसम्** बना।

९१८- अनश्च। अनः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से **टच्** तथा **अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः** से विभक्तिविपरिणाम करके **अव्ययीभावात्** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, समासान्ताः, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्** का अधिकार चल रहा है। अनः यह **अव्ययीभावात्** का विशेषण है।

अन् अन्त वाले अव्ययीभाव से समास के अन्त में तद्धितसंज्ञक टच् प्रत्यय होता है।

९१९- नस्तद्धिते। नः षष्ठ्यन्तं, तद्धिते सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **टेः** इस सूत्र की और **अल्लोपोऽनः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है। **भस्य** का अधिकार है।

तद्धित परे होने पर नकारान्त शब्द के भसंज्ञक टि का लोप होता है।

उपराजम्। राजा के समीप। **राज्ञः समीपम्** लौकिक विग्रह और **राजन्+ङस्+उप** अलौकिक विग्रह में **समीप** इस अर्थ में विद्यमान **उप** का **राजन् ङस्** के साथ **अव्ययं विभक्ति-समीप- समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **राजन्+ङस्+उप** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **ङस्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **राजन्+उप** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **उप** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **उप** का

विकल्पेन टज्विधायकं विधिसूत्रम्

९२०. नपुंसकादन्यतरस्याम् ५।४।१०९॥

अन्नन्तं यत् क्लीबं तदन्तादव्ययीभावाट्टच् वा स्यात्। उपचर्मम्। उपचर्म।

....

पूर्वप्रयोग हुआ **उप+राजन्** बना। **अनश्च** से समासान्त टच् प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **उपराजन्+अ** बना। **अ** के परे होने पर **उपराजन्** की **यचि भम्** से भसंज्ञा हुई और **उपराजन्** में विद्यमान टि **अन्** का **नस्तद्धिते** से लोप हो गया- **उपराज्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **उपराज** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **उपराज** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ, किन्तु **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति का अलुक् हुआ और सु के स्थान पर **अम्** आदेश होकर पूर्वरूप करने पर **उपराजम्** बना।

अध्यात्मम्। आत्मा में, आत्मा के विषय में। **आत्मनि** लौकिक विग्रह और **आत्मन्+ङि+अधि** अलौकिक विग्रह में **विभक्ति** इस अर्थ में विद्यमान **उप** का **आत्मन् ङि** के साथ **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **आत्मन्+ङि+अधि** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। **ङि** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **आत्मन्+अधि** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **अधि** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **अधि** का पूर्वप्रयोग हुआ **अधि+आत्मन्** बना। **अधि+आत्मन्** में **इको यणचि** से यण् होकर **अध्यात्मन्** बना। **अनश्च** से समासान्त टच् प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **अध्यात्मन्+अ** बना। **अ** के परे होने पर **अध्यात्मन्** की **यचि भम्** से भसंज्ञा हुई और **अध्यात्मन्** में विद्यमान टि **अन्** का **नस्तद्धिते** से लोप हो गया- **अध्यात्म्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अध्यात्म** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **अध्यात्म** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ, किन्तु **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति का अलुक् हुआ और सु के स्थान पर **अम्** आदेश होकर पूर्वरूप करने पर **अध्यात्मम्** बना।

९२०- **नपुंसकादन्यतरस्याम्**। नपुंसकात् पञ्चम्यन्तम्, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अनश्च** से **अनः** की **अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः** से विभक्तिविपरिणाम करके **अव्ययीभावात्**, की तथा **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से **टच्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः**, **परश्च**, **तद्धिताः**, **समासान्ताः** का अधिकार है।

अन् अन्त वाला जो नपुंसक लिङ्ग, तदन्त अव्ययीभाव से विकल्प से तद्धितसंज्ञक टच् प्रत्यय होता है।

उपचर्मम्, उपचर्म। चमड़े के समीप। **चर्मणः समीपम्** लौकिक विग्रह और **चर्मन्+ङस्+उप** अलौकिक विग्रह में **समीप** इस अर्थ में विद्यमान **उप** का **चर्मन्** के साथ**अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास

विकल्पेन तटज्विधायकं विधिसूत्रम्

९२१. झयः ५।४।१११॥

झयन्तादव्ययीभावाट्टज् वा स्यात्। उपसमिधम्, उपसमित्।

इत्यव्ययीभावप्रकरणम्॥३९॥

....

करने के वाद **चर्मन्+ङस्+उप** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **चर्मन्+उप** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **उप** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **उप** का पूर्वप्रयोग हुआ **उप+चर्मन्** बना। **चर्मन्** नपुंसक है, अतः **नपुंसकादन्यतरस्याम्** से विकल्प से समासान्त **टच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **उपचर्मन्+अ** बना। **अ** के परे होने पर **उपचर्मन्** की **यचि भम्** से भसंज्ञा हुई और **उपचर्मन्** में विद्यमान **टि अन्** का **नस्तद्धिते** से लोप हो गया- **उपचर्म्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **उपचर्म** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **उपचर्म** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ, किन्तु **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति का अलुक् हुआ और सु के स्थान पर **अम्** आदेश होकर पूर्वरूप करने पर **उपचर्मम्** बना। **टच्** न होने के पक्ष में **उपचर्मन्** है उससे सु के आने के बाद उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् और नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप करके **उपचर्म** बनता है। इस तरह दो रूप बन गये।

९२१- झयः। झयः पञ्चम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः** से विभक्तिविपरिणाम करके **अव्ययीभावात्** और **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से **टच्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समासान्ताः** का अधिकार है।

झय् प्रत्याहार वाला वर्ण अन्त में हो ऐसे अव्ययीभाव से विकल्प से तद्धितसंज्ञक टच् प्रत्यय होता है।

उपसमिधम्, उपसमित्। समिधा के पास(हवन की लकड़ी को समिधा कहते हैं)। **समिधः समीपम्** लौकिक विग्रह और **समिध्+ङस्+उप** अलौकिक विग्रह में **समीप** इस अर्थ में विद्यमान **उप** का **समिध् ङस्** के साथ **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानुपूर्व्य- यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु** से समास हो गया। समास करने के बाद **समिध्+ङस्+उप** इस समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई। ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **समिध्+उप** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **उप** की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हो गई तो **उपसर्जनं पूर्वम्** से उपसर्जनसंज्ञक **उप** का पूर्वप्रयोग हुआ **उप+समिध्** बना। **झयः** से विकल्प से समासान्त **टच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **उपसमिध्+अ** बना। वर्ण लन होकर **उपसमिध** बना। **अव्ययीभावश्च** से अव्ययसंज्ञा, **एकदेशविकृतमनन्यवत्** इस न्याय के बल पर **उपसमिध** को प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त हुआ, किन्तु **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से विभक्ति का अलुक् हुआ और सु के स्थान पर **अम्** आदेश होकर पूर्वरूप करने पर **उपसमिधम्** बना। **टच्** न होने के पक्ष में **उपसमिध्** है।

उससे सु के आने के बाद उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् करके धकार को जश्त्व और **वावसाने** से वैकल्पिक चर्त्व करके **उपसमित्, उपसमिद्** ये सिद्ध हो जाते हैं।

अव्ययीभाव समास में यह ध्यान रखना चाहिए कि किस अर्थ में किस शब्द के साथ समास हो रहा है और लौकिक विग्रह क्या है और अलौकिक विग्रह क्या है? इसके अतिरिक्त यदि शब्द अदन्त है तो सुप् का अलुक् और उसके स्थान पर अम् आदेश होगा नहीं तो नहीं होगा। पञ्चमी के स्थान पर अम् आदेश नहीं होता है और **तृतीया** तथा **सप्तमी** विभक्ति के स्थान पर **अम्** आदेश विकल्प से होता है। **सह** है तो **स** आदेश होता है।

परीक्षा

१. इस प्रकरण में समास करने वाला एक ही सूत्र है, उसके सभी अर्थों में समास के उदाहरण लिखकर दिखाइये। यह सम्पूर्ण ५० अंक का है।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का
अव्ययीभाव समास पूर्ण हुआ।

अथ तत्पुरुषः

तत्पुरुषसंज्ञार्थमधिकारसूत्रम्

९२२. तत्पुरुषः २।१।२२॥

अधिकारोऽयं प्राग्बहुव्रीहेः।

तत्पुरुषसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

९२३. द्विगुश्च २।१।२३॥

द्विगुरपि तत्पुरुषसंज्ञकः स्यात्।

द्वितीयातत्पुरुष-समासविधायकं विधिसूत्रम्

९२४. द्वितीया श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः २।१।२४॥

द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह वा समस्यते, स च तत्पुरुषः।

कृष्णं श्रितः कृष्णश्रित इत्यादि।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **तत्पुरुषसमास** का आरम्भ होता है। तत्पुरुषसमास में उत्तरपद के अर्थ की प्रधानता होती है। इसमें समास करने के लिए अनेक सूत्र हैं। समास के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् होता है, उसके बाद उपसर्जनसंज्ञा और उपसर्जन का पूर्वप्रयोग होता है। **एकदेशविकृतन्यायेन** प्रातिपदिक मानकर सु आदि विभक्तियों की उत्पत्ति होती है।

९२२- **तत्पुरुषः**। तत्पुरुषः प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। यह अधिकारसूत्र है, **शेषो बहुव्रीहिः२।२।२३॥** तक इसका अधिकार जाता है और प्रत्येक सूत्र में जाकर कहता है कि तुमने जो समास किया है, उसका नाम तत्पुरुष है। इसीसे **तत्पुरुष** एक संज्ञा भी मान ली जाती है।

९२३- **द्विगुश्च**। द्विगुः प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्। **तत्पुरुषः** का अधिकार है।

द्विगु भी तत्पुरुषसंज्ञक होता है।

समास में यदि पूर्वपद संख्यावाचक शब्द हो तो उसकी **सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः** इस सूत्र से **द्विगुसंज्ञा** होती है। द्विगु भी तत्पुरुष कहलाता है। जैसे **पञ्चराजम्, द्व्यङ्गुलम्** आदि द्विगु-समास को तत्पुरुष भी कहा जाता है।

९२४- **द्वितीया श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः**। श्रितश्च अतीतश्च, पतितश्च गतश्च अत्यस्तश्च प्राप्तश्च आपन्नश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नास्तैः। द्वितीया प्रथमान्तं, श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः तृतीयान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे** से **सुप्** की और **सह सुपा** से **सुपा** की अनुवृत्ति आती है। पीछे से **समासः** और **तत्पुरुषः** का अधिकार तो है ही।

द्वितीयाविभक्ति से युक्त समर्थ सुबन्त का श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त और आपन्न ऐसी प्रकृति है जिन की, ऐसे समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक कहलाता है।

स्मरण रहे कि समास हमेशा अलौकिक विग्रह में ही होता है। इस सूत्र में **प्रथमान्तपद** है **द्वितीया** अर्थात् रमा की तरह द्वितीया भी **प्रथमा विभक्ति** का रूप है। इस सूत्र में **द्वितीया** शब्द के द्वारा द्वितीयान्त सुबन्त शब्द का ग्रहण होगा और उसकी **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से **उपसर्जनसंज्ञा** होती है। **उपसर्जनसंज्ञा** के बाद प्रायः उस पद का **पूर्वनिपात** अर्थात् **पूर्व में प्रयोग** होता है। समास न होने के पक्ष में **कृष्णं श्रितः** ऐसा वाक्य ही रह जाता है।

विशेष स्मरणीयः- कृष्णं श्रितः(कृष्ण अम् श्रित सु) विग्रह करके समास करने पर या **श्रितः कृष्णम्**(श्रित सु कृष्ण अम्) विग्रह करके भी समास करने पर समास करने वाले **द्वितीया श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः** में जो प्रथमान्त **द्वितीया** पद है, उससे निर्दिष्ट **कृष्ण अम्** है। उसीका पूर्वप्रयोग करने के लिए यहाँ **उपसर्जनसंज्ञा** की जाती है और उसीका प्रयोग भी किया जाता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग का फल समझना चाहिए। तात्पर्य यह है कि विग्रह दोनों तरह से किये जाते हैं- **कृष्णं श्रितः** या **श्रितः कृष्णम्** इसी तरह **राज्ञः पुरुषः** या **पुरुषो राज्ञः** आदि। परन्तु समासशास्त्र(समासविधायक सूत्र) में विद्यमान जो प्रथमान्त पद, उससे निर्दिष्ट का ही पूर्वप्रयोग होता है।

समास के बाद **पहले उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वप्रयोग करके विभक्ति का लुक्** अथवा **पहले विभक्ति का लुक् करके उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग**, इस तरह दोनों प्रकार की प्रक्रियाएँ आचार्यों ने अपनाई हैं। यहाँ व्याख्या में भी कहीं पहली प्रक्रिया और कहीं दूसरी प्रक्रिया अपनाई गई है। वैसे ज्यादातर आचार्य पहले उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वप्रयोग करके बाद में विभक्ति का लुक् करते हैं।

कृष्णाश्रितः। कृष्ण का आश्रय लिया हुआ। **कृष्णं श्रितः** लौकिक विग्रह और **कृष्ण अम्+श्रित सु** अलौकिक विग्रह में **द्वितीया श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः** से समास हुआ। यहाँ पर द्वितीयान्त पद है **कृष्ण+अम्** और श्रितादि-प्रकृतिक समर्थ सुबन्त है **श्रित+सु**। समास के बाद **कृष्ण अम्+श्रित सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से अम् और सु इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **कृष्ण+श्रित** बना। समासविधायक सूत्र में **द्वितीया** इस प्रथमान्तपद के द्वारा निर्दिष्ट शब्द कृष्ण है, उसकी **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा हुई और **उपसर्जनं पूर्वम्** से कृष्ण इस पूर्व में स्थित शब्द का पूर्व में ही प्रयोग हुआ- **कृष्णश्रित** बना। यदि **श्रितः कृष्णम्** विग्रह करके समास किया जाय तो भी पर में स्थित **कृष्ण अम्** का ही पूर्वप्रयोग होता है। सु विभक्ति और उसको रुत्व और विसर्ग करके **कृष्णश्रितः** सिद्ध हुआ। इसके रूप रामशब्द

की तरह **कृष्णाश्रितः, कृष्णश्रितौ, कृष्णाश्रिताः** आदि बनते हैं। स्त्रीलिङ्ग में टाप् करके **कृष्णश्रिता** बनता है और रमा शब्द की तरह रूप बनते हैं। अब इसी तरह **लक्ष्मीश्रितः, हरिश्रितः** आदि बनाइये।

अतीत आदि शब्दों के साथ भी समास की प्रक्रिया को देखिये-

अरण्यातीतः। वन को पार किया हुआ। **अरण्यम् अतीतः** लौकिक विग्रह और **अरण्य अम्+अतीत सु** अलौकिक विग्रह में **द्वितीया श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः** से समास हुआ। यहाँ पर द्वितीयान्त पद है **अरण्य+अम्** और श्रितादि-प्रकृतिक समर्थ सुबन्त है **अतीत+सु**। समास के बाद **अरण्य अम्+अतीत सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से अम् और सु इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **अरण्य+अतीत** बना। प्रथमानिर्दिष्ट अरण्य की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग करके सवर्णदीर्घ होकर **अरण्यातीत** बना उससे सु विभक्ति आई और उसको रुत्व और विसर्ग करके **अरण्यातीतः** सिद्ध हुआ। इसके रूप रामशब्द की तरह **अरण्यातीतः, अरण्यातीतौ, अरण्यातीताः** आदि बनते हैं।

कूपपतितः। कुएँ में गिरा हुआ। **कूपं पतितः** यह लौकिक विग्रह और **कूप अम्+ पतित+सु** यह अलौकिक विग्रह में **द्वितीया श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः** से समास हुआ। यहाँ पर द्वितीयान्त पद है **कूप+अम्** और श्रितादि-प्रकृतिक समर्थ सुबन्त है **पतित+सु**। समास के बाद **कूप अम्+पतीत सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से अम् और सु इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **कूप+पतित** बना। प्रथमानिर्दिष्ट कूप की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर **कूपपतित** बना और सु विभक्ति आई, उसको रुत्व और विसर्ग करके **कूपपतितः** सिद्ध हुआ।

ग्रामगतः। गाँव गया हुआ। **ग्रामं गतः** लौकिक विग्रह और **ग्राम अम्+गत+सु** इस अलौकिक विग्रह में **द्वितीया श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः** से समास हुआ। यहाँ पर द्वितीयान्त पद है **ग्राम+अम्** और श्रितादि-प्रकृतिक समर्थ सुबन्त है **गत+सु**। समास के बाद **ग्राम अम्+गत सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से अम् और सु इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **ग्राम+गत** बना। प्रथमानिर्दिष्ट ग्राम की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्व का पूर्व में ही प्रयोग कर **ग्रामगत** बना उसके बाद सु विभक्ति हुई और उसको रुत्व और विसर्ग करके **ग्रामगतः** सिद्ध हुआ।

सुखप्राप्तः। सुख को पाया हुआ। **सुखं प्राप्तः** यह लौकिक विग्रह और **सुख+अम् प्राप्त+सु** इस अलौकिक विग्रह में **द्वितीया श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त- प्राप्तापन्नैः** से समास हुआ। यहाँ पर द्वितीयान्तपद है **सुख+अम्** और श्रितादि-प्रकृतिक समर्थ सुबन्त है **प्राप्त+सु**। समास के बाद **सुख+अम् प्राप्त+सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से अम् और सु इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **सुख+प्राप्त** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **सुख** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर **सुखप्राप्त** बना इससे सु विभक्ति और उसको रुत्व और विसर्ग करके **सुखप्राप्तः** सिद्ध हुआ।

दुःखापन्नः। दुःख को प्राप्त हुआ। **दुःखम् आपन्नः** यह लौकिक विग्रह और **दुःख+अम् आपन्न+सु** इस अलौकिक विग्रह में **द्वितीया श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः** से समास हुआ। यहाँ पर द्वितीयान्तपद है **दुःख+अम्** और श्रितादि-प्रकृतिक समर्थ सुबन्त है **आपन्न+सु**। समास के बाद **दुःख+अम् आपन्न+सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से अम् और सु इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ-

तृतीयातत्पुरुष-समासविधायकं विधिसूत्रम्

९२५. तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन २।१।३०।।

तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेनार्थेन च सह वा प्राग्वत्।

शङ्कुलया खण्डः शण्कुलाखण्डः। धान्येनार्थो धान्यार्थः।

तत्कृतेति किम्? अक्ष्णा काणः।

तृतीयातत्पुरुषसमासविधायकं विधिसूत्रम्

९२६. कर्तृकरणे कृता बहुलम् २।१।३२।।

कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत्।

हरिणा त्रातो हरित्रातः। नखैर्भिन्नो नखभिन्नः।

परिभाषा- **कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्।** नखनिर्भिन्नः।

....

दुःख+आपन्न बना। प्रथमानिर्दिष्ट **दुःख** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग करके **सवर्णदीर्घ** करने पर **दुःखापन्न** बना। उससे सु विभक्ति, अनुबन्धलोप एवं स् को रुत्वविसर्ग होने पर- **दुःखापन्नः** बना।

९२५- **तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन।** तृतीया प्रथमान्तं, तत्कृत लुप्ततृतीयाकम्, अर्थेन तृतीयान्तं, गुणवचनेन तृतीयान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **समासः, सुप्, सह सुपा, विभाषा, तत्पुरुषः** आदि की अनुवृत्ति एवं अधिकार है।

तृतीयान्त समर्थ सुबन्त शब्द का तृतीयान्त शब्द का जो अर्थ उसके द्वारा किये गये गुण के वाचक शब्दों के साथ और अर्थ शब्द के साथ समास होता है और वह तत्पुरुष समास कहलाता है।

इससे समास होने पर भी प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, उपसर्जनसंज्ञा, उपसर्जन का पूर्व में प्रयोग, सु आदि विभक्ति के कार्य आदि होंगे। इस सूत्र में प्रथमान्तपद है- **तृतीया**। इसके द्वारा निर्दिष्ट पद की उपसर्जनसंज्ञा होगी।

शङ्कुलाखण्डः। सरोते से किया गया टुकड़ा। **शङ्कुलया खण्डः** लौकिक विग्रह और **शङ्कुला टा+खण्ड सु** इस अलौकिक विग्रह में **तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन** से समास हुआ। यहाँ पर तृतीयान्तपद है **शङ्कुला+टा** और तृतीयार्थ सरोता, उसके द्वारा किया गया गुण वाचक शब्द है **खण्ड सु** वह समर्थ सुबन्त है। समास के बाद **शङ्कुला टा+खण्ड सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **टा** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **शङ्कुला+खण्ड** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **शङ्कुला** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर **शङ्कुलाखण्ड** बना। सु विभक्ति और उसको रुत्व और विसर्ग करके **शङ्कुलाखण्डः** सिद्ध हुआ। यह तो **तत्कृतार्थेन गुणवचनेन** का उदाहरण है। अब आगे **अर्थशब्देन सह** का उदाहरण देखिये।

धान्यार्थः। धान्य से प्रयोजन। **धान्येन अर्थः** लौकिक विग्रह और **धान्य टा+अर्थ सु** अलौकिक विग्रह में **तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन** से समास हुआ। यहाँ पर तृतीयान्त पद है **धान्य+टा** और समर्थ सुबन्त अर्थशब्द है **अर्थ+सु**। समास के बाद **धान्य टा+अर्थ सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **टा** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों

चतुर्थीतत्पुरुषसमासविधायकं विधिसूत्रम्

९२७. चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः २।१।३६॥

चतुर्थ्यन्तार्थाय यत्तद्वाचिना अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वद्।

यूपाय दारु यूपदारु।

तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः। तेनेह न रन्धनाय स्थाली।

वार्तिकम्- **अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्।**

द्विजार्थः सूपः। द्विजार्था यवागूः। द्विजार्थं पयः।

भूतबलिः। गोहितम्। गोसुखम्। गोरक्षितम्।

....

का लुक् हुआ- **धान्य+अर्थ** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **धान्य** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर सवर्णदीर्घ करके **धान्यार्थ** बना है। सु विभक्ति और उसको रुत्व और विसर्ग करके **धान्यार्थः** सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार से **विद्यया अर्थः-विद्यार्थः, पुण्येन अर्थः- पुण्यार्थः, धनेन अर्थः- धनार्थः, हिरण्येन अर्थः- हिरण्यार्थः** आदि भी बनते हैं।

९२६- **कर्तृकरणे कृता बहुलम्।** कर्ता च करणं च तयोः समाहारद्वन्द्वः कर्तृकरणं, तस्मिन् कर्तृकरणे। कर्तृकरणे सप्तम्यन्तं, कृता तृतीयान्तं, बहुलं प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन** से **तृतीया** की अनुवृत्ति आती है। **समासः, सुप्, सह सुपा, विभाषा, तत्पुरुषः** आदि की अनुवृत्ति एवं अधिकार है।

कर्ता और करण अर्थ में हुए तृतीयान्त समर्थ सुबन्त का कृदन्तप्रकृतिक सुबन्त शब्दों के साथ बहुल से समास होता है और वह तत्पुरुष समास कहलाता है।

हरिणा त्रातो हरित्रातः। हरि के द्वारा रक्षित। **हरिणा त्रातः** लौकिक विग्रह और **हरि टा+त्रात सु** अलौकिक विग्रह में **कर्तृकरणे कृता बहुलम्** से समास हुआ। यहाँ पर कर्ता अर्थ में हुई तृतीया-विभक्तियुक्त पद है **हरि+टा** और समर्थ सुबन्त शब्द है **त्रात+सु।** समास के बाद **हरि टा+त्रात सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से टा और सु इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **हरि+त्रात** बना। सूत्रार्थ करते समय प्रथमान्त पद वृत्ति में **तृतीया** यह है, उससे निर्दिष्ट **हरि** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग करके **हरित्रात** बना है। सु विभक्ति और उसको रुत्व और विसर्ग करके **हरित्रातः** सिद्ध हुआ।

नखैर्भिन्नो नखभिन्नः। नाखूनों से चीरा गया। **नखैः भिन्नः** लौकिक विग्रह और **नख भिस्+भिन्न सु** अलौकिक विग्रह में **कर्तृकरणे कृता बहुलम्** से समास हुआ। यहाँ पर करण अर्थ में हुई तृतीया-विभक्तियुक्त पद है **नख+भिस्** और समर्थ सुबन्त शब्द है **भिन्न+सु।** समास के बाद **नख भिस्+भिन्न सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से भिस् और सु इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **नख+भिन्न** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **नखभिन्न** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग करके **नखभिन्न** बना है। सु विभक्ति और उसको रुत्व और विसर्ग करके **नखभिन्नः** सिद्ध हुआ।

कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्। कृदन्त ग्रहणस्थल में गतिपूर्वक और कारकपूर्वक कृदन्त का भी ग्रहण होता है। इस परिभाषा के बल पर गति और कारक पूर्वक

सुबन्तों के साथ भी समास किया जा सकता है। अतः **नखैः निर्भिन्नः** में भी **कर्तृकरणे कृता बहुलम्** से समास होता है। यहाँ **भिन्न** इस कृदन्त के पूर्व गतिसंज्ञक **निर्** के लगने के बाद भी समास होने में आपत्ति नहीं है। अतः **नखैः निर्भिन्नः** इस लौकिक विग्रह के **नख भिस्+निर्भिन्न सु** इस अलौकिक विग्रह में उक्त परिभाषा के बल पर समास होकर **नखनिर्भिन्नः** आदि भी सिद्ध होते हैं।

९२७- **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः**। चतुर्थी प्रथमान्तं, तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः तृतीयान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में भी **समासः, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, विभाषा** इत्यादि पदों की अनुवृत्ति और अधिकार है।

चतुर्थ्यन्त शब्द का चतुर्थ्यन्त के लिए जो वस्तु, तद्वाचक शब्द के साथ तथा अर्थ, बलि, हित, सुख और रक्षित शब्दों के साथ विकल्प से समास होता है और उसे तत्पुरुषसमास कहते हैं।

तदर्थ का तात्पर्य यहाँ पर पूर्वपद में निर्दिष्ट। पूर्वपद चतुर्थी के प्रत्यय होने से तदन्त होकर चतुर्थ्यन्त होता है और उस चतुर्थ्यन्त के लिए जो है, तद्वाचक शब्द के साथ समास होता है। जैसे **यूपाय दारु** (खम्भे के लिए लकड़ी) इसमें चतुर्थ्यन्त है **यूप**, उसका अर्थ है खम्भा, उसके लिए जो है वह है **पेड़**, तद्वाचक शब्द हुआ- **दारु**। उसके साथ समास होगा, साथ ही अर्थ, बलि आदि शब्दों के साथ भी समास होगा। इस सूत्र में प्रथमान्त पद है- **चतुर्थी**, उसके द्वारा निर्दिष्ट पद की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग आदि होंगे।

यूपाय दारु। खम्भे के लिए लकड़ी। **यूपाय दारु** लौकिक विग्रह और **यूप ङे+दारु सु** अलौकिक विग्रह में **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः** से समास हुआ। यहाँ पर चतुर्थ्यन्त पद है **यूप+ङे** और समर्थ चतुर्थ्यन्तार्थ शब्द है **दारु सु**। समास के बाद **यूप ङे+दारु सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **ङे** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **यूप+दारु** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **यूप** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर के **यूपदारु** बना है। सु विभक्ति आई और दारुशब्द के नपुंसक होने के कारण उसका **स्वमोर्नपुंसकात्** से लुक् होकर **यूपदारु** सिद्ध हुआ। इसके रूप **मधु**-शब्द की तरह बनते हैं।

इसी तरह आप गृहाय दारु- गृहदारु, कङ्कणाय सुवर्णम्- कङ्कणसुवर्णम् आदि अनेक स्थलों पर समास कर सकते हैं।

यहाँ पर विशेष बात बता रहे हैं- **तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः। तेनेह न रन्धनाय स्थाली।** अर्थात् **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः** इस सूत्र में **तदर्थ** शब्द से प्रत्येक तदर्थ का ग्रहण अभीष्ट नहीं है अपितु **प्रकृतिविकृतिभाव तदर्थ** ही ग्रहण किया जाना चाहिए अर्थात् प्रकृति से विकृति को प्राप्त होने वाले तदर्थ ही लिया जाना चाहिए। जैसे कि **लकड़ी रूप** प्रकृति से **दारु रूप** विकृति। अतः **रन्धनाय स्थाली** अर्थात् **पकाने के लिए बरतन** आदि जो **स्थाली रूप प्रकृति और पकाना रूप विकृति नहीं है**, में तदर्थ मान कर समास नहीं किया जायेगा, जिससे **रन्धनाय स्थाली** यह वाक्य ही रह जाता है।

अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। **अर्थ शब्द के साथ नित्य समास होता है और विशेष्य के अनुसार उसका लिङ्ग भी होता है**, ऐसा **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः** इस सूत्र में कहना चाहिए।

पञ्चमीतत्पुरुषसमासविधायकं विधिसूत्रम्

९२८. पञ्चमी भयेन २।१।३७॥

चोराद्भयं चोरभयम्।

....

चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः से अर्थ शब्द के साथ समास तो होता है, किन्तु विकल्प से। अतः नित्य समास के लिए वार्तिक का अवतरण है साथ ही **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** से पर में विद्यमान शब्द का लिङ्ग ही तत्पुरुष समास के बाद लिङ्ग होता है, यह नियम **अर्थ** शब्द के साथ समास होने पर नहीं होता किन्तु विशेष्य की तरह ही लिङ्ग होता है।

द्विजार्थः (सूपः) ब्राह्मण के लिए (दाल)। **द्विजाय अयम्** लौकिक विग्रह और **द्विज ङे+अर्थ सु** (यहाँ पर **के लिए** इस अर्थ के लिए अर्थ-शब्द का प्रयोग किया गया है) अलौकिक विग्रह में **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः** से **अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्** के अनुसार नित्यसमास और विशेष्यलिङ्गता का विधान हुआ। यहाँ पर चतुर्थ्यन्त पद है **द्विज+ङे** और समर्थ अर्थ शब्द है **अर्थ सु**। समास के बाद **द्विज ङे+अर्थ सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **ङे** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **द्विज+अर्थ** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **द्विज** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग करके सवर्णदीर्घ करने पर **द्विजार्थ** बना है। सु विभक्ति आई और रुत्वविसर्ग हुआ- **द्विजार्थः**। यहाँ पर विशेष्य-शब्द **सूपः** के पुँल्लिङ्ग होने के कारण **द्विजार्थः** भी पुँल्लिङ्ग ही हुआ। विशेष्य के अन्य लिङ्ग में होने कारण विशेषण भी अन्यलिङ्ग अर्थात् स्त्रीलिङ्ग या नपुंसकलिङ्ग का होगा। जैसे- **द्विजार्था यवागूः** ब्राह्मण के लिए लप्सी(स्त्रीलिङ्ग), **द्विजार्थं पयः** ब्राह्मण के लिए दूध(नपुंसकलिङ्ग) आदि। पुँल्लिङ्ग में रामशब्द की तरह, स्त्रीलिङ्ग में रमाशब्द की तरह और नपुंसकलिङ्ग में ज्ञानशब्द की तरह रूप चलते हैं।

भूतबलि। भूतों के लिए बलि। **भूतेभ्यो बलिः** लौकिक विग्रह और **भूत भ्यस्+बलि सु** अलौकिक विग्रह में **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः** से समास हुआ। यहाँ पर चतुर्थ्यन्त पद है **भूत भ्यस्** और समर्थ शब्द है **बलि सु**। समास के बाद **भूत भ्यस्+बलि सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **भ्यस्** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **भूत+बलि** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **भूत** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर के **भूतबलि** बना। सु विभक्ति आई और अनुबन्धलोप और सकार को रुत्वविसर्ग करके **भूतबलिः** सिद्ध हुआ।

गोहितम्। गौओं का हित। **गोभ्यो हितम्** लौकिक विग्रह और **गो भ्यस्+हित सु** अलौकिक विग्रह में **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः** से समास हुआ। यहाँ पर चतुर्थ्यन्त पद है **गो भ्यस्** और समर्थ **हित** शब्द है ही। समास के बाद **गो भ्यस्+हित सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **भ्यस्** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **गो+हित** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **गो** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर के **गोहित** बना। सु विभक्ति आई और नपुंसकलिङ्ग होने के कारण ज्ञान शब्द की तरह सु के स्थान पर अम् आदेश और पूर्वरूप होकर सिद्ध हुआ- **गोहितम्।**

इसी तरह **गोभ्यः सुखम्- गोसुखम्** और **गोभ्यो रक्षितम्- गोरक्षितम्** आदि जगहों पर भी समास कीजिए।

पञ्चमीतत्पुरुषसमासविधायकं विधिसूत्रम्

९२९. स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन २।१।३९॥

अलुग्विधायकं विधिसूत्रम्

९३०. पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ६।३।२॥

अलुगुत्तरपदे। स्तोकान्मुक्तः। अन्तिकादागतः। अभ्याशादागतः। दूरादागतः। कृच्छ्रादागतः।

....

९२८- **पञ्चमी भयेन**। पञ्चमी प्रथमान्तं, भयेन तृतीयान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में भी **समासः, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, विभाषा** इत्यादि पदों की अनुवृत्ति है या अधिकार विद्यमान है।

पञ्चम्यन्त शब्द का भयवाचक समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है।

इसमें प्रथमान्तपद **पञ्चमी** है। अतः उसके द्वारा निर्दिष्टपद की उपसर्जनसंज्ञा होगी।

चोरभयम्। चोर से डर। **चोराद् भयम्** लौकिक विग्रह और **चोर ङसि+भय सु** अलौकिक विग्रह में **पञ्चमी भयेन** से समास हुआ। यहाँ पर पञ्चम्यन्त पद है **चोर+ङसि** और समर्थ भयवाचक-शब्द है **भय+सु**। समास के बाद **चोर ङसि+भय सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **ङसि** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **चोर+भय** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **चोर** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर के **चोरभय** बना। सु विभक्ति आई और नपुंसकलिङ्ग होने के कारण **ज्ञान** शब्द की तरह **सु** के स्थान पर **अम्** आदेश और पूर्वरूप हो कर सिद्ध हुआ- **चोरभयम्।**

भाष्यकार ने **पञ्चमी भयेन** का योगविभाग करके पञ्चम्यन्त का किसी भी सुबन्त के साथ में समास कहा है। अतः **वृकाद् भीर्वृकभीः**(भेड़िये से भय)। **भयाद् भीतो भयभीतः** (भय से डरा हुआ)। **सिंहाद् भीतिः सिंहभीतिः**(शेर से डर) आदि जगहों पर भी इस प्रकार ही समास करें।

९२९- **स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन**। स्तोकञ्च अन्तिकञ्च दूरञ्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः स्तोकान्तिकदूराणि, तेषामर्थाः स्तोकान्तिकदूरार्थाः। स्तोकान्तिकदूरार्थाश्च कृच्छ्रञ्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि। स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि प्रथमान्तं, क्तेन तृतीयान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **पञ्चमी भयेन** से **पञ्चमी** की अनुवृत्ति है और **समासः, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, विभाषा** आदि पीछे से आ रहे हैं।

स्तोकार्थक, अन्तिकार्थक, दूरार्थक तथा कृच्छ्रशब्द पञ्चम्यन्त सुबन्तों क्तप्रत्ययान्त समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है, उसे तत्पुरुष समास कहते हैं।

स्तोक=अल्प, कम, **अन्तिक**=समीप और दूर अर्थ वाले शब्दों के साथ **कृच्छ्र** शब्द के साथ भी यह समास हो जाता है। **द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्ययेकमभिसम्बध्यते** अर्थात् द्वन्द्व के अन्त में स्थित पद द्वन्द्व के सभी शब्दों के साथ में योग करता है। इसलिए **दूर** के बाद आये हुए अर्थ शब्द का स्तोक, अन्तिक और दूर इन तीनों के साथ जुड़ता है।

९३०- **पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः**। स्तोकः आदिर्येषां ते स्तोकादयस्तेभ्यः। पञ्चम्याः षष्ठ्यन्तं,

स्तोकादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अलुगुत्तरपदे** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है।

स्तोक आदियों से परे पञ्चमी विभक्ति का लुक् नहीं होता, उत्तरपद के परे होने पर।

यह **अलुक्समास** का सूत्र है। समस्त(समास किये गये) पदों में जो अन्तिम पद होता है, वही **उत्तरपद** कहलाता है।

विभक्ति के लुक् न होने से समस्त पद और असमस्त पद के रूपों में तो अन्तर नहीं दीखता तो भी उदात्त आदि स्वर का अन्तर रहता ही है। इसीलिए समास किया जाता है। समास का अन्त स्वर उदात्त होता है।

स्तोकान्मुक्तः। थोड़े से मुक्त हुआ, थोड़े से छूटा। **स्तोकात् मुक्तः** लौकिक विग्रह और **स्तोक ङसि मुक्त सु** अलौकिक विग्रह में **स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन** से **स्तोकार्थक** के साथ **क्तान्तप्रकृतिक सुबन्त** के साथ समास हुआ। **पञ्चमी** इस अनुवर्तित प्रथमान्त पद से निर्दिष्ट शब्द **स्तोक ङसि** की ही उपसर्जन संज्ञा और उसी का पूर्वनिपात करके **स्तोक ङसि मुक्त सु** होता है। उसकी **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **सु** का लुक् हुआ और **ङसि** इस पञ्चमी विभक्ति का लुक् प्राप्त था तो **पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः** से निषेध हुआ। अतः **ङसि** के स्थान पर **टाङसिङसामिनात्स्याः** से **आत्** आदेश होकर **स्तोकात्+मुक्त** बना। तकार के स्थान पर **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** से अनुनासिक आदेश होकर **स्तोकान्मुक्त** बना। इससे सु, रुत्व, विसर्ग होने के बाद **स्तोकान्मुक्तः** यह रूप सिद्ध हुआ।

अन्तिकादागतः। समीप से आया हुआ। **अन्तिकाद् आगतः** यह लौकिक विग्रह और **अन्तिक ङसि आगत सु** अलौकिक विग्रह में **स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन** से समास हुआ। **पञ्चमी** इस अनुवर्तित प्रथमान्त पद से निर्दिष्ट शब्द **अन्तिक ङसि** की ही उपसर्जन संज्ञा और उसी का पूर्वनिपात करके **अन्तिक ङसि आगत सु** की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **सु** का लुक् हुआ और **ङसि** इस पञ्चमी विभक्ति का लुक् प्राप्त था तो **पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः** से अलुक् हुआ। अतः **ङसि** के स्थान पर **टाङसिङसामिनात्स्याः** से **आत्** आदेश होकर **अन्तिकात्+आगत** बना। तकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से **जश्त्व** होकर **अन्तिकादागत** बना। इससे सु, रुत्व, विसर्ग होने के बाद **अन्तिकादागतः** यह रूप सिद्ध हुआ।

अभ्याशादागतः। समीप से आया हुआ। **अभ्याशात् आगतः** लौकिक विग्रह और **अभ्याश ङसि आगत सु** अलौकिक विग्रह में **स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन** से समास हुआ। **पञ्चमी** इस अनुवर्तित प्रथमान्त पद से निर्दिष्ट शब्द **अभ्याश ङसि** की ही उपसर्जन संज्ञा और उसी का पूर्वनिपात करके **अभ्याश ङसि आगत सु** की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **सु** का लुक् हुआ और **ङसि** इस पञ्चमी विभक्ति का लुक् प्राप्त था तो **पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः** से अलुक् हुआ। अतः **ङसि** के स्थान पर **टाङसिङसामिनात्स्याः** से **आत्** आदेश होकर **अभ्याशात्+आगत** बना। तकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से **जश्त्व** होकर **अभ्याशादागत** बना। इससे सु, रुत्व, विसर्ग होने के बाद **अभ्याशादागतः** यह रूप सिद्ध हुआ।

दूरादागतः। दूर से आया हुआ। **दूरात् आगतः** लौकिक विग्रह और **दूर ङसि आगत सु** अलौकिक विग्रह में **स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन** से समास हुआ। **पञ्चमी**

षष्ठीतत्पुरुष-समासविधायकं विधिसूत्रम्

९३१. षष्ठी २।२।८॥

सुबन्तेन प्राग्वत्। राजपुरुषः।

....

इस अनुवर्तित प्रथमान्त पद से निर्दिष्ट शब्द **दूर ङसि** की ही उपसर्जन संज्ञा और उसी का पूर्वनिपात करके **दूर ङसि आगत सु** की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **सु** का लुक् हुआ और **ङसि** इस पञ्चमी विभक्ति का लुक् प्राप्त था तो **पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः** से अलुक् हुआ। अतः **ङसि** के स्थान पर **टाङसिङसामिनात्स्याः** से **आत्** आदेश होकर **दूरात्+आगत** बना। तकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से **जश्त्व** होकर **दूरादागत** बना। इससे सु, रुत्व, विसर्ग होने के बाद **दूरादागतः** यह रूप सिद्ध हुआ।

कृच्छ्रादागतः। कष्ट से आया हुआ। **कृच्छ्रात् आगतः** लौकिक विग्रह और **कृच्छ्र ङसि आगत सु** अलौकिक विग्रह में **स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन** से समास हुआ। **पञ्चमी** इस अनुवर्तित प्रथमान्त पद से निर्दिष्ट शब्द **कृच्छ्र ङसि** की उपसर्जन संज्ञा और उसी का पूर्वनिपात करके **कृच्छ्र ङसि आगत सु** की **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **सु** का लुक् हुआ और **ङसि** इस पञ्चमी विभक्ति का लुक् प्राप्त था तो **पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः** से अलुक् हुआ। अतः **ङसि** के स्थान पर **टाङसिङसामिनात्स्याः** से **आत्** आदेश होकर **कृच्छ्रात्+आगत** बना। तकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से **जश्त्व** होकर **कृच्छ्रादागत** बना। इससे सु, रुत्व, विसर्ग होने के बाद **कृच्छ्रादागतः** यह रूप सिद्ध हुआ।

९३१- **षष्ठी**। षष्ठी प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में भी **समासः, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, विभाषा** इत्यादि पदों की अनुवृत्ति और अधिकार है।

षष्ठ्यन्त का समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है।

यह सूत्र षष्ठ्यन्त के साथ किसी शब्दविशेष की अपेक्षा नहीं करता। अतः किसी भी शब्द के साथ समास करता है। षष्ठी शब्द में ही प्रथमा है और इसके द्वारा निर्दिष्ट शब्द की उपसर्जनसंज्ञा होगी।

राजपुरुषः। राजा का आदमी, सेवक। **राज्ञः पुरुषः** लौकिक विग्रह और **राजन् ङस्+पुरुष सु** अलौकिक विग्रह में **षष्ठी** से समास हुआ। यहाँ पर षष्ठ्यन्त पद है **राजन् ङस्** और समर्थ सुबन्त है **पुरुष सु**। समास के बाद **राजन् ङस्+पुरुष सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **ङस्** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **राजन्+पुरुष** बना। **राजन् ङस्** में षष्ठी थी जिसका लोप हो गया था, प्रत्ययलक्षण से विभक्तित्व लाकर पदसंज्ञा करके **राजन्** को पद मान लिया जाता है। पद के अन्त में विद्यमान **नकार** का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप करके **राज+पुरुष** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **राज** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर के **राजपुरुष** बना है। सु विभक्ति आई और रुत्वविसर्ग करके **राजपुरुषः** सिद्ध हुआ। इसके रूप रामशब्द की तरह चलते हैं।

षष्ठीसमास के और उदाहरण देखें-

आत्मज्ञानम्। आत्मा का ज्ञान। **आत्मनः ज्ञानम्** लौकिक विग्रह और **आत्मन्**

षष्ठीसमासविधायकं विधिसूत्रम्

९३२. पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे २।२।१॥

अवयविना सह पूर्वादयः समस्यन्ते, एकत्वसङ्ख्याविशिष्टश्चेदवयवी। षष्ठीसमासापवादः। पूर्वं कायस्य पूर्वकायः। अपरकायः। एकाधिकरणे किम्? पूर्वश्छात्राणाम्।

....

ङस्+ज्ञान सु अलौकिक विग्रह में **षष्ठी** से समास हुआ। यहाँ पर षष्ठ्यन्त पद है **आत्मन् ङस्** और समर्थ सुबन्त है **ज्ञान सु**। समास के बाद **आत्मन् ङस्+पुरुष सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **ङस्** और सु इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **आत्मन्+ज्ञान** बना। आत्मन् ङस् में जो षष्ठी लुप्त हुई थी, उसे प्रत्ययलक्षणेन लाकर पदसंज्ञा करके **आत्मन्** को पद मान लिया जाता है। पद के अन्त में विद्यमान **नकार** का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप करके **आत्म+ज्ञान** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **आत्म** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर के **आत्मज्ञान** बना है। सु विभक्ति आई और अम् आदेश, पूर्वरूप करके ज्ञानम् के जैसे **आत्मज्ञानम्** आदि भी बना सकते हैं।

मनोविकारः। मन का विकार। **मनसः विकारः** लौकिक विग्रह और **मनस् ङस्+विकार सु** अलौकिक विग्रह में **षष्ठी** से समास हुआ। यहाँ पर षष्ठ्यन्त पद है **मनस् ङस्** और समर्थ सुबन्त है **विकार सु**। समास के बाद **मनस् ङस्+विकार सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **ङस्** और सु इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **मनस्+विकार** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **मनस्** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर के **मनस् विकार** बना है। **मनस्** के सकार का **ससजुषो रुः** से **रु** और **रु** के स्थान पर **हशि च** से **उत्व** करके **मन+उ+विकार=** बना। **मन+उ** में **आद्गुणः** से गुण होकर **मनोविकार** बना। सु विभक्ति आई और रुत्वविसर्ग करके **मनोविकारः** सिद्ध हुआ। इसके रूप रामशब्द की तरह चलते हैं।

सतां सङ्गतिः लौकिक विग्रह और **सत् आम्+सङ्गति सु** अलौकिक विग्रह में भी षष्ठीसमास करके **सत्सङ्गतिः** बनाइये।

९३२- **पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे**। पूर्वञ्च परञ्च अधरञ्च उत्तरञ्च तेषां समाहारद्वन्द्वः पूर्वापराधरोत्तरम्। एकदेशोऽस्यास्तीति एकदेशी, तेन एकदेशिना। एकं च तद् अधिकरणम् एकाधिकरणम्, कर्मधारयः, तस्मिन्। **समासः**, **सुप्**, **सह सुपा**, **विभाषा**, **तत्पुरुषः** इन सबों का अधिकार है।

यदि अवयवी एकत्व संख्या से युक्त हो तो तद्वाचक सुबन्त के साथ पूर्व, अपर, अधर, उत्तर इन सुबन्त समर्थ शब्दों का विकल्प से समास होता है और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक होता है।

यह सूत्र **षष्ठी** का अपवाद है। यदि **षष्ठी** से समास होने दिया जाय तो **षष्ठी** इस प्रथमान्त पद से निर्दिष्ट शब्द का पूर्वनिपात होकर अनिष्ट रूप बन सकता है, अतः इस सूत्र का कथन किया है।

पूर्वकायः। शरीर का अगला आधा भाग। **पूर्वं कायस्य** लौकिक विग्रह और **काय ङस् पूर्व सु** अलौकिक विग्रह है। **पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे** से समास

अर्धशब्देन समासार्थं विधिसूत्रम्

९३३. अर्धं नपुंसकम् २।२।२॥

समांशवाच्यर्धशब्दो नित्यं क्लीबे स प्राग्वत्। अर्धं पिप्पल्या अर्धपिप्पली।

....

हुआ। समास विधायक इस सूत्र में प्रथमान्त पद है- **पूर्वापराधरोत्तरम्** और इसके द्वारा निर्दिष्ट पद है- **पूर्व सु**। अतः इसी की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा होती है और उसका **उपसर्जनं पूर्वम्** से पूर्वनिपात हो जाता है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पूर्वकाय** बना। स्वादिकार्य करके **पूर्वकायः** सिद्ध हुआ।

अपरकायः। शरीर का दूसरा आधा भाग। **अपरं कायस्य** लौकिक विग्रह और **काय ङस् अपर सु** अलौकिक विग्रह है। **पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे** से समास हुआ। समास विधायक इस सूत्र में प्रथमान्त पद है- **पूर्वापराधरोत्तरम्** और इसके द्वारा निर्दिष्ट पद है- **अपर सु**। अतः इसी की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा होती है और उसका **उपसर्जनं पूर्वम्** से पूर्वनिपात हो जाता है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अपरकाय** बना। स्वादिकार्य करके **अपरकायः** सिद्ध हुआ।

एकाधिकरणे किम्? पूर्वश्छात्राणाम्। इस समासविधायक सूत्र **पूर्वापराधरोत्तर-मेकदेशिनैकाधिकरणे** में एकत्वसंख्या से युक्त कहना आवश्यक है जिससे एकत्वसंख्या वाले अवयवी के साथ तो समास होगा किन्तु बहुत्व संख्या वाले अवयवी के साथ नहीं। जैसा कि **पूर्वश्छात्राणाम्** में अवयवी **छात्राणाम्** बहुवचन युक्त है। अतः समास नहीं हुआ। भिन्न-भिन्न पद ही रहे- **पूर्वश्छात्राणाम्**।

९३३- **अर्धं नपुंसकम्**। अर्धं प्रथमान्तं, नपुंसकं प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **पूर्वापराधरोत्तर-मेकदेशिनैकाधिकरणे** से **एकाधिकरणे** और **एकदेशिना** की अनुवृत्ति आती है। **समासः, सुप्, सह सुपा, विभाषा, तत्पुरुषः** इन सबों का अधिकार है।

सम अंश (ठीक आधा भाग) का वाचक अर्ध शब्द नपुंसक है। नित्य नपुंसक यह अर्ध शब्द का एकत्व संख्या से युक्त अवयवी सुबन्त शब्दों के साथ विकल्प से समास होता है और वह समास तत्पुरुषसंज्ञक होता है।

अर्ध शब्द जब **अंश** भाग आदि का वाचक रहता है तो वह पुँल्लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में प्राप्त होता है किन्तु जब **समांश** अर्थात् **ठीक आधे भाग** अर्थ में प्रयुक्त होता है तो **नित्य नपुंसक** लिङ्ग वाला होता है। इस सूत्र से इस नित्य नपुंसक अर्ध सुबन्त का एकत्वसंख्याविशिष्ट अवयवी सुबन्त के साथ विकल्प से तत्पुरुषसमास हो जाता है।

अर्धपिप्पली। पिपली का आधा भाग। **अर्धं पिप्पल्याः** लौकिक विग्रह और **पिप्पली ङस् अर्ध सु** अलौकिक विग्रह है। **पिप्पली ङस्** इस एकत्वसंख्याविशिष्ट अवयवी सुबन्त के साथ **अर्ध सु** का **अर्धं नपुंसकम्** से समास हुआ। समास विधायक इस सूत्र में प्रथमान्त पद है- **अर्धम्** और इसके द्वारा निर्दिष्ट पद है- **अर्ध सु**। अतः इसी की **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से उपसर्जनसंज्ञा होती है और उसका **उपसर्जनं पूर्वम्** से पूर्वनिपात हो जाता है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अर्धपिप्पली** बना। सु प्रत्यय, उसका हल्ङ्यादिलोप करके **अर्धपिप्पली** सिद्ध हुआ। इसी तरह **आसनस्यार्धम् आसनार्धम्, शरीरस्यार्धम् शरीरार्धम्, पणस्य अर्धं पणार्धम्** आदि इसके अन्य उदाहरण हैं।

सप्तमीतत्पुरुष-समासविधायकं विधिसूत्रम्

९३४. सप्तमी शौण्डैः २।१।४०॥

सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः प्राग्वत्।

अक्षेषु शौण्डः, अक्षशौण्ड इत्यादि।

द्वितीयातृतीयेत्यादियोगविभागादन्यत्रापि तृतीयादिविभक्तीनां प्रयोगवशात् समासो ज्ञेयः।

...

९३४- सप्तमी शौण्डैः। सप्तमी प्रथमान्तं, शौण्डैः तृतीयान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में भी **समासः, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, विभाषा** इत्यादि पदों की अनुवृत्ति और अधिकार है।

सप्तम्यन्त का शौण्ड आदि समर्थ शब्दों के साथ समास होता है।

इस सूत्र में प्रथमान्त-पद **सप्तमी** है। अतः उसके द्वारा निर्दिष्ट पद की उपसर्जनसंज्ञा होगी।

अक्षशौण्डः। पासाओं से खेलने में चतुर। **अक्षेषु शौण्डः** लौकिक विग्रह और **अक्ष सुप्+शौण्ड सु** अलौकिक विग्रह में **सप्तमी शौण्डैः** से समास हुआ। यहाँ पर सप्तम्यन्त-पद है **अक्ष+सुप्** और समर्थ शब्द है **शौण्ड+सु**। समास के बाद **अक्ष सुप्+शौण्ड सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **सुप्** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **अक्ष+शौण्ड** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **अक्ष** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर के **अक्षशौण्ड** बना है। सु विभक्ति आई और उसको रुत्वविसर्ग हुआ- **अक्षशौण्डः**।

सप्तमीसमास के अन्य उदाहरण-

काव्यनिपुणः। काव्यशास्त्र में निपुण। **काव्ये निपुणः** लौकिक विग्रह और **काव्य ङि+निपुण सु** अलौकिक विग्रह में **सप्तमी शौण्डैः** से समास हुआ। यहाँ पर सप्तम्यन्त पद है **काव्य+ङि** और समर्थ शौण्डादि शब्द है **निपुण सु**। समास के बाद **काव्य ङि+निपुण सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से **ङि** और **सु** इन दो सुप्-प्रत्ययों का लुक् हुआ- **काव्य+निपुण** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **काव्य** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर के **काव्यनिपुण** बना। सु विभक्ति आई और उसको रुत्वविसर्ग हुआ- **काव्यनिपुणः**।

समासविधायक सूत्रों में योगविभाग की कल्पना-

शिष्टों के द्वारा प्रयोग किये गये ऐसे बहुत कुछ तत्पुरुषसमास के प्रयोग मिलते हैं जिनका समास **द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः, तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन, चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः, पञ्चमी भयेन, सप्तमी शौण्डैः** इन सूत्रों से सम्भव नहीं हो सकता क्योंकि इन सूत्रों में श्रित, बलि, भय आदि शब्दों के साथ ही समास का विधान किया गया है। अतः वहाँ पर सूत्रों का विभाजन करके उन विविध प्रयोगों की सिद्धि की गई है। सूत्रों में पदों के विभाजन को **योगविभाग** कहते हैं। जैसे **द्वितीया श्रितातीतपतित-गतात्यस्तप्राप्तापन्नैः** यह सूत्र द्वितीयान्त का श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त और आपन्न शब्दों के साथ ही समास करता है। शेष समर्थ शब्दों के साथ तो समास नहीं हो पायेगा। इसलिए इस सूत्र का योगविभाग करके दो सूत्र बनाते हैं। प्रथमसूत्र **द्वितीया** और

दिक्सङ्ख्याशब्दसमासविधायकं नियमसूत्रम्

९३५. दिक्सङ्ख्ये संज्ञायाम् २।१।५०॥

संज्ञायामेवेति नियमार्थं सूत्रम्। पूर्वेषुकामशमी। सप्तर्षयः।
तेनेह न- उत्तरा वृक्षाः। पञ्च ब्राह्मणाः।

....

द्वितीयसूत्र **श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः** हो जाता है। प्रथमसूत्र **द्वितीया** में **समासः, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, विभाषा** इत्यादि पदों की अनुवृत्ति और अधिकार आ जायेंगे। इस प्रकार से **द्वितीया** इस सूत्र का अर्थ बनता है- **द्वितीयान्त का समर्थ सुबन्त के साथ समास हो जाय।** यहाँ पर द्वितीयान्त के साथ समास करने के लिए किसी शब्दविशेष की अपेक्षा नहीं रहती है। अतः अनेक जगहों पर समास हो सकेगा। यही प्रक्रिया **तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन, चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः, पञ्चमी भयेन, सप्तमी शौण्डैः** इन सूत्रों में भी अपनाई जायेगी और योगविभाग वाले सूत्रों का स्वरूप होगा **तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी** और **सप्तमी**, जिससे शब्दविशेष की अपेक्षा न होने के कारण अनेक जगहों पर समास की प्रक्रिया हो सकेगी। योगविभाग करके समास किये गये कुछ प्रयोगों का दिग्दर्शन मात्र करते हैं-

वेदं विद्वान् लौकिक विग्रह और **वेद अम्+विद्वस् सु** अलौकिक विग्रह में **द्वितीया** से समास करके **वेदविद्वान्** बनता है। (वेद को जानने वाला)। इसी प्रकार **मदेन अन्धः** लौकिक विग्रह और **मद टा+अन्ध सु** अलौकिक विग्रह में **तृतीया** से समास करके **मदान्धः** बनता है। (मद से अन्धा)। ऐसे ही **धर्माय नियमः** लौकिक विग्रह और **धर्म ङे+नियम सु** अलौकिक विग्रह में **चतुर्थी** से समास करके **धर्मनियमः** बनता है। (धर्म के लिए नियम)। **द्विजाद् इतरः** लौकिक विग्रह और **द्विज ङसि+इतर सु** अलौकिक विग्रह में **पञ्चमी** से समास करके **द्विजेतरः** बनता है। (ब्राह्मण से अलग)। इसी तरह **भुवने विदितः** लौकिक विग्रह और **भुवन ङि+विदित सु** अलौकिक विग्रह में **सप्तमी** से समास करके **भुवनविदितः** बनता है। (संसार में प्रसिद्ध)।

९३५- **दिक्सङ्ख्ये संज्ञायाम्।** दिक् च सङ्ख्या च तयोरितरेतरद्वन्द्वो दिक्सङ्ख्ये। दिक्सङ्ख्ये प्रथमान्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः** से **समानाधिकरणेन** की अनुवृत्ति और **समासः, सुप्, सह सुपा, तत्पुरुषः** इन पदों की अनुवृत्ति और अधिकार है।

दिशावाची और संख्यावाची सुबन्त का समानाधिकरण सुबन्त के साथ समास होता है संज्ञा अर्थ गम्यमान होने पर और वह तत्पुरुष समास कहलाता है।

यह नियमार्थ सूत्र है। नियम कैसे? **संज्ञा** और **असंज्ञा** दोनों में अग्रिम सूत्र **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समानाधिकरण में समास होता है। उससे **सप्तर्षयः** आदि में भी समास सिद्ध हो सकता है तो इस सूत्र की क्या आवश्यकता है? उत्तर यह है कि **सिद्धे सत्यारभ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति।** सिद्ध होने पर भी उसी कार्य के लिए पुनः किसी सूत्र से विधान करना नियम के लिए होता है। यहाँ पर भी **दिक्सङ्ख्ये संज्ञायाम्** सूत्र नियमार्थ ही है। नियम इस तरह का होगा- **दिशा और सङ्ख्यावाची सुबन्त का यदि समानाधिकरण के साथ समास हो तो केवल संज्ञा में ही हो अन्यत्र नहीं।**

तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारसमासविधायकं विधिसूत्रम्

९३६. तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च २।१।५१।।

तद्धितार्थे विषये उत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये दिक्सङ्ख्ये प्राग्वत्।

पूर्वस्यां शालायां भवः, पूर्वा शाला इति समासे जाते-

वार्तिकम्- **सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः।**

....

दिशावाची शब्द के साथ संज्ञा का उदाहरण-

पूर्वेषुकामशमी। पूर्वेषुकामशमी नामक प्राचीन एक गाँव। **पूर्वा चासौ इषुकामशमी** लौकिक विग्रह और **पूर्वा सु इषुकामशमी सु** अलौकिक विग्रह है। दोनों में समान विभक्ति हैं। अतः समानाधिकरण है। **पूर्वा** यह दिशावाचक शब्द है। समास होने के बाद एक गांव के वाचक होने के कारण संज्ञा अर्थ भी है। अतः **दिक्सङ्ख्ये संज्ञायाम्** से समास हुआ। समासविधायक सूत्र में प्रथमान्त पद है **दिक्सङ्ख्ये** और उसके द्वारा निर्दिष्ट पद है **पूर्वा सु,** उसकी उपसर्जनसंज्ञा के बाद पूर्वनिपात करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पूर्वा+इषुकामशमी** बना। गुण होकर **पूर्वेषुकामशमी** बना। सु, उसका **हल्ङ्यादिलोप** करके **पूर्वेषुकामशमी** सिद्ध हुआ। यह एक संज्ञा है।

सप्तर्षयः। सात ऋषियों की संज्ञा। **सप्त च ते ऋषयः** लौकिक विग्रह और **सप्तन् जस् ऋषि जस्** अलौकिक विग्रह है। दोनों में समान विभक्ति हैं। अतः समानाधिकरण है। **सप्त** यह संख्यावाचक शब्द है। समास होने के बाद **विश्वामित्र** आदि सात **ऋषियों के वाचक** होने के कारण संज्ञा अर्थ भी है। अतः **दिक्सङ्ख्ये संज्ञायाम्** से समास हुआ। समासविधायक सूत्र में प्रथमान्त पद है **दिक्सङ्ख्ये** और उसके द्वारा निर्दिष्ट पद है **सप्तन् जस्,** उसकी उपसर्जनसंज्ञा होने के बाद पूर्व का पूर्वनिपात करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और नकार का लोप करके **सप्त+ऋषि** बना। गुण, रपर होकर **सप्तर्षि** बना। बहुवचन में जस्, **जसि च** से गुण होकर **सप्तर्षयः** सिद्ध हुआ। यह भी एक संज्ञा ही है।

संज्ञा में विधान होने के कारण **उत्तरा वृक्षाः** उत्तर दिशा के वृक्ष और **पञ्च ब्राह्मणाः** पाँच ब्राह्मण आदि में यह समास नहीं हुआ क्योंकि **उत्तर दिशा के वृक्ष** यह संज्ञा नहीं है और **पाँच ब्राह्मण** भी संज्ञा अर्थात् किसी का नाम नहीं है।

९३६- तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च। तद्धितस्य अर्थः तद्धितार्थः, उत्तरं च तत्पदम् उत्तरपदं। तद्धितार्थश्च उत्तरपदञ्च समाहारश्च तेषां समाहारद्वन्द्वस्तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारम्, तस्मिन् तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे। तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **दिक्संख्ये संज्ञायाम्** से **दिक्संख्ये** और **पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन** से **समानाधिकरणेन** की अनुवृत्ति आती है तथा **समासः**, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, **विभाषा** इत्यादि पदों का अधिकार है।

तद्धित-प्रत्यय के अर्थ का विषय होने पर या उत्तरपद परे होने पर अथवा समाहार अर्थात् समूह अर्थ होने पर दिशा और संख्या के वाचक समर्थ सुबन्त का समानविभक्ति वाले सुबन्त के साथ समास होता है और वह तत्पुरुष समास है।

यह सूत्र तद्धितप्रत्यय का विषय होने पर समास कर देता है तथा उत्तरपद परे होने पर पूर्व के दो पदों का समास करता है एवं समूह अर्थ में समास करता है। इस सूत्र

ञप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९३७. दिक्पूर्वपदादसञ्ज्ञायां ञः ४।२।१०७॥

अस्माद् भवाद्यर्थे ञः स्यादसंज्ञायाम्।

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

९३८. तद्धितेष्वचामादेः ७।२।११७॥

ञिति णिति च तद्धितेष्वचामादेरचो वृद्धिः स्यात्। **यस्येति च।** पौर्वशालः। पञ्च गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ-

वार्तिकम्- **द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्।**

....

के द्वारा किये गये समास को **तद्धितार्थ तत्पुरुष समास, उत्तरपदसमास** एवं **समाहारतत्पुरुषसमास** कहते हैं।

पूर्वा और **शाला** इन दोनों स्त्रीलिंगी शब्दों में समास होने पर पुंवद्भाव करने के लिए वार्तिक का अवतरण किया गया है-

सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः। अर्थात् सर्वनामसंज्ञक शब्दों में वृत्तिमात्र अर्थात् समास, तद्धित आदि सभी वृत्तियों के होने पर पुंवद्भाव हो जाता है। तात्पर्य यह है कि यदि दो या दो से अधिक स्त्रीलिङ्गी या नपुंसकलिङ्गी शब्दों में पूर्व में स्थित सर्वनामसंज्ञक शब्द में विद्यमान लिङ्गबोधक प्रत्यय हट कर पुँल्लिङ्ग की तरह का शब्द हो जाता है। जैसे- **पूर्वा** शाला में समासवृत्ति होने के बाद इस वार्तिक से पुंवद्भाव होकर **पूर्व-शाला** हो जाता है।

९३७- **दिक्पूर्वपदादसञ्ज्ञायां ञः।** दिक् पूर्वपदं यस्य स दिक्पूर्वपदं, तस्माद् दिक्पूर्वपदात्। न संज्ञा असंज्ञा, तस्याम् असंज्ञायाम्। दिक्पूर्वपदात् पञ्चम्यन्तम्, असंज्ञायां सप्तम्यन्तं, ञः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **शेषे** से **शेषे** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का पहले से ही अधिकार चल रहा है। यह तद्धित प्रकरण का सूत्र है।

दिशा-वाचक शब्द पूर्व में हो ऐसे प्रातिपदिक से भव आदि शैषिक अर्थों में ञ प्रत्यय होता है असंज्ञा में।

ञ यह तद्धित का प्रत्यय है। ञकार की **चुटू** से इत्संज्ञा होने के बाद लोप होकर **अकार** ही शेष रहता है। ञित् का फल **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि होना है। यह प्रत्यय संज्ञा में नहीं होता।

९३८- **तद्धितेष्वचामादेः।** तद्धितेषु सप्तम्यन्तम्, अचाम्, षष्ठ्यन्तम्, आदेः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अचो ञ्णिति** से **अचः, ञ्णिति** और **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की अनुवृत्ति आती है।

ञित् या णित् तद्धित प्रत्ययों के परे होने पर अचों में आदि अच् की वृद्धि होती है।

यह सूत्र तद्धितप्रकरण में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसके साथ ही **किति च** भी है, जो कित् के परे वृद्धि करता है। ञ प्रत्यय के तद्धित होने के कारण उसके परे वृद्धि करने के लिए समास के बीच में इस सूत्र को दिया है।

समासान्तटज्विधायकं विधिसूत्रम्

९३९. गोरतद्धितलुकि ५।४।९२।।

गोऽन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात् समासान्तो न तु तद्धितलुकि। पञ्चगवधनः।

....

पौर्वशालः। पूर्वदिशा वाली शाला में होने वाला। **पूर्वस्यां शालायां भवः** लौकिक विग्रह और **पूर्वा ङि+शाला ङि** अलौकिक विग्रह में तद्धित के लिए तैयार किये गये वाक्य होने के कारण तद्धितार्थ विषय मान कर **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से समास हुआ। दोनों पदों में समानविभक्ति **ङि** ही है। समास के बाद **पूर्वा ङि शाला ङि** की प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों प्रत्ययों का लुक् हुआ- **पूर्वा+शाला** बना। प्रथमानिर्दिष्ट दिशावाचक शब्द **पूर्वा** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग कर के **पूर्वा शाला** बना। **सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः** से समासवृत्ति को मान कर सर्वादि **पूर्वा** को पुंवद्भाव होकर **पूर्वशाला** बना। अब तद्धित प्रत्यय होने के लिए सूत्र लगा- **दिक्पूर्वपदात्संज्ञायां ञः**। इससे ञ प्रत्यय होकर अनुबन्धलोप करने पर **पूर्वशाला अ** बना। अकार ञित् है, अतः **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि में विद्यमान अच् **पू** के ऊकार को वृद्धि होकर **पौर्वशाला अ** बना। अब **यस्येति च** से लकारोत्तरवर्ती भसंज्ञक **आकार** का लोप हुआ। **पौर्वशाल्+अ=पौर्वशाल** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति आई और उसको रुत्वविसर्ग हुआ- **पौर्वशालः**।

द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्। यह वार्तिक है। **पञ्चगवधनः** आदि तीन पदों में पहले **अनेकमन्यपदार्थे** सूत्र त्रिपद-बहुव्रीहि समास होकर बाद में उसके अन्तर्गत आने वाले पहले के दो पदों का इस **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से नित्य से समास होता है। तत्पुरुष समास महाविभाषा अर्थात् वैकल्पिक है। अतः नित्य से समास करने के लिए इस वार्तिक का अवतरण किया गया है। अर्थ- **उत्तरपद के परे होने पर यदि द्वन्द्व और तत्पुरुष समास हो तो वह नित्य से हो, ऐसा कहना चाहिए।**

९३९- गोरतद्धितलुकि। तद्धितस्य लुक् तद्धितलुक्, न तद्धितलुक् अतद्धितलुक्, तस्मिन् अतद्धितलुकि। गोः पञ्चम्यन्तम्, अतद्धितलुकि सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से **टच्** की और **तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः** से वचनविपरिणाम करके **तत्पुरुषात्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समासान्ताः** का अधिकार आ ही रहा है।

गो-शब्द अन्त में हो ऐसे तत्पुरुष समास से परे समासान्त टच् प्रत्यय होता है यदि तद्धित का लुक् न हुआ हो तो।

पञ्चगवधनः। पाँच गाय धन है जिसका, वह व्यक्ति। **पञ्च गावो धनं यस्य** यह तीन पदों का लौकिक विग्रह और **पञ्चन् जस्+गो जस्+धन सु** यह अलौकिक विग्रह है। इस स्थिति में **अनेकमन्यपदार्थे** से बहुव्रीहि समास हो जाता है। उसके बाद **पञ्चन्** और **गो** में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से महाविभाषा के अन्तर्गत वैकल्पिक समास प्राप्त था तो **द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्** की सहायता से उत्तरपद **धन+सु** के परे रहते नित्य से समास हुआ। समास के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करने पर **पञ्चन् गो धन** बना। लुप्त हुई विभक्ति को अन्तर्वर्तिनी विभक्ति मानकर पद और पद के अन्त नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होकर **पञ्चगो धन** बना। **गोरतद्धितलुकि**

कर्मधारयसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

९४०. तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः १।२।४२॥

द्विगुसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

९४१. सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः २।१।५२॥

तद्धितार्थेत्यत्रोक्तस्त्रिविधः सङ्ख्यापूर्वो द्विगुसंज्ञः स्यात्।

एकत्वप्रतिपादकं विधिसूत्रम्

९४२. द्विगुरेकवचनम् २।४।१॥

द्विग्वर्थः समाहार एकवत् स्यात्।

नपुंसकत्वविधायकं विधिसूत्रम्

९४३. स नपुंसकम् २।४।१७॥

समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात्।

पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगवम्।

....

से धन उत्तरपद के परे रहते **पञ्चगो** से **टच्** प्रत्यय होकर अनुबन्धलोप करने पर **पञ्चगो+अ+धन** बना। **एचोऽयवायावः** से **ओकार** के स्थान पर **अव्** आदेश होकर **पञ्चगवधन** बना। यद्यपि धन-शब्द **नपुंसकलिङ्गी** है तथापि बहुव्रीहि समास होने पर अन्यपदार्थ(पाँच गाय रूपी धन वाला) पुरुष का विशेषण होने से वह पुँल्लिङ्ग का वाचक बन गया है। अतः यह पुँल्लिङ्ग में प्रयुक्त है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक भी है। उससे सु विभक्ति लाकर उसके स्थान पर रुत्वविसर्ग करने पर **पञ्चगवधनः** सिद्ध हुआ।

९४०- तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः। तत्पुरुषः प्रथमान्तं, समानाधिकरणः प्रथमान्तं, कर्मधारयः प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

जिस समास में पूर्वपद और उत्तरपद एक ही विभक्ति के हों, उस समास की कर्मधारयसंज्ञा होती है।

कर्मधारयसंज्ञा के साथ तत्पुरुष भी बना रहता है इसीलिए कर्मधारय को तत्पुरुष का एक भेद माना जाता है।

९४१- सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः। सङ्ख्या पूर्वो यस्य स सङ्ख्यापूर्वः। सङ्ख्यापूर्वः प्रथमान्तं, द्विगुः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च इस सूत्र में कथित त्रिविध समास में यदि संख्यावाचक शब्द पूर्व पद में हो तो ऐसे समास की द्विगुसंज्ञा होती है।

कर्मधारयसंज्ञा का एक भेद द्विगु है। अतः द्विगु, कर्मधारय के साथ तत्पुरुष भी बना रहता है इसीलिए द्विगु-कर्मधारय को तत्पुरुष का एक भेद माना जाता है।

९४२- द्विगुरेकवचनम्। द्विगुः प्रथमान्तम्, एकवचनं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

द्विगु समास का अर्थ समाहार एकवचन होता है।

समासविधायकं विधिसूत्रम्

९४४. विशेषणं विशेष्येण बहुलम् २।१।५७॥

भेदकं भेद्येन समानाधिकरणेन बहुलं प्राग्वत्।

नीलमुत्पलं नीलोत्पलम्। **बहुलग्रहणात्क्वचिन्नित्यम्।** कृष्णसर्पः।

क्वचिन्न- रामो जामदग्न्यः।

....

९४३- **स नपुंसकम्।** सः प्रथमान्तं, नपुंसकं प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्।

समाहार में द्विगु और द्वन्द्व नपुंसक होता है।

पञ्चगवम्। पाँच गायों का समूह। **पञ्चानां गवां समाहारः** लौकिक विग्रह और **पञ्चन् आम्+गो आम्** यह अलौकिक विग्रह है। समाहारवाच्य में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से समास हुआ। समास के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करने पर **पञ्चन् गो** बना। लुप्त हुई विभक्ति को अन्तर्वर्तिनी विभक्ति मानकर पद और पद के अन्त नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होकर **पञ्चगो** बना। **गोरतद्धितलुकि** से **पञ्चगो** से **टच्** प्रत्यय होकर अनुबन्धलोप करने पर **पञ्चगो+अ** बना। **एचोऽयवायावः** से ओकार के स्थान पर अव् आदेश होकर **पञ्चगव** बना। पूर्व में संख्यावाचक शब्द होने के कारण **सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः** से **द्विगुसंज्ञा** होने के बाद **स नपुंसकम्** से नपुंसकलिङ्ग का कथन हुआ। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक भी है। **द्विगुरेकवचनम्** से एकवचन का विधान हुआ। अतः उससे एकवचन सु विभक्ति लाकर उसके स्थान पर अम् आदेश और पूर्वरूप करने पर **पञ्चगवम्** बन गया।

९४४- **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्।** विशेषणं प्रथमान्तं, विशेष्येण तृतीयान्तं, बहुलं प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन** से **समानाधिकरणेन** की अनुवृत्ति आती है। **समासः, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, विभाषा** आदि पदों की अनुवृत्ति और अधिकार है।

समान विभक्ति वाले भेदक=विशेषण का भेद्य=विशेष्य के साथ बहुलता से समास होता है।

नीलोत्पलम्। नील कमल। **नीलम् उत्पलम्** अथवा **नीलं च तद् उत्पलम्** लौकिक विग्रह और **नील सु+उत्पल सु** अलौकिक विग्रह में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समास हुआ। यहाँ पर विशेषणपद है **नील सु** और विशेष्यपद है **उत्पल सु**। दोनों प्रथमान्त एकवचन हैं। इसलिए समानाधिकरण है। **नील सु+उत्पल सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लुक्, **नील+उत्पल** बना। **विशेषणम्** इस प्रथमान्तपद से निर्दिष्ट शब्द **नील** है, उसकी उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग हुआ। **नील+उत्पल** में गुण करके **नीलोत्पल** बना। प्रथमा का एकवचन सु आया, नपुंसक होने के कारण **अम्** आदेश हुआ और पूर्वरूप करके **नीलोत्पलम्** सिद्ध हुआ।

इस समास के अन्य उदाहरण-

निर्मलगुणाः। निर्मल गुण। **निर्मला गुणाः** अथवा **निर्मलाश्च ते गुणाः** लौकिक विग्रह और **निर्मल जस्+गुण जस्** इस अलौकिक विग्रह में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समास हुआ। यहाँ पर विशेपणपद है **निर्मल जस्** और विशेष्यपद है **गुण जस्**। दोनों पद

सोपमानकर्मधारयसमासविधायकं विधिसूत्रम्

९४५. उपमानानि सामान्यवचनैः २।१।५५।।

घन इव श्यामो घनश्यामः।

वार्तिकम्- **शाकपार्थिवादीनां सिद्धय उत्तरपदलोपस्योपसङ्ख्यानम्।**

शाकप्रियः पार्थिवः शाकपार्थिवः। देवपूजको ब्राह्मणो देवब्राह्मणः।

....

प्रथमान्त बहुवचन के हैं, अतः समानाधिकरण है। **निर्मल जस्+गुण जस्** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों जस् का लुक्, **निर्मल+गुण** में **विशेषणम्** इस प्रथमान्तपद से निर्दिष्ट शब्द **निर्मल** है, उसकी उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग हुआ। **निर्मलगुण** से प्रथमा का बहुवचन **जस्** आया और **रामाः** की तरह **निर्मलगुणाः** बन गया। यह पुँल्लिङ्ग का उदाहरण है।

कृष्णचतुर्दशी। कृष्णपक्ष वाली चतुर्दशी। **कृष्णा चतुर्दशी** अथवा **कृष्णा चासौ चतुर्दशी** लौकिक विग्रह और **कृष्णा सु+चतुर्दशी सु** इस अलौकिक विग्रह में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समास हुआ। यहाँ पर विशेषणपद है **कृष्णा सु** और विशेष्यपद है **चतुर्दशी सु।** दोनों पद प्रथमान्त एकवचन के हैं, अतः समानाधिकरण है। **कृष्णा सु+चतुर्दशी सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लुक्, **कृष्णा+चतुर्दशी** में **विशेषणम्** इस प्रथमान्तपद से निर्दिष्ट शब्द **कृष्णा** है, उसकी उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग हुआ। **स्त्रियाः पुवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** सूत्र के द्वारा कृष्णा को पुंवद्भाव होकर **कृष्णचतुर्दशी** बना। उससे प्रथमा का एकवचन सु आया और नदीशब्द की तरह **कृष्णचतुर्दशी** बन गया। यह स्त्रीलिङ्ग का उदाहरण है।

अखिलभूषणानि। सारे आभूषण। **अखिलानि भूषणानि** अथवा **अखिलानि च तानि भूषणानि** लौकिक विग्रह और **अखिल जस्+भूषण जस्** अलौकिक विग्रह में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समास हुआ। यहाँ पर विशेषणपद है **अखिल जस्** और विशेष्यपद है **भूषण जस्।** दोनों पद प्रथमान्त बहुवचन के हैं, अतः समानाधिकरण है। **अखिल जस्+भूषण जस्** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों जस् का लुक्, **अखिल+भूषण** में **विशेषणम्** इस प्रथमान्तपद से निर्दिष्ट शब्द **अखिल** है, उसकी उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग हुआ। **अखिलभूषण** से प्रथमा का बहुवचन **जस्** आया और नपुंसकलिङ्ग होने के कारण **ज्ञानानि** की तरह **अखिलभूषणानि** बन गया। यह नपुंसकलिङ्ग का उदाहरण है।

कर्मधारयसमास में सामानाधिकरण्य को दिखाने के लिए लौकिकविग्रह प्रायः दो प्रकार से किया जाता है- केवल समास किये जाने वाले पदों के द्वारा जैसे **नीलम् उत्पलम्** अथवा चकार लगाकर **नीलं च तद् उत्पलम्** और **वृद्धो नरः** अथवा **वृद्धश्चासौ नरः** आदि।

बहुलग्रहणात्क्वचिन्नित्यम्। कृष्णसर्पः। **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** इस सूत्र में **बहुलम्** का विशेष अर्थ है। अतः **कृष्णश्चासौ सर्पः** में नित्य से समास किया गया है और **राम सु जामदग्न्य सु** में समानाधिकरण होते हुए भी **बहुल** का आश्रय लेकर के समास नहीं किया गया- **रामो जामदग्न्यः** ही रह गया। स्मरण रहे कि **बहुल** के चार अर्थ होते हैं- **कहीं**

नित्य से प्रवृत्त होना, कहीं नित्य से अप्रवृत्त होना, कहीं विकल्प से करना और कहीं कुछ भिन्न अर्थात् विचित्र सा ही कार्य करना। यहाँ पर **कृष्णश्चासौ सर्पः** में विकल्प से प्राप्त समास को इसने नित्य से कर दिया और **रामश्चासौ जागदग्न्यः** में प्राप्त होने की स्थिति है, फिर भी प्रवृत्त नहीं हुआ।

९४५- **उपमानानि सामान्यवचनैः**। उपमानानि प्रथमान्तं, सामान्यवचनैः तृतीयान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन** से **समानाधिकरणेन** की अनुवृत्ति आती है, इसके अतिरिक्त **समासः**, **तत्पुरुषः**, **सुप्**, **सह सुपा**, **विभाषा** इत्यादि पदों की अनुवृत्ति और अधिकार है ही।

उपमानवाचक सुबन्त का समान-विभक्तिक सामान्यवचन वाले सुबन्तों के साथ समास होता है।

उपमा तीन वस्तुओं से होती है- उपमान, उपमेय और समानता। जिनके द्वारा किसी अन्य वस्तु की तुल्यता या समानता दिखाई जाती है, उनको उपमान कहते हैं और जिनके लिए तुल्यता दिखाई जाती है वे उपमेय है। समानता तो उपमान और उपमेय में सादृश्य रूप में विद्यमान एक धर्म है। जैसे **चन्द्र इव मुखं यस्याः** (चन्द्रमा की तरह सुन्दर मुख वाली) में चन्द्र उपमान है, मुख उपमेय है और दोनों में विद्यमान सुन्दरता सादृश्य अर्थात् समानता है। यही उपमा है। सामान्य का अर्थ- समानानां भावः अर्थात् दोनों में विद्यमान समानता को लिया गया है। इस सूत्र में प्रथमान्तपद **उपमानानि** है, इससे निर्दिष्ट की उपसर्जनसंज्ञा होगी।

घनश्यामः। बादल की तरह श्यामवर्ण वाला, श्रीकृष्ण। **घन इव श्यामः** लौकिक विग्रह और **घन सु+श्याम सु** अलौकिक विग्रह में **उपमानानि सामान्यवचनैः** से समास हुआ। यहाँ पर उपमान है **घन सु** और समान श्याम गुण वाला सुबन्त है **श्याम सु**। दोनों पद प्रथमान्त एकवचन के हैं, अतः समानाधिकरण है। **घन सु+श्याम सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लुक्, **घन+श्याम** में **उपमानानि** इस प्रथमान्तपद से निर्दिष्ट शब्द **घन** है, उसकी उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग हुआ। **घनश्याम** से प्रथमा का एकवचन सु आया और **रामः** की तरह **घनश्यामः** बन गया।

अन्य उदाहरण-

कर्पूरगौरः। कपूर की तरह श्वेतवर्ण वाला। **कर्पूर इव गौरः** लौकिक विग्रह और **कर्पूर सु+गौर सु** में **उपमानानि सामान्यवचनैः** से समास हुआ। यहाँ पर उपमान है **कर्पूर सु** और समान-गुण वाला सुबन्त है **गौर सु**। दोनों पद प्रथमान्त एकवचन के हैं, अतः समानाधिकरण है। **कर्पूर सु+गौर सु** की समाससंज्ञा और प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लुक्, **कर्पूर+गौर** में **उपमानानि** इस प्रथमान्तपद से निर्दिष्ट शब्द **कर्पूर** है, उसकी उपसर्जनसंज्ञा और पूर्व का पूर्व में ही प्रयोग हुआ। **कर्पूरगौर** से प्रथमा का एकवचन **सु** आया और **रामः** की तरह **कर्पूरगौरः** बन गया।

शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसङ्ख्यानम्। यह वार्तिक है। **शाकप्रियः पार्थिवः** आदि में उत्तरपद प्रियः का लोप करने पर ही शाकपार्थिवः बनता है। शाकपार्थिव आदि की सिद्धि के लिए उत्तरपद का लोप किया जाना चाहिए, जिससे अनेक शब्दों की सिद्धि होती है। इस वार्तिक के द्वारा किये गये कार्य को **उत्तरपदलोपी समास** कहते हैं। समास तो **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से ही हो जाता है। इस वार्तिक से केवल उत्तरपदलोप किया जाता है।

नञ्समासविधायकं विधिसूत्रम्

९४६. नञ् २।२।६॥

नञ् सुपा सह समस्यते।

नकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

९४७. नलोपो नञः ६।३।७३॥

नञो नस्य लोप उत्तरपदे। न ब्राह्मणः अब्राह्मणः।

नुडागमविधायकं विधिसूत्रम्

९४८. तस्मान्नुडचि ६।३।७४॥

लुप्तनकारान्नञ उत्तरपदस्याजादेर्नुडागमः स्यात्। अनश्वः।

नैकधेत्यादौ तु न-शब्देन सह सुप्सुपेति समासः।

....

शाकपार्थिवः। शाक को प्रिय मानने वाला राजा। **शाकप्रियः पार्थिवः** लौकिक विग्रह और **शाकप्रिय सु+पार्थिव सु** अलौकिक विग्रह में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समास हुआ। यहाँ पर विशेषणपद है **शाकप्रिय सु** और विशेष्यपद है **पार्थिव सु**। दोनों पद प्रथमान्त बहुवचन के हैं, अतः समानाधिकरण है। **शाकप्रिय सु+पार्थिव सु** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लुक्, **शाकप्रिय+पार्थिव** में **विशेषणम्** इस प्रथमान्तपद से निर्दिष्ट शब्द **शाकप्रिय** है, उसकी उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वपूर्वप्रयोग हुआ। **शाकप्रिय** में भी दो शब्दों का समास है- **शाक+प्रिय**। **शाकः प्रियः अस्ति यस्य स शाकप्रियः** ऐसा बहुव्रीहिसमास होता है। इस समास में उत्तरपद **प्रिय** है। उस उत्तरपद **प्रिय** का **शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसङ्ख्यानम्** से लोप हो गया- **शाकपार्थिव** बना। प्रथमा का एकवचन सु आया और रामः की तरह **शाकपार्थिवः** बन गया। इसी प्रकार **देवपूजको ब्राह्मणः** लौकिक विग्रह और **देवपूजक सु+ब्राह्मण सु** अलौकिक विग्रह में समास करके उत्तरपद **पूजक** का लोप, सु विभक्ति, अनुबन्धलोप और रुत्वविसर्ग होने पर **देवब्राह्मणः** बन जाता है।

९४६- **नञ्**। नञ् प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सह सुपा** से **सुपा** की अनुवृत्ति और **तत्पुरुषः** एवं **समासः** का अधिकार है।

नञ् इस अव्यय का समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है।

यह भी तत्पुरुषसमास ही है। **नञ्** यह प्रथमान्तपद है, अतः इसके द्वारा निर्दिष्ट **न** ही उपसर्जनसंज्ञक होता है।

९४७- **नलोपो नञः**। नलोपः प्रथमान्तं, नञः षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अलुगुत्तरपदे** से **उत्तरपदे** की अनुवृत्ति आती है।

उत्तरपद के परे होने पर नञ् के नकार का लोप होता है।

अब्राह्मणः। ब्राह्मण से भिन्न ब्राह्मण जैसा क्षत्रिय आदि। **न ब्राह्मणः** लौकिक विग्रह और **न+ब्राह्मण सु** अलौकिक विग्रह है। इसमें **नञ्** सूत्र से समास हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **न+ब्राह्मण** बना। न की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग। **नलोपो नञः**

गतिसमासविधायकं विधिसूत्रम्

९४९. कुगतिप्रादयः २।२।१८॥

एते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते। कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः।

....

से **ब्राह्मण** इस उत्तरपद के परे होने पर **न** के **नकार** का लोप हुआ, **अ+ब्राह्मण=अब्राह्मण** बना। सु आदि कार्य करके **अब्राह्मणः** सिद्ध हुआ।

९४८- **तस्मान्नुडचि**। तस्मात् पञ्चम्यन्तं, नुट् प्रथमान्तम्, अचि सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **नलोपो नञः** से **नञः** तथा **अलुगुत्तरपदे** से **उत्तरपदे** की अनुवृत्ति आती है।

जिसके नकार का लोप हो चुका है, ऐसे नञ् से परे अजादि उत्तरपद को नुट् का आगम होता है।

उकार और टकार की इत्संज्ञा होती है। टित् होने के कारण अच् के आदि में बैठेगा। यहाँ **तस्मात्** से **नलोपभूतात् नञः** यह अर्थ लिया जाता है।

अनश्वः। अश्व अर्थात् घोड़े से भिन्न घोड़े के सदृश गधा, खच्चर आदि। **न अश्वः** लौकिक विग्रह और **न+अश्व सु** अलौकिक विग्रह है। इसमें **नञ्** सूत्र से समास हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **न+अश्व** बना। **न** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग। **नलोपो नञः** से **अश्व** इस उत्तरपद के परे होने पर न के न् का लोप हुआ, **अ+अश्व** बना। **तस्मान्नुडचि** से अश्व को नुट् का आगम, अनुबन्धलोप, **अ न् अश्व** में वर्णसम्मेलन करके **अनश्व** बना। सु आदि कार्य करके **अनश्वः** सिद्ध हुआ।

नैकधेत्यादौ तु न-शब्देन सह सुप्सुपेति समासः। यदि **न अश्वः** में **नञ्** समास होने के कारण **नुट्** होकर **अनश्वः** बनता है तो **न एकधा** में नुट् होकर **अनेकधा** बनना चाहिए किन्तु **नैकधा** ऐसा प्रयोग देखा जाता है क्यों? इसका उत्तर यह है कि **न** और **नञ्** ये भिन्न-भिन्न निषेधार्थक अव्यय हैं। **नञ्** यह समासविधायक सूत्र **नञ्** के साथ में समास करता है, न के साथ में नहीं। **नलोपो नञः** भी **नञ्** के नकार का लोप करता है, **न** के नकार का नहीं। **तस्मान्नुडचि** भी **नञ्** से पर अजादि को **नुट्** का आगम करता है, **न** से परे नहीं। **नैकधा** में **न एकधा** का जो **न** है, वह **नञ्** का **न** नहीं है अपितु स्वतन्त्र **न** है। अतः **नञ्** से समास न हो सका साथ ही नकार का लोप और नुट् का आगम, ये दो भी नहीं हो सके। फलतः **सह सुपा** से समास करके **नैकधा** बन गया है। **न** के साथ समास के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं- **न चिरम्=नचिरम्, न एकः=नैकः** इत्यादि।

९४९- **कुगतिप्रादयः**। प्र आदौ येषान्ते प्रादयः, कुश्च गतिश्च प्रादयश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वः कुगतिप्रादयः। कुगतिप्रादयः प्रथमान्तमेकपदं सूत्रम्। **नित्यं क्रीडाजीविकयोः** से **नित्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **समासः, तत्पुरुषः, सुप्, सह सुपा, विभाषा** इत्यादि पदों की अनुवृत्ति और अधिकार है ही।

समर्थ सुबन्त शब्दों के साथ कु-शब्द, गतिसंज्ञक शब्द और प्र आदि का समास होता है।

इस सूत्र के द्वारा किये गये कार्य को **गतिसमास** या **प्रादिसमास** कहा जाता है। प्रायः अन्य सूत्रों के द्वारा किया गया समास वैकल्पिक होता है अर्थात् एक पक्ष में लौकिक विग्रह वाला वाक्य ही रह जाता है किन्तु इस सूत्र में **नित्यम्** की अनुवृत्ति लाकर नित्य से समास का विधान किया गया है।

गतिसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

९५०. ऊर्यादिच्विडाचश्च १।४।६१॥

ऊर्यादयश्च्व्यन्ता डाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः।

ऊरीकृत्य। शुक्लीकृत्य। पटपटाकृत्य। सुपुरुषः।

वार्तिकम्- **प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया।** प्रगत आचार्यः प्राचार्यः।

वार्तिकम्- **अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया।** अतिक्रान्तो मालामिति विग्रहे-

....

कुपुरुषः। निन्दित पुरुष। **कुत्सितः पुरुषः** लौकिक विग्रह और **कु+पुरुष सु** अलौकिक विग्रह है। कुत्सित अर्थ में **कु** है। ऐसी स्थिति में **कुगतिप्रादयः** से समास हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **कु+पुरुष** बना। पूरा सूत्र ही प्रथमान्त है, अतः उसके द्वारा निर्दिष्ट **कु** की उपसर्जनसंज्ञा और उसका पूर्वप्रयोग। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सुविभक्ति करके **कुपुरुषः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **कुत्सिता माता कुमाता, कुत्सिता दृष्टिः कुदृष्टिः** आदि भी समझना चाहिए। ये **कु-शब्द** के साथ समास का उदाहरण हैं। गतिसंज्ञक के साथ समास का उदाहरण आगे अग्रिम सूत्र से गतिसंज्ञा करके देखिये।

क्रिया के योग में **प्र** आदियों की **उपसर्गाः क्रियायोगे** से **उपसर्गसंज्ञा** होती है तो **गतिश्च** से ऐसी ही स्थिति में **गतिसंज्ञा** भी होती है। इस संज्ञा के लिए अन्य सूत्र भी पढ़े गये हैं। एतदर्थ ही अगला सूत्र है।

९५०- **ऊर्यादिच्विडाचश्च**। ऊरी आदिर्येषां ते ऊर्यादयः। ऊर्यादयश्च च्विश्च डाच् च तेषामितरेतरद्वन्द्व ऊर्यादिच्विडाचः। ऊर्यादिच्विडाचः प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **उपसर्गाः क्रियायोगे** से **क्रियायोगे** और **गतिश्च** से वचनविपरिणाम करके **गतयः** की अनुवृत्ति आती है।

ऊरी आदि गणपठित शब्द, च्वि-प्रत्ययान्त शब्द और डाच्-प्रत्ययान्त शब्द क्रिया के योग में गतिसंज्ञक होते हैं।

ऊर्यादिगण में ऊरी, उररी, तन्थी, ताली, आताली, बेताली, धूली, धूसी, शकला, श्रौषट्, वौषट्, बषट्, स्वाहा, स्वधा आदि अनेक शब्द पढ़े गये हैं। **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से कृ, भू, अस् धातुओं के योग में **च्वि** तथा **अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्** से **डाच्** प्रत्यय होता है। **प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्** इस परिभाषा के बल पर प्रत्यय के ग्रहण में प्रत्ययान्त का ग्रहण किया जाता है। ऊर्यादि-गणपठित च्विप्रत्ययान्त और डाच्-प्रत्ययान्त शब्दों की क्रिया के योग में इस सूत्र से गतिसंज्ञा की जाती है। गतिसंज्ञा का फल **कुगतिप्रादयः** से गतिसमास करना है। समास के बाद कृदन्तप्रकरण में हुए **क्त्वा** प्रत्यय के स्थान पर **ल्यप्** आदेश होता है।

ऊरीकृत्य। स्वीकार करके। **उरी कृत्वा** ऐसा अलौकिक विग्रह है। यहाँ कोई **सुप** विभक्ति नहीं है, क्योंकि दोनों पद अव्यय हैं। अतः अव्यय से आये हुए प्रत्ययों का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो गया है। **ऊरी** गणपाठ का शब्द है और **कृत्वा** यह कृ धातु से **क्त्वा** प्रत्यय करके बनाया गया है। **कृत्वा** के योग में **ऊरी** की **ऊर्यादिच्विडाचश्च** से **गतिसंज्ञा** करने के बाद **कुगतिप्रादयः** से समास हो जाता है। तदनन्तर प्रातिपदिकसंज्ञा होती है। सुप् न होने के कारण सुप् के लुक् का प्रसंग नहीं है। **ऊरीकृत्वा** बन गया है। अब

कृदन्त में **समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्** से **क्त्वा** के स्थान पर **ल्यप्** आदेश होकर, अनुबन्ध लोप होने के बाद **ऊरीकृत्य** बन जाता है। प्रथमानिर्दिष्ट **ऊरी** का ही पूर्वप्रयोग होता है। समास होने के बाद पुनः सु विभक्ति, उसका भी अव्ययत्वेन लुक् करके **ऊरीकृत्य** सिद्ध हो जाता है।

च्विप्रत्ययान्त का उदाहरण **शुक्लीकृत्य**। सफेद करके अर्थात् अशुक्ल को शुक्ल करके। **अशुक्लं शुक्लं कृत्वा** ऐसे में **शुक्ल अम्+कृत्वा** लौकिक विग्रह है। **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से कृ धातु के योग में **च्वि** प्रत्यय, तद्धितान्त होने के कारण प्रातिपदिकसंज्ञा होकर उसके अवयव अम् विभक्ति का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् होकर **शुक्ली+कृत्वा** बना है। **कृत्वा** अव्यय है। अतः अव्यय से आये हुए प्रत्ययों का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो गया है। **कृत्वा** के योग में **शुक्ली** की **ऊर्यादिच्विडाचश्च** से **गतिसंज्ञा** करने के बाद **कुगतिप्रादयः** से समास हो जाता है। तदनन्तर प्रातिपदिकसंज्ञा होती है। सुप् न होने के कारण सुप् के लुक् का प्रसंग नहीं है। **शुक्लीकृत्वा** बन गया है। अब कृदन्त में **समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्** से **क्त्वा** के स्थान पर **ल्यप्** आदेश होकर, अनुबन्धलोप होने के बाद **शुक्लीकृत्य** बन जाता है। प्रथमानिर्दिष्ट **शुक्ली** का पूर्वप्रयोग होता है। समास होने के बाद पुनः सु विभक्ति, उसका भी **अव्ययत्वेग** लुक् करके **शुक्लीकृत्य** सिद्ध हो जाता है।

डाच्-प्रत्ययान्त का उदाहरण **पटपटाकृत्य**। *पटत्* इस प्रकार का शब्द करके। **पटत् कृत्वा** ऐसे में **पटत्** से **अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्** सूत्र से **डाच्** प्रत्यय की विवक्षा में **डाचि बहुलं द्वे भवतः** से द्वित्व, फिर टाप्, टिलोप, पररूप आदि करके **पटपटा+कृत्वा** बना है। **कृत्वा** के योग में **पटपटा** की **ऊर्यादिच्विडाचश्च** से **गतिसंज्ञा** करने के बाद **कुगतिप्रादयः** से समास हो जाता है। तदनन्तर प्रातिपदिकसंज्ञा होती है। सुप् न होने के कारण सुप् के लुक् का प्रसंग नहीं है। **पटपटाकृत्वा** बन गया है। अब कृदन्त में **समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्** से **क्त्वा** के स्थान पर **ल्यप्** आदेश होकर, कृ धातु को तुक् का आगम, अनुबन्धलोप होने के बाद **पटपटाकृत्य** बन जाता है। प्रथमानिर्दिष्ट गतिसंज्ञक **पटपटा** का पूर्वप्रयोग होता है। समास होने के बाद पुनः सु विभक्ति, उसका भी अव्ययत्वेन लुक् करके **पटपटाकृत्य** सिद्ध हो जाता है।

प्रादिसमास का उदाहरण है- **सुपुरुषः**। सुन्दर पुरुष। **शोभनः पुरुषः** लौकिक विग्रह और **सु+पुरुष सु** अलौकिक विग्रह है। ऐसी स्थिति में **कुगतिप्रादयः** से प्रादि सु के साथ समर्थ सुबन्त **पुरुष+सु** का समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **सु+पुरुष** बना। पूरा सूत्र ही प्रथमान्त है, अतः उसके द्वारा निर्दिष्ट **सु** की उपसर्जनसंज्ञा और उसका पूर्वप्रयोग। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सुविभक्ति करके **सुपुरुषः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **शोभनो राजा सुराजा, दुष्टो जनो दुर्जनः, निन्दितं दिनं दुर्दिनम्, सुष्ठु भाषितं सुभाषितम्** आदि भी समझना चाहिए।

अब **कुगतिप्रादयः** इस सूत्र से किये गये प्रादिसमासों का ही अर्थविशेषों में समास करने के लिए विस्तार किया जा रहा है-

प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया। यह वार्तिक है। **गत आदि अर्थों में वर्तमान प्र आदि निपातों का प्रथमान्त सुबन्त के साथ नित्य समास होता है और वह तत्पुरुष समास कहलाता है।**

प्रादिसमास के क्षेत्र को फैलाने के लिए ही यह वार्तिक है।

प्राचार्यः। प्रगत आचार्यः। दूर गया हुआ आचार्य, श्रेष्ठ आचार्य, अपने विषय में

उपसर्जनसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

९५१. एकविभक्ति चापूर्वनिपाते १।२।४४॥

विग्रहे यन्नियतविभक्तिकं तदुपसर्जनसंज्ञं स्यान्न तु तस्य पूर्वनिपातः।

ह्रस्वविधायकं विधिसूत्रम्

९५२. गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य १।२।४८॥

उपसर्जनं यो गोशब्दस्त्रीप्रत्ययान्तञ्च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः स्यात्। अतिमालः।

वार्तिकम्- **अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया।** अवक्रुष्टः कोकिलया अवकोकिलः।

वार्तिकम्- **पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या।** परिग्लानोऽध्ययनाय पर्यध्ययनः।

वार्तिकम्- **निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या।** निष्क्रान्तः कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बिः।

....

दक्ष आचार्य या आचार्य का भी आचार्य। **प्रगतः आचार्यः** यह लौकिक विग्रह और **प्र आचार्य सु** अलौकिक विग्रह है। **प्र** इस प्रादि निपात का **आचार्य सु** इस सुबन्त के साथ **प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया** से समास हुआ, **प्र** की उपसर्जनसंज्ञा, उसी का पूर्वनिपात, सुप् का लुक् करके **प्र+आचार्य** बना। दीर्घ हुआ- **प्राचार्य**। सु, रुत्वविसर्ग करके **प्राचार्यः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **प्रगतः पितामहः=प्रपितामहः, विरुद्धः पक्षः= विपक्षः, प्रकृष्टो वीरः=प्रवीरः** आदि जगहों पर इस वार्तिक से समास किया जा सकता है।

अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया। यह वार्तिक है। **क्रान्त अर्थात् पार गया हुआ, लांघ चुका, पारगामी आदि अर्थों में वर्तमान अति आदि निपातों का द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है और उसे तत्पुरुष समास कहा जाता है।**

९५१. एकविभक्ति चापूर्वनिपाते। एका (नियता) विभक्तिर्यस्य तत् एकविभक्ति। **समासे** और **उपसर्जनम्** की अनुवृत्ति आती है।

विग्रह में जो नियत विभक्ति वाला है, उसकी उपसर्जन संज्ञा होती है किन्तु उसका पूर्वनिपात नहीं होता।

अतिक्रान्तः मालाम्, **अतिक्रान्तेन मालाम्, अतिक्रान्ताय मालाम्, अतिक्रान्तात् मालाम्, अतिक्रान्तस्य मालाम्** आदि विग्रह करने पर **मालाम्** में द्वितीया ही विभक्ति बनी हुई है किन्तु **अतिक्रान्त** शब्द में विभक्ति बदल रही है। अतः **माला+अम्** नियत अर्थात् निश्चित विभक्ति वाला है। **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** के अनुसार **अति** की उपसर्जनसंज्ञा और उसी का पूर्वनिपात होता है तो फिर **माला अम्** इस नियत विभक्ति वाले की उपसर्जनसंज्ञा करने के लिए आचार्य ने **एकविभक्ति चापूर्वनिपाते** इस सूत्र को बनाकर यह बताया कि **विग्रह में जो नियत विभक्ति वाला है, उसी की उपसर्जन संज्ञा होती है और उसका पूर्वनिपात नहीं किया जाता।** अब प्रश्न यह उठता है कि उपसर्जन संज्ञा तो पूर्वप्रयोग के लिए होता है। यदि पूर्वप्रयोग नहीं करना है तो संज्ञा का क्या प्रयोजन? उत्तर यह है कि ऐसी स्थिति में उपसर्जनसंज्ञा का प्रयोजन अन्य ही होगा। जैसे कि अग्रिमसूत्र **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** से ह्रस्व करना।

९५२- **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य।** गौश्च स्त्री च तयोरितरेतरद्वन्द्वो गोस्त्रियौ, तयोर्गोस्त्रियोः।

गोस्त्रियोः षष्ठ्यन्तम्, उपसर्जनस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** से **प्रातिपदिकस्य** और **ह्रस्वः** की अनुवृत्ति आती है।

उपसर्जनसंज्ञक गोशब्द और उपसर्जनसंज्ञक स्त्रीलिङ्ग प्रातिपदिक को ह्रस्व होता है।

स्त्री-प्रत्यय से **स्त्रियाम्** सूत्र के अधिकार में किये जाने वाले टाप्, डाप्, चाप्, ङीष्, ङीन् आदि प्रत्यय लिये जाते हैं।

अतिमालः। माला का अतिक्रमण करने वाला, सुगन्ध से माला आदि को मात दे चुका कोई पदार्थ। **मालाम् अतिक्रान्तः** यह लौकिक विग्रह और **माला अम् अति** अलौकिक विग्रह है। **अति** इस प्रादि निपात का **माला अम्** इस सुबन्त के साथ **अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **माला अति** बनने के बाद **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से **अति** की उपसर्जनसंज्ञा होकर पूर्वप्रयोग हुआ, फिर ह्रस्व करने के लिए **एकविभक्ति चापूर्वनिपाते** से **माला** की भी उपसर्जनसंज्ञा हुइ और **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** से उपसर्जन **माला** को ह्रस्व होकर **अतिमाल** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **अतिमालः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **अतिक्रान्तो मानुषम् अतिमानुषः, अतिक्रान्तः अर्थम् अत्यर्थः** आदि जगहों पर इस वार्तिक से समास किया जा सकता है।

अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया। यह भी वार्तिक है। **क्रुष्ट (कूजित, आहूत) आदि अर्थों में वर्तमान अव आदि निपातों का तृतीयान्त सुबन्त के साथ नित्य समास होता है और वह तत्पुरुष समास कहलाता है।**

अवकोकिलः। कोयली से कूजित प्रदेश आदि। **अवक्रुष्टः कोकिलया** लौकिक विग्रह और **कोकिला टा अव** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर **अव** यह निपात **क्रुष्ट** अर्थ में विद्यमान है, अतः **कोकिला टा** इस सुबन्त के साथ में **अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया** से समास हुआ। **अव+कोकिला टा** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अव कोकिला** बना। **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से **अव** की उपसर्जनसंज्ञा होकर पूर्वप्रयोग हुआ, फिर ह्रस्व करने के लिए **एकविभक्ति चापूर्वनिपाते** से **कोकिला** की उपसर्जनसंज्ञा हुई और उसका पूर्वनिपात नहीं हुआ। **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** से उपसर्जन **कोकिला** को ह्रस्व होकर **अवकोकिल** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **अवकोकिलः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **नियुक्तो मुनिना निमुनिः, संगतम् अर्थेन समर्थम्** आदि जगहों पर इस वार्तिक से समास किया जा सकता है।

पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या। यह वार्तिक है। **ग्लान (खिन्न, दुःखी, थका हुआ) आदि अर्थों में वर्तमान परि आदि निपातों का चतुर्थ्यन्त सुबन्त के साथ नित्य से समास होता है और वह तत्पुरुष समास कहलाता है।**

पर्यध्ययनः। अध्ययन से थका हुआ, घबराया हुआ। **परिग्लानः अध्ययनाय** लौकिक विग्रह और **अध्ययन ङे परि** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर **परि** यह निपात **ग्लान** अर्थ में विद्यमान है, अतः **अध्ययन टा** इस सुबन्त के साथ में **पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या** से समास हुआ। **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से **परि** की उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वनिपात **परि+अध्ययन टा** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके यण् करने पर **पर्यध्ययन** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **पर्यध्ययनः** सिद्ध हुआ।

निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या। यह भी वार्तिक है। **क्रान्त (निकला हुआ, पार**

उपपदसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

९५३. तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ३।१।९२॥

सप्तम्यन्ते पदे कर्मणीत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं यत् कुम्भादि, तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञं स्यात्।

उपपदसमासविधायकं विधिसूत्रम्

९५४. उपपदमतिङ् २।२।१९॥

उपपदं सुबन्तं समर्थेन नित्यं समस्यते। अतिङन्तश्चायं समासः। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः। अतिङ् किम्? मा भवान् भूत्। **माङि लुङ्** इति सप्तमीनिर्देशान्माङुपपदम्।

परिभाषा- **गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः।**

व्याघ्री। अश्वक्रीती। कच्छपीत्यादि।

....

किया हुआ) आदि अर्थों में वर्तमान निर् आदि निपातों का पञ्चम्यन्त सुबन्त के साथ नित्य से समास होता है और वह तत्पुरुष समास कहलाता है।

निष्कौशाम्बिः। कौशाम्बी नगरी से निकला हुआ। **निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः** लौकिक विग्रह और **कौशाम्बी ङसि निर्** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर **निर्** यह निपात **क्रान्त** अर्थ में विद्यमान है, अतः **कौशाम्बी ङसि** इस सुबन्त के साथ में **निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या** से समास हुआ। **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** से **निर्** की उपसर्जनसंज्ञा, उसका पूर्वनिपात करके **निर् कौशाम्बी ङसि** प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **निर्+कौशाम्बी** बना। **कौशाम्बी** की **एकविभक्ति चापूर्वनिपाते** से उपसर्जनसंज्ञा हुई और उसका फल **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** से उपसर्जन **कौशाम्बी** को ह्रस्व होकर **निर्+कौशाम्बि** बना। **रेफ** का **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से विसर्ग और उसके स्थान पर **इदुदुपधस्य चाप्रत्ययः** से **षकार** आदेश होकर **निष्कौशाम्बि** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **निष्कौशाम्बिः** सिद्ध हुआ।

९५३- तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्। तत्र सप्तम्यन्तम्, उपपदं प्रथमान्तं, सप्तमीस्थं प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। अष्टाध्यायी में **धातोः** के वाद यह सूत्र आता है।

धातोः सूत्र के अधिकार के अन्तर्गत कर्मण्यण् आदि सूत्रों में सप्तमी विभक्ति द्वारा निर्दिष्ट कुम्भ आदि तद्वाचक पद की उपपदसंज्ञा होती है।

तात्पर्य यह है कि **कर्मण्यण्** आदि सूत्रों में **कर्मणि** आदि सप्तम्यन्त पद आते हैं। उसमें **कुम्भ** आदि वाच्य रूप से रहता है। पद में अर्थ वाच्य रूप से रहता है और अर्थ में पद वाचक रूप में रहता है। इस लिए उस अर्थ का वाचक पद **कुम्भ** आदि **कुम्भं करोतीति कुम्भकारः** इत्यादि उदाहरण में आते हैं। उनकी इससे उपपदसंज्ञा होती है।

उपपदसंज्ञा का प्रयोग कृदन्त, समास और तद्धित में होता है। जैसे **कुम्भं करोति** में **कर्मण्यण्** इस सूत्र के **कर्मणि** इस सप्तम्यन्त के द्वारा निर्दिष्ट पद है कुम्भं (द्वितीयान्त), उसकी उपपदसंज्ञा हुई।

९५४- उपपदमतिङ्। उपपदं प्रथमान्तम्, अतिङ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में

सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे से **सुप्** की और **नित्यं क्रीडाजीविकयोः** से **नित्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **समर्थः**, **तत्पुरुषः** और **समासः** का अधिकार है ही।

उपपदसंज्ञक सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ नित्य से समास होता है।

अतिङ् यह पद तिङन्त के साथ समास को निषेध करने के लिए पठित है।

कुम्भकारः। घड़े को बनाने वाला। **कुम्भं करोति** लौकिक विग्रह और **कुम्भ अम् कृ** इस अलौकिक विग्रह में **कुम्भ** की **उपपदमतिङ्** से उपपदसंज्ञा करके **कर्मण्यण्** इस कृत्प्रकरण के सूत्र से अण् प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप, वृद्धि करके **कार** बन गया है। उसके बाद समास का लौकिक विग्रह **कुम्भस्य कारः** और अलौकिक विग्रह **कुम्भ ङस्+कार** में **उपपदमतिङ्** से समास, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कुम्भकार** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **कुम्भकारः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **सूत्रं करोतीति सूत्रकारः** भी बन जाता है।

अतिङ् किम्? मा भवान् भूत्। माङि लुङ् इति सप्तमीनिर्देशान्माङुपदम्। यहाँ पर ग्रन्थकार यह समझा रहे हैं कि **माङि लुङ्** यह जो माङ् के योग में लुङ् लकार का विधान करने वाला सूत्र है, इसमें **माङि** इस सप्तम्यन्त पद को देखते हुए इसके द्वारा निर्दिष्ट **माङ्** की **तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्** से **उपपदसंज्ञा** होने के कारण **मा भवान् भूत्** इस वाक्य में **मा** का कहीं **भूत्** इस तिङन्तपद के साथ समास न हो जाय, एतदर्थ इसे अतिङन्तसमास अर्थात् तिङ् के साथ समास का निषेध करना आवश्यक है। यहाँ उच्चारण के प्रचलन की दृष्टि से **मा भवान् भूत्** ऐसा उदाहरण दिया गया। वस्तुतः **माङ्** का सम्बन्ध क्रियापद **भूत्** के साथ में होने से **भवान् मा भूत्** ऐसा प्रयोग होना चाहिए और ऐसी स्थिति में **मा** का **भूत्** के साथ समास हो सकता था। अतः उसको रोकने के लिए सूत्र में **अतिङ्** पढ़ा गया है।

गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः। यह प्राचीन आचार्यों के द्वारा पठित परिभाषा है। **गति, कारक और उपपद इन का कृदन्तों के साथ समास करना हो तो कृदन्तों से सुप् विभक्ति लाने से पूर्व ही अर्थात् असुबन्त अवस्था में ही समास करना चाहिए।**

समास के प्रारम्भ में **सह सुपा** के द्वारा एक यह नियम बन गया था कि समस्यमान दोनों पद सुबन्त होंगे अर्थात् समर्थ सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ समास होगा। अब यहाँ **गति, कारक** और **उपपद** इन तीन का कृदन्त के साथ समास करते समय उक्त नियम शिथिल होगा और **असुबन्त कृदन्त** के साथ ही समास होगा। इसका प्रयोजन आगे स्पष्ट होगा।

व्याघ्री। विशेष रूप से सूँघने वाली। **विशेषेण जिघ्रति** लौकिक विग्रह है। यहाँ पर पहले **आ** उपसर्ग पूर्वक **घ्रा** धातु है, उससे **आतश्चोपसर्गे** के द्वारा **क** प्रत्यय होकर **आ+घ्र** बना। इससे विभक्ति आने के पूर्व ही **गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः** के नियम से **उपपदमतिङ्** से समास हो जाता है। इस तरह **आघ्र** बन जाता है। इसके बाद **गतिसंज्ञक वि** के साथ **कुगतिप्रादयः** से समास होकर **वि+आघ्र** बना। यण होकर **व्याघ्र** बना। अब इससे स्त्रीलिङ्ग का प्रत्यय आना है। **व्याघ्र** एक जाति है। अतः **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से जातिलक्षण **ङीष्** करके **व्याघ्री** बनाकर सु, हल्ङ्यादिलोप करके **व्याघ्री** बन जाता है। इस तरह यहाँ पर दो समास किये गये- **उपपदसमास** और

समासान्ताज्विधायकं विधिसूत्रम्

९५५. तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः ५।४।८६॥

सङ्ख्याव्ययादेरङ्गुल्यन्तस्य समासान्तोऽच् स्यात्।

द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य द्व्यङ्गुलम्। निर्गतमङ्गुलिभ्यो निरङ्गुलम्।

....

गतिसमास। दोनों समास असुवन्त की स्थिति में ही हुए। यदि यह परिभाषा न होती तो- **कृदन्तों से सुबुत्पत्ति** के बाद समास होता तो सुप् के आने के पहले **घ्र** इस कृदन्त से स्त्रीप्रत्यय करना पड़ता। ऐसी स्थिति में **घ्र** के जातिवाचक न होने के कारण **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से जातिलक्षण ङीष् न हो पाता। फलतः **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् करके **व्याघ्रा** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

अश्वक्रीती। घोड़े के द्वारा खरीदी गई वस्तु, भूमि आदि। **अश्वेन क्रीता** यह लौकिक विग्रह है। **क्री** धातु से **क्त** प्रत्यय होकर **क्रीत** बनता है। **गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः** के नियम से **क्रीत** शब्द से सुप् आने के पहले ही समास होता है। अतः **अश्व टा+क्रीत** में **कर्तृकरणे कृता बहुलम्** से समास हो गया। प्रातिपदिकसंज्ञा, तृतीया का लुक् आदि करके **अश्वक्रीत** बन गया। उससे स्त्रीत्व की विवक्षा में **क्रीतात् करणपूर्वात्** से ङीष् होकर **अश्वक्रीती** बनता है। यहाँ समास से पूर्व कृदन्त **क्रीत** शब्द से यदि सुप् लाते तो उससे पूर्व स्त्रीप्रत्यय अवश्य करना होता, क्योंकि लिङ्गबोधक प्रत्यय के आने के बाद ही संख्या-कारक आदि के बोधक सु आदि प्रत्यय किये जाते हैं। अतः स्त्रीत्व की विवक्षा में **क्रीत** शब्द से **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** हो जाता, **क्रीतात् करणपूर्वात्** से ङीष् नहीं, क्योंकि तब अकेला ही **क्रीत** रहता। अकेले में किसी से पूर्व या किसी से पर यह व्यवस्था नहीं बनती। फलतः **क्रीता** शब्द बन जाता और **अश्वेन क्रीता अश्वक्रीता** ऐसा अनिष्ट प्रयोग सिद्ध होता।

कच्छपी। कच्छ से पीने वाली। **कच्छेन पिबति** लौकिक विग्रह है। यहाँ पर **कच्छ टा+ पा**(पा पाने धातु) में **सुपि स्थः** से **क** प्रत्यय होकर **प** बना है। **प** यह कृदन्त है। **गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः** के नियम से **प** इस कृदन्त के साथ सुप् के आने के पहले ही **उपपदमतिङ्** से समास हो जाता है। समास के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **कच्छप** बन जाता है। अब इससे स्त्रीलिङ्ग का प्रत्यय आना है। **कच्छप** एक जाति है। अतः **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से जातिलक्षण **ङीष्** करके **कच्छपी** बना। सु, हल्ङ्यादिलोप करके **कच्छपी** बन जाता है। यदि यह परिभाषा न होती तो- **कृदन्तों से सुबुत्पत्ति** के बाद समास होता और सुप् के आने के पहले **प** इस कृदन्त से स्त्रीप्रत्यय करना पड़ता। ऐसी स्थिति में **प** के जातिवाचक न होने के कारण **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से जातिलक्षण **ङीष्** न हो पाता। फलतः **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् करके **कच्छपा** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

९५५- तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः। सङ्ख्या च अव्ययं च तयोः समाहारद्वन्द्वः सङ्ख्याव्ययम्, सङ्ख्याव्ययम् आदि यस्य सः सङ्ख्याव्ययादिस्तस्य। तत्पुरुषस्य षष्ठ्यन्तम्, अङ्गुलेः षष्ठ्यन्तं, सङ्ख्याव्ययादेः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः** से **अच्** की अनुवृत्ति आती है। **समासान्ताः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

समासान्ताज्विधायकं विधिसूत्रम्

९५६. अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः ५।४।८७॥

एभ्यो रात्रेरच् स्याच्चात् सङ्ख्याव्ययादेः। अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम्।

पुँल्लिङ्गविधायकं नियमसूत्रम्

९५७. रात्राह्नाहाः पुंसि २।४।२९॥

एतदन्तौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ पुंस्येव।

अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रः। सर्वरात्रः। सङ्ख्यातरात्रः।

वार्तिकम्- **सङ्ख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्।** द्विरात्रम्। त्रिरात्रम्।

....

सङ्ख्यावाचक शब्द या अव्ययशब्द जिसके आदि में तथा अंगुलिशब्द जिसके अन्त में हो, ऐसे समाससंज्ञक तत्पुरुष समासान्त अच् प्रत्यय होता है।

द्व्यङ्गुलम्। दो अंगुल के बराबर नाप वाली लकड़ी आदि। **द्वे अङ्गुली प्रमाणम् अस्य** लौकिक विग्रह है। यहाँ पर **प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः** से **मात्रच्** प्रत्यय करने से पहले ही **द्वि औ अङ्गुलि औ** इस अलौकिक विग्रह में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से समास हो जाता है। प्रथमानिर्दिष्ट सङ्ख्यावाचक शब्द **द्वि औ** से **उपसर्जनसंज्ञा** करके उसका ही पूर्वनिपात, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **द्वि+अङ्गुलि** बना। यण् होकर **द्व्यङ्गुलि** बना। **तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः** से समासान्त **अच्** प्रत्यय होकर **अङ्गुलि** के इकार का **यस्येति च** से लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **द्व्यङ्गुल** बना। सु, अम् होकर **द्व्यङ्गुलम्** सिद्ध हुआ। इसी तरह **तिस्रः अङ्गुलयः प्रमाणमस्य** आदि विग्रह करके **त्र्यङ्गुलम्** आदि बनाये जा सकते हैं।

निरङ्गुलम्। निकल गई अंगुली से जो अंगुठी आदि। **निर्गतम् अङ्गुलिभ्यः** लौकिक विग्रह और **निर्+अङ्गुलि भ्यस्** अलौकिक विग्रह है। **निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्याः** इस वार्तिक से समास हो जाता है। प्रथमानिर्दिष्ट **निर्** इस निपात की **उपसर्जनसंज्ञा** करके उसका ही पूर्वनिपात, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **निर्+अङ्गुलि=निरङ्गुलि** बना। **तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः** से समासान्त **अच्** प्रत्यय होकर **अङ्गुलि** के इकार का **यस्येति च** से लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **निरङ्गुल** बना। सु, अम् होकर **निरङ्गुलम्** सिद्ध हुआ।

९५६- अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः। अहश्च सर्वश्च एकदेशश्च सङ्ख्यातश्च पुण्यश्च तेषां समाहारः- अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्यम्, तस्मात्। अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्यात् पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, रात्रेः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः** से **तत्पुरुषस्य, अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः** से **अच्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, समासान्ताः** का अधिकार आ ही रहा है।

अहन्, सर्व, एकदेशवाचक, सङ्ख्यात और पुण्य इन शब्दों से तथा चकारात् सङ्ख्यावाचक एवं अव्यय शब्दों से परे भी जो रात्रि शब्द, उससे समासान्त अच् प्रत्यय होता है।

इस सूत्र में पठित **अहन्** शब्द का उदाहरण द्वन्द्वसमास में मिलेगा।

९५७- रात्राह्नाहाः पुंसि। रात्रश्च अह्नश्च अहश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो रात्राह्नाहाः। रात्राह्नाहाः

प्रथमान्तं, पुंसि सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** से विभक्तिविपरिणाम करके **द्वन्द्वतत्पुरुषौ** की अनुवृत्ति आती है।

रात्र, अह्न और अहन् ये अन्त में हो ऐसे द्वन्द्व और तत्पुरुष समास पुँल्लिङ्ग ही हो जाता है।

अग्रिम सूत्र **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** से उत्तरपद के अनुसार ही लिङ्गविधान होने पर और **स नपुंसकम्** से नपुंसकलिङ्ग की प्राप्ति होने पर अपवाद रूप यह सूत्र पठित है।

अहोरात्रः। दिन-रात। **अहन् च रात्रिश्च, अनयोः समाहारः** लौकिक विग्रह है और **अहन् सु+रात्रि सु** अलौकिक विग्रह है। यहाँ **चार्थे द्वन्द्वः** से द्वन्द्वसमास होता है। यह प्रयोग पुँल्लिङ्ग के विधान हेतु यहाँ पर दर्शाया गया है। समास के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अहन्+रात्रि** बना। **रूपरात्रिरथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम्** से **अहन्** के नकार को रुत्व हुआ और रेफ के स्थान पर **हशि च** से उत्व होकर **अह+उ+रात्रि** बना। गुण होकर **अहोरात्रि** बना। **अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः** से समासान्त अच् प्रत्यय होकर **यस्येति च** से रात्रि के इकार के लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **अहोरात्र बना**। अब अग्रिम सूत्र **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** से उत्तरपद का ही लिङ्गविधान होने पर **स नपुंसकम्** से नपुंसकलिङ्ग की प्राप्ति हो रही थी। उसको भी बाधकर **रात्राह्नाहाः पुंसि** से पुँल्लिङ्ग हुआ। इससे सु, रुत्व, विसर्ग करके **अहोरात्रः** सिद्ध हुआ।

सर्वरात्रः। सारी रात। **सर्वा चासौ रात्रिः**, लौकिक विग्रह है और **सर्वा सु+रात्रि सु** अलौकिक विग्रह है। यहाँ **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समास होता है। समास के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सर्वा+रात्रि** बना। **सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः** से **सर्वा** को पुंवद्भाव होकर **सर्वरात्रि** बना। **अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः** से समासान्त अच् प्रत्यय होकर **यस्येति च** से रात्रि के इकार के लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **सर्वरात्र** बना। अब अग्रिम सूत्र **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** से उत्तरपद का ही लिङ्गविधान होने पर उसका बाधक **स नपुंसकम्** से नपुंसकलिङ्ग की प्राप्ति हो रही थी। उसको भी बाधकर **रात्राह्नाहाः पुंसि** से पुँल्लिङ्ग हुआ। इसके सु, रुत्व, विसर्ग करके **सर्वरात्रः** सिद्ध हुआ।

पूर्वरात्रः। रात का पहला भाग। **पूर्वं रात्रेः**, लौकिक विग्रह है और **पूर्व सु+रात्रि ङस्** अलौकिक विग्रह है। यहाँ **पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे** समास होता है। समास के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पूर्व की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग करके **पूर्व+रात्रि** बना। **अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः** से समासान्त अच् प्रत्यय होकर **यस्येति च** से रात्रि के इकार के लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **पूर्वरात्र बना**। अब अग्रिम सूत्र **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** से उत्तरपद का ही लिङ्गविधान होने पर उसका बाधक **स नपुंसकम्** से नपुंसकलिङ्ग की प्राप्ति हो रही थी। उसको भी बाधकर **रात्राह्नाहाः पुंसि** से पुँल्लिङ्ग हुआ। इसके सु, रुत्व, विसर्ग करके **पूर्वरात्रः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **उत्तरं रात्रेः**(रात्रि का दूसरा भाग) में भी यही प्रक्रिया करके पुँल्लिङ्ग का विधान किया जाता है जिससे **उत्तररात्रः** बन जाता है।

सङ्ख्यातरात्रः। गिनी गई रात। **सङ्ख्याता च चासौ रात्रिः** लौकिक विग्रह है और **सङ्ख्याता सु+रात्रि सु** अलौकिक विग्रह है। यहाँ **पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन** से समास होता है। समास के बाद उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वप्रयोग, प्रातिपदिकसंज्ञा,

टच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९५८. राजाहःसखिभ्यष्टच् ५।४।९१॥

एतदन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात्। परमराजः।

....

सुप् का लुक् करके **सङ्ख्याता+रात्रि** बना। **पुंवत् कर्मधारयजातीयदेशीयेषु** से पूर्वपद में पुंवद्भाव अर्थात् पुँल्लिङ्ग का विधान होने पर टाप् वाले आकार की निवृत्ति होकर **सङ्ख्यातरात्रि** बना। **अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः** से समासान्त अच् प्रत्यय होकर **यस्येति च** से रात्रि के इकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **सङ्ख्यातरात्र** बना। अब अग्रिम सूत्र **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** से उत्तरपद का ही लिङ्गविधान होने पर **स नपुंसकम्** से नपुंसकलिङ्ग की प्राप्ति हो रही थी। उसको भी बाधकर **रात्राह्नाहाः पुंसि** से पुँल्लिङ्ग हुआ। इसके बाद सु, रुत्व, विसर्ग करके **सङ्ख्यातरात्रः** सिद्ध हुआ।

सङ्ख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्। यह वार्तिक है। **यदि रात्र शब्द से सङ्ख्यावाचक शब्द पूर्व में हो तो उक्त सूत्र के द्वारा पुँल्लिङ्ग न होकर नपुंसकलिङ्ग हो जाता है।**

द्विरात्रम्। दो रातों का समूह। **द्वयो रात्र्योः समाहारः** लौकिक विग्रह और **द्वि ओस्+रात्रि ओस्** अलौकिक विग्रह में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से समाहार वाच्य में समास होकर विभक्ति का लुक्, समासान्त अच् प्रत्यय, भसंज्ञक इकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **द्विरात्र** बना है। **रात्राह्नाहाः पुंसि** से पुँल्लिङ्ग का विधान था किन्तु इस वार्तिक के द्वारा नपुंसक ही होना निश्चित हुआ। अतः सु के बाद अम् आदेश, पूर्वरूप होकर **द्विरात्रम्** बना। इसी तरह **त्रिरात्रम्** तीन रातों का समूह। **तिसृणां रात्रीणां समाहारः** लौकिक विग्रह और **त्रि आम्+ रात्रि आम्** अलौकिक विग्रह में उक्त प्रक्रिया करके **त्रिरात्रम्** बनता है।

९५८- राजाहःसखिभ्यष्टच्। राजा च अहश्च सखा च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो राजाहःसखायस्तेभ्यः। राजाहःसखिभ्यः पञ्चम्यन्तं, टच् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः** से विभक्तिविपरिणाम करके **तत्पुरुषात्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, समासान्ताः** का अधिकार पीछे से आ रहा है।

राजन्, अहन् और सखि अन्त में हो, ऐसे शब्दों से समास हो जाने के बाद समास के अन्त में टच् प्रत्यय होता है।

टकार और चकार इत्संज्ञक हैं, अकार शेष रहता है।

परमराजः। उत्तम या श्रेष्ठ राजा। **परमश्चासौ राजा** लौकिक विग्रह और **परम सु राजन् सु** अलौकिक विग्रह में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समास हुआ अर्थात् **परम सु+राजन् सु** की समाससंज्ञा हुई, उसके बाद प्रातिपदिकसंज्ञा हुई, सुप् का लुक् हुआ, प्रथमानिर्दिष्ट परम की उपसर्जनसंज्ञा और उसी का पूर्वप्रयोग **परमराजन्** बना। यह राजन् अन्त वाला समास है तो **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से **टच्** हुआ, अनुबन्धलोप होने के बाद **परमराजन् अ** बना। **परमराजन्** में अन् की **अचोऽन्त्यादि टि** से टिसंज्ञा करके **नस्तद्धिते** से टिसंज्ञक **अन्** का लोप हुआ तो **परमराज्+अ** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **परमराज** बना। सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **परमराजः** सिद्ध हुआ।

आकारान्तादेशविधायकं विधिसूत्रम्

९५९. आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः ६।३।४६॥

महत आकारोऽन्तादेशः स्यात् समानाधिकरणे उत्तरपदे जातीये च परे। महाराजः। **प्रकारवचने जातीयर्**। महाप्रकारो महाजातीयः।

....

दूसरा उदाहरण-

योगिराजः। योगियों में श्रेष्ठ। **योगिषु राजा** लौकिक विग्रह और **योगिन् सुप् राजन् सु** अलौकिक विग्रह में **सप्तमी शौण्डैः** से समास हुआ अर्थात् **योगिन् सुप्+राजन् सु** की समाससंज्ञा हुई, उसके बाद प्रातिपदिकसंज्ञा हुई, सुप् का लुक् हुआ, प्रथमानिर्दिष्ट **योगिन्** की उपसर्जनसंज्ञा और उसी का पूर्वप्रयोग करके **योगिन्** के **नकार** का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ तो **योगिराजन्** बना। यह राजन् अन्त वाला समास है तो **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से **टच्** हुआ, अनुबन्धलोप होने के बाद **योगिराजन् अ** बना। **योगिराजन्** में **अन्** की **अचोऽन्त्यादि टि** से टिसंज्ञा करके **नस्तद्धिते** से भसंज्ञक और टिसंज्ञक **अन्** का लोप हुआ तो **योगिराज्+अ** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **योगिराज** बना। सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **योगिराजः** सिद्ध हुआ।

९५९- **आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः**। समानाधिकरणं च जातीयश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः समानाधिकरणजातीयौ, तयोः समानाधिकरणजातीययोः। आत् प्रथमान्तं, महतः षष्ठ्यन्तं, समानाधिकरणजातीययोः सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अलुगुत्तरपदे** से **उत्तरपदे** की अनुवृत्ति है।

समानाधिकरण(समानविभक्ति वाला) पद उत्तर में हो या जातीयर् प्रत्यय परे हो तो महत् शब्द के अन्त्य वर्ण तकार के स्थान पर आकार अन्तादेश होता है।

महाराजः। महान् या श्रेष्ठ राजा। **महान् चासौ राजा** लौकिक विग्रह और **महत् सु राजन् सु** अलौकिक विग्रह में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समास हुआ अर्थात् **महत् सु+राजन् सु** की समाससंज्ञा हुई, उसके बाद प्रातिपदिकसंज्ञा हुई, सुप् का लुक् हुआ, प्रथमानिर्दिष्ट **महत्** की उपसर्जनसंज्ञा और उसी का पूर्वप्रयोग **महत् राजन्** बना। **आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः** से **महत्** के **तकार** के स्थान पर **आकार** आदेश होकर **मह+आ** में सवर्णदीर्घ होकर **महाराजन्**। यह **राजन् अन्त** वाला समास है तो **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से **टच्** हुआ, अनुबन्धलोप होने के बाद **महाराजन् अ** बना। **महाराजन्** में **अन्** की **अचोऽन्त्यादि टि** से **टिसंज्ञा** करके **नस्तद्धिते** से लोप हुआ तो **महाराज्+अ** बना। वर्णसम्मेलन हुआ- **महाराज** बना। **सु** विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **महाराजः** सिद्ध हुआ।

महाजातीयः। महत्त्व से युक्त। यह समास का उदाहरण नहीं है अपितु **जातीयर्** प्रत्यय के परे होने पर **आत्त्व** को दर्शाने के लिए यहाँ कथन किया गया है। **प्रकारवचने जातीयर्** यह **जातीयर्** प्रत्यय करने वाला सूत्र है। **महत्** शब्द से **जातीयर्** प्रत्यय होकर **महत्+जातीय** बना है। **आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः** से तकार के स्थान पर **आकार** आदेश होकर सवर्णदीर्घ करके **महाजातीय** बना। विभक्तिकार्य के बाद **महाजातीयः** सिद्ध हुआ।

आकारान्तादेशविधायकं विधिसूत्रम्

९६०. द्व्यष्टनः सङ्ख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः ६।३।४७॥

आत् स्यात्। द्वौ च दश च द्वादश। अष्टाविंशतिः।

त्रयादेशविधायकं विधिसूत्रम्

९६१. त्रेस्त्रयः ६।३।४८॥

त्रयोदश। त्रयोविंशतिः। त्रयस्त्रिंशत्।

....

९६०- **द्व्यष्टनः सङ्ख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः**। द्वि च अष्ट च द्व्यष्ट, तस्माद् द्व्यष्टनः। बहुव्रीहिश्च अशीतिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो बहुव्रीह्यशीती, तयोर्बहुव्रीह्यशीत्योः। न बहुव्रीह्यशीत्योः अबहुव्रीह्यशीत्योः। द्व्यष्टनः पञ्चम्यन्तं, सङ्ख्यायां सप्तम्यन्तम्, अबहुव्रीह्यशीत्योः सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः** से **आत्** तथा **अलुगुत्तरपदे** से **उत्तरपदे** की अनुवृत्ति आती है।

द्वि और अष्टन् शब्दों को आकार अन्तादेश होता है सङ्ख्यावाचक शब्द उत्तरपद में हो तो, किन्तु बहुव्रीहि समास और उत्तरपद के परे होने पर यह कार्य नहीं होता।

द्वादश। बारह। **द्वौ च दश च** लौकिक विग्रह और **द्वि औ दशन् जस्** अलौकिक विग्रह है। **चार्थे द्वन्द्वः** से द्वन्द्वसमास, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर अल्प अच् वाले **द्वि** का पूर्वप्रयोग हुआ। **द्वि+दशन्** में **द्व्यष्टनः सङ्ख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः** से **द्वि** के इकार के स्थान पर आकार आदेश होकर **द्वादशन्** बना। यह बहुवचनान्त ही होता है, अतः जस् आया। **ष्णान्ता षट्** से **द्वादशन्** की **षट्संज्ञा** होकर **षड्भ्यो लुक्** से जस् का लुक् करके **द्विद्वादशन्** बना। **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नकार का लोप करके **द्वादश** सिद्ध हुआ। इसी तरह **द्वाविंशतिः, द्वात्रिंशत्** आदि भी समझना चाहिए। यह द्वन्द्वसमास का उदाहरण है किन्तु आत्व को दर्शाने के लिए यहाँ पर पढ़ा गया।

अष्टाविंशतिः। अठ्ठाइस। **अष्ट च विंशतिश्च** लौकिक विग्रह और **द्वि औ विंशति सु** अलौकिक विग्रह है। **चार्थे द्वन्द्वः** से द्वन्द्वसमास, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर अल्प अच् वाले **अष्टन्** का पूर्वप्रयोग हुआ। **अष्टन्+विंशति** में **द्व्यष्टनः सङ्ख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः** से **अष्टन्** के नकार के स्थान पर आकार आदेश होकर सवर्णदीर्घ करने पर **अष्टाविंशति** बना। यह एकवचनान्त ही होता है, अतः सु आया। उसके स्थान पर रुत्वविसर्ग होने पर **अष्टाविंशतिः** सिद्ध हुआ।

९६१- **त्रेस्त्रयः**। त्रेः षष्ठ्यन्तं, त्रयः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **द्व्यष्टनः सङ्ख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः** से **सङ्ख्यायाम्** और **अबहुव्रीह्यशीत्योः** एवं **अलुगुत्तरपदे** से **उत्तरपदे** की अनुवृत्ति आती है।

त्रि-शब्द के स्थान पर त्रयस् आदेश होता है, संख्यावाचक शब्द उत्तरपद में रहते किन्तु यह कार्य बहुव्रीहिसमास एवं अशीति के परे रहते नहीं होता।

त्रयोदश। तेरह। **त्रयश्च दश च** लौकिक विग्रह और **त्रि जस् दशन् जस्** अलौकिक विग्रह है। **चार्थे द्वन्द्वः** से द्वन्द्वसमास, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर अल्प अच् वाले **त्रि** का पूर्वप्रयोग हुआ। **दशन्** इस संख्यावाचक शब्द के उत्तरपद में रहते हुए **त्रेस्त्रयः** से **त्रि** के स्थान पर **त्रयस्** आदेश होकर **त्रयस्+दश** बना। **त्रयस्** के सकार को रुत्व, उत्व, गुण होकर **त्रयोदशन्** बना। इससे बहुवचन में जस् आया और उसका **षड्भ्यो**

परवल्लिङ्गविधायकं विधिसूत्रम्

९६२. परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः २।४।२६॥

एतयोः परपदस्येव लिङ्गं स्यात्।

कुक्कुटमयूर्याविमे। मयूरीकुक्कुटाविमौ। अर्धपिप्पली।

वार्तिकम्- **द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः।**

पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पञ्चकपालः पुरोडाशः।

....

लुक् से लुक् हुआ और नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होकर **त्रयोदश** सिद्ध हुआ।

त्रयोविंशतिः। तेईस। **त्रयश्च विंशतिश्च** लौकिक विग्रह और **त्रि जस् विंशति सु** अलौकिक विग्रह है। पूर्वोक्त प्रक्रिया से समास करके **त्रेस्त्रयः** से **त्रयस्** आदेश करने पर **त्रयोविंशति** बन जाता है। **विंशत्याद्याः सदैकत्वे** अर्थात् **विंशति** आदि शब्द एकवचन में ही प्रयुक्त होते हैं, इस नियम के अनुसार **सु** के योजन से **त्रयोविंशतिः** बन जाता है।

त्रयस्त्रिंशत्। तैंतीस। **त्रयश्च त्रिंशत् च** लौकिक विग्रह और **त्रि जस् त्रिंशत् सु** अलौकिक विग्रह है। पूर्वोक्त प्रक्रिया से समास करके **त्रेस्त्रयः** से **त्रयस्** आदेश करने पर **त्रयस्+त्रिंशत्** बन जाता है। सकार को रुत्व करके विसर्ग हो जाता है, पुनः **विसर्जनीयस्य सः** से विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश होकर **त्रयस्त्रिंशत्** बन जाता है। **विंशत्याद्याः सदैकत्वे** अर्थात् **विंशति** आदि एकवचन में ही प्रयुक्त होते हैं, इस नियम के अनुसार **सु** के योजन एवं उसके **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्**... **हल्ङ्यादिलोप** करने से **त्रयस्त्रिंशत्** बन जाता है।

९६२- **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः**। परस्य इव परवत्। द्वन्द्वश्च तत्पुरुषश्च द्वन्द्वतत्पुरुषौ, तयोर्द्वन्द्वतत्पुरुषयोः। परवत् अव्ययं, लिङ्गं प्रथमान्तं, द्वन्द्वतत्पुरुषयोः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। यह सूत्र समास में लिङ्ग का निर्धारण करता है।

द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में पर के पद की तरह ही लिङ्ग होता है।

द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में सबसे अन्तिम पद का जो लिङ्ग हो, समास हो जाने के बाद उस समस्त शब्दसमुदाय का भी परवल्लिङ्ग अर्थात् वही लिङ्ग बने अर्थात् इन समासों में उत्तरपद का जो लिङ्ग, वही समास का लिङ्ग माना जाता है।

अर्धपिप्पली। पिप्पली का आधा। **अर्धं पिप्पल्याः** में **अर्धं नपुंसकम्** से समास होने के बाद यह संशय उपस्थित हुआ अर्ध इस नपुंसकलिङ्ग के अनुसार समास का लिङ्ग हो या पिप्पली इस स्त्रीलिङ्ग के अनुसार लिङ्ग हो तो **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** से परपद पिप्पली के समान स्त्रीलिङ्ग हुआ- **अर्धपिप्पली**। यह उदाहरण तत्पुरुष का है, द्वन्द्व का उदाहरण आगे बता रहे हैं-

कुक्कुटमयूर्यौ इमे। मुर्गा और मोरनी। **कुक्कुटश्च मयूरी च** लौकिक विग्रह और **कुक्कुट सु+मयूरी सु** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** से समास हुआ और प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक् करने के बाद अब यहाँ पर सन्देह हुआ कि **कुक्कुट** इस पुँल्लिङ्ग के अनुसार समस्त पद का लिङ्ग हो या **मयूरी** इस स्त्रीलिङ्ग के अनुसार समस्त पद का लिङ्ग हो? तो **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** से परवल्लिङ्ग अर्थात् **मयूरी** शब्द के समान स्त्रीलिङ्ग हुआ **कुक्कुटमयूर्यौ इमे**। इन्ही शब्दों को आगे पीछे करके अर्थात् विपरीत

समासविधायकं विधिसूत्रम्

९६३. प्राप्तापन्ने च द्वितीयया २।२।४।।

समस्येते। अकारश्चानयोरन्तादेशः। प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविकः। आपन्नजीविकः। अलं कुमार्यै अलंकुमारिः। अत एव ज्ञापकात् समासः। निष्कौशाम्बिः।

....

करके **मयूरी च कुक्कुटश्च** करके विग्रह करने पर पुँल्लिङ्ग **कुक्कुट** शब्द पर है अतः उपर्युक्त नियम से कुक्कुट शब्द की तरह समास में भी पुँल्लिङ्ग ही हुआ- **मयूरीकुक्कुटौ इमौ।**

द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः। यह वार्तिक है। **द्विगुसमास एवं प्राप्त, आपन्न और अलम् पूर्व वाले तत्पुरुष समास एवं गतिसमास में परवल्लिङ्गता का निषेध कहना चाहिए।**

पञ्चकपालः पुरोडाशः। पाँच पात्रों में तैयार किया हुआ पुरोडाश, हवनीय पदार्थ। **पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः** यह लौकिक विग्रह और **पञ्चन् सुप् कपाल सुप्** यह अलौकिक विग्रह है। इस विग्रह में **संस्कृतं भक्षाः** से तद्धितप्रत्यय की विवक्षा में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से समास करके उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वनिपात आदि होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अन्तर्वर्तिनी विभक्ति मानकर नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप करने के बाद **पञ्चकपाल** बना है। इस स्थिति में **संस्कृतं भक्षाः** सूत्र से **अण्** प्रत्यय होकर **द्विगोर्लुगनपत्ये** से लुक् हुआ तो **पञ्चकपाल** ही बना। अब **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** के अनुसार पर पद **कपाल** के अनुसार **नपुंसकलिङ्ग** ही होना चाहिए था किन्तु **द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः** से इसका निषेध हुआ। अतः अपने विशेष्य पद **पुरोडाशः** के अनुसार पुँल्लिङ्ग हुआ। सु, रुत्वविसर्ग होकर के **पञ्चकपालः** सिद्ध हुआ।

९६३- प्राप्तापन्ने च द्वितीयया। प्राप्तं च आपन्नं च तयोरितरेतरद्वन्द्वः प्राप्तापन्ने। प्राप्तापन्ने प्रथमान्तं, द्वितीयया तृतीयान्तम्, अ लुप्तप्रथमाकं पदं, त्रिपदं सूत्रम्। **समासः, सुप्, सह सुपा, तत्पुरुषः** ये पहले से अधिकृत हैं।

प्राप्त और आपन्न सुबन्त शब्दों का द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से तत्पुरुष समास होता है और समास के अन्त्य वर्ण के स्थान पर अ आदेश भी होता है।

यह सूत्र **द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः** का अपवाद है। यदि उस सूत्र से समास होता तो **प्राप्त** और **आपन्न** का पूर्वप्रयोग न हो पाता क्योंकि वहाँ पर प्रथमान्त पद **द्वितीया** है, अतः द्वितीयान्त का ही पूर्वप्रयोग होता किन्तु इससे समास होने पर **प्राप्त** और **आपन्न** ही प्रथमानिर्दिष्ट हो जाते हैं। फलतः इनका ही पूर्वप्रयोग हो जायेगा।

प्राप्तजीविकः। जीविका को प्राप्त कर चुका व्यक्ति। **प्राप्तः जीविकाम्** लौकिक विग्रह और **प्राप्त सु जीविका अम्** अलौकिक विग्रह है। **प्राप्तापन्ने च द्वितीयया** से समास, समाससूत्र में प्रथमान्त पद **प्राप्तापन्ने** है, इससे निर्दिष्ट **प्राप्त सु** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग होने पर फिर नियतविभक्ति होने के कारण **एकविभक्ति चापूर्वनिपाते** से

जीविका अम् की उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वनिपात का अभाव, प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **प्राप्तजीविका** बना है। उक्त सूत्र से ही **समासान्त वर्ण** के स्थान पर **अ** आदेश किया जाता है। अतः **आकार** के स्थान पर **अकार** आदेश होकर **प्राप्तजीविक** बना। यहाँ **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** के अनुसार परवल्लिङ्ग होने पर **जीविका** शब्द में स्त्रीलिङ्ग होने के कारण **प्राप्तजीविका** होना चाहिए था किन्तु **द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः** से निषेध हो जाने के कारण अपने विशेष्य पद के अनुसार पुँल्लिङ्ग ही हुआ। एकदेशविकृतन्यायेन **सु**, रुत्वविसर्ग आदि करके **प्राप्तजीविकः** सिद्ध हो जाता है।

आपन्नजीविकः। जीविका को प्राप्त कर चुका व्यक्ति। **आपन्नो जीविकाम्** लौकिक विग्रह और **आपन्न सु जीविका अम्** अलौकिक विग्रह है। **प्राप्तापन्ने च द्वितीयया** से समास, समाससूत्र में प्रथमान्त पद **प्राप्तापन्ने** है, इससे निर्दिष्ट **आपन्न सु** की उपसर्जनसंज्ञा और पूर्वप्रयोग होने पर फिर नियतविभक्ति होने के कारण **एकविभक्ति चापूर्वनिपाते** से **जीविका अम्** की उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वनिपात का अभाव, प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **आपन्नजीविका** बना है। उक्त सूत्र से ही **समासान्त वर्ण** के स्थान पर **अ** आदेश किया जाता है। अतः **आकार** के स्थान पर **अकार** आदेश होकर **आपन्नजीविक** बना। यहाँ पर भी **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** के अनुसार परवल्लिङ्ग होने पर **जीविका** शब्द में स्त्रीलिङ्ग होने के कारण **प्राप्तजीविका** होना चाहिए था किन्तु **द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः** से निषेध हो जाने के कारण अपने विशेष्य पद के अनुसार पुँल्लिङ्ग ही हुआ। एकदेशविकृतन्यायेन **सु**, रुत्वविसर्ग आदि करके **आपन्नजीविकः** सिद्ध हो जाता है।

अलङ्कुमारिः। कुमारी के लिए योग्य युवा, वर। **अलम् कुमार्यै** लौकिक विग्रह और **अलम् कुमारी ङे** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर तत्पुरुष समास होता है। समासविधायक सूत्र के विना समास कैसे होगा? इस प्रश्न पर कौमुदीकार लिखते हैं कि **द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः** इस वार्तिक में **अलं** के साथ परवल्लिङ्गता का निषेध किया गया है। यदि समास ही न होता तो परवल्लिङ्गता प्राप्त ही नहीं होती तो निषेध क्यों किया गया। वार्तिककार के निषेध से यह सिद्ध होता है कि **अलम्** के साथ तत्पुरुष समास की अनुमति है। इसी को ज्ञापन कहते हैं। **अलम् कुमारी ङे** में **ज्ञापकात्** तत्पुरुष समास हुआ, उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वनिपात, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** से पर के पद **कुमारी** की तरह **स्त्रीलिङ्ग** की प्राप्ति थी किन्तु **द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः** से उसका निषेध हुआ तो **पुरुषः** आदि विशेष्य पद के अनुसार ही इसका लिङ्ग बना अर्थात् पुँल्लिङ्ग ही हुआ। यहाँ पर **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** से **कुमारी** को ह्रस्व होता है। **अलम्** के मकार को अनुस्वार और परसवर्ण होकर **अलङ्कुमारि** शब्द बन जाता है। सु, रुत्वविसर्ग होकर **अलङ्कुमारिः**। **पञ्चकपालः, प्राप्तजीविकः, आपन्नजीविकः, अलङ्कुमारिः** ये उदाहारण **द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः** इस वार्तिक के हैं। गतिसमास में परवल्लिङ्गता के निषेध का उदाहरण है- **निष्कौशाम्बिः**। परवल्लिङ्गता होती तो समास के बाद इस शब्द को स्त्रीलिङ्ग ही होना चाहिए था किन्तु इस वार्तिक के कारण अपने विशेष्य पद के अनुसार ही इसका लिङ्ग हुआ।

उभयलिङ्गविधायकं विधिसूत्रम्

९६४. अर्धर्चाः पुंसि च २।४।३१॥

अर्धर्चादयः शब्दाः पुंसि क्लीबे च स्युः। अर्धर्चः, अर्धर्चम्।

एवं ध्वज-तीर्थ-शरीर-मण्डप-यूप-देहाङ्कुश-पात्र-सूत्रादयः।

वार्तिकम्- **सामान्ये नपुंसकम्।** मृदु पचति। प्रातः कमनीयम्।

इति तत्पुरुषः॥४०॥

....

९६४- अर्धर्चाः पुंसि च। अर्धर्चाः प्रथमान्तं, पुंसि सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अर्धं नपुंसकम्** से **नपुंसकम्** की अनुवृत्ति आती है। अर्धर्चादि गण है।

अर्धर्च आदि गण में पढ़े गये सभी शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों होते हैं।

जैसे **ऋचः अर्धम्** में समास करके समासान्त अच् प्रत्यय करके **अर्धर्च** बन जाता है और इस सूत्र से दोनों लिङ्गों का विधान होने से पुँल्लिङ्ग में **अर्धर्चः** और नपुंसकलिङ्ग में **अर्धर्चम्** ये दो रूप बन जाते हैं। इसी प्रकार **ध्वजः-ध्वजम्, तीर्थः-तीर्थम्, शरीरः-शरीरम्, मण्डपः-मण्डपम्, यूपः-यूपम्, देहः-देहम्, अङ्कुशः-अङ्कुशम्, पात्रः-पात्रम्, सूत्रः-सूत्रम्** आदि में भी समास हो या न हो उभयलिङ्ग अर्थात् दोनों लिङ्ग होते हैं।

सामान्ये नपुंसकम्। यह वार्तिक है, जहाँ किसी लिङ्ग विशेष का विधान अथवा अपेक्षा न हो, समास या असमास कहीं भी सामान्यतया नपुंसकलिङ्ग ही होता है।

जैसे **मृदु पचति** (कोमल पकाता है) में जिस पदार्थ का पाचन हो रहा है, उसका स्पष्टतया लिङ्ग का निर्देश नहीं है। अतः सामान्य मानकर इस वार्तिक से नपुंसकलिङ्ग का विधान हुआ। मृदु शब्द नपुंसकलिङ्ग बन गया- मृदु पचति। इसी तरह **प्रातः कमनीयम्** (प्रातः काल सुन्दर होता है) प्रातः यह अव्यय और कमनीय यह अनीयर् प्रत्ययान्त में भी सामान्य विवक्षा में नपुंसक हुआ है।

परीक्षा

१-	अव्ययीभाव-समास और तत्पुरुष-समास में आपने क्या अन्तर पाया?	५
२-	उपसर्जनसंज्ञा किसकी होती है? उदाहरण एवं सूत्र सहित समझाइये।	५
३-	द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी एवं सप्तमी के किन्हीं तीन-तीन प्रयोगों में समासप्रक्रिया दिखाइये।	२०
४-	कर्मधारयसमास के किन्हीं पाँच प्रयोगों में समासप्रक्रिया दिखाइये।	५
५-	**उपमानानि सामान्यवचनैः** की व्याख्या कीजिए।	५
६-	परवल्लिङ्ग क्या है? समझाइये।	५
७-	नञ् समास के पाँच उदाहरण सूत्र सहित दर्शाइये।	५

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का तत्पुरुषसमास पूर्ण हुआ।

अथ बहुव्रीहिः

बहुव्रीहिसमासाधिकारसूत्रम्

९६५. शेषो बहुव्रीहिः २।२।२३॥

अधिकारोऽयं प्राग्द्वन्द्वात्।

बहुव्रीहि-समासविधायकं विधिसूत्रम्

९६६. अनेकमन्यपदार्थे २।२।२४॥

अनेकं प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते, स बहुव्रीहिः।

श्रीधरमुखोल्लासिनी

समासप्रकरण में चौथे **बहुव्रीहिसमास** का आरम्भ करते हैं। इस समास में समास किये जाने वाले पदों से भिन्न अन्यपद का अर्थ प्रधान होता है, अतः इस समास को **अन्यपदार्थप्रधान-बहुव्रीहि-समास** कहा जाता है। अन्य पद का अर्थ प्रधान होने के कारण ही इस समास का लिङ्ग और वचन भी वही होता है जो अन्य पद का हुआ करता है। अन्यपदार्थप्रधान का उदाहरण देखिये- **पीतानि अम्बराणि सन्ति यस्य** ऐसे लौकिक विग्रह और **पीत जस्+अम्बर जस्** ऐसे अलौकिक विग्रह में समास करके **पीताम्बर** बन जाता है। अब यहाँ न तो पीत का अर्थ प्रधान है और न अम्बर का अर्थ प्रधान है अपितु **पीले वस्त्र वाले भगवान् विष्णु** यह अर्थ प्रधान हो जाता है। अतः **विष्णु** इस अन्य पद के लिङ्ग के अनुसार ही समास किये गये **पीताम्बर** शब्द के लिङ्ग एवं वचन होते हैं। इस समास में समस्यमान पद प्रायः प्रथमान्त ही होते हैं और केवल **यं, येन, यस्मै, यस्मात्, यस्य, यस्मिन्** आदि लगाकर तत्तद् विभक्तियों का बोध किया जाता है।

९६५- शेषो बहुव्रीहिः। शेषः प्रथमान्तं, बहुव्रीहिः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। इस सूत्र में **प्राक्कडारात्समासः** से **समासः** की अनुवृत्ति आती है।

द्वन्द्व समास से पहले का समास बहुव्रीहिसंज्ञक होता है।

यह अधिकारसूत्र है और इसका अधिकार **चार्थे द्वन्द्वः** तक रहता है। इसी सूत्र के अधिकार में होने वाले समास को **बहुव्रीहिसमास** कहा जाता है। **उक्तादन्यः शेषः** जो कहने के बाद बचे, उसे शेष कहते हैं। **अव्ययीभाव, तत्पुरुष** के बाद जो **शेष** है किन्तु द्वन्द्व नहीं वह **बहुव्रीहि** है।

९६६- अनेकमन्यपदार्थे। न एकम् अनेकम्। अन्यच्च तत्पदमन्यपदम्, तस्यार्थोऽन्यपदार्थस्तस्मिन्। अनेकं प्रथमान्तम्, अन्यपदार्थे सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में ऊपर से **समासः**, **विभाषा** और **बहुव्रीहिः** का अधिकार है।

पूर्वप्रयोगविधायकं विधिसूत्रम्

९६७. सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ २।२।३५॥

सप्तम्यन्तं विशेषणञ्च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात्।

अत एव ज्ञापनकाद् व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः।

अलुग्विधायकं विधिसूत्रम्

९६८. हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम् ६।३।९॥

हलन्ताददन्ताच्च सप्तम्या अलुक्।

कण्ठेकालः। प्राप्तमुदकं यं स प्राप्तोदको ग्रामः।

ऊढरथोऽनड्वान्। उपहृतपशू रुद्रः। उद्धृतौदना स्थाली।

पीताम्बरो हरिः। वीरपुरुषो ग्रामः।

वार्तिकम्- **प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः।** प्रपतितः पर्णः प्रपर्णः।

वार्तिकम्- **नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः।** अविद्यमानः पुत्रः अपुत्रः।

....

अन्यपद के अर्थ में विद्यमान एक से अधिक प्रथमान्त पद परस्पर में विकल्प से समास को प्राप्त हों और उसे बहुव्रीहि समास कहा जाय।

बहुव्रीहि भी समास की एक संज्ञा है। समास होने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, सु आदि विभक्ति की उत्पत्ति आदि पूर्ववत् ही होंगे।

९६७- सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ। सप्तमी च विशेषणञ्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः सप्तमीविशेषणे। सप्तमीविशेषणे प्रथमान्तं, बहुव्रीहौ सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **उपसर्जनं पूर्वम्** से **पूर्वम्** की अनुवृत्ति आती है।

बहुव्रीहिसमास में सप्तम्यन्त शब्द तथा विशेषण शब्द का पूर्व में प्रयोग होता है।

अतः समस्यमान शब्दों में जो शब्द विशेषण बना हुआ है उसका और जो शब्द सप्तमी विभक्ति से युक्त है, उसका पूर्व में प्रयोग करना चाहिए। **सप्तमी** का पूर्वप्रयोग इस सूत्र से हुआ है, इससे यह ज्ञात होता है कि कभी-कभी बहुव्रीहिसमास में भिन्न-भिन्न विभक्ति वाले पदों का भी समास होता है, केवल समानाधिकरण अर्थात् समान विभक्ति की ही आवश्यकता नहीं।

९६८- हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्। हल् च अत् च तयोः समाहारद्वन्द्वो हलत्, हलत् अन्ते यस्य स हलदन्तः, तस्माद् हलदन्तात्। हलदन्तात् पञ्चम्यन्तं, सप्तम्याः षष्ठ्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अलुगुत्तरपदे** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है।

संज्ञा गम्यमान होने पर उत्तरपद के परे रहते हलन्त और ह्रस्व अकारान्त शब्दों से परे सप्तमी विभक्ति का लुक् नहीं होता।

बहुव्रीहिसमास में समस्यमान दोनों शब्द प्रायः **प्रथमान्त** ही होते हैं किन्तु उपर्युक्त दो सूत्रों में **बहुव्रीहि** के साथ **सप्तमी** शब्द का उच्चारण करके सप्तमी के अलुक्

....

के विधान से दोनों पदों में भिन्न-भिन्न विभक्ति होने पर भी कहीं कहीं समास हो जाता है, यह ज्ञापन होता है। अत एव **कण्ठेकालः** में **कण्ठे कालो यस्य** इस विग्रह में पूर्व पद **कण्ठ ङि** सप्तम्यन्त है और उत्तरपद **काल सु** प्रथमान्त है। इस तरह समानाधिकरण न होकर व्यधिकरण हुआ। ऐसी स्थिति में व्यधिकरण में भी उक्त ज्ञापक के द्वारा समास हुआ।

कण्ठेकालः। कण्ठ में काल या नीलवर्ण है जिसका वह (नीलकण्ठ शंकर जी या नीलकण्ठ पक्षी। **कण्ठे कालो यस्य** लौकिक विग्रह और **कण्ठ ङि+काल सु** अलौकिक विग्रह है। इस भिन्नविभक्ति अर्थात् व्यधिकरण में उक्त ज्ञापक के द्वारा समास हुआ। सप्तम्यन्त पद **कण्ठ ङि** का **सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ** से पूर्वप्रयोग हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् प्राप्त था किन्तु **हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्** से सप्तमी का अलुक् अर्थात् लुक् का निषेध हुआ। साथ ही उत्तरपद में विद्यमान सु के लुक् मे कोई बाधा भी नहीं हुई। इस तरह **कण्ठेकाल** बना। स्वादिकार्य करके **कण्ठेकालः** सिद्ध हो गया।

प्राप्तोदकः। प्राप्त हो गया है जल जिसको। अन्यपदार्थ ग्राम के अर्थ में **प्राप्तम् उदकं यं(ग्रामम्)** लौकिक विग्रह और **प्राप्त सु+उदक सु** इस अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लोप करके **प्राप्त+उदक** बना। गुण करने पर **प्राप्तोदक** बना। इसका अन्यपदार्थ **ग्राम** होने के कारण तत्सदृश ही पुँल्लिङ्ग बनता है। **एकदेशविकृतन्यायेन** प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **प्राप्तोदकः** सिद्ध हो जाता है। आगे **ग्रामः** को देखते हुए **सु** को **रुत्व**, उसको **हशि च** से **उत्व** हो जाने के बाद **प्राप्तोदक+उ ग्रामः** बना। **आद्गुणः** से गुण करके **प्राप्तोदको ग्रामः** सिद्ध हुआ।

ऊढरथः। ढो चुका है रथ जिसने(घोड़े ने)। अन्य पदार्थ घोड़े के अर्थ में **ऊढः रथः येन(हयेन)** लौकिक विग्रह और **ऊढ सु+रथ सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लोप करके **ऊढ+रथ** बना। इसका अन्यपदार्थ **हय** अर्थात् घोड़ा होने के कारण तत्सदृश ही पुँल्लिङ्ग बनता है। **एकदेशविकृतन्यायेन** प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **ऊढरथः** सिद्ध हो जाता है। आगे **हयः** को देखते हुए **सु** को **रु**, उसको **हशि च** से **उत्व** और **आद्गुणः** से गुण करके **ऊढरथो हयः** बन गया।

उपहृतपशुः। जिसको पशु भेंट चढ़ाया गया है वह **शम्भु**। अन्यपदार्थ **शम्भु** के अर्थ में **उपहृतः पशुः यस्मै(शम्भवे)** लौकिक विग्रह और **उपहृत सु+पशु सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लोप करके **उपहृत+पशु** बना। इसका अन्यपदार्थ शम्भु होने के कारण तत्सदृश ही पुँल्लिङ्ग बनता है। **एकदेशविकृतन्यायेन** प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **उपहृतपशुः शम्भुः** सिद्ध हो जाता है।

इसी तरह- **दत्तद्रव्यः**। जिसको द्रव्य दिया गया है वह व्यक्ति। अन्यपदार्थ **जन** के अर्थ में **दत्तो द्रव्यो यस्मै(जनाय)** लौकिक विग्रह और **दत्त सु+द्रव्य सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों **सु** का लोप करके **दत्त+द्रव्य** बना। इसका अन्यपदार्थ **जन** होने के कारण तत्सदृश ही पुँल्लिङ्ग बनता है। **एकदेशविकृतन्यायेन** प्रातिपदिक मानकर **सु** विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **दत्तद्रव्यो जनः** सिद्ध हो जाता है।

उद्धृतौदना। निकाल लिया गया है भात जिससे वह **बटलोई**। अन्यपदार्थ **स्थाली** के अर्थ में **उद्धृतः ओदनः यस्याः(स्थाल्याः)** लौकिक विग्रह और **उद्धृत सु+ओदन सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लोप करके **उद्धृत+ओदन** बनने के बाद वृद्धि होकर **उद्धृतौदन** बना। इसका अन्यपदार्थ **स्थाली** होने के कारण तत्सदृश ही स्त्रीलिङ्ग बनता है। अतः टाप् होकर **उद्धृतौदना** एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मान कर सु विभक्ति, अम् आदेश, पूर्वरूप करके **उद्धृतौदना स्थाली** सिद्ध हो जाता है।

पीताम्बरः। पीले वस्त्र हैं जिसके वह **विष्णु**। अन्यपदार्थ **विष्णु** के अर्थ में **पीतम् अम्बरम् (अस्ति) यस्य (विष्णोः)** लौकिक विग्रह और **पीत सु+अम्बर सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लोप करके **पीत+अम्बर** बना। **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ करके **पीताम्बर** बना। इसका अन्यपदार्थ **विष्णु** होने के कारण तत्सदृश ही पुँल्लिङ्ग बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, विष्णु के परे रहने पर सु को रुत्व, उत्व, गुण करके **पीताम्बरो विष्णुः** सिद्ध हो जाता है। इसका विग्रह बहुवचन में भी किया जाता है- **पीतानि अम्बराणि यस्य। पीत जस्+अम्बर जस्=पीताम्बरः।**

वीरपुरुषः। वीर पुरुष हैं जिस (ग्राम) में। अन्यपदार्थ **ग्राम** के अर्थ में **वीराः पुरुषाः सन्ति यस्मिन्(ग्रामे)** लौकिक विग्रह और **वीर जस्+पुरुष जस्** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों **जस्** विभक्तियों का लोप करके **वीरपुरुष** बना। इसके अन्यपदार्थ **ग्राम** होने के कारण तत्सदृश ही पुँल्लिङ्ग बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, **ग्राम** के परे रहने पर सु को रुत्व, उत्व, गुण करके **वीरपुरुषो ग्रामः** सिद्ध हो जाता है।

इसी तरह- **समृद्धपुरुषाणि**। समृद्ध पुरुष हैं जिन नगरों में, वे नगर। अन्यपदार्थ **नगर** के अर्थ में **समृद्धाः पुरुषाः सन्ति येषु(नगरेषु)** लौकिक विग्रह और **समृद्ध जस्+पुरुष जस्** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों जस् का लोप करके **समृद्धपुरुष** बना। इसका अन्यपदार्थ **नगर** होने के कारण तत्सदृश ही पुँल्लिङ्ग बनता है साथ **नगराणि** बहुवचन होने के कारण **समृद्धपुरुष** से भी बहुवचन होना चाहिए। अतः एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर जस् विभक्ति के आने के बाद **ज्ञानानि** की तरह **समृद्धपुरुषाणि नगराणि** सिद्ध हो जाता है।

प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः। यह वार्तिक है। **प्र आदियों से परे जो धातुज अर्थात् कृदन्त शब्द, तदन्त का समर्थ सुबन्त के साथ अन्यपदार्थ में समास होता है और उत्तरपद का विकल्प से लोप भी होता है।**

धातुज का अर्थ है **धातु से उत्पन्न कृदन्त शब्द**। इस वार्तिक से समास में तीन शब्दों की अपेक्षा होती है। वैसे भी समास में पूर्वपद और उत्तरपद तो रहता ही है किन्तु इस वार्तिक के लिए पूर्वपद भी ऐसा होना चाहिए, जिसका दूसरे पद के साथ में समास हो चुका हो अर्थात् प्र आदि के साथ **कुगतिप्रादयः** से प्रादि समास हो चुका हो और उसके बाद बहुव्रीहिसमास के लिए अन्य एक पद के साथ अन्वित हो रहा हो।

प्रपतितः पर्णः(यस्मात् सः) प्रपर्णः। जिसके पत्ते अच्छी तरह से झड़ चुके हैं,

पुंवद्भावविधायकं विधिसूत्रम्

९६९. स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणी-प्रियादिषु ६।३।३४॥

उक्तपुंस्कादनूङ् ऊङोऽभावोऽस्यामिति बहुव्रीहिः। निपातनात् पञ्चम्या अलुक् षष्ठ्याश्च लुक्। तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तपुंस्कं तस्मात्पर ऊङोऽभावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य पुंवाचकस्येव रूपं स्यात् समानाधिकरणे स्त्रीलिङ्गे उत्तरपदे न तु पूरण्यां प्रियादौ च परतः। **गोस्त्रियोरिति** ह्रस्वः। चित्रगुः। रूपवद्भार्यः।

अनूङ् किम्? वामोरूभार्यः। पूरण्यां तु-

....

ऐसा वृक्ष। पहले **प्रकर्षेण पतितः** विग्रह में **प्र** का **पतित** के साथ **कुगतिप्रादयः** से समास होकर **प्रपतितः** बना। **प्रपतित** में **प्र** पूर्वपद और **पतित** उत्तरपद है। समास होने के बाद तो **प्रपतित** एक ही पद हुआ किन्तु शास्त्रीय प्रक्रिया में आवश्यकता के अनुसार **प्रपतित** जैसे स्थलों पर पूर्वपद और उत्तरपद के रूप में कार्य होता है। अब **प्रपतितः पर्णो यस्मात्** अथवा **प्रपतितानि पर्णानि यस्मात्** ऐसे लौकिक विग्रह और **प्रपतित जस् पर्ण जस्** अलौकिक विग्रह है। **अनेकमन्यपदार्थे** से समास, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **प्रपतित पर्ण** बना। अब **प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः** से पूर्वपद **प्रपतित** के उत्तर पद का लोप विकल्प से हुआ तो **प्र+पर्ण, प्रपर्ण** बना। स्वादिकार्य से **प्रपर्णः** सिद्ध हुआ। उक्त वार्तिक से लोप न होने के पक्ष में **प्रपतितपर्णः** भी बनता है। इसी तरह **विगतो धवो यस्याः सा विधवा, निर्गता जना यस्मात् स निर्जनो प्रदेशः, निर्गता गुणा यस्मात् स निर्गुणः, निर्गतं फलं यस्मात् तत् निष्फलं कर्म, निर्गतोऽर्थो यस्मात् तत् निरर्थकम्** आदि अनेक शब्द बनाये जा सकते हैं।

नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः। यह वार्तिक है। **नञ् से परे जो अस्त्यर्थ अर्थात् विद्यमान अर्थ वाला शब्द, तदन्त का समर्थ सुबन्त के साथ अन्यपदार्थ में समास होता होता है और उत्तरपद का विकल्प से लोप भी होता है।**

यह भी समास किये हुए पूर्वपद में विद्यमान उत्तरपद का ही विकल्प से लोप करता है किन्तु वह उत्तरपद **अस्ति** का जो अर्थ है विद्यमानता आदि, उस अर्थ वाला हो और वह शब्द **नञ्** के साथ समास को प्राप्त हो चुका हो।

अविद्यमानः पुत्रः अपुत्रः। जिसका पुत्र नहीं है वह पुत्रहीन पुरुष। पहले **न विद्यमानः** में **नञ् तत्पुरुष** समास करने के बाद **अविद्यमान** बना है। उसके बाद **अविद्यमानः पुत्रो यस्य** लौकिक विग्रह और **अविद्यमान सु पुत्र सुः** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर **अनेकमन्यपदार्थे** से समास, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अविद्यमान पुत्र** बना। पूर्वपद **अविद्यमान** में जो उत्तरपद **विद्यमान**, उसका **नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः** से लोप हुआ तो **अपुत्र** बना। इससे स्वादिकार्य करने पर **अपुत्रः** बना। लोप न होने के पक्ष में **अविद्यमानपुत्रः** भी बनेगा। इसी तरह **अविद्यमानो नाथो यस्य स अनाथः, अविद्यमानः क्रोधो यस्य स अक्रोधः** आदि अनेक इस वार्तिक के द्वारा सिद्ध किये जा सकते हैं।

९६९- स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु। पुंसि इव पुंवत्। भाषितः पुमान् येन स भाषितपुंस्कः, बहुव्रीहिः। तस्मात् भाषितपुंस्काद्। न ऊङ्-ऊङोऽभावः अनूङ्। भाषितपुंस्काद् अनूङ् यस्यां सा भाषितपुंस्कादनूङ्। निपातनात् पञ्चमी की अलुक् और षष्ठी का लुक् हुआ है। अत **भाषितपुंस्कादनूङ्** यह लुप्तषष्ठीक पद है। स्त्रियाः षष्ठ्यन्तं, पुंवद् अव्ययपदं, भाषितपुंस्कादनूङ् लुप्तषष्ठ्यन्तं, समानाधिकरणे सप्तम्यन्तं, स्त्रियाम् सप्तम्यन्तं, पूरणीप्रियादिषु सप्तम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अलुगुत्तरपदे** से **उत्तरपदे** की अनुवृत्ति आती है। यह सूत्र स्त्रीलिङ्ग को पुँल्लिङ्ग करने का कार्य करता है। इस सूत्र के अर्थ को समझने के लिए पहले शब्दार्थ समझना आवश्यक है।

पुंवत् का अर्थ है- **पुँल्लिङ्ग के समान हो जाय** अर्थात् पुँल्लिङ्ग की तरह रूप बन जाय।

भाषितपुंस्क क्या है? प्रत्येक शब्द का अपने अर्थ का बोधन कराने के लिए कोई न कोई निमित्त अवश्य ही होता है। उस निमित्त को **प्रवृत्तिनिमित्त** कहते हैं। जैसे **घट** शब्द में घड़े को बोध कराने का निमित्त **घटत्व** है। यदि उसमें **घटत्व** नहीं मिलता तो उसे कोई **घट** नहीं कहता अर्थात् जिस विशेषता के कारण कोई शब्द अपने अर्थ को जनाता है, उस शब्द की वह विशेषता ही उसका **प्रवृत्तिनिमित्त** होता है। जो शब्द जिस प्रवृत्तिनिमित्त को लेकर पुँल्लिङ्ग में प्रवृत्त होता है वह उसी प्रवृत्तिनिमित्त को लेकर अन्य लिङ्ग में भी प्रवृत्त हो तो उसे **भाषितपुंस्क** कहते हैं।

अनूङ्- ऐसे भाषितपुंस्क शब्द से परे ऊङ्-प्रत्यय न हुआ हो।

पूरणीप्रियादि- मट्, डट् आदि पूरणार्थक प्रत्यय हैं और प्रिय आदि शब्द हैं।

सूत्रार्थ- **प्रवृत्तिनिमित्त समान होते हुए जो उक्तपुंस्क शब्द उससे परे ऊङ् प्रत्यय जहाँ न किया गया हो ऐसे स्त्रीवाचक शब्द का पुंवाचक शब्द के समान रूप होता है, समान विभक्तिक स्त्रीलिंगशब्द उत्तरपद परे होने पर, किन्तु पूरणार्थक प्रत्ययान्त शब्दों तथा प्रिया आदि शब्दों के परे रहते नहीं होता।**

इस तरह यह सूत्र पुंवद्भाव करता है।

चित्रगुः। चित्र वर्ण वाली गौओं वाला व्यक्ति। **चित्राः गावः यस्य** लौकिक विग्रह और **चित्रा जस्+गो जस्** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों जसों का लोप करके **चित्रा+गो** बना। गायों का वाचक **गो-शब्द** स्त्रीलिङ्ग है और **चित्रा** भी स्त्रीलिङ्ग है, दोनों में समान ही विभक्ति लगी थी, इसलिए समानविभक्तिक भी हैं। ऊङ्-प्रत्यय हुआ नहीं है और पूरणी अर्थ के वाचक प्रत्यय वाले शब्द और प्रियादि शब्द भी परे नहीं हैं। **चित्रा** शब्द पुँल्लिङ्ग में भी बनता है, जैसे **चित्रः, चित्रौ** आदि। इसलिए **भाषिकपुंस्क** है। अतः **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** से **गो** शब्द के परे होने पर **चित्रा** को पुंवत् (पुंवद्भाव) हुआ अर्थात् पुँल्लिङ्ग की तरह **चित्र** के रूप में परिवर्तन हुआ।, **चित्र+गो** बना। इसके बाद **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** से **गो** के **ओकार** को ह्रस्व हो गया। स्मरण रहे कि **ओकार** को ह्रस्व **उकार** होता है। अतः **गो** से **गु** बना। **चित्रगु** बन गया। **चित्रा** और **गो** दोनों शब्द स्त्रीलिङ्ग के थे किन्तु समास करने से समासशक्ति के बल पर समस्त शब्द पुँल्लिङ्ग में बदल गया। अब एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **चित्रगुः** सिद्ध हुआ।

रूपवद्भार्यः। रूपवती स्त्री वाला पुरुष। **रूपवती भार्या अस्ति यस्य** लौकिक विग्रह और **रूपवती सु+भार्या सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लोप करके **रूपवती+भार्या** बना। **रूपवती** स्त्रीलिङ्ग है और **भार्या** भी स्त्रीलिङ्ग है, दोनों में समान ही विभक्ति लगी थी, इसलिए समानविभक्तिक भी हैं। ऊङ्-प्रत्यय नहीं हुआ है और पूरणी और प्रियादि भी परे नहीं हैं। रूपवती यह शब्द पुँल्लिङ्ग में रूपवान् ऐसा बनता है, इसलिए **भाषिकपुंस्क** भी है। अतः **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** से भार्या शब्द के परे होने पर रूपवती को **पुंवत्** (पुंवद्भाव) हुआ। अतः पुँल्लिङ्ग की तरह **रूपवत्** हुआ। **रूपवत्+भार्या** बना। भार्या के भकार के परे होने पर **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर दकार बन गया, **रूपवद्+भार्या** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **रूपवद्भार्या** बना। इसके बाद **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** से **भार्या** में जो स्त्रीप्रत्यय टाप् वाला आकार है, उसको ह्रस्व हो गया- **रूपवद्भार्य** बना। रूपवती और भार्या दोनों शब्द स्त्रीलिङ्ग के थे किन्तु समास करने से समासशक्ति के बल पर समस्त शब्द पुँल्लिङ्ग में बदल गया। **रूपवती भार्या है जिस पुरुष की, वह पुरुष**। अब एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **रूपवद्भार्यः** सिद्ध हुआ।

अन्य उदाहरण देखें-

दीर्घजङ्घः। लम्बी जांघ वाला पुरुष। **दीर्घे जङ्घे स्तः यस्य(पुरुषस्य)** लौकिक विग्रह और **दीर्घा औ+ जङ्घा औ** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों **औ** का लोप करके **दीर्घा+जङ्घा** बना। **दीर्घा** स्त्रीलिङ्ग है और **जङ्घा** भी स्त्रीलिङ्ग है, दोनों में समान ही विभक्ति लगी थी, इसलिए समानविभक्तिक भी है। ऊङ्-प्रत्यय नहीं हुआ है और पूरणी और प्रियादि भी परे नहीं है। **दीर्घा** यह शब्द पुँल्लिङ्ग में **दीर्घः** बन चुका है, इसलिए भाषितपुंस्क है। अतः **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** से **जङ्घा** शब्द के परे होने पर **दीर्घा** को पुंवत्(पुंवद्भाव) हुआ अर्थात् पुँल्लिङ्ग की तरह **दीर्घ** के रूप में परिवर्तित हुआ, दीर्घ+जङ्घा बना। इसके बाद **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** से **जङ्घा** में जो स्त्रीप्रत्यय टाप् वाला आकार है, उसको ह्रस्व हो गया- **दीर्घजङ्घ** बना। दीर्घा और जङ्घा दोनों शब्द स्त्रीलिङ्ग के थे किन्तु समास करने से समासशक्ति के बल पर समस्त शब्द पुँल्लिङ्ग में बदल गया। **लम्बी जंघाएँ हैं जिस पुरुष की, वह पुरुष**। अब एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **दीर्घजङ्घः** सिद्ध हुआ।

सुन्दरभार्यः। सुन्दरी स्त्री वाला पुरुष। **सुन्दरी भार्या अस्ति यस्य** लौकिक विग्रह और **सुन्दरी सु+भार्या सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लोप करके **सुन्दरी+भार्या** बना। **सुन्दरी** स्त्रीलिङ्ग है और **भार्या** भी स्त्रीलिङ्ग है, दोनों में समान ही विभक्ति लगी थी इसलिए समानविभक्तिक भी हैं। ऊङ्-प्रत्यय नहीं हुआ है और पूरणी और प्रियादि परे भी नहीं हैं। **सुन्दरी** यह शब्द पुँल्लिङ्ग में **सुन्दरः** बनता है इसलिए भाषिकपुंस्क है। अतः **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** से भार्या शब्द के परे होने पर **सुन्दरी** को पुंवत्(पुंवद्भाव) हुआ। पुँल्लिङ्ग की तरह **सुन्दर** होकर **सुन्दर+भार्या** बना। इसके बाद **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** से **भार्या** में जो स्त्रीप्रत्यय टाप् वाला आकार है, उसको

अप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९७०. अप् पूरणीप्रमाण्योः ५।४।११६।।

पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत् स्त्रीलिङ्गं, तदन्तात् प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहेरप् स्यात्।

कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ता कल्याणीपञ्चमा रात्रयः। स्त्री प्रमाणी यस्य स्य स्त्रीप्रमाणः। अप्रियादिषु किम्? कल्याणीप्रिय इत्यादि।

....

ह्रस्व हो गया- **सुन्दरभार्य** बना। सुन्दरी और भार्या दोनों शब्द स्त्रीलिङ्ग के थे किन्तु समास करने से समासशक्ति के बल पर समस्त शब्द पुँल्लिङ्ग में बदल गया। **सुन्दरी भार्या है जिस पुरुष की, वह पुरुष।** अब एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **सुन्दरभार्यः** सिद्ध हुआ।

अनूङ् किम्? वामोरूभार्यः। यदि **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** में **अनूङ्** न कहते तो क्या होता? उत्तर देते हैं- **वामोरूभार्यः।** यहाँ **वाम** शब्द पूर्वक ऊरु शब्द से **संहितशफलक्षणवामादेश्च** से ऊङ् प्रत्यय हुआ है। उसके बाद **वामोरूः भार्या यस्य** में समास होकर दीर्घ ऊकार वाला **वामोरूभार्यः** बनता है। इसमें भी उक्त सूत्र से पुंवद्भाव होकर ह्रस्व उकार वाला **वामोरुभार्यः** ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता।

अब पूरणी प्रत्ययान्त समानाधिकरण उत्तर पद के परे रहने पर पुंवद्भाव नहीं होता है तो क्या होता है? इस पर अग्रिम सूत्र का अवतरण करते हैं।

९७०- अप् पूरणीप्रमाण्योः। पूरणी च प्रमाणी च तयोरितरेतरद्वन्द्वः पूरणीप्रमाण्यौ, तयोः। अप् प्रथमान्त, पूरणीप्रमाण्योः षष्ठ्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से **बहुव्रीहौ** की अनुवृत्ति आती है।

पूरणार्थकप्रत्ययान्त जो स्त्रीलिङ्ग, तदन्त बहुव्रीहि से तथा प्रमाणीशब्दान्त बहुव्रीहि से समासान्त अप् प्रत्यय होता है।

एकस्य पूरणः प्रथमः, द्वयोः पूरणो द्वितीयः, त्रयाणां पूरणः तृतीयः, चतुर्णां पूरणश्चतुर्थः। संख्यावाचक शब्दों से तद्धित पूरणार्थक प्रत्यय होकर जैसे हिन्दी में भी एक से पहला, दो से दूसरा, तीन से तीसरा आदि के रूप में प्रयुक्त होते हैं, उसी तरह संस्कृत में भी पूरणप्रत्यान्त **प्रथमः, द्वितीयः, तृतीयः, चतुर्थः, पञ्चमः** आदि शब्द बनते हैं। ऐसे शब्दों के साथ में समास होने पर पुंवद्भाव न होकर समासान्त अप् प्रत्यय इस सूत्र के द्वारा किया जाता है।

कल्याणीपञ्चमा रात्रयः। जिन रातों में पांचवीं रात कल्याणदायिनी है, ऐसी सभी रातें। **कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणाम्** लौकिक विग्रह और **कल्याणी सु पञ्चमी सु** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर **पञ्चन्** इस संख्यावाचक शब्द से पूरणार्थक प्रत्यय होकर स्त्रीलिङ्ग में **पञ्चमी** बना है। **अनेकमन्यपदार्थे** से समास होकर, सुप् के लुक् होने के बाद **कल्याणी पञ्चमी** हुआ है। यहाँ पर समानाधिकरण स्त्रीलिङ्ग के उत्तरपद परे होने पर भी **अपूरणीप्रियादिषु** से निषेध होने के कारण **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** से पुंवद्भाव नहीं हुआ किन्तु **अप् पूरणीप्रमाण्योः** से **समासान्त**

षच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्।

९७१. बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् ५।४।११३॥

स्वाङ्गवाचिसक्थ्यक्ष्यन्ताद् बहुव्रीहेः षच् स्यात्। दीर्घसक्थः। जलजाक्षी। स्वाङ्गात् किम्? दीर्घसक्थि शकटम्। स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः। अक्ष्णोऽदर्शनादिति वक्ष्यमाणोऽच्।

....

अप् प्रत्यय होकर **कल्याणीपञ्चमी अ** बना। **यस्येति च** से ईकार का लोप, वर्णसम्मेलन होकर **कल्याणीपञ्चम** बना। अब **अजाद्यतष्टाप्** से टाप्, अनुबन्धलोप, दीर्घ होकर **कल्याणीपञ्चमा** बना। जस् विभक्ति का रूप **कल्याणीपञ्चमाः** सिद्ध हुआ।

स्त्रीप्रमाणः। स्त्री जिसके लिए प्रमाण हो, वह पुरुष। **स्त्री प्रमाणी यस्य सः** लौकिक विग्रह और **स्त्री सु प्रमाणी सु** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर **अनेकमन्यपदार्थे** से समास होकर, सुप् के लुक् होने के बाद **स्त्रीप्रमाणी** बना है। यहाँ पर **स्त्री** शब्द भाषितपुंस्क नहीं है। अतः पुंवद्भाव प्राप्त नहीं है। अप् करने वाले सूत्र ने प्रमाणी शब्द के परे भी अप् प्रत्यय किया है। अतः उसी का उदाहरण है। अतः **अप् पूरणीप्रमाण्योः** से **समासान्त अच्** प्रत्यय होकर **स्त्रीप्रमाणी अ** बना। **यस्येति च** से ईकार का लोप, वर्णसम्मेलन होकर **स्त्रीप्रमाण** बना। सु विभक्ति का रूप **स्त्रीप्रमाणः(पुरुषः)** सिद्ध हुआ।

अप्रियादिषु किम्? कल्याणीप्रियः। यह पूर्वसूत्र का प्रत्युदाहरण है। वहाँ पर **अपूरणीप्रियादिषु** लिखा है। वहाँ पूरणार्थक प्रत्ययान्त शब्द तथा प्रियादि शब्द के परे होने पर पुंवद्भाव का निषेध किया गया है तो प्रियादि के परे होने पर निषेध करने का फल क्या है? उसके उत्तर में कहा गया **कल्याणीप्रियः**। यदि **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** में **अप्रियादिषु** यह नहीं कहते तो **प्रिय आदि** के परे होने पर भी पूर्व में विद्यमान स्त्रीलिङ्गी शब्द में पुंवद्भाव होकर **कल्याणप्रियः** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता। क्योंकि उस सूत्र के प्रवृत्त होने में अन्य जो निमित्त आवश्यक हैं, वे सब यहाँ पर मिलते हैं।

९७१- **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्**। सक्थि च अक्षि च तयोरितरेतरद्वन्द्वः सक्थ्यक्षिणी, तयोः सक्थ्यक्ष्णोः। बहुव्रीहौ सप्तम्यन्तं, सक्थ्यणोः षष्ठ्यन्तं, स्वाङ्गात् पञ्चम्यन्तं, षच् प्रथमान्तम् अनेकपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समासान्ताः** का अधिकार आ रहा है।

स्वाङ्गवाची सक्थि या अक्षि शब्द जिसके अन्त में हो, ऐसे बहुव्रीहि से समासान्त षच् प्रत्यय होता है।

षकार का **षः प्रत्ययस्य** से और चकार का **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा हो जाने के बाद लोप जाता है। षकार की इत्संज्ञा होने से शब्द **षित्** हो जाता है। **षित्** का फल स्त्रीलिङ्ग में षित् को आधार बनाकर **षिद्गौरादिभ्यश्च** से ङीष् प्रत्यय होना है। **चित्** का फल स्वरप्रकरण में **अन्तोदात्त** है। इस सूत्र में आया हुआ **स्वाङ्ग** शब्द पारिभाषिक है जिसे **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** इस सूत्र की व्याख्या में बताया जायेगा। सामान्यतः समझना चाहिए कि **अस्थि** और **अक्षि** शब्द शरीर के अंगवाची ही हों, अन्य के वाचक न हों।

ष-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९७२. द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः ५।४।११५॥

आभ्यां मूर्ध्नः षः स्याद् बहुव्रीहौ। द्विमूर्धः। त्रिमूर्धः।

....

दीर्घसक्थः। दीर्घ ऊरुओं वाला पुरुष। **दीर्घे सक्थिनी स्तः यस्य(पुरुषस्य)** लौकिक विग्रह और **दीर्घ औ+सक्थि औ** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों औ का लोप करके **दीर्घ+सक्थि** बना। **सक्थि** शरीर का अंग है। अतः **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से समासान्त षच् प्रत्यय हुआ। षकार की **षः प्रत्ययस्य** से इत्संज्ञा और चकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होकर लोप हो जाने पर **अ** बचा। **यस्येति च** से **सक्थि** के इकार के लोप हो जाने के बाद **दीर्घसक्थ्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **दीर्घसक्थ** बना। दीर्घ और सक्थि दोनों शब्द नपुंसकलिङ्ग के थे किन्तु समास करने से समासशक्ति के बल पर समस्त शब्द पुँल्लिङ्ग में बदल गया। अब एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **दीर्घसक्थः** सिद्ध हुआ।

जलजाक्षी। कमल की तरह सुन्दर आँख वाली स्त्री। **जलजे इव अक्षिणी यस्याः** लौकिक विग्रह और **जलजा औ+अक्षि औ** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से उसी तरह समास आदि सभी कार्य करने के बाद **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से **षच्** करके **यस्येति च** से **अक्षि** के इकार का लोप करके **जलजाक्ष** शब्द बन जाता है। इससे स्त्रीत्व की विवक्षा में षिदन्त मानकर **षिद्गौरादिभ्यश्च** से **ङीष्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, पुनः **यस्येति च** से **जलजाक्ष** के अन्त्य अकार को लोप करके **जलजाक्षी** बनता है। प्रातिपदिक मानकर सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **गौरी** की तरह **जलजाक्षी** बन जाता है।

स्वाङ्गात् किम्? दीर्घसक्थि शकटम्। स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः। यदि **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** में **स्वाङ्गात्** न कहते तो **दीर्घसक्थि शकटम्** (लम्बे फड़ वाली गाड़ी, छकड़ा) और **स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः**(मोटी ग्रन्थियों वाली बाँस की छड़ी) यहाँ पर भी **षच्** होता और **दीर्घसक्थम्** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता। **स्थूलाक्षा** यह **वेणुयष्टिः** का विशेषण है। अतः स्त्रीत्व की विवक्षा में षित्त्वात् **षिद्गौरादिभ्यः** से **ङीष्** होकर के **स्थूलाक्षी** ऐसा अनिष्ट रूप बनता। अतः उक्त सूत्र में **स्वाङ्गात्** कहना पड़ा। अतः **षच्** नहीं हुआ फलतः **ङीष्** भी नहीं हुआ किन्तु **स्थूलाक्षा** में **अक्ष्णोऽदर्शनात्** सूत्र से **अ** प्रत्यय होकर **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होता है।

९७२- द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः। द्विश्च त्रिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो द्वित्री, ताभ्याम्। द्वित्रिभ्यां पञ्चम्यन्तं, षः लुप्तप्रथमाकं, मूर्ध्नः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से **बहुव्रीहौ** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समासान्ताः** ये सब अधिकृत हैं।

बहुव्रीहि समास में द्वि और त्रि शब्दों से परे यदि मूर्धन् शब्द हो तो उससे समासान्त ष प्रत्यय होता है।

षकार इत्संज्ञक है, **अकार** बचता है। **षित्** का प्रयोजन पूर्ववत् **ङीष्विधान** ही है।

अप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९७३. अन्तर्बहिभ्यां च लोम्नः ५।४।११७।

आभ्यां लोम्नोऽप् स्याद् बहुव्रीहौ। अन्तर्लोमः। बहिर्लोमः।

....

द्विमूर्धः। दो सिर हैं जिसके वह पुरुष। **द्वौ मूर्धानौ यस्य सः** लौकिक विग्रह और **द्वि औ+मूर्धन् औ** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास आदि सभी कार्य करने के बाद **द्विमूर्धन्** बना। **द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः** से समासान्त **षच्** प्रत्यय करके **द्विमूर्धन्+अ** बना। **नस्तद्धिते** से टिसंज्ञक **अन्** का लोप करके **द्विमूर्ध्+अ= द्विमूर्ध** ऐसा अकारान्त शब्द बना। सु आदि प्रत्यय करके **राम** शब्द की तरह रूप बनते हैं- **द्विमूर्धः, द्विमूर्धौ, द्विमूर्धाः** आदि। स्त्रीत्व-विवक्षा में षित्त्वात् **षिद्गौरादिभ्यश्च** से **ङीष्** होकर **द्विमूर्धी, द्विमूर्ध्यौ, द्विमूर्ध्यः** आदि बनते हैं।

त्रिमूर्धः। तीन सिर हैं जिसके वह पुरुष। **त्रयो मूर्धानो यस्य सः** लौकिक विग्रह और **त्रि जस्+मूर्धन् जस्** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास आदि सभी कार्य करने के बाद **त्रिमूर्धन्** बना। **द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः** से समासान्त **षच्** प्रत्यय करके **त्रिमूर्धन्+अ** बना। **नस्तद्धिते** से टिसंज्ञक **अन्** का लोप करके **त्रिमूर्ध्+अ= त्रिमूर्ध** ऐसा अकारान्त शब्द बना। सु आदि प्रत्यय करके **राम** शब्द की तरह रूप बनते हैं- **त्रिमूर्धः, त्रिमूर्धौ, त्रिमूर्धाः** आदि। स्त्रीत्व-विवक्षा में षित्त्वात् **षिद्गौरादिभ्यश्च** से **ङीष्** होकर **त्रिमूर्धी, त्रिमूर्ध्यौ, त्रिमूर्ध्यः** आदि बनते हैं। स्मरण रहे कि केवल **मूर्धन्** शब्द के पुँल्लिङ्ग में **मूर्धा, मूर्धानौ, मूर्धानः** आदि रूप बनते हैं।

९७३- **अन्तर्बहिभ्यां च लोम्नः**। अन्तश्च बहिश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः- अन्तर्बहिसौ, ताभ्याम्। अन्तर्बहिभ्यां पञ्चम्यन्तं, चाव्ययं, लोम्नः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **अप् पूरणीप्रमाण्योः** से अप् और बहुव्रीहौ **सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से **बहुव्रीहौ** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समासान्ताः** ये सब अधिकृत् हैं।

बहुव्रीहि समास में अन्तर् और बहिस् इन अव्यय-शब्दों से परे लोमन् शब्द से समासान्त अप् प्रत्यय होता है।

पकार इत्संज्ञक है, **अ** शेष रहता है।

अन्तर्लोमः। अन्दर रोम है जिसके, ऐसा पुरुष या ऐसी चादर। **अन्तर्लोमानि यस्य सः** लौकिक विग्रह और **अन्तर्+लोमन् जस्** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास आदि सभी कार्य करने के बाद **अन्तर्लोमन्** बना। **अन्तर्बहिर्भ्याञ्च लोम्नः** से समासान्त **अप्** प्रत्यय करके **अन्तर्लोमन्+अ** बना। **नस्तद्धिते** से टिसंज्ञक **अन्** का लोप करके **अन्तर् लोम्+अ= अन्तर्लोम** ऐसा अकारान्त शब्द बन जाता है। रेफ का ऊर्ध्वगमन होता है। सु आदि प्रत्यय करके **राम** शब्द की तरह रूप बनते हैं। **अन्तर्लोमः, अन्तर्लोमौ, अन्तर्लोमाः** आदि। केवल **लोमन्** शब्द नपुंसकलिङ्ग में है और उसके रूप **लोम, लोमनी, लोमानि** आदि होते हैं।

बहिर्लोमः। बाहर रोम है जिसके, ऐसा वस्त्र। **बहिर्लोमानि यस्य सः** लौकिक विग्रह और **बहिस्+लोमन् जस्** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास आदि सभी कार्य करने के बाद **बहिस् लोमन्** बना। **अन्तर्बहिर्भ्याञ्च लोम्नः** से समासान्त **अप्** प्रत्यय

लोपार्थं विधिसूत्रम्

९७४. पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ५।४।१३८॥

हस्त्यादिवर्जितादुपमानात् परस्य पादशब्दस्य लोपो स्याद् बहुव्रीहौ। व्याघ्रस्येव पादावस्य व्याघ्रपात्। अहस्त्यादिभ्यः किम्? हस्तिपादः। कुसूलपादः।

लोपार्थं विधिसूत्रम्

९७५. सङ्ख्यासुपूर्वस्य ५।४।१४०॥

पादस्य लोपः स्यात् समासान्तो बहुव्रीहौ। द्विपात्। सुपात्।

....

करके **बहिस् लोमन्+अ** बना। **नस्तद्धिते** से टिसंज्ञक **अन्** का लोप करके **बहिस् लोम्+अ= बहिस् लोम** बनने के बाद **बहिस्** के सकार को **ससजुषो रुः** से रुत्व करके रेफ के ऊर्ध्वगमन होने पर **बहिर्लोम** ऐसा अकारान्त शब्द बन जाता है। सु आदि प्रत्यय करके **राम** शब्द की तरह रूप बनते हैं। **बहिर्लोमः, बहिर्लोमौ, बहिर्लोमाः।**

९७४- **पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः।** हस्ती आदिर्येषां ते हस्त्यादयः, न हस्त्यादयः अहस्त्यादयस्तेभ्यः। पादस्य षष्ठ्यन्तं, लोपः प्रथमान्तम्, अहस्त्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **उपमानाच्च** से **उपमानात्** और **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से **बहुव्रीहौ** की अनुवृत्ति आती है।

हस्ती आदि शब्दों से भिन्न उपमानवाचक शब्द से परे पाद शब्द का समासान्त लोप होता है बहुव्रीहि समास में।

अलोऽन्त्यस्य परिभाषा के द्वारा **पाद** के अन्त्य वर्ण **अकार** का ही लोप हो पाता है।

विशेषः- यद्यपि लोप अभावरूप है तथापि स्थानी के द्वारा समासान्त माना जाता है। यदि इसे समासान्त न कहा जाय तो **उपमानात्** इस पञ्चम्यन्त से परे पाद-शब्द के लोप-विधान होने से **आदेः परस्य** की सहायता से पाद के आदि वर्ण पकार का लोप होने लगेगा और बहुव्रीहि समास में अन्य समासान्त न हुआ हो तो **शेषाद्विभाषा** से सामान्यतः विकल्प से कप् होने लगेगा जिससे अनिष्ट रूप सिद्ध होगा। लोप को समासान्त मानने पर ये दोष नहीं आयेंगे।

व्याघ्रपात्। बाघ के पैरों की तरह पैर वाला। **व्याघ्रपादौ इव पादौ यस्य सः** लौकिक विग्रह और **व्याघ्रपाद औ+पाद औ** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** के अन्तर्गत **सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपदलोपश्च** इस वार्तिक से समास और पूर्वपद के उत्तरपद **पाद** का लोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने के बाद **व्याघ्रपाद** बना। **पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः** से **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से **पाद** के अकार का समासान्त लोप करके **व्याघ्रपाद्** बना। इससे सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और वैकल्पिक चर्त्व होकर **व्याघ्रपात्-व्याघ्रपाद, व्याघ्रपादौ, व्याघ्रपादः** आदि रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अहस्त्यादिभ्यः किम्? हस्तिपादः, कुसूलपादः। यदि **पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः** इस सूत्र में **अहस्त्यादिभ्यः** न कहते तो **हस्तिपाद, कुसूलपाद** आदि शब्दों में भी **पाद** के अकार का लोप होने लगता, जिससे **हस्तिपात्, कुसूलपात्** ऐसे अनिष्ट रूप बनने लगते।

९७५- **सङ्ख्यासुपूर्वस्य।** सङ्ख्या च सुश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः सङ्ख्यासू, सङ्ख्यासू पूर्वौ यस्य स

लोपार्थं विधिसूत्रम्

९७६. उद्विभ्यां काकुदस्य ५।४।१४८॥

लोपः स्यात्। उत्काकुत्। विकाकुत्।

....

सङ्ख्यासुपूर्वः, तस्य। सङ्ख्यासुपूर्वस्य षष्ठ्यन्तम् एकपदं सूत्रम्। **पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः** से **लोपः** और **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से **बहुव्रीहौ** की अनुवृत्ति आती है।

सङ्ख्यावाचक शब्द पूर्वक और सु अव्यय पूर्वक पाद शब्द का समासान्त लोप होता है बहुव्रीहि समास में।

यहाँ पर भी **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से **पाद** में अन्त्य वर्ण **अकार** का ही लोप होता है।

द्विपात्। दो पैरों वाला। **द्वौ पादौ यस्य सः** लौकिक विग्रह और **द्वि औ+पाद औ** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने के बाद **द्विपाद** बना। **सङ्ख्यासुपूर्वस्य** से **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से **पाद** के अकार का समासान्त लोप करके **द्विपाद्** बना। इससे सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और वैकल्पिक चर्त्व होकर **द्विपात्-द्विपाद्, द्विपादौ, द्विपादः** आदि रूप सिद्ध हो जाते हैं।

सुपात्। सुन्दर पैरों वाला। **सु शोभनौ पादौ यस्य सः** लौकिक विग्रह और **सु+पाद औ** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने के बाद **द्विपाद** बना। **सङ्ख्यासुपूर्वस्य** से **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से समासान्त **पाद** के अकार का लोप करके **सुपाद्** बना। इससे सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और वैकल्पिक चर्त्व होकर **सुपात्-सुपाद्, सुपादौ, सुपादः** आदि रूप सिद्ध हो जाते हैं।

९७६- उद्विभ्यां काकुदस्य। उत् च विश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- उद्वी, ताभ्याम्। उद्विभ्यां पञ्चम्यन्तं, काकुदस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **ककुदस्यावस्थायां लोपः** से **लोपः** और **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से **बहुव्रीहौ** की अनुवृत्ति आती है। **समासान्ताः** का अधिकार है।

उद् और वि इन उपसर्गों से परे काकुद शब्द का समासान्त लोप होता है बहुव्रीहि समास में।

यहाँ पर भी **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से अन्त्य वर्ण **काकुद** के अकार का ही लोप होता है।

उत्काकुत्। उठे हुए तालु वाला। **उद्गतं काकुदं यस्य सः** लौकिक विग्रह और **उत्+काकुद सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने के बाद **उत्काकुद** बना। **उद्विभ्यां काकुदस्य** के द्वारा **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से समासान्त **काकुद** के अकार का लोप करके **उत्काकुद्** बना। इससे सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और वैकल्पिक चर्त्व होकर **उत्काकुत्-उत्काकुद्, उत्काकुदौ, उत्काकुदः** आदि रूप सिद्ध हो जाते हैं।

विकाकुत्। विकृत तालु वाला। **विकृतं काकुदं यस्य सः** लौकिक विग्रह और **वि+काकुद सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने के बाद **विकाकुद** बना। **उद्विभ्यां काकुदस्य** के द्वारा **अलोऽन्त्यस्य** की

लोपार्थ विधिसूत्रम्

९७७. पूर्णाद्विभाषा ५।४।१४९॥

पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदः।

निपातनार्थं सूत्रम्

९७८. सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः ५।४।१५०॥

सुदुर्भ्यां हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते। सुहृन्मित्रम्। दुर्हृदमित्रः।

....

सहायता से समासान्त **काकुद** के अकार का लोप करके **विकाकुद्** बना। इससे सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और वैकल्पिक चर्त्व होकर **विकाकुत्-विकाकुद्, विकाकुदौ, विकाकुदः** आदि रूप सिद्ध हो जाते हैं।

९७७- **पूर्णाद्विभाषा**। पूर्णात् पञ्चम्यन्तं, विभाषा प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **उद्विभ्यां काकुदस्य** से **काकुदस्य** और **ककुदस्यावस्थायां लोपः** से **लोपः** और **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से **बहुव्रीहौ** की अनुवृत्ति आती है। **समासान्ताः** का अधिकार है।

पूर्ण शब्द से परे काकुद शब्द का विकल्प से समासान्त लोप होता है बहुव्रीहि समास में।

पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदः। पूर्ण तालु वाला। **पूर्ण काकुदं यस्य सः** लौकिक विग्रह और **पूर्ण सु+काकुद सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने के बाद **पूर्णकाकुद** बना। **पूर्णाद्विभाषा** के द्वारा **अलोऽन्त्यस्य** की सहायता से समासान्त **काकुद** के अकार का विकल्प से लोप करके **पूर्णकाकुद्** बना। इससे सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और वैकल्पिक चर्त्व होकर **पूर्णकाकुत्-विकाकुद्** और लोप न होने के पक्ष में **पूर्णकाकुदः** बनता है।

९७८- **सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः**। सुहृच्च दुर्हृच्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः सुहृद्दुर्हृदौ, मित्रञ्च अमित्रश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो मित्रामित्रौ, तयोः। सुहृद्दुर्हृदौ प्रथमान्तं, मित्रामित्रयोः सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से **बहुव्रीहौ** की अनुवृत्ति आती है और **समासान्ताः** का अधिकार है।

क्रमशः मित्र और शत्रु अर्थों में बहुव्रीहि समास में सु और दुर् इन उपसर्गों से परे हृदय शब्द के स्थान पर हृद् आदेश का निपातन किया जाता है।

आचार्य ने हृद् आदेश करने के बाद जो रूप सिद्ध होता है, उस रूप को सूत्र में ही पढ़ दिया है। अतः यह निपातन है।

सुहृत्। (सुहृन्मित्रम्) शोभन हृदय वाला, मित्र। **सु शोभनं हदयं यस्य** लौकिक विग्रह और **सु+हृदय सु** अलौकिक विग्रह है। **अनेकमन्यपदार्थे** से समास होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सुहृदय** बना। **सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः** से **हृदय** के स्थान पर **हृद्** आदेश का निपातन करके **सुहृद्** बना। इस प्रातिपदिक से सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके विकल्प से दकार को चर्त्व करने पर **सुहृत्, सुहृद्** बनते हैं। आगे **सुहृदौ, सुहृदः** आदि बनाने में कोई परेशानी नहीं है। **सुहृत्+मित्रम्** में तकार को **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** से अनुनासिक होकर **सुहृन्मित्रम्** बन जाता है।

कप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९७९. उरः प्रभृतिभ्यः कप् ५।४।१५१॥

सकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

९८०. सोऽपदादौ ८।३।३८॥

पाशकल्पककाम्येषु विसर्गस्य सः।

षकारादेश-सकारादेशार्थं विधिसूत्रम्

९८१. कस्कादिषु च ८।३।४८॥

एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षोऽन्यस्य तु सः। इति सः। व्यूढोरस्कः।

....

दुर्हृत्। (**दुर्हृदमित्रः**) दुष्ट हृदय वाला, शत्रु। **दुर् दुष्टं हृदयं यस्य** लौकिक विग्रह और **दुर्+हृदय सु** अलौकिक विग्रह है। **अनेकमन्यपदार्थे** से समास होकर प्रादिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दुर्हृदय** बना। **सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः** से **हृदय** के स्थान पर **हृद्** आदेश का निपातन करके **दुर्हृद्** बना। रेफ का ऊर्ध्वगमन हुआ- **दुर्हृद्** इस प्रातिपदिक से सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो** **दीर्घात्**... **हल्ङ्यादिलोप** करके विकल्प से दकार को चर्त्व करने पर **दुर्हृत्, दुर्हृद्** बनते हैं। आगे **दुर्हृदौ, दुर्हृदः** आदि बनाने में कोई परेशानी नहीं है।

९७९- उरः प्रभृतिभ्यः कप्। उरः प्रभृतिः (आदिः) येषां ते उरःप्रभृतयः, तेभ्यः। उरःप्रभृतिभ्यः पञ्चम्यन्तं, कप् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से विभक्तिविपरिणाम करके **बहुव्रीहेः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समासान्ताः** का अधिकार आ रहा है। **उरःप्रभृत्यन्ताद् बहुव्रीहेः कप् स्यात् समासान्तः।**

उरस् आदि जिसके अन्त में हो ऐसे बहुव्रीहिसमास से समासान्त कप् प्रत्यय होता है।

पकार ही इत्संज्ञक है। **क** शेष रहता है। **लशक्वतद्धिते** में **अतद्धिते** कहा गया है। अतः तद्धित के ककार की इत्संज्ञा नहीं होती है। **उरःप्रभृति** में उरस्, सर्पिस्, उपानह्, पुमान्, अनड्वान्, पयः, नौ, लक्ष्मी, दधि, मधु, शालि आदि शब्द पढ़े गये हैं।

९८०- सोऽपदादौ। पदम् आदिर्यस्य स पदादिः, न पदादिरपदादिस्तस्मिन् अपदादौ। सः प्रथमान्तम्, अपदादौ सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **विसर्जनीयस्य सः** से **विसर्जनीयस्य** और **कुप्वो ≍ क ≍ पौ च** से **कुप्वोः** एवं **तयोर्य्वावचि संहितायाम्** से **संहितायाम्** की अनुवृत्ति आती है।

पाश, कल्प, क, काम्य इन चार प्रत्ययों के परे रहते विसर्ग के स्थान पर स आदेश होता है।

अपदादौ का वचनविपरिणाम करके **कुप्वोः** का विशेषण बनाया जाता है। इस तरह **अपदाद्योः कुप्वोः** बन जाता है। अर्थ बनता है- **अपदादि कवर्ग और पवर्ग के परे होने पर।** अपदादि कवर्ग और पवर्ग के परे रहना केवल **पाश, कल्प, क, काम्य** इन चार प्रत्ययों में ही सम्भव है। अतः मूलकार ने अर्थ में **अपदाद्योः कुप्वोः** का अर्थ **पाश, कल्प, क, काम्य प्रत्ययों के परे होने पर** ऐसा कहा। यह सूत्र **कुप्वो ≍ क ≍ पौ च** से प्राप्त जिह्वामूलीय और उपध्मानीय विसर्ग का बाधक है।

षकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

९८२. इणः षः ८।३।३९॥

इण उत्तरस्य विसर्गस्य षः पाशकल्पककाम्येषु परेषु। प्रियसर्पिष्कः।

पूर्वनिपातार्थं विधिसूत्रम्

९८३. निष्ठा २।२।३६॥

निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात्। युक्तयोगः।

....

९८१- कस्कादिषु च। कस्कः आदिर्येषां ते कस्कादयस्तेषु। **इणः षः** इस पूरे सूत्र एवं **विसर्जनीयस्य सः** से **विसर्जनीयस्य** की, **सोऽपदादौ** से **सः** की, **कुप्वोः ≍क ≍पौ च** से **कुप्वोः** एवं **तयोर्य्वावचि संहितायाम्** से **संहितायाम्** की अनुवृत्ति आती है।

कस्क आदि गणपठित शब्दों में इण् प्रत्याहार से परे विसर्ग को षकार आदेश होता है अन्यत्र सकार आदेश होता है।

विशेषः- यह सूत्र दो कार्य करता है- सकार आदेश और षकार आदेश। जहाँ विसर्ग से पूर्व में इण् प्रत्याहारस्थ वर्ण हैं, वहाँ मूर्धन्य षकार और जहाँ इण् नहीं हैं वहाँ दन्त्य सकार आदेश करता है।

व्यूढोरस्कः। चौड़ी छाती वाला पुरुष। **व्यूढम् उरो यस्य(पुरुषस्य)** लौकिक विग्रह और **व्यूढ सु+उरस् सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लोप करके **व्यूढ+उरस्** बना। **आद्गुणः** से गुण होकर **व्यूढोरस्** बना। **उरःप्रभृतिभ्यः कप्** से समासान्त कप् प्रत्यय हुआ- **व्यूढोरस्+क** बना। अब सकार को **ससजुषोः रुः** से रुत्व होकर **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से विसर्ग हुआ। **व्यूढोरःक** बना। विसर्ग के स्थान पर **कुप्वोः ≍क ≍पौ च** से जिह्वामूलीय विसर्ग प्राप्त था, उसे बाध कर **कस्कादिषु च** की सहायता से **सोऽपदादौ** से **सकार** आदेश हुआ- **व्यूढोरस्+क** ही बना। वर्णसम्मेलन होकर **व्यूढोरस्क** बना। अब एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **व्यूढोरस्कः** सिद्ध हुआ।

९८२- इणः षः। इणः पञ्चम्यन्तं, षः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **विसर्जनीयस्य सः** से **विसर्जनीयस्य** की, **सोऽपदादौ** से **सः** की, **कुप्वोः ≍क ≍पौ च** से **कुप्वोः** एवं **तयोर्य्वावचि संहितायाम्** से **संहितायाम्** की अनुवृत्ति आती है।

इण् से परे विसर्ग के स्थान पर षकार आदेश होता है पाश, कल्प, क, काम्य के परे होने पर।

प्रियसर्पिष्कः। जिसे घी प्रिय है अर्थात् घी का प्रेमी व्यक्ति। **प्रियम् सर्पिः यस्य(पुरुषस्य)** लौकिक विग्रह और **प्रिय सु+सर्पिस् सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लोप करके **प्रिय+सर्पिस्** बना। **सर्पिस्** भी **उरःप्रभृति** में आता है, अतः **उरःप्रभृतिभ्यः कप्** से समासान्त कप् प्रत्यय हुआ- **प्रियसर्पिस्+क** बना। सकार को रुत्व, विसर्ग करके विसर्ग के स्थान पर **इणः षः** से **षकार आदेश** होकर **प्रियसर्पिष्क** बना। अब एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **प्रियसर्पिष्कः** सिद्ध हुआ।

विकल्पेन कप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९८४. शेषाद्विभाषा ५।४।१५४।।

अनुक्तसमासान्ताद् बहुव्रीहेः कब्वा। महायशस्कः, महायशाः।

इति बहुव्रीहिः।।४१।।

....

९८३- **निष्ठा।** प्रथमान्तमेकपदं सूत्रम्। **सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ** से **बहुव्रीहौ** और **उपसर्जनं पूर्वम्** से **पूर्वम्** की अनुवृत्ति आती है।

बहुव्रीहि समास में निष्ठाप्रत्ययान्त शब्द का पूर्व में प्रयोग होता है।

क्तक्तवतू निष्ठा से **क्त** और **क्तवतु** प्रत्ययों की **निष्ठा** संज्ञा की गई है। **प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्** अर्थात् **प्रत्यय के ग्रहण में प्रत्ययान्त का ग्रहण होता है** इस नियम के अनुसार **क्त** या **क्तवतु** प्रत्ययान्त शब्द का इस सूत्र पर ग्रहण होगा। इस तरह **बहुव्रीहि समास** में **क्तप्रत्ययान्त** एवं **क्तवतुप्रत्ययान्त** का ही पूर्वनिपात होता है।

युक्तयोगः। सफल हुआ है योग जिसका। **युक्तो योगो यस्य** लौकिक विग्रह और **युक्त सु योग सु** अलौकिक विग्रह है। **युज्** धातु से **क्त** प्रत्यय होकर **युक्त** बना है। ऐसी स्थिति में **अनकेमन्यपदार्थे** से समास हुआ और **निष्ठा** से **क्त** प्रत्ययान्त **युक्त** का पूर्वनिपात हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **युक्तयोग** बना। स्वादिकार्य से **युक्तयोगः** सिद्ध हुआ।

इसी तरह अनेक उदाहरण इसके हो सकते हैं। जैसे कि **कृतकृत्यः।** कर लिया अपना कर्तव्य जिसने। **कृतं कृत्यं येन** लौकिक विग्रह और **कृत सु कृत्य सु** अलौकिक विग्रह है। **कृ** धातु से **क्त** प्रत्यय होकर **कृत** बना है। ऐसी स्थिति में **अनकेमन्यपदार्थे** से समास हुआ और **निष्ठा** से **क्त** प्रत्ययान्त **कृत** का पूर्वनिपात हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कृतकृत्य** बना। स्वादिकार्य से **कृतकृत्यः** सिद्ध हुआ।

९८४- **शेषाद्विभाषा।** शेषात् पञ्चम्यन्तं, विभाषा प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** से विभक्तिविपरिणाम करके **बहुव्रीहेः** तथा **उरःप्रभृतिभ्यः कप्** से **कप्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समासान्ताः** का अधिकार आ रहा है।

जिस बहुव्रीहि में कोई समासान्त न कहा गया हो तो उससे कप् प्रत्यय होता है विकल्प से।

उक्तादन्यः शेषः। कथन के बाद बाकी जो है, उसे शेष कहते हैं। यहाँ पर जिन शब्दों का बहुव्रीहि में कोई समासान्त प्रत्यय नहीं कहे गये हैं, ऐसे शब्द **शेष** कहलाते हैं।

महायशस्कः, महायशाः। बड़े यश वाला व्यक्ति। **महद् यशः यस्य(पुरुषस्य)** लौकिक विग्रह और **महत् सु+यशस् सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों सु का लोप करके **महत्+यशस्** बना। **आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः** से **महत्** के **तकार** के स्थान पर **आकार** आदेश होकर **मह+आ** में सवर्णदीर्घ करके **महायशस्** बना। इस शब्द से बहुव्रीहि में अन्य कोई समासान्त प्रत्यय का विधान नहीं किया गया है। अतः यह शेष है। इस लिए **शेषाद्विभाषा** से विकल्प से समासान्त कप् प्रत्यय हुआ- **महायशस्+क** बना। अब एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **महायशस्कः** सिद्ध

हुआ। कप् न होने के पक्ष में **महायशस्+स्** है। सु के सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप, **अत्वसन्तस्य चाधातोः** से उपधादीर्घ करके **महायशास्** बना। **सकार** को रुत्वविसर्ग करके **महायशाः** बन गया।

बहुव्रीहि समास अत्यन्त सरल है, एक ही सूत्र **अनेकमन्यपदार्थे** से अनेक स्थलों पर समास किया जाता है। यद्यपि **पाणिनीयाष्टाध्यायी** में अन्य चार सूत्र भी हैं इस समास में किन्तु अन्य सूत्र कुछ शब्दों में समास करने की योग्यता रखते हैं परन्तु यह सूत्र लगभग सभी बहुव्रीहियोग्य स्थलों पर समास करने की योग्यता रखता है। इसलिए **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में यह एक ही सूत्र निर्दिष्ट है।

यहाँ आकर आपको फिर स्मरण करा रहा हूँ कि आप **पाणिनीयाष्टाध्यायी** का नियमित पारायण कर ही रहे होंगे। एक महीने में एक अध्याय के नियम से पाठ करने पर विशेष प्रतिभासम्पन्न छात्र आठ ही माह में सम्पूर्ण अष्टाध्यायी कण्ठस्थ कर लेते हैं और जो सामान्य प्रतिभा वाले छात्र हैं वे भी दूसरी आवृत्ति अर्थात् सोलह महीने में अवश्य कण्ठस्थ कर लेंगे। यह मैंने अपने छात्रों से करवाया है। अतः अनुभूत है। इसके अच्छे परिणाम आये हैं। इसलिए आपको भी बार-बार निर्देश दे रहे हैं। अष्टाध्यायी के सारे सूत्र याद हो जाने चाहिए, तभी व्याकरण का ज्ञान पूर्ण हो सकता है। **लघुसिद्धान्तकौमुदी** और **पाणिनीयाष्टाध्यायी** दोनों साथ-साथ पूरी हो जायें तो अच्छा है।

परीक्षा

१-	**तत्पुरुष-समास** और **बहुव्रीहि-समास** में आपने क्या अन्तर पाया?	५
२-	बहुव्रीहि-समास के विग्रह में अधिकतर कौन कौन सी विभक्तियाँ होती हैं?	५
३-	बहुव्रीहि-समास के किन्हीं बीस शब्दों की समास-प्रक्रिया दिखाइये।	२०
४-	पुंवद्भाव और ह्रस्व के किन्हीं पाँच उदाहरणों को प्रक्रिया सहित बताइये।	५
५-	**स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।	१०
६-	**गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** की व्याख्या कीजिए।	५
७-	नञ् समास के पाँच उदाहरण सूत्रसहित दर्शाइये।	५

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का बहुव्रीहिसमास पूर्ण हुआ।

अथ द्वन्द्वः

द्वन्द्व-समासविधायकं विधिसूत्रम्

९८५. चार्थे द्वन्द्वः २।२।२९॥

अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं वा समस्यते, स द्वन्द्वः।

समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः।

तत्र 'ईश्वरं गुरुं च भजस्व' इति परस्परनिरपेक्षस्यानेकस्यैकस्मिन्नन्वयः समुच्चयः।

'भिक्षाम् अट गां चानय' इत्यन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेनान्वयोऽन्वाचयः। अनयोरसामर्थ्यात् समासो न।

'धवखदिरौ छिन्धि' इति मिलितानामन्वय इतरेतरयोगः।

'संज्ञापरिभाषम्' इति समूहः समाहारः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **द्वन्द्वसमास** प्रारम्भ होता है। यह पाँचवाँ समास है। इस समास के लिए एक ही सूत्र है- **चार्थे द्वन्द्वः**। इस समास में समस्यमान पद प्रायः प्रथमान्त ही होते हैं और कहीं कहीं अन्य विभक्तियाँ भी हो सकती हैं किन्तु प्रथमान्त में ही समास करने की रीति ज्यादा प्रचलित है।

९८५- **चार्थे** द्वन्द्वः। चस्य अर्थश्चार्थः, (षष्ठीतत्पुरुषः) तस्मिन्। चार्थे सप्तम्यन्तं, द्वन्द्वः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अनेकमन्यपदार्थे** से **अनेकम्** तथा **सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे** से सुप् की अनुवृत्ति आती है। **समासः** और **विभाषा** का अधिकार पहले से ही चला आ रहा है।

चकार के अर्थ में वर्तमान अनेक सुबन्तों का समास होता है और उसकी द्वन्द्वसंज्ञा होती है।

अब जिज्ञासा होती है कि चकार का अर्थ (चार्थ) क्या है?

समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः। समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतरयोग और समाहार ये चार चकार के अर्थ हैं।

समुच्चय- जब परस्पर निरपेक्ष अनेक पद किसी एक में अन्वित होते हैं तो वहाँ **समुच्चय** नामक चार्थ रहता है। जैसे- **'ईश्वरं गुरुं च भजस्व'** ईश्वर को भजो और गुरु को भी। यहाँ पर एक कर्म **ईश्वर** का भजन-क्रिया के साथ अन्वय हो रहा है और उसी

क्रिया की आवृत्ति करके दूसरे कर्म **गुरु** का भी अन्वय होता है। यहाँ पर ईश्वर और गुरु दोनों परस्पर निरपेक्ष हैं। अतः दोनों का स्वतन्त्र रूप से भजन-क्रिया में अन्वय होता है। इस लिए यहाँ पर **समुच्चय** नामक **चार्थ** है। ईश्वर और गुरु दोनों पदों में समास होने के लिए सामर्थ्य नहीं है। अतः इस चार्थ में समास नहीं होता।

अन्वाचयः- जब समुच्चीयमान(जिनका समुच्चय हो रहा हो) पदार्थों में एक का आनुषंगिकतया (गौणरूप से) अन्वय हो, तब उसे **अन्वाचय** नामक चार्थ कहा जाता है। जैसे **'भिक्षाम् अट गां चानय'** भिक्षार्थ भ्रमण करो, यदि मार्ग में गाय मिले तो उसे भी लेते आना, इस वाक्य में भिक्षार्थ अटन अनिवार्य है और गाय का आनयन साथ में करना है अर्थात् आनुषंगिक गौण है। इस लिए यह **अन्वाचय** है। इन दोनों में क्रियाओं की भिन्नता और एक प्रधान और एक अप्रधान कर्म होने के कारण दोनों के कर्म में परस्पर आकांक्षा न होने से सामर्थ्य नहीं है। सामर्थ्य न होने पर समास भी नहीं होगा। **इतरेतरयोग** और **समाहार** में तो सामर्थ्य रहता है, इसलिए उनमें समास हो जाता है।

इतरेतरयोग- जब पदार्थ परस्पर में मिलकर आगे अन्वित होते हैं, तब उसे **इतरेतरयोग** चार्थ कहा जाता है। जैसे- **धवखदिरौ छिन्धि**। धव और खदिर के वृक्षों को काटो। यहाँ पर धव और खदिर दोनों मिलकर छिन्धि क्रिया में अन्वित हो जाते हैं। यह **इतरेयोग** है। यहाँ पर सामर्थ्य है। इतरेतरयोग में समास होने के बाद अन्तिम शब्द के अनुसार लिङ्ग और वचन की व्यवस्था होती है। जैसे **धवखदिरौ** में **धव** और **खदिर** दो हैं इसलिए द्विवचन और **रामकृष्णहरयः** में राम, कृष्ण और हरि तीन हैं, अतः बहुवचन हुआ।

धवश्च खदिरश्च लौकिक विग्रह और **धव सु+खदिर सु** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, **धवखदिर** बना। औ विभक्ति करके **रामौ** की तरह **धवखदिरौ** बन जाता है।

इसी तरह- **रामकृष्णौ। रामश्च कृष्णश्च** लौकिक विग्रह और **राम सु+कृष्ण सु** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, **रामकृष्ण** बना। **औ** विभक्ति करके **रामौ** की तरह **रामकृष्णौ** बन जाता है।

हरिकृष्णरामाः। हरिश्च कृष्णश्च रामश्च लौकिक विग्रह और **हरि+सु कृष्ण सु+राम+सु** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, **हरिकृष्णराम** बना। तीन संख्या होने के कारण बहुवचन **जस्** विभक्ति करके **हरिरामकृष्णाः।** बन जाता है।

समाहार- जब दो या दो से अधिक पदार्थों का अलग-अलग रूप से क्रिया में अन्वय न होकर समूहात्मक अर्थ का अन्वय होता है तो उसे **समाहार** नामक चार्थ कहा जाता है। समूह का नाम **समाहार** है। जैसे- **सञ्ज्ञापरिभाषम्।** सञ्ज्ञा और परिभाषा का समूह। **संज्ञा च परिभाषा च अनयोः समाहारः** लौकिक विग्रह और **संज्ञा सु+परिभाषा सु** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, **संज्ञापरिभाषा** बना। समाहार होने पर **स नपुंसकम्** से नपुंसकलिङ्ग और समूहार्थ के एक होने से एकवचन मात्र होता है। सु विभक्ति करके **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** से **परिभाषा** के आकार को ह्रस्व करने पर **संज्ञापरिभाष** बना। **सु** के स्थान पर अम् आदेश, पूर्वरूप करके **ज्ञानम्** की तरह **सञ्ज्ञापरिभाषम्** बन जाता है।

हस्तचरणम्। हस्तश्च चरणश्च अथवा **हस्तौ च चरणौ च एतेषां समाहारः**

परप्रयोगविधायकं विधिसूत्रम्

९८६. राजदन्तादिषु परम् २।२।३१॥

एषु पूर्वप्रयोगार्हं परं स्यात्। दन्तानां राजानो राजदन्ताः।

वार्तिकम्- **धर्मादिष्वनियमः**। अर्थधर्मौ। धर्मार्थावित्यादि।

पूर्वप्रयोगविधायकं विधिसूत्रम्

९८७. द्वन्द्वे घि २।२।३२॥

द्वन्द्वे घिसंज्ञं पूर्वं स्यात्। हरिश्च हरश्च हरिहरौ।

....

यह लौकिक विग्रह और **हस्त सु+चरण सु** अथवा **हस्त औ चरण औ** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, **हस्तचरण** बना। समाहार होने पर नपुंसकलिङ्ग और एकवचन मात्र होता है। सु विभक्ति करके ज्ञानम् की तरह **हस्तचरणम्** बन जाता है।

विशेषः- प्रश्न- द्वन्द्व समास में किसका पूर्वप्रयोग किया जाय? उत्तर- द्वन्द्वसमास में समस्यमान दोनों पदों के अर्थ प्रधान होते हैं और समास करने वाले सूत्र **चार्थे द्वन्द्वः** में **अनेकम्** ऐसा अनुवृत्त प्रथमान्त पद से निर्दिष्ट सभी शब्द होते हैं। सबकी उपसर्जनसंज्ञा होकर सभी का पूर्वप्रयोग प्राप्त होता है। अतः इच्छानुसार किसी को भी पहले रखा जा सकता है किन्तु कहीं-कहीं विशेष जगहों पर इच्छानुसार पूर्वप्रयोग नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसके लिए विशेष नियम बनाये गये हैं, जो आगे दिये जा रहे हैं।

९८६- **राजदन्तादिषु परम्**। राजदन्त आदिर्येषां ते राजदन्तादयः, तेषु राजदन्तादिषु। राजदन्तादिषु सप्तम्यन्तं, परं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **उपसर्जनं पूर्वम्** से **पूर्वम्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रयुज्यते** इस क्रिया का अध्याहार किया जाता है।

राजदन्त आदि गण में पूर्वनिपात के योग्य पद का परनिपात होता है।

राजदन्ताः। दाँतों का राजा अर्थात् ऊपर सामने के दाँत। **दन्तानां राजा** लौकिक विग्रह और **दन्त आम्+राजन् सु** अलौकिक विग्रह है। ऐसे में **षष्ठी** सूत्र से तत्पुरुष समास, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **षष्ठी** इस प्रथमान्तपद से निर्दिष्ट **दन्त** की उपसर्जनसंज्ञा होकर उसका **उपसर्जनं पूर्वम्** से पूर्वनिपात प्राप्त था, उसे बाधकर के **राजदन्तादिषु परम्** से **परप्रयोग** अर्थात् परनिपात हुआ- **राजन्+दन्त** बना। **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से **नकार** का लोप, प्रातिपदिकत्वेन विभक्ति, जस्, दीर्घ, सकार को रुत्वविसर्ग आदि करके **राजदन्ताः** सिद्ध हुआ।

धर्मादिष्वनियमः। यह वार्तिक है। **धर्म आदि गणपठित शब्दों में पूर्वनिपात या परनिपात का कोई निश्चित नियम नहीं है।** अर्थात् इस गण में पढ़े गये सभी शब्दों में से किसी भी शब्द का पूर्वप्रयोग किया जा सकता है। अतः **धर्मश्च अर्थश्च** में द्वन्द्व-समास करके **धर्मार्थौ** या **अर्थधर्मौ** दोनों प्रयोग बन सकते हैं।

९८७- **द्वन्द्वे घि**। द्वन्द्वे सप्तम्यन्तं, घि प्रथमान्तम्। द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **उपसर्जनं पूर्वम्** से **पूर्वम्** की अनुवृत्ति आती है।

द्वन्द्वसमास में घिसंज्ञक शब्द पूर्व में प्रयुक्त होता है।

पूर्वप्रयोगविधायकं विधिसूत्रम्

९८८. अजाद्यदन्तम् २।२।३३॥

द्वन्द्वे पूर्वं स्यात्। ईशकृष्णौ।

....

इस सूत्र से यह विधान किया गया है कि यदि ऐसा घिसंज्ञक शब्द द्वन्द्व समास में आता है तो समास के बाद उस शब्द का आदि में अर्थात् पूर्व में प्रयोग करना चाहिए। स्मरण रहे कि **शेषो घ्यसखि** इस सूत्र से **ह्रस्व-इकारान्त** और **ह्रस्व उकारान्त** की **घिसंज्ञा** होती है।

हरिहरौ। हरि और हर (विष्णु और शिव)। **हरिश्च हरश्च** लौकिक विग्रह और **हरि सु+हर सु** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, **हरि+हर** बना। अब यहाँ पर प्रश्न आया कि पूर्वप्रयोग किसका होना चाहिए? तो **द्वन्द्वे घि** इस सूत्र ने निर्णय दिया कि **घिसंज्ञक** शब्द का पूर्वप्रयोग होना चाहिए। यहाँ इकारान्त होने के कारण हरि शब्द घिसंज्ञक है, अतः हरि का पूर्वप्रयोग हुआ **हरिहर** बना। यहाँ पर विग्रह में ही हरि शब्द का पूर्व में प्रयोग किया गया है। यदि कथंचित् **हरश्च हरिश्च** ऐसा विग्रह होता तो भी घिसंज्ञक हरि का ही पूर्वप्रयोग होता है अथवा यूँ कहा जाय कि **द्वन्द्वे घि** को देखते हुए विग्रह में **ही** घिसंज्ञक का पूर्वप्रयोग किया जाता है। **हरिहर** इस में दो की संख्या होने के कारण द्विवचन औ विभक्ति करके **रामौ** की तरह **हरिहरौ** बनाना चाहिए।

इसी प्रकार- **हरिहरगुरुवः**। हरि, हर और गुरु। **हरिश्च हरश्च गुरुश्च** लौकिक विग्रह और **हरि सु+हर सु+गुरु सु** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, **हरि+हर+गुरु** बना। अब यहाँ पर प्रश्न आया कि पूर्वप्रयोग किसका होना चाहिए तो **द्वन्द्वे घि** इस सूत्र ने निर्णय दिया कि घिसंज्ञक शब्द का पूर्वप्रयोग होना चाहिए। यहाँ **इकारान्त** होने के कारण **हरि** और **उकारान्त** होने के कारण गुरु शब्द **घिसंज्ञक** हैं, ऐसी स्थिति में किसी एक अधिक पूज्य अर्थ का वाचक घिसंज्ञक का पूर्वप्रयोग होकर अन्य घिसंज्ञक का बीच में या अन्त में कहीं प्रयोग कर सकते हैं। अतः दोनों घिसंज्ञकों में अधिक पूज्य **हरि** का पूर्वप्रयोग हुआ हरिहरगुरु वना। तीन की संख्या होने के कारण बहुवचन **जस्** आया और पूर्वसवर्णदीर्घ और रुत्वविसर्ग होकर **हरिहरगुरवः** सिद्ध हुआ।

९८८- अजाद्यदन्तम्। अच् आदिर्यस्य तद् अजादि। अत् अन्तो यस्य तद् अदन्तम्। अजादि च तददन्तम्- अजाद्यदन्तम्। अजाद्यदन्तं प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **द्वन्द्वे घि** से **द्वन्द्वे** की और **उपसर्जनं पूर्वम्** से **पूर्वम्** की अनुवृत्ति आती है।

द्वन्द्व-समास में जो शब्द अजादि और अदन्त हो तो उसका पूर्व में प्रयोग करना चाहिए।

ईशकृष्णौ। ईश और कृष्ण। **ईशश्च कृष्णश्च** लौकिक विग्रह और **ईश सु+कृष्ण सु** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, **ईश+कृष्ण** बना। यहाँ पर कोई भी शब्द घिसंज्ञक नहीं है। अतः **द्वन्द्वे घि** का विषय नहीं है तो पूर्व प्रयोग किस का हो? अब **अजाद्यदन्तम्** इस सूत्र ने निर्णय दिया कि जो शब्द अजादि भी हो और अदन्त भी हो, उसका ही पूर्व में प्रयोग होना चाहिए। **ईश+कृष्ण** में **ईश** शब्द अजादि और अदन्त दोनों है, अतः **ईश** का पूर्वप्रयोग हुआ। दो की संख्या है, इसलिए द्विवचन में **औ**, वृद्धि आदि करके **ईशकृष्णौ** सिद्ध हुआ।

पूर्वप्रयोगविधायकं विधिसूत्रम्

९८९. अल्पाच्तरम् २।२।३४॥

शिवकेशवौ।

पूर्वप्रयोगविधायकं विधिसूत्रम्

९९०. पिता मात्रा १।२।७०॥

मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते। माता च पिता च पितरौ मातापितरौ वा।

....

९८९- **अल्पाच्तरम्**। अल्पः अच् यस्य तद् अल्पाच् (पदम्) बहुव्रीहिः। अल्पाच् एव अल्पाच्तरम्, स्वार्थे तरप्। अल्पाच्तरं प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **द्वन्द्वे घि** से **द्वन्द्वे** और **उपसर्जनं पूर्वम्** से **पूर्वम्** की अनुवृत्ति आती है।

द्वन्द्व-समास के सभी शब्दों में जो शब्द अत्यन्त कम अच् वाला हो, उसका ही पूर्वप्रयोग होता है।

शिवकेशवौ। शिव और केशव। **शिवश्च केशवश्च** लौकिक विग्रह और **शिव सु+केशव सु** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** से समास हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, **शिवकेशव** बना। यहाँ पर कोई भी शब्द घिसंज्ञक नहीं है। अतः **द्वन्द्वे घि** का विषय नहीं है। अदन्त तो है किन्तु अजादि नहीं है, अतः **अजाद्यदन्तम्** का भी विषय नहीं है, तो पूर्व प्रयोग किस का हो? तव **अल्पाच्तरम्** इस सूत्र ने निर्णय दिया कि जिस शब्द में कमसे कम अच् हों उसका ही पूर्व में प्रयोग होना चाहिए। **शिव** में दो अच् हैं और **केशव** में तीन अच् हैं। दोनों में से अल्पाच्तर **शिव** शब्द है, इसलिए **शिव** का पूर्वप्रयोग हुआ। दो की संख्या है, इसलिए द्विवचन औ, वृद्धि आदि करके **शिवकेशवौ** सिद्ध हुआ।

९९०- **पिता मात्रा**। पिता प्रथमान्तं, मात्रा तृतीयान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ** से **शेषः** और **नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है।

मातृ-शब्द के साथ उच्चारित पितृ-शब्द का विकल्प से शेष होता है।

यह एकशेष समास का सूत्र है। यहाँ पर **शेष** का अर्थ है जिसके सम्बन्ध में कहा जा रहा है, उसका शेष और अन्यों का लोप। **मातृ** और **पितृ** इन दो शब्दों को समास में यदि एकयोग करके कहा जाय तो केवल **पितृ** ही शेष रहता है और **मातृ** का लोप होता है। इस सम्बन्ध में **सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ** का स्मरण करें। **यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी**। जो शेष रहता है वह लुप्त हुए शब्द के अर्थ का भी परिचायक होता है। अतः लुप्त पदों के अर्थ का भी ज्ञान हो जाता है।

अनेक आचार्य इस सूत्र के कार्य को द्वन्द्वसमास नहीं मानते। उनके अनुसार यह कार्य द्वन्द्व समास का अपवाद है। अर्थात् एकशेष भी स्वतन्त्र एक कार्य है। फिर भी लाघव के लिए यहाँ पर पहले द्वन्द्वसमास करके तब एकशेष की प्रक्रिया दिखाई गई है। आप द्वन्द्व के स्थान पर सीधे एकशेष भी कर सकते हैं।

पितरौ, मातापितरौ वा। माता और पिता। **माता च पिता च** लौकिक विग्रह और **मातृ सु पितृ सु** अलौकिक विग्रह है। **चार्थे द्वन्द्वः** से समास होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का

एकवचनविधायकं विधिसूत्रम्

९९१. द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् २।४।२।।

एषां द्वन्द्व एकवत्।

पाणिपादम्। मार्दङ्गिकवैणविकम्। रथिकाश्वारोहम्।

....

लुक् करके **पिता मात्रा** सूत्र से **पितृ** का शेष और **मातृ** का लोप हो जाता है और **यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी** के अनुसार **पितृ** से माता का भी कथन होने से द्विवचन की प्रतीति हो रही है। अतः **द्विवचन** में **पितरौ** बन जाता है। यह एकशेष कार्य वैकल्पिक हैं। एकशेष न होने के पक्ष में द्वन्द्वसमास होकर **मातापितरौ** ही बनता है। यहाँ पर **मातृ** शब्द का ही पूर्वप्रयोग होता है क्योंकि **पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते** अर्थात् पिता से माता दशगुण अधिक गौरवमयी होती है, इत्यादि वचनों से **माता** अभ्यर्हित अर्थात् पूज्या होने के कारण **अभ्यर्हितं च** वार्तिक से मातृशब्द का पूर्वप्रयोग होता है और **आनङ्ऋतो द्वन्द्वे** सूत्र से **मातृ** के ऋकार के स्थान पर आनङ् आदेश होकर **मातापितृ** बनता है। द्वित्व की विवक्षा में द्विवचन औ एवं **ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः** से गुण करके **मातापितरौ** सिद्ध होता है।

९९१- **द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्।** प्राणी च तूर्यञ्च सेना तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः प्राणितूर्यसेनाः, तासामङ्गानि प्राणितूर्यसेनाङ्गानि, तेषां प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्। द्वन्द्वः प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, प्राणितूर्यसेनाङ्गानां षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **द्विगुरेकवचनम्** से **एकवचनम्** की अनुवृत्ति आती है।

प्राणी के अंग, वाद्य के अंग और सेना के अंगों में यदि द्वन्द्वसमास हो तो उनमें समाहार एकवचन ही हो।

प्राणी, तूर्य(वाद्ययन्त्र) और सेना इनके अङ्ग के वाचक शब्दों का द्वन्द्व एकवचनान्त होता है। **एकवद्भाव**=एकवचनान्त करने का तात्पर्य यह है कि इनका समाहार अर्थ में ही द्वन्द्वसमास होता है, इतरेतरयोग में नहीं। समाहारद्वन्द्व एकवचनान्त ही है, क्योंकि समाहार अर्थात् समूह एक ही होता है।

अतः इनके अंगों में समास के विग्रह बनाते समय ही समाहार का विग्रह बनाना चाहिए।

पाणिपादम्। हाथ और पैर का समूह। **पाणी च पादौ च तेषां समाहारद्वन्द्वः।** यहाँ **चार्थे द्वन्द्वः** समास करने के बाद **द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्** से एकवचन का विधान हुआ। सु-विभक्ति आई और समाहार होने के कारण **स नपुंसकम्** से नपुंसक हुआ। अतः अम् आदेश, पूर्वरूप करके **पाणिपादम्** सिद्ध हुआ। यदि यह सूत्र न होता तो बहुवचन होकर **पाणिपादाः** ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध होता। यह प्राण्यङ्ग का उदाहरण है।

मार्दङ्गिकवैणविकम्। मृदंगवादक और वेणुवादकों का समूह। **मार्दङ्गिकाश्च वैणविकाश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः।** यहाँ **चार्थे द्वन्द्वः** समास करने के बाद **द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्** से **वाद्याङ्ग** मानकर एकवचन का विधान हुआ। सुविभक्ति, समाहार होने के कारण नपुंसक हुआ है। अतः **अम्** आदेश, पूर्वरूप करके **मार्दङ्गिकवैणविकम्** सिद्ध हुआ। यदि यह सूत्र न होता तो बहुवचन होकर **मार्दङ्गिकवैणविकाः** ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध होता। यह **वाद्याङ्ग** का उदाहरण है।

समासान्तटच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९९२. द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे ५।४।१०६॥

चवर्गान्ताद् दषहान्ताच्च द्वन्द्वात् टच् स्यात् समाहारे।

वाक् च त्वक् च वाक्त्वचम्। त्वक्स्रजम्। शमीदृषदम्। वाक्त्विषम्।

छत्रोपानहम्। समाहारे किम्? प्रावृट्शरदौ।

इति द्वन्द्वः॥४२॥

....

रथिकाश्वारोहम्। रथिकों और घुड़सवारों का समूह। **रथिकाश्च अश्वारोहाश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः।** यहाँ **चार्थे द्वन्द्वः** से समास करने के बाद **द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्** से सेनाङ्ग मानकर एकवचन का विधान हुआ। सुविभवित, समाहार होने के कारण नपुंसक हुआ। अतः अम् आदेश, पूर्वरूप करके **रथिकाश्वारोहम्** सिद्ध हुआ। यह सेनाङ्ग का उदाहरण है। यदि यह सूत्र न होता तो बहुवचन होकर **रथिकाश्वारोहाः** ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध होता।

९९२- **द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे।** चुश्च दश्च षश्च हश्च तेषामितरेतरद्वन्द्वश्चुदषहाः। चुदषहा अन्ते यस्य स चुदषहान्तः, तस्माच्चुदषहान्तात्। द्वन्द्वात् पञ्चम्यन्तं, चुदषहान्तात् पञ्चम्यन्तं, समाहारे सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से **टच्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समासान्ताः** का अधिकार है।

चवर्गान्त, दकारान्त, षकारान्त और हकारान्त द्वन्द्व से समासान्त टच् प्रत्यय होता है समाहार में।

वाक्त्वचम्। वाणी और त्वचा का समुदाय। **वाक् च त्वक् च तयोः समाहारः** लौकिकविग्रह और **वाच् सु त्वच् सु** अलौकिक विग्रह है। **चार्थे द्वन्द्वः** से द्वन्द्वसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वाच्+त्वच्** बना। **वाच्** के **चकार** को **चोः कुः** से कुत्व होकर ककार बना। अब **द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे** से चवर्गान्त मानकर समासान्त **टच्** होकर **वाक्त्वच्+अ** बना। वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकत्वेन सु, समाहारत्वेन नपुंसक एवं एकवचन होकर **वाक्त्वचम्** सिद्ध हुआ।

त्वक्स्रजम्। त्वचा और माला का समुदाय। **त्वक् च स्रज् च तयोः समाहारः** लौकिकविग्रह और **त्वच् सु स्रज् सु** अलौकिक विग्रह है। **चार्थे द्वन्द्वः** से द्वन्द्वसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **त्वच्+स्रज्** बना। **त्वच्** के चकार को **चोः कुः** से कुत्व होकर ककार बना। अब **द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे** से चवर्गान्त मानकर समासान्त **टच्** होकर **त्वक्स्रज्+अ** बना। वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकत्वेन सु, समाहारत्वेन नपुंसक एवं एकवचन होकर **त्वक्स्रजम्** सिद्ध हुआ।

शमीदृषदम्। शमी और पत्थर का समुदाय। **शमी च दृषत् च तयोः समाहारः** लौकिकविग्रह और **शमी सु दृषद् सु** अलौकिक विग्रह है। **चार्थे द्वन्द्वः** से द्वन्द्वसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शमी+दृषद्** बना। अब **द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे** से दकारान्त मानकर समासान्त **टच्** होकर **शमीदृषद्+अ** बना। वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकत्वेन सु, समाहारत्वेन नपुंसक एवं एकवचन होकर **शमीदृषदम्** सिद्ध हुआ।

वाक्त्विषम्। वाणी और कान्ति का समुदाय। **वाक् च त्विट् च तयोः समाहारः** लौकिकविग्रह और **वाच् सु त्विष् सु** अलौकिक विग्रह है। **चार्थे द्वन्द्वः** से द्वन्द्वसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक करके **वाच्+त्विष्** बना। **वाच्** के **चकार** को **चोः कुः** से **कुत्व** होकर **ककार** बना। अब **द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे** से षकारान्त मानकर समासान्त **टच्** होकर **वाक्+त्विष्+अ** बना। वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकत्वेन सु, समाहारत्वेन नपुंसक एवं एकवचन होकर **वाक्त्विषम्** सिद्ध हुआ।

छत्रोपानहम्। छाते और जूतों का समुदाय। **छत्रं च उपानहौ च तेषां समाहारः** लौकिकविग्रह और **छत्र सु उपानह् औ** अलौकिक विग्रह है। **चार्थे द्वन्द्वः** से द्वन्द्वसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक करके **छत्र+उपानह्** बना। **गुण** होकर **छत्रोपानह्** बना। अब **द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे** से हकारान्त मानकर समासान्त टच् होकर **छत्रोपानह्+अ** बना। वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकत्वेन सु, समाहारत्वेन नपुंसक एवं एकवचन होकर **छत्रोपानहम्** सिद्ध हुआ।

समाहारे किम्? प्रावृट्शरदौ। यदि इस सूत्र में **समाहार में** हो, ऐसा नहीं कहते तो इतरेतरयोगद्वन्द्व में भी **टच्** हो जाता। सो न हो, इसके लिए सूत्र में **समाहारे** ऐसा लिखा गया। अतः **प्रावृट् च शरच्च** अनयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः **प्रावृट्शरदौ** ही बनता है, न कि प्रावृट्शरदम्।

इस प्रकार से संक्षेप में द्वन्द्व-समास को पूर्ण किया गया है। द्वन्द्व समास के लिए तो एक ही सूत्र **चार्थे द्वन्द्वः** है किन्तु पूर्वप्रयोग आदि करने के लिए और समास के अन्त में जो प्रत्यय लगते हैं उनका विधान करने के लिए अनेक सूत्र बताये गये हैं, जिनका कुछ विवरण इस **लघुसिद्धान्तकौमुदी** हुआ। इनका विस्तृत विवरण **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में किया गया है। विशेष करके **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में द्वन्द्व समास के बाद **अलुक्-समास, एकशेष समास** और **समासान्तप्रकण** भी दिखाये गये हैं। **अलुक्-समास** में समास होने के बाद भी विभक्ति का लुक् न होना आदि दिखाया गया है। इसी प्रकार **समासान्त प्रकरण** में समास करने के बाद अन्त में किये जाने वाले प्रत्यय ही बताये गये हैं। यहाँ लघुसिद्धान्तकौमुदी संक्षिप्त रूप से इन सब का दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। लघुकौमुदी में **एकशेष समास** का एक विशेष सूत्र **अजन्तपुँल्लिङ्गप्रकरण में सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ** बताया गया है और दूसरा एक सूत्र **पिता मात्रा** इस प्रकरण में।

आप **अष्टाध्यायी** का नियमित पारायण कर ही रहे होंगे।

अब हम समास के अन्त में आ चुके हैं। संस्कृत भाषा में समास का विशेष महत्त्व है। यदि कोई व्यक्ति व्याकरण के सूत्र न रटकर केवल सुबन्त और तिङन्त के समग्र रूपों को रटकर कथञ्चित् काम चला ले, किन्तु सन्धि और समास की जानकारी के लिए तो व्याकरण की शरण में आना ही पड़ता है। यदि सामान्य समास प्रकरण समझ में आ जाय तो संस्कृत के कठिन से कठिन गद्य और पद्यों का अर्थ आसानी से लग सकता है। इसलिए समास का अध्ययन अच्छी तरह से कर लेना चाहिए। मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि समास के अतिरिक्त अन्य प्रकरणों की आवश्यकता नहीं है अपितु यह कहना है कि सामान्य से सामान्य व्यक्ति जो व्याकरण के सूत्रों का रटन और प्रक्रिया में परिश्रम करने में असमर्थ है, वह रूपावली रटकर कथंचित् थोड़ा-बहुत काम चला सकता है किन्तु उसे भी समास प्रकरण तो पढ़ना ही पड़ेगा और सम्यक् प्रकारेण शब्दज्ञान करने के लिए तो पूरी व्याकरण-प्रक्रिया आवश्यक है।

वैसे तो संज्ञाप्रकरण से यहाँ तक आप प्रतिदिन कुछ न कुछ आवृत्ति कर ही रहे होंगे अर्थात् पढ़े हुए पाठ को दुहराये रहे होंगे फिर भी समासप्रकरण की आदि से अन्त तक की पूरी प्रक्रिया एक बार फिर दुहरायें। जहाँ सन्देह हो वहाँ अपने गुरु जी या विज्ञ जनों से पूछने में संकोच न करें।

प्रतिदिन ऐसा समय निकालना चाहिए कि अपने सहपाठियों से व्याकरण के सूत्र, प्रक्रिया आदि पर वाद-संवाद हो जाय और जो निर्णय न हो सके उसे गुरु जी से पूछा जाय। जो उदाहरण कौमुदी में दिखाये गये हैं, उनसे भी अलग उदाहरण खोज कर सिद्ध करने की चेष्टा करनी चाहिए। पुस्तक तो एक दिग्दर्शन मात्र कराती है। वह एक दो उदाहरणों को दिखाती है, शेष हजारों, लाखों शब्दों का ज्ञान आपको इन्ही कुछ सूत्रों के माध्यम से करना है। यदि आपने व्याकरणशास्त्र के पढ़ने में ठीक से परिश्रम कर लिया तो अन्य शास्त्रों को पढ़ने में इतना परिश्रम नहीं करना पड़ेगा किन्तु व्याकरण शास्त्र में परिश्रम नहीं किया तो अन्य शास्त्रों में परिश्रम करना व्यर्थ हो जायेगा। क्योंकि व्याकरणज्ञान अर्थात् शब्दज्ञान के विना किसी शास्त्र में प्रवृत्ति कैसे हो सकती है?

परीक्षा

१-	द्वन्द्वसमास की विशेषता वताइयें	१०
२-	चार्थ क्या हैं? समझाइये।	१०
३-	द्वन्द्व के किन्हीं दस प्रयोगों की समासप्रक्रिया दिखाइये।	१०
४-	पूर्वप्रयोगों के सूत्रों की तुलना करें।	१०
५-	द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे की व्याख्या करें।	१०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित सारसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का
द्वन्द्वसमास पूर्ण हुआ।

अथ समासान्ताः

समासान्त अ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९९३. ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे ५।४।७४।

अ अनक्ष इतिच्छेदः। ऋगाद्यन्तस्य समासस्य अप्रत्ययोऽन्तावयवोऽक्षे या धूस्तदन्तस्य तु न। अर्धर्चः। विष्णुपुरम्। विमलापं सरः। राजधुरा। अक्षे तु अक्षधूः। दृढधूरक्षः। सखिपथः। रम्यपथो देशः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब समासान्तप्रकरण का प्रारम्भ होता है। यद्यपि **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** आदि में एकशेषसमास, अलुक्समास आदि के भी अलग से प्रकरण दिखाये गये हैं किन्तु **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में उन प्रकरणों के कुछेक सूत्रों का तत्पुरुषादि समासों में उल्लेख करके पृथक् से एतदर्थ कोई प्रकरण नहीं बनाया है। समासान्त प्रत्ययों का भी उल्लेख तत्तत् प्रकरणों में आया है, फिर भी कुछ विशेषतया यहाँ पर उल्लेख करने के लिए इस प्रकरण का अवतरण है।

९९३- ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे। ऋक् च पूश्च आपश्च धूश्च पन्थाश्च तेषामितरेतरद्वन्द्व ऋक्पूरब्धूपन्थानः, तेषाम् ऋक्पूरब्धूपथाम्। न अक्षः अनक्षः, तस्मिन् अनक्षे। ऋक्पूरब्धूपथां षष्ठ्यन्तम्, अ लुप्तप्रथमाकं, अनक्षे सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समासान्ताः** का अधिकार आ रहा है।

ऋच्, पुर्, अप्, धुर् और पथिन् ये शब्द जिसके अन्त में हों, ऐसे समास से समासान्त अ प्रत्यय होता है परन्तु अक्ष(रथ के चक्के का मध्यमभाग)में जो धुर(धुरा), उसको बताने वाला धुर् शब्द अन्तिम हो तो नहीं।

अ अनक्ष इतिच्छेदः- इसका तात्पर्य यह है कि सूत्र में स्थित **आनक्षे** इस पद में **अ+अनक्षे** ऐसा पदच्छेद है। अनक्षे का निषेध केवल **धुर्** शब्द के लिए है, क्योंकि उसी में योग्यता है, औरों में नहीं।

अर्धर्चः। ऋचा का आधा भाग। **ऋचोऽर्धम्** लौकिकविग्रह और **ऋच् ङस्+अर्ध सु** अलौकिक विग्रह है। **अर्धं नपुंसकम्** से समास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ऋच्+अर्ध** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **अर्ध** की उपसर्जनसंज्ञा, उसका पूर्वनिपात करके **अर्ध+ऋच्** बना। **आद्गुणः** से गुण होकर **अर्धर्च्** बना। अब **ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे** से

समासान्त अच् होकर **अर्धर्च्+अ** बना। वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकत्वेन सु, रुत्वविसर्ग करके **अर्धर्चः** सिद्ध हुआ। **अर्धर्चादिगण** में आने के कारण एक पक्ष में **अर्धर्चाः पुंसि च** से नपुंसक होकर **अर्धर्चम्** भी होता है।

विष्णुपुरम्। विष्णु की नगरी। **विष्णोः पूः** लौकिकविग्रह और **विष्णु ङस्+पुर् सु** अलौकिक विग्रह है। **षष्ठी** से तत्पुरुषसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विष्णुपुर्** बना। प्रथमानिर्दिष्ट **विष्णु** की उपसर्जनसंज्ञा, उसका पूर्वनिपात। अब **ऋक्पूरब्धूः-पथामानक्षे** से समासान्त अच् होकर **विष्णुपुर्+अ** बना। वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकत्वेन सु, नपुंसक होने के कारण सु के स्थान पर **अम्** आदेश एवं पूर्वरूप करने पर **विष्णुपुरम्** सिद्ध हुआ।

विमलापं सरः। निर्मल जल है जिसका, ऐसा तालाब। **विमला आपो यस्य** लौकिकविग्रह और **विमला जस्+अप् जस्** अलौकिक विग्रह है। **अनेकमन्यपदार्थे** से बहुव्रीहिसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विमला-अप्** बना। सवर्णदीर्घ होकर **विमलाप्** बना। अब **ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे** से समासान्त अच् होकर **विमलाप्+अ** बना। वर्णसम्मेलन, प्रातिपदिकत्वेन सु, **सरः** नपुंसक होने के कारण इसका विशेषण **विमलाप** भी नपुंसक ही हुआ। सु के स्थान पर **अम्** आदेश एवं पूर्वरूप करने पर **विमलापं सरः** सिद्ध हुआ।

राजधुरा। राजा का कार्यभार। **राज्ञो धूः** लौकिकविग्रह और **राजन् ङस्+धुर् सु** अलौकिक विग्रह है। **षष्ठी** से तत्पुरुषसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नलोप करके **राज-धुर्** बना। अब **ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे** से समासान्त अच् होकर **राजधुर्+अ** बना। वर्णसम्मेलन, धुर्-शब्द स्त्रीलिङ्गी होने के कारण **अजाद्यतष्टाप्** से टाप्, अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ करके पर **राजधुरा** बना। प्रातिपदिकत्वेन सु, स्त्रीलिङ्ग होने के कारण इसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करने पर **राजधुरा** सिद्ध हुआ।

अक्षे तु अक्षधूः। सूत्र में **अनक्षे** पढ़ कर अक्षशब्द के साथ सम्बद्ध जो धुर्, तदन्त से अच् प्रत्यय का निषेध किया है। अतः **अक्षस्य धूः** षष्ठी करने के बाद अच् से रहित **अक्षधूः** ही बनेगा। इसी तरह **दृढधूरक्षः** में **दृढा धूः यस्य** में बहुव्रीहि समास करने के बाद समासान्त अच् प्रत्यय नहीं हुआ। अतः **दृढधूः** ही बनेगा।

सखिपथः। मित्र का रास्ता। **सख्युः पन्थाः** लौकिकविग्रह और **सखि ङस्+पथिन् सु** अलौकिक विग्रह है। **षष्ठी** से तत्पुरुषसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सखिपथिन्** बना। अब **ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे** से समासान्त अच् होकर **सखिपथिन्+अ** बना। भसंज्ञा करके **भस्य टेर्लोप** से **पथिन्** में टिसंज्ञक **इन्** का लोप हो गया। **सखिपथ्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **सखिपथ** बना। प्रातिपदिकत्वेन सु, रुत्वविसर्ग करने पर **सखिपथः** सिद्ध हुआ।

रम्यपथो देशः। सुन्दर रास्ता है जिसका, ऐसा देश। **रम्यः पन्था यस्य** लौकिकविग्रह और **रम्य सु+पथिन् सु** अलौकिक विग्रह है। **अनेकमन्यपदार्थे** से बहुव्रीहिसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **रम्यपथिन्** बना। अब **ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे** से समासान्त अच् होकर **रम्यपथिन्+अ** बना। भसंज्ञा करके **भस्य टेर्लोप** से **पथिन्** में टिसंज्ञक **इन्** का लोप हो गया। **रम्यपथ्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **रम्यपथ** बना। यह **देशः** का विशेषण है, अतः पुँल्लिङ्ग रहेगा। प्रातिपदिकत्वेन सु, रुत्वविसर्ग करने पर **रम्यपथः** सिद्ध हुआ।

अच्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९९४. अक्ष्णोऽदर्शनात् ५।४।७६।।

अचक्षु:पर्यायादक्ष्णोऽच् स्यात् समासान्तः। गवामक्षीव गवाक्षः।

अच्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९९५. उपसर्गादध्वनः ५।४।८५।।

प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो रथः।

समासान्तप्रत्ययनिषेधकं विधिसूत्रम्

९९६. न पूजनात् ५।४।६९।।

पूजनार्थात् परेभ्यः समासान्ता न स्युः। सुराजा। अतिराजा।

इति समासान्ताः।।४३।।

इति समासप्रकरणम्।

....

९९४- अक्ष्णोऽदर्शनात्। दृश्यते इति दर्शनम्। न दर्शनम् अदर्शनं, तस्मात्। अक्ष्णः पञ्चम्यन्तम्, अदर्शनात् पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः** से **अच्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, समासान्ताः, तद्धिताः** का अधिकार है।

यदि अक्षि शब्द चक्षु का वाचक न हो तो अक्षिशब्दान्त से समासान्त अच् प्रत्यय होता है।

गवाक्षः। गाय की आखों जैसी खिड़की, झरोखा। **गवाम् अक्षि इव** लौकिक विग्रह और **गो आम् अक्षि सु** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर **अक्षि** शब्द नेत्र का वाचक नहीं है अपितु नेत्र की तरह छिद्र वाली खिड़की का वाचक है। **षष्ठी** सूत्र के द्वारा षष्ठीतत्पुरुष सभास होने के पश्चात् प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **गो+अक्षि** बना। यहाँ पर **अवङ् स्फोटायनस्य** से **अवङ्** आदेश, सवर्णदीर्घ होकर **गवाक्षि+अ** बना। **अक्ष्णोऽदर्शनात्** से समासान्त **अच्** प्रत्यय होकर भसंज्ञक **अक्षि** के इकार का **यस्येति च** से लोप होकर **गवाक्ष** बना। स्वादिकार्य करके **गवाक्षः** सिद्ध होता है।

९९५- उपसर्गादध्वनः। उपसर्गात् पञ्चम्यन्तम्, अध्वनः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः** से **अच्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, समासान्ताः, तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रादियों से परे अध्वन्-शब्दान्त से समासान्त अच् प्रत्यय होता है।

प्राध्वो रथः। वह रथ जो मार्ग पर चल पड़ा। **प्रगतः अध्वानम्** लौकिक विग्रह और **प्र+अध्वन् अम्** अलौकिक विग्रह में **अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया** इस वार्तिक से समास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **प्र+अध्वन्** बना है। **उपसर्गादध्वनः** से **अच्** प्रत्यय करके **नस्तद्धिते** से **अन्** इस टिसंज्ञक का लोप करके **प्र+अध्व्+अ** बना। सवर्णदीर्घ और वर्णसम्मेलन करके **प्राध्व** बना। स्वादिकार्य करके **प्राध्वः** सिद्ध हुआ।

९९६- न पूजनात्। न अव्ययपदं, पूजनात् पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समासान्ताः** आदि पूर्ववत् अधिकृत हैं।

पूजनार्थक(प्रशंसार्थक) शब्दों से परे आने वाले शब्दों से समासान्त प्रत्यय नहीं होते हैं।

सर्वत्र निषेध नहीं होता, अपितु **सु** और **अति** से परे ही निषेध होता है, यह बताने के लिए **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में **स्वतिभ्यामेव** ऐसा पढ़ा गया है। इसका तात्पर्य है कि यह निषेध केवल **सु** और **अति** इन दो निपातों से परे ही होता है, अन्य पूजनार्थकों से निषेध नहीं होता।

सुराजा। अच्छा राजा। **शोभनो राजा** लौकिकविग्रह और **सु+राजन् सु** अलौकिक विग्रह है। **कुगतिप्रादयः** से तत्पुरुषसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सुराजन्** बना। अब **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से समासान्त **टच्** प्राप्त था, उसका **न पूजनात्** से निषेध हुआ। अतः **सुराजन्** से ही प्रातिपदिकत्वेन सु करके **राजा** की तरह **सुराजा** सिद्ध हुआ। यदि यहाँ पर **टच्** का निषेध न होता तो **सुराजः** ऐसा अनिष्ट रूप होता।

अतिराजा। अच्छा राजा। **अतिशयितो राजा** लौकिकविग्रह और **अति+राजन् सु** अलौकिक विग्रह है। **कुगतिप्रादयः** से तत्पुरुषसमास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अतिराजन्** बना। अब **राजाहःसखिभ्यष्टच्** से समासान्त टच् प्राप्त था, उसका **न पूजनात्** से निषेध हुआ। अतः **अतिराजन्** से ही प्रातिपदिकत्वेन सु करके **राजा** की तरह **अतिराजा** सिद्ध हुआ। यदि यहाँ पर **टच्** का निषेध न होता तो **अतिराजः** ऐसा अनिष्ट रूप होता।

सु और **अति** के अतिरिक्त अन्यों से टच् का निषेध नहीं होता। अतः **परमश्चासौ राजा** में **परम सु+राजन् सु** में समास करके **टच्** करने पर **परमराजः** बन सकता है।

व्याकरणशास्त्र में **पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्** यह सूत्र अत्यन्त आवश्यक है किन्तु लघुकौमुदीकार ने यहाँ पर इसे स्थान नहीं दिया है फिर भी जिज्ञासुओं के लिए व्याख्या में प्रदर्शित है।

पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्। पृषोदरः आदिर्येषां तानि पृषोदरादीनि। पृषोदरादीनि प्रथमान्तं, यथा अव्ययपदम्, उपदिष्टं प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **पृषोदर आदि शब्द शिष्टों के द्वारा जैसे उच्चारित या उपदिष्ट हुए हैं, वैसे ही साधु अर्थात् सिद्ध हैं।**

तात्पर्य यह है कि अनेक ऐसे शब्द हैं, जिनका प्रकृतिप्रत्यय की प्रक्रिया नहीं की गई है, अपितु शिष्टों ने जैसा उच्चारण किया है, उनकी सिद्धि में जो प्रक्रिया अपेक्षित है, वह करके उन रूपों को सिद्ध मान लेना चाहिए। इसके लिए चाहे कोई सूत्र हो या न हो। जैसे के **पृषत् उदरं यस्य** में समास करके तकार का लोप करने पर **पृष+उदर** बनता है। गुण करके **पृषोदर** बन जाता है। यदि तकार का लोप न करते तो **पृषदुदरम्** बनता किन्तु शिष्टों ने **पृषदुदरम्** के स्थान पर **पृषोदरम्** पढ़ा है। अतः यहाँ पर **पृषोदर** ही साधु माना गया। यद्यपि तकार के लोप के लिए कोई सूत्र नहीं है, फिर भी शिष्टों के द्वारा उच्चारित होने के कारण साधु मान लिया गया। इसी तरह **वारिणो वाहकः** में **वारिवाहकः** बनता है। यहाँ **वारिवा** के स्थान पर **वला** आदेश मान लिया जाय जिससे **वलाहकः** बन सके क्योंकि शिष्टों ने **वलाहकः** का व्यवहार किया है।

इस सूत्र के सम्बन्ध में एक पद्य प्रचलित है-

भवेद्वर्णागमाद्धंसः सिंहो वर्णविपर्ययात्।
गूढोत्मा वर्णविकृतेर्वर्णनाशात् पृषोदरम्।

हसः में अनुस्वार वर्ण का आगम करके **हंसः** बनता है। इसी तरह **हिंस्रः** में वर्णों की अदला-बदली करके **रेफ** का लोप करने पर **सिंहः** बनता है। एवं **गूढः आत्मा** में वर्णों की विकृति करके **गूढोत्मा** बना लिया जाता है और **पृषत् उदरम्** में वर्णनाश करके **पृषोदरम्** बनता है।

इसी तरह जिन शब्दों में सूत्रों के द्वारा प्रक्रिया सम्भव न हो, फिर भी शिष्टों ने जिस तरह से पढ़ा है अर्थात् पुरातन ग्रन्थों, काव्यों में जिस तरह से पठित हैं, उनको उसी रूप में साधु माना जाय।

इस तरह समास की प्रक्रिया सामान्य बताई गई। अब इसके बाद आपको **तद्धितप्रकरण** में प्रवेश करना है। उसके पहले हम अपने आपको परखते हैं कि हम समास की कितनी गहराई तक जा पहुँचे हैं?

परीक्षा

१- पाँचों समासों में आपने जो अन्तर पाया, उसकी तुलना करें। १०
२- समास में खास ध्यान देने योग्य मुख्य बिन्दुओं का उल्लेख करें। १०
३- समास में लौकिक विग्रह और अलौकिक विग्रह पर प्रकाश डालें १०
४- तत्पुरुष समास के किन्हीं पाँच प्रयोगों की प्रक्रिया दिखाइये। १०
५- अव्ययीभाव-समास के किन्हीं पाँच प्रयोगों की प्रक्रिया दिखाइये। १०
६- बहुव्रीहि-समास के किन्हीं पाँच प्रयोगों की प्रक्रिया दिखाइये। १०
७- द्वन्द्व-समास के किन्हीं पाँच प्रयोगों की प्रक्रिया दिखाइये। १०
८- सभी समासों में पूर्वप्रयोग की प्रक्रिया पर प्रकाश डालें। १०
९- निम्नलिखित विग्रहों में किस का पूर्व प्रयोग होता है? कारण एवं सूत्र सहित प्रक्रिया दिखाइये- **इन्द्रश्च वायुश्च। अर्जुनश्च भीमश्च। ईशश्च रुद्रश्च। हरिश्च शिवश्च। श्यामश्च रामश्च।** १०
१०- समासप्रक्रिया पर दो पेज का एक लेख लिखिए- १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का
समासान्त-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ तद्धितप्रकरणम्

तत्रादौ साधारणप्रत्ययाः

अधिकारसूत्रम्

९९७. समर्थानां प्रथमाद्वा ४।१।८२।।

इदं पदत्रयमधिक्रियते प्राग्दिश इति यावत्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **तद्धितप्रकरण** का प्रारम्भ होता है। तद्धित प्रत्यय हैं, सूत्रसंख्या ४।१।७६ (तद्धिताः) से लेकर पाँचवें अध्याय के चतुर्थपाद की समाप्ति तक जितने भी प्रत्यय होते हैं, उन सब की **तद्धिताः** से तद्धितसंज्ञा होती है। **तेभ्यः प्रयोगेभ्य हिताः** अर्थात् उन प्रयोगों की निष्पत्ति में हितकर सिद्ध होने के कारण जो प्रत्यय हैं, उन्हें तद्धित कहा जाता है। तद्धित प्रत्यय सुबन्त प्रातिपदिकों से होते हैं, धातुओं से नहीं। ये प्रायः किसी अर्थविशेष को लेकर होते हैं। **अण्, ठक्, ठञ्, णिनि, मतुप्, घञ्, मयट्** आदि अनेंकों प्रकार के होते हैं। इन प्रत्ययों के लगने से लोक से लौकिक, वेद से वैदिक, धर्म से धार्मिक, पाणिनि से पाणिनीय, ग्राम से ग्रामीण, राष्ट्र से राष्ट्रिय, मेधा से मेधाविन्, नर से नरत्व, मनुष्य से मनुष्यत्व आदि रूप बनते हैं। तद्धित प्रत्यय करने के बाद समास की तरह तद्धितान्त की भी प्रातिपदिकसंज्ञा होती है और उसके बीच में विद्यमान सुप् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हो जाता है। उसके बाद उस प्रत्यय के परे रहते किए जाने वाले गुण, वृद्धि आदि कार्य होते हैं और **एकदेशविकृतन्यायेन** सु आदि विभक्तियाँ आती हैं।

९९७- समर्थानां प्रथमाद्वा। समर्थानां षष्ठ्यन्तं, प्रथमाद् पञ्चम्यन्तं, वा अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

''प्राग्दिशो विभक्तिः ५।३।१।।'' तक समर्थानां, प्रथमाद्, वा इन तीनों पदों का अधिकार है।

अधिकार होने से इन पदों का अपने स्थल पर कोई उपयोग नहीं है किन्तु आगे के विधिसूत्रों में उपस्थित होकर इनकी चरितार्थता सिद्ध होती है। तद्धितविधि भी पदसम्बन्धी विधि है। अतः **समर्थः पदविधिः** सूत्र के अनुसार सामर्थ्य होने पर ही तद्धित प्रत्यय हो सकते हैं।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९९८. अश्वपत्यादिभ्यश्च ४।१।८४॥

एभ्योऽण् स्यात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु।

अश्वपतेरपत्यादि आश्वपतम्। गाणपतम्।

....

समर्थः पदविधिः और **समर्थानां प्रथमाद्वा** इन दो सूत्रों में पठित **समर्थ** शब्द के अर्थ में अन्तर-

समर्थः पदविधिः सूत्र का सामर्थ्य एकार्थीभाव रूप है। इसीलिए असमर्थ होने पर तद्धित प्रत्यय किये नहीं जा सकते। जैसे- **कम्बलम् उपगोरपत्यं देवदत्तस्य**(कम्बल तो उपगु नामक व्यक्ति का है और सन्तान देवदत्त की) में **उपगु** शब्द से अपत्यार्थ में अण् प्रत्यय नहीं हो सकता, क्योंकि **उपगु** का सम्बन्ध **कम्बल** से है, **अपत्य** के साथ में नहीं। अतः सामर्थ्य न होने से प्रत्यय भी नहीं होगा।

समर्थानां प्रथमाद्वा में पठित **सामर्थ्य** का अर्थ **प्रयोग की योग्यता** है अर्थात् अर्थबोध कराने में सामर्थ्य वाला ही समर्थ माना जाता है जिसमें तत्तत् सन्धिकार्य हो चुके हों, वही पद अर्थबोध कराने में समर्थ हो सकता है, अकृतसन्धिकार्य पद नहीं। यदि ऐसा सामर्थ्य न लिया जाता तो **सु+उत्थितस्य अपत्यम्** इस विग्रह में **अत इञ्** सूत्र से **इञ्** प्रत्यय होने पर **सु+उत्थित+इ** इस अवस्था में **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् **सु** के उकार की वृद्धि करके **सौ+उत्थित+इ** में आव् आदेश करके **सावुत्थित+इ**, अकार का लोप, वर्णसम्मेलन आदि करके **सावुत्थिति** ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध होने लगता परन्तु जब समर्थ अर्थात् कृतसन्धिकाय से ही प्रत्यय का विधान करेंगे तो **सु+उत्थितस्य अपत्यम्** इस विग्रह में **इञ्** प्रत्यय के पहले ही **सु+उत्थित** में दीर्घ होकर **सूत्थित** बनने के बाद ही अपत्यार्थ में प्रत्यय होकर आदि अच् **सू** के ऊकार की वृद्धि होने पर **सौत्थित+इ=सौत्थितिः** ऐसा शुद्ध रूप बन सकेगा। अतः इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि **समर्थः पदविधिः** से ही **सामर्थ्य** अर्थ प्राप्त होते हुए **समर्थानां प्रथमाद्वा** में **समर्थ** पढ़ना व्यर्थ है।

इस तरह **समर्थः पदविधिः** के **समर्थः** का अर्थ- **एकार्थीभाव** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** के **समर्थ** का अर्थ- **कृत-सन्धिकार्य**(कृतं सन्धिकार्यं यस्मिन्) समझना चाहिए।

समर्थानां प्रथमाद्वा इन तीन पदों के अधिकार का फल यह होता है कि **समर्थ** अर्थात् प्रयोग के योग्य(कृतसन्धिकार्य) और तद्धितप्रत्ययविधायक सूत्रों में प्रथमोच्चरित पद से जिसका बोध होता है, ऐसे समर्थ शब्दों से प्रत्यय हों, विकल्प से, इस अर्थ की उपस्थिति। जैसे कि **तस्यापत्यम्** इस सूत्र में प्रथमोच्चरित पद **तस्य** है और उससे **उपगोरपत्यम्** इत्यादि में **उपगोः** आदि षष्ठ्यन्त का बोध होता है। अतः इसी(षष्ठ्यन्त) से अण् प्रत्यय होता है, न कि **अपत्य** शब्द से। **वा** शब्द के कारण **उपगोरपत्यम्** ऐसा वाक्य का भी प्रयोग किया जा सकता है अर्थात् सम्पूर्ण तद्धित में एकपक्ष में वाक्य भी हो सकता है।

समर्थानां प्रथमाद्वा के साथ ही **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः** का भी प्रायः सभी सूत्रों में अधिकार रहेगा। इस तरह पूरे तद्धित-प्रत्ययविधायक सूत्रों में **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च** इन सभी पदों का अधिकार रहता है किन्तु **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार **प्राग्दिशो विभक्तिः** के पहले तक रहता है, आगे नहीं।

९९८- अश्वपत्यादिभ्यश्च। अश्वपतिः आदिर्येषां ते अश्वपत्यादयस्तेभ्यः। अश्वपत्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार है। **प्राग्दीव्यतोऽण्** का भी अधिकार है।

प्राग्दिव्यतीय अर्थों में अश्वपति आदि गणपठित शब्दों से अण् प्रत्यय होता है।

अण् में णकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। णित् होने के कारण वृद्धि आदि होंगे। आगे **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** सूत्र कहा गया है, उससे पहले तक के सूत्रों में जो जो भी अर्थ बताये गये हैं, उन अर्थों को **प्राग्दीव्यतीय** अर्थ कहा गया है। अश्वपति आदि गण में **अश्वपति, ज्ञानपति, शतपति, धनपति, गणपति, स्थानपति, यज्ञपति, राष्ट्रपति, कुलपति, गृहपति, पशुपति, धान्यपति, बन्धुपति, धर्मपति, सभापति, प्राणपति और क्षेत्रपति** ये शब्द आते हैं।

अण् में णकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। णित् होने के कारण वृद्धि आदि होंगे।

इस प्रकरण के सभी प्रत्यय प्राग्दीव्यतीय अर्थों में कहे गये हैं। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से लेकर **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** तक **अपत्य, गोत्रापत्य, युवापत्य, सास्य देवता, तस्य समूहः, तदधीते तद्वेद, तत्र जातः, प्रायःभवः, सम्भूत, उप्त, तत्र भवः, तस्य व्याख्यान, तत आगतः, प्रभवति, सोऽस्य निवासः, अभिजन, भक्ति, तेन प्रोक्तम्, तस्येदम्, तस्य विकारः, तस्यावयवः** इत्यादि अर्थ आते हैं। इन अर्थों में प्रायः अण् प्रत्यय का ही विधान ये सूत्र करते हैं। जहाँ विशेष प्रत्यय अपेक्षित होता है वहाँ उस प्रत्यय के लिए अपवाद सूत्र बने हुए हैं। उक्त सभी अर्थ तत्तत् प्रकरणों में स्पष्ट हो जायेंगे।

आश्वपतम्। अश्वपति की सन्तान आदि। **अश्वपतेरपत्यादि** लौकिक विग्रह है। **अश्वपति ङस्** इस अलौकिक विग्रह में **अश्वपत्यादिभ्यश्च** से अण् प्रत्यय हुआ- **अश्वपति ङस् अण्** बना। अण् में णकार का **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप हुआ- **अश्वपति ङस् अ** बना। **अश्वपति ङस्+अ** की तद्धितान्त होने के कारण **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई और **ङस्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ, **अश्वपति+अ** बना। **अ** णित् है, अतः उसके परे होने पर अचों में आदि अच् **अश्वपति** के अकार की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि हुई, **आश्वपति+अ** बना। अण् के **अकार** इस अजादि-प्रत्यय के परे होने पर पूर्व की **यचि भम्** से भसंज्ञा हुई और उसके इकार का **यस्येति च** से लोप हुआ- **आश्वपत्+अ** बना। **आश्वपत्+अ** में वर्णसम्मेलन होकर **आश्वपत** बना। जब इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई थी तब इसका स्वरूप **अश्वपति ङस् अ** था, अब **आश्वपत** बन गया है तो भी **एकदेशविकृतन्याय** से **आश्वपत** को प्रातिपदिक मान लिया गया। इसलिए **आश्वपत** से सु विभक्ति आई और सामान्य की अपेक्षा में नपुंसक मानकर प्रथमा के एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय, उसके स्थान पर **अतोऽम्** से **अम्** आदेश और **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर **आश्वपतम्** सिद्ध हुआ। इसके रूप सातों विभक्तियों में ज्ञानम् की तरह **आश्वपतम्, आश्वपते, आश्वपतानि** आदि बनेंगे। यदि विशेष्य पुँल्लिङ्ग का होगा तो **रामः** की तरह **आश्वपतः, आश्वपतौ, आश्वपताः** आदि बनेंगे। विशेष्य के स्त्रीलिङ्ग में होने पर स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होकर **आश्वपती** बनेगा और इसके रूप **नदी** शब्द की तरह **आश्वपती, आश्वपत्यौ, आश्वपत्यः** आदि बनेंगे।

ण्यप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

९९९. दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः ४।१।८५॥

दित्यादिभ्यः पत्युत्तरपदाच्च प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः स्यात्। अणोऽपवादः। दितेरपत्यं दैत्यः। अदितेरादित्यस्य वा-

....

गाणपतम्। गणपति की सन्तान आदि। गणपति शब्द अश्वपत्यादिगण में आता है। **गणपतेरपत्यादि** लौकिक विग्रह है। **गणपति ङस्** इस अलौकिक विग्रह में **अश्वपत्यादिभ्यश्च** से अण् प्रत्यय हुआ- **गणपति ङस् अण्** बना। अण् में णकार का **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप हुआ- **गणपति ङस् अ** बना। **गणपति ङस्+अ** की तद्धितान्त होने के कारण **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई और ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ, **गणपति+अ** बना। अ णित् है, अतः उसके परे होने पर अचों में आदि अच् **गणपति** के गकारोत्तरवर्ती अकार की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि हुई, **गाणपति+अ** बना। अकार रूप अजादि-प्रत्यय के परे होने पर पूर्व की **यचि भम्** से भसंज्ञा हुई और उसके इकार का **यस्येति च** से लोप हुआ- **गाणपत्+अ** बना। **गाणपत्+अ** में वर्णसम्मेलन होकर **गाणपत** बना। जब इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई थी तब इसका स्वरूप **गाणपति ङस् अ** था, अब **गाणपत** बन गया है तो भी **एकदेशविकृतन्याय** से **गाणपत** को प्रातिपदिक मान लिया गया। इसलिए **गाणपत** से सु विभक्ति आई और सामान्य की अपेक्षा में नपुंसक मान कर प्रथमा के एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय, उसके स्थान पर **अतोऽम्** से अम् आदेश और **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर **गाणपतम्** सिद्ध हुआ। इसके रूप सातों विभक्तियों में **ज्ञानम्** की तरह **गाणपतम्, गाणपते, गाणपतानि** आदि बनेंगे। यदि विशेष्य पुँल्लिङ्ग का होगा तो रामः की तरह **गाणपतः, गाणपतौ, गाणपताः** आदि बनेंगे। विशेष्य के स्त्रीलिङ्ग में होने पर स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होकर **गाणपती** बनेगा और इसके रूप **नदी** शब्द की तरह **गाणपती, गाणपत्यौ, गाणपत्यः** आदि बनेंगे।

९९९- दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः। पतिरुत्तरपदं यस्य स पत्युत्तरपदः(शब्दः), दितिश्च अदितिश्च आदित्यश्च पत्युत्तरपदश्च एतेषां समाहारो दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदम्, तस्मात्। दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदात् पञ्चम्यन्तं, ण्यः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है साथ ही **प्राग्दिव्यतोऽण्** का भी अधिकार है।

प्राग्दिव्यतीय अर्थों में दिति, अदिति, आदित्य शब्द और पति उत्तरपद में हो ऐसे शब्दों से 'ण्य' प्रत्यय होता है।

णकार चुटू से इत्संज्ञक है, य बचता है।

दैत्यः दिति की सन्तान। **दितेरपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **दिति ङस्** इस अलौकिक विग्रह में **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** से **ण्य** प्रत्यय हुआ- **दिति ङस् ण्य** बना। **ण्य** में णकार की **चुटू** से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप हुआ- **दिति ङस् य** बना। **दिति ङस्+य** की तद्धितान्त होने के कारण **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई और **ङस्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ, **दिति+य** बना। **य** णित् है,

यमो लोपविधायकं विधिसूत्रम्

१०००. हलो यमां यमि लोपः ८।४।६४।।

हलः परस्य यमो लोपः स्याद् वा यमि। इति यलोपः।

आदित्यः। प्राजापत्यः।

वार्तिकम्- **देवाद्यञञौ।** दैव्यम्। दैवम्।

वार्तिकम्- **बहिषष्टिलोपो यञ्च।** बाह्यः।

वार्तिकम्- **ईकक् च।**

....

अतः उसके परे होने पर अचों में आदि अच् दिति के दकारोत्तरवर्ती इकार की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि हुई, इकार की वृद्धि ऐकार होकर **दैति+य** बना। यकारादि-प्रत्यय के परे होने पर पूर्व की **यचि भम्** से भसंज्ञा हुई और उसके इकार का **यस्येति च** से लोप हुआ- **दैत्+य** बना। **दैत्+य** में वर्णसम्मेलन होकर **दैत्य** बना। जब इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई थी तब इसका स्वरूप **दिति ङस् य** था, अब **दैत्य** बन गया है तो भी **एकदेशविकृतन्याय** से **दैत्य** को भी प्रातिपदिक मान लिया गया। इसलिए **दैत्य** से **सु** विभक्ति आई और पुँल्लिङ्ग में **रामः** की तरह **दैत्यः** सिद्ध हुआ।

१०००- **हलो यमां यमि लोपः**। हलः पञ्चम्यन्तं, यमां षष्ठ्यन्तं, यमि सप्तम्यन्तं, लोपः प्रथमान्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **झयो होऽन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है।

हल् से परे यम् का विकल्प से लोप होता है यम् के परे होने पर।

यम् प्रत्याहार में **य्, व्, र्, ल्, ञ्, म्, ङ्, ण्, न्** ये वर्ण आते हैं। **यम्** के परे रहते यम् के लोप का विधान हुआ है। अतः संख्या की समानता होने के कारण **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** के अनुसार **यथासङ्ख्य** नियम प्रवृत्त होगा, जिससे यकार के परे यकार का ही लोप, वकार के परे वकार का ही लोप आदि होंगे। ध्यान रहे कि जिसका लोप किया जा रहा है, उससे पूर्व में झल् प्रत्याहार का वर्ण होना चाहिए। यह कार्य वैकल्पिक है।

आदित्यः। अदिति की सन्तान। **अदितेरपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **अदिति ङस्** इस अलौकिक विग्रह में **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** से ण्य प्रत्यय हुआ- **अदिति ङस् ण्य** बना। ण्य में णकार की **चुटू** से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप हुआ- **अदिति ङस् य** बना। **अदिति ङस्+य** की तद्धितान्त होने के कारण **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई और ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ, **अदिति+य** बना। **य** णित् है अतः उसके परे होने पर अचों में आदि अच् अदिति के अकार की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि हुई, **आदिति+य** बना। यकारादि-प्रत्यय के परे होने परे पूर्व की **यचि भम्** से भसंज्ञा हुई और उसके इकार का **यस्येति च** से लोप हुआ- **आदित्+य** बना। **आदित्+य** में वर्णसम्मेलन होकर **आदित्य** बना। सु विभक्ति आई और पुँल्लिङ्ग में **रामः** की तरह **आदित्यः** सिद्ध हुआ।

आदित्यः। आदित्य की सन्तान। **आदित्यस्य अपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **आदित्य ङस्** इस अलौकिक विग्रह में **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** से **ण्य** प्रत्यय

वृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

१००१. किति च ७।२।११८।।

किति तद्धिते चाचामादेरचो वृद्धिः स्यात्। बाहीकः।

वार्तिकम्- **गोरजादिप्रसङ्गे यत्।** गोरपत्यादि गव्यम्।

....

करके अनुबन्धलोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, ङस् का लुक् होकर **आदित्य+य** बना। आकार के स्थान पर आकार ही आदिवृद्धि हुई। भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप हुआ- **आदित्+य** बना। यकार से यकार परे होने पर **हलो यमां यमि लोपः** से प्रथम यकार का वैकल्पिक लोप हुआ। हल् है त्, उससे परे **यम** है प्रथम यकार और **यम** परे है द्वितोय यकार। अब **आदित्+य** बना, वर्णसम्मेलन होकर **आदित्य** बना। सु, रुत्व और विसर्ग करके **आदित्यः** सिद्ध हुआ। लोप न होने के पक्ष में **आदित्य्यः** बना। यहाँ पर प्रत्यय होने के बाद भी रूप में अन्तर नहीं आया है।

प्राजापत्यः। प्रजापति की सन्तान। **प्रजापतेरपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **प्रजापति ङस्** इस अलौकिक विग्रह में **पति उत्तरपद** में होने के कारण **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** से **ण्य** प्रत्यय हुआ- **प्रजापति ङस् ण्य** बना। **ण्य** में **णकार** की **चुटू** से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप हुआ- **प्रजापति ङस् य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **प्रजापति+य** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से **प्र** में **अकार** की वृद्धि हुई, **प्राजापति+य** बना। भसंज्ञक इकार का **यस्येति च** से लोप करके **प्राजापत्+य**, वर्णसम्मेलन करके **प्राजापत्य** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **प्राजापत्यः** सिद्ध हुआ।

देवाद्यञञौ। यह वार्तिक है। **देव शब्द से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में यञ् और अञ् प्रत्यय होता है।**

दोनों प्रत्ययों में **ञकार** की इत्संज्ञा होती है। क्रमशः **य** और **अ** शेष रह जाते हैं। ञित् का प्रयोजन वृद्धि है। यह वार्तिक **प्राग्दीव्यतोऽण्** से प्राप्त औत्सर्गिक अण् का अपवाद है।

दैव्यम्, दैवम्। देव की सन्तान आदि। **देवस्य अपत्यादि**। **देव ङस्** से अण् प्राप्त था, उसे बाधकर के **देवाद्यञञौ** से पहले **यञ्** प्रत्यय, ञकार का लोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **देव+य** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर एकार के स्थान पर ऐकार आदेश होकर **दैव+य** बना। **यस्येति च** से वकारोत्तरवर्ती अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **दैव्य** बना। सु, अम् आदेश, पूर्वरूप करके **दैव्यम्** बना। **अञ्** होने के पक्ष में भी यही प्रक्रिया होकर **दैव्+अ=दैव, दैवम्** सिद्ध होता है।

बहिषष्टिलोपो यञ्च। यह वार्तिक है। **बहिस् से यञ् प्रत्यय और उसके संनियोग में टि का लोप भी होता है।**

बाह्यः। बाहर होने वाला। **बहिर्भवः, बहिस्** से **बहिषष्टिलोपो यञ्च** से यञ् प्रत्यय के साथ **बहिस्** में टि **इस्** का लोप हो गया। **बह्+य** बना। **य** ञित् है, अतः **तद्धितेष्वचामादेः** आदि अच् **अकार** की वृद्धि हुई, **बाह्+य** बना। वर्णसम्मेलन होकर **बाह्य** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **बाह्यः** सिद्ध हुआ।

ईकक् च। यह वार्तिक है। **बहिस् शब्द से ईकक् भी होता है, साथ ही टि का लोप भी होता है।**

अञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१००२. उत्सादिभ्योऽञ् ४।१।८६॥

औत्सः।

इत्यपत्यादि-विकारान्तार्थ-साधारणप्रत्ययाः॥४४॥

....

अन्त्य ककार की इत्संज्ञा होकर ईक शेष रहता है। कित् का फल अग्रिम सूत्र **किति च** की प्रवृत्ति है।

१००१- **किति च**। किति सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तद्धितेष्वचामादेः** पूरा सूत्र, **अचो ञ्णिति** से **अचः** और **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** का अनुवर्तन होता है।

कित् तद्धित प्रत्यय के परे होने पर अचों में आदि अच् की वृद्धि होती है।

तद्धितेष्वचामादेः और **किति च** इन दो सूत्रों का उपयोग ञित्, णित् और कित् प्रत्ययों के परे होने पर पूरे तद्धित प्रकरण में होता है। इन सूत्रों से किये गये कार्य को **आदिवृद्धि** के रूप में जाना जाता है।

बाहीकः। बाहर होने वाला या बाहरी। **बहिर्भवः**, **बहिस्** से **ईकक्** **च** वार्तिक से **ईकक्** प्रत्यय के साथ **बहिस्** में टि **इस्** का लोप हो गया। **बह्+ईक** बना। **य** कित् है, अतः **किति च** से आदि अच् अकार की वृद्धि हुई, **बाह्+ईक** बना। वर्णसम्मेलन होकर **बाहीक** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **बाहीकः** सिद्ध हुआ।

गोरजादिप्रसङ्गे यत्। यह वार्तिक है। **अजादि प्रत्ययों के प्रसंग में गो-शब्द से यत् प्रत्यय होता है, प्राग्दीव्यतीय अर्थों में।**

तात्पर्य यह है कि **प्राग्दीव्यतीय** अर्थों में **गो** से यदि कोई **अजादि** प्रत्यय प्राप्त हो तो वह न होकर **यत्** प्रत्यय हो जाय।

गव्यम्। गौ की सन्तान आदि। **गोरपत्यादि**। **गो+ङस्** में **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** प्राप्त था। यह अजादि प्रत्यय है। अतः उस सूत्र को बाधकर के **गोरजादिप्रसङ्गे यत्** से यत् प्रत्यय, तकार का लोप करके **गो+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से अव् आदेश होकर **गव्य** बना। तद्धित प्रत्यय करने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होता है। प्रातिपदिकत्वेन सु, उसके स्थान में नपुंसकीय अम् आदेश करके पूर्वरूप करने पर **गव्यम्** सिद्ध हुआ।

१००२- **उत्सादिभ्योऽञ्**। उत्स आदिर्येषां ते उत्सादयस्तेभ्यः। उत्सादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अञ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **तद्धिताः**, **समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **प्राक्** और **दीव्यतः** की अनुवृत्ति आती है। **अञ्** को देखकर **अण्** निवृत्त होता है। **उत्सादिभ्योऽञ् स्यात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु।**

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में उत्स आदि गणपठित शब्दों से अञ् प्रत्यय होता है।

ञकार की इत्संज्ञा होती है। ञित् होने से आदिवृद्धि होती है। **उत्सादिगण** में उत्स, उदपान, विकर, विनद, महानद, महानस, महाप्राण, तरुण, तलुन, पृथिवी आदि अनेक शब्द आते हैं।

औत्सः। उत्स अर्थात् झरने में होने वाला मण्डूक आदि। **उत्से भवः** लौकिक विग्रह और **उत्स ङि** अलौकिक विग्रह में **उत्सादिभ्योऽञ्** से **अञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप

करके **उत्स+ङि+अ** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके प्रातिपदिक के अवयव सुप् विभक्ति **ङि** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **उत्स+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर **उकार** के स्थान पर **औकार** हो गया- **औत्स+अ** बना। **यस्येति च** से सकारोत्तरवर्ती **अकार** का लोप हुआ, **औत्स्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **औत्स** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक, सु, रुत्व, विसर्ग करके **औत्सः** सिद्ध हुआ।

परीक्षा

१- तद्धित के विषय में प्रकाश डालिए। १०

२- तद्धित में सामान्यतया होने वाले अधिकार सूत्रों के सम्बन्ध में बताइये। १०

३- आदिवृद्धि और इवर्णावर्ण के लोप के विषय में प्रकाश डालिए। १०

४- **उत्सादिभ्योऽञ्** के किन्हीं पाँच प्रयोगों की प्रक्रिया दिखाइये। ५

५- **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्यः** के किन्हीं पाँच प्रयोगों की प्रक्रिया दिखाइये। ५

६- कृत् और तद्धित की प्रक्रियाओं में अन्तर बताइये। १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का तद्धित साधारण प्रत्ययों का प्रकरण पूर्ण हुआ।।४४।।

अथापत्याधिकारः

नञ्स्नञ्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१००३. स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ४।१।८७।।

धान्यानां भवन इत्यतः प्रागर्थेषु स्त्रीपुंसाभ्यां क्रमान्नञ्स्नञौ स्तः।

स्त्रैणः। पौंस्नः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब तद्धितप्रकरण में **अपत्याधिकारप्रकरण** का प्रारम्भ होता है। इनमें प्रायः अपत्य-अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जायेगा। **तद्धिताः, समर्थानां, प्रथमाद्, वा** का अधिकार प्रत्ययविधायक सूत्रों में रहेगा ही। पहले की तरह प्रत्यय करने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और प्रत्ययों के परे होने वाले गुण, वृद्धि, इवर्ण-अवर्ण का लोप आदि कार्य भी होंगे। अपत्यार्थ में लौकिक विग्रह में पुँल्लिङ्ग के साथ **पुमान्** और स्त्रीलिङ्ग के साथ **स्त्री** जोड़ने का प्रचलन है, जैसे- **दितेः अपत्यं पुमान्- दैत्यः** एवं **दितेः अपत्यं स्त्री- दैत्या** आदि। स्मरण रहे कि समास की तरह तद्धित में भी अलौकिक विग्रह से ही प्रत्यय होते हैं। **१००३- स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्**। स्त्री च पुमान् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः स्त्रीपुमांसौ, ताभ्याम्। नञ् च स्नञ् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो नञ्स्नञौ। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **प्राक्** की अनुवृत्ति आती है। प्रत्यय, **परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् इस सूत्र से **पहले के अर्थों में स्त्री और पुंस् प्रातिपदिकों से तद्धितसंज्ञक क्रमशः नञ् और स्नञ् प्रत्यय होते हैं।**

दोनों में ञकार इत्संज्ञक हैं।

स्त्रैणः। स्त्री की सन्तान आदि। **स्त्रिया अपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **स्त्री ङस्** से **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्** से **नञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्त्री+न** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर ईकार के स्थान पर ऐकार हो गया, **स्त्रै+न** बना। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से प्रत्यय के नकार के स्थान पर णकार आदेश होकर **स्त्रैण** बना। विभक्तिकार्य करके **स्त्रैणः** सिद्ध हुआ।

पौंस्नः। पुरुष की सन्तान आदि। **पुंसः अपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **पुंस् ङस्** से **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्** से **स्नञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पुंस्+स्न** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर

तद्धितप्रत्ययार्थविधायकं विधिसूत्रम्

१००४. तस्यापत्यम् ४।१।९२॥

षष्ठ्यन्तात्कृतसन्धेः समर्थादपत्येऽर्थे उक्ता वक्ष्यमाणाश्च प्रत्यया वा स्युः।

गुणविधायकं विधिसूत्रम्

१००५. ओर्गुणः ६।४।१४६॥

उवर्णान्तस्य भस्य गुणस्तद्धिते।

उपगोरपत्यम् औपगवः। आश्वपतः। दैत्यः। औत्सः। स्त्रैणः। पौंस्नः।

....

उकार के स्थान पर औकार हो गया, **पौंस्+स्न** बना। **पौंस्** के सकार का विभक्ति के लुक् हो जाने पर भी पूर्व विभक्ति को मान कर पदत्व होने से संयोगान्त लोप करके **पौंस्न** बना। विभक्तिकार्य करके **पौंस्नः** सिद्ध हुआ।

१००४- तस्यापत्यम्। तस्य षष्ठ्यन्तम्, अपत्यं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। पदविधि होने के कारण **समर्थः पदविधिः** से **समर्थः** का लाभ है। **प्रत्यय, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ रहा है। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है।

षष्ठ्यन्त कृतसन्धिकार्य समर्थ प्रातिपदिक से अपत्य(सन्तान) अर्थ में इस सूत्र के पहले कहे गये प्रत्यय और आगे आने वाले प्रत्यय होते हैं।

विशेषः- इस तद्धितप्रकरण में कई प्रकार के सूत्र हैं। कुछ सूत्र **प्रत्यय के विधान** के लिए हैं तो कुछ सूत्र **अर्थविशेष को बताने** के लिए और कुछ सूत्र **प्रकृतिविशेष को बताने** के लिए।

उक्त तीनों के क्रमशः उदाहरण- **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** सूत्र दिति आदि शब्दों से ण्य प्रत्ययविशेष के विधान के लिए है तो **तस्यापत्यम्** अपत्य-अर्थविशेष को बताने के लिए है। इसी तरह **यञिञोश्च** प्रकृतिविशेष को बताने के लिए।

कुछ सूत्र प्रकृति, प्रत्यय और अर्थ तीनों को भी बताते हैं- जैसे **किंयत्तदोर्निर्धारणे द्वयोरेकरस्य डतरच्** और कुछ सूत्र केवल प्रकृति-प्रत्यय मात्र को बताते हैं- जैसे **उत्सादिभ्योऽञ्।** केवल अर्थ और प्रत्यय को बताने वाले कुछ सूत्र होते हैं, जैसे- **इषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः।** कुछ सूत्र समर्थ सुबन्त के निर्देश के साथ-साथ अर्थविशेष को बताने के लिए भी बनाये गये है, जैसे- **तस्यापत्यम्, तत्र भवः, तेन प्रोक्तम्, तत आगतः** आदि। केवल तत्तत् कार्य का ही इनसे विधान मानेंगे तो सूत्रार्थ पूर्ण नहीं होगा। इस लिए आवश्यकता के अनुसार सूत्रों की एकवाक्यता करके अर्थ करना चाहिए जिससे एक महावाक्य बनकर इष्टरूपों की सिद्धि हो सके।

यह सूत्र केवल **षष्ठ्यन्त समर्थ प्रकृति** और **अपत्य-रूप अर्थविशेष** का निर्देश करता है, प्रत्यय तो पीछे कहे गये या आगे कहे जाने वाले तत्तत् सूत्रों से होंगे। प्रत्ययविधायकसूत्र और अर्थनिर्देशकसूत्रों की आपस में एकवाक्यता होती है। **तस्यापत्यम्** यह अधिकारसूत्र भी है विधिसूत्र भी, अतः आगे के सूत्रों में इसका अधिकार भी जाता है या अनुवृत्ति भी मान सकते हैं।

१००५- **ओर्गुणः**। ओः षष्ठ्यन्तं, गुणः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **नस्तद्धिते** से **तद्धिते** की अनुवृत्ति आती है।

तद्धित प्रत्यय के परे होने पर भसंज्ञक उवर्णान्त को गुण होता है।

भसंज्ञा अजादि या यकारादि प्रत्यय के परे रहते पूर्व की होती है, अतः यह मान लेना चाहिए कि अजादि या यकारादि के परे रहने पर ही यह सूत्र लगता है।

औपगवः। उपगु नामक व्यक्ति की सन्तान। **उपगोः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **उपगु ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक वाला अलौकिक विग्रह है। **तस्यापत्यम्** से अण् प्रत्यय हुआ- **उपगु ङस् अण्** बना। णकार की इत्संज्ञा हुई **उपगु ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **उपगु+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर **उ** के स्थान पर **औकार** आदेश होकर **ओर्गुणः** से अन्त्य अच् उकार को गुण करने पर ओकार होकर **औपगो+अ** बना। ओकार के स्थान पर अव् आदेश होकर **औपग्+अव्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **औपगव** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **औपगवः** सिद्ध हुआ।

आश्वपतः। अश्वपति की सन्तान। **अश्वपतेः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **अश्वपति ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक अलौकिक विग्रह है। **तस्यापत्यम्** के अर्थ में **अश्वपत्यादिभ्यश्च** से अण् प्रत्यय हुआ- **अश्वपति ङस् अण्** बना। णकार की इत्संज्ञा हुई **अश्वपति ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **अश्वपति+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर अकार के स्थान पर आकार आदेश और भसंज्ञक इकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **आश्वपत्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **आश्वपत** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **आश्वपतः** सिद्ध हुआ। वैसे पूर्वप्रकरण में आप **आश्वपतम्** बना ही चुके हैं।

दैत्यः। दिति की सन्तान। **दितेः अपत्यं पुमान्** ऐसे अलौकिक विग्रह और **दिति** ङस् अलौकिक विग्रह वाले षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से **तस्यापत्यम्** के अर्थ में **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** से ण्य प्रत्यय हुआ- **दिति ङस् ण्य** बना। णकार की इत्संज्ञा हुई **दिति ङस् य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **दिति+य** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर **इकार** के स्थान पर **ऐकार** आदेश और भसंज्ञक इकार का **यस्येति** च से लोप करने पर **दैत्+य** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **दैत्य** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **दैत्यः** सिद्ध हुआ। पूर्वप्रकरण में भी आप **दैत्यः** बना चुके हैं। इसी प्रकार **प्राजापत्यः** भी बनाइये।

स्त्रैणः। स्त्री की सन्तान आदि। **स्त्रिया अपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **स्त्री ङस्** से **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्** के अनुसार **तस्यापत्यम्** से **नञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्त्री+न** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर ईकार के स्थान पर ऐकार हो गया, **स्त्रै+न** बना। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से प्रत्यय के नकार के स्थान पर णकार आदेश होकर **स्त्रैण** बना। विभक्तिकार्य करके **स्त्रैणः** सिद्ध हुआ।

पौंस्नः। पुरुष की सन्तान आदि। **पुंसः अपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **पुंस् ङस्** से **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्** के अनुसार **तस्यापत्यम्** से **स्नञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पुंस्+स्न** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः**

गोत्रसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१००६. अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ४।१।१६२॥

अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात्।

एकप्रत्ययविधानाय नियमसूत्रम्

१००७. एको गोत्रे ४।१।९३॥

गोत्रे एक एवापत्यप्रत्ययः स्यात्। उपगोर्गोत्रापत्यमौपगवः।

....

से आदिवृद्धि होने पर उकार के स्थान पर औकार हो गया, **पौंस्+स्न** बना। **पौंस्** के सकार का विभक्ति के लुक् हो जाने पर भी पूर्व विभक्ति को मान कर पदत्व होने से संयोगान्त लोप करके **पौंस्न** बना। विभक्तिकार्य करके **पौंस्नः** सिद्ध हुआ।

१००६- **अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्।** पौत्रः प्रभृतिर्यस्य तत् प्रौत्रप्रभृति। अपत्यं प्रथमान्तं, पौत्रप्रभृति प्रथमान्तं, गोत्रं प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

जब पौत्र (पुत्र के पुत्र) को अपत्य अर्थात् सन्तान के रूप में कहना अभीष्ट हो तो उसकी गोत्रसंज्ञा होती है।

तात्पर्य यह है कि जब पौत्र, प्रपौत्र आदि पीढ़ियों को अपत्य अर्थात् सन्तान के रूप में कहने की अपेक्षा हो तो उनकी गोत्रसंज्ञा की जाती है। इस तरह पौत्र आदि गोत्रापत्य हो जाते हैं और गोत्रापत्य अर्थ में आगे प्रत्यय आदि हो जायेंगे। पुत्र की गोत्रसंज्ञा नहीं होती है।

१००७- **एको गोत्रे।** एकः प्रथमान्तं, गोत्रे सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्।

गोत्र अर्थ में एक ही अपत्य-प्रत्यय होता है।

इस सूत्र से यह निकलता है- जिस प्रकार से **उपगोर्गोत्रापत्यम्** विग्रह करने पर **उपगु** से **गोत्रापत्य**(पौत्र) अर्थ में **अण्** प्रत्यय होकर **औपगवः** बनता है, उसी प्रकार चौथी पीढ़ी वाले या पाँचवीं पीढ़ी वाले को कहना हो तो भी **उपगु** से ही **अण्** प्रत्यय होकर **औपगवः** ही रूप बनेगा, न कि **औपगव** बनने के बाद फिर दूसरी, तीसरी बार कोई प्रत्यय आयेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि एक ही **अण्** प्रत्यय से उस परम्परा में आयी हुई किसी भी पीढ़ी के पुरुष का बोध हो जायेगा। अतः उसके लिए बार-बार प्रत्यय करने की जरूरत होती नहीं है।

तात्पर्य यह है कि उपगोरपत्यम् औपगवः, तस्य औपगवस्यापि अपत्यम् औपगवः, तस्यापि अपत्यम् औपगवः इत्यादि। इस प्रकार से एक ही अपत्य प्रत्यय अण् आदि प्रत्यय होता है जो मूलपुरुष से किया जाता है और सब पीढ़ियों का बोध होता है, चाहे तीसरी, चौथी, पाँचवीं छठी पीढ़ियाँ क्यों न हो। इस तरह यह सूत्र एक नियम बनाता है। अर्थात् उपगु की सन्तान औपगव, औपगव की सन्तान, उनकी भी सन्तान औपगव ही होती है। गोत्र अर्थ में प्रत्यय करने पर **तस्य गोत्रापत्यम्** ऐसा विग्रह किया जायेगा।

औपगवः। उपगु नामक व्यक्ति का पोता सन्तान। **उपगोर्गोत्रापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **उपगु ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक है अलौकिक विग्रह है। **एको गोत्रे** के नियमानुसार **तस्यापत्यम्** से ही **गोत्र-अपत्य** अर्थ में अण् प्रत्यय हुआ- **उपगु ङस् अण्** वना। णकार की इत्संज्ञा हुई **उपगु ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **उपगु+अ** वना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर उ के स्थान पर औकार आदेश

यञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१००८. गर्गादिभ्यो यञ् ४।१।१०५।।

गोत्रापत्ये। गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः। वात्स्यः।

तद्धितलुग्विधायकं विधिसूत्रम्

१००९. यञञोश्च २।४।६४।।

गोत्रे यद् यञन्तमञन्तञ्च तदवयवयोरेतयोर्लुक् स्यात् तत्कृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम्। गर्गाः। वत्साः।

....

ओर्गुणः से अन्त्य अच् उकार को गुण करने पर ओकार होकर **औपगो+अ** बना। ओकार के स्थान पर अव् आदेश होकर **औपग्+अव्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **औपगव** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **औपगवः** सिद्ध हुआ।

१००८- **गर्गादिभ्यो यञ्**। गर्गादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, यञ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। पदविधि होने के कारण **समर्थः पदविधिः** से **समर्थः** का लाभ है। **प्रत्यय, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

गर्ग आदि गणपठित शब्दों से गोत्रापत्य अर्थ में यञ्-प्रत्यय होता है।

यञ् में **ञकार** इत्संज्ञक है, **य** शेष रह जाता है। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** की वृद्धि होती है।

गार्ग्यः। गर्ग का गोत्रापत्य अर्थात् पौत्र आदि सन्तान। **गर्गस्य गोत्रापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **गर्ग ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **गर्गादिभ्यो यञ्** से यञ् प्रत्यय, **गर्ग ङस् यञ्** बना। ञकार की इत्संज्ञा, **गर्ग ङस् य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **गर्ग+य** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर गकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **आकार** आदेश और भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **गार्ग्+य** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **गार्ग्य** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **गार्ग्यः** सिद्ध हुआ।

वात्स्यः। वत्स का गोत्रापत्य अर्थात् पौत्र आदि सन्तान। **वत्सस्य गोत्रापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **वत्स ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **गर्गादिभ्यो यञ्** से यञ् प्रत्यय हुआ- **वत्स ङस् यञ्** बना। ञकार की इत्संज्ञा हुई **वत्स ङस् य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **वत्स+य** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर वकारोत्तरवर्ती अकार के स्थान पर आकार आदेश और भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **वात्स्+य** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **वात्स्य** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **वात्स्यः** सिद्ध हुआ।

१००९- **यञञोश्च**। यञ् च अञ् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो यञञौ, तयोर्यञञोः। यञञोः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** से **लुक्** तथा **यस्कादिभ्यो गोत्रे** से **गोत्रे** एवं **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** से **बहुषु तेन एव अस्त्रियाम्** की अनुवृत्ति आती है।

गोत्र अर्थ में जो यञन्त और अञन्त शब्द, उनके अवयव यञ् और अञ्

युवसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१०१०. जीवति तु वंश्ये युवा ४।१।१६३॥

वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि तद्युवसंज्ञमेव स्यात्।

नियमसूत्रम्

१०११. गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् ४।१।९४॥

यून्यपत्ये गोत्रप्रत्ययान्तादेव प्रत्ययः स्यात् स्त्रियां तु न युवसंज्ञा।

....

प्रत्ययों का लुक् हो जाता है यदि उन प्रत्ययों के अर्थ का बहुत्व बताना अभीष्ट हो, परन्तु स्त्रीलिङ्ग में यह लुक् प्रवृत्त नहीं होता।

तात्पर्य यह है कि **बहुवचन** में **गोत्रापत्य** अर्थ में हुए **यञ्** और **अञ्** प्रत्ययों का लुक् हो जाता है परन्तु यह लुक् तभी होता है जब वह बहुवचन गोत्रापत्य के बहुत्व को ही बताता हो। किञ्च स्त्रीलिङ्ग में यह लुक् प्रवृत्त नहीं होता।

गर्गाः। गर्ग के बहुत गोत्रापत्य। **गर्गस्य गोत्रापत्यानि** लौकिक विग्रह है। **गर्ग ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **गर्गादिभ्यो यञ्** से यञ् प्रत्यय करके- **गार्ग्य** बना है। इस यञन्त शब्द से प्रथमा के बहुवचन की विवक्षा में **जस्** प्रत्यय लाने पर **यञञोश्च** से **यञ्** प्रत्यय का लुक् होकर **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** इस न्याय के अनुसार उसके आदिवृद्धि आदि कार्यों के भी निवृत्त हो जाने से शुद्ध **गर्ग** शब्द रह जाता है। इस तरह **गर्ग+अस्** में पूर्वसवर्णदीर्घ, सकार को रुत्वविसर्ग होकर **गर्गाः** सिद्ध हुआ। यह कार्य बहुवचन में ही होता है। इस तरह इसके रूप बनेंगे **गार्ग्यः, गार्ग्यौ, गर्गाः। गार्ग्यम्, गार्ग्यौ, गर्गान्। गार्ग्येण, गार्ग्याभ्याम्, गर्गैः** आदि।

वत्साः। वत्स के वहुत गोत्रापत्य। **वत्सस्य गोत्रापत्यानि** लौकिक विग्रह है। **वत्स ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **गर्गादिभ्यो यञ्** से यञ् प्रत्यय करके- **वात्स्य** बना है। इस यञन्त शब्द से प्रथमा के बहुवचन की विवक्षा में जस् प्रत्यय लाने पर **यञञोश्च** से **यञ्** प्रत्यय का लुक् होकर **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** इस न्याय के अनुसार उसके आदिवृद्धि आदि कार्यों के भी निवृत्त हो जाने से शुद्ध **वत्स**-शब्द रह जाता है। इस तरह **वत्स+अस्** में पूर्वसवर्णदीर्घ, सकार को रुत्वविसर्ग होकर **वत्साः** सिद्ध हुआ। यह कार्य बहुवचन में ही होता है। इस तरह इसके रूप बनेंगे **वात्स्यः, वात्स्यौ, वत्साः। वात्स्यम्, वात्स्यौ, वत्सान्। वात्स्येन, वात्स्याभ्याम्, वत्सैः** आदि।

१०१०- जीवति तु वंश्ये युवा। जीवति सप्तम्यन्तं, तु अव्ययपदं, वंश्ये सप्तम्यन्तं, युवा प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्** से विभक्तिविपरिणाम करके **पौत्रप्रभृतेः** तथा **तस्यापत्यम्** से **अपत्यम्** की अनुवृत्ति आती है।

वंश में होने वाले पिता, पितामह आदि के जीवित रहते पौत्र आदि का अपत्य चतुर्थ आदि पीढ़ी स्थित हो, उसकी युवन्-संज्ञा अर्थात् युवा संज्ञा होती है।

यह गोत्रसंज्ञा का अपवाद है। वंश में मूलपुरुष अर्थात् जिससे हम पीढ़ियों की गणना कर रहे हैं, उसका पुत्र दूसरी पीढ़ी अपत्य मात्र, उसका पुत्र तीसरी पीढ़ी भी गोत्रापत्य, उसका भी पुत्र चौथी पीढ़ी युवापत्य हो जाता है किन्तु युवापत्य में मूलपुरुष अर्थात् प्रथम पीढ़ी का जीवित होना आवश्यक है। तात्पर्य यह हुआ कि मूलपुरुष के रहते चौथी, पाँचवीं

फग्विधायकं विधिसूत्रम्

१०१२. यञिञोश्च ४।१।१०१॥

गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात् फक् स्यात्।

आयनाद्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०१३. आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् ७।१।२॥

प्रत्ययादेः फस्य आयन्, ढस्य एय्, खस्य ईन्, छस्य ईय्, घस्य इय् एते स्युः। गर्गस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः। दाक्षायणः।

....

आदि पीढ़ियों की युवन् संज्ञा मानी जाती है। युवसंज्ञा का फल अग्रिमसूत्र **गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्** से स्पष्ट हो जायेगा।

१०११- **गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्।** गोत्रात् पञ्चम्यन्तं, यूनि सप्तम्यन्तम्, अस्त्रियाम् सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

युवापत्य विवक्षित होने पर गोत्रप्रत्ययान्त से ही प्रत्यय हो परन्तु स्त्रीलिङ्ग में युवसंज्ञा नहीं होती।

यह नियम सूत्र है। यदि युवापत्य अर्थ में प्रत्यय करना हो तो वह गोत्रप्रत्ययान्त से ही हो, मूलप्रकृति से न हो।

१०१२- **यञिञोश्च।** यञ्च इञ्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो यञिञौ, तयोः। यञिञोः पञ्चम्यर्थे षष्ठी, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्** से **गोत्रे** तथा **नडादिभ्यः फक्** से **फक्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्यय, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ रहा है।

गोत्रार्थ में जो यञ् और अञ् प्रत्यय, तदन्त से युवापत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक फक् प्रत्यय होता है।

फक् में ककार की इत्संज्ञा होती है, **फ** बचता है। **फ** में अकार को छोड़कर केवल **फ्** के स्थान पर अग्रिम सूत्र से **आयन्** आदेश होता है।

१०१३- **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्।** आयन् च ऐय् च ईन् च ईय् च इय् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः- आयनेयीनीयियः। फश्च ढश्च खश्च छश्च घ् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः फढखछघस्तेषाम्। प्रत्ययः आदिर्येषां ते प्रत्ययादयस्तेषाम्। आयनेयीनीयियः प्रथमान्तं, फढखछघां षष्ठ्यन्तं, प्रत्ययादीनां षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

प्रत्ययों के आदि में स्थित फ् के स्थान पर आयन्, ढ् के स्थान पर एय्, ख् के स्थान पर ईन्, छ् के स्थान पर ईय् और घ् के स्थान पर इय् आदेश होते हैं।

गार्ग्यायणः। गर्ग का गोत्रापत्य। **गर्गस्य गोत्रापत्यम्।** गर्ग ङस् से **गर्गादिभ्यो यञ्** से **यञ्** करके **गार्ग्य** बना है। अब **गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्** के नियमानुसार **यञिञोश्च** से **फक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से केवल **फ्** के स्थान पर **आयन्** आदेश होकर **गार्ग्य+आयन्+अ** बना। **यस्येति च** से **गार्ग्य** के अकार का लोप करके **गार्ग्य्+आयन्+अ** बना। वर्णसम्मेलन करने पर **गार्ग्यायन** बना। रेफ से परे नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** णत्व करने पर

इञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०१४. अत इञ् ४।१।९५॥

अपत्येऽर्थे। दाक्षिः।

इञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०१५. बाह्वादिभ्यश्च ४।१।९६॥

बाहविः। औडुलोमिः।

वार्तिकम्- **लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः।** उडुलोमाः। आकृतिगणोऽयम्।

....

गार्ग्यायण बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु, रुत्वविसर्ग करके **गार्ग्यायणः** सिद्ध हुआ।

वात्स्यायनः। वत्स का गोत्रापत्य। **वत्सस्य गोत्रापत्यम्। वत्स ङस्** से **गर्गादिभ्यो यञ्** से **यञ्** करके **वात्स्य** बना है। अब **गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्** के नियमानुसार **यञिञोश्च** से **फक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से केवल **फ्** के स्थान पर **आयन्** आदेश होकर **वात्स्य+आयन्+अ** बना। **यस्येति च** से **वात्स्य** के अकार का लोप करके **वात्स्य्+आयन्+अ** बना। वर्णसम्मेलन करने पर **वात्स्यायन** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु, रुत्वविसर्ग करके **वात्स्यायनः** सिद्ध हुआ।

१०१४- **अत इञ्**। अतः पञ्चम्यन्तम्, इञ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ रहा है और **तस्यापत्यम्** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

अपत्य अर्थ में ह्रस्व अकारान्त षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से इञ् प्रत्यय होता है।

ञकार इत्संज्ञक है, **इकार** ही शेष रहता है। ञित् होने से ञित्व-प्रयुक्त वृद्धि आदि कार्य होते हैं।

दाक्षिः। दक्ष की सन्तान। **दक्षस्य अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **दक्ष ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अत इञ्** से **इञ्** प्रत्यय हुआ- **दक्ष ङस् इञ्** बना। ञकार की इत्संज्ञा हुई- **दक्ष ङस् इ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **दक्ष+इ** बना। **ञित्** होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर दकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **आकार** आदेश और **भसंज्ञक अकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **दाक्ष्+इ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **दाक्षि** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **दाक्षिः** सिद्ध हुआ।

इसी तरह आगे और प्रयोग भी बनते हैं।

दाशरथिः। दशरथ की सन्तान। **दशरथस्य अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **दशरथ ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अत इञ्** से इञ् प्रत्यय हुआ- **दशरथ ङस् इञ्** बना। ञकार की इत्संज्ञा हुई- **दशरथ ङस् इ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **दशरथ+इ** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर दकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **आकार** आदेश और भसंज्ञक

अञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०१६. अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् ४।१।१०४।।

एभ्योऽञ् गोत्रे। ये त्वत्रानृषयस्तेभ्योऽपत्येऽन्यत्र तु गोत्रे। बिदस्य गोत्रं बैदः। बैदौ। बिदाः। पुत्रस्यापत्यं पौत्रः। पौत्रौ। पौत्राः। एवं दौहित्रादयः।

....

अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **दाशरथ्+इ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **दाशिरथि** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, उसका रुत्वविसर्ग करके **दाशरथिः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **अर्जुनस्यापत्यम् आर्जुनिः, युधिष्ठिरस्यापत्यं यौधिष्ठिरिः, कृष्णस्यापत्यं कार्ष्णिः** आदि अनेक अपत्यप्रत्ययान्त शब्द बनाये जा सकते हैं।

१०१५- बाह्वादिभ्यश्च। बाहुः आदिर्येषां ते बाह्वादयस्तेभ्यो बाह्वादिभ्यः। बाह्वादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** इस पूरे सूत्र की तथा **अत इञ्** से इञ् की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्यय, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ रहा है। **बाहु आदि गणपठित शब्दों से अपत्य अर्थ में अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय होता है।**

बाहविः। बाहु नामक व्यक्ति की सन्तान। **बाहोः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **बाहु ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **बाह्वादिभ्यश्च** से इञ् प्रत्यय हुआ- **बाहु ङस् इञ्** बना। **ञकार** की इत्संज्ञा हुई- **बाहु ङस् इ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **बाहु+इ** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर बकारोत्तरवर्ती **आकार** के स्थान पर **आकार** ही आदेश हुआ। **ओर्गुणः** से **बाहु** के **उकार** को गुण करके **अव्** आदेश करने पर **बाहवि** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **बाहविः** सिद्ध हुआ।

लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः। यह वार्तिक है। **अपत्य अर्थ में लोमन् शब्द से बहुवचन में अकार प्रत्यय होता है।** यह **बाह्वादिभ्यश्च** का अपवाद है।

औडुलोमिः। उडुलोमन् नामक व्यक्ति की सन्तान। **उडुलोम्नः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **उडुलोमन् ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **बाह्वादिभ्यश्च** से इञ् प्रत्यय हुआ- **उडुलोमन् ङस् इञ्** बना। **ञकार** की इत्संज्ञा हुई- **उडुलोमन् ङस् इ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **उडुलोमन्+इ** बना। **ञित्** होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर **उकार** के स्थान पर **औकार** आदेश हुआ। **औडुलोमन्+इ** बना। **नस्तद्धिते** से टिसंज्ञक **अन्** का लोप हुआ- **औडुलोम्+इ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **औडुलोमि** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **औडुलोमिः** सिद्ध हुआ। बहुवचन में **बाह्वादिभ्यश्च** को बाधकर **लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः** इस वार्तिक से **अ-प्रत्यय** होकर **उडुलोमाः** बनेगा। अन्तर इतना है कि इञ् होने पर ञित् होने के कारण वृद्धि होती है और **अ** होने पर वृद्धि नहीं होती। अतः **उडुलोमाः** ही बनता है। यह शब्द बहुवचन में अकारान्त और अन्यत्र इकारान्त होता है। इस, तरह इसके रूप बनते हैं- **औडुलोमिः, औडुलोमी, उडुलोमाः। औडुलोमिम्, औडुलोमी, उडुलोमान्। औडुलोमिना, औडुलोमिभ्याम्, उडुलोमैः** इत्यादि।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०१७. शिवादिभ्योऽण् ४।१।११२॥

अपत्ये। शैवः। गाङ्गः।

....

१०१६- **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्।** न ऋषिः अनृषिः। अनन्तरमेव आनन्तर्यं, तस्मिन्। बिद आदिर्येषां ते बिदादयस्तेभ्यः। अनृषि लुप्तपञ्चमीकं पदम्, आनन्तर्ये सप्तम्यन्तं, बिदादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अञ् प्रथमान्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्** से **गोत्रे** की और **तस्यापत्यम्** पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ ही रहा है।

बिदादिगणपठित शब्दों से गोत्रापत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक अञ् प्रत्यय होता है परन्तु इनमें जो शब्द ऋषिवाचक नहीं हैं, उनसे अनन्तरापत्य अर्थ में ही हो।

दूसरी पीढ़ी **अनन्तरापत्य** होती है। **बिदादि** एक गण है। इसमे कुछ ऋषियों के नाम और कुछ पुत्र, दुहितृ आदि ऐसे प्रातिपदिक भी पढ़े गये हैं जो ऋषिवाचक नहीं हैं। इस सूत्र से **बिदादिगण** में पढ़े गये **ऋषिवाचक** शब्दों से गोत्रापत्य अर्थ में और अनृषिवाचक शब्दों से अनन्तरापत्य अर्थ में प्रत्यय का विधान किया जाता है।

बैदः। बिद नामक ऋषि की पौत्र आदि सन्तान। **बिदस्य गोत्रापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **बिद ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** से **अञ्** प्रत्यय हुआ- **बिद ङस् अञ्** बना। ञकार की इत्संज्ञा हुई- **बिद ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **बिद+अ** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर बकारोत्तरवर्ती **इकार** के स्थान पर **ऐकार** आदेश और भसंज्ञक **अकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **बैद्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **बैद** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **बैदः** सिद्ध हुआ। द्विवचन में **बैदौ** बनता है। बहुवचन की विवक्षा में **यञञोश्च** से **अञ्** का लुक् होता है। अतः वृद्धि भी नहीं हो सकेगी। जिससे **बिदाः** ऐसा रूप बन जाता है। यह तो ऋषिवाचक शब्दों का उदाहरण है। अनृषिवाचक **पुत्र** आदि शब्दों के **अनन्तरापत्य** में उदाहरण नीचे देखें।

पौत्रः। पुत्र की सन्तान पोता आदि। **पुत्रस्यानन्तरापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **पुत्र ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** से **अनन्तरापत्य** अर्थ में **अञ्** प्रत्यय हुआ- **पुत्र ङस् अञ्** बना। ञकार की इत्संज्ञा हुई- **पुत्र ङ्स अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **पुत्र+अ** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर पकारोत्तरवर्ती **उकार** के स्थान पर **औकार** आदेश और भसंज्ञक **अकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **पौत्र्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **पौत्र** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **पौत्रः** सिद्ध हुआ। **पौत्रः, पौत्रौ, पौत्राः** आदि। इसी तरह **दुहितुरनन्तरापत्यं पुमान्** लड़की की सन्तान आदि **दौहित्रः, दौहित्रौ, दौहित्राः** आदि बनाया जाता है। **दुहितृ+अ** में **इको यणचि** से **यण्** करना न भूलें।

१०१७- **शिवादिभ्योऽण्**। शिव आदिर्येषां ते शिवादयस्तेभ्यः। शिवादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अण्

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०१८. ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च ४।१।११४॥

ऋषिभ्य:- वासिष्ठ:। वैश्वामित्र:। अन्धकेभ्य:- श्वाफल्क:।
वृष्णिभ्य:- वासुदेव:। कुरुभ्य:- नाकुल:। साहदेव:।

....

प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्यय:, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिता:, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ ही रहा है।

अपत्यार्थ में शिवादिगण पठित शब्दों से तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

णकार इत्संज्ञक है और अ ही शेष रहता है। **णित्** होने से णित् मानकर होने वाले वृद्धि आदि कार्य होंगे।

शैव:। शिव की सन्तान। **शिवस्य अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **शिव ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **शिवादिभ्योऽण्** से अण् प्रत्यय हुआ- **शिव ङस् अण्** बना। णकार की इत्संज्ञा हुई- **शिव ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **शिव+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादे:** से आदिवृद्धि करने पर शकारोत्तरवर्ती **इकार** के स्थान पर **ऐकार** आदेश और भसंज्ञक **अकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **शैव्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **शैव** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **शैव:** सिद्ध हुआ।

गाङ्ग:। गङ्गा की सन्तान, भीष्म आदि। **गङ्गाया: अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **गङ्गा ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **शिवादिभ्योऽण्** से अण् प्रत्यय हुआ- **गङ्गा ङस् अण्** बना। णकार की इत्संज्ञा हुई- **गङ्गा ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **गङ्गा+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादे:** से आदिवृद्धि करने पर गकारोत्तरवर्ती अकार के स्थान पर आकार आदेश और भसंज्ञक आकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **गाङ्ग्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **गाङ्ग** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **गाङ्ग:** सिद्ध हुआ।

१०१८- **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च**। ऋषयश्च अन्धकाश्च वृष्णयश्च कुरवश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्व ऋष्यन्धकवृष्णिकुरवस्तेभ्य:। ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्य: पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **शिवादिभ्योऽण्** से **अण्** की और **तस्यापत्यम्** पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्यय:, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिता:, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ रहा है।

ऋषिवाचकों तथा अन्धक, वृष्णि, कुरु इन तीनों वंशों में उत्पन्न व्यक्ति के वाचक शब्दों से अपत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

यह **अत इञ्** का अपवाद है। **अण्** णित् है, अत: इसके परे रहते आदिवृद्धि होगी।

ऋषिवाचक शब्दों के उदाहरण-

वासिष्ठ:। वसिष्ठ की सन्तान। **वसिष्ठस्यापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **वसिष्ठ ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अत इञ्** से **इञ्** प्राप्त था, उसे बाध कर के **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** से अण् प्रत्यय हुआ- **वसिष्ठ ङस् अण्** बना। णकार की इत्संज्ञा हुई- **वसिष्ठ ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्

अण्-प्रत्ययोदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०१९. मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः ४।१।११५॥

सङ्ख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्योदादेशः स्यादण् प्रत्ययश्च।

द्वैमातुरः। षाण्मातुरः। सांमातुरः। भाद्रमातुरः।

....

हुआ, **वसिष्ठ+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर वकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **आकार** आदेश और भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **वासिष्ठ्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **वासिष्ठ** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **वासिष्ठः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **विश्वामित्रस्यापत्यम्** विग्रह करके **विश्वामित्र** से **अण्** होकर **वैश्वामित्रः** बनता है।

अन्धकवंशियों के उदाहरण-

श्वाफल्कः। श्वफल्क की सन्तान। श्वफल्क अन्धकवंशी है। **श्वफल्कस्यापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **श्वफल्क ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अत इञ्** से **इञ्** प्राप्त था, उसे बाध कर के **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **श्वफल्क+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करने पर वकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **आकार** आदेश और भसंज्ञक **अकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **श्वाफल्क्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **श्वाफल्क** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **श्वाफल्कः** सिद्ध हुआ।

वृष्णिवंशवाची शब्दों के उदाहरण-

वासुदेवः। वसुदेव की सन्तान, श्रीकृष्ण। **वसुदेवस्यापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **वसुदेव ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अत इञ्** से **इञ्** प्राप्त था, उसे बाध कर के **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** से अण् प्रत्यय अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वसुदेव+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करने पर वकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **आकार** आदेश और भसंज्ञक **अकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **वासुदेव्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **वासुदेव** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **वासुदेवः** सिद्ध हुआ।

कुरुवंशवाची शब्दों के उदाहरण-

नाकुलः। नकुल की सन्तान। **नकुलस्यापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **नकुल ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अत इञ्** से **इञ्** प्राप्त था, उसे बाध कर के **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** से अण् प्रत्यय अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नकुल+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करने पर नकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **आकार** आदेश और भसंज्ञक **अकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **नाकुल्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **नाकुल** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **नाकुलः** सिद्ध हुआ।

१०१९- मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः। सङ्ख्या च सम् च भद्रश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः सङ्ख्यासम्भद्राः। सङ्ख्यासम्भद्राः पूर्वे यस्याः सा सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वा, तस्याः, द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिसमासः। मातुः षष्ठ्यन्तम्, उत् प्रथमान्तं, सङ्ख्यासम्भद्रपूवार्याः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **शिवादिभ्योऽण्**

ढक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०२०. स्त्रीभ्यो ढक् ४।१।१२०॥

स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक्। वैनतेयः।

....

से **अण्** तथा **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **तद्धिताः**, **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार भी है।

सङ्ख्यापूर्व, सम्पूर्व तथा भद्रपूर्व मातृशब्द को अपत्य अर्थ में ह्रस्व उकार अन्तादेश होता है और इससे परे तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय भी होता है।

अन्तादेश होने के कारण **मातृ**-शब्द के ऋकार के स्थान पर उकार आदेश प्राप्त होता है। अतः **उरण् रपरः** के द्वारा रपर होकर **उर्** हो जाता है। यह सूत्र **उर्** आदेश के लिए ही बना गया है, **अण्** प्रत्यय तो **तस्यापत्यम्** से सिद्ध था।

द्वैमातुरः। दो माताओं की सन्तान। **द्वयोर्मात्रोरपत्यम्** यह लौकिक विग्रह और **द्वि ओस् मातृ ओस्** अलौकिक विग्रह में अपत्यार्थक प्रत्यय की विवक्षा में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से समास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **द्विमातृ** बना। **मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः** से **अण्** प्रत्यय और **मातृ** के ऋकार के स्थान पर **उकार** आदेश, रपर, **तद्धितेष्वचामादेः** से **द्वि** के इकार की वृद्धि करके **द्वैमातुर्+अ=द्वैमातुर** बना। स्वादिकार्य करके **द्वैमातुरः** सिद्ध हुआ।

षाण्मातुरः। छ माताओं की सन्तान। **षण्णां मातृणामपत्यम्** यह लौकिक विग्रह और **षष् आम् मातृ आम्** अलौकिक विग्रह में अपत्यार्थक प्रत्यय की विवक्षा में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से समास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **षष् मातृ** बना। अन्तर्वर्तिनी विभक्ति मान कर के पदत्व के कारण पकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर **डकार**, उसको **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** से अनुनासिक आदेश होकर **णकार** हुआ **षणमातृ** बना। **मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः** से **अण्** प्रत्यय और **मातृ** के ऋकार के स्थान पर **उकार** आदेश, रपर, **तद्धितेष्वचामादेः** से **षष्** के अकार की वृद्धि करके **षाण्मातुर्+अ=षाण्मातुर** बना। स्वादिकार्य करके **षाण्मातुरः** सिद्ध हुआ।

साम्मातुरः। अच्छी माता की सन्तान। **सम्मातुरपत्यं पुमान्** यह लौकिक विग्रह और **सम् मातृ सु** अलौकिक विग्रह में **कुगतिप्रादयः** से समास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सम् मातृ** बना। **मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः** से **अण्** प्रत्यय और **मातृ** के ऋकार के स्थान पर **उकार** आदेश, रपर, **तद्धितेष्वचामादेः** से **सम्** के अकार की वृद्धि करके **साम्मातुर्+अ=साम्मातुर** बना। स्वादिकार्य करके **साम्मातुरः** सिद्ध हुआ।

भाद्रमातुरः। भली माता की सन्तान। **भद्रमातुरपत्यं पुमान्** यह लौकिक विग्रह और **भद्रा सु मातृ सु** अलौकिक विग्रह में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** समास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **भद्रा माता** बना। **पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु** से **भद्रा** को पुंवद्भाव होकर **भद्रमातृ** बना। **मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः** से **अण्** प्रत्यय और **मातृ** के ऋकार के स्थान पर **उकार** आदेश, रपर, **तद्धितेष्वचामादेः** से **भद्र** के आदि अकार की वृद्धि करके **भाद्रमातुर्+अ=भाद्रमातुर** बना। स्वादिकार्य करके **भाद्रमातुरः** सिद्ध हुआ।

१०२०- स्त्रीभ्यो ढक्। स्त्रीभ्यः पञ्चम्यन्तं, ढक् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** की

कनीनादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०२१. कन्यायाः कनीन च ४।१।११६॥

चादण्। कानीनो व्यासः कर्णश्च।

....

अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार भी है।

अपत्य अर्थ में स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों से ढक् प्रत्यय होता है।

ढक् में **ककार** की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि होगी। **ढकार** की **चुटू** से इत्संज्ञा प्राप्त होती है किन्तु उसे बाधकर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** उसके स्थान पर **एय्** आदेश का विधान होता है। **ढ** में केवल **ढ्** के स्थान पर ही **एय्** होगा। **ढ** का **अकार** बचा हुआ है।

वैनतेयः। विनता की सन्तान। **विनतायाः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **विनता ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **स्त्रीभ्यो ढक्** से **ढक्** प्रत्यय हुआ, ककार की इत्संज्ञा हुई और ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **एय्** आदेश हुआ। **ढ** में केवल **ढ्** के स्थान पर ही **एय्** हुआ, एय्+अ=एय, **विनता+ङस्+एय** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **विनता+एय** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करने पर वकारोत्तरवर्ती **इकार** के स्थान पर **ऐकार** आदेश और भसंज्ञक **आकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **वैनत्+एय** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **वैनतेय** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **वैनतेयः** सिद्ध हुआ। इसके अन्य उदाहरण-

कौन्तेयः। कुन्ती की सन्तान। **कुन्त्याः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह और **कुन्ती ङस्** अलौकिक विग्रह में **स्त्रीभ्यो ढक्** से ढक्, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से एय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **कुन्ती+एय** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करने पर ककारोत्तरवर्ती उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक ईकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **कौन्त्+एय** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **कौन्तेय** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **कौन्तेयः** सिद्ध हुआ।

राधेयः। राधा की सन्तान। **राधायाः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह और **राधा ङस्** अलौकिक विग्रह में **स्त्रीभ्यो ढक्** से ढक्, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से एय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **राधा+एय** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करने पर रकारोत्तरवर्ती आकार के स्थान पर आकार ही आदेश और भसंज्ञक आकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **राध्+एय** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **राधेय** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **राधेयः** सिद्ध हुआ।

१०२१- कन्यायाः कनीन च। कन्यायाः षष्ठ्यन्तं, कनीन लुप्तप्रथमाकं, च अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **शिवादिभ्योऽण्** से **अण्** और **तस्यापत्यम्** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ रहा है।

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०२२. राजश्वशुराद्यत् ४।१।१३७।।

वार्तिकम्- **राज्ञो जातावेवेति वाच्यम्।**

प्रकृतिभावार्थं विधिसूत्रम्

१०२३. ये चाभावकर्मणोः ६।४।१६८।।

यादौ तद्धिते परेऽन् प्रकृत्या स्यान्न तु भावकर्मणोः।

राजन्यः। जातावेवेति किम्?

....

अपत्य अर्थ में कन्याशब्द के स्थान पर कनीन आदेश होता है और उससे परे अण् प्रत्यय भी होता है।

यह सूत्र **स्त्रीभ्यो ढक्** का अपवाद है।

कानीनो व्यासः कर्णश्च। कन्या अर्थात् अविवाहिता की सन्तान, व्यास या कर्ण आदि। **कन्याया अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **कन्या ङस्** में **कन्यायाः कनीन च** से **कन्या** के स्थान पर **कनीन** आदेश और **अण्** प्रत्यय का विधान हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कनीन+अ** बना। आदिवृद्धि, भसंज्ञक अवर्ण का लोप करके **कानीन** बना। स्वादिकार्य करके **कानीनः** सिद्ध हुआ। व्यास, कर्ण आदि अविवाहित माँ के पुत्र थे।

१०२२- **राजश्वशुराद्यत्।** राजा च श्वशुरश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो राजश्वशुरम्, तस्मात्। राजश्वशुरात् पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

राजन् और श्वशुर शब्दों से अपत्य अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

तकार की इत्संज्ञा होती है, **य** शेष रहता है। तित् होने का फल स्वरप्रकरण में **तित्स्वरितम्** की प्रवृत्ति है।

राज्ञो जातावेवेति वाच्यम्। यह वार्तिक है। **राजन् शब्द से जाति वाच्य होने पर ही यत् प्रत्यय कहना चाहिए।** तात्पर्य यह है कि **राजन्** शब्द से यत् प्रत्यय किये जाने पर भी उसमें जाति अर्थ की विशेषता होनी चाहिए अर्थात् इस शब्द से अपत्यार्थ में **यत्** प्रत्यय तभी होगा जब प्रकृतिप्रत्ययसमुदाय से **जाति** अर्थ की प्रतीति होगी।

१०२३- **ये चाभावकर्मणोः।** भावश्च कर्म च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो भावकर्मणी, न भावकर्मणी अभावकर्मणी। तयोः। ये सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदम्, अभावकर्मणोः सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **अन्** से **अन्, आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** से **तद्धिते** और **प्रकृत्यैकाच्** से **प्रकृत्या** की अनुवृत्ति आती है।

यकारादि तद्धित प्रत्यय के परे रहते अन् को प्रकृतिभाव होता है, यदि तद्धित प्रत्यय भाव और कर्म अर्थ में न हुए हों तो।

यह सूत्र **नस्तद्धिते** से प्राप्त टिलोप का बाधक है। स्मरण रहे कि **प्रकृतिरूपेणावस्थानं प्रकृतिभावः** अर्थात् यथावत् बने रहना ही प्रकृतिभाव है। **अन्** का लोप न होकर यथावत् बना रहे, यही प्रकृतिभाव है।

राजन्यः। राजा की सन्तान आदि। **राज्ञोऽपत्यं जातिः** लौकिक विग्रह है। **राजन्**

प्रकृतिभावार्थं विधिसूत्रम्

१०२४. अन् ६।४।१६७।।

अन् प्रकृत्या स्यादणि परे। राजनः। श्वशुर्यः।

घ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०२५. क्षत्राद् घः ४।१।१३८।।

क्षत्त्रियः। जातावित्येव। क्षात्त्रिरन्यत्र।

....

ङस् से **तस्यापत्यम्** से सामान्य अपत्य अर्थ में अण् प्राप्त, उसे बाधकर के **राज्ञो जाातावेवेति वाच्यम्** के निर्देशन में जाति सहित अपत्य अर्थ में **राजश्वशुराद्यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **राजन्+य** बना। अब **नस्तद्धिते** से **अन्** का लोप प्राप्त था, उसे बाधकर के **ये चाभावकर्मणोः** से प्रकृतिभाव हुआ अर्थात् **अन्** का लोप नहीं हुआ। वर्णसम्मेलन होकर **राजन्य** बना, स्वादिकार्य करके **राजन्यः** सिद्ध हुआ। यह क्षत्रिय जाति अर्थ में बना है। अजाति अर्थ में यत् नहीं होगी किन्तु अग्रिम सूत्र से आगे की प्रक्रिया होगी।

१०२४- अन्। अन् प्रथमान्तम्, एकपदं सूत्रम्। **इनण्यनपत्ये** से **अणि** और **प्रकृत्यैकाच्** से **प्रकृत्या** की अनुवृत्ति आती है।

अण् प्रत्यय के परे होने पर अन् को प्रकृतिभाव होता है।

यह भी **नस्तद्धिते** का बाधक है।

राजनः। राजा की सन्तान जो क्षत्रिय जाति की नहीं है। इसके पहले आपने **राजन्यः** बनाया था, जाति अर्थ में यत् प्रत्यय करके। अब जाति से भिन्न अर्थ में **तस्यापत्यम्** से औत्सर्गिक **अण्** प्रत्यय होगा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके आकार के स्थान पर आकार ही आदेश होता है। इस तरह **राजन्+अ** बना। यहाँ पर **नस्तद्धिते** से **अन्** का लोप प्राप्त था, उसको बाधकर कर के **अन्** से प्रकृतिभाव हुआ अर्थात् लोप नहीं हुआ। **राजन्+अ** में वर्णसम्मेलन होकर **राजनः** सिद्ध हुआ। अपत्यात्मक जाति अर्थ में **राजन्यः** और जाति से भिन्न अपत्य अर्थ में **राजनः**।

श्वशुर्यः। ससुर की सन्तान, साला। **श्वशुरस्यापत्यम्** लौकिक विग्रह है। **श्वशुर ङस्** से **तस्यापत्यम्** से अण् प्राप्त, उसे बाधकर के **राजश्वशुराद्यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **श्वशुर+य** बना। **यस्येति च** से रकारोत्तरवर्ती अकार का लोप करके **श्वशुर्+य** बना। रेफ का ऊर्ध्वगमन होकर **श्वशुर्य** बना, स्वादिकार्य करके **श्वशुर्यः** सिद्ध हुआ।

१०२५- क्षत्राद् घः। क्षत्रात् पञ्चम्यन्तं, घः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

क्षत्त्र प्रातिपदिक से अपत्य जाति अर्थ में घ प्रत्यय होता है।

घ में केवल **घ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से इय् आदेश होता है। **घ** में **अ** बचा हुआ था। इस तरह **इय्+य=इय** बन जाता है।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०२६. रेवत्यादिभ्यष्ठक् ४।१।१४६॥

इकादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०२७. ठस्येकः ७।३।५०॥

अङ्गात् परस्य ठस्येकादेशः स्यात्। रैवतिकः।

अञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०२८. जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ् ४।१।१६८॥

जनपदक्षत्रियवाचकाच्छब्दादञ् स्यादपत्ये। पाञ्चालः।

वार्तिकम्- **क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत्।**

पञ्चालानां राजा पाञ्चालः।

वार्तिकम्- **पूरोरण् वक्तव्यः।** पौरवः।

वार्तिकम्- **पाण्डोर्ड्यण्।** पाण्ड्यः।

....

क्षत्रियः। क्षत्र जाति के व्यक्ति की सन्तान। **क्षत्रस्यापत्यम्** लौकिक विग्रह है। **क्षत्र ङस्** से अपत्यार्थ में **तस्यापत्यम्** के अधिकार में **अत इञ्** से औत्सर्गिक **इञ्** प्राप्त था, उसे बाधकर के **क्षत्राद् घः** से **घ** प्रत्यय हुआ। उसके स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **इय्** आदेश होकर **इय** बन गया। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **क्षत्र+इय** बना। आदिवृद्धि के लिए ञित्, णित्, कित् आदि कोई निमित्त नहीं है। अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **क्षत्रिय** बना। स्वादिकार्य करके **क्षत्रियः** सिद्ध हुआ। जाति अर्थ न होने पर **इञ्** प्रत्यय होकर **दाक्षिः**, **दाशरथिः** की तरह **क्षात्रिः** बनता है।

१०२६- **रेवत्यादिभ्यष्ठक्**। रेवती आदिर्येषां ते रेवत्यादयस्तेभ्यः। रेवत्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **तद्धिताः**, **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

रेवती आदि गण में पठित प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक ठक् प्रत्यय होता है।

ककार की इत्संज्ञा होती है। कित् होने से **किति च** की प्रवृत्ति हो सकेगी, जो वृद्धि करता है। ठकारोत्तरवर्ती अकार उच्चारणार्थ है, दूसरे मत में उच्चारणार्थ नहीं है अपितु ठ ऐसा पूरा अदन्त ही है। यह सूत्र भी **तस्यापत्यम्** का अपवाद है।

१०२७- **ठस्येकः**। ठस्य षष्ठ्यन्तम्, इकः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

अङ्ग से परे ठ् के स्थान पर इक आदेश होता है।

इक यह आदेश अदन्त है।

रैवतिकः। रेवती की सन्तान। **रेवत्या अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **रेवती ङस्** से अपत्यार्थ में **तस्यापत्यम् अण्** प्राप्त था, उसे बाधकर के **रेवत्यादिभ्यष्ठक्** से **ठक्** प्रत्यय होकर उसका अनुबन्धलोप लोप करके **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश

ण्य-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०२९. कुरुनादिभ्यो ण्यः ४।१।१७२।।

कौरव्यः। नैषध्यः।

....

होकर **रेवती इक** बन गया। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करके **रैवती+इक** बना। अन्त्य ईकार का **यस्येति च** से लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **रैवतिक** बना। स्वादिकार्य करके **रैवतिकः** सिद्ध हुआ।

१०२८- जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्। जनपदवाचकः शब्दो जनपदशब्दः (मध्यमपदलोपिसमास), तस्मात्। जनपदशब्दात् पञ्चम्यन्तं, क्षत्रियात् पञ्चम्यन्तम्, अञ् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

जनपदविशेष का वाचक शब्द यदि उस नाम वाले क्षत्रियविशेष का भी वाचक हो तो उससे अपत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक अञ् प्रत्यय होता है।

जनपद का अर्थ है **देश, प्रदेश, देश का एकभाग, जिला** आदि। अञ् में ञकारा इत्संज्ञक है। ञित् का फल वृद्धि है।

पाञ्चालः। पञ्चाल राजा की सन्तान। **पञ्चाल** शब्द एक देश या प्रदेश का भी वाचक है और राजा का भी अर्थात् पञ्चाल नामक राजा और पञ्चाल नामक देश। **पञ्चालस्यापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **पञ्चाल ङस्** से औत्सर्गिक अण् को बाधकर के **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** से **अञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **पाञ्चाल** बना। स्वादिकार्य करके **पाञ्चालः** सिद्ध हुआ।

क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत्। यह वार्तिक है। **क्षत्रियवाचक शब्द के समान जो जनपदवाचक शब्द, उससे अपत्यार्थ के समान ही 'उस देश का राजा' इस अर्थ में तद्धित प्रत्यय होते हैं।**

देश का राजा इस अर्थ में अपत्यार्थ की तरह प्रत्यय का विधान इससे होता है। जिस तरह से **पञ्चालस्यापत्यम्** में **पाञ्चालः** बना उसी तरह **पञ्चालानां राजा** इस अर्थ में इस वार्तिक से ही **अञ्** प्रत्यय होकर पूर्ववत् **पाञ्चालः** ही बनता है। देश वाची शब्द नित्य बहुवचनान्त माना गया है। अतः **पञ्चालस्य(देशस्य) राजा** विग्रह न करके **पञ्चालानां राजा** ऐसा विग्रह किया जाता है।

पूरोरण् वक्तव्यः। यह वार्तिक है। **पुरु शब्द से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय हो ऐसा कहना चाहिए।**

पौरवः। पूरु की सन्तान। **पूरोरपत्यं पुमान्** में **पूरु ङस्** से **पूरोरण् वक्तव्यः** से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके आदिवृद्धि हो जाने पर **पौरु+अ** बना। **ओर्गुणः** से अन्त्य उकार को गुण होकर **पौरो+अ** बना। अवादेश, वर्णसम्मेलन, स्वादिकार्य करके **पौरवः** सिद्ध हुआ।

पाण्डोर्ड्यण्। यह वार्तिक है। **पाण्डु शब्द से अपत्य अर्थ में ड्यण् प्रत्यय होता है।** डकार की **चुटू** से इत्संज्ञा होती है तो अन्त्य णकार **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञक है ही। डित् का प्रयोजन **टेः** से टि का लोप है।

तद्राजसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१०३०. ते तद्राजाः ४।१।१७४॥

अञादयस्तद्राजसंज्ञाः स्युः।

तद्राजस्य लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

१०३१. तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् २।४।६२॥

बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक् तदर्थकृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम्।

इक्ष्वाकवः। पञ्चालाः इत्यादि।

....

पाण्ड्यः। पाण्डु की सन्तान। **पाण्डोरपत्यं पुमान्।** पाण्डु ङस् में **पाण्डोर्ड्यण्** से **ड्यण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि, डित् परे होने कारण **टेः** से टिसंज्ञक टकार का लोप करके **पाण्ड्य** बनता है। स्वादिकार्य करके **पाण्ड्यः** सिद्ध होता है।

१०२९- **कुरुनादिभ्यो ण्यः**। न आदिर्येषां ते नादयः। कुरुश्च नादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः कुरुनादयस्तेभ्यः। कुरुनादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ण्यः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **जनपदाशब्दात् क्षत्रियादञ्** से वचनविपरिणाम के द्वारा **जनपदेभ्यः**, **क्षत्रियेभ्यः** एवं **तस्यापत्यम्** इस सूत्र की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

कुरुशब्द या नकारादिशब्द जब जनपद और क्षत्रिय दोनों के वाचक हों तो उनसे अपत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक ण्य प्रत्यय होता है।

चुटू से **णकार** की इत्संज्ञा करके **य** शेष रहता है। **कुरु** से **द्व्यञ्मगध-लिङ्गसूरमसादण्** से अण् और नकारादिशब्दों से **जनपदाशब्दात् क्षत्रियादञ्** से अञ् प्राप्त था। उनका यह अपवाद है।

कौरव्यः। कुरु की सन्तान। **कुरु** शब्द जनपदविशेष और क्षत्रियविशेष दोनों का वाचक है। **कुरोरपत्यं पुमान्। कुरु ङस्** में **कुरुनादिभ्यो ण्यः** से **ण्य** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि, **ओर्गुणः** से रकारोत्तरवर्ती उकार को गुण करके **कौरो+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से **अव्** आदेश होने पर **कौरव्य** बनता है। स्वादिकार्य करके **कौरव्यः** सिद्ध होता है।

नैषध्यः। निषध की सन्तान। **निषध** शब्द भी जनपदविशेष और क्षत्रियविशेष दोनों का वाचक है। **निषधस्यापत्यं पुमान्। निषध ङस्** में **नकारादि** होने के कारण **कुरुनादिभ्यो ण्यः** से **ण्य** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि करके **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप करके **नैषध्य** बनता है। स्वादिकार्य करके **नैषध्यः** सिद्ध होता है।

१०३०- **ते तद्राजाः**। ते प्रथमान्तं, तद्राजाः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्।

पूर्वोक्त अञ् आदि प्रत्यय तद्राजसंज्ञक होते हैं।

इस सूत्र में पठित **ते** शब्द का अर्थ है- पूर्वसूत्र **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** से विहित **अञ्** आदि प्रत्यय। उस प्रकरण में **अञ्, अण्, ड्यण्, ण्य** ये प्रत्यय आते हैं। इन सब की **तद्राज** संज्ञा की जाती है और इसका फल **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** की प्रवृत्ति है। **पुनश्च**- इन प्रत्ययों की तद्राजसंज्ञा इस लिए होती है क्योंकि ये प्रत्यय उन उन जनपदों के राजा के भी बोधक हैं।

तद्राजस्य लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

१०३२. कम्बोजाल्लुक् ४।१।१७५॥

अस्मात्तद्राजस्य लुक्! कम्बोजः। कम्बोजौ।

वार्तिकम्- **कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम्।** चोलः। शकः। केरलः। यवनः।

इत्यपत्याधिकारः॥४५॥

....

१०३१- तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्। तद्राजस्य षष्ठ्यन्तं, बहुषु सप्तम्यन्तं, तेन तृतीयान्तम्, एव अव्ययम्, अस्त्रियां सप्तम्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **ण्यक्षत्रियार्षञितो लुगणिञोः** से **लुक्** की अनुवृत्ति आती है।

बहुवचन में तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् होता है, यदि बहुत्व तद्राज प्रत्यय के अर्थद्वारा किया गया हो तो किन्तु स्त्रीलिङ्ग में लुक् नहीं होता।

इक्ष्वाकवः। इक्ष्वाकुओं की सन्तानें। **इक्ष्वाकु** शब्द जनपद और क्षत्रिय दोनों का वाचक है। **इक्ष्वाकोरपत्यम्** लौकिक विग्रह और **इक्ष्वाकु ङस्** अलौकिक विग्रह है। **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** से **अञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके **ऐक्ष्वाकु+अ** बना। यहाँ पर **ओर्गुणः** से गुण होना था किन्तु **दाण्डिनायन-हास्तिनायनाथर्वणिक०** से टिलोप निपातन होने से **ऐक्ष्वाक** और सु, रुत्व, विसर्ग करके **ऐक्ष्वाकः** बनता है। इससे जब बहुवचन **जस्** आता है तो **तद्रासंज्ञक अञ्** प्रत्यय का **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** से लुक् हो जाता है। **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के नियमानुसार **अञ्** प्रत्यय को निमित्त मान कर की गई आदिवृद्धि और **टिलोप** का निपातन आदि भी स्वतः निवृत्त हो जाते हैं जिससे मूल शब्द ही **इक्ष्वाकु** के रूप में आ जाता है। इससे बहुवचन में भानु शब्द की तरह **इक्ष्वाकवः** ही रूप बनता है। रूपों को देखें- **ऐक्ष्वाकः, ऐक्ष्वाकौ, इक्ष्वाकवः, ऐक्ष्वाकम्, ऐक्ष्वाकौ, इक्ष्वाकून्** आदि।

पञ्चालाः। पञ्चालों की सन्तानें। **पञ्चाल** शब्द जनपद और क्षत्रिय दोनों का वाचक है। **पञ्चालस्यापत्यानि** लौकिक विग्रह और **पञ्चाल ङस्** अलौकिक विग्रह है। **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** से **अञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकार का लोप करके **पाञ्चाल**। इससे जब बहुवचन **जस्** आता है तो **तद्रासंज्ञक अञ्** प्रत्यय का **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** से लुक् हो जाता है। **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के नियमानुसार **अञ्** प्रत्यय को निमित्त मान कर की गई आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप आदि स्वतः निवृत्त हो जाते हैं जिससे मूल शब्द ही **पञ्चाल** के रूप में आ जाता है। इससे बहुवचन में वृद्धि आदि रहित **पञ्चालाः** ही रूप बनता है। इसके एकवचन का रूप **जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ्** सूत्र में बना चुके हैं। इसके रूपों को देखें- **पाञ्चालः, पाञ्चालौ, पञ्चालाः, पाञ्चालम्, पाञ्चालौ, पञ्चालान्** आदि।

१०३२- कम्बोजाल्लुक्। कम्बोजात् प्रथमान्तं, लुक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **ते तद्राजाः** से विभक्तिविपरिणाम करके **तद्राजस्य** की अनुवृत्ति आती है।

कम्बोज शब्द से परे तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् होता है।

तद्धित को मान कर के होने वाले जितने भी कार्य हैं **आदिवृद्धि, भसंज्ञक वर्ण का लोप** आदि, उसके **लुक्** हो जाने से नहीं होंगे।

कम्बोजः। कम्बोजौ। कम्योज की सन्तान अथवा कम्बोज का राजा। **कम्बोज** शब्द भी जनपदवाची और क्षत्रियविशेषवाची है। **कम्बोजस्यापत्यं राजा वा** लौकिक विग्रह और **कम्बोज ङस्** अलौकिक विग्रह है। **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** से **अञ्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर के आदिवृद्धि प्राप्त थी किन्तु **कम्बोजाल्लुक्** से तद्राजसंज्ञक **अञ्** प्रत्यय के लुक् हो जाने के कारण आदिवृद्धि आदि कार्य नहीं हुए। स्वादिकार्य करके **कम्बोजः, कम्बोजौ, कम्बोजाः** आदि सामान्य ही रूप होंगे। **कम्बोज** शब्द के तद्धितान्त और अतद्धितान्त रूप समान ही होंगे अर्थात् देखने में शब्द एक जैसे लगेंगे किन्तु अर्थ के प्रसंगानुसार तद्धितान्त या अतद्धितान्त है, समझना चाहिए।

कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिककार का कहना है कि **कम्बोलाल्लुक्** यह सूत्र न्यून है। इसके स्थान पर **कम्बोजादिभ्यो लुक्** ऐसा कहना चाहिए। ऐसा करने से केवल **कम्बोज** शब्द से ही नहीं अपितु **कम्बोजादि** आकृतिगण मान कर के अनेक शब्दों से तद्राजसंज्ञक प्रत्ययों का लुक् किया जा सकेगा। जिससे **चोलः, यवनः** आदि शब्दों में भी तद्राजसंज्ञक प्रत्ययों का लुक् हो सकेगा। **चोलस्यापत्यम्** चोलदेश की सन्तान आदि अर्थ में प्राप्त अण् आदि प्रत्ययों के लुक् हो जाने से **चोल** से **चोल** ही बनता है अर्थात् आदिवृद्धि आदि कार्य नहीं होते। अन्यथा **चौलः** बनने लगता। इस वार्तिक से अण् आदि का लुक् करके रूप बनते हैं-

चोलस्यापत्यं- चोलः, चोलौ, चोलाः। शकस्यापत्यं- शकः, शकौ, शकाः।
केरलस्यापत्यं- केरलः, केरलौ, केरलाः। यवनस्यापत्यं- यवनः, यवनौ, यवनाः आदि।

उक्त स्थलों पर **चोल, शक, केरल** और **यवन** शब्द जनपदक्षत्रियवाची हैं।

पञ्चाल आदि ऊपर बताये गये सभी शब्द जनपद और उस जनपद के राजा दोनों को कहते हैं। अतः इन सभी शब्दों से जब **उस देश का राजा** ऐसा विग्रह होगा तो भी **क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत्** वार्तिक से अपत्यार्थ के समान अण् आदि प्रत्यय आदि और **चोल, कम्बोज** आदि में लुक् होकर **पञ्चालः, चोलः, कम्बोजः,** आदि ही रूप बनते हैं। अतः **पाञ्चालः** से **पाञ्चाल राजा के पुत्र** अथवा **पञ्चाल देश का राजा** आदि अर्थ को प्रसंग से समझना चाहिए।

परीक्षा

१- साधारण तद्धित और अपत्यार्थक तद्धित में अन्तर बताइये। १०
२- **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** की व्याख्या कीजिए। १०
३- अपत्याधिकार-प्रकरण में होने वाले प्रत्ययों पर प्रकाश डालिए। १०
४- अण्, यञ्, इञ् और ढक् प्रत्ययों के दो-दो उदाहरणों की प्रक्रिया दिखाइये। १०
५- **स्त्रीभ्यो ढक्** और **शिवादिभ्योऽण्** में बाध्यबाधकभाव स्पष्ट कीजिये। १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का अपत्याधिकार पूर्ण हुआ।

अथ रक्ताद्यर्थकाः

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०३३. तेन रक्तं रागात् ४।२।१॥

अण् स्यात्। रज्यतेऽनेनेति रागः। कषायेण रक्तं वस्त्रं काषायम्।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०३४. नक्षत्रेण युक्तः कालः ४।२।३॥

अण् स्यात्।

वार्तिकम्- **तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम्।** पुष्येण युक्तं पौषमहः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **रक्ताद्यर्थक प्रकरण** का आरम्भ होता है। **रक्त** आदि अर्थों में प्रत्ययों का विधान होता है, इस लिए इस प्रकरण को **रक्ताद्यर्थक प्रकरण** कहा गया।

१०३३- तेन रक्तं रागात्। तेन तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, रक्तं प्रथमान्तं, रागात् पञ्चम्यन्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् है ही।

'उससे रंगा हुआ' इस अर्थ में तृतीयान्त रंगवाचक शब्द से अण् प्रत्यय होता है।

तेन रक्तं रागात् इस सूत्र से आया हुआ **राग** शब्द की व्युत्पत्ति करके अर्थ बताया जा रहा है- **रज्यतेऽनेनेति रागः।** रंगा जाता है इससे, वह अर्थात् रंगने का जो साधन नील, पीत आदि **रङ्ग। रञ्ज्** धातु से करण अर्थ में **अकर्तरि च कारके सञ्ज्ञायाम्** से **घञ्** प्रत्यय होने पर **घञि च भावकरणयोः** से नलोप होने पर **चजोः कु घिण्ण्यतोः** से जकार को कुत्व करके गकार होने पर उपधावृद्धि करके **रागः** यह कृदन्त रूप सिद्ध होता है।

काषायम्। गेरुए रंग से रंगा हुआ वस्त्र आदि। **कषायेण रक्तम्** लौकिक विग्रह और **कषाय टा** अलौकिक विग्रह में **तेन रक्तं रागात्** से अण्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **काषाय्+अ,** वर्णसम्मेलन करके **काषाय,** सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप करके **काषायम्** सिद्ध हुआ। विशेष्य **वस्त्रम्** के नपुंसक होने के कारण यह भी नपुंसक हो गया।

१०३४- रक्षत्रेण युक्तः कालः। नक्षत्रेण तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, युक्तः प्रथमान्तं, कालः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तेन रक्तं रागात्** से **तेन** और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की

लुप्-विधायकं विधिसूत्रम्

१०३५. लुबविशेषे ४।२।४॥

पूर्वेण विहितस्य लुप् स्यात्, षष्टिदण्डात्मकस्य कालस्यावान्तरविशेषश्चेन्न गम्यते। अद्य पुष्यः।

....

अनुवृत्ति आती हैं। और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् है ही।

नक्षत्रवाचक तृतीयान्त प्रातिपदिक से 'उससे युक्त' अर्थ में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है, यदि वह युक्त काल अर्थात् समय हो तो।

चैत्रमहः। चित्रा नक्षत्र से युक्त दिन अर्थात् चित्रा नक्षत्र में जिस दिन चन्द्रमा भ्रमण कर रहे हैं, वह दिन। **दिन**-शब्द काल अर्थात् समय का वाचक है। **चित्रया युक्तमहः** लौकिक विग्रह और **चित्रा सु** अलौकिक विग्रह है। ऐसी स्थिति में **नक्षत्रेण युक्तः कालः** से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप करके **चैत्र** बना। विशेष्यपद **अहः** नपुंसकलिङ्ग का है, अतः इसमें नपुंसकलिङ्ग ही हुआ। स्वादि कार्य करके **चैत्रम्** बना। कौमुदी में यह प्रयोग नहीं है फिर भी सूत्र के उदाहरण के लिए व्याख्या में प्रदर्शित किया गया।

तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम्। यह वार्तिक है। **नक्षत्रसम्बन्धी अर्थात् नक्षत्र से युक्त काल अर्थ में नक्षत्रवाचक शब्द से विहित अण् प्रत्यय के परे रहते तिष्य और पुष्य शब्दों के यकार का लोप होता है।**

पौषमहः। पुष्य नक्षत्र से युक्त दिन अर्थात् ऐसा दिन जिसमें चन्द्रमा पुष्यनक्षत्र में चल रहे हों। **पुष्येण युक्तः कालः** विग्रह है। **पुष्य टा** से **नक्षत्रेण युक्तः कालः** सूत्र के द्वारा **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके **यस्येति च** से अकार के लोप होने के बाद **पौष्य्+अ** बना है। **तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम्** से यकार के भी लोप होने पर वर्णसम्मेलन होकर **पौष** बना। विशेष्य **अहः** के अनुसार नपुंसकलिङ्ग में स्वादिकार्य करके **पौषम्** बन जाता है। **पौषमहः**।

१०३५- **लुबविशेषे**। न विशेषः अविशेषस्तस्मिन्। लुप् प्रथमान्तम्, अविशेषे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से विभक्तिविपरिणाम करके **अणः** की अनुवृत्ति आती है।

'नक्षत्रेण युक्तः कालः' से विहित अण् प्रत्यय का लुप् हो जाता है, यदि साठ घटी वाले काल अर्थात् अहोरात्र का अवान्तरभेद अर्थ गम्यमान न हो रहा हो तो।

एक **अहोरात्र** अर्थात् **दिनरात** में साठ घटियाँ होती हैं। आज के व्यावहारिक समय के अनुसार एक घण्टे में ढाई घटियाँ होती है अर्थात् साठ घटियों का एक अहोरात्र होता है। एक अहोरात्र में अवान्तर काल दिन, रात, प्रातः, सायम्, दोपहर आदि माने जाते हैं। यदि अहोरात्र का अवान्तर भेद गम्यमान न हो रहा हो तो यह सूत्र प्रवृत्त होता है। जैसे कि **आज** कहने से अहोरात्र का अवान्तर भेद का पता नहीं चलता। हाँ, यदि आज दिन में या आज रात को अथवा आज दोपहर को आदि होता तो अहोरात्र के अवान्तर कालभेद की प्रतीति होती है। **लुप्** भी एक लोप जैसा ही है जैसे कि लुक्। इस सम्बन्ध में **प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः** का स्मरण करें।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०३६. दृष्टं साम ४।२।७॥

तेनेत्येव। वसिष्ठेन दृष्टं वासिष्ठं साम।

ड्य-ड्यण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०३७. वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ ४।२।९॥

वामदेवेन दृष्टं साम वामदेव्यम्।

....

अद्य पुष्यः। आज पुष्य नक्षत्र है अर्थात् आज चन्द्रमा पुष्य नक्षत्र में भ्रमण कर रहे हैं। **पुष्येण युक्तः कालोऽद्य। पुष्य टा** से **नक्षत्रेण युक्तः कालः** से **अण्** प्रत्यय हुआ। उसका **लुबविशेषे** से लुप् हुआ। अतः आदिवृद्धि आदि कुछ भी नहीं हुआ जिससे **पुष्य** से **पुष्य** ही बना रह गया। स्वादिकार्य करके **पुष्यः** बनता है। इसका अर्थ हुआ- **पुष्य नक्षत्र से युक्त समय(आज)।**

१०३६- दृष्टं साम। दृष्टं प्रथमान्तं, साम प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तेन रक्तं रागात्** से **तेन** और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् है ही।

'देखा गया साम' अर्थात् ज्ञान रूप में प्राप्त किया गया साम' इस अर्थ में तृतीयान्त समर्थ प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है।

वैदिकमन्त्रों का अध्ययन, साक्षात्कार, सिद्धि जिन ऋषियों की थी, मन्त्र के विनियोग में उनका नाम लिया जाता है। **तेन दृष्टं साम** अर्थात् **उस ऋषिविशेष के द्वारा प्राप्त सामवेद की ऋचाएँ** इस अर्थ में प्रत्यय का विधान किया गया।

वासिष्ठं साम। वसिष्ठ के द्वारा देखे गये अर्थात् जाने हुए साम के मन्त्र। **वसिष्ठेन दृष्टम्** लौकिक विग्रह और **वसिष्ठ टा** अलौकिक विग्रह में **दृष्टं साम** से अण्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार के लोप करने पर **वासिष्ठ+अ,** वर्णसम्मेलन करके **वासिष्ठ**, सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप करके **वासिष्ठम्** सिद्ध हुआ। विशेष्य शब्द **साम** के नपुंसक होने के कारण यह भी नपुंसक हो गया।

१०३७- वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ। ड्यच्च ड्यश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो ड्यड्ड्यौ। वामेदवात् पञ्चम्यन्तं, ड्यड्ड्यौ प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तेन रक्तं रागात्** से **तेन** और **दृष्टं साम** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

'देखा गया साम' इस अर्थ में तृतीयान्त समर्थ वामदेव इस प्रातिपदिक से तद्धितसंज्ञक ड्यत् और ड्य प्रत्यय होते हैं।

डकार की **चुटू** से इत्संज्ञा होती है और तकार **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञक है, **य** शेष रहता है। डित्करण का प्रयोजन स्वरविधान के लिए है। तित्करण का भी फल स्वरों का विधान ही है। दो प्रत्ययों में एक तित् है और एक तित् नहीं है। रूपों में कोई अन्तर नहीं आयेगा। यह सूत्र **दृष्टं साम** का अपवाद है।

वामदेव्यम्। वामदेव के द्वारा देखे गये साम के मन्त्र। **वामदेवेन दृष्टम्** लौकिक

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०३८. परिवृतो रथः ४।२।१०॥

अस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति। वस्त्रेण परिवृतो वास्त्रो रथः।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०३९. तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः ४।२।१४॥

शरावे उद्धृतः शाराव ओदनः।

....

विग्रह और **वामदेव टा** अलौकिक विग्रह में **दृष्टं साम** से अण् प्राप्त था, उसे बाधकर के **वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ** से **ड्यत्** या **ड्य** प्रत्यय हुआ। **ड्यत्** के पक्ष में डकार और तकार का अनुबन्धलोप हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **वामदेव्+य**, वर्णसम्मेलन करके **वामदेव्य**, सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप करके **वामदेव्यम्** सिद्ध हुआ। विशेष्य **साम**-शब्द के नपुंसक होने के कारण यह भी नपुंसक हो गया।

१०३८- **परिवृतो रथः**। परिवृतः प्रथमान्तं, रथः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तेन रक्तं रागात्** से **तेन** और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

'उससे परिवृत अर्थात् लिपटा हुआ, घिरा हुआ रथ' इस अर्थ में तृतीयान्त समर्थ प्रातिपदिक से तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

जो परिवृत हो वह रथ ही हो, अन्य नहीं। इसीलिए सूत्र में **रथः** भी पढ़ा गया है।

वास्त्रो रथः। वस्त्र से लिपटा हुआ रथ। **वस्त्रेण परिवृतः। वस्त्र टा** में **परिवृतो रथः** से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **वास्त्र** बना। इससे स्वादि कार्य करके **वास्त्रः** बनता है किन्तु आगे **रथः** परे है, अतः **सु** को रुत्व, उत्व, गुण होकर **वास्त्रो रथः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **कम्बलेन परिवृतः काम्बलो रथः, रजसा परिवृतो राजसो रथः** आदि भी बनाये जा सकते हैं।

१०३९- **तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः**। तत्र सप्तम्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, उद्धृतम् प्रथमान्तम्, अमत्रेभ्यः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है। मूल में सूत्र की वृत्ति नहीं लिखी गई है फिर भी इसकी वृत्ति इस तरह हो सकती है- **पात्रविशेषवाचिभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यः समर्थ-प्रातिपदिकेभ्यस्तत्र उद्धृतम् इत्यर्थे अण् प्रत्ययो भवति।**

'उसमें निकाल कर रखा हुआ' इस अर्थ में सप्तम्यन्त समर्थ पात्रविशेष के वाचक प्रातिपदिको से तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

अमत्र पात्रविशेष को कहते हैं। **तत्र** यह पद सप्तम्यन्त के लिए निर्देश है। अतः सप्तम्यन्त प्रातिपदिक से ही प्रत्यय होगा।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०४०. संस्कृतं भक्षाः ४।२।१६॥

सप्तम्यन्तादण् स्यात् संस्कृतेऽर्थे, यत्संस्कृतं भक्षाश्चेते स्युः।

भ्राष्ट्रेषु संस्कृताः भ्राष्ट्रा यवाः।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०४१. साऽस्य देवता ४।२।२४॥

इन्द्रो देवताऽस्येति ऐन्द्रं हविः। पाशुपतम्। बार्हस्पत्यम्।

....

शाराव ओदनः। शराव में निकाल कर रखा गया भात। **शरावे उद्धतः**। **शराव** ङि में **तत्रोद्धतममत्रेभ्यः** से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **शाराव** बना। इससे स्वादि कार्य करके **शारावः** बनता है किन्तु आगे **ओदनः** परे है, अतः **सु** को रुत्व, उसको **भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि** से यत्व, **हलि सर्वेषाम्** से यकार का लोप होकर **शाराव ओदनः** सिद्ध हुआ।

१०४०- संस्कृतं भक्षाः। संस्कृतं प्रथमान्तं, भक्षाः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तत्रोद्धतममत्रेभ्यः** से तत्र और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'उससे संस्कार किया गया' इस अर्थ में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है परन्तु संस्कृत पदार्थ भक्ष अर्थात् खाने की वस्तु होनी चाहिए।

भ्राष्ट्राः। भट्ठी(भाड़) में भूनकर संस्कृत किये गये खाने योग्य जौ। **भ्राष्ट्रेषु संस्कृताः भक्षाः**। **भ्राष्ट्र सुप्** से **संस्कृतं भक्षाः** से **अण्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, णित् होने से आदिवृद्धि, **यस्येति च** से अकार का लोप करके, वर्णसम्मेलन, जस्, दीर्घ, सकार का रुत्वविसर्ग आदि होने पर **भ्राष्ट्राः(यवाः)** बना।

१०४१- साऽस्य देवता। सा प्रथमान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तम्, अस्य षष्ठ्यन्तं, देवता प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

देवतावाचक प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिक से 'वह इसका देवता है' इस अर्थ में अण् प्रत्यय होता है।

ऐन्द्रं हविः। इन्द्र देवता हैं इस हवनीय पदार्थ के। **इन्द्रो देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **इन्द्र सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** से अण्, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके ऐकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **ऐन्द्र्+अ**, वर्णसम्मेलन करके **ऐन्द्र, हविः** इस नपुंसक शब्द के विशेषण होने से सु होकर उसके स्थान पर **अम्** आदेश और पूर्वरूप करके **ऐन्द्रम्** यह नपुंसक शब्द सिद्ध हुआ।

पाशुपतम्। पशुपति देवता हैं इस हवनीय पदार्थ के। **पशुपतिर्देवता अस्य**

घन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०४२. शुक्राद् घन् ४।२।२६।।

शुक्रियम्।

ट्यण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०४३. सोमाट् ट्यण् ४।२।३०।।

सौम्यम्।

....

लौकिक विग्रह और **पशुपति सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** से के अर्थ में **पति** उत्तरपद वाला होने के कारण **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** से **ण्य** प्रत्यय प्राप्त था किन्तु **पशुपति** शब्द के अश्वपत्यादि गण में होने के कारण **अश्वपत्यादिभ्यश्च** से अण् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके भसंज्ञक इकार का लोप, **पाशुपत्+अ**, वर्णसम्मेलन, **पाशुपत**, सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **पााशुपतम्** सिद्ध हुआ।

बार्हस्पत्यम्। बृहस्पति देवता हैं इस पदार्थ के। **बृहस्पतिर्देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **बृहस्पति सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** के अर्थ में **पति** उत्तरपद वाला होने के कारण **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** से **ण्य** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके **बार्हस्पति+य** बना। रेफ का ऊर्ध्वगमन होकर भसंज्ञक इकार का लोप होने पर **बार्हस्पत्+य**, वर्णसम्मेलन, **बार्हस्पत्य** बना। सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **बार्हस्पत्यम्** सिद्ध हुआ।

१०४२- शुक्राद् घन्। शुक्रात् पञ्चम्यन्तं, घन् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **सास्य देवता** यह पूरा सूत्र अनुवर्तन होकर आता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिक शुक्र से 'वह इसका देवता है' इस अर्थ में घन् प्रत्यय होता है।

यह **सास्य देवता** का अपवाद है। **घन्** में नकार इत्संज्ञक है और केवल घ् के स्थान पर **आयने०** से **इय्** आदेश होकर **इय** बन जाता है।

शुक्रियम्। शुक्र देवता हैं इस पदार्थ के। **शुक्रो देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **शुक्र सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** के अर्थ में **शुक्राद् घन्** से **घन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से केवल **घ्** के स्थान पर **इय्** आदेश करके **शुक्र+इय** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् के लुक् होने पर आदिवृद्धि तो प्राप्त नहीं है किन्तु **यस्येति च** से **भसंज्ञक अकार** का लोप करके **शुक्र्+इय** बना। वर्णसम्मेलन करके **शुक्रिय** बना। सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **शुक्रियम्** सिद्ध हुआ।

१०४३- सोमाट् ट्यण्। सोमात् पञ्चम्यन्तं, ट्यण् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **सास्य देवता** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होकर आता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०४४. वाय्वृतुपित्रुषसो यत् ४।२।३१॥

वायव्यम्। ऋतव्यम्।

रीङादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०४५. रीङ् ऋतः ७।४।२७॥

अकृद्यकारेऽसार्वधातुके यकारे च्वौ च परे ऋदन्ताङ्गस्य रीङादेशः। **यस्येति च।** पित्र्यम्। उषस्यम्।

....

प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिक सोम से 'वह इसका देवता है' इस अर्थ में ट्यण् प्रत्यय होता है।

चुटू से टकार और **हलन्त्यम्** से णकार इत्संज्ञक हैं, **य** बचता है। टित्करण का प्रयोजन स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाण०** से **ङीष्** करना है। णित् का प्रयोजन आदिवृद्धि है।

सौम्यम्। सोम देवता हैं इस पदार्थ के। **सोमो देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **सोम सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** से प्राप्त अण् को बाधकर के **सोमाट् ट्यण्** से **ट्यण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सोम+य** बना। आदिवृद्धि, **यस्येति च** से **भसंज्ञक अकार** का लोप करके **सौम्य** बना। सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **सौम्यम्** सिद्ध हुआ।

१०४४- वाय्वृतुपित्रुषसो यत्। वायुश्च ऋतुश्च पिता च उषस् च तेषां समाहारद्वन्द्वो वाय्वृतुपित्रुषस्, तस्मात्। वाय्वृतुपित्रुपसः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **सास्य देवता** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होकर आता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

वायु, ऋतु, पितृ और उषस् इन प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिकों से 'वह इसका देवता है' इस अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

वायव्यम्। वायु देवता हैं इस हवि पदार्थ के। **वायुर्देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **वायु सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** के अर्थ में **वाय्वृतुपित्रुषसो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वायु+य** बना। **ओर्गुणः** से **उकार** को गुण करके **वायो+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से अव् आदेश होकर **वायव्य** बना। सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **वायव्यम्** सिद्ध हुआ।

ऋतव्यम्। ऋतु देवता हैं इस हवि पदार्थ के। **ऋतुर्देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **ऋतु सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** से प्राप्त अण् को बाधकर **वाय्वृतुपित्रुषसो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ऋतु+य** बना। **ओर्गुणः** से **उकार** को गुण करके **ऋतो+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से अव् आदेश होकर **ऋतव्य** बना। सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **ऋतव्यम्** सिद्ध हुआ।

१०४५- रीङ् ऋतः। रीङ् प्रथमान्तं, ऋतः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से **अकृत्सार्वधातुकयोः** एवं **अयङ् यि क्ङिति** से **यि** एवं **च्वौ च** से **च्वौ** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

निपातनसूत्रम्

१०४६. पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः ४।२।३६॥

एते निपात्यन्ते। पितुर्भ्राता पितृव्यः। मातुर्भ्राता मातुलः। मातुः पिता मातामहः। पितुः पिता पितामहः।

....

कृत् से भिन्न का यकार, असार्वधातुक यकार अथवा च्वि प्रत्यय के परे होने पर ऋदन्त अङ्ग के स्थान पर रीङ् आदेश होता है।

रीङ् में ङकार की इत्संज्ञा होती है, री मात्र बचता है। ङित् होने के कारण **ङिच्च** की सहायता से अन्त्य वर्ण **ऋकार** के स्थान पर ही होता है।

पित्र्यम्। पितर देवता हैं इस हवि पदार्थ के। **पितरो देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **पितृ जस्** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** के अर्थ में **वाय्वृतुपित्रुषसो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पितृ+य** बना। **रीङ् ऋतः** से **ङिच्च** की सहायता से अन्त्य अल् **ऋकार** के स्थान पर अनुबन्धविनिर्मुक्त **री** आदेश हो गया। **पित्री+य** बना। **ईकार** का **यस्येति च** से लोप हुआ तो **पित्र्+य** बना। वर्णसम्मेलन, सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **पित्र्यम्** सिद्ध हुआ।

उषस्यम्। उषा देवता हैं इस हवि पदार्थ के। **उषा देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **उषस् सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** से प्राप्त अण् को बाधकर **वाय्वृतुपित्रुषसो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उषस्+य** बना। वर्णसम्मेलन, सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **उषस्यम्** सिद्ध हुआ।

१०४६- पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः। पितृव्यश्च मातुलश्च मातामहश्च पितामहश्च तेषामिरतेतरयोगद्वन्द्वः। पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्।

पिता के भ्राता अर्थात् चाचा अर्थ में पितृव्य, माता के भ्राता अर्थात् मामा अर्थ में मातुल, माता के पिता अर्थात् नाना अर्थ में मातामह और पिता के पिता अर्थात् दादा अर्थ में पितामह का निपातन किया जाता है।

वने वनाये शब्दों को प्रकृति और प्रत्यय दिखाये विना सूत्रों में पढ़ देना निपातन कहलाता है। सूत्रकार पाणिनि जी ने इन चार शब्दों की प्रक्रिया न दिखाकर सीधे सूत्र में ही पढ़ दिया। अब हम स्वयं इनमें प्रकृति, प्रत्यय, समर्थ विभक्ति और अनुबन्ध आदि की कल्पना कर सकते हैं। जैसे-

पितृव्यः। पितुर्भ्राता- पिता के भाई अर्थात् चाचा, ताऊ। पितृ शब्द से **पिता के भ्राता** अर्थ में **व्यत्** प्रत्यय की कल्पना करके **पितृव्य** बनता है और सु, रुत्व और विसर्ग करके **पितृव्यः** बन जायेगा।

मातुलः। मातुर्भ्राता- माता के भाई अर्थात् मामा। मातृ शब्द से **भ्राता** अर्थ में **डुलच्** प्रत्यय की कल्पना करके अनुबन्धलोप करने पर **उल** बचता है। टित् मानकर **टेः** इस सूत्र से टिसंज्ञक ऋकार का लोप करके **मात्+उल=मातुल** बनता है और सु, रुत्व और विसर्ग करके **मातुलः** बन जायेगा।

मातामहः। मातुः पिता-माता के पिता अर्थात् नाना। मातृ शब्द से उनके पिता अर्थ में **डामहच्** प्रत्यय की कल्पना करके अनुबन्धलोप करने पर **आमह** बचता है। डित् मान कर

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०४७. तस्य समूहः ४।२।३७॥

काकानां समूहः काकम्।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०४८. भिक्षादिभ्योऽण् ४।२।३८॥

भिक्षाणां समूहो भैक्ष्यम्। गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम्। इह-वार्तिकम्- **भस्याढे तद्धिते।** इति पुंवद्भावे कृते-

....

टेः इस सूत्र से टिसंज्ञक ऋकार का लोप करके **मात्+आमह=मातामह** बनता है और सु, रुत्व-विसर्ग करके **मातामहः** बन जायेगा।

पितामहः। पितुः पिता- पिता के पिता अर्थात् दादा। पितृ शब्द से **पिता** अर्थ में **डामहच्** प्रत्यय की कल्पना करके अनुबन्धलोप करने पर **आमह** बचता है। डित् मान कर **टेः** इस सूत्र से टिसंज्ञक ऋकार का लोप करके **पित्+आमह=पितामह** बनकर सु, रुत्व-विसर्ग करके **पितामहः** बन जायेगा।

इन शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् करके **मातुली, मातामही, पितामही** और टाप् करके **पितृव्या** आदि रूप बनते हैं।

१०४७- तस्य समूहः। तस्य षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, समूहः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चलता आ रहा है।

षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'उसका समूह' अर्थ में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

काकः। कौओं का समूह। **काकानां समूहः। काक आम्** से **तस्य समूहः** के द्वारा अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, णित् होने के कारण आकार के स्थान पर आकार-रूप आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **काक** ही बनता है। समूह अर्थ को बताने के कारण एकवचन सु, अम् आदेश, पूर्वरूप होकर **काकम्** बनता है। इसी तरह **वकानां समूहो वाकम्, वृकाणां समूहो वार्कम्** आदि बनाये जा सकते हैं।

१०४८- भिक्षादिभ्योऽण्। भिक्षा आदिर्येषां ते भिक्षादयस्तेभ्यः। भिक्षादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्य समूहः** का अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठ्यन्त समर्थ भिक्षादि गणपठित प्रातिपदिकों से 'उसका समूह' अर्थ में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

आगे कहे जाने वाले **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** से विहित **ठक्** आदि प्रत्ययों को बाधने के लिए इस सूत्र का अवतरण है।

भैक्षम्। भिक्षाओं का समूह। **भिक्षाणां समूहः। भिक्षा आम्** से **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** से **ठक्** प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर **भिक्षादिभ्योऽण्** से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **भिक्षा+अ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि

प्रकृतिभाव-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०४९. इनण्यनपत्ये ६।४।१६४॥

अनपत्यार्थेऽणि परे इन् प्रकृत्या स्यात्। तेन **नस्तद्धिते** इति टिलोपो न। युवतीनां समूहो यौवनम्।

तल्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०५०. ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ४।२।४३॥

तलन्तं स्त्रियाम्। ग्रामता। बन्धुता। जनता।

वार्तिकम्- **गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्।** गजता। सहायता।

वार्तिकम्- **अह्नः खः क्रतौ।** अहीनः।

....

और **यस्येति च** से आकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **भैक्ष** बना। स्वादिकार्य करके **भैक्षम्** सिद्ध हुआ।

१०४९- इनण्यनपत्ये। न अपत्यम् अनपत्यं, तस्मिन्। इन् प्रथमान्तम्, अणि सप्तम्यन्तम्, अनपत्ये सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्रकृत्यैकाच्** से **प्रकृत्या** की अनुवृत्ति आती है। **अपत्यार्थ से भिन्न अर्थ में विहित अण् प्रत्यय के परे रहते इन् को प्रकृतिभाव होता है।**

गार्भिणम्। गर्भवती स्त्रियों का समूह। **गर्भिणीनां समूहः। गर्भिणी आम्** से **अनुदात्तादेरञ्** से **अञ्** प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर **भिक्षादिभ्योऽण्** से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गर्भिणी+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके **गार्भिणी+अ** बना। यहाँ पर **यस्येति च** से ईकार का लोप प्राप्त था किन्तु **भस्याढे तद्धिते** (ढ-भिन्न तद्धित के परे रहते भसंज्ञक अङ्ग को पुंवद्भाव होता है)से **पुंवद्भाव** हो जाने से स्त्रीत्वबोधन **ङीष्** की निवृत्ति होकर **गार्भिण्** बना। अब **नस्तद्धिते** से टि का लोप प्राप्त था किन्तु **इनण्यनपत्ये** (अपत्यार्थ से भिन्न अर्थ के अण् प्रत्यय के परे रहते इन् को प्रकृतिभाव हो) से **प्रकृतिभाव** हुआ अर्थात् टि का लोप नहीं हुआ। अब वर्णसम्मेलन होने पर **गार्भिण** बना। स्वादिकार्य करके **गार्भिणम्** सिद्ध हुआ।

यौवनम्। युवतियों का समूह। **युवतीनां समूहः। युवति आम्** से **अनुदात्तादेरञ्** से **अञ्** प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर **भिक्षादिभ्योऽण्** से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **युवति+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके **यौवति+अ** बना। यहाँ पर **यस्येति च** से इकार का लोप प्राप्त था किन्तु **भस्याढे तद्धिते** से **पुंवद्भाव** हो जाने से स्त्रीत्वबोधन **ङीष्** की निवृत्ति होकर **युवन्** बना। आदिवृद्धि होकर अब **नस्तद्धिते** से टि का लोप प्राप्त था किन्तु **अन्** सूत्र से **प्रकृतिभाव** हुआ अर्थात् टि का लोप नहीं हुआ। अब वर्णसम्मेलन होने पर **यौवन** बना। स्वादिकार्य करके **यौवनम्** सिद्ध हुआ।

१०५०- ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्। ग्रामश्च जनश्च बन्धुश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो ग्रामजनबन्धवस्तेभ्यः। ग्रामजनबन्धुभ्यः पञ्चम्यन्तं, तल् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्य समूहः** का अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०५१. अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ४।२।४७॥

....

ग्राम, जन और बन्धु इन षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में तद्धितसंज्ञक तल् प्रत्यय होता है।

लकार इत्संज्ञक है। **तलन्तं स्त्रियाम्।** यह लिङ्गानुशासन का सूत्र है। तल् प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में ही होता है।

ग्रामता। गावों का समूह। **ग्रामाणां समूहः। ग्राम आम्** से **ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्** से **तल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ग्रामत** बना है। **तलन्त** होने के कारण स्त्रीलिङ्ग में **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ करके **ग्रामता** बन जाता है। इससे सु एवं उसका हल्ङ्यादिलोप होकर **ग्रामता** सिद्ध हो जाता है।

जनता। जनों का समूह। **जनानां समूहः। जन आम्** से **ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्** से **तल्** प्रत्यय, अनुवन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **जनत** बना है। **तलन्त** होने के कारण स्त्रीलिङ्ग में **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ करके **जनता** बन जाता है। इससे सु एवं उसका हल्ङ्यादिलोप होकर **जनता** सिद्ध हो जाता है।

गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। **गज और सहाय इन षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिकों से भी समूह अर्थ में तल् प्रत्यय हो, ऐसा कहना चाहिए।** तात्पर्य यह है कि **ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्** सूत्र में जो केवल तीन शब्दों से तल् का विधान किया गया है, वह कम है, न्यून है। उसमें **गज** और **सहाय** शब्दों को जोड़ देना चाहिए।

गजता। हाथियों का समूह। **गजानां समूहः। गज आम्** से **गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्** से **तल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **टाप्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, सवर्णदीर्घ, स्वादिकार्य करके **जनता** सिद्ध हो जाता है।

सहायता। सहायकों का समूह। **सहायानां समूहः। सहाय आम्** से **गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्** से **तल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **टाप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ, स्वादिकार्य करके **सहायता** सिद्ध हो जाता है।

अह्नः खः क्रतौ। यह वार्तिक है। **यज्ञ के विषय में वर्तमान षष्ठ्यन्त अहन् प्रातिपदिक से समूह अर्थ में ख प्रत्यय होता है।**

ख में से केवल **ख्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **ईन्** आदेश होकर **ईन** बन जाता है।

अहीनः। कुछ यज्ञक्रियाविशेष का समूह। **अह्नां समूहः। अहन् आम्** में **अह्नः खः क्रतौ** से **ख** प्रत्यय, खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अहन्+ईन** बना। **नस्तद्धिते** से भसंज्ञक टि का लोप करके **अह्+ईन** बना। वर्णसम्मेलन, स्वादिकार्य करके **अहीनः** सिद्ध हुआ।

१०५१- अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्। अविद्यमानं चित्तं येषां ते अचित्ताः। अचित्ताश्च हस्ती च धेनुश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः अचित्तहस्तिधेनुः, सौत्रं पुंस्त्वम्। तस्मात्। अचित्तहस्तिधेनोः पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्य समूहः** का अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

कादेश-विधायकं विधिसूत्रम्

१०५२. इसुसुक्तान्तात् कः ७।३।५१॥

इस्-उस्-उक्-तान्तात् परस्य ठस्य कः। साक्तुकम्। हास्तिकम्। धैनुकम्।

अणादिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०५३. तदधीते तद्वेद ४।२।५९॥

ऐज्विधायक-वृद्धिनिषेधक-विधिसूत्रम्

१०५४. न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ७।३।३॥

पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्य न वृद्धिः, किन्तु ताभ्यां पूर्वौ क्रमादैजावागमौ स्तः। व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः।

....

चित्त-रहित अर्थात् अप्राणिवाचक षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिकों से एवं हस्तिन्, धेनु इन प्रातिपदिकों से 'उसका समूह' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

ककार इत्संज्ञक है और ठ के स्थान पर **ठस्येकः** से इक आदेश होता है। कुछ स्थलों पर अग्रिम सूत्र से **क** आदेश भी होता है।

१०५२- इसुसुक्तान्तात् कः। इस् च उस् च उक् च तश्च तेषां समाहारद्वन्द्व इसुसुक्ताः, ते अन्ता यस्य स इसुसुक्तान्तः, तस्मात्। इसुसुक्तान्तात् पञ्चम्यन्तं, कः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है। **ठस्येकः** से **ठस्य** की अनुवृत्ति आती है।

इस्, उस्, उक् और त अन्त में हो ऐसे अंग से परे ठ के स्थान पर क आदेश होता है।

साक्तुकम्। सत्तुओं का समूह। **सक्तूनां समूहः। सक्तु आम्** में **अचित्त=अप्राणी** का वाचक **सक्तु** शब्द है। **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** से **ठक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **इसुसुक्तान्तात्कः** से ठ के स्थान पर **क** आदेश करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सक्तु+क** बना। ठक् के कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करके **साक्तुक** बना। स्वादिकार्य से **साक्तुकम्** सिद्ध हुआ।

हास्तिकम्। हाथियों का समूह। **हस्तिनां समूहः। हस्तिन् आम्** में **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** से **ठक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **इसुसुक्तान्तात्कः** की प्रवृत्ति नं होने से **ठस्येकः** से **इक** आदेश और **किति च** से आदिवृद्धि करके **हास्तिन्+इक** बना। **नस्तद्धिते** से टि का लोप करके **हास्त्+इक** बना। वर्णसम्मेलन करके स्वादिकार्य करने पर **हास्तिकम्** सिद्ध हुआ।

धैनुकम्। गायों का समूह। **धेनूनां समूहः। धेनु आम्** में **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** से **ठक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **इसुसुक्तान्तात्कः** से **ठ** के स्थान पर **क** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **धेनु+क** बना। ठक् के कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करके **धैनुक** बना। स्वादिकार्य से **धैनुकम्** सिद्ध हुआ।

१०५३- तदधीते तद्वेद। तद् द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्ताम् अधीते तिङन्तं क्रियापदं, तद् द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, वेद तिङन्तं क्रियापदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः** आदि का अधिकार तो चल ही रहा है।

वुन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०५५. क्रमादिभ्यो वुन् ४।२।६१॥

क्रमकः। पदकः। शिक्षकः। मीमांसकः।

इति रक्ताद्यर्थकाः॥४६॥

'उसे पढ़ता है' या 'उसे जानता है' इन अर्थों में द्वितीयान्त समर्थ प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है।

१०५४- न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्। न अव्ययपदं, य्वाभ्यां पञ्चम्यन्तं, पदान्ताभ्यां पञ्चम्यन्तं, पूर्वौ प्रथमान्तं, तु अव्ययपदं, ताभ्यां पञ्चम्यन्तं, ऐच् प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्।

पदान्त यकार वकार से परे अच् की वृद्धि नहीं होती किन्तु उनसे पूर्व के वर्णों को ऐच् अर्थात् ऐ, औ का क्रमशः आगम होता है।

तद्धितेष्वचामादेः **आदि से प्राप्त वृद्धि** का निषेध करके ऐच् आगम का विधान करता है। यथासंख्य होने से यकार से पूर्व **ऐ** और वकार से पूर्व **औ** होता है। ध्यान रहे कि ये आगम हैं आदेश नहीं और यकार तथा वकार से पूर्व में ही होंगे।

वैयाकरणः। व्याकरण पढ़ने या जानने वाला। **व्याकरणम् अधीते वेद वा** लौकिक विग्रह और **व्याकरण अम्** अलौकिक विग्रह है। **तदधीते तद्वेद** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **व्याकरण+अ** बना। यहाँ आदि अच् आकार की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि प्राप्त थी उसे **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** से निषेध करके य से पहले ऐ का आगम हुआ- **व्+ऐ+याकरण+अ** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन होने पर **वैयाकरण** बन गया, सु, रुत्वविसर्ग करके **वैयाकरणः** सिद्ध हुआ।

ऐच् आगम का अन्य उदाहरण- **वैयाघ्रिः**। व्याघ्र की सन्तान। **व्याघ्रस्य अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह और **व्याघ्र ङस्** अलौकिक विग्रह है। **अत इञ्** से इञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **व्याघ्र+इ** बना है। अब यहाँ आदि अच् आकार की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि प्राप्त थी उसे **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** से निषेध करके य से पहले ऐ का आगम हुआ- **व्+ऐ+याघ्र+इ** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन होने पर **वैयाघ्रि** बन गया, सु, रुत्वविसर्ग करके **वैयाघ्रिः** सिद्ध हुआ। औ आगम का उदाहरण आगे बतायेंगे।

१०५५- क्रमादिभ्यो वुन्। क्रमः आदिर्येषां ते क्रमादयस्तेभ्यः। क्रमादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, वुन् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तदधीते तद्वेद** मूल का पूरा अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीयान्त समर्थ क्रम आदि प्रातिपदिकों से 'पढ़ता है' अथवा 'जानता है' अर्थों में वुन् प्रत्यय होता है।

नकार की इत्संज्ञा होती है, **वु** बचता है। उसके स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अक** आदेश हो जाता है।

क्रमकः। वैदिक क्रम पाठ को पढ़ने वाला या जानने वाला। **क्रमम् अधीते** अथवा

क्रमं वेद। **क्रम अम्** में **क्रमादिभ्यो वुन्** से **वुन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **क्रम+वु** बना। **युवोरनाकौ** से **वु** के स्थान पर **अक** आदेश होकर **क्रम+अक** बना। **यस्येति च** से मकारोत्तरवर्ती अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन होकर **क्रमक** बना। स्वादिकार्य करके **क्रमकः** सिद्ध हुआ।

पदकः। वैदिक पद पाठ को पढ़ने वाला या जानने वाला। **पदम् अधीते** अथवा **पदं वेद।** **पद अम्** में **क्रमादिभ्यो वुन्** से **वुन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पद+वु** बना। **युवोरनाकौ** से **वु** के स्थान पर **अक** आदेश होकर **पद+अक** बना। **यस्येति च** से दकारोत्तरवर्ती अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन होकर **पदक** बना। स्वादिकार्य करके **पदकः** सिद्ध हुआ।

शिक्षकः। शिक्षा ग्रन्थ को पढ़ने वाला या जानने वाला। **शिक्षाम् अधीते** अथवा **शिक्षां वेद।** **शिक्षा अम्** में **क्रमाादिभ्यो वुन्** से **वुन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शिक्षा+वु** बना। **युवोरनाकौ** से **वु** के स्थान पर **अक** आदेश होकर **शिक्षा+अक** बना। **यस्येति च** से क्षा के उत्तरवर्ती आकार का लोप करके वर्णसम्मेलन होकर **शिक्षक** बना। स्वादिकार्य करके **शिक्षकः** सिद्ध हुआ।

मीमांसकः। मीमांसा शास्त्र को पढ़ने वाला या जानने वाला। **मीमांसाम् अधीते** अथवा **मीमांसां वेद।** **मीमांसा अम्** से **क्रमाादिभ्यो वुन्** से **वुन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मीमांसा+वु** बना। **युवोरनाकौ** से **वु** के स्थान पर **अक** आदेश होकर **मीमांसा+अक** बना। **यस्येति च** से सा के उत्तरवर्ती आकार का लोप करके वर्णसम्मेलन होकर **मीमांसक** बना। स्वादिकार्य करके **मीमांसकः** सिद्ध हुआ।

परीक्षाः-

१- इस प्रकरण के किन्हीं दस प्रयोगों की सिद्धि दिखायें। १०
२- **नक्षत्रेण युक्तः कालः** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०
३- **संस्कृतं भक्षाः** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०
४- **सास्य देवता** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०
५- **तदधीते तद्वेद** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का रक्ताद्यर्थकप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ चातुरर्थिकाः

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०५६. तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ४।२।६७॥

उदुम्बराः सन्त्यस्मिन् देशे- औदुम्बरो देशः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **चातुरर्थिक प्रकरण** का आरम्भ होता है। इस प्रकरण में चार अर्थों में प्रत्यय का विधान किया गया है, इसलिए **चातुरर्थिक** प्रकरण कहा गया।

ये चार अर्थ हैं-

(१) वह इस में है, ऐसा देश,

(२) उसने बनाया या बसाया- ऐसा नगर,

(३) उसका निवास है, ऐसा देश और

(४) जो उससे दूर नहीं ऐसा देश।

उक्त चारों अर्थ देश के सम्बन्ध में ही होंगे। उनका क्रमशः उदाहरण आगे के सूत्रों से बताये जा रहे हैं।

१०५६- तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि। तस्य नाम तन्नाम, तस्मिन्। तद् प्रथमान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तम्, अस्मिन् सप्तम्यन्तम्, अस्ति क्रियापदम्, इत्यव्ययपदं, देशे सप्तम्यन्तं, तन्नाम्नि सप्तम्यन्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आ रही है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का पीछे से ही अधिकार आ रहा है। **यदि प्रकृति और प्रत्यय के समूह से देश का नाम बनता हो तो 'वह इस देश में है' इस अर्थ में प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है।**

तात्पर्य यह है कि जिस शब्द से अण् हो, उस अण्-प्रत्ययान्त शब्द किसी देश की सं बने। जैसे- उदुम्बर अर्थात् गूलर के पेड़ हैं जिस देश में वह देश **औदुम्बर** कहलाता है। स अण् प्रत्यय करके बनाये गये **औदुम्बर** शब्द से देश का नाम ज्ञात हो रहा है।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०५७. तेन निर्वृत्तम् ४।२।६८॥

कुशाम्बेन निर्वृत्ता नगरी कौशाम्बी।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०५८. तस्य निवासः ४।२।६९॥

शिबीनां निवासो देशः शैबः।

....

औदुम्बरः। उदुम्बर अर्थात् गूलर के पेड़ हैं जिस देश में वह देश। **उदुम्बराः सन्ति अस्मिन् देशे** लौकिक विग्रह और **उदुम्बर जस्** अलौकिक विग्रह। **तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि** से अण् प्रत्यय करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उदुम्बर+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् उकार की वृद्धि करके औकार आदेश और भसंज्ञक रकारोत्तरवर्ती अकार का लोप करके **औदुम्बर्+अ=औदुम्बर**, सु आदि करके **औदुम्बरः** बना। इसी प्रकार **पर्वताः सन्ति अस्मिन् देशे पार्वतो देशः** आदि भी बनाइये।

१०५७- **तेन निर्वृत्तम्**। तेन तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, निर्वृत्तं प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आ रही है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का पीछे से ही अधिकार आ रहा है।

यदि प्रकृति और प्रत्यय के समूह से देश का नाम बनता हो तो 'उसके बनाया गया या बसाया गया' इस अर्थ में तृतीयान्त समर्थ प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है।

कौशाम्बी। कुशाम्ब नामक राजा से बनाई या बसाई गई नगरी। **कुशाम्बेन निर्वृत्ता** लौकिक विग्रह और **कुशाम्ब टा** अलौकिक विग्रह। **तेन निर्वृत्तम्** से अण् प्रत्यय करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कुशाम्ब+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् ककारोत्तरवर्ती उकार की वृद्धि करके औकार आदेश और भसंज्ञक रकारोत्तरवर्ती अकार का लोप करके **कौशाम्ब्+अ=कौशाम्ब** बना। विशेष्य **नगरी** के स्त्रीलिङ्ग होने के कारण **टिड्ढाणञ्**) सूत्र से ङीप् होकर **कौशाम्बी** बना। उससे सु आदि, हल्ङ्याब्भ्यो लोप होकर **कौशाम्बी** बना।

१०५८- **तस्य निवासः**। तस्य षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, निवासः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आ रही है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का पीछे से ही अधिकार आ रहा है।

यदि प्रकृति और प्रत्यय के समूह से देश का नाम बनता हो तो 'उसका निवास' इस अर्थ में षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है।

शैबः। शिबिनामक क्षत्रियों का निवासस्थान देश। **शिबीनां निवासः** लौकिक विग्रह और **शिबि आम्** अलौकिक विग्रह। **तस्य निवासः** से अण् प्रत्यय करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शिबि+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् इकार की वृद्धि करके

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०५९. अदूरभवश्च ४।२।७०॥

विदिशाया अदूरभवं नगरं वैदिशम्।

लुब्-विधायकं विधिसूत्रम्

१०६०. जनपदे लुप् ४।२।८१॥

जनपदे वाच्ये चातुरार्थिकस्य लुप्।

प्रकृतिवद्विधायकमतिदेशसूत्रम्

१०६१. लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने १।२।५१॥

लुपि सति प्रकृतिवल्लिङ्गवचने स्तः।

पञ्चालानां निवासो जनपदः पञ्चालाः। कुरवः। अङ्गाः। वङ्गाः। कलिङ्गाः।

....

ऐकार आदेश और भसंज्ञक बकारोत्तरवर्ती इकार का लोप करके **शैब्+अ=शैब**, सु आदि करके **शैबः** बना।

१०५९- अदूरभवश्च। भवतीति भवः, न दूरम् अदूरम्, अदूरे(निकटे) भवः- अदूरभवः। अदूरभवः प्रथमान्तं, चाव्ययपदं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तद्धिताः**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **प्रत्ययः**, **परश्च**, **समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार बराबर आ रहा है और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से अण् और **तस्य निवासः** से **तस्य** की अनुवृत्ति आती है।

यदि प्रकृति और प्रत्यय के समूह से देश का नाम बनता हो तो 'उसके समीप रहने वाला देश' इस अर्थ में षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है।

वैदिशम्। विदिशा नामक नगरी से समीप वाला नगर, देश। **विदिशाया अदूरभवं नगरम्** लौकिक विग्रह और **विदिशा ङस्** अलौकिक विग्रह। **अदूरभवश्च** से अण् प्रत्यय करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विदिशा+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् इकार की वृद्धि करके ऐकार आदेश और भसंज्ञक शकारोत्तरवर्ती आकार का लोप करके **वैदिश्+अ=वैदिश**, सु आदि करके **वैदिशम्** बना।

१०६०- जनपदे लुप्। जनपदे सप्तम्यन्तं, लुप् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्।

जनपद अर्थ वाच्य होने पर चातुरार्थिक प्रत्यय का लुप् होता है।

प्रकरण से ही **चातुरार्थिक** का अर्थ जाना जाता है क्योंकि अष्टाध्यायी में ही चातुरार्थिक प्रत्यय विधायक सूत्रों के बीच में इस सूत्र को पढ़ा गया है। **प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः** के अनुसार **लुक्** की तरह **लुप्** भी प्रत्यय का अदर्शन है। लुप् होने के बाद भी **यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी** अर्थात् लुप् होने के बाद जो शेष रहता है वह लुप्त हुए प्रत्यय का अर्थ को कह देता है।

१०६१. लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने। युक्तेन तुल्यं युक्तवत्। व्यक्तिश्च वचनं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः व्यक्तिवचने। लुपि सप्तम्यन्तं, युक्तवत् अव्ययं, व्यक्तिवचने प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

लुब्-विधायकं विधिसूत्रम्

१०६२. वरणादिभ्यश्च ४।२।८२॥

अजनपदार्थ आरम्भः। वरणानामदूरभवं नगरं वरणाः।

ड्मतुप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०६३. कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् ४।२।८७॥

वकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०६४. झयः ८।२।१०॥

झयन्तान्मतोर्मस्य वः। कुमुद्वान्। नड्वान्।

....

प्रत्यय के लुप् होने पर शब्द में प्रकृति के समान ही लिङ्ग और वचन होते हैं।

सूत्र में आया हुआ **युक्त** शब्द का **प्रकृति** तथा **व्यक्ति** शब्द का **लिङ्ग** और **वचन** शब्द का **संख्या** अर्थ है। तात्पर्य यह है लुप् किये प्रत्यय जिस प्रकृति से विहित हुए हैं, उनके लुप् के बाद प्रकृति के अनुसार ही लिङ्ग और वचन होना चाहिए, उसके विशेष्य के अनुसार नहीं लगाना चाहिए।

पञ्चालाः। पञ्चालों के जनपद। **पञ्चालानां जनपदः**। यहाँ पर विशेष्य पद है **जनपदः** और प्रकृति है **पञ्चालाः**। यह प्रथमान्त बहुवचन और पुँल्लिङ्ग है। **पञ्चाल आम्** से **निवास जनपद** अर्थ में **अण्** का विधान हुआ, उसका **जनपदे लुप्** से लुप् हो गया अर्थात् अदर्शन हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् के लुक् के पश्चात् **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** से **युक्तवद्भाव** अर्थात् प्रकृतिवद्भाव हुआ। फलतः **जनपदः** इस विशेष्य के अनुसार लिङ्गवचन न होकर प्रकृति के अनुसार बहुवचन ही हुआ। जिससे जस् विभक्ति की उपस्थिति होकर **पञ्चालाः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **कुरवः, अङ्गाः, वङ्गाः, कलिङ्गाः** के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए।

१०६२- वरणादिभ्यश्च। वरणा आदिर्येषां ते वरणादयस्तेभ्यः। वरणादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **जनपदे लुप्** से **लुप्** की अनुवृत्ति आती है।

वरणा आदि शब्दों से परे चातुरार्थिक प्रत्यय का लुप् होता है।

जनपद से भिन्न अर्थ में लोप करने के लिए यह सूत्र पढ़ा गया है।

वरणाः। वरणा नदी के निकटवर्ती प्राचीन नगर। **वरणानामदूरभवं नगरम्। वरणा आम्** में **अदूरभवश्च** से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वरणादिभ्यश्च** से लुक् होकर **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** से युक्तवद्भाव होने पर प्रकृति के अनुसार ही स्त्रीलिङ्ग और बहुवचन ही हुआ- **वरणाः**।

१०६३- कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्। कुमुदश्च नडश्च वेतसश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः कुमुदनडवेतसास्तेभ्यः। कुमुदनडवेतसेभ्यः पञ्चम्यन्तं, ड्मतुप् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का पीछे से ही अधिकार आ रहा है।

वकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०६५. मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ८।२।९॥

मवर्णावर्णान्तान्मवणावर्णोपधाच्च यवादिवर्जितात्परस्य मतोर्मस्य वः। वेतस्वान्।

....

कुमुद, नड, वेतस इन तीन समर्थ सुबन्त प्रातिपदिकों से चातुरार्थिक **ड्मतुप्** प्रत्यय होता है।

डकार, उकार और **पकार** इत्संज्ञक हैं, **मत्** बचता है। **टेः** से **टि** का लोप करने के लिए डित्करण है।

१०६४- झयः। झयः पञ्चम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** से मतोः और **वः** की अनुवृत्ति आती है।

झय् से परे मतुप् के मकार के स्थान पर वकार आदेश होता है।

झय् प्रत्याहार है।

कुमुद्वान्। श्वेत कमल वाला देश। **कुमुदाः सन्ति अस्मिन् देशे**। कुमुद जस् में **कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्** से **ड्मतुप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कुमुद+मत्** बना। डित्त्वसामर्थ्यात् भसंज्ञा न होने पर भी **टेः** से टिसंज्ञक दकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ, **कुमुद्+मत्** बना। अब **झयः** से दकार से परे **मत्** के मकार के स्थान पर **वकार** आदेश होकर **कुमुद्+वत्=कुमुद्वत्** बना। सु, उपधा को दीर्घ, नुम्, हङ्यादिलोप, तकार का संयोगान्तलोप करके हलन्त की तरह **कुमद्वान्** सिद्ध हुआ। आगे **कुमुद्वन्तौ, कुमुद्वन्तः, कुमुद्वन्तम्, कुमुद्वन्तौ, कुमुद्वतः** आदि बनाये जा सकते हैं।

नड्वान्। शरकंडे वाला देश। **नडाः सन्ति अस्मिन् देशे**। **नड जस्** में **कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्** से **ड्मतुप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नड+मत्** बना। डित्त्वसामर्थ्यात् भसंज्ञा न होने पर भी **टेः** से टिसंज्ञक डकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ, **नड्+मत्** बना। अब **झयः** के द्वारा दकार से परे **मत्** के मकार के स्थान पर **वकार** आदेश होकर **नड्+वत्=नड्वत्** बना। सु, उपधा को दीर्घ, नुम्, हङ्यादिलोप, तकार का संयोगान्तलोप करके हलन्त की तरह **नड्वान्** सिद्ध हुआ।

१०६५- मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः। म् च अश्च अनयोः समाहारः-मम्, तस्मात् मात्। यवः आदिर्येषां ते यवादयः। न यवादयोऽयवादयस्तेभ्यः। मात् पञ्चम्यन्तम्, उपधायाः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययं, मतोः षष्ठ्यन्तम्, अयवादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

मकारान्त, अकारान्त, मकारोपध, अकारोपध इन चार प्रकार के प्रातिपदिकों से परे मतु के मकार के स्थान पर वकार आदेश होता है किन्तु यवादिगणपठित शब्दों में यह नहीं होता।

वेतस्वान्। वेंत वाला देश। **वेतसाः सन्ति अस्मिन् देशे**। **वेतस जस्** में **कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्** से **ड्मतुप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वेतस+मत्** बना। डित्त्वसामर्थ्यात् भसंज्ञा न होने पर भी **टेः** से टिसंज्ञक सकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ, **वेतस्+मत्** बना। अब **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** के द्वारा

ड्वलच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०६६. नडशादाड्ड्वलच् ४।२।८८॥

नड्वलः। शाद्वलः।

वलच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०६७. शिखाया वलच् ४।२।८९॥

शिखावलः।

इति चातुरार्थिकाः॥४७॥

....

सकार से परे **मत्** के मकार के स्थान पर **वकार** आदेश होकर **वेतस्+वत्=वेतस्वत्** बना। सु, उपधा को दीर्घ, नुम्, हल्ङ्यादिलोप, तकार का संयोगान्तलोप करके हलन्त की तरह **वेतस्वान्** सिद्ध हुआ।

१०६६- नडशादाड्ड्वलच्। नडश्च शादश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो नडशादं, तस्मात्। नडशादात् पञ्चम्यन्तं, ड्वलच् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का पीछे से ही अधिकार आ रहा है।

नड और शाद इन समर्थ सुबन्त प्रातिपदिकों से चातुरार्थिक ड्वलच् प्रत्यय होता है।

डकार और **चकार** इत्संज्ञक हैं, **वल** बचता है। डित्करण से भसंज्ञक टि का लोप हो जाता है।

नड्वलः। शरकंडों वाला देश। **नडाः सन्ति अस्मिन् देशे। नड जस्** में **नडशादाड्ड्वलच्** से **ड्वलच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नड+वल** बना। डित्त्वसामर्थ्यात् भसंज्ञा न होने पर भी **टेः** से टिसंज्ञक डकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ, **नड्+वल** बना। स्वादिकार्य करके **नड्वलः** सिद्ध हुआ।

शाद्वलः। हरी घास वाला देश। **शादाः सन्ति अस्मिन् देशे। शाद जस्** में **नडशादाड्ड्वलच्** से **ड्वलच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शाद+वल** बना। डित्त्वसामर्थ्यात् भसंज्ञा न होने पर भी **टेः** से टिसंज्ञक डकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ, **शाद्+वल** बना। स्वादिकार्य करके **शाद्वलः** सिद्ध हुआ।

१०६७- शिखाया वलच्। शिखायाः पञ्चम्यन्तं, वलच् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का पीछे से ही अधिकार आ रहा है।

शिखा इस समर्थ सुबन्त प्रातिपदिक से चातुरार्थिक वलच् प्रत्यय होता है।

चकार इत्संज्ञक है, **वल** शेष रहता है।

शिखावलः। शिखाओं वाला देश। **शिखाः सन्ति अस्मिन् देशे। शिखा जस्** में **शिखाया वलच्** से **वलच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शिखावल** बना। स्वादिकार्य करके **शिखावलः** सिद्ध हुआ।

सभी प्रकरणों में **तद्धितप्रकरण** अत्यन्त सरल प्रकरण है। अतः ज्यादा समय तद्धित में न लगाकर इस ग्रन्थ को पूर्ण करने का प्रयत्न करें। तद्धित में यह ध्यान देना

आवश्यक है कि किस विभक्ति से युक्त शब्द से किस अर्थ में कौन सा प्रत्यय हुआ है। अर्थ भिन्न होने पर भी तद्धितप्रत्यय प्राय: एक ही होते हैं। आगे बताया जायेगा कि कालवाचक शब्दों से कोई भी अर्थ हो, प्राय: ठक् प्रत्यय ही हुआ करता है। इन विषयों में हम आगे तत्तत् प्रकरणों में बताने की चेष्टा करेंगे। इसके बाद शैषिकप्रकरण में प्रवेश करना है।

इस प्रकरण के समापन के पहले आप शुरु से यहाँ तक कौमुदी की सूत्र, वृत्ति, अर्थ और साधनी सहित पूरी आवृत्ति करें। इसके बाद यह भी देखें कि पाणिनीयाष्टाध्यायी का पारायण कैसे चल रहा है और उसका परिणाम कैसा आ रहा है? सूत्र याद हो रहे हैं कि नहीं। आप यह जान लें कि पाणिनीय अष्टाध्यायी की पूरी जानकारी के विना संस्कृतभाषा का ज्ञान अधूरा ही रह जायेगा।

परीक्षा

१- इस प्रकरण के प्रत्यय एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालिए। १०

२- **तस्य निवासः** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०

३- **तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०

४- **तेन निर्वृत्तम्** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०

५- **अदूरभवश्च** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का चातुरर्थिक-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ शैषिक-प्रकरणम्

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्, अधिकारसूत्रञ्च

१०६८. शेषे ४।२।९२॥

अपत्यादिचतुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेषस्तत्राणादयः स्युः। चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम्। श्रावणः शब्दः। औपनिषदः पुरुषः। दृषदि पिष्टा दार्षदाः सक्तवः। चतुर्भिरुह्यं चातुरं शकटम्। चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशं रक्षः। **तस्य विकारः** इत्यतः प्राक् शेषाधिकारः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **शैषिकप्रकरण** प्रारम्भ होता है। **शेषे** के अधिकार में किये जाने वाले प्रत्ययों को **शैषिक** कहा गया है। इस प्रकरण में अनेक प्रत्ययों का विधान है।

१०६८- शेषे। शेषे सप्तम्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार तथा **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। यह अधिकार और अनुवर्तन पूरे शैषिक में रहेगा। यहाँ पर शेष शब्द का- अपत्य अर्थ से लेकर चतुरर्थी तक के अर्थों से भिन्न अर्थ लिया गया है।

शेष अर्थ में समर्थ प्रातिपदिकों से अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

शेष बचे हुए को कहा जाता है। तद्धितप्रकरण के प्रारम्भ से अर्थात् अपत्याधिकार से चातुरर्थिकप्रकरण तक जितने अर्थों में प्रत्यय हुआ है, उससे भिन्न अर्थ को शेष कहते हैं। शेष अर्थ में अण् प्रत्यय अथवा यथाप्राप्त प्रत्यय होंगे। इस सूत्र को विधिसूत्र और अधिकारसूत्र दोनों माना गया है। विधिसूत्र होने के कारण **चाक्षुषम्** आदि रूपों की सिद्धि होती है और अधिकारसूत्र मानकर आगे के सूत्रों में **शेषे** का अधिकार चला जाता है।

चाक्षुषम्। नेत्रों के द्वारा जिसका ग्रहण होता है, वह अर्थात् रूप। **चक्षुषा गृह्यते** लौकिक विग्रह और **चक्षुष् टा** अलौकिक विग्रह है। **शेषे** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **चक्षुष्+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके **चाक्षुष्+अ=चाक्षुष** बना। सु, नपुंसकलिङ्ग होने के कारण सु के स्थान पर अम् आदेश, पूर्वरूप करके **चाक्षुषम्** सिद्ध हुआ।

श्रावणः। कानों के द्वारा जिसका ग्रहण होता है, शब्द। **श्रवणेन गृह्यते** लौकिक विग्रह और **श्रवण टा** अलौकिक विग्रह है। **शेषे** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का

घ-ख-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०६९. राष्ट्रावारपाराद् घखौ ४।२।९३॥

आभ्यां क्रमाद् घखौ स्तः शेषे। राष्ट्रे जातादि राष्ट्रियः। अवारपारीणः।

वार्तिकम्- **अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्।**

अवारीणः। पारीणः। पारावारीणः। इह प्रकृतिविशेषाद् घादयष्ट्युट्युलन्ताः प्रत्यया उच्यन्ते, तेषां जातादयोऽर्थविशेषाः समर्थविभक्तयश्च वक्ष्यन्ते।

....

लुक् करके **श्रवण+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके भसंज्ञक अकार का लोप करके **श्रावण्+अ=श्रावण** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **श्रावणः** सिद्ध हुआ।

औपनिषदः। उपनिषद् में जाना गया पुरुष अथवा उपनिषदों के द्वारा प्रतिपादित पुरुष, आत्मा। **उपनिषदि ज्ञातः** अथवा **उपनिषद्भिः प्रतिपतिपादितः** लौकिक विग्रह और **उपनिषद् ङि** अथवा **भिस्** अलौकिक विग्रह है। **शेषे** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उपनिषद्+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार, **औपनिषद्+अ=औपनिषद** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **औपनिषदः** सिद्ध हुआ। **औपनिषदः पुरुषः।**

दार्षदाः। पत्थर, चक्की में पीसे गये, सत्तू आदि। **दृषदि पिष्टाः** लौकिक विग्रह और **दृषद् ङि** अलौकिक विग्रह है। **शेषे** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दृषद्+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से रपरसहित आदिवृद्धि करके ऋकार के स्थान पर आर्, **द्+आर्+षद्+अ=दार्षद** बना। जस्, पूर्वसवर्णदीर्घ, रुत्वविसर्ग करके **दार्षदाः** सिद्ध हुआ। सत्तू। **दार्षदाः सक्तवः।**

चातुरम्। चार प्राणियों, घोड़ों या व्यक्तियों के द्वारा खींचा जाने वाला छकड़ा या पालकी। **चतुर्भिः उह्यते** लौकिक विग्रह और **चतुर् भिस्** अलौकिक विग्रह है। **शेषे** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **चतुर्+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके अकार के स्थान पर आकार, **चातुर्+अ=चातुर** बना। सु, अम्, **चातुरम्** सिद्ध हुआ। **चातुरं शकटम्।**

चातुर्दशम्। चतुर्दशी को दिखाई देने वाला अर्थात् राक्षस। **चतुर्दश्यां दृश्यते** लौकिक विग्रह और **चतुर्दशी ङि** अलौकिक विग्रह है। **शेषे** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **चतुर्दशी+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके अकार के स्थान पर आकार, भसंज्ञक ईकार का लोप, **चातुर्दश्+अ=चातुर्दश** बना। सु, अम्, **चातुर्दशम्** सिद्ध हुआ। **चातुर्दशं रक्षः।**

शैषिक आदि प्रत्ययों के सम्बन्ध में एक श्लोक प्रसिद्ध है-

शैषिकान्मतुबर्थीयाच्छैषिको मतुबर्थिकः।

सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते॥ अर्थात् शैषिक प्रत्ययान्त से पुनः उसी रूप वाला शैषिक प्रत्यय नहीं हुआ करता। इसी तरह मतुबर्थीय प्रत्ययान्त से पुनः उसी रूप वाला मतुबर्थीय प्रत्यय भी नहीं होता। एवं च इच्छा अर्थ में हुए सन् प्रत्ययान्त से दुबारा सन् प्रत्यय नहीं होता।

१०६९- राष्ट्रावारपाराद् घखौ। राष्ट्रञ्च अवारपारञ्च तयोः समाहारद्वन्द्वो राष्ट्रावारापारम्, तस्मात्। घश्च खश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो घखौ। राष्ट्रावारपाराद् पञ्चम्यन्तं, घखौ प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

शेष अर्थ में राष्ट्र और अवारपार शब्द से क्रमशः घ और ख प्रत्यय होते हैं।

फलतः **राष्ट्र** से **घ** और **अवारपार** से **ख** प्रत्यय हो जाते हैं। इन दोनों प्रत्ययों में अनुबन्ध नहीं है। घ के घकार के स्थान पर और ख के खकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से क्रमशः इय् और ईन् आदेश होंगे जिससे **इय्+अ=इय** और **ईन्+अ=ईन** बनेंगे। घ और ख में जो अकार है, उसके स्थान पर आदेश नहीं होता है। राष्ट्र शब्द से प्रधानतया घ-प्रत्यय ही होता है, जिससे **राष्ट्रियः** बनता है। हिन्दी में छ प्रत्यय वाला, दीर्घ ईकार वाला रूप **राष्ट्रीय** भी प्रचलित है किन्तु संस्कृत में घ-प्रत्यय वाला रूप ही शुद्ध है, छ-प्रत्यय वाला नहीं।

अवारपराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। **अवारपार शब्द के पृथक् होने व विपरीत होने पर भी ख प्रत्यय होता है, ऐसा कहना चाहिए।** जैसे अवारपार शब्द पृथक् हुआ तो **अवार** और **पार** बना एवं विपरीत हुआ तो **पारावार** बना। यह वार्तिक **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** का सहयोगी है।

राष्ट्रियः। राष्ट्र में होने वाला या पैदा हुआ। **राष्ट्रे जातादि** लौकिक विग्रह और **राष्ट्र ङि** अलौकिक विग्रह है। **राष्ट्रावारपाराद् घखौ से घ** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **राष्ट्र+घ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से घ् के स्थान पर इय् आदेश होकर भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **राष्ट्र्+इय** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **राष्ट्रिय** बना। णित्, कित् आदि न होने के कारण आदिवृद्धि का प्रसंग नहीं है। सु, रुत्व-विसर्ग करके **राष्ट्रियः** सिद्ध हुआ।

अवारपारीणः। इस पार और उस पार होने वाला या पैदा हुआ। **अवारपारे जातादि** लौकिक विग्रह और **अवारपार ङि** अलौकिक विग्रह है। **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** से **ख** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अवारपार+ख** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ख् के स्थान पर ईन् आदेश होकर भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **अवारपार्+ईन**, वर्णसम्मेलन होने पर **अवारपारीन** बना। णित्, कित् आदि न होने के कारण आदिवृद्धि का प्रसंग नहीं है। रेफ से पर नकार को णत्व होकर सु, रुत्व-विसर्ग करके **अवारपारीणः** सिद्ध हुआ।

अब इसी प्रकार **अवारपार** शब्द में विगृहीत(पृथक्) होने पर **अवारपराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्** इस वार्तिक की सहायता से **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** से ख-प्रत्यय करके **अवार** से **अवारीणः** और **पार** से **पारीणः** एवं विपरीत होने पर **पारावार** से **पारावारीणः** भी बना सकते हैं।

इह प्रकृतिविशेषाद् घादयष्ट्युट्युलन्ताः प्रत्यया उच्यन्ते, तेषां जातादयोऽर्थविशेषाः समर्थविभक्तयश्च वक्ष्यन्ते। इस शैषिक प्रकरण में **घ** से लेकर **ट्यु-ट्युल्** प्रत्ययों तक जितने प्रत्यय बताये गये हैं वे विशेष-विशेष प्रकृतियों से ही कहे गये हैं और इनके **जातः** आदि अर्थविशेष और उनकी समर्थ विभक्तियाँ भी आगे के सूत्रों से कही जायेंगी।

य-खञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०७०. ग्रामाद्यखञौ ४।२।९४।।

ग्राम्यः, ग्रामीणः।

ढक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०७१. नद्यादिभ्यो ढक् ४।२।९७।।

नादेयम्। माहेयम्। वाराणसेयम्।

....

१०७०- ग्रामाद्यखञौ। ग्रामात् पञ्चम्यन्तं, यखञौ प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

ग्राम शब्द से शेष अर्थ में य और खञ् दोनों प्रत्यय होते हैं।

खञ् में ञकार इत्संज्ञक है।

ग्राम्यः। ग्राम में होने वाला या पैदा हुआ। **ग्रामे जातो भवो वा** लौकिक विग्रह और **ग्राम ङि** अलौकिक विग्रह है। **ग्रामाद्यखञौ** से **य** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ग्राम+य** बना। भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **ग्राम्+य** वर्णसम्मेलन होने पर **ग्राम्य** बना। सु और रुत्वविसर्ग करके **ग्राम्यः** सिद्ध हुआ।

ग्रामीणः। ग्राम में होने वाला या पैदा हुआ। **ग्रामे जातादि** लौकिक विग्रह और **ग्राम ङि** अलौकिक विग्रह है। **ग्रामाद्यखञौ** से **खञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ग्राम+ख** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ख् के स्थान पर ईन् आदेश होकर भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **ग्राम्+ईन**, वर्णसम्मेलन होने पर **ग्रामीन** बना। रेफ से परे नकार को णत्व होकर सु, रुत्व-विसर्ग करके **ग्रामीणः** सिद्ध हुआ।

१०७१- नद्यादिभ्यो ढक्। नद्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ढक् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

नदी आदि गणपठित समर्थ सुबन्त प्रातिपदिकों से शेष अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है।

ककार इत्संज्ञक है और ढ के ढ् के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से एय् आदेश होकर एय बन जाता है। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि होती है। नदी आदि गण में **नदी, मही, वाराणसी, कौशाम्बी, खादिरी, पूर, वन, गिरि, माया** आदि शब्द आते हैं।

नादेयम्। नदी में होने वाला या पैदा हुआ। **नद्यां जातादि** लौकिक विग्रह और **नदी ङि** अलौकिक विग्रह है। **नद्यादिभ्यो ढक्** से **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नदी+ढ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ढ् के स्थान पर एय् आदेश होकर **नदी+एय** बना। **किति च** से आदिवृद्धि करके भसंज्ञक ईकार का लोप होने पर **नाद्+एय**, वर्णसम्मेलन होने पर **नादेय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **नादेयम्** सिद्ध हुआ।

त्यक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०७२. दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् ४।२।९८॥

दाक्षिणात्यः। पाश्चात्त्यः। पौरस्त्यः।

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०७३. द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ४।२।१०१॥

दिव्यम्। प्राच्यम्। अपाच्यम्। उदीच्यम्। प्रतीच्यम्।

....

माहेयम्। मही अर्थात् पृथ्वी में होने वाला या पैदा हुआ। **मह्यां जातादि** लौकिक विग्रह और **मही ङि** अलौकिक विग्रह है। **नद्यादिभ्यो ढक्** से **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मही+ढ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ढ् के स्थान पर एय् आदेश होकर **मही+एय** बना। **किति च** से आदिवृद्धि करके भसंज्ञक ईकार का लोप होने पर **माह्+एय**, वर्णसम्मेलन होने पर **माहेय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **माहेयम्** सिद्ध हुआ।

वाराणसेयम्। वाराणसी में होने वाला या पैदा हुआ। **वाराणस्यां जातादि** लौकिक विग्रह और **वाराणसी ङि** अलौकिक विग्रह है। **नद्यादिभ्यो ढक्** से **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वाराणसी+ढ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ढ् के स्थान पर एय् आदेश होकर **वाराणसी+एय** बना। **किति च** से आदिवृद्धि करके भसंज्ञक ईकार का लोप होने पर **वाराणस्+एय**, वर्णसम्मेलन होने पर **वाराणसेय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **वाराणसेयम्** सिद्ध हुआ।

१०७२- **दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्।** दक्षिणा च पश्चात् च पुरश्च तेषां समाहारद्वन्द्वो दक्षिणापश्चात्पुरः, तस्मात्। दक्षिणापश्चात्पुरसः पञ्चम्यन्तं, त्यक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

दक्षिणा, पश्चात् और पुरस् इन अव्ययों से शैषिक अर्थों में त्यक् प्रत्यय होता है।

ककार इत्संज्ञक है, त्य बचता है। कित् होने से **किति च** से आदिवृद्धि हो सकती है।

दाक्षिणात्यः। दक्षिण दिशा में उत्पन्न या होने वाला। **दक्षिणा भवः। दक्षिणा** इस अव्यय से **दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्** से **त्यक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दक्षिणात्य** बना। आदिवृद्धि करके स्वादिकार्य होने पर **दाक्षिणात्यः** सिद्ध हुआ।

पाश्चात्त्यः। पीछे अर्थात् पश्चिम दिशा में उत्पन्न या होने वाला। **पश्चात् भवः। पश्चात्** इस अव्यय से **दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्** से **त्यक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पश्चात्+त्य** बना। आदिवृद्धि करके स्वादिकार्य होने पर **पाश्चात्त्यः** सिद्ध हुआ।

पौरस्त्यः। पहले या पूर्व में उत्पन्न या होने वाला। **पुरो भवः। पुरस्** इस अव्यय से **दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्** से **त्यक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पुरस्+त्य** बना। आदिवृद्धि करके स्वादिकार्य होने पर **पौरस्त्यः** सिद्ध हुआ।

त्यप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०७४. अव्ययात्त्यप् ४।२।१०४॥

वार्तिकम्- **अमेह-क्व-तसि-त्रेभ्य एव।**

अमात्यः। इहत्यः। क्वत्यः। ततस्त्यः। तत्रत्यः।

वार्तिकम्- **त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्।** नित्यः।

....

१०७३- **द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्।** द्यौश्च प्राङ् च अपाङ् च उदङ् च प्रत्यङ् च तेषां समाहारद्वन्द्वो द्युप्रागपागुदक्प्रत्यक्, तस्मात्। द्युप्रागपागुदक्प्रतीचः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

दिव्, प्राञ्च्, अपाञ्च्, उदञ्च् और प्रत्यञ्च् से शैषिक अर्थों में यत्-प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है। दिव् को छोड़कर शेष शब्द क्रमशः प्र, अप, उत् और प्रति उपसर्गपूर्वक अञ्चु धातु से बने हैं। नकार से बने ञकार का लोप आदि करने पर ये प्राच्, अपाच्, उदीच्, प्रत्यच् ऐसे बन जाते हैं। इनसे यत् का विधान किया गया है।

दिव्यम्। स्वर्ग में होने वाला या पैदा हुआ। **दिवि जातादि** लौकिक विग्रह और **दिव् ङि** अलौकिक विग्रह है। **द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दिव्+य** बना। ञित्, णित्, कित् न होने के कारण आदिवृद्धि का प्रसङ्ग नहीं है और हलन्तशब्द होने के कारण भसंज्ञक इकार, अकार के लोप होने का प्रसंग ही नहीं है। वर्णसम्मेलन होने पर **दिव्य** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **दिव्यम्** सिद्ध हुआ।

प्राच्यम्। पूर्व दिशा या पूर्व देश में होने वाला या पैदा हुआ। **प्राचि जातादि** लौकिक विग्रह और **प्राच् ङि** अलौकिक विग्रह है। **द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **प्राच्+य** बना। ञित्, णित्, कित् न होने के कारण आदिवृद्धि का प्रसंग नहीं है एवं हलन्तशब्द होने के कारण भसंज्ञक इकार और अकार के लोप होने का प्रसङ्ग नहीं है। वर्णसम्मेलन होने पर **प्राच्य** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **प्राच्यम्** सिद्ध हुआ। अब इसी प्रकार **अपाच्** से **अपाच्यम्, उदीच्** से **उदीच्यम्** और **प्रतीच्** से **प्रतीच्यम्** भी बनाइये।

१०७४- **अव्ययात्त्यप्।** अव्ययात् पञ्चम्यन्तं, त्यप् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

अव्ययों से परे त्यप् प्रत्यय होता है।

पकार इत्संज्ञक है, **त्य** बचता है। सभी अव्ययों से प्राप्त हो रहा था, अतः अग्रिम वार्तिक से सीमित किया गया है।

अमेहक्वतसित्रेभ्य एव। यह वार्तिक है। **सभी अव्ययों से त्यप् न होकर केवल अमा, इह, क्व, तसिल्-प्रत्ययान्त और त्रल्-प्रत्ययान्त मात्र अव्ययों से त्यप्-प्रत्यय हो।**

वृद्धसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१०७५. वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम् १।१।७३॥

यस्य समुदायस्याचां मध्ये आदिर्वृद्धिस्तद्वृद्धसंज्ञं स्यात्।

वृद्धसंज्ञाविधायकं द्वितीयं संज्ञासूत्रम्

१०७६. त्यदादीनि च १।१।७४॥

वृद्धसंज्ञानि स्युः।

छ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०७७. वृद्धाच्छः ४।२।११४॥

शालीयः। मालीयः। तदीयः।

वार्तिकम्- **वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या।** देवदत्तीयः, दैवदत्तः।

....

अमात्यः। **अमा** इस अव्यय का **साथ** अर्थ लिया गया है। साथ या समीप में होने वाला, मन्त्री आदि। **अमा(सह) वर्तते** लौकिक विग्रह और **अमा**(अव्यय होने के कारण विभक्ति नहीं है) अलौकिक विग्रह है। **अव्ययात्त्यप्** से त्यप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, **अमा+त्य** बना। ञित्, णित्, कित् न होने के कारण आदिवृद्धि का प्रसंग नहीं है और अजादि या यकारादि प्रत्यय परे न मिलने के कारण भसंज्ञक नहीं है, अतः भसंज्ञक के लोप होने का प्रसङ्ग भी नहीं है। **अमात्य** से सु, रुत्व-विसर्ग करके **अमात्यः** सिद्ध हुआ। अव इसी प्रकार से **यहाँ होने वाला** अर्थ में इह से **इहत्यः**, **कहाँ होने वाला** अर्थ में **क्व** से **क्वत्यः**, **वहाँ से होने वाला** अर्थ में तसिल्-प्रत्ययान्त **ततस्** से **ततस्त्यः**, **वहाँ होने वाला** अर्थ में त्रल्-प्रत्ययान्त **तत्र** से **तत्रत्यः**।

त्यब्नेर्ध्रुव इति **वक्तव्यम्**। यह वार्तिक है। **नि इस अव्यय से परे त्यप् प्रत्यय हो ऐसा कहना चाहिए।**

नित्यः। सदा होने वाला। नि उपसर्ग से **त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्** वार्तिक के द्वारा त्यप् प्रत्यय होकर नित्यः बन जाता है। इसका अर्थ सर्वकाल, निश्चित और नियत अर्थ लिया जायेगा।

१०७५- **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्**। वृद्धिः प्रथमान्तं, यस्य षष्ठ्यन्तम्, अचां षष्ठ्यन्तम्, आदिः प्रथमान्तं, तद् प्रथमान्तं, वृद्धं प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

जिस शब्द के अचों के मध्य में आदि अच् वृद्धिसंज्ञक अर्थात् आ, ऐ, औ हो, उस शब्द की वृद्धसंज्ञा होती है।

वृद्धसंज्ञा का फल **वृद्धाच्छः** आदि सूत्रों की प्रवृत्ति है। **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** से **वृद्धम्** की अनुवृत्ति आती है।

१०७६- **त्यदादीनि च**। त्यदादीनि प्रथमान्तं, चाव्ययपदं द्विपदमिदं सूत्रम्।

सर्वादिगण के अन्तर्गत जो त्यदादिगण पठित है, उसमें पढ़े गये शब्दों की भी वृद्धसंज्ञा होती है।

१०७७- **वृद्धाच्छः**। वृद्धात् पञ्चम्यन्तं, छः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

छ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०७८. गहादिभ्यश्च ४।२।१३८॥

गहीयः।

....

वृद्धसंज्ञक सुबन्त प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थ में छ प्रत्यय होता है।

छ में छकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **ईय्** आदेश होकर **ईय** बन जाता है।

शालीयः। शाला अर्थात् घर में होने वाला या पैदा हुआ। **शालायां जातादि** लौकिक विग्रह और **शाला ङि** अलौकिक विग्रह है। **शाला** में आदि अच् आकार वृद्धिसंज्ञक है, अतः इसकी **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** से वृद्धसंज्ञा हुई है। इससे **वृद्धाच्छः** के द्वारा छ प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शाला+छ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **छ्** के स्थान पर **ईय्** आदेश होकर **शाला+ईय** बना। भसंज्ञक आकार का लोप करके **शाल्+ईय** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **शालीय** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **शालीयः** सिद्ध हुआ।

मालीयः। माला में होने वाला सूता, धागा आदि। **मालायां जातादि** लौकिक विग्रह और **माला ङि** अलौकिक विग्रह है। **माला** में आदि अच् आकार वृद्धिसंज्ञक है, अतः इसकी **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** से वृद्धसंज्ञा हुई है। इससे **वृद्धाच्छः** के द्वारा छ प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **माला+छ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **छ्** के स्थान पर **ईय्** आदेश होकर **माला+ईय** बना। भसंज्ञक आकार का लोप करके **माल्+ईय** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **मालीय** बना और सु, रुत्वविसर्ग करके **मालीयः** सिद्ध हुआ।

तदीयः। उसका यह। **तस्य अयम्** लौकिक विग्रह और **तद् ङस्** अलौकिक विग्रह है। तद् त्यदादिगणीय है, अतः इसकी **त्यदादीनि च** से वृद्धसंज्ञा हुई है। इससे **वृद्धाच्छः** से छ प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **तद्+छ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **छ्** के स्थान पर **ईय्** आदेश होकर **तद्+ईय** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **तदीय** बना और सु, रुत्वविसर्ग करके **तदीयः** सिद्ध हुआ।

वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या। यह वार्तिक है। **नामवाचक शब्दों की विकल्प से वृद्धसंज्ञा होती है।** देवदत्त नामवाचक शब्द है, वृद्धसंज्ञा की प्राप्ति नहीं थी तो इस वार्तिक से नामवाचक की वैकल्पिक वृद्धसंज्ञा की गई। अतः **वृद्धाच्छः** से छ होकर **देवदत्तीयः**, सिद्ध हुआ। वृद्धसंज्ञा न होने के पक्ष में छ भी नहीं हुआ तो **शेषे** से अण्-प्रत्यय, आदिवृद्धि, भसंज्ञक का लोप करके सु आदि करने पर **दैवदत्तः** भी बनता है। इसी प्रकार सभी नामवाचक शब्दों के विषय में समझना चाहिए।

देवदत्तीयः, दैवदत्तः। देवदत्त का यह। **देवदत्तस्यायम्। देवदत्त ङस्** से **वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या** वार्तिक द्वारा विकल्प से **वृद्धसंज्ञा** करके **वृद्धाच्छः** से छ प्रत्यय, ईय् आदेश आदि होकर **देवदत्तीयः** बनता है। संज्ञा न होने के पक्ष में **तस्येदम्** से **अण्** होकर **दैवदत्तः** बन जाता है।

१०७८- गहादिभ्यश्च। गह आदिर्येषां ते गहादयस्तेभ्यः। गहादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं,

खञ्-छ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०७९. युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च ४।३।१॥

चाच्छः। पक्षेऽण्। युवयोर्युष्माकं वायं युष्मदीयः। अस्मदीयः।

युष्माकास्माकादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०८०. तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ४।३।२॥

युष्मदस्मदोरेतावादेशौ स्तः खञि अणि च।

यौष्माकीणः। आस्माकीनः।

यौष्माकः। आस्माकः।

तवक-ममकादेशविधायकं विधिसूत्रम्

११८१. तवकममकावेकवचने ४।३।३॥

एकार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोस्तवक-ममकौ स्तः, खञि अणि च।

तावकीनः, तावकः। मामकीनः, मामकः। छे तु-

....

द्विपदं सूत्रम्। वृद्धाच्छः से छः की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

गह आदि गणपठित समर्थ प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थ में छ प्रत्यय होता है।

गहादिगण में गह, अन्तःस्थ, सम, विषम, उत्तम आदि अनेक शब्द आते हैं।

गहीयः। गुफा आदि स्थानों में होने वाला। **गहे भवः** लौकिक विग्रह और **गह ङि** अलौकिक विग्रह है। **गहादिभ्यश्च** से छ प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके गह्+छ बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से छ् के स्थान पर ईय् आदेश होकर **गह्+ईय** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **गहीय** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **गहीयः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **समे भवः समीयः, विषमे भवो विषमीयः** इत्यादि भी बन सकते हैं।

१०७९- **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च**। युष्मत् च अस्मत् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो युष्मदस्मदौ, तयोः। युष्मदस्मदोः षष्ठ्यन्तं, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तं, खञ् प्रथमान्तं, चाव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। सूत्र में च पढ़ा गया है, उससे **गर्तोत्तरपदाच्छः** से छ लाकर छ भी होता है ऐसा अर्थ कर लिया जाता है।

युष्मद् और अस्मद् शब्द से विकल्प से खञ् और छ प्रत्यय होते हैं।

वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **शेषे** से अण् प्रत्यय हो जाता है।

१०८०- **तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ**। युष्माकश्च अस्माकश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो युष्माकास्माकौ। तस्मिन् सप्तम्यन्तम्, अणि सप्तम्यन्तं, चाव्ययपदं, युष्माकास्माकौ प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **तस्मिन्** से पूर्वसूत्र **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च** का खञ् लिया गया है। **युष्मदस्मदोः** की अनुवृत्ति भी है।

खञ् और अण् के परे होने पर युष्मद् और अस्मद् शब्द के स्थान पर युष्माक और अस्माक आदेश होते हैं।

त्व-मावादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१०८२. प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ७।२।९८॥

मपर्यन्तयोरेतयोरेकार्थवाचिनोस्त्वमौ स्तः, प्रत्यये उत्तरपदे च परतः। त्वदीयः। मदीयः। त्वत्पुत्रः। मत्पुत्रः।

....

१०८१- तवकममकावेकवचने। तवकश्च ममकश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्तवकममकौ। तवकममकौ प्रथमान्तम्, एकवचने सप्तम्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। यह सूत्र भी पूर्वसूत्र की तरह ही काम करता है।

केवल एकवचन का विषय हो तो खञ् और अण् के परे होने पर युष्मद् और अस्मद् शब्द के स्थान पर तवक और ममक आदेश होते हैं।

यहाँ पर **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** के नियम से युष्मद् के स्थान पर तवक और अस्मद् के स्थान पर ममक आदेश होंगे।

१०८२- प्रत्ययोत्तरपदयोश्च। प्रत्ययश्च उत्तरपदं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः प्रत्ययोत्तरपदे, तयोः। प्रत्ययोत्तरपदयोः सप्तम्यन्तं, चाव्ययपदं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **त्वमावेकवचने** से त्वमौ और **एकवचने, युष्मदस्मदोरनादेशे** से **युष्मदस्मदोः** और **मपर्यन्तस्य** से मपर्यन्तस्य की अनुवृत्ति आती है।

एकवचन का विषय हो और प्रत्यय या उत्तरपद परे हो तो युष्मद् और अस्मद् शब्द के मपर्यन्त भाग अर्थात् युष्म् और अस्म् के स्थान पर त्व और म आदेश होते हैं।

यहाँ पर भी **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** के नियम से युष्मद् के स्थान पर त्व और अस्मद् के स्थान पर म आदेश होंगे।

युष्मदीयः, यौष्माकीणः, यौष्माकः, तावकीनः, तावकः, त्वदीयः। युष्मद् शब्द के इन अन्तिम तीन रूप केवल एकवचन के विषय हैं और आदि के तीन रूप द्विवचन और बहुवचन के विषय हैं। पहले के तीन रूपों का लौकिक विग्रह **युवयोर्युष्माकं वा अयम्** (तुम दोनों का या तुम सब का यह) तथा शेष तीन रूपों का विग्रह **तव अयम्**(तुम्हारा यह) इसी प्रकार पहले के तीन रूपों का अलौकिक विग्रह **युष्मद् ओस्** या **युष्मद् आम्** शेष तीन रूपों का **युष्मद् ङस्** है। ऐसी अवस्था में **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च** से छ प्रत्यय करके प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से छ के छकार के स्थान पर ईय् आदेश करके **युष्मद्+ईय** बना, वर्णसम्मेलन होने पर **युष्मदीय** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **युष्मदीयः** सिद्ध हुआ। यह प्रथमरूप है। **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च** से **खञ्** होने के पक्ष में अनुबन्ध ञकार का लोप करके ख बचा, उस खकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ईन् आदेश करके ईन बना, इस तरह **युष्मद्+ईन** बन गया। **ईन** के परे रहते **तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ** से युष्मद् के स्थान पर **युष्माक** आदेश हुआ, **युष्माक+ईन** बना। खञ् में विद्यमान ञित्त्व स्थानिवद्भावेन **ईन** में भी आ गया और उसे ञित् मानकर **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर यु के उकार के स्थान पर औकार होकर **यौष्माक+ईन** बना। भसंज्ञक ककारोत्तरवर्ती अकार का **यस्येति च** से लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **यौष्माकीन** बना।

षकार से परे नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व होकर **यौष्माकीण** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **यौष्माकीणः** सिद्ध हुआ। यह दूसरा रूप है। छ और खञ् ये दोनों प्रत्यय वैकल्पिक हैं। इनके न होने के पक्ष में **शेषे** से अण् प्रत्यय होगा और अण् के परे होने पर भी **तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ** से **युष्माक** आदेश होगा ही। इस तरह से **युष्माक+अ** इस स्थिति में आदिवृद्धि होने पर **यौष्माक+अ**, भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **यौष्माक्+अ**, वर्णसम्मेलन करके **यौष्माक** और रुत्व-विसर्ग करके **यौष्माकः** सिद्ध हुआ। यह तीसरा रूप है। इस प्रकार से पहले के तीन रूप सिद्ध हुए। अब एकवचन का विषय होने पर **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च** से खञ् होने के पक्ष में **युष्मद्+ईन** बना। **तवकममकावेकवचने** से **युस्मद्** के स्थान पर **तवक** आदेश हुआ, **तवक+ईन** बना। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **तावक्+ईन=तावकीन**, सु, रुत्वविसर्ग होने पर **तावकीनः** सिद्ध हुआ। यह चौथा रूप है। छ प्रत्यय होने के पक्ष का रूप आगे बतायेंगे। उसके पहले खञ् और छ न होने के पक्ष में **शेषे** से अण् प्रत्यय हुआ। अण् के परे होने पर भी **तवकममकावेकवचने** से **तवक** आदेश हुआ, **तवक+अ** बना। आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **तावक**, सु, रुत्वविसर्ग करके **तावकः** सिद्ध हुआ। यह पाँचवाँ रूप है। अब **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च से छ** होने के पक्ष में छकार के स्थान पर ईय् आदेश करके **युष्मद्+ईय** बना। प्रत्यय के परे रहते **प्रत्ययोत्तरपदयोश्च** से **युष्मद्** के मपर्यन्त भाग **युष्म्** के स्थान पर **त्व** आदेश हुआ। **त्व+अद्+ईय** बना। **त्व+अद्** में **अतो गुणे** से पररूप एकादेश होकर **त्वद्** बना। **त्वद्+ईय=त्वदीय** बनने के बाद सु, रुत्वविसर्ग करके **त्वदीयः** सिद्ध हुआ। यह छठा रूप है। इस प्रकार से युष्मद् शब्द से छ, खञ् और अण् प्रत्यय एवं उसके स्थान पर युष्माक, तवक और त्व आदेश करने से छः रूप **युष्मदीयः, यौष्माकीणः, यौष्माकः, तावकीनः, तावकः, त्वदीयः** सिद्ध हुए। आप ध्यान लगाकर साधेंगे तो कोई कठिन नहीं है। इनके स्त्रीलिङ्ग में टाप्, ङीप् आदि करके **युष्मदीया, यौष्माकीणा, यौष्माकी, तावकीना, तावकी, त्वदीया** ये रूप बनते हैं और नपुंसकलिङ्ग में **युष्मदीयम्, यौष्माकीणम्, यौष्माकम्, तावकीनम्, तावकम्, त्वदीयम्** बन जाते हैं। पुँल्लिङ्ग में राम की तरह, स्त्रीलिङ्ग में **युष्मदीया, यौष्माकीणा, तावकीना** और **त्वदीया** के रूप रमा शब्द की तरह तथा **यौष्माकी, तावकी** के रूप नदी की तरह चलेंगे। नपुंसक में ज्ञान शब्द की तरह होते ही हैं।

अस्मदीयः, आस्माकीनः, आस्माकः, मामकीनः, मामकः, मदीयः। अस्मद् शब्द के ये अन्तिम तीन रूप केवल एकवचन के विषय हैं और आदि के तीन रूप द्विवचन और बहुवचन के विषय हैं। पहले के तीन रूपों का लौकिक विग्रह **आवयोः अस्माकं वा अयम्** (हम दोनों का या हम सब का यह) तथा शेष तीन रूपों का विग्रह **मम अयम्**(मेरा यह) इसी प्रकार पहले के तीन रूपों का अलौकिक विग्रह **अस्मद् ओस्** या **अस्मद् आम्** शेष तीन रूपों का **अस्मद् ङस्** है। ऐसी अवस्था में **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च से छ** प्रत्यय करके प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् और **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से छ के छकार के स्थान पर ईय् आदेश करके **अस्मद्+ईय** बना, वर्णसम्मेलन होने पर **अस्मदीय** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **अस्मदीयः** सिद्ध हुआ। यह प्रथम रूप है। **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च से खञ्** होने के पक्ष में अनुबन्ध ञकार का लोप करके ख बचा। खकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से

म-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०८३. मध्यान्मः ४।३।८॥

मध्यमः।

....

ईन् आदेश करके ईन बना, इस तरह **अस्मद्+ईन** बन गया। **ईन** के परे रहते **तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ** से अस्मद् के स्थान पर **अस्माक** आदेश हुआ, **अस्माक+ईन** बना। खञ् में विद्यमान ञित्त्व स्थानिवद्भावेन ईन में भी आ गया और ञित् मानकर **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर अकार के स्थान पर आकार होकर **आस्माक+ईन** बना। भसंज्ञक ककारोत्तरवर्ती अकार का **यस्येति च** से लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **आस्माकीन** बना। षकार से परे न होने के कारण **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व नहीं हो सका **आस्माकीन** ही रहा। सु, रुत्वविसर्ग करके **आस्माकीनः** सिद्ध हुआ। यह दूसरा रूप है। छ और खञ् ये दोनों प्रत्यय वैकल्पिक हैं। इनके न होने के पक्ष में **शेषे** से अण् प्रत्यय होगा और अण् के परे होने पर भी **तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ** से अस्माक आदेश होगा ही। इस तरह से **अस्माक+अ**, आदिवृद्धि होने पर **आस्माक+अ**, भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **आस्माक्+अ**, वर्णसम्मेलन करके **आस्माक** और रुत्व-विसर्ग करके **आस्माकः** सिद्ध हुआ। यह तीसरा रूप है। इस प्रकार से पहले के तीन रूप सिद्ध हुए। अब एकवचन का विषय होने पर **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च** से खञ् होने के पक्ष में **अस्मद्+ईन** बना। **तवकममकावेकवचने** से **अस्मद्** के स्थान पर **ममक** आदेश हुआ, **ममक+ईन** बना। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **मामक्+ईन=मामकीन**, सु, रुत्वविसर्ग होने पर **मामकीनः** सिद्ध हुआ। यह चौथा रूप है। छ प्रत्यय होने के पक्ष का आगे बतायेंगे। उसके पहले खञ् और छ न होने के पक्ष में **शेषे** से अण् प्रत्यय हुआ। अण् के परे होने पर भी **तवकममकावेकवचने** से **ममक** आदेश हुआ, **ममक+अ** बना। आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **मामक**, सु, रुत्वविसर्ग करके **मामकः** सिद्ध हुआ। यह पाँचवाँ रूप है। अब **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च** से छ होने के पक्ष में छकार के स्थान पर ईय् आदेश करके **अस्मद्+ईय** बना। प्रत्यय के परे रहते **प्रत्ययोत्तरपदयोश्च** से **अस्मद्** के मपर्यन्त भाग **अस्म्** के स्थान पर **म** आदेश हुआ। **म+अद्+ईय** बना। **म+अद्** में **अतो गुणे** से पररूप एकादेश होकर **मद्** बना। **मद्+ईय=मदीय** बनने के बाद सु, रुत्वविसर्ग करके **मदीयः** सिद्ध हुआ। यह छठा रूप है। इस प्रकार से **अस्मद्** शब्द से **छ, खञ्** और **अण्** प्रत्यय एवं उसके स्थान पर अस्माक, ममक और म आदेश करने से छः रूप **अस्मदीयः, आस्माकीनः, आस्माकः, मामकीनः, मामकः, मदीयः** सिद्ध हुए। इनके स्त्रीलिङ्ग में टाप् आदि करके **अस्मदीया, आस्माकीना, आस्माकी, मामकीना, मामकी, मदीया** ये रूप बनते हैं और नपुंसकलिङ्ग में **अस्मदीयम्, आस्माकीनम्, आस्माकम्, मामकीनम्, मामकम्, मदीयम्** बन जाते हैं। पुँल्लिङ्ग में राम की तरह, स्त्रीलिङ्ग में **आस्माकीना, अस्मदीया, मामकीना, मदीया** के रूप रमा शब्द की तरह तथा **आस्माकी, मामकी** के रूप नदी की तरह चलेंगे। नपुंसकलिङ्ग में ज्ञान शब्द की तरह ही होते हैं।

१०८३- मध्यान्मः। मध्यात् पञ्चम्यन्तं, मः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

ठञ्-विधायकं विधिसूत्रम्

१०८४. कालाट्ठञ् ४।३।११।।

कालवाचिभ्यष्ठञ् स्यात्। कालिकम्। मासिकम्। सांवत्सरिकम्।

वार्तिकम्- **अव्ययानां भमात्रे टिलोपः**। सायम्प्रातिकः। पौनःपुनिकः।

....

मध्य शब्द से शैषिक अर्थ में 'म' प्रत्यय होता है।

मध्यमः। मध्य में होने वाला या उत्पन्न। **मध्ये जातः** यह लौकिक विग्रह है और **मध्य ङि** यह अलौकिक विग्रह है। **मध्यान्मः** से **म** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मध्यम** बना। स्वादिकार्य करके **मध्यमः** सिद्ध हुआ।

१०८४- कालाट्ठञ्। कालात् पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **तद्धिताः**, **समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

कालवाचक सभी शब्दों से ठञ् ही होता है, शेष अर्थ में।

ठञ् में ञकार इत्संज्ञक है, अतः आदिवृद्धि होती है। ठ के स्थान पर **ठस्येकः** से इक आदेश होता है।

कालिकम्। काल अर्थात् समय पर होने वाला या उत्पन्न। **काले जातं भवं वा** यह लौकिक विग्रह है और **काल ङि** यह अलौकिक विग्रह है। **कालाट्ठञ्** से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश करके **काल+इक** बना। आदिवृद्धि होने पर आकार के स्थान पर आकार ही हुआ और भसंज्ञक अकार का लोप हुआ- **काल्+इक=कालिक** बना। प्रातिपदिक होने से सु आया और उसके स्थान पर **अम्** आदेश, पूर्वरूप होकर **कालिकम्** सिद्ध हुआ।

मासिकम्। महीने में होने वाला या उत्पन्न। **मासे जातं भवं वा** लौकिक विग्रह और **मास ङि** अलौकिक विग्रह है। **कालाट्ठञ्** से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश करके **मास+इक** बना। आदिवृद्धि होने पर आकार के स्थान पर आकार ही हुआ और भसंज्ञक अकार का लोप हुआ- **मास्+इक=मासिक** बना। सामान्य में नपुंसक है। प्रातिपदिकत्वेन सु आया और उसके स्थान पर अम् आदेश और पूर्वरूप होकर **मासिकम्** सिद्ध हुआ।

सांवत्सरिकम्। वर्ष में होने वाला या उत्पन्न। **संवत्सरे जातं भवं वा** लौकिक विग्रह और **संवत्सर** ङि अलौकिक विग्रह है। **कालाट्ठञ्** से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश करके **संवत्सर+इक** बना। आदिवृद्धि होने पर अकार के स्थान पर आकार हुआ और भसंज्ञक अकार का लोप हुआ- **सांवत्सर्+इक=सांवत्सरिक** बना। सु, उसके स्थान पर अम् आदेश और पूर्वरूप होकर **सांवत्सरिकम्** सिद्ध हुआ।

अव्ययानां भमात्रे टिलोपः। यह वार्तिक है। **भसंज्ञामात्र होते ही अव्ययों के टि का लोप होता है।** जिस प्रकार से **नस्तद्धिते** सूत्र नकारान्त भसंज्ञक टि का लोप करता है और **टेः** डित् परे रहने पर टि का लोप करता है, उसी तरह अव्ययों में नहीं होता। वहाँ पर भसंज्ञा हुई है तो इतने मात्र से इस वार्तिक के बल पर अव्ययों के टि का लोप हो जाता है।

सायम्प्रातिकम्। शाम सबेरे होने वाला या उत्पन्न। **सायं च प्रातश्च सायंप्रातः**, **तत्र जातं भवं वा** लौकिक विग्रह और **सायम्प्रातर्** अलौकिक विग्रह है। यह अव्यय भी है। **कालाट्ठञ्** से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश करके **सायम्प्रातर्+इक** बना।

एण्य-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०८५. प्रावृष एण्यः ४।३।१७॥

प्रावृषेण्यः।

निपातनार्थं विधिसूत्रम्

१०८६. सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च ४।३।२३॥

सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्योऽव्ययेभ्यश्च कालवाचिभ्यष्ट्युट्युलौ स्तस्तयोस्तुट् च। सायन्तनम्। चिरन्तनम्। **प्राह्णे प्रगे** अनयोरेदन्तत्वं निपात्यते। प्राह्णेतनम्। प्रगेतनम्। दोषातनम्।

....

आदिवृद्धि होने पर आकार के स्थान पर आकार ही हुआ और भसंज्ञक अकार, इकार न होने के कारण टि का लोप प्राप्त नहीं था, इसलिए वार्तिक बनाया- **अव्ययानां भमात्रे टिलोपः**। इससे **सायम्प्रातर्** में टिसंज्ञक अर् का लोप हुआ, **सायम्प्रात्+इक=सायम्प्रातिक** बना। सामान्य में नपुंसक। सु आया, उसके स्थान पर अम् आदेश और पूर्वरूप होकर **सायम्प्रातिकम्** सिद्ध हुआ।

पौनःपुनिकम्। बार बार होने वाला या उत्पन्न। पुनर् यह अव्यय है, इसका दो बार उच्चारण है पुनःपुनर्। **पुनःपुनः जातं भवं वा** लौकिक विग्रह और **पुनःपुनर्** अलौकिक विग्रह है। **कालाट्ठञ्** से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश करके **पुनःपुनर्+इक** बना। आदिवृद्धि होने पर पु के उकार के स्थान पर औकार हुआ और भसंज्ञक अकार, इकार न होने के कारण टि का लोप प्राप्त नहीं था, इसलिए वार्तिक बनाया- **अव्ययानां भमात्रे टिलोपः**। इससे **पौनःपुनर्** में टिसंज्ञक **अर्** का लोप हुआ, **पौनःपुन्+इक=पौनःपुनिक** बना। सु, उसके स्थान पर अम् आदेश और पूर्वरूप होकर **पौनःपुनिकम्** सिद्ध हुआ।

१०८५. प्रावृष एण्यः। प्रावृषः पञ्चम्यन्तम्, एण्यः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। **कालाट्ठञ्** से **कालात्** की अनुवृत्ति आती है।

कालवाचक प्रावृष् इस समर्थ प्रातिपदिक से एण्य प्रत्यय होता है।

काठाट्ठञ् को बाधकर **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** से अण् प्राप्त होता है, उसका भी यह अपवाद है।

प्रावृषेण्यः। वर्षा ऋतु में होने वाला। **प्रावृषि भवः**। **प्रावृष् ङि** में ठञ् को बाधकर अण् प्राप्त, उसे भी बाधकर के **प्रावृष एण्यः** से **एण्य** प्रत्यय हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **प्रावृष्+एण्य** बना। वर्णसम्मेलन करके स्वादिकार्य करने पर **प्रावृषेण्यः** सिद्ध हो जाता है।

१०८६- सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च। सायञ्च चिरञ्च प्राह्णे च प्रगे च अव्ययञ्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययानि, तेभ्यः। ट्युश्च ट्युल् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः ट्युट्युलौ। सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यः पञ्चम्यन्तं, ट्युट्युलौ प्रथमान्तं, तुट् प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदं सूत्रम्। **कालाट्ठञ्** से वचनविपरिणाम करके

जातेऽर्थेऽणादिविधायकं विधिसूत्रम्

१०८७. तत्र जातः ४।३।२५॥

सप्तमीसमर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च स्युः।
स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः। उत्से जातः औत्सः। राष्ट्रे जातो राष्ट्रियः।
अवारपारे जात अवारपारीण इत्यादि।

....

कालेभ्यः की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

कालवाचक सायम्, चिरम्, प्राह्णे, प्रगे और कालवाची अव्ययों से तद्धितसंज्ञक ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होते हैं और उनको तुट् का आगम भी होता है।

इन प्रत्ययों में **टकार** और **लकार** इत्संज्ञक हैं। **यु** बचता है। आगम **तुट्** में उकार और टकार इत्संज्ञक हैं, **त्** बचता है। **यु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अन** आदेश हो जाता है। टित्करण का प्रयोजन स्त्रीत्व की विवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र की प्रवृत्ति है। **सायम्** और **चिरम्** शब्द को **ट्यु** और **ट्युल्** प्रत्यय के योग में **मकारान्तत्व निपातन** था तथा **प्राह्णे** और **प्रगे** इन दो शब्दों से इसी सूत्र से **एदन्तत्व निपातन** भी किया जाता है।

सायन्तनम्। शाम को होने वाला। **साये भवम्। साय ङि** में **कालाट्ठञ्** से **ठञ्** प्राप्त था, उसे बाधकर **सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च** से **साय** को मकारान्तत्व निपातन सहित **ट्यु** प्रत्यय अनुबन्धलोप, **युवोरनाकौ** से **यु** के स्थान पर **अन** आदेश करके उसको **तुट्** का आगम भी हुआ। **सायम्+त्+अन** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मकार** को अनुस्वार और परसवर्ण करने के बाद वर्णसम्मेलन करके **सायन्तन** बनता है एवं स्वादिकार्य करने पर **सायन्तनम्** सिद्ध हो जाता है।

चिरन्तनम्। अधिक काल तक होने वाला। **चिरे भवम्। चिर ङि** में **कालाट्ठञ्** से **ठञ्** प्राप्त था, उसे बाधकर **सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च** से **चिर** को मकारान्तत्व निपातन सहित **ट्यु** प्रत्यय अनुबन्धलोप, **युवोरनाकौ** से **यु** के स्थान पर **अन** आदेश करके उसको **तुट्** का आगम भी हुआ। **चिरम्+त्+अन** बना। **मकार** को अनुस्वार और परसवर्ण करने के बाद वर्णसम्मेलन करके **चिरन्तन** बनता है एवं स्वादिकार्य करने पर **चिरन्तनम्** सिद्ध हो जाता है।

प्रगेतनम्। प्रातः होने वाला। **प्रगे भवम्। प्रगे ङि** में **कालाट्ठञ्** से **ठञ्** प्राप्त था, उसे बाधकर **सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च** से **प्रगे** को एदन्तत्व निपातन सहित **ट्यु** प्रत्यय अनुबन्धलोप, **युवोरनाकौ** से **यु** के स्थान पर **अन** आदेश करके उसको **तुट्** का आगम भी हुआ। **प्रगे+त्+अन** बना और वर्णसम्मेलन करके स्वादिकार्य करने पर **प्रगेतनम्** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **प्राह्णेतनम्** भी बनता है।

दोषातनम्। रात्रि में होने वाला। **दोषा भवम्। दोषा** इस अव्यय से **सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च** से **ट्यु** प्रत्यय अनुबन्धलोप, **युवोरनाकौ** से **यु** के स्थान पर **अन** आदेश करके उसको **तुट्** का आगम भी हुआ। **दोषा+त्+अन** बना और वर्णसम्मेलन करके स्वादिकार्य करने पर **दोषातनम्** सिद्ध हो जाता है।

११८७- तत्र जातः। तत्र इति सप्तम्यन्तस्यानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, जातः प्रथमान्तं द्विपदमिदं

ठप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०८८. प्रावृषष्ठप् ४।३।२६॥

एण्यापवादः। प्रावृषिकः।

....

सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से उसमें 'उत्पन्न हुआ' इस अर्थ में शैषिक अर्थ में होने वाले अण् आदि प्रत्यय और घ आदि प्रत्यय यथासम्भव होते हैं।

यह सूत्र यह निर्णय नहीं करता कि कौन सा प्रत्यय हो किन्तु यह निर्णय करता है कि **उसमें उत्पन्न हुआ** इस अर्थ में प्रत्यय हो। अतः जहाँ जिसकी प्राप्ति न्याय्य होगी वहाँ पर वही प्रत्यय होगा।

स्रौघ्नः। स्रुघ्न नामक देश में उत्पन्न हुआ पदार्थ। **स्रुघ्ने जातः** लौकिक विग्रह और **स्रुघ्न ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र जातः** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **स्रुघ्न+अ** बना है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **स्रौघ्नः** सिद्ध हुआ।

औत्सः। उत्स अर्थात् झरने में उत्पन्न हुआ पदार्थ, मेढक आदि। **उत्से जातः** लौकिक विग्रह और **उत्स ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र जातः** के अर्थ में **उत्सादिभ्योऽञ्** से अञ् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **उत्स+अ** बना है। ञित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **औत्स्+अ=औत्स** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **औत्सः** सिद्ध हुआ।

राष्ट्रियः। राष्ट्र में उत्पन्न हुआ पदार्थ। **राष्ट्रे जातः** लौकिक विग्रह और **राष्ट्र ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र जातः** से घ हुआ क्योंकि पहले भी **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** के द्वारा राष्ट्र शब्द से घ प्रत्यय ही हुआ है अर्थात् यहाँ भी यही न्याय्य है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **राष्ट्र+घ** बना है। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से घ के घकार के स्थान पर इय् आदेश करके इय, **राष्ट्र+इय** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **राष्ट्र्+इय=राष्ट्रिय** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **राष्ट्रियः** सिद्ध हुआ।

अवारपारीणः। इस पार और उस पार उत्पन्न हुआ पदार्थ। **अवारपारे जातः** लौकिक विग्रह और **अवारपार ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र जातः** से **ख** हुआ क्योंकि पहले भी **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** के द्वारा अवारपार शब्द से ख प्रत्यय ही हुआ है अर्थात् यहाँ भी यही न्याय्य है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अवारपार+ख** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ख के खकार के स्थान पर ईन् आदेश करके ईन, **अवारपार+ईन** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **अवारपार्+ईन=अवारपारिन** बना, णत्व करके सु और सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **अवारपारीणः** सिद्ध हुआ। इब इसी प्रकार **पारावारीणः, अवारीणः, पारीणः** आदि भी बनाइये।

१०८८- प्रावृषष्ठप्। प्रावृषः पञ्चम्यन्तं, ठप् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तत्र जातः** का अनुवर्तन एवं **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

प्रायभवेऽर्थेऽणादिविधायकं विधिसूत्रम्

१०८९. प्रायभवः ४।३।३९॥

तत्रेत्येव। स्रुघ्ने प्रायेण बाहुल्येन भवति स्रौघ्नः।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०९०. सम्भूते ४।३।४१॥

स्रुघ्ने सम्भवति स्रौघ्नः।

....

सप्तम्यन्त प्रावृष् इस प्रातिपदिक से जातः के अर्थ में ठप् प्रत्यय होता है।

यह **प्रावृष एण्यः** का अपवाद है। अन्य जगहों पर प्रावृष् से एण्य ही होता है किन्तु **जातः** अर्थ में ठप् होगा। पकार इत्संज्ञक है, **ठ** शेष रहता है। **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश होता है।

प्रावृषिकः। वर्षा में उत्पन्न होने वाला। **प्रावृषि जातः** लौकिक विग्रह और **प्रावृष् ङि** अलौकिक विग्रह है। **प्रावृष एण्यः** को बाधकर **तत्र जातः** के अर्थ में **प्रावृषष्ठप्** से **ठप्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, इक आदेश होकर **प्रावृष्+इक** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **प्रावृष्+इक=प्रावृषिक** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **प्रावृषिकः** सिद्ध हुआ।

१०८९- **प्रायभवः**। प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **तत्र जातः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'प्रायः होता है' या 'प्रायः होने वाला' इस अर्थ में शैषिक अर्थ में होने वाले अण् आदि प्रत्यय और घ आदि प्रत्यय यथासम्भव होते हैं।

यह सूत्र यह निर्णय नहीं करता कि कौन सा प्रत्यय हो किन्तु यह निर्णय करता है कि **प्रायः होता है** इस अर्थ में प्रत्यय हो। अतः जहाँ जिसकी प्राप्ति न्याय्य होगी, वहाँ वही प्रत्यय होगा।

स्रौघ्नः। स्रुघ्न नामक देश में ज्यादातर होने वाला पदार्थ। **स्रुघ्ने जातः** लौकिक विग्रह और **स्रुघ्न ङि** अलौकिक विग्रह है। **प्रायभवः** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **स्रुघ्न+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **स्रौघ्नः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **औत्सः, राष्ट्रियः, पारावारीणः** भी बनाइये।

१०९०- **सम्भूते**। सम्भूते सप्तम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **तत्र जातः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'होने की सम्भावना है' इस अर्थ में शैषिक अर्थ में होने वाले अण् आदि प्रत्यय और घ आदि प्रत्यय यथासम्भव होते हैं।

ढञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०९१. कोशाड्ढञ् ४।३।४२॥

कौशेयं वस्त्रम्।

तत्र भवेऽर्थेऽणादिविधायकं विधिसूत्रम्

१०९२. तत्र भवः ४।३।५३॥

स्रुघ्ने भवः स्रौघ्नः। औत्सः। राष्ट्रियः।

....

यह सूत्र भी यह निर्णय नहीं करता कि कौन सा प्रत्यय हो किन्तु यह निर्णय करता है कि **'सम्भव होता है'** इस अर्थ में प्रत्यय हो। अतः जहाँ जिसकी प्राप्ति न्याय्य होगी वहाँ वही प्रत्यय होगा।

स्रौघ्नः। स्रुघ्न नामक देश में सम्भव होने वाला पदार्थ। **स्रुघ्ने सम्भूतः** लौकिक विग्रह और **स्रुघ्न ङि** अलौकिक विग्रह है। **सम्भूते** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **स्रुघ्न+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **स्रौघ्नः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **औत्सः, राष्ट्रियः, पारावारीणः** भी बनाइये।

१०९१- कोशाड्ढञ्। कोशात् पञ्चम्यन्तं, ढञ् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तत्र जातः** से **तत्र** और **सम्भूते** से **सम्भूते** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक कोश-शब्द से 'होने की सम्भावना है' इस अर्थ में शैषिक ढञ् प्रत्यय होता है।

ञकार इत्संज्ञक है, ढ बचता है। उसमें केवल **ढ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **एय्** आदेश होकर **एय** बन जाता है। यह **सम्भूते** से प्राप्त अण् का बाधक है।

स्रौघ्नः। रेशम धागे में होने वाला वस्त्र। **कोशे सम्भूतम्** लौकिक विग्रह और **कोश ङि** अलौकिक विग्रह है। **सम्भूते** से अण् प्राप्त था, उसे बाधकर **कोशाड् ढञ्** से ढञ् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **कोश+ढ** बना। **ढकार** के स्थान पर **एय्** आदेश होकर **कोश+एय** बना। ञित् होने के कारण आदिवृद्धि करके ओकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **कौश्+एय=कौशेय** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **कौशेयः** सिद्ध हुआ।

१०९२- तत्र भवः। तत्र इति सप्तम्यन्तस्यानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, भवः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'वहाँ होता है या वहाँ होने वाला' इस अर्थ में शैषिक अर्थ में होने वाले अण् आदि प्रत्यय और घ आदि प्रत्यय यथासम्भव होते हैं।

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०९३. दिगादिभ्यो यत् ४।३।५४॥

दिश्यम्। वर्ग्यम्।

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०९४. शरीरावयवाच्च ४।३।५५॥

दन्त्यम्। कण्ठ्यम्।

वार्तिकम्- **अध्यात्मादेष्ठञ् इष्यते।** अध्यात्मं भवम् आध्यात्मिकम्।

....

यह सूत्र भी यह निर्णय नहीं करता कि कौन सा प्रत्यय हो किन्तु यह निर्णय करता है कि **वहाँ होता है** इस अर्थ में प्रत्यय हों। अतः जहाँ जिसकी प्राप्ति न्याय्य होगी, वहाँ वही प्रत्यय होगा।

स्रौघ्नः। स्रुघ्न नामक देश में होने वाला पदार्थ। **स्रुघ्ने भवः** लौकिक विग्रह और **स्रुघ्न ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र भवः** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **स्रुघ्न+अ** बना है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **स्रौघ्नः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **औत्सः**, **राष्ट्रियः**, **पारावारीणः** आदि भी बनाइये।

१०९३- दिगादिभ्यो यत्। दिक् आदिर्येषां ते दिगादयस्तेभ्यः। दिगादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ दिक् आदि प्रातिपदिकों से 'वहाँ होता है या वहाँ होने वाला' इस शैषिक अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है।

दिश्यम्। दिशा में होने वाला पदार्थ। **दिशि भवम्** लौकिक विग्रह और **दिश् ङि** अलौकिक विग्रह है। **दिगादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **दिश्+य** बना है। वर्णसम्मेलन, सु, अम् आदेश करके **दिश्यम्** सिद्ध हुआ।

वर्ग्यम्। वर्ग में होने वाला पदार्थ। **वर्गे भवम्** लौकिक विग्रह और **वर्ग ङि** अलौकिक विग्रह है। **दिगादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **वर्ग+य** बना है। **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन, सु, अम् आदेश करने पर **वर्ग्यम्** सिद्ध हुआ। इसी तरह **आदौ भवः आद्यः**, **अन्ते भवः अन्त्यः**, **रहसि भवं रहस्यम्** आदि भी **दिगादि** मान कर के बना सकते हैं।

१०९४- शरीरावयवाच्च। शरीरस्य अवयवः शरीरावयवः, षष्ठीतत्पुरुषः। तस्मात्। शरीरावयवात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययपदं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तत्र भवः** यह सूत्र अनुवृत्त होता है और **दिगादिभ्यो यत्** से **यत्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

उभयपदवृद्धिविधायकं विधिसूत्रम्

१०९५. अनुशतिकादीनाञ्च ७।३।२०॥

एषामुभयपदवृद्धिर्ञिति णिति किति च।
आधिदैविकम्। आधिभौतिकम्। ऐहलौकिकम्। पारलौकिकम्।
आकृतिगणोऽयम्।

....

शरीर के अवयव वाचक सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'होने वाला' इस अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है।

दन्त्यम्। दन्त में होने वाला पदार्थ, मल आदि कुछ भी। **दन्तेषु भवम्** लौकिक विग्रह और **दन्त सुप्** अलौकिक विग्रह है। **शरीरावयवाच्च** से यत् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **दन्त+य** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **दन्त्+य=दन्त्य** बना, सु के बाद अम् आदेश और पूर्वरूप करके **दन्त्यम्** सिद्ध हुआ।

कण्ठ्यम्। कण्ठ में होने वाला पदार्थ, मल आदि कुछ भी। **कण्ठे भवम्** लौकिक विग्रह और **कण्ठ ङि** अलौकिक विग्रह है। **शरीरावयवाच्च** से यत् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **कण्ठ+य** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **कण्ठ्+य=कण्ठ्य** बना, सु के बाद अम् आदेश और पूर्वरूप करके **कण्ठ्यम्** सिद्ध हुआ।

इसी तरह शरीर के अवयववाची अन्य शब्दों से भी यत् करके निम्नानुसार रूप सिद्ध कीजिए-

कर्णे भवम्-कर्ण्यम्=कान में होने वाला।
ओष्ठे भवम्-ओष्ठ्यम्= होंठ में होने वाला।
उरसि भवम्-उरस्यम्=छाती में होने वाला।
मुखे भवम्-मुख्यम्=मुख में होने वाला।
तालुनि भवम्-तालव्यम्=तालु में होने वाला।
मूर्धनि भवम्-मूर्धन्यम्=मूर्धा में होने वाला।

अध्यात्मादेष्ठञिष्यते। यह वार्तिक है। **'तत्र भवः' अर्थ में ही अध्यात्म आदि शब्दों से ठञ् होता है।** ञकार इत्संज्ञक है। ठ के स्थान पर **ठस्येकः** से इक आदेश हो जाता है।

आध्यात्मिकम्। आत्मनि इति अध्यात्मम्=आत्मा(के विषय) में, **भवम्**=होने वाला। **अध्यात्म** शब्द अव्ययीभाव समास में निष्पन्न होने के कारण अव्यय है। उसके परे रहते विभक्ति की स्थिति नहीं है। अतः विभक्ति रहित **अध्यात्म** से **अध्यात्मादेष्ठञिष्यते** से **ठञ्** हुआ, अनुबन्धलोप, **अध्यात्म+ठ** प्रातिपदिकसंज्ञा, ठ के स्थान पर **ठस्येकः** से इक आदेश करके **अध्यात्म+इक** बना। आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **आध्यात्म्+इक=आध्यात्मिक** बना। सु, अम्, पूर्वरूप, **आध्यात्मिकम्** सिद्ध हुआ।

अध्यात्मादि को आकृतिगण मानकर अनेक तादृश(उसी प्रकार के) शब्दों से भी **तत्र भवः** अर्थ में ठञ् करके निम्नलिखित प्रयोगों की सिद्धि की जा सकती है-

इह भवम्=ऐहिकम् (यहाँ अथवा इस लोक में होने वाला)
अमुत्र भवम्=आमुत्रिकम् (वहाँ अर्थात् उस लोक में होने वाला)
त्रिवर्णेषु भवः=त्रैवर्णिकः (तीनों वर्णों का धर्म आदि)
स्वभावे भवः=स्वाभाविको (स्वाभाविक गुण आदि)

१०९५- अनुशतिकादीनां च। अनुशतिक आदिर्येषां ते अनुशतिकादयस्तेषाम्। अनुशतिकादीनां षष्ठ्यन्तं च अव्ययपदं द्विपदं सूत्रम्। **हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च** से **पूर्वपदस्य** की, **तद्धितेष्वचामादेः** से **अचाम्, आदेः** एवं **तद्धिते** की, **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की, **अचो ञ्णिति** से **ञ्णिति** की और **किति च** से **किति** की अनुवृत्ति आती है। **उत्तरपदस्य** अधिकार आता है।

अनुशतिकादिगण में पठित शब्दों में पूर्वपद और उत्तरपद अर्थात् उभयपद दोनों पदों की वृद्धि होती है, ञित् णित् और कित् प्रत्यय के परे रहते।

जहाँ दो पदों में समास होकर एकपद हो गये तो भी **पदत्व** तो दोनों पदों में है। **तद्धितेष्वचामादेः** पूर्वपद में ही आदिवृद्धि करता है और जहाँ दोनों पदों में आदिवृद्धि करना अभीष्ट है, वहाँ के लिए यह सूत्र पठित है।

आधिदैविकम्। देवों में होने वाला। **अधिदेवम्** शब्द अव्ययीभाव समास में निष्पन्न होने के कारण अव्यय है। **अधिदेव ङि** से **अध्यात्मादेष्ठञिष्यते** से **ठञ्** हुआ, अनुबन्धलोप, **अधिदेव+ठ** प्रातिपदिकसंज्ञा, **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश करके **अधिदेव+इक** बना। यहाँ पर **अधि** पूर्वपद और **देव** उत्तरपद है। **अनुशतिकादीनां च** से दोनों पदों के आदि अचों की वृद्धि हुई। **अ** की वृद्धि **आ** और **ए** की वृद्धि **ऐ** होने से **आधि दैव+इक**, भसंज्ञक **अकार** का लोप करके **आधिदैव्+इक=आधिदैविक** बना। सु, अम्, पूर्वरूप, **आधिदैविकम्** सिद्ध हुआ।

आधिभौतिकम्। पृथ्वी आदि भूतों में होने वाला। **अधिभूतम्** शब्द अव्ययीभाव समास में निष्पन्न होने के कारण अव्यय है। **अधिभूत ङि** से **अध्यात्मादेष्ठञिष्यते** से **ठञ्** हुआ, अनुबन्धलोप, **अधिभूत+ठ** प्रातिपदिकसंज्ञा, **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश करके **अधिभूत+इक** बना। यहाँ पर **अधि** पूर्वपद और **देव** उत्तरपद है। **अनुशतिकादीनां च** से दोनों पदों के आदि अचों की वृद्धि हुई। **अ** की वृद्धि **आ** और **उ** की वृद्धि **औ** होने से **आधिभौत+इक**, भसंज्ञक अकार का लोप करके **आधिभौत्+इक=आधिभौतिक** बना। सु, अम्, पूर्वरूप, **आधिभौतिकम्** सिद्ध हुआ।

ऐहलौकिकम्। इस लोक में होने वाला। **इह च तस्मिन् लोके=इहलोके।** **इह लोक ङि** में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समास, प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्तिलुक् के बाद पुनः स्वादिकार्य होने से **इहलोकः, इहलोकौ** आदि बनते हैं। **इहलोके भवम्** यह लौकिक विग्रह और **इहलोक ङि** अलौकिक विग्रह है। **इहलोक** से **अध्यात्मादेष्ठञिष्यते** के द्वारा **ठञ्** हुआ, अनुबन्धलोप, **इहलोक+ठ** प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक्, ठ के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश करके **इहलोक+इक** बना। यहाँ पर **इह** पूर्वपद और **लोक** उत्तरपद है। **अनुशतिकादीनां च** से दोनों पदों के आदि अचों की वृद्धि हुई। **इ** की वृद्धि **ऐ** और **ओ** की वृद्धि **औ** होने से **ऐहलौक+इक**, भसंज्ञक अकार का लोप करके **ऐहलौक्+इक=ऐहलौकिक** बना। सु, अम्, पूर्वरूप, **ऐहलौकिकम्** सिद्ध हुआ।

छ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०९६. जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः ४।३।६२॥

जिह्वामूलीयम्। अङ्गुलीयम्।

छ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०९७. वर्गान्ताच्च ४।३।६३॥

कवर्गीयम्।

....

पारलौकिकम्। पर लोक में होने वाला। **परश्चासौ लोकः** में कर्मधारयसमास है। **परलोके भवम्** लौकिक विग्रह है। **परलोक ङि** से **अध्यात्मादेष्ठञिष्यते** से **ठञ्** हुआ, अनुबन्धलोप, **परलोक+ठ** प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्तिलुक् होकर **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश करके **परलोक+इक** बना। यहाँ **पर** पूर्वपद और **लोक** उत्तरपद है। **अनुशतिकादीनां च** से दोनों पदों के आदि अचों की वृद्धि हुई। **अ** की वृद्धि **आ** और **ओ** की वृद्धि **औ** होने से **पारलौक+इक**, भसंज्ञक **अकार** का लोप करके **पारलौक्+इक= पारलौकिक** बना। सु, अम्, पूर्वरूप, **पारलौकिकम्** सिद्ध हुआ।

१०९६- **जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः**। जिह्वाया मूलं जिह्वामूलम्, जिह्वामूलञ्च अङ्गुलिश्च तयोः समाहाराद्वन्द्वो जिह्वामूलाङ्गुलिः, सौत्रं पुंस्त्वम्, तस्माद्। जिह्वामूलाङ्गुलेः पञ्चम्यन्तं, छः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। **तत्र भवः** की अनुवृत्ति आती है।

जिह्वामूल और अङ्गुलि शब्द से तत्र भवः **अर्थ में छ-प्रत्यय होता है।**

ये दोनों शब्द शरीर के अवयववाचक होने के कारण **शरीरावयवाच्च** से यत् प्रत्यय की प्राप्ति थी, उसे बाधकर यह **छ** करता है। **छ** के **छकार** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ईय् आदेश होकर **ईय** बन जाता है।

जिह्वामूलीयम्। जीभ के मूल भाग में होने वाला। **जिह्वामूले भवं** लौकिक विग्रह और **जिह्वामूल ङि** अलौकिक विग्रह है। **जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः** से छ प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके छ के छकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ईय् आदेश करके **जिह्वामूल+ईय** बना। ञित्, णित् या कित् न होने के कारण आदिवृद्धि तो नहीं हुई किन्तु भसंज्ञक अकार का लोप हुआ, **जिह्वामूल्+ईय=जिह्वामूलीय** बना। सु प्रत्यय, उसके स्थान पर **अम्** आदेश, पूर्वरूप करके **जिह्वामूलीयम्** सिद्ध हुआ।

अङ्गुलीयम्। अङ्गुली में होने वाला। **अङ्गुल्यां भवं** लौकिक विग्रह और **अङ्गुलि ङि** अलौकिक विग्रह है। **जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः** से छ प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके छ के छ् के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ईय् आदेश करके **अङ्गुल+ईय** बना। ञित्, णित् या कित् न होने के कारण आदिवृद्धि तो नहीं हुई किन्तु भसंज्ञक ईकार का लोप हुआ, **अङ्गुल्+ईय=अङ्गुलीय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **अङ्गुलीयम्** सिद्ध हुआ।

१०९७- **वर्गान्ताच्च**। वर्गः अन्ते यस्य स वर्गान्तस्तस्मात्। वर्गान्तात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययपदं

अणादिविधायकं विधिसूत्रम्

१०९८. तत आगतः ४।३।७४।।

स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः।

....

द्विपदमिदं सूत्रम्। **तत्र भवः** इस सूत्र का अनुवर्तन होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है और **जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः** से छः की अनुवृत्ति आती है।

वर्ग शब्द अन्त में हो ऐसे शब्दों से भी छ प्रत्यय होता है।

सामान्यतया **तत्र भवः** अर्थ में **तत्र भवः** से अण् प्रत्यय की प्राप्ति थी तो इस सूत्र को बनाकर के वर्गान्त से छ का विधान किया गया। छ के स्थान पर ईय् आदेश तो होता ही है।

कवर्गीयम्। कवर्ग में होने वाला। **कवर्गे भवं** लौकिक विग्रह और **कवर्ग ङि** अलौकिक विग्रह है। **वर्गान्ताच्च** से छ प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके छ के छ् के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ईय् आदेश करके **कवर्ग+ईय** बना। ञित्, णित् या कित् न होने के कारण आदिवृद्धि तो नहीं हुई किन्तु भसंज्ञक अकार का लोप हुआ, **कवर्ग्+ईय=कवर्गीय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **कवर्गीयम्** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार से **चवर्गे भवं, चवर्ग ङि** से **चवर्गीयम्** बनाइये।

१०९८- **तत आगतः**। ततः पञ्चम्यन्तानुकरण लुप्तपञ्चमीकम्, आगतः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

पञ्चम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'वहाँ से आया हुआ' इस अर्थ में अण् आदि या यथायोग्य घ आदि प्रत्यय होते हैं।

स्रौघ्नः। स्रुघ्न नामक देश से आया हुआ। **स्रुघ्नाद् आगतः** लौकिक विग्रह और **स्रुघ्न ङसि** अलौकिक विग्रह है। **तत आगतः** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्रुघ्न+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **स्रौघ्नः** सिद्ध हुआ।

माथुरः। मथुरा नामक देश से आया हुआ। **मथुराया आगतः** लौकिक विग्रह और **मथुरा ङसि** अलौकिक विग्रह है। **तत आगतः** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मथुरा+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके अकार के स्थान पर आकार आदेश और भसंज्ञक आकार का लोप करके **माथुर्+अ=माथुर** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **माथुरः** सिद्ध हुआ।

अन्य शब्दों से भी **तत आगतः** अर्थ में अणादि करके देखिए। जैसे-

राष्ट्रादागतः, **राष्ट्रियः**। यहाँ घ प्रत्यय होगा क्योंकि शेष अर्थ में **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** से घ हुआ था। इसी प्रकार अवारादागतः **अवारीणः**, पारादागतः **पारीणः**, **अवारपारीणः**, **पारावारीणः**, **ग्राम्यः-ग्रामीणः** आदि आदि।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१०९९. ठगायस्थानेभ्यः ४।३।७५॥

शुल्कशालाया आगतः शौल्कशालिकः।

वुञ्-विधायकं विधिसूत्रम्

११००. विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् ४।३।७७॥

औपाध्यायकः। पैतामहकः।

....

१०९९- **ठगायस्थानेभ्यः**। आयस्य स्थानानि आयस्थानानि, तेभ्यः। ठक् प्रथमान्तम्, आयस्थानेभ्यः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तत आगतः** की अनुवृत्ति एवं **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

आयस्थान के वाचक पञ्चम्यन्त प्रातिपदिकों से 'आगतः' अर्थ में तद्धितसंज्ञक ठक् प्रत्यय होता है।

ककार इत्संज्ञक है, **ठ** बचता है। उसके स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश हो जाता है। आमदनी के स्थानों को **आयस्थान** कहते हैं। जैसे कि **आयकर, मनोरंजन कर, चुंगी, शुल्क लिए जाने वाले स्थान** आदि।

शौल्कशालिकः। चुंगी से आया हुआ। **शुल्कशालाया आगतः**। **शुल्क ङसि** से **ठगायस्थानेभ्यः** से **ठक्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ठस्येकः** से **इक** आदेश, कित् होने के कारण **आदिवृद्धि** करके **भसंज्ञक** आकार का लोप, स्वादिकार्य होकर **शौल्कशालिकः** सिद्ध हो जाता है।

११००- **विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्**। विद्या च योनिश्च विद्यायोनी, विद्यायोनिकृताः सम्बन्धाः विद्यायोनिसम्बन्धाः, तेभ्यः। विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः पञ्चम्यन्तं, वुञ् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **ततः आगतः** इस सूत्र का अनुवर्तन और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

विद्याकृत सम्बन्ध वाले या योनिकृतसम्बन्ध वाले पञ्चम्यन्त प्रातिपदिकों से 'तत आगतः' अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है।

विद्यासम्बन्ध शिक्षा-ग्रहण से और योनिसम्बन्ध जन्म से होता है। **ञकार** इत्संज्ञक है और **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अक** आदेश होता है। उपाध्याय, आचार्य, शिष्य आदि विद्यासम्बन्ध के हैं और पिता, पितामह, माता, मातामह, मातुल आदि योनिसम्बन्ध के हैं।

औपाध्यायकः। उपाध्याय से आया हुआ विचार, मत, सलाह आदि। **उपाध्यायाद् आगतः** लौकिक विग्रह और **उपाध्याय ङसि** अलौकिक विग्रह है। **विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्** से **वुञ्** हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उपाध्याय+वु** बना है। वु के स्थान पर **युवोरनाकौ** से अक आदेश करने पर **उपाध्याय+अक** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **औपाध्याय्+अक=औपाध्यायक** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **औपाध्यायकः** सिद्ध हुआ।

पैतामहकः। पितामह अर्थात् दादा से आया हुआ। **पितमहाद् आगतः** लौकिक

रूप्य-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११०१. हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः ४।३।८१॥

समादागतं समरूप्यम्। पक्षे- **गहादित्वाच्छः**। समीयम्। विषमीयम्। देवदत्तरूप्यम्। दैवदत्तम्।

मयट्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११०२. मयट् च ४।३।८२॥

सममयम्। देवदत्तमयम्।

....

विग्रह और **पितामह ङसि** अलौकिक विग्रह है। **विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्** से वुञ् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **पितामह+वु** बना है। वु के स्थान पर **युवोरनाकौ** से अक आदेश करने पर **पितामह+अक** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके इकार के स्थान पर ऐकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **पैतामह्+अक=पैतामहक** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **पैतामहकः** सिद्ध हुआ। अब इसी प्रकार से **आचार्यादागतः-आचार्यकः, शिष्यादागतः-शैष्यकः, मातुलादागतः-मातुलकः** आदि बनाये जा सकते हैं।

११०१- **हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः**। हेतवश्च मनुष्याश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो हेतुमनुष्याः, तेभ्यः। हेतुमनुष्येभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तं, रूप्यः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **ततः आगतः** इस सूत्र का अनुवर्तन एवं **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

हेतुवाचक एवं मनुष्यवाचक पञ्चम्यन्त प्रातिपदिकों से 'तत आगतः' के अर्थ में विकल्प से रूप्य प्रत्यय होता है।

समरूप्यम्। सम अर्थात् उचित हेतु से आया हुआ सामान। **समादागतम्। सम** ङसि से **हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः** से विकल्प से **रूप्य** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके स्वादिकार्य करने पर **समरूप्यम्** बना। यह कार्य वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **गहादिभ्यश्च** से छ प्रत्यय, उसके स्थान पर **ईय** आदेश होकर भसंज्ञक अकार के लोप के बाद वर्णसम्मेलन, स्वादिकार्य करके **समीयम्** बन जाता है। इसी तरह **विषमादागतं** इस विग्रह में **विषम ङसि** से **विषमरूप्यम्, विषमीयम्** भी बनाइये।

देवदत्तरूप्यम्, दैवदत्तम्। देवदत्त से आया हुआ सामान। यह मनुष्यवाचक का उदाहरण है। **देवदत्तादागतम्** लौकिक विग्रह और **देवदत्त ङसि** अलौकिक विग्रह में **हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः** से विकल्प से **रूप्य** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके स्वादिकार्य करने पर **देवदत्तरूप्यम्** बना। यह कार्य वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **तत आगतः** से **अण्** होकर भसंज्ञक अकार के लोप के बाद वर्णसम्मेलन, स्वादिकार्य करके **दैवदत्तम्** भी बन जाता है।

११०२- **मयट् च**। मयट् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **ततः आगतः** इस सूत्र का अनुवर्तन एवं **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

अणादिविधायकं विधिसूत्रम्

११०३. प्रभवति ४।३।८३॥

हिमवतः प्रभवति हैमवती गङ्गा।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११०४. तद् गच्छति पथिदूतयोः ४।३।८५॥

स्रुघ्नं गच्छति स्रौघ्नः, पन्था दूतो वा।

हेतुवाचक एवं मनुष्यवाचक पञ्चम्यन्त प्रातिपदिकों से 'तत आगतः' के अर्थ में मयट् प्रत्यय भी होता है।

टकार इत्संज्ञक है, **मय** बचता है।

सममयम्। सम अर्थात् उचित हेतु से आया हुआ सामान। **समादागतम्। सम ङसि** से **मयट् च** सूत्र के द्वारा **मयट्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके स्वादिकार्य करने पर **सममयम्** बना। इसी तरह **विषमादागतं** इस विग्रह में **विषम ङसि** से **विषममयम्** भी बनाइये।

११०३- प्रभवति। प्रभवति क्रियापदम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तत आगतः** से **ततः** और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

पञ्चम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'प्रभवति' अर्थात् सर्वप्रथम प्रकाशित होना या दिखाई देना अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

हैमवती गङ्गा। हिमालय में सर्वप्रथम दिखाई देने वाली गङ्गा। **हिमवतः प्रभवति** लौकिक विग्रह और **हिमवत् ङसि** अलौकिक विग्रह है। **प्रभवति** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **हिमवत्+अ** बना है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके इकार के स्थान पर ऐकार आदेश, **हैमवत्+अ=हैमवत** बना। **हैमवत्** यह शब्द स्त्रीलिङ्ग गङ्गा का विशेषण होने के कारण स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होकर **हैमवती** बना। सु के बाद नदी की तरह **हैमवती** सिद्ध हुआ।

११०४- तद् गच्छति पथिदूतयोः। पन्थाश्च दूतश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः पथिदूतौ, तयोः पथिदूतयोः। तत् द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, गच्छति क्रियापदं, पथिदूतयोः सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

द्वितीयान्त स[illegible] प्रातिपदिकों से 'गच्छति' अर्थात् जाने वाला अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं किन्तु जाने वाला यदि मार्ग या दूत हो तो।

स्रौघ्नः। स्रुघ्न नामक देश को जाने वाला मार्ग या दूत। **स्रुघ्नं गच्छति पन्था दूतो वा** लौकिक विग्रह और **स्रुघ्न अम्** अलौकिक विग्रह है। **तद् गच्छति पथिदूतयोः** से **अण्** हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्रुघ्न+अ** बना है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **स्रौघ्नः** सिद्ध हुआ।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११०५. अभिनिष्क्रामति द्वारम् ४।३।८६॥

स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति स्रौघ्नं कान्यकुब्जद्वारम्।

अणादिविधायकं विधिसूत्रम्

११०६. अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ४।३।८७॥

शारीरकम् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शारीरकीयः।

....

११०५- अभिनिष्क्रामति द्वारम्। अभिनिष्क्रामति क्रियापदं, द्वारं प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तद् गच्छति पथिदूतयोः** से तत् की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

द्वितीयान्त समर्थ प्रातिपदिकों से 'अभिनिष्क्रामति' अर्थात् उस ओर निकलता है इस अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं किन्तु निकलने वाला यदि द्वार हो तो।

स्रौघ्नः। सुघ्न नामक देश की ओर निकलने वाला कान्यकुब्ज देश का द्वार। **स्रुघ्नम् अभिनिष्क्रामति कान्यकुब्जद्वारम्। स्रुघ्न अम्** अलौकिक विग्रह है। **अभिनिष्क्रामति द्वारम्** से **अण्** हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्रुघ्न+अ** बना है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **स्रौघ्नः** सिद्ध हुआ।

११०६- अधिकृत्य कृते ग्रन्थे। अधिकृत्य ल्यबन्तम् अव्ययम्, कृते सप्तम्यन्तं, ग्रन्थे सप्तम्यन्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तद् गच्छति पथिदूतयोः** से **तद्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

द्वितीयान्त प्रातिपदिक से 'आधार मानकर बनाया गया ग्रन्थ' इस अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

अधिकृत्य का अर्थ और भी कर सकते हैं, जैसे- अधिकार कर, प्रस्तुत कर, विषय बनाकर आदि।

शारीरकीयः। शारीरक अर्थात् आत्मा को विषय बनाकर बनाया गया ग्रन्थ। **शारीरकम् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः** लौकिक विग्रह और **शारीरक अम्** अलौकिक विग्रह है। **अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः** से अणादि छ हुआ क्योंकि यह शब्द आदि अच् वृद्धि वाला है, इसलिए इसकी **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** से वृद्धसंज्ञा हुई है, और **वृद्धाच्छः** ने वृद्धसंज्ञक से छ प्रत्यय होने का निर्णय दे दिया है। इसके बाद **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से छ के स्थान पर ईय्, **शारीरक्+ईय** भसंज्ञक अकार का लोप करके **शारीरक्+ईय=शारीरकीय** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **शारीरकीयः** सिद्ध हुआ।

शाकुन्तलम्। शकुन्तला नामक नायिका को विषय बनाकर बनाया गया नाटक-ग्रन्थ। **शकुन्तलाम् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः** लौकिक विग्रह और **शकुन्तला अम्** अलौकिक विग्रह है। **अधिकृत्य कृते ग्रन्थे** से अण् हुआ, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप करके

अणादिविधायकं विधिसूत्रम्

११०७. सोऽस्य निवासः ४।३।८९॥

सुघ्नो निवासोऽस्य स्रौघ्नः।

अणादिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११०८. तेन प्रोक्तम् ४।३।१०१॥

पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्।

शाकुन्तल्+अ=शाकुन्तल बना, सु के बाद नपुंसक में अम्, पूर्वरूप करके **शाकुन्तलम्** सिद्ध हुआ। **कालिदास** का **अभिज्ञानशाकुन्तलम्** नामक नाटक बहुत प्रसिद्ध है।

११०७- सोऽस्य निवासः। सः प्रथमान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, अस्य षष्ठ्यन्तं, निवासः प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

प्रथमान्त प्रातिपदिकों से 'वह इसका निवास है' इस अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

स्रौघ्नः। स्रुघ्न नामक देश निवास है जिसका, वह। **स्रुघ्नः निवासः अस्य** लौकिक विग्रह और **स्रुघ्न सु** अलौकिक विग्रह है। **सोऽस्य निवासः** से अण् हुआ, अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **स्रुघ्न+अ** बना है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **स्रौघ्नः** सिद्ध हुआ।

११०८- तेन प्रोक्तम्। तेन तृतीयान्तं लुप्तपञ्चमीकं, प्रोक्तं प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

'उसके द्वारा कहा गया' इस अर्थ में तृतीयान्त प्रातिपदिक से अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

पाणिनीयम्। पाणिनि जी के द्वारा कहा गया, व्याकरण शास्त्र। **पाणिनिना प्रोक्तम्** लौकिक विग्रह और **पाणिनि टा** अलौकिक विग्रह है। **तेन प्रोक्तम्** से छ हुआ क्योंकि यह शब्द आदि अच् वृद्धि वाला है, इसलिए इसकी **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** से वृद्धसंज्ञा हुई है, और **वृद्धाच्छः** ने वृद्धसंज्ञक से छ प्रत्यय होने का निर्णय दे दिया है। इसके बाद **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से छ् के स्थान पर ईय्, **पाणिनि+ईय** भसंज्ञक इकार का लोप करके **पाणिन्+ईय=पाणिनीय** बना, सु के बाद अम्, पूर्वरूप करके **पाणिनीयम्** सिद्ध हुआ।

चान्द्रम्। चन्द्र के द्वारा कहा गया, शास्त्र। **चन्द्रेण प्रोक्तम्** लौकिक विग्रह और **चन्द्र टा** अलौकिक विग्रह है। **तेन प्रोक्तम्** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके अकार के स्थान पर आकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **चान्द्र्+अ=चान्द्र** बना, सु के बाद अम् आदेश, पूर्वरूप करके **चान्द्रम्** सिद्ध हुआ।

अणादिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११०९. तस्येदम् ४।३।१२०॥

उपगोरिदम् औपगवम्।

इति शैषिकाः॥४८॥

....

११०९- **तस्येदम्।** तस्य षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकम्, इदं प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

'उसका है यह' इस अर्थ में समर्थ षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

भागवतम्। भगवान् का है यह। **भगवतः इदम्** लौकिक विग्रह और **भगवत् ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्येदम्** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके अकार के स्थान पर आकार आदेश करके **भागवत्+अ=भागवत** बना, सु के बाद अम् आदेश, पूर्वरूप करके **भागवतम्** सिद्ध हुआ।

परीक्षा

१-	इस प्रकरण के प्रत्यय एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालिए।	१०
२-	**शेषे** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।	१०
३-	**वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।	१०
४-	**कालाट्ठञ्** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।	१०
५-	किन्हीं दस शैषिकों की प्रक्रिया दिखाइये।	१०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का शैषिक-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ विकारार्थकाः

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१११०. तस्य विकारः ४।३।१३४॥

वार्तिकम्- **अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः।**

अश्मनो विकारः आश्मः। भास्मनः। मार्त्तिकः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब विकार अर्थ में होने वाले प्रत्ययों का प्रकरण प्रारम्भ होता है। एक वस्तु का दूसरे रूप में परिणत होना **विकार** कहलाता है। जैसे दूध का विकार दही और दही का विकार मक्खन, इसी प्रकार लकड़ी का विकार दरबाजा, कुर्सी, पलंग आदि। यहाँ पर भी प्रायः सभी सूत्रों में **प्राग्दीव्यतोऽण्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है। शेष कार्य पूर्व के अन्य प्रकरणों के जैसे ही हैं।

१११०- तस्य विकारः। तस्य षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, विकारः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, प्राग्दीव्यतोऽण्** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

'उसका विकार' इस अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

तस्येदम् से **तस्य** इस पद की अनुवृत्ति हो सकती थी और यहाँ पर पढ़ने की आवश्यकता नहीं थी फिर भी यहाँ पर पढ़ने का तात्पर्य यह है कि **शेषाधिकार** की अब यहाँ से निवृत्ति होती है।

अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः। यह वार्तिक है। **विकार अर्थ में प्रत्यय हो जाने के बाद अश्मन् शब्द के टि का लोप हो।** अश्मन् में अन्त्य अच् मकारोत्तरवर्ती अकार और नकार अर्थात् **अन्** यह टिसंज्ञक है। प्रत्यय होने के बाद **अस्मन्+अ** ऐसी स्थिति में पहले **नस्तद्धिते** से टिलोप प्राप्त होता है, उसे प्रकृतिभावविधायक **अन्** यह सूत्र बाधता है और उसे भी वाधने के लिए यह वार्तिक है, अर्थात् यह वार्तिक **अन्** इस सूत्र का बाधक है।

आश्मः। पत्थर का विकार अथवा पत्थर से बना हुआ कोई पदार्थ। **अश्मनो विकारः** लौकिक विग्रह और **अश्मन् ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य विकारः** से अण् प्रत्यय हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **अश्मन्+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि हुई और टिसंज्ञक अन् का **अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः** से लोप हुआ, **आश्म्+अ=आश्म** बना। स्वादिकार्य करके **आश्मः** सिद्ध हुआ।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११११. अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ४।३।१३५।।

चाद्विकारे। मयूरस्यावयवो विकारो वा मायूरः।
मौर्वं काण्डं भस्म वा। पैप्पलम्।

मयट्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१११२. मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ४।३।१४३।।

प्रकृतिमात्रान्मयड् वा स्याद् विकारावयवयोः। अश्ममयम्, आश्मनम्।
अभक्ष्येत्यादि किम्? मौद्गः सूपः। कार्पासमाच्छादनम्।

....

भास्मनः। भस्म का विकार अथवा राख से बना हुआ कोई पदार्थ। **भस्मनः विकारः** लौकिक विग्रह और **भस्मन् ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य विकारः** से अण् प्रत्यय हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **भस्मन्+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि हुई, **भास्मन्+अ=भास्मन** बना। स्वादिकार्य करके **भास्मनः** सिद्ध हुआ। यहाँ पर तो **अन्** से टिलोप के निषेध होने के बाद इसका बाधक कोई नहीं है। अतः टि का लोप नहीं होता।

मार्त्तिकः। मृत्तिका का विकार अथवा मिट्टी से बनी हुई कोई वस्तु। **मृत्तिकायाः विकारः** लौकिक विग्रह और **मृत्तिका ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य विकारः** से अण् प्रत्यय हुआ, प्रातिपदिककसंज्ञा, सुप् का लुक्, **मृत्तिका+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि होने पर ऋकार के स्थान पर आर् होकर **मार्त्तिका+अ** बना। भसंज्ञक आकार का लोप हुआ, **मार्त्तिक्+अ=मार्त्तिक** बना। स्वादिकार्य करके **मार्त्तिकः** सिद्ध हुआ।

११११- अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः। प्राणिनश्च ओषधयश्च वृक्षाश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः प्राण्योषधिवृक्षास्तेभ्यः। अवयवे सप्तम्यन्तं, चाव्ययपदं, प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तस्य विकारः** की अनुवृत्ति आती है और ऊपर से **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है। इस सूत्र में **अवयव** अर्थ और जुड़ जाता है।

प्राणी, औषधी और वृक्ष वाचक शब्दों से विकार और अवयव अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

मायूरः। मयूर के अवयव टांग, सिर आदि अथवा मयूर का विकार। **मयूरस्य विकारः, अवयवो वा** लौकिक विग्रह और **मयूर ङस्** अलौकिक विग्रह है। **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से अण् प्रत्यय हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **मयूर+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि होने पर अकार के स्थान पर आकार होकर भसंज्ञक अकार का लोप हुआ, **मायूर्+अ=मायूर** बना। स्वादिकार्य करके **मायूरः** सिद्ध हुआ। यह प्राणिवाचक का उदाहरण है।

मौर्वम्। मूर्वा नामक औषधी विशेष, लता का अवयव काण्ड, मूल आदि अथवा विकार भस्म आदि। **मूर्वायाः विकारः** लौकिक विग्रह और **मूर्वा ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य विकारः** से अण् प्रत्यय हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **मूर्वा+अ** बना। णित् होने

मयट्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१११३. नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ४।३।१४४॥

आम्रमयम्। शरमयम्।

....

के कारण आदिवृद्धि होने पर ऊकार के स्थान पर औकार होकर भसंज्ञक आकार का लोप हुआ, **मौर्व्+अ=मौर्व** बना। स्वादिकार्य करके **मौर्वम्** सिद्ध हुआ। यह औषधि का वाचक है।

पैप्पलम्। पीपल नामक वृक्ष का अवयव डाली, पत्ते अथवा पीपल का भस्म आदि। **पिप्पलस्य विकारः, अवयवो वा** लौकिक विग्रह और **पिप्पल ङस्** अलौकिक विग्रह है। **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से अण् प्रत्यय हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **पिप्पल+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप हुआ, **पैप्पल्+अ=पैप्पल** बना। स्वादिकार्य करके **पैप्पलम्** सिद्ध हुआ। यह वृक्षवाचक का उदाहरण है।

१११२- मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः। भक्ष्यं च आच्छादनं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो भक्ष्याच्छादने, न भक्ष्याच्छादने अभक्ष्याच्छादने, तयोरभक्ष्याच्छादनयोः। **तस्य विकारः** से **तस्य** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

प्रकृतिमात्र अर्थात् षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थ में विकल्प से मयट् प्रत्यय होता है किन्तु विकार या अवयव जो हैं, वे भक्ष्य एवं आच्छादन नहीं होने चाहिए।

भक्ष्य(खाने योग्य वस्तु) और **आच्छादन**(ढकने वाली वस्तु, ओढ़ना आदि) यदि गम्यमान हो रहा हो तो यह प्रत्यय नहीं होगा। **टकार** की इत्संज्ञा होकर **मय** बचता है। **टित्** का फल स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** की प्रवृत्ति है।

अश्ममयम्। पत्थर का विकार अथवा पत्थर से बना हुआ कोई पदार्थ। **अश्मनो विकारः** लौकिक विग्रह और **अश्मन् ङस्** अलौकिक विग्रह है। **मयड् वैतयोर्भाषायाम-भक्ष्याच्छादनयोः** से **मयट्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **अश्मन्+मय** बना। णित् न होने के कारण आदिवृद्धि नहीं हुई और **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदत्व होने के कारण नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ, **अश्म+मय=अश्ममय** बना। स्वादिकार्य करके **अश्ममयम्** सिद्ध हुआ। मयट् न होने के पक्ष में **तस्य विकारः** से औत्सर्गिक **अण्** करके टिलोप करने पर **आश्मम्** बनता है। **अवयव** अर्थ में **अण्** होने पर टि का लोप भी नहीं होता, अतः **आश्मनम्** भी बना चुके हैं।

अभक्ष्येत्यादि किम्? मौद्गः सूपः, कार्पासम् आच्छादनम्। अब यहाँ पर प्रश्न करते हैं कि **मयड् वैतयोभाषायामभक्ष्याच्छादनयोः** इस सूत्र में **अभक्ष्याच्छादनयोः** यह पद न पढ़ते तो क्या होता? उत्तर यह है कि **मौद्गः सूपः, कार्पासम् आच्छादनम्** आदि जगहों पर **मुद्ग** और **कार्पास** ये क्रमश **भक्ष्य** और **आच्छादन** वस्तु हैं। इनमें भी **मयट्** होने लगता और **मुद्गमयम्, कार्पासमयम्** ऐसे अनिष्ट रूप बनने लगते। अनिष्ट रूपों के निवारणार्थ उक्त पद सूत्र में पठित है, जिससे मयट् नहीं हुआ अपितु औत्सर्गिक अण् होकर **मौद्गः, कार्पासम्** ये इष्ट रूप सिद्ध हो गये।

१११३- नित्यं वृद्धशरादिभ्यः। शर आदिर्येषां ते शरादयस्तेभ्यः। वृद्धाश्च शरादयश्च

मयट्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१११४. गोश्च पुरीषे ४।३।१४५।।

गोः पुरीषं गोमयम्।

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१११५. गोपयसोर्यत् ४।३।१६०।।

गव्यम्। पयस्यम्।

इति विकारार्थाः।।४९।।

इति प्राग्दीव्यतीयाः।

....

वृद्धशरादयस्तेभ्यः। नित्यं द्वितीयान्तं क्रियाविशेषणम्। वृद्धशरादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्य विकारः** से **तस्य** और **मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः** से **वा** छोड़कर सभी पदों की अनुवृत्ति है। **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि पदों का अधिकार आ ही रहा है।

षष्ठ्यन्त वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों एवं शरादिगणपठित प्रातिपदिको से विकार और अवयव अर्थ में नित्य से मयट् प्रत्यय होता है किन्तु वे विकार या अवयव भक्ष्य एवं आच्छादन नहीं होने चाहिए।

आम्रमयम्। आम्रवृक्ष का विकार या अवयव। **आम्रस्य विकारोऽवयवो वा।** आम्र ङस् में **तस्य विकारः** के अधिकार में **नित्यं वृद्धशरादिभ्यः** से नित्य से **मयट्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **आम्रमय** बना। णित् आदि न होने से आदिवृद्धि नहीं हुई। स्वादिकार्य करके **आम्रमयम्** सिद्ध हुआ। इसी तरह **शराणां विकारः** सरकंडों का विकार या अवयव अर्थ में **शर आम्** में उक्त रीति से **मयट्** करके **शरमयम्** बनाया जा सकता है।

१११४- **गोश्च पुरीषे।** गोः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, पुरीषे सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **तस्य विकारः** इस सम्पूर्ण सूत्र तथा **मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः** से **मयट्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ ही रहा है।

यदि गोबर अर्थ हो तो गो शब्द से मयट् प्रत्यय होता है।

यह सूत्र **गोपयसोर्यत्** से प्राप्त **यत्** का बाधक है।

गोमयम्। गाय का विकार अर्थात् गोबर। **गोः विकारः** लौकिक विग्रह और **गो ङस्** अलौकिक विग्रह है। **गोश्च पुरीषे** से मयट्, अनुबन्धलोप होकर **गो+मय,** सु, अम्, **गोमयम्।**

१११५- **गोपयसोर्यत्।** गौश्च पयस् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो गोपयसौ, तयोः। गोपयसोः पञ्चम्यर्थे षष्ठी, यत् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तस्य विकारः** आदि की अनुवृत्ति और **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि पदों का अधिकार आ ही रहा है।

विकार और अवयव अर्थ में षष्ठ्यन्त गो और पयस् शब्दों से यत् प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है।

गव्यम्। गाय का विकार अर्थात् दूध, दही, घी, मूत्र एवं गोबर। **गोः विकारः** लौकिक विग्रह और **गो ङस्** अलौकिक विग्रह है। **गोपयसोर्यत्** से यत् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप होकर **गो+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से अव् आदेश होकर **गव्य** बना। सु, अम्, **गव्यम्।**

पयस्यम्। दूध का विकार अर्थात् दही, घी आदि। **पयसः विकारः** लौकिक विग्रह और **पयस् ङस्** अलौकिक विग्रह है। **गोपयसोर्यत्** से यत् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप होकर **पयस्+य=पयस्य** बना। सु, अम्, **पयस्यम्।**

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का विकारार्थक-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ ठगधिकारः

ठकोऽधिकारार्थमधिकारसूत्रम्

१११६. प्राग्वहतेष्ठक् ४।४।१॥

तद्वहतीत्यतः प्राक् ठगधिक्रियते।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१११७. तेन दीव्यति खनति जयति जितम् ४।४।२॥

अक्षैर्दीव्यति खनति जयति जितो वा आक्षिकः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **ठगधिकारप्रकरण** का आरम्भ होता है। इस प्रकरण में **प्राग्वहतेष्ठक्** इस सूत्र का अधिकार चलता है अर्थात् इस सूत्र से **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** ४।४।७६ तक के जितने भी सूत्र हैं, उन सूत्रों में **ठक्** पहुँच जाता है। ठक् प्रत्यय का अधिकार होने के कारण इस प्रकरण को **ठगधिकारप्रकरण** कहते हैं। ठक् में ककार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप होता है। ठ के स्थान पर **इसुसुक्तान्तात् कः** से **क** या **ठस्येकः** से **इक** आदेश होता है। **ठक्** में **ककार** की इत्संज्ञा होने के कारण इसके परे रहते **किति च** से प्रकृति में आदिवृद्धि होती है।

१११६- **प्राग्वहतेष्ठक्**। प्राक् अव्ययपदं, वहतेः पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

इस सूत्र से तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् से पहले तक 'ठक्' का अधिकार रहता है।

१११७- **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्**। तेन तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, दीव्यति, खनति, जयति क्रियापदानि, जितम् प्रथमान्तम् अनेकपदं सूत्रम्। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

खेलने वाला, खोदने वाला, जीतने वाला, जीता गया इन अर्थों में तृतीयान्त प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होता है।

आक्षिकः। पासों से खेलने वाला, पासों से खोदने वाला, पासों से जीतने वाला, पासों से जीता गया। **अक्षैर्दीव्यति, खनति, जयति, जितम्। अक्ष भिस्** में **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **ठक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **अक्ष भिस् ठ** की प्रातिपदिकसंज्ञा, **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से सुप् **भिस्** का लुक् करके **अक्ष+ठ** बना। **ठस्येकः** से ठ के

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१११८. संस्कृतम् ४।४।३॥

दध्ना संस्कृतम्- दाधिकम्। मारीचिकम्।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१११९. तरति ४।४।५॥

तेनेत्येव। उडुपेन तरति- औडुपिकः।

....

स्थान पर **इक** आदेश होकर **अक्ष+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई- **आक्ष+इक** बना। **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप हुआ- **आक्ष्+इक** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **आक्षिक** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **आक्षिकः** सिद्ध हुआ।

१११८- संस्कृतम्। संस्कृतम् प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'उससे संस्कार किया गया' इस अर्थ में तृतीयान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।

दाधिकम्। दही से संस्कार किया गया अर्थात् दही मिला कर स्वादिष्ट बनाया गया पदार्थ। **दध्ना संस्कृतम्** लौकिक विग्रह और **दधि टा** अलौकिक विग्रह है। **संस्कृतम्** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **दधि+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक इकार का लोप करके **दाध्+इक=दाधिक,** स्वादिकार्य करके **दाधिकम्** सिद्ध हुआ।

मारीचिकम्। मरीच से संस्कार किया गया अर्थात् मरीच नामक मसाला लगाकर स्वादिष्ट बनाया गया पदार्थ। **मरीचेन संस्कृतम्** लौकिक विग्रह और **मरीच टा** अलौकिक विग्रह है। **संस्कृतम्** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **मरीच+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक अकार का लोप करके **मारीच्+इक=मारीचिक,** स्वादिकार्य करके **मारीचिकम्** सिद्ध हुआ।

१११९- तरति। तरति क्रियापदम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है और **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'उससे तरता है अर्थात् पार हो जाता है' इस अर्थ में तृतीयान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।

औडुपिकः। छोटी नौका से पार करता है जो। **उडुपेन तरति** लौकिक विग्रह और **उडुप टा** अलौकिक विग्रह है। **तरति** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **उडुप+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई। भसंज्ञक अकार का लोप करके **औडुप्+इक=औडुपिक** बना। स्वादिकार्य करके **औडुपिकः** सिद्ध हुआ।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११२०. चरति ४।४।८॥

तृतीयान्ताद् गच्छति-भक्षयतीत्यर्थयोष्ठक् स्यात्। हस्तिना चरति हास्तिकः। दध्ना चरति दाधिकः।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११२१. संसृष्टे ४।४।२२॥

दध्ना संसृष्टं दाधिकम्।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११२२. उञ्छति ४।४।३२॥

बदराण्युञ्छति बादरिकः।

....

११२०- **चरति**। चरति क्रियापदम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है और **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'उससे जाता है और उससे खाता है' इस अर्थ में तृतीयान्त प्रातिपदिक से **ठक्** प्रत्यय होता है।

चरति में **चर्** धातु के दो अर्थ होते हैं- **गति** और **भक्षण करना।**

हास्तिकः। हाथी से जाता है जो। **हस्तिना चरति** लौकिक विग्रह और **हस्तिन् टा** अलौकिक विग्रह है। **चरति** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **हस्तिन्+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और टिसंज्ञक इन् का **नस्तद्धिते** से लोप करके **हास्त्+इक=हास्तिक** बना एवं स्वादिकार्य करके **हास्तिकः** सिद्ध हुआ।

दाधिकः। दही से खाता है जो। **दध्ना चरति** लौकिक विग्रह और **दधि टा** अलौकिक विग्रह है। **चरति** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **दधि+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक इकार का लोप करके **दाध्+इक=दाधिक** बना एवं स्वादिकार्य करके **दाधिकः** सिद्ध हुआ।

११२१- **संसृष्टे**। संसृष्टे सप्तम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है और **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'उससे मिला हुआ' इस अर्थ में तृतीयान्त प्रातिपदिक से **ठक्** प्रत्यय होता है।

दाधिकम्। दही से मिला हुआ। **दध्ना संसृष्टम्** लौकिक विग्रह और **दधि टा** अलौकिक विग्रह है। **संसृष्टे** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **दधि+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक इकार का लोप करके **दाध्+इक=दाधिक**, स्वादिकार्य करके **दाधिकम्** सिद्ध हुआ।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११२३. रक्षति ४।४।३३॥

समाजं रक्षति सामाजिकः।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११२४. शब्ददर्दुरं करोति ४।४।३४॥

शव्दं करोति शाब्दिकः। दर्दुरं करोति दार्दुरिकः।

....

११२२- **उञ्छति।** क्रियापदमेकपदं सूत्रम्। **तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से तत् इस द्वितीयान्त पद की अनुवृत्ति आती है और **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'चुन चुन कर बटोरता है' इस अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।

बादरिकः। बेर को चुन चुन कर बटोरने वाला। **बदराणि उञ्छति** लौकिक विग्रह और **बदर शस्** अलौकिक विग्रह है। **उञ्छति** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **बदर+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई। भसंज्ञक अकार का लोप करके **बादर+इक=बादरिक** बना और स्वादिकार्य करके **बादरिकः** सिद्ध हुआ।

११२३- **रक्षति।** रक्षति क्रियापदम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से तत् की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'उसकी रक्षा करता है' इस अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।

सामाजिकः। समाज की रक्षा करने वाला। **समाजं रक्षति** लौकिक विग्रह और **समाज अम्** अलौकिक विग्रह है। **रक्षति** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **समाज+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक अकार का लोप करके **सामाज्+इक=सामाजिक** बना और स्वादिकार्य करके **सामाजिकः** सिद्ध हुआ।

११२४- **शब्ददर्दुरं करोति।** शब्दश्च दर्दुरश्चानयोः समाहारद्वन्द्वः शब्ददर्दुरं, तम्। शब्ददर्दुरं द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, करोति क्रियापदं, द्विपदं सूत्रम्। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीयान्त 'शब्द' और 'दर्दुर' प्रातिपदिकों से 'करने वाला' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

शाब्दिकः। शब्द के विषय में कार्य करने वाला, शब्द सम्बन्धी प्रकृति प्रत्यय का विभाग करने वाला। **शब्दं करोति=प्रकृतिप्रत्ययविभागपरिकल्पनया व्युत्पादयति। शब्द अम्** में **शब्ददर्दुरं करोति** से **ठक्**, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश करके **शब्द+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक अकार का लोप करके **शाब्द्+इक=शाब्दिक** बना। स्वादिकार्य करके **शाब्दिकः** सिद्ध हुआ।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११२५. धर्मं चरति ४।४।४१॥

धार्मिकः।

वार्तिकम्- **अधर्माच्चेति वक्तव्यम्।** आधर्मिकः।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११२६. शिल्पम् ४।४।५५॥

मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः।

दार्दुरिकः। मिट्टी के पात्र विशेष को बनाने वाला। **दर्दुरं करोति। दर्दुर अम्** में **शब्ददर्दुरं करोति** से **ठक्**, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर **इक** आदेश करके **दर्दुर+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक अकार का लोप करके **दर्दुर्+इक=दार्दुरिक** बना। स्वादिकार्य करके **दार्दुरिकः** सिद्ध हुआ।

११२५- **धर्मं चरति।** धर्मं द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, चरति क्रियापदं द्विपदमिदं सूत्रम्। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'धर्म का आचरण करता है' इस अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक धर्म-शब्द से ठक् प्रत्यय होता है।

धार्मिकः। धर्म का आचरण करने वाला। **धर्मं चरति** लौकिक विग्रह और **धर्म अम्** अलौकिक विग्रह है। **धर्मं चरति** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **धर्म+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक अकार का लोप करके **धर्म्+इक=धार्मिक** बना। स्वादिकार्य करके **धार्मिकः** सिद्ध हुआ।

अधर्माच्चेति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। **जिस तरह से धर्म शब्द से ठक् प्रत्यय होता है, उसी तरह अधर्म से भी होना चाहिए।**

यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि यदि **धार्मिक** बनने के बाद नञ् समास करें तो क्या होगा? उत्तर यह है कि तब **अधार्मिकः।** इस तरह **अधार्मिकः** ऐसा रूप बन सकता है किन्तु **आधर्मिकः** नहीं बनेगा। अतः **आधर्मिकः** की सिद्धि के लिए इस वार्तिक की आवश्यकता है।

११२६- **शिल्पम्।** प्रथमान्तमेकपदं सूत्रम्। **तदस्य पण्यम्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'शिल्प है इसका' इस अर्थ में प्रथमान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।

मार्दङ्गिकः। मृदंग बजाने का विशेष ज्ञान है जिसका अर्थात् मृदंग बजाने वाला। **मृदङ्गवादनं शिल्पम् अस्य** लौकिक विग्रह और **मृदङ्ग सु** अलौकिक विग्रह है। **शिल्पम्** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **मृदङ्ग+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई तो ऋकार के स्थान पर **आर्** होकर और भसंज्ञक अकार का लोप करके **मार्दङ्ग्+इक=मार्दङ्गिक** बना। स्वादिकार्य करके **मार्दङ्गिकः** सिद्ध हुआ।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११२७. प्रहरणम् ४।४।५७॥

तदस्येत्येव। असिः प्रहरणमस्य आसिकः। धानुष्कः।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११२८. शीलम् ४।४।६१॥

अपूपभक्षणं शीलमस्य आपूपिकः।

....

११२७- **प्रहरणम्।** प्रहरणं प्रथमान्तमेकपदं सूत्रम्। **तदस्य पण्यम्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'हथियार है इसका' इस अर्थ में प्रथमान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।

आसिकः। तलवार है प्रहरण अर्थात् हथियार जिसका, वह। **असिः प्रहरणम् अस्य** लौकिक विग्रह और **असि सु** अलौकिक विग्रह है। **प्रहरणम्** सूत्र से ठक्, अनुबन्ध लोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **असि+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक इकार का लोप करके **आस्+इक=आसिक,** स्वादिकार्य करके **आसिकः** सिद्ध हुआ।

धानुष्कः। धनुष है प्रहरण अर्थात् हथियार जिसका, वह। **धनुः प्रहरणम् अस्य** लौकिक विग्रह और **धनुष् सु** अलौकिक विग्रह है। **तदस्य प्रहरणम्** सूत्र से ठक्, अनुबन्ध लोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर **इक** आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर **इसुसुक्तान्तात्कः** से **क** आदेश करके **धनुष्+क** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और **ष्** के असिद्ध होने से रुत्वविसर्ग, फिर **इणः षः** से षकार ही होकर **धानुष्+क=धानुष्क** बना। स्वादिकार्य करके **धानुष्कः** सिद्ध हुआ।

११२८- **शीलम्।** शीलं प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तदस्य पण्यम्** से **तद्** और **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'यह स्वभाव है इसका' इस अर्थ में प्रथमान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।

आपूपिकः। मालपूए खाने का स्वभाव है जिसका अर्थात् मालपूआ खाने वाला। **अपूपभक्षणं शीलम् अस्य** लौकिक विग्रह और **अपूप सु** अलौकिक विग्रह है। **शीलम्** सूत्र से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **अपूप+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक अकार का लोप करके **आपूप्+इक=आपूपिक** बना। स्वादिकार्य करके **आपूपिकः** सिद्ध हुआ।

इसी तरह से **ऐसा स्वभाव है इसका** इस अर्थ में अन्य शब्दों से भी ठक् करके प्रयोग सिद्ध करें। जैसे-

मोदकभक्षणं शीलमस्य- मौदकिकः। मोदक खाने का स्वभाव वाला।

ठक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११२९. निकटे वसति ४।४।७३।।

नैकटिको भिक्षुकः।

इति ठगधिकारः।।५०।।

(प्राग्वहतीयाः)

....

शष्कुलीभक्षणं शीलमस्य- शाष्कुलिकः। पूड़ी खाने का स्वभाव वाला।
ओदनभक्षणं शीलमस्य- औदनिकः। भात खाने का स्वभाव वाला।
पायसभक्षणं शीलमस्य- पायसिकः। खीर खाने का स्वभाव वाला।
करुणा शीलमस्य- कारुणिकः। करुणा स्वभाव वाला।

११२९- निकटे वसति। निकटे सप्तम्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, वसति क्रियापदं, द्विपदं सूत्रम्। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त 'निकट' प्रातिपदिक से 'रहने वाला' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

नैकटिकः। निकट में रहने वाला। **निकटे वसति** लौकिक विग्रह और **निकट ङि** अलौकिक विग्रह है। **निकटे वसति** सूत्र से **ठक्**, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर **इक** आदेश करके **निकट+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक अकार का लोप करके **नैकट्+इक=नैकटिक** बना। स्वादिकार्य करके **नैकटिकः** सिद्ध हुआ।

परीक्षा

१- विकारार्थक ठगधिकार प्रत्यय एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालिए। १०
२- **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०
३- **संस्कृतम्** और **रक्षति** की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए। १०
४- अभी तक के तद्धित प्रत्ययों पर एक टिप्पणी लिखें १०
५- विकारार्थक और ठगधिकार प्रत्यय के किन्हीं दस की प्रक्रिया दिखाइये। १०

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का ठगधिकार-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ यदधिकारः

यतोऽधिकारसूत्रम्

११३०. प्राग्घिताद्यत् ४।४।७५॥

तस्मै हितम् इत्यतः प्राग् यदधिक्रियते।

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११३१. तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् ४।४।७६॥

रथं वहति रथ्यः। युग्यः। प्रासङ्ग्यः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **यदधिकारप्रकरण** प्रारम्भ होता है। इस प्रकरण में यत् प्रत्यय का विधान किया गया है और अधिकार भी यत् का ही है, इसलिए इसे **यदधिकारप्रकरण** कहते हैं। सूत्रों में **तद्धिताः**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **प्रत्ययः**, **परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार विद्यमान है। **प्राग्घिताद्यत्** यह सूत्र **तस्मै हितम्** से पहले तक **यत्** के अधिकार का निर्णय करता है। **यत्** में तकार इत्संज्ञक है। ञित्, णित् और कित् न होने से वृद्धि का प्रसङ्ग नहीं है।

११३०- प्राग्घिताद्यत्। प्राक् अव्ययपदं, हितात् पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

'तस्मै हितम्' से पहले तक यत् का अधिकार रहता है।

११३१- तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्। तद् द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, वहति क्रियापदं, रथयुगप्रासङ्गं द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **प्राग्घिताद्यत्** से **यत्** का तथा **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीयान्त रथ, युग और प्रासङ्ग प्रातिपदिकों से 'वहति' अर्थात् वहन करता है या वहन करने वाला अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

रथ का अर्थ प्रसिद्ध ही है। रथ या हल आदि खींचने के लिए घोड़ा, बैल आदि के गले में जो लकड़ी डाली जाती है, उस लकड़ी को **युग** कहते हैं तो अशिक्षित बैल आदि को शिक्षित करने के लिए युग के साथ जो एक अन्य युग को गले में डाल देते हैं, उस लकड़ी को **प्रासङ्ग** कहते हैं। इस तरह रथ, युग और प्रासङ्ग को ढोने वाले को रथ्य, युग्य और **प्रासङ्ग्य** कहते हैं।

यत्-ढक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११३२. धुरो यड्ढकौ ४।४।७७।।

हलि चेति दीर्घे प्राप्ते-

दीर्घनिषेधकं विधिसूत्रम्

११३३. न भकुर्छुराम् ८।२।७९।।

भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया इको दीर्घो न स्यात्। धुर्यः। धौरेयः।

....

रथ्यः। रथ को ढोने वाला। **रथं वहति** लौकिक विग्रह और **रथ अम्** अलौकिक विग्रह है। **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** से यत् प्रत्यय, तकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **रथ+य** बना। भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप हुआ, **रथ्+य=रथ्य** बना। सु आदि कार्य करके **रथ्यः** सिद्ध हुआ।

युग्यः। युग अर्थात् रथ या हल की एक विशेष लकड़ी को ढोने वाला। **युगं वहति** लौकिक विग्रह और **युग अम्** अलौकिक विग्रह है। **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** से यत् प्रत्यय, तकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **युग+य** बना। भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप हुआ, **युग्+य=युग्य** बना। सु आदि कार्य करके **युग्यः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **प्रासङ्गं वहति** लौकिक विग्रह और **प्रासङ्ग अम्** अलौकिक विग्रह में यत् प्रत्यय करके **प्रासङ्ग्यः** बना लीजिए।

११३२- **धुरो यड्ढकौ**। यत् च ढक् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो यड्ढकौ। धुरः पञ्चम्यन्तं, यड्ढकौ प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** से **तद्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीयान्त प्रातिपदिक धुर्-शब्द से 'ढोता है' अर्थ में यत् और ढक् दोनों प्रत्यय होते हैं।

ढक् में ककार इत्संज्ञक है और ढ के ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **एय्** आदेश हो जाता है। **धुर्** रथ का एक विशेष अङ्ग है।

११३३- **न भकुर्छुराम्**। भं च कुर् च छुर् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो भकुर्छुरस्तेषाम्। न अव्ययपदं, भकुर्छुरां षष्ठ्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **र्वोरुपधाया दीर्घ इकः** से **उपधायाः** और **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है।

भसंज्ञक की उपधा एवं कुर्, छुर् की उपधा को दीर्घ नहीं होता है।

हलि च से प्राप्त दीर्घ का निषेध होता है।

धुर्यः, धौरेयः। धुर् अर्थात् रथ का एक विशेष भाग, उसको ढोने वाला। **धुरं वहति** लौकिक विग्रह और **धुर् अम्** अलौकिक विग्रह है। **धुरो यड्ढकौ** से यत् प्रत्यय होने के पक्ष में तकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **धुर्+य=धुर्य** बना। यहाँ **हलि च** से दीर्घ प्राप्त था, उसका **न भकुर्छुराम्** से निषेध हुआ। **धुर्य** से सु आदि कार्य करके **धुर्यः** सिद्ध हुआ। **ढक्** होने के पक्ष में ककार की इत्संज्ञा, ढकार के स्थान पर एय् आदेश करके **धुर्+एय** बना। कित् होने के कारण आदिवृद्धि करके **धौर्+एय=धौरेय** बना। स्वादिकार्य करके **धौरेयः** सिद्ध हुआ।

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११३४. नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य- वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु ४।४।९१।।

नावा तार्यं नाव्यं जलम्। वयसा तुल्यो वयस्य:। धर्मेण प्राप्यं धर्म्यम्। विषेण वध्यो विष्य:। मूलेन आनाम्यं मूल्यम्। मूलेन समो मूल्य:। सीतया समितं सीत्यं क्षेत्रम्। तुलया सम्मितं तुल्यम्।

....

११३४- नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु। नौश्च वयश्च धर्मश्च विषञ्च मूलञ्च मूलञ्च सीता च तुला च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलास्ताभ्य:। तार्यञ्च तुल्यञ्च प्राप्यञ्च वध्यञ्च आनाम्यञ्च समश्च समितञ्च सम्मितञ्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितानि तेषु। नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्य: पञ्चम्यन्तं, तार्य-तुल्य-प्राप्य- वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु सप्तम्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्यय:, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिता:** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

नौ, वयस्, धर्म, विष, मूल, मूल, सीता और तुला शब्दों से क्रमश: तारने योग्य, तुल्य, प्राप्य, वध्य, प्राप्त होने वाला लाभ, सम, एक समान करना और तौलना अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

नाव्यम्। नौका के द्वारा पार ले जाने योग्य। **नावा तार्यम्** लौकिक विग्रह और **नौ टा** अलौकिक विग्रह है। **नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु** से तार्य अर्थ में यत् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नौ+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से आव् आदेश होकर **नाव्य** बना और विभक्तिकार्य करके **नाव्यम्** सिद्ध हुआ।

वयस्य:। आयु से समान, मित्र आदि। **वयसा तुल्यम्** लौकिक विग्रह और **वयस् टा** अलौकिक विग्रह है। **नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु** से तुल्य अर्थ में यत्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वयस्+य=वयस्य** बना। विभक्ति कार्य करके **वयस्य:** सिद्ध हुआ।

धर्म्यम्। धर्म के द्वारा प्राप्त करने योग्य स्वर्ग, सुख, धन आदि। **धर्मेण प्राप्यम्** लौकिक विग्रह और **धर्म टा** अलौकिक विग्रह है। **नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु** से प्राप्य अर्थ में यत् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **धर्म्+य=धर्म्य** बना और विभक्ति कार्य करके **धर्म्य:** सिद्ध हुआ।

विष्य:। विष के द्वारा वध करने योग्य शत्रु आदि। **विषेण वध्य:** लौकिक विग्रह और **विष टा** अलौकिक विग्रह है। **नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु** से वध्य अर्थ में यत् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **विष्+य=विष्य** बना और विभक्ति कार्य करके **विष्य:** सिद्ध हुआ।

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११३५. तत्र साधुः ४।४।९८॥

अग्रे साधुः अग्र्यः। सामसु साधुः सामन्यः।

ये चाभावकर्मणोरिति प्रकृतिभावः- कर्मण्यः। शरण्यः।

य-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११३६. सभाया यः ४।४।१०५॥

सभ्यः।

इति यतोऽवधिः॥५१॥ (प्राग्घितीयाः।)

....

मूल्यम्। मूल अर्थात् पूँजी के द्वारा प्राप्त होने वाला लाभ। **मूलेन आनाम्यम्** लौकिक विग्रह और **मूल टा** अलौकिक विग्रह है। **नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु** से आनाम्य अर्थ में यत् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **मूल्+य=मूल्य** बना और विभक्तिकार्य करके **मूल्यम्** सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार **मूलेन समो** मूल से सम अर्थ में **मूल्यः**।

सीतया समितं हल से एक समान किया गया अर्थ **सीत्यं क्षेत्रम्।**

तुलया सम्मितं तराजू से तोला हुआ अर्थ में तुला शब्द से **तुल्यम्** बनाइये।

११३५- **तत्र साधुः**। तत्र सप्तम्यन्तस्यानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, साधुः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **यत्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त प्रातिपदिक से साधु, कुशल, प्रवीण या योग्य जैसे अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

अग्र्यः। आगे रहने में प्रवीण या योग्य। **अग्रे साधुः** लौकिक विग्रह और **अग्र ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र साधुः** से यत् प्रत्यय, तकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **अग्र्+य=अग्र्य** बना। स्वादिकार्य करके **अग्र्यः** सिद्ध हुआ।

शरण्यः। रक्षा करने , शरण देने में प्रवीण या योग्य। **शरणे साधुः** लौकिक विग्रह और **शरण ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र साधुः** से यत् प्रत्यय, तकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **शरण्+य=शरण्य** बना। स्वादिकार्य करके **शरण्यः** सिद्ध हुआ।

कर्मण्यः। कर्म करने में प्रवीण या योग्य। **कर्मणि साधुः** लौकिक विग्रह और **कर्मन् ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र साधुः** से यत् प्रत्यय, तकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कर्मन्+य** बना। **नस्तद्धिते** से टि का लोप प्राप्त था किन्तु **ये चाभावकर्मणोः** से प्रकृतिभाव होकर टिलोप रूक गया। नकार को णत्व करने पर **कर्मण्+य=कर्मण्य** बना। स्वादिकार्य करके **कर्मण्यः** सिद्ध हुआ।

११३६. **सभाया यः**। सभायाः पञ्चम्यन्तं, यः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तत्र साधुः** का

अनुवर्तन और **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त सभा प्रातिपदिक से 'साधु' अर्थात् निपुण, कुशल, अच्छा आदि अर्थ में य प्रत्यय होता है।

सभ्यः। सभा में प्रवीण या योग्य। **सभायां साधुः** लौकिक विग्रह और **सभा ङि** अलौकिक विग्रह है। **सभाया यः** से **य** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके भसंज्ञक आकार का लोप करने पर **सभ्+य=सभ्य** बना। सु, उसको रुत्व और विसर्ग करने पर **सभ्यः** सिद्ध हुआ।

परीक्षा

इस प्रकरण के सारे सूत्रों एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालते हुए दस प्रयोगों की सिद्धि दिखाइये।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का यदधिकार-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ छयतोरधिकार:

छस्याधिकारसूत्रम्

११३७. प्राक्क्रीताच्छः ५।१।१॥

तेन क्रीतमित्यत: प्राक् छोऽधिक्रियते।

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११३८. उगवादिभ्यो यत् ५।१।२॥

प्राक्क्रीतादित्येव। उवर्णान्ताद् गवादिभ्यश्च यत् स्यात्। छस्यापवाद:। शङ्कवे हितं शङ्कव्यं दारु। गव्यम्।

गणसूत्रम्- **नाभि नभं च।** नभ्योऽक्ष:। नभ्यमञ्जनम्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब हित अर्थ में होने वाले छ और यत् प्रत्ययों का प्रकरण प्रारम्भ करते हैं। इस प्रकरण में **प्राक्क्रीताच्छः** से छः का अधिकार चलता है और **तस्मै हितम्** आदि सूत्रों से छ और **उगवादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय होने के कारण यह प्रकरण **छ** और **यत्** दो ही प्रत्ययों का प्रकरण है। अत एव इसे **छयतोरधिकार** कहते हैं।

११३७- **प्राक्क्रीताच्छः**। प्राक् अव्ययपदं, क्रीतात् पञ्चम्यन्तं, छः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

'तेन क्रीतम्' इस सूत्र से पहले तक 'छ' प्रत्यय का अधिकार रहता है।

तद्धितप्रकरण में प्रारम्भ से ही **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल ही रहा है। अतः स्वभावतः इस प्रकरण में भी रहेगा। **छकार** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **ईय्** आदेश होकर **ईय** बन जाता है।

११३८- **उगवादिभ्यो यत्**। गो आदिर्येषां ते गवादयः। उश्च गवादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्व उगवादयस्तेभ्यः। उगवादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

उवर्णान्त प्रातिपदिक से तथा गवादिगणपठित प्रातिपदिकों से परे प्राक्क्रीतीय अर्थों में तद्धितसंज्ञक यत् प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है। इस प्रकरण के सभी सूत्रों में **छ** का ही

छ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११३९. तस्मै हितम् ५।१।५॥

वत्सेभ्यो हितम्- वत्सीयो गोधुक्।

....

अधिकार है, अतः छ प्रत्यय की प्राप्ति होती है किन्तु **उगवादिभ्यो यत्** इस विशेष सूत्र से बाधित हो जाने से उवर्णान्त और गवादिगणीय शब्दों से तो यत् ही होगा।

शङ्कव्यं दारु। कीली, खूँटी के लिए उपयुक्त लकड़ी। **शङ्कवे हितम्** लौकिक विग्रह और **शङ्कु ङे** अलौकिक विग्रह है। **तस्मै हितम्** से **छ** प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर के **उगवादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्ध तकार की इत्संज्ञा करके लोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शङ्कु+य** बना। णित्, ञित्, कित् आदि न होने के कारण वृद्धि का प्रसंग नहीं है और इकार या अकार के अन्त में न होने के कारण भसंज्ञक टिलोप का भी प्रसंग नहीं है। अतः **ओर्गुणः** से उकार को गुण होकर ओकार बन जाता है, जिससे **शङ्को+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से **अव्** आदेश होकर वर्णसम्मेलन करने पर **शङ्कव्य** बनता है। स्वादि कार्य करने पर **शङ्कव्यम्** सिद्ध होता है।

गव्यम्। गायों के लिए हितकारी घास, चारा आदि। **गोभ्यो हितम्** लौकिक विग्रह और **गो भ्यस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्मै हितम्** से **छ** प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर **उगवादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्ध तकार की इत्संज्ञा और लोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गो+य** बना। णित्, ञित्, कित् आदि न होने के कारण वृद्धि का प्रसंग नहीं है और इकार या अकार के अन्त में न होने के कारण टिलोप का भी प्रसंग नहीं है। **वान्तो यि प्रत्यये** से **अव्** आदेश होकर वर्णसम्मेलन करने पर **गव्य** बनता है। स्वादि कार्य करने पर **गव्यम्** सिद्ध होता है।

नाभि नभं च। यह गणसूत्र है। **यत् प्रत्यय करते समय 'नाभि' के स्थान पर 'नभ' आदेश करना चाहिए।**

नभ्योऽक्षः। रथचक्र की नाभि के लिए हितकर अर्थात् उपयुक्त चक्रदण्ड। **नाभये हितम्** लौकिक विग्रह और **नाभि ङे** अलौकिक विग्रह है। **तस्मै हितम्** से **छ** प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर **उगवादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय, और **नाभि नभं च** से **नाभि** के स्थान पर **नभ** आदेश करने पर **नभ ङे य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नभ+य** बना। णित्, ञित्, कित् आदि न होने के कारण वृद्धि का प्रसंग नहीं है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **नभ्य** बनता है। स्वादि कार्य करने पर **नभ्यः** सिद्ध होता है। यदि **अञ्जन** आदि नपुंसक शब्द विशेष्य हो तो **नभ्यम्** ऐसा नपुंसक ही होगा।

११३९- तस्मै हितम्। तस्मै चतुर्थ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, हितं प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

चतुर्थ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से उसके लिए हितकर अर्थ में 'छ' प्रत्यय होता है।

स्मरण रहे कि छ के स्थान ईय् आदेश होता है।

वत्सीयः (गोधुक्)। बछड़ों के लिए हितकारी गोदोहोन। **वत्सेभ्यः हितम्**

छ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११४०. शरीरावयवाद्यत् ५।१।६॥

दन्त्यम्। कण्ठ्यम्। नस्यम्।

ख-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११४१. आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः ५।१।९॥

प्रकृतिभावार्थं विधिसूत्रम्

११४२. आत्माध्वानौ खे ६।४।१६९॥

एतौ खे प्रकृत्या स्तः।

आत्मने हितम् आत्मनीनम्। विश्वजनीनम्। मातृभोगीणः।

इति छयतोरवधिः॥५२॥ (प्राक्क्रीतीयाः)

लौकिक विग्रह और **वत्स भ्यस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्मै हितम्** से छ प्रत्यय, ईय आदेश करके भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन, सु आदि कार्य करने पर **वत्सीयः** सिद्ध होता है।

११४०- शरीरावयवाद्यत्। शरीरस्यावयवः शरीरावयवस्तस्मात्। शरीरावयवात् पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तस्मै हितम्** यह सूत्र अनुवृत्त होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

शरीर के अवयववाचक चतुर्थ्यन्त प्रातिपदिक से हितकर अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है और यकार के परे होने पर प्रकृति की भसंज्ञा होती है, अतः पूर्व के इकार-अकार का लोप होता है।

दन्त्यम्। दाँतों के लिए हितकारी मंजन आदि। **दन्तेभ्यः हितम्** लौकिक विग्रह और **दन्त भ्यस्** अलौकिक विग्रह है। **शरीरावयवाद्यत्** से यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन, सु आदि कार्य करने पर **दन्त्यम्** सिद्ध होता है।

कण्ठ्यम्। कण्ठ के लिए हितकारी लेप आदि। **कण्ठाय हितम्** लौकिक विग्रह और **कण्ठ ङे** अलौकिक विग्रह है। **शरीरावयवाद्यत्** से यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अकार का लोप, वर्णसम्मेलन, सु आदि कार्य करने पर **कण्ठ्यम्** सिद्ध होता है।

नस्यम्। नाक के लिए हितकारी। **नासिकायै हितम्** लौकिक विग्रह और **नासिका ङे** अलौकिक विग्रह है। **शरीरावयवाद्यत्** से यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **पद्दन्नोमास्हृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु** से नासिका के स्थान पर नस् आदेश होकर **नस्+य** बना। वर्णसम्मेलन, सु आदि कार्य करने पर **नस्यम्** सिद्ध होता है।

११४१- आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः। विश्वे जनाः- विश्वजनाः(कर्मधारयः) भोगः उत्तरपदं यस्य स भोगोत्तरपदः। आत्मा च विश्वजनाश्च भोगोत्तरपदञ्च तेषां समाहारद्वन्द्वः- आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदम्, तस्मात्। आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् पञ्चम्यन्तं, खः प्रथमान्तं,

द्विपदं सूत्रम्। **तस्मै हितम्** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **तद्धिताः** का अधिकार आ ही रहा है।

आत्मन्, विश्वजन शब्द तथा भोग उत्तरपद वाले शब्दों से 'हित' अर्थ में ख प्रत्यय होता है।

ख् के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **ईन्** आदेश होकर **ईन** बन जाता है।

११४२- आत्माध्वानौ खे। आत्मा च अध्वा च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्व आत्माध्वानौ। आत्माध्वानौ प्रथमान्तं, खे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रकृत्यैकाच्** से **प्रकृत्या** की अनुवृत्ति आती है। **ख प्रत्यय के परे रहते आत्मन् और अध्वन् शब्द को प्रकृतिभाव होता है।**

नस्तद्धिते से प्राप्त टिलोप के निषेध के लिए प्रकृतिभाव किया जा रहा है।

आत्मनीनम्। अपने लिए हितकारी। **आत्मने हितम्** लौकिक विग्रह और **आत्मन् ङे** अलौकिक विग्रह है। **आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः** से ख प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **आत्मन्+ख** बना। **खकार** के स्थान पर **ईन्** आदेश होकर **आत्मन्+ईन** बना है। अब **नस्तद्धिते** से टिसंज्ञक **अन्** का लोप प्राप्त था, **आत्माध्वानौ खे** से प्रकृतिभाव हो जाने से वैसे ही रह गया अर्थात् उसका लोप नहीं हुआ। इस तरह **आत्मनीन** यह प्रातिपदिक बना। स्वादिकार्य करने पर **आत्मनीनम्** सिद्ध हो जाता है।

विश्वजनीनम्। सबों के लिए हितकारी। **विश्वजनेभ्यो हितम्** लौकिक विग्रह और **विश्वजन भ्यस्** अलौकिक विग्रह है। **आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः** से ख प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विश्वजन+ख** बना। **खकार** के स्थान पर **ईन्** आदेश होकर **विश्वजन+ईन** बना है। **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन और स्वादिकार्य करके **विश्वजनीनम्** सिद्ध हो जाता है।

मातृभोगीणम्। माता के शरीर के लिए हितकारी आहार आदि। **मातृभोगाय हितम्** लौकिक विग्रह और **मातृभोग ङे** अलौकिक विग्रह है। **आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः** से **ख** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मातृभोग+ख** बना। **खकार** के स्थान पर **ईन्** आदेश होकर **मातृभोग+ईन** बना है। **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन और **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व होने पर **मातृभोगीण** बना। स्वादिकार्य करके **मातृभोगीणः** सिद्ध हुआ।

परीक्षा

इस प्रकरण के दोनों सूत्रों एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालते हुए किन्हीं पाँच प्रयोंगों की सिद्धि दिखाइये।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या
छयतोरधिकार-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ ठञधिकारः

ठञोऽधिकारसूत्रम्

११४३. प्राग्वतेष्ठञ् ५।१।१८।।

तेन तुल्यमिति वतिं वक्ष्यति, ततः प्राक् ठञधिक्रियते।

ठञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११४४. तेन क्रीतम् ५।१।३७।।

सप्तत्या क्रीतम् साप्ततिकम्। प्रास्थिकम्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब ठञ् का अधिकार प्रारम्भ होता है। **प्राग्वतेष्ठञ्** से **तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः** तक ठञ् का अधिकार है। उसके अन्दर अण्, अञ् आदि भी आते हैं। **तद्धिताः**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **प्रत्ययः**, **परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है। अतः ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से परे भी किये जाते ही हैं।

११४३- **प्राग्वतेष्ठञ्**। प्राक् अव्ययपदं, वतेः पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' से पहले ठञ् का अधिकार है।

ञकार इत्संज्ञक है। ञित् होने से आदिवृद्धि हो सकेगी। ठ के स्थान पर **ठस्येकः** से इक आदेश होता है।

११४४- **तेन क्रीतम्**। तेन तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, क्रीतं प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **प्राग्वतेष्ठञ्** से ठञ् और **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

'उससे खरीदा हुआ' अर्थ में तृतीयान्त प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होता है।

साप्ततिकम्। सत्तर रूपये से खरीदी गई वस्तु। **सप्तत्या क्रीतम्** लौकिक विग्रह और **सप्तति टा** अलौकिक विग्रह है। **तेन क्रीतम्** से ठञ्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदि‌कसंज्ञा, सुप् का लुक्, **ठस्येकः** से इक आदेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप, **साप्तत्+इक=साप्ततिक** बना। स्वादिकार्य करके **साप्ततिकम्** सिद्ध हुआ।

प्रास्थिकम्। प्रस्थ नामक प्राचीन काल की नापने की वस्तु, उससे खरीदी गई वस्तु। **प्रस्थेन क्रीतम्** लौकिक विग्रह और **प्रस्थ टा** अलौकिक विग्रह है। **तेन क्रीतम्** से ठञ्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **ठस्येकः** से इक आदेश, आदिवृद्धि,

अणञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११४५. सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ ५।१।४१।।

अणञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११४६. तस्येश्वरः ५।१।४२।।

सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ स्तः।

अनुशतिकादीनाञ्च। सर्वभूमेरीश्वरः सार्वभौमः। पार्थिवः।

....

भसंज्ञक अकार का लोप, **प्रास्थ्+इक=प्रास्थिक**, वर्णसम्मेलन और स्वादिकार्य करके **प्रास्थिकम्** सिद्ध हुआ।

११४५- सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ। सर्वा चासौ भूमिः सर्वभूमिः। सर्वभूमिश्च पृथिवी च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः सर्वभूमिपृथिव्यौ, ताभ्याम्। अण् च अञ् च अणञौ। सर्वभूमिपृथिवीभ्यां पञ्चम्यन्तम्, अणञौ प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्।

सर्वभूमि और पृथिवी शब्दों से प्राक्क्रीतीय अर्थों में क्रमशः अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं।

क्रमशः **णकार** और **ञकार** इत्संज्ञक हैं, दोनों में **अ** ही शेष रहता है। **अण्** प्रत्ययान्त अन्तोदात्त और **अञ्** प्रत्ययान्त आद्युदात्त होता है। यही अन्तर है दोनों में। **ञित् णित्** का मुख्य प्रयोजन तो आदिवृद्धि है। इन दोनों शब्दों से **उस का मालिक** इस अर्थ में भी ये ही प्रत्यय होते हैं। इसके लिए अग्रिम सूत्र है।

११४६- तस्येश्वरः। तस्य षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकम्, ईश्वरः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

सर्वभूमि और पृथिवी इन षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकों से से 'ईश्वर' अर्थात् स्वामी अर्थ में अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं।

सर्वभूमि और पृथिवी ये दो प्रकृति हैं और अण् और अञ् ये दो प्रत्यय हैं। यथासंख्य होने से सर्वभूमि से अण् और पृथिवी से अञ् होते हैं। णकार और ञकार इत्संज्ञक हैं तो दोनों में अकार ही शेष बचता है। णित् का फल स्वर में अन्तोदात्त औ ञित् का फल आदि उदात्त करना है। यह बात पहले भी बताई जा चुकी है।

सार्वभौमः। सम्पूर्ण भूमि का स्वामी। **सर्वभूमेः ईश्वरः** लौकिक विग्रह और **सर्वभूमि ङस्** यह अलौकिक विग्रह है। **तस्येश्वरः** से अण्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् की वृद्धि प्राप्त थी, उसे बाधकर **अनुशतिकादीनाञ्च** से सर्व और भूमि दोनों पदों में विद्यमान आदि अच् अकार और ऊकार की वृद्धि होकर क्रमशः **सार्व+भौम=सार्वभौम+अ** बना। भसंज्ञक मकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ- **सार्वभौम्+अ=सार्वभौम** बना। सु, रुत्वविसर्ग होकर **सार्वभौमः** सिद्ध हुआ।

पार्थिवः। पृथिवी का स्वामी। **पृथिव्याः ईश्वरः** लौकिक विग्रह और **पृथिवी ङस्** यह अलौकिक विग्रह है। **तस्येश्वरः** से अण्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, एक ही अच् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् की वृद्धि करने पर ऋकार के स्थान

निपातनार्थं विधिसूत्रम्

११४७. पङ्क्ति-विंशति-त्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्य-शीति-नवति-शतम् ५।१।५९॥

एते रूढशब्दा निपात्यन्ते।

ठञादिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११४८. तदर्हति ५।१।६३॥

'लब्धुं योग्यो भवति' इत्यर्थे द्वितीयान्तात् ठञादयः स्युः।

श्वेतच्छत्रमर्हति श्वैतच्छत्रिकः।

....

पर आर्, भसंज्ञक ईकार का लोप, **पार्थिव्+अ=पार्थिव** बना। सु, रुत्वविसर्ग होकर **पार्थिवः** सिद्ध हुआ।

११४७- पङ्क्ति-विंशति-त्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम्। पङ्क्तिश्च विंशतिश्च त्रिंशच्च चत्वारिंशच्च पञ्चाशच्च षष्टिश्च सप्ततिश्च अशीतिश्च नवतिश्च शतञ्च तेषां समाहारद्वन्द्वः पङ्क्ति-विंशति-त्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम्। समाहारद्वन्द्वात्मकं प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्।

पङ्क्ति, विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति और शतम् इन रूढ-शब्दों का निपातन होता है।

पाणिनि जी ने इन शब्दों में प्रकृति और प्रत्यय की कल्पना न करके सीधे ही उच्चारण कर इन शब्दों का अनुशासन किया है। प्रकृति और प्रत्यय न दिखाकर सीधे शब्दों को दिखाने को ही **निपातन** कहते हैं। अब इसमें हम चाहें तो अनुरूप प्रकृति और प्रत्यय लगा सकते हैं अथवा पाणिनि जी द्वारा ये दस शब्द तद्धितान्त के रूप में स्वयं सिद्ध हैं, इनकी प्रक्रिया के चक्कर में न पड़कर इनको साधु अर्थात् शुद्ध मानकर प्रक्रिया के विना ही काम चलाने में भी कोई आपत्ति नहीं है। यहाँ **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में हम भी प्रक्रिया की ओर न जाकर उपर्युक्त दस शब्दों को तद्धितसिद्ध मान लेते हैं और केवल सु आदि प्रत्ययों की ही प्रक्रिया करते हैं। जैसे पाणिनि जी द्वारा निपातित **पङ्क्ति, विंशति, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति** से सु रुत्वविसर्ग करके **पङ्क्तिः, विंशतिः, षष्टिः, सप्ततिः, अशीतिः, नवतिः** बन गये। **शत** से सु, अम्, **शतम्**। शेष **त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्** से सु और हलन्त होने से **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से सु का लोप करके **त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्** ही सिद्ध होते हैं।

११४८- तदर्हति। तद् द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकम्, अर्हति क्रियापदं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

यह व्यक्ति 'उस वस्तु को प्राप्त करने योग्य है' इस अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिकों से ठञ् आदि प्रत्यय होते हैं।

श्वैतच्छत्रिकः। सफेद छत्री प्राप्त करने योग्य। प्राचीन काल में योग्य विद्वान् और राजा आदि के सम्मान में छत्र, चँवर आदि प्रदान करते थे और आज धर्माचार्यों में भी यह

यत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११४९. दण्डादिभ्यो यत् ५।१।६६॥

एभ्यो यत् स्यात्। दण्डमर्हति दण्ड्यः। अर्घ्यः। वध्यः।

ठञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११५०. तेन निर्वृत्तम् ५।१।७९॥

अह्ना निर्वृत्तम्- आह्निकम्।

इति ठञोऽवधिः॥५३॥ (प्राग्वतीयाः)

....

प्रथा है। **श्वेतच्छत्रम् अर्हति** लौकिक विग्रह और **श्वेतच्छत्र अम्** यह अलौकिक विग्रह है। **तदर्हति** से ठञ्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **ठस्येकः** से इक आदेश, **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् की वृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **श्वैतच्छत्र्+इक=श्वैतच्छत्रिक** बना। सु, रुत्वविसर्ग होकर **श्वैतच्छत्रिकः** सिद्ध हुआ।

चामरिकः। चँवर प्राप्त करने योग्य। **चमरम् अर्हति** लौकिक विग्रह और **चमर अम्** यह अलौकिक विग्रह है। **तदर्हति** से ठञ्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **ठस्येकः** से इक आदेश, **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् की वृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **चामर्+इक=चामरिक** बना। सु, रुत्वविसर्ग होकर **चामरिकः** सिद्ध हुआ।

११४९- दण्डादिभ्यो यत्। दण्डः आदिर्येषां ते दण्डादयस्तेभ्यः। दण्डादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तदर्हति** पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

दण्ड आदि गणपठित द्वितीयान्त प्रातिपदिक से तदर्हति अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

दण्ड्यः। दण्ड पाने योग्य। **दण्डम् अर्हति** लौकिक विग्रह और **दण्ड अम्** अलौकिक विग्रह है। **दण्डादिभ्यो यत्** से यत्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **दण्ड्+य=दण्ड्य** बना। उसके बाद रुत्व और विसर्ग करके **दण्ड्यः** सिद्ध हुआ।

अर्घ्यः। अर्घ पाने योग्य। **अर्घम् अर्हति** लौकिक विग्रह और **अर्घ अम्** अलौकिक विग्रह है। **दण्डादिभ्यो यत्** से यत्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **अर्घ्+य=अर्घ्य** बना। उसके बाद रुत्व और विसर्ग करके **अर्घ्यः** सिद्ध हुआ।

वध्यः। वध करने योग्य। **वधम् अर्हति** लौकिक विग्रह और **वध अम्** अलौकिक विग्रह है। **दण्डादिभ्यो यत्** से यत्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **वध्+य=वध्य** बना। उसके बाद रुत्व और विसर्ग करके **वध्यः** सिद्ध हुआ।

११५०- तेन निर्वृत्तम्। तेन तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, निर्वृत्तं प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

तृतीयान्त कालवाचक प्रातिपदिक से 'निर्वृत्त' अर्थात् बनाया गया, सम्पन्न किया गया आदि अर्थों में ठञ् प्रत्यय होता है।

आह्निकम्। एक दिन में बनाया गया या एक दिन में पूरा किया गया। **अह्ना निर्वृत्तम्** लौकिक विग्रह और **अहन् टा** अलौकिक विग्रह है। **तेन निर्वृत्तम्** से ठञ्, अनुबन्ध का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् और ठ के स्थान पर **इक** आदेश करके **अहन्+इक** बना। आदिवृद्धि करके **अल्लोपोऽनः** से भसंज्ञक **अन्** के अकार का लोप करके **आह्न्+इक=आह्निक** बना और स्वादिकार्य करके **आह्निकम्** सिद्ध हुआ। इसी तरह **मासिकम्, सांवत्सरिकम्, साप्ताहिकम्, पाक्षिकम्** आदि भी बनाये जा सकते हैं।

परीक्षा

इस प्रकरण के सूत्रों एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालते हुए किन्हीं पाँच प्रयोंगों की सिद्धि दिखाइये।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का
ठञधिकार-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ त्वतलोरधिकारः

वति-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११५१. तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ५।१।११५॥

ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवद् अधीते।

क्रिया चेदिति किम्? गुणतुल्ये मा भूत्। पुत्रेण तुल्यः स्थूलः।

वति-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११५२. तत्र तस्येव ५।१।११६॥

मथुरायामिव मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकाराः। चैत्रस्येव चैत्रवन्मैत्रस्य गावः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब त्व और तल् प्रत्यय के अधिकार वाला प्रकरण प्रारम्भ होता है। इसके अन्तर्गत तुल्य और सदृश अर्थ में **वति** और भाव अर्थ में **त्व** आदि प्रत्ययों का विधान है।

११५१- तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः। तेन तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, तुल्यं प्रथमान्तं, क्रिया प्रथमान्तं, चेत् अव्ययपदं, वतिः प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

तृतीयान्त प्रातिपदिक से 'तुल्य' अर्थ में वति प्रत्यय होता है, यदि तुल्यता क्रिया को लेकर हो तो।

वति में इकार इत्संज्ञक है, **वत्** शेष रहता है। **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** इस सूत्र के अनुसार वतिप्रत्ययान्त को अव्यय में माना गया है। अतः इस प्रत्यय के बाद सिद्ध हुए शब्द अव्यय कहलाते हैं जिससे की गई विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होता है।

ब्राह्मणवत्। यह क्षत्रिय ब्राह्मण के समान (पढ़ता है)। **ब्राह्मणेन तुल्यं** लौकिक विग्रह और **ब्राह्मण टा** अलौकिक विग्रह है। **तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः** से वतिप्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ब्राह्मणवत्** बना। अव्यय होने के कारण आई हुई विभक्ति का लुक्, **ब्राह्मणवत्।**

११५२- तत्र तस्येव। तत्र सप्तम्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, तस्य षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकम्, इव अव्ययपदं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः** से **वति** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

त्व-तल्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११५३. तस्य भावस्त्वतलौ ५।१।११९॥

प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः। गोर्भावो गोत्वं, गोता। त्वान्तं क्लीबम्।

त्वतलोरधिकारार्थं सूत्रम्

११५४. आ च त्वात् ५।१।१२०॥

ब्रह्मणस्त्व इत्यतः प्राक् त्वतलावधिक्रियेते। अपवादैः सह समावेशार्थमिदम्। चकारो नञ्स्नञ्भ्यामपि समावेशार्थः। स्त्रिया भावः स्त्रैणम्। स्त्रीत्वम्। स्त्रीता। पौंस्नम्। पुंस्त्वम्। पुंस्ता।

....

सप्तम्यन्त और षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से सदृश, समान आदि अर्थों में वतिप्रत्यय होता है।

उसमें सदृश या उसके सदृश।

मथुरावत्। मथुरा के सदृश अर्थात् **मथुरायाम् इव अयोध्यायां प्राकाराः** मथुरा की तरह हैं अयोध्या के महल, परकोटे। **मथुरायाम् इव** लौकिक विग्रह और **मथुरा ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र तस्येव** से वतिप्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **मथुरावत्** बना। अव्यय होने के कारण आई हुई विभक्ति का लुक्, **मथुरावत्।**

११५३- तस्य भावस्त्वतलौ। त्वश्च तल् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्त्वतलौ। तस्य षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, भावः प्रथमान्तं, त्वतलौ प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

'उसका भाव' ऐसा अर्थ हो तो षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से त्व और तल् प्रत्यय होते हैं।

प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः। प्रकृति से उत्पन्न होने वाले बोध अर्थात् ज्ञान जो विशेषणतया प्रतीत होता है, उसे यहाँ पर **भाव** कहा गया है। जैसे **गो** प्रकृति है और गो में गो का जो गोत्व रहता है, वह ही **भाव** है अर्थात् गोत्व से युक्त होने पर ही उसे गाय कहा जाता है। गो में गोत्व विशेषण के रूप में प्रतीत होता है, अतः वह **भाव** है।

तल् में लकार इत्संज्ञक है। त्व प्रत्यय होने पर शब्द नित्य नपुंसक लिङ्ग वाला और तल् प्रत्यय होने पर शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग वाला होता है।

गोत्वं, गोता। गौ का भाव। **गोर्भावः** लौकिक विग्रह और **गो ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य भावस्त्वतलौ** से त्वप्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गोत्व** बना। सु विभक्ति, त्वप्रत्ययान्त नपुंसक होता है, अतः सु के स्थान पर अम् आदेश, पूर्वरूप आदि होकर **गोत्वम्** सिद्ध हुआ। तल् होने के पक्ष में लकार की इत्संज्ञा होने के बाद पूर्ववत् कार्य होकर तलन्त स्त्रीलिङ्गी होने के कारण **रमा** की तरह **गोता** सिद्ध होता है।

घटत्वं, घटता। घड़े का भाव। **घटस्य भावः** लौकिक विग्रह और **घट ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य भावस्त्वतलौ** से त्वप्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **घटत्व** बना। त्वप्रत्ययान्त नपुंसक होता है, अतः सु के स्थान पर अम् आदेश, पूर्वरूप आदि होकर **घटत्वम्** सिद्ध हुआ। तल् होने के पक्ष में लकार की इत्संज्ञा

इमनिच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११५५. पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ५।१।१२२॥

वा-वचनमणादिसमावेशार्थम्।

....

होने के बाद पूर्ववत् कार्य होकर तलन्त स्त्रीलिङ्गी होने के कारण रमा की तरह **घटता** सिद्ध होता है।

अब इसी तरह से भाव अर्थ में त्व और तल् प्रत्यय लगाकर अनेक प्रयोग बना लें। जैसे- सम से **समत्व-समता**, पात्र से **पात्रत्व-पात्रता**, विद्वत् से **विद्वत्त्व-विद्वत्ता**, प्रभु से **प्रभुत्व-प्रभुता**, पटु से **पटुत्व-पटुता** आदि।

११५४- आ च त्वात्। आ अव्ययपदं, च अव्ययपदं, त्वात् पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होकर आता है। **आ** मर्यादायामव्ययम्।

'ब्रह्मणस्त्वः' से पहले 'त्व' और 'तल्' का अधिकार किया जाता है।

अष्टाध्यायी में ब्रह्मणस्त्वः५।१।१३६॥ यह सूत्र आगे पढ़ा गया है। उसके पहले तक **त्व** और **तल्** इन दो प्रत्ययों के अधिकार के लिए यह सूत्र पठित है।

अब इसमें यह प्रश्न उठता है कि यह काम तो **तस्य भावस्त्वतलौ** से भी हो सकता है? तो उत्तर में कहा **अपवादैः सह समावेशार्थमिदम्।** अर्थात् त्व और तल् प्रत्यय के बाधक इमनिच् आदि प्रत्यय जब हों तो इमनिच् आदि के साथ-साथ त्व, तल् भी हों, इसलिए अधिकार की आवश्यकता है।

अब दूसरा प्रश्न करते हैं कि **आ च त्वात्** में **चकार** किस लिए है? इसका उत्तर इस तरह से दिया है- **चकारो नञ्स्नञ्भ्यामपि समावेशार्थः।** अर्थात् **चकार** से **समुच्चय** का अर्थज्ञान होता है। यहाँ पर **चकार** नञ्, स्नञ् प्रत्ययों का भी समावेश करने के लिए है। जैसे कि लोक में **तुम भी आओ** इस वाक्य के प्रयोग से यह ज्ञात होता है कि एक और किसी को भी आना है। इसी तरह इस सूत्र में पठित **चकार से त्व, तल्** के साथ नञ्, स्नञ् का भी बोध होता है। तात्पर्य यह हुआ कि त्व, तल् के बाधक **इमनिच्** आदि प्रत्ययों के साथ-साथ **त्व, तल्, नञ्, स्नञ्** ये प्रत्यय भी बारी-बारी से होंगे।

स्त्रैणः। स्त्री का भाव। **स्त्रिया भावः** लौकिक विग्रह है। **स्त्री ङस्** में **आ च त्वात्** के अधिकार में पठित **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्** से **नञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्त्री+न** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर ईकार के स्थान पर ऐकार हो गया, **स्त्रै+न** बना। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से प्रत्यय के नकार के स्थान पर णकार आदेश होकर **स्त्रैण** बना और विभक्तिकार्य करके **स्त्रैणम्** सिद्ध हुआ। त्व प्रत्यय होने के पक्ष में **स्त्रीत्वम्** और **तल्** प्रत्यय होने के पक्ष में **तलन्तं स्त्रियाम्** के नियम से **तल्** प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग में होता है। अतः **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** प्रत्यय होकर **स्त्रीता** बन जाता है।

पौंस्नः। पुरुष का भाव। **पुंसो भावः** लौकिक विग्रह है। **पुस् ङस्** में **आ च त्वात्** के अधिकार में पठित **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् से स्नञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पुंस्+स्न** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर उकार के स्थान पर औकार हो गया, **पौंस्+स्न** बना। **विभक्ति के लुक्**

रेफादेशविधायकं विधिसूत्रम्

११५६. र ऋतो हलादेर्लघोः ६।४।१६१॥

हलादेर्लघोर्ऋकारस्य रः स्यादिष्ठेयस्सु परतः।

पृथुमृदुभृशकृशदृढपरिवृढानामेव रत्वम्।

टिलोपविधायकं विधिसूत्रम्

११५७. टेः ६।४।१५५॥

भस्य टेर्लोप इष्ठेमेयस्सु। पृथोर्भावः प्रथिमा-

....

हो जाने पर भी पूर्व विभक्ति को लेकर पदत्व मान कर संयोगान्त **पौंस्** के सकार का लोप करके **पौंस्न** बना और विभक्तिकार्य करके **पौंस्नम्** सिद्ध हुआ। **त्व** प्रत्यय होने के पक्ष में **पुंस्त्वम्** और **तल्** होने के पक्ष में **पुंस्ता** बन जाते हैं।

११५५- पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा। पृथु आदिर्येषां ते पृथ्वादयस्तेभ्यः। पृथ्वादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, इमनिच् प्रथमान्तं, वा अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य** और **भावः** की अनुवृत्ति आती है एवं **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थाना प्रथमाद्वा** का पूर्ववत् अधिकार है।

षष्ठ्यन्त समर्थ पृथु आदि प्रातिपदिकों से भाव अर्थ में इमनिच् प्रत्यय होता है।

इस सूत्र में पठित **वा** शब्द से पक्ष में **अण्** आदि प्रत्ययों का भी समावेश किया जाता है। अतः **इमनिच्** और **अण्** आदि दोनों प्रत्यय होंगे। **इमनिच्** में **अन्त्य चकार** और उससे पूर्ववर्ती **इकार** इत्संज्ञक हैं, **इमन्** बचता है।

११५६- र ऋतो हलादेर्लघोः। रः प्रथमान्तं, ऋतः षष्ठ्यन्तं, हलादेः षष्ठ्यन्तं, लघोः षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **तुरिष्ठेमेयस्सु** से **इष्ठेमेयस्सु** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

हलादि अङ्ग के लघु ऋकार के स्थान पर र आदेश होता है इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय के परे होने पर।

र यह आदेश अकार सहित रेफ वाला है, केवल **र्** नहीं है। **इष्ठेमेयस्सु** यह सप्तम्यन्त पद है। इसमें गृहीत प्रत्यय अनुबन्धविनिर्मुक्त हैं। **इष्ठन्** में **इष्ठ**, **इमनिच्** से **इमन्** और **ईयसुन्** से **इयस्** बचा हुआ होता है। **इष्ठश्च इमन् च ईयस् च** में समास करके विभक्ति का लुक् करने के बाद **इमन्** के नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप करके **इम** ही बचता है। इस तरह **इष्ठ+इम+ईयस्** बना। दोनों जगह गुण करके **इष्ठेमेयस्** बना। इसके सप्तमी बहुवचन में **इष्ठेमेयस्सु** बनता है। उसकी अनुवृत्ति इस सूत्र में की गई है।

पृथ्वादिगण में अनेक शब्द आते हैं, उनमें से **पृथुमृदुभृशकृशदृढपरिवृढानामेव रत्वम्** अर्थात् **पृथु, मृदु, भृश, कृश, दृढ** और **परिवृढ** के ऋकार को ही र आदेश हो, अन्य पृथ्वादि शब्दों को न हो।

११५७- टेः। टेः षष्ठ्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **भस्य** का अधिकार है और **अल्लोपोऽनः** से

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११५८. इगन्ताच्च लघुपूर्वात् ५।१।१३१॥

इगन्ताल्लघुपूर्वात् प्रातिपदिकाद्भावेऽण् प्रत्ययः। पार्थवम्। म्रदिमा, मार्दवम्।

....

लोपः की तथा **तुरिष्ठेमेयस्सु** से **इष्ठेमेयस्सु** की अनुवृत्ति आती है।

इष्ठन्, इमनिच् और इयसुन् प्रत्यय के परे होने पर भसंज्ञक टि का लोप होता है।

इकार या **अकार** के अन्त में न होने पर **यस्येति च** से लोप प्राप्त नहीं होता, ऐसे शब्दों का टिलोप करने के लिए इसकी आवश्यकता पड़ती है।

११५८- इगन्ताच्च लघुपूर्वात्। इक् अन्तोऽन्तावयवो यस्य तद् इगन्तं, तस्मात्। लघुः पूर्वो यस्य तत् लघुपूर्वम्, तस्मात्। इगन्तात् पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, लघुपूर्वात् पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य, भावः** तथा **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **कर्मणि** एवं **हायनान्तयुवादिभ्योऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

लघुवर्ण जिसके पूर्व में और इक् जिस के अन्त में हो ऐसे षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से भाव और कर्म अर्थों में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

प्रथिमा, पार्थवम्, पृथुत्वम्, पृथुता। विस्तार का भाव, मोटापन, महत्ता। **पृथोर्भावः।** पृथु ङस् में **पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा** से विकल्प से **इमनिच्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पृथु+इमन्** बना। **र ऋतो हलादेर्लघोः** से **पृथु** के **ऋकार** के स्थान पर **र** आदेश होकर **प्+र=प्र, प्रथु+इमन्** बना। **टेः** इस सूत्र से टिसंज्ञक **प्रथु** के उकार का लोप हुआ, **प्रथ्+इमन्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **प्रथिमन्** बना। इससे सु आदि प्रत्ययों के योग में **राजन्** शब्द की तरह उपधा को दीर्घ, हल्ङ्यादिलोप, नकार का लोप करके **प्रथिमा** सिद्ध हो जाता है। इसके आगे के रूप **राजन्** की ही तरह **प्रथिमानौ, प्रथिमानः, प्रथिमानम्, प्रमिमानौ, प्रथिम्नः** आदि चलते हैं। **इमनिच्** प्रत्यय वैकल्पिक है, उसके न होने के पक्ष में **इगन्ताच्च लघुपूर्वात्** से **अण्** प्रत्यय होकर **पृथु+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि होकर **पार्थु+अ** बना। **ओर्गुणः** से गुण होकर ओकार और उसके स्थान पर अव् आदेश होकर **पार्थव** बना और स्वादिकार्य करके **पार्थवम्** सिद्ध हो जाता है। **आ च त्वात्** से **त्व** और **तल्** प्रत्ययों के अधिकृत होने के कारण **त्व** प्रत्यय के योग में **पृथुत्वम्** और **तल्** प्रत्यय के योग में **पृथुता** भी बन जाते हैं। इस तरह से चार रूप वने।

इसी तरह

मृदोर्भावः- म्रदिमा, मार्दवम्, मृदुत्वम्, मृदुता।

लघोर्भावः- लघिमा, लाघवम्, लघुत्वम्, लघुता।

गुरोर्भावः- गरिमा, गौरवम्, गुरुत्वम्, गुरुता।

ऋजोर्भावः- ऋजिमा, आर्जवम्, ऋजुत्वम्, ऋजुता।

अणोर्भावः- अणिमा, आणवम्, अणुत्वम्, अणुता।

ष्यञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११५९. वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च ५।१।१२३॥

चादिमनिच्। शौक्ल्यम्। शुक्लिमा। दार्ढ्यम्। द्रढिमा।

....

महतो भावः- महिमा, महत्त्वम्, महत्ता आदि बनाये जा सकते हैं।

११५९- **वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च**। दृढ आदिर्येषां ते दृढादयः। वर्णाश्च दृढादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो वर्णदृढादयस्तेभ्यः। वर्णदृढादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ष्यञ् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य भावः** की अनुवृत्ति आती है और सूत्र में पठित च से पिछले सूत्र **पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा** के **इमनिच्** का ग्रहण हो जाता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है ही।

वर्ण अर्थात् रंगवाचक एवं दृढादिगणपठित षष्ठ्यन्तप्रातिपदिकों से भाव अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय होता है और इमनिच् प्रत्यय भी होता है।

षः प्रत्ययस्य से **षकार** की इत्संज्ञा होती है। **हलन्त्यम्** से ञकार इत्संज्ञक है। **य** बचता है। **षित्** होने से स्त्रीत्व की विवक्षा में **षिद्गौरादिभ्यश्च** से **ङीष्** होता है। **ञित्** का फल **आदिवृद्धि** है।

शौक्ल्यम्। शुक्लिमा। सफेद का भाव, सफेदी। **शुक्लस्य भावः।** यह **वर्णवाचक** है। **शुक्ल ङस्** में **वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च** से **ष्यञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शुक्ल+य** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके **शौक्ल+य** बना। **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार के लोप के बाद **शौक्ल्+य= शौक्ल्य** बना। अब स्वादिकार्य करके **शौक्ल्यम्** सिद्ध हुआ। **इमनिच्** प्रत्यय होने के पक्ष में **शुक्ल+इमन्** बना है। **टेः** से **टिसंज्ञक अकार** के लोप करने पर **शुक्लिमन्** बना। इससे राजन् शब्द की तरह **शुक्लिमा, शुक्लिमानौ, शुक्लिमानः** आदि रूप बना सकते हैं। **आ च त्वात्** के अधिकार के कारण **त्व, तल्** प्रत्यय भी होंगे। **त्व** के योग में **शुक्लत्वम्** और **तल्** के योग में **शुक्लता** भी बन जाते हैं।

इसी तरह **कृष्णस्य भावः- कार्ष्ण्यम्, कृष्णिमा, कृष्णत्वम्, कृष्णता** आदि सभी वर्णवाचक शब्दों से ये प्रत्यय किये जा सकते हैं।

दार्ढ्यम्। द्रढिमा। दृढ़ता का भाव, दृढ़भाव, दृढ़पन। **दृढस्य भावः।** यह **दृढादिगणपठित** शब्द है। दृढ ङस् में **वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च** से **ष्यञ्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दृढ+य** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके **दार्ढ+य** बना। **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार के लोप के बाद **दार्ढ्+य= दार्ढ्य** बना। अब स्वादिकार्य करके **दार्ढ्यम्** सिद्ध हुआ। **इमनिच्** प्रत्यय होने के पक्ष में **दृढ+इमन्** बना है। **र ऋतो हलादेर्लघोः** से **दृढ** के **ऋकार** के स्थान पर **र** आदेश होकर **द्रढ+इमन्** बना। **टेः** से **टिसंज्ञक अकार** के लोप करने पर **द्रढिमन्** बना। इससे **राजन्** शब्द की तरह **द्रढिमा, द्रढिमानौ, द्रढिमानः** आदि रूप बना सकते हैं। **आ च त्वात्** के अधिकार के कारण **त्व, तल्** प्रत्यय भी होंगे। **त्व** के योग में **दृढत्वम्** और **तल्** के योग में **दृढता** भी बन जाते हैं। इसी तरह **दृढादिगणपठित** सभी शब्दों से उक्त प्रत्यय करके प्रयोग बनाये जा सकते हैं।

ष्यञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११६०. गुणवचन-ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ५।१।१२४॥

चाद्भावे। जडस्य भावः कर्म वा जाड्यम्। मूढस्य भावः कर्म वा मौढ्यम्। ब्राह्मण्यम्। आकृतिगणोऽयम्।

य-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११६१. सख्युर्यः ५।१।१२६॥

सख्युर्भावः कर्म वा सख्यम्।

....

११६०- गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। गुणम् उक्तवन्तः इति गुणवचनाः। ब्राह्मणः आदिर्येषां ते ब्राह्मणादयः। गुणवचनाश्च ब्राह्मणादयश्च तेषामितरेतरयागद्वन्द्वो गुणवचनब्राह्मणादयस्तेभ्यः। गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, कर्मणि सप्तम्यन्तं, चाव्ययपदं त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य, भावः** तथा **वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च** से **ष्यञ्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है ही।

षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक गुणवाचक शब्द या ब्राह्मणादिगणपठित शब्दों से भाव और कर्म अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय होता है।

षकार की **षः प्रत्ययस्य** से इत्संज्ञा होती है तो ञकार **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञक है। य शेष रहता है। ञित् होने के कारण आदिवृद्धि भी होती है। इसके पहले के सूत्रों से भाव अर्थ में ही प्रत्यय हो रहे थे तो इसमें कर्म अर्थ भी जुड़ गया है। ब्राह्मणादि आकृतिगण है।

जाड्यम्। जड़ता का भाव या जड़ का कर्म। **जडस्य भावः कर्म वा** लौकिक विग्रह और **जड ङस्** अलौकिक विग्रह है। **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से ष्यञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **जड+य** बना। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **जाड्+य=जाड्य** बना। सु, अम् और पूर्वरूप करके **जाड्यम्** सिद्ध हुआ।

मौढ्यम्। मूढ़ होने का भाव या मूढ़ का कर्म, मूढ़पन। **मूढस्य भावः कर्म वा** लौकिक विग्रह और **मूढ ङस्** अलौकिक विग्रहं है। **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से ष्यञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मूढ+य** बना। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **मौढ्+य=मौढ्य** बना। सु, अम् और पूर्वरूप करके **मौढ्यम्** सिद्ध हुआ।

ब्राह्मण्यम्। ब्राह्मण का भाव या कर्म। **ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा** लौकिक विग्रह और **ब्राह्मण ङस्** अलौकिक विग्रह है। **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से ष्यञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ब्राह्मण+य** बना। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **ब्राह्मण्+य=ब्राह्मण्य** बना। सु, अम् और पूर्वरूप करके **ब्राह्मण्यम्** सिद्ध हुआ।

इसी तरह **चोरस्य भावः कर्म वा चौर्यम्, निपुणस्य भावः कर्म वा नैपुण्यम्, दीनस्य भावः कर्म वा दैन्यम्, चपलस्य भावः कर्म वा चापल्यम्, विषमस्य भावः कर्म वा वैषम्यम्** आदि बनाये जा सकते हैं।

ढक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११६२. कपिज्ञात्योर्ढक् ५।१।१२७।।

कापेयम्। ज्ञातेयम्।

यक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११६३. पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ५।१।१२८।।

सैनापत्यम्। पौरोहित्यम्।

इति त्वतलोरधिकारः।।५४।।

....

११६१- **सख्युर्यः**। सख्युः पञ्चम्यन्तं, यः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य, भावः** तथा **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है ही।

षष्ठ्यन्त सखि इस प्रातिपदिक से भाव और कर्म अर्थ में य प्रत्यय होता है।

सख्यम्। मित्रभाव, मैत्री, मित्रता या मित्र का कर्म। **सख्युर्भावः कर्म वा** लौकिक विग्रह और **सखि ङस्** अलौकिक विग्रह। **सख्युर्य** से **य** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सखि+य** बना। भसंज्ञक इकार का लोप होने पर **सख्+य=सख्य** बना। सु, अम् और पूर्वरूप करके **सख्यम्** सिद्ध हुआ।

११६२- **कपिज्ञात्योर्ढक्**। कपिश्च ज्ञातिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः कपिज्ञाती, तयोः। कपिज्ञात्योः पञ्चम्यर्थे षष्ठी। ढक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य भावः, गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठ्यन्त कपि और ज्ञाति प्रातिपदिको से ढक् प्रत्यय होता है।

ककार की इत्संज्ञा होने से आदिवृद्धि होती है। **ढ** में केवल **ढ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **एय्** आदेश होकर **एय** बन जाता है।

कापेयम्। कपि=बन्दर का भाव या बन्दर का कर्म। **कपेर्भावः कर्म वा। कपि ङस्** में **कपिज्ञात्योर्ढक्** से **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुब्लुक् करके ढकार के स्थान पर एय् आदेश होकर **कपि+एय** बना है। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करके **कापि+एय** बना। भसंज्ञक इकार का **यस्येति च** से लोप करके **कापेय** बन गया है। इससे स्वादिकार्य करने पर **कापेयम्** सिद्ध हो जाता है।

ज्ञातेयम्। ज्ञाति अर्थात् बन्धु का का भाव, या बन्धु का कर्म। **ज्ञातेर्भावः कर्म वा। ङस्** में **कपिज्ञात्योर्ढक्** से **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् लुक् करके ढकार के स्थान पर एय् आदेश होकर **ज्ञाति+एय** बना है। कित् होने के कारण **पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिः** इस न्याय से वृद्धिवर्ण के स्थान पर भी **किति च** से आदिवृद्धि करके **ज्ञाति+एय** बना। भसंज्ञक इकार का **यस्येति च** से लोप करके **ज्ञातेय** बन गया है। इससे स्वादिकार्य करने पर **ज्ञातेयम्** सिद्ध हो जाता है।

११६३- पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्। पतिः अन्ते येषां पत्यन्तानि, पुरोहितः आदिर्येषां तानि पुरोहितादीनि। पत्यन्तानि च पुरोहितादीनि च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः पत्यन्तपुरोहितादीनि, तेभ्यः। पत्यन्तपुरोहितादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, यक् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य** और **भावः** तथा **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है ही।

पतिशब्द अन्त में हो या पुरोहितादि गण में पठित शब्द हो, ऐसे षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक शब्द से यक् प्रत्यय होता है।

ककार इत्संज्ञक है। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि होती है।

सैनापत्यम्। सेनापति का भाव या कर्म। पति-शब्द अन्त में है। **सेनापतेः भावः कर्म वा** लौकिक विग्रह और **सेनापति ङस्** अलौकिक विग्रह। **पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्** से यक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सेनापति+य** बना। आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार के लोप होने पर **सैनापत्+य=सैनापत्य** बना। सु, अम् और पूर्वरूप करके **सैनापत्यम्** सिद्ध हुआ।

पौरोहित्यम्। पुरोहित का भाव या कर्म। पुरोहितादि गणपठित शब्द है। **पुरोहितस्य भावः कर्म वा** लौकिक विग्रह और **पुरोहित ङस्** अलौकिक विग्रह। **पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्** से यक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पुरोहित+य** बना। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार के लोप होने पर **पुरोहित्+य=पौरोहित्य** बना। सु, अम् और पूर्वरूप करके **पौरोहित्यम्** सिद्ध हुआ।

अब हम लोग तद्धितप्रकरण के अन्त की ओर हैं। कुछ ही दिनों में **लघुसिद्धान्तकौमुदी** का अध्ययन पूर्ण होने वाला है। इसके बाद **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** प्रारम्भ करेंगे। **पाणिनीयाष्टाध्यायी** के सभी सूत्र **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में लिए गए हैं। यदि अष्टाध्यायी के क्रम से सूत्र याद हों और प्रक्रिया सिद्धान्तकौमुदी की हो तो व्यक्ति शब्दशास्त्र का प्रकाण्ड विद्वान् हो सकता है। इसलिए बार-बार हम पहले **अष्टाध्यायी** रटने की सलाह देते हैं। प्रति महीने एक अध्याय के हिसाब से आवृत्ति करने पर विना रटे ही पूरी अष्टाध्यायी याद हो सकती है।

परीक्षा

इस प्रकरण के सभी सूत्रों एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालते हुए किन्हीं दस प्रयोंगों की सिद्धि दिखाइये।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या में
त्वतलोरधिकार-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ भवनाद्यर्थकाः

खञ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११६४. धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् ५।२।१॥

भवत्यस्मिन्निति भवनम्। मुद्गानां भवनं क्षेत्रं मौद्गीनम्।

ढक्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११६५. व्रीहिशाल्योर्ढक् ५।२।२॥

व्रैहेयम्। शालेयम्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **भवनाद्यर्थक** प्रत्ययों का प्रकरण आरम्भ होता है। इसके साथ में **वह ऐसा हुआ, अवयव, पूरण** आदि अर्थों में भी प्रत्यय होंगे। ये प्रत्यय **खञ्, इतच्, तयप्, डट्, तीय** आदि हैं।

११६४- **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्।** धान्यानां षष्ठ्यन्तं, भवने सप्तम्यन्तं, क्षेत्रे सप्तम्यन्तं, खञ् प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

भवन अर्थात् उत्पत्तिस्थानरूप क्षेत्र अर्थ में किसी धान्यविशेष के वाचक प्रथमान्त शब्दों से खञ् प्रत्यय होता है।

खञ् में ञकार इत्संज्ञक है और **खकार** के स्थान पर **ईन्** आदेश हो जायेगा।

मौद्गीनम्। मूंग नामक धान्य(दाल) के होने का क्षेत्र, खेत आदि। **मुद्गानां भवनं क्षेत्रम्** लौकिक विग्रह और **मुद्ग+आम्** अलौकिक विग्रह है। ऐसी स्थिति में **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** से खञ् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से खकार के स्थान पर ईन् आदेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **मौद्ग्+ईन=मौद्गीन** बना। सु, अम्, पूर्वरूप **मौद्गीनम्।**

गौधूमीनम्। गोधूम अर्थात् गेहूँ धान्य के होने का क्षेत्र, खेत आदि। **गोधूमानां भवनं क्षेत्रम्** लौकिक विग्रह और **गोधूम+आम्** अलौकिक विग्रह है। ऐसी स्थिति में **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** से खञ् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से खकार के स्थान पर ईन् आदेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **गौधूम्+ईन=गौधूमीन** बना। सु, अम्, पूर्वरूप **गौधूमीनम्।**

निपातनार्थं विधिसूत्रम्

११६६. हैयङ्गवीनं सञ्ज्ञायाम् ५।२।२३॥

ह्योगोदोह-शब्दस्य हियङ्गुरादेशो विकारार्थे खञ्च निपात्यते। दुह्यत इति दोहः क्षीरम्। ह्योगोदोहस्य विकारो हैयङ्गवीनं नवनीतम्।

....

११६५- व्रीहिशाल्योर्ढक्। व्रीहिश्च शालिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो व्रीहिशाली, तयोः। व्रीहिशाल्योः पञ्चम्यर्थे षष्ठी, ढक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** से **भवने क्षेत्रे** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् आ ही रहा है।

षष्ठ्यन्त व्रीहि और शालि इन प्रातिपदिकों से उनके उत्पत्तिस्थान क्षेत्र अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है।

यह सूत्र **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** का अपवाद है। ककार इत्संज्ञक है, ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश होता है।

व्रैहेयम्। धान के होने का क्षेत्र, खेत आदि। **व्रीहीणां भवनं क्षेत्रम्** लौकिक विग्रह और **व्रीहि+आम्** अलौकिक विग्रह है। ऐसी स्थिति में **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** से खञ् प्रत्यय प्राप्त हुआ, उसे बाधकर **व्रीहिशाल्योर्ढक्** से **ढक्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप करके **व्रैह्+एय=व्रैहेय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **व्रैहेयम्** सिद्ध हुआ।

शालेयम्। शालि धान्यविशेष के होने का क्षेत्र, खेत आदि। **शालीनां भवनं क्षेत्रम्** लौकिक विग्रह और **व्रीहि+आम्** अलौकिक विग्रह है। ऐसी स्थिति में **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** से खञ् प्रत्यय प्राप्त हुआ, उसे बाधकर **व्रीहिशाल्योर्ढक्** से **ढक्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप करके **शाल्+एय=शालेय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **शालेयम्** सिद्ध हुआ।

११६६- हैयङ्गवीनं सञ्ज्ञायाम्। हैयङ्गवीनं प्रथमान्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्।

विकार अर्थ में 'ह्योगोदोह' शब्द के स्थान पर 'हियङ्गु' आदेश और उसके संनियोग में खञ् प्रत्यय का निपातन होता है।

ह्योगोदोहः अर्थात् **ह्यस्**=कल के **गोदोहः**=गाय का दूध। **दुह्यते इति दोहः**, जिसका दोहन होता है, वह **दोह** है। दूध ही दोह है। उसके विकार अर्थात् कल के दूध से दही और उससे निर्मित ताजा-ताजा मक्खन अर्थ में इस सूत्र से **ह्योगोदोह** शब्द के स्थान पर **हियङ्गु** आदेश और साथ में **खञ्** प्रत्यय का भी निपातन सूत्रकार ने किया है। तात्पर्य यह है कि **हैयङ्गवीनम्** बनाने के लिए प्रक्रिया न दिखाकर सूत्र में ही सिद्ध प्रयोग का पठन सूत्रकार ने किया है। अब इसकी सिद्धि में जो भी प्रत्यय और **ह्योगोदोह** प्रकृति के स्थान पर जो भी आदेश अभीष्ट हो, वह करने के लिए हम स्वतन्त्र हैं। अब पाणिनि जी के द्वारा निपातित **हैयङ्गवीन** के बनाने में **ह्योगोदोह** के स्थान पर **हियङ्गु** आदेश और उसके साथ **खञ्** प्रत्यय का होना सम्भव है। इस तरह **ह्यो-गोदोहस्य विकारः** में उक्त कार्य करके

इतच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११६७. तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच् ५।२।३६॥

तारकाः सञ्जाता अस्य तारकितं नभः। पण्डितः। आकृतिगणोऽयम्।

....

हियङ्गु+ख बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **खकार** के स्थान पर **ईन्** आदेश होकर **हियङ्गु+ईन** बना। आदिवृद्धि करके **हैयङ्गु+ईन** बना। उकार को **ओर्गुणः** से गुण होकर **अवादेश** करने पर **हैयङ्गवीन** बना। स्वादिकार्य करके **हैयङ्गवीनम्** सिद्ध हुआ।

११६७- तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्। तद् प्रथमान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकम्, अस्य षष्ठ्यन्तं, सञ्जातं प्रथमान्तं, तारकादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, इतच् प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

प्रथमान्त तारकादि गणपठित प्रातिपदिकों से 'तत्सञ्जातमस्य' अर्थात् 'वह हो गया है, इसका' इस अर्थ में इतच् प्रत्यय होता है।

तारकादि एक पाणिनि जी द्वारा पढ़ा गया गणपाठ है, इसमें कुछ शब्द तो उनके द्वारा पठित हैं, शेष शब्दों को आकृतिगण मानकर इसके अन्तर्गत मान लिया जाता है, जिससे **इतच्** प्रत्यय हो जाय। चकार इत्संज्ञक है, इत बचता है। अजादि होने के कारण इसके परे होने पर भसंज्ञा होती है और ञित्, णित्, कित् न होने के कारण आदिवृद्धि नहीं होती है।

तारकितं नभः। तारे हो गये हैं जिसके, ऐसा आकाश अर्थात् जैसे-जैसे रात्री का आगमन होता है वैसे-वैसे आकाश में तारे दिखते हैं तो वहाँ यह व्यवहार होता है कि आकाश तारामय हो गया है। **तारकाः संजाताः अस्य** लौकिक विग्रह और **तारका जस्** अलौकिक विग्रह में **तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्** से **इतच्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक आकार का लोप करके **तारक्+इत=तारकित,** सु, अम् और पूर्वरूप करके **तारकितम्** सिद्ध हुआ।

सदसद्विवेकिनी बुद्धिः पण्डा, सा सञ्जाता अस्य सः पण्डितः। सत् और असत् का विवेक करने वाली बुद्धि को पण्डा कहते हैं, इस प्रकार की बुद्धि जिसकी हो गई है, उसे पण्डित कहते हैं अर्थात् इतच् प्रत्यय होकर के **पण्डितः** की सिद्धि होती है।

पण्डितः। पण्डा संजाता अस्य लौकिक विग्रह और **पण्डा सु** अलौकिक विग्रह में **तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्** से **इतच्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक आकार का लोप करके **पण्ड्+इत=पण्डित,** सु, रुत्वविसर्ग करके **पण्डितः** सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार आगे भी बनाइये-

कुसुमानि सञ्जातानि अस्याः- कुसुमिता लता= पुष्प हो गये हैं जिस लता में।
बुभुक्षा सञ्जाता अस्य- बुभुक्षितो बालः= भूख हो गई जिस बालक में।
पिपासा सञ्जाता अस्य- पिपासितो जनः= प्यास लगी जिस मनुष्य को।
रोमाञ्चः सञ्जातोऽस्य- रोमाञ्चितो देहः= रोमाञ्च हो गया है जिस शरीर में।
गर्वः सञ्जातोऽस्य- गर्वितो जनः= घमण्ड हो गया है जिस मनुष्य को।

द्वयसजादिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११६८. प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः ५।२।३७।।

तदस्येत्यनुवर्तते। ऊरू प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसम्। ऊरुदघ्नम्। ऊरुमात्रम्।

वतुप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्4

११६९. यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ५।२।३९।।

यत्परिमाणमस्य यावान्। तावान्। एतावान्।

....

फलानि सञ्जातानि अस्य- फलितो वृक्षः= फल लग गये हैं जिस वृक्ष में।
दीक्षा सञ्जाता अस्य- दीक्षितो यजमानः= दीक्षा हो गई है जिस यजमान की। आदि।
११६८- प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः। द्वयसच्च दघ्नच्च मात्रच्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः। प्रमाणे सप्तम्यन्तं, द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्** से **तद्** और **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

प्रमाण में वर्तमान प्रथमान्त प्रातिपदिक से 'वह प्रमाण है इसका' इस अर्थ में द्वयसच्, दघ्नच् और मात्रच् प्रत्यय होते हैं।

तीनों में चकार इत्संज्ञक है। तीनों प्रत्यय प्रमाण अर्थ में होते हैं।

ऊरुद्वयसम्। ऊरु के बराबर प्रमाण है जिसका अर्थात् नदी का जल ऊरु तक आता है या अन्य कोई वस्तु जंघा के बराबर है आदि अर्थ। **ऊरु सु** से **प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः** से **द्वयसच्** प्रत्यय, चकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ऊरुद्वयस** बना। सु आया, उसके स्थान पर नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके पूर्वरूप करने पर **ऊरुद्वयसम्** बना।

ऊरुदघ्नम्। ऊरु के बराबर प्रमाण है जिसका अर्थात् नदी का जल ऊरु तक आता है या अन्य कोई वस्तु जंघा के बराबर है आदि अर्थ। **ऊरु सु** से **प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः** से **दघ्नच्** प्रत्यय, चकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ऊरुदघ्न** बना। सु आया, उसके स्थान पर नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके पूर्वरूप करने पर **ऊरुदघ्नम्** बना।

ऊरुमात्रम्। ऊरु के बराबर प्रमाण है जिसका अर्थात् नदी का जल ऊरु तक आता है या अन्य कोई वस्तु जंघा के बराबर है आदि अर्थ। **ऊरु सु** से **प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः** से **मात्रच्** प्रत्यय, चकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ऊरुमात्र** बना। सु आया, उसके स्थान पर नपुंसकलिङ्ग में अम् आदेश करके पूर्वरूप करने पर **ऊरुमात्रम्** बना।

११६९. यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्। यत् च तत् च एतत् च एतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो यत्तदेतदस्तेभ्यः। यत्तदेतेभ्यः पञ्चम्यन्तं, परिमाणे सप्तम्यन्तं, वतुप् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्** से **तद्** और **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

वतुप्सन्नियोगघादेश-विधायकं विधिसूत्रम्

११७०. किमिदंभ्यां वो घः ५।२।४०॥

आभ्यां वतुप् स्याद् वकारस्य घश्च।

ईश्+कि+इत्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

११७१. इदंकिमोरीश्की ६।३।९०॥

दृग्दृश्वतुषु इदम ईश्, किमः किः। कियान्। इयान्।

....

परिमाण अर्थ में विद्यमान यद्, तद्, एतद् इन प्रथमान्त प्रातिपदिकों से 'वह परिमाण है इसका' इस अर्थ में वतुप् प्रत्यय होता है।

वतुप् में उकार और पकार इत्संज्ञक हैं, **वत्** शेष रहता है। ध्यान रहे कि **वति** प्रत्यय वाले **वत्** से यह **वत्** भिन्न है। वतिप्रत्ययान्त अव्यय होता है किन्तु **वतुप्** प्रत्ययान्त के तीनों लिङ्ग में रूप चलते हैं।

यावान्। जो परिमाण है इसका अर्थात् जितना। **यत् परिमाणमस्य। यत् सु** से **यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्** से **वतुप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **यत्+वत्** बना। **आ सर्वनाम्नः** से **तकार** के स्थान पर **आकार** आदेश करके सवर्णदीर्घ करने पर **यावत्** बना। इससे सु आया। उगित् होने के कारण **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से नुम् आगम और **अत्वसन्तस्य चाधातोः** से उपधा को दीर्घ करके यावान्त्+स् बना है। सकार का हल्ङ्यादिलोप और तकार का संयोगान्तलोप करने पर यावान् सिद्ध हुआ। आगे **यावन्तौ, यावन्तः, यावन्तम्, यावन्तौ, यावतः, यावता, यावद्भ्याम्, यावद्भिः** आदि रूप बन जाते हैं। स्त्रीत्वविवक्षा में **उगितश्च** से **ङीप्** करने पर **यावती, यावत्यौ, यावत्यः, यावतीम्, यावत्यौ, यावतीः** आदि बनते हैं। नपुंसकलिङ्ग में **यावत्, यावती, यावन्ती** आदि रूप बनते हैं।

इसी तरह से **तद्** शब्द से **तत् परिमाणमस्य** उतना परिमाण है जिसका अर्थात् उतना अर्थ में **तद् सु** से उक्त प्रक्रिया करके **तावान्, तावन्तौ, तावन्तः। तावती, तावत्यौ, तावत्यः। तावत्, तावती, तावन्ति** आदि बनाइये। इसी तरह **एतद्** शब्द से इतना परिमाण है इसका अर्थ में **एतत् सु** से भी उक्त प्रक्रिया के साथ **एतावान्, एतावन्तौ, एतावन्तः। एतावती, एतावत्यौ, एतावत्यः। एतावत्, एतावती, एतावन्ति** आदि आप सरलता से बन सकते हैं।

११७०- **किमिदंभ्यां वो घः।** किम् च इदं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः किमिदमौ, ताभ्याम्। **यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्** से **परिमाणे वतुप्** तथा **तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् आ रहा है।

परिमाण में वर्तमान किम्, इदम् इन प्रथमान्त प्रातिपदिकों से 'वह परिमाण है इसका' इस अर्थ में वतुप् प्रत्यय और वतुप् के वकार के स्थान पर घकार आदेश होता है।

इस सूत्र से दो कार्य हुए। एक तो किम् और इदम् इन सर्वनामों से **वतुप्** प्रत्यय और दूसरा **वतु** के **वकार** के स्थान पर **घ** आदेश। **वतुप्** में अनुबन्धलोप होकर **वत्** बचा

तयप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११७२. सङ्ख्याया अवयवे तयप् ५।२।४२।।

पञ्च अवयवा अस्य पञ्चतयम्।

....

है। **अत्** को छोड़कर केवल **व्** के स्थान पर **घ्** आदेश होने के बाद उस घकार के स्थान पर भी **आयनेयीनियियः०** से **इय्** आदेश होकर **इयत्** बन जाता है।

११७१- इदंकिमोरीश्की। इदं च किम् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्व इदंकिमौ, तयोः। ईश् च किश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्व ईश्की। **दृग्दृश्वतुषु** से **दृग्दृश्वतुषु** की अनुवृत्ति आती है।

दृक्, दृश्, वतुप् के परे रहने पर इदम् शब्द के स्थान पर ईश् और किम् शब्द के स्थान पर कि आदेश होते हैं।

यथासङ्ख्य होने से **इदम्** के स्थान पर **ईश्** और **किम्** के स्थान **कि** आदेश होते हैं। **ईश्** यह आदेश **शित्** है, अतः **इदम्** सम्पूर्ण के स्थान पर आदेश होता है।

कियान्। क्या है परिमाण इसका? अर्थात् कितना। **किं परिमाणमस्य,** यह लौकिक विग्रह है। **किम् सु** इस अलौकिक विग्रह में **किमिदम्भ्यां वो घः** से **वतुप्** प्रत्यय और **वकार** के स्थान पर **घ्** आदेश हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **किम्+घ्+अत्** बना है। **घ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **इय्** आदेश होकर **किम्+इयत्** बना। अब **किम्** के स्थान पर **इदंकिमोरीश्की** से **कि** आदेश होकर **कि+इयत्** बना। **यस्येति च** से **कि** के इकार का लोप हुआ- **क्+इयत्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **कियत्** बना। इससे सु, उपधा को दीर्घ, नुम्, हल्ङ्याादिलोप और संयोगान्तलोप होकर **कियान्** और आगे **कियन्तौ, कियन्तः** आदि रूप बनते हैं।

इयान्। यह है परिमाण इसका, अर्थात् इतना। **इदं परिमाणमस्य,** यह लौकिक विग्रह है। **इदम् सु** इस अलौकिक विग्रह में **किमिदम्भ्यां वो घः** से **वतुप्** प्रत्यय और **वकार** के स्थान पर **घ्** आदेश हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **इदम्+घ्+अत्** बना है। **घ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **इय्** आदेश होकर **इदम्+इयत्** बना। अब **इदम्** के स्थान पर **इदंकिमोरीश्की** से **ईश्** सर्वादेश, शकार का लोप करके **ई+इयत्** बना। **यस्येति च** से अकेले ईकार का लोप हुआ- **इयत्** इतना मात्र प्रातिपदिक बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मान कर इससे सु, उपधा को दीर्घ, नुम्, हल्ङ्याादिलोप और संयोगान्तलोप होकर **इयान्, इयन्तौ, इयन्तः** आदि रूप बनते हैं।

११७२- सङ्ख्याया अवयवे तयप्। सङ्ख्यायाः षष्ठ्यन्तं, अवयवे सप्तम्यन्तं, तयप् प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्** से **तद्** और **अस्य** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् आ रहा है।

अवयव अर्थ में विद्यमान सङ्ख्यावाचक प्रथमान्त से 'वह इसका अवयव है' इस अर्थ में तयप् प्रत्यय होता है।

पकार इत्संज्ञक है। यकारादि या अजादि न होने से इसके परे होने पर भसंज्ञा नहीं होगी और ञित्, णित् और कित् न होने से आदिवृद्धि भी नहीं होगी।

पञ्चतयम्। पाँच अवयव या संख्या है जिसकी, वह। **पञ्च अवयवाः अस्य**

अयजादेशविधायकं विधिसूत्रम्

११७३. द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ५।२।४३॥

द्वयम्, द्वितयम्। त्रयम्, त्रितयम्।

अयजादेशविधायकं विधिसूत्रम्

११७४. उभादुदात्तो नित्यम् ५।२।४४॥

उभशब्दात्तयपोऽयच् स्यात्, स चाद्युदात्तः। उभयम्।

....

लौकिक विग्रह और **पञ्चन् जस्** अलौकिक विग्रह है। **सङ्ख्याया अवयवे तयप्** से तयप्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप करके **पञ्चतय** बना। सु, अम् और पूर्वरूप करके **पञ्चतयम्** सिद्ध हुआ। इसी तरह **षट्तयम्, अष्टतयम्, नवतयम्** आदि भी बनाइये।

११७३- द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा। द्विश्च त्रिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो द्वित्री, ताभ्याम्। द्वित्रिभ्यां पञ्चम्यन्तं, तयस्य षष्ठ्यन्तम्, अयच् प्रथमान्तं, वा अव्ययपदम् अनेकपदमिदं सूत्रम्।

द्वि और त्रि प्रातिपदिकों से परे तयप् के स्थान पर वैकल्पिक अयच् आदेश होता है।

चकार इत्संज्ञक है। स्थानिवद्भावेन तयप् में विद्यमान गुण प्रत्ययत्व आदि अयच् में भी आ जाते हैं।

द्वयम्, द्वितयम्। दो अवयव या संख्या है जिसकी, वह। **द्वौ अवयवौ अस्य** लौकिक विग्रह और **द्वि औ** अलौकिक विग्रह है। **सङ्ख्याया अवयवे तयप्** से तयप्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा** से तय के स्थान पर अयच् आदेश, अनुबन्धलोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने पर **द्वि+अय** बना। भसंज्ञक इकार का लोप करने पर **द्+अय=द्वय** बना, सु, अम् करके **द्वयम्** सिद्ध हुआ। अयजादेश न होने के पक्ष में **द्वितयम्** बना।

त्रयम्, त्रितयम्। तीन अवयव या संख्या है जिसकी, वह। **त्रयः अवयवाः अस्य** लौकिक विग्रह और **त्रि जस्** अलौकिक विग्रह है। **सङ्ख्याया अवयवे तयप्** से तयप्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा** से तय के स्थान पर अयच् आदेश, अनुबन्धलोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने पर **त्रि+अय** बना। भसंज्ञक इकार का लोप करने पर **त्र्+अय=त्रय** बना, सु, अम् करके **त्रयम्** सिद्ध हुआ। अयजादेश न होने के पक्ष में **त्रितयम्** बना।

११७४- उभादुदात्तो नित्यम्। उभात् पञ्चम्यन्तम्, उदात्तः प्रथमान्तं, नित्यं द्वितीयान्तं क्रियाविशेषणम्। **द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा** से **तयस्य** और **अयच्** की अनुवृत्ति आती है।

'उभ' इस प्रातिपदिक से परे तयप् के स्थान पर नित्य से अयच् आदेश होता है और वह उदात्त स्वर वाला होता है।

अष्टाध्यायी के अनेक सूत्र प्रत्यय आदि का विधान करते हुए स्वर का भी विधान करते हैं, उसमें से एक सूत्र यह भी है।

उभयम्। दोनों अवयव हैं इसके अर्थात् दो अवयव वाला अवयवी। **उभौ**

पूरणार्थे डट्प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११७५. तस्य पूरणे डट् ५।२।४८॥

एकादशानां पूरणः- एकादशः।

मडागमविधायकं विधिसूत्रम्

११७६. नान्तादसङ्ख्यादेर्मट् ५।२।४९॥

डटो मडागमः। पञ्चानां पूरणः पञ्चमः। नान्तात् किम्? विंशः।

....

अवयवौ अस्य लौकिक विग्रह और **उभ औ** अलौकिक विग्रह है। **सङ्ख्याया अवयवे तयप्** से तयप्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **उभादुदात्तो नित्यम्** से **तय** के स्थान पर **अयच्** आदेश, अनुबन्धलोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने पर **उभ+अय** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **उभ्+अय=उभय** बना और सु, अम् करके **उभयम्** सिद्ध हुआ।

११७५- तस्य पूरणे डट्। तस्य षष्ठ्यन्तं, पूरणे सप्तम्यन्तं, डट् प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सङ्ख्याया गुणस्य निमाने मयट्** से **सङ्ख्यायाः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् आ रहा है।

सङ्ख्यावाचक षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से पूरण अर्थ में डट् प्रत्यय होता है।

डकार और टकार की इत्संज्ञा होती है। टित् का फल स्त्रीलिङ्ग में विशेष प्रत्यय के लिए है और डित् का प्रयोजन **टेः** से टिलोप है। एक का पूरण अर्थात् पहली संख्या को पूर्ण करने वाला(पहला) प्रथम, दो का पूरण द्वितीय, पाँच का पूरण पञ्चम आदि समझना चाहिए।

एकादशः। ग्यारहवीं संख्या को पूर्ण करने वाला, ग्यारहवाँ। **एकादशानां पूरणः** लौकिक विग्रह और **एकादशन् आम्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से डट्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **एकादशन्+अ** बना। इसमें अन् टि है, उसका **टेः** से लोप हुआ, **एकादश्+अ=एकादश** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **एकादशः** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार बारहवीं संख्या का पूरण अर्थ में **द्वादशः** आदि बनाइये।

११७६- नान्तादसङ्ख्यादेर्मट्। न अन्तो यस्य तत् नान्तं, तस्मात्। सङ्ख्या आदिर्यस्य स सङ्ख्यादिः, न सङ्ख्यादिरसङ्ख्यादिस्तस्मादसङ्ख्यादेः। नान्तात् पञ्चम्यन्तं, असङ्ख्यादेः पञ्चम्यन्तं, मट् प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **तस्य पूरणे डट्** से षष्ठी में विभक्तिविपरिणाम करके **डटः** की अनुवृत्ति आती है।

जिसके आदि में कोई सङ्ख्याशब्द न जुड़ा हो, ऐसे नकारान्त सङ्ख्यावाचक प्रातिपदिक से परे डट् को मट् का आगम होता है।

टकार इत्संज्ञक है, टित् होने के कारण डट् के आदि में बैठेगा।

पञ्चमः। पाँचवीं संख्या को पूर्ण करने वाला, पाँचवाँ। **पञ्चानां पूरणः** लौकिक विग्रह और **पञ्चन् आम्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से **डट्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पञ्चन्+अ** बना। **नान्तादसङ्ख्यादेर्मट्** से मट् का आगम, अनुबन्धलोप, टित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से डट् वाले अकार

तिलोपविधायकं विधिसूत्रम्

११७७. ति विंशतेर्डिति ६।४।१४२॥

विंशतेर्भस्य तिशब्दस्य लोपो डिति परे। विंशः।

असङ्ख्यादेः किम्? एकादशः।

....

के आदि में बैठा, म और डट् वाले अकार में पररूप होने पर **पञ्चन्+म** बना। इसमें अन् **टि** है, उसका **टेः** से लोप नहीं हुआ, क्योंकि **म** हल् होने के कारण उसके परे रहते भसंज्ञा न होकर **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदसंज्ञा हुई है। **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नकार का लोप होकर **पञ्चम** बना और सु, रुत्वविसर्ग करके **पञ्चमः** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार **सप्तमः, नवमः, अष्टमः, दशमः** आदि बनाइये।

अष्टाध्यायी के क्रम में **विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्** यह महत्त्वपूर्ण सूत्र है किन्तु **लघुसिद्धान्तकौमुदी** में यह पढ़ा नहीं गया है। जिज्ञासुओं के लिए उसका अर्थपरिचय यहाँ पर कराया जा रहा है- **विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्।** विंशत्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, तमड् प्रथमान्तं, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति, शतम्** आदि से परे डट् को **तमड्** आगम होता है। **तमड्** में **अड्** इत्संज्ञक है और **तम्** शेष बचता है तथा **डट्** वाले **अकार** से मिलकर **तम** बन जाता है जिससे **विंशतितमः**(बीसवाँ), **त्रिंशत्तमः**(तीसवाँ) **चत्वारिंशत्तमः**(चालीसवाँ) **पञ्चाशत्तमः**(पचासवाँ) **षष्टितमः**(साठवाँ) **सप्ततितमः**(सत्तरवाँ) **अशीतितमः**(अस्सीवाँ) **नवतितमः**(नब्बेवाँ) **शततमः**(सौवाँ) ये शब्द बन सकते हैं।

११७७- **ति विंशतेर्डिति।** ति लुप्तषष्ठीकं पदं, विंशतेः षष्ठ्यन्तं, डिति सप्तम्यन्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अल्लोपोऽनः** से एकदेश **लोपः** की अनुवृत्ति और **भस्य** का अधिकार है।

डित् परे होने पर विंशति के अवयव भसंज्ञक ति का लोप होता है।

विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् से **तमड्** न होने के पक्ष में इससे **ति** का लोप हो जाता है।

विंशः। बीस सङ्ख्या का पूरण, बीसवाँ। **विंशतेः पूरणः** लौकिक विग्रह और **विंशति ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से डट्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विंशति+अ** बना। **विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्** से वैकल्पिक तमड् आगम, अनुबन्धलोप, **तम्+अ=तम=विंशतितम** बना, सु, रुत्वविसर्ग करके **विंशतितमः** सिद्ध हुआ। **तमड्** न होने के पक्ष में डट् के परे टिलोप प्राप्त था, उसे बाधकर **तिविंशतेर्डिति** से ति का लोप हुआ, **विंश** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **विंशः** सिद्ध हुआ। स्त्रीलिङ्ग में **विंशतितमी** और **विंशी** बनता है तथा नपुंसकलिङ्ग में **विंशतितमम्** और **विंशम्** बनता है।

त्रिंशः। तीस सङ्ख्या का पूरण, तीसवाँ। **त्रिंशतः पूरणः** लौकिक विग्रह और **त्रिंशत् ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से डट्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **त्रिंशत्+अ** बना। **विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्** से वैकल्पिक तमडागम, अनुबन्धलोप, **तम्+अ=तम, त्रिंशत्+तम=त्रिंशत्तम** बना, सु, रुत्वविसर्ग करके **त्रिंशत्तमः** सिद्ध हुआ। तमड् न होने के पक्ष में डट् के परे अत् इस टि का **टेः** से लोप करके **त्रिंश्+**

थुगागमविधायकं विधिसूत्रम्

११७८. षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् ५।२।५१॥

एषां थुगागमो स्याड्डटि। षण्णां पूरणः षष्ठः। कतिथः।
कतिपयशब्दस्यासङ्ख्यात्वेऽप्यत एव ज्ञापकाड्डट्। कतिपयथः। चतुर्थः।

....

अ=त्रिंश बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **त्रिंशः** सिद्ध हुआ। स्त्रीलिङ्ग में **त्रिंशत्तमी** और **त्रिंशी** बनता है तथा नपुंसकलिङ्ग में **त्रिंशत्तमम्** और **त्रिंशम्** बनता है। इसी तरह **चत्वारिंशत्तमः**, **चत्वारिंशः** आदि भी बनाते जाइये।

असङ्ख्यादेः किम्? एकादशः। यदि **नान्तादसङ्ख्यादेर्मट्** में **असङ्ख्यादेः** न कहते तो सङ्ख्यादि **एकादशन्** आदि में भी मट् आगम होकर **एकादशमः** आदि अनिष्ट रूप बन जाते। अतः ऐसा न हो इसके लिए असंख्यादेः पढ़ा गया। **एकादशन्** में तो एक संख्या आदि में है, सो यहाँ नहीं हुआ। यहाँ पर **डट्** के परे टिलोप होकर **एकादशः**, **द्वादशः**, **त्रयोदशः** आदि बनते हैं।

११७८- षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्। षट् च कतिश्च कतिपयश्च चतुश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः षट्कतिकतिपयचतुरः, तेषाम्। षट्कतिकतिपयचतुरां षष्ठ्यन्तं, थुक् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तस्य पूरणे डट्** से विभक्तिविपरिणाम करके **डटि** की अनुवृत्ति आती है।

डित् के परे रहते षष्, कति, कतिपय और चतुर् शब्दों को थुक् का आगम होता है।

थुक् में **उकार** और **ककार** इत्संज्ञक हैं, **थ्** शेष रहता है। **कित्** होने के कारण शब्द के अन्त में बैठता है किन्तु वर्णसम्मेलन होकर **डट्** वाले **अकार** में मिल जाता है।

षष्ठः। छठवीं संख्या का पूरण, छठवाँ। **षण्णां पूरणः** लौकिक विग्रह और **षष् आम्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से **डट्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **षष्+अ** बना है। **षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्** से षष् को थुक् का आगम, अनुबन्धलोप, **षष्+थ्+अ** बना। षकार से परे थकार को **ष्टुना ष्टुः** से टुत्व होकर **ठ** बना और वर्णसम्मेलन होकर **षष्ठ** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **षष्ठः** सिद्ध हुआ।

कतिथः। कितनी संख्या का पूरण, कौन-सा। **कतीनां पूरणः** लौकिक विग्रह और **कति आम्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से **डट्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **कति+अ** बना है। **षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्** से कति को थुक् का आगम, अनुबन्धलोप, **कति+थ्+अ=कतिथ** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **कतिथः** सिद्ध हुआ।

कतिपयथः। कुछ एक संख्या का पूरण, कुछेकवाँ। **कतिपयानां पूरणः** लौकिक विग्रह और **कतिपय आम्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से **डट्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **कतिपय+अ** बना है। **षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्** से कतिपय को थुक् का आगम, अनुबन्धलोप, **कतिपय+थ्+अ=कतिपयथ** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **कतिपयथः** सिद्ध हुआ।

चतुर्थः। चार संख्या का पूरण, चौथा। **चतुर्णां पूरणः** लौकिक विग्रह और **चतुर् आम्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से **डट्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा,

तीयप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११७९. द्वेस्तीयः ५।२।५४॥

डटोऽपवादः। द्वयोः पूरणो द्वितीयः।

तीय-सम्प्रसारणञ्च विधायकं विधिसूत्रम्

११८०. त्रेः सम्प्रसारणञ्च ५।२।५५॥

तृतीयः।

निपातनार्थं विधिसूत्रम्

११८१. श्रोत्रियँश्छन्दोऽधीते ५।२।८४॥

श्रोत्रियः। वेत्यनुवृत्तेश्छान्दसः।

....

सुप् का लुक्, चतुर्+अ बना है। **षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्** से चतुर् को थुक् का आगम, अनुबन्धलोप, **चतुर्+थ्+अ=चतुर्थ** बना और सु, रुत्वविसर्ग करके **चतुर्थः** सिद्ध हुआ।

११७९- द्वेस्तीयः। द्वेः पञ्चम्यन्तं, तीयः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **सङ्ख्याया गुणस्य निमाने मयट्** से **सङ्ख्यायाः**, **तस्य पूरणे डट्** से **तस्य** एवं **पूरणे** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आता है।

पूरण अर्थ में द्वि शब्द से परे तीय प्रत्यय होता है।

द्वितीयः। दो संख्या का पूरण अर्थात् दूसरा। **द्वयोः पूरणः** लौकिक विग्रह और **द्वि ओस्** अलौकिक विग्रह है। **द्वेस्तीयः** से तीय प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **द्वितीय** बना। सु, रुत्व विसर्ग करने पर **द्वितीयः** सिद्ध हुआ।

११८०- त्रेः सम्प्रसारणञ्च। त्रेः षष्ठ्यन्तं, सम्प्रसारणं प्रथमान्तं, चाव्ययपदं त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **द्वेस्तीयः** से **तीयः** की, **सङ्ख्याया गुणस्य निमाने मयट्** से **सङ्ख्यायाः**की और **तस्य पूरणे डट्** से **तस्य**, **पूरणे** की अनुवृत्ति आती है। यहाँ पर त्रि शब्द की द्विरावृत्ति की जाती है सो एक को पष्ठ्यन्त और दूसरे को प्रथमान्त माना जाता है।

त्रि शब्द से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय होता है साथ ही त्रि को सम्प्रसारण भी हो जाता है।

यण् के स्थान पर इक् करने को सम्प्रसारण कहते हैं- **इग्यणः सम्प्रसारणम्।** त्रिशब्द से तीय प्रत्यय और त्रि के रेफ के स्थान पर सम्प्रसारणसंज्ञक ऋकार आदेश करता है। सम्प्रसारण होने पर **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप भी होता है।

तृतीयः। तीन संख्या का पूरण अर्थात् तीसरा। **त्रयाणां पूरणः** लौकिक विग्रह और **त्रि आम्** अलौकिक विग्रह है। **त्रेः सम्प्रसारणञ्च** से तीय प्रत्यय और **त्+र्+इ=त्रि** में जो रेफ, उसके स्थान पर सम्प्रसारणसंज्ञक ऋकार आदेश, **त्+ऋ+इ**, **ऋ+इ** में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप एकादेश होने पर ऋकार ही हुआ, **त्+ऋ=तृ+तीय**, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **तृतीय** बना और सु, रुत्व विसर्ग करने पर **तृतीयः** सिद्ध हुआ।

११८१- श्रोत्रियँश्छन्दोऽधीते। श्रोत्रियन् प्रथमान्तं, छन्दो द्वितीयान्तम्, अधीते क्रियापदं, त्रिपदं सूत्रम्।

इनि-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११८२. पूर्वादिनिः ५।२।८६॥

पूर्वं कृतमनेन पूर्वी।

इनि-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११८३. सपूर्वाच्च ५।२।८७॥

कृतपूर्वी।

....

'तदधीते' इस अर्थ में छन्दस् शब्द के स्थान 'श्रोत्र' आदेश और घन् प्रत्यय का निपातन किया जाता है।

घन् में नकार इत्संज्ञक है, फलतः नित्-स्वर आद्युदात्त होगा। इस सूत्र में **तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वा** से **वा** की अनुवृत्ति की जाती है। अतः यह कार्य विकल्प से होता है।

श्रोत्रियः। वेदों का अध्येता। **छन्दोऽधीते** इस अर्थ में **छन्दस् अम्** से **तदधीते तद्वेद** से अण् प्राप्त था, उसे बाधकर के **श्रोत्रियँश्छन्दोऽधीते** से **छन्दस्** के स्थान पर **श्रोत्र** आदेश और **घन्** प्रत्यय का निपातन हुआ। नकार की इत्संज्ञा, लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **श्रोत्र+घ** बना। केवल **घ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **इय्** आदेश होकर **श्रोत्र+इय** बना। भसंज्ञक अकार को लोप करने पर **श्रोत्र्+इय**, वर्णसम्मेलन होकर **श्रोत्रिय** बना और स्वादिकार्य होकर **श्रोत्रियः** सिद्ध हुआ। निपातन न होने के पक्ष में **तदधीते तद्वेद** से **अण्** होकर **छान्दसः** भी बनता है।

११८२- **पूर्वादिनिः**। पूर्वात् पञ्चम्यन्तम्, इनिः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ** से **अनेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार आ ही रहा है।

क्रियाविशेषण वाले 'पूर्व' शब्द से 'अनेन' अर्थात् इससे किंवा कर्ता अर्थ में इनि प्रत्यय होता है।

अन्त्य इकार इत्संज्ञक है, इन् बचता है।

पूर्वी। पहले कर चुका व्यक्ति। **पूर्वं कृतम् अनेन** ऐसा विग्रह है। **पूर्व अम्** में **पूर्वादिनिः** से **इनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पूर्व+इन्** बना। भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **पूर्विन्** बना। इससे **शार्ङ्गी** की तरह **सौ च** से दीर्घ करके **पूर्वी**, **पूर्विणौ**, **पूर्विणः** आदि रूप बनते हैं।

११८३- **सपूर्वाच्च**। पूर्वेण सह सपूर्वम्, तस्मात्। सपूर्वात् पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **पूर्वादिनिः** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है। **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार चला आ रहा है।

जिसके पूर्व में अन्य कोई भी शब्द विद्यमान हो ऐसे पूर्व शब्द से 'अनेन' इस अर्थ में इनि प्रत्यय होता है।

कृतपूर्वी। पहले कर चुका व्यक्ति। **पूर्वं कृतम् अनेन** ऐसा विग्रह है। **पूर्व अम् कृत सु** में **सह सुपा** से समास करके **कृतपूर्व** बना है। अब **कृतपूर्व सु** में **सपूर्वाच्च** से **इनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कृतपूर्व+इन्** बना। भसंज्ञक

इनि-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११८४. इष्टादिभ्यश्च ५।२।८८॥

इष्टमनेन इष्टी। अधीती।

इति भवनाद्यर्थकाः॥५५॥

....

अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **कृतपूर्विन्** बना। इससे **शार्ङ्गी** की तरह **सौ च** से दीर्घ करके **कृतपूर्वी, कृतपूर्विणौ, कृतपूर्विणः** आदि रूप बनते हैं।

११८४- **इष्टादिभ्यश्च**। इष्टम् आदिर्येषां ते इष्टादयस्तेभ्यः। इष्टादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **पूर्वादिनिः** से **इनिः** और **श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ** से **अनेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार आ ही रहा है।

प्रथमान्त इष्ट आदि शब्दों से 'अनेन' अर्थ में इनि प्रत्यय होता है।

इष्टादिगण में इष्ट, पूर्त, उपासादित, निगदित, परिगदित, निराकृत, पूजित, परिगणित आदि अनेक शब्द आते हैं।

इष्टी। यज्ञ कर चुका व्यक्ति। **इष्टम् अनेन** ऐसा विग्रह है। **इष्ट सु** में **इष्टादिभ्यश्च** से **इनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **इष्ट+इन्** बना। भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **इष्टिन्** बना। इससे **पूर्वी** की तरह **सौ च** से दीर्घ करके **इष्टी, इष्टिनौ, इष्टिनः** आदि रूप बनते हैं।

अधीती। अध्ययन कर चुका व्यक्ति। **अधीतम् अनेन** ऐसा लौकिक विग्रह है। अधीत सु में **इष्टादिभ्यश्च** से **इनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अधीत+इन्** बना। भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **अधीतिन्** बना। इससे **पूर्वी** की तरह **सौ च** से दीर्घ करके **अधीती, अधीतिनौ, अधीतिनः** आदि रूप बनते हैं।

इसी तरह **पठितमनेन- पठीती, उपकृतमनेन उपकृती, पूजितमनेन- पूजिती, संरक्षितमनेन संरक्षिती** आदि प्रयोग बनाये जाते हैं। स्मरण रहे कि **क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम्** वार्तिक से इस् **इन्नन्त** शब्द के योग में सप्तमी विभक्ति हुआ करती है। जैसे- **पठिती व्याकरणे, अधीती शास्त्रे, पूजिती देवेषु** आदि वाक्य बनते हैं।

परीक्षा

इस प्रकरण के सभी सूत्रों एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालते हुए किन्हीं बीस प्रयोगों की सिद्धि दिखाइये।

श्री वरदाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का
भवनाद्यर्थकप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ मत्वर्थीयाः

मतुप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११८५. तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ५।२।९४।।

गावोऽस्यास्मिन् वा सन्तीति गोमान्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **मत्वर्थीयप्रकरण** प्रारम्भ होता है। आदि प्रत्यय मतुप् है, यह जिस अर्थ में होता है, उसी अर्थ में होने वाले **मतुप्, इनि, ठन्, विनि** आदि प्रत्ययों का प्रकरण है। **वह इसके पास है** या **वह इसमें है** इस अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया गया है। जैसे जिसके पास धन है उसे **धनी**, जिसके पास ज्ञान है उसे **ज्ञानी**, जो पुत्र वाला है, उसे **पुत्रवान्** और जिसके पास बुद्धि है उसे **बुद्धिमान्** आदि शब्दों का व्यवहार होता है। उसी प्रकार संस्कृत में इन अर्थों को प्रकट करने के लिए मतुबादि प्रत्यय किये जाते हैं।

भाष्यकार ने मतुप् प्रत्यय के लिए एक श्लोक उद्‌धृत किया है-

भूम-निन्दा-प्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने।

सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः।। अर्थात् **अस्तिविवक्षायां** (विद्यमानता की विवक्षा में) **भूमन्**(बहुत्व), **निन्दा**(बुराई), **प्रशंसा**(प्रशंसा), **नित्ययोगे**(नित्य संयोग), **अतिशायन**(अतिशयता, आधिक्य) और **सम्बन्ध**(संयोग) इन छः अर्थों में **मतुप्** प्रत्यय एवं उसके योग में होने वाले प्रत्ययों का विषय प्रतिपादित किया है। इनके उदाहरण-

भूमा- बहुत्व, अधिकता अर्थ में, जैसे- **गोमान्**(बहुत गायों वाला)

निन्दा- अर्थ में, जैसे- **ककुदावर्तिनी**(ककुदावर्तों वाली) लड़की

प्रशंसा अर्थ में, जैसे- **रूपवान्**(सुन्दर रूप वाला)

नित्ययोग-नित्यसम्बन्ध अर्थ में, जैसे- **क्षीरिणो वृक्षाः**(सदा दूध वाले वृक्ष)

अतिशायन-अतिशयता अर्थ में, जैसे- **उदरिणी कन्या**(अतिशय अर्थात् बड़े पेट वाली कन्या) और-

संसर्ग- सम्बन्ध अर्थ में, जैसे- **दण्डी**(दण्ड वाला)।

मतुप् प्रत्यय के लिए एक बात और ध्यान में रखने योग्य है कि समानरूप मतुप् प्रत्ययान्त शब्द से पुनः उसी प्रकार समान रूप वाला मतुप् प्रत्यय नहीं होगा, जैसा कि समान शैषिक प्रत्यय से पुनः वैसा ही शैषिक प्रत्यय नहीं होता, सन्नन्त से पुनः सन् प्रत्यय नहीं होता। यथा-

शैषिकान्मतुबर्थीयाच्छैषिको मतुबर्थकः।

सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते।।

भसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

११८६. तसौ मत्वर्थे १।४।१९॥

तान्तसान्तौ भसंज्ञौ स्तो मत्वर्थे प्रत्यये परे। गरुत्मान्।

वसोः सम्प्रसारणम्। विदुष्मान्।

वार्तिकम्- **गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः।**

शुक्लो गुणोऽस्यास्तीति शुक्लः। पटः। कृष्णः।

....

११८५- **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्।** तद् प्रथमान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकम्, अस्य षष्ठ्यन्तं, अस्ति क्रियापदं, अस्मिन् सप्तम्यन्तं, इत्यव्ययपदं, मतुप् प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** इन सबका पहले की तरह अधिकार आ ही रहा है।

'वह इसका है और वह इसमें है' इन दो अर्थों में प्रथमान्त प्रातिपदिक से मतुप् प्रत्यय होता है।

पकार **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञक है और उकार **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञक है। **मत्** बचता है।

गोमान्। जिसके पास गौएँ हों वह गोपाल या जिसमें गौएँ रहती हैं ऐसा भवन आदि। **गावः अस्य सन्ति** अथवा **गावः अस्मिन् सन्ति** लौकिक विग्रह और **गो+जस्** अलौकिक विग्रह है। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से मतुप् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गोमत्** बना। सु विभक्ति आई, **गोमत्+स्** में **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से नुमागम और **अत्वसन्तस्य चाधातोः** से उपधादीर्घ करने पर **गोमान्त्+स्** बना। सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ और तकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप हुआ तो **धीमान्** की तरह **गोमान्** सिद्ध हुआ। इसके रूप **धीमत्** शब्द की तरह **गोमान्, गोमन्तौ, गोमन्तः** आदि बनते हैं।

११८६- **तसौ मत्वर्थे।** मतोरर्थो मत्वर्थस्तस्मिन्। तश्च स् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्तसौ। तसौ प्रथमान्तं, मत्वर्थे सप्तम्यन्तम्। **यचि भम्** से **भम्** की अनुवृत्ति आती है।

मतुप् के अर्थ वाला कोई प्रत्यय परे हो तो तकारान्त और सकारान्त प्रातिपदिक की भसंज्ञा होती है।

भसंज्ञाप्रकरण का यह सूत्र है। जैसे कप्प्रत्ययावधिक असर्वनामस्थान यकारादि और अजादि स्वादि प्रत्ययों के परे रहते पूर्व की **यचि भम्** से भसंज्ञा होती है उसी तरह **मतुप्** प्रत्यय के अर्थ में होने वाले सभी प्रत्ययों के परे होने पर **तकारान्त** और **सकारान्त** की भी इससे **भसंज्ञा** की जाती है। **आ कडारादेका संज्ञा** से एकसंज्ञाधिकार होने के कारण भसंज्ञा से पदसंज्ञा का बाध होता है, जिससे पद को मानकर के होने वाले कार्य रूक जाते हैं।

गरुत्मान्। दो पंख हैं इसके अर्थात् पक्षी गरुड़। **गरुतौ अस्य स्तः। गरुत् औ** में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **गरुत्+मत्** बना है। लुप्तविभक्तिं को मानकर के **गरुत्** में पदसंज्ञा की प्राप्ति थी और **तसौ मत्वर्थे** से **भसंज्ञा** की भी प्राप्ति हो रही थी। **एकसंज्ञाधिकार** होने और अनवकाश

संज्ञा होने से **पदसंज्ञा** का बाध होकर **भसंज्ञा** हो गई। अब पदत्व के अभाव के कारण पदान्त को मानकर होने वाला **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व रूक गया साथ ही पदत्वाभाव के कारण ही **प्रत्यये भाषायां नित्यम्** से अनुनासिक आदेश भी नहीं हुआ। **गरुत्मत्** यह प्रातिपदिक है। सु, उपधा को दीर्घ, नुम्, सुलोप, संयोगान्तलोप करके **गरुत्मान्** सिद्ध हुआ। **गरुत्मन्तौ, गरुत्मन्तः** आदि इसके रूप बनते हैं।

विदुष्मान्। विद्वान् हैं जिसके ऐसा वंश। **विद्वांसोऽस्य सन्ति** लौकिक विग्रह और **विद्वस् जस्** इस अलौकिक विग्रह में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **विद्वस्+मत्** बना है। लुप्तविभक्ति को मानकर के **विद्वस्** में पदसंज्ञा की प्राप्ति थी और **तसौ मत्वर्थे** से **भसंज्ञा** की भी प्राप्ति हो रही थी। **एकसंज्ञाधिकार** होने और अनवकाश संज्ञा होने से **पदसंज्ञा** का बाध होकर **भसंज्ञा** हो गई। अब पदत्व के अभाव के कारण पदान्त को मान कर के होने वाला **वसुस्रंसुध्वंसनडुहां दः** से दत्व रूक गया। अब **विद्वस्+मत्** में **वसोः सम्प्रसारणम्** से वकार को सम्प्रसारण और **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **विदुस्+मत्** बना। **आदेशप्रत्यययोः** से **सकार** को **षकार** आदेश होकर **विदुष्मत्** यह प्रातिपदिक बना। सु, नुम्, नान्तोपधादीर्घ सुलोप, संयोगान्तलोप करके **विदुष्मान्** सिद्ध हुआ। **विदुष्मन्तौ, विदुष्मन्तः** आदि इसके रूप बनते हैं।

गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः। यह वार्तिक है। **गुण के वाचक शब्दों से परे मतुप् प्रत्यय का लुक् होना अभीष्ट है**। तात्पर्य यह है कि सफेद, काला आदि गुण को बताने वाले शब्दों से मतुप् करने के बाद भी सफेद वाला, काला वाला आदि ही अर्थ बता रहे हों तो मतुप् प्रत्यय का लुक् हो जाना चाहिए।

शुक्लो गुणोऽस्यास्तीति शुक्लः पटः। सफेद गुण है जिसका ऐसा वस्त्र। यहाँ **शुक्ल सु** में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा होने के बाद सुप् का लुक् करके **शुक्ल+मत्** बना। **गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः** इस वार्तिक से **मत्** का लुक् हुआ तो **शुक्ल** ही बचा। इससे स्वादिकार्य करने पर **शुक्लः, शुक्लौ, शुक्लाः** आदि रूप बनते हैं। मतुप् होने के पक्ष में और न होने के पक्ष में समान ही रूप बनते हैं, प्रसंग के अनुसार यहाँ पर अर्थबोध होता है। इसी तरह **कृष्णो गुणोऽस्यास्तीति कृष्णः** आदि ही जानना चाहिए।

गुणवान्। जिसके पास गुण हो। **गुणाः अस्य सन्ति** अथवा **गुणाः अस्मिन् सन्ति** लौकिक विग्रह और **गुण+जस्** अलौकिक विग्रह है। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से मतुप् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गुण+मत्** बना। अकार से परे मतुप् के मकार के स्थान पर **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** से वकार आदेश हुआ, **गुणवत्** बना। सु विभक्ति आई, **गुणवत्+स्** में **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से नुम् करके **अत्वसन्तस्य चाधातोः** से उपधादीर्घ और करने पर **गुणवान्त्+स्** बना। सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ और तकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप हुआ **गुणवान्** सिद्ध हुआ। **गुणवान्, गुणवन्तौ, गुणवन्तः**।

विद्यावान्। जिसके पास विद्या हो। **विद्याः अस्य सन्ति** अथवा **विद्याः अस्मिन् सन्ति** लौकिक विग्रह और **विद्या+जस्** अलौकिक विग्रह है। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से मतुप् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विद्या+मत्** बना। अवर्ण से

आलच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११८७. प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ५।२।९६॥

चूडालः। चूडावान्। प्राणिस्थात् किम्? शिखावान् दीपः।
प्राण्यङ्गादेव। मेधावान्।

श-न-इलच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११८८. लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ५।२।१००॥

लोमादिभ्यः शः। लोमशः। लोमवान्। रोमशः। रोमवान्।
पामादिभ्यो नः। पामनः।

गणसूत्रम्- **अङ्गात् कल्याणे।** अङ्गना।

गणसूत्रम्- **लक्ष्म्या अच्च।** लक्ष्मणः।

पिच्छादिभ्य इलच्- पिच्छिलः। पिच्छवान्।

....

परे मतुप् के मकार के स्थान पर **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** से वकार आदेश हुआ, **विद्यावत्** बना। सु विभक्ति आई, **विद्यावत्+स्** में नुम्, दीर्घ करने पर **विद्यावान्त्+स्** बना। सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ और तकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप होकर **विद्यावान्** सिद्ध हुआ। **विद्यावान्, विद्यावन्तौ, विद्यावन्तः।** इसी तरह लक्ष्मीवान्, यशस्वान् आदि भी बनाइये।

११८७-**प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्।** प्राणिषु तिष्ठतीति प्राणिस्थम्, तस्मात्। प्राणिस्थात् पञ्चम्यन्तम्, आतः पञ्चम्यन्तं, लच् प्रथमान्तम्, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थाना प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्राणियों के अंगवाचक आकारान्त प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में विकल्प से लच् प्रत्यय होता है।

मतुप् प्रत्यय जिस अर्थ में होता है, उसे **मतुबर्थ** या **मत्वर्थ** कहते हैं। **'वह इसका है या वह इस में है'** इन अर्थों में मतुप् होता है तो ऐसे अर्थ में होने वाले अन्य प्रत्यय भी **मत्वर्थ** कहलाते हैं। **लच्** में चकार इत्संज्ञक है और **ल** मात्र बचता है। **मतुप्** को वाधकर **लच्** होता है, न होने के पक्ष में **मतुप्** ही होगा।

चूडालः, चूडावान्। चोंटी, शिखा है जिसका अर्थात् चोंटी वाला। **चूडा** शब्द प्राणी के शरीर का एक अंग है। **चूडा अस्यास्ति** या **अस्मिन्नस्ति** यह विग्रह है। **चूडा सु** में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** प्राप्त था, उसे बाधकर के **प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्** से **लच्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **चूडाल** बना और स्वादिकार्य करके **चूडालः** सिद्ध हुआ। यह प्रत्यय वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** होकर **चूडा+मत्** बना। **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** से **मत्** के **मकार** के **स्थान** पर **वकार** आदेश होकर **चूडावत्** बना और स्वादिकार्य करके **चूडावान्** भी बन जाता है।

प्राणिस्थात् किम्, शिखावान् दीपः। यदि **प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्** इस

सूत्र में **प्राणिस्थात्** नहीं कहते तो **शिखा वाला दीपक** इस अप्राणी में भी लच् होने लगता। ऐसा होना अभीष्ट नहीं है। अतः **प्राणिस्थात्** कहा गया जिससे अप्राणी **दीपस्थ शिखा** से लच् न होकर मतुप् ही हो गया।

प्राण्यङ्गादेव, नेह- मेधावान्। ग्रन्थकार का यह कथन है कि केवल **प्राणिस्थ** मात्र होने से काम नहीं चलेगा किन्तु प्राणी के अंग का वाचक होना चाहिए। जैसे कि **बुद्धि** का वाचक **मेधा** शब्द प्राणी में ही स्थित रहता है किन्तु वह **प्राणी का अंग** नही है। जो प्राणियों में मूर्तरूप में विद्यमान हो ऐसे अंग के वाचक शब्द से ही इस प्रत्यय का विधान होना चाहिए। अतः **मेधा अस्यास्तीति** में **मेधावान्** बनेगा, **मेधालः** नहीं।

११८८- लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः। लोमन् शब्द आदिर्येषां ते लोमादयः। पामन् शब्द आदिर्येषां ते पामादयः। पिच्छशब्द आदिर्येषां ते पिच्छादयः। लोमादयश्च पामादयश्च पिच्छादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो लोमादिपामादिपिच्छादयस्तेभ्यः। शश्च नश्च इलच् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः शनेलचः। लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, शनेलचः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की तथा **प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

मत्वर्थ में लोमादिगणपठित शब्दों से श प्रत्यय, पामादिगणपठित शब्दों से न प्रत्यय और पिच्छादिगणपठित शब्दों से इलच् प्रत्यय होते हैं विकल्प से।

श और न प्रत्यय में कोई अनुबन्ध नहीं है किन्तु **इलच्** में चकार इत्संज्ञक है। तीन प्रकार के प्रातिपदिकों से तीन प्रकार के प्रत्यय हो रहे हैं। अतः **यथासङ्ख्यनियम** रहेगा। ये सभी प्रत्यय वैकल्पिक हैं। अतः न होने के पक्ष में **मतुप्** ही होगा।

लोमादिकों से **श** हो रहा है-

लोमशः। लोम, रोम हैं जिसके ऐसा व्यक्ति। **लोमानि अस्य सन्ति। लोमन् जस्** में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** प्राप्त था, उसे बाधकर **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः** से **श** प्रत्यय हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **लोमन्+श** बना। **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदत्व के कारण पदान्त नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ- **लोमश** बना। स्वादिकार्य करके **लोमशः** सिद्ध हुआ। **श** न होने के पक्ष में **मतुप्** होकर **लोमवान्** बन जाता है।

रोमशः। रोम हैं जिसके ऐसा व्यक्ति। **रोमाणि अस्य सन्ति। रोमन् जस्** में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** प्राप्त था, उसे बाधकर के **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः** से श प्रत्यय हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **रोमन्+श** बना। **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदत्व के कारण पदान्त नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ- **रोमश** बना। स्वादिकार्य करके **रोमशः** सिद्ध हुआ। **श** न होने के पक्ष में **मतुप्** होकर **रोमवान्** बन जाता है।

पामादिकों से न प्रत्यय हो रहा है।

पामनः। गीली खुजली वाला व्यक्ति। **पाम अस्यास्तीति। पामन् सु** में **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः** से **पामादि** मानकर न प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से **नकार** का लोप करके **पामन** बना। स्वादिकार्य से **पामनः** सिद्ध हुआ। **न** होने के पक्ष में **मतुप्** होकर **पामवान्** बन जाता है।

अङ्गात् कल्याणे। यह गणसूत्र है। **कल्याण अर्थ में ही अङ्ग शब्द से न प्रत्यय**

उरच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११८९. दन्त उन्नत उरच् ५।२।१०६॥

उन्नता दन्ताः सन्त्यस्य दन्तुरः।

व-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११९०. केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ५।२।१०१॥

केशवः। केशी। केशिकः। केशवान्।

वार्तिकम्- **अन्येभ्योऽपि दृश्यते।** मणिवः।

वार्तिकम्- **अर्णसो लोपश्च।** अर्णवः।

....

हो। अङ्ग-शब्द **पामादि** के अन्तर्गत आता है। अतः उससे **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः** से **न** प्रत्यय प्राप्त था किन्तु इस गण सूत्र से सीमा बाँधी गई कि सर्वत्र **अङ्ग** शब्द से न प्रत्यय नहीं होता किन्तु **कल्याण** अर्थ होने पर ही होता है।

अङ्गना। कल्याण या सुन्दर अंगों वाली स्त्री। **कल्याणानि अङ्गानि सन्ति अस्याः**। **अङ्ग जस्** में **अङ्गात् कल्याणे** के अर्थनिर्देशन में **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः** से विकल्प से **न** प्रत्यय होकर स्त्रीत्व में **अङ्गना** बन जाता है। न प्रत्यय के न होने के पक्ष में **मतुप्** होकर **अङ्गवती** बन जायेगा।

पिच्छादिकों से इलच् प्रत्यय हो रहा है।

पिच्छिलः, पिच्छवान्। मयूरपंख है जिसका ऐसा व्यक्ति। **पिच्छिलमस्य अस्ति**। **पिच्छिल सु** में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** प्राप्त था, उसे बाधकर **पिच्छादि** होने के कारण **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः** से **इलच्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध का लोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पिच्छ+इल** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **पिच्छिल** बना। स्वादिकार्य करके **पिच्छिलः** सिद्ध हुआ। **इलच्** न होने के पक्ष में **मतुप्** होकर **पिच्छवान्** बन जाता है। इसी तरह **पङ्कोऽस्यास्तीति पङ्किलः, पङ्कवान्** आदि भी बनाइये।

११८९- दन्त उन्नत उरच्। दन्ते सप्तम्यन्तम्, उन्नते सप्तम्यन्तम्, उरच् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

दाँतों का उन्नत होना अर्थ गम्यमान हो तो प्रथमान्त 'दन्त' शब्द से मत्वर्थ में 'उरच्' प्रत्यय होता है।

चकार इत्संज्ञक है, उर बचता है। जहाँ **उन्नत दाँत वाला** अर्थ न होकर केवल सामान्य दाँत वाला अर्थ होगा, वहाँ **उरच्** न होकर **मतुप्** के योग से **दन्तवान्** बनता है।

दन्तुरः। ऊँचे दाँत वाला व्यक्ति। **उन्नता दन्ता सन्त्यस्य**। **दन्त जस्** से **दन्त उन्नत उरच्** से **उरच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दन्त+उर** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **दन्तुर** बना और स्वादिकार्य करके **दन्तुरः** सिद्ध हुआ। सामान्य अर्थ में **मतुप्** होकर **दन्तवान्** बन जाता है।

इनि- ठन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११९१. अत इनिठनौ ५।२।११५॥

दण्डी। दण्डिकः।

....

११९०- केशाद्वोऽन्यतरस्याम्। केशात् पञ्चम्यन्तं, वः प्रथमान्तम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति** मतुप् से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमान्त 'केश' शब्द से मत्वर्थ में विकल्प से व प्रत्यय होता है।

इस प्रत्यय में कोई अनुबन्ध नहीं है। यह प्रत्यय वैकल्पिक है। यह केवल **केश** शब्द से मत्वर्थ प्रत्यय की कर्तव्यता में प्रवृत्त होता है।

यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि **प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आ ही सकती है तो इस सूत्र में पुनः **अन्यतरस्याम्** क्यों पढ़ा गया? इसका उत्तर यह है कि यहाँ पर आचार्य को केवल **व** प्रत्यय को विकल्प से करना अभीष्ट नहीं है अपितु मत्वर्थ में होने वाले **इनि, ठन्** और **मतुप्** प्रत्ययों को भी करना अभीष्ट है। अतः **अन्यतरस्याम्** पढ़ कर यह सूचित किया है। फलतः **केश** शब्द से उक्त तीनों प्रत्यय होंगे।

केशवः, केशी, केशिकः, केशवान्। केशों वाला व्यक्ति। **केशाः सन्त्यस्य। केश जस्** में **केशाद्वोऽन्यतरस्याम्** से विकल्प से व-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **केशव** बना। स्वादिकार्य करके **केशवः** सिद्ध हुआ। इनि होने के पक्ष में **केश+इन्** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **केशिन्** यह प्रातिपदिक बना। इससे स्वादिकार्य करके **केशी, केशिनौ, केशिनः** आदि बन जाते हैं। इसी तरह **ठन्** होने पर उसके स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश करके **केशिकः, केशिकौ** आदि भी बन जाते है। **मतुप्** होने के पक्ष में **केशवान्** बना सकते हैं। इस तरह **केश** शब्द से **मत्वर्थ** में चार रूप बने गये।

अन्येभ्योऽपि दृश्यते। यह वार्तिक है। **केश-शब्द के अतिरिक्त अन्य शब्दों से व प्रत्यय देखा जाता है।** जहाँ-जहाँ **व** प्रत्ययान्त रूप देखा जाय, वहीं-वहीं पर ही इस वार्तिक से **व** प्रत्यय हुआ है, ऐसा माना जाय। **दृश्यते** आदि शब्दों के प्रयोग से यह सूचना मिलती है कि हम स्वतन्त्रतया सभी शब्दों से उक्त प्रत्यय नहीं कर सकते। जहाँ-जहाँ आप्त लोगों का ऐसा प्रयोग मिलता है, वहाँ वहाँ ही उक्त **व** प्रत्यय कर सकते हैं। जैसे कि-

मणिवः। ऐसे शब्दों में आप्तप्रमाण प्राप्त है। अतः **मणिरस्यास्तीति** विग्रह में **मणि सु** से **अन्येभ्योऽपि दृश्यते** इस वार्तिक से **व** प्रत्यय करके स्वादिकार्य करने पर **मणिवः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **हिरण्यवः** आदि भी प्रयोग मिलते हैं।

अर्णसो लोपश्च। यह भी वार्तिक ही है। **'अर्णस्' शब्द से मत्वर्थ में 'व' प्रत्यय होता है साथ ही 'अर्णस्' के अन्त्य अल् का लोप भी होता है।**

अर्णवः। बहुत जल है ऐसा समुद्र। **प्रभूतम् अर्णोऽस्यास्तीति। अर्णस् सु** से **अर्णसो लोपश्च** इस वार्तिक से **व** प्रत्यय और **अर्णस्** के अन्त्य वर्ण **सकार** का लोप भी हुआ- **अर्णव** बना। स्वादिकार्य करके **अर्णवः** सिद्ध हुआ।

इनि-ठन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११९२. व्रीह्यादिभ्यश्च ५।२।११६॥

व्रीही। व्रीहिकः।

....

११९१- **अत इनिठनौ**। इनिश्च ठन् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्व इनिठनौ। अतः पञ्चम्यन्तं, इनिठनौ प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति** मतुप् से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

ह्रस्व अकारान्त प्रथमान्त प्रातिपदिक से इनि और ठन् प्रत्यय होते हैं।

इनि में नकारोत्तरवर्ती **इकार** इत्संज्ञक है और **ठन्** में **नकार** इत्संज्ञक है। **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश होता है।

दण्डी, दण्डिकः। जिसका दण्ड हो अथवा जिसमें दण्ड हो अर्थात् दण्ड वाला। **दण्डः अस्य अस्ति** अथवा **दण्डः अस्मिन् अस्ति** लौकिक विग्रह और **दण्ड सु** अलौकिक विग्रह है। **अत इनिठनौ** से इनि होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दण्ड+इन्** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **दण्ड्+इन्=दण्डिन्** बना। **योगिन्** से **योगी, योगिनौ, योगिनः** की तरह **दण्डिन्** से **दण्डी, दण्डिनौ, दण्डिनः** आदि रूप बनते हैं। **ठन्** होने के पक्ष में नकार का लोप करके ठ के स्थान पर इक आदेश करके **दण्ड+इक,** भसंज्ञक अकार का लोप करके **दण्ड्+इक=दण्डिक** बना। अकारान्त बन जाने के कारण राम की तरह **दण्डिकः, दण्डिकौ, दण्डिकाः** रूप बनते हैं।

छत्री, छत्रिकः। जिसका छत्र(छतरी) हो अथवा जिसमें छत्र हो अर्थात् छत्र वाला। **छत्रम् अस्य अस्ति** अथवा **छत्रम् अस्मिन् अस्ति** लौकिक विग्रह और **छत्र सु** अलौकिक विग्रह है। **अत इनिठनौ** से इनि होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **छत्र+इन्** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **छत्र्+इन्=छत्रिन्** बना। **योगिन्** से **योगी, योगिनौ, योगिनः** की तरह **छत्रिन्** से **छत्री,** रेफ से परे नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व करने पर **छत्रिणौ, छत्रिणः** आदि रूप बनते हैं। **ठन्** होने के पक्ष में नकार का लोप करके ठ के स्थान पर इक आदेश करके **छत्र+इक,** भसंज्ञक अकार का लोप करके **छत्र्+इक=छत्रिक** बना। अकारान्त बन जाने के कारण राम की तरह **छत्रिकः, छत्रिकौ, छत्रिकाः** रूप बनते हैं।

११९२- **व्रीह्यादिभ्यश्च**। व्रीहिः आदिर्येषां ते व्रीह्यादयस्तेभ्यः। व्रीह्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति** मतुप् से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की **अत इनिठनौ** से **इनिठनौ** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

व्रीहि आदि गणपठित प्रथमान्त प्रातिपदिकों से भी इनि और ठन् प्रत्यय होते हैं।

व्रीहि आदि शब्दों के अदन्त न होने के कारण **अत इनिठनौ** से प्राप्त नहीं था, एतदर्थ इस सूत्र का अवतरण हुआ है।

व्रीही, व्रीहिकः। जिसका धान हो, धान वाला। **व्रीहयोऽस्य सन्ति। व्रीहि जस्**

विनि-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११९३. अस्मायामेधास्रजो विनिः ५।२।१२१॥

यशस्वी। यशस्वान्। मायावी। मेधावी। स्रग्वी।

....

में **व्रीह्यादिभ्यश्च** से **इनि** होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **व्रीहि+इन्** बना। भसंज्ञक इकार का लोप करके **व्रीह्+इन्=व्रीहिन्** बना। **योगिन्** से **योगी, योगिनौ, योगिनः** की तरह **व्रीहिन्** से **व्रीही, व्रीहिणौ, व्रीहिणः** आदि रूप बनते हैं। **ठन्** होने के पक्ष में नकार का लोप करके **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश करके **वीहि+इक**, भसंज्ञक इकार का लोप करके **व्रीह्+इक=व्रीहिक** बना। अकारान्त बन जाने के कारण **राम** की तरह **व्रीहिकः, व्रीहिकौ, व्रीहिकाः** रूप बनते हैं।

११९३- अस्मायामेधास्रजो विनिः। अस् च माया च मेधा च स्रज् च तेषां समाहारद्वन्द्व अस्मायामेधास्रज्, तस्मात्। अस्मायामेधास्रजः पञ्चम्यन्तं, विनिः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमान्त असन्त शब्द और माया, मेधा तथा स्रज् शब्दों से मत्वर्थ में विनि प्रत्यय होता है।

विनि में नकारोत्तरवर्ती **इकार** इत्संज्ञक है, **विन्** बचता है!

यशस्वी, यशस्वान्। जिसका यश, कीर्ति हो अथवा जिसमें यश, कीर्ति हो अर्थात् यश, कीर्ति वाला। **यशः अस्य अस्ति** अथवा **यशः अस्मिन् अस्ति** लौकिक विग्रह और **यशस् सु** अलौकिक विग्रह है। यह असन्त शब्द है। **अस्मायामेधास्रजो विनिः** से **विनि** हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **यशस्+विन्=यशस्विन्** बना। **योगिन्** से **योगी, योगिनौ, योगिनः** की तरह **यशस्विन्** से **यशस्वी, यशस्विनौ, यशस्विनः** आदि रूप बनते हैं। मतुप् होने के पक्ष में अवर्णोपध मानकर मकार के स्थान पर वकार आदेश करके **यशस्वान्, यशस्वन्तौ, यशस्वन्तः** आदि बनाये जाते हैं। स्त्रीलिङ्ग में **यशस्विनी, यशस्विन्यौ, यशस्विन्यः** आदि रूप बनते हैं।

मायावी। माया वाला, कपटी। **माया अस्य अस्ति** अथवा **माया अस्मिन् अस्ति** लौकिक विग्रह और **माया सु** अलौकिक विग्रह है। **अस्मायामेधास्रजो विनिः** से **विनि** हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **माया+विन्=मायाविन्** बना। सु आदि विभक्ति आने पर **मायावी, मायाविनौ, मायाविनः** आदि रूप बनते हैं। स्त्रीलिङ्ग में **मायाविनी, मायाविन्यौ, मायाविन्यः** आदि रूप बनाये जाते हैं।

मेधावी। धारणावती बुद्धि वाला। **मेधा अस्य अस्ति** अथवा **मेधा अस्मिन् अस्ति** लौकिक विग्रह और **मेधा सु** अलौकिक विग्रह है। **अस्मायामेधास्रजो विनिः** से **विनि** हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मेधा+विन्=मेधाविन्** बना। सु आदि विभक्ति आने पर **मेधावी, मेधाविनौ, मेधाविनः** आदि रूप बनते हैं। स्त्रीलिङ्ग में **मेधाविनी, मेधाविन्यौ, मेधाविन्यः** आदि रूप बनाये जाते हैं। इसी प्रकार **स्रज्** से **स्रग्वी, स्रग्विणौ, स्रग्विणः** आदि रूप बनाइये।

गि्मनि-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११९४. वाचो ग्मिनिः ५।२।१२४॥

वाग्ग्मी।

अच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११९५. अर्शआदिभ्योऽच् ५।२।१२७॥

अर्शोऽस्य विद्यतेऽर्शसः। आकृतिगणोऽयम्।

....

स्रग्वी। माला, हार वाला। **स्रक् अस्य अस्ति। स्रज् सु** में **अस्मायामेधास्रजो विनिः** से **विनि** हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्रज्+विन्** बना। **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदत्व के कारण **चोः कुः** से **कुत्व** होकर **जकार** के स्थान पर **गकार** होकर **स्रग्विन्** बना। सु आदि विभक्ति आने पर **स्रग्वी, स्रग्विणौ, स्रग्विणः** आदि रूप बनते हैं।

११९४- वाचो ग्मिनिः। वाचः पञ्चम्यन्तं, ग्मिनिः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

'वाच्' इस प्रथमान्त प्रातिपदिक से मत्वर्थ में 'ग्मिनि' प्रत्यय होता है।

ग्मिनि में अन्त्य इकार इत्संज्ञक है, **ग्मिन्** शेष रहता है।

वाग्ग्मी। प्रशस्त वाणी वाला, बोलने में चतुर। **प्रशस्ता वागस्त्यस्य। वाच् सु** से **वाचो ग्मिनिः** से **ग्मिनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वाच्+ग्मिन्** बना। **चकार** को **चोः कुः** से कुत्व होकर **ककार** बना। उसको **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर **गकार** हुआ- **वाग्ग्मिन्** बना। इससे स्वादि कार्य करके **वाग्ग्मी, वाग्ग्मिनौ, वाग्ग्मिनः** आदि रूप बनते हैं। यथार्थ एवं सन्तुलित बोलने वाले को **वाग्ग्मी** कहते हैं तो बोलक्कड़ को **वाचालः** कहते हैं। इसमें **आलच्** प्रत्यय होता है।

११९५- अर्शआदिभ्योऽच्। अर्शस्-शब्द आदिर्येषां ते अर्शआदयस्तेभ्यः। अर्शआदिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अच् प्रथमान्तम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

अर्शस् आदि गणपठित प्रथमान्त प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में अच् प्रत्यय होता है।

चकार इत्संज्ञक है, **अ** शेष रहता है। यह सूत्र **अस्मायामेधास्रजो विनिः** का बाधक है। **अर्शस् आदि** यह **आकृतिगण** है।

अर्शसः। अर्श, बवासीर रोग वाला। **अर्शोऽस्यास्तीति। अर्शस् सु** से **अर्शआदिभ्योऽच्** से **अच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अर्शस्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अर्शस** बना। इससे स्वादि कार्य करके **अर्शसः, अर्शसौ, अर्शसाः** आदि रूप बनते हैं।

११९६- अहंशुभमोर्युस्। अहं च शुभं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्व अहंशुभमौ, तयोः। अहंशुभमोः पञ्चम्यर्थे षष्ठी। युस् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य**

युस्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

११९६. अहंशुभमोर्युस् ५।२।१४०॥

अहंयुः अहङ्कारवान्। शुभंयुः शुभान्वितः।

इति मत्वर्थीयाः॥५६॥

....

अस्ति अस्मिन् इति इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

अहम् और शुभम् इन दो अव्ययों से परे मत्वर्थ में युस् प्रत्यय होता है।

अहम् और **शुभम्** ये प्रथमान्त समान दीखने वाले अव्यय हैं। **सकार** इत्संज्ञक है, **यु** बचता है। **सित्** होने के कारण पूर्व की **सिति च** से पदसंज्ञा हो जाती है, जिससे पदान्तकार्य अनुस्वार-परसवर्ण आदि हो जाते हैं।

अहंयुः। अहंकार वाला, घमंडी। **अहम् अस्यास्तीति**। **अहम्** इस मकारान्त अव्यय से **अहंशुभमोर्युस्** से **युस्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अहम्+यु** बना। **सिति च** से **अहम्** की पदसंज्ञा होने के कारण **मकार** को **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार और उसका **वा पदान्तस्य** से विकल्प से परसवर्ण होकर **अहय्ँयु** बना। इससे स्वादि कार्य करके **अहय्ँयुः**, **अहय्ँयू**, **अहय्ँयवः** आदि रूप बनते हैं। परसवर्ण न होने के पक्ष में अनुस्वार ही रह जाता है जिससे **अहंयुः**, **अहंयू**, **अहंयवः** आदि रूप बनते हैं।

शुभंयुः। शुभता से युक्त, कल्याणवाला। **शुभम् अस्यास्तीति**। **शुभम्** इस मकारान्त अव्यय से **अहंशुभमोर्युस्** से **युस्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **शुभम्+यु** बना। **सिति च** से **शुभम्** की पदसंज्ञा होने के कारण **मकार** को **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार और उसका वैकल्पिक **परसवर्ण** होकर **शुभय्ँयु** बना। इससे स्वादि कार्यकरके **शुभय्ँयुः**, **शुभय्ँयू**, **शुभय्ँयवः** आदि रूप बनते हैं। पक्ष में **शुभंयुः**, **शुभंयू**, **शुभंयवः**।

परीक्षा

इस प्रकरण के सभी सूत्रों एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालते हुए किन्हीं बीस प्रयोगों की सिद्धि दिखाइये।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का
मत्वर्थीयप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ प्राग्दिशीयाः

विभक्तिसंज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

११९७. प्राग्दिशो विभक्तिः ५।३।१॥

'दिक्छब्देभ्य' इत्यतः प्राग्वक्ष्यमाणाः प्रत्यया विभक्तिसंज्ञाः स्युः।

प्राग्दिशीयाधिकारसूत्रम्

११९८. किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः ५।३।२॥

किमः सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्चेति प्राग्दिशोऽधिक्रियते।

तसिलादेशविधायकं विधिसूत्रम्

११९९. पञ्चम्यास्तसिल् ५।३।७॥

पञ्चम्यन्तेभ्यः किमादिभ्यस्तसिल् वा स्यात्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **प्राग्दिशीयप्रकरण** का प्रारम्भ होता है। इस प्रकरण के प्रत्यय प्रायः प्रकृति के ही अर्थ में होते हैं और कहीं-कहीं लौकिक विग्रह का अभाव जैसा भी रहता है। यहाँ से **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार नहीं है।

११९७- **प्राग्दिशो विभक्तिः**। प्राक् अव्ययपदं, दिशः पञ्चम्यन्तं, विभक्तिः प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्।

'दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः' इस सूत्र से **पहले तक जितने प्रत्ययों का कथन होगा, उन सब की विभक्तिसंज्ञा होती है।**

उन प्रत्ययों की विभक्तिसंज्ञा होने से विभक्ति को मानकर होने वाले सारे कार्य हो सकते हैं। इस प्रकरण में सिद्ध शब्द स्वरादिगण में आने के कारण अव्ययसंज्ञक हो जाते हैं।

११९८- **किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः**। किं च सर्वनाम च बहुश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः किंसर्वनामबहवस्तेभ्यः। द्वि-शब्द आदिर्येषां ते द्व्यादयः, न द्व्यादयोऽद्व्यादयस्तेभ्यः। किंसर्वनामबहुभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अद्व्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्राग्दिशो विभक्तिः** से **प्राक्** और **दिशः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

द्वि आदि से भिन्न सर्वनामसंज्ञक शब्द, किम्-शब्द और बहु शब्द से परे ही प्राग्दिशीय प्रत्यय होते हैं, यह अधिकार किया जाता है।

कु-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२००. कु तिहो: ७।२।१०४॥

किम: कु: स्यात्तादौ हादौ च विभक्तौ परत:। कुत:, कस्मात्।

इशादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२०१. इदम इश् ५।३।३॥

प्राग्दिशीये परे। इत:।

....

सर्वनाम में **द्वि, युष्मत्, अस्मत्, भवतु, किम्** भी पढ़े गये हैं। इनको छोड़कर सभी सर्वनामसंज्ञक शब्दों से प्राग्दिशीय प्रत्यय होंगे साथ ही **द्वि** आदि में **किम्** को नहीं लिया जायेगा। अत: सूत्र में **किम्** का साक्षात् उच्चारण किया गया।

१९९९- पञ्चम्यास्तसिल्। पञ्चम्या: पञ्चम्यन्तं, तसिल् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्य:** यह पूरा सूत्र अनुवर्तित होता है। **प्रत्यय:, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिता:** का अधिकार है।

द्वि आदि शब्दों से भिन्न पञ्चम्यन्त किम्, सर्वनाम एवं बहु आदि प्रातिपदिकों से वैकल्पिक तसिल् प्रत्यय होता है।

तसिल् में इल् इत्संज्ञक है, **तस्** बचता है। विभक्तिसंज्ञक होने के कारण **न विभक्तौ तुस्मा:** से **सकार** की इत्संज्ञा का निषेध होता है।

१२००- कु तिहो:। तिश्च ह् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्तिहौ, तयो:। कु प्रथमान्तं, तिहो: सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अष्टन आ विभक्तौ** से **विभक्तौ** और **किम: क:** से **किम:** की अनुवृत्ति आती है। **यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे** से तदादिविधि होकर **तकारादि थकारादि** यह अर्थ बनता है।

तकारादि और हकारादि प्रत्ययों के परे होने पर किम् शब्द के स्थान पर कु सर्वादेश होता है।

यह **किम: क:** का अपवाद है।

कुत:, कस्मात्। कहाँ से? **कस्मात्** लौकिक विग्रह और **किम् ङसि** अलौकिक विग्रह है। **पञ्चम्यास्तसिल्** से **तसिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तस् बचा। **किम्+ङसि+तस्** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **किम्+तस्** बना। तस् की **प्राग्दिशो विभक्ति:** से विभक्तिसंज्ञा करके उसके परे होने पर **किम: क:** से क आदेश की प्राप्ति थी, उसे बाध कर **कु तिहो:** से कु आदेश हुआ। **कुतस्** से सु आदि विभक्ति और अव्यय होने के कारण **अव्ययादाप्सुप:** से उसका लुक् हो जाता है एवं सकार का रुत्वविसर्ग करने पर **कुत:** सिद्ध हो जाता है। तसिल् प्रत्यय वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में पञ्चमी में **कस्मात्** तो बनता ही है।

१२०१- इदम इश्। इदम: षष्ठ्यन्तं, इश् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्राग्दिशो विभक्ति:** से **प्राग्दिश:** की अनुवृत्ति आती है।

प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे होने पर इदम् के स्थान पर इश् आदेश होता है।

इश् में शकार की इत्संज्ञा होती है और **इ** शेष रहता है। शित् होने के कारण **अनेकाल् शित्सर्वस्य** से सर्वादेश होता है।

अनादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२०२. अन् ५।३।५॥

एतदः प्राग्दिशीये। अनेकाल्त्वात् सर्वादेशः।

अतः। अमुतः। यतः। ततः। बहुतः। द्व्यादेस्तु द्वाभ्याम्।

तसिल्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२०३. पर्यभिभ्यां च ५।३।९॥

आभ्यां तसिल् स्यात्। परितः। सर्वत इत्यर्थः। अभितः। उभयत इत्यर्थः।

....

इतः, अस्मात्। यहाँ से। **अस्मात्** लौकिक विग्रह और **इदम् ङसि** अलौकिक विग्रह है। **पञ्चम्यास्तसिल्** से **तसिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तस् बचा। **इदम्+ङसि+तस्** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **इदम् तस** बना। इदम् के स्थान पर **इदम इश्** से **इश्** आदेश, अनुबन्धलोप करके **इ+तस्=इतस्** बना। सु आदि विभक्ति और अव्यय होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से उसका लुक् हो जाता है। सकार का रुत्वविसर्ग करने पर **इतः** सिद्ध हो गया। तसिल् प्रत्यय वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में पञ्चमी में **अस्मात्** तो बनता ही है।

१२०२- अन्। अन् प्रथमान्तमेकपदमिदं सूत्रम्। **एतदः** इस सूत्र की और **प्राग्दिशो विभक्तिः** से प्राग्दिशः की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है ही।

प्राग्दिशीय के परे होने पर एतद् के स्थान पर अन् आदेश होता है।

अन् में **नकार** की इत्संज्ञा नहीं होती है, अतः **नकार** सहित **अन्** होने के कारण अनेकाल् है। फलतः सर्वादेश हो जाता है।

अतः, एतस्मात्। इससे। **एतद् ङसि** इसमें **पञ्चम्यास्तसिल्** से तसिल्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तस् बचा। **एतद्+ङसि+तस्** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अन्** सूत्र से एतद् के स्थान पर अन् सर्वादेश करके **अन्+तस्** बना। नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ। अतस् बना। सु आदि विभक्ति, अव्यय होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से उसका लुक् हो जाता है और सकार का रुत्वविसर्ग करने पर **अतः** सिद्ध हो जाता है। तसिल् प्रत्यय वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में पञ्चमी में **एतस्मात्** तो बनता ही है।

अमुतः, अमुष्मात्। इससे। **अदस् ङसि** में **पञ्चम्यास्तसिल्** से तसिल्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तस् बचा। **अदस्+ङसि+तस्** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अदस्+तस्** बना। **तस्** की विभक्तिसंज्ञा हुई है, अतः **त्यदादीनामः** से दकार के स्थान पर **अकार** आदेश करके **अद+अ+तस्** बना। **अद+अ** में **अतो गुणे** से पररूप होकर **अद+तस्** बना। **अदसोऽसेर्दादु दो मः** से उत्व-मत्व होकर **अमुतस्** बना। सु आदि विभक्ति, अव्यय होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से उसका लुक् हो जाता है। सकार का रुत्वविसर्ग करने पर **अमुतः** सिद्ध हो गया। तसिल् आदेश वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में पञ्चमी में **अमुष्.ात्** तो बनता ही है।

यतः। ततः। बहुतः। यत् शब्द से तसिल्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, तस् की विभक्तिसंज्ञा, **त्यदादीनामः** से अत्व, पररूप करके **यतस्** बना, सु,

त्रल्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२०४. सप्तम्यास्त्रल् ५।३।१०॥

कुत्र। यत्र। तत्र। बहुत्र।

ह-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२०५. इदमो हः ५।३।११॥

त्रलोऽपवादः। इह।

....

लुक् और सकार का रुत्वविसर्ग करने पर **यतः** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार तद् शब्द से **ततः** भी बनाइये। यदि ये बना लिए तो फिर **बहु** शब्द से **बहुतः** बनाने में भी कोई परेशानी नहीं आयेगी।

किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः में **अद्व्यादिभ्यः** से **द्वि** आदि शब्दों में प्राग्दिशीय प्रत्ययों का निषेध है, अतः **द्वि** शब्द से **द्वाभ्याम्** मात्र ही बनता है, तसिल् आदि नहीं होते।
१२०३- पर्यभिभ्यां च। परिश्च अभिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः पर्यभी, ताभ्याम्। पर्यभिभ्यां पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **पञ्चम्यास्तसिल्** से **तसिल्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

परि और अभि इन अव्ययों से परे तद्धितसंज्ञक तसिल् प्रत्यय होता है।

परितः। चारों तरफ। परि इस अव्यय से **पर्यभिभ्यां च** से **तसिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **परितस्,** सु, अव्ययत्वात् उसका लुक् करके सकार को रुत्व और उसका विसर्ग करने पर **परितः** सिद्ध हो जाता है।

अभितः। दोनों ओर। **अभि** इस अव्यय से **पर्यभिभ्यां च** से **तसिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **अभितस्,** सु, अव्ययत्वात् उसका लुक् करके सकार को रुत्व और उसका विसर्ग करने पर **अभितः** सिद्ध हो जाता है।
१२०४- सप्तम्यास्त्रल्। सप्तम्याः पञ्चम्यन्तं, त्रल् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

द्वि आदि शब्दों से भिन्न किम्, सर्वनाम एवं बहु इन सप्तम्यन्त प्रातिपदिकों से वैकल्पिक त्रल् प्रत्यय होता है।

लकार इत्संज्ञक है। त्र शेष रहता है।

कुत्र(कहाँ)। **यत्र**(जहाँ)। **तत्र**(वहाँ)। **सर्वत्र**(सभी जगह)। **बहुत्र**(अनेक जगह)। **कस्मिन्** लौकिक विग्रह और **किम् ङि** अलौकिक विग्रह है। **सप्तम्यास्त्रल्** से त्रल् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, त्र बचा। **किम्+ङसि+त्र** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कु तिहोः** से किम् के स्थान पर कु सर्वादेश करके **कु+त्र=कुत्र** बना। सु आदि विभक्ति, अव्यय होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से उसका लुक् होकर **कुत्र** सिद्ध हो गया। इसी प्रकार यद् से **यत्र**, तद् से **तत्र**, सर्व से **सर्वत्र** और बहु से **बहुत्र** भी आप बना लें। यत् और तत् में **त्यदादीनामः** से अत्व करना न भूलें।
१२०५- इदमो हः। इदमः पञ्चम्यन्तं, हः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में

अत्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२०६. किमोऽत् ५।३।१२॥

वा-ग्रहणमपकृष्यते। सप्तम्यन्तात् किमोऽद्वा स्यात्। पक्षे त्रल्।

क्वादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२०७. क्वाति ७।२।१०५॥

किमः क्वादेश स्यादिति। क्व, कुत्र।

तसिलादिविधायकं विधिसूत्रम्

१२०८. इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ५।३।१४॥

पञ्चमीसप्तमीतरविभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्ते।

दृशिग्रहणाद् भवदादियोग एव। स भवान्। ततो भवान्। तत्र भवान्। तं भवन्तम्। ततो भवन्तम्। तत्र भवन्तम्। एवं दीर्घायुः, देवानाम्प्रियः, आयुष्मान्।

....

सप्तम्यास्त्रल् से **सप्तम्याः** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त इदम् शब्द से ह प्रत्यय होता है।

यह **सप्तम्यास्त्रल्** का अपवाद है।

इह। यहाँ। **इदम् ङि** इस अलौकिक विग्रह में **इदमो हः** से ह प्रत्यय प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **इदम इश्** से इश् आदेश, अनुबन्धलोप करके **इह** बना और सु आदि करके उसका अव्ययत्व के कारण लुक् होने से **इह** सिद्ध हुआ।

१२०६- किमोऽत्। किमः पञ्चम्यन्तम्, अत् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

पञ्चम्यन्त किम् से परे वैकल्पिक अत् प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है। **अत्** न होने के पक्ष में **त्रल्** होता है।

१२०७- क्वाति। क्व लुप्तप्रथमाकम्, अति सप्तम्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **किमः कः** से **कः** की अनुवृत्ति आती है।

अत् प्रत्यय के परे होने पर किम् के स्थान पर क्व आदेश होता है।

क्व, कुत्र। कहाँ। **किम् ङसि** अलौकिक विग्रह है। त्रल् प्राप्त था, उसे बाधकर **किमोऽत्** से **अत्**, अनुबन्धलोप, **क्वाति** से किम् के स्थान पर **क्व** आदेश, **क्व+अ** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **क्व्+अ=क्व** बना। सु आदि करके अव्ययत्वात् विभक्ति का लुक् करके **क्व** सिद्ध हुआ।

१२०८- इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते। इतराभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अपि अव्ययपदं, दृश्यन्ते क्रियापदं, त्रिपदं सूत्रम्। **पञ्चम्यास्तसिल्, सप्तम्यास्त्रल्** आदि सूत्रों से **तसिल्, त्रल्** की अनुवृत्ति आती है, उसे यहाँ पर **तसिलादयः** कह दिया गया है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

दा-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२०९. सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा ५।३।१५॥

सप्तम्यन्तेभ्यः कालार्थेभ्यः स्वार्थे दा स्यात्।

सादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२१०. सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ५।३।६॥

दादौ प्राग्दिशीये सर्वस्य सो वा स्यात्। सर्वस्मिन् काले सदा, सर्वदा। अन्यदा। कदा। यदा। तदा। काले किम्? सर्वत्र देशे।

र्हिल्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२११. इदमो र्हिल् ५।३।१६॥

सप्तम्यन्तात् काल इत्येव।

....

पञ्चमी और सप्तमी के अतिरिक्त अन्य विभक्त्यन्त किम् आदियों से भी स्वार्थ में तसिल् आदि प्रत्यय देखे जाते हैं।

दृश्यन्ते इस पद का अर्थ है **देखे जाते हैं**। अतः **सभी विभक्तियों से सर्वत्र होते हैं**, ऐसा अर्थ नहीं है किन्तु जहाँ-जहाँ आप्तों ने अन्य विभक्तियों से प्रयोग किया है, उन-उन विभक्त्यन्तों से ही ये प्रत्यय किये जा सकते हैं। इसका अर्थ मूलकार ने यह लगाया है कि **भवत्** आदि शब्दों के योग में ही अन्य विभक्त्यन्तों से **तसिल्** आदि किये जायें। शिष्टों ने **भवत्, दीर्घायुः, देवानाम्प्रियः, आयुष्मान्** इन शब्दों के योग में इतरविभक्तियों से भी इस प्रत्यय से युक्त रूपों का प्रयोग किया है।

स भवान्, ततो भवान्, तत्र भवान्। आप। यहाँ पर **भवत्** शब्द का योग है। **तद्** शब्द से तसिल् होने पर **ततः** और **त्रल्** होने पर **तत्र** बना है। ये प्रत्यय स्वार्थ में ही हुए है। प्रत्यय के योग से किसी अर्थविशेष की उपस्थिति नहीं हो रही है। केवल वाक्य में सौष्ठव हो रहा है।

१२०९- **सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा**। सर्वश्च एकश्च अन्यच्च किञ्च यच्च तच्च तेषां समाहारद्वन्द्वः सर्वैकान्यकिंयत्तत्, तस्मात्। सर्वैकान्यकिंयत्तदः पञ्चम्यन्तं, काले सप्तम्यन्तं, दा लुप्तप्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **सप्तम्यास्त्रल्** से **त्रल्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त कालार्थक सर्व, एक, अन्य, किम्, यत् और तद् शब्द से स्वार्थ में दा प्रत्यय होता है काल अर्थ गम्यमान होने पर।

१२१०- **सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि**। सर्वस्य षष्ठ्यन्तं, सः प्रथमान्तं, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तं, दि सप्तम्यन्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्।

दकारादि प्रत्यय के परे होने पर सर्व के स्थान पर स आदेश होता है।

सदा, सर्वदा। सब काल में अर्थात् हमेशा। **सर्वस्मिन् काले** यह लौकिक विग्रह है। **सर्व ङि** इस अलौकिक विग्रह में **सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा** से दा प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, दा के परे **सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि** से सर्व के स्थान पर

एत-इत्-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२१२. एतेतौ रथोः ५।३।४॥

इदम्-शब्दस्य एत इत् इत्यादेशौ स्तो रेफादौ थकारादौ च प्राग्दिशीये परे। अस्मिन् काले एतर्हि। काले किम्? इह देशे।

र्हिल्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२१३. अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् ५।३।२१॥

कर्हि, कदा। यर्हि, यदा। तर्हि, तदा।

....

स आदेश होने पर **स+दा=सदा** बना। सु, उसका लुक् करने पर **सदा** सिद्ध हुआ। दा आदेश न होने के पक्ष में **सर्वदा**। इसी तरह **एक** से **एकदा**, **अन्य** से **अन्यदा**, **किम्** से **क** आदेश होकर **कदा**, **यत्** और **तद्** से अत्व आदि होकर **यदा**, **तदा** आदि रूप बना सकते हैं।

सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा में **काले** पढ़े जाने के कारण **देश** अर्थ गम्यमान होने पर **दा** प्रत्यय नहीं होता। जैसे कि- **सर्वत्र देशे**। (**सर्वदा देशे** नहीं बना।)

१२११- **इदमो र्हिल्**। इदमः पञ्चम्यन्तं, र्हिल् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा** से **काले** तथा **सप्तम्यास्त्रल्** से **सप्तम्याः** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **तद्धिताः** का अधिकार है।

काल अर्थ में वर्तमान सप्तम्यन्त 'इदम्' इस प्रातिपदिक से स्वार्थ में र्हिल् प्रत्यय होता है।

सप्तम्यास्त्रल् का अपवाद है। **र्हिल्** में **लकार** इत्संज्ञक है, **र्हि** शेष रहता है। ध्यान रहे कि **र्हि** में **रेफ** पहले उच्चारित है, उसके बाद **हकार** का उच्चारण होगा और अन्त में **इकार** का।

१२१२- **एतेतौ रथोः**। एतश्च इच्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्व एतेतौ। रश्च थ् च तथौ, तयोः। एतेतौ प्रथमान्तं, रथोः सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **इदम इश्** से **इदमः** और **प्राग्दिशो विभक्तिः** से **प्राग्दिशः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः** का वचनविपरिणाम और विभक्तिविपरिणाम करके **प्रत्यययोः** बनाया जाता है। यहाँ पर **रथोः** में **यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे** से तदादिविधि करके **रादौ** और **थादौ** बन जाता है।

रेफादि और थकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे होने पर इदम् शब्द के स्थान पर 'एत' और 'इत्' ये आदेश होते हैं।

इदम इश् का अपवाद है यह सूत्र। **यथासङ्ख्यनियम** से **रेफ** के परे होने पर **एत** आदेश और **थकारादि** के परे होने पर **इत्** आदेश होंगे। अनेकाल् होने के कारण दोनों सर्वादेश हैं।

एतर्हि। इस काल में, अब। **अस्मिन् काले**। **इदम् ङि** इस अलौकिक विग्रह में **सप्तम्यास्त्रल्** को बाधकर **इदमो र्हिल्** से **र्हिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **इदम्+र्हि** बना। रेफादि प्रत्यय परे है **र्हि**, अतः **एतेतौ रथोः** से **इदम्** के स्थान पर **एत** सर्वादेश हुआ- **एतर्हि** बना। **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से अव्ययसंज्ञक होने के कारण सु आदि विभक्तियों का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है। अतः **एतर्हि** ही बना। काल अर्थ नहीं होने पर **इह देशे** बनता है।

एत-इत्-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२१४. एतदः ५।३।५॥

एत इत् एतौ स्तो रेफादौ थादौ च प्राग्दिशीये। एतस्मिन् काले एतर्हि।

थाल्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२१५. प्रकारवचने थाल् ५।३।२३॥

प्रकारवृत्तिभ्यः किमादिभ्यस्थाल् स्यात् स्वार्थे।

तेन प्रकारेण तथा। यथा।

....

१२१३- **अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्।** अद्य भवः अद्यतनम्, न अद्यतनम् अनद्यतनं, तस्मिन्। अनद्यतने सप्तम्यन्तं, र्हिल् प्रथमान्तम्, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **सप्तम्यास्त्रल्** से **सप्तम्याः** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है साथ ही **किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः** यह सूत्र भी अधिकृत है।

अनद्यतन काल में वर्तमान किम् आदि सप्तम्यन्त प्रातिपदिकों से तद्धितसंज्ञक र्हिल् प्रत्यय विकल्प से होता है।

कर्हि, कदा। किस अनद्यतन काल में? कब? **कस्मिन् अनद्यतने काले?** यह लौकिक विग्रह है। **किम् ङि** में **अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्** से **र्हिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **किम्+र्हि** बना। प्राग्दिशीय प्रत्यय विभक्तिसंज्ञक हैं, अतः **किमः कः** से **किम्** के स्थान पर **क** आदेश होकर **कर्हि** बना और अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् करके **कर्हि** सिद्ध हुआ। **र्हिल्** न होने के पक्ष में **सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा** से दा प्रत्यय होकर **कदा** बन जाता है।

यर्हि, यदा। जिस अनद्यतन काल में, जब। **यस्मिन् अनद्यतने काले?** यह लौकिक विग्रह है। **यत् ङि** में **अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्** से **र्हिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **यत्+र्हि** बना। प्राग्दिशीय प्रत्यय विभक्ति संज्ञक हैं, अतः **त्यदादीनामः** से **अत्व** होकर **यर्हि** बना। अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् करके **यर्हि** सिद्ध हुआ। **र्हिल्** न होने के पक्ष में **सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा** से दा प्रत्यय होकर **यदा** बन जाता है।

तर्हि, तदा। उस अनद्यतन काल में, तब। **तस्मिन् अनद्यतने काले?** यह लौकिक विग्रह है। **तत् ङि** में **अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्** से **र्हिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **तत्+र्हि** बना। प्राग्दिशीय प्रत्यय विभक्ति संज्ञक हैं, अतः **त्यदादीनामः** से **अत्व** होकर **तर्हि** बना। अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् करके **तर्हि** सिद्ध हुआ। **र्हिल्** न होने के पक्ष में **सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा** से दा प्रत्यय होकर **तदा** बन जाता है।

१२१४- **एतदः।** पञ्चम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **एतेतो रथोः** यह पूरा सूत्र आता है।

रेफादि और थकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे होने पर एतद् के स्थान पर एत और इत् आदेश होते हैं।

पाणिनि जी ने **एतदोऽन्** एक ही सूत्र पढ़ा था, जिसका अर्थ होता है- **एतद् शब्द के स्थान पर अन् आदेश हो, प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे रहते। इससे एतस्मात्-अतः,**

थमु-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२१६. इदमस्थमुः ५।३।२४॥

थालोऽपवादः।

वार्तिकम्- **एतदोऽपि वाच्यः।** अनेन एतेन वा प्रकारेण इत्थम्।

थमु-विधायकं विधिसूत्रम्

१२१७. किमश्च ५।३।२५॥

केन प्रकारेण कथम्।

इति प्राग्दिशीयप्रकरणम्॥५७॥

एतस्मिन्-अत्र ये रूप सिद्ध हो जाते हैं किन्तु रेफादि और थकारादि प्राग्दिशीयों में **इदम्** शब्द की तरह **एतद्** को भी क्रमशः **एत** और **इत्** आदेश करना अभीष्ट है। जैसे- **एतस्मिन् काले- एतर्हि, एतेन प्रकारेण- इत्थम्।** इस प्रकार के रूपों की सिद्धि के लिए भाष्यकार ने **एतदोऽन्** सूत्र का विभाग कर दिया है, जिसे **योगविभाग** कहा जाता है। ऐसा करने से **एतदः** इस खण्ड में **एतेतौ रथोः** सूत्र अनुवृत्त होकर अर्थ होता है- **रेफादि और थकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे रहते एतद् को अन् आदेश हो।** पहले **अन्** सूत्र का अर्थ बताया जा चुका है।

एतर्हि। इस अनद्यतन काल में, अब। **एतत् ङि** में **अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्** से र्हिल् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **एतत्+र्हि** बना है। **एतदः** से एतत् के स्थान पर **एत** आदेश होने पर **एतर्हि** बन गया। अव्ययसंज्ञा, स्वादिकार्य करने पर **एतर्हि** सिद्ध हो जाता है।

१२१५- **प्रकारवचने थाल्।** प्रकारवचने सप्तम्यन्तं, थाल् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है साथ ही **किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः** यह सूत्र भी अधिकृत है।

'इस प्रकार से या उस प्रकार से' आदि प्रकारवचन में किम् आदि शब्दों से थाल् प्रत्यय होता है।

लकार इत्संज्ञक है, **था** शेष रहता है। **किम्** शब्द से तो **थाल्** को बाधकर अग्रिम सूत्र **इदमस्थमुः** से **थमु** प्रत्यय हो जाता है।

तथा। उस प्रकार से। **तेन प्रकारेण** लौकिक विग्रह और **तद्+टा** अलौकिक विग्रह है। **प्रकारवचने थाल्** से **थाल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **था** की **प्राग्दिशो विभक्तिः** से विभक्तिसंज्ञा, **त्यदादीनामः** से अत्व करके सु, अव्ययत्वात् विभक्ति का लुक् करने पर **तथा** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार **येन प्रकारेण** जिस प्रकार से, **यत् टा** से थाल् आदि करके **यथा** बनाइये।

१२१६- **इदमस्थमुः।** इदमः पञ्चम्यन्तं, थमुः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रकारवचन में इदम् से थमु प्रत्यय होता है।

उकार इत्संज्ञक है, थम् शेष रहता है। यह **प्रकारवचने थाल्** का अपवाद है।

एतदोऽपि वाच्यः। यह वार्तिक है। **एतद् शब्द से भी प्रकारवचन अर्थ में थमु प्रत्यय होता है।**

इत्थम्। इस प्रकार से। **अनेन प्रकारेण** लौकिक विग्रह और **इदम् टा** अलौकिक विग्रह है। **इदमस्थमुः** से थमु, अनुबन्धलोप, **एतेतौ रथोः** से इत् आदेश करके **इत्थम्।** इसी तरह से **एतद्** शब्द से **एतदोऽपि वाच्यः** से थमु प्रत्यय करके **एतद्** के स्थान पर एतदः **इत्** आदेश करने पर भी **इत्थम्** ही बनता है। आगे अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् करना तो सामान्य प्रक्रिया ही है।

१२१७- किमश्च। किमः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययपदं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रकारवचने थाल्** से विभक्तिविपरिणाम करके **प्रकारवचनात्** की तथा **इदमस्थमुः** से **थमु** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, प्राग्दिशो विभक्तिः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्** का अधिकार है।

प्रकारवचन अर्थ में किम् से परे थमु प्रत्यय होता है।

कथम्। किस प्रकार से। **केन प्रकारेण** लौकिक विग्रह और **किम् टा** अलौकिक विग्रह है। **किमश्च** से थमु, अनुबन्धलोप, **किमः कः** से क आदेश करके **कथम्।**

परीक्षा

इस प्रकरण के सभी सूत्रों एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालते हुए किन्हीं बीस प्रयोगों की सिद्धि दिखाइये।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का प्राग्दिशीयप्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ प्रागिवीयाः

तमविष्ठन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२१८. अतिशायने तमबिष्ठनौ ५।३।५५।।

अतिशयविशिष्टार्थवृत्तेः स्वार्थ एतौ स्तः।

अयमेषामतिशयेनाढ्यः आढ्यतमः। लघुतमः। लघिष्ठः।

तपप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२१९. तिङश्च ५।३।५६।।

तिङन्तादतिशये द्योत्ये तमप् स्यात्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **प्रागिवीयप्रकरण** प्रारम्भ होता है। इस प्रकरण से बाद के प्रकरणों **इव** अर्थ में प्रत्ययों का विधान है। अतः **इवार्थ** से पहले के प्रकरण को **प्रागिवीयप्रकरण** कहा गया है। इस प्रकरण में प्रायः अनेकों में किसी एक की विशिष्टता दिखा जाने पर ही प्रत्ययों का विधान होता है। इस प्रकरण में तमप्, इष्ठन्, तरप्, ईयसुन्, डतरच्, डतमच्, धा और चरट् प्रत्यय सूत्रों से विहित हैं।

१११८- अतिशायने तमबिष्ठनौ। तमप् च इष्ठन् च तमबिष्ठनौ। अतिशायने सप्तम्यन्तं, तमबिष्ठनौ प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

अतिशय विशिष्ट अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में तमप् और इष्ठन् प्रत्यय होते हैं।

तमप् में **पकार** इत्संज्ञक है, **तम** बचता है। **इष्ठन्** में **नकार** इत्संज्ञक है, **इष्ठ** बचता है।

आढ्यतमः। इनमें से यह अतिशय सम्पन्न है। **अयमेषामतिशयेनाढ्यः** लौकिक विग्रह और **आढ्य सु** अलौकिक विग्रह है। **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से तमप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तम बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **आढ्यतमः** सिद्ध हुआ।

लघुतमः, लघिष्ठः। इनमें से यह अतिशय छोटा है। **अयमेषामतिशयेन लघुः** लौकिक विग्रह और **लघु सु** अलौकिक विग्रह है। **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से पहले **तमप्**

घ-संज्ञाविधायकं संज्ञासूत्रम्

१२२०. तरप्तमपौ घः १।१।२२॥

एतौ घसंज्ञौ स्तः।

आमु-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२२१. किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे ५।४।११॥

किम एदन्तात्तिङोऽव्ययाच्च यो घस्तदन्तादामुः स्यान्न तु द्रव्यप्रकर्षे। किन्तमाम्। प्राह्णेतमाम्। पचतितमाम्। उच्चैस्तमाम्। द्रव्यप्रकर्षे तु उच्चैस्तमस्तरुः।

....

प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **तम** बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **लघुतमः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **दीर्घतमः**, **महत्तमः** आदि भी बनते हैं। **इष्ठन्** होने के पक्ष में **लघु+इष्ठ** बनने के बाद **टेः** से टि का लोप करके **लघ्+इष्ठ** बना। वर्णसम्मेलन, स्वादिकार्य करके **लघिष्ठः** बनता है।

१२१९- तिङश्च। तिङः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **अतिशायने तमबिष्ठनौ** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है और **प्रत्ययः**, **परश्च** आदि का अधिकार है किन्तु **ङ्याप्प्रातिपदिकात्** का अधिकार नहीं है।

अतिशय अर्थ द्योत्य होने पर तिङन्त से भी तद्धितसंज्ञक तमप् प्रत्यय होता है।

यद्यपि **तमप्** और **इष्ठन्** इन दोनों प्रत्ययों का विधान प्राप्त होता है तथापि **तिङन्त** से **इष्ठन्** का प्रयोग नहीं मिलता, अतः मूलकार ने **तमप्** प्रत्यय का ही विधान दिखाया है।

१२२०- तरप्तमपौ घः। तरप् च तमप् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्तरप्तमपौ। तरप्तमपौ प्रथमान्तं, घः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्।

तरप् और तमप् प्रत्ययों की घ-संज्ञा होती है।

घ संज्ञा का प्रमुख उपयोग **आमु** आदि प्रत्ययों का विधान है।

१२२१- किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे। किम् च एत् च तिङ् च अव्ययं च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः किमेत्तिङव्ययानि, तेभ्यो विहितो यो घः किमेत्तिङव्ययघः, तस्मात्। द्रव्यस्य प्रकर्षो द्रव्यप्रकर्षः, न द्रव्यप्रकर्षः- अद्रव्यप्रकर्षस्तस्मिन्। **प्रत्ययः**, **परश्च** आदि का अधिकार है।

किम्, एदन्त, तिङन्त और अव्यय इन चार से विहित जो घसंज्ञक प्रत्यय, तदन्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में आमु प्रत्यय होता है अद्रव्यप्रकर्ष में।

उकार इत्संज्ञक है, **आम्** बचता है। इस प्रत्यय के लगने के बाद वह शब्द **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से **अव्ययसंज्ञक** बन जाता है।

किन्तमाम्। अत्यन्त ही तुच्छ वस्तु। **इदमेषामतिशयेन किम्**। यहाँ पर अतिशय अर्थ में विद्यमान **किम् सु** से **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से **तमप्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् आदि होने के बाद **किम्+तम** बना है। **मकार** को **मोऽनुस्वारः** से **अनुस्वार** आदेश और उसके स्थान पर **वा पदान्तस्य** से **परसवर्ण** होकर

तरबीयसुन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२२२. द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ५।३।५७।।

द्वयोरेकस्यातिशये विभक्तव्ये चोपपदे सुप्तिङन्तादेतौ स्तः। पूर्वयोरपवादः।
अयमनयोरतिशयेन लघुः लघुतरो लघीयान्।
उदीच्याः प्राच्येभ्यः पटुतराः, पटीयांसः।

....

किन्तम बना है। **तरप्तमपौ घः** से **तम** की **घसंज्ञा** होकर **किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे** से **आमु** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप होने के बाद **किन्तम+आम्** बना। **यस्येति च** से भसंज्ञक **अकार** का लोप हुआ और वर्णसम्मेलन होकर **किन्तमाम्** बना। इसकी अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् होकर **किन्तमाम्** सिद्ध हुआ। यह तो **किम्** का उदाहरण है। **एदन्त** का उदाहरण आगे देखिये।

प्राह्णेतमाम्। दिन का अतिशय पूर्वभाग। **अतिशयिते पूर्वाह्णे**। यहाँ पर अतिशय अर्थ में विद्यमान **प्राह्ण ङि** से **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से **तमप्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् प्राप्त था किन्तु **घकालतनेषु कालनाम्नः** से उसका अलुक् हुआ। अतः **प्राह्ण+ङि+तम** बना है। इसमें ङकार की इत्संज्ञा करके **प्राह्ण+इ** में **आद्गुणः** से गुण करके **प्राह्णेतम** बन जाता है। अब **किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे** से **आमु** प्रत्यय हुआ। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **प्राह्णेतमाम्** बना। इसकी अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् होकर **प्राह्णेतमाम्** सिद्ध हुआ। यह **एदन्त** का उदाहरण है। **तिङन्त** का उदाहरण आगे देखिये।

पचतितमाम्। अतिशय पकाता है। **अतिशयेन पचति**। यहाँ पर अतिशय अर्थ में **पचति** इस तिङन्त से **तिङश्च** सूत्र के द्वारा **तमप्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप करके **पचति+तम** बना है। अब **किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे** से **आमु** प्रत्यय हुआ। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **प्राह्णेतमाम्** बना। इसकी अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् होकर **पचतितमाम्** सिद्ध हुआ। इसी तरह **वदतितमाम्** आदि भी बना सकते हैं। यह तो **तिङन्त** का उदाहरण है। **अव्यय** का उदाहरण आगे देखिये।

उच्चैस्तमाम्। अतिशय ऊँचा। **अतिशयेन उच्चैः**। यहाँ पर अतिशय अर्थ में **उच्चैस्** इस अव्यय से **अतिशायने तमबिष्ठनौ** के द्वारा **तमप्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उच्चैस्+तम** बना है। अव **किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे** से **आमु** प्रत्यय हुआ। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **उच्चैस्तमाम्** बना। इसकी अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् होकर **उच्चैस्तमाम्** सिद्ध हुआ। इसी तरह **नीचैस्तमाम्, अतितमाम्, सुतमाम्** आदि बना सकते हैं। **तरप्** होने पर **उच्चैस्तराम्, नीचैस्तराम्, अतितराम्, सुतराम्** भी बनते हैं।

द्रव्यप्रकर्षे तु उच्चैस्तमस्तरुः। जब द्रव्य का प्रकर्ष, उत्कर्ष श्रेष्ठता आदि अर्थ हो तो आमु नहीं होता, जिससे **उच्चैस्तमः** ही रह जाता है। **उच्चैस्तमस्तरुः**= सबसे ऊँचा वृक्ष।

१२२२- द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ। उच्यते इति वचनं, द्वयोर्वचनं द्विवचनम्। विभक्तुं योग्यं विभज्यं, द्विवचनं च विभज्यं च तयोः समाहारद्वन्द्वो द्विवचनविभज्यम्। द्विवचनविभज्यं च तद् उपपदम्- द्विवचनविभज्योपपदं, तस्मिन्, कर्मधारयः। द्विवचनविभज्योपपदे

आदेश-विधायकं विधिसूत्रम्

१२२३. प्रशस्यस्य श्रः ५।३।६०॥

अस्य श्रादेशः स्यादजाद्योः परतः।

प्रकृतिभावविधायकं विधिसूत्रम्

१२२४. प्रकृत्यैकाच् ६।४।१६३॥

इष्ठादिष्वेकाच् प्रकृत्या स्यात्। श्रेष्ठः, श्रेयान्।

....

सप्तम्यन्तं, तरबीयसुनौ प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से **अतिशायने** की अनुवृत्ति आती है।

दो में एक के अतिशय, उत्कर्ष को बताने के लिए या विभक्तव्य शब्द के उपपद होने पर उत्कर्षविशिष्ट अर्थ में वर्तमान सुबन्त और तिङन्त से तरप् और ईयसुन् प्रत्यय होते हैं।

तरप् में भी पकार इत्संज्ञक है और **तर** बचता है और **ईयसुन्** में **उन्** की इत्संज्ञा होती है, **ईयस्** बचता है। यह सूत्र **अतिशायने तमबिष्ठनौ** और **तिङश्च** का अपवाद है।

लघुतरः, लघीयान्। दोनों में यह अतिशय छोटा है। **अयमनयोरतिशयेन लघुः** लौकिक विग्रह और **लघु सु** अलौकिक विग्रह है। **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** से तरप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तर बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग, **लघुतरः** सिद्ध हुआ। **ईयसुन्** होने के पक्ष में अनुबन्धलोप होकर **लघु+ईयस्** बना है। **टेः** से टिसंज्ञक उकार का लोप करके **लघीयस्** यह प्रातिपदिक बना। अब सु प्रत्यय, **उगिदचां सर्वनामस्थाने धातोः** से **नुम्** आगम करके **लघीयन्स्+स्** बना। **सान्तमहतः संयोगस्य** से दीर्घ करके **लघीयान्स्+स्** बना। सु के सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्**... **हल्ङ्यादिलोप** हुआ और प्रकृति के सकार का संयोगान्तस्य लोप हुआ तो **लघीयान्** सिद्ध हुआ। आगे नकार को अनुस्वार आदि करके **लघीयांसौ, लघीयांसः** आदि भी बनाते जायें। **ईयसुन्** प्रत्यय में उकार की इत्संज्ञा होती है, अतः यह शब्द **उगित्** है जिससे स्त्रीलिङ्ग में **उगितश्च** से **ङीप्** होकर **लघीयसी, लघीयस्यौ,** लघीयस्यः आदि बना सकते हैं। इसी तरह **अयमनयोः पटुः पटुतरः, पटीयान्, पटीयसी। महत्तरः, महीयान्, महीयसी** आदि अनेकों शब्दों से इन प्रत्ययों का योग करके रूप बनायें।

उदीच्याः प्राच्येभ्यः पटुतराः। उत्तर दिशा के लोग पूर्व दिशा के लोगों से ज्यादा चतुर होते हैं। **एते एतेभ्योऽतिशयेन पटवः** लौकिक विग्रह और **पटु जस्** अलौकिक विग्रह है। **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** से तरप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तर बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, बहुवचन में जस् विभक्ति, दीर्घ, रुत्वविसर्ग करके **पटुतराः** सिद्ध हुआ। **ईयसुन्** होने के पक्ष में **पटीयान्, पटीयांसौ, पटीयांसः।**

१२२३- **प्रशस्यस्य श्रः।** प्रशस्यस्य षष्ठ्यन्तं, श्रः अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **अजादी गुणवचनादेव** से **अजादी** को सप्तम्यन्ततया विपरिणत के अनुवर्तन करते हैं। **प्रत्ययः** का अधिकार है, उसको भी सप्तम्यन्त बनाते हैं।

अजादि प्रत्यय अर्थात् इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्ययों के परे होने पर प्रशस्य शब्द के स्थान पर श्र आदेश होता है।

ज्यादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२२५. ज्य च ५।३।६१॥

प्रशस्यस्य ज्यादेशः स्यादिष्ठेयसोः। ज्येष्ठः।

आत्-आदेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२२६. ज्यादादीयसः ६।४।१६०॥

आदेः परस्य। ज्यायान्।

....

१२२४- **प्रकृत्यैकाच्।** प्रकृत्या तृतीयान्तम्, एकाच् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तुरिष्ठेमेयस्सु** से **इष्ठेमेयस्सु** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** और **भस्य** का अधिकार है।

इष्ठन्, ईयसुन् और इमनिच् प्रत्ययों के परे होने पर एक अच् वाले भसंज्ञक अङ्ग को प्रकृतिभाव होता है।

अल्लोपोऽनः, नस्तद्धिते, यस्येति च और **टेः** से प्राप्त कार्यों को रोकने के लिए इससे प्रकृतिभाव किया जाता है।

श्रेष्ठः, श्रेयान्। अतिशय प्रशंसनीय। **अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः।** यहाँ पर **अतिशय विशिष्ट** अर्थ में **प्रशस्य सु** से **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से **इष्ठन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **प्रशस्य+इष्ठ** बना है। **प्रशस्यस्य श्रः** से प्रशस्य के स्थान पर श्र आदेश होकर **श्र+इष्ठ** बना। अब भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप प्राप्त था, उसे बाधकर के **प्रकृत्यैकाच्** से प्रकृतिभाव हुआ अर्थात् लोप नहीं हुआ। श्र+इष्ठ में गुण होकर **श्रेष्ठ** बना और स्वादिकार्य करके **श्रेष्ठः** सिद्ध हुआ। **ईयसुन्** प्रत्यय होने के पक्ष में भी यही प्रक्रिया करके **श्रेयस्** यह प्रातिपदिक बना। उससे स्वादिकार्य करने पर पटीयान् की तरह **श्रेयान्, श्रेयांसौ, श्रेयांसः** आदि सिद्ध होते हैं।

१२२५- **ज्य च।** ज्य इति लुप्तप्रथमाकं पदं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रशस्यस्य श्रः** से **प्रशस्यस्य** और **अजादी गुणवचनादेव** से **अजादी** को सप्तम्यन्ततया विपरिणाम करके अनुवृत्ति की जाती है।

अजादि अर्थात् इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्ययों के परे रहते प्रशस्य के स्थान पर ज्य आदेश भी होता है।

१२२६- **ज्यादादीयसः।** ज्यात् पञ्चम्यन्तम्, आत् प्रथमान्तम्, ईयसः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

ज्य से परे ईयस् के ईकार के स्थान पर आकार आदेश होता है।

आदेः परस्य की सहायता से पर के स्थान पर विहित कार्य उसके आदि वर्ण के स्थान पर हो जाने से केवल **ई** के स्थान पर यह **आकार** आदेश हो जाता है।

जेष्ठः, ज्यायान्। अतिशय प्रशंसनीय। **अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः।** यहाँ पर **अतिशय विशिष्ट** अर्थ में **प्रशस्य सु** से **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से **इष्ठन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **प्रशस्य+इष्ठ** बना है। **ज्य च** से **प्रशस्य** के स्थान पर **ज्य** आदेश होकर **ज्य+इष्ठ** बना। अब भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप प्राप्त था, उसे बाधकर के **प्रकृत्यैकाच्** से प्रकृतिभाव हुआ अर्थात् लोप नहीं हुआ। **ज्य+इष्ठ** में गुण होकर **ज्येष्ठ** बना, स्वादिकार्य करके **ज्येष्ठः** सिद्ध हुआ। **इयसुन्** प्रत्यय होने के पक्ष में **ज्य+ईयस्** है। **ज्यादादीयसः** से **ईकार** के स्थान पर **आकार** आदेश होकर

अनेककार्यार्थं विधिसूत्रम्

१२२७. बहोर्लोपो भू च बहोः ६।४।१५८॥

बहोः परयोरिमेयसोर्लोपः स्याद् बहोश्च भूरादेशः। भूमा। भूयान्।

अनेककार्यार्थं विधिसूत्रम्

१२२८. इष्ठस्य यिट् च ६।४।१५९॥

बहोः परस्य इष्ठस्य लोपः स्याद् यिडागमश्च। भूयिष्ठः।

....

ज्या+आयस् बना। **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ होकर **ज्यायस्** यह प्रातिपदिक बना। उससे स्वादिकार्य करने **श्रेयान्** की तरह **ज्यायान्, ज्यायांसौ, ज्यायांसः** आदि सिद्ध होते हैं।

१२२७- बहोर्लोपो भू च बहोः। बहोः षष्ठ्यन्तं, लोपः प्रथमान्तं, भू लुप्तप्रथमाकं पदं, च अव्ययपदं, बहोः षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **तुरिष्ठेमेयस्सु** से **इमेयसोः** की अनुवृत्ति आती है।

बहु-शब्द से परे इमनिच् और ईयसुन् प्रत्ययों का लोप होता है और बहु-शब्द के स्थान पर भू आदेश भी होता है।

आदेः परस्य की सहायता से **इमनिच्** और **ईयसुन्** के केवल आदि वर्ण इकार और ईकार का ही लोप हो जाता है।

भूमा, भूयान्। बहुतायत, अधिकतर। **बहोर्भावः।** बहु ङस् में **पृथ्व्यादिभ्य इमनिज्वा** से **इमनिच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **बहु+इमन्** बना। **बहोर्लोपो भू च बहोः** से बहु के स्थान पर भू आदेश और **आदेः परस्य** की सहायता से **इमन्** के **इकार** का लोप करके **भूमन्** बना। स्वादिकार्य करके **राजन्** शब्द की तरह **भूमा, भूमानौ, भूमानः** रूप बन जाते हैं। अब **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** से **ईयसुन्** होने पर **बहु+ईयस्** बना है। **बहोर्लोपो भू च बहोः** से **भू** आदेश और **ईयस्** के ईकार का लोप हो जाने पर **भूयस्** बना। अब **श्रेयान्** की तरह **भूयान्, भूयांसौ, भूयांसः** आदि रूप बनाये जा सकते हैं।

१२२८- इष्ठस्य यिट् च। इष्ठस्य षष्ठ्यन्तं, यिट् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **बहोर्लोपो भू च बहोः** यह पूरा सूत्र आता है।

बहुशब्द से परे इष्ठन् का लोप होता है तथा इष्ठन् को यिट् का आगम भी होता है, साथ ही बहु के स्थान पर भू आदेश भी हो जाता है।

इस सूत्र से तीन काम किये जा रहे हैं- **आदेः परस्य** की सहायता से **इष्ठन्** के इकार का लोप, शेष बचे प्रत्यय को **यिट्** का आगम और तीसरा कार्य **बहु** के स्थान पर **भू** आदेश। **यिट्** में **टकार** इत्संज्ञक है। **टित्** होने के कारण उसके आदि में बैठेगा। कुछ आचार्य यहाँ पर **इकार** और **टकार** दोनों वर्णों को इत्संज्ञक मानते हैं और **इष्ठ** का लोप नहीं मानते हैं। ऐसा मानने पर भी प्रयोग की सिद्धि में अन्तर नहीं आता है।

भूमा, भूयान्। सबसे अधिक बड़ा। **अयमतिशयेन बहुः।** बहु सु में **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से **इष्ठन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **बहु+इष्ठ** बना है। **इष्ठस्य यिट् च** से **बहु** के स्थान पर **भू** आदेश और **आदेः परस्य** की सहायता

लुग्विधायकं विधिसूत्रम्

१२२९. विन्मतोर्लुक् ५।३।६५॥

विनो मतुपश्च लुक् स्यादिष्ठेयसोः। अतिशयेन स्रग्वी स्रजिष्ठः, स्रजीयान्। अतिशयेन त्वग्वान् त्वचिष्ठः, त्वचीयान्।

कल्पप्-देश्य-देशीयर्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२३०. ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ५।३।६७॥

ईषदूनो विद्वान् विद्वत्कल्पः। विद्वद्देश्यः। विद्वद्देशीयः। पचतिकल्पम्।

....

से इष्ठ के **इकार** का लोप और उसको **यिट्** आगम करके **भूयिष्ठ** बना। अव स्वादिकार्य करने पर **राम** शब्द की तरह **भूयिष्ठः, भूयिष्ठौ, भूयिष्ठाः** रूप वन जाते हैं।

१२२९- **विन्मतोर्लुक्।** विन् च मत् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो विन्मतौ, तयोः। विन्मतोः षष्ठ्यन्तं, लुक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अजादी गुणवचनादेव** से **अजादी** को सप्तम्यन्ततया विपरिणाम करके **अजादौ** इस पद का अनुवर्तन किया जाता है।

अजादि प्रत्यय अर्थात् इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्ययों के परे रहते विन् और मतुप् प्रत्ययों का लुक् होता है।

स्रजिष्ठः, स्रजीयान्। सभी माला वालों में अतिशय माला वाला। **अतिशयेन स्रग्वी।** पहले **स्रग् अस्यास्ति** इस लौकिक विग्रह और **स्रज् सु** अलौकिक विग्रह में **अस्मायामेधास्रजो विनिः** से मत्वर्थ **विनि** प्रत्यय होकर **चो कुः** से जकार को कुत्व होकर **स्रग्विन्** बना है। अब **अतिशयेन स्रग्वी** इस विग्रह में **स्रग्विन् सु** से **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से पहले **इष्ठन्** प्रत्यय हुआ, **स्रग्विन्+इष्ठ** बना। **विन्मतोर्लुक्** से **इष्ठ** के परे रहते **विन्** का लुक् हुआ- **स्रग्+इष्ठ** बना। **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के नियमानुसार विन् के अभाव में कुत्व भी नहीं रहा, इस लिए जकार के रूप में आ गया- **स्रज्+इष्ठ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **स्रजिष्ठ** बना और स्वादिकार्य करके **स्रजिष्ठः** सिद्ध हुआ। **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** से **ईयसुन्** होने के पक्ष में **स्रज्+विन्+ईयस्** बना है। इस स्थिति में भी **विन्मतोर्लुक्** से **विन्** का लुक् होकर **स्रजीयस्** यह प्रातिपदिक बनता है। उससे स्वादिकार्य करने पर **स्रजीयान्** सिद्ध हो जाता है।

त्वचिष्ठः, त्वचीयान्। सब त्वचा वालों में अतिशय त्वचा वाला। **अतिशयेन त्वग्वान्।** यहाँ पर भी **स्रजिष्ठः** और **स्रजीयान्** की तरह ही **इष्ठन्** या **ईयसुन्** प्रत्यय करके **मतुबर्थ विनि** का **विन्मतोर्लुक्** से लुक् करके **त्वचिष्ठः, त्वचीयान्** बनाया जा सकता है।

१२३०- **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः।** न समाप्तिः असमाप्तिः, तस्याम्। कल्पप् च देश्यश्च देशीयर् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः कल्पब्देश्यदेशीयरः। **तिङश्च** यह सम्पूर्ण सूत्र आता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्** आदि का पूरे तद्धित में ही अधिकार है।

कुछ न्यूनताविशिष्ट अर्थ में सुबन्त या तिङन्त से स्वार्थ में कल्पप्, देश्य, और देशीयर् प्रत्यय होते हैं।

इन प्रत्ययों में पकार और रकार इत्संज्ञक हैं। ये इत्संज्ञक वर्ण स्वरार्थ हैं।

विद्वत्कल्पः, विद्वद्देश्यः, विद्वद्देशीयः। कुछ कम विद्वान् अर्थात् विद्वान् के सदृश,

बहुच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२३१. विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु ५।३।६८॥

ईषदसमाप्तिविशिष्टेऽर्थे सुबन्ताद् बहुज्वा स्यात् स च प्रागेव न तु परत:। ईषदून: पटुर्बहुपटु:। पटुकल्प:। सुप: किम्? जयतिकल्पम्।

कस्याधिकारसूत्रम्

१२३२. प्रागिवात् क: ५।३।७०॥

इवे प्रतिकृतावित्यत: प्राक् काधिकार:।

....

विद्वत्तुल्य। **ईषद् ऊनो विद्वान्।** **विद्वस् सु** से **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयर:** से क्रमशः तीनों प्रत्यय हुए, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विद्वस्** के सकार का **वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां द:** से **दकार** आदेश करके स्वादिकार्य करने पर उक्त तीनों शब्द सिद्ध हो जाते हैं। ये तो **सुबन्त** के उदाहरण हैं। तिङन्त का आगे देखें।

पचतिकल्पम्, पचतिदेश्य:, पचतिदेशीय:। कुछ कम पकाता है। **ईषद् ऊनं पचति।** तिङन्त **पचति** से **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयर:** से **कल्पप्, देश्य, देशीयर्** ये तीनों प्रत्यय बारी-बारी से हुए तो उक्त तीनों रूप सिद्ध हुए।

१२३१- **विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु।** विभाषा प्रथमान्तं, सुप: पञ्चम्यन्तं, बहुच् प्रथमान्तं, पुरस्तात् अव्ययपदं, तु अव्ययपदम्, अनेकपदं सूत्रम्। **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयर:** से **ईषदसमाप्तौ** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्यय:,** आदि का अधिकार है किन्तु **परश्च** का अधिकार नहीं आता, क्योंकि **परश्च** का बाधक **पुरस्तात्** पद यहाँ पर पठित है।

कुछ न्यूनताविशिष्ट अर्थ में सुबन्त से पूर्व बहुच् प्रत्यय विकल्प से होता है।

यहाँ पर यह शंका उत्पन्न होती है कि जब **ङ्याप्प्रातिदिकात्** की अनुवृत्ति आ रही है तो इस सूत्र में **सुप:** लिखने की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर यह है कि यदि **सुप:** न देते तो पूर्वत: आ रही **तिङश्च** की अनुवृत्ति यहाँ पर आती। फलत: **तिङन्त** से बहुच् प्रत्यय होने लगता। ऐसा न हो, इसलिए **सुप:** का पठन किया गया।

ध्यान रहे कि यह प्रत्यय प्रकृति से परे नहीं पूर्व में होता है। स्वरार्थ पठित चकार इत्संज्ञक है, **बहु** मात्र बचता है।

बहुपटु:, पटुकल्प:, पटुदेश्य:, पटुदेशीय:। थोड़ा कम चतुर, चतुर के सदृश। **ईषद् ऊन: पटु:।** **पटु सु** में **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयर:** से **कल्पप्** आदि प्रत्यय प्राप्त थे, उन्हें बाधकर के **विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु** से **बहुच्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **बहुपटु** बना और स्वादिकार्य करके **बहुपटु:** सिद्ध हुआ। यह प्रत्यय वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **कल्पप्, देश्य** और **देशीयर्** प्रत्यय भी हो जाते हैं, जिससे **पटुकल्प:, पटुदेश्य:, पटुदेशीय:** ये भी बन जाते हैं।

सुप: किम्? जयतिकल्पम्। यदि **विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु** इस सूत्र में **सुप:** यह पद नहीं पढ़ते तो **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयर:** इस सूत्र की तरह **तिङन्त** से भी प्रत्यय होते, जिससे **जयतिकल्पम्** की जगह **बहुजयति** ऐसा अनिष्ट रूप भी बन जाता।

१२३२- **प्रागिवात् क:।** प्राक् अव्ययपदम्, इवात् पञ्चम्यन्तं, क: प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्रत्यय:, परश्च** आदि का अधिकार है।

अकच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२३३. अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः ५।३।७१।।

कापवादः। तिङश्चेत्यनुवर्तते।

कादि-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२३४. अज्ञाते ५।३।७३।।

कस्यायमश्वोऽश्वकः। उच्चकैः। नीचकैः। सर्वके।

वार्तिकम्- **ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच्, अन्यत्र सुबन्तस्य।**

युष्मकाभिः। युवकयोः। त्वयका।

....

'इवे प्रतिकृतौ' इस सूत्र से पहले तक क प्रत्यय का अधिकार है।

इस सूत्र में **इवात्** यह पद **इवे प्रतिकृतौ** ५।३।९६ में पठित **इवे** का संकेतक है। उस सूत्र से पहले तक **क** प्रत्यय का अधिकार रहता है किन्तु बीच में कुछ इसके अपवाद प्रत्यय **अकच्** आदि भी होते हैं।

१२३३- **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः**। अव्ययानि च सर्वनामानि च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः, अव्ययसर्वनामानि, तेषाम्। अव्ययसर्वनाम्नाम् षष्ठ्यन्तम्, अकच् प्रथमान्तं, प्राक् अव्ययपदं, टेः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्रागिवात्कः** से **प्रागिवात्** और **तिङश्च** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, तद्धिताः** आदि का अधिकार है। **प्राक्** कहने से **परश्च** का अधिकार रूक जाता है।

इवे प्रतिकृतौ से पहले के अपवाद के रूप में अव्यय और सर्वनामसंज्ञक प्रातिपदिकों से टि से पहले पूर्व में अकच् प्रत्यय होता है।

ध्यान रहे कि **अकच्** जिस शब्द से हो रहा है, उसके **टि** के पहले ही होता है। यह सूत्र **क** का अपवाद है। **अकच्** में **चकार** और उससे पूर्व के **अकार** की इत्संज्ञा होती है, **अक्** शेष रहता है। कुछ आचार्य **अकार** की इत्संज्ञा नहीं करते अपितु उसके अगले अकार के साथ में **अतो गुणे** से पररूप कर देते हैं। ऐसा करने पर **तिङन्तों** से अकच् होने पर **पचतकि** के स्थान पर **पचतके** ऐसा अनिष्ट रूप बन सकता है। अतः अकार की भी इत्संज्ञा करनी चाहिए।

१२३४- **अज्ञाते**। न ज्ञातम् अज्ञातं, तस्मिन्। अज्ञाते सप्तम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **प्रागिवात् कः** और **अकच् प्राक्टेः** ये पूर्वोक्त दोनों सूत्रो से आते हैं और **तिङश्च** की भी अनुवृत्ति है।

अज्ञातत्वविशिष्ट अर्थ में वर्तमान प्रातिपदिक या तिङन्त से यथाप्राप्त क और अकच् प्रत्यय होते हैं।

वास्तव में यह सूत्र प्रत्ययों का विधान नहीं करता अपितु **अज्ञात होना** यह अर्थ निर्देश मात्र करता है।

अश्वकः। किसका है यह घोड़ा? **कस्यायम् अश्वः?** अथवा **अज्ञातः अश्वः** ऐसा लौकिक विग्रह है। **अश्व सु** इस अलौकिक विग्रह में **अज्ञाते** से **क** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु और रुत्वविसर्ग करके **अश्वकः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **अज्ञातो गर्दभः गर्दभकः**, **अज्ञात उष्ट्र उष्ट्रकः** आदि भी बनते हैं।

उच्चकैः। ऊँचा। सामान्यतया यह **उच्चैस्** ऐसा अव्यय है। इससे स्वार्थ में **उच्चैस्** में **ऐस्**-रूप **टि** के पहले **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः** से **अकच्** प्रत्यय हुआ। **चकार** और **अकार** की इत्संज्ञा के बाद लोप होकर **अक्** बचा। **उच्च्+अक्+ऐस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **उच्चकैस्** बना। अव्यय है, अतः इसके बाद प्राप्त सु का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो गया- **उच्चकैः**। इसी तरह **नीचैस्** से **नीचकैः** बन जाता है।

सर्वके। सभी। सामान्यतया यह **सर्वनामसंज्ञक** प्रातिपदिक से प्रथमा के बहुवचन में **सर्वे** बनता है। **सर्व जस्** में **टि** है वकारोत्तरवर्ती अकार, उसके पहले **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः** से **अकच्** प्रत्यय हुआ। **चकार** और **अकार** की इत्संज्ञा के बाद लोप होकर **अक्** बचा। **सर्व्+अक्+अ+जस्** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ। **सर्व्+अक्+अ** में वर्णसम्मेलन होकर **सर्वक** बना। पुनः जस् विभक्ति के स्थान पर **जसः शी** से **शी**, शकार का लोप, गुण आदि होकर **सर्वके** बना। इसी तरह **विश्वे** से **विश्वके**, **उभ** से **उभके** आदि बनते हैं।

ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच्, अन्यत्र सुबन्तस्य। यह वार्तिक है। **ओकारादि, सकारादि और भकारादि सुप् विभक्ति के परे रहते मूल सर्वनामशब्द के टि से पूर्व अकच् होता है परन्तु अन्य सुप् विभक्तियों में सुबन्त सर्वनाम की ही टि से पूर्व अकच् होता है।**

भाष्यकार के अनुसार इस वार्तिक में सर्वनाम से केवल युष्मद् और अस्मद् शब्द को ही लिया गया है, अन्य सर्वनामों को नहीं। अतः इन दो शब्दों से ओकारादि **ओस्**, सकारादि **सुप्** और भकारादि **भ्याम्, भिस्, भ्यस्** के परे होने पर मूल युष्मद्, अस्मद् शब्द अर्थात् प्रत्यय होने के पहले के शब्द के टि के पहले और शेष विभक्तियों में स्वादि प्रत्ययों के लगने के बाद जो रूप बनता है, उसमें टि के पहले **अकच्** होगा।

युष्मकाभिः। अज्ञात तुम लोगों से। **अज्ञातैर्युष्माभिः**। **युष्मद्+भिस्** यह भकारादि प्रत्यय के परे का उदाहरण है। **ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच्, अन्यत्र सुबन्तस्य** इस वार्तिक की सहायता से **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः** से मूल **युष्मद्** शब्द के टि मकारोत्तरवर्ती अकार के पहले ही **अकच्** हुआ। अनुबन्धलोप होकर **युष्म्+अक्+अद्+भिस्** बना। **युष्मदस्मदोरनादेशे** से **दकार** को **आकार** आदेश करके **युष्म्+अक्+अ+आ+भिस्** बना। सवर्णदीर्घ और वर्णसम्मेलन करके **युष्मकाभिः** सिद्ध हो जाता है।

युवकयोः। अज्ञात तुम दो के या अज्ञात तुम दोनों में। **अज्ञातयोर्युवकयोः**। **युष्मद्+ओस्** यह ओकारादि प्रत्यय के परे का उदाहरण है। **ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच्, अन्यत्र सुबन्तस्य** इस वार्तिक की सहायता से **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः** से मूल **युष्मद्** शब्द के टि-रूप मकारोत्तरवर्ती अकार के पहले ही **अकच्** हुआ। अनुबन्धलोप होकर **युष्म्+अक्+अद्+ओस्** बना। **युवावौ द्विवचने** से मपर्यन्त भाग **युष्म्** के स्थान पर **युव** आदेश होकर **युव+अक्+अद्+ओस्** बना। **योऽचि** से **दकार** को **यकार** आदेश करके **युव+अक्+अ+य्+ओस्** बना। पररूप और वर्णसम्मेलन करके **युवकयोः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **आवकयोः** भी बना सकते हैं।

अब वार्तिक में कथित ओकारादि-सकारादि-भकारादि से भिन्न प्रत्यय के परे होने की स्थिति का उदाहरण दिखाते हैं- **त्वयका**। यहाँ पर तृतीयैकवचन **टा** वाला **आ** परे है।

क-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२३५. कुत्सिते ५।३।७४॥

कुत्सितोऽश्वोऽश्वकः।

डतरच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२३६. किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् ५।३।९२॥

अनयोः कतरो वैष्णवः। यतरः। ततरः॥

....

त्वयका। यहाँ उपर्युक्त वार्तिक के अनुसार सुबन्त शब्द से ही **अकच्** होगा। अतः **युष्मद्** शब्द के तृतीयैकवचन में **त्वया** बन जाने के बाद उसमें विद्यमान टिसंज्ञक वर्ण **आ** से पहले **अकच्** होकर **त्वय्++अक्+आ** बन जाता है और वर्णसम्मेलन होकर **त्वयका** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **मयका** आदि भी बना सकते हैं।

अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः में **तिङश्च** भी आता है। अतः **तिङन्तों** से भी **अकच्** प्रत्यय किया जाता है, जिससे **पचति** इस तिङन्त से टि के पहले **अकच्** करने पर **पचत्+अक्+इ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **पचतकि** सिद्ध हुआ। **पचतकि**=अज्ञात पकाता है।

१२३५- **कुत्सिते**। कुत्सिते सप्तम्यन्तम् एकपदं सूत्रम्। **कः** और **अकच्** दोनों का अधिकार है। **तिङश्च** की अनुवृत्ति भी है साथ ही तद्धित में **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है ही।

निन्दा अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक या तिङन्त से स्वार्थ में क और अकच् प्रत्यय होते हैं।

अश्वकः। निन्दित घोड़ा। **कुत्सितोऽश्वः। अश्व सु** से **कुत्सिते** से **क** प्रत्यय प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु होने के बाद उसको रुत्वविसर्ग करके **अश्वकः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **कुत्सितो गर्दभः गर्दभकः, कुत्सित उष्ट्र उष्ट्रकः** आदि भी बनते हैं।

१२३६- **किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्**। किम् च यत् च तत् च(किञ्च, यच्च, तच्च) तेषां समाहारद्वन्द्वः किंयत्तद्, तस्मात्। किंयत्तदः पञ्चम्यन्तं, निर्धारणे सप्तम्यन्तं, द्वयोः षष्ठ्यन्तं, एकस्य षष्ठ्यन्तं, डतरच् प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्।

दो में से एक का निर्धारण गम्यमान होने पर किम्, यत्, तत् से डतरच् प्रत्यय होता है।

जाति, गुण, क्रिया और संज्ञाओं के द्वारा समुदाय से एक भाग को अलग करना **निर्धारण** क़हलाता है।

डकार की **चुटू** से इत्संज्ञा होती है और चकार भी इत्संज्ञक है। **अतर** बचता है। डित् होने से **टेः** से टि का लोप होता है।

अनयोः कतरो वैष्णवः। इन दोनों में से कौन वैष्णव है? **किम् सु** से **किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्** से डतरच् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अतर बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, किम् में **इम्** टि है, उसका लोप होने पर **क्+अतर=कतर** बना और सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **कतरः** सिद्ध हुआ।

डतमच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२३७. वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् ५।३।९३॥

जातिपरिप्रश्न इति प्रत्याख्यातमाकरे।

बहूनां मध्ये एकस्य निर्धारणे डतमज्वा स्यात्। कतमो भवतां कठः। यतमः। ततमः। वा-ग्रहणमकजर्थम्। यकः सकः।

इति प्रागिवीयाः॥५८॥

....

यतरः। इन दोनों में से जो विशेष हो। **यत् सु** इस अलौकिक विग्रह में **किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्** से डतरच्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अतर बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **त्यदादीनामः** से अत्व, पररूप और अ टि है, उसका लोप होने पर **य्+अतर=यतर** बना और सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **यतरः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **तद्** से **ततरः** बनाइये।

१२३७- वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्। वाव्ययपदं, बहूनां षष्ठ्यन्तं, जातिपरिप्रश्ने सप्तम्यन्तं, डतमच् प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्।

अनेकों मे से एक के निर्धारण में डतमच् प्रत्यय होता है।

डकार और **चकार** इत्संज्ञक हैं, **अतम** बचता है।

भाष्य में **जातिपरिप्रश्ने** इतने शब्दों का प्रत्याख्यान किया गया है। **प्रत्याख्यान** का अर्थ **खण्डन** भी होता है। **जातिपरिप्रश्ने** इस शब्द की सूत्र में आवश्यकता नहीं है, यह बात महाभाष्यकार पतंजलि ने कहा है। **प्रत्याख्यान** का अर्थ एकदम खण्डन करना नहीं है अपितु इसका दृष्टफल अर्थात् तात्कालिक फल नहीं है किन्तु वेदान्त सूत्रों के पारायण से पुण्यादि की प्राप्ति होती है, यह अदृष्ट फल अवश्य है। अतः इसका पारायण तो यथावत् करना ही चाहिए किन्तु प्रयोगों की सिद्धि के लिए इसको आवश्यक नहीं समझना चाहिए।

कतमः। इनमें से कौन सा कठ(वेद का भाग) है आपका? **कतमो भवतां कठः? किम् सु** अलौकिक विग्रह में **वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्** से डतमच् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अतम** बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **किम्** में **इम्** टि है, उसका लोप होने पर **क्+अतम=कतम** बना। सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **कतमः** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार यत् से **यतमः** और तत् से **ततमः** भी बनाइये।

एषु कतमः पटुः। इनमें से कौन चतुर है? **किम् सु** से **वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्** से डतमच् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अतम बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, किम् में इम् टि है, उसका लोप होने पर **क्+अतम=कतम** बना। सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **कतमः** सिद्ध हुआ।

वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् में **वा** पठित है, इससे **अकच्** का भी ग्रहण करने का संकेत मिलता है। अतः जैसे **डतमच्** करके **यतमः, ततमः** बनाये गये, वैसे उनसे **अकच्** भी करके **यकः, सकः** भी बनाये जा सकते हैं।

अब यहाँ लघुसिद्धान्तकौमुदी में अनुक्त किन्तु बहुत उपयोगी प्रत्ययों का कथन सूत्रनिर्देश पूर्वक किया जा रहा है-

सूत्र- **सङ्ख्याया विधार्थे धा।** सङ्ख्याया षष्ठ्यन्तं, विधार्थे सप्तम्यन्तं, धा लुप्तप्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। क्रिया के प्रकार अर्थ में विद्यमान सङ्ख्यावाचक शब्दों से स्वार्थ में धा प्रत्यय का विधान होता है। धा-प्रत्ययान्त शब्द अव्यय में आता है। अतः इससे परे विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जायेगा।

कतिभिः प्रकारैः अथवा **कति प्रकाराः सन्ति? कतिधा।** कितने प्रकार हैं। **कति** जस् से **सङ्ख्याया विधार्थे धा** से धाप्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कतिधा** बना। सु आदि विभक्ति के आने पर अव्ययत्वात् लुक् होकर **कतिधा** सिद्ध होता है।

चतुर्भिः प्रकारैः अथवा **चत्वारः प्रकाराः सन्ति- चतुर्धा।** चार प्रकार हैं इसके। **चतुर्** जस् से **सङ्ख्याया विधार्थे धा** से धाप्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और रेफ का ऊर्ध्वगमन करके **चतुर्धा** बना। सु आदि विभक्ति के आने पर अव्ययत्वात् लुक् होकर **चतुर्धा** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार पञ्चन् से भी धा करके **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नकार का लोप करना न भूलें।

सूत्र- **भूतपूर्वे चरट्।** भूतपूर्वे सप्तम्यन्तं, चरट् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **भूतपूर्व** अर्थात् **पहले यह था**, इस अर्थ में चरट् प्रत्यय का विधान करता है। टकार की इत्संज्ञा होती है। चर शेष रहता है।

कुलपतिचरः। भूतपूर्व कुलपति। **भूतपूर्वः कुलपतिः** लौकिक विग्रह औ **कुलपति** सु अलौकिक विग्रह है। **भूतपूर्वे चरट्** से चरट्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने पर **कुलपतिचर** बना, सु, रुत्वविसर्ग करके **कुलपतिचरः** सिद्ध हुआ।

सचिवचरः। भूतपूर्व सचिव। **भूतपूर्वः सचिवः** लौकिक विग्रह औ **सचिव सु** अलौकिक विग्रह है। **भूतपूर्वे चरट्** से चरट्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने पर **सचिवचर** बना, सु, रुत्वविसर्ग करके **सचिवचरः** सिद्ध हुआ।

परीक्षा

इस प्रकरण के सभी सूत्रों एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालते हुए किन्हीं दस प्रयोंगों की सिद्धि दिखाइये।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का
प्रागिवीय-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ स्वार्थिकाः

कन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२३८. इवे प्रतिकृतौ ५।३।९६॥

कन् स्यात्। अश्व इव प्रतिकृतिः- अश्वकः।

वार्तिकम्- **सर्वप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन्।** अश्वकः।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

इस प्रकरण में विहित प्रत्ययों का प्रकृतिभूत शब्द के अर्थ से भिन्न अर्थ न होने के कारण इस प्रकरण को **स्वार्थिकप्रकरण** कहा जाता है।

१२३८- **इवे प्रतिकृतौ**। इवे सप्तम्यन्तं, प्रतिकृतौ सप्तम्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अवक्षेपणे कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रतिकृति(प्रतिमा), प्रतिरूप, सादृश्य अर्थों में वर्तमान प्रातिपदिकों से कन् प्रत्यय होता है, यदि प्रकृति मूर्ति या चित्र उपमेय हो तो।

नकार इत्संज्ञक है, **क** ही शेष रहता है।

अश्वकः। अश्व की प्रतिमा। **अश्वस्य इव प्रतिकृतिः** लौकिक विग्रह और **अश्व सु** अलौकिक विग्रह है। **इवे प्रतिकृतौ** से कन्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **अश्वकः** सिद्ध हुआ।

उष्ट्रकः। ऊँट की प्रतिमा। **उष्ट्रस्य इव प्रतिकृतिः** लौकिक विग्रह और **उष्ट्र सु** अलौकिक विग्रह है। **इवे प्रतिकृतौ** से कन्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **उष्ट्रकः** सिद्ध हुआ।

सर्वप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन्। यह वार्तिक है। **सभी प्रातिपदिकों से स्वार्थ में कन् प्रत्यय होता है।** किसी अर्थविशेष की विवक्षा के विना होने वाले प्रत्यय स्वार्थिक कहलाते हैं। सभी प्रातिपदिकों से स्वार्थ में कन् प्रत्यय हो सकता है। अब प्रश्न आता है कि प्रत्यय के करने के बाद भी अर्थ में कोई बदलाव नहीं है तो प्रत्ययविधान से क्या लाभ? तो उत्तर यह है कि व्याकरण शब्दों की रचना नहीं करता किन्तु पहले से विद्यमान शब्दों में प्रकृति+प्रत्ययों को दिखाता है। जो शब्द पहले से ही ऐसे हैं, उनका कथन करता है। कभी कभी वक्ता उच्चारण सौकर्य या सौष्ठव के लिए स्वार्थिक में प्रत्यय युक्त शब्दों का प्रयोग करते हैं कभी कभी छन्द के अनुरोध से भी **कन्** आदि प्रत्यय लगाये जाते हैं।

मयट्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२३९. तत् प्रकृतवचने मयट् ५।४।२१॥

प्राचुर्येण प्रस्तुतं प्रकृतं, तस्य वचनं प्रतिपादनम्। भावे अधिकरणे वा ल्युट्।
आद्ये प्रकृतमन्नम् अन्नमयम्। अपूपमयम्।
द्वितीये तु अन्नमयो यज्ञः। अपूपमयं पर्व।

अण्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२४०. प्रज्ञादिभ्यश्च ५।४।३८॥

अण् स्यात्। प्रज्ञ एव प्राज्ञः। प्राज्ञी स्त्री। दैवतः। बान्धवः।

....

अश्वकः। घोड़ा। **अश्व एव। अश्व सु** में **सर्वप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन्** से **कन्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **अश्वकः** सिद्ध हुआ। इसी तरह सभी प्रातिपदिकों से **कन्** कर सकते हैं। **देवदत्त एव देवदत्तकः, सरलमेव सरलकम्, बाल एव बालकः** इत्यादि।

१२३९- तत्प्रकृतवचने मयट्। प्राचुर्येण प्रस्तुतं प्रकृतं, प्रकृतस्य वचनं प्रकृतवचनं, तस्मिन्। तत् प्रथमान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, प्रकृतवचने सप्तम्यन्तं, मयट् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

प्राचुर्य, अधिकता से युक्त वस्तु के वाचक प्रातिपदिकों से स्वार्थ में या अधिकरण की वाच्यता में मयट् प्रत्यय होता है।

सूत्र में **वचन** शब्द पठित है। इसकी दो तरह की व्युत्पत्ति है- एक भाव अर्थ में व्युत्पत्ति है- कथनं प्रतिपादनमेव **वचनम्** और दूसरी अधिकरण अर्थ में व्युत्पत्ति- **उच्यतेऽस्मिन् इति वचनम्।** सूत्र में पठित **प्रकृत** शब्द का अर्थ है **प्रचुरता, अधिकता। तत्** यह प्रथमान्त का सूचक है, अतः प्रथमान्त प्रातिपदिकों से यह प्रत्यय होगा। **मयट्** में **टकार** इत्संज्ञक है, मय बचता है।

अन्नमयम्। अधिकता से विद्यमान अन्न। **प्राचुर्येण प्रस्तुतम् अन्नम्। अन्न सु** से **तत्प्रकृतवचने मयट्** सूत्र के द्वारा **मयट्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अन्नमय** बना। स्वादिकार्य करके **अन्नमयम्** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **प्राचुर्येण प्रस्तुतम् अपूपम्** में **अपूपमयम्** बना सकते हैं। ये तो **वचन** में भावव्युत्पत्ति के उदाहरण हैं, अधिकरणव्युत्पत्ति के उदाहरण आगे देखें।

अन्नमयम्। अन्न की अधिकता होती है जिसमें, ऐसे यज्ञ आदि। **प्राचुर्येण प्रस्तुतम् अन्नं यस्मिन्।** यहाँ पर अधिकरण अर्थ है। **अन्न सु** में **तत्प्रकृतवचने मयट्** से **मयट्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अन्नमय** बना। स्वादिकार्य करके **अन्नमयम्** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **प्राचुर्येण प्रस्तुताः अपूपा यस्मिन् पर्वणि** में **अपूपमयम्** बना सकते हैं। मालपुए ही मालपुए जिसमें खूब होता है, ऐसा पर्व।

१२४०- प्रज्ञादिभ्यश्च। प्रज्ञा आदिर्येषां ते प्रज्ञादयस्तेभ्यः प्रज्ञादिभ्यः। प्रज्ञादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **तद्युक्तात् कर्मणोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

शस्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२४१. बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम् ५।४।४२॥

बहूनि ददाति बहुशः। अल्पशः।

वार्तिकम्- **आद्यादिभ्यस्तसेरुपसङ्ख्यानम्।** आदौ आदितः। मध्यतः। अन्ततः। पृष्ठतः। पार्श्वतः। आकृतिगणोऽयम्। स्वरेण- स्वरतः। वर्णतः।

....

प्रज्ञा आदि शब्दों से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होता है।

प्रज्ञादिगण में प्रज्ञ, वणिज्, उशिज्, मनस्, प्रत्यक्ष, विदन्, चोर, बन्धु, देवता, असुर, पिशाच आदि अनेक शब्द आते हैं।

प्राज्ञः। जानकार, बुद्धिमान्। **प्रज्ञ एव प्राज्ञः**। सामान्यतया यह **प्रज्ञः** ऐसा प्रातिपदिक है। इससे स्वार्थ में **प्रज्ञादिभ्यश्च** से **अण्** प्रत्यय हुआ। **णकार** की इत्संज्ञा के बाद लोप होकर **अ** बचा। **प्रज्ञ+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होकर **प्राज्ञ+अ** बना। अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **प्राज्ञ्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **प्राज्ञ** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु, रुत्वविसर्ग होकर **प्राज्ञः** सिद्ध हुआ। **अणन्त** होने के कारण स्त्रीलिङ्ग में **टिड्ढाणञ्०** से ङीप् होकर **प्राज्ञी** बनता है।

दैवतः। देवता। **देवता एव दैवतः**। सामान्यतया यह **प्रज्ञः** ऐसा प्रातिपदिक है। **प्रज्ञादिगण** में होने के कारण **देवता** से स्वार्थ में **प्रज्ञादिभ्यश्च** से **अण्** प्रत्यय हुआ। णकार की इत्संज्ञा के बाद लोप होकर अ बचा। **देवता+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होकर **दैवत+अ** बना। अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **दैवत्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **दैवत** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु, रुत्वविसर्ग होकर **दैवतः** सिद्ध हुआ।

बान्धवः। बन्धु, सम्बन्धी। **बन्धुरेव बान्धवः**। सामान्यतया यह **बन्धुः** ऐसा प्रातिपदिक है। **प्रज्ञादिगण** में होने के कारण **बन्धु** से स्वार्थ में **प्रज्ञादिभ्यश्च** से **अण्** प्रत्यय हुआ। णकार की इत्संज्ञा के बाद लोप होकर **अ** बचा। **बन्धु+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होकर **बान्धु+अ** बना। अन्त्य उकार का **ओर्गुणः** से लोप होकर **बान्धो+अ** बना। **अव्** आदेश होकर **बान्धव** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु, रुत्वविसर्ग होकर **बान्धवः** सिद्ध हुआ।

१२४१. बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्। बहुश्च अल्पश्च बह्वल्पौ, तौ अर्थौ यस्य तद् बह्वाल्पार्थं, तस्मात्। बह्वल्पार्थात् पञ्चम्यन्तं, शस् प्रथमान्तं, कारकात् पञ्चम्यन्तम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

बह्वर्थ और अल्पार्थ कारकवाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में विकल्प से शस् प्रत्यय होता है।

शस् के तद्धित होने के कारण **शकार** की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा नहीं होती है और **सकार** को भी **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा इसलिए नहीं होती क्योंकि इत्संज्ञा कर **सित्** बना करके कोई भी प्रयोजन नहीं है। अतः सित् के लिए सकार नहीं पढ़ा गया है, अपितु यथावत् बने रहने के लिए पढ़ा गया है। अतः प्रयोजनाभावात् उसकी इत्संज्ञा नहीं होगी। **शस्** प्रत्ययान्त की **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से अव्ययसंज्ञा हो जाती है।

च्वि-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२४२. कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः ५।४।५०।।

वार्तिकम्- **अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्।**

विकारात्मतां प्राप्नुवत्यां प्रकृतौ वर्तमानाद् विकारशब्दात् स्वार्थे च्विर्वा स्यात् करोत्यादिभिर्योगे।

....

बहुशः। बहुत देता है। **बहूनि ददाति** और **बहुशो ददाति** इन दोनों वाक्यों के अर्थ में कोई अन्तर नहीं है। एक **शस्** प्रत्यय वाला है तो एक में वह प्रत्यय नहीं है। शस् प्रत्यय के लगने के बाद भी अर्थ में कोई बदलाव नहीं है। अतः यह प्रत्यय स्वार्थिक कहलाया। इसकी प्रक्रिया देखें- **बहु जस्** में **बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्** से **शस्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **बहुशस्** बना। **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से अव्ययसंज्ञा, सु, उसका **अव्ययादाप्सुपः** से **लुक्** करके **बहुशस्** ही बना। सकार को रुत्व और उसको विसर्ग करने पर **बहुशः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर **बहूनि** की जगह **बहुशः** का प्रयोग हुआ है। **बहुशो ददाति**। यह प्रत्यय वैकल्पिक है, अतः **बहूनि ददाति** भी बन जाता है।

अल्पशः। कम देता है। **अल्पं ददाति** और **अल्पशो ददाति** इन दोनों वाक्यों के अर्थ में कोई अन्तर नहीं है। एक **शस्** प्रत्यय वाला है तो एक में वह प्रत्यय नहीं है। शस् प्रत्यय के लगने के बाद भी अर्थ में कोई बदलाव नहीं है। अतः यह प्रत्यय स्वार्थिक कहलाया। इसकी प्रक्रिया देखें- **अल्प सु** में **बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्** से **शस्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अल्पशस्** बना। **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से अव्ययसंज्ञा, सु, उसका **अव्ययादाप्सुपः** से **लुक्** करके **अल्पशस्** ही बना। सकार को रुत्व और उसको विसर्ग करने पर **अल्पशः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर **अल्पम्** की जगह **अल्पशः** का प्रयोग हुआ है। **अल्पशो ददाति**। यह प्रत्यय वैकल्पिक है, अतः **अल्पं ददाति** भी रह जाता है।

आद्यादिभ्यस्तसेरुपसङ्ख्यानम्। यह वार्तिक है। **आदि इत्यादि गणपठित शब्दों से स्वार्थ में विकल्प से तसि प्रत्यय का विधान करना चाहिए।** यह प्रत्यय भी स्वार्थिक है। **आद्यादि** आकृतिगण है, अतः इसमें कितने शब्द हैं? कोई सीमा नहीं। **तसि** में **इकार** इत्संज्ञक है, **तस्** बचता है। इस प्रत्यय के लगने के बाद **तसिप्रत्ययान्त** की **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से **अव्ययसंज्ञा** हो जाती है। किसी विभक्ति की अपेक्षा नहीं है, अतः सभी विभक्त्यन्तों से यह प्रत्यय हो जाता है।

आदौ आदितः। आदि में। **आदि ङि** में **आद्यादिभ्यस्तसेरुपसङ्ख्यानम्** वार्तिक से **तसि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **आदितस्** बना। इसकी अव्ययसंज्ञा, सु, उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् करके **आदितस्** ही बना। सकार को रुत्वविसर्ग होकर **आदितः** सिद्ध हुआ। यह कार्य वैकल्पिक है, अतः पक्ष में **आदौ** भी बना रहेगा। इसी तरह **मध्ये मध्यतः, अन्ते अन्ततः, पृष्ठे पृष्ठतः, पार्श्वे, पार्श्वतः** आदि भी बनाइये। यह आकृतिगण है, अतः **स्वरेण- स्वरतः, वर्णेन वर्णतः** आदि भी इसी तरह सिद्ध होते हैं।

१२४२- कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः। कृश्च भूश्च अस्तिश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः कृभ्वस्तयः, तेषां कृभ्वस्तीनाम्, तेषां योगः कृभ्वस्तियोगस्तस्मिन्, कृभ्वस्तियोगे। सम्पदनं

ईदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२४३. अस्य च्वौ ७।४।३२॥

अवर्णस्य ईत् स्यात् च्वौ।

वेर्लोपे च्व्यन्तत्वादव्ययत्वम्। अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते, तं करोति कृष्णीकरोति। ब्रह्मीभवति। गङ्गी स्यात्।

वार्तिकम्- **अव्ययस्य च्वावीत्वं नेति वाच्यम्।** दोषाभूतमहः। दिवाभूता रात्रिः।

....

सम्पद्यः, तस्य कर्ता, सम्पद्यकर्ता, तस्मिन् सम्पद्यकर्तरि। कृभ्वस्तियोगे सप्तम्यन्तं, सम्पद्यकर्तरि सप्तम्यन्तं, च्विः प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है। इस सूत्र के अर्थ में निम्नलिखित वार्तिक पढ़ना आवश्यक है।

अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्। अर्थात् **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** इस सूत्र में **अभूततद्भावे** इतना और जोड़ना चाहिए। **जो वस्तु पहले जिस रूप में न हो और बाद में वह उस रूप को प्राप्त कर ले** तो इसे **अभूततद्भाव** कहते हैं।

अब सूत्रार्थ करते हैं- **अभूततद्भाव गम्य होने पर अर्थात् विकार को प्राप्त हो रही प्रकृति के अर्थ में वर्तमान जो विकारवाचक शब्द, उससे परे स्वार्थ में विकल्प से च्वि प्रत्यय हो, यदि कृ, भू और अस् धातु के साथ योग हो तो।**

च्वि में **चकार** की **चुटू** से इत्संज्ञा होती है और **इकार** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से तथा **वकार** की **वेरपृक्तस्य** से इत्संज्ञा होती है। इस तरह सर्वापहार लोप हो जाता है। **च्वि** प्रत्यय **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से अव्ययसंज्ञक है, अतः इसके बाद की विभक्ति का लुक् होता है।

१२४३- अस्य च्वौ। अस्य षष्ठ्यन्तं, च्वौ सप्तम्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ई घ्राध्मोः** से **ई** की अनुवृत्ति आती है।

च्वि के परे होने पर अकार के स्थान पर ईकार आदेश करता है।

च्वि के सर्वापहार लोप हो जाने पर भी **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** की सहायता से प्रत्यय परे मानकर के **ईकारादेश** आदि होते हैं।

कृष्णीकरोति। कृष्णीभवति। जो काला नहीं है उसे काला करता है या होता है। **अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते तं करोति** यह लौकिक विग्रह और **कृष्ण सु** अलौकिक विग्रह में **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से च्वि, सर्वापहारलोप। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **कृष्ण+करोति** बना। **अस्य च्वौ** से णकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **ईकार** आदेश करके **कृष्णी** बना। आगे **करोति** या **भवति है, कृष्णीकरोति, कृष्णीभवति।**

ब्रह्मीभवति। जो ब्रह्मभाव का अनुभव नहीं कर रहा था, वह ब्रह्मभाव को प्राप्त हो रहा है। **अब्रह्म ब्रह्म भवति** यह लौकिक विग्रह और **ब्रह्म सु** अलौकिक विग्रह में **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से च्वि, सर्वापहारलोप। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **ब्रह्म** बना। **अस्य च्वौ** से णकारोत्तरवर्ती अकार के स्थान पर ईकार आदेश करके **ब्रह्मी** बना। आगे भवति है, **ब्रह्मीभवति।**

अव्ययस्य च्वावीत्वं नेति वाच्यम्। यह वार्तिक है। **च्वि प्रत्यय के परे रहते अव्यय के अवर्ण के स्थान पर ईकारादेश नहीं होता है, ऐसा कहना चाहिए।**

वैकल्पिकसातिप्रत्ययविधायकं सूत्रम्

१२४४. विभाषा साति कार्त्स्न्ये ५।४।५२।।

च्विविषये सातिर्वा स्यात् साकल्ये।

षत्वनिषेधकं विधिसूत्रम्

१२४५. सात्पदाद्योः ८।३।१११।।

सस्य षत्वं न स्यात्। कृत्स्नं शस्त्रमग्निः सम्पद्यतेऽग्निसाद्भवति। दधि सिञ्चति।

....

दोषाभूतमहः। **अदोषा दोषा सम्पद्यमानं भूतम्** अर्थात् जो रात्रि न था किन्तु रात्रि हो गया, ऐसा दिन। **दोषा भूतम्** में **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से **च्वि**, सर्वापहार, **दोषा+भूतम्** में **अस्य च्वौ** से **दोषा** के आकार को **ईकारादेश** प्राप्त था, उसका **अव्ययस्य च्यावीत्वं नेति वाच्यम्** इस वार्तिक से निषेध हो जाने के कारण **दोषा भूतम्** ही रह गया। **दोषा+भूतम्** की **कुगतिप्रादयः** से समास होता है।

दिवाभूता रात्रिः। **अदिवा दिवा सम्पद्यमाना भूता** अर्थात् जो दिन न थी किन्तु दिन बन गई, ऐसी रात्रि। **दिवा भूता** में **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से **च्वि**, सर्वापहार, **दिवा+भूता** में **अस्य च्वौ** से **दिवा** के आकार को **ईकारादेश** प्राप्त था, उसका **अव्ययस्य च्यावीत्वं नेति वाच्यम्** इस वार्तिक से निषेध हो जाने के कारण **दिवा भूता** ही रह गया। **दिवा+भूतम्** की **कुगतिप्रादयः** से समास होता है।

१२४४- **विभाषा साति कार्त्स्न्ये।** विभाषा प्रथमान्तं, साति लुप्तप्रथमाकं पदं, कार्त्स्न्ये सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है। **अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि** की अनुवृत्ति आ रही है।

च्वि के विषय में विकल्प से साति प्रत्यय होता है यदि सम्पूर्णता अर्थ गम्यमान हो तो।

कृत्स्नं सम्पूर्णम्, तस्य भावः कार्त्स्न्यम्। उक्त सूत्र से विहित **साति** में इकार की इत्संज्ञा होती है, **सात्** बचता है। **सातिप्रत्ययान्त** शब्द की **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से **अव्ययसंज्ञा** होती है।

१२४५. **सात्पदाद्योः।** पदस्यादिः पदादिः। सात् च पदादिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः सात्पदादी, तयोः सात्पदाद्योः। सात्पदाद्योः षष्ठ्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **सहेः साडः सः** से **सः** और **अपदान्तस्य मूर्धन्यः** से **मूर्धन्यः** तथा **न रपरसृपिसृजिसृपिस्पृहिसवनादीनाम्** से **न** की अनुवृत्ति आती है।

साति प्रत्यय के सकार और पदादि में स्थित सकार को मूर्धन्य षकार आदेश नहीं होता है।

अग्निसाद् भवति। कृत्स्नं शस्त्रम् अग्निः सम्पद्यत इति। सम्पूर्ण शस्त्र जो अग्नि नहीं है, वह आग हो जाता है अर्थात् जल जाता है। यहाँ पर **सम्पूर्ण** अर्थ होने के कारण **कार्त्स्न्य** है। अभूततद्भाव भी है। जैसे कि जो आग नहीं वह आग हो गया। अतः **अग्नि सु भवति** में **विभाषा साति कार्त्स्न्ये** से **साति** प्रत्यय, इकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अग्नि+सात्** बना। यहाँ पर इवर्ण से परे होने के कारण

दीर्घविधायकं विधिसूत्रम्

१२४६. च्वौ च ७।४।२६॥

च्वौ परे पूर्वस्य दीर्घः स्यात्। अग्नीभवति।

डाच्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२४७. अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच् ५।४।५७॥

द्व्यजेवावरं न्यूनं न तु ततो न्यूनमनेकाजिति यावत्।

तादृशमर्धं यस्य तस्माद् डाच् स्यात् कृभ्वस्तिभिर्योगे।

वार्तिकम्- **डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम्।** इति डाचि विवक्षिते द्वित्वम्।

वार्तिकम्- **नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्।**

डात्परं यदाम्रेडितं तस्मिन् परे पूर्वपरयोर्वर्णयोः पररूपं स्यात्।

इति तकारपकारयोः पकारः। पटपटाकरोति।

अव्यक्तानुकरणात् किम्? ईषत्करोति। द्व्यजवरार्धात् किम्? श्रत्करोति।

अवरेति किम्? खरटखरटाकरोति। अनितौ किम्? पटिति करोति।

इति स्वार्थिकाः॥५९॥

इति तद्धिताः।

....

सात्-प्रत्यय के सकार के स्थान पर **आदेशप्रत्यययोः** से **षत्व** प्राप्त था, उसका **सात्पदाद्योः** से निषेध हो गया। अतः **अग्निसात्** ही रह गया। **सातिप्रत्ययान्त** अव्यय होता ही है, अतः उससे बाद की विभक्ति का लुक् होकर **अग्निसात्** सिद्ध हो जाता है। आगे **भवति** है, अतः **तकार** को **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर **अग्निसाद् भवति** हो जाता है।

दधि सिञ्चति। दही छिड़कता है। यह **साति** प्रत्यय का विषय नही है अपितु षत्व के निषेध में **पदादि** का उदाहरण है। **दधि** में विद्यमान इण् वर्ण इकार से परे **सिञ्चति** के सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षकारादेश प्राप्त था, उसका निषेध **सात्पदाद्योः** से किया गया है। **साति** प्रत्यय के विधान एवं उसके सकार को षत्वनिषेध के विषय में आगे देखें।

१२४६- च्वौ च। च्वौ सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अङ्गस्य** का अधिकार है और **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है।

च्वि के परे होने पर पूर्व के अङ्ग को दीर्घ होता है।

अग्नीभवति। जो अग्नि नहीं है वह अग्नि बनता है। **अनग्निः अग्निर्भवति** लौकिक विग्रह और **अग्नि सु** अलौकिक विग्रह में **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से च्वि, सर्वापहारलोप होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **अग्नि+भवति** बना। **च्वौ च** से इकार को दीर्घ होकर **अग्नीभवति।**

१२४७. अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्। यत्र ध्वनौ अकारादयो वर्णा न व्यज्यन्ते सोऽव्यक्तो ध्वनिः। अव्यक्तध्वनेरनुकरणम् अव्यक्तानुकरणं, तस्मात्। द्वयोरचोः समाहारः द्व्यच्, द्व्यच् एव अवरं न्यूनं, द्व्यजवरं, तस्मात्। न इतिः अनितिः, तस्मिन्, अनितौ। **मण्डूकप्लुति** से

कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः से कृभ्वस्तियोगे की अनुवृत्ति आती है। प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः का अधिकार है।

जिसके आधे भाग में कम से कम दो अच् हों, ऐसे अव्यक्तानुकरण अर्थात् स्पष्टतया अकारादि वर्ण की ध्वनि जहाँ पर न हो ऐसे शब्द के अनुकरण होने पर उससे डाच् प्रत्यय होता है यदि कृ, भू, अस् का योग हो तो किन्तु इति शब्द परे नहीं होना चाहिए।

इस सूत्र के लगने में प्रथमतः अव्यक्त ध्वनि की नकल होनी चाहिए, दूसरी बात जिस शब्द से डाच् किया जा रहा है, उस शब्द में कम से कम दो अच् होने चाहिए, तीसरी बात- कृ, भू, अस् का योग होना चाहिए और चौथी बात इति शब्द परे नहीं होना चाहिए।

डाच् में डकार और चकार इत्संज्ञक हैं, आ बचता है। डित् होने के कारण टेः से प्रकृति के टि का लोप किया जाता है।

इस सूत्र में एक वार्तिक पढ़ा गया है- डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम् अर्थात् डाच् प्रत्यय करने की विवक्षा हो तो पहले मूल शब्द को बहुल से द्वित्व होता है।

नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्। यह भी वार्तिक है। डाच् परे है जिसके ऐसा जो आम्रेडित, उसके परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर पररूप एक आदेश होता है।

स्मरण रहे कि द्वित्व होने पर द्वितीय की तस्य परमाम्रेडितम् से आम्रेडितसंज्ञा होती है।

पटपटा करोति। पटत् इति शब्दं करोति। पटत् ऐसा शब्द करता है। यहाँ पटत् लगभग इस तरह का शब्द करना, यह अव्यक्त शब्द का अनुकरण है क्योंकि जो आवाज हुई वह पटत् ऐसे व्यक्त शब्द के रूप में न होकर उसके अनुकरण में जैसे ठक् ठक् करता है आदि में अनुकरण किया जाता है, उसी तरह का यह भी अनुकरण ही है। पटत् इससे अतः अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच् से डाच् की प्रत्यय की विवक्षा है। उसके पहले ही डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम् से उसको द्वित्व हुआ- पटत् पटत् करोति बना। अब यहाँ पर आधा भाग भी दो अच् वाला है ही। अतः डाच् प्रत्यय हो गया, अनुबन्धलोप होने के बाद पटत्+पटत्+आ करोति बना। प्रथम पटत् के तकार और द्वितीय पटत् के आदि वर्ण पकार के स्थान पर नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम् से पररूप होकर पकार ही बना। पट+प्+अटत्+आ करोति बना। अटत् में अत् टि है, इसका टेः से लोप होकर पट+प्+अट्+आ करोति बना। वर्णसम्मेलन होकर पटपटा करोति बना। डाजन्त भी तद्धितश्चासर्वविभक्तिः से अव्यय बन जाता है। अतः उसके बाद आए हुए सुप् का अव्ययादाप्सुपः से लुक् होकर पटपटा बना। आगे करोति है। इस तरह पटपटा-करोति सिद्ध हुआ।

अव्यक्तानुकरणात् किम्? ईषत्करोति। यदि अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच् इस सूत्र में अव्यक्तानुकरणात् न कहते तो व्यक्तानुकरण में भी डाच् होने लगाता, जिससे ईषत्करोति नहीं बन पाता।

द्व्यजवरार्धात् किम्? श्रत्करोति। अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्

इस सूत्र में **द्व्यजवरार्धात्** न कहते तो एक अच् वाले में भी उक्त सूत्र प्रवृत्त होता, जिससे **श्रत्करोति** न बन पाता।

अवरेति किम्? खरटखरटाकरोति। अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच् इस सूत्र में **अवर** शब्द न होता तो दो अच् में तो डाच् हो जाता किन्तु दो से अधिक अच् होने पर भी **डाच्** नहीं हो पाता जिससे **खरटखरटा करोति** नहीं बन पाता।

अनितौ किम्? पटिति करोति। अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच् इस सूत्र में **अनिति** नहीं कहते तो इति के परे होने पर भी **डाच्** होने लगता, जिससे **पटिति करोति** न बन पाता।

परीक्षा

इस प्रकरण के किन्हीं पन्द्रह प्रयोगों की सूत्र लगाकर सिद्धि दिखाइये।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का स्वार्थिक-प्रकरण पूर्ण हुआ।

तद्धितप्रकरण समाप्त।

अथ स्त्रीप्रत्यया:

अधिकारसूत्रम्

१२४८. स्त्रियाम् ४।१।३।।

अधिकारोऽयम्, समर्थानामिति यावत्।

....

श्रीधरमुखोल्लासिनी

अब **लघुसिद्धान्तकौमुदी** का अन्तिम **स्त्रीप्रत्यय-प्रकरण** प्रारम्भ होता है। सामान्यतया जो शब्द पहले पुँल्लिङ्ग में हो और उसे स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग करने की आवश्यकता होने पर उनसे तथा स्वाभाविक ही स्त्रीलिङ्ग में रहने वाले शब्दों से स्त्रीलिङ्गबोधक प्रत्यय किये जाते हैं। ऐसे शब्द जो धातुओं से प्रत्यय होकर कृदन्त बने हों या प्रातिपदिकों से प्रत्यय होकर तद्धितान्त बने हों अथवा अर्थविशेष में समास किये गये हों, या तो अव्युत्पन्न हों, ऐसे सभी शब्दों से **स्त्रीत्व** अर्थबोधन करने की इच्छा होने पर अर्थात् स्त्रीत्व की विवक्षा होने पर स्त्रीलिङ्गबोधक प्रत्यय होते हैं परन्तु प्राय: अजन्त शब्दों से उनमें भी ज्यादातर अकारान्त शब्दों से ये प्रत्यय किये जाते हैं। हलन्त शब्दों से स्त्रीत्व विवक्षा होने पर भी स्त्रीत्वबोधक प्रत्यय प्राय: कम ही होते हैं।

छात्र, नर, मनुष्य पुँल्लिङ्ग है तो स्त्रीलिङ्गबोधक प्रत्यय होकर छात्रा, नारी, मानुषी शब्द बनते हैं। ऐसे के लिए व्याकरणशास्त्र में कुछ प्रकृति-विशेष से कुछ प्रत्ययों का विधान है। ये प्रत्यय **स्त्रियाम्** इस सूत्र के अधिकार में आते हैं। **प्रत्यय:** और **परश्च** का पूरा अधिकार है। **ङ्याप्प्रातिपदिकात्** से **प्रातिपदिकात्** का भी अधिकार है। **स्त्रियाम्** के अधिकार में आने वाले प्रत्यय हैं- **टाप्, डाप्, चाप्, ङीप्, ङीष्, ङीन्, ऊङ्** और **ति**। इनमें से **टाप्, चाप्** और **डाप्** इन तीनों को **आप्-शब्द** से ग्रहण किया जाता है और **ङीप्, ङीष्** और **ङीन्** की ङी-शब्द से ग्रहण किया जाता है। **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** इस सूत्र में **आप्** और ङी इन प्रत्ययों के अन्त में होने पर तदन्त शब्दों से परे सु आदि का लोप किया जाता है और **औङ आप:, आङि चाप:** आदि में भी **आप्** का कथन है।

लिङ्ग का निर्धारण तो **लिङ्गानुशासन** प्रकरण के अन्तर्गत ही हो सकता है किन्तु स्त्रीलिङ्ग के बोधन के लिए कौन सा प्रत्यय लग सकता है, यह वर्णन इस प्रकरण में किया गया है। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो पुँल्लिङ्ग में तो नहीं होते किन्तु स्त्रीलिंग में होते हैं। उनको

टाप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२४९. अजाद्यतष्टाप् ४।१।४॥

अजादीनामकारान्तस्य च वाच्यं यत् स्त्रीत्वं तत्र द्योत्ये टाप् स्यात्। अजा। एडका। अश्वा। चटका। मूषिका। बाला। वत्सा। होडा। मन्दा। विलाता इत्यादि। मेधा। गङ्गा। सर्वा।

....

नित्यस्त्रीलिङ्गशब्द कहा जाता है। इनका विस्तृत ज्ञान **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** में ही हो सकेगा, यहाँ पर दिग्दर्शन मात्र कराया गया है।

१२४८- **स्त्रियाम्।** स्त्रियाम् सप्तम्यन्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। यह अधिकार सूत्र है।

तद्धिताः ४.१.७६ तक प्रत्येक सूत्रों में **स्त्रियाम्** येह अधिकार के रूप में उपस्थित रहेगा।

१२४९- **अजाद्यतष्टाप्।** अज आदिर्येषां ते अजादयः। अजादयश्च अत् च तेषां समाहारः अजाद्यत्, तस्मात्। अजाद्यतः पञ्चम्यन्तं, टाप् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **ङ्याप्प्रातिपदिकात्** से **प्रातिपदिकात्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार आता है। **स्त्रियाम्** का अधिकार तो है ही।

अज आदि गण में पढ़े गये शब्द अथवा ह्रस्व अकारान्त शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् प्रत्यय होता है।

अजादिगण में अजा, एडका आदि अनेक शब्द आते हैं। टकार **चुटू** से और पकार **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञक है, आ बचता है। इसके बाद **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ हो जाता है।

अजा। (बकरी) यह अज अजादिगणीय शब्द है। स्त्रीत्व के द्योतन करने में **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अज+आ** बना। सवर्णदीर्घ होकर **अजा** बना। अब आबन्त से सु विभक्ति करके रमा की तरह **अजा, अजे, अजाः** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

एडका। (मादा भेंड़) यह **एडक** अजादिगणीय शब्द है। स्त्रीत्व के द्योतन करने में **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **एडक+आ** बना। सवर्णदीर्घ होकर **एडका** बना। अब आबन्त से सु विभक्ति करके रमा की तरह **एडका, एडके, एडकाः** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

अश्वा। (घोड़ी) यह अजादिगणीय शब्द है। स्त्रीत्व के द्योतन करने में **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अश्व+आ** बना। सवर्णदीर्घ होकर **अश्वा** बना। अब आबन्त से सु विभक्ति करके रमा की तरह **अश्वा, अश्वे, अश्वाः** आदि रूप सिद्ध होते हैं। अब इसी तरह **बाल से बाला**(बालिका), **वत्स से वत्सा**(बछिया), **चटक से चटका**(चिड़िया), **मूषक से मूषिका**(चूहिया), **होड से होडा**(कन्या), **मन्द से मन्दा**(कन्या), **विलात से विलाता**(कन्या), **गङ्ग से गङ्गा**(नदी-विशेष)। ये सभी उदाहरण **अजादिगण** में पठित शब्दों के हैं। ह्रस्व अकारान्त के उदाहरण- **सर्व से सर्वा**(सभी स्त्री आदि) आदि उक्त रीति से टाप् करके बना सकते हैं।

ङीप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२५०. उगितश्च ४।१।६॥

उगिदन्तात्प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप्-स्यात्।

भवती। भवन्ती। पचन्ती। दीव्यन्ती।

ङीप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२५१. टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः ४।१।१५॥

अनुपसर्जनं यट्टिदादि तदन्तं यददन्तं प्रातिपदिकं ततः स्त्रियां ङीप् स्यात्।

कुरुचरी। नदट् नदी। देवट् देवी। सौपर्णेयी। ऐन्द्री। औत्सी। ऊरुद्वयसी। ऊरुदघ्नी। ऊरुमात्री। पञ्चतयी। आक्षिकी। लावणिकी। यादृशी। इत्वरी।

वार्तिकम्- **नञ्स्नञीकक्ख्युँस्तरुणतलुनानामुपसङ्ख्यानम्।** स्त्रैणी। पौंस्नी। शाक्तीकी। याष्टीकी। आढ्यङ्करणी। तरुणी। तलुनी।

....

प्रश्नः- अज आदि शब्दों से भी ह्रस्व अकारान्त होने से ही टाप् हो सकता था, पुनः अजादिगण में इनका पाठ क्यों?

उत्तरः- अजादिगण में इनका पाठ इसलिए है कि सामान्य स्त्रीत्व-विवक्षा में प्राप्त टाप् प्रत्यय को बाधकर जातिविषयक स्त्रीत्वविवक्षा में **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से ङीष् प्राप्त होता है और पुंयोग होने पर **पुंयोगादाख्यायाम्** से ङीष् प्राप्त होता है। इन दोनों को बाधकर टाप् ही हो अर्थात् अजादिगणपठित शब्दों से जातिविषयक स्त्रीत्वविवक्षा में और पुंयोग होने पर भी टाप् ही हो, न कि ङीप्, ङीष् आदि। इसलिए अकारान्त होते हुए भी अजादि में पढ़ा है।

१२५०- **उगितश्च**। उक् इत् यस्य(प्रातिपदिकस्य) तद् उगित्, तस्मात्। उगितः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययपदं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से **ङीप्** की अनुवृत्ति आती है। **स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार तो है ही।

जिसमें उक् अर्थात् उ, ऋ, लृ **की इत्संज्ञा हो गई हो ऐसे प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है।**

लशक्वतद्धिते से ङकार तथा **हलन्त्यम्** से पकार इत्संज्ञक हैं ई बचता है। शतृ, वसु, डवतु आदि प्रत्ययों में ऋकार, उकार आदि इत्संज्ञक होने से उगित् हैं। इस ङीप् प्रत्यय करने से शब्द ङ्यन्त हो जाता है, जिससे सुलोप आदि कार्य होते हैं।

भवती। आप(स्त्री, महिला)। **भवत्** शब्द के पुँल्लिङ्ग में भवान् बना हैं। भा धातु से कृत्-प्रकरण में डवतु प्रत्यय करके **भवत्** बना है। उकार की इत्संज्ञा होने से उगित् है। **उगितश्च** से ङीप्, अनुबन्धलोप, **भवत्+ई=भवती** बना। ङ्यन्त भवती से सु आदि विभक्ति लगाकर **नदी** की तरह **भवती, भवत्यौ, भवत्यः** आदि रूप बन जाते हैं।

भवन्ती। (होने वाली) भू धातु से शतृप्रत्यय करके अनुबन्धलोप, होने पर **भू+अत्**, शप्, अनुबन्धलोप, **अ** और **अत्** में **अतो गुणे** से पररूप हुआ एवं सार्वधातुकगुण, अव् आदेश करके **भवत्** बना है। ऋकार की इत्संज्ञा होने के कारण उदित् है। स्त्रीत्व की विवक्षा में **उगितश्च** से ङीप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **भवती** बना है। **शप्श्यनोर्नित्यम्**

से नुम् करने पर **भवन्ती** बना। अब ङ्यन्त **भवन्ती** से सु आदि विभक्ति लगाकर नदी की तरह **भवन्ती, भवन्त्यौ, भवन्त्यः** आदि रूप बन जाते हैं। इसी तरह पच् से शतृ, पचत्, पचती, **पचन्ती**। इसके रूप **नदी** की तरह ही **पचन्ती, पचन्त्यौ, पचन्त्यः** आदि होते हैं। **दीव्यत्** इस शत्रन्त **दीव्यत्** से **दीव्यन्ती, दीव्यन्त्यौ, दीव्यन्तः** आदि बनाये जा सकते हैं।

१२५१- टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः। टित् च ढश्च, अण् च, द्वयसच्च, दघ्नञ्च, मात्रच्च तयप्च, ठक् च, ठञ्च, कञ् च, क्वरप् च तेषामितरेतरद्वन्द्वः टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः। प्रथमान्तमेकपदं सूत्रम्। **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से **ङीप्** तथा **अजाद्यतष्टाप्** से एकदेश **अतः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** इन सभी शब्दों का पूर्ववत् अधिकार है।

अनुपसर्जन जो टित्, ढ, अण्, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच् तयप्, ठक्, ठञ्, कञ् और क्वरप् जो प्रत्यय, ऐसे प्रत्यय अन्त में होने वाले अदन्त प्रातिपदिक, उनसे स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है।

ये प्रत्यय कृत्प्रकरण और तद्धितप्रकरण के हैं। **ङीप्** में ङकार की **लशक्वतद्धिते** से तथा पकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा के बाद **तस्य लोपः** से लोप करके ईकार ही शेष रहता है। ईकार के परे होने पर प्रकृति की भसंज्ञा होती है। अतः प्रकृति में विद्यमान अन्त्य अवर्ण का **यस्येति च** से लोप हो जाता है।

कुरुचरी। कुरुदेश में विचरण करने वाली स्त्री। यह टित् का उदाहरण है। **कुरुषु चरति** इस विग्रह में **कुरु** पूर्वक **चर्** धातु से **चरेष्टः** इस सूत्र से **ट** प्रत्यय होकर कृदन्त में **कुरुचर** बना है। कृदन्त होने के कारण प्रातिपदिक भी है। अतः इससे टित् मानकर के स्त्रीत्व की विवक्षा में **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** से **ङीप्** हुआ। ङकार और **पकार** की इत्संज्ञा और लोप के बाद **कुरुचर** की भसंज्ञा करके अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **कुरुचर्+ई** बना। वर्णसम्मेलन होकर **कुरुचरी** बन गया। अब सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करने पर **कुरुचरी** सिद्ध हुआ।

नदी। दरिया। यह भी टित् का उदाहरण है। **पचादिगण** में **नदट्** के रूप में इसका पाठ है। अतः **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** से **अच्** प्रत्यय होकर **नद** बना है। कृदन्त होने के कारण प्रातिपदिक भी है। अतः इससे **टित्** मानकर के स्त्रीत्व की विवक्षा में नद से **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** से **ङीप्** हुआ। **ङकार** और **पकार** की इत्संज्ञा और लोप के बाद **कुरुचर** की भसंज्ञा करके अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **नद्+ई** बना। वर्णसम्मेलन होकर **नदी** बन गया। अब सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करने पर **नदी** सिद्ध हुआ। इसी तरह **टिदन्त** मानकर अजन्त **देव** से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् करके **देवी** बनता है।

सौपर्णेयी। सुपर्णी की कन्या, गरुड़ की बहन। यह **ढ-प्रत्ययान्त** का उदाहरण है। **सुपर्ण्या अपत्यं स्त्री** इस विग्रह में **स्त्रीभ्यो ढक्** से **ढक्** प्रत्यय, **एय्** आदेश होकर **सौपर्णेय** बना है। तद्धितान्त होने के कारण प्रातिपदिक भी है। अतः इससे ढान्त मानकर के स्त्रीत्व की विवक्षा में **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** से **ङीप्** हुआ। **ङकार** और **पकार** की इत्संज्ञा और लोप के बाद **सौपर्णेय** की भसंज्ञा करके अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **सौपर्णेय्+ई** बना। वर्णसम्मेलन होकर **सौपर्णेयी** बन गया।

अब सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करने पर **सौपर्णेयी** सिद्ध हुआ।

ऐन्द्री। इन्द्र देवता है जिसका, ऐसी पूर्वदिशा। यह **अण्-प्रत्ययान्त** का उदाहरण है। **इन्द्रो देवता अस्य** इस विग्रह में **सास्य देवता** से **अण्** प्रत्यय अथवा **इन्द्रस्य इयम्** इस विग्रह में **तस्येदम्** से **अण् प्रत्यय** होकर **ऐन्द्र** बना है। तद्धित होने के कारण प्रातिपदिक भी है। अतः इससे अणन्त मानकर के स्त्रीत्व की विवक्षा में **ऐन्द्र** शब्द से **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** से **ङीप्** हुआ। **ङकार** और **पकार** की इत्संज्ञा और लोप के बाद **सौपर्णेय** की भसंज्ञा करके अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **ऐन्द्र्+ई** बना। वर्णसम्मेलन होकर **ऐन्द्री** बन गया। अब सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करने पर **ऐन्द्री** सिद्ध हुआ।

औत्सी। झरने में उत्पन्न होने वाली मछली आदि। यह **अञ्-प्रत्ययान्त** का उदाहरण है। **तत्र भवः** अर्थ में **उत्सादिभ्योऽञ्** से **अञ् प्रत्यय** होकर **औत्स** बना है। तद्धितान्त होने के कारण प्रातिपदिक भी है। अतः इससे अञन्त मानकर के स्त्रीत्व की विवक्षा में **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** से **ङीप्** हुआ। **ङकार** और **पकार** की इत्संज्ञा और लोप के बाद **सौपर्णेय** की भसंज्ञा करके अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **औत्स्+ई** बना। वर्णसम्मेलन होकर **औत्सी** बन गया। अब सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करने पर **औत्सी** सिद्ध हुआ।

ऊरुद्वयसी। ऊरु प्रमाण है जिस का, ऐसी नदी। यह **द्वयसच्-प्रत्ययान्त** का उदाहरण है। **प्रमाण** अर्थ में **प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः** से **द्वयसच् प्रत्यय** होकर **ऊरुद्वयस** बना है। तद्धितान्त होने के कारण प्रातिपदिक भी है। अतः इससे **द्वयसजन्त** मानकर के स्त्रीत्व की विवक्षा में **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** से **ङीप्** हुआ। **ङकार** और **पकार** की इत्संज्ञा और लोप के बाद **ऊरुद्वयस** की भसंज्ञा करके अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **ऊरुद्वयस्+ई** बना। वर्णसम्मेलन होकर **ऊरुद्वयसी** बन गया। अब सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करने पर **ऊरुद्वयसी** सिद्ध हुआ। इसी तरह उक्त सूत्र से **दघ्नच्** और **मात्रच्** प्रत्यय करके क्रमशः **ऊरुदघ्नी** और **ऊरुमात्री** ये शब्द सिद्ध हो जाते हैं।

पञ्चतयी। पाँच अवयव वाली स्त्री। **पञ्च अवयवा अस्याः** इस विग्रह में **पञ्चन् जस्** से **सङ्ख्याया अवयवे तयप्** से **तयप्** प्रत्यय होकर **पञ्चतय** बना है **तयप्-प्रत्ययान्त** का उदाहरण है। स्त्रीत्व की विवक्षा में **पञ्चतय** से **टिड्ढाणञ्द्वयसज्-दघ्नञ्मात्रच्-तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** से **ङीप्** हुआ। **ङकार** और **पकार** की इत्संज्ञा और लोप के बाद **पञ्चतय** की भसंज्ञा करके अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **पञ्चतय्+ई** बना। वर्णसम्मेलन होकर **पञ्चतयी** बन गया। अब सु प्रत्यय, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करने पर **पञ्चतयी** सिद्ध हुआ।

ठक्-प्रत्ययान्त का उदाहरण- **अक्षैर्दीव्यति** इस विग्रह में **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से ठक् प्रत्यय, उसमें **ठस्येकः** से इक आदेश होकर **आक्षिक** बना है। **ठक्** प्रत्ययान्त **आक्षिक** से **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** के द्वारा **ङीप्** हुआ-**आक्षिकी**।

ङीप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२५२. यञश्च ४।१।१६॥

यञन्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात्। अकारलोपे कृते-

यकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

१२५३. हलस्तद्धितस्य ६।४।१५०॥

हलः परस्य तद्धितयकारस्योपधाभूतस्य लोप ईति परे। गार्गी।

....

ठञ्-प्रत्ययान्त का उदाहरण- **प्रस्थेन क्रीता** इस विग्रह में **तेन क्रीतम्** से ठञ् होकर इक आदेश के बाद **प्रास्थिक** बना। उससे **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्-तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** के द्वारा ङीप् हुआ- **प्रास्थिकी।**

ठञ्-प्रत्ययान्त का दूसरा उदाहरण- **लवणं पण्यमस्याः** इस विग्रह में **लवणाट्ठञ्** से ठञ् और **ठस्येकः** से इक आदेश होकर **लावणिक** बना। उससे ङीप् होकर **लावणिकी** बना।

कञ्-प्रत्ययान्त का उदाहरण- **यत् प्रमाणमस्य** इस विग्रह में **त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च** से **कञ्** प्रत्यय हो **आ सर्वनाम्नः** से यत् को आकारान्त आदेश होकर **यादृश** बना है। उससे स्त्रीत्व में **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** से ङीप् होकर **यादृशी** बनता है।

क्वरप् का उदाहरण- **इण्** धातु से **इण्नशिजिसर्तिभ्यः क्वरप्** से क्वरप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्** से तुक् होकर **इत्वर** बना है। उससे स्त्रीत्व की विवक्षा में **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** से ङीप् होकर **इत्वरी** सिद्ध हुआ।

नञ्स्नञीकक्ख्युँस्तरुणतलुनानामुपसङ्ख्यानम्। यह वार्तिक है। **नञ्-प्रत्ययान्त, स्नञ्-प्रत्ययान्त, ईकक्-प्रत्ययान्त और ख्युन्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से तथा तरुण, तलुन प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है।**

तद्धित में नञ् प्रत्यय होकर **स्त्रैण** तथा **स्नञ्** प्रत्यय होकर **पौंस्न** एवं **ईकक्** प्रत्यय होकर **शाक्तीक, याष्टीक** और **ख्युन्** प्रत्यय होकर **आढ्यङ्करण** बने हैं। उनसे **स्त्रीत्वविवक्षा** में **नञ्स्नञीकक्ख्युँस्तरुणतलुनानामुपसङ्ख्यानम्** से ङीप् प्रत्यय होकर **स्त्रैणी, पौंस्नी, शाक्तीकी, याष्टीकी, आढ्यङ्करणी** सिद्ध हो जाते हैं। इसी तरह **तरुण, तलुन** शब्दों से भी इसी वार्तिक से उक्त प्रत्यय होकर **तरुणी** और **तलुनी** बनाइये।

१२५२- यञश्च। यञः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से ङीप् की अनुवृत्ति आती है। **प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, स्त्रियाम्** का अधिकार है।

स्त्रीत्व की विवक्षा में यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से परे ङीप् प्रत्यय होता है।

१२५३- हलस्तद्धितस्य। हलः पञ्चम्यन्तं, तद्धितस्य षष्ठ्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः** से **उपधायाः** और **ढे लोपोऽकद्र्वाः** से **लोपः** की तथा **यस्येति च** से **ईति** की अनुवृत्ति आती है।

ष्फ-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२५४. प्राचां ष्फ तद्धितः ४।१।१७।।

यञन्तात् ष्फो वा स्यात् स च तद्धितः।

ङीष्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२५५. षिद्गौरादिभ्यश्च ४।१।४१।।

षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च स्त्रियां ङीष् स्यात्।

गार्ग्यायणी। नर्तकी। गौरी। अनडुही। अनड्वाही। आकृतिगणोऽयम्।

....

हल् से परे तद्धित के उपधाभूत यकार का लोप होता है, ईकार के परे होने पर।

गार्गी। गर्ग गोत्र की सन्तति, कन्या। **गर्गस्य गोत्रापत्यं स्त्री।** तद्धित में **गर्ग** शब्द से **गर्गादिभ्यो यञ्** से **यञ्** प्रत्यय होकर **गार्ग्य** बना हुआ है। उससे स्त्रीत्व की विवक्षा में **यञश्च** से **ङीप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके भसंज्ञक अकार का लोप करके **गार्ग्य्+ई** बना। अब **हलस्तद्धितस्य** से **गार्ग्य्** के **यकार** का लोप हुआ- **गार्ग्+ई** बना। वर्णसम्मेलन होकर **गार्गी** और स्वादिकार्य करने पर **गार्गी** सिद्ध हो जाता है।

१२५४- **प्राचां ष्फ तद्धितः।** प्राचां षष्ठ्यन्तं, ष्फ लुप्तप्रथमाकं, तद्धितः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **यञश्च** से **यञः** की अनुवृत्ति आती है और **प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **स्त्रियाम्** का पूर्ववत् अधिकार है।

यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व विवक्षा में विकल्प से तद्धितसंज्ञक ष्फ प्रत्यय होता है।

षकार का **षः प्रत्ययस्य** से इत्संज्ञा होकर लोप होता है, **फ** बचता है। उसमें से केवल **फ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **आयन्** आदेश होकर **आयन** बनता है।

१२५५- **षिद्गौरादिभ्यश्च।** ष् इत् यस्य स षित्, गौरः आदिर्येषां ते गौरादयः। षित् च गौरादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः पिद्गौरादयस्तेभ्यः। षिद्गौरादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययपदं द्विपदमिदं सूत्रम्। **अन्यतो ङीष्** से **ङीष्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रातिपदिककात्, प्रत्ययः, परश्च** और **स्त्रियाम्** का पूर्ववत् अधिकार है।

जिस शब्द में षकार की इत्संज्ञा हो गई हो ऐसे शब्दों से और गौर आदि गणपठित शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा होने पर ङीष् प्रत्यय होता है।

ङ्कार और **षकार** इत्संज्ञक हैं, **ईकार** शेष रहता है। **गौरादिगण** में **गौर, मस्त्य, मनुष्य, हय** आदि अनेक शब्द पठित हैं फिर भी यह **आकृतिगण** है। तात्पर्य यह है कि इस गण में आने वाले शब्द असंख्य हैं। अतः गणना नहीं हो सकती। फलतः **आकृतिगण** है।

गार्ग्यायणी। गर्ग शब्द से **गर्गादिभ्यो यञ्** से **यञ्** प्रत्यय करके **गार्ग्य** बना। यञन्त **गार्ग्य** से स्त्रीत्व की विवक्षा में **प्राचां ष्फ तद्धितः** से **ष्फ** प्रत्यय हुआ। षकार का **षः प्रत्ययस्य** से लोप होकर **फ** बचा। उसमें केवल **फकार** के स्थान पर **आयन्** आदेश

ङीप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२५६. वयसि प्रथमे ४।१।२०॥

प्रथमवयोवाचिनोऽदन्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात्। कुमारी।

ङीप्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२५७. द्विगोः ४।१।२१॥

अदन्ताद् द्विगोर्ङीप् स्यात्।

त्रिलोकी। अजादित्वात् त्रिफला। त्र्यनीका सेना।

....

होकर **गार्ग्य+आयन** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **गार्ग्यायन** बना। णत्व होकर **गार्ग्यायण** बना। अब षित् होने के कारण **षिद्गौरादिभ्यश्च** से ङीष्, अनुबन्धलोप, **गार्ग्यायण+ई** बना। भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप हुआ। **गार्ग्यायण्+ई=गार्ग्यायणी** बना। ङ्यन्त **गार्ग्यायणी** से सु आदि विभक्ति लगाकर **गार्ग्यायणी, गार्ग्यायण्यौ गार्ग्यायण्यः** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

नर्तकी। नाचने वाली स्त्री। **नृत्** धातु से **शिल्पिनि ष्वुन्** से **ष्वुन्** प्रत्यय होकर **नर्तक** बना है। षित् होने के कारण स्त्रीत्वविवक्षा में **षिद्गौरादिभ्यश्च** से ङीष्, अनुबन्धलोप, **नर्तक+ई** बना। भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप हुआ। **नर्तक्+ई=नर्तकी** बना। ङ्यन्त **नर्तकी** से सु आदि विभक्ति लगाकर **नर्तकी, नर्तक्यौ** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

गौरी। यह गौरादिगण में पठित शब्द है। **षिद्गौरादिभ्यश्च** से ङीष्, अनुबन्धलोप, **गौर+ई** बना। भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप हुआ। **गौर्+ई=गौरी** बना। ङ्यन्त **गौरी** से सु आदि विभक्ति लगाकर **गौरी, गौर्यौ** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

अनड्वाही, अनडुही। गाय। **अनडुह्** शब्द से स्त्रीत्वविवक्षा में **गौरादिगणीय** होने के कारण **षिद्गौरादिभ्यश्च** से ङीष्, अनुबन्धलोप, **अनडुह्+ई** बना। **आमनडुहः स्त्रियां वा** इस वार्तिक से विकल्प से **आम्** आगम होकर **अनडु+आह्+ई** बना। यण् और वर्णसम्मेलन होकर **अनड्वाही** बना। अब ङ्यन्त **अनड्वाही** से सु आदि विभक्ति लगाकर **अनड्वाही** सिद्ध हुआ। **आम्** वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **अनडुही** बनता है।

१२५६- **वयसि प्रथमे**। वयसि सप्तम्यन्तं, प्रथमे सप्तम्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से **ङीप्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **स्त्रियाम्** का पूर्ववत् अधिकार है।

प्रथम अवस्था अर्थात् कौमार अवस्था के सूचक शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है।

आयु की तीन अवस्था होती है- कौमार, यौवन और वृद्धावस्था। यह सूत्र प्रथम अवस्था के वाचक शब्दों से प्रत्यय का विधान करता है।

कुमारी। कुमार, यह शब्द प्रथमावस्था सूचक है। स्त्रीत्व की विवक्षा में **वयसि प्रथमे** से ङीप्, अनुबन्धलोप, भसंज्ञक अकार का लोप, **कुमार्+ई=कुमारी**, सु आदि करके **कुमारी, कुमार्यौ, कुमार्यः** आदि बन जाते हैं।

अन्य उदाहरण- **किशोरी**। इसी प्रकार किशोर यह भी युवावस्था से पहले की अवस्था का वाचक शब्द है। इससे स्त्रीत्व की विवक्षा में **वयसि प्रथमे** से ङीप्, अनुबन्ध

ङीप्सन्नियोगनकारादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२५८. वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ४।१।३९॥

वर्णवाची योऽनुदात्तान्तस्तोपधस्तदन्तादनुपसर्जनात् प्रातिपदिकाद्वा ङीप्, तकारस्य नकारादेशश्च। एनी, एता। रोहिणी, रोहिता।

....

लोप, भसंज्ञक अकार का लोप, **किशोर+ई=किशोरी**, सु आदि करके **किशोरी, किशोर्यौ, किशोर्यः** आदि बन जाता है।

१२५७- **द्विगोः**। पञ्चम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से **ङीप्** की अनुवृत्ति आती है और **अतः, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **स्त्रियाम्** का अधिकार है।

अदन्त द्विगुसमास से स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है।

स्मरण रहे कि **समास** में संख्यावाचक शब्द पूर्व रहे तो उसे **द्विगु** कहते हैं। **सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः**। ऐसे शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में **ङीप्** होता है।

त्रिलोकी। तीन लोकों का समूह! **त्रयाणां लोकानां समूहः**। द्विगुसमाससंज्ञक **त्रिलोक** शब्द से **द्विगोः** से **ङीप्** प्रत्यय करके भसंज्ञक अकार का लोप करके **त्रिलोकी**, स्वादिकार्य करके **त्रिलोकी** सिद्ध हुआ।

अजादित्वात्- त्रिफला। तीन फलों का समूह, औषधि विशेष। **त्रयाणां फलानां समाहारः**। यहाँ पर भी सङ्ख्यापूर्व होने से **द्विगोः** से **ङीप्** होना चाहिए था किन्तु इस शब्द के **अजादिगण** में पाठ होने के कारण इसको बाधकर **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होकर **त्रिफला** बन जाता है।

त्र्यनीका। तीन तरह की सेनाओं का समूह। **त्रयाणाम् अनीकानां समाहारः** यहाँ पर भी सङ्ख्यापूर्व होने से **द्विगोः** से **ङीप्** होना चाहिए था किन्तु इस शब्द के **अजादिगण** में पाठ होने के कारण इसको बाधकर **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होकर **त्र्यनीका** बन जाता है।

१२५८- **वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः**। त उपधा यस्य स तोपधस्तस्मात्। वर्णात् पञ्चम्यन्तम्, अनुदात्तात् पञ्चम्यन्तं, तोपधात् पञ्चम्यन्तं, तः षष्ठ्यन्तं, नः प्रथमान्तम् अनेकपदं सूत्रम्। **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से **ङीप्** और **मनोरौ वा** से **वा** की अनुवृत्ति आती है और **अनुपसर्जनात्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **स्त्रियाम्** का अधिकार है।

वर्णवाची जो अनुदात्त तकारोपध शब्द, तदन्त अनुपसर्जन प्रातिपदिक से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीप् प्रत्यय तथा शब्द में विद्यमान तकार के स्थान पर नकारादेश होता है।

ङीप् होने के पक्ष में ही नकारादेश होता है, अन्यथा नहीं होता। यहाँ पर **वर्ण** शब्द सफेद, लाल आदि रंगों का वाचक है।

एनी, एता। चितकबरी, अनेक रंगों वाली। एत शब्द विविध रंगों का वाचक है। इससे स्त्रीत्व की विवक्षा में **वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः** से **ङीप्** प्रत्यय और उसके साथ में **एत** के तकार के स्थान पर नकार आदेश होकर **एन+ई** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **एनी** बनता है। ङीप् न होने के पक्ष में **एत** से **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होकर **एता** बन जाता है। स्वादिकार्य दोनों में करना न भूलें।

वैकल्पिक-ङीष्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२५९. वोतो गुणवचनात् ४।१।४४॥

उदन्ताद् गुणवाचिनो वा ङीष् स्यात्। मृद्वी, मृदुः।

ङीष्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२६०. बह्वादिभ्यश्च ४।१।४५॥

एभ्यो वा ङीष् स्यात्। बह्वी, बहुः।

वार्तिकम्- **कृदिकारादक्तिनः**। रात्री, रात्रिः।

वार्तिकम्- **सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके**। शकटी, शकटिः।

....

रोहिणी, रोहिता। लाल रंगों वाली। **रोहित** शब्द लाल रंग का वाचक है। इससे स्त्रीत्व की विवक्षा में **वर्णादनुदात्तोत्तापधात्तो नः** से **ङीप्** प्रत्यय और उसके साथ में **रोहित** के तकार के स्थान पर नकार आदेश होकर **रोहिन+ई** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **रोहिनी** और णत्व करके **रोहिणी** बनता है। ङीप् न होने के पक्ष में **रोहित** से **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होकर **रोहिता** बन जाता है। स्वादिकार्य दोनों में करना न भूलें।

१२५९- **वोतो गुणवचनात्**। वाव्ययपदं, उतः पञ्चम्यन्तं, गुणवचनात् पञ्चम्यन्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **अन्यतो ङीष्** से **ङीष्** और **मनोरौ वा** से **वा** की अनुवृत्ति आती है। **प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **स्त्रियाम्** का अधिकार पूर्ववत् है।

ह्रस्व उकारान्त शब्दों से स्त्रीत्व-विवक्षा में वैकल्पिक ङीष् प्रत्यय होता है।

मृद्वी, मृदुः। कोमल। ह्रस्व उकारान्त मृदु शब्द से **वोतो गुणवचनात्** से ङीप्, अनुबन्धलोप, **मृदु+ई** में यण् होकर व्, **मृद्+व्+ई=मृद्वी**, सु विभक्ति, लोप होकर **मृद्वी** बना। इसके रूप **नदी** शब्द की तरह होते हैं। ङीप् वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में केवल **मृदु** है, सु, रुत्वविसर्ग करके **मृदुः** सिद्ध हो जाता है। इसके रूप **धेनु** शब्द की तरह होते हैं- **मृदुः, मृदू, मृदवः**। नपुंसक में तो **मृदु, मृदुनी, मृदूनि** आदि मधु-शब्द की तरह बनते हैं।

पट्वी, पटुः। चतुर स्त्री। ह्रस्व उकारान्त पटु शब्द से **वोतो गुणवचनात्** से ङीष्, अनुबन्धलोप, **पटु+ई** में यण् होकर व्, **पट्+व्+ई=पट्वी**, सु विभक्ति, **पट्वी**। ङीष् न होने के पक्ष में केवल पटु है, सु, रुत्वविसर्ग करके **पटुः** सिद्ध हो जाता है।

१२६०- **बह्वादिभ्यश्च**। बहुशब्द आदिर्येषां ते बह्वादयस्तेभ्यः। बह्वादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **वोतो गुणवचनात्** से **वा** और **अन्यतो ङीष्** से **ङीष्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रातिपदिकात्** आदि का अधिकार पूर्ववत् है ही।

बहु आदि गण में पठित प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है।

बह्वी, बहुः। बहुत(स्त्री)। ह्रस्व उकारान्त **बहु** शब्द से **बह्वादिभ्यश्च** से ङीष्, अनुबन्धलोप, **बहु+ई** में यण् होकर व्, **बह्वी**, सु विभक्ति, लोप, **बह्वी** सिद्ध हुआ। इसके रूप **नदी** शब्द की तरह होता है। **ङीष्** वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में केवल **बहु** है, सु, रुत्वविसर्ग करके **बहुः** सिद्ध हो जाता है। इसके रूप **धेनु** शब्द की तरह होते हैं- **बहुः, बहू, बहवः** आदि।

ङीष्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२६१. पुंयोगादाख्यायाम् ४।१।४८॥

या पुमाख्या पुंयोगात् स्त्रियां वर्तते, ततो ङीष्।

गोपस्य स्त्री गोपी।

वार्तिकम्- **पालकान्तान्न।**

....

कृदिकारादक्तिनः। यह वार्तिक है। **क्तिन् से भिन्न कृत् से सम्बन्धित इकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है।**

रात्री, रात्रिः। रात। रात्रि शब्द कृदन्तप्रकरण के अन्तर्गत उणादिप्रकरण के सूत्र द्वारा रा धातु से **त्रिप्** प्रत्यय करके बना है। इसमें **कृत्** का इकार मिल रहा है। अतः **कृदिकारादक्तिनः** से विकल्प से **ङीष्** प्रत्यय होकर **रात्रि ई** बना। भसंज्ञक इकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **रात्री** बना। स्वादिकार्य तो होता ही है। **ङीष्** न होने के पक्ष में **रात्रि** है, स्वादिकार्य करके **रात्रिः** बन जाता है। **रात्री** के रूप गौरी की तरह और **रात्रि** के रूप मति की तरह होते हैं

क्तिन् प्रत्ययान्त के निषेध होने के कारण **मति, कीर्ति, नीति, रीति** आदि शब्दों से ङीष् नहीं होता।

सर्वतोऽक्तिनर्थादित्येके। यह भी वार्तिक ही है। कुछ आचार्य **क्तिन्** प्रत्ययान्त **से भिन्न सभी इदन्त प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीष् होता है,** ऐसा मानते हैं।

शकटी, शकटिः। छोटी गाड़ी। **शकटि** शब्द अव्युत्पन्न इदन्त प्रातिपदिक है। इसमें **सर्वतोऽक्तिनर्थादित्येके** से विकल्प से **ङीष्** प्रत्यय होकर **शकटि ई** बना। भसंज्ञक इकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **शकटी** बना। स्वादिकार्य तो होता ही है। **ङीष्** न होने के पक्ष में शकटि बना है, स्वादिकार्य करके **शकटिः** बन जाता है।

१२६१- **पुंयोगादाख्यायाम्**। पुंयोगात् पञ्चम्यन्तं, आख्यायां, सप्तम्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रातिपदिकात्** आदि का अधिकार पूर्ववत् है ही।

पुरुष के साथ सम्बन्ध के कारण जब पुंवाचक शब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त हो तो उस अदन्त शब्द से ङीष् प्रत्यय होता है।

स्त्री वह पत्नी भी हो सकती है और पुत्री, बहन आदि भी हो सकती है। गोपस्य पत्नी, भगिनी, पुत्री गोपी। बकस्य भगिनी बकी आदि।

गोपस्य स्त्री, गोपस्य पत्नी, गोपस्य भगिनी, गोपस्य पुत्री गोपी। **गोपी**। गोप की स्त्री, पत्नी, बहन, पुत्री गोपी कहलाती है। **गोप** शब्द अदन्त है और स्त्रीत्व की विवक्षा में पुरुष के साथ सम्बन्ध जोड़कर बोला जा रहा है। **पुंयोगादाख्यायाम्** से ङीष्, अनुबन्धलोप, भसंज्ञक अकार का लोप करके **गोप्+ई=गोपी**, सु आदि कार्य करके **गोपी** सिद्ध हुआ।

पालकान्तान्न। यह वार्तिक है। **पालक अन्त में होने वाले शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में पुंयोग होने पर भी ङीष् नहीं होता।** पालक अन्त में हो ऐसे शब्दों से भी **पुंयोगादाख्यायाम्** से ङीष् प्राप्त होता है। यह वार्तिक उसका अपवाद है। अतः **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् प्रत्यय होता है।

इदादेशविधायकं विधिसूत्रम्

१२६२. प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः ७।३।४४।।

प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्याकारस्येकारः स्यादापि, स आप् सुपः परो न चेत्।

गोपालिका। अश्वपालिका। सर्विका। कारिका। अतः किम्? नौका।

प्रत्ययस्थात् किम्? शक्नोतीति शका। असुपः किम्? बहुपरिव्राजका नगरी।

वार्तिकम्- **सूयाद् देवतायां चाब्वाच्यः।** सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या। देवतायां किम्?

वार्तिकम्- **सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च।** यलोपः। सूरी- कुन्ती, मानुषीयम्।

....

१२६२- **प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः।** प्रत्ययस्थात् पञ्चम्यन्तं, कात् पञ्चम्यन्तं, पूर्वस्य षष्ठ्यन्तं, अतः षष्ठ्यन्तं, इत् प्रथमान्तं, आपि सप्तम्यन्तं, असुपः पञ्चम्यन्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्।

प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व में स्थित अकार के स्थान पर इकार आदेश होता है आप् के परे होने पर, यदि वह आप् सुप् से परे हो तो नहीं होता है।

गोपालिका। गोपालक शब्द पालकान्त है, **पालकान्तान्न** इस वार्तिक से निषेध होने के कारण **पुंयोगादाख्याम्** से ङीष् नहीं हुआ तो **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् हुआ, अनुबन्ध लोप होने पर **गोपालक+आ** बना। **गोपालक** का ककार प्रत्यय वाला ककार है। उससे पूर्व में लकारोत्तरवर्ती अकार है। आप् भी परे है और वह सुप् से परे भी नहीं है। ऐसी स्थिति में **प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** से ल के अकार को इकार आदेश हो गया, **गोपालिक+आ** बना। **गोपालिक+आ** में सवर्णदीर्घ करके **गोपालिका** बना। सु आदि विभक्तियाँ आती हैं और रमा शब्द की तरह रूप सिद्ध हो जाते हैं- **गोपालिका, गोपालिके, गोपालिकाः** आदि। अब इसी तरह **सर्वक** से **सर्विका** और **कारक** से **कारिका** आदि भी आप बना सकते हैं।

अतः किम्? नौका। यदि **प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** इस सूत्र में **अतः** इतना पद न पढ़ते तो अदन्त शब्द में तो इत्व होता ही साथ ही जो अदन्त नहीं है, उसमें भी होता। जैसे कि **नौ+का** में औकार के स्थान पर भी इकार आदेश हो जाता।

प्रत्ययस्थात् किम्? शक्नोतीति शका। यदि **प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** इस सूत्र में **प्रत्ययस्थात्** इतना पद न पढ़ते तो प्रत्यय के अकार को तो इत्व होता ही साथ ही जो प्रत्यय का अकार नहीं है, उसमें भी होता। जैसे कि **श+का** में अकार के स्थान पर भी इकार आदेश हो जाता।

असुपः किम्? बहुपरिव्राजका नगरी। यदि **प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** इस सूत्र में **असुपः** इतना पद न पढ़ते तो सुप् से परे विद्यमान अकार को भी इकार हो जाता। जैसे कि **बहुपरिव्राज+का** में अकार के स्थान पर भी इकार आदेश हो जाता। बहवः परिव्राजकाः सन्ति यस्यां नगर्याम् सा बहुपरिव्राजिका नगरी। यहाँ बहु जस् परिव्राजक जस् इस अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ और प्रातिपदिकसंज्ञा होकर विभक्ति का लुक् हुआ। उसके बाद स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् प्रत्यय हुआ तो **बहुपरिव्राजक+आ** बना। इस समय जकारोत्तरवर्ती अकार को इकार नहीं होता, क्योंकि जो **आप्(टाप्)** प्रत्यय

आनुगागम-ङीष्-विधायकं विधिसूत्रम्

१२६३. इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक् ४।१।४९॥

एषामानुगागमः स्याद् ङीष् च।

इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी। वरुणानी। भवानी। शर्वाणी। रुद्राणी। मृडानी।

वार्तिकम्- **हिमारण्ययोर्महत्त्वे।** महद्धिमं हिमानी। महदरण्यमरण्यानी।

वार्तिकम्- **यवाद् दोषे।** दुष्टो यवो यवानी।

वार्तिकम्- **यवनाल्लिप्याम्।** यवनानां लिपिर्यवनानी।

वार्तिकम्- **मातुलोपाध्याययोरानुग् वा।** मातुलानी, मातुली। उपाध्यायानी, उपाध्यायी।

वार्तिकम्- **आचार्यादणत्वं च।** आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी।

वार्तिकम्- **अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे।** अर्याणी, अर्या। क्षत्रियाणी, क्षत्रिया।

....

पर में वह सुप् विभक्ति से परे है। समास करके लोप किये गये जस् प्रत्यय को **प्रत्ययलक्षण** से उपस्थित माना जाता है।

सूयाद् देवतायां चाब्वाच्यः। यह वार्तिक है। **सूर्य** इस प्रातिपदिक से पुंयोग में देवता स्त्रीत्व वाच्य होने पर **चाप्** प्रत्यय होता है। यह **पुंयोगादाख्यायाम्** का अपवाद है। चकार और पकार की इत्संज्ञा होकर **टाप्** की तरह **आ** मात्र बचता है।

सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या। सूर्य की स्त्री देवता, छाया, सन्ध्या। **सूर्य** से **पुंयोगादख्यायाम्** से ङीष् प्राप्त था, उसे बाधकर के **सूर्याद् देवतायां चाब्वाच्यः** से **चाप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **सूर्य+आ** बना। सवर्णदीर्घ करके स्वादिकार्य करने पर **सूर्या** सिद्ध हुआ। सूर्य की दो स्त्रियाँ हैं। एक देवता स्त्री छाया और दूसरी मनुष्य स्त्री कन्या कुन्ती।

सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च। यह भी वार्तिक है। **छ** या **ङी** के परे होने पर **सूर्य** या **अगस्त्य** शब्द के उपधा के **यकार** का लोप हो जाता है।

यह वार्तिक **सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः** सूत्र में पढ़ा गया है।

देवतायां किम्? सूरी। यदि **सूर्याद् देवतायां चाब्वाच्यः** इस वार्तिक में **देवतायाम्** यह पद न पढ़ते तो **मनुष्य स्त्री** अर्थ में भी उससे **चाप्** होकर अनिष्ट रूप बन जाता। **देवतायाम्** इस पद के कारण उक्त वार्तिक मानुषी स्त्री के विषय में नहीं लगा। अतः **सूर्यस्य स्त्री** मानुषी में **सूर्य** शब्द से **पुंयोगादाख्यायाम्** से **ङीष्** होकर **सूर्य+ई** बना। भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **सूर्य्+ई** बना। ङी के ईकार के परे होने पर **सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च** से **यकार** का लोप होकर **सूर्+ई**, वर्णसम्मेलन होकर **सूरी** बना। स्वादिकार्य करके **सूरी** सिद्ध हुआ। इस **सूरी** शब्द का सूर्य की मनुष्य पत्नी **कुन्ती** अर्थ है।

१२६३- इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक्। इन्द्रश्च वरुणश्च भवश्च शर्वश्च रुद्रश्च मृडश्च हिमञ्च अरण्यञ्च यवश्च यवनश्च मातुलश्च आचार्यश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्यास्तेषाम्। इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणां षष्ठ्यन्तं,

....

आनुक् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। अन्यतो ङीष् से ङीष् की अनुवृत्ति आती है और प्रत्ययः, परश्च और स्त्रियाम् आदि का अधिकार है ही।

इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल और आचार्य इन बारह शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा ङीष् प्रत्यय एवं इनको ही आनुक् का आगम भी होता है।

इन्द्राणी। इन्द्रस्य स्त्री, इन्द्र की पत्नी। इन्द्र शब्द से इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक् से आनुक् आगम और ङीष् प्रत्यय हुआ। आगम और प्रत्यय में अनुबन्धलोप होकर इन्द्र+आन्+ई बना। इन्द्र+आन् में सवर्णदीर्घ करके इन्द्रान्+ई=इन्द्रानी, णत्व करके इन्द्राणी, सु, उसका हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् से लोप करके नदी की तरह इन्द्राणी सिद्ध हुआ।

वरुणानी। वरुण की स्त्री, वरुण की पत्नी। वरुण शब्द से इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक् से आनुक् का आगम और ङीष् प्रत्यय हुआ। आगम और प्रत्यय में अनुबन्धलोप होकर वरुण+आन्+ई बना। वरुण+आन् में सवर्णदीर्घ करके वरुणान्+ई=वरुणानी, सु, उसका हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् से लोप करके इन्द्राणी की तरह वरुणानी सिद्ध हुआ। इसके रूप भी नदी शब्द की तरह चलते हैं। इसी तरह शर्वस्य स्त्री शर्वाणी, रुद्रस्य स्त्री रुद्राणी और मृडस्य स्त्री मृडानी भी बना सकते हैं।

हिमारण्ययोर्महत्त्वे। यह वार्तिक है। हिम और अरण्य इन दो प्रातिपदिकों से महत्त्व अर्थात् बड़ा होना अर्थ में ही ङीष् प्रत्यय और आनुक् आगम होता है।

महद्धिमं हिमानी। बड़ी बरफ। हिम शब्द से हिमारण्ययोर्महत्त्वे के अनुसार महत्त्व अर्थ में इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन- मातुलाचार्याणामानुक् से आनुक् आगम और ङीष् प्रत्यय हुआ। आगम और प्रत्यय में अनुबन्धलोप होकर हिम+आन्+ई बना। हिम+आन् में सवर्णदीर्घ करके हिमान्+ई=हिमानी बना। इससे सु, उसका हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् से लोप करके नदी की तरह हिमानी सिद्ध हुआ।

महद् अरण्यम् अरण्यानी। बड़ा जंगल। अरण्य शब्द से हिमारण्ययोर्महत्त्वे के अनुसार महत्त्व अर्थ में इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक् से आनुक् आगम और ङीष् प्रत्यय हुआ। आगम और प्रत्यय में अनुबन्धलोप होकर अरण्य+आन्+ई बना। अरण्य+आन् में सवर्णदीर्घ करके अरण्यान्+ई=अरण्यानी बना। इससे सु, उसका हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् से लोप करके नदी की तरह अरण्यानी सिद्ध हुआ।

यवाद् दोषे। यह वार्तिक है। दोष अर्थ द्योत्य होने पर यव इस प्रातिपदिक से ङीष् और प्रकृति को आनुक् आगम होता है।

दुष्टो यवो यवानी। दूषित जौ अथवा अजवाइन। यव शब्द से यवाद् दोषे के अनुसार दूषित अर्थ में इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक् से आनुक् आगम और ङीष् प्रत्यय हुआ। आगम और प्रत्यय में अनुबन्धलोप होकर यव+आन्+ई बना। यव+आन् में सवर्णदीर्घ करके यवान्+ई=यवानी बना। इससे सु, उसका हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् से लोप करके नदी की तरह यवानी सिद्ध हुआ।

यवनाल्लिप्याम्। यह वार्तिक है। **यवन इस प्रातिपदिक से लिपिविशेष अर्थ होने पर ही ङीष् तथा प्रकृति को आनुक् आगम होता है।**

यवनानां लिपिर्यवनानी। यवनों की लिपि, ऊर्दू, फारसी आदि। **यवन** शब्द से **यवनाल्लिप्याम्** के अनुसार **लिपि** अर्थ में **इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक्** से आनुक् आगम और ङीष् प्रत्यय हुआ। आगम और प्रत्यय में अनुबन्धलोप होकर **यवन+आन्+ई** बना। **यवन+आन्** में सवर्णदीर्घ करके **यवनान्+ई=यवनानी** बना। इससे सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **नदी** की तरह **यवनानी** सिद्ध हुआ।

मातुलोपाध्याययोरानुग् वा। यह वार्तिक है। **मातुल और उपाध्याय शब्दों से स्त्रीत्वविवक्षा में पुंयोग में आनुक् आगम** विकल्प से होता है। **मातुल** शब्द से **ङीष्** तो **इन्द्रवरुण०** इस सूत्र से ही होता है।

मातुलानी, मातुली। मामा की पत्नी, मामी। **मातुलस्य पत्नी।** **मातुल** शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक्** से आनुक् का आगम और ङीष् नित्य से प्राप्त थे किन्तु **मातुलोपाध्ययोरानुग् वा** के द्वारा **आनुक्** आगम को विकल्प से कर दिया गया। आगम और प्रत्यय में अनुबन्धलोप होकर **मातुल+आन्+ई** बना। **मातुल+आन्** में सवर्णदीर्घ करके **मातुलान्+ई=मातुलानी** बना। इससे सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **नदी** की तरह **मातुलानी** सिद्ध हुआ। **आनुक्** के न होने के पक्ष में **ङीष्** तो है ही। **मातुली** बन जाता है।

उपाध्यायानी, उपाध्यायी। उपाध्याय की पत्नी। **उपाध्यायस्य पत्नी।** **उपाध्याय** शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक्** से आनुक् आगम और ङीष् दोनों नहीं प्राप्त थे। अतः **मातुलोपाध्ययोरानुग् वा** के द्वारा **आनुक्** आगम को विकल्प से कर दिया गया। आगम और प्रत्यय में अनुबन्धलोप होकर **उपाध्याय+आन्+ई** बना। **उपाध्याय+आन्** में सवर्णदीर्घ करके **उपाध्यायानी** बना। इससे सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **नदी** की तरह **उपाध्यायानी** सिद्ध हुआ। **आनुक्** के न होने के पक्ष में **ङीष्** तो है ही। **उपाध्यायी** बन जाता है।

आचार्यादणत्वं च। यह वार्तिक है। **आचार्य इस प्रातिपदिक से परे आनुक् के नकार को णत्व नहीं होता है।**

आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी। आचार्य की पत्नी। **आचार्य** शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन- मातुलाचार्याणामानुक्** से **आनुक्** आगम और **ङीष्** होकर **आचार्य+आन्+ई** बना। सवर्णदीर्घ करके **आचार्यानी** बना। रेफ से परे नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व प्राप्त था, उसका **आचार्यादणत्वं च** इस वार्तिक से निषेध हुआ। अब **आचार्यानी** से सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **नदी** की तरह **आचार्यानी** सिद्ध हुआ।

अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे। यह भी वार्तिक है। **अर्य और क्षत्रिय इन दो प्रातिपदिकों से स्वार्थ में अर्थात् पुंयोग में नहीं, ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम विकल्प से होते हैं।**

ङीष्-विधायकं विधिसूत्रम्

१२६४. क्रीतात् करणपूर्वात् ४।१।५०॥

क्रीतान्याददन्तात् करणादेः स्त्रियां ङीष् स्यात्।

वस्त्रक्रीती। क्वचिन्न- धनक्रीता।

ङीष्-विधायकं विधिसूत्रम्

१२६५. स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ४।१।५४॥

असंयोगोपधमुपसर्जनं यत्स्वाङ्गं तदन्ताददन्तात् ङीष् वा स्यात्।

केशानतिक्रान्ता अतिकेशी, अतिकेशा। चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा। असंयोगोपधात् किम्? सुगुल्फा। उपसर्जनात् किम्? शिखा।

....

अर्याणी, अर्या। अर्य अर्थात् वैश्य जाति की स्त्री। **अर्य** शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **अर्यक्षत्रिाभ्यां वा स्वार्थे** इस वार्तिक की सहायता से **इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन- मातुलाचार्याणामानुक्** से **आनुक्** आगम और ङीष् होकर **अर्य+आन्+ई** बना। सवर्णदीर्घ करके **अर्यानी** बना। रेफ से परे नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व होकर **अर्याणी** बना। अब **अर्याणी** से सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **नदी** की तरह **अर्याणी** सिद्ध हुआ। वार्तिक के कारण प्रत्यय और आगम दोनों वैकल्पिक थे, न होने के पक्ष में **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् होकर **अर्या** बन जाता है।

क्षत्रियाणी, क्षत्रिया। क्षत्रिय जाति की स्त्री। **क्षत्रिय** शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे** इस वार्तिक की सहायता से **इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक्** से **आनुक्** आगम और ङीष् होकर **क्षत्रिय+आन्+ई** बना। सवर्णदीर्घ करके **क्षत्रियानी** बना। रेफ से परे नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व होकर **क्षत्रियाणी** बना। अब **क्षत्रियाणी** से सु, उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **नदी** की तरह **क्षत्रियाणी** सिद्ध हुआ। वार्तिक के कारण प्रत्यय और आगम दोनों वैकल्पिक थे, न होने के पक्ष में **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् होकर **क्षत्रिया** बन जाता है।

१२६४- **क्रीतात् करणपूर्वात्।** करणं पूर्वं यस्य तत् करणपूर्वम्, तस्मात्। क्रीतात् पञ्चम्यन्तं, करणपूर्वात् पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अन्यतो ङीष्** से **ङीष्** की अनुवृत्ति आती है। **अतः, प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्, प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है।

क्रीत शब्द जिसके अन्त में हो तथा करणवाचक जिसका पूर्वावयव हो ऐसे अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है।

वस्त्रक्रीती। वस्त्रों के द्वारा खरीदी गई स्त्रीलिंग की वस्तु भूमि, स्त्री आदि। **वस्त्रैः क्रीता** इस विग्रह में **कर्तृकरणे कृता बहुलम्** से समास हुआ है। अतः करणपूर्व है साथ क्रीत अन्त में तो है ही। **वस्त्रक्रीत** से स्त्रीत्व की विवक्षा में **क्रीतात् करणपूर्वात्** से **ङीष्** होकर अनुबन्धलोप, भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके स्वादिकार्य करने पर **वस्त्रक्रीती** सिद्ध हो जाता है।

उक्त सूत्र कहीं कहीं नहीं भी लगता है। अतः **धनक्रीता** में **ङीष्** न होकर **टाप्** हुआ- **धनक्रीता** बना।

१२६५- **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्।** स्वम् अङ्गं स्वाङ्गं, तस्मात्। संयोगः उपधा यस्य स संयोगोपधः, न संयोगोपधः असंयोगोपधस्तस्मात्। स्वाङ्गात् पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदम्, उपसर्जनात् पञ्चम्यन्तम्, असंयोगोपधात् पञ्चम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **अन्यतो ङीष्** से **ङीष्** की अनुवृत्ति आती है और **अतः, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, स्त्रियाम्** का अधिकार है।

उपधा में संयोग न हो ऐसे उपसर्जनसंज्ञक स्वाङ्गवाची शब्द अन्त में हो ऐसे अदन्त प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है।

स्वाङ्ग-शब्द का यहाँ पर **अपना अंग** ऐसा अर्थ नहीं है अपितु पारिभाषिक अर्थ है। महाभाष्यकार ने इसके तीन लक्षण बताये हैं-

अद्रवं मूर्तिमत्स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम्।
अतस्थं तत्र दृष्टं च, तेन चेत्तत्तथायुतम्।

१- पहला स्वाङ्ग- **अद्रव** अर्थात् जो तरल न हो, **मूर्तिमत्**- अर्थात् साकार हो, **प्राणिस्थ**- प्राणियों में स्थित हो और **अविकारज**- जो विकार से उत्पन्न न हो। वह एक प्रकार का **स्वाङ्ग** होता है। इस लक्षण के अनुसार जब प्राणी के अङ्ग प्राणी में ही हों, तब वह **स्वाङ्ग** कहलाता है।

२- **अतस्थम्**- अभी उस प्राणी में नहीं रहता हो, पर **तत्र दृष्टम्**- कभी उस प्राणी में दिखाई दिया हो तो वह भी **स्वाङ्ग** कहलाता है। जैसे- प्राणी के अङ्ग केश आदि यदि गली में पड़े हों तो प्राणी में न रहते हुए भी अर्थात् गली में रहते हुए भी कभी पहले प्राणी में स्थित थे तो उस समय वहाँ उसमें दिखाई देने के कारण इस दूसरे लक्षण का विषय बन सकता है।

३- **तेन चेत्तत्तथायुतम्**- जैसे वह स्वाङ्ग प्राणी में होता है, वैसे ही अन्यत्र भी हो तो भी वह **स्वाङ्ग** कहलाता है। इस लक्षण के अनुसार मूर्तियों में वर्तमान अङ्ग भी प्राणी में स्थित अङ्ग के समान होने से तीसरा **स्वाङ्ग** सिद्ध होता है।

केशानतिक्रान्ता अतिकेशी, अतिकेशा। केशों को लांघने वाली लम्बी माला आदि। **अतिकेश** शब्द में उपधा में संयोग नहीं है, केश प्रथम लक्षण के अनुसार स्वाङ्गवाची है और वह अन्त में भी है ऐसे **अतिकेश** शब्द से **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** इस सूत्र के द्वारा **ङीष्** होकर स्वादिकार्य करने पर **अतिकेशी** बनता है। **ङीष्** न होने के पक्ष में टाप् होकर **अतिकेशा** बन जाता है।

चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा। चन्द्र के समान मुख वाली। **चन्द्रमुख** शब्द में उपधा में संयोग नहीं है, **मुख** भी प्रथम लक्षण के अनुसार स्वाङ्गवाची है और वह अन्त में भी है ऐसे **चन्द्रमुख** शब्द से **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** इस सूत्र के द्वारा **ङीष्** होकर स्वादिकार्य करने पर **चन्द्रमुखी** बनता है। **ङीष्** न होने के पक्ष में टाप् होकर **चन्द्रमुखा** बन जाता है।

असंयोगोपधात् किम्, सुगुल्फा। यदि **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** में **असंयोगोपधात्** न पढ़ते तो **स्वाङ्गवाची** संयोगोपध **सुगुल्फ** आदि शब्दों से भी एक पक्ष में **ङीष्** होकर **सुगुल्फी** ऐसा अनिष्ट शब्द सिद्ध होने लगता। यहाँ पर **टाप्** हुआ है।

ङीष्-निषेधकं विधिसूत्रम्

१२६६. न क्रोडादिबह्वचः ४।१।५६।।

क्रोडादेर्बह्वचश्च स्वाङ्गान्न ङीष्। कल्याणक्रोडा।
आकृतिगणोऽयम्। सुजघना।

ङीष्-निषेधकं विधिसूत्रम्

१२६७. नखमुखात् सञ्ज्ञायाम् ४।१।५८।।

न ङीष्।

णत्व-विधायकं विधिसूत्रम्

१२६८. पूर्वपदात् सञ्ज्ञायामगः ८।४।३।।

पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य नस्य णः स्यात् सञ्ज्ञायां न तु गकारव्यवधाने।
शूर्पणखा। गौरमुखा। सञ्ज्ञायां किम्? ताम्रमुखी कन्या।

....

उपसर्जनात् किम्? शिखा। यदि **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** इस सूत्र में **उपसर्जनात्** इतना पद न रखते तो स्वाङ्गवाची अनुपसर्जन **शिखा** आदि शब्दों से भी एक पक्ष में **ङीष्** होकर **शिखी** ऐसा अनिष्ट शब्द सिद्ध होने लगता।

१२६६- **न क्रोडादिबह्वचः**। क्रोडा आदिर्येषां ते क्रोडादयः। बहवोऽच् यस्य स बह्वच्। क्रोडादयश्च बह्वच् च तेषां समाहारद्वन्द्वः क्रोडादिबह्वच्, तस्मात्। न अव्ययपदं, क्रोडादिबह्वचः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अन्यतो ङीष्** से **ङीष्** और **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** से **स्वाङ्गात्, उपसर्जनात्** की अनुवृत्ति आती है। **स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है।

क्रोडादिगण में पठित स्वाङ्गवाचकों तथा बह्वच् स्वाङ्गवाचक प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय नहीं होता।

यह **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** का निषेध करता है।

क्रोडादि आकृतिगण है, बहुत शब्द इसके अन्तर्गत आते हैं।

कल्याणक्रोडा। अच्छी छाती वाली, घोड़ी आदि। **कल्याणक्रोड** शब्द में **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** इस सूत्र के द्वारा **ङीष्** प्राप्त था, उसका **न क्रोडादिबह्वचः** से निषेध हुआ। फलतः **टाप्** होकर स्वादिकार्य करने पर **कल्याणक्रोडा** बन जाता है।

सुजघना। अच्छी जघनों वाली स्त्री। **सुजघन** शब्द में **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** इस सूत्र के द्वारा **ङीष्** प्राप्त था, उसका **न क्रोडादिबह्वचः** से निषेध हुआ। फलतः **टाप्** होकर स्वादिकार्य करने पर **सुजघना** बन जाता है।

१२६७- **नखमुखात् संज्ञायाम्**। नखं च मुखं च तयोः समाहारद्वन्द्वो नखमुखम्, तस्मात्। नखमुखात् पञ्चम्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अन्यतो ङीष्** से **ङीष्** और **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** से **स्वाङ्गात्,** और **न क्रोडादिबह्वचः** से **न** की अनुवृत्ति आ रही है। **स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है।

स्वाङ्गवाची नख शब्द और मुख शब्द अन्त में हो ऐसे प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् नहीं होता।

ङीप्-विधायकं विधिसूत्रम्

१२६९. जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ४।१।६३।।

जातिवाचि यन्न च स्त्रियां नियतमयोपधं ततः स्त्रियां ङीष् स्यात्। तटी। वृषली। कठी। बह्वृची। जातेः किम्? मुण्डा। अस्त्रीविषयात् किम्? बलाका। अयोपधात् किम्? क्षत्रिया।

वार्तिकम्- **योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः।**

हयी। गवयी। मुकयी। **हलस्तद्धितस्येति** यलोपः। **मनुषी।**

वार्तिकम्- **मत्स्यस्य ङ्याम्।** यलोपः। मत्सी।

....

यह भी **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** का निषेध करता है।

१२६८- पूर्वपदात् संज्ञायाममगः। अविद्यमानो गकारो यस्मिन् स अग्, तस्माद् अगः। पूर्वपदात् पञ्चम्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तम्, अगः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **रषाभ्यां नो णः समानपदे** यह पूरा सूत्र आता है।

पूर्वपदस्थ निमित्त से परे नकार को णकार आदेश होता है किन्तु गकार के व्यवधान होने पर नहीं।

णत्व के लिए पूर्व में **रेफ, षकार** और **ऋकार** का होना आवश्यक है। इन्हीं को निमित्त कहा गया। ये पूर्वपद में हों।

शूर्पणखा। इस नाम वाली रावण की बहन, जिसके नख शूपे की तरह होते हैं जिसके वह स्त्री। **शूर्प+नख** शब्द में **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** इस सूत्र के द्वारा ङीष् प्राप्त था, उसका **नखमुखात् संज्ञायाम्** से निषेध हुआ। फलतः **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् होता है। यहाँ पर संज्ञा(नाम) होने के कारण **पूर्वपदात् संज्ञायामगः** णत्व होता है। स्वादिकार्य करने पर **शूर्पणखा** बन जाता है।

गौरमुखा। इस नाम वाली स्त्री। **गौरमुख** शब्द में **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** इस सूत्र के द्वारा ङीष् प्राप्त था, उसका **नखमुखात् संज्ञायाम्** से निषेध हुआ। फलतः **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होकर स्वादिकार्य करने पर **गौरमुखा** बन जाता है।

संज्ञायां किम्? यदि **नखमुखात् संज्ञायाम्** इस सूत्र में **संज्ञायाम्** यह पद न देते तो संज्ञा में भी निषेध होता और असंज्ञा में भी, जिससे **ताम्रमुखी** में ङीष् का निषेध होकर **ताम्रमुखा** ऐसा एक रूप मात्र बन जाता। यहाँ पर **संज्ञायाम्** के पठन के कारण इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई, **ङीष्** का निषेध नहीं हुआ। अतः **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** से विकल्प से ङीष् होकर तत्पक्ष में **ताम्रमुखी** और न होने के पक्ष में **टाप्** होकर **ताम्रमुखा** ये दो रूप बन जाते हैं।

१२६९- जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्। स्त्रिया विषयः स्त्रीविषयः, न स्त्रीविषयो-ऽस्त्रीविषयस्तस्मात्। य उपधा यस्य स योपधः, न योपधोऽयोपधस्तस्मात्। जातेः पञ्चम्यन्तम्, अस्त्रीविषयात् पञ्चम्यन्तम्, अयोपधात् पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **अन्यतो ङीष्** से **ङीष्** की अनुवृत्ति आती है और **स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, अतः** आदि का अधिकार है ही।

जो नित्यस्त्रीलिङ्ग न हो और यकार भी उपधा में न हो ऐसे जातिवाचक प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् होता है।

स्वाङ्ग की तरह जाति शब्द भी पारिभाषिक है। इसके चार लक्षण बताये गये हैं-

आकृतिग्रहणा जातिः, लिङ्गानां न च सर्वभाक्।
सकृदाख्यातनिग्राह्या गोत्रं च चरणैः सह॥

१- **आकृतिग्रहणा जातिः**। गृह्यतेऽनेन इति ग्रहणम्- व्यञ्जकम्। आकृतिर्ग्रहणं यस्या सा आकृतिग्रहणा। आकृति से पहचानी जाने वाली जाति होती है। तात्पर्य यह है कि आकृतिविशेष जिसका व्यंजक होता है, उसे **जाति** कहते हैं।

२- **लिङ्गानां न च सर्वभाक्, सकृदाख्यातनिग्राह्या**। या सर्वाणि लिङ्गानि न भजते, एकस्यां व्यक्तौ सकृद् आख्यातेन उपदेशेन व्यक्तन्तरे उपदेशं विनापि या सुग्रहा, सापि जातिरित्यर्थः। किसी व्यक्ति में जिसके एक बार कथन से अन्य अनेक व्यक्तियों में उसका बोध हो जाय, तो उसे भी **जाति** समझना चाहिए परन्तु ऐसा शब्द **त्रिलिङ्गी** अर्थात् **सर्वलिङ्गी** नहीं होना चाहिए।

३- **गोत्रम्**। गोत्र अर्थात् अपत्य-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक भी एक **जाति** है। तथा-

४- **चरणैः सह**। चरणवाची(वेदशाखा के अध्येता का वाचक) प्रातिपदिक भी एक **जाति** ही है।

उक्त चारों प्रकार की जातियों के उदाहरण क्रमशः ये हैं- **१-तटी, सूकरी, २-वृषली, ३- औपगवी** और **४- कठी, बह्वृची**।

तटी। नदी का किनारा। **तट** भी एक जाति है। अतः **तट**-शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से **ङीष्** होकर **तटी** बन जाता है।

वृषली। शूद्र जाति की स्त्री। यह भी जातिवाचक ही है। अतः **वृषल**-शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से **ङीष्** होकर **वृषली** बन जाता है।

कठी। तटी। कठ ऋषिद्वारा प्रोक्त वेदशाखा को पढ़ने वाली ब्राह्मण जाती की स्त्री कठ-शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से **ङीष्** होकर **कठी** बन जाता है।

बह्वृची। बहुत ऋचाओं का अध्ययन करने वाली स्त्री। **बह्वृच**-शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से **ङीष्** होकर **बह्वृची** बन जाता है।

जातेः किम्? मुण्डा। अब यहाँ पर शंका करते हैं कि **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** में **जातेः** यह पद क्यों दिया गया। उत्तर यह है कि यदि यह पद नहीं दिया जाता तो यह सूत्र जाति-अजाति दोनों से **ङीष्** करता जिससे **मुण्ड** इस अजातिवाचक शब्द से भी **ङीष्** होकर **मुण्डी** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता। अतः **जातेः** कहा गया। इससे **मुण्ड** से **ङीष्** न हो सका, फलतः **टाप्** होकर **मुण्डा** बन गया।

अस्त्रीविषयात् किम्? बलाका। अब यहाँ पर शंका करते हैं कि **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** में **अस्त्रीविषयात्** यह पद क्यों दिया गया। उत्तर यह है कि यदि यह पद नहीं दिया जाता तो यह सूत्र नित्यस्त्रीलिङ्ग वाले शब्द से भी **ङीष्** करता जिससे **बलाका** इस नित्यस्त्रीलिङ्ग शब्द से भी **ङीष्** होकर **बलाकी** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

अतः **अस्त्रीविषयात्** कहा गया। इससे **बलाका** से **ङीष्** न हो सका, फलतः **टाप्** होकर **बलाका** बन गया।

अयोपधात् किम्? क्षत्रिया। अब यहाँ पर शंका करते हैं कि **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** में **अयोपधात्** यह पद क्यों दिया गया। उत्तर यह है कि यदि यह पद नहीं दिया जाता तो यह सूत्र योपध-अयोपध दोनों प्रकार के शब्दों से **ङीष्** करता जिससे **क्षत्रिया** इस **यकारोपध** शब्द से भी **ङीष्** होकर **क्षत्रियी** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता। अतः **अयोपधात्** कहा गया। इससे **क्षत्रिय** से **ङीष्** न हो सका, फलतः **टाप्** होकर **क्षत्रिया** बन गया।

योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः। यह वार्तिक है। इससे सूत्र में विद्यमान कमी को दिखाया गया है। **योपध शब्द के प्रतिषेध में हय, गवय, मुकय, मनुष्य, मत्स्य इन शब्दों का निषेध कहना चाहिए।** तात्पर्य यह है कि सूत्रकार ने **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** इस सूत्र में **अयोपधात्** पद देकर समस्त यकारोपध शब्दों से **ङीष्** का निषेध कहा था किन्तु वार्तिककार का मत है कि अन्य योपध शब्दों से ङीष् का निषेध हो किन्तु **हय आदि** शब्दों में निषेध न हो, अर्थात् ङीष् होवे जिससे **हयी, गवयी, मुकयी** आदि बन सकें।

हयी(घोड़ी) **गवयी**(नीलगाय) **मुकयी**(खच्चरी) उक्त तीनों शब्द पुँल्लिङ्ग में क्रमशः **हय, गवय, मुकय** है। इनसे स्त्रीत्व विवक्षा में **योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्य-मत्स्यानामप्रतिषेध** की सहायता से **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से **ङीष्** होकर **हयी, गवयी, मुकयी** सिद्ध होते हैं। स्वादिकार्य तो होता ही है।

मनुषी। मनुष्य जाति की स्त्री। **मनुष्य** शब्द में योपध होने से **अयोपधात्** यह निषेध प्रवृत्त हो रहा था किन्तु **योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः** इस वार्तिक की सहायता से ङीष् होकर **मनुष्य+ई** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **हलस्तद्धितस्य** से यकार का लोप करने पर **मनुष्+ई=मनुषी** बना। स्वादिकार्य करके **मनुषी।**

मस्त्यस्य ङ्याम्। यह वार्तिक है जो लोपप्रकरण के **सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः** इस सूत्र में पढ़ा गया है। **ङी के परे होने पर ही मत्स्यशब्द के उपधाभूत यकार का लोप हो।** इस वार्तिक को नियमार्थ माना जाता है क्योंकि **योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः** से **मत्स्य**-शब्द से **ङीष्** सिद्ध था फिर इस वार्तिक को क्यों पढ़ा? **सिद्धे सत्यारभ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति।** नियम यह हुआ कि **यदि मत्स्य-शब्द में यकार का लोप हो तो केवल ङी के परे रहने पर हो, अन्य के परे होने पर नहीं।** इससे **मत्स्यस्य इदं मात्स्यम्** आदि में **हलस्तद्धितस्य** से यकार का लोप नहीं हुआ।

मत्सी। मादा मछली।। **मत्स्य** शब्द में योपध होने से **अयोपधात्** यह निषेध प्रवृत्त हो रहा था किन्तु **योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः** और **मत्स्यस्य ङ्याम्** इन दो वार्तिकों की सहायता से ङीष् होकर **मत्स्य+ई** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **हलस्तद्धितस्य** से यकार का लोप करने पर **मत्स्+ई=मत्सी** बना। स्वादिकार्य करके **मत्सी।**

ङीष्-विधायकं विधिसूत्रम्

१२७०. इतो मनुष्यजातेः ४।१।६५॥

ङीष्। दाक्षी।

ऊङ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२७१. ऊङुतः ४।१।६६॥

उदन्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिनः स्त्रियामूङ् स्यात्। कुरूः।

अयोपधात् किम्? अध्वर्युर्ब्राह्मणी।

....

१२७०- **इतो मनुष्यजातेः**। इतः पञ्चम्यन्तं, मनुष्यजातेः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अन्यतो ङीष्** से **ङीष्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

मनुष्यजातिवाचक ह्रस्व इकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है।

दाक्षी। दक्ष की सन्तान स्त्री, दक्ष की कन्या। **दक्षस्यापत्यं स्त्री**। दक्ष शब्द से तद्धित में **अत इञ्** से **इञ्** होकर के **दाक्षि** बना है। इससे स्त्रीत्व की विवक्षा में **इतो मनुष्यजातेः** से **ङीष्** होकर अनुबन्धलोप, भसंज्ञक इकार का लोप करके **दाक्षी** बना है। स्वादिकार्य करना न भूलें, **दाक्षी**।

१२७१- **ऊङुतः**। ऊङ् प्रथमान्तम्, उतः पञ्चम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **इतो मनुष्यजातेः** से **मनुष्यजातेः** तथा **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से **अयोपधात्** की अनुवृत्ति आती है। **स्त्रियाम्, प्रत्ययः, परश्च, प्रातिपदिकात्** का अधिकार है ही।

जिसकी उपधा में अकार न हो ऐसे मनुष्यवाची उदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय होता है।

ङकार इत्संज्ञक है, ऊ शेष रहता है।

प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्। यह परिभाषा है। **प्रातिपदिक के ग्रहण में लिङ्गविशिष्ट प्रातिपदिक का भी ग्रहण होता है। प्रातिपदिकत्वात् स्वाद्युत्पत्तिः**। अतः स्त्रीलिङ्ग से युक्त होने पर भी प्रातिपदिकत्व की क्षति नहीं होती है। फलतः सु आदि विभक्तियाँ आती है। यहाँ पर **कुरू** आदि प्रयोगों में ङ्यन्त न होने पर भी इसी परिभाषा के बल पर सु आदि प्रत्यय लाये जाते हैं।

कुरूः। कुरु की सन्तान स्त्री। **कुरोरपत्यं स्त्री** ऐसे विग्रह में **कुरु** से अपत्य अर्थ में **कुरुनादिभ्यो ण्यः** से **ण्यप्रत्यय**, उसका **स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च** से लुक् करके **कुरु** ही बना है। इससे स्त्रीत्व में उवर्णान्त होने के कारण **ऊङुतः** से **ऊङ्** प्रत्यय, ङकार का लोप, **कुरु+ऊ** बना। सर्वणदीर्घ होकर **कुरू** बना। सु, उसका रुत्वविसर्ग होकर **कुरूः** सिद्ध हुआ। ऊवर्णान्त स्त्रीलिङ्गी शब्द से सु का लोप नहीं होता है।

अयोपधात् किम्? अध्वर्युर्ब्राह्मणी। अब यहाँ पर शंका करते हैं कि **ऊङुतः** में **अयोपधात्** इस पद की अनुवृत्ति क्यों की जाती है? उत्तर यह है कि यदि यह पद नहीं दिया जाता तो यह सूत्र योपध-अयोपध दोनों प्रकार के शब्दों से **ऊङ्** करता जिससे **अध्वर्यु** इस

ऊङ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२७२. पङ्गोश्च ४।१।६८॥

पङ्गूः।

वार्तिकम्- **श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च।** श्वश्रूः।

ऊङ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२७३. ऊरूत्तरपदादौपम्ये ४।१।६९॥

उपमानवाची पूर्वपदमूरूत्तरपदं यत्प्रातिपदिकं तस्मादूङ् स्यात्।

करभोरूः।

ऊङ्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२७४. संहितशफलक्षणवामादेश्च ४।१।७०॥

अनौपम्यार्थं सूत्रम्। संहितोरूः। शफोरूः। लक्षणोरूः। वामोरूः।

....

यकारोपध शब्द से भी ऊङ् होकर **अध्वर्यूः** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता। अतः **अयोपधात्** कहा गया। इससे **अध्वर्यु** से ङीष् न हो सका, फलतः पुँल्लिङ्ग की तरह ही रह गया। **अध्वर्युः ब्राह्मणी।**

१२७२- **पङ्गोश्च।** पङ्गोः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **ऊङुतः** से **ऊङ्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रातिपदिकात्, स्त्रियाम्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। **पङ्गु इस प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय होता है।**

पङ्गु शब्द गुणवाचक है, जातिवाचक नहीं। अतः **ऊङुतः** से प्राप्त नहीं था।

पङ्गूः। लंगड़ी स्त्री। **पङ्गु** इस इकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व विवक्षा में **पङ्गोश्च** से ऊङ् प्रत्यय, ङकार का लोप, **पङ्गु+ऊ** बना। सर्वणदीर्घ होकर **पङ्गू** बना। सु, उसका रुत्वविसर्ग होकर **पङ्गूः** सिद्ध हुआ।

श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च। यह वार्तिक है। **श्वशुर शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय के साथ उकार और अकार का लोप होता है।**

श्वश्रूः। ससुर की स्त्री, सास। **श्वशुरस्य स्त्री। श्वशुरशब्द** से **श्वशुरस्योकारलोपश्च** से **ऊङ् प्रत्यय** और **शु** के उकार और **र** को अकार के लोप होने पर **श्वश्+र्+ऊ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **श्वश्रू** बना। **प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्** इस परिभाषा के बल पर सु विभक्ति, उसको रुत्वविसर्ग करके **श्वश्रूः** सिद्ध हुआ।

१२७३- **ऊरूत्तरपदादौपम्ये।** ऊरुरुत्तरपदं यस्य स ऊरूत्तरपदं, तस्मात्। उपमीयतेऽनया इति उपमा, उपमा एव औपम्यम्, तस्मिन्। **ऊङुतः** से **ऊङ्** की अनुवृत्ति आ रही है और **स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

जिसका पूर्वपद उपमानवाची तथा उत्तरपद ऊरु हो तो उससे स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय होता है।

करभोरूः। करभ के समान अर्थात् मांसल जंघा वाली स्त्री। **करभौ इव ऊरू यस्याः** इस विग्रह में बहुव्रीहि समास होकर **करभोरु** बना है। इससे **ऊरूत्तरपदादौपम्ये** से

ङीन्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२७५. शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ४।१।७३॥

शार्ङ्गरवादेरञो योऽकारस्तदन्ताच्च जातिवाचिनो ङीन् स्यात्। शार्ङ्गरवी। बैदी। ब्राह्मणी।

वार्तिकम्- **नृनरयोर्वृद्धिश्च।** नारी।

....

ऊङ् करके अनुबन्धलोप, सर्वणदीर्घ, स्वादिकार्य करके **करभोरूः** सिद्ध हो जाता है। स्मरण रहे कि **ऊङन्त** से **हल्ङ्यादिलोप** नहीं होता। अतः स् को रुत्वविसर्ग हो गया है।

१२७४- संहितशफलक्षणवामादेश्च। संहितश्च शफश्च लक्षणश्च वामश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः संहितशफलक्षणवामास्ते आदयो यस्य स संहितशफलक्षणवामादिस्तस्मात्। संहितशफलक्षणवामादेः षष्ठ्यन्तं, चाव्ययं, द्विपदं सूत्रम्। **ऊरूत्तरपदादौपम्ये** से **ऊरूत्तरपदात्** और **ऊङुतः** से **ऊङ्** की अनुवृत्ति आती है। **स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है ही।

संहित, शफ, लक्षण, वाम ये आदि में हों और ऊरू उत्तरपद में हो ऐसे प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय होता है।

उपमान से भिन्न में प्राप्त नहीं था, इसलिए यह सूत्र है।

संहितोरूः। सटी हुई जंघों वाली स्त्री। यहाँ पर उपमा नहीं है। **संहितोरु** शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **संहितशफलक्षणवामादेश्च** से **ऊङ्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ करके **संहितोरू** बना। उससे सु, रुत्वविसर्ग करके **संहितोरूः** सिद्ध हुआ।

शफोरूः। खुर हैं ऊरु जिसके अर्थात् जिसकी ऊरुएँ मिली हुई हों, ऐसी स्त्री। यहाँ पर भी उपमा नहीं है। **शफोरु** शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **संहितशफलक्षणवामादेश्च** से **ऊङ्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ करके **शफोरू** बना। उससे सु, रुत्वविसर्ग करके **शफोरूः** सिद्ध हुआ।

लक्षणोरूः। सुलक्षण जंघों वाली स्त्री। यहाँ पर उपमा नहीं है। **लक्षणोरु** शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **संहितशफलक्षणवामादेश्च** से **ऊङ्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ करके **लक्षणोरू** बना। उससे सु, रुत्वविसर्ग करके **लक्षणोरूः** सिद्ध हुआ।

वामोरूः। सुन्दर जंघों वाली स्त्री। यहाँ पर भी उपमा नहीं है। **वामोरु** शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **संहितशफलक्षणवामादेश्च** से **ऊङ्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ करके **वामोरू** बना। उससे सु, रुत्वविसर्ग करके **वामोरूः** सिद्ध हुआ।

१२७५- शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्। शार्ङ्गरव आदिर्येषां ते शार्ङ्गरवादयः। शार्ङ्गरवादयश्च अञ् च तयोः समाहारद्वन्द्वः शार्ङ्गरवाद्यञ्, तस्मात्। शार्ङ्गरवाद्यञः पञ्चम्यन्तं, ङीन् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से **जातेः** की अनुवृत्ति आती है और **अतः, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है।

शार्ङ्गरव आदि गणपठित शब्दों तथा अञ् प्रत्यय अन्त में हो ऐसे जातिवाचक प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीन् प्रत्यय होता है।

ङीन् में भी **ङकार** और **नकार** इत्संज्ञक हैं, **ईकार** मात्र बचता है। **नित्** होने के कारण **ञ्नित्यादिर्नित्यम्** से आद्युदात्त होता है किन्तु ङीष्, ङीप् होने से अन्तोदात्त होता है।

तिप्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

१२७६. यूनस्तिः ४।१।७७॥

युवञ्छब्दात् स्त्रियां तिः प्रत्ययः स्यात्। युवतिः।

इति स्त्रीप्रत्ययाः॥६०॥

शास्त्रान्तरे प्रविष्टानां बालानां चोपकारिका।
कृता वरदराजेन लघुसिद्धान्तकौमुदी॥
इति वरदराजकृता लघुसिद्धान्तकौमुदी॥

....

शार्ङ्गरवी। शृङ्गरु की कन्या। **शृङ्गरोरपत्यं स्त्री** इस विग्रह में **तस्यापत्यम्** से **अण्** होकर, गुण, अवादेश करके **शार्ङ्गरव** बना है। उससे स्त्रीत्व की विवक्षा में **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से **ङीष्** प्राप्त था उसे बाधकर के **शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्** से **ङीन्** होकर अनुबन्धलोप करके भसंज्ञक अकार का लोप करके **शार्ङ्गरवी** बना। स्वादिकार्य अर्थात् सु लाकर के उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **शार्ङ्गरवी** सिद्ध हो जाता है।

बैदी। बैद ऋषि की कन्या। **बिदस्यारपत्यं स्त्री** इस विग्रह में तद्धित में **तस्यापत्यम्** के अधिकार में **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** से **अञ्** होकर वृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **बैद** बना है। उससे स्त्रीत्व की विवक्षा में **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से **ङीष्** प्राप्त था उसे बाधकर **शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्** से **ङीन्** होकर अनुबन्धलोप करके भसंज्ञक अकार का लोपकर **बैदी** बना। स्वादिकार्य अर्थात् सु लाकर के उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **बैदी** सिद्ध हो जाता है।

ब्राह्मणी। ब्राह्मण की पत्नी, कन्या। **ब्राह्मण** शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** से **ङीष्** प्राप्त था उसे बाधकर **शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्** से **ङीन्** होकर अनुबन्धलोप करके भसंज्ञक अकार का लोप करके **ब्राह्मणी** बना। स्वादिकार्य अर्थात् सु लाकर उसका **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **ब्राह्मणी** सिद्ध हो जाता है।

नृनरयोर्वृद्धिश्च। यह वार्तिक है। **नृ** और **नर** इन दो जातिवाचक शब्दों से भी स्त्रीत्व की विवक्षा में **ङीन्** होता है साथ ही प्रकृति में वृद्धि भी होती है।

नारी। मादा, स्त्री जाति। **नृ** और **नर** इन दोनों शब्दों से **नृनरयोर्वृद्धिश्च** से **ङीन्** प्रत्यय और **नृ** के **ऋकार** और **नर** के आदि **अकार** की वृद्धि हुई। **नार्+ई** और **नार+ई** बना। द्वितीय **नार** में भसंज्ञक अकार का लोप करके **नारी** वर्णसम्मेलन करने पर दोनों में **नारी** बना। इससे सु, उसका लोप करके **नारी** सिद्ध हुआ।

१२७६- यूनस्तिः। यूनः पञ्चम्यन्तं, तिः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **स्त्रियाम्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

युवन् शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में ति प्रत्यय होता है।

युवतिः। युवन्-शब्द से **यूनस्तिः** से ति प्रत्यय हुआ। **युवन्+ति** बना। **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से ति के परे रहते **युवन्** की पदसंज्ञा करके **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नकार का लोप करके **युवति** बनता है। इससे सु, रुत्वविसर्ग करके **युवतिः** सिद्ध हुआ।

अब मूलकार ग्रन्थ के अन्त में भी उपसंहारात्मक मंगलाचरण कर रहे हैं- **शास्त्रान्तरे** इत्यादि से-

अन्य काव्य आदि शास्त्रों में प्रवेश हो चुके छात्रों के लिए अत्यन्त सहायिका इस लघुसिद्धान्तकौमुदी की रचना मुझ वरदराजाचार्य के द्वारा की गई है।

इस प्रकार से **लघुसिद्धान्तकौमुदी** अब यहीं पर पूर्ण होती है। इसकी **श्रीधरमुखोल्लासिनी टीका** ईसवीय दिनांक 18 अक्टूबर 2004 को प्रारम्भ हुई थी और आज दिनांक 12 मार्च 2006 को पूर्ण हुई।

अब आपकी बहुत बड़ी तपस्या पूरी हुई। हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास भी है कि आपने व्याकरण की वर्णमाला अच्छी तरह से समझ ली होगी। अब आप व्याकरणशास्त्र में प्रवेश कर सकते हैं। निर्देशानुसार **पाणिनीयाष्टाध्यायी** की आवृत्ति भी आप कर रहे होंगे। हमने पाणिनीय व्याकरण की प्रक्रिया को अत्यन्त सरल बनाने का प्रयास किया है किन्तु पूर्ण करने में नहीं। आपमें पाणिनीय व्याकरण की पूर्णता तक जाने के लिए रुचि उत्पन्न हो, यही मेरा प्रयास रहा है।

मैंने अपने जीवन में अनेकों छात्रों को लघुसिद्धान्तकौमुदी से लेकर महाभाष्य, प्रौढमनोरमा, लघुशब्देन्दुशेखर आदि ग्रन्थ पढ़ाये किन्तु प्रारम्भिक अवस्था को जिसने नहीं सम्हाला, वह छात्र आगे जाकर के भी कुछ नहीं बना किन्तु जिस छात्र ने लघुसिद्धान्तकौमुदी ठीक से तैयार की, वह आगे भी प्रगति करता गया। आज की तारीख में मेरे द्वारा लघुसिद्धान्तकौमुदी से पढ़ाये गये अनेक छात्र विद्यालय एवं महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में प्रतिष्ठा के साथ पढ़ा रहे हैं।

आपने इतना परिश्रम कर लिया तो आपमें भी और आगे बढ़ने की इच्छा अवश्य जागृत हुई होगी। हाँ तो, अब आपको वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी ग्रन्थ पढ़ना है। अष्टाध्यायी तो आपके लिए प्रतिदिन अनुष्ठान के लिए अनिवार्य ग्रन्थ होना चाहिए। अष्टाध्यायी के सभी सूत्र याद होने पर वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी के ज्ञान में सरलता होगी। व्याकरणशास्त्र में ज्यादा न भी पढ़ सकें तो कम से कम वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, न्याय में न्यायसिद्धान्तमुक्तावली और कोश में अमरकोष इन तीन ग्रन्थों की तैयारी अवश्य होनी चाहिए। काव्य में हितोपदेश, रघुवंशम् और भट्टिकाव्य का भी व्याकरण, कोष की दृष्टि से अध्ययन होना चाहिए। इतना जानने के बाद आप किसी भी वेदान्त आदि शास्त्रों में प्रवेश कर सकते हैं।

संस्कृतसाहित्य का बहुत बड़ा भण्डार है। मनुष्य अपने जीवन में एक विषय के सभी ग्रन्थों का पूर्ण ज्ञान तो दूर केवल एक वार पारायण भी कर सके तो वह धन्य है।

आपका लघुसिद्धान्तकौमुदी में किया गया परिश्रम कितना सार्थक हुआ, इसका मूल्यांकन आप स्वयं भी कर सकते हैं अथवा अपने गुरु जी से अपना मूल्यांकन करा सकते हैं।

अब आप परीक्षा में पूछे गये निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दें। इस परीक्षा में स्त्रीप्रत्यय के ५० अंक और सम्पूर्ण लघुसिद्धान्तकौमुदी में १०० अंक करके दो परीक्षाओं में बैठना है। उत्तीर्ण होने के लिए ७० प्रतिशत अंक प्राप्त करना आवश्यक है।

परीक्षा (स्त्रीप्रत्ययप्रकरण)

१- स्त्रीप्रत्यय प्रकरण पर एक विस्तृत लेख लिखिए। २०

२- इस प्रकरण के सभी सूत्रों एवं उनके अर्थों पर प्रकाश डालते हुए किन्हीं पन्द्रह प्रयोंगों की सिद्धि दिखाइये। ३०

परीक्षा (आद्योपान्त)

सूचना- एक से दस तक के प्रश्न पाँच-पाँच अंकों के हैं और अन्तिम प्रश्न पचास अंक का है। इस परीक्षा में कोई समय सीमा नहीं है फिर भी तीन दिनों में सभी प्रश्नों के उत्तर लिखे जा सकते हैं।

१. संज्ञाप्रकरण पर एक निबन्ध लिखिए। ५

२. सन्धिप्रकरण पर एक विस्तृत लेख लिखिए। ५

३. षड्लिङ्गप्रकरण पर एक विवेचन तैयार करें। ५

४. तिङन्तप्रकरण की व्याख्या करें। ५

५. कृदन्तप्रकरण पर अपना दृष्टिकोण बतायें। ५

६. कारक पर एक छोटा लेख लिखें। ५

७. समास की उपयोगिता पर एक टिप्पणी करें। ५

८. तद्धितप्रकरण का सारांश समझायें। ५

९. स्त्रीप्रत्ययप्रकरण की आवश्यकता पर एक लेख लिखें। ५

१०. अव्यय के सभी सूत्रों को संक्षेप में समझाइये। ५

११. अच्सन्धि से स्त्रीप्रत्यय तक के प्रत्येक प्रकरणों से किन्ही पाँच-पाँच प्रयोगों की प्रक्रिया समझाइये। ५०

अब आपके गुरु जी आपकी उत्तरपुस्तिका का मूल्यांकन करेंगे। आप अपने सहपाठियों के साथ पढ़े गये विषयों पर चर्चा करें। आप परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते हैं तो ठीक है, नहीं तो पुनः एक माह **लघुसिद्धान्तकौमुदी** की आवृत्ति करके पुनः परीक्षा दीजिए।

इसके बाद भी आप आवृत्ति बराबर करते रहें। कहीं ऐसा न हो कि आप कुछ प्रकरणों या स्थलों को भूल गये हों। इसीलिए बराबर आवृत्ति होती रहनी चाहिए। संज्ञाप्रकरण से स्त्रीप्रत्यय तक के सारे प्रकरणों के सूत्र, वृत्ति, अर्थ और साधनी की अक्षरशः आवृत्ति करें। अपने सहपाठियों से संवाद, शास्त्रार्थ आदि करें। जब आपको विश्वास हो जाय कि **लघुसिद्धान्तकौमुदी** आपको पूर्ण कण्ठस्थ हो गई है तो शुरु से लेकर अभी तक सभी प्रकरणों के अभ्यास और परीक्षा की प्रश्नावली को अपनी पुस्तिका में उतारें और पुस्तक को सुन्दर वस्त्र से ढककर इसकी पूजा करें। इसके बाद उन सभी प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में ही सही एक बार अपनी पुस्तिका में देने का प्रयास करें। यदि आपके सहपाठी गण हैं तो

पुस्तिकाओं का मूल्यांकन अपने ही सहपाठियों में परस्पर करें। यह मेरा अनुभूत विषय है और इसका परिणाम अच्छा मिला है।

स्मरण रहे कि जिस प्रकार से आप पुस्तक की पूजा करते हैं, उसी तरह आपके गुरु जी भी आपके लिए उतने ही पूज्य हैं। यदि गुरु की कृपा आपने प्राप्त नहीं की है तो आपकी विद्या उतनी फलवती नहीं होगी। अतः उनका सम्मान करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करें।

आप सभी विद्या-व्यसनी अध्येताओं को मेरी ओर से शुभकामनाएँ। अब आप चाहें तो व्याकरणशास्त्र के अन्य ग्रन्थों में प्रवेश करें या काव्यकोश आदि का स्वाध्याय करें जिससे व्याकरण से ज्ञात शब्दों का प्रयोग किया जा सके और शब्दभण्डार भी बढ़े। भगवान् श्रीमन्नारायण हम सबका मंगल करें।

श्री वरदराजाचार्य के द्वारा रचित लघुसिद्धान्तकौमुदी में
गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का
स्त्रीप्रत्यय-प्रकरण पूर्ण हुआ।

श्रीश्रीनिवासमुक्तिनाराणरामानुजयतिभ्यो नमः।

भीमप्रसादसत्पुत्रः गोविन्दो वैष्णवो गृही।
पाणिनीयप्रवेशाय ऋजुमार्गावलम्बिनाम्।१॥
लघुसिद्धान्तकौमुद्या व्याख्यां कृत्वा यथामति।
श्रीधराचार्यमोदाय समर्पयति सादरम्॥२॥

गोविन्दाचार्य की कृतियों में से वरदराजाचार्यकृत-लघुसिद्धान्तकौमुदी
की श्रीधरमुखोल्लासिनी व्याख्या पूर्ण हुई।

(दिनांक 12 मार्च 2006)

परिशिष्टम्

अथ संक्षिप्तो लिङ्गपरिचयः

तत्रादौ स्त्रीलिङ्गाधिकारः

आचार्य पाणिनि जी ने सूत्रपाठ के साथ-साथ धातुपाठ, गणपाठ, लिङ्गानुशासन आदि का भी पाठ किया था किन्तु लघुसिद्धान्तकौमुदी में वहुत ही उपयोगी सूत्र, धातु, गण आदि लिये गये हैं किन्तु लिङ्गानुशासन का विवेचन नहीं किया गया है। छात्रों की जानकारी के लिए अत्यन्त उपयोगी कुछ शब्दों के विषय में लिङ्गनिर्देशन किया जा रहा है। पहले स्त्रीलिङ्ग के शब्दों के विषय में बताया जा रहा है।

निम्नलिखित शब्द स्त्रीलिङ्ग में ही होते हैं-

ऋकारान्त शब्दों में मातृ, दुहितृ, स्वसृ, यातृ, ननान्दृ ये पाँच ही शब्द स्त्रीलिङ्ग में हैं, क्योंकि अन्य ऋकारान्तों से ङीप् होकर ईकारान्त बनते हैं। जैसे **कर्त्री** आदि।

क्तिन्प्रत्ययान्त, तल्प्रत्ययान्त, आबन्त(टाप्, चाप्, डाप्-प्रत्ययान्त), ङ्यन्त(ङीप्, ङीन्, ङीषन्त) और ऊङन्त शब्द स्त्रीलिङ्ग में ही होते हैं। जैसे-कृतिः, भूतिः, ब्रह्मणता, देवता, रमा, कुमारी, कुण्डोघ्नी, कुरूः इत्यादि।

गो, मणि, यष्टि, मुष्टि, पाटलि, वस्ति, शाल्मलि, त्रुटि, मसि, मरीचि, मृत्यु, शीधु, कर्कन्धु, किष्कु, कण्डु, रेणु, अशनि, भरणि, अरणि, श्रोणि, योनि, ऊर्मि, तिथि, तिथि, इषु, इषुधि इत्यादि शब्द पुँल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं।

सुमनस् शब्द देवार्थवाचक हो तो पुँल्लिङ्ग में और पुष्पार्थवाचक हो तो नपुंसक एवं स्त्रीलिङ्ग दोनों जगह प्रयुक्त होता है।

दुन्दुभिशब्द पाशा अर्थ में स्त्रीलिङ्ग और अन्यत्र पुँल्लिङ्ग में है।

भूमि, विद्युत्, सरित्, लता और वनिता के पर्यायवाची शब्दा भी स्त्रीलिङ्ग में ही होते हैं किन्तु यादस् शब्द नपुंसक में और दार शब्द पुँल्लिङ्ग के वहुवचन में ही होते हैं।

चमू, ग्लानि, लक्ष्मी, श्री, विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति, भास्, स्रुच्, स्रज्, दिश्, उष्णिह्, उपानह्, प्रावृष्, विप्रुष्, रुष्, तृष्, विश्, त्विष्, दर्वि, विदि, वेदि, खनि, शानि, अश्रि, वेशि, कृषि, ओषधि, कटि, अङ्गुलि, नाडी, रुचि, वीचि, नाली, धूलि, किकि, केलि, छवि, रात्रि, शष्कुलि, राजि, कुटी, वर्ति, भ्रुकुटि, त्रुटि, वलि, पङ्क्ति, प्रतिपद्, आपद्, विपद्, सम्पद्, शरद्, संसद्, परिषद्, उपस्, संविद्, क्षुध्, मुद्, समिध्, आशिष्, धुर्, पुर्, गिर्, द्वार्, अप्, त्वच्, वाच्, यवागू, नौ, स्फिच्, सीमन्, याच्ञा- ये शब्द स्त्रीलिङ्ग में ही रहते हैं।

इति स्त्रीलिङ्गाधिकारः।

अथ पुँल्लिङ्गाधिकारः।

घञ् अप्, घ, अच् प्रत्ययान्त शब्दाः पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे-पाकः, त्यागः। करः, गरः। विस्तरः, गोचरः। चयः, जयः इत्यादि।

नङ्-प्रत्ययान्त शब्दाः पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- यज्ञः, यत्नः, विश्नः, प्रश्नः, इत्यादि। याच्ञा शब्द तो स्त्रीलिङ्ग में ही रहता है।

कि-प्रत्ययान्त घुसंज्ञकशब्द पुँल्लिङ्ग में ही होते हैं। जैसे- आधिः, निधिः, उदधिः इत्यादि किन्तु इषुधि शब्द तो स्त्रीलिङ्ग में ही होता है।

देव, असुर, आत्मा, स्वर्ग, गिरि, समुद्र, नख, केश, दन्त, स्तन, भुज, कण्ठ, खड्ग, शर और पङ्क एवं इनके पर्यायवाची शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- देवाः सुराः। असुराः दैत्याः। आत्मा क्षेत्रज्ञः। स्वर्गः नाकः। गिरिः पर्वतः। समुद्रः अब्धिः। नखः कररुहः। केशः शिरोरुहः। दन्तः दशनः। स्तनः कुचः। भुजः बाहुः। कण्ठः गलः। ग्रीवा-शब्द तो स्त्रिलिङ्ग में ही रहता है। खड्गः करवालः। शरः मार्गणः। पङ्कः कर्दमः। इसके कुछ अपवाद भी हैं। जैसे कि त्रिविष्टप और त्रिभुवन शब्द नपुंसक में, द्यौः शब्द स्त्रीलिङ्ग में, इषु और बाहु शब्द स्त्रीलिङ्ग में और बाण और काण्ड शब्द नपुंसक में होते हैं।

मन्नन्त चर्मन् आदि शब्दों को छोड़कर नकारान्त प्रायः सभी पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- राजा, तक्षा, युवा इत्यादयः।

क्रतु, पुरुष,कपोल, गुल्फ, मेघ आदि शब्द और इनके पर्यायवाचक शब्द भी पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- क्रतुः अध्वरः। पुरुषः नरः। कपोलः गण्डः। गुल्फः प्रपदः। मेघः नीरदः। यहाँ पर अपवाद यह है कि मेघ का वाचक अभ्र शब्द नपुंसक में होता है।

उकारान्त शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- प्रभुः, इक्षु आदि। इसका अपवाद- हनु, करेणु,धेनु, रज्जु, कुहु, सरयु, तनु, रेणु, प्रियङ्गु आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग में होते हैं। इसी तरह दूसरा अपवाद यह है- श्मश्रु, जानु, वसु(धनवाची), स्वादु, अश्रु, जतु, त्रपु, तालु आदि शब्द नपुंसक में होते हैं। यहाँ पर देवतार्थक वसु तो पुँल्लिङ्ग में होता है। मद्गृ, मधु, शीधु, सीधु, सानु, कमण्डलु शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों में होते हैं।

रु अन्त वाले और तु अन्त वाले शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- मेरुः, गुरुः, सेतुः, केतुरित्यादयः। इसका अपवाद है- दारु, कसेरु, जतु, वस्तु, मस्तु आदि शब्द नपुंसक में होते है। सक्तु-शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों में रहता है।

ककार उपधा होते हुए ह्रस्व अकारान्तः पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- स्तबकः, कल्कः। इसका अपवाद- चिबुक, शालूक, प्रातिपदिक, अंशुक, उल्मुक नपुंसक में रहते हैं इसी तरह कण्टक, अनीक, सरक, मोदक, चपक, मस्तक, पुस्तक, तटाक, निष्क, शुष्क, वर्चस्क, पिनाक, भाण्डक, पिण्डक, कटक, शण्डक, पिटक, तालक, फलक और पुलक शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

टकार उपधा में होते हुए ह्रस्व अकारान्त शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- घटः, पटः आदि। इसका अपवाद- किरीट, मुकुट, ललाट, वट, वीट, श्रृङ्गाटक, आराट और लोष्ट शब्द नपुंसक में होत हैं और कुट, कूट, कपट, कवाट, कर्पट, नट, निकट, कीट और कट शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

णकार उपधा में होते हुए ह्रस्व अकारान्त शब्द पुँल्लिङ्ग गें होते हैं। जैसे- गुणः, गणः, पाषाणः आदि। इसका अपवाद- ऋण, लवण, पर्ण, तोरण, उष्ण आदि शब्द नपुंसक

में होते हैं। इसी तरह कार्षापण, स्वर्ण, सुवर्ण, व्रण, चरण, वृषण, विषाण, चूर्ण और तृण आदि शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होतै हैं।

थकार उपधा में होते हुए ह्रस्व अकारान्त शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- रथः, पथः, ग्रन्थः, श्रन्थः आदि। इसका अपवाद- काष्ठ, पृष्ठ, सिक्थ, उक्था आदि शब्द नपुंसक में होते हैं। दिशावाचक काष्ठा-शब्द स्त्रीलिङ्ग में होता है। तीर्थ, यूथ, प्रोथ, गाथ आदि शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होता है तो गाथा-शब्द स्त्रीलिङ्ग में होता है।

नकार उपधा में होते हुए ह्रस्व अकारान्त पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- इनः, फेनः आदि। इसका अपवाद- जघन, अजिन, तुहिन, कानन, वन, वृजिन, विपिन, वेतन, शासन, सोपान, मिथुन, श्मशान, रत्न, निम्न, चिन्ह आदि शबद नपुंसक में होते हैं। इसी तरह मान, यान, अभिधान, मलिन, पुलिन, उद्यान, शयन, आसन, स्थान, चन्दन, आलान, समान, भवन, वसन, सम्भावन, विभावन, विमान शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

पकार उपधा में होते हुए ह्रस्व अकारान्त पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- यूपः, दीपः, सर्पः आदि। इसका अपवाद- पाप,रूप, उडुप, तल्प, शिल्प, पुष्प, शष्प, समीप, अन्तरीप आदि शब्द नपुंसक में होते हैं। शूर्प, कुतप, कुणप, द्वीप, विटप आदि शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

भकार उपधा वाले ह्रस्व अकारान्त पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- स्तम्भः, कुम्भ आदि। इसका अपवाद- तलभ शब्द नपुंसक में और जृम्भ शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

मकार उपधा वाले ह्रस्व अकारान्त पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- सोमः, भीमः आदि। इसका अपवाद- रुक्म, सिध्म, युध्म, इध्म, गुल्म, अध्यात्म, कुङ्कुम शब्द नपुंसक में होते हैं। संग्राम, दाडिम, कुसुम, अश्रम, क्षेम, क्षौम, होम, उद्दाम शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

यकार उपधा में होते हुए ह्रस्व अकारान्त शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- समयः, हयः आदि। इसका अपवाद- किसलय, हृदय, इन्द्रिय, उत्तरीय आदि शब्द नपुंसक में होते हैं। इसी तरह गोमय, कषाय, मलय, अन्वय, अव्यय शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

रकार उपधा में होते हुए ह्रस्व अकारान्त पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- क्षुरः, अङ्कुरः आदि। इसका अपवाद- द्वार, अग्रस्फार, तक्र, वक्र, वप्र, क्षिप्र, क्षुद्र, नार, तीर, दूर, कृच्छ्र, रन्ध्र, आश्र, स्वभ्र, भीर, गभीर, क्रूर, विचित्र, केयूर, केदार, उदर, अजस्र, शरीर, कन्दर, मन्दार, पञ्जर, अजर, जठर, अजिर, वैर, चामर, पुष्कर, गह्वर, कुहर, कुटीर, कुलीर, चत्वर, काश्मीर, नीर, अम्बर, तन्त्र, यन्त्र, क्षत्र, क्षेत्र, मित्र, कलत्र, चित्र, मूत्र, सूत्र, वक्त्र, नेत्र, गोत्र, अङ्गुलित्र, वलत्र, शस्त्र, शास्त्र, वस्त्र, पत्र, पात्र, छत्र शब्द नपुंसक में होते हैं। शुक्र-शब्द का अर्थ देवता न हो तो नपुंसकलिङ्ग में होता है। चक्र, वज्र, अन्धकार, सार, अवार, पार, क्षीर, तोमर, श्रृङ्गार, भृङ्गार, मन्दार, उशीर, तिमिर, शिशिर शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

षकार उपधा में होते हुए ह्रस्व अकारान्त शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- वृषः, वृक्षः आदि। इसका अपवाद- शिरीष, ऋजीष, अम्बरीष, पीयूष, पुरीष, किल्बिष, कल्माष शब्द नपुंसक में होते हैं तो यूष, करीष, मिष, विष, वर्ष शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

सकार उपधा में होते हुए ह्रस्व अकारान्त शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे-वत्सः, वायसः आदि। इसका अपवाद- पनस, बिस, बुस, साहस आदि शब्द नपुंसक में होते हैं और चमस, अंस, रस, निर्यास, उपवास, कार्पास, वास, मास, कास, कांस, मांस शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

रश्मि, दिवस और उनके पर्यायवाची शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। रश्मिः मयूखः दिवसः घस्रः आदि। इसका अपवाद- दीधिति शब्द स्त्रीलिङ्ग में और दिन एवं अहन् शब्द नपुंसक में होते हैं।

परिमाण के वाचक शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। जैसे- कुडवः, प्रस्थः आदि। इसका अपवाद- द्रोण, आढक ये शब्द नपुंसक और पुँल्लिङ्ग दोनों में रहते हैं। खारी, मानिका स्त्रीलिङ्ग में हैं।

दार, अक्षत, लाज, असु ये शब्द हमेश बहुवचनान्त और पुँल्लिङ्ग में होते हैं।

मरुत्, गरुत्, तरत्, ऋत्विक्, ऋषि, राशि, दृति, ग्रन्थि, कृमि, ध्वनि, वलि, कौलि, मौलि, रवि, कवि, कपि, मुनि, ध्वज, गज, मुञ्ज, पुञ्ज, हस्त, कुन्त, अन्त, व्रात, वात, दूत, धूर्त, सूत, चूत, मुहूर्त, षण्ड, भण्ड, करण्ड, भरण्ड, वरण्ड, तुण्ड, गण्ड, मुण्ड, पाषण्ड, शिखण्ड, वंश, अंश, पुरोडाश, ह्रद, कन्द, कुन्द, बुद्बुद, शब्द, अर्घ, पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन्, स्तम्ब, नितम्ब, पूग, पल्लव, पल्वल, कफ, रेफ, कटाह, निर्व्यूह, मठ, मणि, तरङ्ग, तुरङ्ग, गन्ध, स्कन्ध, मृदङ्ग, सङ्ग, समुद्र, पुङ्ख, सारथि, अतिथि, कुक्षि, बस्ति, पाणि, अञ्जलि- ये शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। इनमें से कतिपय शब्द नपुंसक में भी होते हैं।

इति पुँल्लिङ्गाधिकारः।

अथ नपुंसकलिङ्गाधिकारः।

भावार्थक ल्युट् प्रत्ययान्त, भावार्थक निष्ठाप्रत्ययान्त, तद्धित-ष्यञ्-प्रत्ययान्त भावकर्मनिमित्तक यत्-य-ढक्-यक्-अञ्-अण्-वुञ्-छप्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे कि- हसनम्, शयितम्, शुक्लत्वम्, शौक्ल्यम्, स्तेयम्, सख्यम्, कापेयम्, आधिपत्यम्, औष्ट्रम्, द्वैहायनम्, पितापुत्रकम्, अच्छावाकीयम्।

अव्ययीभाव समास होने के वाद शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे- अधिस्त्रि, उपकुम्भम् आदि। एकवद्भाव वाले द्वन्द्व समास के शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे- पाणिपादम् आदि।

राजा के पर्यायवाची शब्द पूर्व में हो किन्तु मनुष्यशब्द पूर्व में न हो तो ऐसे शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे इनसभम्, ईश्वरसभम्, इन्द्रसभम् इत्यादि।

सुरा-सेना-छाया-शाला-निशा ये अन्त में हों ऐसे तत्पुरुष समास वाले शब्द स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक में होते हैं। द्विगुसमास वाला शब्द भी स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक में होते हैं। जैसे- पञ्चमूली, त्रिभुवनम् आदि।

इसन्त और उसन्त शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे- हविः, धनुः आदि। इसका अपवाद- अर्चिस् स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक दोनों में है और छदिस् स्त्रीलिङ्ग में ही है।

मुख, नयन, लोह, वन, मांस, रुधिर, कार्मुक, विवर, जल, हल, धन, अन्न और उनके पर्यायवाची शब्द भी नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे- मुखम् आननम्। नयनं लोचनम्। लोहं कालम्। वनं गहनम्। मांसम् आमिषम्। रुधिरं रक्तम्। कार्मुकं शरासनम्। विवरं विलम्। जलं वारि। हलं लाङ्गलम्। धनं द्रविणम्। अन्नम् अशनम्। इसका अपवाद- सीरः, अर्थः,

ओदनः- ये शब्द पुँल्लिङ्ग में होते हैं। वक्त्र, नेत्र, अरण्य, गाण्डीव शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं एवं अटवी शब्द स्त्रीलिङ्ग में होता है।

लकार उपधा में होते हुए ह्रस्व अकारान्त शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे- कुलं, कूलं, स्थलम् आदि। इसका अपवाद- तूल, उपल, ताल, कुसूल, तरल, कम्वल, देवल, वृषल शब्द पुँल्लिङ्ग में ही होते हैं और शील, मूल, मङ्गल, शाल, कमल, तल, मुसल, कुण्डल, पलल, मृणाल, बाल, निगल, पलाल, विडाल, खिल, शूल शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं।

शत आदि संख्यावाचक शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। शतं सहस्त्रम् इत्यादि। इसका अपवाद- अनन्तवाची शत शब्द और युत, प्रयुत शब्द शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं। कोशप्रमाण से लक्ष-शब्द नपुंसक में भी होता है एवं कोटि-शब्द स्त्रीलिङ्ग में।

मन्प्रत्यान्त दो अच् वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे- चर्म, वर्म आदि। इसका अपवाद- ब्रह्मन् शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में है।

अस्-अन्त होते हुए दो अच् वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे- यशः, मनः, तपः आदि। इसका अपवाद- अप्सरस् स्त्रीलिङ्ग और प्रायेण वहुवचनान्त होता है।

त्र-अन्त में रहने वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे- पत्रं, छत्रम् इत्यादि। इसका अपवाद- यात्रा, मात्रा, भस्त्रा, दंष्ट्रा, वरत्रा शब्द स्त्रीलिङ्ग में ही होते हैं और भृत्र, अमित्र, छात्र, पुत्र, मन्त्र, वृत्र, मेढ्र, उष्ट्र शब्द पुँल्लिङ्ग में ही होते हैं तो पत्र, पात्र, पवित्र, सूत्र, छत्र ये शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों में होते हैं।

बल, कुसुम, शुल्व, पत्तन, रण और उनके पर्यायवाचक शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। जैसे- बलं वीर्यम्। कुसुमं पुष्पम्। शुल्वं ताम्रम्। पत्तनं नगरम्। रणं युद्धम्। इसका अपवाद- पद्म, कमल, उत्पल ये शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसक दोनों में होते हैं। आहव और संग्राम शब्द पुँल्लिङ्ग में है और आजिः स्त्रीलिङ्ग में।

फलवाची शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं- आमलकम्, आम्रम् आदि।

वियत्, जगत्, शकृत्, पृषत्, उदश्वित्, नवनीत, अवतान, अनृत, अमृत, निमित्त, वित्त, चित्त, पित्त, व्रत, रजत, वृत्त, पलित, श्राद्ध, कुलिश, दैव, पीठ, कुण्ड, अङ्ग, अङ्क, दधि, सक्थि, अक्षि, आस्य, आस्पद, कण्व, वीज, धान्य, आज्य, शस्य, रूप्य, पण्य, वण्य, धृष्य, हव्य, कव्य, काव्य, सत्य, अपत्य, मूल्य, शिक्य, कुड्य, मद्य, हर्म्य, तुर्य, सैन्य, द्वन्द्व, वर्ह, दुःख, वडिश, पिच्छ, विम्ब, कुटुम्ब, कवच, वर, शर, वृन्दारक, अक्ष(इन्द्रियवाची) ये शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं।

घृत, भूत, मुस्त, क्ष्वेलित, ऐरावत, पुस्तक, बुस्त, लोहित, श्रृङ्ग, अर्घ, निदाघ, उद्यम, शल्य, दृढ, व्रज, कुञ्ज, कुथ, कूर्च, प्रस्थ, दर्प, अर्भ, अर्धर्च, दर्भ, पुच्छ, कबन्ध, औषध, आयुध, दण्ड, मण्ड, खण्ड, शव, सैन्धव, पार्श्व, आकाश, कुश, काश, अङ्कुश, कुलिश, गृह, मेह, देह, पट्ट, पटह, अष्टापद, अम्बुद, ककुद ये शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों में होते हैं।

इति नपुंसकलिङ्गाधिकारः।

अथ लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थो गणपाठः

अच्सन्धिप्रकरणे

शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्। (६।१।९४) शकन्धुः कर्कन्धुः कुलटा। सीमन्तः केशवेशे। हलीपा मनीषा लाङ्गलीषा पतञ्जलिः। सारङ्गः पशुपक्षिणोः।। **आकृतिगणोऽयम्।** मार्तण्डः। **इति शकन्ध्वादिः।।**

अजन्तपुँल्लिङ्गप्रकरणे

सर्वादीनि सर्वनामानि। (१।१।२७) सर्व विश्व उभ उभय डतर डतम अन्य अन्यतर इतर त्वत् त्व नेम सम सिम। पूर्वपरावर-दक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्। स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्। अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः। त्यद् तद् यद् एतद् इदम् अदस् एक द्वि युष्मद् अस्मद् भवतु किम्। **इति सर्वादिः।**

कण्ड्वादिप्रकरणे

कण्ड्वादिभ्यो यक् (३।१।१२७) कण्डूञ् मन्तु हृणी वल्गु असु (मनस्) महीङ् लाट् लेट् इरस् इरज् इरञ् दुवस् उवस् वेट् मेधा कुषुभ (नमस्) मगध तन्तस् पम्पस् (पपस्) सुख दुःख (भिक्ष चरम चरण अवर) सपर अरर (अरर्) भिषज् भिष्णुज् (अपर आर) इषुध वरण चुरण तुरण भुरण गद्गद एला केला खेला (वेला शेला) लिट लाट (लेखा लेख) रेखा द्रवस् तिरस् अगद उरस् तरण (तरिण) पयस् संभूयस् सम्वर।। **आकृतिगणोऽयम्।। इति कण्ड्वादिः।।**

कृदन्तप्रकरणे

नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः। (३।१।१३४) **नन्दिवाशिमदिदूषिसाधिवर्धि-शोभिरोचिभ्यो ण्यन्तेभ्यः संज्ञायाम्।** नन्दनः वाशनः मदनः दूषणः साधनः वर्धनः शोभनः रोचनः। सहितपिदमः संज्ञायाम्। सहनः तपनः दमनः जल्पनः रमणः दर्पणः संक्रन्दनः संकर्षणः संहर्षणः जनार्दनः यवनः मधुसूदनः विभीषणः लवणः चित्तविनाशनः कुलदमनः (शत्रुदमनः)।। **इति नन्द्यादिः।।**

ग्राही उत्साही उद्दासी उद्भासी स्थायी मन्त्री संमर्दी। **रक्षश्रवपशां नौ।** विरक्षी निश्रावी निवापी निशायी। **याचृव्याहृसंव्याहृव्रजवदवशां प्रतिषिद्धानाम्।** अयाची अव्याहारी। असंख्याहारी अव्राजी अवाजी अवासी। **अचामचित्तकर्तृकाणाम्।** अकारी अहारी अविनायी(विशायी विषायी) विशयी विषयी देशे। **विशयी विषयी देशः। अवियावी भूते।** अवराधी उपरोधी परिभवी परिभावी **इति ग्रह्यादिः।**

पच वच वद वप चल पत नदट् भषट् प्लवट् चरट् गरट् तरट् चोरट् गाहट् शरट् देवट् (दोपट्) जर (रज) मर (मद) क्षम(क्षप) सेव मेष कोप (कोष) मेघ नर्त व्रण दर्श सर्प (दम्भ दर्प) जारभर श्वपच **पचादिराकृतिगणः। इति पचादिः।**

मूलविभुजादिभ्यः कः। (३।२।३) मूलविभुज नखमुच काकगुह कुमुद महीध्र कुध्र। गिध्र। **आकृतिगणोऽयम्। इति मूलविभुजादयः।**

संपदादिभ्यः क्विप्। (३।३।९४) संपद् विपद् आपद् प्रतिपद् परिषद् ।। **एते संपदादयः।**

अव्ययीभावसमासे

अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः। (५।४।१०७) शरद् विपाश् अनस् मनस् उपानह् अनडुह् दिव् हिमवत् हिरुक् विद् सद् दिश् दृश् विश् चतुर् त्यद् तद् यद् एतद् कियत्। जराया जरस् च। प्रतिपरसमनुभ्योऽक्ष्णः। पथिन्। इति **शरदादिः।**

तत्पुरुषसमासे

सप्तमी शौण्डैः। (२।१।४०) शौण्ड धूर्त कितव व्याड प्रवीण संवीत अन्तर अधि पटु पण्डित कुशल चपल निपुण। इति **शौण्डादिः।**

ऊर्यादिच्विडाचश्च। (१।४।६१) ऊरी उररी तन्थी ताली आताली वेताली धूली धूसी शकला स्त्रंसकला ध्वंसकला संशकला गुलुगुधा सजूस् फलफली विक्ली आक्ली आलोष्ठी केवाली केवासी सेवासी पर्याली शेवाली वर्षाली अत्यूमशा वश्मशा मस्मसा मसमसा औषट् श्रौषट् वौषट् वषट् स्वाहा स्वधा बन्धा (पाम्पी) प्रादुस् श्रत् आविस्। **एते ऊर्यादयः।**

शाकपार्थिवादीनामुपसंख्यानम् (उपमानानि सामान्यवचनैः। (२।१।६०) इति सूत्रे। शाकपार्थिव कुतुपसौश्रुत अजातौल्वलि। **आकृतिगणोऽयम्।** कृताकृत भुक्तविभुक्त पीतविपीत गतप्रत्यागत यातानुयात क्रयाक्रयिका पुटापुटिका फलाफलिका मानोन्मानिका।। **इति शाकपार्थिवादिः।**

अर्धर्चाः पुंसि च। (२।४।३१।) अर्धर्च गोमय कषाय कार्षापण कुपत कुशप (कुणप) कपाट शङ्ख गूथ यूथ ध्वज कबन्ध पद्म गृह सरक कंस दिवस यूष अन्धकार दण्ड कमण्डलु मण्ड भूत द्वीप द्यूत चक्र धर्म कर्मन् मोदक शतमान यान नख नखर चरण पुच्छ दाडिम हिम रजत सक्तु पिधान सार पात्र घृत सैन्धव औषध आढक चषक द्रोण खलीन पात्रीव षष्टिक वारबाण (वारवारण) प्रोथ कपित्थ (शुष्क) शाल शील शुक्ल (शुल्क) शीधु कवच रेणु (ऋण) कपट शीकर मुसल सुवर्ण वर्ण पूर्व चमस क्षीर कर्ष आकाश अष्टापद मङ्गल निधन निर्यास जृम्भ वृत्त पुस्त बुस्त क्ष्वेडित श्रृङ्ग निगड (खल) मूलक मधु मूल स्थूल शराव नाल वप्र विमान मुख प्रग्रीव शूल वज्र कटक कण्टक (कर्पट)शिखर कल्क (वल्कल) नटमस्तक (नाटमस्तक) वलय कुसुम तृण पङ्क्त कुण्डल किरीट (कुमुद) अर्बुद अङ्कुश तिमिर आश्रय भूषण इक्कस (इष्वास) मुकुल वसन्त तटाक (तडाग) पिटक विटङ्क विडङ्ग पिण्याक माष कोश फलक दिन दैवत पिनाक समर स्थाणु अनिक उपवास शाक कर्पास (विशाल) चषाल (चखाल) खण्ड दर विटप (रण बल मक) मृगाल हस्त आर्द्र हल (सूत्र) ताण्डव गाण्डीव मण्डप पटह सौध योध पार्श्व शरीर फल (छल) पुर (पुरा) राष्ट्र अम्बर बिम्ब कुट्टितम मण्डल (कुक्कुट) कुडप ककुद खण्डल तोमर तोरण मञ्चक पञ्चक पुङ्ख मध्य (बाल) छाल वल्मीक वर्ष वस्त्र वसु देह उद्यान उद्योग स्नेह स्तेन (स्वन स्वर) संगम निष्क क्षेम शूक क्षत्र पवित्र (यौवन कलह) मालक (पालक) मूषिक (मण्डल वल्कल) कुज (कुञ्ज) विहार लोहित विषाण भवन अरण्य पुलिन दृढ आसन ऐरावत शूर्प तीर्थ लोमन (लोमश) तमाल लोह दण्डक शपथ प्रतिसर दारु धनुस् मान वर्चस्क कूर्च तण्डक मठ सहस्र ओदन प्रवाल शकट अपराह्न नीड शकल तण्डुल।। **इत्यर्धर्चादिः।।**

बहुव्रीहिसमासे

पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः। (५।४।१३८) हस्तिन् कुद्दाल अश्व कशिक कुरुत कटोल कटोलक गण्डोल गण्डोलक कण्डोल कण्डोलक अज कपोत जाल गण्ड महिला दासी गणिका कुसूल।। **इति हस्त्यादिः।।**

उरः प्रभृतिभ्यः कप्। (५।४।१५१) उरस् सर्पिस् उपानह् पुमान् अनड्वान् पयः नौः लक्ष्मीः दधि मधु शाली शालिः। अर्थान्नञः।। **इत्युरःप्रभृतयः।।**

कस्कादिषु च। (८।३।४८) कस्कः कौतस्कुतः भ्रातुष्पुत्रः शुनस्कर्णः सद्यस्कालः सद्यस्कीः साद्यस्कः कांस्कान् सर्पिष्कुण्डिका धनुष्कपालम् बहिष्पलम् (बर्हिष्पलम्) यजुष्पात्रम् अयस्कान्तः तमस्काण्डः अयस्काण्डः मेदस्पिण्डः भास्करः अहस्करः।। **इति कस्कादिराकृतिगणः।।**

द्वन्द्वसमासे

राजदन्तादिषु परम्। (२।२।३१) राजदन्तः अग्रेवणम् लिप्तवासितम् नग्नमुषितम् सिक्तसंमृष्टम् मृष्टलुञ्चितम् अवक्लिन्नपक्वम् अर्पितोतम् (अर्पितोप्तम्) उप्तगाढम् उलूखलमुसलम् तण्डुलकिण्वम् दृषदुपलम् आरड्वायनि (आरग्वायनबन्धकी) चित्ररथबाह्लीकम् अवन्त्यश्मकम् शूद्रार्यम् स्नातकराजानौ विष्वक्सेनार्जुनौ अक्षिभ्रुवम् दारगवम् शब्दार्थौ धर्मार्थौ कामार्थौ अर्थशब्दौ अर्थधर्मौ अर्थकामौ वैकारिमतम् गाजवाजम् (गोजवाजम्) गोपालिधानपूलासम् (गोपालधानीपूलासम्) पूलासकारण्डम् (पूलासककुरण्डम्) स्थूलासम् (स्थूलपूलासम्) उशीरबीजम् (जिज्ञास्थि) सिञ्जास्थम् (सिञ्जाश्वत्थम्) चित्रास्वाति (चित्रस्वाति) भार्यापती दंपती जंपती जायापती पुत्रपती पुत्रपशू केशरश्मश्रू शिरोबीजु (शिरोबीजम्) शिरोजानु सर्पिर्मधुनी मधुसर्पिषी (आद्यन्तौ) अन्तादी गुणवृद्धी वृद्धिगुणौ।। **इति राजदन्तादिः।।**

तद्धितप्रकरणे

अश्वपत्यादिभ्यश्च। (४।१।८४) अश्वपति ज्ञानपति शतपति धनपति गणपति (स्थानपति यज्ञपति) राष्ट्रपति कुलपति गृहपति (पशुपति) धान्यपति धन्वपति (धर्मपति बन्धुपति) सभापति प्राणपति क्षेत्रपति। **इत्यश्वपत्यादिः।**

उत्सादिभ्योऽञ्। (४।१।८६) उत्स उदपान विकर विनद महानद महानस महाप्राण तरुण तलुन। वष्कयासे। पृथ्वी (धेनु) पङ्क्ति जगती त्रिष्टुप् अनुष्टुप् जनपद भरत उशीनर ग्रीष्म पीलुकुण। उदस्थान देशे। पृषदंश भल्लकीय रथन्तर मध्यन्दिन बृहत् महत् सत्वत् कुरु पञ्चाल इन्द्रावसान उष्णिह् ककुभ् सुवर्ण देव ग्रीष्मादच्छन्दसि। **इत्युत्सादिः।**

बाह्वादिभ्यश्च। (४।१।९६) बाहु उपबाहु उपवाकु निवाकु शिवाकु वटाकु उपनिन्दु (उपविन्दु) वृषली वृकला चूडा बलाका मूषिका कुशला भगला (छगला) ध्रुवका (धुवका) सुमित्रा दुर्मित्रा पुष्करसद् अनुहरत् देवशर्मन् अग्निशर्मन् (भद्रशर्मन् सुशर्मन्) कुनामन् (सुनामन्) पञ्चन् सप्तन् अष्टन्। अमितौजसः सलोपश्च। सुधावत् उदञ्चु शिरस् माष शराविन् मरीची क्षेमवृद्धिन् श्रृङ्खलतोदिन् खरनादिन् नगरमर्दिन् प्राकारमर्दिन् लोमन् अजीगर्त कृष्ण युधिष्ठिर अर्जुन साम्ब गद प्रद्युम्न राम (उदङ्क)। उदकः संज्ञायाम्। संभूयोम्भसोः सलोपश्च।। **आकृतिगणोऽयम्।।** तेन सात्त्विकिः जाङ्घ्रिः ऐन्दशर्मिः आजधेनविः इत्यादि।। **इति बाह्वादयः।।**

अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्। (४।१।१०४) बिद उर्व कश्यप कुशिक भरद्वाज उपमन्यु किलात कन्दर्प (किंदर्भ) विश्वानर ऋषिषेण (ऋष्टिषेण) ऋतभाग हर्यश्व प्रियक आपस्तम्ब कुचवार शरद्वत् शुनक (शुनक्) धेनु गोपवन शिग्रु बिन्दु (भोगक) भाजन (शमिक) अश्वावतान श्यामाक श्यामक (श्यावलि) श्यापर्ण हरित किंदास बह्यस्क अर्कजूष (अर्कलूष) बध्योग विष्णुवृद्ध प्रतिबोध रचित (रथीतर) रथन्तर गविष्ठिर निषाद (शबर अलस) मठर (मृडाकु) सृपाकु मृदु पुनर्भू पुत्र दुहितृ ननान्दृ। परस्त्री परशुं च।। **इति बिदादिः।।**

गर्गादिभ्यो यञ्। (४।१।१०५) गर्ग वत्स। वाजासे। सङ्कृति अज व्याघ्रपात् विदभृत् प्राचीनयोग (अगस्ति) पुलस्ति चमस रेभ अग्निवेश शंख शट शक एक धूम अवट मनस्

धनञ्जय वृक्ष विश्वावसु जरमाण लोहित शंसित बभ्रु वल्गु मण्डु शङ्कु लिगु गुहलु मन्तु मंक्षु अलिगु जिगीषु मनु तन्तु मनायीसूनु कथक कन्थक ऋक्ष तृक्ष (वृक्ष) (तनु) तरुक्ष तलुक्ष तण्ड वतण्ड कपिकत (कपि कत) कुरुकत अनडुह कण्व शकल गोपक्ष कोकक्ष अगस्त्य कण्डिनी यज्ञवल्क पर्णवल्क अभयजात विरोहित वृपगण रहूगण शण्डिल वर्णक (चणक) चुलुक मुद्गल मुसल जमजग्नि पराशर जतूकर्ण जातूकर्ण महित मन्त्रित अश्मरथ शर्कराक्ष पूतिमाष स्थूरा अदरक (अररक) एलाक पिङ्गल कृष्ण गोलन्द उलूक तितिक्ष भिषज (भिषज्) भिष्णज भडित भण्डित दल्भ चेकित चिकित्सित देवहू इन्द्रहू एकलु पिप्पलु बृहदग्नि (सुलोहिन्) सुलाभिन् उक्थ कुटीगु **इति गर्गादिः।**

शिवादिभ्योऽण्। (४।१।११२) शिव प्रोष्ठ प्रोष्ठिक चण्ड जम्भ भूरि दण्ड कुठार ककुभ् (ककुभा) अनभिम्लान कोहित सुख सन्धि मुनि ककुत्स्थ कहोड कोहड कहूय कहय रोद कपिञ्जल (कुपिञ्जल) खञ्जन वतण्ड तृणकर्ण क्षीरह्रद जलह्रद परिल (पथिक) पिष्ट हैहय (पार्षिका) गोपिका कपिलिका जटिलिका बधिरिका मञ्जीरक(मजिरक) वृष्णिक खञ्जार खञ्जाल (कर्मार) रेख लेख आलेखन विश्रवण रवण वर्तनाक्ष ग्रीवाक्ष (पिटक विटप) पिटाक तृक्षाक नभक ऊर्णनाभ जरत्कारु (पृथा उत्क्षेप) पुरोहितिका सुरोहितिका सुरोहिका आर्यश्वेत (अर्यश्वेत) सुपिष्ट मसूरकर्ण मयूरकर्ण (खर्जूरकर्ण) कदूरक तक्षन् ऋष्टिषेण गङ्गा विपाश मस्का लह्य द्रुह्य अयस्थूण तृणकर्ण (तृण कर्ण) पर्ण भलन्दन विरूपाक्ष भूमि इला सपत्नी। द्व्यचो नद्याः। त्रिवणी त्रिवणं च। इति **शिवादिः। आकृतिगणः।**

रेवत्यादिभ्यष्ठक्। (४।१। १४६) रेवती अश्वपाली मणिपाली द्वारपाली वृकवञ्चिन् वृकबन्धु वृकग्राह दण्डग्राह कर्णग्राह कुक्कुटाक्ष (ककुदाक्ष) चामरग्राह। इति **रेवत्यादिः।**

भिक्षादिभ्योऽण्। (४।२।३८) भिक्षा गर्भिणी क्षेत्र करीष अङ्गार (अङ्गार) चर्मिन् धर्मिन् सहस्र युवति पदाति पद्धति अथर्वन् दक्षिणा भूत विषय श्रोत्र। इति **भिक्षादिः।**

क्रमादिभ्यो वुन्। (४।२।६१) क्रम पद शिक्षा मीमांसा सामन्। इति **क्रमादिः।**

वरणादिभ्यश्च। (४।२।८२) वरणा शृङ्गी शाल्मलि शुण्डी शयाण्डी पर्णी ताम्रपर्णी गोद आलिङ्ग्यायनी जालपदी (जानपदी) जम्बू पुष्कर चम्पा पम्पा वल्गु उज्जयिनी गया मथुरा तक्षशिला उरसागोमती वलभी। इति **वरणादिः।**

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः। (८।२।९) यव दल्मि ऊर्मि भूमि कृमि क्रुञ्चा वशा द्राक्षा ध्राक्षा ध्रजि (व्रजि) ध्वजि निजि सिजि सञ्जि हरित् ककुद् मरुत् गरुत् इक्षुद्रु मधु। आकृतिगणोऽयं **यवादिः।**

नद्यादिभ्यो ढक्। (४।२।९७) नदी मही वाराणसी श्रावस्ती कौशाम्बी वनकौशाम्बी (वनकोशाम्बी) काशपरी काशफारी (काशफरी) खादिरी पूर्वनगरी पाठा माया शाल्वा दार्वा सेतकी। **वडवाया वृषे।** इति **नद्यादिः।**

गहादिभ्यश्च। (४।२।१३८) गह अन्तस्थ सम विषम मध्य। **मध्यन्दिन चरणे।** उत्तम अङ्ग बङ्ग मगध पूर्वपक्ष अपरपक्ष अधमशाख उत्तमशाख एकशाख एकग्राम समानग्राम एकवृक्ष एकपलाश इष्वग्र इष्वनीक अवस्यन्दन कामप्रस्थ शाडिकाडायनि (खाडायन) काठेरणि लावेरणि सौमित्रि शैशिरि आसतु दैवशर्मि श्रौति अहिंसि अमित्रि व्याडि वैजि आध्यश्वि आनृशसि (आनृशंसि) शौङ्गि अग्निशर्मि भौजि वाराटकि वाल्मीकि (वाल्मीकी) क्षैमवृद्धि आश्वत्थि औद्गाहमानि ऐकविन्दवि दन्ताग्र हंस तत्त्वग्र तन्त्वग्र उत्तर अन्तर (अनन्तर)। **मुखपार्श्वतसोर्लोपः। जनपरयोः कुक् च देवस्य च। वेणुकादिभ्यश्छण्।** इति **गहादिराकृतिगणोऽयम्।**

दिगादिभ्यो यत्। (४।३।५४) दिश् वर्ग पूग गण पक्ष धाय्य मित्र मेधा अन्तर पथिन् रहस् अलीक उखा साक्षिन् देश आदि अन्त मुख जघन मेघ यूथ। **उदकात्संज्ञायाम्।** ज्ञायवंश वेश काल आकाश। इति **दिगादिः।**

नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ।४।३।१४४। शर दर्भ मृद् (मृत्) कुटी तृण सोम बल्वज। **इति शरादिः।।**

उगवादिभ्यो यत्। (५।१।२) गो हविस् अक्षर विष बर्हिस् अष्टका स्वदा युग मेधा स्रुच्। **नाभि नभं च। शुनः सम्प्रसारणं वा च दीर्घत्वं तत्सन्नियोगेन चान्तोदात्तत्वम्। ऊधसोऽनङ् च।** कूप खद दर खर असुर अध्वन् (अध्वन) क्षर वेद बीज दीस दीप्त। इति **गवादिः।**

दण्डादिभ्यो यत्। (५।१।६६) दण्ड मुसल मधुपर्क कशा अर्घ मेघ मेधा सुवर्ण उदक वध युग गुहा भाग इभ भङ्ग। इति **दण्डादिः।**

पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा। (५।१।१२२) पृथु मृदु महत् पटु तनु लघु बहु साधु आशु उरु गुरु बहुल खण्ड दण्ड चण्ड अकिंचन बाल होड पाक वत्स मन्द स्वादु ह्रस्व दीर्घ प्रिय वृष ऋजु क्षिप्र क्षुद्र अणु।। **इति पृथ्वादिः।।**

वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च। (५।१।१२३) दृढ वृढ परिवृढ भृश कृश वक्र शुक्र चुक्र आम्र कृष्ट लवण ताम्र शीत उष्ण जड बधिर पण्डित मधुर मूर्ख मूक स्थिर। **वेर्यातलातमतिर्मनः शारदानाम्, समो मतिमनसोः।** जवन। **इति दृढादिः।।**

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। (५।१।१२४) ब्राह्मण वाडव माणव। अर्हतो नुम्च। चोर धूर्त आराधय विराधय अपराधय उपराधय एकभाव द्विभाव त्रिभाव अन्यभाव अक्षेत्रज्ञ संवादिन् संवेशिन् संभाषिन् बहुभाषिन् शीर्षघातिन् विघातिन् समस्थ विषमस्थ परमस्थ मध्यस्थ अनीश्वर कुशल चपल निपुण पिशुन कुतूहल क्षेत्रज्ञ विश्न बालिश अलस दुःपुरुष कापुरुष राजन् गणपति अधिपति गडुल दायाद विशस्ति विषम विपात निपात। सर्ववेदादिभ्यः स्वार्थे। चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च। शौटीर।। **आकृतिगणोऽयम्।। इति ब्राह्मणादिः।।**

पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्। (५।१।१२८) पुरोहित। राजासे। ग्रामिक पिण्डिक सुहित वालमन्द (बाल-मन्द) खण्डिक दण्डिक वर्मिक कर्मिक धर्मिक शीतिक सूतिक मूलिक तिलक अञ्जलिक (अन्तनिक) रूपिक ऋषिक पुत्रिक अविक छत्रिक पर्षिक पथिक चर्मिक प्रतिक सारथि आस्थिक सूचिक संरक्ष सूचक (संरक्षसूचक) नास्तिक अजानिक शाक्वर नागर चूडिक।। **इति पुरोहितादिः।।**

तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्। (५।२।३६) तारका पुष्प कर्णक मञ्जरी ऋजीष क्षण सूत्र मूत्र निष्क्रमण पुरीष उच्चार प्रचार विचार कुञ्चल कण्टक मुसल मुकुल कुसुम कुतूहल स्तबक (स्तवक) किसलय पल्लव खण्ड वेग निद्रा मुद्रा बुभुक्षा धेनुष्या पिपासा श्रद्धा अभ्र पुलक अङ्गारक वर्णक द्रोह दोह सुख दुःख उत्कण्ठा भर व्याधि वर्मन् व्रण गौरव शास्त्र तरंग तिलक चन्द्रक अन्धकार गर्व कुमुर (मुकुर) हर्ष उत्कर्ष रण कुवलय गर्ध क्षुध् सीमन्त ज्वर गर रोग रोमाञ्च पण्डा कज्जल तृष् कोरक कल्लोल स्थपुट फल कञ्चुक श्रृङ्गार अङ्कुर शैवल बकुल श्वभ्र आराल कलङ्क कर्दम कन्दल मूर्च्छा अङ्गार हस्तक प्रतिबिम्ब विघ्नतन्त्र प्रत्यय दीक्षा गर्ज। गर्भादप्राणिनि।। **इति तारकादिराकृतिगणः।**

इष्टादिभ्यश्च। (५।२।८८) इष्ट पूर्त उपासादित निगदित परिगदित परिवादित निकथित निषादित निपठित संकलित परिकलित संरक्षित परिरक्षित अर्चित गणित अवकीर्ण

आयुक्त गृहीत आम्नात श्रुत अधीत अवधान आसेवित अवधारित अवकल्पित निराकृत उपकृत उपाकृत अनुयुक्त अनुगणित अनुपठित व्याकुलित।। **इतीष्टादिः**।।

लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः। (५।२।१००) लोमन् रोमन् बभ्रु हरि गिरि कर्क कपि मुनि तरु। इति **लोमादिः**।

पामन् वामन् वेमन् हेमन् श्लेष्मन् कद्रु (कद्रू) वलि सामन् ऊष्मन् कृमि। **अङ्गात्कल्याणे**। शाकी पलाली। **दद्रूणां ह्रस्वत्वं च। विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसन्धेः। लक्ष्म्या अच्च।** इति **पामादिः**।

पिच्छा उरस् धुवक ध्रुवक। **जटाघटाकालाः क्षेपे**। वर्ण उदक पङ्क प्रज्ञा। इति **पिच्छादिः**।

व्रीह्यादिभ्यश्च। (५।२।११६) व्रीहि माया शाला शिखा माला मेखला केका अष्टका पताका चर्मन् कर्मन् वर्मन् दंष्ट्रा संज्ञा बडवा कुमारी नौ वीणा बलाका यवखदनौ कुमारी। **शीर्षान्नञः**। इति **व्रीह्यादिः**।

अर्श आदिभ्योऽच्। (५।२।१२७) अर्शस् उरस् तुन्द चतुर कलित जटा घटा घाटा अभ्र अघ कर्दम अम्ल लवण **स्वाङ्गाद्धीनात्। वर्णात्। इत्यर्शआदिराकृतिगणः**।

क्षुभ्नादिषु च। (८।४।३९) क्षुभ्न नृगमन नन्दिन् नन्दन नगर। एतान्युत्तरपदानि संज्ञायां प्रयोजयन्ति। हरिनन्दी हरिनन्दनः गिरिनगरम्। नृतिर्यङि प्रयोजयन्ति। नरीनृत्यते। नर्तन गहन नन्दन निवेश निवास अग्नि अनूप। एतान्युत्तरपदानि प्रयोजयन्ति। परिनर्तनम् परिगहनम् परिनन्दनम् शरनिवेशः शरनिवासः शराग्निः दर्भानूपः। **आचार्यादणत्वं च।। आकृतिगणोऽयम्।। पाठान्तरम्।।** क्षुभ्ना तृप्नु नृनमन नरनगर नन्दन। नृतिर्यङि। गिरिनदी गृहगमन निवेश निवास अग्नि अनूप आचार्यभोगीन चतुर्हायन। इरिकादीनि वनोत्तरपदानि संज्ञायाम्। इरिका तिमिर समीर कुबेर हरि कर्मार।। **इति क्षुभ्नादिः**।।

अनुशतिकादीनां च। (७।३। २०) अनुशतिक अनुहोड अनुसंवरण (अनुसंचरण) अनुसंवत्सर अङ्गारवेणु असिहत्य अस्यहत्य अस्यहेति वध्योग पुष्करसद् अनुहरत् कुरुकत् कुरुपञ्चाल उदकशुद्ध इहलोक परलोक सर्वलोक सर्वपुरुष सर्वभूमि प्रयोग परस्त्री (राजपुरुषात्ष्यञि) सूत्रनड। **इत्यनुशतिकादिराकृतिगणोऽयम्।** तेन अभिगम अभिभूत अधिदेव चतुर्विधा इत्यादयोऽन्येऽपि गृह्यन्ते।

आद्यादिभ्य उपसंख्यानम्। आदि मध्य अन्त पार्श्व पृष्ठ। **इत्याद्यादिराकृतिगणोऽयम्।** स्वरेण स्वरतः।

प्रज्ञादिभ्यश्च (५।४।३८) प्रज्ञ वणिज् उशिज् उष्णिज् प्रत्यक्ष विद्वस् विदन् षोडन् विद्या मनस्। **श्रोत्रं शरीरे**। जुह्वत्। **कृष्णमृगे**। चिकीर्षत्। चोर शत्रु योध चक्षुस् वसु (एनस्) मरुत् क्रुञ्च सत्वत् दशार्ह वयस् (व्याकृत) असुर रक्षस् पिशाच अशनि कर्षापणा देवता बन्धु। इति **प्रज्ञादिः**।

स्त्रीप्रत्ययप्रकरणे

अजाद्यतष्टाप्। (४।१।४) अजा एडका कोकिला चटका अश्वा मूषिका बाला होडा पाका वत्सा मन्दा विलाता पूर्वापिहाणा (पूर्वापहाणा) अपरापहाणा। **सम्भस्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात्। सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात्। शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिः।** क्रुञ्चा उष्णिहा देवविशा ज्येष्ठा कनिष्ठा। **मध्यमेति पुंयोगेऽपि। मूलान्नञः।** दंष्ट्रा। **एतेऽजादयः। आकृतिगणोऽयम्।**

षिद्गौरादिभ्यश्च। (४।१।४१) गौर मत्स्य मनुष्य शृङ्ग पिङ्गल हय गवय मुकय ऋष्य (पुट तूण) द्रुण द्रोण कोकण (काकण) हरिण कामण पटर उणक (आमल) आमलक कुबल बिम्ब बदर कर्करक तर्कार शर्कार पुष्कर शिखण्ड सलद शष्कण्ड सनन्द सुषम सुषब अलिन्द गुडुल षाण्डश आढक आनन्द आश्वत्थ सृपाट आखक(आपच्चिक) शष्कुल सूर्य(सूर्म) शूर्प सूच यूष(पूष) यूथ सूप मेथ वल्लक घातक सल्लक माल्लक मालत साल्वक वेतस वृक्ष(वृस) अतस (उभय) भृङ्ग मह मठ छेद पेश मेद श्वन् तक्षन् अनडुही अनड्वाही। **एषणः करणे।** देह देहल काकादन गवादन तेजन रजन लवण औद्गाहमानी आद्गाहमानी गौतम(गोतम)(पारक) अयस्थूण (अयःथूण) भौरिकि भौलिकि भौलाङ्गि यान मेध आलम्बि आलजि आलब्धि आलक्षि केवाल आपक आरट नट टोट नोट मूलाट शातन(पोतन) पातन पाठन(पानठ) आस्तरण अधिकरण अधिकार अग्रहायनी (आग्रहायणी) प्रत्यवरोहिणी(सेचन)। **सुमङ्गलात् संज्ञायाम्।** अण्डर सुन्दर मण्डल मन्थर मङ्गल पट पिण्ड(षण्ड) उर्द गुर्द शम सूद औड (आर्द्र) हृद ह्रद पाण्ड (भाण्डल) भाण्ड (लोहाण्ड) कदर कन्दर कदल तरुण तलुन कल्माष बृहत् महत् (सोम) सौधर्म। **रोहिणी नक्षत्रे। रेवती नक्षत्रे।** विकल निष्कल। पुष्कल **कटाच्छ्रोणिवचने। पिप्पल्यादयश्च।** पिप्पली हरितकि (हरीतकी) कोशातकी शमी वरी शरी पृथिवी क्रोष्टु मातामह पितामह इति **गौरादिः।**

बह्वादिभ्यश्च। (४।१।४५) बहु पद्धति अङ्कति अञ्चति अंहति शकटि। **शक्तिः शस्त्रे।** शारि वारि राति राडि (शाधि) अहि कपि यष्टि मुनि। **इतः प्राण्यङ्गात्। कृतिकारादक्तिनः। सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके।** चण्ड अराल कृपण कमल विकट विशाल विशङ्कट भरुज ध्वज। **चन्द्रभागान्नद्याम्।** (चन्द्रभागा नद्याम्) कल्याण उदार पुराण अहन् क्रोड नख खुर शिखा बाल शफ गुद। **आकृतिगणोऽयम्।** तेन भग गल राग इत्यादि। **इति बह्वादयः।**

न क्रोडादिबह्वचः। (४।१।५६) क्रोड नख खुर गोखा उखा शिखा वाल शफ शुक्र। **आकृतिगणोऽयम्।** तेन भगगलघोणनालभुजगुदकर। इति **क्रोडादिः।**

शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्। (४।१।७३) शार्ङ्गरव कापटव गौग्गुलव ब्राह्मण वैद गौतम कामण्डलेय ब्राह्मणकृतेय (आनिचेय) आनिधेय आशोकेय वात्स्यायन मौञ्जायन कैकस काप्य (काव्य) शैव्य एहि पर्येहि आश्मरथ्य औदपान अराल चण्डाल बतण्ड। **भोगवद् गौरिमतोः संज्ञायाम् घादिषु। नृनरयोर्वृद्धिश्च।** इति **शार्ङ्गरवादिः।**

इति लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थो गणपाठः।

लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थसूत्राणामकारादिक्रमेण सूत्रसूची

इति लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थसूत्राणामकारादिवर्णानुक्रमः।

अथ लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थवार्तिकानामकारादिक्रमेण सूची

।।इति लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थ-वार्तिकानामकारादिवर्णानुक्रमः।।

लघुकौमुदीस्थधातूनामकारादिवर्णक्रमेण-सूची

इति लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थधातूनामकारादिवर्णक्रमेण-सूची

प्रथम प्रकाशित विस्तृत हिन्दी व्याख्या

श्रीभट्टोजिदीक्षितविरचित

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी

'श्रीधरमुखोल्लासिनी' विस्तृत हिन्दी व्याख्या

(प्रत्येक सूत्रों में पदप्रदर्शन, समास, अनुवृत्तिक्रम, सूत्रार्थ, भाष्य-मनोरमा-शेखर के अनुसार विस्तृत एवं सुगम व्याख्या, प्रयोगसिद्धि, सभी धातुओं के प्रत्येक लकारों के रूप, क्लिष्ट रूपों की सिद्धि एवं धातुपाठ सहित धातुप्रकरण का विशिष्ट विवेचन)

व्याख्याकार : श्रीगोविन्दाचार्य

प्रस्तुत व्याख्याग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि 30 वर्षों से छात्रों को अध्यापन कराते समय ग्रन्थस्थ कठिन विषयों को सरलता से समझाने की जो प्रयोगात्मक शैली अपनायी गयी है उसी शैली को लेखक ने यहाँ लिखित रूप में परिणित किया है। तात्पर्य यह है कि आज के इस वैज्ञानिक युग में प्रत्येक विषयों को वैज्ञानिक ढ़ंग से समझाने से ही कठिन से कठिन विषय भी छात्र शीघ्र ग्रहण कर सकता है। अतः परम्परा से कठिन रूप में ग्रहण किए जाने वाले इस संस्कृत-व्याकरण को युगसापेक्ष अत्यन्त सरल एवं सुबोध बनाया है।

प्रस्तुत टीका में सूत्रों की व्याख्या करते समय सबसे पहले समास, उसके बाद विभक्ति, तदनन्तर अनुवृत्ति और अधिकार, उसके बाद बोल्ड अक्षरों में सूत्रार्थ दिये गये हैं। आवश्यक स्थलों पर सूत्रों का विशेष विवरण दिया गया है एवम् उसके बाद रूप-सिद्धि दिखाई गई है।

प्रस्तुत संस्करण के प्रारम्भ में क्रिया के सम्बन्ध में अवश्यज्ञातव्य विषयों का विस्तारपूर्वक निरूपण किया गया है। जैसे कि सकर्मक और अकर्मक की व्यवस्था, फल और व्यापार का स्पष्टीकरण, कर्त्ता, कर्म, काल, परस्मैपद और आत्मनेपद आदि।

अधिक से अधिक प्रयोगसिद्धि के साथ विशेष प्रचलित धातुओं के सभी रूप और शेष धातुओं के प्रत्येक लकारों में कम से कम एक-एक रूप अवश्य दिये गये हैं।

सम्पूर्ण सात भाग में

• **प्रथम भाग** (प्रारम्भ से अव्ययान्त प्रकरण) • **द्वितीय भाग** (स्त्रीप्रत्यय, कारक एवं समास प्रकरण) • **तृतीय भाग** (सम्पूर्ण तद्धित प्रकरण) • **चतुर्थ भाग** (दशगणी-भ्वादि से चुरादि प्रकरण) • **पंचम भाग** (णिच्प्रकरण से लकारार्थ प्रकरण) • **षष्ठ भाग** (उणादि सहित कृदन्त प्रकरण) • **सप्तम भाग** (स्वरवैदिकी एवं लिङ्गानुशासन प्रकरण)

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी

अष्टाध्यायीसूत्रपाठ-वार्तिकपाठ-गणपाठ-धातुपाठ-पाणिनीयशिक्षा-लिङ्गानुशासन-परिभाषापाठ-सूत्रवार्तिकगणसूत्रधातुपरिभाषोणादि-सूत्रानुक्रमणिकासंवलिता

(मूलमात्रम्)

सम्पादकः श्रीगोविन्दाचार्यः

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी-221001

chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com

www.chaukhamba.co.in

 : @chaukhambabooks : @chaukhamba